महाभारत



शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासिक,
मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व्व
समाप्त ।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-कृत मूलसंस्कृतसे
योग्य पण्डितोंके द्वारा
अनुवादित
और
११७। १ बहुबाजार ष्ट्रीट, कलकत्तेसे
श्री शरच्चन्द्रसोमके द्वारा
प्रकाशित ।

द्वितीयसंस्करण ।

VOL III

कलकत्ता;
श्री माणिकचन्द्रचक्रवर्त्तीके द्वारा
११७। १ बहुबाजार ष्ट्रीट,—कालेज मेसिन प्रेससे मुद्रित ।

१६०७ ।

सम्पूर्ण महाभारतका मूल्य १२) रुपये ।

महाभारत।

शान्तिपर्व्व।

राजधर्म्म-प्रकरण।

नर, नारायण, व्यासदेव और सरस्वती देवीको प्रणाम करके महाभारत पुराणकी कथा कहे।

महात्मा राजा धृतराष्ट्र, विदुर, भरत-कुलकी स्त्रियें और पाण्डव लोग दुर्य्योधन आदि मृत सुहृद पुरुषोंकी जलदानादिक क्रिया विधि-पूर्व्वक करके शोकित चित्तसे एक महीनेतक नगरके बाहर गङ्गा तीरपर बास करने लगे। उस ही समय साधुओंमें श्रेष्ठ महात्मा नारद, वेदव्यास, देवल, देवस्थान, और कण्व आदि सिद्ध, ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा उन महात्माओंके मुख्य मुख्य शिष्य तर्पणसे निवृत्त धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए साधु, पवित्र, शुद्ध-बुद्धिवाले तथा वेद जाननेवाले, गृहस्थ और स्नातक ब्राह्मणोंने आकर कुरुसत्तम युधिष्ठिरका दर्शन किया। अनन्तर वे सब वहांपर इकट्ठे हुए। महर्षि लोग यथा उचित रीतिसे पूजित होकर सुन्दर आसनोंपर बैठ गये। इसी भांति सैकड़ों सहस्रों ब्राह्मण लोग उस समयके अनुसार पूजा और दान ग्रहण करके पवित्र भागीरथीके तीरपर स्थित हुए और शोकसे व्याकुल राजा युधिष्ठिरको घेरकर उनके चारों ओर बैठे धीरज धारण कराते हुए उनके सङ्ग वार्त्तालाप करनेमें प्रवृत्त हुए। देवऋषि नारद कृष्णद्वैपायन आदि मुनियोंके सङ्ग मिलकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरसे उस समयके अनुसार यही वचन बोले, महाराज। आपने अपने बाहुबलके प्रभाव और कृष्णकी प्रसन्नतासे धर्म्म-पूर्व्वक इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है; प्रारब्धसे ही आप इस महाभयङ्कर संग्राममें जीवित मुक्त हुए हैं; इससे इस समय आप क्षत्रिय धर्म्ममें रत होकर सन्तुष्ट तो हैं? आप युद्धभूमिमें सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित करके इस समय इष्टमित्रोंके आनन्दको बढ़ाते तो हैं? आपने इस समय सम्पूर्ण राज-लक्ष्मी प्राप्तकी है, इससे शोकादि क्लेश तुम्हारे चित्तको दुःखित तो नहीं करते हैं?

राजा युधिष्ठिर देवर्षि नारदके ऐसे बचनोंको सुनकर बोले, हे भगवन्! कृष्णके बाहुबलके सहारे ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता और भीम अर्ज्जुनके पराक्रमसे मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है, यह ठीक है, परन्तु लोभके वशमें होकर जातिके पुरुषोंके नाश करनेसे मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है। देखिये सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पांचो-पुत्र,—इन सम्पूर्ण प्रिय पुत्रोंके युद्धमें मारे जानेसे मेरी विजय लाभ भी पराजयके समान ही मालूम हो रही है। मेरे भाईकी भार्या वृष्णि-कुल नन्दिनी सुभद्रा मुझे क्या कहेगी! और तीनों तापके हरनेवाले, मधुसूदन कृष्ण भी जब यहांसे द्वारकापुरीमें जायंगे, तब उनको द्वारिकावासी लोगोंने भी क्या कहेंगे? यह देखिये! हम लोगोंके प्रियकार्य्यमें सदा रत

और हित चाहनेवाली द्रौपदी देवीके पिता, भ्राता और पुत्र मारे गये हैं, इसहीसे यह अत्यन्त कातर होके रोदन करती हुई मेरे चित्तको व्यथित कर रही है। हे भगवन्! मैं आपसे और भी एक दुःखका विषय कहता हूं, आप सुनिये। मेरी माता कुन्ती देवीने एक बात गोपन की थी, इससे मैं इस समय अधिक दुःखसे व्याकुल हो रहा हूं। जो बुद्धिमान इस पृथ्वीके बीच अनिन्दनीय रथी रूपसे विख्यात थे, जिनकी गति और पराक्रम सिंहके समान था। जो दश हजार हाथियोंके समान बलशाली, दयावान, दाता और सदा व्रताचरणमें रत, अत्यन्त पराक्रमी, निर्मल-चित्तवाले, क्रुद्ध-स्वभाव, मानी और धृतराष्ट्र पुत्रोंके आश्रय स्वरूप थे। जो अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करनेवाले क्रुद्ध, चित्र-योधी, और अस्त्र चलानेमें समर्थ महाबलवान और प्रतियुद्धमें हम लोगोंके चित्तमें संशय उत्पन्न करते थे, वह हम लोगोंके भ्राता थे और गुप्त रूपसे उन्होंने कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आज सब पाण्डवोंको जल देनेके समय कुन्तीने कहा, कि कर्ण सूर्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे। माताने ऐसे गुणवान पुत्रको जन्मते ही मञ्जुषामें रखकर गङ्गाके स्रोतमें बहा दिया था। हे ऋषिसत्तम! जिन्हें सब कोई सूतवंशमें उत्पन्न हुआ समझते थे, वह कुन्तीके ज्येष्ठपुत्र हम लोगोंके सहोदर भाई थे। हे महर्षे! मैंने बिना जाने ही जो अपने भाईका वध किया है, इस ही कारण मेरा शरीर शोकरूपी अग्निसे इस प्रकार भस्म हुआ चाहता है, जैसे अग्नि रुईको भस्म कर देती है। कर्ण हम लोगोंके सहोदर भ्राता थे, इस वृत्तान्तको मैं तथा भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव कोई भी नहीं जानते थे; परन्तु श्रेष्ठ व्रत करनेवाले कर्ण हम लोगोंको अपना भ्राता ही जानते थे। मैंने सुना है कि मेरी माता कुन्ती देवी हम लोगोंके

विषयमें शान्ति स्थापित करनेको उनके
समीप जाके उनसे बोली कि "हे
मेरे पुत्र हो"। माताके वचनको
महात्मा कर्णने उनकी इच्छा पूर्ण न
किया सुना है, कि उन्होंने कर्णने य[illegible]
दिया था, कि मैं इस उपस्थित युद्धमें
नहीं किसी भांति परित्याग न करूं[illegible]
यदि मैं ऐसा करूं तो मेरी नीचता
[illegible] और [illegible] प्रकाशित होगा। [illegible]
करके यदि मैं [illegible] मतके अनुसार युधि[illegible]
[illegible] सन्धि [illegible]
भयभीत हुआ समझेंगे [illegible]
अर्जुनको पराजित करके [illegible]
सन्धि करूंगा।"
वचनको सुनकर कुन्ती [illegible]
[illegible]
[illegible]
मेरे अन्य [illegible]
करो!" इस समय [illegible]
कांपती हुई माताने [illegible]
देवी! यदि तुम्हारे अन्य [illegible]
असमर्थ होकर मेरे वशमें [illegible]
ने तुम्हारे अन्य चारो पुत्रो[illegible]
करूंगा। इस युद्धमें मेरे [illegible]
जानेपर भी तुम्हारे पांच पुत्र
इसमें कुछ सन्देह नहीं है।"
कल्याणकी इच्छा करनेवाली
कर्णसे कहा "हे पुत्र! जाओ तुम
कामनाकी अभिलाषा करते हो,
कर्त्ता दुर्योधनादिकोंके कल्याण
कार्यको करनेमें प्रवृत्त रहो; उसमें
कुछ भी आपत्ति नहीं है"—ऐसे
मेरी माता कुन्तीदेवी कर्णको परि[illegible]
अपने गृहमें चली आई थी। [illegible]
वह सहोदर भ्राता महाबाहु कर्ण
अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं,

प-वृत्तान्तको कुन्तीदेवी अथवा कर्ण,—इन
ोनोंमेंसे किसीने भी प्रकाशित नहीं किया था,
स कारण मेरे सहोदर भ्राता महाधनुर्द्धर कर्ण
ापने भाई अर्ज्जुनके हाथसे मारे गये। हे
इजसत्तम ! मैंने माताके मुंहसे इस समय वह
त्तान्त सुना है, कि कर्ण हम लोगोंके ज्येष्ठ
ाता थे। जबसे मैंने इस वृत्तान्तको सुना
, तभीसे भ्रातृहत्याके कारण शोकसे मेरा
चत्त अत्यन्त व्याकुल होरहा है क्योंकि कर्ण
र्ज्जुनकी सहायतासे मैं देवतोंके सहित
...को भी जीत सक्ता। कौरवोंकी सभाके
नर, गोरा...
...की प्रणाम क... राष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंने हम लोगोंका
ा कहे। ... किया उस समय अकस्मात् मेरे
महात्मा राजा धृतरा... न्न हुआ था, परन्तु कर्णको
यें और पाण्डव लोग ... देखते ही शान्त होगया;
द पुरुषोंकी ... नों चरण मेरी माता कुन्ती-
क करके शोकित चि... समान ही थे। उनके पांव
रके बाहर गङ्गा तीर... व समान कैसे हुए, इस
...हो समय साधुओंमें ... ही खोज की परन्तु मुझे
... हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ
व्यास, देवल, देवस्थान... जाननेवाले हैं और संसारकी
, ब्रह्मर्षि, महर्षि त... की सम्पूर्ण घटनाओंको जानते
मुख्य शिष्य तर्पण... आपसे पूछता हूं, कि मेरे भाई
के समीप उप... चक्रको पृथ्वीने क्यों ग्रास किया
बुद्धिवाले तथा ... इस भांतिसे उन्हें शाप मिला था ?
क ब्राह्मणोंने ... सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको सुननेकी इच्छा
दर्शन किये ..., इससे आप इस विषयके सम्पूर्ण
हुए। ... मेरे समीप वर्णन कीजिये।
त होकर

१ अध्याय समाप्त ।

त सैकड़े
अनुसार पृ
भागीर

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधि-
व्याकुल ... ष्ठिरने ऐसा वचन कहा तब देवऋषि नारदने
और वै... कर्णके शापके विषयमें जो कुछ घटना हुई थी,
वार्त्ता... सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको कहना प्रारम्भ किया।
कृपादि पा... नारद मुनि बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर !
धर्म्मपुत्र यु...

तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है युद्धभूमिमें अर्ज्जुन और कर्णसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं थे, परन्तु मैं तुम्हारे समीप देवताओंसे भी गोपनीय वृत्तान्त वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाके सुनो, हे राजन् ! किसी समय ब्रह्माने अपने मनमें चिन्ता की, कि ये सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष शस्त्रसे मरकर किस भांति स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, ऐसा ही विचार करके कुन्तीको कन्या अवस्थामें क्षत्रियोंके बीच शत्रुका रूपी अग्नि प्रगट करनेवाला एक गर्भ उत्पन्न किया ! उस गर्भसे जो बालक उत्पन्न हुआ था वही समयके अनुसार सूतपुत्र कहके विख्यात हुआ और अङ्गिरा वंशमें मुख्य द्रोणाचार्य्यके निकट धनुष विद्या सीखा था ; परन्तु वह भीमसेनके बल, अर्ज्जुनके अस्त्र लाघव, तुम्हारी बुद्धि और नकुल, सहदेवके विनय, विशेष करके बालक अवस्थामें श्रीकृष्णके साथ अर्ज्जुनकी मित्रता और प्रजाका तुम्हारे ऊपर अनुराग देखकर दुःखित हुए थे। अनन्तर कर्णने भी बालक अवस्थामें दुर्य्योधनके साथ मित्रता की, परन्तु दैवी संयोगके कारण वह तुम लोगोंके द्वेषी हुए। तिसके अनन्तर कर्णने अर्ज्जुनको धनुर्वेदमें सबसे श्रेष्ठ देख गुप्त-रीतिसे द्रोणाचार्य्यके निकट जाकर कहा, हे आचार्य्य ! मैं रहस्य, प्रयोग और प्रतिसंहारके सहित ब्रह्मास्त्र सीखनेकी इच्छा करता हूं क्योंकि मेरे मनमें अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषा है। पुत्र और शिष्योंके ऊपर आपकी समान ही प्रीति है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, जिसमें बुद्धिमान क्षत्रियोंके बीच कोई मुझे अस्त्रज्ञ न कह सके।

द्रोणाचार्य्यने कर्णके वचनोंको सुनकर उसके चित्तके विषयको जान लिया, और अर्ज्जुनके पक्षपाती होकर यह वचन बोले,—व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मणों और तपस्यामें ...

वान क्षत्रियोंको ही ब्रह्मास्त्र जानना उचित है; दूसरी जातिके मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र सीखनेका अधिकार नहीं है। जब द्रोणाचार्य्यने ऐसा उत्तर दिया, तब कर्ण उनका सम्मान करते हुए उनकी अनुमतिसे महेन्द्र पर्वत पर वास करनेवाले परशुरामजीके निकट गये; कर्णने परशुरामके समीप जाके शिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, कि "मैं भृगुवंशीय ब्राह्मण हूं।" परशुरामने उनका नाम गोत्र और शुभागमनका विषय पूछ कर आदर पूर्व्वक उन्हें अपने आश्रम पर ठहराया। कर्ण प्रसन्न चित्तसे वहां रहने लगे, वह जब परशुराम जीके निकटमें जाकर महेन्द्र पर्व्वत पर निवास करने लगे, तब धीरे धीरे देवता गन्धर्व्व, यक्ष और सब राक्षसोंके संग उनसे मिलाप हुआ। वहां पर रहके कर्णने भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ परशुराम जीसे विधिपूर्व्वक सम्पूर्ण महा अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीख ली; और देवता, दानव तथा राक्षसोंके अत्यन्त ही प्रीति पात्र हुए। अनन्तर किसी समय सूर्य्यपुत्र कर्ण तलवार और धनुष बाण धारण करके समुद्रके निकटमें ही एक आश्रमके समीप भ्रमण कर रहे थे; उस समय दैवके वशमें होकर विना जाने उन्होंने एक अग्निहोत्र करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणके यज्ञकी गऊका प्राण नाश किया; कुछ समय बीतने पर जब कर्णने जाना, कि बिना जाने भूलसे मैंने ब्राह्मणकी गऊका बध किया है; तब उस ब्राह्मणके निकट जाके बहुत बिनती और प्रार्थनासे उस तपस्वी ब्राह्मणको प्रसन्न करनेके वास्ते यह वचन बोले,—"हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने विना जाने आपकी गऊका वध किया है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।" जब वह बार बार उस ब्राह्मणकी प्रार्थना करके ऐसा ही वचन कहने लगे, तब वह ब्राह्मण बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कठोर बचनोंसे कर्णकी निन्दा करके यह वचन बोला, रे दुष्टबुद्धिवाले नीच पुरुष! तेरा वध करना ही उचित है। जो हो, तू अपने किये हुए पाप कर्मोंके फलको भोग कर, तू जिसके ऊपर सदा ही ईर्षा किया करता है, और जिसके मारनेके निमित्त अस्त्र शस्त्रोंका अभ्यास कर रहा है,—रे पापी! उसके संग जब तेरा द्वैरथ युद्ध उपस्थित होगा, उस समय तेरे रथके पहियेको पृथ्वी ग्रास करेगी. रथचक्रको जब पृथ्वी ग्रास कर लेगी, और तू उस ही शोक तथा दुःखसे मोहित होजावेगा; उस ही समय तेरा शत्रु हठ पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारा शिर काटेगा। अरे अधम पुरुष! इस समय तू यहांसे चला जा। रे मूढ! जैसे तूने प्रमत्त होकर मेरे यज्ञकी गऊका प्राणनाश किया है, वैसे ही तेरे प्रमत्त अवस्थामें ही तेरा शत्रु तेरे शिरको काटके पृथ्वी गिरावेगा।" जब उस ब्राह्मणने कर्णको इस प्रकार शाप दिया, तब कर्ण अनेक गऊ और रत्न आदि वस्तुओंसे उस ब्राह्मणको यत्नपूर्व्वक प्रसन्न करने लगे। तब वह तपस्वी ब्राह्मण बोला, "मेरे मुखसे जो वचन निकला है, उसे सम्पूर्ण लोकके प्राणी इकट्ठे होकर भी मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हैं।"—ऐसा विचार कर चाहे तुम यहांसे प्रस्थान करो, चाहे इसी स्थानमें निवास करो। ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके कर्ण अत्यन्त दीनताके सहित नीचा शिर करके उस ब्राह्मणके आश्रमसे बाहर हुए और विप्रशापसे भय भीत होकर चिन्ता करते हुए उन्होंने परशुराम जीके निकट गमन किया।

२ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ तपस्वी परशुरामजी एकाग्रचित्तसे कर्णके बाहुबीर्य्य, शिक्षानुराग, इन्द्रियसंयम और गुरुशुश्रूषासे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने

स्थिरताके सहित अस्त्रशस्त्रोंके सम्पूर्ण रहस्यको प्रयोग और निवारण करनेके कौशल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्रका उपदेश किया। तिसके अनन्तर अद्भुत पराक्रमी कर्ण समस्त अस्त्र शस्त्रोंको जानके प्रसन्नतापूर्व्वक परशुरामके आश्रममें रहके धनुर्वेदमें विशेष परिश्रम करने लगे। किसी समय कर्णके सहित परशुरामजी आश्रमके निकट भ्रमण करते करते उपवासके क्लेशसे थक गये। अनन्तर विश्वासपात्र तथा स्नेह भाजन अपने शिष्य कर्णकी जङ्घापर शिर रखके सोगये। जब परशुरामजी निद्रित हुए तब मांस मूत्र रुधिर तथा पुरीष भोजन करनेवाला एक भयङ्कर कीड़ा कर्णके समीप आके रुधिर पीनेकी इच्छासे उनके जङ्घेको छेद कर लोहू पीने लगा; कर्ण गुरुके भयसे न तो उसे दूर फेंक सके और न उसका बध कर सके। हे राजेन्द्र! कर्णने केवल परशुरामकी निद्रा-भङ्ग होनेकी शङ्का करके अपने घावकी पीड़ाको धीरज धरके सहन किया और तनिक भी विचलित न होकर परशुरामजीके शिरको अपने जङ्घेके ऊपर धारण किया। जब कर्णके जांघके घावसे रुधिर बहके महातेजस्वी परशुरामजीके शरीरमें लगा, तब वह निद्रासे जागके उठे और कर्णसे बोले, कि तुमने यह क्या किया? हाय! मेरा शरीर इस समय अपवित्र होगया। जो हो, अब तुम भय त्यागकर इसका यथार्थ कारण मुझसे वर्णन करो? अनन्तर कर्णने जिस प्रकार वह कीड़ा जङ्घाको छेदकर मांस रुधिरके बीच प्रविष्ट हुआ था, वह वृतान्त परशुरामजीको सुना दिया। इसके अनन्तर परशुरामजीने देखा, आठ पांव और तीक्ष्ण दांतोंसे युक्त सुईके समान, रुवोंसे पूरित फयसे सिकुड़ा हुआ सूअरके समान आकृतिवाला अलर्क नाम एक कीड़ा कर्णके घावके भीतर स्थित है। उसने परशुरामके दृष्टिमात्रसे ही विकल होके उस रुधिरमें ही फंसके प्राण त्याग किया, उस समय उसकी मृत्यु अद्भुत रूपसे दीख पड़ी। इसके अनन्तर आकाशमें मेघमण्डलके बीच काला स्वरूप, लाल गर्द्दन और भयङ्कर मूर्त्तिवाला एक राक्षस दीख पड़ा। वह सफल मनोरथ होकर हाथ जोड़के परशुरामसे यह बचन बोला, हे भृगुकुल भूषण परशुराम! आपका कल्याण होवे इस समय अब मैं अपने योग्य स्थानपर गमन करूंगा। हे मुनिसत्तम! आपने मुझे इस नरकसे मुक्त करके मेरा बहुत ही प्रियाकार्य्य किया है, मैं आपको प्रणाम करता हूं।"

महाबाहु प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामने उसका ऐसा वचन सुनके उससे पूछा, कि "तुम कौन हो और किस कारणसे नरकमें पड़े थे"? यह समाचार मेरे समीप वर्णन करो। वह कहने लगा, हे तात! सतयुगमें मैं दंश नामक एक मनुष्य राक्षस था; मेरी अवस्था तुम्हारे पूर्व्वपितामह महर्षि भृगुके समान ही थी। अनन्तर मैंने महर्षि भृगुकी प्यारी स्त्रीको बलपूर्व्वक हरण किया, इसीसे महात्मा भृगुके शापसे कीड़ा होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा। हे परशुराम! अनन्तर तुम्हारे पितामह महर्षि भृगु क्रोधित होकर मुझसे यह वचन बोले, अरे पापी! "तू महाघोर नरकमें पड़के सदा मलमूत्र रुधिर और मांसभक्षी होगा।" उनका ऐसा दारुण वचन सुनके मैंने उनसे कहा, हे ब्राह्मण! कितने दिनोंमें मैं तुम्हारे इस शापसे मुक्त होऊंगा? मेरे वचनको सुनके भगवान् भृगु मुनि बोले, कि "मेरे कुलमें राम नामक जो महात्मा पुरुष उत्पन्न होगा, उसके दर्शनसे तूं शापसे छूटेगा।" हे राम! इस ही कारणसे मैं दुष्टात्मा लोगोंकी भांति इस नीच गतिको प्राप्त हुआ था; अब आपके दर्शनसे इस पापयोनिसे मुक्त हुआ हूं। वह राक्षस परशुरामजीके निकट अपना सम्पूर्ण वृतान्त इसी वर्णन कर उन्हें प्रणाम क

गया। अनन्तर परशुराम जी क्रुद्ध होके कर्णसे बोले, अरे मूढ़! तेरा धीरज देखके मुझे बोध होता है; कि तू क्षत्रिय है, क्योंकि ब्राह्मण जाति कभी भी बहुत कष्ट नहीं सह सकती; इससे तू निर्भय होके अपना सत्य वृतान्त वर्णन कर!

अनन्तर कर्ण शाप भयसे डरके गुरुको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे भार्गव! ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे सूत जाति प्रकट भई है; मुझे भी आप इस ही सूत कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष समझिये; क्यों कि इस ही कारणसे सब कोई मुझे राधापुत्र कर्ण कहके आवाहन करते हैं। हे ब्राह्मण! आप मुझ अस्त्रलोभी पुरुषके ऊपर प्रसन्न होइये। वेद और विद्या देनेवाले, गुरु वा पिता कहके वर्णन किये गये हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; इस ही कारणसे मैंने आपके निकट भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण कहके अपना परिचय दिया था। भृगुवंशीय श्रेष्ठ परशुराम ने कर्णके ऐसे वचनको सुनके अन्तःकरणसे क्रोधित हुए परन्तु बाहरी भावसे हंसके उस पृथ्वीमें गिरे, भयसे कांपते, दोनो हाथ जोड़े तथा अत्यन्त दीनभावसे युक्त कर्णसे यह वचन बोले। अरे मूढ़! तूने जब अस्त्रलोभसे मेरे समीप मिथ्या व्यवहार किया है, तब तेरा सीखा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे अन्तकालमें भूल जायगा; परन्तु जबतक तू अपने समान वीर योद्धाके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करते हुए विपद्-ग्रस्त नहीं होगा, उस मृत्युकालके अति-रिक्त वे सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे स्मरण रहेंगे; क्यों कि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके सिवा अन्य किसी जातिके पुरुषोंको मृत्युके समय स्मरण नहीं रहता, तौभी इस पृथ्वीके बीच कोई क्षत्रिय तेरे समान शूरवीर योद्धा नहीं होगा। इस समय अब तुम इस स्थानसे गमन करो, क्यों कि मिथ्या व्यवहार करनेवाले पुरुष इस स्थानमें रहने योग्य नहीं हैं। कर्ण परशुरामसे ऐसे न्याय युक्त वचनको सुनके वहांसे विदा हो दुर्योधनके समीप गमन करके उनसे यह वचन बोले, "हे महाराज! अब मैं कृतास्त्र होके आया हूं।

३ रा भाग समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! इसी भांति कर्ण भृगुकुल भूषण परशुराम जीके निकटसे अस्त्र विद्या सीखनेके अनन्तर दुर्योधनके सङ्ग मिलके परम आनन्दसे अपने जीवनका समय व्यतीत करने लगे। किसी समयमें पृथ्वीके बीच राजा कलिङ्ग देशके राजा चित्राङ्गदकी राजधानी शोभायुक्त "राजपुर" नाम नगरीमें स्वयम्वर सभाके बीचमें कन्या प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इकट्ठे हुए थे, राजा दुर्योधन भी स्वयम्वरका वृत्तान्त सुनके कर्णको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित रथपर चढ़के उन राजाओंके साथ उस स्थानमें उपस्थित हुए अनन्तर उस स्वयम्वरके महोत्सवको सुनके महाराज जरासन्ध, शिशुपाल भीष्मक, वक्र, कपोत-रोमा नील, दृढ़ पराक्रमी रुक्मी, स्त्रीराज्यके स्वामी महाराज शृगाल, शतधन्वा, अशोक, वीरनामा, भोजराज और इनके अतिरिक्त दक्षिण, पूर्व और उत्तर देशीय बहुतेरे म्लेच्छाचारी राजा लोग कन्या प्राप्त होनेकी इच्छासे उस स्वयम्वरके बीच उपस्थित हुए। वे सम्पूर्ण राजा लोग सुवर्णभूषित कवच और तपाये हुए जाम्बुनद सोनेके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त तथा सिंहके समान बलवान् थे, इसी भांति जब सम्पूर्ण राजा राज सभामें बैठ गये, तब राजकन्या सहेली और नपुंसकोंको सङ्ग लेकर रङ्गभूमि तथा स्वयम्वरकी सभामें प्रविष्ट हुई। तिसके अनन्तर राजाओंके नाम, गोत्र तथा वंशका वृतान्त दासियोंके मुखसे

सुनती हुई वह राजकन्या अन्य राजाओंकी भांति राजा दुर्य्योधनको भी अतिक्रम करके आगे बढ़ी, कुरुनन्दन दुर्य्योधनसे यह अपमान नहीं सहा गया, अनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण राजाओंको असम्मानित करके उस राजकन्याको आगे बढ़नेसे निषेध किया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य्यके आसरे तथा अपने बलके घमण्डसे उस राजकन्याको रथमें बैठा कर वहांसे प्रस्थान किया। शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी कर्ण कवच और अङ्गुलित्राणसे युक्त हो तलवार आदि अस्त्रशस्त्रोंको धारण करके रथ पर चढ़ कर दुर्य्योधनके पीछे पीछे गमन करने लगे, उसे देखकर राजाओंको मण्डलीके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा। अनन्तर वे सम्पूर्ण राजा लोग कवच पहरके तथा अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर रथ पर चढ़के कर्ण और दुर्य्योधनके ऊपर इस भांति अपने बाणोंकी बर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े जैसे बादल दो पर्व्वतोंके ऊपर जलकी बर्षा करते हैं। जब इस भातिसे सम्पूर्ण राजा लोग सम्मुख उपस्थित हुए, तब पराक्रमी कर्णने एक एक बाणसे उन सम्पूर्ण राजाओंके धनुष बाणको काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय कोई कोई धनुष चढाके तथा कोई कोई राजा गदा आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कर्णके सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु योडाओंमें मुख्य कर्णने अपने हस्त लाघवसे बाण चला कर समस्त राजाओंको व्याकुल कर दिया, तथा कितनोंको धनुष रहित और कितनोंके सारथीका प्राण नाश करके उन सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया, उस समय सम्पूर्ण राजाओंका मनोरथ निष्फल होगया और वे लोग पराजित होकर स्वयं अपने रथके घोड़ोंको हाकते तथा कितने ही राजा अपने सारथियोंको "चलो! पीछे लौटो!„ ऐसा वचन कहते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे।

नारद मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! उस समय राजा दुर्य्योधन इसी भांति कर्णके भुजबलसे रक्षित होकर कन्या ग्रहण करके हर्षयुक्त तथा आनन्दित चित्तसे हस्तिनापुरमें आ बिराजे।

४ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मगधदेशके राजा पराक्रमी जरासन्धने कर्णके बल-पराक्रमका बृतान्त सुनके उन्हें द्वैरथ युद्धके वास्ते आह्वान किया। अनन्तर परम अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले वे दोनों बीर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। धीरे धीरे जब उन दोनों बीरोंके धनुष कट गये और तूणीर बाणोंसे रहित हुए तथा तलवार आदिक शस्त्र टूट गये, तब वे दोनों बीर रथसे उतरके आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने बाहुयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए जरासन्धके जरा राक्षसीके जोड़े हुए सन्धिस्थलको छितरा दिया, तब जरासन्ध अपने शरीरका विकृत भाव देखकर शत्रुता त्यागके कर्णसे यह वचन बोले, "हे कर्ण! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।" अनन्तर उस ही प्रसन्नताके कारण जरासन्धने कर्णको मालिनी नाम्नी नगरी दान किया। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! शत्रुनाशन कर्ण पहिले केवल अङ्गदेशहीके राजा थे, तिसके अनन्तर जरासन्धकी दी हुई चम्पा अर्थात् मालिनी नगरीको भी दुर्य्योधनकी अनुमतिसे पालन करने लगे, वह सब वृत्तान्त तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। महा बलवान तेजस्वी कर्ण केवल इसी भांति शस्त्र बलके प्रभावसे पृथ्वीके बीच विख्यात हुए थे, शेषमें देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे कर्णके निकट जाके उनके शरीरसे ही उत्पन्न हुए अभेद कवच और कुण्डलका दान मांगा, उस समय कर्णने दैवी माया

गया। अनन्तर परशुराम जी क्रुद्ध होके कर्णसे बोले, अरे मूढ़! तेरा धीरज देखके मुझे बोध होता है; कि तू क्षत्रिय है, क्यों कि ब्राह्मण जाति कभी भी बहुत कष्ट नहीं सह सक्ती; इससे तूं निर्भय होके अपना सत्य बृतान्त वर्णन कर!

अनन्तर कर्ण शाप भयसे डरके गुरुको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे यह बचन बोले, हे भार्गव! ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे सूत जाति प्रकट भई है; मुझे भी आप उस ही सूत कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष समझिये; क्यों कि इस ही कारणसे सब कोई मुझे राधापुत्र कर्ण कहके आवाहन करते है। हे ब्राह्मण! आप मुझ अस्त्रलोभी पुरुषके ऊपर प्रसन्न होइये। वेद और बिद्या देनेवाले, गुरु जो पिता कहके बर्णन किये गये हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; इस हो कारणसे मैंने आपके निकट भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण कहके अपना परिचय दिया था। भृगुवंशिय श्रेष्ठ परशुराम जी कर्णके ऐसे बचनको सुनके अन्तःकरणसे क्रोधित हुए परन्तु बाहरी भावसे हसके उस पृथ्वीमें गिरे, भयसे कांपते, दोनों हाथ जोड़े तथा अत्यन्त दीनभावसे युक्त कर्णसे यह बचन बोले। अरे मुढ़! तूने जब अस्त्रलोभसे मेरे समीप मिथ्या व्यवहार किया है,तब तेरा सीखा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे अन्तकालमें भूल जायगा; परन्तु जबतक तू अपने समान वीर योद्धाके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करते हुए विपद-ग्रस्त नहीं होगा, उस मृत्युकालके अतिरिक्त वे सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे स्मरण रहेंगे; क्यों कि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके सिवा अन्य किसी जातिके पुरुषोंकी मृत्युके समय स्मरण नहीं रहता, तोभी इस पृथ्वीके बीच कोई क्षत्रिय तेरे समान शूरवीर योद्धा नहीं होगा। इस समय अब तुम इस स्थानसे गमन करो, क्यों कि मिथ्या व्यवहार करनेवाले पुरुष इस स्थानमें रहने योग्य नहीं हैं। कर्ण परशुरामजीके ऐसे न्याय युक्त बचनको सुनके वहांसे बिदा हो दुर्य्योधनके समीप गमन करके उनसे यह बचन बोले, "हे महाराज! अब मैं कृतास्त्र होके आया हूं।

३ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! इसी भांति कर्ण भृगुकुल भूषण परशुराम जीके निकटसे अस्त्र विद्या सीखनेके अनन्तर दुर्य्योधनके सङ्ग मिलके परम आनन्दसे अपने जीवनका समय व्यतीत करने लगे। किसी समयमें पृथ्वीके सैकड़ों राजा कलिङ्ग देशमें राजा चित्राङ्गदकी राजधानी सौभाग्ययुक्त "राजपुर" नाम नगरीमें स्वयम्वर सभाके बीचमें कन्या प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इकट्ठे हुए थे, राजा दुर्य्योधन भी स्वयम्वरका बृतान्त सुनके कर्णको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित रथमें बैठ कर राजाओंकी मण्डलीके बीच उपस्थित हुए अनन्तर उस स्वयम्बरके महोत्सवको सुनके महाराज जरासन्ध, शिशुपाल भीष्मक, वक्र, कपोतरोमा नील, दृढ़ पराक्रमी रुक्मी, स्त्रीराज्यके स्वामी महाराज शृगाल, शतधन्वा, अशोक, वीरनामा, भोजराज और इसके अतिरिक्त दक्षिण, पूर्ब और उत्तर देशीय बहुतेरे म्लेच्छाचारी राजा लोग कन्या प्राप्त होनेकी इच्छासे उस स्वयम्बरके बीच उपस्थित हुए। वे सम्पूर्ण राजा लोग सुवर्णभूषित कवच और तपाये हुए जाम्बुनद सोनेके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त तथा सिंहके समान बलवान् थे, इसी भांति जब सम्पूर्ण राजा राज सभामें बैठ गये, तब राजकन्या सहेली और नपुंसकोंको सङ्ग लेकर रङ्गभूमि तथा स्वयम्बरकी सभामें प्रविष्ट हुई। तिसके अनन्तर राजाओंके नाम, गोत्र तथा वंशका बृतान्त दासियोंके मुखसे

सुनती हुई वह राजकन्या अन्य राजाओंकी भांति राजा दुर्य्योधनको भी अतिक्रम करके आगे बढ़ी, कुरुनन्दन दुर्य्योधनसे यह अपमान नहीं सहा गया, अनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण राजाओंको असम्मानित करके उस राजकन्याको आगे बढ़नेसे निषेध किया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य्यके आसरे तथा अपने बलके घमण्डसे उस राजकन्याको रथमें बैठा कर वहांसे प्रस्थान किया। शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी कर्ण कवच और अङ्गुलित्राणसे युक्त हो तलवार आदि अस्त्रशस्त्रोंको धारण करके रथ पर चढ़ कर दुर्य्योधनके पीछे पीछे गमन करने लगे, उसे देखकर राजाओंकी मण्डलीके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा। अनन्तर वे सम्पूर्ण राजा लोग कवच पहरके तथा अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर रथ पर चढ़के कर्ण और दुर्य्योधनके ऊपर इस भांति अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े जैसे बादल दो पर्व्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। जब इस भांतिसे सम्पूर्ण राजा लोग सम्मुख उपस्थित हुए, तब पराक्रमी कर्णने एक एक बाणसे उन सम्पूर्ण राजाओंके धनुष बाणको काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय कोई कोई धनुष चढाके तथा कोई कोई राजा गदा आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कर्णके सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु योद्धाओंमें मुख्य कर्णने अपने हस्त लाघवसे बाण चला कर समस्त राजाओंको व्याकुल कर दिया, तथा कितनोंको धनुष रहित और कितनोंके सारथीका प्राण नाश करके उन सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया, उस समय सम्पूर्ण राजाओंका मनोरथ निष्फल होगया और वे लोग पराजित होकर स्वयं अपने रथके घोड़ोंका हांकते तथा कितने हो राजा अपने सारथियोंको "चलो! पीछे लौटो।,, ऐसा वचन कहते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे।

नारद मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! उस समय राजा दुर्य्योधन इसी भांति कर्णके भुजबलसे रक्षित होकर कन्या ग्रहण करके हर्षयुक्त तथा आनन्दित चित्तसे हस्तिनापुरमें आ विराजे।

४ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मगधदेशके राजा पराक्रमी जरासन्धने कर्णके बल-पराक्रमका वृतान्त सुनके उन्हें द्वैरथ युद्धके वास्ते आह्वान किया। अनन्तर परम अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले वे दोनों बीर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। धीरे धीरे जब उन दोनों बीरोंके धनुष कट गये और तूणीर बाणोंसे रहित हुए तथा तलवार आदिक शस्त्र टूट गये, तब वे दोनों बीर रथसे उतरके आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने बाहुयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए जरासन्धके जरा राक्षसीके जोड़े हुए सन्धिस्थलको छितरा दिया, तब जरासन्ध अपने शरीरका विकृत भाव देखकर शत्रुता त्यागके कर्णसे यह वचन बोले, "हे कर्ण! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।" अनन्तर उस ही प्रसन्नताके कारण जरासन्धने कर्णको मालिनी नाम्नी नगरी दान किया। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! शत्रुनाशन कर्ण पहिले केवल अङ्गदेशहीके राजा थे, तिसके अनन्तर जरासन्धकी दो हुई चम्पा अर्थात् मालिनी नगरीको भी दुर्य्योधनकी अनुमतिसे पालन करने लगे, वह सब वृत्तान्त तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। महा बलवान तेजस्वी कर्ण केवल इसी भांति शस्त्र बलके प्रभावसे पृथ्वीके बीच विख्यात हुए थे, शेषमें देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे कर्णके निकट जाके उनके शरीरसे ही उत्पन्न हुए अभेद कवच और कुण्डलका दान मांगा, उस समय कर्णने दैवी माया

से मोहित होकर अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उस अभेद कवच कुण्डलको देवराज इन्द्रको दे दिया था। महाराज! वह गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने शरीरके अभेदकवच और कुण्डलको दान करके ठगे गये थे; इसही कारण युद्धभूमि में श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनके हाथसे मारे गये। तौभी देखिये कि महात्मा परशुराम और होमकी गऊके प्राण नाश होनेसे ब्राम्हणके शाप, कुन्तीके बरदान, इन्द्रकी मायाकौशल, सभाके बीच भीष्मके अर्द्धरथी कहके पुकारे जानेका अपमान, शल्यके कठोर बचनोंसे तेज-हानि, और श्रीकृष्णचन्द्रके नीतिबल, वा उपायके एकत्र मिलित होनेसे तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने रुद्र, देवराज इन्द्र, यम, बरुण, कुबेर, महात्मा द्रोणाचार्य्यके निकटसे सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको प्राप्त किया था; इस ही कारण सूर्य्यके समान तेजस्वी सूर्य्य पुत्र कर्ण मारे गये हैं। महाराज! तुम्हारे भ्राता पुरुषसिंह कर्ण इसी प्रकारमहात्माओंके शापसे युक्त और वञ्चित हुए थे; तौ भी सम्मुख संग्राममें मारे गये, इससे उसके वास्ते अब आप शोक न कीजिये।

५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनमुनि बोले, देवऋषि नारद इतनी कथा सुनाके चुप होगये। अनन्तर राज-ऋषि युधिष्ठिर अत्यन्तही शोक और चिन्तासे मोहित होकर दुःखित चित्तसे बार बार सर्पकी भांति लम्बो स्वास छोड़ते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे। राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशा देखके शोक और दुःखसे विह्वल होकर कुन्ती देवी उस समयके अनुसार यह अर्थ-युक्त बचन बोली, हे तात युधिष्ठिर! तुम महा बुद्धिमान और वीर पुरुष हो; इससे तुम्हें इस भांतिसे शोकित होना उचित नहीं है; तुम शोक त्यागके मेरा बचन चित्त लगाके सुनो। तुम कर्णके भ्राता हो,—यह वृत्तान्त कर्णको विदित करानेके वास्ते पहिले कर्णके पिता भगवान सूर्य्यदेव और मैंने बहुत ही यत्न किया, अधिक क्या कहूं, तुम्हारे सङ्ग मेल करानेके वास्ते हम दोनोंने कर्णसे अत्यन्त ही बिनती करी थी, विशेष करके भगवान सूर्य्यने कर्णके हितकी अभिलाष करके जो कुछ बचन कहना उचित था, वह स्वप्नमें तथा मेरे सम्मुखमें कहे थे; परन्तु प्रीति प्रेम तथा नाना कारण दिखाके भी हम दोनों किसी भांति कृतकार्य्य न होसके। वह कालके वशमें होकर सदा तुम लोगोंके सङ्ग शत्रुता चरण करनेमें प्रवृत था, इससे मैंने भी उसके पराक्रमको देखनेकी इच्छासे उसके विषयका वृत्तान्त तुम्हारे समीप नहीं बर्णन किया। राजा युधिष्ठिर कुन्तीके बचनको सुन कर आंखोंमें आंसू भरके यह बचन बोले,—हे माता! तुमने जो इस विषयको छिपा रक्खा, इसी निमित्त इस समय मुझे इतना दुख तथा शोक हुआ है। ऐसा बचन कहते कहते महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त ही दुःखित हो कर यह बचन कहके सम्पूर्ण स्त्रियोंको शाप दिया, कि, "आजसे कोई स्त्री भी गूढ़ बिचारको छिपानेमें समर्थ न होंगी" अनन्तर बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर पुत्र, पौत्र, सम्बन्धी तथा इष्ट मित्रोंकी मृत्युको स्मरण करके अत्यन्त ही व्याकुल हुए, वह धीरे धीरे शोक तथा दुःखसे अत्यन्त ही बिकल होके धूएंसे व्याप्त अग्निकी भांति मन मलिन चित्त होकर बहुत चिन्ता करने लगे।

६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर महारथी कर्णको स्मरण करके शोक तथा दुःखसे व्याकुल होकर अत्यन्त ही चिन्ता

करने लगी। वह बार बार दुख और शोकसे पीड़ित होकर लम्बी सांस छोड़ते हुए अर्ज्जु-नकी सम्मुख देखकर यह बचन बोले,—हे अर्ज्जुन! यदि हम लोग इसके पहिले वृष्णि और अन्धक प्रदेशमें जाके भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके अपनी जीविकाका निर्व्वाह करते तो जातिके पुरुषोंका नाश न होता; और न हम लोगोंको ऐसी दुर्गति ही होती। हम लोगोंके शत्रु कौरव लोग ही इस समय अधिक ऐश्वर्य्य-वान हुए हैं, क्योंकि वे लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार सम्मुख संग्राममें मरके स्वर्ग लोकमें गये हैं; और जातिके लोगोंका वध करनेसे हम लोगोंका बल पुरुषार्थ घटगया है; क्योंकि जो पुरुष स्वयं अपना नाश करते हैं, उन्हें धर्म्म-लाभकी कौनसी सम्भावना है? इससे क्षत्रियोंके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! और क्रोधको भी धिक्कार है, जिसके कारणसे हम लोगोंको इस भांति विप दग्रस्त होना पड़ा। इस समय मुझे यह खूबही निश्चय हुआ है, कि क्षमा इन्द्रियसंयम, पवि-त्रता, वैराग्य, स्तेय, अहिंसा और सत्य वचन आदि बनबासी ऋषि मुनियोंके व्यवहार ही उत्तम हैं, हम लोग केवल लोभ और मोहके वशमें होकर राज्य लोभकी लालसा तथा दम्भ और अभिमानके वशमें होकर ही ऐसी दशाको प्राप्त भये हैं। पृथ्वीके विजयकी अभिलाष कर-नेवाले बन्धुबान्धवोंको मरे हुए देखकर हम लोगोंका चित्त जैसा दुःखित हुआ है, उससे ऐसा बोध होता है, कि कोई तीनो लोकोंका राज्य देकर भी हम लोगोंका सन्तुष्ट नहीं कर सकता है। हम लोग राज्यके वास्ते पृथ्वीको तरह न त्यागने योग्य अवध्य स्वजनोंको मार-कर भी इस समय जीवित हैं, मांसके लोभसे आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंके समूहकी भांति राज्य लोभसे स्वजनोंका नाश करके हमको इस प्रकार अमङ्गल प्राप्त हुआ है, इससे अब इस समय इस राज्यरूपी मांसको ग्रहण कर-नेमें हमारी अभिलाषा नहीं होती है; सो इसको त्यागनाही उत्तम है; क्योंकि इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, वे लोग सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य, सुवर्णोंके ढेर अथवा गऊ, घोड़े आदि समस्त वस्तुओंके वास्ते भी वध करनेके योग्य नहीं थे। परन्तु वे सब लोग कामना दुःख क्रोध तथा हर्षसे आत्माको युक्तकर मृत्यु-रूपी विमान पर चढ़के यमलोकको गये हैं। पिता सत्य, तितिक्षा और ब्रह्मचर्य्य आदि तप-स्याओंके अनुष्ठानसे कल्याण भाजन पुत्रकी इच्छा करता है, इसी भांति माता भी उपवास, यज्ञ और ब्रतादि नाना भांतिके माङ्गलिक कार्य्योंके अनुष्ठानसे गर्भिणी होकर दश महीने तक उस गर्भको धारण करती है। अनन्तर "क्या यह सन्तान कुशलसे जन्मेगी? क्या यह उत्पन्न होके जीवित रहेगी? क्या यह बलयुक्त और सर्व्वत्र सम्मानित होकर हमारे सुखका विधान करेगी?" माताये इस जन्म और दूसरे जन्मके निमित्त (पुत्रके विषयमें) इसी भांति फल पानेकी आशा करती हुई सदा कातर रहती हैं। हाय! हम लोगोंके मरे हुए स्वजन तथा बान्धवोंकी माताओंके ये सम्पूर्ण मनोरथ अब निष्फल होगये; क्योंकि उन लोगोंके सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित युवा पुत्र राज्यादि बिना भोगेही युद्धभूमिमें मरकर यमलोकको चलेगये! इन सम्पूर्ण राजाओंके पिता माताओंने जिस समय उनके बल वीर्य्य और प्रभावके फल देख-नेकी आशा की थी, उसही समय वे मारे गये। परन्तु वे सब सदा सर्व्वदा अनेक भांतिकी वासना तथा मनुष्योंसे युक्त और बहुत क्रोध तथा हर्षके वशमें रहनेके कारण किसी समयमें भी कदाचित मनुष्य जन्मके शुभ फलोंको न भोग सकेंगे; इससे मेरे विचारसे कौरव और पाञ्चा-लोंमेंसे जो लोग युद्धमें मारे गये हैं, उनके ना रहनेके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे न

क्यों कि वैसे क्रोध और दाहके वशवर्ती पुरुष भी यदि शुभ लोकोंमें गमन करें, तो क्रोध मन्युसे युक्त आत्मावाला वधिक भी अपने जीवका नाश आदि कार्य्य करके शुभ लोकमें गमन कर सकते हैं ! जो हो हम ही इन सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशके मूल हैं; अथवा धृतराष्ट्र पुत्रोंके ऊपर यह समस्त दोष आरोपित किया जा सकता है।

दुर्य्योधन सदासे कपट-बुद्धि, द्वेषी और मायाजीवी था ; हमारे निरपराध रहनेपर भी वह सदा हमसे असत् व्यवहार करता था, परन्तु क्या दुर्य्योधन और क्या हम कोई भी अपने पूर्ण मनोरथको सिद्ध नहीं कर सके ! इससे इस युद्धमें दोनो ओरकी पराजयका होना ही स्वीकार करना पड़ेगा। दुर्य्योधन पहिले हम लोगोंके विशाल-ऐश्वर्य्यको देखकर पृथ्वीके राज्य, स्त्री, गीत-वाद्यका आनन्द सुख तथा अनगिनत रत्न, सम्पत्ति और अनेक भांतिके वस्तुओंसे सञ्चित कोष—इन सम्पूर्ण भोग्य वस्तुओंमेंसे कुछ भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ। उस समय उसने दीर्घदर्शी मन्त्री और सुहृद-पुरुष आदि किसीके वचनको भी नहीं सुना ; हमसे सदा द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलते रहकर क्रोधके कारण प्रीति तथा सुख आदिको इकबारगी त्याग किया था। इसी भांति राजा धृतराष्ट्र भी सुबलपुत्र शकुनीके मुखसे हम लोगोंकी सम्पत्तिका समस्त वृत्तान्त सुनकर दुःखसे पीले तथा दुबले होगये थे, वह पुत्र-स्नेहके कारण महाबुद्धिमान पितामह भीष्म और विदुरके वचनका अनादर करके "दुर्य्योधन न्याय युक्त कार्य्यही कर रहा है,—" ऐसाही समझते थे और उस लोभी अशुचि और कामके वशवर्त्ती अपने पुत्रको नियममें स्थित न करके ही मेरी भांति चयकी दशाको प्राप्त हुए हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। परन्तु सदा पाप बुद्धिवाला दुर्य्योधन हमसे द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलकर युद्ध उपस्थित करके रणभूमिके बीच शत्रुके हाथसे अपने सहोदर भाइयोंका नाश कराके अपने बूढ़े माता पिताको शोकाग्निमें डालकर यश रहित हुआ है। दुर्य्योधनने युद्धकी इच्छाकर श्रीकृष्णके समीप हम लोगोंके विषयमें जैसे वचनोंका प्रयोग किया था, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा स्वजन होकर कौन पुरुष अपने कुटुम्ब तथा बन्धुबान्धवोंके विषयमें वैसे नीच वचनोंको कहेगा ? सूर्य्य जैसे अपने प्रभावसे समस्त दिशाओंको जला देते हैं, वैसे ही हम भी युद्धमें स्वजन और बन्धुओंको नष्ट करके अपने दोषके कारणसेही सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुए। वह शत्रु नीचबुद्धि दुर्य्योधन हम लोगोंके निमित्त पूरा ग्रहरूप बना था, उसहीके वास्ते हमारे समस्त कुलका नाश हुआ ! परन्तु हम लोग अवध्य पुरुषोंका वधकरके इस समय साधारण पुरुषोंके बीच निन्दनीय हुए हैं। राजा धृतराष्ट्रने उस नीचबुद्धि पापी कुलनाशी दुर्य्योधनको राज्यका स्वामी बनाया था, इस ही कारण इस समय उनको शोक करना पड़ता है। हाय ! इस युद्धमें सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष मारे गये, धन भी चुक गया और हम लोग भी पापभागी हुए हैं। शत्रुओंको मारके हम लोगोंका क्रोध शान्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है ; परन्तु शोक केवल मुझे ही मोहित कर रहा है। हे अर्जुन ! शास्त्रमें ऐसा वर्णित है, कि मनुष्यके दुष्कर्म्म मनुष्य समाजमें प्रकाश करनेसे अनुताप, दान, तपस्या, नाना भांतिके मांगलिक कर्म्मोंके अनुष्ठानसे अथवा वैभवको त्यागके तीर्थयात्रा श्रुति स्मृतिआदिके पाठ और जपसे घट सकते हैं ; उनमेंसे सम्पूर्ण भाग्यमान पुरुष फिर पापमें लिप्त नहीं होते यह श्रुति-सम्मत वचन है। वेदमें ऐसा वर्णित है, सन्यासी जन्म मरणसे रहित होकर ज्ञानरूपी दीपकके सहारे यथार्थ मार्ग पाकर ब्रह्म

लोकको जाते है; इससे हे शत्रुको तपानेवाले अर्ज्जुन! मैं तुम सब लोगोकी सम्मति लेकर सुखदुःखको त्याग और मौनावलम्बन करके ज्ञानपथको आश्रय करके बनवासी बनूंगा। यह स्पष्टरूपसे वेदमें कहा है कि दान लेनेवाले पुरुष कदाचित सार धर्म्मको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होसकते, और मैंने भी उसे खूब निश्चय करके प्रत्यक्ष देख लिया है। इससे आसक्ति युक्त पुरुष वेदमें कहे हुए जन्म मरणके कारणरूपी जिस प्रकार पापाचार करते हैं; मैंने भी राज्य भोगकी अभिलाषासे युक्त होकर वैसा ही पापाचरण किया है; इससे इस समय मैं समस्त परिग्रह और राज्यभोग परित्याग करके ममताशून्य, शोकरहित और संगादिसे मुक्त होकर किसी बनके बीच गमन करूंगा। हे कुरुसत्तम, शत्रुसूदन अर्ज्जुन! इस समय तुम ही इस निष्कण्टक और कल्याणयुक्त समस्त भूमण्डल तथा पृथ्वीका राज्य करो; मुझे अब धन, राज्य तथा भोग आदि किसी भी वस्तुका प्रयोजन नहीं है। धर्म्मराज युधिष्ठिरके इतना वचन कहके चुप होने पर छोटे भाई अर्ज्जुनने इस प्रकार उत्तर दिया।

७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! जैसे कोई पुरुष किसीसे अपमानित होके सहनेको समर्थ नहीं होता, वैसे ही महापराक्रमी बोलनेवालोंमें मुख्य महातेजस्वी अर्ज्जुन युधिष्ठिरका वचन सुनके न सह सके, और अपना उग्रभाव दिखाके ओठ काटते हुए गर्व्वपूर्व्वक इस प्रकारसे नीतियुक्त वचन कहने लगे। ओहो कैसा दुःख, कैसा कष्ट और क्या ही अद्भुत कातरता है, कि आप असानुषी कार्य्य पूर्ण और अतुल-ऐश्वर्य्य प्राप्त करके भी उसे परित्याग करनेमें प्रवृत्त होरहे हैं। धर्म्मराज! आप सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करके क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पृथ्वी हस्तगत करके भी इस समय क्यों बुद्धि-लाघवके कारण यह सब त्यागनेकी इच्छा करते हैं? इस संसारके बीच क्लीव वा दीर्घसूत्री किसी समयमें भी राज्य भोग नहीं कर सक्ता। परन्तु यदि आपको इसी भांति त्याग धर्म्मकी इच्छा थी, तो क्यों क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण राजाओंको मारा? जो पुरुष भिक्षावृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करता है, वह कदापि पुत्र, कलत्र और पशु आदि सामग्रीको पाने तथा लोकसमाजमें विख्यात होनेमें समर्थ नहीं होता, क्यों कि अकल्याणके पात्र दरिद्र मनुष्य किसी कर्म्मसे भी ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। महाराज! आप यदि इस समृद्ध राज्यको त्यागके पापयुक्त कापालिक-वृत्तिको अवलम्बन करके जीवन धारण करेंगे, तो लोकसमाज आपको क्या कहेगा! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी होकर यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य त्यागके कल्याण रहित दरिद्र और साधारण पुरुषकी भांति क्यों भिक्षावृत्ति अवलम्बन करनेकी इच्छा करते हैं? आप राजकुलमें जन्म लेकर बाहुबलसे समस्त पृथ्वीको पराजित करके भी केवल मूर्खताके कारण धर्म्म और अर्थ त्यागकर बनमें गमन करनेके वास्ते तय्यार हुए हैं! और आप यथार्थ अधिकारी होकर भी राज्य त्यागके बनमें चले जावेंगे, तब दुष्ट लोग राजा रहित पृथ्वीको सूनी पाकर हव्य कव्य आदि सुकृतकर्म्मोंको लोप करेंगे, उससे आपको ही पापभागी होना पड़ेगा। राजा नहुषने निर्द्धनावस्थामें स्वयं नीचताके कार्य्योंको करके निर्द्धनताको धिक्कार देकर मुनियोंके कर्त्तव्य कर्म्मको तुच्छ कहके वर्णन किया है! और अगाड़ीके वास्ते कुछ भी वस्तु सञ्चय करके न रखना, यह ऋषियोंका धर्म्म है, वह आपको भी विदित है। इसमें पण्डितोंने जिसे राजधर्म्म कहके

वर्णन किया है, और वह धनसे ही सिद्ध होता है।

हे महाराज! इस संसारके बीच जो पुरुष किसीके धनको हरण करता है, वह उसके धर्मको भी हर लेता है; इससे जो धन इस प्रकार धर्मको सिद्ध करनेवाला है, उसे यदि कोई हरण करे, तो क्या हम लोग क्षमा-कर सक्ते हैं? इस लोकके बीच दरिद्रता अत्यन्त ही पाप जनक है, दरिद्र पुरुष समीप रहनेपर मनुष्य उसे मिथ्या अपवादोंसे दूषित करते रहते हैं; इससे आपको इस प्रकार दरिद्रताकी प्रशंसा करनी उचित नहीं है। इस पृथ्वीपर पतित और निर्द्धन दोनोंको ही शोक करना पड़ता है; इससे नीच और निर्द्धन पुरुषोंमें कुछ विशेषता नहीं बोध होती। जैसे सम्पूर्ण नदियां पहाड़ोंसे निकल कर धीरे धीरे विस्तृत होती हैं, वैसे ही बहुतसे धन सब कर्म क्रमसे सिद्ध होते हैं। महाराज! धनके विना इस पृथ्वीके बीच मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम वा स्वर्ग-गमन और प्राण-यात्राका भी निर्व्वाह नहीं हो सक्ता। जैसे ग्रीसकालमें छोटी छोटी नदियां सूख जाती हैं, वैसे ही इस लोकमें धनसे हीन अल्प बुद्धि मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य नष्ट होजाते हैं। इस जगत्‌के बीच जिसके धन है, उसीके मित्र और बान्धव हैं, जिसके धन है, वही पण्डित है, जिसके धन है, वही पुरुष है। निर्द्धन मनुष्य यदि किसी विषयकी अभिलाषा करके उसके सिद्ध करनेका उपाय करे तो कदापि वह सिद्ध नहीं होते। परन्तु जैसा महा बलवान हाथीसे अन्य हाथियोंको पकड़ लेते हैं, वैसे ही धनसे समस्त प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं।

महाराज! धर्म, बहुदर्शिता, धृति, हर्ष कामना, क्रोध ममता ये सब ही धनसे सिद्ध होसकते हैं। धनसे ही लोगोंके कुल गौरव और धर्मकी वृद्धि होती है। निर्द्धन पुरु-षको यह लोक और परलोक कोई भी सुखदायक नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी प्रकट होती हैं, वैसे ही धनसे धर्म उत्पन्न होता है। हे राजन्! मनुष्यका शरीर कृश होनेसे ही उसे दुर्ब्बल नहीं कहा जा सकता; जिसके घोड़े गज पशु तथा सेवकोंकी अल्पता होती है, और जिसके गृहमें अतिथि नहीं उपस्थित होते, उसे ही कृश कहा जा सकता है। महाराज आप न्यायपूर्व्वक देवासुर संग्रामका विषय विचार करके देखिये देवता लोग ज्ञातिवधके अतिरिक्त सम्पत्ति प्राप्त करनेकी कौनसी अभिलाषा करते हैं? और यदि दूसरेका धन लेना, यह धर्म आपके विचारमें उत्तम नहीं है; तो भला कहिये तो सही, राजा लोग किस प्रकारसे धर्मका अनुष्ठान कर सकेंगे? क्यों कि पर-धनके अतिरिक्त अपना धन राजाओंके पास कुछ भी नहीं हैं, और वेदमें भी पण्डितोंने "प्रति दिन साम आदि तीनों वेदोंके अध्ययन, ज्ञान उपार्ज्जन और यत्न पूर्व्वक धन प्राप्त करके यज्ञ करना उचित है," ऐसीही विधि निश्चयकी है। जब कि देवता लोग भी ज्ञातिविद्रोहकी अभिलाषा करते हैं, तब ज्ञाति विरोधके बिना कौनसी वस्तु प्राप्त हो सकती है? और देवताओंने विद्रोहितासे ही स्वर्गलोक प्राप्त किये हैं, इससे देवता लोग भी इसी भांति व्यवहार करते हैं और वेदमें भी कहा हुआ है, कि राजा लोग अन्य पुरुषोंके निकटसे जो धन प्राप्त करते हैं, उस ही धनसे उनका कल्याण होता है; क्या कि पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, और देना ये सम्पूर्ण कर्म धनसे ही सिद्ध होसक्ते हैं, इसमें यदि दोष समझा जावे, तो कहीं भी ऐसा कोई भव्य नहीं दीख पड़ता जो दूसरे पुरुषोंके अनिष्टके बिना ही संग्रह किया जा सकता होवे! जैसे पुत्र पिताके धनको अपना समझता है, वैसे ही वे लोग भी युद्ध जीतके जो धन पाते हैं, उसे अपना ही

समझते हैं; और स्वर्गीय राजर्षियोंने राज-धर्म्मके विषयमें ऐसा ही वर्णन किया है।

जैसे समुद्रसे बहुतसा जल सूर्य्यतेजसे आकाशमें जाकर दशों दिशामें व्याप्त होता है, वैसे ही सम्पूर्ण धन राजकुलसे निकलकर पृथ्वीका पालन कार्य्य सिद्ध करता है। देखिये यह पृथ्वी पहिले दिलीप, नृग, नहुष अम्बरीष और मान्धाता आदि राजाओंके अधिकारमें थी, इस समय आपके हस्तगत हुई है। इससे आप अनेक सामग्री और सर्व्व-दक्षिणासे पूरित यज्ञोंको अपने मुट्ठीमें प्राप्त समझिये। यदि अब आप यह समस्त सामग्री पाके यज्ञ आदि शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करेंगे, तो अवश्य ही आपको राज्यके पापका भार उठाना पड़ेगा। राजा जो प्रजाके धनको लेकर दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करता है, वह सम्पन्न होनेसे उसकी सम्पूर्ण प्रजा अवभृत स्नानसे पवित्र होती है। दूसरेकी बात दूर रहे, विश्वमूर्त्ति महादेवने भी स्वयं सर्व्वमेध यज्ञमें समस्त प्राणियोंको और सबके अन्तमें अपने शरीरका भी आहुतिमें प्रदान किया था। हे राजन्! जिस यज्ञमें यजमान पत्नीके सहित स्वयं दीक्षित हो और एक पशु, तीन वेद, चार ऋत्विक,—ये दश स्थित रहें, वह दाशरथ नाम महत् यज्ञका पथ ही नित्य हैं; उसका फल अविनाशी है, ऐसा ही सुना गया है; इससे आप ऐसे मार्गको त्यागके कुपथमें न जाइये।

८ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे अर्ज्जुन! तुम क्षण भर मन और आत्माको स्थिर कर एकाग्र भावको धारण करो, ऐसा होनेसे मेरे वचनको सुननेके अनन्तर उसमें तुम्हारी रुचि होगी। इस समय मैं ग्राम्यसुख त्यागके साधुओंके गमन करने योग्य मार्गसे गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, इससे अब तुम्हारे अनुरोधसे विषय मार्गमें नहीं गमन करूंगा। परन्तु एक बारगी गमन करनेमें प्रवृत्त होनेसे इस समय मुझे कौनसा मार्ग कल्याणदायक है? यदि तुम मुझसे ऐसा प्रश्न करो, अथवा तुम्हारी पूछनेकी इच्छा न रहनेसे भी मैं स्वयं कहता हूं सुनो। मैं ग्राम्य-व्यवहारके सम्पूर्ण सुखको परित्याग करके अरण्यवासी और फल मूलाहारी होकर महत् तपस्याका अनुष्ठान करते हुए मृगोंके वनमें भ्रमण करूंगा। मैं वहां निवास करके यथा समय अग्निमें आहुति, प्रात और सन्ध्याके समय स्नान, मृगछालाका वस्त्र, जटाधारण और परिमित भोजन करके शरीरको कृशित करूंगा, सर्दी, गर्मी, क्षुधा, और प्यास आदि क्लेशोंको सहनेका अभ्यास करते हुए विधि-पूर्व्वक तपस्यासे धीरे धीरे अपने शरीरको सुखा दूंगा, वनवासी मृग और पक्षियोंके मनोहर शब्दको सुनूंगा, सुगन्धित फूलोंका घ्राण लूंगा और स्वाध्यायमें रत वाणप्रस्थ आदि नाना वेषधारी सुन्दर मूर्तिवाले वनवासियोंको दर्शन करते हुए निवास करूंगा। मैं अब किसीके अनिष्टाचरणमें नहीं प्रवृत्त होऊंगा, इससे ग्रामवासी मनुष्योंके सङ्ग मेरा अब कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस विषयमें कहनाही क्या है? मैं वहां एकान्त स्थलमें शिली वृत्ति अवलम्बन करके वनके वृक्षोंसे पके तथा बे पके फल, झरनोंके पानी और स्तोत्र आदिसे देवता तथा पितरोंको तृप्त करते हुए समय व्यतीत करूंगा; इसी भांति शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार आरण्यक कठोर व्रतका अनुष्ठान करके शरीर छूटनेके समयकी प्रतीक्षा करूंगा अथवा सिर मुड़ाके प्रति दिन एक एक वृक्षके नीचे फल मांगके शरीरयात्रा निर्व्वाह करूंगा। और निराश्रय होकर भस्मपूरित शरीरसे चारों ओर पर्य्यटन करूंगा; अथवा सम्पूर्ण प्रिय और

अप्रिय वस्तुओंको परित्याग करके किसी वृक्षके नीचे बनके बीच निवास करूंगा और सम्पूर्ण परिग्रह शून्य और सुखदुःखसे रहित होकर ममता तथा विषय वासनाको त्याग दूंगा, मैं कदापि शोक और हर्षके वशमें न होऊंगा, स्तुति और निन्दाको समान समझूंगा। मैं अब कदापि किसीके सङ्ग वार्त्तालाप न करके बाहरी भावसे अन्धे जड़ वा बधिर पुरुषोंकी भांति स्थित होके आत्म-उपसनामें रत रहूंगा। मैं अब जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करके धार्म्मिक और इन्द्रियपरायण पुरुषोंको समदृष्टिसे अवलोकन करूंगा। किसीको अवज्ञा वा किसीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे नहीं देखूंगा; सदा सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे स्थित होके इन्द्रियोंको संयम करनेमें यत्नवान होऊंगा। मार्गमें गमन करनेके समय किसी दिशा, कोई देश तथा पीछेकी ओर दृष्टि न करके स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अभिमान त्यागकर निरपेक्ष होके स्थिर और सरलचित्तसे इच्छापूर्व्वक गमन करूंगा। स्वभाव सम्पूर्ण जीवोंके आगे आगे गमन करता है, इससे आहार आदि स्वाभाविक कार्य्य संस्कार वश ही निर्व्वाहित होंगे; परन्तु मैं ज्ञानके विरोधी उन सुखदुःखोंको कुछ भी चिन्ता न करूंगा। पवित्र भोजन यदि प्रथम गृहमें कुछ भी न मिलेगा, तो दूसरे घर जाऊंगा; वहां भी यदि न मिलेगा तो क्रमसे सात घर घूमकर उदर-पूर्त्ति करूंगा। जिस समय ग्रामवासी समस्त पुरुषोंके ओखली मूसल आदि सबका कार्य्य समाप्त और अग्नि बूझके रसोईका घर धूएंसे रहित होगा और सब गृहस्थ पुरुष भोजन करके निवृत्त होंगे, अधिक क्या कहूं, जिस समय अतिथि और भिक्षुकोंका भी गमनागमन नहीं रहेगा, मैं उसही समयमें जाकर दो तीन वा पांच घरमें भिक्षा मांगूंगा, और सम्पूर्ण आशापाससे मुक्त होकर इस पृथ्वी पर भ्रमण करूंगा हानि और लाभको समान ही समझके बृहत् तपस्यामें रत होऊंगा। जीवितार्थी वा मुमूर्षु इन दोनोंमेंसे किसीकी भांति व्यवहार नहीं करूंगा मैं जीने और मरनेको समान समझूंगा, किसी विषयमें हर्ष वा विषाद नहीं करूंगा। यदि कोई पुरुष कुठार ग्रहण करके मेरी एक भुजा काट डाले और दूसरा पुरुष दूसरी भुजामें चन्दन लगावे,-तो मैं उन दोनोंके बीच किसीके भी कल्याण और अमङ्गलकी इच्छा नहीं करूंगा। मनुष्य लोग अपनी उन्नतिके वास्ते जिन सम्पूर्ण कार्य्योंका अनुष्ठान करते हैं, मैं उन समस्त कार्योंको त्यागके केवल एक शरीर निर्वाहके योग्य कर्म्म करके समय व्यतीत करूंगा। सर्व्वदा सम्पूर्ण कर्म्मोंसे आसक्ति रहित होकर इन्द्रियोंको वशमें करनेके वास्ते यत्नवान होऊंगा, और सब भांति सङ्कल्प-रहित होकर अपने मनको मलीनताको दूर करूंगा। संसारके बन्धनोंको तोड़के आशा ममतासे हीन होके वायुकी भांति स्वतन्त्र रूपसे पृथ्वीपर भ्रमण करूंगा मैंने अज्ञानसे विषय-वासनामें फंस कर बहुत ही पाप किया है, इससे ऐसी विषय-बासनासे आसक्ति रहित होकर ही मनोस आनन्द प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। कोई कोई मूढ़ पुरुष अनेक भांतिके शुभाशुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करके कई कार्य्य कारणोंसे सम्बन्धीय स्त्री, पुत्र आदिका पालन करते हैं; अन्तमें इस जड़ शरीरको परित्याग करनेके अनन्तर परलोकमें उस पापके फलका भागी होना पड़ता है, क्यो कि कर्त्ताको ही सम्पूर्ण कर्म्मोंका फल भोगना होता है। इसी भांति समस्त प्राणी कर्म्मरूपी सूत्रमें बन्धके घूमते हुए रथचक्रकी भांति सदा इस संसारके बीच आवागमन करते रहते हैं। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिकी आपदाओंसे युक्त इस असार संसारको जो पुरुष त्याग सकते हैं, उनको ही

नित्य सुख प्राप्त होता है। जब कि देवता लोग स्वर्गसे और महर्षि लोग अपने अपने स्थानोंसे भी भ्रष्ट होते हैं, तब इन सम्पूर्ण कारणोंको जानकर भी कौन पुरुष इस अनित्य स्वर्ग आदि ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा? और भी देखो, कि समयके अनुसार सामान्य राजा भी कपटता आदि विविध उपाय अवलम्बन करके किसी कारणसे महाराजको भी मार सकता है। जो हो, बहुत समयके अनन्तर मेरे लिये यह ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न हुआ है, इसको ही अवलम्बन करके मैं इस समय उस अक्षय, अव्यय और नित्य स्थानको प्राप्त करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। ऐसी ही बुद्धि सदा हृदयमें धारण करके निर्भय मार्गमें आरूढ़ होके जन्म, मृत्यु बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिके क्लेशोंसे युक्त इस शरीरको त्याग करूंगा।

९ अध्याय समाप्त।

भीमसेन बोले, हे महाराज! जैसे मन्दबुद्धि मर्थ ज्ञानरहित वेदपाठी ब्राह्मणकी बुद्धि वेदपाठ करते करते स्तम्भित होजाती है, वैसे ही आप की भी बुद्धि कलुषित होनेसे तत्वदर्शिनी नहीं होती है। राजधर्म्ममें दोषारोपण करके यदि वृथा शान्ति तथा आलस-भावको अवलम्बन करना ही अभिप्राय था, तब धृतराष्ट्र पुत्रोंको नाश करके तुम्हें कौनसा फल मिला? क्षमा, दया करुणा और अनृशंसता आदि सम्पूर्ण गुण क्या तुम्हारे अतिरिक्त क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी दूसरे राजाओंमें वर्त्तमान नहीं है, यदि मैं आपके ऐसे अभिप्रायको पहिले जान सक्ता, तो कदापि शस्त्र ग्रहण करके किसीका वध न करता। जीवनके समय पर्य्यन्त अवश्य ही भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके दिन बिताता,— ऐसा होनेसे राजाओंके बीच कदापि इस प्रकार भयङ्कर युद्ध उपस्थित न होता।

हे राजन्! ज्ञानी पुरुष "स्थावर जङ्गमसे युक्त इस पृथ्वीको बलवान पुरुषोंके द्वारा ही भोग्या और पालनीया" कहके वर्णन करते हैं; और क्षत्रिय धर्म्मके जाननेवाले पण्डितोंका ऐसा ही मत है, कि बलवान पुरुषको राज्य ग्रहण करनेके समय यदि कोई शत्रुताचरण करे, तो उस ही समय उसका बध करना उचित है। महाराज! हमारे शत्रु कौरव लोग भी उस ही दोषसे दूषित होकर हम लोगोंके हाथसे मारे गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु-रहित होके धर्म्मपूर्व्वक यह पृथ्वी-भोग कीजिये। जैसे कोई पुरुष कुआं खोदके उसमें जल न पाकर केवल कीचड़ लिपटे हुए शरीरसे निवृत्त होता है; जैसे कोई बड़े वृक्ष पर चढ़के मधु ग्रहण करके भी उसका स्वाद न पाकर ही मृत्युको प्राप्त होता है; जैसे कोई आशा पाससे बन्धके महा घोर पथसे गमन करते हुए फिर निराश होके निवृत्त होता है; जैसे कोई शूरवीर पुरुष समस्त शत्रुओंका नाश करके पीछे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होता है; अथवा जैसे भूखे मनुष्यका अन्न पाकर भी भोजन न करना और कामी पुरुषके इच्छानुरूप स्त्री पाके भी उसे भोग न करनेकी भांति आपके बन गमनमें उद्यत होनेसे हम लोगोंके शत्रुनाश आदि सम्पूर्ण कार्य्य निरर्थक होरहे है। हे राजन्! आप निर्बुद्धि होरहे हैं, तौभी हम लोग आपको ज्येष्ठ समझके मान्य करते हुए आपके अनुगामी होते हैं, तब हम लोगही इस विषयमें निन्दनीय हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हम लोग सब कोई बाहुबलसे युक्त कृतविद्य और सब विषयोंके निश्चय करनेवाले हैं, परन्तु असमर्थकी भांति आपको निरर्थक आज्ञामें स्थित हैं। हे राजन्! मेरा वचन युक्ति सङ्गत है वा नहीं, इसे विचारके देखिये, हम लोग अनाथोंके रक्षक होकर भी यदि अर्थसे भ्रष्ट

होंगे, तो प्रयोजन-सिद्धिके विषयमें सब कोई हम लोगोंको क्या अकर्म्मण्य न समझेंगे? क्योंकि ऐसी विधि है, कि राजा लोग वृद्धावस्था और शत्रुसे पराजित होनेपर अर्थात् आपद-कालमें ही सन्यास धर्म्म ग्रहण कर सकते हैं; अतएव सूक्ष्म तत्वदर्शी पण्डितोंने दूसरे समयमें क्षत्रियोंको सन्न्यासधर्म्मकी विधि नहीं दी है, वरन उससे धर्म्मकी हानि होती है, ऐसा ही सूक्ष्मदर्शी पण्डितोंने वर्णन किया है। जो पुरुष क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होके उसहीमें निष्ठावान तथा हिंसा धर्म्मसे ही जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे किस प्रकारसे दैव निर्दिष्ट धर्म्मकी निन्दा कर सकते हैं? ऐसा करनेसे उस विषयमें विधाताकी ही निन्दा करनी होती है, इससे दैव निर्दिष्ट धर्म्म दूषित होने पर भी निन्दित नहीं है। क्षत्रियोंको भी जो वेदमें सन्यास ग्रहण करनेके अधिकार कहा गया है; वह यथार्थमें न होने पर भी ऋक्, यजु, और साम इन तीनों वेदों तथा विधि विषयमें अन-भिज्ञ, निर्द्धन और नास्तिक पुरुषोंने ही वेदोक्त सन्यास धर्म्मके प्रसंसा-रहित वचनको सत्यकी भांति समझके अपना मत प्रकाशित किया है। क्षत्रियोंको सिर मुड़ाकर कपट सन्यास धर्म्म अवलम्बन करके शरीरको चेष्टा-रहितकी भांति रक्षित करनेसे वह नाशके वास्ते ही समझा जाता है, जीवन रक्षाके निमित्त नहीं! तब केवल देवता, ऋषि, अतिथि, पितर, एत और पौत्र आदिके पालन पोषणमें असमर्थ पुरुष ही जङ्गलके बीच अकेले ही निवास करके सुखी हो सकते है। जैसे मृग सूअर और पक्षी वनवासी होके भी स्वर्गके अधिकारी नहीं हैं, वैसेही सत्कर्म्मोंके अनुष्ठा-नसे विमुख होनेवाले शक्तिमान क्षत्रिय पुरुष भी आरण्यक धर्म्मसे किसी प्रकार स्वर्गके अधि-कारी नहीं हो सकते। हे राजेन्द्र! यदि सन्यास धर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त होती, तो ऐसा होनेसे पहाड़ और वृक्षोंके समूह शीघ्र ही सिद्धिलाभ करते। जगत्के बीच ये ही प्रकृत सन्यासी और ब्रह्मचारीकी भांति दीख पड़ते हैं, क्योंकि इन्हें परिग्रह वा किसी उपद्रवकी कुछ भी बाधा नहीं है। महाराज! पुरुष अपनी प्रारब्धके अतिरिक्त पराये भाग्यसे कदापि फल भागी नहीं होसकता; इससे अवश्य ही कर्म्म करना उचित है, कर्म्म हीन मनुष्य कभी सिद्धि-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते! और अपना उदर भरनेसे ही यदि सिद्धि प्राप्त होस-कती, तो जिसे उदर भरनेके अतिरिक्त और कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, वे मछरी आदि जलजन्तु भी सन्न्यासरूपी मुक्ति फल प्राप्त कर-नेमें समर्थ होते।

अधिक और क्या कहूं, आप विशेष रीतिसे विचारके देखिये, इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणी अपने अपने कर्म्ममें प्रवृत्त होरहे हैं, इससे अवश्य ही कर्म्म करना चाहिये; कर्म्महीन पुरुषको दूसरे किसी विषयसे भी सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती।

१० अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, महाराज! इस विषयमें तप-स्वियोंके सङ्ग देवराज इन्द्रके बर्त्तालापका एक पुराना इतिहास वर्णित है, मैं कहता हूं, आप सुनिये।

किसी समयमें उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बहुतसे अजातश्मश्रु ब्राह्मणोंका निर्ब्बोध बालकोंने परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करके घर त्यागके वनमें गमन किया। वे सब महाधनवान होके भी सन्न्यासको ही यथार्थ धर्म्म समझके पिता भ्राता आदि बन्धुबान्धवोंको परित्याग कर ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन करके चारोंओर पर्य्य-टन करने लगे, देवराज इन्द्रने उन बालकोंके ऊपर कृपा करी। भगवान इन्द्रने सुवर्णमय

पक्षीका रूप धरके उन बालकोंसे कहा,—इस संसारके बीच जो लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करते हैं, वे साधारण मनुष्योंसे न होने योग्य अत्यन्त कठिन कर्म्म करते हैं, और वही पवित्र कर्म्म है; इससे ऐसे ही कर्म्म करनेवाले पुरुषोंका जीवन धन्य है और वेही धर्म्मपरायण पुरुष सिद्ध मनोरथ होकर परम गति लाभ करते हैं।

तपस्वियोंने कहा, ओहो! यह पक्षी यज्ञसे बचे हुए अन्न भोजन करनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करता है! हमलोग भी यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन किया करते हैं; इससे अवश्य ही यह पक्षी हमलोगोंको यह विषय विज्ञापित करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

पक्षी बोला, हे तपस्वी पुरुषो! मैं तुम लोगोंकी प्रशंसा नहीं करता हूं, तुम लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेवाले नहीं हो; तुम लोग जूठे अन्नको भोजन करनेवाले मन्दबुद्धि अल्प पराक्रमी और पापी हो।

तपस्वियोंने कहा, हे विहङ्गम! हम लोग इसे ही परम श्रेष्ठ कल्याणदायक मार्ग समझकर इसही की उपासना करते हैं; इस समय जो हम लोगोंके निमित्त उत्तम हो, तुम उसहीका उपदेश करो; तुम्हारे बचनोंमें हमलोगोंकी अत्यन्त ही श्रद्धा उत्पन्न होरही है।

पक्षी बोला, कि बक्ता और श्रोताका अन्तःकरण भिन्न भिन्न अंशोंमें बंटा रहता है, इससे यदि मेरे वचनोंमें तुम लोग कोई शङ्का न करो तो मैं तुम लोगोंके निमित्त यथार्थ हितकर वचनोंका उपदेश करूंगा।

तपस्वियोंने कहा, हे धर्म्मात्मन्! आर्य्य! हमलोग तुम्हारे वचनको सुनेंगे; इस जगत्के सम्पूर्ण मार्ग तुम्हें विदित हैं, इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञाके अनुसार इस स्थानमें स्थित हैं; अब तुम हमलोगोंको यथार्थ विषयका उपदेश प्रदान करो।

पक्षी बोला, सम्पूर्ण चौपाये पशुओंमें गऊ श्रेष्ठ है, धातुओंमें सुवर्ण, शब्दोंमें मन्त्र, और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। वेद मन्त्र ही ब्राह्मणोंकी जन्मसे लेकर जीवन कालके समय पर्य्यन्त गर्भ क्रिया आदि सम्पूर्ण संस्कारोंका विधि पूर्व्वक विधान करता है! और यह वैदिककर्म्म ही सब किसीका उत्तम यज्ञ और स्वर्ग प्राप्त होनेका पथ स्वरूप है! और यदि इसे न स्वीकार करो तो इस कर्म्मसे किस भांति सैकड़ो कर्म्म-निष्ठ स्वर्गार्थी पूर्व्व पुरुषोंके मनोरथ तथा कार्य्य सिद्ध हुए हैं? इस विषयमें मैंने बहुत कुछ प्रत्यक्ष मालूम किया है। इससे लोकके बीच जो पुरुष दृढ़ विश्वासके सहित इस आत्माको जिस देव रूपसे भजता है, वह उसही भावसे सिद्धि प्राप्त करता है।

इस जगत्के बीच जीवोंको तीन प्रकारसे सिद्धि प्राप्त होती है; प्रथम माघ महीनेसे लेकर असाढ़ पर्य्यन्त छः महीने उत्तरायण कालमें मृत्यु होनेसे शुक्ल अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे आदित्य लोक प्राप्त होता है; इस लोकमें इसे क्रम-मुक्ति कहते हैं। दूसरा सावण महीनेसे लेकर पौषमास छः महीने तक दक्षिणायण समयमें कृष्ण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है, इसी भांति मुक्त जीवोंका पुनरावृत्ति होती है। तीसरे विमुक्त उपासकोंको अन्तिम समयमें भगवान रुद्रदेव स्वयं आगमन करके तारकब्रह्म मन्त्र उपदेश करते हैं, उससे वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं; इसको अनावृत्ति मुक्ति कहते हैं। परन्तु इन तीनों प्रकारकी सिद्धियोंको सब प्राणी कर्म्मसे ही प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। यह गृहस्थाश्रम ही अत्यन्त पवित्र सिद्ध क्षेत्र और बड़ा है। जो मनुष्य कर्म्मकी निन्दा करके कुमार्गमें गमन अर्थात् सन्यास-धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे सम्पूर्ण मूढ़ पुरुष अर्थ-भ्रष्ट होकर पापमें लिप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग

पितर लोक और ब्रह्मप्राप्ति रूपी यह नित्य भांतिकी नित्य सिद्धियोंको परित्याग करके मूढ़की भांति इस लोकमें जीवित रहके शीघ्रही कीट आदि हीन योनिको प्राप्त होते हैं। देखिये मन्त्रमें ऐसी विधि है, कि "हे यजमान! द्रव्यदान आदि यज्ञ करो, मैं तुम्हें पुत्र पशु और स्वर्गादि सुख प्रदान करूंगा," इससे जिस प्रकारकी बिधि है, उसही विधिके अनुसार चलनेसे तपस्विनोको परम तपस्या कही गई है। इससे इसही भांतिका यज्ञ और दानरूपी तपस्या तुम लोगोंको अवश्य कर्त्तव्य है। यथा नियमसे देवतोंकी पूजा, वेदाध्ययन, पितृ तर्पण और गुरुसेवाको ही पण्डितोंने कठिन तपस्या कहके वर्णन किया है; देवता लोग इसी भांति कठोर तपस्या करके परम ऐश्वर्य्यको प्राप्त भये हैं। इसही निमित्त मैं तुम लोगोंको अत्यन्त कठिन गृहस्थ धर्म्मके भारको ग्रहण करनेका उपदेश करताहूं। यह वेदोक्त कर्म्म ही जो मुख्य तपस्या और प्रजाकी उत्पत्तिका मूल है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्यों कि वेदमें गाई स्थ्याश्रम विधिके स्थानमें "गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंका मूल कहके वर्णित हुआ है। काम क्रोधसे रहित ब्राह्मणोंने इसी भांति धर्म्मानुष्ठानको परम तपस्या कहके स्वीकार किया है, और ब्रह्मचर्य्यादि व्रतोंको मध्यम तपस्या कहके वर्णित किया है। जो लोग दिन और रात्रिमें कुटुम्बको विधि पूर्व्वक अन्नप्रदान करके भोजन करते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेको न प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं। हे तपस्वी लोगो! देवता पितर, अतिथि कुटुम्ब और अपने आश्रित लोगोंको यथारीतिसे अन्नप्रदान करके भोजन कराते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेके न प्राप्त होने योग्य स्थानमें गमन करते हैं। इससे जो लोग इस लोकमें सत्यवादी और उत्तम व्रताचरणमें रत होके अपने धर्म्मके आसरेसे स्वयं संशय रहित होके यह विषय दूसरेको उपदेश करते हैं, वह निर्म्मत्सरी कठिन कर्म्म करनेवाले पुरुष शरीर त्यागनेके अनन्तर इन्द्र लोकको प्राप्त करके बहुत समय तक स्वर्गमें बास करते हैं।

अर्जुन बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर उन तपस्वी लोगोंने पक्षी रूपी देवराज इन्द्रके धर्म्मार्थ युक्त हितकर बचन सुनकर सन्यास धर्म्मको निष्फल समझ उसे त्यागके गृहस्थ धर्म्म अवलम्बन किया। हे धर्म्मज्ञ! आप भी इस समय उस चिरभ्यस्त धीरज धारण करके निष्कण्टक यह पृथ्वी शासन कीजिये।

११ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन! मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! धर्म्मात्मा बोलनेवालोंमें मुख्य दुःखसे क्रुशित, चौड़ी छातीवाले महाभुज बुद्धिमान शत्रुनाशन नकुल अर्ज्जुनके बचन समाप्त होनेपर निज भाई धर्म्मराज युधिष्ठिरको ओर देखकर उनके चित्तको परिवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे महाराज। विशाख यूप नाम किसी क्षेत्र विशेषमें अग्नि स्थापित करनेके वास्ते देवतावोंने एक अग्नि कुण्ड बनाया था, वह अबतक भी दीख पड़ता है; इससे देवललाभ भी आप कर्म्मफलसे ही समझिये! और जो लोग जलवृष्टि आदिसे नास्तिकोंको भी प्राणदान करते रहते हैं; वे पितर लोग भी विधिपूर्व्वक कर्म्म किया करते हैं। जो लोग वेदोक्त धर्म्मका परित्याग करनेवाले हैं; उन्हें अवश्य ही नास्तिक समझिये; क्यों कि ब्राह्मण लोग कभी किसी कर्म्ममें वेदोक्त विधिको परित्याग करके किसी प्रकारसे स्थित नहीं रह सकते। वेद जाननेवाले पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है, उस गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको देवार्च्चनासे ब्रह्मलोक

प्राप्त होता है। हे महाराज! निश्चय कीजिये कि जो पुरुष श्रेष्ठ यज्ञको करते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणोंको धर्म्मसे उपार्ज्जित धन प्रदान करते, और अहङ्कार तथा ममता आदि त्यागके इन्द्रियसंयममें रत रहते हैं, उन्हें ही पण्डित लोग सात्विक त्यागी कहते हैं। जो पुरुष सुखभोग्य गृहस्थाश्रमको त्यागके जंगलमें गमन करता है अथवा अनशन आदिसे शरीर त्याग करता है, उसे तामसत्यागी समझिये। जो गृहत्यागके मौनावलम्बन पूर्व्वक वृक्ष आदिके नीचे सर्व्वदा स्थित होके योगाभ्यासमें रत रहते हैं और कोई अभिलाषा न करके केवल शरीर निर्व्वाहके वास्ते भिक्षा मांगनेके वास्ते भ्रमण करते हैं, वे भिक्षुक सन्न्यासी कहके प्रसिद्ध हैं; और जो ब्राह्मण क्रोध, हर्ष और चुगलीको त्यागके वेदाध्ययनमें रत रहते हैं, उन्हें भी भिक्षुक सन्न्यासी कहा जाता है। पण्डित लोग कहते हैं, कि सब आश्रमोंकी बराबरी करनेमें एक ओर तीनों आश्रम और एक ओर गृहस्थाश्रम; क्योंकि गृहस्थाश्रम ही ब्रह्मचर्य्यादि तीनों आश्रमोंका आश्रयस्वरूप है। लोकोंके तत्वको जाननेवाले महर्षियोंने सब आश्रमोंके तारतम्यकी समालोचना करके जब समझा कि, गृहस्थाश्रममें स्वर्ग और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं, तब यही उन लोगोंकी गति और अवलम्बस्वरूप हुआ। हे भरत-श्रेष्ठ! जैसे मूढ़ लोग गृहत्यागके बनबासी बनते हैं, वैसा न करके फलासक्तिसे रहित होकर गृहस्थाश्रममें ही कर्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेवाले पुरुष उन बनवासियोंसे श्रेष्ठ और प्रकृत सन्यासी हैं; और जो पुरुष सन्न्यास वेष धरके मनमें सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त वस्तुओंका ध्यान करता है, उसको गर्द्दनमें यमराज अपना फांस डालके उसे बांध लेता है। हे राजन्! जो कर्म्म अहङ्कार पूर्व्वक किये जाते हैं, वे फलदायक अर्थात् मुक्ति देनेवाले नहीं होते। और जो कर्म्म आसक्ति रहित होकर किया जाता है, वह महा फलदायक होता है, क्योंकि वह मुक्तिका कारण समझा जाता है। शम, दम, धैर्य्य, पवित्रता, सरलता, धृति, यज्ञ और धर्म्म ये सब नियमित आचार ऋषि-प्रणीत विधि कहके वर्णित हैं। गृहस्थाश्रममें देवता, पितर और अतिथिके उद्देश्यसे यज्ञ आदि कर्म्म करना योग्य है ऐसा करनेसे ही त्रिवर्ग योग साधन होता है। इससे आसक्तिरहित होकर गृहस्थाश्रममें स्थित सन्न्यासी पुरुषके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नष्ट नहीं होता।

महाराज! पापरहित प्रजापतिने "नाना भांतिकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञ करके ये लोग मेरी पूजा अर्चा करेंगे," इसी अभिप्रायसे प्रजाओंको उत्पन्न किया है। देखिये वृक्ष, लता, औषधि पशु और मेघ आदि सम्पूर्ण सामग्री यज्ञके निमित्त ही उत्पन्न हुई हैं; और पवित्र घृत भी यज्ञमें प्रयोजनीय है। यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले पुरुषोंके ज्ञानको बढ़ानेवाला है; इससे इस दुर्लभ गृहस्थाश्रम धर्म्मके कर्म्मोंका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। उस अति दुर्लभ गृहस्थाश्रममें निवास करके तथा पशु और धनधान्य आदि सामग्रियोंसे युक्त होकर भी जो गृहस्थ पुरुष यज्ञादि कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, वह बहुत दिनोंतक पापभोग करते हैं। महाराज! ऋषियोंके बीच कोई वेदाध्ययन, कोई ज्ञानकी समालोचना और कोई मनहोमन शास्त्र आलोचनारूपी महायज्ञका अनुष्ठान करते रहते हैं। इसी भांति स्थिर चित्तवाले ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मणोंके संसर्गमें रहनेके वास्ते देवता लोग भी अभिलाष करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंको जीतकर आपने जो बहुतसे रत्न संग्रह किये हैं, उसे यज्ञमें बिना व्यय किये ही, जो आप इस समय आरण्यक धर्म्म ग्रहण करनेका

प्रसङ्ग करते हैं; उससे केवल आपकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। गृहस्थाश्रममें स्थित राजाओंको सर्व्वमेध, अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंमें धन त्यागके अतिरिक्त दूसरी भांतिका त्याग अर्थात् सन्न्यास ग्रहण करते नहीं देखा है। हे राजेन्द्र! इससे जैसे देवराज इन्द्रने बहुतसे यज्ञ किये थे, वैसे ही अश्वमेध, राजसूय प्रभृत यज्ञ जिनकी ब्राह्मण लोग प्रशंसा करते हैं, उन्हींका अनुष्ठान कीजिये। देखिये राजाकी असावधानीसे यदि डाकू लोग प्रजाके धनको हर लेवें; और राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह राजा साक्षात् कलियुगका स्वरूप ही कहा जाता है।

हमलोग राजपुत्र होकर भी यदि सज्जित हाथी, घोड़े, गज और सब भांतिसे अलंकृत दासी, सेवक, गांव, भूमि और गृह आदि सामग्री ब्राह्मणोंको दान न कर सके, तो अपने दोषसे ही हम लोग मत्सरी होकर कलिस्वरूप कहे जावेंगे। जो लोग दान आदि कर्म्मसे प्रजाकी रक्षा नहीं करते, वे पापी राजा लोग परलोकमें सदा दुःख भोग करते हैं; वे कदापि सुख नहीं पा सकते। हे धर्म्मराज! जो पवित्र तीर्थोंमें स्नान पितर लोकके वास्ते श्राद्धादि और देवताओंके वास्ते यज्ञ आदि कर्म्मोंका अनुष्ठान न करके बनके बीच गमन करेंगे, तो आप दोनों लोकसे अन्तमें इस प्रकार नष्ट होंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बादल छिन्नभिन्न हो जाते हैं। जो भीतरसे अभिमान और बाहरी सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनकी आसक्ति त्याग सकते हैं, वे ही प्रकृत सन्न्यासी हैं; नहीं तो गृहस्थाश्रम त्यागके वनमें चले जानेसे कोई सन्न्यासी नहीं हो सक्ता। महाराज! अप्रतिषिद्ध और वैधकार्य्यमें स्थित ब्राह्मणोंके विषयमें यह लोक और परलोक नहीं बिगड़ता। पहिले समयमें साधु पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, तथा अपने धर्म्ममें रत होके जैसे देवराज इन्द्रने दैत्योंका बध किया था, वैसे ही युद्धभूमिमें पराक्रमी शत्रु कौरवोंका बध करके आप जिस प्रकार शोक कर रहे हैं, वैसा कौन पुरुष शोक करता है? हे राजेन्द्र! अब शोक न कीजिये; आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पराक्रमके प्रभावसे पृथ्वी जय की है; इससे अब यज्ञ करके मन्त्रपाठ करनेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धनादि दान कीजिये; ऐसा करनेसे आप अनायासही शीघ्र स्वर्ग लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

१२ अध्याय समाप्त।

सहदेव बोले, महाराज! केवल बाह्यवस्तु सम्पूर्ण परित्याग करनेसे ही सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती, वरन आन्तरिक आसक्ति त्याग सके तो सिद्धि प्राप्त होना सम्भव है। अन्तरमें विषयासक्त और बाहरी वस्तुओंके त्याग करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार धर्म्म और सुखलाभकी सम्भावना रहती है, वह हम लोगोंके शत्रुवोंको प्राप्त होवे; और आन्तरिक अभिमान आदि त्यागके यथानियमसे पृथ्वी शासन करनेवाले राजाको जैसा धर्म्म और सुख प्राप्त होना सम्भव है, वह हम लोगोंके इष्ट मित्रोंको प्राप्त होवे। "मम" ये दो अक्षर ही मृत्यु हैं; और "न मम" ये तीन अक्षर अर्थात् निर्म्मम होके नित्य ब्रह्म जानना चाहिये। महाराज! ज्ञान और अज्ञान, ये दोनों अवश्य ही प्राणियोंके शरीरमें अलक्षित रूपसे स्थित होकर आपसमें प्रतिद्वन्द्वी होते हैं यदि यह निश्चित है कि जीव अमर है, तो शरीर नष्ट करनेसे कैसे प्राणियोंकी हिंसा हो सकती है? और यदि शरीरका जन्मना मरना देखकर उस जीवकी उत्पत्ति और मृत्यु माने तो वेदमें कही हुई समस्त क्रिया मिथ्या होजावेगी; इससे जीवकी उत्पत्ति और नाशके विषयमें सन्देह त्यागके पूर्व्व समयके साधु पुरुषोंके आचरित मार्गको अवलम्बन

करना बुद्धिमान पुरुषको उचित है। इस स्थावर जङ्गमसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त करके भी जो पुरुष राज्यसुख नहीं भोग करते, उनका जीना ही निष्फल है। जो लोग बनवासी होकर जीवन धारण करते हैं, परन्तु और बिषय बासनाकी ममता उनके चित्तसे नहीं छूटती; वे शीघ्र ही मृत्युके कराल ग्रासमें पतित होते हैं। हे महाराज। आप इस आत्माको प्राणियोंके भीतर बाहर प्रत्यगात्म रूपसे स्थित समझिये; जो लोग आत्माको ऐसा जान सकते हैं, वे महाभयसे मुक्त होते है। आप हम लोगोंके पिता, माता भ्राता और गुरु हैं; इससे मैंने दुःखसे आर्त्त होकर जो कुछ प्रलापयुक्त बचन कहा है, उस अपराधको क्षमा कीजिये, क्यों कि मैंने जो कुछ कहा है, चाहे वह न्याययुक्त हो अथवा अन्याय पूरित हो होवे, केवल आपमें भक्ति रहनेके कारणसे ही मैंने कहा है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीबैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! भीमसेन आदि भाइयोंने वेदविहित बचनोंको कहके इस प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरको प्रबोधित किया; तौभी जब उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। तब महत् अभिजन-सम्पन्न आयतनैनी स्त्रियोंमें अग्रगण्य श्रीमती द्रौपदी देवीने कुछ कहनेकी अभिलाष की। वह धर्म्म जाननेवाली, धर्म्मदर्शनी, निपुणश्रोणी पाञ्चाली स्वाभाविक ही मानती थी उसपर भी राजा युधिष्ठिर उसका सदा सम्मान किया करते थे, इस ही कारण वह उनके समीप बहुत कुछ अभिमान युक्त बचनोंको प्रकाशित कर सकती थी। वह हाथियोंके बीचमें स्थित यूथपतिकी भांति सिंह और शार्दूलके समान पराक्रमी भाइयोंके बीचमें बैठे हुए राज शिरोमणि निज स्वामी युधिष्ठिरकी ओर कटाक्ष करके मनोहर शान्त बचनसे उन्हें सम्बोधन करके बोली, महाराज! तुम्हारे भ्राता सूखे कण्ठसे युक्त चातककी भांति चिल्ला रहे हैं, तौभी तुम उन लोगोंको अभिनन्दन नहीं करते हो? बहुत दिनोंसे दुःख भोग करनेवाले महामतवाले हाथीके समान पराक्रमी इन भाइयोंको आप यथा उचित बचनोंसे आनन्दित कीजिये।

हे राजेन्द्र! पहिले द्वैतवनमें जब तुम्हारे ये सब भाई सर्दी, वायु और गर्म्मीसे अत्यन्त क्लेशित हुए थे; तब उस समय आपने कहा था,—हे शत्रुओंको नाश करनेवाले युद्धबिजयी भ्राता लोगो! हम सब कोई मिलके युद्धभूमिमें दुर्य्योधनको मारकर सब अभिलाष सिद्ध करनेवाली पृथ्वीको भोग करेंगे; और जब तुम लोग शत्रु सेनाके रथियोंको रथ रहित और हाथियोंको मारकर उन सब रथों और चतुरङ्गिनी सेनाके मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित करके अनेक दक्षिणासे युक्त अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे, उस समय तुम लोगोंका यह सब दुःख सुखमें परिणत होगा” हे धर्म्मात्माओंमें मुख्य महाराज! आप उस समय इस प्रकार धीरजयुक्त बचन कहके इस समय किस कारणसे हम लोगोंका मन उत्साहरहित कर रहे हैं? देखिये कादर पुरुष कदापि पृथ्वी वा ऐश्वर्य्य भोगनेका अधिकारी नहीं होसकता! और जैसे कीचड़में मछली नहीं रह सकती, वैसे ही नपुंसकके घरमें पुत्र कलत्र नहीं रहते। राजा दण्ड रहित होनेसे प्रभावयुक्त पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ नहीं हो सकता और उसकी प्रजा भी कदापि सुख नहीं पासकती। महाराज! सब प्राणियोंके ऊपर मित्रभाव, दान, अध्ययन और तपस्या ये सब ब्राह्मणके धर्म्म हैं; क्षत्रियके नहीं। दुष्टोंका नाश, साधु पुरुषोंका पालन, और युद्धमें पीछे न हटना यही राजाओंके परम

धर्म्म हैं। जिसमें क्षमा, दान, क्रोध, भय; अभय, निग्रह और अनुग्रह बर्त्तमान हैं, उसे ही धर्मज्ञ कहा जा सकता है। महाराज! आपने दान, अध्ययन सान्तवाक्य, यज्ञ, वा याचना करके पृथ्वी नहीं प्राप्त किया है; द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य आदि महावीरोंसे रक्षित युद्धमें उद्यत शत्रुके हाथी, घोड़े, रथ और पदाति वीरोंसे युक्त चतुरङ्गिनी सेनाका नाश करके इस पृथ्वीको प्राप्त किया है, इससे अब इसे भोग कीजिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहिले राजसूय यज्ञके समयमें आपने अनेक भांतिके प्राणियोंसे युक्त यह जम्बुद्वीप, महामेरु पर्व्वतके पश्चिम जम्बूद्वीपके समान क्रौञ्च द्वीप और महागिरिके पूर्व्व क्रौञ्च द्वीप सदृश शाकद्वीप और इस महापर्व्वतके उत्तर दिशामें स्थित भद्रश्व द्वीप, इसके अतिरिक्त समुद्र पर्य्यन्त नाना प्राणियोंसे युक्त सम्पूर्ण अन्तर्द्वीपोंको भी शासित किया था। हे महाराज! आप इस भांति असीम कार्य्योंको करके ब्राह्मणोंसे सम्मानित होकर भी क्यों नहीं प्रसन्न चित्त होते हैं? क्या ही आश्चर्य्य है! आप मतवाले हाथी और वृषभके समान पराक्रमी अपने भाइयोंकी ओर देखकर इन्हें आनन्दित करिये। देखिये आप सब कोई देवतोंके समान शत्रुओंका नाश करने और उनके पराक्रमको सहनेमें समर्थ हैं; अधिक क्या कहूं, मेरे विचारसे हम लोगोंके बीच एक ही पुरुषके स्वामी होनेसे परम सुखका निमित्त होसक्ता हैं। जब शरीरको धारण करनेवाली पांचों इन्द्रियोंकी भांति आप पांचों भाई मेरे स्वामी हैं; तब जो मेरा कितना सौभाग्य है; उसे कहां तक वर्णन करूं? महाराज! मेरी सास सर्व्वज्ञानसे युक्त, दीर्घ-दर्शिनी कुन्तीदेवीने कुछ भी मिथ्या वचन नहीं कहा था, उन्होंने मुझसे कहा था, "हे द्रौपदी! महापराक्रमी युधिष्ठिर युद्धभूमिमें सहस्रों राजाओंको मारके तुम्हारे सुखका विधान करेंगे," परन्तु आपको सहसा इस प्रकारसे मोहयुक्त देखकर अब बोध होता है, उनके वे सब बचन मिथ्या हुए। जिसका जेठा भाई उन्मत्त होता है छोटे भाई सब उसके ही अनुगामी होते हैं। देखिये आपका चित्त उन्मत्तता युक्त होरहा है, तोभी आपके भाई आपके अनुगामी होरहे हैं। हे राजेन्द्र! यदि ये लोग उन्मत्त न हुए होते तो नास्तिकोंके सहित आपको बांधके स्वयं ही पृथ्वीका शासन करते। जो पुरुष मूढ़ होकर आपकी भांति आचरण करता है, उसका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। जो पुरुष इस भांति उन्मादमार्गी होता है, धूप अञ्जन नाश और रक्षा बन्धनसे उसकी चिकित्सा करनी उचित है। परन्तु हे भरतसत्तम महाराज! स्त्रियोंके बीच मैं ही अत्यन्त अधम हूं, क्यों कि मैं वैसे पुत्रोंसे रहित होकर भी अभी जीवित रहनेकी अभिलाषा करती हूं। आपके ये सब भाई लोग और मैं, हम सब कोई यत्न कर रहे हैं; इससे हमारे वचनोंको निष्फल करना आपको उचित नहीं है। देखिये आप सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको त्यागके वनमें गमन करनेके वास्ते उद्यत होकर स्वयं ही विपदको आवाहन कर रहे हैं। महाराज! पहिले जैसे समस्त राजाओंमें माननीय मान्धाता और अम्बरीष थे, इस समय आप भी उस ही भांति विराजमान हैं। इससे धर्म्मके सहित प्रजाको पालन करते हुए वन पर्व्वत और अनेक द्वीपोंसे युक्त इस पृथ्वीका शासन, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान, और शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करते हुए ब्राह्मणोंको धन वस्त्र आदि अनेक भांतिकी भोगप्रद वस्तु प्रदान कीजिये; और विरत न हूजिये।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय ! अर्ज्जुन द्रौपदीके बचनको सुनकर जेठे भाई, अच्युत महाबल युधिष्ठिरका सम्मान करते हुए फिर कहने लगे।

अर्ज्जुन बोले, हे महाराज ! दण्ड ही समस्त प्रजाको शासन और पालन करता रहता है; और सम्पूर्ण प्राणियोंको निद्रावस्थामें भी दण्ड जागता रहता है; इस ही कारण पण्डित लोग दण्डको ही धर्म्म कहके बर्णन करते हैं। दण्डही धर्म्म अर्थ और कामका रक्षक है, इसहीसे दण्ड त्रिवर्ग नामसे बर्णित हुआ है। अधिक क्या कहूं, प्रजाओंकी धनधान्य आदि जो कुछ बस्तु है, वह सब दण्डसे ही रक्षित होती है। हे राजेन्द्र ! इससे आप भी ऐसाही निश्चय करके लोक-रक्षा स्वरूप दण्डको ग्रहण करके लौकिक भावोंपर दृष्टि कीजिये। देखिये इस पृथ्वीपर कितने ही पापी पुरुष केवल राज दण्डके भयसे ही पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते; कोई कोई यम-दण्ड और परलोकके भयसे और कोई कोई जातिय भयसे पापाचरण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन् ! इसी भांति लौकिक व्यवहारोंकी सिद्धि होती है; परन्तु सब प्राणी केवल दण्ड-भयसे ही अपने अपने कार्य्योंमें यथा रीति तत्पर हैं। इस पृथ्वीपर बहुतेरे प्राणी ऐसे भी हैं, जो केवल दण्डभयसे आपसमें एक दूसरेको भक्षण नहीं करते। अधिक मैं अब क्या कहूं, यदि दण्ड प्रजाकी रक्षा न करता; तो समस्त प्राणी महाघोर अन्धकार रूपी नरकमें पतित होते। दुष्टोंका दमन और साधारण पुरुषोंको शासित करता है, इसीसे पण्डितोंने उसका नाम दण्ड रक्खा है। यदि ब्राह्मणजाति कुछ अपराध करे, तो केवल वचनसे उसे दण्डित करना कर्त्तव्य कर्म्म है। अपराधी क्षत्रियको केवल भोजन मात्र प्रदान करना चाहिये, उसे वेतन देना उचित नहीं है, वैश्यको धन (जुर्माना) रूपी दण्ड करे और शूद्र जातिको दूसरा कुछ दण्ड न करके उससे केवल सेवा कर्म्म करानेकी ही विधि है। प्रजाके धन प्राणकी रक्षा और सावधानताके वास्ते जगत्के बीच दण्डका नियम स्थापित हुआ है। जहां दण्ड चलानेवाला राजा पूर्णरीतिसे विचारवान होता है, और श्याममूर्त्ति तथा लाल नेत्रवाला दण्ड यथार्थ रीतिसे उद्यत रहता है, वहांपर प्रजा कदापि मोहित नहीं होती। ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक सब आश्रमवाले केवल दण्डभयसे नियमित पथमें स्थित हैं। महाराज ! यदि दण्डभय न रहता तो कोई पुरुष यज्ञानुष्ठान और दान कर्म्म करनेकी इच्छा न करते, अधिक क्या कहूं, भय रहित होनेसे कोई पुरुष भी नियममें रहनेकी इच्छा न करते। जैसे मछुए बिना मछलियोंकी हिंसा किये जीविका निर्व्वाह नहीं कर सकते, वैसे ही राजा लोग भी शत्रुओंको बिना नष्ट किये कदापि राजश्रीको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते। राजा लोग यदि अपने शत्रुओंका नाश न करें, तो उनका धन, कीर्त्ति, और प्रजा कुछ भी स्थायी नहीं रह सकती देखिये इन्द्रने वृत्रासुरका बध करके महेन्द्र नाम प्राप्त किया है देवताओंके बीच जो लोग शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, उनको सब कोई भक्ति पूर्व्वक पूजा अर्चा किया करते हैं। रुद्र इन्द्र, वरुण, अग्नि, स्वामकार्त्तिक, यम, काल, मृत्यु वायु, कुवेर, सूर्य्य. वसु, मरुत, विश्वदेव और साध्य आदिक देवता ये सब कोई शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। परन्तु मनुष्य लोग उन देवतोंके प्रतापको जानके विनीत भावसे उन्हें प्रणाम किया करते हैं; ब्रह्मा, धाता वा पूषाको कदापि प्रणाम नहीं करते। केवल कोई कोई मनुष्य सब कर्म्मोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको सम दृष्टिसे देखते हैं और साधु तथा परिश्रमी देवताओंकी पूजा अर्चा किया करते हैं। इस संसारके बीच में ऐसे किसी प्राणीको भी नहीं

देखता, जो विना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्यों कि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंका जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत्र ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्ली नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते है। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्ष्य करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं; परन्तु हिंसाके बिना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वी-पर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव घुसे हुए हैं, तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वी पर बहुतसे ऐसे छोटे जीव हैं, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होस-कता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रकी पल-कके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनि धर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है; और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंको हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालूम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंकी भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य वचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको विभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल-ङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उलङ्घन नहीं कर सकते क्यों कि इस जगत्के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंको नीतिमार्ग अव-लम्बन करानेके ही वास्ते विधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विपत्कारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्याओंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी वस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भयचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त सात्त्विक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते। और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवाले कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते। दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुतकर कदापि उसे वाहन न करते। हे महाराज। समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं; दण्ड ही मनुष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है। जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रकारके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उद्यत होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडाश भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते। हे राजन्। धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। श्रीमान् पुरुष अपने प्रिय-पुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्माचरण करते रहते हैं। इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य हैं, वे सब धनके वशमें हैं, और वह अर्थ दण्डके अधिकारमें है। इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है। आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है। कोई निर्व्वल पुरुष बलवान पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके परित्राणके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस सदात्मका हिंसाके द्वारा अहिंसासे भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है। हे राजन्! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एक बारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं। देखिये कितने ही पुरुष पशुओंसे भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं। यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्याकुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये। यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्णरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये। हे राजन्! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे; क्योंकि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे वध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण करनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका वध करनेसे ब्रह्महत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता; क्योंकि उस सन्मुख उपस्थित होनेवाले आततायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है। विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि आत्मा अवध्य है, तो कौन किसका वध करनेवाला होसकता है? जैसे मनुष्य वार वार घरसेही घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी वार वार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका ही तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं।

१५ अध्याय समाप्त।

देखता, जो विना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्यों कि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंका जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्ली नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्षा करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं, परन्तु हिंसाके बिना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वीपर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव घुसे हुए हैं; तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वी पर बहुतसे ऐसे छोटे जीव है, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होसकता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रकी पलकके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनि धर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है, और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंकी हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालूम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंकी भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य बचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको बिभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल्लङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उलङ्घन नहीं कर सकते क्यों कि इस जगत्के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंको नीतिमार्ग अवलम्बन करानेके ही वास्ते बिधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विप्लकारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्यायोंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी बस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भयचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त साम्वत्सरिक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते। और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवाले कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते। दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुतकर कदापि उसे वाहन न करते। हे महाराज! समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं; दण्ड ही मनुष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है। जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रकारके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उद्यत होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडाश भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते। हे राजन्! धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। श्रीमान् पुरुष अपने प्रियपुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्माचरण करते रहते हैं। इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य हैं, वे सब धनके वशमें है, और वह अर्थदण्डके अधिकारमें है। इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है। आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है। कोई निर्व्वल पुरुष बलवान पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके परित्राणके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस सदात्मका हिंसाके द्वारा अहिंसासे भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है। हे राजन्! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एकबारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं। देखिये कितने ही पुरुष पशुओंसे भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं। यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्याकुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये। यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्णरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये। हे राजन्! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे; क्यों कि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे बध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण मारनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका बध करनेसे ब्रह्महत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता; क्यों कि उस सन्मुख उपस्थित होनेवाले आततायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है। विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि आत्मा अवध्य है, तो कौन किसका बध करनेवाला होसकता है? जैसे मनुष्य बार बार घरमेंसे घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी बार बार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका ही तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं।

१५ अध्याय समाप्त।

देखता, जो विना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्यों कि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंका जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत्र ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्लीके नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्ष्य करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं; परन्तु हिंसाके बिना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वी-पर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव बसे हुए हैं; तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वी पर बहुतसे ऐसे छोटे जीव हैं, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होसकता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रको पलकके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनि धर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है; और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंको हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंको भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य वचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको बिभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल-ङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उलङ्घन नहीं कर सकते क्यों कि इस जगत्के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंको नीतिमार्ग अव-लम्बन करानेके ही वास्ते विधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विप्लकारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्याओंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी वस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भयचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त साम्वत्सरिक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते। और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवाले कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते। दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुतकर कदापि उसे वाहन न करते। हे महाराज! समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं; दण्ड ही मनुष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है। जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रकारके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उद्यत होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडास भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते। हे राजन्! धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। श्रीमान् पुरुष अपने प्रिय-पुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्माचरण करते रहते हैं। इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य है, वे सब धनके वशमें हैं, और वह अर्थदण्डके अधिकारमें है। इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है। आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है। कोई निर्व्वल पुरुष बलवान पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके परित्राणके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस सदात्मका हिंसाके द्वारा अहिंसासे भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है। हे राजन्! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एकबारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं। देखिये कितने ही पुरुष पशुओंसे भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं। यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्याकुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये। यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्णरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये। हे राजन्! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे; क्योंकि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे बध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण मारनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका बध करनेसे ब्रह्महत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता; क्योंकि उस सन्मुख उपस्थित होनेवाले आततायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है। विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि आत्मा अवध्य है, तो कौन किसका बध करनेवाला होसकता है? जैसे मनुष्य बार बार घरमेंसे घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी बार बार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका हो तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं।

१५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनका वचन समाप्त होनेपर महा तेजस्वी क्रोधी भीमसेन धीरज धर जेठे भाई राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आप किसी विषयमें अज्ञान नहीं है सम्पूर्ण धर्म आपको विदित हैं; हम लोग सदा आपके चरित्रके अनुसरण करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते। आपको कुछ भी न कहूं, ऐसे ही मनमें इच्छा रहती है, परन्तु दुःखके बेगको न सहनेके कारण इस समय मैं कुछ कहता हूं, आप सुनिये। आपके मोहयुक्त होनेसे सब निष्फल होरहा है, और हम भी कातर तथा निर्बल होरहे हैं! आप सब शास्त्रोंके जाननेवाले राजा होकर भी किस कारण दीन भावसे युक्त कायर पुरुषकी भांति मोहित होरहे है? हे राजन्! प्राणियोंकी सुगति और अगति आपको विदित हैं; और भविष्यत तथा बर्तमान कालकी गति भी आपसे छिपी नहीं है। इस राज्यके विषयमें मै आपसे कुछ कारण दिखाके बचन कहता हूं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस जीव-लोकमें शारीरिक और मानसिक ये ही दो भांतिकी पीड़ा उत्पन्न होती है, परन्तु उनमेंसे एकके उत्पन्न होनेसे ही दूसरे की उत्पत्ति होती है। शारीरिकके बिना मानसिक और मानसिकके बिना शारीरिक पीड़ा नहीं उत्पन्न होसकती। शरीरके अस्वास्थ्यसे मानसिक पीड़ा प्रगट होती है और मानसिक पीड़ा उत्पन्न होनेसे ही शरीर शिथिल होता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। जो पुरुष बीते हुए शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको स्मरण करके शोकित होता है, वह एक सङ्ग दूसरे क्लेशको आवाहित करके दो अनर्थोंमें फंसता है। कफ, पित्त और वायु शरीरके येही तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी जो साम्यावस्था है, उसे ही स्वस्थ शरीरके लक्षण कहते हैं; और उनको घटती बढती होनेसे ही प्रतिकार करनेके वास्ते उपदेश है, उष्ण वस्तुसे कफ और ठण्डी वस्तुओंसे पित्त निवारित किया जाता है। शरीरकी भांति मनके भी सत, रज और तम, ये तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको ही मानसिक स्वास्थ्यका लक्षण कहते हैं और उनमेंसे एकके उत्तेजित होनेसे प्रतिकारकी आवश्यकता होती है; हर्षसे शोक और शोकसे हर्ष निवृत्त होता है। कोई कोई पुरुष सुखमें स्थित होकर दुःखको और कोई दुःखमें पड़के सुखको स्मरण किया करते हैं, परन्तु आप तो कभी सुख और दुःखमें आसक्त नहीं होते, इससे दुःखके समयमें सुख और सुख उपस्थितके समय दुःखको स्मरण करना आपको उचित नहीं हैं, देखिये, प्रारब्ध ही बलवान है। अथवा जिससे आप क्लेशित होरहे हैं, आपका स्वभाव यदि ऐसा ही होवे, तो पहिले जो शत्रु लोग हमारे सन्मुख ही एक वस्त्र धारण करनेवाली रजस्वला द्रौपदीको सभाके बीच ले आये थे, उस विषयको आप क्यों नहीं स्मरण करते हैं? हमने जो नगरसे बाहर होके मृगछाला पहरके महाबनमें बास किया और वृक्षोंपर जटासुर तथा चित्रसेन गन्धर्वके सङ्ग युद्ध हुआ, सिन्धु-राज जयद्रथने द्रौपदीको हरण किया, अज्ञातवास और राजपुत्री द्रौपदीके ऊपर कीचकके चरणप्रहार आदि बहुतसे उपद्रवोंसे अनेक भांतिके दुःख प्राप्त हुए थे; आप किस कारणसे उन सब दुःखोंको भूले जाते हैं? हे राजन्! पहिले जैसे भीष्म द्रोणके सङ्ग आपका युद्ध हुआ था, वैसे ही इस समय केवल एक मनके सङ्ग आपके युद्ध करनेका समय उपस्थित हुआ है, इस युद्धमें शस्त्रों और बन्धु-बान्धवोंका प्रयोजन नहीं होता इससे एक मात्र बुद्धिकी सहायतासे ही युद्ध करना होगा यदि आप मनको बिना पराजित किये ही प्राण परित्याग करेंगे, तो आपको दूसरा शरीर ग्रहण करनेपर भी

गन्ध्रोंके सङ्ग युद्ध करना होगा, अर्थात् दूसरे जन्ममें भी आप युद्ध कार्य्यको अनिवार्य्य समझिये। हे राजेन्द्र ! इससे वनगमन रूपी उत्पन्न हुआ भाव परित्याग कर आज ही आप समालोचना रूपी कर्म्मसे अव्यक्त रूप मानस युद्धसे पार होनेके वास्ते यत्नवान होइये, अर्थात् चित्त स्थिर करनेके वास्ते कोशिश करिये मनको विना पराजित किये वाणप्रस्थ आदि किसी आश्रममें भी आपको सुख नहीं मिल सकेगा, और मनको जीतनेसे आप कृतार्थ हो सकेंगे। आप प्राणियोंकी गतिको इसी भांति विचारके पितृ पितामह आदिके व्यवहारोंके अनुसार यथारीति राज्य शासन करनेमें प्रवृत्त होइये। महाराज ! प्रारब्धसे ही पापी दुर्य्योधन अपने अनुयायी और सेवकोंके सहित युद्धमें मारा गया; प्रारब्धसे ही आप द्रौपदीके केशकी भांति फिर राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे राजेन्द्र ! पराक्रमी कृष्ण और हम सब कोई आपकी आज्ञाके वशवर्त्ती हैं, आप इस समय दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।

१६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीमसेन ! असन्तोष, प्रमाद, विषयानुराग, अशान्ति, बल, मोह अभिमान और उद्वेग आदि पापोंसे रत होकर ही तुम राज्यकी अभिलाषा करते हो इससे विषय वासना त्याग कर सुख दुःखसे मुक्त और शान्त होकर सुखी हो। देखो, जो एकछत्र राजा होकर भी इस समस्त पृथ्वीको शासन करते हैं, उनके भी एकके सिवाय दो उदर नहीं हैं, तब तुम जिस कारणसे इस राज्यकी प्रशंसा कर रहे हो? यह पूर्ण न होनेवाली आशा एक दिन वा कई एक महीनोंमें पूरी होनेकी बात तो दूर है, जीवनके अन्त समय तक भी यत्न करके कोई उसे पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जैसे अग्नि काष्ठ प्राप्त होनेसे ही प्रज्वलित और काठके अभावसे ही शान्त होती है, वैसे ही तुम भी थोड़े भोजनसे उद्दीप्त जठराग्निको शान्त करो। इस पृथ्वीपर मूर्ख पुरुष ही केवल अपने उदरके वास्ते बहुतसी भोजन करने योग्य वस्तुओंको संग्रह करते हैं, इससे तुम पहिले इस उदरको ही वशमें करो, ऐसा करनेसे ही मानो तुम सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लोगे, अनन्तर यथार्थ कल्याण प्राप्त करनेमें समर्थ होगे। तुम मनुष्योंके इच्छानुयायी ऐश्वर्य्य और भोगोंको प्रशंसा करते हो, परन्तु भोगवासना त्यागके जो लोग तपस्यासे अपने शरीरको कृशित करते हैं, वे ही श्रेष्ठ लोकोंमें गमन कर सकते हैं। हे तात ! धर्म्म और अधर्म्मात्मक राज्यलाभ और राज्यकी रक्षा, ये दोनो ही तुम्हारे हृदयमें परिपूरित हैं, तुम इस महाभारसे मुक्त होकर त्याग अर्थात् सन्न्यास धर्म्मका आश्रय करो। जैसे व्याघ्र एक ही उदरके वास्ते बहुतसा भोजन संग्रह करता है, और दूसरे बहुतेरे दुष्ट पशु उसके संग्रह किये हुए भोजनसे अपने शरीरका पोषण करते हैं; वैसे ही राजा लोग भी अपने एक मात्र उदरके ही वास्ते बहुत सा धन सञ्चय करते हैं, और धूर्त्त लोग उसके ही अवलम्बनसे अपनी अपनी जीविका निर्व्वाह करते हैं। तुम जो राजाओंके विषयमें विषयसक्ति त्यागरूपी अनन्तर-सन्न्यासको विधि कहते हो, उससे राजा लोग कदापि सन्तोष प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते, तुम विषयदूषित बुद्धि त्यागके स्वयं ही इस विषयको विचारके देखो ! जो लोग पत्ताहारी और जो पत्थर दांत तथा ओखलीसे अन्नकी भूसी पृथक करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, और जो लोग जल तथा वायुसे शरीरको रक्षा करते हैं; वे सम्पूर्ण तपस्वी लोग ही यथार्थ रूपसे नरकयन्त्रणासे मुक्त हो सकते हैं।

इस पृथ्वी पर सुवर्ण और पत्थरके टुकड़ोंमें जिसकी समबुद्धि है, वैसे निर्लोभी पुरुष और सम्पूर्ण पृथ्वीको शासन करनेवाले राजा, इन दोनोंमेंसे विषयानुरागसे रहित पुरुषको ही मुक्त समझना चाहिये; राजाको नहीं! इससे जो इस लोक और परलोकमें अव्यय तथा अशोककी निवास-भूमि स्वरूप हैं; तुम उनका ही आसरा करके सम्पूर्ण कार्य्योंके सङ्कल्प, आशा और ममताहे रहित होजाओ। जो सब विषयोंके त्याग करनेवाले हैं, वे किसी वस्तुके वास्ते शोक नहीं करते! तुम विषयासक्त हो, इस ही कारण विषयके वास्ते शोक करते हो। समस्त विषय वासनाको परित्याग करो; ऐसा होनेसे मिथ्यापवाद अर्थात् बाहरी विषय भोग और भीतरी जो विषय त्यागरूपी सन्न्यासका अभिमान है उससे मुक्त हो सकोगे। इस जगत्में जीवोंको परलोक गमन करनेके विषयमें "देवयान और पितृयान" नामके दो मार्ग हैं, तिसमें यज्ञ करनेवाले पितृयान और मोक्षार्थी लोग देवयान मार्गसे गमन करते हैं। महर्षि लोग स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याके अनुष्ठानमें रत होकर शीघ्र ही शरीर त्यागके मृत्युके अधिकारसे पार होजाते हैं। इस संसारमें भोग्य विषय ही बन्धन स्वरूप हैं, और ये भोग्य-विषय ही कर्म्म कहके वर्णित हुए हैं; जो लोग इस पापात्मक भोग्य विषय रूप कर्म्मसे मुक्त हो सकते हैं, वेही उस परमपदको प्राप्त करते हैं।

पहिले शोक मोहसे रहित तत्वदर्शी जनकने जैसा कहा था, और आज पर्य्यन्त भी जो गाथा, लोकसमाजमें वर्णनकी जाती हैं; मैं उसे कहता हूं, सुनो। उन्होंने कहा था,— "ओहो! मैं अनन्त ऐश्वर्य्यका स्वामी हूं, तौभी मेरा कुछ नहीं है; इस मिथिला नगरीके भस्म होनेसे मेरा कुछ भी न जलेगा।" हे भीम! इससे जैसे पर्व्वतपर चढ़नेवाला पुरुष नीचे रहनेवालोंको भली भांति देखनेमें समर्थ होता है, वैसे ही जो पुरुष ज्ञानरूपी प्रासाद पर चढ़े हैं, वे मूढ़ लोगोंको अविषयीभूत विषयोंके वास्ते महाशोक करते हुए देखते हैं; परन्तु मन्दबुद्धिवाले मनुष्य उन्हें देखनेमें समर्थ नहीं होते। जिससे दृष्ट विषयोंका बोध अर्थात् निश्चय होता है, उसेही बुद्धि कहते हैं; उस बोध रूपी नेत्रसे जो लोग अज्ञात विषयोंको जानते और देखकर ही उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको निश्चयकर सकते हैं; उन्हें ही बुद्धिमान् और नेत्रवान् कहा जाता है। जो स्थिर चित्तसे ब्रह्मज्ञानसे युक्त विद्वान पुरुषोंके बचनको हृदयमें धारण कर सकते हैं, सर्व्वत्र अधिक सम्मान-लाभके अधिकारको प्राप्त करनेमें समर्थ हैं। जिस समय पृथक् रूपसे बोध होनेवाले आकाश आदि भूत एक आत्मामें ही स्थित हुए दीख पड़ते हैं; तब ही समझना चाहिये, कि सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मसे साक्षात्कार हुआ है, तत्वज्ञ पुरुष ही वैसी परम गतिको प्राप्त कर सकते हैं; अल्पज्ञ, तपस्या और ज्ञान हीन पुरुष कदापि परमगति प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, क्यो कि ज्ञानको ही सबका मूल जानना चाहिये।

१७ अध्याय समाप्त।

धर्म्मराज युधिष्ठिर ऐसा ही वचन कहके चुप हुए। अर्जुन उनके बचन रूपी शलाकासे पीड़ित और शोक दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर फिर बोले। महराज, विदेहराज जनकका अपनी भार्य्याके सङ्ग जो कुछ वादानुवाद हुआ था, आज तक लोग उस विषयको वर्णन किया करते हैं; मैं उस सम्वादको अर्थात् राजा जनकने जब सन्न्यास ग्रहण करनेमें सङ्कल्प किया, तब उनकी राज-पत्नीने उनसे जो कुछ बचन कहे थे, उसे वर्णन करता हूं, सुनिये

विदेहराज जनकने अनेक भांतिके रत्न, पुत्र, कलत्र स्वर्गपथस्वरूप यज्ञकर्म्मोंके अनुष्ठानको त्यागके, सर्व्वत्र निर्भय, निर्म्मत्सर, निरीह और निराकाङ्क्षी होके एक मुट्ठी भ्रष्टयवसे ही जीविका निर्व्वाहके निमित्त शिर मुड़ाकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते देखकर उनकी मनस्विनी प्यारी स्त्री क्रुद्ध होकर निर्ज्जन स्थानसे उनके समीप गमन करके इस प्रकार हेतुयुक्त वचन कहने लगी। हे महाराज! आप धन-धान्यसे युक्त निज राज्य परित्याग करके किस कारणसे कापालिक वृत्ति अवलम्बन करते हैं? भ्रष्ट-यवकी मुट्ठीसे जीविका निर्व्वाह करना आपके वास्ते कदापि यह उत्तम नहीं है। आपने इस बृहत् राज्यको परित्याग करके मुट्ठी भर भ्रष्ट यवचूर्णकी आशा करके "सब त्याग किया है"—यह आपकी प्रतिज्ञा और चेष्टा विपरीत हो रही है। और देखिये एक मुट्ठी मात्र भ्रष्ट यवसे आप कदापि देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्त करनेमें समर्थ न होसकेंगे; इससे आपका सम्पूर्ण परिश्रम निष्फल होगा। आप देवता पितर, अतिथि और सबसे परित्यक्त तथा क्रियारहित होकर इस सन्न्यास धर्म्मको ग्रहण करते हैं! यह कैसा आश्चर्य्य है। ओहो! पहिले आप तीनों वेदोंके जानने वाले सहस्रों ब्राह्मणों और सब लोगोंके पालन करनेवाले होकर इस समय उन ही लोगोंके आसरेसे अपना उदर भरनेकी इच्छा करते हैं! आप प्रदीप्त राजश्री परित्याग करके इस समय कुत्तेकी भांति पराये अन्नकी आशा करके इधर उधर देख रहे हैं। कैसा आश्चर्य्य है! आपके इस प्रकार नष्ट होनेसे आपकी माता पुत्रहीन और आपकी भार्य्या कौशल राजपुत्री आज विधवाकी भांति बोध हो रही हैं; और ये दरिद्र क्षत्रिय लोग कर्म्म तथा फलार्थी होकर आपकी उपासना कर रहे हैं; जब कि मोक्ष पद अत्यन्त ही संशयसे युक्त है, और देहधारी पुरुष सब भांतिसे कर्म्म करनेमें परतन्त्र हैं; तब आप इन अनुयायी पुरुषोंकी आशा निष्फल करके कौनसे लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकेंगे? जब आप धर्म्मपत्नी परित्याग करके जीवन धारणकी इच्छा करते हैं, तब आप भी अत्यन्त ही पापी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपको न इस लोक न परलोकमें कहीं भी मङ्गल न हो सकेगा। महाराज! आप किस कारणसे दिव्यसुगन्धयुक्त वस्तु, माला, अनेक भांतिके वस्त्र और अलङ्कारोंको त्यागके क्रियारहित होकर परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं? सम्पूर्ण प्राणियोंको जल तथा वृक्षकी भांति आश्रय-स्वरूप होकर इस समय आप दूसरेकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; क्या ही आश्चर्य्य है। महाराज! आपकी बात दूर रहे, पुरुषार्थरहित होके निश्चेष्ट-भावसे स्थित होनेसे हाथीको भी कीड़े और मांसभक्षी जन्तु भक्षण करनेमें समर्थ होसकते हैं। जिस आश्रममें प्रविष्ट होनेसे सम्पूर्ण वस्तुओंको परित्याग करके त्रिदण्ड, कमण्डलु और कौपीन ग्रहण करना पड़ता है, जिसमें प्रविष्ट होनेसे सब त्यागके केवल भ्रष्ट-यवकी एक मुट्ठीमें ही आसक्त होना पड़ता है, उसमें आपकी किस कारणसे प्रवृत्ति हुई है? यदि कहिये कि एक मुट्ठी अन्न और राज्य आदिमें मेरी सम दृष्टि है, तब आप किस कारणसे राज्य आदि त्याग करके केवल एक मुट्ठी भ्रष्टयवमें आसक्त हो रहे हैं? और यदि आपको ऐसा ही प्रयोजन है, तो "सर्व्वत्यागी हुआ हूं„-कहके आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह व्यर्थ हो रही है। यदि आप केवल एक मात्र चिदानन्दमें अपने मनको स्थिर समझते हैं; तो ऐसा होनेसे "मैं तुम्हारा कौन हूं? और तुम्ही मेरे कौन हो„ अर्थात् शुद्ध चिदाभाससे परस्परका सम्बन्ध किस प्रकार रह सक्ता है? इससे कोई वस्तु तथा व्यक्ति विशेषमें

विरक्त होना आपको किसी प्रकार भी उचित नहीं है। यदि अनुग्रह करना ही आपका कर्त्तव्य कर्म होवे, तो आप कृपाकरके इस पृथ्वी-कोही शासन कीजिये। जो लोग सुखार्थी पर निर्धन, तथा अत्यन्त दरिद्र हैं और समस्त वस्तु बाल्यवैसे परित्यक्त होकर दण्ड कमण्डल आदि चिन्होंको धारण करके संन्यास ग्रहण करते हैं, उनके चिन्हको देखकर जो पुरुष उस भांति व्यवहार करनेमें प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् मन्दिर, उत्तम शय्या, सवारी, उत्तम वस्त्र और अलङ्कार आदि त्यागके दण्ड कमण्डल ग्रहण करते हैं उनका वह त्याग केवल विडम्बना मात्र है। हे महाराज! जो पुरुष सदा दान ग्रहण करता और जो पुरुष सदा दान देता है, उन दोनोंके बीच कौन श्रेष्ठ है? उन दोनोंका आपसमें कितनी दूरका अन्तर है, उसे विचार करके देखिये तो सही, ऐसा होनेसे अवश्य जान सकेंगे। परन्तु दम्भी और सदा मांगनेवालेको धन दान करनेसे जलती हुई अग्निमें आहुति डालनेकी भांति वह दान निष्फल होता है। जैसे अग्नि बिना किसी वस्तुको जलाये शान्त नहीं होती, वैसे ही भीख मांगनेवाले ब्राह्मण बिना कुछ प्राप्त हुए निवृत्त नहीं होते। दाताका अन्न ही साधु सन्यासियोंका जीवन-स्वरूप है, क्यों कि उन लोगोंका स्वयं बनाके भोजन करनेकी विधि नहीं है। इससे यदि राजा दाता न होवे, तो कैसे मोक्षार्थी पुरुषोंका जीवन धारण हो सकेगा? इस पृथ्वीपर जिसको परम धन है, वेही गृहस्थ कहे जाते हैं, भिक्षुक लोग उन्हीं सम्पूर्ण गृहस्थोंके आसरे शरीरयात्रा निर्वाह करते हैं; समस्त प्राणी अन्नसे ही जीवन धारण करनेमें समर्थ होते हैं इससे अन्नदाता प्राणदाता स्वरूप हैं। गृहस्था-श्रमसे निकलकर जितेन्द्रिय सन्यासी लोग गृहस्थ पुरुषोंके अवलम्बसे ही शरीरयात्रा निर्वाह करते हुए प्रतिष्ठा और योग प्रभावको प्राप्त कर सकते हैं। महाराज! समस्त वस्तु-ओंके परित्याग करने, सिर मुड़ाने और भीख मांगनेसे कोई संन्यासी नहीं हो सकता; जो लोग सरलभावसे सम्पूर्ण विषय युक्त सुखोंको परित्याग करनेमें समर्थ होसकते हैं, उन्हेंही सन्न्यासी कहना चाहिये। जो भीतरसे समस्त वस्तुओंमें आसक्तिरहित होकर बाहरसे आस-क्तिकी भांति व्यवहार करते तथा मित्र शत्रुको समान जानते हैं, वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो सकते हैं, और वैसे सङ्गरहित पुरुषको ही मुक्त कहा जा सकता है। मूर्ख लोग वृक्षोंसे आश्रापासमें अधकार शिष्य और मठ आदि विषय प्राप्त होनेकी अभिलाषासे काषाय वस्त्र धारण और सिर मुड़ाके संन्यासधर्म ग्रहण करते हैं, परन्तु जो लोग त्रिविद्या, वार्त्ताशास्त्र और पुत्रकलत्रको त्यागके त्रिदण्ड भस्म तथा काषाय आदि वस्त्रोंको धारण करते हैं; वे अत्यन्त ही मूर्ख हैं। महाराज! संन्यासधर्म पवित्र होनेपर भी उसे ग्रहण करके सिर मुड़ाना गेरुये वस्त्रोंको धारण करना केवल जीविका निर्वाहके ही वास्ते जानना चाहिये, मेरे विचारमें जीविका निर्वाह मात्र ही उन लोगोंका पुरुषार्थ है, इससे आप इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गेरुए वस्त्र, मृगछाला और कौपीन धारण करनेवाले, तथा नङ्गे, सिर मुड़े और जटाधारी आदि साधु संन्यासियोंका प्रति-पालन करते हुए इस लोक और परलोकको जय करनेमें प्रवृत्त होइये। जो मोक्ष प्राप्त होनेके वास्ते अग्निहोत्र, पशु और दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान तथा प्रतिदिन दान करते हैं, उनसे बढ़कर अधिक धर्मात्मा कौन है? (वेद-हरानकी भार्य्या इतनी कथा कहके चुप होगई।

अर्जुन बोले, हे धर्म्मराज! देखिये, विदेह-राज जनक इस पृथ्वीपर तत्त्व कहके विख्यात हुए थे, परन्तु वह भी कर्त्तव्य कर्मसे निर्णयम मोक्षको प्राप्त हुए थे, इससे आप आह परि-

त्याग कीजिये। यदि तुम काम, क्रोध और नृशंसता परित्याग करके दान, प्रजा पालन, गुरु और वृद्धोंकी सेवामें रत रहें, तो अवश्य ही अभिलषित लोकमें गमन करनेसे समर्थ हो सकोगे; और इसी भांति दान करने वाले गृहस्थ पुरुष इसही भांति धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं; और देवता अतिथि तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको यथा रीतिसे तृप्त करके ब्रह्मनिष्ठ और सत्यवादी होनेसे अवश्य ही अभिलषित लोकोंमें गमन कर सकोगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात अर्ज्जुन! लौकिक धर्म्मशास्त्र और ब्रह्म प्रतिपादक ज्ञानशास्त्र दोनों ही मुझे विदित हैं। वेदमें कर्म्मका अनुष्ठान और कर्म्म त्याग दोनों विषयोंकी विधि है; इससे सब शास्त्र अत्यन्त ही जटिल हैं, परन्तु युक्तिसे आलोचित होनेसे उसका जो कुछ सार निश्चित हुआ है; मैं उसे विधिपूर्व्वक जानता हूं। तुम केवल वीर व्रताचारी और अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें निपुण हो; शास्त्रोंके अर्थको विचारनेमें तुम्हारी कुछ भी सामर्थ नहीं है। यदि तुम धर्म्मकी विशेष आलोचना करते और शास्त्रार्थमें सूक्ष्म-दर्शी तथा तत्व-निश्चयमें निपुण होते, तो कदापि मेरे विषयमें ऐसे वचनोंको प्रयोग न करते; परन्तु भ्रातृ भावसे युक्त होके तुमने मुझे जो कुछ वचन कहे हैं, और मैं भी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं। युद्धधर्म्म अथवा कार्य्योंकी निपुणतामें तीनों लोकके बीच भी कोई पुरुष तुम्हारे समान नहीं है; इससे उस ही विषयमें दूसरेको दुःखसे जानने योग्य अत्यन्त सूक्ष्म वचन कहना तुम्हें उचित है, परन्तु मोक्ष-धर्म्म विषयमें मेरी बुद्धि पर शङ्का करना तुम्हें योग्य नहीं है, तुमने कभी ज्ञान-वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है, और तुमने केवल अत्यन्त युद्ध-विद्याका ही अभ्यास किया है; जिन्होंने संक्षेप और विस्तार रूपसे तत्त्व निर्णय किये हैं उनके निश्चित किये हुए मीमांसाकोभी तुम नहीं जानते हो। तत्वज्ञ पण्डितोंने ऐसा ही निर्णय किया है, कि तपस्या, सन्न्यास और ब्रह्मज्ञान ये तीनों ही एक दूसरेसे श्रेष्ठ है। अर्थात् तपस्यासे सन्न्यास और सन्न्याससे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठ है। हे अर्ज्जुन! तुम जो "धनसे बढ़के और कोई वस्तु भी उत्तम नहीं है," ऐसा समझते हो; वह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। जो हो; इस समय जिसमें धन फिर तुमको सबसे श्रेष्ठ न बोध होवे, मैं तुम्हारी वैसी भ्रान्तिको दूर करदूंगा। देखो तप और स्वाध्यायमें रत ऋषि लोग ही इस लोकमें धर्म्मात्मा रूपसे दीख पड़ते हैं, और वे लोग उस तपके प्रभावसे सनातन लोकमें गमन करते हैं; और भी धीर स्वभावसे युक्त शत्रु रहित कितने ही वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करनेवाले पुरुष तपस्या और स्वाध्यायके प्रभावसे स्वर्ग लोकमें गये हैं। साधुपुरुष विषय-वासनासे विरक्त होकर अज्ञानरूपी अन्धकारको त्यागके उत्तर-पथ अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे सन्न्यासी पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य ब्रह्म-लोकमें गमन करते हैं। जो लोग बार बार जन्म मरण रूपी क्लेशोंको भोगते रहते हैं, वे कर्म्ममें रत रहनेवाले पुरुष दक्षिण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक करके विख्यात पितृ-लोकमें गमन करते हैं। मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त करते हैं; उसका निर्देश करना असाध्य है, इससे उसे प्राप्त करनेके वास्ते योग ही एक मात्र मुख्य उपाय है, परन्तु अधिकार न रहनेके कारण उसे बोध करना तुम्हारे विषयमें सहज कार्य्य नहीं है। बहुतेरे पण्डित सार असार वि... निर्णय करनेके वास्ते शास्त्रोंमें ...

सार विषय है? वा इसमें असार है?" इसी भांति तर्क करते हुए समय बिताते हैं; परन्तु जैसे केलेके वृक्षको काटनेसे उसमें कुछ भी सारवस्तु नहीं दीख पड़ती वैसे ही वे लोग वेद और अरण्यक प्रभृति अनेक शास्त्रोंको मथके भी किञ्चित मात्र सार विषय देखनेमें समर्थ नहीं होसकते। जो नेत्रसे अगोचर वचनसे अनिर्देश्य, अतिसूक्ष्म, और सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है, परन्तु अविद्याके कारण नहीं मालूम हो सकता; इस पाञ्च भौतिक शरीरमें रहनेवाले द्वैत-भाव वर्ज्जित सच्चिदानन्द स्वरूप उस आत्माको मूढ़ पुरुष इच्छा द्वेषसे युक्त समझते हैं। जो लोग अविद्यापूरित सम्पूर्ण कर्म्म-जाल त्यागके विषय-तृष्णासे निवृत्त होते हैं, वेही अपने मनको उस अविनाशी परमात्मामें लगा कर सुखी हो सकते हैं। हे अर्ज्जुन! साधुओंसे सेवित, सूक्ष्म और ज्ञान प्राप्त होनेवाले मोक्ष-पथके विद्यमान रहते तुम क्यों अनर्थसे युक्त अर्थकी प्रसंसा करते हो? ज्ञानियोंकी बात तो दूर है; दान और यज्ञ आदि कर्म्मोंमें रत, कर्म्मकाण्डके जाननेवाले पण्डित लोग भी अर्थकी प्रशंसा नहीं करते। परन्तु कितने ही मूढ़ पुरुष हेतु अर्थात तर्क आदि शास्त्रोंके पण्डित होके भी पूर्व्व जन्मके दृढ़ संस्कारोंके वशमें होकर "आत्मा नहीं है," कहके साधु पुरुषोंसे विवाद करते हैं; इससे मोक्ष विषयक सार सिद्धान्तको उन्हें हृदयङ्गम कराना असाध्य कर्म्म जानना चाहिये। दुष्ट मनुष्य बहुतसे शास्त्रोंको पढ़के भी वाचालताके कारण जनसमाजमें मोक्ष धर्म्म की निन्दा करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। हे अर्ज्जुन! जिसका अर्थ ...र समान पुरुष नहीं जान सकते; उसे दूसरे ...लोग किस भांति समझेंगे? परन्तु वे मूर्ख ... शास्त्रोंके सूक्ष्म तत्वको जाननेमें ...होते, वैसे ही शास्त्रोंके मर्म्मको ...सा बुद्धिमान साधुओंको भी नहीं जान सकते। जो हो, तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि तत्ववित् पण्डित लोग तपस्या और महा ज्ञानसे महत्व, और सन्न्याससे नित्यसुख प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! राजा युधिष्ठिरके वचन समाप्त होनेपर बोलने वालोंमें मुख्य महातपस्वी देवस्थान ऋषि धर्म्मराजसे इस प्रकार युक्ति युक्त वचन बोले, हे धर्म्मराज! अर्ज्जुनने जो "धनसे बढ़के कुछ भी उत्तम नहीं है," ऐसा वचन कहा है,—मैं उसकी विवृति करके कहता हूं, आप एकाग्र चित्त होकर सुनिये। आपने धर्म्म पूर्व्वक पृथ्वीको जय किया है, इससे इस समय हस्तगत हुए इस राज्यको निष्प्रयोजन ही त्यागना उचित नहीं है वेदमें चार आश्रम वर्णित हुए हैं, क्रमसे उन आश्रमोंमेंसे एकको त्यागके दूसरे आश्रमको ग्रहण करनेकी विधि है। इससे आप अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये। देखिये ऋषियोंके बीच भी कोई स्वाध्यायरूपी यज्ञ और कोई ज्ञानरूपी यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; इससे तपस्वी पुरुषोंको भी आप कर्म्मनिष्ठ ही समझिये, तब वैखानस ऋषि लोग कहते हैं, "धनसे साध्य यज्ञ कर्म्मके वास्ते धनके निमित्त कोशिश करनेकी अपेक्षा यज्ञका न करना ही उत्तम है," परन्तु मेरे विचारमें उन लोगोंका वह धर्म्म ग्रहण करनेसे भूयिष्ट दोष उत्पन्न होता है. क्यों कि विधि रहनेसे ही अर्थ आदि वस्तुएं सञ्चय करनी पड़ती हैं। बुद्धिभ्रष्ट होनेसे ही लोग ऐसे आत्म-प्रिय अर्थको उपयुक्त कार्य्योंमें खर्च न कर अयोग्य कर्म्मोंमें व्यय करके अपनेको आत्म हत्या रूपी पापसे दूषित करते हैं; परन्तु योग्य और अयोग्य कर्म्मको परीक्षा करके

र.
निऱ्

पापरहित धनको उपार्ज्जन करना भी सहज कार्य्य नहीं है। विधाताने यज्ञ करने ही के वास्ते धनको उत्पन्न किया, और पुरुषको भी उस धनको रक्षा तथा यज्ञ आदिक कर्म्मोंके अनुष्ठानके वास्ते ही उत्पन्न किया है, इससे संपूर्ण धन यज्ञ आदिक शुभ कर्म्मोंमें समर्पण करनेसे ही समस्त कामना सिद्ध होसकती हैं, इसमें सन्देह नहीं है। महातेजस्वी भगवान इन्द्र अनेक मूल्यवान वस्तुओंसे यज्ञका अनुष्ठान करनेसे सम्पूर्ण देवतोंको अतिक्रम कर इन्द्रत्व प्राप्त करके स्वर्गलोकके राज्यपदपर प्रतिष्ठित हैं; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें समर्पण करना ही उचित है। इसके अतिरिक्त महातेजस्वी कृत्तिवास महादेव सर्व्वमेध यज्ञमें अपने शरीरको ही अग्निमें आहुति देकर समस्त देवताओंके ऊपर आधिपत्य और सबसे अधिक प्रभाव प्राप्त करके जगत्के बीच विराजमान हैं। देखिये अविक्षित-पुत्र मरुत्तराजने समृद्धियुक्त यज्ञके प्रभावसे देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; उस यज्ञमें सब पात्र सुवर्णमय थे; अधिक क्या कहा जावे, उनके यज्ञमें लक्ष्मी स्वयं मूर्त्तिमयी होकर स्थित हुई थीं। आपने सुना होगा, राजेन्द्र हरिश्चन्द्र यज्ञानुष्ठान करके ही पुण्य भागी और शोकरहित हुए, वह मनुष्य होकर भी ऐश्वर्य्यमें देवराज इन्द्रसे भी अधिक हुए थे; इससे समस्त धन यज्ञानुष्ठानमें व्यय करनेसे ही सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होसकते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

देवस्थान मुनि बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें इन्द्र-वृहस्पति सम्वाद नामक एक सम्वाद वर्णित है, उसे सुनिये। किसी समय इन्द्रसे पूछे जानेपर वृहस्पतिने कहा था, कि सन्तोष ही उत्तम स्वर्गलोक और सन्तोष ही परम सुख है, सन्तोषसे बढ़के कोई वस्तु भी श्रेष्ठ नहीं है। जैसे कछुवा अपना मुख समेटके शरीरके भीतर कर लेता है, वैसे ही जिसकी सम्पूर्ण वासना भीतर हो लीन होजाती है, तब ही जानना चाहिये, कि शीघ्र ही उसके अन्तःकरणमें आत्मज्योति प्रकाशित होगी। जिस समय साधक पुरुष वासना और द्वेष आदिको पराजित करते हैं, किसी प्राणीसे भी भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं, तब ही आत्मदर्शन होता है। जब पुरुष काया और मनसासे किसी प्राणीसे शत्रुताचरण वा किसीके निकट कुछ वस्तुको जांचनेमें प्रवृत्त नहीं होता, तब ही जानना चाहिये, कि उसे ब्रह्म-प्राप्ति हुई है। महाराज! इस भांति जो पुरुष जिस प्रकार धर्म्मका आचरण करता है, वह उसके अनुसार फलको भोग करता है। इससे आप इन सम्पूर्ण विषयोंको विचारके कर्त्तव्य कार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होइये।

इस पृथ्वीपर अपनी अपनी रुचिके अनुसार ही कोई प्रीति, कोई यत्न, कोई दोनो विषयोंको, कोई यज्ञ, कोई सन्न्यास, कोई दान, कोई प्रतिग्रहकी प्रशंसा करते रहते हैं। कितने ही पुरुष समस्त वस्तुओंको त्यागके मौन होकर ध्यानावलम्बन करके स्थित होते हैं, कोई शत्रुओंको छिन्नभिन्न करके राज्य ग्रहण और प्रजा पालनको ही प्रशंसा करते हैं, कोई निर्ज्जन स्थानमें निवास करनेहीको श्रेष्ठ समझते हैं, परन्तु इन सब विषयोंकी समालोचना करके पण्डितोंने यह निश्चय किया है, कि प्राणी मात्रका जिसमें कुछ भी अनिष्ट न होवे, वही धर्म्म साधु-सम्मत है। स्वायम्भुव मनु भी अहिंसा, सत्य, दया, इन्द्रियसंयम निज स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न करना, कोमलता, लज्जा और धीरजको ही उत्तम धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। हे धर्म्मराज! इससे आप भी यत्नपूर्व्वक इसी भांति धर्म्मके कार्य्योंका पालन कीजिये।

जो राजनीतिज्ञ जितेन्द्रिय राजा धर्म्मशास्त्रके तात्पर्य्यको विशेष रूपसे ग्रहण करके राज्य करते हुए प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको समान समझते, यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन, दुष्ट पुरुषोंको दण्ड, साधुओंके ऊपर कृपा करते तथा प्रजाको धर्म्म मार्गमें स्थापित करते हुए स्वयं निज धर्म्ममें तत्पर रहते हैं, और अन्तमें पुत्रको राज्यभार समर्पण करके वनवासी होकर वेदमें कही हुई विधिके अनुसार आसक्ति त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, उन्हें इस लोक और परलोक दोनोंमें शुभ फल प्राप्त होता है। आप जो निर्व्वाणमुक्तिके विषयको वर्णन करते थे, मेरे विचारमें वह अत्यन्त ही दुष्प्राप्य और अनेक विघ्नोंसे परिपूरित है। हे धर्म्मराज! मैंने राजधर्म्मके विषयको वर्णन किया है; सत्य और दानपरायण अनेक राजा लोगोंने ऊपर कहे हुए धर्म्मके आसरे काम क्रोध, नृशंसता त्यागके गो ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते अस्त्र धारण करके प्रजा पालन करते तथा निज उत्तम धर्म्मको उपार्ज्जन करते हुए शीघ्र ही परम गतिको प्राप्त हैं। इसी भांति रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और राजर्षि लोग सावधान होकर राजधर्म्मके सहारे अपने पुण्य कर्म्मोंसे स्वर्गलोकमें गये हैं।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवस्थान ऋषिके वचन समाप्त होनेपर अर्जुन फिर शोकित चित्तसे युक्त अपने जेठे भाई अच्युत युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शत्रुओंको पराजित करके इस दुर्लभ राज्यको प्राप्त किया है; तो अब किस कारणसे इतना दुःखित होरहे हैं। अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी बढ़के युद्धभूमिमें क्षत्रिय पुरुषोंकी मृत्यु श्रेष्ठ है, यह क्षत्रियोंका धर्म्म कहके वर्णित है। ब्राह्मणोंकी तपस्या तथा सन्न्यास और क्षत्रियोंकी युद्धमें मृत्यु, दोनों यही पारलौकिक धर्म्म है, काल प्राप्त होनेपर क्षत्रियोंको युद्धभूमिमें गमन करके शस्त्रसे मरना ही धर्म्म है; क्यों कि क्षत्रियधर्म्म शस्त्रमूलक और अत्यन्त ही कठिन है। क्षत्रियकुल ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, इससे यदि ब्राह्मण भी क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन करें, तो उनका जीवन धन्य है, महाराज! क्षत्रियोंके वास्ते सन्न्यास, समाधि, तपस्या और दूसरेके समीप भीख मांगके जीविका निर्व्वाह करनेकी विधि नहीं है। आप भी राजा, मनीषी, सब कार्य्योंको जाननेवाले, धर्म्मात्मा और सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हैं, आपको पर और अपर दोनों ही विषय विदित हैं; विशेष करके क्षत्रियोंका हृदय वज्रके समान कठोर होता है, इससे आप दुःख जनित शोक त्यागके कर्म्मोंके अनुष्ठानमें कटिबद्ध होइये। आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शत्रुओंका नाश करके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है, इस समय इन्द्रियोंको वशमें करके दान और यज्ञ आदिक कर्म्मोंके करनेमें प्रवृत्त होइये। मैंने सुना है, कि देवराज इन्द्र ब्राह्मण होकर भी केवल कार्य्यके वशमें होकर क्षत्रिय धर्म्मावलम्बी हुए हैं; उन्होंने जातिके पापी पुरुषोंको युद्धमें आठ सौ दश बार पराजित किया था, उनका वह कर्म्म जगत्‌में पूजनीय और प्रशंसनीय कहके गिना गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है; और उस क्षत्रिय धर्म्मके प्रभावसे ही उन्होंने देवताओंके बीच इन्द्रत्व पद पाया है। जैसे देवराज इन्द्रने निष्कण्टक होके यज्ञानुष्ठान किया था, वैसे ही आप भी इस निष्कण्टक राज्यको शासन करते हुए अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ कार्य्यमें प्रवृत्त होइये, महाराज! आप बीते हुए विषयोंके निमित्त तनिक भी शोक न कीजिये, कौरव लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार शरीर त्यागके

तथा शस्त्रसे मरकर परम गतिको प्राप्त हुए हैं, हे राजन् ! जो होनहार होता है, वह अवश्य होता है । प्रारब्धको अतिक्रम करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होसकता ।

२२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! जितेन्द्रिय अर्जुनसे इस प्रकार प्रबोधित होनेपर भी कुरु-नन्दन युधिष्ठिरने कुछ भी उत्तर न दिया । तब महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, हे सौम्य युधिष्ठिर ! अर्जुनने यथार्थ वचन कहे है, शास्त्रमें गृहस्थ धर्म्म ही उत्तम कहके वर्णित है । हे धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर ! इससे गृहस्थाश्रम त्यागके तुम्हें वनमें गमन करना उचित नहीं है ; शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने धर्म्म अर्थात् गृहस्थाश्रममें प्रवृत्त होजाओ । देखो देवता, पितर, अतिथि और सेवक लोग सब कोई गृहस्थके ही आसरे जीविका निर्व्वाह करते हैं, इससे उन लोगोंको पालन करना उचित है । पशु पक्षी आदि समस्त प्राणी गृहस्थोंके अवलम्बसे प्राण धारण करते हैं, इससे गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है । महाराज ! गृहस्थ धर्म्मका अनुष्ठान अत्यन्तही कठिन है ; इससे अब तुम अजितात्मा पुरुषोंसे न सिद्ध होने योग्य गृहस्थाश्रमके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाओ । सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंमें तुम्हारी विलक्षण अभिज्ञता हैं, और तुमने बहुत कुछ तपका भी अनुष्ठान किया है, इस समय धुरन्धर पुरुषोंके योग्य पिता पितामहकी भांति राज्यभारको ग्रहण करना ही तुम्हें उचित है । शक्तिके अनुसार तपस्या, यज्ञ, क्षमा, अनाशक्ति, भिक्षावृत्ति, इन्द्रियसंयम, ध्यान, अत्यन्त नम्रता और ब्रह्मज्ञानके साधन आदि कार्य्य ब्राह्मणोंको ही सिद्धिकारक हैं । क्षत्रियोंके जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म हैं, उसे वर्णन करता हूं, उस विषयमें तुम भी अजान नहीं हो, विद्या प्राप्त करना, उत्साह प्रकाश, यज्ञानुष्ठान, जो सम्पत्ति प्राप्त होवे उसमें असन्तोष, राजदण्डको धारण करना करते रहना, प्रजापालन वेदज्ञान, तपस्याका अनुष्ठान, सच्चरित्रता, धन उपार्जन और उसे योग्यपात्रको दान करना,—ये सब क्षत्रिय पुरुषोंके कर्त्तव्य-कर्म्म शास्त्रमें कहे गये हैं, जो लोग इन सम्पूर्ण कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे इस लोक और परलोकमें सिद्धि लाभ करते हैं । परन्तु इन सब कर्म्मोंके बीच क्षत्रियोंको दण्ड धारण करना ही मुख्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है, दण्डभी बलके आसरेसे धारण किया जाता है ; इससे क्षत्रियोंमें बल होना परम आवश्यक है । हे राजेन्द्र ! ये सम्पूर्ण कर्म्म क्षत्रियोंको सिद्धि प्राप्त करानेवाले हैं । इस विषयमें वृहस्पतिने भी इस प्रकार कहा है कि सांप जैसे चूहेको भक्षण करता है, वैसे ही सम-परायण राजा और संसारमें आसक्त ब्राह्मणको पृथ्वी शीघ्र ही ग्रास करती है इस प्रकार जनश्रुति है, कि राजऋषि सुद्युम्नने प्रचेता-पुत्र दक्षकी भांति एकमात्र दण्ड धारण करनेके प्रभावसे ही परम सिद्धि प्राप्त की थी ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन् ! पृथ्वीपति सुद्युम्न किस कर्म फलसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे ? मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं ।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्धि है, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो । शङ्ख और लिखित नामके अत्यन्त कठोर व्रत करनेवाले दो भाई थे । बाहुदा नदीके किनारे फल पुष्प लता और सुन्दर वृक्षोंसे शोभित अत्यन्त रमणीय अलग अलग उनके दो आश्रम थे । किसी समय लिखित ऋषि इच्छानुसार अपने जेठे भाई शङ्ख ऋषिके आश्रमपर उपस्थित हुए, तब

महर्षि शङ्ख अपने आश्रमसे किसी दूसरे स्थानपर गये थे, अनन्तर ऋषि लिखित शङ्खके आश्रममें पहुंचके पके हुए फलोंको तोड़ने लगे और उन फलोंको ग्रहण करके प्रसन्नचित्तसे भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। इतने ही समयमें शङ्ख ऋषि अपने आश्रममें आके उपस्थित हुए और लिखित ऋषिको फल खाते देखकर उनसे पूछा कि, तुम किस कारणसे फल खा रहे हो! इन फलोंको तुमने कहां पाया? तब छोटे भाई लिखित अपने बड़े भाई शङ्खके समीप जाकर उन्हें प्रणाम करके हंसते हुए यह वचन बोले कि, हे महात्मन्! मैंने आपके इस आश्रमसे ही फल ग्रहण किया है। उनसे ऐसे वचनको सुनके महर्षि शङ्ख अत्यन्त कुपित होके बोले, हे भाई! मेरे न रहनेपर तथा बिना मेरी आज्ञाके इन फलोंको ग्रहण करनेसे तुम्हें चोरीका पाप लगा है; इससे दण्डित होनेके वास्ते अब तुम राजाके समीप गमन करो; और वहां जाकर अदत्त ग्रहण रूपी अपने पाप कर्म्मको सुना कर कहना कि, हे महाराज! आप मुझे चोर करके निश्चित कीजिये और राजधर्म्मको पालन करते हुए शीघ्र ही मुझे चोरोंके अनुसार दण्ड दीजिये। अनन्तर व्रत करनेवाले महात्मा लिखितने अपने जेठे भाईकी ऐसी आज्ञा सुनकर राजासुद्युम्नके समीप गमन किया। राजा सुद्युम्न द्वारपालके मुखसे धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी लिखित ऋषिके आगमनका वृतान्त सुनकर अपने अनुयायी पुरुषोंके सहित पैदल ही द्वारपर आके बोले, हे भगवन्! किस अभिप्रायसे यहां आपका आगमन हुआ है? आपकी क्या आज्ञा है? राजा सुद्युम्नके वचनको सुनके महर्षि लिखित बोले, महाराज! पहिले "जो कार्य्यकी आज्ञा होगी, उसे मैं करूंगा" आप ऐसी प्रतिज्ञा कीजिये, तब पीछे मेरे मुखसे सुनकर उसे पालन करिये, मैंने अपने भाईकी अनुमतिके बिना उनके आश्रममें जाके फल ग्रहण करके भक्षण किया है, शीघ्र ही मेरे ऊपर दण्ड प्रयोग कीजिये। महाराज सुद्युम्न बोले, हे भगवन्! "राजाके दण्डप्रयोग करनेसे ही पापकी शान्ति होती है" यदि आपको ऐसा स्थिर ज्ञान होवे, तो राजाके क्षमा करने पर भी उस पापकी शान्ति होती है,—ऐसा ही समझिये। आप महाव्रत करनेवाले ब्राह्मण हैं; मैंने आपके अपराधको क्षमा किया, उससे आप पापरहित हुए। इस समय आपकी दूसरी और कौनसी अभिलाषा है, उसे वर्णन कीजिये। मैं आपकी समस्त कामना पूर्ण करूंगा।

वेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज! महात्मा पृथ्वीनाथ सुद्युम्नने इस भांति अपराध क्षमा करके लिखित ऋषिको सम्मानित किया; तौभी महर्षि लिखित उनके निकट दण्डके अतिरिक्त और किसी विषयकी भी अभिलाषा नहीं की, तब राजा सुद्युम्नने दण्ड धारण करके महात्मा लिखितके दोनों हाथ काट दिये। अनन्तर लिखित ऋषि भुजा कटनेसे विकल होके अपने जेठे भाई महर्षि शङ्खके समीप गमन करके यह वचन बोले। हे महात्मन्! मैंने राजाके निकट जाके उचित दण्ड पाया है, अब आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये, छोटे भाईके वचनको सुनकर महर्षि शङ्ख बोले, हे भ्राता! तुमने मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं किया था, और मैं भी तुम्हारे ऊपर कुपित नहीं हुआ था; तुम धर्म्मसे भ्रष्ट हुए थे, इस ही कारण मैंने तुम्हें उस पापसे मुक्त किया है। इस समय शीघ्र ही बाहुदा नदीमें जाके देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करो, अब कदापि ऐसी बुद्धि न करना। अनन्तर महर्षि लिखितने अपने बड़े भाई शङ्खके वचनको सुनके बाहुदा नदीमें जाकर स्नानकरके ज्योंही तर्पण करनेकी इच्छा किया, त्योंही सहसा अङ्गुलियोंसे युक्त उनके दोनों हाथ प्रकट होगये, उससे लिखित अत्यन्त

विस्मित होकर अपने बड़ेभाई शङ्खके समीप आके नवीन उत्पन्न हुए अपने दोनों हाथोंको दिखाया। महर्षि शङ्ख उनके दोनों हाथोंको देखकर बोले, हे भ्राता! मेरे तपके प्रभावसे तुम्हारे दोनों हाथ फिर उत्पन्न हुए हैं, यह कुछ भी आश्चर्यका विषय नहीं है, क्यों कि दैव ही इस विषयके विधोंको करनेवाला है। अनन्तर लिखित ऋषि बोले, हे तेजस्विन्! जब कि आपका ऐसा तप प्रभाव है, तब आपने पहिले ही क्यों नहीं मुझे इस पापसे मुक्त किया? ऐसा होनेसे राजाके समीप मुझे न जाना पड़ता। शङ्ख बोले, हे भ्राता! उस विषयमें यदि मुझे अधिकार होता, तो मैं अवश्य ही तुम्हें यहा ही उस पापसे मुक्त कर देता; परन्तु मैं तो तुम्हारा राजा नहीं हूं, जो दण्ड प्रयोग करके तुम्हें चोरीके पापसे मुक्त कर देता; इस कारणसे मैंने तुम्हें राजाके समीप भेजा था। तुम्हारे ऊपर विधिपूर्व्वक दण्ड प्रयोग करके राजा सुद्युम्न और तुम, अर्थात् तुम दोनों ही पितरोंके सहित मुक्त हुए।

वेदव्यास मुनि बोले, हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैंने जो कुछ तुम्हारे समीप वर्णन किया; उस भांति कर्म्मके प्रभावसे राजा सुद्युम्नने दक्ष प्रजापतिकी भांति इस लोकमें प्रतिष्ठा और परलोकमें परम सिद्धि प्राप्त की थी। प्रजाको पालन करना ही क्षत्रियोंका धर्म्म है, इसके अतिरिक्त तुम दूसरेको कुपथ समझो। तुम धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हो, इससे अपने भाई अर्जुनके वचनकी रक्षा करो, अब शोक मत करो, प्रजाको पालन करनेके निमित्त राजदण्ड धारण करना ही क्षत्रिय धर्म्म है, शिर मुड़ाना राज धर्म्म नहीं है।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महर्षि वेदव्यास अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको उपदेश करनेमें फिर प्रवृत्त होकर यह वचन बोले, हे पुत्र! हे युधिष्ठिर! वनमें वास करनेके समयमें तुम्हारे भाइयोंको जो कुछ अभिलाषा है उसे सफल करना इस समय कर्त्तव्य है, इससे तुम नहुष-पुत्र राजा ययातिकी भांति पृथ्वीको पालन करनेमें प्रवृत्त होजाओ। पहिले तुम लोगोंने तपस्यामें रत होके जङ्गलमें वास करते हुए केवल महादुःख भोग किये थे, इस समय वह महादुःख बीत गया; इससे कुछ दिनतक सुख अनुभव करो। हे भारत! तुम अपने भाइयोंके सङ्ग मिलकर कुछ दिनोंतक धर्म्म, अर्थ और कामका सेवन करो, अनन्तर फिर वनको प्रस्थान करना। आगे देवता, पितर और प्रार्थी लोगोंके ऋणको चुकाओ, पीछे वाणप्रस्थ आदिक धर्म्मोंमें क्रमसे प्रवृत्त होना। हे महाराज! तुम अश्वमेध और सर्व्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करो, ऐसा होनेसे पीछे परम गतिको प्राप्त होंगे, और तुम अपने भाइयोंको अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञोंमें दीक्षित करो, ऐसा होनेसे इस लोकमें भी असीम कीर्त्ति प्राप्त कर सकोगे। हे राजन्! जिस कार्य्यको करनेसे तुम किसी प्रकार फिर धर्म्मसे भ्रष्ट न होसकोगे, उस विषयमें मैं विशेष उपदेश-वचन कहता हूं; चित्त थिर करके सुनो। जो परधन हरनेवाले डाकू समान मनुष्य हैं, वेही राजाओंको युद्ध आदि कार्य्योंमें नियुक्त होनेकी व्यवस्था देते हैं।

जो राजा शास्त्रजनित बुद्धि अवलम्बन करके देशकालकी प्रतीक्षा करके डाकुओंके विषयमें भी क्षमा करते है, उन्हें कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता, और जो राजा राज्यका छठवां भाग ग्रहण करके भी यथा रीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं करते, वे प्रजाके पापका चौथा भाग ग्रहण करते हैं हे युधिष्ठिर! राजा लोग शास्त्रकी आज्ञाको उलङ्घन करनेसेही धर्म्म भ्रष्ट होते हैं, और शास्त्रके अनुकूल कार्य्य कर-

नेसे निर्भय होकर समय व्यतीत कर सकते हैं। जो शास्त्रमें कही हुई रीतिको अवलम्बन कर काम, क्रोध त्यागके निरपेक्ष होकर पिताकी भांति प्रजा पालनमें तत्पर होते हैं, वे कदापि पापयुक्त कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते। यदि राजा उपस्थित कार्य्यमें दैवी-संयोगसे किसी कर्म्मको करनेमें असमर्थ होजावे, तो ऐसा होनेसे उसे कार्य्य अतिक्रमकारी नहीं कहा जा सकता। बल बुद्धि वा कौशलसे शत्रुको पराजित करना उचित है; राज्यके बीच जिससे पाप कर्म्म न बढ़ने पावे और सदा पुण्य-कर्म्मोंका सोता बहता रहे; उस विषयमें यत्नशील होना उचित है। वीर पुरुष, पुण्यकर्म्म करनेवाले साधु, विद्वान, वैदिक कर्म्मोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और धनी वैश्योंको विशेष यत्नके सहित पालन करना उचित है। व्यवहार और धर्म्म कार्य्योंमें बहुदर्शी पुरुषोंको नियुक्त करना उचित है, परन्तु अनेक गुणोंसे युक्त होनेपर भी एकही पुरुषका सम्पूर्णरूपसे विश्वास करके कार्य्य करना उचित नहीं। जो राजा आशाके वशमें गर्व्वित, अभिमानी और विजयरहित होकर प्रजाका पालन नहीं करते, वे महाघोर पापमें फंसके लोकसमाजमें अधर्म्मी कहके विख्यात होते हैं। जहां प्रजा यथा रीतिसे रक्षित नहीं होती, दैवकी प्रति कूलता अर्थात् राज्यमें अनावृष्टि आदि अनेक उपद्रवोंसे दुःखित तथा चोर डाकुओंसे पीड़ित होती है; उस स्थलमें सम्पूर्ण अनिष्टजनित पाप राजाको ही स्पर्श करता है। हे युधिष्ठिर! उत्तम मन्त्रणा और श्रेष्ठनीति अवलम्बन करके भली भांति विचारकर पुरुषार्थके सहित कार्य्य करनेसे कदापि अधर्म्मका सञ्चार नहीं होता। अनुष्ठित कर्म्म सिद्ध भी हो सकते हैं और दैवकी प्रति कूलतासे वे सब निष्फल भी हो सकते हैं; परन्तु यत्नमें त्रुटि न होनेसे राजाको पाप ग्रस्त नहीं होना पड़ता। महाराज! जैसे पहिले कठिन कर्म्मोंके करनेवाले राजर्षि हयग्रीवने संग्रामभूमिमें अनगिनत शत्रुओंका वध करके अन्तमें सहायरहित होकर प्राण त्याग किया था, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! राजा हयग्रीव बहुतसे सत्कार्य्योंको करके अन्तमें युद्धभूमिमें प्राण त्याग कर उत्तम कीर्त्ति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें सदा सुखभोग कर रहे हैं; अधिक क्या कहें, जिसके किये हुए सम्पूर्ण कर्म्मोंको जाननेसे ही प्रजा पालन और शत्रुओंके पराजित करनेके उत्तम उपाय मालूम हो सकते हैं? पुण्यकर्म्मोंके प्रभावसे सिद्ध मनोरथ महात्मा हयग्रीव काल क्रमसे डाकुओंके चढ़ आनेसे शस्त्र ग्रहणकर महाघोर युद्ध करके उनके शस्त्रोंका चोटसे क्षत विक्षत होकर शरीर त्यागके स्वर्गवासके सुखको भोग रहे हैं, राजसिंह तपस्वी हयग्रीव उस पुरुषरूपी यज्ञकी अग्निमें अनगिनती शत्रुओंकी आहुति देके पापरहित होकर अन्तमें अपना प्राण होमकर यज्ञ समाप्त करके देवलोकमें सुख भोग रहे हैं; उस यज्ञमें धनुषही यूप, रोदा यूपवेष्टन, बाण-स्रुक; तलवार स्रुवा, देहसे झरता हुआ रुधिर ही घृत स्वरूप, रथही वेदी युद्धमूलक क्रोध ही अग्नि और रथके चारों घोड़ेही चातुर्होत्रस्वरूप थे। उस महात्मा यज्ञ करनेवाले राजाने उत्तम नीति और बुद्धिकौशलसे राज्यको पालनकर सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्त्ति स्थापित करके अन्तमें प्राणत्याग किया था। उन्होंने विषयासक्तिको त्याग और योगप्रभावसे दैवी और मानुषी सिद्धि प्राप्त करके दण्डनीति अवलम्बन करके पृथ्वी पालन किया था; और यथारीतिसे सब वेद शास्त्रोंको पढ़के चारों वर्णकी प्रजाको यथा योग्य धर्म्मके कार्य्योंमें स्थापित किया था, वह श्रद्धा और कृतज्ञताके सहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करके ज्ञानके प्रभावसे मेधावी तत्त्वज्ञ पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकमें गमन करके सुख भोग रहे हैं। राज्य

करनेके समयमें उन्होंने अनेक बार संग्राममें जय प्राप्त किया था, यज्ञमें सोमरस पान, उत्तम ब्राह्मणोंको तृप्ति और युक्तिबलसे दण्ड धारण करके प्रजाको पालन किया था। विद्वान् पुरुष आजतक जिनके प्रशंसनीय चरित्रोंको अत्यन्त प्रशंसा किया करते है, वह महात्मा राजा निज कीर्त्ति तथा पुण्यके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त और स्वर्गलोकमें गमन करके वहां पर वीरपुरुषोंके प्राप्त होने योग्य सुख भोग कर रहे हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर अर्ज्जुनको कुपित देखके तथा व्यासदेव मुनिके बचनको सुनकर महर्षि द्वैपायन मुनिसे बोले, हे महर्षि ! मेरा चित्त इस समय शोकसे अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है, इससे इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य और अनेक भांतिके भोग्य वस्तुओंको प्राप्त करनेसे भी मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। और पति और पुत्रोंसे रहित स्त्रियोंके विलापको सुनकर मेरे चित्तमें किसी प्रकारसे भी शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

राजा युधिष्ठिरके ऐसे बचनको सुनकर योगियोंमें अग्रगण्य, धर्म्म ज्ञानसे युक्त सम्पूर्ण वेदोंके जानने वाले महा बुद्धिमान वेदव्यास मुनि उनसे बोले, महाराज ! कोई पुरुष कर्म्म वा यज्ञ कार्य्योंसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सक्ते और न कोई पुरुष किसीको दान कर सक्ता है; विधाता ही समयके अनुसार सब पुरुषोंके प्राप्तिका विधान करता है, और उस विधाताके नियत किये हुए समय पर ही मनुष्य समस्त वस्तुओंको पा सकते हैं। समय उपस्थित न होनेसे विद्या वा बुद्धिके प्रभावसे कोई धन लाभ करनेमें समर्थ नहीं होसकता और समयके अनुसार मूर्ख पुरुष भी धन प्राप्त कर सकता है; इससे सम्पूर्ण कार्य्योंके विषयमें कालको ही निरपेक्ष समझिये, अर्थात् काल समयानुसार मूर्ख और पण्डितको समान रूपसे फल प्रदान करता है। जब पुरुषोंके दुःखका समय रहता है, तब तक विज्ञान, मन्त्र औषधि आदि कोई वस्तु भी फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होती; और जब अभ्युदयका समय आता है, तब ये ही सब मन्त्र, औषधि आदि गुणकारी होके सिद्धिप्रद होती हैं। कालके प्रभावसे वायु प्रचण्ड वेगसे बहता है, बादल जलकी वर्षा करते, तालाव कमलों तथा नील-पद्म आदि पुष्पोंसे परिपूर्ण होते और वृक्षादिक फल फूलोंसे युक्त होते हैं इसी भांति कालके प्रभावसे कभी चन्द्र बिम्ब सोलह कलासे पूर्ण होता, कभी रात्रि महाघोर अन्धकारसे युक्त और कभी निर्म्मल ज्योतिसे विभूषित होती है, महाराज ! बिना समय पहुंचे वृक्षादिक फूलने फलनेमें असमर्थ होते हैं, नदियां प्रबल वेगसे बहनेमें समर्थ नहीं होती। हाथी मृग आदि पशु-सर्प तथा पक्षी बिना समय पहुंचे संयोगकी अभिलाषा नहीं करते। इसी भांति स्त्रियोंके गर्भ, शरद-बसन्त आदि ऋतुओंका समागम, जीवोंके जन्म और मृत्यु, बालकोंके मुंहसे पहिले पहल बचन निकलना, युवा अवस्थाका आगमन, बोए हुए बीजके अंकुर, मरीचि माली सूर्य्यका उदय और अस्त होना, शीत किरण धारी चन्द्रमाको कला और तरङ्गमालासे युक्त समुद्रके तरङ्गोंकी घटती बढ़ती बिना समय पहुंचे कदापि नहीं होसकती। महाराज ! राजा सेनजित्ने दुःखित होकर जो बचन कहा था, आजतक सब कोई उस गाथा का वर्णन किया करते हैं, मैं उस ही पुराने इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो ! यह दुःसह काल समयानुसार समस्त जीवोंका ग्रहण करता है, पृथ्वीका सम्पूर्ण वस्तु कालके प्रभाव अपन समय पर नष्ट होजाती है।

किसो पुरुषका बध करता है,

वह भी दूसरेके हाथसे मारा जाता है, यथार्थमें कोई किसीको नहीं मारता और न कोई किसीके मारनेसे मरता है, तब कोई कोई ऐसा समझते हैं, कि "अमुक पुरुषने अमुक का वध किया," और कितनेही बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझते हैं, कि इस जगत्में कोई किसीका बध करनेवाला नहीं है; क्योंकि स्वभाव ही प्राणियोंके जन्म और मृत्युके विषयमें कारण है। मूर्ख लोग धन क्षय होने तथा पिता माता वा पुत्र स्त्री आदिकी मृत्यु होनेपर "अहो! कैसा दुःख है? हाय क्या हुआ?" ऐसा ही समझके बीते हुए दुःखोंको केवल पुष्ट करते रहते हैं; इससे तुम क्यों मरण-धर्म्मशील कौरव और पाञ्चाल आदिक युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके निमित्तशोक कर रहे हो? बिचार कर देखो, कि भय और शोककी जितनी बार आलोचना की जावे उतने ही बार उसकी अधिक बढ़ती होगी। "इस शरीर वा पृथ्वीमें जो कुछ वस्तु है, उसमें कुछ भी मेरा नहीं है, अथवा इसमें जैसा मुझे अधिकार है, वैसा ही दूसरेको भी है"—पण्डित लोग ज्ञानसे इसी भांति विचार करके किसी बस्तुमें मोहित नहीं होते। इस पृथ्वीपर मूढ़ पुरुष ही सैकड़ों शोक और सहस्रों भांतिके हर्ष आदि विषयोंमें मोहित होते हैं; परन्तु पण्डितोंको ये हर्ष शोकादि कदापि मोहित नहीं कर सकते ये सब हर्ष आदिके विषय समयके अनुसार कभी प्रिय कभी अप्रियरूपसे मालूम होते हैं, इसी भांति वेही कभी सुख कभी दुःख रूपको धारण करके सम्पूर्ण जीवलोकोंमें भ्रमण किया करते हैं। मूढ़ पुरुषोंको आशा भङ्ग होनेसे ही दुःख और अभिलषित वस्तु मिलनेसे सुख प्राप्त होता है, परन्तु यथार्थमें यह संसार केवल दुःखकी ही खान है, इनमें सुख कुछ भी नहीं है, इस कारण प्राय दुःखकी ही अधिकता दीख पड़ता है। संसारमें आसक्त रहने वाले जीवोंको सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता हैं, वे कदापि सदाके वास्ते सुख वा दुःख भोगी नहीं होते। इसी भांति कभी सुख कभी दुःख अवश्य ही प्राप्त होता रहता है; इससे जो पुरुष नित्य-सुखकी इच्छा करते हैं। उन्हें इस अनित्य सुख तथा दुःख दोनोंको ही त्यागना उचित है। जिसके कारणसे दुःख जनित शोक और सन्ताप आदि अनेक-क्लेश उपस्थित होते हैं, उसके एक अङ्गको भी अन्तःकरणमें रहने देना योग्य नहीं है। महाराज! सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय, जिस समयमें जो उपस्थित होवे, धीरज युक्त चित्तसे उसे भोगना ही उचित है। हे सौम्य! स्त्री पुत्र आदि स्वजनोंके प्रियकार्य्य साधनमें तनिक त्रुटि करनेसे मालूम होसकता है, कि इस संसारके बीच कौन किस कारणसे किस भांति किसीका आत्मीय बान्धव हुआ है? इस पृथ्वीपर जो लोग अत्यन्त ही मूढ़ हैं, और जिन्होंने परमात्म ज्ञान प्राप्त किया है, वे दोनों सम्प्रदायके पुरुष ही सुखपूर्व्वक समयको व्यतीत करते हैं; मध्यवर्त्ती अर्थात् अर्द्धज्ञानी पुरुष ही नाना भांतिके क्लेशोंसे क्लेशित होते हैं। हे राजन्! धर्म्मसुख और दुःखके कारणोंको जाननेवाले पर और अपर बिषयोंके ज्ञाता महाबुद्धिमान राजा सेनजित्ने ऐसा ही वचन कहा था। जो पुरुष सदा पराये दुःखसे दुःखी होता है, वह कभी भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। दुःखका कभी भी नाश नहीं होता, पर्य्याय क्रमसे दुःख, सुख, सम्पत्ति, बिपत्ति, हानि, लाभ, जन्म और मृत्यु, सम्पूर्ण जीवोंको ही प्राप्त होती हैं, इससे पण्डित लोग उसमें शोकित वा आनन्दित नहीं होते। पण्डित लोग राजाओंके निमित्त युद्धही यज्ञ, दण्डनीतिकी आलोचनाको ही योग, यज्ञ आदि कर्म्मोंमें धन दानको ही सन्न्यास कहके वर्णन करते हैं; अर्थात् समझना चाहिये, कि इन्हीं सम्पूर्ण

कार्य्यों से उनकी पवित्रता होती है। जो यज्ञ करनेवाले, महात्मा राजा बुद्धिके अनुसार राज्यकी रक्षा, समस्त प्राणियोंके ऊपर समदृष्टि, युद्धमें जयलाभ, यज्ञमें सोमरस पान, युक्तिके सहित दण्ड प्रयोग, यथा रीतिसे वेद और शास्त्रोंको पढ़ना, चारों वर्ण की प्रजाको यथा रीतिसे स्वधर्म्ममें स्थापित करना इत्यादि कर्म्मों को करके प्रजाके सुख समृद्धिको उन्नति करते हुए अन्त समयमें युद्धभूमिके बीच शरीर त्याग करते है, वे अवश्य ही देवताओंके सङ्ग मिलके स्वर्ग लोकमें परम सुख भोग करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जिस राजाके परलोक गमन करनेके अनन्तर पुर तथा जनपदवासी समस्त प्रजा, और राज्यके सेवक लोग उसके चरित्रोंकी प्रशंसा किया करते है, उसे राजसत्तम समझना चाहिये।

२५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! उस समय उदारबुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर अर्ज्जुनसे यह युक्ति-पूरित बचन बोले,—हे अर्ज्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो, कि धनसे बढ़के कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, और निर्धन पुरुषोंको स्वर्ग, सुख तथा अर्थ लाभ नहीं होसकता,—यह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। इस पृथ्वीपर अनेक मुनि तपस्याके प्रभावसे ही सनातन स्वर्गलोकमें गये है, और बहुतेरे पुरुषोंको केवल स्वाध्यायरूप यज्ञसे ही सिद्धि प्राप्त होती देखी गई है। जो लोग ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित, और सदा स्वाध्यायमे रत होके सब धर्म्मों के जाननेवाले होते हैं, देवता लोग उन्हें ही ब्राह्मण समझते हैं। हे अर्ज्जुन! तुम स्वाध्याय-निष्ठ तथा ज्ञाननिष्ठ ऋषियोंको यथार्थ धर्म्मात्मा समझो और ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके उपदेशके अनुसार ही समस्त कार्य्यों को करना उचित है। वैखानस ऋषियोंका विषय भी इस प्रकारसे सुना गया है, कि अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु आदि वाणप्रस्थ आश्रमी ऋषियोंने केवल स्वाध्यायके प्रभावसे ही स्वर्गलोकमें गमन किया है; जो लोग वेदमें कही हुई रीतिके अनुसार यज्ञ, दान, अध्ययन और कठिन इन्द्रिय-निग्रह आदि कार्य्यों के अनुष्ठानमें रत रहते है, वे सूर्य्यके दक्षिण मार्गके सहारे स्वर्गलोकमें गमन करते हैं; कर्म्मपरायण पुरुषोंकी ऐसी ही गति बर्णित है, इसे मैंने पहिले ही तुमसे कहा है; और जिसे उत्तर पथ समझते हो; उसे अवलम्बन करके योगी लोग नियम आदि योगके प्रभावसे उस प्रकाशमय सनातन लोकमें गमन करते हैं; इस कारण पहिले समयके आचार्य्यों ने उत्तर पथकी ही अधिक प्रशंसा किया करते है। सन्तोषसे ही पुरुषोंको स्वर्ग और परम सुख प्राप्त होते है, सन्तोषसे बढ़के दूसरी कुछ भी वस्तु श्रेष्ठ नहीं है; क्रोध हर्षसे रहित योगियोंके निमित्त सन्तोष ही परम प्रतिष्ठा और उत्तम सिद्धिस्वरूप है; इस विषयमें राजर्षि ययातिका कहा हुआ एक प्राचीन इतिहास है, श्रवण करो! उसके सुननेसे सम्पूर्ण वासना कूर्म्मशुण्डकी भांति भीतर ही लीन हो जाती हैं। जब योगी पुरुष इस जगत्के बीच किसी जीवसे भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भ करते है, तथा जब कि उन्हें किसी वस्तुमें भी इच्छा द्वेष नहीं उत्पन्न होता तभी जानना चाहिये, कि उन्हें ब्रह्मप्राप्ति होगी। और जब बचन, मन तथा कार्य्यसे प्राणी मात्रके अनिष्ट चिन्तामें प्रवृत्ति नहीं होते तबही वे निश्चय ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करनेमें समर्थ होते है। जिनके हृदयसे अभिमान और मोह नष्ट होजाता है, उन आसक्तिरहित आत्म ज्ञानसे युक्त साधु पुरुषोंको निर्व्वाण मुक्ति प्राप्त होसकती है। हे धनञ्जय। मैं और एक कथा वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। इस जगत्के

बीच कोई धर्म्म कोई धन और कोई कोई सदाचारकी इच्छा करते हैं; परन्तु धन जाँचके धर्म्मोपार्ज्जनकी इच्छा करनेकी अपेक्षा उसका अनुष्ठान न करना ही उत्तम है; क्यों कि अर्थोंसे ही अनेक भांतिके दोष उत्पन्न होते हैं; इससे धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ आदिक कर्म्म भी उस कारणसे दोषयुक्त होजाते हैं; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस विषयको मैंने परीक्षा करके देखा है, तुम्हें भी परीक्षा करके देखना उचित है। जो धनकी अभिलाषा करनेवाले हैं; उन्हें अवश्य त्याग करने योग्य विषयोंको त्याग करना भी अत्यन्त कठिन होजाता है। जो धनवान हैं, उनसे सत्कर्मोंका अनुष्ठान होना अत्यन्त दुर्लभ है, क्यों कि दूसरेके अनिष्टके बिना धन कदापि नहीं मिल सकता और धन प्राप्त होनेसे चोर आदिकोंसे अनेक भांतिके भयकी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त दुराचरी डाकू लोग स्नेह और भयको त्यागके थोड़ेसे धनके वास्ते भी मनुष्योंके ऊपर अनेक भांतिके अत्याचार करते हैं, परन्तु उसमें जो उन लोगोंको ब्रह्महत्या आदि महाघोर पापमें लिप्त होना पड़ता है; उसे नहीं जान सकते। अर्थसे आसक्त पुरुषोंको यह धन इतना प्यारा है, कि वे लोग दुर्लभ धनको पाकर अपने सेवकोंको उचित वेतन देकर भी ऐसे सन्तापित होते हैं जैसे डाकुओंसे धन लुटे जानेपर सब कोई शोकित होते हैं। और वेतन न देनेसे भी सेवक लोग वैसे लोभी अपने स्वामीकी निन्दा करते हैं। और देखिये, निर्द्धन मनुष्यको कोई भी कुछ नहीं कह सकता, वह मुक्त पुरुष जो कुछ प्राप्त होवे, उसहीमें सन्तुष्ट होकर सब भांतिसे सुखी रहता है परन्तु धनसे कोई भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डितोंने यज्ञ विषयको भी जिस प्रकार विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया है, उसे कहता हूं; सुनो। विधाताने यज्ञके निमित्त धन प्रकट किया, और धनकी रक्षा करनेके वास्ते पुरुषको उत्पन्न किया है; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें ही समर्पण करना उत्तम है; भोग आदि अभिलाष पूर्ण करनेमें धन व्यय करना उचित नहीं है। हे अर्ज्जुन! विधाता यज्ञ करनेके ही वास्ते मनुष्योंको ध प्रदान करते हैं, सुख बिलासके वास्ते नहीं तुम भी धनशाली पुरुषोंमें अग्रणी हो, इस तुम्हें इस विषयको जानना उचित है। इ कारण ज्ञानी पुरुषोंने यह निश्चय किया है, कि यह धन जगत्में किसी पुरुषका भी नहीं है इससे श्रद्धावान होकर यज्ञ और दान करन ही कर्त्तव्य कार्य्य है। पण्डितोंने उपार्ज्जि किये हुए धनको दान करनेहीके वास्ते उपदे किया है; भोगकी अभिलाष तथा अपव्यय कर नेके वास्ते उपदेश नहीं किया है। दा आदिक सत्कार्य्योंके वर्त्तमान रहते अर्थ-सञ्च यकी क्या आवश्यकता है? परन्तु जो अल्पबु द्धिवाले मनुष्य धर्म्मभ्रष्ट पुरुषोंको धन दा करते हैं, वे परलोकमें एक सौ बर्ष पर्य्यन्त सद पुरीष भोजन करते रहते हैं। कुपात्रको दे पात्रको न देना, ऐसी घटना केवल योग्य औ अयोग्यका ज्ञान न रहनेसे ही होती है; इस दानधर्म्म भी अत्यन्त कठिन है। हे अर्ज्जुन! ध प्राप्त होनेपर उसे कुपात्रको देना और सत्पा त्रको न देना; इन दोनोंमें समझ रक्खो, कि महा उलट फेर होजाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाचों पुत्र, राजा द्रुपद, विराट धृष्टद्युम्न धर्म्मात्मा वसुषेण (कर्ण) राजा धृष्टकेतु और अनेक देशीय राजाओंके युद्धभूमिमें मारे जानेसे मैं अत्यन्त ही दुःखित हुआ हूं। हाय! मैं

राज्यलोभसे सम्पूर्ण स्वजनोंका नाश करके इकबारगी अपने वंशका नाश किया है । जिसने गोदीमें लेकर हम लोगोंको लाड़प्यारसे पालन करके बड़ा किया था,—मैंने राज्यलोभसे उस भीष्म पितामहका भी वध किया है। प्रकाशमान बाणोंसे परिपूर्ण सिंहके समान ऊंचे शरीरवाले पुरुषसिंह भीष्म पितामह जिस समय शिखण्डीसे आक्रान्त होके अर्जुनके वज्र समान बाणोंके प्रहारसे विचलित होकर इधर उधर घूमने लगे, उस समय उनको वैसी दशा देखकर मेरे अन्तःकरणमें जैसा दुःख उत्पन्न हुआ था ; उसका वर्णन नहीं होसकता । विपक्षीय रथियोंको पीड़ित करनेवाले भीष्म पितामह रथके बीच पीड़ित होकर घूर्णायमान पर्व्वतकी भांति जब रथसे पूर्व्व ओर पृथ्वीपर गिरे थे, उस समय मैं ज्ञानसे रहित हुआ था जिन्होंने धनुष बाण ग्रहण करके महायुद्धमें भृगु नन्दन परशुरामके सङ्ग कुरुक्षेत्रमें कई दिनतक युद्ध किया था, काशीपुरीमें कन्याके वास्ते जिन्होंने अकेले ही वहांपर इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रियोंको युद्धके वास्ते आह्वान किया था, जिनके अस्त्र प्रतापरूपी अग्निमें राजचक्रवर्त्ती पराक्रमी उग्रायुध क्षण भरके बीच भस्म होगया ; मैंने उस भीष्म पितामहका भी युद्धभूमिके बीच बध किया है, साक्षात् मृत्युरूपी जानके भी जिन्होंने शिखण्डीका बध नहीं किया, अर्जुनने वैसे महात्मा भीष्म पितामहका वध किया है। हाय ! क्या ही दुःखका विषय है । हे मुनिसत्तम ! जबसे मैंने उनको रुधिरपूरित शरीरसे पृथ्वीपर गिरते देखा, उस समयसे अत्यन्त शोकित होरहा हूं । जिन्होंने बालक अवस्थामें पालन पोषण करके हम लोगोंको बड़ा किया था; मैंने अस्थिर राज्य-लोभसे उनका बध किया है इससे मैं जो अत्यन्त ही मूढ़ और पापी हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राजाओंमें पूजनीय, युद्धभूमिमें स्थित महाधनुर्द्धारी द्रोणाचार्य्यके समीप गमन करके "आपकर्का पुत्र मारा गया" कहके जो मिथ्या वचन कहा था, उस मिथ्या वचन कहनेके पापसे मेरा सम्पूर्ण शरीर भस्म हुआ जाता है। गुरुने जब मुझसे ऐसा पूछा था, कि "हे राजन्! मेरा पुत्र जीवित है, वा नहीं, तुम सत्य कहो ?" आचार्य्यने समझा था, कि युधिष्ठिर सत्य कहेगा। परन्तु मैं ऐसा पापी हूं, कि राज्य लोभके कारण उस समय सत्यको छिपाते हुए मनमें हाथीका नाम लेकर स्पष्ट स्वरसे "अश्वत्थामा मारे गये," ऐसा वचन कहके गुरुके सङ्ग मिथ्या व्यवहार किया है, उस फलसे न जाने किस निकिष्ट लोकमें गमन करूंगा ;-उसे नहीं कह सकता । और भी देखिये, युद्धमें पीछे न हटनेवाले महा पराक्रमी जेठे भाई कर्णका भी मैंने बध किया है ; इससे मुझसे बढ़के अधिक पापी और कौन है ? मैं ऐसा लोभी हूं, कि विजयकी लालसासे सिंह पुत्रके समान पराक्रमी सुभद्रा पुत्र अभिमन्युको द्रोणाचार्य्यसे रचित चक्रव्यूहके बीच प्रवेश करनेकी अनुमति दी थी। हे महाऋषि ! अधिक क्या कहूं भ्रूणहत्या करनेवाले पापी की भांति उस समयसे मैं पुण्डरीकाक्ष कृष्ण और अर्जुनके मुखकी ओर अच्छी प्रकार देखनेमें भी समर्थ नहीं होता हूं। उसी भांति पञ्च पर्व्वतोंसे रहित पृथ्वीकी भांति पांच पुत्रोंसे हीन अत्यन्त दुःखित द्रौपदी देवीकी ओर देखनेसे भी मैं शोकसे अत्यन्तही कातर होजाता हूं । मैं पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियों और गुरुजनोंका नाश करके अत्यन्त ही अपराधी हुआ हूं, इससे मैं इस स्थानमें योगाभ्यास अवलम्बन करके अपने शरीरको सुखा दूंगा, ऐसा होनेसे फिर मुझे किसी जातिमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा आजसे मैं खाने पीनेकी सम्पूर्ण वस्तुओंको त्यागके यहां पर ही स्थित होके प्राणको त्याग करूंगा । हे तपस्वी

आपसे विनय पूर्व्वक कहता हूं, कि आप मुझे शरीर त्यागनेकी आज्ञा देकर अपने अभिलषित स्थान पर गमन कीजिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर बन्धु-बान्धवोंके वियोगसे अत्यन्त शोकित वा विह्वल होके विलाप करने लगे; तब ऋषिसत्तम व्यासदेव बोले, महाराज। योग अवलम्बन करके प्राण त्याग मत करो, तुम्हें इस प्रकारसे शोकित होना उचित नहीं है; मैं फिर तुम्हें उत्तम उपदेश करता हूं, सुनो। जैसे पानीके बुलबुले पानीमें ही उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर फिर उसहीमें लवलीन होजाते हैं, वैसे ही प्राणी मात्रका पहिले संयोग और पीछे वियोग हुआ करता है। सञ्चित वस्तु अन्तमें नाशमान होती हैं, उन्नतिके अनन्तर अवनति होती रहती है, जन्मके अनन्तर मृत्यु होती है, सुखके बाद दुःख होता है, अधिक क्या कहूं, इस जगतके बीच जितनी वस्तु उत्पन्न हुई हैं, वे सबही प्रगट होके पीछे नाशमान हो जाती हैं, परन्तु आलससे दुख और कार्य्यमें रत रहनेसे ही पुरुषोंको सुख प्राप्त होता है। ऐश्वर्य्य लक्ष्मी लज्जा, कीर्त्ति और धृति आदि गुण आलसी मनुष्यमें कदापि नहीं रह सकते, वह सुहृदपुरुषोंको सुख और शत्रुओंको दुःख देनेमें भी समर्थ नहीं हो सक्ता, बुद्धिसे धन और धनसे सुख भी नहीं प्राप्त कर सकता। हे राजन्! विधाताने तुम्हें धर्म्म करनेके ही निमित्त उत्पन्न किया है, कर्म्म त्याग करनेमें तुम्हें अधिकार नहीं है; इससे धर्म्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेसे ही तुम्हें सिद्ध प्राप्त होगी।

२७ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिर स्वजनवियोग रूपी दुःखसे सन्तापित होकर प्राण त्याग करनेके अभिलाषी हुए, तब मुनि सत्तम व्यासदेव उनके शोकको दूर करनेमें प्रवृत्त होकर बोले,-महाराज! अश्म गीत नाम एक प्राचीन इतिहास मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। किसी समय विदेह-राज जनकने शोक दुःखसे अत्यन्त ही सन्तापित होके अश्म नामक महाबुद्धिमान एक ब्राह्मणसे संशय निवारण करनेके निमित्त यह प्रश्न किया, हे ब्राह्मण! स्वजन और धनके बढ़ती तथा नाश होनेके समय कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको कैसा कार्य करना उचित है।

अश्म बोले, मनुष्यके उत्पन्न होते ही सुख दुःख आके उसके अनुगामी होते हैं। सुख दुःख दोनोंका प्राप्त होना सम्भव रहता है, परन्तु उन दोनोंमेंसे जिस समय एक की अधिकता होती है, तब जैसे वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही वह मनुष्यकी चैतन्य शक्तिको हर लेता है। अभ्युदयके समय लोग समझते हैं, कि,, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं, मैं श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जो इच्छा करूं उसही कार्य्यको कर सकता हूं,-इन तीन प्रकारके अभिमानमें मतवाले होके इका बारगी हिताहित विवेकसे रहित होते हैं, इससे विषयोंमें अत्यन्त ही आसक्त होके अपव्ययसे सम्पूर्ण पैतृक धनको नष्ट करके शीघ्र ही निर्द्धन होजाते हैं; उस समय पराया धन हरण करनेको भी वे लोग उत्तम कार्य्य समझते हैं। अनन्तर जैसे व्याध मृग आदि पशुओंका वध करता है, वैसे हो राजा भी उन नियम उल्लङ्घन करनेवाले तथा पर धन हरनेवाले दुष्ट मनुष्योंको दण्ड देता है; परन्तु जो बीस तथा तीस वर्षकी अवस्थामें इन दुष्कर्म्मोंसे विरत होजाते हैं, वे लोग प्रायः एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित नहीं रह सकते। इससे राजाको सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतरी वृत्तान्त जानके

दरिद्रता आदि दुःखोंसे पीड़ित प्रजाके क्लेशोंको बुद्धिकौशलसे दूर करनेका उपाय करना चाहिये। "चित्त विभ्रम और अनिष्ट-विषय" इन दोनोंके सिवा मानसिक दुःख उत्पन्न होनेका तीसरा कारण कोई भी नहीं है, भोगादिकोंसे अथवा अन्य विषयोंसे चाहे किसी भांतिके दुख क्यों न होवें—सब इन्हीं दो कारणोंके अन्तर्गत हैं। इस जगत्के बीच बड़े, छोटे निर्ब्बल बलवान आदि सब प्राणियोंको जरा मृत्यु व्याघ्रकी भांति आके भक्षण करती है। जो पुरुष अपने पराक्रमके प्रभावसे समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको जय कर सकते हैं, वे भी जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। सुख दुख उपस्थित होनेसे अभिमान रहित होकर उसे भोग करना ही उचित है, क्यों कि प्रारब्धके अनुसार जो कुछ उपस्थित होता है, वह अपरिहार्य्य अर्थात् अटल है।

हे महाराज! देखिये प्राणी मात्र ही अजर अमर होनेकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उसके विपरीति जरा, मृत्यु उपस्थित होके किसीको बाल्य किसीको युवा और किसीको वृद्धावस्थामें ग्रहण करती है; मृत्युके हाथसे कोई भी मुक्त नहीं होसकता। प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रियवस्तुओंका संयोग वियोग, सुख, दुख आदिक प्रारब्धके अनुसार ही होते है। इससे जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि स्वभावसे ही प्रकट होके अन्तमें निवृत्त होजाते हैं, उस भांति जाना, उठना, खाना, पीना, बैठना, सुख दुःख इत्यादि समयानुसार प्राणियोंको प्रारब्धसे ही उत्पन्न होते हैं; और समय पूरा होनेसे नहीं रहते। इस संसारमें वैद्य भी रोगी होते हैं, बलवान पुरुष निर्ब्बल और धनवान मनुष्य निर्द्धन होजाते हैं, इससे कालकी गतिको अत्यन्त विचित्र जानना चाहिये। बड़े कुलमें जन्म, वीर्य्य, निरोगता, रूप, सौभाग्य और उपभोग ये सब होतव्यताके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। इस पृथ्वीपर इच्छा न रहनेसे भी दरिद्रोंको अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं; परन्तु समृद्धि युक्त पुरुषोंको प्रार्थना करनेपर भी एक पुत्र उत्पन्न नहीं होता; इससे दैवके आश्चर्य्यमय कार्य्योंको अवलोकन करो। जरा, व्याधि अवनति, भूख, प्यास, जल, अग्नि और विष आदिसे जो कुछ आपदा दीख पड़ती है, वह प्राणियोंको प्रारब्ध तथा सुकृत दुष्कृत आदि कर्म्मोंके फलके अनुसार ही प्राप्त होती है। इस जगत्के बीच कोई पुरुष पाप न करके भी दण्ड पाता है, और कोई महाघोर अत्याचारी होकर भी राजदण्डसे छुटकारा पाता है; इससे प्रारब्धको अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है। इस पृथ्वीपर धनवान पुरुषोंको युवावस्थामें ही मृत्युके मुखमें पतित होते, और दरिद्र पुरुषोंको अत्यन्त क्लेशके सहित जरायुक्त होकर भी एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते देखा जाता है; इससे छोटे वंशमें जन्म लेकर भी दीर्घजीवी और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषको भी पतङ्गकी भांति नष्ट होते देखा जाता है। इस संसारके बीच श्रीमान पुरुष प्रायः ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते, अर्थात् अल्पायु होते हैं; परन्तु दरिद्र-पुरुष अत्यन्त निकृष्ट वृत्तिसे ही जीविका निर्व्वाह करनेमें समर्थ होते हैं, उस निमित्त वे लोग दीर्घजीवी होसकते हैं। दुष्टात्मा पुरुष निज सुखके वास्ते पापकार्य्योंका भी अनुष्ठान करते तथा कालप्रेरित होकर उसे ही प्रिय समझते हैं। मृगया, जूआ, स्त्रियोंमें आसक्ति, मद्यपान व्यर्थप्रलाप,—इन कई एक विषयोंको पण्डितोंने अत्यन्त निन्दित कहके वर्णन किया है; परन्तु बहुतसे शास्त्र जाननेवाले पुरुषोंको भी नहीं सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्त होते देखा जाता है। ईप्सित वा अनीप्सित सम्पूर्ण विषय समयानुसार प्राणियोंको आक्रमण करते हैं; उसमें दूसरा कोई भी कारण नहीं बोध होता।

ायु, आकाश, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, दिन, रात, योतिवाले पदार्थ, नदी और पहाड़ोंको किसने उत्पन्न किया है; और कौन सबको ारण करता है? अतएव काल ही सबको ारण करता, और कालके प्रभावसे ही समस्त स्तु उत्पन्न होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस ांति सर्दी, गर्म्मी, वर्षा और मनुष्योंके सुख-ःख कालके प्रभावसे ही प्राप्त होते, और समानुसार फिर नष्ट होजाते हैं। जब मनुष्य ारा-मृत्युसे ग्रस्त होते हैं, उस समय औषधि, न्त्र, जप, होम आदिक कोई भी उसके परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे महा-ागरमें दो काष्ठके टुकड़े दो ओरसे आके एक स्थानमें मिल जाते हैं, और समयके अनुसार फिर अलग अलग होजाते हैं; वैसे ही प्राणि-योंका भी समयके अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। जो पुरुष उत्तम स्त्रियोंके बीचमें रहके गीतवाद्य आदिक सुखोंको भोगते रहते हैं, और जो पराये अन्नके आसरे जीवन धारण करनेवाले अनाथ पुरुष हैं;—काल दोनोंके सङ्ग समान व्यवहार करता है, अर्थात् वे कोई भी मृत्युके मुखसे छुटकारा नहीं पा सकते। इस संसारमें माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदिक सैकड़ों तथा सहस्रों भांतिके सम्बन्ध दीख पड़ते हैं; परन्तु विचारपूर्व्वक देखनेसे वे लोग किसके माता, पिता हैं; और हम लोग ही किसके आत्मीय बान्धव हैं? कोई भी इस आत्माका आत्मीय नहीं है और न यह आत्मा किसीका आत्मीय बन्धु होसक्ता है। जैसे पथिक मार्गमें गमन करते हुए थोड़े समयके वास्ते एक स्थानपर इकट्ठे होकर विश्राम करके फिर यथायोग्य स्थानपर गमन करते हैं, इस संसारमें स्त्री पुत्र और स्वज-नोंकी सङ्गति भी उसी भांति समझनी चाहिये। मैं कौन हूं, कहां हूं, और कहां जाऊंगा। [illegible] . इस संसारमें स्थित हूं, और क्यों शोक वा दुःख करता हूं?" ज्ञानी पुरु-षको ऐसा विचारना चाहिये, कि चक्रकी भांति घूमने वाले संसारके बीच प्रियज-नोंका एकत्र बास अनित्य है। जैसे मार्गमें चलते हुए पथिक लोग एक स्थानपर इकट्ठे होके थोड़े समयतक विश्राम करते हैं; पिता, माता, भाई और मित्रोंके समागमको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। ज्ञानकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको शास्त्र-विधिके अनुसार परमार्थ बिषयमें श्रद्धा करनी उचित है? देखिये पण्डित लोग बिना देखे ही परलोकके सम्पूर्ण विषयोंको जानते हैं। विद्वान् पुरुषको भी देवता पितरोंकी पूजा अर्च्चासे शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार त्रिवर्गसेवन अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम आदि सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है। जरा मृत्यु रूपी ग्राहसे युक्त काल-रूपी समुद्रमें जो यह जगत् डूब रहा है, उसे कोई भी नहीं मालूम करता।

कितने ही वैद्य आयुर्वेदको पढ़के भी परि-वारके सहित व्याधिसे ग्रस्त होते हैं; जैसे समुद्रका वेग तटको उल्लङ्घन नहीं कर सकता, वैसे ही वे लोग नाना भांतिके घृत आदिक औषधि सेवन करके भी किसी प्रकार मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे हाथी पर्व्वतोंपर निवास करके भी कभी कभी मतवाले होकर अपने दांतोंसे पर्व्वत तोड़नेकी इच्छा करते हैं, वैसे ही रसायनिक तथा वैद्यक विद्याके जाननेवाले पण्डित लोग शरीररक्षाके निमित्त भली भांति रसायन प्रयोग करके भी प्रायः जरा मृत्युसे ग्रस्त होते दीख पड़ते हैं। इसी भांति दाता यज्ञशील, वेदपाठी और तपस्वी पुरुष भी जरा-मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। उत्पन्न हुए प्राणियोंके विषयमें वर्ष, महीना, पक्ष, दिन रात्रि आदि जो व्यतीत होजाते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते! इससे अनित्य शरीरवाले मनुष्योंको समय

पूर्ण होनेकी इच्छा न रहनेपर भी अवश्य ही सम्पूर्ण प्राणियोंके गमन करनेवाले चिरनिश्चित इस महापथसे ही गमन करना पड़ता है। शीघ्र ही देह जीवसे पृथक् होता है, वा जीव ही देहसे पृथक् होजाता है। जो हो, जगतके बीच स्त्री वा अन्य बस्तुवर्गों की जो सङ्गति है, वह मार्गमें निवास करनेवाले पथिकोंकी भांति है! इस जगत्में कोई कदापि एक एक सङ्ग सदा सर्व्वदा निवास नहीं कर सकता, जब कि निज शरीरहीके साथ जीवके चिर सहवास-लाभकी सम्भावना नहीं है; तब दूसरेके साथ सदा एक सङ्ग सहवास कैसे स्थिर रह सकता है? हे पापरहित युधिष्ठिर! इस समय तुम्हारे पिता वा पितामह आदि पितर कहां है? इस समय वे लोग तुम्हें नहीं देखते है, और तुम भी उन लोगोंको नहीं देख सकते हो। हे राजेन्द्र! स्वर्ग और नरककी कोई पुरुष भी नहीं देख सकता, परन्तु शास्त्र ही पण्डितोंके नेत्र स्वरूप है; इससे तुम उसके अनुसार इस संसार यात्राका निर्व्वाह करो। इस संसारमें जन्म लेनेके अनन्तर देवता पितर और ऋषियोंके ऋणको चुकानेके निमित्त असूयारहित होके पहिले ब्रह्मचर्य्य फिर दार-परिग्रह कर सन्तान उत्पन्न, अनन्तर यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करे; जो लोग इसलोक और परलोकके कार्य्यों को समान रूपसे साधन कर सकते हैं, और शास्त्रमें कही हुई बिधिके अनुसार कर ग्रहण करते हैं; उन धर्म्म स्थापित करनेवाले राजाओंका यश समस्त लोकोंमें बिख्यात होता है। शुद्ध-बुद्धि-वाले बिदेहराज जनक इसी भांति हेतु पूरित सम्पूर्ण उपदेश बचनोंको सुन कर शोक रहित हुए और अश्म ऋषिको आमन्त्रण करके अपने घर लौट आये। हे अच्युत युधिष्ठिर! तुम इन्द्रके समान पराक्रमी हो, इससे शोक त्याग कर तुम्हें हर्षित होना उचित है। तुमने क्षत्रिय-धर्म्मके अनुसार इस पृथ्वीको जय किया है, इस समय अब सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोग करो। मेरे बचनमें कुछ संशय मत करो!

२८ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने वेदव्यासके उपदेश बचनोंको सुनके भी कुछ उत्तर नहीं दिया, तब पाण्डुपुत्र गुडाकेश अर्ज्जुन हृषीकेश कृष्णसे यह बचन बोले, हे माधव। शत्रुनाशन धर्म्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर ज्ञाति-बध शोकसे अत्यन्त ही दुखित हुए हैं; इससे आप शोक रूपी समुद्रमें डूबते हुए राजा युधिष्ठिरको प्रबोधित कीजिये। हे जनार्द्दन! हम लोगोंमेंसे किसीके बचनमें इन्हें बिश्वास नहीं होता है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब महात्मा अर्ज्जुनने श्री कृष्णसे ऐसा बचन कहा, तब पुण्डरीकाक्ष अच्युत कृष्ण धर्म्मराज युधिष्ठिरको धीरज धारण करानेमें प्रवृत्त हुए। केशव बालक अवस्थासे ही धर्म्मराज युधिष्ठिरके अर्ज्जुनसे भी अधिक प्रिय थे, इससे उनके बचनको राजा युधिष्ठिर अवश्य ही मानते थे। कृष्ण राजा युधिष्ठिरके चन्दन-चर्च्चित शैल स्तम्भके समान भुजाको ग्रहण करके उत्तम बचनसे उनके चित्तको प्रसन्न करने लगे जैसे सूर्य्य उदय होने पर कमल प्रफुल्लित होता है, वैसे ही बचन बोलनेके समयमें श्री कृष्णके सुन्दर दर्शन, उत्तम पंक्तिसे युक्त मुख, नेत्र और शरीरकी शोभा हुई।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पुरुष शार्दूल महाराज! जो लोग कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके फिर प्राप्त होनेकी किसी प्रकारसे भी अब सम्भावना नहीं है, इससे आप ऐसे शोकको परित्याग कीजिये। जैसे सपनेमें प्राप्त हुई वस्तु जागनेके अनन्तर नहीं दीख पड़ती, इस महायुद्धमें मरे हुए क्षत्रियोंको भी उस

भांति समझना चाहिये। वे मरे हुए शूरवीर पुरुष सब ही युद्धभूमिमें सम्मुख संग्राम करके एक दूसरेके हाथसे मारे गये; उनके बीच कोई भी पुरुष पीठ दिखाके अथवा भागते हुए नहीं मारा गया; वे सब ही वीर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करके शस्त्रसे मरकर स्वर्ग लोकमें गये हैं, इससे उन लोगोंके निमित्त आप शोक न कीजिये महाराज! क्षत्रिय-धर्म्ममें रत, वेद वेदांगको जाननेवाले शूरवीर पुरुष अवश्य ही वीर पुरुषोंके योग्य पवित्र गतिको पाते हैं। आप परलोक प्राप्त हुए महात्मा पूर्व्व राजाओंके वृत्तान्तको सुनने हीसे मरे हुए बन्धु-बान्धवोंके निमित्त शोक नहीं करेंगे; इस विषयमें देवऋषि नारदने एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनिये।

पुत्र शोकसे आर्त्त हुए सृञ्जय राजको नारद मुनिने यह उपदेश किया था कि, हे सृञ्जय! तुम, मैं वा अन्य मनुष्य कोई भी सुख दुःखसे छुटकारा नहीं पासकते और हम सब लोगोंको ही एक दिन मरना होगा; तब विलाप करनेकी क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे समीप पहिले समयके राजाओंका माहात्म्य वर्णन करता हूं, उसे चित्त लगाके पूर्णरीतिसे सुननेसे ही तुम्हारा शोक नष्ट होजावेगा। उन महातेजस्वी राजाओंके वृत्तान्तको मुझसे सुनकर शोक परित्याग करो। राजाओंमें अग्रणी इन महात्मा राजाओंके सुन्दर मनोहर तथा पवित्र उपाख्यानको सुननेसे ही क्रूर ग्रह शान्त होते और आयु बढ़ती है।

हे सृञ्जय! तुमने सुना होगा, कि अविक्षितके पुत्र मरुत नामक एक विख्यात राजा हुए थे; परन्तु वह भी परलोक गये हैं। जिस महात्मा मरुत राजाके विश्वजित् अर्थात् सर्वस्व दान नामक यज्ञमें देवताओंके गुरु बृहस्पति प्रमुख इन्द्र और वरुण आदि देवता उपस्थित हुए थे; और जिन्होंने भरतार पूर्व्वक देवराज इन्द्रको युद्धभूमिमें पराजित किया था, जिनके यज्ञानुष्ठानके समय विद्वान बृहस्पतिके इन्द्रकी प्रियकामनासे जिस मरुत्तराजको यह कहकर कि मैं तुम्हारे यज्ञमें न जा सकूंगा, लौटा देने पर बृहस्पतिके ही कनिष्ठ भ्राता सम्वर्त्तने जिनके यज्ञको पूर्ण कराया था। जिनके शासन समयमें पृथ्वी राजविभवसे शोभित होकर विना हलसे जोते ही शस्य उत्पन्न करती थी। जिनके यज्ञमें विश्वेदेवा सभासद, साध्य लोग परिवेष्टा हुए थे, और मरुद्गणने आकर सोमरस पान किया था। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व्व और मनुष्योंसे भी बढ़ गये थे। जो धर्म्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य, इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा मरुत राजाने भी परलोकमें गमन किया है, तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! सुहोत्र नामक एक विख्यात राजा थे, तुमने सुना होगा उन्हे भी परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस सुहोत्र राजाके राज्यमें इन्द्रने एक वर्ष पर्य्यन्त लगातार सुवर्णकी वर्षा की थी। जिन नरपतिको पति रूपसे पाके पृथ्वी "वसुमती" नामसे विख्यात हुई थी। उनके राज्य शासनके समयमें सम्पूर्ण नदियोमें स्वर्णमय जलजन्तु तैरते थे। उसका कारण यह है कि उन दिनों लोक पूजित इन्द्रने पृथ्वीकी सब नदियोंमे सोनेके कूर्म्म कर्कट घड़ियाल और शिशुमारको वर्षा की थी। अधिक क्या कहा जावे, उन सैकड़ों तथा सहस्रों मच्छ मकर और कच्छप आदि स्वर्णमय जल जन्तुओंको देखकर राजा सुहोत्र स्वयं विस्मित हुए थे। हे राजन्! अनन्तर राजा सुहोत्रने कुरुजाङ्गलमें यज्ञ आरम्भ करके उस असीम सुवर्णके ढेरको ब्राह्मणोंको दान किया था। वह महात्मा सुहोत्र राजा धर्म्म, वैराग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे

श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी मृत्युके ग्रासमें पतित हुए हैं। इससे तुम दान और यज्ञसे रहित अपने पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने अङ्गराज बृहद्रथका नाम सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने विष्णुपदगिरि पर यज्ञमें दीक्षित होकर रत्नादिसे भूषित दश लाख कन्या, और दश लाख घोड़े, पद्मजाल चिन्हसे युक्त दश लाख हाथी, सहस्र गजके सहित सुवर्णमालासे भूषित एक करोड़ वृषभ दक्षिणाके दिये, पहिले जिन्होंने एक सौ यज्ञ किये थे, जिन यज्ञोंमें सोमरसपान करके देवराज इन्द्र और दक्षिणा पाये हुए धनके मदसे एकबारही ब्राह्मण लोग मतवाले हुए थे। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे बढ़ गये थे जिन यज्ञोंमें सोमपानकी बिधि है, उन अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उकथ्य, षोड़शी, बाजपेय, अतिरात्र, अप्तुर्य्याम-इन सात सोमसंस्थान नामक यज्ञोंमें अङ्गराज जिस प्रकार धनदान किया था, उस प्रकार धन दान करनेवाला कोई पुरुष इस पृथ्वीपर न हुआ, न होगा। हे सृञ्जय! वह अङ्गराज न्याय, धर्म्म, ज्ञान, बैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, वह भी कालके ग्रासमें पतित हुए हैं; इससे तुम पुत्रके वास्ते क्यों शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने उशीनरपुत्र महाराज शिविकी कथा भी सुनी होगी, उनकी भी मृत्यु हुई है, जिन्होंने इस पृथ्वीको शरीर तोपनेवाले चमड़ेकी भांति हस्तगत किया था जिन्होंने एकही जयशील रथपर चढ़के रथके बड़े शब्दसे चारो ओर गुंजाकर सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके पृथ्वीको एकछत्रके अधीन किया था, और जिन्होंने अपने तमाम जङ्गली और पलए गौ, घोड़े आदि पशुओंको संगाके यज्ञमें दान किया था। अधिक क्या कहा जावे, प्रजापति ब्रह्माने उस समय समस्त राजाओंके बीच उशीनरपुत्र राजऋषि शिविके अतिरिक्त और किसीको भी राज्यभार ग्रहण करनेके योग्य नहीं समझा था। इसलिये वह महात्मा शिवि राजा धर्म्म अर्थ, ज्ञान और बैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु ऐसे गुणोंसेयुक्त महात्मा शिवि राजाकी मृत्यु हुई है, तब तुम दान और यज्ञसेरहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मतकरो!

हे सृञ्जय। महा ऐश्वर्य्यवान् शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न हुए दुष्मन्तपुत्र महात्मा भरतकी कथा तुमने सुनी होगी, जिस महातेजस्वी राजा भरतने देवताओंकी प्रीतिकी अभिलाषासे यमुनाके तीरपर तीस, सरस्वती नदीके किनारे बीस, गङ्गाके तीरपर चौदह इत्यादि इसी भांति क्रमसे एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जैसे मनुष्य बाहुबलके सहारे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ नहीं होते उसी भांति पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज भरतके कर्म्मोंके अनुगामी होनेमें समर्थ नहीं होसकते। अधिक क्या कहा जावे, उस महात्मा राजा भरतने अनगिनत यज्ञवेदी आरम्भ करके उनमें एक सहस्रसे अधिक अर्व्वुद घोड़े और पद्म सहस्र रत्न काख मुनिको दान किया था, वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और बैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्होंने भी शरीर त्याग किया है; इससे तुम अपने पुत्रके वास्ते व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय। राजा दशरथके पुत्र महात्मा रामचन्द्रका वृत्तान्त तुमने सुना होगा, उन्होंने भी शरीर त्याग किया है। जिन्होंने सदा प्रजाको अपने पुत्र समान पालन किया था; राज्यशासनमें जो अपने पिता दशरथके समान थे। और अधिक क्या कहा जावे. रामचन्द्रके

राज्यशासनके समयमें कोई स्त्री बिधवा नहीं थीं, न कोई अनाथ ही दीख पड़ते थे, यथा समयपर जलकी वर्षा होती थी; अन्न भी यथा समय पर उत्पन्न होते थे; इससे उनके राज्य शासनके समयमें किसी भांति दुर्भिक्ष नहीं उपस्थित हुआ था। उस समय किसीकी जलमें डूबके वा अग्निमें भस्म होके मृत्यु नहीं हुई थी, और दूसरे किसी भांतिके रोगका भी भय नहीं था। रामचन्द्रके राज्यशासनके समय सब प्राणी सहस्र बर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते, और सहस्र पुत्रवाले होते थे, और सबके अभिलखित मनोरथ सिद्ध होते थे, रोग रहित होके समय व्यतीत करते थे; उनके राज्यमें पुरुषोंकी बात तो दूर है, स्त्रियां भी आपसमें बिबाद करनेमें प्रवृत्त नहीं होती थीं। उस समय सब कोई धर्म्ममें रत, सदा सन्तुष्ट चित्त सत्यव्रती, अभिलाष विषयमें पूर्ण मनोरथ, निर्भय और स्वाधीन थे। वृक्ष सदा फूलफलोंसे युक्त रहते थे, गौयें घड़े परिमाण दूध देती थीं। उस महातपस्वी रामचन्द्रने पिताके सत्यको पालन करनेके वास्ते चौदह वर्ष पर्य्यन्त वनमें निवास करके फिर राज्य शासनके समयमें तिगुनी दक्षिणासे युक्त दश अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये थे। लाल नेत्रवाले श्याम सुन्दर युवा रामचन्द्र यूथपति हाथी समान बलवान थे। उनकी आजानुलम्बितभुजा थीं, मुख कान्ति मनोहर और कन्धा सिंहस्कन्धके समान था। महात्मा रामचन्द्रने ग्यारह हजार बर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित अयोध्यामें राज्य किया था। वह धर्म्म, अर्थ वैराग्य और ज्ञान इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, उन्हें भी मनुष्य लीला समाप्त कर इस लोककी त्यागके परलोकमें गमन करना पड़ा, तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय ! राजर्षि भगीरथ नामक एक बड़े राजा हुए थे, उनका नाम तुमने सुना होगा; उन्हें भी मृत्युमुखमें पतित होना पड़ा। जिसके यज्ञमें सोमरस पान करके सुरसत्तम भगवान् पाकशासनने मतवाले हाथीकी भांति मत्त होके अपने बाहुबलके सहारे एक हजार असुरोंको पराजित किया था। उन्होंने यज्ञमें रत्नोंसे भूषित करके एक हजार कन्यादान किया था। उनमेंसे हर एक कन्या चार घोड़ोंसे युक्त एक एक रथपर चढ़ी थीं, हर एक रथके साथ सुवर्ण मालासे सुशोभित पद्मजाल चिन्हसे युक्त एक एकसौ हाथी, हर एक हाथीके सङ्ग एक हजार घोड़े नियुक्त थे, हर एक घोड़ेके सङ्ग एक हजार गऊ, सहस्र बकरे और सहस्र भेड़े थे। अधिक क्या कहा जावे, उस इक्ष्वाकु कुलभूषण यज्ञशील बहुत सी दक्षिणा देनेवाले महात्मा भगीरथको त्रिलोक गामिनी गङ्गादेवी पिता स्वीकार करके उनकी जङ्घापर बैठी थीं; जिस स्थलमें गङ्गा भगीरथकी जङ्घापर बैठीं उस स्थानमें उनका नाम उर्व्वशी और भागीरथी हुआ। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और बैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे तथा तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ तथा अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्राससे मुक्त होनेमें समर्थ न हुए, इससे तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त वृथा शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! तुमने महात्मा दिलीप राजाका भी वृतान्त सुना होगा, जिसके अनेक उत्तम कर्म्म और कीर्त्तिकी कथाको ब्राह्मण लोग आज तक गाया करते हैं। जिन्होंने महा यज्ञका अनुष्ठान करके रत्न-पूरित पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की थी। जिसके हर एक यज्ञमें पुरोहित ब्राह्मणको एक सहस्र सुवर्णमय हाथी दक्षिणामें प्राप्त हुई थीं। जिसके शोभायुक्त यज्ञमें स्तम्भ भी सुवर्णमय हुए थे; अधिक क्या कहा जावे, उस समय इन्द्र आदि देवताओंने भी आदिष्ट कार्य्योंको पूर्ण

करके महाराज दिलीपकी उपासना कीथी और उनके यज्ञ मण्डपके हिरण्मय स्तम्भ पर छः हजार देवता गन्धर्व्व इकट्ठे होकर नाचते और विश्वावसु बीचमें बैठके बीन बजाते थे। जिस बीनके बाजेको सुनकर समस्त श्रोताओंने समझा था, कि ये मुझे ही लक्ष करके बीन बजा रहे हैं। पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज दिलीपके इस कार्य्यके अनुकरण करनेमें समर्थ न हुए। राजा दिलीपके ऐश्वर्य्यकी बात क्या कहूं, सुवर्ण भूषणोंसे भूषित मतवाले हाथी मदमत्त होकर मार्ग होमें शयन करते थे; अधिक क्या कहूं, उस सत्यवत्वा सत्यवादी महात्मा महाराज दिलीपका जिन मनुष्योंने दर्शन किया था, वे भी स्वर्गभागी हुए। जिसके राज भवनमें सदा सर्व्वदा धनुष टङ्कार, वीरोंके सिंहनाद, वेदध्वनि और "देहि देहि" ये तीन भांतिके शब्द क्षण भरके वास्ते भी नहीं बन्द होते थे। देखिये महात्मा दिलीप धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारो विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्हें भी इस लोकको त्यागना पड़ा; इससे अब तुम पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! युवनाश्वपुत्र महाराज मान्धाताकी कथा तुमने सुनी होगी, उनकी भी मृत्यु हुई है। राजा युवनाश्वने पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ दही युक्त अभिषिक्त घृत अपनी स्त्रीको न देकर भ्रमपूर्व्वक स्वयं पान किया था, उससे उनके ही गर्भ रह गया और मान्त्रत आज्यकी प्रभावसे रुधिर-संयोगके बिना ही वह बालक पितृगर्भमें दिनोदिन बढ़ने लगा, फिर मरुत आदि देवताओंने पितृगर्भको भेदकर उस बालकको निकाला था, अनन्तर वह बालक त्रिलोक-विजयी राजा हुआ था,—ऐसी घटना किस प्रकार हुई, वह सम्पूर्ण वृतान्त वर्णन करता हूं, सुनो। उत्पन्न होते ही उस बालकको मृतपिताकी गोदमें शयन करते देखकर देवता लोग आपसमें यह वचन कहने लगे, कि यह बालक किसका आसरा ग्रहण करेगा। अनन्तर देवराज इन्द्रने कहा, "अयं मां धेव धास्यति" अर्थात् यह मेरा आसरा ग्रहण करेगा।—ऐसा कहके उन्होंने उस बालकका "मान्धाता" नाम रक्खा, और शरीरपुष्टिके निमित्त अपने हाथकी उङ्गली उसके मुंहमें डाल दी; तिसके अनन्तर उस उङ्गलीसे ही दूधकी धार बहने लगी। इन्द्रके हाथकी उङ्गलीसे दूधको पीकर वह बालक दिनोंदिन इस प्रकार बढ़ने लगा, कि बारह दिनमें ही बारह वर्षकी अवस्थाके समान मालूम हुआ; इसी भांति क्रमसे एक सौ दिनतक इन्द्रकी उङ्गलीके दूधको पीकर पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ था। अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी शूर, धर्म्मात्मा, महात्मा मान्धाता युद्धभूमिमें अङ्गार, मरुत, असितञ्जय, अङ्गराज बृहद्रथ आदि मुख्य मुख्य सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके एक ही दिनमें समस्त पृथ्वीके स्वामी हुए। जिस समय अङ्गराज बृहद्रथके सङ्ग महाराज मान्धाताका युद्ध हुआ था, उस समय देवताओंने उनके धनुषटङ्कारके शब्दको सुनकर समझा कि आकाश विदीर्ण हुआ चाहता है। उनके प्रबल प्रतापको कहांतक वर्णन करूं जहांसे सूर्य्य उदय होते और जहांपर जाके अस्त होते हैं अर्थात् अन्तिम सीमा पर्य्यन्त आजतक पृथ्वी "मान्धाता क्षेत्र" करके विख्यात है। पृथ्वीपति मान्धाताने एक सौ अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें अनगिनत रोहू मछली प्रदान की थी, दूसरी वस्तुओंके दानकी कथा क्या कहूं। जब कि मान्धाता राजाके यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त दूसरी जातिके मनुष्योंने भी एक योजन ऊंचे और दश योजन चौड़े सुवर्णके ढेरको बाट लिये थे, तब ब्राह्मणोंने कितना धन पाया उसका कहना बाहुल्यता मात्र है। हे

राजा मान्धाता धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य, इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी जब शरीर त्यागके इस लोकसे विदा होगये हैं, तब पुत्रके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! बोध होता है, तुमने नहुषपुत्र राजा ययातिका वृत्तान्त सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिसने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया था, जिसने शम्यापात अर्थात् एक बलवान पुरुषके हाथसे फेंके जानेपर जितनी दूरमें एक मोटी तथा भारी लकड़ीका टुकड़ा गिर पड़ता है, उतनी दूरके घेरेमें यज्ञकी वेदीसे पृथ्वीको चिह्नित और उत्तम यज्ञ करते हुए क्रमसे पृथ्वीकी सीमा अर्थात् समुद्रके किनारे पहुंचे थे। इसी भांति एक सौ बाजपेय और इसके अतिरिक्त एक हजार दूसरी भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सुवर्णके बने हुए तीन पर्व्वत ब्राह्मणोंको दान दिये थे। नहुषपुत्र महाराज ययातिने युद्धभूमिमें अनगिनत दैत्य और दानवोंकी व्यूहबद्ध सेनाका नाश करके समस्त पृथ्वी विभाग कर अपने पुत्रोंको बांट दी थी, परन्तु अन्तमें यदु और द्रुह्यु आदि पुत्रोंको निराश करके सबसे छोटे पुरुको समस्त राज्य पर अभिषिक्त करके स्त्रीके सहित बनको चले गये। हे सृञ्जय! राजा ययाति धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, वह भी जब कालके कराल ग्राससे मुक्त न होसके, तब तुम किस कारण अपने पुत्रके वास्ते शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने नाभागपुत्र राजा अम्बरीषकी कथा सुनी होगी वह भी मृत्युके मुखमें पतित हुए। जिस पृथ्वी-पालक राजसत्तम अम्बरीषको सब प्रजा साक्षात् पुण्यकी मूर्त्ति समझती थी, जिन्होंने प्रचुर यज्ञोंके अनुष्ठान किया था, वैसे ही दश हजार राजाओंको उपस्थित ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया था। बहुतेरे दीर्घदर्शी पुरुषोंने नाभाग पुत्र राजा अम्बरीषके ऐसे अद्भुत कार्य्यको देखकर कहा था, कि "पहिले कोई भी राजा ऐसा कार्य्य न कर सके और न भविष्य होमें कर सकेंगे,"—इसी भांति बारम्बार उनकी प्रशंसा की थी। हे सृञ्जय! जो सब राजा यज्ञके समय ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त थे, उन लोगोंने महाराज अम्बरीषके महात्म्य प्रभावसे अश्वमेध यज्ञोंके फलके भागी होकर उत्तरायण मार्गसे हिरण्यगर्भ लोकमें गमन किया। हे सृञ्जय! राजा अम्बरीष धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए, इससे पुत्रके वास्ते तुम व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने चित्ररथ-पुत्र शशविन्दुका उपाख्यान सुना होगा, जिस महात्मा शशविन्दु राजाके एक लाख स्त्री थीं और उन सम्पूर्ण स्त्रियोंसे दश लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे; वे सब राजपुत्र सुवर्णमय कवचोंसे युक्त और महाधनुर्द्धर थे, उन हर एक राजपुत्रोंने एक-एक सौ कन्याओंके सङ्ग विवाह किया था। हर एक कन्याके सङ्ग एक सौ हाथी प्रति हाथीके साथ एक सौ रथ, हर एक-रथके सङ्ग सुवर्ण माला भूषित एक सौ उत्तम घोड़े थे, हर एक घोड़ेके साथ एक सौ गऊ, प्रति गऊके सङ्ग एक एक सौ बकरे और भेड़े नियुक्त थे। इस समस्त अपार धनको महाराज शशविन्दुने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंको दान किया था। हे सृञ्जय! राजा शशविन्दु तुमसे धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे परन्तु वह भी मृत्युके मुखसे मुक्त होनेमें समर्थ न होसके इससे तुम पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! राजा अमूर्त्तरयसके पुत्र गयकी कथा तुमने सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने एक सौ वर्ष पर्य्यन्त यज्ञसे शेष बचे एक अन्नको भोजन करके अपने जीवनको धारण किया था। अग्निने जब उन्हें वर देनेको कहा, तब उन्होंने यह-वर मांगा, "हे अग्नि ! तुम्हारी कृपासे मेरा धन अक्षय होवे, धर्म्म और सत्यमें मेरी श्रद्धारूपसे सदा बुद्धि रत रहे," ऐसी जनश्रुति है, कि अग्निने राजा गयकी प्रार्थना सुनके उन्हें वही अभिलषित वर प्रदान किया था। राजा गय एक हजार वर्ष पर्य्यन्त दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास और अश्वमेध यज्ञसे देवताओंकी पूजा अर्च्चामें नियुक्त थे। एक हजार वर्षतक राजा गयने प्रति यज्ञके अन्तमें सौ हजार गऊ और सौ हजार अश्वतर दान की थी। इस ही भांति उस पुरुष श्रेष्ठ धनसे ब्राह्मणों, सोमरस पानसे देवताओं, स्वधासे पितरों और अभिलषित वस्तुओंके दानसे स्त्रियोंको तृप्त किया था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञोंके पूर्ण होनेपर दश व्याम चौड़ी और एक सौ हाथ लम्बी सुवर्णकी कृत्रिम पृथ्वी बनाके ब्राह्मणोंको दान की थी। हे सृञ्जय ! पृथ्वीपर जितने बालूके कण देख पड़ते हैं, महात्मा गयने उतनी ही गऊ ब्राह्मणोंको दान की थी, हे सृञ्जय ! महात्मा गय धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारो विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, उन्हें भी जब शरीर त्यागना पड़ा, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो ?

हे सृञ्जय ! तुमने महाराज रन्तिदेवकी कथा सुनी होगी, वह भी सदाके वास्ते इस पृथ्वीपर रहनेमें समर्थ नहीं हुए। जिस महात्मा रन्तिदेवने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रसे यह वर मांगा था, कि "मेरे अपरम्पार अन्नके ढेर सदा सर्व्वदा तैयार रहें, मेरे द्वारपर प्रति दिन अनगिनत अतिथि उपस्थित रहें, किसी समयमें भी मेरी श्रद्धा, कम न होवे, और मुझे किसीके समीप याञ्चा करनी न पड़े,"—इन्द्रने उन्हें इच्छानुसार वरदान किया। व्रत करनेवाले, महात्मा रन्तिदेवके यज्ञके समयमें गांव और वनके पशु स्वयं आके उपस्थित होते थे। उनके यज्ञमें मरे हुए पशुओंके रुधिर और चर्व्वीसे एक महानदी प्रकट हुई थी, वह आज तक पृथ्वीपर चर्म्मण्वती नामसे विख्यात है। जिस रन्तिदेवने सभाके बीच सुवर्णमुद्रा दान करनेके समय "तुम्हें एक सौ स्वर्ण मुद्रा दान करूंगा, तुम्हें एक सौ स्वर्णमुद्रा दूंगा,—इसी भांति मन्त्रसे सङ्कल्प करके जब देनेको उद्यत हुए, तब ब्राह्मण लोग हम लोग एक सौ स्वर्ण मुद्रा नहीं लेंगे,—ऐसा बचन कहके कोलाहल मचाने लगे; अनन्तर महात्मा रन्तिदेवने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रदान की थी। उस बुद्धिमान राजा रन्तिदेवकी पाकशालामें कलसी, कड़ाही, थाली लोटे आदि भोजनके पात्र सुवर्णके अतिरिक्त दूसरी धातुके नहीं थे, जिसके गृहमें रात्रिमें पहुंचे हुए अतिथियोंके वास्ते जिस रात्रिको बीस हजार पशु मारे गये थे, उस रात्रिमें सुन्दर मणि-जटित कुण्डलोंसे शोभित रसोई बनानेवाले पुरुष "आज पहिलेकी भांति मास नहीं है इससे तुम लोग आज इच्छानुसार दालके सङ्ग भोजन करो,"—ऐसे ही बचन कहते हुए अतिथियोंके समीप प्रार्थना करते थे। हे सृञ्जय ! महाराज रन्तिदेव धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु उन्हें भी कालके कराल ग्रासमें पतित होना पड़ा; इससे तुम यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! अत्यन्त पराक्रमी इक्ष्वाकुकुल-भूषण पुरुष शार्दूल महात्मा सगरकी

तुमने सुनी होगी, उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। महाराज! राजा सगरके गमन करनेके समय साठ हजार पुत्र इस प्रकार उनके अनुगामी होते थे, जैसे शरदऋतुमें चन्द्रमाके आस पास नक्षत्रमण्डली दीख पड़ती है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करके एक हजार अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवताओंको तृप्त किया था, और हर एक यज्ञोंके पूर्ण होनेपर राजा सगरने सुवर्णस्तम्भ, सुन्दर नेत्र और उत्तम शरीरवाली स्त्रियोंके सहित उत्तम शय्यासे पूरित श्रेष्ठ मन्दिर प्रदान किये थे, उनकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंने उन समस्त वस्तुओंको आपसमें बांट लिया था। राजा सगरने क्रुद्ध होकर पृथ्वीको खनके समुद्रको पुनर्व्वार उत्पन्न किया था, उस ही समयसे समुद्र सागर नामसे विख्यात हुआ है। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; तो भी करालकाल उन्हें ग्रस्त-गत करनेमें न चुका, इससे तुम पुत्रके निमित्त शोक वृथा मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने वेणुपुत्र राजा पृथुकी कथा सुनी होगी, उन्हें भी इस लोकसे परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस राजा पृथुको महर्षियोंने जङ्गलके बीच राज्यपद पर अभिषिक्त करके "ये पृथ्वीके सम्पूर्ण भागको उन्नत करेंगे; इससे इनका नाम पृथु हुआ" ऐसा वचन कहके उनका नाम पृथु रक्खा था, उन्होंने क्षतसे प्रजाओंका उद्धार किया था, इससे वह प्रकृत क्षत्रिय शब्दसे प्रसिद्ध हुए; और सब प्रजा "हम सब तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं", ऐसा अनुराग भाव प्रकाशित कर वह राजा कहके विख्यात हुए। राजा पृथुके राज्यशासनके समय बिना हलके जोते ही पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होते थे, वृक्षोंके हर एक पत्तोंमें मधु प्रकट होता और गौएं कलश परिमाण दूध देती थीं, उस समय सम्पूर्ण मनुष्योंकी अभिलाषा पूरी होती थी और सब कोई रोगरहित होकर घर तथा क्षेत्रमें अपनी इच्छानुसार निवास करते थे। जब महाराज पृथु समुद्र यात्रा करते थे, तब समुद्रकी लहरका शब्द बन्द हो जाता और नदियोंके जल स्तम्भित हो जाते थे; मार्गमें गमन करनेके समय उनके रथके ध्वजाकी कहीं पर किसी भांति भी रुकावट नहीं होती थी। उन्होंने बृहत् अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानमें एक हजार दासी हाथ ऊंचा सुवर्णका पर्व्वत तैयार कर ब्राह्मणोंको दान किया था। महाराज पृथु धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, जब उन्हें भी मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ा तब तुम यज्ञ दक्षिणाहीन अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय! तुम मौनावलम्बन करके किस की चिन्ता कर रहे हो? तुम क्या मेरे इन सब वचनोंको नहीं सुनते हो? यदि तुम नहीं सुनते हो, तो कालग्रस्त रोगी पुरुषको औषध देनेकी भांति मेरे ये सब उपदेश युक्त वचन तुम्हारे समीपमें निष्फल तथा व्यर्थ हुए।

सृञ्जय बोले, देवर्षि! कीर्त्तिमान पवित्र चरित्रवाले महात्मा राजर्षियोंकी कथा, जो कि आपने मेरे समीप वर्णन की है, वह शोक मोहका नाश करनेवाली और सुगन्धि युक्त मालाकी भांति मनोहर है, मैंने विचित्र अर्थसे युक्त आपके सम्पूर्ण उपदेशोंको चित्त लगाके सुना है। हे ब्रह्मवादी-श्रेष्ठ महर्षि! आपके कहे हुए; हितोपदेश वचन निष्फल नहीं हुए, अधिक क्या कहूं, आपके दर्शन मात्रसे मैं शोक रहित हुआ हूं। जैसे कोई अमृत पीके तृप्त नहीं होता, वैसेही आपके उपदेश युक्त वचनोंको बार बार सुनकर भी मेरा चित्त तृप्त

नहीं होता है। हे देवर्षि ! आपके समान महात्मा पुरुषोंके दर्शन कदापि निष्फल नहीं होते, इससे यदि आप पुत्र शोकसे शोकित मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न हुए हों, तो आपकी कृपासे मेरा पुत्र फिर जीवित होके मेरे सङ्ग वार्त्तालाप करे।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय पर्व्वत ऋषिके वरप्रभावसे तुम्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ था, तथा सुवर्णष्ठीवीनामक तुम्हारा जो गुणवान पुत्र इस समय प्राण रहित होकर पृथ्वी पर शयन कर रहा है, मैं तुम्हारे उस सुवर्णप्रद पुत्रको फिर जिला देता हूं, अब मेरे आसीर्बादसे इस बार एक हजार बर्ष पर्य्यन्त जीवित रहेगा।

२९ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! सृञ्जयराजका पुत्र सुवर्णष्ठीवी किस भांति हुआ और पर्व्वत ऋषिके वरसे उत्पन्न होके भी वह किस कारण अकालमें ही मृत्यु ग्रस्त हुआ? उस समयमें जब कि सब मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्ष पर्य्यन्त थी, तब सृञ्जयपुत्रने कुमार अवस्थाके न बीतते ही बीतते क्यों यमलोकमें गमन किया? जो हो, उसका नाम मात्र सुवर्णष्ठीवी था, वा निष्ठीवनसे सुवर्ण उत्पन्न होता था, इस कारण उसका नाम सुवर्णष्ठीवी हुआ? यदि स्वाभाविक सुवर्ण उत्पन्न होता था, तो किस भांति वह सुवर्णष्ठीवी हुआ, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज ! इस विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, मैं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप सुनिये। लोक-सत्तम नारद और पर्व्वत दो ऋषि हैं; उन दोनोंमें मामा और भानजेका सम्बन्ध है, उसमें नारद मामा और पर्व्वत भानजे थे। पहिले किसी समयमें घृत चावल आदि अन्न भोजन करनेकी अभिलाषासे उन दोनों ऋषियोंने मर्त्तलोकमें आगमन किया था। अनन्तर वे दोनो ऋषि पृथ्वीपर मनुष्योंके योग्य सम्पूर्ण वस्तुओंको भोगते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे। उन दोनोंने प्रीति पूर्व्वक आपसमें यह नियम स्थापित किया, कि "चाहे शुभ हो चाहे अशुभ होवे, जिस समय हम लोगोंके बीच जैसे भावका उदय होगा; यदि कोई इसमें अन्यथाचरण करेगा, तो वह शापका भागी होगा। उन दोनों ऋषियोंने "ऐसाही होगा"-यह बचन कहके ऊपर कहे हुए नियमको पालनकरनेके वास्ते प्रतिज्ञा की थी। अनन्तर सब लोकोंमें पूजित वे दोनों ऋषि राजा सृञ्जयके समीप जाके यह बचन बोले, हे महाराज! तुम्हारे हितके निमित्त हम दोनों इस स्थानपर कुछ दिनोंतक वास करेंगे; तुम हम लोगोंके ऊपर अनुकूल होकर यहांपर रहनेके वास्ते आज्ञा दो। राजा सृञ्जय उन दोनों ऋषियोंके बचनको सुनते ही "जो आज्ञा" कहके उनकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुए। इस ही भांति कुछ दिन व्यतीत हुए, तब एक दिन राजा सृञ्जय प्रीतिपूर्व्वक उन दोनों महात्माओंसे बोले, हे दोनों महात्मन् ! मेरा एक निवेदन सुनिये। मेरे एक पद्मपुष्पके समान सुन्दर रूपवाली, कामिनीकुलकी भूषण, शीलता आदि गुणोंसे युक्त सुकुमारी नामकी अनिन्दिता कन्या है, वह अकेलीही आप दोनों महात्माओंकी सेवा करेगी, इस विषयमें आप लोगोंका जो कुछ अभिप्राय हो; उसे प्रकाशित कीजिये।

राजाके बचनको सुनकर उन दोनों ऋषियोंने "उत्तम है"—ऐसा कहके उस विषयमें अपनी सम्मति प्रकाशित की। तब राजा सृञ्जय अपनी कन्यासे यह बचन बोले, हे पुत्री ! तुम पिता और देवताकी भांति इन दोनों ऋषियोंकी सेवा करो। पिताकी आज्ञा सुनके वह [illegible]न्दिता कन्या उन दोनों महात्माओं

करने लगी। उसकी अकपट सेवा और सुन्दर रूपको देखकर थोड़े ही समयके बीच महात्मा नारद ऋषिके अन्तःकरणमें सहसा कामदेव प्रकट होके शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा; परन्तु धर्मात्मा नारद ऋषिने लज्जापूर्व्वक अपने भानजे महात्मा पर्व्वतऋषिके समीप निज मानसिक भावको प्रकाश नहीं किया।

महर्षि पर्व्वतने अपने तपके प्रभावसे नारदको कामार्त्त समझा और अत्यन्त क्रुद्ध होके उनसे यह वचन बोले; "आपने स्वयं मेरे सङ्ग यह नियम किया था, कि" हम दोनोंके बीच जिसके मनमें शुभ अशुभ जैसे भावका उदय होगा उसी समय कपट रहित होकर आपसमें प्रकाश करेंगे; परन्तु तुमने वह प्रतिज्ञा झूठी की। क्योंकि राजपुत्री सुकुमारीके विषयमें जो आपकी काम-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, उसे इतने दिनोंतक आपने मेरे समीप प्रकाशित नहीं किया, इससे मैं आपको शाप दूंगा। आप मेरे गुरु, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें निष्ठावान और तपस्वी ब्राह्मण हैं; परन्तु हम लोगोंके आपसमें किये हुए नियमको आपने उल्लङ्घन किया है, उस ही कारण मैं तुम्हें जैसा शाप दूंगा, उसे सुनो,—राजकन्या सुकुमारी तुम्हारी भार्य्या होगी इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु विवाहके समयसे शाप स्वरूप भ्रष्ट होकर अपनी विवाहिता स्त्री और अन्य मनुष्योंको वानर रूपसे दीख पड़ेंगे।

देवर्षि नारदने अपने भानजेके असङ्गत शापयुक्त वचन सुनके क्रुद्ध होकर उन्हें भी शाप दिया, कि "यद्यपि तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सत्य और दम आदि गुणोंसे युक्त तथा अटल रूपसे नित्य धर्म्ममें स्थित हो" तौभी मेरे शापसे अब पहिलेकी भांति स्वर्ग लोकमें गमन करनेमें समर्थ न होसकोगे। इसी भांति उन दोनों ऋषियोंने क्रोधपूर्व्वक एक दूसरेको शाप देकर क्रुद्ध हाथीकी भांति अपने अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया। महाबुद्धिमान पर्व्वत ऋषि निज तेज प्रभावसे समस्त मनुष्योंमें सम्मानित होकर पृथ्वीपर भ्रमण करनेमें प्रवृत्त हुए, और विप्रवर नारद ऋषिने शास्त्र विधिके अनुसार सृञ्जयराजकी कन्या अति सुकुमारीको ग्रहण किया; परन्तु वह कन्या पाणीग्रहणके समयसे ही नारद ऋषिको पर्व्वत ऋषिके शाप प्रभावसे वानर रूपसे देखने लगी। आश्चर्य्यका यह विषय है, कि उस धर्म्मज्ञ राजपुत्रीने नारद ऋषिके बन्दरके समान मुख और रूपको देखकर भी उनकी अपमानना नहीं की, बल्कि प्रीति पूर्व्वक अपने स्वामीकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुई। उसने अपने पतिमें अनुरक्त होकर देवता, यक्ष, मुनि तथा अन्य किसी पुरुषको कभी मनसे भी पतिभावसे नहीं देखा।

तिसके अनन्तर किसी समय भगवान् पर्व्वत ऋषिने अपने मामा नारद ऋषिको वनके बीच एकान्त स्थानमें देखा। उस समय वह नारद ऋषिको प्रणाम करके यह वचन बोले, हे भगवन्। आप मेरे ऊपर प्रसन्न होके फिर स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी अनुमति दीजिये। अनन्तर शापसे अत्यन्त दुःखित महात्मा नारद ऋषि अपने भानजे पर्व्वत ऋषिको शापसे कातर और हाथ जोड़के उपासककी भांति अपने सम्मुख स्थित देखके उनसे बोले, हे तात! पहिले मुझे "तुम बन्दर होगे," यह कहके तुमने शाप दिया, तब मैंने भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें शाप दिया, कि "आजसे तुम अब स्वर्ग लोकमें गमन न कर सकोगे"। देखो तुम मेरे पुत्रके समान हो, इससे मेरे सङ्ग ऐसा व्यवहार करना तुम्हें उचित नहीं हुआ। इसी भांति बाद विवाद करके वे दोनों ऋषि शान्त होके आपसमें एक दूसरेको अपने शापसे मुक्त किया। तब देवर्षि नारद पहिलेकी भांति फिर अपने दिव्य स्वरूपको प्राप्त हुए, इधर राजपुत्री पति सुकुमारी श्रेष्ठ नारद ऋषिका देवतोंके

समान तेजपुञ्जसे युक्त शरीर देखके अन्य पुरुष समझ उनके समीपसे भागने लगी। तब पर्व्वत ऋषि अनिन्दिता सुकुमारी राजपुत्रीको भागती देखके बोले, हे पतिव्रता! ये तुम्हारे वेही पति निग्रहानिग्रहमें समर्थ महात्मा नारद ऋषि हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे तुम शङ्का रहित होकर इनकी अनुगामिनी बनो। महात्मा पर्व्वत ऋषिने उस राजकन्याके समीप ऐसे विनय युक्त वचन कहके फिर आपसके शापका वृत्तान्त वर्णन किया, तब राजकन्या सुकुमारी पर्व्वत ऋषिके मुख समस्त वृत्तान्त सुनके शान्त हुई। अनन्तर महर्षि पर्व्वत स्वर्ग लोक और नारद ऋषिने अपने गृहकी ओर गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने आपके समीप जिस वृत्तान्तको वर्णन किया, वह सब जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा था, वह भगवान् नारद ऋषि यहीं पर बैठे हुए हैं; इससे आपके पूछनेपर ये स्वयं ही शेष वृत्तान्त वर्णन करेंगे।

३० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर नारद मुनिसे यह वचन बोले, हे भगवन्! मैं उस सुवर्णष्ठीवीको उत्पत्तिका वृत्तान्त आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि युधिष्ठिरके पूछने पर सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्ति आदि सम्पूर्ण वृत्तान्तको वर्णन करनेमें प्रवृत्त होकर बोले, महाराज! महात्मा कृष्णने तुम्हारे समीप जो कुछ वर्णन किया, वह सब सत्य है, शेष वृत्तान्त मैं कहता हूं, तुम सुनो। किसी समय मैं और मेरे भानजे महामुनि पर्व्वत ऋषि अर्थात् हम दोनोंने थोड़े समयतक निवास करनेके वास्ते विजयी-श्रेष्ठ राजा सृञ्जयके समीप गमन किया; वह यथारीतिके कार्य्योंसे हम दोनोंकी सेवामें नियुक्त हुए। हम लोग उनके राजमन्दिरमें वास करके खाने पीनेकी समस्त वस्तुओंसे सम्मानित होकर वहां पर निवास करने लगे। इसी भांति वर्षाकाल बीतने पर जब हम लोगोंके गमन करनेका समय उपस्थित हुआ, तब पर्व्वत ऋषि मुझे सम्बोधन करके उस समयके अनुसार मुझसे यह वचन बोले, "हे ब्रह्मन्! हम लोगोंने इतने दिनोंतक इस राजाके घरमें परम सुखसे निवास किया है इस समय कैसे प्रत्युपकारसे इसका कल्याण होसकता है; इस विषयका विचारकरो।" शुभ दर्शन पर्व्वत ऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनके मैंने कहा, "हे भागिनेय! तुम सब विषयोंके पूर्ण करनेमें समर्थ हो, इससे ऐसा कहना तुम्हें योग्य ही है, तुम राजाको इच्छानुसार वर देकर कृतार्थ करो। अथवा यदि तुम्हारी इच्छा होवे तो राजा सृञ्जय हम दोनोंके तप प्रभावसे सिद्धि प्राप्त करें।

तिसके अनन्तर पर्व्वत ऋषि विजयी श्रेष्ठ राजा सृञ्जयसे यह वचन बोले, हे राजन्! तुम्हारी निष्कपट सेवासे हम लोग बहुत प्रसन्न हुए है, इससे आज्ञा देता हूं, कि तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो उसे इसही समय विशेष समालोचना करके देखो, यह कहनेका यही अभिप्राय है, कि देवताओंकी हिंसामें प्रवृत्त न होनेसे मनुष्योंका कदापि नाश नहीं होता, इससे तुम इस विषयमें साव-धान होकर इच्छानुसार वर मांगो; क्यों कि तुम मेरे समीप वर ग्रहण करनेके योग्य पात्र हो।

सृञ्जय बोले, यदि आप दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, तब मुझे समस्त वस्तु प्राप्त हुई है; यही मेरे वास्ते परम लाभ तथा महत् फल समझिये। राजा सृञ्जयका ऐसा वचन सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, हे राजन्! जो सङ्कल्प बहुत दिनोंसे तुम्हारे मन...

है, उस ही चिर-संकल्पित बरको तुम इस समय हम लोगोंके समीप मांगो।

राजा सृञ्जय बोले, हे महर्षि! हमारी यह इच्छा है, कि महासौभाग्य युक्त, आयुष्मान, वीर्य्यवान दृढ़व्रती, वीर और देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होवे। उनके ऐसे वचनको सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, महाराज! तुमने जो बर मांगा, वह तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा पूरी होगी; इसके अतिरिक्त तुम्हारे पुत्रके मलमूत्रसे सुवर्ण उत्पन्न होगा, इससे वह सुवर्णष्ठीवी नामसे विख्यात होगा। परन्तु तुमने मन हीमन देवराज इन्द्रके पराभवकी इच्छाकी थी, इससे तुम्हारा पुत्र दीर्घजीवी नहीं होगा। जो हो, तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रकी सदा सर्व्वदा देवराज इन्द्रसे रक्षा करना। राजा सृञ्जय पर्व्वतऋषिके मुखसे ऐसा बचन सुनतेही अत्यन्त भय भीत होकर उनसे बोले, "हे भगवन्! ऐसा अनिष्ट न होवे, आपके तप-प्रभावसे मेरा पुत्र दीर्घायु हो," इसी भांति विनययुक्त वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करनेके निमित्त यत्न करने लगे, परन्तु पर्व्वतऋषिने इन्द्रके कल्याणकी इच्छा करके राजा सृञ्जयके बचनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब मैंने राजा सृञ्जयको अत्यन्तही दीनभावसे युक्त देखकर कहा। महाराज! तुम आपदग्रस्त होनेपर मुझे स्मरण करना, तो उस ही समय तुम मेरा दर्शन पाओगे और तुम्हारा वह प्रियपुत्र यदि यमलोकमें भी गया होगा, तौभी मैं उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे समीप लाके उपस्थित करूंगा; इससे अब इस विषयके वास्ते शोक मत करो। राजा सृञ्जयसे ऐसा बचन कहके भानजे पर्व्वतऋषि और मैं,—दोनोंने ही अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया; सृञ्जय भी अपने राजभवनमें गये। कुछ दिनके अनन्तर राजऋषि सृञ्जयके अग्निके समान तेजस्वी महापराक्रमी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और वह बालक तालावमें स्थित बड़े पद्मरकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा। परन्तु पर्व्वतऋषिके बरप्रभावसे उस बालकके निष्ठीवनसे प्रकृत रूपसे सुवर्ण उत्पन्न होने लगा; इसही कारण उसका नाम भी सुवर्णष्ठीवी हुआ।

नारद मुनि बोले, हे कुरुसत्तम युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर यह लोकविस्मयकर समाचार चारों ओर फैल गया और बलि तथा वृत्रासुरके नाश करनेवाले भगवान इन्द्रने भी सुना, कि पर्व्वतऋषिके बर प्रभावसे राजा सृञ्जयके एक अद्भुत पुत्र उत्पन्न हुआ है; उससे उन्होंने अपनी पराजयके भयसे डरके वृहस्पतिके निकट सब वृत्तान्त प्रकाश किया; फिर देवतोंके गुरु वृहस्पतिकी सम्मतिके अनुसार उस राजपुत्रका छिद्र खोजने लगे और मूर्त्तिमान दिव्य अस्त्र बज्रको सम्बोधन करके बोले, हे बज्र! पर्व्वतऋषिके बरप्रभावसे राजा सृञ्जयके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह युवा अवस्था प्राप्त होनेसे अवश्य ही मुझे पराजित करेगा; इससे तुम बाघका रूप धरके उसका बध करो ऐसा कहके उन्होंने उस बालकके मारनेकी इच्छासे बज्र चलाया। तब शत्रुओंके जीतनेवाला बज्र इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर गुप्त रीतिसे उस राजपुत्रका छिद्र खोजता हुआ उसके पीछे घूमने लगा। इधर राजा सृञ्जय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रको पाके प्रसन्न चित्तसे थोड़ी सेनाके सहित उस राजकुमारकी रक्षाके वास्ते सर्व्वदा अन्तःपुरमें निवास करने लगे। इसी भांति वह बालक क्रमसे पांच वर्षकी अवस्थाका होगया, परन्तु वह थोड़ी अवस्थाका होकर भी गजराजके समान पराक्रमी हुआ था। उस ही समय एक दिन उस राजपुत्रने खेलनेके वास्ते केवल दासीके साथ गङ्गातीरके निकट निर्ज्जन बनके बीच गमन किया। वहां पहुंचते ही सहसा महाबली पराक्रमी एक शेरको उछलके सम्मुख आते

देखकर वह बालक भयसे कांपने लगा, और उसके अनन्तर उस व्याघ्रके हस्तगत होके पिसके तथा प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पड़ा उसे देखकर दासी चिल्लाके रोने लगी। इधर इन्द्रकी मायाप्रभावसे व्याघ्ररूपी वज्र उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगया। अनन्तर रोती हुई दासीका अत्यन्त आरत शब्द सुनके राजा सृञ्जय स्वयं उस ही ओर दौड़े और वहां पहुंचके देखा, कि "शोभारहित चलनेमें असमर्थ चन्द्रमाके समान राजपुत्र प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरा हुआ है; और किसी हिंसक पशुने उसके गलेका रुधिर पीया है।" उस समय राजा सृञ्जय अत्यन्त दुःखित होकर उस रुधिर लिपटे शरीरसे युक्त मरे हुए पुत्रको गोदमें उठाके आरत स्वरसे बिलाप करने लगे। तिसके अनन्तर उस राजकुमारकी माता भी पुत्रकी बिपद-वार्त्ता सुनकर अत्यन्त ही शोकके सहित रोदन करती हुई जिस स्थानमें राजा सृञ्जय बिलाप कर रहे थे, वहांपर उपस्थित हुईं। राजा सृञ्जयने बहुत देरतक रोदन करनेके अनन्तर एकाग्रचित्त होकर मुझे स्मरण किया, मैं उसे जानके उस ही समय शोकसे व्याकुल राजाके पास उपस्थित हुआ। अनन्तर चण भर पहिले यदुबीर कृष्णने जो तुम्हारे समीप बर्णन किया, वही सब प्राचीन राज-ऋषियोंका इतिहास उनके समीप बर्णन किया, तिसके अनन्तर इन्द्रकी सम्मतिसे उनके पुत्रको भी फिर जिला दिया। हे राजन्! इससे यह निश्चय जान रखो, कि जो होनहार है, वह अवश्य होता है, किसी प्रकार उसमें अन्यथा नहीं होसकता। जो हो, अनन्त पराक्रमी महायशस्वी राजपुत्र सुवर्णष्ठिवीने फिर जीवित होकर पिता माताको प्रसन्न किया, और कुछ समयके अनन्तर राजा सृञ्जयके परलोक गमन करने पर महाबली अत्यन्त तेजस्वी राजपुत्रने पिताकी राजगद्दी पर बैठके ग्यारह सौ वर्ष पर्य्यन्त निर्बिघ्नताके सहित राज्य शासन किया। इतने दिनमें उन्होंने बहुतसी दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवता और पितरोंको तृप्त कर बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके कुलको बढ़ाया था। इसी भांति बहुत दिनतक अतुल ऐश्वर्य्य भोगके वह भी अन्त समयमें परलोकको गये। हे महाराज युधिष्ठिर! इससे महातपस्वी व्यासदेव और श्रीकृष्णने तुम्हें जैसा उपदेश किया है, तुम उस ही भांति पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यभारको ग्रहण करो और लोकोंको पवित्र करनेवाले महा यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करनेके वास्ते यत्न करो; ऐसा होनेसे तुम शरीर त्यागनेके अनन्तर अपने अभिलषित लोकमें गमन कर सकोगे।

३१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि सम्पूर्ण धर्म्म तत्वके जाननेवाले महा तपस्वी श्री कृष्णचन्द्र द्वैपायन ऋषि राजा युधिष्ठिरको शोकसे आरत और मौनभावसे स्थित देखकर बोले, हे राजो-वलोचन धर्म्मराज! राजाओंको प्रजा पालन करना ही एक मात्र धर्म्म है, और सदा धर्म्म करनेवाले मनुष्योंका धर्म्म ही प्रमाण-स्वरूप है; इससे तुम पिता पितामहसे रक्षित उस ही राजधर्म्मको पालन करो।

हे भरतकुल तिलक! तपस्या केवल ब्राह्मणोंका ही धर्म्म है, ऐसी बिधि वेदमें दृढ़ रूपसे निश्चित है, वह नित्य धर्म्म ब्राह्मणोंका मूल स्वरूप है, परन्तु समस्त धर्म्मोंके रक्षक क्षत्रिय हैं। क्यों कि तपस्यामें निष्ठावान ब्राह्मण लोग विघ्नोंसे बिना रक्षित हुए किसी भांति भी धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं हो सक्ते। यदि कोई पुरुष विषय लोभके बशमें होकर राजशासन उल्लङ्घन करे, तो उस लोकयात्रामें

विघ्न डालनेवाले पुरुषको दण्ड देना राजाका कर्त्तव्य है। सेवक, पुत्र वा तपस्वी आदि कोई पुरुष क्यों न हों, यदि मोहके वशमें होकर प्रमाण प्रमाणको अप्रमाण करनेमें प्रवृत्त होवें, तो जिस उपायसे होसके उन पापी पुरुषोंका शासन अथवा उनका वध करना उचित है; इसमें अन्यथा चरण करनेसे राजाको पापमें लिप्त होना पड़ता है। किसी दुष्ट पुरुषको धर्म्म लिप्त करते देखके यदि राजा उस दुष्टको दण्ड देके धर्म्मकी रक्षा न करे, तो धर्म्म लुप्त होनेका सब पाप राजाको ही लगता है। हे युधिष्ठिर! तुमने धर्म्म लोपक दुर्य्योधन आदि दुष्ट राजाओंको मारके यथार्थ रूपसे क्षत्रिय धर्म्मकी रक्षा की है, तब किस कारण तुम व्यर्थ शोक करते हो? धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन, दान और दुष्टोंका दमन करना, ये ही राजाओंके प्रकृत धर्म्म हैं।

युधिष्ठिर व्यासदेवके वचनोंको सुनके बोले, हे तपोधन! आप धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी हैं तथा धर्म्मके सम्पूर्ण तत्व आपको गुप्त भावसे विदित हैं, इससे आपके उपदेश युक्त वचनोंका मैं कुछ भी संशय नहीं करता हूं, परन्तु मैंने जो राज्यके वास्ते भीष्म-द्रोणाचार्य्य आदि कई एक अवध्य पुरुषोंका वध किया है, वही दुष्कर्म्म मेरे हृदयको भस्म किये डालता है।

श्री वेदव्यास मुनि बोले, हे राजेन्द्र! युद्धभूमिमें जो सब वीर मारे गये, उनका वध करनेवाला ईश्वर, जीव स्वभाव, अथवा उनके किये हुए कर्म्मोंके फल है? यदि कहो कि जीव ईश्वरकी प्रेरणासे शुभा-शुभ कर्म्मोंमें प्रवृत्त होता है, तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है, क्योंकि उस शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको देनेवाला कर्त्ता ईश्वर ही हैं, वही फल भोगेगा। उसका दृष्टान्त देखो, कि यदि कोई पुरुष वनमें एक वृक्ष काटे, तो वृक्ष काटनेका पाप उस काटनेवालेको ही लगेगा, कुल्हाड़ीको पाप नहीं लग सकता। यदि कहो, कि कुल्हाड़ा अचेतन अर्थात् जड़ वस्तु है, इसही कारण पापभागी नहीं हो सकता, परन्तु जीव चैतन्य है, इसही कारण नियोज्यकर्त्ता होनेसे वह शुभाशुभ कर्म्मोंका अवश्य फलभागी होगा। तो वृक्ष काटनेवालेको पाप न लगकर कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी तो पाप लग सकता है?

हे कुन्तीनन्दन! कभी ऐसा विचार मत करो, कि उस नियोज्यकर्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी वृक्ष काटनेवालेके पाप-फलमें लिप्त होना पड़ेगा! क्योंकि एक पुरुषने वृक्ष काटा और दूसरेको उस पापका भागी होना पड़ेगा,-यह सिद्धान्त कदापि युक्ति-पूरित नहीं हो सकता। इससे तुम भी सब कर्म्मोंके फलको प्रयोजन-कर्ता ईश्वर होको समर्पण करो। यदि कहो, जीवही शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता है, उसे प्रेरणा करनेवाला कोई भी नहीं है; ऐसा माननेसे जगन्नियन्ता कोई भी नहीं स्वीकार किया जा सकता; ऐसा होनेसे तुम्हें किसको भय है! तुमने शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म्म किये है, वेही उत्तम है।

हे राजन्! इस समय मैं जो कहता हूं, उसे विशेष रूपसे निश्चय करो। वृक्ष काटनेवालेका पाप कदापि नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको नहीं लग सकता यह तुम निश्चय समझ रक्खो, कि कोई भी दैवको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् सब कोई दैवके वशमें होके शुभाशुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं। यदि तुम स्वभावकोही कर्त्ता समझते हो, तो भूत और भविष्यत् किसी कालमें भी तुम्हारे साथ पापका सम्बन्ध नहीं होसकता। हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हें सब लोगोंके धर्म्माधर्म्मकी मीमांसा करनेकी इच्छा हो, तो शास्त्रसे ही इसका निर्णय होसकता; क्योंकि धर्म्माधर्म्म शास्त्रमूलक हैं। इससे उस शास्त्र [illegible] कर्त्तव्यका

विधि वर्णित है ; तब तुम्हें इतना शोकका कौनसा विषय है ? हे राजशार्दूल ! यदि तुम यह समझते हो, कि शास्त्रका मत ऐसा ही है और सब लोग शास्त्र विधि अनुसार कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं,-इसे स्वीकार करता हूं ; परन्तु शुभ और अशुभ कर्म्मोंके फल स्वयं ही जीवके सम्बन्धमें आप ही आके उपस्थित होते हैं और उन कर्म्मोंके फल भी जीवको प्राप्त होते हैं ;तो मै जो कुछ कहता हूं, उसे निश्चय करो। पापसे अशुभ कर्म्म करनेकी प्रवृत्ति होती है इससे तुम असत् फलदायक सम्पूर्ण कर्म्मोंको सब भांतिसे त्याग कर अब शोक चिन्तासे रहित हो जाओ। हे राजन् ! तुमने यथार्थ रीतिसे निज धर्म्म पालन किया है, इससे अब तुम्हें लोकनिन्दित आत्महत्या करनेमे प्रवृत्त होना उचित नहीं है। और देखिये इस लोकमें पापकर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी विधि है, परन्तु प्रायश्चित्त जीवित अवस्थामें ही सहजमे किया जा सकता है, शरीर नष्ट होनेपर किस प्रकार प्रायश्चित होसकेगा ? हे युधिष्ठिर ! शरीरकी रक्षा करनेसे तुम अनायास ही प्राय श्चित्तके अनुष्ठान करनेमें समर्थ होसकोगे, और यदि तुम बिना प्रायश्चित्त किये ही शरीर त्याग करोगे, तो परलोकमें तुम्हें अत्यन्त ही पश्चा-ताप करना पड़ेगा।

२२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर वेदव्यास मुनिसे यह वचन बोले, हे पितामह ! हे तपोधन ! मैने राज्य-लोभसे पुत्र, पौत्र, भ्राता, चचा, पितामह, गुरु, ससुर, मामा, भानजे स्वजन, सुहृद मित्र सम्बन्धी आदि तथा दूसरे बहुतेरे क्षत्रियोंका नाश किया है ! और भी देखिये, कैसे दुःखका विषय है, कि जो सब राजा दोनों ओरकी सहायता करनेके वास्ते कुरुक्षेत्रमें आके उप-स्थित हुए थे, उनके बीच एक भी पुरुष जीते जी घर न जासके, सब कोई रणभूमिमें मरकर यमलोकवासी हुए ! हे महर्षि ! आप केवल मुझे ही इन सब लोगोंके नाशकी जड़ सम झिये। जो लोग सदासर्व्वदा धर्म्म और यज्ञके अनुष्ठानमें रत रहते थे, वैसे धर्म्मात्मा राजा और स्वजन-बान्धवोंको नाश करके इस पुरुष हीन पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करनेमें मुझे कौनसा सुख मिलेगा ? उन सम्पूर्ण श्रीमान् राजाओंसे रहित पृथ्वीकी दुर्दशाको बारम्बार बिचारके मेरा हृदय अब भी रातदिन भस्म हुआ जाता है। विशेष करके भयङ्कर स्वजन-हत्या और दोनों ओरकी सेनाके अनगिनत पुरुषोंको मृत्युके मुखमें पतित होते देखकर मेरा चित्त किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता है। हाय ! इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें जिनके पति, पुत्र और भाई मारे गये हैं ; उन स्वजनहीन दीन बाराङ्गना स्त्रियोंकी इस समय कैसी दशा होगी ; उसे मैं नहीं कह सकता हूं। वे सब स्त्रियें तनक्षीण और दीनभावसे युक्त होकर "क्रूर पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग मिलके हमारे पति, पुत्र आदि आत्मीय पुरुषोंका बध किया है," ऐसे बचनोंको कहके हम लोगोंकी निन्दा करती हुई पृथ्वीमें गिरेंगी। वे सब स्त्रियें पिता भ्राता, पति और पुत्रोंके मुख न देखकर स्नेह-बन्धनसे युक्त होके शोकित तथा अत्यन्त दुःखित होकर प्राणत्यागके यमलोकमें गमन करेंगी, और धर्म्मकी जैसी सूक्ष्म गति है, उससे हम लोगोंको ही स्त्री वधरूपी पापमें लिप्त होना होगा ; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हमने जब राज्यलोभसे आत्मीय पुरुषोंका नाश करके बहुतसा पाप किया है, तब हमको शिर नीचा करके महाघोर नरकमें गमन करना पड़ेगा ; इसमें कौन सन्देह कर सकता है ? इससे हे ऋषिसत्तम पितामह ! आप सब आश्र-मोंके विशेष लक्षण मेरे समीप व[illegible] [illegible]ये

आपके उपदेशके अनुसार मैं कठिन तपस्या करके शरीर त्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले श्रीवेदव्यास मुनि धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसे बचनको सुनकर निज-बुद्धि अनुसार समालोचना करके उनसे बोले, हे राजन्! तुम क्षत्रिय धर्म्मको स्मरण करके अपने हृदयके शोकको दूर करो। क्यों कि वे सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष निजधर्म्मके अनुसार युद्ध भूमिमें मारे गये हैं। वे सब कोई इस पृथ्वीपर महत् यश और परम सौभाग्यकी अभिलाषासे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे; परन्तु समय पूर्ण होनेसे ही वे लोग कालके बशमें होके प्राण-रहित होगये। तुम, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव, तुम लोग कोई भी उन लोगोंके मारनेवाले नहीं हो। पर्य्यायक्रमसे धर्म्मपूर्व्वक कालने ही उन लोगोंका प्राणहरण किया है। उस कालका कोई माता, पिता, भ्राता तथा अनुग्रहका पात्र नहीं है। जो सम्पूर्ण प्रजाके किये हुए कर्म्मोंका साक्षी है, उस ही कालके प्रभावसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रिय पुरुष मृत्युको प्राप्त हुए हैं, तब जो काल एक प्राणीको अन्य प्राणीके द्वारा नष्ट करता है वह केवल निमित्त मात्र समझा जाता है, और ऐसाही उसका नियत कार्य्य है।

हे महाराज! पुण्य पापके साक्षी स्वरूप कालको कर्म्म सूत्रात्मक समझनेसे अर्थात् जीवके किये हुए कर्म्म ही भविष्यमें सुख तथा दुःख रूपसे परिणत होते हैं, इससे ईश्वर जीवके किये हुए कर्म्मोंके फलको प्रदान करके शुभाशुभ कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होता। हे पाण्डुपुत्र! वे सब क्षत्रिय पुरुष जिन कर्म्मोंसे युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके नाशके मूल कारण उनके सम्पूर्ण कर्म्म और अपने किये हुए तपस्या तथा व्रत आदि विषयोंको विचार-रके देखो! क्यों कि तुम अत्यन्त ही क्षमाशील और अजातशत्रु हो, तौभी पूर्व्व कर्म्मके प्रभावसे देवने स्वयं तुम्हें इस हिंसात्मक युद्ध कर्म्ममें प्रवृत्त कराके अनेक पुरुषोंका नाश कराया है। इस-से रहटकी भांति यह जगत् ईश्वरके बशमें होकर कालप्रेरित कर्म्मसे ही प्रवर्त्तित होता है। इस पृथ्वीपर प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके विष-यको बिचार कर देखनेसे हर्ष वा शोक करना निरर्थक होता है। महाराज! तुम अब व्यर्थ शोक मत करो, बल्कि उन दुष्कर्म्मोंके निमित्त प्रायश्चित्तकी जैसी विधि है, उसका अनुष्ठान करना उचित है। पहिले देवासुर युद्धके विष-यमें ऐसा सुना गया है, कि असुर जेठे और देवता लोग उनसे छोटे थे। राजलक्ष्मीके वास्ते देवता और असुरोंमें महाघोर भ्रातृ-बीरोध उपस्थित हुआ; बत्तीस बर्ष पर्य्यन्त उन लोगोंमें महाभयङ्कर युद्ध होता रहा, अधिक क्या कहा जावे, समुद्रकी भांति उस समय पृथ्वी रुधिरसे परिपूरित होगई।

तिसके अनन्तर देवता लोगोंने दैत्योंको पराजित करके स्वर्ग लोकके राज्यको प्राप्त किया। उसी समय कितने ही वेद जाननेवाले ब्राह्मण पृथ्वीको पाके अभिमानसे मोहित होकर दैत्योंकी सहायतामें तत्पर होगये। हे भारत। वे अठासी हजार दुष्टात्मा पृथ्वीपर शालावृक नामसे बिख्यात थे; वे लोग अपने मूर्खताके कारण देवताओंके हाथसे मारे गये। महाराज! पृथ्वी-मण्डलमें जो लोग धर्म्मको नष्ट करके अधर्म्मकी वृद्धि करते हैं, उन दुष्टोंका इस प्रकार नाश करना चाहिये, जैसे देवताओंने दैत्योंका नाश किया था। यदि एकके नाश होनेसे कुलभरकी आपद दूर होवे, तो अवश्य ही एकका नाश करना उचित है, यदि एक कुलके नष्ट करनेसे राजभरके सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा होती हो, तो उस कुल भरका नष्ट करनेसे भी धर्म्म नष्ट नहीं होता। हे राजन्! इसी भांति कोई कोई अधर्म्मके कार्य्य हैं, जो धर्म्म रूपसे परिणत होते हैं,

और कोई कोई धर्म्मके कार्य्य भी अधर्म्मरूपसे गिने जाते हैं, पण्डित लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं। हे भारत! तुम सब शास्त्रोंके विषयोंको भली भांति जानते हो और देवता तथा पूर्व्व राजऋषियोंके आचरित प्राचीन मार्गके ही अनुगामी हुए हो, इससे अब शोक मत करो। तुम यह निश्चय जान रखो, कि तुम्हारे समान धर्म्मात्मा और सदाचारी पुरुष नरकमें कदापि गमन नहीं करते! इससे अब तुम इस समय अपने इन भाइयों और सुहृद पुरुषोंको धीरज धारण कराओ! जो पुरुष मनमें इच्छा करके पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और पाप कर्म्म करके कुछ भी पश्चाताप नहीं करते, वेही पुरुष सम्पूर्ण पापोंके भागी होते हैं, ऐसा वेदमें कहा है। ऐसे पापाचारी पुरुषोंके पापके प्रायश्चित्तकी विधि नहीं है, इससे उन पापियोंका पाप नहीं घट सकता, परन्तु तुम सदा धर्म्म कार्य्योंमें रत रहते हो और पाप कर्म्म करनेके वास्ते मनमें भी इच्छा नहीं करते, केवल दुर्य्योधन आदिकने दोषने ही तुम्हें युद्ध करनेमें प्रवृत्त कराया था, और कार्य्य समाप्त करके पश्चाताप भी कर रहे हो, इससे तुम्हें प्रायश्चित्त करनेमें अधिकार है। हे महाराज! अश्वमेध नामक महायज्ञके अनुष्ठान करनेसे ही इसका प्रायश्चित्त कहा गया है, इससे तुम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। भगवान इन्द्रने देवताओंके सङ्ग मिलके बार बार दैत्योंका नाश करते हुए एक एक करके क्रमसे एक सौ अश्वमेध यज्ञोंको पूर्ण किया था इसहीसे वह शतक्रतु नामसे विख्यात हुए और पाप रहित होकर स्वर्गलोक जय और परम सुख प्राप्त कर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए मरुद्गणोंके सहित स्वर्ग लोकके राज्यपर शोभित हो रहे हैं। देखो देवतोंके राजा शचीपति इन्द्र अप्सराओंके सहित महामहिमासे युक्त होकर किस प्रकार सुख पूर्व्वक स्वर्ग लोकमें विराजमान हैं। इस समय तुमने भी अपने पराक्रमसे सब राजाओंको पराजित किया है, और समस्त पृथ्वीपर भी तुम्हारा अधिकार हुआ है, इससे अब तुम सुहृद पुरुषोंके सङ्ग मिलके राज्य और युद्धमें मरे हुए राजाओंके नगरमें गमन करके उन लोगोंके पुत्र, पौत्र वा भ्राता जो कोई वर्त्तमान हों उन्हें उनके पैतृक राज्यपर अभिषिक्त करो। यदि उन लोगोंके बीच कोई बालक हो, तो भी सदाचार और सान्त्व वचनसे उन्हें राज्यपद पर प्रतिष्ठित करके सब प्रजाके मनको रञ्जन करते हुए पृथ्वीको पालन करो। जो राज्य एक बारगी राजपुत्रोंसे रहित होगये हैं, वहां पर यदि मृत राजाओंकी कन्या हों, तो उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कीजिये, क्योंकि स्त्रियोंके पूर्ण मनोरथ होनेसे ही फिर उनके वंशकी बढ़ती होसकेगी; इसी भांति कार्य्य करनेसे तुम्हारा शोक दूर होगा। महाराज! तुम इसी भांति राज्यके सब प्रजाको सुखी करते हुए असुरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी भांति अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो सब महात्मा क्षत्रियोंकी मृत्यु हुई हैं, उनके वास्ते शोक करना उचित नहीं है, क्योंकि वे सब वीर योद्धा कालके वशमें मोहित होकर क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार युद्धभूमिमें मारे गये हैं। इस समय तुमने क्षत्रियोंके यथार्थ धर्म्म और निष्कण्टक राज्य दोनों ही प्राप्त किया है, इससे निज धर्म्मके अनुसार राज्य शासन करो; ऐसा होनेसे ही परलोकमें तुम्हारा कल्याण होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह, मनुष्यको कैसा कर्म्म करनेसे प्रायश्चित्त पड़ता है; और किन कार्य्योंके करनेसे वे

उन पापोंसे छूट सकते हैं? आप यह वृतान्त मेरे समीप कहिये।

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, प्रतिसिद्ध और विहित कर्मके करनेवाले तथा जो वृथा कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। ब्रह्मचारी पुरुष यदि सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय शयन करते रहें तो उन्हें भी पापग्रस्त होना पड़ता है। कुनखी अर्थात् पूर्व्व जन्ममें जो पुरुष सुवर्ण चोरी किये रहते हैं, दूसरे जन्ममें उनके हाथ पावके नख दूषित हो जाते हैं, इस लोकमें वेही पुरुष कुनखी कहके प्रसिद्ध है। पहिले जन्ममें शराब पीनेवाले पुरुषोंके दूसरे जन्ममें दांत काले हो जाते हैं; वे पुरुष श्यामदन्ती नामसे विख्यात होते हैं। जिस पुरुषका छोटा भाई अपना आगे विवाह करता है, वह जेठ-परिवित्ति नामसे प्रसिद्ध होता है! परिवेत्ता अर्थात् जो पुरुष जेठे भाईके रहते हुए पहिले अपना विवाह करता है, जेठी बहिनके रहते छोटी बहिनका व्याह होनेसे उस छोटीके पतिका नाम दिधिषूपति कहके प्रसिद्ध होता है। छोटीका पहिले व्याह होनेसे उसकी जेठी बहिनको जो व्याहता है, वह पुरुष दिधिषूका उपपति कहके विख्यात होता है। अवकीर्णी अर्थात् व्रतभ्रष्ट ब्रह्मघाती, परिनिन्दक, द्विजातियोंके वध करनेवाले, सत्पात्रको वेद विद्या न देनेवाले और कुपात्रको वेद विद्या दान करनेवाले, ग्रामघाती मांस बेचनेवाले, अग्नित्यागी ब्राह्मण, अग्निभोगी यथापक्ष गुरुपत्नी घातक, वंश परम्परासे निन्दित पुरुष, यज्ञके अतिरिक्त वृथा पशुओंकी हिंसा करनेवाले घर जलानेवाले, चोरीसे जीविका निर्वाह करनेवाले, गुरुजनोंसे विरुद्ध करनेवाले और नियम उल्लङ्घन करनेवाले, ये सब पापग्रस्त पुरुष ही प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी हैं। हे कुन्तीनन्दन! इस समय अकार्य्य अर्थात् लौकिक और वेद विरुद्ध कार्य्योंको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। निज धर्म्म त्यागके पराये धर्म्म कार्य्योंका अनुष्ठान करना जो वस्तु मांगने योग्य न हों, उन्हें जांचना, अभक्ष वस्तुओंको भक्षण करना, शरणागतको परित्याग करना, सेवकोंका पालन न करना, रस, अर्थात् लवण तथा गुण आदि बेचना, पशु पक्षी, आदिका नाश करना सामर्थ्य रहते भी स्त्रीको गर्भधारण न कराना और प्रतिदिन देने योग्य गोग्रास आदि न देना, संकल्पकी हुई वस्तुको दान न करना, और ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार इन ऊपर कहे हुए कार्य्योंको धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने अकार्य्य कहके वर्णन किया है। जो पुत्र पिताके सङ्ग विवाद करते हैं, जो गुरु शय्या गामी हैं। और जो उचित समयपर निज स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न नहीं करते वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। महाराज! जिन कर्म्मोंके करने और जिनके न करनेसे मनुष्योंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है, उसे मैंने संक्षेप और विस्तारके सहित तुम्हारे समीप वर्णन किया है, अब पाप कर्म्म करनेपर भी जिन कारणोंसे पापी नहीं होना पड़ता, उसे वर्णन करता हूं, सुनो।

वेद जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्ध भूमिमें गमन करे; जो युद्ध करनेवाले ब्राह्मणोंका वध करनेपर भी ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! मैंने जैसी व्यवस्था कही है, वेदमें भी इस विषयका प्रमाण है। जो वेद प्रमाणसे युक्त और विहित धर्म्म कहके वर्णित है, वह मैं तुम्हारे समीप कहता हूं। निज वृत्तिसे भ्रष्ट आततायी ब्राह्मणका वध करनेसे मारनेवालेको जो ब्रह्महत्याके पापमें नहीं लिप्त होना पड़ता उसका कारण यही है कि उस आततायीका क्रोधही उसके वध करनेवाले पुरुषके क्रोध

उत्पन्न होनेका मूल है। यदि अज्ञानता और असाध्य व्याधिसे जीवन नष्ट होता होवे, तो ऐसे समयमें धर्म्मात्मा ज्ञानी वैद्यके उपदेशके अनुसार सुरापान करनेपर फिर संस्कार मात्र करनेसे ही सुरापानके पापसे मुक्त हो सकेंगे। हे महाराज। अभ्यक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे जो पाप कहे हैं, विहित प्रायश्चित्त करनेसे मनुष्य उन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। गुरुकी आज्ञानुसार गुरुपत्नीके सङ्ग गमन करनेसे मनुष्यको पाप नहीं लगता, उसका प्रमाण यह है, कि उद्दालक मुनिने शिष्यके द्वारा अपनी स्त्रीसे श्वेतकेतु नाम पुत्र उत्पन्न कराया था। आपद काल उपस्थित होनेपर गुरुके निमित्त चोरी कर्म्म करनेसे भी पाप नहीं लगता; परन्तु वह शिष्य गुरुके हित साधनके सिवा अपनी अभिलाषासे यदि चोरी कर्म्ममें प्रवृत्त न होवे, वह चोरी किया हुआ धन यदि ब्रह्मस्व न हो और चोरी करनेवाला यदि उसे स्वयं भोग करनेकी इच्छा करे, तो उसे पापमें नहीं लिप्त होना पड़ेगा। अपने वा दूसरेके प्राण-रक्षाके निमित्त गुरुके वास्ते, विवाह और स्त्रीसे रति करनेके समयमें मिथ्या वचन कहनेसे मनुष्य पापी नहीं होसकता। ब्रह्मचारी पुरुषका वीर्य्य यदि स्वप्नमें स्खलित होजावे, तो फिरसे उपनयनकी विधि नहीं है, उसके प्रायश्चित्तके वास्ते जलती हुई अग्निमें घृत होम करनेकी विधि है। बड़ा भाई यदि विवाहके पहिले ही पतित वा परिव्राजक होजावे, तो छोटा भाई विवाह कर सकता है, ऐसा करनेसे परिवित्ति दोषमें नहीं फंसना पड़ता। पराई स्त्री यदि कामसे आरत होके स्वयं आकर रति करनेकी इच्छा करे, तो उसके सङ्ग भोग करनेसे धर्म्म नष्ट नहीं होता यज्ञके विना पशु वध करना वा दूसरेको पशुओंके वध करनेमे प्रवृत्त कराना उचित नहीं है, परन्तु यज्ञमे जो मन्त्र पढ़नेके पशु वध होता है, वह पशुओंके ऊपर कृपा प्रकाशित हुई है, ऋक्के वेदमें वर्णित है। तीर्थस्थानमें यदि कोई पुरुष अज्ञानताके कारण प्रतिदिन योग्यपात्रको दान न देकर अयोग्य ब्राह्मणोंको दान देवे तो उससे धर्म्म लोप नहीं होता। स्त्रीके दुराचारिणी होनेसे उसके सङ्ग रति और भोजन आदि कर्म्म न करके उसे धिक्कार देकर पृथक् स्थानमें रखनेसे स्त्री पुरुष दोनों ही निर्दोष होते हैं, अर्थात् मूर्ख स्त्रियां धिक्कार प्रदानसे तिरस्कृत होनेसे ही पाप रहित हो सकती हैं, और पुरुष स्त्रीका सङ्ग त्यागनेसे निर्दोष होते हैं। जो पुरुष "इससे देवता लोग तृप्त होकर मनुष्योंके इच्छानुयाई अर्थात् अन्न उत्पन्नके योग्य जलवृष्टि करते है," इससे सोमरस दोनों लोकोंका उपकारक है,—इस प्रकार सोमरसके तत्वको जानते हैं, वे सोमरस बेचनेसे पापी नहीं होते। कार्य्य करनेमें असमर्थ सेवकको परित्याग करनेसे स्वामीको दोषभागी नहीं होना पड़ता; सब गौओंकी रक्षा करनेके वास्ते सम्पूर्ण वनको भस्म किया जा सकता है। महाराज! मैंने जिन कर्म्मोंकी कथा कही है, यदि ऊपर कहे हुए कारणसे वे सब कार्य्य किये जावें, तो उन कर्म्मोंके करनेवाले पुरुषोंको पापी नहीं होना पड़ता। अब प्रायश्चित्तके विषयको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करूंगा, ध्यान देके सुनो।

३४ अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज! प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर यदि मनुष्य फिर पूर्व्व कृत्त पापाचरणमें प्रवृत्त न होवे, तो तपस्या, यज्ञके अनुष्ठान और गौ तथा सुवर्ण दानसे पापसे मुक्त होसकता है। सेवक न रखके निज कार्य्योंको स्वयं करते हुए भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित हो साष्टाङ्ग पाणि होकर पृथ्वीपर भ्रमण

करते हुए असूया-रहित होके निज दोष प्रकाशित करे और रात्रिके समय भूमिपर शयन करे,—इसी भांति नियम पूर्व्वक बारह वर्ष व्यतीत करनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। अथवा यदि इच्छा हो, तो व्यवस्था देनेवाले पण्डितके मतके अनुसार शस्त्रजीवी धनुर्द्धारी पुरुषके बाणका निशाना होकर प्राणत्याग करे, अथवा अवाक्शिरा होके जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर देवे, अथवा किसी एक वेदमन्त्रको जपते हुए तीन सौ योजन मार्ग भ्रमण करके किसी तीर्थ स्थानमें उपस्थित होनेसे, वा वेद जाननेवाले ब्राह्मणको अपना सर्व्वस्व दान करनेसे; अथवा उस ब्राह्मणको जीवनके समय पर्य्यन्त अन्न वस्त्र और गृहदान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकता है। परन्तु यदि प्राण सङ्कटके समय गो ब्राह्मणकी रक्षा कर सके तो उस ही समय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है। यदि कृच्छ्र-भोजी होसके, अर्थात् पहिले तीन दिन सवेरे फिर तीन दिन सन्ध्याके समय और फिर तीन दिन तक बिना मांगी वस्तुओंका भोजन करना होगा और शेषके तीन दिनमें कुछ भी भोजन न करने पावेगा,—इसीको कृच्छ्र भोजन कहते हैं; इसी भांति नियम पूर्व्वक छः वर्ष बितानेसे पुरुष पापसे रहित हो सकते हैं। यदि प्रत्येक महीनेसे प्रथम सप्ताहमें सवेरे, दूसरे सप्ताहमें अयाचित भोजन करके चौथे, सप्ताहमें अनशन व्रत करे, तो तीन वर्षमें ही ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। यदि पहिले महीनेमें प्रातःकाल, दूसरेमें सन्ध्याके समय, तीसरेमें बिना मागा हुआ भोजन करके चौथे महीनेमें उपवास व्रत करे,—तो क्रमसे एक वर्ष तक इसी भांति नियम पूर्व्वक रहनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष अपने पापसे छूटेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और यदि महीने भरमें अधिक समय तक कुछ भी भोजन न करके केवल जल पीके प्राण धारण करके रह सके तो इस प्रकार अनशन व्रत करनेवाला पुरुष थोड़े ही समयमें पापरहित होता है।

हे महाराज! ब्रह्महत्या वा चाहे किसी प्रकारके पापी क्यों न हों—दक्षिणा युक्त अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके अवभृत अर्थात् यज्ञके शेषमें स्नान करनेसे ही ऊपर कहे हुए सब पापोंसे मुक्त हो सकते हैं। महाराज! ब्रह्महत्या आदि अनेक भांतिके पापी जो अश्वमेध यज्ञ करनेसे पापरहित होसकते हैं, इसका वेदमें प्रमाण है। इसी भांति यदि ब्राह्मणके प्राण रक्षामें प्रवृत्त होकर युद्धमें मारा जावे तौभी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है, अथवा उत्तम ब्राह्मणको एक लाख गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है; परन्तु दूध देनेवाली पचीस हजार कपिला गऊ दान करे तौभी पापसे छूटेगा; और यदि किसी दरिद्र साधु पुरुषको आहारके अभावमें प्राण संशय उपस्थित हो, तो उस समयमें एक हजार बछड़ोंसे युक्त दुग्धवती गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा; परन्तु जितेन्द्रिय ब्राह्मणको केवल सौ काम्बोजदेशीय घोडे दान करनेसे ही पापरहित होगा। यदि याचकको उसकी अभिलाषा अनुसार वस्तु दान कर सके और दान करके किसीके समीप प्रकाश न करे, तो एक पुरुषको दान देकर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा। एक वार सुरापान करनेसे अग्निवर्णा सुरापान करे, तो इस लोक और परलोकमें आत्माको उत्तीर्ण कर सकेगा; अथवा जलरहित स्थानमें ऊंचे पहाड़के ऊपरसे गिरने, वा जलती हुई अग्निमें प्रवेश करने अथवा महाप्रस्थान-यात्रा अर्थात् केदाराचलपर गमन करके हिमालयमें चढ़के प्राणत्याग करनेसे भी सुरापानके पापसे मुक्ति लाभ होसकती है। सुरापान करनेवाला

ब्राह्मण बृहस्पतिसव नाम यज्ञके अनुष्ठानसे भी सुरापानके पापसे छूटके फिर ब्राह्मण समाजमें मिल सकता है, ऐसा वेदमें वर्णित है। यदि प्रायश्चित्तके अनन्तर फिर सुरापानमें प्रवृत्त न होवे, तो मत्सरहीन होकर भूमिदान करनेसे ही पापरहित होसकेगा। गुरुस्त्री गमन करनेवाला पुरुष जलती हुई लोहयुक्त शिलासे लिपटके प्राणत्याग करे, तो उस पापसे मुक्त होसकता है; अथवा अपना लिङ्ग काटके ऊर्द्ध दृष्टि होकर परिव्राजक होनेपर भी गुरुपत्नीगमनके पापसे निस्तार पा सकता है। किसी प्रकारके पाप क्यों न हों, शरीर त्याग करनेसे वे सब छूट जाते हैं, परन्तु जिन सब पापोंका वर्णन किया गया है, यदि स्त्रियां उन पापोंमें लिप्त हों, तो वे एकवर्ष पर्य्यन्त आहारविहार आदि भोगोंको त्यागके इन्द्रिय संयम करनेसे ही पापरहित होसकती हैं। जो पुरुष महाव्रतके अनुष्ठान अर्थात् एक महीने पर्य्यन्त सब भोजन करनेकी वस्तुओंको और जल पीना भी परित्याग करे, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो सकता है, और सर्व्वस्वदान करनेसे भी मुक्ति लाभ कर सकेगा। अथवा गुरुको प्राणरक्षाके वास्ते युद्धमें मरनेसे भी पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होसकता है। गुरुके समीप मिथ्या व्यवहार वा अप्रिय कार्य्य करनेसे फिर उनके इच्छानुयाई प्रिय कार्य्य करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। यदि कोई पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत करनेवालोंका व्रत भङ्ग करे, तो उसे छः महीनेतक गाचर्म्म ओढ़के ब्रह्महत्याके समान व्रतका अनुष्ठान करने होगा, तब वह उस पापसे मुक्त होसकेगा। पराये धन और स्त्री हरनेवाले पुरुषको सात वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य व्रतका अनुष्ठान करना होगा, ऐसा करनेसे उसका पाप छूट सकता है; अथवा जिनको जैसी वस्तु हरण करे, उसे अनेक भांतिके उपायसे वैसी ही वस्तु प्रदान करनेसे भी पापरहित हो सकता है। परिवेत्ता और परिविति ये दोनों ही इन्द्रियसंयम करके बारह दिन प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो सकेंगे। परन्तु परिवित्त अर्थात् जेष्ठ भ्राता छोटे भाईके विवाहके अनन्तर स्त्रीका पाणिग्रहण करके यज्ञानुष्ठान करे, तो उसे भी छोटे भाईकी भांति बारह दिनतक प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त करना होगा; इससे अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ेगा; और परिवेत्ता अर्थात् छोटे भाईका जेष्ठ भ्राताके प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर फिर दो परिग्रह करना होगा, इनके बिना उसकी शुद्धि नहीं होसकेगी; इससे वह श्राद्ध आदि कर्म्मोंसे पितरोंका उद्धार भी न कर सकेगा। परन्तु इन परिवेत्ता आदिकोंकी प्रथम विवाहिता स्त्रियोंको पाप नहीं लगेगा, क्यों कि स्त्रियोंको पुरुष कृत पापोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें यदि स्त्रियांसे कोई महापाप भी होजावे, तो अन्तःकरणकी शुद्ध करनेवाले वस्तुओंके भोजनसे चातुर्मास व्रतका अनुष्ठान करनेसे ही वह पापरहित हो सकती है, धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने ऐसी ही विधि वर्णन की है। स्त्रियां यदि मन ही मन किसी पापाचरणके अनुष्ठानका सङ्कल्प करें, अथवा बिना जाने किसी पापाचारी पुरुषके सङ्ग व्यभिचारमें प्रवृत्त होवें, तो ऋतुकाल उपस्थित होनेसे वे भस्मसे मले हुए पात्रकी भांति शुद्ध होंगी। भोजन करनेके पात्र ब्राह्मण वा शूद्रोंके जूठे अथवा गौवोंके सूंघनेपर पञ्चगव्य, मट्टी, जल, भस्म, खटाई और अग्नि,—इन दश वस्तुओंसे शुद्ध होंगे, ब्राह्मणोंको चतुष्पाद धर्म्मके अनुष्ठान करनेकी विधि है, क्षत्रियोंको त्रिपाद, वैश्यको द्विपाद और शूद्रको केवल एक पाद मात्र धर्म्मके अनुष्ठानकी विधि कही गई है। प्रायश्चित्तके विषयको भी धर्म्मानुष्ठानके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आदि वर्णोंके

लाघव और गौरवके सहित विचारना उचित है। तिर्य्यग् योनि अर्थात् पशु पक्षियोंके बध करने तथा नाना भांतिके वृक्ष आदिकोंके काटने पर जन—समाजमें अपने किये हुए कर्म्मको प्रकाशित करते हुए तीन बार वायु पान करके रहनेसे ही पुरुष पाप रहित होंगे। अगम्यागमन करनेसे शरीरमें भस्म लगाके भीगे हुए वस्त्रसे अपने सब शरीरको ढाके धुनीकी भस्म रूपी शय्या पर शयन और शतरुद्री पाठ करते हुए छः महीना बितानेसे उस पापसे मुक्त होंगे। परन्तु दृष्टान्त भूत शास्त्रमें कहे हुए हेतु-पूरित बचनोंके साथ वेद बिहित वाक्योंको ऐक्यता करके सम्पूर्ण पाप कर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी होगी, अर्थात् वेदमें यदि किसी स्थलमें प्रायश्चित्त आदिके बिषयमें अस्पष्ट बिधि हो, तो शास्त्रोंमें जिस स्थलमें उस बिषयकी स्पष्ट विधि दीख पड़े; उसे युक्तिसे विचारके उस ही दृष्टान्तके अनुसार अस्पष्ट वेदबिधिको व्याख्या करके व्यवस्था देनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अज्ञानताके वशमें होकर कोई पापाचरण करे, तो वह राग द्वेष मान और अपमानसे रहित होके गायत्री मन्त्रका जप करे, पाप बिशेषमें जितने दिनों तक व्रताचरण करना होगा, उतने दिनों तक प्रतिदिन अनावृत स्थलमें खड़ा रहे, रात्रिके समय कुश पर शयन करे और दिनमें तीनवार तथा रात्रिके समयमें भी तीन बार तालावमें गमन करके वस्त्र सहित स्नान करे, स्त्री, शूद्र और पतित पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप न करे,—इसी भाति व्रताचरण करनेसे समस्त पापोंसे मुक्त होगा। मनुष्य पाप वा पुण्य जो कुछ करते हैं परलोकमें गमन करने पर अग्नि, जल और वायु आदि महा भूतोंके अधिष्ठाता देवता लोग उनके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म्मोंके साक्षी रहते हैं; इससे परलोकमें मनुष्योंको अवश्य ही शुभाशुभ कर्म्मोंके फलका भोगना पड़ता है। परन्तु पुरुषोंके किये हुए सत् अथवा असत् कर्म्मोंमेंसे जब जिसकी अधिकता होती है, तब वह कर्म्म एक दूसरेको दबाके कर्त्ताको इस ही लोकमें फल देता है। जैसे सदा पापकर्म्मोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषोंके पापकी अधिकता होकर शीघ्रही उसे पापका फल भोगना पड़ता है, वैसेही ज्ञानकी आलोचना, तपस्या और यज्ञानुष्ठानसे पुरुष पापरहित होके इस ही लोकमें शुभ कर्म्मोंके फलभागी होते हैं; इससे सदा पाप कर्म्मोंसे निवृत्त होके प्रतिदिन दान और शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है; ऐसा करनेसे उस पुरुषको पाप-कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। हे महाराज! जिन जिन पापोंकी कथा वर्णित हुई हैं उनके अनुरूप ही प्रायश्चित्तकी विधि कही गई; अब महा पातकके अतिरिक्त भक्ष्य, अभक्ष्य, पात्र और अपात्र इत्यादि नाना प्रकारके बिषयोंकी व्यवस्थाका वर्णन करता हूं, सुनो। यह जो ज्ञान और अज्ञान कृत पापोंकी बिधि कही गई है, वह बालक और अत्यन्त मूर्ख तथा पशु तुल्य अन्त्यजजातिके निमित्त नहीं है; उसे श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान वा किञ्चित ज्ञानवान पुरुषोंके बिषयमें ही समझना चाहिये। इसी भाति यदि बुद्धिमान पुरुष किसी पापकर्म्म करनेकी इच्छा करके उसके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं, तो वे अधिक पापी होंगे, और यदि अज्ञानताके कारण दैवी संयोगसे कदाचित पाप कर्म्म होजावे, तो वह उसकी लघुता समझी जाती है, इससे उसका प्रायश्चित्त भी थोड़ा होगा। जैसा पापाचरण होगा, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त करनेसे वह पाप नष्ट होता है, परन्तु शास्त्रमें कही हुई ये सम्पूर्ण विधि नास्तिक और अश्रद्धावान पुरुषोंके सम्बन्धमें नहीं कही गई हैं; इन्हें श्रद्धावान और आस्तिकोंके विषयमें ही जानना चाहिये; क्योंकि शास्त्रमें दम्भ और द्वेषयुक्त पुरुषोंके विष-

यमें कोई भी विधि नहीं दीख पड़ती ; कारण शास्त्रमें शिष्टाचार ही धर्म्म कहके वर्णित हुआ है ; इससे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इन्हीं शास्त्रोक्त विधिके अनुसार चलना उचित है। महाराज ! मैंने तुमसे पहिलेही कहा है, कि क्षत्रियधर्म्म अथवा निज प्राण रक्षाके निमित्त महादुष्ट-पुरुषोंका बध करनेसे मारनेवालेको कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता, इस ही कारण तुम भी दुष्टात्मा कौरवोंका बध करनेसे पापी नहीं हुए। यह सब जानके भी यदि तुम्हारे चित्तकी ग्लानि नहीं दूर होती है, तो शास्त्रविधिके अनुसार प्रायश्चित्त करो, परन्तु जैसे अनार्य्य लोग मनके दुःखको न सहके आत्मघाती होते हैं, वैसे आचरण करनेमें तुम्हें कदापि प्रवृत्त होना उचित नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! धर्म्मराज युधिष्ठिर तपस्वी वेदव्यास मुनिके मुखसे इन सम्पूर्ण उपदेशयुक्त बचनोंको सुनके क्षणभर चिन्ता करके उनसे कहने लगे।

३५ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह! द्विजातियोंके निमित्त कौनसे अभक्ष्य और कौनसे भक्ष्य हैं? दोनोंमें कौनसा दान बड़ा है। और उसके पात्र तथा अपात्र कैसे हैं? उसे मेरे समीप प्रकाशित करके कहिये।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज! इस विषयमें प्रजापति मनुने सिद्ध तथा ऋषियोंसे एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनो। आदिकालमें किसी समय व्रत करनेवाले ऋषियोंने इकट्ठे होकर प्रजापति विभु भगवान मनुके समीप गमन करके धर्म्म विषयमें कई एक प्रश्न किये, उन्होंने कहा, हे प्रजापति! हम लोग किस प्रकार पात्रको अन्नदान करें? पवित्रता किस प्रकार होसकती है, दान, अध्ययन, तपस्या कार्य्य और अकार्य्य क्या है? इन विषयोंको आप हम लोगोंके समीप वर्णन कीजिये।

ऋषियोंके ऐसे बचन सुनके भगवान स्वयम्भू मनु बोले, हे ऋषि लोगों! तुम लोग संक्षेप और बिस्तारके सहित यथारीतिसे धर्म्मकी कथा सुनो। जिन जिन स्थानोंमें पुण्यशीला नदिया बहती हैं और शास्त्रोंमें जिन देशोंके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं वर्णित हुए हैं, बहुतसे साधु पुरुष जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंमें जप, होम, उपवास, आत्मज्ञानका बिचार इत्यादि तपस्याके अनुष्ठानसेही लोगोंको पवित्रता होसकती है। ऊपर कहे हुए स्थानोंमें जप होम आदि शुभ कर्म्मोंके अनुष्ठानसे जिस प्रकार मनुष्योंकी पवित्रताका बिषय वर्णित हुआ है, वैसे ही कई एक पापोंके फलकी बिधिको पृथक् रूपसे वर्णन करनेकी सामान्यता समझके केवल सुवर्ण, आज्य प्राशन, स्वर्ण आदि पञ्च रत्नोंसे युक्त जलमें स्नान, देव स्थानोंके दर्शनको यात्रा तथा ब्रह्मगिरि आदि कई एक लोक पावन पर्व्वतोंके दर्शन इत्यादि कई एक वस्तुको ही पण्डितोंने सामान्य रूपसे अशुभ कर्म्मोंकी नाश करनेवाली प्रायश्चित्तकी विधि कहके वर्णनकी है, उस बिधिके अनुसार कार्य्य करनेसे पुरुष शीघ्र ही पाप कर्म्मोंसे मुक्त हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत दिनों तक जीवित रहनेकी आशा रहनेपर किसीकी भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है, यदि अज्ञानताके कारण ऐसा कार्य्य होजावे, तो उस दोषको दूर करनेके वास्ते तीन बार सप्तकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, तपस्या, अहिंसा, सत्य व्यवहार, क्षमा और देवताओंकी पूजा इत्यादि कई एकको धर्म्मका लक्षण जानना चाहिये। परन्तु कार

धर्म्म भी देशकालके अनुसार कभी कभी अधर्म्मरूपसे गिना जाता है और प्रतिग्रह, मिथ्या व्यवहार और हिंसा आदि अधर्म्मके कार्य्य भी अवस्थाविशेष अर्थात् प्राण संशय आदि स्थलोंमें धर्म्मरूपसे माने जाते हैं।

हे कुन्तीनन्दन! बुद्धिमान पुरुषोंके सम्बन्धमें धर्म्म और अधर्म्म यही दो प्रकारसे कहे गये हैं। वह धर्म्माधर्म्म फिर लौकिक और वैदिक मतके अनुसार शुभाशुभ और प्रवृत्ति निवृत्ति भेदसे दो दो अंशोंमें विभक्त है, उसमें प्रवृत्ति वैदिक और शुभाशुभ लौकिक है। प्रवृत्ति अर्थात् वेदविहित ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अनुष्ठान,—इनके फल बारबार संसारमें जन्म और मृत्यु है और निवृत्ति मार्गका फल तत्त्वज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्ति है। इसी भांतिसे लौकिकमें भी परोपकार आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जनसमाजके बीच प्रशंसा और अर्थलाभ आदि शुभ फल मिलता है, और असत कार्य्य अर्थात् जनसमाजके बीच अत्याचार करनेसे जगत्में निन्दा होती और राजदण्ड आदि अशुभ फल मिलते हैं; इससे वैदिक मार्गकी भांति लौकिकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंके फलके अनुसार धर्म्माधर्म्म जानना चाहिये। दैव इच्छा, शास्त्रमें कहे हुए कर्म्म, निज प्राणरक्षा, माता पिता, स्वामी आदि तथा पालन करनेवाला,—इनके अनुरोधसे अन्याय कार्य्य करनेसे भी शुभ फल मिलता है। परन्तु इस पृथ्वीके बीच जो श्येन यज्ञ आदि कर्म्मोंके फलकी भांति शीघ्र ही फलित होते हैं; अथवा जो उत्तर कालमें फलित होसकेगा, कहके सन्देहास्पद होगा, उसे केवल लोकानुरोधसे किसी मनुष्यको लक्ष्य करके वैसा अनिष्ट कार्य्य करनेसे कर्त्ताको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। यदि कोई पुरुष क्रोध वा मोहके वशमें होके निज मनकी सन्तुष्टि वा असन्तुष्टि करनेवाले कार्य्यको करे, तो यह शास्त्रमें कहे हुए प्रमाण और युक्तिके अनुसार शरीरको सुखानेवाले उपवास आदि प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; अथवा हविष्यान्न भोजन, आत्माको पवित्र करनेवाले मन्त्रोंके जप और तीर्थाटन करनेसे भी उस पापसे मुक्त होसकेगा। राजा यदि अज्ञान और क्रोधके वशमें होकर दण्ड चलावे, तो एकरात्रि और पुरोहित त्यागनेपर तीन रात्रि उपवास करके पवित्र होसकता है। कोई पुरुष यदि पुत्रादिकी मृत्युसे शोकित होके शस्त्र आदिसे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होके भी कृतकार्य्य न होसके, तो वह तीन दिन उपवास व्रत करनेसे आत्महत्या-प्रवृत्ति दोषसे मुक्त होगा, शास्त्रमें ऐसी ही विधि वर्णित है। जो लोग सब भांतिसे ब्राह्मणत्वादि जातिधर्म्म, गृहस्थी आदि आश्रमोंके धर्म्म, देशाचार और कुलाचारको त्यागते हैं, उन लोगोंको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार नहीं है।

हे ऋषिलोगो! मैंने जो सब व्यवस्था कही है, उसे वैसे ही समझो, परन्तु धर्म्मविषयमें कोई संशय उत्पन्न होनेपर दश जन वेद शास्त्रोंके जाननेवाले अथवा धर्म्मशास्त्र जाननेवाले तीन पण्डित जैसी व्यवस्था दें, उसे ही धर्म्म कहके ग्रहण करना होगा। बैल, मिट्टी, विष, मलमूत्रके कीड़े, चींटी आदि द्विजातियोंके निमित्त अभक्ष्य हैं। शल्करहित मछरी और कछुएके अतिरिक्त मेढक आदि चार पांववाले जलजन्तुओंका भक्षण भी निषेध है। जलमें तैरनेमें समर्थ बगुले, गरुड़, भाष, बाज, कौवे, चकवे, मद्गू, गिद्ध हंस और उल्लू आदि पक्षी भक्षणीय नहीं हैं; इनके अतिरिक्त दांतवाले, मांसभक्षी और चार पांववाले पक्षी भी द्विजातियोंके अभक्ष्य जानो। जिनके दोनों ओर दांत हैं और चार दांतवाले पक्षियोंका मांस भी नहीं खाना चाहिये। मानुषी, हरिनी, ऊंटनी, भेड़ी और गदही आदि पशुओंका दूध ब्राह्मणोंको नहीं पीना चाहिये। नवप्रसूता गौका

दूध भी दशदिनके बिना बीते पीना उचित नहीं है। नौकेपरका, नवप्रसूता स्त्रीका बनाया हुआ और दश दिनके बिना बीते नवप्रसूता गौके दूधसेका बना हुआ पायस आदि भोजन करना उचित नहीं है। राजाके अन्नखानेसे तेज, शूद्रके घर भोजन करनेसे ब्रह्मपर्च्चस अर्थात् वेदाध्ययनकी प्रतिभा, स्वर्णकार और अवीरा स्त्रीके घर भोजन करनेसे आयुक्षीण होती है। वार्द्धषिक अर्थात् व्याज ग्रहण करनेवालोंका अन्न मलरूपी और गनिकाके अन्न खानेसे वीर्य्यह्रास होता है। जो निजपत्नी आदि दुश्चरित्रवाली स्त्रियोंके उपपतियोंको देखके क्षमा करते है और जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत हैं, उनका अन्न भोजन निषेध है। यज्ञके निमित्त पशु बध होते हो और होम आदिके बिना समाप्त हुए यज्ञ करनेवाले पुरुषका अन्न भोजन न करे। सोमरस बेचनेवाले, सूम, तक्ष, व्यभिचारिणी, चिकित्सा करनेवाले और नगर रक्षकका अन्न भी भक्षणीय नहीं है। इसी भांति परिवित्त, स्तुति करनेवाले और जुआरी पुरुषोंका अन्न भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। गणान्न और ग्राम-दूषित पुरुषका भी अन्न ग्रहण करना उचित नहीं है। पर्य्युषित और बायें हाथसे ग्रहण किये हुए भोजनको खाना नही चाहिये जो निज आत्मीय पुरुषोंको न देकर अपने ही वास्ते खाने योग्य वस्तुवोंको संग्रह करता है, उसका तथा सुरासे स्पर्श हुआ अन्न और जूठा भोजन नहीं करना चाहिये। पिष्टक, ऊखके रस और शाक बिगड़नेसे त्यागके योग्य हैं। सत्तू, भृष्टयव और दहीसे युक्त सत्तू भी बहुत समय बीतने पर खाना उचित नहीं है। दूध युक्त पायस, कृशरान्न अर्थात् तिलयुक्त अन्न, पिष्टक और मांस देवताओंके निमित्त तैयार हुए हो, तो ग्रहण करना उचित नही है। हे महाराज ! गृहमेधी ब्राह्मण आदि जो कुछ भपेय और भभ्यच वस्तु हैं, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया, परन्तु देवता, ऋषि, पितर, अतिथि और प्रात्यहिक गृह देवताकी पूजा अर्च्चना करके अनिसिद्ध वस्तुवोंको भोजन करना उचित है। इसी भांति गृहस्थ-मनुष्य प्रवाजित चारों आश्रमोंकी भांति गृहमें ही पापरहित होके रह सकते हैं, अर्थात् स्त्रीके सहित ऊपर कहे हुए सदाचारसे युक्त होकर गृहस्थ पुरुष गृहस्थाश्रममें ही धर्म्म लाभ करनेमें समर्थ होंगे। धर्म्मात्मा पुरुषको यशकी अभिलाषा वा भयके कारण दान करना नहीं चाहिये। और नाचने गानेके व्यवसायी, भांड़, मतवाले उन्मत्त, चोर निन्दक, बहिरे, अङ्गहीन, बदसूरत, बौने, दुर्ज्जन, नीचकुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुष, उपकारी और जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि ब्रतोंसे हीन हैं, उन्हें दान देना उचित नहीं है। आतियके अतिरिक्त वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको भी दान देना निषेध है, क्योंकि वैसा दान और प्रतिग्रह ग्रहण करना अन्याय कार्य्य कहा गया है, इससे वैसे दान देने और लेनेवाले दोनो ही अनर्थमें फंसते हैं। जैसे खदिर वा शिला ग्रहण करके समुद्र तरनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके सब उद्यम निष्फल होते और उन्हें अवश्य ही जलमें डूबना पड़ता है, वैसे ही दाता और ग्रहीता दोनों ही पापरूपी समुद्रमें डूबते है। भीगे काष्टकी अग्निकी भांति तपस्या स्वाध्याय और सच्चरित्रतासे हीन ब्राह्मणको तेजरहित जानना चाहिये, इससे ऐसे ब्राह्मणको दानदेना निष्फल है। जैसे कपाल पात्रमें स्थित जल और कुत्तेके चमड़ेमें रखनेसे दूध आधार दोषसे अपवित्र होता हैं, वैसेही सदाचार रहित ब्राह्मणोंके निकट वेदकी भी प्रतिभा नहीं प्राप्त होती। मन्त्रहीन, ब्रत रहित, शास्त्र न जाननेवाले और असूयायुक्त लोगोंको केवल दयाके वशमें होकर दान दिया जा सकता है, अर्थात् दीन, भूखे, आतुर, मन्त्रहीन और ब्रतहीन आदि पुरुषोंको दान देनेके स

चार वा धर्म्म है ?„ ऐसा विचारके दान करना उचित नहीं है ; उन्हें शास्त्रादिसे पीड़ित न करके केवल दया युक्त होके दान दिया जा सकता है ; वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको दान देनेसे वह निष्फल हो जाता है,-ऐसा ही शास्त्रमें कहा गया है ; विशेष करके अपात्रको दान देनेसे दान करनेवालेको पापमें फंसना होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। काठके बने हुए हाथी, चमड़ेसे बने हुए मृग और वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मण ये तीनों नाम मात्रके ही हैं ; इनसे कोई भी कार्य्य पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे स्त्रियोंके और बन्ध्या स्त्रीसे पुरुषोंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते ; उसी भांति वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मणोंसे भी मनुष्योंके कार्य्य नहीं पूर्ण होते। और पङ्खरहित पक्षी, शस्यहीन धान्य, जलरहित कूए और मन्त्रज्ञानसे रहित ब्राह्मणोंको एक समान ही जानना चाहिये। अधिक क्या कहा जावे, भस्ममें आहुति देनेकी भांति मूर्ख ब्राह्मणको दान देना सब भांति निष्फल होता है। मूर्ख शत्रुस्वरूप है, क्यों कि वह अर्थापहारी और देवता पितरोंके उद्देश्यसे दिये हुए हव्य कव्यका नाशक है, इससे मूर्खको इस लोक और परलोकमें कहीं भी कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ प्रश्न किये, मैंने संक्षेपसे उन सब प्रश्नोंका उत्तर यथा रीतिसे वर्णन किया है ; यह महत् वृत्तान्त आर्योंको अवश्य सुनना चाहिये ।

२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ऋषि सत्तम भगवन् ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सब धर्म्म विशेष करके राजधर्म्म और आपत्काल उपस्थित होने पर मनुष्योंको किस प्रकारकी नीति अवलम्बन करना उचित है और धर्म्मयुक्त मार्गसे गमन करते हुए किस प्रकार पृथ्वी जय कर सकूंगा,— इस सम्पूर्ण वृत्तान्तको विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। भक्ष्याभक्ष्य और उपवास आदि महत् कौतूहलसे युक्त आपके कहे हुए प्रायश्चित्तकी कथा मेरे चित्तको अत्यन्त ही आनन्दित कर रही है। परन्तु राज्य पालन और धर्म्म आचरण इन दोनोंका आपसमें सदा विरुद्ध भाव है, इससे एक ही पुरुषके द्वारा ये दोनों आपसमें-विरुद्ध भावोंसे युक्त कार्य्य कैसे अनुष्ठित हो सकते हैं ? इस हीकी चिन्ता करके मेरा चित्त बार बार मोहित होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय ! वेदवादियोंमें अग्रणी श्रीवेदव्यास मुनि धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनके सम्पूर्ण ज्ञान तत्वके जाननेवाले प्राचीन ऋषि नारद मुनिकी ओर देखकर युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! यदि तुम्हें भली भांति सम्पूर्ण धर्म्म तत्व जाननेकी इच्छा हुई हो, तो तुम कुरुपितामह बूढ़े भीष्मके निकट गमन करो। धर्म्म रहस्यके विषयमें तुम्हारे चित्तमें जो कुछ सन्देह है, सब धर्म्मोंके जाननेवाले गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हारी शङ्का दूर करनेमें समर्थ होंगे। महाराज ! स्वर्ग लोकमें जो त्रिपथ गामिनी होके बहरही है, उसही गङ्गादेवीसे जिसकी उत्पत्ति हुई है उस गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मने इन्द्रआदि देवताओं और बृहस्पति आदि देवर्षियोंको प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक भांतिसे उनको पूजा अर्च्चा करके सब राजनीति विद्या सीखी थी। दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य और देवतोंके गुरु बृहस्पति जिन सब शास्त्र और धर्म्मतत्वोंको जानते हैं, कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उन दोनों महात्माओंसे वह सब विद्या प्राप्त की है। विशेष करके उस महाबाहु भीष्मने व्रत करके भृगुकुलनन्दन परशुराम, शुक्राचार्य्य, च्यवन और महात्मा वशि-

छके निकट साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़ा था। पहिले उन्होंने अध्यात्म विद्याके सारतत्त्वको जाननेवाले ब्रह्माके जेठे पुत्र महातेजस्वी सनत्कुमारके समीप सब अध्यात्मविद्या सीखी थी और मार्कण्डेय मुनिसे मुखसे समस्त यतिधर्म्म भी श्रवण किया था। इसके अतिरिक्त उस पुरुषश्रेष्ठने इन्द्र और परशुरामजीसे सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या सीखी थी। जिन्होंने मनुष्य लोकमें जन्म लेकर भी इच्छामरण प्राप्त किया है, और अपत्यहीन होनेपर भी जिसके पुण्यका प्रभाव सब लोकोंमें विख्यात हुआ है, अधिक क्या कहा जावे, पवित्रात्मा ऋषि लोग जिसके निकट सभासद होकर विराजमान रहते थे, और ज्ञान तथा जानने योग्य वस्तुओंमें जिसे कुछ भी अविदित नहीं है, वही सूक्ष्म धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाले धर्म्मज्ञान विशारद भीष्म तुम्हें धर्म्म उपदेश करेंगे, परन्तु उस महात्माके प्राणत्याग होनेके पहिले ही तुम उनके समीप गमन करो।

इतनी कथा सुनके महाबुद्धिमान दीर्घदर्शी राजा युधिष्ठिर ज्ञानियोंमें अग्रणी सत्यवती-पुत्र भगवान वेदव्यास मुनिसे बोले, हे महर्षि ! मैंने रोएंको खड़े करनेवाले अत्यन्त वृहत् स्वजन-हत्या करके सब लोगोंके समीप पृथ्वीनाशक तथा अपराधी कहके गिना गया हूं, विशेष करके भीष्म पितामह रणभूमिमें सरल भावसे युद्ध कर रहे थे, तौभी मैंने कपट व्यवहारके सहित उनका वध कराया है, इससे अब मैं क्या कहके उनके समीप जाके धर्म्मविषयमें प्रश्न करनेमें समर्थ हूंगा?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके यदुकुल श्रेष्ठ महाबुद्धिमान श्रीकृष्णचन्द्र चारों वर्णोंकी प्रजाके हितकी अभिलाषा करके बोले, महाराज ! बीते हुए शोकके विषयमें आपको अब बारम्बार अत्यन्त शोक प्रकाश करना उचित नहीं है। भगवान वेदव्यास मुनिने जो कुछ वचन कहे, उसके अनुष्ठानमें यत्नवान होइये। जैसे ग्रीष्मकालके अन्तमें जल चाहनेवाले प्राणी जलके निमित्त बादलोंकी उपासना करते हैं, वैसे ही आपके ये महाबलवान भाई और ब्राह्मणलोग आपकी उपासना कर रहे हैं, यह देखिये, युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा और कुरु-जाङ्गलवासी राष्ट्रकी चारों वर्णोंकी सभामें एकत्रित हैं। इससे आप इन लोगों महात्मा ब्राह्मणों, हम सब कोई सुहृद मित्रों, द्रौपदीके अनुरोध और महातेजस्वी वेदव्यास मुनिकी आज्ञानुसार इस प्रियकार्य्यका अनुष्ठान कीजिये, हे शत्रुनाशन ! आप यदि भीष्म पितामहके निकट उपदेश ग्रहण करेंगे, तो जगत्का कल्याण होगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषसिंह महाबुद्धिमान राजीवलोचन युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनके सबके हितकी इच्छा करके उठे, उन्होंने खुद श्रीकृष्ण, अर्ज्जुन महर्षि वेदव्यास और देवस्थान आदि ऋषियोंके विनीत वचनोंसे प्रबोधित होकर धीरज धरके अपना मानसिक दुःख सन्ताप परित्याग किया। पाण्डुपुत्र महायशस्वी राजा युधिष्ठिर वेदवाक्य तथा वेदोंके अर्थ विचारवाले ग्रन्थ तथा मीमांसा और नीति-शास्त्रके जाननेवाले थे; इससे उन्होंने वेद-शास्त्रके सब वचनोंकी निश्चय करके अपने चित्तको शान्त किया; और नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति ऋषियों और भाइयोंसे घिरके अन्धराज धृतराष्ट्रको आगे करके हस्तिनापुर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। धर्म्म जाननेवाले कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिरने राज नगरीमें प्रवेश करनेकी इच्छा करके पहिले देवता और उहस्रों ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस समय आज्ञा पाते ही उस ही स्थलमें शुभ लक्षणोंसे युक्त पाण्डुर वर्ण सोलह बैल जुते हुए उत्तम २ कम्बल और मलिनदुक्त एक सफेद रथ

लाया गया अनन्तर पवित्र बेदमन्त्रोंसे वह रथ पूजित हुआ। तब राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उस रथपर चढ़े, जैसे भगवान चन्द्रमा अपने अमृतमय रथपर चढ़ते हैं। रथपर चढ़नेके समय बन्दीजन चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे। महापराक्रमी भीमसेनने उस रथकी सारथी होके घोड़ोंकी बागडोर ग्रहणकी और अर्जुन मणि रत्नोंसे भूषित श्वेतछत्र ग्रहण करके राजा युधिष्ठिरके पीछे खड़े हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उस रथके ऊपर मोतियोंकी माला शोभित जब उस श्वेतछत्रकी ग्रहण करके महात्मा अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरके सिरपर धारण किया, तब उस समय बोध हुआ, मानो आकाश मण्डलमें तारापुञ्जसे युक्त एक श्वेत मेघ उदित हुआ है, अनन्तर माद्रीपुत्र महावीर नकुल सहदेव चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान अनेक भांतिकी मणिरत्नोंसे भूषित दो सफेद चवंर ग्रहण करके दोनो ओर खड़े होकर डुलाने लगे। जिस समय उन पांचो भाइयोंने अनेक भांतिके आभूषणोंसे भूषित होकर रथपर चढ़के हस्तिनापुरकी ओर गमन किया, उस समय वह रथ सब प्राणियोंकी पञ्चभूत मय देहकी भांति बोध होने लगा। अनन्तर युयुत्सु मनके समान वेगगामी घोड़ोंके रथपर चढ़कर महाराज युधिष्ठिरके अनुगामी हुए; और श्रीकृष्ण सात्यकिके सहित शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त सुवर्णमय सफेद रथपर चढ़के कौरवोंके पीछे पीछे गमन करने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र गान्धारीके सहित पालकीमें चढ़के धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे आगे गमन करने लगे। तिसके पीछे कुन्ती द्रौपदी और अन्य कौरवोंकी स्त्रियां नाना भांतिकी सवारियोंमें चढ़के विदुरके सङ्ग चलीं।

अनन्तर अनेक भांति अस्त्र और भूषणोंसे भूषित रथी, गजपति, घुड़सवार आदि सेना उनके पीछे पीछे गमन करने लगी। उस समय बैतालिक और सूत, मागध, सुललित भाषामें स्तुति पाठ करते हुए राजाओंके संग हस्तिनापुरकी ओर गमन करने लगे। महाराज! राजा युधिष्ठिर इस ही भांति जब चतुरंगिनी सेना और स्वजनोंमें घिरकर गमन करने लगे, उस समय सब मार्गमें बहुत भीड़ इकट्ठी होगई और वे सब लोग आनन्दित और हर्षित होके आपसमें वार्त्तालाप करते थे; उससे उस समय से महाकोलाहल सुनाई देता था। पृथापुत्र राजा युधिष्ठिर नगरमें आवेंगे, इस समाचारको सुनके नगरवासियोंने पहिलेसे ही नगरको विधिपूर्वक सज्जित कर रखा था। उस समय नगरके बीच मार्गोंमें फूलोंसे सब भूमि इस प्रकार सजाई गई थी, कि सब मार्ग पुष्पमय बोध होते थे; उस समय सब राजमार्ग धूपदीपसे युक्त और ध्वजा पताकासे परिपूरित थे; राजनगरीमें रहनेवाले कर्म्मचारियोंने फूल माला तथा प्रियंग आदि सुगन्धित वस्तुओंसे गृहोंको सज्जित कर रखा था। नगरके दरवाजे तथा समस्त पुरवासियोंके द्वारपर जलयुक्त धातुके नवीन कलश दीख पड़ते थे; और जगह जगह सुन्दर अङ्गोंसे युक्त महासुन्दरी मनको हरनेवाली कन्यायें खड़ी की गई थीं। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित पुरवासियोंके मङ्गलजनक वचन सुनते हुए ऊपर कहे हुए शोभासे शोभित और मङ्गल लक्षणोंसे युक्त नगरके भीतर प्रवेश किया।

३७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पृथापुत्रोंको नगरमें प्रवेश करते सुनकर अनगिनत पुरवासी उनके दर्शनकी लालसासे इकट्ठे हुए। उस समय राजमार्ग और चौतरे इस प्रकार शोभित हुए

थे, जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र उमड़ता है। राज मार्गके दोनों ओर नाना भांतिके अलङ्कारोंसे शोभित बड़ी२ अटारियां स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण होकर इस प्रकार बोध होती थीं, मानो उनके भारसे हिल रही हैं। वे सब स्त्रिया लज्जासे युक्त तथा मृदुस्वरसे द्रौपदीको कहती थीं,—हे पाञ्चाली! हे कल्याणि! महर्षियोंकी उपासना करनेवाली गौतमीकी भांति तुम सदा सर्व्वदा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी उपासना करती हो, तुम्हारे व्रताचरण आदि सब कर्म्म अमोघ हैं, इससे तुम धन्य हो। ऐसा वचन कहके युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवकी भी प्रशंसा करने लगीं। उन लोगोंके उस प्रीति और प्रेमसे पूर्ण प्रशंसासूचक आपसकी वार्त्तालापसे वे सब अटारियां परिपूरित हो रही थीं। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने राजमार्गको अतिक्रम करके अनेक अलङ्कारोंसे भूषित राजपुरीमें प्रवेश किया। उस समय सब मनुष्य तथा पुरवासी लोग उनके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगे, हे शत्रुनाशन! हे राजेन्द्र! भाग्यसे ही आपने विजय लाभ करके फिर राज्य प्राप्त किया है, यह सब आपके धर्म्मप्रभावसे ही हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, इस समय आप हम लोगोंके राजा होकर देवराज इन्द्रकी भांति प्रजाको पालन करते हुए एक सौ वर्ष पर्य्यन्त राज्य भोग कीजिये, इसी प्रकार कानोंको सुख देनेवाले वचन सब कोई कहने लगे। श्रीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर राजनगरीके बीच प्रजाओंके मङ्गलमय वचनोंसे पूजित होके और ब्राह्मणोंके आशीर्व्वादको सुनते तथा पुरवासी और राजसेवकोंके जय शब्दसे सत्कृत होते हुए राजभवनकी बाहिरी कक्षामें प्रवेश करनेके अनन्तर रथसे उतरे और भीतर प्रवेश करके अनेक भांतिकी मणि रत्न और सुगन्धित पुष्पमालासे शोभित मन्दिरमें प्रतिष्ठित देवमूर्त्तियोंके दर्शन करके धूप दीप, फलपुष्प नैवेद्यसे उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर मांगलिक वस्तुओंको हाथमें ग्रहण किये हुए कितने ही महात्मा ब्राह्मणोंका दर्शन किया। उस समय महायशस्वी राजा युधिष्ठिर आशीर्व्वाद देनेवाले ब्राह्मणोंके बीचमें घिरके इस प्रकार शोभित हुए, जैसे तारापुञ्जके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है अनन्तर उन्होंने गुरु धौम्य और जेठे पिता धृतराष्ट्रको सत्कृत कर ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके उन लोगोंसे कहने लगे, कि आप लोगोंकी क्या इच्छा है, आपकी क्या अभिलाषा है? इसी भांति प्रत्येक ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हुए बहुत सा सुवर्ण, रत्न, वस्त्र, मनोहर मोदक और गऊ दान कर हर एक ब्राह्मणको सन्तुष्ट करके उनकी पूजा की। उस समय सम्पूर्ण दर्शक तथा पुरवासी लोग उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंके पदपदाक्षरोंसे युक्त मनोहर आशीर्व्वाद वचनोंका एकबारगी हंसनिनादकी भांति सुनने लगे। महाराज! सुहृदमित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उन पुण्यात्मा ब्राह्मणोंका आशीर्व्वाद शब्द एकबारगी इस प्रकार समुत्थित होकर ऐसा बोध हुआ, कि उस शब्दसे आकाशमण्डल गूंज उठा। उस समय अनेक पुरुषोंके जयजयकार, शङ्ख और नगाड़ोंके शब्द, मिलके तुमुल शब्द सुनाई देने लगा। कुछ समयके अनन्तर जब पुरवासी और ब्राह्मणोंका शब्द बन्द होकर सन्नाटा छागया, तब उस समय दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक राक्षस मायाप्रभावसे रुद्राक्षकी माला, शिखा और त्रिदण्ड धारण कर भिक्षुक ब्राह्मणका वेष बनाके उस स्थानमें आके उपस्थित हुआ। वह दुष्ट महात्मा पाण्डवोंके अनिष्टकी अभिलाषा करके लज्जा और भयरहित होकर राजाओंकी मण्डली तथा ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके किसीसे भी कुछ वार्त्तालाप न करके एकबारगी राजा युधिष्ठिरके समीप आके उन

महाराज! ये सब ब्राह्मण लोग जो मेरे ऊपर धिक्कार शब्दका प्रयोग कर रहे हैं, वह केवल आरोपित बचन मात्र है, प्रत्युत वे आपको कह रहे हैं, कि "तुम ज्ञाति हत्या करनेवाले, दुष्ट राजा हो, इससे तुम्हें धिक्कार है!" हे कुन्तीनन्दन! स्वजनोंका बध करके तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं है, विशेष करके गुरुहत्या करने पर जीनेसे मरना ही उत्तम है। ब्राह्मण लोग उस दुष्ट राक्षसके बचनको सुनके अत्यन्त दुखित होके चिल्लाने लगे, उन ब्राह्मणोंने और स्वयं धर्म्मराजने भी लज्जासे अत्यन्त व्याकुल होकर कुछ समय तक शिर नीचा करके मौनावलम्बन किया। अनन्तर युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण लोगो! मैं विनयपूर्व्वक आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, कि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न होइये; मैं स्वयं सुख भोगके वास्ते राज्यग्रहणकी अभिलाषा नहीं करता हूं; परन्तु चिरकालसे दुखित अपने इन भाइयोंके वास्ते राज्यग्रहण करता हूं; इससे आप लोग अब मेरे विषयमें धिक्कार प्रदान न कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्राह्मण लोग राजा युधिष्ठिरको कातरता युक्त बचन सुनके बोले, महाराज! हम लोगोंने ये सब बचन नहीं कहे हैं, वरन अब भी कहते हैं, कि आपको श्री बढ़े। उन वेद जाननेवाले तपस्वी महात्मा ब्राह्मणोंने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा बचन कहके उस कपट वेषवाले ब्राह्मणके विषयको जाननेकी कोशिश की, और घोरध्यान बलसे क्षणमात्रमें सब जान लिया, अर्थात् उसे चार्व्वाक राक्षस समझा। तब वे लोग युधिष्ठिरको सम्बोधन करके बोले, महाराज! हम लोगोंने कोई विरुद्ध बचन नहीं कहा, इससे आपको मानसिक शोक और दुःख न होवे, आप भाइयोंके सहित बहुत दिनों तक जीवित रहके परम सुखके सहित राज्य भोग कीजिये। इस दुष्टात्माको हमने ज्ञानसे पहचान लिया है, यह दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक नामका राक्षस है: दुर्य्योधनके हितकी अभिलाषासे परिव्राजकके वेषसे आपके निकट आके तुम्हारे अनिष्टकी इच्छासे ऐसा बचन कह रहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उन सब पवित्रात्मा ब्राह्मणोंने राजा युधिष्ठिरसे ऐसा बचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधित होकर उस पापाचारी राक्षसकी अनेक भांतिसे निन्दा करके हुङ्कारसे ही उसे भस्म कर दिया। तब चार्व्वाक राक्षस उस समय ब्राह्मणोंके तेज प्रभावसे इस प्रकार भस्म होगया, जैसे इन्द्रके बज्रप्रभावसे नवीन अंकुरोंसे युक्त वृक्ष भस्म होजाते हैं। जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार राक्षसका नाश किया, तब धर्म्मराज युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित अत्यन्त आनन्दित होके उन महात्मा ब्राह्मणोंकी बिधि पूर्व्वक पूजाकी और ब्राह्मणोंने भी राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

३८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सर्व्वदर्शी देवकीनन्दन जनार्द्दन कृष्ण भाइयोंके सहित बैठे हुए धर्म्मराजसे बोले, महाराज। इस पृथ्वीमण्डलके बीच ब्राह्मणोंकी ही सब भांतिसे पूजा करनी हम लोगोंको उचित है; क्यों कि ब्राह्मणोंके समीप सदा सर्व्वदा विनीत भावसे रहनेसे वे लोग प्रसन्न होके विनयी भक्तोंकी सब कामना सिद्ध करते हैं। जो दुष्टात्मा अभिमानमें मतवाले होके ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करते हैं, वे उस ही समय उनके मध्यमें बज्रकी अग्नि सदृश शापरूपी अग्निमें भस्म होजाते हैं, इस ही कारण ब्राह्मण लोग इस जगत्के बीच याजकश्च और भूदेव कहके प्रसिद्ध हैं। महाराज! मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये।

सतयुगमें चार्व्वाक राक्षसने बदरिकाश्रममें स्थित होके महाघोर तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न किया था। जब पितामह ब्रह्मा वर देनेके वास्ते उसके समीप उपस्थित हुए उस समय उसने यह वर मांगा था, कि "किसी प्राणीसे भी मुझे भय उत्पन्न न होवे,"—जगत्पति ब्रह्माने उसकी प्रार्थना सुनके उसे वरदान किया, कि, "किसी प्राणीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा, परन्तु ब्राह्मणोंका अवमान ना करनेसे उस ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।" वह पापी राक्षस ब्रह्माके समीप वर पाके अत्यन्त पराक्रमी तीव्र कर्म्म करनेवाला और महाबलवान होके इस जगत्के सब प्राणियोंको दुखित करनेमें प्रवृत्त हुआ। देवताओंने क्रमसे चार्व्वाक राक्षसके उपद्रवसे व्याकुल तथा दुखित हो ब्रह्माके निकट गमन कर उसके वधके निमित्त अनुरोध किया। उस समय अव्ययदेव ब्रह्माने उन देवताओंसे कहा, हे देवतो! शीघ्र ही उस दुराचारी राक्षसकी जिस भांति मृत्यु होगी, मैंने वह उपाय स्थिर कर रक्खा है, सुनो। मनुष्य लोकमें राजा दुर्य्योधन चार्व्वाक राक्षसका मित्र होगा उस ही मित्रता स्नेहसे बद्ध होकर वह ब्राह्मणोंका अपमान करेगा, उससे वाक्य बल सम्पत्तिसे युक्त ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके उस पापी चार्व्वाकको शापरूपी अग्निसे भस्म कर देंगे। उस समय देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके निश्चिन्त होके अपने स्थानोंपर गये। हे राजेन्द्र! इस ही कारणसे वह दुष्टात्मा चार्व्वाक राक्षस आज ब्राह्मणोंके तेजप्रभावसे भस्म होगया, इससे आप उसके वास्ते कुछ भी शोक न कीजिये और अपने मृत स्वजनोंके वास्ते भी अब आप चित्तको ग्लानियुक्त न कीजिये, क्यों कि वे वीरोंमें मुख्य महात्मा क्षत्रिय युद्धयुद्धमें मरके स्वर्गलोकमें गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु नाश, प्रजापालन और ब्राह्मणोंकी पूजा यज्ञ आदि अपने कर्त्तव्य कर्म्मोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाइये।

३९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके वचनको सुनके मानसिक चिन्ता तथा दुःखको दूर किया और पूर्व्व और मुंह करके सुवर्णके आसनपर बैठे। शत्रुनाशन कृष्ण और सात्यकी राजा युधिष्ठिरके सम्मुखमें ही प्रकाशमान स्वर्णासन पर बैठ गये। महात्मा भीमसेन और अर्ज्जुन राजा युधिष्ठिरको बीचमें करके उनके बगलमें ही मणिरत्नोंसे जटिल सुन्दर पीठासनोंपर बैठे; पाण्डवोंकी माता कुन्तीदेवी नकुल सहदेवको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित हाथीदांतके सफेद आसनपर बैठीं। राजा दुर्य्योधनके पुरोहित सुधर्म्मा, पाण्डवपुरोहित धौम्य मुनि, राजा धृतराष्ट्र और विदुर आदि सब कोई अग्निके समान प्रकाशमान आसनोंपर पृथक् पृथक् बैठ गये। यशस्विनी गान्धारी, सञ्जय और युयुत्सु राजा धृतराष्ट्रके समीपमें ही बैठे। तिसके अनन्तर धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरने सफेद पुष्प, भूमि, सोना, चांदी, मणि, अक्षत और सब भांतिकी उत्तम वस्तुओंसे अर्च्चित देवता पीठ आदि स्पर्श किया। उस ही समय सब प्रजा तथा पुरवासियोंने अनेक भांतिके मणि, रत्न मृत्तिका, सुवर्ण और अनेक भांतिकी माङ्गलिक वस्तुओंको ग्रहण करके पुरोहितके सङ्ग आके राजदर्शन किया। तिसके अनन्तर सोना, चांदी और काठमय पृथ्वीकी मूर्त्ति, पूर्ण घड़े, फूल, माला कुश, दूध, दही आदि वस्तु और पीपल पलाश, सेमल, आम तथा उडुम्बर आदि काठोंके बने हुए स्रुवे सुवर्ण भूषित शङ्ख, और मधु, घृत आदि अन्य माङ्गलिक वस्तु उस स्थलमें लाके [illegible] अनन्तर पाण्डवोंके पुरोहित

मुनिने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पूर्व्व और उत्तर भागमें क्रमसे नीची करके सब शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर वेदी तैयार करके उसके निकटमें ही जलती हुई अग्निके समान दृढ़ चरण अर्थात् पायासे युक्त ऊपरके हिस्सेमें व्याघ्र चर्म्मसे भूषित श्वेतवर्ण सर्व्वभद्र नाम आसन पर राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीको बैठाकर विहित मन्त्रोंको उच्चारण करते हुए अग्निमें आहुति देनेमें प्रवृत्त हुए। होमकार्य्य समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने उठके लोकपूजित शङ्ख ग्रहण करके कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरको अभिषिक्त किया। अनन्तर कृष्णकी आज्ञासे राजा धृतराष्ट्र और सब प्रजा जल लेके राजा युधिष्ठिरके ऊपर अभिषेचन करनेमें प्रवृत्त हुई; परन्तु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पाञ्चजन्य शङ्खके जलसे अभिषिक्त होकर अत्यन्त दर्शनीय हुए। उसही समय ढोल नगाड़े आदि बाजा बजने लगी।

तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने प्रजाके दिये हुए उपहार आदि ग्रहण करके बहुतसा धन देकर उन लोगोंको सत्कृत किया, और वेद पढ़नेवाले धृति तथा शीलसे युक्त स्वस्तिवाचक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्णमुद्रा दान किया। ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्व्वक हंसोंकी भांति मधुर शब्दसे जय हो; जय हो, स्वस्ति स्वस्ति,—हे महाबाहो! भाग्यसे ही तुम्हारी विजय हुई है, हे महा तेजस्विन्! तुमने प्रारब्धहीसे पराक्रम द्वारा स्वविषय धर्म्म लाभ किया है; प्रारब्धसे ही गाण्डीव धनुर्द्धारी अर्जुन, भीम, नकुल सहदेव और तुम शत्रुओंको पराजित करके वैसे भयङ्कर संग्राममें मुक्त हुए हो, इस समय अब जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म करना बाकी है, उसके अनुष्ठानमें शीघ्र प्रवृत्त हो जाओ। इसी भांति आशीर्व्वाद युक्त वचन कहते हुए सब कोई राजा युधिष्ठिरकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगी। धर्म्मराज युधिष्ठिरने उन साधुओंसे इस प्रकार पूजित होकर सुहृदोंके सहित बहुत बड़ेभारी राज्य भारको ग्रहण किया।

४० अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर प्रजा और ब्राह्मणोंके देशकालके अनुसार सब वचन सुनके बोले, हे ब्राह्मण लोगो! पाण्डुपुत्र धन्य हैं, क्योंकि चाहे सत्य हो, चाहे मिथ्याही हो, आप लोग उपस्थित होके उनके गुणोंको वर्णन कर रहे हैं। विशेष करके आप लोग जब मत्सरताहीन होके हम लोगोंको गुण-सम्पन्न कहते हैं, तब यह बोध होता है कि हम निश्चय ही आप लोगोंके कृपापात्र हैं। देखिये, ये जो हमारे जेठे पिता महाराज धृतराष्ट्र हैं, वह हम लोगोंके पास देवता स्वरूप हैं, इससे आप लोग यदि मेरे प्रियकार्य्य तथा कल्याणके अभिलाषी हैं, तो इनके प्रियकार्य्योंके करनेमें नियुक्त रहियेगा। अधिक क्या कहूं, मैं जो इस प्रकार स्वजनोंको मारके भी अबतक जीवन धारण कर रहा हूं, वह केवल आलस रहित होके इनकी सेवा टहलके निमित्त ही समझियेगा। मैं यदि आप लोगों और सुहृद पुरुषोंका कृपा पात्र होऊं, तो आप लोग धृतराष्ट्रके सङ्ग पहिलेकी ही भांति व्यवहार कीजिये। ये हमारे, आपके और जगत्के स्वामी हैं, यह सब पृथ्वी और पाण्डव लोग इनके अधीन हैं। मैंने जो कुछ कहा, आप लोग मेरे उस वचनको स्मरण रखियेगा।

राजा युधिष्ठिरने इसी भांति ब्राह्मणोंके समीप धृतराष्ट्रको "राजा" कहके सबको विदित करके ब्राह्मणोंको निज निज स्थानोंपर जानेके वास्ते बिदा किया। तिसके अनन्तर उन्होंने पुरवासी तथा जनपदवासी सब प्रजाको बिदा कर राजकार्य्यमें प्रवृत्त होके प्रीति पूर्व्वक

भीमसेनको युवराज किया । मन्त्र निश्चय, शत्रु-वोंके सङ्ग सन्धि स्थापन, युद्धके निमित्त यात्रा, शत्रुता करके निवास, दोनों ओर सन्धि करना और किला आदिक वा किसीका आश्रय ग्रहण करना इत्यादि राज्य-रक्षाके विषयमें ऊपर कहे हुए छः उपायोंके विचारके निमित्त बुद्धिमान विदुरको नियुक्त किया ; कर्तव्या-कर्त्तव्य विषयों और आय व्ययके विचारके निमित्त सब गुणोंसे युक्त वृद्ध सञ्जयको नियत किया । सेनाका परिमाण, उन्हें अन्न और वेतन देने तथा सेनाके सब कार्य्योंको देखनेके निमित्त नकुलको नियुक्त किया और दुष्टोंके दमन तथा शत्रुराज्य आक्रमणका भार अर्जुनको सौंपा । प्रायश्चित्त ब्राह्मणों और देव कार्य्योंका भार निज पुरोहित धौम्य मुनिको सौंपा ! केवल सहदेवको सर्व्वदा अपने समीपमें रहनेके निमित्त आज्ञा दी, क्योंकि धर्म्मराज हर समय सहदेवसे रक्षित होना कर्त्तव्य कार्य्य सम भते थे । पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने इसके अतिरिक्त जो कार्य्य जिस पुरुषके योग्य समझा अत्यन्त प्रीतिके सहित उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त कर दिया ।

तिसके अनन्तर धर्म्मपुत्र धर्म्मात्मा शत्रुना-शन राजा युधिष्ठिर महाबुद्धिमान् विदुर और युयुत्सुसे बोले,—हमारे जेठे पिता राजा धृत-राष्ट्रको जब जिस कार्य्यकी आवश्यकता होगी, उस ही समय आप लोग स्वयं उठके आलस रहित होकर उन कार्य्योंको पूरा कीजियेगा । और नगर तथा जनपदवासी प्रजाके सम्बन्धमें जो कुछ कार्य्य उपस्थित होगा, उसे महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने अपने कार्य्यभा-रके अनुसार पूर्ण कीजियेगा ।

४१ अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायन मुनि बोले, उदार बुद्धिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने कुरुक्षेत्रके युद्धमें मरे हुए स्वजनोंका फिर पृथक् रूपसे श्राद्ध कराया और अन्धे राजा महायशस्वी धृतराष्ट्रने भी अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, रत्न और गौ आदिक सब वस्तु इच्छानुसार ब्राह्मणोंको दान किया ; विशेष करके धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके सहित एकत्रित होके महात्मा द्रोणाचार्य्य, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, हिडिम्बापुत्र घटो-त्कच, द्रौपदीके पांचो पुत्र और परम हितैषी राजा विराट आदि मृत सुहृद मित्रोंके श्राद्धमें हर एकके नामसे एक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें धन रत्न, वस्त्र और गऊ आदि दान किया । इसके अतिरिक्त जिन राजा-ओंके पुत्रादि तथा इष्टमित्रोंमें किसीको जीवित नहीं देखा, उनके श्राद्ध करनेके अनन्तर हर एकके नामसे एक एक धर्म्मशाला, तालाब, कूआं आदिक खुदवाके उनके वंशधर पुत्र पौत्रोंके करने योग्य कार्य्यको पूर्ण किया । वह इसी भांति आत्मीय और मृत सुहृद पुरुषोंके श्राद्ध आदि, कार्य्य समाप्त करके उनके ऋण तथा लोकनिन्दासे रहित होके कृतार्थ हुए, और धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए पहिलेकी भांति राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी विदुर आदि पूजनीय कौरवों और मुख्य मुख्य पदोंपर प्रति-ष्ठित सेवकोंको अत्यन्त सम्मानके सहित प्रति-पालन करने लगे । जो सब स्त्रियां स्वामी और पुत्ररहित होकर वहां पर निवास करती थीं, कुरुराज युधिष्ठिर कृपापूर्व्वक अत्यन्त सम्मानके सहित उनका भरण पोषण करने लगे । अन-न्तर उन्होंने कृपाके वशमें होकर अन्धे, लूले, लङ्गड़े और दीन दुःखियोंको घर, वस्त्र और भोजनकी सामग्री प्रदान करके कृपा प्रकाशित की । इसी भांति राजा युधिष्ठिर पृथ्वी विजय करके शत्रुवोंके निकट अऋणी हुए, और निष्कण्टक तथा सुखी होकर राज्य-भोगनेमें प्रवृत्त हुए ।

४२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठिर फिर राज्य पाकर तथा राज्यपद पर अभिषिक्त होके हाथ जोड़के शुद्धभावसे पुण्डरीकाक्ष दाशार्ह कृष्णसे बोले। हे शत्रुनाशन! हे यदुकुल सिंह कृष्ण! हमने तुम्हारे ही बल, बुद्धि, नीति और पराक्रमके प्रभाव तथा तुम्हारीही प्रसन्नतासे पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यको फिर पाया है। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हें बारम्बार प्रणाम है। सब शास्त्र तुम्हें अद्वितीय पुरुष सात्वत पुरुषोंकी गति स्वरूप कहके वर्णन करते हैं। द्विज लोग यत्नपूर्वक तुम्हारे विविध नामोंको उच्चारण करते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम ही पुरुषोत्तम, विष्णु, जिष्णु, कृष्ण वैकुण्ठ, विश्वात्मा और जगतके उत्पन्न करनेवाले हो; इससे हे विश्वकर्म्मन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हींने सप्तधा अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है और पुराणोंमें तुम ही प्रश्निगर्भ कहके विख्यात हो पण्डित लोग तुम्हें त्रियुग कहके वर्णन करते हैं। तुमही शुचिश्रवा अर्थात् पुण्यकीर्त्ति, हृषीकेश, घृतार्च्चि: (यज्ञेश्वर) हंस, त्रिनेत्र, शम्भू, विभु और दामोदर नामसे वर्णित होते हो। तुम वाराह, अग्नि, सूर्य, वृष-भद्र, गरुडध्वज, अनीकसाह (शत्रु सेना विमर्दी) पुरुष (जीव) शिपिविष्ट (सर्व्वान्तर्व्यापी) उरुक्रम, वरिष्ठ, उग्रसेनानी, देवसेनानी, सत्य, राजसनि (अन्नप्रद) हो। तुम स्वय अच्युत और शत्रुओंके नाश करनेवाले हो। तुम संस्कृति (ब्राह्मण रूप) और विकृति (अनुलोम प्रतिलोम जाति रूप) हो। तुम श्रेष्ठ, अर्हत्तम, अद्रि, वृषदर्भ और वृषाकपि हो। तुम हो सिन्धु, विधर्म्म (निर्गुण) त्रिककुत त्रिधामा, त्रिदिवाच्युत (अवतीर्ण मूर्त्ति) हो। तुम हो सम्राट, विराट, स्वराट, सुरराज, भवकारणविभू, भू (सर्वो रूप) अभिभू (पगरोर) कृष्ण, कृष्णवर्त्मा, स्विष्टकृत् (अभि-लाष पूर्ण करनेवाले) भिषगावर्त्त (दोनों अश्विनीकुमारोंके पिता सूर्य्य) हो, तुम ही कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़ और यज्ञसेन नामसे विख्यात हो। तुम ही सिखण्डी, नहुष, बभ्रु (महेश्वर) दिवस्पृक्, पुनर्व्वसु नाम नक्षत्र सुबभ्रु (अत्यन्त पीतवर्ण) उक्थ यज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि, श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारण ऋभु, विभु और सर्व्वसूक्ष्म हो, वेदमें तुम्हारे ही चरित्रोंके विषय गाये जाते हैं। तुम अम्भोनिधि, ब्रह्मा, पवित्र धाम, धामवित् हो; श्रुति तुम्हारे ही नाभको हिरण्यगर्भ कहके तुम्हारे महात्म्यका वर्णन करती हैं। तुम ही स्वाहा, स्वधा और केशव हो; तुम ही इस जगतके कारण और प्रलयस्वरूप हो; हे कृष्ण! पहिले ही तुम इसको सृष्टि करते हो। हे विश्वयोनि! हे शार्ङ्गपाणि! हे खड्गपाणि! चक्रपाणि! यह संसार तुम्हारे वशमें स्थित है, इससे तुम्हें नमस्कार है।

यदुकुल शिरोमणि कमल नेत्र कृष्णने इसी भांति सभाके बीच पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिरके स्तुतियुक्त वचनोंसे सत्कृत तथा पूजित होके अत्यन्त प्रीतिके सहित उचित वचनोंसे उन्हें भी आनन्दित किया।

४३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने सभामें स्थित पुरुषोंको विदा किया, उन लोगोंने अपने गृहोंको ओर गमन किया। तब वह महापराक्रमी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको धीरज देके आदर पूर्व्वक यह वचन बोले, हे भरतश्रेष्ठ। तुम लोग महासंग्राममें शत्रुओंके अस्त्रोंसे क्षत विक्षत शरीरसे युक्त होकर थक गये हो, विशेष करके तुम लोगोंने राजपुत्र होकर भी मेरे वास्ते बहुत दिनोंतक वनवासकर क्रोध और शोकसे दुःखित होके साधारण पुरुषोंकी भांति अनेक क्लेश सहे, इससे

आज रात्रिको अपनी इच्छानुसार विजय-सुख अनुभव करो। जब तुम लोगोंकी बुद्धि प्रकृतिस्थ और तुम्हारी थकावट दूर हो, तब तुम लोग प्रातःकाल फिर आके मेरे निकट उपस्थित होना। धर्म्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंको ऐसी आज्ञा देकर राजा धृतराष्ट्र की अनुमतिसे अनेक मणि रत्नोंसे शोभित, दास दासियोंसे युक्त दुर्य्योधनका घर भीमसेनको समर्पण किया, उन्होंने इन्द्रके वैजन्तपुरी प्रवेश करनेकी भांति उस गृहके भीतर प्रवेश किया। अनन्तर प्रासादमाला शोभित सुवर्णके तोरणोंसे युक्त दुर्य्योधनके भवन समान ही अनेक धन-धान्य और दास दासियोंसे पूरा दुःशासनका गृह महाबाहु अर्जुनको समर्पण किया। तिसके अनन्तर बनबास क्लेशसे दुःखित नकुलको मणि रत्नोंसे युक्त कुवेर गृहके समान दुःशासनके गृहसे भी श्रेष्ठ दुर्म्मर्षणके गृहको अत्यन्त प्रीतिके सहित प्रदान किया। प्रिय कार्य्योंके करनेवाले सहदेव सुवर्ण भूषित, पद्मपत्रनयनाक्षी और उत्तम शय्या तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भूषित दुर्म्मुखका उत्तम गृह पाके कैलासधाममें वासस्थान पाये हुए कुवेरकी भांति आनन्दित हुए। विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, राजपुरोहित धौम्य और सुधर्म्मा आदिने अपने अपने गृहोंमें गमन किया। जैसे शार्दूल पर्व्वतकी कन्दरामें प्रवेश करता है, वैसे ही पुरुष-सिंह श्रीकृष्णने सात्यकिके सहित अर्जुनके गृहमें प्रवेश किया। उन सबोंने उन गृहोंमें अन्न आदिक खाने पीनेकी वस्तुओंसे तृप्त होकर परम सुखसे रात्रि बिताई और भोरके समय फिर सब कोई स्नान आदिसे निवृत्त होके राजाके समीप सभामें उपस्थित हुए।

४४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्रर्षि! महाबाहु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर जो कुछ कार्य्य किये और त्रिलोक गुरु भगवान कृष्णने उस समय जो कुछ कार्य्य किया हो; उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कृष्णके सहित पाण्डवोंने जो कुछ कार्य्य किये, मैं वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनिये। कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर चारों वर्णकी प्रजाको निज निज धर्म्ममें स्थापित कर, एक हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मणोंको एक एक सहस्र स्वर्णमुद्रा दान करके फिर अनुजीवी सेवकों और उस समय वहांपर इकट्ठे हुए अतिथियोंको तृप्त किया; अधिक क्या कहा जावे, उन्होंने कृपण और विरुद्ध मतावलम्बी पुरुषोंकी भी अभिलाषा पूरी करनेमें त्रुटि नहीं की। महायशस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने निज पुरोहित धौम्य मुनिको दश हजार गऊ, और सोना, चांदीसे युक्त अनेक भांतिके मणिरत्न तथा वस्त्र आदि प्रदान करके कृपाचार्य्यको पहिलेकी भांति अपना गुरु नियत किया, परन्तु विदुर और धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सुको विशेष रूपसे सम्मानित किया। दान देनेवाले पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने आश्रित सब पुरुषोंको ही भोजन, पान, शयन, आसन और वस्त्र आदिसे सन्तोषित किया। उन्होंने नगरनिवासियोंको प्रसन्न करके प्राप्त हुए राज्यमें शान्ति स्थापित किया, और धृत-राष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरको सब राज्यभार सौंपके निश्चिन्त होकर सुखपूर्व्वक निवास करने लगे। अनन्तर सवेरा होनेपर राजा युधिष्ठिरने हाथ जोड़के महात्मा कृष्णके समीप गमन किया। उन्होंने वहां जाके देखा, कि दिव्य आभूषणोंसे भूषित, पीताम्बरधारी, नीलमणिके समान तेजसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णजड़ित मणिके समान प्रकाशमान शरीरसे प्रज्वलित होके सुवर्ण-मणि भूषित वृहत् शय्याके ऊपर बैठे हैं; उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि

प्रकार शोभित होरहा था, जैसे उदय हुए सूर्य्यके सहित उदयाचल पर्व्वत शोभित होता है। महाराज! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं दीख पड़ती, जिससे श्रीकृष्णचन्द्रके उस समयके शोभाकी उपमा होसके। उस समय धर्म्मात्मा युधिष्ठिर पुरुषविग्रह महात्मा विष्णुके समीप पहुंचके हंसकर मधुर वचनसे कहने लगे। हे पुरुषोत्तम! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! सुखपूर्व्वक रात्रि बीती है न? इस समय तुम्हारी बुद्धि पहिलेकी भांति स्थिर और प्रसन्न तो है? हे त्रिविक्रम भगवान! तुम्हारी कृपासे ही हम लोगोंने फिर राज्य पाया तथा सब पृथ्वी भी हमारे वशमें हुई है; तुम्हारे प्रसादसे ही हम लोग क्षत्रिय धर्म्मसे भ्रष्ट नहीं हुए, तुम्हारी कृपासे ही हमारी युद्धमें विजय हुई और उत्तम यश प्राप्त हुआ है। शत्रुनाशन युधिष्ठिर इसी भांति स्तुति कर रहे थे, तोभी श्रीकृष्ण भगवानने कुछ भी उत्तर नहीं दिया; क्योंकि उस समय वह ध्यानमें प्रवृत्त थे।

४५ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे अमित पराक्रमी! आज मैं यह कैसा आश्चर्य्य देख रहा हूं, तुम ध्यानमें प्रवृत्त हुए हो? हे देव! तुम तुरीय ध्यानपथ (जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत स्वरूप अवस्था) अवलम्बन करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंसे अपक्रान्ति होकर स्थित होरहे हो, उसे देखके मेरा मन विस्मित होता है। देख रहा हूं कि तुमने प्राण आदि पञ्च कर्म्म निर्व्वाहक शरीरस्थ प्राणवायुको निरोध किया (रोका) है; हे गोविन्द! तुमने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करके मनके बीच स्थापित किया है और वाक्य तथा मनको बुद्धिमें और [illegible] किया है। शब्द आदि पञ्च-विषय अपने अपने आधारके आसरे स्थित हैं। तुम्हारे शरीरके सब रोए और मन बुद्धि स्थिर भावसे स्थित है, इससे तुम काष्ठ शिलाकी भांति चेष्टारहित होरहे हो। भगवन! जैसे दीपशिखा वायुरहित स्थान स्थिरताके सहित जलती रहती है, अथवा जैसे पत्थर एक ही स्थलमें पड़ा रहता है, वैसे ही तुम भी आज चेष्टा रहितके समान दीख पड़ते हो। हे देव! यदि यह गोपनीय न होवे और मैं सुननेका पात्र होऊं, तो यह प्रार्थना है, कि आप मुझ शरणागतके इस संशयको दूर कीजिये। हे धार्म्मिकप्रवर! हे पुरुषोत्तम तुम क्षर, अक्षर कर्त्ता और अकर्त्ता हो। तुम अनादि और मृत्युसे रहित हो, और तुम आदि पुरुष हो। मैं तुम्हारा शरणागत भक्त शिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करता हूं, कि आप इस ध्यानके यथार्थ कारणको मेरे समीप प्रकाशित कीजिये; उस समय इन्द्रके भ्राता श्रीकृष्ण भगवान् मन बुद्धि और इन्द्रियोंको पहिलेकी भांति निज निज स्थलोंमें स्थापित करके हंसकर धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! शान्त होनेवाली अग्निकी भांति तेजस्वी शरशय्यापर स्थित पुरुषसिंह भीष्म मेरा ध्यान कर रहे है, उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त था। जिन्होंने स्वयम्बरके बीच अपने तेजके प्रभावसे सब राजाओंको पराजित करके तीनों कन्याओंको हरण किया, जिसके वज्र समान धनुषटङ्कार और तलत्राणके शब्दको इन्द्र भी नहीं सह सकते थे; जिन्होंने तेईस दिनोंतक भृगुकुल शिरोमणि परशुरामके सङ्ग युद्ध किया था; परशुराम जिसे किसी प्रकार पराजित करनेमें समर्थ नहीं हुए, जिसे गङ्गादेवीने निज गर्भमें धारण किया और वशिष्ठ मुनिने अपना शिष्य बनाया था, जिस महातेजस्वीने बुद्धि प्रभावसे सब दिव्य अस्त्रोंकी विद्या और सांगोपाग चारों वेदोंको पढ़ा था। हे महाराज!

वही परशुरामके प्रिय शिष्य सब विद्याके आधार स्वरूप भीष्म मन और सब इन्द्रियोंको संयम करके एकाग्रचित्तसे मेरे शरणागत हुए हैं; उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त हुआ था। उस धर्म्मात्मा भीष्मको भूत-भविष्य और वर्त्तमान कालके सब विषयोंका ज्ञाता समझियेगा। महाराज! पुरुषशार्दूल भीष्म जब अपने कर्म्मके प्रभावसे शरीरको त्याग कर स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, तब यही पृथ्वी चन्द्रमासे हीन होकर रात्रिके समान बोध होगी; इससे आप महापराक्रमी गङ्गानन्दन भीष्मके समीप उपस्थित होके धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यज्ञादिक और चारों आश्रमोंके धर्म्म तथा निखिल राजधर्म्म और इसके अतिरिक्त जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो, वह सब पूछिये। महाराज! कौरवकुल धुरन्धर भीष्मके परलोक गमन करनेके अनन्तर पृथ्वीसे सब ज्ञान शास्त्र इकबारगी लुप्त होजायेंगे, इसी कारण मैं आपको उन महात्माके समीप जानेके वास्ते कहता हूं।

धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके सारगर्भ उत्तम बचन सुनके धीमे खरसे बोले, हे कृष्ण! आपने भीष्मके प्रभाव विषयक जो कुछ बचन कहे उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, मैंने भीष्मके प्रारब्ध और प्रभावकी कथा पहिले महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे अनेक बार सुनी है, विशेष करके सब लोगोंके कर्त्ता होकर जब तुम भी उनकी प्रशंसा कर रहे हो; तब उसमें सन्देह ही क्या है। हे शत्रुसूदन! यदि मेरे ऊपर आपकी अत्यन्त कृपा प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई हो, तो तुम स्वयं हमको अपने सङ्ग भीष्मके समीप ले चलो। हे यदुनन्दन! कुरुकुल शिरोमणि भीष्म सूर्य्यके उत्तरायण होने पर शरीर त्याग करेंगे, इससे उन्हें दर्शन देना आपका कर्त्तव्य है। हे भगवन्! तुम आदि देव, अक्षर; ब्रह्ममय और परमनिधि हो, इस आसन्नमृत्युके समय पितामह एकबार तुम्हारा दर्शन करें, यही मेरी इच्छा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मधुसूदन कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरके बचनको सुनके समीपमें ही स्थित सात्यकिसे कहा तुम शीघ्र ही मेरे रथको सज्जित करो; इतना बचन सुनते ही सात्यकि उसी समय वहांसे उठके दारुक सारथीके निकट जाके यह बचन बोले, तुम शीघ्र ही श्रीकृष्णके रथको सज्जित करो। अनन्तर दारुकने सात्यकिके बचनको सुनते ही सुवर्णभूषित बहुतसे मरकत, चन्द्रकान्त, सूर्य्यकान्त मणिमय सुवर्ण भूषित चक्र-सहित सूर्य्य किरणके समान प्रकाशमान शीघ्रगामी, मध्यभागमें अनेक भांतिके मणि रत्न सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित, शत्रुओंको दुःखित करनेवाले, मनके समान वेगपूर्व्वक गमन करनेवाले शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त अनेक भांतिकी पताका और गरुड़ ध्वजासे शोभित उत्तम रथको सज्जित करके हाथ जोड़के श्रीकृष्णचन्द्रसे निवेदन किया।

४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ऋषिवर! पितामह भीष्मदेवने शरशय्या पर स्थित होके किस प्रकार योग अवलम्बन करके शरीर त्याग किया था, आप उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! तुम पवित्र और एकाग्र चित्त होकर भीष्मके शरीर त्यागनेके विषयको श्रवण करो। जब सूर्य्य दक्षिणायन मार्गसे उत्तरायण गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। तभी भीष्म पितामहने स्थिर होके अपना चित्त, आत्मामें लगाया। महाराज! उस समय भीष्मदेव महात्मा ब्राह्मणोंके बीचमें स्थित और अनेक [illegible] शरीरसे इस प्रकार शोभित हुए, [illegible]

धारी भगवान सूर्य्य शोभित होते है। उस समय वेद जाननेवाले व्यासदेव, देवऋषि नारद महात्मा देवस्थान, वात्सय, अश्मक, सुमन्त, जैमिनि महात्मा पैल शाण्डिल्य, देवरात, धीमान् मैत्र, असित वशिष्ठ, महात्मा कौशिक हारीत, लोमश, बुद्धिमान अत्रिय, वृहस्पति, शुक्राचार्य्य, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल वाल्मीक, तुम्बुरु, कुरु, मोद्गल्य भृगुनन्दन परशुराम, महामुनि तृण विन्दु, पिप्पलाद, वायु, सम्वर्त्त पुलह, कठ, काश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतमकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य धौम्र कृष्णानुभौतिक, महर्षि उलूक, महामुनि मारकण्डेय, भास्करी, पूरण, कृष्ण, परम धार्म्मिक सूत,—ये सम्पूर्ण ऋषि तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे श्रद्धा दम और शमसे युक्त महा तपस्वी महात्मा मुनियोंसे घिरकर पुरुषसिंह भीष्म इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रोंके बीच भगवान चन्द्रमाकी शोभा दीख पड़ती है। अनन्तर वह पवित्र भावसे हाथ जोड़के कर्म्म, मन और वचनसे एकाग्रचित्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करने लगे, और हृष्ट-पुष्ट स्वरसे मधुसूदन कृष्णकी स्तुति करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! बोलनेवालोंमें मुख्य परम धर्म्मात्मा भीष्मने जिस प्रकार हाथ जोड़के पद्मनाभ योगीश्वर विष्णु, जिष्णु, जगत्पति श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुतिकी थी। मैं उसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये।

भीष्म बोले, हे पुरोषत्तम! तुम पवित्र और शुचिपद हो, तुम पारमेष्टपद, प्रजापति और आत्मस्वरूप हो, इससे मैं अब तुम्हारेमें चित्त समर्पण करके एकान्त भावसे तुम्हारी उपासनाका अभिलाषी होकर जो कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं, आप उस संक्षेप और विस्तार युक्त मेरे कहे हुए वचनोंके दोषोंको त्यागके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। आदि अन्त रहित परब्रह्मके स्वरूपको ठीक सब लोकोंके रचनेवाले भगवान विधाता नारायण हरि ही जानते है; इनके अतिरिक्त देवता वा ऋषि कोई भी उनके रूपको नहीं जान सकते नारायणकी कृपासे ही देव गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस सर्प, सिद्धि और देवऋषि लोग उस सनातन परमेश्वरको परम अव्यय मानते है; परन्तु कोई भी यह नहीं जानते कि "ये कौन है कहांसे किस प्रकार ये भगवान हुए है!" जिस अविनाशी ब्रह्ममें जगत्के सम्पूर्ण प्राणी प्रलय कालके समय इस प्रकार लीन होजाते हैं, जैसे धागेमें मालाकी मणियें गुथी रहती हैं; यह जगत् जिस विश्वाङ्ग जगत् कर्त्ता नित्यपुरुषके रूपमें स्थित है, ऋषि लोग जिसे सहस्रशीर्ष सहस्राक्ष, सहस्र चरण सहस्र बाहु, सहस्र मुकुट सहस्र शरीरोंसे प्रकाशमान, जगदाधार नारायण देव, सब सूक्ष्म वस्तुओंसे सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरु पदार्थोंसे भी गुरुतर और उत्तम वस्तुओंसे भी श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं। जो वाक्, अनुवाक् निषत्, उपनिषत् और सत्य स्वरूप है; जिसकी सामवेदके बीच सत्य और सत्यकर्म्मा आदि नामोंसे स्तुति होती है। साधक लोग ब्रह्म, जीव, मन, अहंकार इन चारों अध्यात्मतत्वोंके वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार परमगुह्य दिव्य नामोंको उच्चारण करके सदा बुद्धिसे अभिव्यक्त और भक्तोंके ईश्वर जानके जिनकी पूजा अर्च्चा किया करते हैं, तथा तिसकी प्रीतिके निमित्त स्वधर्म्मरूपी तपस्याका अनुष्ठान करते हैं; जिनकी कृपासे आचरित तपका प्रभाव चित्तमें आके उपस्थित होता है, मैं उस चैतन्य स्वरूप, सर्व्वज्ञ, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्व्वेश्वर भगवानका शरणागत हुआ हूं। दो अरणीकी अग्निकी भांति जो भगवान पृथ्वी, ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रक्षाके निमित्त वसुदेव देवकीसे उत्पन्न हुए हैं;

और योगी लोग एकाग्रचित्त होकर सब वासना त्यागके एक मात्र मोक्षपदके निमित्त जिसकी उपासना करते हुए निज आत्मामें ही जिस स्वरूपका दर्शन करते हैं, मैं उसही निर्म्मल ज्योतिस्वरूप सर्व्वेश्वर गोविन्द कृष्णकी शरण हूं। जो निज तेज प्रभावसे सूर्य्य, कर्म्मसे वायु और इन्द्रको अतिक्रम करके विद्यमान है; मैं उसही बुद्धि तथा मन आदि इन्द्रियोंसे अतीत परमात्माको शरण हूं, जो पुराणमें पुरुष, युगादिकोंमें ब्रह्म और प्रलय समयमें सङ्कर्षण नामसे वर्णित हैं, मैं उसी उपास्य देवकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ हूं। जो एक होकर भी अनेक रूप दीख पड़ते हैं, और कर्म्म योगी पुरुष अनन्य भक्तिसे युक्त होकर जिसकी उपासना करते रहते हैं; मैं उसी सर्व्व कामप्रद भगवानकी शरण हूं। ज्ञानी लोग जिसे जगत्कोष कहते हैं, यह सब प्रजा जिसके रूपमें स्थित है और जलमें तैरनेवाले हंस तथा कारण्डव आदि पक्षियोंकी भांति सब प्राणी जिसकी चैतन्य सत्तासे चेष्टमान होते हैं, देवता और ऋषि लोग भी जिसके स्वरूपको नहीं जान सकते; मैंने उसी आदि अन्त, मध्य अवस्था और सत् असत्से रहित सत्य स्वरूप, एकाक्षर परब्रह्म परमेश्वरका आसरा ग्रहण किया है। देवता, असुर, सिद्ध, गन्धर्व्व, सर्प और ऋषि लोग सदा स्थिरभावसे जिसकी उपासना किया करते हैं; जो भव रोगके छुड़ानेमें परम वैद्यस्वरूप हैं; मैं उसी अनादि अविनाशी, नेत्र आदि इन्द्रियोंके अगोचर सर्व्वकारण, सनातन, स्वमात्म स्वरूप सर्व्व, शक्तिमान नारायण हरिके शरणागत हुआ हूं। वेद जिसको जगत्कर्त्ता, स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के पालक, सर्व्वाध्यक्ष, अक्षर और परमाधार करके वर्णन करते हैं; जिन्होंने एक होकर भी दैत्योंको नाश करनेके वास्ते अदिति गर्भसे बाहर संयोगसे विभक्त होकर अवतार लिया था; उस हिरण्यवर्ण मूर्त्तिमूर्त्ति परमात्माको नमस्कार करता हूं। जो महा अन्धकारसे अतीत स्वच्छ ज्योतिस्वरूप तथा सब स्थानोंमें पूर्ण हैं, जिसे जाननेसे ही साधक लोग जन्म मृत्युसे छूटकर परम पद पाते हैं, उस ज्ञेयरूप परमात्माको नमस्कार है। जो अमृतसे शुक्ल पक्षमें देवतों और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करता है और जगत्में द्विजराज नामसे प्रसिद्ध है; उस सोममूर्त्ति परमात्माको नमस्कार है। ऋषिलोग जिसे उक्थके बीच बह्वच और अग्निहोत्र आदिक महायज्ञोंमें अध्वर्य्यु नामसे वर्णन करके सामगान करते हैं, उस देवात्मक पुरुषको नमस्कार है। ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद ही जिसके धाम हैं, जो जव, दधियुक्त सत्तू, परिवाप, पुरोडाश और दूध यही पञ्च हविरात्मक हैं जो वेदके बीच गायत्री आदि सात छन्दोंसे विस्तृत हुआ है, उस यज्ञात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो "आश्रावय" आदि सप्त दश अक्षरोंसे अग्निमें होम होता है, उस होमात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वेद पुरुष और यजु नामसे विख्यात है, गायत्री आदिक छन्द ही जिसके हाथोंके अवयव हैं, ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंसे युक्त यज्ञ हो जिसका मस्तक है और वृहत रथान्तर हो जिसकी प्रीतिस्वरूप है; उस स्तोत्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो सर्व्वज्ञ पुरुष प्रजापति आदिकोंके सहस्र वर्ष यज्ञ करनेके अनन्तर यज्ञसे हिरण्यपक्ष युक्त हंसरूपसे उत्पन्न हुए थे; उस हंसरूपी परमात्माको नमस्कार है। वैदिक पद ही जिसके अङ्ग, सन्धि आदिक अंगुली स्वर और व्यञ्जन ही जिसके भूषण हैं, तथा वेदके बीच जो दिव्य अक्षर कहके वर्णित हुआ है; उस वागाधिष्ठात्री परम देवताको नमस्कार है। जिन्होंने तीनों लोकोंके हितकी अभिलाषासे यज्ञमें वाराहमूर्त्ति धारण करके रसातलमें गई हुई पृथ्वीका उद्धार किया था, उस वीर्य्यात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो योगनिद्रा

अवलम्बन करके सहस्र फनोंसे युक्त नाग भूषित शय्यापर शयन करते हैं; उस निद्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वाक् आदि इन्द्रियोंको जीतकर मोक्षके कारण वेदमें कहे हुए उपायसे साधुओंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाके मुक्त करता है; उस सत्यात्माको नमस्कार है। हर एक पृथक् पृथक् धर्म्म अवलम्बन करनेवाले पुरुष इच्छानुसार बिबिध फलोंको अभिलाषासे जिसकी पूजा किया करते हैं, उस धर्म्मात्माको नमस्कार है। जिससे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती हैं और जो सबके शरीरमें स्थित काममय देह अर्थात् मनके उन्मादजनक है; उस कामात्मा पुरुषको नमस्कार है। महर्षि लोगोंने जिस अव्यक्त पुरुषको देहके बीच स्थित क्षेत्रज्ञ कहके निश्चय किया हैं; उस क्षेत्रात्माको नमस्कार है। चैतन्य और नित्य स्वरूपसे स्थित रहनेपर भी साङ्ख्यवादी जिसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था, एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत आदि सोलह गुणोंसे युक्त, उदारतनु, सबह सङ्ख्यात्मक कहके वर्णन करते हैं; उस संख्यात्मा पुरुषको नमस्कार है। जितेन्द्रीयोगी पुरुष निद्रा और स्वासवायुको जीतके जिस ज्योतिरूपका हृदयमें दर्शन करते है; उस योगात्माको नमस्कार है। पाप पुण्यसे पर, शान्त सन्यासी लोग आवागमनसे छूटकर जिसे पाते हैं, उस मोक्षात्माको नमस्कार है। जो दिव्य परिमाणसे सहस्र युगोंके अन्तमें जलती हुई शिखासे युक्त अग्निरूपसे सब भूतोंको भक्षण करता है, उस घोरात्माको प्रणाम है। जो सब वस्तुओंको भस्म और जगत्को एक समुद्रमय करके एक मात्र बालक रूपसे निद्रित होता है; उस मायात्मक पुरुषको प्रणाम है। पुष्कर लोचन जिसके नाभीस्थलसे जो कमल उत्पन्न होता है, जिससे जगत् प्रतिष्ठित हुआ है, उस पद्मात्माको प्रणाम है। समुद्रके समान चार भांतिके काम जिसके प्रभावसे नष्ट होते हैं, उस अनगिनत सिर और असंख्य योगात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके केशोंमें सम्पूर्ण बादलोंके समूह, अङ्गसन्धियोंमें नदियां और हृदयमें चार समुद्र स्थित हैं, उस जलमय पुरुषको प्रणाम है। जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति और मृत्युरूपी विकार उत्पन्न होता है, और महाप्रलयके समय जिसमें सम्पूर्ण जगत्के प्राणी लीन होते हैं, उस कारणात्माको नमस्कार है। जो प्राणियोंकी निद्रित अवस्थामें भी जागता रहता है; और कर्त्ता न होनेपर भी स्वप्नावस्थामें कर्त्ताकी भांति बोध होता है; परन्तु यथार्थमें वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका द्रष्टामात्र है; उस साक्षीस्वरूप चैतन्य पुरुषको नमस्कार है। जो किसी कार्य्यमें शोकित नहीं होता और धर्म्म-कार्य्यके निमित्त उद्यत रहता है, उस सर्व्वत्र पूर्ण वैकुण्ठरूपी कार्य्यात्मक पुरुषको प्रणाम है। जिसने क्रुद्ध होकर इक्कीस बार युद्धभूमिमें धर्म्म-मर्य्यादा उलङ्घन करनेवाले क्षत्रियोंका नाश किया था, उस क्रूरात्माको प्रणाम हैं। जो प्राण आदि पांच अंशोंमें विभक्त होके शरीरस्थ वायुरूपसे प्राणियोंको चैतन्य करता है; उस वायुमय पुरुषको प्रणाम है। जो युग युगमें योगमायासे मत्स्य, कूर्म्म, बराह आदि रूपोंको धारण करके अवतार लेता है और महीना, ऋतु, अयन तथा वर्ष आदि रूपसे उत्पत्ति, स्थित और प्रलयके कार्य्योंको पूर्ण करता है, उस कालरूपी पुरुषको नमस्कार है। ब्राह्मण जिसके मुख, क्षत्रिय जिसकी दोनों भुजा, वैश्य जिसके उरुस्थल और शूद्र जिसके दोनों चरणोंके आसरेसे प्रकट होके स्थित हैं, उस वर्णात्मा पुरुषको प्रणाम है। स्वर्ग जिसका सिर, अग्नि, मुख, आकाश नाभी, सूर्य्य नेत्र, दिशा कान और पृथ्वी जिसका चरण है, उस सम्पूर्ण लोकमय पुरुषको प्रणाम हैं। जो कालसे भिन्न सम्पूर्ण यज्ञोंके अधिष्ठाता देव

हिरण्यगर्भसे भी श्रेष्ठ है, जो स्वयं अनादि और जगतका आदि पुरुष है; उस विश्वात्माको नमस्कार है। राग द्वेषसे युक्त अज्ञानी लोग शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें बर्त्तमान श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनादर करके, जिसे विषय गोप्ता समझते हैं; उस गोप्तृरूपी परमात्माको नमस्कार है। जो अन्न, पान और इन्धनरूपसे शारीरक रस और बलको बढ़ाता है, तथा जो सब प्राणियोंको धारण कर रहा है; उस प्राणमय पुरुषको नमस्कार है। जो प्राणियोंके प्राणधारणके निमित्त चारों प्रकारके अन्नोंको भोजन करता हैं, और शरीरके भीतर प्रवेश करके उन भोजन किये हुए चारों भांतिके अन्नोंको परिपाक करता है; उस पाकात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके जटा और नेत्र पिंगलवर्ण और दांत तथा नख जिसके अस्त्र हैं; उस दुर्ज्जय दैत्यनाशक नृसिंह रूपधारी परमात्माको नमस्कार है। जिसे देवता दानव, यक्ष गन्धर्व्व आदि कोई भी यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, उस सूक्ष्मात्माको प्रणाम है। जो सर्व्वशक्तिमान सर्व्वव्यापक भगवान रसातलमें प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रहे हैं; उस वीर्य्यात्माको नमस्कार है। जो सृष्टिरचाके वास्ते जगत्के सब प्राणियोंको स्नेह पाशसे मोहित कर रहा है; उस मोहात्मा परम पुरुषको प्रणाम है। योगी लोग ज्ञान साधनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांचों विषयोंसे ज्ञानको पृथक् करके पवित्र ज्ञान मात्रसे आत्म स्वरूप जानके जिसे प्राप्त करते हैं उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिसके ज्ञानरूपी नेत्र सर्व्व-वर्त्तमान हैं, जो अगोचर स्वरूप है; और जिसमें ये सम्पूर्ण विषय स्थित रहते हैं; उस दिव्यात्माको नमस्कार है। जो सदा जटा और दण्डधारी है, लम्बोदर शरीर युक्त कमण्डलु ही जिसका कूर्च्च है; उस ब्रह्मात्माको नमस्कार है। जो सदा शरीरमें खाक लगाये हुए शूल धारण करके बिराजमान रहता है; उस त्रिदशनाथ, त्रिनेत्र ऊर्द्धलिंग रुद्रात्माको नमस्कार हैं। अर्द्धचन्द्र जिसके माथेका भूषण और सर्प जिसके यज्ञोपवीत हैं, उस शूल और पिनाकधारी उग्रात्माको नमस्कार है। जो सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप है, जो अहंकारको नाश करनेवाला है; उस क्रोध, मोह और द्रोहसे रहित शान्तात्माको नमस्कार है। यह संसार जिसके प्रभावसे स्थित है, जिससे जगत्की उत्पत्ति होती है, जो सब स्थानोंमें बिराजमान है, जो स्वयं विश्वरूप और सब प्राणियोंका आत्मा स्वरूप है; उस नित्यस्वरूप सर्व्वमय परम पुरुषको प्रणाम है।

हे विश्वकर्म्मन्! हे जगत्के उत्पन्न करनेवाले! तुम पञ्च भूतोंसे पृथक् और नित्य मुक्ति स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तीनों लोकों सब दिशाओं और तीनों कालोंमें समभावसे विद्यमान हो, तुम ही सर्व्वमय और निधिस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। हे भगवन! हे विष्णु! तुम इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले और अव्यय स्वरूप हो? इससे तुम्हें प्रणाम है। हे हृषीकेश! तुम जगत्कर्त्ता, संहर्त्ता और अपराजेय हो; इससे तुम्हें प्रणाम है। हे भगवन! यद्यपि मैं तुम्हारे वर्त्तमान आदि त्रिकालस्थित दिव्यभावके दर्शनमें समर्थ नहीं हूं, तथापि तुम्हारा जो सनातन स्वरूप है, उसे तत्वज्ञानसे दर्शन कर रहा हूं। तुम्हारे मस्तकसे द्युलोक, चरणसे भूलोक और तुम्हारे पराक्रमसे तीनों लोक व्याप्त हैं, तुम्हीं साक्षात् सनातन पुरुष हो। सम्पूर्ण दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य तुम्हारे नेत्र और पापरहित प्रजापति ही तुम्हारे वीर्य्य स्वरूप हैं; तुम महातेजमय वायुरूपसे ऊपरके सप्तर्षिद्रोंको रोकके स्थित हो।

अतसी पुष्पके समान रूपवाले पीताम्

धारी अच्युत गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, उन लोगोंको कुछ भी भय उपस्थित नहीं होता। दश अश्वमेध यज्ञोंके समाप्तिमें अवभृत स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, वह श्रीकृष्ण भगवानके एक बारके प्रणाम की समानता भी नहीं कर सकता। क्योंकि उन दश अश्वमेध यज्ञोंके करनेवाले पुरुषोंको फिर जन्म लेना होता है, परन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालोंको जन्म मरण रूपी दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता। कृष्ण ही जिसके व्रत हैं, और सोते, उठते जो लोग श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं, तथा योगपूर्वक उनके ध्यानमें रत होते हैं, वे इस प्रकार उनके स्वरूपमें लीन होजाते हैं, जैसे मन्त्रसे युक्त घृत अग्निमें प्रवेश करता है। जो नरक भयके छोड़ानेवाले और संसार सागरसे पार करनेके निमित्त नौका स्वरूप हैं; उस विष्णु भगवानको बार बार प्रणाम है। जो गऊ ब्राह्मण और सब जगत्के हितकारी हैं, उस जगत् त्राणकर्त्ता ब्रह्मण्यदेव कृष्ण भगवानको बारम्बार प्रणाम है। "हरि"—इन दो अक्षरोंसे युक्त नाम प्राणियोंको कठिन मार्गोंसे भी पार करता है, यह संसार सागरके तरनेका उपाय और शोक दुःखको नाश करनेवाला है। जब कि सत्य विष्णुमय जगत् विष्णुमय और सब वस्तु विष्णुमय हैं तब मेरा चित्त भी विष्णुमय होके पापरहित होवे। हे पुण्डरीकाक्ष! हे सुरसत्तम! यह भक्त अभिलषित गति पानेकी इच्छासे सब भांतिसे एकमात्र तुम्हारा ही शरणागत हुआ है, इस समय जिसमें मङ्गल हो; आप उसी का विचार कीजिये।

हे जनार्द्दन! तुम विद्या और तपस्याके कारणस्वरूप विष्णु हो, आप मेरे स्तुति वचनरूपी यज्ञसे पूजित होके तृप्त तथा प्रसन्न हूजिये; वेद, तपस्या और देवता इत्यादि जो कुछ वस्तु है, वह सबही नित्य-नारायण रूप हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल शिरोमणि भीष्मने इतना वचन कहके उनमें चित्त लगाके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। तब उस समय श्रीकृष्ण भगवानने योगप्रभावसे भीष्मके शरीरके भीतर प्रवेश कर उन्हें भक्ति और त्रिकाल दर्शन ज्ञान प्रदान करके फिर निज शरीरमें आगमन किया। महाबुद्धिमान भीष्मके वचन समाप्त होनेपर मुख्य मुख्य ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोगोंने वचनसे उनकी पूजाकी। अनन्तर वे लोग पुरुषोत्तम कृष्णकी स्तुति करके मृदु स्वरसे बार बार भीष्मकी प्रशंसा करने लगे।

इधर पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र योगबलसे भीष्मकी भक्तिके विषयको जानके अत्यन्त आनन्दके सहित सहसा उठके रथपर चढ़े। यदुवीर सात्यकि कृष्णके रथपर चढ़के उनके सङ्ग गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। महात्मा युधिष्ठिर और अर्जुन एक रथपर और भीमसेन तथा माद्रीपुत्र नकुल सहदेव एक दूसरे रथपर चढ़के गमन करने लगे। पुरुषश्रेष्ठ शरद्वाशन कृपाचार्य्य, युयुत्सु, और सूतकुलमें उत्पन्न हुए सञ्जयने एक बहुत बड़े रथपर चढ़के रथ शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए प्रस्थान किया। मधुसूदन पुरुषसिंह कृष्णने गमन करनेके समय मार्गमें कितने ही ब्राह्मणोंके अनेक भांतिके स्तुतियुक्त वचनको सुनके तथा कितने ही पुरुषोंको विनीतभावसे स्थित देखकर आनन्दके सहित उन लोगोंको प्रसन्न किया।

४७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! इसी भांति श्रीकृष्णचन्द्र, भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य्य आदि सब कोई शीघ्रगामी घोड़ों और ध्वजा पताकाओंसे युक्त नगरके समान रथोंपर चढ़के कुरुक्षेत्रकी ओर गमन करने लगे। युधिष्ठिर आदि महारथी लोग जहांपर महात्मा क्षत्रियोंने युद्धमें प्राण-

त्याग किया था; उस प्रेत-राक्षसोंसे सेवित, यमराजके स्थान तथा श्मशानभूमिके समान कुरुक्षेत्रमें पहुंचके किसी किसी स्थानोंमें ढेरके ढेर केश, मज्जा और हड्डी आदिक तथा कहीं कहीं मरे हुए हाथी घोड़ोंके शरीर और हड्डियोंको पर्व्वतके समूहके समान देखने लगे; और कहीं वर्म्म और टूटे शस्त्रोंके समूह तथा कहींपर सहस्रों चिता दीख पड़ती थीं; और कहींपर शङ्खके समान मनुष्योंके सिरकी सफेद खोपड़ियोंको देखते हुए शीघ्रताके सहित आगे गमन करने लगे। मार्गमें जाते हुए यदुनन्दन कृष्णने युधिष्ठिरसे जमदग्निपुत्र परशुरामके पराक्रमका विषय वर्णन करना आरम्भ किया।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! भृगुनन्दन परशुरामने जिस स्थानपर युद्धमें क्षत्रियोंके रुधिरसे पांच तालाबोंको भरके पितरोंका तर्पण किया था। ये वेही पाचो रामह्रद दूरसे दीख पड़ते हैं। महात्मा परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अब इस क्रूर कर्म्मसे विरक्त हुए हैं।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुलश्रेष्ठ! हे अमित पराक्रमी! तुमने जो परशुरामजीके इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेकी कथा कही; उससे मुझे अत्यन्त ही संशय उत्पन्न हुआ है। यदि परशुरामने अपने शस्त्ररूपी अग्निमें सब क्षत्रिय बीज ही भस्म कर दिया, तो फिर किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई? और करोड़ों क्षत्रियोंने महाघोर रथ युद्धमें मरके अपने मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित किया. महात्मा परशुराम भगवानने अकेले ही किस प्रकार क्षत्रियकुलका नाश किया; और फिर किस भांति उनकी वृद्धि हुई? हे कृष्ण! भृगुनन्दन परशुरामने कुरुक्षेत्रके बीच किस कारणसे क्षत्रियकुलका नाश किया? हे वार्ष्णेय! हे गरुड़ध्वज! तुम मेरे इन सब संशयोंको दूर करो; तुम्हारा वचन मैं वेदसे भी श्रेष्ठ समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सर्व्वशक्तिमान गदा पद्मधारी भगवान कृष्णने जिस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंके मृत शरीरोंसे परिपूर्ण हुई थी, उस वृत्तान्तको महाबलवान धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए।

४८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने महर्षियोंसे सुखसे भृगुनन्दन परशुरामके जन्म और उनके पराक्रम विषयक कथाको जिस भांति सुनी है, वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। उन महात्मा परशुरामजीने जिस प्रकार करोड़ों क्षत्रियोंका बध किया था और ये सब क्षत्रिय जिस भांति फिर राजवंशमें उत्पन्न हुए अर्थात् जो लोग उस समय भारतयुद्धमें मरे थे, उनको पुनरुत्पत्तिका वृत्तान्त भी कहूंगा। पहिले समयमें जन्हु नाम एक राजा थे; अज नाम उनके एक पुत्र हुआ; अजके पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक नाम एक धर्म्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ कालके अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी महात्मा कुशिकने विचारा, कि मेरे सब प्राणियोंसे अजेय त्रिलोकेश्वरके समान एक पुत्र उत्पन्न हो,—ऐसी इच्छा करके महाराज महात्मा कुशिक तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। सहस्र नेत्रवाले भगवान इन्द्रने महात्मा कुशिकको कठोर तपस्या देखकर तथा उन्हें अभिलषित पुत्र लाभके यथार्थ अधिकारी समझके स्वयं ही उनका पुत्र होना स्वीकार किया। महाराज! देवोंके राजा भगवान इन्द्र महात्मा कुशिकके पुत्ररूपसे जन्म लेकर गाधि नामसे विख्यात हुए। कुछ समयके अनन्तर महात्मा गाधिके सत्यवती

की एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको उन्होंने भृगुनन्दन महात्मा ऋचीकको प्रदान किया। महात्मा ऋचीकने निज भार्य्याके शुद्ध व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके और गाधिराजके पुत्र उत्पन्न होनेके वास्ते यत्नसे दो चरु उत्पन्न किये। अनन्तर अपनी स्त्रीको समीप बुलाके उससे बोले, हे कल्याणी! इन दोनों चरुओंको ग्रहण करो। इनमेंसे यह चरु अपनी माताको देना और इस चरुको तुम भक्षण करना। ऐसा होनेसे तुम्हारी माताके सब शस्त्रधारी प्राणियोंसे अजेय, क्षत्रियोंमें अग्रगण्य अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा; वह पुत्र पृथ्वीके सब क्षत्रियोंको दमन करनेवाला होगा। और इस दूसरे चरुके प्रभावसे तुम्हारे भी धृतिमान शान्तस्वभाववाला महातपस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा।

भृगुनन्दन ऋचीकने भार्य्यासे इतनी कथा कहके तपस्या करनेके वास्ते वनके बीच गमन किया। उसी समय गाधिराज तीर्थयात्रा करते हुए स्त्री सहित महात्मा ऋचीकके आश्रममें उपस्थित हुए। उन दोनोंको निज आश्रममें आया हुआ देखके ऋचीक-पत्नी सत्यवतीने दोनों चरुओंको लेकर हर्ष पूर्वक माताके समीप गमन करके दोनों ही भाग उनके हाथमें देकर स्वामीके कहे हुए सब वृत्तान्तको वर्णन किया। गाधिराजकी स्त्रीने भ्रमसे अपना चरु कन्याको देकर उसके चरुको आप भक्षण किया। अनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंको नाश करनेवाला, अग्निके समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र गर्भमें धारण किया। उस समय भृगुशार्दूल भगवान ऋचीक वहांपर आके उपस्थित हुए और योग प्रभावसे निज-भार्य्या देवरूपिणी सत्यवतीके गर्भस्थ पुत्रको देखके उससे कहने लगे,—हे भद्रे! चरु अदल बदल होनेके कारण तुम अपनी मातासे ठगी गई, इस कारण तुम्हारा पुत्र क्रूर स्वभाव और क्रूरकर्मोंका करनेवाला होगा औ[र] तुम्हारी माताके गर्भसे अत्यन्त तपस्वी ब्रह्मनि[ष्ठ] पुत्र उत्पन्न होगा। इसका कारण यह है कि तुम्हारा चरु ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण था, और तुम्हा[री] माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज परिपूरित थ[ा] परन्तु उसके उलट फेर होनेसे पुत्रभी तुम दोनों[के] बिपरीत होंगे अर्थात् तुम्हारे गर्भसे क्षत्रि[य] और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मण लक्ष[ण] युक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तब सत्यवती स्वामी[के] मुखसे ऐसा बचन सुनके पृथ्वीमें गिर पड़ी औ[र] कांपती हुई बिनय पूर्वक उनसे यह बच[न] बोली। हे भगवन्! "तुम्हारे ब्राह्मणाध[म] पुत्र उत्पन्न होगा।" आप मेरे विषयमें ऐ[से] वचन न प्रयोग करिये, क्यों कि आप तप[के] प्रभावसे सब विषयोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं

ऋचीक मुनि बोले, हे भद्रे! तुम यह म[त] समझो, कि मैंने पहिलेसे ही तुम्हारे वास[्ते] ऐसा सङ्कल्प किया था; केवल चरु बदलने[से] ही तुम्हारे गर्भसे कठोर कर्म्म करनेवाला पु[त्र] उत्पन्न होगा।

सत्यवती बोली, हे भगवन्! उत्तम पु[त्र] उत्पन्न होनेकी बात ही क्या है! आप इच्छा करनेसे तीनों लोकोंको फिरसे उत्पन्न क[र] सकते हैं, इससे कृपा करके मेरे गर्भसे ए[क] शम परायण शान्त स्वभाव युक्त पुत्र उत्प[न्न] करिये।

ऋचीक मुनि बोले, हे कल्याणि! यज्ञकी अग्निसे चरु प्राप्त करनेकी बात तो बहुत दूर है, मैंने कभी परिहासके मिससे भी मिथ्या वचन नहीं कहा है। विशेष करके तुम्हारे पिताके कुलमें जो शम परायण ब्रह्मज्ञ पुत्र उत्पन्न होके अपने सब कुलको ब्राह्मण धर्मावलम्बी करेगा; उसे मैंने पहिलेसे ही तपस्याके प्रभावसे जान लिया था।

सत्यवती बोली, हे भगवन् आपने जो कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहे, इसे मैं स्वीकार

करता हूं परन्तु पुत्र और पौत्रमें कुछ भी विशेष अनन्तर नहीं है; इससे आपकी कृपासे मेरा पौत्र क्षत्रियधर्म्मसे युक्त क्रूर-कर्म्मोंका करनेवाला और मेरा पुत्र शमपरायण ब्रह्म-निष्ठ होवे।

महात्मा ऋचीक मुनि बोले, हे वरवर्णिनि! पुत्र और पौत्रमें जो विशेष अनन्तर नहीं है, मैं इस वचनको स्वीकार करता हूं; इससे तुमने जैसी अभिलाषाकी है, वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! समय पूरा होने पर ऋचीकपत्नी सत्यवतीके जमदग्नि नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र तपस्यामें रत इन्द्रिय जीतनेवाला और शान्त प्रकृतिवाला हुआ था, इधर कुशिकपुत्र महात्मा गाधिराजके भी ब्राह्मणलक्षण युक्त विश्वामित्र नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुछ दिनोंके अनन्तर क्रमसे ब्रह्मत्व प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच ब्रह्मर्षि कहके विख्यात हुए थे।

तिसके अनन्तर ऋचीक-पुत्र तपस्वी जमदग्निके एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा अवस्था प्राप्त होनेपर वह अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर धनुर्व्वेद आदि सब विद्या पढ़के क्षत्रियनाशक राम नामसे सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच विख्यात हुए; उन्होंने गन्धमादन पर्व्वत पर जाके कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न करके तीक्ष्ण धारसे युक्त परशु और दूसरे सब अस्त्र शस्त्रोंको प्राप्त किया, और जलती हुई अग्निके समान तीक्ष्ण धारवाले प्रचण्ड फरसेसेही वह सब लोकोंके बीच अद्वितीय वीर योद्धा कहके विख्यात हुए। उस समय हैहय देशमें कृतवी-र्य्यपुत्र सहस्रबाहु अर्ज्जुन नाम एक महाबली राजा थे। उस धर्म्मात्मा महातेजस्वी अर्ज्जुनने महर्षि दत्तात्रेयकी कृपासे निज अस्त्र और बाहु बलके प्रभावसे सब पृथ्वी जय करके चक्रवर्ती राज्य प्राप्त किया और अश्वमेध यज्ञमें पर्व्वत वन और सात द्वीपवाली पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की। किसी समयमें अग्निदेवने भूखे होकर तृण काष्ठ आदि वस्तुओंको भस्म करनेकी अभिलाषासे राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके समीप आके प्रार्थना की, उन्होंने अग्निदेवको वन पर्व्वतोंके सहित ग्राम नगर और राज्य अस-र्पण किया, उससे अग्नि भगवान्ने अत्यन्त प्रसन्न होकर महातेजस्वी पुरुषेन्द्र कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे उनके बाणके अग्रभागसे प्रकट होके पर्व्वतोंके सहित सम्पूर्ण वनस्पति-योंको भस्म कर दिया। अग्निने हैहयराजकी सहायता पाके तथा वायुके प्रभावसे बढ़के निर्ज्जन स्थानमें स्थित महातेजस्वी महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनिके मनोहर आश्रम पर्य्यन्तको भी भस्म कर दिया। महाराज! इसी प्रकार कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे निज आश्रमको भस्म हुआ देखकर महातेजस्वी वशिष्ठ मुनिने उसे शाप दिया। हे अर्ज्जुन! तुमने जो मेरे इस वन और आश्रमको भस्म किया है, इस अपराधके कारण परशुराम तुम्हारे सब हाथोंको काटेंगे। महात्मा वशिष्ठ मुनिके शाप देनेपर भी महापराक्रमी शमपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, शरणागत पालक, दानी महाते-जस्वी बलवान सहस्रबाहु अर्ज्जुनने उनके शापकी कुछ भी पर्व्वाह न की। परन्तु, राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके बलवान पुत्र ही उनके वधके कारण होगये, अर्थात् वे लोग शाप प्रभावसे अभिमानमें मत्त होकर दुष्टताके सहित परशुरामकी अनुपस्थितिमें महर्षि जमदग्निके होमकी गऊके बछड़े हर ले गये। परन्तु वह कार्य्य हैहयराजकी अजानकारीमें हुआ था, तौभी महात्मा जमदग्नि मुनिके सङ्ग उनका महाघोर विरोध उपस्थित हुआ। उसी समय परशुराम युद्धमें प्रवृत्त होकर सहस्रबाहु अर्ज्जुनकी सब भुजाओंको काटके राजभवनके भीतर स्थित अपनी गौओंके बछड़ोंको लेकर अपनी कुटीपर लौट आये।

तिसके अनन्तर किसी समय यशस्वी परशु-राम कुश और काष्ठ लानेके निमित्त बनमें गये थे, उसी समयमें सहस्रबाहु अर्जुनके मूर्ख पुत्रोंने उनकी अवज्ञा की, और सबने एकत्रित होके महात्मा जमदग्नि ऋषिके आश्रममें गमन करके भालेसे उनका सिर काट डाला। भृगु-कुलसिंह महातेजस्वी परशुराम पिताके बधसे अत्यन्त कुपित हुए और क्रोधसे व्याकुल होकर उन्होंने प्रतिज्ञा करके अस्त्र ग्रहण किया, कि "मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करूंगा।"—अनन्तर महात्मा परशुरामने अपना पराक्रम प्रकाशित करके युद्धमें कार्त्त-वीर्य्य अर्जुनके पुत्र और पौत्रोंको शीघ्र ही मार डाला। महाराज! अनन्तर भृगुनन्दन परशु-रामने क्रुद्ध होके युद्धमें हैहयवंशीय सहस्रों क्षत्रियोंका बध करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचड़मय कर दिया। तिसके अनन्तर महात्मा परशुराम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करके अत्यन्त कृपायुक्त होकर बनमें चले गये, बनमें तपस्या करते हुए पर-शुरामको कई हजार वर्ष बीत गये। तब विश्वामित्र-पौत्र रैभ्यके पुत्र महातपस्वी परा-वसु जनसमाजके बीच परशुरामकी निन्दा करके उनसे यह बचन बोले, हे राम! स्वर्गसे पतित हुए ययाति राजाके निमित्त जो यज्ञ हुआ था, और उस यज्ञमें जो प्रतर्द्दन आदि राजा आके एकत्रित थे, वे क्या क्षत्रिय नहीं हैं? तुमने जो जनसमाजके बीच पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी बड़ाई की थी; तुम्हारी वह सब प्रतिज्ञा मिथ्या हुई! क्योंकि इस समय पृथ्वी फिर अनगिनत क्षत्रियोंसे परिपूर्ण है; हम लोगोंने समझ लिया, कि तुम इन सब वीरोंके भयसे ही इस पर्व्वतपर आके निवास कर रहे हो। महाराज! क्रुद्ध स्वभाव वाले भगवान परशुरामने परावसुके ऐसे निन्दायुक्त वचनोंको सुनके अपना अपमान समझकर फिर श[स्त्र] ग्रहण किया। जो क्षत्रिय पहिली बार युद्धमें किसी भांति जीवित बच गये थे, उ[न] महाबलवान क्षत्रियोंसे ही क्षत्रिय बंश ब[ढ़ा] और धीरे धीरे वेही सब क्षत्रिय सन्तान स[ब] पृथ्वीके राजा होगये थे। भृगुनन्दन पर[शु]रामने फिर शीघ्र ही युद्धभूमिमें उपस्[थित] होके बालकों तथा पुत्र पौत्रोंके सहित [उन] क्षत्रियोंको मारडाला।

तिसके अनन्तर जो बालक गर्भमें थे, उ[न] सब क्षत्रियपुत्रोंसे पृथ्वी फिर परिपूरित होग[ई]। परशुरामजीने इस-बृत्तान्तको सुनते ही फि[र] आके उनका बध किया। महाराज! इ[स] भांति जब जब क्षत्रियोंके पुत्र गर्भसे उत्[पन्न] होके बढ़ते थे, तब तब परशुराम बनसे आ[के] उनका संहार करते थे, परन्तु उस समय बहुत क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने अति कौशलके सहित अप[ने] गर्भकी रक्षा की थी। इधर महातेजस्वी भग[-]वान परशुरामने क्रमसे इक्कीस बार पृथ्वी[को] निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठा[न] किया और दक्षिणामें कश्यप मुनिको सार[ी] पृथ्वी दान कर दी। महर्षि कश्यपने क्षत्रि[य] बालकोंकी रक्षाकरनेकी अभिलाषासे हाथ[में] श्रुवा लेकर पृथ्वीका दान ग्रहण करके परश[ु]रामसे कहा, हे राम! इस समय यह पृथ्[वी] मेरी हुई है, अब इस पृथ्वीपर बास करन[ा] तुम्हें उचित नहीं है, तुम शीघ्रही दक्षिण समु[-]द्रके तीर गमन करो। इधर समुद्रने महात्[मा] परशुरामके निमित्त पृथ्वी सीमाको त्याग[कर] अपने उदरमें शूर्पारक नाम स्थान बना रक्खा। महर्षि कश्यप परशुरामसे सब पृथ्वी दान लेक[र] ब्राह्मणोंको समर्पण करके निज स्थानमें च[ले] गये। महाराज! जब पृथ्वी राजासे रहित [हो] गई, तब बलवान पुरुष निर्ब्बल पुरुषोंको दुःख देने लगे, शूद्र, वैश्य आदिक इच्छानुसार ब्राह्[म]णोंकी स्त्रियोंसे अधर्म्म करने लगे, अधिक क्[या]

कहा जावे, उस समय डाकुओंके उपद्रवसे किसी को भी अपने धन पर अधिकार तथा प्रभुता न रही। इसी भांति समयकी गति विपरीत होनेपर पृथ्वी धर्म्म-पालक क्षत्रियोंसे यथारीति न रक्षित होनेके कारण दुष्टोंके भारसे अत्यन्त दुखित होके पातालमें जानेके निमित्त उद्यत हुई। महातपस्वी कश्यप मुनिने पृथ्वीको पातालमें गमन करनेके वास्ते उद्यत देखकर उसे ऊरु पर धारण किया, पृथ्वी कश्यप मुनिके ऊरु पर धारण होनेके कारण उर्व्वी नामसे विख्यात हुई। अनन्तर पृथ्वीने अपनी रक्षाके वास्ते महात्मा कश्यपको प्रसन्न करके धर्म्मात्मा राजाकी प्रार्थना की। पृथ्वी बोली, हे ब्रह्मन्! कितनी ही स्त्रियोंसे क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होके मुझसे रक्षित होकर गुप्तरीतिसे निवास कर रहे हैं, मैं तुम्हारे समीप उनके कुल और गोत्रका वर्णन करती हूं आप सुनके मेरी रक्षाका उपाय करिये। कितने ही हैहयवंशीय धर्म्मात्मा क्षत्रिय जीवित हैं, पुरुवंशीय विदूरथ पुत्र ऋक्षवान पर्व्वत पर रीछोंसे रक्षित होकर वहां पर निवास कर रहा है। सौदास राजपुत्र जिसकी पराशर मुनिने कृपा करके रक्षाकी है; वह भी जीवित है; परन्तु उसके संस्कार आदि सब कर्म्म शूद्रजातिकी भांति किये गये हैं, इसीसे अब वह सर्व्व-कर्म्मा नामसे विख्यात है। शिविपुत्र महातेजस्वी गोपति वनके बीच गौवोंके दूधसे प्रतिपालित होकर जीवित है। प्रतर्द्दनपुत्र महाबलवान वत्स गौवोंके समूहमें बछड़ोंके साथ मिलके गौवोंका दूध पीके प्राण धारण करता है। गङ्गाके किनारे गोतम-वंशीय किसी ब्राह्मणने कृपा करके दधिवाहन-पौत्र दिविरथके पुत्रकी रक्षा की है। महर्षि भूरिभूतिने महातेजस्वी वृहद्रथका संस्कार आदि कर्म्म किया है, वह भाग्यवान बालक गृद्धकूट पर्व्वत पर गोलाङ्गूलोंसे रक्षित होकर प्राण धारण करता है। इन्द्रके समान पराक्रमी कितने ही मरुतवंशी क्षत्रिय भी जीवित हैं; समुद्रने उन लोगोंकी रक्षा की है। हे ब्रह्मन्! ये सब क्षत्रिय पुरुष आके दुष्ट डाकुओंसे मेरी रक्षा करें। हे विप्र! मैंने जिन क्षत्रियोंका वृतान्त कहा है, वे सब प्राणभयसे ऊपर कहे हुए स्थानोंमें गुप्त रीतिसे निवास कर रहे हैं, इसके अतिरिक्त कितनेही बढ़ई और सोनारोंके घरोंमें वेष बदलके बहुतसे क्षत्रिय पुरुष विद्यमान हैं। यदि ये सब श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय पुरुष आके मेरी रक्षा करें, तो मैं अवश्य ही स्थिरताके सहित स्थित होऊंगी। देखिये, इन क्षत्रियोंके पिता, पितामह आदि सब पुरुष मेरे ही निमित्त कठिन कर्म्मोंके करनेवाले परशुरामके हाथसे मारे गये हैं; इससे मैं अवश्य ही उनके कुलमें उत्पन्न हुए तथा मरनेसे बचे हुए वीर धुरीण पुत्र पौत्रोंको अपना स्वामी स्वीकार करके उन मृत राजाओंके ऋणसे मुक्त होऊंगी। हे महर्षि! अधिक क्या कहूं, मैंने जो कुछ वचन कहा यदि वैसा ही हो, तो मैं स्थिरताके सहित निवास कर सकती हूं; परन्तु मर्य्यादारहित दुष्ट पुरुषों तथा डाकुओंसे रक्षित होना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करूंगी, इससे आप शीघ्रताके सहित उन राजपुरुषोंको राज्यपद पर प्रतिष्ठित करनेका उपाय करिये।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! तिसके अनन्तर महात्मा कश्यप मुनिने पृथ्वीके वचनको सुनके उन बलवीर्य्यसे युक्त सब क्षत्रिय पुत्रोंको लाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। जिन राजाओंके पुत्र पौत्र आदि जीवित थे, इसी भांति उन लोगोंका वंश फिर राजपदपर प्रतिष्ठित हुआ। हे राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो कुछ प्रश्न किये, मैंने वह सब वृत्तान्त यथारीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राज जन्मेजय! इसी भांति यदुकुल श्रेष्ठ स

चन्द्र धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी राजा युधिष्ठिरसे प्राचीन कथा कहते हुए सूर्य्य किरण समान प्रकाशमान रथसे सब दिशाओं प्रकाशित करते तथा वायुके समान वेगगामी रथपर चढ़े हुए गमन करने लगे ।

४६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर भृगुकुल शिरोमणि परशुरामजीके अद्भुत कर्म्मोंको सुनके अत्यन्त ही विस्मित हुए और जनार्द्दन कृष्णसे बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! मैं इन्द्रके समान अत्यन्त पराक्रमी परशुरामके पराक्रमकी कथा सुनके अत्यन्त ही आश्चर्य्य युक्त हुआ हूं, क्योंकि उन्होंने क्रुद्ध होकर अकेले ही सब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया था । यह भी अत्यन्त ही आश्चर्य्यका विषय है, कि मरनेसे बचे हुए क्षत्रियसन्तानोंने परशुरामके भयसे व्याकुल होकर गऊ, गोलाङ्गूल ऋक्ष, बन्दर और समुद्रके आसरेसे अपनी प्राणरक्षा की थी । अहो ! इस जीव लोकको धन्य है और इस पृथ्वीके मनुष्योंको भी धन्य है । क्यो कि ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य महर्षि कश्यपने इस प्रकार धर्म्म कार्य्य किया है, अर्थात् कृपा करके राजपुत्रोंको रक्षा करके पृथ्वीको धर्म्मपूर्व्वक रक्षित किया है। महाराज ! श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांति वार्त्तालाप करते हुए चलते चलते सात्यकि आदि वीरोंके सहित उस स्थानपर जा पहुंचे, जहां गङ्गानन्दन भीष्म शरसय्यापर शयन कर रहे थे । उन लोगोंने वहांपर पहुंचके देखा, कि बहती हुई नदीके किनारे परम पवित्र स्थानमें शरशय्यापर स्थित महात्मा भीष्म मानो अपने तेजसे सन्ध्या कालके सूर्य्य समान प्रकाशित हो रहे हैं ।

अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान, कृपाचार्य्य और भीम-अर्जुन आदि पुरुषश्रेष्ठ और भगवान इन्द्रकी उपासना करनेवाले देवतोंकी भांति मुनियोंसे पूजित भीष्मको दूरसे ही देखके सब कोई रथसे उतरे, और सब इन्द्रियों तथा चञ्चल चित्तको संयम करके पहिले मुख्य मुख्य मुनियो तथा व्यास आदिक ऋषियोंको प्रणाम करके फिर गङ्गानन्दन भीष्मकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए । तिसके अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ यादव और कौरव लोग महातपस्वी गङ्गानन्दन भीष्मका दर्शन करके उनके चारोंओर बैठ गये, तब यदुनन्दन कृष्ण शान्त होती हुई अग्निकी भांति भीष्मको क्रमशः शान्त भावसे देखकर किञ्चित् दीन चित्तसे बोले,—हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इस समय आपका चित्त पहिलेकी भांति प्रसन्न तो है ? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं हुई है ? बाणोंकी चोटकी पीड़ासे आपका शरीर पीड़ित तो नहीं है ? क्योंकि मानसिक दुःखोंसे भी शारीरक क्लेश प्रबल होते हैं ! मैं जानता हूं, कि आप निजपिता महाराज शान्तनुके वरप्रभावसे इच्छानुयायी मृत्यु प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं ! अधिक क्या कहूं, आपने जिस प्रकार पिताको सन्तुष्ट करके इच्छामरण वर प्राप्त किया है, वैसा पितृसन्ताप रूपी कारण हम लोगोंमें विद्यमान नहीं हैं । तथापि जब कि मनुष्य शरीरमें एक कांटेके गड़जानेसे भी शरीरको क्लेश होता है तब अनगिनत बाणोंकी चोटसे जो आपके शरीरमें पीड़ा होगी इसमें क्या आश्चर्य्य है ? परन्तु इसमें अवश्य ही स्वीकार करूंगा, कि ऊपर कहे हुए सुख दुःख साधारण पुरुषोंका ही आक्रमण कर सकते हैं, आप ऐसे पुरुषोंको क्लेश आदिक कदापि मोहित तथा दुःखित नहीं कर सकते, क्योंकि आप प्राणियों की उत्पत्ति और लय आदि सम्पूर्ण तत्वोंका देवताओंको भी उपदेश करनेमें समर्थ हैं । हे भरतर्षभ ! आप इस पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं । अधिक क्या कहूं, भूत, वर्त्तमान और भविष्य

इन तीनों कालोंके जो कुछ जानने योग्य विषय हैं, आप उन सब वृत्तान्तोंको जानते हैं। हे महाबुद्धिमान! धर्म्मके फलोंकी प्राप्ति और प्राणियोंका संहार यह सब आपको विदित है; क्योंकि आप धर्म्मात्मा और धर्म्मके आधार स्वरूप हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! दार-परित्याग रूपी प्रतिज्ञाके पहिले भी जब कि आप वैसे समृद्धि-युक्त राज्यके बीच सहस्रों स्त्रियोंके बीच घिरे रहते थे, उस समय भी मैंने आपको रोगरहित शरीरसे युक्त ऊर्द्ध रेता ब्रह्मचारी पुरुषके समान देखता था। धर्म्मपरायण सत्यनिष्ठ महाबली पराक्रमी शान्तनुपुत्र भीष्मके अतिरिक्त तीनों लोकके बीच दूसरे ऐसे किसी प्राणीका भी प्रभाव नहीं सुना गया, जो शरशय्यापर शयन करके तपके प्रभावसे मृत्युको इच्छानुसार निवारण कर रखे? भरतकुल शिरोमणि! सत्य, तपस्या, दान युद्ध, यज्ञ, धनुर्वेद, वेद और शरणागतको पालन करनेवाला आपके समान दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है; और अनृशंसता, पवित्र स्वभाव, इन्द्रिय-संयम, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाला और युद्धमें अद्वितीय रथी ही आपके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है? आप जो अकेले ही युद्धमें देवता, गन्धर्व्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको पराजित करनेमें समर्थ हैं, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वसु अंशसे जन्म ग्रहण करनेसे यद्यपि ब्राह्मण लोग आपको गणना नवम वसुमें करते हैं, तौभी निज गुणोंके प्रभावसे आप सब वसुओंसे भी श्रेष्ठ होकर इन्द्रकी समानताको पहुंचे हैं। हे पुरुष सत्तम! आप निज पराक्रमके प्रभावसे देवलोकमें भी विख्यात हुए हैं, आपके ज्ञान और सामर्थ्यके विषय आदि मुझसे कुछ भी छिपे हुए नहीं है। हे नरेन्द्र! इस पृथ्वीपर आपके समान गुणशाली कोई पुरुष विद्यमान हैं, ऐसा न कहीं देखा गया और न उसे पृथ्वीपर सुननेमें ही आया।

हे पुरुषोत्तम! आप सब गुणोंमें देवताओंसे भी श्रेष्ठ हुए हैं और निज तपस्याके प्रभावसे चराचर प्राणियोंकी नयी सृष्टि भी करनेमें समर्थ हैं। ऐसे समयमें आप जो उत्तम गुणोंके प्रभावसे अपने गमन करने योग्य उत्तम लोकको प्राप्त करेंगे; उसमें सन्देह ही क्या है। इससे आप इस समय निज उपदेशसे स्वजन-नाश शोकसे व्याकुल पाण्डवोंमें जेठे महाराज युधिष्ठिरका शोक दूर करिये। क्योंकि चारों वर्ण; चारों आश्रम, चारों विद्या, चातुर्होत्र, वेद, सांख्य, योग और शिष्टाचार आदि जो कुछ धर्म्म हैं, वे सब आपको विदित हैं; अधिक क्या कहा जावे, जो चातुर्व्वर्णोंके विरुद्ध नहीं हैं, उन सब धर्म्मके गूढ़ तात्पर्य्य अर्थोंको व्याख्याके सहित आप जानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिलोमजात वर्ण धर्म्म, जातिधर्म्म, देश-धर्म्म और कुलधर्म्म आदि जो सब लक्षण वेद-शास्त्रोंमें वर्णित हैं, वे सब भी आपसे अविदित नहीं हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! अर्थ सहित निखिल धर्म्मशास्त्र और पुराण आदिकोंके सब तात्पर्य्य आपके मनमें विशेष करके इस संसारके बीच जिन विषयोंके अर्थोंमें संशय हैं; उसे छेदन करनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष हो सकता है? इससे आप अपने ज्ञानप्रभावसे धर्म्मराज युधिष्ठिरके मन उत्पन्न हुए शोकको दूर कीजिये, क्योंकि आपके समान ज्ञान वृद्ध पुरुषोंका जन्म केवल शोकादिकोंसे मोहित मनुष्योंके चित्तमें शान्ति स्थापित करानेके वास्ते होता है।

५० अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुरु-कुल शिरोमणि भीष्म बुद्धिमान कृष्णके वचनको सुनके कुछ वदन झुकाके उनसे बोले, हे भगवन्! तुम ही

उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हो; इससे तुम्हें नमस्कार है। हे कृष्ण! हे विश्वकर्म्मन्! तुम्हीं इस जगत्की आत्मा हो, तुमसे ही यह संसार उत्पन्न हुआ है। हे हृषीकेश! तुम सम्पूर्ण लोकोंमें अजेय हो, तुम्ही सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो। तुम, ही अपवर्ग अर्थात् नित्य मुक्त स्वरूप हो, तुम पञ्च महाभूतों और शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध आदि पांचों गुणोंसे पृथक् हो। तुम स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल इन तीनों लोकों और तीनों कालोंमें विद्यमान हो; तथापि इनसे भिन्न समझे जाते हो! इससे तुम्हें नमस्कार है। हे योगीश्वर! तुम सबके आश्रय स्वरूप हो, इसे तुम्हें प्रणाम है। हे पुरुषोत्तम! तुमने प्रसन्न होकर मेरे गुणोंका वर्णन किया है, उससेमुझे दिव्य-नेत्र प्राप्त हुआ है, जिसके प्रभावसे मैं त्रिलोक स्थित दिव्य भाव और आपके सनातन रूपका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ हूं। तुम अत्यन्त तेजस्वी वायुरूपसे सप्तछिद्रोंको निरोध करके सबके हृदयमें स्थित हो। तुम्हारे शिरसे आकाश और चरणसे पृथ्वी व्याप्त है, दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य नेत्र और इन्द्र तुम्हारे पराक्रमके प्रभावसे प्रतिष्ठित हैं। हे अच्युत! तुम्हारा शरीर अतसीपुष्पके समान है, वह पीतवस्त्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार शोभित होरहा है, जैसे आकाशमण्डलमें बिजलीसे युक्त बादलोंकी शोभा होती है! हे देवोंमें श्रेष्ठ! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं तुम्हारा शरणागत भक्त हूं, मैं उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे तुमसे प्रार्थना कर रहा हूं, इससे जिस प्रकार मेरा कल्याण होवे, आप उसीका विधान करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे कुरुनाथ! तुम जो कपटरहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर रहते हो, उसी कारण तुमने मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन किया है! भक्तिरहित, कपटी भक्त और शान्ति रहित पुरुष मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होसकते; परन्तु तुम मेरे अत्यन्त ही भक्त और विनय सम्पन्न हो। विशेष करके तुम तपस्या, दया और दान आदि कर्म्मोंमें सदासर्व्वदा रत रहते हो; तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त निर्म्मल है; तुम निज तपस्याके प्रभावसे मेरी दिव्य मूर्त्ति दर्शनके योग्यपात्र हो। हे भीष्म! जिस स्थानमें गमन करनेसे जीवोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती, तु उसी स्थानमें मैं भेजूंगा परन्तु इस समय अ तीस दिवस तुम्हारे जीवनका समय बाकी कार्य्योंको कर सकते हैं, आप तीस ही दिन उससे अधिक कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान क उसे पूर्ण करनेमें समर्थ होंगे। इसके अन शरीर त्यागके अपने अभिलषित स्थानमें ग कीजियेगा। यह देखिये, जलती हुई अग्नि समान बसु और देवता लोग विमानोंपर च अलक्षित भावसे सूर्य्यके उत्तरायण काल प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कुरुश्रेष्ठ। तत्वज्ञ पुरुष जिस लोकमें जाके फिर मर्त्यलोक नहीं आते, भगवान सूर्य्यके उत्तरायण हो पर तुम शरीर त्यागनेके उपरान्त उस स्थानमें गमन करोगे। हे भीष्म! जब इस लोकसे गमन करोगे, तब उस समय ज्ञ लुप्त प्राय होजायगा, उसी कारणसे ये सब धर्म्म-जिज्ञासु होकर तुम्हारे समीप आके उ स्थित हुए हैं, उससे स्वजन-नाशरूपी शोक दुःखित सत्यवादी युधिष्ठिरको आप धर्म्म, अ और समाधि, तथा योगयुक्त सत्य वचनों उपदेश करके इनका शोक दूर करिये।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्त शान्तनुपुत्र भीष्मने श्रीकृष्णचन्द्रके धर्म्म अर्थ-यु लोक हितकर वचनको सुनके हाथ जोड़ उन्हें उत्तर दिया, हे जगन्नाथ! तुम साक्षात्

शिवस्वरूप अव्यय पुरुष नारायण हो; तुम्हारे वचनोंको सुनके मेरा हृदय आनन्दसे पुलकित होरहा है। जब कि हर एक विषयोंमें कहने योग्य जो कुछ वचन हैं, वे सब पहिलेसे ही तुम्हारे वचनरूपी वेदोंमें विद्यमान हैं; तब मैं तुम्हारे सम्मुख किस कथाका उपदेश करनेमें समर्थ होसकता हूं? इस लोक और परलोकमें कल्याणकी अभिलाषा करके बुद्धिमान पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं, और इस संसारमें जो कुछ करने योग्य कार्य्य हैं, वह सब तुमसे ही प्रकट हुए हैं; इससे जो पुरुष देवराज इन्द्रके समीप देवलोकका भी वृत्तान्त कहनेमें समर्थ है। वही पुरुष तुम्हारे सम्मुख धर्म्म अर्थ, काम और मोक्षके यथार्थ वृत्तान्तको कह सकेगा। हे मधुसूदन! मेरा शरीर बाणोंकी चोटसे अत्यन्त पीड़ित है, उससे मेरा चित्त व्याकुल होरहा है, मेरा सम्पूर्ण शरीर शिथिल होरहा है, मेरी बुद्धि चञ्चल है। हे गोविन्द! विष तथा वज्रके समान बाणोंकी चोटसे मेरे सब अङ्ग अत्यन्त ही पीड़ित होरहे हैं, इसी कारण मेरी बुद्धि इस प्रकार प्रतिभा-रहित होरही है, कि वचन कहनेमें प्रवृत्ति नहीं होती है। मेरा शरीर धीरे धीरे बलहीन हुआ जाता है, प्राण शरीरसे बाहर हुआ चाहता है और मेरे मर्म्मस्थल इस प्रकार पीड़ित होरहे हैं. कि उससे बारम्बार मेरा चित्त भ्रमित होता है। जब कि निर्व्बलताके कारण मेरे मुखसे वचन भी बार बार नहीं बाहर होते हैं; तब मैं धर्म्म उपदेश करनेका किस प्रकार उत्साह कर सकता हूं? हे दाशार्ह कुलवर्द्धन कृष्ण! मैं तुमसे क्षमा प्रार्थना करता हूं, आप कृपा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये; मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगा? विशेष करके तुम्हारे समीप उपदेश करनेमें बृहस्पति भी असमर्थ हो सकते हैं। हे मधुसूदन! मेरा चित्त इस प्रकार भ्रान्त हो रहा है, कि आकाश, पृथ्वी और दिशा भी मुझे विशेष रूपसे नहीं मालूम होती है; केवल तुम्हारे तेजके प्रभावसे जीवन धारण कर रहा हूं, इससे धर्म्मराज युधिष्ठिरका जिसमें हित हो; तुम स्वयं ही उस विषयका उपदेश करो; क्योंकि तुम वेद-शास्त्रोंके नियन्ता हो। हे कृष्ण! सब लोकोंके कर्त्ता नित्यपुरुषस्वरूप तुम निकटमें ही उप-स्थित हो, ऐसी अवस्थामें मेरे समान पुरुष किस प्रकार धर्म्मका वक्ता होसक्ता है? ऐसा होनेसे जैसे गुरुके उपस्थित रहते कोई शिष्य उपदेष्टा बने, मेरा उपदेश करना भी तुम्हारे समीप वैसा ही समझा जावेगा।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे गङ्गानन्दन भीष्म! तुमने जो कुछ वचन कहा, वह सब वचन स्वार्थदर्शी, स्थिर-प्रतिज्ञ, महापराक्रमशाली कौरव-शिरोमणि महात्मा भीष्मके योग्य ही है। तुमने जो बाणोंकी पीड़ाका वर्णन किया, उसके वास्ते मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूं,—अबसे शारीरक पीड़ा तथा दाह मूर्च्छा आदि किसी प्रकारकी पीड़ा और भूख प्यास आदिके क्लेश तुम्हारे चित्तको कदापि दुःखित न कर सकेंगे। हे पापरहित! इस समय तुम्हारे ज्ञानकी प्रतिभा पूरी रीतिसे प्रकाशित होगी; तुम्हारी बुद्धि अबसे किसी विषयमें भी भ्रमित न होगी। आजसे तुम्हारा चित्त रज और तमोगुणसे रहित होकर केवल सतोगुणमें इस प्रकार स्थित होगा, जैसे चन्द्रमा मेघमण्डलसे मुक्त हो निर्म्मल ज्योतिसे युक्त होकर आकाशमें स्थित होता है। तुम जिस धर्म्म वा अर्थका विचार करोगे, वह विषय तुम्हारी बुद्धिमें पूर्ण रीतिसे प्रकाशित होगा। हे महापराक्रमी! तुम दिव्य चक्षुके सहारे चार प्रकारके प्राणियोंके सूक्ष्म तत्वोंको जान सकोगे, और वे सब निर्म्मल जलमें स्थित मछ-लियोंकी भांति जिस प्रकार इस संसारमें विच-रण कर रहे हैं, उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी

तुम ज्ञान नेत्रके सहारे यथार्थ रूपसे देख सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण भगवानने जब भीष्मको ऐसा बरदान किया, तब व्यासदेव आदिक ऋषियोंने ऋक् यजु और सामवेदके मन्त्रोंसे उनकी पूजा की; उस समय आकाशसे श्रीकृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऊपर सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंके समूहों की वर्षा होने लगी; नाना भांतिके बाजे बजने लगे और अप्सरा गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस समय वहांपर किसी प्रकारके अनिष्ट विषय नहीं दीख पड़े! सब प्रकारसे सुख जनक शीतल, मन्द और सुगन्ध युक्त वायु बहने लगा, सम्पूर्ण दिशा निर्म्मल हो गईं, मृग आदि पशु-पक्षी आनन्दित होके शान्त भावसे चारोंओर भ्रमण करने लगे। तिसके अनन्तर जैसे अग्नि भगवान बहुत बड़े बनको भस्म करके जङ्गलके एक भागमें दीख पड़ते हैं वैसे ही सहस्र किरणधारी भगवान सूर्य्य अपने प्रचण्ड तेजसे जगत्‌को तपाके पश्चिम दिशामें दीख पड़े। सूर्य्यको पश्चिम दिशामें देखकर महर्षि लोगोंने सन्ध्योपासना करनेके निमित्त सहसा उठके जनार्द्दन कृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप विदा होनेकी प्रार्थना की। महात्मा कृष्ण, पाण्डव लोग, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य्य आदि पुरुषोंने उन ऋषि मुनियोंको प्रणाम किया। धर्म्मात्मा ऋषि लोग कृष्ण आदि महात्मा पुरुषोंसे पूर्ण रीतिसे पूजित और सत्कृत होकर कल्ह हम लोग फिर आवेंगे, ऐसा बचन कहके निज निज अभिलषित स्थानोंपर चले गये। तब महात्मा कृष्ण और पाण्डव लोगोंने भीष्मको सम्बोधन करके उनकी प्रदक्षिणा की और फिर अपने उत्तम रथोंपर चढ़के प्रस्थान करनेके निमित्त तैयार हुए। उस समय सुवर्णमय सुन्दर ध्वजा पताकाओंसे शोभित रथ, गरुड़के समान शीघ्र गमन करनेवाले घोड़े और पर्व्वतके समान बड़े शरीर वाले हाथियोंके समूह सज्जित होनेपर गजसवार, रथी घुड़सवार निज वाहनपर और पैदल सेनाके योधालोग हाथमें धनुष ग्रहण करके उनके सङ्ग चलनेको तय्यार हुए। अनन्तर वह चतुरङ्गिनी सेना सज्जित होकर दो भागोंमें विभक्त हुई और भगवान कृष्ण तथा धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे पीछे होकर इस प्रकार गमन करने लगी, जैसे ऋक्षवान पर्व्वतके आगे पीछेसे परिक्रमा करती हुई महानदी नर्मदा गमन करती है। इधर भगवान चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे उस व्यूहबद्ध सेनाके पुरुषोंके चित्तको आनन्दित और प्रचण्ड प्रभाकर औषधियोंमें रस प्रदान करते हुए पूर्व्व दिशामें उदय हुए। तिसके अनन्तर यदुपति कृष्ण, सात्यकि और पाण्डव लोग इन्द्रपुरीके समान लक्ष्मीसे युक्त हस्तिना नगरीमें उपस्थित हुए; और जैसे थका हुआ सिंह पर्व्वतकी कन्दरामें प्रविष्ट होता है वैसे ही उन महात्मा पुरुषोंने उस राज-नगरीमें प्रवेश किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिससे अनन्तर मधुसूदन कृष्णने राजभवनमें गमन करके उत्तम पलङ्गके ऊपर जाके शयन किया, और आधी रात बाकी रहते ही उठके पहिले इन्द्रियों और बुद्धिको स्थिर करके परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान किया। कुछ समयके अनन्तर मनोहर कण्ठ और स्वरोंसे युक्त शास्त्र और पुराणोंके जानने वाले बन्दीजन प्रजापति, विश्वकर्म्मा श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुति करने लगे। उस ही समय सहस्रों ढोल, मृदङ्ग शंख, बीन और बांसुरी आदि बाजे बजने लगे; गीत गानेवाले कोमल स्वरोंसे मीठे गीत गाने लगे। उस समय गीत और बाजोंके शब्दसे पूरित होकर भग-

वान कृष्णका शयनागार इस प्रकार बोध होता था, मानो ऊंचे स्वरसे हंस रहा है। इधर राजा युधिष्ठिरके निकट भी मङ्गल-जनक स्तुतिपाठ, बाजोंके शब्द और कोमल स्वरोंसे युक्त उत्तम गीत आदि सुनाई देने लगे। तिसके अनन्तर यदुकुल शिरोमणि महाबाहु श्रीकृष्ण-चन्द्र स्नान कर हाथ जोड़कर गुप्त मन्त्रोंका जप किया, और होम कार्य्य समाप्त करके राज मन्दिरके बाहर आये, उस समय चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मण उनके समीप आकर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण भगवानने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक गऊ दान की; उन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने आनन्दित होकर दान ग्रहण करके उनका स्वस्तिवाचन किया। तब कृष्ण सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुवोंको स्पर्श करके दर्पणमें अपने स्वरूपका दर्शन करके सात्यकिसे बोले; हे सात्यकि। महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिर भीष्मके दर्शनकी इच्छासे उनके समीप जानेके वास्ते तैयार हुए हैं, वा नहीं; तुम उनके मन्दिरमें जाके देख आओ।

सात्यकिने कृष्णकी आज्ञा सुनके धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप जाके यह बचन कहा, महाराज! बुद्धिमान कृष्णका रथ सज्जित है, वह गंगानन्दन भीष्मको देखनेकी इच्छासे तुम्हारी प्रतीक्षा करके स्थित है, इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य्य करना हो, उसे कहिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर सात्यकिका वचन सुन कर अर्जुनसे बोले, हे महा तेजस्वी अर्जुन! तुम मेरे वास्ते उत्तम रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दो। आज केवल हम लोग ही कई एक पुरुष महात्मा भीष्मके निकट जावेंगे, सेना ले चलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है; क्यों कि धर्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी महात्मा भीष्म पितामहको सेनाके कोलाहलसे क्लेश देना उचित नहीं है, इससे आज तुम सेनाको संग चलनेके वास्ते निषेध करो। भीष्म पितामह आजसे अत्यन्त गुप्त धर्म्मकथाका उपदेश करेंगे, इससे मैं उस स्थानपर अन्य साधारण पुरुषोंके भीड़की इच्छा नहीं करता हूं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनके शीघ्रही रथ सज्जित कराके उनके समीप आके निवेदन किया। तब धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाचों भाई मिलके कृष्णके समीप गये। महात्मा पाण्डवोंके आगमन करते ही श्रीकृष्ण भगवान सात्यकिके सहित अपने रथ पर चढ़े। वे सब पुरुष श्रेष्ठ बीर लोग आपसमें "तुम्हारी सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत हुई?" इत्यादि कुशल प्रश्न करते हुए बादलके शब्द समान अपने रथोंके शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। अनन्तर श्रीकृष्णके मेघपुष्प, वलाहक, शैव्य और सुग्रीव नामक चारो घोड़े दारुक सारथीसे चलानेपर इस प्रकार वेगपूर्व्वक गमन करने लगे, मानो आकाश मार्गसे उड़ जाते हैं। इसी भांति महात्मा पाण्डवोंके रथ भी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, अधिक क्या कहा जावे? क्षणभरमें वे सब रथ कुरुक्षेत्र नामक धर्म्मक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए और क्रमसे जिस स्थानमें देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माकी भांति भीष्म महर्षियोंसे घिरे हुए शरशय्यापर शयन कर रहे थे, उनके समीप आके स्थित हुए। तब श्रीकृष्ण, धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकि आदि महातेजस्वी पुरुष रथसे उतरे और दहिने हाथसे ऋषियोंकी पूजा की। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तारामण्डलसे युक्त चन्द्रमाकी भांति भाइयोंके बीच घिरकर उपदेश ग्रहणकी अभिलाषासे इस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मके समीप गमन किया, जैसे इन्द्र देवतोंके सहित ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। इन्होंने

उस स्थानमें स्थित होकर भययुक्त चित्तसे स्वर्ग भ्रष्ट आदित्यके समान शरशय्यापर महाबाहु भीष्म पितामहका दर्शन किया।

५३ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे महाऋषि! उस भयङ्कर वीर समागममें सम्पूर्ण सेनाके नष्ट होनेके अनन्तर वीर-शय्यारूपी शरशय्यापर शयन करते हुए सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महा-पराक्रमी, पुरुषसिंह गङ्गादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए शान्तनुपुत्र महातेजस्वी धर्मात्मा भीष्म पितामहने पाण्डवोंसे उपासित होकर जिन कथाओंका प्रसंग किया हो, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद आदि सिद्ध महर्षि लोग और अन्धराज धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा लोग दूसरे दिन सवेरा होते ही कुरु पाण्डवोंके पितामह कुलधुरन्धर गंगानन्दन भीष्मके समीप गमन करके उन्हें आकाशभ्रष्ट सूर्य्यकी भांति शरश-य्यापर शयन करते देखकर आक्षेप करने लगे अनन्तर देवऋषि नारद मुनिने मुहूर्त्त भर तक चिन्ता करके युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजाओं और पाण्डवोंसे बोले, देखा सूर्य्यके अस्त होनेकी भांति गंगानन्दन भीष्मका मृत्युकाल निकट-वर्त्ती हुआ है; इससे तुम लोगोंका जो कुछ पूछना हो, उसे इस ही समय पूछ लो; क्योंकि इस समय महात्मा भीष्मने प्राण त्यागनेका सङ्कल्प किया है, इससे तुम लोग धर्म जिज्ञा-सामें प्रवृत्त होजाओ; ये चारों वर्णोंके धर्म विशेष रूपसे जानते हैं। हे राजा लोगो! तुम लोग मेरा वचन चित्त लगाके सुनो, यह प्राज्ञ वृद्ध भीष्म अवश्य ही शरीर त्यागके परलोकमें गमन करेंगे, तुम लोगोंको जिस विषयमें संशय हो, वह इनसे पूंछके अपनी शङ्का निवारण करो। राजा लोग नारद मुनिके वचनोंको सुनके सब कोई भीष्मके निकट उपस्थित हुए। परन्तु किसी विषयमें कुछ प्रश्न करनेमें समर्थ न हुए, वे सब कोई आपसमें एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे। उस समय पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर हृषीकेश कृष्णसे बोले, हे देवकी नन्दन! हे मधुसूदन! हे यदुकुल भूषण! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष पितामहके निकट प्रश्न करनेमें समर्थ होगा? हे भ्राता! हम सब लोगोंके बीच तुम ही पूर्णरीतिसे धर्म विषयके जाननेवाले हो; इससे पहिले तुम्हीं पितामहके समीप प्रश्न करो।

अनन्तर उस समय श्रीकृष्ण भगवान युधिष्ठिरके बचनको सुनके महात्मा भीष्मके निकट गमन करके यह बचन बोले, हे राजसत्तम गत रात्रि तुमने सुखसे व्यतीत की है न तुम्हारी बुद्धि भली भांति स्थिर तो है? हे पापरहित! तुम्हारा ज्ञान अच्छी प्रकार प्रकाशित तो है? तुम्हारा चित्त पीड़ासे कातर होकर व्याकुल तो नहीं है?

भीष्म बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! कल जो तुमने प्रसन्न होकर मुझे बरदान दिया तभीसे मेरे शरीरसे मोह, थकावट, दाह खिन्नता, ग्लानि और सम्पूर्ण पीड़ा दूर होगई है। हे अच्युत! हे महातेजस्वी! तुम्हारे वरदानके प्रभावसे मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्य इन तीनों कालोंके सम्पूर्ण विषयोंको हाथमें स्थित फलकी भांति और वेदशास्त्रोंमें जो कुछ धर्म आदिक विषय वर्णित हुए हैं, उसे प्रत्यक्षकी भांति अवलोकन कर रहा हूं। हे जनार्दन देश, जाति और कुलविषयक तथा महात्मा पुरुषोंके कहे हुए जो कुछ धर्म हैं, वह मेरे अन्तःकरणमें स्थित हैं। हे जनार्दन! तुम्हारी कृपासे मेरा मन कल्याण करनेवाली बुद्धिसे युक्त हुआ है, इससे सम्पूर्ण राजधर्म, ब्रह्मचर्य्य

गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्न्यास आदि चारों आश्रम सम्बन्धीय धर्म्मोंके जो कुछ उद्देश्य हैं, वे सब मुझे मालूम हुए हैं। जिन स्थलोंमें जो कुछ कहना उचित है, मैं उसे कहूंगा। अधिक क्या कहूं, तुम्हारे ध्यानके प्रभावसे मेरे शरीरमें फिर युवा अवस्थाके समान बल प्राप्त हुआ है; उससे अब मैं लोकहितकर धर्म्मकथाओंको कहनेमें समर्थ होऊंगा; परन्तु तुम किस कारणसे धर्म्मराज युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश नहीं करते हो। इस विषयमें तुम्हारा क्या विचार है, उसे शीघ्र मेरे समीप प्रकाशित करो।

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र भीष्मका वचन सुनके उनसे बोले, हे कौरव। तुम कल्याण और कीर्त्तिका मूल कारण मुझे ही समझो, सत् और असत् भाव मुझसे ही प्रकट हुए हैं। देखिये यदि कोई चन्द्रमाको शीत-किरणवाला कहके प्रशंसा करे, तो कोई पुरुष इसमें आश्चर्य नहीं कर सक्ता। इसी भांति कृष्ण "कीर्त्तिपूर्ण हैं" कहके यदि कोई पुरुष मेरा गुण वर्णन करे तो इसमें कोई भी आश्चर्ययुक्त नहीं हो सक्ता। हे महातेजस्वी ! मैंने इस पृथ्वीपर तुम्हारे यशको अधिक विस्तार करनेकी अभिलाषासे तुम्हें निर्म्मल बुद्धि प्रदान की है। जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक तुम्हारी यह अक्षय कीर्त्ति जगत्के बीच प्रकाशित रहेगी। हे भीष्म ! तुम प्रश्नके अनुसार धर्म्मराज युधिष्ठिरको जो कुछ धर्म्मका उपदेश करोगे, वे सब तुम्हारे उपदेश वचन वेदवाक्यके समान जगतके बीच प्रमाणिक होंगे। जो पुरुष उस प्रमाणके अनुसार लोक-यात्रा निर्व्वाह करेंगे, वे परलोकमें सम्पूर्ण पुण्यफलोंको भोगनेमें समर्थ होंगे। हे भीष्म ! पृथ्वीमें किस प्रकार तुम्हारा यश विस्तार होगा इस विषयको विचार कर मैंने तुम्हें दिव्य बुद्धि प्रदान की है। इस पृथ्वीपर जबतक लोग किसी पुरुषके यशकी गाथा करते हैं, तबतक वह यश मान ही उसका अक्षय कीर्त्तिका मूल समझा जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र ! कुरुक्षेत्रकी युद्धमें मरनेसे बचेहुए राजा लोग धर्म्म जिज्ञासु होकर तुम्हारे चारों ओर स्थित हैं; तुम इन लोगोंको राजधर्म्मोपदेश करो। तुम अवस्थामें सबसे वृद्ध वैदिक और लौकिक आचारोंसे युक्त और राजधर्म्म आदि सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हो; जन्मसे आजपर्य्यन्त कोई पुरुष तुम्हारा कुछ भी पापाचरण नहीं देख सका; विशेष करके पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग तुम्हें सब धर्म्मोंका जाननेवाला समझते हैं, क्यों कि बाल्यावस्थासे ही तुमने देवता और ऋषियोंकी उपासना करी है; इससे जैसे पिता पुत्रोंको उत्तम नीति उपदेश करता है, वैसे ही तुम भी इन राजाओंको धर्म्मका उपदेश करो प्राचीन पण्डितोंने धर्म्म-विषय ऐसा कहा है, कि धर्म्म जिज्ञासु होकर प्रश्न करे, तो उसे धर्म्मोपदेश करना उचित है इससे धर्म्म विषय सुननेके अभिलाषी राज-ओंको उपदेश करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य्य है। हे विद्वन् ! धर्म्मजिज्ञासु पुरुषको उपदेश न करनेसे पापमें फसना होता है, ऐसा ही शास्त्रोंमें वर्णित है; इससे तुम्हारे ये पुत्र तथा पौत्र लोग धर्म्मजिज्ञासु होकर जो कुछ प्रश्न करें, तुम प्रश्नके अनुसार ही उन लोगोंको धर्म्मोपदेश करो।

५४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कौरवोंमें मुख्य महातेजस्वी भीष्म यह वचन बोले, हे गोविन्द ! तुम सब प्राणियोंके नित्य आत्मस्वरूप हो, तुम्हारी कृपासे मेरा वचन और मन दृढ़ हुआ है, इससे मैं प्रसन्नताके सहित धर्म्मकथा कहूंगा, परन्तु कोई धर्म्मात्मा पुरुष धर्म्मविषयमें मुझसे प्रश्न करे, तो मैं शान्ति-पूर्व्वक धर्म्मविषयकी व्याख्या करूंगा। जिस धर्म्म-

शील महात्मा पुरुषके जन्म लेनेपर वृष्णि लोग आनन्द सागरमें मग्न हुए थे ; वह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करें। यशस्वी, धर्म्मचारी कौरवोंके बीच कोई भी जिसके समान नहीं है ; धृति, दम, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म्म, तेज, और बल जिसमें सदा विद्यमान रहता है ; जो सम्बन्धी, सेवक, अतिथि और आश्रितोंको यथायोग्य आदरके सहित सम्मानित करते हैं ; सत्य, दान, तपस्या, वीरता, शान्ति, दक्षता और सावधानता आदि सम्पूर्ण धर्म्म जिसमें सदासर्व्वदा विराजमान रहते हैं, जो धर्म्मात्मा काम, क्रोध, भय, लोभ और अर्थके वशमें होकर कदापि अधर्म्म कार्य्योंमें प्रवृत्त नहीं होते ; जो सत्य, क्षमा और ज्ञान विषयमें सदा दृढ़ताके सहित स्थित रहते हैं ; जो यज्ञ, अध्ययन, धर्म्म और शान्तिमार्गमें सर्व्वदा रत रहते हैं, जिन्होंने धर्म्मके सम्पूर्ण रहस्योंको सुना है, वही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे धर्म्म विषयमें प्रश्न करें।

भीष्मका इतना वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे कौरव शिरोमणि ! धर्म्मराज युधिष्ठिरने गुरु आदि पूज्य पुरुषों और सेवक, सम्बन्धी, ब्रह्मवादी भक्त और माननीय पुरुषोंका कुरुक्षेत्रके युद्धमें वध किया है ; इसी कारण अत्यन्त लज्जित होकर आपके भयसे भयभीत हुए हैं ; इसीसे वह तुम्हारे सम्मुख आनेमें समर्थ नहीं होते हैं, क्यो कि जिन लोगोंका नाना भातिकी वस्तुओंसे सन्मान करना उचित था, उनके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन किया है ; इस ही निमित्त धर्म्मराज युधिष्ठिर तुम्हारी दृष्टिके सम्मुख नहीं स्थित होसकते हैं।

भीष्म बोले, हे कृष्ण ! जैसे ब्राह्मणोंके निमित्त दान, अध्ययन और तपस्या ही धर्म्म है वैसे ही क्षत्रियोंके निमित्त युद्धमें शत्रुओंके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन करना ही धर्म्म है। पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी आदिक कोई क्यों न हों यदि वे लोग निरर्थक आके युद्धमें प्रवृत्त हों, तो उस ही समय उनका वध करना उचित है, क्यों कि यही क्षत्रियोंका धर्म्म है, शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णित है। हे कृष्ण। जो नियम उलङ्घन करनेवाले, लोभी अत्याचारी गुरुका युद्धभूमिमें वध करते हैं, वेही धर्म्मात्मा क्षत्रिय हैं। जो पुरुष लोभके वशमें होकर सनातन धर्म्म मार्गको उलङ्घन करते हैं, उनके मारनेवाले क्षत्रिय ही धर्म्मात्मा कहे जाते हैं। जो युद्धमें प्रवृत होकर इस पृथ्वीको रुधिररूपी जल, केशरूपी तृण, हाथी रूपी पर्व्वत और ध्वजा पताका रूपी वृक्षोंसे परिपूरित करनेमें समर्थ है, वेही धर्म्मात्मा क्षत्रिय कहे जाते हैं। युद्धमें आह्वान करनेपर अपना आत्मीय और पराया विचार न करके श्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुषोंको उनके संग युद्धमें प्रवृत्त होना उचित है, क्योंकि भगवान मनुने धर्म्म युद्धको क्षत्रियोंके निमित्त इस लोक और परलोकमें कल्याण दायक कहके वर्णन किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिरने भीष्मका वचन सुनके अत्यन्त विनीत भावसे उनके दृष्टिके सम्मुख उपस्थित होकर उनके दोनो चरणोंको छूके उन्हें प्रणाम किया। तब सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी भीष्मने उनका मस्तक सूघके उन्हें आनन्दित किया। अनन्तर महातेजस्वी भीष्म युधिष्ठिरको बैठनेकी आज्ञा देकर यह वचन बोले, हे कुरुकुल तिलक ! हे तात ! तुम कुछ भी शङ्का मत करो, तुम निर्भयताके सहित शुद्ध चित्तसे मेरे समीप प्रश्न करो।

५५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराजयुधिष्ठिरने हृषीकेश कृष्ण और भीष्मको

प्रणाम करके उस स्थलमें स्थित गुरुजनोंकी अनुमतिसे प्रश्न करना आरम्भ किया। हे पितामह। धर्म्म जाननेवाले पुरुष राजधर्म्मको ही परमधर्म्म समझते हैं और मैं भी उसके भारको ग्रहण करना अत्यन्त कठिन समझता हूं; इससे आप विशेष करके राजधर्म्मका ही वर्णन करिये राजधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका अवलम्ब रूप है; क्यों कि धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग और मोक्षधर्म्म ये सब पूर्णरीतिसे राजधर्म्मसे ही सिद्ध होसकते हैं। जैसे घोड़ेको लगाम और हाथियोंको अङ्कुश नियममें स्थित रखता है, वैसे ही राज्यधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंको यथायोग्य नियमोंमें स्थित रखता है। यदि राज-ऋषियोंसे सेवित राजधर्म्ममें पुरुषोंको मोह उपस्थित होवे, तो सम्पूर्ण नियम तितर बितर होजाते हैं और उससे सम्पूर्ण प्रजा दुःखसागरमें व्याकुल होजाती है। जैसे सूर्य्य उदय होकर महाघोर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही राजधर्म्मसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी अशुभ गति निवारित होती है। हे पितामह! आप इस भरतकुलमें तथा सम्पूर्णधर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं; इससे पहिले मुझे राजधर्म्मका उपदेश कीजिये। हे मधुनाशन! जब कि श्रीकृष्ण भी आपको परमज्ञानी समझते हैं, तो आपके निकट धर्म्म उपदेश सुनना ही हम लोगोंके निमित्त कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्मको नमस्कार करके नित्य धर्म्मकी व्याख्या करूंगा। हे तात युधिष्ठिर, मैं सम्पूर्ण रूपसे राजधर्म्मका निश्चय करके कहता हूं, तुम चित्त लगाके पूर्ण रीतिसे राज्यधर्म्म तथा अन्य धर्म्म भी जिसके सुननेकी तुम्हारी इच्छा हो! मुझसे सुनो। [illegible] न होनेपर भी प्रजाके अनुराग-[illegible] होनेके निमित्त शास्त्रविधिके अनुसार [illegible] ब्राह्मणोंके सङ्ग और भक्ति प्रकाश [illegible] देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे उनसे अऋणी होकर सम्पूर्ण प्रजाका श्रद्धाभाजन होता है। हे पुत्र युधिष्ठिर! तुम सदासर्वदा पुरुषार्थके निमित्त यत्न करना, पुरुषके उद्योगके बिना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य्य नहीं सिद्ध होसकते; भाग्य और पुरुषार्थ समान होनेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं; क्यों कि पुरुषार्थ लोगोंको प्रत्यक्षही फल देता है और भाग्य भी किये हुए पूर्व्व पुरुषार्थका फल मात्र है। पुरुषार्थ करनेसे यदि आरम्भ किये हुए कर्म्मोंकेफल सिद्ध न होवें, तो पुरुष लोकापवादसे, और फल सिद्ध होनेसे दुःखोंसे मुक्त होसकता है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! यदि दैवी संयोगसे आरम्भ किया हुआ कर्म्म निष्फल होजावे, तौभी मनमें कदापि दुःखित होना नहीं चाहिये; फिर द्विगुणित यत्नके सहित उसे सिद्ध करनेके निमित्त कार्य्यमें प्रवृत्त होना उचित है; क्यों कि यही राजाओंकी परम नीति है। परन्तु सत्य जिस प्रकार राजाओंके कार्य्यको सिद्ध करनेवाला है, वैसा दूसरे किसी यत्नसे भी राजाओंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते; सत्यमें तत्पर रहनेवाले राजा इस लोक और परलोकमें परम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! सत्य ऋषियोंका भी परम धन है और राजाओंका भी विश्वास उत्पन्न करानेका कारण सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, गुणवान, शीलयुक्त, दयावान, सत्यवादी धर्म्म-निष्ठ, जितेन्द्रिय, प्रजाके ऊपर प्रीति करनेवाले उदार राजा कदापि श्रीभ्रष्ट नहीं होते।

हे कुरुनन्दन! अपने छिद्रोंको छिपाना और पराये छिद्रको अन्वेषण करते हुए अपने विचारोंको गुप्त रखना और न्यायके अनुसार विचार पूर्व्वक समस्त कार्य्योंमें सरलता अव-लम्बन करना चाहिये। राजाके [illegible] अवलम्बन करनेसे सम्पूर्ण प्रजा उसके [illegible] भीको प्रतिक्रम करती है और [illegible]

ग्रहण करनेसे सब कोई उसके भयसे व्याकुल होते हैं; इससे तुम्हें यथा योग्य कोमलता और कठोरता दोनों ही अवलम्बन करना उचित है। हे पाण्डुपुत्र उदारबुद्धि युधिष्ठिर! तुम कदापि ब्राह्मणोंको दण्ड विधान मत करना; क्यों कि इस लोकमें तपके प्रभावसे ब्राह्मण ही सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। हे राजेन्द्र! मनुभगवानने इस विषयमें दो श्लोक कहे हैं; तुम्हें निज धर्म्मविषयमें उन दोनों श्लोकोंको हृदयङ्गम करना उचित है। "जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है; इससे उनका तेज सम्पूर्ण स्थानोंमें पूर्ण होनेपर भी स्वयोनिमें शान्त होजाता है। जिस समय लोह पत्थरको बिदीर्ण करता है अग्नि जलको सुखाती है, क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं; उस समय वे शीघ्र ही तेजभ्रष्ट होके नष्ट होते हैं।" हे राजेन्द्र! इससे ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करने योग्य है; श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग पूर्ण रीतिसे पूजित होनेसे वेद और यज्ञोंको धारण करते हैं।

हे भरतर्षभ! जो पुरुष ब्राह्मणोंके योग्य सम्मान लाभकी अभिलाषा करे, उन्हें बाहुबलके सहारे पराजित करके दण्ड देना उचित है। हे तात! पहिले समयमें महर्षि शुक्राचार्य्यने जो श्लोक कहा था, उसे तुम चित्त लगाके सुनो। "वेदवेदान्त जाननेवाला ब्राह्मण यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें आगमन करे, तो धर्म्मात्मा राजा शस्त्र आदिकोंके प्रभावसे उसे बांधके कैद करे, परन्तु कदापि उसका बध न करे, जो आततायी पुरुषोंसे नष्ट होते हुए धर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले धर्म्मात्मा राजा कहाते हैं; आततायी पुरुषोंका बध करनेसे पाप नहीं होता। आततायीका क्रोध ही दूसरेको उत्तेजित करके अपना नाश कराता है, इससे आततायीके मारनेसे पाप नहीं होता। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अपराध करे, तो उसे राज्यसे बाहर करना चाहिये; परन्तु प्राण नाश करना उचित नहीं है। हे प्रजानाथ! ब्राह्मण यदि परस्त्रीके सङ्ग व्यभिचार दोषसे अपवाद युक्त होवे, तौभी उसके ऊपर कृपा प्रकाश करना कर्त्तव्य है। ब्रह्महत्या, बिमाता सहबास और भ्रूणहत्या आदि तीन प्रकारके पापग्रस्त तथा राजद्रोही होने पर उसे निजराज्यसे बाहर करना उचित हैं; परन्तु बेत-कोड़ोंकी चोटसे उसके शरीरको पीड़ित करना वा शारीरक दण्ड देना उचित नहीं है। जो लोग ब्राह्मणोंमें भक्ति करते हैं, उन्हेंही प्रिय समझके निज कार्य्योंमें नियुक्त करना चाहिये, क्यों कि राजाओंके चाहे कितनाही धन रत्नसे युक्त खजाना क्यों न होवे, ब्राह्मण भक्त पुरुषोंके संग्रहकी अपेक्षा कोई भी कोष उत्तम नहीं कहे जा सकते! महाराज! पण्डित लोग मरु, (बालुकामय स्थान) जल, भूमि बन, पर्व्वत और मनुष्य आदि छः और बाकी सब भांतिके दुर्ग, किलासे) मनुष्य दुर्गको ही श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं; इससे बुद्धिमान राजाओंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंको प्रजाके ऊपर दया प्रकाशित करनी उचित है। राजाके धर्म्मात्मा और सत्यवादी होनेसे सम्पूर्ण प्रजा उस पर अनुरक्त होती है। हे पुत्र! तुम सब जातिकी प्रजा समूहके विषयमें क्षमा प्रकाशित न करना, क्यों कि राजा क्षमाशील हाथीके समान मृदुस्वभाव युक्त होनेसे धर्म्म बिरोधी कहे जाते है। महाराज! इस विषयमें बृहस्पति प्रणीत शास्त्रमें जो श्लोक कथित है, उसे मैं वर्णन करता हूं, चित्त स्थिर करके सुनो! जैसे महावत क्षमाशील हाथीके मस्त ऊपर ही चढ़नेकी इच्छा करता है, वैसे ही राजाके क्षमाशील होनेपर नीच पुरुष उसकी आज्ञाको उलङ्घन करके मनमाना कार्य्य करते

है; इससे जैसे वसन्त ऋतुके सूर्य्य अत्यन्त शीतल और प्रचण्ड किरणधारी तथा बहुत तेजस्वी नहीं होते, वैसे ही राजाको भी सदा अत्यन्त कठोर भाव अवलम्बन करना उचित नहीं है। महाराज! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम आदि प्रमाणोंसे शत्रु-मित्रोंकी सदा परीक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम मृगया आदि सम्पूर्ण व्यसनोंको परित्याग करो, परन्तु एकबारगी परित्याग न करके केवल मात्र उसमें आसक्ति रहित होना ही उचित है। क्योंकि व्यसनोंमें फंसे हुए पुरुष सदा क्लेशित होते हैं। राजा यदि प्रजाद्रोही होवे, तो राजा प्रजामें विरोध बढ़ता है; इससे गर्भ धारण करनेवाली माता जैसे गर्भस्थित बालकके निमित्त व्यवहार करती है; वैसे ही राजाको भी प्रजाको पालन करना योग्य है। महाराज! जिस कारणसे ऐसी उपमा दीगई है, उसे सुनिये जैसे गर्भधारिणी माता अपने इच्छानुसार निज इष्ट वस्तुओंको त्यागके भी गर्भस्थ बालकके कल्याणकी चेष्टा करती है, उसी भांति प्रजा समूहके मङ्गलकी इच्छासे राजाको भी कार्य्य करना उचित है. हे कुरुनन्दन! जिन कार्य्योंके करनेसे प्रजाका कल्याण हो, अपने मनकी अभिलाषा त्यागके भी सदा उस ही धर्म्मका अनुगामी होना चाहिये। हे पाण्डुनन्दन! तुम कभी धीरज रहित मत होना, क्योंकि राजाके धीर और दण्डधारी होनेसे उसे कहीं भय उपस्थित नहीं होता। हे राजशार्दूल! सेवकोंके संग सदा परिहास करना उचित नहीं है; क्यों कि इससे जो दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें वर्णन करता हूं। उपजीवी सेवकोंके संग सदा परिहास करनेसे वे लोग स्वामीका पूर्ववत्‌से सम्मान नहीं करते, मर्य्यादा अतिक्रम करके स्वामीकी आज्ञा उल्लङ्घन करते हैं; कार्य्योंके विचारके समय सम्पूर्ण कार्य्योंके मन्त्र [illegible]

करते, गोपन करने योग्य छिद्रोंको प्रकाशित कर देते हैं, जो वस्तु मांगने योग्य नहीं हैं, उन्हें भी मांगते हैं; राजाके सम्मुखमें ही उसके भोजनकी वस्तुओंको खाते और उसके ऊपर क्रोध कर राजाकी बुद्धिसे भी अपने बुद्धिकी श्रेष्ठता प्रकाशित करते हैं। महाराज! अधिक क्या कहा जावे, वे लोग राजशासन अतिक्रम करके लोगोंसे घूस लेकर राजाके समीप उनके मिथ्या गुण दोषोंको वर्णन करके सम्पूर्ण कार्य्योंको नष्ट कर देते हैं, कृत्रिम आज्ञापत्र बनाके राज अधिकृत देशोंको निःसार करते हैं, राजा जैसा वस्त्र पहिनता है, वे लोग भी वैसे ही वस्त्रोंको पहनके राजाकी समानता करते और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके ऊपर आसक्त होकर क्रमसे अन्तःपुरके बीच प्रवेश करनेकी भी इच्छा करते हैं। हे राजशार्दूल! वैसे सेवक लोग ऐसे निर्लज्ज होजाते हैं, कि राजाके सम्मुखमें ही वायु करने योग्य वस्तुओंको ग्रहण करके अपने शरीरपर वायु करते और राजाके अत्यन्त गुप्त विषयोंको भी दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं। राजाके मृदु स्वभाव और परिहास युक्त होनेसे उपजीवी सेवक लोग राजाका अनादर करके उनके समान ही घोड़े, हाथी और रथोंपर चढ़नेकी अभिलाषा करते हैं। वे लोग सुहृद पुरुषोंसे युक्त सभाके बीचमें ही राजाका कहा करते हैं, हे राजन्! आप इस कार्य्यको करनेसे समर्थ न होंगे और यह आपका दुरभिसन्धि है। राजाके क्रोध करने पर वे लोग हंसा करते और यदि राजा सत्कार करे, तो उस सत्कारको [illegible] गोपन करके अन्य कारणोंसे [illegible] होते हैं। वे लोग [illegible] राजाज्ञाकी अवज्ञा करके [illegible] प्रकाश करते और [illegible] विचारके [illegible] कर देते हैं।

[illegible]

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजाको सदा उद्यमशील होना उचित है; क्योंकि राजा स्त्रियोंकी भांति उद्यम रहित होनेसे प्रशंसा प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। हे क्षत्री धर्म्मयुक्त महाराज! इस विषयमें भगवान भृगु-नन्दनने जो श्लोक कहा है, उसे मैं कहता हूं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जन्तु-ओंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमि विरोध रहित राजाको और जो वेदाध्ययनके निमित्त देशान्तरोंमें गमन नहीं करते, वैसे ब्राह्मण वा यतीको ग्रास करती है, अर्थात् वैसे राजा और ब्राह्मण शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं। हे पुरुषसिंह! मेरा यह उपदेश तुम्हारे अन्तःक-रणमें सदा बिराजमान रहे, अर्थात् जिसके सङ्ग सन्धि करना उचित हैं, उसके सङ्ग सन्धि करे और जिसके साथ विरोध करना योग्य है, उससे विरोध करे। जो स्वामी, अनुयायी सेवक सुहृदमित्र कोष राष्ट्र, किला और बल इन सप्ताङ्ग युक्त राज्य अथवा इसमें किसी एक अङ्गके सङ्ग विरुद्ध आचरण करे, तो मित्र अथवा गुरु होने पर भी उसका प्राणनाश करना उचित है। हे राजेन्द्र! इस विषयमें बृहस्प-तिमतके अनुसार मरुतराजने राजाओंके कर्त्तव्य कर्म्ममें एक श्लोक कहा था, उसे सुनो। गुरु कार्य्याकार्य्य विवेकसे हीन, गर्व्वित और कुमार्गी हो, तो उसे राज्यसे निकाल देना चाहिये। महाराज! पहिले समयमें सगर पुत्र असमञ्जा पुरवासियोंके बालकोंको बल पूर्व्वक सरयू नदीमें डुबा देता था, इसी कारण बाहुपुत्र बुद्धिमान सगरने पुरवासियोंके हितकी अभिलाषासे अपने जेठ पुत्र असमञ्जाको निन्दा करके उसे राज्यसे निकाल दिया था। महा-तपस्वी श्वेतकेतु अतिथि सत्कार करूंगा कहके वृथा निमन्त्रण कर आता था, इस ही कारण पिताके प्रियपात्र होनेपर भी उसके पिता उद्दालक मुनिने उसे परित्याग

किया था। इससे सदा प्रजा रञ्जनमें प्रवृ
रहना, सत्यकी रक्षा और प्रजापालन ही राज
ओंका सनातन धर्म्म है। पराये धनके ग्र
लोभ करना राजाको योग्य नहीं, सेवकों
यथा समय पर वेतन प्रदान करना उचित
महाराज! राजा लोग सत्यवादी क्षमाश
और पराक्रम युक्त होनेसे ही निर्दिष्टमार्ग
विचलित नहीं होते। जिसने क्रोध
मनकी बृत्तियोंको वशीभूत किया है, शास्त्र
कहे हुए बचनोंमें जिसे अविश्वास नहीं है;
सदा धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्ग
रत रहते हैं, जिनके बिचारको दूसरे पुरुष न
जान सकते; ऐसी त्रिविध शक्तिसे युक्त पु
ही राजा होने योग्य हैं। हे राजन्! साधार
पुरुषोंके निकट मन्त्रणा प्रकाशित होने
अपेक्षा राजाओंको इससे बढ़के और दू
कोई भी सङ्कट नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै
और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्म्मकी र
करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है; क्यों
धर्म्म शङ्कर होनेसे प्रजाको बचाना ही राज
ओंका सनातन धर्म्म है। यद्यपि किसी
विश्वास न करके स्वजनोंका विश्वास करना
राजाओंको उचित है, तथापि उन लोगों
विषयमें भी पूर्ण रीतिसे विश्वास करना अनु
चित है। राजा निज बुद्धिसे बलवानके स
सन्धि करे, अपने समान पुरुषके साथ विग्र
अपनेसे निर्व्वल राजाओंके दुर्ग आदिको आक्र
मण करना और स्वयं निर्व्वल होनेसे नि
दुर्गके आसरे निवास करना इत्यादि राजनीति
परिणाम रूपी फल जय और पराजयका विचा
करके कार्य्य करे, जो राजा अपने छिद्रोंको गोप
करके शत्रुओंके छिद्रोंको देखता है, वह धर्म्म
अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंके यथार्थ तत्व
जानता है। जो यथा योग्य स्थानोंमें जासूसोंक
नियुक्त करके शत्रुपक्षीय सेवकोंके बीच ध
देकर भी इन लोगोंके बीच भेद उत्पन्न कर

सकता है; वह सबके निकट प्रशंसा प्राप्त के योग्य है। यमराजके समान प्रभावशाली, और सद्विचारक, कुवेरके तुल्य कोष सञ्चयमें रत नाश और वृद्धिजनक कार्य्योंके अवस्था विशेषके गुण दोषोंको मालूम करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है। राजा भूखोंको भोजन देनेवाला, सुखी पुरुषोंके तलोंको जाननेवाला, वृद्धोंका उपासक, आलसरहित, लोभहीन और प्रसन्न चित्तवाला होवे। महाराज! सदा प्रसन्न रहना साधु पुरुषोंके गमन करने योग्य मार्गसे विचरण करना और प्रजासमूहके संग हंसके प्रसन्नता सहित उन्हें आनन्दित करना राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है। साधु पुरुषोंसे कर लेना उचित नहीं है, बरन दुष्ट पुरुषोंके धनको छीनके साधुओंको दान करना उचित है। राजाको युद्धविद्यामें निपुण, यथा समयमें दान देनेवाला, शुद्धाचारी जितेन्द्रिय, यथा समयपर भोजन करनेवाला तथा मनोहर भूषणोंको धारण करनेवाला होना चाहिये, जो सब मनुष्य शूरवीर, स्वामी-भक्त, रोगहीन उत्तम शिष्टाचार और परिवार-युक्त, विद्वान, धार्म्मिक, साधु और स्थिरस्वभाव-वाले हैं; जो दूसरेसे प्रतारित नहीं होते, किसीको अवमानना नहीं करते, सब लोगोंके चरित्रोंको जानते परलोकको मानते और ऐश्वर्य्यको अभिलाषा करते हैं; राजा वैसे ही पुरुषोंको अपना सहायक बनाकर उनके सग समान भावसे विषयादिकोंको भोगे; केवल मात्र छत्रधारण और राजाज्ञाप्रचार करनेमें ही राजाकी उन लोगोंसे अधिकता रहती है। महाराज! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारकी वृत्तिको समभावसे परीक्षा करके कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे राजाको दुःखभागी नहीं होना पड़ता। राजा यदि किसीका भी विश्वास न करे, अथवा लोभके वशमें होकर दूसरको झूठमूठ दोष लगाके उसके धनको हरण करे, तो उसके [illegible] पुरुष थोड़े ही समयमें उसका नाश कर देते हैं, जो शुद्धचरित्रवाले राजा सदासर्व्वदा प्रजा-समूहको आनन्दित करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, वह कभी भी शत्रुओंसे पराजित होके स्थान-भ्रष्ट नहीं होते; यदि शत्रुओंसे पराजित भी होवें, तौभी वह शीघ्र ही निज पदपर फिर प्रतिष्ठित होते हैं। राजा यदि क्रोधहीन मृदु दण्ड देनेवाला, जितेन्द्रिय होके मृगयादिक व्यसनोंमें आसक्त न होवे, तो वह हिमालयके समान स्थिर होकर सम्पूर्ण प्रजाका विश्वास पात्र होता है। जो राजा बुद्धिमान, दानशील, धर्म्मात्मा, पराये छिद्रोंका अनुसन्धान करनेवाला प्रसन्नमुख, चारों वर्णोंको यथा नियमोंमें स्थित करनेवाला, क्रोधरहित, मनस्वी, क्रियावान, आत्मश्लाघा रहित होकर योगाभ्यासमें रत रहता है; और जिसके सेवक लोग भी क्रोधरहित चित्तसे राजकार्य्योंमें तत्पर रहते तथा जिसके अनुष्ठित कार्य्य निर्व्विघ्नताके सहित समाप्त होते हैं; वह राजसत्तम कहाता है। जैसे पुत्र पिताके गृहमें निर्भयचित्तसे निवास करते हैं, वैसे ही जिसके राज्य में सम्पूर्ण मनुष्य निर्भयताके सहित सब स्थानोंमें भ्रमण करते हैं; वह भी राजसत्तम कहा जाता है। जिसके पुरवासी प्रजा ऐश्वर्य्यशाली और निज धर्म्मोंमें तत्पर रहती है, उसे ही राजाओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है। और जिसके राज्यभरकी सब प्रजा राजाके वशमें स्थिर, नीतिनिपुण राजाज्ञाको पालन करनेवाली ऐश्वर्य्ययुक्त और दान धर्म्ममें रत रहके यथा रीतिसे पालित और शासित होकर आपसमें विरोध न करके निज निज कर्त्तव्य कर्म्मोंमें तत्पर रहती है; वही राजा श्रेष्ठ गिना जाता है। जिस राजाके राज्यमें चोरी, डकैती, माया, मत्सर और अधर्म्म आदि नहीं होते, वह सनातन धर्म्मको पालन करनेवाला राजा उत्तम पदवीको प्राप्त करता है। जो ज्ञानवान पण्डितोंका आदर करें, शास्त्रोंको पढ़ें और गुरुओंकी तथा

सम्पूर्ण प्रजाके हितमें तत्पर रहते हैं, वैसे श्रेष्ठ मार्गसे गमन करनेवाले दानशील पुरुष ही राजा होनेके योग्य हैं। शत्रुलोग जिसके दूतोंकी सिखाके राजाके विचारोंको नहीं जान सकते, वह राजा ही राजत्व लाभ करनेके योग्य हैं। हे राजेन्द्र! महात्मा भृगुनन्दन शुक्राचार्य्यने पहिले समयमें रामचरित्रको वर्णन करते हुए एक श्लोक कहा था, "प्रजाको चाहिये कि राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझके उसकी रक्षा करे, तिसके अनन्तर भार्य्या और धनकी रक्षामें यत्नवान होवे; क्यों कि राजाके न रहने पर उसकी भार्य्या कहां रहेगी, और धनकी रक्षा भी किस प्रकार हो सकती है? इससे सब लोगोंको सब भांतिसे राजाकी रक्षा करना ही कर्त्तव्य है, इसी प्रकार राज्यकी अभिलाषा करनेवाले राजाको भी प्रजाकी रक्षाके अतिरिक्त सनातन धर्म्म दूसरा नहीं है; क्योंकि उनकी रक्षा ही प्रजाको प्रसन्न करनेका मूल कारण है।" हे राजेन्द्र! राजधर्म्मके विषयमें प्राचेतस मनुने जो दो श्लोक कहे हैं; मैं उन दोनों श्लोकोंको उदाहरण स्वरूपसे वर्णन करता हूं,— मनुष्योंको उचित है, कि उपदेश न करनेवाले गुरु, वेदपाठ तथा अध्ययन हीन पुरोहित, रक्षा न करनेवाले राजा, अप्रिय बचन बोलने वाली भार्य्या, ग्रामकी अभिलाषा करनेवाले अहीर और वनवासकी इच्छावाले नाईको इस प्रकार त्याग देवे, जैसे नावपर चढ़नेवाले पुरुष टूटी नौकाका त्याग देते हैं।

५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! दुष्करचित की भांति प्रजाकी रक्षा करना ही राजधर्म्मका सार है, क्योंकि भगवान् बृहस्पतिने इसके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्म्मकी प्रशंसा नहीं की है। हे धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी युधिष्ठिर! भगवान् विशालाक्ष, महा तपस्वी शुक्राचार्य्य सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, भगवान भरद्वाज और गौरशिरा मुनि आदि धार्म्मिक पुरुष लोक रक्षारूपी राजधर्म्म की ही प्रशंसा किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस समय लोकरक्षा विषयक सम्पूर्ण युक्तियोंको सुनो।— यथा नियम पूर्व्वक शास्त्रोंको नियत करना, दूत भेजना समयानुसार दान और मत्सर रहित पुरुषोंसे उत्तम युक्ति ग्रहण करना, दुष्ट उपायके सहारे प्रजासे कर सग्रह न करना, सत्यवादी होना समयके अनुसार वीरता और कार्य्यदक्षता प्रकाशित करनी, प्रजाके हित साधनमें तत्पर रहना, सरल वा कुटिल उपायको अवलम्बन करके शत्रुपक्षके मनुष्योंके बीच मतभेद कराना, साधु पुरुषोंको संग्रह करना, पुराने और टूटने योग्य मकानोंको निरीक्षण करके उन्हें दृढ़ करनेका यत्न, शारीरक और अर्थदण्डको यथासमय पर प्रयोग करना, साधु और उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंको परित्याग न करके उन्हें यथा योग्य कार्य्योंपर नियुक्त करना, जिन्हें सग्रह करना, योग्य है उन पुरुषोंको संग्रह करना, बुद्धिमानोंकी सेवा, सेनाके पुरुषोंको उत्साहित करना, सदा प्रजाकी अवस्थाको देखते रहना, कोष बढ़ाना; कार्य्यमें ढीलापन न करना, प्रहरियोंका विश्वास न करके स्वयं निज राज्यकी प्रजाओंका अनुसन्धान लेते रहना, अन्य पुरुषोंसे पुरवासी प्रजा और राजसेवकोंके बीच भेद उत्पन्न करा देना, गुप्तरीतिसे शत्रुओंके निकटमें स्थित मित्रोंके यथार्थ तत्वको निश्चय करना स्वयं अन्तःपुरकी ओर दृष्टि रखना, भृत्योंका इकबारगी विश्वास न करना, शत्रुओंको धीरज देना और उनको अवज्ञा न करनी, दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग न करना; और सदा उद्योगी होकर नीतिमार्गका अनुगामी होना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है। बृहस्पतिराजाओंके निमित्त उद्योगको ही राजधर्म्मका मूल

कहा, है । हे युधिष्ठिर ! इस विषयोंमें मैं एक प्राचीन श्लोक कहता हूं उसे सुनो, देवताओंने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था ; और इन्द्र अपने उद्योगसे ही तीनों लोकोंके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं । उद्यागी पुरुष पण्डितोंके ऊपर भी आधिपत्य करते और पण्डित लोग स्तुति आदि वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए उनकी उपासना किया करते है । राजा बुद्धिमान होनेपर भी उद्योगरहित होनेके कारण विषरहित सर्पकी भांति अपने शत्रुओंसे पराजित होता है । और निर्ब्बल शत्रुकी भी अवज्ञा करनी बलवान पुरुषको कदापि उचित नहीं है, क्यों कि अग्नि तनिक भी होनेसे भस्म करती और थोड़ा सा विष भी प्राण नाश कर सकता है । शत्रु हाथी घोड़े आदि सब अङ्गोंमेंसे एक अंग मात्र लेकर ही दुर्गमें आश्रय ग्रहण करनेपर और समृद्धिमान श्रेष्ठ राजाके सम्पूर्ण देशोंको पीड़ित कर सकता है । राजाको उचित है, कि अपने गोपनीय बचन, शत्रु विजयके निमित्त सेना संग्रह, शारीरक और मानसिक कुटिलता तथा जो कुछ हीन कार्य्य करे, सम्पूर्ण मनुष्योंके निकट सरलता प्रकाशित करके उन कर्म्मोंको यत्नपूर्व्वक गोप न करे । मनुष्य संग्रह करनेवाला राजा सदा धर्म्माचरणमें प्रवृत्त रहे ; क्योंकि दुष्टस्वभाववाले पुरुष कदापि विशाल राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते । हे युधिष्ठिर ! इसी प्रकार अत्यन्त दयालु पुरुष भी राज्यकी रक्षा नहीं कर सक्ता और सरल प्रकृति अवलम्बन करनेसे भी राज्यकी रक्षा नहीं होसकती । इसके सरलता और कठोरता युक्त दोनों ही वृत्तियोंको अवलम्बन करना चाहिये । यदि इस नियमसे प्रजाकी रक्षा करनेमें राजाको विपत्ति भी उपस्थित होवे, तभी इस [illegible] जानेसे गमन करना [illegible] भाग ९, [illegible] मुनि अवलम्बन करना ही राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है । हे कुरुनन्दन ! यह सामान्य रूपसे राजधर्म्मका कुछ अंश वर्णित हुआ है ; अब तुम्हें जिन विषयोंमें सन्देह होवे, उसे मेरे समीप प्रकाशित करो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर भगवान व्यासदेव, देवस्थान, अश्व, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य्य, सात्यकि और सञ्जय धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी पुरुषसिंह भीष्मको धन्य धन्य कहके उनकी स्तुति करने लगे । महाराज ! उस समय वे सब कोई इस प्रकार आनन्दित होकर प्रसन्न हुए थे, जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे कमलका पुष्प खिलता है । अनन्तर राजा युधिष्ठिर दुखित चित्तसे आंखोंमें आंसू भरकर भीष्मके दोनो चरणोंको स्पर्श करके बोले, हे पितामह ! मुझे जिन विषयोंमें सन्देह है उसे कलह आपके निकट प्रकाशित करूंगा, क्योंकि अब सूर्य्यदेव अस्त हुआ चाहते है । तिसके अनन्तर शत्रुनाशन यशस्वी कृष्ण, कृपाचार्य्य और राजा युधिष्ठिर आदि सब पुरुषोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके गङ्गानन्दन भीष्मको प्रदक्षिणा की ; फिर दृषद्वती नदीमें यथारीतिसे माङ्गलिक जप, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि कर्म्मोंको समाप्त करके पश्चात् हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ।

५८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पाण्डव और यादवोंने दूसरे दिन प्रातःकालके नित्यकर्म्मोको समाप्त करके रथमें चढ़कर फिर भीष्मके समीप जानेके वास्ते हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया । उस समय पाण्डव और यादवोंके रथ मार्गमें गमन करते हुए नगरके समान दीख पड़ते थे । अनन्तर वे सब कोई कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर [illegible] गङ्गानन्दन भीष्मको

इस प्रकार कुशल प्रश्न करने लगे, कि "आपने सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत की है न ?" फिर व्यास आदि महर्षियोंको नमस्कार करके सब कोई पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके चारों ओर बैठ गये। तिसके अनन्तर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर भीष्मकी यथारीतिसे पूजा करके हाथ जोड़के कहने लगे।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भरतनन्दन! इस पृथ्वीपर "राजा" शब्द प्रचलित है, इसकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई है; आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये इस पृथ्वीपर हाथ, पांव, मुख, उदर, ग्रीवा, शुक्र, हड्डी मांस, मज्जा, रुधिर, बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा, सुख, इच्छा, विश्वास, प्राण, शरीर, जन्म, मृत्यु और अन्य गुण मनुष्योंमें समान होनेपर भी किस कारणसे एक ही पुरुष बुद्धिमान और शूरवीर पुरुषोंके ऊपर आधिपत्य करता है? एक पुरुष ही इस शूरवीर और श्रेष्ठ पुरुषोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षा करता है, और सब कोई उसके प्रसन्न करनेको अभिलाषा करते हैं? हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भरतर्षभ! उस एक पुरुषके प्रसन्न होनेसे सब कोई प्रसन्न और उसके व्याकुल होनेसे सम्पूर्ण पुरुष व्याकुल होते हैं; यह रीति जो सदासे प्रचलित है, मैं उसके सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप विस्तार पूर्व्वक इस वृत्तान्तको वर्णन कीजिये। हे नरनाथ! सब मनुष्य जो एक ही पुरुषकी आज्ञामें चलते हैं; इसका कारण भी सामान्य न होगा।

भीष्म बोले, हे पुरुषसिंह युधिष्ठिर! पहिले सतयुगमें जिस प्रकार प्रथम राजत्व स्थापित हुआ था, उसे मैं कहता हूं, चित्त लगाके सुनो। पहिले राजा वा राज्य, तथा दण्डकर्त्ता और दण्ड कुछ भी नहीं था, प्रजा ही धर्म्मकी अनुगामिनी होकर आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करती थी। हे भारत! इसी भांति एक दूसरेकी रक्षा करते हुए वे सब कोई क्रमसे थक गये और उनका चित्त भ्रमित होने लगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसी भांति चित्त विभ्रम उपस्थित होनेपर ज्ञान लोप होनेसे उनके धर्म्म कार्य्य नष्ट होने लगे। हे भरतर्षभ क्रमसे मोह और लोभ उपस्थित होनेपर वे लोग अप्राप्त वस्तुओंकी भी इच्छा करने लगे; इससे विषयवासना और इन्द्रिय सुख आदि कामनाओंने उनके चित्तको आक्रमण किया। हे युधिष्ठिर! इसी भांति भोगाभिलाष उपस्थित होनेपर वे लोग उसमें इस प्रकार अनुरक्त हुए, कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान और अनेक सद्वचनोंसे रहित होगये। हे राजेन्द्र! इसी कारण उन लोगोंमें अगम्य गमन, भक्ष्याभक्ष्य और दोष अदोषका कुछ भी विचार न रहा। हे राजन्! मनुष्य लोग इस प्रकार ज्ञानहीन होके विषयोंमें आसक्त हुए, तो वेद आदिक नष्टभ्रष्ट होने लगे और यज्ञादिक कर्म्म धर्म्म भी लुप्त होगये। हे पुरुषसिंह! इसी भांति जब वेदादिक धर्म्म लुप्त होगये, तब देवता लोग भयभीत होकर जगत् पितामह ब्रह्माको शरणमें उपस्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे; और दुःखित चित्तसे हाथ जोड़के यह बचन बोले, हे भगवन्! मनुष्योंमें लोभ और मोह आदिक भावोंके उदय होनेसे सनातन वेदधर्म्म लुप्त हुआ है, इस ही कारण हम लोगोंको भय उपस्थित हुआ है। हे त्रिलोकी नाथ! ब्राह्मण वेदोंके लुप्त होनेसे यज्ञ आदिक धर्म्म कर्म्म भी नष्ट हुए हैं, इससे हम लोग इस समय मर्त्यलोक वासी मनुष्योंकी समानताको प्राप्त हुए हैं। मनुष्य लोग हम लोगोंके निमित्त यज्ञमें आहुति प्रदान करते थे, और यज्ञसे तृप्त होकर हम लोग जलको वर्षा करके मनुष्योंको आनन्दित करते थे, परन्तु इस समय सम्पूर्ण कर्म्मोंके लुप्त होनेसे हम लोग भी नष्ट प्राय होगये हैं। हे पितामह! आपकी कृपासे हम लोगोंको जो कुछ ऐश्वर्य्य प्राप्त हुए थे, वह सब नष्ट हो रहे हैं; इससे इस समयमें जिस भांति हम लोगोंका

कल्याण होवे, आप अनुग्रहकर उसीका विधान करिये।

तिसके अनन्तर स्वयम्भू भगवान ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, हे देवता लोगो! तुम लोग भय मत करो, जिससे तुम लोगोंका मङ्गल होगा, मैं वही उपाय करूंगा। अनन्तर पितामह ब्रह्माने निज बुद्धिके प्रभावसे एक सौ हजार अध्यायोंसे युक्त एक शास्त्र बनाके उसमें धर्म्म, अर्थ और कामका विस्तार पूर्व्वक वर्णन किया, ब्रह्माने धर्म्म अर्थ और कामको त्रिवर्ग कहके विख्यात किया, और त्रिवर्गसे विपरीत फलदायक पृथक् गुणविशिष्ट मोक्षनाम चतुर्थ पदका उस ही शास्त्रमें वर्णन किया। मोक्षको भी सकाम कर्म्म भेदसे सत्व, रज और तमरूपी त्रिवर्ग और निष्काम भेदसे उससे पृथक् अन्य एकवर्ग वर्णन किया। हे भरतश्रेष्ठ! वणिकोंके धनकी रक्षा, तपस्वियोंकी वढती और चोरोंके नष्ट करनेके वास्ते त्रिवर्ग आत्मा, देश, काल, उपाय प्रयोजन और सहाय नीतिसे उत्पन्न हुए, ये षड्वर्ग कर्म्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड, कृषि, वाणिज्य, जीविकाकाण्ड और विशाल दण्डनीति, ये सब विषय जगत् पितामह ब्रह्माके बनाये हुए एक लक्ष अध्यायोंमें पूर्ण रीतिसे वर्णित हैं। हे राजन्! सेवकोंकी रक्षा ब्राह्मण और राजपुत्रोंके लक्षण, अनेक उपायके सहित जासूसोंको नियुक्त करना, ब्रह्मचारी आदि वेषधारी गुप्त चरोंको पृथक् पृथक् रूपसे नियत करना और साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा ये सब विषय उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। मन्त्र, भेदार्थ, मन्त्रविभ्रम और सिद्ध असिद्धिके फल भी उसमें कहे गये हैं; भययुक्त सत्कार सहित और धन-ग्रहण रूपी उत्तम, मध्यम और अधम सन्धि भी उसमें वर्णित है। चतुर्व्विध यात्रा काल, त्रिवर्ग विस्तार, धर्म्मयुक्त विजय, अर्थ विजय और [illegible] कर्म्मोंके अपर-विजय पूर्ण रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित हैं। उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे सेवक, राष्ट्र, किला, बल और कोष इन पञ्चवर्गोंके सब लक्षण वर्णित हुए हैं। प्रकाश्य और गुप्त दोनों भांतिकी सेना उसमें कही गई हैं; और दोनोंका अष्टविध विस्तार वर्णित हुआ है। हे पाण्डुनन्दन! रथ, हाथी, घोड़े, पत्ति, विष्टि, नाविक, भार उठानेवाले दूत और उपदेष्टा ये आठ प्रकाश्य बलके अङ्ग हैं। वस्त्रादिक, अन्न आदि भोजनकी वस्तु और अभिचारिक कार्य्योंमें जङ्गम अजङ्गम अर्थात् विषादिक चूर्ण योग रूप दण्ड वर्णित है। हे भरतर्षभ! उस शास्त्रमें मित्र, शत्रु और उदासीन पुरुषोंके लक्षण भी वर्णित हुए हैं। ग्रह नक्षत्र आदिकी मार्गगुण, भूमिगुण, मन्त्र और यन्त्रोंसे आत्म-रक्षा, धैर्य्य और रथ निर्माण आदि कार्य्योंकी अवलोकन करना, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बलपुष्टिके अनेक भांतिके यत्न, योग, नाना भांतिके व्यूह, विचित्र युद्ध कौशल, धूमकेतु प्रभृति उत्पात, उल्कापात, शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेकी विधि और उनके चलाने तथा निवारण करनेकी विधि पूर्ण रीतिसे वर्णित है। हे पाण्डुपुत्र सब बलोंकी वढती क्षय, और पीड़ा; आपत कालमें सेनाके गुण दोषोंका ज्ञान, नगारे आदि बाजोंके शब्द सहित यात्रा कालमें गमन करनेका विधान, ध्वजा पताकासे युक्त रथ आदि वाहन, मन्त्रादिकोंसे शत्रुओंको मोहित करनेकी विधि इत्यादि ये सब विषय उस शास्त्रमें वर्णित हुए हैं। चोर, डकैत, जङ्गली भील-किरात, अग्नि, विष और कृत्रिम पत्र बनानेवाले पुरुषोंसे बलवान शत्रु-ओंमें भेद कराना, खेती कटवाना मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे हाथी, घोड़ोंको दूषित करना, प्रजाको भय दिखाना, अनुयायियोंका आदर और सबके मनमें विश्वास उत्पन्न कराके शत्रुराज्यको पीड़ित करनेकी विधि उस

शास्त्रमें विशेष रूपसे वर्णनकी गई हैं। और सप्तांग राज्यकी बढ़ती ह्रास, शान्ति स्थापन, राज्यको बढ़ाना, बलवान पुरुषोंको संग्रह करना इत्यादि ये सब विषय उसमें वर्णित हैं। शत्रुके निकटमें रहनेवाले मित्रोंमें भेद, बलवान शत्रुको यत्नपूर्व्वक पीड़ित करना, सूक्ष्म विचार खलोंका नाश, मल्लयुद्ध, शस्त्र चलाना, दान धन संग्रह, भूखोंको भोजन, सेवकोंके कार्य्योंका निश्चय, समयके अनुसार धनव्यय, मृगया आदि व्यसनोंमें अनिच्छा, सावधानता आदि राजगुण शूरता वीरता और धीरता आदि सेनापतिके गुण और त्रिवर्गके गुण दोष तथा कारण उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। नाना भांति की दुरभिसन्धि, अनुयायी और सेवकोंकी यथा योग्य वृत्ति, सब भांतिके प्रमादोंकी शक्ति, तत्व, निवारण विधि, अप्राप्त अर्थका लाभ, प्राप्त अर्थकी बढ़ती, और बढ़ाये हुए धनको विधिपूर्व्वक सत्पात्रोंको दान करना, यज्ञादि धर्म्म कर्म्मोंमें दान, काम्यदान और विपद उपस्थित होनेपर धन दान करनेकी विधि भी उस लक्ष स्लोकवाले शास्त्रमें वर्णित है। हे कुरु-श्रेष्ठ! लक्ष अध्यायवाले शास्त्रके बीच क्रोध और कामसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके व्यसनोंका भी वर्णन है।

हे भरतर्षभ! तिसके बीच पितामह ब्रह्माने कहा है, जूआ, मृगया, सुरापान और स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति ये चारों व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। कठोर वचन, क्रूरस्वभाव, कठोर दण्ड, निग्रह, क्रोधके वशमें होकर आत्महत्या करनी और अर्थ दूषण ये छःहो व्यसन क्रोधसे प्रकट होते हैं। उस शास्त्रमें यन्त्र बनानेके निमित्त नाना भांतिके कौशल और उसकी क्रियाका वर्णन है। शत्रुओंको पीड़ित करना युद्ध-मार्गोंको ठीक करना, कांटोंसे युक्त लता-ओंका नाश, कृषिकर्म्मकी रक्षा, आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह, वर्म्म और वर्म्म निर्म्माणकी युक्तियोंका भी उस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। हे युधिष्ठिर! उसमें ढोल, मृदङ्ग शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके लक्षण और मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दासी और सुवर्ण आदि छः प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह, रक्षा, दान, साधुओंका पूजन, पण्डितोंका सत्कार, दान और होमके नियमोंका ज्ञान, सुवर्ण आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श, शरीरको अलंकृत करना, भोजनके नियम और आस्तिकता आदि सम्पूर्ण विषय कहे गये हैं। हे भरतर्षभ! विषय उत्थापित करना, बचनकी सत्यता सभा और उत्सवोंके बीच बचनकी मधुरता, ध्वजारोहणादिक गृह-कार्य्य, साधारण पुरुष जिन स्थानोंमें बैठते हैं; उन स्थानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्षमें जिन कार्य्योंके अनुष्ठान होते हैं उसका अनुसन्धान, ब्राह्मणोंको अदण्डित करना, युक्तिपूर्व्वक दण्ड विधि, अनुजीवी और स्वजातिके पुरुषोंके गुण अनुसार उनकी मर्य्यादा स्थापित करनो, पुरवासियोंकी रक्षा, और राज्य बढ़ानेकी विधि पूरी रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित है। हे राजेन्द्र! शत्रु, मित्र और उदासीन प्रत्येकमें चार चार भेदोंसे द्वादश राजमण्डल विषयक युक्ति, वेद शास्त्रोंमें कही हुई पवित्रता; बहत्तर प्रकारके शरीर संस्कार और देश, जाति तथा कुल भेदसे पृथक् पृथक् धर्म्म भी उसमें कहे गये हैं। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! उसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, अनेक भांतिके उपाय और अर्थ-लिप्साके विषय सम्पूर्ण रूपसे वर्णित हुए हैं। कोष बढ़ानेकी विधि कृषि आदि कार्य्य, माया-योग और बंधे हुए स्रोतके जलके समस्त दोष कहे गये है। हे राजशार्दूल! जिन जिन उपायोंको अवलम्बन करनेसे मनुष्य लोग आर्य्य पुरुषोंके अवलम्बित मार्गसे विचलित नहीं होते, वे सब विषय पितामहके बनाये हुए नीति शास्त्रमें वर्णित हैं। भगवान लोकनाथ पितामह इस मंगलजनक शास्त्र बनाके प्रसन्न चित्तसे

इन्द्रादिक देवताओंसे बोले, कि मैंने सम्पूर्ण लोकोंके उपकार और त्रिवर्ग संस्थापनके वास्ते दूधके नवनीत समान समस्त वाक्योंके साररूपी यह युक्ति प्रकाशकी है। लोकरक्षा करनेवाली इस युक्तिको दण्डके सहित प्रयोग करनेसे यह सम्पूर्ण प्राणियोंके निग्रहमें समर्थ होकर पृथ्वीपर प्रचारित होगी। यह जगत्‌दण्डसे बना है, अथवा जगत्‌से ही दण्ड प्रकट हुआ है, इसीसे यह नीति तीनों लोकके बीच दण्डनीति कहके विख्यात होगी। समस्त षाड्‌गुण्यगुणोंका सारभूत यह शास्त्र सदा महात्माओंके आगे स्थित रहेगा; क्यों कि धर्म्म, अर्थ काम और मोक्ष ये सब इसके बीच वर्णित हुए हैं। तिसके अनन्तर वहु रूप, विशालाक्ष, स्थाणु भगवान उमापति शङ्करने पहिले ही उस नीतिशास्त्रको ग्रहण किया। भगवान शिवने सब प्रजाकी आयुका समय घटा हुआ जानके पितामह कृत उस महार्थ शास्त्रको संक्षिप्त किया। महातपस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ इन्द्रने दस हजार अध्याय वाले उस वैशालाक्ष नाम नीतिशास्त्रको ग्रहण कर संक्षेप करके पांच हजार अध्याय किया और वह शास्त्र वाहुदन्तक नामसे विख्यात हुआ, हे तात! वह इस समय वार्हस्पत्य शास्त्र कहके पुकारा जाता है। अत्यन्त बुद्धिमान् योगाचार्य्य महायशस्वी शुक्रने उसे संक्षेप करके एक हजार अध्याय किया। इसी भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुष्कालकी अल्पताके अनुसार महर्षियोंने अपनी अपनी बुद्धिके प्रभावसे उस शास्त्रको संक्षेप किया। अनन्तर देवताओंने प्रजापति विष्णुके निकट उपस्थित होके कहा,—"जो सम्पूर्ण मर्त्यलोकवासी प्राणियोंके ऊपर प्रभुता कर सके, आप ऐसे किसी एक पुरुषको आज्ञा करिये।" अनन्तर देवोंके प्रभु भगवान नारायणने तैजस और विरजा नाम दो मानसपुत्र उत्पन्न किए। हे पाण्डु-पुत्र! उनमें महाभाग विरजाने भूमण्डलपर प्रभुता करनेकी इच्छा नहीं की; क्यों कि उनकी बुद्धि सन्न्यासवृत्तिमें अनुरक्त हुई। उनके कीर्त्तिमान नाम जो पुत्र उत्पन्न हुआ था; वह भी पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। कीर्त्तिमानके पुत्र कर्द्दमने भी अत्यन्त तपस्या की। प्रजापति कर्द्दमके दण्डनीति जाननेवाला अनंग नाम पुत्र हुआ था, वही प्रजाकी रक्षा करनेलगा, तिसके अनन्तर अनंग पुत्र नीतिमान् अतिबल राज्य पाके इन्द्रिय परायण हुए। तीनों लोकमें विख्यात सुनीथा नाम्नी मृत्युकी जो मानसी कन्या थी, उसीसे वेणुका जन्म हुआ। अतिबल-पुत्र वेणु राग, द्वेषके वशमें होकर प्रजाके ऊपर अधर्म्म आचरण करनेलगे, तब ब्रह्मवादी ऋषियोंने मन्त्र-पूरित कुशोंसे उन्हें मार डाला। तिसके अनन्तर उन ऋषियोंने मन्त्र पढ़के वेणुकी दहिनी जङ्घाको मथा, उससे पृथ्वीपर कुरूप-वेष जलते हुए स्थूण समान लाल नेत्र, बिखरे केश और छोटे अङ्ग वाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे "निषीद" अर्थात् पतित हो,—ऐसा ही कहा, इससे उस पुरुषसे जो क्रूर मनुष्य उत्पन्न भये, उन सबोंने "निषाद" नामसे विख्यात होके पहाड़ तथा वनोंका आसरा ग्रहण किया। हे राजन्! इस समय जो सब विन्ध्याचल पर्व्वतपर वास करते हैं, और दूसरे जो अनगिनत म्लेच्छ हैं; ये सब उन्हीं निषादोंसे उत्पन्न हुए हैं। अनन्तर महर्षियोंने फिर वेणुका दहिना हाथ मथा, उससे कवचधारी, खड्गनिस्त्रिंश धनुष वाणसे युक्त, वेद वेदाङ्ग और धनुर्व्वेद जाननेवाला द्वितीय इन्द्रके समान एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ। महाराज! दण्डनीतिने मानो मूर्त्तिमयी होके उसका आसरा ग्रहण किया। तिसके अनन्तर वेणु-पुत्र हाथ जोड़के महर्षियोंसे बोले, मुझे अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न हुई है, इससे मैं किन कर्मोंका अनुष्ठान करूंगा, वह आप लोग मुझसे स्पष्ट ही कहिये। आप लोग मुझसे जो

अर्थयुक्त कार्य्य करनेको कहेंगी, मैं शीघ्र ही उसे पूर्ण करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

अनन्तर देवताओं और परमर्षियोंने उससे कहा, "तुम नियमपूर्व्वक निर्भय-चित्तसे धर्म्मयुक्त कार्य्योंका आचरण करो। तुम काम, क्रोध, लोभ और अभिमान त्यागके और प्रिय अप्रियका बिचार न करके सब जन्तुओंमें समभाव प्रकाशित करना। पृथ्वीपर जो कोई मनुष्य धर्म्ममार्गसे बिचलित होगा, तुम धर्म्मकी ओर दृष्टि रखके अपने बाहुबलसे उसे दण्ड देना। हे शत्रुतापन! तुम मन, और बचनसे ऐसी प्रतिज्ञा करो, कि अखिल भौम पदार्थको ब्रह्मस्वरूप जानके पालन करूंगा; स्वेच्छाचारी होकर, दण्डनीतिके नियम अनुसार जो सब धर्म्म कहे गये हैं, निर्भयचित्तसे उन्हींका आचरण करूंगा; द्विजातिगण मुझसे अदण्ड और मैं सब प्राणियोंको शङ्करसे रक्षा करूंगा। तिसके अनन्तर वेणपुत्र उन ऋषियों तथा देवताओंसे बोले, पुरुषश्रेष्ठ महाभाग ब्राह्मण लोग मेरे नमस्य होवें। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने "ऐसा ही होगा" कहके अंगीकार किया, तब ब्रह्ममय निधिस्वरूप भगवान शुक्र उनके पुरोहित हुए। सारस्वत्य और वालिखिल्य गण उनके मन्त्री और महर्षि गर्ग भगवान ज्योतिर्व्विद हुए। इसी भांति शरीर भेदमें विष्णुसे अष्टम पर्य्याय वेणपुत्र पृथुने पृथ्वीपर राज्य स्थापित किया, ऐसे ही जनश्रुति है। इसके पहिले ही सूत और मागध नामक उनके दो बन्दी उत्पन्न हुए थे. प्रतापी वेणपुत्र पृथुने उन दोनोंके ऊपर प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश प्रदान किया। महाराज! हमने सुना है. पहिले भूमिमें अत्यन्त ही नैषम्यदोष था, क्यों कि प्रति मन्वन्तरोंमें पृथ्वी सर्व्वत्र ही विषम हुई थी, इस ही कारण वेणपुत्रने धनुषसे पत्थरोंको शिला उठाके वर्द्धित करते हुए पृथ्वीको समत्व सम्पादन किया। हे पाण्डुपुत्र! इसी भांति पृथु इन्द्र आदिक ताओं, विष्णु प्रजापालक और अभिषिक्त हुए; रत्नपूरित वसुन्धरा मानो मयी होकर उनकी प्रणयिनी हुई। हे छिर। सरितापति समुद्र, पर्व्वतोंमें उत्तम हिमवान और देवराज इन्द्रने उन्हें अविनाशी प्रदान किया। कनकपर्व्वत सुमेरुने स्वयं सुवर्ण प्रदान किया। यक्ष और राक्षसों स्वामी नरबाहन भगवान कुवेरने धर्म्म, काम इन त्रिबर्ग साधनमें समर्थ धन प्रदान किया। हे पाण्डुनन्दन! उस पृथुके चिन्ता करते ही अनगिनत रथ, हाथी और पशु उत्पन्न होने लगे। उनके राज्य शासनके समयमें जरा, दुर्भिक्ष, आधि अथवा व्याधि कुछ भी नहीं थी। उनके शासनके समयमें सर्प अथवा चोरोंसे भी दूसरेको भय नहीं उपस्थित होता था, वह जब समुद्रमें गमन करते थे; उस समय तरङ्ग मालासे युक्त समुद्रका जल स्तम्भित होजाता; सम्पूर्ण पर्व्वत दो भागोंमें बंटके उन्हें मार्ग प्रदान करते थे। अधिक क्या कहें उनकी कहीं भी गतिरोध वा ध्वजा-भङ्ग आदि अशकुन नहीं उपस्थित होते थे। उन्होंने शस्यके वास्ते इस पृथ्वीको सत्तरह बार दोहन किया था; उससे यक्ष, राक्षस और सर्पोंने अपनी समस्त अभिलषित वस्तुओंको पाया था इसी भांति उस महात्मा पृथुने भूलोकमें धर्म्म स्थापित करके प्रजापुञ्जके मनको रञ्जन किया, उसी समयसे पृथ्वीमें "राजा" शब्द प्रचलित हुआ। ब्राह्मणोंको क्षतसे परित्राण करनेसे क्षत्रिय कहलाये; पृथुने धर्म्मपूर्व्वक मेदिनीको प्रथित किया था, उसी कारण यह धरा पृथिवी नामसे विख्यात हुई। हे भारत! सनातन विष्णुने स्वयं उनकी यह मर्य्यादा स्थापित की, कि "हे राजन्! तुम्हें कोई भी अतिक्रम न कर सकेगा।" भगवान विष्णुने तपके प्रभावसे भूपतिके शरीरमें प्रवेश किया। महाराज!

अखिल जगत् देव-सदृश उस नरदेवके समीप नत होता रहता है। हे नरनाथ! जिसमें चार-वृत्ति अवलोकन द्वारा कोई नष्ट करनेमें समर्थ न होसके; उसी भांतिकी दण्ड-नीतिसे नियमानुसार राज्य रचा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! राजा की चित्तवृत्ति और कर्म्मोंके समतानुसार उसके किये हुए शुभ कार्य्यादिकोंके फल शुभरूपसे परिणत होते हैं। हे युधिष्ठिर! सब प्राणी जो एक ही पुरुषके वशीभूत होते हैं, यह दैव निर्ब्बन्ध ही उसका कारण है; दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

हे पाण्डुनन्दन! उसी समय विष्णुके मस्तकसे एक सुनहला कमल प्रकट हुआ, उसीसे बुद्धिमान धर्म्मको पत्नी अर्थात् पालयित्री स्त्री उत्पन्न हुई। धर्म्मतः श्रीसे ही सब अर्थ उत्पन्न हुए। तभी से राज्यमें श्री, अर्थ और धर्म्म ये तीनों ही प्रतिष्ठित हुए। मनुष्य पूर्व्व जन्मके किये हुए सुकृतके क्षय होनेपर स्वर्ग लोकसे पृथ्वीपर आगमन करके सतोगुणावलम्बी, बुद्धिमान, दण्डनीति जाननेवाले भूपति होकर जन्म ग्रहण करते और तिसके अनन्तर देवताओंसे अभिषित होकर असाम महात्म्यको प्राप्त होते हैं। महाराज! अखिल जगत् जो एक ही पुरुषके वशीभूत होता है और उसके शासनको अतिक्रम नहीं करता, उसका यही कारण है, परन्तु वह जगत्‌विधान कर्त्ता है,—ऐसा जानके नहीं। हे राजेन्द्र! शुभ कर्म्मोंके फल शुभ रूपसे ही परिणत होते हैं, देखिये हाथ पांव आदि अवयव सबके समान ही होते हैं, तोभी सब कोई एक ही की आज्ञामें चलते हैं। जो उसके मनोहर मुखको देखता है, वही उसके वशमें हो जाता है, मङ्गलमय रूपवान और धनवान भी उसका दर्शन करते हैं। हे महाबाहो! उसका महा दण्ड ही पृथ्वीमें धर्म्म संस्थापनका मूल है। लक्षणवाली नीति और सुन्दर ... प्रचार होता पड़ता है। हे युधिष्ठिर! इसी भांति पितामहके बनाये हुए शास्त्रके बीच पुराणोंके आगम, महर्षियोंके सम्भव, तीर्थ और नक्षत्रों को उत्पत्ति गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमोंके नियम, चातुर्होत्र, चारोवर्ण और चारों विद्या प्रभृति सब ही वर्णित है। इतिहास, वेद, न्याय, तपस्या, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति सब विस्तारके सहित वर्णित हैं। वृद्धोंकी सेवा, दान, पवित्रता, उत्थान और सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाश करना, ये सब उस शास्त्रमें वर्णित है। हे पाण्डुपुत्र! अधिक क्या कहूं, इस पृथ्वीपर जो कार्य्य है, वह सब पितामहके बनाये हुए उस शास्त्रमें निःसन्देह रूपसे वर्णित हुए हैं। हे राजेन्द्र! उस ही समयसे पण्डित लोग "देव और नरदेव समान हैं,"—ऐसा ही कहा करते है। हे भरत श्रेष्ठ महाराज! ये ही सब राजाओंके कर्त्तव्य विषय सब भांतिसे कहे गये, अब कहिये दूसरा कौनसा विषय कहूं?

५९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर नियमशील युधिष्ठिरने गंगानन्दन भीष्म पितामहको प्रणाम करके फिर पूंछा, हे कुरुश्रेष्ठ पितामह! अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म क्या है? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके चारोवर्णोंके पृथक् धर्म्म और आश्रम क्या है? कौन धर्म्म राजधर्म्म करके माना जाता है? किस भांति राज्य बढ़ता है और कौनसा उपाय अवलम्बन करनेसे राजा और पुरवासियोंकी उन्नत अवस्था हो सकती है; राजा कैसे कोष, दुर्ग, किला, सहाय, मन्त्री, ऋत्विक्, पुरोहित और गुरुको परित्याग करे? पितामह! किस भांतिसे भारत उपस्थित होनेपर कैसे मनुष्यका विश्वास करना उचित है? और किस विषयसे आत्माको

भांतिसे रक्षा करनी उचित है? आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्म, पूर्ण ब्रह्म कृष्ण भगवानको, प्रणाम करके नित्य धर्म्म की व्याख्या करूंगा। हे युधिष्ठिर! क्रोध न करना, सत्यवचन सम्विभाग, क्षमा, निज स्त्रीमें सन्तोष, पवित्रता किसीसे वैर न करना, विनीतता और सेवकोंका पालन ये नव अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म हैं। और इसके अतिरिक्त जो सनातन धर्म्म केवल ब्राह्मणोंसे ही आचरित है, उसे कहता हूं सुनो, महाराज! दम अर्थात् वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, तपके क्लेशोंमें सहनशीलता और जिससे दूसरे सब सांसारिक कार्य्योंको समाप्ति होती है, वैसे वेदको अध्ययन करना ही ब्राह्मणोंका सनातन धर्म्म है। इसी भांति शान्त प्रकृतिवाले बुद्धिमान ब्राह्मण दुष्कर्म्मोंमें रत न होवे निज कर्म्मोंमें तत्पर रहने पर यदि अर्थ स्वयं ही उसके समीप उपस्थित होवे, तो सन्तान उत्पन्न होनेकी अभिलाषासे दार परिग्रह करके वह सदा ध्यान और यज्ञ आदि सत्कर्म्म करे। और भी पण्डितोंने कहा है, कि उस अर्थको स्वजनोंके सहित समभावसे भोग करे। वेदाध्यनके सङ्ग ही ब्राह्मणोंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं, इसके अनन्तर और कोई कर्म्म करे, वा न करे, वह सब प्राणियोंका प्रियपात्र ब्राह्मण कहके विख्यात होता है।

हे भारत! क्षत्रियोंके जो पृथक् धर्म्म हैं, वह भी तुमसे कहता हूं, सुनो। महाराज! क्षत्रिय दान करे परन्तु किसीसे मांगे नहीं यज्ञ आदि करे, परन्तु याजकता न करे; अध्ययन करे, पर किसीको पढ़ावे नहीं; प्रजापुञ्जको सब भांतिसे पालन करे, सदा डाकुओंके वधमें नियुक्त रहे और रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करे। जो राजा अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके पृथ्वी मण्डलपर महत् कीर्त्ति स्थापित करते और जो युद्धक्षेत्रमें वि... करते हैं; वेही त्रिलोकवासी सब प्राणियोंको अपने वशमें कर सकते हैं। क्षत्रियोंको अक्षत शरीरसे युद्धसे निवृत्त होने पर दोषदर्शी पण्डित लोग उनके वैसे कर्म्मको प्रशंसा नहीं करते; इससे धर्म्मकी अभिलाष करनेवाला राजा विशेष यत्नके सहित युद्ध करे क्षत्रबन्धु अर्थात् अधम क्षत्रियोंको मुख्य करके यही मार्ग अवलम्बन करना उचित है, परन्तु डाकुओंको दमन करनेके अतिरिक्त दूसरे कोई भी कर्म्म उनके कर्त्तव्य कार्य्य कहके नहीं बोध होते। दान, अध्ययन और यज्ञ राजाओंके निमित्त मङ्गलकारी हैं; राजा प्रजा समूहको उनके निज धर्म्म स्थित करके धर्म पूर्व्वक समभावसे सब कार्य्योंको सिद्ध करे इसी भांति प्रजापालन करनेसे राजाओंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं। इसके अनन्तर वे कोई कार्य्य करें, वा न करें; सब प्राणियोंके सुख राजा कहके प्रसिद्ध होते हैं।

हे युधिष्ठिर! वैश्योंका भी जो सब नित्य धर्म्म है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। वैश्य दान, अध्ययन, यज्ञ उत्तम उपायके सहारे सञ्चय और अनुराग पूर्व्वक पिताकी भांति पशुओंका पालन करे, इसरा कुछ भी कार्य्य करे; क्यों कि इसके अतिरिक्त दूसरे सब कार्य्य ही उसके अकर्त्तव्य कहके वर्णित हुए हैं। प्रजापतिने सृष्टिके अनन्तर ब्राह्मणोंको बनाया है, राजाओंको सब जाति वाली प्रजा और वैश्योंको समस्त पशु प्रदान किया है; इससे वैश्य उस ही रीतिके अनुसार पशु रक्षामें नियुक्त रहनेसे महत् सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा तथा जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा, वह भी कहता हूं। जो वैश्य छः गऊ पालन करे, वह निज वेतन रूपी एक गऊका दूध पीवे; सौ गऊकी रक्षा करनेवाला

निज वार्षिक वेतनस्वरूप एक गो-मिथुन पावेगा। सींग और खुरके अतिरिक्त द्रव्यके वाणिज्यसे प्राप्त हुआ और सब भांतिके शस्य तथा बीजका सातवां भाग उसका अंश कहके वर्णित हुआ है ; और यही उसका एक सौ वर्षका वेतन है। वैश्य पशुओंके पालनेमें अनिच्छा प्रकाशित न करे, और उसके इच्छा करनेपर दूसरे किसी वर्णवालेको ही सब पशुओंकी रक्षा करना कर्त्तव्य नहीं है।

हे भारत ! शूद्रोंके भी जो सब पृथक् धर्म्म हैं, उसे कहता हूं, सुनो। प्रजापतिने शूद्रको अन्य सब वर्णोंका दास कहके वर्णन किया है, इससे सब वर्णवालोंकी सेवा करना ही शूद्रका कर्त्तव्य हैं, उनकी सेवा करनेसे ही शूद्रको महत् सुख प्राप्त होता है। शूद्र पर्य्याय क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहे, परन्तु कभी भी धन सञ्चय न करे, क्योंकि वह धनवान होनेसे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंको वशीभूत और कार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होगा ; परन्तु राजाकी आज्ञानुसार लोभके वशमें न होकर धर्म्म प्रधान कार्य्योंका करनेके वास्ते थोड़ा धन सञ्चय कर सकेगा। शूद्र जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा और जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा ; वह भी कहता हूं। शूद्र, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका अवश्य ही पालनीय है। उसीर वेठन, पुराना छत्र, जूता और व्यजन आदि परिचारक शूद्रको प्रदान करना योग्य है। न पहरने योग्य पुराने वस्त्र शूद्रको देना उचित है, क्योंकि वह उसका ही धर्म्म-धन है। धर्म्मात्मा मनुष्य कहा करते हैं कि शूद्र सेवा करनेको इच्छासे द्विजातियोंके बीच यदि किसीके पास आवे, तो वह उसके उपयुक्त वृत्ति उसे प्रदान करे। [illegible] [illegible] पर शूद्र [illegible] दान करे और [illegible] [illegible] उसका पालन [illegible] करे। [illegible]

तक कहीं चाहे कैसी ही विपत् क्यों न उपस्थित होवे, किसी अवस्थामें भी स्वामीको परित्याग करना शूद्रका कर्त्तव्य नहीं है। स्वामी की दीन दशा उपस्थित होनेपर अपने परिवारसे भी अधिक उसका पालन करना शूद्रका कर्त्तव्य है; क्योंकि शूद्रका जो कुछ धन आदि रहता है, वह सब उसके स्वामीका है, उसमें उसे कुछ अधिकार नहीं है।

हे भरतनन्दन ! ब्राह्मण आदि तीनोंवर्णोंके वास्ते धर्म्म और यज्ञ आदि वर्णित हुए हैं, परन्तु शूद्रोंको स्वाहाकार वषट्कार और अन्य वैदिक मन्त्रोंमें अधिकार नहीं है, इससे वे लोग स्वयं श्रौतव्रतसे रहित होकर ग्रहशान्ति और वैश्वदेवादि छोटे यज्ञोंको करते हुए शास्त्रोक्त पूर्णपात्रमयी दक्षिणा प्रदान करें। महाराज ! मैंने सुना है, पहिले पैजवन नाम शूद्रने ऐन्द्राग्न-विधानसे यज्ञ करके दक्षिणा स्वरूप एक लाख गऊ दान किया था। हे भारत ! ब्राह्मण आदि तीनो वर्ण जो कुछ यज्ञ आदि करते हैं, उनके सेवक शूद्र भी उसके फल भागी होते हैं। महाराज ! सब यज्ञोंसे श्रद्धा यज्ञ ही श्रेष्ठ है और यजमानोंका पवित्र महत् देवता है। ब्राह्मण भी निज निज सेवक शूद्रोंके महत् देवता हैं, इससे वे लोग श्रद्धाके सहित उनकी आराधना करनेसे अवश्य ही स्वामीकृत यज्ञादिकोंके फलभागी होंगे। ब्राह्मणोंसे ही इतर तीनों वर्णोंकी सृष्टि हुई है, इससे वे लोग स्थिर होके कामनाके सहित यज्ञादि न करने पर भी अवश्य ही ब्राह्मणोंके किये हुए यज्ञादिकोंके फलभागी हुआ करते हैं। जो देवताओंके भी देवता हैं, वे ब्राह्मण लोग जो कुछ करें, वही मङ्गलजनक है। इसही कारण शूद्र आदि वर्ण [illegible] [illegible] वर्णोंका न [illegible], [illegible] [illegible] अनुसार [illegible] [illegible] होवें। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] शूद्रोंके निकट दैवतोंके [illegible]

होते हैं, और दासस्वरूपसे परिगणित शूद्र त्रिवर्णातिरिक्त होकर भी प्रजापति-दैवत कहके गिना जाता है। हे तात भारत! सङ्कल्प करके देवताओंके निमित्त द्रव्यत्यागरूपी यज्ञमें सब वर्णवालोंको अधिकार है; अधम वर्ण शूद्र भी यदि वैसा यज्ञ करे, तो देवता लोग तथा उत्तम वर्णवाले भी उसके यज्ञभागको ग्रहण करते हैं। महाराज! इस ही कारण सब वर्णोंके वास्ते श्रद्धायज्ञकी विधि वर्णित हुई है। ब्राह्मण लोग क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके असाधारण देवता हैं, इससे वे आत्मीय ब्राह्मण उन लोगोंसे घिरके उनके फललाभकी अभिलाषसे यज्ञादि नहीं करते, यह अत्यन्त ही असम्भव है। परन्तु "मैं अमुक कामनासे अमुक पुरुषसे वृत होकर अमुक यज्ञ करता हूं" इसी उद्देश्यसे सदा यज्ञादि किया करते हैं. इसी भांति वैश्य-गृहसे लाया हुआ मन्त्र संसृष्ट यज्ञ नीच वर्णवालोंमें दीखता है। हे युधिष्ठिर! यह सब देखके निश्चय बोध होता है, ब्राह्मणोंसे ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई है जब कि ब्राह्मण ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञस्रष्टा हैं और उनके विकारसे ही क्षत्रिय आदिकी कन्याओंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण साधु और ब्राह्मणोंके ज्ञातिवर्ण हैं, क्योंकि एक मात्र ब्रह्मसे ही पहिले ब्राह्मण जातिकी उत्पत्ति हुई, और उस ब्राह्मणसे ही क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनो वर्ण उत्पन्न हुए हैं। जैसे एक मात्र अकारसे ही साम, ऋक् और यजु ये तीनो वेद उत्पन्न हुए हैं, और वे वेद उससे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही एक ब्रह्मसे ही ब्राह्मणादिक चारों वर्ण उत्पन्न होके भी परस्पर समान हैं। हे राजेन्द्र! पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरण स्वरूप विषय, वैखानस मुनियोंके यज्ञ समयमें पितृ-गीत यज्ञ-स्तुति विषयक जो कई एक श्लोक कहा करते हैं, उसे सुनो। सवेरे, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय श्रद्धावान जितेन्द्रिय पुरुष जो अग्निमें होम किया करते हैं, श्रद्धा ही उसमें मुख्य कारण है। ब्राह्मणोंमें जो षोड़श प्रकारके अग्निहोत्र कहे गये हैं, उसमें जो अस्कन्न अर्थात् मरुत-दैवत है, वह निकृष्ट और अस्कन्न अर्थात् यथा विधिसे होम होता है, वही सबसे उत्तम है। जो उन षोड़श भांतिके अग्निहोत्र, अनेक भांतिके यज्ञोंके रूप तथा कई प्रकारके कर्म और उनके फलोंको जानते हैं, वेही ज्ञानी श्रद्धावान द्विजाति ही यज्ञ कर सकते हैं। जो यज्ञादिकोंसे यज्ञस्वरूप विष्णुके आराधनाकी इच्छा करता है, वह पुरुष यदि चोर पापी वा महापापी हो, तौभी पण्डित लोग उसे साधु ही कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! जब कि यही उत्तम है और महर्षि लोग इसीकी प्रशंसा किया करते हैं, तब सब वर्णोंको ही सर्व्वदा सब भांतिसे यज्ञ करना कर्त्तव्य है, यही निर्णय हुआ है। तीनों लोकमें यज्ञके समान दूसरा कोई भी कर्म नहीं है, इससे सबको ही असूया-रहित और श्रद्धावान होकर शक्ति तथा इच्छानुसार यज्ञ करना उचित है।

६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाबाहो सत्यपराक्रमी युधिष्ठिर! अब चारों आश्रमोंके नाम और कर्म्मोंको सुनो। शास्त्रकारोंने वाणप्रस्थ, भैक्षचर्य्य, महत् गार्हस्थ्य और चौथा ब्राह्मणोंसे परिवृत्त ब्रह्मचर्य्य,—यही चार प्रकारके आश्रमोंका वर्णन किया है। द्विजकुलमें जन्म लेकर जटाधारण संस्कार और अग्न्याधान आदि कार्य्योंको समाप्त करके वेद पढ़ते हुए आत्मवान और जितेन्द्रिय होकर सस्त्रीक हो, चाहे स्त्रीरहित होकर ही गृहस्थाश्रममें कृत-कृत्य

होकर फिर वाणप्रस्थ आश्रममें गमन करे। इसी भांति वाणप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके वहीं पर वनवासी वाणप्रस्थ पुरुषोंके अनुष्ठान-नकी यथारीतिसे अनुष्ठान कर ऊर्द्धरेता होकर प्रव्रज्या करते हुए मोक्षपद प्रुरुष पाते हैं। हे राजन्! यही सब ऊर्द्धरेता मुनियोंके मोक्षका कारण है, इससे विद्वान ब्राह्मणोंको पहिले यही सब कार्य्य करना उचित है। हे महा-राज! मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंको इस ब्रह्मचर्य्य आश्रमके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आच-रण करनेके अनन्तर उन्हें भैक्षचर्य्यरूप चौथे आश्रममें अधिकार होता है। ब्राह्मण इस आश्रममें प्रवेश करके अस्तमितशायी अर्थात् दिनमें निद्रारहित, आत्म-शुभ इच्छासे हीन, गृहरहित, मननशील, धार्म्मिक और जितेन्द्रिय होकर जो कुछ भोजनकी वस्तु प्राप्त होवे, उससेही जीविका निर्व्वाह करे। आशारहित, सबमें समभावसे युक्त, निर्भोग और निर्व्विकार अर्थात् काम सङ्कल्प आदिसे रहित ब्राह्मण इस मङ्गलमय आश्रममें निवास करके मोक्षपद प्राप्त करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण वेदाध्ययनके अनन्तर सब कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्त कर पुत्र उत्पन्न और अनेक भांतिके सुख भोग करते हुए योगयुक्त होकर मुनियोंसे सेवित दुष्करगार्हस्थ्य धर्म्मका आचरण करते हैं, वे भी मोक्षपद पाते हैं। गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंको सदा निज स्त्रीमें सन्तुष्ट, ऋतुकालमें गमन करना, नियोगसेवी, धूर्त्ततारहित, कृत-[illegible], मिताहारी, देवतोंमें रत, कृतज्ञ, सत्यवादी, सरलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान, धर्म्म करनेवाले, [illegible] रहित, [illegible] सदा—सर्वदा [illegible] करनेवाले, मत्सरता हीन, [illegible], सब प्राणियोंके अन्न-दाता और वेदविहित कर्मोंमें विद्यमान होना उचित है। हे तात युधिष्ठिर! इस प्रस्तावमें महात्मा महर्षि [illegible] जो प्रश्न एवं मधुर और सारभूत नारायणगीत श्लोकका प्रमाण देते हैं, उसे कहता हूं, सुनो। "हमारे मतमें इस लोक और परलोकमें सत्य, कोमलता, अतिथिपूजा, धर्म्म, अर्थ, निज स्त्रीसे रति और दूसरे अनेक भांतिके सुखोंको भोगना कर्त्तव्य है।" परमर्षि लोग गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंके वास्ते स्त्री-पुत्रोंका पालन और वेदोंको धारण अर्थात् पढ़ना और पढ़ाना रूप कार्य्यको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। इसी भांति जो यज्ञशील ब्राह्मण गृहस्थवृत्तिको सब भांतिसे परिशोधित करके न्यायसे प्राप्त हुए धनसे जीविका निर्व्वाह करता हुआ गार्हस्थ्य आश्रममें वास करता है, वह स्वर्ग लोकमें शुद्ध फललाभ करता है। देह त्यागनेके अनन्तर उसकी सब इष्टकामना अक्षय होकर अनन्त काल पर्य्यन्त वेतन भोगी सेवककी भांति उसकी अनुगामिनी होती हैं। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी लोग स्वयं मल-दिग्धाङ्ग होकर सदा गुरु सेवामें तत्पर होके कोई पढ़े हुए वेदोंको स्मरण करें, कोई निज मन्त्रोंका जप और कोई नित्य व्रतावलम्वी, सदा दीक्षामें तत्पर और जितेन्द्रिय होकर वेदान्त बिचारके अनुसार ध्यान-योग आदि सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको समाप्त करके ब्रह्मचर्य्याश्रममें वास करें। यजन आदि षट् कर्म्मोंसे निवृत्त होके तथा दूसरे किसी कर्म्ममें प्रवृत्त न होकर सदा गुरुकी सेवा करे और उनके निकट विनीत भावसे स्थित रहे; शत्रुओंकी सेवा वा किसीके ऊपर निग्रह प्रकाश करना उचित नहीं है। हे तात युधिष्ठिर! ब्रह्मचारियोंके वास्ते यही आश्रम पद निश्चित हुआ है।

६१ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, इस कार्यमें सुख-दायक, मङ्गलमय, परिणाममें युक्त, लोक-सम्मत, सबके उपायका कारण और [illegible]

थोंका सुख प्राप्त होनेके योग्य धर्मका वर्णन करिये!

भीष्म बोले, हे प्रभु भरत-सत्तम! ब्राह्मणोंको जो वाणप्रस्थ आदि चार आश्रम कहे गये हैं, हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण उसके अनुवर्त्ती नहीं होते। क्षत्रियोंको जो युद्धमें विजय लाभ प्रभृति स्वर्ग प्राप्त होने योग्य अनेक भांतिके कार्य्य वर्णित हुए हैं; वह तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नके उत्तरमें व्यवहृत नहीं होसकते; क्यों कि वे सब कर्म्म हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रियोंके पक्षमें ही कहे गये हैं। ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर यदि कोई पुरुष क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करे, तो वह मन्दबुद्धि इस लोकमें निन्दित और परलोकमें नरगामी होता है। हे पाण्डुनन्दन! पृथ्वीपर दास, कुत्ते, भेड़िये और अन्य पशुओंके विषयमें जो सब संज्ञा व्यवहृत होती है, ब्राह्मण यदि कुकर्म्मी हो तो उसके विषयमें भी वेही सब संज्ञा व्यवहृत होती है। प्राणायाम आदि षट्कर्म्म और वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंमें प्रवृत्त हिंसा रहित, चपलता हीन, स्थिरचित्त, पवित्र स्वभाववाले, तपस्यामें, रत, आत्म शुभ इच्छासे रहित और धार्म्मिक ब्राह्मण अक्षय लोकमें वास करते हैं। जो पुरुष जैसी अवस्थामें जिस स्थान पर जैसा कार्य्य करता है वह उस ही कर्म्मसे उसके अनुरूप फल पाता है। हे राजेन्द्र! महान् वेदव्यासको भी क्षत्रिय वृत्ति, कृषि कर्म्म, वाणिज्य और मृगयासे जीविका निर्व्वाहके समान ही समझना चाहिये। प्रागभव वासना समूहही कालप्रेरित होकर उत्तम, मध्यम और अधम कार्य्योंको किया करती है, क्यों कि सब ही कालके वशमें हैं। शरीरके किये हुए प्राचीन पाप और पुण्यके फल सुख तथा दुःख आदि सब ही नाशमान हैं; परन्तु पर जन्ममें सुख आदि प्राप्त होनेके निमित्त जीव निज इच्छानुसार शुभ वा अशुभ निज कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ करता है।

६२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धनुष चढ़ाना, शत्रुओंको मारना, कृषि, वाणिज्य, पशुओंका पालन और धन पानेकी इच्छासे दूसरे की सेवा करनी, ये सब ब्राह्मणोंके वास्ते अकार्य्य कहके वर्णित हुए हैं। बुद्धिमान गृहस्थको ब्रह्मविषयक षट्कर्म्मोंका आचरण करते हुए कृत-कृत्य होकर वनमें प्रवेश करना ही उत्तम है। ब्राह्मणको उचित है, कि राजाकी सेवकाई, कृषिसे प्राप्त हुए धन, वाणिज्यसे जीविका निर्व्वाह, कुटिलता, कौलटेय अर्थात् परायी स्त्रीसे व्यभिचार और कुसीद अर्थात् ऋणदेना वा उसकी वृद्धि तथा ब्याज लेना, इन सब कार्य्योंको परित्याग करे। महाराज! ब्रह्मबन्धु अर्थात् अधम ब्राह्मण और दुश्चरित्र, निजधर्म्मको त्यागनेवाला, वृषलीपति, धूर्त्त, नाचनेवाला, ग्रामप्रेष्य, और कुकर्म्मोंमें रत रहनेवाला ब्राह्मण शूद्रके समान है; इससे वह चाहे देवताओंके कहे हुए मन्त्रोंको जपे वा न जपे, दासोंकी भांति शूद्रोंकी पंक्तिमें भोजन करनेके योग्य होजाता है। महाराज! राजसेवक सब ही शूद्रके समान हैं; इससे उन्हें दैव कर्म्मोंसे रोकना उचित है। हे राजन्! ब्राह्मण मर्य्यादा रहित, अपवित्र, क्रूरवृत्तिवाला हिंसक और निज धर्म्म तथा वृत्तिको त्याग करनेवाला हो, तो उसे हव्य कव्य आदि जो कुछ दिया जाता है, वह सब बिन दिये हुएके समान होजाता है, महाराज! इस ही कारण पितामहने ब्राह्मणोंके निमित्त पवित्रता, विनीतता और आयसोंका विधान किया है। जो धार्म्मिक सुशील, दयालु, सहनशील, ममतारहित, सरल कोमलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान पुरुष यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करके सोमपान करते हैं,

वेही ब्राह्मण हैं, इसके अतिरिक्त पाप कर्म्म करनेवाले ब्राह्मण कहके नहीं गिने जाते। हे महाराज पाण्डुपुत्र! धर्म्मकी इच्छा करनेवाले पुरुष शूद्र, वैश्य अथवा चत्रियोंका आसरा ग्रहण करते हैं, इस ही कारण विष्णु सब वर्णोंकी शान्ति-धर्म्ममें नअसमर्थ समझके उनके मंगलकी इच्छा नहीं करते। इससे स्वर्गलो- कमें सुख आदि प्राप्त होनेकी लालसासे चारों वर्णोंके वेदवाद, सब भांतिके यज्ञ और सब लोगोंकी समस्त क्रिया नष्ट होती है; तथा आश्रमस्थ पुरुष भी निज धर्म्ममें स्थित नहीं रहते। हे पाण्डुनन्दन! जिससे राजा निज राज्यमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंकी यथा उचित आश्रमोंके धर्म्माचरण करानेकी इच्छा करेगा अब उस अवश्य आचर- णीय चातुराश्रम इष्ट समस्त धर्म्मोंको सुनो। हे पृथ्वीनाथ! वेदान्तमें अधिकार रहित परन्तु पराणादिकोंसे आत्मशुभेच्छु जो शूद्रपुत्र उत्पन्न करके शरीरके सामर्थके अनुसार त्रैवर्णिक कार्य्योंका आचरण करके राजाके समीप जाहिर होता है, वैसे योग्य-शास्त्रमें अनधिकारी त्रैवर्णिक समान शूद्रके विषयमें त्यागके अति- रिक्त सब आश्रम ही विहित हुआ है। हे राजेन्द्र! इसी भांति स्वधर्म्माचारी शूद्रके वास्ते भैक्षचर्य्य रूप चौथा आश्रम भी कहा गया है। महाराज! वैश्य और चत्रिय भी इस धर्म्मका आचरण करें। वैश्य लोग परिश्रमके सहित पशुपालन रूप धर्म्मोंका आचरण करते हुए गृहस्थाश्रममें कृतकृत्य होकर राजाकी आज्ञा- नुसार उचित आश्रमका आसरा ग्रहण करें। हे [illegible] मुख्य युधिष्ठिर! चत्रिय लोग [illegible]पूर्वक राजशास्त्र और वेद पढ़के पुत्र [illegible], आर [illegible] [illegible]पूर्वक [illegible], [illegible] और [illegible], [illegible] आदि [illegible] करके [illegible] [illegible]

हे चत्रियर्षभ पाण्डुपुत्र! तिसके अनन्तर प्रजा- पालनमें समर्थ पुत्रको अथवा शास्त्रमें कहे हुए लक्षणसे युक्त अन्य गोत्री चत्रियको निजसिंहा- सन पर बैठाके पितृयज्ञसे पितरों, यज्ञादिकोंसे देवताओं और वेदोंसे ऋषियोंको यत्नपूर्व्वक यथारीतिसे पूजा कर अन्त समयमें आश्रमान्त- रसे गमन करनेकी इच्छा करें। हे राजन्! इसी भांति यथा रीतिसे सब आश्रमोंके धर्म्मा- चरण करनेसे चत्रिय सिद्धिलाभ कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! चत्रिय लोग गृहस्थ धर्म्म त्याग कर अपनेको राजर्षि न समझके केवल मात्र जीवन रक्षाके निमित्त भिक्षावृत्ति अवलम्बन करें; परन्तु भोगकी अभिलाषासे वैसी वृत्ति को अवलम्बन न कर सकेंगे। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! पार्थ लोग कहा करते हैं, कि यह भैक्षचर्य्य धर्म्म चत्रियादिक तीनों वर्णोंकेनिमित्त नित्य नहीं है, वे लोग इच्छा- नुसार इस धर्म्मको ग्रहण करते वा नहीं भी कर सकते हैं। हे राजन्! लोकसमाजमें श्रेष्ठ धर्म्म आचरण करनेवाले चत्रियोंको बाहुबलसे सब प्राणियोंको वशमें करना उचित है; क्यों कि वेदमें ऐसा कहा गया है, कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्म्म तथा उपधर्म्म सब राजधर्म्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। महाराज! जैसे चुद्र जन्तुओंके पावके चिन्ह हाथीके पाव चिह्नमें लीन होजाते हैं, वैसे ही सब भांतिके धर्म्मको भी राजधर्म्ममें लीन समझना चाहिये। धर्म्मजाननेवाले पुरुष अन्य सब कर्म्मोंको अन्य आश्रय और स्वल्प फलदायक कहा करते हैं; क्यों कि साधु लोग महाआश्रय, अनेक भांतिसे [illegible] ही धर्म्म कहते हैं, और इतर धर्म्मोंसे धर्म्म नहीं [illegible] हैं, हे राजन्! सब धर्म्मोंमें राजधर्म्म मुख्य है, राज- धर्म्मसे ही सब [illegible] [illegible] होते हैं और राज- धर्म्म [illegible] भांतिके [illegible] [illegible] है, [illegible] राजधर्म्म ही मुख्य है, [illegible] [illegible]

दानको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। राजाओंके दण्डनीति रहित होनेपर खेवनेवालेसे हीन नौकाकी भांति तीनों डूबते हैं, इससे सब धर्म्म ही नष्ट होजाते हैं। प्राचीन क्षत्रियधर्म्मको त्यागने पर सब आश्रम-धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं। राजधर्म्ममें ही सब भांतिका दान दीख पड़ता है, दीक्षाकी सब रीति राजधर्म्ममें ही कही गई हैं; सब विद्या राजधर्म्मसे युक्त और सब लोग ही राजधर्म्ममें प्रविष्ट हैं। हे महाराज! अधिक क्या कहूं, जैसे मृगोंका समूह नीचोंसे पीड़ित होकर उन मारनेवालोंके सुने तथा देखे हुए धर्म्मनाशका कारण होता है, वैसे ही यज्ञादि समस्त धर्म्म, कर्म्म राजधर्म्ममें नियुक्त होनेपर चोर लोग उन यज्ञादिकोंका नाश करते हैं, इससे लोग यज्ञादिकोंका अनादर करते हुए आत्मरक्षाके वास्ते निज धर्म्मको परित्याग करते हैं।

६२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! लौकिक, वैदिक, चारों आश्रम और यतिधर्म्म राजधर्म्ममें ही स्थित है। हे भरतसत्तम! सब धर्म्म ही क्षात्रधर्म्मके अधीन हैं, इससे क्षात्रधर्म्मके अस्थिर होनेसे सब प्राणी विषरहित सर्पकी भांति नष्ट होते हैं। महाराज! आश्रमवासियोंके धर्म्म अप्रत्यक्ष और बहुद्वार हैं, परन्तु पुण्य वचनोंसे लोक निश्चयवादी और धर्म्मतत्वको न जाननेवाले सब लोग परिणामफलको बिना विचारे ही अन्य धर्म्मसे नष्टबुद्धि होकर विरुद्ध वचनोंसे उनके उस नित्यभावको प्रकाशित किया करते हैं। हे महाराज युधिष्ठिर! जैसे गार्हस्थ्य नामक धर्माश्रममें तीनों वर्णोंके धर्म्मका अन्तर्भाव प्रकट हुआ है, वैसे ही इस राजधर्म्मके बीच नैष्ठिक वानप्रस्थ, यति और आश्रम आदि सब धर्म्म तथा उत्तम चरित युक्त इतर धर्म्मोंके सहित सब प्राणी ही अन्तर्हित हुए हैं। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार शूर वीर राजाओंकी दण्डनीति और आश्रम विशिष्ट सब धर्म्मश्रेष्ठ हैं, इस विषयको दृष्टान्तके सहित मालूम करनेके वास्ते सब प्राणियोंके ईश्वर देवताओंने प्रभु, नारायण विष्णुके निकट गमन करके उनकी उपासनाकी थी; वह उदाहरण मैंने तुमसे पहिले ही कहा है। अब जिस प्रकार साध्य, देवता, वसु, रुद्र, विश्व और मरुत आदि तथा दोनों अश्विनीकुमार आदि देव नारायणसे उत्पन्न होके क्षात्रधर्म्ममें प्रवृत्त हुए थे; उस धर्म्म पूरित अर्थ युक्त इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। सुनो! हे राजेन्द्र! पहिले जब दानव रूपी समुद्र निज मर्य्यादा अतिक्रम करके देवताओंको पीड़ा देनेवाला हुआ था; उस समय पृथ्वी पर मान्धता नाम एक बलवान राजा थे। हे राजशार्दूल! राजाने आदि, मध्य और अन्त हीन देवोंके देव परमेश्वर नारायणके दर्शनकी इच्छासे यज्ञ किया, तब विष्णु इन्द्रका रूप धरके उनके दृष्टि-गोचर हुए। अनन्तर राजा मान्धाताने सभामें स्थित राजाओंके सहित उन प्रभु इन्द्रके चरण पर गिरके उनकी यथारीति पूजाकी। हे युधिष्ठिर। तिसके अनन्तर महात्मा इन्द्रके सङ्ग राजसिंह मान्धाताका महातेजस्वी विष्णुके विषयमें यह महत् सम्वाद हुआ था।

इन्द्र बोले, हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम किस कारणसे उस अप्रमेय, अनन्त मायासे युक्त, अमित मन्त्रवीर्य्य आदिदेव पुरुष पुराण नारायणको देखनेकी इच्छा करते हो? हे राजन्! दूसरेकी बात तो दूर रहे, ब्रह्मा अथवा मैं भी उस विश्वरूप परम देव विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकता; इससे इसके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें दूसरी जो अभिलाष हो, वह सब पूरी करूंगा; क्यों कि

तुम मर्त्य-लोकवासी प्राणियोंके मुख्य महाराज हो। तुम शान्त, धर्म्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय और शूर हो; तुम्हारी बुद्धि, भक्ति तथा महत् श्रद्धासे देवताओंकी परमप्रीति प्राप्त हुई है, इससे मैं तुम्हें अभिलषित वरदान करूंगा।"

मान्धाता बोले, हे भगवन्! मैं निज मस्तकसे आपको प्रसन्न करके निश्चय ही उस आदिदेव विष्णुके दर्शनकी इच्छासे अन्य सब कामना परित्याग करके साधुओंसे अवलम्बित और लोक दृढ़ वनके बीच गमन करनेकी इच्छा करता हूं। मैंने विपुल, अप्रमेय चात्र धर्म्मसे सबको अपने वशमें करके पालन किया; परन्तु आदिदेव विष्णुसे जो धर्म्म प्रवृत्त हुआ है, किस प्रकार उस लोकश्रेष्ठ धर्म्मका आचरण किया जाता है; उसे नहीं जान सका।"

इन्द्र बोले, चत्रिय धर्म्मके बिना सब लोग धर्म्मकी पराकाष्ठाको नहीं प्राप्त होते, क्योंकि पहिले आदिदेव नारायणसे चात्र धर्म्म ही प्रवृत्त हुआ था, और उसके अनन्तर उस हीसे उसके अङ्गरूप इतर धर्म्म सब प्रवृत्त हुए हैं। हे राजन्! अङ्गभूत ये सब धर्म्म अचिरस्थायी हैं, परन्तु परिव्राजक धर्म्मके सहित यह चात्रधर्म्म ही अनन्त और सबसे श्रेष्ठ है। सब धर्म्म ही इस चात्र धर्म्ममें प्रविष्ट हैं, इस ही कारण आर्य्य लोग इसे श्रेष्ठ कहा करते हैं पहिले विष्णुने अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और ऋषियोंके कर्म्मसे प्रसन्न होके चात्र धर्म्म अवलम्बन करके जो उन लोगोंको शत्रुओंके आघातसे बचाया था, यदि वह अप्रमेय भगवान विष्णु देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश न करते, तो ब्राह्मण लोग, ब्रह्मा, लोकधर्म्म [illegible] धर्म्मकी भी रक्षा न होती। देवताओंमें श्रेष्ठ आदि देव विष्णुने पराक्रम प्रकाश करनेके वास्ते असुरोंके सहित [illegible] किया परन्तु उनसे [illegible] रक्षा करता [illegible]

उद्देश्य था। क्यों कि ब्राह्मणोंके नष्ट होनेसे चारों वर्ण अथवा चारों आश्रम आदि कोई धर्म्म ही न रहते। सैकड़ों प्रकारसे नष्ट हुआ वैष्णव धर्म्म चात्र धर्म्मके जरिये फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ हैं; और प्रति युगोंमें प्रवृत्त ब्राह्मण धर्म्म भी चात्र धर्म्मसे रक्षित हुआ है, इस ही कारण आर्य्य लोग चात्रधर्म्म कोही श्रेष्ठ कहा करते हैं। रणभूमिमें शरीर त्यागना, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा प्रकाशित करनी, सब लोगोंकी यथार्थ अवस्थाको मालूम करना, उन लोगोंका पालन तथा रक्षा और दुखित तथा पीड़ित राजाओंका क्लेशोंसे मुक्त करना,— ये सब विषय चात्रधर्म्ममें विद्यमान हैं।

महाराज! राजाके भयसे ही सब लोग मर्य्यादा रहित, काम-क्रोधके वशीभूत और पाप कर्म्ममें प्रवृत्त नहीं होते, इस ही से अन्य सब धर्म्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् राजधर्म्मको ही धन्यवाद दिया करते हैं। सब प्राणी पुत्रकी भांति राजासे पालित होकर निर्भय चित्तसे पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। यह लोकश्रेष्ठ चात्रधर्म्म सब प्रकारसे समस्त धर्म्मोंका साररूप है, और इसके जरियेसे ही मोच-पद प्राप्त होता है।

६४ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे राजन्! तुम्हारे समान प्रजा समूहके हितमें तत्पर राजाओंको इस भांति सब धर्म्मोंसे युक्त और समस्त धर्म्मोंसे श्रेष्ठ चात्र धर्म्मका सब भांतिसे रक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसमें अन्यथा होनेसे प्रजाका अभाव होगा। सब लोगों पर कृपा करनेवाला राजा सब भांतिसे प्रजा पालन, राजसूय आदि यज्ञ और जिस प्रकार मनुष्य [illegible] उत्पन्न हो, उसका अनुष्ठान [illegible] [illegible] रणभूमिमें [illegible]

धर्म्माचरण करे। मुनि लोग दानको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, उसमें शरीर दान ही सबसे श्रेष्ठ है। हे राजन्! जिस भांति राजा लोग सदा राजधर्म्ममें अनुरक्त होकर बहुश्रुत गुरुकी सेवा और आपसमें युद्ध करके रणभूमिमें निज शरीर दान किये हैं, उसे तुमने प्रत्यक्ष मालूम किया है। इसके अतिरिक्त धर्म्मकी इच्छावाले क्षत्रिय केवल मात्र सनातन धर्म्मरूप ब्रह्मचर्य्य नाम आश्रममें विचरें, और साधारणके विचार कार्य्योंमें प्रवृत्त होकर किसीको प्रिय अथवा अप्रिय न समझें। चारों वर्णोंका स्थापन, प्रजा-पालन और पहिले कहा हुआ योग, नियम, पुरुषार्थ तथा सब भांतिके उद्योग विद्यमान रहनेसे ही पण्डित लोग सब धर्म्मोंसे युक्त क्षात्रधर्म्मको ही श्रेष्ठ धर्म्म कहा करते हैं। "जो पुरुष निज आचरणीय धर्म्मको असत्य कहके निज धर्म्माचरण नहीं करते, आर्य्य लोग उन मनुष्योंको सदा अर्थलोपक, मर्य्यादा-हीन और पशु तुल्य कहा करते हैं। हे राजन्! जब कि अर्थयोगसे ही सब नीति मालूम होती हैं, तब सब आश्रमोंसे राजधर्म ही कल्याण-कारी है। तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंके, यज्ञादि और अन्य ब्राह्मणोंके जो सब आश्रम धर्म्म कहे गये हैं, पण्डित लोग इन दोनों कर्म्मोंकोही अवश्य आचरणीय कहते हैं, और इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई कर्म्म करने पर शूद्रकी भांति शस्त्रसे मारने योग्य होते हैं। हे राजन्! ब्राह्मण चारों आश्रमों तथा वेदमें कहे हुए धर्म्मका आचरण करे, परन्तु शूद्रादि वर्ण कभी भी उस धर्म्मका आचरण न करें और अन्य धर्म्ममें प्रवृत्त ब्राह्मणोंके विषयमें भी वैसी बात नहीं कही गई है। महाराज! जो जैसा कर्म्म करता है, उसके अनुरूप ही धर्म्म होता है और वह उस धर्म्मका स्वरूप ही होता है। "ब्राह्मण यदि कुकर्म्ममें रत होके निज कर्त्तव्य कर्म्मोंको न करे, तो वह सम्मान-लाभके योग्य नहीं होता और सबका अविश्वासी होजाता है। हे राजन्! यह धर्म्म सब धर्म्मोंसे युक्त है, इस ही कारण क्षत्रियोंको इस धर्म्मके गौरवका उपाय करना उचित है महाराज! इन सब कारणोंसे मेरे मतमें जैसे वीर धर्म्मके बीच और पुरुष ही मुख्य हैं, वैसे ही सब धर्म्मोंके बीच राजधर्म्म ही मुख्य है।"

मान्धाता बोले, हे भगवान सुरनाथ! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्व्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्र, पौंड, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज लोग तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्पन्न हुए सब इतर जाति, वैश्य और शूद्र लोग राज्यके बीच स्थित होके किस प्रकार धर्म्माचरण करेंगे और मेरे समान मनुष्य किस प्रकार दस्युओंको धर्म्ममें स्थापित करेंगे, मैं यह सब आपके निकटसे सुननेकी इच्छा करता हूं, क्यों कि आप ही मेरे समान क्षत्रियोंके परम बन्धु हैं।"

इन्द्र बोले, सब डाकुओंको माता पिता आचार्य्य गुरु आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करनी उचित है। वेदमें कहे हुए कर्म्म धर्म्म और श्राद्धादि पितृयज्ञ शूद्रका भी कर्त्तव्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है। वे लोग समयके अनुसार सदा ही द्विजोंको कूप, प्रपा शय्या और दूसरी सब वस्तु दान करें। दस्युओंको सब अहिंसा, सत्य, क्षमा, पवित्रता, अद्रोह-वृत्ति विभागका पालन, स्त्री-पुत्रोंका भरण पोषण इन सब धर्म्मोंका आचरण करना उचित है। उन ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले डाकुओंको सब भांतिके यज्ञ करके शास्त्रोंकी कही हुई दक्षिणा और महार्ह-पाकयज्ञमें प्राणियोंको अन्नदान करना उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिलेसे ही दस्युवृत्तिवाले पुरुषोंके विषयमें यही सब धर्म्म कहे गये हैं, और सब लोगोंको ऐसा ही आचरण करना उचित है।

मान्धाता बोले, मनुष्य लोकमें चारों आश्रमों

और वर्णोंके अन्तर्गत वर्त्तमान समस्त दस्यु लोग नष्ट हुआ करते हैं, इसका क्या कारण है?

इन्द्र बोले, हे पापरहित! दण्डनीतिके नष्ट और राजधर्म्मकी अस्थिरता होनेपर सब कोई राजदौरात्म्यदोषसे मोहित होजाते हैं। महाराज! इस सत्ययुगके निवृत्त होनेपर सब आश्रमोंमें विकल्प उपस्थित होगा, और पृथ्वीपर अनगिनत जटा आदि चिन्हधारी भिक्षुक भ्रमण करेंगे। वे लोग काम क्रोधके वशमें होकर प्राचीन धर्म्म की परम गतिमें अवज्ञा प्रकाशित करके असत् मार्गको अवलम्बन करेंगे। परन्तु दण्डनीतिसे पापबुद्धिवालोंके निवृत्त होनेपर वह मङ्गलमय परम नित्यधर्म्म कदापि विचलित नहीं होता, जो सब लोगोंके गुरु राजाकी अवमानना करता है, उसके दान होम वा श्राद्ध आदि कुछ भी फलदायक नहीं होते। महाराज! अधिक क्या कहें देवता लोग भी सनातन देवरूपी मनुष्योंके स्वामी धर्म्मात्मा राजाकी अवमानना नहीं करते भगवान प्रजापति (ब्रह्मा) ने इस अखिल जगत्की सृष्टि की है, परन्तु वह भी इसके प्रवृत्ति और निवृत्तिके वास्ते सब धर्म्मोंके बीच क्षात्र-धर्म्मको ही इच्छा किया करते हैं। जो लोग प्रवृत्त धर्म्म गतिको स्मरण करके उसके अनुसार कार्य्य करते हैं, वह पुरुष ही हमारे मान्य और पूज्य हैं; क्योंकि वैसे धर्मोंसे ही क्षात्रधर्म्म प्रतिष्ठित है।"

भीष्म बोले, इतनी कथा कहके इन्द्ररूप-धारी विष्णु भगवानने देवताओंसे घिरकर निज भवन नित्यपद स्थानके ओर स्वर्ग गमन किया। हे पापरहित! जब कि उत्तम नीतिसे सुप्रतिष्ठित सब धर्म पहिलेसे ही इसी प्रकार होते चले आते हैं, तब कौन बहुश्रुत मनुष्य [illegible] क्षात्रधर्म्मकी अवमानना करेगा? [illegible] प्रवृत्ति और निवृत्ति [illegible] धर्म्म [illegible] मार्गमें [illegible] हैं। हे पाप-रहित पुरुषसिंह! तुम सदा ही उस आदि कालसे प्रवर्त्तित और प्राचीन लोगोंके शरण स्वरूप क्षात्र धर्म्मका आचरण करो; उससे ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।

६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपके कहे हुए वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंके सब धर्म्म मैंने संक्षेप रूपसे सुना, परन्तु उससे मेरा मन विशेष परितृप्त नहीं हुआ; इससे आप विस्तार पूर्व्वक फिर उन सब कर्म्मोंको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! जो सब साधु-सम्मत धर्म्म मुझे विदित है तुम्हें वह सब मालूम हुआ है; परन्तु हे धार्म्मिक श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर! तुम जो मुझसे सिद्धान्त-गर्भित धर्म्मोंका विषय पूछते हो, उसे सुनो! हे मनुष्य श्रेष्ठ कुन्ती पुत्र! इन चारों आश्रमोंके कर्म्मोंके सब भांतिसे लिगही महा श्रेष्ठ राजाओंके आचरित राजधर्म्ममें वर्त्तमान हैं। हे युधिष्ठिर! राजा लोग दण्डनीतिके नियमानुसार प्रजापालन करनेसे काम-क्रोधसे रहित समदर्शी यतियोंकी भांति सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, यथा स्थानमें दान निग्रह और अनुग्रह प्रयोग करते और शास्त्रमें कहे हुए सब कार्य्योंका आचरण किया करते हैं, वह गार्हस्थ्य पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य स्थानको अनन्त मुक्तिसे प्राप्त करते हैं। हे पाण्डुपुत्र! जो यथा रीतिसे प्रजासमूहका पालन किया करते हैं, वह राजा सब भांतिसे सत्यात्माओंके पाने योग्य ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते हैं। [illegible] धर्मके पढ़े हुए जाति, मित्र और [illegible] सम्बन्ध हैं, [illegible] लोगोंको सामर्थ्यके अनुसार [illegible] [illegible] हे पुरुषसिंह [illegible]।

लोकसमाजमें मुख्य धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, नित्य ही बहुतसे पितृयज्ञ भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञोंके करनेवाले; देव-यज्ञोंसे उपस्थित अतिथि और अन्य प्राणियोंके यथावत सत्कार करनेवाले, और धर्म्मात्माओंकी रक्षाके वास्ते शत्रुराज्यको दमन करनेवाले, ये सब ही वाणप्रस्थ पुरुषोंकी भांति मोक्षपद प्राप्त करते हैं, हे राजेन्द्र पृथापुत्र! जो सब प्राणियोंका पालन और निज राज्यकी रक्षा करते है वे राजा प्रजापालनकी संख्याके अनुसार उतनेही यज्ञोंके फललाभ करके सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। सदा वेदाध्ययन, क्षमा, आचार्य्यकी पूजा और गुरुसेवासे भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। धर्म्म-पूर्व्वक नियमित जय और देवपूजामें रत राजा लोग धार्म्मिक पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य पदको पाते हैं। प्राण संशय उपस्थित होनेपर भी जो राजा "विजय लाभ अथवा मृत्यु ही होगी," ऐसा ही निश्चय करके युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो शठतारहित होकर सब जीवोंके विषयमें सरल भाव प्रकाशित करते हैं; उन्हें भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो वाणप्रस्थ और तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धन दान करते हैं, वे वाणप्रस्थ पुत्रोंके पाने योग्य स्थानको प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो राजा सब जीवोंपर दया और अनृशंसता प्रकाशित करता है, वह इच्छानुसार सब प्रकारका स्थान लाभ कर सकता है। हे पार्थ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! वालक और वृद्धोंके विषयमें कुछ निठुर व्यवहार न करनेसे इच्छानुसार स्थान प्राप्त होता है। हे कुरुश्रेष्ठ! दूसरेके वलसे पीड़ित शरणागत जीवोंका परित्राण करनेसे गृहस्थोंके पाने योग्य पद प्राप्त होता है। चराचर जीवोंकी सब भांतिसे रक्षा और यथा उचित पूजासे गार्हस्थ्य पद प्राप्त होता है।

हे पार्थ! जेठे भाईकी स्त्री, भ्राता, पुत्र और पौत्रोंके समयानुसार निग्रह वा अनुग्रहके कार्य्य ही गृहस्थोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे पुरुषसिंह! प्रसिद्धात्मा पूजनीय साधुओंकी पूजा आदि करना ही गृहस्थ कर्म्म है। जो पुरुष विधाताकी वनाई धर्म्मरीतिसे निवास करते हैं वह सब आश्रमोंके प्राप्त होने योग्य मङ्गलमय स्थान प्राप्त करते हैं। आश्रमस्थ प्राणियोंको निज गृहमें आवाहन करके उन्हें भोजन आदि दान करना ही गृहस्थोंके कर्म्म हैं। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जिस पुरुषमें कोई गुण भी नष्ट नहीं होते, आर्य्य लोग उस पुरुषश्रेष्ठको आश्रमस्थ कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! सब आश्रममें ही स्थानमान, कुलमान और अवस्थामानकी रक्षा करते हुए निवास करना उचित है। हे पार्थ! राजा लोग देशधर्म्म और कुलधर्म्मोंको यथा-रीतिसे पालन करनेसे सब आश्रमोंमें प्राप्त होने योग्य फल लाभ करते है। यथा समय पर प्राणियोंको यथायोग्य विभूत और उपाय प्रदान करनेसे साधुओंके आश्रममें निवास करते हैं। हे कौन्तेय! भय उपस्थित होने पर धर्म्माधर्म्म और सेनासे रहित होकर भी जो धर्म्मकी ओर विशेष दृष्टि रखते है, वे सब आश्रमोंसे प्राप्त होने योग्य फल लाभ कर सकते हैं। धर्म्म करनेवाले पुरुष जिसके राज्यमें यथारीतिसे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करते हैं, वह राजा भी उन लोगोंके आचरित धर्म्मका अंशभागी होता है। हे पुरुषसिंह! परन्तु जो राजा धर्म्माराम और धर्म्ममें तत्पर मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते, वे उन लोगोंके किये हुए पापकर्म्मोंके फलभागी होते हैं। हे पापरहित युधिष्ठिर! जो लोग राजाओंकी सहायता करते हैं, वे दूसरेके किये हुए धर्म्मके अंशभागी होते हैं। हे पुरुषसिंह! हम लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं वह प्रकाशमान गृहस्थ धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे पवित्र है। जो

दम्भ रहित और क्रोधहीन होकर सब प्राणियोंको अपने ही प्राण समान समझते हैं, वे इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी सुख लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर ! सत्वरूप मल्लाहसे युक्त, शास्त्ररूपी बन्धन-रस्सीसे पूरित दानरूपी वायुसे चलनेवाले तथा शीघ्रगामी राजधर्म्म रूपी नौका पर चढ़के संसार रूपी समुद्रके पार होते हैं। जब उनके हृदयकी सब वासना विषयोंसे निवृत्त होती हैं, तभी वह सतोगुणी होकर ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। हे पुरुष शार्द्दूल नरनाथ ! प्रजा पालनमें रत रहनेवाले राजा ध्यान और चित्त-निरोधसे प्रसन्न होकर महत धर्म्म लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर। तुम सदा वेदाध्ययनमें तत्पर और सत्कर्म्मोंमें रत रहनेवाले ब्राह्मणोंके पालनमें यत्नवान रहो। वाणप्रस्थ और दूसरे आश्रमवाले जो कुछ धर्मका आचरण करते हैं, राजा लोग प्रजा पालन रूपी धर्म्मसे ही उससे सौगुणा फल लाभ किया करते हैं। हे पाण्डव श्रेष्ठ ! यही सब अनेक भांतिके धर्म्म तुम्हारे समीप कहे गये, तुम इस ही परम्परासे चले आये अनादि धर्म्मका अनुष्ठान करो। हे पुरुषशार्द्दूल पाण्डुपुत्र। तुम सदा एकाग्र चित्तसे प्रजा पालनमें अनुरक्त रहो; ऐसा होनेसे ही चारों आश्रमों और चारों वर्णोंके फलको प्राप्त करोगे।

६६ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्म्म कहे, अब [illegible] मुख्य कार्योंको कहिये।

भीष्म बोले, राज्याभिषेक [illegible] करना ही [illegible] है, क्योंकि [illegible] राजाहीन और बल रहित राज्यको [illegible] किया करते हैं [illegible] राजाहीं एक दूसरे की रक्षाके निमित्त यत्नवान नहीं होते अधिक क्या कहें, आपसमें एक दूसरे की अनिष्टचिन्तामें ही तत्पर रहते हैं; इससे ऐसे राजा रहित राज्यको धिक्कार है। हे युधिष्ठिर ! ऐसा ही सुना जाता है, कि राजाको आवाहन करनेसे इन्द्रका आवाहन समझा जाता है, इससे ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषोंका इन्द्र की भांति राजा की भी पूजा करनी उचित है। मेरे मतमें राजाहीन राज्यमें वास करना उचित नहीं; क्यों कि वैसे राज्यमें अग्निदेव भी देवताओंके निकट हव्य नहीं पहुंचाते। परन्तु पराक्रमहीन अराजक राज्यके बीच राज्य की अभिलाषा करनेवाले दूसरे बलवान राजाके आगमन करने पर उठके उसका सम्मान करना ही उत्तम नीतिका कार्य्य है; क्यों कि पापमय राजाहीन राज्यसे अधिक दोष उत्पन्न होनेवाला और कोई भी कार्य्य नहीं है। उस बलवान राजाके प्रसन्न होनेसे ही सब मङ्गल है, अन्यथा वह कुपित होके सब देशोंको ही नष्ट कर सकता है।

महाराज ! जो गऊ दूध दुहनेके समय विघ्न करती है, उसे बहुत ही क्लेश भोगना पड़ता है; परन्तु जो गऊ सहजमें दूध देती है, उसे कोई भी दुःख नहीं देता, और जो लकड़ी सहज हीमें नत होती है, उसे अग्निमें जलानेकी आवश्यकता नहीं होता। हे वीर ! इन दोनों उपमा पर दृष्टि रखके बलवानके निकट नत होना ही उचित है, क्यों कि बलवानके निकट नत होनेसे इन्द्रके समीप नत होना समझा जाता है। इससे राजरहित प्रजा-समूहको निज कल्याणके वास्ते राजा की रक्षा करनी उचित है, धन या स्त्री आदिकोंके वास्ते नहीं। राजा रहित राज्यमें पापी पुरुष पराये धनको हरके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, परन्तु जब दूसरे पुरुष उनके धनको हरण करते हैं; तब [illegible] राजाके वास्ते इच्छा प्रकाशित

क्यों कि राजाके होनेसे पापाचारी पुरुष किसी भांति कल्याण लाभ नहीं कर सकते। हे युधिष्ठिर! अराजक होनेपर दो पुरुष एकके धनको और कई पुरुष मिलके दो जनोंके धनको हरण करते हैं, दासवृत्तिके अयोग्य पुरुषोंको बल पूर्वक दास बनाते और बलपूर्वक पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं; इस ही कारण देवताओंने प्रजापालक राजाका नियम किया है। अधिक क्या कहें, यदि दण्ड धारण करनेवाले राजा सब लोकोंके सहित पृथ्वी की रक्षा न करते, तो बलवान लोग इस प्रकार निर्बल पुरुषोंको नष्ट करते, जैसे जलमें बड़े शरीरवाली मछली छोटी मछलियोंको भक्षण करती है। मैंने सुना है, जैसे बड़ी मछली जलमें छोटी मछलियोंको खाजाती है, वैसे ही अराजक राज्यकी प्रजा नष्ट हुई थीं; इसी भांति जब आपसमें उन सब लोगोंका कुल नष्ट होने लगा, तब उन लोगोंने परस्पर मिलके शपथपूर्वक यह नियम स्थापित किया था, कि "हम लोगोंके बीच जो कोई निठुर बचन कहनेवाला, कठोर दण्डयुक्त और पराया धन हरनेवाला होगा, वह हम लोगोंसे त्याज्य समझा जायगा।" वे लोग सामान्य रूपसे सब वर्णवालोंके विश्वासके वास्ते आपसमें ऐसी ही प्रतिज्ञा करके विरोधरहित होके निवास करने लगे। तिसके अनन्तर वे सब कोई मिलकर पितामह ब्रह्माके निकट जाके उनसे बोले, हे भगवन्! हम लोगोंमें कोई राजा न रहनेसे हमारा दुःख बढ़ रहा है, और हम सब नष्टप्राय होगये हैं; इससे आप हम लोगोंके वास्ते एक राजा नियुक्त करिये, जो हम सब लोगोंको प्रतिपालन करे और हम सब कोई मिलके जिसकी पूजा करें। तिसके अनन्तर पितामहने मनुको उन लोगोंका राजा होनेके निमित्त आज्ञा दिया, मनुने उनके उस बचनको स्वीकार नहीं किया, मनु बोले, पापपूरित कर्म्म आचरण करते मुझे अत्यन्त भय होता है, विशेष करके मिथ्यायुक्त मनुष्योंके बीच राज्य करना अत्यन्त ही कठिन है।

भीष्म बोले, प्रजा समूहने मनुका ऐसा बचन सुनके उनसे कहा, "आप न डरिये, पापसे आपको कुछ भय नहीं है, जो लोग पाप करेंगे वेही उसके फलको भोग करेंगे। हम लो[ग] आपके कोष वृद्धिके वास्ते अपने प्राप्त हुए प[शु] और सुवर्णके पचासवें भागका एक भाग [और] धान्यके दसवें भागमें एक भाग प्रद[ान] करेंगे, विवाह उपस्थित होनेपर जिस कन्या सबसे अधिक दायगा निरूपित होगा, आप[को] ही वह सुन्दरी कन्या प्रदान करेंगे। दे[वता] जैसे इन्द्रके अनुगामी होते हैं, वैसे ही उ[त्तम] बाहनोंपर चढ़े हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुष आपके पीछे गमन करेंगे। आप इसी भांति बलशाली, प्रतापवान तथा दूसरेसे दुराधर्ष होकर इस प्रकार हम लोगों की रक्षा करिये, जैसे कुवेर यक्षोंको रक्षा करते हैं। प्रजा लोग राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करेंगे आप उसके चतुर्थांश फलभागी होंगे; और उस ही धर्म्मसे बलवान होकर इस प्रकार हम लोगोंको रक्षा करियेगा, जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते है। आप मरीचिमाली सूर्य्यकी भांति शत्रुओंको सन्तापित करते हुए विजयके वास्ते यात्रा करिये और शत्रुओंका अभिमान नष्ट कीजिये; ऐसा होनेसे हम लोग सुख पूर्व्वक धर्म्माचरण कर सकेंगे।" महाराज उससे युक्त महातेजस्वी मनु प्रजापुञ्जसे इसी भांति पूजित होके निज तेज प्रभावसे दशो दिशाको प्रकाशित करते हुए बाहर हुए। उस समय अनगिनत श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष उनका अनुगमन करने लगे। देवता लोग उनके इन्द्रके समान महत्व देखके अत्यन्त ही भयभीत हुए और सबने निज धर्म्ममें चित्त लगाया। तिसके अनन्तर जैसे बादल जलकी वर्षा

धूलिको निवारण करते हैं, वैसेही मनुने सबको पाप कर्म्मोंसे निवृत्त और निज धर्म्ममें प्रवृत्त करके पृथ्वीपर गमन किया। युधिष्ठिर! इसी भांति पृथ्वीपर जो मनुष्य मङ्गल कामना की इच्छा करें, वे प्रजासमूहके अनुग्रहके वास्ते राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझें। जैसे शिष्य गुरुके समीप और देवता लोग इन्द्रके समीप नत हुआ करते हैं; वैसे ही राजाके समीप सदा विनीत भावसे रहा करें; क्यों कि स्वजनोंसे सत्कृत होनेपर शत्रुलोग भी सत्कार किया करते हैं, परन्तु स्वजनोंसे तिरस्कृत होनेपर शत्रु लोग भी अवज्ञा करते हैं। विशेष करके शत्रुओंके निकट राजा की पराभव होनी सबके दुःखोंका मूल है।

तिसके अनन्तर प्रजासमूहने राजा मनुको द्रव्य, सवारी, वाह्य आभूषण, खाने पीनेकी वस्तु गृह, आसन शय्या और दूसरी सब भांति की सामग्री प्रदान की। हे युधिष्ठिर! राजा दुष्टोंके वास्ते प्रबल होवे, और अन्य मनुष्यके प्रश्न करनेपर हंसके मधुर वचनसे उत्तर देवे। उपकार करनेवालेके निकट कृतज्ञ, गुरु जनोंमें दृढभक्त, सबके सङ्ग संविभागी और जितेन्द्रिय होय। दूसरेसे दूषित होनेपर सरलस्वभावसे सुन्दर तथा मनोहर दृष्टि उसकी ओर करे।

६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ पितामह! ब्राह्मण लोग भी किस कारणसे मनुष्योंके प्रभु राजाको ईश्वररूपी कहा करते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत! पहिले वसुमनाने बृहस्पतिसे इस विषयमें जो कुछ पूछा था, पण्डित लोग इस वृत्तान्तके उदाहरणमें उस प्राचीन इतिहासका प्रमाण देते हैं। [illegible] सब भांतिसे शिष्टाचार प्रदक्षिणा तथा विधिपूर्व्वक प्रणाम करके राजाके समस्त कर्त्तव्य विषयोंको पूछा।

वसुमना बोले, हे महाबुद्धिमान! जीव लोग किस प्रकार उन्नत अवस्थाको प्राप्त होते, और किन कार्य्योंसे नष्ट होते हैं; और किसकी उपासनासे अनन्त सुख लाभ करते हैं? महाबुद्धिमान बृहस्पति कल्याण चाहनेवाले वसुमनाके प्रश्नको सुनके आनन्दके सहित राज-संस्कार विषयक सब वचन कहने लगे।

बृहस्पति बोले, हे महाबुद्धिमान! प्रजा जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा ही उसका मूल है; क्यों कि वे लोग राजभयसे ही आपसमें हिंसा नहीं कर सकते। राजा ही धर्म्मपूर्व्वक मर्य्यादा-रहित और पराई स्त्रियों तथा कुकर्म्मोंमें रत अखिल जगत्की प्रसन्नता सिद्ध करते हुए स्वयं प्रसन्नभावसे निवास करता है। महाराज! जैसे सूर्य्य चन्द्रमाके उदय न होनेपर जीव लोग घोर अन्धकारमें फंसते और आपसमें एक दूसरेको नहीं देख सकते; जैसे थोड़े जलसे युक्त तालाबके बीच मछलियें और हिंसा भयसे रहित पक्षी लोग बार बार हिंसा करते हुए विचरते हैं; तथा काल क्रमसे आपसमें किसीके भी वचन न कहके सबका वचन अतिक्रम और सबको पीड़ित करते हुए थोड़े ही समयमें नष्ट होजाते हैं, वैसे ही राजाके न रहनेपर प्रजा भी पालकहीन पशुकी भांति घोर अन्धकारमें पड़के नष्ट होजाती है। यदि राजा रक्षा न करता, तो बलवान पुरुष बलपूर्व्वक निर्बलोंका धन हरलेते, वे लोग अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार परम आग्रह करके भी उनकी रक्षा करनेमें समर्थ न होते। कोई भी 'यह वस्तु मेरी है,'—[illegible]

यदि राजा पालन न करता, तो पापी चोर लोग सबके वस्त्र, आभूषण, सवारी, तथा दूसरे अनेक भांतिके रत्नोंको हर लेते। यदि राजा पालन न करता, तो धर्म्म-चारियोंके ऊपर बहुधा शस्त्र चलते, और सब कोई अधर्म्मका आसरा ग्रहण करते। रक्षा न करनेसे सब कोई वृद्ध माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंको क्लेश देते अथवा उनका नाश करनेमें भी संकुचित न होते। यदि राजा पालन न करता, तो धनवान पुरुषोंको सदा ही वध बन्धन अथवा बहुत ही क्लेश प्राप्त होते; कोई भी किसी वस्तुको अपनी न समझ सकते। राजा रक्षा न करता, तो सब ही असमयमें ही मृत्यु-मुखमें पतित होते; सब लोग ही डाकुओंके वशमें होजाते तथा सब कोई घोर नरकमें पड़ते। यदि राजा रक्षा न करता, तो योनि दोष, कृषि और वाणिज्य कुछ भी न रहते; धर्म्म डूबता और वेदादि लुप्त होजाते। राजाके रक्षा न करनेसे सात प्रकारके दक्षिणायुक्त यज्ञ, विवाह अथवा समाज कुछ भी विधिपूर्व्वक न निर्व्वाहित होते। राजाका शासन न रहता, तो वृषभ भी गौवोंमें वीर्य्य-सिञ्चन न करते; गगरी भी न मथी जाती; इससे अहीर लोग भी नष्ट होजाते। राजा रक्षा न करता, तो सब लोग ही भयभीत और व्याकुल होके हाहाकार करके चेतरहितकी भांति क्षणभरमें नष्ट होजाते। यदि राजा रक्षा न करता, तो कोई भी निर्भयचित्त होकर यथारीतिसे दक्षिणायुक्त सम्वत्सरिक यज्ञोंका अनुष्ठान न करते. राज्य शासन न रहता, तो विद्यास्नात, व्रतचारी, तपस्वी और ब्राह्मण लोग चारोंवेदोंको अध्ययन न करते। यदि राजा पालन न करता, तो जिस पुरुषने ब्रह्महत्यारोंका नाश किया है, वह धर्म्मपूरित कार्य्यकी प्रशंसा प्राप्त न कर सकता, परन्तु ब्रह्मघाती तथा धामकी होकर भ्रमण करता। राजाका शासन न होता, तो चोर लोग स्थित धनको भी हरण करते, पुल टूटते प्रजा भी भयसे विकल होकर चारों भागने लगती। राजा यदि रक्षा न तो चारों ओर अनीति फैल जाती, जातिकी बढ़ती होती और राज्यमें सदा उपस्थित होता। जैसे घरके दरवाजेको करके इच्छानुसार घरके भीतर शयन करते हैं, वैसे ही राजासे रक्षित होकर मनुष्य लोग निर्भयताके सहित सर्व्वत्र भ्रमण किया करते हैं। जब कि बलवानके प्रहार करनेपर भी निर्व्वल लोग सह लेते हैं, तब यदि धर्म्मात्मा राजा सब भांतिसे पृथ्वीकी रक्षा न करते, तो दूसरे पुरुष जो अन्य पुरुषोंके कठोर बचनको सहते इसमें कौनसी विचित्रता है? राजा यदि यथारीतिसे रक्षा करे, तो सब आभूषणोंसे भूषित स्त्रियां भी निर्भयताके सहित राजमार्गोंमें भ्रमण कर सकती हैं। यदि राजा रक्षा करे तो आपसमें सब कोई सबके ऊपर कृपा करते हैं, और एक दूसरेकी हिंसा न करके धर्म्म मार्गसे ही गमन करते हैं। जब राजा प्रजाको यथारीतिसे रक्षा करता है, तब समय ब्राह्मणादिक तीनों वर्ण अलग अलग यज्ञोंको करके देवताओंकी पूजा और चित्त स्थिर करके वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हैं। वार्त्ता-मूल यह जगत् तीनों वेदोंसे ही होता है; परन्तु राजाके उत्तम शासनसे वे सब भली भांति रक्षित होते हैं। जब राजा कठिन भार ग्रहण करके महत् बलके सहारे प्रजाओंकी रक्षा करता है, तब सब कोई प्रसन्न भावसे निवास करते हैं। जिसके स्थित रहनेसे सब ही स्वच्छन्दताके सहित निवास करते हैं और जिसके अभावसे ही सबका अभाव होता है; कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? जो राजाका प्रिय और हितकारी होकर सब लोगोंको भय देनेवाला गुरु भारको उठाता है,

वह दोनों लोकोंकी जय करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष मनमें भी राजाके अनिष्टकी शङ्का करेगा, वह निश्चय ही इस लोकमें क्लेश भोग करके परलोकमें नरकमें पड़ेगा। राजाको मनुष्य समझके कभी भी अवमानना करना उचित नहीं है, क्यों कि वह महत् देवता नररूप धारण करके पृथ्वीपर निवास करता है। जो राजा समयानुसार पञ्चरूपके कार्य्योंको किया करते हैं, वे उस समय अग्नि, सूर्य्य, मृत्यु, वैश्रवण और यम इन पांच भांतिके पदवीको अन्यतम पदवीको प्राप्त करते हैं। जिस समय राजा वञ्चित होकर भी समीपस्थ पापोंको भस्म करता है, उस समय उसकी "पावक" संज्ञा होती है। जब दूतोंके जरिये सबके कार्य्योंका अनुसन्धान करते और प्रजा पुञ्जके मङ्गल जनक कार्य्योंका आचरण करते हैं, उस समय 'भास्कर' कहके माने जाते हैं। जब क्रुद्ध होकर पापी लोगोंको पुत्र पौत्र और सेवकोंके सहित सौ प्रकारसे नाश करते हैं, उस समय उनकी "मृत्यु" संज्ञा होती है। महाराज! जब राजा धनसे उपकारियोंको तृप्त और अपकारियोंके अनेक भांतिके रत्नोंका हरके किसीको श्रीयुक्त और किसीको नष्ट भी करते हैं; उस समय वे "वैश्रवण" नामसे विख्यात होते हैं। जब [illegible] दण्डसे अधर्म्मियोंको निग्रह और धर्म्मा-[illegible]के ऊपर कृपा प्रकाशित करते हैं, उस समय उनकी 'यम' संज्ञा होती है। महाराज! [illegible] राजाका अपवाद होवे, ईश्वरके मनाविरुद्ध [illegible] रहित, धर्म्मको अभिलाषा करनेवाले दक्ष और [illegible] कर्म्मवाले मनुष्यको [illegible] कार्य करना उचित नहीं है, क्यों कि राजाका प्रति-[illegible] [illegible] कभी भी सुख नहीं मिल [illegible] [illegible] राजाका अपवाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

करे, उसका किसी प्रकार नाश नहीं हो सकता, इससे राजाकी रक्षित वस्तुओंको दूरसे ही त्यागना उचित है। जैसे मृत्युसे अपनी रक्षा की जाती है, वैसेही राजस्व हरण होने पर भी आत्मरक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसे स्पर्श करनेसे ही जैसे यन्त्र स्पर्शसे मृग नष्ट होते हैं, वैसे ही पुरुषोंका नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्यको उचित है, अपने समान राजा की भी रक्षा करे। जो राजधन हरता है, वह सदाके वास्ते अचेतन, अप्रतिष्ठित, भयङ्कर और महत् नरकमें पतित होता है। महाराज! जिस की राजा, भोज, विराट्, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति और नृपति आदि शब्दोंसे स्तुति की जाती है, कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? इन्हीं सब कारणोंसे ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला, जितात्मा जितेन्द्रिय, मेधावी, स्मृतिमान और दक्ष पुरुष राजाका आसरा ग्रहण करें। राजा भी कृतज्ञ, बुद्धिमान, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए दृढ़भक्तिवाले, जितेन्द्रिय, धर्म्मनिष्ठ और नीतिज्ञ मन्त्रीका सत्कार करे। दृढ़भक्तियुक्त, बुद्धिमान, धर्म्म जाननेवाले, जितेन्द्रिय, और शूर, बड़े कार्य्योंके करनेवाले और जो कहा करते हैं मैं अकेले ही इस कर्म्मको सिद्ध करूंगा, दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही लोगोंका आसरा ग्रहण करे। बुद्धि मनुष्यको प्रगल्भ करती है, परन्तु राजा सब भांतिसे सब लोगोंको प्रशंसा लाभ नहीं करने देता। राजा जिसे आक्रमण करे, उसे सुख कहां? परन्तु उसके अनुगत रहनेसे सब भांतिसे सुख मिलता है। हे नरेन्द्र! राजा ही प्रजासमूहके मानसिक उत्साह, सुगति, प्रतिष्ठा और परम सुख लाभका कारण है। [illegible] आसरा ग्रहण करते हैं, वे [illegible] और अनेक [illegible] [illegible] होते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

शासन करते हुए महत् यज्ञ करके अमर तथा नित्य पद प्राप्त करते हैं। राजसत्तम कौशल्य बसुमना बृहस्पतिके ऐसे बचन सुनके यत्नपूर्व्वक प्रजापालन करने लगे।

६८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! राजाके कर्त्तव्य कर्म्मके बीच और क्या शेष है? और वह दूत, सेवक, स्त्री, पुत्र तथा इतरवर्णके लोगोमेंसे किसका किस भांति विश्वास करे तथा किसे किस भांतिके कार्य्योंमें नियुक्त करे; आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, महाराज! राजाको दूसरे जो सब कार्य्य करने उचित हैं, तुम एकाग्रचित्तसे उस समस्त राजनीतिको सुनो। राजा पहिले अपने चित्तको जीतकर तब शत्रुओंके जीतने की इच्छा करे? जिसने श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियो और अपने चित्तको वशमें किया है, वैसा जितेन्द्रिय राजा ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ होता है। हे पुरुषसिंह कुरुनन्दन! राजाको उचित है, "किला, राज्य-सीमाका वर्ग भाग, नगर, उपवन, अन्तःपुरके बगीचे, चतुष्पथ, पुर, अन्तःपुर और सब स्थानोंमें पैदल सेना स्थापित करे। जड़, अन्धे और बधिर रूपवाले, भूखप्यास आदि क्लेशोंको सहनेवाले, बुद्धिमान और परीक्षामें निपुण पुरुषोंको दूत-रूपसे नियुक्त करे। गुप्त चरोंको नियुक्त करके सब भांतिके सेवकों अनेक प्रकारके मित्रो और पुत्रोंके कार्य्योंको परीक्षा करे। पुरजनपद और सामन्त राजाओंके समीप इस प्रकार गुप्त चरोंको नियत करे कि वे लोग आपसमे एक दूसरेको न जान सकें। हे भरतर्षभ! राजा अपने मल्लक्रीड़ा स्थान, समाज, भिक्षुक, पुष्पवाटिका, बाहिरी बगीचे, पण्डितोंकी सभा स्थान, अधिकारियोंके निवास स्थान, राजसभा और प्रधान पुरुषोंके गृह इन सब स्थानोंमें अनुसन्धान करनेसे ही शत्रुओंके भेजे हुए दूतोंको जान सकते है। हे पाण्डुपुत्र! बुद्धिमान राजा इसी भांति शत्रु-प्रेरित दूतोंको मालूम करे; क्यों कि पहिले दूतोंको मालूम करनेसे मङ्गल होता है। जब राजा स्वयं अपनेको बलहीन समझे, तब सेवकोंके सङ्ग विचार करके बलवानके साथ सन्धि करे. यदि शत्रु अपनी हीनता न समझे, तौभी बुद्धिमान राजा थोड़े स्वार्थ लाभकी आशा रहनेपर भी शत्रुके साथ शीघ्र सन्धि करे जो लोग गुणवान, महा उत्साहयुक्त धर्म्म जानने वाले और साधु हैं, राजा वैसे पुरुषोंके सङ्ग सन्धि करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन करे। बुद्धिमान राजा अपनेको उच्छिद्यमान समझके लोकद्वेषी पूर्व अपकारी लोगोंका नाश करे। जो राजा किसी भांति उपकार और अपकार करनेमें समर्थ न हो तथा अपना भी उद्धार करनेमें असमर्थ हो, उसके विषयमें उपेक्षा प्रकाशित कर सकते हैं। युद्धके वास्ते प्रस्थान करनेकी इच्छा होने पर पहिले नगर रक्षाका उपाय, यात्राकालकी सब वस्तुओंका संग्रह करके कल्याणजनक बचनोंसे अभिनन्दित और महत् बलसे युक्त होकर स्वच्छन्दताके सहित मूर्ख बिचारहीन, बन्धुओंसे रहित दूसरेके साथ युद्धमें आसक्त असावधान और निर्ब्बल राजाको ओर चढ़ाई करे। यदि वह राजाबल और पराक्रमहीन होनेपर भी निज सामर्थ्य प्रकाशित करनेकी इच्छासे स्वयं वशमें न होवे, तो उसके राज्यमें निवास करके उसे सब भांतिसे पीड़ित करे। शस्त्र अग्नि और विष आदिसे प्रजासमूहको मोहित करके उसके राज्यको पीड़ित करे, अपने सेवकोंके जरिये उसके मित्रों तथा सेवकोंमें भेद करा देवे। बृहस्पतिने कहा है, कि बुद्धिमान राजा राज्यको अभिलाषासे युद्धमें बिना प्रवृत्त हुए ही सन्धि आदि तीनों उपायसे अर्थ संग्रह

करे। पण्डित राजा साम, दाम और भेद इन तीनों उपायसे जो कुछ धन प्राप्त कर सके, उसीमें सन्तुष्ट होवे।

हे कुरुनन्दन! प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते उनकी प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे छठवा अंश कर लेवे पुरवासियोंकी रक्षाके वास्ते मतवाले, उन्मत्त आदि दश धर्म्मगत लोगोंको दण्ड देकर उनसे बहुत वा थोड़ा ही हो, धन ग्रहण करे, क्योंकि उन लोगोंको दण्ड न देनेसे वे सब पुरवासियोंको क्लेश देते हैं। पुरवासियोंको पुत्र समान पालन करे, परन्तु विचार कार्य्यमें प्रवृत्त होकर स्वजन समझके उनके ऊपर स्नेह न करे। राजा वादी प्रतिवादियोंके वचनका विचार-कार्य्य सुननेके वास्ते सदा सब अर्थोंके जाननेवाले पण्डितोंको नियुक्त करे, क्यों कि उनसे ही राज्य प्रतिष्ठित होता है। राजाको उचित है, सुवर्ण आदिकोंकी खान, लवण उत्पत्तिके स्थान धान्य आदि बिकनेके स्थान, नदी और हाथियोंके विचारके वास्ते निज हितकारी आत्मीय पुरुषको नियुक्त करे, सदा यथा रीतिसे दण्ड धारण करनेवाले राजा धर्म्मजनित फल प्राप्त करते हैं; क्यों कि समयके अनुसार दण्ड-विधान ही राजाओंका परम धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। हे भारत! राजाओंको वेद वेदाङ्ग आदि सब विद्याओंको कोशिशकर पढ़ना और बुद्धिमान, तपस्यामें रत, सदा दानशील तथा यज्ञशील होना उचित है, क्यों कि व्यवहार युक्त होनेसे उसे स्वर्गलाभ हो सकता और यश प्राप्त होता है, दूसरे बलवान राजासे पीड़ित होनेपर बुद्धिमान राजा किलेके भीतर आश्रय ग्रहण करे, और समयके अनुसार मित्रोंका आवाहन करके उनसे [illegible] साम, भेद, वा विग्रह [illegible]

और कठिनतासे जानने-योग्य स्थान हैं; युद्ध उपस्थित होनेपर धनशाली और बलवान पुरुषोंको मीठे वचनसे धीरज देके उन्हीं स्थानोंमें भेजे। राजा स्वयं उपस्थित होके निज राज्यके शस्योंको पृथक् करके मार्ग बनावे, और उसमें यदि प्रवेश न कर सके, तो चारों ओरसे आग लगाके वह सब भस्म कर देवे। शत्रुके मित्रोंमें भेद कराके अथवा निज बलसे ही शत्रुके क्षेत्र-स्थित शस्योंको नष्ट करे। नदी पथमें स्थित बांधोंको तोड़ देवे; दीर्घिकार जल सब बाहर कर देवे और जिस जलको बाहर करनेको उपाय न होवे, वैसे जलको विषादिकोंसे दूषित कर देवे। विशेष मित्रकार्य्य उपस्थित होनेपर भी उसे परित्याग कर वर्त्तमान और भविष्यकार्य्योंकी चिन्ता करते हुए रणभूमिमें शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ शत्रुके शत्रुओंके साथ मित्रता करके उनकी सेनासे ही शत्रुको निज देशसे दूर करे। जिससे शत्रु लोग आश्रय ले सकें, वैसे छोटे छोटे किलोंको तोड़ देवे चैत्यवृक्षके अतिरिक्त अन्य सब क्षुद्र वृक्षोंको जड़ काट दे; परन्तु चैत्यवृक्षका पत्ता पर्य्यन्त भी न तोड़े, किलेकी दीवार, शूरवीरोंके निवासस्थान सब तैयार करे, वायुका निकास, किलेसे बाहरी शत्रुओंको देखना और उनके ऊपर अग्नेयास्त्र और गोली चलानेके वास्ते किलेकी दिवारोंमें छोटे छोटे छेदोंको तैयार करावे। किलेकी खांई घड़ियाल और बड़े शरीरवाली मछलियोंसे परिपूरित करे। नगरके बाहर जानेके वास्ते छोटे द्वार बनाके अन्य दरवाजोंकी भांति उनकी भी रक्षाका उपाय करे। सब दरवाजों पर [illegible]

हुए गृहोंमें गीली मट्टी लेपन करावे और अन्य स्थानोंके अरक्षित तृणोंको उठवा लावे। उस समय राजा रात्रिमें ही भक्ष्य आदि वस्तुओंको पाक करावे और अग्निहोत्रके अतिरिक्त दूसरे किसी कार्य्यमें भी दिनके समय अग्नि न जलने देवे। लुहसार और सूतिका गृहको भली भांति रक्षित करके अग्नि प्रज्वलित करावे और उस अग्निको गृहके भीतर प्रविष्ट करके पत्ते आदिकोंसे छिपा रखे। पुरीकी रक्षा करनेके वास्ते जो दिनमें अग्नि जलावेगा, उसे प्राण दण्ड होगा" ऐसा ही ढिंढोड़ा दिला देवे। हे नरश्रेष्ठ! उस ही समय भिक्षुक, शकटवाले, क्लीव, उन्मत्त और कुशील पुरुषोंको राज्यसे बाहर करे; क्यों कि उस समय उन लोगोंके राज्यमें रहनेसे अनेक दोष उपस्थित होता है। चौराहे, मन्त्रादि अठारह भांतिके तीर्थ सभा और साधारण पुरुषोंके गृहोंके निमित्त उचित रीतिसे प्रहरी नियुक्त करे। राजाको उचित है, बहुत बड़ा राजमार्ग तैय्यार करावे, और जलका स्थान तथा बेचने खरीदनेकी जगह निर्दिष्ट कर दे। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! भण्डार, शस्त्रागार, योधागार, घुड़शाल, गजशाला, सेनाका निवास स्थान, परिखा, भीतरी मार्ग और अन्तःपुरके बगीचे सब इस प्रकार गोपनीय स्थानमें तैय्यार करावे, कि दूसरा कोई किसी प्रकार भी देख न सके। पराये बलसे पीड़ित राजा तेल, चर्बी, मधु, घृत, अनेक भांतिकी औषधी और धन आदि सञ्चय करे। अङ्गार, कुश, मूञ, पत्र, शर, लेखक, घास, काठ और विषमें बुझे हुए बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि अस्त्र और वर्म आदि आवश्यकीय वस्तुओंको संग्रह कर रखे। सब भांतिकी औषधी, मूल, फल और विष, शस्त्र, रोग और कृत्या इन चार भांतिके उत्पातोंको शान्त करनेवाले, चार भांतिके वैद्योंका संग्रह करे। नट, नाचनेवाले, मल्ल और मायावियोंसे राजनगरीको शोभित और दूसरे सब पुरुषोंको आनन्दित कर रखे। सेवक, मन्त्री और पुरबासियोंमेंसे जिससे शङ्का हो, उसे अपने बशमें कर रखे। हे राजेन्द्र! यदि राजा क्रोधके बशमें होकर अकारण ही दूसरेकी अवमानना वा ताड़ना करे, तो शास्त्रमें कहे हुए यथा उचित बहुत सा धन-दान और अनेक भांतिके शान्त बचनसे उसका सम्मान करनेसे उससे अऋणी होगा। जो सात विषय राजाको अवश्य रक्षा करनेके योग्य हैं, उसे सुनो;—हे कुरुनन्दन! राजाको उचित है, कि आत्मा, सेवक, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर इस सप्तात्मक राज्य सब भांति यत्नपूर्वक प्रतिपालन करे।

हे पुरुषसिंह! जिन राजाओंने षाड्गुण्य त्रिबर्ग और परम त्रिबर्ग मालूम किये हैं, वेही इस पृथ्वीको भोग करनेमें समर्थ होते हैं। हे युधिष्ठिर! मैंने जो षाड्गुण्यकी कथा कही, उसे सुनो,—शत्रुके साथ सन्धि करके निःशङ्क चित्तसे निवास; शत्रुके ऊपर चढ़ाई, शत्रुको भय दिखानेके वास्ते यात्राका छल दिखाके निवास करना, द्वैधो भाव और अन्य किला तथा दूसरे प्रबल राजाका आसरा ग्रहण करना, येही छः राजाके षाड्गुण्य कहाते हैं। त्रिबर्गकी कथा जो मैंने कही है, उसे भी एकाग्रचित्तसे सुनो;—क्षय, स्थान और बृद्धि येही त्रिबर्ग हैं, धर्म्म, अर्थ और काम ये परम त्रिबर्ग है; समयके अनुसार इनका आचरण करना उचित है। इसी भांति राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा पृथ्वी पालन किया करते हैं। हे यादवीनन्दन! तुम्हारा मङ्गल हो, इस ही अर्थमें बृहस्पतिने जो दो श्लोक कहे थे, उन दोनोंको तुम्हें सुनना उचित है। "पृथ्वी और पुरवासियोंको यथारीतिसे पालन और दूसरे सब भांतिके कार्य्य करके राजा लोग परकालमें सुख प्राप्त करते हैं। जो प्रजापुञ्जको यथार्थ रीतिसे

पालन करते हैं, वैसे राजाको तपस्यासे क्या फल है? और उन्हें यज्ञकी ही क्या आवश्य-कता है? क्यों कि वे स्वयं सब धर्म्मोंके जान-नेवाले हैं।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! दण्डनीति और समस्त राजा तथा सब ही इस उभय प्रकारसे व्यस्त हुआ करते हैं, तिसमेंसे किसे किस भांतिके कार्य्योंसे कैसी सिद्धि प्राप्त होती है, आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे भरत नन्दन महाराज! दण्डनीतिसे जो राजा और प्रजाका महा-सौभाग्य होता है; मैं युक्तियुक्त सिद्ध वाक्यसे वह सब वर्णन करता हूं, सुनो। राजाके यथा उचितसे चलानेपर दण्डनीति चारों वर्णकी प्रजाको अधर्म्मसे निवृत्त करके स्वधर्म्ममें स्थापित करती है। चारों वर्णकी प्रजा स्वधर्म्ममें रत, सब मर्य्यादासे युक्त और दण्डनीति कृत मगलके जरिये निर्भय होकर ब्राह्मण आदि तीनो वर्णोंके वास्ते सामर्थ्यके अनुसार यत्न-वान होती है, और उससे ही मनुष्योंको परम सुख प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर! काल ही राजाका कारण है, अथवा राजा ही कालका कारण है, तुम्हें जिसमें ऐसी शङ्का न उपस्थित होवे और इसे ही निश्चय जान रखो, कि राजा ही मानो कालका कारण है। जब राजा पूरी रीतिसे दण्डनीति प्रयोग करता है, तभी काल-प्रभावसे सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ करता है, तिसके अनन्तर उस सत युगमें केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है; अधर्म्म दण्डधारणसे लुप्त होजाता [illegible] प्रजाका मन अधर्म्ममें रत नहीं होता; प्रजा संशयरहित होकर योगक्षेम [illegible] करता है और इन लोगोंसे सब [illegible] उत्पन्न होते हैं, [illegible] ऋतु [illegible] सुखदायक होता है, मनुष्योंका [illegible] और [illegible] रहता है, कोई [illegible]

अल्पायु नहीं दीख पड़ती। युधिष्ठिर! इस सत-युगमें कोई स्त्री विधवा तथा कोई कृपण नहीं होते बिना जोते ही पृथ्वीमें औषध और सब भांतिके अन्न उत्पन्न होते रहते हैं; छाल, पत्ते, फल और मूल दृढ़ होते हैं। उस कृत युगमें अधर्म्म लुप्त होजाता है और केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है, हे युधिष्ठिर! येही सब सतयुगके धर्म्म समझ रखो।

जब राजा पूर्ण रीतिसे प्रवृत्त न होकर दण्डनीतिके चौथे अंशको परित्याग करके उसके तीन भागके ही अनुयायी होता है, तब ही त्रेतायुग प्रवर्त्तित होता है। उस त्रेता-युगमें तीन हिस्से धर्म्म और एक भाग अधर्म्म प्रचलित होता है, जोतनेसे पृथ्वीमें अन्न और औषध उत्पन्न होती हैं।

जब राजा दण्डनीतिका आधा भाग परि-त्यागके आधे भागके ही अनुवर्त्ती होके कार्य्य करता है, तब द्वापर नाम युग उत्पन्न होता है। उस समय लोग दो हिस्से अधर्म्म और दो भाग धर्म्मके अनुयायी होते हैं; पृथ्वी जोत-नेपर भी आधा ही फल देती है।

जब राजा दण्डनीतिको त्यागके केवल मात्र असत् उपायसे ही प्रजा समूहको पीड़ित किया करता है, तभी कलियुग प्रवर्त्तित होता है, कलियुगमें कहीं भी धर्म्म नहीं दीख पड़ता, सब ही अधर्म्मसे परिपूरित और सब वर्ण ही निज कर्म्मोंसे विचलित हुआ करते हैं, शूद्र लोग भिक्षा वृत्ति और ब्राह्मण लोग दूसरेकी सेवासे जीविका निर्व्वाह करते हैं; योग [illegible] पुरुष नष्ट होते और वर्णसङ्करोंकी वृद्धि होती है। वैदिक कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे उनमें [illegible] न होकर उलटा विगुण ही हुआ करता है, कोई ऋतु भी सुखदायक नहीं [illegible] सब ऋतुओंमें ही प्रजा [illegible] [illegible] मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मन [illegible] [illegible] और [illegible]

तथा अल्पायु होकर अकालमें ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! कलियुगमें स्त्रियें विधवा और प्रजा नृशंस हुआ करती हैं; बादल सब स्थानोंमें जलकी वर्षा नहीं करते; अन्न आदिक भी कभी कभी उत्पन्न होते हैं। जब राजा दण्डनीतिमें स्थित न होकर प्रजाके रक्षाकी इच्छा नहीं करता, उस समय सब रसोंका भी नाश होजाता है। राजा ही सत-युग, त्रेता, द्वापर और चौथे कलियुग,—इन चारों युगोंके परिवर्त्तनका कारण है। राजा सतयुगके आचरित हुए सब कार्य्योंसे अनन्त; त्रेतायुगके आचरणसे कुछ न्यून और द्वापर युगके आचरित धर्म्म और अधर्म्मकी संख्याके अनुसार अधिक वा अल्प स्वर्ग-सुख लाभ करता है। परन्तु कलियुगके आचरित कार्य्योंसे केवल पापयुक्त कष्ट ही भोग किया करता है। तिसके अनन्तर प्रजा समूहके आचरित पाप-पङ्कमें डूबके वह पापी नीचकर्म्म करनेवाला राजा अनेक वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास करता है।

युधिष्ठिर! क्षत्रिय निखिल दण्डनीतिसे तत्पर तथा उसे ही सम्मुखवर्त्तिनी करके सदा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिके वास्ते यत्न और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षाका उपाय करे। लोगोंको यथा उचित व्यवस्थापित करनेवाली मर्य्यादा और लोकभाविनी यह दण्डनीति पूर्ण रीतिसे चलाई जाने पर इस प्रकार सब लोगोंकी रक्षा करती है, जैसे माता पिता बालककी रक्षा करते हैं। हे नरनाथ! राजाका दण्डनीति विशारद होना ही राज्यका परम धर्म्म है; क्यों कि यह निश्चय जान रखो, कि दण्डनीतिसे ही सब लोग भली भांति स्थापित हुए हैं। हे कुरु-नन्दन! मैं इस ही कारण कहता हूं, कि तुम नीति निपुण होके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करो; क्यों कि इसी भांति प्रजाकी रक्षा करनेसे दुर्ज्जय स्वर्गको भी जीतनेमें समर्थ होगे।

६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे वृत्तज्ञ! राजा कैसे कार्य्योंसे इस लोक और मृत्युके अनन्तर पर-लोकमें भविष्यत सुखदायक सब अर्थोंको अना-यास ही प्राप्त कर सकते हैं?

भीष्म बोले, गुणवान मनुष्य जो सब धर्म्मका आचरण करके कल्याण प्राप्त किया करते हैं; अकटुक आदि छत्तीस गुणोंसे युक्त वह धर्म्म छत्तीस प्रकारका है। राग द्वेषसे रहित होके धर्म्म कार्य्योंका आचरण, लोभके वशमें न होकर परलोककी ओर दृष्टि रखके स्नेह प्रकाशित करना; किसी भांतिका निठुर आच-रण करके धन उपार्ज्जन न करना, और जिसमें धर्म्म तथा अर्थ नष्ट न होवे, उस ही भांति यथा उचित इन्द्रियोंकी प्रीतिको साधन करना उचित है। दीनता रहित होके प्रिय वचन कहे, शूर होके भी अपनी बड़ाई न करे, प्रगल्भ होकर भी दयावान होवे और दाता होके भी अपात्रको दान न देवे। अनार्य्योंके साथ सन्धि, बन्धुजनोंके सङ्ग विग्रह, भक्तिहीन पुरुषको दूत कार्य्योंमें नियत और दूसरेको पीड़ित न करके कार्य्य करना उचित है। झूठेके निकट प्रयोजन कहना, अपने मुखसे निजगुण वर्णन करना, साधुओंके निकटसे धन हरण करना कर्त्तव्य नहीं है। विना परीक्षा किये ही सहसा दण्ड प्रयोग, दूसरेके निकट विचार प्रकाश, लोभियोंको धन दान और अप-कारियोंका विश्वास करना उचित नहीं है। राजा सदा ईर्षारहित, गुप्तदार, शुद्ध और घृणा रहित होवे, जिससे हानि हो, तैसे अन्नको त्यागके शुद्ध अन्न भोजन करे और दूरवासी स्त्रियोंमें आसक्त न होवे। शान्तभावसे माननीय पुरुषोंका आदर, माया रहित होकर गुरुज-नोंकी सेवा, दम्भ रहित होकर देवताओंकी पूजा करे और जिस धनको लेना निषेध नहीं है उसे ही ग्रहण करे। प्रणय परित्याग करके सेवा करे और दक्ष होकर समयकी प्रतीक्षा

करे। धन देके सन्धि करना और आश्रयदान करके परित्याग करना उचित नहीं है। विशेष रीतिसे बिना मालूम किये प्रहार, शत्रुको नाश करके शोक, अकस्मात् क्रोध और अपकारियोंके निकट कोमलता प्रकाश करनी उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! यदि तुम कल्याण प्राप्तिकी इच्छा करते हो, तो राज्य करते हुए ऐसा ही आचरण करना; क्योंकि इसके विपरीत आचरणसे राजाओंका मङ्गल नहीं हो सकता। जो यथार्थ रीतिसे इन सब गुणोंके अनुसार कार्य्य करते हैं, उनका इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी मङ्गल होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र भीमादिकोंसे रक्षित बुद्धिमान महाराज युधिष्ठिर शान्तनु-नन्दन भीष्मके ऐसे वचन सुनके उस समय उन पितामहकी वन्दना करके उसही भांति आचरण करने लगे।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार प्रजापालन करने पर अधिकरूपी बन्धनोंमें नहीं फंसते और व्यवहार निर्णय आदि कार्य्योंमें भी अन्यथा नहीं होता; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं यह सम्पूर्ण नित्य धर्म संक्षेप रूपसे तुम्हारे निकट वर्णन करूंगा, क्योंकि यह समस्त धर्म विस्तारके सहित वर्णित होने पर कदापि शेष न होगा। [illegible] धर्मनिष्ठ, बुद्धिमान, [illegible] वेदपाठमें रत [illegible]

कार्य्योंमें नियुक्त करके उनसे अर्थ सिद्धि-सूचक जय आशीर्वाद पाठ करावे। हे भारत! राजा काम क्रोध त्यागके सदा निजबुद्धिसे धीर और सरल भाव अवलम्बन करके यथार्थ प्राप्त वस्तुओंको ग्रहण करे। जो मूढ़ राजा काम क्रोधके वशमें होकर धन संग्रह करते हैं, वे धन वा धर्म्म कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते। लोभी और मूर्खोंको लोभ युक्त धन सम्बन्धीय कार्य्योंमें नियुक्त न करके लोभरहित बुद्धिमान पुरुषोंको वैसे कार्य्योंमें नियत करना उचित है, क्योंकि कार्य्याकार्य्य विवेकसे रहित मूर्ख पुरुष धनाधिकारी होनेपर काम क्रोधके वशमें होकर प्रजासमूहको पीड़ित किया करता है। राजाको उचित है, कि गिनतीमें अधिक न हो, उस ही भांति उत्पन्न वस्तुओंमेंसे छठवां भाग बलि, शास्त्रके अनुसार अपराधियोंको दण्ड और मार्गमें वणियोंकी रक्षा करके जो वेतन प्राप्त होवे, उसीसे धन सञ्चय करे। राजा इसी भांति धान्य आदि वस्तुओंमें छठवां भाग कर ग्रहण करके राज्यकी रक्षा करे, परन्तु यदि उन लोगोंके वार्षिक अहारके योग्य अन्न आदि न बचे, तो उन लोगोंके अहारके निमित्त उचित उपाय कर देवे। राजा यदि रक्षा करनेवाला, दाता, सदा धर्म्ममें रत, आलस्यरहित और काम क्रोधसे हीन हो, तो मनुष्य लोग उससे अनुरक्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम कभी भी लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरणसे धन उपार्जन न करना, क्योंकि जो शास्त्रके अनुकूल कार्य्य नहीं करते; उनका धर्म्म अर्थ सब [illegible] होजाता है। राजा केवल अर्थ [illegible]

वाला पुरुष गऊका स्तन काटनेसे दूध नहीं प्राप्त कर सकता, वैसे ही असत् उपाय अवलम्बन करके राज्यको पीड़ित करनेसे उसको कदापि बढ़ती नहीं होती। जैसे जो पुरुष सदा दूध देनेवाली गऊकी सेवा करता है, वही दूध पाता है, वैसे ही राजा भी उपाय आदिकोंसे राज्य पालन करनेसे ही सुख लाभ कर सकता है। जैसे माता बालककी स्तन दान करके दूध पिलाती है, वैसे ही पृथ्वी राजासे भली भांति रक्षित होनेपर दूध देनेवालीकी भांति अन्न तथा सुवर्ण आदि वस्तु प्रदान किया करती है, महाराज! तुम वृक्षकी जड़ काटनेवालेकी भांति न होकर पुष्प सञ्चय करनेवाले मालीकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यकी रक्षा करना ऐसा होनेसे बहुत दिनोंतक पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ होगे। पर चक्रसे यद्यपि तुम्हारा धन क्षय हो, तो सामरूप उपाय अवलम्बन करके अब्राह्मणोंका धन ग्रहण करना। हे युधिष्ठिर! उन्नत अवस्थाकी तो कुछ बात ही नहीं है, अवनतिकी दशा उपस्थित होनेपर भी जिसमें ब्राह्मणोंको धनवान देखके तुम्हारा मन विचलित न होवे; तुम सदा उन ब्राह्मणोंको रक्षा करना और निज शक्तिके अनुसार यथायोग्य धन दान करके उन लोगोंको सन्तुष्ट करना, ऐसा होनेसे दुर्ज्जय स्वर्ग लाभ कर सकोगे। हे कुरुनन्दन! तुम इसी भांति धर्म्मवृत्ति अवलम्बन करके प्रजा-पालन करनेसे परिणाममें शुभजनक पुण्य और नित्य यश प्राप्त करोगे। हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम धर्म और व्यवहारके अनुसार यथा नियमसे प्रजा पालन करो, ऐसा होनेसे कभी भी आधि-रूपी बन्धनमें नहीं फंसोगे। जब कि चराचर जीवोंकी रक्षा करना ही परम धर्म और परम दया कहके वर्णित हुआ है; तब राजा प्रजा समूहको रक्षा करे, यही उसका सबसे श्रेष्ठधर्म्म है। राजा जो राज्यरक्षामें नियुक्त होकर जीवोंके ऊपर दया प्रकाशित करता है, धर्म्म पण्डित लोग उसे ही उसका परम धर्म्म कहते हैं। राजा यदि एक दिन भी कारण प्रजाके रक्षाकी उपाय न करके जो राज्य करता है, सहस्र वर्षके अनन्तर मुक्त होता है, परन्तु प्रजासमूहको एकदिन मात्र रक्षा करनेसे दश हजार पर्य्यन्त स्वर्गमें उसका फल भोग करते रहते योगी लोग पर्य्याय क्रमसे गृहस्थ, बाणप्रस्थ ब्रह्मचारियोंके धर्म्म आचरण करके लोकोंको जय करते हैं, राजा क्षण मात्र पूर्व्वक प्रजा-पालन करनेसे ही उन पाते हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम इस ही यत्नपूर्व्वक धर्म्मको पालन करो, ऐसा तुम उस ही पुण्यफलसे कभी भी बन्धनमें नहीं बंधोगे; बल्कि परलोकमें म सम्पत्ति प्राप्त करोगे। राजा राजरक्षित पर इस प्रकार धर्म्म सब कभी भी नहीं होते; इससे राजा ही उस सम्पूर्ण फल भोग करता है। युधिष्ठिर! तुम भी बृहत् राज्यको पाके धीरज धरके प्रजासमूहको प्रतिपालन करो और आदिसे इन्द्रको भी अभिलाष पूरी करते सुहृद मित्रोंको सन्तुष्ट करो।

७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महाराज! जो साधुओं रक्षा और दुष्टोंको राज्यसे दूर करते हैं, ही राज पुरोहित बनाना राजाका कर्त्तव्य इस विषयमें पुरूरवाके पुत्र ऐलके सङ्ग जो वार्त्तालाप हुआ था; पण्डित लोग प्रसङ्गमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाह दिया करते हैं।

पुरूरवा बोले, "किससे ब्राह्मण लोग उत हुए हैं? क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको

धर्मसे उत्पत्ति हुई है और किस कारणसे ब्राह्मण लोग सबसे श्रेष्ठ हुए, आप यह सब मेरे निकट वर्णन कीजिये।

वायु बोले, 'हे भरतर्षभ राजसत्तम! ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, दोनो भुजासे क्षत्रिय और ऊरुसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, और इन तीनों वर्णोंकी सेवाके वास्ते चौथे वर्ण शूद्रको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही धर्म्म-कोषकी रक्षाके निमित्त सब भूतोंके ईश्वर होके पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया; उसे देखके ब्रह्माने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते द्वितीय वर्ण क्षत्रियको दण्ड धारण करनेके निमित्त उत्पन्न करके पृथ्वीके शासन कार्य्यमें नियुक्त किया; वैश्य धन्य धान्यसे तीनो वर्णोंका भरण करे और शूद्र ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे; ऐसी ही आज्ञा की।'

पुरूरवा बोले, हे वायु! यह पृथ्वी और इसका समस्त धन धर्म्मके अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनोंके बीच किसीका हो सकता है? आप कृपाकर यह विषय मेरे निकट वर्णन करिये।

वायु बोले, 'धर्म्म जाननेवाले सब लोग कहते हैं, कि पृथिवी और इसका जितना धन है वह सब ज्येष्ठत्व और आभिजात्यके कारण ब्राह्मणका ही हो सकता है। ब्राह्मण सब वर्णोंमें श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हैं, इससे वे जो कुछ दान लेते, पहरते और भोजन करते हैं, वह सब अपने धनसे ही किया करते हैं। जैसे स्त्रियें पतिके मरनेपर देवरको पति करती हैं, वैसे ही क्षत्रियोंके रक्षा न करनेसे पृथ्वी [illegible] कारण ब्राह्मणोंको ही अपना पति किया करती है। महाराज! यही प्रथम धर्म्म है, [illegible]

वैदिक कर्म्ममें रत, धर्म्म जाननेवाले, तपस्वी, निज धर्म्ममें अनुरक्त लोभ रहित ब्राह्मणोंको दान करना। जो बुद्धिमान विनीत और सत्-कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग निज श्रेष्ठ बुद्धिके प्रभावसे विचित्र वाक्योंसे राजाको सन्मार्गमें लाते हैं, वेही राजपुरोहित हैं; वे उपदेश युक्त अभिमान रहित और क्षत्रिय धर्म्म रत राजाके आचरित धर्म्मके अंशभागी होते हैं; और वह बुद्धिमान राजा भी प्रजा-पुञ्जके समीप निजकर्म्मके अनुसार सत्कार और महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इसी भांति प्रजा राजाका आसरा ग्रहण करके और उससे भली भांति रक्षित होके निज धर्म्ममें निवास करती हुई स्वच्छन्दता और निर्भयताके सहित जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उस धर्म्मका चतुर्थांश फलभागी होता है देवता, मनुष्य, पितर गन्धर्व्व, सर्प और राक्षस लोग यज्ञका ही आसरा किया करते हैं, परन्तु राजा रहित होनेसे यज्ञादिक सब कर्म्म लुप्त होते हैं। देवता और पितर लोग यज्ञादिकोंमें होम किये हुए घृतादिकसे ही जीवन धारण करते हैं, परन्तु वे यज्ञादि सब कर्म्म राजाके अधीन हैं। राजशासन रहनेसे ही प्रजा धूपके समय छाया, जल और शीतल वायुसे, और शीत ऋतुमें वस्त्र, अग्नि तथा सूर्य्यके उत्तापसे सुख अनुभव किया करती है और उन लोगोंका मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें रमण करता है; परन्तु जब राजासे रहित होंगे, तब वे लोग भयसे युक्त हो, किसी प्रकार भी [illegible] सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे। [illegible]

वाला पुरुष गऊका स्तन काटनेसे दूध नहीं प्राप्त कर सकता, वैसे ही असत् उपाय अवलम्बन करके राज्यको पीड़ित करनेसे उसको कदापि बढ़ती नहीं होती। जैसे जो पुरुष सदा दूध देनेवाली गऊकी सेवा करता है, वही दूध पाता है, वैसे ही राजा भी उपाय आदिकोंसे राज्य पालन करनेसे ही सुख लाभ कर सकता है। जैसे माता बालककी स्तन दान करके दूध पिलाती है, वैसे ही पृथ्वी राजासे भली भांति रक्षित होनेपर दूध देनेवालोंकी भांति अन्न तथा सुवर्ण आदि वस्तु प्रदान किया करती है, महाराज! तुम वृक्षकी जड़ काटनेवालेकी भांति न होकर पुष्प सञ्चय करनेवाले मालीकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यकी रक्षा करना ऐसा होनेसे बहुत दिनोंतक पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ होगे। पर चक्रसे यद्यपि तुम्हारा धन क्षय हो, तो सामरूप उपाय अवलम्बन करके अब्राह्मणोंका धन ग्रहण करना। हे युधिष्ठिर! उन्नत अवस्थाकी तो कुछ बात ही नहीं है, अवनतिकी दशा उपस्थित होनेपर भी जिससे ब्राह्मणको धनवान देखके तुम्हारा मन विचलित न होवे, तुम सदा उन ब्राह्मणोंको रक्षा करना और निज शक्तिके अनुसार यथायोग्य धन दान करके उन लोगोंको सन्तुष्ट करना; ऐसा होनेसे दुर्जय स्वर्ग लाभ कर सकोगे। हे कुरुनन्दन! तुम इसी भांति धर्म्मवृत्ति अवलम्बन करके प्रजा-पालन करनेसे पदि धाममें शुभजनक पुण्य और नित्य यश प्राप्त करोगे। हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम धर्म्म और व्यवहारके अनुसार यथा नियमसे प्रजा पालन करो, ऐसा होनेसे कभी भी आधि-रूपी बन्धनमें नहीं फंसोगे। जब कि चराचर जीवोंकी रक्षा करना ही परम धर्म्म और परम दया कहके वर्णित हुआ है; तब राजा प्रजा समूहकी रक्षा करे, यही उसका सबसे श्रेष्ठधर्म्म है। राजा जो राज्यरक्षामें नियुक्त होकर जीवोंके ऊपर दया प्रकाशित करता है, धर्म्मज्ञ पण्डित लोग उसे ही उसका परम धर्म्म कहते हैं। राजा यदि एक दिन भी कारण प्रजाके रक्षाकी उपाय न करके जो सञ्चय करता है, सहस्र वर्षके अनन्तर मुक्त होता है, परन्तु प्रजासमूहको एकदिन मात्र रक्षा करनेसे दश हजार पर्य्यन्त स्वर्गमें उसका फल भोग करते हैं। योगी लोग पर्य्याय क्रमसे गृहस्थ, वाणप्रस्थ ब्रह्मचारियोंके धर्म्म आचरण करके लोकोंको जय करते हैं, राजा क्षण मात्र पूर्व्वक प्रजा-पालन करनेसे ही उन पाते हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम इस ही यत्नपूर्व्वक धर्म्मको पालन करो, ऐसा तुम उस ही पुण्यफलसे कभी भी आ बन्धनसे नहीं बंधोगे, बल्कि परलोकमें सम्पत्ति प्राप्त करोगे। राजा राज्यरहित पर इस प्रकार धर्म्म सब कभी भी नहीं होते; इससे राजा ही उस सम्पूर्ण फल भोग करता है। युधिष्ठिर! तुम गो बृहत् राज्यको पाके धीरज धरके धर्म प्रजासमूहको प्रतिपालन करो और सो आदिसे इन्द्रको भी अभिलाष पूरी करते सुहृद मित्रोंको सन्तुष्ट करो।

७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महाराज! जो साधु रक्षा और दुष्टोंको राज्यसे दूर करते हैं, ही राज पुरोहित बनाना राजाका कर्त्तव्य। इस विषयमें पुरूरवाके पुत्र ऐलके सङ्ग व जो वार्त्तालाप हुआ था; पण्डित लोग प्रसङ्गमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

पुरूरवा बोले, "किससे ब्राह्मण लोग हुए हैं? क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंकी

...से उत्पत्ति हुई है और किस कारणसे ...ह्मण लोग सबसे श्रेष्ठ हुए, आप यह सब मेरे ...कट वर्णन कीजिये।

वायु बोले, 'हे भरतर्षभ राजसत्तम! ...ाके मुखसे ब्राह्मण, दोनो भुजासे क्षत्रिय ...र उससे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, और इन ...नों वर्णोंकी सेवाके वास्ते चौथे वर्ण शूद्रको ...न किया। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही धर्म्म-...। कोषकी रक्षाके निमित्त सब भूतोंके ईश्वर ...के पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया; उसे देखके ...ामहने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते द्वितीय ...। क्षत्रियको दण्ड धारण करनेके निमित्त ...न करके पृथ्वीके शासन कार्य्यमें नियुक्त ...या; वैश्य धन्य धान्यसे तीनों वर्णोंका भरण ... और शूद्र ब्राह्मण आदि तीनो वर्णोंकी सेवा ..., ऐसी ही आज्ञा की।"

पुरूरवा बोले, हे वायु! यह पृथ्वी और ...का समस्त धन धर्म्मके अनुसार ब्राह्मण और ...त्रिय इन दोनोंके बीच किसीका हो सकता ...? आप कृपाकर यह विषय मेरे निकट वर्णन ...रिये।

वायु बोले, 'धर्म्म जाननेवाले सब लोग कहा ...ते हैं, कि पृथिवी और इसका जितना धन ... वह सब ज्येष्ठत्व और आभिजात्यके कारण ...ह्मणका ही होसकता है। ब्राह्मण सब वर्णोंके ... ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इससे वे जो कुछ दान ...ते, पहरते और भोजन करते हैं, वह सब ...ने धनसे ही किया करते हैं। जैसे स्त्रियें ...तिके न रहनेपर देवरको पति करती हैं, वैसे ... ब्राह्मणोंके रक्षा न करनेसे पृथ्वी आनन्त-...र्य्यके कारण क्षत्रियोंको ही अपना पति किया ...रती है। महाराज! यही प्रथम कल्प है, ...न्तु, आपत्कालमें इसका विपरीत भाव भी ... सकता है। यदि तुम्हें वह उत्तम स्थान ...र्ग और स्वधर्म्म उपार्ज्जनकी अभिलाषा हो, ...ब तुम जो कुछ भूमि जय करो, वह सब वैदिक कर्म्ममें रत, धर्म्म जाननेवाले, तपस्वी, निज धर्म्ममें अनुरक्त लोभ रहित ब्राह्मणोंको दान करना। जो बुद्धिमान बिनीत और सत्-कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग निज श्रेष्ठ बुद्धिके प्रभावसे विचित्र वाक्योंसे राजाको सन्मार्गमें लाते हैं, वेही राज पुरोहित हैं; वे उपदेश युक्त अभिमान रहित और क्षत्रिय धर्म्म रत राजाके आचरित धर्म्मके अंशभागी होते हैं; और वह बुद्धिमान राजा भी, प्रजा-पुञ्जके समीप निजकर्म्मके अनुसार सत्कार और महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इसी भांति प्रजा राजाका आसरा ग्रहण करके और उससे भली भांति रक्षित होके निज धर्म्ममें निवास करती हुई स्वच्छन्दता और निर्भयताके सहित जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उस धर्म्मका चतु-र्थांश फलभागी होता है देवता, मनुष्य, पितर गन्धर्व्व, सर्प और राक्षस लोग यज्ञका ही आसरा किया करते हैं, परन्तु राजा रहित होनेसे यज्ञादिक सब कर्म्म लुप्त होते हैं। देवता और पितर लोग यज्ञादिकोंमें होम किये हुए घृतादिकसे ही जीवन धारण करते हैं; परन्तु वे यज्ञादि सब कर्म्म राजाके अधीन हैं। राजशासन रहनेसे ही प्रजा धूपके समय छाया, जल और शीतल वायुसे, और शीत ऋतुमें वस्त्र, अग्नि तथा सूर्य्यके उत्तापसे सुख अनुभव किया करती है और उन लोगोंका मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें रमण करता है; परन्तु जब राजासे रहित होंगे, तब वे लोग भयसे युक्त होकर किसी प्रकार भी वैसा सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे, तब वैसे समयमें जो पुरुष अभय दान करते हैं; उन्हें ही महत् फल प्राप्त होता है, अधिक क्या कहूं, उस समय प्राण पर्य्यन्तदान करनेमें भी संकुचित न होवे; क्या कि कोई दान भी प्राण दानके समान नहीं है। राजा ही सबका आधार है और वही समयके अनुसार इन्द्र, यम

तथा धर्म्म इत्यादि विविध रूप धारण किया करता है।

७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा राज्य शासनमें प्रतिष्ठित होकर अर्थकी गहन गतिको विचारके शीघ्र ही विद्वान और बहुश्रुत ब्राह्मणको पुरोहित कार्य्यमें नियुक्त करे। महाराज। जिसका राज पुरोहित धर्म्मात्मा और मन्त्र जाननेवाला तथा राजा भी वैसे ही गुणोंसे युक्त होता है, उन प्रजासमूहका सब भांतिसे कल्याण हुआ करता है। राजा और राजपुरोहित आपसमें आलस रहित और सावधान होकर सुहृदता अवलम्बन करके तपस्वियोंकी भांति धर्म्ममें रत और श्रद्धावान होनेसे देवता, पितर, पुत्र और सबकी उन्नति साधन करते हैं। प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सन्मान करनेसे सुख पाती है, परन्तु उनकी अवमानना करनेसे नष्ट होती है; क्यों कि पण्डित लोग ब्राह्मण और क्षत्रियको ही सब वर्णोंका मूल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! आर्य्य लोग इस प्रस्तावमें ऐल और कश्यपके सम्वाद रूपी जिस इतिहासका उदाहरण देते हैं, उसे सुनो।

ऐल बोले, ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनो तेजसे राज्य रक्षित हुआ करता है, परन्तु इन दोनोंमें यदि कोई किसीको परित्याग करे, तो सब वर्ण किसका आसरा ग्रहण करते हैं, और किसके जरिये रक्षित होते हैं?

कश्यप बोले, ब्राह्मण यदि क्षत्रियको परित्याग करे, तो उसका वह राज्य नष्ट होता है, डाकू लोग राज्यमें उपद्रव किया करते और पण्डित लोग वैसे क्षत्रियको म्लेच्छजाति कहके अनुमान किया करते हैं। क्षत्रिय लोग भी यदि ब्राह्मणको परित्याग करें, तो उनके इष्टोंकी ...ती, गर्व-मथित तथा धर्म कार्य्य आचरित नहीं होते और उनके पुत्र भी यथा री: रक्षित होके वेदाध्ययन करके यज्ञादि कर्मोंका आचरण नहीं करते, वल्कि संकर जाति डाकुओंकी भांति वृत्ति अवलम्बन करते हैं। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंके आश्रय हैं, इससे वे ... भयके सहित आपस मिलके एक दूसरे की रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ये दोनों आपसमें परस्परकी रक्षा करते हुए महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परन्तु यदि किसी प्रकारसे उनकी प्राचीन सन्धि भङ्ग होवे, तो दोनोंही नष्ट होते हैं। जैसे अगाध जलमें विपद्ग्रस्त नौका किसी प्रकार भी किनारे नहीं लग सकती, वैसे ही वह भी किसी विषयके पारदर्शी नहीं होसकते; वर्णविचार लोप होता और सब प्रजाका नाश होता है। ब्रह्मरूपी वृक्ष यथा उचित रीतिसे रक्षित होने पर सुख और सुवर्णमय फलोंकी वर्षा करता है; परन्तु उसकी रक्षा न करनेसे दुःख और नरकरूपी फल उत्पन्न होता है। जब ब्रह्मचारी लोग डाकुओंसे निवारित होकर निज गधीत शाखा परित्याग करते और ब्राह्मण लोग अपने पाठनीय वेदका आसरा त्याग करते हैं, उस समय इन्द्र अल्प जलकी वर्षा करते और वहांपर सदा अनेक भांतिके उत्पात उपस्थित होते हैं। जब कोई पापी पुरुष ... अथवा ब्राह्मणहत्या करके भी सभामें ... प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और राजाके निकट भयभीत नहीं होता, तब वैसे पुरुषसे राजाको महत् भय उपस्थित होता है। हे ऐल! ... पापी लोग पाप कर्म्मसे कलिके उत्पत्तिकी ... करते रहते हैं, तब राजा अत्यन्त ही रुद्र और हिंसक होकर साधु और दुष्ट सबकी ही हिंसा किया करता है।

ऐल बोले, हे कश्यप! जीव लोग जो ... जरियेसे ही मारे जाते हैं, वह रुद्र कैसा है और किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा राजा भी किस कारण रुद्ररूप हुआ करता है, आप ...

सब विस्तार पूर्व्वक मेरे निकट वर्णन करिये?— कश्यप बोले, जैसे आकाशमें उठे हुये उत्पातके विषयमें वायु ही आकाश देवताको इधर उधर सञ्चलित करता है, उससे ही बिजली, वज्र और अशनि आदि सब उत्पात उत्पन्न हुआ करते हैं, वैसे ही मनुष्यके हृदयमें स्थित आत्मा ही काम क्रोध आदि रूपसे प्रगट होके अपने वा दूसरेके शरीरको नष्ट किया करता है।

ऐल बोले, वायुके सङ्ग इस रुद्ररूपी आत्मा की उपमा नहीं होसकती, क्योंकि वायु बाहरी सब पदार्थोंको वेष्टन करता है, बादल जलकी वर्षा करते है; इससे उसके सङ्ग भी तुलना नहीं हो सकती, और जब मनुष्योंके बीच कितनोंको सदा काम क्रोधके वशमें होके मरते और मोहित होते देखा जाता है, तब देवरूपसे भी उपमा नहीं हो सकती।

कश्यप बोले, जैसे अग्नि एक गृहमें प्रज्वलित होके समस्त ग्राम वा चौतरोंको भस्म कर देती है, वैसे ही रुद्रदेव भी सबको मोहित करते हैं, इससे सब कोई पुण्य-पाप जनक शङ्कर कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ करते हैं।

ऐल बोले, जब पापियोंके विशेष रूपसे पाप कर्म्म करने पर भी दण्डनीति पुण्य पापरूप दोनों भांतिके कर्म्म करनेवालोंके ऊपर प्रयोग हुआ करती है, तब क्यों मनुष्य सत्कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे और असत् कर्म्म न करेंगे।

कश्यप बोले, पापाचारियोंके सङ्ग किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेसे मनुष्य पापरहित होता है, इससे उसे दण्डनीतिके अधीन नहीं होना पड़ता; परन्तु जैसे सूखे काठके साथ गीला काठ भी भस्म होजाता है, वैसे ही पापाचारियोंके साथ निवासके कारण मिश्रितभाव होनेसे पापियोंकी भांति दण्डनीय होना पड़ता है; इससे पापियोंके सङ्ग सब भांतिसे संसर्ग त्यागना उचित है।

ऐल बोले, किस कारण पृथ्वी साधु और दुष्ट दोनों भांतिसे लोगोंको धारण किया करती है? सूर्य्य क्यों दोनोंको उत्ताप प्रदान करता है? वायु किस कारणसे दोनोंके समीप समान रूपसे बहता है और किस कारण जल साधु और दुष्ट दोनोंको पवित्र करता है?

कश्यप बोले, हे राजपुत्र! इस संसारमें ही ऐसा हुआ करता है। परन्तु परलोकमें ऐसा नहीं होता, मनुष्य जो कुछ पुण्य सञ्चय वा पापाचरण करते है, परलोकमें गमन करके उसका इतर-विशेष देखते हैं। जो लोग संसारमें सदा पुण्य कर्म्म करते हैं, वे ब्रह्मचारी पुरुष परलोकमें मधुमान् घृतार्चि, सुवर्णकी भांति ज्योतिसे युक्त और अमृत की नाभि स्वरूप परम रमणीय स्थानमें निवास करते हुए दुःख और जरा मरण-रहित होकर अनेक सुख प्राप्त करते है। परन्तु वहां पर पापियोंके वास्ते जो स्थान निर्दिष्ट है, वह नरक और सदा दुखसे पूर्ण शोकपूरित तथा प्रकाश रहित है, निन्दनीय पापी लोग वहां पर जाके बहुत समय पर्य्यन्त सन्तापित होकर अपने किये हुए कर्म्मके निमित्त शोक प्रकाश किया करते हैं। इसी भांति ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें भेद उपस्थित होने पर प्रजाको असह्य दुःख प्राप्त होता है, इससे राजा को यह सब जानके अनेक भांतिकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको पुरोहितके कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है। राजा पहिले पुरोहितको अभिषिक्त करे, ऐसा होनेसे ही उसका धर्म्म भली भांति रक्षित होगा, क्योंकि ब्रह्मवित् पुरुष कहा करते हैं, कि ब्राह्मण लोग पहिले उत्पन्न हुए हैं और वे लोग ही सब वस्तुओंके अग्रभुक् कहके माने जाते हैं। प्रथम उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग जो जेष्ठत्व और आभिजात्यके कारण क्षत्रियोंके मान्य और पूज्य हैं, उस विषयमें मैंने पहिले ही तुम्हें उत्तर दिया है। बलवान राजाको उचित है, कि ब्राह्म[illegible] सबसे

श्रेष्ठ और उत्तम वस्तु प्रदान करे। हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग ब्रह्मतेजसे रक्षित होकर ही ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं; इससे ब्राह्मणोंकी विशेष रूपसे पूजा करना ही राजाका कर्त्तव्य है।

७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राज्यका उपाय और मङ्गल समूह राजाके वशमें है, परन्तु राजाका उपाय और मङ्गल समूह सब पुरोहितके अधिकारमें है। जिस राज्यमें पुरोहित ब्रह्मतेजसे प्रजाके अदृष्ट और राजा बाहुबलसे दृष्टभय निवारण करता है; उस ही राज्यमें सुख प्राप्त होता है, इस विषयमें कुवेरके साथ राजा मुचकुन्दका जो कुछ बात्तीलाप हुआ था, पण्डित लोग इस प्रस्तावमें उस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पृथ्वीनाथ मुचकुन्दने समस्त पृथ्वी जीतके निज बल मालूम करनेके वास्ते अलकानाथ कुवेरके समीप गमन किया। उसे देखकर यक्षराज वैश्रवणने राक्षसोंको आज्ञा दी, वे लोग मुचकुन्दकी सेनाका नाश करने लगे। हे शत्रुनाशन! नरनाथ मुचकुन्द अपनी सेनाका नाश होता देखकर विद्वान् पुरोहितकी निन्दा करने लगे। उसे सुनकर धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रणी वशिष्ठने उग्र तपस्यासे राक्षसोंका नाश किया और उसके जरियेसे मुचकुन्दकी भी गति मालूम की। तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण निज सेनाका नाश देखकर मुचकुन्दके सम्मुख उपस्थित होकर बोले।

कुवेर बोले, पहिले समयमें अनेक राजा पुरोहितके प्रभाव और बलसे तुमसे भी अधिक बलवान हुए थे, परन्तु तुमने जैसी वृत्ति अवलम्बन की है, किसीको भी मैंने वैसी वृत्ति अवलम्बन करते नहीं देखा। वे राजा लोग कृतास्त्र और बलवान होके भी मेरे निकट आके सुख स्वामी समझके मेरी उपासना करते थे, तुम किस कारण ब्राह्मण बलसे गर्व्वित होकर नीतिमार्ग अतिक्रम करते हो? यदि तुम्हारी भुजामें बल हो, तो उसे दिखाओ।

तिसके अनन्तर मुचकुन्दने क्रुध होके क्रोध-रहित सावधान कुवेरको इस नीतियुक्त बचनसे उत्तर दिया। 'ब्रह्म और क्षत्रिय दोनों ही प्रजापतिके जरिये एक योनिरूपसे उत्पन्न हुए हैं; इससे उनका बलविधान परस्पर पृथक् रीतिसे रहनेपर वे लोग कदापि सब लोगोंको प्रतिपालन करनेमें समर्थ नहीं होते। ब्राह्मणोंमें तपस्या और मन्त्रबल तथा क्षत्रियोंमें अस्त्र और बाहुबल सदा प्रतिष्ठित रहता है; इन दोनोंको मिलके राज्यपालन करना ही उचित है। हे यक्षनाथ! मैं इस ही नीतिके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ हूं, तब तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो?'

तिसके अनन्तर विश्रवानन्दनने पुरोहित सहायसे युक्त मुचकुन्दसे कहा, हे राजन्! तुम निश्चय जान रखो, मैं ईश्वरकी बिना आज्ञाके किसीको राज्य प्रदान नहीं करता, और बिना ईश्वरकी अनुमतिके किसीका राज्य भी नहीं हरता, इससे मैंने तुम्हें जो राज्य प्रदान किया है, तुम उस समस्त पृथ्वीका शासन करो।" राजा मुचकुन्दने ऐसा सुनकर नीचे कहा हुआ उन्हें यह उत्तर दिया।

मुचकुन्द बोले, "राजन्! मैं आपका दिया हुआ राज्य भोगनेकी इच्छा नहीं करता, निज बाहुबलसे जो कुछ राज्य प्राप्त किया है, उसे ही भोग करूंगा, यही मेरा एकमात्र अभिप्राय है।"

भीष्म बोले, तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण मुचकुन्दको निर्भयताके सहित क्षात्र-धर्म्ममें स्थित देखके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर पृथ्वीनाथ मुचकुन्द सब भांतिसे क्षात्र-धर्म्मके अनुगामी होकर निज बाहुबलसे प्राप्त हुई पृथ्वीको शासन करने लगे। हे युधिष्ठिर! जो

राजा इसी भांति ब्राह्मणको अगाड़ी करके राज्य शासन करता है, वह विजय न करने योग्य पृथ्वीको जय करके महत् यश प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सदा पवित्र होना और क्षत्रियको सदा शस्त्रधारी होना उचित है; क्यों कि जगत्में जो कुछ है; वह सब उन दोनोंके अधीन है।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा लोग किस वृत्तिको अवलम्बन करके प्रजासमूहको उन्नति और सब पुण्यलोकोंको जय करते हैं। आप वह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा प्रजापालनमें प्रवृत्त होके दानी, उपवासी, तपस्यामें रत और यज्ञशील होवे। राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा प्रजाको पालन करते हुए नित्य ही उद्योग और विविध दानसे धर्म्मात्माओंकी पूजा करे। राजा यदि धार्म्मिक पुरुषोंको पूजा करे, तो वे लोग सब जगह पूजित होते हैं। क्यों कि राजा जैसा आचरण करता है, वही प्रजासमूहको प्रमाण हुआ करता है। राजा यमराज की भांति सदा शत्रुओंके विषयमें दण्डग्रहण करके तैयार रहे और सब भांतिसे डाकुओंका नाश करे; कभी भी इच्छानुसार किसीको क्षमा न करे। हे भारत! प्रजा राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उसमें चतुर्थांश फलभागी होता है। वे लोग जो कुछ दान, अध्ययन, होम और पूजा करते है, राजा धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करके उसमेंसे चौथा अंश फल भोग किया करता है। हे भरत-नन्दन! राजा यदि प्रजाको रक्षा न करे, तो राज्यके बीच जो कुछ अधर्म्म उपस्थित होता है, राजा उस पापमें भी चतुर्थांश भागी होता है। राज्यमें दुष्ट और मिथ्यावादी पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं। राजा अवश्य ही उसमें अर्द्धांश भागी होता है। हे पृथ्वीनाथ! कोई कोई कहते हैं राजा लोग वैसे पापके सम्पूर्ण तथा उससे भी अधिक फलभागी हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! राजा वैसे पापसे जिस प्रकार मुक्त होता है, उसे सुनो, जिस धनको चोरोंने चुराया हैं, उसे यदि फिरा न सके, तो वैसे अशक्त राजाको उचित है, कि निज कोषसे उतना ही धन प्रदान करे। सब वर्णोंको ही ब्राह्मणोंकी भांति ब्रह्मस्वको रक्षा करनी उचित है; और जो ब्राह्मणोंका अपकार करे, उसे राज्यमें रहने देना उचित नहीं है। ब्रह्मस्व रक्षित होनेसे सब ही भांति रक्षित होता हैं; इससे उनकी कृपासे ही राजा कृत कृत्य होसकता है। जैसे सब प्राणी जलको और पक्षी महावृक्षका आसरा ग्रहण करते है, वैसे ही मनुष्य लोग सब अर्थ-सिद्ध करनेवाले राजाका आसरा ग्रहणकिया करते हैं। परन्तु कामात्मा, सदा कामबुद्धि, नृशंस और अत्यन्त लोभी राजा प्रजा पालन नहीं कर सकते!

युधिष्ठिर बोले, मैं सुखकी अभिलाषासे राज्य प्राप्ति की इच्छा नहीं करता हूं। मैंने जिस धर्म्मके वास्ते राज्यकी अभिलाष की थी, जब राज्यके बीच वह धर्म्म ही नहीं है; तब वैसे धर्म्म-रहित राज्यसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं धर्म्म-साधनके वास्ते फिर बनमें गमन करूंगा और दम्भरहित तथा जितेन्द्रिय होकर [illegible] पवित्र बनके बीच फल मूल खा[illegible] [illegible] धर्म्मकी अराधना करूंगा।

भीष्म बोले, तुम्हारी [illegible] [illegible] दुःख देनेवाली नहीं है [illegible] [illegible] हूं, परन्तु राजधर्म्मके विषयमें [illegible] [illegible] अत्यन्त [illegible] ही कहनी [illegible]; [illegible] और [illegible] बुद्धिसे [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible]; यदि तुम इक्कारगी [illegible] और [illegible] धार्म्मिक होकर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

साभाजन नहीं होगी। हे तात! तुम जिस रीतिसे निवास करनेकी इच्छा करते हो, वह चत्रियोंका धर्म नहीं है, इससे तुम्हारे पितर पितामहने जिस बृत्तिको अवलम्बन किया था, तुम भी उसहीका अनुगमन करो। तुम लोभके वशमें होकर केवल अनृशंस बृत्ति त्याग करनेसे ही प्रजापालनसे प्रकट हुए धर्म-फलको नहीं प्राप्त कर सकोगे। हे तात! तुम जिस बुद्धि-बृत्तिके अनुगामी हुए हो, तुम्हारे जन्मके समय कुन्ती अथवा पाण्डु किसीने भी ऐसी प्रार्थना नहीं की थी। तुम्हारे पिता नित्य ही तुम्हारे पराक्रम, बल और सत्यके वास्ते और कुन्ती महात्म और उदारताके निमित्त प्रार्थना करती थी। पुत्र जो मनोहर यज्ञादिकोंसे देवताओं और श्राद्धादिकोंसे पितरोंको तृप्त करते है; देवता और पितर लोग भी पुत्रसे ऐसी ही कामना किया करते हैं। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजापालन करनेसे चाहे धर्म हो, चाहे अधर्म ही होवे; इन कई एक कर्म्मोंको करनेके ही वास्ते तुम्हारा जन्म हुआ है। जो ध्रुव कार्य्योंमें नियुक्त होकर यथा समयमें नियत भार उठाते हैं, उनके स्वयं अवसन्न होनेपर भी उनकी कीर्त्ति नहीं अवसन्न होती। हे युधिष्ठिर! सुशिक्षित मनुष्यकी तो बात दूर रहे, जब भली भांति शिक्षित घोड़े भी सावधानीके सहित निज भारको उठाया करते हैं; तब तुम कर्म्म और बचनसे सबके निकट निर्दोषी होके ही निज आचरित कर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। हे तात! धार्म्मिक, गृहस्थ, राजा अथवा ब्रह्मचारी कोई कभी भी इकबारगी अभिनिवेशके सहित शुद्ध धर्म्माचरण नहीं कर सकते; इससे निज आचरित अल्प कर्म्म भी यदि सारगर्भ हो, तो वह कर्म्म न करनेकी अपेक्षा उत्तम है, क्यों कि कर्म्म न करनेसे अत्यन्त ही पापभागी होना है।

जब सद्गुणशाली धर्म्मात्मा मनुष्यलोग राजमको आदि श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, तब ही राजा अप्राप्त बस्तुओंकी प्राप्ति और प्राप्त बस्तुओंको प्रतिपालन रूप योगक्षेम कुशलदायक हुआ करता है। धर्म्मात्मा राजा राज्य पाके किसीको दान, किसीको बल और किसीको मीठे बचनसे सब भांति अपने वशमें करे। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए पण्डित लोग जिसके आश्रय लाभसे परितृप्त होकर निर्भय और स्वच्छन्दताके सहित बास करते हैं, स्वयं धर्म्मको भी उससे श्रेष्ठ नहीं समझा जाता।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! स्वर्ग प्राप्तिका उत्तम उपाय क्या है? उससे उत्तम प्रीति कौनसी है और उससे श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य ही कौनसा है? यदि यह सब आपको मालूम हो, तो मेरे निकट यथावत् बर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जो राजा भयपीड़ित मनुष्योंको क्षणभरके बीच उस भयसे छुड़ावे उन लोगोंका मङ्गल बिधान करता है, वा राजा ही हम लोगोंके बीच स्वर्गजित् है, यह मैं तुम्हारे निकट सत्य ही कहता हूं। हे कुरुसत्तम! कुरुकुलमें तुम ही प्रीतिमान हो, इससे तुम राजा होकर स्वर्गजय, साधुओंका पालन और दुष्टोंका शासन करो हे तात! जैसे सब प्राणी जल और पक्षी सुस्वादु युक्त बृक्षके आसरेसे जीवन धारण करते हैं, वैसे ही साधुओंके सहित सुहृद लोग तुम्हें उपजीव्य करके जीवन धारण करें। जो राजा शूर, दुष्टोंको नाश करनेवाले, अनृशंस, जितेन्द्रिय प्रजावत्सल, अतिथि और अपने अधीनमें रहने वाले परिवार समूहको भोजन कराके आप भोजन करता है, मनुष्य लोग उस ही राजाका आसरा करके जीवन यात्रा निर्व्वाह करते हैं।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! जो स्वकर्म्ममें रत और जो निषिद्ध कर्म्मोंमें रत हैं, उन सब ब्राह्मणोंमें कौनसी विशेषता है ? वह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! जो लोग विद्या और शम, दम आदि लक्षणोंसे युक्त और सबमें समदर्शी हैं, वे ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मतुल्य कहे जाते हैं । ब्राह्मणोंके बीच जो लोग स्वकर्म्ममें रत होके ऋक यजु और साम इन तीनों वेदोंको जानते हैं, वे लोग देवता समान माने जाते हैं । हे राजन् ! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके बीच जो जन्मोचित कर्म्महीन महा नीच कर्म्म करने वाले और ब्रह्मबन्धु हैं, वे शूद्रके समान होते हैं । जो सब ब्राह्मण वेदाध्ययन रहित और निरग्निक हैं, धर्म्मात्मा राजा उनसे कर ग्रहण करे और बिना वेतन ही उनसे राज्यकी सेवकाई करावे । हे राजन् ! जो धर्माधिकारमें नियुक्त रहते और वेतन लेकर देवपूजा, नक्षत्र गणना ग्राम याजन और महापथ अर्थात् नौका पर चढ़के समुद्रमें गमन करते हैं, शास्त्रमें ये पांचों ही ब्राह्मण चाण्डाल कहाते हैं । और भी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग ऋत्विक्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और वार्त्तावहका कार्य्य करते हैं ; वे क्षत्रिय तुल्य समझे जाते हैं । जो लोग घुड़सवार गजसवार रथी और पदातिका कार्य्य करते हैं, वे वैश्य तुल्य कहाते हैं । हे पृथ्वीनाथ ! राजा कोष रहित होने पर पहिले कहे हुए ब्रह्म समान और वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त इन सब ब्राह्मणोंसे कर ग्रहण करे, उससे उसे अधर्म्म नहीं होता ; क्योंकि इस प्रकार वैदिक शासन है, कि ब्राह्मणोंके बीच जो लोग निषिद्धकर्म्म करते हैं, उनके और ब्राह्मणोंके धनका राजा ही स्वामी हुआ करता है । राजा दूसरेके कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंके विषयमें किसी प्रकार भी उपेक्षा न करे, बल्कि धर्म्मानुग्रह निबन्धनसे इन लोगोंको राजनियममें नियमित और पूर्व्व रीतिसे पृथक् कर रखे । हे राजन् ! जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष वह अपराध राजाके ही ऊपर आरोपित किया करते हैं । हे नरनाथ ! इससे पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जीविका रहित वेद जाननेवाले स्नातक ब्राह्मण राज्यके बीच चोर होंगे ; राजाको ही उनका भरण पोषण करना होगा । यद्यपि वह ब्राह्मण राजाके निकट वृत्ति प्राप्त होने पर भी चोरी कर्म्मसे निवृत्त न होवे, तो ऐसा होनेसे राजा उसे बन्धु-बान्धवोंके सहित निज देशसे निकाल देवे ।

७६ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह ! राजा जिसके धनाधिकारके प्रभु होंगे और कैसी वृत्ति अवलम्बन करके रहेंगे, वह मुझसे कहिये ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! ऐसी जनश्रुति है, कि ब्राह्मणोंमें जो लोग कुकर्म्मी हैं, उनका और अब्राह्मणोंका राजा ही धन स्वामी होता है ; और साधु पुरुष राजाके विषयमें ऐसा कहा करते हैं, कि ब्राह्मण कुकर्म्मी होनेपर राजा कभी भी उसके विषयमें उपेक्षा न करे । जिस राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, पण्डित लोग वह दोष राजाके ही ऊपर आरोपित करते हैं ; इससे राजऋषि लोग ब्राह्मणोंके वैसे कर्म्मसे अपनेको ही दोषी समझके उनका पालन किया करते हैं । हे राजन् केकयराजने राक्षससे बनमें हरे जाने पर जो कुछ वचन कहे थे, पण्डित लोग इस स्थलमें उसही प्राचीन इतिहासको प्रमाण रूपसे वर्णन किया करते हैं । किसी राक्षसने बनके बीच स्वाध्यायरत, व्रतमें तत्पर, पराक्रमी केकयराजको ग्रहण किया, तब केकयराजने उससे कहा, कि मेरे राज्यमें चोर, कायर, मद पीनेवाले, निरग्निक और यज्ञहीन कोई भी नहीं है ; इससे तुम

मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निकटसे दूर रहो। मेरे राज्यमें दक्षिणाहीन यज्ञ नहीं होते, कोई व्रतहीन पुरुष वेद नहीं पढ़ते, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छःहों कर्म्म सदा विद्यमान हैं और निज कर्म्ममें तत्पर, सत्यवादी, शान्त ब्राह्मण लोग मेरे राज्यमें सदा सम्मानित और पूजित हुआ करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श न करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें सत्य-धर्म्म जाननेवाले क्षत्रिय लोग किसीके समीप याचना नहीं करते, सब ही दान किया करते हैं, पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; यज्ञ करते हैं, कराते नहीं; और वे सब ब्राह्मणोंके प्रतिपाल करनेवाले, युद्धमें पीछे न हटनेवाले तथा निज कर्म्ममें रत हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें वैश्य लोग कपट रहित होके कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करते है, वे सब ही सावधान, क्रिया-वान, उत्तम व्रत करनेवाले, सत्यवादी निज कर्म्ममें रत और परस्पर सन्विभाग युक्त दम, पवित्रता और सुहृदताका आसरा किया करते है। इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें शूद्र-लोग असूया-रहित, निज कर्म्ममें स्थित और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके अवल-म्बसे यथा उचित जीविका निर्व्वाह किया करते हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर होजाओ, मैं कृपण, अनाथ वृद्ध, निर्व्वल, आतुर, और स्त्रियोंको यथा उचि-तसे सेवा किया करता हूं, कुलधर्म्म और देश-धर्म्म यथारीतिसे स्थापित करता हूं, किसीको नष्ट नहीं करता मेरे समीप तपस्वी लोग आदर-के सहित पूजित प्रतिपालित और संविभक्त हुआ करते हैं, मैं सबको बिना भोजन कराये [illegible] न नहीं करता, पराई स्त्री स्पर्श नहीं करता और कभी स्वतन्त्र क्रीड़ा नहीं करता; इससे तुम्हें मुझे ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है; तुम मेरे समीपसे दूर होजाओ। मेरे राज्यमें अब्रह्मचारी भिक्षा-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, भिक्षुक ही ब्रह्मचर्य्य करते हैं, और ऋत्विकके अतिरिक्त दूसरे पुरुषके जरिये से [illegible]ताओंकी आहुति नहीं दी जाती इससे तुम मेरे निकटसे दूर रहो। मैं वैद्य, वृद्ध और तपस्वि-योंकी अवज्ञा नहीं करता और समस्त जनपद वासियोंके सोनेपर मैं जागता रहता हूं, मेरा पुरोहित आत्मज्ञान और विज्ञानसे युक्त, तप-स्वी सब धर्म्म जाननेवाला बुद्धिमान और [illegible] राज्यका स्वामी है। मैं दानसे विद्या ब्राह्मणोंकी रक्षा और सत्यसे स्वर्गादि लोक प्राप्तिकी इच्छा किया करता हूं और शुश्रूषासे गुरुजनोंके अनुकूल हूं; इससे राक्षससे मुझे भय नहीं है। मेरे राज्यमें विधवा, ब्रह्मबन्धु, अब्राह्मण, शठ, चोर, मांगनेके अयोग्य वस्तुओंके मांगनेवाले और पाप कर्म्म करनेवाले कोई भी नहीं है; इससे राक्षससे मैं नहीं डरता। मैं धर्मार्थि[illegible] युद्ध किया करता हूं, इससे मेरा शरीर दो अंगुल मात्र भी शस्त्रसे विद्ध नहीं होता, और [illegible] राज्यमें सब प्रजा गऊ, ब्राह्मणकी रक्षा। यज्ञके वास्ते मेरी मङ्गल कामना किया करती है, इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे नि[illegible]टसे दूर हो जाओ।

राक्षस बोला, हे केकयराज! आप [illegible] समय धर्म्मकी पर्य्यालोचना करते हैं, इससे आपको परित्याग किया; अब आपका मङ्गल होवे, आप अपने घर जाइये, मैं अपने स्थान पर जाता हूं। हे केकय! जो गऊ, ब्राह्मण और प्रजाको आपदसे बचाते हैं, उन्हें राक्षस [illegible] पातकसे भय नहीं होता; और ब्राह्मण [illegible] उसके अग्रगामी हैं, जिसका बल ब्रह्मपर और जो अतिथि प्रिय हैं, वे राजा समस्त स्वर्ग[illegible] की जय किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! इस ही कारण ब्राह्मणोंका पालन करना राजाको अवश्य उचित है। क्योंकि वे लोग राजासे रक्षित होकर उसे ऐसी आपदसे बचाते हैं और राज्यादिके निमित्त सब भांतिसे वृद्धिसूचक आशीर्व्वाद दिया करते हैं। इस ही वास्ते दूसरे कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंको राजा कृपापूर्व्वक नियमित और यथारीतिसे विभक्त कर रखे। जो राजा पुरवासी प्रजासमूहके साथ इसी भांति आचरण करता है, वह इस लोकमें सब सुख भोगके परलोकमें इन्द्रके समान स्थान प्राप्त करता है।

७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आपने कहा है, आपदकालमें ब्राह्मण लोग राजधर्म्म अर्थात् शस्त्रधारण आदि कार्य्योंसे जीविका निर्व्वाह कर सकते हैं, परन्तु वे लोग वैश्यधर्म्म अर्थात् व्यवसायसे जीविकाका उपाय कर सकते है वा नहीं?

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्ममें असमर्थ ब्राह्मण लोग वृत्तिक्षय रूपी व्यसन उपस्थित होनेपर कृषि और गोरक्षा व्यवसाय अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करें।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! वैश्य धर्म्म अवलम्बन करनेवाले ब्राह्मण लोग किन वस्तुओंके बेचनेसे स्वर्गच्युत नहीं होते।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! ब्राह्मण लोग सब समयमें ही सुरा, लवण, तिल, घोड़े गऊ, भैंस आदि पशु, ऋषभ, मधु और पक्वान्न आदि सब वस्तु न बेचें; क्यों कि इन वस्तुओंके बेचनेसे ब्राह्मण नरकगामी होंगे। अज, अग्नि, वरुण, बादल, सूर्य्य, घोड़े, पृथ्वी, अन्न, गऊ यज्ञ और सोम ये सब वस्तु कदापि ब्राह्मणोंको बेचने योग्य नही हैं। हे भारत! साधुपुरुष पक्वान्नके सङ्ग आमान्नकी बदलनेकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु भोजनके वास्ते आमान्नके साथ पक्वान्नको बदलनेसे उसकी निन्दा नहीं करते, यदि कोई किसीको "मैं सिद्धान्न भोजन करूंगा आप आमान्न ग्रहण कीजिये," ऐसा कहके आमान्नके साथ सिद्धान्नको बदल करे, तो इस प्रकारके अदलबदलमें किसी भांति भी अधर्म्म नहीं हो सकता। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें व्यवहारमें प्रवृत्त पुरुषोंका जो सनातन धर्म्म है वह तुमसे कहता हूं सुनो। यदि कोई किसी पुरुषको "मैं तुम्हें यह वस्तु देता हूं, तुम मुझे अमुक वस्तु प्रदान करो," ऐसा कहके इच्छानुसार बदल करे, ऐसा होनेसे उसमें धर्म्म होता है, परन्तु बलपूर्व्वक बदलनेसे उसमें धर्म्म नहीं हो सकता। ऋषि और इतर लोगोंका इसी भांति प्राचीन व्यवहार प्रचलित हुआ करता है यही उत्तम है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

युधिष्ठिर बोले, हे तात! जब वैश्य, शूद्र और अन्तज आदि प्रजासमूह निजधर्म्म परित्याग करके शस्त्र ग्रहण करेंगे; उस समय क्षत्रिय बल क्षीण होगा। हे नरनाथ! उस समय बलहीन राजा किस प्रकार लोकयात्रा और सब लोगोंका परम आश्रय होगा? मुझे यह सन्देह हो रहा है, आप इस विषयको मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मण आदि सब वर्ण दान, तपस्या, यज्ञ, अहिंसा और इन्द्रियदमनसे अपने अपने कुशलकी अभिलाष करते है, परन्तु उन लोगोंके बीच जो ब्राह्मण वेद-बलशाली हैं, वे लोग सब भांतिसे बढ़के इन्द्रके बल बढ़ानेवाले देवतोंकी भांति राजाका बल बढ़ाते हैं। और पण्डित लोग ऐसे कहा करते हैं, कि ब्राह्मण ही बलहीन राजाके परम आश्रय हैं, इससे बुद्धिमान राजा ब्रह्मबल अवलम्बन करके ही समुत्थित होते हैं। परन्तु जयशील राजा जब राज्यके बीच सबके क्षेमका अनुसन्धान करेंगे, तब सब वर्ण किस प्रकार निज निज

धर्म्मसे भ्रष्ट होंगे। हे युधिष्ठिर ! जब डाकू लोग प्रजासमूहकी मर्य्यादा और जाति नाश करनेमें प्रवृत्त होंगे, उस समय सब वर्णोंहो शस्त्र ग्रहण करनेसे दोष युक्त नहीं होंगे।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! यदि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके विषयमें दोषदर्शी होकर विरुद्ध आचरण करे, तो वह ब्राह्मण कौन धर्म्म अवलम्बन करेगा ? और उसका आश्रय तथा परित्राण करनेवाला कौन होगा ?

भीष्म बोले, उस समय ब्राह्मण तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, शस्त्रबल, शठता वा सरलता आदि जिस उपायसे होसके, वही क्षत्रियको शासित करे। विशेष करके ब्राह्मणसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं, इससे यद्यपि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग विरुद्धाचरण करनेमें प्रवृत्त हो, तो ब्राह्मण ही उसके नियन्ता होंगे। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, इससे उनका सर्व्वत्रगामी तेज निज निज योनिमें शान्त हुआ करता है। जब लोहा पत्थरको भेदता, अग्नि जलको मंथती और क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, तब वह लोह, अग्नि और क्षत्रिय स्वयं नष्ट होजाते हैं। हे युधिष्ठिर ! इससे क्षत्रियोंका अत्यन्त अजेय तेज ब्राह्मणोंके समीप शान्त हुआ करता है। ब्रह्मबल कोमल तथा क्षत्रियबल निर्ब्बल और सब वर्ण ब्राह्मणोंके विरुद्ध होनेपर जो लोग ब्राह्मणधर्म्म और आत्मरक्षाके वास्ते उस समय जीवनकी आशा त्यागके शस्त्र ग्रहणकर युद्ध करनेके वास्ते उद्यत होते हैं, वे मनस्वी मननशील मनुष्य ही पुण्य-स्थान प्राप्त करते हैं; क्यों कि ब्राह्मणोंके वास्ते सबको ही शस्त्र ग्रहण करनेकी विधि है। हे युधिष्ठिर ! ऐसा हो क्यों; यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या, अनशन और अग्नि प्रवेशकारी पुरुषोंसे ब्राह्मणोंके हितैषी पुरुष उत्तम गति प्राप्त करते हैं। इसी भांति ब्राह्मणोंके वास्ते क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंके वास्ते शस्त्र ग्रहण करनेसे ये दूषित नहीं होते, और लोग ऐसा समझते हैं, कि उनके वास्ते प्राण त्यागी होनेपर उससे बढ़के कोई भी धर्म्म नहीं होसकता। मनुने कहा है कि जो सब साधारणकी रक्षाके वास्ते युद्धरूपी यज्ञमें निज शरीरकी आहुति देते और ब्राह्मणोंके द्वेषी लोगोंको दमन करते हैं, उन्हें नमस्कार है, क्यों कि वे लोग वैसे कार्य्योंसे निज मङ्गल और हम लोगोंको सलोकता प्राप्त तथा ब्रह्मलोक और स्वर्गलोकको जय करनेमें समर्थ होते हैं। और भी जैसे मनुष्य लोग अश्वमेध यज्ञके अवभृत स्नानसे पवित्र होते हैं और उनके सब पाप दूर होते हैं। वैसे ही युद्धमें मरा हुआ पुरुष भी पवित्र होता और उसका पाप दूर होता है। हे राजन् ! देशकालके व्यतिक्रम होनेसे उस देशकालके अनुसार ही धर्म्माधर्म्मका भी व्यतिक्रम अर्थात् धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म हुआ करता है। देखिये, उतङ्ग और पराशर आदि महर्षि लोगोंने क्रूर कर्म्म करके भी उत्तम स्वर्गको जय किया है और धर्म्मात्मा क्षत्रिय लोग पाप कर्म्म करके परम-गतिको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मण लोग आत्मरक्षा वर्णदोष और दुष्टोंको नाश करनेके वास्ते सब समयमें ही शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं, उसमें उन्हें दोष नहीं होता।

युधिष्ठिर बोले, हे राजसत्तम ! डाकुओंके दल प्रजा पालनके निमित्त तैय्यार होके, वर्णसङ्कर अर्थात् परस्पर स्त्रीहरण आदि कार्य्योंमें प्रवृत्त होंय और सब लोगोंके सब भांतिसे मूढ़ होनेपर यदि दूसरा कोई बलवान क्षत्रिय डाकुओंके दलको नष्ट करे; तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके बीच राजधर्म्म अनुसार दण्ड धारण करके प्रजा समूहकी रक्षा करे, तो वह पुरुष राजकार्य्य करनेके कारण सबका स्वामी हो सकता है, वा नहीं ? और उस सम्बन्धके क्षत्र-बन्धुके अतिरिक्त दूसरे शस्त्र ग्रहण कर सकेंगे, वा नहीं ?

भीष्म बोले, जो अपार पारावारके पार अर्थात् तीर स्वरूप और नौकाहीन समुद्रमें नौका स्वरूप होते हैं, वे शूद्र अथवा चाहे कोई वर्ण क्यों न होवें, न समाजके बीच सब भांतिसे सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। हे राजन्! अनाथ-मनुष्य डाकुओंसे पराजित अथवा पीड़ित होकर जिसका आसरा ग्रहण करके सुख पूर्व्वक निवास करते हैं, वे सब कोई निज बान्धवोंकी भांति उस रक्षा करनेवालेकी प्रीतिके सहित पूजा किया करते हैं; क्यों कि अभयदाता अनाथ मनुष्योंसे सदा सम्माननीय हुआ करता है। हे कौरव! जो बैल बोझा ढोनेमें असमर्थ और जो गऊ दूधदानसे रहित, जो स्त्री पुत्र प्रसव करनेसें अशक्य, और जो राजा प्रजापालन करनेमें असमर्थ होता है, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। हे पार्थ! जैसे काठके हाथी, चमड़ेके मृग, कायर पुरुष और ऊषर-खेत निष्फल हैं; वैसे ही जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते, जो राजा प्रजा-पालन नहीं करता और जो बादल जलकी वर्षा नहीं करते उन सबको भी उसी भांति निष्फल समझना चाहिये। जो सदा साधुओंकी रक्षा करते और दुष्टोंको दमन करते हैं, उन्हें ही राजा बनाना उचित है, क्यों कि वैसे पुरुष ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ होते हैं।

७८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ पिता-मह! ऋत्विग्योंके कर्त्तव्य कर्म्म क्या है और उन लोगोंके स्वभाव तथा गुण कैसे होने उचित हैं? वह विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, छन्द, ऋक्, यजु, साम और श्रुत अर्थात् मीमांसा शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण लोग राजाओंके प्रति-कर्म्म अर्थात् शान्तिक पुष्टिक आदि कर्म्म करें; यही उन लोगोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। और उन लोगोंका ऐसा स्वभाव होवे, कि वे लोग बीर पुरुषोंके ऊपर सदा अनुरागी होके प्रिय बचन कहें; आपसमें सुहृद-आचरण और सबको समभावसे देखें। इसके अतिरिक्त ऋत्विक लोग अनृशंस, सत्य-वादी, अर्थ-प्रयोगसे हीन-सरल, परोपकार रहित, अभिमानहीन, लज्जा, तितिक्षा, दम और शम गुणसे युक्त, बुद्धिमान, सत्यब्रतमें निष्ठावान, धर्म्मात्मा, जीव हिंसासे रहित, काम क्रोधहीन, निर्दोष, श्रुत, वृत्त और वंशसे युक्त, अहिंसक तथा ज्ञानसे तृप्त;—ऐसे गुणोंसे युक्त होनेपर वे लोग ब्रह्मासन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे और यथा योग्य माननीय तथा धन आदि-कोंसे पूजनीय होंगे।

युधिष्ठिर बोले, यज्ञमें दक्षिणा देनेके वास्ते वेदमें जो बचन कहे गये हैं, उसमें "इस परि-माणसे देना होगा," ऐसा कोई नियम नहीं निश्चित हुआ है। उसके वास्ते बारह सौ दक्षिणा बिधान करनेवाला यह शास्त्र धन-बिभागके अभिप्रायसे नहीं कहा गया है, परन्तु आप-धर्म्मके अनुसार सर्व्वस्व दक्षिणाकी विधि वर्णित हुई है। ऐसा होनेसे शास्त्रका यह शासन अत्यन्त भयङ्कर है, उसमें समर्थ और असमर्थ बोधकी सम्भावना नहीं है, इससे ऐसा होनेसे दरिद्रोंके भी यज्ञादि न हो सकते। श्रद्धावान पुरुष यज्ञ करें, ऐसी ही वैदिक श्रुति है; परन्तु, प्रकृत-दक्षिणा गऊ, उसमें अनुकल्प चरु दान करनेसे वह मिथ्या होता है, वैसे मिथ्या-दक्षिणा युक्त यज्ञमें श्रद्धा क्यों करेंगे?

भीष्म बोले, वेद वाक्यमें अवज्ञा, शठता और मायासे कोई कभी परम पद नहीं प्राप्त कर सकता, इससे तुम्हारी जिसमें ऐसी बुद्धि न हो। हे तात! दक्षिणा यज्ञका अङ्ग और वेदोंकी पुष्टि करनेवाली है; इससे दक्षिणा ही कदापि उद्धार करनेमें समर्थ नहीं

तात! दरिद्रके पूर्ण पात्र बारह सौ दक्षिणा होनेपर भी अधिक फलदायक है; इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको यथा रीतिसे यज्ञ करना अवश्य उचित है। वेदमें ऐसी धारणा है, कि सोम ब्राह्मणोंके निमित्त अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु है; परन्तु वे लोग यज्ञादिकोंके निमित्त उसे भी बेचने की इच्छा करते हैं, बिना कारणके ही बेचनेमें उन लोगोंकी प्रवित्ति नहीं होती। धर्मात्मा ऋषि लोग धर्म्मपूर्व्वक ऐसा ही ध्यान किया करते हैं, कि सोमरस बेचके प्राप्त हुए धनसे जो सोम-यज्ञ क्रय की जाती है, वह क्रमसे विस्तृत हुआ करती है। पुरुषके न्याययुक्त और शठता हीन होनेपर उसका ही सोम और यज्ञ पूर्ण होता है, परन्तु अन्याययुक्त होनेसे उसके ऐहिक और पारलौकिक कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होते। मैंने ऐसी जनश्रुति सुनी है, कि महात्मा ब्राह्मण लोग केवल शरीर-वृत अवलम्बन करके जो प्रणीता-ग्निमें यज्ञ आदि कर्म्म करते हैं, वह सब शुभ होता है। हे विद्वन्! इस प्रकार श्रेष्ठ श्रुति है, कि तपस्या यज्ञसे भी श्रेष्ठ है; इससे उस तपस्याका वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं, उसे मेरे समीप सुनो। पण्डित लोग अहिंसा, सत्य वचन अनृशंसता, दम और घृणा इन सबको ही तपस्या समझते हैं; परन्तु उपवास आदिसे शरीर सुखानेको वे लोग तपस्या रूपसे नहीं गिनते। वेदवाक्यको अप्रमाण, शास्त्रोंका वचन उल्लङ्घन और सर्व्वत्र अव्यवस्था करनेसे उससे आत्माका नाश होता है। हे पार्थ! यज्ञमें जैसे स्रुक् और घृत आदि सब वस्तु वर्णित हैं, अन्तरमें भी वैसे ही चित्ति अर्थात् जीव ब्रह्मको एकता रूपी साधन योगको स्रुक और चित्तको घृत रूपसे समझना होता है, इस ज्ञानका ही अत्यन्त पवित्र करके जाने। सब भांति की शठता ही मृत्यु की मूल अर्थात् अनित्य और सरलता ही ब्रह्मपद अर्थात् नित्य है, यही ज्ञानका विषय है, प्रलाप इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।

७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जबकि थोड़े कार्य्य भी अकेले सहाय रहित पुरुषसे सिद्ध होना कठिन है, तब अकेले राजासे सब कार्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होसकते; इसलिये राजा कैसे आचार और किस प्रकार स्वभाव युक्त पुरुषको मन्त्रीपद पर नियुक्त करे और कैसे लोगोंके ऊपर विश्वास तथा कैसे मनुष्योंका अविश्वास करे।

भीष्म बोले, हे राजन्! राजाओंके सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम ये चार भांतिके मन्त्री हुआ करते हैं; उनमेंसे जो राजाके समीप ऐसा स्वीकार करते हैं, कि इस शत्रुको हम दोनों ही मिलके नष्ट करेंगे और इस शत्रु राज्यको हम दोनों आपसमें विभाग करके ग्रहण करेंगे, वह सहार्थ हैं। जो पिता पिता-महके क्रमसे विद्यमान रहते हैं, वह भजमान हैं। मातृ स्वस्रो आदि सहज; जो धर्म्मात्मा, पक्षपात रहित, दानोंके निकट वेतन लेने की इच्छासे कपटता नहीं करते और धर्म्मके पक्ष-पाती होकर धर्म्ममार्गमें ही विद्यमान रहते हैं, वे राजाओंके कृत्रिम मित्र होते हैं। जो विषय राजाको अभिलषित नहीं है, उसे मित्र लोग उसके समीप कदापि प्रकाशित न करें, क्यों कि विजयी राजा लोग धर्म्म और अधर्म्म सहित भ्रमण किया करते हैं। पहिले कहे हुए मित्रोंके बीच भजमान और सहज मित्र ही श्रेष्ठ हैं; ये लोग कार्य्य विशेषमें शङ्कायुक्त होते हैं; परन्तु सहार्थ और कृत्रिम मित्रका सदा शङ्कित रहना होगा। और सबको ही सदा शङ्का करनी उचित है, विशेष करके दुष्ट और कार्यके निग्रह आदि निज कार्य्योंका इसके

सम्मुख न करके स्वयं सिद्ध करना होगा। राजा मित्रोंकी रक्षा करनेमें कभी असावधानी न करे; क्यों कि सब लोग असावधान राजाका ही पराभव किया करते हैं। और राजाके असावधान चित्त होनेसे साधु पुरुष दुष्ट दुष्ट-लोग साधु; शत्रु लोग मित्र और मित्र शत्रु हुआ करते हैं। अस्थिर चित्तवाले पुरुषका कोई विश्वास नहीं करता, इससे जो कार्य्य मुख्य हैं, उसे प्रत्यक्ष ही सिद्ध करे। सबके ऊपर एकबारगी विश्वास करनेसे धर्म्म और अर्थका नाश होता है; और सर्व्वत्र अविश्वासकी अपेक्षा मृत्यु ही हितकारी है। अत्यन्त विश्वास ही अकाल मृत्युका कारण है। अत्यन्त विश्वास करनेसे ही विपदग्रस्त होना पड़ता है, क्योंकि जिसका अत्यन्त विश्वास किया जायगा, उसकी इच्छा रहनेसे ही जीवन रह सकता है; नहीं तो जीते रहनेकी आशा नहीं रहती। हे तात। इससे पुरुष विशेषका विश्वास और व्यक्ति विशेषका अविश्वास करना उचित है, यही नीतिकी गति है और इसे ही सदा लक्ष्य करना उचित है। जिसे समझे कि मेरे न रहनेपर यही राजा होगा; उससे सदा शङ्का करनी उचित है क्यों कि पण्डित लोग वैसे पुरुषको ही शत्रु समझते हैं। जो पुरुष अपने खेतका जल दूसरेके खेतमें गमन करेगा, ऐसा जानके इच्छानुसार बांधको दृढ़ताके सहित बांधता है और जलके अभावमें दूसरेकी क्षति होनेपर भी किसी प्रकार जलबाहर नहीं होने देता; और क्रमसे जल बढ़नेपर अत्यन्त जलसे अपनी क्षतिकी शङ्का करके बांध तोड़नेकी इच्छा करे उसे ही अतिमित्र समझना चाहिये। जो पुरुष राजाके अर्थ-वृद्धिसे तृप्त नहीं होता और धन-क्षय होनेसे अत्यन्त दुःखित होता है; पण्डित लोग उसे हो उत्तम मित्र कहा करते हैं। जिसे जाने कि, मेरे न रहनेपर यह पुरुष नहीं रहेगा, उसका पिताकी भांति विश्वास करे और स्वयं वृद्धि-युक्त होकर उसकी भी सब भांतिसे वृद्धि करे। जो पुरुष धर्म्मकर्म्मको क्षय होते देखके नित्य निवारण करता है, उस धर्म्म क्षयसे डरे हुए मनुष्यको उत्तम मित्र समझना चाहिये और जो उसके नाशकी इच्छा करे, वह उसका शत्रु गिना जाता है। जो मनुष्य व्यसनसे सदा डरता है और धनसे किसीका अनिष्ट नहीं करता; वैसे पुरुषके मित्र होनेपर उसे आत्म-सदृश समझे। जो पुरुष उत्तम रूप वर्ण और स्वरसे युक्त, तितिक्षा, असूयारहित; उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ और कुलसे युक्त होवे, उसे पहिले कहे हुए मित्रोंसे मुख्य जानना चाहिये जो मेधावी, स्मृतिमान, दक्ष, स्वाभाविक अनृ-शंसता और सम्मानित वा अपमानित होनेपर भी कभी किसीकी बुराई नहीं करते, वे ऋत्विक, आचार्य्य वा अत्यन्त प्रिय मित्र होनेपर भी यदि सेवक होकर तुम्हारे गृहमें निवास करें, तो उनका अधिक सम्मान करना होगा। वे तुम्हें परम मित्र और धर्म्मका स्वरूप जानेंगे और तुम भी उनका पिताकी भांति विश्वास करना। एक कार्य्यके दो वा तीन अधि-कारी होनेपर वे लोग आपसमें एक दूसरेके दोषोंको क्षमा नहीं करते; इससे एक कार्य्यमें एकसे अधिक अध्यक्ष नियत करना उचित नहीं है; क्यों कि प्राणियोंमें सदा परस्पर मतभेद हुआ करता है। जो पुरुष सत्कीर्त्तियोंके अग्रगण्य हुए हैं, जो नीतिके बाहर नहीं होते, जो समर्थ मनुष्योंके साथ द्वेष और अनर्थ आचरण नहीं करते, जो काम-क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर निज धर्म्म परित्याग नहीं करते और जो सब कार्य्योंमें दक्ष तथा पर्य्याप्तवादी हैं, वेही तुम्हारे मुख्य मित्र होवें। और भी जो लोग कुलीन उत्तम स्वभावसे युक्त, क्षमावान, अपनी बड़ाईसे रहित, शूर, आर्य्य, विद्वान, कार्य्याकार्य्य-विवेकमें निपुण, सब स्थित, सम्मानीय, संविभक्त, उत्तम

और सत्कर्म्म करनेवाले हैं, उन्हें सेवक पदवी पर नियुक्त करना उचित है। हे राजन्! ऐसे लोग सब प्रतिरूप अर्थात् आय-व्ययके हिसाब आदि कार्य्यों तथा सब मुख्य राज कार्य्योंके अधिकारी होनेसे कल्याणकी वृद्धि किया करते हैं। ये लोग सदा स्पर्द्धावान होकर निर्जनमें ही सब कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तथा आपसमें वार्त्तालाप करके सब प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं। हे महावाहो! मृत्युकी भांति जातिके लोगोंका सदा भय करना, क्योंकि जातिके लोग समीपमें पहुंची हुई मृत्युकी भांति सदा राजऋद्धिको नहीं सह सकते। परन्तु जाति सरल, मृदु वदान्य, लज्जाशील और सत्यवादी होनेपर कोई उसके नाशकी अभिलाष नहीं करते। जातिहीन मनुष्यको सुख नहीं होता, जातिसे रहित मनुष्य सबके ही अवज्ञाभाजन होते हैं और जाति हीन पुरुष ही शत्रुओंसे पराजित हुआ करते हैं। कोई दूसरेसे अवमानित होनेपर जाति ही उसके वास्ते आश्रय हुआ करती है और जाति ही जातिकी दूसरेसे पराभव देखके कभी नहीं सह सकती। कोई पुरुष बन्धु-बान्धवोंसे अपमानित होवे तो जातिके पुरुष अपनेको ही अवमानित समझते हैं; और बन्धु यदि सौ गुणोंसे बढ़ा होवे, तौभी उसे अल्प गुणवाला समझके अपनेको उससे अनेक गुणोंसे बढ़ा हुआ बोध करते हैं। जातिहीन मनुष्य किसीके ऊपर कृपा नहीं करते, जातिहीन मनुष्य किसीके समीप नत नहीं होते; जातिके बीच साधु और दुष्ट दोनों ही दीख पड़ते हैं। इससे वचन और कर्म्मसे सदा जातिके पुरुषोंका सम्मान, पूजा तथा प्रियकार्य्य करे; तनिक भी उनके साथ अनिष्ट आचरण न करे। उनके समीप सदा विश्वासीकी भांति अविश्वास भावसे वास करे और उनके सामान्य गुण दोषको निरूपण करके न देखे। हे राजन्! जो पुरुष प्रमाद हीन होकर इसी भांति निवास करते हैं; उनके सब शत्रु प्रसन्न होकर मित्रकी भांति व्यवहार करते हैं। जो पुरुष जाति और सम्बन्धीसमूहसे इसी प्रकार सदा स्थित रहते हैं, वे मित्र, शत्रु और मध्यस्थोंके निकट यशस्वी होकर बहुत समयतक निवास करनेमें समर्थ होते हैं।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पहिले कहे हुए स्वजनों और सम्बन्धियोंको इस प्रकार वशमें न कर सके तो मित्र भी शत्रु होजावें, इससे सबका चित्त किस प्रकार वशीभूत होगा?

भीष्म बोले, इस विषयमें पण्डित लोग श्रीकृष्ण और देवऋषि नारदके सम्वाद युक्त जिस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, उसे कहता हूं, सुनो। एक बार श्रीकृष्ण देवर्षि नारदसे बोले, हे नारद! अमित्र और मूर्ख मित्र, तथा चटु प्रकृतिवाले पण्डित सुहृदके निकट परम मन्त्र प्रकाशित करना उचित नहीं है। हे त्रिदिवङ्गम! इससे मैं तुम्हारे सब बल, बुद्धिको देखके तुम्हें ही उत्तम मित्र समझके कोई विषय कहता हूं और प्रश्न करता हूं। हे देवर्षि ऐश्वर्य्यवादके कारण जिसमें जातिके लोगोंको उपार्ज्जित वस्तुओंमेंसे आधा हिस्सा देना होगा और उन लोगोंके दुर्वचनोंको सहना पड़ेगा, इस प्रकार जातिकी सेवाको मैं कभी नहीं करता; तौभी जैसे पुरुष अग्निकी इच्छासे अरणी काठ मथते हैं, वैसे ही उन लोगोंके कहे हुए कठोर वचनसे मेरा हृदय सदा भस्म हुआ करता है। सङ्कर्षण बलसे, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न रूपसे मतवाले हुए हैं; इससे मैं आहुक और अक्रूरकी शान्तनाके असहाय हुआ हूं। इसके जो सब महाभाग, बलवान उत्साहयुक्त, सदा उन्नतिशाली पुरुष अन्धक और वृष्णिकुलमें विद्यमान हैं, वे जिस

ता समभते हैं, कि हम लोग जिस ओर होंगे ही पक्ष बलसे युक्त और हम लोग जिसके रुद्ध होंगे, वही पक्ष निर्ब्बल होगा । आहुक और अक्रूर दोनोंने मुझे निवारण किया है ; ससे मैं एक पक्षको नहीं स्वीकार कर सकता ं। इसके अतिरिक्त आहुक और अक्रूर दोनों ो पराक्रमी तथा कठिन कर्म्म करनेवाले हैं, ससे वे लोग जिस ओर रहेंगे, उसकी अपेक्षा ुखदायक कुछ भी नहीं है, और जिसको ोर न रहेंगे, उसे भी उससे अधिक दुःखका वषय कुछ भी नहीं हो सकता । हे महाबुद्धि-ान ! कितव अर्थात् जुवाड़ी पुरुषकी माताकी ांति मैं एककी जय और दूसरोंके पराजयकी च्छा करता हूं। हे नारद । मैं दोनों ओरसे दा इसी प्रकार क्लेश पाता हूं ; इससे इस वषयमें मेरा और जातिके लोगोंका जिसमें ल्याण हो, वह तुम्हें कहना उचित है ।

नारद मुनि बोले, हे वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए ष्ण ! आपदा बाह्य और अभ्यन्तर रूपसे दो कारकी है, वह स्वभाव तथा दूसरे कारणोंसे त्पन्न हुआ करती हैं। अर्थ, काम और वभत्स वचन-निबन्धनसे अक्रूर, और भोजप्र ाव सङ्कर्षण आदि सब लोग अक्रूरके अनुगत हुए हैं, इसहीसे यह अभ्यन्तर आपदा तुम्हें ःखदायक हुई है ; और तुमने निज ऐश्वर्य्य आहुकको दे रखा है, इसीसे ज्ञातिके बीच कोलाहल मचा है, वान्त अन्नकी भांति उसे भो तुम फिर नहीं ग्रहण कर सकते हो, इससे निज कर्म्मके दोषसे ही ऐसी आपद उत्पन्न हुई है। विशेष करके जाति भेदके भयसे अब तुम बभ्रु और उग्रसेनके राज्यको किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं कर सकते हो। यद्यपि तुम यत्नपूर्व्वक अनेक कठिन कार्य्योंको करके उसे साधन करो तो ऐसा होनेसे फिर महाक्षय व्यय और विनाश उपस्थित होगा । इससे तितिक्षा, ऋजुता, और मृदुतासे दोष दूर करके तथा यथायोग्य पूजा आदिसे प्रीति गुणके सहारे अनायास ही मृदु मर्म्मच्छेद शस्त्रसे सबकी जिह्वाका उद्धार करो ।

श्रीकृष्ण बोले, हे मुनिवर ! तितिक्षा आदि ऐसे दोषोंको दूर कर और यथा उचित पूजासे प्रीति गुण सिद्ध करके जिस भांति जातिके पुरुषोंकी जिह्वा उद्धार करनी होती है। वह मृदु अनायास शस्त्र क्या है ?

नारद मुनि बोले, सामर्थ्यके अनुसार सदा अन्नदान, तितिक्षा, सरलता, कोमलता और यथा योग्य दूसरेकी पूजा इन सबको ही अनायास शस्त्र जानना चाहिये। तुम मीठे बचनसे लघु, और कटुवादी जातिके पुरुषोंके कुटिल अभिप्राय कुवाक्य और दुष्ट सङ्कल्पोंको नष्ट करो। और महापुरुषके अतिरिक्त कोई असहायवान तथा असावधान पुरुष उद्योगी होकर बड़े भारको उठानेमें समर्थ नहीं होता । इससे तुम निज वक्षस्थल पर उस भारको ग्रहण करो। देखो, समतल स्थानमें सब अनगन ही गुरुभार उठा सकते हैं ; परन्तु कठिन स्थानमें भलीभांति दृढ़ अङ्गसे युक्त अनड्वानके अतिरिक्त सब ही कठिनतासे उठाने योग्य भारको नहीं ढो सकते। हे कृष्ण ! तुम सबके मुखिया हो, ज्ञाति भेद होनेसे सबका ही नाश होगा ; इससे ये जातिके लोग तुम्हारा आसरा करके जिसमें नाश दशाको न प्राप्त हों, वही उपाय करो। बुद्धि, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह और धन त्यागके अतिरिक्त बुद्धिमान पुरुषमें कोई गुण नहीं रहते। हे कृष्ण ! इससे जिसमें धन, यश, आयु और सदा स्वपक्षकी बढ़ती हो तथा जातिके पुरुषोंका नाश न होवे, वही करो। हे प्रभु ! आयति, तत्काल यात्रा और यान विधिमें षाड्गुण्य-विधानके कारण तुमसे कुछ भी नहीं छिपे हैं, हे महाबाहो माधव ! यादव, कुकुर, भोज, अन्धक वृष्णि और दूसरे लोकपाल तथा ऋषि लोग तुममें अनुरक्त होकर तुम्हारी वृद्धिकी अभिलाषा करते हैं। तुम

योंके गुरु हो; तुम्हीं प्राणियोंके भूत भविष्य सब विषयोंको जानते हो; तुम यदुकुलमें श्रेष्ठ हो; इससे यदुवंशी लोग तुम्हें प्राप्त करके ही सुख भोग कर रहे हैं।

८१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! मैंने जो कुछ कहा, वह राजाओंकी प्रथम वृत्ति है, इसके अनन्तर दूसरी वृत्ति कहता हूं सुनो। हे भरतकुल अवतंस! कोई मनुष्य धन उपार्ज्जन क्यों न करें; राजा उसे सदा सर्व्वदा रक्षा करे। हे युधिष्ठिर! सेवकोंके राजभण्डार हरने और नष्ट करने पर जो कोई मनुष्य वह वृत्तान्त राजासे कहे, राजा निर्ज्जन स्थानमें उसका वह बचन सुने और सेवकोंसे रहित स्थानमें उसका वह बचन सुने और सेवकोंसे उसकी रक्षा करे; क्योंकि धन हरनेवाले सेवक लोग सबका ही नाश किया करते हैं। हे नरनाथ! कालक-वृक्षीय मुनिने कौशल्यसे जो वृत्तान्त कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें भी उस प्राचीन इतिहासको वर्णन किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि कालक-वृक्षीय मुनिने कौशलाधिपतिकी सेवकोंके दोष देखनेके निमित्त बारबार प्रवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे पिञ्जरेके भीतर एक कौवा बन्द करके क्षेमदर्शी कौशलाधिपतिके सम्पूर्ण राज्यमें घूमते हुए राजाके समीप आके बोले,—मेरा कौवा सब विद्या पढ़ा है, इससे यह भूत, वर्त्तमान और भविष्यति आदि सब कहा करता है। उन्होंने ऐसा ही कहते हुए अनेक पुरुषोंके सङ्ग राज्यमें भ्रमण करके राज कार्य्यमें नियुक्त सेवकोंका स्वामि- द्रव्य हरण रूपी पाप देखा। अनन्तर उन्होंने उस राज्यके समस्त व्यवसाय और राज कार्य्यमें नियुक्त सब सेवकोंको स्वामि द्रव्य हरनेवाला जानके मैंने सब जान लिया है, ऐसा ही कहते कहते राजासे भेंट करनेके वास्ते कौवा लेकर समीप आगमन किया। मुनिने क्षेमदर्शी ल्यके निकट आके उनके सम्मुख कौवाके नके अनुसार अलंकृत राज मन्त्रीसे बोले, तुमने अमुक स्थानमें इतना धन हरण है; और जिस राजकोषको हर रहे हो, अमुक अमुक पुरुष जानते हैं, यह कौवा बचन कहता है; इससे तुम शीघ्र उसे देखो। अनन्तर मुनिने मन्त्रियोंसे ऐसा कहके उस स्थानमें दूसरे राजपुरुषोंसे कहा, तुम लोग भी जो राजकोष हरनेवाले हो, कौवे बचनके अनुसार उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं; क्योंकि इस कौवेका मिथ्या वचन मैं कभी भी नहीं सुना है। हे कुरुकुल धुरन्धर! कालक वृक्षीय इसी भांति कौशल्यके यथा योग्य तिरस्कार करके सन्ध्याके निद्रित हुए; तब सब राजपुरुषोंने बाणसे उनके कौवेको विद्ध किया। अनन्तर बहुत भोरके समय उठकर ब्राह्मणने पिञ्जरे कौवाको बाणसे विद्ध देखके क्षेमदर्शी कहा। हे राजन्! आप स्वामी और धनके ईश्वर हैं; इससे आपके समीप में अभ प्रार्थना करता हूं। महाराज! आपकी आज्ञा सेही मैंने सब भांतिकी शक्ति और यत्नसे तुम्हारे समीप आके आपके हितकर कहा था, उससे अपने मित्रके नष्ट होनेसे अत्यन्त दुःखित हुआ हूं। उत्तम घो सिखानेवाले सारथीकी भांति यदि मित्रको प्रवोधित करनेकी अभिलाषासे रहित होके तुम्हारा यह धन हरण हुआ ऐसा वचन कहे और मित्रके हितके वा अत्यन्त क्रुद्ध होके हितसाधनमें प्रवृत्त हो; ऐसा होनेपर नित्य ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवा स्वजन पुरुषको वैसे मित्र और उसके वचन क्षमा करना उचित है। परन्तु असावधा होके दूसरेसे वैसे मित्रको नष्ट कराना उचि

नहीं है। क्षेमदर्शी कालक-वृक्षीयका ऐसा वचन सुनके बोले, मैं अपने हितकी इच्छा किया करता हूं। इससे मेरे हितके वास्ते आप मुझे जो कुछ कहेंगे, उसे मैं क्यों न क्षमा करूंगा।

हे ब्राह्मण! आप इस विषयमें जो कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे कहिये। हे विप्र! मैं आपके समीप यह प्रतिज्ञा करता हूं, कि आप मुझे जो कहेंगे, मैं आपकी वह इच्छा सफल करूंगा।

कालक-वृक्षीय मुनि बोले, महाराज! मैंने आपके सेवकोंका दोषादोष और उनसे अपनेको भय प्राप्त होना मालूम करके उनका अवसर आपसे कहनेके वास्ते भक्तिपूर्व्वक आपके समीप आगमन किया था; वह मेरा उचित कार्य्य नहीं हुआ है; क्योंकि इस ही कारण पहिले समयमें पूर्व्व-आचार्य्योंने राजसेवक पुरुषोंका इस प्रकार दोष कहा है, कि जो लोग राजसेवा करते हैं, उन लोगोंकी ऐसी पापजनक अगतीक गति अर्थात् अनुपायु मनुष्यकी भांति गति हुआ करती है। और भी पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजाके साथ जो लोग आसक्त होते हैं, उनको विषधारी सर्पके साथ आसक्त होना समझा जाता है, क्योंकि बहुतसे मित्र और अनेक शत्रु राजाओंके समीप विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! इससे राजसेवा करनेवाले पुरुष राजकीय मित्र, शत्रु और राजाका सदा भय करें। हे राजन्! राजाके समीप एकबारगी प्रमाद करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता, इससे राजाके निकट ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कभी प्रमाद करना उचित नहीं है; क्यो कि सेवकके प्रमादसे राजा क्षुभित होता है, राजाके ढिलाईसे उसके जीवनमें संशय उत्पन्न होता है। जलती हुई अग्निमें पड़नेवाले पुरुषकी भांति राजाके समीप स्थित पुरुषका भी जीवन नष्ट हुआ करता है। इससे पुरुष सदा जीनेकी आशा त्यागके क्रुद्ध सर्पकी भांति प्राणधनके स्वामी राजाके निकट गमन करें, और राजाकी समीप कुबचन कहना, दुःखित भावसे स्थित होना, कुस्थानमें निवास निन्दित रीतिसे बैठना दुष्टताके सहित गमन करना, इङ्गित और अङ्गचेष्टित इन सब कार्य्योंमें सदा शङ्का करे। हे राजन्! यमने ऐसा कहा है, कि राजा प्रसन्न होनेसे देवताकी भांति सब अर्थ सिद्ध करता और क्रुद्ध होनेसे अग्निकी भांति जड़ सहित भस्म करता है; इससे जो पुरुष राजाके निकट यथा नियमसे निवास करेगा मैं उत्तरोत्तर उसकी समृद्धिकी बढ़ती करूंगा। महाराज! मेरे समान सेवकही आपदकालमें बुद्धिकी सहायता प्रदान किया करते हैं, मेरा कौवा जैसा कार्य्यकारी था, मैं भी तैसा ही कार्य्य कर सकता हूं, परन्तु तुम्हारे सेवक लोग कौवेकी भांति मुझे भी नष्ट करेंगे ऐसा ही मुझे सन्देह होरहा है। मैं इस विषयमें आपकी निन्दा नहीं करता, परन्तु आप जो सेवकोंके प्रियपात्र नहीं हैं, वही कहता हूं। इसके अनन्तर आप हिताहितका विचार करके अपने सम्मुख हो सब कार्य्योंकी सिद्ध कीजियेगा, महाराज! आपके गृहमें कोष हरण करनेवाले जो सब सेवक निवास कर रहे हैं, प्रजाके अमङ्गलकी इच्छा करनेवाले उन्हीं सब सेवकोंने मुझसे शत्रुताचरण किया है, और जो आपके अभावमें राज्य प्राप्त करेगा, उसने आपके प्राण नाशके वास्ते रसोई बनानेवालोंके जरिये अन्नादिकोंमें बिष डालनेकी इच्छाकी है, आप यदि सावधान न होंगे, तो उन लोगोंकी वह अभिसन्धि सिद्ध होगी। महाराज! मैंने उन लोगोंके डरसे दूसरे आश्रममें गमन करनेकी इच्छाकी है। उन लोगोंने मेरे वास्ते जो बाण चलाया था, उससे मेरा कौवा मरा है। मै निष्कामी और वे लोग ८६

इससे उन लोगोंने ही जो मेरे को

रोमें भेजा है, उसी में तपमय बड़े नेत्रसे स्पष्ट-रूपसे देख रहा हूं। हे राजन्! स्थाणु, अश्म और कांटेसे युक्त, सिंह और बाघोंसे परिपूरित, भयङ्कर और दुःखसे प्रवेश करने योग्य गुफाकी भांति अनेक मकर, मच्छ और घड़ियालोंसे घिरे हुए, तिमिङ्गिल समूहसे परिपूर्ण यह राजनीति रूपी महानदीसे, मैं तकिया रूपी नौकेके जरिये पार हुआ हूं। महाराज! दीपकसे अन्धार युक्त किला और नौकासे पुरुष जलदुर्गके पार हो सकता है, परन्तु पण्डित लोग भी राज दुर्गके पार होनेकी उपाय निश्चय नहीं कर सकते। आपका राज्य अन्धकारकी भांति तम युक्त अर्थात् धर्म्माधर्म्म रहित और अत्यन्त अगम है; अतएव आप जब इसमें विश्वास करनेमें समर्थ नहीं होते, तब मैं किस प्रकार विश्वास करूंगा। इस राजत्रमें जब पाप और पुण्य दोनों ही समान हैं, तब इस स्थानमें वास करना कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि स्थलमें सुकृत और दुष्कृत दोनोंका ही निश्चय विनाश होगा। दुष्कृतका विनाश ही न्याय है; इससे इस स्थानमें स्थिरभावसे निवास करना युक्ति नहीं है; इससे जो पण्डित है; वे इस स्थानसे शीघ्र ही भाग जावे। हे राजन्! जिसमें सब नौका डूब जाती हैं, उस सीता नाम्नी नदीकी भांति आपकी यह राजनीति सर्व्वघातिनी वा गुरा रूपसे मुझे मालूम होरही है। हे राजन्! आप मधु प्रतापके समान परन्तु भोजनमें विषकी भांति हैं; आपके अभिप्राय मिथ्याकी भांति हैं, सदभिप्राय आपमें कुछ भी नहीं है; इससे आप मुझे सर्पसे युक्त कूएंकी भांति मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! आप दुर्गम तीर्थ युक्त बड़े किनारे तथा बत संयुक्त मीठे जलसे परिपूरित नदी और कुत्ते, गिद्ध तथा शियारोंसे घिरे हुए राज हंसकी भांति मालूम होरहे हैं। महाराज! कक्ष अर्थात् लता आदि सब महावृक्षोंके आसरेसे बढ़के उसे आवरण करते हुए क्रमसे उस वृ अतिक्रम करके बढने पर भी प्रचण्ड द लगनेसे महाकक्षके सहित जैसे वह वृक्ष हो जाता है, वैसे ही कक्ष तुल्य सेवकोंसे आप भी नष्ट होंगे; इससे आप उन सेव परीक्षा करिये, आप ही उन लोगोंको पदवी पर नियुक्त करके प्रतिपालन कर हैं; परन्तु वे लोग आपकी अभिसन्धान तुम्हारे सब इष्ट विषयको नष्ट करनेकी लाषा करते हैं। इसही कारण मैं स राजाके समस्त स्वभावके जाननेकी इच्छा प्रमादकी सब भांतिसे रक्षा करते हुए युक्त गृह और बीर पत्नीके स्थानकी भांति राज शङ्कित चित्तसे निवास करता हूं। राज सत्तम! राजा जितेन्द्रिय है, वा नहीं इसने कामादिकोंको जय किया है वा न यह सेवकोंको प्रिय है, या नहीं और सब इसे प्यारी है, वा नहीं? यह सब जाननेके वास्ते मैंने आपके समीप आगमन किया हे राजन्! भूखे पुरुषके भोजनीय वस्तुकी आप मेरे अभिलषित हुए हैं; परन्तु आ सेवक लोग प्यास रहित पुरुषके वास्ते व भांति मेरे अनभिलषित हुए हैं। आप यह जान रखो, कि इस ही कारण वे लो आपका अर्थकारी हूं,"—ऐसा दोष मेरे आरोपित कर रहे है; दूसरा कोई कार मुझमें विद्यमान नहीं है। मैंने उन लो कुछ भी अनिष्ट आचरण नहीं किया है; जब वे लोग मेरे दोषदर्शी हुए हैं। त मुझे इस स्थानमें निवास करना उचित है; क्यों कि पूंछ दाबनेसे क्रुद्ध हुए भांति दुष्ट चित्तवाले शत्रुओंसे सदा शङ्का व उचित है।

राजा बोले, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं बड़े परिहार स्वीकार करके अधिक आदरके स आपकी पूजा करता हूं; आप मेरे गृहमें

दिनों तक निवास कीजिये। हे ब्राह्मण! मेरे सेवकोंके बीच जो लोग आपके साथ अनुकूल आचरण नहीं करेंगे, वे मेरे गृहमें न रहने पावेंगे। अनन्तर इन लोगोंकी जैसी दशा होगी उसे आप ही जान सकेंगे। हे भगवन्! जिससे दण्ड उत्तम रीतिसे धारण और सुकृत कर्म्म भली भांति सिद्ध हों, उस विषयमें विशेष समालोचना करके कल्याणके वास्ते मुझे नियुक्त कीजिये।

मुनि बोले, पहिले कौवाके बधके कारण यह दोष देखकर एक एक सेवकोंको क्रमसे निर्बल अर्थात् ऐश्वर्य्य च्युत कीजिये। अनन्तर कौवाके बधका वृत्तान्त विशेष रूपसे जानके एक एक करके उन लोगोंका बध करिये। हे राजन्! बहुतसे मनुष्य एक ही दोषसे दूषित होने पर सब कोई मिलके अत्यन्त तीक्ष्ण काँटेको भी कोमल किया करते हैं; इससे यदि मन्त्रभेद होवे, इस ही कारण मैं आपसे ऐसा कहता हूं। मैं ब्राह्मण जाति स्वभावसे ही दयालु हूं; इससे हमारा दण्ड अत्यन्त कोमल है; अपनी भांति दूसरेका तथा आपके मङ्गलकी अभिलाषा किया करता हूं। हे राजन्! आपके सङ्ग मेरा जैसा सम्बन्ध है, आपको उसका परिचय देता हूं; मेरा नाम कालकवृक्षीय कहके प्रसिद्ध है। मुझे सत्यप्रतिज्ञ समझके तुम्हारे पिता मेरा मित्रके समान सम्मान करते थे, जब वे परलोकको गये, उस समय मैं सब कामना त्यागके तपस्या कर रहा था। अनन्तर आपका राज्य विपदग्रस्त होनेसे मैं यहां आया हूं, और उस ही प्रीतिके कारण आपको बार बार यह वचन कहता हूं, इससे अब आप अनाप्त पुरुषमें आत्म बुद्धि न कीजिये। आपने इच्छानुसार राज्य लाभ किया है और सुख दुःख दोनोंको ही विद्यमान देख रहे हो, तौभी क्यों इस प्रकार सेवकोंके ऊपर राज्य भार सौंपकर प्रमादग्रस्त होते हो? हे राजन्! पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजकुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय और पुरोहित कुलमें पैदा हुए उत्तम ब्राह्मणको ही यत्न पूर्वक सेवक पदवी पर प्रतिष्ठित करे।

हे युधिष्ठिर! कालक वृक्षीय मुनि इसी भांति यशस्वी कौशल्यके समुद्र सहित सब पृथ्वीको एकछत्री करके अत्यन्त उत्तम यज्ञादि कार्य्य किया और कौशल्यराज उनका वैसा हितकर बचन सुनके पृथ्वी जय करके उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने लगे।

८२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! कैसे पुरुष राजाके सभासद, सहायक सुहृद परिच्छद और सेवक होंगे?

भीष्म बोले, हे भारत! जो लोग लज्जाशील, जितेन्द्रिय, सत्य और सरलतासे युक्त तथा प्रिय और अप्रिय वचनको पूरी रीतिसे कहनेमें समर्थ हैं, वैसेही पुरुषोंको तुम सभासद करना। हे कौन्तेय! जो सदा समीप रहते, पराक्रमी अत्यन्त ही अवश्य शक्तिसे युक्त, सन्तुष्ट, ब्राह्मण और सब कर्म्मोंमें महोत्सवसे सम्पन्न है, उन्हें ही आपदके समय सहायक बनाना। जो कुलीन, सदा सम्माननीय निज शक्तिको छिपाते नहीं और प्रसन्न, अप्रसन्न, पीड़ित वा मरे हुए सेवकोंको सब भांतिसे आवर्त्तित करते हैं, उन्हें ही सुहृतमित्र समझो। जो कुलीन, स्वदेशज, बुद्धिवान, रूपवान, बहुश्रुत, प्रगल्भ और अनुरक्त हैं, उन्हें ही परिच्छद कार्य्यमें नियुक्त करे। हे तात! जो लोग दुष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए, लोभी, नृशंस और निलज्ज हैं, वे लोग जब तक गीलाहाथ अर्थात् धनवान रहोगे, तभीतक सेवा करेंगे रूंखे हाथ होने पर उस ही समय टेढ़े होकर फिर तुम्हारी सेवा न उन्हें परिच्छद कार्य्यपर नियत

नहीं है; और जो लोग कुलीन, सत्स्वभाव युक्त, इङ्गितज्ञ, निठुरतारहित; देश, काल और उपाय जाननेवाले तथा स्वामि-कार्य्य हितैषी हैं, उन्हें सब कार्य्योंमें सेवक बनाना। जिन्हें प्रियपात्र समझके अर्थ, मान, दिव्यवस्त्र और पान आदि दान तथा सत्कार आदि अनेक भांतिके भोगसे प्रतिपालन करे; वेही अर्थ और सुख भोगी होंगे।

हे युधिष्ठिर। जिसकी चित्तवृत्ति किसी प्रकार विचलित नहीं होती और जो लोग विद्वान् सद्वृत्त, व्रत करनेवाले, सत्यवादी, और अक्षुद्र हैं, वेही नित्यार्थी अर्थात् सदा स्वामीकी अर्थ चिन्ता करते और आपदकालमें स्वामीको कभी नहीं त्यागते। और जो अनार्य्य, अधार्म्मिक, मन्दबुद्धि तथा मर्य्यादाहीन हैं, उन लोगोंके निकट समय अर्थात् धर्म्माधर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करे। सबके बीच अन्यतर ग्रहण करना हो, तो गण परित्याग करके एक पुरुषके ग्रहण करनेकी इच्छा न करे; परन्तु एक पुरुष गण अर्थात् सबमें मुख्य होनेपर समूहको त्यागके भी एक पुरुषको ग्रहण करना उचित है। जो उत्तम कीर्त्ति और युद्धमें स्थित होके विक्रम दिखाते हैं, उसेही उनका साधु लक्षण समझे। और जो समर्थ पुरुषका सम्मान करते, स्पर्द्धा-हीन पुरुषके विषयमें स्पर्द्धा नहीं करते, काम, क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर धर्म्म नहीं त्यागते, तथा अभिमान रहित, सत्यवादी, क्षमा-शील, जितात्मा, मानी और सब अवस्थामें ही परीक्षायुक्त हैं, वेही तुम्हारे मन्त्र सहायक होवें। हे पार्थ! जो कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, क्षमाशील, पटु, ऊंचे चित्त, शूर, कृतज्ञ और सत्य धर्म्मसे युक्त हैं, वेही साधु हैं; क्यों कि यही सब गुण साधुओंके लक्षण कहके प्रसिद्ध हैं। राजन्! इसी भांति बुद्धिमान पुरुष यदि राजाके निकट विद्यमान रहें, तो शत्रु भी होके मित्रकी भांति व्यवहार किया करते हैं; इससे जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् भूति-काम राजा ऐसे सेवकोंके अतिरिक्त अन्य सेवकोंके समस्त गुण दोषोंकी परीक्षा करे। हे राजन्! उन्नति शील, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले राजा लोग आत्मीय, कुलीन, स्वदेशीय, स्रक् चन्दन आदि विषयोंके वशमें न होनेवाले, व्यभिचार रहित और भलीभांति परीक्षा किये हुए पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और अत्यन्त श्रेष्ठ योनिसे उत्पन्न हुए वेद जाननेवाले, परम परागत और अभिमानरहित मनुष्योंकोही मन्त्री करे जिसमें बुद्धि विनय युक्त, उत्तम स्वभाव, तेज, धीरत्व, क्षमा, पवित्रता, अनुराग, मर्य्यादा और धारणा ये सब गुण विद्यमान हैं, राजा उन लोगोंके ऊपर कहे हुए गुणोंकी सदा परीक्षा करके मजबूत, धुरन्धर, कपट रहित पांच पुरुषोंको अर्थ कार्य्य पर नियुक्त करे।। हे राजन् जो लोग पर्य्याप्तवादी, वीर, प्रतिपत्ति विशारद, कुलीन, सत्यसे युक्त, इङ्गितज्ञ, निठुरता रहित, देश काल और उपायके जाननेवाले तथा स्वामि कार्य्य हितैषी हैं; राजा उन्हें सब कार्य्योंमें ही मन्त्री करे। हे राजन्! जो पुरुष तेजरहित मित्रके साथ सम्बन्ध रखता है, वह कभी कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विषयकी निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता; बल्कि सब कार्य्योंमें ही संशय उत्पन्न किया करता है, इससे राजा ऐसे मनुष्यको कभी अपना मन्त्री न करे। और श्रुत मनुष्य उत्तमकुलमें उत्पन्न और धर्म्म, काम इस त्रिवर्गसे युक्त होनेपर भी वह मन्त्र परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता; इससे उसे सेवक पदपर नियत करना उचित नहीं है, और नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छे प्रकार बहुश्रुत होनेपर भी अनायक अन्धेकी भांति सूक्ष्मकर्म्ममें मोहित हुआ करता है; इससे राजा उसे सेवक पदपर नियुक्त न करे। अस्थिर सङ्कल्पवाला पुरुष बुद्धिमान, शास्त्रवित और उपाय जाननेवाला होनेपर भी बहुत समय तक कार्य्य

सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता। इस संसारमें जो नीच बुद्धि मनुष्य कर्म्मके विशेष फलको न जानके केवल मात्रकर्म्म करते हैं, उनकी सलाह नहीं ग्रहण की जा सकती। विरक्त मन्त्रीका विश्वास करना युक्तियुक्त नहीं है, इससे विरक्त मन्त्रीके समीप कभी विचार प्रकाश न करे; क्यों कि जैसे अनिल वृक्षके छिद्रसे प्रवेश करके अग्निकी भांति उसे भस्म करता है, वैसे ही वह कपटी मन्त्री दूसरे मन्त्रियोंके साथ मिलके राजाको दुःखित किया करता है। स्वामी कभी क्रुध होके मन्त्रीको स्थानसे च्युत करता, अथवा वचनसे निन्दा करके फिर उसके ऊपर प्रसन्न हुआ करता है; परन्तु अनुरक्त मित्र ही स्वामीके वह सब उपद्रव सह सकते हैं; और विरक्त मित्र उसे किसी प्रकार नहीं सह सकता वल्कि उसका क्रोध वज्र-शब्दके समान होता है जो मन्त्री राजाके प्रिय-कामनासे उसके उन सब उपद्रवोंको नष्ट कर सकता है, राजा समान सुख दुःख भागी उस ही मनुष्यसे अर्थ विषयमें सलाह प्रश्न किया करता है।

हे राजन्! सरलता-रहित मनुष्य इतर गुणोंसे युक्त होनेपर भी राजाके विचारको सुनने योग्य नहीं होसकते जो मनुष्य शत्रुसे सम्बन्ध करके पुरवासियोंका आदर नहीं करता वैसा पुरुष शत्रुसमान गिना जाता है और वह सलाह सुननेके योग्य नहीं है। मूर्ख, अपवित्र, लुब्ध, शत्रुकी सेवा करनेवाले, अपनी बड़ाई करनेवाले, अमित्र, क्रोधी और लोभी ये सब राजाके मन्त्रणा सुननेके योग्य नहीं होसकते। आगन्तुक पुरुष अनुरक्त, बहुश्रुत, सत्कृत और संविभक्त होनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। पहिले जिसका पिता अधर्म्म आचरणके वशमें होकर कुस्वभावसे युक्त हुआ है, वह पुरुष सत्कृत और स्थापित होनेपर भी विचार सुननेके योग्य नहीं होसकता। जो पुरुष तनिक कार्य्यके वास्ते सुहृदका सर्व्वस्व हरके उसे निर्द्धन करता है, वह दूसरे अनेक गुणोंसे युक्त रहनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। और जो मनुष्य कृतज्ञ, मेधावी, पण्डित, जनपदवासी, परम पवित्र और सब कार्य्योंमें शुद्धतायुक्त हैं, वे पुरुष ही राजाके विचारको सुननेके योग्य होसकते हैं। जो पुरुष ज्ञान, विज्ञानसे युक्त, शत्रुके और अपने स्वभावको आत्मसदृश समझता है, वही पुरुष मन्त्रणा सुननेके योग्य होसकता है। जो पुरुष सत्यवादी सुशील, गम्भीर अर्थात् मन्त्र गोपन करनेमें समर्थ, लज्जाशील, कोमलता युक्त और पिता-पितामहके क्रमसे विद्यमान रहता है, वह पुरुष ही सलाह सुन सकता है. जो मनुष्य सन्तुष्ट, सर्व्वसम्मत, सत्यधर्म्मवाला, प्रगल्भ पापद्वेषी, मन्त्रवित्, त्रिकालज्ञ और शूर है, वही पुरुष सलाह सुननेका योग्यपात्र है। हे राजन्! जो मनुष्य शान्तवचनसे सबको वशमें करनेमें समर्थ हो, दण्डधारी राजा उससे ही सलाह करे। पुर और जनपदवासी लोग जिसका धर्म्म पूर्व्वक विश्वास करें वही योद्धा, नीतिज्ञ पण्डित पुरुष सलाह सुननेके योग्य होसकता है। हे राजन्! इससे पहिले कहे हुए महत् आश्रय पांच जन मन्त्री ऐसे गुणोंसे युक्त हों, तो उन्हें सम्मानके सहित राजकार्य्यमें नियुक्त कर रखे; परन्तु पांचजन न पानेसे तीन पुरुषसे कम न रखे। स्वामीको चाहिये सेवकोंको निज स्वभावसे मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अवसर दानरूपी छिद्रों और शत्रुओंके छिद्रोंका सदा लक्ष्य करता रहे; क्यों कि राजाओंका मन्त्र ही मूल है मन्त्रसे ही राष्ट्र विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है। अपना छिद्र जिसमें शत्रुपक्षवाले न देख सकें, उसी भांति निज छिद्रको छिपाते हुए शत्रुओंके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, जैसे कछुवा अपना सब शरीर सिकोड़ लेता है, वैसे ही अपना छिद्र गोपन करे। राजाके महा बुद्धिमान मन्त्री लोग सब विचार गुप्त

रखें, राजा मन्त्ररूपी कवच धारण करे और शूरवीर पुरुष मन्त्राङ्गोंकी रक्षा करें। श्रेष्ठ बुद्धिवाले पण्डित लोग दूतको राज्यका मूल और मन्त्रको राज्यका सार कहा करते हैं; परन्तु स्वामी और मन्त्री लोग अभिमान, क्रोध, मान तथा ईर्षारहित होकर वृत्तिके वास्ते यदि आपसमें एक दूसरेके अनुवर्त्ती हों, तो वे सब कोई सुखी हुआ करते हैं। पांच भांतिके छलरहित सेवकोंके साथ सदा विचार करे, और पहिले कहे हुए तीनों मन्त्रियोंके अनेक परामर्श तथा उनके चित्तको विशेष रूपसे मालूम करके अपना तथा उन लोगोंका निश्चित मत स्थिर करके सलाहके अनन्तर उसे प्रकाशित करे। परन्तु यदि स्वयं असमर्थ हो तो सलाहके वास्ते धर्म, अर्थ और कामके जाननेवाले ब्राह्मण गुरुके समीप जाके उनसे वह विषय पूंछे यदि उनके सङ्ग मतकी एकता होवे, तो उस ही विचारको कार्य्यमें नियुक्त करे। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि इसी भांति जो लोग मन्त्रके यथार्थ अर्थ और निश्चयको विशेष रूपसे जानते हैं; उनके साथ सदा विचार करके प्रजा संग्रहमें समर्थ उस मन्त्रको सदा प्रणयन कार्य्यमें नियुक्त करना उचित है। जिस स्थानमें सलाह करे, उसके आगे, पीछे, ऊपर, नीचे और तिर्य्यग् देशमें बौने, कुबड़े, कृश, गञ्ज अन्धे, जड़, स्त्री और नपुंसक ये सब किसी भांति भी जाने आने न पावें। और नौकामें चढ़के कुश काश रहित प्रकाशमान निर्ज्जन स्थानमें गमन करके ऊंचे तथा भयानक वचन दोष और वक्र विकार आदि सब अङ्गदोषोंको परित्याग करके जिसमें कार्य्यका समय न बीत जावे, उसी भांति विचार करे।

८३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस मन्त्र मूल प्र संग्रह विषयमें पण्डित लोग बृहस्पति और इन्द्रके सम्बादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, उसे मैं इस प्रकार कहता हूं सुनो।

एक बार इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा था, कि हे ब्रह्मन्! जिसमें सब गुण अन्तर्हित होते हैं, क्या वैसे कर्त्तव्य कार्य्यका यथारीतिसे आचरण करनेसे ही पुरुष सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश प्राप्त कर सकते हैं?

बृहस्पति बोले हे सुरराज! पुरुष शान्त अर्थात् सब गुणोंके आश्रय प्रिय बचनको यथार्थ रीतिसे आचरण करने पर सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश लाभ कर सकते हैं। हे इन्द्र! पुरुष सब लोगोंको सुखी करनेवाले इस सब गुणावलम्बी प्रिय वचनका आचरण करनेसे ही सदा सब प्राणियोंका प्रियपात्र हुआ करता है। जो पुरुष इस संसारमें शान्त-बचनका आचरण न करके सदा भृकुटी टेढ़े मुखसे निवास करके किसीके साथ कुछ वार्त्तालाप नहीं करता; वह सब प्राणियोंका द्वेषी हुआ करता है। जो राजा सब विषयको जानके किसी पुरुषके निज दुःख कहनेके पहिले ही "तुम किस वास्ते आये हो"—ऐसा पूछते और हंसके उसके साथ वार्त्तालाप करते हैं; उनपर सब लोग ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सब ठौर प्रियबचन रहित दान व्यञ्जन हीन भोजनकी भांति प्राणियोंको तृप्त नहीं कर सकता। हे सुरराज! मीठा बचन कहके प्रजाका सर्व्वस्व ग्रहण करनेपर भी वे लोग रुष्ट नहीं होते, क्योंकि प्रियवचनसे सब लोग ही वशमें हो जाते हैं। इसलिये दण्डधारी राजा सदा शान्तवाक्य प्रयोग करे, क्योंकि शान्त ही फल उत्पन्न करता है, उससे कोई कभी व्याकुल नहीं होता। सुकृती पुरुषोंसे सेवित शान्त्व प्रह्लाद और मधुर वचनके समान कुछ भी नहीं है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रने जैसे गुरु बृहस्पतिसे ऐसा सुनके उनके वचनके अनुसार

सब कार्य्य किये थे; वैसे ही तुम भी इन सबका पूरी रीतिसे आचरण करो

८४ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र ! सब लोकमें राजा किस प्रकार प्रजापालन करनेसे धर्म्म विशेषके जरिये प्रीति अर्थात् स्वर्ग और नित्य-कीर्त्ति प्राप्त कर सकते हैं ?

भीष्म बोले, राजा शुद्ध व्यवहारसे प्रजा पालनेमें तत्पर होनेसे धर्म्म और नित्यकीर्त्ति लाभ करतेहुए पवित्र होकर दोनों लोक प्राप्तकर सकते हैं। युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् ! राजा किस भांतिके व्यवहारसे कैसे लोगोंके साथ वर्त्ताव करे ? यह पूछा हुआ विषय यथारीतिसे वर्णन करना आपको उचित है । आपने पहिले पुरुषोंके जो सब गुण वर्णन किये, मुझे मालूम होता है, कि वे सब गुण एक पुरुषमें विद्यमान नहीं रह सकते ।

भीष्म बोले, हे महाबुद्धिमान् ! तुम्हें मैं बुद्धिमान समझता हूं। तुमने जैसा वचन कहा है वैसा ही है। ऐसे शुभ गुण किसी एक पुरुषमें विद्यमान रहने असम्भव हैं और इस लोकमें अत्यन्त यत्नसे भी सत्स्वभाव दुष्प्राप्य है तौ भी तुम्हें जिस प्रकार जैसा सेवक करना होगा, उसे संक्षेपमें कहता हूं। वेद जाननेवाले प्रगल्भ, स्नातक और पवित्र चार ब्राह्मण, हाथमें अस्त्रधारण किए हुए आठ बलवान क्षत्रिय; वित्त-युक्त इक्कीस वैश्य, नित्य कर्म्ममें रत पवित्र और विनीत तीन शूद्र; सेवा, श्रवण, ग्रहण, धारण, उहन, उपोहन, विज्ञान और तत्त्वज्ञान इन आठ गुणोंसे युक्त प्रगल्भ अनसूयक पचास वर्षीय श्रुति और स्मृतिसे युक्त, विनीत समदर्शी कार्य्यमें विवदमान पुरुषोंके बीच समर्थ अर्थ लोभी और मृगया, जूवा, स्त्री, पान, दण्डपातन, वचनकी कठोरता तथा अर्थ दूषण आदि सात भांतिके घोर व्यसन वर्ज्जित पौराणिक सूत एकजन—इन लोगोंको ही सेवक करे। परन्तु राजा चार ब्राह्मण, तीन शूद्र और एक सूत इन आठ मन्त्रियोंके बीच स्थित होके मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर उस ही विचारका राज्यके बीच प्रचार करके राष्ट्रीय पुरुषोंको मालूम कराना होगा ; इस ही व्यवहारसे तुम सदा प्रजा समूहको देखना। तुम कभी कार्य्योपघातक गूढ़ कार्य्य अर्थात् किसी पुरुषके न्यस्त विषयको राजकीय कहके ग्रहण न करना क्योंकि कार्य्य नष्टहोनेसे वह अधर्म्म अवश्यही तुम्हें और मन्त्रियोंको पीड़ित करेगा और तुम्हारा राज्य समुद्रमें टूटी हुई नौका तथा बाजके समीपसे भागनेवाले पक्षीकी भांति तुम्हारे निकटसे दूसरी ओर गमन करेगा। हे पृथ्वीनाथ ! जो राजा अधर्म्म आचरण करके पूर्णरीतिसे प्रजा-पालन नहीं करते, उनके हृदयमें भय उपस्थित होता है, और उनका स्वर्ग लोक रुद्ध हुआ करता है। हे नरेन्द्र धर्म्ममूल राज्यमें जो राजा, सेवक, अथवा राजपुत्र धर्म्मासन पर नियुक्त होकर अधर्म्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं, वे सब अधिकृत कार्य्योंको पूर्ण न करनेवाले अर्थात् जो बिना परीक्षा किये ही कार्य्य करते हैं, वे राजाके अनुगामी पुरुष स्वयं अगाड़ी होके राजाके सहित नरकगामी हुआ करते हैं।

हे राजेन्द्र ! बलवान पुरुषसे पराजित दीनकी भांति बहुभाषी अनाथ मनुष्योंको राजा सदा पालन करे। जब कि परीक्षा न करके कार्य्य करनेसे सेवकोंके सहित राजाकी अधोगति होती है; तब उन सब व्यवहारोंकी विशेष रीतिसे परीक्षा करनी होगी, और दोनोंके विरुद्धवाद अर्थात् विवादास्पद वस्तु असाक्षिक और स्वामी रहित होनेपर साक्षीबल उत्तम प्रमाण होनेसे अपराधके अनुसार पापका दण्ड करना होगा, यदि धनी पुरुष पापी हो; तो

उसे धन लेके मुक्त करे और निर्धन पुरुष पापी हो, तो उसे कैद करे। राजा दुष्ट मनुष्योंको प्रहारसे शिक्षित करे और और शिष्ट पुरुषोंको शान्त वचनसे पालन करे। जो मनुष्य राजाके बधकी इच्छा करनेवाले, घर जलानेवाले, चोर और वर्णसङ्कर करनेवाले हैं, उनका विचित्र रीतिसे अर्थात् अनेक प्रकारसे बध करे। शास्त्रके अनुसार स्थित भूपतिको विचित्र बधरूपी दण्डप्रयोग करनेसे उससे उसे अधर्म न होगा वल्कि उससे शाश्वत धर्म्म ही होगा। जो मूर्ख राजा इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करते हैं; वे इस लोकमें अयशके पात्र होके मरनेके अनन्तर नरक लोक प्राप्त करते हैं। दूसरेके प्रवादमें अन्य पुरुषके ऊपर दण्ड प्रयोग न करे, शास्त्र और युक्तिके अवलम्बसे बन्धन तथा मुक्त करे। राजा किसी आपदमें भी दूतको कभी बध न करे, क्योंकि दूतके मारनेवाले राजा मन्त्रियोंके सहित नरकगामी हुआ करते हैं। क्षत्रधर्म्ममें रत जो राजा यथोक्त-वादी दूतका बध करते हैं, उसके पितर लोग भ्रूणहत्या पापके भागी हुआ करते हैं। जो पुरुष कुलीन, कुलयुक्त, वाग्मी, दक्ष, प्रियबचन कहनेवाला, यथोक्त वादी और स्मृतिमान हो, वही दूत होवे; और उसमें ये सातों गुण विद्यमान रहें और द्वारपाल, किला और नगर-रक्षकमें भी ये सातों गुण रहें। जिस पुरुषने धर्म्मशास्त्रके यथार्थ अर्थ, सन्धि विग्रहको विशेष रूपसे मालूम किया है और बुद्धिमान धैर्य्यशाली, लज्जाशील, रहस्य विषयोंको गोपन करनेवाला, कुलीन तथा पराक्रमसे युक्त है वही पुरुष ही प्रशंसनीय सेवक कहके गिना जाता है। और ऐसे ही गुणोंसे युक्त व्यूह यन्त्र तथा सब शस्त्रोंके तत्वको जाननेवाला, पराक्रमी वर्षा, सर्दी, गर्म्मी, वायु आदिको सहनेवाला तथा परतन्त्रवित् पुरुष सेनापति होवे। हे राजेन्द्र! स्वयं दूसरेका विश्वासपात्र होवे और दूसरेका कभी विश्वास न करे। ऐसा ही क्यों पुत्रका विश्वास करना उत्तम नहीं है। हे
मैंने शास्त्रका यह यथार्थ तत्व तुम्हारे वर्णन किया, शास्त्रमें राजाओंका अ
परम गुह्य कहके वर्णित हुआ है।

८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! र
कैसे पुरमें बास करना उचित है, वे लोग प
लेके बने हुए, वा अपनी बनाई हुई पुरीमें
बिस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा
पुत्र जाति और बान्धवोंके सहित जिस स्थान
वास करेंगे, वहांके व्यवहार और
उपाय पूछना न्याय है; इससे तुम्हें जैसे
विषयको विशेष रूपसे कहूंगा, उसे सुन
यत्नपूर्व्वक वैसे ही उपायका अनुष्ठान कर
तुम्हें उचित है। हे राजन्! राजा लोग ध
अर्थात् मरुभूमियुक्त किला, महीदुर्ग, गि
दुर्ग, मनुष्यदुर्ग मृत्तिकादुर्ग और बनदुर्ग आ
यही छः प्रकारके किलेको अवलम्बन क
जिसमें सब सम्पत्ति प्रधान तथा बाहुल्य
सम्भव हो; वैसे ही सब पुर तैयार करावे।
नरनाथ! जो पुर किलेसे युक्त धान्य
अस्त्रोंसे पूरित दृढ़ दीवार और परिखासे
हुआ, हाथी घोड़े तथा रथ समूहसे
विद्वान् शिल्पियोंसे अधिष्ठित धान्य आदि
कोषसे परिपूरित, दक्ष-धर्म्मात्माओंसे प्रति
बलवान मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे परि
चौतरे तथा आचरणसे सुशोभित, प्रसिद्ध
द्वारयुक्त प्रशान्त, अकुतोभय, सुन्दर प्रकाश
गीतवाद्यकी ध्वनिसे परिपूरित, बड़े
युक्त शूर और आदानसम्पन्न, वेदध्व
अनुनादित, सामाजिक उत्सवसे युक्त, और
पूजित देवताओंसे अधिष्ठित, ऐसे पुरके

प्रमें रहनेवाले सेवक बलसे युक्त राजा स्वय निवास करे। राजा उसही पुरमें वास करके उस स्थानमें कोश, बल, मित्र और व्यवहारकी सदा वृद्धि करे और पुर तथा जनपद स्थित दोषोंको निवारण करे। भण्डार, अस्त्रालय, धान्य आदि संग्रह और मन्त्र तथा आयुधागारोंको यत्नपूर्व्वक बढावे। काठ, लोहा, तुष, अङ्गार, देवदारु, काष्ठ, सींग, हड्डी, बांस, मज्जा, स्नेह, चर्व्वी, मधु, अनेक भांतिके औषध ग्रन, सर्ज्जरस अर्थात् धूप, धान्य, अस्त्र, बाण, चर्म्म, स्नायु, बेंत, सूत्र और वल्वज-बन्धन, कूएंके समीप जलाधार उद-पान, बहुतसे तालाब और क्षीरीवृक्ष; इन सब सामग्रियोंको सदा राजा निज पुरमें रक्षा करे। आचार्य्य, ऋत्विक, पुरोहित, महा धनुर्द्धारी योद्धा, ईंट आदिसे घर बननेवाले स्थपति, ज्योतिषी और चिकित्सक इन सबका यत्नपूर्व्वक सत्कार करे। बुद्धिमान, मेधावी, धर्म्मात्मा, दक्ष, शूर, बहुश्रुत, कुलीन और पराक्रम युक्त पुरुषोंको सब कार्य्योंमें नियुक्त करे। धार्म्मिक मनुष्योंकी पूजा करे, अधर्म्मियोंको दण्ड दे और यत्नपूर्व्वक सब वर्णोंको निज निज कर्म्ममें नियुक्त करे। बाह्य और अभ्यन्तर पौर तथा जनपदवा-सियोंसे जो कार्य्य करता हो, उसे पहिले दूतोंसे भली भांति मालूम करके तब कार्य्य प्रयोग करे। राजा स्वयं दूत, मन्त्र, कोष और दण्ड इन सबकी विशेष करके आलोचना करे; क्योंकि राज्यमें येही सब प्रतिष्ठित हुआ करते हैं। राजा दूत- रूपी पुर जनपदवासी उदासीन, शत्रु और मित्र सबके अभिलषित विषयको मालूम करे। अनन्तर सदा भक्तोंका रक्षक शत्रुओंको पराजित करनेवाला वह राजा प्रमादहीन होकर उन लोगोंके उस विषयका प्रतिकार करे। राजा सदा अनेक प्रकारके यज्ञ दम्भ रहित दान और प्रजाकी रक्षा करे, परन्तु धर्म्म-बाधक कोई कार्य्य न करे। कृपण, अनाथ बूढ़े और विधवा स्त्रियोंकी वृत्ति, निज राज्यका पालन और पराए राष्ट्रका विचार रूपी योग क्षेम सदा सिद्ध करना चाहिये। राजा सदा आश्रम वासियोंकी सत्कार सम्मान और आदरके सहित यथा समयमें अन्न, वस्त्र और पात्रदान करे। राजा यत्नपूर्व्वक तपस्वि-योंसे राज्यके सब कार्य्य और निज शरीरका वृत्तान्त कहे, तथा सदा उनके समीप नत होके निवास करे।

राजा सब वस्तुओंके त्यागनेवाले सत्कुलमें उत्पन्न हुए तथा बहुश्रुत तपस्वियोंको देखके शय्या, आसन, और भोजनसे उनकी पूजा करे, राजा समस्त आपदाओंमें तपस्वियोंका अवि-श्वास न करे, क्योंकि डाकू लोग भी तपस्वि-योंका सदा विश्वास किया करते हैं। राजा तपस्वियोंमें सब निधि स्थापित करे और उनके समीप बुद्धि ग्रहण करे, परन्तु बार बार उनकी सेवा न करे, तथा अत्यन्त पूजा न करे। निज राज्य, पर राष्ट्र, अटवी और सामन्त नगरोंमें अलग अलग तपस्वियोंको मित्र कर रखे और निज राज्यमें रहनेवाले तपस्वियोंकी भांति पर राज्य तथा अटवी स्थित तपस्वियोंको सत्कार और सम्मानके सहित धन आदि दान करे; क्योंकि राजा किसी दशामें तपस्वियोंके शर-णागत होनेसे वह व्रत करनेवाले तपस्वी लोग इच्छानुसार राजाको आश्रयदान किया करते हैं। हे युधिष्ठिर। जैसे नगरमें राजाको स्वयं वास करना उचित है, उसके यही लक्षण और उद्देश्य मैंने संक्षेपमें तुम्हारे समीप वर्णन किया है।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जिस प्रकार राज्यकी रक्षा और राष्ट्र संस्थापन करना होता है, उसे पूरी रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं, इससे भली भांति विस्तार करके यह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राष्ट्ररक्षा और राष्ट्र संग्रह जिस प्रकारसे करना होता है, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त करके सुनो। राजा हर एक ग्राममें एक एक पुरुषोंको सबका स्वामी कर रखे, अनन्तर किसीको दश गांव, किसीको बीस, किसीको एक सौ और किसीको सहस्र गावोंकी प्रभुता प्रदान करे। वह एक गांवका स्वामी गांवके दोष और गुणको विचारके दश गांवके स्वामीसे कहे और दश गांवका स्वामी उसे बीस गांवके स्वामीसे कहे। वह बीस गांवका स्वामी जनपदमें जिन जिन कार्य्योंको सिद्ध करे, वह सब उसे सौ ग्रामके स्वामीके निकट निवेदन करना होगा। ग्राममें जो सब खाने योग्य वस्तु उत्पन्न हों, एक गावका स्वामी उन सब वस्तुओंको उपभोग करे और वही दश गांवके स्वामीको और दश गावका स्वामी बीस गांवके स्वामीका भरण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जो ग्राम बहुत बड़ा उन्नत और जन समूहसे युक्त हो, सौ गांवका स्वामी सत्कारके सहित उसे ही भोगनेमें समर्थ होगा, परन्तु सौ गावोंका स्वामी जिस गावको भोग करेगा, वह गांव उस राज्यके अनेक लोगोंके अधीन रहेगा। और सबसे अधिक सहस्र गावोंका स्वामी राष्ट्रीय लोगोंके साथ मिलके शाखा नगर और वहांके अन्न, सुवर्ण आदि सब भोगने योग्य वस्तुओंको भोगनेमें समर्थ होगा। उन लोगोंके युद्ध कार्य्य उपस्थित होनेपर कोई धर्म्म जाननेवाला आलस रहित मन्त्री उसे यथार्थ रीतिसे देखे और सब नगरोंमें एक एक जन सब अर्थोंके विचारने वाले मन्त्री उपस्थित होकर सब कार्य्योंको देखते रहें। जैसे महा घोर रूपी प्रबल ग्रह नक्षत्रोंके चिन्तक ऊंचे स्थानमें घूमते रहते हैं; वैसे ही वे सब अर्थोंके जाननेवाले मन्त्री सब सभासदोंके ऊपर परिक्रमा करते हुए उन लोगोंके सब कार्य्योंको देखें, और उनका कोई दूत राज्यमें सभासदोंके व्यवहारको गुप्त रीतिसे मालूम करे। वह राज्यमें स्थित पापी, हिंसक, परधन हरने शठ, रक्षाधिकृत नामक मनुष्योंसे ... रक्षा करे। और उत्पत्ति, दान वृत्ति, ... शिल्प कार्य्यको देखके शिल्पकार्य्य वा शिल्पि... ऊपर कर निश्चित करे। वह राज्यमें ... खरीदना, मार्ग, भक्त, परिच्छद और ... देखके बनियोंके ऊपर कर लगावे। हे ... ष्ठिर! ऐसा हो क्यों! जिसमें प्रजा ... हो उसी भांति विचार करके प्रजाके ... यथायोग्य कर स्थापित करे। हे राजन्! अर्थात् धन धान्य और कर्म्म अर्थात् कृषि कार्य्योंको पूरी रीतिसे देखके तब उस पर ... निश्चित करे, क्योंकि फल और कर्म्ममें ... स्वार्थ न रहनेसे वह कभी भी उसमें प्रवृत्त ... होता। जिससे राजा और कर्म्म ... दोनों ही कर्म्मभागी होसकें, वैसा ही ... करके राजा सदा कर स्थापित करे। जिससे अत्यन्त लोभके कारण आत्ममूल और परमूल कृषि आदि कार्य्य नष्ट न हों, ... भांति राजा लोभ त्यागके प्रजासमूहके प्रिय मालूम होवे। राजाके अतिखादी बहुभक्षी कहके विख्यात होनेसे सब कोई द्वेष किया करते हैं। राजा प्रजापुञ्जके ... होनेसे किसी भांति कल्याण प्राप्त नहीं सकता, इससे अप्रिय राजा किसी भांति फल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता। ... भारत! इससे जैसे लोग बछड़ेकी भूख रखके गऊ दुहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान राज्यको दुहे; क्योंकि बछड़ा बलवान पर पीड़ा सह सकता है। हे युधिष्ठिर! अधिक दुहनेसे बछड़ा कर्म्म करनेमें नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त दोहन का राष्ट्र भी महत् कर्म्म नहीं कर सकता। राजा स्वयं कृपा करके राष्ट्रकी सब

रक्षा करता है, वह बहुत समय तक जीवित रहके अनेक फल लाभ कर सकता है, आपद कालमें यदि प्रजा राजाकी सहायताके वास्ते धन दान न करे, तो राजा राज्यको कोषभूत करके कोषको गृहके भीतर करे। पुर और जनपदके आश्रित, उपाश्रित वा थोड़ा धन होनेपर भी राजा उन लोगोंके ऊपर सामर्थ्यके अनुसार कृपा करे। वाह्य अर्थात् आटविक डाकुओंको राज्यसे प्रत्याख्यान करके मध्यम अर्थात् गांवके लोगोंके निकट सुखसे धन ग्रहण करे, ऐसा होनेसे सुखी वा दुखी पुरुष उसके ऊपर क्रुद्ध न होंगे। और "राजाको धन लेनेकी अवश्यकता है,"—इसी भांति पहिले निज राज्यमें सूचना करके उसके अनन्तर इच्छानुसार ग्राममें प्रजा समूहको ऐसा कहके भय दिखावे, कि दूसरेसे महत् भयरूपी एक आपदा उत्पन्न हुई है, बंशफलके आगमकी भांति वह आपद नाशकी मूल होगी। यद्यपि हमारा शत्रु अपने नाशके वास्ते ही डाकुओंके सङ्ग प्रबल होके इस राज्यको पीड़ित करनेकी अभिलाषा करता है। तौभी उपस्थित घोर आपद तथा प्रचण्ड भयसे मैं तुम लोगोंका परित्राण करूंगा कहके तुम लोगोंसे धन ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। उपस्थित भय नष्ट होनेसे ही तुम लोग मेरे समीपसे उस धनको फिर पाओगे; परन्तु शत्रु लोग बलपूर्व्वक इस राज्यसे जो धन हरण करेंगे, उसे फिर नहीं पाओगे। इस समय यदि तुम लोग स्त्री-पुत्रोंके वास्ते सञ्चय करनेकी अभिलाषासे साधारणकी सहायताके वास्ते मुझे धन देनेमें विमुख होगे, तो शत्रुओंके निकट स्त्री पुत्रोंके पीछे तुम लोगोंका प्राण नाश होगा; और इस समय तुम लोग यदि मेरे सहकारी होकर हमारी सहायता करोगे, तो मैं इस राज्यको उपद्रवसे रहित करके पुत्रकी भांति तुम लोगोंको सङ्ग लेकर आनन्द अनुभव करूंगा। और सामर्थ्यके अनुसार तुम लोगोंकी सहायता करूंगा। जैसे भार ढोनेके समय गुरु-भार बहुतसे लोगोंके जरिये उठाया जाता है, वैसे ही मुझको तुम लोगोंके साथ इस आपदके समयमें भार उठाना पड़ेगा। देखो, कोई आपद उपस्थित होनेपर उस समय धनको अत्यन्त प्रिय समझना उचित नहीं है।

अनन्तर समयवित राजा जब इस भांति उपचारयुक्त विनीत तथा मधुर बचनसे प्रजासमूहके समीप कर स्वरूप धन ग्रहण न कर सके, तब वह योग अर्थात् धन ग्रहण करनेको उपाय अवलम्बन करके उसके अनुसार निज तेज तथा पदातिसमूहके जरिये प्रजाके निकटसे धनग्रहण करे। राजा दीवार और सेवकोंके वास्ते व्यय, युद्धके भय और योगक्षेम देखके वैश्योंके ऊपर कर लगावे। बनमें बास करनेवाले वैश्य राजाकी उपेक्षा होनेसे ही नष्ट होते हैं, इससे विशेष करके उनके विषयमें मृदुताचरण करना होगा। हे पार्थ! सदा वैश्योंको धीरज देना, पालन, दान, उत्तम अवस्था, संविभाग और उनके साथ प्रिय आचरण करना उचित है। हे भारत! वैश्योंको सदा फलवान करना योग्य है, क्यों कि वे ही कृषि और व्यवसायसे राष्ट्रकी बृद्धि किया करते हैं। इसहीसे बुद्धिमान मनुष्य वैश्योंके ऊपर प्रीति किया करते हैं और दयावान तथा सावधान होके उन लोगोंके ऊपर कोमल कर स्थापित करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण सर्व्वत्र ही वैश्योंके वास्ते मङ्गलाचरण सुलभ हुआ करता है और इसके समान उत्तम कार्य्य कुछ भी नहीं देखा जाता।

८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! राजा समर्थ होकर भी यदि कोषको अ-

करे, तो किस भांति उस विषयमें प्रवृत्त होवे, उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, धर्म्मशील राजा प्रजाका हितैषी होकर देश, काल, बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाको शासन करे। अपनी और प्रजासमूहकी जैसे सदा मङ्गलकामनाकी जाती है, वैसे ही राष्ट्रके सब कार्य्योंको भली भांति सिद्ध करना होगा। जैसे बछड़े माताके स्तनको न काटके केवल दूध दोहन करते और जैसे लोग मधुमक्खियोंको पीड़ित न करके मधु पान करते हैं, वैसे ही राजा राष्ट्रसे धन ग्रहण करे। जैसे बाघिन निज बच्चोंको दांतसे पकड़के उन्हें पीड़ित न करके हरण करती है, तथा जोंक जैसे मृदुभावसे लोहू पीती है, राजा भी उसी भांति राज्य भोग करे। प्रजाको पालन करनेवाला राजा पहिले प्रजाके निकटसे थोड़ा थोड़ा कर वसूल करके बढ़ाते हुए दूसरे वर्षमें अधिक करके धीरे धीरे बढ़ावे। जैसे बछोंको अत्यन्त यत्नके सहित पाश ग्रहण कराके क्रमसे भार बढ़ाके दमन करना होता है, वैसे ही प्रजासमूहको भी दमन करे। और जैसे बछड़े सदा पाशसे बन्धके दुःखित होके प्राणत्याग करते हैं, वैसे ही प्रजा भी इकबारगी कर भारसे आक्रान्त होनेपर दुःखित होके प्राणत्याग करती है; इससे राजाको बछड़ेकी भांति अत्यन्त यत्नके सहित धीरे धीरे दमन करना होगा, ऐसा न करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं होगी। हर एक पुरुषोंमें जो कार्य्य सहज रूपसे प्रयोग नहीं होसकता, उसके वास्ते मुख्य पुरुषोंको शान्त करके इतर लोगोंको दमन करना होगा। तिसके अनन्तर राजा मुख्य पुरुषोंके जरिये उस कर भारको उठानेवाले प्रजा समूहमें परस्पर भेद कराके स्वयं उन्हें शान्त करते हुए अयत्नके सहित सुख भोग करे। अयस्थान वा असमयमें उन लोगोंके ऊपर कर भार अर्पण न करे, परन्तु समय और नियमके अनुसार शान्त्वा-दसे धीरे धीरे कर भार अर्पण करे। मैं यह सब उपाय कहे, परन्तु माया मुझे विशेष नहीं है, देखिये वाजिगणोंको अनुपायसे दमन करनेसे वे अत्यन्त ही कोपित होजाते हैं। और राज्यके बीच मद्यशाला, तथा राज्यके उपान्त तथा वेश्या कुटनी कुशीलव, कितव और दूसरे इस भांतिके जो मनुष्य निवास करें राजा उन सब लोगोंको शासन करे; क्यों कि उनके शासित न होनेसे उत्तम प्रजा अत्यन्त ह[illegible] पावेगी। किसी आपदके उपस्थित होनेपर कोई किसीके समीप दिया हुआ धन तथा [illegible] न मांगे, मनु पहिले प्राणियोंके वास्ते ऐसी व्यवस्था स्थापित कर गये हैं; इससे सब [illegible] उस व्यवस्थाके अनुगामी होवें, यदि इस समय उसमें अन्यथा होवे, तो ये सब लोक अवश्य नष्ट होंगे। हे नरनाथ! ऐसी जन श्रुति है राजा ही सब प्राणियोंको शासन करने[illegible] है, उससे जो राजा पापी पुरुषोंको श[illegible] नहीं करता उसे उस पापका चौथा भाग [illegible] करना पड़ता है, तब जो पापी हों, उन्हें शासन करना राजाको अवश्य उचित है। [illegible] जो राजा इन पापियोंको दमन नहीं [illegible] उन्हें जैसे प्रजाके किये हुए धर्म्ममें चतुर्थ भोगना पड़ता है वैसे ही उस पापका फल भोगना होगा। राजा भली भांति [illegible] आदिकोंके स्थान वा योग्य स्थानमें स्थित [illegible] नहीं तो स्वयं उसमें आसक्त होके ऐश्व[illegible] नष्ट करना पड़ेगा; क्यों कि पुरुष काम[illegible] होनेसे किसी कार्य्याकार्य्यमें नहीं एक [illegible] अनायास ही सब कार्य्योंको कर सकता [illegible] बल्कि मद्य, मांस, पर स्त्री और परधन [illegible] लोगोंके समीप शास्त्र प्रदर्शित किया करता [illegible] हे राजन्! जिन लोगोंको परिवित्त ग्रह[illegible] है, आपदकालमें उन लोगोंके याचना करने [illegible] राजा उनके ऊपर कृपा करके धर्म्मपूर्व्वक [illegible] धन दान करे भयसे दान न करे। [illegible]

ष्ठिर । तुम अपने राज्यमें याचक वा डाकुवोंको कभी वास करने न देना, क्यों कि ये लोग प्राणियोंकी भलाईकी इच्छा न करके केवल मात्र अनिष्ठ आचरण किया करते हैं। जो प्राणियोंके ऊपर कृपा करते और जो लोग प्रजाकी बढती करते है, वेही पुरुष तुम्हारे राज्यमें निवास करें। प्राणियोंके नाशक पुरुष वास न करने पावें। हे महाराज! जो अधिकारी पुरुष निर्दिष्ट करके अतिरिक्त धन वसूल करें, वे राजाके समीप दण्डनीय होवें, अनन्तर दूसरे अधिकारी पुरुष यथार्थ कर वसूल करनेके वास्ते उन लोगोंको फिर नियुक्त करें। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, और ऐसे ही दूसरे जो कुछ कर्म्म उपस्थित हों, उसे अनेक पुरुषोंसे सिद्ध कराना होगा, ऐसा न करनेसे कर्म्म नष्ट होगा। यदि मनुष्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य कार्य्यका अनुष्ठान करके चोर वा राजकीय लोगोंसे कुछ संशय युक्त हों, तो उसके वास्ते राजाको लोगोंके समीप निन्दित होना पड़ता है। इससे राजा भोजन पान और वस्त्रोंसे सदा धनवान पुरुषोंका सम्मान करे और उन लोगोंको मेरे सहित प्रजाके ऊपर कृपा करो ऐसा वचन कहे, हे राजन्! धनवान पुरुष ही राज्यके महत् अङ्ग और सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज्ञानी शूर, धनी, स्वामी, धर्म्मात्मा, तपस्वी, सत्यवादी और बुद्धिमान मनुष्य ही रक्षा किया करते हैं। हे महाराज! इससे तुम सब जीवोंमें प्रीतियुक्त होके सत्य, सरलता, अक्रोध और अनृशंसताके सहित पालन करो। हे राजन्! तुम सत्य और सरलताके सहारे मित्र कोष और बलसे युक्त होनेपर निश्चय ही दण्ड, कोष, मित्र और भूमि लाभ करनेमें समर्थ होगे।

८८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! जिसका फल खाया जाता है, तुम्हारे राज्यमें स्थित वैसे वृक्षोंको कोई न काटने पावे, पण्डित लोग फल मूलको ही ब्राह्मणोंका धन और धर्म्म कहा करते हैं, और दूसरे लोग ब्राह्मणोंसे अतिरिक्त भोग किया करते हैं, इससे ब्राह्मणोंका भोग न होनेसे जिसमें दूसरे लोग किसी प्रकारसे ग्रहण न करें। हे नरनाथ! यदि ब्राह्मण वृत्तिसे रहित होके अपने परित्राणके वास्ते दूसरे स्थानमें गमन करे, तो परिवारके सहित उसको वृत्ति कर देवे। यदि वह उससे भी निवृत्त न हो, तो ब्राह्मण सभा मण्डलोंमें वह इस प्रकार निन्दनीय होंगे, कि इनसे निवृत्त न होनेसे इस समय लोग किसकी मर्य्यादा करेंगे? हे कौन्तेय! इसके अनन्तर यद्यपि कोई उसे कुछ न कहें और पूर्व्व वृत्तान्तको भूल जावें तो वह अवश्य ही निवृत्त होंगे। लोग उसे ऐसा वचन कहें कि, हे ब्राह्मण! जो भोगकी इच्छा करके भोगके अभावमें राज्य परित्याग करेंगे उन्हें भोगसे और वृत्तिके वास्ते वृत्तिके अभावमें राज्य त्यागनेपर उसे जो वृत्तिके वास्ते निमन्त्रण करना होगा, उसमें हम लोग श्रद्धा नहीं करते। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि कर्म्मोंसे ही इस लोकमें प्राणियोंकी जिविका निर्व्वाह होती है और वेद विद्या प्राणियोंको उर्द्धगामी किया करती है। इस संसारमें प्रवर्त्तमान उस वेदविद्याके विषयमें जो सब डाकू लोग विरुद्धता करते हैं; उनके नाश करनेके वास्ते ब्रह्माने क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया है। हे कुरुनन्दन! इससे वीर होकर शत्रु जय, प्रजापालन, अनेक दक्षिणाके सहित यज्ञ और युद्ध करो। जो राजा प्रतिपालन करनेयोग्य प्राणियोंको सदा पालन करता है, वही राजसत्तम है; और जो उनकी रक्षा नहीं करते, उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हे युधिष्ठिर! राजा सदा

वास्ते युद्ध करे और उसमें सब मनुष्योंको नियुक्त करे; इससे तुम आत्मीयसे दूसरे और पराएसे आत्मीय तथा परायेसे पराये और आत्मीयसे आत्मीयको सदा पालन करो। राजा सब भांतिसे अपनी रक्षा करतेहुए पृथ्वीकी रक्षा करे, क्यों कि पण्डित लोग आत्मरक्षाको ही मूल कहा करते है। मेरा छिद्र क्या है, कौन सा व्यसन होरहा है, अविनिपातित क्या है, कहांसे मुझे दोष आश्रय करता है,—इन सब विषयोंको राजा सदा विचारता रहे। गत दिवसमें जिस कार्य्यको किया है, प्रजा उसकी दूसरी बार प्रशंसा करती है, वा नहीं, मेरा यह कार्य्य यदि प्रजाको मालूम हुआ हो, तो वह पुनर्व्वार उसकी प्रशंसा करती है, वा नहीं? जनपद और राज्यके बीच मेरा यश प्रजाके अभिलषित हुआ है, वा नहीं? इन सब विषयोंके अनुसन्धान करनेके वास्ते आज्ञाकारी गुप्त दूतोंको पृथ्वीपर भेजे। और धर्म्म जाननेवाले, धैर्य्यशाली, तथा युद्धसे न भागनेवाले मनुष्योंके बीच जो लोग राजाको उपजीव्य करके नहीं रहते, वे लोग और कौन कौन सेवक तथा कौनसे मध्यस्थ पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करते है उसे भली भांति जाने। हे तात! साधारणको इकबारगी अभिलषित होना अत्यन्त कठिन है; क्यों कि सब प्राणियोंमें ही मित्र, शत्रु, और मध्यस्थ विद्यमान हैं।

युधिष्ठिर बोले, समान बल और तुल्य गुणशाली मनुष्योंमें कोई पुरुष किस कारणसे सबसे प्रबल होते, तथा वह पुरुष किस कारणसे उन लोगोंका भक्षक होता है।

भीष्म बोले, जैसे क्रुद्ध विषधारी प्रबल सर्प निर्व्वल सांपोंका भक्षण करते हैं, वैसे ही चलनेवाले न चलनेवालोंको और दांतवाले बिन दांतवालोंको भक्षण किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इससे ये सब प्राणी भी शत्रुओंके निकट सदा सावधान रहें, क्यों कि प्रमाद उपस्थित होनेपर ये लोग गिद्धकी भांति निपतित हुआ करते हैं। हे राजन्! तुम्हारे राज्यमें थोड़े और अधिक मूल्यसे क्रय करनेवाले स्त्रियों विश्राम शील और वणिक लोग कर भारसे पीड़ित होके व्याकुल तो नहीं होते जो राजाओंके बृहत् भारको उठाते और सब साधारण लोगोंका उद्धार करते हैं, वे कृषक लोग भारसे पीड़ित होके राज्यको परित्याग तो नहीं करते और तुम इस लोकमें देने योग्य भोग्य वस्तुओंसे देव, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पशु और पक्षियोंका पोषण करते हो न? हे भारत! यही तुम्हारे राष्ट्र व्यवहार और राज्य गुप्तिकी कथा कही है। हे पाण्डव! यही अर्थ अवलम्बन करके फिर कहूंगा।

८९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्रह्मवित्तम उतथ्यने युवनाश्व-पुत्र मान्धाताके ऊपर प्रसन्न होकर उनसे अङ्गिरासम्बन्धीय जो सब क्षत्र धर्म कहा था, तथा जिस प्रकार उन्हें शासित किया था, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं।

उतथ्य बोले, हे मान्धाता! तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि लोग धर्म्मके अनुष्ठान निमित्त ही राजा हुआ करते हैं, कामानुष्ठानसे नहीं हो सकते; इससे राजा हो सब लोगोंकी रक्षा किया करता है। राजा यदि धर्म्म आचरण करे, तो देवत्व प्राप्त कर सकता है और यदि अधर्म्म आचरण करे, तो नरकगामी हुआ करता है। सब प्राणी धर्म्ममें स्थित रहते और धर्म्म राजामें निवास किया करता है। इससे जो राजा उस धर्म्मकी उत्तम रीतिसे रक्षा करते हैं, वे ही पृथ्वीके स्वामी होते हैं। जो राजा श्रीमान् और परम धर्म्मशील होता है, लोग उसे ही धर्म्म कहा करते हैं। और ऐसा कहा करते हैं, कि जिस राजामें धर्म्म नहीं

च्छा, उसके घरसे देवता लोग भाग जाते हैं । लोग निज धर्म्ममें विद्यमान रहते हैं; नकी ही प्रयोजन सिद्धि होती दीख पड़ती है, ससे सब कोई उस मङ्गलमय धर्म्मके अनुगामी वें । पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनु- योंके जब पाप निवारित नहीं होते तब उनके र्म्मकी हानि होकर अधर्म्मकी बढ़ती होती , और रात दिन भय हुआ करता है । हे तात ! जब पाप निवारित नहीं होता, तब धुओंमें भी "यह वस्तु मेरी और यह वस्तु री नहीं है,"—इसी भाँति धर्म्मयुक्त व्यवस्था हीं रहती । मनुष्योंमें जब पापबल विद्यमान हता है, तब उन लोगोंको भार्य्या, पशु, खेत ौर गृह नहीं दीखते । मनुष्योंके बिना पाप ष्ठ हुए देवता लोग पूजा पितर लोग स्वधा ौर अतिथि लोग सत्कार ग्रहण नहीं करते । ब तक पाप दूर नहीं होता तब तक व्रत रनेवाले द्विजाति लोग देवताओंको नहीं ान सकते और ब्राह्मण लोग यज्ञ विस्तार रनेमें भी समर्थ नहीं होते । हे महाराज ! ब तक पाप दूर नहीं होता तब तक मनु- ोंका मन वृक्षोंकी तरह विह्वल हुआ करता । ऋषि लोग दोनों लोकोंको अवलोकन रके "यह पुरुष ही धर्म्म पालक होगा" हाभूतमय राजाको उत्पन्न किया करते हैं, स ही से उसमें धर्म्म विराजमान रहता है, सि देवता लोग राजा कहा करते हैं और जससे धर्म्म नष्ट होता है, उसे वृषल कहते हैं । ो राजा वृषरूपी भगवान धर्म्मका छेदन करता , देवता लोग उसे ही वृषल कहा करते हैं , ससे धर्म्मकी विशेष रूपसे वृद्धि करे ; धर्म्मकी ढ़ती होनेसे प्राणियोंकी भी सदा बढ़ती हुआ रती है ; और धर्म्मकी हानि होनेसे प्राणी भी ीण हुआ करते हैं, इससे किसी भाँति भी र्म्मलोप न करे ? हे पुरुषेन्द्र ! जो प्राणियोंके न प्राप्तिके वास्ते कृपायुक्त होता, तथा धार-णाके कारण स्वयं प्राप्त होता है, उसे ही धर्म्म समझना चाहिये ; वह अकार्य्योंकी सीमाका नाशक कहके वर्णित हुआ है । स्वयम्भू ब्रह्माने प्राणियोंकी बढ़तीके वास्ते ही धर्म्मको प्रकट किया है, इससे राजा प्रजाके ऊपर कृपा करके धर्म्मको प्रवर्त्तित करे । हे राजशार्दूल ! धर्म्म ही श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, इससे जो पुरुषश्रेष्ठ हितकारी मनुष्य धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करते हैं, उन्हें ही राजा समझना चाहिये । हे भरतसत्तम ! धर्म्म ही राजाओंके निमित्त अत्यन्त कल्याणदायक है ; इससे तुम काम क्रोध त्यागके केवल धर्म्मका ही पालन करो । हे मान्धाता ! ब्राह्मण धर्म्मकी योनि हैं, इससे उन ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करे और मत्सरता रहित होकर उनकी कामना पूरी करे उनके अहित आचरण करनेसे राजाओंको भय उपस्थित होता है, और मित्रोंकी हानि होकर शत्रुओं की उत्पत्ति होती है । विरोचनपुत्र बलि सदा ब्राह्मणोंके साथ असूया करते थे, इसहीसे श्री देवी उनसे सन्तापित होके उन्हें परित्याग करके पाकशासन इन्द्रके समीप चली गई थीं , अनन्तर बलि श्रीको इन्द्रके समीप देखके अत्यन्त ही शोकित हुए थे । विभु मान्धाता ! तुम असूया और अभिमानका ऐसा ही फल समझके देखो श्री तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध होके तुम्हें परित्याग न करे । ऐसा कहा गया है, कि श्रीका पुत्र दर्प अधर्म्मसे उत्पन्न हुआ है, तुम यह निश्चय जान रखो, कि अनेक देवता, असुर और राजऋषि लोग उससे ही नाशको प्राप्त हुआ करते हैं । उसे जय करनेसे ही पुरुष राजा होता और उसके समीप पराजित होनेसे ही दास हुआ करता है । हे मान्धाता ! यदि तुम चिरजीवी होनेकी इच्छा करते हो, तो जैसे राजा अभिमानके सहित अधर्म्म को सेवा परित्याग करता है, तुम भी वैसा ही करो । मत्त, प्रमत्त, पाखण्डी और उन्मत्तोंके समीप न जावे, उ

साथ परिचय तथा उनकी सेवा न करे। दण्डित सेवक, स्त्री, विषय और दुर्गम पहाड़, हाथी, घोड़े, तथा सांपोंके निकटसे निवृत्त होवे। जो कदापि इन सबमें सदा युक्त रहना पड़े, तौ भी रात्रिके समय इनका सङ्ग परित्याग करे, और बहुसुष्ठिता, अभिमान, दम्भ और क्रोधको त्याग करे। हे राजेन्द्र! बिन जानी हुई स्त्री क्लीव, स्वैरिणी, परायी स्त्री और कन्यासे कभी मैथुन न करे। वर्णशङ्कर होनेसे कुलमें पापी, राक्षस, क्लीव, अङ्गहीन स्थूल जिह्वा और चित्तहीन पुरुष उत्पन्न हुआ करते हैं। राजाके प्रमादग्रस्त होनेसे ही ये सब उत्पन्न होते हैं, इससे राजा विशेष करके प्रजाके हितमें अनुरक्त रहे। क्षत्रियोंके प्रमत्त होनेसे महान् दोष उत्पन्न होता है और प्रजाको वर्णशङ्कर करनेवाले सब अधर्म्मों-की बढ़ती हुआ करती है। गर्म्मीके समयमें शर्दी होती, शीतकालमें शर्दी नहीं रहती और अत्यन्त वृष्टि अनावृष्टि और व्याधि प्रजा समूहको आक्रमण करती हैं। नक्षत्र और धूमकेतु आदि भयङ्कर ग्रह उदय होते तथा राज्य नाशके अनेक उत्पात् दीख पड़ते हैं, जो राजा अपनी और प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उसकी प्रजाका नाश होता है, पीछे उसका भी नाश होजाता है। जब एक पुरुषके धनको दो मनुष्य मिलके ग्रहण करते और दो पुरुषोंका धन अनेक मनुष्य ग्रहण करते तथा कुमारी पूर्ण रीतिसे लुप्त होती हैं, उस समय पण्डित लोग राजाका ही दोष कहा करते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होके धर्म्म त्याग कर "यह धन मेरा है, यह दूसरेका नहीं है,"—इसी भांति आचरण करते हुए जन समाजमें निवास करता है, तब लोग वैसे राजाको दुष्ट कहा करते हैं।

८० अध्याय समाप्त।

उतथ्य बोले, जब बादलके समयपर बरसने और राजाके धर्म्मचारी होनेपर सम्पत्ति बढ़ती है, तब वह सम्पत्ति प्रजासमूहको पालन करती है। जो धोबी वस्त्रके रङ्गको छुड़ाके मैलमात्रको दूर करना नहीं जिस राजामें धर्म्म नहीं है, उसे वैसा ही इसी भांति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके बीच जो शूद्र निज धर्म्मसे होकर अनेक कर्म्मोंमें रत रहता है, उसे कके समान समझे। शूद्रमें सेवा, वैश्यमें क्षत्रियोंमें दण्डनीति और ब्राह्मणोंमें ब्रह्मचर्य तपस्या, मन्त्र और सत्य प्रतिष्ठित है। जो क्षत्रिय धोबीके वस्त्र धोनेकी भांति दोष बिलकुल दूर करना जानते हैं वेही पिता और प्रजाके स्वामी होते हैं। हे भरतर्षभ! कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये ही राजवृत्त हैं, इससे राजा ही युगरूपसे जाता है। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, चारों वर्ण चारों आश्रम और चारों वेद हुआ करते हैं। जब राजा प्रमत्त होता है, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवहनीय ये अग्नि, ऋक, यजु और साम ये तीनों विद्या दक्षिणा युक्त यज्ञ सब प्रमादग्रस्त हैं। राजा ही प्राणियोंका हर्त्ता और कर्त्ता है परन्तु जो राजा धर्म्मात्मा है वेही कर्त्ता और जो अधर्म्मी हैं वेही हर्त्ता कहाते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब उसके स्त्री, पुत्र, बान्धव और सुहृद उस ही समय शोकग्रस्त हुआ करते हैं। राजाके अधर्म्मी होनेसे हाथी घोड़े, गऊ, ऊं खच्चर और गर्दभ आदि सब जन्तु ही अवसन्न हुआ करते हैं। हे मान्धाता! ब्रह्माने निर्बल प्राणियोंकी रक्षाके वास्ते ही बलवानको उत्पन्न किया है; क्योंकि उससे ही निर्ब्बल प्राणिप्रति ष्ठित होते हैं। हे राजन्! राजाके अधर्मी होनेसे राजसेवक तथा राजवंशीय सब प्राणी शोक किया करते हैं। निर्ब्बल, मुनि और विष धर सर्पकी दृष्टिको मैं अत्यन्त ही असह्य बोध करता हूं; इससे तुम दुर्ब्बलको दुःखी

करना। हे तात! तुम निर्व्वल पुरुषोंको सदा अवमानित बोध करना, जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म न करें; क्योंकि जो पुरुष निर्व्वलोंके जरिये भस्म होता है, उसके कुलमें कुछ भी अङ्कुरित नहीं होता, बल्कि मूलसे ही भस्म हो जाता है, इससे तुम निर्व्वलोंको कभी पीड़ित न करना। अत्यन्त बलवानसे भी बलहीन पुरुषश्रेष्ठ हुआ करता है, क्योंकि बलवान पुरुष निर्व्वलके द्वारा भस्म होनेसे उसका कुछ भी बाकी नहीं रहता। यदि बिमानित, घायल, वा आक्रुष्ट पुरुष किसी त्राणकर्त्ताको न प्राप्त कर सके, तो अमानुषिक दण्ड राजाकोही नष्ट करता है। हे तात! तुम निज बलके सहारे विपक्षी होकर निर्व्वल पुरुषोंको भोग न करना, छिपी हुई अग्निकी भांति जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें भस्म न करें। मनुष्य यदि किसी पुरुषसे मिथ्या अभिशप्त होकर रोदन करता है, तब उसके नेत्रसे जो सब आंसू गिरता है, वह उसके मिथ्यावादके कारण वेही सब आंसू उसके पुत्र और पशुओंको नष्ट किया करते हैं। गऊ जैसे सदा फलदायक नहीं होती वैसे ही यदि पाप कर्म्म सदा फलित हो, तो पुत्रमें फलेगा; पुत्रमें न फलित हो, तो पौत्र और दौहित्रमें फलित होता है। जिस स्थलमें निर्व्वल पुरुष बलवानसे पीड़ित होके किसीको अपना परित्राण करनेवाला नहीं पाता, उस स्थानमें दैवी महान् दण्ड पतित हुआ करता है। जनपद वासी सब लोग एकत्रित होकर ब्राह्मणोंकी भांति भिक्षा मांगे, तो उनका भिक्षुक रूप ही सदा राजाका नाश किया करता है। यदि जनपदके बीच राजाके बहुतसे राज पुरुष राज कार्य्यमें नियुक्त होकर नीतिके विरुद्ध कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हो, तो राजाको बहुत ही पाप होता है। और वे लोग काम तथा अर्थके वशमें होकर अयुक्तिके अनुसार दरिद्रोंका भी धन हरण करें, तो ऐसा होनेसे राजाका इकबारगी नाश होता है। जैसे वृक्ष उत्पन्न होके बड़ा होने पर प्राणी लोग उसकी ही आशा करते हैं और उस वृक्षके काटने वा जलनेसे वह लोग आश्रय हीन होते हैं, वैसेही राजाके बढ़ने वा नष्ट होने पर प्रजा समूहकी वैसे ही दशा हुआ करती है। यदि राजपुरुष लोग राज्यमें राजाके गुण और मानस धर्म्मको वर्णन करके उत्तम धर्म्माचरण भी करें, तो उस ही समय उनका सुकृत नष्ट होजावे और यदि धर्म्मके भ्रमसे अधर्म्म आचरण करें, तो उससे दुष्कर्म्म नष्ट हुआ करता है। यदि राज्यके बीच पापी पुरुष राजाको विदित होकर साधुओंके समीप भ्रमण करें, तो ऐसा होनेसे कलियुग उस राजाका आश्रय किया करता है। परन्तु यदि राजा मूर्ख मनुष्योंको शासन करे, तो उसका राज्य बढ़ता है। जो राजा सेवकोंका यथाउचित सम्मान करके युद्ध और विचार कार्य्योंमें नियुक्त करता है, उस राजाका राज्य विशेष रूपसे बढता है और वह बहुत दिनोंतक समस्त पृथ्वी भोग किया करता है। राजा सब पुरुषोंके उत्तम बचनको सुनके तथा सुकृत कर्म्मोंको देखकर उन लोगोंका सम्मान करनेसे उत्तम धर्म्मलाभ करता है। यदि राजा यथा नियमसे विभाग करके भोजन करे, सेवकोंका अपमान न करे, और बलके अभिमानी पुरुषोंका दमन करे, ऐसा होनेसे वही राज्यका धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा काया, बाचा और कर्म्मसे सबका परित्राण करते हैं, पुत्रके विषयमें भी क्षमा नहीं करता, तब उसका वह कर्म्म ही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करता है। राजा दुर्व्वल प्राणियोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करने पर, उन लोगोंको शील बल प्राप्त होता है, उससे राजाको परम धर्म्म होता है। जब राजा राज्यके डाकुओंको दमन और युद्धमें जय प्राप्त करता है, तब उसका ५. स

वही धर्म्म गाया जाता है। प्रिय पुरुषको पापाचरण करने पर भी यदि राजा उसके विषयमें क्षमा न करे, तो राजाका वही धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा शरणागत मनुष्योंकी मर्य्यादा भेद न करके उन्हें पुत्र समान पालन करता है, तब राजाका वह परम धर्म्म कहके गाया जाता है। यदि राजा काम क्रोधका अनादर करके दक्षिणा युक्त यज्ञ करे, तो उससे परम धर्म्म होता है। यदि राजा कृपण, अनाथ और बूढ़े मनुष्योंके क्लेशयुक्त आंसूको पोंछके उन्हें हर्षित करे, तो उसके जरिये उसे बहुत धर्म्म होता है। जो राजा मित्रोंको ऊंचा, शत्रुओंको नीचा और साधुओंको सम्मानित करता है, वही धार्म्मिक कहाता है। जो राजा सत्यका पालन प्रीतिपूर्व्वक सदा भूमिदान अतिथि सेवा और सेवकोंका भरण पोषण करता है लोग वैसे राजा कोही धार्म्मिक कहा करते हैं। जिसमें निग्रह अनुग्रह दोनों ही प्रतिष्ठित है, वही राजा इस लोक और परलोकमें उत्तम फल भाग किया करते हैं।

हे मान्धाता! धार्म्मिक पुरुषोंकेवास्ते इन्द्रिय निग्रह ही अत्यन्त उत्तम कार्य्य है, क्योंकि वे लोग प्राण और इन्द्रिय संयम कर सकें, तो ईश्वरत्व लाभ करनेसे समर्थ होते हैं, परन्तु इन्द्रिय संयम न कर सके तो अग्निकी भांति हुआ करते हैं। जैसे यम अर्थात् विरति सब प्राणियोंको जिस प्रकार स्थित करती है, वैसेही राजा सब प्रजाको यथारीतिसे स्थित कर रखे। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब कि लोग सहस्र पुत्रवाले इन्द्रके साथ राजाकी तुलना करते हैं, तब राजा जिसे धर्म्म रूपसे देखे, वही धर्म्म कहके गिना जावेगा, हे राजन्! तुम सदा प्रमाद रहित होकर क्षमा, बुद्धि, धृति, सहारे प्राणियोंका नीति जानके साधु और दुष्टोंकी शिक्षा करो। सेना संग्रह करो, सबको दान दो, सबसे मीठे बचन कहो; पुर और जनपदवा[सियोंको] यथा रीतिसे सुखपूर्व्वक पालन करो। हे अपट, राजा कभी प्रजा-पालन करनेमें [समर्थ] नहीं होता, क्योंकि राज्यरूपी महत् भ[ार] उठाना अत्यन्त ही कठिन है। जो राजा द[ण्ड]वित् बुद्धिमान और शूर हैं, वही राज्य करनेमें समर्थ होता है, परन्तु दण्ड रहित क्लीव और बुद्धिरहित राजा उसको करनेमें कभी समर्थ नहीं होता। तुम [उत्तम] कुलोंमें उत्पन्न हुए भक्त, बहुश्रुत, दक्ष अनुयाई सेवकोंके सहित तापसाय[ुक्त] बुद्धिको सब भांतिसे परीक्षा करना। य[दि] तुम इसी प्रकार सब प्राणियोंके प[रम] धर्म्मको मालूम कर सको तो ऐसा ह[ोनेसे] स्वदेश और विदेशमें कहीं भी तुम्हारा ध[र्म्म] नष्ट न होगा। हे राजन्। इस ही कारण अ[र्थ] और कामसे धर्म्म उत्तम है और धर्म्मात्मा म[नु]ष्यही इस लोक तथा परलोकमें सुख भो[ग] किया करते हैं। जो मनुष्य स्त्री पुत्रोंको [रक्षा कर] सकते हैं, वे सबके समीप पूजित होते हैं। [हे] मान्धाता! सेना संग्रह, दान मधुर बचन, अ[प्र]माद और पवित्रता ये सब राजाओंके अत्यन्त ऐश्वर्य्यकारी है; इससे इन सब विषयोंमें [तुम] सावधान रहना। राजा सावधान होके अ[पने] और दूसरेके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, परन्तु लोग राजाके छिद्रोंको न देखने पावें; क्यों[कि] आत्मछिद्रोंको छिपाना और परछिद्र [देखना] ही राजाओंका कर्त्तव्य कर्म्म है। हे महारा[ज!] इन्द्र, यम, वरुण और राजर्षियोंकी ऐसा[ही] वृत्ति है, तुम भी यत्नवान होकर इसे पा[लन] करो, हे भरत श्रेष्ठ! राजर्षि लोग जिस धर्म्मक[ा] सेवन करते है, तुम भी उस ही की सेवा करो और शीघ्र ही दिव्य पथ अवलम्बन करो। हे भारत। महातेजस्वी देवर्षि, पितर [और] गन्धर्व्व लोग इस लोक तथा परलोकमें धर्म्मात्मा राजाके यशको गाया करते हैं।

भीष्म बोले, हे भरतवंश प्रवीर युधिष्ठिर! मान्धाताने उतथ्यसे ऐसे ऐसे वचन सुनके शङ्का-रहित चित्तसे उस ही भांति धर्माचरण किये थे, इसीसे अकेले ही पृथ्वी प्राप्त की। हे पृथ्वी-नाथ! तुम भी मान्धाताकी भांति वैसा ही धर्माचरण करनेसे इस लोकमें पृथ्वी पालन करके मरनेके अन्तमें स्वर्ग लोकका स्थान प्राप्त करोगे।

९१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा धर्म मार्गमें निवास करनेका अभिलाषी होकर किस प्रकार धार्म्मिक होगा? उसे मैं आपके समीप जाननेकी इच्छा करता हूं, इसे विस्तार करके कहिये।

भीष्म बोले, तत्वार्थदर्शी बुद्धिमान वामदेवने पृथ्वीपति वसुमनासे जो कथा कही थी, पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासका ही ऐसे स्थलमें प्रमाण दिया करते हैं, मैं भी तुमसे कहता हूं, सुनो। ज्ञानवान्, धृतिमान्, पवित्रतायुक्त पृथ्वीनाथ वसुमनाने महातपस्वी महर्षि वाम-देवसे धर्म और अर्थयुक्त वचन पूछा, हे भग-वन्! जिस प्रकार धर्माचरण करनेसे धर्मच्युत न होके निज धर्ममें रह सकें, आप मुझे उस-हीका उपदेश करिये।

परम तपस्वी तेजस्वी वामदेव नहुषपुत्र ययातिकी भांति सुखसे बैठे हुए हेमवर्ण्ण वसु-मनासे बोले, महाराज! आप केवल धर्मके अनुवर्त्ती होइये, धर्मसे उत्तम दूसरा कुछ भी नहीं है; राजा लोग एक मात्र धर्ममें स्थित होके ही पृथ्वी जय किया करते हैं। जो राजा अर्थसिद्धिसे धर्मको उत्तम समझकर निज बुद्धिको धर्म बढ़ानेमें ही प्रवर्त्तित करते हैं, वेही धर्मके जरिये विराजमान होते हैं। जो राजा अधर्म्मी होकर बलपूर्व्वक अधर्म आचा-रणमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्र ही धर्म अर्थसे रहित होता और धर्म अर्थ दोनों ही उससे अलग हो जाते हैं। जिसके मन्त्री लोग दुष्ट और पापी हैं, तथा जो स्वयं धर्मकी हानि करते हैं, वे शीघ्र ही परिवारके सहित दुःखित होकर लोगोंके निकट वध्य होते हैं। जो राजा अर्था-नुष्ठानसे रहित कामाचारी और अपनी बड़ाई करनेवाला है, वह समस्त पृथ्वी प्राप्त करनेपर भी शीघ्र ही नष्ट होता है। परन्तु जो राजा कल्याणग्राही असूया रहित, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान होता हैं, वह सोतेसे बढ़नेवाले समु-द्रकी भांति बढ़ता है। जो राजा ऐसा समझता है। कि मैं धर्म अर्थ, काम, बुद्धि और मित्र किसीसे भी परिपूरित नहीं हूं, इन्हीं सबसे लोकयात्रा प्रतिष्ठित है, वह सब सुनके यश, कीर्त्ति, श्री और प्रजा लाभ कर सकता है। जो राजा धर्म अर्थका चिन्तक तथा धर्मका अनुगामी होकर इसी भांति अर्थ दृष्टि करना आरम्भ करता है, वह अवश्य ही विपुल अर्थ भोग कर सकता है। जो राजा कृपण, प्रीति-रहित और साहस प्रकृति युक्त होकर प्रजाके विषयमें यथार्थ दण्डविधान नहीं करता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो बुद्धिहीन राजा जानके भी पापी पुरुषोंके विषयमें उपेक्षा करके उनकी ओर दृष्टि नहीं रखता, वह अकीर्त्तिसे युक्त होकर बारबार नरक भोग किया करता है। जो राजा दाता, अक्र, वशवर्त्ती और सबका सम्मान करनेवाला होता है, उसे विपद उप-स्थित होनेपर सब मनुष्य आत्मविपदकी भांति उसके उस विपदके नाश करनेकी इच्छा करते हैं। जिसके धर्म उपदेशक गुरु नहीं है और जो अर्थ लाभमें सुख परतन्त्र होकर दूसरे किसीको भी धर्म विषयकी नहीं पूछते तथा वे सदा सुखभोग नहीं कर सकते और जि के धर्म उपदेश करनेवाला मुख्य गुरु स्वयं धर्मकी आलोचना करता है

लाभमें धर्म-परतन्त्र होता है; वही सदा सुख भोग कर सकता है।

६२ अध्याय समाप्त।

बामदेव बोले, जिस राज्यमें बलवान राजा निर्ब्बल पुरुषोंके ऊपर अधर्म्म आरोपित करता है, उसके वशवाले जो सब पुरुष उस ही वृत्तिको उपजीव्य किया करते हैं, तथा दूसरे जो सब मनुष्य उस पाप प्रवर्त्तक राजाके अनुगामी होते हैं, वह विनयरहित मनुष्योंसे युक्त राज्य शीघ्र ही विनष्ट होता है। राजा प्रकृतिस्थ अर्थात् स्वधर्म्मावलम्बी होनेपर वह जैसा व्यवहार करता है, साधारण मनुष्य भी उस ही व्यवहारके अनुगामी हुआ करते हैं। परन्तु राजा विषमस्थ अर्थात् अन्य धर्म्मावलम्बी होकर जैसा व्यवहार करेगा, स्वजन पुरुष उस व्यवहारके अनुगामी न होंगे। जिस राज्यमें साहस प्रकृति राजा शास्त्र लक्षणसे विपरीत कार्य्य करता है, उस राज्यमे वह उस ही समय नष्ट होता है। जो क्षत्रिय जित अर्थात् आपन्न और अजित् अर्थात् स्वस्थ मनुष्योंके अत्यन्त आचरित वृत्तिके अनुवर्त्ती नहीं होते, वे क्षत्रियधर्म्मसे बाहिर हुआ करते है। जो क्षत्रिय अपकार करनेवाले द्वेषी राजाको युद्धभूमिमे पाके द्वेषके कारण उसका सम्मान नहीं करते, वह क्षत्र धर्म्मसे बाहिर होते हैं। जो राजा आपदकालमें सुख भोगनेमें समर्थ होके भी दुःख भोग करते हुए प्रजाको आपदको निवारण करते हैं, वह प्रजासमूहके प्यारे होते हैं, राजलक्ष्मी वैसे राजाको कभी परित्याग नही करतीं। हे राजन्! जिसको बुराई करे, दूसरी बार उसकी भलाई करे; क्यों कि बुराई करनेवाला पुरुष फिर भलाई करनेपर थोड़े ही समयके बीच प्रिय हुआ करता है। मिथ्या बचन परित्याग करे, बिना कहे ही लोगोंका प्रिय कार्य्य करे; काम क्रोध और द्वेषके वशमें होकर कभी धर्म्म परित्याग न करे। कोई प्रश्न करे, तो उसे निठुर होके उत्तर न दे, कठोर बचन प्रयोग न करे, किसी कार्य्यमें शीघ्रता न करे, किसीकी निन्दा न करे और शत्रुओंकी संगत न करे। प्रिय होनेसे अत्यन्त हर्षित न होवे, अप्रिय होनेपर उसमें दुःखी न होवे और प्रजाके हितको स्मरण करते हुए अत्यन्त मर्थ्य भी तृप्त न होवे। जो राजा गुणके अनुसार सेवकोंका सदा प्रियकार्य्य किया करता है, उसके सब कार्य्य सिद्ध होते और राजश्री उसे कभी परित्याग नहीं करती। राजा सदा स्थिरता सहित विरोधियोंको निवृत्त और अनुकूल रहनेवाले भर्त्तोंका सत्कार करे। जो सेवक इन्द्रियोंसे युक्त, अत्यन्त अनुगत, पवित्रचित्तवाला अनुरक्त और सब कार्य्यमें समर्थ हो, उसे राजा महत् कर्म्ममें नियुक्त करे। जो सेवक ऐसे गुणोंसे युक्त हो और स्वामीके कार्य्योंमें सावधान होके उसे अनुरक्त कर सके, वैसे सेवकको ही राजा अर्थकार्य्यमें नियुक्त करे, जो राजा मूढ़ इन्द्रियपरायण, लोभी, अनार्य्योंके आचरित कर्म्मको करनेवाला, शठ, कपटता युक्त हिंसक, नीचबुद्धि, मूर्ख, उदार कर्म्मोंको त्यागनेवाला, मद्यमें रत और जुआ, स्त्री तथा मृगया परायण सेवकको महत् कार्य्योंमें नियुक्त करता है वह राजा श्रीभ्रष्ट हुआ करता है। जो, राजा अपनी रक्षा करके प्रतिपालन करने योग्य लोकोंकी रक्षा करता है, उसकी सब प्रजा बढ़ती है, और वह अवश्य ही विपुल ऐश्वर्य्य भोग किया करता है जो राजा गुप्त दूतोंके द्वारा अधीनमें रहनेवाले राजाओंके सब कार्य्यों को मालूम करता है, वह सबसे मुख्य हुआ करता है। राजा बलवान पुरुषका अपकार करके "मैं दूर हूं" इस प्रकार धीरज पूर्ब्बक उपेक्षा न करे, क्यों कि वे लोग बाज पक्षीकी भांति प्रमादयुक्त अपकारी राजाके समीप आके उपस्थित

होते हैं। दृढ़ मूल साधु राजा अपना बल मालूम करके निर्व्वल पुरुषोंके ऊपर चढ़ाई करे; परन्तु जो बलवान हैं, उनके ऊपर चढ़ाई न करे। धर्म्ममें तत्पर राजा पराक्रमसे पृथ्वी प्राप्त करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन और युद्धमें शत्रुओंका बध करे। इस लोकमें प्रजा पालन आदि कार्य्य करनेके अनन्तर स्वर्ग-हेतु निवन्धन अनामय अर्थात् कुशल जनक हुआ करता है; इससे राजा निजधर्म्ममें स्थित होके धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करे। युद्धमें रक्षाधिकार अर्थात् किले आदिकी दृढ़ता करनी, युद्ध, धर्म्मका अनुशासन, मन्त्र चिन्ता और प्रजाको सुख देना, इन पांच प्रकारके कार्य्योंसे पृथ्वी विशेष रूपसे वर्द्धित हुआ करती है। जो इन सबको भली भांति रक्षा करते, वेही राजेन्द्र होते और वह सदा इस लोकमें वर्त्तमान रहके इस पृथ्वीमण्डलको धारण किया करते हैं। अकेले राजाके जरिये इन सब विषयोंका सिद्ध होना अत्यन्त ही कठिन है; इससे राजा किले आदिके अधिष्ठाता मन्त्रियोंके ऊपर समस्त कार्य्यभार अर्पण करनेसे बहुत समयतक पृथ्वी भोग करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! जो पुरुष दाता, संविभक्त, कोमल-स्वभाव, पवित्र और अनुरक्त होता है, उसे ही लोग नृपति कहा करते हैं। जो निःश्रेयस विषय सुनके अपना मत परित्यागके उस निःश्रेयस ज्ञानको ही प्रतिपन्न करते हैं, लोग उसे ही नृप रूपसे मानते हैं। जो द्वेषके कारण अर्थकामी पुरुषोंके वचनको क्षमा न करके, उनसे निकट विमनाकी भांति सदा प्रतिकूल वचन सुनते; और जो जित् अर्थात् आपन्न और अजित् तथा स्वस्थ पुरुषोंके अग्राम्य अर्थात् बुद्धिमान पुरुषोंके आचरित वृत्तिकी सदा सेवा नहीं करते, वे क्षत्र धर्म्मसे वहिस्कृत होते हैं। निगृहीत सेवक, स्त्री, विषय, और दुर्गम, पर्व्वत, हाथी, घोड़े और सांप इन सबसे सदा निवृत्त होके आत्मरक्षा करे; परन्तु जो पुरुष इन सबमें सदा नियुक्त रहके आत्मरक्षा करता है, और मुख्य सेवकोंको परित्याग करके अत्यन्त हीन प्रकृतिवाले सेवकोंको प्रिय समझता है; वह पुरुष व्यसनमें फंसके कार्य्यका अन्त प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो राजा द्वेषके कारण कल्याण गुणसे युक्त स्वजनोंके समीप निवास करने की इच्छा नहीं करता, वह अदृढ़ात्मा दृढ़ क्रोधयुक्त राजा मृत्युके निकट वास किया करता है; और गुणवान पुरुषोंको हृदयके अप्रिय होनेपर भी जो राजा उन्हें प्रिय बचनसे वशमें कर सकता है, वह सदा भूमण्डल पर यशस्वी होके निवास करता है। राजा असमयमें अर्थ प्रणयन न करे, अनिष्ठ होने पर उससे कभी अत्यन्त सन्तापित न होवे, प्रिय कार्य्यसे बहुत हर्षित न होवे और शुभ कर्म्मोंमें सदा तत्पर रहे। कौन राजा अनुरक्त हैं, कौनसे भयके कारण अनुगत हैं और कौन निर्दोष हैं, इसे सदा विचारता रहे। राजा बलवान होकर भी निर्व्वलको कभी तनिक विश्वास न करे, क्योंकि वे लोग असावधानीरूपी अवसर पानेसे गिद्धकी भांति आ गिरते हैं। स्वामी प्रियवादी और सब गुणोंसे युक्त होने पर भी पापी सेवक उसका अपकार किया करते हैं; इससे वैसे मनुष्योंका कभी विश्वास न करे। नहुष पुत्र ययातिने इसी भांति राजोपनिषत् अर्थात् राजाओंकी रहस्य विद्या कही है; इससे जो इस रहस्य विद्याके अनुसार मनुष्य राज्यमें नियुक्त होते हैं, वेही महान् शत्रुओंका नाश कर सकते हैं।

९३ अध्याय समाप्त।

वामदेव बोले, हे नरनाथ! राजा बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करे, युद्धसे जो विजय होती है, पण्डित लोग उसे निन्दित कहा करते हैं। मूल अत्यन्त दृढ़ न रहने पर राजा अप्राप्त वस्तुओंके वास्ते कभी इच्छा न करे;

निर्ब्बल मूलवाले राजाको अप्राप्त-वस्तुका लाभ नहीं विहित होता। जिसका जनपद उन्नत सम्पत्ति-युक्त, राजप्रिय, सन्तुष्ट और मन्त्रियोंसे सम्पन्न है, उस पृथ्वीपतिका ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। जिसकी सब सेना सन्तुष्ट, सान्त्वित दूसरेको बंचनामें निष्ठावान है, वह राजा ही थोड़ी सेनाके जरिये पृथ्वी जय कर सकता है। जिसके पुरवासी और जनपद वासी प्रजा दयालु, बलवान और धान्यवान है उस राजाको ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। हे राजन्! मेधावी राजा जब अपने प्रतापका समय सबसे अधिक समझे, तभी परभूमि और परधनकी लालसा करें; क्योंकि भोगोंमें उदय-मान, सब प्राणियोंमें दयावान, शीघ्रता करने-वाले और आत्मरक्षामें समर्थ राजाका ही विषय बर्द्धित हुआ करता है। जो विद्यमान आत्मीय पुरुषोंके विषयमें सब भांतिसे मिथ्या आचरण करता है, वह परशुसे काटे हुए बनकी तरह आप ही नष्ट होता है। जो राजा-आत्महिंसक नहीं है; शत्रु लोग भी उससे द्वेष नहीं करते, क्योंकि जो पुरुष क्रोधका नाश कर सकते हैं, कोई भी उनका द्वेषी नहीं होता। आर्य्य पुरुष जिन कर्म्मोंमें विद्वेष प्रकाश करें, विद्वान राजा उस कर्म्मको कभी भी न करे; और उन लोगोंके कल्याणदायक बचनको न टाले, जो राजा सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको सिद्ध करके अन्तमें सुख अनुभव करनेकी अभिलाषा करता है, वैसे राजाकी दूसरा कोई भी अवज्ञा नहीं कर सकता। जो राजा मनुष्य राज्यमें इसी भांति व्यवहार करता है, वह दोनों लोकोंको जय करके विजय-पथमें प्रतिष्ठित होता है।

भीष्म बोले, राजा वसुमनाने महर्षि बाम-देवका ऐसा वचन सुनके उसके अनुसार ही सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया था; तुम भी वैसा कर नेसे अवश्यही दोनों लोकोंको जय कर सकोगे।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि कोई क्षत्रिय दूसरे क्षत्रियको जीतनेकी इच्छा करे, तो विजय-विषयमें कैसा धर्म्म आचरण करे? मैं आपसे पूछता हूं; आप मुझसे यह विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, राजा सहाययुक्त वा बिन सहा-यकके ही अकस्मात दूसरेके राज्यमें आगमन करके प्रजा समूहसे ऐसा बचन कहे, कि मैं तुम लोगोंकी सर्व्वदा रक्षा करूंगा; इससे तुम लोग मुझे धर्म्मपूर्व्वक कर प्रदान करो, और मुझे राजा कहके मानो। ऐसा बचन सुनके यदि प्रजा समूह उस समागत राजाको राज्यमें वरण करे तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका कुशल होता है। परन्तु, हे नरनाथ! यदि वे लोग अक्षत्रिय होकर राजाके विषयमें किसी प्रकार विरुद्धा-चरण करें तो ऐसा होने पर उन विकर्म्मस्थ प्रजा समूहको सब भांतिके उपायसे शासन करना उचित है। अपर अर्थात् हीन क्षत्रिय भी दूसरोंमें उत्तम जांचनेके वास्ते श्रेष्ठ क्षत्रि-यको आत्मत्राणमें असमर्थ और शस्त्रहीन देखके शस्त्र ग्रहण किया करते हैं; इससे राजा निज शस्त्रबलसे विजित गावोंको आक्रमण करके उनके स्वामी होकर सुख पूर्व्वक निवास करें।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कोई क्षत्रिय राजा युद्धके वास्ते दूसरे क्षत्रियके उपस्थित होवे तो वह क्षत्रिय राजाके किस प्रकार युद्ध करे। वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, युद्धमें असावधान क्षत्रिय रहित क्षत्रियके साथ युद्ध करे; क्यों कि एक पुरुष एक एकके साथ युद्ध करनेसे क्रमसे असमर्थ होके युद्ध परित्याग किया करता है। यदि राजा सावधान होके आगमन करे, तो सावधान होना चाहिये और यदि वह सेनाके सहित आगमन करे, तो सेना-युक्त होके उसे करे। और यदि राजा शठताके सहित करें; तो शठता पूर्व्वक ही उसके साथ युद्ध

ौर धर्म्मयुद्ध करनेपर धर्म्मयुद्धके जरिये ही से निवारण करे। घुड़सवार होके रथीके निकट न जावे, रथपर चढ़के ही रथीके मीप जावे और व्यसनसे आर्त्त, डरे हुए और राजित पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। विषमें भे हुए बाण असत् पुरुषोंके ही आयुध हुआ रते हैं; क्योंकि उन लोगोंका अस्त्र नहीं होता; सके यथार्थ युद्ध करे, जिघांसू पुरुषके ऊपर ोध न करे। प्राणहीन, अनपत्य, जिसका शस्त्र ट गया हो, विपद्ग्रस्त और वाहन रहित रुषोंके ऊपर अस्त्र न चलावे, बल्कि यदि वे पने गृह वा अपने राज्यमें उपस्थित हों तो नकी चिकित्सा करावे। साधुओंके बीच यदि ोई साधु पुरुष भेदके कारण व्यसनमें फंसा हो, तो उसे क्षत न करके मुक्त करना होगा; ही राजाओंका सनातनधर्म्म है। इसही कारण वयम्भूपुत्र मनुने कहा है, कि साधुओंके साथ र्म्मयुद्ध करना ही कर्त्तव्य है। साधुओंको नातन धर्म्म अवलम्बन करना ही उचित है; भी भी उसे नष्ट न करना चाहिये। जो धर्म्म-ह्कर क्षत्रिय अधर्म्म आचरणसे जय लाभ रते हैं, वह शठजीवी, पापी राजा स्वयं नष्ट आ करते हैं। दुष्ट लोग ही ऐसा कर्म्म करते ; परन्तु साधु पुरुष उत्तम व्यवहारोंसे ही साधु-ओंकी जय किया करते हैं, क्योंकि धर्म्मपू-र्वक मरनेसे भी वह कल्याणकारी होता है; रन्तु पाप कर्म्मके जरिये जय होनेपर भी वह ल्याणकारी नहीं होता। हे राजन्! अधर्म्म आचरण करना उचित नहीं है; क्योंकि वह ल गिरनेकी भांति उसही समय फल प्रदान करता है, परन्तु वह फल शाखा और मूल र्यन्त सब भस्म करके लोगोंके हस्तगत होता है। पापी पुरुष पाप कर्म्मोंसे अर्थ प्राप्त करके अत्यन्त तृप्त होता है और उससे वर्द्धित होकर उस पाप कर्म्ममें ही आसक्त रहता है। जो पापी पवित्र पुरुषोंकी उपहास करते हुए धर्म्मकी अविद्यमानता बोध करता है, वह धर्म्म विषयमें श्रद्धाहीन मनुष्य विनष्ट हुआ करता है, और स्वयं वरुण पाशमें बन्धके अपनेको अमरकी भांति समझता है; वायुसे परिपूरित बड़े चमड़ेकी भांति सत्कर्म्मसे निवृत्त रहता है; और अन्तमें नदीके किनारे रहनेवाले वृक्षकी भांति जड़ सहित नष्ट होता है, अनन्तर उस पापीके मरनेपर लोग उसे पत्थरसे फूटे हुए घड़ेकी भांति अभिनन्दन किया करते हैं, इससे राजा धर्म्मके जरिये विजय और कोष प्राप्त करनेकी अभिलाषा करे।

९५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा अधर्म्मके अनुसार जयकी इच्छा न करे; क्योंकि कोई भूपति भी अधर्म्मके अनुसार विजय लाभ करनेमें सम्मत नहीं हैं। हे भरत-श्रेष्ठ! अधर्म्मयुक्त विजय अनित्य है; उससे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता; बल्कि वैसी विजय पृथ्वी और भूपति दोनोंको ही नष्ट किया करती है। इससे जो पुरुष युद्धमें कवचरहित होकर हाथ जोड़के 'मैं आपकी शरणमें हूं' ऐसा वचन कहके शस्त्र परित्याग करे राजा वैसे मनुष्यका बध न करे। जो पुरुष बलसे जीता जावे, राजा उसके साथ युद्ध न करके एकवर्ष पर्यन्त "मैं आपका दास हुआ" उसे ऐसी ही शिक्षा दे। सम्वत् बीतनेसे उस भांति शिक्षित होनेपर पुत्रके समान उसका पालन करना होगा। जो कन्या बलपूर्व्वक हरण की जावे, राजा उससे कहे कि तुम मुझे वा दूसरेको वरण करोगो? सम्वत् भरके बीच ऐसाही पूछे। अनन्तर यदि वह कन्या दूसरेकी अभिलाषिनी हो, तो उसे परित्याग करना होगा; और ऐसे ही बलसे दास दासी आदि जो कुछ धन हरके लाया गया होवे, उसे भी फिर लौटाना होगा। चोर अर्थात् तस्कर आदि दुष्टोंका जो

धन हरण किया जाता है, वह स्थायी नहीं होता; इससे उसे व्यय करना चाहिये और उनकी सब गौवें ब्राह्मणोंको दूध पीनेके वास्ते दी जावें, बैल बोझा ढोनेके वास्ते नियुक्त होवें; परन्तु वे लोग यदि शरणागत हों, तो उनके विषयमें क्षमा करनी होगी। राजा राजाके साथ ही युद्ध करे, उससे धर्म्म होता है; इससे दूसरे क्षत्रिय पुरुष राजाके सम्मुख होकर कभी शस्त्र न चलावें। दोनों ओरकी सेना इकट्ठी होनेपर यदि ब्राह्मण उसके मध्यवर्त्ती हो, तो उस समय दोनों ओरकी सेना शान्ति अवलम्बन करके युद्धसे निवृत्त होवें। जो ब्राह्म णका उल्लङ्घन करते हैं, वे सदा मर्य्यादा भेद किया करते हैं। अधिक कहांतक कहें, जो लोग इस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वेही अधम क्षत्रियोंमें गिने जाते हैं। जो क्षत्रियधर्म्मको लुप्त और मर्य्यादाको भेद करता है, वह पुरुष क्षत्रियसभामें अग्राह्य होता तथा क्षत्रियोंके बीच नहीं गिना जाता। विजयकी इच्छा करनेवाला राजा कभी उस वृत्तिका अनुवर्त्ती न होवे, क्यों कि धर्म्मसे प्राप्त हुई विजयसे बढ़के क्या कोई अधिक लाभ होसक्ता है। सहसा-नीचस्वभाववाले प्राणियोंको शीघ्र शान्तवाद और भोगदानसे प्रसन्न करना ही राजाओंकी परम नीति है, क्यों कि वे सब कठोर वचन कहके बलपूर्व्वक वशमें किये जानेपर अत्यन्त ही दुःखित होके राजाकी सब व्यसनोंकी परीक्षा करते हुए अपने राष्ट्रसे भागकर सब भांतिसे शत्रुओंकी उपासना किया करते हैं। हे राजन्! वे लोग असन्तुष्ट होनपर सब प्रकारसे राजाके व्यसनके अभिलाषी होकर आपदकालमें राजाके शत्रुओंकी अनुकूलता करते हैं; इससे राजा किसी प्रकार भी शत्रुओंको छलसे न ठगे तथा उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध न करे। क्यों कि वे लोग चाहे कितने ही उद्यत क्यों होवें, उससे उनका जीवन नष्ट नहीं होता, इस ही कारण राजा थोड़ेमें ही सन्तुष्ट होकर पवित्र जीवन ही अत्यन्त लाभ करे। जिसका जनपद उन्नत सम्पत्तियुक्त, राजप्रिय और सन्तुष्ट सेवक तथा मन्त्रीयुक्त होता है, वह राजा ही दृढमूल हुआ करता है। जो ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य और दूसरे पूजनीय श्रुतिसम्मत ब्राह्मणोंकी पूजा तथा उचित सम्मान किया करते हैं, वे जगत्में लोकवित कहके विख्यात होते हैं। सुरराज सुरपति इन्द्रने ऐसे ही व्यवहारोंसे पृथ्वीमण्डल प्राप्त किया है; इससे राजा लोग इन्हीं व्यवहारोंके अनुसार इन्द्रके विषयकी जय करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! राजा प्रतर्द्दन महायुद्धमें प्रजा समूहके भूमिके अतिरिक्त समस्त धन तथा अन्न और औषधियोंको भी हरण किया था; और राजा दिवोदासने अग्नि होत्रके अग्निसे बची हुई हवि तथा भोजनीय सिद्धान्न हरण किया था, उस ही कारण वे लोग निन्दित हुए। हे भारत! राजा नाभागने श्रोतियार्थ और तापसार्थके अतिरिक्त दूसरे स्थानोंका सराजक राज्य दान किया था। हे युधिष्ठिर। धर्म्म जाननेवाले प्राचीन राजाओंमें जो सब उत्तम व्यवहार विद्यमान थे, वे सब मेरे अभिलषित हुए है। राजा दूसरी भांतिकी विद्याके जरिये विजयकी इच्छा करे परन्तु माया और दम्भके जरिये अपने स्थैकी अभिलाषा न करे।

९६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रधर्म बढ़के पापयुक्त धर्म्म दूसरा नहीं है, क्यों कि राजा युद्धमें पराजित होकर स्वयं भागते हुए सेनामें स्थित निर्दोषी महाजन वैश्योंको काल ग्रासमें डालते हैं। हे विद्वन्! इससे राजा किन कर्म्मोंसे सब लोकोंकी जय करे? इसे मैं जानेकी इच्छा करता हूं, इसे आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, राजा लोग पापियोंके निग्रह, साधुओंके संग्रह, यज्ञ और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं। जो राजा बिजयकी इच्छासे प्राणियोंको पीड़ित करते हैं, वे ही फिर विजय प्राप्त करके प्रजा समूहको वर्द्धित किया करते हैं। वे दान, यज्ञ और तपोबलसे बुराइयोंको दूर करते और प्राणियोंके ऊपर कृपा करते हैं; इस ही कारण उनका पुण्य विशेष रूपसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे खेतको परिष्कार करनेवाला कृषक खेतको साफ करनेके वास्ते तृण और धान्य दोनोंको काटता है, उससे धान्य नष्ट नहीं होता, बल्कि उससे खेत सब भांतिसे साफ होनेसे फिर उसमें धान्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी भांति जो राजा तस्कर आदि वध्य पुरुषोंका वध करते हैं, उन तस्करोंके नष्ट होनेसे उनके प्रजाकी बार बार वृद्धि हुआ करती है। जब डाकू लोग प्रजाके धनको हरते और प्राण बध करते हुए उन्हें अनेक प्रकारके क्लेश देते हैं, उस समयमें जो राजा डाकुओंके दलसे उन प्रजापुञ्जकी रक्षा करता है, वैसा राजा ही प्रजा समूहका धनदाता और सुखदाता होके विराजमान होता है। अनन्तर वह अभय दक्षिणा-युक्त यज्ञ करके इस लोकमें अनेक भांतिके सुखको भोगता हुआ इन्द्र लोकके समान स्वर्गको प्राप्त करता है। शत्रु लोग ब्राह्मण बधके वास्ते उद्यत हुए हों, तो उस समय जो राजा युद्ध यज्ञमें गमन करके यूपस्वरूप निज शरीरको त्यागता है, वह अनन्त दक्षिणायुक्त यज्ञ रूपसे वर्णित होता है। और वह युद्धमें भयरहित होके शत्रुओंके ऊपर बाण चलावे, तो देवता लोग उससे बढ़के पृथ्वी पर कुछ भी कल्याण नहीं देखते। युद्धभूमिमें जितने बाण उसके देहके चमड़ेको भेदते हैं, उतने ही परिमाणसे वह सर्वकाम-प्रद और अक्षय लोकोंको इच्छानुसार भोगता रहता है; और युद्धमें उसके शरीरसे जो रुधिर बाहर होता है, उस रुधिर बहनेसे वह दुःखके जरिये सब पापोंसे मुक्त होता है। धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा कहा करते हैं, कि जो क्षत्रिय बाणोंकी चोटसे पीड़ित होकर जिन दुःखोंको सहते हैं, उस ही दुःख भोगके जरिये उनकी महत् तपस्या हुआ करती है। जैसे प्राणी बादलोंसे जलकी इच्छा करते हैं, वैसे ही भयशील सब धर्म्मात्मा पुरुष भी युद्धमें शूर पुरुषोंके पीछे रहके निज शरीर रक्षाकी अभिलाषा करते हैं। यदि शूर पुरुष क्षेमकालकी भांति भयके समय पिछाड़ी स्थित उन भयभीत मनुष्योंकी रक्षा करके उन लोगोंको किसी प्रकार युद्धकी ओर नहीं होने देते, तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका वह पुण्य विद्यमान रहता है। हे राजन्! युद्धमें समान बलवाले पुरुषोंमें भी महत् अन्तर देखा जाता है, क्यों कि समस्त सेनाके इकट्ठे होनेपर जो पुरुष प्रचण्ड हो जाता है, उसके सम्मुख कोई भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। उस भयङ्कर युद्धमें शूर पुरुष ही स्वर्ग प्राप्तिके मार्गको अवलम्बन कर शत्रुओंके सम्मुख होकर निज शरीर त्याग करतेहैं, परन्तु भीरु मनुष्य उस समय सहायको त्यागके भाग जाते हैं। यदि भीरु मनुष्य युद्धमें शूर पुरुषोंसे रक्षित होके उन्हें नमस्कार करें, तो उनका न्याय आर्य्य करना सिद्ध होता है; नहीं तो उन लोगोंको वह भय विद्यमान रहता है। हे तात! जो लोग सहायकोंको त्यागके अपने मङ्गलकी अभिलाष करके घरकी ओर भाग जाते हैं, तुम वैसे अधम पुरुषोंका संग्रह मत करो। जो सहायोंको परित्याग करके निज प्राण रक्षाकी अभिलाष करते हैं, इन्द्र आदि देवतालोग उनका कल्याण नहीं करते। इससे शूरवीर क्षत्रिय पुरुष वैसे मनुष्योंको काठ वा ढेलोंसे नष्ट करें अथवा कटाग्निसे जला देवें, वा पशु मारनेकी भां डालें। शूरवीर क्षत्रियोंको छेद और

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यकी प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शरीर नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा वचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख बनाकर मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताकी इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युकी अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्म्मसे प्राप्त अनेक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलोकताको पाते हैं। जो शूर पुरुष प्राणकी आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं, वे इन्द्रलोकमें बास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन करते है।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें तेजोमय बिमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके रसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवको देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको रीति शासित करके धर्म्मकी अभिलाषसे बिधिके अनुसार चातुर्व्वर्ण्यधर्म्ममें प्रवृत्त कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने बस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और दीक्षासे और सब भातिके उत्तम यज्ञोंसे ... सन्तुष्ट किया है, और क्षत्रधर्म्ममें स्थित ... यथा रीति शास्त्रकी ओर दृष्टि करके ...ओंको सेनाको जय किया है। हे देवराज! शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति ... इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब ... किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, ... भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे यज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्ध यज्ञमें क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ... किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्य्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है । सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं ; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते है । जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं । वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरीरका वेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋजु, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दातके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरीरको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें खा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट है । शस्त्र टनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम नी चढ़े हुए प्रास, शक्ति ऋष्टि और फरसोंका ब्द ही उस यज्ञकी संख्या और युद्धके जरिये स्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु र्थात् युद्धकी हवि हुआ करती है । संग्राम रते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ रनेवालेको सर्व्वकामप्रद, समृद्धियुक्त पूर्णा- ति हुआ करती है । काटो ! वेधन करो,— जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते हैं, के सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे मरूपसे गाया करते हैं । उस यज्ञमें शत्रुओंके सुख हवि स्थापन करनेकी पात्र और हाथी ड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित े हैं । उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर सब कवन्ध उठते हैं वेही कवन्ध यज्ञ करने- शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त रूपसे कहे जाते हैं। हे राजन् ! हाथियोंके हको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्कार रूपी है · तलवार और नगाड़ेके शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम उद्गाता हुआ करते हैं । हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी आशा त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं ; वह अत्यन्त दक्षिणासे युक्त यज्ञरूपसे विराजमान होते हैं । जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते है । जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञकी भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाह स्वरूप, भेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डिया कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवारके चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बेतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महानौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य हैं ; राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसागरमें बहाने वाली है । वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्थान हुआ करता है । जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होती है, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं । पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रुसेनासुख पत्नीशाला, निज सेना सुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्यमान रहते हैं । व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुखवर्त्ती शून्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ क...

वेदी होती है, उसमें यजमान ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंको अग्निरूप कल्पना करके नित्ययज्ञके जरिये यज्ञ किया करते हैं। परन्तु जो शूर शत्रुओंसे पीड़ित हो भयके कारण भागता है, वह शूर पुरुष प्रतिष्ठारहित होकर नरकमें गमन करता है। जिनकी वेदी रुधिरके वेगसे युक्त और केश, मांस तथा हड्डियोंसे परिपूरित होती है, वे लोग परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो शूर पुरुष शत्रुके सेनापतिका बध करते उसकी सवारीपर चढ़ते हैं, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान और विष्णुके समान पराक्रमशाली वे शूर पुरुष सबके स्वामी हुआ करते हैं। जो युद्धमें सेनापति वा उसके पुत्रको सामान्य जीवकी भांति ग्रहण करके वहांपर सत्कार युक्त होते हैं, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। शूर पुरुषोंके युद्धमें मरनेपर उनके वास्ते कभी शोक न करे, क्यों कि युद्धमें मरनेपर शूर पुरुष अशोचनीय होकर स्वर्गलोकमें सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके वास्ते पिण्डदान, जलदान और अशौच्यकी विधि नहीं है, इससे कोई उनके वास्ते इन सब कर्म्मोंको करनेकी इच्छा न करे; युद्धमें मरनेपर पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, वह मुझसे सुनो। जो पुरुष युद्धमें मरते हैं, सबसे उत्तम अप्सराओंकी एक हजार कन्या "शीघ्र हमारे पति होंगे।" ऐसा कहती हुई उनकी ओर शीघ्रताके सहित दौड़ती हैं। जो शूर युद्ध कर्म्मको सिद्ध करते हैं, उनके वास्ते वही तपस्या, पुण्य, सनातन धर्म्म और चारों आश्रमरूपी हुआ करता है। जो पुरुष संग्रामके समय मुखमें तृण धारण करके "मैं आपका हुआ," ऐसा वचन कहे, उसे और बूढ़े बालक स्त्री तथा पीछे रहनेवाले मनुष्योंका वध न करे। मैं जम्भ, वृत्र, बल, पाक, शतमाय, विरोचन, दुर्व्वार्य्य, नमुचि, नैकमाय, शम्बर, दैत्येय, विप्रचित्ति, सब दनुपुत्रों और प्रह्लादको युद्धमें मारके देवताओंका स्वामी हुआ हूं।—भी० बोले, योद्धा अम्बरीषने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उसे ग्रहण करके निज सिद्धि लाभ की थी।

९८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजा प्रतर्दन और मिथिलापति जनक इन दोनोंने जिस कारणसे युद्ध किया था, शूर पुरुषोंके उत्साहविषयमें पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासको दृष्टान्तरूपसे वर्णन किया करते हैं। हे राजन्! संग्रामयज्ञमें दीक्षित मिथिलापति जनकने निज योद्धाओंको स्वर्ग और नरक दिखाते हुए उन लोगोंसे कहा था, हे योद्धा लोगों! तुम लोग युद्धमें भय रहित शूरपुरुषोंके इन प्रकाशमान लोकोंको देखो; यह स्थान गन्धर्व्वोंकी कन्याओंसे; घिरा हुआ सब कार्म्म सिद्ध करनेवाला और अक्षय है। और युद्धसे भागनेवाले पुरुषोंके वास्ते यह नरक उपस्थित है, इसमें पतित होनेपर सदा अयश हुआ करता है, इससे तुम लोग संन्यास बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंको जीतो; अप्रतिष्ठित नरकके वशवर्त्ती न बनो। हे शत्रुओंके जीतनेवाले! योद्धाओंने राजा जनकका ऐसा वचन सुनके युद्धमें उन्हें हर्षित करके शत्रुओंको जीता था। इससे ऊंचे चित्तवाले शूर और मनुष्योंको युद्धमें सदा उपस्थित रहना अवश्य उचित है। गजसेनाके बीच रथी, रथियोंके बीच घुड़सवार और घुड़सवारोंके बीच पैदल सेना स्थापित करनी उचित है। युधिष्ठिर! जो राजा इस प्रकार व्यूह बनाते हैं, वे शत्रुओंको सदा जय किया करते हैं। अत्यन्त ऊंचे चित्तवाले शूर पुरुष समुद्रको क्षोभित करनेवाले मकर घड़ियालकी भांति अच्छी प्रकार युद्ध करते हुए शत्रुसेनाको क्षोभित करके स्वर्ग गति लाभ करते हैं। विषादग्रस्त योद्धाओंको इकट्ठे कर यथा रीति

स्थापित करके उन्हें हर्षित करे, जितभूमिकी रक्षा करे, और जो लोग लौटनेके भयसे युद्धसे भागें, अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे। हे राजन्! जीनेकी आशा त्यागके लौटे हुए शूर पुरुषोंका वेग अत्यन्त असह्य होता है, इससे उन लोगोंका बहुत पीड़ा करना उचित नहीं। शूर पुरुष अत्यन्त भागनेवाले पुरुषोंके ऊपर शस्त्र चलानेकी इच्छा नहीं करते, इससे अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे अचर चरके, बिन दांतवालोंके, जल प्यासे लोगोंके और कादर पुरुष शूर पुरुषोंके अन्न हुआ करते हैं। डरपोक पुरुष पीठ, उदर, हाथ और पांवसे समान होनेपर भी पराजित हुआ करते हैं; इससे भयसे आरत पुरुष पृथ्वीमें गिरके हाथ जोड़कर शूर पुरुषोंकी उपासना करें। शूर पुरुषोंकी भुजासे ये लोग सदा पुत्रकी भांति रक्षित हुआ करते हैं, इससे सब अवस्थाओंमें ही शूर लोग सम्मान भाजन हुआ करते हैं। तीनों लोकोंके बीच पराक्रमसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; क्योंकि शूर पुरुष सबको ही पालन किया करते हैं, और शूर पुरुषोंसे ही सब प्रतिष्ठित रहता है।

९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! विजयकी इच्छा करनेवाला अत्यन्त धर्म्म पीड़न करके भयभीत सेनाके सब पुरुषोंको राज भय दिखाके किस भांति रणभूमिकी ओर भेजे? यह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, सत्यधर्म्म, सत्य, निश्चय, शिष्टाचार और राजभय प्रदर्शनजनित प्रवृत्त इन चार कारणोंसे युद्धधर्म्म स्थिर हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! मैं तुमसे सदा फल देनेवाले उपाय धर्म्म सब फिर कहूंगा; डाकूलोग धर्म्म और कर्म्मके बाधक हुआ करते हैं, उनके नाश और सब कार्य्योंकी उत्तम सिद्धिके वास्ते इस समय मैं तुमसे शास्त्रोक्त उपाय कहता हूं, सुनो। हे भारत! राजा लोग सरल और कुटिल दोनों ही बुद्धि मालूम करें; परन्तु कुटिल बुद्धि मालूम करके उसका सेवन न करें, क्योंकि कुटिल बुद्धि आगत विषयोंका बाधक हुआ करती है। शत्रु लोग भेदके जरिये राजाके निकट उपस्थित होने पर जैसे राजा उन लोगोंको दण्ड देता है, वैसे ही उन दुष्टोंको भी दण्ड दे। हे पार्थ! हाथियोंके शरीरको ढापनेके वास्ते गज, बैल और बकरेके चमड़े; शल्य, कांटे, लोह, तनत्राण, चवंर, पानी चढ़े और चोखे शस्त्र, पीतल और लोहेके कवच, अनेक रङ्गोंसे रङ्गी हुई ध्वजा पताका, तेजधारवाली ऋष्टि, तोमर, तलवार, फरसे और ढाल इन सब सामग्रियोंको युद्धके वास्ते संग्रह कर रखे। शस्त्रों पर पानी चढ़ाना, और योद्धाओंको युद्धमें दृढ़ करना होगा। हे भारत! चैत और अगहनका महीना ही सेनाकी यात्राका उत्तम समय है; इससे जब पृथ्वी कीचड़ और शस्योंसे रहित तथा निर्म्मल हुआ करती है, और समय बहुत शीत तथा अत्यन्त उष्ण नहीं रहता, तभी शत्रुओंको व्यसनमें फंसा देखके उनकी ओर सेना भेजे। क्योंकि शत्रुओंको निवारण करनेके विषयमें इसी भांति सेनाका नियोग ही उत्तम हुआ करता है। जल और तृणयुक्त समतल मार्ग ही सुगम होता है, इससे मार्गकी जाननेवाले बनचारो दूतोंके जरिये उसे भलीभांति वारम्वार मालूम करे। मृगसमूहकी भांति जङ्गलके मार्गसे गमन करना कठिन है, इससे विजयकी इच्छा करनेवाले राजा लोग सेनाको पहिले कहे हुए मार्गसे भेजा करते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए सामर्थ्यवान पुरुष सेनाके अगाड़ी रहें और टिकनेका स्थान जल दुर्गसे घिरा मार्गवाला होवे, ऐसा होनेसे

शत्रु लोग किसी प्रकार भी उसे आक्रमण नहीं कर सकेंगे। जिस निवास स्थानके समीपवाली भूमिमें अवकाश रहे और उसके निकट बन हो, उस स्थानको ही राजा अधिक गुण युक्त समझे; इससे निज सेनाके निकटमें रहनेवाले वैसे स्थानमें अनेक गुणोंसे युक्त युद्ध जाननेवाले पुरुषोंको स्थापित करे। निज बनके समीप ऊपर कहे हुए पुरुषोंका स्थित होना पैदल सेनाका उतरना और संगोपन इन सब कार्य्योंके ही शत्रुओंको पराजित करनेके परम उपाय जानना चाहिये। इस ही रीतिके अनुसार योद्धा लोग सप्तर्षियोंको आगे करके पर्व्वतकी भांति अचल भावसे युद्ध करने पर दुर्ज्जय शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिस दिशामें वायु, सूर्य्य और शुक्र रहे, उस ही ओर युद्ध करनेसे जय होती है; परन्तु ये सब यदि एक ओर रहें, तो पूर्व्वापरके अनुसार श्रेष्ठ हुआ करते हैं। युद्ध जाननेवाले पुरुष कीचड़हीन जलरहित अमर्य्याद अर्थात् पुल और प्रकार आदि सीमारहित तथा ढेलेसे रहित समतल भूमिकी प्रशंसा किया करते हैं। हे भारत! रणभूमि कीचड़ और गढ़ेसे रहित तथा हाथी और योद्धाओंके वास्ते भूमि छोटे वृक्षों महाकक्ष और जलसे युक्त होने पर प्रशंसनीय होती है। पैदल सेनाके निवासकी जमीन बहुतेरे बक्किलेसे घिरी हुई महाकक्षयुक्त, वास और वेतोंसे परिपूरित तथा पहाड़ और उपवनसे युक्त होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। हे राजन्! वर्षारहित दिनोंमें अनेक पैदल, रथ और घोड़ोंसे युक्त सेना दृढ़ और प्रशंनीय हुआ करती है; प्रावृट् ऋतुमें अनेक हाथी और पैदलयुक्त सेना प्रशंसित होती है; इससे राजा ये ही सब गुण और देश कालका विचार करके सेना प्रयोग करे। जो राजा इसी भांति विचार करके तिथि और नक्षत्रमें शुभ आशीर्व्वादसे युक्त होकर पूरी रीतिसे सेना नियोग करता है, वह सदा लाभ किया करता है। मोक्षमार्ग ... करनेवाले, भागने, चलने खाने, और ... तथा सोते, प्यासे और विक्षिप्त पुरुषोंके प्रहार न करे। जो अत्यन्त क्षिप्त, व्यतिक्षिप्त, निहत, प्रतनूकृत अविश्रुत, कृतारम्भ आदि गुप्त उपाय जाननेवाले, प्रतापित ... आदि लानेके वास्ते बाहिर होनेवाले, नि... गृह राजद्वार वा अमात्य द्वारके अनुवर्त्ती इत्यादि इन सबके स्वामी हैं, उनका वध करे। जो दूसरेकी सेनाको भेदकर अपने सेना स्थापित करते हैं, उन्हें अपने समान खाने पीनेकी वस्तु प्रदान करे और उनको दूना वेतन कर देवे। जो लोग दशके स्वामी हैं, उन्हें, एक सौके स्वामीको सहस्राधिपति करके सावधानीके सहित उनकी रक्षा करे। मुख्य सेनाको इकट्ठी करके सब पुरुषोंसे कहना चाहिये, कि तुम लोग शपथ करके मेरे समीप यह स्वीकार करो, कि हम सब इकट्ठे होकर विजयके वास्ते युद्धमें प्रवृत्त होंगे, आपसमें कोई किसीको परित्याग करके न भागेंगे। जो पु... आरम्भ करके मुख्य योद्धाओंको शत्रुओंसे ... करावें, और जो लोग डरपोक हों, वे इस समय स्वयं निवृत्त होवें। जो लोग ... पूर्व्वक ऐसा कार्य्य स्वीकार करें, वे ... युद्धमें सेनाके आने वा युद्ध बन्द होने पर अप... ओरके मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध न करें बल्कि वे लोग अपनी तथा अपनी ओरकी सेनाके पुरुषोंकी रक्षा करके शत्रु पक्षकी सेनाका वध करें। और जो पुरुष संग्राममेसे भागता है, उसका अर्थनाश वध अकीर्त्ति होती है और वह लोगोंके कठोर और निन्दित बचन सुना करता है; ... से हमारे शत्रु पक्षीय प्रतिध्वस्त दांत- युक्त शस्त्ररहित शत्रुओंके जरियेसे घिरे ... होका सदा अर्थनाश आदि होवे। जो सब ...

...ड़कर भागते हैं, वे नीच मनुष्योंमें गिने जाते हैं, ...कि वैसे पुरुष समूहकी वृद्धि मात्रके वास्ते हैं, ...स लोक और परलोकमें वे लोग सुखभागी ...हीं होते। हे तात! जिनई शत्रु लोगोंके ...संयुत चित्त और प्रसंशा वादसे सहित अख...ाकार गतिसे भागनेवाले पुरुषोंकी ओर ...ड़ने पर वह अत्यन्त ही असह्य होजाता है; ...सा ही क्यों! युद्धमें शत्रुओंके जरिये जिसका ...श नष्ट होता है, मैं मृत्युको भी उससे ...धिक असह्य और दुःखदायक नहीं समझता ...ससे जयको ही धर्म्म और सब तरहके सुखका ...ल जानना चाहिये, क्योंकि जय न होने पर ...र पुरुष भी कादरोंकी तरह परम ग्लानिसे ...त होते हैं। 'मैं स्वर्गकी कामनासे युद्धमें ...नेकी आशा त्यागके विजयी वा मरके महत् ...ति लाभ करूंगा'—ऐसी ही शपथ करके जो ...र पुरुष जीनेकी आशा त्याग कर युद्धमें शत्रु-...नाका नाश करते हैं, वेही लोग भय-रहित ...हके विख्यात हुआ करते हैं। हे राजन्! ...त्रुओंके साथ युद्ध करनेके वास्ते ढाल तलवार ...रण करनेवाले पुरुष सेनाके आगे, शकट ...ना पीछे और दुर्गस्थित सेना बीचमें रहे; ...र पुरमें रहनेवाली जो सब सेना पुरमें गमन ...रे, वह पदातियोंकी रक्षा करे। जो सब ...नकी शूरवीर बलवान पुरुष आगे रहनेकी ...छा करें, और वे सब पहिले पैदल सेनाको ...रके स्थित रहें। और यत्न पूर्वक डराहु-...के उत्साहको बढ़ाना होगा, क्योंकि वे सब ...साहित होंगे पर दल बांधके समीपमें ही ...त होंगे। सेनापति थोड़ी सेना इकट्ठी करके ...ओंके साथ युद्ध करावे और उसे इच्छानु-...र अनेक भांतिसे विस्तारित करे, और बहु-...के सहित थोड़ी सेनाको सूचीमुख होकर ... करना उचित है; इससे वह भी करे। ...ह सेना युद्धमें तत्पर होके जब बाहु युद्ध ...ती रहे, तब उससे उत्साहको बढ़ानेके वास्ते सत्य वा मिथ्या ही हो, हमारा शत्रु बलरहित हुआ है, तुम लोग निर्भय होके प्रहार करो शत्रुओंके भागने पर ऐसा ही कहके हर्ष प्रकाश करे। बलवान पुरुष भयानक शब्द करते हुए शत्रुओंकी ओर दौड़ें; ताड़ी; तलत्राण गोमृङ्ग आदि शब्द किये जावें, और आगे चलनेवाले पुरुष लोग मृदङ्ग, भेरी और ढोल आदि बाजे बजावें।

१०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे रूप कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार, कैसे कवच और किस भांतिके शस्त्रशाली शूर लोग युद्ध करनेमें समर्थ होते हैं?

भीष्म बोले, युद्धमें वीर पुरुष देशाचार और कुलाचारसे युक्त होके जैसे शस्त्र तथा वाहन आदि सब सामग्रियोंको संग्रह करके युद्ध कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसे सुनो। गान्धार, सिन्धु और सौवीर देशीय वीर लोग नखर और गाड़से युद्ध किया करते हैं, वे सब युद्ध करनेमें निडर और अत्यन्त बलवान हैं; तथा सब युद्धको जाननेवाले हैं। उशीनर देशीय शूर लोग सब शस्त्रोंके जाननेवाले और बलवान हैं। प्राग्देशीय योद्धा लोग हाथियोंके युद्धमें निपुण और कूटयोधी हैं। काम्बोज, यवन और मथुरा वासी शूर पुरुष प्राग्देशिय योद्धाओंकी भांति युद्ध किया करते हैं। दक्षिणी लोग तलवार और बाहु युद्धमें अत्यन्त निपुण हैं।

हे युधिष्ठिर! सभी स्थानोंमें इसी भांति महापराक्रमी महाबलवान पुरुष प्रायः उत्पन्न हुआ करते हैं, अब उनके यथोक्त लक्षण सुनो। वे सब ही प्राणियोंको पीड़ित करनेवाले, उनका बोलना, चलना और देखना सिंह और शार्दूलके समान, नेत्र कुलिङ्ग और पारावत पक्षीकी तरह होते हैं। स्वर हरिनके समान, आंख हाथी तथा ऋषभनेत्रके

होता है ; वे सब ही प्रमत्त, मूढ़, क्रोधी, क्रोधमुखी शरभकी भांति होते हैं ; किङ्किणी और बादलकी भांति शब्द करनेवाले दूरगामी तथा दूरपाती होते हैं। उनकी नाक चौड़ी जीभ नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करनेवाली शरीर बिड़ालके समान ; कुजा, केश, त्वचा अत्यन्त सूक्ष्म और वृत्ति शीघ्रतायुक्त तथा चपल हुआ करती है। उनमेंसे कोई कोई गोधाकी भांति निमीलित, कोमल स्वभाव, तुरङ्गकी तरह गमन और शब्द करनेवाले तथा सब युद्धके जाननेवाले हुआ करते है। और उनमेंसे जो लोग सुसंहत उत्तम शरीरसे युक्त, सुन्दर दृढ़ अवयव और बड़ी छातीवाले हैं, वे प्रवादके समय कोपित और झगड़ेके समयमें हर्षित हुआ करते हैं। गम्भीर लोचन, कढे नेत्र, पिङ्गाक्ष, भ्रकुटी मुख, नकुल नेत्र, युद्धमें शरीर त्यागनेवाले, कुटिल दृष्टि, पृथुललाटवाले, मांसरहित दाढ़ीसे युक्त, वज्रकी तरह भुजा अङ्गुली चक्रसम्पन्न, कृश, शिराल और दुरासद होते हैं ; ये सब शूर लोग युद्ध उपस्थित होनेपर हाथीकी भांति मतवाले होकर वेगके सहित उसमें प्रवेश करते हैं। जिनके केशान्त प्रकाशमान और स्फुटित, पार्श्व स्थल स्थूल, मुख दाढ़ोयुक्त, स्कन्धसे उन्नत ग्रीवास्थल पृथु, विकटरूप, स्थूल और पिण्डाकार, स्वभाव वासुदेव तथा गरुड़की भांति उद्दत, वर्तुलाकार सिर, मुख बिड़ालकी तरह बड़ा और स्वर कठोर होता है, वे उग्र स्वभावयुक्त, मनस्वी, शब्दके अनुसार बाण चलाने वाले, अधार्मिक, गर्वित भयङ्कर, रौद्रदर्शन युद्धमें शरीर त्यागनेवाले युद्धसे न भागनेवाले अन्त्यज जातीय योद्धा लोग सदा सेनाके सुखस्थलमें स्थित हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर ! अधार्म्मिक छिन्नवृत्त पुरुष शान्त वचनसे वशमें नहीं होते ; बल्कि वे लोग शान्तवाक्यसे राजाके ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुआ करते हैं।

१०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! जय सेनाके कौन लक्षण श्रेष्ठ होते हैं उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भरतावतंस ! जयशील जो सब लक्षण श्रेष्ठ हैं, उसे पूर्ण रीतिसे कहता हूं। हे राजन् ! दैवके प्रतिकूल तथा कालप्रेरित होनेपर विद्वान पुरुष दिव्य-नेत्रसे उसका अनुसन्धान विशेष मालूम कर उसे निवारण करनेके वास्ते प्रायश्चित्त, जप और होम आदि मांगलिक कार्यों करके उसकी शान्ति किया करते हैं। हे भारत ! जिस सेनामें वाहन और योद्धा सदा उत्साहपूर्वक निवास करते हैं, उस सेनाकी निश्चय ही उत्तम विजय हुआ करती है। वायु, इन्द्रधनुष, बादल और सूर्यकी किरणें सेनाके अनुगामी होती है, तथा शियार गिद्ध आदि अनुकूल होकर उसकी सेवा करते हैं ; तभी वह उत्तम सिद्धि लाभ करती है। हे युधिष्ठिर ! अग्नि प्रसन्न ऊर्द्ध रश्मि, दक्षिणावर्त्त शिखासे युक्त और धूमसे रहित होने तथा आहुतिकी पुण्य गन्ध प्रवाहित होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयका लक्षण कहा करते हैं। गम्भीर शब्दवाले भेरी और शंख आदिके बजने तथा युयुत्सुओंके अनुकूल होनेसे ही पण्डित लोग उसे जयका रूप कहते हैं। मृगोंके समूह पीछे स्थित प्रस्थानों पीछे, जो संग्रामके वास्ते गमन करें उनके बाईं ओर, तथा जिघांसुओंके दाहिनी ओर रहनेसे ऊपर कहे हुए सब इष्टसिद्धिसूचक होते हैं ; और अगाड़ी पहिले कहे हुए कार्य्योंमें प्रतिषेध किया है। शकुन, हंस, क्रौञ्च, सारस और खञ्जन आदि पक्षियोंके मांगलिक शब्द करने बलवान योद्धाओंके हर्षित होनेपर पण्डित लोग उसे भविष्य जयके लक्षण कहा करते हैं। जिसकी सेनाका समूह शस्त्र, यन्त्र, कवच, पताका

ौर सुखमण्डलको उज्ज्वल किरणोंसे प्रकाशित कर शत्रुओंको भयानक दीखता है, वही त्रुओंको पराजित कर सकते हैं। शूर पुरुोंके स्वामीसेवामें रत, अभिमान रहित, आपमें सुहृदभावयुक्त और पवित्र आचार वाले नेपर पण्डित लोग उसे भावी जयका लक्षण हा करते है। मनको प्रसन्न करनेवाले शब्द, र्श और गन्ध प्रवाहित होने और योद्धाओंके थशाली होनेपर बुद्धिमान पुरुष उसे विजयका प प कहा करते हैं। कौआ संग्राममें प्रविष्ट हुए रुषके बाईं ओर तथा जो युद्धमें प्रवेश करेंगे, नको दाहिनी ओर रहनेसे इष्ट साधन रता है; और पीछे रहनेपर अर्थबाधा तथा गाड़ी रहनेपर प्रतिषेध करता है। हे युधिष्ठिर! पहिले महत् चतुरङ्गिनी सेना संग्रह रके उसे सामके जरिये स्थापित करे और सके अनन्तर युद्धमें नियुक्त करे। हे भारत! णभूमिमें युद्ध करते करते यदृच्छा क्रमसे वा वी संयोगसे जो जय होती है, वह अधम जय हके गिनी जाती है। भागती हुई बड़ी सेना लके वेग और डरे हुए महामृगोंकी भांति खसे निवारित होती है। उरु-जङ्घा समान दार सारयुक्त भागती हुई बड़ी सेना विदुषी नेपर भी रणभङ्ग किया करती है, विद्या हनेसे जो रणभङ्ग नहीं करती, ऐसा कोई ारण निर्दिष्ट नहीं है। आपसमें परिचित, र्ष युक्त, प्राण त्यागनेवाले, सुनिश्चित, पंचास ूर पुरुष युद्धमें बहुतसी शत्रुसेनाको नाश रनेमें समर्थ होते है। यहांतक कि युद्धमें तनिश्चय, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सम्मानित पांच ः, वा सात शूर पुरुष ही युद्ध करनेपर अनाास ही बहुत सी शत्रुसेना जय कर सकते हैं। सरी भांतिके उपायसे किसी प्रकार युद्धकी भिलाष न करे, क्योंकि साम, भेद और दान न सबके अनन्तर युद्ध विहित हुआ करता है, से "प्रज्वलित वज्रसे बिजली कभी गिरेगी"—

इसी भयसे कादर पुरुष बाध्य होते हैं, वैसे ही सेनाके बीच भय दिखाके कादरोंको बाधित करे। शत्रुसेनाको युद्धके वास्ते आती जानके जो लोग उसकी ओर गमन करते हैं, उन सब योद्धाओंका शरीर खिन्न हुआ करता है। हे राजन्! स्थाणु और जङ्गमके सहित विषय अर्थात् सब देश अनेक भांति अस्त्र तापसे व्यथित होता है और अस्त्रतापसे तापित देहधारियोंकी मज्जा अवसन्न होजाती है। जो लोग शत्रुओंसे पीड़ित होकर उनके साथ सब भांतिसे सन्धि करते है; उनके साथ कठोरता मिले हुए सामभावका बार बार प्रणय करना उचित है। अनन्तर शत्रुओंमें भेद करानेके वास्ते दूत भेजे; शत्रुओंके बीच जो प्रधान होवे, उसहीके साथ राजा सन्धि करे। यदि ऐसा न हो, तो जिसमें शत्रुके साथ सब भांतिसे प्रतिकूलता होवे, उसी भांति शत्रुओंको पीड़ित करना असाध्य होजाता है। हे पार्थ! क्षमा साधुओंके समीपमें ही सदा समागत होती है, दुष्टोंके निकट कभी समागत नहीं होती; इससे क्षमा और अक्षमा दोनोंके प्रयोजनको मालूम करो। जो राजा जयलाभ करके क्षमा अवलम्बन करता है उसका यश विशेषरूपसे बढ़ता है और शत्रु लोग महा अपराध रहनेपर भी उसका विश्वास किया करते हैं। दैत्यवर शम्बरने ऐसा मत स्थिर किया है, कि पहिले शत्रुको दुःखित करके फिर क्षमा करनीही उत्तम कार्य्य है; क्योंकि टेढ़ी बांस आदि लकड़ियोंको न जलाके सरल करनेसे वे सब फिर सीधी हुआ करती है। हे युधिष्ठिर! आचार्य्य लोग इस शम्बर मत और साधु निग्रहकी प्रशंसा नहीं करते, परन्तु वे लोग ऐसा कहते हैं कि क्रोध वा नाश न करके शत्रुओंको निज पुत्रके समान पालन करना उचित है। हे राजन्! राजाके प्रचण्ड होनेपर सब उससे द्वेष करते हैं और कोमल [illegible]

सब कोई उसकी अवज्ञा किया करते हैं इससे राजा उग्रता और मृदुता दोनोंका ही आचरण किया करे।

हे भारत! शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेके पहिले और प्रहारके समय प्रिय बचन कहे, तथा प्रहार करके रोदन और शोक प्रकाश करके उन पर कृपा करे। और घायल तथा प्रहार करनेवाले पुरुषोंका गुप्त रीतिसे सम्मान करके यह बचन कहे, कि मेरी सेनाने युद्धमें शूर पुरुषोंको मार कर मेरा अत्यन्त ही अनिष्ट किया है, मैंने बार बार उन लोगोंसे कहा है, उन्होंने मेरे वचनकी रक्षा न की। ओहो! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उत्तम पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, मैं उनके जीवनको अभिलाष करता हूं, ऐसा बध अत्यन्त अयोग्य हुआ है। जिन्होंने युद्धमें इन शूरवीरोंको मारा है, उन्होंने मेरे अनिष्टके अतिरिक्त इष्ट नहीं किया है, ऐसा बचन कहके गुप्त रीतिसे प्रहर्त्ता पुरुषोंको सम्मानित करे। और पुरुषोंको संग्रह करनेकी इच्छावाले पराक्रमी राजा मेरे और प्रहर्त्ता पुरुषोंके वास्ते ऐसा ही करके अपराधी पुरुषोंकी दोनों भुजा ग्रहण करके उनके ऊपर आक्रोश प्रकाश करे। निर्भय धर्म्मात्मा राजा इसी प्रकार सब अवस्थामें ही शान्तना युक्त कार्य्य करनेसे सब प्राणियोंके प्यारे होते हैं। वे इच्छानुसार भोग कर सकते और सब कोई उनका विश्वास किया करते हैं। इससे जो राजा पृथ्वी भोग करनेके अभिलाषी होवें वे कपटरहित होके सबको ही विश्वासित करें और सब तरहसे प्रजाकी रक्षा करें।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! प्रबलपक्षवाले शत्रुके कोमल वा कठोर होने पर राजा पहिले उसके साथ कैसा आचरण करे? वह मुझसे यथार्थ कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे ... पण्डित लोग इन्द्र और बृहस्पतिके सम्वाद, प्राचीन इतिहास वर्णन किया करते हैं, सुनो। शत्रुओंके नाश करनेवाले देवराज ... पतिने बृहस्पतिको प्रणाम कर हाथ जो... उनसे पूछा, हे ब्रह्मन्! मैं सावधान होके ... ओंके साथ किस प्रकार प्रवृत्त होऊंगा ... उन लोगोंको जड़ सहित नष्ट न करके किस उपायसे उन्हें दमन करूंगा? ... सेनाके इकट्ठी होकर संग्राम करने पर ... रणकी जय हुआ करती है, इससे मैं क्या ... जिससे लक्ष्मी लज्जित और सन्तापित ... मुझे परित्याग न करे?

धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग ... प्रतिभाशाली राज-धर्म्मके जाननेवाले बृह... तिने सुरपतिसे कहा, हे देवराज! राजा ... इसे अहित पुरुषोंको दमन करनेकी ... लाष न करे, क्यों कि बालक ही क्रोध ... अक्षमाकी सेवा किया करते हैं। शत्रुव... इच्छा करनेवाला राजा शत्रुओंको असावधा... करे; क्रोध, भय और हर्षको निज ... छिपाते हुए उन लोगोंका विश्वास न ... विश्वस्तकी भांति उनके साथ व्यवहार ... उन लोगोंसे सदा प्रियबचन कहे, उनके ... कोई अप्रिय आचरण न करे, निष्फल ... बिरत होवे और मूर्खता परित्याग करे। ... इन्द्र! जैसे उपयुक्त साम बेचनेवाला व्याध... योंको तरह शब्द करते हुए विहङ्गोंको ... वशमें करके उनका बध करता है, वैसे ... उपयुक्त राजा शत्रुओंको वशमें करके ... लोगोंका बध करे। हे वासव! राजा श... ओंको पराभव करके सदा सुखको नीं... सोवे दुष्टात्मा शत्रु लोग उठी हुई सर्पा... भांति सदा ही जागते रहते हैं। जयका ... न होनेपर युद्ध करना उचित नहीं है, उन लोगोंका विश्वासपात्र और प्रिय

उन्हें वशीभूत करके अर्थ-साधनमें प्रवृत्त होवे। शत्रुओंके उपेक्षा वा अवज्ञा करनेपर भी मनसे पराजित न होकर महात्मा मन्त्र जाननेवाले मन्त्रियोंके सहित मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर शत्रुओंके तनिक विचलित होनेपर ही उस समय उनके ऊपर प्रहार करे और आप्तकारी पुरुषोंके जरिये उनकी सेना तथा दण्ड दूषित करे। राजा शत्रु आदिके मध्य और अन्तको मालूम कर गुप्त भावसे मन ही मन विषम भाव धारण करके उन लोगोंका सब बल प्रमाणके अनुसार जानके भेद, दान अथवा औषधिके जरिये उन लोगोंको दूषित करे; परन्तु शत्रुओंके साथ कभी संसर्ग करनेकी अभिलाषा न करे। शत्रुओंको मारनेके वास्ते बहुत समय तक उपेक्षा करे, वे लोग जिस प्रकार विश्वास लाभ करें वैसे ही कार्य्योंको करते हुए बहुत समयकी आकांक्षा करके समय बितावे। सब शत्रुओंको नष्ट न करके उन लोगोंको विजय प्रदर्शित करे। हे देवेन्द्र! राजा शत्रुओंके ऊपर शल्य न चलावे और वाक्यवाणसे भी उन्हें घायल न करे, शत्रुवधकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नाशका समय बीतनेसे वह फिर नहीं प्राप्त होता, इससे समय उपस्थित होने-पर ही राजा शत्रुओंके ऊपर प्रहार करे, कभी समयको न बीतने देवे। जो समय समयकी अभिलाष करनेवाले पुरुषका अतिक्रम करता है, कर्म्म चिकीर्षु पुरुषके वास्ते फिर उस समयका मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। असमयमें शत्रुके प्राप्त होनेपर राजा साधुसम्मत सामर्थ संग्रह करके उसे मित्रित करे, परन्तु उन लोगोंको पानेसे स्वार्थ साधन वा उन्हें पीड़ित न करे। योग्य राजा काम क्रोध और अभिमान त्यागके वारंवार शत्रुओंके छिद्रका अनुसन्धान करे। हे देवताओंमें उत्तम प्रभो! मृदुता दण्ड, आलस्य और प्रमाद ये चारों तथा सब माया सुन्दर रीतिसे विहित हुई हैं; येही सब मूर्ख पुरुषोंको अवसन्न किया करती है। इससे राजा मृदुता आदि ऊपर कहे हुए चारों गुणोंको दमन करने तथा समस्त माया परित्याग करनेसे ही शत्रु-ओंके वध करनेमें समर्थ होते हैं। राजा अकेले जहांतक मन्त्रको गोपन करनेमें समर्थ होसके, वहां तक गोपन करे; क्योंकि मन्त्री लोग गुप्त मन्त्रोंको गोपन करते और आपसमें प्रकाश भी किया करते हैं। परन्तु अकेले विचार विषयमें एकबारगी असमर्थ होनेपर दूसरेके साथ मन्त्रणा करे। अनन्तर शत्रुओंके अदृष्ट अर्थात् दूर होनेपर उनके ऊपर ब्रह्म-दण्ड अभिचार आदि प्रयोग करे; और निकटमें रहनेपर उनकी ओर चतुरङ्गिनी सेना नियुक्त करे। राजा पहिले शत्रुओंके ऊपर भेद और साम दोनोंको ही प्रयोग करे; फिर युद्ध उपस्थित होनेपर उस शत्रुके ऊपर सेना नियोग करनेमें प्रवृत्त होवे राजा समयके अनुसार शत्रुके निकट प्रणत होवे; परन्तु शत्रुके प्रमत्त होनेपर राजा प्रमत्त होके उसके वधका अनुसन्धान करे। राजा प्रणिपात, दान और मीठे वचनसे शत्रुओंको प्रसन्नता सिद्ध करे परन्तु कदापि उन्हें शङ्कित न करे। जो सब शत्रु शङ्कित हुए हैं, राजा वैसे शत्रुओंके स्थान पर न जावे, उनका कभी विश्वास न करे; क्योंकि वे लोग शङ्कायुक्त होके सदा ही सावधान रहते हैं। हे सुरपति! शङ्कित शत्रुओंके वास्ते कठिन कार्य्य कुछ भी नहीं है; ऐसा कहा गया है, कि विविधवृत्त मनुष्योंके ऐश्वर्य्यकी भांति वे लोग योग अवलम्बन करके फिर मिलित होनेके वास्ते यत्न किया करते हैं। हे सुरोत्तम! इससे राजा मित्र और शत्रुके विपर्य्यमें विशेष करके विचार करे। हे सुरराज! राजाके मृदुस्वभाव होनेपर प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और कठोर स्वभाव होने पर उससे व्याकुल हुआ करती है; इससे तुम केवल

कोमल वा कठोर न होकर कठोर और कोमल दोनों भावको ही अवलम्बन करो। जैसे वेग-शाली जलके जरिये सब तरहसे परिपूरित तट सदा विदारण करनेसे उसमें बाधा होती है, वैसे ही राजाके प्रमत्त होनेपर उसके राज्यमें बाधा हुआ करती है। हे पुरन्दर! राजा साम, दान, दण्ड और भेद इन सब उपायोंको एक ही समय शत्रुके ऊपर प्रयोग न करे; परन्तु मेधावी राजा समस्त उपाय प्रयोग करनेमें समर्थ होनेपर भी उसे न करके बुद्धिमानोंके बीच जो पुरुष निपुण हों उनके ऊपर ही इन उपायोंमेंसे एक एकको बाटकर प्रयोग करे। जब हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त अनेक पदाति और यन्त्रोंसे परिपूरित षड़ाङ्गिनी सेना अनुरक्त होवे, और जिस समय राजा शत्रुसे अपने बलको अनेक भांतिसे वृद्धि समझे, उस समय विचार न करके प्रकाश्य भावसे शत्रुओंके वध करनेमें प्रवृत्त होवे। शत्रुके ऊपर साम उपाय प्रयोग करना उत्तम नहीं है, इससे राजा उसे न करके शत्रुके विषयमें रहस्य दण्डक विधान करे; परन्तु कोमल दण्ड, युद्धके वास्ते यात्रा, शस्यनाश, विष आदिसे जल दूषित करना और बार बार प्रकृति विचार न करे। किन्तु उनके ऊपर अनेक तरहकी माया, उन्हें परस्पर उत्थापर आदि और जिससे अपनेको अपयश न हो, वैसी कपट उपाय करे; अनन्तर उन लोगोंको निज पुर वा राष्ट्रमें प्रविष्ट होनेपर आप्त पुरुषोंको उनके निकट रखे। हे बल-दसूदन! राजा लोग शत्रुओंके अनुगामी होकर उन लोगोंके पुर और राज्यमें स्थित सब भोग्य वस्तुओंको जय करके निजपुरीमें विधिपूर्व्वक नीति स्थापित करें। हे राजन्! राजा लोग हम लोगोंको गूढ़ धन प्रदान करके निज भोग्य वस्तुओंमें सङ्कोच करते हुए मेरे सब सेवक दुष्ट हैं, ये लोग मुझे त्यागके दूसरे राजाके शरणागत हुए हैं,— लोगोंके समीप उन लोगोंके इसी प्रकार दोष वर्णन करके उन्हें पराये देश वा पर[illegible] नियोजित करें। और दूसरे शास्त्रवित, [illegible] रीतिसे सज्जित, शास्त्र विधानके [illegible] सुशीक्षित तथा भाष्य कथा विशारद सेवकोंके जरिये शत्रु पुरीके बीच मृत्युके अधिष्ठात्री देवताको स्थापित करें।

इन्द्र बोले, हे द्विजसत्तम! दुष्टका क्या चिह्न है? दुष्टको किस प्रकार मालूम करें? इसे मैं पूंछता हूं, आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

बृहस्पति बोले, जो पुरुष परोक्षमें लोगोंके दोष प्रकाशित करे, सद्गुणोंसे युक्त मनुष्योंकी निन्दा करे और दूसरे किसीके गुणके वर्णन करनेपर पराङ्मुख होकर मौनभावसे स्थित होवे; उसे दुष्ट समझना चाहिये। यद्यपि दुष्ट पुरुषोंके मौनभावसे स्थित होनेपर उनके दुष्टताका कारण नहीं मालूम होसकता, परन्तु उस समय वह पुरुष लम्बी सास छोड़ता, ओठ काटता शिर कंपाता, और अत्यन्त संसर्ग करता असन्तुष्ट होकर वार्त्तालाप करता, परोक्षमें स्वीकृत कार्य्योंको पूरा नहीं करता और अपरोक्ष होनेपर उस विषयका उल्लेख नहीं करता, स्वयं पृथक् आके भोजन आदि करता है और आज भोजनादि विधिपूर्व्वक नहीं हुआ कहके परोक्षमें उसकी निन्दा किया करता है, इसी आसन, शयन और सवारी आदिसे दुष्टोंके अभिप्रायको मालूम करना चाहिये। हे राजन् जो पुरुष आर्त्त लोगोंके समीप आरत होता और प्रिय पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होता है, उसे मित्र जानना चाहिये; इसके विपरीत होनेपर शत्रुका लक्षण मलूम करे। हे त्रिदशनाथ! मैंने तुमसे इन सब लक्षणोंको जिस प्रकार कहा है, उसे विशेष करके मालूम करो, दुष्टोंका स्वभाव अत्यन्त बलवत्तर होता है। हे सुरसत्तम! मेरे कहे हुए इस दुष्टविज्ञानको सुनके शास्त्रके अनुसार इसके यथार्थ तत्वको मालूम करो।

भीष्म बोले, इन्द्रने बृहस्पतिका ऐसा वचन

मुनके उसके अनुसार शत्रुओंके अनुसन्धानमें रत होके विजयके निमित्त वैसा ही आचरण करके शत्रुओंको वशमें किया था।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धर्म्मात्मा राजा सेवकोंसे प्रबाधित, कोष और दण्डसे च्युत तथा अर्थलोभमें असमर्थ होकर सुखका अभिलाषी होनेपर कैसा आचरण करे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें क्षेमदर्शी राजाके जिस इतिहासको वर्णन किया करते हैं, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनो। मैंने सुना है, पहिले राजपुत्र क्षेमदर्शी शत्रुके जरिये बलक्षीण होके तथा घोर आपदमें पडके कालक वृक्षीय मुनिके निकट आके उनसे पूछा था—राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनिसे बोले, हे ब्रह्मन! मेरे समान अर्थभागी पुरुष अर्थ प्राप्तिके वास्ते बार बार यत्नवान होकर राज्य लाभ न कर सकनेपर कैसा आचरण करें? हे मुनिसत्तम! मेरे समान पुरुषोंका मरना, स्तैन्यपर संसय और क्षुद्र आचारके अतिरिक्त जो कर्त्तव्य है, उसे कहिये। आपके समान धर्म्मजाननेवाले कृतज्ञ पुरुष ही शारीरिक और मानसिक व्याधिसे युक्त मनुष्योंके आश्रय हुआ करते हैं। पुरुष विषय भोगसे विरक्त होकर शक्ति और प्रीति परित्याग करके बुद्धिमय वस्तु लाभ करनेसे सुख भोगनेमें समर्थ होता है। जो लोग सुखको धनके अधीन समझते हैं, उनके वास्ते मैं शोक करता हूं, क्योंकि स्वलब्ध धनकी भांति मेरा बहुतसा अर्थ नष्ट हुआ है। अहो! हम इस अविद्यमान धनकी आशा परित्याग नहीं कर सकते, तब जो लोग उपस्थित बहुतसे धनका परित्याग करते हैं, वे लोग कितने कठिन कार्य्यको करते हैं; हे ब्रह्मण! मैं श्रीभ्रष्ट होकर अत्यन्त ही आर्त्त, दीन और ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूं; इस समय जिसमें सुखलाभ हो, मुझे वही उपदेश करिये।

महातेजस्वी कालकवृक्षीय मुनि बुद्धिमान कौशल्य क्षेमदर्शीका ऐसा वचन सुनकर बोले, हे राजन्! यद्यपि आप "मैं और मेरी जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, ये सब अनित्य है," इस प्रकार जानते हैं, तो पहिले ही आपको ऐसा समझना उचित था। आप जो समझते है, कि सब वस्तु विद्यमान है, वे सभी नहीं हैं, ऐसाही समझिये; क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझनेसे अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी दुःखित नहीं होते। जो होगया और जो होगा, वह सब फिर न होवेगा, इसी भांति आप जानने योग्य विषयोंको जानकर अधर्म्मसे मुक्त होंगे। पहिले पूर्व्व राजाओंको जो कुछ धन थे और उसके अनन्तर जो कुछ थे, तुम्हारा वह सब, कुछ भी नहीं है; इससे उन सब विषयोंसे ममतारहित होके शान्त होइये, कौन पुरुष इसे जानके दुःखित होगा? जो हुआ है, वह फिर नहीं होता; जो नहीं हुआ है, वही हुआ करता है, शोकसे आरत पुरुषोंमें धन उपार्ज्जनकी सामर्थ नहीं रहती; इससे आप किसी प्रकारका शोक न कीजिये, महाराज। देखिये, तुम्हारे पिता और पितामह आज कहां हैं; आज आप उन लोगोंको नहीं देख सकते हैं और वे लोग भी आपको नहीं देखते हैं। आप अपने देहको अनित्यता देखकर उन लोगोंके वास्ते क्यों शोक करते हैं? बुद्धिसे यह विचारिये, कि कोई विषय भी नित्य न होगा। हे राजन्! मैं, आप और आपके सुहृद लोग, निश्चय ही हम कोई न रहेंगे, सब कोई मृत्युग्रासमें पड़ेंगे और सभी वस्तु नष्ट होंगी। जो सब मनुष्य बीस वा तीस वर्षके जीवित हैं, एक सौ वर्षके बीच उन सबको ही मरना होगा। यद्यपि पुरुष महत् वृत्तसे निवृत्त नहीं

होता, तो ऐसा होनेपर मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है, यह समझके अपना दुःखसाधन करें। जो लोग अनागत और अतीत वस्तुओंको "मेरी नहीं है" ऐसा समझते और भाग्यको ही बलवान जानते हैं; पण्डित लोग उन्हें ही ममतारहित और साधुओंके स्थान मानते हैं। आपके समान आर्य्य वा बुद्धि पौरुष युक्त बहुतेरे मनुष्य जीवित रहते और राज्य भी शासन किया करते है। परन्तु आपकी तरह वे लोग शोक नहीं करते; इससे आप भी शोक न कीजिये। आप क्या उन बुद्धि और पौरुष युक्त पुरुषोंसे श्रेष्ठ वा उनके समान नहीं हैं?

राजाने कहा, हे द्विज! यदृच्छानुसार जो सब वस्तु प्राप्त होती हैं, उसे ही मैं राज्य बोध किया करता हूं और वह सभी महाकालके जरिये नष्ट हुआ करती हैं। हे तपोधन! इससे मैं यथा प्राप्त धनसे जीविका निर्व्वाह करते हुए स्रोतकी भांति महाकालके जरिये ह्रियमाण उस राज्यका यह फल देखता हूं, कि यदृच्छा प्राप्त राज्य आदिके नाश होनेपर जीवन नष्ट न होकर केवल शोक बढ़ता रहता है।

मुनि बोले, हे कौशल्य! जैसे मनुष्य अनागत और अतीत वस्तुके यथार्थ रूपको निश्चय करके सब विषयोंमें शोक नहीं करते, आप भी उस ही भांति होइये। हे राजन्! आप प्राप्त अर्थकी इच्छा करिये अप्राप्त अर्थकी कभी अभिलाषा न करिये और वर्त्तमान समयके विषयोंका अनुभव कीजिये तथा अनागत विषयके वास्ते शोक न करिये। हे कौशल्य! आप लब्ध धनसे ही सन्तुष्ट रहिये, श्री हीन होने पर शोकसे आर्त्त होकर कभी शुद्ध स्वभावसे विचलित न होइये पुरुष पूर्व्वक कर्म्मके अनुसार भाग्यहीन बुद्धि होकर सदा विधाताको निन्दा करते है, और यथा लब्ध धनसे सन्तुष्ट नहीं होते। और इस ही कारणसे दूसरे म्लेच्छ आदि श्रीमान् पुरुषोंका सम्मान बारम्बार ऐसा ही दुःख अनुभव किया [illegible] हैं। हे राजन्! इससे जैसे बलके अभि[illegible] मनुष्य ईर्षा और अभिमानके वशमें होकर दू[illegible] की बुराई करनेमें प्रवृत्त होते हैं, आप मत्सर युक्त होकर वैसा न करिये। यद्यपि आपमें वह श्री विद्यमान न रहे, तौभी आप दूसरेकी श्री सह्य कीजिये; कभी द्वेष न करिये, क्योंकि जो मनुष्य मत्सरी होकर लोगोंकी श्रीसे द्वे[illegible] करते हैं, लक्ष्मी उनके निकटसे भाग जाती है और जो मनुष्य मत्सरता रहित होते हैं, शत्रुके निकट रहनेवाली लक्ष्मीको भी वह भोग किया करते हैं। योग धर्म्म जाननेवाले धीर धर्म्मचारी मनुष्य श्री, पुत्र, और पौत्रोंको स्वयं परित्याग किया करते हैं। दूसरे साधारण पुरुष विधित्सा अर्थात् सब कार्य्योंके अनुपरम और धन, इन दोनोंके अस्थिर अर्थ तथा परम दुर्लभ समझके परित्याग करते हैं। परन्तु आप बुद्धिमान होके भी अकाम्य, पराधीन अस्थिर अर्थकी कामना करते हुए केवल कृपणकी तरह व्यर्थ शोकित होरहे हैं। इससे आप [illegible] बुद्धिको जाननेके अभिलाषी होकर यह सब अर्थ परित्याग कीजिये, क्योंकि सब अनर्थ रूपी होकर अर्थ रूपसे मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! कितने ही लोगोंका अर्थके वास्ते धननाश होता है, कोई उसे अत्यन्त सु[illegible] दायक समझके सब भांतिसे श्रीलाभ करनेकी अभिलाष किया करते हैं। जो पुरुष श्रीमें रम[illegible] मान होकर दूसरा कुछ भी श्रेष्ठ नहीं समझते उस चेष्टमान पुरुषके सब कार्य्य ही नष्ट हो जाते है। हे कौशल्य! यदि किसी पुरुषके अभिप्रेय कृच्छ्रलब्ध धन नष्ट होवे, तो वह पु[illegible] आशा भङ्ग होनेपर उससे निवृत्त हुआ करता है। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य पारलौकिक सुख की इच्छा करते हुए लौकिक कार्य्यसे विरत होकर केवल धर्म्म कार्य्य किया करते हैं।

न लोभसे युक्त पुरुष धनके वास्ते जीवन परि-
ाग करते है। ऐसा क्या वे लोग धनकी अति
रक्त जीवनको भी कार्य्यकारी नहीं समझते।
रन उनकी वैसी कृपणता और निर्बुद्धिता
खिये कि जो लोग मोहके वशमें होकर
नित्य जीवनमें अर्थ दृष्टि अवलम्बन किया
रते हैं; उनके बीच कोई विनाशके अनन्तर
ृद्धि मरणके अनन्तर जीवन और वियोगके
ाद संयोग, इन सबमें चित्त नहीं लगाते।
राजन्! कभी पुरुष धनको और कभी धन
ुषको अवश्य परित्याग करता है; इससे जो
ोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं, वे उस
ेषयमें कभी शोकित नहीं होते; क्यों कि इसी
रह दूसरेके भी मित्र और धन नष्ट हुआ करते
। हे राजन्! आप विचार करके देखिये, कि
नुष्य लोग अपनी और दूसरेकी बुद्धिसे आपदमें
तित होते हैं; इससे आप उसे विशेष रूपसे
खकर इन्द्रियनिरोध, मन और वचनको
ियम कीजिये; क्यो कि अहितकारी इन्द्रिय,
न और वाक्य इन सबके दुर्ब्बल और सन्नि-
ृष्ट विषयोंमें आसक्त होनेपर कोई भी उन्हें
िवारण करनेमें समर्थ नहीं होता, पर विषय
िकृष्ट होनेपर ये सब स्वय निवारित हुआ
रते हैं। आपके समान ज्ञानसे तृप्त पराक्रमी
ुरुष इन्द्रियोंको दमन किया करते हैं, इससे
लोग इस विषयमें शोक नहीं करते। इसके
तिरिक्त आपके समान मृदु, धार्म्मिक सुनि-
ृत और ब्रह्मचर्य्य युक्त मनुष्य अल्प विषयकी
भिलाषासे चञ्चल नहीं होते और उसके
ास्ते शोक भी नही करते; तथा वे लोग अवि-
ार पूर्व्वक कापालीवृत्ति, नृशंसता पापी, दुष्ट
ार कादरोंके योग्य वृत्तिको अवलम्बन करनेमें
वृत्त नही होते। हे राजन्! इससे आप मन
ौर वचनको संयम करके सब प्राणियोंमें दया
्रकाशित करते तथा महावनमें फल मूलसे
ीविका निर्व्वाह करते हुए अकेले ही विहार
कीजिये। जैसे ईषा समान दांत युक्त हाथी
महावनमें अकेले ही विहार करता है, वैसे ही
विद्वान पुरुष वनके बीच अरण्यवृत्ति अवलम्बन
करके अकेले ही विहार करें। जैसे महाताला-
लाब पूर्णरीतिसे क्षुभित होकर स्वयं ही प्रसन्न
होता है; मैं ऐसी अवस्थायुक्त पुरुषोंको इसी
भाति जीवित रहना ही सुख समझता हूं।
महाराज। मन्त्री आदिकोंसे रहित मनुष्योंको
श्रीअसम्भव है और केवल दैवके ऊपर निर्भर
करनेसे आप कौनसा कल्याण समझते हैं?

१०४ अध्याय समाप्त।

अनन्तर मुनि बोले, हे राजन्। यदि आपके निज शरीरमें कुछ पौरुष है, ऐसा समझते है, तो जिसमें आपको फिर राज्य प्राप्त होवे, मैं वैसी नीति कहता हूं; आप यदि उस नीतिका अनुष्ठान करने और कार्य्य करनेमें अपनेको समर्थ समझें; तो मैं आपसे जो सब यथार्थ वचन कहूंगा, उसे चित्त लगाके सुनिये। हे राजन्! मैं जो कहूंगा, आप यदि वैसा ही आचरण करें, तो आप निश्चय ही उस महान् सब अर्थ, राज्य, राज्यके मन्त्र और महती श्रीको फिर प्राप्त करेंगे, इससे मैं आपसे फिर कहता हूं, कि यह आपको रुचता है, वा नहीं वह मुझसे कहिये। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं पौरुषसे युक्त हुआ हूं, आप मुझसे जिस नीतिको कहना चाहते हैं उसे कहिये, आपके साथ मेरा यह समागम सफल होवे।

मुनि बोले, आप दम्भ, काम, क्रोध, हर्ष और भय त्यागके प्रणत भावसे हाथ जोड़के शत्रुओंकी सेवा कीजिये। आप उस सत्यसन्ध विदेहराजकी शुद्ध और उत्तम कर्म्मोंसे आरा-धना कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे आपको वेतन दान करेंगे। इसी भाति क्रमसे सबके [illegible] पात्र होनेपर आप विदेहराजके

होंगे, अनन्तर उत्साहयुक्त, व्यसनरहित, शुद्ध स्वभाववाले सहायकोंको प्राप्त कर सकेंगे। नीतिशास्त्रके अनुसार चलनेवाले स्थिर चित्त जितेन्द्रिय विदेहराजको प्रजाको प्रसन्न करके आप स्वयं अपना उद्धार कीजिये। श्रीमान् धैर्य्यशाली उस विदेहराजसे आप सत्कृत होनेपर सबके विश्वासपात्र होकर अत्यन्त ही आदरणीय होंगे। तिसके अनन्तर आप सुहृद्दल लाभ कर उत्तम मन्त्रियोंके साथ विचार करके बेलसे बेल तोड़नेकी भांति शत्रुपक्षीय आन्तरिक पुरुषोंके जरिये शत्रुओंमें भेद अथवा शत्रुओंके साथ सन्धि करके विदेह राजके सब बलको नष्ट कीजिये। शुद्धभाव युक्त मनुष्य, स्त्री, ओढ़नेके वस्त्र, शय्या, आसन, महामूल्यवान सवारी, गृह; पशु, पक्षी, गन्ध, रस और फल आदि जो सब वस्तु अलभ्य हैं, आप उन सबको इस प्रकार सज्जित कराइये, कि जिससे सब शत्रु स्वय ही नष्ट होवें। हे राजन्। आप सुनीतिके अभिलाषी हैं, शत्रु लोग यदि आपके जरिये इन सब विषयोंमें प्रतिषिद्ध होकर उसे उपेक्षा करें, तो आप कदापि उन लोगोंको निवृत्त न कीजिये। हे राजेन्द्र। आप बुद्धिमान पुरुषोंमें सम्मत होकर शत्रुओंके विषयमें विहार करिये और सदा सावधानी तथा भय-चकित आदि श्वेतकारी उपायसे मिल धर्म्मका आचरण कीजिये। आप ऐसे ही उपायके अनुसार विदेहराजके दुस्तर महान् आरम्भ सब प्रयोजित करिये और बलवान सेनाके जरिये नदीकी भांति सब विरोध विशेष रूपसे रुद्ध करिये। और विदेहराजके बगीचे, महामूल्य शय्या, आसन तथा कोष इन सबको सुखसे भोग करके उनका कोष खाली करिये। आप ब्राह्मणोंको विदेहराजके उद्देशसे यज्ञ और दान आदि कार्य्योंमें नियुक्त करके पीछे अपना मङ्गलार्थ कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे लोग भेड़ियेकी तरह उन्हें भक्षण करते हुए आपका मङ्गल करेंगे। पुण्यशील पुरुष निश्चयही परम गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसाही वे लोग स्वर्गमें भी पुण्यस्थान लाभ किया हैं। हे कौशल्य! धर्म्म और अधर्म्मके शत्रुओंके कोषको नष्ट कर सके, तो वे धर्म्म और अधर्म्म युक्त पुरुषके वशमें करते हैं। हे राजन्! शत्रु लोग स्वर्ग जयके जरिये ही आनन्द अनुभव किया हैं; इससे आप उनके स्वर्ग और जयके कोषको विशेष करके नष्ट करें परन्तु कर्म्म और दैव कर्म्म जय आदि उनके वर्णन करना। दैव परायण मनुष्य शीघ्र ... होता है, यह निश्चय ही है; इससे आप सर्व्वस्व दान स्वरूप विश्वजित् यज्ञ कराके ... राज्यसे विरत कीजिये, उससे वह ... होकर गमन करेंगे। इससे आप उस विदेहराजको योग धर्म्म जाननेवाले महाजनोंकी पीड़ाका सब वृतान्त कहिये, और कुछ उपदेश करिये। वह महाजनोंके किसी पीड़ाका वृत्तान्त सुननेसे ही राज्य त्याग करें तब आप सब शत्रुओंके नाश करनेवाले औषध प्रयोग करके उनके हाथी, घोड़े मनुष्योंका नाश करियेगा। हे राजन्! ... प्रकार तथा दूसरे अनेक तरहके दम्भ निश्चित हैं, कृतात्मा पुरुष विष प्रयोग सबको ही नाश करनेमें समर्थ हुआ करते

१०५ अध्याय समाप्त।

राजाने कहा, हे ब्रह्मन्! मैं कपट दम्भके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा करता और अधर्म्म युक्त महत् अर्थकी अभिलाष नहीं करता। हे भगवन्! ... और दम्भ रहनेसे कोई मुझ पर शङ्का करेगा ऐसा समझ कर और उससे अपनी ... होनेकी सम्भावना देखकर मैंने पहिलेसे इसे परित्याग किया है। मैं इस लोकमें

स धर्म्मके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा करता ; इससे मैं ऐसा आचरण नहीं कर सकूंगा, र आपसे भी ऐसा होना उपयुक्त नहीं है। मुनि बोले, हे राजन्! आपने जैसा कहा, उससे मैं आपको प्रकृतिस्थ वा बुद्धिस्थ और नृशंस धर्म्म युक्त बोध करता हूं। मैं आप-नोंके मङ्गलके वास्ते यत्न करूंगा और आपके थ विदेहराजकी जिसमें सदाके वास्ते अक्षय न्धि होवेगी, वही उपाय करूंगा। महाराज पके समान सत्कुलमें उत्पन्न बहुश्रुत अनृ-स, राज्य प्रणयनमें कुशल पुरुषको पाके कौन जा अमात्य पद पर नियुक्त न करेगा? आप त्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके राज्यच्युत और अत्यन्त विपदग्रस्त होकर भी जब अनृशंस त्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेके अभिलाषी ए हैं, तब मैं आपको धन्यवाद देता हूं। हे ात! सत्यसन्ध विदेहराज मेरे गृहपर आवेंगे, उन्हें जिस कार्य्यमें नियुक्त करूंगा, वह सको ही करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अन-र मुनिने विदेहराजको आवाहन करके कहा ह जो क्षेमदर्शी राजकुलमें उत्पन्न हुआ है, ने उसके अन्तःकरणको सब भांतिसे परीक्षा रके देखा है, इसका चित्त आरसी और शर-कालके चन्द्रमा समान शुद्ध है; मैं इसके ित्तमें किसी प्रकारकी कुटिलता नहीं देखता । इससे इसके साथ आपकी सन्धि होवे, ाप जैसा मेरा विश्वास करते हैं, वैसे ही इसका ी विश्वास करिये। हे राजन्! जिस राजाके मात्य नहीं है, वे राज्यको तीन दिन भी पने शासनमें नहीं रख सकते; इससे राजा ीरता और बुद्धियुक्त मनुष्यको मन्त्री करे, खयं पराक्रम और बुद्धिबलसे ही दोनों लोक था राजके प्रयोजन सिद्ध हुआ करते हैं। म्मात्मा मनुष्योंकी इस प्रकार दूसरी गति हीं भी नहीं है। यह राजपुत्र क्षेमदर्शी त्यन्त धार्म्मिक हैं; विशेष करके इन्होंने साधु-ओंके मार्गको अवलम्बन किया है इस धर्म्मात्मा राजपुत्रको आप संग्रह करके पूर्ण रीतिसे सेवा करनेसे यह आपके शत्रुओंको निग्रह करेगा। यदि ये पिता पितामह पदके वास्ते युद्धकी इच्छा करके आपके साथ क्षत्रियोंके स्वकार्य्य अर्थात् संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे। तो आप भी विजयकी अभिलाषासे इनके सङ्ग युद्ध करि-येगा, परन्तु ऐसा न करके मेरी इच्छाके अनु-सार हितैषी होकर इन्हें वशमें करिये। आप धर्म्मदर्शी होके अपने समान पुरुषोंसे अनुचित लोभको त्यागकर धर्म्मकी रक्षा करिये; काम और क्रोधके वशमें होकर निज धर्म्मको त्यागना आपको उचित नहीं है। हे तात! एक पुरु-षको सदा जय और एकको सदा पराजय नहीं होती; जय-पराजय दोनों ही हुआ करती है; इससे भोग्य वस्तुओंके जरिये शत्रुके साथ सन्धि करनी उचित है। हे तात! जय-पराजय दोनों ही आपमें देखी जाती है। निःशेषकारियोंको निःशेष-निबन्धन रूपी भय हुआ करता है। विदेहराज जनक कालक वृक्षीय मुनिका ऐसा वचन सुनकर उन पूजनीय ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिका सम्मान और सत्कार करके बोले, हे ब्रह्मन्! आप महाबुद्धिमान और महाश्रुत हैं; इससे आपने हम दोनोंमें मेलकी इच्छा करके जो कुछ कहा वह योग्य है। आपने मुझसे जैसा कहा, मैं वैसाही करूंगा, क्यों कि मैं इसे परम कल्याणदायक बोध करता हूं; इस विषयमें अब मैं कुछ भी विचार न करूंगा। अनन्तर मिथिलापति जनकने कौशल्य क्षेमदर्शीको आवाहन करके कहा, हे राजसत्तम! मैंने धर्म्म और नीतिसे पृथ्वी जय किया; परन्तु आपने अपनी अवज्ञा करके निज गुणोंसे मुझे जय किया है; इससे आप विजयीकी भांति विराज-मान रहिये। यद्यपि मैंने आपको जय किया है, तौभी आपके बुद्धि और पौरुषको नहीं कर सकता; इससे आप विजयी

विद्यमान रहिये। हे राजन्! इस समय आप यथारीति पूजित होकर मेरे घर चलिये। अनन्तर मिथिलाराज जनक और कौशल्य दोनों ही ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिकी पूजा करके विश्वासी होकर घर गये। तब विदेहराजने कौशल्यको गृहमें प्रवेश कराके पाद्य, अर्घ और मधुपर्कसे उनकी पूजा करके उन्हें कन्या तथा विविध वस्तु दान की। राजाओंका यही परम धर्म्म है, जय और पराजयको अनित्य जानना चाहिये।

१०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे परन्तप! ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्म्मवृत्त, साधारणके व्यवहार जीवन उपाय और फल, राजाओंके व्यवहार, कोष, कोषस्थापन, जय, सेवकोंके गुण, व्यवहार, प्रजाकी वृद्धि, षाड़्गुण्यके गुण कल्पना, सेनाके व्यवहार, सत् और असत् पुरुषोंके लच्चणका ज्ञान, समान, हीन और अधिक काच पुरुषोंके यथावत् लच्चण मध्यवित्त और पुरुषोंकी प्रसन्नताके वास्ते वर्ड्डित मनुष्यको जिस भांति रहना होता है, हीन मनुष्योंको ग्रहण और जीविका, उपदेशयुक्त सुगम ग्रन्थोंसे जैसा धर्म्म वर्णित हुआ है, आपने विजयी पुरुषोंका जैसा व्यवहार कहा है, वह व्यवहार, शूर पुरुषोंकी वृत्ति, शूरलोग पृथक् न होके जिस प्रकार वर्ड्डित होवें, वे लोग शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करके किस भांति सुहृद पुरुषोंको प्राप्त करें? हे शत्रुतापन! मैं बोध करता हूं, कि शूर पुरुषोंमें परस्पर भेद ही नाशका कारण है। इससे उन लोगोंमें जिससे भेद न होवे और अनेक पुरुषोंके निकट मन्त्रकी छिपाना अत्यन्त कठिन है, वह जिस प्रकार गोपन करना होता है और इन सबके उपाय मैं आपके निकट सुननेकी इच्छा करता हूं। आप यह सब वृत्तान्त विस्तारके मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! राजकुल गण अर्थात् शूरकुल, ये दोनों ही कुलवैर पक लोभ और क्रोधके वशीभूत हैं। लोभकी इच्छा करे, तो शूर लोग अभिलाष करते हैं; इससे दोनों कुल चय व्ययसे युक्त होकर परस्परमें एक दू नाशक हुआ करते है। वे लोग दूत, बल, आदान, साम, दान, भेद, चय और आदि इन सब उपायोंके जरिये आपसमें परस्परको आकर्षण किया करते हैं। उसमेंसे मतकें अनुसार चलनेवाले शूरोंमें आदानसे होता है। वे लोग पृथक् होनेसे ही आप चित्तकी अनैक्यताके कारण शत्रुओंके हुआ करते है हे राजन्! जब शूरलोग भेद होनेसे ही नष्ट और शत्रुओंसे पराजित होते हैं; उस समय उन लोगोंको सदा मतमें रहनेके वास्ते सब तरहसे यत्न उचित है। शूर पुरुषोंके बल और पौरुष होनेपर वे लोग अर्थलाभमें समर्थ हो सकते हैं। यहां तक कि उन लोगोंकी वृत्ति तरहकी होनेपर अन्य मतावलम्बी शूर भी उनके साथ मित्रता करते हैं। जो पुरुष परस्परकी सेवा करते है, पण्डित लोग उनकी प्रशंसा किया करते क्यों कि उन लोगोंकी अभिसन्धि पृथक् होनेसे ही वे लोग सब भांतिसे सुख भोग सकते हैं। जो शूर लोग सब धर्म्म व्यव शास्त्रके अनुसार स्थापित करके उसपर यथार्थ दृष्टि रखते हैं, वे समूहके बीच श्रेष्ठ वर्ड्डित हुआ करते हैं। शूर पुरुष पुत्र भाइयोंको सदा युद्धकार्य्यमें विशेष रूपसे दे के उन शिचित पुत्र और भाइयोंको प्राप्त करनेसे सब गुणोंमें वर्ड्डित हुआ करते हैं हे महाबाहो! जो सब शूर दूत, मन्त्र, उ

और कोषके कार्य्योंमें सदा रत रहते हैं, वह सब तरहसे बढ़ते हैं। हे राजन्! जो सब शूर बुद्धिमान, महा उत्साहयुक्त और कार्य्योंमें स्थिर पौरुषवाले, शूरोंको सदा सम्मानित करते हैं, उनकी बढ़ती हुआ करती है। जो सब शूर धनवान, शास्त्रज्ञ और शास्त्रपारग हैं, वे कष्ट-युक्त घोर आपदमें मोहित मनुष्योंका परित्राण किया करते हैं। हे भरतसत्तम! क्रोध, भय, दम्भ, कर्षण, निग्रह और बध, ये सब शूर पुरुषोंको सदा शत्रुओंके बशमें किया करते हैं। हे राजन्। इससे समूहमें मुख्य प्रधान शूरोंका विशेष सम्मान करना उचित है; क्योंकि समस्त लोकयात्रा ही पूर्ण रीतिसे उन शूर पुरुषोंके अधिकारसें हुआ करती है। हे शत्रुकर्षण भारत! मुख्य शूर पुरुष ही दूत और मन्त्रकी रक्षा किया करते हैं इससे वेही मन्त्रणा सुनने पावें, परन्तु सब शूर पुरुष मन्त्रणा नहीं सुनने पावेंगे। जो समूहके बीच मुख्य हैं, वे सबके साथ मिलके गुप्त भावसे समूहका हित किया करते हैं; परन्तु गणके पृथक् भिन्न और विरत होनेपर उसका विपरीत होता है। यहांतक कि निज शक्तिके अनुष्ठानकारी गणोंमें भेद होनेसे सब अर्थ अवसन्न होते और अनर्थ उत्पन्न हुआ करता है। इससे कुलवृद्ध पण्डित लोग मुख्यगणके निकटसे निकृष्ट गणको शीघ्र दूर करें, वे लोग उपेक्षित होनेपर सदा कुलमें झगड़ा करते और गण-भेदके कारण होकर गोत्रनाश किया करते हैं। हे राजन्! इससे भीतरी भयको यत्नपूर्व्वक रक्षा करके पसार बाह्य भयको त्यागना उचित है; क्योंकि आभ्यन्तर भय ही सदा मूलच्छेदन किया करता है। हे राजन्! अकस्मात् क्रोध, मोह और स्वाभाविक लोभके कारण आपसमें एक दूसरेसे वार्त्तालाप न करनेसे उसे ही पराभवका लक्षण मालूम करना चाहिये। सब कोई पराक्रम, बुद्धि,-रूप वा धनमें समान होवे, वा न होवे, जाति और कुलमें समान होंगे। शत्रु लोग प्रधान भेद करनेसे ही गण भेद कर सकते हैं; इससे पण्डित लोग गण सम्पत्तिको परम आश्रय कहा करते है।

१०७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत। यह धर्म्म मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखाओंसे युक्त है, इन सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अत्यन्त अनुष्ठेय कहके आपको सम्मत है? सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अनुष्ठेय और गुरुतर करके आपको अभिमत है? मैं इस लोक और परलोकमें जिस परम धर्म्मका आसरा करूंगा आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता, माता और गुरुजनोंकी पूजा करनी मुझे बहुमत है, मनुष्य इस लोकमें उक्त कर्म्मोमें नियुक्त रहनेसे ही सब लोकोंको जय करते हुए महत् यशस्वी होते है। हे तात युधिष्ठिर! पूजनीय पिता, माता और गुरु जिस कर्म्मको करनेकी आज्ञा दें, वह धर्म्म ही हो, वा धर्म्म विरुद्ध ही होवे, शङ्का रहित चित्तसे उसे करना ही उचित है। उन लोगोंके निवारण करने पर दूसरे धर्म्मका आचरण न करे, वे लोग जो कुछ आज्ञा दें वही धर्म्म है, यह निश्चय जाने। पिता, माता और गुरु ये तीनों त्रिलोक स्वरूप हैं; ये ही तीनों आश्रय, तीनों वेद और तीनों अग्नि स्वरूप है; पिता गार्हपत्य, माता दक्षिण और गुरु आहवनीय अग्नि हैं, ये तीनों अग्नि अत्यन्त वृहत् हैं। पिता, माता, और गुरु इन तीनोंके निकट अप्रमत्त रहनेसे तीनों लोक जय करेगा, पितृपूजासे इस लोक, मातृपूजासे परलोक और गुरु पूजासे अवश्य ही ब्रह्मलोक उत्तीर्ण होगा।

हे भारत! तीनों लोकके बीच इन सबका पूर्णरीतिसे सम्मान करना। तुम्हारा मङ्गल

होवे, तुम महत् यश और धर्म्म फल प्राप्त करोगे। पिता, माता और गुरुके समीप भोग कार्य्य विषयमें अपनी अधिकता दिखाना, अति भोजन और दोष वर्णन न करे; सदा उन लोगोंकी सेवा करे, यही उत्तम सुकृत है। हे नृपसत्तम। ऐसा करनेसे तुम कीर्त्ति, पुण्य, यश और पवित्र लोकोंको प्राप्त करोगे। पिता माता और गुरुका जो लोग सम्मान करते हैं वे सब लोगोंमें आदरणीय होते हैं, और जो इनका अनादर करते है उनके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं। हे शत्रुतापन! उनके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है, ये तीनों गुरु जिसके जरिये सदा अपमानित होते इस लोक और परलोकमें उसका यश प्रकाशित नहीं होता तथा परलोकमें उसका कल्याण कीर्त्तित नहीं होता। पिता माता वा गुरुके उद्देश्यसे मैं जो सब अर्थ संग्रह करके परित्याग करूं, तो मेरे पक्षमें वह सौगुणा वा सहस्रगुणा हुआ करता हैं। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण मेरे वास्ते तीनों लोक प्रकाशित हैं। दस श्रोत्रियोंसे एक साधु आचार्य्य मुख्य है; दश उपाध्यायसे पिता मुख्य है; दश पितासे माता मुख्य है, और क्या कहूं, माता गौरवसे समस्त पृथ्वीको अभिभव किया करती है, इससे माताके समान गुरु नहीं है। मेरे विचारसे पिता और मातासे गुरु ही गौरवयुक्त है, माता पिता दोनों ही जन्मके विषयमें कारण हैं? हे भारत! पिता माता दोनोंसे ही इस शरीरकी उत्पत्ति होती है; और आचार्य्यके उपदेशके अनुसार जो जन्म होता है, वह अजर और अमर है। पिता माता अपकार करनेपर भी सदा अवध्य हैं। अपराध युक्त पिता माताका वध न करनेसे दोषी नहीं होना पड़ता। राजा जैसे वध्य पुरुषोंके वध न करनेसे दूषित होता है, उस भांति अपराधी गुरुका वध न करनेसे दूषित नहीं होता। धर्म्मके वास्ते यतमान अर्थात् दुष्ट माता पिताके प्रतिपालनके लि जो लोग यत्न करते हैं, महर्षि और लोग उन्हें अनुग्रह भाजन समझते हैं। सत्य वचनसे वेदके विषयमें अनुग्रह प्रका करते और जो सत्य वचनके जरिये अमृत प्रदा करते हैं उन्हें ही पिता माता समझ चाहिये; तथा उनके कार्य्यको मालूम कर कभी उनके विषयमें अनिष्ट आचारण न करे। जो लोग विद्या पढ़के कृत्यकृत्य होकर गुरु विषयमें कार्य्यके जरिये मनही मन उनका आद नहीं करते, उन लोगोंको भ्रूणहत्यासे भी अधिक पाप हुआ करता है, इस लोकमें उनसे बढ़के अधिक पापी दूसरे कोई भी नहीं हैं।

गुरुजन शिष्योंको जैसा मानें, शिष्य लोग भी उनकी वैसी ही पूजा करें; इससे जो लोग प्राचीन धर्म्मकी कामना करते हैं, उनके पक्ष गुरुजन पूजनीय, यत्नसे संविभाज्य और अर्च नीय होते है। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं; और जिसके जरिये माताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे पृथ्वी पूजित होती है, तथा जिन कर्म्मोंसे उपाध्यायको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है, इससे पिता माताकी अपेक्षा गुरु ही पूजनीय है किसी प्रकारके कार्य्यसे गुरु अवज्ञाभाजन न हो सकते; गुरुका जैसा मान्य करना होता पिता-माताका वैसा नहीं। पिता, माता और गुरु कभी अवमान भाजन नहीं हो सकते; उन लोगोंके कार्य्यमें कोई दोष देखना उचित नहीं है। देवता और महर्षि लोग गुरुओंका जैसा सम्मान करना होता है, उसे जानते हैं। जो लोग कार्य्य वा मनसे पिता माताका अपकार करते हैं, भ्रूणहत्यासे भी उनका पाप अधिक प्रबल है और इस लोकमें उनसे अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है। जो औरससे पुत्र पालन पोषण करनेपर वर्द्धित होकर पिता माताका

तिपालन नहीं करता, उसका वह पाप भ्रूण त्यासे भी अधिक है, उससे बढ़के पापी दूसरा कोई नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीघाती और गुरुघाती इन चारोंके निष्कृतिका विषय ने नहीं सुना। इस लोकमें पुरुषको जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब विस्तारके सहित कहा गया, यही कल्याणकारी और इससे अधिक ष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; सब धर्म्म एकत्रित करके उसमें जो सार स्वरूप था, वही कहा गया।

१०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मनुष्य धर्म्ममार्गमें निवास करनेकी इच्छा करते हुए किस प्रकार वर्त्तमान रहे। हे विद्वन् भरतश्रेष्ठ! मुझ जिज्ञासुको आप वही उपदेश करिये। हे राजन्! सत्य और मिथ्या ये दोनों ही संसारी लोगोंको आवरण करके विद्यमान हैं; उन्हें त्यागना अत्यन्त कठिन है; इससे धर्म्म-निश्चित मनुष्य उन दोनोंके बीच कैसा आचरण करे? सत्य क्या है, मिथ्या क्या है? और सनातन धर्म्म कौनसा है। किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या कहे?

भीष्म बोले, हे भारत! सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, लोकके बीच जो कठिनाईसे जानने योग्य है, उसे कहता हूं। किसी समय सत्य बोलना उचित नहीं और कभी मिथ्या कही जाती है। जिससे मिथ्या सत्य और सत्य भी मिथ्या हुआ करता है, जिसमें सत्य निष्ठायुक्त नहीं है, वैसा बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य वध्य होता है। सत्य और मिथ्याका विशेष रूपसे निश्चय कर सकनेसे मनुष्य धर्म्म जाननेवाला हुआ करता है। जैसे व्याधा हिंसक स्वभाववाला है, वह भी अन्धेका वध करनेसे स्वर्गको गया था, वैसे ही अनार्य्य, हीनबुद्धि अत्यन्त निठुर पुरुष भी महत् पुण्य लाभ कर सकता है; गङ्गाके किनारे सांपिनके स्थापित किये हुये सहस्र अण्डोंको भेद कर उलूकने जिस प्रकार महत् पुण्यलाभ किया था; वैसे ही अधर्म्मी मूढ़ पुरुष धर्म्म करनेवाला होकर जो महत् पुण्य प्राप्त कर सकेगा, उसमें आश्चर्य्य ही क्या है? जिस विषयमें धर्म्म अत्यन्त दुर्लभ और दुर्ज्ञेय है, यह प्रश्न वैसा ही हुआ है। धर्म्मका लक्षण वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, इससे कौन इसे निश्चय करके कह सकता है? जीवोंकी उन्नतिके वास्ते ऋषियोंने धर्म्मका वर्णन किया है; इससे जो अभ्युदय युक्त है, वही धर्म्म कहके निश्चित है। जो धारण करता है, महर्षि लोग उसे ही धर्म्म कहते हैं; धर्म्मसे प्रजा धृत हुई है, इससे जो धारणायुक्त है, वही धर्म्म है, यह निश्चय है। कोई कोई पुरुष श्रुतिको ही धर्म्म कहते हैं, दूसरे उसे अङ्गीकार नहीं करते। मैं उनकी निन्दा नहीं करता, सबमें ही कुछ विहित नहीं होता। जो अन्यायसे किसीके धनको हरनेकी इच्छा करते हैं; उन्हें धनीका सन्धान देना उचित नहीं है; यही धर्म्मरूपसे निश्चित है। चोर लोग धनीको बात पूछें, तो यदि न कहनेसे उनके समीपसे छुटकारा मिले तो किसी प्रकार भी उनसे न कहे; विना कहे यदि उनके हाथसे छुटकारा न हो, तो शपथ पूर्व्वक नहीं जानता हूं, ऐसा भी कहे; ऐसे स्थलमें मिथ्या कहनेसे भी दोष नहीं होता इससे ऐसे स्थानोंमें सत्यसे मिथ्या कहना ही उत्तम है। शपथ करने पर भी यदि पापाचारी मनुष्योंके हाथसे छुटकारा मिले तो, वह भी उत्तम है। किसी प्रकारकी सामर्थ रहते पापाचारी मनुष्योंको धन दान न करे, पापाचारियोंको जो धन दिया जाता है, वह दाताको ही पीड़ित करता है। उत्तमर्ण (ऋण देने) यदि ऋणी पुरुषके शरीरको दासत्व

करके दिया हुआ धन वसूल करनेकी अभिलाषा करे, उस समय सत्य कहनेके वास्ते लाये गये साक्षी लोग जो कुछ कहें, और उस विषयमें जो कहना योग्य है, उसे यदि न कहें, तो वे सब ही मिथ्यावादी हैं। प्राणनाश और विवाहके समय मिथ्या वचन कहनेसे भी दोष नहीं होता। दूसरेके धर्मके वास्ते और अर्थ रक्षाके निमित्त झूठ कहनेसे दोष नहीं होता; दूसरेकी सिद्धि कामना करते हुए नीच पुरुष ही धर्म-भिक्षुक होते हैं। दोनों मिलके किसी कार्य्यको करते हुए लाभालाभको समान हिस्सेमें बांट लूंगा ऐसा निश्चय होनेपर अन्तमें यदि अर्थ नष्ट होवे, तो भी हिस्सेके अनुसार देना उचित है। कोई पुरुष यदि धर्मबन्धनसे च्युत हो, अथवा अधर्मके वशमें होकर यदि जबर्दस्ती करे, तो उसके ऊपर दण्डविधान करना उचित है; और दासत्व प्राप्त करके यदि कोई कपटता करे, तो कपटतासे ही उसे दण्ड देना चाहिये। जिस पुरुषने आसुर-धर्मका सहारा लिया है, वह सदा ही सब धर्मोंसे च्युत है; शठ मनुष्य निज धर्म त्यागके असुर धर्मके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करते हैं। लोकमें जिसने भयको ही सर्व्वस्व रूपसे निश्चय कर रखा है, वही पापी है जो पापी ऐसा जानता है, कि धन ही उत्तम है, धन कल्याण दायक नहीं है; उसे जिस उपायसे होसके वध करना उचित है। जो लोग धर्म-कर्मके वास्ते क्लेश नहीं सहते और दीन दरिद्रोंके सहित धनको विभाग करके भोग नहीं करते, वेही पापके स्थान हैं; वेही देवता और मनुष्योंसे भ्रष्ट प्रेतके समान हैं। जो लोग यज्ञ और तपस्यासे हीन हैं, उनके साथ सहवास मत करो, क्योंकि उन लोगोंको वित्तनाशके वास्ते जो दुःख होता है, वह प्राण वियोगके समान है पापाचारियोंके वास्ते धर्म रूपसे कोई विषय निश्चित नहीं है; इससे इस धर्ममें तुम्हारी अभिरुचि होवे, यत्नपूर्व्वक उन्हें उपदेश देवे; ऐसा पुरुष हो कोई नहीं वैसे पुरुषका जो वध करता है, वह नहीं होता; वह निज कर्म्मसे ही मरे हुए षका वध किया करता है; जो मारा वह निज कर्म्मके जरिये ही मरता है। बुद्धिहीन पापाचारियोंके बीच इन मारूंगा, जो पुरुष ऐसा नियम करता है, कौआ और गिद्धकी तरह केवल कपटजीवी वह देह त्यागनेसे इन्हीं सब योनियोंमें लेता है। जो मनुष्य जिस विषयमें जैसा करता हैं, उसके साथ वैसा ही व्यवहार धर्म है; कपटीको कपट व्यवहारोंसे करना चाहिये और साधु आचरणवाले मनुष्यके समीप सदाचरण करना उचित है।

१०९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिस प्राणी जैसी अवस्थामें रहते हैं, उस ही अवस्थामें क्रमसे क्लेशित होनेपर जिस सहारे दुस्तर विषयोंके पार होसकते हैं, आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, जो सब स्थिर चित्तवाले पहिले कहे हुए आश्रमोंके यथोक्त करते हैं, वेही कठिन विषयोंको किया करते हैं। जो दम्भका आचरण करते, जिनकी चित्तवृत्ति स्थिर है और इन्द्रियोंको निग्रह किया करते हैं; वेही विषयोंको अतिक्रम करते हैं। निन्दा जो प्रत्युत्तर नहीं करते, हिंसित होनेपर जो हिंसा नहीं करते, दान करते किसीसे मांगते नहीं, वेही कठिन अतिक्रम किया करते हैं। जो प्रतिदिन थियोंको आश्रय देते, कभी किसीकी नहीं करते और सदा स्वाध्याय रत

शाखोक्त वेद पाठ करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब धर्म्म जाननेवाले मनुष्य माता पिताकी वृत्तिका आसरा करते और दिनमें निद्रित नहीं होते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते जो मन वचन कर्म्मसे कुछ पापाचरण और जीवोंके वास्ते दण्ड विधान नहीं करते, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो राजा लोग रजोगुणसे युक्त होकर लोभके कारण धन नहीं हरते, और सब विषयोंको सब तरहसे रक्षा करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब अग्निजीव परायण साधु लोग ऋतुकालमें निजरत होकर दूसरी वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो शूर पुरुष युद्धमें मृत्युका भय त्यागके जयकी इच्छा करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। इस संसारमें प्राणत्यागका समय उपस्थित होनेपर भी जो सत्य वचन कहते हैं, वे जीवोंके निदर्शन स्वरूप मनुष्य दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिनके कार्य्योंमें कोई कपटता नहीं है, वचन सत्य और प्रिय है तथा सब अर्थ सत्कार्य्योंमें परिणत होता है; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो ब्राह्मण अनध्यायके दिवस वेदपाठ नहीं करते, वे तपस्यामें निष्ठावान तपस्वी लोग दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो सब कुमार ब्रह्मचारी विद्या वेद और व्रतमें निष्ठावान होकर तपस्या करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन महात्माओंमें रजोगुण और तमोगुण शान्त होगया है, तथा वे लोग केवल सतोगुणको अवलम्बन किये हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिसके समीप कोई भयभीत नहीं होते और जो किसीके निकट त्रास युक्त नहीं होते तथा सब प्राणी जो जिसे आत्म समान हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। जो सब पुरुषश्रेष्ठ साधु लोग पराई स्त्रीको देखके दुःखित नहीं होते और जो ग्राम्य विषयसे निवृत्त रहते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब श्रद्धावान शान्त स्वभाववाले मनुष्य देवताओंको प्रणाम करते और सब धर्म्म सुनते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो प्रजाकामनासे शुद्धचित्तसे प्रति तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे सब कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो क्रोधको रोकते और क्रुद्ध पुरुषोंको पूरी रीतिसे शान्त किया करते हैं, तथा प्राणियोंके ऊपर कोपित नहीं होते; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें सदा मद्य मांसका भोजन परित्याग करते जन्म भर मद्य पान नहीं करते; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं, जो प्राणयात्रा निर्व्वाहके ही वास्ते भोजन करते, पुत्र उत्पत्तिके वास्ते भार्य्याका सङ्ग करते, सत्य कहनेके निमित्त बचन बोलते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। सब प्राणियोंके ईश्वर, जगत्‌की उत्पत्ति और लयके कारण नारायण देवकी जो लोग भक्ति करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। हे राजन्! यह जो पद्मके समान लालनेत्रवाले पीताम्बरधारी महाबाहु अच्युत अर्जुनके सुहृद, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं; जो अचिन्त्यस्वभाव पुरुषश्रेष्ठ प्रभु गोविन्द इच्छा करनेसे ही सब लोकोंको चमड़ेकी तरह समेटा करते हैं, जो धनञ्जय तथा तुम्हारे प्रिय और हितकर कार्य्योंमें सदा तत्पर रहते हैं, वह यही पुरुषप्रवर अनभिभवनीय वैकुण्ठ ही पुरुषोत्तम हैं! जो सब भक्त लोग इस लोकमें इस नारायण हरिका आसरा करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं; इस विषयमें कोई विचार नहीं है। जो लोग इस दुस्तर

अतिक्रमका विवरण पाठ करते, सुनते, वा ब्राह्मणोंके निकट गाया करते हैं, वे भी कठिन विषयोंसे पार होते हैं। हे पापरहित! मनुष्य लोग इस लोक और परलोकमें जिस प्रकार दुस्तर विषयोंसे उत्तीर्ण होते हैं, मैंने यही उस कार्य्यका विवरण तुम्हारे समीप वर्णन किया।

११० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो प्रिय नहीं हैं, वे प्रिय रूपसे और जो प्रियदर्शन हैं, वे अप्रिय रूपसे दीख पड़ते हैं, इससे ऐसे पुरुषोंको हम किस प्रकार जानेंगे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें गिद्ध गोमायु सम्वाद युक्त जिस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग उदाहरण दिया करते हैं, उसे सुनो। पहिले समयमें श्रीमती पुरीका नाम पुरीके बीच परहिंसामें रत, क्रूर स्वभाववाला पुरुषोंमें अधम पौरिक नाम एक राजा था। वह आयु क्षय होनेपर अनिप्सित गतिको प्राप्त होकर पूर्व्व-कर्म्मके दोषसे जम्बुक हुआ था। वह प्रथम ऐश्वर्य्यको स्मरण करके दुःखको प्राप्त हुआ। दूसरेके लानेपर भी वह मांस भक्षण नहीं करता था। वह सब जीवोंके विषयमें हिंसा रहित सत्यवादी और दृढ़व्रती होकर यथा समयमें स्वयं गिरे हुए फलके जरिये आहार-वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करता था। श्मशानमें वास करना ही उसे सम्मत था, जन्मभूमिके अनुरोधके कारण दूसरी जगह निवास करनेकी उसकी इच्छा नहीं होती थी। समान जातिवाले सियारोंने उसकी पवित्रताको सहन नहीं किया, वे सब विनय युक्त वचनसे उसकी बुद्धि विचलित करने लगे। वे सब बोले, तुम भयङ्कर श्मशानमें वास करते हुए शुद्धाचारसे रहनेकी अभिलाष करते हो, तुम जब मांसभक्षी हो, तब तुम्हारी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हुई? इससे तुम हमारे समान रहो, हम तुम्हें भक्ष्य वस्तु देंगे; शुद्ध आचार प करके भोजन करो; जो हम लोगोंका है, वही तुम्हारा भक्ष्य होवे। जम्बुकने तीय सियारोंका वचन सुनके स्थिर विस्तार पूर्व्वक युक्तियुक्त निठुरतारहित वचनसे उत्तर दिया, कि मेरे जन्मका प्रमाण नहीं है; स्वभावके अनुसार चाहे किसी कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जिससे यश मैं वैसे कर्म्मकी इच्छा करता हूं, यद्यपि श्मशानमें वास करता हूं, तौभी मेरा सुनो, आत्मा ही कर्म्म फल भोग करता आश्रम कोई धर्म्मके कारण नहीं है। आश्रम रहके जो पुरुष ब्रह्महत्या करते अथवा इ आश्रममें रहके गऊदान करते हैं; उससे उन लोगोंके पाप वा दान व्यर्थ होते हैं? तु लोग केवल स्वार्थी और लोभके वशमें होक केवल भक्षण करनेमें ही रत होरहे हो; मासमें जो तीनों दोष वर्त्तमान हैं, मो होकर उसे नहीं देखते हो। असन्तोष कारि गर्हणीया वृत्ति धर्म्महानिके कारण दूषित है, इस लोक और परलोकमें अनिष्ट कर वृत्तिमें मेरी अभिलाषा नहीं है। विख्यात् बली शार्दूल गोमायुको पवित्र पण्डित समझके स्वयं उसका अपने सम्मान करते हुए मन्त्रीके कार्य्यके वास्ते

शार्दूल बोला, हे प्रियदर्शन! तु स्वभाव मालूम हुआ, तुम मेरे साथ राज करनेके वास्ते चलो, अभिलषित भोगको करके प्रचुर भोग परित्याग करो। मैं रूपसे विख्यात् हूं; इससे तुम्हें को युक्त हितकर वचन कहता हूं, कि तुम कल्याण होगा।

अनन्तर जम्बुक महानुभाव मृगेन्द्रके नका सम्मान करके कुछ नत होकर विन वचनसे कहने लगा। सियार बोला, हे

[र]ाज! तुमने मेरे वास्ते जो वचन कहा, वह [तु]म्हारे योग्य ही है, तुम जो धर्म्मार्थ कुशल [औ]र पवित्र सहाय खोजते हो, वह उचित ही [है], हे वीर! अमात्यके बिना अथवा शरीरके [वि]रिपन्थी दुष्ट अमात्योंके जरिये महत्वको रक्षा [क]रनी अत्यन्त कठिन है। हे महाभाग! [नी]तिज्ञ, अनुरक्त, सन्धि कुशल, परस्पर असं-[श्लि]ष्ट, बिजिगीषु, लोभरहित, कपट हीन, बुद्धि-[यु]क्त, हितमे रत, ऊंचे चित्तवाले सहायकोंका [आ]चार्य्य और पिताकी तरह सम्मान करना [हो]ता है। हे मृगराज! मुझे सन्तोषके कारण [दू]सरे विषयोंमें इच्छा नहीं होती, मैं सुख-भोग [औ]र उसके आश्रित ऐश्वर्य्यको अभिलाषा नहीं [क]रता; मेरा चरित्र तुम्हारे पुराने सेवकोंके [सा]थ न मिलेगा। वे शीलरहित सेवक मेरे [वा]स्ते तुमको बिभिन्न करेंगे, दूसरे किसी तेज-[स्वि]योंका आसरा भी प्रशंसनीय नहीं है। पवित्र [चि]त्तवाले महाभाग पुरुष अक्लिष्ट भी प्रचण्ड है, [मैं] दीर्घदर्शी महाउत्साहसे युक्त धर्म्मात्मा, [म]हाबलशाली, कृती, अव्यर्थकारी और अनेक [गु]णोंसे अलंकृत था; मैं थोड़ेमें सन्तुष्ट नहीं [हो]ता था और कभी सेवावृत्तिका अनुष्ठान भी [न]हीं किया है, इससे सेवावृत्तिसे अनभिज्ञ [हूं]; केवल स्वच्छन्दताके सहित वनके बीच [भ्र]मण करता हूं। जो गृहस्थाश्रममें वास करते [हैं] उन लोगोंको ही राजाके निकट निन्दाज-[नि]त दोष हुआ करता है, और वनवासियोंका [नि]त आचरण आसक्ति रहित तथा निर्भय होता [है]। राजासे बुलाये जानेपर मनुष्यके मनमें जो [भ]य होता है, सन्तुष्टचित्त और फलमूल भोजन [क]रनेवाले वनवासियोंके मनमें वह भय नहीं [र]हता। अनायास प्राप्त हुए जल और भययुक्त [स्वा]दिष्ट अन्न इन दोनोंके बीच विचार करके [दे]खता हूं, जिसमें निवृत्ति है, उसहीमें सुख है, [रा]जा लोग सेवकोंके अपराधके कारण उस [प्र]कार दण्डविधान नहीं कर सकते, जैसे

आघातसे दूषित होकर वे लोग मृत्युको प्राप्त होते है। हे मृगेन्द्र! यदि मुझे यह राजकार्य्य करना होवे, तुम ऐसा बिचारते हो; तो मुझे जिस प्रकार रहना होगा, उसका एक नियम करनेकी इच्छा करता हूं। तुम्हारे प्राचीन मन्त्री मेरे माननीय होंगे, परन्तु मेरा हितकर बचन तुम्हें सुनना योग्य है। मेरी जो वृत्ति कल्पित होगी, वह तुम्हारे समीप स्थिर रहेगी, मैं कभी तुम्हारे दूसरे मन्त्रियोंके साथ बिचार नहीं करूंगा; तुम्हारे प्राचीन मन्त्री नीतिज्ञ होनेपर भी मेरे विषयमें व्यर्थ वार्त्ता करेंगे। मैं अकेले एकान्तमें केवल तुम्हारे साथ मिलके हितकर बचन कहूंगा; स्वजनोंके कार्य्यमें तुम मुझसे हिताहितका विषय न पूछना। तुम मेरे साथ सलाह करके फिर दूसरे मन्त्रियोंकी हिंसा न करना, और मेरे आत्मीयगणोंके ऊपर क्रुध होकर तुम दण्डविधान न करना। "ऐसा ही होवे"—मृगेन्द्रने ऐसा बचन कहके जम्बु-कका सम्मान किया; जम्बुक भी सम्मानित होकर व्याघ्रके मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित हुआ। बाघके पूर्व्व-स्थित सेवक लोग सियारको निज कार्य्यमें सत्कृत और पूजित देखकर सब कोई दलबद्ध होकर बारम्बार उसके ऊपर द्वेष करने लगे। दुष्टबुद्धि मन्त्रियोंने मित्र ज्ञानसे गोमा-युको शान्त और प्रसन्न करके अपनी तरह उसे भी दोषी करनेकी इच्छा की। ऐसा न करनेसे पहिले जिन्होंने पराये धनको हरण किये थे, इस समय वे वहां रहने न पाते; और गोमा-युसे निमन्त्रित होके कोई वस्तु ग्रहण करनेमें समर्थ न होते थे। वे सब अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हुए अनेक प्रकारके बचन और वित्तसे गोमायुकी बुद्धि लोभयुक्त करने लगे; परन्तु वह महाबुद्धिमान जम्बुक किसी प्रकार धीरजसे विचलित नहीं हुआ। अनन्तर सबने षड्यन्त्र करके सियारके नामके वास्ते व्याघ्रका अभिलषित मांस जो उसके घरमें रखा था;

उन लोगोंने स्वयं उस मांसको वहांसे लाकर सियारके घरमें रखा। वह मांस जिस कारण जिसके जरिये लाया गया था, और जिसने इस विषयकी सलाह की थी; वह सब हाल सियारको मालूम था, उसने केवल अपने बन्धु विच्छेदके निमित्त क्षमा की थी। वह जब मन्त्री कार्य्यपर नियुक्त हुआ, उस समय यह नियम किया था, कि इस लोकमें सब जीवोंके हितके निमित्त किसीके ऊपर आघात करना उचित नहीं है।

भीष्म बोले, भूखा व्याघ्र भोजन करनेके वास्ते उठने पर भोजनके योग्य उस मांसको न देखा; तब उसने आज्ञा दी, कि किसने मांस चुराया है, उस चोरका पता लगाओ। कपट, आचारी सेवकोंने मृगेन्द्रके समीप उस मांसका विषय वर्णन किया, कि तुम्हारे प्राज्ञमानी पण्डित मन्त्रीने उस मांसको हरण किया है। अनन्तर शार्दूलराज सियारकी चपलता सुनने पर कोपित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसका बध करनेकी इच्छा करी। पूर्वस्थित मन्त्रियोंने उसका वह छिद्र देखके, वह सियार हम सब लोगोंकी वृत्ति भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हुआ है। उन लोगोंने ऐसा निश्चय करके फिर उसके सब कर्म्मोंको वर्णन करने लगे, उसका जब ऐसा कर्म्म है, तब वह क्या नहीं कर सकता? आपने पहिले उसे जिस प्रकार सुना था, वह वैसा नहीं है; वह वचन मात्रका ही धर्म्मिष्ठ है; परन्तु उसका स्वभाव अत्यन्त दारुण है। इस पापीने कपट धर्म्म अवलम्बन करके वृथा आचरण परिग्रह किया है, कार्य्य सिद्धके कारण भोजनके वास्ते व्रत विषयमें श्रम किया है। यदि इस विषयमें आपको अविश्वास होवे, तो इस समय आपको दिखा देता हूं—वह मांस सियारके घरमें प्रवेशित हुआ है मांसकी चोरी और उसके वृत्तान्तको सुनकर व्याघ्रने उस समय "गोमायुका वध करो," ऐसी आज्ञा की। अनन्तर शार्दूलकी माता उसका वचन सुनके हितकर वाक्यसे उसे शान्त करनेके आई। वह बोली, हे पुत्र! कपट कार्य्य वाक्य ग्रहण करने तुम्हें उचित नहीं। ईर्षाके कारण उग्रतायुक्त अपवित्र पु संसर्ग जनित दोषके जरिये निर्दोषी पुरुष दोषी होता है, कोई पुरुष वैरकारक स प्रकृष्ट कर्म्म नहीं सह सकता, निर्दोषी अभियुक्त होनेपर वह दूषित हुआ करता है निज कर्म्म साधन करनेवाले बनवासी मुनियों विषयमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन ये तीन पक्ष उत्पन्न होते हैं। लोभियोंके शुद्ध स्वभ वाले लोग द्वेषी होते, कादरोंके बलवान मूर्खोंके पण्डित और दरिद्रोंके महाधनवान मनुष्य द्वेषी हुआ करते हैं, अधर्म्मियोंके धर्म्मात्मा और कुरूपोंके स्वरूपवान मनुष्य द्वेषभाजन होते है। बहुतेरे पण्डित मूर्ख, लोभ और मायाजीवी लोग बृहस्पतिके समान बुद्धि मान् निर्दोषी मनुष्योंके दोष स्थापित किया करते है। यद्यपि तुम्हारे सूने गृहसे मांस चुराया गया है, परन्तु जो पुरुष देने पर भी लेने की इच्छा नहीं करता; उस विषयमें वे समझना उचित नहीं है। असभ्य लोग और सभ्य लोग असभ्यके समान दीख पड़ते हैं लोगोंके भाव अनेक तरहके देखे जाते हैं; इ उनके विषयमें परीक्षा करना युक्तियुक्त आकाशका तल कड़ाहीके पेट समान दी और जुगुनू अग्निकी चिनगारी सदृश पड़ता है; परन्तु आकाशका तल नहीं है जुगुनू भी अग्नि नहीं है, इससे अप्रत्यक्ष विषयोंकीभी परीक्षा करनी उचित है। परीक्षा करके विषय जाहिर करने पर पीछे दुःख नहीं होना पड़ता।

हे पुत्र! प्रभु होके दूसरेको नष्ट करना कुछ कठिन नहीं है, परन्तु इस लोकमें प्रभावयुक्त पुरुषोंमें क्षमागुण ही बड़ाईके योग्य यशदायक है। हे पुत्र! तुमने उसे सम

राज्यके बीच स्थापित किया है ? उससे ही वह विख्यात हुआ है ; मन्त्रणा पात्र अत्यन्त कष्टसे प्राप्त होता है ; यह तुम्हारा सुहृद है, इससे उसकी रक्षा करो । पराए दोषसे दूषित, पवित्र पुरुषको जो दूसरी भांति समझता है, वह स्वयं अमात्योंको दूषित करते हुए शीघ्र ही नष्ट होता है । जम्बुकके उन शत्रु समूहके बीचसे कोई धर्म्मात्मा आया, उसने जिस प्रकार यह छल हुआ था, वह सब प्रकाशित करके कह दिया । अनन्तर जम्बुकका चरित्र मालूम होनेपर व्याघ्रने उसका सत्कार करके उसे मुक्त किया और बारम्बार प्रीतिके सहित उसे आलिङ्गन किया । नीतिशास्त्रको जाननेवाला वह सियार मृगेन्द्रकी आज्ञा लेके उस ही अमर्षसे दुःखित होकर प्रयोग प्रवेशन व्रतकी इच्छा की । शार्दूलने प्रीतिके कारण इकाटक नेत्रसे सम्मान करके उस धर्म्मात्मा सियारको आदरके सहित अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे निवारण किया । सियार बाघको स्नेहवशके कारण संभ्रान्त चितवनसे प्रणत होके गद्गद वचनसे कहने लगा कि तुमने पहिले मुझे पूजित करके पीछे अपमानित किया और मेरे शत्रुओंके आश्रय हुए ; इससे मैं तुम्हारे समीप निवास नहीं कर सक्ता । जो सेवक स्थानभ्रष्ट मानसे हीन है, वे स्वयं आगत वा दूसरेसे अर्पित होवें ; जो क्षीण, लोभी, क्रोधी, डराङ्कक, प्रतारित और हृत सर्व्वस्व होवें और जो मानी तथा महा अर्थ लाभके अभिलाषी होकर आदान हीन हुआ करते हैं ; जो दुःखित वा व्यसनोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वे सब ही प्रीतिरहित और निर्द्धन होकर नष्ट होते हैं । मैं स्थानभ्रष्ट और अपमानयुक्त हुआ हूं, इससे किस प्रकार तुम्हारा विश्वास पात्र होऊंगा ; और कैसे तुम्हारे समीप स्थित होऊंगा ? मुझे समर्थ समझके तुमने मन्त्री पद प्रदान करके परीक्षा की और अपने किये हुए नियमको उल्लङ्घन करके मुझे अवमानित किया है । सभाके बीच शीलवान कहके जिसे विख्यात किया था ; प्रतिज्ञा रक्षा करनेवालेके पक्षमें उसका औगुण कहना उचित नहीं है । मैं जब इस प्रकारसे मालूम हुआ हूं, तब तुम मेरा विश्वास अब न करोगे, तुम्हारे विश्वास न करनेसे मेरा भी चित्त व्याकुल होगा । तुम शङ्कित और मैं भयभीत हूं ; दूसरे छिद्र खोजनेवाले अस्निग्ध और असन्तुष्ट रहेंगे ; इससे ऐसी स्थलमें बास करनेसे बहुतसा छल होसकता है । जिस स्थानमें पहिले सम्मान पीछे अपमान होता है, उस सम्मानित होके फिर अपमानित होनेवालेको धीर लोग प्रशंसा नहीं करते । पृथक् हुई वस्तु बहुत कष्टसे जुड़ती है और जुड़ी हुई वस्तु अत्यन्त कष्टसे अलग हुआ करती है, जो प्रीति पृथक् होके फिर जुड़ती है, वह स्नेहसे मिश्रित नहीं रहती । कोई पुरुषको अपना पराया दोनोंके अतिरिक्त केवल स्वामीके हितकर कार्य्योंमें रत नहीं देखा जाता सब ही कार्य्यके अनुसार अभिप्राय करते हैं ; इससे स्निग्धवस्तु अत्यन्त दुर्लभ है । राजाओंका चित्त अत्यन्त चञ्चल होता है ; उत्तम पुरुषको समझना बहुत कठिन है ; समर्थ वा शङ्कारहित पुरुष सैकड़ेमें एक पाया जाता है । मनुष्योंकी उन्नति अवनति स्वयं हुआ करती ; शुभाशुभ घटना ही महत्व और तुच्छत्व मालूम करानेमें समर्थ हैं ।

भीष्म बोले, जम्बुकने इसी प्रकार धर्म्म, काम और अर्थसे पूरित युक्तियुक्त शान्त वचन कह बाघको प्रसन्न करके बनको गया । बुद्धिमान सियार उस शार्दूलकी विनतीको न मान कर व्रत अवलम्बन करके देहत्यागनेके अनन्तर स्वर्गमें गया ।

१११ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे सब धर्म्मोंके ज्ञा . पितामह ! राजाको क्या क .

कार्य्य करनेसे राजा सुखी होता है इसे आप यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, अच्छा,—मैं तुम्हारे समीप कहता हूं; इस लोकमें राजाको जो कुछ कर्त्तव्य हैं और जिसके करनेसे वह सुखी होते हैं, उस कार्य्यके विषयमें एकमात्र निश्चय है, उसे सुनो। हे युधिष्ठिर! हमने जिस प्रकार एक ऊंटका महत वृत्तान्त सुना है, वैसा करना उचित नहीं; इससे उसे सुनो। प्राजापत्य युगमें एक जातिस्मर ऊंट था, उसने जङ्गलके बीच व्रत करके महत् तपस्या की थी। उसकी तपस्या पूरी होने पर सर्व्व-शक्तिमान पितामह प्रसन्न हुए; अनन्तर उन्होंने उसे बर मांगनेको कहा।

ऊंट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरी गर्द्दन लम्बी होवे, हे बिभु! जिससे मैं उस लम्बी गर्द्दनके जरिये एक सौ योजनसे भी आगेके कण्टक पत्रादिकोंको हरण कर सकूं। बरदाता महात्मा पितामहने कहा "ऐसा ही होवे"। ऊंट भी उत्तम बर पाके निज बनमें गया। अत्यन्त नीचबुद्धि ऊंटने उस समय बरके प्रभावसे आलस्य किया। वह दुष्टात्मा कालसे मोहित होकर चरनेके वास्ते नहीं जाता था; किसी समय उस एक सौ योजन लम्बी ग्रीवांको पसार कर निमग्न चित्तसे रहा था; उस ही समयमें प्रबल हवा बहने लगी, तब ऊंटने अपने शिर और गर्द्दनको कन्दराके बीच डाल दिया।

अनन्तर जगत्को परिपूरित करती हुई महत् वर्षा आरम्भ हुई। उस ही समय कोई शियार जलसे भीगके शीतसे आरत हुआ; इससे कष्टमें पड़के भार्य्याके सहित शीघ्र ही उस गुफाके बीच प्रवेश किया। हे भरतश्रेष्ठ! वह मासजीवी जम्बुक परिश्रम और क्षुधासे युक्त होकर ऊंटकी गर्द्दन देखके उसे भक्षण करने लगा। ऊंटने जब अपनेको भक्ष्यमान समझा तब वह अत्यन्त दुःखित होकर समेटनेके वास्ते यत्नवान हुआ। वह ऊपरउठाके नीचेको समेटते समेटते सहित सियारने उसे भक्षण किया। ऊंटको भक्षण करके वर्षा और वायुके होने पर गुफासे बाहर हुआ। नीचबुद्धि उस समय इसी भांति मृत्युको प्राप्त हुआ देखिये, आलसके कारण महत् दोष हुआ, इससे तुम उपाय अवलम्बन करके आलस छोड़के सावधान होकर बुद्धिमूल विषयोंमें वर्त्तमान रहो। हे भारत! मनु कहा है, बुद्धिमूलक कर्म्म ही उत्तम है; बाहु बल जनित कर्म्म मध्यम, और पावसे चलना तथा बोझा ढोना आदि निकृष्ट हैं। जो दक्ष और क्रमसे इन्द्रियोंको निग्रहीत किये हैं, उन्हीं राजाओंका राज्य वर्त्तमान रहता है; और बुद्धिबलसे ही आर्त्त पुरुषोंकी विजय होती है; यह मनुने कहा है।

हे पापरहित युधिष्ठिर! जिन्होंने मन्त्रणा सुनी है, जो सहाय युक्त और करके कार्य्य करते हैं; इस लोकमें उनके पास सब अर्थ उपस्थित रहते हैं; सहाय राजा समस्त पृथ्वी शासन करनेमें समर्थ है। हे महेन्द्र सदृश स्वभावसे युक्त महाराज! जाननेवाले साधुओंके जरिये पहिले समयमें कथा कही गई थी; मैंने भी तुम्हारे शास्त्रदृष्टिके अनुसार इसे वर्णन किया, जैसा कहा है, उस ही भांति बुद्धिसे विचार करके आचरण करो।

११२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! राजा दुर्लभ राज्य पाके सहाय रहित होके अत्यन्त बलवान शत्रुके निकट किस प्रकार निवास करे?

भीष्म बोले, हे भारत! पुराने लोग इस विषयमें सरित्पति सागर और नदियोंके संवाद

...युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, जो संशय उत्पन्न हुआ था, उस विषयमें सुरालयनिलय, सरित्पति समुद्र नदियोंसे प्रश्न किया। ... समुद्र बोला, हे उत्तमोत्तम नदियो! तुम सब जिस समय मेरे निकट आती हो; उस समय जड़ और शाखाके सहित बड़े बड़े वृक्षोंको नष्ट होते देखता हूं; परन्तु उनके बीच वेतके वृक्षको टूटते हुए नहीं देखता। वेतका वृक्ष छोटा शरीर और अल्प शक्तिवाला तुम्हारे किनारे पर उत्पन्न होता है; इससे तुम लोग उसे अवज्ञाके कारण नहीं लाती हो; वा उसने तुम लोगोंका कुछ उपकार किया है? वेत जो तुम लोगोंके तटको छोड़के नहीं आता, इस विषयमें मैं तुम सब लोगोंके मतको सुननेकी इच्छा करता हूं। इस विषयमें नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा सरितपति समुद्रसे अर्थ और युक्तियुक्त हृदय-ग्राहक उत्तर देने लगीं।

गङ्गा बोलीं, ये सब वृक्ष यथा स्थानमें रहके नष्ट होते हैं, वे सब हम लोगोंके विरुद्ध आचरण करके अन्तमें निज स्थानसे भ्रष्ट हुआ करते हैं; वेतवृक्ष ऐसा न करनेसे निज स्थानमें ही निवास करता है। वेगको आता देखके वेत नत होता है, दूसरे नत नहीं होते; नदीका वेग घटनेपर वेत निज स्थानमें स्थित रहता है। वेत कालज्ञ, समयज्ञ और सदा वशीभूत, अनुलोम तथा सूखा है; इस ही निमित्त इस स्थानमें नहीं आता। जो सब ओषधी, वृक्ष, और लता वायु तथा जल वेगके कारण नीचे और ऊंचे होती हैं, वे अपने पराभवको नहीं प्राप्त होतीं।

भीष्म बोले, जो पुरुष पहिले वध और नाश करनेमें समर्थ प्रबल वैरीके वेगको नहीं सहता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो अपना और शत्रुके सार असार तथा बलवीर्य्यको मालूम करके घूमते हैं, उन बुद्धिमान पुरुषोंको पराभव नहीं होती। इसी भांति जो शत्रुओंको प्रबल पराक्रमी जानके वेतसीवृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनकी पराभव नहीं होती; यही प्रकृष्ट ज्ञानका लक्षण है।

११३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भारत! विद्वान पुरुष मूर्ख वा प्रगल्भके जरिये कोमल तथा कठोर भावसे निन्दित होकर सभाके बीच कैसा व्यवहार करे?

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! यह विषय जिस प्रकार वर्णित होता हैं, अर्थात् बुद्धिमान पुरुष अल्पबुद्धि मनुष्योंके अत्याचारको जिस प्रकार सदा सहते हैं, उसे सुनो। जो निन्दक पुरुषोंके ऊपर क्रोध नहीं करते, वे सुकृत फल लाभ किया करते हैं, और जो क्रोधी पुरुषके विषयमें क्षमा करते हैं, वे अपने किये हुए दुष्कृत कर्म्मोंसे छूट जाते हैं। टिट्टिभ पक्षीके शब्दकी भांति कानोंमें कड़वे मालूम होनेवाले क्रोधसे आतुर पुरुषोंके वचनमें उपेक्षा करे। लोक समाजमें जो पुरुष द्वेषभाजन होता है, उसका सब ही निष्फल है; वह उसही पाप कर्म्मके जरिये सदा बड़ाई करता है,—"मैंने जनसमाजके बीच अत्यन्त विख्यात किसी पुरुषको ऐसा वचन कहा था, वह सभामें ऐसा सुनके मुर्देके समान स्थित था।" जो निर्लज्ज पुरुष बड़ाई न करने योग्य कर्म्मोंके जरिये बड़ाई करते हैं, वैसे अधम पुरुषोंके विषयमें यत्नपूर्व्वक उपेक्षा करनी योग्य है। अल्पबुद्धि मनुष्य जो कुछ कहे, बुद्धिमान पुरुष उसे सहन करे, वनके बीच कौवेकी तरह निरर्थक चिल्लाते हुए बुद्धिहीन साधारण पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करके क्या कर सकता है? पाप कर्म्मोंका करना यदि वचनसे कहा जावे, अर्थात इस पुरुषने यह कर्म्म किया है, ऐसा कहने पर वचनमात्रसे दूसरेका ... गाढ़ करता है; क्रोधी पुरुषका ...

नहीं होता, इससे वचनके जरिये दूषित पुरुष कभी दोषी नहीं होसकता। दुष्ट पुरुष यदि कड़वे वाक्यसे कोई विपरीत वचन कहें, अर्थात् जनसमाजमें यदि कोई पुरुष कड़वे वचनसे गाली देवे, तो जैसे मोर अपना पुच्छ दिखाके नाचते नाचते अपनी बड़ाई समझता है, अर्थात मैं उत्तम नृत्य करता हूं, ऐसे ही अभिमानसे मतवाला होता है, वैसे ही खल तथा नष्ट लोग मैंने सभाके बीच अमुक महत् पुरुषको कड़वे वचन कहा है, ऐसी ही बड़ाई किया करते हैं, उसके वास्ते लज्जित नहीं होते। जगत्में जिसे कुछ भी न करने योग्य अथवा अकार्य्य नहीं है, उन दूषित चित्तवाले मनुष्योंके साथ पवित्र स्वभाव युक्त पुरुषोंको वार्त्तालाप करना उचित नहीं है। जो पुरुष सम्मुखमें प्रशंसा और परोक्षमें निन्दा किया करता है, कुत्ते की तरह वैसे मनुष्यका ज्ञान और धर्म्म नष्ट होता है। परोक्षमें निन्दा करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पुरुषोंको दान करे, तथा होम करे, तो उस ही समय वह सब निष्फल होजाता है; इससे बुद्धिमान पुरुष सदा वैसे पापी साधुताहीन पुरुषोंको कुत्तेके मांसकी तरह त्याग करें। जो दुष्टात्मा महाजनोंके निकट दूसरेकी निन्दा करते है, वे सर्पकी तरह ऊंचा फन दिखाके अपने दोषोंको प्रकाशित किया करते है। जो बुद्धिहीन पुरुष निज कर्म्मको करनेवाले खलके प्रतिकार करनेकी इच्छा करते हैं, वह इस प्रकार दुःखमें पड़ते हैं, जैसे गधा अग्निपुञ्जमें प्रवेश करता है। जो पुरुष दूसरेकी निन्दा करनेमें सदा रत रहता है, वह मनुष्यके आकारमें कुत्तास्वरूप है। चिल्लानेवाले उन्मत्त हाथी और अत्यन्त भयङ्कर कुत्तेकी तरह उस नीच पुरुषको परित्याग करना चाहिये। जो पुरुष अधीर सेवित मार्गमें वर्त्तमान और इन्द्रिय दमन तथा विनयसे विरत होता है, उस अरिव्रती सदा अनैश्वर्य्यकामी पापबुद्धि पापी मनुष्यको धिक्कार है। नीच लोगोंके कुछ वचन बोलनेपर साधु पुरुष उसका उत्तर देवें, तो उन्हें देनेसे निवारण करना उचित है; क्योंकि उत्तर देनेसे आर्त्त होना पड़ता है। स्थिर वाले पुरुष ऊंचे पदवाले पुरुषोंके न अहित वार्त्तालाप करनेकी भी निन्दा किया करते हैं। मूढ़ पुरुष क्रुद्ध होनेपर चपेटाघात करता धूलि वा तृष फेंकता अथवा दांत निकालके विभीषिका प्रदर्शित किया करता है; नृशंस तथा मूर्खके कोपित होनेपर ये ही सब कार्य्य प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य सभाके बीच पलल दुष्टचित्तवाले दुर्जनोंकी की हुई निन्दा सब करते और इस दृष्टान्तका सदा पाठ करते हैं, उन्हें कोई अप्रिय वचन नहीं प्राप्त होता।

११४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! आपको मेरा यह महत् संशय दूर करना होगा। आप हमारे कुलकी स्थित करनेवाले हैं। हे तात! आपने नीचकर्म्म करनेवाले दुष्टात्मा पुरुषोंके विषयमें ऐसे वचन कहे। मैं इसी वास्ते जाहिर करता हूं, कि जो राजाओंके हितकारी और जिससे वंशको सुख होता तथा जो वर्त्तमान और भ[illegible] कुशलकी वृद्धि करनेवाला हुआ करता जो पुत्र पौत्र आदि क्रमसे चले आते जो राज्यकी बढ़ती करनेवाला हो खाने और शरीरके विषयमें जो हितकर होवे, आप मेरे समीप वर्णन कीजिये। जो राजा अभिषिक्त होकर राज्यके बीच मित्रोंसे मित्र सुहृदोंसे युक्त होवे वह किस प्रकार प्रजाको प्रसन्न करे? जिसे असत् विषयोंमें अनुराग प्रीति और प्रबल आसक्ति, तथा इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाले असज्जनोंमें अभिलाष होती है; उसके सहसमें उत्पन्न हुए सेवक

रहित होजाते हैं और वह राजा सेवकोंके से प्राप्त हुए धनके जरिये गौरवयुक्त नहीं होता। मैं इस ही सन्देहसे युक्त होरहा हूं, प बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं, इससे इस खसे जानने योग्य सब राज्य-धर्म्मको मेरे मीप कहनेमें आप ही उपयुक्त हैं। हे पुरुष-ष्ठ! आप हमारे वंशके हित करनेमें रत हैं, प ही सब विषयोंको कहते हैं, और महा-द्धिमान विदुर भी हम लोगोंसे सर्व्वथा कहा रते हैं। आपके समीप वंश और राज्यके तकर वचन सुनके मैं अमृत पानकी तरह प्त होकर सुखसे शयन किया करता हूं। निकृष्ट सेवक कैसे गुणोंसे युक्त होवें और स प्रकारके सेवकोंके जरिये संसारयात्रा हित होगी। सेवकोंसे रहित राजा अकेले भी राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते, सत्वंशमें त्पन्न हुए सब लोग इस राज्यकी इच्छा किया रते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! अकेले राज्यको ासन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। हे त। सहायहीन राजा धन प्राप्त करने वा प्राप्त ए धनको सदा रक्षा करनेमें समर्थ नहीं ोते। जिसके सब सेवक ज्ञान विज्ञानके जान-वाले, हितैषी सत्कुलमें उत्पन्न हुए और कोम-ता-युक्त हैं, वही राज्य फलभोग करता है। सके मन्त्री उत्तम कुलवाले और घूस आदिसे भेद, सहवास निष्ठ राजाके प्रति दिखानेवाले ाधु, सम्बन्ध युक्त ज्ञानके जाननेवाले, अनागत धाता, कालज्ञानके जाननेवाले होते हैं; ौर जो बीते हुए विषयोंके वास्ते शोक नहीं रते, वेही राज्यफल भोग करते हैं। जिसकी जा शान्त नहीं होती. सदा प्रसन्न चूरता हीन ौर सत्मार्गको अवलम्बन करती है, वह राजा ी राज्यभागी होता है। कोषको बढ़ानेवाले प्राप्त और सन्तुष्ट पुरुषोंसे जिसके खजानेकी दा रहती होती है, वही राजा उत्तम है। पहिले सञ्चय उसके अनन्तर घूस आदिसे अभेद लोभरहित और विश्वासी मन्त्रियोंसे जिसकी धान्य आदि सामग्रीके जरिये सब लोग प्रतिपालित होते हैं, वह राजा अनेक गुणोंसे युक्त होता है। जिसके नगरमें व्यवहार कार्य्य अर्थात् वादी प्रतिवादियोंके विवादोंका निर्णय हुआ करता है और उन लोगोंको अपराधके मुताबिक दण्ड दिया जाता है शास्त्रमें लिखे हुए निदर्शनके अनुसार वह राजा ही धर्म्म फलभागी होता है। राजधर्म्मको जाननेवाला जो राजा विचारके मनुष्योंको संग्रह करता है और सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और समाश्रय इन षड्वर्गोंको प्रतिग्रह करता है, वही धर्म्म फल भोग किया करता है।

११५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं; यह सज्ज-नोंसे आचरित लोक समाजमें सदा परम प्रमाण स्वरूप है। तपोवनमें जामदग्न्य परशु-रामके समीप ऋषियोंने जैसा कहा था, उसे इस कल्याण विषयके सहित मैंने सुना था। मनुष्य-सञ्चारसे रहित किसी जङ्गलके बीच फल मूल अहार करनेवाले नियममें निष्ठावान जितेन्द्रिय एक ऋषि-वास करते थे। वह दीक्षा दमसे युक्त, शान्त, स्वाध्याय रत, पवित्र, उप-वाससे कारण शुद्धचित्त और सदा सतोगुण अवलम्बन करके रहते थे। उस बुद्धिमानके बैठे रहनेपर सब प्राणी उनका सद्भाव देखके उनके समीप जाते थे। सिंह, बाघ मतवाले हाथी, द्वीप नाम बाघ, गैंड़ा भालू और इसके अतिरिक्त जो सब भयानक रूपवाले जन्तु थे, वे रुधिर पीनेवाले सब जीव उनसे कुशल प्रश्न करते और सब कोई शिष्यकी तरह नम्र हो उस ऋषिके प्रियकार्य्योंके करनेमें

थे। ऊपर कहे हुए जानवर ऋषिके साथ सुख-प्रश्न करके यथा योग्य स्थानों पर गमन करते थे, उनके बीच एक पलुआ कुत्ता उस महामुनिको छोड़के नहीं जाता था। हे महा बुद्धिमान! वह भक्त सदा अनुरक्त, उपवाससे कृशित दुर्ब्बल फल-मूल जलाहारी, शान्त शिष्टाकृतिके समान कुत्ता उस बैठे हुए महर्षिके चरण पर मनुष्यकी तरह गिरा और अत्यन्त स्नेहवद्ध होने लगा। अनन्तर मांसभची महाबली स्वार्थ लाभके वास्ते अत्यन्त सन्तुष्ट क्रूर स्वभाववाला शार्दूल वहां पर उपस्थित हुआ। वह प्यासा बाघ जीभ निकालके और पूंछ खड़ी करके क्षुधासे पीड़ित होकर उस कुत्तेके मांसको भक्षण करनेकी इच्छा कर मुख बाके उसकी ओर आने लगा। हे राजन्! जीनेकी इच्छासे उस कुत्तेने मुनिसे जैसा वचन कहा था, उसे सुनो। महाराज! कुत्ता बोला, हे भगवन्! यह कुत्तोंका शत्रु तेंदुआ मुझे भक्षण करनेकी इच्छा करता है। हे महामुनि! आपकी कृपासे जिस प्रकार इससे मुझे भय न होवे, हे महाबाहो! आप वैसा ही करिये, आप सर्व्वज्ञ हैं, इसमें सन्देह नहीं है। ऐश्वर्य्य युक्त सब जीवोंकी बोली और भावके जाननेवाले वह मुनि उसके भयका कारण मालूम करके कहने लगे।

मुनि बोले, हे बच्चा! तुम बाघसे मृत्युके वास्ते कुछ मत डरो; तुम निज रूपको त्यागके बाघ बनो। अनन्तर वह कुत्ता सुवर्णके समान आकृतिसे युक्त विचित्र अङ्गवाला शार्दूल हुआ उसके सब दांत बड़े बड़े होगये, तब वह निर्भय होकर वनके बीच स्थित हुआ। असल बाघ उसे अपने समान पशु देखके उसके साथ कुछ विरुद्ध आचरण न करके क्षणभरमें वहांसे चला गया। अनन्तर महाभयङ्कर विकराल शरीरसे युक्त, रुधिर लालसासे मुख बाये हुए भूखा शेर उस दीपीके समीप आने लगा। वह दीपी वनवासी दंष्ट्री भूखे शेरको देखके रक्षाकी इच्छासे ऋषिके शरणमें गया, सहवासके कारण उसपर प्रीति करते थे; इसी कारण उस दीपीको उसके शत्रु... बलवान शेर बना दिया। महाराज। शेरने उसे निज जाति देखके नहीं... कुत्ता उस समय व्याघ्रत्वको प्राप्त होके ... हुआ और मांस भोजन करने लगा, तब फल मूल भोजन करनेमें रुचि न रही। ...राज! मृगराज जैसे सदा वनवासी ... भक्षण करनेकी इच्छा करता है, वह शेर उस समय वैसा ही हुआ।

११६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह शेर कुटीके समीप ... करते हुए मृगोंको मारके उनके ... होकर शयन कर रहा था, उसही समय ... हुए बादलके समान एक मतवाला हाथी ... स्थान पर उपस्थित हुआ। उस हाथीका स्थल प्रभिन्न होके मद भर रहा था ... कुम्भ बहुत बड़े थे और उसके शरीरमें पद्म ... विद्यमान था। उस दोनों विशाल दांतोंसे ... अत्यन्त ऊंचा बड़ा शरीर और बादलके ... गम्भीर शब्द करनेवाला बलगर्व्वित ... हाथीको आते देखके वह बाघ हाथीके डरके उस ऋषिके शरणमें गया। अनन्तर सत्तमने उस बाघको हाथी बनाया। हाथी उस बाघको महामेघके समान आते देखके भयभीत हुआ। अनन्तर वह शलकी तथा कमल वनमें पद्मरेणु विभूषित मदयुक्त होकर घूमने लगा। ऋषिकी समीप रहके हाथीको इधर उधर घूमते, बहुत समय बीत गया। अनन्तर पहाड़ कन्दरामें रहनेवाले लालवर्णवाली केशरसे ... हाथियोंके कुलको नाश करनेवाला एक ...

स्थान पर आया। हाथी उस सिंहको आते उसके भयसे डरके ऋषिकी शरणमें गया। न्तर मुनिने उसे सिंह बनाया। तब उसने ान जातिके सम्बन्धके कारण बनके सिंहको ीह न की, उसे सिंह होते देखकर बनका ह भयभीत होकर चला गया। नकली सिंह महावनके बीच मुनिके आश्रमके समीप स करनेलगा। उसके भयसे दूसरे पशु भय- त होके जीवनकी इच्छासे तपोबनके निकट नहीं आते थे। किसी समय सब प्राणियोंका मक, रुधिर पीनेवाला अनेक प्राणियोंसे भय- र आठ पांव, ऊर्द्ध नेत्रवाला वनवासी बलवान भ उस सिंहको संहार करनेके वास्ते मुनिके श्रममें उपस्थित हुआ। हे शत्रुनाशन! निने उस समय सिंहको अत्यन्त बलवान रभ बनाया। जङ्गली शरभ मुनिके प्रचण्ड लसे युक्त शरभको अपने अगाड़ी देख, शीघ्र- के सहित बनसे भाग गया। वह कुत्ता उस मय मुनिके जरिये शरभत्व प्राप्त करके उनके कट सुखपूर्व्वक समय बिताने लगा। हे जन्! अनन्तर सब पशु उस शरभके भयसे रके और जीवन रक्षाके लिये यत्नवान होकर मों दिशाकी ओर दौड़ने लगे। शरभ भी तिदिन प्राणियोंके वधमें रत हुआ, इससे ासके खादसे माहूत होकर फल मूल भोजन रनेकी इच्छा नहीं करता था। कुछ दिनोंके नन्तर अकृतज्ञ खयोनज शरभ लोहू पीनेकी च्छासे अत्यन्त मुग्ध होकर मुनिको मारनेकी भिलाष की। तब वह महाबुद्धिमान मुनि तप ल और ज्ञाननेत्रसे उसकी दुष्ट अभिलाषा ान गये और विदित होने पर उस कुत्तेसे हने लगे।

मुनि बोले, तू पहिले कुत्ता था, मेरे तपो- लसे तेंदुआ हुआ, तेंदुएसे घोर बाघ ुआ; बाघसे मद चूनेवाला मतवाला हाथी ुआ। हाथीसे सिंह हुआ; अन्तमें सिंहसे फिर बल युक्त शरभत्व प्राप्त किया। मैंने तुझ पर प्रीति करके क्रमसे तुझे अनेक तरहसे सृजन किया, परन्तु तेरा उन कुलोंके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ; तू अपने कुलके सम्बन्धको त्याग न सका। रे पापी! तू जब मुझे पापरहित जानके भी मारनेकी इच्छा करता है, तब तू आत्मयो- निको प्राप्त होकर कुत्ता ही होवेगा। अनन्तर मुनि-द्वेषी दुष्टचित्त प्रकृत मूर्ख शरभ ऋषिके शापसे फिर पहिले रूपको प्राप्त हुआ था।

११७ अध्याय समाप्त।

वह कुत्ता प्रकृतिस्थ होकर परम दीनद- शासे ग्रस्त हुआ और ऋषिने उस पापात्माको हुङ्कारके जरिये उस तपोबनसे बाहर किया। इसी तरह बुद्धिमान राजा सत्य, पवित्रता सर- लता, प्रकृति सत्व, श्रुतचरित्र कुल, इन्द्रियनि- ग्रह, दया, बलवीर्य्य प्रश्रय और क्षमा मालूम करके जो सेवक जिस कार्य्यके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्यपर नियुक्त करे। बिना परीक्षा किये मन्त्री नियुक्त करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा अकुलीन मनुष्योंसे घिरता है, वह कभी सुखी नहीं होसकता। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य राजासे निरपराधमें ही बिद्यमान होनेपर भी कभी पाप कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होते; और कुलहीन साधारण पुरुष साधुसंसर्गसे दुर्लभ ऐश्वर्य्य लाभ करके यदि निन्दित होवे, तो उस ही समय शत्रु होजाता है। कुलीन शिक्षित, बुद्धिमान, ज्ञानविज्ञानके जाननेवाले सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्वके जान- नेवाले सहनशील स्वदेशीय, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, दानशील, जितेन्द्रिय, लोभरहित, जो कुछ मिले उसहीमें सन्तुष्ट रहनेवाले, स्वामीके मित्रोंके ऐश्वर्य्य लिप्सु, मन्त्रणाका- र्य्यके जाननेवाले, जिस देश वा जिस समयमें जैसा कार्य्य करना होता है, उस विषयके जा

नेवाले प्राणी मात्रके चित्तको प्रसन्न करनेमें अनुरक्त, सदाचारयुक्त, सदायुक्त चित्त, हित भी आलसरहित, आचार युक्त, अपने विषयमें सन्धि-विग्रहके जाननेवाले, राजाके धर्म्म-अर्थ और कामके जाननेवाले एव और जनपदवासी लोगोंके प्यारे, जो पर सेनाको भेद कर सकते हैं; उन लोगोंके सब व्यूहोंके तत्त्वज्ञ, सब सेनाको हर्षित करनेमें निपुण, इङ्गिताकार तत्त्वज्ञ, यात्रा ज्ञान विशारद, हाथियोंकी शिक्षामें निपुण, प्रगल्भ दानी, धर्म्मात्मा, बलवान, यथाउचित कार्य्य करनेवाले, पवित्र और पवित्र लोगोंसे घिरे हुए प्रसन्नमुख, सुखदर्शन, नायक, नीतिकुशल, गुण और चेष्टासे युक्त, सावधान, सूक्ष्म अर्थोंके जाननेवाले, मधुर और कोमल भाषासे युक्त धीर, शूर, महा ऐश्वर्य्यसे युक्त, और देशकालके अनुसार कार्य्य करनेवाले पुरुषको जो मन्त्री करता है, और उसकी अवज्ञा नहीं करता, चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान उस राजाका राज्य बढ़ता है। इन सब गुणोंसे युक्त शास्त्र जाननेवाले, प्रजापालनमें तत्पर, धर्म्ममें निष्ठावान राजाको सभी चाहते हैं। धीर, क्षमावान पवित्र, समयके अनुसार तीक्ष्ण पुरुषके प्रयत्नके जाननेवाले, सेना युक्त श्रुतवान, श्रोता, तर्कवितर्कके जाननेवाले, मेधावी, धारणायुक्त यथारीतिसे कार्य्योंको करनेवाले, धर्म्मात्मा सदा प्रिय वचन कहनेवाले, अपकारमें क्षमावान्, दानमें विघ्न न करनेवाले, श्रद्धालु सुखदर्शक, आर्त्तोंके अवलम्ब, सदा सेवक लोग जिसके हितमें रत रहते, अहङ्काररहित, सुख दुःख सहनेवाले, तुच्छ कार्य्योंसे रहित, सेवकोंसे कोई कार्य्य सिद्ध होनेपर उनके उपकार करनेवाले, भक्तोंके प्यारे, लोगोंको संग्रह करनेवाले, सावधानतायुक्त, सदा सेवकोंकी उपेक्षा करनेवाले क्रोधरहित, ऊंचे चित्तवाले, उचित दण्ड देनेवाले, निरपराधीको दण्ड न देनेवाले, धर्म्मकार्य्यके प्रचारक, दूरदर्शी, प्रजाकी रक्षामें तत्पर और सदा धर्म्म-अर्थमें कुशल; ऐसे युक्त राजा सबके ही अभिलषित होते हैं। नरनाथ! राज्य धारणके सहायस्वरूप पुरुष-गुणोंसे परिपूरित योद्धाओंको भी होता है, जो राजा समृद्धिकी इच्छा करे, योद्धाओंकी अवमानना करनी उचित नहीं। जिस राजाके युद्धमें निपुण, कृतज्ञ, शास्त्र नेवाले, धर्म्मशास्त्रमें रत, पदातियोंसे घिरे निर्भय गजसवार, रथी, घुड़सवार अस्त्र निपुण योद्धा लोग वशमें रहते, हैं यह उसके हाथके नीचे विलास करता है। राजा सब वस्तुओंके संग्रह करनेमें सदा प्राप्त युक्त, उद्योगी और मित्रोंसे परिपूरित र है, वही राजसत्तम हैं। हे भारत! मनुष्य और सहस्र घुड़सवार वीरोंके जरिये इस समस्त पृथ्वीको जय किया जा सकता है।

११८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो राजा इसी भांति कुत्ते समान सेवकोंको निज निज स्थानों तथा विशेषमें नियुक्त करता है, वही राज्य भोग किया करता है। कुत्तेका सम्मान क उसे निज स्थानसे ऊंचे स्थान पर नियुक्त उचित नहीं; कुत्ता निज स्थानसे उच्च पाके प्रमत्त होता है। स्वजाति गणयुक्त कोंको निज कार्य्योंमें लगाना उचित नहीं। जो राजा सेवकोंको उचित कार्य्य सौंपता है वह सेवक गुणसे युक्त राजा श्रेष्ठ फल भोग किया करता है। शरभकी जगह शरभ सिंहकी जगह बलवान सिंह, बाघकी बाघ और तेंदुएको ही स्थानमें नियुक्त करना उचित है। जो सेवक जिस कर्म्मके योग्य उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है; कर्म्म फलकी इच्छा करनेवाले सेवकोंको विपरीत रीतिसे नियुक्त करना उचित नहीं।

जो बुद्धिहीन राजा प्रमाणको अतिक्रम करके उलटी रीतिसे सेवकोंको स्थापित करता है, वह प्रजाको प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख, क्षुद्र, बुद्धिहीन, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले और अकुलीन मनुष्योंको नियुक्त करना गुणवान राजाका कर्त्तव्य नहीं है। साधु सद्वंशमें उत्पन्न हुए, ज्ञानवान निन्दारहित, अक्षुद्र, पवित्र और शिष्ट पुरुष पारिपार्श्विक हुआ करते हैं। जो नम्र, कार्य्योंमें तत्पर, शुद्ध, शान्त, स्वाभाविक गुणोंसे रमणीय और पद पर रहके निन्दित नहीं होते, वेही राजाके बहिश्चर प्राणस्वरूप हैं। सिंहके समीप सिंह ही सदा अनुगत होगा, जो सिंह नहीं है, वह सिंहके साथ मिलनेसे सिंहके समान फल लाभ करता है। जो सिंह होकर कुत्तोंसे घिरा रहता है, और सिंह कर्म्म फलमें रत होता है, वह कुत्तोंसे उपासित होकर सिंहके फलको भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। हे नरनाथ! शूर, बुद्धिमान, बहुश्रुत और कुलीनोंके जरिये सब पृथ्वीको जय किया जासकता है। हे भृत्यवत्सल नृपाल! विद्याहीन, कोमलता रहित बुद्धिहीन अल्पसाधन सेवकोंको संग्रह करना राजाको उचित नही है। स्वामीका कार्य्यसिद्ध करनेमें तत्पर पुरुष वाणकी तरह कार्य्यके भीतर प्रवेश करते हैं जो सब सेवक राजाके हितकारी हों, उनके विषयमें प्रिय वचन प्रयोग करना उचित है। राजाओंको प्रयत्नके सहित सदा कोषकी रक्षाकरनी उचित है, कोष ही राजाओंका मूल और बढ़ती करनेवाला हुआ करता है। तुम्हारा धान्यगृह बहुतसे अन्नकी राशिसे सदा परिपूरित और उत्तम सेवकोंसे सदा रक्षित रहे ; तुम धन धान्यसे युक्त रहो। तुम्हारे सेवक सदा उद्योगी और युद्धके जाननेवाले होवें घोड़ोंके चलानेके विषयकी निपुणता इस समय तुम्हें अभिलषित होवे है। हे कौरव नन्दन! तुम स्वजन और बान्धवोंके विषयोंको विचारते हुए मित्र तथा सम्बन्धियोंसे युक्त होके पुरकार्य्यके हितका अन्वेषण करो। हे तात! यही कुत्तेकी उपमासे युक्त प्रजाके विषयमें तुम्हें जैसी नैष्ठिक बुद्धि स्थापित करनी होगी, उसे मैंने वर्णन किया ; फिर अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

११६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आपने राजधर्म्मार्थीके जाननेवाले पहिले राजाओंके आचरित बहुतसे राजकृत्यका वर्णन किया है, वह सब पूर्व्वदृष्ट साधुसम्मत राजधर्म्म जिसे आपने विस्तार पूर्व्वक कहा है,—हे भरतश्रेष्ठ! उसे संक्षिप्त करके जो धारण किया जा सके, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महाराज! सब जीवोंको रक्षा करनी ही क्षत्रियधर्म्म है, यही सबसे श्रेष्ठ है, जिस प्रकार उनकी रक्षा करनी होती है, उसे सुनो। सांपोंको खानेवाला मोर जैसे विचित्ररूपको धारण करता है, वैसे ही धर्म्मज्ञ राजा अनेक तरहके रूप धारण करे। क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य और सरलता इन सबके मध्यवर्त्ती होकर जो सतोगुणको अवलम्बन करता है, और वही राजा सुखी होता है, जिस विषयमें जो हितकर होता है, वही उस समयका रूप है अर्थात् दण्डके समय क्रूरता और अनुग्रहके समय शान्त्वना दिखावे, क्यों कि अनेक रूपधारी राजाके सूक्ष्म विषय भी नष्ट नहीं होते। जैसे शरदकालमें मोर मूक हुआ करता है, वैसे ही राजा मौनावलम्बन करके सदा मन्त्रणा गोपन करे, श्रीमान मधुर वचन बोलनेवाला और शास्त्र विशारद होवे। जलके झरनेके समान मन्त्रभेद आदि आपदाओंके द्वारपर सदा सावधान रहे; पर्व्वतके समीप वर्षाके जलसे उत्पन्न हुई नदीके जल समान

सिद्ध ब्राह्मणोंके निकट पूर्ण रीतिसे आसरा ग्रहण करे; अर्थ कामसे युक्त राजा धर्म्मध्वजीके समान शिखा धारण करे अर्थात् योग्यता चिन्ह क्रूरता आदि प्रदर्शित करे। राजा सदा दण्ड उद्यत करके प्रजा-पालनमें रत रहे; जैसे लोग ऊखको काटके पेरकर रस ग्रहण करते हैं, वैसा न करके जैसे बड़ेवृक्ष ताड़ और खजूर आदिकी रक्षा करके उनके रसको ग्रहण किया जाता है, राजा वैसे ही प्रजा समूहके आय व्ययको देखकर उनकी रक्षा करके उनसे धन ग्रहण करे।

राजा अपने पक्षके लोगोंके साथ शुद्ध व्यवहार करे और विरोधियोंके भूमिमें उत्पन्न हुए शस्य आदिकोंको घोड़े आदिकोंको चलाके नष्ट करावे, सहायोंसे युक्त होकर युद्धके लिये यात्रा करे और अपनी विकलता देखके स्थिर रहे। बनमें फूल ग्रहण करनेकी तरह धन हरते हुए शत्रुओंके दोषोंको विस्तारित करे और मृगया आदिके छलसे दूसरेके राज्यमें जाके पराये पक्षका विवासित किया करे। दूसरेके किलेके स्वामीके साथ सन्धि करके देवता दर्शन आदि छलसे दूसरेके किलेमें अकस्मात् प्रवेश करके पर्वतके समान बड़े और उन्नत विरुद्ध राजाओंका विनाश करे; और अविज्ञात छायाका आश्रय करके गुप्त रीतिसे रणकार्य्यको निवाहे। रात्रिमें भोरकी तरह प्रावृट् कालसे निर्ज्जन स्थानसे निवास करे; मयूरके गुणको अवलम्बन करके अदृश्य होकर अन्तःपुरमें भ्रमण करे, कभी तनत्राण परित्याग न करे, आप ही अपनी रक्षा करे; दूतोंके मालूम हुए स्थानोंमें धात्री, कञ्चुकी और रसोइयें आदि शत्रुओंसे भेदित होनेपर अपनी ओर आते हुए विषादि रूप पाशको रोके। विष आदिके मालूम होनेमें कठिनता होने पर उस कपट-स्थानमें स्वयं जाके उसे नष्ट करे; विष देनेवाले कुटिल क्रुद्ध पुरुषोंका वध करे। स्थूल पक्ष अर्थात् सब सेनाके पक्ष-शिविर सम्बन्धीय बार-बनिता अर्थात् नट आदिको नष्ट वा भोरकी तरह दूर कर दृढ़ मूल सेवक और शूरपुरुषोंको करे। सदा मयूरकी तरह निज इच्छानु बड़े कार्य्योंका आचरण किया करे। मृग समूह जैसे घने बनमें प्रविष्ट होके बनको पत्तों रहित करते हैं, वैसे ही राजा सेनाके सहित मिलकर शत्रु राज्यको आक्रमण करनेमें प्रवृ होवे। इसी भांति बुद्धिमान राजा मोरकी तरह निज राज्य पालन करे। बुद्धिसे आत्म संयम अर्थात् इस प्रकार कार्य्य करना उचित है, ऐसा ही नियम करे; और दूसरेके बुद्धिके अनुसार उस विषयका निश्चय करने योग्य है; शास्त्रमें कही हुई बुद्धि-शक्तिके द्वारा आत्मगुणकी प्राप्ति होती है यही शास्त्रोंका प्रयोजन है। शान्त वचनसे दूसरेकी विश्वास उत्पन्न करे और अपनी शक्ति दिखाता रहे। सब तरहसे बीते और अनागत विषयोंके विचार करके जरिये ऊहापोह कौशलरूपी बुद्धि शक्ति कर्त्तव्य विषयोंके निश्चयका विचार करे। बुद्धिमान पुरुष सान्त्व-याग अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्यके प्रयोजक होवे और निगूढ़ बुद्धि धीर पुरुषके विषयमें उपदेशकी अपेक्षा न करे। जलमें डालनेसे जैसे गर्म्म लोहा उस ही शीतल होजाता है, वैसे ही बुद्धिमान बुद्धिशक्तिके जरिये बृहस्पतिके समान होके भी यदि निकृष्ट बात कहें अथात् अपना निर्बुद्धि-प्रमादसे युक्त होवें, तब व सदा अवलम्बन करके निज भावके स्वास्थ्यको दृढ़ किया करें। राजा अपने वा दूसरेके आगम जरिये सब उपादिष्ट कार्य्योंकी जिज्ञासा और अर्थ विधानके जाननेवाले राजा कोमल स्वभाव और बुद्धिमान तथा शूरपुरुष अथवा दूसरे बलशाली होवें, उन्हें निज कार्य्यमें नियुक्त करें। अनन्तर आयतातन्त्री जैसे सब सदा

अनुवर्त्तिनी होती है, वैसे ही वह उन लोगोंकी
निज निज योग्यतानुसार कार्य्योंमें नियुक्त देख-
कर सबका ही अनुवर्त्तन करे, धर्म्मके अनुसार
विषयमें प्रिय आचरण करे। जिस राजाको
प्रजासमूह 'ये हमारे हैं' ऐसा समझती है, वह
पर्व्वतकी तरह अचल हुआ करता है। सूर्य्य
जैसे बड़ी किरण मण्डलको प्रकाशित करता
है, राजा वैसे ही कार्य्योंको सिद्ध करते हुए
प्रिय और अप्रियको विषयके समान समझे, सब
प्रकारसे केवल धर्म्मकी रक्षा करे। जो लोग
कुलके स्वभाव, देश विशेष करके धर्म्मज्ञ, मीठे
वचन बोलनेवाले, मध्य अवस्था, निर्दोष, हित
विषयमें रत, सावधान, लोभरहित, शिक्षित,
जितेन्द्रिय, धर्म्ममें निष्ठावान, धर्म्मज्ञ और अर्थ
रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन्हीं पुरुषोंको राजा
सब कार्य्योंमें नियोजित करे। राजा इसी प्रकार
दूतोंके जरिये सब वृत्तान्त मालूम करे और
सन्तुष्ट होकर इसी भांति आगम तथा जातिके
विषयोंके जाननेमें नियुक्त होके भलीभांति सब
कार्य्योंका अनुष्ठान करे। जिसके क्रोध और
हर्ष निष्फल नहीं होते और जो स्वयं सब
कार्य्योंको देखा करते हैं, तथा आत्मप्रत्ययही
जिसका खजाना है, उस राजाके पक्षमें पृथ्वी
ही वसुदात्री हुआ करती है। जिसकी कृपा
स्पष्टरीतिसे मालूम होती है, और जो यथार्थ
रूपसे निग्रह करते हैं, और जो राजा आत्म-
रक्षा करते हुए राज्यकी रक्षा किया करते हैं,
वेही राजधर्म्मके जाननेवाले हैं। उदय होते
हुए सूर्य्य जैसे किरण मण्डलके जरिये मालूम
होता है, वैसे ही राजा सदा निज राज्यका
देखता रहे, और राज्य तथा पर राज्य विष-
यक समाचारोंको मालूम करे और आप निज
बुद्धिके प्रभावसे सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे।
राजा धन प्राप्त करनेके समय धन संग्रह करे
और अर्थतत्त्वके विषयको किसीके समीप प्रका-
शित न करे; बुद्धिमान राजा प्रति दिन गऊ

दुहनेकी तरह पृथिवीसे अन्न दुहा करे। जैसे
भौंरा यथा क्रम फूलोंसे मधु ग्रहण करता है;
वैसे ही राजा धीरे धीरे द्रव्य ग्रहण करके
सञ्चय करे। शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान राजा
सञ्चय करनेसे जो धन बाकी रहे, उसे ही
धर्म्मार्थ और कामार्थमें व्यय करे। सञ्चित
अर्थको कभी व्यय न करे, धन थोड़ा होनेपर
भी उसे अग्राह्य न करे और शत्रुओंकी भी
अवज्ञा करनी उचित नहीं है। बुद्धिसे अपनेको
समझावे और निर्बुद्धि पुरुषोंका विश्वास न
करे। सन्तोष, दक्षता, सत्य, बुद्धि, देह, धीरज,
बीरता, देश और समयमें अप्रमाद, थोड़े वा
बहुत धनके विशेष रूपसे वृद्धि विषयमें ये आठ
विषय उद्दीपक हुआ करते हैं। अग्नि थोड़ी
होनेपर भी घृतसे युक्त होनेपर बढ़ती है, एक
बीजसे सहस्र अंकुर उत्पन्न हुआ करते हैं, इससे
बहुतसे आय व्ययके विषयको पूरी रीतिसे सुन-
कर थोड़े धनकी कभी अवज्ञा न करे। प्राचीन
शत्रुके बालक होनेपर भी उसे बालक समझना
उचित नहीं है, क्यों कि वह विपक्षियोंको
अत्यन्त प्रमत्त देखनेसे ही नष्ट करता है। समय
पर अन्य पुरुष उसके मूलको हरण न करे;
इससे समयके जाननेवाले पुरुष ही राजाओंके
बीच वरिष्ठ हैं। शत्रुकी कीर्त्ति हरण करे और
उसके धर्म्ममें बाधा देवे और धन विषयक उसके
कार्य्योंमें अत्यन्त ही विघ्न किया करे। वैर कर-
नेवाला शत्रु निर्बल हो, वा बलवान ही होवे,
ऊंचे चित्तवाले मनुष्य शत्रुसे किसी प्रकार हीन
न होवें। क्षय, वृद्धि, पालन और सञ्चयका
विचार करके बुद्धिमान राजा ऐश्वर्य्य काम
और विजयकी इच्छावाले राजाके एकत्र मिलते
देखके उसके साथ सन्धि करे; इससे बुद्धिमान
पुरुषका आश्रय करना राजाको अवश्य उचित
है। तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष बलवान पुरुषको
नष्ट कर सकता है, बढ़ा हुआ बल बुद्धिके जरि-
येसे ही प्रतिपालित हुआ करता है। घटे हुए

वैरीको बुद्धिबलसे नष्ट किया जाता है, इससे बुद्धिके अनुसार जो कार्य्य किया जाता है वह श्रेष्ठ है; दोष रहित धीर पुरुष सब काम्य विषयोंकी अभिलाष करके थोड़े बलसे ही उसे प्राप्त करते हैं; और जो अपनेको याचमान मनुष्योंसे युक्त होनेकी इच्छा करते हैं, वे अल्पमात्र कल्याण पात्रको पूर्ण नहीं कर सकते, इससे राजा प्रजाके विषयमें प्रीतियुक्त होकर सबके निकटसे लक्ष्मीके मूल धनको ग्रहण करे प्रजाको बहुत समय तक पीड़ित करके बिजली गिरनेकी तरह उसके ऊपर पतित न होवे। उद्योगसे ही विद्या, तपस्या और बहुतसा धन हो सकता है, वह उद्योग बुद्धिके वशमें होकर देहधारी पुरुषोंमें निवास करता है, इससे सदा उद्योग करनेमें यत्नवान होना उचित है। जिसमें बुद्धिमान मनस्वी लोग, सुरराज विष्णु और सरस्वती सदा वास करती हैं, और सब प्राणी सदा जिसमें स्थित रहते हैं। विद्वान् पुरुष उस शरीरको कभी अवज्ञा न करे। लोभी पुरुषको सदा दानसे वशमें करे, लोभी पराया धन पाके कभी तृप्त नहीं होता। सुख भोगनेमें सभी लोभी हुआ करते हैं; जो पुरुष धनहीन होता है, वह धर्म्म और कामको त्याग करता है। लोभी मनुष्य दूसरेके धन, भोग, पुत्र, स्त्री और समृद्धि सबकी ही इच्छा करता है। इस संसारमें लोभी पुरुषके विषयमें सब दोष ही सम्भव होसकते है; इससे राजा कभी लोभी पुरुषके विषयमें स्नेह प्रकाशित न करे; नीच पुरुषको देखते ही दूर करे; बुद्धिमान पुरुष शत्रुओंके सब कार्य्यों तथा समस्त विषयोंको नष्ट करें। हे पाण्डुपुत्र! ब्राह्मण मण्डलीमें विज्ञान युक्त मन्त्रीकी रक्षा करनी होगी, जो राजा विश्वासी और कुलीन है, वह सबको वश करनेमें समर्थ होता है। हे नरनाथ! यही सब मैंने विधिपूर्व्वक राजधर्म्मको संक्षेपरीतिसे वर्णन किया तुम इसे बुद्धिशक्तिके जरिये धारण करो। जो पुरुष गुरुका अनुसरण करते यह सब धर्म्म हृदयमें धारण करते हैं, पृथ्वीको पालन करनेमें समर्थ होते हैं। राजाके अनीतिके कारण हठ प्रणीत दैवसे हुआ सुख विधिपूर्व्वक दीखता है, उसकी तथा उसे श्रेष्ठ राज्य सुख प्राप्त नहीं। सन्धि-विग्रह आदि विषयोंमें सावधान राजा युक्त बुद्धि तथा शील सम्पन्न युद्धमें दृष्ट शत्रुओंको देखकर शीघ्रताके सहित उनका करे। अनेक क्रियासे मार्गके सहारे ० देखे, अनुपायमें बुद्धि न लगावे; निर्दोष षोंमें भी जो पुरुष दोष देखता है, वह स्त्री बहुतसे धन-यशको भोग नहीं कर सुहृदोंको जानके प्रीतिकी प्रवृत्ति होने पर दो मित्र एक कार्य्यमें लगते हैं; उन बीच जो पुरुष बड़े भारको उठाता है, पुरुष उसही श्रेष्ठ मित्रकी प्रशंसा करते है। राजन्! मेरे कहे हुए इन सब राजआचरण करो, मनुष्योंका पालन करनेमें लगाओ; इससे अनायास ही पुण्यफल क्योंकि धर्म्म ही सब लोकोंकी जड़ है।

१२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामहके जरिये यत्न राजधर्म्म वर्णित हुआ, अत्यन्त बृहत् ही सबका नियन्ता है, क्योंकि दण्डसे ही विषय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। देव, ऋषि, महाभाव पितर, यक्ष, राक्षस और पिशाच विशेष करके साध्य तथा तिर्य्यग् योनि आदि प्राणियोंके विषयमें सर्व्वव्यापी महातेजस्वी श्रेष्ठ है, यह आपने कहा है। देवता और मनुष्योंके सहित चराचर सब दण्डमें आसक्त होरहे हैं। हे भरत प्रवर! मैं इसे यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता दण्ड किसे कहते हैं और वह कैसा है?

सा आकार है तथा उसका परम आश्रय क्या ? दण्डका कैसा स्वरूप है? रीति कैसी है? किस तरहकी मूर्त्ति है? कैसा तेज है और दण्ड प्रजाके विषयमें सावधान होके किस प्रकार जाग्रत रहता है? पहिले क्या जाना जाता है, और दण्ड नाम श्रेष्ठ वस्तु हो किस तरहकी है. दण्डका आकार किस तरहका है; और उसकी गति किसे कहते हैं?

भीष्म बोले, हे कुरुवंशावतंस! दण्ड और उसका व्यवहार जिस तरहका है, उसे सुनो। इस लोकमें जिसमें सब अधिकार रहे, उसे ही केवल दण्ड कहा जाता है। महाराज! पूरी रीतिसे धर्म्मका प्रकाश "व्यवहार" नामसे कहा जाता है। लोकके बीच सावधान स्वरूप राजाके विषयमें उस धर्म्मका लोप नहीं होता। इसी रीतिके व्यवहारका व्यवहारत्व दृष्ट हुआ करता है, अवहार अर्थात् नीच मार्गोंके जरिये दूसरेका धन नहीं हरण किया जाता उसे ही व्यवहार कहते हैं। हे राजन्! इसके अतिरिक्त पहिले समयमें मनुने यही वचन कहा, कि प्रिय और अप्रिय समान रूपसे उत्तम प्रणीत दण्डके जरिये जो पूर्ण रीतिसे प्रजा पालन करते हैं, वही केवल धर्म्म है। हे नरेन्द्र! मैंने जो ब्रह्माके कहे हुए महत् वचनको कहा हैं, पहिले समयमें प्रथम मनुने इस वचनको कहा है; पहिलेसे ही यह वचन कहा गया था, इस ही कारण पण्डित लोग इसे प्राग्-वचन कहा करते हैं। जिस धर्म्मसे परस्वापहरण दोष निवारित होता है, वही धर्म्म कभी हेतु व्यवहार नामसे कहा जाता है। सुप्रणीत दण्डमें धर्म्म अर्थ, काम ये तीनों सदा विद्यमान रहते हैं; इस दण्ड सबसे श्रेष्ठ है; उसका रूप जलती हुई अग्निके समान हैं दण्डका आन्तरिक रूप शत्रुओंको सन्तापित करनेवाला है, इसीसे क्रूरताके कारण अग्निकी समानता धारण करता है। दण्डका बाह्य रूप नीलोत्पल दलके समान श्याम वर्ण है, अर्थात् राजदण्डमें द्वेष और धन लोभ आदि रहनेसे उसमें मलिनता है, उस ही से यह श्यामवर्ण है। कोई मानभङ्गके कारण दण्डित होते हैं, कोई धन हरणके कारण दण्डित हुआ करते हैं; कोई अङ्ग विकलताके सबब दण्ड पाते हैं, कोई प्राणनाशके निमित्त दण्डभागी होते हैं; इस ही कारण चारों निबन्धनसे प्राणियोंका वध हुआ करता है; इससे दण्डको चतुर्द्दंष्ट कहा जाता है। प्रजा समूहसे धन वसूल, राज्यसे कर लेना वादी प्रतिवादीसे दूना धन ग्रहण करना और कायर ब्राह्मणोंसे सर्व्वस्व वसूल करना,— दण्डसे ये चार प्रकारके अर्थ संग्रह होते हैं, इसी कारण दण्डको चतुर्भुज रूपी कहा जाता है। वादी प्रतिवादीके निवेदन और उत्तर दान आदिक आठ प्रकारके कारणोंसे दण्ड भ्रमण करता है, इसीसे अष्टपाद कहाता है। राजा, सेवक, पुरोहित आदि बहुतोंको देखते रहनेसे अनेक नेत्रवाला है। अवश्य सुनने योग्य है, इस ही निमित्त शङ्कु कर्ण अर्थात् तीक्ष्ण श्रवणवाला है; अत्यन्त उत्फुलित है, इसहीसे खड़े हुए रोएंवाला है; अनेक सन्देहोंसे जटित है, इसीसे जटी कहाता है। वादी प्रतिवादीके वाक्यके भिन्न मतके सबब दो जीभवाला है। आहवनीय अग्निही दण्डका नेत्र है, इस ही कारण ताम्रास्य कहाता है। काले हरिणके चमड़ेके जरिये दण्डको देह ढकी रहती है, इस ही कारण मृगराज तनुच्छद नाम हुआ है। दुर्द्धर्ष दण्ड सदा यह प्रचण्डरूप धारण किया करता है। तलवार, धनुष, गदा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूषल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि और तोमर आदिक इस लोकमें जो कुछ प्रहार करनेकी वस्तु हैं, दण्ड ही उन सबोंका स्वरूपसे मूर्त्तिमान रूपी होकर घूमता है। छेद, भेद, रुग्न करना, कृन्तन, विदारण, विपाटन, पातन और सम्मुख दौड़ते

हुए दण्ड ही भ्रमण किया करता है। असि, विशसन, धर्म्म, तीक्ष्ण, धर्म्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, शास्ता, प्राग्वदहर, धर्म्मपाल, अक्षर, देव, सत्यग, नित्यग, अग्रज, असङ्ग, रुद्रतनय, मनु, जेष्ठ और शिवङ्कर है। हे युधिष्ठिर! दण्डके ये सब नाम वर्णित हुए। दण्डही भगवान विष्णु और दण्डही प्रभु नारायण है, सदा महत्, रूप धारण किया करता है, इस ही निमित्त महत् पुरुष शब्दसे पुकारा जाता है। ब्रह्मकन्या लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, जगद्धात्री दण्डनीति अर्थात् दण्डके सहित नीति ये सभी दण्ड स्वरूप हैं; इससे दण्डका विग्रह अनेक प्रकारका है! हे भारत! अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्म्माधर्म्म, बलाबल, दौर्भाग्य, भागधेय पुण्यापुण्य, गुणागुण, काम अकाम, ऋतु मास, दिन, रात्रि, क्षण, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दैव, पुरुषार्थ मोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ, संयम, विष, अविष, अन्त, आदि, मध्य, कृत्य, सबका प्रवञ्चन, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ धीरज, नीति, अनीति, शक्ति, अशक्ति, मान, स्तम्भ, व्यय, अव्यय, विनय विसर्ग, काल, अकाल, मिथ्या, ज्ञान, सत्य, श्रद्धा अश्रद्धा, क्लीवता, व्यवसाय, लाभ, हानि, जय, पराजय, तीक्ष्णता, मृदुता, मृत्यु, आगम, अनागम, विरोध अविरोध, कार्य्य, अकार्य्य, बलाबल, निन्दा, अनिन्दा, धर्म्म, अधर्म्म, अपत्रपा, अनपत्रपा, श्री, सम्पद, विपद, पद, तेज सब कर्म्म, पाण्डित्य, वाक्यशक्ति और तत्त्व बुद्धिता, हे कौरव्य! इसी प्रकारकी इस लोकमें धर्म्मकी बहुरूपता हुआ करती है। लोकके बीच यदि दण्ड न रहे, तो लोग आपसमें एक दूसरेको प्रमथित करे। हे युधिष्ठिर! दण्डभयसे ही लोग आपसमें प्रहार नहीं करते। हे राजन्! दण्डके वश्यमान प्रजा सदा राजाको वर्द्धित करती है इससे दण्ड ही परम आश्रय है। हे

नरेश्वर! सत्यसे युक्त धर्म्म शीघ्र ही तब लोगोंको अवस्थापित करता है; सत्यका पाती धर्म्म ब्राह्मणमूर्त्ति स्वरूप है। ये सब ब्राह्मण वेदज्ञ हुआ करते हैं। वेदोंसे यज्ञ उत्पन्न हुआ है, यज्ञ देवताओंको युक्त किया करता है; देवता लोग होकर सदा इन्द्रकी स्तुति करते हैं, इन्द्र उन सब प्रजा समूहके ऊपर कृपा करके दान किया करते हैं, सब प्राणियोंका प्राण सदा अन्नसे ही प्रतिष्ठित है, इससे प्रजासमूह भी अन्नमें प्रतिष्ठित हैं और दण्ड इन प्रजा समूहके विषयमें जाग्रत रहता है, इस ही प्रयोजनके अनुसार दण्ड क्षत्रियत्वको प्राप्त हु और दण्ड सदा सावधान अक्षय होके प्रजा रक्षा करते हुए जाग्रत रहता है। ईश्वर पुरुष, प्राण सत्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन आठ नामोंसे दण्ड उक्त हुआ करता है। जो राजा बलसे युक्त, और धर्म्म व्यवहार धर्म्म ईश्वर तथा जीव रूपसे पञ्चविध है; रने उसे दण्ड और ऐश्वर्य्यदान किया है। युधिष्ठिर! सत्वंशमें उत्पन्न हुए धन अमात्य, बुद्धि, ओजस्विता, तेज और इन्द्रिय, बुद्धि-सामर्थ वा अनन्तर स्नाकमें मान हाथी आदि आहार्य्य सब बल राजाके कोष-वृद्धिका कारण है। हाथी, रथ, पदाति, नौका, अवैतनिक बोझा ढोने देश विशेषमें उत्पन्न हुई वस्तु और भेड़की आदकोंसे बने हुए आसन आदि राजा अष्टाङ्ग बलरूपसे वर्णित हुए हैं; अथवा गजपति, गजारोही, घुड़सवार, पैदल मन्त्री, चिकित्सक, भिक्षक प्राड्विवा ज्योतिषी, दैवचिन्तक, कोष मित्र, धान्य सामग्री और सप्त-प्रकृति राज्यके अष्टाङ्ग, शरीर रूपसे समझे जाते हैं; परन्तु दण्ड राज्यकी आदि और दण्ड ही राज्यका है। ईश्वरके जरिये प्रयत्नके सहित क्षत्रि

मित्त दण्ड प्रदत्त हुआ है, यह सब प्रिय प्रिय सम स्वरूप दण्डके ही आधीन है। जापतिके जरिये लोक रक्षाके वास्ते और धर्म स्थापनके लिये, जिस प्रकार धर्म प्रदर्शित हुआ है, उस धर्मस्वरूप दण्डसे बढ़के राजाओंके वास्ते दूसरा कुछ भी पूजनीय नहीं । स्वामीके विश्वाससे उत्पन्न और वादी, तिवादीके जरिये प्रवर्त्तित व्यवहार, इस न्यतरका अभ्युपगम जिसका लक्षण हित ता दीखता है, वह दण्डका भर्त्‍-प्रत्यय लक्षण कहाता है। हे राजन्! परस्त्री गमन आदि दोषकी निवृत्तिके वास्ते प्रायश्चित्त आदि वाला दण्ड वेदात्मा वा वेद-प्रत्यय नामसे कहा जाता है; और कुलाचार युक्त व्यवहारमें शील तथा अपर-दण्ड शास्त्रोक्त नामसे कहा जाता है। उन तीन प्रकारके दण्डके बीच पहिला दण्ड क्षत्रियके आधीन है; क्षत्रियोंमें दण्ड ध्यान रहना अवश्य उचित है। हे नरेन्द्रश्रेष्ठ प्रत्यय लक्षणयुक्त दण्ड क्षत्रियोंको अवश्य जानना चाहिये। और परपक्ष क्षेपण तथा निज पक्ष साधनरूप व्यवहार दण्ड प्रत्यय इष्ट और मनु आदि महर्षियोंसे स्मृत होनेपर भी वेदार्थ गोचर हुआ है। दूसरे दो व्यवहार धर्ममूलक हैं। वेदसे उत्पन्न हुए धर्मही गुणदर्शी, कृतात्मा मुनियोंके जरिये धर्मके अनुसार धर्म प्रत्यय कहके वर्णित हुआ है। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मोपदिष्ट व्यवहार प्रजासमूहकी रक्षा करता है, सत्य स्वरूप भूतिवर्द्धन व्यवहार ही तीनों लोकोंको धारण किये हैं। जो दण्ड नामसे कहलाता है, उसे ही सनातन व्यवहार रूपसे देखा जाता है; व्यवहारसे जो दीखता है, वही वेद है; ऐसा निश्चय है, कि जो वेद है, और जो धर्म है, उसे ही सन्मार्ग जाने। पहिले समयमें पितामह ब्रह्मा प्रजापति हुए थे, वह देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य और नागोंके सहित सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं, इस ही कारण उनका भूतकर्त्ता नाम हुआ है। उस प्रजापतिसे ही यह भर्त्‍-प्रत्यय लक्षण व्यवहार प्रवर्त्तित होता है; उन्होंने इस व्यवहारका निदर्शन किया है, कि जो राजा निज धर्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं; उनके समीप माता, पिता, भाई भार्या और पुरोहित इन सबके बीच कोई भी अदण्ड नहीं है।

१२१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुराने लोग इस दण्डकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। अङ्ग देशमें वसुहोम नामक एक विख्यात् राजा थे, वह महातपस्वी नित्य धर्मके जाननेवाले राजा भार्याके सहित पितरों और देवर्षियोंसे पूजित होकर मुञ्जपृष्ठमें गये थे सुवर्णमय सुमेरुके निकट उस हिमालयकी शिखर पर जहां मुञ्ज बटके नीचे रामने जटा हरण की थी। हे राजेन्द्र! तभीसे व्रत करनेवाले, ऋषि लोग उस रुद्रसेवित प्रदेशको मुञ्जपृष्ठ कहा करते हैं। वह उस समय श्रुतिमय अनेक गुणोंसे युक्त होकर ब्राह्मणोंकी अनुहार तथा देवर्षि समान हुए थे। किसी समय इन्द्रके सम्मानित सखा निर्भय चित्तवाले राजा मान्धाता उनके निकट उपस्थित हुए। मान्धाता वसुहोमको प्रकृष्ट तपसे युक्त देखकर विनीत भावसे उनके सम्मुख स्थित हुए। वसुहोमने भी राजा मान्धाताको पाद्य, अर्घ दिया और सप्ताङ्ग राज्यका मङ्गल अमङ्गल पूछने लगे। पहिले समयमें साधुओंके आचरणके यथावत् अनुयायी उस मान्धातासे वसुहोमने पूछा। हे राजन्! मैं आपका क्या कार्य्य करूं? हे कुरुनन्दन! राजसत्तम मान्धाता परम प्रसन्न होकर बैठे हुए महाबुद्धिमान वसुहोमसे कहने लगे।

मान्धाता बोले, हे नरसत्तम महाराज! आपने बृहस्पतिका सब मत अध्ययन किया है

और शुक्राचार्य्यके सब शास्त्रोंको भी आप जानते हैं; इससे दण्ड किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, मैं इसे जाननेकी अभिलाषा करता हूं। इस दण्डके पहिले क्या जाग्रत रहता है और क्या श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है? सम्प्रति दण्ड किस प्रकार क्षत्रियोंमें युक्त होकर स्थित होरहा है? हे महाबुद्धिमान्! आप मुझसे यही कहिये, मैं आचार्य्यका वेतन प्रदान करूंगा।

वसुहोम बोले, हे राजन्! प्रजासमूहके विनय रक्षाके निमित्त धर्म्म स्वरूप सनातन लोक संग्रहमें समर्थ दण्ड जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, उसे सुनो। सब लोगोंके पितामह भगवान ब्रह्माने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने समान ऋत्विक किसीको न देखा। मैंने ऐसा सुना है, कि उस देव प्रजापतिने मस्तकके जरिये कई वर्ष पर्य्यन्त गर्भ धारण किया था; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर उसके क्षत होनेके समय वह गर्भ गिरा। हे शत्रुनाशन! उस ही गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक क्षुप नाम प्रजापति हुआ। हे महाराज! महानुभाव ब्रह्माके यज्ञमें वही ऋत्विक हुए थे। हे राजन्! प्रजापतिके उस यज्ञके आरम्भ होने पर दृष्टरूपका मुख्य कारण वह दण्ड अन्तर्द्धान हुआ। दण्डके अन्तर्द्धान होने पर प्रजा वर्णशङ्कर होने लगी, कार्य्य, अकार्य्य, भोज्य, अभोज्यका कुछ भी विचार न रहा। तब पेय और अपेय विषयोंमें विचार क्यों रहेगा? उस समय गम्य वा अगम्य कुछ भी न रहा, अपना धन और पराया धन समान हुआ; जैसे सारमेय मांसको हरण करते हैं, वैसे ही सब कोई आपसमें एक दूसरेके धनको हरनेमें प्रवृत्त हुए; बलवान लोग निबलोंको मारने लगे; सब ही मर्य्यादा रहित होगये।

अनन्तर पितामह ब्रह्मा सनातन देव वरदाता महादेव विष्णुकी पूर्ण रीतिसे पूजा करके बोले, हे केशव! इस विषयमें आपको कृपा करनी उचित है, जिससे प्रजा न होवे, आप वैसी ही उपाय करिये। देवसत्तम वह शूलधारी भगवान बहुत तक विचार करके आपने ही आपनेको रूपसे उत्पन्न किया; उससे धर्म्म कारण नीतिरूपी सरस्वती देवीने तीनों विख्यात दण्डनीतिको उत्पन्न किया। भगवानने फिर कुछ देर ध्यान करके दण्डकालके वास्ते एक एक पुरुषको प्र... कर दिया। और सहस्र नेत्रवाले देव देवताओंका ईश्वर किया; वैवस्वत पितरोंकी प्रभुता दी; धन और अपने वशमें रखनेके वास्ते कुवेरके ऊपर अर्पण किया, सुमेरुको शैलपति और स... सरित्पति किया। जल और असुरोंके रा... वरुणको प्रभुत्व करनेका भार दिया। मृत्यु प्राण और हुताशनको तेजका स्वामी बना... महानुभाव विशालाक्ष महादेव ईशानको गणका रक्षक और प्रभु कर दिया। व... ब्राह्मणों और अग्निको वसुओंका स्वामी सूर्य्यको तेज और चन्द्रमाको नक्षत्रोंको दी। अंशुमानको लता समूहका ईश्वर। और द्वादश-बाहु कुमार स्कन्दको भूतोंके राजत्व करनेकी आज्ञा दी। हे नरनाथ! ... करनेवाले कालको सबका ईश्वर किया; शस्त्र, रोग और भोजन मृत्युके ये चार ... सुख और दुःख सर्व्वदेवमय राजोंका राजा ... ही सबका ईश्वर है। शूलपाणि सब रुद्रगण स्वामी हैं, ऐसे ही जन श्रुति है। म... प्रजासमूहके स्वामी सब धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके पुत्र क्षुपको पहिले इस दण्डका ... किया था। अनन्तर उस यज्ञके विधिपूर्व्वक होनेपर महादेवने उस दण्डका सत्कार धर्म्म रक्षक विष्णुके ऊपर उसका भार किया, विष्णुने उसे अङ्गिराको प्रदान ... मुनिसत्तम अङ्गिराने इन्द्र और मरी...

रीचिने भृगुको और भृगुने ऋषियोंको वह धर्म्म का दण्ड दान किया। ऋषियोंने लोक पालोंको ौर लोकपालोंने उसे चूपको दिया, अनन्तर ूपने आदित्य पुत्र मनुको उसे अर्पण किया ाद्धदेवने सूक्ष्म धर्म्म-अर्थके कारणसे पुत्रोंको मर्पण किया। न्याय अन्यायको विचारके र्म्मके अनुसार दण्ड विधान करना चाहिये; च्छानुसार दण्ड देना उचित नहीं है। दुष्ट रुषोंके निग्रह करनेको दण्ड कहते हैं, सुवर्ण ादि दण्ड लोगोंका विभीषिका दिखाने मात्रके लये होता है; शरीरको अङ्ग हीनता और वका दण्ड अल्प कारणसे नहीं होता। शारी क दण्ड ऊंचे स्थान परसे गिरना रूपी देह ाग तथा निजदेशसे निकाल देना ये विशेष ाषके दण्ड हैं। सूर्य्य पुत्र मनुने प्रजासमूहको चाके वास्ते उस दण्डकी यथा रीतिसे दान कया था; यह दण्ड ही प्रजाको पालन करते ए जाग्रत रहता है। भगवान इन्द्र सदा ाग्रत होरहे हैं, इन्द्रसे विभावसु अग्नि जाग्रत अग्निसे वरुण जाग्रत है, प्रजापतिसे विनया क धर्म्म निरन्तर जाग्रत रहता है; धर्म्मसे ह्मपुत्र व्यवसाय, व्यवसायसे तेज प्रजा पालन रते हुए जाग्रत है; तेजसे ओषधी, ओषधिसे पर्व्वत, पर्व्वतोंसे रस और रस गुण जाग्रत हते हैं; उससे निर्ऋतिदेवी जागरित होती निर्ऋतिसे ज्योतिर्गणसे जाग्रत हुआ करते ; ज्योतिर्गण वेद प्रतिष्ठित होता है, उससे ु हयशिरा जाग्रत होते हैं, उनसे अव्यय प्रभु तामह ब्रह्मा जाग्रत हुआ करते हैं; पितामह ावान शिवस्वरूप महादेव जागरित होते हैं, वसे विश्वदेव और विश्वदेवोंसे ऋषि लोग; षियोंसे भगवान चन्द्रमा, चन्द्रमासे सनातन ता लोग और देवताओंसे जगत्के बीच ह्मण लोग जाग्रत रहते हैं; इसे धारण करो, ह्मणोंसे क्षत्रिय लोग धर्म्मके अनुसार सब गोंको रक्षा करते हैं; क्षत्रियोंसे स्थावर जङ्गम आदि सब प्रजा इस लोकमें जाग्रत हो रही है; और दण्ड उन प्रजा समूहके ऊपर जागरित होके निवास करता है। पितामहके समान प्रभावसे युक्त दण्ड सबको ही संग्रह करता है; हे भारत! पहिले, मध्य और अन्तमें जाग्रत रहता है। सब लोकोंके ईश्वर महादेव प्रजापति देवोंके देव सर्व्वमय कपर्द्दी शङ्कर रुद्र भव स्थाणु उमापति प्रभु शिव सदा जागरित रहते हैं, आदि, मध्य और अन्तमें इसी भांति दण्ड विख्यात है। धर्म्म जाननेवाला राजा यथारीतिसे इस दण्डको धारण करते हुए वर्त्तमान रहे।

भीष्म बोले, हे भारत! जो मनुष्य इस वसुहोमके मतको सुनते और सुनकर पूर्णरीतिसे अनुष्ठान करते है, वे समस्त काम्य विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे राजन्! यही तो दण्डका सब विषय मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; दण्ड ही धर्म्मसे आक्रान्त सब लोकोंका नियन्ता है।

१२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात! धर्म्म, अर्थ और कामके निश्चयको सुननेकी इच्छा करता हूं, लोकयात्रा पूर्णरीतिसे किससे प्रतिष्ठित हुआ करती है? धर्म्म, अर्थ और कामका मूल क्या है और इस त्रिवर्गकी उत्पत्तिका कारण ही क्या है? ये सब परस्पर मिलित और पृथक् पृथक् होकर किस निमित्त स्थिति करते हैं?

भीष्म बोले, मनुष्य लोग जब जगत्के बीच धर्म्मपूर्व्वक अर्थ निश्चय करनेके वास्ते सुचित्त होते अर्थात् मैं गर्भाधानमें कही हुई विधिके अनुसार ऋतुकालमें निज स्त्रीका सङ्ग करके पुत्र लाभ करूंगा; मनुष्यके मनमें जब ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय धर्म्म-अर्थ और काम यह त्रिवर्ग काल प्रभव होके एकत्र मिलता है, धर्म्म ही अर्थका मूल है और काम अर्थका

फल है; यह सदा उत्त हुआ करता है; और कामका मूल इन्द्रिय प्रीति है, धर्म्म, अर्थ, काम ये तीनों ही सङ्कल्प मूलक तथा सङ्कल्प रूप आदि विषयात्मक हैं। रूप आदि सब विषय याग-प्रयोजक त्रिवर्गके मूल है और निवृत्तिको ही मोक्ष कहते हैं। धर्म्मके निमित्त शरीरको रक्षा अर्थात् आरोग्यताके वास्ते धर्म्मको सेवा करनी उचित है और धर्म्मके लिये ही धन उपार्जन न करना योग्य है और कामका फल रति है, इससे धर्म्म, अर्थ, काम, ये तीनों रजोगुण प्रधान हैं। आत्मज्ञान फलरूप सन्निकृष्ट धर्म्म, अर्थ, काम भी उस आत्मज्ञानके प्रयोजकके कारण उस समय सन्निकृष्ट होते हैं, उस समय उनकी सेवा करनी चाहिये; मनसे भी इन्हें परित्याग न करे। चित्तशुद्धिके वास्ते धर्म्म, निष्काम कर्म्मोंके वास्ते अर्थ और देह धारण मात्रके कारण कामको सेवा करनी उचित है, तपसे रहित मनुष्य कामके अनन्तर धर्म्म आदिकोंको मनसे भी परित्याग न करे; इससे स्वरूपसे परित्याग और सुदूर पराहत होवे। धर्म्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गको निष्ठा सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही विद्यमान है। यदि मनुष्य उस मोक्षके पानेका अभिलाषी हो, तो पहिले उसे निष्काम होना होगा, बिना निष्काम हुए मोक्ष लाभ नहीं होता। धर्म्मके वास्ते अर्थ और अर्थके लिये धर्म्म इस विषयमें अज्ञानताके कारण निकृष्ट बुद्ध अर्थात् निर्बुद्धि मूढ़ मनुष्य ऊपर कहे हुए धर्म्म और अर्थके फलको नहीं पाते, इससे धर्म्म और अर्थका फल मोक्ष ही अव्यभिचारी है, इसे निश्चय जाने। धर्म्मको फलाभिसन्धि ही मङ्गल स्वरूप है; अर्थका दान और भोग न करना ही मलस्वरूप है; केवल प्रीतिके वास्ते काम सेवन कामका मलस्वरूप है; इससे वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम, फलाभिसन्धान दान भोग और प्रीतिसे रहित होनेपर फिर ब त फल अर्थात् चित्तशुद्धिके जरिये ब्रह्मानन्द

फल प्रदान किया करता है। इस विषयमें न्दक और आङ्गिरिष्ट इन दोनोंके इस प्राचीन इतिहासका पहिलेसे आचार्य प्रमाण दिया करते हैं। राजा सुखसे बैठे हुए कामन्द ऋषिको प्रणाम मर्य्यादा भङ्ग विषयका प्रश्न किया। हे जो राजा काम और मोहके वशमें होकर चरण करता है, उस पश्चाताप युक्त पाप किस प्रकार नष्ट होता है? जो अज्ञानके कारण अधर्म्मको धर्म्म समझके रण करता है, लोकमें विख्यात उस अधर्म राजा किस उपायसे निवारित करे?

कामन्द बोले, जो पुरुष धर्म्म और अर्थ त्यागके केवल कामका अनुवर्त्ती होता है, धर्म्म, अर्थ परिहार निबन्धनसे इस लोक बुद्धिसे हीन हुआ करता है। बुद्धिनाश कर वाला मोह धर्म्म, अर्थका नाशक होजाता उससे नास्तिकता और दुराचारको उत्प होती है। राजा यदि एकबारगी दुष्ट दुर रोंको निवारण न कर सके, तो प्रजा स्थित सर्पके समान उन दुराचारोंसे हुआ करती है। प्रजासमूह, ब्राह्मण और लोग वैसे राजाके अनुवर्त्ती नहीं होते। न्तर वह सशय युक्त होकर बध्य होता अपमानित वा अवनत होकर अत्यन्त दु जीवित रहता है, अपमान युक्त होके जो रहना, वह केवल मृत्युके समान है। पहि आचार्य्योंने इस विषयमें सब प्रकार पा निन्दा किये हैं; इससे त्रयी विद्या सेवन ब्राह्मणोंका सत्कार करना अवश्य उचित है धर्म्म विषयमें बड़े चित्तवाला होवे और वंशमे विवाह करे। क्षमाशील मनस्वी णोंकी सेवा करे, ज्ञानशील होके जप करे सदा सुखसे स्थित रहे। दुष्कर्म्मी मनुष्योंको करके धर्म्मात्मा पुरुषोंके समीप गमन मीठे वचन अथवा कर्म्मसे सबको प्रसन्न

शरेके गुणको वर्णन करते हुए मैं आपकी सबके समीप यह कथा कहूंगा। निष्पाप मनुष्य ऐसा आचरण कर करनेसे शीघ्र ही सबके आदरका पात्र होता है और सब पापोंका नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। गुरु लोग परम धर्म्मका विषय कहा करते हैं, तुम उस धर्म्मका वैसा ही आचरण करो ; गुरुओंकी कृपासे तुम परम कल्याणको प्राप्त होगे।

१२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! भूमण्डलमें ये सब मनुष्य लोग सदा शीलको ही धर्म्मका कारण कहके उसकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विषयमें एकबारगी मुझे महान् संशय होरहा है। हे धार्म्मिक प्रवर! यदि उसे जाननेकी मुझमें सामर्थ्य हो, तो वह जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब सुननेकी इच्छा करता हूं। हे नृपवर भारत! किस प्रकार वह शीलता प्राप्त हो सकती है और उसका कैसा लक्षण है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे मानद महाराज! पहिले दुर्य्योधनने भाइयोंके सहित इन्द्रप्रस्थमें तुम्हारा वह अतुल ऐश्वर्य्य देखकर सन्तापित और सभामें उपहसित होकर पिताके समीप वह सब वर्णन किया था। तब धृतराष्ट्रने दुर्योधनका वचन सुनके कर्णके साथ बैठे हुए उससे यह प्रमाण वचन कहा था।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! तुम किस कारण सन्तापित होते हो, मैं उसे यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं, सुनने पर यदि मुझे युक्त बोध होगा, तो तुम्हें उपदेश करूंगा। हे पर पुरञ्जय! तुमने परम ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी लोग सदा तुम्हारी आज्ञामें रत हैं; बड़े मन्दिर, वस्त्र, आच्छादन और पक्वान्न भोजन भोग करते हो, उत्तम घोड़े तुम्हें ले चलते हैं; तो भी तुम किस कारणसे पाण्डुवर्ण और कृश होरहे हो?

दुर्य्योधन बोले, हे भारत! युधिष्ठिरके गृहमें दश हजार महानुभाव स्नातक ब्राह्मण लोग नित्य स्वर्णपात्रमें भोजन करते हैं, पाण्डवोंकी दिव्य फल फूलोंसे शोभित वह दिव्य सभा और तीतर पक्षीके समान विचित्र रूपके घोड़े, अनेक तरहके वस्त्र और राज राजके समान बड़ी और शुभङ्करी सम्पत्ति देखनेके समयसे ही चिन्ता कर रहा हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे तात नरवर! युधिष्ठिरकी जैसी सम्पत्ति है, तुम यदि वैसे वा उससे अधिक ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हो, तो तुम शीलवान बनो; हे पुत्र! सद् व्यवहारके जरिये तीनों लोक जय किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है, इस लोकमें शीलवान मनुष्योंसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है। मान्धाताने एक रात्रि, जनमेजयने तीन रात्रि और नाभाग राजाने सात रात्रिमें पृथ्वी लाभ की थी; ये सब राजा शीलवान और दयायुक्त थे; इससे वसुन्धरा गुण क्रीता होकर स्वयं उनके निकट उपस्थित हुई थी।

दुर्य्योधन बोले, हे भारत! जिस शीलके सहारे उन लोगोंने शीघ्र ही पृथ्वीको प्राप्त किया था; किस प्रकारसे वह शील प्राप्त होता है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे भरतवंश-प्रसूत पुत्र! महर्षि नारदने शीलका आश्रय करके पहिले जो प्राचीन इतिहास कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उसका प्रमाण दिया करते हैं। प्रह्लादने दैत्य होके भी शील अवलम्बन करके इन्द्रके राज्यको हरण और तीनों लोकोंको अपने वशमें किया था। हे कुरुवंश धुरन्धर! अनन्तर महाबुद्धिमान् मघवान् हाथ जोड़के बृहस्पतिके समीप उपस्थित हुए और बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं। तब भग-

वान बृहस्पति उस देवेन्द्रसे परम कल्याण सम्बन्धीय अर्थात् मोक्षके उपयोगी ज्ञानका विषय कहने लगे। बृहस्पतिने मोक्षके उपयोगी ज्ञानकी कथा कहके "यही श्रेय है" ऐसा ही कहा। देवराजने फिर पूछा, कि निःश्रेयससे भी कुछ कल्याणदायक है वा नहीं उसे विशेष रूपसे वर्णन करिये।

बृहस्पति बोले, हे तात सुरराज! इस विषयमें जो कुछ विशेष है, वह महानुभाव भार्गवसे छिपा नहीं है; इससे तुम उनके समीप जाके इस विषयको पूछो; तुम्हारा मङ्गल होगा। महातपस्वी परम तेजस्वी देवराज अपने कल्याण लाभके लिये प्रीतिपूर्व्वक भार्गवके समीप गये और उस महानुभाव दैत्यगुरुसे अनुज्ञात होकर इन्द्रने उनसे पूछा, कि श्रेय क्या है? सर्व्वज्ञ शुक्राचार्य्य बोले, महानुभाव प्रह्लादको इस विषयका विशेष ज्ञान है; इन्द्र ऐसा सुनकर हर्षित हुए। अनन्तर मेधावी पाकशासन ब्राह्मणका वेष धरके प्रह्लादके निकट जाकर बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं।

प्रह्लाद बोले, हे द्विजवर! मैं तीनों लोकके राज्यको शासन करनेमें सदा तत्पर रहता हूं, इससे मुझे एक क्षणभर भी फुर्सत नहीं है, इसीसे तुम्हें उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूं।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! जब आपको अवसर मिलेगा, तभी मैं उत्तम आचरणीय विषयके उपदेशको ग्रहण करनेकी अभिलाष करता हूं। अनन्तर राजा प्रह्लाद प्रसन्न हुए और "ऐसा ही होगा"—ब्राह्मणसे यह वचन कहके उस शुभक्षणमें उसे ज्ञानतत्व प्रदान किया। ब्राह्मण भी यथा न्यायसे जिस प्रकार गुरुके साथ व्यवहार करना होता है और उनके अन्तःकरणमें जैसी अभिलाष थी, सब तरह उसे प्रदर्शित करने लगा, और बारम्बार पूछा, हे अरिदमन! आपने किस प्रकार तीनों लोकके राज्यको प्राप्त किया है? हे धर्मज्ञ कारण मेरे समीप कहिये। हे म प्रह्लादने उस समय उस ब्राह्मणको यह उत्तर दिया।

प्रह्लाद बोले, हे विप्र! मैं अपनेको समझके कदापि ब्राह्मणोंकी निन्दा करता, इन लोगोंके शुक्राचार्य्यके बनाये नीतिशास्त्रकी व्याख्या करनेके समय मैं सुनकर धारण किया करता हूं, वे विश्वासी होकर उसे कहते हुए मुझे करते हैं। मैं शुक्राचार्य्यके कहे हुए नी सदा वर्त्तमान रहता हूं, ब्राह्मणोंकी से करता हूं, कभी उन लोगोंकी निन्दा करता। जैसे मधु मक्खियां सदा क्षौद्र (छत्ते) से मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही शासन करनेवाले ब्राह्मण लोग मुझे धर्मा जितेन्द्रिय और सदा जित क्रोध जानके वचनसे सेचन किया करते हैं। मैं शास्त्रोंके मुख्य विद्यारसको ग्रहण करते नक्षत्रमण्डलीके बीच स्थित चन्द्रमाकी निज जातिके बीच निवास करता हूं। ग कहे हुए शास्त्रको सुनकर उसके कार्य्यमें प्रवृत होना ही पृथ्वीके बीच और यही उत्तम नेत्रस्वरूप है। प्रह्लादने ब्राह्मणसे यही श्रेय है,- ऐसा ही कहा, उस समय दैत्यराज्य उस ब्राह्मणसे होकर बोले, हे द्विजसत्तम! तुमने मेरे गुरुकी तरह व्यवहार किया है, उससे मैं हुआ हूं; इससे तुम जो वर मांगोगे, वही दान करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह है; तुम्हारा मङ्गल होगा। ब्राह्मणने उस दैत्येन्द्रसे कहा, मैंने वर मांगा; प्रह्लाद होकर वर ग्रहण करो; ऐसा ही बोले।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आप यदि होकर मेरी प्रिय कामना करते हैं, तो आपका शील प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं

मेरी प्रार्थना है। अनन्तर दैत्यराज प्रसन्न परन्तु उन्हें अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ; प्रणके वर मांगनेपर "ये अल्प तेजस्वी नहीं —ऐसा ही निश्चय किया। अन्तमें प्रह्लाद सन्न होकर "ऐसा ही होवे" यह वचन । और उस ब्राह्मणको वरदान करके वृत हुए। हे महाराज! बरदानके अनन्तर प्रणके जानेपर प्रह्लादको बहुत चिन्ता न्न हुई; वह उस समय कुछ भी निश्चय र सके। हे तात! जब वह चिन्ता कर रहे तब तेजोमय विग्रहयुक्त छायाभूत महाते शीलने उनके शरीरको परित्याग किया। दने उस समय उस महाकायसे कहा, आप हैं? वह बोला, हे राजन्! मैं शील हूं, ने मुझे परित्याग किया, इससे जाता हूं, शिष्य होकर सदा तुम्हारे निकट स्थित थे, उस ही अनिन्दित द्विजवरके शरीरमें वास ंगा। तेजोमय शील ऐसा कहके अन्तर्द्धान और इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया। शील-प तेजके जानेपर वैसे ही रूपसे युक्त दूसरा पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला, तब ोंने उससे कहा आप कौन हैं? वह बोला ह्लाद! मैं धर्म्म हूं, जिस स्थानमें वह द्विज म है, मैं वहां ही जाऊंगा। हे दैत्यराज! जिस स्थानमें जाता है, मैं भी वहां ही न किया करता हूं।

महाराज! अनन्तर और एक पुरुष मानो प्रज्वलित होकर प्रह्लादके शरीरसे बाहर ा। उन्होंने पूछा आप कौन हैं? प्रह्लादके पूछनेपर वह महातेजस्वी बोला, हे असु-र! मैं सत्य हूं। इस समय धर्म्मका अनुग-कहूंगा। सत्यने ऐसा कहके धर्म्मके पीछे न किया। फिर दूसरा एक महान पुरुष ादके शरीरसे निकला और वह महाबल-पूछनेपर बोला, हे प्रह्लाद! मैं वृत्त जहां रहता है मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। वृत्तके जानेपर प्रह्लादके शरीरसे महाशब्द बाहर हुआ और पूछनेपर बोला, मैं बल हूं। वृत्त जहां जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। हे नरनाथ! बल ऐसा कहके जहां वृत्त गया था, वहां ही चला गया। अनन्तर उनके शरीरसे एक प्रभा-मयी देवी बाहर हुई। दैत्यराज प्रह्लादके पूछनेपर श्रीने उनसे कहा, हे सत्यपराक्रमी वीरवर! मैं स्वयं तुम्हारे शरीरमें निवास करती थी, इस समय तुमसे परित्यक्त होनेसे जाती हूं; मैं बलकी अनुगामिनी हुआ करती हूं। अनन्तर महानुभाव प्रह्लादके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न हुआ। वह फिर बोले, हे कमला-लये! तुम कहां जाती हो? तुम्ही सत्यव्रत धारिणी लोककी परमेश्वरी देवी हो। वह द्विजवर कौन थे? इसे मैं यथार्थ रूपसे जान नेकी इच्छा करता हूं।

लक्ष्मी बोली, हे राजन्! जो ब्रह्मचारी होकर तुम्हारे निकट शिक्षित हुए थे, वह देवराज इन्द्र हैं; तीनों लोकमें तुम्हारा जो कुछ ऐश्वर्य्य था, वह उन्हींके जरिये हरण हुआ है। हे धर्म्मज्ञ! तुमने शीलके सहारे तीनों लोक जय किया था; सुरराजने उसे मालूम करके तुम्हारे उस शीलको हरण किया है। हे महाबुद्धिमान्! धर्म्म, सत्य, वृत्त, बल और मैं शील ही इन सब लोगोंका मूल है; इस विष-यमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसा ही कहके लक्ष्मी और सत्य आदि सबने गमन किया था। इधर दुर्य्योधन फिर पितासे बोले, हे कौरव नन्दन! मैं शीलके वृत्तान्तके विदित होनेकी इच्छा करता हूं। जिसके जरिये शीलता प्राप्त की जा सकती है, आप वह उपाय कहिये।

धृतराष्ट्र बोले, वह उपाय पहिले ही महा-नुभाव प्रह्लादके द्वारा वर्णित हुई है। हे नरेश्वर! इस समय शील प्राप्तिके विषयका

संक्षेपमें कहता हूं सुनो। बचन, मन और कर्मसे सब प्राणियोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करना, कृपा प्रकाश करनी और दान, ये ही शीलके बीच श्रेष्ठ होते हैं। अपना कर्म वा पौरुष जो दूसरेको हितकर न हो और जिससे दूसरेके समीप लज्जित होना पड़े, किसी प्रकार भी उसका अनुष्ठान करना उचित नहीं है। जिसके जरिये सभामें बड़ाई प्राप्त हो सकती है, सदा वैसा कार्य्य करना चाहिये। हे कुरुसत्तम! यही तो मैंने तुमसे संक्षेपमें शीलका विषय कहा। हे राजन्! शीलहीन मनुष्य जो कदापि श्रीसे युक्त हो, तौभी वह बहुत समयतक उस श्रीको भोग करनेमें समर्थ वा बद्धमूल नहीं होता है।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! हे तात! यदि युधिष्ठिरसे भी अधिक ऐश्वर्य्य लाभ करनेकी इच्छा करते हो, तो इसे यथार्थ रूपसे जानके शीलवान बनो।

भीष्म बोले, राजा धृतराष्ट्र। निज पुत्र दुर्य्योधनसे यह कथा कही थी। हे कुन्तीनन्दन! तुम ऐसा ही आचरण करो, अवश्य ही इसका फल पाओगे।

१२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। पुरुषके विषयमें शील ही मुख्य है, यह तो आपने वर्णन किया, परन्तु आशा किस प्रकार उत्पन्न हुई है और वह आशा क्या है? उसे आप मेरे समीप कहिये। हे पितामह! इस विषयमें मुझे बहुत ही संशय उत्पन्न हुआ है, हे पर पुरञ्जय! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस संशयको छुड़ानेवाला नहीं है। हे पितामह! युद्ध उपस्थित होने और विना युद्धके भी दुर्य्योधन यहराज्य प्रदान करेगा, उसके विषयमें मुझे यह बड़ी आशा थी; पुरुष मात्रको ही महती आशा उत्पन्न होती है; उस आ नष्टहोनेपर दुःखकारी मृत्यु होती है, सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! उस दुष्टात्मा धार्त राष्ट्रने मुझे दुर्बुद्धि और हताश किया है; मेरे मन्दात्मता देखिये। मैं वृक्षोंसे युक्त पहाड़ भी आशाको बहुत् समझता हूं; हे राजन् आशा आकाशसे भी अप्रमेय है। हे कुरुश्रेष्ठ! यह आशा अचिन्तनीय और एकवारगी दुर्ल है; दुर्लभल निवन्धन युक्त दूसरे किसी विषयमें भी इससे अधिक दुर्लभ नहीं देखता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें तुम्हारे समीप सुमित्र और ऋषभके सम्वाद युक्त इतिहासको वर्णन करता हूं, सुनो।

हैहयवंशीय सुमित्र नाम राजऋषि मृगयाके वास्ते जाके नतपर्व्व बाणसे एक मृगको बि करके बनमें भ्रमण कर रहे थे। अत्यन्त वि मसे युक्त वह मृग बाणसे विद्ध होकर गमन करने लगा; राजाने भी शीघ्रताके सहित बल पूर्व्वक उस मृगयूथपतिका अनुसरण किया। हे राजेन्द्र! अनन्तर वह शीघ्रगामी कुरङ्ग मुहूर्त्त भरमें निम्न स्थल और समतल मार्गमें दौड़ने लगा। अन्तमें वह तनुत्राणसे युक्त राजा धनुष और तलवार ग्रहण करके यौवन वशसे भ्रमण करते हुए अकेलेही नद, नदी, पल्वल और बन अतिक्रम करते हुए बनचारी ह घूमने लगे। शत्रुनाशन राजा उसके मर्म छेदनेवाला तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके धनुषपर चढ़ाया। अनन्तर मृगयूथपति मानो हंसी करते हुए बाणके मार्गका परित्याग करके द कोसकी दूरीपर स्थित हुआ। जलता हुआ तेजसे युक्त बाण पृथ्वीपर गिरा, मृगने महाबनके बीच प्रवेश किया; राजा भी दौड़े।

१२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा महावनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रम पर उपस्थित हुए

और थकके उस समय वहां बैठ गये। ऋषियोंने उस धनुर्द्धारी राजाको थका और भूखा देखके सबने उस स्थानपर इकट्ठे होकर यथारीति उनका सत्कार किया। राजाने उन ऋषियोंसे प्राप्त हुए सत्कारको ग्रहण करके सब तपस्वियोंसे तप वृद्धिका विषय पूछा। तपोधन ऋषि लोग राजाके वचनको सुनके उनके आगमनका प्रयोजन जाननेके वास्ते बोले, हे राजन्! आप धनुष बाण और तलवार धारण करके पैदल ही कौनसे सुखके वास्ते इस तपोवनमें आये हैं? हे मानद! आपने किस स्थानसे आगमन किया है? उसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। आप किस वंशमें उत्पन्न हुए हैं और आपका क्या नाम है, वह हम लोगोंके निकट वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर भरतवंशावतंस! वह राजा सब ब्राह्मणोंको यथारीतिसे निज परिचय देनेके वास्ते बोला, मैं हैहयवंशमें उत्पन्न हुआ हूं; मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला सुमित्र नामसे प्रसिद्ध हूं; मैं विपुल बलसे रक्षित और सेवक तथा अन्तःपुरबासिनी स्त्रियोंमें घिरकर बाणोंसे सहस्रों मृगोंको मारते हुए विचरता था; कोई मृग मेरे बाणसे विद्ध होकर शल्यके सहित दौड़ रहा है, मैं उस ही दौड़ते हुए मृगका पीछा करते हुए दैव इच्छासे इस बनमें उपस्थित हुआ हूं। इस समय श्रीरहित निराश और परिश्रमसे थक कर आप लोगोंके समीप आया हूं। मैं परिश्रमसे कातर, निराश और भ्रष्ट लक्षण होकर आप लोगोंके समीप आया, इससे बढ़के मुझे दूसरा दुःख क्या होगा? हे तपस्वी लोगो! मेरी मृग-विषयक आशा नष्ट होनेसे जैसा तीव्र दुःख हुआ है, राज चिह्न त्यागना और नगरको छोड़ना वैसा दुःखदायक नहीं है। अत्यन्त ऊंचा महा पर्वत हिमालय, बहुत बड़े महोदधि समुद्र और आकाशको अन्तराल महत्वके अनुसार आशाके समान नहीं हो सकते। हे तापस वृन्द! इससे मैं आशाका अन्त भी नहीं देखता हूं आप लोग सर्वज्ञ और तपस्यासे भरे हैं, सब आप लोगोंको विदित है; आप महा ऐश्वर्य्ययुक्त हैं, इसही कारण आप लोगोंसे संशयका विषय पूछता हूं। आशावान पुरुष और आकाश इन दोनोंके बीच महत्वमें आप लोगोंको कौन श्रेष्ठ मालूम होता है; मै यही सुननेकी अभिलाष करता हूं; इस लोकमें सुननेमें क्या दुर्लभ है? यह विषय यदि आप लोगोंके समीप गोपनीय न हो, तो शीघ्र ही मुझसे कहिये। हे द्विजसत्तम वृन्द! आप लोगोंके गोपनीय विषयको सुननेकी इच्छा नहीं करता, मैंने जो प्रश्न किया है, कथाके प्रसङ्गसे यदि इसका उत्तर होवे, तो वर्णन कीजिये। आशाके कारण और सामर्थ्यकी रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप लोग भी तपस्यामें रत हैं, इससे सब कोई मिलकर इस विषयको वर्णन कीजिये।

१२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर उन सब ऋषियोंके बीच ऋषि सत्तम ऋषभ नाम विप्रर्षि विस्मित होकर यह बचन बोले, हे प्रभु नृपवर! पहिले समयमें मैं सब तीर्थोंमें घूमता हुआ नर नारायणके दिव्य आश्रममें उपस्थित हुआ था, जिस स्थानमें उस रमणीय बदरी और आकाश गङ्गाका वैहाय सहृद विद्यमान है, और अश्वशिरा नित्य वेद पाठ करते हैं। पहिले समय मैं उस ही तालावमें पितर और देवताओंका विधिपूर्व्वक तर्पण करके उस ही समय आश्रममें उपस्थित हुआ। जिस स्थानमें वह नारायण ऋषि सदा निवास करते हैं उनके निकटमें ही वास करनेके लिये किसी आश्रममें गमन किया। वहां सदा मृगछालाको धारण करनेवाले तनु नाम ऋषिको आते देखा, हे महाबाहो राजऋषि! उनका शरीर दूसरे मनुष्योंसे आठ गुना

ऊंचा था, परन्तु उनकी जैसी कृशता थी, वैसी कृशता कहीं भी नहीं देखी गई है। हे राजेन्द्र! उनका शरीर कनिष्ठा अंगुलीके समान था, गर्दन, दोनों भुजा, दोनों पैर और सब केश देखनेमें अद्भुत थे; सिर शरीरके अनुरूप ही था; दोनों कान और दोनों नेत्र भी उसके समान ही थे। हे राजसत्तम! उनका वचन और चेष्टा सामान्य थे; मैं उस कृश विप्रको देखके अत्यन्त डरा और दुःखित हुआ। अनन्तर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़के उनके सम्मुख खड़ा रहा।

हे राजन्! नाम, गोत्र और पिताका नाम कहके उनके दिये हुए आसन पर जाके धीरे धीरे बैठ गया। हे महाराज! अनन्तर उस धर्म्मात्मा महर्षि तनुने ऋषियोंके बीच धर्म्म अर्थ युक्त कथा कहनी आरम्भ की। वह जब धर्म्म-युक्त कथा कहने लगे, तब राजीवलोचन कोई राजा सेना और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके सहित वेगवान घोड़ोंके जरिये वहां पर उपस्थित हुआ। वनके बीच पुत्र खोया गया है, उसे स्मरण करते हुए अत्यन्त दुःखित होकर पहिले समयमें भूरिद्युम्नके पिता महायशस्वी श्रीमान महा वीरद्युम्न राजाने उस ही स्थानमें उस पुत्रको देखूंगा, ऐसी ही आशासे युक्त होकर उस वनमें घूमते हुए मेरे उस परम धार्म्मिक पुत्रका दर्शन होना दुर्लभ है, अकेला पुत्र महावनके बीच खोया गया, उस समय बारम्बार ऐसा ही वचन कहने लगे। "मुझे उसका दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु देखनेके वास्ते मुझे बड़ी ही आशा हुई है; उस ही आशासे मेरा सब शरीर परिपूरित होनेसे मैं मुमुर्षु हुआ हूं; इसमें सन्देह नहीं है।" मुनिश्रेष्ठ भगवान तनुने राजाका ऐसा वचन सुनके अवाक्शिरा और चिन्तापरायण होके मुहूर्त्त भर स्थित रहे। राजा उन्हें चिन्ता करते देख, अत्यन्त दुःखित हुआ और दीन-ताके सहित बार बार मन्द स्वरसे देवऋषि! दुर्लभ क्या है और आशा क्या है? यदि यह मेरे समीप गोपनीय न हो, तो, हे भगवन्! इसे वर्णन कीजिये।

मुनि बोले, पहिले महर्षि भगवान् उस पुत्रके जरिये बालिश बुद्धि और निज भाग्यताके कारण मानसे रहित हुए थे। राजन्! महर्षिने एक सोनेका कलश बल्कल मांगा था, उन्होंने अवज्ञापूर्वक सम्पादन नहीं किया, वह राजर्षि निर्विण्ण निराश हुए थे। हे नरसत्तम! वह भी इसी प्रकार उन्न होकर उस ऋषिको प्रणाम करके तुम्हारी भांति और अवसन्न हुए थे। अनन्तर महर्षिने और अर्घ लेकर अरण्य विधिके राजाको वह सब निवेदन किया।

हे नरश्रेष्ठ! अनन्तर जैसे सप्तऋषि ध्रुवको घेरते हैं, वैसे ही सब मुनि लोग राजाको घेरकर बैठ गये और उन लोगोंने राजाके आश्रममें आनेका प्रयोजन पूछा।

१२७ अध्याय समाप्त।

राजा बोला, मैं वीरद्युम्न नामसे राजा चारों ओर प्रसिद्ध हूं, मेरा पुत्र अनुद्दिष्ट हुआ है, उसे खोजनेके वास्ते वनमें आया हूं। हे पापरहित विप्रवर! वही एक मात्र पुत्र है, तिसपर भी वह है, उसे इस वनमें न देखके घूम रहा हूं।

ऋषभ बोले, जब राजाने ऐसा कहा, उस समय मुनि अधोवदन होकर चुप हो राजाको कुछ भी उत्तर न दिया। वह पहिले राजाके जरिये सम्मानित नहीं हे राजेन्द्र! उन्होंने आशाकी नष्ट निमित्त बहुत तपस्या की थी, मैं किसी रसे राजाके निकट प्रतिग्रह तथा दूसरे

वर्णोंका दान नहीं ग्रहण करूंगा ; उस समय ऐसी ही बुद्धि अवलम्बन करके स्थित थे। आशा ही स्थिर होकर पुरुषको तथा बालकको भी उद्योगशाली करती है; इससे "मैं उस आशाको दूर करूंगा," मन ही मन ऐसा ही स्थिर करके मुनि मौन हुए थे। वीरद्युम्न राजाने फिर उस मुनिसत्तमसे पूछा।

राजा बोला, आशाकी कृशता क्या है ? इस पृथ्वीमण्डलके बीच दुर्लभ क्या है ? आप इसे ही वर्णन करिये ; क्योंकि आपने धर्म्म, अर्थका दर्शन किया है।

ऋषभ बोले, अनन्तर भगवान ब्राह्मणश्रेष्ठ कृशतनु पहिले वृत्तान्तको स्मरण करके उसी मानी राजाको स्मरण करानेके लिये कहने लगे।

ऋषि बोले, हे राजन् ! आशायुक्त पुरुषके समान दूसरा कोई कृश नहीं है, आशाग्रस्त विषयका दुर्लभत्व निबन्धन मैंने राजाओंके निकट प्रार्थना की थी !

राजा बोला, हे ब्रह्मन् ! आपके वचनके अनुसार कृश अकृशका बोध हुआ और आशा गृहीत विषयका दुर्लभत्व वेद वचनके समान विदित हुआ। हे महाबुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ ! मेरे मनमें संशय उत्पन्न हुआ है, इससे मैं उस संशयके विषयको पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक कहिये। हे मुनिसत्तम ! यदि गोपनीय न हो, तो आपनेसे दुबलापन क्या है ? हे भगवन् ! इसे भी मेरे निकटमें प्रकट करिये।

कृश बोले, हे तात ! याचक होके सन्तुष्ट हुआ करे, ऐसा पुरुष दुर्लभ है, अथवा नहीं है, ऐसा भी कहा जा सकता है, और अर्थकी अवज्ञा न करे, ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। शक्ति रहते भी सत्कार करके दूसरेका उपकार न करनेवाला और जो आशा सब प्राणियोंमें आसक्त होरही है, मैंने उस आशाको बहुत कृश किया है। एक मात्र पुत्रका पिता पुत्र अनुद्दिष्ट वा प्रोषित होनेपर उसका खाज भी नहीं जानता मैंने उस आशाको इकवारगी कृश किया है, हे नरनाथ ! स्त्रियोंको प्रसवके समय, वृद्धोंको पुत्र उत्पत्तिके समयमें और धनियोंके मनमें जो आशा रहती है, मैंने उसे अत्यन्त कृश किया है। प्रदानकांक्षिणी कन्याओंके यौवन-काल उपस्थित होनेपर उनके विषयकी कथा सुनके जो आशा उत्पन्न होती है, मैंने उस आशाको अत्यन्त कृश किया है। हे राजन् ! अनन्तर वीरद्युम्न राजाने यह सब कथा सुनके पत्नीके सहित उस द्विजवरके चरणको मस्तकसे स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया।

राजा बोला, हे भगवन् मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं, मैं निज पुत्रके साथ मिलनेकी अभिलाष करता हूं। हे द्विजसत्तम ! इस समय आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है इसमें सन्देह नहीं है।

ऋषि बोले, धार्म्मिकप्रवर ! भगवान् तनुने हंसकर तप और विद्यावलके जरिये उस अनु-दिष्ट राजपुत्रको लाके उपस्थित किया। उन्होंने राजपुत्रको लाके राजाका तिरस्कार करके आप ही जो धर्म्मस्वरूप थे, उसे दिखाया ; अद्भुत दर्शनने दिव्य-आत्म दिखाकर पापरहित और क्रोधहीन होके निकटके वनमें गमन किया। हे राजन् ! मैंने ऐसाही देखा था, और यही सब वचन सुना था, आशाको शीघ्र दूर करो ; ऐसा होनेसे यह अत्यन्त दुर्ब्बल होगी।

भीष्म बोले, हे राजन् ! उस समय राजा सुमित्रने महात्मा ऋषभका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही दुबली आशाको परित्याग किया। हे कुन्तीपुत्र महाराज ! तुम भी मेरा यह वचन सुनके हिमवान पर्व्वत की तरह स्थिर होजाओ हे महाराज ! तुम प्रष्टा और त्राता हो, इसमें मेरा मत सुनके आपदकाल उपस्थित होनेपर सन्ताप भाजन न होना।

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप जब धर्म्म-कथा कहते हैं तब मैं आत्मवृत्तिस्थ होकर जिस प्रकार तृप्त होता हूं, अमृतसे भी वैसी तृप्ति नहीं होती। हे पितामह! इससे आप फिर धर्म्म कथा कहिये। मैं आपके कहे हुए धर्म्मामृतको पीते हुए किसी प्रकारसे भी तृप्ति लाभ नहीं कर सकता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग महानुभाव यम और गौतमके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। पारिपात्र पर्व्वतके समीप गौतमका अत्यन्त बड़ा आश्रम था, गौतमने उस आश्रममें जबतक बास किया था, वह भी मुझसे सुनो। गौतमने उस आश्रममें साठ हजार बर्ष तक तपस्या की थी। हे राजन्! उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यमने उनके निकट गमन किया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपस्या करनेमें रत देखा। ब्रह्मर्षि तपस्वी गौतम तेज प्रभावशाली यमको आया हुआ देखके हाथ जोड़के उठ खड़े हुए। धर्म्मराजने उस द्विजवरको देखते ही धर्म्मके अनुसार सत्कार करके उनसे पूछा, "मैं तुम्हारा क्या करूं?"

गौतम बोले, क्या करनेसे पुरुष माता पितासे अऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करता है?

यम बोले, तपस्या और पवित्र आचार युक्त तथा नियम और सत्य धर्म्ममें रत पुरुष सदा पिता-माताकी पूजा और बहुतसी दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत दर्शन निबन्धनसे दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया करते हैं।

१२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा मित्रोंसे परित्यक्त हुए हैं, जिनके बहुतसे शत्रु हुए हैं, और जो कोषहीन तथा ... हैं; उनके वास्ते क्या उपाय है? दुष्ट जिसके सहायक हुए हैं, जिसकी मन्त्रणा तरहसे निष्फल हुई है, राज्यसे जो भ्रष्ट हैं और उत्तम उपायको देखनेमें ... जो दूसरे राज्यकी ओर जानेके वास्ते और पर राज्यको मर्द्दन करनेमें तैयार हैं, जो स्वयं निबल होकर भी बलवानके विरोध करनेमें वर्त्तमान रहते हैं; वो पूर्णरीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं कर जो देश और कालके अनुसार कार्य... अवज्ञा करते हैं। अत्यन्त पीड़न ... दूसरोंके सेवक आदिकोंका भेद और ... जिसे अप्राप्य होता है; उनको उपाय क्या अर्थ साध्य जीवन सुकृत उत्तम होगा, असत् मार्गके जरिये अर्थ ग्रहण करना अथवा अर्थके बिना मरना कल्याणकारी है?

भीष्म बोले, हे भरत श्रेष्ठ धर्म्मज्ञ ...ष्ठिर! तुमने अत्यन्त गुप्त विषय पूछा है; पूछने पर मैं इस विषयके कहनेका ... करता। हे भरतप्रवर! धर्म्म ... पदार्थ है, शास्त्र सुननेके कारण उस धर्म्मका ज्ञान हुआ करता है, धर्म्म सुनकर आचार निबन्धनसे कदाचित कोई पुरुष ...चारके जरिये साधु होते हैं। ... धनके निमित्त प्रजापीड़न करते हुए हो, वा न हो, आपदसे पार होके प्रजाके ऊपर कृपा करनी उचित है। यदि धन न हो, तो अपना और प्रजाका नाश करता है, उसे विचारके तुम निज प्रज्ञा...यको अपनी बुद्धिके सहारे विवेचनीय हे भारत! राजाओंकी व्यवहार ... वास्ते बहुतसे धर्म्मयुक्त उपाय हैं, सुनो धर्म्मके निमित्त इस प्रकार धर्म्म प्राप्त इच्छा नहीं करता। प्रजाको दुःख दे... प्राप्त किया जाता है, वह पीछे मृत्युके

करता है, अर्थात् प्रजापीड़नके दुःखके गसे उत्पन्न हुई अग्नि राजाके प्राण बल धनसारको बिना जलाये निवृत्त नहीं ; पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यों वा प्रजासमू ऐसा ही निश्चय है। पुरुष प्रति दिन जैसे तोंको देखता है, वैसा ही विज्ञान लाभ के उसमें अनुरक्त हुआ करता है ; अवि- के कारण अनुपाय होता है, उपायज्ञान अत्यन्त विभूति उत्पन्न करता है। तुम क्षित और असूयारहित होकर यह वचन । राजाका कोष नष्ट होनेसे ही बलका हुआ करता है ; निर्ज्जल स्थलमें जल न करनेकी तरह राजा लोग कोष सञ्चय ा करते हैं। प्राचीन पुरुषोंके आचरित इस धर्मको जानकर समयके अनुसार राजा पीड़ित प्रजाके ऊपर कृपा करे। हे त ! समर्थ मनुष्योंका धर्म स्वतन्त्र है और दकालका धर्म स्वतन्त्र होता है। कोष के पहिले राजा तपस्या आदिके जरिये सञ्चय करनेमें समर्थ होते हैं ; धर्मसे भी न गुरुतर है। निर्व्वल पुरुष धन लाभ कि न्याययुक्त जीविका अवलम्बन नहीं ता, क्योंकि यत्न करनेपर भी अवश्य बलकी ावना होती है, ऐसा नियम नहीं है, सुना गया है, आपदकालमें अधर्म भी लक्षणयुक्त हुआ करता है इससे आपद- में अधर्म भी कर्त्तव्य रूपसे सुना जाता है, समय जो धर्म है, वह अधर्म हुआ करता इससे शास्त्रकी मर्य्यादानुसार आपदकालमें पीड़न आदि भी धर्मरूपसे गिने जाते है, । ऐसा न करनेसे अधर्म होता है यह कवि- ो अविदित नही है। आपदकाल बीतने- क्षत्रियके वास्ते पहिले कहे हुए अधर्मके ोंको दूर करनेके वास्ते प्रायश्चित्तकी विधि क्षत्रियोंको जिसमें धर्म हानि न हो, और जिसमें दुःख के भागी न होवें, वैसे ही उपाय करनी उचित है ; ऐसा ही पुराने लोग कहा करते हैं। आत्माको अवसन्न करना उचित नहीं है, सब तरहके यत्नके जरिये अपने वा दूसरेके धर्म उद्धारकी इच्छा न करे, जिस किसी उपायसे होसके, आत्माका उद्धार करना चाहिये ऐसा ही निश्चय जाने।

हे तात ! उस आपदकालके अनन्तर धर्म जाननेवाले पुरुषोंके लिये धर्म विषयमें निपुणता ही निश्चित है और क्षत्रियोंके वास्ते बाहु-बलके सहारे उद्यम ही निपुणता हैं, इसी प्रकार जनश्रुति है। हे भारत ! पूरी रीतिसे वृत्तिरोध होनेपर श्रेष्ठ क्षत्रिय तापसस्व और ब्राह्मणस्वको छोड़के और सबके धनको ले सकते हैं। जैसे ब्राह्मण अवसन्न होनेपर न जांचने योग्य पुरुषके निकट जांचते तथा भोजन न करने योग्य अन्न भी भोजन करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणस्व और तापसस्वके अति रिक्त दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें दोष नहीं होता, इसमें सन्देह नहीं है। पीड़ित पुरुषको अद्वार क्या है ? और निरुद्ध पुरुषको ही कौनसा उपाय है ? जब लोग पीड़ित होते हैं, तब अद्वारसे भी दौड़ा करते हैं। जो राजा धनागारसे रहित और सेनाके नष्ट होनेसे लोगोंके समीप पराभव युक्त होता है, उसे भिक्षा करके जीवन धारण तथा वैश्य और शूद्रकी वृत्ति अवलम्बन करनी योग्य नहीं है। क्षत्रियोंको स्वजातीय वृत्ति विजयके जरिये धन उपार्ज्जन की विधि है, जो उसके अनुसार जीवन व्यतीत न कर सकें, वे अयाचक होनेपर भी पहिले आपदकालमें मुख्य कल्पके जरिये जीवन व्यतीत करें ; इसमें असमर्थ होनेपर अनुकल्प अवलम्बन करना अनुचित नहीं है। आपद-काल उपस्थित होनेपर सब धर्मोंका विपर्य्यय अर्थात् पराक्रमके जरिये भी जीवन धारण करना योग्य है। जीविका नष्ट होनेपर ब्राह्म-णोंका भी ऐसा ही व्यवहार देखा पड़ा है, तब

क्षत्रियोंके विषयमें क्यों सन्देह होगा? क्षत्रिय पुरुष आपद्कालमें अधिक धनशाली पुरुषोंसे बलपूर्व्वक धन ग्रहण करके जीवन धारण करें, किसी तरह अवसन्न न होवें, उसमें सन्देह करना उचित नहीं है, यह सदासे ही निश्चित है। पण्डित लोग क्षत्रियोंको ही प्रजापालक और हन्ता समझते हैं; इससे रक्षाकर्त्ता क्षत्रिय धनवान मनुष्योंके निकट धन ग्रहण करें। हे राजन्! वनमें रहके मुनिके अतिरिक्त दूसरे किसी पुरुषकी हिंसाके बिना जीविका नहीं निभती है।

हे कुरुश्रेष्ठ! माथेमें लिखी हुई वृत्ति अर्थात् अदृष्ट मात्रको अवलम्बन करके जीवन धारण करना क्षत्रियोंके विषयमें योग्य नहीं है विशेष-करके जिसे प्रजापालनकी इच्छा है, उन्हें भी वैसी वृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। आपद्कालमें राजा और राज्य दोनोंकी ही सदा परस्पर रक्षा करनी चाहिये यही सनातन धर्म्म है। आपदकालमें जैसे राजा धनके जरिये सब तरहसे राज्यकी रक्षा करता है, विपद उपस्थित होनेपर राज्यको उसी प्रकार राजाकी रक्षा करनी योग्य है। कोष, दण्ड, बल, मित्र और दूसरी जो कुछ वस्तु सञ्चित रहे, राजा क्षुधातुर होनेपर भी राज्यके वास्ते उसे दूर न करे। अन्नसे ही बीज सम्पादन करना होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा ही जानते हैं। अल्पधनवाला राजा यदि प्रजासमूहसे रक्षित न रहे, तो वह नष्ट होता है, राजाके नष्ट होनेपर सब प्रजा नष्ट हुआ करती हैं; इस विषयमें पण्डित लोग महामायावी शम्बरके इस शास्त्रको वर्णन किया करते हैं। जिस राजाके राज्यमें वास करनेवाली प्रजा अवसन्न होती है जो दूसरेका प्रेष्य हुआ करता है, अथवा वृत्तिसे रहित होनेपर अल्प परिवारको पालन करता है, और जो विदेशमें जीविका निर्व्वाहके वास्ते समय बिताता है; उसे धिक्कार है। कोषागार और सेना ही एकमात्र राजाका मूल है, बीच खजाना ही सेनाका मूल है; सेना धर्म्मका मूल है और धर्म्म ही मूल होता है, इससे सबकी जड़ बढ़ती करनी उचित है। दूसरे पुरुषको न करनेसे कोष सञ्चय नहीं होता, तब संग्रह किस प्रकार हो सकेगा? इससे सञ्चके वास्ते लोगोंको पीड़ित करनेसे दोषभागी नहीं होते। यज्ञकार्य्यको यज्ञ निमित्त अकार्य्य करते भी देखा जाता है; इसी कारण राजा कदापि दोषभागी नहीं आपदकालमें प्रजा पीड़न अर्थके लिये हुआ करता है, वह स्वतन्त्र है; और उस प्रजाको पीड़ित न करना अनर्थका कारण होजाता है। अर्थके अभावके वास्ते सब आदि पाले जाते हैं, और वे अर्थके उत्पादक हुआ करते हैं; इससे मेधावी पुरुष इस निश्चयको बुद्धिके जरिये विचारे। पशु आदि यज्ञके कारण होते हैं, यज्ञ चित्त कारण हुआ करता है और पशु आदि तथा चित्त संस्कार ये तीनों जिस तरह कारण हुआ करते हैं, वैसे ही कोषका दण्ड, बलका कारण कोष और सब कारण कोष, बल तथा नीति ये तीनों ही पुष्टिके निमित्त हुआ करते हैं। इस धर्म्म-तत्व प्रकाश करनेवाली उपमा कहता यज्ञ विषयमें जो लोग परिपन्थी हैं, वे करते हैं, प्रतियज्ञो स्वरूप सामन्त वृन्द रूपी उसे काटनेसे जब वह कटके गिरता तब दूसरे वनस्पतियोंको गिराता है। हे तापन। इसी प्रकार जो मनुष्य महत् बाधक होवें, उन्हें नष्ट न करनेसे उस सिद्धि नहीं देखी जाती है। धनसे यह और परलोक दोनों लोक ही प्राप्त होते निर्द्धन होनेसे जैसे धन और सत्य वचन रहता, वैसे ही निर्द्धन पुरुष जीते ही

...ान समय बिताते है। यज्ञ कार्य्यके लिये ...को सब तरहकी उपायसे ग्रहण करे। हे ...रत! यज्ञके वास्ते जो धन आवश्यक होता ...निषिद्ध उपायसे भी उसे जिस प्रकार ग्रहण ...ना उचित है, वैसे ही विहित और निषिद्ध ...र्य्याकार्य्य विषयोंमें अर्थात् आपदकालमें प्रजा ...ड़न करना योग्य है, और वही निरापदके ...ययमें निषिद्ध है; इससे उस प्रकारके विषयमें ... समान-दोष नहीं है। देश कालके अनुसार ...र्य्य भी अकार्य्य होता है और अकार्य्य भी ...र्य्य हुआ करता है। हे पृथ्वीपाल महा-...ाग! धन-संग्रह और धन त्याग एक ही पुरुष ...किसी तरह सम्भव नहीं होता, मैंने बनके ...व कभी धनवृद्ध मनुष्योंको नहीं देखा। इस ...ीपर जो कुछ धन दीखता है, वह सब ...ारा ही होवे, हमारा ही होवे; लोग ऐसी ... अभिलाषा किया करते हैं। हे शत्रुतापन! ...ज्य तुल्य धर्म्म और कुछ भी नहीं है, राजा-...को आपदकालमें बहुतसा कर ग्रहण करना ...पमूलक नहीं है, निरापदके समयमें वही ...पजनक हुआ करता है। इससे आपदके ...मित्त अर्थ संग्रह करना पापयुक्त नहीं होता ... धन-मूलक राज्य भी हेय नहीं होसकता, ...ई कोई दान और कर्म्मसे तपस्वी होते हैं, ... तपस्या करके ही तपस्वी हुआ करते हैं; ...र बुद्धि कौशल और दक्षतासे धन सञ्चय लाभ ...ते हैं। पण्डित लोग धनहीन पुरुषको ही ...ल कहते हैं, धनवान पुरुष ही बलवान ...ा है, धनवान मनुष्यको कुछ भी अप्राप्य ...हीं है। कोष तथा कोषवाला राजा ... ...इसे पार होता है, कोषके जरिये धर्म्मकाम ... इस लोक और परलोकमें सुख लाभ ...ा है; इससे धर्म्मपूर्व्वक इस धन लाभको ...ा करे, कभी अधर्म्मसे धन सञ्चय करनेकी ...ा न करे।

१३० अध्याय समाप्त।

आपद्धर्म्म-प्रकरण।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा धान्य-कोष आदि संग्रहसे रहित दीर्घसूत्र, बन्धु बध भयके कारण किलेसे बाहर निकलके युद्ध करनेमें असमर्थ, सदा शङ्कित, जिसके बिचारको दूसरे लोगोंने सुना है, शत्रुओंने जिसके राज्यको विभाग कर लिया है, जो विषय रहित है, और मित्रोंको सब तरहसे सम्मान पूर्व्वक अपने वश करनेमें समर्थ नहीं हैं, जिसके सेवक लोग शत्रुओंके वशमें हुए शत्रु लोग जिसके सम्मुख वर्त्ती होरहे हैं, स्वयं निर्व्वल होनेसे प्रबल वैरीके जरिये जिसका चित्त व्याकुल हुआ है; उसे अन्तमें क्या करना उचित हैं, वह कहिये।

भीष्म बोले, विजयके निमित्त बाहर हुए विजगीषु राजा यदि धर्म्मपूर्व्वक धन प्राप्त करनेमें निपुण और पवित्र हो, तो शत्रुसे विजित पूर्व्वभूक्त राज्यको सान्त्ववादके सहारे उससे छुड़ाके शीघ्र सन्धि स्थापित करे। जो पुरुष बलवान और पाप बुद्धि होकर अधर्म्मके अनुसार विजयकी इच्छा करता हैं, कई एकगांव दान करके उसके साथमें भी सन्धि करनेमें सम्मत होवे, अथवा राजधानी परित्याग करके द्रव्य सञ्चय दानसे भी आपदसे पार होवे। यदि राजगुणसे युक्त होकर जीवित रहे, तो द्रव्य आदि फिर प्राप्त कर सकेगा; धन और सेना परित्याग करनेसे यदि सब आपद दूर हो, तो कौन धर्म्म अर्थको जाननेवाला राजा उस विषयमें आत्मदान किया करता है? अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रियोंकी रक्षा करे, वे यदि शत्रुके अधिकारमें हुई हों, तो उस विषयमें दया करनेकी आवश्यकता नहीं है सामर्थ्य रहते किसी प्रकार भी आत्म समर्पण करना योग्य नहीं है।

युधिष्ठिर बोले, सेवक आदि कोपित, किले तथा राज्य आदि शत्रुसे आक्रान्त खजाना खाली, और मन्त्रणा प्रकाशित होनेपर अन्तमें क्या करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रु धर्म्मात्मा होनेपर शीघ्र ही उसके सङ्ग सन्धिकी इच्छा करे, ऐसा होनेसे शीघ्र ही शत्रुको दूर किया जा सकता है अथवा धर्म्म युद्धमें प्राणको त्याग करके परलोकमें गमन करना ही कल्याणकारी है। थोड़ी सेना होनेपर भी यदि वह अनुरक्त, अभिप्रेत और हर्षयुक्त हो, तो पृथ्वीपति राजा उस ही से महीमण्डल जय कर सकता है। जो युद्धमें प्राणत्यागते हैं, वे इन्द्रलोक पाते हैं। सब लोकोंमें प्रसिद्ध बुद्धिका आशरा करके युद्ध पक्ष परित्याग करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुको विश्वास होवे, उसही भाव बिनय करे, स्वयं भी समयके अनुसार शत्रुका विश्वास करे; सेवक आदिकोंके प्रतिकूल रहनेपर युद्ध करनेमें असमर्थ होनेपर राजा शान्तिबादके सहारे शत्रुको शान्त करते हुए किलेसे बाहर होकर देश देशान्तरमें कुछ समय बिताके फिर अन्तमें मन्त्रणा, अपने बलसे स्वयं राज्य जय करनेका उद्योग करे।

१३१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पृथ्वीपर जिन सब वस्तुओंको उपजीव्य करके जीवन, धारण किया जाता है, उन सबके चोरी होनेपर भी राजाओंको सब उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित हैं,—यह सब लोक-सत्कृत धर्म्म नष्ट होनेपर इस आपदके समयमें जो ब्राह्मण दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, वे कैसे उपायके जरिये जीवन धारण करेंगे?

भीष्म बोले, हे राजन्! विपदकाल उपस्थित होनेपर ब्राह्मण विज्ञान अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करें, इस जगत्में जो कुछ भोग्य वस्तु हैं, वे साधुओंके निमित्त उत्पन्न हुई हैं; दुष्टोंके वास्ते कुछ भी नहीं उत्पन्न हुई हैं। जो अपनेको अर्थागमका उपाय करके दुष्टोंसे ग्रहण करके साधुओंको दान करते हैं, वे धर्म्मोंको जानते हैं; स्थान भ्रष्ट राजा पुरुषको कोपित न करके अपने प्रजा धर्म्मकी अभिलाषा करते हुए दूसरेके धनको पालन कर्त्ताका धन समझके करें। जो विज्ञान-बलसे पवित्र रहके कार्य्य किया करते हैं; उस वृत्तिवि धीर पुरुषकी कौन निन्दा कर सकता है युधिष्ठिर! जो लोग बलपूर्व्वक वृत्ति प्राप्त हैं, दूसरी रीतिसे प्राप्त करनेकी रुचि होती। बलवान पुरुष निज तेजोप्रभाव जिविका निर्व्वाहमें प्रवृत्त होते हैं। राजा निज राज्य और परराज्यसे धन करे। इस आपद्धर्म्मके उपयोगी शास्त्रका अभ्यास करे; मेधावी राजा शास्त्र और दोनों राज्यमें स्थित धनियोंमें कदर्य्य और कार्य्यवशसे दण्डके योग्य हैं, निकटसे धन लेके कोष सञ्चय करे; इस शास्त्रको भी अविशेष भावसे वशमें करे। अत्यन्त आपदग्रस्त होनेपर भी ऋत्विक, हित, आचार्य्य और ब्राह्मणोंकी कदापि न करे, उन लोगोंकी हिंसा करनेसे दोष होना पड़ेगा। यही लोगोंको नेत्र स्वरूप तन प्रमाण है, इससे चाहे यह उत्तम हो बुरा ही होवे आपदयुक्त राजाको ऐस आचरण करना उचित है। ग्रामवासी पुरुष क्रोधके वशमें होकर राजाको किया करते हैं, परन्तु राजा उन वचन अनुसार किसीको भी पुरस्कार वा स्कार न करे। पुरोहित आदिके प्रति किसी प्रकारसे कहना वा सुनना न यदि कोई सभामें उनको निन्दा करे, तो कानोंको मूंद ले अथवा दूसरी जगह च हे नरनाथ! दूसरेकी निन्दा वा खण्डता दुष्टोंका स्वभाव-सिद्ध धर्म्म है; साधुओंके

तने ही पुरुष केवल दूसरेके गुणोंको वर्णन या करते हैं। जैसे दमनीय अच्छी तरह नेमें समर्थ दान्त और सुन्दर बैल बोझाधा- करके ढोते हैं, आपदयुक्त राजा वैसा ही व्हार करे; जैसे व्यवहारसे उसे बहुतसी ायता प्राप्त होवे, राजा वैसे ही आचारका ार करे। पण्डित लोग आचारको ही मिका श्रेष्ठ लक्षण समझते हैं। शंख और खितके मतको अवलम्बन करनेवाले ऋषि- का ऐसा अभिप्राय नहीं है, मत्सरता और भके वशसे जो वे लोग आचारको धर्म्म नहीं झते; वैसा नहीं है; ऋषि शासन ही का अनुमोदनीय है; कुकर्म्म करनेवाले पुरु- को शासन करना ही ऋषियोंने वर्णन किया परन्तु श्रेष्ठ पुरुष यदि असत् मार्गको अव- लम्बन तो उसे भी शासन करना उचित है। ा वचन यद्यपि ऋषियोंने कहा है, यह ठीक तौ भी उसके समान प्रमाण कहीं भी नहीं खता, इससे राजाओंको वैसा करना योग्य ीं है; देवता लोग ही कुकर्म्मी अधर्म पुरु- को शासन किया करते हैं। जो राजा छलसे सञ्चय करता है, वह धर्म्मसे भ्रष्ट होता है। में कहे हुए, मनु आदि स्मृतियोंमें वर्णित, और कालके अनुसार साधुओंसे आचरित ा सज्जनोंके हृदयमें स्वयं जो धर्म्म उत्पन्न ता है, राजा उसे ही अवलम्बन करे। जो शिक्षित, तर्कसे निश्चित, वार्त्ताशास्त्र सम्मत र दण्डनीति प्रसिद्ध धर्म्मोंको कह सकते हैं, ो धर्म्म जाननेवाले हैं; सांपके पैरको अन्वे- करनेकी तरह धर्म्मका मूल अन्वेषण ना अत्यन्त कठिन कर्म्म है। जैसे व्याधा विद्ध मृगके रुधिरसे भीगे हुए पावके न्हको देखकर उसके गमन करनेके मार्गको ्म करता है, धर्म्मके मार्गका अनुसन्धान रना वैसा ही है। हे युधिष्ठिर! इसी प्रकार पुरुषोंसे आचरित मार्गमें विचरण करना उचित है। महर्षियोंका इसी प्रकार चरित्र है तुम भी ऐसा ही करो।

१३२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे, क्योंकि धनसे ही धर्म्म और मूल राज्यकी बढ़ती हुआ करती है इससे धन इकट्ठा करके यत्नके सहित उसकी रक्षा करनी उचित है; और रक्षा करके उसकी वृद्धि करनी चाहिये, यही सनातन धर्म्म है। केवल पवित्रता वा नृशंसताके जरिये धन सञ्चय कभी न करना चाहिये; पवित्रता और नृशंसताके मध्यवर्त्ती होकर कोष संग्रह करना उचित है। बलहीन राजासे धन संग्रह नहीं होता, धनहीनको बल कहां? बलहीन होनेसे राज्य स्थिर नहीं रहता, राजहीनको श्री कहांसे होगी? महत् पुरुषको श्रीहानि मृत्युके समान है, इससे राजाको उचित है, कि जिस उपायसे धन, बल और मित्रोंकी बढ़ती हो, उसही विषयमें यत्नवान होवे। मनुष्य लोग धन- हीनकी अवज्ञा किया करते हैं, वे लोग अल्प धन पाके उससे सन्तुष्ट नहीं होते, और उसके कार्य्योंको करनेके वास्ते उत्साह प्रकाशित नहीं करते। राजा कोष सम्पत्तिके कारणसे ही परम सम्मानको प्राप्त होते हैं। जैसे वस्त्र स्त्रियोंके गोपनीय स्थलको छिपाता है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति भी राजाके पापोंको सम्व- रण किया करती है। पहिले राजा जिसके साथ विरोध किये रहता है, वह उसकी समृ- द्धिके समयमें अनुतापित होता है और जैसे वानरोंने विश्वास पुरुषोंके मारनेके वास्ते उनका अनुसरण किया था, उसी प्रकार उक्त पुरुष कपट आचारके जरिये राजाको नष्ट कर- नेकी इच्छासे इसका आश्रय करते हैं। भारत! जो राजा इस प्रकार है, ...

कैसे हो सकता है? इससे सब तरहसे उन्नतिके वास्ते चेष्टा करनी योग्य है; नीचा होना उचित नहीं है। क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ कहाता है, असमयमें बल्कि भागना अच्छा है, तथापि किसीके समीप नीचा होना उचित नहीं है। बनका सहारा करके मृग समूहके साथ भ्रमण करना भी अच्छा है, परन्तु मर्य्यादा-रहित दस्युओंकी भांति सेवकोंका संसर्ग करना उचित नहीं है। हे भारत! भयङ्कर कार्य्योंमें डाकूके समान सेनाका संग्रह सहजमें ही सिद्ध होता है, अत्यन्त मर्य्यादारहित होनेपर सब लोग ही व्याकुल हुआ करते हैं, और डाकू लोग भी निर्द्दयी लोगोंसे अत्यन्त शङ्कित होते हैं; इससे जो मर्य्यादा लोगोंके चित्तको प्रसन्न करे, उसे ही स्थापित करनी उचित है; धन थोड़ा रहनेपर भी जनसमाजमें मर्य्यादा पूजित हुआ करती है। इस लोक वा परलोकमें पाप-पुण्यका फल भोग करना पड़ता है, साधारण लोग इसमें बिश्वास नहीं करते हैं समभावी भयसे शङ्कित नास्तिकके मतमें बिश्वास करना उचित नहीं है। डाकुओंमें ऐसे पुरुष भी हैं, जो पराये धनको हरते हैं, परन्तु किसीकी हिंसा नहीं करते, इससे डाकू लोग मर्य्यादा-युक्त होनेपर अन्तमें सबकी रक्षा कर सकते हैं। जो पुरुष युद्ध करनेसे बिरत हुआ है, उसका बध करना, स्त्री हरना, कृतघ्नता, ब्राह्म-णोंका वित्त ग्रहण करना, सर्व्वस्व हरन करना कन्या पोषण, ग्राम आदि आक्रमण करके प्रभुत्वभावसे निवास और सम्भोगके सहित पराये स्त्रीका पतिव्रत भङ्ग डाकुओंके बिषयमें ये सब कार्य्य बिशेषरूपसे निन्दनीय हैं, इस डाकुओंको इन सब कर्म्मोंको त्यागना उचित है। हे भारत! जो लोग दस्युओंके नाशके निमित्त अभिसन्धि करते हैं वे लोग उन्हें बिश्वास उत्पन्न करके अशेष रूपसे उनके धन-सम्पत्तिको प्राप्त करके सन्धिबन्धन किया करते हैं; इससे उसका चित्त, स्त्री, पुत्र, [illegible] कुछ हो, वह सब राजाको अपने [illegible] करना उचित है। डाकुओंके साथ [illegible] उपस्थित होनेपर अपनेको बलवान उनके बिषयमें नृसंस व्यवहार करना [illegible] उचित नहीं है। जो राजा दस्युओंके स्त्री और धनसम्पत्तिकी रक्षा करते हैं, वे आप [illegible]हित होके राज्य भोग करनेमें समर्थ [illegible] और जो दस्युओंको नष्ट करते हैं, उस ही [illegible]से दूसरे डाकू लोग उन्हें सदा भय [illegible] करते हैं, इससे उन्हें आपदरहित होके [illegible] पालन करना अत्यन्त कठिन होजाता है।

१३३ अध्याय समाप्त।

इस बिषयमें इतिहासवेत्ता पण्डित [illegible] धर्म्म शासन वर्णन किया करते हैं, [illegible] क्षत्रिय राजा धर्म्म और अर्थको प्रत्यक्ष [illegible] है; प्रत्यक्ष धर्म्मका शास्त्रोक्त बिचार रूप [illegible] धर्म्मके जरिये आचरण करना उचित [illegible] पृथ्वीपर भेड़ियेके पैरका चिन्ह देखकर [illegible] भेड़ियेका पैर है, वा नहीं," ऐसे [illegible] अनुसार प्रत्यक्ष धर्म्मको अधर्म्म कहके [illegible] करना अनुचित है। इस लोकमें किसी [illegible] धर्म्मके फलको कदाचित नहीं देखा है। [illegible] फलको बलरूपसे जानना उचित है, [illegible] सब बिषय ही बलवान पुरुषके वशमें हैं। बलवान पुरुष ही धन, बल और [illegible] प्राप्त करते हैं। जो निर्द्धन है, वेही पतित [illegible] जो कुछ अल्प है, वही उच्छिष्ट कहके [illegible] जाता है। बलवान पुरुषोंके अनेक [illegible] कर्म्म करने पर भी भयके कारण कोई [illegible] कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। धर्म्म और [illegible] दोनों ही बलवान लोगोंको महत् भयसे [illegible] त्राण करते हैं। बल ही धर्म्मसे प्रबल बोध [illegible] है, क्योंकि बलसे ही धर्म्म उत्पन्न हुआ

; पृथ्वी पर जङ्गम जीवोंकी तरह बल धर्म्ममें तिष्ठित हो रहा है। जैसे धुआं वायुके वशमें कर आकाशमें उड़ जाता है उसही भांति धर्म्म का अनुसरण करता है; जैसे लता वृत्तका सरा किया करती है, वैसे ही धर्म्म बलको वलम्बन करके उसके ऊपर प्रभुता प्रकाशित हीं कर सकता। जैसे सुख भोगवानके वशमें हता है, वैसे ही धर्म्म बलवानके अधिकारमें । बलवानोंको कुछ भी असाध्य नहीं है, नके सब कार्य्य ही पवित्र है।

दुराचारी और बलहीन पुरुषके परित्रा- का उपाय नहीं है, बल्कि सब लोगही भेड़िये ी तरह उससे व्याकुल हुआ करते है। ऐश्व- रहित अवज्ञान पुरुष अत्यन्त दुःखसे जीवन ताता है; घृणित जीवन और मरना दोनों ी समान है। पुराने लोग कहते है, कि पाप रित्रोंके कारण जो पुरुष बान्धवोंसे परित्यक्त ा है, वह दूसरेके वचन रूपी शलाकासे ायल होके अत्यन्त ही दुःखित होता है। धर्म्मसे धनको प्राप्त करनेमें जो पाप होता है, सके छुड़ानेके विषयमें पहिलेके आचार्य्योंने सा कहा है, कि पापी पुरुष वेद विद्याको ालोचना, ब्राह्मणोंकी उपासना तथा मधुर चन और कार्य्योंसे उन्हें प्रसन्न करे, उदार त्तवाला होवे, महत् वंशमें विवाह करे, पनी नम्रता प्रकाशित करके दूसरेका गुण हे, स्नानशील होके जप करे, कोमल स्वभाव ारण करे, बहुत न बोले। बहुतेरे दुष्कर ार्य्योंको करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंके समीप ाश्रय ग्रहण करे; लोग यदि उसको निन्दा रें, तो बहुतसे पापोंको करनेवाला पुरुष सकी चिन्ता न करे। पापकरनेवाला पुरुष सा आचार कर सके तो शीघ्र ही पापसे ोहित और सबसे आदर युक्त होता है, इस ोक और परलोकमें महत् सम्मान लाभ रता है, और एकमात्र धर्म्मसे सब पापोंसे छोकर विचित्र महा सुख भोग करनेमें समर्थ होता है।

१३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इस स्थलमें पुराने लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, कि डाकू होके भी मर्य्यादा युक्त होने पर मरनेके अनन्तर वह नरकगामी नहीं होता। एक निषाद-स्त्रीके गर्भमें क्षत्रियके वीर्य्यसे कायव्य नाम क्षत्रिय धर्म्म पालक एक निषाद उत्पन्न हुआ था। वह दस्यु होने पर भी बुद्धिमान्, शूर, शास्त्रज्ञ और अनृशंस होनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके धर्म्मकी रक्षा, ब्राह्मणोंका हित साधन और गुरुजनोंका सम्मान करता था; इन्हीं सब कारणोंसे उसने सिद्धि लाभ की थी। वह प्रति- दिन सबेरे और सामके समय मृगोंको उत्तेजित करता था, निषादोंके बीच वह मृग विज्ञान विषयमें अत्यन्त पण्डित था; देश कालके विचा- रका विषय भी उससे छिपा नहीं था। वह सदा पारिपात्र पर्व्वत पर घूमते हुए सब जीवोंके धर्म्मको जानता था उसके सब बाण अमोघ और अस्त्र दृढ़ थे। वह अकेले ही कई सौ सेना जय करता था, महा वनके बीच बूढ़े, अन्धे और बहिरोंका सम्मान करता, सत्कार करके उन्हें मधु मांस फल तथा मूल भोजन कराता और माननीय लोगोंकी सेवा करता था, बनवासी सन्यासी ब्राह्मणोंकी पूजा करता, सदा मृगोंको मारके उन लोगोंको दान करता था। जो लोग लोक-भयसे उस दस्युसे मांस दान नहीं लेते थे, वह बड़े सबेरे उठके उनके घरमें मांस आदि रख आता था। एक समय दयारहित और मर्य्यादा हीन कई हजार डाकूगण उसके निकट आके उसे अपना अधिदान करनेकी प्रार्थना की। डाकू लोग बोले, आ काल और मुहूर्त्तको विशेष रूपसे

आप बुद्धिमान, महाबलवान और दृढ़व्रती हैं, इससे हम सब लोगोंका यह अभिप्राय है, कि आप हमारे मुख्य ग्रामाध्यक्ष होवें। आप हमको जो आज्ञा देंगे, हम लोग वही करेंगे, इससे माता पिताकी तरह आप हम लोगोंको न्यायके अनुसार प्रतिपालन करिये।

कायव्य बोला, हे डाकूवृन्द! तुम लोग स्त्री, तपस्वी, डरानेक और बालकोंका बध न करना, जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका बध करना उचित नहीं है; बलपूर्व्वक स्त्रियोंको ग्रहण करना योग्य नहीं है; सब जीवोंके बीच कोई पुरुष ही स्त्रीबधकी विधि नहीं कहते। सदा ब्राह्मणोंका मङ्गल साधन और उन लोगोंको धन दान करनेके निमित्त दूसरोंसे युद्ध करना योग्य है, शस्य हरण करना उचित नहीं; विवाह आदि कार्य्योंमें विघ्न न करना सब जीवोंके बीच जिसके निकट देवता, पितर और अतिथि पूजित होते हैं, वेही ब्राह्मण वा मोक्षमार्गके अधिकारी है, सब वस्तुओंके दानसे जिस प्रकार उसकी उन्नति होवे, सब तरहसे वही करना योग्य है; ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके जिसके पराभव विषयकी मन्त्रणा करते हैं, तीनों लोकके बीच कोई भी उसका त्राता नहीं होता। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करे, अथवा उनके नाशकी इच्छा करे; अन्धकारमें सूर्य्य उदय होनेकी तरह निश्चय ही उसकी पराजय होती है। तुम लोग इस ही स्थानमें वास करते हुए सब फल प्राप्तिकी अभिलाषा करना, जो बनिये हम लोगोंका दान न करेंगे। उनकी ओर सेना भेजी जावेगी। जो लोग शिष्टोंको शासन करते हैं, और उन लोगोंको बधरूपी दण्ड विहित है। जो लोग राजाके विषयमें उपद्रव करके जिस किसी उपायसे होवे, धनकी वृद्धि करते हैं, वे लोग दुःखप्रद कृमि समूहकी तरह थोड़े ही समयमें बध्य रूपसे गिने जाते हैं। जो सब डाकू लोग इस वनमें धर्म्मशास्त्रके अनुसार जीवन बिताते हैं, वे डाकू होनेपर भी शीघ्र ही सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ होंगे।

भीष्म बोले, उन सब डाकुओंने, शासनको प्रतिपालन किया था, उससे सब उन्नति लाभ करके पापकर्म्मोंसे विरत हुए। कायव्यने साधुओंके विषयमें मङ्गल और डाकुओंको पापसे निवर्त्तन किया इससे उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, हे राजन्! जो लोग इस कायव्यके चरित्र विषयको विचारते हैं, उन्हें वनवासी प्राणियोंसे कुछ भय नहीं होता। अधिक क्या कहें, सब प्राणियोंसे ही कुछ भय नहीं होता; वे बीच राजा होकर निश्चित रूपसे निवास सकते हैं।

१३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा लोग जिस उपाय जरिये कोष सञ्चय किया करते हैं उस वि· प्राचीन वृत्तान्तोंके जाननेवाले पण्डित ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते कि यज्ञ करनेवाले ऋषियोंका धन और हरण करना उचित नहीं है; क्षत्रिय डाकू और क्रियाहीन लोगोंके धनको हरण सकते हैं। हे भारत! क्षत्रियोंको ही इस प्रजाओंको पालन करने और राज्य अधिकार है, इससे सब धन ही क्षत्रि अधिकृत है दूसरेके नहीं। वह धन र बल अथवा यज्ञका कारण हुआ करता जैसे लोग अभोग औषधियोंको काटके भोगार्थ वस्तुओंको पाक किया करते हैं, ही दुष्टोंकी हिंसा करके साधुओंको प्र लन करो। जो पुरुष देवता, पितर और म र्थोंकी हविके जरिये अर्चना करता है, जाननेवाले पुरुष उसके अर्थको अनर्थक करते हैं। हे राजन्! धार्म्मिक राजा वही

…ण करे और उससे सब लोगोंको प्रसन्न करे; …। धनसे कोष सञ्चय न करे। जो अपनेको …ागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन लेके साधु …को दान करते हैं, वेही सब धर्म्मोंके जान-…ाले हैं। जिसकी जैसी शक्ति है, वे उसहीके …नुसार परलोक जय करें। उद्भिज और वक्र-…ट आदि जीव जैसे विना कारणके ही उत्पन्न …के विरहत होते हैं; यज्ञ भी वैसे ही उत्पन्न …के क्रमसे प्रसारित हुआ करता है। जैसे गज …दिके शरीरसे दंस, मसक और चींटी …दिको पृथक् किया जाता है, अयाज्ञिक पुरु-…। विषयमें वैसा ही व्यवहार करना उचित …; यह धर्म्मानुसार विहित होता है। जैसे …मिपर पड़ा हुआ पांशु पत्थर आदिसे पिस-…र अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है, इस लोकमें धर्म्म …। उसी प्रकार सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है।

१२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! कार्य्य उपस्थित …नेसे पहिले जो लोग उसके भावी फलको …चारते हैं, उनका नाम अनागत विधाता है; …र्य्य उपस्थित होनेपर जो लोग बुद्धि बलसे …सिद्ध करते हैं, उनका नाम प्रत्युत्पन्नमति …और उपस्थित कार्य्यमें आलसके वशमें होके …लोग समय विताकर विड़म्बित होते हैं, …नका नाम दीर्घ सूत्र है। इस भूमण्डलपर …पर वसे हुए तीन प्रकारके लोगोंके बीच …नागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति, ये दोनों …हुए ही सुखलाभ किया करते हैं और दीर्घ-…त्र पुरुष शीघ्र ही नष्ट होता है। इस समय …दीर्घसूत्रको अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्य …रूप विषयमें एक उत्तम उपाख्यान करता …, एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे कुरुनन्दन! …कम भी मछलियोंसे परिपूरित स्वल्प जलसे …क किसी एक तालावमें सङ्ग नामकी तीन मछली सुहृदताके सहित आपसमें सङ्गी होकर वास करती थीं। उन तीनों सङ्गियोंके बीच पहिली अनागत विधाता दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और तीसरी दीर्घसूत्र थी। किसी समय मत्स्य-जीवी मछवाहोंने अनेक तरहसे जल निकलनेके मार्गके जरिये उस तालावके जलको निम्न प्रदे-शसे निकालनेका यत्न किया था। कार्य्य उप-स्थित होनेपर क्रमसे उस तालावका जल थोड़ा होने लगा। उसे देखकर दीर्घदर्शी अनागत विधाता भयके कारण दूसरे दोनों मित्रोंसे बोली कि "सब जलचारोंकी यह आपद उपस्थित हुई है इससे जबतक जल निकलनेका मार्ग दूषित नहीं होता है, उतने ही समयमें जितनी जलदी होसके, हम लोग दूसरी जगह गमन करें। जो अनागत अनर्थको उत्तम नीतिसे निवारण करते हैं, वे कभी संशययुक्त नहीं होते; इससे तुम लोगोंकी इस विषयमें अभिरुचि होवे, मैं जाती हूं।" ऐसा वचन सुनके दीर्घसूत्र बोली। हे भाई! तुम उत्तम कहती हो, परन्तु मेरा निश्चित विचार यह है, कि किसी विषयमें शीघ्रता करनी उचित नहीं है। अनन्तर प्रत्युत्पन्नमति दीर्घ दर्शीसे बोला, समय उपस्थित होनेपर मैं न्यायके अनुसार किसी कर्त्तव्य विषयको परित्याग नहीं करती। महा बुद्धिमान दीर्घदर्शी ऐसा वचन सुनकर उस ही स्रोतके जलसे निकलकर किसी गहरे तालावमें चली गई। अनन्तर मछुवाहोंने जब देखा, कि इस तालावका सब जल निकल गया, तब अनेक उपायके जरिये सब मछलि-योंको बांध लिया। उस जलाशयके जल निक-लने तथा विलोड़ित होनेके समय दीर्घसूत्र अन्य जलचरोंके सहित जालमें बंधा। मछुवा-होंने उस समय शनकी डोरीसे सब मछलियोंको गूंथना प्रारम्भ किया, प्रत्युत्पन्नमतिने उनके बीच प्रवेश करके मुखसे पहिले डोरी पकड़के …स्थित हुआ। जालजीवियोंने सब …

गुंथी हुई समझा। अनन्तर जब बड़े तालाबमें सब मछलियें धोई जाने लगीं, तब पूर्व्वोक्त प्रत्युत्पन्नमति रस्सी छोड़के शीघ्र भाग गई और बुद्धिहीन ज्ञान रहित मन्दात्मा मूढ़ दीर्घसूत्र नष्टेन्द्रिय लोगोंकी तरह नष्ट हुई। इसी प्रकार जो पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर उसे मोहके बशमें होकर नहीं जान सकते,वे दीर्घसूत्र मछलीकी तरह शीघ्र ही नष्ट होते हैं। "मैं अत्यन्त बुद्धिमान हूं,"—ऐसा समझके जो पुरुष पहिलेसे अपने कल्याणका मार्ग ठीक नहीं करता वह प्रत्युत्पन्नमतिकी तरह संशयसे युक्त हुआ करता है। अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्न ये दोनों ही सुखलाभ करते है, और दीर्घसूत्र पुरुष नष्ट होता है। काष्टा, कला, मुहूर्त्त दिन, रात्रि, लव, महीना, पक्ष, ऋतु कल्प, सम्बत्सर, पृथिवी और देश आदि काल नामसे वर्णित हुआ करते हैं; परन्तु वह दीख नहीं पड़ते। अभिलषित विषयकी सिद्धिके निमित्त जिसकी जैसी चिन्ता की जाती है; वह उस ही रीतिसे सिद्ध हुआ करता है। धर्म्म अर्थ और मोक्ष विषयक सब शास्त्रोंमें महर्षियोंके जरिये दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्न मति प्रधान रूपसे वर्णित हुए और वे समय पर सब पुरुषोंके ही अभिमत हुआ करते है, जो परीक्षा पूर्व्वक कार्य्य सिद्ध करते हैं और जो लोग युक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको पूरा करते हैं, वे देशकालके अनुसार सब लोगोंसे सम्मत होके दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्नमतिसे भी अधिक फल पाते हैं।

१३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ। सब विषयोंमें ही अपनी बुद्धिश्रेष्ठ है. यह वर्णित हुई है; अनागत और उत्पन्ना बुद्धि ही उत्तम है और दीर्घसत्री बुद्धि नाश करने वाली है। हे भरतकुलधुरन्धर! इससे इस समय आपकी बुद्धिके विषयकी सुननेकी इच्छा करता जिसे अवलम्बन करनेसे राजा शत्रुओंसे भी मोहको नहीं प्राप्त होते। हे कुरुश्रेष्ठ। धर्म्मार्थ विषयकी व्याख्या करनेमें निपुण, शास्त्रके जाननेवाले और बुद्धिमान हैं, इससे जो कुछ पूछता हूं, उसे मेरे समीप करना आपको उचित है। राजा अनेक श्र ओंसे घिर कर जिस प्रकार निवास करें, सब विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता। राजाके अत्यन्त बिपद युक्त होने पर दुःखित हुए शत्रु लोग इकट्ठे होके पराजयके लिये यत्नवान होते हैं। म युक्त राजा लोग जब सहाय रहित, निर्व्वल राजाको आक्रमण करनेका यत्न तो वह किस प्रकार स्थिति करनेमें [illegible] होगा? हे भरतश्रेष्ठ! किस तरह व और मित्र लाभ करते और शत्रु तथा [illegible] बीच उन्हें कैसी चेष्टा करनी उचित है? लक्षण युक्त सुहृद यदि शत्रु बन जावें, उसके बिषयमें कैसा व्यवहार करें और आचरण करके सुखी होते हैं? राजा साथ बिग्रह करे, और किसके सङ्ग सन्धि करे तथा बलवान होने पर भी शत्रुओंके किस प्रकार निवास करे। हे महाभाग शत्रु, पन! सब कर्त्तव्य विषयोंमें इसे ही आप समझाके मुझसे कहिये; सत्यसन्धि शान्तनु भीष्मके अतिरिक्त इस विषयका वक्ता कोई भी नहीं है, और इसका श्रोता भी दुर्लभ है।

भीष्म बोले, हे भरतकुल तिलक युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया वह युक्त और उसके सुननेसे सुख उत्पन्न होता इससे आपदकालमें जैसा कार्य्य करना वह सब-गुप्त विषय कहता हूं, सुनो। क सामर्थ निबन्धनसे शत्रु भी मित्र बन जाता

…व भी शत्रुभावसे दूषित होता है; इससे …र्थकी गति सदा ही अनित्य है; तब कर्त्त- …कर्त्तव्य विषयको विशेषरूपसे निश्चय करना …, तो देशकालका विचार करके किसीके …षयमें विश्वास करना और किसीके साथ …ग्रह करना उचित है। हे भारत! हितैषी …ण्डतोंके साथको मित्रता करके भी सन्धि …रनी उचित है और प्राणरक्षाकेवास्ते शत्रुके …थ भी सन्धि करनी योग्य है। जो मूर्ख पुरुष …त्रुओंके साथ सन्धि स्थापित नहीं करते, वे …ई अर्थ वा फल लाभ नहीं कर सकते और … पुरुष अर्थयुक्ति अवलम्बन करके समयके …नुसार शत्रुओंके साथ सन्धि और मित्रोंके … विरोध करते हैं, महत् फल लाभ करते … प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डित लोग … विषयमें किसी वटवृक्षके निकटमें स्थित …ड़ाल और मूषिकको सम्वादयुक्त प्राचीन इति- …सका प्रमाण दिया करते हैं। किसी महावनके …व अनेक तरहके पक्षियोंसे युक्त, लतासमूहसे …रा हुआ, बहुत बड़े शाखा और बादलकी …ह शीतल छायासे युक्त। सब वनमें व्याप्त …ल और मृगसमूहसे परिपूरित बहुत बड़ा …ोहर वटका वृक्ष था। पलित नाम एक …ाबुद्धिमान मूषिक उसकी मूलस्थलके अव- …बसे सौ दरवाजेको बिल बनाकर उसमें वास …ता था। और पक्षियोंको भक्षण करनेवाला …मश नाम बिड़ाल पहिलेसे ही उस वृक्षकी …ाखा सहारा करके परम सुखसे निवास …रता था। वनवासी कोई चाण्डाल प्रतिदिन …य अस्त होनेपर उस वट वृक्षके समीप आके …पक्षियोंके बन्धनके निमित्त फांसयन्त्र विस्तार …या करता था वह वहांपर यन्त्र रोपके तात- … उसको विद्याके घरमें जाकर सुखसे सोता …र रात बीतनेपर सबेरे वहां आके … …ता था. रातके समय अनेक तरहके मृग उस …जालमें बंध जाया करते थे किसी दिन

वह बिड़ाल प्रमादरहित होके भी उस जालमें बंध गया था। सदा आततायी शत्रु उस महा-बुद्धिमान बिड़ालके बंधने पर पलित नाम चूहा अवसर पाके निर्भयताके सहित घूमने लगा। मूषिक विश्वस्तभावसे उस वनके बीच भक्ष्यवस्तुओंको खोजते हुए घूम रहा था, कुछ समयके अनन्तर उस जालमें बंधा हुआ मांस देखा, फिर उसने जालमें बंधे हुए शत्रुके विषयमें मनही मन उपहास करते हुए कूटयन्त्रके ऊपर चढ़के मांस भक्षण करने लगा। उसने मांस भक्षणमें आसक्त होके एक महाघोर निज वैरीको समीप आते देखा। पृथ्वीपर बिलमें वास करनेवाले उस जन्तुका शरीर शर-पुष्पके समान, उसके नेत्र लालवर्ण, वह अत्यन्त चञ्चल था और उसका नाम हरितनकुल था। वह चूहेका गन्ध सूंघके शीघ्र उधर आने लगा और उसे भक्षणके वास्ते ऊर्द्धमुख होकर पृथ्वी पर स्थित रहा।

इधर उस चूहेने उस वृक्षके कोटरमें रहनेवाले क्षपाचर तीक्ष्णतुण्ड चन्द्रक नाम एक दूसरे वैरी उलूकको वृक्षकी डालियोंपर भ्रमण करते देखा। चूहा नेवला और उलूकके बीच स्थित होकर अत्यन्त भयके वशमें होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा. कि "यह अत्यन्त दुःख भय आपदके समय चारों ओरसे भय उत्पन्न और मरण सम्भव तथा मरण उपस्थित होने पर हितैषी पुरुषको कैसा कार्य्य करना चाहिये।" चूहा इसी प्रकार चारों ओरसे घिरकर सब तरफ भयका कारण देखते हुए भयसे दुःखित होके सूक्ष्म बुद्धिसे विचार करने लगा; कि विपद नष्ट होनेके उपायके जरिये … निवारण करके जीवनके समयको प्रशस्त करना उचित है, परन्तु चारों ओरसे मेरे समीप … हुए समस्त आपद उपस्थित हुई हैं। मैं यदि पृथ्वी पर … तो सहसा नकुल आके मुझे भ…

यहां पर रहनेसे उलूकके ग्रासमें पतित होना पड़ेगा और विड़ाल जालसे छूटने पर मुझे भक्षण करनेमें विलम्ब न करेगा, परन्तु मेरे समान बुद्धिमान पुरुष कभी मोहित होनेयोग्य नहीं हैं, इससे युक्ति और बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जहांतक होसकेगा, मैं अपने जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करूंगा। नीतिशास्त्रको जाननेवाले, बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष कठिन विपदमें पड़के उसमें नहीं फंसते। इस समय विड़ालसे उपकारके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं देखता हूं; परन्तु यह विषम शत्रु इस समय विपदग्रस्त हुआ है; इसका महत् उपकार करना मुझे उचित मालूम होता है। इस समय मैं तीन शत्रुओंके बीच घिरके किस प्रकार जीवन रक्षाकी आशा कर सकता हूं; इससे विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है. तौभी उसका आश्रय ग्रहण करना ही उचित मालूम होता है मैं नीति शास्त्रको अवलम्बन करके इसे हितका उपदेश प्रदान करूं, इस होके जरिये इन सब शत्रुओंको बुद्धि पूर्व्वक वञ्चना कर सकूंगा। यह मूढ़ विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, इस समय अत्यन्त विपदग्रस्त हुआ है, इससे स्वार्थ साधन करनेके लिये सङ्गतिके क्रमसे यदि इसे सम्मत कर सकूं, तभी जीवनकी रक्षा होगी। यह इस समय विपदग्रस्त हुआ है, इससे मेरे साथ सन्धि करनेसे कर भी सकता है। बलवान पुरुष विषम विपदमें पड़नेसे जीवनकी रक्षाके निमित्त सन्निकृष्ट शत्रुके साथ सन्धि करें, ऐसा प्राचीन आर्य्य लोग कहा करते हैं, पण्डित शत्रु भी अच्छा है; मूर्ख मित्र कदापि उत्तम नहीं है। इस समय शत्रु, विड़ालके निकट मेरा जीवन प्रतिष्ठित हैं; जो हो, मैं इससे आत्म मुक्तिका उपाय कहूंगा, यह शत्रु मूर्ख होने पर भी मेरे सहवासके कारण पण्डित हो सकेगा। चूहा शत्रुओंसे घिरकर इसी प्रकार चिन्ता करने लगा।

अनन्तर सन्धि विग्रहके समय और सिद्धिके उपायको जाननेवाला चूहा धीरे विड़ालसे यह वचन बोला, हे विड़ाल! मैं दयाभावसे तुमसे कहता हूं, कि तुम जीवित न? मैं तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो, ऐसे हो, करता हूं, क्यों कि वह हम दोनोंके कल्याणकारी है, हे प्रिय दर्शन। तुम भय करो, सुखपूर्व्वक जीवित रहोगे। तुम यदि हिंसा करनेकी इच्छा न करो, तो मैं तुम्हें इसे छुड़ाऊंगा। इस विषयमें कोई उपाय है, और मेरे अन्तःकरणमें मालूम है, जिसके जरिये तुम मेरे सहारे छूटोगे, और मैं भी कल्याण लाभ कर सकूं आत्मबुद्धि विचारसे मैंने अपने और कल्याण सिद्धिके वास्ते ऐसा उपाय देखा। वह मेरे और तुम्हारे दोनोंके ही वास्ते कल्याणकारी है। हे विड़ाल! यह नकुल उलूक पापबुद्धि अवलम्बन करके मेरे वर्त्तमान हैं, ये दोनों यदि मुझे आक्रमण कर सकें, तभी इस समय मेरा मङ्गल है। वृक्षकी डालके ऊपर बैठा हुआ चञ्चल वाला पापात्मा उलूक चिल्लाते हुए मुझे रहा है, इससे मैं उसके भयसे अत्यन्त होरहा हूं। साधुओंकी आपसमें सप्त पद रण पूर्व्वक आलापसे ही मित्रता होती है, मेरे वही मित्र और पण्डित हो, मैं तुम्हारे यथार्थ मित्रका कार्य्य करूंगा, अब तुम्हें भय नहीं है। हे विड़ाल! तुम मेरे बि जालको काटनेमें समर्थ न होगे, यदि मेरी न करो, तो मैं तुम्हारा समस्त पाश काट तुम इस वृक्षके अग्रभाग और मैं इसके अवलम्बन करके वास कर रहा हूं हम ही बहुत दिनोंसे इस वृक्षका आश्रय वास कर रहे हैं, वह तुमसे छिपा नहीं जो पुरुष किसीका विश्वास नहीं करता जिसका कोई विश्वास नहीं करते वे

प्रचित्त दोनों पुरुषोंकी पण्डित लोग प्रशंसा नहीं करते, इसलिये हम लोगोंके सदाका विवास और प्रीति परिवर्द्धित हो; प्रयोजनका विषय बीतनेपर पण्डित लोग निन्दा किया करते हैं इससे इस विषयमें यही यथार्थ युक्ति समझो, यदि मेरे जीवन रक्षाके अभिलाषी होगे, मैं भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा करनेके वास्ते यत्न करूंगा। कोई मनुष्य काठके सहारे अत्यन्त गहरी महानदी पार होता है, वैसे ही हम दोनोंके मिलापका परिणाम सुखप्रद होवे तुम्हें जालसे छुड़ाऊंगा, तुम भी मुझे विपदसे बचाओगे। मूषिकवर पलित इसी प्रकार दोनोंके हितकर युक्तियुक्त ग्रहणीय वचन कहके समयकी अपेक्षा करते हुए देखने लगा। अनन्तर चूहेका शत्रु विचक्षण विड़ाल उसका युक्तियुक्त सुनने योग्य सुन्दर वचन सुनके उत्तर दिया; और वह बुद्धिमान तथा वाक्यनिपुण विड़ाल चूहेके वचनको सुनके और अपनी अवस्था देखके सन्धि करनेमें सम्मत हुआ। अन्तमें तीक्ष्ण दांत और वैदूर्य्यनेत्र विड़ाल मुख्य लोमश चूहेको धीरे धीरे देखके बोला। हे प्रियदर्शन! तुम्हारा कल्याण होवे, जो मेरे जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करते हो इससे मैं अत्यन्त ही आनन्दित हुआ हूं यदि परित्राणका उपाय जानते हो, तो करो, विलम्ब मत करो। मैं आपदग्रस्त हूं और तुम मुझसे अधिक आपदमें पड़े हो, इससे दोनों आपद्ग्रस्तोंकी सन्धि होवे, विलम्बका प्रयोजन नहीं है। समयपर जिसमें कार्य्य सिद्धि हो, वही करो, मैं इस कष्टकारी विपदसे छूटनेपर तुम्हारे किये हुए उपकारको व्यर्थ नहीं होने दूंगा। मैं मान त्यागके तुम्हारा अनुरक्त भक्त, शिष्य, हितकारी होकर शरणागत हुआ हूं। मूषिकवर पलितने विड़ालका ऐसा वचन सुनके अपने वशमें आनेवाले विश्वस्त विड़ालसे ऐसे हितकर वचनमें बोला, कि आपने जो उदार वचन कहे, वह तुम्हारे समान पुरुषके विषयमें विचित्र नहीं है, दोनोंके हितके निमित्त मैंने जिस उपायका विधान किया है, वह मुझसे सुनो। नेवलसे मुझे अत्यन्त भय लगता है, इससे मैं तुम्हारे समीप बैठता हूं, मैं तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हूं; इससे आप मेरी रक्षा कीजिये, बध न करना; क्षुद्राशय उल्लू मुझे आक्रमण करनेकी आशा करता है, इससे उससे मुझे बचाओ। हे मित्र! मैं सत्यपूर्व्वक शपथ करता हूं, कि तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा।

लोमशने पलित चूहेका युक्ति और अर्थ-युक्त वचन सुनके हर्षके वशमें होकर उसे देखके स्वागत वचनसे सम्मानित किया। अनन्तर वह वीरवर विड़ाल सुहृद्भावसे स्थित हो प्रसन्नता और मोदयुक्तासे पलितको सम्मानित करके विशेष चिन्ताके अनन्तर बोला, हे मित्र! जलदी आओ, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम मेरे प्राण समान सखा हो। हे बुद्धिमान! तुम्हारी ही कृपासे मैं जीवन लाभ करूंगा। इस सङ्कटके समयमें मैं तुम्हारा जो कुछ उपकार कर सकूं, उसकी तुम आज्ञा करो; मैं वैसा ही करूंगा। हे मित्र! हम दोनोंमें सन्धि रहे, इस विपदसे छूटनेपर मैं मित्रों और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम्हारा जो कुछ प्रिय और हितकर कार्य्य होगा, वह सब सिद्ध करूंगा। हे प्रियदर्शन! इस विपदसे छूटनेपर मैं तुम्हारा प्रसन्नता तथा सत्कार साधन करूंगा। उपकृत पुरुष बहुतसा प्रत्युपकार करके भी पूर्व्व उपकारकी समानता नहीं कर सकता। उपकृत पुरुष पहिले उपकारका कारण करके प्रत्युपकार किया करता है, और प्रथम उपकर्त्ता निष्कारण ही उपकार करता है।

भीष्म बोले, चूहेने स्वार्थसाधनके निमित्त विड़ालको इस प्रकार सन्तुष्ट करके निःशङ्क होके उस कल्याण करनेवालेके गोदमें

किया। बुद्धिमान चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार आश्वासित होकर पिता माताकी तरह विश्वस्त होकर उसकी छातीपर शयन किया। नकुल और उल्लू चूहेको बिड़ालके शरीरमें लीन होते देखकर निराश हुए और उन दोनोंकी परम प्रीति देखके अत्यन्त भयभीत तथा बिस्मययुक्त होगये। वे लोग बलवान, बुद्धिमान, सत्स्वभाव और सन्निहित होके भी बलपूर्व्वक चूहेको आक्रमण करनेमें असमर्थ होगये। उल्लू और नकुल बिड़ाल और चूहेको कार्य्यवससे सन्धि करते देखकर दोनों ही शीघ्र ही निज स्थानपर चले गये।

हे महाराज! अनन्तर देशकालका जाननेवाला पलितला समयकी उपेक्षा करते हुए थोड़ा थोड़ा बिड़ालके शरीरके पाशको काटने लगा। अनन्तर बिड़ाल बन्धनके दुःखसे अत्यन्त क्लेशित रहके चूहेको पाश काटनेमें बिलम्ब करते देखकर आतुरताके सहित शीघ्रता करने लगा।

बिड़ाल बोला, हे मित्र! तुम बिलम्ब क्यों करते हो? स्वयं कृतकार्य्य होकर क्या तुम मेरी अवज्ञा करते हो। हे शत्रुनाशन! व्याधा आगे आरहा है, इससे तुम जल्दी पाश काटो। शीघ्रता करनेवाले बिड़ालके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान पलित चूहेने अपक्कबुद्धि बिड़ालसे पथ्य और आत्महितकर बचन कहा। हे प्रियदर्शन! तुम मौनभावसे रहो, शीघ्रता और भय करना, तुम्हें उचित नहीं है, मैं समयज्ञ हूं इससे प्रकृत समय परित्याग नहीं करता। हे मित्र! असमयमें आरम्भ कार्य्य करनेवालेका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वह कार्य्य ही समयपर न होनेसे महत् भय उत्पन्न करता है तुम्हारे असमयमें बन्धनसे छूटनेपर तुमसे मुझे भयकी सम्भावना है, इससे समयकी प्रतीक्षा करो, शीघ्रता क्यों करते हो? शस्त्रधारी चाण्डालको जब आते देखोगे, तभी हम लोगोंकी ज्योंही भय होगा; त्योंही तुम्हारे पाशको काट दूंगा; उस ही समय तुम बन्धनसे छूटके ऊपर चढ़ोगे, तुम्हारे जीवन रक्षाके मुझे दूसरा कोई भी कार्य्य नहीं है। हे तुम्हारे त्रसित तथा डरकर बिलमें प्रवेश करूंगा; तुम भी वृक्षको अवलम्बन करोगे। चूहेने जब आत्महितनके निमित्त बिड़ालसे ऐसा कहा, तब इच्छा करनेवाला वाक्य तत्त्वज्ञ लोमश आत्मकार्य्यकी पूर्ण रीतिसे सिद्ध निमित्त शीघ्रता करके पाशको काटनेमें करनेवाले चूहेसे बोला, मित्र साधु लोग पूर्व्वक इस प्रकार मित्रका कार्य्य नहीं मैंने जैसे शीघ्रताके सहित तुम्हें बिपदसे किया, तुम्हें भी वैसे ही शीघ्रताके सहित हित साधन करना उचित है। हे इस समय जिससे हम दोनोंका कल्याण तुम उस विषयमें यत्नवान करो; अथवा तुम पहिले बैरको स्मरण करके समय खोगे, तो इस पापके कारण विशेष रूपसे अपनी आयुको नष्ट होती देखोगे। यदि नताके कारण पहिले मैंने कुछ पाप किया हो, तो उसे तुम स्मरण मत क्षमा प्रार्थना करता हूं, तुम मेरे ऊपर हो जावो। बिड़ालके ऐसा कहने पर जाननेवाला बुद्धिमान विज्ञ चूहा उस उससे यह हितकर बचन बोला। बिड़ाल! तुमने निज प्रयोजन सिद्धिके व्याकुल होके जो सब बचन कहा, सुना है; और मैंने भी अपने प्रयोजन अभिलाषासे कातर होके तुमसे जो का उसे तुम जानते हो। जो मित्र अत्यन्त और जो भयसे बिचलित है, सांपके मुखसे हाथ बचनेकी तरह उसकी यथा रीतिसे करनी उचित है। जो पुरुष बलवानके सन्धि करके आत्मरक्षाका उपाय नहीं उसके भुक्त अन्न आदि अपथ्य वस्तुकी

कारक नहीं होते। इस जगत्‌में बिना कार-
ा कोई पुरुष किसीका मित्र वा सुहृत् नहीं
ा; स्वार्थ साधनकेही निमित्त शत्रु मित्रोंका
टन हुआ करता है। जैसे पाले हुए हाथि-
े जङ्गली हाथियोंको बांधते हैं, वैसे ही
र्थके सहारे ही स्वार्थ साधन हुआ करता है,
र्थ हो जानेपर कोई करनेवालेको ओर
ीं देखता; इससे सब कार्य्योंको ही विशेष
तिसे करना योग्य है। हे लोमश! तुम उस
य व्याधाके भयसे भागनेमें तत्पर होगे,
से मुझे पकड़ न सकोगे। मैंने अनेक
ोंको काट दिया है, अब केवल एक ही
 बाकी है; उसे भी जल्दी काटूंगा, तुम
चिन्त रहो। विपदयुक्त चूहा और बिड़ालके
 प्रकार वार्त्तालाप करते हुए रात्रि बीत
 सवेरा हुआ। रात्रि बीतकर सवेरा होनेपर
मशके हृदयमें भय उत्पन्न होने लगा। अन-
 भोरके समय एक विकृत-रूपवाला, कृष्ण
ल वर्ण, स्थूल नितम्ववाला, केशरहित रुक्ष-
, ऊंचे कानोंसे युक्त, वृहत् वक्त्र कुत्तोंके
हसे घिरा हुआ, मलिन, बदसूरत और
में शस्त्र लिये हुए परिघ नाम चाण्डाल
 पड़ा। बिड़ाल उस यमदूतके समान
ालको देखकर त्रस्तचित्त तथा भयभीत
 चूहेसे बोला, मित्र! इस समय क्या करोगे?
 बिड़ालका ऐसा वचन सुनते ही पाश
 दिया। बिड़ालने बन्धनसे छूटकर और
के महाघार भयसे मुक्त होकर उस वृक्ष
ढके उसकी शाखाका अवलम्बन किया
 [illegible] भी बिलमें घुस गया।

हे भरतश्रेष्ठ! इधर चाण्डाल [illegible]
 करके [illegible] तरफ देखके
 [illegible] निज स्थान पर चला गया।
 [illegible]
 [illegible]
 [illegible]

कहा, हे मित्र! तुम मेरे साथ क्यों बिना कुछ
वार्त्तालाप किये ही सहसा निज स्थान पर गये
हो? तुमने मेरा जैसा उपकार किया है, वह
मुझे सदाके वास्ते स्मरणीय है और मैं तुम्हारा
उपकार करनेमें समर्थ हूं; इसे जान कर भी
तुम मेरी शङ्का तो नहीं करते हो? हे मित्र!
तुम मेरे विश्वास पात्र होके प्राणदान करके
सुख भोगके समय निकट क्यों नहीं आते हो?
जो पुरुष पहिले मित्रता करके फिर उसका
अनुष्ठान नहीं करता, वह नीचबुद्धि कष्टकारी
आपदके समय मित्र लाभ करनेमें समर्थ नहीं
होता। हे मित्र! तुमने सामर्थ्यके अनुसार मेरा
सत्कार किया है, मैंने भी आत्म सुखमें आसक्त
होकर तुम्हारे साथ मित्रता की है, इससे मेरे
साथ सुख भोग करना तुम्हें उचित है। मेरे
जो सब बन्धुबान्धव, सम्बन्धी आदि आत्मीय हैं,
वे सब इस प्रकार तुम्हारा सम्मान करेंगे, जैसे
शिष्य लोग गुरुकी सेवा करते हैं, तुम मेरे
प्राणदाता हो, इससे मैं भी तुम्हारा और
तुम्हारे बन्धु, बान्धवोंका सम्मान करूंगा;
कौन कृतज्ञ पुरुष अपने जीवन दाताकी, पूजा
नहीं करता? तुम मेरे शरीर, घर तथा सब
धनके स्वामी बनो और मुझे सत् उपदेश
प्रदान करो। हे बुद्धिमान्! तुम मेरे अमात्य
बनो और पिताकी तरह मुझे बुद्धि दान किया
करो। मैंने अपने जीवनका शपथ करके कहा
है कि मुझसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है। तुम
बुद्धि कौशलमें साक्षात् [illegible] हो, इससे
मन्त्रबलसे मेरा जीवन दान करके तुमने हम
लोगोंके ऊपर अधिकार किया है। बिड़ालने
इसी प्रकार चूहेसे [illegible] कहा, तब इस-
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

विशेष रूपसे मालूम करना उचित है, इससे ही लोग प्राज्ञ सम्मत अत्यन्त सूक्ष्म विषय कहा करते हैं। शत्रुरूपी मित्रों और मित्ररूपी शत्रुओंके साथ सन्धि होने पर भी काम क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष उसे प्रकृत रीतिसे मालूम नहीं कर सकते। इस जगत्में कभी स्वाभाविकही कोई किसीका मित्र वा शत्रु नहीं होता, कार्य्य वशसे ही मित्र और शत्रु हुआ करते है। जो पुरुष निज प्रयोजन सिद्धिके वास्ते जिसे अवलम्बन करके जीवन धारण करते हैं, यदि उसकी पीड़ा देखें, तो प्राण त्याग किया करते हैं, जबतक उस भावका विपर्य्यय नहीं होता, तबतक वह उसके मित्र हुआ करते हैं। सुहृदता और शत्रुता स्थिर नहीं रहती; प्रयोजनसे ही शत्रु वा मित्र हुआ करते हैं। कालक्रमसे मित्र भी शत्रु होता और शत्रु भी मित्र हुआ करता है, इससे स्वार्थ ही बलवान है। जो पुरुष प्रयोजन न जानके मित्रोंका विश्वास करता है, वह शत्रुओंके विषयमें अविश्वास स्थापित किया करता है, उसका जीवन विचलित होता है। शत्रु वा मित्रके विषयमें प्रयोजन न जानके जो पुरुष प्रसन्न-चित्त होता है, उसकी भी बुद्धि विचलित होजाती है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे, विश्वासी पुरुषका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़को काटता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे सम्बन्धी और बान्धव आदि प्रयोजनके अनुसार प्रिय हुआ करते हैं। प्रिय पुत्रके पतित होने पर पिता माता उसे परित्याग करके जन समाजमें अपनी रक्षा करते हैं, इससे स्वार्थ कैसा सारवान है; उसे मालूम करो। हे बुद्धिमान! जो पुरुष किसी विपदसे छूटने पर फिर शत्रुके सुखका उपाय खोजता है; उसकी प्राय. निष्कृति नहीं होती; तुम बटवृक्षसे इस स्थान पर उतरे थे; परन्तु पहिले ही जो जालबन्धन संयोजित हुआ था; ताके कारण उसे न जान सके। मनसे दूसरा कुछ भी नहीं है, इससे दूसरेको किस प्रकार अधिक हो सकती है? चित्त चञ्चल होनेसे निश्चय ही सब कार्य्य होते हैं। इस समय तुम जो मुझसे मधुर कहते हो, वह मुझे प्रसन्न करनेवाला है, ठीक है, परन्तु मैं भी विस्तार पूर्व्वक उपायसे युक्त जो कथा कहता हूं, उसे सुनो। संसारमें लोग कारणके अनुसार ही सबके होते हैं और कारणके अनुसार ही द्वेष करता है; जीव मात्र ही प्रयोजन पर हैं, इससे विना कारणके कोई किसीका नहीं होता, दो सहोदर भाइयोंका सौभ्रात्र दम्पतिका परस्पर प्रेम जब विना कारणके है, तब इस जगत् में किसीकी प्रीति ही सङ्कुचित होती है, ऐसा नहीं देखा तब भाई और भार्य्या किसी कारणसे होनेपर भी वे लोग स्वभाविक प्रसन्न करते हैं, दूसरे लोग उस तरह प्रीतियुक्त होते। इस जगत्में कोई दानके जरिये होता है, कोई प्रिय वचनसे प्यारा बनता दूसरे कार्य्यके निमित्त मन्त्र, होम और प्रीतिलाभ करते हैं। हम दोनोंकी प्रीति कारणसे उत्पन्न हुई थी, इस समय उस णकी समाप्ति हुई है, इससे दूसरा कोई कारण रहनेपर भी वह प्रीति निवर्त्तित है। ऐसा कौनसा कारण है,—जिससे तुम्हारा प्यारा बन सकूं, विना कारणके व्यवहार करना होता है, उसे मैं विशेष जानता हूं। काल ही कारणको सुधारता कारण कभी स्वार्थसे रहित नहीं होता। मान पुरुष स्वार्थ विषयमें निपुण हैं, इससे प्राज्ञ पुरुषोंका ही अनुवर्त्तन किया करते स्वार्थको जाननेवाले विद्वान पुरुषके ऐसा वचन कहना तुम्हें उचित नहीं है।

विषयमें स्नेह प्रकाश कर सकते हो, वह ह है, परन्तु यह उस स्नेहके प्रकाशका य नहीं है; इससे स्वार्थके कारणसे मैं श्वर सन्धि-विग्रह विषयमें विलक्षण रीतिसे र हूं। यह सब सन्धि-विग्रह क्षण क्षणमें दलकी तरह अनेक प्रकारके रूप धारण ते हैं; तुम आज ही मेरे शत्रु थे, अभी रे मित्र हुए; फिर आज ही मेरे शत्रु हो; इससे सब योगोंकी कैसी चपलता है, देखो। पहिले जबतक कारण था, तबतक लोगोंकी मित्रता थी, इस समय वह मित्रता गई है, वह कालके अनुसार दूसरे किसी रणसे नहीं हो सकती। तुम स्वाभाविक ही शत्रु हो परन्तु दूसरे वैरीसे मेरी रक्षा नेकी समार्थके कारण मित्र हुए थे, उस त्रताका कार्य्य निवृत्त हुआ है। अब स्वभा- शत्रुभाव धारण किया है, इससे मैं प्राचीन र्पोंके बनाये हुए शास्त्रोंको जानके किस र तुम्हारे कृतपाशमें प्रवेश करूं? मैं हारे बलवीर्य्यके सहारे विपदसे मुक्त हुआ तुम भी मेरी सामर्थके प्रभावसे विपदसे पार हो; इससे जब आपसका अनुग्रह निवृत्त मा है, तब फिर समागम नहीं होसकता। प्रियदर्शन। इस समय तुम कृतार्थ हुए हो, ा भी प्रयोजन सिद्ध हुआ है, इससे मुझे ्या करनेके अतिरिक्त आज तुम्हारा मेरे कुछ भी कार्य्य नहीं है। मैं भक्ष्य हूं, तुम ला हो, मैं निर्ब्बल और तुम बलवान हो, समूह सम्बन्धके स्थानमें हम दोनोंकी नहीं होसकती। इस समय मैं तुम्हारे कौशल विषयमें ऐसा ही मालूम करता कि पाशसे छूटके अब तुम अनायास कर्मके ये भक्ष्य सामग्री इच्छा करते हो, तुम [illegible] हो रहे हो, और क्षुधासे पीड़ित अब मेरे सहारे मुक्त हुए हो। इस समय [illegible] करके मुझे [illegible] करना, मैं तुम्हें भूखा समझता हूं और तुम्हारे भोजनका समय भी उपस्थित हुआ है। इससे तुम मुझे ही लक्ष्य करके भक्ष्य खोज रहे हो। मित्र! तुम स्त्री-पुत्रोंके बीचमें रहके भी जब मेरे साथ सन्धि करके सेवा करनेमें यत्नवान होरहे हो; तब मैं उसमें सम्मत होनेमें समर्थ नहीं हूं। तुम्हारी प्रियभार्य्या और प्रणयीपुत्र तुम्हारे सङ्ग मुझे स्थित देखके भक्षण करनेमें क्यों विरत होंगे? समागमका कारण शेष हुआ है, इससे अब मैं फिर तुम्हारे साथ न मिलूंगा; यदि तुम कृतज्ञता स्मरण करो, तो स्वस्थ रहके मेरी कल्याणकी चिन्ता करते रहो, जो असत् शत्रु क्लेश युक्त और भूखा होकर अपना भक्ष्य खोजता है, कौन बुद्धिमान पुरुष उसके अधिकारमें गमन करता है? तुम्हारा कल्याण होवे, मैं जाता हूं। मैं तुमसे दूर रहके भी व्याकुल होता हूं। हे लोमश! इससे मैं तुम्हारे साथ न मिल सकूंगा, तुम निवृत्त रहो। और यदि तुम कृतज्ञ होनेकी अभिलाष करते हो, तो वत्सलता स्मरण करो; मेरे विश्वस्त तथा असावधान रहनेपर कभी मेरा अनुसरण न करना, ऐसा होनेसे ही सौहृद्य-रक्षा हुई।

निर्ब्बल पुरुषको बलवानके साथ संश्रव रखना कभी उत्तम नहीं है, भयका कारण शेष होनेपर भी निबल पुरुषको बलवानके समीप सदा भय करना उचित है। यदि तुम्हारा दूसरा कुछ प्रयोजन हो तो कहो क्या करूं? मैं तुम्हारी अभिलषित सब वस्तुओंको ही प्रदान कर सकता हूं परन्तु आत्म प्रदान नहीं कर सकता; अपने वास्ते पुत्र, कन्या, धन, रत्न और राज्य पर्य्यन्त परित्याग किया जासकता है, इससे सर्व्वस्व परित्याग करके भी स्वयं अपनी रक्षा करे। अपनी रक्षाके वास्ते जो सब धन रत्न आदि [illegible] शत्रुके हाथमें समर्पण किया जाता है, [illegible] रहने पर सब मर फिर [illegible]

गत हो सकता है; आत्म प्रदान करनेसे धन रत्नोंकी तरह वह फिर नहीं लौटता; इससे आत्म प्रदान किसीकी भी इष्ट नहीं है, यह मैंने जन समाजमें सुना है; इससे तुम यह सब आलोचना करके इस अध्यवसायसे निवृत्त हो जाओ। भार्य्या और धन आदिसे सदा आत्माकी रक्षा करनी उचित है, जो सब पुरुष आत्मरक्षामें तत्पर होकर विचार पूर्व्वक कार्य्य करते हैं; उन्हें निज दोष जनित आपदकी सम्भावना नहीं होती जो स्वयं निबल होनेपर भी शत्रुको भली भांति बलवान रूपसे मालूम होते हैं, उनकी शास्त्रदर्शिनी स्थिर बुद्धि कभी विचलित नहीं होती। पलित चूहाने जब मार्ज्जारकी इस प्रकार विस्पष्ट निन्दा की तब वह लज्जित होकर चूहेसे कहने लगा।

लोमश बोला, हे मित्र! मैं तुम्हारे साथ सत्य शपथ करता हूं, कि मित्रके सङ्ग अनिष्ट आचरण करना अत्यन्त निन्दित कर्म्म है, यह मै जानता हूं; इससे तुम मेरे हितकारी और बुद्धि भी वैसी ही है, यह भी मुझे अविदित नहीं है; तुमने अर्थ शास्त्रकी आलोचनाके जरिये भिन्न भाव देखके जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे दूसरी तरह मालूम करना तुम्हें उचित नहीं है। तुमने मेरा प्राणदान किया है, इस ही कारण मुझसे तुम्हारी सुहृदता हुई है। मैं धर्म्मज्ञ, गुणज्ञ, कृतज्ञ और मित्रवत्सल हूं; विशेष करके तुमपर अनुरक्त हुआ हूं; इससे मेरे साथ फिर तुम्हें ऐसा आचरण करना उचित नहीं है, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मैं बान्धवोंके सहित प्राण परित्याग कर सकता हूं, धीर लोग मेरे समान मनस्वी पुरुषका विश्वास किया करते हैं। इससे हे धर्म्मतत्त्वके जाननेवाले! मेरे विषयमें तुम्हें शङ्का करनी उचित नहीं है। चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार प्रशंसित होकर उसे मानसिक भावसे पूरित गम्भीर वचनसे कहा, हे मित्र! तुम साधु हो, तुम्हारे वचनका मर्म्म प्रसन्न हुआ, परन्तु इस समय मैं तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकता, तुम प्रशंसा वा बलसे फिर मुझे वशीभूत न कर स क्योंकि विज्ञ पुरुष बिना कारण शत्रुके नहीं होते; इस विषयमें शुक्राचार्य्यने जो गाथा कही है, उसे सुनो। बलवान पुरुष साधारण कार्य्यमें सन्धि करके युक्तिसे सावधान रहे और कृतकार्य्य होनेपर भी शत्रु विश्वास न करे, अविश्वासी पुरुषका न करे और विश्वासपात्रका भी अत्यन्त करना उचित नहीं है। स्वयं सदा दू विश्वासपात्र होवे, परन्तु दूसरेका विश्वा करे, इससे सब अवस्थामें ही अपनी जीव रक्षा करनी उचित है। जीवित रहनेपर ध सामग्री, सन्तान-सन्तति सब हुआ करते और अविश्वास ही परम श्रेष्ठ है, यही नीति शास्त्रोंका संक्षिप्त उपदेश है; इससे मात्रका अविश्वास करना अपना अत्यन्त कर विषय है। मनुष्य यदि निबल होके किसीका विश्वास न करें तो वे शत्रुओंके न होवें और यदि मनुष्य बलवान होके शत्रुका विश्वास करे, तो उसका वध करता है। हे बिड़ाल! इससे तुम मेरी जा शत्रु हो तब तुमसे आत्मरक्षा करनी मुझे उचित है, तुम भी निज शत्रु, पापी चाण्डालसे अपनी रक्षा करो।

बिड़ाल चूहेका ऐसा वचन सुनके चा लके भयसे डरके वृक्षकी शाखा त्यागके ताके सहित वहांसे भाग गया और श जाननेवाला बुद्धिमान चूहा निज बुद्धि प्रदर्शित करके अपने बिलके भीतर हुआ। हे महाराज! इसी तरह बु चूहेने निबल होनेपर भी अकेले बु अनेक शत्रुओंके निकटसे मुक्तिलाभ की, बुद्धिमान पुरुषकी अपेक्षाकृत प्रबल

...सन्धि करनी योग्य है चूहा और बिड़ाल ...प्रकार सन्धिवलसे आपसके संशयसे छूटे ... महाराज! इसी भांति विस्तारपूर्व्वक मैंने ...धर्म्मका मार्ग दिखाया है, अब उसे संक्षेपसे ...ता हूं, सुनो। जो एक बार वैर उत्पन्न ...के फिर आपसमें प्रीति स्थापित करनेकी ...छा करता है, परस्परमें प्रतारणा करना ही ...का मानसिक उद्देश्य है। उसमेंसे अपेक्षा- ...बुद्धिमान पुरुष निज बुद्धि कौशलसे दूस- ...ो ठगनेमें समर्थ होता है और निर्बुद्धि ...य निज असावधानता दोषसे प्रतारित हुआ ...ते हैं। इससे भयभीत होने पर भी निड- ...ी तरह और दूसरेके विषयमें अविश्वास ...ने पर भी विश्वासीकी तरह व्यवहार ...ना उचित है। जो पुरुष इस तरह सावधान ...ता है, वह कभी विचलित नहीं होता ...र विचलित होनेपर भी विनष्ट नहीं होता। ... महाराज! उचित समय उपस्थित होनेपर ...के साथ सन्धि करे, और समयके अनुसार ...के साथ भी विग्रह करनेमें प्रवृत्त होवे, ...धिविग्रहके जाननेवाले पण्डितोंके जरिये ...ही सिद्धान्त कर्त्तव्य कहके वर्णित हुआ है। ...महाराज! ऐसा ही जानके शास्त्रके अर्थको ...झ करके भयका कारण उपस्थित होनेके ...लिये स्थिर और सावधान होकर भयभी- ...ी तरह निवास करे। और भय उपस्थित ...नेके पहिले भययुक्त व्यवहार तथा शत्रुके ...थ अवश्य सन्धि करनी चाहिये; भयसे साव- ...न बुद्धि उत्पन्न हुआ करती है। हे महा- ...ज! जो लोग भयका कारण उपस्थित न ...ने भी भीत होते हैं उन्हें कभी भय उत्पन्न ...ी होता; और जो निर्भयचित्त सदा ...ग्रह करते हैं, उन्हें सदा ही भय उपस्थित ...ा करता है। इसलिये भीत न होवे— ...भाव [illegible] किसी तरह [illegible] नहीं है, ...[illegible] उपस्थित [illegible] सदा ...।

बहुदर्शी पण्डितोंके निकट गमन किया करता है; इससे बुद्धिमान पुरुष भीत होके निर्भयकी तरह निवास और अविश्वासी लोगोंके समीप विश्वास प्रदर्शित करके सब कार्य्योंकी गूढ़ता मालूम करके भी लोगोंके समीप मिथ्या व्यवहार न करे। हे युधिष्ठिर! मैंने नीतिशास्त्रके सार मर्म्मको वर्णन करनेके उद्देश्यसे इस मज्जार-मूषिकके इतिहासको कहा है, तुम इसे हृदयङ्गम करके शत्रु और मित्रोंके बीच सन्धि विग्रह स्थापन करनेके विधानकी व्यवस्था करो और इस विषयको सुनके बुद्धि शुद्ध करके सन्धि-विग्रहके समय शत्रु मित्रोंके मानसिक भावको अवरोध करके आपदकालमें मुक्तिके उपायको मालूम करो। शत्रुके साधारण कार्य्यमें निबल पुरुष अपेक्षानुसार बलवान शत्रुके साथ सन्धि करके उसके साथ फिर समागम होनेपर युक्तिके अनुसार व्यवहार करे और कृतकार्य्य होके भी उसका विश्वास न करे। महाराज! यह नीतिकाव्य धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गसे युक्त है; इससे इसे सुनके फिर प्रजा पालन करते हुए तुम अभ्युदय लाभ करोगे।

हे पाण्डुनन्दन! तुम ब्राह्मणोंके सहित निज राजधानीमें गमन करो, ब्राह्मण लोग ही इस लोक और स्वर्ग लोकमें परम कल्याण साधन किया करते हैं। हे महाराज! वे लोग ही धर्म्मवेत्ता और अत्यन्त कृतज्ञ हैं, वे लोग पूजित होनेसे परम कल्याणका विधान करते हैं, इससे इनकी पूजा करनी उचित है। हे राजन्! तुम न्यायके अनुसार यथा रीतिसे राज्य, परम कल्याण, यश, कीर्त्ति और वंशकी वृद्धि करनेवाली सन्तान लाभ करोगे। हे भरत कुलप्रदीप! इस मार्ज्जार मूषिकके सन्धिविग्रह विषयक बुद्धिको श्रेष्ठ करनेवाले सुन्दर वचनको यथार्थ रूपसे हृदयङ्गम करके राजाको शत्रु मण्डलोंके बीच विहार करना उचित है।

१३८ अध्याय समाप्त।

गत हो सकता है; आत्म प्रदान करनेसे धन रत्नोंकी तरह वह फिर नहीं लौटता; इससे आत्म प्रदान किसीको भी इष्ट नहीं है, यह मैंने जन समाजमें सुना है; इससे तुम यह सब आलोचना करके इस अध्यवसायसे निवृत्त हो जाओ। भार्य्या और धन आदिसे सदा आत्माकी रक्षा करनी उचित है, जो सब पुरुष आत्म रक्षामें तत्पर होकर विचार पूर्वक कार्य्य करते हैं; उन्हें निज दोष जनित आपदकी सम्भावना नहीं होती जो स्वयं निबल होनेपर भी शत्रुको भली भांति बलवान रूपसे मालूम होते हैं, उनकी शास्त्रदर्शिनी स्थिर बुद्धि कभी विचलित नहीं होती। पलित चूहाने जब मार्ज्जारकी इस प्रकार विस्पष्ट निन्दा की तब वह लज्जित होकर चूहेसे कहने लगा।

लोमश बोला, हे मित्र! मैं तुम्हारे साथ सत्य शपथ करता हूं, कि मित्रके सङ्ग अनिष्ट आचरण करना अत्यन्त निन्दित कर्म्म है, यह मैं जानता हूं; इससे तुम मेरे हितकारी और बुद्धि भी वैसी ही है, यह भी मुझे अविदित नहीं है; तुमने अर्थ शास्त्रकी आलोचनाके जरिये भिन्न भाव देखके जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे दूसरी तरह मालूम करना तुम्हें उचित नहीं है। तुमने मेरा प्राणदान किया है, इस ही कारण मुझसे तुम्हारी सुहृदता हुई है। मैं धर्म्मज्ञ, गुणज्ञ, कृतज्ञ और मित्रवत्सल हूं, विशेष करके तुमपर अनुरक्त हुआ हूं; इससे मेरे साथ फिर तुम्हें ऐसा आचरण करना उचित नहीं है, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मैं बान्धवोंके सहित प्राण परित्याग कर सकता हूं, धीर लोग मेरे समान मनस्वी पुरुषका विश्वास किया करते हैं। इससे हे धर्म्मतत्वके जाननेवाले! मेरे विषयमें तुम्हें शङ्का करनी उचित नहीं है। चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार प्रशंसित होकर उसे मानसिक भावसे पूरित गम्भीर वचनसे कहा, हे मित्र! तुम साधु हो, तुम्हारे वचनका मर्म्म प्रसन्न हुआ, परन्तु इस समय मैं तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकता, तुम प्रशंसा बलसे फिर मुझे वशीभूत न कर, क्योंकि विज्ञ पुरुष बिना कारण शत्रुके नहीं होते; इस विषयमें शुक्राचार्य्यने गाथा कही है, उसे सुनो। बलवान ५६ साधारण कार्य्यमें सन्धि करके युक्तिसे सावधान रहे और कृतकार्य्य होनेपर भी विश्वास न करे, अविश्वासी पुरुषका न करे और विश्वासपात्रका भी अत्यन्त करना उचित नहीं है। स्वयं सदा विश्वासपात्र होवे, परन्तु दूसरेका करे, इससे सब अवस्थामें ही अपने रक्षा करनी उचित है। जीवित रहनेपर सामग्री, सन्तान-सन्तति सब हुआ और अविश्वास ही परम श्रेष्ठ है, यही नीति शास्त्रोंका संक्षिप्त उपदेश है; इससे मात्रका अविश्वास करना अपना अत्यन्त का विषय है। मनुष्य यदि निबल होके किसीका विश्वास न करें तो वे शत्रुओंके न होवें और यदि मनुष्य बलवान होके शत्रुका विश्वास करे, तो उसका वध करता है। हे बिड़ाल! इससे तुम मेरी शत्रु हो तब तुमसे आत्मरक्षा करनी उचित है, तुम भी निज शत्रु, पापी चाण्डालसे अपनी रक्षा करो।

बिड़ाल चूहेका ऐसा वचन सुनके लके भयसे डरके वृक्षकी शाखा त्यागके ताके सहित वहांसे भाग गया और जाननेवाला बुद्धिमान चूहा निज बुद्धि प्रदर्शित करके अपने बिलके भीतर हुआ। हे महाराज! इसी तरह बु चूहेने निबल होनेपर भी अकेले बु अनेक शत्रुओंके निकटसे मुक्तिलाभ की बुद्धिमान पुरुषकी अपेक्षाकृत प्रबल

। सन्धि करनी योग्य है चूहा और बिड़ाल
ो प्रकार सन्धिबलसे आपसके संश्रवसे छूटे
महाराज ! इसी भांति विस्तारपूर्व्वक मैंने
धर्म्मका मार्ग दिखाया है, अब उसे संक्षेपसे
ता हूं, सुनो। जो एक बार बैर उत्पन्न
के फिर आपसमें प्रीति स्थापित करनेकी
हा करता है, परस्परमें प्रतारणा करना ही
का मानसिक उद्देश्य है। उसमेंसे अपेक्षा-
बुद्धिमान पुरुष निज बुद्धि कौशलसे दूस-
ो ठगनेमें समर्थ होता है और निर्बुद्धि
ष निज असावधानता दोषसे प्रतारित हुआ
ते हैं। इससे भयभीत होने पर भी निड-
ी तरह और दूसरेके विषयमें अविश्वास
ने पर भी विश्वासीकी तरह व्यवहार
ना उचित है। जो पुरुष इस तरह सावधान
ता है, वह कभी विचलित नहीं होता
र विचलित होनेपर भी विनष्ट नहीं होता।
महाराज ! उचित समय उपस्थित होनेपर
के साथ सन्धि करे, और समयके अनुसार
के साथ भी विग्रह करनेमें प्रवृत्त होवे,
धविग्रहके जाननेवाले पण्डितोंके जरिये
ही सिद्धान्त कर्त्तव्य कहके वर्णित हुआ है।
महाराज ! ऐसा ही जानके शास्त्रके अर्थको
झ करके भयका कारण उपस्थित होनेके
हलेहो स्थिर और सावधान होकर भयभी-
ी तरह निवास करे। और भय उपस्थित
नेके पहिले भययुक्त व्यवहार तथा शत्रुके
थ अवश्य सन्धि करनी चाहिये ; भयसे साव-
न बुद्धि उत्पन्न हुआ करती हैं। हे महा-
ज। जो लोग भयका कारण उपस्थित न
ते ही भीत होते हैं उन्हें कभी भय उत्पन्न
हीं होता, और जो निर्भयचित्तसे सबका
श्वास करते हैं, उन्हें सदा ही भय उपस्थित
आ करता है। एकबारगी भीत न होवे—
सी सलाह देनी किसी तरह योग्य नहीं है,
यभीत पुरुष अपनेको अविज्ञ समझके सदा
बहुदर्शी पण्डितोंके निकट गमन किया करता है, इससे बुद्धिमान पुरुष भीत होके निर्भयको तरह निवास और अविश्वासी लोगोंके समीप विश्वास प्रदर्शित करके सब कार्य्योंकी गूढ़ता मालूम करके भी लोगोंके समीप मिथ्या व्यवहार न करे। हे युधिष्ठिर ! मैंने नीतिशास्त्रके सार मर्म्मको वर्णन करनेके उद्देश्यसे इस मार्ज्जार-मूषिकके इतिहासको कहा है, तुम इसे हृदयङ्गम करके शत्रु और मित्रोंके बीच सन्धि विग्रह स्थापन करनेके विधानकी व्यवस्था करो और इस विषयको सुनके बुद्धि शुद्ध करके सन्धि-विग्रहके समय शत्रु मित्रोंके मानसिक भावको अवरोध करके आपदकालमें मुक्तिके उपायको मालूम करो। शत्रुके साधारण कार्य्यमें निर्बल पुरुष अपेक्षानुसार बलवान शत्रुके साथ सन्धि करके उसके साथ फिर समागम होनेपर युक्तिके अनुसार व्यवहार करे और कृतकार्य्य होके भी उसका विश्वास न करे। महाराज! यह नीतिकाव्य धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गसे युक्त है, इससे इसे सुनके फिर प्रजा पालन करते हुए तुम अभ्युदय लाभ करोगे।

हे पाण्डुनन्दन! तुम ब्राह्मणोंके सहित निज राजधानीमें गमन करो, ब्राह्मण लोग ही इस लोक और स्वर्ग लोकमें परम कल्याण साधन किया करते हैं। हे महाराज ! ये लोग ही धर्म्मवेत्ता और अत्यन्त कृतज्ञ हैं, ये लोग पूजित होनेसे परम कल्याणका विधान करते हैं, इससे इनकी पूजा करनी उचित है। हे राजन्! तुम न्यायके अनुसार यथा रीतिसे राज्य, परम कल्याण, यश, कीर्त्ति और वंशकी वृद्धि करनेवाली सन्तान लाभ करोगे। हे भरत कुलप्रदीप! उक्त मार्ज्जार-मूषिकके सन्धिविग्रह विषयक बुद्धिको श्रेष्ठ करनवाले सुन्दर वचनको यथार्थ रूपसे हृदयङ्गम करके राजाको शत्रु मण्डलीके बीच निवास करना उचित है।

१३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महावाहो! शत्रुओंके बीच विश्वास करना उचित नहीं है, आपने ऐसी ही मन्त्रणा प्रदान की है, यदि किसीका भी विश्वास करना उचित न हुआ, तो राजा किस उपायको अवलम्बन करके निवास करेगा? हे पितामह! विश्वासके कारणसे ही राजाओंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है, इससे राजा लोग किसी पुरुषका विश्वास न करनेसे किस प्रकार शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे। इस अविश्वासको कथा सुनकर मेरा मन अत्यन्त मोहित होरहा है; इससे आप मेरे इस सन्देहको नष्ट कीजिये।

भीष्म बोले, ब्रह्मदत्त राजाके मन्दिरमें पूजनीके साथ उनका जो वार्त्तालाप हुआ था। उस सम्वादको सुनो। ब्रह्मदत्त राजाके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक पूजनी नाम चिड़िया बहुत दिनोंसे उनके सङ्ग बास करती थी। यह जीवजीवक पक्षीकी तरह सब जीवोंकी बोली समझ सकती थी और तिर्य्यग् योनिमें उत्पन्न होके भी सर्व्वज्ञ तथा सब तत्वोंको जाननेवाली थी। पूजनीने उस राजमन्दिरमें एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया उस ही समय राजाके भी राजमहिषीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कृतज्ञ चिड़िया उन दोनोंके वास्ते किसी समुद्रके किनारे गमन करके दो फल लाकर निज पुत्र और राजपुत्रको पुष्टिके निमित्त दोनोंको एक एक फल दिया। इसी तरह वह वैसे अमृत स्वादके समान बल और तेजको बढ़ानेवाले, उन दोनों फलोंको बार बार लाके उन बालकोंको देने लगी, राजपुत्र उस फलके खानेसे अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हुआ। एक समय वह बालक राजपुत्र दासीकी गोदमें चढ़के पक्षीके बच्चेके समीप आके उसे देखा, अनन्तर राजकुमार बाल्यस्वभावके कारण यत्नपूर्व्वक उस पक्षीके बच्चेके साथ खेलने लगा। हे राजेन्द्र! अनन्तर राजपुत्रने उस समजात बच्चेको ऊपर उठाके उसे मारकर दासीके समीप चला हे राजन्! अनन्तर वह पूजनी फल लेके और अपने बच्चेको राजपुत्रके जरिये हुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा। पूजनी बच्चेको देखके, मन मलिन, दीन और दुःखित पित होकर रोती हुई बोली, कि साथ सहवास, प्रीति वा सुहृदता न चाहिये, ये लोग प्रयोजनके कारण सान्त्वन करते और कृतकार्य्य होनेपर परित्याग किया करते है, सबको बुराई वाले क्षत्रियोंके विषयमें विश्वास करना नहीं है; ये लोग सदा अपकार करके निरर्थक सान्त्वना करते हैं, इससे आज मैं विश्वासघाती नृशंस घोर कृतघ्न क्षत्रिय यथा उचित वैरका पलटा लूंगी, साथमें होके बढ़े हुए, साथमें भोजन करनेवाले शरणागत पुरुषका बध करनेसे इसे तीन हका पाप हुआ है। पूजनी ऐसा बचन चञ्चुसे राजपुत्रके दोनों नेत्रोंको नि आकाशको उड़के यह बचन बोली, इस रमें जो पुरुष इच्छापूर्व्वक पापकर्म्म है, वह पाप उस ही समय उस पाप करने लेको स्पर्श किया करता है। जिसका प्रति किया जाता है, उसके शुभाशुभ फल नष्ट होते। महाराज! यद्यपि गृहस्वामीका हुआ कुछ भी पापकर्म्म न दीख पड़े, उसके पुत्र पौत्र आदिकोंमें वह पापके फल दीख पड़ता है।

ब्रह्मदत्त निज पुत्रको पूजनीके जरिये होते देखकर उसके किये हुए कार्य्यका कार हुआ है, ऐसा समझके पूजनीसे लगी। ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी! मेरे पुत्र किया, तुमने उसका पलटा लिया है, दोनोंके कार्य्य समान हुए हैं, इसलिये तुम गृहमें बास करो; यहांसे मत जाओ।

पूजनी बोली, जिस पुरुषने जिस

। वैर अपराध किया है, पण्डित लोग उसके । स्थानमें वास करनेकी प्रशंसा नहीं करते ; का वहांसे भागना ही कल्याणकारी है ; बैर पुरुषके अत्यन्त सान्त्व-वचन प्रयोग कर र भी उसका विश्वास करना उचित नहीं ; जो मूढ़ पुरुष उसका विश्वास करता है, शीघ्र ही बध्य होता है और शत्रुभावकी एक ही समयमें शान्ति नहीं होती । जिनमें पसकी शत्रुता है, उन लोगोंके पुत्रपौत्र दि सभी युद्ध विग्रह आदिसे नष्ट होते हैं, पौत्रोंके नाशसे परलोक भी नष्ट हो जाता । वैर करनेवाले पुरुष मात्रका अविश्वास रना ही सुखोदयका कारण है ; विश्वासघा- पुरुषोंके साथ एकबारगी विश्वास करना चित नहीं है । अविश्वासी पुरुषका विश्वास करे और विश्वस्त पुरुषका अत्यन्त विश्वास रना भी योग्य नहीं है, क्योंकि विश्वाससे पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़को काटता है, दूसरेका विश्वास पात्र होवे, परन्तु इस का विश्वास न करे । इस जगत्में पिता ता ही बान्धवोंके बीच वरिष्ठ है, भार्य्या हरण पुत्र, भ्राता, मित्र आदि धन हरण कर- शत्रुपद वाच्य हुआ करते हैं ; इसलिये ला आत्मा ही केवल सुख दुःखका भोगने- ला है । जिन लोगोंमें एक बेर आपसमें बैर आ है, फिर उन लोगोंकी सन्धि सङ्घटित नहीं ती । मैं जिस लिये तुम्हारे गृहमें वास ती थी, वह कारण शेष हुआ है ; पहिले सो पुरुषकी बुराई करके फिर धनदान और मानसे उसे सम्मानित करनेपर उसका मन भी विश्वास युक्त नहीं होता, बलवान पुरु- का ऐसा ही व्यवहार है, कि निर्बलोंको भय त करते हैं । जिस स्थानमें पहिले सम्मान र पीछे अपमान होवे, बुद्धिमान पुरुष शत्रुसे मानित होनेपर भी वैसे स्थानको परित्याग रे ; मैंने बहुत समयसे सम्मानित होके आपके गृहमें वास किया, इस समय वैर भाव उत्पन्न हुआ ; इसलिये मैं अनायास ही शीघ्रताके सहित इस स्थानसे गमन करूंगी ।

ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी ! जो लोग अपकारका प्रत्यपकार करते हैं, उसके लिये वे, अपराधी नहीं होते, बल्कि उससे वे अनृणी हुआ करते हैं, इसलिये तुम इस ही स्थानमें वास करो, दूसरी जगह मत जाओ ।

पूजनी बोली, अपकारक और प्रत्यपकारकमें फिर मित्रता वा सन्धि नहीं होती, इसे उन लोगोंका अन्तःकरण ही विशेष रूपसे जान सकता है ।

ब्रह्मदत्त बोले, अनेक स्थानोंमें अपकर्त्ता और प्रत्यपकर्त्ताका फिर मिलन हुआ करता है, तथा उनकी शत्रुताकी शान्ति देखी गई है, दूसरी बार फिर अनिष्ट घटना भी नहीं हुई ।

पूजनी बोली, बैरकी कभी समाप्ति नहीं होती, शत्रुने मेरी सान्त्वना की है ऐसा समझके उसका विश्वास न करे ; संसारमें विश्वासके कारण ही लोग मारे जाते हैं ; इसलिये शत्रुके साथ भेंट न होनी ही कल्याणकारी है, उत्तम पानी चढ़े हुए शस्त्रके जरिये जिन लोगोंको जय नहीं किया जा सकता, उन्हें इस प्रकार सान्त्व बचनके जरिये वशमें करना उचित है, जैसे करेणुका समूह हाथियोंको वशीभूत करता है ।

ब्रह्मदत्त बोले, चाण्डालके सङ्ग कुत्तोंकी तरह प्राणनाश करनेवाले पुरुषोंके निकट भी परस्परके सहवासके कारण प्रीति उत्पन्न होती है, और उस ही कारणसे आपसमें विश्वास उत्पन्न हुआ करता है । कृतवैर पुरुषोंका वैरीभाव परस्परके सहबासके कारण मृदुताको प्राप्त होकर पद्म-पत्र पर स्थित जलकी तरह स्थिर नहीं रहता ।

पूजनी बोली, वैर पांच तरहसे उत्पन्न होता है, इसे पण्डित लोग जानते है

कृष्ण और शिशुपालके बिवादकी भांति स्त्रीके वास्ते, दूसरा कौरव और पाण्डवोंकी तरह वस्तुके लिये, तीसरा द्रुपद और द्रोणाचार्य्यकी भांति बचनके कारण चौथा बिड़ाल और चूहेकी स्वभावसिद्ध जाति बैर, पाचवा मेरे और आपके अपराधके कारण जो सङ्घटित हुआ है, यह अपराधज है। उसके बीच प्रकाश्य वा अप्रकाश्य भावसे दोषके बलाबलकी बिचारके दातव्य पुरुषको किसीका विशेष करके हितियका बध करना उचित नहीं हैं; मित्रके साथ शत्रुता होने पर फिर उसका विश्वास न करे। काष्ठके बीच छिपी हुई अग्निकी तरह बैरभाव गूढ़ भावसे स्थित रहता है। हे राजन्! समुद्रमें रहनेवाली बाड़वाग्निकी तरह वैराग्नि वित्त, कठोरता, सान्त्व बचन और शास्त्रके जरिये शान्त नहीं होती। महाराज बढ़ी हुई वैरकी अग्नि और अपराध युक्त कर्म्म एक पक्षको जलाके नष्ट बिना किये शान्त नहीं होते। प्रथम अपकार करनेवाले पुरुषको धन और सम्मानके जरिये सत्कृत करके उसमें मित्रकी तरह विश्वास स्थापित करना उचित नहीं है; क्योंकि उसके किये हुए कर्म्म ही बलपूर्व्वक भयभीत करते हैं। मैंने पहिले कभी आपकी बुराई नहीं की, आपने भी पहिले कभी मेरी बुराई नहीं की थी, इस ही कारण मैंने आपके गृहमें निवास किया है; परन्तु इस समय अब मैं आपका विश्वास नहीं करती।

ब्रह्मदत्त बोले, काल वशसे कार्य्य सङ्घटित होते हैं, और कालके अनुसार अनेक क्रिया आरम्भ हुआ करती हैं, इस लिये कौन पुरुष किसीके समीप अपराधी होगा? कालके वशमें सब जगत् है, हम दोनोंका कुछ दोष नहीं है। जन्म, मृत्यु, दोनों ही समान रूपसे हुआ करती हैं; जीव कालके अनुसार जन्मता और कालवशसे ही मरता है। हर एक पुरुषोंके बीच बतन ही पुरुष एक ही समयमें वध्य होते हैं, दूसरे नहीं होते। जैसे अग्नि काष्ठ प्राप्त ही भस्म करती है, वैसे ही काल सब जला रहा है। हे कल्याणि। तुम अथवा हम दोनों ही परस्परके दुःखके कारण हैं क्योंकि काल ही सदा देहधारियोंके दुःखको हरण किया करता है। हे पूजनी इससे जैसे तुम मेरे गृहमें रहती थी, वैसे प्रीतिपूर्व्वक इच्छानुसार शंका रहित वास करो; तुमने मेरी जो बुराई की है, मैंने क्षमा किया और मुझसे तुम्हारा जो अपकार हुआ है, उसे तुम क्षमा करो।

पूजनी बोली, हे राजन्! यदि अभिप्रायके अनुसार काल ही सबका होता, तो किसीके साथ कोई पुरुषकी शत्रुता न होती; बान्धवोंके मरने पर बन्धु लोग कारण दुःखको प्राप्त होते हैं? देवता दानवोंने ही किस कारणसे पहिले युद्ध किया था? यदि कालके अनुसार ही मृत्यु, सुख, दुःख आदि होते हैं, तो वैद्य रोगियोंके वास्ते क्यों औषधि तय्यार करनेमें प्रवृत्त होते हैं? यदि काल वशसे ही जन्म मृत्यु होती, तो औषध प्रयोग करनेका प्रयोजन था? शोकसे मूर्च्छित पुरुष ही कारण अत्यन्त प्रलाप बचन कहा करते यदि काल ही आपके मतमें प्रमाण हुआ कर्त्तृ समूहके विषयमें धर्म्म विषयक बिधि आदि निष्फल हो जावेंगी। हे नरनाथ! पुत्रने मेरे सन्तानको नष्ट किया, इस ही मैंने भी उसे घायल किया है, इस समय मुझे मारेंगे। मैंने पुत्र शोकके वशमें आपके आत्मजके साथ अनिष्ट आचरण किया आप भी जिस प्रकार मेरे ऊपर प्रहार उस विषयकी तत्व कथा कहती हूं, मनुष्य लोग खिलवाड़ और भोजनके पक्षियोंको ठगा करते हैं, उन लोगोंके और बन्धनके अतिरिक्त तीसरा कारण

ह भी नहीं है। पत्ती-वृन्द भी बध और नके भयसे मुक्ति पथ आश्रय किया करते । वेदके जाननेवाले श्रेष्ठ पुरुष मृत्यु त्यागज-न क्लेशको ही दुःख कहा करते हैं, प्राणी र पुत्र सबको ही प्रिय है; और सब लोगही खसे व्याकुल होते हैं, सुखमें सबको ही अभि-लाषा होती है। हे ब्रह्मदत्त ! दुःख अनेक तर-हसे उत्पन्न हुआ करता है; बुढ़ापा, अर्थ पर्य्यय, अनिष्ट सहवास, इष्ट वियोग, बध, बन्धन, स्त्रीके कारण और सहज भेदसे दुःख अनेक प्रकारके हैं; उसके बीच पुत्रवियोग जनित दुःख लोगोंको विशेष रूपसे परिवर्त्तित करता है। कोई कोई निर्बुद्धि लोग दूसरेके दुःखसे दुःखित नहीं होते। यह कहा करते हैं कि जिस पुरुषने कभी दुःख अनुभव नहीं किया वह महाजनोंके निकट इस प्रकार कह सकता है। और जो पुरुष दुःखसे आर्त्त होकर शोक करता है, वह किस तरह ऐसा कहनेमें उत्साही होसकता है? जिस पुरुषने सब दुःखोंके विषयोंको ग्रहण किया है, वह अप-नेको जैसा देखता है, दूसरेमें भी उसी तरह हुआ करता है। हे वैरीदमन राजन् ! मैंने आपकी जो बुराई की है और आपने भी जो अहित आचरण किया है, वह सौ वर्षमें भी दूर न हो सकेगा। मैंने जो कार्य्य किया है, उससे फिर अब परस्परका मिलन नहीं होस-कता; आप जिस समय पुत्रको स्मरण करेंगे, उसी समय वैरभाव नवीन हो जावेगा। अर्थ तत्त्वके जाननेवाले पण्डितोंने निश्चय किया है कि जैसे मट्टीके पात्र टूटनेपर फिर नहीं जुड़ते वैसे ही जो शीघ्र वैर करके प्रीति कर-नेकी इच्छा करता है, उसका विश्वास कभी सुखदायक नहीं होसकता। पहिले शुक्राचा-र्य्यने प्रह्लादसे इस विषयमें दो गाथा कही थी, कि जो शत्रुके सत्य वा मिथ्या बचनमें विश्वास करता है, वह सूखे तृणसे युक्त अन्धकूपमें गिरे हुए मधुलोभीकी तरह शीघ्र नष्ट होता है। ऐसा देखा गया है, कि किसी स्थानमें शत्रुता वंश परम्परासे प्रचलित रहती है। जो लोग वैर करके परलोकमें गमन करते हैं; उनके वंशमें जो पुरुष रहते हैं, दूसरे लोग उनके समीप पहिले वैरको प्रकाशित कर देते हैं। हे महाराज ! जो लोग वैरकी शान्तिके वास्ते शत्रुके साथ सन्धिबन्धन करते हैं, वेही पत्थर-पर गिरे हुए पूर्ण घड़ेकी तरह उसे चूर्ण किया करते हैं। इस जगतमें राजा किसीके साथ अनिष्ट आचरण करके सदा उसका विश्वास न करे, दूसरेकी बुराई करनेसे दुःख भोग करना पड़ता है।

ब्रह्मदत्त बोले, अविश्वास करनेसे कोई अर्थ सञ्चय वा दूसरा कुछ उपाय नहीं कर सकते; बल्कि एक पक्षका सदा अविश्वास करनेसे भयके कारण मृतकके समान हुआ करते हैं।

पूजनी बोली, इस संसारमें जो पुरुष परि-क्षत पदसे भ्रमण करते हैं, वह सावधान रह-नेपर उनके दोनों पांव स्खलित हुआ करते हैं, जो पुरुष रुग्ननेत्रसे वायुके प्रतिकूल दिशाको ओर देखता है, वायु निश्चय ही उसके दोनों नेत्रोंके लिये पीड़ाजनक होजाती है। जो पुरुष अपना बल न जानके अज्ञानताके कारण दुष्ट मार्ग अवलम्बन करके उसमें उपस्थित होता है उस ही स्थानमें उसका जीवन समाप्त हुआ करता है। जो पुरुष वर्षाका समय मालूम न करके खेत जोता है, वह पौरुषरहित पुरुष शस्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। जो तीता, मसेला, मीठा वा मधुर पथ्य नित्य आहार करता है, वह अमृत होता है और जो पुरुष परिणामको बिना विचार मोह वशसे पथ्य भोजनोंको परित्याग करके अपथ्य भोजन करता है, उसका जीवन नष्ट होता है। दैव और पुरुषार्थ आपसमें एक दूसरेके आश्रयसे स्थिति करते हैं। उदार पुरुष सत्कर्मोंका

आसरा ग्रहण करते हैं और कादर लोग ही दैवको अवलम्बन किया करते हैं। आत्म हितकर कर्म्म चाहे कठोर हो, चाहे कोमल हो होवे, उसे अवश्य करना चाहिये; कर्म्महीन तुच्छ पुरुष सदा अनर्थ ग्रस्त हुआ करते हैं; इससे सब बिषयोंको परित्याग करके पराक्रम प्रकाश करना ही योग्य है। सर्व्वस्व परित्याग करके भी मनुष्योंको आत्म-हितकर कार्य्य करना उचित है, शूरता, दक्षता, विद्या, वैराग्य और धीरज इन पांचोंको पण्डित लोग सहज मित्र कहा करते हैं; और वे लोग इन पांच प्रकारके मित्रोंके अवलम्बनसे जीवन बिताते हैं। और गृह ताम्र आदि पात्र, क्षेत्र, भार्य्या, तथा सुहृदवृन्द, इन पांचोंको पण्डित लोग उपमित्र कहते हैं; पुरुष सर्व्वत्र ही इन पांचोंको पाता है। बुद्धिमान पुरुष सर्व्वत्र ही अनुरक्त होता और सब जगह बिराजता है, कोई पुरुष उसे भय नहीं दिखा सकता, भय दिखानेसे भी वह नहीं डरता। बुद्धिमान पुरुषको थोड़ा अर्थ होने पर भी वह सदा बढ़ता है, निपुणताके सहित कर्म्म करनेसे उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

कर्कटीके गर्भसे उत्पन्न हुए सब सन्तान जैसे उसके मांसको भक्षण करते हैं, वैसे गृह-स्नेहमें आवद्ध अल्पबुद्धि मनुष्योंकी दुष्टस्त्रियां-वाक्य-यन्त्रणाके जरिये उन लोगोंके मास और रुधिरको सुखा देती है। कोई पुरुष अपने बुद्धिदोषसे विदेश जानेके समय मेरा गृह मेरा क्षेत्र, मेरे मित्र और हमारा स्वदेश ऐसी ही चिन्ता करके दुःखित हुआ करते है। स्वदेश यदि व्याधि वा दुर्भिक्षसे पीड़ित होवे, तो उसे परित्यागके दूसरे देशमें वास करनेके वास्ते जाकर सम्मानित होके रहना उचित है, इसलिये मैं दूसरी जगह वास करनेके लिये गमन करूंगी। हे महाराज! मैंने आपके पुत्रके विषयमें अत्यन्त ही अन्याय आचरण किया है, इसलिये इस स्थानमें वास करनेकी इच्छा करती हूं। कुभार्य्या, कुपुत्र, कुराज्य, कुसम्बन्ध और कुदेशको एकबारगी त्याग करना चाहिये; कुपुत्रमें विश्वास नहीं, अनुराग नहीं कुराज्यमें सुख नहीं और जीविका निर्व्वाह नहीं होता। सदा सुहृद कुमित्रके सहित सङ्गति नहीं और प्रयोजनमें विपर्य्यय होनेसे कुसम्बन्धमें मान हुआ करता है। जो भार्य्या प्रिय कहे, वही भार्य्या है; जिस पुत्रसे सुखी वही पुत्र है, जिसका बिश्वास किया जाय मित्र हैं; जिस देशमें अनायास ही निर्व्वाह हो, वही स्वदेश है। जिस जबर्दस्ती नहीं, वहां किसी भयको भी बना नहीं रहती; जो राजा दरिद्रोंको करनेकी इच्छा करता है, उसके साथ पाल्य-पालन सम्बन्ध होता है; इसलिये राजाही तीक्ष्ण शासनकारी कहके प्रसिद्ध है, धर्म्मपालक गुणवान राजाके देश भार्य्या, मित्र, सम्बन्धी और बान्धव आदि सभी हुआ करते हैं। अधर्म्मी राजाके निग्रहसे प्रजाका नाश होता है। राजा ही धर्म्म, अर्थ, काम, इस त्रिबर्गका मूल हैं; इसलिये रक्षित होके उसे प्रजापालन करना उचित है। राजा प्रजासमूहके समीपसे भाग कर लेके उन लोगोंका पालन करे। राजा प्रजासमूहको पूर्णरीतिसे पालन करते, वह राजाओंके बीच तस्कर निन्दित होते हैं। जो राजा स्वयं अभय करके फिर उसमें असम्मत होते हैं, वह बुद्धि राजा सब लोगोंके पापको ग्रहण अन्त समयमें नरकमें गमन किया करते राजा यदि स्वयं अभयदान करके उसे करे, तो वह धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन हुए सबको सुख देनेवाला कहके होता है। प्रजापति मनुने कहा है,

जामें पिता, माता, रक्षिता, अग्नि, कुवेर र इन सातोंका गुण रहता है ; क्यों कि जा प्रजा समूहके विषयमें कृपा प्रकाशित नेसे पितृस्वरूप हुए हैं, जो मनुष्य उनके मीप मिथ्या विनय करता है, वह तिर्य्यग् निमें जन्म लेता है। राजा दरिद्रोंको माताके शान पालन करता है, इसीसे मातृस्थानीय ता है। बराइयोंको जलाता है, इससे अग्नि र दुष्टोंको शासन करता है, इस ही कारण त स्वरूप हुआ है। साधु पुरुषोंको धन दान नेसे काम-प्रद कुवेर, धर्म्म उपदेश करनेसे रु और पालन करनेसे रक्षक स्वरूप हुआ ता है। जो राजा गुणसमूहसे पुरवासी और ा पदवासी लोगोंके चित्तको रञ्जन करता र धर्म्मके अनुसार स्वयं उन लोगोंका पालन या करता है, वह राज्यसे कभी च्युत नहीं ता। जो स्वयं पुरवासी और जनपद वासि-के सम्मानको मालूम करता है, वह इस क और परलोकमें सुखभोग किया करता । जिसकी प्रजा कर भारसे पीड़ित होकर व्याकुल होती और बुराइयोंके जरिये म पाती है, उसकी शत्रुके निकट पराजय ती है। तालाबमें शतदल कमलकी तरह सकी सब प्रजा सदा वर्द्धित होती है, वह भागी राजा स्वर्गलोकमें निवास करता है। महाराज। बलवानके साथ विग्रह करना प प्रशंसित नहीं है, जिसका बलवानके थ विग्रह हुआ करता है, उसके राज्य ही हा ? वा सुख ही कहा है ?

भीष्म बोले, हे नरनाथ ! पूजनी चिड़िया ा ब्रह्मदत्तसे ऐसा ही कहके उनकी आज्ञा र निज अभिलषित दिशामें चली गई। हे न। पूजनीके साथ ब्रह्मदत्तकी जैसी वार्त्ता थी, उसे मैं। तुमसे कहा और कहो क्या नेकी इच्छा करते हो ?

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलतिलक पितामह ! युगक्षयके कारण धर्म्म और सब लोगोंके अत्यन्त क्षीण तथा डाकुओंके जरिये पीड़ित होनेपर किस तरह निवास करना चाहिये ?

भीष्म बोले, हे भारत ! राजा काल क्रमसे करुणा त्यागके जिस तरह निवास करेंगे, मैं तुम्हारे समीप उस आपत्कालके योग्य नीतिका विषय वर्णन करूंगा पुराने पण्डित लोग इस विषयमें राजा शत्रुञ्जय और भारद्वाजके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। सौवीर देशमें शत्रुञ्जय नाम एक महारथी राजा थे ; उन्होंने भारद्वाजके निकट जाके अर्थविषयमें विशेष निर्णयका प्रश्न किया। अप्राप्त अर्थको प्राप्तिकी इच्छा किस तरह करनी चाहिये, प्राप्त हुए धनको किस प्रकार बढ़ती होती है, बढ़े हुए वित्तको किस तरह पालन किया जाता है और पालित अर्थ किस प्रकार व्यय किया जा सकता है ? राजाने जब इस प्रकार अर्थनिर्णय विषयमें प्रश्न किया, तब द्विजवर भारद्वाज उनके पूछे हुए विषयका, युक्तियुक्त श्रेष्ठ उत्तर देने लगे, कि राजा सदा दण्ड उद्यत कर रखे। सदा अपना पराक्रम प्रकाश करे, स्वयं निर्दोष होकर दूसरेका दोष-दर्शी और छिद्रान्वेषी होवे। जो राजा सदा दण्ड उद्यतकर रखता है, मनुष्य उसके निकट अत्यन्त भय करते हैं; इसलिये सब जीवोंको ही दण्डके जरिये शासित करे। तत्वदर्शी पण्डित लोग इसी तरह दण्डकी प्रशंसा कियाकरते हैं, इसलिये भेद, दण्ड, साम, दान, इन चारोंके बीच दण्डही प्रधान कहके वर्णित हुआ है। आश्रयस्थानकी जड़ काटनेसे जीव मात्रका ही जीवन नष्ट होता है,वृक्षकी जड़ कटनेपर सब शाखा उसमें स्थित नहीं रह सकती। बुद्धिमान् राजा पहिले शत्रुका मूलच्छेदनकरे, अनन्तर उसके सहाय और अमात्य आदिको वशमें करे। आपद उप-स्थित होनेपर उत्तम मन्त्रणा, पराक्रम

अच्छी तरहसे युद्ध अथवा पलायन करे; इस विषयमें कुछ विचार करनेकी अवश्यकता नहीं है। हृदयसे अस्तूरेकी तरह रहके बचनमात्रसे बिनय दिखावे, मृदुभावसे बार्त्तालाप करे और कामक्रोधको त्याग दे। शत्रु के साथ कार्य्य-संश्रव उपस्थित होनेपर पहिले सन्धि करके उसका बिश्वास न करे। बुद्धिमान पुरुष कृत-कार्य्य होकर शीघ्र ही शत्रु का सङ्ग परित्याग करे और मित्ररूपसे सान्त बचनसे शान्त करके सर्पयुक्त गृहकी भांति सदा उससे शङ्कित रहे। निज बुद्धिके जरिये जिसकी बुद्धिको पराजित करनी होगी, उसे अभयदान करते हुए धीरज देवे। मन्दबुद्धि पुरुषको अनागत बुद्धिसे और पण्डित पुरुषको प्रत्युत्पन्न बुद्धिके सहारे शान्त करे। जो पुरुष अपने कल्याणकी इच्छा करे, वह हाथ जोड़कर शपथ करके सान्त्व बचनसे शिर झुकाकर आंसू बहाते हुए बचन कहे। जबतक समय परिवर्त्तन न होवे, तबतक शत्रुको कन्धे पर चढ़ाके होवे, समय उपस्थित हुआ जानके पत्थरपर फेंके-हुए घड़ेकी तरह उसे नष्ट कर डाले। हे राजेन्द्र। मनुष्य तिन्दुककाष्ठकी तरह मुहूर्त्त भर प्रज्वलित होवे; ज्वालारहित तूषकी अग्निकी भांति सदा सुलगता न रहे। अनेक प्रयोजनसे युक्त पुरुष कृतघ्नके साथ अर्थयुक्त कुवाई न रखे, क्यों कि कृतघ्न पुरुष कृतकार्य्य होकर उपकारकी अवमानना किया करता है। इसलिये शत्रु संघटित सब कार्य्योंको सब तरहसे पूर्ण न करके उसे शेष रखना उचित है। राजा निज प्रतिपाल्य लोगोंको अन्नके जरिये प्रतिपालन करनेमें कोकिलका, शत्रुका मूल उखाड़नेमें वराहका, अनुलङ्घनीयता गुणमें सुमेरु पर्व्वतका, अनेक रूप धारण कर-नेमें नटका, अर्थागम करनेके कारण शून्य गृहका और प्रजासमूहके विषयमें दयायुक्त व्यवहार प्रकाश करनेके लिये मित्रका अनु-करण करे। राजा प्रतिदिन उठके गृहमें जावे, शत्रुके घर यदि अमङ्गल भी तौभी कुशल प्रश्न करे। आलसी, कादर, लोकापवादसे डरनेवाले और संशय युक्त चित्तवाले पुरुष धनलाभ समर्थ नहीं होते। शत्रु लोग निज [...] और दृष्टि न रखके दूसरेका छिद्र खोजते हैं; इसलिये कछुवेकी तरह अपने और सब छिद्रोंको छिपा रखे। बकुलेकी अर्थचिन्ता सिंहकी भांति पराक्रम, भे[...] तरह आत्मगोपन और बाणकी भांति शत्रु[...] करे। सुरापान, जूआखेलना, स्त्रीसम्भोग, [...] और गीत-वाद्य युक्तिके अनुसार करे; इन विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होनेसे ही दोषी पड़ता है। बांस आदिसे धनुष तय्यार मृगकी तरह सावधानीसे शयन किया समयके अनुसार कभी अन्धे और कभी [...]रकी तरह व्यवहार करे।

बुद्धिमान राजा देश और कालके [...] विक्रम प्रकाश करे; क्यों कि देशकालको क्रम करके विक्रम प्रकाश करनेसे वह [...] हुआ करता है। समयके अनुसार बलाबल निश्चय कर परस्परका बल [...] करके कर्त्तव्य कार्य्योंमें तत्पर होवे। जो दण्डोपहत शत्रुको निगृहीत नहीं करता, कर्कटीके गर्भ धारणकी भांति मृत्यु[...] पतित हुआ करता है। अच्छी तरह [...] हुए वृक्ष भी फलहीन होते हैं, फलवान दुरारोह हुआ करते है, और जिसका अपक्व अवस्थामें रहता है; उसे भी प[...] फलकी तरह देखा जाता है; इसलिये इन सब कारणोंको देखके किसीको शीर्ण न होवे। शत्रुओंकी आशा बहुत सिद्ध होवे, वचनसे ऐसा ही विधान परन्तु विशेष कारण दिखाके उस विघ्नका अनुष्ठान करना उचित है।

उपस्थित न होवे, तबतक भयभीत पुरु- की तरह निवास करे ; परन्तु भयका कारण स्थित होनेपर निडरकी भांति उसे नष्ट नेमें प्रवृत्त होवे। मनुष्य संशयमें आरोहण करनेसे कल्याणका मार्ग देखनेमें समर्थ हीं होता, परन्तु संशययुक्त होकर यदि वित रहे, तो अवश्य ही अपना कल्याण ता है ; भय जिसमें उपस्थित न हो, आगे का विचार करना चाहिये, दैवात् उपस्थित नेपर उसका प्रतिकार करना उचित है, वृद्धि होगी, इस भयसे उसे अनिवृत्तकी ह निवारण करना चाहिये। उपस्थित को त्यागना और अनुपस्थित सुखकी आशा नी बुद्धिमान पुरुषकी रीति नहीं है। जो ष शत्रुके साथ सन्धि बन्धन करके विश्वास क सुखकी नींद सोता है, वह वृक्षके अग्र- में सोये हुए पुरुषकी तरह पतित होते दीख पड़ता है। कोमल होवे, अथवा र हो, जिस किसी कर्म्मके जरिये होसके दयुक्त आत्माकी उद्धार करना उचित है, समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करना योग्य शत्रुके शत्रुओंकी सेवा करे, अपने दूतोंको शत्रु प्रेरित कहके समझना उचित है ; ने दूतोंको शत्रु लोग न जान सकें, ऐसा ही य करना चाहिये। पाषण्ड और तपस्वि- ो दूतरूपसे दूसरेके राज्यमें प्रवेश करावे। ट धर्म्माचारी लोगोंके कण्टक रूपी दुरा- ी चोर लोग बगीचा, विहार स्थान, जल- , पान्थनिवास, पानागार, सब तीर्थों और । स्थानोंमें कपट वेषसे भ्रमण करते हैं, लिये उन लोगोंको मालूम करके निग्रहीत र शान्त करना योग्य है। शत्रुका अविश्वास करे, और विश्वासका भी अत्यन्त विश्वास वत नहीं ; क्यों कि विश्वाससे भय उत्पन्न ता है, और विशेष रीतिसे परीक्षा न करके सीका विश्वास न करे। यथार्थ कारण दिखाके उसका विश्वासपात्र होवे कालक्रमसे उसका किसी विषयमें तनिक भी पैर विचलित होनेपर उसके ऊपर प्रहार करे। जिससे शङ्काकी सम्भावना नहीं है, उसकी भी शङ्का करनी और शङ्का करने योग्य पुरुषोंकी सदा शङ्का करनी उचित है ; क्यों कि अशंकित होनेसे उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट किया करता है। ध्यान, धारणा, मौनावलम्बन, गेरुआ वस्त्र पहरना जटा और मृगछाला धारणके जरिये शत्रुके चित्तमें विश्वास उत्पन्न करके फिर भेड़ियेकी तरह उसे लुप्त करे। पिता, भ्राता, पुत्र अथवा सुहृद लोग यदि अर्थमें विघ्न करें, तो ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन्हें नष्ट करना चाहिये। महत् पुरुष भी यदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म्म न जानके गर्व्वित और कुमार्ग गामी होवे, तो उसके लिये भी दण्ड रूप शासनकी विधि है। जैसे तीक्ष्ण तुण्डवाले पक्षी वृक्षोंके फल और फलोंको नष्ट करते हैं, वैसे ही अभ्युत्थान, अभिवादन वा जिस किसी वस्तु दानसे होसके, शत्रुका विश्वास पात्र होकर अन्तमें उसके सब पुरुषार्थको नष्ट करे मछरी मारनेवाले मछुवा- हेकी तरह दूसरेके मर्म्मच्छेद आदि कठिन हिंसा कर्म्मको न करनेसे महा समृद्धि नहीं प्राप्त होसकती। जातिके जरिये कोई किसीका शत्रु वा मित्र नहीं होता, प्रयोजन अनुसार ही शत्रु मित्र उत्पन्न हुआ करते हैं। शत्रु पुरुषके दुःखका कारण प्रकाश करनेपर भी उसे कभी परित्याग न करे और उसके दुःखसे दुःखित न होवे। पूर्व्वापराधी पुरुषको जिस उपायसे बने नष्ट करे। जो अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें शत्रुको पराजित करनेके लिये यत्न करना अवश्य उचित है ; किसीके विषयमें निन्दा करनी योग्य नहीं है। जिसके ऊपर प्रहार करना हो, उससे प्रिय वचन कहे और प्रहार करके भी प्रिय वार्त्ता कहे ; तलव किसीका शिर काटके भी उसके वास्ते

प्रकाश और रोदन करे। जो लोग ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करें, वे सान्त्ववचन, सम्मान और तितिक्षाके जरिये सब लोगोंको आवाहन करें, इसी तरह लोगोंकी आराधना करनी चाहिये, बाहुके सहारे नदी पार न होवे, और जिससे कुछ लाभ न हो, वैसा वैर न करना चाहिये, गोश्टङ्गको भक्षण वा चर्व्वण करना निरर्थक और अनायुष्य है, उससे दांत टूटते और कुछ रस नहीं मिलता। धर्म्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी तीन तरहकी पीडा होती है अर्थात् धर्म्मसे अर्थमें बाधा, अर्थके जरिये धर्म्ममें बाधा और धर्म्म अर्थ दोनोंके जरिये काममें बाधा हुआ करती है; इसलिये इनके बलाबलको विचार कर उक्त पीड़ाको त्याग देवे। ऋणशेष, अग्निशेष और शत्रुशेष रहनेसे बार बार बढ़ते हैं, इससे इन्हें निःशेष करना उचित है; वृद्धिशील ऋण, उपस्थित व्याधि और पराभूत शत्रुसमूह अत्यन्त भय उत्पन्न करते हैं।

कोई कार्य्य आरम्भ करके उसे बिना पूरा किये विरत न होवे, सदा सावधान रहे, क्षुद्र कण्टक भी अच्छी तरहसे न निकालनेपर सदाके लिये विकार उत्पन्न किया करता है। मनुष्यहत्या, मार्ग रोध और गृह नाशके जरिये शत्रु राज्यको नष्ट करे। गृद्धकी तरह दूरदर्शी बगलेकी तरह निश्चल, कुत्तेकी तरह सावधान सिंहकी भांति पराक्रमी और कौवे की तरह ... शङ्कित होकर धीरताके सहित ... तरह अकस्मात शत्रुके किलेमें प्रवेश करे। ... समीप हाथ जोड़के इशारोंको ... और लोभीको धनदानसे वशमें करे और अपने समान पुरुषके सङ्ग विग्रह करना ही उचित है। राजाके मृदुस्वभाव ... करता है और तीक्ष्ण ... होते हैं इस ... और कोमलके ... मृदुताके जरिये कोमलको छेदन करे, कोमलतासे कठोरको नष्ट किया जासकता है, कोमल उपायके जरिये कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है; इसलिये मृदुता तीक्ष्णसे भी तीक्ष्ण है। जो लोग समयके अनुसार कोमल और समयानुसार कठोर होते हैं, वे सब कार्य्यकोंसिद्ध करके शत्रुको विनाश करनेमें समर्थ होसकते है। पण्डितके साथ विरोध करके "मैं दूर हूं" कहके विश्वास न करे क्योंकि बुद्धिमानको दोनों भुजा बहुत लम्बी होती हैं, वे हिंसित होकर उससे ही हिंसा कर सकते हैं। जिसके दूसरे किनारेपर तैरके न पहुंच सके, वैसी नदीमें न तैरे, शत्रु ... जिसे फिर हरण कर सकें, वैसा धन हरण करे; जिसको जड़ नहीं उखाड़ी जा सकती उसे न खोदे, जिसका सिर न गिराया जासके, उसके ऊपर प्रहार न करे। आपत्कालके अभिप्रायसे मैंने ऐसा कहा है, मनुष्य सदा ... आचरण न करे; शत्रुसे आक्रान्त होनेपर कैसा व्यवहार करे—उसके निमित्त आपका हितार्थी होकर इस प्रकार कहा।

भीष्म बोले, भारद्वाजने जब सौवीर-राजाधिपतिसे ऐसी कथा कही, तब उन्होंने सुन सावधान चित्तसे उसे प्रतिपालन किया ... वान्धवोंके सहित समुज्ज्वल राजलक्ष्मी ... करने लगे।

१४० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! परम धर्म ... प्राय वा सब लोगोंसे उल्लङ्घित होनेपर ... धर्म्मकी तरह और धर्म्म अधर्म्मकी भांति ... मर्य्यादा नष्ट धर्म्म-निश्चय क्षुभित और ... राजा वा डाकुओंसे पीड़ित होने, ब्राह्मण ... याके मोह युक्त तथा सब कर्म्मोके नष्ट ... लोभ, मोह, कामके कारण सब कार्य्य ... दर्शन करने, जीव मात्रके सदा अविश्वास ...

अवमाननाके जरिये पीड़ित सब कोईके परस्पर वञ्चना करते रहनेपर, सब देशोंके प्रदीप्त और ब्राह्मणोंके पीड़ित होने, बादल बरसनेसे विरत, आपसमें भेद उत्पन्न होने और पृथिवीमें जो सब उप जीव्य वस्तु हैं, वह सब दस्युओंके हस्तगत होनेसे, इस बुरे आपदकालके आनेपर जो ब्राह्मण दयाके कारण पुत्र पौत्र आदिको त्यागनेमें अशक्त है, वे किस प्रकार जीवन व्यतीत करेंगे? और सब लोगोंके पापाचारी होनेपर जो राजा दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, तथा ब्राह्मणोंको पालन करनेमें भी अशक्त हैं, वे किस प्रकार निवास करेंगे और किस प्रकार धर्म्म और अर्थसे भ्रष्ट न होंगे? हे शत्रुतापन। आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहु भरतश्रेष्ठ! अप्राप्त राज्यकी प्राप्ति और प्राप्त राज्यका प्रतिपालन स्वरूप योगक्षेम, उत्तम वृष्टि, प्रजासमूहके व्याधि मरन और भय इन सब विषयोंमें राजा ही मूल कारण है और सतयुग;—त्रेता, द्वापर तथा कलियुग; इन युगोंके परिवर्त्तन विषयमें राजा ही मूल कारण हुआ करता है; इसमें मुझे सन्देह नहीं है। प्रजासमूहके दोषकारक उस आपदकालके उपस्थित होनेपर विज्ञानबलको अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करना चाहिये। पण्डित लोग इस विषयमें विश्वामित्र और चाण्डालके सम्बादयुक्त इस प्रचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

त्रेता और द्वापर-युगके सन्धि समयमें लोकके बीच दैव-इच्छासे बारह वर्षतक घोर अनावृष्टि हुई थी। त्रेताके अन्त और द्वापरके आरम्भके समय अत्यन्त-वृद्ध प्रजासमूहके प्रलय-काल उपस्थित होनेपर देवराजने जलकी वर्षा नहीं की, बृहस्पति प्रतिकूल थे और चन्द्रमण्डलने निज लक्षण परित्याग करके दक्षिण मार्गसे गमन किया था, उस समय बादलका सञ्चार तो दूर रहे, नीहार पात भी नहीं हुआ, तब नदी शुष्कप्राय होगईं, तालाव, कूए और झरने दैववशसे जल रहित और प्रभाहीन होनेसे अलक्षित होने लगे, जलशाला आदि जलशून्य हुए, ब्राह्मणोंके यज्ञ, बेदाध्ययन और वषट्कार आदि मङ्गलकार्य्य निवृत्त होगये; कृषिकार्य्य और गोरक्षा नष्ट हुई; विपणि और आपण आदि निवृत्त हुए, पशुबन्धनके स्तम्भ, यज्ञका होना और समस्त उत्सव एक बारही नष्ट हुए, बहुतेरे नगर सूने और ग्राम आदि आग लगनेसे जल गये; सब प्रजाके किसी स्थानमें चोरोंसे, किसी जगह शस्त्रोंसे और किसी स्थानमें राजासे पीड़ित होकर परस्पर भयके कारण भागनेसे सब ग्राम सूने तथा निर्ज्जन होगये, सब देवस्थान नष्टहुए और वृद्ध मनुष्य अपने पुत्र पौत्रादिकोंके जरिये घरसे निकाले गये। गो, बकरे, भेड़ और भैंसे पञ्चत्वको प्राप्त हुए; ब्राह्मण लोग मृत्युके ग्रासमें पतित हुए, रक्षसोंका नाश हुआ; औषधियां नष्ट होगईं; अधिक क्या कहें, उस समय पृथ्वीमण्डल केवल श्मशान—वृक्षसमूहसे भर गया था। हे युधिष्ठिर! उस भयङ्कर समयमें धर्म्म नष्ट होनेसे मनुष्य लोग भूखे होकर परस्परके मांसको भक्षण करते हुए भ्रमण करने लगे। ऋषि लोग जप, होम, नियम और समस्त आश्रमोंको परित्याग करके इधर उधर दौड़ने लगे। अनन्तर बुद्धिमान् भगवान विश्वामित्र महर्षिने क्षुधासे आर्त्त हो घर त्यागके स्त्री पुत्र आदिको किसी जनसमाजमें रक्षा करते हुए खाद्याखाद्य बिचार और होम आदि कार्य्योंको तजके सर्व्वत्र पर्य्यटन करनेमें प्रवृत्त हुए। वह घूमते २ किसी समय वनके बीच प्राणघातक हिंसक चाण्डालोंकी बस्तीमें पहुंचे, वहां पहुंचके देखा, कि वह स्थान टूटे घड़े, कुत्तोंके चमड़ोंके टुकड़े, बराह और गधेकी हड्डियों और मरे हुए मनुष्योंके वस्त्रसमूहसे

प्रकाश और रोदन करे। जो लोग ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करें, वे सान्त्वबचन, सम्मान और तितिचाके जरिये सब लोगोंको आवाहन करें, इसी तरह लोगोंको आराधना करनी चाहिये, बाहुके सहारे नदी पार न होवे, और जिससे कुछ लाभ न हो, वैसा वैर न करना चाहिये, गोश्टङ्गको भक्षण वा चर्व्वण करना निरर्थक और अनायुष्य है, उससे दांत टूटते और कुछ रस नहीं मिलता। धर्म्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी तीन तरहकी पीड़ा होती है अर्थात् धर्म्मसे अर्थमें बाधा, अर्थके जरिये धर्म्ममें बाधा और धर्म्म अर्थ दोनोंके जरिये काममें बाधा हुआ करती है; इसलिये इनके बलाबलको बिचार कर उक्त पीड़ाको त्याग देवे। ऋण-शेष, अग्निशेष और शत्रुशेष रहनेसे बार बार बढ़ते हैं, इससे इन्हें निःशेष करना उचित है; वृद्धिशील ऋण, उपस्थित व्याधि और पराभूत शत्रुसमूह अत्यन्त भय उत्पन्न करते हैं।

कोई कार्य्य आरम्भ करके उसे बिना पूरा किये बिरत न होवे, सदा सावधान रहे, चुद्र कण्टक भी अच्छी तरहसे न निकालनेपर सदाके लिये बिकार उत्पन्न किया करता है। मनुष्यहत्या, मार्ग रोध और गृह नाशके जरिये शत्र राज्यको नष्ट करे। गृद्धकी तरह दूरदर्शी बगुलेकी तरह निश्चल, कुत्ते की तरह सावधान सिंहकी भांति पराक्रमी और कौर कौव्वे की तरह दूसरेका इङ्गितज्ञ होकर धीरताके सहित सर्पकी तरह अकस्मात शत्रुके किलेमें प्रवेश करे। वीरके समीप हाथ जोड़के डराहवोंको भय दिखाके और लोभीको धनदानसे वशमें करे और अपने समान पुरुषके सङ्ग विग्रह करना ही उचित है। राजाके मृदुस्वभाव होनेसे प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और तीक्ष्ण होनेसे सब कोई उससे भयभीत होते हैं, इस लिये तीक्ष्ण होनेके समय तीक्ष्ण और कोमलके समय मृदु होना उचित है। मृदुताके जरिये कोमलको छेदन करे, कोमलतासे कठोरको नष्ट किया जासकता है, कोमल उपायके जरिये कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है; इसलिये मृदुता तीक्ष्णसे भी तीक्ष्ण है। जो लोग समयके अनुसार कोमल और समयानुसार कठोर होते हैं, वे सब कार्य्योंको सिद्ध करके शत्रुको विजय करनेमें समर्थ होसकते हैं। पण्डितके साथ विशेष करके "मैं दूर हूं" कहके विश्वास न करे क्योंकि बुद्धिमानको दोनों भुजा बहुत लम्बी होती हैं, वे हिंसित होकर उससे ही हिंसा कर सकते हैं। जिसके दूसरे किनारे पर तैरके न पहुंच सके, वैसी नदीमें न तैरे, शत्रु लोग जिसे फिर हरण कर सकें, वैसा धन हरण न करे, जिसकी जड़ नहीं उखाड़ी जा सकती उसे न खोदे, जिसका सिर न गिराया जासके, उसके ऊपर प्रहार न करे। आपत्कालके अभिप्रायसे मैंने ऐसा कहा है, मनुष्य सदा ऐसा आचरण न करे; शत्रुसे आक्रान्त होनेपर कैसा व्यवहार करे—उसके निमित्त मैंने आपका हितार्थी होकर इस प्रकार कहा है।

भीष्म बोले, भारद्वाजने जब सौवीर-राज्याधिपतिसे ऐसी कथा कही, तब उन्होंने सुनकर सावधान चित्तसे उसे प्रतिपालन किया और बान्धवोंके सहित समुज्वल राजलक्ष्मी भोग करने लगे।

१४० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! परम धर्म्म नष्टप्राय वा सब लोगोंसे उलङ्घित होनेपर अधर्म्म धर्म्मकी तरह और धर्म्म अधर्म्मकी भांति होने, मर्य्यादा नष्ट धर्म्म-निश्चय चुभित और सब लोग राजा वा डाकुओंसे पीड़ित होने, आश्रमवासियोंके मोह युक्त तथा सब कर्म्मोंके नष्ट होने, लोभ, मोह, कामके कारण सब कार्य्यमें भय दर्शन करने, जीव मात्रके सदा अविश्वस्त

अवमाननाके जरिये पीड़ित सब कोईके पर-स्पर वञ्चना करते रहनेपर, सब देशोंके प्रदीप्त और ब्राह्मणोंके पीड़ित होने, बादल बरसनेसे विरत, आपसमें भेद उत्पन्न होने और पृथिवीमें जो सब उप जीव्य वस्तु हैं, वह सब दस्युओंके हस्तगत होनेसे, इस बुरे आपदकालके आनेपर जो ब्राह्मण दयाके कारण पुत्र- पौत्र आदिको त्यागनेमें अशक्त है, वे किस प्रकार जीवन व्यतीत करेंगे? और सब लोगोंके पापाचारी होनेपर जो राजा दयाके वशमें होकर पुत्र पौ-त्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, तथा ब्राह्मणोंको पालन करनेमें भी अशक्त हैं, वे किस प्रकार निवास करेंगे और किस प्रकार धर्म और अर्थसे भ्रष्ट न होंगे? हे परन्तप! आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहु भरतश्रेष्ठ! अप्राप्त राज्यकी प्राप्ति और प्राप्त राज्यका प्रतिपालन स्वरूप योगक्षेम, उत्तम वृष्टि, प्रजासमूहके व्याधि मरन और भय इन सब विषयोंमें राजा ही मूल कारण है और सतयुग,—त्रेता, द्वापर तथा कलियुग; इन युगोंके परिवर्त्तन विषयमें राजा ही मूल कारण हुआ करता है; इसमें मुझे सन्देह नहीं है। प्रजासमूहके दोष-कारक उस आपदकालके उपस्थित होनेपर विज्ञानबलको अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करना चाहिये। पण्डित लोग इस विषयमें विश्वामित्र और चाण्डालके सम्वादयुक्त इस प्रचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

त्रेता और द्वापर-युगके सन्धि समयमें लोकके बीच दैव-इच्छासे बारह वर्षतक घोर अनावृष्टि हुई थी। त्रेताके अन्त और द्वापरके आरम्भके समय अत्यन्त-वृद्ध प्रजासमूहके प्रलय-काल उपस्थित होनेपर देवराजने जलकी वर्षा नहीं की, बृहस्पति प्रतिकूल थे और चन्द्रमण्डलने निज लक्षण परित्याग करके दक्षिण मार्गसे गमन किया था, उस समय बादलका सञ्चार तो दूर रहे, नीहार पात भी नहीं हुआ, तब नदी शुष्कप्राय होगई, तालाव, कूए और झरने दैववशसे जल रहित और प्रभाहीन होनेसे अलक्षित होने लगे, जलशाला आदि जलशून्य हुए, ब्राह्मणोंके यज्ञ, वेदाध्ययन और वषट्कार आदि मङ्गलकार्य्य निवृत्त होगये; कृषिकार्य्य और गोरक्षा नष्ट हुई; विपणि और आपण आदि निवृत्त हुए, पशुबन्धनके स्तम्भ, यज्ञका होना और समस्त उत्सव एक बारही नष्ट हुए; बहुतेरे नगर सूने और ग्राम आदि आग लगनेसे जल गये; सब प्रजाके किसी स्थानमें चोरोंसे, किसी जगह शस्त्रोंसे और किसी स्थानमें राजासे पीड़ित होकर परस्पर भयके कारण भागनेसे सब ग्राम सूने तथा निर्ज्जन होगये, सब देवस्थान नष्ट हुए और वृद्ध मनुष्य अपने पुत्र पौत्रादिकोंके जरिये घरसे निकाले गये। गौ, बकरे, भेड़ और भैंसे पञ्च-त्वको प्राप्त हुए; ब्राह्मण लोग मृत्युके ग्रासमें पतित हुए; राक्षसोंका नाश हुआ; औषधियां नष्ट होगई; अधिक क्या कहें, उस समय पृथ्वीमण्डल केवल श्मशान—वृक्षसमूहसे भर गया था। हे युधिष्ठिर! उस भयङ्कर समयमें धर्म्म नष्ट होनेसे मनुष्य लोग भूखे होकर पर-स्परके मांसको भक्षण करते हुए भ्रमण करने लगे। ऋषि लोग जप, होम, नियम और समस्त आश्रमोंको परित्याग करके इधर उधर दौड़ने लगे। अनन्तर बुद्धिमान् भगवान विश्वा-मित्र महर्षिने क्षुधासे आर्त्त हो घर त्यागके स्त्री पुत्र आदिको किसी जनसमाजमें रक्षा करते हुए खाद्याखाद्य विचार और होम आदि कार्य्योंको तजके सर्व्वत्र पर्य्यटन करनेमें प्रवृत्त हुए। वह घूमते २ किसी समय वनके बीच प्राणघातक हिंसक चाण्डालोंकी बस्तीमें पहुंचे, वहां पहुंचके देखा, कि वह स्थान टूटे घड़े, कुत्तोंके चमड़ोंके टुकड़े, वराह और गधेकी हड्डियों और मरे हुए मनुष्योंके वस्त्रसमूहसे

परिपूरित है, गृह सब निर्म्माल्यसे अलंकृत, कुटीके सब मठ अस्थिनिर्म्मित-मालासे चिन्हित हुए हैं। कोई स्थान बहुतसे कुत्तों और कोई स्थान गधेके शब्दसे प्रतिध्वनित होरहा है; किसी जगह चाण्डाल लोग कडुवे वचनसे आपसमें झगड़ा कर रहे हैं कहींपर उल्लू और अनेक तरहके पक्षियोंकी मूर्त्तियोंसे अलंकृत देवालय वर्त्तमान है। कोई स्थान लोहेकी घण्टियोंसे अलंकृत कुत्तोंके समूहसे भरा हुआ है।

महर्षि विश्वामित्र क्षुधायुक्त होकर उस स्थानमें प्रवेश करके खाद्य वस्तुके खोजनेमें अत्यन्त यत्न करने लगे, परन्तु भीख मांगनेपर भी किसी स्थानमें मांस, अन्न, फल, मूल वा दूसरी कुछ भोजनकी सामग्री प्राप्त न हुई। "हाय! मैंने क्याही कष्ट पाया है।" ऐसा ही विचार करके कौशिक शरीरकी निर्व्वलताके कारण उस ही चाण्डाल बस्तीके बीच पृथ्वीपर गिर पड़े, हे नृपसत्तम! वह उस समय क्या करनेसे अवस्थाका परिवर्त्तन हो और किस प्रकार वृथा मृत्यु न हो, ऐसी ही चिन्ता करने लगे। मुनिने चिन्ता करते करते देखा, चाण्डालके घरमें प्रतिदिन शस्त्रोंसे मरे हुए कुत्तोंका मांस बहुत है, उसे देखकर मुनिने विचारा, इस समय मेरे प्राण धारणके विषयमें दूसरा कुछ उपाय नहीं है, इसलिये मुझे चोरी वृत्ति अवलम्बन करनी पड़ी, आपदकालमें प्राण रक्षाके वास्ते चोरी अवलम्बन करनी ब्राह्मणोंके विषयमें अनुचित नहीं है; पहिले अपनी अपेक्षा नीचसे अनन्तर समानसे वह भी असम्भव होनेपर नष्ट धर्म्मवालोंसे भोजनोंकी वस्तु हरन करे, इसलिये मैं प्राण नष्ट होनेके समय इन चाण्डालोंके घरसे कुत्तेका मांस हरण करूंगा; इसमें चोरी दोष नहीं दीखता है।

हे भारत! महामुनि विश्वामित्र ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके उस चाण्डालके घरमें सो रहे। जब चाण्डाल लोग सो गये, तब भगवान मुनि घोर रात्रि देखके धीरे धीरे उठके उसके घरमें घुसे। बदसूरत चाण्डाल श्लेष्माच्छन्न नेत्रसे निद्रितकी तरह स्थित था। वह मुनिको मांस चुराते देख रूखे और विभिन्न स्वरसे कहने लगा।

चाण्डाल बोला, जातिके सब लोग सोये हुए हैं अकेला केवल मैं ही जागता हूं, इस समय कौन मेरे घरमें घुसके मांस चुरानेके वास्ते दण्ड उखाड़ रहा है; वह अपने जीवनमें संशय समझे।

अनन्तर विश्वामित्र सहसा चोरी कार्य्यके कारण व्याकुल और भयभीत तथा लज्जायुक्त होकर उससे बोले, हे आयुष्मन्! मैं विश्वामित्र क्षुधासे अत्यन्त आर्त्त होकर तुम्हारे गृहमें आया हूं। हे सद्बुद्धिवाले! तुम यदि साधुदर्शी हो, तो मेरा बध मत करो। चाण्डाल महर्षिका ऐसा वचन सुनके शङ्कायुक्त चित्तसे शय्यापरसे उठके उनके समीप आया, और दोनों आखोंसे बहते हुए आंसुओंको पोंछके सम्मान पूर्व्वक हाथजोड़के उनसे बोला। हे ब्रह्मन्! इस रात्रिके समय आपको कौनसा कार्य्य साधन करनेकी इच्छा है?

विश्वामित्र चाण्डालको धीरज देके बोले, मैं अत्यन्त भूखा हूं, इसलिये मृतकके सम होकर तुम्हारे गृहमें कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करनेके वास्ते आया हूं, मैं भूखा होकर पापसे आक्रान्त हुआ हूं, भूखे पुरुषमें लज्जा रहनी सम्भव नहीं है; इस समय क्षुधाने मुझे दूषित किया है, मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करूंगा। मेरा प्राण अवसन्न होरहा है, क्षुधा मेरे वेदज्ञानको नष्ट करती है; मैं निर्बल चेतरहित और खाद्याखाद्य विचारसे विहीन हुआ हूं; चोरी कर्म्मको अधर्म्म जानके भी कुत्तेका मांस हरण करनेके वास्ते उद्यत हुआ हूं। मैंने तुम्हारी बस्तीमें हरएक गृहमें घूमके भी भिक्षा नहीं पाई, इसलिये इस समय प

कार्य्यमें मेरी प्रवृत्ति हुई हैं, मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करूंगा। भगवान अग्नि जो देवताओंके मुखस्वरूप हैं और पुरोधा होकर पवित्र वस्तु मात्र सच्छ किया करते हैं, उन्हें भी समयके अनुसार सर्व्वभुक् होना पड़ता है, इस लिये मुझे भी धर्म्मानुसार वैसा ही समझो।

चाण्डाल बोला, हे महर्षि। मेरा बचन सुनिये और सुनकर जिसमें धर्म्म नष्ट न हो, वैसा ही अनुष्ठान करिये। हे विप्रवर! मैं आपसे जो कहता हूं, वह भी आपका धर्म्म है, पण्डित लोग कुत्तेको सियारसे भी निकृष्ट समझते हैं; उसका बुरा मांस शरीरके अधम स्थानसे भी अधिक निकृष्ट है; इससे आपने यह उत्तम कार्य्य नहीं किया। हे महर्षि! चाण्डालस्व, विशेष करके अभक्ष्य मांस हरण करना अत्यन्त धर्म्मनिन्दित कर्म्म है, आप प्राणधारणके वास्ते दूसरा कोई उत्तम उपाय देखिये हे महामुनि! मांसलोभके कारण जिसमें आपकी तपस्या नष्ट न होवे; विहित धर्म्मको मालूम करके धर्म्मशङ्कर करना योग्य नहीं, आप धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगण्य है, इसलिये धर्म्म परित्याग न करिये।

हे भरतश्रेष्ठ। महामुनि विश्वामित्रने चाण्डालका ऐसा वचन सुनके और क्षुधासे आर्त्त होकर फिर उसे इस प्रकार उत्तर दिया, मैंने निराहार रहके घूमते हुए बहुत समय बिताया है अब मेरे प्राणधारणका दूसरी कोई उपाय नहीं है। प्राणान्त होनेके समय जिस किसी कर्म्मसे होसके, जीवित रहे; उसके अनन्तर समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे। क्षत्रियोंका इन्द्रकी तरह पालन करना ही धर्म्म है, ब्राह्मणोंका अग्निकी तरह पवित्रता ही धर्म्म हुआ करता है; वेदरूपी अग्नि मेरा बल है, मैं उस बलको अवलम्बन करके अभक्ष्य मांस भक्षण करके क्षुधाको शान्त करूंगा। जिस किसी उपायके सहारे जीवन धारण किया जा सके, यत्नपूर्व्वक वैसा ही करना चाहिये। मरनेकी अपेक्षा जीवन श्रेष्ठ है, जीवित रहनेसे फिर धर्म्माचरण होसकता है; इसलिये मैं प्राणधारणके निमित्त ज्ञानपूर्व्वक अभक्ष्यको भक्षण करनेमें उद्यत हुआ हूं; तुम इसमें अनुमोदन करो। मैं जीवित रहनेसे धर्म्माचरण करूंगा और जैसे ज्योतिवाले पदार्थ घोर अन्धकारको नष्ट करते है, वैसे ही विद्या और तपोबलसे सर्व अशुभ कर्म्मोंको खण्डन करूंगा।

चाण्डाल बोला, इस अभक्ष्य मांसको खानेसे परमायुकी बढ़ती नहीं होती, प्राण प्रसन्न नहीं होता अमृतपानकी तरह तृप्ति नहीं होती; इससे आप दूसरी कुछ भिक्षा प्रार्थना करिये, कुत्तेका मांस भक्षण करनेमें चित्त न लगाइये; कुत्ते ब्राह्मणोंके अभक्ष्य हैं।

विश्वामित्र बोले! इस दुर्भिक्षके समय दूसरा मांस सुलभ नहीं है, मेरी भी कुछ सम्पत्ति नही है, मै क्षुधाके निमित्त उपायरहित और निराश हुआ हूं, इसलिये इस कुत्तेके मांसमें छः प्रकारके रसोंका स्वाद लेना उत्तम समझता हूं।

चाण्डाल बोला, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये शशक आदि पांच पञ्च-नखवाले पशु ही भक्ष्य हैं इस विषयमें आपके निमित्त शास्त्र ही प्रमाण है, इस लिये आप अभक्ष्य वस्तुके खानेमें प्रवृत्ति न कीजिये।

विश्वामित्र बोले, अगस्त मुनिने भूखे हो कर बातापी नाम दानवको भक्षण किया था, मैं भी आपदग्रस्त और क्षुधासे आर्त्त हुआ हूं इसलिये कुत्तेका महा निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, आप और कुछ भिक्षा मांगिये, इस स्थानमें इस तरह अभक्ष्य भक्षण नहीं कर सकेंगे; यह अवश्य ही आपका अकर्त्तव्य है, तब यदि इच्छा हो, तो कुत्ते ले जाइये।

विश्वामित्र बोले, शिष्ट पुरुष ही धर्माचरण विषयमें कारण है इससे मैं उन्हींके चरित्रोंका अनुसरण करूंगा, पवित्र सामग्रीको भक्षण करनेकी अपेक्षा इस कुत्तेके मांसको मैं उत्तम भक्ष्य समझता हूं।

चाण्डाल बोला, दुष्ट पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, वह सनातन धर्म नहीं है, इस समय आपको ऐसा अकर्त्तव्य कर्म्म करना उचित नहीं है, आप छलके जरिये अशुभ कार्य्य न करिये।

विश्वामित्र बोले, ऋषि होकर कोई साधारणके असम्मत पापके करनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु इस समय मैं कुत्ता और मृग दोनोंको ही पशु कहके तुल्य ज्ञान करता हूं, इससे मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, वातापी ब्राह्मणोंको भक्षण करता था, इस ही लिये महर्षि अगस्त्यने ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाके अनुसार उसे भक्षण किया, वैसी अवस्थामें नरमांस भक्षण दोषयुक्त नहीं है, जिसमें पापका स्पर्श नहीं, वही धर्म्म है और सब तरहके उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है।

विश्वामित्र बोले, मैं ब्राह्मण हूं मुझे शरीरही परम प्रिय और पूजनीय मित्र है, उस शरीरके रक्षाके निमित्तही इस निकृष्ट मांसको हरन करनेकी इच्छा करता हूं; इसलिये ऐसे नृशंस चाण्डालोंका भी भय नहीं करता।

चाण्डाल बोला, हे विद्वन्! मनुष्य लोग वल्कि अपने जीवनको त्यागते तथापि कोई अभक्ष्य वस्तुके भक्षण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते वे लोग भूखको जीतके ही इस लोकमें समस्त कामना प्राप्त करते हैं, इससे आप भी क्षुधाके वेगको सहके इच्छानुसार प्रीति लाभ करिये।

विश्वामित्र बोले, पाप कर्म्म करके प्राणत्यागनेसे परलोकमें संशय उपस्थित होता है, यह ठीक है; परन्तु सब कर्मोंके नष्ट होनेपर कुछ संशय नहीं रहता। मैं शान्तचित्त होकर सदा व्रताचरण किया करता हूं; इसलिये तपस्याके जरिये अभक्ष्य भक्षणरूपी पापसे छूटूंगा, इस समय धर्म्म आचरणके मुख्य साधन शरीरकी रक्षा करनी उचित है, इसीसे मैं अभक्ष्य मांसको भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, विवेक शक्तियुक्त पुरुषोंके समीप यह अभक्ष्य भक्षण भी पवित्र कर्म्म कहके वर्णित होता है और मूढ़ पुरुष ही आपदकालमें कुत्तेके मांसको अभक्ष्य कहा करते हैं, मैं जीवन संशयके समयमें यद्यपि इस असत् कार्य्यको करूं, तौभी तुम्हारी तरह चाण्डाल न हूंगा।

चाण्डाल बोला, मुझे यह निश्चय मालूम होता है, कि इस अकार्य्यसे आपका रक्षा करना योग्य है, ब्राह्मण यदि दुष्कर्म्म करे, तो उनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता, इस ही कारण मैं आपको निवारण करता हूं।

विश्वामित्र बोले, मेढ़क ऊंचे स्वरसे चिल्लाते रहते हैं, गौवें कभी जल पीनेसे विरत नहीं होतीं, तुम्हें धर्म्म उपदेश करनेका कुछ अधिकार नहीं है; इसलिये तुम आत्म-प्रशंसा मत करो।

चाण्डाल बोला, हे द्विजवर! आपके विषयमें मुझे करुणा हुई है, इसलिये मैं सुहृद भावसे आपको कहता हूं, इससे यदि पाप इसे अपना कल्याणदायक समझिये तो ऐसा ही करिये, परन्तु लोभके कारण पाप कर्म्म न कीजिये, मैं आपको पापाचरण करनेसे निवारण करके भी अपराधी होता हूं।

विश्वामित्र बोले, तुम यदि मेरे सुहृद और सुखकी इच्छा करनेवाले हो, तो मुझे इस आपदसे उद्धार करो; मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस परित्याग करके अपनेको धर्म्मपूर्वक रक्षित समझूं।

चाण्डाल बोला, यह कुत्तेका मांस मेरा अपना भक्ष्य है, इसे आपको दान नहीं कर

सकता ; और मेरे सम्मुख आप इसे हरण करेंगे, उसमें भी उपेक्षा न कर सकूंगा । मैं इसे दान करने और आप ब्राह्मण होके इसे ग्रहण करनेसे हम दोनों ही नरकमें गमन करेंगे ।

विश्वामित्र बोले, मैं आज यदि इस पापयुक्त कर्म्म करके शरीर रक्षा करते हुए जीवित रहूंगा, तो भविष्यत् कालमें परम धर्म्म आचरण करूंगा उपवास करके शरीर त्यागना और अभक्ष्य-भक्षणके जरिये जीवित रहना, इन दोनोंके बीच कौनसा श्रेष्ठ है, उसे तुम कहो ।

चाण्डाल बोला, वंश परम्परासे प्रचलित धर्म्म-सम्पादन विषयमें आत्मा ही साक्षी है, इसलिये इसमें पाप है, वा नहीं ; उसे आप ही जानते हैं । जो पुरुष कुत्तेके मांसको भक्ष्य कहके आदर करता है, मालूम होता है, उसके लिये अपरो कोई वस्तु भी परित्याग करनेके योग्य नहीं होता है ।

विश्वामित्र बोले, अभक्ष्य वस्तुके ग्रहण करने वा भोजन करनेसे अवश्य पाप होता है ; परन्तु प्राण नष्ट होनेके समय वह दोषयुक्त नहीं है । जिसमें हिंसा वा मिथ्या व्यवहार नहीं है और जिस कर्म्मके करनेसे जनसमाजके बीच अत्यन्त निन्दित नहीं होना पड़ता ; वैसे अभक्ष्य भक्षणमें बहुत भारी पापका कारण नहीं है ।

चाण्डाल बोला, यदि अभक्ष्यको भक्षण करके प्राण रक्षा करना ही आपका मुख्य कारण हुआ, तो वेद और आर्य्य धर्म्म आपके मीप कुछ भी नहीं है । हे द्विजवर ! आप जब भक्ष्य भक्षण करनेके लिये आग्रह प्रकाश रते हैं, तब खाद्याखाद्य वस्तु मात्रमें ही कुछ ाष नहीं है,—ऐसा ही प्रतिपन्न होता है ।

विश्वामित्र बोले, भोजन करनेसे अत्यन्त ाप होता है ; ऐसा विचार नहीं किया जाता ापान करनेसे लोग पतित होते हैं, यह ास्त्रोंका शासनमात्र है, निषिद्ध मैथुन आदि पापकार्य्य मात्रही जो पुण्यको नष्ट करते हैं, ऐसा निश्चय नहीं है ।

चाण्डाल बोला, नीच जाति चाण्डालके घरसे चोरी वृत्तिके जरिये अत्यन्त आग्रहके सहित जो कुत्तेका मांस हरण करता है, उस विद्वान् पुरुषमें सच्चरित्रता नहीं रहती और अन्तमें उसे अवश्य ही शोकित होना पड़ता है, चाण्डाल उस समय महर्षि विश्वामित्रसे ऐसा ही कहके निवृत्त हुआ, बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करके प्रस्थान किया । अनन्तर उस महामुनिने जीवन धारणकी इच्छा करते हुए कुत्तेका मांस लेकर वनमें स्वजनोंके सहित उसे भोजन करनेकी इच्छा की । अनन्तर उन्होंने विचार किया कि आगे विधिपूर्व्वक देवताओंको तृप्त करके फिर इच्छानुसार इस कुत्तेके मांसको भोजन करूंगा, मुनिने ऐसा ही स्थिर करके ब्राह्म विधिके अनुसार अग्नि लाके ऐन्द्राग्नेय विधानके जरिये स्वयं चरु पाक किया । हे भारत ! अनन्तर उन्होंने विधिपूर्व्वक भागके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंको आवाहन करके दैव और पितर-कर्म्म आरम्भ किया । उस ही समय देवराजने प्रजासमूहको सञ्जीवित करते हुए बहुत ही जल बरसाया ; उससे सब ओषधी उत्पन्न हुई । भगवान् विश्वामित्र तपस्यासे पाप जलाकर बहुत समयके अनन्तर परम सिद्धिको प्राप्त हुए । उन्होंने उस आरम्भ किये हुए कार्य्यको समाप्ति करते हुए वैसे चरुका स्वाद न लेकर ही देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट किया था, विद्वान् पुरुष आपदायुक्त होके जीवन धारणके अभिलाषी होकर इसी प्रकार प्रज्ञारहित चित्तसे जिस किसी उपायसे होसके दुःखित आत्माका उद्धार करे । सदा ऐसा ही उपाय अवलम्बन करके जीवित रहना उचित है, पुरुष जीवित रहनेसे पुण्य सञ्चय और कल्याण भोग कर सकता है । हे कुन्तीनन्दन ! इस-

विश्वामित्र बोले, शिष्ट पुरुष ही धर्माचरण विषयमें कारण है इससे मैं उन्हींके चरित्रोंका अनुसरण करूंगा, पवित्र सामग्रीको भक्षण करनेकी अपेक्षा इस कुत्तेके मांसको मैं उत्तम भक्ष्य समझता हूं।

चाण्डाल बोला, दुष्ट पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, वह सनातन धर्म नहीं है; इस समय आपको ऐसा अकर्त्तव्य कर्म करना उचित नहीं है, आप छलके जरिये अशुभ कार्य्य न करिये।

विश्वामित्र बोले, ऋषि होकर कोई साधारणके असम्मत पापके करनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु इस समय मैं कुत्ता और मृग दोनोंको ही पशु कहके तुल्य ज्ञान करता हूं, इससे मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, वातापी ब्राह्मणोंको भक्षण करता था, इस ही लिये महर्षि अगस्त्यने ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाके अनुसार उसे भक्षण किया, वैसी अवस्थामें नरमांस भक्षण दोषयुक्त नहीं है; जिसमें पापका स्पर्श नहीं, वही धर्म है और सब तरहके उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है।

विश्वामित्र बोले, मैं ब्राह्मण हूं मुझे शरीरही परम प्रिय और पूजनीय मित्र है, उस शरीरके रक्षाके निमित्तही इस निकृष्ट मांसको हरन करनेकी इच्छा करता हूं; इसलिये ऐसे नृशंस चाण्डालोंका भी भय नहीं करता।

चाण्डाल बोला, हे विद्वन्! मनुष्य लोग वल्कि अपने जीवनको त्यागते तथापि कोई अभक्ष्य वस्तुके भक्षण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते वे लोग भूखको जीतके ही इस लोकमें समस्त कामना प्राप्त करते हैं, इससे आप भी क्षुधाके वेगको सहके इच्छानुसार प्रीति लाभ करिये।

विश्वामित्र बोले, पाप कर्म करके प्राणत्यागनेसे परलोकमें संशय उपस्थित होता है, यह ठीक है; परन्तु सब कर्मोंके नष्ट होनेपर कुछ संशय नहीं रहता। मैं शान्तचित्त होके सदा व्रताचरण किया करता हूं; इसलिये तपस्याके जरिये अभक्ष्य भक्षणरूपी पापसे छूटूंगा, इस समय धर्म आचरणके मुख्य साधन शरीरकी रक्षा करनी उचित है, इसीसे मैं अभक्ष्य मासको भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, विवेक शक्तियुक्त पुरुषोंके समीप यह अभक्ष्य भक्षण भी पवित्र कर्म कहके वर्णित होता है और मूढ़ पुरुष ही आपदकालमें कुत्तेके मांसको अभक्ष्य कहा करते हैं, मैं जीवन संशयके समयमें यद्यपि इस असत् कार्य्यको करूं, तौभी तुम्हारी तरह चाण्डाल न हूंगा।

चाण्डाल बोला, मुझे यह निश्चय मालूम होता है, कि इस अकार्य्यसे आपका रक्षा करना योग्य है, ब्राह्मण यदि दुष्कर्म करे, तो उनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता, इस ही कारण मैं आपको निवारण करता हूं।

विश्वामित्र बोले, मेढक ऊंचे स्वरसे चिल्लाते रहते हैं, गौवें कभी जल पीनेसे विरत नहीं होतीं, तुम्हें धर्म उपदेश करनेका कुछ अधिकार नहीं है, इसलिये तुम आत्मप्रशंसा मत करो।

चाण्डाल बोला, हे द्विजवर। आपके विषयमें मुझे करुणा हुई है, इसलिये मैं सुहृद्भावसे आपको कहता हूं, इससे यदि इसे अपना कल्याणदायक समझिये तो वह ही करिये, परन्तु लोभके कारण पाप कर्म न कीजिये, मैं आपको पापाचरण करनेसे निवारण करके भी अपराधी होता हूं।

विश्वामित्र बोले, तुम यदि मेरे सुहृद और सुखकी इच्छा करनेवाले हो, तो मुझे इस आपदसे उद्धार करो; मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस परित्याग करके अपनेको धर्मपूर्वक रक्षित समझूं।

चाण्डाल बोला, यह कुत्तेका मांस अपना भक्ष्य है, इसे आपको दान नहीं

सकता ; और मेरे सम्मुख आप इसे हरण करेंगे, उसमें भी उपेक्षा न कर सकूंगा । मैं इसे दान करने और आप ब्राह्मण होके इसे ग्रहण करनेसे हम दोनों ही नरकमें गमन करेंगे । विश्वामित्र बोले, मैं आज यदि इस पापयुक्त कर्म्म करके शरीर रक्षा करते हुए जीवित रहूंगा, तो भविष्यत् कालमें परम धर्म्म आचरण करूंगा उपवास करके शरीर त्यागना और अभक्ष्य-भक्षणके जरिये जीवित रहना, इन दोनोंके बीच कौनसा श्रेष्ठ है, उसे तुम कहो ।

चाण्डाल बोला, वंश परम्परासे प्रचलित धर्म्म-सम्पादन विषयमें आत्मा ही साक्षी है, इसलिये इसमें पाप है, वा नहीं ; उसे आप ही जानते हैं । जो पुरुष कुत्तेके मांसको भक्ष्य करके आदर करता है, मालूम होता है, उसके लिये दूसरी कोई वस्तु भी परित्याग करनेके योग्य नहीं होता है ।

विश्वामित्र बोले, अभक्ष्य वस्तुके ग्रहण करने वा भोजन करनेसे अवश्य पाप होता है ; परन्तु प्राण नष्ट होनेके समय वह दोषयुक्त नहीं है । जिसमें हिंसा वा मिथ्या व्यवहार नहीं है और जिस कर्म्मके करनेसे जनसमाजके बीच अत्यन्त निन्दित नहीं होना पड़ता, वैसे अभक्ष्य भक्षणमें बहुत भारी पापका कारण नहीं है ।

चाण्डाल बोला, यदि अभक्ष्यको भक्षण करके प्राण रक्षा करना ही आपका मुख्य कारण हुआ, तो वेद और आर्य्यधर्म्म आपके समीप कुछ भी नहीं है । हे द्विजवर ! आप जब अभक्ष्य भक्षण करनेके लिये आग्रह प्रकाश करते हैं, तब खाद्याखाद्य वस्तु मात्रमें ही कुछ दोष नहीं है,—ऐसा ही प्रतिपन्न होता है ।

विश्वामित्र बोले, भोजन करनेसे अत्यन्त पाप होता है ; ऐसा विचार नहीं किया जाता सुरापान करनेसे लोग पतित होते हैं, यह शास्त्रोंका शासनमात्र है ; निषिद्ध मैथुन आदि पापकार्य्य मात्रही जो पुण्यको नष्ट करते हैं, ऐसा निश्चय नहीं है ।

चाण्डाल बोला, नीच जाति चाण्डालके घरसे चोरी वृत्तिके जरिये अत्यन्त आग्रहके सहित जो कुत्तेका मांस हरण करता है, उस विद्वान् पुरुषमें सच्चरित्रता नहीं रहती और अन्तमें उसे अवश्य ही शोकित होना पड़ता है, चाण्डाल उस समय महर्षि विश्वामित्रसे ऐसा ही कहके निवृत्त हुआ, बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करके प्रस्थान किया । अनन्तर उस महामुनिने जीवन धारणकी इच्छा करते हुए कुत्तेका मांस लेकर वनमें स्वजनोंके सहित उसे भोजन करनेकी इच्छा की । अनन्तर उन्होंने विचार किया कि आगे विधिपूर्व्वक देवताओंको तृप्त करके फिर इच्छानुसार इस कुत्तेके मांसको भोजन करूंगा, मुनिने ऐसा ही स्थिर करके ब्राह्म विधिके अनुसार अग्नि लाके ऐन्द्राग्नेय विधानके जरिये स्वयं चरु पाक किया । हे भारत । अनन्तर उन्होंने विधिपूर्व्वक भागके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंको आवाहन करके देव और पितर-कर्म्म आरम्भ किया । उस ही समय देवराजने प्रजासमूहको सञ्जीवित करते हुए बहुत ही जल बरसाया ; उससे सब औषधी उत्पन्न हुई । भगवान विश्वामित्र तपस्यासे पाप जलाकर बहुत समयके अनन्तर परम सिद्धिको प्राप्त हुए । उन्होंने उस आरम्भ किये हुए कार्य्यकी समाप्ति करते हुए वैसे चरुका स्वाद न लेकर ही देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट किया था, विद्वान् पुरुष आपदायुक्त होके जीवन धारणके अभिलाषी होकर इसी प्रकार प्रज्ञारहित चित्तसे जिस किसी उपायसे होसके दुःखित आत्माका उद्धार करे । सदा ऐसा ही उपाय अवलम्बन करके जीवित रहना उचित है, पुरुष जीवित रहनेसे पुण्य सञ्चय और कल्याण भोग कर सकता है । हे कुन्तीनन्दन ! इस-

लिये विद्वान् पुरुषको धर्म्माधर्म्म निर्णयके विष यमें कृतबुद्धि लोगोंकी बुद्धिको अवलम्बन करके इस लोकमें जीवन व्यतीत करना उचित है।

१४१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, आपने अनृतकी तरह श्रद्धा रहित जिस घोर कार्य्यको महत् पुरुषोंका भी कर्त्तव्य कहके वर्णन किया है, उसे पूछना पड़ता है, कि सुनकर डाकुओंका क्या कर्म्म है और हम लोगोंके लिये ही कौन सा विषय त्यागने योग्य है. मैं शोक और मोहसे युक्त हुआ हूं; मेरा धर्म्मबन्धन शिथिल हुआ जाता है; मैं चित्तको शान्त करनेमें किसो प्रकार अध्यवसाय लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं, इसलिये मैं ऐसा धर्म्माचरण करनेमें अशक्त हूं।

भीष्म बोले, मैं वेदागम आदि शास्त्रोंको सुनकर तुम्हें ऐसा धर्म्माचरण करनेका उपदेश नहीं करता हूं! आपदकालमें ऐसा आचरण न करनेसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, इस ही कारण कवियोंने निज बुद्धि कौशलके जरिये अच्छी तरह इसे कल्पना किया है। कोकिल, वराह, सिंह आदिसे शिक्षा लाभ करके, जब जिस विषयमें तुम्हारी यह बुद्धि प्रवर्त्तित होवे, उसे ही करना; धर्म्मके एक देश मात्रका अवलम्बन करना उचित नहीं है, राजाको अनेक तरहकी बुद्धि धारण करनी योग्य है। हे कुरुनन्दन। बुद्धि प्राखर्य्य कारी धर्म्म और साधुओंके आचरणको सदा जानना चाहिये, मेरा वचन सर्व्वदा उसे ही प्रतिपन्न करता है; इसे मालूम करो। राजा लोग निज निज बुद्धिके प्रभावसे विजयी होते हैं; इसलिये बुद्धि बल अवलम्बन करके धर्म्मसंस्कारमें प्रवृत्त होना उचित है। राजधर्म्म अनेक शाखाओंसे युक्त है; इसलिये उसके एक ... व्यवहार करना उचित नहीं है। अध्ययनके समय अच्छी तरह न सीखने से बुद्धि शुद्धि नहीं होती, निर्बल पुरुष एक मात्र धर्म्मके जरिये किसी कार्य्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। हे भारत! एक मात्र धर्म्म ही कभी धर्म्म और कभी अधर्म्म रूपसे मालूम होता है; जो पुरुष इस विषयमें अनभिज्ञ हैं वे दो तरहके मार्गमें पड़के संशययुक्त होते हैं, इससे बुद्धिके अनुसार इस प्रकार द्वैधको मालूम करना उचित है। अनन्तर जो करना होगा, पहिले उसे निश्चय करके बुद्धिमान् राजा प्रजा समूहके समीपसे छठवां भाग कर ग्रहण करे, आपदकालमें उससे अधिक ग्रहण करना अनुचित नहीं है; दूसरे लोग इसी प्रकार राजचरित्रको धर्म्म समझते हैं, इसमें अन्यथा होनेसे विपरीत होता है। कोई कोई यथार्थ ज्ञान और कोई वृथा ही ज्ञानयुक्त होते हैं; इसे यथार्थ रीतिसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष साधुओंके मतको ग्रहण किया करते हैं। धर्म्मद्वेषी, शास्त्रज्ञानरहित मनुष्य शास्त्रोंकी निन्दा तथा शास्त्रोंका अप्रमाण प्रकट किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग शास्त्र और आचारकी निन्दा-प्रसङ्गमें केवल जीविका-निर्व्वाहके लिये विद्या सीखकर यशकी इच्छा करते हैं, वे धर्म्मद्वेषी और पापी हैं। शास्त्रज्ञानरहित अयुक्तिसम्पन्न लोगोंकी तरह अपरिणत बुद्धिवाले मूर्ख लोग अपने कर्त्तव्य कर्म्मका निर्वाह करना नहीं जानते। शास्त्रमें दोषदर्शी पुरुष शास्त्रोंकी निन्दा किया करते हैं; शास्त्रोंका अर्थ मालूम होनेपर भी उन लोगोंके समीप वह साधुभावसे प्रतिपन्न नहीं होता; वह लोग कृतविद्य पुरुषोंकी तरह वचनरूपी अस्त्र वा बाण धारण करके ही दूसरेकी विद्याके निन्दावादके जरिये निज विद्याप्रकट करते हैं। हे भारत तुम ऐसे लोगोंको विद्यावणिक् और राक्षसोंके समान जानो; वे लोग साधु पुरुषोंके विहित धर्म्मको छलपूर्व्वक परित्याग करते हैं।

सुना है, वचन वा बुद्धिके जरिये धर्म्म उच्चारण करनेसे ही धर्म्म नहीं होता ; देवराजने स्वयं वृहस्पतिका यह उपदेश कहा था। इस समय मैं बिना कारणके कोई वचन नहीं कहता हूं, कोई कोई पुरुष शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर भी उसके अनुसार धर्म्म आचरण नहीं करते, कोई कोई पण्डित लोक-यात्रा विधानको ही धर्म्म कहा करते हैं ; पण्डित पुरुष स्वयं साधुओंके अनुष्ठित धर्म्मका आचरण करें। हे भारत ! बुद्धिमान् लोग यदि क्रोध, मोह और अज्ञानके वशमें होकर शास्त्रीय उपदेश दान करें, तो वह जनसमाजमें ग्रहण नहीं किया जाता और जो लोग शास्त्रदर्शिनी बुद्धि धारण करते हैं, उनके समीप उक्त उपदेश प्रशंसनीय नहीं है, बल्कि वे लोग अल्प-बुद्धियुक्त पुरुषोंका वचन ज्ञान पूरित होनेसे उसे साधु समझते हैं। युक्तिके जरिये जो शास्त्र नष्ट होजाय, वह शास्त्रोंमें नहीं गिना जाता। शुक्राचार्य्यने दानवोंसे यह सन्देहको नष्ट करनेवाला वचन कहा था,—सन्देह युक्त ज्ञानका रहना और न रहना समान है ; वैसे ज्ञानके जरिये जो धर्म्म होता है, उसके मूलको काटना और मेरे इन सब उपदेशोंको अङ्गीकार करना तुम्हें अवश्य उचित है, तुमने जो उग्र कर्म्म सिद्ध करनेके वास्ते जन्म लिया है, वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है ? देखो, मैंने युद्ध-विग्रहमें प्रवृत्त होकर कितने ऐश्वर्य्यवान क्षत्रियोंको स्वर्गलोकमें भेजा है उससे उन लोगोंकी सद्गति हुई है, परन्तु कोई कोई पुरुष इसके वास्ते मेरे ऊपर सन्तुष्ट नहीं हुए। प्रजापतिने बकरे, घोड़े और क्षत्रियोंको समान रूपसे परोपकारके निमित्त उत्पन्न किया है, इससे सदा प्राणियोंका उपकार करके सुरलोकमें गमन करना ही उचित है : अवध्य पुरुषके मारनेसे जैसा दोष होता है वध्य पुरुषका वध न करनेसे भी वैसा ही दोष हुआ करता है। साधु लोग जिसे जानते हैं, डाकू लोग उसे भिन्न कर्त्तव्य कहके ग्रहण करते हैं, इसलिये राजा अत्यन्त तीक्ष्ण होकर प्रजासमूहको स्वधर्म्ममें स्थापित करे ; इससे अन्यथा होनेसे वे लोग भेड़ियेकी तरह परस्परमें एक दूसरेको भक्षण करते हुए भ्रमण करेंगे। कौओंकी तरह जलसे मछली हरनेकी भांति जिसके राज्यमें डाकू लोग परधन हरन किया करते हैं वह क्षत्रियोंके बीच अत्यन्तही अधम है। राजन् ! तुम वेदविद्यायुक्त, सत्कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंको मन्त्रोपदपर अभिषिक्त करके धर्म्मके अनुसार प्रजा पालन और पृथ्वी शासन करो। जो राजा अन्याय रीतिसे प्रजासमूहको निकट कर ग्रहण करता है,वह पालन-धर्म्मसे हीन और विशेष उपायमें अनभिज्ञ क्षत्रिय क्लीव शब्दसे पुकारे जाने योग्य होता है। राजा लोग अत्यन्त कोमल तथा अत्यन्त कठोर होनेसे धर्म्मपूर्व्वक प्रशंसित नहीं होते ; इसलिये मृदुता और कठोरता दोनोंको ही अतिक्रम करना उचित नहीं है, इससे तुम पहिले उग्र होकर पीछे मृदु बनो। मैं तुमपर अत्यन्त स्नेह किया करता हूं ; इसलिये यह अत्यन्त कष्टयुक्त क्षत्रिय धर्म्म कहा है। विधाताने उग्र कार्य्योंके करनेके ही वास्ते तुम्हें उत्पन्न किया है ; इसलिये तुम उसहीके अनुसार राज्य शासन करो। हे भरतश्रेष्ठ ! बुद्धिमान शुक्राचार्य्यने कहा है, आपदकालमें अशिष्टोंका निग्रह और शिष्टोंकी सदा प्रतिपालन करना ही धर्म्म है।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुसत्तम पितामह ! दूसरे लोगोंसे अलङ्घनीय यदि कोई मर्य्यादा हो, तो मैं पूछता हूं, आप उसे कहिये

भीष्म बोले, वेद जाननेवाले सच्चरित्र तपस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करो, यही अत्यन्त पवित्र उत्तम कर्म्म है ; तुम देवताओंके विषयमें जैसा व्यवहार किया करते हो, ब्राह्मणोंके विषयमें भी सदा वैसा ही व्यवहार करो। भीष्म।

ब्राह्मणोंने क्रुद्ध होकर अनेक दुष्कर कर्म्म किये हैं, उन लोगोंकी प्रसन्नतासे बहुत यश प्राप्त होता है, अप्रसन्नतासे भय उत्पन्न हुआ करता है। ब्राह्मण लोग प्रसन्न होनेसे अमृतके समान और क्रुद्ध होनेसे विषकी तरह हुआ करते हैं।

१४२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाबुद्धिमान पितामह! शरणागत लोगोंके प्रतिपालन करनेसे जो धर्म्म होता है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज! शरणागत पुरुषोंके प्रतिपालन करनेसे बहुत ही धर्म्म हुआ करता है; तुम इस विषयके प्रश्न करनेके योग्यपात्र हो। हे राजन्! शिवि आदि राजा लोग शरणागत लोगोंको प्रतिपालन करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं मैंने सुना है, किसी कपोतने शरणागत शत्रुको विधिपूर्व्वक सम्मान करके निज मांस भोजन कराया था।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पहिले समयमें कपोतने किस प्रकार शरणागत शत्रुको निज मांस भोजन कराया और किस तरह उसकी गति हुई थी?

भीष्म बोले, हे राजन्! भगवान भार्गवने मुचकुन्द राजाके समीप सब पापोंको नष्ट करनेवाली दिव्य कथा कही थी, उसे तुम सुनो। हे पुरुषप्रवर पृथापुत्र! पहिले मुचकुन्द राजाने भार्गवके निकट विनीत भावसे इस विषयमें प्रश्न किया था। भार्गवने उस सेवा करनेवाले राजासे कपोतने जिस प्रकार सिद्धि लाभ की थी; उस कथाको इस भांति वर्णन किया था, मुनि बोले, हे महाभुज महाराज! मैं धर्म्म, काम, अर्थ-निर्णय युक्त कथा कहता हूं, सावधान होके सुनो। किसी महावनके बीच कालान्तक यमराजके समान विकट रूपवाला एक पक्षीघातक निषाद भ्रमण करता था। उसका शरीर कौआकी तरह काला, दोनों नेत्र लाल, दोनों जङ्घा बहुत लम्बी, दोनों चरण छोटे, मुखमण्डल भयानक और दोनों गाल बड़े थे। वह भयङ्कर कार्य्य करता था इसीसे स्त्रीके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उसका सुहृद सम्बन्धी और बान्धव नहीं था; सब कोईने ही उसे परित्याग किया था, क्योंकि पापाचारी मनुष्योंको पण्डित लोग एकबारगी परित्याग किया करते हैं, जो पुरुष अपनेको ही विष भक्षण वा उद्बन्धन आदिसे नष्ट कर सकता है वह किस प्रकार दूसरेका हितसाधन करेगा? जो सब दुराचारी नृशंस मनुष्य प्राणियोंका प्राणहरण करते हैं, वे सर्पकी तरह जीवोंके उद्वेजनक होते हैं। हे प्रजानाथ! वह निषाद जाल ग्रहण करके वनमें सदा पक्षियोंको मारकर उनका मांस बेंचता था। उस दुष्टात्माको इसी प्रकार व्यवसायमें प्रवृत्त रहनेसे बहुत समय बीत गया; तौभी वह निज कार्य्यसे जो अधर्म्म होता है, उसे न जान सका। वह इस प्रकार उपायके सहारे भार्य्याके सहित समय बिता रहा था, मूढ़ताके कारण उसे दूसरे किसी व्यवसायमें अभिलाषा नहीं हुई। अनन्तर किसी समय वह निषाद वनके बीच स्थित था; उसकी चारों ओर प्रचण्ड पवन मानो वृक्षोंको उखाड़ता हुआ प्रकट हुआ, जैसे समुद्र नौकासमूहसे परिपूरित होता है, वैसे ही आकाशमण्डल मुहूर्त्त भरके बीच बादल और बिजली समूहसे भर गया, देवराजने बहुतसी जलधारा वर्षा करके क्षणभरमें पृथ्वीको जलसे परिपूर्ण किया। अनन्तर उस वर्षाके समय निषाद चेतरहित और शीतसे आर्त होकर व्याकुलचित्तसे वनके बीच घूमते हुए कहीं भी ऐसी नीची भूमि न पाई जो जलसे परिपूर्ण न हुई हो। वनके सब मार्ग भी

जलसे भर गये थे। वेगपूर्व्वक जलकी वर्षा होनेसे पक्षीसमूह मरके पृथ्वीमें पड़े हुए थे। मृग, सिंह, वराह आदि ऊंचे स्थलको अवलम्बन करके सोरहे। जङ्गलीजीव प्रचण्डवायु और वर्षासे त्रासित, भयसे आर्त्त और भूखे होकर सब कोई वनमें एक स्थलसे भ्रमण करने लगे। पक्षी घातक निषाद शीतार्त्त शरीरसे किसी स्थानमें जाने वा एक स्थानमें स्थिर रहनेमें समर्थ न हुआ। अन्तमें उसने देखा, कि शीतसे विह्वल एक कपोती पृथ्वीपर पड़ी है, वह पापी स्वयं पीड़ित होनेपर भी कपोतीको देखते ही उसे निज पोञ्जरेमें डाल लिया। वह स्वयं दुःखित होनेपर भी दूसरेके दुःखका कारण हुआ; वह पापात्मा पाप करनेवाला था, इसीसे पाप-कार्य्यमें ही प्रवृत्त हुआ। उसने वनमें मेघ-मण्डल पर्य्यन्त ऊंचा एक वृक्ष देखा, छाया वास और फलकी आशासे पक्षी समूह उसका आश्रय कर रहे थे; विधाताने मानों परोपकारके ही निमित्त साधु पुरुषोंकी तरह उसे बनाया था। अनन्तर फूले हुए कुमुददलसे रञ्जित जलयुक्त बड़े तालाबकी तरह आकाशमण्डल क्षणभरमें तारा समूहसे सुशोभित हुआ। शीत-विह्वल व्याधाने बादल रहित, तारोंसे प्रकाशमान आकाश और घोर रात्रि देखकर सब ओर देखने लगा। 'इस स्थानसे बहुत दूर मेरा निवास स्थान है,—ऐसा विचारके उसने उस वृक्षके मूलमें रात्रि बितानेका निश्चय किया। अनन्तर उसने हाथ जोड़के वृक्षको प्रणाम करके कहा। हे तरुवर! तुम्हारे ऊपर जो सब देवता हैं, मैं उनका शरणागत हुआ हूं। पक्षीघातकने महादुःखमें पड़के ऐसा वचन कह कर पृथ्वीपर कुछ पत्ते बिछाकर पत्थरके ऊपर सिर रखके शयन किया।

१४३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! विचित्र तनरुहयुक्त एक पक्षी बहुत समयसे सुहृदोंके सहित उस वृक्षकी शाखापर वास करता था; उसकी भार्य्या प्रातःकाल चारा चुगने गई थी; रात्रि उपस्थित हुई तौभी वह आश्रममें न आई, इससे पक्षी अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगा, इसके पहिले प्रचण्ड पवन बहता था और जलकी वर्षा हुई थी; मेरी प्रेयसी अबतक भी क्यों नहीं आई? वह जो अभीतक नहीं लौटी, इसका क्या कारण है? वनमें मेरी स्त्रीका कुछ अमङ्गल तो नहीं हुआ? प्रियाविरहसे आज यह मेरा गृह सूना मालूम होता है। भार्य्यारहित गृहस्थका गृह पुत्र, पौत्र, बधू और सेवकोंसे परिपूरित होनेपर भी सूना हुआ करता है; पण्डित लोग गृहको घर नहीं कहते, गृहिणीको ही घर कहा करते हैं; गृहिणीरहित घर वनके समान है। मेरी वह आरक्तनयनी विचित्राङ्गी मधुर वचन कहनेवाली प्यारी यदि आज न आवे, तो मेरे जीनेका कोई प्रयोजन नहीं है। जो उत्तम व्रत करनेवाली मेरे भूखे रहनेपर भोजन नहीं करती, स्नान न करनेपर स्नान नहीं करती, बिना बैठे बैठती नहीं और बिना सोये शयन नहीं करती थी, मेरे प्रसन्न होनेसे जो हर्षित और दुःखी होनेसे दुःखित होती थी; मेरे प्रवासमें गमन करनेसे जिसका मुख मलीन होता था और क्रुद्ध होनेपर जो प्रिय वचन कहती थी, वह पतिव्रता, पतिगति और पतिके प्रिय तथा हित कार्य्योंमें रत रहनेवाली प्रेयसी कहां गई? भूलोकमें जिसकी उसके समान भार्य्या है, वह पुरुष ही धन्य है। वह अनुरक्ता, सुस्थिरा, स्निग्ध-मूर्त्ति, भक्तिशालिनी तपस्विनी ही मुझे थकने वा भूखा होनेपर जान सकती है। जिसके प्रेयसी है, वह यदि वृक्षकी मूलमें भी वास करे तो वही उसके लिये गृहस्वरूप होता है और प्रियाहीन घर भी दुर्गम वनके समान हुआ करता है

धर्म्म, अर्थ और काम साधन कार्य्यमें भार्य्या ही सहाय हुआ करती है और विदेश जानेके समय एक मात्र भार्य्या ही पुरुषको विश्वास-पात्र रहती है। लोकमें भार्य्या ही पुरुषका परम प्रयोजन सिद्ध करती है, सहायरहित पुरुषके लोकयात्रा निर्व्वाहके विषयमें भार्य्या ही सहायक होती है। पीड़ित पुरुषको औषध समान सदा रोगयुक्त और क्लेशमें पड़े हुए मनुष्योंके लिये भार्य्याके समान और कोई भी नहीं, भार्य्याके समान बन्धु नहीं, भार्य्याके समान आश्रय नहीं और जनसमाजमें धर्म्म संग्रहके विषयमें भार्य्याके समान और कोई भी सहायक नहीं है। जिसके घरमें पतिव्रता प्रियवादिनी भार्य्या नहीं है, उसे वनमें गमन करना ही योग्य है, उसके लिये वन और घर दोनों ही समान हैं।

१४४ अध्याय समाप्त।

कपोत इसी तरह विलाप कर रहा था, तब पक्षिघाती निषादके हस्तगत हुई कपोती पतिका करुणायुक्त वचन सुनके कहने लगी। कपोती बोली, ओहो! मैं अत्यन्त सौभाग्यवती हूं, मेरा पति क्या ही प्रियवादी है! मुझमें गुण हो, वा न हो, ये तो ऐसा कहते हैं, जिस नारीके ऊपर पति प्रसन्न नहीं है, उसे स्त्री कहके गिनना अनुचित है। स्त्रियोंके ऊपर यदि पति प्रसन्न रहे, तो सब देवता ही सन्तुष्ट होते हैं, अबलाओंका जो पति ही परम देवता स्वरूप है, इस विषयमें अग्नि ही साक्षी रहती है। जैसे पुष्प-स्तवकयुक्त लता दावानलके जरिये जल जाती है, पतिके असन्तुष्ट रहनेसे नारी भी उसी प्रकार भस्म होजाती है। निषादके हस्तगत हुई कपोती दुःखसे कातर होकर उस समय इसी भांति चिन्ता करके अपने पतिसे बोली, हे नाथ! मैं तुम्हें कल्याणकी कथा कहती हूं, तुम सुनकर वैसा ही करो,—तुम शरणागत पुरुषका विशेष रीतिसे परित्राण करो; यह तुम्हारे स्थानपर आके सोरहा है, यह पुरुष शीतसे दुःखित तथा क्षुधासे आर्त्त हुआ है; इसलिये इसका सत्कार करो, जो कोई ब्रह्महत्या करे, जो कोई लोकमाता गऊको मारे और जो पुरुष शरणागत पुरुषका बध करते हैं, उन लोगोंके पाप समानही होते हैं। हमारी कपोतजातिके धर्म्म अनुसार जैसा व्यवहार विहित है, उसी भांति बुद्धिमान पुरुषको सदा उसका अनुसरण करना उचित है, जो गृहस्थ शक्तिके अनुसार धर्म्माचरण करता है, मैंने सुना है अन्तकालमें अक्षय लोकोंको पाता है। इस समय तुमने कन्या पुत्रोंका सुख देखा है, इससे निज शरीरके लिये दया त्यागके धर्म्म और अर्थ परिग्रह करके जिस प्रकार इसका चित्त प्रसन्न हो, उसी तरह सत्कार करो। हे नाथ! तुम मेरे वास्ते दुःख मत करो, तुम यदि जीते रहोगे, तो शरीर यात्रा निर्व्वाहके लिये दूसरी भार्य्या पाओगे। पींजरेमें स्थित तपस्विनी कपोती अत्यन्त दुःखित होकर पतिको देखके ऐसा ही बोली थी।

१४५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, कपोतने निज पत्नीका धर्म्मपूरित युक्तियुक्त वचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर आंसू भरे नेत्रसे पक्षिजीवी निषादको देखकर यथाविधि यत्नपूर्व्वक उसका सत्कार किया, और उसका स्वागत प्रश्न करके बोला तुम्हारी क्या अभिलाषा है, शीघ्र कहो? मैं उसे ही करूंगा। शत्रु भी यदि घरपर आवे, तो उसकी भी अतिथि सेवा करनी उचित है; कोई पुरुष यदि काटनेके लिये आवे, तो वृक्ष उसे छाया दान करनेमें विरत नहीं होता, पक्षयुक्त

प्रवृत्त गृहस्थ पुरुषोंको विशेष यत्नके सहित शरणागत पुरुषोंका अतिथि-सत्कार करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहकर जो पुरुष मोहके वशमें होकर पञ्चयज्ञ करनेमें विरत होता है, धर्म्मपूर्व्वक उसको इस लोक और परलोकमें सद्गति नहीं होती, इससे तुम विश्वासी होकर कहो, मुझसे जो कहोगे, मै वही करूंगा, तुम अपने मनमें शोक मत करो। निषाद कबूतरका ऐसा वचन सुनके उससे बोला, मैं जाड़ेसे अत्यन्त दुःखी हूं, इससे जिस प्रकार जाड़ेसे परित्राण हो, तुम वैसा ही विधान करो।

निषादके ऐसा कहनेपर कपोतने सामर्थ्यके अनुसार पृथ्वीपर कितने ही पत्तोंको इकट्ठा करके पत्तेके सहारे अग्नि लानेके वास्ते शीघ्र ही गमन किया। वह अग्निशालासे आग ले आया, फिर सूखे पत्तोंके बीच अग्नि जला दिया। कबूतर इसी तरह आग जलाके शरणागत पुरुषसे बोला, तुम विश्वासी होकर निःशंकचित्तसे अपना शरीर गर्म्म करो। कपोतका ऐसा वचन सुन निषादने अपना शरीर गर्म्म किया। अग्नितापसे उसका जीवन प्रत्यागत हुआ, तब वह कपोतको पुकारके बोला, हे पक्षी! मैं भूखसे कातर हुआ हूं, इससे इच्छा करता हूं कि तुम मुझे कुछ भोजन दान करो, कबूतरने व्याधेका वचन स्वीकार करके कहा, मेरे ऐसी कोई भोजनकी सामग्री सञ्चित नहीं है, जिससे तुम्हारी क्षुधा शान्त हो, मैं वनवासी हूं, प्रतिदिन जो कुछ लाता हूं, उसहीसे जीविका निर्व्वाह किया करता हूं; मुनियोंकी तरह हम लोगोंके पास भी भोजनकी वस्तु सञ्चित नहीं रहती। हे भरतश्रेष्ठ! कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके दुःखित हुआ और क्या करना चाहिये, ऐसी ही चिन्ता करते हुए निज वृत्तिकी निन्दा करने लगा। कपोत मुहूर्त्त भरके अनन्तर सावधान होकर पक्षिघातीसे बोला, "थोड़ी देर ठहरो, मैं तुम्हें तृप्त करूंगा।" कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके सूखे पत्तोंसे आग जलाकर अत्यन्त हर्षित होकर बोला, मैंने पहिले देवता पितर और महानुभाव ऋषियोंके निकट सुना है कि अतिथि पूजनसे बहुत धर्म्म हुआ करता है। इससे, हे प्रियदर्शन! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो, अतिथि-पूजा विषयमें मुझे निश्चय ज्ञान हुआ है। अनन्तर प्रतिज्ञा किये हुए महाबुद्धिमान कपोतने मानो हंसते हंसते तीन बार उस अग्निकी प्रदक्षिणा करके उसमें प्रविष्ट हुआ। निषादने कपोतको अग्निमें प्रवेश करते देखकर "मैंने यह क्या किया।" मनही मन ऐसी ही चिन्ता करने लगा। हाय! मैं कैसा नृशंस और क्या ही निन्दनीय हूं। निजकर्म्मके दोषसे मुझे निःसन्देह महाघोर अधर्म्म होगा। व्याधा पक्षीकी वैसी अवस्था देखकर निज कर्म्मकी निन्दा करते हुए इसी भांति अनेक प्रकार बिलाप करने लगा।

१४६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे आर्त्त वह लोभी आगमें प्रविष्ट हुए कपोतको आगसे देखकर फिर यह वचन बोला कि मैं अत्यन्त नृशंस और निर्बुद्धि हूं, मैंने क्या कर्म्म किया। मैं अत्यन्त क्षुद्रजीवी हूं, इस कार्य्यसे अवश्य ही मुझे महापाप होगा। वह बार बार अपनी निन्दा करके बोला, मैं जब शुभ कार्य्योंका त्यागके पहिलोभी हुआ हूं, तब मैं अवश्य ही अविश्वासी और अत्यन्त दुर्बुद्धि तथा सदा पापमें रत हूं, मैं बहुत ही निठुर हूं, इस ही लिये महात्मा कपोतने निज शरीरको जलाकर मुझे धिक्कारपूर्व्वक उपदेश दान किया, इसमें सन्देह नहीं है, इससे मैं स्त्री पुत्रोंको त्याग प्रिय प्राण छोड़ूंगा, महात्मा कपोतने मुझे धर्म्म-

उपदेश प्रदान किया है। जैसे ग्रीष्मकालमें थोड़े जलसेयुक्त तालाब सूख जाते हैं, उसही प्रकार मैं आजसे निज शरीरको सब भोगोंसे रहित करके सुखाऊंगा। भूख, प्यास और आतपको सहके धमनी संयुक्त शरीरसे अनेक तरहके उपवासके सहारे पारलौकिक धर्म्म आचरण करूंगा। कैसा आश्चर्य्य है! कपोतने देह दान करके अतिथिसत्कार दिखाया। धर्म्मिष्ठ पक्षिश्रेष्ठका जैसा धर्म्म दीख पड़ा, मैं वैसा ही आचरण करूंगा, क्यों कि धर्म्म ही परम गति है। क्रूर कर्म्म करनेवाले लोभी व्याधने तीक्ष्ण व्रत अवलम्बनपूर्व्वक ऐसा ही कहके तथा निश्चय करके महाप्रस्थानका आश्रय करते हुए उस बूढी कपोतीको छोड़के यष्टि, शलाका, जाल और पिञ्जरा परित्याग किया।

१४७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, निषादके जानेपर परम दुःखी कपोतवनिता शोकसे आर्त्त होकर रोदन करती हुई पतिको स्मरण करके बोली, नाथ! तुमने कभी मेरा अप्रिय कार्य्य किया था,—ऐसा स्मरण नहीं होता; बहुतसे पुत्रवाली स्त्रियें भी विधवा होनेपर शोक किया करती हैं; पतिसे रहित दुःखिनी नारी बन्धु जनोंमें शोचनीय होती हैं। तुमने सदा मेरा लालन किया, मीठे और मनोहर वचनोंसे अनेक तरहसे मेरा सत्कार किया है। पहाड़की गुफा, नदियोंके झरने और रमणीय वृक्षोंकी चोटियोंमें मैंने तुम्हारे सङ्गमें विहार किया है; आकाशमें गमन करनेके समय भी मैं तुम्हारे साथ सुखसे फिरती थी। हे नाथ! मैंने पहिले तुम्हारे साथ जो सब विहार किया है; आज अब वह कुछ भी नहीं है। पिता, भ्राता, पुत्र आदि परिमित सुख प्रदान करते हैं, अपरिमित सुख देनेवाले पतिकी कौन पूजा नहीं करती? पतिके समान नाथ नहीं, पतिके समान सुख नहीं; सर्व्वस्व धन परित्याग करके स्त्रियोंके लिये एक मात्र पतिही अवलम्बनीय है। हे नाथ! इस समय तुम्हारे बिना मेरे जीनेका कुछ प्रयोजन नहीं है; कौन सती सीमन्तिनी पतिहीन होकर जीनेका उत्साह करेगी! अत्यन्त दुःखिता पतिव्रता कपोतीने करुण स्वरसे इसी भांति अनेक तरह विलाप करके जलती हुई अग्निमें प्रवेश किया। अनन्तर कपोतकी स्त्रीने देखा, कि विचित्र कवचधारी विमानमें स्थित पतिकी महानुभाव सुकृतिजन पूजा करते हैं। कपोत उस समय विचित्र माला, वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर शतकोटि विमानोंपर विहार करनेवाले पुण्यवान पुरुषोंसे घिरा था। कपोतने विमानपर चढ़के स्वर्ग लोकमें जाकर वहां निज कर्म्मके अनुसार सत्कृत होकर प्रियाके सहित विहार करने लगा।

१४८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! निषादने उस कपो दम्पतीको विमानपर चढ़े हुए निवास करा देखकर दुःखित होकर चिन्ता किया, कि इ प्रकार तपस्याके सहारे मैं परम गतिको प्रा होऊंगा। उसने मनहीमन ऐसाही निश्चय कर गमन करनेकी तैयारी की। पक्षिजीवी व्याध महाप्रस्थानका आश्रय करके स्वर्गप्राप्ति इच्छासे चेष्टारहित और ममताहीन होके वायु भक्षण करने लगा। अनन्तर सुन्दर शीत जलसे युक्त अनेक प्रकारके पक्षियोंसे परिपूर्ण एक तालाव उसके दृष्टिगोचर हुआ। प्यास पुरुष उसे देखनेसे ही निःसन्देह तृप्त होत था। महाराज! व्याधा उस समय उपवास कारण अत्यन्त कृश हुआ था, उसने उस रमणीय तालावको ओर विशेष रूपसे न देखकर

ही विविध खापदयुक्त एक महाघोर वनके बीच हर्षपूर्व्वक प्रवेश किया; वनमें प्रवेश करते ही उसका शरीर कांटोंसे चत विचत होकर रक्त-पूरित होगया; तोभी वह उस अनेक मृग आदिकोंसे युक्त निर्ज्जन वनके बीच भ्रमण करने लगा। अनन्तर वनमें वेगपूर्व्वक वायुके चलनेसे बड़े बड़े वृचोंके आपसमें रगड़ खानेसे प्रबल दावाग्नि प्रकट हुई। धीरे धीरे प्रलय-कालकी अग्नि समान प्रभायुक्त अग्नि क्रुद्ध होकर विविध वृचों और लतापल्लवोंसे परि-पूरित वनको जलाने लगी जब अग्निदेव ज्वाल-माला युक्त वायुसे बढ़के अग्निपुञ्जके सहारे मृग पचियोंसे युक्त घोर वनको जलाने लगे, तब व्याधाने शरीर त्यागनेके वास्ते कृतनिश्चय होकर हृष्टचित्तसे बढ़ी हुई अग्निकी ओर दौड़ा। हे भरतसत्तम! निषाद जब उस अग्निके जरिये भस्म हुआ, तब उसकी कलुष-राशि विनष्ट हुई; अन्तमें उसने परम सिद्धि लाभ की। अनन्तर उसने पापरहित होकर स्वर्ग-लोकमें गमन करके अपनेको यच, गन्धर्व्व और सिद्धोंके बीच देवराजके समान विराजते हुए देखा। पतिव्रता कपोती और कपोत पुण्यक-र्म्मके सहारे इसी प्रकार निषादके सहित सुर-लोकमें गये थे। इसी प्रकार जो स्त्री शीघ्र ही पतिका अनुसरण करती है, वह स्वर्गवासिनी कपोतीकी तरह विराजमान हुआ करती है। मैंने महात्मा कपोत और व्याधेका यह उपन्यास कहा, इन्होंने पवित्र कर्म्मके जरिये धर्म्मिष्ठ पुरु-षोंको गतिलाभ की थी। जो पुरुष सदा इसे सुनता वा कहता है, प्रमादके कारण मनमें भी कभी उसका अशुभ नहीं होता है। हे धार्म्मिकप्रवर युधिष्ठिर! इसी तरह शरणागत पुरुषकी रचा करना ही महान् धर्म्म है; वह प्रायश्चित्त करके गोहत्या करनेवाला मनुष्य भी पाप कर्मसे छूट जाता है; परन्तु जो पुरुष शरणा-गत जनोंका बध करता है, उसकी निष्कृति नहीं होती। मनुष्य इस पाप नष्ट करनेवाले पवित्र इतिहासको सुननेसे दुर्गतिको न प्राप्त होकर स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं।

१४६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! जो पुरुष अज्ञानताके कारण पापाचरण करता है, वह किस प्रकार उससे मुक्त होता है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, शुनक पुत्र द्विजवर इन्द्रोतने जो जनमेजयसे कहा था, मैं इस विषयमें तुम्हारे निकट ऋषियोंसे सत्कृत वह प्राचीन वृत्तान्त वर्णन करूंगा। परीचितके पुत्र जनमेजय नाम महाबलवान पराक्रमी एक राजा थे; उन्होंने अज्ञानताके कारण ब्रह्महत्या की थी, इसीसे पुरोहितके सहित ब्राह्मणोंने उन्हें परित्याग किया, अन्तमें प्रजासमूहने भी उन्हें परित्याग किया, तब उन्होंने रातदिन शोककी अग्निसे जलते हुए वनमें गमन करके महत् कल्याण साधन किया। राजाने शोकसे जलते हुए घोर तपस्या करते हुए पृथ्वीमण्डलमें देश देश घूमकर ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुए पाप दूर होनेका विषय ब्राह्मणोंसे पूछा था; उस विषयमें यह धर्म्मयुक्त पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो! किसी समय राजा जनमेजयने पाप कार्य्यसे दह्यमान होकर भ्रमण करते हुए शुनकनन्दन संशित-व्रती महर्षि इन्द्रोतके निकट जाके उनके दोनों चरण ग्रहण किये। महर्षि उस समय राजाको घोर देखकर अत्यन्त निन्दा करके बोले, तुम भ्रूणहत्या करनेवाले, पापाचारी होकर किस निमित्त इस स्थानमें आये हो? मेरे निकट तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम मुझसे कोई बात मत पूछो, जाओ, यह तुम्हारे योग्य स्थान नहीं है; तुम्हारे आनेसे मैं प्रसन्न नहीं हुआ; तुम्हारे शरीरके रुधिरकी तरह दुर्गन्धि

होतो है, आकार मुर्दकी तरह दीख पड़ता है, तुम अमङ्गलाचारी होकर मङ्गलाचारी और मृत होकर जीवितकी तरह भ्रमण कर रहे हो। तुम अनुक्षण पापकी चिन्ता करते हुए मलिनस्वभाव और मृत्युसे आक्रान्त हुए हो, तुम सोते और जागते हो, यह ठीक है; परन्तु अत्यन्त दुःख भोग कर रहे हो। हे राजन्! तुम्हारा जीवन निरर्थक है, तुम अत्यन्त क्लेशसे जीवन बिता रहे हो। नीच पाप कर्म्म करनेके वास्ते विधाताने तुम्हें उत्पन्न किया है। पितर लोग अनेक कल्याणकी इच्छा करके तपस्या, देवपूजा, वन्दना और तितिक्षाके जरिये पुत्र-कामना किया करते हैं; परन्तु देखो, तुम्हारे लिये तुम्हारे सब पितर नरकगामी होरहे हैं, तुममें उन लोगोंका जो सब आशाबन्धन था, वह भी निरर्थक हुआ है। लोग जिनकी पूजा करते हुए स्वर्ग, आयु और यश लाभ करते है, तुम विना कारणके ही उन ब्राह्मणोंसे सदा द्वेष किया करते हो, इसलिये तुम इस लोकको परित्याग करनेपर पाप कर्म्मके कारण शिर नीचे करके सब कर्म्मोंके फल भोगनेके लिये बहुत समयतक नरकमें डूबते रहोगे। वहांपर गिद्ध और अधोमुख मयूर समूह तुम्हें प्रतिक्षण भक्षण करेंगे। अनन्तर तुम फिर पाप-योनिको प्राप्त होगे। हे राजन्! यदि तुम विचार करो कि यह लोक ही नहीं है,—तो परलोक कहां? ऐसा होनेसे यम स्थानपर यमदूत लोग प्रतिक्षण तुम्हें उसे स्मरण करा देंगे।

१५० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इन्द्रोत मुनिने जब जनमेजयसे ऐसा कहा, तब वह मुनिको सम्बोधन करके बोले, हे तपोधन! आप निन्दनीय पुरुषकी निन्दा किया करते हैं, इस कारण मैं निन्दनीय हुआ हूं और निन्दनीय कार्य्य किया है, इससे मुझे और मेरे कार्य्यकी निन्दा कर रहे हैं, इसलिये मैं आपको प्रसन्न करता हूं, मैंने जो कुछ किया है, वह सब दुष्कर्म्म हैं, इस समय मैं मानो अग्निमें पड़के जल रहा हूं, निज कर्म्मोंको स्मरण करके मेरा अन्तःकरण किसी तरह सन्तुष्ट नहीं होता है, मैं यमसे अत्यन्त भयभीत होता हूं; यम भयरूपी शल्यको बिना निकाले किस प्रकार जीवन धारण करनेमें समर्थ होऊंगा? हे महर्षि! आप समस्त क्रोध परित्याग करके मुझे सदुपदेश प्रदान करिये। पहिले मैं ब्राह्मणोंके विषयमें अत्यन्त भक्तिमान था; इस समय भी कहता हूं, कि ब्राह्मणोंके विषयमें फिर अब अभक्ति नहीं करूंगा, मेरे इस वंशका शेष रहे, जिसमें इसकी पराभव न हो। जो लोग ब्राह्मणोंकी हिंसा करके जनसमाजमें अपयशके पात्र और वेद निर्णयके अनुसार निज जातिसे परित्यज्य हुए हैं, उनका शेष होना उचित नहीं हैं, मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं, इसलिये युक्तियुक्त वचन बार बार प्रकाश करके आसक्तिरहित योगी लोग जैसे कृपा करके निर्द्धन लोगोंको प्रतिपालन किया करते हैं, आप भी उसी तरह मेरी रक्षा करिये। यज्ञहीन मनुष्य किसी प्रकार इस लोकको नहीं प्राप्त होते, वे पुलिन्द और शबर आदि म्लेच्छ जातियोंकी तरह नरकमें निवास किया करते हैं। हे ब्रह्मन्! आप उत्तम पण्डित हैं, इसलिये मैंने बालककी तरह न जानकर जो कुछ किया है, आप उसे क्षमा करिये, पुत्रके विषयमें पिताकी तरह आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।

शौनक बोले, अज्ञ पुरुष जो बहुतसे अयुक्त कर्म्म किया करते हैं, उसमें आश्चर्य्य नहीं है, ज्ञानवान होके भी जो जीवोंके विषयमें योग्य व्यवहार नहीं करते, वही आश्चर्य्य है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिरूपी महलपर चढ़के स्वयं अशोच्य होकर दूसरेके लिये शोक किया करते हैं और पहाड़पर वास करनेवालेकी तरह

सृष्टीको सब वस्तुओंको बुद्धिबलसे देखते हैं। जो पुरुष साधुओंके समीप निन्दनीय होकर दुःखित होता और उनकी दृष्टिके अगोचर हुआ करता है, वह कभी कल्याण लाभ और कर्त्तव्यको नहीं देख सकता। वेद शास्त्रोंमें कहे हुए ब्राह्मणोंके पराक्रम और महात्मा तुम्हें अविदित नहीं है; इसलिये इस समय जिससे शान्तिलाभ हो, वही करो; ब्राह्मण लोग तुम्हारी रक्षा करें। हे तात! क्रोधरहित ब्राह्मण लोग जो आचरण करते हैं, उसीसे अन्तकालमें उपकार होता है; इस समय तुम पापसे परितापित हो रहे हो, इसलिये एक मात्र धर्म्म अवलम्बन करो।

जनमेजय बोले, हे सुनकनन्दन! मैं पापकी आगसे सन्तापित होरहा हूं, यह ठीक है, परन्तु मैंने धर्म्मलोप नहीं किया है, कल्याणकी इच्छा करके आपकी आराधना कर रहा हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।

शौनक बोले, हे राजन्! मैं दम्भ और अभिमानको त्यागके तुम्हारी प्रीतिके अभिलाष करता हूं, तुम एकमात्र धर्म्मको स्मरण करके सब प्राणियोंके हितानुष्ठानमें अनुरक्त रहो। भय, कृपणता अथवा लोभके वशमें होकर मैं तुम्हें अनुशासन नहीं करता हूं, तुम ब्राह्मणोंके सहित मेरा सत्य वचन सुनो। मैं किसी विषयमें प्रार्थना नहीं करता। हा हा! धिक् धिक्! कहके जो सब जीवसमूह चिल्लाया करते हैं, उनके सम्मुखमें ही मैं तुम्हें उपदेश देता हूं, सुहृद लोग इसके लिये मुझे अधार्म्मिक कहेंगे और परित्याग करेंगे, परन्तु वे लोग मेरा वह सत्य वचन सुनकर अत्यन्त ही पीड़ित होंगे। कोई कोई महाबुद्धिमान मनुष्य यथार्थरूपसे मेरा अभिप्राय जान सकेंगे। हे भारत! ब्राह्मणोंके विषयमें मेरा जैसा अभिप्राय है, उसे तुम मालूम करो, वे लोग मेरे लिये जिस प्रकार कल्याण लाभ करें तुम वैसा ही करो; हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी बुराई नहीं करूंगा,— यह प्रतिज्ञा करो।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! मैं आपके दोनों चरण छूके प्रतिज्ञा करता हूं, कि वचन, मन और कर्म्मसे फिर कभी ब्राह्मणोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करूंगा।

१५१ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे राजन्! इस समय तुम्हारा चित्त धर्म्म मार्गमें लौटा हुआ है, इस ही कारण मैं तुम्हें उपदेश दान करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, तुम श्रीमान् महाबलवान् और पराक्रमी होकर स्वयं धर्म्मदर्शी होरहे हो; राजा लोग पहिले कठोर स्वभाववाले होके पीछे जीवोंके विषयमें कृपा प्रकाशित किया करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। लोग कहा करते हैं, कि जो राजा निठुर होता है, वह सब लोगोंको दुःखित करता है; तुम भी पहिले वैसा ही होकर इस समय धर्म्मदर्शी हुए हो। हे जनमेजय! तुमने जो राज्य भोग भक्ष्य भोज्य परित्याग करके बहुत दिनोंसे तपस्या अवलम्बनकी है, वह अधर्म्म युक्त राजाओंके विषयमें अद्भुत कार्य्य है। समृद्धि युक्त दाता वा कृपण जो तपस्वी होता है, वह आश्चर्य नहीं है, क्यों कि वे लोग तपस्याकी अन्तिम सीमापर स्थिति नहीं करते। पूर्व्व पर विचार न करके कार्य्य करनेसे दोष घटनाकी सम्भावना रहती है और परीक्षा करके कार्य्य करनेपर उससे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। हे महाराज! यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, और सत्य वचन, इन पांच कर्म्मोंके तथा उत्तम रीतिसे तपस्या करना ही राजाओंके परम पवित्र धर्म्म हैं। हे जनमेजय! तुम पूर्ण रीतिसे इस ही तपस्याको अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ धर्म्म लाभ करोगे। पवित्र देशमें गमन करना परम प

कर्म्म है, इसे ऋषियोंने स्मरण किया है। इस विषयमें ययाति राजाने जो गाथा कही थी, पण्डित लोग उसे ही उदाहरणमें कहा करते हैं। जो मनुष्य बहुत दिन जीनेकी इच्छा करे, वह यत्न पूर्व्वक यज्ञ करके, अन्तमें उसे छोडके तपस्या करे। पण्डित लोग कुरुक्षेत्रको पवित्र तीर्थ कहा करते हैं, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती, सरस्वतीसे उसके सब तीर्थ और सरस्वतीसे पृथीदक तीर्थ पवित्र है, जिसमें नहाने और जिसके जल पीनेसे मनुष्य अकाल-मृत्युके लिये शोकित नहीं होते।

जो लोग वृहत् आयुकी इच्छा करें वे महासरोवर पुष्कर, प्रभास, उत्तर मानस और कालोदक आदि सब तीर्थोंमें गमन करें। सरस्वती और दृषद्वती नदियोंके सङ्गम और मानस सरोवरपर स्वाध्यायमें रत होकर भ्रमण करें। मनुने कहा है, कि सब पवित्र धर्म्मोंमें त्याग धर्म्म पवित्र है और सन्न्यास-धर्म्म उससे अधिक पवित्र है। इस विषयमें सत्यवानने जो अपनी निज सम्मति प्रकाशित की है, पण्डित लोग उसे ही उदाहरण दिया करते हैं; राग द्वेषसे रहित बालक जैसे पापपुण्यमें आसक्त नहीं होता, तुम भी उसी प्रकार पाप पुण्यके अनुष्ठानसे निवृत्त होजाओ। इस पृथ्वीपर सुख दुःख कुछ भी नहीं है जीवोंके पुत्र कलत्र आदिके संयोग वियोगके कारण सुख दुःख कल्पना मात्र है निखिल-कलुष संसर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके पुण्य और पाप निवृत्त होनेपर वे ब्रह्मस्वरूप लाभ करके जीवन परित्याग करके परम कल्याण भाजन होते हैं। इस समय राजाओंके कर्त्तव्य कार्य्योंके बीच जो उत्तम है, वह तुमसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! तुम धीरज और दानके सहारे स्वर्ग लोकमें अधिकार करो जिसमें धीरज और दान शक्ति है, वही धार्म्मिक है। महाराज! तुम ब्राह्मणोंके रक्षाके निमित्त पृथ्वी पालन करो पहिले तुमने जिस प्रकार ब्राह्मणोंकी निन्दा की थी, उस भांति इस समय उन्हें प्रसन्न करो। ब्राह्मणोंसे बारम्बार धिक्कृत और परित्यक्त होनेपर भी तुम आत्म उपमाके जरिये उन लोगोंका कभी ना करना, ऐसाही निश्चय करके निज [illegible] नियुक्त रहके परम कल्याण साधन करो। कोई कोई राजा हिमके समान शीतल, अग्निकी तरह क्रूर और यमकी भांति गुणदोषोंके बिचारक हुआ करते हैं, और कोई कोई शत्रु तापन राजा हलकी तरह शत्रुयोंके [illegible] नष्ट करते तथा वज्रके अकस्मात गिरनेकी [illegible] दुष्टोंको शासन किया करते हैं। दुष्टोंके सङ्ग विशेषरूपसे प्रीति करनेसे वह स्थिरताके सहित वर्त्तमान नहीं रहती, इसलिये कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको खलोंके साथ कभी प्रीति करनी उचित नहीं है। एक वेर पाप कर्म्म करके शोक करनेपर उससे छुटकारा होता है, दूसरी बार पापकर्म्म करके फिर ऐसा न करूंगा इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे उससे निस्तार हो सकता है; तीसरी बार पाप कर्म्म करनेपर "धर्म्माचरण करूंगा" कहके दृढ़-प्रतिज्ञ होनेपर वह नष्ट होता है, बहुत सा पाप कर्म्म करनेपर पवित्र होकर तीर्थाटन करनेसे उससे मुक्ति लाभ हुआ करता [illegible] ज्ञानकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको कल्याण पथका पथिक होना उचित है। जो लोग [illegible]न्धित वस्तुकी सेवा करते हैं, उनका शरीर [illegible]न्धयुक्त होता है, और जो लोग दुर्गन्ध वस्तु सेवा किया करते है, उनका शरीर दुर्गन्ध होजाता है, तपस्या करनेवाले पुरुष प[illegible] सदा ही मुक्त हुआ करते हैं। अभिशाप[illegible] पुरुष सात वर्ष तक अग्निकी उपासना कर[illegible] मुक्ति लाभ करते हैं। भ्रूण-हत्या करने[illegible] मनुष्य तीन वर्षतक अग्निकी उपासना कर[illegible] मुक्त हो सकते हैं; और भ्रूण-हत्या करने[illegible] पुरुष एक सौ योजन दूरसे यदि महा सर[illegible]

पुष्कर प्रभास और उत्तर मानस-तीर्थोंमें गमन करे तो वह पापसे मुक्त होवे। प्राणी-घातक मनुष्य जितने प्राणियोंका वध करते हैं, उस जातिके उतने ही प्राणियोंके म्रियमाण होनेपर उन्हें बन्धनसे छुड़ा सकें तो उस पापसे छूट जाते हैं। मनुने कहा है, कि पापी पुरुष अघमर्षण मन्त्रको तीन बार जप करते हुए यदि जलमें निमग्न हो; तो वह अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेवाले पुरुषकी भांति पवित्र होके जन समाजमें आदरयुक्त हुआ करता है, और जीव मात्र ही जड़ तथा मूकको तरह उससे प्रसन्न होते हैं। हे राजन्! पहिले देवता और असुरोंने देव गुरु बृहस्पतिके समीप जाके विनीत वचनसे कहा था, हे महर्षि! आप धर्म्मके फलको जानते हैं और जिसके जरिये परलोकमें नरकमें गमन करना पड़ता है, वह पापका फल भी आपको अविदित नहीं है; जिसके पाप-पुण्य दोनों ही समान है, वह क्या पुण्यके जरिये पापको जय नहीं कर सकता? सो पुण्यका फल कैसा है, और धर्म्म-शील मनुष्य किस प्रकार पाप खण्डन करते हैं; वह आप हम लोगोंसे कहिये।

बृहस्पति बोले, पहिले अज्ञान पूर्व्वक पाप कर्म्म करके, फिर यदि ज्ञान पूर्व्वक पुण्यका अनुष्ठान करे, तो जिस प्रकार खारके संयोगसे मैले वस्त्रोंका मल दूर किया जाता है, वैसे ही पुण्य करनेवाला पुरुष धर्म्माचरणके सहारे पाप खण्डन करनेमें समर्थ होता है। पुरुष पाप कर्म्म करके, अभिमान न करे, श्रद्धायुक्त और असूयारहित होकर कल्याणकी इच्छा करे, जो पुरुष पापाचार करके कल्याणकी इच्छा करता है, वह साधुओंके निवृत छिद्रोंको छिपाया करता है। जैसे सूर्य्य भोरके समय उदय होकर समस्त अन्धकार नष्ट करता है। धर्म्म करनेवाला पुरुष उसी तरह सब पाप खण्डन किया करता है।

भीष्म बोले, शुनकपुत्र महर्षि इन्द्रोतने राजा जनमेजयसे ऐसा ही कहके विधिपूर्व्वक उसे अश्वमेध यज्ञमें प्रवर्त्तित किया। अनन्तर शत्रुनाशन राजा जनमेजयने पापरहित और कल्याणयुक्त होकर जैसे पूर्णचन्द्र आकाशमें उदय होता है, वैसे ही जलती अग्निके समान तेज-पुञ्ज-युक्त शरीरसे निज नगरमें प्रवेश किया।

१५२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कोई मनुष्य मरके फिर जीवित होता है, इसे आपने देखा वा सुना है?

भीष्म बोले, हे राजन्! पहिले समय नैमिषारण्यमें गिद्ध जम्बुक सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहास जिस प्रकार कहा गया था, उसे सुनो। किसी ब्राह्मणके अनेक दुःखसे प्राप्त हुआ विशालनेत्रवाला एक मात्र पुत्र बालग्रहके जरिये बालक अवस्थामें ही मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ। बान्धवोंने दुःखित और शोकित होकर रोदन करते हुए वंशके सर्व्वस्वभूत उस अप्राप्त अवस्थावाले मृत बालकको उठाके श्मशानकी ओर प्रस्थान किया। वे लोग उस बालकको गोदमें लेके अत्यन्त दुःखित होकर उसके मधुर वचनको बार बार स्मरण करके शोक प्रकाश करते हुए रोदन करने लगे, किसी प्रकार भी उस मृत बालकको पृथ्वीपर फेंकके घर जानेमें समर्थ न हुए। उस ही समय कोई गिद्ध उन लोगोंके रोदनकी ध्वनिके अनुसार वहांपर आके बोला, तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको इस स्थानमें परित्याग करके गमन करो, देरी मत करो; इस स्थानमें सहस्रों पुरुष और स्त्रियां आया करती हैं, बान्धव लोग [illegible] समयमें उन्हें परित्याग कर [illegible] देखो यह जगत दो सुख और दुःखों [illegible] करता है पश्चात् [illegible] वियोग हुआ [illegible]

ग्रहण करके स्थित रहते अथवा उसका अनुगमन करते हैं, उन्हें भी निज परमायुके परिमाणके अनुसार यमलोकमें गमन करना पड़ता है, इसलिये इस गिद्ध गोमायुयुक्त अनेक प्रेतोंसे घिरा हुआ सब प्राणियोंको भयङ्कर घोर श्मशानमें रहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है; प्रिय हो, वा अप्रिय ही होवे कोई पुरुष पञ्चत्वको प्राप्त होकर फिर जीवित नहीं होता, प्राणियोंकी ऐसीही गति है। मर्त्त्यलोकमें जिसने जन्म लिया है, उसे अवश्य मरना होगा, इसलिये इस कालकृत नियमके रहते कौन पुरुष मरे हुए लोगोंको जीवित कर सकेगा। कार्य्यकी समाप्तिके कारण सब लोगोंके विरत होनेपर सूर्य्य अस्ताचलपर गमन कर रहे हैं, इसलिये तुम लोग पुत्रस्नेह त्यागके निज निवास स्थानपर गमन करो। अनन्तर बान्धव लोग गिद्धका वचन सुनके उस समय मानो शोकरहित होकर पुत्रको पृथ्वीपर छोड़के गृहकी ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए और वे लोग बालकको मरा हुआ निश्चय करके उसे देखनेसे निराश और हताश होकर रोदन करने लगे। बान्धव लोग विशेष रीतिसे निश्चय करके मार्गके बीच आरहे हैं उस ही समय कौआके समान काले रङ्गका एक शियार बिलसे निकलके उन घर जानेवाले पुरुषोंसे बोला, रे दयाहीन मूढ़ मनुष्यो! यह देखो सूर्य्य अभीतक अस्त नहीं हुआ, इसलिये अब भी तुम लोग स्नेह करो, भय मत करो मुहूर्त्तका अत्यन्त चमत्कार प्रभाव है, मुहूर्त्तके प्रभावसे इसका फिर जीवित होना असम्भव नहीं है। तुम लोग अपत्यस्नेहहीन और निर्दयी होकर श्मशानमें भूमिपर दाभ बिछाके पुत्रको छोड़के किस लिये गमन करते हो? जिसका वचन कानमें प्रविष्ट होनेसे ही तुम लोग प्रसन्न होते थे, उस मधुर वचन कहनेवाले शिशु सन्तानके ऊपर क्या तुम्हारा स्नेह नहीं है; पशु पक्षी आदि अपनी सन्तानोंको प्रतिपालन करके कोई फल नहीं पाते, तौभी उनका कैसा अपत्यस्नेह है, उसे तुम लोग विचारो, कर्म्म सन्न्यासी मुनियोंके यज्ञ कार्य्यकी भांति पशुपक्षी कीट आदि स्नेहवद्ध प्राणियोंका पुत्र आदिसे परलोक फलकी आशा नहीं है, उन लोगोंको इस लोक और परलोकमें पुत्रादिकोंसे कुछ उपकार प्राप्त नहीं होता, तौभी वे कैसे यत्नके सहित अपत्योंका धारण किया करते हैं। पशुपक्षी आदि प्राणियोंको सन्तान बड़ी होकर कभी पितामाताको प्रतिपालन नहीं करती, तौभी प्रिय पुत्रोंको न देखनेपर क्या उनके मनमें शोक उत्पन्न नहीं होता? मनुष्योंको अपत्य स्नेहके कारण पुत्र आदिके विरहसे शोक उत्पन्न हुआ करता है; इसके तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको छोड़के कहां जाओगे? तुम लोग बहुत समयतक आंसू बहाते हुए स्नेहयुक्त नेत्रसे इसे देखो, ऐसे प्रियपात्रको परित्याग करना किसी प्रकार भी योग्य नहीं है। दुर्बल, अभियुक्त और श्मशानमें स्थित पुरुषके निकट बान्धवोंके स्थित होनेपर दूसरे लोग वहां निवास करनेमें समर्थ नहीं होते। जीवन सबको ही प्यारा है सभी स्नेहलाभ किया करते हैं; साधु लोग तिर्य्यग् योनिवालोंसे जैसा स्नेह करते है, उसे देखिये नवीन विवाहके समय मालासे विभूषितकी तरह इस कमल नेत्रवाले बालकको छोड़के तुम लोग किस कारण चले जाते हो? बान्धव लोग उस समय शियारका वचन सुनके दीनता पूर्व्वक विलाप करते हुए सब कोई मुर्देके समीप घर जानेसे निवृत्त हुए।

गिद्ध बोला, हाय! क्या आश्चर्य है। हे पुरुषार्थहीन मनुष्यो! तुम लोग इस अल्पबुद्धि नृशंस क्षुद्र शियारका वचन सुनके क्यों निवृत्त होते हो? पञ्चभूतोंसे परित्यक्त और काष्ठत्वको प्राप्त हुए शून्य और चेष्टाहीन मुर्देके वास्ते किसलिये क्यों शोक प्रकाश करते हो। तुम लोग

अपने वास्ते क्यों नहीं शोक प्रकाश करते ? नीत तपस्याचरण करो, जिसके जरिये पापोंसे मुक्त होगे ; तपस्याके जरिये सब प्राप्त होसकता है विलाप करनेसे क्या होगा ? अनिष्ट और अदृष्ट मृत्युके सहित उत्पन्न होते हैं ; उस ही अदृष्टका अनुगामी होकर यह बालक तुम लोगोंको अनन्त शोकसमुद्रमें डालकर गमन करता है। गऊ, धन, सुवर्ण, मणिरत्न और पुत्र तपस्याके फल प्रभावसे प्राप्त होते हैं। और योगसे तपस्या प्राप्त होती है। जो प्राणी जैसा कर्म्म करता है वह वैसा ही सुख दुःख पाता है ; जीव सुख और दुःखको ग्रहण करके जन्म लेता है। पुत्र पिताके कर्म्मसे अथवा पिता पुत्रके कर्म्मसे सुकृत वा दुष्कृतमें बद्ध होकर इस मार्गसे गमन नहीं करता। जिस प्रकार अधर्म्मसे निवृत्ति होसके वैसे ही यत्नपूर्व्वक धर्म्माचरण करो, देवता और ब्राह्मणोंकी समयके अनुसार सेवा करो। शोक और दीनता परित्याग करके पुत्रस्नेहसे निवृत्त होजाओ, इसे सूने स्थानमें छोड़के शीघ्र गृहकी ओर गमन करो, जो पुरुष शुभ वा अशुभ कर्म्म करता है, वही उसका फल भोग किया करता है, उसमें बान्धवोंका क्या सम्बन्ध है ? बान्धव लोग प्रियपुत्र आदिको परित्याग करके इस स्थानमें निवास नहीं करते, वे लोग स्नेह त्यागके आंसू भरे नेत्रसे युक्त होकर घर चले जाते हैं। बुद्धिमान हो वा मूर्ख हो ; धनवान हो वा निर्द्धन ही होवे ; सबको ही शुभाशुभसे युक्त होकर कालके वशमें होना पड़ता है ; शोक करके क्या करोगे ? मरे हुएके वास्ते किस लिये शोक करते हो ? धर्म्मानुसार समदर्शी काल ही सबका नियन्ता है बालक, युवा, वृद्ध और गर्भस्थ सभी मृत्युके वशीभूत होते हैं, जगत्की ऐसी ही गति है।

सियार बोला, कैसा आश्चर्य है, हे मनुष्यो! तुम लोग अपत्यस्नेहसे युक्त होकर अत्यन्त शोक प्रकाश करते हो, अल्पबुद्धि गिद्ध इस समय तुम लोगोंके स्नेहबन्धनको छेदन करता है, क्यों कि इसके समभावसे भली भांति प्रयुक्त प्रत्ययान्वित वचनके जरिये तुम लोग दुस्तर स्नेह त्यागके निज स्थानपर जाते हो। हाय! बछड़ाहीन गऊकी तरह पुत्र वियोगके कारण श्मशानमें मुर्देकी सेवा करते हुए रोदन करते करते तुम लोगोंको अत्यन्त दुःख होता है। पृथ्वीमण्डलमें मनुष्योंको जैसा शोक हुआ करता है, उसे आज मैंने जाना है। तुम लोगोंका स्नेह और विलाप देखके मेरा भी आंसू गिरता है। सदा यत्न करनेसे दैवके जरिये वह सिद्ध होता है, दैव और पुरुषका प्रयत्न समयके अनुसार सिद्ध होता है। सदा दुःख न करना ही उचित है, क्यों कि शोकसे सुख नहीं मिलता, यत्न करनेसे प्रयोजनकी सिद्धि हुआ करती है ; इसलिये तुम लोग दयारहित होके क्यों जाते हो ? पितरोंके वंशकी रक्षा करो ; आत्म-मांससे उत्पन्न हुई अर्द्ध शरीर स्वरूप सन्तानको उनमें परित्याग करके कहां जाते हो ? सूर्य्यके अस्त होने तथा सन्ध्याकाल उपस्थित होनेपर तुम लोग इस बालकको घर ले जाना, अथवा इसको लेकर इस ही स्थानमें निवास करना।

गिद्ध बोला, हे मनुष्य लोगो! इस समय मुझे उत्पन्न हुए सहस्र वर्षसे भी अधिक हुआ होगा, परन्तु पुरुष, स्त्री और नपुंसकोंमेंसे कोई मरके फिर जीवित हुआ है, इसे मैंने नहीं देखा ; कोई कोई गर्भमें ही मरके पृथ्वीपर गिरते हैं, कोई जन्मते ही मृत्युके द्वारा पतित हुआ करता है ; कोई बाल्यकालमें पांवसे चलनेके समय और कोई युवा अवस्थामें पञ्चत्वको प्राप्त होता है। इस लोकमें पशु पक्षी आदि जङ्गम मात्रका ही अदृष्ट अनित्य है ; स्थावर जङ्गम सभी परमायुके अधीन हैं। प्यारी स्त्रीसे विरह और पुत्र शोकसे जलते हुए पुरुष प्रति दिन इस स्थानसे घरको चले जाते हैं।

लोग इस लोकमें सहस्रों अप्रिय और सैकड़ों प्रिय वस्तुओंको परित्याग करके अत्यन्त दुःखित होकर परलोकमें गमन करते हैं; इसलिये तुम लोग इस शोचनीय अवस्थायुक्त जीवन हीन और तेज रहित बालकको परित्याग करो; जीवन दूसरे शरीरमें सन्सक्त होनेसे इस निर्जीव बालकके काष्ठत्व प्राप्त मृत शरीरको परित्याग करके किस लिये तुम लोग गमन करनेमें विरत हो रहे हो? इस समय इसके ऊपर स्नेह और इसे घेरकर स्थिति करनेसे कोई फल नहीं है। इस समय इस बालकके देखने और सुननेकी इन्द्रियसे कोई कार्य्य नहीं होता है; इससे तुम लोग इसे त्यागके शीघ्र ही निज गृहकी ओर गमन करो। मेरा बचन इस समय निठुरवत् मालूम होनेपर भी अन्तमें यह युक्ति युक्त और मोक्ष धर्मसे पूरित बोध होगा; इसलिये कहता हूं, तुम लोग विलम्ब न करके निज निज स्थानपर चले जाओ, बुद्धि और विज्ञानवान् चैतन्य-प्रद गिद्धका बचन सुनकर मनुष्य लोग निवृत्त हुए। मृत पुरुषको बान्धवोंसे घिरा हुआ देखने और स्मरण करनेसे शोक दूना हो जाता है, बान्धव लोग यह बचन सुनतेही एकवारही निवृत्त हुए। बान्धवोंके निवृत्त होनेपर सियारने जलदीसे दौड़कर वहां आके सोये हुए बालकको देखकर कहा,—

सियार बोला, हे मनुष्यो! आप लोग गिद्धका बचन सुनके इस सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित पितरोंको पिण्डदेनेवाले पुत्रको क्यों परित्याग करते हैं? इस मेरे पुत्रके त्यागनेसे स्नेह, विलाप और रोदनका अन्त न होगा, बल्कि अवश्य ही पछतावा करना पड़ेगा। मैंने सुना है, सत्य पराक्रमी रामचन्द्रने शम्बुक नाम शूद्र तपस्वीको मारा, उसके धर्म्मबलसे कोई ब्राह्मणका बालक फिर जीवित हुआ था; और यद्यपि श्वेतका बालक पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ था, धर्म्मनिष्ट श्वेतने उस मृत पुत्रको फिर जीवित किया था। उसी तरह कोई सिद्ध मुनि वा देवता तुम लोगोंका करुणायुक्त रोदन सुनके दया कर सकता है। सियारका ऐसा बचन सुन शोकसे आर्त्त बान्धव लोग घर जानेसे निवृत्त हुए और मृत बालकका सिर गोदमें रखके अत्यन्त विलापके सहित रोदन करने लगे। गिद्धने उन लोगोंके रोदनकी ध्वनि सुनकर वहां आके वक्ष्यमाण बचन कहना आरम्भ किया।

गिद्ध बोला, यह बालक धर्म्मराजके नियोग निबन्धनसे दीर्घ निद्राको प्राप्त हुआ है, इस लिये इसके शरीर पर हाथ फेरने और आंसू बहानेसे क्या होगा? कितने ही तपस्या-करनेवाले धनवान और बुद्धिमान मनुष्य इस प्रेत स्थानपर मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ करते हैं। बान्धव लोग इस स्थानपर सहस्रों बालक और वृद्धोंको परित्याग करते हुए रात दिन दुःखित भावसे निवास करते है, इसलिये शोक भार धारण करनेसे कुछ फल नहीं है, इस समय इसका फिर जीवित होना किसी प्रकार भी विश्वासके योग्य नहीं है। यह बालक सियारके बचनसे फिर जीवित नहीं होगा, जो पुरुष कालके वशमें होकर शरीर छोड़ता है; फिर वह जीवित नहीं होता। सियार यदि अपने समान सैकड़ों शरीर प्रदान करे, तौभी एक सौ बर्षमें भी इस बालकको जीवित न कर सकेगा; तब यदि रुद्रदेव, स्वामिकार्त्तिक, ब्रह्मा अथवा विष्णु इसे बरदान करें; तभी यह बालक जीवित हो सकेगा, नहीं तो तुम लोगोंके आंसू बहाने, आश्वासन और बहुत समय तक रोदन करनेसे यह बालक फिर जीवित न होगा। यह सियार और तुम लोग कई एक बान्धव तथा हम सब कोई धर्म्माधर्म्म ग्रहण करके इस मार्गमें ही निवास करेंगे, इसलिये बुद्धिमान पुरुष अप्रिय, परुषता, परद्रोह, परनारीसे प्रणयकी अभिलाष, अधर्म

और मिथ्या व्यवहारको एकबारही परित्याग करे। तुम लोग सत्य. धर्म शम. दम. प्राणि-योंके ऊपर रहती दया. सरलता होनता और सरलताको यत्न पूर्वक प्रकट करो ; जो लोग माता, पिता. बान्धव और सुहृदोंको जीवित नहीं देखते उन लोगोंने धर्म-विपर्य्यय हुआ करता है । जो नेत्रसे देखने और अङ्ग आदि चलानेमें समर्थ नहीं है. उसके शरीरान्त होने पर तुम लोग अब रोदन करके क्या करोगे ? अपत्य-स्नेह-निबन्धनसे जलते हुए वे सब शोक-युक्त बान्धव लोग गिद्धका ऐसा वचन सुनकर पुत्रको भूमिपर परित्याग करके घर जानेमें प्रवृत्त हुए।

सियार बोला. प्राणियोंके विनाश साधनका स्थान यह मर्त्त्यलोक अत्यन्त दारुण स्थल है, इस स्थलमें प्रियवस्तुका वियोग. जीवनकालकी अत्यन्त अल्पता, अनेक प्रकारकी अलीक. अत्यन्त व्यवहार, अपवाद और अप्रिय वचन आदि दुःख-शोकको बढ़ानेवाले समस्त भाव अवलो-कन करके मुहूर्त्त-कालके लिये भी इस मर्त्त्य-लोकमें निवास करनेकी मेरी रुचि नहीं होती धिक् धिक् ! कैसा आश्चर्य है । हे मनुष्यो ! तुम लोग पुत्र शोकसे जलकर बुद्धिहीन लोगोंकी तरह गिद्धके वचनसे निवृत्त हुए, पापी-चञ्चल-बुद्धिवाले गिद्धका वचन सुनके स्नेहहीन होकर अपत्य-स्नेह त्यागके इस समय किस प्रकार घर जानेमें प्रवृत्त हुए हो । इस सुख दुःखसे पूरित लोकके बीच सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख होता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है हे मूढ़ लोगो ! वंशके शोभाकी खान इस रूपवान् शिशु सन्तानको पृथ्वीपर त्यागके तुम लोग कहां जाओगे ? इस उत्तम सुन्दरतायुक्त बालकको मैं मनही मन जीवितकी तरह देखता हूं, इसमें सन्देह नहीं है, हे मनुष्यो ! इसका मरना ही अनुचित है, तुम लोग सुखाधार ही इसे पाओगे । यदि छोड़के जाओगे. तो पुत्र शोकसे सन्तापित होकर मृत हो. तुम लोगोंका नाश होगा। रात्रिमें इस स्थानपर निवास करनेसे दुःखकी सम्भावना जानके क्यों तुरत रहनेकी इच्छासे अल्पबुद्धि लोगोंकी भांति इसे त्यागके कहां जाओगे ?

भीष्म बोले. धर्म्मराज ! श्मशानवासी सिया-रने स्वार्थ-सिद्धिके लिये उस समय अमृतकी समान धर्मयुक्त मिथ्या प्रिय वचनके जरिये उन सब बान्धवोंकी गति निवृत्त करके उन्हें मध्य-वर्ती किया ; तब वे लोग वहां पर स्थित रहे ।

गिद्ध बोला. यह यक्ष राक्षस-सेवित, प्रेतोंसे परिपूरित. पेचकनादसे अनुनादित. काले बाद-लके समान घोर दारुण वन अति भयङ्कर है ; सूर्य्य अस्त होनेके पहिले जबतक दिशा निर्मल रहती है, इतने ही समयके बीच तुम लोग इस वनस्थलमें मुर्देका शरीर परित्याग करके समस्त प्रेत कर्म्म समाप्त करो। बाज-पक्षी कर्कश बोली बोल रहे हैं ; सियारोंने दारुणरूपसे चिल्लाना आरम्भ किया है, सिंह गर्ज रहे हैं। और सूर्य्य अस्ताचल चूड़ावलम्बी हो रहे हैं। श्मशानमें स्थित वृक्ष समूह काले रङ्गवाली चिताके धूएंसे रञ्जित होते हैं, श्मशानवासी देवता लोग निराहार रहनेसे गर्ज्ज रहे हैं । इस दारुण श्मशान स्थलके बीच विकृतरूपवाले क्रव्यादगण तुमलोगोंको वशीभूत करेंगे ; वनके बीच आज तुम लोगोंको अवश्य ही भय होगा; इसलिये इस काठके समान मृत शरीरको परित्याग करो ; सियारका वचन मत मानो, तुम लोग यदि ज्ञान भ्रष्ट होकर जम्बुकके निष्फल मिथ्या वचनको सुनोगे, तो सब कोई नष्ट होगे ।

सियार बोला, हे मनुष्यो ! जब तक सूर्य अस्ताचलपर गमन नहीं करते हैं, इतने समय तक तुम लोग अपत्य-स्नेह निबन्धनसे दुःखित न होके इस स्थानमें निवास करो।

करना उचित नहीं है। तुम लोग विश्वासी होकर रोदन करते हुए बहुत समय तक सन्तानको ओर स्नेहयुक्त नेत्रसे देखो; इस दारुण वनके बीच तुम लोगोंको किसी भयकी सम्भावना नहीं है। पितरोंके मरनेकी जगह यह वनस्थल अत्यन्त मनोहर है; इसलिये जब तक सूर्य्य स्थित है, तब तक तुम लोग निवास करो; मांसभची गिद्धके वचन सुननेसे कोई फल नहीं है। तुम लोग यदि मोहित होकर गिद्धके निठुर वचनको मानोगे, तो तुम लोगोंका पुत्र फिर जीवित न होगा।

भीष्म बोले, राजन्! गिद्ध बोला, सूर्य्य अस्त हुआ, सियारने कहा, नहीं हुआ; इसी तरह वे निज-कार्य्य साधनमें यत्नवान और भूख प्याससे कातर होकर शास्त्रको अवलम्बन करके उन बालकके बान्धवोंको विड़म्बित करने लगे। वे लोग उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियारके अमृत समान वचनसे कभी स्थित और कभी घरकी ओर गमन करनेमें उद्यत हुए। अन्तमें वे लोग शोक युक्त होकर रोदन करते हुए उन कार्य्यदक्ष गिद्ध और सियारको वचन निपुणतासे प्रतारित होकर भी उस समय वहां निवास करनेमें प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार विवाद करनेवाले उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियार तथा वहांपर स्थित बान्धवोंके समीप भगवान् भवानीपति भगवतीके भजनेसे करुणा भरे नेत्रसे उपस्थित हुए और बोले, हे मनुष्यों! मैं वरदाता शङ्कर हूं। दुःखित बान्धवोंने प्रणाम करके खड़े होकर कहा; हे भगवन्! हम सब कोई एक मात्र पुत्रके जीवनके लिये अत्यन्त प्रार्थना करते हैं, इसलिये आप कृपा करके हमारे पुत्रको जीवन दान करके जीवित करिये। सब प्राणियोंके हितैषी भगवान पिनाकीने मनुष्योंका ऐसा वचन सुनके जलसे युक्त हाथके जरिये बालकको एक सौ वर्षकी आयु और गिद्ध सियारको क्षुधाशान्तिका वरदान किया।

अनन्तर उन लोगोंने कल्याण पूरित हर्ष युक्त, कृत्यकृत्य और अत्यन्त आनन्दित होकर देवोंके देवको प्रणाम करके प्रस्थान किया, अनिर्व्वेद और दृढ़-निश्चयके जरिये महादेवकी कृपासे शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। दैवयोग और बान्धवोंका दृढ़ निश्चय देखो! वे लोग दुःखित होकर रोदन कर रहे थे, भगवान्ने उनकी आंसू पोंछी। देखिये, थोड़ेही समयके बीच निश्चय खोजके सहारे महादेवकी कृपासे दुःखित मनुष्य सुखी हुए। हे भारत! वे लोग महादेवकी कृपासे पुत्रके फिर जीवित होने पर विस्मययुक्त और अत्यन्त हर्षित हुए थे। हे राजन्! अनन्तर उन लोगोंने शिशुसे प्राप्त हुए शोकको त्यागके शीघ्रही पुत्रके सहित हर्षपूर्व्वक नगरमें प्रवेश किया था। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच सबके ही विषयमें इस प्रकारका ज्ञान निदर्शन रूपसे दिखाया गया है। मनुष्य इस धर्म्मार्थ-मोक्ष संयुक्त पवित्र इतिहासको सुननेसे इस लोक और परलोकमें सदा आनन्दित हुआ करते है

१५३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! असार, अल्प बल, और क्षुद्रजीवी मनुष्य मोहके वशमें होकर अपनी बड़ाईसे युक्त असदृश वचनके जरिये सदा निकटवर्त्ती उपकार और अपकारके सहारे शत्रुनिग्रहमें समर्थ, सदा उद्योगी बलवान पुरुषसे बैर करे तो यदि वह क्रुद्ध होकर बैर समाप्त करनेकी अभिलाषासे आगमन करे, तो थोड़े बलवाला पुरुष किस प्रकार आत्मबल अवलम्बन करके निवास करेगा?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पुराने लोग इस विषयमें शाल्मलि पवनके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हिमालय पर्व्वत पर अनेक वर्षोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ,

शाखा और स्कन्ध पत्रोंसे युक्त एक बहुत बड़ा शाल्मलिका वृक्ष था। वहां मतवाले हाथियोंके यूथ और दूसरे अनेक भांतिके सब पशु ग्रीष्म-कालमें गर्मीसे आर्त होके तथा थकके उस स्थानपर विश्राम करते थे। उस वृक्षके चार सौ हाथके परिमाण बड़े, घनी छायासे परिपूरित और फल फूलसे सुशोभित रहनेसे शुकसारिका समूह सदा उसमें निवास करते थे। हे भारत! किसी समय महर्षि नारद उस शाल्मलि वृक्षके स्कन्ध और बहुतसी शाखा देखकर उसके निकट आके बोले, हे तरुवर! तुम सदा ही मनोहर हो; तुम्हें देखके मैं अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूं मनोहर मृगपक्षी और हाथियोंके यूथ हर्षित होकर सदा तुम्हारे आसरेमें निवास करते हैं। हे महाशाख! तुम्हारे बड़े स्कन्ध और सब शाखोंको कभी वायुके जरिये टूटी हुई नहीं देखता हूं। इस वनके बीच जब पवन सदा तुम्हारी रक्षा करता है, तब बोध होता है, वह तुम्हारा मित्र है; अथवा तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होरहा है। वेगशाली पवित्र गन्धयुक्त भगवान् पवन बहते हुए विविध वृक्ष समूह और पर्व्वतोंकी शिखर समूहको स्वस्थानसे विचलित करते, और नदी समस्त तालाबों, दूसरेकी तो क्या बात ही नहीं है रसातलको भी सुखाया करते हैं; इसलिये मित्रताके कारण पवन तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है, इसीसे तुम अनेक शाखायुक्त होके फूल पत्तोंसे शोभित होरहे हो, हे तरुवर। ये सब पक्षी, समूह तुम्हें अवलम्बन करके प्रसन्न मनसे विहार कर रहे हैं,—इसीसे यह वन रमणीय रूपसे शोभित होता है। वसन्तकालमें मनोहर शब्द करनेवाले इन पक्षियोंकी मीठी बोली आनन्द करती है। गर्मीसे विकल हाथियोंके समूह निज यूथके सहित आके तुम्हारे आसरे सुखभोग करते हैं। इस प्रकार तुम दूसरे सब मृग जाति और समस्त जीवोंके सुखदायी आश्रय होके पर्व्वतकी भांति शोभित होरहे हो; तपस्वियोंके, ब्राह्मण, तपस्वी और संन्यासियोंके समूहसे परिपूरित होनेसे तुम्हारा स्थान स्वर्गके समान निश्चित तथा मालूम होता है।

१५३ अध्याय समाप्त।

नारद बोले, हे वृक्ष! सर्व्वत्र गमन करनेवाला भयङ्कर वायु बन्धुता वा मित्रताके कारण सदा तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है; तुम उसके समीप मैं तुम्हारा हो रहूं—ऐसा वचन अङ्गीकार करके परम-आत्मीय हुए हो, इस ही निमित्त वह सदा तुम्हारी रक्षा करता है। मैं भूलोकमें ऐसे किसी वृक्ष पहाड़ और स्थानको नहीं देखता हूं, जो वायुके बलसे न टूटता हो; इसलिये मुझे मालूम होता है, तुम किसी कारणसे शाखा पल्लवके सहित वायुसे रक्षित होनेसे संशय रहित होके निवास करते हो।

शाल्मलिने कहा, हे ब्रह्मन्! वायु मेरा सखा मित्र, बन्धु वा विधाता नहीं है, जो उस कारणसे वह मेरी रक्षा करता है। मेरा तेज बल वायुसे भी प्रबल है, पवन मेरे बलके अठारहवें भागके एक भागके समान भी नहीं है। वह जब मेरे समीप आता है, उस समय मैं बलपूर्व्वक उसे स्तम्भित कर रखता हूं। वायु पहाड़ वन आदि जिस किसी वस्तुको क्यों न तोड़े, वह समीप आनेसे मुझसे पराजित होता है, हे देवर्षि! इसलिये वायुके क्रुद्ध होनेपर भी मैं उससे भय नहीं करता।

नारद बोले, हे शाल्मलि! तुम्हारी विपरीत बुद्धि हुई है, इसमें सन्देह नहीं है। वायुके समान बलवान कोई भी नहीं है, और उसी किसी स्थानमें कोई हुआ भी नहीं था। तुम्हारा नाम तो क्या है, इन्द्र, यम, कुबेर

जलके स्वामी वरुण भी वायुके समान नहीं हैं। इस जगत्में जो सब जीव जीवन धारण करते हैं, भगवान पवनही उसके कारण हैं, वेही सबके प्राणदाता और चैतन्य करनेवाले हैं इसो वायुके प्रशान्त भावसे रहनेसे सब प्राणी जीवित रहते और इसीके अशान्त होनेपर सब जीव नष्ट होते है, इसलिये तुमने सब बलवानोंमें अग्रगण्यसे पूजनीय वायुका जो असम्मान किया है, उसका कारण तुम्हारी बुद्धि लाघवके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। तुम अत्यन्त असार और दुर्बुद्धि हो, इस ही कारण केवल बड़ी बात बोलते और क्रोधमें भरकर मिथ्या वचन कहते हो। तुम्हारा ऐसा वचन सुनके मेरा क्रोध उत्पन्न हुआ है, मैं स्वयं वायुके समीप जाके तुम्हारा यह सब दुष्ट वचन कहूंगा। रे नीच बुद्धि! चन्दन, स्यन्दन, शाल, सरल, देवदारु, बेतस और बकुल आदि दूसरे जो सब सारवान तथा बलवान् वृक्ष हैं, वे कभी वायुका इस प्रकार तिरस्कार नहीं करते, वे सब वायुके और अपने बलाबलको जानते हैं, इस कारण वे सब वृक्ष वायुको प्रणाम किया करते है। तुमने मोहके वशमें होकर वायुके अनन्त बलको नहीं जाना है, इस ही से ऐसा कहते हो, इसलिये मैं तुम्हारी बात कहनेके लिये वायुके समीप जाता हूं।

१५५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! ब्रह्मज्ञानी नारद शाल्मलिसे ऐसा वचन कहके पवनके समीप जाके उसकी सब बात कहने लगे। नारद बोले, हे वायु! हिमालय पर्व्वतपर उत्पन्न हुआ शाखा पल्लवसे युक्त वृहत् मूलवाला कोई शाल्मलि वृक्ष तुम्हारी अवज्ञा करता है, तुम्हारे समीप वह सब वचन कहना मुझे उचित नहीं है; मैं तुम्हें सब प्राणियोंमें अग्रगन्य, वरिष्ट और गरिष्ट समझता हूं, तुम क्रुद्ध होनेपर कालके समान हुआ करते हो।

भीष्म बोले; वायु नारदका यह वचन सुनके उस शाल्मलि वृक्षके समीप जाके अतिक्रुद्ध होकर कहने लगे। वायु बोले, हे शाल्मलि! तुमने नारदके निकट मेरी निन्दा की है, इसलिये मैं बलपूर्व्वक तुम्हें अपना प्रभाव दिखाऊंगा। मैं तुम्हें जानता हूं और तुम भी मुझे जानते हो; पितामहने प्रजाकी सृष्टि करनेके समय तुम्हारे मूलमें विश्राम किया था, अर्थात् उन्होंने विश्राम किया था,—इसीसे मैं तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करता था। रे नीचबुद्धि अधम वृक्ष! उस ही कारण मैं तेरी रक्षा करता था, तू निज बलके प्रभावसे रक्षित नहीं हुआ है। तू जब सामान्य लोगोंकी भांति मेरी अवज्ञा करता है, तब जिससे फिर मेरी अवज्ञा न करे, उसी प्रकार अपना प्रभाव दिखाऊंगा।

भीष्म बोले, शाल्मलि वायुका ऐसा वचन सुनकर हंसके बोला, हे पवन! तुम मेरे ऊपर क्रुद्ध होके क्या पराक्रम प्रकाशित करोगे! अपनेको ही अपना बल दिखाओ। मेरे ऊपर क्रोध मत करो, मुझपर क्रोध करके तुम क्या करोगे? हे वायु! तुम दूसरेको शासन करनेमें समर्थ हो तौभी मैं तुमसे भय नहीं करता, मैं तुमसे अधिक बलवान हूं, इसलिये तुमसे मुझे भय करनेका क्या प्रयोजन है? जगत्में जो लोग बुद्धिबलसे बली हैं, वेही बलवान हैं, सामर्थ्य मात्रसे बलवान् पुरुषोंको बलवान कहके नहीं गिना जाता। वायु शाल्मलिकी ऐसी बात सुनके कल्ह तुम्हें पराक्रम दिखाऊंगा ऐसा कहके चले गये।

अनन्तर रात्रि उपस्थित होनेपर शाल्मलि मनही मन पवनके पराक्रमको विचारके और अपनेको उसके असदृश जानके सोचा, कि मैंने नारदके निकट वायुके विषयमें जो कहा वह अमूलक है, पवन प्रबल बलशाली है,—

इने जैसा कहा है, वायु वैसाही बलवान् है। उसके समीप मैं अत्यन्त असमर्थ हूं; उसकी बात तो दूर है, मैं दूसरे वृक्षोंसे भी निर्ब्बल हूं, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु कोई वनस्पति मेरे समान बुद्धिमान नहीं है, इससे मैं बुद्धि-बलके अवलम्बनसे पवनके भयसे अपना परित्राण करूंगा। वनमें स्थित वृक्षसमूह यदि मेरी तरह बुद्धि अवलम्बन करके निवास करें, तो वे सदा क्रोधपूरित वायुसे निःसन्देह न उखाड़ जावें। क्रुद्धवायु उन्हें जिस प्रकार सञ्चालित करता है, उसे मैं जैसा जानता हूं, वे लोग बालक होनेसे वैसा नहीं जानते।

१५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर शाल्मलिने क्षुब्ध होकर आपही अपनी सब शाखा, डाली और स्कन्धोंको छेदन किया। वह शाखा, पत्र पुष्प आदि परित्याग करके भोरके समय वायुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा। अनन्तर क्रोधयुक्त वायु बड़े बड़े वृक्षोंको गिराकर शाल्मलिके निकट आया; आके उसे शाखा, पत्र पुष्पोंसे रहित देखके अत्यन्त हर्षित और विस्मययुक्त होकर कहा, हे शाल्मलि! तुम आप ही कष्ट करके सब डालियोंको छेदन करके जैसे हुए हो, मैं भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें वैसाही करता; तुम अपनी बुद्धिहीनताके कारण मेरे पराक्रमके वशमें होकर फूल पत्ता डाली और अङ्कुरसे रहित हुए।

भीष्म बोले, शाल्मलि उस समय वायुका ऐसा वचन सुनके लज्जित हुआ और देवऋषि नारदने पहिले जो कहा था, उसे स्मरण करके अनुताप करने लगा। हे धर्मराज! इसी प्रकार जो अल्पबुद्धि पुरुष स्वयं निर्ब्बल होके बलवान्के सङ्ग बैर करता है, वह शाल्मलिकी भांति दुःखित पुरुष होता है, इसलिये निर्बल प्रबलके साथ बैर न करें, यदि करें तो शाल्मलिकी तरह शोचनीय होंगे। समान बलवाले पुरुषभी अपकारीके समीपमें सहसा पराक्रम प्रकाशित नहीं करते, वे लोग धीरे धीरे शत्रुके निकट पराक्रम दिखाया करते हैं। नीचबुद्धि पुरुषका बुद्धिमानके सङ्ग शत्रुताचरण अत्यन्त अनुचित है, तृण समूहमें पड़ी हुई अग्निकी तरह बुद्धिमानकी बुद्धि शत्रुओंके बीच अनायास ही प्रवेश करती है। हे राजेन्द्र! जगत्में पुरुषके बुद्धि और बलके समान दूसरा कुछ भी नहीं है; इसलिये बालक जड़, अन्धे, बधिर और अधिक बलवाले पुरुषके विषयमें क्षमा करे। हे शत्रुदमन! अधिक बलवाले पुरुषको जो क्षमा करना होता है, वह तुममें देखा गया है। दुर्य्योधनकी ग्यारह अक्षौहिणी और तुम्हारी सात अक्षौहिणी सेना महाबली अर्ज्जुनके बलके समान नहीं। यशस्वी इन्द्रपुत्र धनञ्जयने जङ्गलोंमें घूमके भी अन्तमें युद्धके बीच शत्रुओंको मारा और पराजित किया। महाराज! यही मैंने तुमसे राजधर्म्म और आपद्धर्म्म विस्तारके सहित कहा है, अब कहो, क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पापका निवासस्थान क्या है, और जिससे पाप प्रवर्त्तित होता है, मैं उसे ही यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जिससे पाप उत्पन्न होता है, उसे सुनो। एकमात्र लोभ केवल पुण्यफल ग्रास किया करता है; इसलिये लोभसे ही पाप प्रकट होता है तथा पापके सहित अत्यन्त दुःख उत्पन्न हुआ करता है; लोग लोभके कारण पापाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, इससे लोभ ही पापका मूल कारण है।

काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, गर्व्व पराधीनता, क्रोध निर्ल्लज्जता, श्रीनाश, धर्म्महीनता, चिन्ता और अकीर्त्ति आदि सभी लोभसे उत्पन्न हुआ करते हैं। कृपणता-विषयक, रुचि सुखमें अत्यन्त तृष्णा, कुकर्म्ममें प्रवृत्ति, वंश और विद्याका अहङ्कार, सुन्दरता और ऐश्वर्य्यका अभिमान, सब जीवोंका अनिष्टाचरण, सबके विषयमें असम्मान, अविश्वास और शठता प्रकाशित करना, परधन हरन, परनारी गमन, बचन और मनका आवेग, दूसरेकी निन्दा, इन्द्रियपरतन्त्रता, उदरन्तरिता, दारुण मृत्यु, बलवती ईर्षा, दुर्ज्जय मिथ्या व्यवहार, दुर्निवार्य्य रसवेग, दुःसह श्रोत्रवेग, नीचता अपनी बड़ाई मत्सरता, दुष्कर कार्य्य और समस्त साहसके कार्य्य तथा अकार्य्यके अभिमान जनित पाप लोभके कारणसे ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य लोग क्या बाल्य, क्या कौमार अथवा युवा अवस्थामें ही लोभको परित्याग नहीं कर सकते; मनुष्योंके जराजीर्ण होनेपर भी लोभ जीर्ण नहीं होता। हे कुरुकुलधुरन्धर महाराज! जैसे गहरे जलसे युक्त नदियोंके समूहसे समुद्र परिपूर्ण नहीं होता, वैसेही सदा फल-प्राप्त होनेपर भी लोभको कभी परिपूर्ण नहीं किया जा सकता। जो लोभ अर्थलाभसे हर्षित और कामना सिद्ध होनेसे परितृप्त नहीं होता, देवता, गन्धर्व्व, असुर, सर्प और समस्त जीव जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस लोभका मोहके सहित जय करना जितेन्द्रिय पुरुषको उचित है। हे कौरव! इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले लोभियोंमें दम्भ, दूसरेकी बुराई, पराई निन्दा, पिशुनता और मत्सरता उत्पन्न हुआ करती है। जो लोग अनेक शास्त्रोंको पढ़के बहुदर्शी और समस्त संशयोंको काटनेमें समर्थ हुए हैं, वे भी अल्पबुद्धि पुरुषोंकी भांति लोभजालमें फसके क्लेश पाते हैं। द्वेष क्रोधसे असक्त और शिष्टाचारसे बाहर हुए लोभी पुरुष तृणसे ढंके हुए कूएंकी भांति भीतरमें क्रूर और बाहरसे मधुर हुआ करते हैं। वे क्षुद्राशय वाले पुरुष अधर्म्म प्रचारक होकर धर्म्मके छलसे दूसरेका अनिष्ट करते हुए जगत्को ठगा करते हैं, किसी उपायको अवलम्बन करके अनेक मार्ग प्रदर्शन और लोभमें आसक्त होकर सत् मार्गोंको लुप्त करते हैं। लोभग्रस्त दुष्टात्माओंके अनुष्ठित धर्म्मकी जो जो अवस्था अन्यथा होती है, वह उसके अनुसार ही प्रसिद्ध हुआ करती है। हे कुरुनन्दन! क्रोध, अभिमान, स्वप्न, हर्ष, मद और शोक लुब्धबुद्धि पुरुषोंको आश्रय किया करता है, इन सब लोभयुक्त लोगोंको सदा अनिष्ट कहके मालूम करो। अब पवित्र चरित्रवाले शिष्टोंका विषय कहता हूं सुनो, हे भारत! जिन्हें संसारमें पुनरावृत्ति और नरकका भय नहीं है, प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें समान ज्ञान है, जो विषयिक सुखमें आसक्त नहीं हैं, शिष्टाचार और इन्द्रियसंयमको जिसे अवलम्बन किया है, सुख तथा दुःखमें जिसका समभाव है, सत्यही जिनका परम अवलम्ब है, जो दानशील और दयावान हैं, तथा दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हैं, जो पितरों देवताओं और अतिथियोंकी सेवा करनेमें सदा रत रहते हैं, सबका उपकार करनेवाले, धीर और सब धर्म्मोंके पालक हैं, जो सब प्राणियोंके हितैषी और साधारणके उपकारके निमित्त प्राणदान करनेमें समर्थ हैं, उन सब धार्म्मिक पुरुषोंको धर्म्म-मार्गसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। पहिले साधु लोग जैसा आचरण कर गये हैं, उन लोगोंका आचरण उनसे पृथक् नहीं है। जो लोग सत्मार्गमें निवास करते हैं, उन्हें भय नहीं होता, जो लोग चपल और उग्रस्वभाववाले नहीं हैं, कभी किसीकी हिंसा नहीं करते उन सब पुरुषोंकी सदा सेवा करना साधुओंका कर्त्तव्य है। जो लोग काम, क्रोध

ममता और अहङ्कारसे रहित उत्तम व्रत करनेवाले और स्थिर मर्य्यादायुक्त हैं, उनकी उपासना करते हुए तुम धर्म्म जिज्ञासा करो। हे युधिष्ठिर! धन और यशके निमित्त उनका जन्म नहीं है, देह-धारणके वास्ते आहार आदिकी तरह अवश्य कर्त्तव्य कहके वे लोग धर्म्म पालन किया करते हैं; उन लोगोंमें भय, क्रोध, चपलता और शोक नहीं है, वे धर्म्मध्वजी वा पाषण्ड धर्म्मावलम्बी नहीं है, जिन लोगोंमें लोभ, मोह नहीं है, जो सत्य और सरलताको अवलम्बन किया करते है, हे कुन्तीनन्दन! तुम उन लोगोंमें ही अनुरक्त रहो, जिनके सङ्ग अनुरक्त होने पर फिर वह स्खलित नहीं होती। जो लोग लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट नहीं होते, उन ममताहीन, अहङ्कार-रहित, और सत्वगुण अवलम्बी, समदर्शी सत्मार्गमें स्थित, स्थिरपराक्रमी मोक्षेच्छु पुरुषोंको लाभालाभ, सुख, दुःख, प्रियाप्रिय और जीवन मरन सभी समान है। हे भद्र! तुम इन्द्रिय निग्रहमें रत और सावधान होकर उन सब धर्म्मप्रिय महानुभावोंका सब प्रकारसे सम्मान करना! लोगोंके वचन कभी दैववशसे गुण गौरव युक्त होकर सम्पत्तिका कारण होता है, कभी वही फिर विपत्का हेतु होजाता है।

१५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोभही अनर्थका मूल है, इसे आपने कहा, इस समय अज्ञान किसे कहते है, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, जो पुरुष विना जाने पापाचरण करता है उससे अपना नाश होगा उसे वह नहीं जान सकता, वह उत्तम चरित्रवाले पुरुषोंसे द्वेष करके लोगोंके समीप निन्दनीय होता है और अज्ञानके वशमें होके नरकगामी, दुर्गति भागी, क्लेश तथा आपदायुक्त हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, अब मैं अज्ञानकी उत्पत्ति, स्थित, वृद्धि, क्षय, उदय, मूल, गति, कारण, काल और हेतु क्या है, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, लोग जो दुःख भोग किया करते हैं, वह अज्ञानसेही उत्पन्न होता है।

भीष्म बोले, रागद्वेष, मोह, असन्तोष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, हर्ष, तन्द्रा, आलस्य, सब विषयोंमें अभिलाष, ताप, पराई वृद्धिमें परिताप और पापकर्म्म, ये सब अज्ञान कहके वर्णित हुए हैं। हे महाराज! तुम जो अज्ञानकी उत्पत्ति और वृद्धि आदि पूछते हो, उसे विशेष तथा विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे भारत! अज्ञान और अत्यन्त लोभ, इन दोनोंका फल तथा दोष समान है, इसलिये तुम इन दोनोंको एकही समझो, लोभकी वृद्धि, क्षय और उत्पत्तिके अनुसार उससे प्रकट हुआ अज्ञान वर्द्धित, क्षीण और उदित हुआ करता है। विचित्तता ही लोभका मूल है, और लोभसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है, लोभके छिन्नभिन्न होनेपर उसका कारण भी नष्ट होजाता है। अज्ञानसे लोभ और लोभसे अज्ञान तथा दूसरे सब दोष ही उत्पन्न हुआ करते हैं, इसलिये लोग लोभ त्याग देवे। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् और दूसरे बहुतेरे राजा लोग लोभ त्यागनेसे देवलोकमें गये थे। हे कुरुवर! प्रत्यक्ष दुःखदायक लोभको परित्याग करो। इस लोकमें लोभ त्यागनेसे परलोकमें परम सुखभोग करोगे।

१५९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मात्मन्! स्वाध्यायमें यत्नशील धर्म्म करनेवाले मनुष्योंके निमित्त इस लोकमें क्या कल्याणदायक है। जगत्में अनेक

तरहकी वस्तु देखी जाती है, इनके बीच इस लोक और परलोकमें जिसके जरिये कल्याण हो, आप मुझसे वही कहिये। हे भारत! धर्मका मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखासे युक्त है, इसमेंसे धर्मका कौन अंश अनुष्ठेयरूपसे आपको अभिमत है। अनेक शाखासे युक्त धर्म अनन्त महत् पदार्थ है, इसलिये उस धर्मका जो परम मूल है, आप वह सब यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं तुम्हारा प्रश्न सुनके सन्तुष्ट हुआ, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा, उसे कहता हूं। बुद्धिमान पुरुष अमृत पीके जिस प्रकार तृप्त होता है, तुम भी वैसे ही ज्ञानसे तृप्त होगे। महर्षियोंने धर्मका जैसा अनुष्ठान कहा है, वह अनेक तरहका है, निज निज विज्ञानको अवलम्बन करके इन्द्रिय-निग्रह ही उसके बीच परम श्रेष्ठ है, निश्चय दर्शी वृद्ध लोग इन्द्रिय-निग्रहको ही कल्याणका कारण कहा करते है; विशेष करके ब्राह्मणोंके विषयमें इन्द्रिय निग्रह ही सनातन धर्म्म है। ब्राह्मणोंको इन्द्रिय निग्रहसे ही विधिपूर्व्वक कार्य्य-सिद्धि होती है। दमगुण दान, यज्ञ, वेदाध्ययनसे भी उत्तम है, परम पवित्र दमगुणसे तेजकी वृद्धि होती है, दमको अवलम्बन करनेसे पुरुष पापरहित और तेजस्वी होकर महत् फल लाभ कर सकते है। मैंने सुना है, लोकमें इन्द्रिय निग्रहके समान दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। जन समाजमें सब कर्म्मोंके बीच इन्द्रिय-निग्रह ही परम श्रेष्ठ है, हे नरनाथ! इन्द्रियोंका निग्रह करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकमें महत् धर्म्म तथा परम सुख भोग करता है। धार्म्मिक पुरुष सुखसे सोते, जागते तथा सब ठौर विचरते हैं और उनका मन सदा प्रसन्न रहता है। अधर्म्मी पुरुष सदा क्लेश भोग करते हुए अपने दोषके कारणसे ही बहुतसे अनर्थोंमें फंसते है। पण्डितोंने कहा है, चारों आश्रमोंके बीच इन्द्रिय निग्रह ही उत्तम व्रत हैं। हे कुरुनन्दन! इससे जिसको समष्टिको दम कहते हैं उसका सब लक्षण कहता हूं। क्षमा, धीरज, अहिंसा, सब जीवोंमें समभाव, सत्य, सरलता, इन्द्रियोंको जीतना, दक्षता, कोमलता, लज्जा, चपलता, हीनता, अकृपणता, अक्रोध, सन्तोष, प्रियवादिता, असूयाहीनता, गुरुसेवा और सब जीवोंके विषयमें दया, इन सबको ही दम कहते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष खलता, लोकापवाद मिथ्या बचन, स्तुति, निन्दा, क्रोध, लोभ, गर्व्व, अविनय, अपनी बड़ाई, रोष, ईर्षा और अवमाननाकी आलोचना नहीं करते; वह निन्दा, कामना और असूया-रहित होके अनित्य सुखके अभिलाषी नहीं होते; और जैसे समुद्र जलसे परिपूर्ण नहीं होता, वैसे ही वे लोग ब्रह्म प्राप्त होने पर भी किसी भांति तृप्त नहीं ह जितेन्द्रिय पुरुष मैं तुम्हारे तुम मेरे, वह मैं उसका,- ऐसे सम्बन्धयुक्त ममता पाशमें नहीं होते। ग्राम और अरण्य भेदसे लो बीच जो दो प्रकारको प्रवृत्ति हैं, उसमें निन्दा और प्रशंसामें जो लोग आसक्त न होते, वेही मुक्ति लाभ किया करते हैं। सब जीवोंके हितैषी शीलयुक्त, प्रसन्न आत्मज्ञानी और अनेक तरहकी विषयास रहित है, उन्हें परलोकमें महत् फल होता है। सुशील, सच्चरित्र, प्रसन्नचित्त आ वित् पुरुष इस लोकमें साधुता पाके परलो सद्गति लाभ करते हैं। इसलोकमें जो कर्म रूपसे प्रसिद्ध हैं और साधु लोग जिसका आ रण किया करते हैं, ज्ञानयुक्त मौनावल मनुष्योंका वही स्वाभाविक मार्ग है; यह म कभी नष्ट नही होता। ज्ञानयोगसे युक्त हो जो जितेन्द्रिय पुरुष घर त्यागके वनमें जा समय बिताते हुए व्रताचरण करता है, वह ब्र सारूप्य लाभ करनेमें समर्थ होता है। सब जीवे

जिससे भय नहीं होता और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती, उसे देहत्यागनेके अनन्तर किसीसे भी भय नहीं होता। जो भोगके जरिये कर्म्मफलोंका नाश करते और कभी उसे सञ्चय करके नहीं रखते, वे सब प्राणियोंमें समदर्शी विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभयदान करते हुए परब्रह्ममें लीन होते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलचरोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, वैसेही निःसन्देह सब जीवोंके हितैषी पुरुषोंकी गति नेत्रसे नहीं दीख पड़ती। हे राजन्! जो लोग गृहत्यागके मोक्ष मार्गके पथिक होते हैं, उनके वास्ते सदाके लिये तेजोमय समस्त लोक निर्म्मित होते हैं। प्रसन्नता युक्त पवित्र-चित्त, आत्मावित् निष्काम पुरुष सब कर्म्मोंको त्याग कर विधि पूर्व्वक तपस्या और विविध-विद्या सन्न्यास करते हुए इस लोकमें आदर युक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं। पितामहके तपसे उत्पन्न गुफाके बीच जो नित्यलोक है, वह इन्द्रियोंके जीतनेसे प्राप्त होता है। जो ज्ञानकी आलोचनासे तृप्त और सावधान हुए हैं तथा किसीके सङ्ग जिनका विरोध नहीं है, इसलोकमें उन्हें फिर जन्म लेनेका भय नहीं रहता। तब परलोकका भय क्यों होगा? इन्द्रिय जीतनेमें एकही दोष दीख पड़ता है, दूसरा नहीं देखा जाता—दमयुक्त पुरुष क्षमाशील होते हैं, इसीसे लोग उन्हें असमर्थ समझते हैं। हे महाबुद्धिमान् धर्म्मराज! एक पुरुषका एकही दोष महत् गुणका कारण हुआ करता है, क्षमासे विपुल लोककी सहिष्णुता सुलभ होती है। धार्म्मिक पुरुषको वनमें जानेका प्रयोजन नहीं है, वे जिस स्थानमें निवास करते हैं वही वन और आश्रय स्वरूप हुआ करता है।

वैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भीष्मके ऐसे वचन सुन इस प्रकार आनन्दित हुए जैसे कोई अमृत पीके तृप्त होता है, उन्होंने धर्म्मात्मा शान्तनुपुत्रसे फिर धर्म्म विषयमें प्रश्न किया। अनन्तर कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेव प्रसन्न होके उनसे कहने लगे।

१६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, ऋषि लोग इन सबको ही तपका मूल कहा करते हैं, जो मूढ़बुद्धि तपस्या नहीं करता, वह कभी कर्म्मका फल नहीं पाता। सर्व्वशक्तिमान प्रजापतिने तपोबलसे ही इस दृश्यमान जगत्को बनाया है, इसी तरह ऋषियोंने भी तपके प्रभावसे वेदोंको प्राप्त किया है। विधाताने फल मूल आदि अन्नोंको तपस्यासे ही उत्पन्न किया है, एकान्त योगयुक्त सिद्ध लोग तपके प्रभावसे तीनों लोकोंको देखते हैं। रोग नाश करनेवाली सब औषधि और अनेक कर्म्मोंका निर्व्वाह तपस्यासे ही सिद्ध होता है, सब साधनोंका तप ही मूल है। जगत्में जो कुछ दुष्प्राप्य वस्तु हैं, वह सब तपके प्रभावसे प्राप्त होती हैं; ऋषियोंने तपस्यासे ही निःसन्देह ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है। सुरापीनेवाले, धन हरनेवाले, भ्रूणहत्याकरनेवाले और गुरुस्त्रीगामी मनुष्य उत्तम रीतिसे तपस्या करनेपर उन पापोंसे छूट जाते हैं। तपस्या अनेक प्रकारकी हैं। विषयिकसुखभोगोंसे निवृत्त होके चाहे कोई किसी प्रकारकी तपस्या क्यों न करे, अनशनसे बढ़के परम तपस्या और कुछ भी नहीं है। महाराज! अहिंसा, सत्यवचन, दान और इन्द्रिय दमनसे अनशन उत्तम है। दानसे कुछ भी कठिन नहीं है, जननीकी अतिक्रम करके दूसरे आश्रममें गमन करना धर्म्म नहीं है, वेदसे दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है, सन्न्यासही परम तपस्या है जो लोग सुख स्वर्ग और धर्म्मरक्षाके निमित्त इस लोकमें इन्द्रियसंयम किया करते हैं, उनके निमित्त धर्म्म और अर्थ विषयमें

अनशन व्रतसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, मृग और पच्छीसमूह तथा इनके अतिरिक्त दूसरे जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं; वे सभी तपस्यामें रत होके तपके जरिये सिद्ध होते हैं। इसी भांति देवताओंको तपस्याके जरिये महत्व प्राप्त हुआ है। तपस्याका फल सदा सब इष्ट विषयोंका विभाग कर देता है। तपस्यासे निःसन्देह देवत्व भी प्राप्त हो सकता है।

१६१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! देवता, ब्राह्मण, ऋषि और पितर लोग सत्य धर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं; इसलिये मैं सत्यधर्म्म सुननेकी अभिलाषा करता हूं; आप मुझसे वही कहिये। सत्यका क्या लक्षण है, किस प्रकार वह प्राप्त होता है और सत्यके प्राप्त होनेसे क्या होता है। आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच धर्म्मशङ्कर उत्तम नहीं है; सब वर्णोंके बीच अविकारी सत्य ही श्रेष्ठ है। साधुओंके समीप सत्यधर्म्म ही सदा आदरणीय है, सत्यही सनातन धर्म्म हैं; सब कोई सत्यका आदर करें, सत्यही परम गति है। तपस्या और योगसाधन सत्यधर्म्म है, सत्यही सनातन ब्रह्म, सत्यही परम श्रेष्ठ यज्ञ कहके वर्णित होता और सब वस्तु ही सत्यसे प्रतिष्ठित हो रही हैं। सत्यका जैसा स्वरूप और लक्षण है, उसे मैं विधिपूर्व्वक विस्तारके सहित कहता हूं और जिस प्रकार सत्य प्राप्त होता है, उसे भी वर्णन करूंगा, तुम इसके सुननेके योग्य पात्र हो। हे भारत ! सब लोकोंके बीच सत्य तेरह प्रकारके रूपसे विख्यात है। हे राजेन्द्र ! सत्य, समता, दम, मत्सर हीनता, क्षमा लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, धृति, आर्य्यत्व, सब जीवोंपर सदा दया तथा अहिंसा ये तेरह प्रकार सत्यके रूप हैं। तिसके बीच अव्यय और अविकारी नित्य-वस्तुका नाम सत्य है; सब धर्म्मोंके अविरोध योगके जरिये वह प्राप्त होता है। इच्छा, द्वेष, काम, क्रोधके नष्ट होनेपर अपने और शत्रुके इष्ट अनिष्ट विषयोंमें तुल्य दृष्टिको समता कहते हैं। इन्द्रियोंके विषयमें आसक्तिहीनताको दम कहा जाता है; दमगुण रहने पर धीरज, गम्भीरता, अभय और रोगोंकी शान्ति होती हैं; यह ज्ञानके प्रभावसे प्राप्त होता है। दान और धर्म्म विषयके संयमको पण्डित लोग अमात्सर्य्य कहते हैं; पुरुष सदा सत्य मार्गमें स्थित रहनेसे मत्सर-रहित होते हैं। अक्षमा और क्षमाके विषयमें प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको जिस शक्तिके सहारे शिष्ट तथा साधु लोग क्षमा करते हैं, उसे ही क्षमा कहते हैं; सत्यवादी पुरुष उत्तम रीतिसे इस शक्तिको प्राप्त करते हैं। शान्तिचित्त तथा स्थिर वचनवाले बुद्धिमान पुरुष जिस शक्तिके जरिये अत्यन्त कल्याणयुक्त कर्म्मोंको सिद्ध करते और किसी स्थानमें ग्लानियुक्त नहीं होते, उसे ही लज्जा कहते हैं; यह शक्ति धर्म्मसे प्राप्त होती है। धर्म्म और अर्थके निमित्त लोक-संग्रहके लिये क्षमा करनेको तितिक्षा कहा जाता है, धीरजसे तितिक्षा प्राप्त होती है। ममता और विषय-वासना परित्याग करनेका नाम त्याग है राग द्वेषसे रहित पुरुष ही त्यागी होते हैं दूसरे नहीं। यत्नपूर्व्वक जीवोंके शुभ कार्योंके सिद्ध करनेको आर्य्यता कहते हैं। जिसके जरिये सुख और दुःखकी विकृति नहीं होती उसे ही धृति कहा जाता है, जो बुद्धिमान पुरुष अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करे, वह सदा धृतिके वशवर्त्ती होवे। मनुष्य सदा क्षमाशील और सत्यपरायण होवे, जिसने हर्ष, भय और क्रोध परित्याग किया है, वह पण्डित पुरुष ही

धृति लाभ करनेमें समर्थ होता है । वचन, मन, कर्म्मके जरिये सब जीवोंके विषयमें अद्रोह, अनुग्रह और दान करना साधुओंका सनातन धर्म्म है । हे भारत ! येही तेरह प्रकारके पृथक् पृथक् गुणोंके इकट्ठे होने पर सत्य होता है, इस लोकमें साधु लोग सत्यकी सेवा करके बढते हैं । हे राजन् ! सत्यके सब गुणोंका अन्त नहीं कहा जासकता, इसीलिये पितरों और देवताओंके सहित ब्राह्मण लोग सत्यकी प्रशंसा किया करते हैं । सत्यसे बढ़के परम धर्म्म और कुछ भी नहीं है । मिथ्याके समान परम पाप दूसरा कुछ नहीं है । सत्यही धर्म्मका आसरा है; इसलिये सत्यका लोप न करे । सत्यसे ही दान दक्षिणायुक्त यज्ञ, अग्निहोत्र, समस्त वेद और धर्म निश्चय-प्राप्त होता है । एक ओर सहस्र अश्वमेध यज्ञ और दूसरी ओर अकेले सत्यके तुलादण्डपर रखनेसे सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य अधिक होता है ।

१६२ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान भरतश्रेष्ठ ! काम, क्रोध, शोक, मोह, विधित्सा, अकार्य्य, पराधीनता, मत्सरता, ईर्षा, कुत्सा, असूया, कृपा और भय जिससे उत्पन्न होते हैं, आप मेरे समीप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये ।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! ये तेरह प्राणियोंके प्रबल शत्रु हैं, ये मनुष्योंको सब तरहसे सेवा किया करते हैं, यह मनुष्योंको सदा जानना उचित है । हे राजन् ! इन सबकी उत्पत्ति, स्थिति और निवृत्तिका विषय तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा । इस समय पहिले क्रोधकी उत्पत्तिका विषय यथार्थ रीतिसे कहता हूं । तुम सावधान होकर सुनो । लोभसे क्रोध उत्पन्न होता है और वह पराये दोषके जरिये उद्दीप्त होकर क्षमाके सहारे निवृत्त वा निवृत्त हुआ करता है ।

सङ्कल्पसे काम उत्पन्न होता है, उसकी जितनी ही सेवा की जाय उतना ही वह बढ़ता है बुद्धिमान पुरुषोंके कामसे विरत होनेपर उसही समय वह नष्ट होजाता है, क्रोध और लोभके बीचसे असूयाकी उत्पत्ति होती है, सब जीवोंमें दया करनेसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है । बुद्धिमान् पुरुषोंके मनमें अनिष्ट वस्तुओंके दर्शनसे भी इसकी उत्पत्ति होती और तत्त्वज्ञानके जरिये निवृत्ति देखी जाती है । अज्ञानसे मोह उत्पन्न होता है और पापसे बार बार बढ़ता रहता है, सत्सङ्गतिके कारण वह नष्ट होजाता है । हे कुरुकुल धुरन्धर ! जो लोग विरुद्ध शास्त्रोंको देखते हैं, उन लोगोंको विधित्सा अर्थात् कार्य्यके आरम्भमें व्यग्रता उत्पन्न होती है; तत्त्वज्ञानसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है, प्रणययुक्त पुत्र आदिके वियोगके कारण देहधारी जीवोंको शोक उत्पन्न होता है; प्रिय पुरुषका वियोग होनेपर जब कि यह विदित होता है कि फिर उसके मिलनेकी सम्भावना नहीं है, उस समय शोककी शान्ति हुआ करती है, क्रोध, लोभ और अभ्यासके कारणसे अकार्य्य-परतन्त्रता प्रकट होती है; सब जीवोंमें दया और निर्वेदके सबब उसकी निवृत्ति होती है । सत्यके त्यागने और अनिष्ट-विषयोंकी सेवा करनेसे मत्सरता उत्पन्न होती है, वह साधुओंकी सङ्गति करनेसे नष्ट होती है । कुलकी मर्य्यादा, विद्या और ऐश्वर्य्यसे मद उत्पन्न होता है; इन सबकी यथार्थता मालूम होनेपर उसही समय उसका नाश होता है । काम और हर्षसे ईर्षा प्रकट होती है, साधारण प्राणियोंकी बुद्धिको देखनेसे वह नष्ट होती है । हे राजन् ! समाजसे च्युत लोगोंके भ्रमके कारण द्वेष और असम्मत वचनके जरिये कुत्साकी उत्पत्ति होती है लिहाजा देखनेसे उसकी शान्ति होती है,

जो लोग बलवान् शत्रुके प्रतिकार करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन लोगोंमें तीच्ण असूया उत्पन्न हुआ करती है; करुणासे वह निवृत्त होती है। सदा दुःखित पुरुषोंके देखनेसे कृपा उत्पन्न होती है, धर्म्मनिष्ठा विदित होनेपर उसकी निवृत्ति हुआ करती है। यह सदा देखा जाता है, कि जीवोंको अज्ञानसे लोभ उत्पन्न होता है, सब विषयोंकी अस्थिरता देखनेपर ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होती है। बुद्धिमान् लोग कहा करते हैं, शान्तिके जरिये इन तेरहों दोषोंको पराजित किया जाता है। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें येही सब दोष थे, तुमने सत्यके अभिलाषी होकर उन लोगोंको जय किया है।

१६३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मैं सदा साधुओंकी सङ्गतिमें रहनेसे अनृशंसताको जानता हूं; नृशंस और उसके कार्य्यके विषयको नहीं जानता; लोग कांटे, कूए और अग्निको जिस तरह त्यागते हैं, निठुर मनुष्यको भी उसी तरह परित्याग किया करते हैं, नृशंस पुरुष इस लोक और परलोकमें स्पष्ट रूपसे जलता है, इसलिये आप उस विषय और कर्म्म-निर्णयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, नृशंस पुरुष कुकर्म्ममें प्रवृत्त और नीच कार्य्य करनेमें अभिलाषी होता है। वह स्वयं जन समाजमें निन्दनीय होकर भी सदा दूसरेकी निन्दा करता है और अपनेको सबके समीप वञ्चित समझता है; उसके समान छोटा और नीचबुद्धि दूसरा कोई भी नहीं है। वह अभिमान, असत्सङ्ग और अपनी बड़ाईमें रत होकर निज वदान्यता प्रकाशित करता है; कृपण और मूर्खकी भांति सबकी ही शङ्का किया करता है; निज सम्प्रदायकी प्रशंसा और आश्रमवासी ऋषियोंके विषयमें द्वेष करता है; सदा दूसरेकी हिंसामें प्रवृत्त होकर दोष गुणका विचार नहीं करता; बहुतसी न कहने योग्य बात कहता है, अशान्त चित्त और लोभी होकर निठुर कार्य्य किया करता है; धर्म करनेवाले गुणवान् मनुष्योंको पापी करके निश्चय करता है, अपने चरित्रके प्रमाण अनुसार दूसरेका विश्वास नहीं करता, दूसरेका दोष देखनेसे ही उसे गुप्त रीतिसे प्रकाश करता है; दूसरेका दोष निज दोषके समान होनेपर जीविका निर्व्वाहके लिये उसे छिपा रखता है; उपकारी पुरुषको केवल वञ्चित समझता है; समयके अनुसार उपकारीको धनदान करके फिर दुःख किया करता है। प्राप्त हुए भक्ष्य, भोज्य और पेय वस्तुओंको दूसरेके देखते रहते भी जो पुरुष अकेला भोजन करता है, उसे भी नृशंस कहते हैं। जो लोग पहिले ब्राह्मणोंको भोजनकी वस्तुओंको दान करके सुहृदोंके सङ्ग उसे भोजन करते हैं वे इस लोकमें अनन्त सुख भोग करते हुए परकालमें स्वर्ग लाभ करते हैं। हे धर्मराज यही तुम्हारे निकट नृशंसका विषय वर्णन किया विज्ञानयुक्त मनुष्योंको सदा नृशंसका सङ्ग परित्याग करना उचित है।

१६४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! सब वेदोंके जानने वाले यज्ञशील धर्म्मात्मा साधु ब्राह्मणोंके दरिद्र होने पर आचार्य्य कार्य्य, पितर कर्म्म और पढ़नेके लिये उन लोगोंको अर्थ दान करना अवश्य उचित है। राजा सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको सब रत्न दान करे, ब्राह्मण लोग वेद और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ स्वरूप हैं वे लोग इच्छा पूर्व्वक गुण तथा गौरवके अनुसार धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञोंका पूरा किया करते हैं। जिसके आश्रितोंके पालन करनेके निमित्त

विश्वर्षिक और उससे भी अधिक अन्न उपस्थित रहता है, वे सोमपान करनेमें समर्थ होते हैं, धर्म्मात्मा राजा वर्त्तमान समयमें यज्ञ करनेवाले विशेष करके ब्राह्मणोंका यज्ञ यदि एक अंशके जरिये रुक जाय, तो राजा यज्ञ और सोमरस पान न करनेवाले अनेक पशुसमूहसे युक्त वैश्यका धन ग्रहण करके यज्ञके निमित्त ब्राह्मणको दान करे। राजा इच्छानुसार शूद्रके घरसे कुछ धन न ग्रहण करे, क्यों कि शूद्रको यज्ञ कर्म्मका कुछ अधिकार नहीं है। जो एक सौ गऊवाले होकर अग्निमें आहुति नहीं देते और जो सहस्र गऊसे युक्त होके भी यज्ञ नहीं करते, राजा कुछ भी विचार न करके यज्ञके लिये उनका धन हरण करे; राजा प्रकाश्य रीतिसे सदा कृपणोंके धनको हरण करे; जो राजा ऐसा आचरण करता है, उसे बहुत धर्म्म होता है। जिस ब्राह्मणने अन्नके अभावसे तीन दिन तक उपवास किया है, वह कर्म्महीन पुरुष उदूखल, खेत, बगीचे अथवा जिस स्थानसे मिल सके, वहांसे एक दिनके योग्य अन्न हरण करके राजाके न पूछने पर भी उसके समीप प्रकाशित करे, धर्म्म जाननेवाला राजा धर्म्मके अनुसार उसके विषयमें दण्ड धारण न करे, क्षत्रियोंकी असावधानीसे ब्राह्मण क्षुधासे क्लेशित होते हैं, राजा ब्राह्मणोंकी विद्या और चरित्रको जानके उनकी वृत्तिका विधान करे। जैसे पिता और सपुत्रोंको प्रतिपालन करता है राजा वैसे ही ब्राह्मणोंकी सब तरहसे रक्षा करे; सम्वत्के अन्तमें वैश्वानर यज्ञ करे। धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने अनुकल्पको परधर्म्म कहा है और विश्वदेव, साध्य, महर्षि तथा ब्राह्मणोंने आपद्कालमें मरनेसे डरके अनुकल्पको मुख्य धर्म्मका प्रतिनिधि स्वरूप निश्चित किया है। जो पुरुष मुख्य कल्पको करनेमें समर्थ होकर अनुकल्पका अनुवर्त्ती होता है, उसे पारलौकिक फल नहीं मिलता। वेद जाननेवाला ब्राह्मण राजाके निकट किसी विषयका निवेदन न करे, ब्रह्मबल और राजबल इन दोनोंके बीच ब्राह्मणका बल ही प्रबल है; इसलिये ब्रह्मवादियोंका बल राजाके विषयमें सदा दुःसह हुआ करता है। ब्राह्मण कर्त्ता, शास्ता, धाता और देवता स्वरूप कहे जाते हैं; ब्राह्मणोंके निकट रूखा और अमाङ्गलिक वचन न कहे। क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य, शूद्र बहुतसे धनके जरिये और ब्राह्मण मन्त्र तथा होमके सहारे आपदोंसे पार होते हैं। कन्या, स्त्री, मन्त्रज्ञानसे हीन, मूर्ख और यज्ञोपवीत रहित पुरुष अग्निहोत्रमें आहुति न देवे, ये लोग जिसके होमकी अग्निमें आहुति देते हैं, उसके सहित अपनेको नरकमें डालते हैं, इसलिये वेद जाननेवाले याज्ञिक पुरुषको होता होना उचित है। जो यज्ञकी अग्नि स्थापित करके प्राजापत्य दक्षिणा दान नहीं करते, धर्म्मदर्शी पुरुष उन्हें आहिताग्नि नहीं कहते; श्रद्धावान् जितेन्द्रिय होकर समस्त पुण्यकर्म्म करे, कभी दक्षिणा-रहित यज्ञ न करे। जो यज्ञ करके दक्षिणा नहीं देते, उनकी प्रजा, पशु, स्वर्ग, यश, कीर्त्ति, आयु और समस्त इन्द्रियां नष्ट होती हैं। जो ब्राह्मण रजस्वला स्त्रीसे सङ्ग करते, जो आहिताग्नि नहीं हैं और जिसके वंशमें वेदज्ञानसे रहित पुरुष जन्म लेते हैं, वे सब ही शूद्रके समान हैं; ब्राह्मण शूद्रकी कन्याका पाणिग्रहण करके जिस स्थानमें केवल कूएंका जल ही उपजीव्य है, वहां बारह वर्ष वास करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! ब्राह्मण यदि अपरिणीता स्त्री और शूद्रको माननीय समझके अपनी शय्यापर शयन करने दे, तो वह अपनेको अब्राह्मण समझके उसके पीछे तृणशय्या पर शयन करे, तब शुद्ध होगा, इस विषयमें मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। जो ब्राह्मण नीच वर्णको सेवा करके एक स्थान एक आसनपर एक रात्रिके बीच

विहार करके पापग्रस्त होता है, वह व्रतनिष्ठ होकर तीन वर्षमें उस पापको नष्ट करनेमें समर्थ हुआ करता है। हे धर्मराज! परिहासके समय, स्त्रीके निकट, विवाहकालमें, गुरुके लिये और निज जीवनकी रक्षाके निमित्त मिथ्या वचन कहनेसे दोष नहीं होता, पण्डित लोग इस पांच प्रकारके झूठ व्यवहारको पाप नहीं कहते। श्रद्धावान् पुरुष नीच जातिसे भी उत्तम विद्या सीखे, अपवित्र जगहसे भी कुछ विचार न करके सुवर्ण ग्रहण करे, नीचकुलसे भी उत्तम स्त्री ग्रहण करे और विषसे अमृत लेके पीवे; क्योंकि स्त्रीरत्न और जल धर्मपूर्वक दूषित नहीं होते। वैश्यजाति वर्णसङ्करोंको निवारण करने और गऊ ब्राह्मणके हित तथा अपने परित्राणके लिये शस्त्र ग्रहण करे। जानके ब्रह्महत्या सुरापान, गुरुस्त्री-गमन, सुवर्ण चुराना और ब्राह्मणस्व हरण करना, ये पांचो महापातक हैं; प्राणनाश ही इसका प्रायश्चित्त निश्चित है। सुरापान और अगम्य-गमनके कारण जो पुरुष पतित होता है, उसके सङ्ग सहवास करने और अब्राह्मण होके ब्राह्मणी गमन करनेसे पुरुष शीघ्र ही पतित होता है। मनुष्य याजन, अध्यापन और योनिसम्बन्धके कारण पतित हुए पुरुषके सङ्ग व्यवहार करनेसे सम्वत्सरके बीच पतित हुआ करते हैं; एकत्र गमन करने एक आसन पर बैठने और एकत्र भोजन करनेसे पतित नहीं होते। हे धर्मराज! ब्रह्महत्या आदि पञ्च महापातकका प्रायश्चित्त नहीं कहा है, प्राणत्याग ही उसका प्रायश्चित्त है; इससे अतिरिक्त दूसरे पापोंके जो प्रायश्चित्त हैं, उससे पाप नष्ट करके अन्तमें पुरुष फिर उसमें प्रवृत्त न होवे, सुरापीनेवाले ब्रह्महत्यारे और विमाताके सङ्ग गमन करनेवाले पुरुषोंके मरने पर उनके दाहकर्म्म तथा प्रेतकार्य्य करनेकी आवश्यकता नहीं है; सपिण्ड लोग इस विषयमें विचार न करके उसका अशौच ग्रहण न करके अन्न और सुवर्ण ग्रहण करें। अमात्य और महत् पुरुषके पतित होने पर जबतक वा प्रायश्चित्त न करे, तबतक धार्मिक पुरुष धर्मके अनुसार उसे त्याग दें और उसके सङ्ग बात न करे। पाप करनेवाला पुरुष तपस्या और धर्म्माचरणसे पापको नष्ट करता है। तिसको चोर कहनेसे उसके समान पाप होता है, और जो पुरुष तस्कर नहीं है, उसे तस्कर कहनेसे उसके पापसे दूना पाप कहनेवालेको लगता है। कुमारी यदि व्यभिचारसे दूषित हो, तो वह ब्रह्महत्या पापके तीन भागका एक भाग भोग करती है और जो पुरुष उसे दूषित करता है, वह बाकी दो भाग ग्रहण करता है। ब्राह्मणको मारनेकेलिये उद्योग अथवा प्रहार करनेसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त प्रतिष्ठा नहीं मिलती। हत्या करनेसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास करना पड़ता है, इसलिये कभी ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करने वा मारनेके वास्ते तैय्यार न होवे। ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करनेसे उसके शरीरसे निकला हुआ रुधिर जितनी धूलिको गीली करता है, मारनेवाला पुरुष उतने ही वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास किया करता है। भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते युद्धमें शस्त्रसे मरकर शुद्ध होता अथवा जलती हुई अग्निमें अपने शरीरकी आहुति देनेसे शुद्ध हो सकता है। सुरा पीनेवाला जलते हुए उष्ण वारुणी मद पीनेसे पापसे मुक्त होता अर्थात् उष्ण मद पीनेसे उसका शरीर जलनेपर वह मृत्युके कारण परलोकमें गमन करके पवित्र होता है। ब्राह्मण लोग सुरापान करके ऐसा आचरण करनेसे शुभ लोकमें गमन करते है; इसके अन्यथा करनेसे असत् गतिको प्राप्त होते हैं।

पापबुद्धि दुष्टात्मा पुरुष विमाताके साथ गमन करनेसे जलती हुई लोहमयी स्त्रीकी मूर्त्तिको आलिङ्गन करके प्राणत्यागनेसे शुद्ध

होता है। अथवा स्वयं शिश्न और कोष काटकर अञ्जलीमें लेकर नैऋर्त्त दिशामें गमन करके निपतित होवे; अथवा ब्राह्मणके निमित्त प्राण परित्याग करनेसे शुद्ध होगा। अथवा अश्वमेध, गोमेध वा अग्निष्टोम यज्ञ करके इस लोक और परलोकमें सत्कृत हो सकेगा। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष मरे हुए ब्राह्मणका कपाल धारण करके बारह वर्ष तक निरन्तर निज कार्य्यको प्रकाश करते हुए ब्रतचारी और मननशील होवे। ब्रह्महत्या करनेवाले पुरुषको इसी प्रकार मननशील और तपमें निष्ठावान होना उचित है जो पुरुष ऋतुमती स्त्रीको ऋतुमती जानके बध करता है, उसे ब्रह्महत्यासे दुगुना पाप होता है। सुरापीनेवाला ब्राह्मण निराहार ब्रह्मचारी होकर पृथ्वीपर शयन करते हुए तीन वर्ष तक केवल अग्निष्टोम यज्ञ करे; शेषमें एक बैलके सहित एक सहस्र गऊ दान करके शुद्ध होगा। वैश्यका बध करनेसे दो वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैलके सङ्ग एक सौ गऊ दान करे। शूद्रको मारनेसे एक वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैल और एक सौ गऊ दान करे। कुत्ता, सूअर और गधेको मारनेसे शूद्रके ब्रतका आचरण करे। हे राजन्! बिड़ाल, चूहा, मेढ़क, कौवा, स्वर्णचातक और सांप आदि जीवोंकी हिंसा करनेसे पशु हत्याका पाप हुआ करता है। इस समय दूसरे सब प्रायश्चित्तोंकी कथा क्रमके अनुसार कहता हूं।

बिना जाने कीट आदिका बध करनेसे शोकरूपी प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; गऊ बधके अतिरिक्त दूसरे पृथक् पृथक् उपपातकोंका प्रायश्चित्त वर्ष भरमें ही करे। वेदजाननेवाले ब्राह्मणकी भार्य्यासे गमन करने पर तीन वर्ष और परस्त्री मात्रके सङ्ग गमन करनेसे दो वर्ष तक दिनके चौथे भागमें भोजन करके ब्रह्मचर्य्य और ब्रतमें निष्ठावान होवे। परस्त्रीके साथ एक स्थान और एक आसन पर बैठनेसे तीन दिन केवल जल पीके समय बितावे। हे कुरुनन्दन! जो पुरुष बिना कारणके ही पिता, माता और गुरुको परित्याग करता है, वह जिस प्रकार धर्म्म-निर्णयके अनुसार पतित होता है, उसी तरह जो पुरुष अग्निहोत्र नष्ट करता है, वह भी पतित हुआ करता है। भार्य्याके व्यभिचारिणी होनेपर उसे विशेष रीतिसे अवरुद्ध करके भोजन और वस्त्र मात्र देवे; परस्त्री-गमन करनेसे पुरुषके लिये जैसा प्रायश्चित्त है, उसे भी उसी ब्रतका आचरण करावे, जो स्त्री अपने पतिको त्यागके दूसरे पुरुषका आसरा करके पापाचार करती है, राजा उसे अनेक लोगोंसे परिपूरित स्थानमें कुत्तोंसे भक्षण करावे। इसी तरह पुरुषको भी व्यभिचार करने पर उसे जलती हुई लोहमय-शय्यापर सुलावे और उसमें काठका ढेर लगानेसे पाप करनेवाला मनुष्य भस्म होगा। महाराज! स्त्रियोंको पतिके विषयमें व्यतिक्रम करनेसे उन्हें भी इसी तरह दण्ड देना योग्य है। जो दुष्टात्मा पाप-कर्म्म करके सम्वत्के बीच प्रायश्चित्त नहीं करता, उसे दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त न करनेवाले पुरुषके सङ्ग जो मनुष्य दो, तीन, चार अथवा पाच वर्षतक बास करता है, वह मुनिव्रत अवलम्बन करके भिक्षा मांगके जीवन व्यतीत करे। जेठे भाईके क्वारा रहते छोटा भाई यदि विवाह करे, तो उसे परिवेत्ता कहते हैं, वह उसके जेठे और जिसके उद्योगसे विवाह होता है, वे सभी अधर्म्मके कारण पतित हुआ करते हैं। वीरघाती पुरुष जिस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी पापनाशके लिये एक महीने तक उसको कृच्छ्र वा चान्द्रायण ब्रतका आचरण करें; अन्तमें परिवेत्ता जेठे भाईको वह विवाहिता भार्य्या प्रदान करे, अनन्तर छोटा भाई बड़ेकी अनुमतिसे फिर उसे ग्रहण करे, [illegible]

भार्य्योंसे परिणीता स्त्री धर्म्मके अनुसार शुद्ध होती है। गऊको छोड़के दूसरे पशुओंकी हिंसा दोषयुक्त नहीं होती; पण्डित लोग जानते हैं, कि पशुओंके ऊपर प्रतिपालक पुरुषोंकी सब तरहकी प्रभुता है। पापी पुरुष सुरागायके चर्व्वरको धारण करके निज कर्म्मको कहते हुए मट्टीका पात्र लेकर सवेरे सात घरमें भिक्षाके वास्ते भ्रमण करें और उससे जो प्राप्त हो, वही भोजन करें; बारह दिनतक इसी तरह व्रत करनेसे उसके अनन्तर शुद्ध होंगे। पाप शान्ति न होनेपर सम्वत्भर ऐसाही व्रत करे; तो पाप नष्ट हो सकेगा। मनुष्योंके बीच इसी तरहका प्रायश्चित्त ही उत्तम है। दान करनेमें समर्थ पुरुषोंके विषयमें इन्हीं सब दानोंका विधान करे,—जो लोग नास्तिक नहीं हैं, उनके निमित्त केवल एक गऊका दान पण्डितोंके जरिये कहा गया है। ब्राह्मण यदि कुत्ता, सूअर, कुक्कुट और गधेका मांस, मूत्र अथवा पुरीष भोजन करे, तो फिरसे उसका संस्कार करना होगा। सोमपान करनेवाला ब्राह्मण यदि सुरा पीनेवालेका गन्ध सूंघे, तो पहिले तीन दिन तक केवल गर्म्म जल पीवे, फिर तीन दिन गर्म्म दूध पीवे; तिसके अनन्तर तीन दिन उष्ण जल पीकर तीन दिन वायु भक्षण करे, सब वर्णोंके विशेष करके बिना जाने ब्राह्मणोंके किये हुए पापोंका इसी प्रकार सनातन प्रायश्चित्त कहा गया है।

१६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तलवार युद्धके जाननेवाले नकुलने वार्त्ताकी समाप्ति देखकर शरशय्या शायी पितामह भीष्मदेवसे यह बात कही।

नकुल बोले, हे धर्म्मजाननेवाले पितामह! सब शस्त्रोंके बीच धनुष अत्यन्त उत्तम है; पर मेरे मतमें तलवार ही प्रशंसनीय है; क्यों कि धनुष कटने और घोड़ोंके नष्ट होने पर केवल तलवारसे आत्माकी भलीभांति रक्षा करी जा सकती है, अकेला तलवार ग्रहण करनेवाला वीर पुरुष, धनुषधारी और गदाशक्तिसे प्रहार करनेवाले शत्रुओंको निवारण करनेमें समर्थ होता है। हे पितामह! इससे मुझे इस विषयमें बहुत ही संशय और कौतूहल उत्पन्न हुआ है, युद्धमात्रमें कौन शस्त्र उत्तम है? किस कारण किस जरिये किस तरह खड्ग उत्पन्न हुआ था और पहिले कौन खड्ग विद्याका आचार्य्य था? आप वह सब वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत! धनुर्व्वेदके जाननेवाले शरशय्याशायी धर्म्मज्ञ भीष्मदेव बुद्धिमान् माद्रीपुत्रका यह वचन सुनकर सुशिक्षित द्रोणशिष्य महानुभाव नकुलसे कौशलयुक्त सूक्ष्म और विचित्र अर्थके सहित स्वर-वर्णसे युक्त उत्तम वचन कहने लगे।

भीष्म बोले, हे माद्रीपुत्र! तुमने धातुमान पर्व्वतकी तरह मुझे सावधान किया; इससे जो पूंछते हो, उस विषयका यथार्थ वृत्तान्त कहता हूं, सुनो, हे तात! पहिले यह दृश्यमान जगत् जल समूहमें समुद्रमय, निष्प्रकम्प, अनाकाश, अन्धेरेसे परिपूरित, स्पर्श रहित, शब्दहीन, अप्रमेय और अत्यन्त गम्भीर था, उस समय पृथ्वीतलका पता न था; पितामह ब्रह्माने उस ही समय जन्म लिया। उस सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्माने वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, स्वर्ग, पाताल, भूमि, नैऋती, चन्द्रमा, तारा, ग्रह, नक्षत्र, सम्वत्सर, ऋतु, महीना, पक्ष, लव और क्षण इन सबकी सृष्टिकी। अनन्तर भगवान् पितामहने लौकिक-शरीर धारण करके मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अङ्गिरा, सब कार्य्योंमें समर्थ रुद्र और प्रचेता नाम अत्यन्त तेजस्वी ऋषिसन्तानोंको उत्पन्न किया। दक्ष प्रजापतिसे साठ कन्या उत्पन्न

हुई, ब्रह्मर्षियोंने पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उन कन्याओंको ग्रहण किया। उन्हीं कन्याओंसे विश्वगण, देवता, पितर, भूत, गन्धर्व्व, अप्सरा, विविध, राक्षस, पतङ्गो, मृग, मछरी, प्लवग, महोरग, भूचर, खेचर, जलचर, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज आदि प्राणी तथा स्थावर जङ्गमसे युक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने इन सब जीवोंको उत्पन्न करके शाश्वत वेदोक्त धर्म्म प्रयोग किया, आचार्य्य और पुरोहितके सहित देवता लोग उस ही धर्म्मका अनुष्ठान करने लगे। आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य, दोनों अश्विनीकुमार, भृगु, अत्रि, अङ्गिरा सिद्ध लोग, तपस्वी, काश्यप, वशिष्ठ अगस्त्य, नारद, पर्व्वत, वालखिल्य ऋषि, प्रभास, सिकत, घृतप, सोमवायव्य, वैश्वानर मरीचिपायी, आकृष्ट, हंस, अग्नियोनि ये सब ऋषि, वाणप्रस्थ तथा प्रश्नि आदि ऋषि ब्रह्माकी आज्ञामें स्थित रहे।

दानवेन्द्र समूह क्रोध लोभसे युक्त होकर पितामहका वह शासन अतिक्रम करके धर्म्म नष्ट करने लगा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु विप्रचित्ति, वोरोचन, सम्बर, प्रह्लाद, नमुचि और बलि, ये सब तथा समूहके सहित दूसरे बहुतेरे दैत्य दानव धर्म्मबन्धन उल्लङ्घन करके अधर्म्ममें रत हुए थे। सब कोई समान वंशमें उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जैसे देवता लोग हैं। वैसे ही हम भो हैं, दैत्य लोग ऐसा ही धर्म्मअवलम्बन करके देवर्षियोंके सङ्ग स्पर्द्धा करने लगे। हे भारत! वे लोग जीवोंके ऊपर करुणा तथा इनका प्रियकार्य्य नहीं करते थे। भेद, दण्ड, दानरूपी तीनो उपायको अवलम्बन करके दण्डसे प्रजा समूहको पीड़ित करने लगे हैं सब मुख्य मुख्य असुर लोग विज्ञानमार्गसे नहीं रहते थे। अनन्तर भगवान ब्रह्मा ब्रह्मर्षियोंके सहित हिमालय पर्व्वतके सुन्दर शृङ्गपर उपस्थित हुए। देवोंमें नेह निघाताने प्रजा समूहके प्रयोजन सिद्धिके निमित्त फूले हुए वृक्षोंसे परिपूर्ण उस पर्व्वतपर निवास किया। अनन्तर सहस्रवर्षके बाद ब्रह्माने विधानके अनुसार यज्ञ आरम्भ किया, विधिके अनुसार कर्म्म करनेवाले यज्ञ दक्ष ऋषियोंके जरिये यथारीति वह यज्ञ पूर्ण होने लगा। यज्ञका स्थान प्रकाशमान अग्नि और समित समूहसे परिपूरित, भ्राजमान सुवर्ण यज्ञकलशसे अलंकृत, मुख्य मुख्य देवताओंसे घिरकर ब्रह्मर्षियोंसे सुशोभित हुआ था। मैंने सुना है, यज्ञमें ऋषियोंके बीच आश्चर्य्य घटना हुई थी। उदित तारोंसे शोभित निर्म्मल आकाशमें जैसे चन्द्रमाका उदय होता है, वैसे ही कोई भूत अग्निको विक्षिप्त करके प्रकट हुआ। वह भूत नीलोत्पल दलके समान श्यामवर्ण, उसके सब दांत तीक्ष्ण, उदर अत्यन्त क्षीण, आकार बहुत ऊंचा, तेजसे-युक्त और अनभिभवनीय था। उसके उठते ही पृथ्वी विचलित और तरङ्गमालाके सहित आवर्त्तयुक्त महोदधि क्षुभित हुआ, उत्पातजनक उल्कापात होने लगा। वृक्षोंकी सब शाखा टूट गयीं, समस्त दिशा कलुषित हुईं और अकल्याणयुक्त वायु बहने लगा। उस समय सब जीव भयके कारण बारम्बार दुःखित होने लगे। अनन्तर पितामह उस तुमुल कारण और अद्भुत भूतको उपस्थित देखकर देवता गन्धर्व्व तथा महर्षियोंसे यह वचन बोले, कि जगत्की रक्षा और असुरोंके वधके लिये मैंने इस बलवान असिनाम भूतको इसी तरह चिन्ता किया था। क्षण भरके अनन्तर भूत उस अद्भुत रूपको परित्याग करके उद्यत कालान्तकके समान तीक्ष्णधार तलवार रूपसे प्रकाशित हुआ। अनन्तर ब्रह्माने वृषभध्वज नीलकण्ठ रुद्र देवको वह अधर्म्म-वारण तीक्ष्ण अस्त्र प्रदान किया। महर्षियोंसे स्तूयमान अनन्त महिमाधार भगवान रुद्रदेवने उस खड्गको ग्रहण करके दूसरा रूप धारण किया

उस समय उन्होंने चतुर्भुज होकर पृथ्वीपर स्थित होके मस्तकसे सूर्य्यको स्पर्श किया। और महालिङ्ग मूर्त्ति धारणकर ऊर्द्धदृष्टि होकर मुखसे ज्वाला बाहर करने लगे। नील, पाण्डुर, लोहित आदि अनेक तरहके रूप बदलते हुए रुद्रने सुवर्ण तारसे खचित कृष्णाजीन वस्त्र धारण किया। उनके माथेपर सूर्य्यके समान एक नेत्र प्रकट हुआ, तब काले और पीले वर्णवाले उनके दोनों नेत्र सुशोभित हुए। अनन्तर भगनेत्र हर महाबली पराक्रमी शूलधारी महादेवने प्रलयकी अग्नि समान प्रकाशमान तलवार ग्रहण करके बिजलीयुक्त बादलकी तरह दोनों बगल और अग्रभागमें धारणक्षम त्रिकूटयुक्त ढाल ग्रहण करके युद्धकी इच्छासे आकाशमें तलवार घुमाते हुए विविध मार्गसे भ्रमण करने लगे। हे भारत! उस समय रुद्रदेवके महाहास्य और निनाद करनेसे उनका भयङ्कर रूप प्रकाशित हुआ। रौद्र कर्म्म करनेवाले रुद्रदेवने युद्धके निमित्त वैसा रूपधारण किया, उसे सुनकर दानव लोग हर्षित होकर उनके सम्मुख दौड़े। वे सब जलते हुए अङ्गार, अयोमय क्षुरधारवाले सब शस्त्र और दूसरे घोर आयुधों तथा पत्थरोंकी वर्षा करने लगे; अनन्तर दानवोंकी सेना बलपूर्वक विध्वंश करनेवाले अच्युत रुद्रदेवको देखकर मोहित और विचलित हुई। वह अकेले ही तलवार ग्रहण करके द्रुतपदसे घूम रहे थे, तब असुर लोग उन्हें सहस्ररूपसे मालूम करने लगे। वह तृणसमूहमें पड़ी हुई दावानल अग्निकी भांति शत्रुओंके बीच छेदन भेदन, पीड़न, कृन्तन, विदारण और दाहन करते हुए भ्रमण करने लगे। महाबली दानव लोग तलवारके वेगसे छिन्नभिन्न होगये; किसीकी भुजा कटी, किसीकी गर्द्दन, किसीकी छाती और किसीके शिर कटके पृथ्वी पर गिर पड़े। कितनेही तलवारकी चोटसे पीड़ित होकर युद्धत्यागके आपसमें एक दूसरेके विषयमें आक्रोश करते हुए दशों दिशामें भाग गये। कोई भूगर्भ, कोई पर्व्वतके बीच, कोई कोई आकाशमार्ग और कोई जलके भीतर प्रविष्ट हुए। उस अत्यन्त दारुण कठोर संग्राममें समाप्त होने पर मांस और रुधिरमय कीचड़से युक्त पृथ्वीने अत्यन्त भयङ्कर मूर्त्ति धारण की। फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे युक्त पर्व्वत समूहकी तरह दानवोंके रुधिरपूरित मृत शरीरसे पृथ्वी भर गई। उस समय पृथ्वी रुधिरकी धारासे युक्त होकर मदविह्वल रुधिरसे भींगे हुए वस्त्रवाली श्यामा स्त्रीकी तरह शोभायमान हुई। रुद्रदेवने दानवोंको मारके जगत्में धर्म्म स्थापित करते हुए रौद्ररूप त्यागकर कल्याण युक्त शिव रूप धारण किया, अनन्तर सब देवताओं और महर्षियोंने आश्चर्य्यमय जयशब्दके जरिये महादेवकी पूजा की, अन्तमें भगवान रुद्रदेवने धर्म्मकी रक्षा करनेवाले विष्णुका सत्कार करके दानवोंके रुधिरसे भींगी हुई तलवार प्रदान की। हे तात! विष्णुने मरीचिको, भगवान मरीचिने महर्षियोंको, महर्षियोंने महेन्द्रको, देवराजने लोकपालोंको, लोकपालोंने सूर्य्यपुत्र मनुको वह बहुत बड़ा खड्ग प्रदान किया, और उन्होंने मनुसे यह वचन कहा था,—कि तुम मनुष्योंके प्रभु हो; इससे इस धर्म्मगर्भ तलवारके जरिये प्रजासमूहको पालन करो। जिन्होंने शरीर और मनकी प्रीतिके निमित्त धर्म्मबन्धन अतिक्रम किया है, उन लोगोंको धर्म्म पूर्व्वक दण्ड देकर रक्षा करनी उचित है; इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करना उचित नहीं है। दण्ड चार प्रकारका है। दुष्ट-वचनसे निग्रह करना वाक्दण्ड है, सुवर्ण वसूल करना अर्थ दण्ड, शरीरकी अङ्गहानि करना शारीरिक दण्ड और अधिक अपराधके कारण बधरूपी प्राणदण्ड विहित है। तलवारका यह समस्त रूप दुर्व्वार करके

माने; प्रतिपाद्य पुरुषके व्यतिकर्म्मके कारण तलवारके इसी तरहसे सब रूप प्रमाणीकृत हुआ करते हैं।

अनन्तर मनुने लोकाधिपति निजपुत्र चुपको अभिषिक्त करके प्रजासमूहकी रक्षाके लिये वह तलवार प्रदान की, चुपसे वह इक्ष्वाकुको मिला; इक्ष्वाकुसे पुरुरवा, पुरुरवासे आयुने उसे पाया; आयुसे नहुष, नहुषसे ययाति, ययातिसे वह पुरुको मिला; पुरुसे अमूर्त्तरयस, उनसे राजा भूमिशय, भूमिशयसे दुष्मन्तपुत्र भरतने वह तलवार पाया; उनसे धर्म्मज्ञ राजा ऐलविलको मिला, ऐलविलसे राजा धुन्धुमार, धुन्धुमारसे काम्बोज, उनसे मुचकुन्दने पाई। मुचकुन्दसे मरुत, मरुतसे रैवत, रैवतसे युवनाश्व, युवनाश्वसे इक्ष्वाकु वंशीय रघु, उनसे प्रतापी हरिणाश्व हरिणाश्वसे सुनकने उस तलवारको पाया। सुनकसे धर्म्मात्मा उशीनर, उशीनरसे यदुवंशीय भोज, भोजसे शिवि, शिविसे प्रतर्द्दनने उसे पाया, प्रतर्द्दनसे अष्टक, अष्टकसे पृषदश्व, पृषदश्वसे भरद्वाज, भरद्वाजसे द्रोण, द्रोणसे कृप और कृपसे भाइयोंके सहित तुमने इस परम तलवारको पाया है। इस असिका कृत्तिका नक्षत्र है, अग्नि देवता, रोहिणी गोत्र और रुद्रदेव परम गुरु हैं। हे पाण्डुपुत्र! सब लोग जिसे सदा कीर्त्तन करनेसे जयलाभ करते हैं, अत्यन्त गोपनीय असिके उन आठनामोंको मुझसे सुनो, असि, विशसन, खड्ग तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्म्मपाल। हे माद्रीपुत्र! सब शस्त्रोंमें खड्गही प्रधान है, यह महेश्वर प्रणीत करके पुराणमें निश्चित हुआ है। हे शत्रुदमन! पृथुराजने पहिले धनुष उत्पन्न किया और उसहीसे धर्मपूर्व्वक पृथ्वी पालन करके [illegible] हुए अनेक शस्य दोहन किया था। हे माद्रीपुत्र! धनुषको भी ऋषि-प्रणीत करके [illegible] कर सकते हो। इस [illegible] युद्ध-

वोंको सदा खड्गकी पूजा करनी योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ! तलवारकी उत्पत्ति और संसर्ग विषयक यह प्रथम कल्प यथारीतिसे विस्तार-पूर्व्वक वर्णित हुआ। मनुष्य सदा इस उत्तम खड्गकी उत्पत्तिका विषय सुनकर इस लोकमें कीर्त्तिलाभ और परलोकमें अत्यन्त सुख भोग करते हैं।

१६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मदेव जब इतनी कथा कहके चुप हुए, तब युधिष्ठिरने घर जाके विदुरके संग एकत्र वर्त्तमान चारों भाइयोंसे पूछा,—धर्म्म, अर्थ, काम इन तीनों विषयोंसे लोक व्यवहार चलता है; उसके बीच कौन उत्तम, कौन मध्यम और कौनसा निकृष्ट है, तथा काम क्रोध और लोभको जीतनेके लिये किस विषयमें चित्त लगाना चाहिये; आपलोग अच्छी तरह प्रसन्न होकर यह विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, अनन्तर अर्थ तलके जाननेवाले बुद्धिमान विदुर पहिले धर्म्मशास्त्रको स्मरण करके कहने लगे।

विदुर बोले, अनेक शास्त्रोंको पढ़ना, निज धर्म्मका आचरण करना; दान, श्रद्धा, यज्ञक्रिया, क्षमा, कपटहीनता, दीनोंके ऊपर दया, यथार्थ वचन और इन्द्रियनिग्रह, ये कईएक धर्म्मकी सम्पत्ति हैं; आप इन्हें धर्म्मकी गति समझिये; आपका चित्त जिससे विचलित न हो,—धर्म्म और अर्थ इन सबका मूल है; मैं इन्हें एकही समझता हूं। ऋषि लोग धर्म्मके सहारे संसारसे पार हुए हैं, सब लोक धर्म्महीमें प्रतिष्ठित हैं; देवताओंकी धर्म्महीसे वृद्धि हुई और धर्म्ममेंही अर्थ स्थित है। हे राजन्! पण्डित लोग धर्म्मको सब गुणोंसे श्रेष्ठ कहते हैं, अर्थको मध्यम और कामको अनिष्ट कहा करते हैं, इसलिये जितेन्द्रिय पुरुष धर्म्मको मुख्य समझें। [illegible]

यमें जैसा आचरण किया जाता है, सब जीवोंके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, विदुरका बचन समाप्त होनेपर धर्म्म, अर्थके तत्वज्ञ अर्थशास्त्रके जाननेवाले पृथापुत्र अर्ज्जुनने युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार वच्यमाण बचन कहना आरम्भ किया।

अर्ज्जुन बोले, यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, इसलिये इसमें प्रवृत्ति विधायक कर्म्म ही मुख्य हैं; कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और विविध शिल्पकर्म्मोंका व्यतिक्रम न करनेसे ही अर्थ होता है, मैंने सुना है, अर्थके बिना धर्म्म और काम स्थित नहीं हो सकते, बिना अर्थसिद्धिके धर्म्म और काम निवृत्त होंगे; इसलिये जैसे सब जीव प्रजापतिको उपासना करते हैं, वैसे ही सत्कुलमें उत्पन्न पुरुष धनवान मनुष्यकी सदा सेवा किया करते हैं। जटा, मृगछाला धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय, सिरमुड़े और निष्ठावान् ब्रह्मचारी लोग भी अर्थके अभिलाषी होकर पृथक् पृथक् धर्म्मके अनुसार निवास करते हैं; दूसरे गेरुए वस्त्र पहरके स्मश्रु ल लज्जाशील शान्त, सब तरहकी आसक्तिसे रहित होके और दूसरे कोई कोई पुरुष कुलरीतिको अवलम्बन करके निज निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हुए स्वर्ग-कामना किया करते हैं। आस्तिक और नास्तिक लोग परम संयममें रत होके अज्ञानके समान अर्थके प्रधान विषयको प्रकाशित करते हैं। जो सेवकोंको भोगसे और शत्रुओंको दण्डसे शासित करते, वेही धनवान हैं। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! यही मेरा अपना मत है, अब नकुल और सहदेव कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं, इससे इनका वचन सुनिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मअर्थके जाननेवाले नकुल, सहदेव उत्तम वचन कहनेको उद्यत हुए। नकुल और सहदेव बोले, मनुष्य सोने बैठने और चलनेके समय विविध उपायसे अर्थागमकी चेष्टा करे। परम प्रिय दुर्लभ अर्थके प्राप्त होनेपर पुरुष इस कामनाका फल भोगता है यह प्रत्यक्ष है; इसलिये इसमें सन्देह नहीं है। संग मिला हुआ अर्थ और अर्थके स धर्म्म अवश्य ही आपके विषयमें अमृत समान है, इस ही कारण यह हम लोगोंके सम्मत है। अर्थहीन मनुष्योंको काम्य वस्तु भोग नहीं प्राप्त होता और धर्म्महीन धन नहीं मिलता, इसलिये जो पुरुष धर्म्म और अर्थसे रहित हुआ है, सब लोग उ व्याकुल होते हैं, इसलिये स्थिरचित्तवाले योंको धर्म्मको मुख्य मानके अर्थसाधन करना योग्य है; ऐसा होनेसे विश्वस्त जीवोंके बीच सब विश्वस्त रूपसे कल्पित होता है। पहिले धर्म्मका आचरण करे। तिसके अनन्तर धर्म्मयुक्त अर्थ प्राप्त करे, पीछे काम सेवन करे; क्यों कि जिसके प्रयोजन सिद्ध हुए हैं, उसके लिये कामही श्रेष्ठ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नकुल, सहदे ऐसा कहके चुप हुए। तब भीमसेन वक्ष्य वचन कहने लगे।

भीमसेन बोले, निष्काम पुरुष अ इच्छा नहीं करते, कामहीन पुरुष धर्म अभिलाषी नहीं होते और जिसे काम नहीं वह किसी विषयकी कामना भी नहीं क इसलिये कामही उत्तम है। ऋषि लोग का नाके कारण फल मूल पलाश आदि तथा भक्षण करके अत्यन्त सावधान होके तप रत हुआ करते हैं। दूसरे लोग स्वाध्याय होके भी कामनाके कारण वेद वेदान्त शास्त्रोंके अनुशीलनमें विरत होते हैं। कोई श्रद्धा सहित यज्ञ कर्म्ममें कामनाके व वासे दान करते हैं। बनिये, कृषक, पशुपा कारुकर, शिल्पकार और जो लोग देव किया करते हैं, वे सभी कामनाके अनु कार्य्योंमें नियुक्त होते हैं, कोई कोई

कामना युक्त होकर समुद्रमें प्रवेश करते हैं। कामके रूप अनेक तरहके हैं; सब पदार्थ ही कामसे व्याप्त होरहे हैं। हे महाराज! कामसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है,—न था और न होगा; यही सार पदार्थ है; धर्म्म और अर्थ इसहीमें स्थित हो रहे हैं। जैसे दहीसे माखन, तिलसे तेल, मईसे घृत, काठसे फूल और फल तथा पुष्पसे मधु श्रेष्ठ है; वैसे ही धर्म्म और अर्थसे काम उत्तम है; काम ही धर्म्म-अर्थ स्वरूप है। कामना न रहती तो ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको सुवर्ण और धन दान न करते और लोगोंको अनेक तरहकी चेष्टा सिद्ध न होती; इसलिये धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंके बीच कामही प्रधान रूपसे दीख पड़ता है। हे राजन्! आप उत्तम वेषसे भूषित होकर मदसे मतवाली खूबसूरत स्त्रियोंके सङ्ग कामनानुसार क्रीड़ा करिये; हमारे लिये कामही उत्तम है। हे धर्म्मराज! मैंने अच्छी तरह विचार करके बुद्धिसे यह निश्चय किया है; इसलिये आपको इस विषयके विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मेरा यह नृशंस वचन युक्ति रहित नहीं है, इसलिये साधुओंसे यह संग्रहीत हुआ करता है। धर्म्म, अर्थ और कामको समान रीतिसे सेवन करना योग्य है; जो पुरुष एकको सेवन करता है, वह जघन्य है, धर्म्म और अर्थ दोनोंको सेवन करनेवाला पुरुष मध्यम है, और जो बुद्धिमान् हृदयके सहित चन्दन चाहत और माला तथा आभूषणोंसे भूषित होकर धर्म्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गोंकी सेवामें रत होता है, वही उत्तम मनुष्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले. अनन्तर भीमसेन आदि भाइयोंके निकट संक्षेप और विस्तार युक्त वचनसे अपना अभिप्राय प्रकट करके चुप हुए। तब शास्त्र जाननेवाले धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर विदुर आदिकी बातोंको सुनकर मनके बोधसे भली भांति विचारके इसको स्मरण करके कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, आप लोगोंने धर्म्म शास्त्रोंको निर्णय करके सब प्रमाणोंको निःसन्देह मालूम किये हैं। मैंने जो जाननेकी इच्छासे कहा था, उसका सिद्धान्त वचन सुना; आप लोगोंने जो कहा, वह अवश्यही निश्चित वचन है, परन्तु अब मैं कुछ कहता हूं, सावधानचित्तसे सुनिये, जो मनुष्य पाप, पुण्य, धर्म्म, अर्थ और काममें रत नहीं हैं, जो दोष रहित और सुवर्ण तथा लोष्टमें समदर्शी हैं; वे सुख, दुःख और अर्थ-सिद्धिसे छूट जातेहैं। जातिस्मर और जराविकारसेयुक्त मनुष्य लोग बार बार सुख दुःख आदिके जरिये सावधान होकर मोक्षकी प्रशंसा किया करते हैं; परन्तु हम मोक्षका विषय कुछ भी नहीं जानते। भगवान् स्वयम्भूने कहा है, कि राग, द्वेष और स्नेहसेयुक्त पुरुषोंकी मुक्ति नहीं होती; समताहीन पण्डित लोग मुक्ति-लाभ करते हैं; इसलिये प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें आसक्त न होवे। मोक्षप्राप्तिका यही उत्तम उपाय है, कि मेरे इच्छानुसार प्रवृत्त होनेपर भी विधाता मुझे जिस विषयमें जिस तरह नियुक्त करता है, वैसा ही करता हूं; विधाता ही सब प्राणियोंको समस्त विषयोंमें नियुक्त करता है, इसलिये सबको जानना चाहिये, कि विधाता ही बलवान है। इसे जानना उचित है, कि कर्म्मसे अप्राप्य अर्थ नहीं मिलता, जो अवश्य होनहार है, वही प्राप्त होता है; धर्म्म, अर्थ, काम; इन त्रिवर्गोंसे हीन मनुष्यभी अर्थ लाभ करता है, इस लिये सब लोकोंके हितके लिये विधाताने इस विषयको अत्यन्त गोपनीय कर रखा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भीमसेन आदि युधिष्ठिरका वह सब युक्तियुक्त मनोहर वचन सुनके हर्षित हुए और हाथ जोड़के उन कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरको प्रणाम किया। हे राजन्! वे सब राजालोग उत्तम अलङ्कारोंसे विभूषित युधिष्ठिरके कही हुई [illegible] कथा सुनके

अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगी। वीर्य्यवान् महात्मा धर्म्मपुत्रने भी उन लोगोंकी उस विषयमें विश्वास देखकर प्रशंसा की। अनन्तर वह सावधान चित्तवाले भीष्मदेवके समीप आके फिर परम धर्म्मका विषय पूछने लगे।

१६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान पितामह! आप कौरवोंको प्रतिदिन बढ़ाया करते हैं, इस लिये मैं और भी कुछ पूछता हूं उसे वर्णन करिये। कैसे मनुष्य प्रियदर्शन होते हैं? किसके सङ्ग परम प्रीति होती है। परिणाम और वर्त्तमान कालमें कौनसे लोग हितकारी हुआ करते हैं। आप मेरे समीप इन सब पुरुषोंका विषय वर्णन करिये। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि बहुतसा धन सम्बन्धी और बान्धव सुहृदोंके समान नहीं होसकता। हितकारी वचन सुने और हितकर कार्य्योंको करे, ऐसा मित्र अत्यन्त दुर्लभ है। हे धार्म्मिक प्रवर! आप यह सब वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! किन पुरुषोंके साथ मित्रता करनी चाहिये और किनके साथ मित्रता करनी योग्य नहीं है, उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं सुनिये। हे नरनाथ! जो लोग लोभी, क्रूर, कर्म्मत्यागी, धूर्त्त, शठ, नीचाशय, पापी, सबसे शङ्का करनेवाले, आलसी, दीर्घसूत्री, कोमलताहीन, लोकनिन्दित, गुरुस्त्री हरनेवाले, विपदमें पड़े हुए बान्धवोंको त्यागनेवाले, दुष्टात्मा, लज्जारहित, सबतरहसे पापदर्शी, नास्तिक, वेदनिन्दक, जनसमाजमें स्वेच्छाचारी तथा इन्द्रियोंके वशमें होनेवाले लोगोंसे द्वेष करनेवाले कार्य्यके समय असावधान, चुगुल, नष्टबुद्धि, मत्सरी, पाप करनेवाले, अशुद्धचित्तवाले, नृशंस कितव, जो पुरुष सदा मित्रोंका अपकार और दूसरेके अर्थकी इच्छा करते हैं, जो नीचबुद्धि शक्तिके अनुसार दान करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते जो पुरुष सदा मित्रोंके विषयमें असन्तोष प्रकाशित करते हैं, जो चञ्चल-चित्तवाला मनुष्य बिना कारणके ही क्रोध और अकस्मात विरोध किया करता है; जो पापी हितैषी मित्रोंको शीघ्र [illegible] करता, जो मित्रद्रोही मूढ़ पुरुष थोड़ी बुराई अथवा अज्ञानके कारण कोई कार्य्य करके उसही समय मित्रोंकी उपासना किया करता है; जो पुरुष मित्रमुख शत्रु है, जो विपरीत-दृष्टि अथवा कुटिलदर्शी है, जो हितमें रत मनुष्यको परित्याग करता है, सुरापीनेवाला शत्रुता करनेवाला, क्रुद्ध, दया रहित, दूसरेसे डाह करनेवाला मित्रद्रोही, प्राणिहिंसामें रत, कृतघ्न, छिद्र खोजनेवाला और जो पुरुष जनसमाजमें अधम रूपसे विख्यात हैं, उनके साथ कभी मित्रता करनी उचित नहीं है।

अब जिसके साथ मित्रता करनी उचित है, वह मुझसे सुनिये। जो लोग सत्कुलमें उत्पन्न हुए वचन युक्त, ज्ञान-विज्ञानके जाननेवाले, रूपवान, गुणवान्, अलुब्ध, परिश्रमी, उत्तम मित्र, कृतज्ञ, सर्व्वज्ञ, लोभहीन, सदा कसरत करनेवाले, वंशधर, धुरन्धर, दोषरहित और जनसमाजमें विख्यात हैं वे सब मनुष्य राजाओंके ग्राह्य हुआ करते हैं; जो लोग शक्तिके अनुसार सदाचारमें रत होकर सन्तुष्ट होते हैं, बिना कारणके क्रोध नही करते, वे सब अर्थ कोविद लोग मनही मन विरक्त होनेपर भी दूषित नहीं होते; वे स्वयं कष्ट सहके भी मित्रका कार्य्य सिद्ध करते हैं; बहुतसे रङ्ग जैसे वस्त्रको विरक्त नहीं करते, वैसेही वे लोग मित्रोंसे विरक्त नहीं होते; क्रोधके वशमें होकर निर्द्धन और लोभ मोहके कारण स्त्रियोंको दुःखित नहीं करते, वे लोग प्रसन्न हृदय, विश्वासी, धर्म्म करनेवाले सुवर्ण और लोष्टमें समदर्शी और सुहृदोंके विषयमें दृढ़

वृद्धि हुआ करती है, जो मनुष्य शास्त्रज्ञानका अभिमान और निज विभूषण त्यागके प्रजाके सङ्ग सदा स्वामीके कार्य्यमें तत्पर होते हैं, वैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ जो राजा मित्रता करता है, उसका राज्य चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान बढ़ता है, सदा शास्त्रमें रत, क्रोध जीतनेवाले युद्धमें पराक्रमी सत्‌वंशमें उत्पन्न, शीलयुक्त, गुणवान शूर पुरुषोंके सङ्ग मित्रता करनी उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिले मैंने जिन लोगोंको दोषयुक्त कहा, कृतघ्न और मित्रघाती पुरुष उन सबसे भी अधम है; यह निश्चय जान रखो, कि दुराचारियोंको सब लोगोंको परित्याग करना योग्य है।

युधिष्ठिर बोले, आपने जो मित्रद्रोही और कृतघ्नका विषय कहा, मैं उसका पूरा इतिहास विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे मेरे समीप उसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! उत्तर दिशामें म्लेच्छ-देशके बीच जो घटना हुई थी; मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे निकट वह प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं सुनो। मध्यदेशीय गौतम नाम किसी ब्राह्मणने देवकर्म्म रहित एक गांव देख कर भीख मांगनेकी इच्छासे उसमें प्रवेश किया वहां सब वर्णोंके विषयको जाननेवाला ब्रह्मनिष्ठ, सत्यसन्ध, दानमें रत एक धनवान डकैत वास करता था। ब्राह्मणने उसके स्थानमें पहुंचके रहनेके लिये घर और वार्षिक भिक्षा मांगी। डाकूने उस ब्राह्मणके योग्य नया वस्त्र और एक पतिहीन युवा स्त्री दान की। हे राजन्! उस समय ब्राह्मण डाकूके समीप वह सब पाके प्रसन्न-चित्त होकर उस स्थानमें स्त्रीके सहित परम सुखसे समय बिताने और उसके कुटुम्बको सहायता करने लगा; उसने उस धनसंयुक्त डकैतके स्थानमें कई वर्षतक वास किया, क्रमसे बाण वेधनेमें वह अत्यन्त अभ्यस्त हुआ। हे राजन्! वह डाकुओंकी तरह सदा वनचारी हंसोंको मारने लगा। गौतम धीरे धीरे हिंसायुक्त, दयाहीन और सदा प्राणियोंके वधमें रत रहनेसे दस्युओंके सहवासके कारण उनके समान होगया। उस समय उसी भांति अनेक पक्षियोंको मारते और डकैतके घरमें वास करते हुए उसको कई महीने व्यतीत हुआ। अनन्तर जटाचीर मृगछाला धारण करनेवाले, स्वाध्यायमें रत, पवित्र, विनययुक्त, मिताहारी, ब्रह्मनिष्ठ और वेदपारग दूसरे एक ब्राह्मणने उस स्थानमें आगमन किया। वह ब्रह्मचारी गौतमके स्वदेशीय और उसके अत्यन्त प्यारे तथा सखा थे; गौतम डाकुओंके जिस गांवमें वास करता था, वह भी उस ही जगह उपस्थित हुए। वह शूद्रका अन्न नहीं लेते थे, इस ही कारण डाकुओंसे परिपूरित उस गांवमें ब्राह्मणका घर खोजते हुए घूमने लगे। अनन्तर उस विप्रने गौतमके गृहमें प्रवेश किया गौतम भी उस समय वहां उपस्थित हुआ, इससे परस्पर भेंट हुई। हे धर्म्मराज! नये ब्राह्मणने गौतमको कन्धेपर हंसका भार और हाथमें धनुष-बाण लिये रुधिर पूरित शरीरसे राक्षसकी तरह घरके दर्वाजेपर आया हुआ देखकर पहिलेकी पहचानके कारण उसे चीन्हकर यह वचन कहा, कि तुम वंशके धुरन्धर विप्र होके मोहके वशमें पड़के यह कौनसा कार्य्य कर रहे हो, मध्यदेशके विख्यात् ब्राह्मण होके किस कारण दस्यु भावको प्राप्त हुए हो, तुम अपने वेदपारग पूर्व्व ज्ञाति समूहको स्मरण करो. तुम उन्होंके वंशमें जन्म लेके ऐसे कुलाङ्गार हुए हो। हे द्विज तुम स्वयं अपनेको जानके धीर सत्यशील, अध्ययन दम तथा दयाको धारण करके इस निवास स्थानको छोड़ो। हे राजन्! अनन्तर गौतमने उस हितैषी मित्रका ऐसा वचन सुनके आर्त उनकी बातोंको विनिश्चयपूर्वक निवेदन करके पहलेकी तरह उत्तर दिया कि, हे द्विजसत्तम;

मैं धनहीन और वेदज्ञानसे रहित हूं, इसही कारण धन संग्रह करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं तुम ऐसाही समझो। हे विप्रवर! आज मैं आपको देखके कृतार्थ हुआ, आजकी रात आप इसही स्थानमें बास करिये; कल्ह हम दोनों साथही चलेंगे। दयालु ब्राह्मणने वहां पर किसी वस्तुको स्पर्श न करके गौतमके वचनके अनुसार उस रातको वहांपर ही बास किया। वह भूखे थे, इससे गौतमने उन्हें भोजन करानेके लिये बार बार यत्न किया, परन्तु भोजन करनेमें उनको रुचि न हुई।

१६८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! रात बीतने पर भोरके समय उस ब्राह्मणके जानेके अनन्तर गौतमने घरसे निकलके समुद्रको ओर गमन किया। चलते चलते रास्तेमें समुद्रको ओर जानेवाले वनियोंको देखा, फिर वह उन लोगोंके साथ समुद्रकी ओर जाने लगा। हे राजन्! किसी पर्व्वतकी कन्दरामें स्थित मतवाले हाथियोंके जरिये वह बनियोंका समूह अधिकांश नष्ट हुआ। ब्राह्मण उस समय किसी तरह विपदसे छूटके भयसे तथा जीवनकी इच्छा करके उत्तर दिशाको ओर दौड़ा। वह अर्थसे भ्रष्ट और उक्त स्थानसे च्युत होकर अकेलाही कादरकी तरह वनमें घूमने लगा। अनन्तर वह समुद्रकी ओर जानेका उत्तम मार्ग न पाकर एक रमणीय वनमें उपस्थित हुआ। नन्दनवनके समान यक्ष किन्नरोंसे सेवित वह वन सब ऋतुओंमें फलसेयुक्त फूला हुआ आमके वनसे शोभित और शाल, ताल, तमाल, कालागुरु और उत्तम चन्दनके वृक्षोंसे अलंकृत था। उस समय वहां सुन्दर और सुगन्धियुक्त पहाड़को शिखरके सब हिस्सोंमें भारुण्ड नाम विख्यात् मनुष्यके रूप समान पक्षियोंके समूह और पहाड़से समुद्र तक जानेवाले भूलिङ्ग शकुन आदि पक्षी किलोल कर रहे थे। गौतम उन सब पक्षियोंके मनोहर शब्दोंको सुनते हुए गमन करने लगा। हे महाराज! अनन्तर उसने अत्यन्त रमणीय सिकताचित स्वर्गके समान सुखदायक किसी विचित्र समतल स्थानमें श्रीसंयुक्त मण्डलाकार एक वृहत् वटवृक्ष देखा। उसके अनुरूप सब शाखा मानो चक्रके समान हुई थीं, उसके मूल स्थलमें चन्दन-जल छिड़का हुआ था। गौतम उस समय पितामहकी सभा समान, दिव्य फूलोंसे शोभित, श्रीयुक्त, अत्यन्त उत्तम मनोहर वृक्षका स्थान देखकर परम प्रसन्न हुआ; वह उस सुरपुर समान फूले हुए वृक्षोंसे परिपूरित पवित्र स्थानको पाके हर्षपूर्व्वक वहां बैठ गया।

हे कुन्तीपुत्र महाराज! गौतमके वहां बैठने पर सुख स्पर्शयुक्त शुभवायु उसके सब अंगोंको प्रफुल्लित करते हुए पुष्प समूहोंको स्पर्श करके बहने लगा। ब्राह्मण पवित्र वायुके लगनेसे श्रम-रहित होके परम सुखसे सोगया, सूर्य्यने भी अस्ताचलपर गमन किया। अनन्तर सूर्य्यके अस्त तथा सन्ध्याकालके उपस्थित होने पर नाड़ीजङ्घ नामसे विख्यात् पितामहके प्रियमित्र कश्यप-पुत्र महाबुद्धिमान पक्षीप्रवर बकराज ब्रह्मलोकसे निज स्थानमें आये। देव समान प्रभायुक्त देवकन्यापुत्र श्रीमान् विद्वान निरूपम बकराज पृथ्वीपर धर्म्मराज नामसे भी विख्यात थे; उनका सब शरीर सूर्य्यके समान सफेद भूषणोंसे विभूषित था, वह देवगर्भसे उत्पन्न हुए पक्षिराज उस समय सुन्दरतासे प्रकाशित थे; गौतम उस पक्षिश्रेष्ठको आया हुआ देखके विस्मययुक्त हुआ, वह भूख और घामसे अत्यन्त व्याकुल था, इस कारण मारनेकी इच्छासे उसे देखने लगा।

राजधर्म्मा बोले, हे विप्र! आपका मङ्गल तो है? भाग्यसे ही आप मेरे स्थानपर उपस्थित

हुए हैं। सूर्य्य अस्त और सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ, आप अनिन्दित प्रिय अतिथि कृपापूर्व्वक मेरे स्थान आये हैं, इसलिये आज इसी स्थानपर विधिपूर्व्वक सत्कृत होकर निवास करिये, कल्ह सवेरे निज स्थानपर जाइयेगा।

१६९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! उस समय गौतम उस मधुर वचनको सुनकर विस्मित और कौतूहल युक्त होकर राजधर्म्माको देखने लगा।

राजधर्म्मा बोले, हे द्विजवर! मैं कश्यपका पुत्र हूं, दाक्षायणी मेरी माता है; आप गुणवान अतिथि हैं, आपका मङ्गल तो है?

भीष्म बोले, अनन्तर कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उस ब्राह्मणका विधिपूर्व्वक सत्कार करके शान्त पुष्पमय दिव्य आसन प्रदान किया, भागीरथी गङ्गामें जो सब मछलियां विचरती हैं उन्हें और दूसरी पीवर मछलियां तथा अत्यन्त जलती हुई अग्नि गौतम अतिथिके लिये ला दी। ब्राह्मण भोजन करके प्रसन्न हुआ, महातपस्वी बकराज उसकी थकावट दूर होनेके लिये अपने दोनों पङ्खोंसे उसे वायु करने लगे, अनन्तर वह परिश्रम रहित होकर बैठा, तब राजधर्म्माने उसका नाम और गोत्र पूछा। वह "मैं गौतम हूं"—इतना ही कहके और कुछ न बोला, फिर पक्षिराजने उसे दिव्य फूलोंसे सुवासित सुगन्धमय पत्तोंसे युक्त दिव्य शय्या दी; वह उसपर परम सुखसे सोया। अनन्तर जब गौतम शय्यासे उठा, तब कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उसके आगमनका प्रयोजन पूछा। हे भारत! गौतम उनसे बोला, हे महाबुद्धिमान! मैं अत्यन्त दरिद्र हूं, इसलिये धनसञ्चय करनेके लिये समुद्रकी ओर जानेकी इच्छाकी है।

राजधर्म्मा प्रसन्न होकर उससे बोले, हे द्विजवर! आप आतुर न होइये कृतकार्य्य होकर धन-सञ्चयके सहित घर जाइये। बृहस्पतिके मतके अनुसार परस्पर, दैव, काम्य और मैत्र भेदसे अर्थ सिद्ध चार प्रकारकी है; इस समय मैं तुम्हारा मित्र हुआ हूं और तुम्हारे ऊपर मेरी सुहृदता उत्पन्न हुई है; इससे तुम जिस तरह धनवान् होगे, मैं उसमें यत्नवान् होऊंगा। अनन्तर पक्षिराजने भोरके समय गौतमको सुखसे बैठा हुआ देखके यह वचन बोले, हे प्रियदर्शन! तुम इस मार्गसे जाइये, अवश्य ही कृतकार्य्य होगे; यहांसे तीन योजन जाने पर विरूपाक्ष नामसे विख्यात महाबली पराक्रमी मेरे मित्र एक राक्षसराजको देखोगे, हे विप्र! तुम मेरे वचनके अनुसार उनके समीप जाओ, वह तुम्हें निःसन्देह सब अभिलषित वस्तु दान करेंगे।

हे धर्म्मराज! गौतम पक्षिराजका ऐसा वचन सुन, इच्छानुसार अमृत समान फलोंको खाकर सावधान होके चलने लगा। महाराज! वह उस मार्गमें अगर, चन्दन और भोजपत्रोंके सुन्दर वनोंसे होता हुआ शीघ्रताके सहित जाने लगा। अनन्तर वह शाल-तोरण सम्पन्न पहाड़की दीवार और विप्रयुक्त शैलयन्त्रोंसे परिपूरित मेरुव्रज नाम नगरमें पहुंचा। हे राजन्! वह वहां पहुंचके बुद्धिमान् राक्षसराजके प्रिय मित्रके भेजनेसे आया हूं, कहके प्रिय अतिथि रूपसे मालूम हुआ। हे युधिष्ठिर! राक्षसराजने अपने दूतोंसे कहा, कि नगरके दर्वाजेसे गौतमको शीघ्र ले आओ; शीघ्रता करनेवाले राजदूतोंने स्वामीकी आज्ञा पाते ही नगरके द्वारपर उपस्थित होकर गौतमका नाम लेकर उसे बुलाया। हे महाराज! वे सब दूत उस समय ब्राह्मणसे बोले, तुम शीघ्रता करो, जल्दी चलो; राजा तुम्हें देखनेकी इच्छा करता है, विरूपाक्ष नाम राक्षसराज तुम्हें देखनेके लिये आतुर हो रहे हैं, इसलिये जल्दी आओ। अनन्तर गौतम ब्राह्मण अत्यन्त शीघ्र

उस परमसमृद्धिको देखकर अत्यन्त विस्मित होके राक्षसराजके दर्शनकी इच्छा करता हुआ, दूतोंके सङ्ग शीघ्रही राजमन्दिरमें उपस्थित हुआ।

१७० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर गौतम राक्षसराजको विदित होकर उसके रमणीय मन्दिरमें प्रवेश करते ही उससे सत्कार प्राप्त करके सुन्दर आसनपर बैठा राजाने उसका गोत्र, आचार, वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य्यका विषय पूछा, उसने केवल गोत्र बताया और कुछ भी नहीं कहा। राक्षसराजने उस ब्रह्मतेज रहित स्वाध्याय हीन गोत्र मात्रके जाननेवाले ब्राह्मणका निवास पूछा। राक्षस बोला, हे विप्र! तुम्हारा निवास कहा है, तुमने किस गोत्रमें बिवाह किया है, डरो मत, सत्य कहो; निशङ्क चित्तसे विश्वास करो।

गौतम बोला, मैंने मध्यदेशमें जन्म लिया इस समय डाकूके घर बास करता हूं; एक बिधवा शूद्रासे बिवाह किया है, यह तुम्हारे निकट यथार्थ कहा।

भीष्म बोले, अनन्तर राक्षसराजने विमर्ष-युक्त होके मनही मन चिन्ता की, कि किस तरह यह कार्य्य सिद्ध होगा, किस प्रकार मेरा सुकृत सञ्चय हो सकेगा। यह केवल जातिका ब्राह्मण है, महात्मा बकराजका मित्र है, इसीसे उन्होंने इसे मेरे पास भेजा है; वह सदा मेरे आश्रित, भ्राता, बान्धव और हृदयसे सखा हैं, इसलिये मैं उनका प्रिय कार्य्य सिद्ध करूंगा। आज कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन मैं सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराऊंगा, यह भी उनके साथ भोजन करेगा; तब इसे धन दान करूंगा। आज पुण्यतिथि है, यह भी अतिथि होकर आया है; दानके निमित्त संकल्पा हुआ धन भी उपस्थित है; फिर अब कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। राक्षसराजके ऐसा विचार करनेके अनन्तर पाटम्बरधारी स्नात और चन्दन आदिसे अलंकृत सहस्र विद्वान् विप्र उसके गृहपर उपस्थित हुए। हे महाराज! बिरूपाक्षने आये हुए उन ब्राह्मणोंका बिधिपूर्व्वक यथायोग्य सत्कार किया; उनकी आज्ञाके अनुसार सेवकोंने भूमिपर कुशके आसन बिछा दिये। ब्राह्मणलोग राक्षसराजसे सत्कार पाके आसनोंपर बैठ गये, तब राजाने तिल, दाभ और जलसे उनकी पूजा की। महाराज! विश्वदेव पितर और अग्निमूर्त्तिस्वरूप सदाचारी ब्राह्मणलोग चन्दन चर्च्चित फूलमालासे युक्त और भलीभांति पूजित होकर सुधाकर समूहकी तरह शोभित हुए। अनन्तर राक्षसराजने ब्राह्मणोंको घृत और मधु युक्त उत्तम अन्नोंसे भरे हुए हीराजटित निर्म्मल सुवर्ण पात्र प्रदान किया। हर वर्ष आषाढ़ी और माघीपूर्णमासीको बहुतेरे ब्राह्मण उसके स्थानमें इच्छानुसार उत्तम भोजन पाते थे, मैंने ऐसा सुना है, कि विशेषकरके शरत् ऋतुके बीतनेपर कार्त्तिकी पूर्णमासीको राक्षसराज ब्राह्मणोंको इसी तरह भोजन कराके बहुतसे रत्न दान किया करता था। जो हो, ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकने पर उन्हें दक्षिणा देनेके निमित्त महाबलवान् बिरूपाक्षने सोने, चांदी, मणि, मोती, महामूल्यवान् हीरे, प्रबाल और राङ्कव आदि रत्नोंके ढेर मंगाके कहा, हे द्विजसत्तमो! आपलोग इच्छा और उत्साहके अनुसार इन रत्नोंको लेके जिसने जिसमें भोजन किया है; वह उस ही पात्रको लेकर अपने अपने घर जावें। महात्मा राक्षसराजके ऐसा कहनेपर पवित्र वस्त्रवाले माननीय ब्राह्मणोंने इच्छानुसार उन सब रत्नोंको ग्रहण किया और पवित्र रत्नोंसे पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजन्! अनन्तर राक्षसराजने अनेक देशोंसे आये हुए राक्षसोंको निषेध करके उन ब्राह्म-

गोंसे फिर कहा, हे ब्राह्मणलोगो! आज एक दिनके लिये इस स्थानसे आपलोगोंको राक्षसोंसे कुछ भय नहीं है; इसलिये आपलोग आनन्दित होकर शीघ्रही अपने अभिलषित देशोंमें जाइये। अनन्तर ब्राह्मणलोग निज निज दिशाकी ओर दौड़े; गौतम भी शीघ्रताके सहित सुवर्णभार उठाके अत्यन्त कष्टसे ढोता हुआ पूर्व्वोक्त वटवृक्षके निकट उपस्थित हुआ और परिश्रमसे अत्यन्त थककर तथा भूखा होके वहां बैठ गया। हे धर्म्मराज! अनन्तर मित्रवत्सल पक्षिश्रेष्ठ राजधर्म्माने गौतमको स्वागत प्रश्नसे अभिनन्दित करते हुए उसके समीप गये और अपने दोनों पङ्खोंको डुलाकर उसकी थकावट दूर करने लगे; फिर बुद्धिमान् पक्षीने उसका यथा उचित सत्कार करके भोजनकी सामग्री ला दी। गौतम उस समय परिश्रम रहित होके भोजन करके सोचने लगा, कि "मैंने लोभ और मोहके वशमें होकर बहुतसा सुवर्ण भार ग्रहण किया है, मुझे बहुत दूर जाना पड़ेगा; रस्तेमें प्राणधारणके लिये भोजनकी कुछ भी सामग्री नहीं है, इससे किस तरह प्राण धारण करूंगा।" हे पुरुषप्रवर! अनन्तर कृतघ्न ब्राह्मणने मार्गमें जानेके समय खाने योग्य कुछ भी वस्तु सङ्गमें न देखकर मनही मन ऐसाही सोचा, कि यह मांसराशि बकराज मेरे बगलमें स्थित है, इसेही मारके ग्रहण करके शीघ्रताके सहित वेग पूर्व्वक गमन करूंगा।

१७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पक्षिराज वटवृक्षके निकट आगन्तुकी रक्षाके निमित्त वायुकी सहायतासे [illegible] परिमाण अग्नि स्थापित की थी; [illegible] विश्वास पूर्व्वक उसके निकटमें [illegible] किया। दूसरा [illegible] ब्राह्मणने उन्हें मारनेकी इच्छासे उनके अगाड़ी सोया। अनन्तर उस दुष्टात्माने उस विश्वासी बकराजको जलते हुए अङ्गारसे मार डाला; मारके हर्षित हुआ, पाप अथवा दोष नहीं देखा। अनन्तर उसने उस मृत पक्षीको पङ्खहीन तथा लोम रहित करके आगके बीच पकाया। पकानेके बाद उस पक्षिमांस और सुवर्णको लेके अत्यन्त जलदी वेगपूर्व्वक जाने लगा।

दूसरे दिन राक्षसराज विरूपाक्षने निज पुत्रको सम्बोधन करके कहा, हे पुत्र! आज मैंने खगवर राजधर्म्माको नहीं देखा वह प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्माकी वन्दना करने जाया करते हैं; परन्तु मुझे बिना देखे कभी घर नहीं जाते थे। दो सन्ध्या और दो रात्रि बीत गई, वह मेरे स्थानपर नहीं आये; इसलिये मेरा मन प्रसन्न नहीं होता है; वह सुहृत् कहां हैं, उनकी खोज करो। वेदज्ञानसे हीन ब्रह्मवर्च्चस रहित, हिंसामें रत वह अधम ब्राह्मण वहां गया है, वह उनका वध कर सकता है, मुझे ऐसोही शङ्का होरही है; मैंने इङ्गितसे जान लिया है, कि गौतम अत्यन्त दुराचारी, नीचबुद्धि, निर्द्दयी, दारुण आकृति, और दस्युओंकी तरह अधम प्रकृतिवाला है, वह उस स्थानपर गया है; इसही लिये मेरा मन व्याकुल होरहा है। हे पुत्र! इससे तुम शीघ्रही यहांसे राजधर्म्माके स्थानपर जाके मालुम करो, कि वे शुद्ध स्वभाववाले सुहृद जीवित हैं, वा नहीं। बुद्धिशक्तिसे युक्त राक्षसराजका पुत्र पिताका वचन सुनकर शीघ्रताके सहित राक्षसोंको सङ्ग लेकर वट वृक्षके निकट गया और जाके वहां पर राजधर्म्माकी हड्डी देखी। उसे देखके वह अत्यन्त दुःखित होकर रोता हुआ शक्तिके अनुसार शीघ्रताके सहित गौतमको पकड़नेके लिये दौड़ा। अनन्तर राक्षसोंने बहुत दूर जाके पक्ष, हड्डी और चरण-रहित राजधर्म्माके शरीरके सहित गौतमको पकड़ा; उसे पकड़के

लोगोंने शीघ्रताके सहित मेरुव्रज नगरमें आके राजाके समीप राजधर्म्माका मृत शरीर और पाप कृतघ्न गौतमको उपस्थित किया। राजा-पुरोहित तथा मन्त्रियोंके सहित उसे देखकर रोने लगे, राजभवनमें बहुतही आर्त्तनाद उत्पन्न हुआ; नगरके बीच बालक स्त्री सबका चित्त व्याकुल होगया। अनन्तर राक्षसराजने पुत्रको आज्ञा दी, कि "इस पापीका शीघ्र वध करो"—और ये सब राक्षस लोग इच्छानुसार इसका मांस भक्षण करके सन्तुष्ट होवें। हे राक्षस-लोगो! मेरे विचारमें ऐसा आता है, कि तुम-लोग इसी समय इस पापाचारी पापकर्म्म कर-नेवाले पापमें रत पापात्माका वध करो। घोर पराक्रमी राक्षसोंने राक्षसेन्द्रका ऐसा वचन सुनके उस पापीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। महाराज! उन सब राक्षसोंने शिर नीचा करके राक्षसराजसे कहा। इस अधम मनु-ष्यको भक्षण करनेके लिये इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपिये, इसका पापमय शरीर भक्षण करनेके वास्ते हम लोगोंको आज्ञा देना आपको उचित नहीं है। राक्षसराजने निशा-चरोंके वचनमें सम्मत होके उनसे कहा, हे राक्षसलोगो! इस कृतघ्नको इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपो। शूल, पट्टिशधारी राक्ष-सोंने स्वामीकी आज्ञा पातेही उस पापीको टुकड़े टुकड़े करके उसही समय दस्युओंके हवाले किया दस्युओंने भी उस पापाचारीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। हे धर्म्मराज! मांसभक्षी नृशंसलोग भी कृतघ्नोंको भक्षण नहीं करते। हे राजन्! ब्राह्मणघाती, सुरा पीनेवाले चोर और व्रतघ्न पुरुषोंकी बल्कि निष्कृति होती है; परन्तु कृतघ्नलोगोंकी किसी प्रकार निष्कृति नहीं होती। जो नराधम मित्रद्रोही, कृतघ्न और नृशंस हैं; क्रव्याद तथा दूसरे मांस-भक्षी कोड़े भी उन्हें भक्षण नहीं करते।

१७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले; अनन्तर प्रतापशाली राक्ष-राज रत्न, गन्ध और अनेक वस्त्रोंसे अलंकृ चिता तैयार कराके बकराजको जलाक विधि पूर्व्वक उनका प्रेत कर्म्म करने लगे। उ समय दक्षनन्दिनी पयस्विनी शोभना सुरभीदेवी उसके ऊपरके विभागमें प्रकट हुईं, उनके मुखसे क्षीर-मिश्रित फेन निकलके राजधर्म्माकी चितामें गिरा। अनन्तर बकराज उसहीसे जरिये फिर जीवित होके उठकर विरू निकट उपस्थित हुए। उसही समय दे विरूपाक्षके नगरमें आके उससे बोले, हे रा सराज! तुमने प्रारब्धसेही राजधर्म्माको फिर जीवित किया। पहिले समयमें प्रजापतिने राज धर्म्माको जो शाप दिया था, देवेन्द्रने वह प्राचीन वृत्तान्त विरूपाक्षको सुनाया; उन्होंने कहा,—हे राजन्! बकराज प्रजापतिके निकट गये, इसीसे उन्होंने इनके ऊपर क्रुद्ध होके यह वचन कहा था, कि "दुष्ट स्वभाववाला बकाधम जब मेरी सभामें नहीं आया, तब शीघ्रही वह नष्ट होगा"; इसलिये ब्रह्माके वचन अनुसार ये गौतमके जरिये मरकर उन्हींके अमृत सेचनसे फिर जीवित हुए हैं।

अनन्तर राजधर्म्मा बकने पुरन्दरको प्रणाम करके कहा। हे नरेश्वर! यदि आपने कृपा की है, तो मेरे प्रियमित्र गौतमको फिर जीवित करिये, पुरुषप्रवर इन्द्रने उनके वचनके अनुसार अमृत छिड़कके गौतमको फिर जिला दिया। हे धर्म्मराज! बकराजने सुवर्णपात्र आदिसे युक्त उस पापाचारी सुहृदको पाकर परम प्रीतिके सहित आलिङ्गन करके धन रत्नके सहित उसे विदा कर दिया, आप भी निज स्थानमें आके पहिलेकी भांति प्रजापतिकी सभामें गमन किया। ब्रह्माने उस महात्माको अतिथि सत्का रसे सम्मानित किया। गौतम भी फिर डाकुओंके स्थानपर पहुंचके शूद्राभार्य्यासे बहुतसे पापी पुत्र उत्पन्न किया। उस समय देवताओंने उसे

ापयमें महाशाप दिया था, कि वह पापाचारी तघ्न ब्राह्मण पुनर्भू पत्नीके गर्भसे बहुत समय-क बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके महानरक-ामी होगा ।

हे भारत । मुझसे नारद मुनिने पहिले ह सब वृत्तान्त कहा था, मैंने वह सब स्मरण रके तुम्हारे समीप यथार्थ रीतिसे यह महत् ाख्यान् वर्णन किया । कृतघ्न पुरुषको यश, ह और आश्रय स्थान कहां है । कृतघ्न अत्यन्त ्वेय है, कृतघ्न पुरुषका किसी तरह निस्तार ीं होता । मनुष्यमात्रकोही मित्रद्रोह करना ात नहीं, मित्रद्रोही मनुष्य महाघोर अनन्त कमें गमन करता है । मित्रतायुक्त मनुष्यको कृतघ्न होना उचित है, मित्रोंसे समस्त प्राप्त होती हैं; मित्रसे ही सम्मान मिलता मित्रोंसे सब भोग वस्तुयें भोगी जाती हैं, ोंसे ही विपदसे छुटकारा मिलता है; ान पुरुष उत्तम सत्कारके जरिये मित्रकी करें । पापी, कुलाङ्गार निरपत्रप पापका-रत पुरुषोंमें अधम मित्रद्रोही कृतघ्न को पण्डितलोग परित्याग करें । हे ावर ! यह मैंने तुम्हारे निकट पापाचारी ोही कृतघ्नका विषय वर्णन किया, फिर । अब कौनसे विषयको सुननेको अभि-करते हो ?

वैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय ! उस महानुभाव भीष्मकी कही हुई इतनी नके युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए थे।

१७३ अध्याय समाप्त ।

मोक्षधर्म्म प्रकरण ।

ादन, पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर और सरस्वती प्रणाम करके पश्चात् जयका आदिको है ।

िर बोले, हे पितामह आपने रान-परम पवित्र आपद्धर्म पूर्ण रीतिसे कहे, अब गृहस्थ आदि सब आश्रमवालोंके लिये जो श्रेष्ठ हो, उस धर्म्म विषयको वर्णन करिये ।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम । आश्रमभावमें ही धर्म्म विहित है, उसमेंसे सत्यस्वरूप परमात्म विषयको सुनना, मनन, निदिध्यासनमय, तप-स्याके ज्ञानरूप फल इस जीवनमेंही दीख पड़ते हैं, धर्म्मके द्वार अनेक तरहके हैं, इस लोकमें उनकी समस्त क्रिया कभी निष्फल नहीं होती । ज्ञानलाभ, उसके निमित्त चित्त-शुद्धि, स्वर्ग कामना और पुत्रोंको उत्पन्न करना आदि जिन जिन विषयोंको जो लोग निश्चय करते हैं, उसे ही वे कल्याणकारी समझा करते हैं, विषयान्तरोंमें उनकी प्रवृत्ति नहीं होती, जब संसार तृण आदि तुच्छ वस्तुओंकी तरह असार रूपसे समझ पड़ता है, तभी इससे निःसन्देह विराग उत्पन्न हुआ करता है । हे युधिष्ठिर । अनेक दोषोंका आधार संसार जब इस प्रकार असार करके निश्चित हुआ है, तब बुद्धिमान मनुष्योंको आत्ममोक्षके निमित्त यत्न करना उचित है ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! धननाश अथवा पुत्र कलत्र वा पिताके परलोकगामी होनेपर जिस बुद्धिके जरिये शोक दूर किया जाता है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये ।

भीष्म बोले, धन नष्ट होने तथा स्त्री, पुत्र और पिताके मरनेपर 'हाय ! कैसा दुःख है !' ऐसी चिन्ता करते हुए शोक दूर करनेके लिये आत्मध्यानके निमित्त शमगुण आदिकोंका अनु-ष्ठान करे । इस विषयमें पण्डित लोग इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं । किसी ब्राह्मणने सेनजित् राजाके निकट जिसे ... [illegible] ... उसे सुनो । कोई ब्राह्मण पुत्र शोकसे दुःखित राजा सेनजित्‌को शोकसे [illegible] और [illegible] देखकर बोला, हे राजन् ! तुम क्यों मोहित होते हो ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

करते हो। जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते है, वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे। तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं, सबकोही जहांसे आये हैं, वहांही फिर जाना पड़ेगा।

स्येनजित् बोले, हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते है। ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके भी आप शोकित नहीं होते हैं।

ब्राह्मण बोला, देव, तिर्य्यग् मनुष्य आदि उत्तम और मध्यम समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्म्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे है, "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्म ही मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वीही मेरी है, यह जैसी मेरी है दूसरे कीभी वैसीही है, ऐसाही बिचारनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता, मैं इस ही बुद्धिसे हर्षित वा दुःखित नहीं होता। जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर जिस प्रकार पृथक् होते हैं, जीवोंका समागम भी वैसा ही है। पुत्र, पौत्र, स्वजन, बान्धव सबही इसी प्रकार है, इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है; क्यों कि इनका अवश्यही विच्छेद होता है। जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है, वह तुम्हें नहीं जानता, तुम भी उसे नहीं जानते; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो? विषय वासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःख नाश होनेके लिये सुख उत्पन्न हुआ करता है, सुखसे भी दुःख प्रकट होता है; इससे दुःखही वार वार उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके वाद सुख उत्पन्न हुआ करता है, इसलिये मनुष्योंके सुख दुःख चक्रकी तरह भ्रम रहे हैं। तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। मनुष्य कभी सदा सुख दुःख भोग नहीं करता, अकेला शरीरही सुख दुःखका स्थान है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका शरीरही सुख और दुःखका आश्रय है; जीव जिस शरीरसे जो कर्म्म करता है, उसही शरीरके जरिये उसका फल भोगता है। जीवनका कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके सहित उत्पन्न होते हैं, दोनों संसार यात्राके समय विविध रूपसे वर्त्तमान रहतीं और दोनोंही एकही समय नष्ट होती है। मनुष्यलोग अनेक तरहके स्नेहपाशके जरिये विषयमें फंसके जलमें स्थित बालूके पुलके समान अकृतार्थ रूपसे अवसन्न होते हैं। तिलको पेरनेवाले तेली लोग जैसे प्रीति पूर्व्वक तिलोंको चक्रमें पेरते है, वैसेही सब कोई अज्ञानसे उत्पन्न हुए क्लेश कदम्बसे आक्रान्त होकर सृष्टि चक्रमें पेरे जारहे हैं। मनुष्य, भार्य्या आदि परिवार समूहके भरण पोषणके वास्ते चोरी आदि अशुभ कर्म्म किया करता है, परन्तु इस लोक और परलोकमें अकेलाही उस दुष्कर्म्म जनित क्लेशको भोग करता है। मनुष्यमात्रही पुत्र, कलत्र आदि कुटुम्बोंमें आसक्त होकर कीचड़में फंसे हुए जीर्ण जङ्गली हाथीके समान शोक समूहमें डूबते रहते हैं। पुत्र नाश, वित्तनाश और स्वजन सम्बन्धियोंके विनाश होनेपर मनुष्योंको दावानलके समान महत् दुःख प्राप्त होता है। सुख दुःखकी उत्पत्ति और क्षय आदि सब दैवके वशमें है; प्रत्युपकारकी इच्छा न करके जो लोग उपकार करते हैं, वे मित्रपदके वाच्य होते है, मनुष्य वैसे सुहृदोंसे युक्त होवें, अथवा असुहृतही हों, शत्रुयुक्त हो अथवा मित्रवानही होवें, बुद्धिमान् हों, अथवा बुद्धिहीनही होवें, दैव वशसे ही सुख लाभ किया करते हैं। मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रु भी दुःख नहीं दे सकते, बुद्धि रहनेसेही धन नहीं होता, धन होनेपर भी सुख नहीं

होसकता, बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है मूर्खता भी असमृद्धिका कारण नहीं होती; इससे प्राज्ञपुरुष ही लोक-निर्म्माण वृत्तान्तको जानते हैं; दूसरे नहीं। क्या बुद्धिमान्, क्या दुर्ब्बुद्धि, क्या कादर, क्या साहसी, क्या मूर्ख, क्या दीर्घदर्शी, क्या निर्ब्बल और क्या बलवान, जो पुरुष भाग्यवान होता है, वही सुख भोग किया करता है। पुत्र गोप्रतिपालक और तस्कर, इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, निश्चय है, कि गऊ उस होकी है! जनसमाजमें जो सब मूढ़ मनुष्य हैं, और जिन्होंने बुद्धि तलसे अतीत परब्रह्मको जाना है, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते हैं, इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले लोग तत्त्वज्ञ पुरुषोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यप्रकारके मनुष्योंमें रत नहीं होते, वे लोग आत्मतत्व ज्ञान लाभकोही सुख और एकबारगी मूढ़ता और अत्यन्त बुद्धिमत्ताकी मध्यमवर्त्तिताको दुःख कहा करते हैं। जिन्होंने सुख दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धि सुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते और जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए परन्तु मूढ़ताको परित्याग किया है, वह अत्यन्त आनन्दित और दुःखित होते हैं। सुरपुरके देवताओंकी तरह मूढ़लोग महागर्व्व और ऐश्वर्य्यसे अचेत होकर सदा आनन्दित हुआ करते हैं। दुःखके बीतने पर सुख, होता है आलस्यही दुःखकी और दक्षता ही सुखका कारण होती है, सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित इसी तरह आलस्यहीन पुरुषका अवलम्बन करती हैं; आलसीके निकट कभी नहीं जाती। सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय [illegible] समय जो उपस्थित होवे, सावधान [illegible] उसकी उपासना करे। इस [illegible] [illegible] सहस्रों शोकके [illegible] और [illegible] इच्छा आदि [illegible] मूढ़के [illegible]

दिन मूढ़ मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं, पण्डितोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते। बुद्धिमान् स्वाभाविक बुद्धि शक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्याससे रत, असूया रहित, दन्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता। बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके विचारते हैं, जो प्राणियोंके उदय और लयके विषयको जानते हैं, शोक उन्हें स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता; शोक, ताप, दुःख वा भय जिसके कारण हुआ करता है, कमसे कम उसका एक अंग परित्याग करना उचित है। जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है वही दुःखका कारण हुआ करता है। विषयोंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है, वही सुखका कारण हो जाता है; कामानुयायी मनुष्य कामके सहितही नष्ट होता है। लोकमें विषय सुख और दिव्य महत् सुख कहके जो विख्यात् हैं, वे वासना क्षयजनित सुखके सोलहवें अंशके समान नहीं हैं। पूर्व्वदेहके किये हुए शुभ वा अशुभकर्म्म जिस प्रकारसे किये गये हैं, वैसेही वे बुद्धिमान् मूढ़ और शूर पुरुषोंको अवलम्बन करते हैं। इसी तरह प्रिय और अप्रिय सुख तथा दुःख प्राणियोंमें घूमा करता है। गुणवान मनुष्य ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके सुखमें निवास करते हैं, इसलिये समस्त कामोंकी निन्दा करते हुए क्रोधको पीछे करते हैं। पण्डितलोग कहते हैं, यह क्रोध देहधारियोंके शरीरमें कामरूपसे स्थित मृत्यु-स्वरूपसे हृदयके बीच दृढ़भावसे उत्पन्न होता है। कछुवेके निज अङ्ग समेटनेकी तरह यह [illegible] सब तरहके कामोंका संहार करता है, तब आत्मज्योति दीख पड़ती है, [illegible] वस्तु हमारी कहके मानी जाती है, [illegible] तक वे सब दुःखके कारण हुआ करते हैं। यह आत्मा [illegible] किसीसे डरते नहीं और [illegible] नहीं करते, [illegible]

करते हो। जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते हैं, वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे। तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं; सबकोही जहांसे आये हैं, वहांही फिर जाना पड़ेगा।

स्येनजित् बोले, हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते हैं। ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके भी आप शोकित नहीं होते हैं।

ब्राह्मण बोला, देव, तिर्य्यग्, मनुष्य आदि उत्तम और मध्यम समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्म्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे हैं, "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्म ही मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वीही मेरी है, यह जैसी मेरी है दूसरे कीभी वैसीही है, ऐसाही बिचारनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता, मैं इस ही बुद्धिसे हर्षित वा दुःखित नहीं होता। जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर जिस प्रकार पृथक् होते हैं, जीवोंका समागम भी वैसा ही है। पुत्र, पौत्र, स्वजन, बान्धव सबही इसी प्रकार हैं, इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है, क्यों कि इनका अवश्यही विच्छेद होता है। जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है, वह तुम्हें नहीं जानता, तुम भी उसे नहीं जानते; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो? विषय वासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःख नाश होनेके लिये सुख उत्पन्न हुआ करता है, सुखसे भी दुःख प्रकट होता है; इससे दुःखही बार बार उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख उत्पन्न हुआ करता है, इसलिये मनुष्योंके सुख दुःख चक्रकी तरह घूम रहे हैं। तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। मनुष्य कभी सदा सुख दुःख भोग नहीं करता, अकेला शरीरही सुख दुःखका स्थान है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका शरीरही सुख और दुःखका आश्रय है, और जिस शरीरसे जो कर्म्म करता है, उसही शरीरके जरिये उसका फल भोगता है। जीवनका कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके सहित उत्पन्न होती हैं, दोनों संसार यात्राके समय विविध रूपसे बर्त्तमान रहतीं और दोनोंही एकही समय नष्ट होती हैं। मनुष्यलोग अनेक तरहके स्नेहपाशके जरिये विषयमें फंसके जलमें स्थित बालूके पुलके समान अकृतार्थ रूपसे अवसन्न होते हैं। तिलको पेरनेवाले तेली लोग जैसे प्रीति पूर्व्वक तिलोंको चक्रमें पेरते हैं, वैसेही सब कोई अज्ञानसे उत्पन्न हुए क्लेश कदम्बसे आक्रान्त होकर सृष्टि चक्रमें पेरे जाते हैं। मनुष्य, भार्य्या आदि परिवार समूहके भरण पोषणके वास्ते चोरी आदि अशुभ कर्म किया करता है, परन्तु इस लोक और पर लोकमें अकेलाही उस दुष्कर्म्म जनित क्लेशको भोग करता है। मनुष्यमात्रही पुत्र, कलत्र आदि कुटुम्बोंमें आसक्त होकर कीचड़में फंसे हुए जीर्ण जङ्गली हाथीके समान शोक समुद्रमें डूबते रहते हैं। पुत्र नाश, वित्तनाश और स्वजन सम्बन्धियोंके विनाश होनेपर मनुष्योंको दावानलके समान महत् दुःख प्राप्त होता है। सुख दुःखकी उत्पत्ति और क्षय आदि सब दैवके वशमें है; प्रत्युपकारकी इच्छा न करके जो लोग उपकार करते हैं, वे मित्रपदके वाच्य होते हैं, मनुष्य वैसे सुहृदोंसे युक्त होवें, अथवा असुहृतही हों, शत्रुयुक्त हों अथवा मित्रवानही होवें, बुद्धिमान् हों, अथवा बुद्धिहीनही होवें, दैव वशसे ही सुख लाभ किया करते हैं। मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रु भी दुःख नहीं दे सकते; बुद्धि रहनेसे धन नहीं होता, धन होनेपर भी सुख नहीं

होसकता ; बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है मूर्खता भी असमृद्धिका कारण नहीं होती, इससे प्राज्ञपुरुष ही लोक-निर्म्माण वृत्तान्तको जानते हैं ; दूसरे नहीं । क्या बुद्धिमान्, क्या दुर्ब्बुद्धि, क्या कादर, क्या साहसी, क्या मूर्ख, क्या दीर्घदर्शी, क्या निर्ब्बल और क्या बलवान, जो पुरुष भाग्यवान होता है, वही सुख भोग किया करता है । पुत्र गोप्रतिपालक और तस्कर, इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, निश्चय है, कि गऊ उस ही की है ! जनसमाजमें जो सब मूढ़ मनुष्य हैं, और जिन्होंने बुद्धि तलसे अतीत परब्रह्मको जाना है, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते हैं, इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले लोग तत्त्वज्ञ पुरुषोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यप्रकारके मनुष्योंमें रत नहीं होते, वे लोग आत्मतत्व ज्ञान लाभकोही सुख और एकबारगी मूढ़ता और अत्यन्त बुद्धिमत्ताकी मध्यमवर्त्तिताको दुःख कहा करते हैं । जिन्होंने सुख दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धि सुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते और जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए परन्तु मूढ़ताको परित्याग किया है, वह अत्यन्त आनन्दित और दुःखित होते हैं । सुरपुरके देवताओंकी तरह मूढ़लोग महागर्व्व और ऐश्वर्य्यसे अचेत होकर सदा आनन्दित हुआ करते हैं । दुःखके बीतने पर सुख, होता है आलस्यही दुःखकी और दक्षता ही सुखका कारण होती है, सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित इसी तरह आलसहीन पुरुषको अवलम्बन करती हैं, आलसीके निकट कभी नहीं जातीं । सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय जिस समय जो उपस्थित होवे, सावधान चित्तसे उसकी उपासना करे । पुत्र कलत्रके वियोग निबन्धनसे सहस्रों शोकके विषय और असद् घटना आदि सैकड़ों भयके विषय प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं, पण्डि-

तोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते । बुद्धिमान्, स्वाभाविक बुद्धि शक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्यासमें रत, असूया रहित, दान्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता । बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके विचारते हैं, जो प्राणियोंके उदय औ
लयके विषयको जानते हैं, शोक उन्हें स्पर्
करनेमें समर्थ नहीं होता ; शोक, ताप, दुःख
वा भय जिसके कारण हुआ करता है, क्रमसे क्रम उसका एक अंग परित्याग करना उचित है । जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है
वही दुःखका कारण हुआ करता है । विष-
योंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है
वही सुखका कारण हो जाता है ; कामानुया
मनुष्य कामके सहितही नष्ट होता है । लोक
विषय सुख और दिव्य महत् सुख कहके ज
विख्यात् हैं, वे वासना क्षयजनित सुखके सोल-
हवें अंशके समान नहीं हैं । पूर्व्वदेहके कि
हुए शुभ वा अशुभकर्म्म जिस प्रकारसे कि
गये हैं, वैसेही वे बुद्धिमान् मूढ़ और शू
पुरुषोंको अवलम्बन करते हैं । इसी तर
प्रिय और अप्रिय सुख तथा दुःख प्राणियों
घूमा करता है । गुणवान मनुष्य ऐसेही बु
अवलम्बन करके सुखमें निवास करते हैं ; इस
लिये समस्त कामोंको निन्दा करते हुए क्रोधक
पीछे करते हैं । पण्डितलोग कहते हैं, यह क्रो
देहधारियोंके शरीरमें कामरूपसे स्थित मृत्यु
स्वरूपसे हृदयके बीच दृढ़भावसे उत्पन्न होत
है । कछुवेके निज अङ्ग समेटनेकी तरह यह आ
जब सब तरहके कामोंको संहार करता है, त
आपही आत्मज्योति दीख पड़ती है, जबतक ज
वस्तु हमारी कहके मानी जाती हैं, उस सम
तक वे सब दुःखके कारण हुआ करती हैं
यह आत्मा जब किसीसे डरती नहीं और इस
कोई भय नहीं करते, यह जब इच्छा औ

करते हो। जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते हैं, वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे। तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं; सबकोही जहांसे आये हैं, वहांही फिर जाना पड़ेगा।

स्येनजित् बोले, हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते हैं। ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके भी आप शोकित नहीं होते हैं।

ब्राह्मण बोला, देव, तिर्य्यग् मनुष्य आदि उत्तम और मध्यम समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्म्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे हैं, "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्म ही मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वीही मेरी है, यह जैसी मेरी है दूसरे कीभी वैसीही है, ऐसाही विचारनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता; मैं इस ही बुद्धिसे हर्षित वा दुःखित नहीं होता। जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर जिस प्रकार पृथक् होते हैं, जीवोंका समागम भी वैसा ही है। पुत्र, पौत्र, स्वजन, बान्धव सबही इसी प्रकार हैं, इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है; क्यों कि इनका अवश्यही विच्छेद होता है। जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है, वह तुम्हें नहीं जानता, तुम भी उसे नहीं जानते; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो? विषय बासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःख नाश होनेके लिये सुख उत्पन्न हुआ करता है, सुखसे भी दुःख प्रकट होता है, इससे दुःखही बार बार उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख उत्पन्न हुआ करता है, इसलिये मनुष्योंके सुख दुःख चक्रकी तरह रहे हैं। तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। मनुष्य कभी सदा सुख दुःख भोग नहीं करता, अकेला शरीरही सुख दुःखका स्थान है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका शरीरही सुख और दुःखका आश्रय है; जीव जिस शरीरसे जो कर्म्म करता है, उसही शरीरके जरिये उसका फल भोगता है। जीवनका कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके सहित उत्पन्न होते हैं, दोनों संसार यात्राके समय विविध रूपसे वर्त्तमान रहतीं और दोनोंही एकही समय नष्ट होती है। मनुष्यलोग अनेक तरहके स्नेहपाशके जरिये विषयमें फंसके जलमें स्थित बालूके पुलके समान अकृतार्थ रूपसे अवसन्न होते हैं। तिलको पेरनेवाले तेली लोग जैसे प्रीति पूर्व्वक तिलोंको चक्रमें पेरते हैं, वैसेही सब कोई अज्ञानसे उत्पन्न हुए हेश कदम्बसे आक्रान्त होकर सृष्टि चक्रमें पेरे जारहे हैं। मनुष्य, भार्य्या आदि परिवार समूहके भरण पोषणके वास्ते चोरी आदि अशुभ कर्म्म किया करता है; परन्तु इस लोक और परलोकमें अकेलाही उस दुष्कर्म्म जनित क्लेशको भोग करता है। मनुष्यमात्रही पुत्र, कलत्र आदि कुटुम्बोंमें आसक्त होकर कीचड़में फंसे हुए जीर्ण जङ्गली हाथीके समान शोक समुद्रमें डूबते रहते हैं। पुत्र नाश, वित्तनाश और स्वजन सम्बन्धियोंके विनाश होनेपर मनुष्योंको दावानलके समान महत् दुःख प्राप्त होता है। सुख दुःखकी उत्पत्ति और क्षय आदि सब दैवके वशमें है; प्रत्युपकारकी इच्छा न करके जो लोग उपकार करते हैं, वे मित्रपदके वाच्य होते हैं, मनुष्य वैसे सुहृदोंसे युक्त होवें, अथवा असुहृतही हों, शत्रुयुक्त हों अथवा मित्रवानही होवें, बुद्धिमान् हों, अथवा बुद्धिहीनही होवें, दैव वशसे ही सुख लाभ किया करते हैं। मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रु भी दुःख नहीं दे सकते; बुद्धि रहनेसे धन नहीं होता, धन होनेपर भी सुख नहीं

सकता, बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है मूर्खता भी असमृद्धिका कारण नहीं होती, इससे प्राज्ञपुरुष ही लोक-निर्म्माण वृत्तान्तको जानते हैं; दूसरे नहीं। क्या बुद्धिमान्, क्या दुर्बुद्धि, क्या कादर, क्या साहसी, क्या मूर्ख, क्या दीर्घदर्शी, क्या निर्ब्बल और क्या बलवान, जो पुरुष भाग्यवान होता है, वही सुख भोग किया करता है। पुत्र गोप्रतिपालक और तस्कर, इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, निश्चय है, कि गऊ उस हीकी है! जनसमाजमें जो सब मूढ़ मनुष्य हैं, और जिन्होंने बुद्धि तलसे अतीत परब्रह्मको जाना है, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते है, इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले लोग तत्त्वज्ञ पुरुषोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यप्रकारके मनुष्योंमें रत नहीं होते, वे लोग आत्मतत्व ज्ञान लाभकोही सुख और एकबारगी मूढ़ता और अत्यन्त बुद्धिमत्ताकी मध्यमवर्त्तिताको दुःख कहा करते हैं। जिन्होंने सुख दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धि सुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते और जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए परन्तु मूढ़ताको परित्याग किया है, वह अत्यन्त आनन्दित और दुःखित होते हैं। सुरपुरके देवताओंकी तरह मूढ़लोग महागर्व्व और ऐश्वर्य्यसे अचेत होकर सदा आनन्दित हुआ करते हैं। दुःखके बीतने पर सुख, होता है आलस्यही दुःखकी और दक्षता ही सुखका कारण होती है; सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित इसी तरह आलसहीन पुरुषको अवलम्बन करती हैं, आलसीके निकट कभी नहीं जातीं। सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय जिस समय जो उपस्थित होवे, सावधान चित्तसे उसकी उपासना करे। पुत्र कलत्रके वियोग निबन्धनसे सहस्रों शोकके विषय और अपवाद घटना आदि सैकड़ों भयके विषय प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं, पण्डितोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते। बुद्धिमान्, स्वाभाविक बुद्धि शक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्याससें रत, असूया रहित, दन्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता। बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके विचारते हैं, जो प्राणियोंके उदय और लयके विषयको जानते हैं, शोक उन्हें स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता; शोक, ताप, दुःख वा भय जिसके कारण हुआ करता है, कमसे कम उसका एक अंग परित्याग करना उचित है। जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है वही दुःखका कारण हुआ करता है। विषयोंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है, वही सुखका कारण हो जाता है; कामानुयाई मनुष्य कामके सहितही नष्ट होता है। लोकमें विषय सुख और दिव्य महत् सुख कहके जो विख्यात् हैं, वे वासना क्षयजनित सुखके सोलहवें अंशके समान नहीं हैं। पूर्व्वदेहके किये हुए शुभ वा अशुभकर्म्म जिस प्रकारसे किये गये हैं, वैसेही वे बुद्धिमान् मूढ़ और शूर पुरुषोंको अवलम्बन करते हैं। इसी तरह प्रिय और अप्रिय सुख तथा दुःख प्राणियोंमें घूमा करता है। गुणवान मनुष्य ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके सुखमें निवास करते हैं, इसलिये समस्त कामोंकी निन्दा करते हुए क्रोधको पीछे करते हैं। पण्डितलोग कहते हैं, यह क्रोध देहधारियोंके शरीरमें कामरूपसे स्थित मृत्युस्वरूपसे हृदयके बीच दृढ़भावसे उत्पन्न होता है। कछुवेके निज अङ्ग समेटनेकी तरह यह आत्मा जब सब तरहके कामोंको संहार करता है, तब आपही आत्मज्योति दीख पड़ती है, अबतक जो वस्तु हमारी कहके मानी जाती हैं, उस समय तक वे सब दुःखके कारण हुआ करती हैं। यह आत्मा जब किसीसे डरती नहीं और इससे कोई भय नहीं करते, यह जब इच्छा और

इषसे रहित होता है, तब ब्रह्मस्वरूप लाभ करता है। सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, भय, अभय, प्रिय और अप्रिय परित्याग करनेसे ही चित्त शान्त होगा। जब कर्म्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके विषयमें कुछ असत् अभिप्राय वा पाप नहीं किया जाता, तभी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति हुआ करती है। नीच बुद्धि मनुष्य जिसे किसी तरह परित्याग नहीं कर सकते, मनुष्योंके जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणान्तक रोगरूपसे वर्णित हुई है, उस तृष्णाको जो मनुष्य परित्याग कर सकते हैं, वेही सुखी होते हैं।

हे राजन्! इस विषयमें पिङ्गलाकी कही हुई सब गाथा सुनीजाती है; दुःखके समय उसने जिस प्रकार सनातनधर्म्म लाभ किया था उसे सुनो। पिङ्गला नामी कोई वारवनिता अभिसार स्थानमें निज प्राणकान्तके वियोगसे कातरसे होके बोली थी, मैंने उन्मत्त होके निर्व्विकार कान्तके सहित बहुत समयतक वास किया, परन्तु कालके मेरी अन्तिमें स्थिति करनेपर भी पहिले मैं कभी कान्तके निकट न गई एकमात्र अविद्याने जिसे धारण कर रखा है, उस नेत्र, कान आदि नवद्वारोंसे युक्त गृहको मैंने विद्याबलसे छिपा रखा है। जो हो, कान्त अन्तिके आगमन करनेपर भी कौन स्त्री उसे "वे कान्त हैं"—ऐसा समझती है; मैंने इस समय कामनाको त्याग दिया, नरकरूपी धूर्त्त लोग कामुक रूपसे फिर मुझे वहीं ठग सकेंगे, अब मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ, मैं सदा जागतीथी, पहिलेका किया हुआ सुकृत दैववशसे अनिष्ट वा दुष्टरूपसे परिणत होता है, इस समय मुझे इन्द्रिय-विजय और बोधका उदय हुआ; वासना भी दूर होगई। जिन्हें आशा नहीं है, वेही सुखसे सोते हैं, नैराश्यही परम सुख है, पिङ्गला इस समय आशाको निराश करके सुखही सोती है।

भीष्म बोले, ब्राह्मणके इन सब तथा दूसरे युक्तियुक्त वचनसे राजा स्येनजित् सावधान चित्तसे सुखी होके हर्षित हुए।

१७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इन सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहनेपर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता पुत्र युक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्षधर्म्मकी व्याख्यामें निपुण लोक तत्वको जाननेवाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंकी परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें। आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये, जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्रकामना करे। अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए बनमें गमन करके ध्याननिष्ठ होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्विकार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं!

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरणके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है। जब यह जानता हूं, कि यद्यपि मृत्यु इस स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञानावरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयु क्षीण होती है तब बुद्धिमान पुरुषको उचित है, कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियोंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथनेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याण साधक कर्म्म है, उसे आजही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे, कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते हो मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कलह करना होगा, उसे आजही करना योग्य है, अपराह्नके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वाह्नमेंही करना चाहिये, मनुष्योंके कर्त्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती।

मनुष्य युवा अवस्थामेंही धर्म्मशील होवे, क्यों कि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्युकाल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इस लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है। मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे शेर सोये हुए हरिनको पकड़के चलदेता है, वैसेही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त सन्सारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंको अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी बञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे शार्द्दूल हरिणको पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके बासना सुखमें आसक्त पुरुषोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरुषने गोत्र आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्व्वल, क्या बलवान् क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होतेही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, जब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मतेही जरा मृत्यु उसके नाशके लिये उसका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त हो रही है। गांवमें वास करनेके लिये लोगोंको जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका मुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात् है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त वासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवालोंको अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है, सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, वचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते

तथा अर्थमें बाधा करनेवाले हिंसक जीव तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधिरूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है, तब कोई कभी उसे निवारण नहीं कर सकता।

जो मिथ्या सम्पर्कसे रहित है, वही सत्य है, उस सत्यमें ही अमरणरूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म-प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके एक साधन सत्य योगमें रत, वेद वाक्यमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरिएही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु ये दोनों शरीरमें स्थित हैं, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं, इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म-यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त, मननशील, प्रणवजपरूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्म्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान पुरुष पिशाचके निष्फलचैत्र यज्ञकी तरह हिंसा साध्य पशु वधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके वचन मन, तपस्या त्याग और योग ये पाचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं, विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्मासे आत्माके जरिये आत्मजरूपसे उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा, दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्तिहीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्! आपको जब अवश्यही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, वस्तु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान् होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं, उसे विचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज। पिताने पुत्रका वचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्यधर्म्ममें तत्पर होके वैसाही अनुष्ठान करो।

१७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धनवान् अथवा निर्धन मनुष्य जो कि पृथक् पृथक् धर्म्मशास्त्रको अवलम्बन करके निवास करते है, उन लोगोंका सुख वा दुःख लाभ कैसा है। और किस तरह हुआ करता है?

भीष्म बोले, प्राचीन पण्डित लोग इस विषयमें शान्ति सुखसे युक्त मुक्तिपथ अवलम्बी शम्पाकके कहे हुए इस पुराने इतिहासको कहते है। कुभार्य्या, कुवस्त्र और भूखसे क्लेशित होकर सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करनेवाले शम्पाक नाम किसी ब्राह्मणने पहिले मुझसे यह कथा कही थी। मनुष्यके इस लोकमें उत्पन्न होते ही अनेक तरहके सुख और दुःख उसे अवलम्बन करते हैं; परन्तु उस सुख वा दुःखके प्राप्त होनेपर जब वह दैवविहित कहके मालूम होता है, तब मनुष्य सुख लाभसे हर्षित और दुःखसे असन्तुष्ट नहीं होता; तुम कामहीन कहके सदा भार धारण करते हुए अपने कल्याणका आचरण नहीं करते हो; क्या तुम चित्त संयम करनेमें समर्थ नहीं हो। जिसके धन, स्त्री आदि कुछ भी नहीं है, उसे अकिञ्चन कहते हैं, तुम वही

अकिञ्चन होके गृह आदि त्यागके भ्रमण करते हुए सुख अनुभव करोगे। दरिद्र पुरुषही सुखसे सोता और उठता है; दरिद्रताही लोकमें कल्याणकारी मार्ग और अनामय सुख सरूप है। यह शत्रु रहित मार्ग कामियोंको दुर्लभ और निष्काम पुरुषोंके अनायासही प्राप्त होता है; मैं तीनों लोकोंको देखकर इस समय वैराग्य युक्त शुद्ध स्वभाववाले अकिञ्चनके समान लोग नहीं देखता हूं। मैंने अकिञ्चनता और राज्य दोनोंको तुलादण्डपर तौला था; परन्तु राज्यसे समधिक गुणशालिनी अकिञ्चनताही अधिक हुई थी। अकिञ्चनता और राज्य इन दोनोंके बीच महान् विशेषता यही है, कि समृद्धियुक्त मनुष्य काल-कवलितकी तरह सदा व्याकुल रहता है, और जो लोग धन रत्नोंको परित्याग करनेसे विमुक्त तथा आशा रहित हुए हैं; अग्नि, चोर आदि उपद्रव, मृत्यु तथा डाकूलोग उनका कुछ भी नहीं कर सकते। सुरपुर-वासी देवता लोग उस कामचारी, शय्यारहित, बाहुपर शिर रखके पृथ्वीमें शयन करनेवाले तथा शान्ति मार्गको अवलम्बन करनेवालोंको सदा प्रशंसा किया करते हैं। धनवान् क्रोध और लोभसे युक्त होकर, चेत-रहित वक्र-दृष्टि, रूखा मुख, कुटिल भौं, पापकर्म्म और क्रोधयुक्त होकर निठुर वचन प्रयोग करता है; वह यदि पृथ्वीमण्डलको भी दान करनेकी इच्छा करे, तौभी कौन पुरुष उसे देखनेकी इच्छा करेगा। लक्ष्मीके साथ सदा सहवास होना मूर्खोंको मोहित करता हैं। जैसे वायु शरत् कालके बादलोंको उड़ा देती है, वैसेही सम्पत्ति धनवान् पुरुषोंके चित्तको हरण किया करती है; और रूप तथा धनका अभिमान उसे अवलम्बन करता है; "मैं सद्वंशमें उत्पन्न हुआ, सिद्ध तथा मैं सामान्य मनुष्य नहीं हूं"—इन तीनों कारणोंसे उसका चित्त प्रमत्त होता है। वह संसारमें आसक्त होके पिताकी इकट्ठी की हुई सब सम्पत्ति व्यय करके निर्धन होनेपर दूसरेका धन हरनेमें पाप नहीं समझता। जैसे व्याधा बाणोंसे हरिणोंको बिद्ध करता है, वैसेही राजालोग उन मर्य्यादा रहित परधन हरनेवाले मनुष्योंके विषयमें दण्डविधान किया करते हैं। इसी प्रकार इसी भांतिके अनेक दुःख और दाहच्छेद आदि सब क्लेश इस लोकमें मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं; इस विनश्वर देह आदिके सहित अपत्य और धन रत्नरूपी लोक धर्म्मको अवज्ञा करके बुद्धिबलसे उन अवश्य होनेवाले क्लेशोंका प्रतिकार करे। बिना त्यागके सुख नहीं मिलता; त्यागके बिना परम पदार्थ प्राप्त नहीं होता; बिनात्यागके निर्भय होके शयन नहीं किया जाता; इसलिये सब विषयोंको परित्याग करके सुखी हूजिये। पहिले हस्तिनापुरमें शम्पाक नाम ब्राह्मणने मेरे समीप इसी तरह ऊपर कहे हुए विषयको वर्णित किया था, इसलिये त्याग ही सबसे उत्तम है; यह सर्व्व-सम्मत है।

१७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कृषि, वाणिज्य, यज्ञ और दान आदि कर्म्मकी अभिलाष करते हुए मनुष्य अर्थलाभमें असमर्थ होकर धनकी तृष्णासे युक्त होनेपर कौन कार्य्य करके सुखभोग कर सकते हैं।

भीष्म बोले, हे भारत! जिसे लाभ, हानि, मान, अपमान, विषयोंमें समज्ञान, धन आदिके निमित्त प्रयासाभाव, सत्य वाक्य, वैराग्य और कर्म्म करनेमें इच्छा नहीं है, वेही मनुष्य सुखी कहके वर्णित होते हैं। प्राचीन लोग इन पांचो विषयोंको मोक्षका कारण कहा करते हैं; वेही स्वर्ग, धर्म और अत्यन्त उत्तम सुख स्वरूप से मान गये हैं। हे धर्म्मराज, इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासको वर्णन।

करते हैं। मङ्कि नाम किसी पुरुषने जो कहा था उसे सुनो। मङ्किके धनकी इच्छा करनेपर बारम्बार उसकी कोशिश नष्ट हुई, तब जो कुछ धन बाकी था, उसके ही जरिये उसने जुआ काष्टके सहित दमनके योग्य दो बैल खरीदा। जुआके दोनों ओर जुते हुए वे दमनीय दोनों बैल दमनके लिये निकले और दौड़के मार्गमें बैठे हुए एक ऊंटके ऊपर सहसा जा गिरे। जब जुएमें जुते हुए दोनों बैल सहसा ऊंटके कन्धे पर गिरे, तब महावेगशाली ऊंट क्रोधयुक्त होकर उठा और उन दोनोंको उठाकर चलने लगा। बल-वान ऊंटके जरिये दोनों बैलोंका हरण तथा मरण देखके मङ्किने उस समय यह बचन कहा, दैवके धन दान न करनेपर निपुण पुरुष भी यदि अत्यन्त श्रद्धा तथा पूर्ण रीतिसे चेष्टा करे, तौभी उसे प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, मैंने पहिले अनेक उपायके जरिये सावधान, चित्तसे धन उपार्ज्जनका अनुष्ठान किया; परन्तु किसीसे भी कृतकार्य्य न होके शेषमें दो बैल खरीदा; उसमें भी यह दैव बिडम्बना दीख पड़ी। उत्पथमें दौड़नेवाला ऊंट काकतीयकी तरह मेरे दोनों प्रियबैलोंको उठाकर बार बार उछालते हुए गमन कर रहा है, जुएमें फंसे हुए दोनों बैल मानो दो मणिकी तरह लटक रहे हैं; इसलिये यह केवल दैव-बिहित है; इस विषयमें पराक्रम प्रकाश करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। पुरुषके यत्न करनेपर किसी विषयमें यदि कोई कार्य्य सिद्ध होवे, तो विशेष अनुसन्धान करके देखनेसे वह भी दैवविहित कहके प्रतिपन्न होता है, इसलिये इस संसारमें जो लोग सुखकी इच्छा करें, उन्हें वैराग्य अव-लम्बन करनाही अवश्य उचित है। वैराग्यवान् पुरुष धन प्राप्तिसे निराश होके सुखसे सोता है। सब तरहकी आसक्तिसे रहित शुकदेवने जब जनकके यहांसे महावनके बीच प्रस्थान किया। उस समय कई एक उत्तम बचन कहा था, कि सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्ति और समस्त कामनाका परित्याग, इन दोनोंके बीच सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्तिसे उसका परित्याग ही उत्तम कल्प है। कोई पुरुष भी धनोपार्ज्जन प्रवृत्तिके पारगामी नहीं हुआ; मूढ़ मनुष्यकी ही शरीर और जीवनमें तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। हे कामुक मन। इसलिये धनोपा-र्ज्जन प्रवृत्तिसे निवृत्ति रहे, वैराग्य अवलम्बन करके शान्तिलाभ करे; तू बार बार बञ्चित होता है; तौभी वैराग्यका आशरा नहीं करता है।

हे वित्त-कामुक मन। यदि मैं तेरे सम्बन्धमें बिनाश्य कहके न समझा जाऊं और तू यदि मेरे सङ्ग इसी तरह बिहार करे; तो अनर्थके मुझे लोभमें आसक्त मत कर। तूने बार बार जिन द्रव्योंको सञ्चय किया था, वे सब नष्ट हुए हैं। रे मूढ़ चित्त। तू कब धनकी अभिलाषको परित्याग करेगा; हाय। मेरी कैसी मूर्खता है। मैं अबतक भी तेरा बिलास-भाजन हुआ हूं; परन्तु इसी तरह पुरुष किसी किसी समय दूसरेके अधीनता पाशमें बद्ध होता है। भूत वा भविष्य मनुष्योंके बीच कोई कभी कामनाकी पराकाष्ठाको प्राप्त नहीं हुआ; होगा भी नहीं। मैं इस समय सब कर्म्मोंको त्यागकर मोहनिद्राको विसर्ज्जन करके जाग्रत हुआ हूं। हे वासना। बोध होता है, तुम्हारा हृदय वज्रसारमय अत्यन्त दृढ़ है; क्यों कि सैकड़ों अनर्थोंसे अनिष्ट होने पर भी सौ टुकड़े होकर फट नहीं जाता। हे वासना! मैं तुम्हें तथा तुम्हारी जो कुछ प्रिय वस्तु हैं, उन्हें भी जानता हूं, मैं तुम्हारी प्रिय कामना करते हुए आत्माको सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं हूं। संकल्पसे तेरा जन्म हुआ है; इसलिये सङ्कल्पही तुम्हारा मूल है; वह भी मुझसे छिपा नहीं है, मैं सङ्कल्पको परित्याग करूंगा, इससे तूं जड़के सहित नष्ट होगी। धनकी लालसासे सुखलाभ नहीं होता; धन प्राप्त होने पर भी बहुतसी

चिन्ता हुआ करती है, प्राप्त धनके नष्ट होनेसे मृत्युके समान दुःख होता है; धन लाभ भी संशयसे युक्त है; दूसरेके समीप प्रार्थना करने पर भी यदि धन न मिले, तो उससे बढ़के दुःख और कुछ भी नहीं है; प्राप्त हुए धनसे भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता; बल्कि फिर भी उसकी इच्छा किया करता है। स्वादिष्ट गङ्गा-जलकी तरह धन तृष्णाको अत्यन्त ही वृद्धि करता है, और यही मुझे नष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है; जो हो, इस समय मैं मोह-निद्रासे रहित हुआ हूं,—इसलिये। हे वासना! अब तू मुझे परित्याग कर, अथवा तूने जब मेरे पञ्च भौतिक शरीरका आश्रय किया है, तब मेरे सहित इच्छानुसार यथा सुखसे निवासकर।

हे वासना! तू लोभकी अनुगामी हुआ करती है, इसी लिये तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति नहीं है, इससे सब कामना परित्याग करके मैं सतोगुण अवलम्बन करूंगा। मै शरीरमें सब प्राणियों और मनमें आत्माको देखते हुए योग विशेषमें चित्त लगाकर तथा श्रवण विषयमें सतोगुण अवलम्बन करके परब्रह्ममें मन स्थिर कर निरामय आसक्तिहीन और सुखी होकर लोकके बीच इस प्रकार भ्रमण करूंगा, कि अब तू मुझे फिर दुःखसमूहमें न डुबा सकेगी। हे वासना! तू यदि मुझे परिचालित करे, तो मुझे दूसरा उपाय नहीं है, तृष्णा, शोक और श्रम आदि, तुझसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं। मुझे बोध होता है; धन नष्ट होनेपर सबसे अधिक दुःख उत्पन्न होता है, धनहीन मनुष्यकी स्वजन और बन्धु लोग अवज्ञा किया करते हैं, सहस्रों अवज्ञा निबन्धनसे युक्त धन विषयमें बहुतेरे कष्टपूरित दोष दीख पड़ते हैं; धन विषयमें जो कुछ सुख है, वह भी दुःखसे मिला हुआ है। डाकू लोग अगाड़ी धनवान पुरुषको ही वध करते, अनेक तरहके दण्डसे दुःख देते और सदा व्याकुल किया करते हैं। अर्थ लोभही दुःख है, इसे मैंने बहुत दिनोंमें समझा है। हे काम! तू जिसे अवलम्बन करता है, उसेही अवरुद्ध कर रखता है; इससे तू बालककी तरह मूर्ख है, किसीसे भी तेरी तुष्टि नहीं होती और अग्निकी भांति किसी प्रकार तुझे परिपूर्ण नहीं किया जा सकता। तू दुर्लभ और सुलभ कुछ भी नहीं जानता; पातालकी भांति दुष्पुर होके मुझे दुःखयुक्त करनेकी अभिलाष करता है। हे काम! अब तू फिर मेरा आश्रय न कर सकेगा, मैं इच्छानुसार वैराग्य अवलम्बन करके परम सुख प्राप्त करके इस समय अब काम्य वस्तुओंकी इच्छा नहीं करता। मैंने इसके पहिले अत्यन्त क्लेश सहा है। "इस समय मैं बुद्धिमान नहीं हूं"—ऐसा नहीं समझता, मैंने धन-हानि निबन्धनसे छुटकारा पाके इस समय सब तरहसे क्लेश रहित होकर सुखसे सोता हूं। हे काम! मै मनकी सब वृत्तियोंको त्यागके तुझे भी परित्याग करता हूं। तू अब फिर मेरे सङ्ग अनुरक्ति तथा निवास मत करना। जो मेरी निन्दा किया करते हैं, मैं उन लोगोंके विषयमें क्षमा करूंगा, दूसरे यदि मेरी हिंसा करें तौभी मैं उनकी हिंसा न करूंगा; मेरे विषयमें विद्वेष प्रकाशित करके यदि कोई अप्रिय वचन कहे; तो मैं उसके उस अप्रिय वचनका अनादर करके उसे प्रिय वचनही कहूंगा। मैं तृप्तियुक्त होके और इन्द्रियोंको जीतकर जो कुछ वस्तु प्राप्त होंगी, उससे ही यौवन बिताते हुए आत्मयत्न तुम्हें फिर सकाम नहीं करूंगा। [illegible] रखे कि वैराग्य सुख तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और [illegible] भूतोंमें दया [illegible] मैं उपस्थित हुआ हूं। सतोगुण [illegible] होकर मुक्ति मार्ग [illegible] करता हूं; इसलिये, काम [illegible] [illegible] मुझे परित्याग कर [illegible] [illegible] सुखी [illegible]

निर्बुद्धियोंकी तरह लोभके वशमें होकर फिर दुःख भोग न करूंगा। कामनाके जो अंशपरित्याग किये जाते हैं। जो सदा कामके वशमें रहते हैं वे लोग केवल दुःख भोग करते हैं कामसे युक्त जो कुछ रजोगुण है, उसे पुरुषमात्रकोही त्यागना उचित है, क्यों कि अलज्ज और अरतिरूप दुःख काम तथा क्रोधसे उत्पन्न हुआ करते हैं, ग्रीष्म ऋतुमें ठण्डे तालाबमें प्रवेश करनेकी भांति इस समय मैं परब्रह्ममें प्रविष्ट हुआ हूं; सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर दुःख रहित हुआ हूं, निर्विकार सुखही सदा मेरे समीप स्थित है, लोकमें जो कुछ कामसुख तथा जो कुछ दिव्य महत् सुख हैं, वे सब तृष्णा क्षयरूपी सुखके सोलहवें, अंशके समान नहीं है। स्थूल शरीरके सङ्ग गिनती करनेसे जो सातवां होता है, सब अनर्थोंका मूल स्वरूप उस परम शत्रु कामका नाश कर अविनश्वर ब्रह्मपुर पाके मैं राजाकी तरह सुखी हुआ हूं। यह प्रसिद्ध है, कि मङ्किने दोनों बैलोंके नष्ट होनेपर ऐसाही बिचारके शोक रहित हो सब कामना त्याग कर महत् सुख स्वरूप परब्रह्मको प्राप्त होके अमरत्व लाभ किया था। उसने कामके मूल माया बन्धनको तोड़ा था, इसीसे महत् सुख लाभ किया।

१७७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! बिदेहराज जनकने सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर जो कुछ कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, उन्होंने कहा था, "हमारे विभवका अन्त नहीं है, तोभी मेरा कुछ भी नहीं है; सारी मिथिला नगरीके भस्म होनेपर भी मेरा कुछ न जलेगा।" हे धर्म्मराज! बोध्य ऋषिने वैराग्य विषयक जिन श्लोकोंको कहा था, प्राचीन लोग उनका भी इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो। राजा नहुषने वैराग्यके कारण शान्तिसुखसे युक्त, शास्त्रज्ञानसे तृप्त, शान्त बोध्य नाम ऋषिसे कहा था, हे महाबुद्धिमान्! आप मेरे ऊपर कृपा करके शान्तिमय उपदेश दान करिये।

बोध्य बोले, मैं उपदेश ग्रहण करके निवास करता हूं, परन्तु किसीको भी उपदेश दान नहीं करता। इस समय उस उपदेशका लक्षण कहता हूं, आप स्वयं उसका बिचार करिये। पिङ्गला, कुरर पक्षी, सांप, वनके बीच सारङ्ग पक्षीका खोज, इषुकार और कुमारी ये छः मेरे उपदेष्टा है।

भीष्म बोले, हे राजन्! आशा अत्यन्त बलवती है, नैराश्यही परम सुख है; पिङ्गला नामी वेश्या आशाको त्यागके सुखकी नींद सोई थी। मांसयुक्त कुरर-पक्षीको देखकर मांस रहित कुरर पक्षियें उसे मारनेमें उद्यत होती है, तब वह मांसको त्यागनेसे सुखी हुआ करती है। गृहारम्भ केवल दुःखका मूल है, कदापि सुखका कारण नहीं होता, सांप दूसरेके बनाये हुए गृहमें प्रवेश करके सहजमें ही सुखसे रहता है। मुनि लोग भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके सारङ्ग पक्षीकी तरह जीवोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करके परम सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं। कोई इषुकार मनुष्य बाण बनानेमें आसक्त चित्त होकर निज समीपमें राजाको गमन करते हुए न जान सका। बहुतसे लोगोंके इकट्ठे रहनेपर सदा कलह हुआ करता है, दोनोंका परामर्श ही निश्चय है; पिताके वशमें रहनेवाली किसी कुमारीने ब्राह्मण भोजन करानेकी इच्छा करके चावलोंको छाटने लगी, उस समय उसके हाथमें स्थित सब शङ्ख (चूड़ी) बजने लगी, तब उसने दोनों हाथोंमें केवल दो शङ्खोंको रखके बाकी सब शङ्खोंको तोड़के शब्दको निवारण किया था।

मैं उस ही कुमारीके शङ्खकी तरह अकेले ही विचरण करूंगा ।

१९८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहारज्ञ ! मनुष्य किस व्यवहारसे शोकरहित होकर पृथ्वीपर विचरते और लोकके बीच कौन कार्य्य करके उत्तम गति प्राप्त करते है ?

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रह्लाद और अजगर वृत्तिको अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करनेवाले किसी मुनिके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते है। बुद्धिमान् राजा प्रह्लादने रागद्वेषसे हीन दृढ़ चित्तसे भ्रमण करनेवाले किसी बुद्धिमान् ब्राह्मणसे प्रश्न किया कि, हे ब्रह्मन् ! आप स्वस्थ, दम्भ रहित दयावान्, जितेन्द्रिय, कर्म्म-हीन, सर्व्वत्र दोषदर्शी, सत्यवादी प्रतिज्ञायुक्त मेधावी और तत्वज्ञ होकर भी बालककी तरह घूम रहे हैं, आप वस्तु लाभकी इच्छा नहीं करते, प्राप्त न होने पर भी असन्तुष्ट नहीं होते ; सदा तृप्तकी भांति किसी विषयकी अवज्ञा नहीं करते। काम क्रोधके प्रबलवेग लोगोंको हरण कर रहे हैं, तौभी आप विरक्तकी तरह धर्म्म, काम और अर्थयुक्त कार्य्योंसें निर्व्विकार चित्तके समान मालूम होरहे हैं। आप धर्म्म और अर्थका अनुष्ठान नहीं करते तथा काममें भी प्रवृत्त नहीं होते। रूप, रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंका अनादर करके कर्त्तृत्व भोक्तृत्व आदि अभिमानसे रहित होकर साक्षीकी तरह भ्रमण कर रहे है। हे ब्रह्मन ! आपका कैसा तत्व दर्शन, किस प्रकार शास्त्रका सुनना और किस प्रकारका धर्म्मानुष्ठान है ; यदि उसे मेरे विषयमें उत्तम समझते हो, तो शीघ्रही वर्णन कीजिये ।

भीष्म बोले, लोकधर्म्मको जाननेवाले उस मेधावी मुनिने पूछनेपर अर्थयुक्त मधुर वचनसे प्रह्लादको उत्तर दिया, हे प्रह्लाद । कारण रहित एकमात्र अद्वितीय परम पुरुषसे जीवोंकी उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि वा नाशके विषयकी आलो-चना करके, मैं इसकी आलोचना करके ही हर्षित तथा दुःखित नहीं होता। स्वभावके कारण वर्त्तमान प्रवृत्तियों और स्वभावमें रत सब लोगोंको भली भांति देखना उचित है, मैं इसे जानकर ब्रह्मलोक प्राप्तिसे भी प्रसन्न नहीं होता, हे प्रह्लाद ! वियोगपरायण प्राणियोंके संयोग और विनाशावसान समस्त सञ्चयोंको अवलोकन करो। मैं किसी विषयमें ही मन नहीं लगाता। जो लोग गुणयुक्त जीवोंको अन्तवन्त अवलोकन करते और उत्पत्ति तथा लयके विषयको जानते हैं ; उनके लिये कोई कार्य्य शेष नहीं है।

हे दानवराज ! यह देखता हूं, कि समु-द्रके बीच क्या बड़े, क्या छोटे शरीर जलचर जीवोंका पर्य्यायक्रमसे नाश हो रहा है, स्थावर जङ्गम आदि सब जीवोंको स्पष्ट भावसे मृत्युके मुखमें पतित होते देखता हूं। आकाशचारी पक्षियोंकी भी यथा समयमें मृत्यु होती है ; आकाशमें घूमनेवाले छोटे और बड़े तारे भी नष्ट होते दीख पड़ते हैं। इसी तरह सब भूतोंको मृत्युके वशमें होते देखकर ब्रह्मनिष्ठ और कृतकृत्य होकर सुखकी नींद सोता हूं। कभी अनायास प्राप्त हुए उत्तम भक्ष्य भोजन किया करता हू, कभी कई दिनोंतक बिना भोजन किये ही सोता हूं, कभी लोग मुझे बहुतसा और कभी थोड़ा अन्न भोजन कराते हैं ; कभी कुछ भी अन्न उपस्थित नही होता। मैं कभी चावलोंके किनकोंको भक्षण करता, कभी पिन्याक फल भोजन किया करता हूं। कभी पक्वान्न आदिके अनेक प्रकारकी भक्ष्य वस्तु-ओंको भक्षण करता हूं मैं कभी पलङ्ग पर सोता, कभी पृथ्वीपर शयन किया करता हूं कभी महलमें मेरी शय्या सज्जित हुआ करती है, कभी, चार वसन, कभी शनसूतके बने हुए वस्त्र,

कभी कभी क्षौमवस्त्र और कभी मृगछाल धारण करता हूं; समयके अनुसार महामूल्य-वान् वस्त्रोंको भी पहना करता हूं। यदृच्छा प्राप्त धर्म्मयुक्त उपभोग वस्तुओंमें मैं अनास्था नहीं करता और इसके अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी उसके लिये मेरी रुचि नहीं होती। मैं पवित्र भावसे स्थिरता युक्त, मरण-विरोधी, मंगलजनक शोकहीन और तुलना रहित इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अत्यन्त मूढ़ लोग इसका आचरण करना तो दूर रहे इसे जाननेमें भी समर्थ नहीं होते, यह ब्रह्म प्राप्तिका उपाय स्वरूप है। मैं स्थिर चित्तसे निज धर्म्मसे विचलित न होकर पूर्व्वापर सब मालूम करके परिमित भावसे जीविकानिर्व्वाह करते हुए निर्भय, राग, द्वेष आदिसे रहित, निर्लोभ और मोहहीन होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। जिसमें भक्ष्य, भोज्य और पेय विषयका नियम नहीं है; अदृष्टके परिणामके कारण देश और कालकी व्यवस्था नहीं है; कुत्सित पुरुष जिसके आचरण करनेमें असमर्थ है उस हृदय सुख दायक अजगर व्रतका मैं पवित्र भावसे आचरण करता हूं। "अमुक धन मैं लाभ करूंगा",- इसी तरह तृष्णासे युक्त होकर लोभ धन न प्राप्त होनेपर दुःखित होते हैं, इसे तत्त्वबुद्धिके जरिये निपुणताके सहित आलोचना करके मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। दीन पुरुष कृपण भावसे सत् और असत् सबहीके निकट धनके निमित्त आश्रित होते हैं, इसे देखकर मैं उपशमको अभिलाष करके और चित्तको जीतके इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। सुख, दुःख, लाभ, हानि, रति, अरति, जीना और मरना सब दैवके अधीन है, इसे यथार्थ रीतिसे जानकर मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अजगर सर्प उपस्थित फलको भोग किया करता है, उसे सुनके मैं राग, भय, मोह और अभि मानसे रहित, धृति, मति और बुद्धिसे युक्त तथा प्रशान्त होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मेरे सोने और भोजन करनेका नियम नहीं है, मैं स्वभावसेही दम, नियम, सत्य, व्रत और शौच युक्त, फल सञ्चयसे रहित और आनन्दित होकर इस अजगरव्रतका आचरण करता हूं। इच्छाके विषय पुत्र और वित्त आदि निबन्धन परिणाम दुःखके कारण हैं, समस्त दुःख स्वयंही परा भूत हुए हैं; इससे मैं ज्ञानलाभ करके अन्तःकरणको तृषित और अस्थिर देखकर उसे स्थिर करनेके लिये पवित्र भावसे इस आत्मनिष्ठ अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मैं वचन, मन और अन्तःकरणका अनुरोध न करके प्रिय सुखकी दुर्लभता और अनित्यता देखते हुए पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। बुद्धिमान कवियोंने आत्मकीर्त्तिको प्रसिद्ध करते हुए निजमत और परमतके जरिये यह शास्त्र ऐसा कहता है—इसी तरह अनेक वितर्क करके बहुतायतके सहित आत्मतत्त्वका विषय वर्णन किया है। मूर्ख मनुष्य उस प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे प्रसिद्ध तर्कसे अगोचर आत्म तत्त्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते, मैं उसीको अज्ञान आदि नाशक अन्तरहित और अनन्त दोष निवारक रूपसे आलोचना करके दोष और तृष्णा त्यागके मनुष्योंके बीच भ्रमण किया करता हूं।

भीष्म बोले, इस पृथ्वीमण्डल पर जो महानुभाव मनुष्य रागहीन और भय, लोभ, मोह तथा मान रहित होकर इस अजगर व्रतका आचरण करते हैं, वे अवश्यही सुखी होते हैं।

१७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बान्धवों, वित्त, कर्म्म और बुद्धि इन सबके बीच मनुष्योंको

किस विषयसे प्रतिष्ठा होती है, मैं इसेही पूछता हूं आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, बुद्धिसेही जीवोंकी प्रतिष्ठा होती है, इस लोकमें बुद्धिसेही निःश्रेयस लाभ हुआ करता है; बुद्धिही साधुओंमें स्वर्गरूपसे सम्मत है। ऐश्वर्य्य नष्ट होनेपर राजा बलि; प्रह्लाद, नमुचि और मङ्किने बुद्धिसेही पुरुषार्थ लाभ किया था; इससे बुद्धिसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। हे धर्म्मराज! इस विषयमें पण्डित लोग इन्द्र और काश्यपके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो। ऐश्वर्य्यसे मतवाला कोई वैश्य काश्यपवंशीय संशितव्रती तपस्वी ऋषिपुत्रको रथचक्रसे गिराया था। गिरनेसे पीड़ित होकर ऋषिपुत्रने शरीर त्यागनेका निश्चय करके क्रुद्ध भावसे कहा, मैं अवश्यही जीवन परित्याग करूंगा; इस पृथ्वीमण्डल पर निर्द्धन मनुष्योंको जीवन धारण करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। ऋषिपुत्रके मुमुर्षु होकर चेतरहित अवस्था इस प्रकार क्षुब्धचित्त और शब्द रहित होके निवास करनेपर देवराज इन्द्र सियारका रूप धरके उसके समीप आके बोले, हे काश्यप! समस्त जीव सब तरहसे मनुष्य योनि प्राप्त होनेकी इच्छा करते हैं, मनुष्य जन्म होनेसे सब कोई ब्राह्मणत्वका अभिनन्दन किया करते हैं। तुम मनुष्य-जन्म पाके ब्राह्मण हुए हो, विशेष करके वेद अध्ययन किया है; अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व, ब्राह्मणत्व और श्रोत्रियत्व लाभ करके मूढ़ताके वशमें होकर तुम्हें शरीर त्यागना उचित नहीं है। लाभ मात्रही अभिमानसे युक्त है, अर्थात् "मैंने यह धन प्राप्त किया है"—इन वस्तुओंके प्राप्त होने पर इसी प्रकार अभिमान हुआ करता है। इस विषयमें जो जनश्रुति है, अर्थात् किसीके धनमें अभिलाषा मत करो, यह अवश्यही तुम्हे विदित होगा, तुम्हारा सौन्दर्य्य अत्यन्तही सन्तोष युक्त है, इसलिये तुमने जो मरनेका निश्चय किया है, लोभही उस विषयमें कारण है। इस जगत्में जिन्हें पांच अंगुलियोंसे युक्त हाथ हैं, उनका सभी प्रयोजन सिद्ध होता है; हाथ युक्त लोगोंकी मैं अत्यन्त सराहना किया करता हूं, धनके निमित्त तुम्हारी जैसी इच्छा है, हाथ युक्त मनुष्योंके विषयमें मेरी वैसीही अभिलाष हुआ करती है, हस्तलाभसे अधिक लाभ और कुछ भी नहीं है। हे ब्राह्मण! हाथ नहीं है, इसहीसे हम लोग कण्टक उद्धार नहीं कर सकते और अनेक प्रकारके कीट हमारे अङ्गमें दंशन करते रहते हैं, उन्हें नष्ट करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। जिन्हें दैवके दिये हुए दश अंगुलियोंसे युक्त दोनों हाथ विद्यमान हैं, वे लोग दंशन करनेवाले कीटोंको सहजमेंही पृथक् कर सकते हैं, शर्दी, वर्षा और धूपसे अपना बचाव करनेमें समर्थ होते हैं। अन्न, वस्त्र, सुख, शय्या आदि सहजमेंही उपभोग कर सकते हैं; जनसमाजके बीच वाहनोंपर चढ़के उन्हें चलाते हुए सुख भोग कर सकते और आत्म सुखके लिये अनेक प्रकार उपायसे सबको वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हाथ और जीभ नहीं हैं, वे कृपण तथा अल्पबलवाले हैं, वेही उन सब दुःखोंको सहते हैं। हे मुनि! भाग्यसेही तुम सियार, कीट, मूषिक, सांप वा मेढ़क नहीं हुए अथवा दूसरी किसी पापयोनिमें जन्म नहीं लिया। हे काश्यप! मनुष्यत्व लाभसेही तुम्हें सन्तुष्ट रहना उचित है; तुम जब सब जीवोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हो, तब फिर दूसरे लाभकी क्या आवश्यकता है; मेरी दशा देखो, ये सब कृमि समूह मुझे डंस रहे हैं, हाथ नहीं है, इसीसे मैं इन्हें नष्ट तथा निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तिर्य्यग् प्राणियोंको भी शरीर त्यागना पापका कारण हुआ करता है, इसलिये मैं इस शरीरको नहीं त्याग सकता और इससे अधिक पाप युक्त दूसरी योनिमें

पढ़नेकी इच्छा नहीं होती। समस्त पाप योनियोंके बीच मैंने जो शृगाल योनि पाई है, इससे भी अधिक पाप युक्त दूसरी अनेक पाप-योनि हैं, कितनेही लोग जातिके जरियेही अत्यन्त सुखी हुआ करते हैं; दूसरे लोग उस-होसे अत्यन्त दुःखित होते हैं; इस जगत्में कोई पुरुषको किसी विषयमें इकबारगी सुखी नहीं देखता हूं। मनुष्य लोग धनवान होके फिर राज्यकी इच्छा करते हैं राज्य प्राप्त होनेपर फिर देवत्वकी इच्छा किया करते हैं, देवत्व प्राप्त होनेपर इन्द्रत्व लाभके अभिलाषी होते हैं। तुम यदि धनवान हो जाओ तथापि राजा वा देवता न होगे, यद्यपि देवत्व लाभ करके अन्तमें इन्द्रत्व लाभ करो; तौभी तुम सन्तुष्ट न होगे। प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। बहुत जल रहने पर भी प्यास कभी नहीं शान्त होती, काष्ठ प्राप्त होनेसे अग्निकी तरह प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे विषय-तृष्णा अत्यन्तही बढ़ती है। जैसा तुम्हें शोक हुआ है, वैसाही हर्ष भी तुममें निवास कर रहा है, इससे तुम आत्मागत हर्षसे शोकको दूर करो। जब कि सुख और दुःख दोनोंही प्राप्त होते है, तब फिर उसके लिये दुःख करनेका क्या प्रयोजन है। जो लोग कामना और उसके सब कार्य्योंकी मूल बुद्धि तथा इन्द्रियोंको पिञ्जरेमें बद्ध पक्षीकी तरह शरीरके बीच रोक रख सकते हैं, जैसे कल्पित दूसरे सिर और तीसरे हाथका काटना सम्भव नहीं है, वैसेही उन्हें किसी स्थानमें किसी विषयमें भय नहीं होता। जो पुरुष जिस विष-यका रसज्ञ नहीं है, उसमें कामना नहीं होती, दर्शन, स्पर्शन और श्रवण निबन्धनसे रसज्ञान हुआ करता है। तुमने कभी मद्य और लड़ाक पक्षीके मांसका स्वाद नहीं ग्रहण किया है; किन्तु ऊपर कहो हुई दोनों वस्तुओंसे बढ़के उत्तम भक्ष्य और कुछ भी नहीं है। हे कश्यप! जीवोंकी जो सब भक्ष्य वस्तु हैं, उसमेंसे तुमने जिसे नहीं खाया है, उसके विषयमें तुम्हारा स्वाद ग्रहण भी नहीं हैं; इसलिये अग्रहण स्पर्शन और दर्शन त्याग विषयमें नियम निर्द्धा-रण करना ही पुरुषोंको निःसन्देह कल्याण-कारी बोध होता है। हाथयुक्त जीवही निःस-न्देह बलवान् और धनवान् हुआ करते हैं। मनुष्य लोग मनुष्योंके दासत्व शृंखलमें बद्ध होकर वध बन्धन आदि विविध क्लेशोंसे बार बार क्लेशित हुआ करते हैं, वे लोग वैसी अव-स्थामें पड़के भी क्रीड़ा, आमोद तथा हास्य किया करते हैं। दूसरे बाहुबलशाली कृतविद्य मनस्वी पुरुष भी भवितव्यताको अलङ्घनीयता निबन्धनसे अत्यन्त निन्दित पापकर्म्ममें अनुरत होते हैं, वे लोग अत्यन्त घृणित नीच व्यवहार करनेमें भी उत्साह किया करते हैं। पुक्कस और चाण्डाल जातीय पुरुष भी मायाके प्रभा-वसे आत्मयोनिमेंही सन्तुष्ट रहके आत्म त्यागकी इच्छा नहीं करते, इसलिये मायाका कैसा प्रभाव है, इसे देखिये।

हे कश्यप! विकल अंगवाले, पक्षाघातके कारण अङ्गहीन और रोगमें फंसे हुए मनुष्योंको देखकर तुम निज जातिके बीच अपनेको सज्जनमेंही सब तरहसे सुखी और लाभवान समझो तुम्हारा यह ब्राह्मण शरीर यदि निर्भय और रोग रहित रहे तथा सब अङ्ग विकल न हों तो तुम जनसमाजमें निन्दित न होगे। हे विप्रवर! कोई जाति नाशकारी कलङ्क होने पर भी जब आत्म परित्याग करना उचित नहीं है, तब किस कारण तुमने शरीर त्याग-नेका सङ्कल्प किया है। तुम्हें आत्म त्याग करना योग्य नहीं है, तुम धर्म्म साधनके लिये उठके खड़े हो जाओ। हे ब्रह्मन्! यदि तुम मेरा यह वचन सुनो और इसमें श्रद्धा करो, तो वेदमें कहे हुए धर्म्मके मुख्य फल पाओगे। तुम प्रमाद रहित होके वेदाध्ययन, अग्नि संस्कार,

सत्य वचन इन्द्रिय दमन और दानधर्म्म प्रतिपालन करो ; किसीके साथ ईर्षा न करना । जो लोग स्वाध्यायमें रत होके यजन याजन आदि कर्म्मोंके अधिकारी हुए हैं, वे शोक क्यों करेंगे । किस लिये वो अमङ्गल चिन्ता करनेमें रत होंगे, वे लोग यथा उचित यज्ञ आदिके जरिये समय बितानेकी इच्छा करके अत्यन्त सुख लाभ करेंगे । जो लोग शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें जन्म लेते हैं, वे यज्ञ, दान और सन्तान उत्पन्न करनेके लिये शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, और जो लोग आसुर नक्षत्र, दुष्ट तिथि तथा दुष्ट मुहूर्त्तमें उत्पन्न हुए हैं, वे यज्ञहीन और सन्तान रहित होके आसुरी योनिमें पड़ते हैं । मैं पूर्व्व जन्ममें वेदनिन्दक, पुरुषार्थ रहित, निरर्थक, आन्विक्षिकी विद्यामें अनुरक्त, कुतर्क, परायण, नास्तिक और पाण्डित्याभिमानी महामूर्ख था, सभाके बीच युक्तियुक्त हेतु-वादोंको प्रकट किया करता था, वेद वचनमें अनादर प्रकाशित करके चिल्लारस्वरसे ब्राह्मणोंको अतिक्रम करके वक्तृता करता और स्वर्ग आदि अदृष्ट फलोंमें मुझे शङ्का था । हे द्विजवर ! उसही फलके परिणाम वलसे मुझे यह शृगालत्व प्राप्त हुई है, मैं सियार होके भी यदि कभी सैकड़ों दिन तथा रात्रिके अनन्तर फिर मनुष्ययोनि पाऊंगा ; तो सदा सन्तुष्ट, प्रमाद रहित होकर यज्ञ दान और तपस्यामें रत रहके ज्ञेय, पदार्थोंका ज्ञान और त्यज्य विषयोंको परित्याग करूंगा ।

सियारका वचन समाप्त होनेपर कश्यपवंशीय मुनिपुत्रने विस्मय युक्त होके उठकर कहा कैसा आश्चर्य्य है ; तुम अत्यन्त निपुण वक्ता और बुद्धिमान् हो । ब्राह्मणने ऐसा वचन कहके ज्ञान युक्त नेत्रसे उस सियारकी ओर देखतेही देवोंके देव शचीपति इन्द्रका दर्शन किया, अनन्तर द्विजवर कश्यपने देवराजकी भक्ति श्रद्धाके सहित पूजा की और उनकी आज्ञासे निज स्थानमें प्रविष्ट हुए ।

१८० अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! दान, यज्ञ, तपस्या, गुरुसेवा और बुद्धि कल्याणप्राप्तिका कारण है, वा नहीं ; उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये ।

भीष्म बोले, मन स्वयं काम क्रोध आदि अनर्थके वशमें होकर पापमें प्रवृत्त होता है । और निज कर्म्मोंको पाप युक्त करके क्लेशदायक नरक आदिकोंमें दुःख भोगका अधिकारी हुआ करता है, पाप करनेवाले दरिद्रपुरुष बार बार दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु लाभ करते हैं, और सत्कर्म्मोंमें रत, दान्त, श्रद्धावान धनाढ्य मनुष्य सदा उत्सव, स्वर्ग और सुख लाभ किया करते हैं, नास्तिकोंका दोनों हाथ बांधके दुष्ट हाथियोंके जरिये दुर्गम और सांप तथा चोर भयसे युक्त वनके बीच रखना उचित है, इसके अतिरिक्त उन लोगोंके लिये और कुछ शासन नहीं है । जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंके विषयमें प्रीति किया करते हैं, वे सब वदान्य पुरुष दान आदि कर्म्मोंको अनुकूलताके कारण यागियोंके कल्याणकारी मार्गमें देव यानमें निवास करनेमें समर्थ होते हैं धान्यके बीच पुलाक और पक्षियोंके बीच जैसे मशक निकृष्ट हैं, वे वैसेही जिन मनुष्योंको धर्म्म कर्म्ममें सुखकी आशा नहीं है, वे भी मनुष्योंके बीच निकृष्ट हुआ करते हैं ।

पुरुषके परम यत्नवान होनेपर भी पूर्व्वकर्म्म उसका अनुसरण करते हैं, सोनेपर भी उसके सहित शयन किया करते हैं, प्राचीन कर्म्म जब जिस प्रकारसे किया जाता है, उसही समय वह उसी प्रकार फलदायक वा अफलदायक हुआ करता है । प्राक्तन कर्म्म छायाके समान

पुरुषके स्थित होनेपर स्थित, गमन करनेपर अनुगामी और कर्म्म करनेपर उसके सहित अविच्छिन्न रहके अनुकूलता करता है। पहिले जिस तरहसे जो कर्म्म किया गया है, मनुष्य उसही आत्मकृत कर्म्मको उसही प्रकार सदा भोग किया करता है। निज कर्म्म फलका आश्रय स्वरूप पूर्व्वकर्म्मके कारण अदृष्टके जरिये परीक्षित जीवोंको काल सदा आकर्षण कर रहा है। जैसे फूल और फल अवचित न होनेसे निज समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी, वैसे ही मान, अवमान लाभ, हानि, क्षय और उदय आदि प्राक्तन कर्म्मके भीतर बार बार प्रवृत्त और निवृत्त होते हैं। मनुष्य गर्भ शय्यामें शयन करते हुए भी पूर्व्व देह सम्बन्धीय आत्मकृत सुख दुःख भोग करता है, क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जो लोग जिस अवस्थामें जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म किया करते हैं, वे उसही अवस्थामें उसका फल पाते हैं। जैसे बछड़ा हजार गऊके बीच निज जननीको खोज लेता है वैसेही पूर्व्वकर्म्म भी कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे वस्त्र पहले मलसे मलिन होके फिर धोनेसे शुद्ध होते हैं। उसी तरह विषयत्यागनिबन्धनसे सन्तापित लोगोंको अत्यन्त महत् अनन्त सुख हुआ करता है। तपोवनमें बहुत समयतक तपस्या करके धर्म्मबलसे जिसके पाप धोये गये हैं, उन्हींके मनोरथ सिद्ध होते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमे मछलियोंके पैर नहीं दीखते, ज्ञानवान मनुष्योंकी गति भी वैसी ही है। दूसरे आक्षेप और अपराध वाक्यके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है, निपुणताके सहित अपने अनुरूप हितसाधन करना उचित है, ऐसा होनेसे ही प्रज्ञा और कल्याणलाभ हुआ करता है।

१८१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलय कालमें किसमें जाके लयको प्राप्त होता है, आप मुझसे वही कहिये। समुद्र, पहाड़ आकाश, बलाहक, पृथ्वी, पवन और अग्निके सहित इस संसारको किसने बनाया है। सब जीव किस तरह उत्पन्न हुए हैं; वर्ण विभाग किस प्रकार हुआ है; सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरनेपर कहां जाते इस लोकसे परलोकमें कैसे जाना होता है, आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, भरद्वाजके प्रश्नके अनुसार भृगु मुनिके कहे हुए इस प्रचीन इतिहासको पुराने पण्डित लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। कैलास शिखरपर बैठे हुए महातेजस्वी दीप्यमान् महर्षि भृगुका दर्शन करके भरद्वाज प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

भरद्वाज बोले, समुद्र, पर्व्वत, आकाश, बलाहक, भूमि, पवन और अग्निके सहित इस विश्वको किसने बनाया है। सब भूत किस प्रकार उत्पन्न हुए और वर्ण विभाग किस तरह हुआ है, सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवित लोगोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरकेही कहां गमन करते हैं, परलोक और इस लोकके विषय किस प्रकारके हैं? यह सब वर्णन करनेके उपयुक्त आपही हैं; इसलिये ऊपर कहे हुए सब विषयोंको वर्णन करिये।

ब्रह्मसङ्काश ब्रह्मर्षि भृगुने भरद्वाजके ऐसे संशययुक्त विषयोंको सुनके उनसे सब विषय कहने लगे।

भृगु बोले, सत् और असत् रूपसे अनिर्व्वचनीय अज्ञानसे उत्पन्न मानस नाम महर्षियोंमें विश्रुत अनादि निधन, अभेद्य, अजर, अमर, अव्यक्त रूपसे विख्यात, अक्षय, अव्यय और

प्रवृत्त एक देवता है ; जन्म विशिष्ट जीव जिससे उत्पन्न होते और अन्तमें जिसमें लीन हुआ करते हैं ; वही देव पहले महत्‌की सृष्टि करता है, महत्‌से अहंकार, अहङ्कारसे आकाश, आकाशसे जल, जलसे अग्नि वायु और अग्नि तथा वायुके मेलसे महीमण्डल उत्पन्न होता है, अनन्तर स्वयम्भू मानस दिव्य तेजमय एक पद्मकी सृष्टि करते हैं उसही पद्मसे वेद पूर्ण ऐश्वर्य्य निधि ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। आकाश आदि पञ्चभूतमय और जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके सृष्टिकर्त्ता वह महातेजस्वी ब्रह्मा उत्पन्न होतेही "सोऽहं"—यह वाक्य उच्चारण करनेसे अहङ्कार नामसे विख्यात् हुए हैं। सब पर्वत जिसकी हड्डी, पृथ्वी जिसका मेद और मांस है, सागर उसका रुधिर, आकाश पेट, पवन, श्वास, अग्नि, तेज, नदियें शिरा, चन्द्रमा और सूर्य्य उनके दोनों नेत्र, उर्द्ध तथा आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण और सब दिशा उनके हाथ हुए हैं ; वह अचिन्तस्वभाव ब्रह्मा सिद्धोंको भी निःसन्देह दुर्व्विज्ञेय है। वही विश्वव्यापी भगवान अनन्त नामसे विख्यात् हैं। सब भूतोंके आत्मभूत अहङ्कार तलमें जो स्थित हैं ; कृतबुद्धि पुरुष उन्हें सहजमें जाननेमें समर्थ नहीं होते। सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण अहङ्कारकी जिन्होंने सृष्टि की थी, जिससे कि संसार उत्पन्न हुआ है ; तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने उसका विषय तुमसे कहा।

भरद्वाज बोले, आकाश, दिशा, भूमि और अनिलका क्या परिमाण है ? पूरी रीतिसे उसे वर्णन करके मेरा संशय छेदन करिये।

भृगु बोले, हे तपोधन ! चौदहों भुवन परिपूरित, सिद्ध देवताओंसे सेवित यह रमणीय आकाश अनन्त है, इसका अन्त नहीं मालूम होता। ऊर्द्ध गति और अधोगतिके अनुसार दिनमें चन्द्रमा और रात्रिमें सूर्य्यदेव इमलोगोंके नेत्रोंसे नहीं दीखते ; उस दृष्टिके अगोचर स्थानमें सूर्य्यके समान प्रकाशयुक्त अग्निके समान तेजस्वी स्वयं प्रकाशमान् देवता लोग निवास करते हैं। वे प्रथित तेजस्वी देवता लोग भी दुर्गमत्व और अनन्तत्व निवन्धनसे आकाशका अन्त नहीं देख सकते। हे मानद ! तुम मेरे समीप मालूम करो, कि ऊपरके सब जलते हुए लोक भी स्वयं प्रकाशमान देवताओंके जरिये इस अप्रमेय आकाशमें रुके हुए हैं। पृथ्वीके अन्तमें समुद्र, समुद्रके अन्तमें अन्धकार, अन्धकारके अन्तमें जल और जलके अन्तमें अग्नि है। इसी तरह रसातलके अनन्तर जल जलके बाद सर्प्प, सांपोंके अनन्तर फिर आकाश और आकाशके बाद फिर जल है। इसी प्रकार जलमय भगवान्‌का अन्त मेरे समीप मालूम करो। अग्नि, वायु और जलका अन्त देवताओंको भी दुर्ज्ञेय है। अग्नि वायु, जल और पृथ्वीतलका रूप आकाशके समान है ; परन्तु तत्व दर्शनके कारण आकाशसे पृथक् मालूम होता है। मुनिलोग विविध शास्त्रोंमें इसी प्रकार त्रैलोक्य-सागर विषयमें विहित प्रमाण पाठ किया करते हैं। अदृश्य और अगम्य विषयका प्रमाण कौन कह सकता है ; देवताओं और सिद्धोंके गमन करनेका मार्ग आकाशकाही जब परिमाण नहीं है, तब अनन्त नामसे विख्यात् नामहीके अनुरूप परमात्मा स्वरूप महात्मा मानसका अन्त किस प्रकार सम्भव हो सकता है। जबकि उस दिव्य रूपकी ह्रास और वृद्धि होरही है तब दूसरा कौन पुरुष उसके जाननेमें समर्थ होगा, यदि वैसा दूसरा कोई रहता तो उसे जान सकता ; जो हो, उस स्थूल सूक्ष्म काष्ठ रूप पुष्करसे पहिले धर्म्ममय परम श्रेष्ठ, सर्व्वज्ञ, मूर्त्तिमान् सर्व्वशक्तिमान् प्रजापति सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं।

भरद्वाज बोले, ब्रह्मा यदि पुष्करसे उत्पन्न हुए तो पुष्कर उनसे ज्येष्ठ हुआ परन्तु

ब्रह्माको पूर्व्वज कहते हैं, इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह होता है।

भृगु बोले, मानसकी जो मूर्त्तिब्रह्मरूपसे विख्यात् हुई है, उसही ब्रह्माके आसन विधानके लिये मानस पृथ्वीही पद्म रूपसे कही गई है; अर्थात् स्थूल सृष्टिके पहिले सूक्ष्म रूपसे जो मानस सृष्टि हुई थी, उस सूक्ष्म सृष्टिके अनन्तर दृश्यमान् स्थूल जगत्‌की सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए; जो हो, आकाश पर्य्यन्त ऊंचा सुमेरु पर्व्वत उस मानस पद्मकी कर्णिका स्वरूप है, जगत् प्रभु प्रजापति उसके बीच निवास करते हुए सब लोकोंकी सृष्टि करते हैं।

१८२ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे द्विजसत्तम! मेरुके बीच निवास करते हुए सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्मा किस प्रकार विविध प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, मानसने पहिले मनसे विविध प्रजाकी सृष्टिकी थी; जीवोंकी रक्षाके लिये पहिले जलकी सृष्टि हुई, जो कि सब जीवोंका प्राण स्वरूप है; जिससे सब प्रजाकी बढ़ती होती और जिसे परित्याग करनेसे सब कोई नष्ट हुआ करते हैं; उसही जलसे यह समस्त जगत् घिरा हुआ है। पृथ्वी, पर्व्वत, बादल और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो सब विग्रह विशिष्ट वस्तु हैं, वे सबही जल सम्बन्धीय हैं; क्योंकि इसे जानना चाहिये कि, जलही घन होकर पृथ्वी आदि रूपसे परिणत हुआ है।

भरद्वाज बोले, किस प्रकार जल उत्पन्न हुआ, किस तरह अग्नि और वायु प्रकट हुए, पृथ्वीकी भी किस प्रकार उत्पत्ति हुई? इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! पहिले समय सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मर्षियोंका एक स्थानमें समागम हुआ; उन लोगोंके अन्तःकरणमें सर्व्वलोक उत्पत्ति विषयक सन्देह उत्पन्न हुआ था। उन सब ब्राह्मणोंने निश्चल और निराहारी होकर वायु भक्षण करते हुए मौन होके तथा ध्यान अवलम्बन करके देव परिमाणसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त वहां निवास किया। अनन्तर उनके हृदयाकाशमें दिव्य-सरस्वती प्रकट हुई, ब्रह्ममयी वाणी सबके ही श्रवणगोचर हुई। सृष्टिके पहिले यह अनन्तर आकाश अचलकी तरह निश्चल था, चन्द्रमा, सूर्य्य और वायुका सम्पर्क नहीं था; इससे यह प्रसुप्तकी भांति प्रकाशित होता था। तमोराशिके बीच दूसरे अन्धकारके प्रवेशकी तरह उस आकाशसे जल उत्पन्न हुआ, जल संघर्षसे वायु प्रकट हुआ। छिद्र रहित पात्र निःशब्द जान पड़ता है, परन्तु जैसे जलपूर्ण वायु उसे शब्दयुक्त करता है, वैसेही जलसे पूर्णनिरवकाश आकाशके बीच शब्दयुक्त वायु सागर तलको भेदते हुए उत्पन्न होता है। उसही जल संघर्षणसे उत्पन्न हुआ यह वायु बह रहा है; आकाशको आश्रय करनेकी अवधिसे कभी प्रशान्त नहीं होता। वायु और जलके संघर्षणसे दीप्ततेज ऊर्द्ध्वशिखा महाबल अग्नि आकाश-मण्डलको प्रकाशित करती हुई प्रकट हुई और वायुके संयोगसे जल और आकाशको एकत्र करके घनीभूत हुई। अग्निके आकाशसे गिरते रहने पर उसका जो स्नेहभाग था वही घनीभूत होकर पृथ्वी रूपसे परिणत हुआ। भूमि ही समस्त रस, गन्ध और प्राणियोंकी योनि है, भूमिसे ही सब वस्तु उत्पन्न होती हैं।

१८३ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, प्रजापतिने जो पहिले भूतोंकी सृष्टि की थी और जिसके जरिये वे सब लोक घिरे हुए हैं, उनका महाभूत नाममें प्रसिद्ध होनेका क्या कारण है और उन महा-

बुद्धिमान् ब्रह्माने जब सहस्रों प्राणियोंकी सृष्टि की है; तब आकाश आदि पाचको ही महा-भूत नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई ?

भृगु बोले, परिमित पदार्थके पहिले महत् शब्दका योग होता है और अपरिमित पदार्थही भूत नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं, इस ही कारण आकाश आदिकोंका महाभूत नाम युक्तियुक्त होता है। चेष्टात्मक वायु सुषात्मक आकाश उष्णात्मक अग्नि, द्रवमय जल, और अस्थिमांसमय कठिनात्मक पृथ्वी इन पञ्चभूतोंके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है; स्थावर जङ्गम सब पदार्थही इन पञ्चभूतोंसे संयुक्त है; कान, नाक, जीभ, त्वचा और नेत्र इन पांचोंका नाम इन्द्रिय है।

भरद्वाज बोले, स्थावर जङ्गम सब पदार्थही यदि पञ्चभूतोंसे संयुक्त है, तो वृक्षादि स्थावर शरीरोंमें पञ्चभूत क्यों नहीं दीखते। उष्मभाव निवन्धन निरग्नि और चलनेसे रहित होनेसे चेष्टाहीन प्रकृत रूपसे निविड़ संयोग विशिष्ट वृक्षोंके शरीरमें पञ्चभूत नहीं दीख पड़ते। जिन्हें देखने, सुनने, सूंघने, चखने और स्पर्श करनेकी शक्ति नहीं है, वे किस प्रकार पाञ्चभौतिक होंगे। जो द्रव पदार्थ नहीं हैं, जिनमें अग्नि, भूमि और वायु नहीं है तथा जिनमें आकाश नहीं मालूम होता, उन वृक्षोंमें भौतिकत्व सम्भव नहीं हो सकता।

भृगु बोले, वृक्षोंके निविड़ संयोग विशिष्ट होने पर भी उनमें निःसन्देह आकाश है, क्यों कि सदाही उनमें फूल और फल प्रकाशित होते है उष्णताके कारण उनके त्वचा, फल रूप और पत्ते मलिन होते हैं; इससे अग्निके रहनेकी असम्भावना नही है। वृक्ष समूह ग्लानि युक्त और शीर्ण होते हैं, इससे उनमें अवश्यही स्पर्शात्मक वायु है। अग्नि, वायु और वज्रके शब्दसे वृक्षोंके फल फूल गिरते हैं, इससे उन्हें श्रोत्रसे शब्दका ज्ञान होता है, तब अवश्यही वे सब सुनते है। जबकि लता वृक्षोंमें लपटती और सब ओर गमन किया करती है, तब वृक्षोंकी अवश्यही दर्शन शक्तिसे युक्त कहना पड़ेगा; क्यों कि दर्शन शक्तिसे हीनको गमन करनेकी सम्भावना नहीं रहती। पवित्र और अपवित्र गन्ध और अनेक तरहकी धूप सब वृक्ष रोग रहित और पुष्पित हुआ करते है, इससे वे अवश्यही घ्राणशक्तिसे युक्त है; जड़से जलकी आकर्षण व्याधि और उसकी प्रतिक्रिया दर्शन निवन्धनसे यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि वृक्षोंमें चखनेकी शक्ति हैं। वक्र, उत्पल, मृणालसे जैसे लोग ऊपरको जल उठाते है, वैसेही वृक्ष वायुसे संयुक्त होकर मूलके जरिये जल पीते हैं। वृक्षोंको सुख दुःखका ज्ञान है और कटनेसे फिर उत्पत्ति होती है, इससे देखता हूं, कि उनमें जीवन है; इसलिये यह नहीं कह सकते कि वृक्षोंमें चैतन्यता नहीं है। वृक्ष जो जल खींचता है, अग्नि और वायु उसे जीर्ण किया करते है; उनके आहारके परिमान अनुसार स्निग्धताकी भी वृद्धि होती है। सब जङ्गम पदार्थोंके शरीरमें पञ्चभूत संयुक्त हैं, जिनके जरिये सब शरीरके चेष्टा सम्पन्न होती है, वह सब हर एकमें प्रकाशित हुआ करता है। त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा और स्नायु, ये पाचो पार्थिव पदार्थ संहतरूपसे शरीरमें विद्यमान हैं; प्राणियोंमें अग्नि स्वरूप तेज, क्रोध, नेत्र, उष्मा और जठराग्नि जो कि सब भक्ष वस्तुओंको परिपाक करती है, ये पाचो आग्नेय पदार्थ है। कान, नाक, सुख, हृदय और कोठे अर्थात् अन्न आदिके स्थान, ये पाचो प्राणियोंके शरीरमें आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। कफ, पित्त, पसीना, चर्व्वी और रुधिर, ये पांचो जलके अंश प्राणियोंके शरीरमें सदा स्थित रहते हैं। प्राणी लोग प्राण वायुके आसरे गमन आदि कार्य्य करते, व्यानवायुकी अवलम्बन करके बलसाध्य कार्य्योंके लिये तैयार होते हैं, अपान वायु अध

करता है, समान वायु हृदयमें स्थित रहता है और उदान वायुसे उच्छ्वास, उर, कण्ठ और शिर स्थानको भेदकर शब्द उच्चारण होता है। ये पांचो प्रकारकी वायु इसी भांति प्राणियोंकी अंगचालन आदि चेष्टा सिद्ध करती है। भूमिसे गन्ध, जलसे रस, तेजोमय नेत्रसे रूप और वायुसे स्पर्श ज्ञान हुआ करता है। गन्ध स्पर्श, रूप और शब्द, ये पृथ्वीके पाच गुण हैं; उसके बीच बिस्तार पूर्व्वक गन्धका नव प्रकार गुण कहता हूं सुनो। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, दूरगामी, स्निग्ध, रूखा और विशद, ये नव प्रकार पार्थिव पदार्थोंके बीच गुण हैं। नेत्रसे पृथ्वी आदिका रूप देखा जाता है, त्वक इन्द्रियसे स्पर्श ज्ञान उत्पन्न होता है। शब्द, स्पर्श रूप और रस, ये चारों जलके गुण हैं, तिसमें जिस तरह रसज्ञान हुआ करता है, उसे कहता हूं सुनो। विख्यात् महर्षियोंने रसको अनेक प्रकारका कहा है; मोठा, खारा, तोखा, कषैला, खट्टा और कड़ुवा, ये छः तरहके रस जलमय कहके प्रसिद्ध हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनों अग्निके गुण है; ज्योतिके जरिये वस्तुका रूप देखा जाता है। रूप अनेक प्रकार है; ह्रस्व, दीर्घ स्थूल, चतुरस्रम, गोलाकार; सफेद, काला, लाल, नीला, पीला, अरुण, कठिन चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु और दारुण, ये सोलह तरहके रूपके गुण ज्योतिमय कहके विख्यात हैं। शब्द और स्पर्श, ये दोनों वायुके गुण है, उसमेंसे स्पर्श अनेक प्रकारका है। गर्म्म, ठण्डा, सुखदायक, दुःखदायक, स्निग्ध, विशद, कड़ा, कोमल, श्लक्ष्ण, लघु और गुरु ये ग्यारह प्रकार वायुके गुण हैं। आकाशका गुण केवल अकेला शब्द है, उस शब्दके अनेक भेद हैं, उसे विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम, धैवत, पञ्चम और निषाद ये सात प्रकारके गुण आकाशसे उत्पन्न होते हैं; ये सब शब्द व्यापक भावसे सर्व्वत्र रहनेपर भी पटह आदि वाद्ययन्त्रोंमें विशेषरूपसे मालूम हुआ करते हैं। मृदंग, भेरी, शङ्ख आदि वाद्ययन्त्र, बादल, रथ, प्राणी वा अप्राणी, जिनसे जो कुछ शब्द सुन पड़ते हैं, वे सब इन सातों स्वरोंके अन्तर्गत कहके वर्णित हुआ करते हैं। इसी भांति आकाशसे प्रकट हुए शब्दका अनेक प्रकार रूप है, पण्डित लोग आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति कहा करते हैं। ये सब शब्द स्पर्शसे प्रतिहत होकर बीच तरङ्गकी तरह उत्पन्न होते हैं और विषम अवस्थामें रहनेसे वे मालूम नहीं होते। देहारम्भकत्वक आदि प्राण और इन्द्रियोंके जरिये प्रथमसे ही बढ़ते रहते हैं। जल, अग्नि और वायु सदा देहधारियोंमें जाग्रत हैं, वेही शरीरके मूल हैं, पञ्चप्राणोंको अवलम्बन करके इस शरीरमें निवास करते हैं।

१८४ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! शरीरमें स्थित अग्नि इस पाञ्चभौतिक देहको अवलम्बन करते हुए किस प्रकार निवास करती है और वायुही किस प्रकार आकाश विशेषके जरिये सब शारीरिक चेष्टाओंको समाधान किया करता है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे समीप वायुकी गतिका विषय कहता हूं, वायु जिस प्रकार प्राणियोंको शारीरिक चेष्टा समाधान करता है, उसका विषय सुनो। अग्नि मस्तकमें निवास करके शरीरको पालती हुई शारीरिक चेष्टाओंको समाधान करती है और प्राणवायु मस्तक और अग्नि दोनोंमें वर्त्तमान रहके शरीरके गमन आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करताहै। वह प्राणही सर्व्वभूतमय सनातन पुरुष है; मन, बुद्धि, अहङ्कार सब जीव और शब्द स्पर्शरूपी विषयोंके स्वरूप, आन्तरिक विज्ञान और वाह्य इन्द्रिय आदि प्राणोंसे परिचालित होती हैं। अनन्तर समान वायुके

जरिये इन्द्रिय आदि निज निज गतिको अवलम्बन करती हैं। अपानवायु जठराग्निको अवलम्बन करके मूत्राशय और पुरीषाशयमें स्थित असित पीत वस्तुओंको परिपाक करके मूत्र और पुरीषरूपसे परिणत करता है। गमन आदिके कार्य्य, उसके अनुकूल चेष्टा और बोझा ढोनेकी सामर्थ, इन तीनों विषयोंमें जो वायु वर्त्तमान रहती है, अध्यात्मवित पुरुष उसे उदान वायु कहा करते हैं। मनुष्योंके शरीरकी सब सन्धियोंमें जो वायु संयुक्त है उसे व्यान वायु कहा जाता है। त्वक आदिमें फैली हुई जठराग्नि समान वायुसे सञ्चालित होकर रस, धातु, रुधिर और पित्त आदिकी परिणति कियाकरती है, यह जठराग्नि नाभीकेनीचे स्थित होकर अपनी ऊर्द्ध-गतिको प्राणके मध्यस्थलमें स्थित करके उसकी सहायतासे अन्न आदि परिपाक करती है। मुखसे पावपर्य्यन्त एक प्रवाहमान् स्रोत है, उसके शेषमें गुह्य स्थान है। उस स्रोतके चारों ओरसे देहके बीच असंख्य नाड़ी विस्तीर्ण होरही हैं। प्राण वायुकी सहायतासे उसकी सहचर जठराग्निका समागम हुआ करता है; उस जठराग्निका नाम उष्मा है; यही देहधारियोंके भुक्त अन्न आदिको परिपाक करती है। जठराग्निके वेगको बढ़ानेवाला प्राणवायु पांवतक आके प्रतिघातको प्राप्त होता है। तब वह फिर ऊपरको आके जठराग्निको सब तरहसे उत्क्षिप्त करता है। नाभीके नीचे पक्वाशय अर्थात् पक्व अन्न आदिकोंका स्थान है और ऊपरके हिस्सेमें आमाशय स्थित है; शरीरके मध्य स्थलमें समस्त प्राण स्थित होरहा है। प्राण आदि पञ्च वायु और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नाम पञ्च-वायु, इन दश प्रकारके वायुके सहारे चलकर सब नाड़ियें तिर्य्यग, ऊर्द्ध और अधोभाग हृदय प्रदेशमें प्रस्थान करती हुई अन्नके रसोंको ढोया करती हैं। मुखसे पांव तक जो स्रोत है, वही योगियोंके योगका पथ है, क्लान्ति विजयी सुख दुःखको समान जाननेवाले धीर लोग मस्तक स्थित सहस्र दल पद्ममें सुषुम्ना नाड़ीके जरिये इसही मार्गमें आत्माको धारण करते हुए परम पद लाभ करते हैं। स्थालीमें रखी हुई वाह्य अग्निकी तरह देहधारियोंकी बुद्धि, मन, कर्म्मेन्द्रिय और प्राण अपानके जरिये समर्पित जठराग्नि सदा प्रदीप्त हुआ करती है।

१८५ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, प्राणवायुही यदि प्राणियोंको जीवित और चेष्टा युक्त करती है और प्राणकी सहायतासेही यदि सब जीव श्वास छोड़ते और वार्त्तालाप किया करते हैं, तब जीव स्वीकार करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है और अग्निका गुण उष्ण भाव है, उस अग्निके जरिये ही यदि अन्न आदि परिपाक होते और अग्निही यदि सब वस्तुओंको जीर्ण करती है, तब जीव निरर्थक है, मरेहुए जन्तुओंसे जीव नहीं प्राप्त होता, वायु ही उसे परित्याग करता और उसका उष्म भाव नष्ट होजाता है, यदि जीव वायुमय होता अथवा वायुके सहित संश्लिष्ट रहता, तो वायु चक्रकी तरह दीखके वायुकी तरह विगत हो सकता है; जैसे पत्थरमें बंधा हुआ तूंबी फल जलमें डूब जाता है और बन्धनसे छूटनेपर उन्मग्न हुआ करता है, वैसेही जीव यदि वातप्रधान सघातसे संश्लिष्ट रहै; तो संघात नाशसे वह भी प्रनष्ट होगा। जैसे कूएंके बीच सलिलान्तर और अग्निके बीच प्रकाश प्रवेश करतेही नष्ट होता है, तैसेही वायु मण्डल विशिष्ट जीव भी नष्ट हो सकता है। इस पाञ्च भौतिक शरीरमें जीवन कहा है। पञ्चभूतोंमेंसे एकका अभाव होनेसेही अन्य चारोंका एकत्र सग्रह नहीं होता। अनाहारके कारण समस्त जल, उच्छ्वास निग्रह निबन्धनसे वायु, दात आदिसे कोष्ट निरुद्ध होनेपर आकाश और अभोजनके कारण अग्नि ... हुआ करती है; व्याधिसे पराक्रम ...

पर पार्थिव अंश शीर्ण हो जाता है; इसके बीच अन्यतर पीड़ित होनेसे भौतिक संघात पञ्चत्वको प्राप्त होते है, पञ्चभौतिक शरीर पञ्चत्वको प्राप्त होनेपर जीव किसका अनुसरण करेगा, किन विषयोंका ज्ञान करता है। "परलोक गमन करनेपर यह गऊ मेरा उद्धार करेगी"—इस उद्देश्यसे गऊ दान करनेपर कोई पुरुषके मरनेसे वह गऊ फिर किसका उद्धार करेगी। गऊ दान लेनेवाला और दाता, सभी जीव समान भावसे इस जगत्में मृत्युको प्राप्त होते हैं; तब फिर उन लोगोंका समागम कहां। पक्षियोंसे उपभुक्त, पहाड़की शिखरसे गिरे और अग्निसे जले हुए पुरुषोंमें पुनर्जीवन कहां। जबकि कटे हुए वृक्षोंकी जड़ फिर उत्पन्न नहीं होती, केवल उसके बीच उत्पन्न हुआ करते हैं; तब मरा हुआ पुरुष कहांसे पुनरागमन करेगा। पहिले बीज मात्र उत्पन्न हुआ था; जो इस समय भी परिवर्त्तित होता है। मरण धर्मसे युक्त प्राणी लोग मरके प्रनष्ट होते हैं, बीजसे बीजही प्रवर्त्तित हुआ करता है।

१८६ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, हे महर्षि! जीवका विनाश नहीं होता, प्राणी देहान्तरमें गमन करते हैं, शरीरही नष्ट होता है। जैसे लकड़ियोंके जलनेसे अग्नि विद्यमान रहती है, वैसेही शरीरके नष्ट होनेपर शरीराश्रित जीव कभी नष्ट नहीं होता।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन्। यदि अग्निकी तरह जीवका विनाश नहीं होता यही आपकी सम्मत है, तब काठके जलनेपर अग्नि अदृश्य क्यों होती है। इससे बोध होता है, कि जैसे अग्नि काठ न मिलनेसे बुझ जाती है, उसी प्रकार जीव भी नष्ट हुआ करता है। जिसकी गति, प्रमाण वा संस्थान कुछ भी नहीं रहता, उसे विद्यमान वस्तु कहके किस प्रकार विवेचना की जावे।

भृगु बोले, यह ठीक है कि काठोंके न० जानेपर अग्निकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु जैसे अग्नि निराश्रय होकर आकाशके अनुगत होनेसे दुर्लक्ष्य हुआ करती है, वैसे ही शरीरके नष्ट होनेपर जीव आकाशकी तरह स्थिति करता है; जीव अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे ज्योतिवाले पदार्थोंकी भांति निःसन्देह इन्द्रियगोचर नहीं होता। विज्ञान रूपी अग्नि प्राणोंको धारण करती है इसलिये उसेही जीव रूपसे जानो। यह अग्नि वायुके सहित निवास करती है और उच्छ्वास वायुके निग्रह-निबन्धनसे नष्ट होती है, उस शरीराग्निके नष्ट होनेसे देह चेत रहित हुआ करता है, और गिरके पृथ्वीमें लीन होजाती है; पृथ्वीही शरीरके निवासका स्थान है। स्थावर और जङ्गम समस्त पदार्थ निष्ठवाय आकाशके अनुगत होता है, अग्नि वायुका अनुगमन किया करती है। आकाश, वायु और अग्नि, इन तीनोंकी ऐक्यताके कारण भूमिमें वे तीनों एकत्रित वा जल स्थित करता है। जहांपर आकाश, वहांही वायु है और जहां वायु है वहांही अग्नि स्थित रहती है, वे तीनोंही अदृश्य है; केवल देहधारियोंके सम्बन्धमें दृश्य हुआ करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन्! यदि आकाश, वायु, जल, अग्नि और भूमि ये पञ्चभूतही देहधारियोंमें वर्त्तमान हैं; तो इनके बीच जीव किस प्रकार है, यही आप मेरे समीप वर्णन करिये। पञ्चभूतात्मक पञ्च विषयोंमें रत, पञ्च इन्द्रिय और चेतनता युक्त प्राणियोंके शरीरमें जीव जिस प्रकार निवास करता है उसे मैं जाननेकी अभिलाषा करता हूं। मांस, रुधिर, मेदा स्नायु और हड्डियोंसे युक्त शरीरके नष्ट होनेपर जीवको उपलब्धि नहीं होती। पञ्चभूतोंसे युक्त शरीर यदि जीव रहित हो, तो शारीरिक वा मानसिक दुःख उपस्थित होनेपर कौन उस क्लेशको अनुभव करेगा? हे महर्षि!

जीव दोनों कानोंसे वचन सुनता है; परन्तु मन विषयान्तरमें व्यग्र रहनेसे, वह उसे सुननेमें समर्थ नहीं होता ; इसलिये जीव निरर्थक है। जीव सावधान होनेपर नेत्रसे सब दृश्य वस्तु-ओंको देखता है पर मन व्याकुल होनेपर नेत्रोंसे देखकर भी नहीं देख सकता। जीव निद्राके वशमें होनेसे देखने, सुनने, सूंघने और बोलनेमें समर्थ नहीं होता तथा स्पर्श ज्ञान और रसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। इस शरीरके बीच कौन प्रसन्न होता, कौन क्रुद्ध होता है, कौन शोक करता और कौन व्याकुल होता हैं, कौन इच्छा करता कौन चिन्ता करता, कौन द्वेष करता है और कौन वाक्य उच्चारण करता है? आप मुझसे उसेही कहिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन् ! मन पञ्चभूतोंसे पृथक् नहीं है। इससे मनके जरिये शारीरक क्रियाका निर्व्वाह नहीं होता। एकमात्र अन्त-रात्माही स्थूल और सूक्ष्म शरीरके कार्य्योंका निर्व्वाह करता है; अन्तरात्माही शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस और दर्शन आदि सब विषयोंको जानता है। वह अन्तरात्माही पाञ्च भौतिक शरीरमें पाञ्चगणोंसे युक्त मनका द्रष्टा है और मनके जरिये सब शरीरके अनुगत होकर सुख दुःखोंका अनुभव करता है। अन्तरात्मा जब देहसे पृथक् होता है तब भौतिक शरीर कुछ भी अनुभव करनेमें समर्थ नहीं होता है। शरीराग्निके शान्त होनेपर जब कि दर्शन स्पर्शन और उष्मभाव कुछ भी नहीं रहता तब शरीर नष्ट होता है, जीवका कदापि विनाश नहीं होता। इसमान् समस्त सन्सार जलमय है, जलही देहधारियोंकी मूर्त्ति है; जलके बीचही चित् स्वरूप मानस ब्रह्मा निवास करते हैं, वेही सर्व्व भूतोंकी सृष्टि किया करते हैं। आत्मा जब प्राकृत गुणों अर्थात् इन्द्रिय और मनसे संयुक्त होता है तब उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव कहा जाता है और जब वह उन गुणोंसे रहित होता है, तब परमात्मा स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है; इसलिये तुम सर्व्वलोकोंके सुख स्वरूप आत्माको मालूम करो। जो पद्मके बीच जलकी बूंद समान शरीरके बीच स्थित होरहा है, उसेही सदा लोक सुखात्मक क्षेत्रज्ञ कहके जानना चाहिये। सत, रज और तम येही जीवके तीन गुण हैं; पण्डित लोग जीवके गुणको सचेतन कहा करते है। वे आत्माके प्रभावसे चेष्टा युक्त होकर सब कार्य्योंमें तत्पर हुआ करते हैं। आत्मज्ञ पुरुष इस जीवको पर-मात्माको परमश्रेष्ठ कहा करते हैं; उसनेही सप्त भुवनकी सृष्टि की है। शरीरके नष्ट होनेसे जीवका नाश नहीं होता, "जीव मर गया"—यह वचन मूर्ख लोग कहा करते हैं। शरीरके पञ्चत्व प्राप्त होनेपर जीव दूसरे शरीरमें गमन करता है; आत्मा इसी प्रकार सर्व्वभू-तोंमें संवृत रहके गूढ़भावसे विचरण करता है; तत्वदर्शी लोग परमसूक्ष्म बुद्धिके जरिये उसे देखनेमें समर्थ होते हैं। विद्वान् पुरुष पूर्व्व और अपर रात्रिमें रत तथा लघु आहार करते हुए पवित्र चित्त होके आत्माके जरिये आत्माको अवलोकन करते है। प्रसन्नतासे शुभाशुभ कर्म्मोंको त्यागकर शुद्धचित्त और आत्मनिष्ठ होनेसे मनुष्य अनन्त सुख भोग कर-नेमें समर्थ होता है। जरायुज आदि शरीरोंमें अग्निकी तरह प्रकाशमान जो पुरुष है वही जीवनामसे विख्यात् है, उसहीसे प्रजापतिकी यह समस्त सृष्टि हुआ करती है।

१८७ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, हे द्विजसत्तम ! पहिले ब्रह्माने अपने तेजसे सूर्य्य और अग्निके समान प्रकाश-युक्त मरीचि आदि ब्रह्मनिष्ठ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया था। अनन्तर उन्होंने ९ सत्य, धर्म्म, तपस्या, शाश्वत, वेद, ५।

आचारका बिधान किया ; देवता दानव गन्धर्व्व दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, मनुष्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इनके अतिरिक्त सब भूतोंके सत, रज और तमोगुणसे युक्त जो सब वर्ण हैं, उनको भी सृष्टि की थी। ब्राह्मणोंका सफेद, क्षत्रियोंका लाल, वैश्योंका पीला और शूद्रोंका काला वर्ण हुआ करता है।

भरद्वाज बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंकी जातिके जरिये यदि वर्णभेद हो, तो सब जातिहो वर्ण सङ्कुरा दृष्टिगोचर हो सकती हैं। काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और श्रम सबमें समान भावसे सम्भव नहीं होता, इसलिये किस प्रकारसे वर्ण बिभिन्न होगा। पसीना, पुरीष, मूत्र, कफ, पित्त और रुधिर सब शरीरोंसे भरता रहता है, इससे किस प्रकार वर्णविभाग हो सकता है। अनेक स्थावर और जङ्गम जातिके वर्ण कई प्रकारके हैं; उन सब बिभिन्न जातियोंके वर्ण किस तरह निर्णय किये जा सकेंगे।

भृगु बोले, सब वर्णोंमे विशेष नहीं है, यह सब जगत् पहिले ब्रह्माके जरिये उत्पन्न होके ब्राह्मणमय था, फिर कर्मके अनुसार बिबिध वर्ण हुए हैं। जो सब ब्राह्मण काम भोगमें अनुरक्त, तीक्ष्णभाव, क्रोधी, साहसी, स्वधर्म-त्यागी और लोहिताङ्ग थे, वेही क्षत्रियत्वको प्राप्त हुए हैं। जो लोग गौओंसे जीविका निर्व्वाह करते हुए कृषिजीवी हुए हैं, और स्वधर्मका अनुष्ठान नहीं करते, उन्हीं पीतव र्णवाले ब्राह्मणोंने वैश्यत्व लाभ किया है; और जो सब ब्राह्मण हिंसा तथा मिथ्यामें रत, सर्व्व-कर्म्मोपजीवी कृष्णवर्ण और पवित्रतासे परिभ्रष्ट थे, वेही शूद्र हुए हैं। इन सब कर्म्मोंसे पृथक् किये गये ब्राह्मण लोगोंने ही वर्णान्तरमें गमन किया है। लोगोंके यज्ञक्रिया आदि धर्म्म सदा प्रतिषिद्ध नहीं हैं। ब्राह्मणोंके चारो वर्णोंमें विभक्त होनेपर भी सबको ही वेदमें अधिकार है, केवल जो लोग भोगके कारण ज्ञानहीन हुए उन शूद्रोंको वेदमें अधिकार नहीं है; इसे विधाताने कहा है। जो सब ब्राह्मण वेदोक्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं और सदा व्रत तथा नियम धारण करते हुए वेदाध्ययन करते हैं, उनको तपस्या नष्ट नहीं होती। जो लोग ब्रह्माके कहे हुए परमश्रेष्ठ वेदसे अनभिज्ञ हैं, वे लोग ब्राह्मण नहीं हैं, बहुतसी जाति उनके समान हैं। पिचास, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकारकी म्लेच्छ जाति ज्ञान विज्ञानसे रहित होकर स्वेच्छाचारी होके कार्य्य किया करती हैं। प्राचीन महर्षियोंने निज तपोबलसे वेदबिहित संस्कारमें रत स्वकर्म्मोंमें निश्चय करनेवाली और भी दूसरी प्रजासमूहको उत्पन्न किया है, आदि देव विधाताकी सृष्टि वेदमूलक अक्षय तथा अव्यय है और मानसीसृष्टि योगानुष्ठान परायण हुआ करती है।

१८८ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे वक्तृवर द्विजोत्तम विप्रर्षि किन कर्म्मोंसे ब्राह्मण होता है, क्या करनेसे क्षत्रिय हुआ करता है और किस तरहके कार्य्योंसे वैश्य तथा शूद्र होते हैं? आप उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, जातधर्म्म सस्कारसे जो संस्कारयुक्त और पवित्र हुए हैं और जिन्होंने वेदाध्ययन किया है; प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजा, आतिथ्य, वा बलि वैश्वदेव, इन षटकर्म्मोंकी क्रिया करते हैं, पवित्रता और आचारसे युक्त पूर्णरीतिसे विघसाशी गुरुजनोंके प्रियपात्र, नित्यव्रती और सत्यपरायण हैं, उन्हीं ब्राह्मण कहा जाता है, जिनमें सत्य, दान, अद्रोह, अनृशंसता, दया, लज्जा और तपस्या है, वेही ब्राह्मण होते हैं। जो युद्ध आदि हिंसा-

कार्य्य किया करते हैं, वेदाध्ययनमें अनुरक्त होते और ब्राह्मणोंको अर्थदान तथा प्रजासमूहसे धन ग्रहण करते हैं, उन्हें ही क्षत्रिय कहा जाता है। जो लोग कृषि और पशुपालन करते दान करनेमें अनुरक्त रहते, पवित्रता और वेदाध्ययनसे युक्त हैं, वेही वैश्य कहाते हैं। जो पुरुष सदा सब वस्तुओंके भक्षणमें ही अनुरक्त, सब कर्म्मोंके करनेमें आसक्त, अपवित्र वेदज्ञानसे रहित और अनाचारी उसेही शूद्र कहते हैं। ब्राह्मणका लक्षण यदि शूद्रमें दीखे तो वैसा शूद्र भी शूद्र नहीं है और ब्राह्मणमें यदि उसके लक्षण न हों, तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जाता। सब उपायोंसे क्रोध और लोभका निग्रह तथा आत्मसंयम ही ज्ञानका पवित्र लक्षण है। क्रोध और लोभ कल्याण नष्ट करनेकोही उत्पन्न हुआ करते हैं, इसलिये उन्हें निवारण करना उचित है। सदा सावधान होके क्रोधसे श्री, मत्सरसे तपस्या, मान तथा अपमानसे विद्या और प्रमादसे आत्माकी रक्षा करनी उचित है।

हे द्विजश्रेष्ठ! जिन्हें सब कर्म्मोंमें कामना नहीं है, और दान विषयमें जिनकी समस्त सम्पत्ति समर्पित हुई है, उसेही त्यागशील और बुद्धिमान् कहा जाता है। सब भूतोंकी हिंसा न करके सबके विषयमें मित्र भाव दिखाते हुए भ्रमण करे, परिजनोंकी बुद्धि पूर्व्वक त्यागके जितेन्द्रिय होवे, शोक रहित स्थान अर्थात् आत्मामें निवास करे तो इस लोक और परलोकमें किसी भयकी सम्भावना न होवे। सदा तपस्यामें रत, दान्त मौनव्रतावलम्बी, संयतात्मा, अजित काम आदिको जय करनेके अभिलाषी और सङ्गके कारण पुत्र कलत्र आदिमें आसक्ति रहित होना योग्य है। इन्द्रियोंसे जिन वस्तुओंका ज्ञान हुआ करता है, उसेही व्यक्त कहते हैं और इसे जानना उचित है, कि सूक्ष्म शरीरके अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थको अव्यक्त हैं। गुरु और वेद वचनमें विश्वास न रहनेसे परम पदार्थ नहीं मिलता; इसलिये विश्वासमें चित्त स्थिर करना उचित है। प्राण उपाधिक "तुम इस पदके अर्थ गोचर जीवात्मामें मन समर्पण करो और जीवात्माको परब्रह्ममें अर्पण करो।" वैराग्यसेही निर्व्वाणपद मिलता है, योगियोंको ध्यान ध्यानादिके सिवाय दूसरी कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण लोग वैराग्यसे सहजमें ही परब्रह्मको पाते हैं। सदा पवित्रता सदाचार और सब भूतोंमें यथायुक्त व्यवहारही ब्राह्मणके लक्षण है।

१८९ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, वेदज्ञानसे सत्यस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, स्वधर्म्मानुष्ठानरूपी तपस्याही सत्य है; सत्यनेही प्रजासमूहको उत्पन्न किया है; सत्यसेही ये सब लोक स्थित हैं, और सत्यसेही लोग स्वर्गमें जाते हैं। सत्यके विपरीत वेदाचारसे पृथक् यथेष्ट आचरणको मिथ्या कहते हैं, वह अज्ञान स्वरूप है; अज्ञानसेही तमोग्रस्त लोगोंकी अधोगति होती है; अज्ञानसे घिर हुए लोग स्वर्ग दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। पण्डित लोग देवताओंके निवासस्थान स्वर्गको प्रकाशमय और तिर्य्यग् जातिके निवास स्थान नरकको अन्धकारमय कहा करते हैं। भूलोक वासी जीव सत्य और मिथ्या दोनोंही प्राप्त करते हैं। लोकमें सत्य और मिथ्याके विषयमें इस प्रकार व्यवहार होता है, कि धर्म्म और अधर्म्म, उजाला और अन्धेरा सुख और दुःख; इसके बीच जो सत्य है, वही धर्म्म है, जो धर्म्म है वही प्रकाश है, और जो प्रकाश है वही सुख है, जो मिथ्या है वही अधर्म्म है, जो अधर्म्म है वही अन्धेरा है जो अन्धकार है, वही दुःख है। इस विषयमें यही कहता हूं; कि बुद्धिमान् लोग शारीरिक

मानसिक सुख दुःख तथा असुखोदयसे परिपूरित लोकसृष्टिको देखकर मोहित नहीं होते। बुद्धिमान् पुरुष दुःख नष्ट होनेके लिये यत्नवान् होवें। इस लोक और परलोकमें प्राणियोंका सुख नित्य नहीं है। जैसे राहुसे ग्रस्त चन्द्रमाकी किरण प्रकाशित नहीं होती, वैसेही अज्ञान युक्त जीवोंके सुखभी अन्तर्हित हुआ करते हैं। वह सुख दो प्रकारका है। शारीरिक और मानसिक लोकमें सुखके लिये ही दृष्ट फलोंकी प्रवृत्ति अविहित होती हैं सुखसे बढ़के त्रिवर्ग फल और कुछ भी नहीं है। सुखही आत्माका गुण विशेष है, सुखहीके लिये धर्म और अर्थमें प्रवृत्ति होती है, धर्म और अर्थसेही सुखकी उत्पत्ति हुआ करती है, सब कार्य्यही सुखके लिये आरम्भ किये जाते हैं।

भरद्वाज बोले, हे ब्रह्मन्! आपने कहा, सुखही परम पदार्थ है परन्तु मैं ऐसा नहीं विचारता। आपने सुखको ही आत्माका गुण विशेष कहा है, परन्तु योगनिष्ठ ऋषि लोग इसकी अभिलाषा नहीं करते। सुनता हूं, कि त्रिलोक विधाता प्रभु ब्रह्मा ब्रह्मचारी होकर अकेले ही तपमें निष्ठावान् रहते हैं। वह कभी काम सुखमें आत्म समाधान नहीं करते और जगत्के ईश्वर भगवान भवानीपतिने सम्मुख आये हुए रतिपतिको अनङ्गभावसे शान्त किया था। इन सब प्रमाणोंको देखकर कहता हूं, कि महानुभाव पुरुष कामसुखमें आसक्त नहीं होते और यह आत्माका गुण विशेष नहीं है; मैं आपके इस वचनमें विश्वास नहीं कर सकता, आपने कहा "सुखसे बढ़के परम वस्तु और कुछ भी नहीं है," फलोदय युक्त लोक प्रवाद दो प्रकारका है, पहला सुकृत, उससे सुखलाभ होता है, दूसरा दुष्कृत उससे दुःख प्राप्त हुआ करता है।

भृगु बोले, इस विषयमें मैं अपना अभिप्राय कहता हूं, अज्ञानसे अन्धकार उत्पन्न होता है वेही तमोग्रस्त लोग क्रोध, लोभ, हिंसा और मिथ्यासे परिपूरित होकर अधर्मका आचरण किया करते हैं, धर्ममार्गमें कदापि नहीं विचरते वे लोग इस लोक और परलोकमें सुख नहीं पाते। अनेक व्याधि रोग और उपतापसे परिपूरित, वध, बन्धन, क्लेश, भूख, प्यास और श्रमजनित उपतापसे उत्तप्त और वर्षा, वायु, गर्म्मी, सर्दीके कारण शारीरिक दुःखोंसे सन्तापित तथा बान्धव, धनके विनाश विप्रयोग जनित मानस दुःख वा जरा मरण जनित शोकोंसे परिपूरित हुआ करते हैं। जो लोग समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे संस्पृष्ट नहीं हैं, वेही सुख अनुभव करनेमें समर्थ होते हैं, स्वर्गमें इन सब दोषोंकी उत्पत्ति नहीं है, वहां सुख स्पर्श सुरभि वायु सदा बहा करती है, भूख, प्यास और श्रम नहीं है; जरा और पापका सम्पर्क नहीं है, स्वर्गमें नित्य सुख है और इस लोकमें सुख दुःख दोनोंही हैं। निरवच्छिन्न दुःखही नरक है; इसलिये पण्डित लोग सुखकोही परम पदार्थ कहा करते हैं। पृथ्वी उन जीवोंकी माता है, स्त्रियां उसके समान हैं, पुरुष प्रजापतिके समान है, उसमें तेजमय शुक्र है। पहिले समयमें प्रजापति ब्रह्माने इसही प्रकार स्त्री पुरुषोंके सहयोगसे लोक सृष्टिका विधान किया है। प्रजा निज निज कर्म्मोंमें आवृत रहके उत्पन्न हुआ करती है।

१६० अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! पुराने लोगोंने दान, धर्म, आचार, उत्तम रीतिसे की हुई तपस्या स्वाध्याय और होमके फलको किस प्रकार कहा है?

भृगु बोले, होमसे पापकी शान्ति होती है स्वाध्यायसे परम श्रेष्ठ शान्ति सुख मिलता है, दानसे भोग और तपस्यासे सुखप्राप्ति हुआ

करते है; यही प्राचीन लोगोंके मत हैं पण्डित लोग दानको दो प्रकारसे कहा करते हैं; पहिला पारलौकिक दूसरा ऐहिक। साधुओंको जो कुछ दान किया जाता है। परलोकमें उसका फल भोग हुआ करता है और दुष्टोंको जो कुछ दान किया जाता है, इस लोकमें उसका फल भोग हुआ करता है। मनुष्य जैसा दान करता है वैसाही फल भोग भी किया करता है।

भरद्वाज बोले, कौनसे अधिकारियोंको कैसा धर्म्माचरण करना चाहिये, धर्म्मका क्या लक्षण है और वह कितने प्रकारका है? इसेही वर्णन करना आपको उचित है।

भृगु बोले, जो बुद्धिमान पुरुष धर्म्माचरणमें नियुक्त होते है। उन्हें स्वर्ग फल प्राप्त होता है और जो लोग विपरीत आचरण करते हैं। वे मोहित होते है।

भरद्वाज बोले, पहिले समयमें ब्रह्माने जिन चारों आश्रमोंका विधान किया है आप उन सब आश्रम वासिओंका व्यवहार वर्णन करिये।

भृगु बोले. सब लोकोंके हित करनेवाले भगवान् ब्रह्माने पहिले धर्म्म रक्षाके निमित्त चार आश्रमोंका निर्देश किया था। उसके बीच गुरु कुलमें निवासरूपी ब्रह्मचर्य्य पहला आश्रम कहा जाता है। इस आश्रममें पूरी रीतिसे पवित्रता संस्कार व्रत नियम दोनों सन्ध्यामें सूर्य्य और अग्निकी उपासना तन्द्रा और आलस त्यागके गुरुको प्रणाम करना; वेदाभ्यास और वेद सुनके चित्तको पवित्र करना; त्रिकाल स्नान करके ब्रह्मचर्य्य अग्नि परिचर्य्या करते हुए गुरुसेवा और नित्य भिक्षा करनी होती है। भिक्षा आदिसे प्राप्त हुई सब वस्तु अन्तरात्माको समर्पण करके गुरु वचन निर्दिष्ट अनुष्ठानके अनुकूल होकर गुरुको कृपासे प्राप्त हुए स्वाध्यायमें रत होना पड़ता है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जो ब्राह्मण पूर्णरीतिसे गुरुकी सेवा करके वेदज्ञान लाभ करता है, उसको स्वर्गफलकी प्राप्ति और मनोकामना सिद्ध होती हैं।

गार्हस्थ्यको दूसरा आश्रम कहते हैं; उसके यथा उचित व्यवहारोंके लक्षण आगे कहता हूं। जिनका गुरुकुलमें वास समाप्त होचुका है, जो भार्य्याके सहित धर्म्माचरणके फलकी इच्छा करते हैं, उन्हीं सब सदाचारी पुरुषोंके लिये गृहस्थाश्रम विहित है। इस आश्रममें धर्म्म, अर्थ, काम, यह त्रिवर्ग प्राप्त हुआ करता है। अनिन्दित कर्म्मोंसे धन उपार्ज्जन अथवा वेद पाठ वा दक्षिणासे प्राप्त हुआ धन, वा ब्रह्मर्षियोंकी भांति उञ्छवृत्ति, अथवा खानसे लाया हुआ धन, वा हव्य-कव्य प्रदानसे दैवको कृपासे प्राप्त हुए धनसे गृहस्थ, गार्हस्थ्य आश्रम निर्व्वाह करे। पण्डित लोग इस आश्रमको सब आश्रमोंका मूल कहा करते हैं। क्या गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, क्या परिव्राजक, क्या दूसरे सङ्कल्पित व्रत नियम धर्म्मके अनुष्ठान करनेवाले पुरुष; और सबके ही इस आश्रममें भिक्षा, अतिथि सत्कार और पुत्र आदिकोंका प्रतिपालन हुआ करता है। वाणप्रस्थ लोगोंके लिये फल मूल आदि सम्पादन गृस्थाश्रमसे ही निभता है। ये सब साधु लोग सुन्दर पथ्य वस्तुओंका भोजन करके वेदपाठमें अनुरक्त होते हैं, ये लोग तीर्थ गमन और विविध देश दर्शनके निमित्त पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। उन्हें देखते ही उठके सम्मुख आना, असूया रहित होके वचन कहना, सुखासन, सुखशय्या और भोजनको सामग्री दान करके सत्कार करना उचित है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जिसके गृहसे आशाके भङ्ग होनेपर अतिथि लौट जाता है वह उसे निज दुष्कृत देकर उसके सञ्चित पुण्यका ग्रहण करके गमन करता है। गार्हस्थ्य आश्रममें यज्ञकर्म्मसे देवता पितृतर्पणसे पितर, विद्याके अभ्यास, श्रवण और धारणासे

ऋषि और पुत्र उत्पन्न करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इस विषयमें दो श्लोक हैं, कि इस आश्रममें सब लोगोंका ही स्नेहयुक्त अथवा सुखदायक बचन कहना उचित है और परिताप पीड़ादान, पुरीष, अवज्ञा, अहङ्कार और दम्भ अत्यन्त निन्दित है। अहिंसा, सत्यबचन और क्रोधहीनता सब आश्रमोंमें ही तपस्या स्वरूप है। गार्हस्थ्याश्रममें माला, आभूषण और बस्त्र धारण, तैल मर्द्दन नित्य उपभोगके योग्य नृत्य, गीत वाद्य आदि सुनना नेत्रको प्रसन्न करने योग्य दर्शनीय बस्तुओंको देखना भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चूस्य आदि विविध खाद्य वस्तुओंके उपभोगसे विहार सन्तोष और काम सुखकी प्राप्ति होती है। गृहाश्रममें रह कर जिनको सदा धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंके सहित सत, रज और तमोगुणकी कृतार्थता होती है, वे इस लोकमें सब सुखोंका अनुभव करके शिष्ट पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होते हैं। जो गृहस्थ उञ्छवृत्ति होकर भी स्वधर्म्माचरणमें रत रहता है और काम सुख तथा सब कर्म्मोंको त्यागता है, उसके विषयमें स्वर्ग दुर्लभ नहीं है।

१६१ अध्याय समाप्त।

भृगु बोले, वानप्रस्थाश्रमी लोग धर्म्मका अनुसरण करके मृग, महिष बराह, शार्द्दूल और जङ्गली हाथियोंसे युक्त निर्ज्जन बनमें तपस्या करते हुए नदी और झरनेमें तथा पुण्य तीर्थोंमें विचरें। वे लोग ग्राम्य, बस्त्र, आहार और उपभोग परित्याग करके सदा बनकी औषधी, फल, मूल और पत्तोंको परिमित रीतिसे अहार किया करें। पृथ्वीही उनका आसन है, भूमि, पत्थर, सिकता, शर्करा, बालुका और भस्महो उनको शय्या है, काश, कुश, चर्म्म और बल्कलही उनके अङ्गके वस्त्र हैं। ये लोग केश, श्मश्रु, नख और लोम धारण करते, यथा समय स्नान करते, पूजा और होमके समयको अतिक्रम नहीं करते। समित् कुश और फूल चुनने तथा सम्मार्ज्जनके समयमेंही बिश्राम लाभ करते हैं; सर्द्दी, गर्म्मी, बर्षा और वायुकी खेलवाड़की तरह सहते रहते इन लोगोंके सब शरीरका चमड़ा विभिन्न होजाता है। विविध नियम पञ्चाग्नि साधन प्रहार सङ्कोच और तीर्थ पर्य्यटनके कारणसे इन लोगोंका मांस, रुधिर, चमड़ा और हड्डी पर्य्यन्त सूख जाती है; ये लोग सतोगुण अवलम्बन करके धैर्य्यशाली होकर शरीर धारण करते हैं। जो लोग इस ब्रह्मर्षि विहित व्रतका सदा आचरण करते हैं, वे अग्निकी तरह दोषोंको जलाकर दुर्ज्जय लोकोंको जय करते हैं। परिव्राजकोंका यही आचार है, कि वे लोग अग्नि, वित्त, कलत्र और शय्या आदि भोग सामग्रियोंके उपभोगसे आत्माको विरत करके स्नेह आशाको त्याग कर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं; वे लोग सुवर्ण लोष्ट्र तथा पत्थरमें समदर्शी होते हैं; धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें असंसक्त बुद्धि; शत्रु, मित्र और उदासीनके विषयमें समदृष्टि, स्थावर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि भूतोंके विषयमें मन, बचन और कर्म्मसे कभी अनिष्ट आचरण नहीं करते; वे लोग गृहमें निवास नहीं करते, पर्व्वत, पुलिन, वृक्षमूल और देवालयोंमें घूमते हुए वास करनेके लिये गांव अथवा नगरमें उपस्थित होते हैं। वे लोग नगरमें पांच रात और गांवमें केवल एक रात्रि निवास किया करते हैं। नगर वा गांवमें पहुंचके असंस्कीर्ण कर्म्मवाले द्विजातियोंके गृहपर प्राण धारणके निमित्त उपस्थित होते हैं। पात्रमें पड़ी बिना मांगी भीख ग्रहण करते हैं; काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता दम्भ, परिवाद, अभिमान और हिंसा रहित होते हैं। इस विषयमें ये सब

श्लोक हैं कि जो लोग मौनव्रत अवलम्बन करके सब भूतोंको अभय दान करते हुए भ्रमण करते हैं, सब जीवोंसे कभी उन्हें भय नहीं उत्पन्न होता। निज शरीरमें स्थित प्राण आदि पञ्च वायुको अग्निहोत्र विधान करके जो ब्राह्मण अग्निकी भांति प्रकाशमान जीवकी परमात्मामें आहुति प्रदान करते हैं, वे भिक्षासे प्राप्त चिताग्निकी हविके जरिये अवश्य परम लोकोंमें गमन करते हैं। जो उत्तम रीतिसे सङ्कल्पित युक्त बुद्धि और पवित्र होकर यथा रीतिसे मोक्षाश्रम अवलम्बन करते हैं, वे द्विजाति अनिन्धन अग्निकी तरह प्रशान्त ब्रह्म लोकमें निवास किया करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! ऐसा सुना जाता है, कि इस लोकके अनन्तर परलोक है, परन्तु यह जाना नहीं जाता, कि वह कैसा है; इस लिये मैं उसे जाननेकी इच्छा करता हूं आप कृपा करके मेरे समीप उसे बर्णन करिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! उत्तर दिशाकी ओर सब गुणोंसे रमणीय, पवित्र हिमालय पर्व्वतकी बगलमें पुण्य और कल्याणकारी जो सब सुन्दर देश हैं, उन्हेंही परलोक कहा जाता है। वहां पर कोई मनुष्य पाप कर्म्म नहीं करते, सदा पवित्र और अत्यन्त निर्म्मल हुआ करते हैं; लोभ मोहको परित्याग करते और उपद्रव हीन होते हैं। वह देश स्वर्गके समान शुभगुणोंसे युक्त है, वहां यथा समय पर मृत्यु होती है, समस्त व्याधि मनुष्योंको स्पर्श नहीं कर सकती। वहांके सब लोग निज स्त्रियोंमें रत रहते, कभी पराई स्त्रीके विषयमें लोभ नहीं करते। द्रव्य सञ्चय लाभके लिये लोभके कारण आपसमें नष्ट नहीं होते। विशेष करके वहां अधर्म्म नहीं है, किसीको किसी विषयमें सन्देह नहीं होता, वहां किये हुए कार्य्योंका फल प्रत्यक्ष प्राप्त होता है; कोई कोई समस्त काम्य वस्तुओंसे युक्त होकर विविध पान आसन और भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त सुन्दर अट्टालिका आश्रय करके उसे सुवर्णादिकोंसे विभूषित करते; किसी किसीका केवल प्राणधारण सम्पन्न होता है। इस लोकमें कोई धर्म्म परायण और कोई पापनिष्ठ कोई सुखी, कोई दुःखी कोई निर्द्धन और कोई धनवान हुआ करते हैं। इस लोकमें श्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है जिस अर्थके जरिये पण्डित लोग भी मोहित होते हैं, मनुष्योंको उस ही अर्थके लिये लोभ उत्पन्न होता है। इस विषय पर धर्म्माधर्म्मके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी वार्त्ता हुआ करती है, जो बुद्धिमान मनुष्य उन सब बातोंको जानते हैं, वे पाप पङ्कमें लिप्त नहीं होते। जो दम्भके सहित अभिमान स्तेय परिवाद असूयापर पीडन हिंसा पिशूनता और मिथ्या आचरण करते हैं उनकी तपस्या नष्ट होती है और जो विद्वान् पुरुष इन सबका आचरण नहीं करते, उनकी तपस्याकी वृद्धि हुआ करती है। इस लोकमें धर्म्माधर्म्म कर्म्मोंका अनेक भांतिसे विचार हुआ करता है। इस लोकमें यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, यहांपर शुभाशुभ कर्म्म करनेसे शुभ कर्म्मोंसे शुभफल और अशुभ कर्म्मोंसे अशुभ फल प्राप्त होता है। पहिले प्रजापतिने देवताओं और ऋषियोंके सहित इस लोकमें यज्ञ और तपस्या करके पवित्र होकर हिमशैलके निकटवर्त्ती ब्रह्मलोकको प्राप्त किया था। पृथ्वीका उत्तर भाग अत्यन्त पुण्ययुक्त और शुभ मय है; इस लोकमें जो सब पुरुष पुण्यकार्य्य करते हैं वे लोग दूसरी बार वहां पर उत्पन्न हुआ करते हैं। दूसरे लोग तिर्य्यग् योनिमें सत्कार लाभकी इच्छा करके परमायुको क्षय करते हुए इस पृथ्वीपर नष्ट होते हैं, कितने ही लोभ मोहसे युक्त और परस्पर भक्षणमें आसक्त होकर इस लोकमें ही दशान्तरोंमें परिणत होते हैं; वे लोग उत्तर दिशामें स्थित परलोकमें गमन नहीं करते। जो सब

विद्वान् पुरुष सदा ब्रह्मचर्य्यमें रत रहके गुरु-सेवा करते हैं, वे लोग सब लोकोंकी गति मालूम करते हैं। मैंने ब्रह्मनिर्म्मित यह संक्षिप्त धर्म्म विषय कहा, जो लोगोंके धर्म्म और अधर्म्मके विषयको जानते हैं, वेही बुद्धिमान् हैं।

भीष्म बोले, परम धर्म्मशील प्रतापवान् भरद्वाज महर्षिने भृगुसे इतनी कथा सुनके विस्मय युक्त चित्तसे उनकी पूजा की थी। हे महाप्राज्ञ महाराज! यही मैंने तुमसे विस्तारके सहित जगत्की उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है, फिर क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१८२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित धर्म्मज्ञ पितामह! मैं आपके कहे हुए आचरणकी विधि सुननेकी इच्छा करता हूं; आप सर्व्वज्ञ हैं, यह मुझे अविदित नहीं है।

भीष्म बोले, जो लोग दुराचारी दुष्ट-चेष्टायुक्त और प्रिय साहसी हैं, वेही दुष्ट कहके विख्यात् हैं; परन्तु आचार ही साधुओंका लक्षण है। जो लोग राजमार्ग, गोष्ठ और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते वेही शुद्ध आचारसे युक्त हैं। आवश्यक शौच और देवताओंका तर्पण करके जलस्पर्श करके नदीमें स्नान करे, प्राचीन लोगोंने इसे ही मनुष्योंका धर्म्म कहा है। सदा सूर्य्यकी उपासना करे, सूर्य्यके उदय होनेपर कभी न सोवे; सन्ध्या और सवेरेके समय पूर्व्व और पश्चिम मुख होकर सन्ध्याके उपलक्षमें स्वगृह्योक्त मन्त्रके सहित सावित्रीका पूजन करे। पूर्व्वकीओर होकर मौनभावसे दोनों पैर, दोनों हाथ और मुख धोकर भोजन करे; अभक्ष्य अन्न आदिकी निन्दा करे, सुस्वाद वस्तुओंका स्वाद लेते हुऐ भोजन करे, भोजनके अनन्तर हाथ धोके उठे रातमें भीगे पैरसे न सोवे; देवर्षि नारदने इसी प्रकार आचारका लक्षण कहा है। यज्ञ आदि पवित्र स्थान, वृषभ, देवता, गऊ, चौपाये, धर्म्मात्मा ब्राह्मण और चैत्य आदि देवस्थानको देखकर प्रदक्षिणा करे। सब प्रकारसे अतिथि, स्वजन और सेवकोंके सहित समान रीतिसे भोजन करना गृहस्थोंके लिये प्रशंसनीय है। मनुष्योंको दिन और रात्रिमें भोर और सन्ध्याके मध्यान्हकालमें भोजन करनाही देवनिर्द्दिष्ट है; सवेरे और सन्ध्याके समय भोजन करना मना है इसी तरह यथा समयमें जो लोग भोजन नहीं करते उन्हें उपवासका फल नहीं मिलता, होमके समय होमकारी और एक पत्नीक होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे सहवास करनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचारी समान होते हैं।

ब्राह्मणोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जननी हृदय समान हितकर और अमृत रूपसे ऋषियोंने वर्णन किया है; इससे सब लोग सब त इसे उनकी उपासना करें साधु लोग आहार शुद्धिसे सत्वशुद्धि लाभ करते हुए सत्य स्वरू परब्रह्मको पाते हैं। यज्ञकी वेदी बनानेके लि जो मनुष्य ढेलोंको मर्द्दते और तृण काटते त नखसे छेदन करते हुए यज्ञसे बचे हुए मांसक भक्षण करते हैं, जिनके पिता, पितामह आदि किसीने सोमपान नहीं किया, वैसे ब्राह्मण यदि सदा सोमपान करते और जो काम मोहके वशमें होकर अस्थिर होते हैं, वैसे मनुष्य इस लोकमें दीर्घपरमायु नहीं पाते। यजुर्व्वे जाननेवाले अध्वर्य्यु मांस भक्षणसे निवृत्त होकर यज्ञके संस्कृत मांसको भी परित्याग करें, इस वृथा मांसको त्याग दें और श्राद्धसे विधि मांस भोजन भी निषिद्ध है। गृहस्थ लोग स्वदेश और परदेशमें कभी अतिथिको भूखा न रखें भिक्षा आदि काम्य कर्म्मोंके फल अन्न आदि मिलनेपर पिता माता आदि गुरुजनोंके समीप उसे उपस्थित करे; बड़े लोगोंको आसन देना और प्रणाम करना उचित है। मनुष्य और

गुरुजनोंकी पूजा करके परमायु यश और सम्पत्तिसे युक्त होते हैं। उदय शील सूर्य्यका दर्शन न करे; वस्त्र रहित स्त्रीकी ओर देखना उचित नहीं है। निज स्त्रीसे ऋतुकालमें धर्म्म-मैथुन निर्ज्जन स्थानमें करना योग्य है। सब तीर्थोंके बीच रहस्यही उत्तम तीर्थ है पवित्र पदार्थोंमें अग्नि परम पवित्र है; आर्य्य पुरुषोंके आचरित सब विषयही श्रेष्ठ हैं; गो पूंछकी स्पर्श आदि कार्य्य भी पवित्र कहके वर्णित हैं। ब्राह्मणोंको जब देखे तभी उनसे सुखप्रश्न करे, सन्ध्या और सबेरेके समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करना कर्त्तव्य कर्म्म कहा गया है। देवस्थान गौओंके बीच, ब्राह्मणोंके श्रौतस्मार्त्त कर्म्मोंके अनुष्ठान वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् उपवीत युक्त होवे। जैसे श्रेष्ठ पुरुषकी वस्तु, उत्तम खेती कर्म्म और धान्य आदि शस्योंके निमित्त तत्पर रहनेसे प्रत्यक्ष फल दीखता है, वैसे ही सबेरे और सन्ध्याके समय विधिपूर्व्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे दिव्य स्त्री और अन्नपान आदि प्राप्ति स्वरूप अभिलषित फल मिलता है। भोजनकी सामग्री दी जाने पर दाता कहे "सम्पन्न है," दान लेनेवाला "सुसम्पन्न है" ऐसा वचन उच्चारण करें। और पीनेकी वस्तु दान करनेके समय दाता "तर्प्यण" और दान लेनेवाला "सुतर्प्यण" ऐसा वचन उच्चारण करें। पायस यवान्न और कृशर दानके समय दाता सुस्मृत, यह वचन कहे। श्मश्रु कर्म्म स्रुत, स्नान और भोजन करने तथा पीड़ित पुरुषोंको देखनेसे आयुकी वृद्धि होवे कहके अभिनन्दन करे; सूर्य्यके सम्मुख देखना उचित नहीं; स्त्रियोंके सङ्ग एकत्र सोना और एकत्र भोजन न करे। जेठे भाई आदिको "तुम" कहके वार्त्ता न करे; समान और छोटे पुरुषको "तुम" कहना दोष युक्त नहीं है। पापियोंका अन्त करणही उनके किये हुए पाप कर्म्मोंका प्रकाश कर देता है अर्थात् उनके मुख और नेत्रविकार आदिसे भीतरी मनके भाव प्रकाशित हुआ करते हैं जो लोग महाजनोंके समीप जानके अपने पापकर्म्मोंको छिपाते हैं, वे अवश्यही नष्ट होते हैं। मूर्खलोग किये हुए पापोंको जान कर छिपाया करते हैं। मनुष्योंके न देख सकनेपर भी देवता लोग उसे देखते हैं, पापसे छिपा हुआ पापकर्म्म पापहीका अनुगमन करता है; धर्म्मके जरिये छिपा हुआ धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण किया करता है, धर्म्मात्माओंके आचरित धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण करते है। इस लोकमें मूढ़ पुरुष अपने किये हुए पापोंको स्मरण नहीं करते, परन्तु शास्त्रीय इतिकर्त्तव्यताविमूढ़ पुरुषोंके निकट वह पाप उपस्थित होता है। जैसे राहु चन्द्रमाके निकटवर्त्ती होता है, वैसेही पापकर्म्म मूढ़ मनुष्योंका आश्रय करता है। आशाके जरिये सञ्चित वस्तु अत्यन्त दुःखसे उपभुक्त होती है, ज्ञानवान् मनुष्य इसकी प्रशंसा नहीं करते, मृत्यु कभी किसीकी प्रतिज्ञा नहीं करती। विद्वान पुरुष सब जीवोंके मानसको ही धर्म्म कहा करते हैं; इससे मनसे सब जीवोंके मङ्गलका आचरण करे। अकेला ही धर्म्माचरण करे, धर्म्म साधन विषयमें किसीके सहायताकी उपेक्षा न करे; धर्म्म रहित मानसमें विधिलाभ पूर्व्वक सहायता मिलनेसे क्या होगा। धर्म्म ही मनुष्योंकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण है; धर्म्म ही सुरपुरमें देवताओंका अमृत है, मनुष्य लोग परलोकमें जानेपर अपूर्व्व देह पाके धर्म्मसे ही निरन्तर परम सुख भोगते हैं।

१६३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! चित्तको अवलम्बन करके जो यागकर्म्म चिन्तनीय हुआ करता है उसे अध्यात्म कहते हैं यह सामान्यरीतिसे मुझे मालूम है, परन्तु वह अध्यात्म

क्या है और किस प्रकारका है। आप मुझसे उसे ही कहिये। हे ब्रह्मवित्! यह स्थावर जङ्गमात्मक सन्सार किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयकालमें किसमें जाके लीन होता है। इस समय मेरे समीप उसे ही वर्णन करना योग्य है।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! तुम जो मुझसे अध्यात्म विषय पूछते हो, वह तुम्हारे लिये कल्याणकारी और सुखदायक है। इसलिये मैं उस विषयको वर्णन करता हूं, पहिले समयके आचार्य्योंने परमात्माको सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण स्वरूप कहके वर्णन किया है। इस लोकमें मनुष्य जिसे जानकर प्रसन्न और सुखी होते तथा सर्व्व कामका प्राप्तिरूपी फल लाभ किया करते हैं,—उस अध्यात्मज्ञानसे आत्महितकर विषय दूसरा कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही सर्व्वमय है; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पांचोको महाभूत कहते हैं, परमात्मा ही इन पांचो भूतोंको उत्पत्ति और प्रलयका कारण है। जैसे लहर समुद्रसे ही उत्पन्न होकर उसहीमें लीन होती हैं, वैसे ही पृथिवी आदि महाभूत आनन्द स्वरूप अधिष्ठान परब्रह्मसे उत्पन्न होकर बार बार उसहीमें लीन होते हैं। जैसे कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है वैसे ही सर्व्व भूतमय आत्मा सब भूतोंको उत्पन्न करके फिर उनका संहार करता है। प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरने सब भूतोंके शरीर आदिमें पञ्च महाभूतोंको स्थापित किया है और स्थापित करके उनमें वैसम्यभाव कर दिया है, शरीर आदिकोंमें आत्माभिमानी जीव उसे नहीं देखता, शब्द, श्रोत्र और छिद्र ये तीनों आकाश योनिज हैं, स्पर्श, चेष्टा और त्वचा, ये तीनों वायु योनिज हैं, नेत्र और अन्न आदिके परिपाक स्थान ये तीनों विषय अग्निसे प्रकट हुए हैं; ज्ञेय, घ्राण और शरीर, ये तीनों भूमिके गुणसे उत्पन्न हुए हैं; पांच महाभूत हैं, मनको छठवां गिनते हैं। हे भरतकुल प्रदीप! सब इन्द्रियें और मन विज्ञान कहके वर्णित हुआ करते हैं बुद्धि इनकी सातवीं श्रेणीमें है; साक्षी स्वरूप क्षेत्रज्ञ आठवां कहा जाता है। नेत्र आदि इन्द्रियोंसे विषयोंकी आलोचना करके मन सन्देह करता है, निश्चय करनेवाली चित्त वृत्तिका नाम बुद्धि है, क्षेत्रज्ञ साक्षीकी तरह निवास करता है। पैरके तलुएसे ऊर्द्ध स्थित शरीरके ऊपर और नीचे सब स्थलोंमें साक्षी चैतन्य व्यापक भावसे निवास करता है, बाहरी हिस्सेमें जो कुछ दृश्यमान शून्य स्थान हैं, वह साक्षी चैतन्यसे परिव्याप्त हैं। सब इन्द्रियें मन और बुद्धि आदिकी सब तरहसे पुरुषोंको परीक्षा करनी उचित है; तम, रज और सतोगुण भी इन्द्रियोंके आश्रित हैं; मनुष्य बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जीवोंकी इसी प्रकार उत्पत्ति और लयके विषयको विचारकर धीरे धीरे परम शान्ति लाभ करते हैं। तम आदि गुणोंके जरिये बुद्धि बार बार विषयोंमें उपस्थित हुआ करती है, इसलिये बुद्धिही षष्ठेन्द्रिय मन स्वरूप है। बुद्धिके अभावमें सत्वादि गुणोंके सत्ताकी सम्भावना नहीं होती; इसी प्रकार ये स्थावर जङ्गम सब बुद्धिमय हैं, बुद्धि नाश होने पर सब नष्ट होते हैं, और बुद्धिके प्रभावसे ही सब उत्पन्न हुआ करते हैं; इसही कारण वेदमें समस्त बुद्धिमय कहा गया है। बुद्धि जिस द्वारसे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं, जिससे सुनती, उसे कान कहते हैं, जिससे सूंघती उसका नाम नाक है, जिससे रसका ग्रहण करती, उसे जिह्वा कहते हैं और त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है। बुद्धि एक ही बार विकृत होती है, जब वह किसी विषयकी कामना करती है, तब उसे मन कहा जाता है, बुद्धिके पांच निवास स्थान हैं, इन पांचोंको पञ्च इन्द्रिय अर्थात् बुद्धिके रहनेसे नेत्र आदि

इन्द्रिय रूप आदिका दर्शन करती हैं। बुद्धिसे अदृश्य चिदात्मा प्रागुक्त इन्द्रियोंमें निवास करता है। पुरुषाधिष्ठित बुद्धि सत, रज, तम इन तीनोंभावोंसे वर्त्तमान रहती है; इसहीसे कभी प्रीतिलाभ करती, कभी दुःख पाती है, कभी सुख तथा दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती। मनुष्योंके मनमें इसी प्रकार बुद्धि तीनोंभावोंमें निवास किया करती है। नदियोंको पूर्ण करनेवाले तरङ्गमालायुक्त समुद्रकी वीचिमालासे जैसे सब नदिया तिरोहित होती हैं, वैसेही सुख दुःख, मोह आदि सर्व्व भाव स्वरूपी बुद्धि सुख, दुःख, मोह आदिको अतिक्रम किया करती है। बुद्धि सुख दुःख आदिसे अतिक्रान्त होकर सत्तामात्र मनोवृत्तिको अवलम्बन करके निवास करती है; शिवमें उत्थानके समय प्रवर्त्तमान रज बुद्धिका अनुगमन किया करता है; तब वैसी बुद्धि इन्द्रियोंको प्रवर्त्तित करती है, प्रीति स्वरूपी सत्त्वात्मिका बुद्धि विषयोंके यथार्थ ज्ञानको सिद्ध करती है, रजोगुण शोकात्मक और तमोगुण मोह स्वरूप कहके वर्णित हुए हैं। हे भारत। इस लोकमें इन्हीं सत, रज, तम, तीनों भावोंमें शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषय आदि जो सब भाव वर्त्तमान हैं, वे सभी बुद्धिके आश्रय हैं; यह मैंने तुम्हारे समीप व्याख्या की है, और बुद्धिमान् पुरुषोंको इन्द्रिय जीतना उचित है, इसे भी विस्तार पूर्व्वक कहा है। सत, रज और तम ये तीनों गुण सदा प्राणियोंमें स्थित होरहे हैं, और सात्विकी, राजसी तथा तामसी, ये तीन प्रकारकी पीड़ा भी सब प्राणियोंमें दीख पड़ती हैं। सतोगुण सुख युक्त और रजोगुण दुःख युक्त है, ये दोनों तमोगुणके सहित मिलकर व्यवहारिक हुआ करते हैं। शरीर और मनको जो प्रीति युक्त हुआ करती हैं, उसे सात्विकभाव कहा जाता है, और जो आत्माको अप्रसन्न करनेवाला तथा दुःखमिश्रित है, वह रजोरूपसे प्रवृत्त है, दुःखकी खोजके कारण भय युक्त होके उस विषयकी चिन्ता न करे। दूसरे जो मोह युक्त अव्यक्त विषय, अप्रतर्क्य और अविज्ञेय है। उसे ही, तमोगुण कहके निश्चय करे। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त चित्तका आदि सात्विक गुण कदाचित प्राप्त हुआ करते है।

अप्रसन्नता, परिताप, शोक, लोभ और क्षमा, ये सब रजोगुणके लक्षण कभी कारण कभी अकारणसे ही दीख पड़ते हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा, इस प्रकारके विविध तामसगुण कदाचित उपस्थित होते हैं जिनका मन दुर्लभ वस्तुओंमें भी आसक्त, अनेक विषयोंमें युगपत् पतित होनेमें समर्थ, "दीह" यह दीनता युक्त वचन संशयात्मक और निरुद्ध वृत्तिक है, वे मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें सुखी होते हैं। सूक्ष्म बुद्धि और साक्षी चैतन्य क्षेत्रज्ञके इस महत् अन्तरको देखो, तप्ताय पिण्डवत् इतरेतर अविचार निबन्धन बुद्धि, अहङ्कार आदि सब गुणोंको उत्पन्न करती है, साक्षी चैतन्य स्वयं निर्लिप्त रहके कुछ भी उत्पन्न नहीं करता; बुद्धिके सब कार्य्योंको देखता है। मसक और उदुम्बर जैसे सदा संप्रयुक्त हैं, वैसे ही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ सदा परस्पर संप्रयुक्त होते हैं। जैसे जल और मछली सदा संयुक्त हैं, वैसेही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ निरन्तर संयुक्त रहनेपर भी स्वभावके जरिये पृथक् भूत हुआ करते है। अहङ्कार आदि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु आत्मा सब गुणोंको ही जानता है। क्षेत्रज्ञ पुरुष देह, अहङ्कार आदिका द्रष्टा होकर भी अविद्याके कारण "मैं गोर, मैं काण, मैं सुखी, मैं कर्त्ता" इत्यादि अभिमान किया करता है। परमात्मा, घटाच्छन्न दीपककी भांति निश्चेष्ट और ज्ञानहीन पञ्चइन्द्रिय, मन और बुद्धिके जरिये विषयोंको प्रकाशित करता है। बुद्धि अहङ्कार आदिकी सृष्टि करती है; क्षेत्रज्ञ उसे पूर्व

रीतिसे देखा करता है, इसलिये बुद्धि और आत्माका सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। आत्मा असङ्गत और निर्गुण है, इसहीसे बुद्धिका आश्रय नहीं है, और स्वयं निज महिमासे निवास करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका आपसमें आश्रयाश्रय भाव सम्बन्ध नहीं है। बुद्धि मनकी सृष्टि करती है, परन्तु मूलभूत तीनों गुण कदापि उससे नहीं उत्पन्न हुए हैं; इससे मनकी सृष्टि आरम्भ करके बुद्धिका कार्य्य प्रवर्तित हुआ करता है। घड़ेके बीच जलते हुए दीपककी भांति जब आत्मा मनसे इन्द्रिय वृत्तियोंको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस ही समय वह बुद्धिके निकट प्रकाशित होता है। जो लोग स्वभाविक कर्म्म सन्न्याससे सदा आत्मरत, मननशील और सब भूतोंके आत्मरूप होते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है। जैसे हंस आदि जलचर पक्षी जलमें भ्रमण करके उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही कृतबुद्धि पुरुष सब भूतोंमें स्थिति किया करते हैं। मनुष्योंका यह स्वभाव ही है, कि वे निज बुद्धि बलके सहारे शोकरहित, अप्रहृष्ट, मत्सररहित और सब भूतोंमें समदर्शी होकर विहार करते हैं। जैसे उर्णनाभ निमित्त और उपादान होकर सूती बनाती है, वैसेही स्वभाव-योगयुक्त विद्वान् पुरुष देहेन्द्रियादिकोंसे अभेद ज्ञान जनित परस्वरूपता परित्याग करके भूतभौतिक गुणोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये सत्वादि गुणोंको धागेके समान जानना चाहिये। गुणोंके प्रध्वस्त होनेपर निवृत्ति नहीं होती, प्रत्यक्षमें निवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये वह परोक्ष विषय अनुमानसे सिद्ध होता है। अनेक जीववादी पुरुष व्यवहारके अनुरोधसे इसही प्रकार निश्चय करते हैं; एक जीववादी बुद्धिमान् पुरुष निवृत्तिको ही अज्ञानकृत प्रपञ्च कहा करते हैं। ऊपर कहे हुए दोनों विषयोंकी आलोचना करके निज बुद्धिके अनुसार ध्यानसे प्रत्यक्ष करे। इसही प्रकार जलते हुए लोहेकी तरह बुद्धि और क्षेत्रज्ञके परस्पर मेलके कारण क्षेत्रज्ञमें बुद्धि, धर्म्म, दुःख आदि और बुद्धिमें क्षेत्रज्ञके धर्म्म सत्वचित्त आदि दीख पड़ते हैं। तत्व जिज्ञासु मनुष्य इस बुद्धिभेदमय दृढ़ हृदयग्रन्थि छुड़ाकर सुखसे निवास किया करते हैं, संशयोंके कट जानेपर फिर वे शोक प्रकाश नहीं करते। जैसे विशिष्ट विद्यायुक्त पुरुष पवित्र नदमें स्नान करके सिद्धिलाभ करते हैं, वैसेही मलिन मनुष्य विज्ञान अवलम्बन करके सिद्धि लाभ किया करते हैं, इसलिये इस जगत्में ज्ञानके समान पवित्र पदार्थ दूसरा कुछ भी नहीं है। जो लोग महानदीके पार जानेका उपाय जानते हैं, वे उसके निमित्त शोक नहीं करते; और जो लोग उस विषयमें अनभिज्ञ हैं, वे उस विषयमें शोकित हुआ करते हैं, तत्वज्ञ पुरुष कदापि परितापित नहीं होते, उपाय जाननेसे वे पार होते हैं। इसी प्रकार जो लोग हृदयाकाशमें निर्व्विषय श्रेष्ठज्ञानकी आलोचना करते हैं, वे कृतार्थ होते हैं। मनुष्य जीवोंकी यह उत्पत्ति और लयके विषयोंको जानके बुद्धिसे धीरे धीरे आलोचना करके अनन्त सुख भोग करते हैं। धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग नाशमान हैं, यह जिन्हें विदित है, किये हुए कार्य्य अर्थात् काम सुख आदि अनित्य हैं, यह जानके जो लोग उन्हें परित्याग करते हैं, वे श्रवण मननके जरिये निश्चय करके ध्याननिष्ठ और तत्वदर्शी होकर आत्मदर्शनसे ही सब कामना लाभ करके निरुत्सुक रहते हैं। अकृतबुद्धि मनुष्योंको अनिवार्य्य और रूप रस आदि निज निज विषयोंसे विभागके अनुसार विनिष्ट इन्द्रियोंके जरिये आत्माका दर्शन नहीं किया जाता। मनुष्य इसे जानके बोधयुक्त होते, इससे बढ़के बोधका लक्षण और कौनसा है। मनीषी पुरुष इसे ही जानके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं। रस्सीमें सर्पभ्रम आदि जिस प्रकार

मूर्ख पुरुषोंको महत् संसार दुःख हुआ करता है, विद्वान् मनुष्योंको उससे भयकी सम्भावना नहीं होती। मैंने जो कहा है, कि मुक्ति ही सबकी गति है, उससे बढ़के किसीके विषयमें और उपाय कुछ नहीं है; तब शम, दम आदि गुणोंकी प्रधानतासे मुक्तिकी अतुल्यता होती है; ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। जो निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उन निष्काम कर्म्म करनेवालोंके कर्म्म पूर्व्वके किये हुए दोषोंको नष्टकरते है; पूर्व्वकृत अथवा वर्त्तमानके किये हुए कर्म्म ज्ञानी कर्त्ताको प्रिय वा अप्रिय नहीं होते। परीक्षक मनुष्य काम, क्रोध आदि व्यसनोंसे जर्जरीकृत लोगोंको धिक्कार प्रदान करते हैं; वह धिक्कार इस लोकमें आतुर पुरुषोंको निन्दित कर रखता है और परलोकमें उसे तिर्य्यग् योनिमें उत्पन्न करता है; जनसमाजमें पूर्णरीतिसे अभिनिवेश पूर्व्वक देखो, आतुर लोग मरे हुए स्त्री पुत्रादिकोंके निमित्त अत्यन्त शोक प्रकाश करते हैं, और जो लोग सार असार विवेकमें निपुण हैं, वे उस विषयमें शोकरहित होकर निवास करते हैं; इससे जो लोग क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति इन दोनों विषयोंको जानते हैं, वेही ज्ञानियोंके गमन करने योग्य पद प्राप्त करते हैं।

१९४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पृथापुत्र! मैंने तुमसे आत्मतत्व विषय कहे, अब उसके जाननेका उपाय चार प्रकारके ध्यानयोगका विषय कहूंगा, महर्षि लोग इसे जानके इस लोकमें शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करते हैं। ध्यान जिस प्रकारसे भलीभांति अनुष्ठित हो, योगी लोग वैसाही किया करते हैं। हे पार्थ! ज्ञानसे तृप्त निर्व्वाणनिष्ठ चित्तवाले महर्षि लोग संसारके दोषोंसे छूटकर फिर लौटके संसारमें नहीं आते; वे लोग जन्म दोषसे रहित होके आत्मस्वरूपमें निवास करते हैं; वे सर्द्दी, गर्म्मी आदि द्वन्द्वोंके सहनेवाले सदा स्वप्रकाशमें स्थित लोभ आदिसे रहित, निष्परिग्रह और शौच सन्तोष आदि विषयोंमें निष्ठावान् होते हैं, स्त्रियोंमें आसक्तिहीन, प्रतिपक्ष रहित, मनके शान्तकारी स्थानमें इन्द्रियोंको एकत्रित कर काष्ठकी भांति बैठके और मननशील होकर ध्यानके जरिये संश्लिष्ट मनको एकाग्र रूपसे धारण करते हैं। योगी पुरुष कानसे शब्द ग्रहण, त्वचासे स्पर्श ज्ञान, नेत्रसे रूप और जीभसे रस मालूम नहीं करते और ध्यानके जरिये सब ध्येय विषयोंको परित्याग करते हैं। योग बलशाली पुरुष श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियोंको प्रमथन करनेवाले इन शब्द आदि विषयोंकी कामना नहीं करते। शेषमें बुद्धिमान् योगी मनमें श्रोत्र आदि पञ्चवर्गोंको निग्रहीत करके, पांचो इन्द्रियोंके सहित मिलकर भ्रान्त मनको स्थिर करते हैं। धीर योगी पहले विषयोंमें भ्रमणशील देहादि अवलम्बन शून्य पञ्च द्वार और चञ्चल मनको ध्यानपथसे हृदयाकाशमें स्थित करें। इन्द्रियोंके सहित मनको पिण्डी कृत करता है, यह ध्यान पथ मुख्य रीतिसे मेरे जरिये वर्णित हुआ है। जैसे घूमती हुई बिजली बादलोंके निकट स्फूर्त्ति युक्त हुआ करती है वैसेही वह मन, बुद्धि और पञ्च इन्द्रिय यह सप्ताङ्ग स्वरूप आत्माका षष्ठांश मन ध्यानके समयमें भी स्फुरित हुआ करता है। जैसे कामलके पत्ते-पर स्थित चपल जलबिन्दु सब तरहसे चञ्चल रहता है, ध्यानमार्गमें वर्त्तमान योगीका चित्त पहले वैसे ही तरल हुआ करता है। मन ध्यानपथमें स्थिर होकर क्षणभर स्थित रहता है, फिर वायुमार्गको पाके अनेक प्रकारके रूप दिखाते हुए वायुकी भांति भ्रमण किया करता है। ध्यानयोगके जाननेवाले योगी निर्व्वेद शून्य, शं परिश्रम त्यागके और मत्-

रता हीन होकर ध्यानके जरिये फिर चित्तको स्थिरकरते हैं। समाधि करनेमें उद्यत मनन-शील मनुष्योंके मनमें अधिकारी भेदसे ध्यानके पहिले विचार, विवेक और वितर्क उपस्थित होता है; उसमेंसे पहले अधिकारियोंके अन्तः-करणमें मनसे कल्पित पीताम्बर आदि विग्र-होंमें जो चित्तका प्रणिधान होता उसे विचार करते हैं, इस विचारसे आलम्बन स्वरूप स्थूल विग्रहके एक एक अंशको परित्याग कर ध्येय वस्तुके एक अवयवभूत चरण आदिको विचारते विचारते विवेक उपस्थित होता है। उस विवे-कके जरिये ईश्वरत्वरूपसे चिन्तितन्य मूर्त्तिका जड़त्वभाव दूर होकर चेतमात्रकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रकार विवेकसे निर्गुण पर-ब्रह्म विषयका ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये मननशील मनुष्य मनके जरिये क्लेशित होकर भी समाधि किया करते है, वे कदापि निर्व्वेद प्राप्त नहीं होते, अपने हित कार्य्यमेंही नियुक्त रहते हैं। जैसे पांशु, भस्म और शुष्क गोमयसे सञ्चित चिता सहसा जलसे भींगनेपर पहिले उनका कैसा रूप था, उसकी कल्पना नहीं की जाती, और शुष्कचूर्ण पदार्थ अल्पस्नेहके कारण पहिले अभिभावित रहके फिर बहुत समय तक जलसे क्लिन्न होकर क्रमसे मूर्त्ताकार धारण किया करते हैं, वैसे ही इन्द्रियोंको धीरे धीरे मूर्त्ताकारमें योजित और क्रमशः संहार करे, जो ऐसा करते हैं वेही सम्यक रूपसे प्रशान्त होसकते हैं, हे भारत! स्वयं बुद्धि, मन और पञ्च इन्द्रियोंको सदा अभ्यस्तयोगके जरिये पहले ध्यानमार्गमें स्थापित करके दग्धेन्धन अग्निकी तरह आप भी शान्त होवे, अर्थात् ब्रह्माकार चित्तवृत्ति दूसरी समस्त वृत्तियोंको प्रशान्त करती हुई निर्म्माल्यकी भांति स्वयं शान्त हुआ करती है। सर्वाङ्ग शुद्ध सार्व्व भौम पद आदि ऐहिक सुख और हिरण्यगर्भ आदि पारलौकिक सुख निरुद्ध चित्तवाले योगीके सुखके समान नहीं हैं। योगी लोग उस ही परम सुखसे युक्त होकर ध्यान कार्य्यमें अनुरक्त रहते हैं, वे लोग इसी प्रकार निरामय निर्व्वाण पद लाभ किया करते हैं।

१९५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमान! आपके कहे हुए चारों आश्रमोंके हितकर धर्म्म, राजधर्म्म, विभिन्न प्रकार अनेक विषयोंके इतिहासों और धर्म्म युक्त सब कथा मैंने सुनी अब मुझे किसी विषयमें सन्देह है, आप उस विषयमें उपदेश दान करनेके उपयुक्त है। हे भारत! मैं जाप-कोंके फलप्राप्ति विषयको सुननेकी अभिलाषा करता हूं। हे पापरहित! शास्त्रमें जापक लोगोंके लिये कैसा फल वर्णित है? जापक लोग कहां निवास करते हैं जापकी भी कैसी विधि है। आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये। "जापक" इस शब्दके जरिये वेदान्त विचार, अथवा चित्तवृत्ति निरोध वा कर्म्म, इन सबका प्रकाश अर्थात् विचार युक्त कर्म्म और आचार वर्णित हुआ करता है, अथवा यह ब्रह्मयज्ञ विधि रूपसे कहा जाता है। यह सब मेरे समीप वर्णन करिये, आपको मैं सर्व्वज्ञ समझता हूं।

भीष्म बोले, पहिले, समयमें यम और किसी ब्राह्मणसे आपसमें जो वार्त्ता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। मोक्षदर्शी महर्षियोंने जिसे सांख्य और योग कहा है, उसके बीच सांख्यमें जप क्रिया त्यागका विषय ही वर्णित हुआ है; क्यों कि सांख्य मतके अनुयायी सब वेदान्त वचन परब्रह्म पर्य्यवसन्न हैं; वे सब उपासना आदि विधि पर नहीं हैं तब सब देववाक्य निवृत्ति प्रधान, शान्त और ब्रह्मपरा-यण हैं। प्रमाणान्तरोंसे न मालूम होने योग्य

ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानरूप कैवल्य पदलाभके कारण वेदान्तवाक्य जपकी उपेचा नहीं करते। दूसरे शुभदर्शी मुनियोंके जरिये जो सांख्य और योगरूपसे कहे गये हैं, वे दोनों मार्ग ही जप विषयमें संश्रित और असंश्रित हुआ करते हैं। हे महाराज। ऊपर कहे हुए दोनों मार्ग जिस प्रकार जपके सङ्ग संयुक्त होते हैं, उसका कारण कहता हूं। इन दोनों विषयोंमें मनके निग्रह और इन्द्रिय जयकी आवश्यकता होती है। सत्य कहना अग्नि परिचर्य्या, शुद्ध आहार और निर्ज्जन स्थानमें निवास, ध्येय आकार प्रत्यय प्रवाह लक्षणका ध्यान विषयोंके दोष दर्शन आलोचना रूपी तपस्या, वशमें की हुई इन्द्रियोंकी तत्व प्रतिपत्ति योग्यता रूपी दम, क्षान्ति अनुसूयता, परिमित भोजन काम आदि विषयोंको जीतना, परिमित वचन, और निग्रहीत मनके विक्षेपहीनता रूपी शम, ये सब सकाम पुरुषोंके स्वर्गादि जनक जपके अङ्गभूत धर्म्म हुआ करते हैं। अब जापकके कर्म्मनिवृत्ति लक्षण मोक्ष धर्म्म कहता हूं सुनो। जप करनेवाले ब्रह्मचारीका कर्म्म जिस प्रकार निवृत्त होता है, उसे प्रदर्शित करता हूं। मन समाधि आदि जिन सब विषयोंको पहिले विशेष रीतिसे कहा है निष्काम अनुष्ठानसे स्थूल सूक्ष्म निर्व्विषय शुद्ध चिन्मात्र निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करके उन सबका परिवर्त्तन करे। कदम्बपुष्प समान हृदयपिण्ड स्पर्श करते हुए नूतसे ब्रह्माण्ड आवरण करके स्थिति करता है; उसी प्रकार जापक योगी पहलात कुश बिछावे, हाथमें कुश धारण करे, शिखाको कुशोंसे परिपूरित करे और चारों ओर कुशोंसे परिपूरित होकर कुशमें ही निवास करे, बाहरी और भीतरी चिन्ता परित्याग करे, मनके जरिये जीव ब्रह्मकी ऐक्यता स्थिरकरके मनहीसे मनका प्रतिस्थापन करे ... सावित्री संहिता जप करते हुए जीव ब्रह्मके ऐक्य ज्ञानसे परब्रह्मका ध्यान किया करते हैं, अथवा चित्तकी स्थिरता होनेपर वे निश्चल भावसे सावधान होकर पूर्व्वोक्त संहिता परित्याग करते हैं। वे शुद्ध चित्त, जितेन्द्रिय, द्वेष रहित और परब्रह्मके पानेके इच्छुक होकर विचारके जरिये संहिताबल अवलम्बन करनेसे ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह रूप ध्यान उत्पन्न करते हैं, राग मोहसे रहित और सुख दुःख आदि द्वन्द हीन होकर किसी विषयमें शोक नहीं करते और किसी विषयमें आसक्त भी नहीं होते। ऐसे जापक अपनेको कर्म्मकर्त्ता वा कर्म्म फल भोक्ता नहीं समझते और अहङ्कार योगसे मनको किसी कर्म्मके कर्त्तृत्व वा कर्म्मफल भोक्तृत्वमें प्रस्थापित नहीं करते, वे अर्थ ग्रहण करनेमें आसक्त अभिमानी और क्रिया रहित नहीं होते, वे ध्याननिष्ठ समाधिविशिष्ट होकर ध्यानसे तत्व निश्चय किया करते हैं। वे लोग ध्यान अवलम्बन करके चित्तको एकाग्रतामें उत्पन्न करते हुए धीरे धीरे उस अवलम्बनको भी परित्याग करते हैं। वे उस ही अवस्थामें सर्व्वत्यागी निर्व्वीज समाधिस्थ योगीके प्रत्यगानन्द स्वरूप सुख अनुभव करते हैं। जो लोग अणिमा आदि योग फलोंमें निष्प्रह होकर लोकान्तर गति साधन लिङ्ग शरीर परित्याग करते हैं, वे सुख स्वरूप ब्राह्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, अथवा यदि वे ब्रह्मस्वरूप सुखमें स्थिति करनेकी इच्छा न करें, तो देवयान मार्गमें निवास करते हुए फिर संसारमे जन्म नहीं लेते वे योगी इच्छानुसार मोक्षमार्ग वा ब्रह्मलोकमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं; वे तत्व दर्शनसे रजोगुण हीन अमृत अवलम्बन करके शान्त और जरा मरणसे रहित होकर पवित्र परमात्माको पाते हैं।

१९६ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने जापकोंको योगसिद्धि प्राप्तिके जरिये जरा मरण हीनता, इच्छानुसार शरीर त्याग, ब्रह्मलोक गमन और कैवल्य प्राप्ति विषय कहे, परन्तु उन लोगोंकी यह एकही प्रकारकी गति है, अथवा वे लोग दूसरी भांति गति लाभ किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ महाराज! जापक लोग जिस प्रकार अनेक प्रकारके निरयोंमें गमन किया करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो। जो जापक पहिले पूर्व्वोक्त आचरण नहीं करते, वे अपूर्ण मनोरथ होकर निरयमें गमन किया करते हैं। जो अश्रद्धाके सहित जप करते और उससे प्रसन्न वा हर्षित नहीं होते, वैसे जापक निःसन्देह निरयमें गमन करते हैं। जो लोग अहङ्कार पूर्व्वक जप करते और दूसरेकी अवज्ञा करते हैं, वैसे जापक पुरुष अवश्यही निरयगामी होते हैं। जो पुरुष मोहित होकर फलाभिसन्धि पूर्व्वक जप करते हैं उन्हें जैसे कर्म्ममें प्रीति होती है, वैसे फलको भोगनेके लिये उसे उसहीके अनुरूप शरीर प्राप्त हुआ करता है। अणिमा आदि ऐश्वर्य्य भोग प्रवृत्तिके वशमें होकर जो जापक उसमें अनुरक्त होते हैं, वह अनुराग ही उनके लिये निरय स्वरूप है; फिर वे उससे कदापि नहीं छूट सकते। ऐश्वर्य्य विषयक रागसे मोहित होकर जो जापक जप करते हैं, उन्हें जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न होता है, उसे भोगनेके निमित्त उन्हें उसहीके अनुरूप शरीर धारण करके जन्म लेना पड़ता है। जो भोगासक्त चित्त सब भोगोंके दुरन्तत्वमें ज्ञान रहित और चञ्चलचित्तसे निवास करते हैं वे जापक चपलगति लाभ करते हैं अथवा निरयमें गमन किया करते हैं यह बुद्धि समयको अतिक्रम करके आरही है, प्रमादके कारण उसका निश्चय नहीं होता है। इस विषयमें मूर्ख बाल स्वभाव वाले जापक मोहको प्राप्त होते और उसही मोहके कारण नरकमें गमन करते हैं, वहां जाके शोक किया करते हैं। जो पुरुष दृढ़ निश्चय करके जप करनेमें प्रवृत्त होता है, और वह अविरक्त होकर बलपूर्व्वक भोगोंको त्यागते हुए जपकी समाप्ति करनेमें समर्थ नहीं होता, वह अन्तमें निरयगामी हुआ करता है।

युधिष्ठिर बोले, जो वस्तु अनागन्तुक करके स्वभावसे ही अनिवृत्त और मन वचनसे अगोचर होकर प्रणवके बीच स्थित है, जापक उसही ब्रह्मस्वरूपको पाके किस कारण इस संसारमें शरीर धारण करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! सकाम बुद्धिके कारण बहुतेरे निरय पूर्ण रीतिसे उदाहृत हुए हैं। जापकोंका धर्म्म अत्यन्त श्रेष्ठ है, परन्तु राग आदि सब दोष-दुष्ट अज्ञान स्वरूप हैं, उस ही लिये विविध गति हुआ करती है।

१९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जापक पुरुष किस प्रकारके निरयोंमें गमन करते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। शुभ कर्म्म करनेवाले पुरुष भी अशुभ निरयको पाते हैं, इसे सुनके मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है, इसलिये आपको यह विषय वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे पापरहित! तुम धर्म्मके अंशसे उत्पन्न हुए हो स्वयं स्वभावसे ही धर्मिष्ठ हो; इसलिये सावधान होकर इस धर्म्मानुगत वचनको सुनो। हे राजन्! महाबुद्धि देवताओंके इन सब स्थानोंको जिसे कहते हैं, वे परमात्माके स्थानसे भिन्न नहीं हैं इन सब स्थानोंमें दिव्य देहोंके रूप सफेद, पीले तथा अनेक तरहके फल दिखाई देते हैं; दिव्यकामचारी विमान, सभा और विविध क्रीड़ा स्थान दीखते

और सुवर्णके कमल फूलते हैं। हे तात! इन्द्र आदि चारों लोकपाल, देवगुरु, शुक्राचार्य्य मरुद्गण, विश्वदेव, साध्य दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य और वसुगण तथा दूसरे सुरपुरवासी देवताओंके इन सब आश्रय स्थानोंको निरय कहते हैं, वे स्थान भयसे रहित हैं, क्योंकि वहां अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष आदि क्लेशोंकी सम्भावना नहीं है, आसक्ति-हीनताके कारण वहां आगन्तुक भयकी भी सम्भावना नहीं होती। वह स्थान प्रिय और अप्रिय इन दोनों पदार्थोंसे मुक्त है, प्रिय अप्रियके कारणभूत तीनों गुणोंसे रहित है, भूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि कर्म्म वासना, वायु और अविद्या, इन अष्टपुरोंसे परित्यक्त है; ज्ञेय, ज्ञान इन त्रिपुटियोंसे मुक्त है; क्यों कि वह दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान इन चारों लक्षणोंसे रहित है; अर्थात् वे स्थान रूप आदिसे रहित होनेसे प्रत्यक्षके विषय नहीं हैं। गुण-जाति क्रियाहीन प्रयुक्त शब्द ज्ञानगोचर नहीं हैं। असङ्गके कारण अनुमानके अनुगत नहीं हैं; सर्व्वगाचित्त निरन्वय बुद्धिसे भी नहीं जाने जाते। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे हुए स्थान प्रागुक्त दर्शन आदि चारों कारणोंसे रहित प्रहर्ष और आनन्द हीन, विशोक और क्लम विवर्ज्जितरूपसे प्रसिद्ध हैं। अखण्डभावसे स्थित काल वहांपर भूत, भविष्य, वर्तमान आदि व्यवहारोंका कारण होकर उत्पन्न होता है। काल संयम वहां प्रभुता नहीं कर सकता अर्थात् वे वस्तु आदि पदसे रहित हैं। हे राजा! जो कालका प्रभु और स्वर्गका ईश्वर है, जो जापक उस धामके सहित ऐ प्रकाश करता है, वह उस स्थानमें जाके शोक रहित होता है। ऐसे स्थान परम श्रेष्ठ हैं, पहिले कहे हुए सब निरय स्थान भी उनके समान हैं। परन्तु वह परम तुमसे क्योंकि ज्यों सब निरयोंके विषय वर्णन करे, ऊपर कहे हुए मनोहर परम श्रेष्ठ स्थानोंसे निकृष्ट भावसे निरय नाम सब स्थान प्रसिद्ध हैं।

१९८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! परमायुको नष्ट करनेवाले काल, प्राण वियोजक मृत्यु और पुण्य पापके फल देनेवाले यमराजके सम्मुख सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु और किसी ब्राह्मणसे विवाद हुआ था, आपने इस उपाख्यानके पहले इसकी चर्चा की थी, इसलिये अब उसे स्पष्ट रीतिसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, सूर्य्यवंशमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकु और ब्राह्मणके सम्बन्धमें जो विवाद हुआ था, प्राचीन लोग उसही पुराने इतिहासका इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, काल और मृत्युके सम्मुखमें जो घटना हुई थी और जिस स्थानमें जिस प्रकार उन लोगोंकी वार्त्ता हुई थी, वह मुझसे सुनो। धर्म्मचारी, महायशस्वी, मन्त्राध्ययन परायण कोई जापक ब्राह्मण था। वह महाबुद्धिमान् विप्र शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष, वेदके इन छहों अंगोंको जानता था; वह कौशिक गोत्रीय पिप्पलादका पुत्र था, षड़ङ्ग विषयमें उसे अपरोक्ष विज्ञान हुआ था। वह वेदनिष्ठ था और हिमालयके प्रत्यन्त पर्व्वतका आश्रय करके निवास करता था। उसने सावधान होके सावित्री संहिताका जप करते हुए स्वधर्म्मानुष्ठान रूपी अत्यन्त उत्तम तपस्या की थी। इसी प्रकार नियम पूर्व्वक उसका सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ, तब सावित्रीदेवीने "मैं प्रसन्न हुई हूं"—ऐसा वचन कहके उसे दर्शन दिया। ब्राह्मण मौनभावसे मन्त्रका जप करते हुए देवीसे कुछ न बोला। वेदमाता गायत्री उसके ऊपर उस समय कृपा करके अत्यन्त प्रसन्न हुई, और उसके उस मन्त्रकी अधिक प्रशंसा करने लगीं।

धर्म्मात्मा ब्राह्मणने जप समाप्त होने पर उठके देवीके चरणों पर गिरके उन्हें प्रणाम किया और यह वचन कहा कि, हे देवी ! भाग्यसेही आपने प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दिया है। हे भगवती ! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुई हों, तो आपकी कृपासे मेरा मन सदा जपमें ही रत रहे।

सावित्री बोली, हे जापकश्रेष्ठ विप्रर्षि ! तुम क्या प्रार्थना करते हो ? मैं तुम्हारा कौनसा अभिलषित विषय सिद्धकरूं, उसे कहो; तुम जो मांगोगे, वह सब सिद्ध होगा। देवीने जब ऐसे वचन कहे, तब वह धर्म्म जाननेवाला ब्राह्मण बोला, हे देवी ! मेरी यह अभिलाषा जपमेंही सदा बढ़ती रहे, हे शुभे ! मेरे मनकी एकाग्रता भी दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होवे।

अनन्तर देवीने मधुर भावसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा। फिर देवीने उसको प्रिय-कामनासे यह भी कहा, जिस स्थानमें मुख्या-मुख्य ब्राह्मण लोग गमन किया करते हैं, तुम्हें उस नियममें न जाना पड़ेगा, तुम आवागमनसे रहित होकर ब्रह्मलोकमें गमन करोगे; अब मैं निज स्थानपर जाती हूं। तुमने मेरे समीप जो प्रार्थना की है वही होगा, तुम सावधान और एकाग्र चित्त होकर जप करो; धर्म्म स्वयं तुम्हारे निकट आवेगा और काल, मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे समीप आगमन करेंगे। इसही स्थानमें उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्म्म विवाद होगा।

भीष्म बोले, भगवती सावित्री ऐसा कहके अपने स्थानपर चली गईं। इधर ब्राह्मण भी सदा दान्त, जित-क्रोध, सत्यप्रतिज्ञ और असूया रहित होकर जप करते हुए देव परिमाणसे एकसौ वर्ष बिताने लगा। अनन्तर उस बुद्धि-मान् ब्राह्मणके जापकका नियम समाप्त होने पर उस समय धर्म्मने स्वयं प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया।

धर्म्म बोले, हे द्विजवर ! मेरी ओर देखो ; मैं धर्म्म हूं, तुम्हें देखनेको आया हूं, तुम जो जप करते हो, उसका फल इस समय मुझसे सुनो। हे साधु ! जो सब दिव्य वा मनुष्य लोक हैं, तुमने उन सबको जय किया है ; तुम देवताओंके सब स्थानोंको अतिक्रम करके गमन करोगे। हे मुनिवर ! इस समय तुम प्राण छोड़के निज अभिलषित लोकमें गमन करो ; तुम अपना शरीर त्यागनेपर सब परलोक प्राप्त करोगे।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म्म ! मुझे परलोक प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है, आप सुखसे गमन करिये, हे विभु ! मैं बहुतसे सुख दुःख मिश्रित शरीरको परित्याग न करूंगा।

धर्म्म बोले, हे मुनिपुङ्गव ! तुम्हें अवश्य शरीर त्यागना योग्य है। हे पापरहित ब्राह्मण! तुम स्वर्गमें गमन करो, अथवा जो अभिलाष हो वह कहो।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म्म ! मैं बिना शरीरके स्वर्गमें बास करनेकी इच्छा नहीं करता। हे विभो ! मुझे शरीरके बिना स्वर्गमे गमन कर-नेकी श्रद्धा नहीं है, आप निज स्थान पर जाइये।

धर्म्म बोले, तुम शरीरमें मन न लगाओ, शरीर त्यागके सुखी होजाओ ; रजोगुणसे रहित लोकोंमें गमन करो ; जहां पर जाके शोक रहित होगे।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग ! मैं जप साधनमें अनुरक्त हूं, मुझे सनातन लोकसे क्या प्रयोजन है, हे विभो। मैं शरीरके सहित यदि स्वर्ग लोकमें जा सकूं, तो अच्छाही है ; नहीं तो कुछ प्रयोजन नहीं है।

धर्म्म बोले, हे द्विजवर ! तुम यदि शरीर न त्यागोगे, तो देखो तुम्हारे समीप ये यम, मृत्यु और काल उपस्थित हुए।

भीष्म बोले, हे राजन् ! अनन्तर सूर्य्य-नन्दन यम, काल और मृत्यु, ये तीनों उस महाभाग

ब्राह्मणके समीप उपस्थित होके क्रमसे अपना अभिप्राय कहने लगे।

यम बोले, हे ब्राह्मण! मैं यम हूं, स्वयं तुम्हारे समीप आके कहता हूं, कि तुम्हारे इस बहुत समयसे अनुष्ठित तपस्या और सुचरितके हुआ उत्तम फल प्राप्तिका समय है।

काल बोला, मैं काल हूं, तुम्हारे समीप आया हूं, तुमने इस जपका उत्तम फल विधि पूर्व्वक प्राप्त किया है; इस समय तुम्हारा स्वर्गमें जानेका समय हुआ है।

मृत्यु बोली, हे धर्म्मज्ञ! मैं मृत्यु मूर्त्तिमान होकर स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं। तुम मुझे मालूम करो। हे विप्र! आज तुम्हें इस स्थानसे लेजानेके वास्ते मैं कालसे प्रेरित हुई हूं।

ब्राह्मण बोला, हे सूर्य्य पुत्र यम! महात्मन् काल,—हे मृत्यु!—हे धर्म्म! आप लोगोंने सुखसे आगमन किया है न? इस समय मैं आप लोगोंके किस कार्य्यका अनुष्ठान करूं।

भीष्म बोले, अनन्तर वह ब्राह्मण आये हुए यम आदिको पाद्य अर्घ देकर उन लोगोंके वहां पर समागमसे प्रसन्न होकर बोला, मैं निज शक्तिके अनुसार आप लोगोंका कौन प्रिय-कार्य्य सिद्ध करूं।

हे राजन्! ब्राह्मण ऐसाही वचन कह रहा था, उस ही समय जिस स्थानमें वे सब एकत्रित हुए थे, वहां तीर्थयात्रा प्रसङ्गसे घूमते हुए सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु आके उपस्थित हुए। अनन्तर नृपसत्तम इक्ष्वाकुने उन लोगोंकी पूजा की और सबसेही कुशल प्रश्न किया। ब्राह्मण सब अभ्यागत राजाको पाद्य, अर्घ और आसन देकर कुशल पूर्व्वक बोला, हे महाराज! आप सुखसे आये हैं न? इस स्थानमें जो इच्छा हो, वह कहिये मैं निज शक्तिके अनुसार क्या करूं; आप उसकी आज्ञा करिये।

राजा बोला, मैं क्षत्रिय हूं, आप षट कर्म्म-स्थ ब्राह्मण हैं, इसलिये आपको कुछ धन दान करूं, कहिये इस विषयमें आपका क्या अभिप्राय है?

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! प्रवृत्त और निवृत्त भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं, धर्म्म भी दो प्रकारके हैं, इसमेंसे मैं प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं। हे नरनाथ! जो प्रतिग्रहणमें प्रवृत्त हो, आप उन्हें ही धन दान करिये; मैं कुछ भी दान न लूंगा। हे राजन्! आप क्या इच्छा करते हैं, उसे कहिये। मैं तपस्यासे आपका कौन कार्य्य सिद्ध करूं?

राजा बोला, हे द्विजवर! मैं क्षत्रिय हूं, 'देहि' यह वचन कभी नहीं कहता, 'युद्ध दान करो'—ऐसाही वचन कहा करता हूं।

ब्राह्मण बोला, हे नृपवर! हम लोग जैसे स्वधर्म्मसे सन्तुष्ट रहते हैं, आपभी उसी प्रकार निज धर्म्मसे परितुष्ट होंगे; इसलिये हम लोगोंमें परस्पर भेद नहीं है; इस समय आप इच्छानुसार आचरण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! पहले आपने "निज शक्तिके अनुसार दान करूंगा" ऐसा वचन कहा है, इसलिये मैं आपके समीप प्रार्थना करता हूं, कि आप मुझे इस जपका फल दान करिये।

ब्राह्मण बोला, आपने इस प्रकार अपनी बड़ाई की थी, कि "मेरा मन सदा युद्धकी प्रार्थना किया करता है," परन्तु तुम्हारे साथ मुझसे युद्धकी सम्भावना नहीं है, तब किस लिये प्रार्थना करते हो?

राजा बोला, ब्राह्मणोंका वचन ही वज्र स्वरूप है और क्षत्रिय बाहुबलसे कहके वर्णित हुए हैं। हे विप्र! इसलिये आपके साथ मेरा यह कठोर वचन युद्ध होरहा है।

ब्राह्मण बोला, "मैं निज शक्तिके अनुसार क्या प्रदान करूं,"—पहिले जो ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इस समय भी वह प्रतिज्ञा है। हे राजेन्द्र! इसमें मेरा भी कुछ विचार है, उसके

अनुसार मैं क्या दान करूं ? उसेही कहिये, बिलम्ब न करिये।

राजा बोला, आपने एक सौ बर्षतक जप करके जो फल पाया है, यदि मुझे दान करनेकी इच्छा करते हैं, तो उसेही दान करिये।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! यह उत्तम बचन है मैंने जपसे जो फल पाया है, आप बिचार न करके उसे ग्रहण करिये; आप उसका आधा फल पावेंगे, अथवा यदि आप पूरे फलकी इच्छा करें, तो मेरे जपका सब फल पावेंगे।

राजा बोला, मैंने जो आपके जपका सब फल मांगा है, उससे मुझे प्रयोजन नहीं है। आप कुशलसे रहिये, मैं जाता हूं; परन्तु आपके जपका फल क्या है; वही मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने जो जप किया है और आपको दान किया है, उससे क्या फल प्राप्त हुआ है, वह मैं कुछ भी नही जानता। ये धर्म्म, काल, यम और मृत्यु, इस विषयके साक्षी हैं।

राजा बोला, इस धर्म्मका फल अज्ञात रहनेसे मुझे क्या फल होगा। इस जपके फलको यदि आप मुझसे न कहें, तो इस फलको आपही पावें मैं संशयके सहित फल लाभ करनेकी इच्छा नहीं करता।

ब्राह्मण बोला, हे राजर्षि! दूसरेसे जो कहना होता है और मैंने जोफल दान किया है, उसे अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा, इस समय तुम्हारा और मेरा बचनही इस विषयमें प्रमाण है। मैंने पहले जप विषयमें कभी कुछ अभिसन्धि नहीं की है, हे नृपश्रेष्ठ! इसलिये मैं जपका फल किस प्रकार जानूं ? आपने 'दान करो' ऐसा बचन कहा, मैंने भी 'दान किया' यह बचन कहा है। और इस समय अपना बचन दूषित नही कर सकूंगा; आप स्थिर [illegible] सत्यकी रक्षा करिये। हे राजन्! मैं इसी प्रकार कहता हूं, इससे यदि मेरा बचन न मानोगे, तो तुम्हें मिथ्या बचनके कारण महान् अधर्म्म होगा। हे शत्रुनाशन! जैसे आपको मिथ्या कहना उचित नहीं है, वैसेही मैंने भी जो कुछ कहा है, उसे भी मिथ्या करना योग्य नहीं है। मैंने पहिले अविचारित चित्तसे "दान किया" कहके अङ्गीकार किया है, इसलिये यदि आप सत्यपथमें स्थित हों, तो बिचार न करके मेरे दिये हुए फलको ग्रहण करिये। हे राजन्! आपने इस स्थानमें आके मुझसे जपका फल मागा, मैंने आपको उसे दान किया है, इससे आप ग्रहण करिये और सत्यपथमें स्थित होइये; मिथ्या बचन कहनेवाले मनुष्योंको इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं मिलता, जब कि वह पूर्व्व पुरुषोंका ही उद्धार करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब किस प्रकार उत्पन्न हुए सन्तान परम्पराका कल्याण साधन करेगा। हे पुरुष श्रेष्ठ! जैसा इस लोक और परलोकमें सत्य लोगोंके निस्तारका कारण है; यज्ञफल, दान और सब नियम वैसे नहीं हैं। मनुष्यने जो हजार वर्ष तक जो तपस्या की है और करेगा उसका फल सत्यफलकी तरह उसे उत्तम फलभागी नहीं कर सकता। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, सत्य ही अक्षय तपस्या हैं, सत्य ही केवल सदा फल देनेवाला यज्ञ है, सत्य ही नित्यवेद स्वरूप है, तीनों वेदोंमें सत्य ही प्रकाशमान होरहा है। सत्यका फल सबसे श्रेष्ठ है, ऋषियोंने ऐसा ही कहा है, सत्यसे ही धर्म्म और इन्द्रिय जय होके दमगुण प्राप्त होता है। सत्यमें ही सब प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही वेद और वेदाङ्ग स्वरूप है। सत्य ही विद्या और विधि स्वरूप है, सत्य ही ब्रह्मचर्य्य और सत्य ही ओंकार स्वरूप है, प्राणियोंकी उत्पत्ति और विस्तृति सत्य स्वरूप है। सत्यके कारण वायु बहता है, सूर्य्य तपता है, अग्नि जलती है, सत्यसे ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। सत्य ही यज्ञ, तपस्या, वेद,

सामोच्चारण वर्ण, मन्त्र और सरस्वती स्वरूप है। सुना गया है, तुल्यता जाननेके वास्ते सत्य और धर्म्म तुलादण्डपर रखे गये थे, समान भावसे परिमाण करनेके समय जिधर सत्य था, उधर ही अधिक हुआ; जहांपर धर्म्म वहां ही सत्य है, हे महाराज। इससे आप किस निमित्त अपने वचनको मिथ्या करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! अपना अन्तःकरण सत्यमें स्थिर कीजिये, मिथ्या आचरणमें अनुरक्त न होइये। आपने "देहि" कहके उसे अशुभ और मिथ्या क्यों कहा? हे महाराज! यदि आप मेरे दिये हुए जपके फलको ग्रहण करनेकी इच्छा न करेंगे, तो सब धर्म्मसे भ्रष्ट होकर निकृष्ट लोकोंमें विचरेंगे। जो अङ्गीकार करके देनेकी इच्छा नहीं करते और जो मांगके दान लेनेसे विमुख होते हैं; वे दोनो ही मिथ्याचारी होते हैं; इसलिये आप अपने वचनको मिथ्या नहीं कर सकते।

राजा बोला, हे द्विजवर! युद्ध और प्रजापालन करना क्षत्रियोंका धर्म्म है, तथा क्षत्रिय लोग ही दाता कहके वर्णित हुए हैं, इसलिये मैं आपके समीप कैसे दान ले सकूंगा।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! मैं तुम्हारे घर पर नहीं गया और 'ग्रहण करो' कहके वार वार आग्रहके सहित प्रार्थना भी नहीं की, आप ही मेरे समीप आके मांगकर अब क्यों ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हो रहे हैं?

धर्म्म बोले, तुम दोनोंके विवादका निबटारा होवे, तुम दोनोंको विदित हो कि मैं धर्म्म इस स्थानमें आया हूं। ब्राह्मण दान फलसे और राजा सत्य फलसे संयुक्त होवें।

स्वर्ग बोला, हे राजेन्द्र! तुम्हें विदित हो कि मैं स्वर्ग स्वयं मूर्त्तिमान होके आया हूं, तुम दोनोंका विवाद मिट जावे, तुम दोनों ही समान फल भागी हुए हो।

राजा बोला, स्वर्गसे मेरा कुछ प्रयोजन [illegible] नहीं है। हे स्वर्ग! जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ ब्राह्मण यदि स्वर्गमें जानेकी इच्छा करे, तो मेरे आचरित पुण्यफलको ग्रहण करे।

ब्राह्मण बोला, बालक अवस्थामें यदि अज्ञानके वशमें होकर मैंने ग्रहण करनेके वास्ते हाथ पसारा हो, तो नहीं कह सकता, परन्तु ज्ञान होनेपर आजतक मैं सावित्री संहिता जप करते हुए निवृत्ति लक्षण धर्म्मकी उपासना करता हूं। हे राजन्! मैं बहुत समयसे प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं, इसलिये मुझे आप क्यों लोभ दिखाते हैं। हे नृपवर! मैं तपस्या और स्वाध्यायमें रत और प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं; इसलिये स्वयं ही अपना कार्य्य करूंगा, आपके निकट कुछ फल ग्रहण करनेका अभिलाषी नहीं हूं।

राजा बोला, हे विप्रवर! आपके परमश्रेष्ठ जपका फल यदि विनष्ट हुआ हो, तब इस दोनोंका जो कुछ फल है, वह इस स्थानमें एकत्रित होवे। ब्राह्मण दान लेनेवाले और राजवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय दाता कहके विख्यात हैं। हे विप्र! वेदोक्त धर्म्म सत्य हो, तो हम दोनोंका फल एकत्रित होवे यद्यपि हम लोगोंका एकत्र भोजन न हो, तौभी आप मेरे फलको पावें। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हुई हो, तो आप मेरे किये हुए धर्म्मका फल ग्रहण करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर मैले वस्त्र और कुरूपवाले दो पुरुष वहां पर उपस्थित हुए। उनमेंसे एकका नाम विरूप दूसरेका नाम विकृत था, वे दोनो एक दूसरेको घेरके पकड़कर यह वचन कहने लगे।

एक पुरुष बोला, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," दूसरा बोला, "मैं [illegible] तुम्हारे निकट आया हूं।" इस समय हम दोनोंमें यह विवाद हो रहा है; इसलिये यह राजा इसका विचार करे। मैं [illegible] [illegible] तुमने मुझे [illegible] नहीं दिया है। [illegible]

मिथ्या कहते हो, कि "मैं ऋणी हूं," वे दोनो ऐसेही बचनसे अत्यन्त दुःखित होके राजाके निकट जाके बोले कि, हे महाराज! हम लोग इस विषयमें जिस भांतिसे निन्दित न होवें, आप उसही प्रकार परीक्षा करिये।

विरूप बोला, हे नरश्रेष्ठ महाराज! मैंने इस समय इस विकृतके गऊ दानका फल ऋण किया है; परन्तु मैं ऋण चुकानेसें प्रवृत्त हूं, तौ भी विकृत उसे नहीं लेता है।

विकृत बोला, हे नरनाथ! इस विरूपने मुझसे कुछ भी ऋण नहीं लिया है, यह आपसे सत्यके समान भावसे मिथ्या कह रहा है।

राजा बोला, हे विरूप! तुमने इसके निकट क्या ऋण लिया है, वह मुझसे कहो, मै सुनके उसका बिचार करूंगा; यही मेरे अन्तःकरणमें जच रहा है।

विरूप बोला, हे महाराज! मैं जिस प्रकार इस विकृतके निकट ऋणी हुआ हूं, वह सब वृत्तान्त आप सावधान होकर सुनिये। हे पापरहित राजऋषि! इन्होंने पहिले धर्म्म प्राप्तिके लिये तप और स्वाध्यायशील किसी ब्राह्मणको एक शुभलक्षणवाली गऊ दान की थी। हे राजन्! मैंने इनके समीप आके उस गऊ दानका फल मागा, इन्होने भी शुद्ध चित्तसे मुझे वह फल दान किया था। हे राजन्! अनन्तर मैंने आत्मशुद्धिके निमित्त सुकृत कर्म्म किया और बहुतसा दूध देनेवाली बछड़ायुक्त दो कपिला गऊ खरीदके यथाविधि श्रद्धापूर्व्वक इस उञ्छवृत्तिको दोनो गऊ प्रदान की हे पुरुष प्रवर! इस लोकमें लेकर जो उसही समय दूना फल देता है, वैसा दाता और प्रतिदाता इन दानोंमेंसे इस समय कौन निर्दोषी और कौन दोषी होगा? हे महाराज! इसी प्रकार विवाद करते हुए हम दोनों आपके निकट आये हैं आप धर्म्म या अधर्म्मसे विचार करके हम लोगोको शिक्षा दीजिये। इन्होंने मुझे जिस प्रकार दान किया है, वैसेही यदि मेरे दानको यह स्वीकार न करें, तो आप सावधान चित्तसे विचार करके हम लोगोंको सत्पथमें स्थापित करनेमें समर्थ होइये।

राजा बोला, हे विकृत! तुम पहिले दिये हुए ऋणके लेनेमें क्यों विमुख होरहे हो। तुम्हारा जैसा ज्ञान हो, उसके अनुसार ग्रहण करनेमें देरी मत करो।

विकृत बोला, यह कहते है, "मैं ऋणी हूं" परन्तु मैं कहता हूं, दान किया है। इससे यह पुरुष इस समय मेरे समीप ऋणी नहीं है, इसको जहां इच्छा हो, वहां जावे।

राजा बोला, यह पुरुष दे रहा है, तौभी तुम नहीं लेते हो, यह मुझे विषम बोध होता है; मेरे मतमें निःसन्देह तुम्हीं दण्डनीय हो।

विकृत बोला, हे राजऋषि! मैंने इसे जो दान किया है, उसे फिर किस प्रकार ले सकता हूं। इसमें मेरा अपराध हो, तो अवश्यही आप दण्ड की आज्ञा करिये।

विरूप बोला, हे विकृत! मेरे दिये हुए धनको ग्रहण करना यदि तुम अङ्गीकार न करोगे, तो धर्म्मके नियमित अनुसार यह शासनकर्त्ता राजा तुम्हें शासन करेगा।

विकृत बोला, मैंने मागने पर तुम्हें जो धन दान किया है, इस समय उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूं। जो हो, मैं तुम्हें आज्ञा करता हूं, तुम निज स्थान पर जाओ।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! इन दानोंने जो कहा, उसे तुमने सुना; इस समय मैंने आपको जो प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये।

राजा बोला, इन लोगोंका कार्य्य जैसा गूढ़ है, यह महत् कार्य्य भी उसी भांति प्रस्तुत हुआ है। इस जापकके वचनकी दृढ़ता किस प्रकार सिद्ध होगी, यदि ब्राह्मणको दी हुई वस्तु

ग्रहण न करूं तो अवश्य ही आज महापापमें लिप्त हूंगा। अनन्तर वह राजर्षि विरूप और विकृतसे बोले, तुम लोग कृतकार्य्य होके गमन करो; इस समय राजधर्म्म मेरे समीप रहके मिथ्या न होगा। यह निश्चय है, कि राजाओंको सब तरहसे अवश्य स्वधर्म्म पालन करना चाहिये, मैं अत्यन्त अनात्मज्ञ हूं, इस समय विप्रधर्म्म मुझमें उपस्थित हुआ है।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आपने जो मांगा है उसे ग्रहण कीजिये और मैंने भी जो अङ्गीकार किया है उसे धारण करूं। आप यदि जांचके ग्रहण न करेंगे, तो मैं निःसन्देह शाप दूंगा।

राजा बोला, जिसके कार्य्यका ऐसा निश्चय हैं, उस राजधर्म्मको धिक्कार है। इस समय विप्रधर्म्म और राजधर्म्म दोनों किस प्रकार समान होंगे, इसीही जाननेके लिये मुझे ग्रहण करना उचित होता है। मेरा जो हाथ पहिले ग्रहण करनेके वास्ते नहीं पसारा गया, इस समय वही हाथ दान लेनेके लिये पसारा जा रहा है। इससे, हे विप्र! आप मेरे निकट जो ऋणी हैं, इस समय उसे प्रदान करिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने सावित्री संहिता जप करते हुए जो कुछ फल उपार्ज्जन किया है, वह सब आप ग्रहण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! मेरे करतलमें यह जल पड़ा हुआ है, यह दोनोंके सम्बन्धमें समान हो और एकत्र मिलित हो, आप प्रतिग्रह करिये।

विरूप बोला, हम काम और क्रोध दोनो इस स्थानमें आये हैं, हमने ही आपके निकट विचारकी प्रार्थना की थी। आपने जो कहा है कि "समान होवे," उससे आपके और इसके सब इन्द्रलोक तुल्य होंगे, आपके ही लिये यह सब फलो नहीं है, मैने यह विषय पूछा था। काल, धर्म्म, मृत्यु, काम, क्रोध और आप दोनों

पुरुष, सब तुम्हारे सम्मुखमें ही परीक्षित हुए। इस समय निज कर्म्मके जरिये विजित लोकोंके बीच जिस स्थानमें जानेकी इच्छा हो, वहां जाइये।

भीष्म बोले, जापकोंको फलप्राप्ति और गम्य स्थान तुम्हारे समीप प्रदर्शित किया और जापकोंके जरिये जिस प्रकार सब लोक विजित होते हैं, वह भी कहा है जो जापक सावित्री संहिता अध्ययन करते हैं, वह परमपद पाके ब्रह्माके लोक अथवा अग्निलोकमें गमन किया करते हैं, वा सूर्य्य लोकमें प्रवेश करते हैं। यदि वे उन सूर्य्यादि लोकोंमें प्रकाशमय रूपसे अनुरक्त रहें, तो रागमोहित होकर सूर्य्य आदिकी तरह प्रकाश आदि गुण अवलम्बन करते हैं और चन्द्रलोक, वायुलोक, भूलोक और आकाशमें उसके अनुरूप शरीर धारण करके उन लोकोंमें जो जो गुण हैं, उसहीका आचरण करते हुए रागयुक्त होकर वहां निवास करते हैं। यदि वहांपर वे रागरहित होकर संशययुक्त हों, तो ब्रह्मलोकसे श्रेष्ठ अक्षय लोकको इच्छा करते हुए उसमेंही प्रविष्ट होते हैं। निष्काम, अहङ्कार रहित जापक लोग अमृतसे भी अमृत हैं, अर्थात् कैवल्य नाम मुख्य मोक्षस्थान प्राप्त करके सुख दुःख आदि द्वन्द्व हीन नित्य सुखी शान्त निरामय ब्रह्मस्वरूप होकर पुनरावृत्तिसे रहित अद्वितीय अक्षरसंज्ञक दुःख और जराहीन शुद्ध शान्तिमय ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। अनन्तर वे वहांपर प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणोंसे हीन भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु-लक्षणसे रहित प्राण आदि पञ्चवायु, दशो इन्द्रिय और मन, इन षोड़श विकारोंसे मुक्त, इस कारण स्वरूप ब्रह्मको अतिक्रम करके उपाधि रहित चैतन्यमात्र परब्रह्मको पाते हैं, अथवा यदि वे सकाम होकर कर्म्ममय कारण स्वरूप धामकी इच्छा न करें, अर्थात् तदभिमानी हों सब वे मनकी मन में इच्छा करें, पुनर्

इसके अतिरिक्त वे निरयनाम सब लोकोंको देखते और सर्व्व शङ्कासे विमुक्त होकर वहां परम सुखके साथ विराजते हैं। हे महाराज! यह तुमसे जापकोंको गति विस्तारपूर्व्वक कहा फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

१९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! उस समय उस विरूपकी बचन सुनके जापक ब्राह्मण अथवा राजाने क्या उत्तर दिया? आप मुझसे वही कहिये, अथवा सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति और लोकान्तर प्राप्ति इन तीनों विषयोंको जो आपने कहा है, उसके बीच वे लोग कहां गये; उन लोगोंको वहां जानेपर क्या बार्त्ता हुई और उन्होंने वहां जाके क्या किया? उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर वह ब्राह्मण ऐसाही होवे, यह बचन कहके पहले धर्म्म, यम, काल, मृत्यु और स्वर्गका पूर्णरीतिसे सत्कार किया, फिर वहांपर जो सब मुख्य ब्राह्मण उपस्थित हुए थे, शिर झुकाकर उनकी पूजा करके राजासे बोला, हे राजर्षि! आप इस फलसे संयुक्त होकर प्रधानता लाभ करिये, मैं भी आपकी सम्मतिके अनुसार फिर जप करनेमें नियुक्त होऊं। हे महाबली नरनाथ! पहिले सावित्री देवीने मुझे यह वर दिया है, कि "जप विषयमें तुम्हारी सदा श्रद्धा रहे"।

राजा बोला, हे विप्र! मुझे जपका फल दान करनेसे यदि आपकी सिद्धि निष्फल हुई हो और जप करनेमेंही यदि आपकी श्रद्धा हो; तो मेरे सङ्ग चलिये, जप, फल, दान करनेके पुण्यसेही आप जपका फल पावेंगे।

ब्राह्मण बोला, इस स्थानमें सबके समीप मैंने आपको जपका फल देनेके लिये अत्यन्त यत्न किया; इस समय हम दोनों समान ...निसे तुल्य फलभागी होकर, जहां हमारी गति होगी गमन करेंगे। अनन्तर त्रिदशेश्वर उनका ऐसा निश्चय जानके लोकपाल और देवताओंके सहित वहां उपस्थित हुए। साध्यगण मरुद्गण, विश्वगण, सुमहत्, समस्त बाद्य, नदी, पर्व्वत, समुद्र और विविध तीर्थ, तपस्या, योगविधि, जीव ब्रह्मकी ऐक्यता प्रतिपादक सब वेद सामगान पूरणार्थ (हायि हावु आदि) सब अक्षर, नारद, पर्व्वत विश्वावसु, हाहा, हूहू और परिवारके सहित चित्रसेन गन्धर्व्व, नाग, सिद्ध, मुनि, देवदेव, प्रजापति और अचिन्त्य सहस्रशीर्ष विष्णु वहां उपस्थित हुए। आकाशमें भेरी और तूर्य्यवाद्य होने लगा। वहांपर उन महानुभावोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, चारों ओर अप्सरा नृत्य करने लगीं। अनन्तर मूर्त्तिमान स्वर्ग ब्राह्मणसे बोला, हे महाराज! आपने सब तरहसे सिद्धि लाभ की है,—महाराज! तुम भी सिद्ध हुए हो।

हे राजन्! वे दोनों ही परस्परके उपकारके जरिये एक समयमें ही रूप आदि विषयोंसे नेत्र आदि इन्द्रियोंको प्रतिसंहार करनेमें प्रवृत्त हुए। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, इन पञ्चवायुको हृदयमें स्थापित करके एकीभूत प्राण और अपान वायुमें मनको धारण किया। अनन्तर उन्होंने प्राण और अपानको, उनके निवासस्थल उदरमें स्थापित करके पद्मासन होकर भृकुटीके नीचे नासिकाका अग्रभाग देखते हुए भृकुटीके बीच मनके सहित प्राण और अपान वायुको क्रमसे धारण किया, इसी प्रकार उन्होंने चित्त जय करके चेष्टा रहित दोनों शरीरोंके जरिये स्थिरदृष्टि और समाहित होकर प्राणके सहित चित्तको मस्तकमें स्थापित करके धारण किया। अनन्तर उस महात्मा ब्राह्मणका ब्रह्मरन्ध्र विदीर्ण होके एक बहुत बड़ी ज्योतिशिखा निकलके स्वर्ग लोकमें गई। उस समय सब दिशाओंमें सब लोगोंके बीच महान् हाहाकार होने लगा। वह प्राणोंके

नीय ज्योति उस समय ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हुई। हे महाराज! पितामह ब्रह्मा उस ज्योतिके प्रवेशके समय उठे और स्वागत प्रश्न करके मधुर वचनसे बोले, कि योगियोंका फल निःसन्देह जापक लोगोंके समान है। जापकोंसे योगियोंका फलदर्शन प्रत्यक्ष है; परन्तु जापकोंके पक्षमें यही विशेष है, कि उन्हें देखतेही उठनी विहित हुआ है। अनन्तर ब्रह्मा उस ब्राह्मणसे बोले, "तुम मुझमें सदा वास करो" ऐसा कहके फिर उसे सचेतन किया। अनन्तर उस ब्राह्मणने आनन्दित होके ब्रह्माके मुखमें प्रवेश किया। जिस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, राजाने भी उसही विधिसे भगवान् पितामहके शरीरमें उसी समय प्रवेश किया। अनन्तर देवता लोग ब्रह्माको प्रणाम करके बोले, जापकोंको देखतेही उठके खड़ा होना विशेष रूपसे विहित है; जापकके लिये ही सबका इस प्रकार प्रयत्न हुआ है और हम भी इसही कारण इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं; यह ब्राह्मण और राजा समान फलभागी हैं, इसलिये आपने इन दोनों तुल्य पुरुषोंका समान सत्कार किया है। योगी और जापकका महत् फल आज देखा गया। इस समय ये लोग सब स्थानोंको अतिक्रम करके जहां इच्छा हो, वहां गमन करें।

राजा बोला, जो शिक्षा आदि वेदाङ्गस्वरूप महास्मृति शास्त्र अध्ययन करते और जो मनु आदि प्रणीत शुभफल देनेवाली मनुस्मृति आदि पाठ किया करते हैं, वे भी इसी विधिके अनुसार हमारे समान लोकोंमें गमन कर सकते हैं। जो योग विषयमें अनुरक्त रहते हैं, वे भी शरीर त्यागने पर इस ही रीतिसे हमारे समान लोकोंको पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस समय मैं जाता हूं। तुम लोग भी निज निज इच्छानुसार स्थानमें गमन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! पितामह इस समय ऐसाही कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। अनन्तर देवता लोग भी परस्पर आमन्त्रण करके निज निज स्थान पर गये। यम आदि महानुभावोंने अत्यन्त प्रसन्न होके धर्मका सत्कार करके उनके पीछे पीछे गमन किया। हे महाराज! जापकोंके फल और गतिका विषय जैसा सुना है, वैसा ही तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर किस विषयकी सुननेकी इच्छा करते हो?

२०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ज्ञानयुक्त योग, सब वेदों और अग्निहोत्र आदि नियमोंका क्या फल है? और जीवको किस प्रकार जाने? आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके सम्वाद युक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं देवर्षियोंमें मुख्य बृहस्पतिने शिष्यभाव स्वीकार करके प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ मनुको गुरु समझके उन्हें प्रणाम करके यह प्राचीन प्रश्न पूछा कि, हे भगवन्! जो इस जगत्का कारण है, जिसके निमित्त कर्मकाण्डकी विधि प्रचलित हुई है, जिसे जाननेसे परमफलकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्राह्मण लोग कहा करते हैं; वेदोक्त मन्त्र जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, आप विधि पूर्वक उसका वर्णन करिये। धर्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग शास्त्र और वेद सब्दोंके जाननेवाले ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके महत् यज्ञ और गऊदानके द्वारा जिसकी उपासना किया करते हैं, वह वस्तु कैसी है? किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है। और वह कहां है; हे भगवन्! पृथ्वी, जल, स्थावर और जङ्गम, वायु, आकाश, जल, समुद्र, ... स्वर्ग और ... जिससे उत्पन्न हुए हैं, आप मेरे समीप ...

पुरुष पुराणका विषय वर्णन करिये। मनुष्य जिस विषयमें ज्ञानकी इच्छा करते हैं, ज्ञानसे उसे उसके निमित्त प्रवृत्ति हुआ करती है, मैं उस पुरातन पुरुषको नहीं जानता, तब उसे जाननेके लिये किस प्रकार मिथ्या प्रवृत्ति करनेमें प्रवृत्त होऊं। मैं ऋक्, साम और सम्पूर्ण यजुर्व्वेद, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कल्प और व्याकरण, यह सब विद्या पढ़के भी आकाश आदिके उपादान कारण आत्माको जाननेमें समर्थ न हुआ। आप सामान्य और विशेष शब्दोंसे उस विषयका उपदेश करिये। आत्माको जाननेसे क्या फल होता है। कर्म्म करनेसेही कौनसा फल मिलता है; आत्मा शरीरसे जिस प्रकार पृथक् होता है, और फिर जिस प्रकार शरीरमें स्थित होता है, आप वह सब वर्णन करिये।

मनु बोले, प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जिसे प्रिय है उसे उसहीसे सुख है, जिसे जो अप्रिय है, वही उसका दुःख है। "मेरी भलाई हो और कुछ बुराई न हो," इसही लिये मनुष्य कर्म्म करनेमें प्रवृत्त हुआ करते हैं, "मेरी भलाई बुराई कुछ न हो," इसही निमित्त लोग ज्ञानके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं। वेदमें कहे हुए सब कर्म्म काम प्रधान कहके निर्दिष्ट हुए हैं, जो लोग उन सब कर्म्मोंसे मुक्त होते हैं, वे परम सुख भोग करते हैं। सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य अनेक प्रकारके कर्म्मपथमें प्रवृत्त होके स्वर्ग अथवा नरकमें गमन किया करते हैं।

वृहस्पति बोले, अभिलषित सुखही ग्राह्य है, अनभिलषित दुःखही त्याज हैं,—ऐसीही इच्छा अभिलाषा करनेवालोंको सब कर्म्मोंसे प्रलोभित किया करती है।

मनु बोले, स्वर्ग आदि प्राप्ति रूप सुखके निमित्त अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान हुआ करता है। जो लोग उन कर्म्मफलोंसे मुक्त हुए हैं, उन्होंनेही परम पुरुषमें प्रवेश किया है। सब कर्म्मकाण्ड सकाम मनुष्योंकोही प्रलोभन प्रदर्शित करते हैं, जो निष्काम होते हैं, परमार्थ ग्रहण करते हैं। इसलिये मनुष्य ब्रह्मज्ञानके ही वास्ते सब कर्म्मोंका अनुष्ठान करें, क्षुद्र फलोंके लिये कर्म्मानुष्ठान उचित नहीं है। धर्म्ममें प्रवृत्त मोक्षसुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य चित्तशुद्धि आदि कर्म्मोंसे राग आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण आग-नेकी तरह प्रकाशमान होकर कर्म्म पथसे अत्यन्त अगोचर निष्काम परब्रह्मको पाते हैं। जीव मन और कर्म्मसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये मन और कर्म्म संसारप्रद होनेपर भी सर्व्वलोक सेवित सत्पथ स्वरूप अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हुए हैं। वेदविहित कर्म्म मोक्षके कारण होने-पर भी उनका फल बहुत कम है; मनसे क्रियमाण कर्म्म फलका त्यागही मोक्षके विषयमें कारण है, दूसरा कुछ भी नहीं है। जैसे नेत्र रूपी नायक रात्रिके बीतने पर अन्ध-कारसे रहित होकर त्यागने योग्य कांटे आदिको स्वयं देखता है, वैसेही ज्ञान विवेक गुणसे संयुक्त होकर त्यागने योग्य अशुभ कर्म्मोंको देखता रहता है। जैसे कोई कोई मनुष्य सांप कुशाग्र और कूएंको जानके उन्हें परित्याग करते हैं, वैसेही कोई कोई अज्ञानके कारण उनके ऊपर गिरते हैं, इसलिये ज्ञानसे जो विशेष फल है, वह इस उदाहरणसे ही देखो। विधिपूर्व्वक प्रयोग किये गये मन्त्र, यथोक्त यज्ञ, दक्षिणादान, अन्न प्रदान और देवताके ध्यानमें मनकी एकाग्रता, ज्ञानपूर्व्वक किये गये इन पाचों विषयोंको प्राचीन लोग फलवत् कर्म्म कहा करते हैं। वेद सब धर्म्मोंको सात्विक, राजसिक और तामसिक कहा करता है, इससे मन्त्र भी त्रिगुणात्मक हैं; क्योंकि मन्त्रपूर्व्वक कर्म्मही सिद्ध होते हैं। सात्विक आदि भेदोंसे विधि भी तीन प्रकारकी है।

मनके जरिये फलकी उत्पत्ति हुआ करती है और फलभोक्ता देहधारी भी तीनों गुणोंके भेदसे सुखी, दुःखी और मूढ़ भेदसे तीन प्रकारका हुआ करता है। शब्द, स्पर्श, रूप पवित्र रस और शुभगन्ध आदि कर्म्म फलोंसे प्राप्त होने योग्य स्वर्ग आदि लोक सिद्ध होते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेसे ही ज्ञान फलका अधिकारी नहीं होता, ज्ञानका फल, कर्म्मसे प्राप्य स्वर्ग आदि लोक ही सिद्ध हुआ करता है। शरीरसे जो कर्म्म करता है, शरीर युक्त होकर जीव उसही कर्म्मका फल भोग किया करता है; क्यों कि अकेला शरीर ही केवल सुखका स्थान और शरीरही केवल दुःखका आश्रय है। वचनसे जो कुछ कर्म्म करता है, जीव वाक्यके सहित उन सब फलोंको भोग किया करता है; मनसे जो कुछ कर्म्म करता है। जीव मनके सहितही उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जीव कर्म्म फलमें रत और फलकी इच्छा करके जिस प्रकार जो जो गुणयुक्त कर्म्म करता है, उन्हीं गुणोंसे संयुक्त होकर उसही सुभाशुभ कर्म्मफलोंको भोग करता है। जलके सोतेमें पड़ी हुई मछलीकी तरह जीव पूर्व्वकृत कर्म्मोंको प्राप्त हुआ करता है; उसके बीच शुभकर्म्मोंसे सन्तुष्ट और अशुभ कर्म्मोंसे असन्तुष्ट होता है। जिससे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसे जानके चित्तको जीतनेवाले योगी लोग जगत्को अतिक्रम करके गमन करते हैं, मन्त्र तथा जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, उस परम पदार्थका विषय कहता हूं, सुनो। जो स्वयं रसहीन और विविध [illegible] रहित है; जो शब्द नहीं, स्पर्श नहीं और रूपवान नहीं है, जो इन्द्रियोंसे अगोचर [illegible], स्पर्शहीन और एक मात्र है; जिसने प्रजा समूहके प्रयोजनके निमित्त पांच प्रकार रस आदिकी सृष्टि की है, वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसकही है, वह न सत् है, न असत् है और सदसत् भी नहीं है, ब्रह्मवित् मनुष्य जिसे ज्ञान-नेत्रसे देखते हैं, उसे ही क्षय रहित अक्षय पुरुष जानो।

२०१ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, माया-सहाय अक्षर पुरुषसे आकाश उत्पन्न होता है, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है और पृथ्वीसे स्थावर जङ्गमयुक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ करता है। अन्तमें सब शरीरधारी स्थावर जङ्गमात्मक इन सम्पूर्ण पार्थिव शरीरोंके जरिये लवणोदककी भांति पहिले जलमें लीन होते, जलसे अग्नि, अग्निसे वायु और वायुसे आकाशमें जाके निवृत्ति लाभ करते हैं जो लोग मुमुक्षु होते हैं, वे परम मोक्ष प्राप्त करते हैं, दूसरे लोग फिर आकाशसे लौट आते हैं। मोक्षका आश्रय परमात्मा न ठण्ढा है, न गर्म्म है, न कोमल है, न कठोर है, न खट्टा है, न कषैला है; न मीठा है, न तीता है; न वह शब्द युक्त है, न गन्ध विशिष्ट है और न वह परम स्वभाव परमात्मा रूपवान है। अनात्मज्ञ मनुष्य सर्व्वशरीर-व्यापित्वकसे स्पर्शज्ञान, जीभसे रस, नाकसे गन्ध, कानसे शब्दका ज्ञान करते और नेत्रसे रूप दर्शन किया करते हैं; परन्तु उस परम पुरुषको नहीं जान सकते।

मनुष्य रसोंसे जिह्वा, गन्धसे नासिका, शब्दसे कान, स्पर्शसे त्वचा और रूपसे नेत्रको निवृत्त करनेपर स्व-स्वभाव आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो कर्त्ता जो ज्ञान वा कर्म्मसे जो प्राप्त होता है, उसहीसे भिन्न भिन्न देश वा समयमें निमित्तभूत सुख वा दुःखमें उसके अनुकूल यत्न आरम्भ करते और आरम्भ करके [illegible] इच्छा [illegible] करके उस आरम्भ कार्य्यमें [illegible]

आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करते हैं, मुनि लोग उन सबकोही कारण कहते हैं; इस लिये कर्त्ता, कर्म्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति, यत्न, गमन आदि क्रिया, अनुराग और अदृष्ट आदि सबका जो कारण है, उस चिन्मात्रको स्वभाव कहा जाता है।

जो ईश्वरस्वरूपसे सर्व्वव्यापी और जो जीव-रूपसे व्याप्त तथा कार्य्य साधक है, जो नित्य परमात्मा अकेला सब भूतोंमें निवास करता है। जलमें चन्द्रमाकी परछांईके समान जो एक होकर भी अनेक दीखता है; इस मन्त्रार्थके समान जो सदा जगत्में निवास करता है, जो सबका कारण है, जो अद्वितीय होके भी आपही सब कार्य्य कर रहा है वही कारण पद वाच्य है; उसके अतिरिक्त सब पदार्थही कार्य्य हैं। जैसे मनुष्य पूर्ण रीतिसे किये हुए पुण्य पापके जरिये शुभाशुभ पदार्थका फल पाता है, वैसे ही यह स्वभाव नामक परम कारण ज्ञान निज पुण्य पापकर्म्मोंके कारण शरीरमें फसा करता है। जैसे दीपक अग्रभागकी सब वस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे हो पञ्चइन्द्रिय स्वरूप दीपक ज्ञानसे जलकर बाहरी सब वस्तुओंको प्रकाशित किया करते हैं। जैसे राजाके पृथक् पृथक् बहुतसे अमात्य एकत्रित होकर कार्य्य निर्णयके लिये प्रमाण निर्द्देश किया करते हैं, वैसे ही शरीरके बीच पांचो इन्द्रिय अलग अलग होन पर भी ज्ञानके अनुगत होती हैं, इसलिये ज्ञान स्वरूप स्वभाव इन्द्रियोंसे भी श्रेष्ठ है। जैसे अग्निकी अर्चि, पवनका वेग सूर्य्यकी किरण और नदियोंके जल आते जाते तथा चलते हैं, शरीर धारियोंका शरीर भी उसही प्रकार है। जैसे कोई मनुष्य कुल्हाड़ा लेकर काठको काटनेसे उसमें धूंआ वा अग्नि कुछ भी नहीं देखता, वैसे ही शरीरसे उदर और हाथ पांव आदि काटनेसे उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु दिखलाई नहीं देती। उन सब काठोंके मथनेसे जैसे धूंआ और अग्नि दृष्टिगोचर होती है, वैसे ही उत्तम बुद्धिवाले विज्ञ पुरुष योगसे इन्द्रिय और बुद्धिमें ऐक्यज्ञान करते हुए उस कारण-स्वरूप स्वभावका दर्शन करते हैं। जैसे मनुष्य सपनेमें पृथ्वीपर पड़े हुए निज अङ्गको अपनेसे पृथक् देखता है। वैसे ही कान आदि दशों इन्द्रिय, इस पञ्चप्राण युक्त अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य स्थूल शरीरसे देहान्तर रूपी लिङ्गशरीरमें गमन किया करता है। आत्माकी उत्पत्ति, वृद्धि, ह्रास और मृत्यु नहीं है, सुख दुःखप्रद कर्म्म सम्बन्धके कारण यह आत्मा अलक्षित होकर स्थूल शरीरसे लिङ्गशरीरमें गमन करता है। मनुष्य नेत्रसे आत्माका रूप नहीं देख सकते, किसी प्रकार उसे स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होते, नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं कर सकते, इन्द्रियें भी उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु वह उनको देखता है। जैसे निकटवर्ती अयःपिण्ड जलती हुई अग्निके सन्ताप जनित रूपको प्राप्त होता है, यथार्थमें जलाना और पिंगलत्व आदि दूसरे गुण तथा रूपको धारण नहीं करता, वैसेही शरीरमें आत्माका रूप चैतन्य मात्र दृष्टिगोचर होता है; यथार्थमें देह चेतन नहीं है। तथापि जैसे लोहगत चतुष्कोन आदि अग्निमें मालूम होते हैं, वैसेही देहसे दुःख आदि आत्मामें मालूम हुआ करते हैं। जैसे मनुष्य शरीर छोड़के दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है, वैसे ही आत्मा पञ्च महाभूतोंको परित्याग करके देहान्तरके आश्रय अमूर्त्त रूप धारण किया करती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें सब तरहसे आत्मा स्थित है, कान आदि पञ्च इन्द्रिय अनेक गुणोंको अवलम्बन कर कर्म्मोंमें वर्त्तमान रहके शब्द आदि गुणोंका आश्रय किया करती हैं। श्रवणेन्द्रिय आकाशके शब्द गुणका आश्रय करती है, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गन्ध गुणको धारण

अवलम्बन करती हैं, दर्शनेन्द्रिय रूप ग्रहण करनेमें समर्थ होती है। जीभ जलाश्रय रसको अवलम्बन करती है स्पर्श इन्द्रिय वायुमय स्पर्श गुणका आश्रय किया करती है, अर्थात् कान आदि पांचो इन्द्रिय शब्द आदि वासनाके सहित कार्य्यमें रत होती हैं। पाचो इन्द्रियोंके अवि-ध्येय शब्द आदि, पञ्च महाभूतों और पाचो इन्द्रियोंमें निवास किया करते हैं। आकाश आदि महाभूत और इन्द्रियां मनकी अनुगत होती हैं, मन बुद्धिका अनुगामी हुआ करता है और बुद्धिस्वभावका अनुसरण करती हैं, इसलिये यह सिद्ध होता है, कि विषयोंका कारण इन्द्रिय, इन्द्रियोंका कारण मन, मनका कारण बुद्धि और बुद्धिका कारण चिदात्मा है। निज कर्म्मोंसे प्राप्त हुए नवीन शरीरमें ऐहिक और पूर्वजन्मके जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म रहते हैं, इन्द्रिया उन्हें भी फिर ग्रहण करती हैं। जैसे नौका अनुकूल स्रोतके अनुगत होती है, वैसे ही पूर्व संस्कारके कारण उत्तरोत्तर शरीरोंके क्रियमाण कर्म्म मनका अनुवर्त्तन किया करते हैं। जैसे भ्रान्तिज्ञानसे अस्थिर वस्तुतत्व मालूम होता है, सूक्ष्म पदार्थ मन भी वैसे ही महत्‌रूपकी तरह प्रकाशित हुआ करता है। जैसे दर्पण मुखके प्रतिबिम्बको मुखस्वरूपसे दर्शन कराता है, वैसे ही अज्ञान कल्पित बुद्धि-रूपी आइना एकमात्र प्रत्यक पदार्थकी आलो-चना कराया करता है, इसलिये भ्रान्तिके अनादि होनेपर भी तत्वज्ञानके जरिये उसमें बाधा होती है; बाधा होनेसे फिर दूसरी बार उसके उठनेकी सम्भावना नहीं रहती, इससे भ्रान्तिज्ञान दूर करनेके निमित्त तत्वज्ञानके प्राप्त करनेमें अत्यन्त यत्न करना उचित है।

२०२ अध्याय समाप्त।

[illegible] मनके सहित इन्द्रियोंके जरिये [illegible] चैतन्य है, [illegible]

भूत विषयोंको स्मरण करता है, अर्थात् बाल्य-कालमें मैंने यह अनुभव किया था, इस प्रकारके मनोरथके समय विषयेन्द्रिय सन्निकर्ष आदिके अभाव निबन्धनसे ज्ञेय ज्ञान ज्ञाता वासनायुक्त बुद्धि ही सर्व्वात्मताको प्राप्त होकर साक्षी चैतन्यके जरिये प्रकाशित होती है। अन्तमें इन्द्रियां विलीन होनेपर ज्ञानस्वरूप परमात्माके रूपमें निवास करती हैं, इसलिये इसे अङ्गीकार करना पड़ेगा, कि बुद्धिसे स्वतन्त्र चैतन्य स्वरूप आत्मा अवश्य है। जो साक्षी चैतन्य जब एक समय, असमय और अनेक समयमें निकटवर्त्ती शब्द आदि इन्द्रिय विषयोंकी उपेक्षा न करके प्रकाश किया करता है, तब वह साक्षी परस्पर व्यभिचारी तीनों अव-स्थाओंमें भ्रमण करता है इससे एक मात्र चैतन्य जीव ही परम श्रेष्ठ है। काठमें स्थित अग्नि काठको जलाती है जैसे वायु उस काठका जलानेवाला न होकर भी केवल अग्निको उद्दीपन किया करता है, वैसेही इन्द्रियनिष्ठ बुद्धि ही इन्द्रिय जनित सुख दुःख आदि भोग करती है, चैतन्य उस बुद्धिको सचेतन कर रखता है; परन्तु इन्द्रियजनित सुख दुःखोंको नहीं भोगता। इस ही दृष्टान्तके अनुसार सत, रज, तम गुणात्मक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों बुद्धिस्थानोंके परस्पर विरुद्ध होने-पर भी साक्षी चैतन्य उनमें जिस प्रकार निवास करता है, वैसे ही इन्द्रिय आदि भी लिप्त हुआ करती हैं। नेत्रसे आत्मा देखा नहीं जाता और इन्द्रियोंके बीच जिसमें स्पर्श शक्ति है, उससे भी आत्माको स्पर्श नहीं किया जा सकता, आत्मा शब्द रहित है, इसलिये शब्दके जरियेसे भी वह नहीं जाना जाता, इससे [illegible] इन्द्रिय वा मनके जरिये आत्माको जाना जाता है वह भी [illegible] [illegible] कान आदि इन्द्रियें [illegible] [illegible]

किस प्रकार देखेंगे। दृश्य और द्रष्टा, इस अभेद रूपसे जो सर्व्वज्ञ होकर सभी देख रहा है, और सब विषयोंको जानता है, वह आत्मा ही इन्द्रियोंको देखता है। आत्माके इन्द्रियोंसे अगोचर होनेसे उसके अस्तित्व विषयमें संशय नहीं किया जासकता; क्यों कि हिमालय पर्व्वत और चन्द्रलोकके पृष्ठभाग कभी मनुष्योंको नहीं दीखते, तो यह नहीं कहा जासकता, कि वे नहीं हैं; इसलिये सब भूतोंमें चैतन्य रूपसे स्थित सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप आत्मा पहिले कभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तौभी ऐसा नहीं कह सकते, कि वह नहीं है। दर्पण समान चन्द्रमण्डलमें जगत्की परछाईंको कलङ्क रूपसे देखकर जैसे मनुष्य यह अनुभव नहीं कर सकते, कि यह जगत्ही चन्द्र मण्डलमें दीख पड़ता है, वैसे ही आत्मज्ञान है, वह असत् प्रत्ययके विषय और प्रत्यगात्म रूपसे प्रसिद्ध होनेसे अपरोक्ष है, इसलिये न वह अत्यन्त अविषय है, और न उत्पन्न ज्ञान है, इससे वह आत्म ज्ञानही परम निवृत्तिका स्थान है, इसे जानके भी मनुष्य बुद्धि दोषसे उसे देखकर भी नहीं देखता। पण्डित लोग स्थूलदृष्टिसे रूपवान् वृक्षोंको आदि अन्तमें अर्थात् उत्पत्तिके पहिले और विनाशके बाद रूपहीनता निबन्धन बुद्धिबलसे रूपहीन रीतिसे देखते हैं, क्यों कि आदि और अन्तमें जो वस्तु नहीं रहती, वर्त्तमानमें भी वह वैसीही है, इससे जो लोग इस प्रकार देखते हैं, वे लोग दूरत्व दोष निबन्धन प्रत्यक्षके जरिये अगम्यमाण सूर्य्यकी गतिको देशान्तर प्राप्ति रूपी कारणसे अनुमानके सहारे अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार दृश्यमान पदार्थोंका असत्व और अदृश्यमान वस्तुओंकी अस्तित्व सिद्ध हुआ करती है। जैसे दूरदेशवर्त्ती सूर्य्यकी गतिका अनुमान किया जाता है, वैसेही अत्यन्त ...र लोग दूरस्थित ज्ञानसे मालूम होने योग्य ज्ञेय आत्माको बुद्धि, रूपी दीपकके सहारे देखते हैं, और उसे निकटवर्त्ती करनेमें प्रवृत्तिके वशमें हुआ करते हैं। बिना उपाय किसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता, जैसे जलजन्तुओंसे मछुवाहे शनके सूतसे बने हुए जालके जरिये मछलियोंको बांधते हैं, स्वजातीय हरिनके सहारे हरिनोंको, पक्षीसे पक्षियों और हाथीसे हाथी पकड़े जाते हैं, वैसे ही ज्ञानसे ज्ञेय आत्माको जाना जासकता है। मैंने सुना है, कि सांपही सापका पांव देखता है, वैसेही स्थूल देहके बीच लिङ्ग शरीरमें रहनेवाले ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारेही देखा जाता है। जैसे इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रियोंको जाननेके लिये कोई भी उत्साह नहीं करता, वैसे ही परम बुद्धिवृत्ति शुद्ध बोध्य आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होती। जैसे अमावस्यामें सूर्य्यके सहवासके कारण उपाधिरहित चन्द्रमण्डल नहीं दीखता, परन्तु दृष्टगोचर न होनेसे जैसे चन्द्रमाके नाशकी सम्भावना नहीं है, शरीरधारी जीवको भी वैसाही जानो। जैसे अमावस्यामें क्षीण आवरण चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होता वैसेही मुक्ति विमुक्तिजीवोंकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे पूर्णमासीको फिर चन्द्रमाका प्रकाश होता है, वैसेही जीव शरीरान्तरमें जाके फिर प्रकाशमान हुआ करता है। चन्द्रमण्डलकी तरह जन्म वृद्धि और क्षय, जो कि प्रत्यक्ष प्राप्त होती है, वह शरीरकाही धर्म्म है, जीवका नहीं। उत्पत्ति, वृद्धि और अवस्थाके परिमाणके अनुसार शरीरका भेद होनेपर भी "वह पुरुष यही है," इसी प्रकार जैसे शरीरके ऐक्य विषयमें प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, वैसेही अमावस्यामें अदृश्य चन्द्रमाही फिर मूर्त्तिमान हुआ, "वही चन्द्रमा प्रकाशित होरहा है"— ऐसा ही ज्ञान हुआ करता है, इसलिये बाल्य आदि अवस्थान्तर प्राप्ति निबन्धनसे देशान्तर प्राप्त होनेपर भी शरीर चन्द्रमाका भाँति एक

ही है। जैसे देखा जाता है, कि अन्धकार चन्द्रमण्डलको स्पर्श करने वा परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, जीव भी वैसाही है; शरीर और जीवका परस्पर सम्बन्ध न मालूम होनेपर तीनों कालोंमें भी उसका सम्भव नहीं है। शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध रहनेसे ही वह प्रकाशित है। चन्द्रमा और सूर्य्यके सहित जैसे संयोगके कारण राहुको जाना जाता है, वैसे ही जड़ शरीरके साथ संयुक्त होनेसे चैतन्य स्वरूप आत्माको शरीर कहके मालूम किया जाता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यके सम्पर्कसे रहित होनेसे राहु मालूम नहीं होता, वैसेही शरीरसे रहित होनेपर जीवकी उपलब्धि नहीं की जासकती। जैसे चन्द्रमा अमावस्या तिथिमें गमन करनेसे नक्षत्रोंके सहित संयुक्त होता है, वैसेही शरीरसे छुटा हुआ जीव कर्म्मफल-भूत शरीरान्तरमें संयुक्त हुआ करता है, देहके अभावसे आत्माका अभाव नहीं होता, वह शरीरान्तर अवलम्बन किया करता है।

२०३ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, शरीरके सहित आत्माका सम्बन्ध अपरिहार्य है, इसे सुनकर मुमुक्षु पुरुषोंके अन्तःकरणमें उद्वेगका सञ्चार हो सकता है; इसलिये उसके निवृत्तिसाधन योगका विषय कहता हूं सुनो। स्वप्नावस्थामें जैसे इन्द्रियोंके सहित इस स्थूल शरीरके निद्रित होनेपर [illegible] मात्र विचरण किया करता है, उस ही प्रकार सुषुप्तिकालमें इन्द्रिय रहित करके ज्ञान मात्र निवास करता है. यहां [illegible] और [illegible] निदर्शन पश्चात् जैसे सुषुप्तिकालमें [illegible] लिङ्ग शरीरके निद्रित होनेपर [illegible] ज्ञान स्थापित करता है, और [illegible] ज्ञान मात्र स्थिति [illegible]

करता है। जैसे निर्म्मल जलमें नेत्रके सहारे रूप दीखता है, वैसेही इन्द्रियोंके प्रसन्न होनेपर ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारे देखा जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंको जय करनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न होनेपर मनुष्य उसहीके जरिये विमुक्त होसकता है। जलके चञ्चल होनेसे जैसे उसमें रूप दर्शन सम्भव नहीं होता, वैसेही इन्द्रियोंको विनाशमें किये बुद्धिसे ज्ञेय आत्मा नहीं जानी जाती अज्ञानसे अविद्या उत्पन्न होती है, अविद्यासे मन, राग आदि विषयोंमें आक्रान्त होता है, मनके दूषित होनेपर मन प्रधान कान आदि पांचो इन्द्रियें भी दूषित हुआ करती हैं, विषयोंमें अत्यन्त मग्न मोहपूरित मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता, जीव धर्म्म अधर्म्मके सहित शब्द आदि विषयभोगके निमित्त मरके फिर जन्म लेता इस लोकमें पापके हैं। कारण पुरुषोंकी तृष्णा नष्ट नहीं होती, जब पाप नष्ट होता है, तभी तृष्णा निवृत्त हुआ करती है। विषयोंके सन्सर्गसे नित्यके संशय निबन्धन मनके सहारे सुख दुःख साधन दोनों उपायोंकी विपरीतताके कारण मनुष्य परम पदार्थ नहीं प्राप्त कर सकता। पाप कर्म्मोंके नष्ट होनेसे मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है, तब मनुष्य निर्म्मल दर्पण जलकी भांति आत्मासे ही आत्माका दर्शन करता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुगत होनेसे मनुष्य उसहीके जरिये दुःखभागी होता है और निगृहीत इन्द्रियोंसे सुखी हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियोंके विषयोंसे आप ही अपनेको नियमित करे अर्थात् इन्द्रियोंको संयम करके आत्माको निगृहीत करना उचित है।

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे जीव और जीवसे परमात्मा परमश्रेष्ठ है। [illegible] अव्यक्त [illegible] ज्ञान प्रकट होता है, [illegible] बुद्धि और बुद्धिसे मन उत्पन्न हुआ करता [illegible] यह मन श्रोत्रादि इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर शब्द आदि विषयोंको [illegible]

भव करता है। जो लोग उन शब्दादि विषयों और हृदयाकाशमें भासमान शब्द आदिके आश्रयभूत आकाशादिको परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं, और प्रकृतिसे समुत्थित ग्रामकी भांति अन्तःकरण पथिकके आश्रय स्थान स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करते हैं, वेही केवल सुखभोग कर सकते हैं।

जैसे सूर्य्य उदय होनेके समय किरणमाला उत्पन्न करता है और अस्त होनेके समय उन सब किरणोंको अपनेमें ही संहार करता है। तैसे ही अन्तरात्मा शरीरमें प्रकट होके इन्द्रिय रूपी किरणोंके जरिये पञ्च इन्द्रियोंके भोग्य विषय रूप आदिको भोग करते हुए अस्तरूपी स्वरूपमें निवास किया करता है। जीव अपने किये हुए कर्म्मोंसे नीयमान होकर बार बार शरीर धारण किया करता है, प्रारब्ध कर्म्मोंके फलको भोगनेके लिये प्रवृत्ति प्रधान पुण्य और पापकर्म्मोंका फल प्राप्त होता है। विषय भोगसे रहित जीवका विषयाभिलाष विशेष रूपसे निवृत्त होता है, परन्तु उसकी वासनाका रस निवृत्त नहीं होता, जिन्होंने परमात्माका दर्शन करके समस्त कामनाका फल पाया है। उनकी ही वासना क्षय हुआ करती है।

जब बुद्धि विषयासक्तिसे रहित होकर मन प्रधान "त्वं" पदार्थमें अर्थात् "अस्मिता" मात्रमें निवास करती है, तब मन भी ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मत्व लाभ किया करता है। जो स्पर्श इन्द्रियसे रहित होनेसे स्पर्शन क्रियाका आश्रय नहीं है, श्रवणेन्द्रियसे हीन होनेसे श्रवण आदि क्रियासे रहित है, नेत्रेन्द्रियसे रहित होनेसे दर्शन क्रियाका अनाश्रय है, घ्राणेन्द्रियसे रहित होनेसे आघ्राणका आश्रय नहीं है और जो अनुमानसे अगम्य है, उसही परमात्मामें बुद्धि प्रवेश किया करती है। मनके सङ्कल्पजनित घटपट आदि सब वाह्यवस्तु मनमें निमग्न होती है, मन बुद्धिमें लीन हुआ करता है, बुद्धि चैतन्यस्वरूप जीवमें लयको प्राप्त करती है और जीव परब्रह्ममें मिलित होजाता है। इन्द्रियोंके जरिये मनकी सिद्धिलाभ नहीं होती मन बुद्धिको नहीं जान सकता, बुद्धि अव्यक्त जीवको जाननेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु सूक्ष्मस्वरूप चिदात्मा इन सबकोही देखता है।

२०४ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, शारीरिक वा मानसिक जिन दुःखरूपी विघ्नोंके उपस्थित होनेपर योगसाधनमें यत्न नहीं किया जा सकता, वैसी दुःखविषयक चिन्ता न करे अर्थात् चिन्ता न करके ही वैसे दुःखोंको त्यागना उचित है; ऐसे दुःखोंकी चिन्ता न करनी ही उसके विनाशका महौषध है; दुःखकी चिन्ता करते रहनेसेही वह आगे उपस्थित होता है और उपस्थित होनेपर बार बार बढ़ता रहता हैं। बुद्धिसे मानसिक और औषधीसे शारीरिक दुःखोंका नाश करे; विज्ञानकी सामर्थ यही है—कि दुःख शान्ति किया करता है; इसलिये इसे जानके कोई बालकके समान व्यवहार न करे। रूप, यौवन, जीवन, द्रव्य सञ्चय आरोग्यता और प्रिय सहवास, ये सब ही अनित्य हैं, इससे पण्डित पुरुष उन विषयोंकी आकांक्षा न करें। सब जनपदवासी साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, उसके लिये इकबारगी शोक करना उचित नहीं है, यदि प्रतिकारका उपाय देखा जाय, तो दुःखके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारमें प्रवृत्त होना उचित है। जीवित अवस्थामें सुखसे अधिक निःसन्देह दुःखही उपस्थित होता है। इन्द्रियोंके निमित्त सुख भोगमें अनुरक्त मनुष्योंको छोड़के कारण मरना अप्रिय बोध होता है। जो मनुष्य सुख दुःख दोनोंको त्यागता है, वह परब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्त्ती होता है। जिन सब पण्डितोंने परब्रह्मकी समीपता लाभ

की है, वे कभी शोक नहीं करते। सब अर्थ दुःख योग कर देते हैं, अर्थ पालनसे भी सुख-सम्पत्ति नहीं होती बहुत दुःखसे अर्थ प्राप्त हुआ करता है, तौभी मनुष्य अर्थनाशकी चिन्ता नहीं करता। ज्ञानस्वरूप परब्रह्म अहङ्कार आदि घटपट पर्य्यन्त बाह्य वस्तुके सहित अभेद-रूपसे अविद्याके सहारे अभिहित होता है; इस लिये कनकका धर्म्म कटककी भांति है, मनको ज्ञानका धर्म्म जानना चाहिये वह मन जब ज्ञानेन्द्रियके सहित संयुक्त होता है, तब विषया-कार बुद्धि वृत्तिरूपसे प्रकाशित हुआ करती है जबतक बुद्धि कर्म्मकेनिमित्त सन्स्कारके सहित सम्मिलित होकर जननात्मक चित्त वृत्तिमें निवास करती है, तबतक ध्येयाकार प्रत्यय सन्तति युक्त समाधिके सहारे परब्रह्मको जान-नेमें समर्थ होती है।

पहाड़के शिखरसे जल निकलनेकी तरह वे इन्द्रियादि युक्त बुद्धि अज्ञानसे प्रकट होके रूप आदि विषयोंमें वर्त्तमान रहती हैं, और अज्ञान नाश होनेके समय अज्ञानके कारण ज्ञानसे निर्गुण परमात्माके निकटवर्त्ती होती है, उस समय कसौटी स्थित सुवर्णकी रेखाके समान बुद्धि ब्रह्मको विशेषरूपसे जान सकती है। मन इन्द्रियोंके विषय रूप आदिका प्रद-र्शक होकर पहले अखण्ड प्रकाशके जरिये निरोभूत होता है, अन्तमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा न करके रूप आदिसे रहित निर्गुण ईश्वरका प्रदर्शक हुआ करता है। जीव सब इन्द्रिय द्वारोंको विधानपूर्व्वक सङ्कल्प मात्र मनमें निवास करता है, फिर सङ्कल्पकोभी बुद्धिमें [illegible] करके एकाग्रताके सहारे परब्रह्मको पाता है। [illegible] [illegible] मूल [illegible] [illegible] [illegible] काल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विनष्ट होते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इन्द्रियोंको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

चारिणी बुद्धि निश्चयात्मिका होकर जब मनमें निवास करती है, तब वह लवणोदक वा मधुर जलकी भांति अथवा रूपान्तर प्राप्त कुण्डलके स्वर्णत्व सदृश मनही हुआ करता है।

ध्यानके जरिये सर्व्व उत्कर्षशाली अहङ्कारा-त्मक मन जब रूप आदि विशिष्ट विषयोंके सहित सत्वादिगुण युक्त होता है, तब सर्व्व-गुणा-त्मक अव्यक्तको अवलम्बन करके निर्गुण पर-ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। अरक्त न सत् है, न असत् है; इसलिये उसके विज्ञान विषयमें प्रकृत प्रमाण नहीं है। जिसे वचनसे भी नहीं कहा जा सकता। कौन पुरुष वैसे विषयकी प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। इससे आलोचनासे ध्यान जनित साक्षात्कार, मनन नामक बुद्धिका अनु-सन्धान, शम, दम आदि गुणागुण, जातिके अनु-सार स्वधर्म्म प्रतिपालन और वेदान्त वाक्य सुननेसे शुद्ध अन्तःकरणके जरिये परब्रह्मको जाननेकी इच्छा करे। परमात्मा गुण रहित है, इसलिये उसके प्राप्तिके उपायको भी वाक्यमें गुणहीन भावसे अनुसरण करे; वह स्वाभाविक निर्गुण है, इससे वह तर्कके जरिये नहीं जाना जाता। काष्ठमें स्थित अग्निकी भांति विषयोंमें गमन करनेवाली बुद्धिके विषयहीन होनेपर परब्रह्मकी प्राप्ति होती है, विषययुक्त होनेसे ब्रह्मके सन्निधानसे निवृत्ति लाभ किया करती है। जैसे सुषुप्ति कालमें इन्द्रिया निज निज कर्मोंसे रहित हुआ करती हैं, वैसेही परमा-त्माप्रकृतिसे अत्यन्त विमुक्त होरहा है।

इसी प्रकार प्रकृतिसे चिदाभास संज्ञक सब जीव कर्म्म फलके अनुसार उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, [illegible] अज्ञानकी निवृत्ति होने-पर वे [illegible] गमन करते हैं। [illegible], प्रकृति, बुद्धि, [illegible] [illegible], इन्द्रिया, अहङ्कार और [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं, इनमें [illegible] [illegible] हुई है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ [illegible]

अनन्तर बोजांकुर-न्यायके अनुसार पञ्चमहाभूत रूप विशेष पदार्थ पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और अहङ्कार प्रकृतिके जरिये अभिव्यक्त होते हैं। धर्मसे उत्तम कल्याण और अधर्मसे अकल्याण हुआ करता है; रागवान् पुरुष लयके समय प्रकृतिको प्राप्त होते और विरक्त मनुष्य ज्ञानवान् होके विमुक्त होते है।

२०५ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, जिस समय पञ्च इन्द्रिय शब्द आदि विषयों और मनके सहित संयुक्त होकर निग्रहीत होती हैं, तब धागेमें पड़ी हुई मनियोंकी तरह ब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ करती हैं। जैसे सूत सुवर्ण मालाके बीच वर्त्तमान रहता है, वैसे ही मुक्ता, प्रवाल, मृण्मय और रजतमय मालामें भी उपस्थित है; इसी दृष्टान्तके अनुसार जीव निज कर्म्म फल द्वारा गऊ, घोड़े, मनुष्य, हाथी, मृग, कीट और पतङ्ग आदिमें आसक्त हुआ करता है। जीव जिन जिन शरीरोंसे जो जो यज्ञ आदि कर्म्म करता है, उसही शरीरसे उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जैसे एक रसा-भूमि सब औषधियोंकी प्रयोजन-अनुसारिणी होती है, वैसे ही कर्म्मानुगामिनी बुद्धि अन्तरात्माको दर्शन करती है। बुद्धिपूर्व्वक लिप्सा होती है, लिप्सा होनेसे अभिसन्धि उत्पन्न होती है, अभिसन्धि पूर्व्वक कर्म्म और कर्म्ममूलक फल हुआ करते हैं; इसलिये फलको कर्म्मात्मक, कर्म्मको ज्ञेयात्मक, ज्ञेय वस्तुको ज्ञानात्मक और ज्ञानको चित् और जड़ रूपसे सदसदात्मक जाने। चित् और जड ग्रन्थिरूप फल, वुद्धि रूप ज्ञेय और सञ्चित कर्म्मोंके नष्ट होने पर जो फल हुआ करता है, वही दिव्य फल और ज्ञेय वस्तुमें प्रतिष्ठित ज्ञान स्वरूप है। योगी लोग जिसे देखते हैं, वह नित्य सिद्ध महत्तलही परम श्रेष्ठ है, विषयासक्त बुद्धिवाले मूर्ख मनुष्य उस बुद्धिस्थ महत् पदार्थको देखनेमें समर्थ नहीं होते।

पृथ्वीके रूपसे जलका रूप बड़ा है, अग्नि महत् है, अग्निसे पवन महान् है, आकाश वृहत् हैं, मन उससे भी श्रेष्ठ है, बुद्धि बड़ी है, बुद्धिसे काल महान् हुआ है, कालसे वह भगवान विष्णु बड़े हैं; समस्त जगत् जिसने बनाया है। उस आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है। भगवान् अनादि, मध्यहीन और अनन्त हैं इसही कारण वह अव्यय अर्थात् अपचय हैं, उन्होंने सब दुःखोंको अतिक्रम किया है। दुःखही ज्ञातज्ञेय विभागवत-अन्तयुक्त वर्णित हुआ है। जो हो, वह भगवान कहके वर्णित हुए हैं, उनका आश्रयही परम पद है; इसे जानकर अनित्य दुःखमय कालके विषयसे विमुक्त पुरुष मुक्ति अवलम्बन किया करते हैं। ये सब शुद्ध चिदात्म स्वरूप पुरुष प्रमाण प्रमेय व्यवहार, रूप और सब गुणोंमें प्रकाश लाभ करते हैं; परब्रह्म निर्गुणत्व निबन्धन प्रागुक्त गुणोंसे परम श्रेष्ठ है; शम, दम, उपरमादि रूप निवृत्ति लक्षण निर्व्विकल्प धर्म्म मालूम होनेपर मोक्ष हुआ करती है। ऋक्, यजु और समस्त सामवेद लिङ्ग शरीरको आश्रय करके जिह्वाग्रमें वर्त्तमान रहते हैं, वे यत्न साध्य होके भी विनाशी होते हैं; परन्तु ब्रह्म शरीर अवलम्बन करके उत्पन्न होनेपर भी यत्नसाध्य नहीं है; क्यों कि उसका आदि मध्य और अन्त नहीं है। ऋक्, यजु और साम आदि सबकी आदि कही हुई है और जिनकी आदि है, उनका अन्तभी देखा जाता है, ब्रह्मको आदि किसीने भी स्मरण नहीं की है। ब्रह्मका आदि अन्त नहीं है, इसीसे वह और अनन्त हैं; अव्यय होनेसेही उसमें दुःख नहीं है, और दुःख न रहनेसेही अपि

अपमान आदि कुछ भी नहीं है। जिस मार्गसे परब्रह्मके समीप गमन किया जा सकता है। मनुष्य लोग अदृष्ट, अनुपाय और कर्म्मके प्रतिबन्धन निबन्धनसे उस मार्गको देखनेमें समर्थ नहीं होते। विषयोंके संसर्ग और योगस्थल स्थित योगीके सङ्कल्प मात्रसे उपस्थित पदार्थोंके दर्शन निबन्धनसे अविरक्त योगी मनही मन जो ऐश्वर्य्य सुखका अभिलाष करते हुए परब्रह्मका दर्शन नहीं कर सकता। दूसरे लोग विषय दर्शन करनेसे ही उसे उपभोग करनेकी अभिलाषा करते हैं; इसलिये विषयाभिलाषी लोग परब्रह्मको निर्व्विषय कहके उसे जाननेकी इच्छा नहीं करते। जो पुरुष मूढ़ताके कारण वाह्य विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह योगियोंको प्राप्त होने योग्य विषयको कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धुएंके जरिये अग्निका अनुमान करनेकी तरह सत्य कोमल आदि आन्तरिक गुणोंके सहारे अनुमानसे परब्रह्मको जानना योग्य है, हम लोग ध्यान निर्म्मल शुद्ध-बुद्धिके जरिये परब्रह्मको जान सकते हैं, परन्तु वचनसे उसे कहनेमें समर्थ नहीं होते; क्योंकि उपादान द्रव्यके अभेदके कारण विषयाकारसे परिणत दर्शनका दर्शनसे ज्ञान उत्पन्न होता है ब्रह्माकार चित्तवृत्ति रूप ज्ञानके जरिये शरीर आदिमें आत्मभ्रमके निमित्त कलुषित बुद्धिको निर्म्मल अर्थात् सब संशयोंसे रहित करके बुद्धिके जरिये मन और मनके सहारे इन्द्रियोंको निर्म्मल करके क्षयरहित चैतन्यमात्र परब्रह्मका दर्शन प्राप्त हुआ करता है। ध्यान [illegible] समुत्पन्न बुद्धिहीन मनुष्य विचारात्मक [illegible] अर्थात् श्रवण मनन विशिष्ट [illegible] मार्गरहित निर्गुण आत्माको प्राप्त [illegible] और जैसे वायु काष्ठान्तर्गत अग्निको [illegible] करके उसे परित्याग करता है, [illegible] [illegible] आत्माके जरिये [illegible] [illegible] आत्माको जाननेमें [illegible] होकर उसे परित्याग करते हैं। सब विषयोंके आत्मामें लीन होनेपर मन बुद्धिसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मको जाननेमें समर्थ हो जाता है; और पृथक् रूपसे सब विषयोंका ज्ञान होनेपर मन सब समयमें ही बुद्धि कल्पित ब्रह्मलोक पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य प्राप्तिका निमित्त हुआ करता है। इसलिये आत्मामें सब विषयोंके प्रविलापन विधानसे जो लोग प्रवृत्त होते हैं, वे सब विषयोंके नष्ट होनेसे ब्रह्म शरीरमें लीन होते हैं। मन वचनसे अगोचर अव्यक्त पुरुष निर्लिप्त होकर भी देहादि उपाधि सम्बन्ध निबन्धन कर्म्म समवायीकी भांति दीखता है, फिर अन्त समयमें वह अव्यक्तत्व प्राप्त हुआ करता है। वह आत्मा बुद्धिशील ग्लानियुक्त प्रसिद्ध इन्द्रियोंके सहित असंस्पृष्ट रहके संस्पृष्टकी तरह स्वशरीरमें निवास करता है, यह चिदाभास सब इन्द्रियोंके सहित संयुक्त तथा लिङ्ग शरीर पाके स्थूल देहाकारसे परिणत पञ्च भूतोंका आश्रय करता है; परन्तु विश्वभूत अव्यय अन्तर्यामीके सम्पर्कसे हीन होनेपर असमर्थके कारण गमन आदि कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं होता। मनुष्य इस पृथ्वीका अन्त देखनेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु यह जाना जाता है। कि इसका अन्त अवश्य ही है। जैसे समुद्रकी नौका वायुके सहारे इधर उधर डगमगाकर वायुके जरिये ही किनारे लगती है, वैसे ही धर्म्मके जरिये [illegible] संसार सागरमें जीवका सब कर्म्म, [illegible] चित्त शुद्धि आदि उपायके सहारे परम पारमें उतार देते हैं। जैसे सूर्य्य किरणोंके जरिये जगत् व्याप्ति गुण प्राप्त करके अन्त समयमें किरणमण्डलके नष्ट होनेपर निर्गुण होता है, वैसे ही जीव इस लोकमें मननशील और मुमु[illegible] [illegible] निर्विशेष होकर गुणरहित [illegible] [illegible] प्रवेश करता है। [illegible] संसार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]

नाशी, आदि मध्य और अन्त रहित, अपरिणामी विचलन विवर्ज्जित स्वयम्भू परब्रह्मका दर्शन करके परम मोक्ष पाता है।

२०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ महा प्राज्ञ पितामह! आकाश आदि पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण कार्य्य मात्रके कर्त्ता, उत्पत्ति रहित, सर्व्वव्यापी, देह धर्म्म जरा आदिसे अपराजित, पृथ्वी पालक, इन्द्रिय विजयी, समुद्रके जलमें शयन करनेवाले पुण्डरीक लोचन केशवका स्वरूप मैं प्रकृत रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! जमदग्निपुत्र राम, महर्षि नारद और कृष्णद्वैपायनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। असित, देवल, महातपस्वी बाल्मीकि और मार्कण्डेय मुनि श्रीकृष्णके विषयमें उत्तम, महत् और अद्भुत कथा कहा करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! षड़ैश्वर्य्य पूर्ण सर्व्वव्यापी केशव ही अन्तर्य्यामी रूपसे सबके नियन्ता है, वह विभु ही सर्व्वमय पुरुष है, यह अनेक प्रकारसे सुना जाता है; परन्तु लोकके बीच ब्राह्मण लोग महात्मा माधवके जिन सब कार्य्योंको जानते हैं, वह अनन्त होने पर भी उसमेंसे कुछ महात्म्य कहता हूं सुनो। हे राजन्! पुराण जाननेवाले पुरुष गोविन्दके जिन सब कर्म्मोंको कहा करते हैं, इस समय मैं उसेही कहूंगा। सर्व्वभूतमय महात्मा पुरुषोत्तमने वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी इन पञ्च महाभूतोंकी सृष्टि की है। उस सर्व्वभूतेश्वर महानुभाव प्रभु पुरुषोत्तमने पृथ्वीकी सृष्टि करके जलके बीच शयन किया था। मैंने सुना है, सर्व्वतेजोमय पुरुषोत्तमने जलके बीच शयन करके सब जीवोंके आश्रय तथा सर्व्वभूतोंके अग्रज अहंकारको मनके सहित उत्पन्न किया; वह अहंकार ही सर्व्वभूतों तथा भूत भविष्यत् दोनोंकोही धारण कर रहा है।

हे महाबाहो! अनन्तर उस महानुभाव अहंकारके प्रकट होनेपर भगवान्की नाभीमें सूर्य्यके समान एक दिव्य पद्म उत्पन्न हुआ। हे तात! सब लोकोंके पितामह भगवान ब्रह्मा सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसी कमलसे उत्पन्न हुए। हे महाबाहो! उस महात्मा ब्रह्माके उत्पन्न होने पर तमोगुणसे प्रथम कार्य्यभूत योग-विघातक मधु नाम महा-असुरने जन्म लिया, वह प्रचण्डमूर्त्ति और उग्र कर्म्म करनेवाला महा असुर ब्रह्माको मारनेके वास्ते उद्यत हुआ, तब चिदात्मा पुरुषोत्तमने ब्रह्माकी उन्नति साधन करते हुए उस दानवका बध किया। उस असुरके बध करनेके कारण उसही समयसे सब देवता, दानव, और मनुष्य लोग योगियोंमें श्रेष्ठ भगवानको "मधुसूदन" कहा करते हैं। अनन्तर ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष, इन सात मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे तात! अग्रज मरीचिने कश्यप नाम ज्येष्ठ मानस पुत्र उत्पन्न किया। हे भारत! ब्रह्माने अंगूठेसे मरीचि नामक जिस जेठे पुत्रको उत्पन्न किया था, उनसे भी जो अधिक तेजस्वी और ब्रह्मवित् हुए, उन्होंका नाम दक्ष प्रजापति हुआ। हे भारत! उन दक्ष प्रजापतिके पहिले तेरह कन्या उत्पन्न हुईं, उनके बीच दिति सबसे जेठी है। सब धर्म्मोंकी विशेष रूपसे जाननेवाले पवित्र कीर्त्ति महा यशस्वी मरीचि-पुत्र कश्यप उन सबकोही स्वामी हुए। महाभाग धर्म्मज्ञ दक्ष प्रजापतिने उक्त कन्याओंके अतिरिक्त और दश कन्या उत्पन्न करके धर्म्मको प्रदान की। हे भारत! वसुगण, अत्यन्त तेजस्वी रुद्र गण, विश्वदेव, साध्य और मरुद्गण धर्म्मके पुत्र हैं। प्रजापति दक्षके उक्त तेईस कन्या अतिरिक्त और सत्ताईस कन्या उत्पन्न हुई

महाभाग चन्द्रमाने उन सबकाही पाणिग्रहण किया। कश्यपकी दूसरी स्त्रियोंने गन्धर्व्व तुरग, पशु, पक्षी, किम्पुरुष, मत्स्य, उद्भिज्ज और वनस्पतियोंको प्रसव किया अदितिसे महाभाग देवताओंने जन्म ग्रहण किया, भगवान् विष्णु वामन रूपधारण करके उन लोगोंके नियन्ता हुए। उनके विक्रमके प्रभावसे देवताओंकी श्रीवृद्धि और दितिपुत्र असुर तथा दनुनन्दन दानवोंकी पराजय हुई थी। दनुने विप्रचित्ति आदि दानवोंको उत्पन्न किया; दितिसे महाबलवान असुरोंने जन्म ग्रहण किया। मधुसूदन विष्णुने ऋतुके अनुसार दिन रात्रिका विभाग, पूर्व्वान्ह और अपरान्ह आदि उत्पन्न किया, उन्होंने आलोचना करके बादल और स्थावर जङ्गम जीवोंसे युक्त अखण्ड भूमण्डलकी सृष्टि की। हे भरत-श्रेष्ठ युधिष्ठिर! अनन्तर महाभाग प्रभु मधुसूदनने फिर मुखसे अनगिनत ब्राह्मण, भुजासे असंख्य क्षत्रिय, उरुसे सैकड़ों वैश्य और दोनों पावांसे बहुतसे शूद्र जाति उत्पन्न की। वह महा तपस्वी भगवान् इसी प्रकार चारो वर्णोंको स्वयं उत्पन्न करके विधाताको सर्व्वभूतोंके अध्यक्ष पदपर अभिषिक्त किया। उन्होंनेही वेदविद्या विधाता अमित तेजस्वी ब्रह्माको और सब भूतों तथा मातृगणोंके अध्यक्ष विरूपाक्षको उत्पन्न किया था। सर्व्व भूतात्मा मधुसूदनने पापात्मा पुरुषोंके शासन करनेवाले प्रेतराजको, निधिरक्षाके लिये कुवेरको और जलजन्तुओंके स्वामी वरुणको उत्पन्न किया तथा इन्द्रको सब देवताओंके अध्यक्ष पदपर नियुक्त किया। मनुष्योंको देहधारणके निमित्त जितनी इच्छा अभिलाष थी, वे उस ही प्रकार जीवित रहते थे; उन लोगोंको यमका भय नहीं था।

हे भरतश्रेष्ठ! उस समय उन लोगोंमें मैथुन धर्म नहीं था, केवल इच्छासे सन्तान होती थी। हे प्रजानाथ! अनन्तर त्रेतायुगमें स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्शसे सन्तान उत्पन्न होती थी, उन लोगोंमें भी मैथुन धर्म्म नहीं था। हे राजन्! फिर द्वापरयुगमें प्रजाके बीच मैथुनधर्म्म प्रवृत्त हुआ और कलियुगमें मनुष्य द्वन्द्वरूपसे मिलित हुए हैं। हे तात नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र! यह भगवान् ही भूतपति और सर्व्वाध्यक्ष रूपसे वर्णित हुए हैं। जो लोग गृह न बनाकर उदासीन भावसे निवास करते थे, अब उनका विषय कहता हूं सुनो। दक्षिण पथमें उत्पन्न हुए समस्त अन्ध्रक, गुह उपाधिधारी चाण्डालजाति विशेष, पुलिन्द, शबर, चुचुक और मद्रकजातिके लोग पहिले उदासीनभावसे निवास करते थे। दूसरे जो लोग उत्तरओर उत्पन्न हुए थे, उनका भी विषय कहता हूं सुनो। यवन, काम्बोज, गान्धार, किरात और बर्व्वर जाति, ये सब पापाचारी होकर इस पृथ्वीपर भ्रमण किया करते हैं। हे नरनाथ! इन लोगोंके धर्म्म चाण्डाल, कौए और गिद्धोंके समान हैं। हे तात भरतश्रेष्ठ! ये लोग सत्ययुगमें इस भूमण्डलपर विचरण नहीं करते थे, त्रेतायुगसे ये लोग वृद्धिशील हुए हैं। अनन्तर त्रेता और द्वापर युगके महाघोर सन्धिकाल उपस्थित होनेपर राजा लोग परस्पर मिलित होकर युद्ध विग्रहमें अत्यन्त आसक्त हुए थे। हे कुरुवर! महात्मा विष्णु निर्व्विघ्न होनेपर भी इस ही प्रकार उत्पन्न हुए थे। सर्व्व-लोकदर्शी देवर्षि नारदने भगवान् विष्णुके विषयमें इस ही प्रकार कहा है। हे भरतश्रेष्ठ महाबाहु नरनाथ! महर्षि नारदने भी श्रीकृष्णके परम नित्यत्वको माना है। वह महाबाहु सत्यविक्रम पुण्डरीकाक्ष केशव इस ही प्रकार अचिन्त्यात्मा हैं, वे साधारण मनुष्य नहीं हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पहिले कौन [illegible] लोकोंके स्वामी थे, और कौनसे [illegible]

भाग प्रत्येक ऋषि किन किन दिशाओंमें वास करते थे।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ। इस लोकमें जो लोग प्रजापति थे और जो सब ऋषि जिन दिशाओंमें वास करते थे, यह विषय जो कि तुम मुझसे पूछते हो, उसे सुनो। एक मात्र आदि पुरुष भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भू और सनातन हैं; उन महात्मा स्वयम्भू ब्रह्माके सात पुत्र हुए, उनका नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और स्वयम्भूके समान महाभाग वशिष्ठ, ये सातो प्रजापति कहके पुराणमें वर्णित हुए हैं। इनके अनन्तर जो सब प्रजापति थे, उनका विषय कहता हूं। अत्रिवंशमें सनातन ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनबर्हि उत्पन्न हुए थे, उनसे दश प्रचेता उत्पन्न हुए; दक्ष नाम प्रजापति उन दशोंके एक मात्र पुत्र हैं, लोकके बीच उनका दक्ष और कश्यप यह दो नाम कहे गये हैं। मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, उनका दो नाम है, कोई कोई उन्हें अरिष्टनेमि और कोई कश्यप कहते हैं। जिन्होंने दिनके परिमाणसे सहस्र युग पर्य्यन्त उपासना की थी, वह वीर्य्यवान श्रीमान् राजा सोम अत्रिके औरससे पुत्र हैं। भगवान् अर्य्यमा आदि जो सब कश्यपके पुत्र हैं, वे सबही जगत स्रष्टा और आत्मपयिता हैं। हे अच्युत! शशबिन्दुके दश हजार भार्य्या थीं, उन एक एक भार्य्यासे एक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे; इसही प्रकार उस महात्माके एक लाख सन्तान हुई। उन्होंने उन पुत्रोंके अतिरिक्त दूसरे किसीको भी प्रजापति करनेकी इच्छा नहीं की। प्राचीन ब्राह्मण लोग प्रजा समूहको शशबिन्दवी कहा करते हैं; प्रजापतिके उस महावंशसे वृष्णिवंश उत्पन्न हुआ है। ये सब यशस्वी पुरुष प्रजापति रूपसे वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर जो सब देवता लोग त्रिभुवनके [illegible] हैं, उनका विषय कहता हूं सुनो। भग, अंश, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबल, विवस्वान त्वष्टा; पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपके पुत्र हैं। दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नामसे वर्णित होते हैं, ये महात्मा अष्टम मार्त्तण्डके पुत्र हैं। पहिले वे लोग और विविध देवता लोग भी पितृगण कहके वर्णित हुए हैं। महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप त्वष्टाके पुत्र हैं। अज, एकपाद, अहिब्रध्न, विरूपाक्ष, रैवत, बहुरूप हर, सुरेश्वर, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त और अपराजित पिनाकी, ये सब महाभाग पहले अष्टवसु कहके वर्णित हुए हैं। इसी प्रकार सब देवता प्रजापति मनुके पुत्र हैं; ये लोग पहिले देवता और पितृगण, इस दो प्रकारके रूपसे निर्द्दिष्ट हुए हैं, सिद्ध और साध्य, इन दोनोंके बीच एक शील निबन्धन, दूसरे यौवनके कारण ऋतुगण और मरुद्गण नामसे देवताओंके आदिगण कहके गिने गये हैं। येही विश्वदेवगण और दोनों अश्विनी तनय वर्णित हुए; उनके बीच आदित्यगण क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य और उग्र तपस्यामें अभिनिविष्ट दोनों अश्विनीकुमार शूद्र रूपसे स्मृत हुए हैं, और यह निश्चित है, कि अङ्गिराके पुत्र देवता लोग ब्राह्मण हैं; यही सब देवताओंके चातुर्व्वर्ण्य कहे गये। जो लोग प्रातःकालमें उठकर इन सब देवताओंका नाम लेते, वे स्वकृत वा अन्यकृत सब पापोंसे छूट जाते हैं; यवक्रीत, रैभ्य, अर्व्वावसु, परावसु, उशिज, काक्षीवान् और बल, ये कई एक अंगिराके पुत्र हैं। महर्षि कण्व और बर्हिषद मेधातिथिके पुत्र हैं। हे तात! त्रैलोक्यभावन सप्तर्षि लोग पूर्व्वदिशामें निवास करते हैं। उन्मुच, विमुच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, दृढ़व्रत, भगवान् इध्मवाह और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान अगस्त्य, ये सब ब्रह्मर्षि लोग सदा दक्षिण दिशामें वास किया करते हैं। उषङ्गु कवष, धौम्य, वीर्य्यवान् परिव्याध, महर्षि एकत, द्वित,

त्रित और अत्रिके पुत्र भगवान् निग्रहानिग्रह समर्थ सारस्वत, ये सब महात्मा पश्चिम दिशामें निवास करते हैं। आत्रेय, वसिष्ठ महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक पुत्र विश्वामित्र और महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि, ये साती ऋषि उत्तर दिशाका आश्रय कर रहे हैं। जिस दिशामें जो लोग निवास कर रहे हैं, वे सब तीक्ष्ण तेजस्वी ऋषि लोग वर्णित हुए। ये सबही जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ, महात्मा और साक्षी स्वरूप हैं, इसही प्रकार ये महात्मा लोग प्रत्येक दिशाओंका आश्रय करके स्थित हैं। मनुष्य इन लोगोंका नाम लेनेसे सब पापोंसे छूट जाते हैं; ये लोग जिस जिस दिशामें निवास कर रहे हैं, मनुष्य उसही दिशाके शरणागत होनेसे सब पापोंसे मुक्त और स्वस्तिमान् होकर निज गृहमें लौटते हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यपराक्रमी महाप्राज्ञ पितामह! मैं अव्यय ईश्वर श्रीकृष्णका माहात्म्य विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषप्रवर! श्रीकृष्णका जैसा रूप महत् तेज और जिस प्रकार इनके पूर्व्वकृत कर्म्म हैं, वह सब आप प्रकृत रूपसे वर्णन करिये। हे महाबल! भगवान्ने तिर्य्यग् योनिमें अवतार लेके किन कार्य्योंके निमित्त कैसा रूप धारण किया था, यह भी आप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, पहिले समयमें मैंने मृगयाके निमित्त यात्रा करके मार्कण्डेय मुनिके आश्रममें निवास किया था, वहां उपस्थित होके सहस्रों मुनियोंको बैठे हुए देखा। अनन्तर उन्होंने मधुपर्कसे मेरा अतिथिसत्कार किया; मैंने उस सत्कारको ग्रहण करके ऋषियोंको प्रणाम किया। उस ही स्थानमें महर्षि [illegible] जिस [illegible] कथाको उस दिव्य कथा कही गई थी तुम एकाग्रचित्त होकर उस कथाको सुनो। पहिले समयमें क्रोध लोभसे युक्त बलदर्पित नरक आदि सैकड़ों दानवश्रेष्ठ सब महासुर और दूसरे युद्धदुर्म्मद बहुतेरे दानव लोग देवताओंकी परम समृद्धि देखकर असहिष्णु हुए थे। हे राजन्! देवता और देवर्षि लोग दानवोंसे पीड़ित होकर इधर उधर स्थित होनेपर भी सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए। देवताओंने घोररूप महाबलवान दानवोंसे परिपूरित पृथ्वीको अत्यन्त पीड़ित देखा। पृथ्वीको उस समय भारसे अत्यन्त आक्रान्त, अप्रहृष्ट और दुःखित होकर डूबती हुई देखकर अदितिनन्दन देवता लोग अत्यन्त भयभीत होकर ब्रह्माके निकट जाके यह वचन बोले, हे ब्रह्मन्! हम लोग दानवोंका दारुण पीड़न किस प्रकार सहेंगे?

स्वयम्भू ब्रह्मा देवताओंका वचन सुनके उन लोगोंसे बोले, हे देवता लोगो! मैंने इस विषयमें विधि प्रदान की है; वरके प्रभावसे बलसे मतवाले अत्यन्त मूढ़ दानव लोग देवताओंके भी अधर्षणीय वराहरूपी भगवान् अव्यक्तदर्शन विष्णुको नहीं जानते वे सब सहस्रों महाघोर अधम दानवलोग भूमिके अन्तर्गत होकर जिस स्थानमें वास कर रहे हैं, वे वराहरूपी विष्णु वेगके प्रभावसे वहां जाके उन सब दानवोंका संहार करेंगे। देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके परम हर्षित हुए। अनन्तर महातेजस्वी विष्णु वराहमूर्त्ति धारण करके भूगर्भमें प्रवेश करके दितिपुत्रोंकी ओर दौड़े। कालमोहित दैत्य लोग बलपूर्वक एकत्रित होकर उस अमानुष सत्वको देखकर विस्मित होके खड़े रहे। अनन्तर उन सब लोगोंने एक बारही क्रुद्ध होकर सम्मुख आके उस वराहको धारण किया और चारों ओर खींचने लगे। हे राजन्! [illegible]

सके। अन्तमें वे सब दानवेन्द्रगण भयभीत और विस्मित हुए तथा सहस्र बार अपनेको संशययुक्त समझा।

हे भरत सत्तम! अनन्तर योगसहाय योगात्मा देवोंकेदेव भगवान्ने योग अवलम्बन करके दैत्य दानवोंको क्षोभित करते हुए ऊंचे स्वरसे निनाद किया, उस शब्दसे सब लोक और दशों दिशा अनुनादित हुईं उस शब्दसे सब लोगोंके अन्तःकरणमें क्षोभ उत्पन्न हुआ; इन्द्र आदि देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उस शब्दसे मोहित होकर अत्यन्तही निश्चेष्ट हुआ। अनन्तर सब दानव लोग उसही शब्दसे भीत, विष्णुके तेजसे बिमोहित और चेतरहित होकर गिर पड़े, बराहरूपी भगवान्ने रसातलमें जाकर भी खुरसे देवताओंके शत्रुदानवोंका मांस, मेद और अस्थियोंको विदारण किया। वह भूतराट्, भूताचार्य्य महायोगी पद्मनाभ विष्णु उस महानादसे सदा भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये चेष्टा करते हैं, इसहीसे सनातन नामसे बर्णित हुए हैं। अनन्तर सब देवताओंने जगत्पतिसे कहा, हे देव! हे प्रभो! यह निनाद कैसा है, हम इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह क्या शब्द है। यह किसका शब्द है, जिससे जगत् बिह्वल होरहा है। सब देवता और दानव इस शब्दके प्रभावसे मोहित होरहे हैं। हे महाबाहो! इतनेही समयमें बराहरूपधारी विष्णु महर्षियोंसे स्तुतियुक्त होकर रसातलसे उत्थित हुए, पितामह बोले, यह महाकाय, महाबल, महायोगी, भूतात्मा, भूत भावन, सर्व्वभूतेश्वर, आत्माके भी आत्मा, मननशील दानवारि कृष्णने मुख्य मुख्य दानवोंका बध करके सब विघ्नोंका नाश किया है; इससे तुम सब कोई स्थिर होजाओ। यह अपरिमित प्रभावयुक्त, महाद्युति महाभाग, महायोगी, बन, महात्मा पद्मनाभ दूसरेसे न होने योग्य साधु कार्य्य सिद्ध करके स्व-स्वभावसे समागत हुए हैं। हे सुरसत्तमगण! इसलिये तुम लोगोंको शोक सन्ताप अथवा भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। येही विधि, येही प्रभाव और यही सत् क्षयकारक काल स्वरूप हैं; इन्हीं महानुभाव भगवान्ने सब लोकोंको धारण करते हुए शब्द किया था; सब भूतोंके आदिभूत सब लोकोंके नमस्कृत वह महाबाहु पुण्डरीकाक्ष अच्युत ईश्वर यही विद्यमान हैं।

२०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप मेरे समीप मोक्ष-विषयके परमयोगको बर्णन करिये। हे बक्तृबर! मैं उक्त बिषयक यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, गुरुके सहित शिष्यका मोक्षवाक्य संयुक्त जो वार्त्तालाप हुआ था प्राचीन लोग उस पुराने इतिहासका इस विषयमें प्रमाण दिया करते हैं। परम मेधावी अत्यन्त सावधान किसी शिष्यने तेजस्वी सत्यसन्ध जितेन्द्रिय ऋषिसत्तम महानुभाव सुखसे बैठे हुए किसी आचार्य्य ब्राह्मणका चरण छूके हाथ जोड़के खड़ा होकर कहा। हे भगवन्! यदि आप मेरी उपासनासे प्रसन्न हुए हों, तो मुझे जो कुछ महा संशय है, मेरे समीप उस बिषयको बर्णन करना आपको उचित है। हे द्विजसत्तम! मैं किस उपादान और कौन निमित्त कारणसे उत्पन्न हुआ हूं, आप भी किस उपादान वा निमित्त कारणसे उत्पन्न हुए हैं? उस परम कारणके स्वरूपको पूर्ण रीतिसे कहिये और उपादान कारण पञ्चभूतोंके समान होने पर भी किस लिये क्षय और उदय विषम रूपसे दीख पड़ता है। वेद और लोकमें जो व्याप्याव्यापक भावसे वर्त्तमान है, आप वह सब विषय प्रकृत रूपसे बर्णन करिये।

गुरु बोला, हे महाप्राज्ञ शिष्य! सब विद्या और समस्त आगमोंकी जो सम्पत्ति है, जो वेदके बीच परम गुह्य भावसे वर्णित है, वह अध्यात्म विषय कहता हूं सुनो। भगवान् वासुदेव सब वेदोंके आदिभूत प्रणव हैं; वेही सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा और आर्जव स्वरूप हैं। वेद जाननेवाले पण्डित लोग जिस सनातन पुरुषको विष्णु कहके जानते हैं, वही सृष्टि और प्रलयके कर्त्ता अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं; उसही ब्रह्मने वृष्णिवंशमें अवतार लिया है, इस विषयका इतिहास मुझसे सुनो। अपरिमित तेजसे युक्त देवदेव विष्णुका महात्म्य ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंको, वैश्य वैश्योंको और महामना शूद्र शूद्रोंको सुनावें। तुम परम कल्याणकारी कृष्णके उपाख्यानको सुननेके योग्य पात्र हो, इसलिये उसे सुनो।

हे पुरुषप्रवर! आदि और अन्तहीन जो परम श्रेष्ठ कालचक्र है, उसे ही पण्डित लोग अक्षय, अव्यय अमृत, शाश्वत ब्रह्म चैतन्य रश्मिके जरिये सर्व्वव्यापी अन्नमय आदि पञ्च पुरुषसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। उत्पत्ति और प्रलय लक्षण इस त्रैलोक्य चक्रारूढ़ पिपीलिकाकी भांति वह सर्व्वभूतेश्वरमें सब तरहसे वर्त्तमान हैं। उस परिणामरहित परम पुरुषने फिर सृष्टिके आरम्भमें महदादि कार्य्योंके अवस्थान प्रकृतिको निर्म्माण करके पितरगण, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, पन्नग, असुर, और मनुष्योंको उत्पन्न किया है, तथा वेदशास्त्र और शाश्वत लोक धर्म्मका विधान किया है। जैसे ऋतुकालमें पर्य्यायक्रमसे अनेक प्रकार ऋतुचिह्न दीख पड़ते हैं, अर्थात् प्रतिवर्ष वसन्तकालमें आमके वृक्ष, ग्रीष्मकालमें मल्लिका और वर्षा समय कदम्बके वृक्ष नियमपूर्व्वक फूलते हैं, वैसे ही युगके आरम्भमें [illegible] पूर्व्वरूपोंको धारण किया करते हैं, और युग, काल समयके अनुसार [illegible] प्रका-शित होता है, लोकयात्रा विधानके लिये वही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। पूर्व्वयुगमें जो कुछ था, युगके आरम्भमें महर्षियोंने पहले स्वयम्भूकी आज्ञानुसार तपस्याके सहारे इतिहासके सहित उन्हीं सब वेदोंको प्राप्त किया था।

वेद जाननेवाले, भगवान् ब्रह्मा देव और बृहस्पतिने सब वेदाङ्गोंको जाना था; असुराचार्य्य भार्गवने जगत्के हितकर नीतिशास्त्र कहा, महर्षि नारदने गन्धर्व्वविद्या, भरद्वाजने धनुर्व्विद्या गर्गने देवर्षिचरित और कृष्णात्रेयने चिकित्सा-शास्त्र जाना था। ऋषियोंने परस्पर विवादमान होकर जो न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा दर्शन बनाये हैं, उनके बीच युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ऋषियोंके जरिये जो ब्रह्मवर्णित हुआ है, उसकी ही उपासना करनी चाहिये। देवता वा ऋषि लोग उस आदि कारणसे रहित परब्रह्मको नहीं जानते थे, सर्व्व शक्तिमान जगत्विधाता एक मात्र नारायण ही उसे जानते थे। नारायणसे ऋषियों और मुख्य मुख्य सुरासुरों तथा प्राचीन राजर्षियोंने उस दुःखराशिके महौषध स्वरूप परब्रह्मको जाना था।

जब प्रकृति पुरुषके आलोचित महदादि कार्य्योंके प्रसवोन्मुखी होती है उसके पहले धर्म्माधर्म्म युक्त जगत् सब तरहसे वर्त्तमान रहता है। जैसे तलवत्ती आदि कारणसे एक दीपकसे सहस्रों दीपक प्रज्वलित हुआ करते हैं, वैसे ही प्रकृति पूर्व्वदृष्ट युक्त महदादि कार्य्य उत्पन्न करती है। अहङ्कारसे शब्द तन्मात्र आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है। ये आठ मूल प्रकृति हैं, ज्ञान इन सबमें ही स्थित है। [illegible] अधिष्ठित [illegible] पञ्च ज्ञानेन्द्रिय [illegible] आदि पञ्च विषय और [illegible] मन उत्पन्न हुआ है, इस [illegible] इन्द्रिय [illegible] हैं [illegible]

जीभ और नासिका, ये पांचो ज्ञान इन्द्रिय हैं। पद पायु, उपस्थ, हाथ और वाक्य ये पांचो कर्म्म इन्द्रिय हैं, शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। चित्त इन सबमें व्यापकभावसे स्थित है और मन उन शब्द आदि समस्त विषयोंमें श्रोत्रादि रूपसे स्थित होरहा है इसे जानना योग्य है।

इस ज्ञानके विषयमें यह मनही जिह्वास्वरूप होता है और शब्द प्रयोग विषयमें मन ही वाक्यस्वरूप हुआ करता है, मन विविध इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर महदादि घट पर्य्यन्त सब व्यक्त पदार्थोंका स्वरूपत्व लाभ करता है, दशों इन्द्रिय, मन और पञ्चभूत, इन षोड़श पदार्थोंको विभागके अनुसार देवता कहके जाने। मनुष्य शरीरके बीच अध्यासीन ज्ञानकर्ताकी उपासना किया करते हैं। जलका कार्य्य जिह्वा, पृथ्वीका कार्य्य नासिका, आकाशका कार्य्य कान, अग्निका कार्य्य नेत्र और वायुका कार्य्य त्वचा है, इन्हें सब भूतोंमें सर्व्वदा विद्यमान जानना चाहिये। पण्डित लोग मनको सत्वका कार्य्य कहा करते हैं; सत्व प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है परन्तु सब भूतोंके आत्म भूत ईश्वरमें उपाधि रूपसे निवास करता है; इसलिये बुद्धिमान मनुष्य उस विषयका ज्ञान किया करते हैं। ये सब सत्व आदि पदार्थ स्थावर जङ्गमात्मक जगत्को आश्रयपूर्व्वक धारण कर रहे हैं, जो देव प्रकृतिसे भी परम श्रेष्ठ है, पण्डित लोग उसे सर्व्व प्रवृत्ति रहित कूटस्थ कहा करते हैं। शब्द आदि विषयोंसे युक्त, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक बुद्धि, मन, देह और प्राण इस नवद्वार पवित्र पुर आक्रमण करके जीवात्मा शयन कर रहा है, इसही कारण उसे पुरुष कहा जाता है। वह अजर और अमर है, वेद उसे मूर्त्त और अमूर्त्त, इन दोनो रूपोंसे वर्णन किया करते हैं; वह सर्व्व व्यापक और सर्व्वत्वादि गुणोंसे युक्त है। वह सूक्ष्म और सब भूतों तथा सत्वादि गुणोंका आश्रय है। उपाधिके कारण ऊसही हो, वा महान हो होवे; पर जैसे दीपक बाह्य पदार्थोंको प्रकाशित किया करता है, ज्ञान स्वरूप पुरुषको भी सब जीवोंमें उसही प्रकार जानो। जिसके रहनेसे कान शब्द सुननेमें समर्थ होते हैं, वही सुनता और वही देखता है, यह शरीर उन शब्दादि ज्ञानका निमित्त कारण मात्र है, वही सब कर्म्मोंका कर्त्ता है। काठमें छिपी हुई अग्नि जैसे काठके काटनेसे नहीं दीखती, वैसेही शरीरमें रहनेवाली आत्माको देह विदीर्ण करनेपर भी नहीं देखा जाता। उपायके सहारे जैसे काठको मथनेसे उसमेंसे अग्नि दीख पड़ती है, वैसेही योगरूप उपायके जरिये शरीरस्थ आत्माको इस शरीरसेही देखा जा सकता है; जैसे नदियोंमें जल और सूर्य्य मण्डलमें किरण सदा संयुक्त रहती हैं, वैसेही जीवोंके शरीर आत्माके सहित सयुक्त हैं, योगाभावसे देह सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। पञ्चइन्द्रिय युक्त स्वप्न-कालकी भांति मरनेके अनन्तर शरीर त्यागके देहान्तरमें गमन करता है; यह शास्त्र दृष्टिके सहारे मालूम हुआ करता है। जीव पहले अपने किये हुए बलवान् कर्म्मोंसे प्रेरित होकर जन्म लेता है, और कर्म्मोंसेही देहान्तरमें गमन किया करता है। जैसे मनुष्य शरीर त्यागके एक शरीरके अनन्तर दूसरा शरीर पाता है, वैसेही निज कर्म्मके अनुसार जन्म लेनेवाले दूसरे जीव भी एक शरीरसे देहान्तरमें गमन करते हैं, इसे फिर कहूंगा।

२१० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पण्डित लोग स्थावर जङ्गमात्मक चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीवोंको अव्यक्त प्रभव और अव्यक्त निधन कहा करते हैं, अर्थात् जीवोंकी देहान्तर प्राप्ति और वियोग गृहसे गृहान्तरमें गमनकी तरह विचार

नहीं है। आत्मा अव्यक्त है, मन उसही अव्यक्त आत्माका स्वरूप है, अर्थात् दूसरे चन्द्रमाकी भांति आत्मामेंही कल्पित है, इससे मनका लक्षण भी विस्पष्ट नहीं है ; इसलिये यह जानना चाहिये, कि मन कल्पित उत्पत्ति निधन और अव्यक्त है। जैसे अश्वत्थ बीजके अन्तर्गत अत्यन्त छोटे अंशके बीच बृहत् वृक्ष अन्तर्भूत रहता है। फिर कुछ समयके लिये वह व्यक्त रूपसे दीखता है, अव्यक्तसे दृश्य-वस्तु मात्रका सम्भव भी वैसाही है। जैसे अचेतन लोहा अयस्कान्त अर्थात् चुम्बक पत्थरको ओर दौड़ता है, वैसेही पूर्व्व संस्कारके कारण कर्म्म-जनित धर्म्माधर्म्म तथा अज्ञान आदि भी अभि-व्यक्त शरीरके अनुगत हुआ करते हैं। प्रागुक्त न्यायके अनुसार अविद्याजनित काम कर्म्मवा-सना देह और इन्द्रिय आदि अचेतन पदार्थ सब तरहसे सहत होकर कारण स्वरूप चतयिता परब्रह्मका कारणत्व लक्ष्य किया करते हैं, और कारण रूप परब्रह्मके निकटसे सत्व, चित्त और आनन्दत्व आदि आत्मधर्म्म सब तरहसे शरीरने सङ्गत होते अर्थात् देहान्तर प्राप्ति होनेपर आत्मानात्म गुणसमूह पहलेकी भांति सङ्गत हुआ करते हैं, भूमि, आकाश, स्वर्ग, भूतगण, सब प्राण, शम और काम आदि अथवा इन सबके अतिरिक्त दूसरे कोई पदार्थ जगत्का आरम्भके पहले कुछ भी न थे, अन्तमें भी [illegible] उपाधि सहत जीवमें सङ्गत होनेमें [illegible] न होंगे अर्थात् भूमि आदि सब पदार्थ [illegible] जीवके सहित कभी सङ्गत नहीं हो [illegible]। [illegible] नित्य सर्व्वगत मनके कारण [illegible] आत्माका जो मनुष्य पशु आदि [illegible] तदात्म प्रतीति हुआ करती है, वह [illegible] कर्म्मके [illegible] वर्त्तता है। [illegible] [illegible] [illegible] होता है, [illegible] और [illegible] वासना, [illegible] [illegible]

इसके जरिये वर्त्तमान है, जीव स्वरूप आत्मा वासना समूहमें संयुक्त होकर उन कार्य्योंको संग्रह कर रहा है। अव्यक्त बुद्धिवासनासमूह जिसकी नाभी अर्थात् नाभीकी भांति अन्तरङ्ग, व्यक्त देहेन्द्रिय आदि जिसके अर अर्थात् नाभी और नेमिके सन्धानकारक काठोंकी तरह वहि-रङ्ग, ज्ञात क्रिया विकार आदि जिसकी नेमि अर्थात् नेमिकी भांति व्यापक, रञ्जनात्मक रजोगुण जिसका अक्ष अर्थात् पहियेकी तरह चलनेवाला है, वही जन्म मरण प्रवाहरूप संघातचक्र क्षेत्रज्ञके जरिये अधिष्ठित होकर अविचलित रूपसे वर्त्तमान है। जैसे तिलकी पेरनेवाले तेली लोग प्रीतिपूर्व्वक तिलोंको चक्रके बीच आक्रमें दुःख सब भोग रजोगुणके आक्रमण निबन्धनसे इस संघात चक्रमण करके पेरते हैं, वैसेही अज्ञानसे समस्त जगज्जनोंको निष्पीड़न कर रहा है। वह संघातस्वरूप चक्र फल तृष्णाके कारण अभिमानसे परिगृहीत होकर कर्म्म करता है, कार्य्य और कारण, इन दोनोंके संयोग उपस्थित होनेसे वह कार्य्य ही कारण रूपसे समर्पित होता है। रसरोंगे सर्पभ्रमकी भांति कार्य्यकारणकी विषमसत्तासे कारणमें कार्य्य और कार्य्यमें कारण प्रवेश सङ्घ-टित नहीं होता। कार्य्योंके अभिव्यक्त निमित्त घटादि सहाययुक्त काल ही हेतु रूपसे समर्थ हुआ करता है। कर्म्मयुक्त पहले कही हुई आठ प्रकृति और सोलह विकार पुरुषके अधि-ष्ठानसे सदा सङ्गत हुए रहते हैं। जैसे वायुके जरिये धूल उड़ती है, वैसे ही पूर्व्व देहसे [illegible] जीव, राजस वा तामस संस्कारयुक्त और [illegible] तथा पुण्य प्रभावसे संयुक्त होकर देहको [illegible] हुए [illegible] गमन किया करता है। [illegible] [illegible] नहीं [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कहीं कभी उक्त सब भाव स्पष्ट नहीं होते अर्थात् जैसे रजोहीन वायुमें सरजस्कत्वकी भ्रान्ति हुआ करती है, आत्मामें देह आदि सङ्ग भी उसही प्रकार भ्रान्तिके कार्य्य हैं। विद्वान् पुरुष वायु और धूलिके पृथक् भावकी तरह जीव वा पृथक् भाव जानकर भी देहादिके आत्माके सहित आत्माके तदात्म ज्ञानके अभ्यासके कारण शुद्ध स्वरूप आत्मको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा विभु होकर भी स्वभावमें बद्ध इत्यादि रूपसे उत्पन्न हुए सब सन्देह "पुरुष असङ्ग" इत्यादि मन्त्र वर्णसे विच्छिन्न आत्मा देह तिरिक्त है। इसे जानके भी साम्राज्य कामी राजा जैसे राजसूय यज्ञके जरिये शरीरमें कृत्रिम मूर्द्धाभिषिक्त लक्षणकी उपेक्षा करते हैं, वैसेही मुमुक्षु मनुष्य विद्या साधनके समय कर्त्तृत्वादि विशेषणकी अपेक्षा करते हैं, किन्तु समय पर उसे परित्याग किया करते हैं। जैसे अग्निमें जले हुए बीज फिर नहीं जमते, वैसेही अविद्या आदि क्लेशोंके ज्ञान रूपी अग्निसे जलनेपर आत्मा फिर शरीर ग्रहण नहीं करती।

२११ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जिस प्रकार कर्म्मनिष्ठ मनुष्योंको प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म अभिलषित है, वैसेही विज्ञाननिष्ठ पुरुषोंको विज्ञानके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें रुचि नहीं होती। वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कार्य्य और शम, दम आदि विषयोंमें निष्ठावान् वेद विद्याशाली पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष महत् प्रयोजनके कारण स्वर्ग और मोक्ष, इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मोक्षकीही कामना किया करते हैं। कर्म्मत्यागरूप व्यवहार साधुओंके आचरित कहके गर्हित नहीं है, निवृत्ति लक्षणवाली बुद्धिको अवलम्बन करनेसे मनुष्य मोक्ष पाते हैं। शरीराभिमानी मनुष्य मोहके कारण रजोगुण और तमोगुण जनित क्रोध लोभ आदिके सहित संयुक्त होकर सब विषयोंको ग्रहण किया करता है; इसलिये जो लोग शरीरके सङ्ग सम्बन्धकी अभिलाष करें उन्हें अशुद्ध आचरण करना उचित नहीं है। कर्म्मके जरिये आत्मज्ञानका द्वार बनाते हुए मनुष्य कर्म्म जनित स्वर्ग आदि शुभ लोकोंके सुख सम्भोगको स्वीकार न करे। जैसे लोहमिश्रित पाकहीन सुवर्ण शोभित नहीं होता, वैसेही जिस पुरुषने राग आदि दोषोंको जय नहीं किया, उसमें विज्ञान प्रकाशित नहीं होता। जिस पुरुषने धर्म्मपथको अवलम्बन करके काम क्रोधका अनुसरण करते हुए लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरण करता है, वह मूलके सहित विनष्ट होता है, इसलिये धर्म्मपथको कारण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य रागाधिक्यके शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आसक्त न होवें। क्रोध, हर्ष और विषाद, रज, सत और तमो गुणसे उत्पन्न हुआ करते हैं, सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत पञ्चभूतात्मक शरीरमें जीव किसको क्या कहके स्तुति करेगा। मूढ़ लोगही स्पर्श, रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वे उलटी बुद्धिके कारण देहको पृथ्वीका विकार नहीं समझते। जैसे मट्टीमय गृह मृत्तिकासे लिप्त होता है, वैसेही यह पार्थिव शरीर मट्टीके विकार अन्नादिका उपयोग करके जीवित रहता है। मधु, तेल, दूध, घृत अनेक प्रकारके मांस, नमक, गुड़ अनेक तरहके धान्य और फल मूल सजल मृत्तिकाके विकार मात्र हैं। जैसे कान्तारवासी सन्न्यासी मिष्टान्नादिके भोजनमें अनुराग न करके देह यात्रा निर्व्वाहके निमित्त अस्वादिष्ट ग्राम्य आहार किया करता है, वैसेही संसार कान्तारवासी मनुष्य परिश्रममें तत्पर होकर वेद आदि श्रवण निर्व्वाहके निमित्त रोगीके औषध सम

करनेकी तरह आहार करे, इन्द्रियोंको प्रीतिकरी वस्तुको भोजन करनेमें अनुरक्त न होवे। यथार्थ वचन, अन्तर्बाह्य शौच, सरलता, वैराग्य, अध्ययनजनित तेज, मनको जय करनेमें पराक्रम, सन्तोष, क्षमा, वेद सुननेसे बुद्धि और मनके जरिये क्रियमाण साधु और असाधु आलोचनारूपी तपस्याके सहारे सब विषयमय भावोंको अवलोकन करके उदार चित्त होकर शान्तिकी रक्षा करते हुए इन्द्रियोंको संयत करे। सब जन्तु सत, रज और तमोगुणसे मोहित होके अज्ञानके वशमें होकर चक्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं, इसलिये अज्ञान सम्भव दोषोंकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके अज्ञान प्रभव दुःख अहंकारको परित्याग करे। सब महाभूत, इन्द्रियां, सत, रज, तम, गुण, जीवके सहित तीनो लोक और कर्म्म अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् वे सब अहंकार-कल्पित हैं। जैसे इस लोकमें नियमित काल ऋतुगुणको प्रदर्शित करता है, वैसेही अहंकारको भी भूतगुणमें कर्म्म प्रवर्त्तक जानो। अहङ्कारकी तरह अप्रकाश अज्ञान सम्भव तमोगुण सम्मोहजनक, सत्वगुण प्रीति जनक और रजोगुण दुःखजनक है, इसी प्रकार तीनों गुणोंको जानना योग्य है। सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत विशेष गुणोंको सुनो। प्रमाद, हर्षजनित प्रीति, निःसन्देह, धृति और स्मृत, इन सबको सतोगुण जाने; और काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह भय, श्रम, विषाद, शोक अनुराग, अभिमान, दर्प, अनार्य्यता, इन्हें राजस और तामस गुण जानना चाहिये। इसही प्रकार [illegible] गौरव और लाघवकी परीक्षा करके [illegible] इसके बीच कौन कौनसे दोष हैं, कौन [illegible] और कौनसे दोष [illegible] है, [illegible] एक एक करके इसकी आलोचना करे।

[illegible] बोले, हे पितामह [illegible] [illegible] किन किन [illegible] परित्याग किया था, किन किन दोषोंको बुद्धिबलसे शिथिल किया था; कौन कौनसे दोष अपरिहार्य्य हैं, कौन कौनसे दोष उपस्थित होकर भी निष्फल होते हैं, और विद्वान् पुरुष किन किन दोषोंके बलाबलको बुद्धि और युक्तिके सहारे आलोचना करें? इस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, शुद्ध चित्तवाले मनुष्य मूलच्छेदनके सहित दोषोंका नाश करें। जैसे वास्यधारा लोहनिगड़को काटके स्वयं विनष्ट होती है, वैसेही ध्यान संस्कृता बुद्धि सहज तामस दोषोंसे उत्पन्न हुई वस्तु मात्रकाही विनाश करते हुए स्वयं नष्ट हुआ करती है। राजस, तामस और कामरहित शुद्धात्मक, सत्व, ये सब गुण शरीरधारियोंके देह-प्राप्ति विषयमें बीज स्वरूप हैं; परन्तु जितचित्त लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिका उपाय सत्वमात्र है; इसलिये चित्त विजयी मनुष्योंको रजोगुण और तमोगुण त्यागना उचित है। रजोगुण और तमोगुणसे निर्मुक्त बुद्धिही निर्म्मलताको प्राप्त होती है अथवा बुद्धि वशीकरण निमित्त विहित मन्त्रयुक्त यज्ञादि कर्म्मोको कोई कोई दुष्कृति कहा करते हैं, अर्थात् यज्ञादि कर्म्मोंमें जीवहिंसा रहनेसे वह दुरदृष्ट विधायक करके किसी किसी मतावलम्बी मनुष्योंने उसे निन्दित कार्य्य रूपसे गिना है, यथार्थमें वे मन्त्रयुक्त कार्य्यही वैराग्यके निमित्त हुआ करते हैं और शुद्ध धर्म्म स्वरूप शम दम आदिकी रक्षाके विषयमें यज्ञादिही धर्म्म रूपसे विहित हैं; यज्ञादिके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ करता है [illegible]

प्राय.स्रतसे दूर हो सकता है। सुखसमुद्रमें मग्न मनुष्य अल्पदुःख सहनेमें अवश्यही समर्थ हुआ करते हैं। हिंसाविहारमें सदा अनुरक्त तन्द्रा और निद्रायुक्त मनुष्य रजोगुणके जरिये अर्थयुक्त कार्य्योंको प्राप्त करते और समस्त कामोंको सेवा करते तथा तमोगुणके सहारे लोभयुक्त क्रोधज कार्य्योंको सेवन किया करते हैं। सतोगुण अवलम्बी श्रद्धा और विद्यायुक्त पवित्रचित्तवाले श्रीमान् मनुष्य बुद्धिसे सात्विक भावको आलोचना किया करते हैं, इसलिये वैदिक कर्म्मोंमें काम, क्रोध आदिके हेतुभूत राजस और तामस भाव परित्याग हैं, और सात्विक भाव अवश्य सेवन करने योग्य है।

२१२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! रज और तमोगुणसे आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान स्वरूप मोह उत्पन्न होता है, मोहसे क्रोध, लाभ, भय और दर्प प्रकट होते हैं, इन सबको नष्ट करतेही मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राचीन लोग अविनाशी ह्रासहीन सर्व्वाश्रय देवसत्तम पञ्चकोशातीत अव्यक्त विभु परमात्माको विष्णु कहके जानते थे, अब भी शुद्धचित्तवाले पुरुष उसे वैसाही जानते हैं। उसही विष्णुकी मायासे जिनकी इन्द्रिया विकृत हुई हैं, वे सब मनुष्य ज्ञान भ्रष्ट हैं; इसलिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होकर बुद्धिको विपरीततासे विक्षिप्तचित्त होते हैं; विक्षिप्तचित्तता क्रोधका धर्म्म है; क्रोधसे काम उत्पन्न होता है, कामसे धीरे धीरे लोभ, मोह अभिमान, उच्छृङ्खलता और अहंकार प्राप्त होता है अहंकारसे जननादि सब कार्य्य स्वीकार किये जाते हैं, जननादि क्रियासे स्नेह सम्बन्ध उत्पन्न होता है, स्नेह होनेसे ही अन्तमें शोक उत्पन्न हुआ करता है और जन्म मरण लक्षण सुख दुःख कार्य्यका आरम्भ होता है। जन्मके कारण शुक्र शोणितसे उत्पन्न पुरीष, मूत्र, क्लेदयुक्त शोणित समूहमें आविल गर्भवास हुआ करता है। उस समय जीव तृष्णामें फंसके और क्रोध आदिसे बद्ध होकर उससे पार होनेके लिये योषितगणको संसार पटका कारण समझता है।

स्त्रियां स्वाभाविक ही सन्तानोत्पत्तिके क्षेत्रभूत हैं पुरुष क्षेत्रज्ञ हैं, इससे मनुष्य यत्न पूर्व्वक स्त्रियोंका संसर्ग परित्याग करे। शत्रुको मारनेके लिये मन्त्रमयी शक्तिकी तरह घोररूपिणी ये स्त्रियेंही मूर्ख लोगोंको मोहित करती हैं, इन्द्रियोंके जरिये कल्पित यह सनातनी मूर्त्ति मृत्तिकाके बीच घड़ेकी भांति सूक्ष्मरूपसे रजोगुणमें अन्तर्हित होरही है; इसलिये तृष्णात्मक रागरूप वीजसे सब जन्तु उत्पन्न होते हैं। जैसे पुरुष स्वदेज, मनुष्य संज्ञारहित अनाप्तपुत्रजातीय कीटोंको परित्याग किया करते हैं, वैसे हीं मनुष्य नामधारी अनाप्त, सुतसंज्ञक कीड़ोंको परित्याग करे। रेत और स्वेदरूप स्नेह हेतुसे स्वभाव वा कर्म्म योग निबन्धनसे जन्तुगण देहसे उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान पुरुष उनकी उपेक्षा करे। प्रवृत्ति और प्रकाशात्मक रजोगुण सतोगुण अज्ञानात्मक तमोगुणमें लीन हुआ करते हैं, उसही अज्ञानका निवासस्थल ज्ञानमें अज्ञान अध्यस्त होकर बुद्धि और अहङ्कारका ज्ञापक होता है। बुद्धिमान लोग ज्ञानमें अध्यस्त उस अज्ञानको ही देहधारियोंका वीज कहा करते हैं और उस वीजका ही नाम देही है वह देही कार्य्यके अनुसार कर्म्मसे इस सन्सारमें सब प्रकारसे वर्त्तमान है।

जैसे जीव सपनेमें देहधारीकी भांति मनही मन क्रीड़ा करता है, वैसेही कर्म्म गर्भगुणके जरिये जननीके जठरमें क्रीड़ा करता है। मातापितृमय शरीरमें जीव प्रकट होके पूर्व्ववासनासे जिन जिन विषयोंको स्मरण करता है, रागयुक्त

जिनसे अहङ्कारके जरिये उनको उन्हीं विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। भावरूपसे उत्पन्न हुए जीवके शब्दवासनाके कारण श्रवणेन्द्रियरूप वासनासे दर्शन इन्द्रिय, गन्धग्रहणकी इच्छासे घ्राणेन्द्रिय और स्पर्श वासनासे त्वगिन्द्रिय उत्पन्न होती है, और जीवकी देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्चवायु शरीरको आश्रय करती हैं। मनुष्य शरीर और मानस दुःखके आदि, मध्य और अन्तके सहित पूरी तरहसे निष्पन्न श्रोत्रादि युक्त शरीरसे पूरित होकर जन्म ग्रहण किया करता है। गर्भमें देह और इन्द्रिय आदिका अङ्गीकार तथा उत्पन्न होनेके अनन्तर अभिमानसे देहकी तरह दुःखकी वृद्धि होती है, और मरनेके अनन्तर भी दुःखवर्द्धित हुआ करता है। इन सब कारणोंसे दुःखका निरोध करना उचित है जो दुःखको रोकना जानते हैं, वे मुक्त होते हैं।

रजोगुणसे ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है अर्थात् रजोरूप प्रवृत्ति निरोधके जरिये इन्द्रिय-निरोधके कारण दुःखकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुष शास्त्र दृष्टिसे विधिपूर्व्वक इसकी परीक्षा करके सन्सारमें विचरें। ज्ञान इन्द्रिय सब इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त होनेपर भी तृष्णारहित पुरुषके निकट नहीं आ सकती। इन्द्रियोंके क्षीण होनेपर जीव फिर देह सन्सर्ग ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता।

२१६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं शास्त्र दृष्टिसे [illegible] इससे इन्द्रिय सब [illegible] [illegible], [illegible] मनके [illegible] [illegible] अन्[illegible] [illegible] परमगति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है, मनुष्य बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, द्विजोंके बीच मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणको श्रेष्ठ कहते हैं, वेदशास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंने सर्व्व भूतोंके आत्मभूत सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी और यथार्थ वस्तुके निश्चयको जाना है, इसीसे वे सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे नेत्रहीन मनुष्य अकेले अत्यन्त क्लेश पाता है, वैसेही ज्ञानहीन मनुष्य भी इस सन्सारमें अनेक दुःख पाते हैं। इसलिये ब्रह्मवित् पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ हैं। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले मनुष्य शास्त्रके अनुसार इष्टपूर्त्त आदि धर्म्मोंकी उपासना किया करते हैं, परन्तु वे लोग इन सब धर्म्मोंके फलस्वरूप मोक्षाख्या निरतिशय धर्म्मके अतिरिक्त पीछे कहे हुए गुणोंकी उपासना नहीं करते, धर्म्मज्ञ लोग प्रवृत्ति निवृत्ति स्वरूप सब धर्म्मोंमेंही वाह्य शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सबको शुभ गुण कहा करते हैं। ब्रह्मचर्य्य जोकि ब्रह्मका रूप कहके स्मृत हुआ है, वही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ है, क्योंकि मनुष्य उससे परम गति पाता है। जो पञ्चप्राण मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय इस सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे रहित है, जो शब्द और स्पर्शहीन है, जिसे कानसे सुना नहीं जाता, और नेत्रसे देखा नहीं जाता, वही शुद्ध अनुभव स्वरूप परब्रह्म है; निर्व्विकल्प अवस्थाके सहारे उस परब्रह्मको जान सकते हैं। और वाक्शक्ति जिसे कहनेमें समर्थ नहीं है, जो विषयेन्द्रियोंसे रहित होकर केवल मनमें निवास करता है, वह पाप स्पर्शसे रहित निर्विकल्पक अवस्थाके सहारे जानने योग्य ब्रह्मको श्रवण मनन युक्त बुद्धिसे निश्चय करे। जो पुरुष रीतिसे ब्रह्मचर्य्य करते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, [illegible] मार्गसे ब्रह्मचर्य्य करनेवाले [illegible] [illegible] [illegible] गमन करते हैं और [illegible] [illegible] [illegible] बुद्धि [illegible] करते हैं, वे [illegible] विद्वान् [illegible] हैं। [illegible] [illegible] दुष्कर [illegible] है, इसलिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है वह मेरे समीप सुनो। ब्रह्मचारी ब्राह्मण उत्पन्न और सम्बर्द्धित काम, क्रोध आदिको निग्रह करे; योषित सम्बन्धीय कथाको न सुने, वस्त्र हीन स्त्रियोंकी ओर न देखे, स्त्रियोंके तनिक भी दृष्टि पथकी अतिथि होनेपर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके अन्तःकरणमें राग उत्पन्न हुआ करता है। स्त्रियोंके विषयमें अनुराग उत्पन्न होनेपर कृच्छ्रव्रतका आचरण करे अर्थात् तीन दिन सबेरे, तीन दिन सामको और तीन दिन अयाचित भोजन करे; फिर तीन दिन तक, अनाहारी रहे; तीन दिन जलके बीच प्रवेश करे। सपनेमें यदि बीर्य्य स्खलित हो, तो जलमें डूबके मनही मन तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसी प्रकार ज्ञानयुक्त श्रेष्ठ मनके जरिये अन्तर्भूत रजोमय पापोंको एकबारही जला दे। जैसे शरीरके भीतर मलवाहिनी नाड़ी दृढ़रूपसे बन्धी है, वैसेही शरीरके बीच आत्माको देहबन्धनसे दृढ़बद्ध जाने। सब रस नाड़ियोंके जरिये मनुष्योंके वात पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी और मज्जायुक्त देहको तृप्ति करते हैं इस शरीरमें पञ्चइन्द्रियोंके निज निज विषयोंको ग्रहण करनेवाली दश नाड़ी हैं, उनसे दूसरी सहस्रों नाडियोंका सम्बन्ध है। जैसे वर्षाकालमें नदियां समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही ये सब रसरूपी जलसे युक्त नाड़ीरूपी नदिया देह समुद्रको तृप्त किया करती हैं। हृदयके बीच एक मनोवहा नाड़ी है, वह नाड़ी मनुष्योंके सर्व्वशरीरसे संकल्पजनित शुक्रको चलाकर उपस्थकी ओर लाती है। सब शरीरको सन्तापित करनेवाली नाड़िया उस मनोवहा नाड़ीके अनुगत होकर तैजस गुणको ढोती हुई दोनों नेत्रोंके निकटवर्त्ती होती हैं। जैसे दूधके बीच स्थित मक्खन मथानीसे मथा जाता है, वैसेही देहके सङ्कल्प और इन्द्रिय जनित स्त्रियोंके दर्शन तथा स्पर्शनसे शुक्र मथित हुआ करता है। सपनेमें योषित-संग न रहने पर भी जब मन स्त्री विषयक संकल्पसे अनुराग लाभ करता है, तब मनोवहा नाड़ीके जरिये देहसे संकल्पके कारण शुक्र झरने लगता है। महर्षि अत्रि भगवान् उस शुक्रके उत्पत्ति विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अन्न रस, मनोवहा नाड़ी और संकल्प, ये तीनों शुक्रके बीज हैं, और इन्द्र इनका अधिष्ठाता है, इसही निमित्त इन्हें इन्द्रिय कहते हैं। जो लोग जीवोंके शुक्रके उद्रेकके कारण अनुलोम और प्रतिलोम गमनसे शङ्करकारिणी गतिका विषय विचार करते हैं, वे विचारपूर्व्वक बिराग और बासना हीन होकर पुनर्जन्म नहीं पाते। जो लोग शरीरके निर्व्वाहके लिये कर्म्म किया करते हैं, वे मनके सहारेही सुषुम्ना नाड़ी मार्गसे योगबलसे तीनों गुणोंकी समता लाभ करके अन्तकालमें जीवन परित्याग करके मुक्त होते हैं। विश्वासमय मनका ज्ञान होगा क्यों कि मनही सब विषयाकारसे जन्म ग्रहण करता है। महात्माओंके प्रणव मन्त्रके उपासना-सिद्ध मन नित्य रजोगुण रहित और ज्योतिष्मान् है; इसलिये उस मनके बिनाशके लिये पाप रहित निवृत्त लक्षण कर्म्मका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें रजोगुण और तमोगुणको परित्याग करनेसे मनुष्य इच्छानुसार गति लाभ किया करते हैं, तरुण अवस्थामें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जरा अवस्थामें निर्व्बल होजाता है, जो कच्चबुद्धिवाले मनुष्य कालक्रमसे संकल्पको संहार करते हैं, वे दुर्गम मार्गको भांति देहेन्द्रिय बन्धनको अतिक्रम करके दोष दर्शनके अनुसार उसे परित्याग कर अमृत भोग किया करते हैं।

२१४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, दुःख दायक इन्द्रिय विषयोंमें अनुरक्त मनुष्य अवसन्न हुआ करते हैं, और

सब महात्मा उस विषयमें अनासक्त रहते हैं, वे परम गति पाते हैं; बुद्धिमान् मनुष्य सब लोगोंको जन्म, मृत्यु, जरा, दुःख और आधि-व्याधिसे युक्त देखकर मोक्ष साधनमें यत्नवान होवें। ज्ञानवान् मनुष्य मन, वचन और शरीरसे पवित्र रहके अहंकार रहित, प्रशान्त और निरपेक्ष होकर भिक्षा करते हुए अनायासही विचरे। जीवोंके ऊपर दयाके कारण यदि मनमें बन्धनको देखें, तो जगत्‌को कर्म्मफल भोगका निमित्त जानके उस विषयमें भी उपेक्षा करें।

जो कुछ पुण्य वा पापकर्म्म किया जाता है, उसकाही फल भोग करना पड़ता है, इसलिये मन, वचन और कर्म्मसे शुभ कर्म्मोंको सिद्ध करे। अहिंसा, सत्य वचन, सर्व्व भूतोंके विषयमें सरल व्यवहार क्षमा और सावधानता, ये सब जिनमें विद्यमान हैं, वेही सुखी होते हैं, इससे शास्त्रालोचनासे पवित्र बुद्धिके जरिये मन स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे। जो सब प्राणियोंके सुखदायक इस अहिंसा आदि परम धर्म्मको दुःख रहित जानते हैं, वे सर्व्वज्ञ पुरुष सुखी होते हैं; इसलिये शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिके जरिये मनको स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे, दूसरेके अनिष्टका विचार न करे, अपने अयोग्य राज्य आदिकी अभिलाषा न करे, नष्ट वा भावी स्त्री पुत्रादिके लिये चिन्ता न करे; [illegible] प्रयत्नके सहित मनको ज्ञान साधन और श्रवण मनन आदि विषयोंमें लगावे। [illegible] सुनने और अमोघ परिश्रमके [illegible] मन इस समय आनन्दरूपसे [illegible] होगा। [illegible] करनेकी अभिलाषा [illegible] [illegible] करे। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

वैराग्यके कारण यदि कुछ कहना पड़े, तो प्रसन्न मन और बुद्धिके जरिये अपने हिंसा आदिक तामस कर्म्मोंको प्रकाश करे, क्योंकि पुण्य वा पाप निज मुखसे प्रकाशित करनेसे नष्ट हुआ करते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति परतन्त्र इन्द्रियोंके जरिये कर्म्ममें प्रवृत्त होनेपर इस लोकमें महा दुःख पाकर अन्त समय नरकमें गमन करते हैं; इसलिये मन, वचन और शरीरसे जिस प्रकार आत्माको धीरज हो वैसा ही आचरण करे। जैसे चुराये हुए मांसभार ढोनेवाले चोर जानेके मार्गको राजपुरुषोंके जरिये रुकनेकी आशङ्कासे मांसके बोझेको त्यागके प्रतिकूल दिशामें गमन करके बन्धनसे अपनी रक्षा करते हैं, वैसेही मूर्ख मनुष्य कर्म्म-भार ढोते हुए कामादिके सम्मुख होकर संसार भयसे कामादिको त्यागनेपर बन्धनसे छूटते हैं। जैसे चोर लोग चोरीकी वस्तुओंको परित्याग करके भयरहित दिशामें गमन करते हैं, वैसे ही मनुष्य रजोगुण और तमोगुणके सब कार्य्योंको त्यागके सुखलाभ किया करते हैं। जो चेष्टारहित, सर्व्वसङ्ग विमुक्त, निर्ज्जन स्थानमें वास करनेवाले, थोड़ा भोजन करनेवाले, तपस्वी और संयतेन्द्रिय हैं, ज्ञानसे जिनके सब क्लेश भस्म हो गये हैं, जो योगशास्त्रोंके अनुष्ठान विषयमें अनुरक्त हैं, वेही बुद्धिमान् मनुष्य चित्त वृत्ति निरोधके जरिये अवश्यही परम पद पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। धैर्य्यशाली बुद्धिमान् मनुष्य "मैं ब्रह्म हूं" इस ध्यानके निमित्त बुद्धिवृत्तिको निःसन्देह रूपसे निग्रह करे, बुद्धिके जरिये सङ्कल्पात्मक मन और मनके [illegible] शब्दादि विषयोंको निग्रह करके [illegible] और [illegible] इन्द्रियोंको [illegible] [illegible] करता है, इन्द्रियां [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] इन्द्रियोंके [illegible]

उसके समीप वह परब्रह्म प्रकाशित होता है और उन सब इन्द्रियोंके अपगत होनेपर सत्त्वमात्रमें स्थित आत्मा ब्रह्मस्वरूपसे कल्पित हुआ करता है। अथवा योगी यदि योग ऐश्वर्य्यसे आत्माको न जान सके, तो चित्तवृत्ति-निरोध आदि मुख्य योगतन्त्रोंके सहारे उसे जाननेका उपाय करे, योगका अनुष्ठान करते करते जिस प्रकार चित्तवृत्ति शुद्ध होवे, उसका ही आचरण करना उचित है। योगी पुरुष केवल योग ऐश्वर्य्यको ही उपजीव्य न करके पर्य्यायक्रमसे भिक्षासे प्राप्तहुए चावलोंके किनके कुलथ्थ माष, तिलकल्क, अनेक तरहके शाक, उष्णोदकसुवर चूर्ण, सत्तू और फलमूल आदि भोजन करके जीवन धारण करें; देशकालके अनुसार उसमें भी जैसे नियमकी प्रवृत्ति हो, परीक्षा करके उसमें अनुवर्त्तन करना योग्य है। प्रारब्ध कर्म्मोंको अन्तरायके जरिये उपरोध करना उचित नहीं, अग्निकी भांति धीरे धीरे ज्ञानको उद्दीपन करना चाहिये ज्ञानसे प्रदीप्त ज्ञानस्वरूप परब्रह्म सूर्य्यकी तरह प्रकाशित होता है ज्ञानाधिष्ठान अज्ञान जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों कालोंमें स्थित रहता है, और बुद्धिके अनुगत ज्ञान अज्ञानसे अर्थात् आत्मभिन्न आत्मरूप विपर्य्ययसे आवृष्ट हुआ करता है। आत्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत होनेपर भी असूय पुरुष पृथक्त्व और संप्रयुक्तत्व निबन्धनसे आत्माको दूषित करते हुए उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते, वे लोग पृथक्त्वको अपृथक्त्व सीमा जानके रागरहित होनेसे मुक्त होसकते हैं। कालविजयी मनुष्य जरा मृत्यु को जीतके अव्यय अविनाशी अमृतस्वरूप सनातन ब्रह्मको जान सकते हैं।

२१५ अध्याय समाप्त।

———

भीष्म बोले, जो निष्काम ब्रह्मचर्य्य आचरण करनेकी सदा अभिलाष किया करते हैं, उन स्वप्नदोषदर्शी योगियोंको सब प्रकारकी नि[illegible] परित्याग करना योग्य है, क्यों कि जीव स्व[illegible] कालमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होता [illegible] तथा निष्पृह होकर देहान्तर प्राप्त होने[illegible] तरह आचरण किया करता है। ज्ञानाभ्या[illegible] निबन्धन जाननेके लिये पहले वह स्मरण हु[illegible] करता है। अनन्तर विज्ञानमें अभिनिवेश[illegible] कारण योगी पुरुष सदा जाग्रत रहते हैं। इ[illegible] विषयमें कोई कोई यह वितर्क किया करते है कि स्वप्नकालमें जीव यथार्थमें विषययुक्त न होकर भी जो विषय विशिष्टकी तरह दीखता है, और प्रलीन इन्द्रियोंके सहित देहवानकी भांति वर्त्तमान रहता है, इसका क्या भाव है। इस विषयके सिद्धान्त पक्षमें प्राचीन लोग कथा करते हैं, योगेश्वर हरिही स्वप्नके यथार्थ तत्वको जानते है, और वह जिस प्रकार जानते हैं, उसेही युक्ति संगत मानके महर्षि लोग वर्णन किया करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं, इन्द्रियोंके श्रमसे सर्व्वप्राणि प्रसिद्ध स्वप्न हुआ करता है; स्वप्नकालमें इन्द्रियोंकी उपरति होने पर भी संकल्पस्वभाव मनका विश्राम नहीं होता, इसलिये स्वप्न विषयमें वही प्रसिद्ध प्रमाण है, यह फिर प्रकाशित होता है।

जाग्रत अवस्थामें कार्य्योंमें आसक्त चित्तवाले मनुष्योंका जैसा सङ्कल्प होता है, वैसाही स्वप्नकालमें मनोगत मनोरथ ऐश्वर्य्य भोग हुआ करता है, इसलिये मनोरथवृत्तिकी तरह स्वप्नवृत्ति भी शरीरका सङ्कल्पमात्र है, तब जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके जरिये विक्षेपके कारण पूर्ण रूपसे विषयज्ञान नहीं होता, स्वप्नमें उसके अभाव विशेष रूपसे विषय ज्ञान हुआ करता है, इसमें इतनाही प्रभेद है। पूर्व्वके अनन्त जन्मोंके संस्कारोंसे विषयासक्त चित्तवाला पुरुष उन स्वप्न आदि ऐश्वर्य्योंको भोग करता और वह उत्तम पुरुष मनमें अन्तर्हित सब विषयोंको प्रकाशित किया करता है। सत्त, रज और

तमोगुणमेंसे जो गुण पूर्व्व कर्म्मके जरिये उपस्थित होते हैं, वही गुण कार्म्मसे संस्कृत मनको ग्रं[illegible] विषयोंके आकार आदि स्वप्नमें नियुक्त करता है; फिर स्वप्न दर्शनके अनन्तरही जिस प्रकार सुख आदिके अनुभव होते हैं, उसहीके अनुसार राजस, तामस और समस्त सात्विकभाव उस पुरुषके निकट उपस्थित हुआ करते हैं। अनन्तर पुरुष अज्ञानसे राजस और तामस भावके जरिये वात, पित्त और कफ प्रधान शरीरका दर्शन करता है, पूर्व्व वासनाकी प्रबलताके कारण, वह देह दर्शन पुरुषके विषयमें योगके अतिरिक्त अपरिहार्य्य है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। मन प्रसन्न इन्द्रियोंके सहित जिन जिन विषयोंका सङ्कल्प करता है, स्वप्न समय उपस्थित होने पर मनोदृष्टि होकर उन्हीं विषयोंको देखा करता है। मन उपादानके कारण सर्व्वभूतोंमें व्यापक और प्रतिघात रहित होकर वर्त्तमान है, वह अपने प्रभावसेही आत्माको जान सकता है, आत्मामेंही आकाश आदि सब भूत प्रतिष्ठित हैं। स्वप्न दर्शनका द्वारभूत स्थूल देह मनमें अन्तर्हित होता है, सदसदात्मक साक्षी स्वरूप मन उसही शरीरको अवलम्बन करके उसहीमें सोता है, और आत्मामें जाके प्रवेश करता है, सर्व्वभूतोंका आत्मभूत अहङ्कार आकाशमें प्रतिबिम्ब रूपसे निवास करता है, इसलिये पण्डित लोग आत्माको अहङ्कार गुणके [illegible] समझते हैं; परन्तु सुषुप्तिकालमें साक्षी [illegible] इस अवस्थामें निवास करनेसे अहङ्कार आदि सब उसका नाश होते हैं। मनके [illegible] [illegible] जो लोग ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य आदि [illegible] अन्यतमकी अभिलाषा करते हैं [illegible] मनको [illegible] [illegible] आदि निवास करके [illegible] [illegible] [illegible]

धारी जीव तथा [illegible] प्रकृतिका कारण ब्रह्मस्वरूप और वह जीव ही कारणीभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर महेश्वर अर्थात् शुद्ध ब्रह्म भूत हैं। देवता लोग अग्निहोत्र आदि तपस्याके अधिष्ठान और असुर लोग तपोघ्न अन्धकार अर्थात् दम्भ दर्प आदिके अवलम्बन हैं। रज और तमोमय देवासुरोंके निमित्त प्रजापतिने इस ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको गुप्त कर रखा है। पण्डित लोग कहा करते हैं, सत, रज और तमोगुण देवता तथा असुरोंमें विद्यमान हैं, इनमेंसे सत्वको देवगुण और रज तमको असुरगुण जानना चाहिये। जो सब पवित्र चित्तवाले मनुष्य सात्विक और असात्विक भावोंसे श्रेष्ठ, ज्ञानस्वरूप, अमृतस्वरूप, स्वप्रकाश और सर्व्वव्यापी परब्रह्मको जानते हैं; वे परमगति पाते हैं। तत्वदर्शी पुरुष ईश्वर सगुण वा निर्गुण है, इसे ही युक्तियुक्त रूपसे कह सकते हैं और सब विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अक्षर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होते हैं।

२१६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, परम ऋषि नारायणके जरिये व्यक्त और अव्यक्त भावसे जिसका तत्व वर्णित हुआ है, जो लोग स्वप्न, सुषुप्ति और सगुण निर्गुण ब्रह्मभावको नहीं जानते, वे उस परब्रह्मको नहीं जान सकते। [illegible] करके [illegible] मुखमें [illegible] [illegible] चाहिये; परम ऋषि नारायणने यह कहा है, कि [illegible] [illegible] [illegible]

गतिको पाते हैं ; जो लोग मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करते हैं, वे सदा आत्मतत्त्व बिचारमें अनुरक्त होवें ; वच्य-माण रीतिसे प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको जो जानना उचित है, प्रकृति और पुरुषसे भिन्न महत् ईश्वर है, बुद्धिमान पुरुष विशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखें इस प्रकृति और पुरुषको आदि और अन्त नहीं है, तथा इन दोनोंको प्रमाणान्तरोंके जरिये नहीं जाना जा सकता। ये दोनों ही नित्य अविचलित और महत्‌से भी महत् हैं, दोनोंके इस ही प्रकार सामर्थ कहे गये, अब इनका वैधर्म्म विषय कहता हूं। सृष्टिकार्य्यसे व्याप्त त्रिगुणात्मिका प्रवृत्तिसे पुरुषका विपरीत लक्षण जानने अर्थात् पुरुष सृष्टिकार्य्यमें निर्लिप्त और निर्गुण है, वह निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि विकारोंके कार्य्योंको देखता है, पर स्वयं दृश्य नहीं है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष और ईश्वर दोनोंही चिद्रूप हैं ; इसलिये ज्ञापक गुणादि विहित और अत्यन्त विविक्त होनेसे उसे नहीं जाना जा सकता। जो अविद्याके जरिये कर्म्म जनित बुद्धि गृहीत होती है, वह अविद्या ही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धमें ज्ञापक आवि-र्भाव लाभ करके कर्त्तव्य रूपसे इन्द्रिय आदिके जरिये जिन जिन कार्य्योंको करती है, उसही योनिप्रद कर्म्मोंके सहित संयुक्त हुआ करती है और यह कर्त्ता व्यवहारमें तृतीय होनेपर भी परमार्थ ज्ञान स्वरूप होता है, शब्द प्रत्ययसे कौन हूं, ये कौन हैं इत्यादि व्यवहार मात्र होते हैं। जैसे कर्णने अपनेको कौन्तेय न जान-कर सूर्य्यसे पूछा, कि कौन्तेय कौन है ? शेषमें सूर्य्यके कहनेसे अपनेको ही कौन्तेय जाना था, वैसेही अज्ञानी लोग "ब्रह्म कौन है ?" ऐसाही पूंछा करते हैं, ज्ञानवान् पुरुष "मैंही ब्रह्म हूं" ऐसा ही जानते हैं। जैसे उष्णीषयुक्त पुरुष तीनों वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही यह देही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है ; इसलिये पहिले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जड़ता असंहतत्व और कर्त्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषको साधर्म्य वैधर्म्म, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्म, वैधर्म्म, इन चारोंको जानना उचित है। जो लोग उक्त विध ज्ञानको अतिक्रम नहीं करते, वे सिद्धान्तके समयमें मोहित नहीं होते। जो लोग हृदयाकाशमें स्थित ब्राह्मी श्रीकी कामना करते हैं, वे अन्तर्बाह्यमें पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम योगका आचरण करें। प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं ; योगबलके जरिये हृदयाकाशमें सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं ; योगका विकासही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें विख्यात है, कि योगी लोग सनातन भगवान्‌का दर्शन करते हैं। जो कर्म्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही योगका असाधारण लक्षण है। ब्रह्मचर्य्य और अहिंसाको शारीरिक योग कहा जाता है, और वचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है। विधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके विषयमें श्रेष्ठ है, आहारनियमके जरिये राजस पाप शान्त हो जाते हैं। युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रियें शब्द आदि विषयोंमें वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जब तक आहारका प्रयो-जन हो, तबतक अन्न ग्रहण करना चाहिये। इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, अन्तकालमें पुण्य-क्षेत्रमें वास करते हुए अत्यन्त यत्नसे अचिर उसही ज्ञानको सिद्ध करे।

यह जीव बाह्यइन्द्रिय-प्रवृत्तिसे रहित और

समाधिं समयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्य्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोग भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं। देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके समय जीव तत्क्षणही मुक्त होता है, मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार विषयमें धर्म्माधर्म्म अनुसरण नहीं करते; जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और जन्मोंकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके अवलम्बके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके द्वारे मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रिय-गोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनकी आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं। योग शोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेद वचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके द्वारे जानके शास्त्र और आचार्य्यके उपदेशसे [illegible] एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म इन्द्र, विष्णु, आदिके [illegible] हृदाकाश-सम्बन्धसे अथवा [illegible] भावसे [illegible] आत्माकी उपासना करते हैं। [illegible] उपनिषद् प्रसिद्ध [illegible] [illegible] परिणामसे [illegible] [illegible] [illegible] अनुभव किया करते हैं। [illegible]

गकी शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे। अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सब्बं आसक्तिसे विमुक्त जाने। धारणा सक्त मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे। जिन लोगोंका चित्त स्वरूप परब्रह्ममें संयुक्त हुआ है वे मर्त्यलोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं।

वेद जाननेवाले पुरुष इसी प्रकार धर्म्मको ब्रह्मप्राप्तिका एकमात्र उपाय कहा करते हैं। चाहे कोई किसी प्रकारसे जानके ईश्वरकी उपासना क्यों न करें, सभी परम गति प्राप्त किया करते हैं। जिन्हें, रागादिरहित अचल अर्थात् दृढ़ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते और वैराग्यके अनुसार मुक्त होते हैं। आशाहीन ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्तसंज्ञक, दिव्यधाम-स्थित, सर्व्वव्यापी ब्रह्मके निकटवर्त्ती हुआ करते हैं। वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार उससे निवृत्त नहीं होते; वे लोग उस अव्यय अविनश्वर परमधाम पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते हैं। [illegible] इत्यादि रूपसे अनिर्व्वचनीय जगत्‌को [illegible] जानना उचित है; परन्तु [illegible] [illegible]

गतिको पाते हैं; जो लोग मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करते हैं, वे सदा आत्मतत्व बिचारमें अनुरक्त होवें; वच्यमाण रीतिसे प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको जो जानना उचित है, प्रकृति और पुरुषसे भिन्न महत् ईश्वर है, बुद्धिमान पुरुष बिशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखें इस प्रकृति और पुरुषकी आदि और अन्त नहीं है, तथा इन दोनोंको प्रमाणान्तरोंके जरिये नहीं जाना जा सकता। ये दोनों ही नित्य अविचलित और महत्से भी महत् हैं, दोनोंके इस ही प्रकार सामर्थ कहे गये, अब इनका वैधर्म्म बिषय कहता हूं। सृष्टिकार्य्यसे व्याप्त त्रिगुणात्मिका प्रवृत्तिसे पुरुषका बिपरीत लक्षण जानने अर्थात् पुरुष सृष्टिकार्य्यमें निर्लिप्त और निर्गुण है, वह निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि बिकारोंके कार्य्योंको देखता है, पर स्वयं दृश्य नहीं है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष और ईश्वर दोनोंही चिद्रूप हैं; इसलिये ज्ञापक गुणादि बिहित और अत्यन्त बिबिक्त होनेसे उसे नहीं जाना जा सकता। जो अबिद्याके जरिये कर्म्म जनित बुद्धि गृहीत होती है, वह अविद्या ही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धमें ज्ञापक आबिर्भाव लाभ करके कर्त्तव्य रूपसे इन्द्रिय आदिके जरिये जिन जिन कार्य्योंको करती है, उसही योनिप्रद कर्म्मोंके सहित संयुक्त हुआ करती है और यह कर्त्ता व्यवहारमें तृतीय होनेपर भी परमार्थ ज्ञान स्वरूप होता है, मन्द प्रत्ययसे कौन हूं, ये कौन हैं इत्यादि व्यवहार मात्र होते हैं। जैसे कर्णने अपनेको कौन्तेय न जानकर सूर्य्यसे पूछा, कि कौन्तेय कौन है? शेषमें सूर्य्यके कहनेसे अपनेको ही कौन्तेय जाना था, वैसेही अज्ञानी लोग "ब्रह्म कौन है?" ऐसाही पूंछा करते हैं, ज्ञानवान् पुरुष "मैंही ब्रह्म हूं" ऐसा ही जानते हैं। जैसे उष्णीषयुक्त पुरुष …ो वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही यह देही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है; इसलिये पहले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जड़ता असंहतत्व और कर्त्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषके साधर्म्य वैधर्म्म, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्म, वैधर्म्म, इन चारोंको जानना उचित है। जो लोग उक्त बिध ज्ञानको अतिक्रम नहीं करते, वे सिद्धान्तके समयमें मोहित नहीं होते। जो लोग हृदयाकाशमें स्थित ब्राह्मी श्रीकी कामना करते हैं, वे अन्तर्बाह्यमें पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम योगका आचरण करें। प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं; योगबलके जरिये हृदयाकाशमें सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं, योगका बिकाशही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें बिख्यात है, कि योगी लोग सनातन भगवान्का दर्शन करते हैं। जो कर्म्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही योगका असाधारण लक्षण है। ब्रह्मचर्य्य और अहिंसाको शारीरिक योग कहा जाता है, और बचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है। बिधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके बिषयमें श्रेष्ठ है, आहारनियमके जरिये राजस पाप शान्त हो जाते हैं। युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रियें शब्द आदि बिषयोंमें वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जब तक आहारका प्रयोजन हो, तबतक अन्न ग्रहण करना चाहिये। इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें बास करते हुए अत्यन्त यत्नसे अहिंसा उसही ज्ञानको सिद्ध करे।

यह जीव बाह्यइन्द्रिय-प्रवृत्तिसे रहित

समाधि समयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्य्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोग भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं। देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके सबब जीव तत्क्षणही मुक्त होता है, मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार विषयमें धर्म्माधर्म्म अनुसरण नहीं करते; जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और दोनोंकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके स्खलनके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके जरिये मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रिय-गोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनकी आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं। योग शोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेद वचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके जरिये जानके शास्त्र और आचार्य्यके उपदेशसे उसमें एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म कृष्ण, विष्णु, आदिके सहित तदात्म-सम्बन्धसे अथवा सेव्य सेवक भावसे निबद्ध आत्माकी उपासना करते हैं। दूसरे लोग उपनिषत् प्रसिद्ध बिजलीके प्रकाशकी तरह सकलिभात परिणामहीन निर्गुण परब्रह्मका बार बार अनुभव किया करते हैं। अविमुक्त उपासनासे जिनके पाप जल गये हैं, वे अन्तकालमें ब्रह्मत्व लाभ करते हैं, और वेही सब महानुभाव उपासक लोग परम गति पाते हैं। सोपाधिक ब्रह्मके व्यावर्त्तक विशेषणको शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे। अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सर्व्व आसक्तिसे विमुक्त जाने। धारणा सक्त मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे। जिन लोगोंका चित्त स्वरूप परब्रह्ममें संयुक्त हुआ है वे मर्त्यलोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं।

वेद जाननेवाले पुरुष इसी प्रकार धर्म्मको ब्रह्मप्राप्तिका एकमात्र उपाय कहा करते है। चाहे कोई किसी प्रकारसे जानके ईश्वरकी उपासना क्यों न करें, सभी परम गति प्राप्त किया करते हैं। जिन्हें, रागादिरहित अचल अर्थात् दृढ़ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते और वैराग्यके अनुसार मुक्त होते हैं। आशाहीन ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्तसंज्ञक, दिव्यधाम-स्थित, सर्व्वव्यापी ब्रह्मके निकटवर्त्ती हुआ करते हैं। वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार उससे निवृत्त नहीं होते, वे लोग उस अव्यय अविनश्वर परमधाम पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते है। रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह यह जगत् है वा नहीं इत्यादि रूपसे अनिर्व्वचनीय जगत्का मिथ्यापन जानना उचित है; परन्तु समस्त जगत् तृष्णामें बद्ध होकर चक्रकी तरह परिवर्त्तित होता हैं। जैसे मृणालसूत्र कमलके डाण्डीके बीच सर्व्वत्र वर्त्तमान रहता है, वैसेही आदि और अन्तरहित तृष्णाके तागे सदा देहमें विद्यमान हैं। जैसे सीनेवाला सूईके सहारे वस्त्रोंमें तागा चलाता है, वैसेही तृष्णासूचीसे संसारसूत्र निबद्ध होरहा है। जो लोग महदादि विकाररूप कार्य्यमें होमल कारण प्रकृति और कार्य्य-

निर्लिप्त सनातन पुरुषको विधिपूर्व्वक जानते हैं, वेही तृष्णारहित पुरुष मुक्त होते हैं। जगत्‌की गति भगवान् नारायण ऋषिने जीवोंके ऊपर कृपा करके इस मोक्ष साधन विषयको स्पष्ट करके कहा है।

२१७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहार दर्शिन्! मिथिलापति जनकवंशीय मोक्षवित् जनदेवने किस प्रकारके व्यवहारोंके जरिये मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंको परित्याग करके मुक्तिलाभ की थी?

भीष्म बोले, व्यवहारदर्शी जनदेवने जिस प्रकार व्यवहारके सहारे मोक्षलाभकी थी, उस विषयमें प्राचीन लोग यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। मिथिलानगरीमें प्रजानाथ जनदेव शरीर त्यागनेके अनन्तर जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति होती है, उस ही प्रकार धर्म्म विषयोंकी चिन्तामें तत्पर थे। उनके स्थानमें अनेक प्रकारके उपासनामार्ग-प्रदर्शक और लोकायत पाषण्डियोंके तिरस्कार करनेवाले सैकड़ों आचार्य्य सदा निवास करते थे। उन सब पाषण्डियोंके बीच कोई कोई देह नाश निबन्धनसे आत्माका नाश स्वीकार करते थे, कोई शरीरको ही अविनाशी कहके स्थिर करते थे, इसही प्रकार विविध विषयोंमें ऐक्य-मत न रहने तथा परलोक, पुनर्जन्म और आत्मतत्व विषयमें विशेष निश्चय न होनेसे वह शास्त्रदर्शी राजा उन लोगोंके विषयोंमें विशेष रूपसे सन्तुष्ट नहीं था। अनन्तर कपिलापुत्र पञ्चशिख नाम महामुनि समस्त पृथ्वी पर्य्यटन कर एकत्र वास न करके उस मिथिला नगरीमें उपस्थित हुए। यह समस्त सन्न्यासधर्म्मके तत्वज्ञान निश्चय विषयके जो सब प्रयोजन हैं, पूर्ण रीतिसे निर्णय कर सकते थे; उन्हें सुख दुःख आदि कुछ न था और सब संशय नष्ट हुए थे। पण्डित लोग उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय कहते थे, वे यदृच्छाक्रमसे मनुष्योंके बीच निवास करते और अत्यन्त दुर्लभ नित्यसुखकी खोजमें तत्पर रहते थे। सांख्य मतावलम्बी दार्शनिक पण्डित लोग जिसे परम ऋषि प्रजापति कपिल कहा करते हैं, बोध होता है, वही पञ्चशिख रूपसे लोगोंको विस्मययुक्त करते थे। प्राचीन लोग जिसे आसुरीके प्रथम पुत्र और चिरजीवी कहते हैं, जिन्होंने हजार वर्ष सम्पाद्य मानसयज्ञका अनुष्ठान किया था, जिन्होंने आसुरीके निकट समासीन कपिलमतावलम्बी मुनिमण्डलीके समीप उपस्थित होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पञ्चपुरुष जिसमें निवास करता है और जिन्होंने स्वयं हाथ और मस्तक आदि अवयवोंसे रहित कहके अव्यक्त और अवाध्यत्व निबन्धन परमार्थ स्वरूप उस परब्रह्म विषयक ज्ञानका विस्तार किया था। जिन्होंने आत्मज्ञानके निमित्त आसुरीके निकट बार बार प्रश्न किया था, उससे आसुरीने शरीर और जीवकी स्पष्टता समझके दिव्यदृष्टि लाभ की थी; वेद और लोकमें प्रसिद्ध जो एक मात्र अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आसुरीने उस ही मुनिमण्डलीके बीच उस अव्यय पुरुषको जाना था। पञ्चशिख उस ही आसुरीके शिष्य थे वह किसी मानुषीका दूध पीकर वर्द्धित हुए थे कपिलानामी कोई कुटम्बिनी ब्राह्मणी थी, वह उसहीका पुत्रत्व स्वीकार करके उसके स्तनका दूध पीते थे, उसहीसे उनका कापिलेय नाम हुआ और उन्होंने नैष्ठिकी बुद्धि लाभ की। भगवान् मार्कण्डेयने इसही प्रकार मेरे समीप उनकी उत्पत्ति, कापिलेय नामका कारण और असाधारण सर्व्वज्ञत्वका विषय कहा था। धर्म्मज्ञ पञ्चशिखने परमश्रेष्ठ ज्ञानलाभ करके मिथिलाधिपतिके आचार्य्योंकी समबुद्धि जानके

युक्तिधाराकी वर्षाके सहारे सैकड़ों आचार्य्योंको मोहित किया। राजा कापिलेयको देखनेसे ही उनपर भक्तिके कारण अनुरक्त होकर पूर्व्वोक्त आचार्य्योंको परित्याग करके उनहीके अनुगामी हुए, कपिलापुत्र पञ्च इन्द्रियोंके प्रवाहयुक्त मनोनिग्रहरूपसे निष्ठावान थे; पञ्चरात्रनाम विष्णुत प्रापक यज्ञ विषयके जाननेवाले थे अर्थात समस्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया था। अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोषके विषयको विशेष रूपसे जानते थे, अन्नमय आदि पञ्चकोषोंके आश्रय आत्माकी उपासना करते थे; शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और सावधान होकर आत्मासे ही आत्माका दर्शन करते थे; इसीसे शान्त आदि पञ्चगुणोंसे युक्त थे; इसहीसे वह पञ्च-शिख नामसे प्रसिद्ध हुए।

जनक बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! लोक और वेदमें प्रसिद्ध जो अद्वितीय अविनासी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये, आपने ही उसे यथार्थ रूपसे जाना है।

भीष्म बोले, महर्षि पञ्चशिख धर्म्मपूर्व्वक विनययुक्त और तत्व ज्ञानके उपदेश धारण करनेमें अत्यन्त समर्थ उस मिथिलापतिसे साङ्ख्य शास्त्रमें कहे हुए परम मोक्षका विषय कहने लगे; उन्होंने पहले उनके समीप जन्म विषयक सब दोषोंको प्रदर्शित करके यागादि कर्म्मोंके दोष कहे और यागादि कर्म्मोंके दोष कहके ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंके दोष वर्णन किये। जिसके लिये कर्म्मकी सृष्टि और सब कर्म्मोंके फलकी आकांक्षा होती है, वह अविश्वसनीय मोह विनाशी अस्थिर और सत वा असत् रूपसे निश्चित नहीं है, यह भी कहा।

लोकायत नास्तिकोंका यह मत है, कि सर्व्वलोकसाक्षी देहरूपी आत्माका नाश प्रत्यक्ष दीखने पर भी शास्त्र प्रमाणके कारण देहसे पृथक् आत्मा है, ऐसा जो वादी कहा करता है, वह पराजित होता है। आत्माका मृत्यु स्वरूप नाश और दुःख जरा रोग आदिसे आंशिक नाश है; जैसे गृहके निर्व्वल अवयवोंके धीरे धीरे नष्ट होनेपर गृह नष्ट होता है, वैसेही इन्द्रिय आदिके विनाशके जरिये शरीरकाही नाश हुआ करता है। ऐसा होने पर भी जो लोग मोहके वशमें होकर आत्माको देहसे पृथक् अन्य पदार्थ समझते हैं, उन लोगोंका मत समीचीन नहीं है। 'लोकमें जो नहीं है' यह यदि सिद्ध हो, तो वन्दीगण जो राजाको अजर अमर कहके स्तुति किया करते हैं, वह भी सिद्ध हो सकता है। असत् पदार्थ है, वा नहीं, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर मनुष्य कौनसा कारण अवलम्बन करके लोकयात्राका निश्चय करेगा? अनुमान और शास्त्र-प्रमाणका मूल प्रत्यक्ष है, उस प्रत्यक्षके जरिये शास्त्र बाधित हुआ करता है और अनुमान तुच्छ प्रमाण है; देहसे पृथक् स्वतन्त्र आत्मा नहीं है; इस विषयकी चिन्ता करनी वृथा है, नास्तिकोंके मतमें जीव शरीरसे स्वतन्त्र नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन चारों भूतोंका संयोग होने पर जैसे बट-बीचके क्षुद्र भागके बीच पत्ते, फूल, फल, छाल, रूप और रस आदि अन्तर्हित रहते हैं, वैसेही रेत "वीर्य्य" के बीच मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, शरीरका रूप और गुण आदि अन्तर्हित रहके उत्पन्न होते है, अथवा जैसे एक मात्र गोभुक्त तृणोदकसे विभिन्न स्वभाव दूध और घी उत्पन्न होता है, अथवा अनेक वस्तुओंसे मिला हुआ काल्कके दो तीन रात्रि पकने पर जैसे उसमेंसे मदशक्ति उत्पन्न हुआ करती है, वैसेही पहले कहे हुए चारों तत्वोंके संयोगसे रेतसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे दो काष्ठोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही चारों भूतोंके संयोगसे उसका प्रकाशक चैतन्य जन्म ग्रहण किया

करता है। जड़ पदार्थोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति असम्भव नहीं हैं, तार्किक मतसे आत्मा और मन जड़ होने पर भी दोनोंके संयोगके कारण जैसे स्मरणादि रूप ज्ञान उत्पन्न होता है, इस विषयमें भी वही प्रमाण है। जैसे अयस्कान्त-मणि लोहेको आकर्षण करती है, वैसेही उक्त रूपसे उत्पन्न हुआ चैतन्य इन्द्रियोंको चलाया करता है। जैसे सूर्य्यकान्तके संयोगद्वारा सूर्य्य किरणसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही मौतुल और अग्निका जलशोषकत्व संघातके जरियेही सिद्ध होता है; इसलिये देहसे पृथक जीव नहीं है, यह युक्तिसङ्गत है। लोकायत नास्तिकोंका जो युक्तियुक्त मत वर्णित हुआ, वह अत्यन्त दूषित है, क्यों कि शरीरके मृत होने पर भी आत्माका विनाश नहीं होता; देहसे अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें यही प्रमाण है, कि यदि देह चेतन हो, तो मृत शरीरमें भी चैतन्यकी प्राप्ति हो सकती है, जब कि ऐसा नहीं दीखता है, तब चैतन्य अवश्यही देह धर्म्म नहीं है। जिसके वर्त्तमान रहनेसे शरीर नष्ट नहीं होता और जिसके न रहने पर देह नष्ट होता है, वह अवश्यही शरीरसे स्वतन्त्र है; और लोकायत नास्तिक लोग शीत, ज्वरकी निवृत्तिके लिये मन्त्रप्रतिपाद्य देवताके निकट प्रार्थना किया करते हैं, वह देवता यदि भूतमयो हो, तो घट पट आदिकी तरह दृष्टिगोचर होसके, परन्तु लोकान्तर गमन करने योग्य सूक्ष्म शरीरको स्वीकार न करनेसे उनके मतमें देवताको सिद्धिही सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जिस समय जो शरीर भूतान्तरमें आविष्ट होता है, उस समय उस शरीरकी पीड़ासे देहका मुख्य अधिष्ठाता पीड़ित नहीं होता; परन्तु जो आविष्ट हुआ है, उसेही उस देहके अभिमान निबन्धनसे पीड़ा हुआ करती है, प्रविष्टके अपगमसे मुख्य शरीरही वाधित होता है। इसलिये दृष्ट-विरोधके कारण देहको आत्मा नहीं कहा जाता; मृत होनेपर कर्म्मकी निवृत्ति होती है, इससे कृत कर्म्मोंका नाश और अकृत कर्म्मोंके आगमरूप दोषकी विशिष्ट रूपसे स्वीकार करना होता है, अर्थात् जिस शरीरसे जो दोष करता है उस देहके नष्ट होनेपर उससे किये हुए कर्म्म भी नष्ट होते हैं, और नवीन शरीर उत्पन्न होनेपर अकृत कर्म्मोंका फल भोग हुआ करता है, इससे लोकायतिक मत अत्यन्तही युक्तिविगर्हित है। मूर्त्त पदार्थसे अमूर्त्त ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे पृथ्वी आदि चारों भूतोंसे आकाशकी उत्पत्ति होसकती है; इसलिये अमूर्त्तके सहित मूर्त्तकी सदृशता कभी सम्भव नहीं है।

सौगत-मतावलम्बी नास्तिक लोग अविद्या, कर्म्म, वासना, लोभ, मोह और दोषनिषेवणको पुनर्जन्मका कारण कहा करते हैं। वे लोग लोकायत नास्तिकोंके अभिमत चारों भूतोंके वाह्यसङ्घातसे आध्यात्मिक सङ्घातरूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा संस्काराख्या पञ्चस्कन्धात्मक ऐहिक और पारलौकिक व्यवहारास्पद जीव स्वीकार करते हैं; इसलिये उनके मतमें देहके नाशसेही आत्म विनाशरूप दोषकी सम्भावना नहीं है। यद्यपि ये लोग दूसरेकी तरह स्थिर भोक्ता वा प्रशासिता चेतन स्वीकार नहीं करते हैं, तोभी अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षड़ायतन अर्थात् चित्तका आश्रय शरीर, स्पर्श, पीड़ा, तृष्णा, उपादान, जन्म, जाति, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेवना, दुःख और मनस्ताप, इन अठारहों दोषोंको कभी कभी संक्षेपसे कभी विस्तारके सहित वर्णन किया करते हैं। ये लोग घटीयन्त्रकी भांति आवर्त्तमान होकर सङ्घातको स्वाश्रयत्व रूपसे अधिक्षेप करते हैं; उसही सङ्घातोत्पत्तिके कारण लोकयात्रा निर्व्वाह होनेसे स्थिर आत्माकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। उनके मतमें पूर्व्वकृत कर्म्म और तृष्णाजनकही है, अविद्या क्षेत्र शरीरके वार वार उत्पत्तिका

बीज और कारण रूपसे वर्णित हुआ है। उस अविद्या आदि कलापके सुषुप्ति प्रलयके संस्कार-स्वरूपमें निमित्तभूत होके स्थिति करने और एकमात्र मरण धर्म्मयुक्त देहके जलने वा नष्ट होनेपर अविद्या आदिसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है, सौगत लोग इसेही मलसंचय अर्थात् मोक्ष कहा करते हैं।

इस विषयमें यही आपत्ति है, कि मुक्ति होनेपर भी क्षणिक विज्ञान आदिके स्वरूप, जाति, पाप-पुण्य और बन्ध मोक्षसे जबकि पृथकत्व होता है, तब किस प्रकार इस विज्ञानसे वह विज्ञान प्रत्यभिज्ञान होसकता हैं। एक पुरुष मुमुक्षु, दूसरा साधनाविष्ट है और अन्यपुरुष मुक्त हुआ, यह अत्यन्त ही असंगत बचन है। ऐसा होनेसे दान, विद्या, तपस्या और बलके निमित्त लोगोंकी प्रवृत्ति न होती; क्यों कि एक पुरुषके दानादि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेपर फल भोगके समय उसके अभावमें दूसरे फल भोग करने लगे यह कभी सम्भव नहीं हैं। यह सम्भव होनेसे एकके पुण्यसे दूसरे सुखी और दूसरेके पापसे अन्य पुरुष दुःखी हो सकते हैं; इसलिये ऐसे दृश्य विषयोंके जरिये अदृश्य विषयोंका निर्णय करना युक्तिसगत नहीं होता है। एकका ज्ञान दूसरेके ज्ञानके समान नहीं होता; इसलिये जिसमें वैराग्यके जरिये ये सब दोष उत्पन्न न हो, उसके लिये यदि क्षणिक विज्ञानबादी नास्तिक लोग ज्ञानधाराकी स्वजातीयता कहनेकी इच्छा करें, तब उत्पाद्यमान सदृश ज्ञानका उपादान क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले ज्ञानको वे लोग सिद्धान्त पक्षमें निक्षेप करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्यों कि उन लोगोंके मनमें ज्ञानका क्षणिकत्व निबन्धन उत्तर ज्ञानके उत्पादन विषयमें समर्थ नहीं है। यदि उस ज्ञानकाही नाश हो, तो मूषलके जरिये नष्ट हुए शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होसके। ऋतु, सम्वत्सर, युग सर्दी, गर्म्मी प्रिय और अप्रिय आदि जैसे अतीत होके फिर उत्पन्न होते देखे जाते हैं, वैसेही ज्ञानधाराकी अनन्तताके कारण ऋतु आदिकी भांति मोक्ष बार बार आगत और निवृत्त होती है, इसलिये क्षणिक-विज्ञानवाद अनेक दोषोंसे ग्रस्त होनेसे युक्तिसंगत नहीं हैं। जरा और मृत्युके जरिये आक्रान्त अनित्य धर्म्माश्रय दुर्ब्बल शरीर गृहकी भांति नष्ट होता है।

इन्द्रियां, मन, प्राण, मांस, रुधिर, हड्डी आदि आनुपूर्व्विक नष्ट और असम्मिलित हुआ करती हैं, लोकयात्रामें व्याघात और दानधर्म्मादि फलकी अप्राप्ति होनेपर उसही कारणसे आत्म-सुखार्थ सब लौकिक और वैदिक व्यवहार भी नष्ट होते हैं। मनमें अनेक प्रकारके तर्क उत्पन्न हुआ करते हैं; तर्क उत्पन्न होनेपर युक्तिके सहारे देहसे पृथक् दूसरा कौन आत्मरूपसे निर्द्धारण किया जासकता है। जो लोग अभिनिवेश-पूर्व्वक विचार करते हैं, उनकी बुद्धि किसी अनिर्व्वचनीय वस्तुमें निविष्ट होती है, निविष्ट होनेपर उसमें ही वृक्षकी तरह जीर्ण हुआ करती है। इसही प्रकार इष्ट और अनिष्टके जरिये सब जन्तु ही दुःखित होरहे हैं। जैसे हाथीवान हाथियोंको आकर्षण करता है, वैसे ही दुःखोपहत जीवसमूह शास्त्रके जरिये वशीभूत हुआ करते हैं। बहुतेरे मनुष्य अत्यन्त सुखयुक्त बिषयोंको अभिलाष करके शुष्क होते हैं; अन्तमें महत् दुःख भोगते हुए विषय परित्याग करके मृत्युके वशमें हुआ करते हैं। जिसका अवश्य ही विनाश होगा और जीवनका निश्चय नहीं है, उसे बस्तु बान्धव और बिभिन्न परिवार समूहका क्या प्रयोजन है। जो सबको परित्याग करके गमन करते हैं, वे क्षणकालके बीच लोकान्तरमें पहुंचके फिर दूसरी बार नहीं लौटते। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, ये पञ्चभूत सदा शरीरका प्रतिपालन करते हैं, इसलिये इस पञ्चभूतात्मक शरीरके ८

जाननेसे किसमें अनुराग होगा ? इस विनाशी शरीरमें तनिक भी सुख नहीं है। राजा जनदेवने यह भ्रम प्रमादसे रहित अकपट आत्मसाक्षी वचन सुनके विस्मययुक्त होकर फिर पूर्व्वपक्ष करनेकी इच्छा की।

२१८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जनकवंशीय जनदेवने पञ्चशिखका वचन सुनके मरनेके अनन्तर फिर जन्म और मोक्ष होती है वा नहीं। फिर उस विषयमें प्रश्न किया।

जनकदेव बोले, हे भगवन्! यदि मरनेके बाद किसीको सुषुप्ति वा मूर्च्छावस्थाकी तरह विशेष विज्ञान न रहे, तो ज्ञान वा अज्ञानमें कुछ विशेष नहीं रह सकता। हे द्विजोत्तम। देखिये यम और नियम आदि सभी आत्मनाश पर्य्यवसायी अर्थात् आत्मनाश होनेसेही सब नियमादि नष्ट हुआ करते हैं; इसलिये चाहे मनुष्य प्रमत्त हो वा अप्रमत्त हो हो, उसमें विशेष क्या है। मोक्ष होनेसे यदि दिव्याङ्गना आदिका संसर्ग होनेपर भी वह स्वर्गादिकी तरह विनाशी हो, तब किस निमित्त कर्म्म करे और क्रियमाण कार्य्यकी घटना ही किस प्रकार होगी, इस विषयमें यथार्थ रूपसे क्या निश्चय है।

भीष्म बोले, अतिक्रान्तदर्शी महर्षि पञ्चशिखने अज्ञानाच्छन्न विभ्रान्त आतुरकी भांति राजाको फिर वचनसे धीरज देके कहने लगे। इस संसारमें देह नाश होनेसेही पर्य्यवसान नहीं होता और देह विशेषके नाश होनेसे जो शेष हुआ, वह भी नहीं है; परन्तु अविद्याके सहारे आत्मामें आरोपित बुद्धि और इन्द्रिय आदि केवल रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह मालूम होती है, ऐसे अनर्थकी निवृत्ति और कण्ठमें पड़े हुए विस्मृत कण्ठहारकी भांति स्वरूपान न्द प्राप्ति होनेसे ही उत कृत्यता हुआ करती है। यह प्रत्यक्ष दृश्यमान् देह इन्द्रिय और चित्तके मिलनजनित सङ्घातसे एक दूसरेका आश्रय करके कार्य्यमें वर्त्तमान रहता है। जिसमें सब कार्य्य लीन होते हैं, उसे उपादान कहते हैं, वह उपादान पांच प्रकारका है; जल, आकाश, अग्नि, वायु और पृथ्वी; सांख्य मतके अनुसार ये पांचो उपादान स्वभावसे ही स्थिति करते हैं और स्वभावसे ही पृथक् हो जाते हैं। ये आकाश आदि पांचो उपादान संयुक्त होकर शरीराकारसे परिणत हुआ करते हैं, अर्थात् शरीरके अन्तर्गत जो आकाशका भाग है वही आकाश है; जो प्राण है, वही वायु है; जो उष्मा है, वही अग्नि है, जो रक्तरस आदि स्वेदवत् पदार्थ हैं, वही जल और जो अस्थि आदि कठोर पदार्थ हैं, वही पार्थिव अंश हैं, यह शरीर जरायुज आदि भेदोंसे अनेक प्रकारका है। ज्ञान, जठराग्नि और प्राण ये त्रिविध पदार्थ सर्व्वकर्म्म संग्राहक हैं; इन्द्रिय और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषय प्रकाशक स्वभाव-विशिष्ट हैं, घटाकार वृत्ति चेतनाशे संकल्पादि रूप मन है, यही ज्ञानके कार्य्य हैं, वायुके कार्य्य प्राण आदि पञ्चवायु है, खाने और पीनेकी वस्तुओंको परिपाकके जरिये इन्द्रियादिका उपचय करना जठराग्निका कार्य्य है। इससे ज्ञान, अग्नि और वायुसे इन्द्रिय आदि प्रकट हुई हैं। कान, त्वचा, जीभ, नेत्र और नासिका, ये पाचो इन्द्रिय चित्तगत गुण काम किया करती हैं। सुख, दुःख, सुखाभाव और दुःखाभाव स्वरूपीविज्ञानयुक्त चेतनावृत्ति विषयोंकी उपादेयत्व, हेयत्व और उपेक्षणीयत्व भेदसे तीन प्रकारकी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाचो विषय मूर्त्तिके सहित संयुक्त होकर मृत्यु,काल पर्य्यन्त ज्ञान सिद्धिके निमित्त षड्-विषय कहके प्रसिद्ध हुआ करते हैं। कान आदि इन्द्रियोंसे सम्प्राप्त निबन्धनसे जिन सब विषयोंमें अर्थ निश्चय होता है, उसीको प[illegible]

लोग मोक्षका बीज और सो तम्प्रदत्व हेतु अव्यय महत् बुद्धि कहा करते हैं। इन आत्मातिरिक्त विषयोंको जो लोग आत्मभावसे देखते हैं, उनका असम्यक दर्शनसे अनन्त दुःख शान्त नहीं होता "यही" इत्यादि रूपसे जो दीखता है, वह आत्मा नहीं है, क्यों कि दृश्य वस्तु कभी द्रष्टाकी आत्मा नहीं होसकती। इस कारण 'मैं और मेरा' इत्यादि वचन भी सिद्ध नहीं होते; तब अहंकार देहेन्द्रिय आदि जो आत्मामें अभेद रूपसे मालूम होती हैं, वह सीपमें रौप्यबुद्धिके समान भ्रम-मात्र है। "यही मैं अन्धा हूं, मैं गौर वर्ण हूं" इत्यादि वचनमें जब आत्माका सम्बन्ध नहीं है, तब "मेरे पुत्र, मेरीस्त्री।," ये सब वचन भी मिथ्या हैं, इसलिये जो दुःखसन्तति मालूम होरही है, उसका अवलम्ब क्या है, क्यों कि आत्मा असङ्ग और अहंकार मिथ्या है, इससे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति निरधिष्ठान दुःखसन्तति भी अवश्यही अहङ्कारकी तरह सत्य नहीं है, अब जो वच्यमाण त्याग प्रधान शास्त्र तुम्हारे मुक्ति विषयमें निमित्त होगा, वह परमश्रेष्ठ सखशास्त्र सुनो। मुक्तिके लिये सदा उद्यत पुरुषोंको सब कर्म्म और विभव आदिको परित्याग करनाही नित्यकर्म्म है, और जो लोग त्यागको स्वीकार न करके शान्तिपरायण होते हैं, पण्डित लोग उन लोगोंके अविद्या आदि क्लेशोंका दुःखदायक समझते हैं। सुखकी सामग्रियोंको परित्याग करनेसे सब कर्म्म सिद्ध होते हैं, भोग त्याग करनेसे व्रतकी सिद्धि हुआ करती है, सुख त्याग करनेसे तपस्या और योग उपदेश प्राप्त हो सकता है, और समस्त परित्याग करनेसे त्यागकी पराकाष्ठा हुई। दुःखोंको नाश करनेके लिये उस सर्व्वत्यागका ईश्वरहित मार्ग प्रदर्शित होता है। त्याग स्वीकार न करनेसे दुर्गति हुआ करती है। बुद्धिमें विद्यमान मनके सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका विषय कहके प्राणके सहित पञ्च कर्म्मेन्द्रियोंका विषय कहता हूं।

दोनों हाथ कर्म्मेन्द्रिय, दोनों पांव गमनेन्द्रिय और शिश्न सन्तानोत्पादन तथा आनन्द जननेन्द्रिय, वायु पुरीष (मल) परित्याग आदिकी इन्द्रिय और वाक्य शब्दविशेष उच्चारणकी इन्द्रिय है, मन इन पांचो कर्म्मेन्द्रियोंमें संयुक्त है। इस ही प्रकार मनके सहित कर्म्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों इन ग्यारहोंको बुद्धिके सहारे शीघ्रही परित्याग करे, मनको परित्याग कर सकनेसे ही विषययुक्त कर्म्मेन्द्रियों परित्यक्त होती हैं; और बुद्धिको परित्याग करनेसे ही मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंका परित्याग सिद्ध हुआ करता है। शब्द क्रियाको सिद्ध करनेके लिये दोनों कान करण, शब्द विषय और चित्त कर्त्ता रूपसे कहा जाता है, स्पर्श, रूप, रस और गन्धका विषय भी इसही प्रकार है। इसी भांति शब्दादि विषयोंकी अभिव्यक्तिके लिये सत्व आदि तीनों गुण, सब विषय और कारणको समनस्क करे, जो अनुभवको अभिव्यक्तिके निमित्त सात्विक राजसिक और तामसिक भाव पर्य्यायक्रमसे उपस्थित होते हैं, वह अनुभव ही प्रहर्ष आदि सब सात्विक प्रभृति कार्य्योंका साधन किया करता है। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त-चित्तता, ये सब सात्विक गुण वैराग्यके कारण वा स्वाभाविक ही चित्तसे उत्पन्न होते हैं। असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और क्षमाहीनता, ये सब रजोगुणके चिन्ह है, कभी कारणसे और कभी बिना कारणके ही दिखाई देते हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा आदि विविध तामसगुण कारण वा बिना कारणके ही वर्त्तमान रहते हैं। जो शरीर और मनको प्रीतियुक्त करे, उसेही सात्विक गुण समझना चाहिये। जो विषय आत्माको असन्तोष और अप्रीतिकर है, उन्हें ही रजोगुणसे उत्पन्न हुए समझना चाहिये, और शरीर वा मनसे जो मोहयुक्त होके मालूम होता है, उसेही अवितर्क और अविज्ञेय त

कार्य्य निश्चय करे। आकाशके आश्रित श्रोत्र आकाशसे भिन्न नहीं हैं और श्रोत्राश्रित शब्द भी परस्परके सम्बन्धसे आकाशसे स्वतन्त्र नहीं होसकता, जब ऐसा हुआ, तब शब्दज्ञान होनेपर आकाश और श्रोत्र ये दोनो ही विज्ञानके विषय नहीं होते, क्योंकि जिसे शब्दज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञानके समयमेंही श्रोत्र और आकाश विषयका ज्ञान समान नहीं होसकता, इससे ऐसा निश्चय नहीं है, कि श्रोत्र और आकाश अज्ञात ही रहे। एकका विज्ञान होनेसे दूसरेका ज्ञान नहीं होता, यह वचन कभी की युक्तिसङ्गत नहीं है। श्रोत्र और आकाशसे शब्द कभी स्वतन्त्र नहीं होसकता। इसलिये श्रोत्रादिके प्रविलापनसे शब्द और आकाश आदिका प्रविलापन युक्तियुक्त है, शब्द और आकाशादि स्मरणात्मक चित्त स्वरूप है; चित्त भी अव्यवसायात्मक मनसे भिन्न नहीं, इसलिये मनके लय होनेसे सभी लीन होते हैं। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा नासिका, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके सहित अभिन्न होकर चित्तभी मनःस्वरूप होता है; मनके लय होनेसे ये सब लीन होते हैं। इन्द्रियोंके विषय सुनना, छूना, देखना आदि कार्य्य एक समयमें ही सिद्ध होनेसे पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, इन दशोंके अनुगत मन ग्यारहवां होकर स्थिति करता है और बुद्धि ऊपर कही हुई दशों इन्द्रिय तथा ग्यारहवें मनको अनुगत होकर बारहवें रूपसे निवास किया करती है, जो लोग यह अङ्गीकार करते हैं, कि एक समयमें अनेक ज्ञान नहीं होता, उनका अनुभव युक्तिविरुद्ध है; क्योंकि गङ्गाजलमें शरीरका अर्द्ध भाग डूबनेपर आधेहिस्सेमें सूर्य्यकिरणकी गर्म्मी और आधे भागमें शीतलता दोनों ही स्पष्ट मालूम होती हैं। पूर्वोक्त पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहोंको युगपत भाव न होनेपर भी निद्रा रूप तमोमय सुषुप्ति-कालमें भी आत्माका नाश नहीं है, आत्माका अयोगपद्यही वास्तवल है, युगपद्भाव केवल सपनेकी भांति ज्ञानकृत है; इस लिये आत्माका जो युगपद्भाव है, वह लौकिक व्यवहार मात्र है। पारलौकिक नहीं है, स्वप्नदर्शी पुरुष पूर्व्वानुभव वासनासे सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषय सङ्गतकी चिन्ता करते हुए सत, रज और तमोगुणसे युक्त होकर कामनाके अनुसार निज शरीरमें विचरते हैं। जो तमोगुणसे अभिभूत और जो प्रवृत्ति प्रकाशात्मक आत्माको शीघ्र ही संहार करके पहले कहे हुए युगपद्भावकी अनिश्चित नाश करता है, पण्डित लोग उसेही तामससुख कहा करते हैं। वह अज्ञान प्रधान तामससुख इस शरीरमेंही सुषुप्तिकालमें मालूम हुआ करता है; जो सब आनन्द स्वरूप परब्रह्म इत्यादि वेदबोधित रूपसे विख्यात् है उसमें तनिक भी द्वैत सुख न दीख पड़ने और अव्यक्त अनृत तमोगुणकी सत्ता न रहनेपर भी उसका अस्तित्व उपपन्न होता है। इन अहङ्कार आदिकोंको घटपट पर्य्यन्त दृश्यमान भोग्य वस्तुओंके निज कर्म्मके कारण उत्पत्ति प्रख्यात् हुआ करती है। कोई कोई अविद्यायुक्त पुरुषोंका अज्ञान वज्रपञ्जरकी तरह वर्द्धित होता है, और कोई कोई विद्वान पुरुषोंके समीप वह अज्ञान तीनो कालमें भी आगमन करनेमें समर्थ नहीं होता। अध्यात्म विचारमें तत्पर पण्डित लोग संघात बीजभूत मनके बीच जो सत्ता है, उसे ही चैतन्य कहा करते हैं। अनादि अविद्या कर्म्मसे सत्य और मिथ्याका आत्म और आत्मभिन्न एकत्रीकरण निबन्धन व्यवहारमें वर्त्तमान चतुर्व्विध भूतोंके बीच शाश्वत आत्मा किस प्रकार नाशयुक्त होसकता है। आत्मा सर्व्वव्यापी नित्य पदार्थ है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता; इसलिये पहिले जो आत्माके नाश विषयमें प्रश्न हुई थी उसका कोई अवलम्बन नहीं है। मैंने

नद और नदियें समुद्रमें मिलकर अपने नाम और रूपको त्यागके सागर जलमें लीन होती है, वैसेही महदादि घटपट पर्य्यन्त वाह्य वस्तु रूपी सब स्थूल पदार्थ उत्पत्तिकी विपरीतताके अनुसार सूक्ष्मभूतोंमें लयको प्राप्त हुआ करते हैं, और सूक्ष्मभूत विशुद्ध कारण स्वरूपमें लीन होते हैं, इसेही सत्वसंचय कहा जाता है। इसही प्रकार देहरूप उपाधियुक्त जीव सब तरहसे आइनेके सुखकी भांति ग्रहमाण होने पर और उपाधिके नष्ट होनेपर उसका किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं होसकता, और ज्ञान न होने पर भी जैसे दर्पणके अभावसे सुखका नाश नहीं होता, वैसेही उपाधिके न रहनेपर भी आत्माके नाशकी शङ्का करनी किसी प्रकार भी सम्भावित नहीं है। जो अप्रमत्त होकर इसी प्रकार मुक्तिका उपाय अवलम्बन करके आत्मध्यानमें तत्पर होते हैं, वे जलसे भींगे हुए कमलपत्रके समान अनिष्टकारी कर्म्म फलोंसे लिप्त नहीं होते। जो अपत्य स्नेह और दैवीकर्म्म निमित्त अनेक प्रकारके दृढ़ पाशोंसे मुक्त हुए हैं, वे जिस समय सुख दुःख परित्याग करते हैं, उस समय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशो इन्द्रिय इन सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरसे रहित होते तथा मुक्त होकर परम गति पाते हैं। मनुष्य श्रुति प्रमाण "तत्त्वमसि" वाक्य और वेद शास्त्रोंमें कहे हुए मङ्गल साधन समदम आदिके सहारे जरा मृत्युके भयसे रहित होकर निवास करते हैं। पुण्य और पाप तथा मोहका कारण सुख दुःख नष्ट होनेपर आसक्ति रहित साधक लोग हृदयाकाशमें स्थित सगुण ब्रह्मको अवलम्बन करके अन्तमें निरवयव निर्लिप्त आत्माको अस्मितामात्र बुद्धि तलसे देखते हैं। जैसे ऊर्णनाभि कीट तन्तुमय गर्हमें वर्तमान रहके निवास करता है, वैसेही अविद्याके वशीभूत जीव कर्म्म तन्तुमय गर्हमें वास किया करते हैं। जैसे पांशुपिण्ड वेगपूर्व्वक पत्थरपर गिरनेसे चूर होजाता है, उसही प्रकार जीव मुक्त होके दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे रुरु नाम हरिन विशेष पुराने सींगोंको त्यागके और सर्प निज केंचुली परित्याग करके अनवहित भावसे गमन करते हैं, वैसेही जीव मुक्त होकर दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे जलमें गिरे हुए वृक्षको परित्याग करके पक्षी असक्त होके उड़ जाते हैं, वैसेही जीव सुख दुःखको परित्याग करते हुए लिङ्ग शरीरसे रहित और विमुक्त होकर परम गति लाभ कियाकरता है, मिथिलाधिपति जनकने सारे नगरको जलते हुए देखकर कहा था, कि इस अग्निदाहसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। राजा जनदेवने पञ्चशिख आचार्य्यके कहे हुए अमृत समान वचनको सुनकर सबकी पर्य्यालोचना करके अर्थ निश्चय करते हुए परम सुखी और शोकरहित होकर विहार किया था। हे महाराज! जो लोग इस मोक्ष निश्चय विषयका सदा पाठ और अर्थके अनुसार पर्य्यालोचना करते हैं वह दुःखसे रहित होते और किसी उपद्रवको अनुभव नहीं करते और जैसे जनकवंशीय जनदेव पञ्चशिख आचार्य्यके शरणागत होकर मुक्त हुए थे, इस मोक्ष निश्चय विषयको पर्य्यालोचना करनेवाले पुरुष भी उस ही प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

२१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! इस लोकमें मनुष्य किन कर्म्मोंके करनेसे सुखलाभ करता है। किन कर्म्मोंको करनेसे दुःखभागी होता और किस प्रकारके कर्म्मोंको करते हुए सिद्ध पुरुषोंकी तरह निर्भय होकर विचरता है?

भीष्म बोले, वेददर्शी वृद्ध लोग वाह्येन्द्रिय निग्रहरूपी दमगुणकी ही प्रशंसा किया करते

हैं, सब वर्णों विशेष करके ब्राह्मणके पक्षमें दम गुण ही परम श्रेष्ठ है। अदान्त पुरुषोंको यथा रीतिसे क्रियासिद्धि पूर्ण नहीं होती। तपस्या और सत्य कहनेका नाम क्रिया है, वे सब क्रिया ही दमगुणमें प्रतिष्ठित होरही हैं; दमगुण तेजकी वृद्धि करता है, दमकोही पण्डित लोग पवित्र कहा करते हैं; पापरहित निर्भय दान्त पुरुष महत् सुखभोग करते हैं। दान्त पुरुष ही परम सुखसे सोते हैं, परम सुखसे जाग्रत हुआ करते हैं और अनायास ही जनसमाजमें विचरते हैं, उनका मन भी सदा प्रसन्न रहता है। दमगुणके जरिये तेज बढ़ता है, तामस प्रकृतिवाले पुरुष उसमें अधिकार नहीं कर सकते। दान्त पुरुष काम आदि शत्रुओंको शरीरमें सदा पृथक् देखते हैं, जैसे बाघ आदि हिंसक जन्तुओंसे जीवोंको सदा भय हुआ करता है, वैसेही अदान्त पुरुषोंसे मनुष्योंको सदा ही भय होता है। उन अदान्तोंको शासन करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया है। सब आश्रमोंके बीच दमगुण ही श्रेष्ठ है, सब आश्रमोंमें धर्म्मोपार्ज्जनसे जो फल हुआ करता है, दान्त पुरुषोंमें उससे भी अधिक फल दीखता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते है। अब जिसे दम कहते है, उसका स्वरूप कहता हूं।

अदीनता, अभिनिवेश, सन्तोष, सद्धानता, अक्रोध, सरलता, सदा अलौकिक अर्थ कहना, राज आदिकी वार्त्ता कहनी, गुरुपूजा, अनसूया सब भूतोंमें दया और अखलता, लोकापवाद, मिथ्या वचन तथा स्तुति निन्दाका परित्याग ही दमगुणका लक्षण है। जो मोक्षार्थी होकर सुख दुःख आदिके अनुभव विषयमें उत्तर कालमें स्पृहा नहीं करते, जो वैर करनेवाले नहीं हैं और शठतारहित होकर समादरक्रिया करते हैं; निन्दा और प्रशंसामें जिन्हें समज्ञान है सच्चरित्र, सदाचार युक्त, प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् मनुष्य इस लोकमें सत्कार लाभ करके अन्तकालमें स्वर्गमें जाते हैं और सर्व्वभूतोंके दुर्लभ अन्नादि लाभ करते हुए सुखी और आनन्दित होते हैं। जो सब भूतोंके हितकर विषयमें रत होकर किसीसे भी द्वेष नहीं करते, महाह्रदकी भांति अक्षोभ्य वे प्रज्ञातृप्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं। सब प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती वेही बुद्धिमान् दान्त पुरुष सब प्राणियोंके नमस्य होते हैं। जो बहुतसे धन पानेपर भी हर्षित नहीं होते और विपद उपस्थित होनेपर भी शोक नहीं करते, उन्हीं परिमित प्राज्ञ दान्त पुरुषोंको ब्राह्मण कहा जाता है। जो शास्त्र ज्ञानसे युक्त होकर भी कर्म्मानुष्ठान करते हैं, साधुओंके आचरित पथमें निवास करते हुए पवित्र हुआ करते है, और सदा ही बाह्येन्द्रिय निग्रहमें रत रहते हैं, उन्हें महत् फलका भोग प्राप्त होता है। अनसूया क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और अनायस दुरात्माओंकी पदवी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, दूसरेके विषयमें ईर्षा और अपनी बड़ाई करनीही दुरात्माओंकी स्पृहणीय है। ब्रह्मचारी मनुष्य काम और क्रोधको वशमें करके जितेन्द्रिय होवें। संशितव्रती ब्राह्मण घोर तपस्याचरण रूपी विक्रम प्रकाश करके कालकी आकांक्षा करते हुए अपाय विरहित और सन्तोष युक्त होकर सब लोकोंमें विचरण किया करते है।

२२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यज्ञदीक्षित और मन्त्रदीक्षित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग देवताओंकी बलिसे बचे हुए भक्षणीय मांस और मद्य आदिको जो स्वर्ग वा पुत्रादिकी कामनासे भक्षण किया करते हैं, वह उचित है, वा नहीं?

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! जो लोग वेदविहित व्रताचरण न करके अभक्ष्य मांस आदि भोजन करते हैं, वे इस लोकमेंही पतित होते हैं, और जो लोग दीक्षा लेके फलानुरागी होकर वैध मांस आदि भक्षण करते हैं, वे यज्ञ आदिसे स्वर्ग फल भोग करके भोगके समाप्त होनेपर पतित हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। साधारण लोग जो देह पीड़ाकर उपवासको तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है, अथवा दूसरे प्रकारकी कोई तपस्या है?

भीष्म बोले, साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं, कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करनेसे तपस्या होती है, आत्मविद्याकी विघ्न स्वरूप वह तपस्या साधुसम्मत नहीं है। भूत भयङ्कर कर्म्म सन्त्रास और भूताराधनही श्रेष्ठ तपस्या है, जो लोग इसी प्रकार तपस्या क्रिया करते हैं, परिवार समूहके सहित सदा वर्त्तमान रहने पर भी उन्हें उपवासी और ब्रह्मचारी कहा जाता है। हे भारत! कुटुम्बयुक्त ब्राह्मण धर्म्मकाम होने पर सदा मुनि वा देव तुल्य हो सकते हैं, और वे स्वप्न रहित अमांसाशी सदा पवित्र अमृताशी, देवता और अतिथियोंकी पूजा करनेवाले, विघसाशी, अतिथिव्रती, श्रद्धावान् और सदा देवताकीभांति अतिथि पूजक होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ब्राह्मण किस प्रकार सदा उपवासी होते हैं, किस प्रकार ब्रह्मचारी हो सकते हैं, किस प्रकार भोजन करनेसे विघसाशी होते हैं?

भीष्म बोले, दिन और रात्रिकालमें भोजनके विहित समयमें भोजनसे भिन्न जो लोग भोजन नहीं करते वेही सदा उपवासी होते हैं; जो ब्राह्मण केवल ऋतुकालमेंही भार्य्यासङ्ग करते हैं, उन्हें ही ब्रह्मचारी कहा जाता है; जो सदा दानमें रत रहते वेही सत्यवादी होते हैं। देवता और पितरोंके भोगसे बचे हुए मांसके अतिरिक्त जो वृथा मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें अमांसाशी कहा जाता है। जो सदा दानमें रत रहते, वेही पवित्र होते हैं; जो दिनमें नहीं सोते; उन्हें अस्वप्न कहा जाता है। हे धर्म्मराज! प्रतिदिन सेवकों और अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर जो लोग भोजन करते हैं, उन्हेंही केवल अमृताशी जानो। अतिथि आदिके भूखे रहनेपर सदा जो भूखे रहते हैं, उनका उसही अनशन व्रतसे स्वर्गलोक जय होता है। देवता, पितर, अतिथि और सेवकोंसे बचे हुए अन्नको जो लोग भोजन करते हैं। उन्हेंही पण्डित लोग विघसाशी कहा करते हैं। इन सब ब्राह्मणोंके शुभ लोकोंकी सीमा नहीं है, इनके गृहमें ब्रह्मा और अप्सराओंके सहित देवता लोग उपस्थित हुआ करते हैं। जो देवताओं और पितरोंके सहित अन्नादि उपभोग करते हैं, वे पुत्र पौत्रोंके सहित आनन्दित होते हैं और उन लोगोंको सबसे श्रेष्ठ उत्तम गति हुआ करती है।

२२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम पितामह! इसलोकमें शुभ वा अशुभ कर्म्म जो कि अवश्यही पुरुषोंको फलभागी करते हैं, पुरुष उन शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता होता है, वा नहीं, उस विषयमें मुझे सन्देह है, इसलिये आपके समीप इस विषयको यथार्थरूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रह्लाद और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी समय फलकी अभिलाषासे रहित पापहीन, बहुशास्त्रदर्शी, निरालसी, निरहङ्कारी, सत्वगुणावलम्बी, निज योग्य शम दम आदि गुणोंमें अनुरक्त स्तुति निन्दामें तुल्यबुद्धि दान्त, सूने

गृहमें बैठे हुए जिन्होंने स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको जाना है; जो अप्रिय विषयसे क्रुद्ध और प्रिय विषयलाभमें हर्षित नहीं होते, सुवर्ण और मट्टीके ढेलेमें जिसकी समदृष्टि है, जिन्होंने आनन्दस्वरूप चिन्मात्र आत्मविषयका कृतकनमिभूत होकर निश्चय किया है और जीवोंके बीच श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ अपकृष्ट कीट आदि पर्य्यन्त जाना है; जो सर्व्वज्ञ समदर्शी और संयतेन्द्रिय है, उस एकान्तमें बैठे हुए प्रह्लादके समीप इन्द्र उपस्थित होके उनके बुद्धिकी परीक्षा करनेकी इच्छासे यह बचन बोले, हे प्रह्लाद! इस लोकमें जिन गुणोंके रहनेसे लोगोंके बीच पुरुष सबसे ही सम्मत होता है, वे सब स्थिर गुण तुममें दीखते हैं और तुम्हारी बुद्धि बालककी भांति राग द्वेषसे रहित दीख पड़ती है। तुम आत्माको मनन करते हुए आत्मज्ञानका श्रेष्ठ साधन क्या समझते हो? हे प्रह्लाद! तुम पाशबद्ध स्थानच्युत और श्रीहीन होने पर भी शोचनीय विषयमें शोक नहीं करते हो। हे दैत्यवंशप्रसूत प्रह्लाद! तुम बुद्धिलाभ वा सन्तोषसेही अपनी विपद देखकर भी स्वस्थचित्त हो रहे हो, निश्चितबुद्धि धैर्य्यशाली प्रह्लाद देवराजका ऐसा वचन सुनके निज प्रज्ञा वर्णन करते हुए मनोहर वचनसे कहने लगे।

प्रह्लाद बोले, जो जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति गतिको नहीं जानते अर्थात् पुरुषोंके भोग और अपवर्ग साधनके निमित्त अनुलोम प्रतिलोम परिणामवती मूलप्रकृतिमें जिन्हें आत्म भिन्न ज्ञान नहीं है, आत्मामें बुद्धि धर्म्म कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि आरोपित करनेवाले उन पुरुषोंकी बुद्धि मूढ़ताके कारण स्तम्भित होती है, और जिसे जीव ब्रह्ममें ऐक्य ज्ञान है; उसकी बुद्धि स्तम्भ नहीं होती। भाव और अभाव सब पदार्थोंमें स्वभावसेही प्रवृत्त और नि[illegible] होता है अर्थात् जैसे बछड़ा उत्पन्न होनेके पहलेही गौवोंके रुधिरपूरित स्तनमें दूध उत्पन्न होता है, उस समय उसके प्रवर्त्तक वात्सल्य न रहने पर भी जैसे स्वाभाविक दोहोत्पत्ति होती है, वैसे ही सब पदार्थ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रवर्त्तककी अपेक्षा नहीं है; इसलिये पुरुषार्थका भी प्रयोजन नहीं है। यदि पुरुषार्थ अथवा भोग और अपवर्ग न रहे, तब कोई जगत्कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं होती है; इसलिये आत्मा यदि अकर्त्ता हो, तो इस शरीरमें "मैं" यह अभिमान अविद्यासे स्वयं उत्पन्न हो सकता है। जो पुरुष साधु वा असाधु, होते आत्माको कर्त्ता समझे मुझे बोध होता है, उसकी दोषवती बुद्धि तत्त्वपथको नहीं जान सकती। हे देवेश! यदि पुरुषही कर्त्ता हो, तो उसके आत्म कल्याणके निमित्त अवश्यही सब कार्य्य सिद्ध हों, और पुरुष कदापि पराभूत न होवे। जब कि हितके वास्ते यत्नवान् मनुष्योंकी अनिष्ट सिद्धि और अर्थनिरोध दीखता है, तब किस लिये पुरुषार्थ स्वीकार किया जा सकता है। अदृष्टकी अनुकूलता न रहने पर यदि कार्य्यमें व्याघात हो, तब आत्महितमें यत्नवान् मनुष्योंमें अनिष्ट अदृष्टकी उत्पत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है, क्यों कि भोक्ताके समान नियत कर्त्ता न रहने पर भोक्ता भी नहीं रहता। ईश्वर और काल स्वभावकाही नामान्तर है, क्योंकि कोई कोई पुरुषके प्रयत्न न रहने पर भी स्वाभाविक अनिष्ट सिद्धि और इष्ट तिरोधान होते दीख पड़ता है। कोई कोई केवल स्वरूप बनाके कोई कोई अत्यन्त बुद्धियुक्त होकर अल्पबुद्धि कुरूप लोगोंसे धनागम लाभकी इच्छा करते हुए दिखाई देते हैं। जब कि सुख दुःख आदि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव प्रेरित होकर पुरुषोंमें निविष्ट होते हैं, तब मैं सुखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादि अभिमानके कारण कुछ भी नहीं हैं। सुख दुःख आदि सब विषय

स्वाभाविक हुआ करते हैं, ऐसा मेरे मनमें निश्चय है और क्या कहूं, मेरे मतमें युक्ति और आत्मज्ञान स्वभावसे स्वतन्त्र नहीं है, इस लोकमें कर्म्म जनित शुभाशुभ फल भोग प्राप्त हुआ करता है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं, इसलिये अब मैं सब कर्म्मोंका विशेष विवरण कहता हूं सुनो। जैसे अन्न भाजी वायस उसे प्रकाश करना जानता है, वैसेही सब कर्म्म स्वभावकेही असाधारण धर्म्म है, अर्थात् सब कर्म्मही स्वभावको प्रकाश करते हैं। जैसे तागे पाटसे कारण होनेसे तन्तुनिष्ठ शुक्लादि गुण पटगत विचित्रतामें कारण होते हैं, वैसेही स्वभावही जन्मादि मात्रका हेतु है। जो पुरुष धर्म्माधर्म्म आदि सब विकारोंको जानते हैं, और त्रिगुणमयी प्रकृतिसे श्रेष्ठ उपादान प्रकृति अर्थात् ब्रह्मको नहीं जानते, उन कर्म्म और प्रकृतिके भेददर्शी पुरुषोंमें मूढतासे जड़ता हुआ करती है, और जो दोनोंकी ऐक्यता अवलोकन करते हैं, उनमें जड़ता नहीं होती स्वभावसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जिन्होंने निश्चय रूपसे जाना है दर्प वा अभिमान उनका क्या करेगा। हे देवराज। मैं सब धर्म्म, विधि और सब भूतोंको अनित्यता विशेष रूपसे जानता हूं, सब वस्तुही अनित्य है, इसही निमित्त शोक नहीं करता। मैं ममता हीन, निरहङ्कार, वासना रहित, बन्धनसे मुक्त, स्वरूप और देह आदिमें अनिभिमानके कारण स्वरूपसे अप्रच्युत होकर जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परब्रह्मको अवलोकन करता हूं। हे शक्र। जो लोग शुद्धबुद्धि जितेन्द्रिय, परितृप्त और वासना रहित होकर आत्मविद्याके सहारे सब विषयोंको देखते हैं, उन्हें कुछ क्लेश नहीं है। विश्वकर्त्री प्रकृति वा धर्म्माधर्म्मके फल सुख दुःखमें मुझे प्रीति वा द्वेष नहीं है; मैं इस समय किसीको भी द्वेष्टा नहीं देखता हूं और पुत्र, मित्र आदिको भांति ममता करनेवाले किसी पुरुषको भी अवलोकन नहीं करता हूं। हे इन्द्र। मैं कभी स्वर्ग पाताल अथवा मर्त्त्यलोकको कामना नहीं करता। ऐसा नहीं कह सकते, ज्ञानके विषय विज्ञान अर्थात् बुद्धि तत्त्वमें और आत्मा स्वरूप चिदात्मामें कुछ सुख नहीं है, आत्मा धर्म्माधर्म्म और उसके फल सुख दुःखका आश्रय नहीं है, इसही लिये मैं कुछ कामना नहीं करता, केवल ज्ञानसे तृप्त होकर निवास करता हूं।

इन्द्र बोले, हे प्रह्लाद। मैं पूछता हूं, कि जिस उपायसे ऐसा ज्ञान और शान्ति लाभ हो उसे तुम यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो।

प्रह्लाद बोले, हे सुरराज! सरलता, सावधानता, प्रसन्नता, जितेन्द्रियता और वृद्धोंकी सेवासे पुरुष मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होता है। पुरुष स्वभावसेही ज्ञान लाभ करता है, और स्वभावसेही शान्ति प्राप्त होती है, आप जो कुछ देखते हैं, वे सब स्वभाविकही सिद्ध होते हैं। हे महाराज। दैत्यपति प्रह्लादने जब ऐसा कहा, तब त्रिलोकेश्वर देवराज विस्मययुक्त हुए और उस समय वह प्रसन्न होकर प्रह्लादके वचनका समादर करके उनका सत्कार और आमन्त्रण करके निज स्थानपर चले गये।

२२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। राजा जैसी बुद्धिके सहारे विपद्ग्रस्त और श्रीभ्रष्ट होकर महीमण्डलमें विचरते है, आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें विरोचनपुत्र बलि और देवराज इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने सब असुरोंको जीतके सर्व्व लोकपितामह ब्रह्माके पास जाके प्रणाम करनेके अनन्तर हाथ जोड़के बलिका विषय पूछा

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! सदा धन दान करनेपर भी जिसका धन कभी नहीं घटता, मैं उस बलिको नहीं जानता; इसलिये आप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही वायु, बलिही वरुण, बलिही सूर्य्य, बलिही चन्द्रमा और बलिही अग्नि होकर सब जीवोंको ताप देता है, तथा वह बलिही जल स्वरूप हुआ करता है, मैं उस बलिको नहीं जानता। हे ब्रह्मन्! इसलिये आप मेरे समीप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही अस्तमय होता है, बलिही सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, बलिही अतन्द्रित होकर यथाकालमें जलकी वर्षा किया करता है। हे ब्रह्मन्! मैं उस बलिको नहीं जानता इसलिये आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम जो बलिका विषय पूछते हो, वह तुम्हारे पक्षमें कल्याणकारी नहीं है, तब पूछनेपर झूठ न कहना चाहिये, इसही लिये मैं तुम्हारे निकट बलिका विषय वर्णन करता हूं। हे शचीश्वर! ऊंट, बैल, गधे और घोड़ोंमेंसे कोई एक रूपधरके सूने स्थानमें जो वरिष्ठ होकर वास करे, वही बलि है।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं सूने स्थानमें बलिके साथ मिलूं, तो उसे मारूंगा; वा नहीं? उस विषयमें आप मुझे आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम बलिकी हिंसा न करना, बलि वध्य नहीं है। हे देवराज। तुम इच्छानुसार बलिके निकट नीति पूछना।

भीष्म बोले, जब भगवान् ब्रह्माने महेन्द्रसे ऐसा कहा, तब वह उसही समय ऐरावतपर चढ़के शोभायुक्त होकर पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे, अनन्तर भगवान् पितामहने जिस प्रकार कहा था, उसके अनुसार ही उन्होंने सूने स्थानमें स्थित खर-वेषधारी बलिको अवलोकन किया। इन्द्र उसे देखकर बोले, हे दानव! खरयोनिमें प्राप्त होकर तृण भक्षण कर रहे हो, इस अधम योनिमें प्राप्त होनेसे तुम्हें दुःख होता है, वा नहीं? मैं देखता हूं, तुम्हारा अदृष्ट शत्रुओंके वशीभूत, श्रीहीन, मित्ररहित, भ्रष्टवीर्य्य और नष्ट पराक्रम हुआ है। तुम जो स्वजनोंमें घिरकर सब लोकोंको परितापित करते हुए हम लोगोंको अग्राह्य करके सब भांतिके यानोंके जरिये गमन करते थे दैत्यलोग तुम्हारे मुखापेक्षी होकर तुम्हारे ही शासनमें निवास करते थे पृथ्वीमें तुम्हारे ही ऐश्वर्य्यसे बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते थे; अब तुम समुद्रके पूरब किनारे बिलमें वास करते हो इससे तुम्हें जो दुःख होता है, उसके लिये तुम शोक करते हो, वा नहीं? पहले जब तुम स्वजनोंको धन बांटके देते थे, उस समय तुम्हारा मन कैसा हुआ था। अनेक वर्ष पर्य्यन्त, श्रीयुक्त रहके जब तुम विहार करते थे, उस समय पुष्कर मालिनी सुवर्णके समान रूपवाली सहस्रों सुरकामिनी तुम्हारे समीप उपस्थित होकर नृत्य करती थीं। हे दानवेश्वर! तुम्हारा मन उस समयमें कैसा था और इस समयमें ही किस प्रकार है? पहले तुम्हारा महत्रत्नोंसे भूषित सुवर्णमय छत्र था, उस समय तुम्हारे समीप छः हजार गन्धर्व सात प्रकार नृत्य करते थे। तुमने जब यज्ञ किये थे उस समय तुम्हारे सब यज्ञयूप सुवर्णमय थे; जिस यज्ञसे तुमने पहिले दश अयुत अनन्तर दश हजार और उसके बाद सहस्र गोदान किया था, हे दैत्यराज। उस समय तुम्हारी वृद्धि किस प्रकार थी। जब तुमने यज्ञ कार्य्यमें रत होकर सब पृथ्वी मण्डलको यज्ञकार्य्यमें अपर्य्याप्त समझके उसे परित्याग करके गमन किया था; उस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें कैसे भाव उदय हुए थे? हे असुरेश्वर! अब तुम्हारे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और दोनों चमर नहीं दीखते हैं तथा ब्रह्माने तुम्हें जो माला प्रदान की थी, उसे भी नहीं देखता हूं।

बलि बोले, हे इन्द्र ! तुम मेरे छत्र, चमर और सुवर्णमय जलपात्र नहीं देखते हो ; मेरे सब रत्न मूलप्रकृतिके बीच अन्तर्हित होरहे हैं, इसहीसे तुम उस विषयको पूछते हो ; जब मेरा समय होगा, तब तुम मेरे उक्त रत्नोंको देखोगे। इस समय तुम समृद्धियुक्त और मैं असमृद्ध हूं, इसलिये तुम जो मेरे समीप बड़ाई करते हो, वह तुम्हारी कीर्त्ति और कुलके अनुरूप नहीं है। बुद्धिमान, ज्ञानतृप्त, क्षमाशील, साधु मनीषिपुरुष दुःखके समय शोक नहीं करते और समृद्धिकालमें भी हर्षित नहीं होते। हे पुरन्दर ! तुम तुच्छबुद्धिके कारण ऐसा वचन कहते हो। जब तुम मेरे समान होगे, तब ऐसा न कह सकोगे।

२२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतकुल प्रदीप ! बलि जब प्रत्युत्तर देनेके लिये सर्पकी तरह गर्ज्जने लगा, तब देवराज हंसके फिर उससे यह वचन बोले।

इन्द्र बोले, हे बलिराज ! तुम जो स्वजनोंके बीच घिरके सब लोकोंको परितापित और हम लोगोंकी अवज्ञा करते हुए सहस्र प्रकारके यानोंसे गमन करते थे, इस समय उन स्वजनोंसे और मित्रोंसे परित्यक्त होकर अपनी यह अत्यन्त दीनदशा देखकर शोक करते हो, वा नहीं ? पहले अतुलप्रीति लाभ करके तथा सब लोकोंको अपने वशमें रखके इस समय यह बाह्य विनिपात लाभ करके दुःखित होते हो, वा नहीं ?

बलि बोले, हे देवराज ! इस जगत्में कालक्रमसे सब वस्तु अनित्य होती हैं, उसे देखकर मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता ; क्यों कि जगत्में जो कुछ है, वह सभी विनश्वर है। हे सुरराज ! जीवोंके इन सब शरीरोंका अन्त होगा, इसहीसे मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता ; मैं यह नहीं कहता, कि मेरी यह दशा मेरे अपराधसे ही हुई है। जीवन और शरीर एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं, दोनों एकत्र बर्द्धित और एकत्र ही विनष्ट हुआ करते हैं। मैं ऐसा शरीर पाके केवल अवश हुआ हूं, सो मत समझो ; मैं इस विषयके तत्वोंको जानता हूं और जाननेसे ही मुझे किसी विषयमें क्लेश नहीं है। जैसे प्रवाह समुद्रमें जाके लीन होता है, वैसे ही जीवोंकी मृत्यु होनेसे ही निष्पत्ति हुई। हे वज्रधर ! जो लोग इसे पूरी रीतिसे जानते हैं, वे सब मनुष्य शोक नहीं करते और जो लोग रजोगुणसे ग्रस्त और मोहयुक्त होकर इस विषयमें मूर्ख रहते हैं, और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती है वेही कृच्छ्रताको प्राप्त होके दुःखित हुआ करते हैं। मनुष्य ज्ञानलाभसेही सब पापोंको खण्डन करता है। पापरहित मनुष्य सतोगुण लाभ किया करता है सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य पूर्णरूपसे प्रसन्न होते हैं। जो लोग सतोगुणसे निवृत्त होते हैं, वे बार बार जन्म ग्रहण किया करते हैं, और काम आदिके वशमें होकर जन्म जरा प्रभृति विविध दुःखोंको भोगते हुए दीन भावसे परिताप करते हैं। मैं कामादि विषय सिद्धि, अनर्थ, जीवन, मरण, सुख और दुःखके फलमें द्वेष और कामना नहीं करता। निर्जीव शरीरकाही नाश होता है, जीवका कदापि नाश नहीं होता। जो मनुष्य जिस किसी जीवका बध करता है, वह अर्थात् "मैं हन्ता हूं," ऐसा अभिमानी पुरुष भी मरता है, जो मारता है, और जो मरता है, वे दोनोंही कौन कर्त्ता हैं, उसे नहीं जानते। हे इन्द्र ! मारके वा जय करके जो कोई पुरुष पुरुषत्व प्रकाशित करता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है, जो कर्त्ता है, वही उस कार्य्यको किया करता है। लोकोंकी उत्पत्ति और नाशका कर्त्ता कौन है, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर

उस समय यह बोध होता है, कि उत्पत्तियुक्त मनही उसे सिद्ध करता है; परन्तु मनका भी दूसरा कर्त्ता है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि ये पाचो जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें कारण हैं; इसलिये उस विषयमें शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। चाहे मनुष्य विविध विद्यासे युक्त हो, अथवा अविद्वान् ही हो; बलवान् हो वा निर्व्वल ही होवे, सुन्दर हो, वा कुरूपही हो; सुभग हो अथवा दुर्भगही होवे, अत्यन्त गम्भीर काल निज तेजके सहारे सबकोही संग्रह कर रहा है, जब कि जानता हूं, किसीभी कालके वशीभूत होते हैं, तब मुझे किसी विषयमें दुःख नहीं है। जब काल स्वरूप ईश्वर पहले जलाता है, तब अग्नि पीछे भस्म करती है; ईश्वरके जरिये मृत शरीरको मनुष्य पीछे नष्ट किया करता है। ईश्वर जिसे पहले नष्ट करता है, वही पीछे नष्ट होता है; ईश्वर जो दान करता है, मनुष्य उसही प्राप्त होनेवाले विषयको पाता है; इस पुण्य पापसे रहित कालरूपी विधाताका पार नहीं है, इससे परम्पार भी दृष्टिगोचर नहीं होता; मैं चिन्ता करनेपर भी कालका अन्त नहीं देखता, हे शचिपति! मेरे प्रत्यक्षमें यदि काल सब भूतोका नाश न करता, तो अवश्यही मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध हो सकता। मैं गर्द्दभरूप धरके निर्ज्जन स्थानमें तृष भक्षण करता हूं, उसे जानके तुम आके मेरी निन्दा करते हो, परन्तु जिन सब भयानक रूपोंको देखकर तुम भी भागनेका मार्ग देखने लगते हो, मैं इच्छा करनेसे अनायासही वैसे अनेक प्रकारके भयङ्कररूप धारण कर सकता हूं। हे शक्र! कालही सबका सहार करता है, कालही सब प्रदान करता है, सभी कालका विधान हैं, इसलिये तुम पौरुष प्रकाश मत करो। हे पुरन्दर! जब मैं पहले क्रुद्ध हुआ था, उस समय चराचर समस्त लोक व्यथित हुए थे; हे शक्र! इससे मैंने इस जगत्की ह्रास वृद्धि रूप सनातन धर्म्मको विशेष रूपसे जाना है; तुम इसे जाननेसे स्वयंही विस्मययुक्त होगे ऐश्वर्य और ऐश्वर्य्यका आविष्कार कदापि अपने अधीन नहीं है।

हे मघवन्! कौमार अवस्थामें तुम्हारा चित्त जैसा था, इस समय भी वैसा ही है, उसे देखकर तुम नैष्ठिक बुद्धि लाभ करो। हे वासव! तुम सब जानतेही हो, कि देव मनुष्य पितर, गन्धर्व्व, राक्षस, और सर्प भी मेरे वशमें थे। "वैरोचन बलि जिस दिशामें है, उस दिशाकोही नमस्कार है," बुद्धि, मत्सरतासे मोहित मनुष्य मुझे ऐसाही समझते थे। हे शचिपति! इस समय मैं उसके लिये वा आत्मभ्रंशके निमित्त शोक नहीं करता; मेरी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि मैं ईश्वरके वशमें निवास करता हूं। हे शक्र! जब देखता हूं, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सुन्दर रूपवाले प्रतापवान् मनुष्य दुःखसे जीवन बिता रहे हैं, तब कहना पड़ेगा, कि उनका भवितव्य वैसाही है और नीचवंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त मूढ़ अशुभजन्मा मनुष्य कुटुम्बके सहित परम सुखसे जीवनयात्राका निर्व्वाह कर रहे हैं, उनकीभी होतव्यता वैसी ही है। हे वासव। देखा जाता है, उत्तम लक्षणवाली सुन्दरतायुक्त स्त्रिया दुर्भगा होती हैं और कुलक्षणसे युक्त कुरूपवाली स्त्री भी सुभगा होती हैं। हे वज्रधर! तुम इस प्रकार समृद्धियुक्त होरहे हो और मैं ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह तुम्हारा भी कृत नहीं है, और मेरा भी कृत नहीं है। हे देवराज! तुमने ऐसी समृद्धिके लिये कोई कर्म्म नहीं किये और मैंने भी ऐसी अवस्थाके निमित्त कोई कर्म्म नहीं किया है, समृद्धि वा असमृद्धि कालक्रमसे हुआ करती है। तुम श्रीमान् द्युतिमान और देवराज होकर विराजते हुए मेरे विषयमें गर्ज्ज रहे हो परन्तु काल मुझे यदि आक्रमण न

किये होता और मैं इस प्रकार गधेका रूप धारण न किये होता, तो इसही समय मुष्टिक प्रहारसे तुम्हें वज्रके सहित गिरा सकता। जो हो, यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, शान्ति काल उपस्थित हुआ है, कालही सबको स्थापित करता है, कालही सबको पकाया करता है। मैंने दानवोंका राजा और पूजनीय होकर सबके विषयमें तर्ज्जन गर्ज्जन और प्रताप प्रकाश किया था; काल यदि मेरे निकट न आवेगा, तो और किसके समीप जायगा।

हे देवराज मैंने अकेलेही तुम्हारे महानुभाव द्वादश- आदित्योंके तेजको धारण किया था, मैंनेही मेघ रूप धरके जलकी वर्षा करता था, मैंही सूर्य्यरूप धरके तीनों लोकोंको सन्तापित और विद्योतित करता था, मैंही तीनों लोकोंकी रक्षा करता था, और इच्छा करनेसेही नष्ट कर सकता था, मैंही दान और प्रदान करता था, मैंही सबको स्थिर और नियमित करता था; तीनों लोकोंके बीच मैंही सबके निग्रहानिग्रहमें समर्थ शासनकर्त्ता था। हे देवराज! इस समय मेरा वह सब प्रभुत्व निवृत्त हुआ है, मैं काल सैन्यसे आक्रान्त हुआ हूं, इसलिये वह सब मुझे अब मालूम नहीं होता है। हे शचिपति! मैं कर्त्ता नहीं हूं, और तुम भी कर्त्ता नहीं हो तथा दूसरे कोई भी कर्त्ता नहीं हैं। सब लोक स्वभावसेही कालक्रमसे पालित और संहृत होरहे हैं। मास और पक्षही जिसके अधिष्ठान जो अहोरात्रिके जरिये सब तरहसे परिपूरित होरहा है, वसन्त आदि ऋतुओंमें ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके सहारे जिसे जाना जाता है, वही एकमात्र निर्व्विषय ध्यानगम्य कालको वेद जाननेवाले पुरुष ब्रह्म कहा करते हैं। कोई कोई बुद्धिबल अवलम्बन करके इस समस्त कालात्मक जगत्को ब्रह्मरूपसे विचारनेको कहते हैं। इस चिन्ताके पांच विषय हैं, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोश, ये प्रत्येक वाम वा दक्षिण पार्श्व, शिर, मध्य देश और पश्चाद्भाग इन पञ्च-अवयव विशिष्ट हैं, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, पारावार रहित समुद्रके समान ब्रह्म अत्यन्त गम्भीर वा अगम अर्थात तर्कसे अगम्य है, और शास्त्रके अनुसार मालूम होनेपर भी अत्यन्त दुःखसे उसमें प्रवेश किया जाता है। उसका न आदि है, न अन्त है, वह जीव रूपसे अक्षर अर्थात् निर्व्विशेष वस्तु है, और जैसे शुक्ति स्वयं रजत रूपसे जन्म नाश रहित हुआ करती है, वैसेही जन्म नाशसे रहित होके भी जगत् रूपसे क्षर अर्थात् विनश्वर है। वह स्वयं उपाधिरहित है, परन्तु बुद्धि तत्वमें प्रवेश करके सोपाधिक होता है, तत्वदर्शी लोग उसे उपाधि धर्म्म स्पर्श रहित समझते हैं और चैतन्य रूपसे परिणत पञ्चमहाभूत सम्बन्धीय सत्, चित्, आनन्द और अनन्तके विपरीत धर्म्म, अनृत, जड़, दुःख और परिच्छिन्नाख्य दुर्गमत्व भगवान् वा अविद्याके जरिये आत्मामें समझा करते हैं; परन्तु वे अविद्यासे प्रकाशित दुःख आदि आत्माके गम्य नहीं हैं। ब्रह्मा, रुद्र अथवा विष्णु आदि अन्य कोई भी जिसका प्रभु नहीं है वही आत्माका स्वरूप है, इससे आत्मासे बढ़के दूसरा अधिपति कोई भी नहीं है।

हे इन्द्र! सब भूतोंकी जो गति होती है, उसे प्राप्त न करके तुम कहां जाओगे? भागनेपर भी उसे परित्याग नहीं किया जा सकता और स्थित रहनेपर भी वह परित्यक्त नहीं होती। इन्द्रियें इस आत्माको देखनेमें समर्थ नहीं हैं; कोई इस आत्माको अग्नि कहा करते हैं, कर्म्मपरायण मनुष्य इस आत्माको सर्व्वकर्म्म समर्पणीय प्रजापति समझते हैं। आत्माके एक होनेपर भी लोग उसे ऋतु, महीना, पक्ष,

दिवस, चण; पूर्व्वान्ह, अपरान्ह, मध्यान्ह और मुहूर्त्तादि भेदसे अनेक प्रकार कहा करते हैं। हे देवराज! यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् जिसके वशमें है, उसे ही कालरूपसे मालूम करो।

हे शचिपति! तुम्हारे समान बलवीर्य्यसे युक्त कई हजार इन्द्र गुजर गये, तुम प्रबल बलदर्पित देवताओंके राजा हुए हो; परन्तु समय उपस्थित होनेपर महाबलवान् काल तुम्हें शान्तिके स्थानमें भेजेगा। हे शक्र! जो काल इन सबको संहार कर रहा है, तुम उसका भय करके स्थिर रहो, मैं अथवा तुम तथा पूर्व्व पुरुषोंमेंसे कोई भी कालको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है। यह जो तुम उत्तम राजश्री लाभ करके "राजश्री मुझमेंही है," ऐसा समझ रहे हो, वह मिथ्या है; क्यों कि यह राजलक्ष्मी एक स्थानमें निवास नहीं करती। हे देवराज! यह चपला राजलक्ष्मी तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों इन्द्रके निकट और मेरे समीप निवास करती थी; अब मुझे छोड़के तुम्हें अवलम्बन किया है, हे देवेश! इससे तुम फिर ऐसा अहंकार मत करना; तुम्हें अवश्य शान्त होना चाहिये। चपला राजलक्ष्मी तुम्हें भी इसही प्रकार अहंकारी जानके शीघ्रही दूसरेके निकट गमन करेगी।

२२४ अध्याय समाप्त।

अनन्तर देवराजने उस समय महात्मा बलिके शरीरसे साक्षात् लक्ष्मीको निकलती हुई देखा। भगवान् पाकशासन इन्द्र विस्मयोत्फुल नेत्रसे उस प्रभापुञ्जसे जलती हुई लक्ष्मीको देखकर बलिसे उसका विषय पूछने लगे।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! यह जो निज तेजसे प्रकाशमान केयूरवती दर्शनीय रूपवाली शिखण्डशालिनी स्त्री तुम्हारे देहसे निकली, वह कौन है?

बलि बोले, हे इन्द्र मैं नहीं जानता, कि यह आसुरी, देवी अथवा मानवी है। तुम्हारी इच्छा हो, इससे पूछो, वा मत पूछो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, मनोहर रूप और केशपाश धारण करके बलिके शरीरसे क्यों निकली; तुम्हारा क्या नाम है, उसे मैं नहीं जानता; इससे मेरे समीप अपना नाम कहो। हे सुभ्रु! तुम कौन हो, दैत्येश्वर बलिको परित्याग करके निज तेजसे प्रकाशित होकर मायाकी भांति क्यों खड़ी होरही हो? मैं पूछता हूं, तुम मुझसे वही कहो।

लक्ष्मी बोली, हे वासव! विरोचन मुझे नहीं जानते थे और यह विरोचनपुत्र बलि भी मुझे नहीं जानता; लोग मुझे दुःसहा और विधित्सा समझते हैं, मुझे कोई भूति, कोई लक्ष्मी और कोई कोई श्री कहा करते हैं। हे देवराज! तुम मुझे नहीं जानते और सब देवता भी मुझे नहीं जानते।

इन्द्र बोले, हे दुःसहे! बहुत समय तक बलिके स्थानमें वास करके अब मेरे निमित्त अथवा बलिके ही वास्ते इन्हें परित्याग करती हो, उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे शक्र! धाता वा विधाता मुझे किसी प्रकार स्थिर नहीं रख सकते, काल ही मुझे परिवर्तित करता है; हे देवराज! इसलिये तुम कालकी अवज्ञा मत करो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुमने किस कारणसे बलिको परित्याग किया और मुझे किसलिये परित्याग नहीं करती हो, मेरे समीप उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म्ममें निवास करती हूं; बलि इन सब विषयोंसे पराङ्मुख हुए हैं। ये पहले ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर अन्तमें ब्राह्मणोंकी असूया

करते और जूठे रहके घृत छूते थे। पहले यज्ञशील होकर पीछे यह मूढ़बुद्धि कालसे अत्यन्त पीड़ित होकर "मेरी ही पूजा करो" सब लोगोंसे ऐसा ही बचन कहता था। हे देवराज! इसही लिये मैं इसे त्यागके तुम्हारे समीप बास करती हूं; तुम सावधान होकर तपस्या और बिक्रमके सहारे मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, हे कमलालये! देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियोंके बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हें धारण करनेमें समर्थ हो।

लक्ष्मी बोली, हे पुरन्दर। यह सत्य है, कि देवता, गन्धर्व्व, असुर वा राक्षसोंमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो अकेला मुझे सह्य कर सके।

इन्द्र बोले, हे शुभे! तुम कहो, किस प्रकार मेरे समीप निवास करोगी, मैं वैसाही करूंगा; यह सत्य बचन कहना तुम्हें उचित है।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र। मैं तुम्हारे समीप सदा जिस प्रकार निवास करूंगी, उसे सुनो। तुम वेद विहित विधिके अनुसार मुझे चार हिस्सेमें बिभक्त करो।

इन्द्र बोले, हे कमले! मैं यथा शक्तिसे बलके अनुसार तुम्हें सदा धारण करूंगा; तुम्हारे निकट मेरा कुछ भी व्यतिक्रम न होगा। भूतभाविनी धरणी ही मनुष्योंको धारण किया करती है; इससे धरती तुम्हारा एक पद धारण करे, मुझे बोध होता है, वह तुम्हारा एक चरण धारण करनेमें समर्थ होगी।

लक्ष्मी बोली, यह मैंने भूमिमें एक चरण अर्पण किया, यह भूतलमें प्रतिष्ठित रहेगा। हे इन्द्र! अब मेरे दूसरे चरणका स्थान वर्णन करो।

इन्द्र बोले, जल सब द्रवमय मनुष्योंको परिवर्धा किया करता है, इससे जल ही तुम्हारा दूसरा चरण धारण करे, क्योंकि जल तुम्हारे चरणका सहनेमें समर्थ होगा।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! यह मैंने दूसरा चरण जलके बीच अर्पण किया, यह जलमें ही प्रतिष्ठित रहेगा अब तीसरे चरणके स्थापित करनेका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, वेद, यज्ञ और समस्त देवता जिसमें प्रतिष्ठित हैं वह अग्नि तुम्हारे तीसरे चरणको उत्तम रीतिसे धारण करेगी।

लक्ष्मी बोली, हे इन्द्र! यह जो चरण मैंने अर्पण किया, वह अग्निके बीच प्रतिष्ठित हुआ, अब चौथे चरणके स्थापनका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, मनुष्योंके बीच जो साधु पुरुष सत्यबादी और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वेही तुम्हारे चौथे चरणको धारण करेंगे, क्योंकि साधु लोग तुम्हारे चरणको धारण करनेमें समर्थ हैं।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! यह जो चरण निक्षेप किया, वह साधुओंके बीच प्रतिष्ठित हुआ; भूतोंके बीच इसी प्रकार मेरे चारों चरण निहित रहे, तुम इसी भांति मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, मैंने सर्व्व भूतोंके ऊपर तुम्हें स्थापित किया; अर्थात् चित्त, तीर्थादि पुण्य यज्ञ आदि धर्म्म और विद्या, ये तुम्हारे चारों चरण भूमि, अग्नि, जल और साधुओंमें प्रतिष्ठित हुए। मेरा यह बचन सब कोई सुने, जीवोंके बीच जो पुरुष स्तेय, काम, अशौच अथवा अशान्तिसे तुम्हें आहत करेगा, मैं उसे धर्षण करूंगा। अनन्तर लक्ष्मीसे परित्यक्त दैत्यराज बलि कहने लगे।

बलि बोले, सुमेरु पर्व्वतकी प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्य्य जैसे पूर्व्वदिशाको प्रकाशित करता है वैसेही उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशाको भी प्रकाशित किया करता है; परन्तु जिस समय क्रमसे सब दिशा नष्ट होंगी और आदित्यमण्डल केवल सुमेरुपृष्टके मध्यवर्त्ती ब्रह्मलोककी दिवसके मध्य भागमें प्रकाशित करेगा, तब वर्त्तमान वैवस्वत-मनुका अधिकार च्युत होनेपर सावर्णिक मनुके भावी-अधिकारके स

देवताओं और असुरोंमें युद्ध होगा; उस युद्धमें मैं तुमको फिर जीतूंगा। हे देवराज! जब सूर्य्य केवल ब्रह्मलोकमें स्थिति करके सब लोकोंको सन्तापित करेगा, उस समय देवासुर संग्राममें मैं तुम्हें जय करूंगा।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! "तुम्हें मारना उचित नहीं है," ब्रह्माने मुझे ऐसीही आज्ञा दी है, इसहीसे मैंने तुम्हारे सिरपर वज्र नहीं चलाया। हे दैत्येन्द्र! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां जाओ, तुम्हारा कल्याण हो; सूर्य्य मध्य-स्थलमें रहके कभी तापप्रदान न करेगा, स्वयम्भूने पहले ही इसका समय निरूपण किया है, यह सदा सत्य पथमें निवास करते और प्रजाको ताप दान करते हुए भ्रमण करता है, छःमहीनेके अनन्तर इसकी गति परिवर्त्तित होती है, उसेही अयन कहते हैं; अयन दो प्रकारके हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन। यह सब लोकोंमें उक्त दो प्रकारके अयनके सहारे सूर्य्यगर्म्मी और शीतकी वर्षा करते हुए भ्रमण कर रहा है।

भीष्म बोले, हे भारत! दैत्यराज बलि महेन्द्रका ऐसा बचन सुनके दक्षिण तरफ चले गये इन्द्रने भी पूर्व्वदिशाकी ओर प्रस्थान किया। सहस्रलोचन इन्द्र बलिके कहे हुए यह अहङ्कार रहित वचन सुनके शून्य मार्गसे स्वर्गमें गये।

२२५ अध्याय समाप्त।

— —

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें शतक्रतु और नमुचिके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका भी प्रमाण दिया जाता है। एक समय इन्द्रने श्रीहीन होनेपर भी समुद्रकी भांति गम्भीरभावसे बैठे हुए भूतोंकी उत्पत्ति और नाशको जाननेवाले नमुचिके समीप आके यह वचन कहा, हे नमुचि! तुम पाशबद्ध पदच्युत शत्रुओंके वशीभूत और श्रीहीन हुए हो, इस-लिये ऐसी अवस्थामें पड़के शोक करते हो, वा नहीं?

नमुचि बोला, हे देवराज! अनिवार्य्य शोकसे शरीर सन्तापित होता है, शत्रु लोग सन्तुष्ट हुआ करते हैं, शोक कभी दुःखमोचनका कारण नहीं होता; इसही लिये मैं शोक नहीं करता। जगत्‌में जो कुछ वस्तु हैं, सभी विनश्वर हैं। हे सुरेश्वर! शोक करनेसे रूप नष्ट होता है, शोक करनेसे श्रीहीन होना पड़ता है, सन्तापसे परमायु और धर्म्म नष्ट हुआ करता है; इसलिये ज्ञानवान् मनुष्योंको उचित है, शोकसे उपस्थित दुःखको त्यागके मनही मन हृदयके प्रीतिकर कल्याणकी चिन्ता करें। मनुष्य जिस समय कल्याण विषयमें मन लगाता है, तभी उसके सब प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होते हैं। अन्तर्य्यामी रूपसे एकमात्र शासनकर्त्ता वर्त्तमान है, दूसरा कोई भी शास्ता नहीं है। जो गर्भशय्यामें सोये हुए पुरुषको शासित करता है, मैं उसहीके जरिये नियुक्त हुआ हूं, और जैसे जल नीचेकीही ओर जाता है, वैसेही जिस भांति नियुक्त हुआ हूं, उसही प्रकार कार्य्यभार ढोता हूं। बन्ध और मोक्ष इन दोनोंमें तत्वज्ञानसे मोक्षही श्रेष्ठ और गरिष्ठ है, इसे जानकर भी मोक्ष और साधनके लिये शमदम आदि विषयोंमें यत्न नहीं कर सकता; धर्म्मयुक्त और अधर्म्म विहित आशामें वशीभूत होकर समय बिताते हुए शास्ताके जरिये जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूं, उसही भांति कार्य्यभार ढोया करता हूं। मनुष्योंको जो जिस प्रकारसे प्राप्त होनेवाला है, वह उसही भांतिसे प्राप्त होता है, होनहार विषय जो जिस प्रकारसे होनेवाला होता है, वह उसही प्रकार हुआ करता विधाता जिन जिन गर्भोंमें जीवोंको बार बार नियुक्त करता है, जीव उसमेंही निवास करते हैं स्वयं जिसको इच्छा करते हैं, वह सिद्ध नहीं होता। "मेरा

ऐसाही अभिहित है, [illegible] होते। जिनके अन्तःकरणमें [illegible] होती है, वे कभी मोहित नहीं होते, [illegible] स्थित [illegible] अभियोग [illegible] भी नहीं है। मनुष्य दुःखके [illegible] करते हुए "मैंने [illegible] हूं।" इस प्रकार [illegible] किया करते हैं, वही दुःख है; ऋषि, देवता, महात्मा, तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और [illegible] मुनियोंके निकट भी यह आपदा उपस्थित होती हैं, जिन्होंने यथार्थ वस्तुओंको [illegible] रूपसे जाना है, वेही भयभीत नहीं होते। पण्डित पुरुष क्रुद्ध नहीं होते, विषयोंमें आसक्त नहीं होते; विपदमें दुःखी सम्पद्में सन्तुष्ट और अकस्मात विपद उपस्थित होनेपर शोक नहीं करते; वे स्वभावसेही हिमाचलकी तरह अटलभावसे स्थित रहते हैं। सब प्रयोजनोंकी सिद्धि जिसे हर्षित नहीं कर सकती, और समय पर उपस्थित हुई विपद भी जिसे दुःखित नहीं कर सकती; जो सुख दुःखको समान भावसे सेवन करते हैं, उन्हीं मनुष्योंको धुरन्धर कहा जाता है। पुरुषको जिस समय जो अवस्था प्राप्त होवे, शोक न करके उसमेंही सन्तुष्ट रहे और सन्तापकारी आयासकर प्रवृद्ध कामको शरीरसे दूर करे। स्रोत, स्मार्त्त, लौकिक न्याय अन्यायको विचारनेवाली ऐसी कोई जनसमाज नहीं है जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सदा भयभीत न हो; इससे जो पुरुष दुरवगाह धर्म्मतत्वमें स्नान करते हुए उसे प्राप्त करे, उसेही सभ्य समाजके बीच धुरन्धर कहना चाहिये। धर्म्मतत्त्व, जो अत्यन्त दुरवगाह है, तब इसमें सन्देहही क्या है, कि ब्रह्मतत्व उससे भी दुष्प्रवेश्य है। बुद्धिमान् पुरुषोंके सब कार्य्य परिणाममें भी दुर्ज्ञेय है, जो बुद्धिमान् होते हैं, वे कभी मोहके समयमें मुग्ध नहीं होते। हे अहल्यापति वृद्ध गौतम! यदि [illegible] और [illegible] होते तो [illegible] न होते। [illegible] बल, बुद्धि, [illegible] पौरुष, [illegible] और [illegible] मनुष्य [illegible] नहीं होता इसलिये उसके लिये [illegible] है। [illegible] मनुष्यके [illegible] जो विधान किया है, वही [illegible] करना पड़ेगा, [illegible] मेरा क्या करेगी। मनुष्य [illegible] वस्तुओंकोही जाता है, [illegible] और नाश होनेवाले सब दुःखही प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य इन सब विषयोंको पूरी रीतिसे जानके मोहित नहीं होते, वे सब दुःखदायक विषयोंमें भी सुखी और सर्व्वप्रधान करके विख्यात हुआ करते हैं।

२२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलपवर पितामह! बन्धुनाश अथवा राज्य नाश रूप कष्टकारी विपदमें पड़े हुए पुरुषको पथमें कल्याण क्या है। आपही इस लोकमें हम लोगोंके बीच परमवक्ता हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूं आप विस्तारपूर्व्वक बयान करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! स्त्री, पुत्र, सुख और वित्तहीन मनुष्योंके कष्ट कारी विपदमें पड़नेसे धीरज ही उनके लिये कल्याणकारी होता है, सदा धैर्य्ययुक्त शरीर कदापि विशीर्ण नहीं होता, शोकरहित सुख भी आरोग्यतामें श्रेष्ठ कारण है, शरीर आरोग्य रहनेपर मनुष्य फिर धन प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जो बुद्धिमान् मनुष्य सात्विकी वृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनके ऐश्वर्य्य धीरज [illegible] सब कार्य्य सिद्ध होते हैं। हे धर्म्मराज

विषयमें फिर बलि और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है। दैत्य दानवोंके नाशक देवासुर संग्राम समाप्त होनेपर सब लोक विष्णुसे आक्रान्त और शतक्रतु देवराज हुए, देवताओंके यज्ञ करनेसे ब्राह्मण आदि चारों वर्ण व्यवस्थापित हुए, तीनों लोक समृद्धिवान और स्वयम्भू ब्रह्मा प्रीतियुक्त हुए; रुद्रगण, वसुवृन्द, दोनों अश्विनीकुमार, देवर्षि, गन्धर्व्व, भुजगेन्द्र और सिद्ध समूहोंसे घिरे हुए देवराजने चार दांतवाले अत्यन्त दान्त शोभायुक्त ऐरावत गजराजपर चढ़के तीनों लोकमें घूमनेके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने किसी समय समुद्रके किनारे किसी पहाड़की गुफामें बिरोचनपुत्र बलिको देखा और देखते ही उसके निकट उपस्थित हुए। राजा बलि सुरराज इन्द्रको ऐरावतपर चढ़े और देवताओंसे घिरे देखकर शोकार्त्त वा व्यथित नहीं हुए। इन्द्र ऐरावतपर चढ़े रहके अविकृत और अभीतभावसे स्थित बलिको देखकर यह बचन बोले कि, हे दैत्यराज। तुम जो ऐसी अवस्थामें भी व्यथित नहीं होते हो, उसमें शूरता अथवा वृद्धसेवा तथा तपस्यासे प्राप्त हुआ तत्त्वज्ञान कारण हुआ है। जो हो, यह सब तरहसे अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। हे बिरोचनपुत्र! तुम शत्रुओंके वशीभूत और परम श्रेष्ठ पदसे भ्रष्ट होकर किसका सहारा करके शोचितव्य विषयोंमें शोक नहीं करते हो। तुमने स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता और अत्यन्त उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त किया था, फिर शत्रुओंके जरिये तुम्हारा धन, रत्न और राज्य छीना गया, तौभी तुम किस लिये शोक नहीं करते हो उसे कहो। पहले तुम पिता पितामह पदके ईश्वर हुए थे, अब शत्रुओंके जरिये उस पैतृकपदके छीने जानेपर क्यों नहीं शोक करते हो। तुम वरुण-पाशसे बद्ध, बज्रसे यत्न, स्त्री और रत्न हरे जानेपर भी किस कारण शोक रहित होरहे हो, उसे बा तुम श्रीहीन और बिभवसे भ्रष्ट होके भी शोकरहित होरहे हो, यह अत्यन्त दुष्क कार्य्य है। क्यों कि तीनों लोकका राज्य न होनेपर तुम्हारे बिना दूसरा कौन पुरुष जी रहनेका उत्साह करेगा। इन्द्र बलिको परा जित करके इसी प्रकार तथा दूसरी भ कड़ुए बचन कह रहे थे, उस समय विरोच पुत्र बलि ऊपर कहे हुए वचनको अनाया ही सुनके निर्भय होकर कहने लगे।

बलि बोले, हे इन्द्र! मैं जब निग्रही हुआ हूं तब तुम्हें अब बिकत्थना करने क्या प्रयोजन है; तुम वज्र लेके खड़े हो, उ मैं देखता हूं। पहले तुम असमर्थ थे, इ समय कुछ समर्थ हुए हो, तुम्हारे अतिरि कौन पुरुष इस प्रकार अत्यन्त निठुर वच कह सकता है। जो पुरुष समर्थ होके भ शत्रुके वशमें पड़े हुए करतलगत बीरके ऊप दया करता है, बुद्धिमान् लोग उसे ही पुरु समझते है। युद्ध करनेमें तत्पर दोनोंके बीच जयका निश्चय नहीं है, क्यों कि दोनोंके बीच एकको बिजय और एक पुरुषको पराजय हुआ करती है। हे सुरेश्वर। "सर्व्वभूतोंके ईश्वरको मैंने जय किया है,"—तुम्हारा ऐसा स्वभाव न होवे। हे वज्रधर। तुम जो ऐसी अवस्था युक्त हुए हो, वह तुम्हारा कृत नहीं है और मैं जो ऐसी अवस्थामें निवास करता हूं, यह भी मेरा कृत नहीं है, इस समय तुम जैसी अवस्थामें हो मैं पहले वैसा ही था और इस समय मैं जि प्रकार निवास करता हूं, भविष्यकालमें तुम उस ही प्रकार होगे। मुझसे कुछ पापकर्म हुआ है, ऐसा समझके तुम मेरी अवज्ञा म करो, हे देवराज! पुरुष कालक्रमसे सुख दुःख भोग करता है; काल-क्रमसे ही तुमने इन्द्र प्राप्त किया है, कर्म्मके जरिये तुम्हें इस इन्द्र पदकी प्राप्ति नहीं हुई है। कालने मुझे

वशीभूत किया है, इसहीसे मैं इस समय तुम्हारी भांति सम्पत्तिशाली नहीं हूं, तुम भी मेरे समान अवस्थामें नहीं पड़े हो ।

माता पिताकी सेवा, देवताओंकी पूजा और दूसरे गुण पुरुषके विषयमें सुखदायक नहीं है, विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बान्धव लोग कालपीड़ित पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते । मनुष्य लोग बुद्धि-बलके अतिरिक्त सैकड़ों उपायसे भी आनेवाली विपदको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । कालक्रमसे हन्यमान मनुष्योंको परित्राण करनेवाला कोई भी नहीं है । हे इन्द्र ! तुम जो ऐसा अभिमान करते हो, कि "मैं कर्त्ता हूं" यही दुःख है । पुरुष यदि कर्त्ता हो, तो वह कभी किसीका कृत न होसके ; इसलिये कर्त्ता जब कृत होता है, तब ईश्वरके अतिरिक्त और कोई भी कर्त्ता नहीं है । कालक्रमसे मैंने तुम्हें जीता था, और कालके अनुसार तुमने मुझे जय किया है । कालही सबकी गति है, और कालने ही सब प्रजाको सङ्कलन कर रखा, हे देवराज ! तुम साधारण बुद्धिके वशमें होकर प्रलयके विषयको नहीं मालूम करते हो; तुमने निज कर्म्मसे उत्कर्ष लाभ किया है, ऐसा जानके कोई कोई तुम्हारा अत्यन्त आदर किया करते हैं, मेरे समान पुरुष लोक प्रवृत्तिको जानके कालपीड़ित होनेपर क्यों शोक करेंगे ; किस लिये ही मुग्ध होंगे । किस कारणसे ही व्याकुल हुआ करेंगे, मैं अथवा मेरे समान पुरुष यदि सदा ही काल पीड़ित हों, तो मैं अथवा मेरे समान पुरुषोंकी बुद्धि भिन्न नौकाकी भांति अवसन्न हो सकती है । हे बासव ! मैं, वा तुम अथवा दूसरे जो सुराधिपत्य लाभ करेंगे, सैकड़ों इन्द्र जिस मार्गसे गये हैं, उन्हें भी वही मार्ग अवलम्बन करना पड़ेगा । तुम परम श्रीसम्पन्न होकर इस समय ऐसे दुर्द्धर्ष होरहे हो, समय उपस्थित होनेपर काल मेरी भांति तुम्हें भी वशीभूत करेगा युग युगमें कई हजार इन्द्र हुए थे, वे भी कालके वशमें होकर समाप्त हो गये, इसलिये कालको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता काल अत्यन्त दुरतिक्रम है । तुम यह सम्पति पाके अपनेको सर्व्व भूत भावन ब्रह्माके समान समझ रहे हो ; परन्तु यह इन्द्रत्व पद किसीके पक्षमें अचल और अनन्त नहीं है ; तुम मूढ़तासे ही ऐसा समझते हो कि "यह मेरा है" । तुम अविश्वस्त विषयमें बिश्वास करते हो, और अनित्य वस्तुको नित्य समझते हो ।

हे सुरेश्वर ! कालसे आक्रान्त पुरुष सदा इस ही प्रकार हुआ करते हैं । "यह राजश्री मेरी है" ऐसा समझके तुम मोहके वशमें होकर कामना करते हो, परन्तु यह श्री तुम्हारे वा हमारे अथवा किसीके भी निकट स्थिर नहीं रहती । हे बासव ! इस चञ्चला श्रीने बहुतेरे पुरुषोंको अतिक्रम करके इस समय तुम्हें अवलम्बन किया है, परन्तु कुछ समय तुम्हारे निकट रहके फिर इस प्रकार दूसरेके समीप चली जायगी, जैसे गऊ एक निपानको त्यागके निपानान्तरसे गमन करती है । हे पुरन्दर ! कई सौ राजा गुजर गये, उनको गिनती करनेकी सामर्थ नहीं है, तुमसे भी श्रेष्ठ बहुतेरे पुरुष भविष्यमें इन्द्रत्व लाभ करेंगे । वृक्ष, औषधी, रत्न, जीव जन्तु, वन और आकर (खान) युक्त इस पृथ्वीको पहले जिन्होंने भोग किया था, इस समय उन्हें नहीं देखता हूं । पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, बिप्रचित्ति, बिरोचन, ह्रीनिसेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्सु, ऋषभ, बाहु, कपिलाश्व, बिरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, [illegible], [illegible] दंष्ट्र, नैऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, [illegible] रुचिप्रभ विश्वजित्, [illegible], [illegible] मधु, हिरण्यकशिपु, [illegible]

दैत्य दानव और राचस लोग तथा इनके अति-रिक्त दूसरे बहुतेरे प्राचीन दैत्येन्द्र वा दानवेन्द्र जिनका कि नाममात्र सुना करता हूं; वैसे बहुतेरे पहले समयके दानवेन्द्र लोग काल पीड़ित होकर पृथ्वी त्यागके चले गये, इस-लिये कालही बलवान् है। इन सबने ही एक एक सौ अश्वमेध यज्ञ की थीं, तुम्हीं केवल शतक्रतु नहीं हो, ये सभी धर्मपरायण थे, सभी सदा यज्ञ करते और वे सब कोई आकाशमें विचर सकते थे, वे सब कोई सम्मुख युद्धमें समर्थ थे; सभी समरसंयुक्त, परिघबाहु, मायावी और कामरूपी थे। सुना जाता है, ये सब कोई युद्धमें उपस्थित होकर पराजित नहीं होते थे, सब ही सत्यव्रतसे युक्त, कामविहारी, वेदव्रता-निष्ठ और बहुश्रुत थे; सबने ही राजेश्वर होकर याग्य ऐश्वर्य्य प्राप्त किये थे; परन्तु उन महानुभावोंको पहले कभी ऐश्वर्य्यका मद नहीं हुआ था। वे सब कोई यथायोग्य याच-कोंको दान करते थे, सभी सब प्राणियोंके विषयमें यथा उचित करुणा करते थे। वे सब कोई दाचायणी दिति और दनु तथा प्रजापति कश्यपके पुत्र थे; वे लोग तेज और प्रतापयुक्त रहनेपर भी कालसे प्रतिसंहृत हुए हैं।

हे देवराज! जब तुम इस पृथ्वीको भोग करके फिर परित्याग करोगे, तब निज शोक रोकनेमें समर्थ न होगे, इसलिये अभीसे काम-भोग विषयकी वासना त्याग दो; इस ऐश्व-र्य्यका गर्व्व मत करो; ऐसा करनेसे तुम निज राज्य नाश होनेके समय शोकको सहनेमें समर्थ होगे। तुम शोकके समय शोक मत करो और हर्षके समय हर्षित न होना; अतीत और अनागत विषयोंको त्यागके प्रत्युत्पन्न विषयके सहारे जीवन बिताओ।

हे देवेन्द्र! यदि अतन्द्रित काल मेरे सदा योगमें रत रहने पर भी हमारे निकट आया है, तो शीघ्रही थोड़ेही समयके बीच तुम्हारे समीप भी उपस्थित होगा; तुम समयकी उपेक्षा करो। हे देवेन्द्र! इस समय तुम वचन व्यूहके जरिये मानो मुझे डराते हुए गर्ज रहे हो, मैं संयत हुआ हूं इसहीसे तुम अपनी बड़ाई करते हो, कालने पहले मुझे आक्रमण किया है, अब तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, हे देवराज! मैं अगाड़ी कालसे पीड़ित हुआ हूं, इसही कारण तुम गर्ज्ज रहे हो।

हे वासव! मेरे संग्राममें क्रुद्ध होनेपर कौन मेरे सम्मुख निवास करनेमें समर्थ होता, बल-वान कालने मुझे आक्रमण किया है, इसही कारणसे तुम मेरे सम्मुखमें खड़े होरहे हो। यह सहस्र वर्ष प्रायः पूर्ण हुआ, पर मेरा सब शरीर तबतक अच्छी तरह सुस्थ नहीं हुआ। मैं इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ हूं, तुम सुरलोकमें प्रकृत इन्द्र हुए हो, यही विचित्र है; जीवलो-कके बीच काल क्रमसे तुम उपास्य होरहे हो। तुम क्या कर्म्म करके इस समय इन्द्र हुए और मैं ही कौनसे कर्म्मके जरिये इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ। कालही कर्त्ता और विकारकर्त्ता है, दूसरा कोई भी कारण नहीं है, विद्वान् पुरुष नाश, विनाश, ऐश्वर्य्य, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु, लाभसे अत्यन्त हर्षित और दुःखित नहीं होते। हे वासव! तुम मुझे जानते हो, मैंभी तुम्हें जानता हूं। हे निर्लज्ज! इससे तुम कालक्रमसे उन्नत-होकर क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो, पहले समयमें मेरा जो पौरुष था, वह तुमसे छिपा नहीं है; मैं युद्धमें पर्य्याप्त परिमाणसे जो विक्रम प्रकाश करता था, वही उसमें प्रमाण है, हे शचिपति! पहले समयमें आदित्य रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण मेरे सम्मुखमें विशेष रीतिसे पराजित हुए थे। हे वासव। तुम तो जानते हो, कि देवासुर संग्राममें इकट्ठे हुए सब देवता लोग मेरे बल-विक्रमके प्रभावसे रणभूमि छोड़के भागे थे। मैंने ही वन और वनवासियोंके सहित सब

पर्व्वतोंको बार बार उठाया था और युद्धमें तुम्हारे सिरके ऊपर पत्थरके टूकड़ोंके सहित पहाड़ोंके शिखरोंको फेंका था; इस समय क्या करूं, काल अत्यन्त दुरतिक्रम्य है। क्या मैं वज्रके सहित तुम्हें मुष्टिक प्रहारसे नाश करनेका उत्साह नहीं करता, परन्तु यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमाकाल उपस्थित हुआ है। हे देवराज! इसही लिये तुम मेरे विषयमें क्षमा नहीं करते हो, तौभी मैं तुम्हारे विषयमें क्षमा करता हूं। हे बासव! काल परिणत होनेसे मैं कालानलसे घिरा और सदा कालपाससे बद्ध होरहा हूं, इसही कारण तुम मेरे समीप बड़ाई करते हो। यह वही सब लोकोंसे दुरतिक्रम्य श्यामवर्ण रौद्र पुरुष रस्सीमें बन्धे हुए पशुकी भांति मुझे बान्धके निवास कर रहा है। लाभ, हानि, सुख, दुःख, काम, क्रोध, जन्म, मृत्यु, बध, बन्धन और मोक्ष आदि सब काल-वशसेही प्राप्त हुआ करते हैं। मैं कर्त्ता नहीं हूं, तुम भी कर्त्ता नहीं हो, जो सदा निग्रहा-निग्रहमें समर्थ है, वही कर्त्ता है, वही काल-रूपी कर्त्ता मुझे वृक्ष स्थित फलकी भांति पका रहा है। पुरुष जिन सब कर्म्मोंको करते हुए काल वशसे सुखयुक्त होता है, कालक्रमसे फिर उन्हीं कर्म्मोंको करके दुःखयुक्त हुआ करता है। हे बासव! समयज्ञ पुरुषका काल स्पर्श होनपर शोक करना उचित नहीं है। इस ही लिये मैं शोक नहीं करता, शोक कभी दुःख निवारणका कारण नहीं है। शोक करनेसे जब वह शोक दुःख दूर नहीं कर सकता, तब जो शोक करता है, उसे भी कुछ सामर्थ नहीं है, इसही निमित्त मैं इस समय शोक नहीं करता। भगवान् सहस्रलोचन पाकशासन शतक्रतु बलिका ऐसा बचन सुनके क्रोधको रोकके यह बचन बोले, कि वज्रके सहित उद्यत बाहु और वरुणपाशको देखकर दूसरेकी बात तो दूर रहे, जिघांसु अन्तककी बुद्धि भी व्यथित हुआ करती है।— हे सत्यपराक्रमी! तुम्हारी तत्व दर्शिनी अचलबुद्धि व्यथित नहीं होती, इससे निश्चय बोध होता है, कि तुम इस समय धैर्य्यके सहारे दुःखी नहीं हो, इस लोकमें कौन शरीरधारी पुरुष जगत्को प्रस्थित देखकर विषय वा शरीरमें विश्वास करनेका उत्साह करेगा। गुह्यतम सततगामी अक्षर घोर कालाग्निमें पड़े हुए लोगोंको मैं भी इसही प्रकार अनित्य समझता हूं, इस सन्सारमें सूक्ष्म अथवा महत् परिपाक अवस्थामें पड़े हुए भूतोंके बीच काल जिसे स्पर्श करता है, उसे नहीं छोड़ता, स्वयं समर्थ अप्रमत्त सदा प्राणियोंको पकानेवाले अनिवृत्त कालके वशमें पड़े हुए पुरुष नहीं छूटते; अप्रमत्तकाल अनवहित देहधारियोंके निकट जाग्रत है, ऐसा कभी नहीं देखा गया कि किसी पुरुषने विशेष यत्न करके भी कालको अतिक्रम किया।

प्राचीन नित्य धर्म्म सब प्राणियोंके पक्षमें समान है, काल किसीको भी परिहार्य्य नहीं है, और इस कालका कभी व्यतिक्रम नहीं होता। जैसे ऋण देनेवाला व्याज सग्रह करता है, वैसेही काल दिन, रात, महीना, क्षण, कला, काष्ठा और लव, इन सबकोही पिण्डीकृत कर रहा है, जैसे नदीका वेग किनारेपर स्थित वृक्षोंको हरण करता है, वैसेही काल उपस्थित होकर "मैं आज यह करूंगा कलह इस प्रकार करूंगा," इस ही प्रकारकी आशामें फसे हुए पुरुषोंको हरण किया करता है। "मैंने अभी इसे देखा था, यह किस प्रकार मरा?" कालसे ह्रियमाण मनुष्योंके सदा इस ही प्रकार विलाप सुनाई देते हैं। अर्थ, भोग, पद, और, ऐश्वर्य्य आदि सभी नष्ट हुआ करते हैं। काल आगमन करके जीवोंका जीवन हर ले जाता है। उन्नतिका विनिपात ही समाप्ति है; जो है, वह अभाव-स्वरूप है; सब विषय अनित्य और अनि-

स्थित हैं, इनका निश्चय करना ही अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी वह तत्वदर्शिनी अचल बुद्धि व्यथित नहीं हुई, "मैं पहले ऐसा था" उसे तुम मनमें भी आलोचना नहीं करते। बलवान् काल इस लोकमें सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ सभीको आक्रमण करके पका रहा है। पर जो आक्रान्त होता है, वह उसे नहीं समझ सकता। ईर्षा, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, स्पृहा, मोह मान आदिमें फंसे हुए लोग ही मोहित हुआ करते हैं। हे विरोचनपुत्र! तुम आत्मतत्त्वज्ञ, विद्वान्, ज्ञानवान् और तपोनिष्ठ होकर करतल स्थित आमलक फलकी भांति भली प्रकार कालको देखते हो; तुम सब शास्त्रोंके जाननेवाले होकर कालके चरित्र और तत्व जानते हो, तुम शुद्धबुद्धि और ज्ञानियोंके स्पृहणीय हो, मैं समझता हूं, तुमने ज्ञानबलसे इन सब लोकोंको देखा है; तुम सर्व्वसङ्गसे मुक्त होकर समय बिताते हुए किसी विषयमें भी आसक्त नहीं हुए हो, तुमने इन्द्रियोंको जीता है, इससे रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते। तुम प्रीतिरहित तथा दुःखहीन आत्माकी उपासना करते हो; तुम सब भूतोंके सुहृद वैरहीन और शान्तचित्त हुए हो, तुम्हें देखकर मेरी बुद्धि तुम्हारे विषयमें दयायुक्त हुई है, मैं ऐसे ज्ञानयुक्त पुरुषको बन्धनमें रखके मारनेकी अभिलाषा नहीं करता। अनृशंसताही परम धर्म्म है, तुम्हारे ऊपर मुझे ऐसी ही करुणा हुई है; इसलिये काल क्रमसे तुम इन सब वरुणपाशोंसे छूट जाओगे। हे महासुर! प्रजा समूहके अत्याचारसे तुम्हारा मङ्गल होवे, जब पुत्रबधू प्राचीन सासकी सेवा करनेमें नियुक्त करेंगी, पुत्र मोहवशसे पिताको कार्य्य करनेमें प्रेरणा करेगा, चाण्डाल लोग ब्राह्मणोंसे पैर धुलावेंगे, शूद्र लोग निर्भय होकर ब्राह्मणी भार्य्यासे सङ्गत होंगे रूप विरुद्ध योनिमें बीज डालेंगे, कांसपात्रके सङ्ग और कुत्सितपात्रके जरिये पूजाके उपहारका व्यवहार करेंगे, चारों वर्णोंकी समस्त व्यवस्था जब मर्य्यादा-रहित होगी, उस समय क्रमसे तुम्हारे एक एक पाश छूटेंगे; मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम समय प्रतिपालन करो, निरामय स्वस्थचित्त और दुःखरहित होके सुखी रहो।

गजराजवाहन भगवान् पाकशासनने बलिसे ऐसा कहके प्रस्थान किया, वह सब असुरोंको जीतके सुराधिप और अद्वितीय अधीश्वर होकर हर्षके सहित आनन्दित हुए। महर्षि लोग सहसा उपस्थित होकर उस सब चराचरोंके ईश्वर इन्द्रकी स्तुति करने लगे। हिमापह हव्यवाह अध्वरसे हव्य ढोनेमें प्रवृत्त हुए ईश्वर भी अर्पित अमृत धारण करने लगे। सत्रस्थित द्विजोत्तमोंसे प्रशंसित दीप्त तेजस्वी सुरराज उस समय मन्यु हीन, प्रशान्तचित्त और हर्षित होकर निज स्थान सुरलोकमें जाके आनन्दित हुए।

२२७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भावी उन्नति और अवनतिशील पुरुषोंके पूर्व्वलक्षण क्या हैं? आप मेरे समीप उसे बर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम्हारा मङ्गल हो, मनही मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके लक्षणको प्रकाश किया करता है। हे युधिष्ठिर! पुराने लोग इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, तुम उसे सुनो। ब्रह्माकी तरह अपरिमित और प्रदीप्त तेजस्वी शान्त पाप महातपस्वी नारदने महातप समृद्धिके प्रभावसे परावर दोनों लोगोंको देखते हुए ब्रह्म लोकनिवासी ऋषियोंके सङ्ग मिलकर इच्छानुसार तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया

था। किसी समय वह सवेरे ही उठके पवित्र जलको स्पर्श करनेकी इच्छा करके ध्रुवद्वारसे उत्पन्न गङ्गाके समीप जाके उसमें उतरे। इधर सम्बर वैरी वज्रधारी सहस्र नेत्रवाले पाकशासनने उस देवर्षिसेवित गङ्गाके तीरपर आगमन किया, वे दोनों स्थिर चित्तवाले गङ्गामें स्नान करके संक्षेपसे जप समाप्त करते हुए सूक्ष्म सुवर्णमय बालसे युक्त पलिनमें पहुंचे, वहां पहुंचके दोनों ही बैठकर पुण्यकर्म्म करनेवाले महर्षियों और देवर्षियोंकी कही हुई सब कथाकी आलोचना करने लगे। उन्होंने समाहित होकर बीते हुए पूर्व्ववृतान्तोंको कहते कहते किरणोंसे युक्त पूर्ण मण्डल सूर्य्यको उदय होते देखकर दोनोंने उठके उनकी उपासना की।

अनन्तर आकाशमें उदय होते हुए सूर्य्यके सम्मुख दूसरे सूर्य्यके समान उद्यत अर्च्चि समान प्रभायुक्त एक ज्योति देख पड़ी। हे भारत! वह ज्योति उन लोगोंके निकट आने लगी। सुपर्ण और सूर्य्यके स्वभावशाली उस ज्योतिने आकाशतलको अवलम्बन करके प्रभापुञ्जके सहारे अनुपम भावसे प्रकाशित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशयुक्त किया, उन्होंने उस ज्योतिके बीच परम सुन्दरतायुक्त अप्सराओंकी अग्रगण्याकी भांति वृहद्भानुकी बृहती अंशुमती नामी किरणकी भांति तारा सदृश आभूषणधारिणी मुक्ताहारसे युक्त साक्षात् कमलाको कमलदलके बीच बैठी हुई देखा। अङ्गनाओंमें अग्रगण्य वह देवी विमानके अग्रभागसे उतरकर त्रिलोकनाथ इन्द्र और देवर्षि नारदके सम्मुख उपस्थित हुई देवराजने स्वयं देवर्षिके सहित देवीके समीप जाके आत्म समर्पण करके परम आदरके सहित उसको पूजा की और पूजा करनेके अनन्तर वह सर्व्वविद् सुरराज देवीसे यह वचन कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे चारुहासिनी तुम कौन हो, किस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आई हो? हे सुभ्रु! हे शुभे! तुम कहांसे आई हो, और कहां जाओगी।

लक्ष्मी बोली, हे बलसूदन! पवित्र तीनों लोकके बीच स्थावर जङ्गम सब जीव मेरे सहित आत्मीयताकी अभिलाष करते हुए परम आदरके सहित मुझे यत्न करते हैं, मैं सब प्राणियोंके समृद्धिके निमित्त सूर्य्य किरणके सहारे फूले हुए कमलपुष्पके बीच उत्पन्न हुई हूं। मुझे सब कोई पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहा करते है। मैंही लक्ष्मी, मैंही सम्पत्ति, मैंही श्री मैंही श्रद्धा, मेधा, उन्नति, विजित और स्थिति हूं; मैंही धृति सिद्धि और भूति हूं, मैं ही स्वाहा, स्वधा, सन्तति, नयति और स्मृति हूं। हे बलनाशन! मैं विजयी राजाओंकी सेनाके अगाड़ी और ध्वजा समूहमें धर्म्मशील मनुष्योंके राज्य, नगर और निवास स्थान तथा युद्धमें न हटनेवाले जय लक्षणयुक्त शूर राजाओंके निकट सदा निवास किया करती हूं। धर्म्ममें रत महामति, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, बिनयी और दानशील मनुष्योंके निकट में सर्व्वदा ही वास करती हूं। पहले मैने सत्य-धर्म्ममें बद्ध होकर असुरोंके समीप वास किया था; अब उन लोगोंको बिपरीत समझके तुम्हारे निकट वास करनेकी इच्छा करती हूं।

इन्द्र बोले, हे वरानने! दैत्य दानवोंके किस प्रकार चरित्रको देखकर तुम उनके निकट वास करती थी, और इस समय उन लोगोंको किस प्रकार देखकर उन्हें त्यागके इस स्थानमें आई हो?

लक्ष्मी बोली, जो लोग निज धर्म्मका अनुष्ठान करते धीरजसे विचलित नहीं होते और स्वर्गमार्गमें जानेके लिये [illegible] हैं, मैं उनके ऊपर प्रीति किया करती हूं; और जो लोग दान, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] पूजा करते [illegible] निकट सदा निवास करती [illegible]

वोंके सब गृह सुमार्ज्जित थे, वे लोग स्त्रियोंको वशमें रखते थे, अग्निमें आहुति देते थे। गुरु-सेवामें तत्पर रहते, इन्द्रियोंको जय करनेमें सावधान थे; वे लोग ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान् क्रोधको जीतनेवाले और दानशील थे, किसीकी असूया नहीं करते थे। स्त्री, पुत्र और सेवकोंका पालन पोषण करते थे, किसीके विषयमें ईर्षा करना नहीं जानते थे; डाहके वशमें होकर कभी आपसमें शत्रुता नहीं करते थे, वे लोग धीर थे, दूसहोसे दूसरेकी समृद्धि देखकर कातर नहीं होते थे, वे सभी आर्य्य चरित सम्पन्न, दाता, सञ्चयी, दीनोंके विषयमें दयालु, अत्यन्त कृपा करनेवाले, सरलस्वभाव, दृढ़भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके सब सेवक और अमात्य सन्तुष्ट रहते थे, वे सब कृतज्ञ और प्रियभाषी थे; जिसका जैसा सम्मान था, उस-होके अनुसार उसे धन देते थे; सभी लज्जा-शील और यतव्रत थे। नियमित रीतिसे पर्व्वके समय स्नान करते थे; उत्तम रीतिसे अनुलिप्त और अलंकृत रहते थे, वे लोग उपवास और तपस्यामें रत, विश्वस्त तथा ब्रह्मवादी थे।

सूर्य्य इन लोगोंकी नींद भङ्ग होनेके पहले उदय नहीं होता था, ये लोग कोई भी सबेरेके समय शयन नहीं करते थे; रात्रिके समय दही और सत्तूका भोजन सदा परिवर्ज्जित करते थे। भोरमें घृत देखकर प्रयत होकर परब्रह्मके ध्यानमें रत रहते थे, मङ्गलमय वस्तुओंको देखते ब्राह्मणोंका सम्मान करनेमें विरत नहीं होते थे। जो लोग सदा धर्म्म-वादी, अप्रतिग्राही, आधीरातमें सोनेवाले थे और दिनमें शयन नहीं करते थे उन लोगोंके और दीन हीन, अनाथ आतुर, बूढ़े, निर्ब्बल, अबला और अनुमोदन करनेवाले पुरुषोंके विषयमें सदा दया और दान करते थे; त्रासित दुःखित, व्याकुल भयसे आर्त्त, व्याधित, कृश, हृ[illegible]न्न घोर विपदमें पड़े हुए पुरुषोंको वे लोग सदा धीरज देते थे। वे लोग धर्म्मका अनुसरण करके चलते थे, आपसमें कोई किसीकी हिंसा नहीं करते थे; सब कार्य्योंमें ही अनुकूल थे; वृद्ध और गुरुजनोंकी सेवा तथा देवता, पितर और अतिथियोंकी यथा उचित पूजा करते थे, वे लोग सदा सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहके देवता पितर और अति-थियोंसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेमें यत-वान रहते थे। वे लोग अकेले ही उत्तम सिद्ध अन्न भोजन नहीं करते थे, परस्त्रीके शरीरको छूनेमें पाप समझते थे, अपनी भांति सब जीवोंमें दया करते थे; अनावृत्त स्थानमें पूर्व्व दिनमें पशुयोनि अथवा दूसरी कोई विरुद्ध योनिमें इन्द्रिय स्खलन करनेकी कभी इच्छा नहीं करते थे। हे सुरराज। सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरतारहित बचन और मित्रोंके विषयमें अद्रोह आदि जो सब गुण हैं, उन लोगोंमें वे सभी थे। निद्रा, तन्द्रा, अप्रीति, असूया, अर्थानवेक्षिता, अरति, विषाद और स्पृहा उन लोगोंके निकट प्रवेश नहीं कर सकती थी। सृष्टि प्रारम्भ होनेपर प्रतियुगमें ही मैं इसी प्रकार गुणयुक्त दानवोंके स्थानमें बास करती थी, अनन्तर कालक्रमसे गुणोंमें विपर्य्यय होनेके कारण मैंने उन लोगोंको काम क्रोधके बशमें देखा, धर्म्मने उन लोगोंको परित्याग किया। वे लोग सामाजिक साधु वृद्धोंके बचनको लेकर आन्दोलन करने लगे; अपकृष्ट पुरुष प्राचीन पुरुषोंका उपहास और असूया करनेमें प्रवृत्त हुए; बैठे हुए युवा पुरु-षोंने पहलेकी भांति अभ्यागत साधु और वृद्धोंको देखकर उठके प्रणामसे उनका सम्मान नहीं किया। पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र प्रभुता करनेमें प्रवृत्त हुए। जिन लोगोंने कभी सेवकका कार्य्य स्वीकार नहीं किया था, वे भी

निर्लज्ज होकर भृत्यभाव धारण करके विख्यात हुए। जो अधर्म्म पथसे निन्दित कर्म्मके जरिये बहुत सा धन पाते हैं, उन्हीं लोगोंकी भांति दानवोंकी अर्थोपार्ज्जनमें स्पृहा होने लगी। रात्रिके समय वे लोग ऊंचे स्वरसे निज नाम सुनाकर प्रणाम करनेमें प्रवृत्त हुए, रात्रिमें अग्नि मन्दभावसे जलने लगी। पुत्र पिताके ऊपर और स्त्रियोंने पतिके ऊपर अत्याचार करना आरम्भ किया। उन लोगोंने बूढ़े माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंके गौरवके निमित्त उन्हें प्रणाम और कुमारोंका प्रतिपालन नहीं किया। देवता, पितर, अतिथि और गुरुजनोंकी पूजा तथा भिक्षा वा भूतोंको बलि न देकर स्वयं अन्न भोजन करने लगे। उनके रसोइयोंने पवित्रताका अनुरोध नहीं किया। वाक्य, मन और कर्म्मसे उन लोगोंका भक्ष्य विषय अवारित हुआ, उन लोगोंके फैले हुए धान्यको कौवे और चूहे खाने लगे। जल पीनेका कलश बिना ढांका ही रहने लगा, वे लोग जूठे रहके घृत छूने लगे कुदाल पात्र, पेटिका, कांसेके पात्र आदि गृहकी सामग्रियोंके इधर उधर पड़ी रहनेपर भी दानवोंकी गृहिणियोंने उन्हें न देखा। प्राकार और गृहोंके टूटनेपर भी दानव लोग उसके सत्कार करनेमें उद्यत न हुए; पशुओंको बन्धे रखके तृण जल आदिसे उनका आदर नहीं किया; बालकोंके देखते रहनेपर भी उनका अनादर करके स्वयं भक्ष्यवस्तुओंको भक्षण करने लगे; वे लोग सेवकोंको बिना तृप्त किये ही अपने वास्ते पायस, कृशर, मांस, अपूप और पूरी आदि भोजनकी वस्तुओंको पाक कराने लगे और वृथा मांसभक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए। सभी सूर्य्यके उदय होनेपर सवेरे सोते रहते थे, उन लोगोंके प्रति गृहमें रातदिन कलह होने लगा अनार्य्य पुरुषोंने बैठे हुए आर्य्य पुरुषोंका सम्मान न किया, विधर्म्मी लोगोंने आश्रमवासी लोगोंसे द्वेष करना आरम्भ किया; वर्णसङ्करोंकी बढ़ती हुई; पवित्र आचार लुप्त होगया, जो सब ब्राह्मण वेदविद् और जो वेदके विषयमें मूर्ख थे, उनके बहुमान और अवमानके विषयमें कुछ भी विशेषता न रही, परिचारिका समूह हार, आभूषण और वेशविन्यास है, वा गया है,—इसे ही देखने लगीं। उन्होंने दुर्ज्जनोंके आचरित अनुष्ठानका अनुकरण किया।

स्त्रियां पुरुषका वेष बनाकर और पुरुष स्त्रियोंका वेष धरके क्रीड़ा, रति तथा विहारके समय अत्यन्त आनन्दसे डूब गये। पिता पितामहोंने पहले देने योग्य लोगोंको जो कुछ दे गये थे, नास्तिकताके कारण भ्राता लोग उसे अनुवर्त्तन करनेमें असम्मत होने लगे; किसी तरहका अर्थ संशय उपस्थित होनेपर मित्र यदि मित्रके निकट प्रार्थना करे तो केशके नोंक समान भी स्वार्थ रहनेपर भी मित्र लोग मित्रोंके धनको नष्ट करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रेष्ठ वर्णोंके बीच बहुतोंने परस्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा की; सभी विपरीत व्यवहार करते हुए दीख पड़े, शूद्र लोग तपस्या करने लगे; व्रतहीन पुरुषोंने पढ़ना आरम्भ किया, दूसरे लोग वृथा व्रत करनेमें प्रवृत्त हुए, चेलोंने गुरुकी सेवा न की; कोई गुरु शिष्यके सखा हुए; माता पिता श्रान्त और उत्सवहीन होने लगे, बूढ़े पिता माताकी प्रभुता न रही, वे लोग पुत्रोंके समीप अन्नके निमित्त प्रार्थना करने लगे, समुद्रके समान गम्भीरतासे युक्त वेद जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कृषिकार्य्य आदि जीवनके उपायमें आसक्त हुए; मूर्ख लोग श्राद्धका अन्न भोजन करने लगे। प्रतिदिन भोरके समय चेलोंको गुरुके निकट स्वास्थ्य पूछनेके लिये दूत भेजना तो दूर रहे, गुरु लोग स्वयं ही शिष्योंके निकट स्वास्थ्य पूछनेके निमित्त जाने लगे; सास और ससुरके सम्मुखमें ही बहू दास दासियोंको शासन करनेमें प्रवृत्त हुई

और स्वामीको आवाहन करके तिरस्कार करती हुई शासन करने लगी ; पिता यत्नपूर्व्वक पुत्रोंके मनकी रक्षा करने लगे। और अत्यन्त दुःखसे निवास करते हुए यदि पुत्र क्रुद्ध हो, इसी भयसे समय बितानेमें प्रवृत्त हुए, अग्निदाह, चोर अथवा राजपुरुषोंके जरिये किसीका धन हरे जानेपर, उसके मित्र लोग ईर्षाके कारण उपहास करने लगे; वे लोग सब कोई कृतघ्न, नास्तिक पापाचारी गुरु स्त्री हरनेवाले अभक्ष्यके भक्षणमें अनुरक्त मर्य्यादा रहित और निस्तेज हुए। हे देवेन्द्र! कालक्रमसे दानव लोग इस ही प्रकार आचरण करनेमें प्रवृत्त हुए तब मैं उनके निकट निवास न कर सकी ; यही मेरे मनमें निश्चय है। हे शचीनाथ! मैं स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं; तुम मुझे अभिनन्दित करो। हे सुरेश्वर! तुम्हारे सत्कार करनेसे देवता लोग मुझे ग्रहण करनेके लिये अगाड़ी दौड़ेंगे। हे पाकशासन! मैं जिस स्थानमें निवास करती हूं, वहां मेरी प्रियसुभसे भी विशिष्ट और सदवलम्बना जया आदि आठों देवी आठ प्रकारके रूपसे बास करनेको अभिलाष करती हैं, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजया, उन्नति, क्षमा और जया, ये आठों देवी अग्रगामिनी होकर वहां निवास किया करती हैं, इन सब देवियोंके सहित मैं असुरोंको परित्याग करके तुम्हारे राज्यमें आई हूं, अब धर्म्मनिष्ठ और पवित्रचित्तवाले देवताओंके निकट निवास करूंगी। कमलमें वास करनेवाली देवीने जब ऐसा वचन कहा, तब देवर्षि नारद और वृत्रासुरके नाशक इन्द्र प्रीतिके वशमें होकर अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर अनल वस्तु सब इन्द्रियोंको सुखदायक सुखस्पर्श सुगन्धयुक्त वायु देवताओंके स्थानमें बहने लगा। लक्ष्मीके सहित बैठे हुए भगवान् इन्द्रके दर्शन करनेकी अभिलाषा करके देवता लोग प्रायः प और प्रार्थित स्थानमें निवास करने लगे।

अनन्तर श्रीसम्पन्न सहनेत्र सुरेश्वर प्रिय सुहृत् महर्षिके सहित हरे रङ्गवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठ स्वर्ग लोकमें पहुंचके सत्कृत होकर सुरसमाजमें उपस्थित हुए। फिर महर्षियोंसे युक्त नारद और देवराजने कमला देवीके हृदयगत अभिप्रायको मनहीमन विचारते हुए देवताओंके पौरुषको देखकर लक्ष्मीदेवीसे वहां पर सुखपूर्व्वक आगमनका विषय पूछा। अनन्तर दीप्तिमान् धूलोक अमृतकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ स्वयम्भू पितामहके स्थानमें बिना बजाये ही नगाड़े बजने लगे, सब दिशा प्रसन्न और प्रकाशित हुईं। देवराज ऋतुके अनुसार शस्योंके ऊपर जल बरषाने लगे, कोई पुरुष भी धर्म्म मार्गसे विचलित नहीं हुए; सुरलोकवासियोंकी बिजय होनेपर अनेक रत्नाकरभूषित भूमि मङ्गलध्वनि करने लगी; यज्ञादि कर्म्मोंसे रमणीय सुन्दर मनस्वी मनुष्य पुण्यवान लोगोंके पवित्र मार्गमें निवास करते हुए सुशोभित हुए; मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षस लोग समृद्धियुक्त तथा प्रशस्तचित्त हुए; फूलफल वायुके झकोरसे भी टूटकर कभी वृक्षोंसे न गिरे; रसप्रद गौवें कामदुहा हुईं। किसीके मुखसे दारुण वचन न निकला। जो लोग विप्र समाजमें उपस्थित होकर सर्व्व काम प्रद इन्द्र आदि देवताओंके सहारे भगवती लक्ष्मीदेवीके इस सपर्य्याय विषयका पाठ करते हैं, वे लोग समृद्धि युक्त होकर सम्पत्ति लाभ करते हैं। हे कुरुवर! तुमने जो इस लोकमें उन्नति और अवनतिका विषय पूछा था, मैंने उसका परम निदर्शन वर्णन किया, अब तुम परीक्षा करके तत्त्वविषय अवलम्बन करो।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुष कैसे चरित्र, किस प्रकारके आचार कौनसी विद्या

और कैसे आचारसे युक्त होनेपर प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्यधाम प्राप्त करता है ।

भीष्म बोले, जो लोग मोक्ष धर्म्ममें सदा रत अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हैं वेही प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते है। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें असितदेवल और जैगीषव्यके इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं । असित देवल, सब धर्म्मोंके जाननेवाले, महाप्राज्ञ, क्रोध हर्षसे रहित जैगीषव्यसे कहने लगे।

देवल बोले, हे महर्षि! तुम्हारी बन्दना करनेपर भी तुम प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेपर भी क्रोध नहीं करते, यह तुम्हारी किस प्रकारकी बुद्धि है। ऐसी बुद्धि तुमने कहासे पाई। तुम्हारी इस बुद्धिका परम अवलम्बन क्या है ?

भीष्म बोले, महातपस्वी जैगीषव्य देवलका ऐसा वचन सुनके सन्देहरहित प्रचुर अर्थ और पद संयुक्त पवित्र तथा महत् बचन कहने लगे।

जैगीषव्य बोले, हे ऋषिसत्तम। पुण्यकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका जो परम अवलम्ब है, मैं उस अत्यन्त महती शान्ति विषयका तुमसे कहता हूं सुनो। हे देवल! मनीषि लोग स्तुतिनिन्दामें समज्ञान किया करते है। जो लोग उनकी प्रशंसा वा निन्दा करते है, वे उनके भी आचार व्यवहारोंको गोपन कर रखते है, वे लोग पूछनेपर भी अहित विषयमें हितवादी पुरुषको कुछ नहीं कहते और जो लोग उनके ऊपर आघात करते हैं, वे उनसे पलटा लेनेकी इच्छा नहीं करते। वे लोग अप्राप्त विषयोंके लिये शोक न करके समयपर प्राप्त हुए विषयको भोग किया करते हैं; बीते हुए विषयोंके निमित्त शोक तथा उन्हें स्मरण नहीं करते। हे देवल! व्रत करनेवाले, शक्तिमान मनीषि लोग इच्छानुसार प्रयोजन विषयमें सत्कार लाभ करनेपर शक्तिके अनुसार उसे साधन किया करते है। जिन्होंने क्रोधको जीता तथा जिनका ज्ञान परिणत है, वे जितेन्द्रिय महाप्राज्ञ मनुष्य मनवचन और कर्म्मसे किसीके निकट कुछ अपराध नहीं करते। वे ईर्षारहित होते है, इसीसे कभी आपसमें हिंसा करनेमें रत नहीं होते। धीर लोग दूसरेकी समृद्धि देखकर कभी डाह नहीं करते। जो लोग दूसरेकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा नहीं करते, वे आत्मनिन्दा वा प्रशंसासे विकृत नहीं होते, जो लोग सब तरहसे प्रशान्त और सब भूतोंके हितमें अनुरक्त रहते हैं, वे क्रोध, हर्ष वा किसीके समीप अपराध नहीं करते। जिनका कोई बान्धव नहीं है और जो दूसरेके बन्धु नहीं हैं, उनका कोई भी शत्रु नहीं है और वे भी किसीके शत्रु नहीं है। ऐसे मनुष्य हृदयकी ग्रन्थि छुड़ाके सुखपूर्व्वक बिचरते है। जो मनुष्य इसही प्रकार व्यवहार करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बितानेमें समर्थ होते हैं। हे द्विजोत्तम! जो सब धर्म्मज्ञ लोग धर्म्ममार्गका अनुरोध करते है, वेही आनन्दित होते है और जो लोग धर्म्ममार्गसे च्युत हुए है वे उद्वेग लाभ किया करते है। मैने उस ही धर्म्मपथका आसरा किया है, इससे किस लिये किसीकी असूया करूंगा। कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा ही करे, तौभी मैं किस लिये हर्षित होऊंगा। मनुष्य लोग जिसकी अभिलाष करें, धर्म्मसे उसेही प्राप्त करनेमें समर्थ होवें; निन्दा वा प्रशंसासे मेरो ह्रास वा वृद्धि न होगी। तत्ववित् बुद्धिमान् मनुष्य अवमानको अमृत समझके तृप्त हुआ करते हैं और सम्मानको बिष समझके उद्विग्न होते है। अवज्ञात लोग सब दोषोंसे बिमुक्त रहके इस लोक परलोकमें सुखसे सोते हैं और जो अवमान करता है, वह बिनष्ट होता है। जो कोई मनीषि पुरुष परम गतिकी इच्छा करें, वे इस ही व्रतको संग्रह करके अनायासही वृद्धि-

युक्त होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष सब तरहसे समस्त सत् समाप्त करके प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं, जो लोग परम पद पाते हैं, देवता, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षस लोग उनके अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२२९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भूलोकमें सब जीवोंके अभिनन्दन करनेवाले सब लोगोंका प्यारा और सब गुणोंसे युक्त मनुष्य कौन है?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार नारदके विषयमें उग्रसेन और कृष्णकी जो वार्त्तालाप हुई थी, इस समय उसे वर्णन करता हूं सुनो। उग्रसेनने कृष्णसे कहा, कि नारदका नाम लेनेमें लोग संकल्प किया करते हैं, बोध होता है वे अवश्य ही गुणयुक्त होंगे इससे मैं पूछता हूं, उनमें जो सब गुण थे, वह सब तुम मेरे समीप बर्णन करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुकुरवंशावतंस नरनाथ! नारदके जो सब उत्तम गुण मुझे विदित हैं, उसे संक्षेपमें कहनेकी इच्छा करता हूं, सुनिये। चरित्रके निमित्त उन्हें देहतापन अहङ्कार नहीं है; जैसा ज्ञान है, वैसा ही चरित्र है; इस ही लिये वे सब जगह पूजित होते हैं। नारदको अनुराग क्रोध और भय नहीं है; वह शूर हैं, और आलसी नहीं हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। नारद अत्यन्त ही उपास्य हैं, काम वा लोभके वशमें होकर उनका वचन व्यतिक्रम नहीं होता, इस ही निमित्त वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अध्यात्म विधिके तत्वज्ञ क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सुशील, सुखशायी, सुभोजी, आदरयुक्त, पवित्र उत्तम वचन कहनेवाले और ईर्षारहित हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। वह सबके विषयमें कल्याणकी इच्छा किया करते हैं, उनमें तनिक भी पाप नहीं है, दूसरेके अनर्थसे वह प्रसन्न नहीं होते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह वेद सुनके आख्यानके सहारे सब विषयोंके जय करनेकी अभिलाष करते हैं, तितिक्षु कहके कोई उनकी अवज्ञा नहीं करता, इस ही कारण वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, जन्म और तपस्यामें वह सबसे वृद्ध हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। समता निबन्धनसे कोई उनका प्रिय अथवा किसी प्रकार कोई अप्रिय नहीं है। वह मनके अनुकूल वचन कहा करते हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनेक शास्त्रोंको सुनकर वा विचित्र कथाको जानके पण्डित हुए हैं; वह निरालसी, शठताहीन, अदीन, अक्रोधी और लोभ रहित हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। विषय धन और कामके लिये पहले कभी उनका विग्रह नहीं हुआ, उनके सब दोष नष्ट हुए हैं, इस हीसे वह सब जगह पूजित होते हैं। वह दृढ़ भक्त, अनिन्द्य स्वभाव, शास्त्रज्ञ, अनृशंस, संमोहहीन और दोष रहित हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सब विषयोंमें अनासक्त रहनेपर भी आसक्तकी भांति दीखते हैं, बहुत समय तक उनका संशय नहीं रहता और वह अत्यन्त ही वक्ता हैं, इस ही निमित्त सर्व्वत्र पूजित होते हैं। काम भोगके लिये उन्हें कामना नहीं है, कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते वह ईर्षारहित और कोमल वचन कहनेवाले हैं इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह सब लोगोंकी विविध चित्तवृत्तिको देखते हैं, तौभी किसीकी कुत्सा नहीं करते और सृष्टि विषयक ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह किसी शास्त्रके विषयमें असूया

नहीं करते, निज नीतिको उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते है, समयको निष्फल नहीं करते और चित्तको वशीभूत कर रखा है, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह समाधि विषयमें श्रम किया करते हैं, बुद्धिको शुद्ध किया है, समाधि करके भी तृप्त नहीं होते, सदा उद्यत और अप्रमत्त रहते है, इसही लिये सर्व्वत्र पूजित होते है। वह अन-पत्रप योगयुक्त, परम कल्याणमें नियुक्त और दूसरेके गुप्त वचनको प्रकाश नहीं करते, इस-होसे सर्व्वत्र पूजित होते है, वह अर्थ लाभ होनेपर हर्षित और अर्थ हानिसे दुःखित नहीं होते, वह स्थिर बुद्धि और अनासक्त चित्त हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। उस सर्व्वगुणयुक्त अत्यन्त निपुण, पवित्र, अनामय, कालज्ञ और प्रियज्ञ महर्षिसे प्रीत करनेमें कौन पराङ्मुख होगा।

२३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव! सब जीवोंकी उत्पत्ति वा लयका विषय और ध्यान, कर्म्मकाल तथा युगयुगमें किस प्रकार परमायु होती है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। समस्त लोकतत्व, जीवोंकी अगति और गति तथा यह सृष्टि और मृत्यु कहासे हुआ करती है। हे साधुवर! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा हो, तो यही विषय जो कि आपसे पूछता हूं, उसे हमारे निकट वर्णन करिये। पहले आपके कहे हुए अत्यन्त श्रेष्ठ भृगु और विप्रर्षि भर-द्वाजको कथा सुनके मेरी बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ परम धर्म्मिष्ठ और दिव्य संस्थाननिष्ठ हुई है, इसलिये फिर आपके समीप पूछता हूं; आप उस ही विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें व्यासदेवने प्रश्न करनेवाले निजपुत्रसे जो कुछ कहा था, वह प्राचीन इतिहास कहता हूं सुनो। वैयासकि शुकदेव निखिल वेद और साङ्ग उपनिषदोंको पढ़के धर्म्मको निपुणता दर्शन निबन्धनसे नैष्ठिक कर्म्मकी कामना करते हुए धर्म्मात्माओंके संशयको दूर करनेवाले अपने पिता कृष्ण द्वैपायनसे यह सन्देह विषय पूछा।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! भूतोंके काल-निष्ठा ज्ञानसे युक्त कर्त्ता कौन है, और ब्राह्म-णका कर्त्तव्य क्या है? उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले ब्रह्मज्ञ तथा सर्व्वधर्म्मज्ञ पिता व्यास-देव उस प्रश्न करनेवाले पुत्रसे वह सब वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, अनादि अनन्त जन्म रहित दीप्तिमान् नित्य, अजर, अव्यय तर्कके अगोचर अविज्ञेय ब्रह्म सृष्टिके पहले वर्त्तमान था, कलाकाष्ठा आदि व्यञ्जक सूर्य्य आदि जो कुछ व्यक्त पदार्थ हैं, वे सभी मनोमय हैं; इसलिये वच्यमाण रूपसे प्रकट कालको ब्रह्म स्वरूपसे मालूम करना उचित है। पन्द्रह निमिषका एक काष्ठा होता है, तीस काष्ठाको एक कला कहते हैं, तीस कला और कलाके दशवें भाग तीन काष्ठाका एक मुहूर्त्त हुआ करता है, तीस मुहूर्त्तको एक दिन और राति होती है; मुनि लोग इस ही प्रकार गिनती किया करते हैं, तीस दिनरातका एक महीना और बारह महीनोंका एक वर्ष कहा जाता है। सांख्य जाननेवाले पुरुष कहते हैं, दो अयनका एक वर्ष होता है। अयन दो प्रकारके हैं, दक्षिणायन और उत्तरा-यण। सूर्य्यदेव मनुष्य लोक सम्बन्धीय रात दिनका विभाग करते हैं जीवोंकी निद्राके लिये रात और कार्य्य करनेके वास्ते दिन हुआ करता है। मनुष्य लोकका एक महीना पित-रोंका एक दिन रात है, उसके बीच यह विभाग है, कि कृष्ण पक्ष उन लोगोंके कर्म्म चेष्टाके निमित्त दिन रूपसे विहित है, और

शुक्लपक्ष स्वप्नके निमित्त रात्रिरूपसे कहा गया है। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन रात है। इसका ऐसा बिभाग है, कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिरूपसे निरूपित है। जीव लोकके दिन रातका विषय जो वर्णन किया है, उसके अनुसार क्रमसे जो देव लोकके दिन रात्रि कही गई, उस देव परिमाणसे दो हजार वर्ष पर ब्रह्माकी एक अहो रात होती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारोंयुगोंसे पृथक् पृथक् बर्षोंकी गिनती हुआ करती है। देवपरिमाणसे चार हजार वर्ष सतयुगका परिमाण है और उसही परिमाणसे चार सौ बर्षको सतयुगकी सन्ध्या होती है तथा चार सौ बर्ष तक सन्ध्यांश काल है। इस ही प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित इतर युग सब एक एक चरणहीन हैं, अर्थात् त्रेतायुग देव परिमाणसे तीन हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येकका परिमाण तीन सौ बर्षका है। द्वापर देवपरिमाणसे दो हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक दो सौ बर्षके है। कलियुग देव परिमाणसे एक हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक एक सौ बर्षके निरूपित हुए हैं। ये चारोंयुग शाश्वत सनातन लोकोंको धारण कर रहे हैं, ब्रह्मवित् पुरुष इस कालको ही नित्य ब्रह्म कहके जानते हैं। सतयुगमें सब धर्म और सत्य आचरण था, अधर्मसे कोई विषय प्राप्त नहीं होते थे; त्रेता आदि युगोंमें क्रमसे धर्म एक एक चरणहीन हुआ है; चोरी झूठ और शठतासे अधर्मकी वृद्धि हुई है, सतयुगमें सब पुरुष ही चार सौ बर्षकी आयुसेयुक्त और रोगरहित रहके सब मनोरथोंको सिद्ध करते थे। त्रेतायुगोंसे क्रमसे मनुष्योंकी आयु एक एक चरण घटती आती है। मैंने सुना है, प्रति युगमें वेदवाक्य और उसके फल, आशा तथा आयु क्रमसे ह्रस्व होती जाती है। सतयुगमें मनुष्योंके धर्म स्वतन्त्र है, त्रेता और द्वापरमें भिन्न भिन्न धर्म हुए; युग ह्रासके अनुसार कलियुगमें भी मनुष्योंके धर्म पृथक् रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं। सतयुगमें तपस्या ही मनुष्योंका परम धर्म था, त्रेतामें ज्ञान ही श्रेष्ठ था, द्वापरमें यज्ञ कर्म और कलियुगमें केवल दानही सबसे श्रेष्ठ धर्मरूपसे वर्णित हुआ है। कवि लोग इस देवपरिमित बारह हजार बर्षको युग कहा करते हैं, इस ही सहस्र बर्षके परिमाणसे एक ब्राह्म दिन होता है, ब्राह्मरात्रिका परिमाण भी इतना ही है। जगत्के ईश्वर ब्रह्मा उस दिवसके अन्तमें योग निद्रा अवलम्बन करके सोते हैं, रात्रि बीतनेपर जाग्रत हुआ करते है। जो लोग सहस्र युग पर्य्यन्त ब्रह्माका एक दिन और सहस्रयुगके अन्तभागको उनकी रात्रि जानते हैं, वेही अहोरात्रिके जाननेवाले है। निद्राके अनन्तर सावधान होनेपर ब्रह्मा निर्व्विकार स्वरूपको मायासे विकारयुक्त करते हैं, फिर महत् भूतोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होते हैं उससे ही व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। तेजोमय महत्तत्व स्वरूप ब्रह्म ही जगतका बीज है, उससे ही यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है; द्वयाभ्यन्तररहित उस एक मात्र भूतसे स्थावर जङ्गम सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा दिनके प्रारम्भमें विबुद्ध होकर अविद्याके सहारे जगत्की सृष्टि करते हैं, सृष्टिकी आदिमें महत्तत्व और व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। ईश्वर पूर्वसर्गके अन्तमें सात मानस पदार्थोंका लय करके उत्तरसर्गके प्रारम्भमें उसकी सृष्टि किया करता है। दूरग और बहुधागामी प्रार्थना तथा संशयात्मक मन सिसृक्षाके जरिये प्रेरित होकर सृष्टिको अनेक रूपसे किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनसे आकाश उत्पन्न होता है, उसका गुण शब्द है। आकाशसे सर्व्वगन्धको ढोनेवाला पवित्र और बलवान्

वायु उत्पन्न होता है, उसका गुरु स्पर्श है। वायुसे भास्वर रोचिष्णु, सफेद वर्णकी ज्योति उत्पन्न होती है, उसका गुण रूप हैं; अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न हुआ करता है, जलसे भूमि उत्पन्न होती है, उसका गुण गन्ध है, ये सब परम सृष्टि हैं। उत्तरोत्तर भूतोंमें पूर्व्वके भूतोंके सब गुण प्राप्त होते हैं। इन सब भूतोंके बीच जो भूत जबतक जिस प्रकार वर्त्तमान रहता है; उसका गुण भी तबतक उस ही प्रकार उसमें निवास करता है। कोई पुरुष जलके बीच गन्ध संघके मूढताके कारण यदि उसे जलका ही गन्ध कहके माने, तो वह यथार्थमें उसका नहीं है, गन्ध पृथ्वीका गुण है; वायु और जल आदिमें वह आगन्तुक द्रव्य सम्पर्कसे मालूम हुआ करता है। ये महावीर्य्यशाली सात प्रकारके व्यापक पदार्थ अर्थात् महत्तत्व, आकाश तत्व और आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके परस्पर न मिलनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होसकते। ये परस्परके सहारेसे मिलित होकर शरीर स्वरूप अवलम्बको प्राप्त होके पुरुष रूपसे कहे जाते हैं। पञ्चभूत, मन और दशों इन्द्रिय ये सोलह पदार्थ शरीरका आसरा करके एकत्रित और मूर्त्तिमान हुआ करते हैं; महत्तत्व आदि सब भूत भोगनेसे शेष रहे हुए कर्म्मके सहित उस सूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। भूतोंकाआदि कर्त्ता निज उपाधिभूत मायाके एकादश भूत समस्त भूतोंको सङ्कलन करके तपस्याचरणके निमित्त उसमें ही प्रविष्ट हुआ करता है, पण्डित लोग उस ही आदि कर्त्ताको प्रजापति कहते हैं। वही शरीरान्तर वर्त्ती प्रजापति स्थावर जङ्गम जीवोंको उत्पन्न करता है। शरीरमें प्रवेश करनेके अनन्तर वह प्रजापति देवर्षि, पितर और मनुष्य लोकोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होता है, क्रम क्रमसे नदी, समुद्र, पहाड़, दिशा, वनस्पति, मनुष्य, किन्नर, निशाचर, पशुपक्षी; हरिन, सर्प और आकाश आदि नित्य वस्तु तथा घट पट आदि अनित्य वस्तुओंसे युक्त स्थावर जङ्गम पदार्थोंकी सृष्टि करता है। वे सब पहिले सृष्टिके समयमें जिन सब कर्म्मोंको प्राप्त हुए थे, फिर उत्पन्न होके उन्हीं कर्म्मोंको प्राप्त करते हैं। मनुष्य, किन्नर, निशाचर आदि जीवोंने विधाताके जरिये प्रकट होके हिंसक, अहिंसक कोमल, कठोर, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य और मिथ्या आदि गुणोंको अवलम्बन किया अर्थात् पहले सृष्टि समयमें जिनकी जिन विषयोंमें अभिलाषा थी, इस जन्ममें भी उनकी उस ही विषयमें इच्छा हुई, जगदिन्द्रजाल फैलानेवाले विधाता ही वियदादि सब महाभूतों, रूप आदि इन्द्रियों और द्रव्याकृति मूर्त्तियों नानात्व अर्थात् शुक्ति रजतकी भांति प्रति पुरुषमें विभिन्नता, तथा जीवोंके विषय विशेषमें विनियोग अर्थात् भोक्तृभाव सम्बन्ध बन्धन किया। कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं, सब कर्म्मोंमें ही पुरुषकी सामर्थ है; इसलिये कर्म्म ही प्रधान है। दूसरे ब्राह्मण लोग कहा करते हैं सूर्य्य आदि सब ग्रह ही सत् असत् फलके देनेवाले हैं, इसलिये दैव ही प्रधान है। स्वभाव वादी पुरुष स्वभावको ही सबसे प्रधान कहा करते हैं। दूसरे मतवाले मनुष्य कहते हैं, दैवकर्म्म स्वभावके अनुग्रहीत होके फल देनेमें प्रवृत्त हुआ करता है, पौरुष कर्म्म और दैव, ये पृथक् नहीं हैं। ये तीनों ही मिलके फल उत्पन्न करते हैं, इनमेंसे प्रत्येककी प्रधानता नहीं है। जीवोंके अनेकत्व विषयमें क्या कारण है; जो इसे आर्हत-मतावलम्बी नास्तिकोंने विशेष रूपसे वर्णन नहीं किया, इसे निर्व्वाचन करनेमें भी उन लोगोंकी सामर्थ नहीं है, यह विषय अनिर्व्वचनीय है, ऐसा भी नहीं कह सकते। कर्म्म और दैव इन दोनोंके बीच अन्यन्तरका कारणत्व सुवच वा दुर्व्वच हो, दोनों ही इकट्ठे होनेपर कारण होस

ऐसी आशंका करके उक्त दोनोंको ही वे लोग कारण नहीं कहते और उन दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण है, वह भी नहीं कह सकते। तप्त शिलारोहणादि निर्जराख्य धर्म्मके जरिये मोक्ष हुआ करतो है, वे लोग उसे ही सिद्ध करते हैं। परन्तु रजोगुण और तमोगुणसे रहित अन्तःकरणवाले सम्प्रज्ञात अवस्थामें स्थित योगीलोग ब्रह्मको ही कारण रूपसे देखते हैं; इस ही लिये वे लोग समदर्शी कहे जाते हैं। जीवोंके पक्षमें तपस्या ही मोक्षका कारण है, मनोनिग्रह रूपी शम और बाह्येन्द्रिय निग्रहात्मक दम उस तपस्याके मूल हैं। मनुष्य मन ही मन जो सब कामना करता है, तपस्याके सहारे वह सब पाता है। जिसने जगत्को उत्पन्न किया है, तपस्याके सहारे जीव उसे पाता है, और उसहीका रूप होकर सब जीवोंके ऊपर प्रभुता करनेमें समर्थ हुआ करता है। ऋषि लोग तपोबलसे ही दिन रात वेद पढ़ते हैं, वह अनादि निधन विद्यारूपी वेदबाणी स्वयम्भूके जरिये शिष्य प्रशिष्य सम्प्रदाय क्रमसे प्रवर्त्तित हुई है। सृष्टिके पहले वेदमयी दिव्यवाणी विद्यमान थी, उससे ही समस्त वृत्तान्त उत्पन्न हुए हैं। सृष्टिके आरम्भमें ईश्वर वेदशब्दोंसे ऋषियोंके नाम धेय, जीवोंके अनेक रूप और सब कर्म्मोंका प्रवर्त्तन निर्म्माण करता है; वेदके बीच ऋषियोंके जो नाम धेय विहित थे सृष्टि आरम्भके समय बिधाताने उसे ही विधान किया। नाम भेद, तपस्या, कर्म्म और यज्ञोंको लोकसिद्धि कहते हैं, और आत्मसिद्धिके विषय वेदमें दश प्रकारसे वर्णित हुए हैं। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि वह वेद और वेदान्त वाक्योंके बीच अत्यन्त गहनभावसे विद्यमान हैं। पहले ...ए दश प्रकारके क्रम यही हैं, कि वेदा... ...करके गार्हस्थ्य अवलम्बन ... वाणप्रस्थाश्रम रूपी तपस्या, सर्व्वाश्रम साधारण सन्ध्योपासना आदि कर्म्म, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, कीर्त्तिकर तड़ाग और आराम आदि पूर्त्तकर्म्म, ध्यान आदि मानस धर्म्म वैश्वानराख्यका कारण ब्रह्मदर्शन दहरादि ग्रह उपासना और विशुद्धस्वरूपका ज्ञान, इन दशों प्रकारके क्रमके जरिये सांसारिक दुःखोंसे पार होकर परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है। इस ही लिये वेद और वेदान्त वाक्य उपनिषदोंके बीच ये दश प्रकारके क्रम आत्मसिद्धिके उपाय रूपसे वर्णित हुए हैं। देहाभिमानी जीव जो द्वैत दर्शन किया करता है; वह कर्म्मज है; कर्म्मके नष्ट होनेपर सुषुप्ति और समाधि समयमें उसका अभाव होता है। सुख, दुःख, सर्दी, गर्म्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वयुक्त द्वैतदर्शनको ही आत्मसिद्धि कहा जाता है। पुरुष विज्ञान बलके प्रभावसे ज्ञातृज्ञेय भाव रूप भेद परित्याग किया करता है। दो प्रकार ब्रह्मको जानना उचित है, पहला शब्द-ब्रह्मरूप प्रणव, दूसरा परब्रह्म; जो प्रणव उपासना विषयमें निपुण होते हैं, वेही परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं। क्षत्रियोंकी पशुहिंसा, वैश्योंको धान्य आदि उत्पन्न करना, शूद्रोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी और ब्राह्मणोंको ब्रह्मकी उपासना ही यज्ञस्वरूप है त्रेतायुगमें यज्ञोंकी इस ही प्रकारसे विधि हुई थी; सतयुगमें किसी विधिका प्रयोजन नहीं था, क्यों कि उस समयमें ये सब प्रवृति स्वतः सिद्ध थी। द्वापरमें लोग यज्ञकर्म्म आरम्भ करनेकी इच्छा करते थे, कलियुगमें सब कोई उस विषयसे विमुख हुए हैं। सतयुगमें मनुष्य अद्वैतनिष्ठ थे, वे लोग ऋक्, यजु, सामवेद और स्वर्ग आदिके साधन काम्यकर्म्म यज्ञादिकोंकी तपस्यासे पृथक् जानके वह सब परित्याग करके केवल तपस्याका अनुष्ठान करते थे। त्रेतायुगमें धर्म्मविषयमें मनुष्योंकी स्वतःप्रवृत्तिके अभाव निबन्धनसे धर्म-

संक्रान्त शासन कर्त्ता जो सब महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए थे, वे लोग स्थावर, जङ्गम आदि सब प्राणियोंको सब तरहसे धर्म्मविषयक शासन करते थे, इसहीसे त्रेतायुगमें सब वेद, सब यज्ञ और वर्णाश्रमोंके यज्ञादिकोंके अनुष्ठान करानेमें तत्पर थे। द्वापरमें परमायुका परिमाण घटनेसे शासन करनेवाले सभी भ्रष्ट हुए। कलियुगमें सब निखिल वेद थोड़ेसे दीख पड़ते हैं, सर्व्वत्र नहीं दीखते; केवल अधर्म्मसे पीड़ित होनेसे यज्ञ और वेद नष्ट होरहे हैं। सतयुगमें जो धर्म्म ब्राह्मण मात्रमेंही दीख पड़ता था, इस समय वह चित्तको जीतनेवाले योगनिष्ठ, वेदान्त सुननेमें तत्पर ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होरहा है। त्रेतायुगमें अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण लोग आचार व्यवहारको अतिक्रम न करके वेदोक्त प्रमाणके अनुसार यज्ञ आदि धर्म्म, और उसके सहित एकादश उपवास आदि व्रत और तीर्थ दर्शनादि धर्म्मकर्म्म इच्छा पूर्व्वक निबाहते थे; वैदिक द्विजाति भी स्वर्गको कामना करके यज्ञ करती थी। द्वापरयुगमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णपुत्रकी कामनासे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते थे। कलियुगमें केवल शत्रु मारण आदिकी इच्छासे लोग यज्ञ किया करते हैं; युगयुगमें इस ही प्रकार धर्म्म अलग अलग दीख पड़ता है। जैसे प्रावृट् ऋतुमें अनेक प्रकारके स्थावर, जङ्गम, वृक्ष लता गुल्म आदि बलसे उत्पन्न होकर बढ़ती है, वैसेही युगयुगमें धर्म्माधर्म्मकी घटती बढ़ती हुआ करती है। जैसे ऋतु कालमें सर्द्दी गर्म्मी आदि अनेक भांतिके ऋतुके चिन्ह पर्य्यायक्रमसे दीखते हैं, वैसेही ब्रह्मा और हर आदिमें सृष्टि संहार सामर्थ्यकी वृद्धि और ह्रास दीख पड़ती है, चतुर्युगात्मक कालपुरुषके कलाकाष्ठादि भेदसे नानात्व, धर्म्माधर्म्मकी ह्रास वृद्धि भेदसे विभिन्नत्व और उसका अनादि निधनत्व पहिले तुम्हारे समीप वर्णन किया है। वह काल ही प्रजाओंको उत्पन्न करके संहार करता है। जो सब जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज प्राणी स्वाभाविक सुख दुःखसे युक्त होकर वर्त्तमान हैं, काल ही उनका अधिष्ठान है, इसलिये समय ही सब भूतोंको धारण कर रहा है, और प्रतिपालन करता है, समय ही स्वयं सर्व्वभूत स्वरूप है। हे तात! समय केवल सर्व्वभूत स्वरूप ही नहीं है, समय सर्ग आदि आत्म स्वरूप है। तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसके अनुसार सृष्टि, काल, यज्ञ, श्राद्धादि कर्म्म, उनके प्रकाशक वेद, उनका अनुष्ठान करनेवाला देहादि परिग्रह कार्य्य और क्रियाफल स्वर्गादि विषयोंको वर्णन किया। ये सभी काल स्वरूप पुरुषमय हैं।

२३१ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, दिन बीतनेपर रात्रिके आरम्भमें ईश्वर आत्मामें सूक्ष्मभावसे स्थित इस जगत्‌को जिस प्रकार परिणत करता है, उत्पत्ति क्रमसे विपरीत उस प्रलयका विषय कहता हूं सुनो। आकाशमें द्वादश आदित्य और सङ्कर्षणके मुखसे उत्पन्न हुई अग्निकी अर्चि इस दृश्यमान जगत्‌को जलानेमें प्रवृत्त होती है। उस समय सब जगत् लोरी और अग्नियोंकी ज्वालासे परिपूरित होकर जाज्वल्यमान हुआ करता है। पृथ्वी मण्डलमें जो सब स्थावर जङ्गम जीव है, वेही अगाड़ी प्रलयको प्राप्त होते हैं और लय होनेपर भूमिके साथ मिल जाते हैं। स्थावर और जङ्गम जीवोंके लय होनेपर भूमि वृक्षहीन और तृण रहित होकर कछुएकी पीठके समान दीख पड़ती है। जिस समय जल भूमिकी कठोरताका हेतु गन्धगुण ग्रहण करता है, उस समय पृथ्वी घृतकी भांति कठोरता परित्याग करके जलमय होजाती है। तब जल तरङ्गमाला और

शब्दसेयुक्त होकर इस दृश्यमान जगत्को अपने रूपमें लीन करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करके स्थिति तथा बिचरण करता है।

हे तात! जब अग्नि जलके गुणको ग्रहण करती है, उस समय उसका रस अग्निसे सूख-नेसे जलभी अग्निमें लीन होता है। जिस समय अग्निशिखा मध्यमें स्थित आदित्य मण्डलको परिपूरित करती हैं उस समय यह समस्त आकाशमण्डल अग्निशिखासे परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हुआ करता है,। वायु जब अग्निका गुण ग्रहण करता है, तब उस समय अग्नि विरूप होकर प्रशान्त होती है, अनन्तर अत्यन्त बृहत वायु दोधूयमान हुआ करता है, और अपने महत् शब्दको अवलम्बन करके नीचे, ऊपर, तिर्य्यग् प्रदेश तथा दशों दिशाको आक्र मण कर धावित होता है। शेषमें जब आकाश वायुके स्पर्श गुणको ग्रास करता है, तब वायु शान्त होजाता है, और शब्दके पूर्व्वरूप वर्ण विभाग-रहित नादकी भांति आकाशमें स्थित रहता है; वायु आदि दृश्य पदार्थोंमें जिसका शब्द वर्त्तमान है वह आकाश उस समय रूप हीन, रस रहित स्पर्श बर्ज्जित, गन्धहीन और अमूर्त्तत्र होकर नादकी भांति स्थित करता है।

अनन्तर आकाशका अभिव्यक्तात्मक शब्द गुण मनके जरिये लय होता है, मनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप ब्राह्म प्रलयमें लीन होजाता है। उस समय चन्द्रमा आत्मगुण अर्थात् निःसीम ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य धर्म्मरूप कर्म्ममें आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ सम्बन्धीय समष्टि मनको नष्ट करता है, मन शान्त होनेपर भी केवल चन्द्र-मामें वर्त्तमान रहता है। योगी पुरुष चन्द्रमा नामक उपाधियुक्त सङ्कल्पमात्र शरीर मनको बहुत समयतक वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं, जब सङ्कल्प विचारात्मिका चित्तवृत्तिको ग्रास करता है, तब सङ्कल्पको रोकना अत्यन्त दुःसाध्य है। इस सङ्कल्पके वशीकरणका यही उपाय है कि "यह सब मैंही हूं," इसही प्रकारका ज्ञान सबसे उत्तम है। "मैं" इतना ही प्रत्यय सब काल सबका अनुभव करानेवाला विज्ञानको करता है, और बल नामक शक्ति ही .. स्वरूप है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। जैसे का कालको कवलित करता है, काल भी उस प्रकार बलको ग्रास किया करता है। विदे कैवल्यरूप शान्त बुद्धि पुनरुत्थानाभाव निवन्धन कालको वशमें कर रखती है। विदेह केवल स्वरूपी शान्तबुद्धि जिस समय कालको वशीभूत करती है, उस समय विद्वान् योगी आकाशके गुणनाद अर्थात् अर्द्धमात्रा बिन्दुके अनुसार आत्माको परब्रह्ममें संयुक्त करता है। वह परमात्माही नित्य निर्म्मुक्त सर्व्वोत्तम परब्रह्म है; वही इस प्रकार सब भूतोंकी प्रलय किया करता है, यह प्रलयका विषय कहा गया है रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति सब भूतोंके लीन होनेपर केवल अकेला ब्रह्म ही शेष रहता है। परमात्मदर्शी योगियोंने शास्त्रमें कहेहुए विधा-सय इस बोधविषयको निःसंशयरूपसे देखकर यथावत वर्णन किये है। ब्रह्मा इस ही प्रकार बार बार सृष्टि और प्रलय किया करता है। सहस्र युग पर्य्यन्त सृष्टिकाल ही उसका दिन और सहस्र युग पर्य्यन्त प्रलयका समय ही उसकी रात्रिरूपसे गिनी जाती है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, हे तात। तुमने जो भूतग्रा मका विषय पूंछा था, मैंने उस विषयको वर्णन किया; अब ब्राह्मणोंके जो कुछ कर्तव्य है, उसका विवरण करता हूं सुनो। द्विजातियोंके जातकर्म्म आदिसे समावर्त्तन पर्य्यन्त सब दक्षि णान्वित क्रिया वेद जाननेवाले आचार्य्यके निकट सिद्ध करनी होगी। यज्ञवित् ब्राह्मण गुरुसेवा रत रहके अखिल वेदको पढकर आचार्य्य

भक्तणो होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन करे, अथवा आचार्य्यसे अनुज्ञात होकर जबतक शरीर धारण करे, तबतक चारों आश्रमोंके अन्यतरको विधिपूर्व्वक अवलम्बन करे। अथवा ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर दारपरिग्रह कर सन्तान उत्पन्न करके जङ्गलके बीच गुरुजनोंके निकट यतिधर्म्मके जरिये निवास करे। महर्षि लोग गृहस्थको इन सब धर्मोंका मूल कहा करते हैं गार्हस्थ आश्रममें पक्व कषाय अर्थात् लय और विक्षेपके अभावमें राग आदि बासनाके जरिये शुद्धता निबन्धनसे जिनका चित्त अखण्डवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ नहो है, वैसे ही ब्राह्मण जितेन्द्रिय होनेपर सब आश्रमोंमें ही सिद्धिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

पुत्रवान् श्रोत्रिय और यातीय ब्राह्मण तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो है, अनन्तर वह कर्म्मसे पवित्र होकर आश्रमान्तरमें गमन करें, पृथ्वीके बीच ब्राह्मण जिस स्थानको पवित्र समझें, वहां पर बास करे और श्रेष्ठ यश उपार्ज्जनमें यत्नवान् होवे। उत्तम महत् तपस्या, सब विद्याकी पारदर्शिता, यज्ञ और दानसे द्विजोंके यशकी वृद्धि होती है, इस लोकमें ब्राह्मणोंकी जितने परिमाणसे यशस्करी कीर्त्ति हुआ करती है, वह उतने ही परिमाणसे पुण्यवान लोगोंके अनन्त लोकको उपभोग करते हैं। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करे, कभी बृथा प्रतिग्रह वा बृथा दान न करे, यजमान, शिष्य और कन्यासे जो महत् धन प्राप्त हो, वह यज्ञकार्य्यमें व्यय और दान करे, किसी भांति अकेले उपभोग न करे। देवता ऋषि, पितर, गुरु, आतुर और भूखोंके लिये जो दान किया जाता है गृहस्थके पक्षमें उससे बढ़के दूसरा तीर्थ और कुछ भी नहीं है। अन्तर्हित शत्रु, सन्तप्त और शक्तिके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेमें अनुरक्त ब्राह्मणोंको उचित है, कि निज शक्तिको अतिक्रम करके प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे भी अधिक दान करें। अनुरूप अर्हणीय ब्राह्मणोंको कुछ भी अदेय नहीं है, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उच्चश्रवा घोड़ा भी साधुओंको प्राप्य है। महाव्रत राजा सत्यसन्धने इच्छानुसार बिनती करके निज प्राण दानसे ब्राह्मणका प्राण बचाके सुरपुरमें गमन किया है। सास्कृतिपुत्र रन्तिदेव महात्मा वशिष्ठको न बहुत ठण्ढा न बहुत गर्म्म जल दान करके अमरलोकमें सम्मान भाजन हुए हैं, इन्द्रदमन बुद्धिमान् अत्रेय राजाने किसी पूजनीय ब्राह्मणको अनेक तरहका धन दान करके अनन्तलोकमें गमन किया है। उशीनरपुत्र शिविराजाने राज्याङ्गोंके सहित निज और सपुत्र ब्राह्मणोंको दान करके इस लोकसे नाकपृष्ठ पर आरोहण किया है। काशिराज प्रतर्द्दन ब्राह्मणको अपना दोनों नेत्र दान करके इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्तिभागी हुए। देवावृध राजाने आठ शलाकाओंसे युक्त सुवर्णमय महामूल्यवान छत्र दान करके राज्य बासियोंके सहित भूलोकमें गमन किया, अत्रिपुत्र महातेजस्वी सास्कृतिने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मविषयक उपदेश देकर परम श्रेष्ठ लोकोंको पाया है। प्रतापवान अम्बरीष राजा ग्यारह अर्बुद गऊ ब्राह्मणोंको दान करके राज्यके सहित सुरलोकमें गये। सावित्रीने दोनों दिव्य कुण्डल और जनमेजयने ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर छोड़के उत्तम लोक पाया है। बृषादर्भि युवनाश्व समस्त रत्न प्रिय स्त्रियां और रमणीय गृह दान करके स्वर्ग लोकमें निवास करते हैं। विदेहवंशीय निमि राजाने ब्राह्मणोंको राज्य दिया, जमदग्निपुत्रने पृथिवी दान की और गय राजाने नगरके सहित पृथ्वी ब्राह्मणोंको समर्पण किया।

जैसे प्रजापति प्रजाकी रक्षा करते हैं, वैसे ही अनावृष्टिके समय भूतभावन वशिष्ठदेवने जीवोंको जीवित रखा था। करन्ः

पवित्र बुद्धिवाले मरुत अङ्गिराको कन्या दान करनेसे शीघ्र ही स्वर्गमें गये। पाञ्चालराज बुद्धिमान ब्रह्मदत्तने अग्रगण्य द्विजोंको निधि और शङ्ख दान करके भी शुभलोकोंको पाया है। मित्रसह राजा महानुभाव वशिष्ठ देवको प्रिय मदयन्ती दान करके उनके सहित सुरलोकमें गये, महायशस्वी राजर्षि सहस्रजित् ब्राह्मणोंके निमित्त प्रिय प्राण त्यागके सर्व्वोत्तम लोकोंको प्राप्त किया है। राजा शतद्युम्न मुद्गर ऋषिको सर्व्वकाम सम्पूर्ण सुवर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गये। द्युतिमान नाम प्रतापवान शल्य राज ऋचीकको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्तको सुन्दरी कन्या दान करके देवताओंसे प्रशंसित लोकोंमें गमन किया है, राजऋषि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको शान्ता नाम्नी कन्या दान करके सर्व्वकाम सम्पन्न हुए। महातेजस्वी प्रसेनजित् राजाने सात हजार बछड़े युक्त गऊ दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया है। ये सब लोग और इनके अतिरिक्त शिष्टस्वभाव जितेन्द्रिय बहुतेरे महात्मा लोग दान और तपस्यासे स्वर्गमें गये हैं। जबतक यह पृथ्वी है, तबतक उन लोगोंकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी, क्योंकि इन लोगोंने दान, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करके अमर लोक प्राप्त किया है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, ब्राह्मण वेदमें कही हुई सब साङ्ग वेदविद्या पढ़े। ऋक्, साम, वर्ण, अक्षर, यजु और अथर्व, इन षटकर्म्मोंमें पूर्णरीतिसे वर्त्तमान रहके भगवान् वास करता है। वेदवादको जाननेवाले अध्यात्म विद्यामें निपुण सत्ववन्त महाभाग ब्राह्मण लोग उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको देखते हैं ब्राह्मण इस ही प्रकार धर्म्म अवलम्बन करते हुए जीवनका समय व्यतीत करे। शिष्टोंकी भांति कर्म करनेमें तत्पर होवे और सब भूतोंके अविरोध वृत्तिलाभकी अभिलाष करे। जो ब्राह्मण साधुओंसे विज्ञान लाभ करके शिष्ट और शास्त्र विचक्षण होकर इस लोकमें निज धर्म्मके अनुसार कर्म्म करता और सात्विक कर्म्मोंमें विचरता हुआ प्रागुक्त षट् कर्म्मोंमें रत रहता है। वही ब्राह्मण है। इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा श्रद्धावान् होकर पञ्च यज्ञोंका विधान करे। धैर्य्यशाली, अप्रमत्त, दान्त धर्म्मवित्, यतवान्, हर्षहीन, मदरहित और क्रोध वर्ज्जित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ तपस्या, लज्जा, सरलता और इन्द्रिय दमन, ये सब विषय ब्राह्मणोंके तेजको बढ़ाते और पापोंको दूर करते हैं। पाप पङ्कको धोनेवाले मेधावी मनुष्य लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर काम क्रोधको वशमें करते हुए ब्रह्मपद प्राप्तिके लिये कामना करे, तीनों अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करे, देवताओंके निकट प्रणत होवे, अकल्याणको त्याग दे, ब्राह्मणोंकी यही पूर्व्वानुष्ठेय वृत्ति विहित हुई। शेषमें ज्ञानागमके सहारे कर्म करनेसे उस विषयमें उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है बुद्धिमान मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जलसेयुक्त, मन्युपङ्क समन्वित, अनिभवनीय भयङ्करी अत्यन्त दुस्तर लोभके मूल महानदीसे अनायास ही पार होते हैं। यह देखता रहे, कि विघिट्ट महाबलसे युक्त प्रतिघात रहित अत्यन्त मोहनकाल सदा ही उपस्थित होरहा है।

जगत् स्वभाव स्रोतमें पड़के सदा ही भासमान होता है, काल स्वरूप महा आवर्त्त, मासमय तरङ्ग, ऋतुरूपी वेग, पक्षमय उलप तृण, निमिष आदि फेन, दिनरात्रि जल, घोरकाम ग्राह, वेद और यज्ञरूपी नौका, जीवोंके धर्म्म स्वरूप द्वीप, अर्थाभिलाषमय दूब सत्य वचनरूपी मोक्ष तीर, हिंसातरुवाही, दो तालाबोंसे युक्त प्रक्षहके बीचमें स्थित संसार स्रोतके अरिये विध-

हसष्ट जीव निरन्तर शयन गृहमें आकृष्ट होता है। स्थिरचित्तवाले मनीषि लोग प्रज्ञामय नौकाके सहारे इस संसार-स्रोतसे पार होते हैं प्रज्ञामय नौकासे रहित अल्पबुद्धि मनुष्य इससे पार होनेका और उपाय क्या करेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य उपस्थित बिपदसे निस्तार लाभ कर सकते हैं, दूसरे लोग कभी विपदसे छूटनेमें समर्थ नहीं है। प्राज्ञ पुरुष दूर होनेपर भी सब स्थानोंके दोष गुणको देखते हैं। सलकात्मात्मा, डावाडोल चित्त, अल्पचेता, अप्राज्ञ, पुरुष संशयसे पार नहीं होते; जिसका अस्तित्व है, वह कभी बिनष्ट नहीं होता। उत्तरणरहित मनुष्य महादोषसे मोहित होकर नियमित होता है, कामरूप ग्रहसे जो आक्रान्त हुआ है, उसका ज्ञान भी उत्तरणका कारण नहीं होता; इसलिये बिचक्षण मनुष्य उन्मज्जनके लिये प्रयत्न करे, जो ब्राह्मण होते है, उनहीका उन्मज्जन हुआ करता है, जिन्होंने शुद्धवंशमें जन्म लिया है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंमें आत्म निश्चय विषयमें जिन्हें सन्देह है, जो यजन अध्ययन और दान, इन तीनो कर्म्मोंको साधन किया करते हैं, वैसे ब्राह्मण बुद्धिबलके सहारे जिस प्रकार निस्तार लाभ कर सकें, उस ही भांति उन्मज्जनमें सावधान रहें। संस्कारयुक्त, नियमनिष्ठ, सयतात्मा, दमशील, प्राज्ञपुरुषोंको इस लोक और परलोकमें अव्यवहित सिद्धि हुआ करती है, गृहस्थ पुरुष क्रोध और असूयारहित होकर ऐसे ही ब्राह्मणोंके बीच निवास कर और बिघसाशी होकर सदा पञ्चयज्ञ करनेमें यत्नवान् रहे। साधुओंके आचरित धर्म्मके जरिये जीवन बिताते हुए शिष्टोंकी भांति कार्य्योंका अनुष्ठान करे, लोगोंके संग विरोध न करके अनिन्दित वृत्तिलाभकी इच्छा करे। जो लोग शिष्टाचारसे युक्त और विचक्षण होकर बिज्ञानतत्व सुनते हैं। और निज धर्म्मके अनुसार सब कर्म्मोंका निर्व्वाह किया करते हैं, वे कर्म्मोंसे सङ्कीर्ण नहीं होते। क्रियावान्, श्रद्धायुक्त दान्त, प्राज्ञ, अनुसूयक और धर्म्माधर्म्मके बिशेषज्ञ ब्राह्मण दुस्तर बिषयोंके पार होते हैं। धृतिमान अप्रमत्त दान्त, धर्म्मवित् आत्मवान् और हर्ष, मद क्रोधसे रहित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। ब्राह्मणोंकी यही पुरानी वृत्ति बिहित हुई। ज्ञानवत्तासे सब कर्म्मोंको सिद्ध करते हुए ब्राह्मण लोग सब विषयोंमें ही सीद्धि लाभ कर सकते हैं।

मूर्ख मनुष्य धर्म्मकी इच्छा करके भी अधर्म्म किया करता है, अथवा मानो वह शोचना करते हुए अधर्म्म सङ्काश धर्म्माचरण करता है। "धर्म्म करता हूं" समझके कोई अधर्म्म और कोई अधर्म्मकी इच्छा करके भी धर्म्म करता है। मूढ़ जीव उक्त दोनों प्रकारके कर्म्मोंको न जानके बार बार जन्म लेके मृत्युके मुखमें पड़े हैं।

२३४ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, जैसे स्रोतके जरिये बहता हुआ मनुष्य कभी डूबता और कभी उतरके शेषमें नौकाका अवलम्बन करता है, वैसे ही संसार स्रोतमें भासमान पुरुषोंकी यदि वक्ष्यमाण शान्ति नामक कैवल्य प्राप्तिमें अभिलाष हो, तो उनको ज्ञानरूपी नौका अवलम्बन करनी पड़ेगी। जिन सब धीर लोग ध्यानजनित साक्षात्कारके जरिये आत्मनिश्चय किया है, वे लोग ज्ञानरूपी नौकाके सहारे मूर्ख लोगोंको पार किया करते हैं। अज्ञानी लोग जब अपनेको ही किसी प्रकार उत्तीर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब दूसरेको किस प्रकार पार करेंगे, राग आदि दोषोंसे रहित मननशील मनुष्य पुत्र कलत्रादिकोंमें आसक्ति रहित होकर देश, कर्म्म, अनुराग, अर्थ, अनुपाय, अपाय,

नेत्र, आहार, संहार, मन और दर्शन तथा योगकी सहाय, इन बारहोंका अनुसरण करे। जो श्रेष्ठ ज्ञानकी, इच्छा करे उन्हें बुद्धिके सहारे मन और वचनको संयत करना होगा; और जो लोग आत्माकी शान्तिकी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानके सहारे बुद्धिका संयम करें। वाक्य मनके अधिष्ठाता शान्त आत्माको जिन्होंने जाना है, वे चाहे साधु हों, वा असाधु हों, सब वेदके जाननेवाले अथवा अवेदज्ञ हों, धार्म्मिक वा याज्ञिक वा अत्यन्तही पाप करनेवाले हों, पुरुष प्रवर तथा क्लेश युक्तही होवें, वे इस प्रकारके जरा मरण सागर स्वरूप महादुर्गसे अवश्यही उत्तीर्ण होते हैं। पहले कही हुई रीतिसे अनुष्ठान करना तो दूर रहे, जिन्होंने केवल शान्त आत्माको जाननेकी इच्छा की है, वे कर्म्मकाण्ड अतिक्रम करके निवास करते हैं, निज कर्म्मोंको त्यागनेसे दोषग्रस्त नहीं होते। यज्ञादि कर्म्म जिसके ज्ञान सारथीका उपवेशन स्थान है, अकार्य्योंसे निवृत्ति रूपी लज्जा जिसकी रथगुप्ति है, प्रागुक्त उपाय और अपाय जिसकी धुरीदण्ड है, आपण जिसके पहिये हैं, प्राण जिसका जुआ है, प्रज्ञा और आयु जिसका जीव बन्धन स्थान है, सावधानता जिसका बन्धुर अर्थात् दोनों फलकोंका संश्लेष स्थल है, आचार स्वीकार जिसका नेमिस्वरूप दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण, ये चारों जिसके अश्वादिरूपी वाहन हैं; शम, दम आदि प्रबलता जिसकी नाभि, सब शास्त्र ही जिसके कोड़े, शास्त्रार्थ निश्चय ज्ञान ही जिसका सारथी, क्षेत्रज्ञ जिसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और दम जिसका पुरःसर और त्याग जिसका सूक्ष्म अनुचर है, वह शौचाचारसे मालूम होनेवाला ध्यान गोचर धीर मुमुक्षु योजित दिव्य रथ ब्रह्मलोकमें विराजता है। ऐसे रथपर चढ़नेमें शीघ्रतायुक्त होकर जो योगीश्वर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनके पक्षमें शीघ्रगामी अन्तरङ्ग विधि कहता हूं सुनो।

यमनियमादिसे युक्त स्थिर-वचनवाले जो सब धारणा अर्थात् एक विषयमें चित्त लगानेका अभ्यास करते हैं, उसमेंसे विप्रकृष्टतर सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव मण्डल आदि धारणा है, और सन्निकृष्टतर नासाग्र भ्रूमध्य आदि विषय भेदसे विविध धारणा हैं उन्हें प्रशिष्य और प्रपौत्र आदि शब्दकी तरह प्रधारणा कहते हैं। योगी पुरुष उन्हीं सब धारणायुक्त बुद्धिके जरिये क्रमसे पार्थिव जलीय, तैजस, वायवीय और आकाश सम्बन्धीय ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, और क्रम क्रमसे अहङ्कार तथा अव्यक्तका ऐश्वर्य प्राप्त करते है; अर्थात् ब्रह्मादि कार्य्यरूपको निज निज कारणोंमें संहार करके विशुद्धचित्त होकर परमात्माका दर्शन करते हैं; योगमें प्रवृत्त योगियोंके बीच जिस योगीका जैसा विक्रम है अर्थात् जिसका जैसा अनुभव क्रम होता है, वह और देहाभ्यन्तरमें परमात्मदर्शी योगियोंकी सिद्धि अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंके जय करनेका विषय कहता हूं सुनो। प्रति शरीरमें समवस्थित आत्माका वक्ष्यमाण रूप परित्याग अर्थात् गुरुके जरिये उक्त युक्तिके जरिये स्थूल देहका अध्यास छोड़के सूक्ष्मनिबन्धन योगी लोग अन्तःकरणमें उसे देखते हैं, जैसे शिशिर सम्बन्धीय सूक्ष्म धुआं आकाशमण्डलको अवलम्बन करता है, वैसे ही देहके मुक्त हुई आत्माका पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अनन्तर धुएंका ठहराव होनेपर दूसरा रूप दीख पड़ता है, वह आकाशस्थित जलरूपकी भांति देहके भीतर दीखता है, जलका व्यतिक्रम होनेपर लोहितवर्ण अग्निरूप प्रकाशित होता है। और अग्निरूपके शान्त होनेपर वृक्षोंका फेंकनेवाला शाणितशस्त्र सवर्ण वायुका रूप प्रकट हुआ करता है, उस समय ऊर्णतन्तुकी भांति अत्यन्त लघु, और उसहीके समान वायु अवलम्बरहित आकाशमें दावयमान हुआ करता है। अनन्तर वायुका सूक्ष्म स्वरूप मलिनतारहित प्रकाश

मय स्वच्छ आकाशमें लीन होनेपर आकाश मात्र प्रकाशित होता है। ब्रह्मजिज्ञासु योगीके चित्तकी अत्यन्त शुभ्रता और सूक्ष्मताके विषयको शास्त्रकारोंने इस प्रकार कहा है, कि प्रागुक्त प्रकारसे भूमि, जल, अग्नि और आकाश जयके जरिये भूतशुद्धिप्रकार शास्त्रकारके बीच प्रसिद्ध था; अब सम्प्रदाय समूहके अपरिज्ञान निबन्धनसे उसका यथा उचित अनुष्ठान नहीं होता। पूर्व्वोक्त प्रकारसे पञ्चभूतोंको जय करनेसे, जो सब फलोदय होते हैं, वह मुझसे सुनो, योगसिद्ध पुरुषको पार्थिव ऐश्वर्य्यके जरिये इस लोकमें सृष्टिकी सामर्थ उत्पन्न होती है, वह प्रजापतिकी भांति अक्षुब्ध होकर शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है। श्रुतिमें प्रतिपन्न है, कि वायुकी जय कर सकनेसे योगसिद्ध पुरुषको एकमात्र अङ्गुष्ठ अङ्गुलीके जरिये अथवा हाथ पांवके सहारे सारी पृथ्वीको कपानेकी सामर्थ होती है। आकाश जय करनेपर वह आकाशके वर्ण समान होके आकाशकी भांति सर्व्वगत होके प्रकाशित होता है; वर्णके अनुसार क्षय होनेपर भी रूपहीनता निबन्धनसे अन्तर्द्धान शक्ति प्राप्त होती है। जल जय करनेका यही फल है, कि जलको जय कर सकनेसे इच्छानुसार अगस्तकी भांति वापी, कूप, तड़ाग आदि जलाशयोंको पी सकते हैं, आकाश जय करनेसे रूप ही आकाश स्वरूपमें अन्तर्द्धान हुआ करता है। अग्नि जयसे आकृति सलसे भी अदृशल उत्पन्न होता है। अहंकारको विशेष रूपसे जय कर सकनेसे सिद्ध पुरुषके समीप पञ्चभूत ही वशीभूत हुआ करते हैं। पृथ्वी आदि पञ्चभूत और अहंकारकी आत्मभूता बुद्धिको जय कर सकनेसे सिद्ध योगी सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त और सर्व्वज्ञ होता है; दोषरहित प्रतिभा अर्थात् संशय विपर्य्ययसे हीन समस्त ज्ञान उसके समीपवर्त्ती हुआ करते हैं। वह बुद्धादि रूपसे व्यक्त आत्माको अव्यक्त अर्थात् जगत् कारण ब्रह्मभावसे समझता है; जिससे सब लोग विनष्ट होते हैं, उसका ही नाम व्यक्त हुआ करता है, उसके बीच अव्यक्तमयी और व्यक्तमयी विद्या जो कि सांख्य शास्त्रमें विवृत्त हुई है, उसे तुम पहले मेरे समीप विस्तारके सहित सुनो।

मूल प्रकृति प्रभृति पचीस तत्व सांख्य और पातञ्जल शास्त्रमें तुल्यरूपसे जानी गई हैं, उनमें जो विशेष है, वह मेरे समीप सुनो। जिसकी जन्म वृद्धि जरा और मरण है, ऐसे चारों लक्षणोंसे युक्त पदार्थको व्यक्त कहा जाता है और जो इसके विपरीत अर्थात् जन्मादि रहित वस्तु है, वही अव्यक्त रूपसे प्रमाणित हुआ करती है। सांख्य मतवाले दर्शनिक पण्डित लोग चौबीस तत्वोंके अतिरिक्त एक मात्र जीवात्माको प्रति शरीरमें पृथक् समझते है। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त वाक्यमें जीव और ईश्वर उपाधि भेदसे दो आत्मा प्रमाणित हुए हैं; वैदिक कर्म्मकाण्डमें यजमान और यष्टवा भेदसे ऐसा वर्णित है, कि जीव और ब्रह्म स्वतन्त्र है। जन्म आदि विकारयुक्त महत् अहंकार पञ्च तन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्च भूतोंसे उत्पन्न अर्थात् कार्य्य उपाधि चतुर्वर्गार्थी जीवको व्यक्त रूपसे वर्णन किया जाता है और माया उपाधि ईश्वरको अव्यक्त कहा जाता है, ये दोनोंही बुद्धि और अचेतन अर्थात् चिदचिदात्मक है। ऐसा वेदमें वर्णित हैं, कि जल चन्द्र न्यायके अनुसार जीव बिम्ब चैतन्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है। नष्टलबुद्धि और चैतन्य चिदात्मा दोनों ही विषयमे अनुरक्त होते हैं, यह वेदके बीच वर्णित है। घटादि विषयोंसे उत्पत्ति क्रमको विपरीतताके अनुसार बुद्धि चैतन्यका प्रविलापन करना योग्य है, इसे ही साख्य मतवाले बुद्धिमान लोगोंका शास्त्र जानो। उस मतके जीवन्मुक्त पुरुषोंका यही लक्षण है, कि योगी पुरुष ममतारहित और अहंकार सुख

दुःख आदि द्वन्द्व वर्ज्जित और संशयहीन होवें। वे लोग क्रोध वा द्वेष न करें, झूठ वचन न कहें; आकृष्ट अथवा ताड़ित होनेपर भी सब भूतोंमें समदर्शिता निबन्धनसे किसीकी भी अशुभचिन्ता न करें; बचन, कर्म्म और मनसे पुरुषता परित्याग करे। इस ही प्रकार साधु-गुणसे युक्त होकर जो लोग सब भूतोंमें समान ज्ञान करते हैं वे चतुर्मुख ब्रह्माके निकटवर्त्ती होनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे मनुष्य लोकयात्रा निर्व्वाहके लिये स्थित रहके किसी विषयकी अभिलाष नहीं करते और किसी विषयमें अत्यन्त निरिच्छुक भी नहीं होते।

जिन्हें लोभ और दुःख नहीं है जो इन्द्रिय निग्रहमें समर्थ और कार्य्य कुशल हैं, जिन्हें वेशबिन्यास आदि बाह्य आडम्बरमें तुच्छ ज्ञान है, जिनकी इन्द्रियें अनेकाग और मनोरथ बिक्षिप्त नहीं है, जो सत्यसङ्कल्प और सब भूतोंमें अहिंस्र स्वभाव हैं, ऐसे सांख्य योगी मुक्त होते हैं। अब पातञ्जल मतसे मनुष्य जिन जिन कारणोंके जरिये मुक्त होते हैं उसे सुनो।

परम वैराग्य बलसे जिन्होंने अणिमा आदि योग ऐश्वर्य्यको अतिक्रम किया है, वेही मुक्त होते हैं। यही तुम्हारे निकट वक्तृ बिवक्षा विशेष जनित ज्ञानका विषय कहा इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इसी भाति जो लोग सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित होते हैं, वेही परब्रह्मको जान सकते और उसे प्राप्त करते हैं।

२३५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, धीर पुरुष संसार सागरको तरनेवाले साधन शास्त्र और आचार्य्योंके उप-देशसे प्राप्त हुए परोक्ष ज्ञानरूपी शान्ति अव-लम्बन करके संसार सागरमें सदा उन्मग्न और निमग्न होके भी केवल आत्म मोक्षके हेतुज्ञा-नको ही अवलम्बन करें।

शुकदेव बोले, आप जो ज्ञानको अवलम्बन करना कहते हैं वह अवलम्बनीय ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है। रज्जु सर्पकी भांति अज्ञान मात्रके बिनाशसे प्रकृत पदार्थ ज्ञापिका बुद्धि वृत्तिकी निवृत्ति लक्षण ज्ञान कहते हैं; अथवा ध्यानके जरिये भृंगीकीटकी भांति ध्येय सारूप्य रूपक धर्म्म, प्रवृत्ति लक्षण ज्ञानका विषय कहते हैं, उसे वर्णन करिये। जिस प्रकार जीव जन्म मरणसे निस्तार लाभ कर सके आप उसे ही कहिये।

व्यासदेव बोले, "मैं" इस अनुभव विषयमें जड़ और अहंकार कारण रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये मीमांसा मतवाले पण्डित लोग उक्त दोनोंको आत्मा कहा करते हैं। "अहं" पदका अर्थही आत्मा है उसका गुण प्रकाश है, वह भी तीन क्षणमात्र स्थिति करता है, यह तार्किक मत है। सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोग सिद्ध किया करते हैं, कि आत्मा ही नित्य प्रकाश स्वरूप है, अहं पदका अर्थ आत्मा नहीं है। उसके बीच बहुतेरे लोग आत्मा और अनात्मा दोनोंको ही नित्य कहा करते है। अनात्मा ही स्थिर है, देह नाश होनेपर चिदात्माका नाश होता है, यह लोकायतिक नास्तिकोंका मत है। आत्मा ही सत्य पदार्थ है, आत्मासे भिन्न सभी मिथ्या है, यह वेदान्त मतका सिद्धान्त है।

शून्यवादी लोग यह कहा करते हैं, कि आत्मा अनात्मा कुछ भी नहीं है; इसलिये शून्यवादियोंके मतमें यदि आत्माका अभाव हुआ, तब ज्ञानका अनर्थकत्व सिद्ध होगा; इसलिये जो मनुष्य अधिष्ठान सत्ताके बिना स्वभावके जरिये ही अहंकार आदि स्वरूपसे प्रकाशित होरहे है, ऐसा समझके निरधिष्ठाता स्वभाविकी जगदुत्पत्ति अङ्गीकार करता है और युक्ति तथा बुद्धिहीन शिष्योंको उसही प्रकार बोधके सहारे अनुरक्त किया करता है, वह कुछ भी तत्त्व लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता,

सके अधिष्ठानके बिना भ्रमकी सम्भावना न हनेसे शून्यकार नितान्त हेय है। इसके अतिरिक्त जो सब आत्मोच्छेदवादी लोकायतिक नास्तिक लोग एकान्तभावसे ईश्वर और अदृष्टकी सत्ता अस्वीकार करके स्वभावको ही देह आदिकी उत्पत्तिके विषयमें कारण कहा करते हैं, वे लोग ऋषि वाक्य सुनके भी कुछ तत्त्वलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते; अर्थात् वे लोग आचार्य्यकी उपासना न करके ही स्वयं इन सब मतोंकी कल्पना करते हैं। जो सब अल्पबुद्धि मनुष्य स्वाभाविक शून्य जगत् भ्रान्ति और स्वाभाविक शरीरादिकोंकी उत्पत्ति, इन दोनों पक्षोंको अवलम्बन करते है, वे लोग स्वभावको कारण जानके कुछ भी कल्याण लाभ नहीं करते। मोहके कार्य्य मनसे ही स्वभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् मूढ़ लोग मनके जरिये जो कुछ कल्पना करते है, उसे ही स्वभाव कहते है, स्वभावका वक्ष्यमाण लक्षण सुनो। यदि सब-कार्य्य स्वाभाविक ही सिद्ध हों, तो कृषि-कार्य्य आदि सब कर्म्मोंसे ही बुद्धि-कौशलकी अनर्थकता हो सकती है, वह कदापि सम्भावित नहीं है, क्यों कि कृषि आदि सब कार्य्य, शस्य, संग्रह, यान, आसन और गृह आदि बुद्धिमान् मनुष्योंके जरिये सम्पन्न हुआ करते हैं। क्रीड़ा गृह और रोगोंमें औषधी करनेके विषयमें बुद्धिमान् पुरुष ही प्रयोक्ता हैं। ज्ञानवान् मनुष्य ही उक्त सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया करते हैं। बुद्धिकी अधिकता रहनेसे ऐश्वर्य्याधिक्य लाभ होता है। बुद्धिमान ही कल्याणके मार्गको प्रदर्शित करता है। बुद्धिकी अधिकतासे ही अधिक ऐश्वर्य्यशाली राजा लोग बुद्धिबलके सहारे राज्य भोग किया करते हैं। जीवोंके परम श्रेष्ठ चिदात्मा और मायाको बुद्धिबलसे ही जाना जाता है। हे तात! बुद्धि वृत्तिके सहारे परम गति लय स्थानको भी प्राप्त कर सकते हैं। विविध भूतोंका जन्म चार प्रकारसे है, उसके बीच मनुष्य, पशु, आदि जरायुज, पक्षी, सर्प, आदि अण्डज, तृण, वनस्पति, उद्भिज, और यूका, मत्कुण आदिको स्वेदज कहके निश्चय करो। तिसके बीच स्थावरोंसे जङ्गमोंको विशिष्ट जानना चाहिये, विशेष विशेषण करके जो विशेष हो, उसे ही श्रेष्ठ समझो। प्राचीन लोग कहा करते हैं, अनेक चरणवाले जङ्गम जीव दो प्रकारके हैं, तिसके बीच पहले कही हुई रीतिके अनुसार वृक्षादिके दर्शन आदि स्वल रहनेसे भी प्रत्यक्ष दर्शनवाले जङ्गम जीव ही श्रेष्ठ है, अनेक चरणवालोंसे कई तरहके दो पांववाली जाति श्रेष्ठ है, दो पांववाली जाति भूचर मनुष्य आदि है और खेचर पक्षी आदि भेदसे दो प्रकारके है, उसमेंसे खेचरसे भूचर मनुष्य आदि श्रेष्ठ हैं क्यों कि वे लोग अन्न भोजन किया करते हैं। मनुष्य जाति दो तरहकी है, मध्यम और उत्तम तिसके बीच जातीय धर्म्मके आचरण निबन्धनसे मध्यम ही श्रेष्ठ है; मध्यममें फिर दो भेद हैं, एक धर्म्मज्ञ, दूसरे इतर, तिसमेंसे कार्य्याकार्य्य कर्त्तव्यका निश्चय करनेसे धर्म्मज्ञ ही उत्तम हैं, धर्म्मज्ञ पुरुष दो प्रकारके हैं, वेदज्ञ और तदितर, उसमेंसे वेद जानने वाले पुरुष ही उत्तम है, क्यों कि वेद इन सबमें ही प्रतिष्ठित होरहा है। वेदज्ञ पुरुष दो तरहके हैं, प्रवक्ता और तदितर, उसके बीच सब धर्म्मोंके धारण निबन्धनसे प्रवक्ता ही उत्तम है। धर्म्म और क्रियाफलके सहित जो लाग सब वेदोंको जानते है और धर्म्मके सहित सब वेद जिससे प्रकट हुए हैं, उन प्रवक्तागणको आत्मज्ञ और तदितर भेदसे फिर दो प्रकार कहा जाता है, उसके बीच जन्म और मोक्ष ज्ञान निबन्धनसे आत्मज्ञ-पुरुष उत्तम हैं। जो प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षणयुक्त दोनों प्रकारके धर्म्मको जानते हैं, वही धर्म्मज्ञ हैं, वेही धर्म्मवित् हैं, वेही त्यागशील, सङ्कल्प, सत्यनिष्ठ, शुचि और सर्व्वकर्म्ममें स-

ब्रह्मज्ञान विषयमें जिसकी प्रतिष्ठा है, वेद शास्त्रोंमें जिसकी निष्ठा होरही है, और दूसरे शास्त्रोंमें जो लोग कृतनिश्चय हुए हैं, उन्हें देवताभी ब्राह्मण समझते हैं। हे तात! जो सब ज्ञानवान् मनुष्य यज्ञादिदैवत आत्माको अन्तस्थ और बाह्यरूपसे देखते हैं, वेही द्विज और वेही देवस्वरूप हैं, ऐसे आत्मज्ञ पुरुषोंमें ही ये सब भूत और समस्त जगत् प्रतिष्ठित होरहा है; उन लोगोंके माहात्म्यके समान और कुछ भी नहीं है। आदि अन्तसे रहित और सब तरहके कर्मोंको अतिक्रम करके स्थित, चारों प्रकारके भूतोंके स्वयम्भू सब तरहसे ईश्वर हैं।

२३६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, यह ब्राह्मणोंकी नित्य-वृत्ति विहित हुई है, ज्ञानवान् ब्राह्मणही कर्म्म करते हुए सर्व्वत्र सिद्धि लाभ किया करते हैं, कर्म्म-विषयमें यदि संशय न हो, तो वह निःसंशयरूपसे किया गया कर्म्मही सिद्धिका हेतु हुआ करता है; परन्तु कर्म्मका क्या लक्षण है, ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर ज्ञान वा ज्ञानजनक कर्म्मको यदि कर्म्म कहा जावे, तब उसे वेदविधि कहके अङ्गीकार करना होगा; इसलिये उत्पत्ति और उपलब्धिके जरिये उभयत्र कर्म्मकी प्रधानता कहता हूं सुनो।

कोई कोई मनुष्य इस जन्म और जन्मान्तरमें किये हुए कर्म्मको ही प्रधान कारण कहा करते हैं, दूसरे लोग दैवको ही कारण रूपसे वर्णन करते हैं; कितनेही लोग स्वभावकोही कारण कहते हैं। पौरुष और दैवकर्म्म स्वभावके अनुगत होकर फलदायक होते हैं; कोई कहते हैं, ये प्रत्येक पृथक् पृथक् कारण न होकर एक ही प्रधान रूपसे कारण हुआ करते हैं; दूसरे लोग कहते हैं इनका समुच्चय ही कारण है। आर्हत मतवाले घट पट आदि विषयोंको अस्ति भी कहते हैं, और नास्ति मानते हैं; "अस्ति नास्ति" यह दोनों ही का[...] हैं, और "अस्ति यह भी नहीं है," "नास्ति भी नहीं है,"—ऐसा ही कहा करते हैं, पर[न्तु] योगी लोग परब्रह्मको ही सर्व्व कारण स्वरू[प] दर्शन करते हैं। त्रेता, द्वापर और कलियुग[में] जो सब पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें पापा[नु]बन्धनसे श्रौतमतमें सदा ही संशय हुआ कर[ता] है, परन्तु सतयुगमें उत्पन्न हुए योगनिष्ठ [...] लोग सदा ही संशयरहित होते हैं। [...] सब कोई ऋक्, यजु, साम, इन तीनों वेदोंमें [...] न देखके काम और द्वेष आदिको दूर कर[के] केवल ज्ञानकी ही उपासना करते थे। जो [...] तपस्यारूपी धर्म्मसे युक्त तपमें रत और संशि[त]व्रती होते हैं, वे मनहीमन जैसी [...] करते हैं, तपोबलसे वह सब पा सकते हैं। जीव तपोबलसे ब्रह्म स्वरूप होकर जगत[की] सृष्टि करता है तपस्याके सहारे उस ब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, और ब्रह्मस्वरूप होनेपर भूतोंके ऊपर प्रभुता करनेकी सामर्थ हुआ करती है। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, वेद वाक्यके बीच यद्यपि ब्रह्मस्वरूप वर्णित हुआ है, तौभी वह अत्यन्त गहन है, ऐसा ही क्यों; वह वेदज्ञ पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है; वेदान्त दर्शनमें एकमात्र विद्याके सहारे ब्रह्मको जाना जाता है, यही केवल व्यक्त रूपसे वर्णित हुआ है; भावनात्मक कर्म्म योगके जरिये ब्रह्मको लक्ष्य नहीं किया जाता। क्षत्रियोंकी पशु हिंसा, वैश्योंकी कृषिकर्म्म, शूद्रोंकी तीनों वर्णोंकी सेवा और ब्राह्मणोंकी ब्रह्मोपासना[ही] यज्ञ-स्वरूप है। जिन लोगोंने स्वगार्ह[स्थ्य] वेदाध्ययनके जरिये सब कार्य्योंको समाप्त कि[या] है, वे ही द्विज होते हैं; जो सब भूतोंमें सम[-] दर्शी हैं, वे दूसरे कर्म्म करें वा न करें उन[को] ही ब्राह्मण कहा जाता है। सतयुग और त्रेता[-] युगमें सब वेद यज्ञ और वर्णाश्रम थे, द्वापर[...]

गमें मनुष्योंकी अल्प आयु होनेसे सब वेद आदि लुप्त होते चले आते हैं। द्वापर और कलियुगमें सब वेद नष्टप्राय होते हैं द्वापरमें सब वेद दीखते हैं, कलियुगमें सब न दीखेंगे। कलियुगमें अधर्मसे पीड़ित होकर धर्म्म और गऊ भूमि, जल और औषधियोंका रस नाश होरहा है। सब वेद वेदोक्त धर्म्म, स्वधर्म्मस्थ आश्रम और स्थावर तथा जङ्गम जीवन अधर्म्मके जरिये अन्तर्हित होकर विकृतभाव लाभ करता है। जैसे वर्षा पार्थिव भूतोंको पुष्टिसाधन करती है, वैसे ही वेद युगयुगमें वेद पढ़नेवालोंको पुष्टिसाधन किया करता है। जिसका अनेकाल और अनादि निधनत्व निश्चित है, और जो प्रजासमूहके प्रभव और प्रलयका कारण है, उसे मैंने पहले वर्णन किया है। जो काल, जीवोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान और अन्तर्यामी है; जिसमें सुख दुःख आदि द्वन्द्वयुक्त बहुतसे जीवस्वभावसे ही निवास करते हैं, उस कालका विषय भी कहता हूं। हे तात! तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसही सृष्टि, काल, सन्तोष, सब वेद, कर्त्ता कार्य्य और क्रियाके समस्त फलको वर्णन किये।

२३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेवने महर्षि वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष धर्म्मार्थयुक्त इस वक्ष्यमाण वचनको पूछनेकी इच्छा की।

शुकदेव बोले, बुद्धिमान आत्रिय विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले क्रूदप्रज्ञ और अनुसूयक ब्राह्मण प्रत्यक्ष और अनुमानके जरिये अज्ञात तथा अनिर्देश्य ब्रह्मको किस प्रकार जान सकते हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वत्याग अथवा धारणायुक्त बुद्धिके जरिये यदि उसे जाना जाय और उसका विषय सांख्य वा पातञ्जल-शास्त्रमें निरूपित रहे, तो मैं उसे पूछता हूं, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। मनुष्य जैसे उपायके जरिये मन और इन्द्रियोंको उस प्रकार एकाग्रता लाभ करें, आप उसकी ही व्याख्या करिये।

व्यासदेव बोले, विद्या तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और सर्व्व संन्यासके बिना कोई भी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ नहीं है। सब महाभूत स्वयम्भू ईश्वरकी प्रथम सृष्टि हैं, प्राणिसमूहों तथा शरीराभिमानी मूढ़ जीवोंमें वह भूयिष्टरूपसे निविष्ट हैं शरीरधारियोंके भूमिसे देह, जलसे स्नेह, अग्निसे दोनों नेत्र, वायुसे पञ्चप्राण और आकाशसे अवकाश भाग हुआ करता है। पातञ्जल मतसे आत्मा केवल सुख दुःखका भोक्ता है, कर्त्ता नहीं है। सांख्य मतसे आत्मा भोक्ता वा कर्त्ता कुछ भी नहीं है; इसलिये सांख्य मतके सिद्धान्तसे पातञ्जल मत इस प्रकार दूषित होता है, कि पादेन्द्रियके देवता विष्णु, हाथके अधिष्ठाता इन्द्र हैं, अग्नि उदरके भीतर रहके भोजनकी इच्छा किया करती है। सब दिशा श्रवणेन्द्रियकी देवता है, और वागिन्द्रियकी, अधिष्ठात्री सरस्वती है। जैसे सेना राजकीय रथ शकट आदिको चलाया करती है और जैसे राजा अभिमानके वशमें होके अपनेमें सेनाकी ह्रास वृद्धि आदि आरोपित करता है, वैसे ही चिदात्मा इन्द्रिय और उसके अधिष्ठात्री देवतागत भोक्तृत्व स्वच्छत्व आदिको अविद्याके वशमें होकर आत्मामें आरोपित कराया करता है अर्थात् "मैं भोगवान मैं स्वच्छ हूं" इत्यादि वचन आरोपमात्र है। जैसे सेनाकी पराजय होनेसे राजाकी हार होती है, वैसे ही विष्णु आदि अधिष्ठात्री देवता लोग भी भोक्ता नहीं हैं, आत्मामें अविद्याके कारण भोक्तृत्व भान हुआ करता है, वास्तवमें आत्मा कर्त्ता वा भोक्ता नहीं है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पांचो शब्द आदि ज्ञान साधनके निमित्त द्वाररूप हैं दर्शनीय इन्द्रिय नामसे वर्णित हुआ करते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचों इन्द्रिय विषयोंको सदा ही इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र जानना चाहिये। जैसे सारथी घोड़ोंको वशमें करके नियमित करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको सदा कार्य्योंमें नियुक्त किया करता है, और अन्तःकरण उपाधिक जीव सदा मनको नियमित करता है। जैसे मन सब इन्द्रियोंको उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है, वैसेही हृदयमें स्थित जीव चैतन्य मनकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ है, इन्द्रियें, इन्द्रियोंके विषय, वाह्य वस्तुयें सर्द्दी, गर्म्मी आदि धर्म्म स्वरूप स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और चैतन्य देहधारियोंके हृदय गुफाके बीच सदा ही वर्त्तमान है। प्रागुक्त देह बुद्धिका अवलम्ब है, ऐसा सम्भव नहीं होता; स्वप्नकालके शरीरकी भांति उक्त देहका केवल भान मात्र हुआ करता है; इसलिये सत, रज, तम यह त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति ही बुद्धिका अवलम्ब है, चेतना बुद्धिका अवलम्ब वा स्वरूप नहीं है, क्यों कि बुद्धि ही वासनाओंको उत्पन्न करती है, गुणोंको उत्पन्न करनेके विषयमें बुद्धि कभी कारण नहीं है। इस ही प्रकार चिदात्मा इन्द्रियादि षोड़श गुणोंके जरिये पूरित होकर देहमें निवास करता है। मनको निग्रह करनेवाले ब्राह्मण मनके जरिये बुद्धिसे आत्माको देखते हैं इस आत्माको नेत्रसे नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियोंके सहारे भी उसे जाननेकी सामर्थ नहीं होती; महान आत्मा मानस प्रदीपके जरिये प्रकाशमान होता है। वह न शब्द है, न स्पर्श है; न रूप है, न रस है और न गन्ध ही है; वह अव्यय और इन्द्रिय रहित है, उसके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं हैं, तौभी उसे शरीरके बीच देखे। मरण धर्म्मयुक्त समस्त शरीरोंमें जो अव्यक्त रूपसे निवास करता है, उसे जो पुरुष गुरुवचन और वेदवाक्यके अनुसार अवलोकन करता है, शरीर त्यागनेके अनन्तर उसका ब्रह्मके सङ्ग निर्व्विशेष भाव लाभ होता है। पण्डित लोग विद्वान सतकुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण और गऊ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें ब्रह्मदर्शन किया करते हैं, जिसने यह सब जगत् बनाया है, वह एक ही महान् आत्मा स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें स्थिति करता है। हृदयाश्रित जीव जब सब भूतोंमें आत्माको परिपूर्ण देखता है, और निष्कलङ्क आत्मामें सब भूतोंको लीन देखता है, उस समय उसे ब्रह्मत्व लाभ होता है। वेदके आत्मशब्द स्वरूपसे जितने देश वा कालका प्रमाण होता है, जीवात्मा उतने ही देशकालके अनुसारसे अधिष्ठान भूत स्व-स्वरूप परमात्मामें प्रतिष्ठित होता है। जो सदा इस ही प्रकार ध्यान करते है, वे अमृत लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। सब भूतोंके हितमें रत पदरहित योगीके पदकी अभिलाषी होके उसके अन्वेषणमें देवता भी मोहित हुआ करते है। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें मछलियोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, ब्रह्मज्ञानियोंकी गति भी वैसी ही है। काल स्वय अपनमें सब भूतोंका परिणाम करता है, परन्तु काल जिसमें परिणत होता है, इस जगतमें कौन पुरुष उस परमात्माको जान सकता है। मुक्त स्वरूप परब्रह्मको ऊपर, नीचे, तिर्य्यग् और मध्यदेशो भेदसे किसी स्थानसें भी किसी भांति नेत्र आदि इन्द्रियोंके विषय करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। यह समस्त लोग उस मुक्त स्वरूपके अन्तर्गत हैं; इन सब लोगोंका कुछ भी वाह्यज्ञान नहीं है। मनके समान शीघ्रगामी होकर यदि कोई मनुष्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी भांति निरन्तर गमन करे, तौभी वह परम कारणका अन्त देखनेमें समर्थ न होवे। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, और उससे स्थूल और कुछ भी नहीं है। उस परम कारण परब्रह्मके हाथ, पांव सब दिशामें ही विद्यमान हैं, उनके नेत्र सिर और

मुख सब तरफ ही प्रकाशमान हैं, वह समस्त जगत्को परिपूरित करके निवास कर रहा है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं, वह सदा निश्चल भावसे निवास करता है, तौभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता, अक्षर और क्षर रूपसे आत्माका द्वैधीभाव है, वह जो स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें बिनाशि जड़रूपसे निवास करता है वही क्षर स्वरूप और दिव्य अमृत अविनाशी चैतन्य ही अक्षर स्वरूप है। अचञ्चल उपाधि दोषके जरिये अनभिभूत स्थावर जङ्गम सब भूतोंके नियन्ता ईश्वर, महत्-अहंकार, पञ्चतन्मात्र, अविद्या और कर्म्म, ये अहंकार धर्म्म कामके नवद्वारसे युक्त गृहमें गमन करते हैं, इसहीसे वह हंस नामसे वर्णित होता है। तत्वदर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि जन्म रहित ईश्वरके शरीरमें भीतर गये हुए पहले कहे हुए महदादि सम्बन्धीय हानि अंग और विविध कल्पनाके सग्रह निबन्धनसे हंसत्वकी सिद्धि होती है। 'हंस' इस पदसे जो अक्षर ब्रह्म कहा जाता है, कूटस्थ चैतन्य भी वही अक्षर ब्रह्म है इसमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये तत्वज्ञानी मनुष्य उस अक्षर ब्रह्मको जानके प्राण और जन्म परित्याग करते हैं, अर्थात् जन्मके कारण अविद्याके बिनाश निबन्धनसे वह कैवल्य लाभ किया करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हे सत्पुत्र! तुमने जो सांख्यज्ञान संयुक्त ज्ञानका विषय पूछा था, मैंने उसे प्रकृत रूपसे यथावत् वर्णन किया; अब योगक्रियाका जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे तात! बुद्धि, मन, इन्द्रिय और सर्व्वव्यापी आत्माका एकत्व ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है; चित्त जीतनेवाले, दान्त, अध्यात्म विषयोंके अनुशीलन युक्त आत्माराम यम नियममें निष्ठावान् शास्त्र तत्वज्ञ पुरुषको आचार्य्यके मुखसे उक्त ज्ञानके विषयको जानना उचित है। काम, क्रोध, लोभ, भय, और स्वप्न, इन पाचोंको पण्डित लोग योगदोष कहा करते है; धीर पुरुष ऊपर कहे हुए पांचो दोषोंको नष्ट करके शम गुणके जरिये क्रोधको जीतते हैं। सङ्कल्पको त्यागके कामको बिजय करनेमें समर्थ होते हैं और बुद्धिके अनुशीलनसे निद्राका नाश करनेके योग्य हुआ करते है; धैर्य्यके जरिये व्यभिचार आदिसे शिश्न और उदरकी रक्षा करते हैं; नेत्रसे काटे आदिकोंसे हाथ पावकी रक्षा करनेमें सावधान रहते हैं, मनके जरिये पर-स्त्री दर्शन आदिसे नेत्र और कानकी सावधानता सम्पादन करते हैं, यज्ञादि कर्म्मोंसे बुरी चिन्तासे मन और वचनकी रक्षा किया करते हैं; अप्रमादसे भय और प्राज्ञ पुरुषोंकी सेवा निबन्धनसे दम्भ परित्याग करते हैं। योगी लोग सदा अतन्द्रित होकर इस ही प्रकार पूर्व्वोक्त योग दोषोंको जय करें, अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करें, देवताओंके निकट प्रणत होवें; हिंसायुक्त मनको भङ्ग करनेवाले अमङ्गल वचन त्याग दें। प्रधान बीजभूत प्रकाशात्मक सतोगुण प्रधान महत्तत्व ही ब्रह्मस्वरूप है। ये सब स्थावर, जङ्गम, जीव जिस बीचके सारस्वरूप है; वही समस्त जगत् निरीक्षण करता है। ध्यान, अध्ययन, सत्यवचन लज्जा, शीतलता सरलता, क्षमा, शौच, शुद्ध आचार और इन्द्रियनिग्रह, इन सबके जरिये सत्त्वोत्कर्ष होनेपर तेजकी बढ़ती और पाप नाश होता है। जो लोग ऐसा आचरण करते हैं उनकी सब कामना सिद्ध होती और तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। जो योगी सर्व्वभूतोंमें समदर्शी यदृच्छा लाभसे सन्तुष्ट, पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाले और जितेन्द्रिय होवे, वह काम, क्रोधको वशमें करके महत्त-

लके आस्पद लय स्थान प्रकृतिको वशमें करनेकी अभिलाष करें ; समाहित होकर मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता सिद्ध करके पूर्व्वरात्रि और अपर रात्रिके अर्द्धभागमें बुद्धिमें मनको धारणा अर्थात् सङ्कल्पात्मक मनका निरोध करे। पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवका एक ही इन्द्रिय छिद्र यदि चरित् हो, तो चर्म्ममय कोषके छिद्रसे जल निकलनेकी तरह उसकी शास्त्र जनित बुद्धि विषय प्रवणता निबन्धनसे क्षीण हुआ करती है। जैसे मत्स्यजीवी मछुवाहे जाल दंशन करनेमें समर्थ मछलीको अगाड़ो बांधते हैं, वैसे ही योगवित् यती पहले मनको निग्रह करे, अनन्तर कान, नेत्र, जीभ और नासिकाको संयम करके उन्हें मनके बीच स्थापित करनेमें यत्नवान होवे, अन्तमें जब मन सब सङ्कल्पोंको परित्याग करे। योगी पुरुष पञ्च इन्द्रियोंको ध्येय वस्तुकी ओर ले जा करके मनमें स्थापन करनेमें यत्नवान होवे। जब मनके सहित पञ्चइन्द्रिय बुद्धिके बीच स्थिति करके लयको प्राप्त होकर संङ्कल्प जनित कलुषता परित्याग करती हैं; तब उस निर्म्मल अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाशमान होता है। धूम रहित अग्नि प्रकाशमान सूर्य्य और आकाशमें स्थित बिजलीकी अग्निकी भांति उस समय आत्मा बुद्धिके बीच दीख पड़ता है। उस समय उस महान् आत्मामें अहंकार आदि सब विकार दिखाई देते हैं, और वह भूमात्मा कारण रूपसे सर्व्वव्यापक होनेसे सर्व्वत्र दीखती है। जो सब महानुभाव मनीषी ब्राह्मण लोग धृतिमान महाप्राज्ञ और सब भूतोंके हितमें रत हैं, वेही उस आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। योगयुक्त पुरुष पूर्णरीतिसे तीक्ष्ण नियम अवलम्बन कर अकेले निर्ज्जन स्थानमें बैठके छः महीनेतक ऐसा ही आचरण करनेसे मुक्त हुए शुद्ध आत्मस्वरूपकी समता लाभ करते हैं। तत्त्ववित योगी लय, विक्षेप कषाय, घ्राण, श्रवण, दर्शन, रस, स्पर्श, शीत, उष्ण, शीघ्रगति, समस्त शास्त्रार्थभान और दिव्य अङ्गना आदि अद्भुत विषयोंको योगबलसे प्राप्त करके अन्तमें उन सबका अनादरकर बुद्धिके बीच उन्हें संहार करें ; क्यों कि बुद्धि कल्पित विषयोंका बुद्धिमें ही लय होना योग्य है। प्रातःकाल पूर्व रात्रि और अपर रात्रिमें नियमनिष्ठ योगी पहाड़की शिखर बद्धमूल वृक्षके नीचे अथवा वृक्षके पुरोभागमें योगाभ्यास करे। वह इन्द्रियोंको सब तरहसे नियमित करके इस प्रकार हृदय पुण्डरीकमें एकाग्र भावसे नित्य वस्तुकी चिन्ता करे, जैसे धनकी प्राप्तिमें रत विषय लोभी मनुष्य धनकी चिन्ता करता है; योगसे कभी मनको उद्विग्न न करे। योगयुक्त उपायसे चञ्चल चित्तको पूर्णरीतिसे नियमित करनेमें समर्थ होवे, उस ही उपायको अवलम्बन करे, उससे कभी विचलित न होवे ; वह एकाग्र होकर जनशून्य गिरिगुफा, देवस्थान और सूने गृहमें वास करनेकी इच्छा करे। ऐसा योगी पदी परिग्रह न करे, केवल मन, वचन और कर्म्मसे सब विषयोंमें उपेक्षा करते हुए यताहारी होकर प्राप्त और अप्राप्त विषयोंमें समदर्शी होवे। जो पुरुष ऐसे योगीको अभिनन्दित करता है, अथवा जो पुरुष उसकी निन्दा करे, वह उन दोनोंके शुभाशुभकी चिन्ता न करे। योगी पुरुष लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट न होवें, वह वायुके समान धर्म्मात्मा होकर सब भूतोंको समभावसे देखें। इस ही भांति छः महीनेतक नित्य योगयुक्त सर्व्वत्र समदर्शी स्वस्थचित्तवाले साधु पुरुषोंके निकट शब्द ब्रह्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है। मृत, पिण्ड पत्थरके टुकड़े और सुवर्णमें समदर्शी योगी प्रजासमूहकी पीड़ासे आर्त्त देखकर इस प्रकारके योगमार्गसे विरत और मोहित न होवें ; बल्कि वित्त उपार्ज्जन आदिसे विरत रहें, नीच वर्ण शूद्र भी यदि इस मार्गमें पदार्पण करे

और धर्म्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री भी यदि योगाभ्यासमें रत होवें, तो वे भी इस योग अवलम्बनके जरिये परम गति पावें। साधु लोग मन और बुद्धियुक्त निश्चल इन्द्रियोंके जरिये जो जन्मरहित जरा विवर्ज्जित प्राचीन सनातन पुरुषको लक्ष्य करते हैं; वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, चित्त जय करनेवाले योगी उस मुक्त स्वरूपको बुद्धिबलसे देखा करते हैं। महानुभाव महर्षियोंके यथावत वर्णित यह वाक्य गुरुवचनके समान शब्द और अर्थसे जानके उसे स्वयं युक्तिके जरिये परीक्षा करके शुद्धचित्तवाले मनीषि लोग भूतसंप्लव पर्य्यन्त चतुर्मुखकी समताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रलयकालतक ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके सहित समान भोगके भागी हुआ करते हैं।

२३९ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, वेदवाक्यके बीच "कर्म्म करो और कर्म्म परित्याग करो," यह जो विधि निषेध है, उसमेंसे विद्याके जरिये लोग किस ओर गमन करते हैं, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये। परस्पर वैरूप्ययुक्त ये दोनों मार्ग प्रतिकूल भावसे वर्त्तमान है।

भीष्म बोले, पराशरनन्दन वेदव्यासने पुत्रका ऐसा वचन सुनके उसे यह उत्तर दिया,—हे तात। कर्म्ममय और ज्ञानमय, नश्वर और अविनश्वर दोनों पथके विषयकी व्याख्या करता हूं; सब लोग विद्याके सहारे जिस ओर गमन करते हैं, तुम एकाग्रचित्त होकर उस विषयको सुनो, इन दोनोंका अन्तर आकाशकी भांति अत्यन्त गम्भीर है। आस्तिक लोग "धर्म्म है" ऐसा वचन कहते हैं, नास्तिक लोग "धर्म्म नहीं है" ऐसा कहा करते हैं। उसके बीच नास्तिक और आस्तिकके तारतम्य पूछनेसे आस्तिकके पक्षमें वह जिस प्रकार क्लेशयुक्त होजाता है, मेरे पक्षमें भी यह उस ही प्रकार होरहा है, सब वेद जिसमें प्रतिष्ठित होरहे हैं, वह मार्ग दो प्रकारका है; प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म और निवृत्ति लक्षण धर्म्म उत्तम रीतिसे वर्णित है।

जीव कर्म्मके जरिये बद्ध होता और विद्यासे मुक्त हुआ करता है, इसलिये तत्वदर्शी योगी लोग कर्म्म करनेमें अनुरक्त नहीं होते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके जरिये मरनेके अनन्तर फिर शरीर धारण करता है और विद्वान् पुरुष ज्ञानके जरिये नित्य अव्यक्त अव्यय स्वरूपसे प्रकट होते हैं, कोई कोई अल्पबुद्धिमें रत मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, इस हीसे वे स्त्री, पुत्र आदि परिवारमें आसक्त होकर कर्म्मकी ही उपासना करनेमें रत होते हैं, जो सब धर्म्ममें निपुण मनुष्योंने श्रेष्ठबुद्धि लाभ की है, वे इस प्रकार कर्म्मकी प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीके जलको पीनेवाले मनुष्य कूएंका पानी पीकर उसकी प्रशंसा नहीं करते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके फल सुख, दुःख और जन्म, मृत्यु पाते हैं, और ज्ञानी लोग विद्याके सहारे उस स्थानको पाते हैं, जहां पर जानेसे शोक नहीं करना पड़ता; वहां पर जानेसे जन्म और मृत्यु नहीं होती और फिर दूसरी बार जन्म नहीं लेना पड़ता। जिस स्थानमें विशेष विज्ञानभावसे जीव लयको प्राप्त होता है, जिस स्थानमें अव्यक्त, अचल, नित्य, अविस्पष्ट, अक्लेश, अमृत, अवियोगी परब्रह्म विराजमान है; जिस स्थानमें सुख दुःख और मानस कर्म्मोंसे कुछ बाधा नहीं होती वहां सब भूतोंमें समदर्शी और सब प्राणियोंके हितमें रत महात्मा लोग निवास किया करते हैं।

हे तात। विद्यामय पुरुष स्वतन्त्र हैं, और कर्म्ममय पुरुष स्वतन्त्र हैं; कर्म्ममयके बीच सत्वलराख्या प्रजापति श्रेष्ठ हैं। प्रति

घटती बढ़तीयुक्त और अमावस्या तिथिमें सूक्ष्म कलासे स्थित चन्द्रमाकी भांति कर्म्ममय पुरुषोंकी ह्रास वृद्धि हुआ करती है। बृहदारण्यकदर्शी याज्ञवल्क्यने आकाशमें बक्रतन्तुकी भांति स्थित नवीन चन्द्रमाको देखकर इस विषयमें बहुतसी युक्तिपूरित उक्ति प्रकाश की है वह उनके बचनके जरिये अनुमित होती है। हे तात। मनके सहित दशों इन्द्रिय; ये एकादश विकारात्मा कलाके सहित उत्पन्न मूर्त्तिमान विराजमान चन्द्रमाको कर्म्म-गुणात्मक समझो। कमल पुष्पके बीच जलकी बूंद समान वह जीव उपाधियुक्त मनके बीच जो द्योतमान चित्प्रकाश संश्रित होरहा है, और उस योग निरुद्ध चित्त जीवको क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। तम, रज और सत्व, इन तीनों गुणोंको विज्ञानमय किसी जीवका गुण जानना चाहिये। विज्ञानमयको आत्मगुण अर्थात् चिदाभास गुण चैतन्य उससे युक्त समझे; चिदाभास आत्माको परमात्माके गुण ज्ञान और ऐश्वर्य्य आदिसे संयुक्त जाने। शरीर स्वयं अचेतन होनेपर भी जीवके गुण चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर हाथ पांव चलाते हुए जीवित होता है। जिन्होंने भुर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों भुवनको बनाया है, पण्डित लोग उसे ही जीवसे परम श्रेष्ठ कहा करते हैं।

२४० अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, प्रकृतिसे चौबीस तत्त्वात्मक जो साधारण सृष्टि है, उसे और विषययुक्त इन्द्रियों तथा बुद्धिकी सामर्थ आदि जो कुछ असाधारण उत्तम सृष्टि है, वह भी आत्माकी सृष्टि है,—यह मैंने सुना। सम्प्रति इस लोकमें युगके अनुसार जो सब सद्व्यवहार प्रचलित है, जिसके जरिये साधु लोग उसके आचरणमें प्रवृत्त होते हैं, मैं फिर उस विषयको सुननेकी । करता हूं। वेदके बीच कर्म्म करने और कर्म्म परित्यागका बचन वर्णित है; परन्तु इन दोनोंके अविरोध विषय विभागके जरिये बिचार कर किस प्रकारसे मालूम करूं, आप इस होकी व्याख्या करिये मैं गुरुके उपदेशसे धर्म्माधर्म्म मूलक लौकिक रीतिको यथार्थ रीतिसे जानके धर्म्मानुष्ठानके जरिये पवित्र होकर और बुद्धिका संस्कार करके देह छोड़ कर अव्यय परमात्माका दर्शन करूंगा।

व्यासदेव बोले, कर्म्मके सहारे बुद्धिका संस्कार करनेसे आत्मदर्शन हुआ करता है, पहले प्रजापतिने स्वयं इस व्यवहारका विधान किया है, और पहलेके साधु महर्षि लोग भी वैसा ही आचरण कर गये हैं। परमर्षि लोग ब्रह्मचर्य्यसे सब लोकोंको जय किया करते हैं जो मनके जरिये बुद्धिसे अपने कल्याणकी इच्छा करें, वे बनवासी और फलमूलभोजी होकर अत्यन्त तपस्याचरण करके पवित्र आश्रमोंमें बिचरते हुए सब भूतोंमें दयायुक्त होकर धूप रहित मूषक शब्द बर्जित वाणप्रस्थ आश्रममें यथा समय भिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मत्व लाभ कर सकेंगे। तुम निस्तुति और निर्नमस्कार होके शुभाशुभ परित्याग कर जिस किसी वस्तुसे होसके, उस होसे तृप्ति लाभ करके बनके बीच अकेले ही बिचरो।

शुकदेव बोले, "कर्म्म करो, और कर्म्म परित्याग करो," ये वेद बचन जो लौकिक बचनसे बिरुद्ध होरहे हैं, इन दोनोंके प्रमाण वा अप्रमाण विषयमें किस प्रकार शास्त्रत्वकी सिद्धि हो सकती है। इससे पूर्व्वोक्त तीनों बचनोंके प्रमाणकी सिद्धिके लिये व्यवस्था करनी उचित है। उन दोनों वाक्योंका ही किस प्रकार प्रमाण हो और सब कर्म्मोंके अविरोधसे किस प्रकार मोक्ष हुआ करता है, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, "योजनगन्धापुत्र महर्षि वेदव्यासने कर्म्मके जरिये चित्तशुद्ध करके आत्माका

दर्शन करूंगा,"—अपरिमित तेजसेयुक्त निज पुत्रके इस बचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उसके पूर्व्व प्रश्नके अनुसार बच्यमाण रीतिसे यह उत्तर दिया।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचारी, गृहस्थ बाणप्रस्थ और भिक्षुक ये सब निज आश्रम विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेसे मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, अथवा जो लोग द्वन्द्वसे रहित होके अकेले ही इन चारों आश्रमोंका विधिपूर्व्वक अनुष्ठान करते हैं, वह ब्रह्मविषयमें ज्ञानवान् होनेके योग्य हुआ करते हैं। ब्रह्म-प्राप्तिके विषयमें यह चतुष्पदी अधिरोहिणी प्रतिष्ठित है, इस ही निःश्रेणीमें चढ़के लोग ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ब्रह्मचारी असूयारहित और धर्म्मार्थवित् होकर परमायुके चौथे भागके पहले भागमें गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप बास करे। गुरुके गृहमें जघन्य शय्यापर शयन करते हुए पहले उठके शिष्य अथवा सेवकका जो कुछ कार्य्य हो, वह सब सम्पन्न करे; कर्त्तव्य कर्म्मोंके सिद्ध होने पर गुरुकी बगलमें खड़ा रहे, सब कार्य्य जाननेवाला सेवक और सब कर्म्मोंका करनेवाला होवे। शेष कर्म्मोंको समाप्त करके ज्ञानकी इच्छा करनेवाला शिष्य गुरुके समीप पढ़े; सरल और अपवादरहित होवे; गुरुके आवाहन करनेसे उसका आश्रय ग्रहण करे; पवित्र निपुण और गुणयुक्त होकर बीच बीचमें प्रियबचन कहे। जितेन्द्रिय और सावधान होकर स्निग्ध नेत्रसे गुरुको देखे। जबतक गुरु भोजन कर न चुकें, तबतक भोजन न करे, उनके बिना जल पीये, जल न पीवे, बिना बैठे उपविष्ट न होवे और बिना निद्रित हुए शयन न करे। दोनों हाथोंको नीचे ऊपर करके गुरुके दोनों पावोंको कोमलभावसे स्पर्श करे, दहने हाथसे दहने पांव और बायें हाथसे बायें चरणकी बन्दना करे। गुरुको प्रणाम करके कहे, हे भगवन्! शिष्यको शिक्षा-दान करिये; मैं यह करूंगा, इसे किया है; हे भगवन्! दूसरी बार आप जो आज्ञा करेंगे, वह भी करूंगा, इसी प्रकार सब विषयोंमें आज्ञा लेकर और बिधिपूर्व्वक निवेदन करके सब कार्य्य करे, कार्य्य समाप्त करके फिर गुरुके समीप सब विषयोंका निवेदन करे, ब्रह्मचारी जिन सब गन्ध रसोंकी सेवा नहीं करते, समावृत अर्थात् ब्रह्मचर्य्य कर्म्म समाप्त होनेपर समावर्त्तन संस्कारके जरिये संस्कारयुक्त होके उन सब विषयोंको सेवन करे, यह धर्म्मशास्त्रमें निश्चित है। ब्रह्मचारीके पक्षमें जो कुछ नियम हैं, उसे बिस्तारपूर्व्वक कहता हूं, ब्रह्मचारी सदा उसहीका आचरण करे और सदा गुरुकी सेवा करनेमें तत्पर रहे। इस ही प्रकार गुरुको शक्तिके अनुसार प्रसन्न करके शिष्य होकर कर्म्मके जरिये ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे निकलकर दूसरे आश्रममें निवास करे। वेदाध्ययन, व्रत और उपवाससे आयुका प्रथम भाग बीतने पर गुरुको दक्षिणा देकर बिधिपूर्व्वक समावृत होके अर्थात् गुरुगृहसे लौटके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। फिर धर्म्मसे प्राप्त हुई दारा परिग्रह करके यत्नके सहित तीनों अग्निको उत्पन्न करते हुए गृहमेधी और ब्रती होकर परमायुका दूसरा भाग बितानेके लिये गृहमें बास करे।

२४१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष धर्म्मपत्नीयुक्त और सुब्रती होके अग्नि लाकर आयुके दूसरे भागको गृहमें निवास करे। कवियोंने गृहस्थकी चार प्रकारकी वृत्तिका विधान किया है, उसमेंसे पहले कुशूल धान्य अर्थात् तुच्छ धान्यके जरिये जीविका निर्व्वाह करे। दूसरा कुम्भ धान्य अर्थात् घड़े परिमित धान्य सञ्चय करके वृत्ति स्थापित करे, तीसरा अश्वस्तन अर्थात् दूसरे दिनके लिये, सञ्चय न करे। चौथा कापोती अर्थात् उञ्छवृत्ति

अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करे। इनमेंसे धर्म्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक ज्यायान और धर्म्मजित्तम हैं, गृहस्थ पुरुष यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, इन षट् कर्म्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे, कोई दान और अध्ययन, इन दोनों कर्म्मोंका आसरा करके निवास करें और चौथे आश्रमी केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहें, इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ पुरुष अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे। बकरे आदि प्राणी हो होवें अथवा अश्वत्थ आदि अप्राणी हो हो सबका ही यजुर्वेदीय छेदन मन्त्रसे संस्कार करना होगा। गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्द्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करे; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्य्यासे सङ्ग न करे। गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके बास न करे,—इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है; अथिति लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्यकव्य ढोते हुए निवास करें; वेद-ज्ञान रत, व्रतस्नात स्वधर्म्मजीवी दान्त क्रियावान, तपस्वी, श्रोत्रियोंके अर्हणके निमित्त हव्यकव्यका करना सदा ही योग्य है। दम्भके निमित्त नख लोम धारण करनेवाले, स्वधर्म्म ज्ञापक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाले, और बड़े लोगोंके अप्रियकार्य्य करनेवाले चाण्डाल आदि जीवोंका भी गार्हस्थ्य धर्म्ममें संविभाग है, ब्रह्मचारी सन्न्यासी आदि जिन्हें स्वयं पाक करना निषिध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करें।

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृत भोजी होवें, यज्ञसे शेष बचे हुए हविके सहित भोजनको अमृत कहा जाता है, और जो लोग [illegible] भोजन करनेके अनन्तर भोजन करते हैं, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं इसलिये यज्ञसे शेष भोजनका नाम अमृत और सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर जो [illegible] किया जाता है, वह विघस पद वाच्य करता है। गृही मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक, पुरोहित, अतिथि, आश्रित लोग, वृद्ध, बालक, आतुर, आचार्य्य मामा, वैद्य, स्वजन सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्र स्त्रियां, भ्राता, भार्य्या, पुत्र, कन्या और सेवकोंके सहित विवाद न करे। इन सब लोगोंके सं[illegible] अंश आदिके निमित्त झगड़ा परित्याग [illegible] मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। [illegible] लोग इन सब विवादोंके विषयोंको जय करते [illegible] वे सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होते हैं। पूरी रीतिसे आचार्य्यकी सेवा [illegible] ब्रह्मलोक प्राप्त होता है; पिताके पूजित [illegible] मनुष्य प्रजापति लोक प्राप्तिके प्रभु हुआ करते हैं; अतिथियोंके सत्कार युक्त होनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है; ऋत्विकोंके पूजित होनेसे देवलोक मिलता है, कुलकी स्त्रियोंके सम्मानित होनेसे अप्सरा-लोकमें वास होता है, स्वजनोंके आदरयुक्त होनेसे वैश्वदेव लोकमें निवास हुआ करता है; सम्बन्धी बान्धवके सत्कारयुक्त होनेसे सब दिशामें यश फैलता है, माता और मामाके पूजित होनेसे भूलोकमें कीर्त्ति हुआ करती है, वृद्ध, बालक आतुर और कृश आदिके आदर करनेसे आकाशमें गति प्राप्त होती है। बड़े भाई पिताके समान है, भार्य्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं, दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है; इस लिये इन सबके जरिये तरयक्त होनेपर भी गृह धर्म्म परायण, विद्वान्, धर्म्मशील, जीतक्रम पुरुष क्रोधरहित होकर सदा उसे सहे। कोई धार्म्मिक मनुष्य धन लाभके लिये धर्म्मकार्य्य आदि कर्म्म न करे; उद्रिग्न और कर्शनक

भेदसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी वृत्ति है ; उसके बीच उत्तरोत्त वृत्तिही कल्याणकारी है। ऋषि लोग ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमोंके उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं। आश्रमोंके सब कार्य्योंको प्राप्त करनेको जो लोग इच्छा करते हैं, वे यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करें, अथवा कुम्भधान्य वा उञ्छशिल वृत्तिके जरिये कपोतीवृत्ति अवलम्बन करें। ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यकी समृद्धि बर्द्धित हुआ करती है। ऐसे नियमशाली मनुष्य पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जो लोग गृहस्थ वृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर पहले कहे हुए नियमोंको पालन करते हैं वे राजचक्रवर्त्ती मान्धाता आदि राजाओंने जिन लोकोंमें गमन किया है, उन्हीं के समान लोकोंको पाते हैं। जितेन्द्रिय लोगोंकी भी ऐसी ही गतिका विषय विहित है। उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त स्वर्गलोक ही हितकर है, वेदहष्ट विमानोंसे संयुक्त स्वर्गलोक नियत चित्तवाले गृहस्थोंके लिये प्रतिष्ठित है। जब कि गार्हस्थ धर्म्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे गार्हस्थ अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें वास करेंगे। इसके अनन्तर गार्हस्थसे भी परम उदार आश्रमको तीसरा आश्रम कहा जाता है, हड्डी, चर्म्म आदिके सम्लेष जनित शरीरको सुखानेवाले वनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो फल-प्राप्त होता है, उसे सुनो।

२४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थ वृत्तिका विधान किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है उसे कहता हूं सुनो। गृहमेधी मनुष्य परम श्रेष्ठ कपोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्म्मिणीके सहित खिन्न होकर वाणप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें। हे तात! प्रेक्षापूर्व्वक प्रवृत्त, पुण्य देशमें निवास करनेवाले सर्व्व लोका श्रम स्वरूप वाणप्रस्थ आश्रमवालोंके वृत्तान्त सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष जिस समय निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रकी सन्तानको अवलोकन करें, तब बनवासी होवें। वे परमायुका तीसरा भाग वाणप्रस्थाश्रममें व्यतीत करे ; देवताओंकी पूजा करके पूर्वोक्त तीनों अग्नियोंकी परिचर्य्या करते हुए नियुक्त रहें ; सदा नियताहारी और अप्रमत्त होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें। इस आश्रममें बनके बीच पञ्चयज्ञ करनेके समय अग्निहोत्र, गौवें ; यज्ञके अंग अकालकृष्ट ब्रीहि, यव, नीवार, विघस और हवि आदि सम्प्रदान करे। वाणप्रस्थ आश्रममें भी ये चार प्रकारकी वृत्ति विहित हुई हैं। इस आश्रयमें अतिथि सत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्व्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, कोई कोई मासिक सञ्चय, कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादश वार्षिक द्रव्य आदि सञ्चय कर रखते हैं। इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट्कालमें अभ्राकाश देशमें निवास करते हैं, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते हैं, ग्रीसकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं। कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्द्धपाद होकर निवास करते हैं, कोई पांवके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं ; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्व्वाह करते हैं, अन्य लोग अध्वर कालमें अभिषिक्त होते

अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करे। इनमेंसे धर्म्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक ज्यायान और धर्म्मजित्तम हैं, गृहस्थ पुरुष यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, इन षट् कर्म्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे, कोई दान और अध्ययन,इन दोनों कर्म्मोंका आसरा करके निवास करें और चौथे आश्रमी केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहें, इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ पुरुष अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे। बकरे आदि प्राणी हो होवें अथवा अश्वत्थ आदि अप्राणी हो हो सबका ही यजुर्वेदीय छेदन मन्त्रसे संस्कार करना होगा। गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्द्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करे; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्य्यासे सङ्ग न करे। गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके बास न करे,—इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है; अथिति लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्यकव्य ढोते हुए निवास करें; वेद-ज्ञान रत, व्रतस्नात स्वधर्म्मजीवी दान्त क्रियावान, तपस्वी, श्रोत्रियोंके अर्हणाके निमित्त हव्यकव्यका करना सदा ही योग्य है। दम्भके निमित्त नख लोम धारण करनेवाले, स्वधर्म्म ज्ञापक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाले, और बड़े लोगोंके अप्रियकार्य्य करनेवाले चाण्डाल आदि जीवोंका भी गार्हस्थ धर्म्ममें संविभाग है, ब्रह्मचारी सन्न्यासी आदि जिन्हें स्वयं पाक करना निषिध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करें।

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृत भोजी होवें, यज्ञसे शेष बचे हुए हविके सहित भोजनको अमृत कहा जाता है, और जो लोग [illegible]मकोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करते हैं, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं, इसलिये यज्ञसे शेष भोजनका नाम अमृत और सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर जो भोजन किया जाता है, वह विघस पद वाच्य हुआ करता है। गृही मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक पुरोहित, अतिथि, आश्रित लोग, वृद्ध, बालक आतुर, आचार्य्य मामा, वैद्य, स्वजन सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्र स्त्रियां, भ्राता, भार्य्या, पुत्र, कन्या और सेवकोंके सहित बिबाद न करे। इन सब लोगोंके संग अंश आदिके निमित्त झगड़ा परित्याग करनेमें मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग इन सब विवादोंके विषयोंको जय करते हैं वे सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होते हैं। पूरी रीतिसे आचार्य्यकी सेवा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है; पिताके पूजित होनेसे मनुष्य प्रजापति लोक प्राप्तिके प्रभु हुआ करते हैं; अतिथियोंके सत्कार युक्त होनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है; ऋत्विकोंके पूजित होनेसे देवलोक मिलता है, कुलकी स्त्रियोंके सम्मानित होनेसे अप्सरा-लोकमें वास होता है, स्वजनोंके आदरयुक्त होनेसे वैश्वदेव लोकमें निवास हुआ करता है; सम्बन्धी बान्धवके सत्कारयुक्त होनेसे सब दिशामें यश फैलता है, माता और मामाके पूजित होनेसे भूलोकमें कीर्त्ति हुआ करती है, वृद्ध, बालक आतुर और कृश आदिके आदर करनेसे आकाशमें गति प्राप्त होती है। बड़ा भाई पिताके समान है, भार्य्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं; दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है, इस लिये इन सबके जरिये तिरस्कृत होनेपर भी गृह धर्म्म परायण, विद्वान्, धर्म्मशील, जीतश्रम पुरुष क्रोधरहित होकर सदा उसे सहें। कोई धार्म्मिक मनुष्य धन लाभके लिये धर्म्मकार्य्य आदि कर्म्म न करे; उदृग्रि [illegible] और [illegible]

इसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी वृत्ति है; उसके बीच उत्तरोत्त वृत्तिही कल्याणकारी है। ऋषि लोग ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमोंके उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं। आश्रमोंके सब कार्य्योंको प्राप्त करनेको जो लोग इच्छा करते हैं, वे यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करें, अथवा कुम्भधान्य वा उञ्छशिल वृत्तिके जरिये कपोतीवृत्ति अवलम्बन करें। ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यकी समृद्धि वर्द्धित हुआ करती है। ऐसे नियमशाली मनुष्य पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जो लोग गृहस्थ वृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर पहले कहे हुए नियमोंको पालन करते हैं वे राजचक्रवर्त्ती मान्धाता आदि राजाओंने जिन लोकोंमें गमन किया है, उन्हींके समान लोकोंको पाते हैं। जितेन्द्रिय लोगोंकी भी ऐसी ही गतिका विषय विहित है। उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त स्वर्गलोक ही हितकर है; वेददृष्ट विमानोंसे संयुक्त स्वर्गलोक नियत चित्तवाले गृहस्थोंके लिये प्रतिष्ठित है। जब कि गार्हस्थ धर्म्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे गार्हस्थ अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें वास करेंगे। इसके अनन्तर गार्हस्थसे भी परम उदार आश्रमको तीसरा आश्रम कहा जाता है, हड्डी, चर्म्म आदिके संश्लेष जनित शरीरको सुखानेवाले बनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो।

२४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थ वृत्तिका विधान किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है उसे कहता हूं सुनो। गृहमेधी मनुष्य परम श्रेष्ठ कपोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्म्मिणीके सहित खिन्न होकर वाणप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें। हे तात! इच्छापूर्व्वक प्रवृत्त, पुण्य देशमें निवास करनेवाले सर्व्व लोका श्रम स्वरूप वाणप्रस्थ आश्रमवालोंके वृत्तान्त सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष जिस समय निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रको सन्तानको अवलोकन करें, तब बनवासी होवें। वे परमायुका तीसरा भाग वाणप्रस्थाश्रममें व्यतीत करे; देवताओंकी पूजा करके पूर्वोक्त तीनों अग्नियोंकी परिचर्य्या करते हुए नियुक्त रहें; सदा नियताहारी और अप्रमत्त होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें। इस आश्रममें बनके बीच पञ्चयज्ञ करनेके समय अग्निहोत्र, गौवें; यज्ञके अंग अकालकृष्ट ब्रीहि, यव, नीवार, विघस और हवि आदि सम्प्रदान करे। वाणप्रस्थ आश्रमसे भी ये चार प्रकारकी वृत्ति विहित हुई हैं। इस आश्रममें अतिथि सत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्व्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, कोई कोई मासिक सञ्चय, कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादश वार्षिक द्रव्य आदि सञ्चय कर रखते हैं। इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट् कालमें अभ्राकाश देशमें निवास करते है, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते हैं, ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं। कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्द्ध पाद होकर निवास करते हैं, कोई पावके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्व्वाह करते हैं, अन्य लोग अध्वर कालमें अभिषिक्त होते

हैं, इस आश्रममें कोई कोई दन्त खलिक अर्थात् दान्तसे उखलका कार्य्य निबाहते हैं, दूसरे लोग अश्मकुट अर्थात् पत्थरके जरिये धान्य आदि शस्योंको भूसीरहित किया करते हैं। कोई कोई शुक्लपक्षमें एक ही बार क्वाथयुक्त यवाकू पीते हैं, कोई कृष्ण पक्षमें उक्त क्वाथ पान करते हैं अथवा शास्त्रके अनुसार भोजन किया करते हैं, कोई कोई दृढ़व्रती मनुष्य मूलके जरिये कोई फलके सहारे और कोई फूलके जरिये जीवन धारण करते हुए यथा न्यायसे वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह किया करते हैं। वे सब मनीषि पुरुषोंके ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरी विविध दीक्षा हैं और उपनिषदोंके बीच जो विदित होता है अर्थात् स्थिर होके आत्मासे ही आत्मा का दर्शन करे, यह सर्व्वाश्रम साधारण धर्म्म है।

हे तात! इस युगमें सर्व्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंके जरिये वाणप्रस्थ और गृहस्थ आश्रमसे असाधारण धर्म्म प्रवर्त्तित होरहा है। अगस्त्य, सप्तऋषि मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांस्कृति, सुदिवातण्डि, यथावास, अकृतश्रम, अहोवीर्य्य, काव्य, माण्डव्य मेधातिथि, बुध, बलवान वर्णविपाक, शून्यपाल और कृतश्रम तथा जिन्होंने धर्म्मके फल सत्यसङ्कल्प आदिको प्रत्यक्ष किया है, वे प्रत्यक्षधर्म्मवाले ऋषिलोग और यायावर समूहोंने इसही धर्म्मका आचरण किया था, उसहीसे वे लोग स्वर्गमें गये हैं, धर्म्म नैपुण्यदर्शी बहुतेरे महर्षि लोग तथा उनके अतिरिक्त अनेक ब्राह्मणोंने अरण्यको अवलम्बन किया था। वैखानस, वालखिल्य सैकत और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि परम निवन्धन कर्म्मके जरिये निरानन्द, धर्म्ममें रत जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग तथा प्रत्यक्षधर्म्मा महर्षि लोग वाणप्रस्थको अवलम्बन करके स्वर्गमें गये हैं; नक्षत्र, ग्रह तारासे भिन्न जो सब निर्भय ज्योति समूह आकाशमें दीख पड़ते हैं, वेही गुणवान् मनुष्योंके अवलम्ब हैं। मनुष्य जराके जरिये परिहत और व्याधिसे प्रपीड़ित होकर फलके परमायुके चौथे भागमें वाणप्रस्थाश्रम परित्याग करें। वह सदा सम्पादन करने योग्य सर्व्वस्व दक्षि णासत्र समाप्त करके आत्मयाजी, आत्मरति, आत्मक्रीड़ और आत्मसंश्रय होकर सब परिग्रह परित्याग कर आत्मामें तीनों अग्नि आरोपित करके सदा सम्पादनीय ब्रह्मयज्ञ आदि और दर्श पौर्णमास यज्ञका निर्व्वाह करनेमें रत रहें, जिस समय याज्ञिकोंकी यज्ञप्रवृत्ति निवृत्त होके आत्मामें याग साधन करनेकी इच्छा होती है, उस समय देहत्याग पर्य्यन्त शरीरमें तीनों अग्नियोंको आरोपित करनी होगी। हृदय गार्हपत्य अग्नि, मन अन्वाहार्य्य-चनपअग्नि और मुख आहवनीय अग्नि है यह वैश्वानर विद्याप्रोक्त प्रकरणके जरिये जानकर देहमें उक्त तीनों अग्निका याग करना होगा। आत्मयागी मनीषि भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रोंको उच्चारण करके पहले पञ्च प्राणोंको पाच ग्रास वा छः ग्रास अन्न प्रदान करे। अनन्तर वाण प्रस्थ मुनि केश लोम और नखोंसे परिपूरित और कर्म्मनि र्व्वाहसे पवित्र होकर उस आश्रमसे पवित्र चौथे आश्रममें गमन करे। जो ब्राह्मण सब भूतोंको अभयदान करके सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें ज्योतिर्म्मय लोकोंकी प्राप्ति करके अनन्त सुख भोग किया करता है। सुशील सदवृत्तिवाले, पापरहित आत्मवित् पुरुष ऐहिक और पारलौकिक किसी कर्म्मके करनेकी अभिलाषा नहीं करते वे क्रोध मोहहीन और सन्धि विग्रहसे रहित होकर उदासीनकी भांति निवास करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, अभिधेय, यम और शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणि धानाख्य नियमोंमें निबद्ध न रहे। स्वशाखोक्त सूत्र और आहुति मन्त्रमें विक्रम प्रकाश न करे, आत्मवित् पुरुषोंकी यथेष्ट गति अर्थात् सर्व

मुक्ति वा क्रममुक्ति इच्छानुसार हुआ करती है धर्मपरायण जितेन्द्रिय लोगोंको कोई संशय नहीं रहता । वाणप्रस्थ आश्रमके अनन्तर श्रेष्ठ गुणोंके जरिये ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमोंसे समधिक रूपसे विख्यात् धर्म्मयुक्त चौथे आश्रमका विषय कहता हूं, सुनो ।

२४३ अध्याय समाप्त ।

शुकदेव बोले, वाणप्रस्थाश्रममें यथारीतिसे वर्त्तमान पुरुष, परम वेद्यवस्तु ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करनेसे किस प्रकार शक्तिके सहित आत्मयोगका अभ्यास करेंगे ।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचर्य्य और गार्हस्थ आश्रमके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेके अनन्तर परमार्थ विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो । ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ और वाणप्रस्थ, इन तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषोंको नष्ट करके सबसे उत्तम सन्न्यास धर्मरूपी परमपदमें प्रव्रज्या करे ; इसलिये तुम इस ही प्रकार योगानुष्ठान करो और इसे सुनो, योगी पुरुष सहायरहित होकर अकेले ही धर्म्माचरण करें, जो आत्मदर्शी मनुष्य अकेलाही धर्म्माचरण करता है, वह सर्व्वव्यापील निबन्धनसे किसी पदार्थको परित्याग नहीं करता और मोक्षसुखसे परित्यक्त नहीं होता । वह निरग्नि और निराश्रय होकर अन्नके निमित्त गांवमें जाता है, चित्तको समाधान करनेवाले पुरुष श्वस्त्र-स्तन-विधाता न होवें, अर्थात् दूसरे दिनके लिये अन्न सञ्चय न करें ; लघुभोजी और नियताहारी होकर दिनमें एक वार अन्न भोजन करें; कपाल और कषाय वस्त्र धारण तरुमूलका आश्रय, असहायता और सब भूतोंके विषयमें उपेक्षा अर्थात् प्रीति-द्वेष हीनता ये सब भिक्षुकके लक्षण हैं, डरे हुए हाथी कूएंमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार होते हैं, वैसे ही दूसरोंके वचन जिनमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, अर्थात् जो लोग दूसरेके जरिये आक्रुश्यमान होके भी क्रोध नहीं करते और जो वक्ताके निकट फिर गमन करनेमें विरत रहते हैं, वेही कैवल्य आश्रममें वास करनेमें समर्थ होते हैं ।

चौथे आश्रमी भिक्षु, वाह्यवस्तुओंको और न देखें, कभी किसीको निन्दा विशेष करके ब्राह्मकी निन्दा सुननी वा किसी भांतिसे कहनी योग्य नहीं है । जिससे ब्राह्मणोंका कुशल हो सदा वैसा ही वचन कहे ; आत्मनिन्दाके समय चुप रहें, और मौनावलम्बन ही भवरोगकी चिकित्सा है । जिनके अकेले निवास करनेसे सूना स्थान भी लोगोंसे परिपूरित बोध होता है, लोगोंसे पूरित स्थान जिनके अभावमें सूना हुआ करता है, देवता लोग उन्हें ही ब्रह्मिष्ठ समझते हैं । जो सांपसे डरनेकी भांति लोगोंसे भयभीत होते हैं, नरक भयके समान मिष्टान्न-जनित तृप्तिसे विरत रहते हैं और मृतक शरीरके समान स्त्रियोंसे भय करते हैं, उन्हें देवता भी ब्रह्मिष्ठ समझते हैं । जो सम्मानित होनेसे हर्षित नहीं होते, असम्मानित होनेसे क्रोध नहीं करते और जो लोग सब प्राणियोंको अभय दान करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ जानते हैं ; मरनेका अभिनन्दन न करे, जीवनका भी अभिनन्दन करना योग्य नहीं है ; जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही समयकी प्रतीक्षा करे । जो लोग वचन और मनको दोष रहित करके स्वयं सब पापोंसे मुक्त हुए हैं, उन निरमित्र मनुष्योंको भयका कौनसा विषय है । सब प्राणियोंसे जो लोग अभय हुए है और जिनसे सब भूतोंको भय नहीं होता उन मोहसे छूटे हुए पुरुषोंको किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं होसकती । जैसे हिरद पद प्रक्षेपके बीच मनुष्य और पशु आदिके पावके चिन्ह लुप्त होजाते हैं, वैसेही शरीरको शीर्ण करके समाविष्ट होकर जो लोग

हुए हैं, उनके निकट इन्द्रादि पद विहित हुआ करता है। योगमें समस्त कर्म्म फलोंकाही अन्तर्भाव होता है।

इस ही प्रकार अहिंसामें सब धर्म्म, अर्थ अन्तर्भूत हुआ करते हैं, जो हिंसा नहीं करते, वे सदा अमृत उपभोग किया करते हैं। जो लोग अहिंसक, समदर्शी, सत्य बोलनेवाले; धृतिमान्, संयतेन्द्रिय और सब भूतोंके शरण्य हैं, वे सबसे उत्तम गति पाते हैं। अवश्यम्भावी मृत्यु इसही प्रकार आत्मानुभव स्वरूप प्रज्ञानसे तृप्त, निर्भय, आशा रहित पुरुषोंको अतिक्रम नहीं कर सकती, बल्कि वेही मृत्युको अतिक्रम किया करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें "मैं" इस अभिमान स्वरूप सर्व्वसङ्गसे जो लोग मुक्त हुए हैं, निर्व्विषयत्व निबन्धनसे शून्यकी भांति मौनभावसे जो लोग निवास किया करते हैं, और जो अदृश्य और एकचर होकर शान्तभावसे स्थिति करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जिसका जीवन केवल धर्म्मके निमित्त है, धर्म्माचरण भक्त जनोंकी भिक्षाके लिये है, समाधि और व्युत्थान सब लोगोंके शिक्षाके निमित्त है, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते है। जिन्हें न आशा है, न आरम्भ है, जो किसीको नमस्कार वा स्तुति नहीं करते और जो सब वासनासे मुक्त हुए हैं। देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। प्राणिमात्रही सुखमें रत हुआ करते हैं, और सबही दुःखसे अत्यन्तही डरते हैं, इसलिये श्रद्धावान् मनुष्य उनके भय उत्पन्न होनेके लिये खिन्न होकर कर्म्म करनेमें यत्नवान न होवे; क्यों कि कर्म्ममात्र ही हिंसायुक्त है, इससे उन्हें साधुओंको त्याग करना योग्य है। सब जीवोंमें अभयदान ही सब दानोंसे उत्तम है, यह दान सब प्रकारके दानोंसे समधिक भावसे वर्त्तमान रहता है; जो पहले हिंसामय धर्म्म परित्याग करते हैं, वे प्रजाम-मृत्युसे अभय प्राप्ति स्वरूप अनन्त सुखयुक्त मोक्षपद लाभ किया करते हैं। जो आत्म-याजी, योगी, वाणप्रस्थकी भांति उत्तान मुखसे "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि अनेक मन्त्रोंके जरिये पञ्च आहुति नहीं देते, बरन प्राणादि पञ्चक और इन्द्रिय वा मनको आत्मामें लीन किया करते हैं, वे चराचर जीवोंके नाभि स्वरूप और त्रैलोकात्मा वैश्वानरके आस्पद होते हैं, उनके मस्तक आदि सब अङ्ग वैश्वानरके अवयव होते, उनके कृत अकृत सब कर्म्म वैश्वानरके कार्य्यरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं। नाभिसे हृदय पर्य्यन्त प्रादेश-परिमित स्थानमें जो प्रकट होता है, आत्मयाजी योगी उस चिन्मात्र पुरुषमें प्राण उपलक्षित निखिल प्रपञ्चको लीन करता है, वे लोकके सहित सब लोकोंमें ही उसका आत्म संस्थ अग्निहोत्र सम्पन्न होता है। जो लोग द्योतमान, सूक्ष्म तेजमय सूत्रात्माको जानते हैं, और तीनों गुणोंसे परिपूरित माया उपाधिक ईश्वरको तथा सूक्ष्म प्रत्यय स्वरूप उपाधि रहित आत्माको जान सकते है, वे सब लोकोंमें पूजित होते हैं, और मनुष्य तथा देवता लोग उनके सुकृतको प्रशंसा किया करते हैं।

निखिल वेद विषयादि जानने योग्य वस्तुएं कर्म्मकाण्डकी सब विधि, शब्दऐक्य गम्य परलोक आदिनिरुक्त और आत्माकी सत्यस्वभावतारूपी परमार्थता, ये सब शरीरात्मा प्रत्येय स्वरूपसे वर्त्तमान हैं। इसे जो जानता है, उस सर्व्वेश्वरकी सदा सेवा करनेके लिये देवता लोग भी अभिलाष किया करते हैं। जो भूमण्डलमें असक्त रूपसे वर्त्तमान है, प्रत्यगात्मता निबन्धनसे द्युलोकमें भी जो अप्रमेय होकर विद्यमान हैं, जो ब्रह्माण्डके बीच प्रकट हो रहा है, जो किरणकी भांति प्रसमर नेत्र, कान आदिके जरिये प्रकाशित होकर और भावको प्राप्त हुआ है, जो अनेक प्रत्यय स्थानीय देवता रूपसे संयुक्त होरहा है, उस

आसक्ति रहित चिन्मय आत्माको भोग्य शरीर और हृदयाकाश पुण्डरीकके बीच जो स्थित जानता है, देवता लोग भी उसकी सदा सेवा करनेके निमित्त अभिलाष किया करते हैं। जो कालचक्र सदा परिवर्त्तनशील होके भी प्राणियोंकी आयु अजरभावसे व्यतीत कर रहा है, छहों ऋतु जिसकी नाभि और बारहों महीने जिसके अरस्वरूप हैं, दर्शसंक्रमण आदि जिसमें सुन्दर पर्व्व स्वरूप हुए हैं, यह दृश्यमान जगत् जिसके सुखमें लीन होरहा है, वही कालचक्र जिसकी बुद्धिमें वर्त्तमान है, देवता भी उसकी सेवा करनेके लिये सदा इच्छा किया करते हैं। जो पूरी रीतिसे प्रसन्नताके आधार होनेसे जगत्के शरीरस्वरूप और स्थूल सूक्ष्म सब लोकोंमें ही सर्व्वकारण रूपसे स्थित होरहा है, वही सम्प्रदायाभिन्न स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरवाले जीवों और प्राण आदिकी तृप्तिसाधन करता है, प्राण आदि तृप्त होकर उसके सुखको तृप्त किया करते हैं। उस तेजमय नित्य स्वरूप पुराण पुरुषका जो आसरा करते हैं, वे लोग अनन्त अभयलोकमें जाते हैं। जिससे सब प्राणी कभी भय नहीं करते, उसे सब प्राणियोंसे कभी भय नहीं होता। इस लोक और परलोकमें अनिन्दित होकर जो दूसरेकी निन्दा नहीं करते, वेही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, अन्तमें उनका अज्ञान नष्ट होनेसे जब स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर नष्ट होती हैं, तब वे भोग्य लोकमें गमन किया करते हैं। जिसे न क्रोध है, न मोह है और सुवर्ण तथा लोष्ट्रमें समज्ञान हुआ है, जो कोष रहित और सन्धि विग्रहसे हीन हुए हैं, जिन्होंने निन्दा, स्तुति परित्याग की है, जिन्हें प्रिय वा अप्रिय कुछ भी नहीं है, वे चौथे आश्रमी भिक्षुक उदासीनकी भांति विचरते रहते हैं।

२४४ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, देह, इन्द्रिय और मन आदिके बीच प्रकृतिके विकारसे क्षेत्रज्ञ स्थित होरहा है अर्थात् अधिष्ठातृत्व, कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व भावको प्राप्त हुआ है, परन्तु नेत्र आदि इन्द्रिय जड़त्व निबन्धनसे आत्माको प्रकाशित नहीं कर सकतीं, आत्मा चेतन है, इसहीसे उक्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है। जैसे सारथी दृढ़, बलवान, अत्यन्त दान्त उत्तम घोड़ोंके जरिये जाने योग्य स्थानमें गमन करता है, वैसे ही आत्मा मनके सहित पांचों इन्द्रियोंके जरिये विषय-प्रदेशमें गमन किया करता है। इन्द्रियोंसे रूप आदि विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे आत्मा महान् है, अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थ उत्कृष्ट है, महत्तत्त्वसे उपादान अव्यक्त नामक अज्ञान श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे अमृत स्वरूप चिदात्मा परम श्रेष्ठ है, अमृतसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, वह उत्कर्षकी सीमा और परम गति है। इस ही प्रकार आत्मा सब भूतोंके बीच कञ्चुका क्रान्तकी भांति गूढ़ भावसे स्थिति करनेपर भी प्रकाशित नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी योगी लोग केवल सूक्ष्म बुद्धिके सहारे उसका दर्शन किया करते हैं। वे लोग धारणायुक्त बुद्धिके जरिये मनके सहित इन्द्रियों और इन्द्रियोंके गूढ़ विषयोंको अन्तरात्मामें पूर्ण रीतिसे लय करके ध्येय, ध्यान और धातृ-रूप इन तीनोंको ही विचारते हैं। "मैं ब्रह्म-हूं," इस बचनके निमित्त बुद्धि वृत्तिरूपी विद्याके जरिये संस्कारयुक्त मनको ध्यानके सहारे स्थिर करके ईशभाव प्रविलापनके अनन्तर प्रशान्तचित्तवाले योगी कैवल्य पद पाते हैं; और इन्द्रियोंने जिसके चित्तको हरण किया है, जिसकी स्मरणशक्ति विचलित हुई है, वैसा मनुष्य काम आदिका आत्म समर्पण करके मृत्युके मुखमें पतित हुआ करता सङ्कल्पको नष्ट करके सूक्ष्म बुद्धिसे और

निवेश करे, सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त निवेश शेषमें चण मुहूर्त्तादि काल करके नाश करे; क्योंकि आत्मवित पुरुष ही कालका विनाश साधन किया करते हैं। जो पुरुष इस लोकमें चित्तप्रसादके जरिये शुभाशुभ परित्याग करता है, वह प्रसन्नचित्त यति आत्मनिष्ठ होकर अत्यन्त ही सुख सम्भोग किया करता है। सुषुप्तिकालकी सुखनिद्रा अथवा निवास स्थलमें दीप्यमान निष्कम्प प्रदीपकी भांति प्रसादका लक्षण है। इस ही प्रकार पूर्व्व और अपर कालमें परमात्मामें जीवात्माका योग करते हुए लघुभोजी शुद्ध चित्तवाले योगी आत्मामें ही आत्माको अवलोकन करते हैं। हे पुत्र! ये आत्म प्रत्यय सिद्ध अनुशासन शास्त्र सब वेदोंके रहस्य हैं, ये केवल अनुमानसे सेवा आगममात्रसे मालूम नहीं होसकते सब धर्मों और सत्यख्यानमें जो सारभाग है, उसे और सब वेदोंसे उत्तम एक हजार दश ऋक्‌मन्त्रोंको मथके यह अमृत उद्धृत हुआ है, दहीसे नवीन घृत और काठसे अग्नि प्रकट होनेकी भांति पुत्रके निमित्त ज्ञानियोंको ज्ञान स्वरूप यह शास्त्र समुद्धृत हुआ है। हे पुत्र! यह अनुशासन शास्त्र स्नातक ब्राह्मणोंके निकट पाठ करना चाहिये; अप्रशान्त, अदान्त और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, उनके समीप इसे कहना योग्य नहीं है। अवेदज्ञ, अननुगत, असूयक, असरल, अनिर्दिष्टकारी, चुगुल, अपनी बड़ाई करनेवाले और जो पुरुष तर्क शास्त्रके जरिये जले हुए हैं, उनके समीप यह अनुशासन वर्णन करना योग्य नहीं है; बड़ाईके योग्य, प्रशान्त, तपस्वी, प्रियपुत्र और अनुगत शिष्यसे यह रहस्य धर्म्म अवश्य कहना चाहिये, दूसरे लोगोंके निकट किसी प्रकारसे कहना उचित नहीं है। कोई मनुष्य यदि रत्न पूरित पृथ्वीमण्डल दान करे, तत्त्ववित् पुरुष उससे भी इस धर्म्मको श्रेष्ठ जाने। इससे भी गुह्य जो अतिमानुष अध्यात्म विषय है, महर्षियोंने जिसका दर्शन किया है, वेदान्तके बीच जो वर्णित हुआ करता है, और तुम मुझसे जिसका विषय पूछते हो, मैं उसे तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो परम पदार्थ वर्त्तमान होरहा है, और जिस किसी विषयमें तुम्हें संशय है, मैं वह सब विषय तुमसे कहता हूं सुनो; और तुमसे क्या कहना होगा?

२४५ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! फिर अध्यात्म विषय विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन करिये। हे ऋषि सत्तम! अध्यात्म विषय किसे कहते हैं, और वह कैसा है?

व्यासदेव बोले, पुरुषके सम्बन्धमें यह अध्यात्म विषय जो पठित होता है, उसे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम उसकी इस व्याख्याको सुनो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, ये पञ्चमहाभूत समुद्रकी तरङ्गमालाकी भांति जरायुज आदि जीवोंके बीच प्रति जीवोंमें पृथक् पृथक् कल्पित हुए हैं। जैसे कछुआ निज अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, वैसे ही सब महाभूत शुद्र शरीरकारसे युक्त महाभूतोंमें स्थित रहके सृष्टि और प्रलय आदि विकारोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये शरीरके बीच ही सपनेकी तरह प्रलयका उदय और प्रलय होता है; इससे स्थावर जङ्गमात्मक यह समस्त जगत अल्पभूतमय सब शरीरान्तर महाभूतोंमें सृष्टि और प्रलय निर्दिष्ट हुआ करती है। हे तात! देवता मनुष्य तिर्य्यग् आदि सब प्राणियोंमें ही पञ्च महाभूत वर्त्तमान हैं, तो भी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति सृष्टि कालमें जिन कर्मोंके लिये जिन्हें उत्पन्न करते हैं, उनमें पञ्चभूतोंका वैशेष विधान किया करते हैं।

शुकदेव बोले, विधाताने शरीरके अवयव, बुद्धि और इन्द्रिय आदिमें जो पञ्चभूतोंकी विषमताकी है, वह किस प्रकार जानी जाती है। इन्द्रिय वा शब्दगुण हो कितने प्रकारके है, और वे किस प्रकार जाने जाते हैं।

व्यासदेव बोले, हे पुत्र ! तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, उसे विस्तारके सहित यथावत वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयका यथार्थ तत्व सुनो। शब्द श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सब छिद्र आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, प्राण, चेष्टा और स्पर्शेन्द्रिय, ये तीनों वायुके बिकार हैं, रूप, नेत्र और विपाक अर्थात् जठराग्नि रूपसे ज्योति त्रिविध भावसे विहित है, रस रसकी इन्द्रियां और स्नेह, ये तीनों जलके गुण हैं, घ्रेय वस्तु, घ्राणेन्द्रिय और शरीरके कठोर अंश ये तीनों भूमिके बिकार है; इन सब ये सब इन्द्रियोंसे पञ्चभौतिक शरीर साख्यात् हुआ है। वायुका गुण स्पर्श, जलका गुण रस, अग्निका गुण रूप, आकाशका गुण शब्द और पृथ्वीका गुण गन्ध है; छूना, चखना, देखना, सुनना, और सूंघना, इन्द्रियोंके जरिये मालूम हुआ करते हैं। सङ्कल्प-बिकल्पात्मक मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, पूर्व्वबासना स्वभाव ये तीनों स्वयोनिज है, अर्थात् आत्मयोनियोंसे ये सब उत्पन्न हुए है; परन्तु सत्त्वादि गुणोंसे कार्य्यस्वरूप होके उन सत्त्वादि गुणोंकी अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको पसारके फिर नियमित करता है, वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न करके उन्हें नियमित कर रखती है। पांवके नीचे और सिरके नीचे इन सारी शरीरके बीच जो कुछ करणीय देखा जाता है, उन सबमें ही बुद्धि वर्तमान है, अर्थात् देहमें "मैं" इस अनुभवका विषय बुद्धि स्वरूप है। बुद्धि शब्दादि विषयोंकी प्रेरणा करती है, अर्थात शब्दादि विषय रूपताको प्राप्त होते हैं। बुद्धि ही मनके सहित इन्द्रियोंको प्रेरणा किया करती है, बुद्धि न रहनेपर विषय और इन्द्रियें प्रथित नहीं होती, मनुष्योंके शरीरमें पञ्चेन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहा जाता है, बुद्धिको सातवीं कहते हैं, क्षेत्रज्ञ अष्टम रूपसे माना गया है, नेत्रकी आलोचनाके लिये मन संशय करता है, बुद्धि निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ साक्षी स्वरूप कहा जाता है, रज, तम और सतोगुण, ये स्वयोनिज होकर देवता मनुष्य सब भूतोंमें निवास करते है, कार्य्यसे इन सब गुणोंको जानना उचित है। उसमेंसे आत्मामें जो कुछ प्रीति संयुक्त मालूम होता है और जो प्रशान्तकी भांति पूरीरीतिसे शुद्ध है, उसे सतो गुण समझो, शरीर और मनको जो सन्तापयुक्त करता है, उसे रजोगुण जाने और जो संमोहसे संयुक्त है, तथा जिसका विषय अव्यक्त तर्कसे अगोचर वा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण कहके निश्चय करो। किसी कारण वा अकारणसे हो प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, समता, स्वस्थदेहता और स्वस्थ चित्तता हो, तो समझो कि उसमें ही सतोगुण वर्त्तमान है। अभिमान् मृषावाद, लोभ, मोह, और क्षमा, यदि कारण वा अकारणसे उत्पन्न हो तो उसे ही रजोगुणका लक्षण समझना चाहिये। मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा, और प्रबोधिता यदि किसी प्रकारसे वर्त्तमान हो, तो उसे ही तमोगुण जानना योग्य है।

२४६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, निश्चयात्मिका बुद्धि मनरूपसे सङ्कल्प मात्रके जरिये बिबिध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, हृदयके प्रिय और अप्रिय सब विषय मालूम होते हैं, कर्म्म प्रेरणा तीन प्रकारकी है। इन्द्रियोंसे सङ्कल्प जनित निवन्धनसे सब विषय सूक्ष्म हैं, विषयोंसे मन सूक्ष्म, मनसे बुद्धि सूक्ष्म है, और बुद्धिसे आत्मा सूक्ष्म है,—

यह महर्षियोंको अभिमत है। बुद्धि मनुष्योंकी व्यवहारिक आत्मा है, बुद्धि ही स्वयं आत्मास्वरूपसे स्थिति करती है, बुद्धि जिस समय विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, उस समय मन शब्द वाच्य होती है। इन्द्रियोंके पृथक् भावके कारण बुद्धि विकृत होती है, इस ही निमित्त जब बुद्धि सुनती है तब कान, जब स्पर्श करती है तब त्वचा, जब दर्शन करती है तब नेत्र, जब चखती है तब जीभ और जब सूंघती है, तब घ्राण कहके वर्णित होती है, इसलिये बुद्धि पृथक् पृथक् रूपसे विकृत हुआ करती है बुद्धिके सब विकारोंको इन्द्रिय कहते हैं, चिदात्मा प्रदृश्य भावसे उन सबमें और सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे वर्त्तमान है। पुरुषाधिष्ठिता बुद्धि भी उक्त तीनों भावोंमें निवास करती है; मनुष्य कभी सुख लाभ करता है, तौभी शोकित होता है; इस संसारमें कभी कोई निरवच्छिन्न सुखशाली अथवा दुरवगाह दुःखभागी नहीं होता। जैसे तरङ्ग मालायुक्त सरित्पति समुद्र नदियोंके वेगको शान्त करता है, वैसे ही वह भावात्मिका बुद्धि सत, रज, तम, इन तीनों भावोंको अभिभव किया करती है। जब बुद्धि किसी विषयकी अभिलाष करती है, तब उसे मन कहा जाता है। सब इन्द्रिय-गोलक बुद्धिमें अन्तर्भूत होकर पृथक् पृथक् निवास करते हैं। रूप आदि ज्ञान साधनमें तत्पर इन्द्रियोंको सब भांतिसे विजय करना उचित है। जो इन्द्रिय जिस समय बुद्धिके अनुगत होती हैं उस समय पहले बुद्धि पृथग्भूत न रहनेपर भी अन्तमें सङ्कल्पात्मक घटादि विषयोंमें वर्त्तमान हुआ करती है; अर्थात् बुद्धिसे अनुगृहीत होके इन्द्रियां सङ्कल्पजनित बाह्य विषयोंका ज्ञान करती हैं। इस ही प्रकार क्रमसे रूप आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है, सब विषयोंका ज्ञान युगपत नहीं होता। जैसे अरोंका रथनेमिके बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही सात्विक, राजसिक और तामसिक भाव मन, बुद्धि तथा अहंकारमें विषयके अनुसार वर्त्तमान रहते हैं जब कि एक मात्र स्त्रीसे पतिकी प्रीति, सपत्नियोंका द्वेष, दूसरेको मोह होते दीख पड़ता है, तब विषयदर्शनसे ही आन्तरिक भावोंकी उत्पत्ति होती है, इसे ही अङ्गीकार करना होगा। इस विषयमें अनुभव वैषम्यके कारण जो लोग विषयको ही त्रिगुणात्मक कहते हैं उनका मत युक्ति पूरित नहीं है; क्यों कि मात्र स्त्रीमें पतिकी प्रीति, सपत्नीके द्वेष दूसरोंके मोह सदा ही वर्त्तमान नहीं रहते; इसलिये मन, बुद्धि; अहङ्कार ही सत, रज और तमोमय है, सब विषय तन्मय नहीं हैं। बुद्धिस्थ विषय सिद्धि अर्थात् हृदयगुहामें स्थित परब्रह्म विषयक परमार्थिक ज्ञान साधन निमित्त मन किरणरूपी इन्द्रियोंके [illegible] सत्तम परब्रह्मको छिपानेवाले अज्ञानका विनाश किया करता है। योगाचारियोंका यह योग जिस प्रकार सिद्ध होता है, उदासीन मनुष्योंको भी यदृच्छाक्रमसे उस ही प्रकार योग सिद्ध हुआ करता है, बुद्धिमान् मनुष्य इस दृश्यमान् जगत्को इस ही स्वभावसे बुद्धिमावसे कल्पित जानके मोहित नहीं होते; वे किसी विषयमें हर्ष वा शोक प्रकाश नहीं करते, सदा मत्सरहीन होके निवास करते हैं। काम्यपान विषय गोचर इन्द्रियोंके निर्दोष होनेपर भी दुर्भाग्यशाली मलिन चित्तवाले मनुष्य उसके सहारे आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। जिस समय पुरुष मनके जरिये इन्द्रियोंके वेगको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस समय दीपकके प्रकाशके जरिये घटादि पदार्थोंकी आकृतिके समान उसके समीप आत्मा प्रकाशित होता है। सब जीवोंका [illegible] जिस समय मोह दूर होता है, तब मानो वा [illegible] सब विषय ही उनके समीप मालूम हुआ

हैं, वैसे ही कण्ठगत विस्मृत चामीकरकी भांति अज्ञानके दूर होनेसे ही आत्माकी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे जलचारी पक्षी पानीमें विचरते हुए उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही विमुक्त-स्वभाववाले योगी लोग पूर्व्वकृत पुण्यपापसे लिप्त हुआ करते हैं। इस ही प्रकार शुद्धचित्तवाले मनुष्य विषयोंको सेवन करनेसे भी पापस्पर्शसे रहित हुआ करते हैं। वह पुत्र कलत्र आदि स्वजनोंमें आसक्त रहके भी उनके नाशके निमित्त शोक आदिसे अभिभूत नहीं होते, इस ही प्रकार देहासक्ती पुरुष देहकृत कर्म्मसे लिप्त नहीं होते। पूर्व्वकृत कर्म्मोंको परित्याग करके सत्यस्वरूप आत्मामें जिसका अनुराग होता है वह सब भूतोंका आत्मभूत सब विषयोंमें असंसक्त पुरुषकी बुद्धि सतोगुणमें विचरती है कभी विषयोंमें प्रवेश नहीं करती। इन्द्रियें आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सदा ही उन्हें जानता है, वह इन्द्रियोंका परिदर्शक और यथायोग्य रीतिसे उनकी सृष्टि किया करता है। सूक्ष्म सत् रूप परब्रह्म और जीवात्माका यह प्रभेद मालूम करो कि इनमेंसे एकने सब विषयोंका सृजा है, दूसरेने कुछ भी नहीं किया है। वे दोनों प्रकृतिके वशमें होके पृथक् रहने पर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मछली जलसे स्वतन्त्र होनेपर भी दोनों ही सदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मशक और उड़ुम्बर पृथक् होने पर भी एकत्रित हैं, जैसे सींक मूंजमें पृथक् रहके भी संयुक्त रहती है, वैसे ही जीव और ब्रह्म एक होनेपर भी परस्परमें प्रतिष्ठित हैं।

२४७ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सत्स्वरूप आत्मा विषयोंको उत्पन्न करता है, जीव उसमें अधिष्ठित हुआ करता है। ईश्वर उदासीनकी भांति विकृत प्राप्त हुए विषयोंका अधिष्ठाता है। जैसे ऊर्णनाभी अभिन्न निमित्त उपादान स्वरूपसे सूत्र निर्म्माण करती है, वैसे ही ईश्वर जिन गुणोंको उत्पन्न करता है, वे उसहीके स्वभावयुक्त होते है। सत्वादि सब गुण तत्वज्ञानके जरिये अदर्शनयुक्त होनेपर भी निवृत्त अर्थात् घट आदि बाह्य पदार्थोंकी भांति नष्ट नहीं होते; परन्तु रज्जु सर्पकी भांति बाधको ही प्रध्वंस पदवाच्य कहना होगा। घट आदि नष्ट होनेपर भी जैसे कपालदर्शनके जरिये इस स्थानमें घट नष्ट हुआ है, इस ही भांति घटसत्ताकी उपलब्धि होती है, सत्वादि गुणोंके प्रध्वंस होनेपर उस प्रकार उनसे प्रवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये सत्वादि गुणोंके नाशको निरवयव नाश कहा जाता है। तार्किक लोग कहा करते हैं, कि आत्यन्तिकी दुःखकी निवृत्ति होनेसे ही आत्मगुणकी निवृत्ति होती है। सांख्यमतवाले दार्शनिक पण्डित लोग भी दृग्दिश्य संयोगसे अनादि भावका भी नाश स्वीकार करते हैं। इस ही प्रकार निवृत्ति और बाध इन दोनों पक्षोंको बुद्धिसे आलोचना करके यथामतिके अनुसार निश्चय करे; पुरुष इस प्रकारके विधानके जरिये महान् आत्माश्रय हुआ करता है। आत्माका आदि और अन्त नहीं है, इसे जानकर मनुष्य क्रोध हर्षसे रहित और मत्सरहीन होकर सदा विचरण करे। इस ही प्रकार बुद्धिके धर्म्मचिन्ता आदि दृढ़ हृदयग्रन्थिको जिन्होंने अतिक्रम किया है, वह शोकरहित और संशयहीन होकर सुखसे समय व्यतीत किया करते हैं। पृथ्वीपरसे भरी हुई नदीमें गिरे हुए मनुष्य डूबते हैं, इस लोकमें तरनेकी विद्यासे रहित मूर्खोंकी गति भी उस ही प्रकार जाननी चाहिये, तरनेकी विद्यासे युक्त तत्ववित् पुरुष उन्मज्जन निमज्जनके सहारे क्लेशित न होकर स्थलमें विचरते हैं, इस प्रकार जिन्होंने अपने आत्माको शुद्ध

अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप जाना है, वे ही आत्माका स्वरूप और लक्षण जानते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके विषयको जानके और आकाश आदि भूतोंको विषमता अवलोकन करके अत्यन्त उत्तम सुख लाभ किया करते हैं। मनुष्य जन्म ग्रहण करने विशेष करके ब्राह्मण होनेसे यह सामर्थ प्राप्त होती है, कि आत्मज्ञान और शान्ति अवलम्बनके जरिये मुक्ति लाभ हुआ करती है। मनुष्य इसे ही जानके पापरहित होता है, निष्पाप होनेका दूसरा लक्षण और क्या है? कृतकृत्य मनीषी पुरुष इसे ही जानकर मुक्त होते हैं। अज्ञानियोंके परलोकमें अधःपतनसे जो अत्यन्त महत् भय उपस्थित होता है, ज्ञानियोंको उस भयकी सम्भावना नहीं है। ज्ञानियोंकी जो उत्तम महती गति हुआ करती है, उससे बढ़के उत्तम गति और किसीकी भी नहीं होती। कोई मनुष्य उपभोग्य स्त्री आदिको दोषसे आक्रान्त समझके उन्हें दोषदृष्टिसे देखते हैं, कोई दूसरेका वैसे दोषाक्रान्त विषयमें अनुराग देखकर शोक किया करते हैं, परन्तु ज्ञानी और अज्ञानीके बीच महत् विलक्षणता है; इसे जानके जो लोग आरोपित वा अनारोपित शोक तथा शोकभावको विषय जानते हैं, उन्हें ही जानना चाहिये, कि वे निश्चय ही कुलीन हैं। जो लोग अनभिसन्धिपूर्व्वक अर्थात् निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उनका वही निष्काम कर्म्म पहलेके किये हुए पापोंको खण्डन करता है, निष्काम कर्म्म करनेवाले मनुष्योंके इस जन्म और पूर्व्व जन्मके किये हुए सब कर्म्म प्रिय वा अप्रियजनक नहीं होते; इसलिये तत्वविद्या अवश्य सिद्ध करनी उचित है।

२४८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! इस लोकमें धर्म्मसे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी न ह और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, आप मेरे सम उसे ही वर्णन करिये।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंने जिस पु धर्म्मको स्थापित किया है और जो सब उत्तम है, वह तुम्हारे समीप विस्त पू कहता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जै पिता आत्मज सन्तानोंको यत्नपूर्व्वक संयत कर हैं, वैसे ही सब भांतिसे निष्पतनशील प्रमथनकारी इन्द्रियोंको बुद्धिके जरिये वश करके मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता साधन ही परम तपस्या है, वेही सब धर्म्मोंसे उत्तम और वही परम धर्म्मरूपसे महर्षियोंके जरिये वर्णित हुआ करता है। मनके सहित इन्द्रियों मेधाके सहारे सन्धान करके त्रिपुटी अनासक्त होकर आत्मतृप्तकी भांति निवास करे। जब इन्द्रियें बाह्य और आभ्यन्तरिक विषयोंसे निवृत्त होके सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्ममें निवास करेंगी, तब तुम स्वयं ही शाश्वत परमात्माको देख सकोगे। जो सब महाभाग मनीषी पुरुष ब्रह्मवित् होते हैं, वे उस धूमरहित अग्निकी भांति उपाधिरहित सर्व्वमय महान् आत्माको देखते हैं। जैसे फल फूलसे युक्त अनेक शाखा वाले बड़े वृक्ष अपने फल फूलोंको यह नहीं जानते कि कहां हैं, वैसे ही अचेतन बुद्धि आदि "मैं कहां जाऊंगा, कहांसे आया हूं," इसे कुछ भी नहीं जान सकते; तब इस देहके बीच बुद्धि-व्यतिरिक्त अन्तरात्मारूपसे जो विराजता है, वही बुद्धि आदि सबका ही प्रकाशक है और सबको ही देखता रहता है। आत्मवित् पुरुष प्रकाशमान ज्ञानदीप स्वरूप आत्मा जरिये ही आत्माको देखते हैं, इसलिये तु आप ही अपना दर्शन करके उपाधिरहित सर्व्ववित् होजाओ। तुम्हें केंचुलीसे मुक्त सर्प भांति छूटकर और इस लोकमें परम

प्राप्तकर सुखो होके अनेक प्रकारसे बहनेवाली शोकप्रवाहिनी, पञ्चेन्द्रिय ग्राहसे युक्त, मनके सङ्कल्प तटवाली, लोभ मोहरूपी तृणसे परिपूरित काम क्रोधरूपी सर्पसे युक्त, सत्य तीर्थवाली, मिथ्यासे अक्षोभ, क्रोधपङ्कसे संयुक्त, अव्यक्त प्रभव, शीघ्रगामिनी और अकृतात्म लोगोंसे दुस्तर और काम ग्राहसे परिपूरित नदीके जरिये संसारनदीको ज्ञानके सहारे तरना चाहिये। हे तात ! कृतप्रज्ञ धृतिमान् मनीषी पुरुष संसारसागर गामिनी, वासना पाताल दुस्तरा, आत्म जन्मोद्भव जिह्वावार्त्ता जिस दुरासद नदीके पार जाते हैं, तुम उस ही नदीको तरके सर्व्वसङ्गरहित, विधृत स्वभाव, आत्मवित्, पवित्र और समस्त संसारसे पार होके प्रसन्नात्मा तथा पापरहित होकर परम श्रेष्ठ ज्ञान अवलम्बन करके ब्रह्मलाभ करोगे। तुम ज्ञानरूपी पर्व्वतपर चढ़के भूमिष्ठ मूर्खोंको देखो। तुम क्रोधरहित, हर्षहीन और अनृशंस बुद्धि होनेसे सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय देख सकोगे। धार्म्मिकप्रवर तत्वदर्शी विद्वान् महर्षियोंने योगके जरिये अज्ञान रूपी नदीको सन्तरणस्वरूप इस धर्म्मको सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ समझा है।

हे तात ! सर्व्वव्यापी आत्माका ज्ञानस्वरूप यह अनुशासन सदा हितकारी वा अनुगत पुत्र शिष्योंसे कहना चाहिये। हे तात ! यह आत्मसाक्षिक आत्मज्ञानका विषय इतना ही जो तुमसे कहा है, यह सबसे महत् और गुप्त है। यह परब्रह्म न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक ही है; यह अदुःख, असुख तथा भूतभव्य वर्त्तमान स्वरूप है; स्त्री वा पुरुष उसे जाननेसे फिर जन्म नहीं लेते, पुनर्ज्जन्मकी प्राप्ति न होनेके ही निमित्त यह धर्म्म विहित हुआ है। हे तात ! मैंने जो किसी स्थलमें जैसे सब दर्शनोंके मतोंको कहा है, वैसे ही इस आत्मज्ञानके विषयको भी वर्णन किया है, परन्तु अधिकारी भेदसे वे सब बचन किसी स्थानमें फलित और किसी स्थलमें विफल होते हैं। हे सत्पुत्र ! इसलिये प्रीति, गुण और दमसे युक्त पुत्रके पूछनेपर पिता प्रसन्न होकर इस विषयको यथार्थ रीतिसे पुत्रके निकट इस प्रकार वर्णन करे, जैसे मैंने तुमसे कहा है।

२४९ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गन्ध रस और सुखका अनुसरण तथा गन्ध आदि समलंकृत आभूषणोंका अननुरोध और उक्त भोग्य वस्तुओंमें विद्वेष प्रकाश न करके उदासीन भावसे निवास, मान, कीर्त्ति, तथा यश लाभमें अभिलाष रहित होना और उन सबमें उदासीनता अवलम्बन करना ही विद्वान् ब्राह्मणोंके व्यवहार है। गुरु सेवामें रत, ब्रह्मचर्य्य ब्रत करनेवाला पुरुष यदि सब वेदोंको पढ़े, तथा ऋग, यजु और साम वेदको मालूम करे, तौभी उसे मुख्य ब्राह्मण नहीं कहा जाता, जो सर्व्वज्ञ और सब वेदोंके जाननेवाले होकर सब प्राणियोंके विषयमें स्वजनवत् व्यवहार करते हैं, और जो लोग आत्मज्ञानसे तृप्त होते हैं, कभी जिसकी मृत्यु नहीं होती, उनके वैसे कर्म्मके सहारे भी मुख्य ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने विविध इष्टि और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ किये हैं, उनमें दया और निष्कामता न रहनेसे कदापि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होसकती, जब पुरुषको किसी प्राणीसे भय नहीं होता और उससे भी कोई नहीं डरते, जब वह किसी विषयकी कामना और किसी विषयमें विद्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। जब पुरुष मन, वचन और धर्म्मके जरिये किसी जीवके विषयमें अनिष्ट आचरण नहीं करता, तभी ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। इस लोकमें

बन्धन ही विशिष्ट है। उससे बढ़के दूसरा कोई बन्धन दृढ़ नहीं है, जो लोग उस काम-बन्धनसे छूटे हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभमें समर्थ होते हैं।

जैसे धूमाकार बादलोंसे चन्द्रमा मुक्त होता है, वैसे ही रजोगुणसे रहित धीर पुरुष काम बन्धनसे छूटकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए धीरज अवलम्बन करके निवास करते हैं। अचलके समान स्थिर भाव, भली भांतिसे पूरित समुद्रमें दूसरे सब जल जिस प्रकारसे प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सब काम जिस पुरुषमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, वेही शान्तिलाभ करते हैं; वैसे पुरुष कभी विषयके अभिलाषी नहीं होते। वे विद्वान् पुरुष सङ्कल्पमात्रके सहारे समुपस्थित सुखोंमें मनोहर होते हैं, वेही इच्छा करनेसे स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ हुआ करते हैं, नहीं तो स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इच्छामात्रसे ही स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। वेदका रहस्य सत्य है, सत्यका रहस्य दम है, दमका रहस्य त्याग है, त्यागका रहस्य सुख है, सुखका रहस्य स्वर्ग है, और स्वर्गका रहस्य शान्ति है। सन्तोंके कारण यदि चित्तप्रसाद लाभका अभिलाषा हो, तो वासनाके सहित भी शोक मोहको सन्तापित करके क्रंदन करो, यही शान्तिका उत्तम लक्षण है। शोकरहित ममताहीन, शान्त, प्रसन्नचित्त, मत्सररहित और सन्तोषयुक्त होकर जो लोग समस्त ज्ञानसे तृप्त हुए हैं, वे इन छहों लक्षणोंसे सबके ही कामनीय हुआ करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष सत्य, दम, दान, तपस्या, त्याग और शम नामक छहों सत्वगुणसे युक्त श्रवण, मनन निदिध्यासनके जरिये जिस आत्माको जान सकते हैं जीवित देहमें उस ही आत्माको जिन्होंने बुद्धि स्वरूपसे जाना है, वेही पूर्व्वोक्त मुक्त लक्षणको प्राप्त हुए हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष अकृत्रिम अर्थात् अजन्य हैं, इस-लिये असंस्कार्य्य, स्वभावसिद्ध और गुणाधान मलापकर्षणात्मक संस्कार-रहित शरीरमें अधिष्ठित सुकृत आत्माको जाना है, वही अव्यय सुख उपभोग करते हैं। मनको विषयोंसे रोकके आत्मविचारमें प्रतिष्ठित करते हुए योगी पुरुष आत्मासे जो तुष्टिलाभ करते हैं, दूसरे किसी प्रकारसे भी वैसी तुष्टिलाभ नहीं होती। अभुज्ञान मनुष्य जिसके जरिये तृप्त होते हैं, वृत्तिहीन पुरुष जिससे तृप्तिलाभ करते है, स्नेहरहित पुरुष जिसके सहारे बलवान् होते हैं,—जो लोग उस ब्रह्मको जानते हैं, वेही वेदवित् हैं। जो शिष्ठ ब्राह्मण प्रमादसे इन्द्रियोंकी पूर्ण रीतिसे रक्षा करते हुए ध्यान अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन्हें ही आत्मरति कहते हैं। जो परम तत्वमें तत्पर और वासनारहित होकर स्थित रहते हैं, चन्द्रमाकी भांति उनका सुख बढ़ता रहता है। जैसे सूर्य्यके जरिये अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो मननशील योगी पञ्चतन्मात्रा, महत्तत्व और प्रकृतिको परित्याग करते हैं, वे सहजमें ही संसारके दुःखोंसे छूट जाते हैं। वे अतिक्रान्त कर्म्म करनेवाले अतिक्रान्त गुण, ऐश्वर्य्य और विषयोंसे असंश्लिष्ट ब्राह्मणको जरा तथा मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती। वे जब सब तरहसे विरक्त और राग द्वेषसे रहित होके निवास करते हैं, उस समय जीवित शरीरसे ही इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन्होंने प्रकृतिको परित्याग करके परम कारण परब्रह्मको जाना है, उन परम पद पानेवाले पुरुषोंको फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता।

२५० अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सुख, दुःख, मान अपमान सहनेवाला मनुष्य अर्थ और धर्म्मका अनुष्ठान करके शेषमें यदि मोक्ष जिज्ञासु हो, तो गुणवान

वक्ता उस शिष्यकी पहले यही महत् अध्यात्म विषय सुनावे। आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चभूत और द्रव्य गुण, कर्म्म सामान्य, समवाय और विशेष, ये कई एक भाव पदार्थ, इनके अतिरिक्त अभाव पदार्थ तथा काल पञ्चभूतात्मक जरायुज आदि जीव मात्रमें ही वर्त्तमान् है। तिसके बीच आकाश अवकाश भाग हैं, श्रवणेन्द्रिय आकाशमय है; शारीरिक शास्त्र विधानवित् पुरुष आकाशको-शब्द गुण कहा करते हैं। गमन आदि कार्य्य वायुसे उत्पन्न होते हैं, प्राण और अपान आदि वायुमय है, स्पर्शइन्द्रिय और स्पर्शको भी वायुमय जानो। ताप, पाक प्रकाश, उष्णता और नेत्र, ये पांचो अग्निस्वरूप हैं, उसका गुण रूप, लाल, श्वेत और असितात्मक है। क्लेश, संकोच और स्नेह ये तीनों जलके धर्म्म हैं; अस्वक, मज्जा आदि जो कुछ स्निग्ध पदार्थ हैं, वे सब जलमय हैं, रसनेन्द्रिय, जिह्वा वा रस जलके गुण कहे गये हैं। धातु, संघात, पार्थिव पदार्थ, हड्डी, दांत, नख, रोम, श्मश्रु, केश, शिरा और चर्म्म, ये सब पृथ्वीमय हैं। घ्राणेन्द्रियका नाम नासिका है, गन्ध ही इस इन्द्रियका विषय हैं। पूर्व्व पूर्व्वभूतोंके गुण उत्तरोत्तर भूतोंमें वर्त्तमान हैं; इसलिये आकाशमें केवल शब्दगुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श है, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप है, जलमें शब्द, स्पर्श रूप तथा रस है और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये पाचो ही विद्यमान है, ये पांचो गुण प्राणिमात्रमें ही विद्यमान रहते हैं। मुनि लोग इस पञ्चभूत सन्तति और अविद्या, काम तथा धर्म्मको अष्टम गिना करते हैं, मनको इन सबके बीच नवा कहा करते हैं, बुद्धिको दशवीं कहते हैं, अनन्तर आत्मा ग्यारहवां है, वह सबसे श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है। बुद्धि निश्चय करनेवाली है और मन संशयात्मक है, वह अनन्त आत्मा कर्म्मानुमान निबन्धन अर्थात् सुख, दुःख लक्षणयुक्त कर्म्मोंके आश्रयत्वके कारण क्षेत्रसंज्ञक जीवस्वरूपसे अनुमित होता है, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग; इन कालज्ञक जीवोंसे युक्त समस्त प्राणिपुञ्जको जो लोग स्वरूपसे पापरहित देखते हैं। वह मोहका अनुसरण नहीं करते।

२५१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, शास्त्रवेत्ता लोग स्थूल शरीरसे मुक्त, सूक्ष्म भूत और दुर्लक्ष्य, सूक्ष्म शरीरी आत्माको शास्त्रोक्त कर्म्म योगानुष्ठान आदिके जरिये दर्शन करते हैं अर्थात् योगी लोग समाधिके समय लिङ्गात्माका दर्शन किया करते हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें निविड़ भावसे निवास करनेपर भी जैसे स्थूलदृष्टिके सहारे नहीं दीख पड़ती, परन्तु गुरूपदेशसे उन्हों सर्व्वत्र विचरते हुए देखा जाता है, वैसेही स्थूल देहसे युक्त लिङ्ग शरीर स्थूल दृष्टिसे नहीं दीखता। देहसे छूटनेपर वह अतिमानुष लिङ्ग देह सब लोकोंमें विचरती है; इसे योगी लोग देखा करते हैं। जैसे सूर्य्यके किरणमण्डलका प्रतिबिम्ब जलमें भी दीखता है, वैसेही योगी पुरुष सत्ववन्त पुरुष मात्रमें ही प्रतिरूपसे लिङ्ग शरीरको अवलोकन किया करते हैं। संयतेन्द्रिय सत्वज्ञ योगी लोग शरीरसे विमुक्त होके उन समस्त सूक्ष्म शरीरोंको निज लिङ्ग देह स्वरूपसे देखते हैं। जिन योगयुक्त पुरुषोंने आत्मामें कल्पित कामादि व्यसनोंको परित्याग किया है और जिन्होंने जगत्कारक प्रकृतिका अद्वैध अर्थात् प्रकृतिके तदात्म योग ऐश्वर्य्यसे भी विमुक्त हुए है, उन्हें क्या स्वप्नके समयमें क्या जाग्रत अवस्थामें, जैसे दिन वैसे ही रात्रिके समयमें, जैसे रात्रि वैसेही दिनके समयमें अर्थात् सब अवस्था तथा सब समयमेंही वशीभूत रहती है। उन सब यो[illegible]

महद्दहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, इन सातों गुणोंसे सदा संयुक्त रहके इन्द्रादि लोकोंमें सदा विचरते हुए तीनों कालमें भी मिथ्याल निवन्धनसे धावित होनेसे भी अजर और अमर हुआ करता है। स्वदेह और परदेह विद्व योगी यदि मन तथा बुद्धिके जरिये पराभूत हो, तो वह थोड़े समयमें भी सुख दुःखका अनुभव किया करता है। वह जब सपनेमें भी कभी सुख लाभ करता, कभी दुःख भोग किया करता है, तब वह क्रोध और लोभके वशमें होकर विपदग्रस्त होता है, वह स्वप्न समयमें बहुत सा धन प्राप्त करके प्रसन्न होता, पुण्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करता और जैसे जाग्रत अवस्थामें सब विषयोंका दर्शन किया जाता है, वैसेही उस समयमें भी उसहीके अनुरूप सब वस्तुओंको देखा करता है। स्वप्नकालकी भांति जीव गर्भमें जठर उष्माके बीच शयन किया करता है। कोखके बीच दश महीनेतक बास करके भी जीव अन्नकी तरह जीर्ण नहीं होता। वह अत्यन्त तेजस्वी परमेश्वरके अंशभूत हृदयमें स्थित जीवात्माको तमोगुण और रजोगुण युक्त पुरुष देहके बीच देखनेमें समर्थ नहीं हैं। जो लोग योग शास्त्रपरायण होके उस आत्माको प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वे अचेतन स्थूल शरीर, अमूल्य सूक्ष्म शरीर और वज्रकी भांति अर्थात् ब्रह्माके प्रलयमें भी अविनाशी कारण शरीरोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ होते हैं। विभिन्न रूपसे विहित सन्न्यास धर्मके बीच समाधिके समयमें मैंने जो यह योगका विषय कहा, शाण्डिल्य मुनिने इसे सन्न्यासियोंके शान्तिका हेतु कहा है। इन्द्रिय इन्द्रियोंके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, ये सातों सूक्ष्म विषय तथा सर्व्वज्ञता, तृप्ति अनादिका बोध, स्वतन्त्रता, सदा अलुप्त दृष्टि और अनन्त शक्ति, इस षड़ङ्गयुक्त महेश्वरको जानके, यह जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विपरिणाम है,—इसे जो लोग जानते हैं, वे गुरु और वेदान्त वचनके अनुसार परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं।

२५२ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हृदयक्षेत्रमें मोहमूलक एक विचित्र कामतरु विराजमान हुआ करता है; क्रोध और मान उसके महास्कन्ध, विधित्सा उसके आलवाल, अज्ञान उसका आधार है; प्रमाद उसे सिंचन करनेवाला जल असूया उसका पत्र और वह पूर्व्वकृत दुष्कृतोंके जरिये सारवान हुआ करता है। सम्मोह और चिन्ता उसके पल्लव, शोक उसकी शाखा और भय उसका अङ्कुर होता है; वह अतिमोहनी पिपासारूपी लताजालके जरिये परिपूरित हुआ करता है। अत्यन्त लोभी मनुष्य लोग आयस अर्थात् लौहमयके समान दृढ़पाशके जरिये संयत होकर उन्हीं सब वृक्षोंके फललाभकी अभिलाष करके उसे घेरकर उसकी सेवा किया करते हैं। जो लोग उन सब बासोंको वशमेंकरके उक्त वृक्षको छेदन करते हैं, वेही वैषयिक सुख दुःख त्यागनेकी बासना करनेपर सहजमेंही सुख दुःखसे पार होनेमें समर्थ होते हैं। अकृतबुद्धि मूर्ख लोग जो स्रक्चन्दन बनिता आदिके जरिये सदा उस कामतरुको सम्वर्द्धित करते हैं, विषग्रन्थिसे आतुरघातकी भांति वही स्रकचन्दन बनिता आदिही उस वर्द्धकका विनाश किया करती हैं। कृती पुरुष योग प्रसादसे बलपूर्व्वक निर्व्विकल्पक समाधि स्वरूप उत्तम खड्गके जरिये उस मूलानुगत महावृक्षका मूल उद्धार किया करते हैं। इस ही प्रकार जो लोग केवल कामका निवर्त्तन करना जानते हैं, वे कामशास्त्रके बन्धनको छुड़ाके सब दुःखोंको अतिक्रम करते हैं। महर्षि लोग भोगायतन इस शरीरको पुर कहा करते हैं, भोगजनित सुख दुःख आदि अभिमानित्व निबन्धन बुद्धिको इसकी स्वामिनी

कहते हैं। शरीरस्थ मन निश्चयात्मिका बुद्धिके अमात्य स्थानीय हैं, क्यों कि विचार परायण मन बुद्धिको भोगके लिये इन्द्रिय विषयस्वरूप समस्त धनको अर्पण करता है, इन्द्रियें पुरवासी स्वरूप हैं, इन्द्रिय स्वरूप पौरजनोंको पालनेके लिये मनको महतो क्रियाप्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ दान आदि रूपसे दृष्टादृष्ट फलोंको साधन करनेवाली कर्म्म-प्रवृत्ति हुआ करती है। राजस और तामस नाम दोनों दारुण दोष कर्म्मफलोंको अन्यथा करते हुए चित्त-आमात्यको कलुषता सिद्ध करते हैं. पुरेश्वर मन, बुद्धि और अहङ्कारके सहित इन्द्रियस्वरूप पौरगण तथा दोषयुक्त चित्त अमात्यके जरिये निर्म्मित कर्म्मफल सुखदुःख आदिको उपजीव्य किया करता है। ऐसा होनेसे राजस और तामस दोनों दोष अविहित मार्ग अर्थात् परदारा आदि भोगके जरिये सुखादिरूपी अर्थको उपजीव्य समझा करता है, शुद्ध सत्वमयत्व निबन्धन बुद्धि रजोगुण और सतोगुणके वशमें न होनेपर भी मनको प्रधानताके कारण दोषकलुषित मनके सहित उसकी समता होजाती है। इन्द्रियरूपी पौरगण मनसे डरके चञ्चल होजाते हैं अर्थात् मन दुष्ट होनेपर इन्द्रियें भी दोष स्पृष्ट होकर किसी स्थानमें भी स्थैर्य अवलम्बन नहीं करतीं। दुष्टबुद्धि पुरुष जिस विषयको हितकर कहके निश्चय करता है, वह भी दुःखदायी अनर्थ होकर परिणाममें विनष्ट होता है। नष्ट अर्थ भी दुःखदायक हैं; क्यों कि बुद्धिके सहित मन अर्थहानि स्मरण करके भी अवसन्न होजाता है। जब सङ्कल्परूपसे मन बुद्धिसे पृथक् होता है, तब उसे केवल मन कहा जाता है, यथार्थमें वही बुद्धि है; इसलिये उसके तापसे बुद्धि भी सन्तापित हुआ करती है। बुद्धिमें गया हुआ दुःखका फल देनेवाला रजोगुण उस बुद्धिके बीच विधृत अर्थात् प्रतिबिम्ब रूपसे स्थापित इस आत्माको आवरण करता है अर्थात् परिच्छेद परिताप आदि बुद्धिके धर्म्म तदुपहित आत्मामें प्रकाशित होते है, इससे मन रजोगुणके सङ्ग मिलकर सख्यता करता है अर्थात् प्रवृत्ति विषयमें उन्मुख होता है। सङ्गत मन उसही आत्मा और पौरजन इन्द्रियोंको वशमें करके रजोगुणके फल दुःखके निकट अर्पण करता है, अर्थात् जैसे कोई दुष्ट मन्त्री राजा और नगरवासी प्रजाको अपने अधीनमें करके शत्रुके निकट समर्पण करता है, वैसेही राजसिक मनके जरिये आत्मा बुद्धि और इन्द्रियां बद्ध होती हैं।

२५२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! आकाश आदि भूतोंका निर्द्धारण गर्भ जो शास्त्र द्वैपायन मुनिके मुखसे वर्णित हुआ है, हे पापरहित! तुम अपनेको परम श्लाघायुक्त समझके उसे फिर मेरे समीप सुनो, प्रकाशमान अग्निके समान अर्थात् अज्ञानसे रहित भगवान द्वैपायनने जिसका वर्णन किया है,—हे तात! मैं उसही अज्ञानको नष्ट करनेवाले शास्त्रको फिर कहता हूं। स्थैर्य्य, गरुआई, कठोरता, प्रसवार्थता अर्थात् धान्य आदिके उत्पत्तिकी निमित्तता, गन्ध, गुरुत्व, गन्ध ग्रहण करनेकी सामर्थ्य। शिष्टावयवत्व, स्थापन अर्थात् मनुष्य आदिको आश्रयत्व और पञ्चभौतिकत्वमें जो धृतिके अंश हैं, वे सब भूमिके गुण है। शीतता, ह्लाद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, रसनेन्द्रिय, प्रस्रवण और भूमिसे उत्पन्न हुए चावल प्रभृतिके पचानेकी शक्ति, ये जलके गुण है। दुर्द्धर्षता, ज्योति, ताप, पाक, प्रकाश, शोक, राग लघुता, तीक्ष्णता और सदा उर्द्ध्वज्वलन, ये कई एक अग्निके गुण हैं। अनुष्ण, शीत, स्पर्श वागिन्द्रिय-गोलक, गमन आदि विषयोंमें स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रता, मूत्र आदिका त्याग उत्क्षेपण आदि कर्म्म, श्वास प्रश्वास आदिको

प्राणरूपसे चिदुपाधिता और जन्म, मरण, ये कई एक वायुके गुण हैं। शब्द, व्यापकता, छिद्रता, आश्रयत्वाभाव, आश्रयान्तर, शून्यता, रूपस्पर्श शून्यता निबन्धन अव्यक्तता अविकारिता, अप्रतिघातिता, श्रवणेन्द्रियकी उपादानता और देहान्तर्गत छिद्र स्वरूपता, ये कई एक आकाशके गुण हैं। पञ्चभूतोंके यही पचास गुण प्राचीन महर्षियोंके जरिये वर्णित हुए हैं। धीरज, उपपत्ति अर्थात् उपापोह, कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना अर्थात् मनोरथ वृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष और अस्थिरत्व, ये नव मनके गुण हैं। इष्ट और अनिष्ट वृत्ति विशेषका विनाश, उत्साह, चित्तकी स्थिरता, संशय और प्रतिपत्ति अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणवृत्ति, इन पांचोको पण्डित लोग बुद्धिका गुण समझते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। बुद्धि किस कारणसे पञ्चगुणान्वित हुई और इन्द्रियां ही किस लिये गुणरूपसे वर्णित हुई; आप इस सूक्ष्म ज्ञानका सब विषय मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! साधारण रीतिसे बुद्धिके पांच गुण वर्णित होनेपर भी वेद वचनके अनुसार उसे षष्टि-गुणयुक्त कहा जाता है, क्यों कि पञ्च भूतोंके पहले कहे हुए पचास गुण और स्वयं पञ्चभूत भी बुद्धिके गुणस्वरूप कहे गये हैं, बुद्धि अपने पञ्चगुणोंके सहित पूर्व्वोक्त पचपनगुणों मिलकर साठगुणोंसे संयुक्त होती है। वे सब गुण नित्य चैतन्यके सङ्ग मिलनेसे सबवृत्तियोंके जड़ होनेपर भी चैतन्यसम्बन्धसे उनके ज्ञानरूपत्व व्यवहार हुआ करते हैं सब भूतोंकी समस्त विभूति अचर परब्रह्मके जरिये उत्पन्न हुई हैं, परन्तु वह उत्पत्ति नित्य नहीं है,—यह वेदमें वर्णित है। हे तात! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके विषयमें दूसरे वादियोंने जो वेदविरुद्ध युक्ति कही हैं वे विचारसे दूषित हैं; इससे तुम इस बोधके मेरे कहे हुए नित्य सिद्ध, परब्रह्मके तत्वको जानकर और ब्राह्मऐश्वर्य्य प्राप्त करके शान्त बुद्धि होजाओ।

२५४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, ये जो सब महाबलवान् राजा सेनाके बीच चेतरहित होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, इनके बीच एक एक पुरुष अत्यन्त बलवान थे। कोई कोई दश हजार हाथीके समान बलशाली थे; ये सब युद्धभूमिमें समबल तथा तुल्य तेजवाले वीरोंके जरिये मारे गये हैं युद्धभूमिमे इनसब महाप्राणियोंकी संहार करे, ऐसा मैं किसीको भी नहीं देखता हूं। ये सब बहुत विक्रमसे युक्त और वीर्य्य तथा बलसे भरे थे; तो भी ये महाबुद्धिमान् पुरुष प्राणरहित होके पृथ्वीपर सो गये हैं, और इन सब प्राणहीन मनुष्योंके विषयमें मृत शब्द व्यवहृत होरहा है। ये सब भयङ्कर विक्रमी राजा लोग प्रायः बहुतेरे ही मर गये हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हुआ है, कि 'मृत' यह नाम कहांसे उत्पन्न हुआ है, हे देव तुल्य पितामह। स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इन कई एकके बीच किसकी मृत्यु होती है। किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु किस लिये सब प्रजासमूहको हरण करती है। आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात। पहिले समय सत्ययुगमें अनुकम्पक नाम एक राजा था, वह युद्धमें वाहनरहित होकर शत्रुओंके वशमें होगया। बल विक्रममें नारायणके समान उसके हरि नाम एक पुत्र था, वह युद्धमें शत्रुओंके जरिये सेनाके सहित मारा गया। शत्रुओंके वशीभूत और पुत्र शोकसे युक्त राजा अनुकम्पकने दैव संयोगसे शान्तिपरायण होकर एक बार पृथ्वी

मण्डलपर महर्षि नारदका दर्शन किया। उस राजाने पुत्रका मरना और शत्रुओंके जरिये जिस प्रकार बन्धन प्राप्त हुआ था, वह सब उनके निकट निवेदन किया। अनन्तर तपोधन नारदमुनि उनका वह सब वचन सुनके उस समय पुत्र शोकको दूर करनेवाला यह लम्बायमान अख्यान कहने लगे।

नारदमुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह बहुत बड़ा उपाख्यान जिस प्रकार कहा गया था, और मैंने जैसे सुना है, उसे इस समय तुम सुनो। महातेजस्वी पितामहने प्रजा उत्पन्न करनेके समय बहुतसी प्रजाकी सृष्टि की; उस समय वे सब प्रजा अत्यन्त बुद्धिमान हुई परन्तु कोई पुरुष मृत्युके वशीभूत न हुए। उस समय कोई स्थान भी प्राणियोंसे सूना नहीं था, मानो तीनों लोक प्रजासमूहसे भर गया था, इसलिये प्रजापतिके अन्तःकरणमें संहारकी चिन्ता उत्पन्न हुई उन्होंने चिन्ता करते ही संहार विषयमें हेतुयुक्त कारण पाया। हे महाराज! क्रोध वशसे उनके इन्द्रिय छिद्रोंसे अग्नि उत्पन्न हुई। हे राजन्! पितामह उस ही अग्निके जरिये सब दिशाओंको जलानेमें प्रवृत्त हुए। हे महाराज! अनन्तर ब्रह्माके कोपसे उत्पन्न हुई अग्नि द्युलोक, भूलोक और आकाशमण्डलमें स्थित ग्रह, नक्षत्र तथा स्थावर जङ्गमके सहित समस्त जगत्को जलाने लगी। पितामहके महाक्रोधके वेगसे कुपित होनेपर उनकी क्रोधाग्निसे स्थावर जङ्गम सब जीव जलने लगे। तब पिंगल वर्ण जटासे युक्त वेदपति और यज्ञपति परवीरहन्ता महादेव पितामहके निकट उपस्थित हुए, जब भगवान् महादेव प्रजासमूहकेहितकी इच्छासे पितामहके निकट उपस्थित हुए उस समय मानो ब्रह्मा तेजसे प्रज्वलित होकर महादेवसे बोले, हे शम्भु! आज मैं तुम्हें वर ग्रहण करनेके योग्य समझता हूं, इसलिये तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं, तुम्हारे हृदयमें जो प्रिय विषय विद्यमान है, आज मैं उसे पूर्ण करूंगा।

२५५ अध्याय समाप्त।

महादेव बोले, हे प्रभु पितामह! प्रजा सृष्टिके लिये ही मेरी यह प्रार्थना समझिये; आपने समस्त प्रजाकी सृष्टिकी है; इसलिये इनके ऊपर कोप न करिये। हे देव जगत्प्रभु! आपके तेजरूपी अग्निसे सारी प्रजा सब भांतिसे जली जाती है, उसे देखके मुझे करुणा हुई है, इसलिये आप इन लोगोंके ऊपर क्रोध न करिये।

ब्रह्मा बोले, मैंने क्रोध नहीं किया है और सब प्रजा न रहे,—यह भी मेरी इच्छा नहीं है केवल पृथ्वीके भारको हलका करनेके ही लिये इनके संहारकी इच्छा करता हूं। हे महादेव! इस भारसे दुःखित वसुन्धराने बहुतसे बोझके कारण जलमें डूबती हुई सदा संहारके लिये मुझे उत्तेजित किया है, मैंने इन वृद्धिको प्राप्त हुई प्रजासमूहके संहारके विषयमें जब बुद्धिसे बहुत विचार करके भी कोई उपाय न देख सका तब मेरे शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ।

महादेव बोले, हे विबुधेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रजाके संहारके निमित्त क्रोध न करिये स्थावर, जंगम जीव विनष्ट न होवें, समस्त पल्वल तथा वल्वज, तृण वा स्थावर जङ्गम आदि चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीव, ये सभी भस्म प्राय हुए हैं इससे सब जगत् उपप्लुत हुआ है। हे साधु! हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये, मैंने यही वर मांगा, ये सब प्रजा जो कि नष्ट हुई हैं, वे किसी प्रकार फिर आगमन न करेंगी, इससे निज तेजके जरिये ही इस तेजकी निवृत्ति होवे। हे पितामह! ये सब जन्तु जिसमें भस्म न हो जावें, आप जीवोंकी हितकामनासे वैसा दूसरा उपाय अवलोकन करिये, हे लोकनाथेश्वर! आपने मुझे अहङ्काराधिकारमें नियुक्त किया है; इससे प्रजा

प्रजननके उच्छेद निबन्धनसे जिसमें अभाव न हो, आप वैसेही किसी उपायका विधान करिये। हे नाथ! यह स्थावर जङ्गम जगत् आपसेही उत्पन्न हुआ है। हे देवोंके देव! इसलिये मैं आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करता हूं, कि सब जीव मरनेके अनन्तर बार बार जन्म ग्रहण किया करें।

नारदमुनि बोले, नियत वाक्य और संयतचित्त देव प्रजापतिने महादेवके उक्त वचनको सुनकर अन्तरात्मामें उस तेजको समेट लिया। अनन्तर सर्व्वलोक पूजित भगवान् प्रभु पितामहने अग्निको उपसंहार करके जीवोंके जन्म और मरणकी व्यवस्था कर दी। महानुभाव प्रजापतिके क्रोधज अग्निको उपसंहार करनेके समय उनके निखिल इन्द्रिय रन्ध्रोंसे एक स्त्री उत्पन्न हुई वह नारी काले और लाल वस्त्र पहने हुए दिव्य कुण्डलोंसे युक्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित और उसके दोनों नेत्र और करतल काले थे; वह इन्द्रिय छिद्रोंसे निकलते हो उनकी दहनी ओर बैठ गई। विश्वेश्वर ब्रह्मा और रुद्र दोनों ही उस कन्याको देखने लगे। हे महाराज! उस समय सब लोकोंके ईश्वर आदिभूत ब्रह्मा उस कन्याको मृत्यु नामसे आवाहन करके बोले, तुम इन सब प्रजाको संहार करो। हे कामिनी! तुम शीघ्र प्रजाको संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ मेरे नियोगके अनुसार तुम्हारा परम कल्याण होगा। जब कमलमालिनी मृत्युदेवीसे प्रजापतिने ऐसा कहा, तब वह कन्या अत्यन्त दुःखित होकर आंसू बहाती हुई चिन्ता करने लगी। मृत्युके आंसू गिरनेसे इकबारगी सब भूतोंका नाश न होजाय, इस ही आशङ्कासे प्रजापतिने अपने दोनों हाथकी अञ्जलीमें उसके आंसुओंको ग्रहण किया और मनुष्योंके हितके लिये फिर उसके निकट प्रार्थना की।

२५६ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, वह विशाल नैनी अबला स्वयं ही दुःख दूर करके उस समय आवर्जित लताकी भांति हाथ जोड़के बोली, हे वक्तृवर! आपने मेरे समान स्त्री क्यों उत्पन्न की; मेरे समान अबलाके जरिये भयङ्कर रौद्रकर्म्म किस प्रकार साधित होवेगा मैं अधर्म्मसे अत्यन्त डरती हूं; इसलिये आप मेरे विषयमें धर्म्मविहित कर्म करनेकी आज्ञा करिये; आप मुझे भयार्त्त देख रहे हैं; इससे कल्याणकारी नेत्रसे अवलोकन करिये। हे प्रजेश्वर! मैं निरपराधिनी बाला हूं, बूढ़े वा युवा प्राणियोंको हरण न कर सकूंगी, मैं आपको नमस्कार करती हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। जिसके प्रिय पुत्र, सखा, भाई, माता और पिता आदिको मैं हरण करूंगी वह यदि मुझे शाप देवें,—उस ही निमित्त मैं अत्यन्त भयभीत हुई हूं; दुःखित प्राणियोंकी आंखोंके आंसू मुझे सदा जलावेंगे इसलिये मैं वैसे प्राणियोंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपको शरणागत हुई हूं। हे देव! पाप कर्म्म करनेवाले मनुष्य ही यम लोकमें गमन करें; हे वरदायक! इससे आप मुझपर कृपा करिये। हे लोकपितामह महेश्वर! मैं आपके निकट यही प्रार्थना करती हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिये मुझे तपस्या करनेकी इच्छा है, आप इस विषयमें आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु! मैंने प्रजा संहार करनेके लिये तुम्हें उत्पन्न किया है, इससे जाके सब प्रजाको संहार करो, इस विषयमें और वितर्क मत करो; मैंने जैसा सङ्कल्प किया है, वह अवश्य वैसा ही होगा, उसमें कभी उलट फेर न होगा। हे पापरहित अनिन्दिते! मैंने जो वचन कहा है, उसे प्रतिपालन करो। हे पराये देशको जीतनेवाले महाबाहु महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा वचन सुनके कुछ भी न बोली, केवल नम्रभावसे भगवानके निकट सिर झुकाकर स्थिति करने लगी, बार बार कह

नेपर भी जब वह भामिनी चेतरहितकी भांति चुपी साध गई, तब देवेश्वर ब्रह्मा आपसे आप ही प्रसन्न हुए और उन लोकनाथने बिस्मित होकर सब लोकोंको देखा। अनन्तर उन पराजयरहित भगवान्‌का क्रोध निवृत्त होनेपर वह कन्या उनके निकटसे चली गई—ऐसा हमने सुना है। हे राजेन्द्र! मृत्यु उस समय वहांसे गमन करके प्रजा संहार विषयको अनंगीकार करती हुई शीघ्रताके सहित धेनुक तीर्थमें गई, वह देवी धेनुक तीर्थमें परम दुष्कर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई। वह पन्द्रह पद्म- वर्ष परिमाणसे एक चरणसे खड़ी होके स्थिति करने लगी। जब मृत्यु उस स्थानमें इस प्रकार दुष्कर तपस्या कर रही थी, उस समय महातेजस्वी ब्रह्मा फिर उससे यह बचन बोले, हे मृत्यु! मेरा बचन प्रतिपालन करो। मृत्यु उनके बचनका अनादर करके शीघ्रता- पूर्वक फिर सातपद्म वर्ष परिमाण एक चरणसे खड़ी रही। हे मानद! इसी प्रकार पर्य्याय क्रमसे उसने तेरह पद्म वर्ष व्यतीत किया। शेषमें वह फिर अयुतपद्म वर्ष पर्य्यन्त मृगसमू- होंके सहित घूमती रही। हे महाबुद्धिमान् महाराज! मृत्यु बीसहजार वर्ष तक वायु पीके रही थी। हे राजन्! अनन्तर उसने अत्यन्त कठोर मौनव्रत अवलम्बन किया, सातहजार एक वर्षतक जलमें निवास किया। हे नृपसत्तम! अनन्तर उस कन्याने गण्डकी नदीमें गमन किया, वहां वायु और जल पीके फिर नियमा- चरण करने लगी, अन्तमें वह महाभागा गङ्गा- नदी और सुमेरु पर्व्वतपर गई। वहां प्रजास- मूहको हितकामनाके लिये स्थाणुकी भांति केवल निश्चेष्ट होरही। हे राजेन्द्र! अनन्तर हिमालयकी शिखरपर जहां कि देवताओंने यज्ञ किया था; वहांपर वह निखर्व्व वर्ष पर्य्यन्त अंगूठेके बल स्थित रही और परम यत्नसे प्रजापतिको प्रसन्न किया। उस समय सब लोकोंकी सृष्टि और प्रलयके कारण प्रजापति उससे बोले, हे पुत्री! यह क्या होरहा है? मेरा पहला बचन प्रतिपालन करो।

पितामहका बचन सुनके मृत्युने उन भग- वान्‌से फिर कहा, हे देव! मैं प्रजासमूहका संहार न करूंगी, मैं फिर आपको प्रसन्न करती हूं। देवोंके देव पितामहने उस कन्याको अधर्म्मके भयसे डरी हुई तथा फिर प्रार्थना करती हुई देख निज वाक्यका निग्रह करके यह बचन बोले, हे शुभे! तुम इन सब प्रजाको संयत करो, इससे तुम्हें अधर्म्म न होगा। हे कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या न होगा; सनातन धर्म्म इस समय तुम्हें अवलम्बन करेगा, मैं तथा दूसरे देवता लोग सब कोई तुम्हारे हितमें रत रहेंगे। तुम्हारी यह अभिलाषा तथा और जो कुछ तुम्हारे मनमें अभिलषित विषय है; उसे प्रदान करता हूं, व्याधिसे पीड़ित प्रजा तुम्हें दोषी न करेंगी। तुम प्रति पुरुषमें निज स्वरू- पसे पुरुषत्वको प्राप्त होगी; स्त्रियोंमें स्त्रीरूपी होगी और नपुंसकोंमें नपुंसकत्व लाभ करोगी।

हे महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके फिर उस अव्यय महात्मा देवेश्वरके समीप हाथ जोड़के प्रजासंहारके विषयमें अन- ङ्गीकार बचन ही कहने लगी। देव पितामह उस समय उससे बोले, हे मृत्यु! तुम मनुष्योंको संहार करो। हे शुभे! जिसमें तुम्हें अधर्म्म न हो, मैं उसही उपायको सोचूंगा। हे मृत्यु! तुम्हारे जिन सब आसुओंकी बूंदोंको गिरती हुई देखके मैंने तुम्हारे सम्मुखमें ही अञ्जली धारण की थी, वेही भयङ्कर व्याधि होकर समय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको तुम्हारे वशीभूत करेंगी। तुम सब प्राणियोंके अन्तकालमें इक- वारगी मरणके निदान काम और क्रोधको प्रेरणा करोगी, ऐसा होनेसे नित्य धर्म्म तुम्हें अवलम्बन करेगा अर्थात् काम क्रोधको प्रकट कर उसहीके जरिये जीवोंका संहार करके तुम

राग द्वेषसे रहित होनेके कारण अधर्म्मभाजन न होगी। तुम इस ही प्रकार धर्म्म पालन करोगी, किसी भांति आत्माको अधर्म्ममें निमग्न न करोगी, इसलिये तुम इच्छानुसार निज अधिकारकी अभिलाष करो और कामको प्रकट करके अब जीवोंके संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ।

मृत्यु नामी कामिनीने उस समय शापभयसे डरके ब्रह्मासे बोली, "वैसाही करूंगी"। अनन्तर वह प्राणियोंके अन्तकालमें काम क्रोधकी प्रेरणा कर और सबको मोहित करके प्राणियोंका नाश किया करती है। पहले मृत्युके जो सब आंसू गिरे थे वेही व्याधि स्वरूप हुए हैं, उन्हीं व्याधियोंके जरिये मनुष्योंका शरीर रोगयुक्त हुआ करता है, इससे प्राणियोंके जीवन नष्ट होनेपर शोक करना उचित नहीं है इसलिये तुम शोक मत करो, विचारके जरिये यथार्थ विषय मालूम करो। हे राजन्! जैसे इन्द्रियां सुषुप्ति अवस्थामें सत् वस्तुके सङ्ग लीन होके जाग्रत अवस्थामें फिर लौटती हैं, वैसेही मनुष्य लोग जीवन शेष होनेपर गमन करके इन्द्रियोंकी भांति पुनरागमन किया करते हैं। भयङ्कर शब्दके युक्त महा तेजस्वी भयानक वायु सब प्राणियोंका प्राणभूत है, वह वायु देहधारियोंके देहभेदसे नाना वृत्ति अर्थात् अनेक शरीरगत हुआ करता है, इसलिये वायुही सब इन्द्रियोंसे श्रेष्ठ है। देवता लोग पुण्य-क्षीण होनेसे मनुष्य होते और मनुष्य पुण्यात्मा होनेसे देवत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! इसलिये पुत्रके निमित्त शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र स्वर्गलाभ करके आनन्दित होरहा है। इसही प्रकार देवसृष्ट मृत्यु समय उपस्थित होनेपर प्रजाका संहार करती है, उसके वेही सब आंसू व्याधि होकर समयके अनुसार जीवोंका हरण किया करते हैं।

२५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ये सब मनुष्य आर्य्य, जैन, म्लेच्छ आदि शास्त्रीय धर्म्मके नानाल निबन्धनसे उस विषयमें सन्देहयुक्त होते हैं; इससे धर्म्मका स्वरूप और लक्षण क्या है। यथा कहांसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये, और धर्म्म इसलोकके लिये, वा परलोकके लिये अथवा दोनों लोकोंके निमित्त है, वह भी आप मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन प्रकार धर्म्मके लक्षण हैं, और प्रयोजनको भी पण्डित लोग चतुर्थ लक्षण कहा करते हैं। महर्षि लोग धर्म्मके निमित्त हितकर कर्म्मोंका न्यूनाधिक भावसे निश्चय करते हैं, गार्हस्थ आश्रममें भी मोक्ष होती है, आलसी लोग सन्न्यास अवलम्बन करते हैं, त्याग करनेसे ही मुक्ति हुआ करती है; विषय लम्पट मनुष्य गार्हस्थाश्रमकी अभिलाष करते हैं। इस प्रकार विषयभेदसे लोकयात्रा निवाहनके लिये धर्म्मका नियम निर्णीत हुआ है। इस लोक और परलोक दोनों ओर धर्म्मके फल दीख पड़ते हैं। पापी मनुष्य निपुण भावसे धर्म्म प्राप्तिमें असमर्थ होकर पापयुक्त होता है। कोई कोई ऐसा कहा करते हैं, कि पाप करनेवाले पुरुष आपद कालमें भी पापोंसे नहीं छूटते। धर्म्मवित् पुरुष पापवादी होनेपर भी अपापवादी हुआ करते हैं, आचार ही धर्म्मकी निष्ठा है; इसलिये तुम उस आचारका अवलम्बन करनेसे ही धर्म्मको जान सकोगे। धर्म्म समाविष्ट तस्कर जब परधनको हरता है अथवा अराजक समयमें पराये चित्तको अपना कर लेता है, उस समय वह परम सुखी होता है; परन्तु जब तस्करके धनको दूसरे लोग हर लेते हैं, तब वह राजद्वारमें उपस्थित होता है तब जो लोग निज धनसे सन्तुष्ट हैं, वह उनकी स्पृहा किया करता है, वह निर्भय, दुर्ब्ब

और अशंकित होकर राजद्वारमें प्रवेश करता है। अन्तरात्मामें कुछ भी दुश्चरित नहीं देखता। सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, सत्यसे सारा संसार विधृत हुआ करता है, समस्त जगत् सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। रौद्र कर्म्म करनेवाले पापाचारी मनुष्य भी पृथक् पृथक् शपथ करके सत्यके आश्रयसे अद्रोह और अविसम्वादमें स्थित रहते हैं, वे लोग यदि परस्परको प्रतिज्ञा भङ्ग करें, तो निश्चयही विनष्ट होवें, परधन हरना उचित नहीं,—यह सनातन धर्म्म है। बलवान् पुरुष पूर्व्वोक्त धर्म्मको निर्ब्बलोंके जरिये प्रवर्त्तित समझते हैं, जिस समय बलवानोंको दैवकी प्रतिकूलतासे निर्ब्बलता प्राप्त होती है, तब उन लोगोंकी भी धर्म्ममें रुचि हुआ करती है। अत्यन्त बलवान् पुरुष भी सुखी नहीं होते, इसलिये अनार्ज्जव अर्थात् कुटिल कार्य्योंमें बुद्धि लगानी तुम्हें उचित नहीं है। सत्यवादी पुरुष असाधु, तस्कर और राजासे भयभीत नहीं होता, वह किसी पुरुषका कुछ अनिष्ट नहीं करता; इसहीसे निर्भय और पवित्र हृदयसे निवास किया करता है। गांवमें आये हुए हरिनकी भांति तस्कर सब लोगोंके समीप शङ्कित होता है, जैसे वह स्वयं बहुतसा पाप कार्य्य करता है, दूसरेको भी वैसाही दीखता है। जो शठ होता है, वह दूसरेको भी शठ समझता है; और शुद्ध हृदय तथा सदाशयवाले पुरुष सदा आनन्दित और निर्भय होकर सब ठौर विचरते हैं, अपने दुश्चरितके विषय आत्मासे पृथक् नहीं देखते। सब भूतोंके हितमें रत महर्षियोंने "दान करना चाहिये,"—इसेही धर्म्म कहा है, धनवान् मनुष्य उसही धर्म्मको निर्द्धनोंसे प्रवर्त्तित समझता है, दैववशसे जब वह भी दीनदशासे युक्त होजाता है, उस समयमें उसे भी उस ही धर्म्ममें रुचि उत्पन्न होती है, इसलिये अत्यन्त धनवान पुरुष भी कदाचित सुखी नहीं होते। जब मनुष्य दूसरेके किये हुए कर्म्मको आत्मकृत कर्म्म कहनेकी अभिलाषा नहीं करता, तब वह जिस कर्म्मको अपना प्रिय समझता है, दूसरेके लिये उसे कभी न करेगा।

जो पुरुष पराई स्त्रीका उपपति होता है; वह स्वयं दोषी है, इसलिये वह दूसरेको क्या कह सकेगा। वह यदि दूसरे पुरुषको उक्त कार्य्य करते हुए देखे तो मुझे बोध होता है, उसे कुछ न कह सकनेसे क्षमा किया करेगा। जो पुरुष स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है, वह किस प्रकार दूसरेका बधकर सकेगा; इसलिये अपने लिये जैसी अभिलाष करे, दूसरेके वास्ते भी वैसी ही इच्छा करनी उचित है। स्वीकार आवश्यकके अतिरिक्त भोग-साधन धन आदिके जरिये दीनजनोंका भरण-पोषण करे, इस ही निमित्त विधाताने कुसीद अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन-प्रयोग प्रवर्त्तित किया है; दीन-दरिद्रोंके पालने पोषनेके लिये ही धनकी वृद्धि करनी चाहिये, नहीं तो केवल धनकी वृद्धि हो, यह उद्देश्य अत्यन्त निकृष्ट है। जिस-सत्मार्गमें निवास करनेसे देवता लोग भी सम्मुखवर्त्ती हुआ करते हैं, वैसे सत्मार्गमें सदा विचरता रहे, अर्थात सदा दम, दान और दयायुक्त होवे, अथवा लाभके समय यज्ञ, दान आदि धर्म्ममें अनुरक्त होना उत्तम कार्य्य है। हे युधिष्ठिर! प्रिय वाक्यसे जो कुछ प्राप्त होता है, मनीषी लोग उसेही धर्म्म कहा करते हैं, जो अपनेको प्रिय है; दूसरेके विषयमें वैसा ही करना चाहिये, जो अपनेको प्रिय नहीं है, दूसरेके सम्बन्धमें वैसा करना योग्य नहीं है। यह जो मैंने धर्म्म अधर्म्मका लक्षण वर्णन किया है, तुम उसको आलोचना करो। पहले समयमें विधाताने साधुओंके दया प्रधान सत् चरित्रको ही सूक्ष्म धर्म्म लाभकी विधि निमित्तरूपसे विधान की थी। हे कुरु सत्तम! यही तुम्हारे निकट धर्म्मका लक्षण वर्णन किया

गया,— इसे सुनकर तुम किसी प्रकार अनार्जव कार्य्योंमें बुद्धि निविष्ट न करना।

२५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वेदैकगम्य, साध समुद्दिष्ट धर्म्मका लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म है, हमारी कोई प्रतिभा है, उसहीको अवलम्बन करके अनुमानके जरिये मैं यह सब प्रश्न करता हूं, मेरे हृदयमें बहुतसे प्रश्न थे, उनमेंसे आपने अधिकांशके उत्तर दिये हैं, अब दूसरी प्रकारका एक प्रश्न करता हूं, उस विषयमें कुतर्क करनेका मुझे आग्रह नहीं है, पूंछना ही मुख्य प्रयोजन है। हे भारत! यह प्रसिद्ध ही है, कि ये समस्त शरीरयुक्त प्राणी स्वयं ही जीवन लाभ करते हैं, स्वयं ही उत्पन्न होते है और स्वयं ही उत्तीर्ण अर्थात् देहाकारसे च्युत होते हैं; ऐसी जनश्रुति है, कि अन्नसे ये सब जीव जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म ग्रहण करके अन्नसे ही जीवित रहते हैं, और अन्त समय अन्नमें जाके प्रवेश किया करते हैं; आपने कहा है दूसरोंके सुख दुःख उत्पादनसे जो धर्म्माधर्म्म उत्पन्न होता है वह कालान्तरमें अपना सुख दुःखप्रद हुआ करता है, इसलिये केवल वेदाध्ययनसे ही धर्म्मका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि व्यवस्थाके अभाव निवन्धनसे वैदिक धर्म्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। सब पुरुषोंके धर्म्म स्वतन्त्र है और विषमस्थ लोगोंका स्वतन्त्र धर्म्म है, आपदका अन्त नहीं है; इसलिये धर्म्मको भी अनन्त कहना होगा। अनन्त होनेसे ही धर्म्म दुर्ज्ञेय हुआ, इसलिये अव्यवस्थित वैदिक धर्म्मका धर्म्मत्व किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा। और सदाचारको आपने धर्म्म कहा है, परन्तु धर्म्माचरणसे ही लोगोंमें सत् हुआ करता है; इसलिये लक्ष्य और लक्षणके अन्योन्याश्रय दोषसम्पर्कसे सदाचारको धर्म्मलक्षण रूपसे किस प्रकार स्वीकार किया जावे; यह दीख पड़ता है, कि कोई प्राकृत पुरुष धर्म्मरूपसे अधर्म्म करता है और कोई असाधारण मनुष्य अधर्म्मरूपसे धर्म्माचरण करता है। शूद्र जातिको वेद सुनना शास्त्रमें मना होनेपर भी प्राकृत शूद्र धर्म्मबुद्धिके कारण मुमुक्षु होकर वेदान्त सुना करते हैं और अगस्त्य आदि असाधारण महर्षियोंने बहुतसे हिंसायुक्त अधर्म्माचरण किये हैं, इसलिये भ्रष्ट लोगोंमें शिष्ट लक्षण दीख पड़नेसे सदाचारका भी निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है; परन्तु धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने धर्म्मके यही प्रमाण निर्देश किये हैं। मैंने सुना है युग युगमें वेदोंकी घटती हुई जाती है, इसलिये कालभेदसे जब कि वेदमें भी अन्यथा देखी जाती है, तब वह अनवस्थित वेदवाक्य भी अश्रद्धेय होसकता है। सतयुगका धर्म्म स्वतन्त्र है, त्रेता, द्वापरके स्वतन्त्र धर्म्म हैं और कलियुगका धर्म्म उनसे पृथक् है, मानो यह शक्तिके अनुसार विहित हुआ है। "वेदके सब वचन सत्य हैं,"—यह केवल लोकरञ्जन मात्र है, और वेदसे निकली हुई स्मृतियें सर्व्वमुख हुई हैं; इसलिये किस प्रकार स्मृतिवाक्य प्रमाण किया जा सकता है। सबका प्रमाण वेदवाक्य सारी स्मृतियोंके प्रमाणको सिद्ध करता है, यदि यह अङ्गीकार किया जावे, तो वेदवाक्यका निरपेक्षत्व निवन्धन प्रमाण स्वीकार करना होगा और सब स्मृतियें श्रुति-संक्षेप कहके अप्रमाण रूपसे परिगणित हुआ करती है; परन्तु अप्रमाणरूपी स्मृतिके सङ्ग जब श्रुतिका विरोध दीख पड़ता है, तब मूलभूत वेदवाक्यका भी अप्रमाणत्व-निबन्धन एक पक्षपातिनी युक्तिके विना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रुति तथा स्मृति दोनोंके ही अप्रमाणके कारण शास्त्रत्व सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

वलवान् दुरात्मा पुरुषोंके जरिये क्रियमाण धर्म्मका जो जो स्वरूप विकृत होता है, उसे

प्रनष्ट होजाता है। हम स्वयं इस धर्म्मको जानें वा न जानें अथवा जानने सकें, वा न जान सकें; तौभी धर्म्म छूरधारसे भी सूक्ष्म और पहाड़से भी गुरुतर है। पहले धर्म्म गन्धर्व्वनगरकी भांति अद्भुतरूपसे दीख पड़ता है, अर्थात् धर्म्मकाण्डमें कहा है, कि "चातुर्म्मास-याजीको अक्षय सुकृत होता है। हम सोमपान करेंगे, अमर होंगे"—इत्यादि श्रुतिका गन्धर्व्व नगरके समान अद्भुतत्व दीख पड़ता है। अनन्तर कवियोंके जरिये उपनिषत्के बीच वच्चमाण कर्म्म फिर अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थात् कार्य्यमात्र ही अनित्य हैं, कर्म्मसे जो लोक जय किया जाता है, उसका भी नाश होता है इत्यादि उपनिषत् वाक्यसे धर्म्म अत्यन्त तुच्छ बोध होता है।

हे भारत! जैसे पशुओंके पीने योग्य क्षुद्र तालावके जलको खेतमें सींचने पर सारा तलाव सूख जाता है, वैसेही शाश्वत धर्म्म अङ्गहीन होकर कलियुगके शेषमें अदृश्य होगा। इस ही प्रकार भविष्य विषयणी स्मृति है, कि निज इच्छा वा पराई इच्छा तथा दूसरे किसी कारणसे बहुतेरे असत् पुरुष वृथा आचार किया करते हैं, साधुओंके आचरित कर्म्महो धर्म्म रूपसे मालूम होते हैं परन्तु मूढ़ दृष्टिसे देखनेसे वही धर्म्म साधुओंमें प्रलापमात्र मालूम हुआ करता है। मूढ़ लोग साधुओंको उन्मत्त कहा करते हैं, और उनकी हंसी करते हैं। द्रोणाचार्य्य आदि महाजनोंने ब्राह्मणोंके कर्त्तव्य कार्य्यका अनादर करके क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन किया था; इसलिये सर्व्व हितकर कोई व्यवहार प्रवर्त्तित नहीं होता। इसके अतिरिक्त आचारके जरिये निकृष्ट जाति भी उत्कृष्ट होती है, और उत्तम वर्ण भी निकृष्ट हुआ करते हैं। कभी कोई पुरुष दैवइच्छासे आचारके जरिये समान रूपसे ही रहते हैं, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ आदि इस विषयमें विस्पष्ट दृष्टान्त स्थल हैं जिस आचारके जरिये एक पुरुष उन्नत होता है, वही आचार दूसरेको अवनत करता है, इसकी पर्य्यालोचना करनेसे सब आचारोंमें ही अनैक्यता अर्थात् व्यभिचारित्व मालूम हुआ करता है। प्राचीन पण्डित लोग सदासे जिस धर्म्मको स्वीकार करते चले आते हैं, आपने वह विषय ही वर्णन किया, इसलिये उस प्राचीन आचारके जरिये शाश्वती मर्य्यादा स्थापित हुआ करती है, परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनादि अविद्या प्रवृत्त स्वभावसे ही सुख-दुःख कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था हुआ करती है। वेद प्रमाणक धर्म्मके जरिये सुख दुःख आदि कार्य्याकार्य्यकी व्यवस्था नहीं होती।

२५९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धर्म्म विषयमें जाजलीके सङ्ग तुलाधारकी जो सब वार्त्ता हुई थी, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। जाजली नाम कोई बनचारी ब्राह्मण जङ्गलमें बास करते थे, उस महातपस्वीने समुद्रके किनारे बहुत तपस्या की थी। वह धीमान् मुनि संयत और नियताहारी होकर अनेक वर्ष पर्य्यन्त चीर, मृगछाला और जटा धारण करके मलिन हुए थे। हे राजन्! किसी समय वह महातेजस्वी विप्रर्षि समुद्रके जलमें बास करते हुए सब लोकोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर मनकी भांति वेग धारण करके विचरने लगे। अनन्तर उन्होंने बन सहित समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वीको देखकर फिर चिन्ता की, कि स्थावर जङ्गमयुक्त संसारके बीच मेरे समान वा मेरे सहित जलके बीच तथा आकाशमण्डलके नक्षत्रादि लोकोंमें गमन कर सके, ऐसा कोई भी नहीं है। वह जब जलके बीच राक्षसोंसे अदृश्यमान रहके ऐसा क— हे थे, तब पिशाचोंने उनसे कहा, हे नि

तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है, वाराणसी (काशी) में तुलाधार नाम वणिक् व्यवसायी एक महायशस्वी मनुष्य है, तुम जैसा कहते हो, वह भी वैसा बचन नहीं कह सकता। महातपस्वी जाजलीने पिशाचोंका ऐसा बचन सुनके उन्हें उत्तर दिया, कि बहुत अच्छा, मैं बुद्धिमान यशस्वी तुलाधारका दर्शन करूंगा। ऋषि जब ऐसा बचन बोले, तब पिशाचोंने उन्हें समुद्रसे उठाकर कहा, हे द्विजवर! तुम इस ही मार्गको अवलम्बन करके गमन करो। जाजली मुनि भूतोंका ऐसा बचन सुनकर मलिन-मन होकर काशीमें तुलाधारके समीप वक्ष्यमाण बचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। जाजली मुनिने पहिले कौनसा दुष्कर कर्म्म किया था, जिससे कि उन्होंने परम सिद्धि पाई; आप मेरे समीप उसेही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महातपस्वी जाजली मुनि घोर तपस्यायुक्त हुए थे, वह सन्ध्या और सबेरेके समय स्नान और आचमनमें रत रहते थे। वह स्वाध्यायमें रत द्विजश्रेष्ठ यथानियमसे अग्निकी परिचर्य्या करते थे, वाणप्रस्थ विधान जानके वेदविद्यासे प्रदीप्त हुए थे, वह वर्षाकालमें आकाशशायी और हेमन्तमें जल संश्रयी होकर तपस्या करते थे; परन्तु यह न जानते थे, कि मैं धर्म्मवान् हूं। ग्रीष्मकालमें वायु और घाम सहते थे, तौभी अपनेको धार्म्मिक समझके अभिमान नहीं करते थे। वह भूमिपर अनेक दुःखकरी शय्यापर शयन करते थे।

अनन्तर किसी प्रावृट्कालमें उस मुनिने आकाशको अवलम्बन करके अन्तरीक्षसे बार बार गिरते हुए जलको शिरपर धारण किया था। उससे उनकी सब जटा क्लिन्न और ग्रथित हुई थी। वह सदा वनमें घूमनेसे मलिन और मलयुक्त हुए थे। उस महातपस्वीने कभी कभी राहारी और वायुभक्षी होकर काठकी भांति अव्यग्र भावसे निवास किया था, किसी विचलित नहीं हुए थे। हे भारत! उसही शाखा-रहित वृक्षकी भांति चेष्टाहीन मुनिके शिरपर चटकपक्षी-दम्पतीने घोसला बनाया; जब पक्षी-दम्पती तृणोंसे घोसला बना रही थी, तब उन दयावान् महर्षिने उसे निवारण न किया। वह स्थाणुस्वरूप महातपस्वी जब किसी विचलित न हुए, तब वह विहंग-दम्पती विश्वस्त होकर सहजमें ही उन महर्षिके पर वास करने लगी। वर्षाकालके बीतने और शरत्काल उपस्थित होनेपर काम मोहित पक्षी मिथुन प्राकृतिक धर्म्मके अनुसार विश्वा सके वशमें होकर उस मुनिके शिरपर अण्डा प्रसव किया। उस संशितव्रती तेजस्वी विप्रने उसे जाना और जानके भी वह महातेजस्वी जाजली कुछ भी विचलित नहीं हुए, वह सदा धर्म्मनिष्ठ रहनेके कारण कभी अधर्म्ममें अभिलाष नहीं करते थे। अनन्तर वे दोनों पक्षी प्रतिदिन उनके शिरपर आके आश्वासित और हर्षित होकर वास करते थे कालक्रमसे अण्डोंके परिपुष्ट होने पर उनमेंसे बच्चे उत्पन्न हुए और जन्म लेकर वहां क्रमसे बढने लगे, तौभी जाजली विचलित नहीं हुए। वह चेष्टा रहित, समाधिनिष्ठ, धृतव्रत, धर्म्मात्मा चटक पक्षीके बच्चोंकी रक्षा करते हुए उस ही प्रकार स्थिति करने लगे। समयके अनुसार चटक शावकोंके पङ्ख जमे, मुनिने उसे जान लिया। अनन्तर किसी समयमें बुद्धिमान् यतव्रती महर्षि उन पक्षियोंको देखकर परम प्रसन्न हुए। पक्षी-दम्पती भी अपने बच्चोंकी पुरोहितसे बढ़ते देख हर्षित होकर निर्भयताके सहित उनके सहित मुनिके शिर पर वास करने लगी। जब पक्षी शावकोंके पङ्ख जम गये, तब वह उड़नेवाले होकर स्थानान्तरमें गमन करके फिर सन्ध्याके समय मुनिके शिरपर आके वास करते थे; विप्रवर आजली पूर्वके

विचलित न हुए, किसी समय वे बच्चे जनक-जननीसे परित्यक्त होके भी मुनिके शिरपर आगमन करके फिर स्थानान्तरमें गमन करते थे। सदा उनसे ऐसा आचरण करने पर भी जाजली निज स्थानसे विचलित न हुए। हे राजन्! इस ही प्रकार सारा-दिन बिताकर पचीशावृक्त सन्ध्याके समय निवासके लिये उस ही स्थानमें लौट आते थे किसी समय पची-वृन्द स्थानान्तरमें पांचदिन बिताकर छठवेंदिन जाजलीके शिर पर आके उपस्थित होते थे, इससे भी मुनि विचलित न हुए। क्रम क्रमसे वे बच्चे बलवान् होनेसे स्थानान्तरमें कई दिन बिताके भी नहीं लौटते थे, कभी एक महीनेके लिये उड़के चले जाते थे, फिर लौट कर नहीं आते थे, परन्तु जाजली उस ही भांति निवास करतेथे। अनन्तर उन पच्चियोंके एक समय उड़के चले जाने पर जाजलीने विस्मययुक्त होके समझा कि 'मैं' सिद्ध हुआ हूं। ऐसा ज्ञान होनेके अनन्तर उनके चित्तमें अभिमान उत्पन्न हुआ। व्रतनिष्ठ जाजली उन पच्चियोंको एकबारही निज मस्तकसे निकलते देखकर अपनेको सत्कारके योग्य समझके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए। उस महा तपस्वीने नदीमें स्नान करके अग्निमें आहुति देनेके अनन्तर सूर्य्यको उदय होते देखकर उनकी उपासना की। जापकश्रेष्ठ जाजलीने शिरके बीच चटकशावकोंको पूरोरीतिसे वर्द्धित करके "मैंने धर्म्म लाभ किया है" ऐसा वचन कहते हुए शून्य स्थलमें बाहुस्फोट करने लगे।

अनन्तर यह आकाशवाणी हुई कि, हे जाजली! तुम धर्म्म विषयमें तुलाधारके समान नहीं हुए। काशीपुरीमें तुलाधार नाम एक पुरुष बसता है। हे विप्र! तुमने जैसा कहा वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता। हे राजन्! जाजली मुनि उस आकाशवाणीको सुनके क्रोध-वश होकर तुलाधारका दर्शन करनेके लिये सारी पृथ्वीपर घूमने लगे और जहांपर सन्ध्याका समय उपस्थित होता था, वहांपर निवास करते थे, बहुत समयके अनन्तर वह काशीपुरीमें पहुंचे, वहां पहुंचके तुलाधारको पुण्य-वस्तुओंको बेचते हुए देखा। मूलधनोप-जीवी तुलाधार विप्रवर जाजलीको आते देखकर ही परम सन्तुष्ट होकर उठ खड़े हुए और स्वागत प्रश्नसे उनका सत्कार किया।

तुलाधार बोले, हे ब्रह्मन्! आप अभी आये हैं, इसे मैंने निःसन्देह जाना है। हे द्विजवर! अब मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। आपने समुद्रके तटपर सजल स्थानमें महती तपस्याकी है, पहले कभी धर्म्मका नाम भी नहीं जानते थे, अर्थात् "मैं धार्म्मिक हूं" आपको ऐसा ज्ञान नहीं था। हे विप्र! अन्तमें जब आप तपस्यासे सिद्ध हुए, तब पच्चियोंके बच्चे शीघ्रही तुम्हारे शिरपर उत्पन्न हुए, आपने उनका यथायोग्य सत्कार किया। हे द्विज! जब बच्चे पङ्खवाले होकर आहारके लिये उड़के चले गये, तब आपने मनमें यह निश्चय किया, कि "चटक पच्चियोंका पालन करनेसे धर्म्म हुआ है।" हे द्विजसत्तम। अनन्तर मुझे उद्देश्य-करके जो आकाशवाणी हुई, तुम उसे सुनके क्रोधके वशमें हुए और उसही निमित्त इस स्थानमें आये हो। हे द्विजवर! इसलिये मैं आपका कौनसा प्रियकार्य्य सिद्ध करूं, उसे ही कहिये।

२६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, उस समय जब बुद्धिमान् तुला-धारने जापकप्रवर जाजलीसे ऐसा वचन कहा, तब उन्होंने वच्यमाण वचनसे उसे उत्तर दिया।

जाजली बोले, हे वणिक्पुत्र! तुम समस्त रस, गन्ध, वनस्पति औषधी और फलमूलोंको बेचा करते हो, तुमने नैष्ठिकी बुद्धि कहांसे पायो और किस प्रकार तुम्हें ऐसा ज्ञ।

हुआ। हे महाप्राज्ञ! तुम इस ही विषयको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप वर्णन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा पूछनेपर धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाला तुलाधार वैश्य उस समय ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलीसे सब सूक्ष्म धर्म्म कहने लगा।

तुलाधार बोला, हे जाजली! लोकमें सब भूतोंके हितकर जो पुराण-धर्म्मको जानते हैं, मैं रहस्यके सहित उस सनातन धर्म्मको जानता हूं; जीवोंसे द्रोह न करके अथवा आपदकालमें अल्प द्रोह आचरण करके जो जीविका निबाही जाती है, वही परम धर्म्म है। हे जाजली! मैं वैसा ही वृत्ति अवलम्बन करके जीवन व्यतीत किया करता हूं। मैंने परच्छिन्न तृणकाठोंसे यह गृह बनाया है। हे विप्रर्षि! अलक्त, पद्मक और तुङ्गकाष्ठ, कस्तूरी आदि विविध सुगन्धित वस्तु और नमक आदि रसकी वस्तुयें, मद्यके अतिरिक्त इन सब वस्तुओंको मैं दूसरेके हाथसे खरीदके कपटरहित होकर वचन, मन और कर्म्मके जरिये बेचा करता हूं। हे जाजली! जो सब प्राणियोंके सुहृत् तथा सब जीवोंके हितमें रत रहते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं।

हे जाजली! मैं किसीको किसी विषयमें अनुरोध नहीं करता, किसीके सङ्ग विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता और किसीके समीप किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता। मैं सब भूतोंमें समदर्शी हूं, इसलिये तुम मेरा व्रत अवलोकन करो। हे जाजली! सब भूतोंमें मेरा तुलादण्ड समान भावसे खड़ा है। हे विप्रवर! मैं आकाशमण्डलमें स्थित विविध रूपवाले बादलसमूहोंकी भांति जगत्‌की विचित्रता देखकर दूसरेके किये हुए कार्य्योंकी प्रसंसा नहीं करता और निन्दा भी नहीं करता हूं। हे बुद्धिमान् जाजली! इस ही भांति तुम मुझे सब भूतों और ढेले, पत्थर या सुवर्णमें समदर्शी समझो। जैसे अन्धे, बहरे और उन्मत्त आदि पुरुषोंके इन्द्रियगोलक उस ही इन्द्रियाधिष्ठात देवताओंके द्वारा आच्छादित होनेपर भी वे लोग श्वास लेते हुए जीवन धारण किया करते हैं, मैं उसे देखकर अपनेमेंही वैसी उपमा दिया करता हूं। जैसे बूढ़े, आतुर और दुर्बल पुरुष विषयोंसे निस्पृह होते हैं, वैसे ही अर्थ और काम्य वस्तुके उपभोग विषयमें मुझेभी स्पृहा नहीं है। जब यह जीव किसी प्राणीसे नहीं डरता और इससे भी दूसरे भयभीत नहीं होते, जब जीव किसी विषयकी कामना नहीं करता और किसीसे भी द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ किया करता है। जिसका भूत भविष्य कोई धर्म्म नहीं है, जिससे किसी भूतको भय नहीं होता, वही अभयपद पाता है। मृत्युमुखके समान क्रूर वचन कहनेवाले कठोर दण्डधारी जिस पुरुषसे सब लोग व्याकुल होते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है। मैं यथावत् वर्तमान पुत्र पौत्रोंके सहित अहिंसामय महानुभाव बूढ़ोंके चरित्रका अनुवर्त्तन किया करता हूं। किसी अंशमें विरुद्ध सदाचारसे मोहित शाश्वत वैदिक धर्म्म अनुदिष्ट हुआ है, इस ही निमित्त चाहे विद्यावान् हो, चाहे जितेन्द्रिय ही हों, या काम क्रोध विजयी बलवान् हो क्यों न हों, सब पुरुष ही धर्म्म विषयमें मोहित हुआ करते हैं। जो दान्त पुरुष द्रोहरहित अन्तःकरणसे साधुओंके सङ्ग सदाचरण करता है, हे जाजली! वह बुद्धिमान् पुरुष आचारके जरिये शीघ्र ही धर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होता है। जैसे नदीके प्रवाहमें बहता हुआ काठ यदृच्छाक्रमसे दूसरे काठके सङ्ग मिल जाता है और उस स्थानसे दूसरे काठ परस्पर मिल जाते हैं, कभी तृण काठ करीष आदि नहीं दीख पड़ते, मनुष्योंके कर्म्मप्रवाहके जरिये पुत्र स्त्री आदि संयोग वियोग भी वैसा ही है। जिससे कोई जीव भी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, वे

मुनि! वेही सब भूतोंसे सदा अभय लाभ करते हैं। हे विद्वन्! जैसे बाड़वानलसे किनारेपर रहनेवाले सब जलचर और चिल्लाने करनेवाले हिंसक भेड़ियेसे बनचर जीव डरते हैं, वैसे ही जिससे सब लोक उद्वेगयुक्त हुआ करते हैं उसे महत् भय प्राप्त होता है इस ही प्रकार जीवोंको अभय दानरूपी आचार जिसमें सब तरहके उपायसे उत्पन्न हो, उस विषयमें यत्न करना उचित है। जो लोग सहायसम्पत्तिसे युक्त होते हैं, वे इस लोकमें ऐश्वर्य्यशाली और परलोकमें परम सुखी होते हैं। इस हीसे कवि लोग सब शास्त्रोंमें अभयदाता पुरुषोंको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। जिनके अन्तःकरणमें थोड़ा सा वाह्यसुख लेखाकी भांति प्रतिष्ठित है, वे भी कीर्त्तिके लिये अभयदान करें और निपुण मनुष्य भी परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये अभयदानमें दीक्षित होवें। तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धियुक्त वचनसे इस लोकमें जो सब फल भोग हुआ करते हैं, अभयदानके सहारे वे सब फल प्राप्त होते है। जगत्में जो लोग सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा दान करते हैं, वे सब यज्ञयाजनके फलस्वरूप अभयदक्षिणा पाते हैं। सब प्राणियोंको अहिंसासे बढ़के श्रेष्ठ धर्म और कुछ भी नहीं है। हे महामुनि! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, उसे सब प्राणियोंसे अभय प्राप्त होता है; और जिससे गृहगत सर्पकी भांति सब लोग व्याकुल होते है, वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म्म प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, जो सब प्राणियोंके आत्मभूत और समान भावसे सब जीवोंको देखते है, देवता लोग भी उस ब्रह्मलोक आदिके अनभिलाषी साधक पदके इच्छुक होकर उनके आचरित मार्गमें विचरण करते हुए मोहित होते है। हे जाजली! जीवोंको अभय दान सब दानसे उत्तम है, यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं; इसलिये आप इस विषयमें श्रद्धा करिये। सब काम्य कर्म्म स्वर्गफल साधनके हेतु कभी सुभग होते, कभी स्वर्गफल भोगान्तर पतन आदिके निमित्त दुर्भग हुआ करते हैं, इसलिये काम्य कर्म्मोंकी क्षयिष्णुता देखकर सज्जन लोग सदा उसकी निन्दा किया करते है। हे जाजली! स्थूल धर्म्म यज्ञ आदिसे सूक्ष्म अभयदान धर्म्मका अनुष्ठान करनेसे फलहीन नहीं होता, ब्रह्मप्राप्ति और स्वर्गलाभके लिये वेदमें शम दम आदिके साधन और यज्ञ आदि धर्म्म विहित हुए है। अभय दान धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह पूर्ण रीतिसे जाना नहीं जाता; वेदके बीच किसी स्थलमें वैधहिंसाकी विधि है, कहीं पर अहिंसाकी विधि बलवती हुई है; इससे वैदिक धर्म्म अत्यन्त ही अन्तर्गूढ़ है। सब आचार जाननेके लिये उद्यत होने पर भी उसके बीच अनेक प्रकारके विभिन्न व्यवहार मालूम हुआ करते हैं। जिन सब बैलोंकी वृषण-काटे जाते हैं, और नासिकामें छेद किया जाता है। वे बहुत सा बोझा ढोनेमें समर्थ हुआ करते है; मनुष्य उनका बन्धन और दमन करते हैं। जो जीवोंको मार कर भक्षण करते हैं, उनकी निन्दा क्यों नहीं करते; मनुष्य लोग मनुष्योंको दासत्व शृङ्खलमें बाध रखते है। दूसरी जातकी बात तो दूर रहे, वे लोग स्वजातिके लोगोंको रात दिन बध, बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं; इसके अतिरिक्त अपने बध, बन्धनसे जो दुःख होता है, उस विषयमे भी वे लोग अनभिज्ञ नहीं हैं, पञ्चइन्द्रिययुक्त जीवोंमें सब देवता ही निवास किया करते है। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम, ये सब देवता जिस जीवदेहमें निवास करते हैं, उन जीवोंके बेचनेमें जब कोई फल नहीं है, तब मृतजीवोंके विषयमे विचारकी क्या आवश्यकता है। बकरे, अग्नि; भेड़े, घोड़े, जल, पृथ्वी, गौ, बछड़े और से

बेचनेसे मनुष्य सिद्ध नहीं होता। हे ब्रह्मन्! इसलिये तेल, घृत, मधु और औषधि बेचनेकी वार्त्ता कुछ कार्य्यकरी नहीं है। मनुष्य लोग दंश मच्छरोंसे रहित स्थानमें सहजमें ही सम्वर्द्धित पशुओंको उनकी माताके प्रिय जानके भी अनेक भांतिसे आक्रमण करके बहुतसे कीचड़युक्त देश तथा मशकोंसे परिपूरित स्थानमें स्थापित करते हैं, दूसरे धूर्त्त लोग बाहनोंके जरिये पीड़ित होकर अवसन्न होते हैं; मुझे बोध होता है, ऐसे पशु पीड़न कर्म्मकी अपेक्षा भ्रूणहत्या अधिक पापयुक्त नहीं है। जो लोग कृषिकर्म्मको उत्तम समझते हैं, मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं करता; क्यों कि कृषि कर्म्म भी अत्यन्त दारुण है। हे जाजली! लौहमुख हल भूमि और भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंको नष्ट करता है, और हलमें जुते हुए वृषभोंकी ओर देखो वे कितना क्लेश सहा करते हैं। गऊ अवध्य है, इसहीसे उनका नाम अघ्नी है; इसलिये कौन पुरुष उन्हें मारनेमें समर्थ हुआ करता है। जो पुरुष वृषभ अथवा गऊको हिंसा करता है वह बहुत ही अमङ्गल किया करता है। जितेन्द्रिय ऋषियोंने नहुषके समीप यह विषय कहा था। उन्होंने कहा था, गऊ मातृस्वरूप और वृषभ प्रजापति स्वरूप है; तुमने उनका वध किया है। हे नहुष! इससे तुमने बहुत ही अकार्य्य किया है, तुम्हारे निमित्त हम सब कोई व्यथित हुए हैं। हे जाजली। जैसे इन्द्रका ब्रह्महत्याका पाप स्त्रियोंमे रज रूपसे निक्षिप्त हुआ था, वैसेही उन महाभाग ऋषियोंने नहुषके किये हुए गो-वृषभ हत्याके पापको सब प्राणियोंके बीच एक सौ एक रोग रूपसे निक्षेप किया। ब्रह्महत्या और गोहत्याका पाप समान है, इसीसे लोग नहुषको भ्रूणहत्या करनेवाला कहा करते हैं,—इससे हम लोग उसका होम न करेंगे। उन समस्त तत्त्वार्थदर्शी महानुभाव जितेन्द्रिय शान्त महर्षियोंने नहुषके विषयमें ऐसा कहकर तब ध्यानपूर्व्वक उसे गोहत्या करनेमें प्रवृत्त न देखकर उसके किये हुए पापोंको प्रजासमूहमें रोगरूपसे संक्रामित किया था। हे जाजली! इस लोकमें ऐसा घोर अकल्याणकर आचारके प्रचलित रहनेपर भी अर्थात् मधुपर्कमें पशुवध आदि प्रथित रहनेपर भी तुम निपुण भावसे उसे समझनेमें समर्थ नहीं होते हो। कारणके अनुसार धर्म्माचरण करे, जिससे जीवोंको भय न हो, उसे ही धर्म्म जाने; गतानुगतिक होके लोक व्यवहार न करे। हे जाजली! सुनो जो लोग मुझपर प्रहार करें, अथवा जो प्रशंसा करें, वे दोनों ही मेरे पक्षमें समान हैं; मुझे हर्ष-बिषाद कुछ भी नहीं है। मनीषी लोग इस ही प्रकार धर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, यति लोग भी युक्तिपूरित उक्त धर्म्मकी सेवा किया करते हैं, धर्म्मशील मनुष्य सदा निपुण नेत्रसे उक्त धर्म्मको अवलोकन करते हैं।

२६१ अध्याय समाप्त।

जाजली मुनि बोले, तुमने तुला धारण करके यह धर्म्म प्रवर्त्तन किया है, इससे जीवोंके स्वर्गद्वार और जीविकाका अवरोध होता है। कृषिसे अन्न उत्पन्न होता है, तुम भी उससे जीवन धारण किया करते हो, पशु हिंसा न करनेसे यज्ञ पूर्ण नहीं होता, तुम उसी यज्ञकी निन्दा करके नास्तिकता प्रकाशित करते हो। लोग प्रवृत्ति मूलक धर्म्मको परित्याग करके कदाचित् जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते।

तुलाधार बोला, हे द्विज जाजली। मैं निज वृत्तिका विषय कहता हूं, मैं नास्तिक नहीं हूं और यज्ञकी भी निन्दा नहीं की है, यज्ञवित् पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं; मैं ब्राह्मण यज्ञको नमस्कार करता हूं। जो सब ब्राह्मण यज्ञ प्रक-

रण जानते हैं, उन्होंने योगरूप निज यज्ञ परित्याग करके इस समय हिंसामय क्षत्रिय यज्ञ अवलम्बन किया है। हे ब्रह्मन्! वित्तपरायण लोभी आस्तिक लोगोंने वेद वाक्योंको न जानके सत्यकी भांति भासमान मिथ्याके प्रवर्त्तन करनेके "कारण इस यज्ञमें यह दक्षिणा दान करनी योग्य है," इस ही प्रकार यज्ञका प्रशस्तता साधन की है। हे जाजली! इसही निमित्त यजमानके साध्य सत्रमें भी यथायोग्य दक्षिणा दान न करनेसे चोरी और अकल्याणकर विपरीत कार्य्योंकी उत्पत्ति हुई है। नमस्कार स्वरूप हवि, स्व-शाखोक्त वेदपाठ और औषध स्वरूप सुकृतसे प्राप्त हुआ जो हव्य है, उसहीके जरिये देवता लोग प्रसन्न हुआ करते हैं, शास्त्र निदर्शनके अनुसार देवताओंकी पूजा हुआ करती है। कामनावान् मनुष्योंके इष्टापूर्त्तसे त्रिगुण सन्तानोंकी उत्पत्ति होती है। यजमानके लोभी होनेसे उसकी सन्तान भी लोभी होती है; यजमानके रागद्वेषसे रहित होनेसे उसकी सन्तान भी वैसीही हुआ करती है। यजमान अपनेको जैसा समझता है, सन्तान भी वैसीही होती है। आकाशसे निर्म्मल जल बरसनेकी भांति यज्ञसे ही प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। हे ब्रह्मन्। अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्य्यमण्डलमें पहुंचती है, सूर्य्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न हुआ करता है, और अन्नसे ही प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है। यज्ञनिष्ठ मनुष्योंने फलानुसन्धान न करके यज्ञसे ही सब काम्य वस्तुएं पायी हैं। उस समय यज्ञके प्रभावसे पृथ्वीमें बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते और वृक्षोंमें अनायास ही फल लगते थे; इसहीसे लोग कृषिकार्य्यके निमित्त भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंकी हिंसामें लिप्त नहीं होते थे। तिसके अनन्तर मनुष्य यज्ञ आदि कर्म्मोंके फल, कर्त्ताको नहीं देखते थे। जो लोग "यज्ञ करनेसे फल है, वा नहीं"—इसही भांति सन्देहयुक्त होकर किसी प्रकारका यज्ञ करते हैं, वे लोग असाधु, दम्भी, धन लोलुप और लोभी कहके विख्यात होते हैं। हे द्विजवर! जो पुरुष कुतर्कसे वेदोंका अप्रमाण सिद्ध करता है, वह उसही अशुभ कर्म्मसे पापाचारियोंके लोकमें गमन किया करता है, और उसेही इस लोकमें पापात्मा वा अत्यन्त अकृतप्रज्ञ कहा जाता है, वैसे पुरुषकी कभी मुक्ति नहीं होती। नित्य कर्म्मोंको अवश्य करना चाहिये, उनके न करनेसे भय होता है, इसे जो लोग जानते हैं, वेही ब्रह्मनिष्ठ हैं। इस लोकमें जो पुरुष अपनेमें वयोवर्णका अध्यास करके कर्त्तृत्व मालूम नहीं करते वेही ब्राह्मण हैं, अर्थात् कर्त्तृत्वभिमान और फलाभिलाष परित्याग करके कर्म्माङ्गोंमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग अशन पान आदिकी भांति कर्म्म किया करते हैं, उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है। ऐसे ब्राह्मणोंके कर्म्म त्रिगुण होने और अपवित्र कुत्ते, शूकर आदि पशुओंके जरिये विघ्नित होनेपर भी श्रेष्ठ रूपसे परिगणित हुआ करते हैं, यह श्रुतिमें वर्णित है; परन्तु मेरा यह कर्म्म इस विघ्नसे नष्ट हुआ है, ऐसा ज्ञान होनेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना होगा, यह भी वेदमें वर्णित है। जो सब पुरुष सत्य कहने और इन्द्रिय संयमकोही यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेमें जिन्हें लोभ होरहा है; वित्त वा विषयोंसे जिनकी तृप्ति हुई है और जो दूसरे दिनके लिये अर्थसंग्रह नहीं करते, वेही अमत्सरी हुआ करते हैं। जो सब योगनिष्ठ पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्वको जानते तथा प्रणव अध्ययन करते हैं, वे दूसरोंको सन्तुष्ट किया करते हैं। सब देवता और समस्त वेदस्वरूप प्रणव ब्रह्मवित पुरुषमें प्रतिष्ठित होरहे हैं। हे जाजली! उसही ब्रह्मवित् पुरुषके तृप्त होनेसे आदित्य आदि देवता तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं। जो सब रसोंसे तृप्त

हुए हैं, वे जैसे कोई दूसरे रसान्तरका अभिनन्दन नहीं करता, वैसेही प्रज्ञान तृप्ति पुरुषोंको अनायास ही नित्यतृप्ति हुआ करती है।

धर्म्महो जिनका एक मात्र अवलम्ब है, धर्म्मसे ही जो लोग सुखी हुआ करते हैं, उन्होंने ही समस्त कार्य्याकार्य्योंके निश्चय किये हैं, और कर्म्मके जरिये जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ है वह प्राज्ञ पुरुष हमारे स्वरूपसे बुद्धिके बीच चिदाभासमय पुरुषसे बढ़के और कोई भी नहीं हैं,—इसे ही अवलोकन करते हैं। जो सब ज्ञान विज्ञानसे युक्त सात्विक पुरुष संसारके पार जानेकी अभिलाष करते हैं, वे लोग जिस स्थानमें जानेसे शोक नहीं करना होता च्युत नहीं होना पड़ता, व्यथित नहीं होना पड़ता, उस ही पुण्याभिजन नाम अत्यन्त पुण्यप्रद पवित्र ब्रह्मलोक पाते हैं। वे स्वर्गकी कामना नहीं करते, धनसाध्य कर्म्मोंसे परब्रह्मकी पूजा करनेके अभिलाषी नहीं होते, केवल साधुमार्ग अर्थात् योगमें निवास करते हुए अहिंसाके जरिये ईश्वरकी आराधना किया करते हैं। वे लोग वनस्पति, फलमूलोंको हवनीय रूपसे जानते हैं, धनार्थी ऋत्विक् वैसे निर्द्धन यजमानोंका याजन नहीं करते; उक्त द्विजातियोंके सब कर्म्म समाप्त होनेपर भी वे लोग प्रजासमूहके विषयमें अनुग्रहकी अभिलाष करके अपनेको ही अर्थ कल्पना करते हुए मानसयज्ञ पूर्ण किया करते हैं। लोभी ऋत्विक जब वैसे निर्द्धन पुरुषोंका याजन नहीं करते, तब अवश्यही वे लोग मोक्षकी इच्छासे रहित पुरुषोंका ही याजन किया करते हैं। साधु लोग स्वधर्म्माचरणके जरिये दूसरोंका उपकार करते हैं, वे लोग समबुद्धिके कारण धर्म्मफलकी कामना नहीं करते। हे जाजली! इस ही लिये मैं सर्व्वत्र समबुद्धि होरहा हूं, अर्थात् सत् और असत् वृत्तिकी विभिन्नता निबन्धनसे मैं सदाचरणका ही अनुसरण किया करता हूं। हे महामुनि! कर्म्मठ वा उपासक ब्राह्मण लोग इस लोकमें सदा जो सब पुनरावृत्तिप्रद मार्ग प्रदर्शक और अपुनरावृत्ति प्रदमार्ग प्रदर्शक यज्ञ याजन करते हैं वे उस ही देवयान पथके जरिये पितृलोक और देवलोकमें गमन किया करते हैं। हे जाजली। देवयान् पथसे गमन करनेपर भी कर्म्मठ पुरुषोंका पुनरागमन हुआ करता है, और मनको निग्रह करनेवाले उपासकोंको पुनरावृत्ति नहीं होती, अर्थात् दिव्य पथसे गमन करनेपर भी दोनोंके सङ्कल्पभेद निबन्धनसे कर्म्मठ ब्राह्मणोंकी आवृत्ति और उपासकोंकी अनावृत्ति हुआ करती है; इसलिये कर्म्ममें रत कर्म्मठ ब्राह्मणों और मनको निरोध करनेवाले उपासक ब्राह्मणोंमें बहुत ही विलक्षणता है। सत्य सङ्कल्प उपासकोंको मनकी सङ्कल्पसिद्धिके जरिये वृषभ स्वयं जुतके हल खींचते हैं और गौवें दूध दोहन किया करती हैं, उनके मानसिक यज्ञ सङ्कल्पसे ही सिद्ध होते हैं; वे लोग सङ्कल्प सिद्ध होनेसे यूप-दक्षिणा आदि यज्ञके द्रव्योंको मनसे ही उत्पन्न किया करते हैं। जिन्होंने इसही प्रकार योगाभ्यासके जरिये चित्तशोधन किया है, वे मधुपर्कमें गो हिंसा कर सकते हैं। हे ब्रह्मन्! जो लोग उस प्रकार विशुद्धचित्तवाले नहीं हैं, वे लोग पशुहिंसा करनेसे अवश्यही प्रत्यवायभागी होंगे, इसलिये उनके लिये औषधियोंसे ही यज्ञसाधन विहित हुआ करता है। त्यागका ऐसा माहात्म्य होनेसे ही मैंने त्यागका पुरष्कार करके तुम्हारे समीप वैसा वचन कहा है। जिसे आशा और आरम्भ नहीं हैं, वे किसीको नमस्कार वा प्रशंसा नहीं करते, जो क्षीण नहीं है, परन्तु जिनके सब कर्म्म क्षीण हुए हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण जानते हैं। जो पुरुष वेद श्रवण, देवपूजन ब्राह्मणोंको दान नहीं करता और स्त्रियोंकी वृत्ति लाभकी इच्छा किया करता है, वह असुर स्वभाववाला मनुष्य देव-

अर्थ वा पितर मार्ग किसी पथमें भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। आशाहीनता आदि पूर्वोक्त वाक्यको देवताकी भांति सेवनीय समझके यथा विधि यज्ञस्वरूप परमात्माको प्राप्त किया जाता है।

जाजली मुनि बोले, हे वणिक्! मैंने आत्मयाजी योगियोंके तत्वको नहीं सुना है, इस ही निमित्त तुम्हारे निकट यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूं। पहलेके महर्षियोंने इस प्रकार योगधर्मकी आलोचना नहीं की है, इससे लोकके बीच यह रहस्य धर्म प्रवर्त्तित नहीं हुआ है। हे महाप्राज्ञ वणिक्! यद्यपि आत्मतीर्थ अर्थात् आत्मस्वरूप यज्ञभूमिमें पशुतुल्य मन्दबुद्धि मनुष्य मानसिक यज्ञजनित सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब वे लोग किस कर्म्मके जरिये सुखलाभके अधिकारी होंगे उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो। मैं तुमपर अत्यन्त श्रद्धा करता हूं।

तुलाधार बोले, जिन सब दम्भिकोंके यज्ञ श्रद्धाहीनताके कारण अयज्ञस्वरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं, वे लोग आन्तरिक वा वाह्य कोई यज्ञ करनेके योग्य नहीं हैं। श्रद्धावान् मनुष्योंको एक ही गऊके जरिये वाह्यक्रतु सिद्ध हुआ करता है; क्यों कि घृत, दूध, दही, [illegible] करके पूर्णाहुति, असमर्थके विषयमें [illegible] इससे पितृतर्पणके निमित्त पूंछके रोम, [illegible] आदि निबन्धनमें गोश्टङ्ग और खुररज, इस सात प्रकारकी वस्तुओंसे गोयज्ञके कार्य्य [illegible] हुआ करते हैं। इस पशुहिंसारहित [illegible] बीच यज्ञविधिसे घृत आदि वस्तु देव [illegible] विनियोगके लिये मानसिक श्रद्धाको [illegible] कल्पना करनी होती है; क्यों कि [illegible] रहनेका वैदिक यज्ञ सिद्ध नहीं होता। [illegible] अनन्त सेवनीय-दैवत समझनेसे यज्ञ[illegible] यथावत प्राप्त किया जाता है। [illegible] इनमेंसे पुरोडाश ही पवित्ररूपसे [illegible] हुआ करता है। हे जाजली! जिससे आत्मसाधन होता है, वही यज्ञभूमि है, आत्माही सरस्वती आदि समस्त नदी और पवित्र शैलस्वरूप है; इसलिये आत्माको न जानके अन्य तीर्थोंका अतिथि मत बनो। हे जाजली! इस लोकमें जो लोग इस ही भांति अहिंसामय धर्म्माचरण करते हैं और अर्थिल वा समर्थिल तारतम्यके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वे शुभलोकोंको पाते हैं।

भीष्म बोले, तुलाधार इस ही प्रकार युक्तिसङ्गत वा सदा साधुओंसे सेवित इस समस्त धर्म्मकी प्रशंसा किया करता है।

२६२ अध्याय समाप्त।

तुलाधार बोला, साधु वा असाधुओंसे अवलम्बित इस पथको उत्तम रीतिसे मालूम करो, ऐसा होनेसे ही उसका जैसा फल है उसे जान सकोगे। ये सब अनेक जातीय पक्षी इस स्थानमें विचर रहे हैं तुम्हारे उत्तम अङ्गसे जो उत्पन्न हुए थे, वे सब और बाज तथा दूसरी जातिके पक्षी भी इनके बीच विद्यमान हैं, इन सबोंने अपने घोसलोंमें प्रवेश करनेके निमित्त हस्तपदादि संकुचित किये हैं। हे ब्रह्मन्! इस लिये इस समय तुम इन्हें आवाहन करके देखो। यह देखिये, पक्षीवृन्द तुमसे समादृत होके तुम्हारा सम्मान कर रहे हैं। हे जाजली! पुत्रोंको आह्वान करो, तुम इनके पिता हुए हो, इसमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस जाजली मुनिके बुलाने पर पक्षियोंने अहिंसामय धर्म्म वचनके अनुसार प्रत्युत्तर दिया। हे ब्रह्मन्! हिंसाके जरिये किया हुआ कर्म्म इसलोक और परलोकमें श्रद्धा नष्ट करता है, श्रद्धा नष्ट होनेपर श्रद्धाहीन मनुष्यको विनष्ट किया करता है, लाभ हानिमें समदर्शी, श्रद्धावान्, शान्त, दान्त पुरुष "यज्ञ करनायोग्य है"—ऐसे ही अभिसन्धि करके अदात

कर्तृत्वाभिमान अथवा फलाभिसन्धि न करके यदि यज्ञका अनुष्ठान करें, तो उनके अनुष्ठित यज्ञसे कदापि अनिष्ट फलकी उत्पत्ति न होवे। हे द्विज। ब्रह्मविषयणी श्रद्धाको सूर्य्यके समान प्रकाशमान सत्वकी पुत्री अर्थात् सात्विकी कहा जाता है; वह श्रद्धा पालन करनी है, इसहीसे सावित्री और शुद्ध जन्म प्रदान करती है, इसीसे प्रसवित्री रूपसे कही जाती है। वाक्य, मन वा श्रद्धाके उस बहिरङ्ग अर्थात् जप और ध्यानजनित धर्म्मसे श्रद्धा ही सब प्रकार श्रेष्ठ है। हे भारत। मन्त्र आदि उच्चारण करनेके समय स्वर-वर्ण विपर्य्ययके जरिये जो वाक्य नष्ट होता है, और व्यग्र चित्तसे जो देवताओंके ध्यान आदि विनष्ट होते हैं, श्रद्धा उसका समाधान करती है; परन्तु वचन, मन और कर्म्म, श्रद्धाहीन पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं, कि पवित्र और अश्रद्धावान् तथा श्रद्धावान् और अपवित्र पुरुषके वित्तको देवता लोग यज्ञ कर्म्ममें समानही समझते हैं। श्रोत्रिय होके भी जो पुरुष कृपणता व्यवहार करता है, और धान्य बेचके भी जो वदान्य होता है, देवताओंने विचार करके उन दोनोंके अन्नको समान भावसे कल्पना किया था। प्रजापतिने उस ही लिये उनसे कहा था, हे देवतावृन्द। तुम सबने जो कुछ कहा है, वह अत्यन्त विषम हुआ है। वदान्य पुरुषके श्रद्धायुक्त अन्न भक्षणीय हैं, अश्रद्धासे सिद्ध हुए अन्न भक्षणीय नहीं हैं, और कृपण तथा वृद्धि जिवीका अन्न न खाना चाहिये। केवल अश्रद्धावान् मनुष्य देवताओंकी हवि दान करनेके योग्य नहीं हैं, उनका भी अन्न अभक्षणीय है, ऐसा धर्म्म जाननेवाले पुरुष कहा करते हैं। अश्रद्धा ही परम पाप स्वरूप है, और श्रद्धा ही पापको दूर किया करती है। जैसे साप अपनी पुरानी केंचुली परित्याग करता है, श्रद्धावान् मनुष्य उस ही प्रकार पाप परित्याग किया करते हैं। श्रद्धाके सहित निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करना ही सब पवित्रताके बीच श्रेष्ठ है, राग आदि दोषोंसे जो लोग निवृत्त हुए हैं, वेही श्रद्धावान् और पवित्र हैं, उन्हें तपस्या, शीलता और धर्म्म अभ्याससे क्या प्रयोजन है। ये श्रद्धामय पुरुष सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धाके बीच जैसी श्रद्धासे युक्त होते हैं, तब वह उस ही नामसे अर्थात सात्विक, राजसिक और तामस नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं। धर्म्मार्थदर्शी साधुओंने इसही प्रकार धर्म्म वर्णन किया है, धर्म्मदर्शन नाम मुनिसे पूछकर उससेही हम लोगोंने इस प्रकार धर्म्मका लक्षण जाना है। हे महाप्राज्ञ जाजली। तुम श्रद्धा करनेसे परम पदार्थ पाओगे; जो वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और वेदार्थ अनुष्ठान करनेमें श्रद्धा किया करते हैं, वेही धर्म्मात्मा हैं। हे जाजली! जो लोग कर्त्तव्य मार्गमें निवास करते हैं, वेही गौरवयुक्त हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महाप्राज्ञ तुलाधार और जाजली मुनि थोड़े ही समयमें सुर लोकमें जाके निज कर्म्मके उपार्ज्जित अपने अपने स्थानको पाके सुख पूर्व्वक विहार करने लगे। तुलाधारके जरिये इसही प्रकार अनेक तरहके विषय कहे गये थे; तुलाधारने पूर्णरीतिसे सनातन धर्म्म जाना था, और जाजली मुनिके समीप कहा था।

हे कौन्तेय। द्विजश्रेष्ठ जाजलीने उस विख्यात् वीर्य्य तुलाधारका सब वचन सुनके शान्तिमार्ग अवलम्बन किया था। तुलाधारने यथा विहित दृष्टान्तके जरिये मौनव्रती विप्रवर जाजलीके निकट इस ही प्रकार अनेक भांतिके विषय कहा था; तुम अब फिर किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो।

२६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुरुष-पशुओंके विषयमें कृपा करनेके निमित्त महा राजा विचख्नुने जो कुछ कहा था, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। एक राजा गोमेध यज्ञमें वृषभोंके शरीरको कटे हुए देखने और गौवोंका अत्यन्त विलाप सुननेसे कातर होके यज्ञभूमिको देखकर शोकके बीच गौवोंको "स्वस्ति होवे"—यही वाक्य निश्चय किया था। गोहिंसा आरम्भ होनेपर उस राजाके जरिये यही आशीर्व्वचन कल्पित हुआ था। जिनकी मर्य्यादा विचलित हुई है ऐसा विमूढ़ शरीर ही आत्मा है, वा देहके अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मा है ऐसे संशययुक्त चित्तवाले नास्तिक पुरुषोंने यज्ञादिके जरिये स्वर्ग पानेकी अभिलाष करते हुए पशुहिंसाकी प्रशंसा की है, परन्तु सब अर्थ और वेदोंके तत्वको जाननेवाले धर्म्मात्मा मनुने सब कर्म्मोंमें ही अहिंसाकी प्रशंसा की है। इच्छानुसारी मनुष्य यज्ञके अतिरिक्त स्थलमें भी पशुहिंसा किया करते हैं, इसलिये प्रमाणके जरिये हिंसा और अहिंसा दोनोंके बलाबलको जान कर सूक्ष्म धर्म्म अवलम्बन करे, सब प्राणियोंके विषयमें हिंसा न करना ही धर्म्माधर्म्मोंमें उत्तम है। गांवके समीप निवास करते हुए संशितव्रती होकर वेदविहित चतुर्मास याजियोंको अक्षयपुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति परित्याग करके आचारबुद्धिके जरिये पुरुष गृहस्थाचार रहित होवे, सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करे, इनके विषयमें यही कल्याणकारी है, ऐसा विचारके निष्कर्म्म अवलम्बन करना चाहिये, और जो फलकी इच्छा करके कर्म्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य हैं।

यदि मनुष्य यज्ञवृक्ष-यूपोंको उद्देश्य करके मांस भक्षण करें, तो वह कुछ भी प्रशंसनीय नहीं है। यज्ञ करनेवाले मनुष्य कभी मांस भक्षण नहीं करते, मद्य, मांस, मछली, मधु, आसव, कृश रौदन अर्थात् तिल मिले हुए चावलोंका भक्षण करना धूर्त्तोंके जरिये प्रवर्त्तित हुआ है, यह वेदके बीच वर्णित नहीं है। अभिमान, मोह और लोभके वशमें होकर मनुष्योंको मद्य सेवनमें इच्छा हुआ करती है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञोंमें सर्व्वव्यापी आत्माको ही जानके तृप्त होते हैं; दूध और फूलोंसे उसकी पूजा हुआ करती है, उसमें मधु मांस आदिका प्रयोजन नहीं है। जो सब यज्ञीय वृक्ष वेदमें वर्णित हैं, और जो कुछ करने योग्य यथा जो कुछ शुद्ध आचारके सहारे संस्कारयुक्त हुआ करता है, महत् सत्व और शुद्ध अन्तःकरणके सहित वह सभी देवार्ह रूपसे विहित हुआ है।

युधिष्ठिर बोले, शरीर और समस्त आपदा आपसमें विवाद किया करती हैं, अर्थात् आपदा शरीरको अवसन्न करती हैं, और शरीर भी आपदको नष्ट करनेकी इच्छा किया करता है, इससे अत्यन्त हिंसारहित पुरुषको शरीरयात्राका निर्व्वाह किस प्रकार सिद्ध होसकता है।

भीष्म बोले, जिससे शरीर ग्लानि युक्त वा मृत्युके वशीभूत न हो, वैसे ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये, समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे, अर्थात् शरीरके अनुकूल धर्म्म कार्य्य करे, धर्म्मके अनुरोधसे शरीर नष्ट न करे।

२६४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप हमारे परम गुरु हैं, इससे हिंसामय कार्य्यदुष्कर होनेसे भी गुरु वचनके अनुसार यदि उसे अवश्य करना पड़े, तो विलम्ब वा शीघ्रताके सहित किस प्रकारसे उसकी परीक्षा करनी होगी, उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहिले समयमें अङ्गिरा-वंशमें चिरकारीके किये हुए कर्म्मके जरिये जो घटना हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही

पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे चिरकारिन्! तुम्हारा ही मङ्गल हो, हे चिरकारिन्! तुम्हारा ही कल्याण हो,—मेधावी चिरकारी कभी किसी कर्म्ममें अपराधी नहीं होते थे। महाप्राज्ञ चिरकारी गौतमके पुत्र थे, वह बहुत समयतक बिचार करके कार्य्य करते थे, बहुत समयतक सब विषयोंको सोचते थे, बहुत देरतक जागते रहते थे और बहुत देर पर्य्यन्त सोते रहते थे तथा विलम्ब करके कार्य्यमें प्रवृत्त होते थे, इस निमित्त उन्हें चिरकारी कहा जाता है। थोड़ी बुद्धिवाले और अदूरदर्शी लोग उन्हें आलसी और मन्दबुद्धि कहते थे।

किसी समय गौतमने अपनी स्त्री अहल्याका कुछ व्यभिचार देखकर कोपित होके दूसरी सन्तानोंको अतिक्रम करते हुए चिरकारीसे कहा था, हे चिरकारी! तुम अपनी माताका वध करो। चिरकारी स्वभावसे ही बहुत देरके अनन्तर "वही करूंगा" ऐसा वचन कहके चिरकारिलके सबब बहुत देरतक बिचार करके सोचने लगा, कि पिताकी आज्ञा किस प्रकार प्रतिपालन न करूं; किस प्रकारसे ही मातृहत्या करूं। और दुष्टोंकी भांति किस प्रकार इस धर्म्म-सङ्कटमें निमग्न होऊं। पिताकी आज्ञा माननी परम धर्म्म है, तथा माताकी रक्षा करना भी स्वधर्म्म है, और पुत्रत्व भी एकबारही स्वतन्त्र नहीं है, इन दोनोके बीच मुझे कौन विषय पीड़ित नहीं करता है। स्त्रीहत्या विशेष करके माताका बध करनेसे कौन पुरुष सुखी होसकता है और पिताकी अवज्ञा करके किस पुरुषको प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ करती है। पिताकी अवज्ञा न करनी ही उचित है और माताकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये, इन दोनों धर्म्मोंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी मुझे दोनों कार्य्यका अनुष्ठान करना उचित मालूम होता है, इसलिये मैं इन दोनों धर्म्मोंको किस प्रकार अतिक्रम न करूं। पिता अपने सद्‌वृत्त चरित्रके नाम और वंशकी रक्षाके लिये जायाके जरिये जन्म लेकर आत्माको धारण करता है। मैं माता पिता दोनोंसे ही उत्पन्न हुआ हूं दोनोंको ही अपनी उत्पत्तिका कारण जानता हूं; ऐसा ज्ञान मुझे क्यों न होगा। जातकर्म्म संस्कारके समय पिता कहता है, कि 'प्रस्थर हो' अर्थात् पत्थरकी भांति अच्छेद्य हो 'तथा परशु हो' अर्थात् फरशेकी भांति मेरे शत्रुओंके नाशक बनो। उपनयनके अनन्तर गुरुगृहसे लौटनेपर पिता पुत्रका मस्तक छूके "आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ है," इत्यादि वचन कहा करता है, पिताके गौरव-निश्चयके विषयमें वही दृढ़ और पर्य्याप्त है। पिता प्रतिपालन और शिक्षा देनेसे परम धर्म्मस्वरूप है। पिता जैसी आज्ञा दे, वही धर्म्म है, यह वेदोंमें भली प्रकार निश्चित है; पुत्र ही पिताका प्रीतिपात्र है और पिता ही पुत्रका सर्व्वस्व है। शरीर आदि जो कुछ देय-पदार्थ हैं, उन्हें केवल पिता ही पुत्रको प्रदान किया करता है; इसलिये पिताकी आज्ञा अवश्य प्रतिपालन करनी चाहिये, कभी उसमें बिचार न करना चाहिये, जो पिताकी आज्ञा पालन करते हैं, वे पापोंसे छूटके पवित्र हुआ करते हैं। वस्त्रादि भोग्य-विषय अन्न प्रभृति भोज्य-पदार्थ, वेदाध्ययन, लौकिक शिक्षाके विषय तथा गर्भाधान सीमन्तोन्नयन आदि सब संस्कारोंके करनेसे पिता धर्म्मस्वरूप है, पिता ही स्वर्गरूपी है और पिता ही परम तपस्या स्वरूप है, पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हुआ करते हैं। पिता पुत्रसे जो कहे वही पुत्रके विषयमें आशीर्व्वाद वचन है, यदि पिता पुत्रका आदर करे, तो पुत्र सब पापोंसे छूट जाता है। कलियोंसे फूल और वृक्षोंसे फल गिरा करते हैं, परन्तु पिता दुःख पानेपर भी प्रीतिके वशमें

[illegible] सन्तानको परित्याग नहीं कर सकता। पुत्रके विषयमें पिताका जैसा गौरव है, उसका मैंने विचार कर लिया, पिता साधारण पदार्थ नहीं है; जो हो, अब माताके विषयका विचार आरम्भ करूं।

मनुष्य शरीर धारण करनेसे मुझमें जो पाञ्चभौतिक समष्टि है, अग्निके प्रकट होनेके कारण अरणीकी भांति माता ही मेरे इस शरीरका हेतु है। माता ही मनुष्य शरीरके विषयमें शरणी स्वरूप है, माता ही सब सुखोंको विधान करनेवाली है, माताके रहते सभी सनाथ और उसके विपर्य्यय होनेसे सभी अनाथ हुआ करते हैं। पुरुष श्रीहीन होके भी यदि "मा" कहके गृहमें प्रवेश करे, तो उसे शोक करना न पड़े और मातृमान् पुरुषको स्थविरता आकर्षण नहीं कर सकती। पुत्र पौत्रसे युक्त पुरुष भी यदि जननीका आश्रित होवे, तो वह एक सौ वर्षकी अवस्थाका होनेपर भी [illegible]की भांति आचरण करता है। पुत्र समर्थ हो, वा असमर्थ होवे, दुबला हो वा हृष्टपुष्ट होवे, माता ही उसे विधिपूर्व्वक पोषण किया करती है, उस प्रकार पालन करनेमें दूसरा कोई भी समर्थ नहीं है। जब मनुष्योंको मातृवियोग होता है तभी वह वृद्ध होता, तभी वह दुःखित होता है, उस समय उसे सब जगत् सूना बोध होता है; जननीके समान दुःख हरनेवाला कोई भी नहीं है, माताके समान आश्रय स्थान दूसरा कोई भी नहीं है, प्रसूतिके समान त्राण [illegible] कोई नहीं है, माताके समान प्रिय-[illegible] और कोई नहीं है। जननी सन्तानको [illegible] धारण करती है। इसहीसे उसका [illegible] है, उससे जन्म होता है, इस ही [illegible] जननी कहा जाता है; उससे [illegible] होता है, इसलिये उसे अम्बा [illegible] है, और वह [illegible] करता है [illegible] कहते हैं। माता सिरकी

सेवा करती है, इस ही लिये उसे शुश्रु, कहा जाता है, माता ही अव्यवहित शरीर स्वरूप है, इसलिये जिसका मेद और मज्जारहित मस्तक सूखे हुए अलावूकी भांति मार्गके बीच पतित नहीं हुआ है, वैसा कौन चैतन्य मनुष्य मातृहत्या करनेमें प्रवृत्त होसकता है। दम्पतीके प्राणसंश्लेष समयमें अर्थात् मैथुनकालमें जो अभिसन्धि की जाती है, अर्थात् हमारा पुत्र गौरवर्ण तथा सम्पूर्ण परमायुयुक्त होवे, पिता-माता दोनोंकी ऐसी अभिलाषा होनेपर भी माताकी ही वैसी अभिलाषमें यथार्थ कर्त्तृत्व है। पुत्र जिस गोत्रमें जिसके औरससे उत्पन्न होता है, उसे माता ही जानती है। माता पुत्रको गर्भमें धारण करती है, इसहीसे उसके ऊपर उसकी प्रीति तथा स्नेह हुआ करता है, इसलिये प्रत्युपकारके लिये माताके विषयमें भक्ति तथा स्नेह पुत्रको अवश्य करना चाहिये।

"धर्म्म, अर्थ और काम विषयमें व्यभिचार न करूंगा," स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा कर पाणिग्रहण और सहधर्म्म आचरण करके यदि पुरुष परस्त्रीमें प्रवृत्त हो, तो वैसा पुरुष कभी आदरके योग्य नहीं है; परन्तु मेरा पिता वैसा नहीं है, इसलिये उसकी आज्ञा अवश्य प्रतिपालन करनी चाहिये। तब क्या पिताकी आज्ञासे मातृहत्यामें प्रवृत्त होऊंगा? नहीं, वह भी किस प्रकार सम्भव होसकता है, पत्नीके भरण करनेसे पतिका नाम भर्त्ता है, और पालन करता है, इस ही निमित्त पति नाम हुआ है। जिसके भर्त्तृत्व और पतित्व धर्म्मकी निवृत्ति होती है, वह भर्त्ता नहीं है, और पति भी नहीं है, इसलिये जिन्होंने पालनीय भार्य्याके प्राणनाशकी आज्ञा दी है, इस भर्त्तृत्व [illegible] गुणसे रहित उनके समान पिताका [illegible] माताकी हिंसा करना कदापि [illegible]" यदि पुरुष [illegible] [illegible] अभिचारिणी नहीं [illegible]

व्यभिचार दोषमें स्त्री अपराधिनी नहीं है, पुरुष ही अत्यन्त महत् व्यभिचार दोषका आचरण करनेसे अपराधी हुआ करता है। भर्त्ता ही स्त्रियोंके लिये परम श्रेष्ठ और परम देवता स्वरूप है; इसलिये उसहीके वेषधारी इन्द्रको अवलोकन करने पर पुरुष न मालूम होनेसे निज पति जानके ही जब मेरी माताने इन्द्रको अङ्ग समर्पण किया है, तब उसका इसमें कुछ अपराध नहीं हो सकता; देवराज ही इस विषयमें सब तरहसे अपराधी हैं। स्त्रियां अल्प-बलवाली होनेसे सब कार्य्योंमें ही पुरुषोंके अधीन हैं, इसलिये उनके कुछ अपराध नहीं हो सकते। पुरुष सब विषयोंमें अपराधी है, क्यों कि जबर्दस्ती किये हुए व्यभिचार विषयमें स्त्रियोंका अपराध नहीं है, पुरुष ही उस विषयमें सब प्रकारसे दोषी हैं। मैथुन जनित तृप्तिके निमित्त किसी स्त्रीने इन्द्रके विषयमें जो वचन कहा था, देवराज उन्हीं सब वचनोंको व्यक्त रूपसे स्मरण करा देनेसे सब तरहसे निःसन्देह अपराधी हुआ है, इसलिये इन्द्रके अपराधसे मुझे मातृहत्या करनी योग्य नहीं है। जो हो, एक तो स्त्री, उस पर भी सर्व्वाधिक गौरवशालिनी माता अवध्य है, इसे पशुके समान मूर्खपुरुष भी विशेष रूपसे जानते हैं, इसलिये मैं किस प्रकार माताका जीवन नष्ट करूंगा। पण्डित लोग पिताको देवताओंका समवाय कहा करते हैं, अर्थात् पिताको सन्तुष्ट करनेसे स्वर्ग मिलता है और मर्त्य तथा अमर्त्योंके समवाय स्नेहके कारण माताके निकटवर्त्ती हुआ करता है, अर्थात् माता इस लोकमें पालयित्री और अदृष्टके अनुसार परलोकमें परम सुख प्रदान किया करती है।

चिरकारीके चिरकारित्व निबन्धनसे इस ही प्रकार बहुत विचार करते हुए बहुत समय बीत गया। तिसके अनन्तर उसका पिता उसहीके सम्मुख आ पहुंचा। महाबुद्धिमान् मेधातिथि गौतम तपस्यामें समय बिताते थे, उस समय वह निज पत्नीका मरना अनुचित समझकर अत्यन्त सन्तापित होकर दुःखसे आंसू बहाने लगे, वह शास्त्रके पढ़ने और धीरजके प्रभावसे पश्चाताप करके बोले, तीनों लोकके ईश्वर इन्द्र अतिथि-व्रत अवलम्बन करके ब्राह्मणका रूप बनाकर मेरे आश्रमपर आये थे, मैं उन्हें वचनसे प्रसन्न करके स्वागत प्रश्नसे आदर करके यथा रीतिसे पाद्य अर्घ प्रदान किया और कहा, कि आज मेरे आश्रममें तुम्हारा आगमन होनेसे मैं सनाथ हुआ हूं। देवराज प्रसन्न होंगे, ऐसा समझके मैंने ये सब वचन कहे थे, इस विषयकी चिन्ता करनेसे मालूम होता हैं, यह अमङ्गल उपस्थित हुआ है, अर्थात् इन्द्रकी चपलतासे मेरी स्त्रीमें दोषस्पर्श होनेसे अहल्याका उसमें कुछ अपराध नहीं हुआ है। इसलिये इस विषयमें अहल्या, मैं और स्वर्गपथगामी इन्द्र, इन तीनोंके बीच कोई भी अपराधी नहीं है, धर्म्मसम्बन्धीय प्रमाद ही इस विषयमें अपराधी है। ऊर्द्ध्वरेता मुनि लोग कहते हैं, प्रमादसे ही ईर्षाजनित विपद उपस्थित होती है, मैं इर्षासे आकर्षित होकर पापसागरमें डूबा हूं, सती सीमन्तिनी भरणीयभार्य्याने न जाननेसे ही पर पुरुषका संसर्ग किया, मैंने उसे मारनेकी आज्ञा दी है, इस समय कौन मुझे उस पापसे परित्राण करेगा। मैंने प्रमादके वशमें होकर उदारबुद्धि चिरकारीको मातृहत्या करनेकी आज्ञा दी है, आज यदि वह चिरकारी हो तो वही मुझे इस पापसे परित्राण करेगा। हे चिरकारिन्! तुम्हारा कल्याण होवे, हे चिरकारी! तुम्हारा मङ्गल हो, आज यदि तुम चिरकारी बनो, तभी तुमने यथार्थ चिरकारी नाम धारण किया है। आज तुम मुझे और अपनी माताको परित्राण करो, मैंने जो तपस्या उपार्ज्जनकी है उसकी रक्षा करो और आत्माको पापपुञ्जसे परित्राण करके

चिरकारी नामसे विख्यात् होजाओ। तुम्हारो असाधारण बुद्धिमत्तासे चिरकारित्व गुण स्वभावसिद्ध है, आज तुम्हारा वह गुण सफल होवे, तुम चिरकारी होजाओ। हे चिरकारी! माताने तुम्हें प्राप्त करनेकी लालसासे बहुत समयतक आशा की थी, बहुत समय तक गर्भमें धारण किया था, इसलिये अब तुम अपने चिरकारित्व गुणको सफल करो। हे चिरकारी! हम लोगोंका चिरसन्ताप देखके तुम मेरी आज्ञाको पालन करनेमें प्रवृत्त होकर भी बोध होता है, विलम्ब कर रहे हो।

हे राजन्! महर्षि गौतमने उस समय इस ही प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर निकट आये हुए चिरकारी पुत्रको देखा, चिरकारी भी पिताको देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ और शस्त्र त्यागके सिर झुकाकर पिताको प्रसन्न करनेकी इच्छा की। अनन्तर गौतम उसे सिर झुकाके पृथ्वीमें गिरते और पत्नीको लज्जासे पत्थरके समान देखकर अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु महात्मा गृहस्थ गौतमने निर्ज्जन जङ्गलके बीच उस पत्नी और समाहित पुत्रके सहित उस समय पृथक् भाव अवलम्बन नहीं किया। उन्होंने "बध करो"—ऐसी आज्ञा देकर निज कर्म साधन करनेके लिये प्रवासमें चले जानेपर उनका पुत्र माताके निमित्त हाथमें शस्त्र लेकर भी विनीतभावसे खड़ा था, अनन्तर उन्होंने [illegible] आके अपने दोना चरणोंपर गिरे हुए पुत्रको देखकर यही समझा, कि चिरकारी [illegible] शस्त्र ग्रहण करनेकी चपलताको रोकता है। अनन्तर पिताने बहुत समयतक प्रशंसा करके मस्तक सूंघकर दोनों भुजा पसारके [illegible] आलिङ्गन किया और "चिरजीवी हो" [illegible] कहके उसे आशीर्व्वाद दिया। प्रीति [illegible] हर्षित होकर महाप्राज्ञ गौतम इस [illegible] प्रकार पुत्रको अभिनन्दित करते हुए [illegible] कहने लगे। हे चिरकारी! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम सदाके वास्ते चिरकारी बनो। हे सौम्य! सदाके वास्ते तुम्हारा चिरकारित्व हुआ, मैं कभी दुःखित न होऊंगा, मुनिसत्तम विद्वान् गौतमने धीरबुद्धिवाले चिरकारी लोगोंके गुणोंको वर्णन करके यह सब गाथा कही थी। सदा विचार करके लोगोंके संग मित्रताबन्धन करे, बहुत समयतक विचार करके किये हुए कार्य्यको परित्याग करे, बहुत समयतक सोचके मित्रता करनेसे वह चिरस्थायी हुआ करती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म्म, अप्रिय कार्य्य और कर्त्तव्यके अनुष्ठान विषयमें चिरकारी मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सुहृत, बन्धु, सेवक और स्त्रियोंके अव्यक्त अपराधके विषयमें चिरकारी पुरुष उत्तम हुआ करता है। हे कुरुवंशवर्द्धन भारत! इस ही प्रकार गौतम पुत्रके चिरकारित्व निबन्धनसे वैसे कर्म्मके जरिये उस समय प्रसन्न हुए थे, इसलिये पुरुषको कार्य्यमात्रमें ही इस ही प्रकार विचार करके निश्चय करनेसे कभी परितापग्रस्त नहीं होना पड़ता, जो लोग सदा दोषको धारण किया करते हैं, चिरकाल ही कर्म्ममें नियमित रहते हैं, वे तनिक भी पश्चातापयुक्त कार्य्यमें लिप्त नहीं होते, सदा वृद्धोंकी उपासना करे, सदा उनके पश्चात् बैठकर उनका सत्कार करे, सदा धर्म्मकी सेवामें नियुक्त रहे और सदा धर्म्मकी खोज करे। सदा विद्वानोंका सङ्ग, शिष्ट पुरुषोंकी सेवा और आत्माको विनीत करनेसे सदाके लिये अनवज्ञता प्राप्त हुआ करती है, दूसरेके बहुत समयतक पूछनेपर धर्म्मयुक्त वचन कहे, ऐसा होनेसे सदाके लिये दुःखित नहीं होना पड़ेगा। महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ गौतम उस आश्रममें कई वर्ष व्यतीत करके अन्तमें पुत्रके सहित स्वर्गमें गये।

२६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुप्रवर पितामह! राजा किस प्रकार प्रजाकी रक्षा करे, किस भांतिसे ही दण्डविधान रहित करके प्राणिहिंसासे निवृत्त रहे, उसे ही आपसे पूछता हूं, आप ऊपर कहे हुए विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा सत्यवानके संग द्युमत्सेनके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। हमने सुना है, पिताकी आज्ञासे सत्यवानके जरिये दण्डार्ह पुरुष बधके लिए उपस्थित होने पर "दण्डनीय पुरुषोंके दण्ड न होनेका विषय पहले किसीने नहीं कहा है," सत्यवानने ऐसा ही कहा था। कभी अधर्म्म धर्म्म होता है और धर्म्म भी कभी अधर्म्म हुआ करता है; परन्तु प्राणिहिंसा करना धर्म्म है,—यह कभी सम्भव नहीं होसकता।

द्युमत्सेन बोले, हे सत्यवान! अहिंसा ही यदि धर्म्म हुआ, तो राजा डाकुओंके दमन करनेके लिये उनका बध न करनेसे वर्णसङ्कर आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जबकि हिंसा न करनेसे धर्म्मकी रक्षा नहीं होती, तब केवल अहिंसाको ही किस प्रकार धर्म्म कहा जासकता है। और अधर्म्म प्रधान कलियुगमें "यह वस्तु मेरी है, यह उसकी है," ऐसा निश्चय नहीं होसकता; और डाकुओंको न मारनेसे तीर्थयात्रा तथा वाणिज्य व्यवहार आदिका निभना अत्यन्त कठिन है; इसलिये हिंसाके जरिये जिसमें वर्णसङ्कर न हो, वह विषय यदि तुम्हें विदित हो, तो उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो।

सत्यवान बोले, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है, ऊपर कहे हुए तीनों वर्णोंके धर्म्मपाशमें बद्ध होनेपर दूसरे प्रतिलोम और अनुलोमजात सूत मागध आदि सङ्कर जातीय पुरुष क्षत्रियादिकोंकी भांति धर्म्माचरण करेंगे। उनके बीच जो पुरुष ब्राह्मणोंका वचन अतिक्रम करेगा, ब्राह्मण उसका विषय राजासे कहे कि यह पुरुष मेरा वचन नहीं सुनता; इससे राजा उसके लिये दण्ड विधान करे, नीतिशास्त्रकी विधिपूर्व्वक आलोचना न करके शरीरके अविनाश विषयमें जो शास्त्र विहित हुआ है; उसमें अन्यथा करना उचित नहीं है। जब राजा डाकुओंके मारनेमें प्रवृत्त होता है, तब उनके पिता, माता, भार्य्या और पुत्र आदि निहत हुआ करते हैं; इसलिये दूसरेके अपकार करनेपर भी राजाको अवश्य पूरी रीतिसे विचार करना चाहिये। दुष्ट पुरुष किसी समय साधु चरित्रवाले होते हैं, और असाधुओंसे भी साधु सन्तान उत्पन्न हुआ करती हैं; इसलिये मूल सहित संहार न करना चाहिये, यह सनातन धर्म्म है; हिंसा न करनेसे भी दूसरे कार्य्योंके कारण प्रायश्चित्त विहित होता है, यह निश्चय वचन है। उद्वेजन अर्थात् सर्व्वस्व हरना, भय दिखाना, बांधना विरूप करना और बध दण्डसे डाकुओंकी स्त्री आदिको पुरोहित समाजमें कष्ट देना उचित नहीं है। जब डाकू लोग पुरोहितके समीप शरणागत होके कहें, कि "हे ब्रह्मन्! हम अब फिर ऐसा कार्य्य नहीं करेंगे," तब उन्हें छोड़ना उचित है, यही विधाताका शासन है। दण्ड और मृगछालधारी सिरमुंडे सन्न्यासी यदि निन्दित कर्म्म करें, तो उन्हें भी अवश्य शासन करना चाहिये, बड़े लोग भी यदि शासन कर्त्ताके निकट बार बार अपराध करें तो उन्हें डाकुओंकी भांति बधदण्डमें दण्डित न करके देशसे निकाल देना चाहिये।

द्युमत्सेन बोले, निज निज नियमोंसे प्रजापालन किया जा सकता है, वे सब नियम जब तक लङ्घित न हों, तब वही धर्म्मस्वरूपसे वर्णित हुआ करते हैं। बध दण्ड न करके राजा सबकोही पराभूत कर रखे, ऐसा होनेसे ऊपर कहे हुए डाकू लोग उत्तम रीतिसे सुशासित हुआ

[illegible] मृदुस्वभाव, सत्यनिष्ठ, अल्पद्रोह करनेवाले और [illegible]मन्यु पुरुषोंके अपराधी होनेपर पहले [illegible] धिक्कारके जरिये दण्ड देना विहित था। [illegible] उन लोगोंको वाक् दण्डसे शासन [illegible] व्यवहृत हुआ था, कुछ समयके अनन्तर [illegible] अपराधियोंके विषयमें सर्वस्व हरण रूपी [illegible] प्रचलित हुआ ; अब कलियुगके प्रारम्भसे [illegible] व्यवहृत हुआ है। एक पुरुषके मारे [illegible] भी दूसरा नहीं डरता, इसलिये डाकु-[illegible] पड़नेवाले सब लोग ही वधके योग्य हैं। [illegible] है कि दस्यु पुरुष मनुष्य देवता, गन्धर्व और पितरोंमेंसे किसीका भी आत्मीय नहीं है, [illegible] डाकुओंके वध करनेसे उनकी भार्य्या [illegible] वध नहीं होता ; क्यों कि उन लोगोंके [illegible] किसीका भी सम्बन्ध नहीं है। जो मूर्ख [illegible] श्मशानसे मुर्देका अलङ्कार और पिशाच [illegible] मनुष्योंसे देवताओंकी शपथ करके वस्त्र [illegible] हरण करता है, उस नष्टबुद्धि पुरुषके [illegible] सदाचार निर्देश करनेमें कौन पुरुष [illegible] होसकता है।

[illegible] बोले, अहिंसाके जरिये यदि [illegible] साधु बनानेमें सामर्थ न हो, तो कोई [illegible] आरम्भ करके उनका नाश करना चाहिये, [illegible] कि पापी लोग यज्ञके पशु होकर स्वर्गमें [illegible] किया करते है, यह वेदमें वर्णित है ; [illegible] पुरुषोंको भी यज्ञके बीच प्रवेश [illegible] उनका उपकार करना उचित है। राजा [illegible] निवाहनेके लिये परम तपस्या [illegible] उत्तम चरित्रवाले होनेपर [illegible] राज्यमें डाकू हैं,' ऐसा जाननेसे, [illegible] लज्जित होते हैं। भय दिखानेसे [illegible] साधु होते हैं, राजा इच्छानुसार [illegible] प्रजाको नहीं मारता। यज्ञमें प्रयो-[illegible] जरिये उन्हें प्रचुर रीतिसे [illegible] करना है। राजाके सदाचार कर-[illegible] सदाचार [illegible]

करती है ; श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण पुरुष भी उसहीके अनुसार चला करते हैं। लोग इस ही प्रकार क्रमसे कल्याण लाभ करते हैं, मनुष्य बड़े लोगोंके अनुवर्त्तनसे सदा निरत हुआ करते हैं। जो राजा अपने चित्तको सावधान न करके दूसरेको शासन करनेकी इच्छा करता है, उस विषयेन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले राजाकी प्रजा हंसी किया करती है, जो पुरुष दम्भ और मोहके वशमें होकर राजाके सङ्ग तनिक भी अनुचित व्यवहार करे, उसे जिस उपायसे होसके, शासन करना उचित है ; ऐसा होनेसे वह पापसे निवृत होगा। जो पापकर्म्म करनेवाले पुरुषको पूर्ण रीतिसे शासन करनेकी इच्छा करे, पहले उसे आत्म-नियमित करना योग्य है। अनन्तर पुत्र सहोदर आदिको महत् दण्डके सहारे शासित करना उचित है। जिस राज्यमें पाप करनेवाले नीच लोग अत्यन्त महत् दुःख नहीं पाते, अवश्य ही वहां पापकी बढ़ती और धर्म्मकी घटती हुआ करती है ; करुणाशील विद्वान् ब्राह्मणोंने ऐसेही अनुशासन किये हैं। हे तात ! अत्यन्त करुणाके सबब प्रजासमूहके विषयमें धीरज देनेवाले पितामहके जरिये मैं इस ही प्रकार अनुशिष्ट हुआ था। सतयुगमें राजाओंने इस ही प्रथम कल्प शासन अर्थात् अहिंसामय दण्डसे ही पृथ्वी मण्डलको वशमें किया था। त्रेतायुगमें तीनपाद धर्म्मके सहारे प्रजा शासन होता था, द्वापरमें दोपाद धर्म्म और कलियुगमें एकपाद धर्म्म प्रवृत्त हुआ है। धिगदण्ड, वाक् दण्ड, आदान दण्ड और वधदण्ड युगके क्रमसे प्रजासमूहके विषयमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। कलियुगके उपस्थित होनेपर समय-निर्देशसे राजाके दुश्चरित्रसे धर्म्मके सोलह अंशोंका एक [illegible] मात्र, शेष रहेगा। हे सत्यवान्! यदि अहिंसामय प्रथम कल्प [illegible] धर्म्म [illegible] [illegible] आयु, शक्ति और काम [illegible]

करके राजा दण्डकी आज्ञा करे। सत्यके निमित्त अर्थात् ब्रह्म-प्राप्तिके हेतु इस लोकमें अत्यन्त महत् धर्मफलको त्यागना न चाहिये जीवोंके ऊपर कृपा करके स्वयम्भू मनुने उसे कहा है।

२६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! समस्त ऐश्वर्य्य, ध्यान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म्म, इन छहों गुणोंका हेतु जो योग धर्म्म जीवोंके विषयमें अविरोध भावसे जिस प्रकार उभयभागी अर्थात् गार्हस्थ और सन्न्यास, इन दोनोंमे उपयोगी होता है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। गार्हस्थ पञ्चसूना अनिवार्य्य है, जो धर्म्ममें समस्त विषय सब भांतिसे परित्यज्य है, उक्त दोनों धर्म्म एक ही कार्य्यकेलिये प्रवृत्त होने पर अर्थात् गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेसे तत्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाले तथा सत्यवादी होनेसे मुक्त होंगे। और योगी पुरुष प्राणायामसे पापोंको जलाकर धारणासे किल्विष नाश, प्रत्याहारके जरिये सङ्ग परिहार और ध्यानके सहारे जीवत्व आदि गुणोंको परित्याग करें; इसलिये उक्त दोनों धर्म्मोंके तुल्यअर्थ होनेपर भी उनके बीच कौन कल्याणकारी हैं।

भीष्म बोले, गार्हस्थ और योग धर्म्म दोनों ही महा ऐश्वर्य्यसे युक्त तथा अत्यन्त दुश्चर हैं, दोनोंमें ही महत् फल है, और दोनों धर्म्म साधुओंके आचरित हैं, इस समय मैं तुम्हारे समीप उक्त दोनो धर्म्मोंका प्रमाण वर्णन करता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुननेसे धर्म्म विषयमें तुम्हारा संशय दूर होगा। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें कपिल और गौरके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं तुम उसे सुनो। पहले समयमें राजा नहुष नित्य-निश्चय पुरातन वेदविधि देखकर गृहमें आये हुए अतिथियोंके निमित्त गऊ मारनेमें प्रवृत्त हुए थे मैंने ऐसा सुना है; अदीन स्वभाववाले सतगुण अवलम्बी, संयममें रत नियताहारी, ज्ञानवान् कपिलने वधके लिये लाई गई उस गऊको देखा था। वह भयरहित सत्यसंश्रयी, अशिथिल और नैष्ठिकी बुद्धिसे युक्त थे—इस ही लिये उस गऊको देखकर 'हा वेद।' ऐसा वचन कहके आक्षेप-प्रकाश किया था। स्यूमरश्मि ऋषि योगबलसे उस गऊके शरीरमें प्रवेश करके कपिल मुनिसे बोले, क्याही आश्चर्य्य है। यदि सब वेद ही गर्हित रूपसे सम्मत हुए तब दूसरा कौन हिंसारहित धर्म्म लोगोंको अभिमत होगा। सन्तोषयुक्त श्रुतिबलसे विज्ञानदर्शी तपस्वी लोग ऋषियोंसे प्रकट हुए वेदवाक्योंको नित्य विज्ञानमय परमेश्वरका वाक्य कहके मान्य करते हैं, इसलिये वेदवाक्यके एक अक्षरको भी अप्रमाणित करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। जो फलकी आशासे रहित, दोषहीन वीतराग और अव्याप्त समस्त कामत्व निबन्धनसे सब प्रकार निरारम्भ है, उस परमेश्वरके वचन वेदोंमें क्या किसी पुरुषको कुछ कहनेकी शक्ति है।

कपिल बोले, मैंने वेदोंकी निन्दा नहीं की है, और किसी विषयमें कुछ विषम वाक्य कहनेकी इच्छा भी नहीं करता, पृथक् पृथक् आश्रमवालोंके सब कर्म्म एक प्रयोजनके हैं, इसे मैने सुना है। क्या सन्न्यासी, क्या वाणप्रस्थ, क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, सब ही परम पद लाभ किया करते हैं। चारों आश्रमोंसे ही आत्माको प्राप्त किया जाता है, इस ही लिये ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रम देवयान पथ रूपसे प्रसिद्ध हैं, इन चारोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष तथा बलाबलके विषय वर्णित हुए हैं, कि सन्न्यासी मोक्षलाभ करते हैं, वाणप्रस्थ ब्रह्म लोक पाते

है, ... पुरुष स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं, और ब्रह्मचारी ऋषिलोकमें वास करते हैं। ... ही जानके स्वर्गादिप्रद यज्ञादि कर्म्म ... करे; यही वैदिक मत और वेदके ... शास्त्रान्तरमें कर्म्म न करनेकी भी विधि है, इस ही प्रकार नैष्ठिकी जनश्रुति भी अवणगोचर हुआ करती है, अर्थात् सन्न्यास ही सबके विषयमें परम मोक्ष साधन है। जो सब काम्य कर्म्मोंको परित्याग करते हैं, वे परब्रह्मको ... परमपद पाते हैं। कर्म्म न करनेसे ... दोष नहीं होता, परन्तु यज्ञ आदि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे हिंसा आदिसे बहुत से दोष हुआ करते हैं। जब शास्त्र इस प्रकार है, तब कर्म्म त्याग और कर्म्मानुष्ठानके ... अत्यन्त ही दुर्व्विज्ञेय हैं, क्यों कि ... में ही निन्दा और प्रशंसाको तुल्यता है। ... शास्त्रोंके अतिरिक्त जो कुछ हिंसाशास्त्र है, यदि वे प्रत्यक्ष हों और तुमने उन्हें देखा हो, तो उसे ही कहो।

स्यूमरश्मि बोले, "स्वर्गको इच्छाकरनेवाले पुरुष यज्ञ करें" सदा ऐसी ही जनश्रुति सुनी जाती है। पहले फलकी कल्पना करके उसके अनन्तर यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। बकरे, घोड़े, भेंड़, गऊ, पक्षिये और गाव तथा जङ्गली ... ओषधियें प्राणियोंके अन्न हैं, यह वेदमें प्रतिपन्न हुआ है, इसलिये जो जिसका अन्न है, उसके खानेमें कोई दोष नहीं है। ... सन्ध्या और भोरके समयमें अन्न ... हुआ करता है, पशुसमूह और ... धान्य यज्ञके अङ्ग हैं; यह भी वेदके ... है। प्रजापतिने ऊपर कहे हुए ... को यज्ञके लिये उत्पन्न किया है, और ... देवताओंका यज्ञ कराया था। ... कहे हुए पशु, ग्राम और अरण्यनिवासी ... हैं, वे परस्पर श्रेष्ठ हैं। गऊ, ... , भेंड़, नर, खच्चर और गदहे, ये सातो ग्रामपशु हैं; और सिंह, बाघ, बराह, भैंसे, हाथी, भालू और बन्दर, ये सातो जङ्गली कहके वर्णित हुआ करते है। यज्ञमें विनियुक्त भूभागको महर्षि लोग उत्तम संज्ञक कहा करते है और यह पहलेसे ही पण्डितोंके जरिये अनुज्ञात हुआ है। कौन विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार मुक्तिके उपाय करनेमें अभिलाषी नहीं होता, सब कोई अपनी सामर्थके अनुसार यज्ञ कार्य्य करें। मनुष्य, पशु, वृक्ष और समस्त ओषधियें स्वर्गको कामना किया करती है, स्वर्गके अतिरिक्त सुख नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, वीरुत्, घृत, दूध, दही, हवि भूमि, दिक् श्रद्धा और काल, ये बारह और ऋक्, यजु, साम तथा यजमानको मिलाके सोलह, और अग्निस्वरूप गृहपति सप्तदश रूपसे कहे जाते हैं। येही सत्तरह यज्ञके अङ्ग है, यज्ञ ही लोकस्थितिका मूल है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। घृत, दूध, दही, शकृत्, अमिक्षा, त्वक्, पुच्छलोम, शींग और खुरके जरिये गोयज्ञका कार्य्य सिद्ध हुआ करता है। सब वस्तुओंमेंसे यज्ञके लिये प्रत्येकमें जो जो विहित होता है, वह सब एकत्रित होकर दक्षिणायुक्त ऋत्विकोंके सहित यज्ञको पूर्ण करता है। ऊपर कही हुई सब सामग्रियोंको समाप्त करनेसे यज्ञ निवृत्त हुआ करता है। यज्ञके लिये ही सब वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, यह यथार्थ श्रुति कानोंसे सुनी जाती है। प्राचीन मनुष्य इस ही भांति यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते थे, वे किसीकी हिंसा नहीं करते थे फलकी कामनासे कोई कर्म्म नहीं करते थे। और किसीसे द्रोह नहीं करते थे। "यज्ञ करना कर्त्तव्य है," ऐसा समझके फलकी इच्छा न करके जो लोग यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें पहले कहे हुए सब यज्ञाङ्ग और यज्ञमें कहे हुए पश्चात् ... लिखे विधिपूर्वक निज निज कार्य्योंसे परस्परका उपकार करते हैं। जिसमें ...

होरहे हैं, मैं उस ऋषिप्रणीत आम्नाय-वाक्यका दर्शन करता हूं, कर्म्म-प्रवर्त्तक ब्राह्मण वाक्य-दर्शन निबन्धनसे विद्वान् लोग भी उस वेद-वाक्यको अवलोकन किया करते हैं। ब्राह्मणसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है और ब्राह्मणमें यज्ञ अर्पित हुआ करता है, सब जगत् यज्ञका आसरा किये हैं, और यज्ञ भी सदा जगत्की अवलम्बन कर रहा है। ओंकार ही वेदका मूल है, इसलिये प्रणवका उच्चारण करके यज्ञादि कार्य्योंको करना चाहिये। नमःस्वाहा, स्वधा, वषट् इत्यादि मन्त्रोंके यथा शक्ति जिसके गृहमें प्रयोग होते हैं; त्रिभुवनके बीच उसे ही परलोकका भय नहीं है, सब वेद और सिद्ध महर्षि लोग इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं। ऋक्, यजु, साम आदि शब्द, ये सब विधि पूर्व्वक प्रयुक्त होकर जिसमें निवास करते हैं, वेही द्विज-पदवाच्य होते हैं। हे द्विज! आग्नग्राधान, सोमपान और इतर महायज्ञोंसे जो फल होता है, उसे तो आप जानते हैं। इसलिये विचार न करके यजन और याजन करना उचित है। स्वर्गप्रद ज्योतिष्ठोमादि अनुष्ठानके जरिये जो यज्ञ करते हैं, परलोकमें उन्हें अत्यन्त महत् स्वर्ग फल प्राप्त हुआ करता है। जो यज्ञ नहीं करते, उनका यह लोक और परलोक नष्ट होता है। जो वेदगत अर्थवाद जानते हैं, उस अर्थवादके दोनो फल सामर्थ ही इस विषयमें प्रमाण है, यह भी उन्हें अविदित नहीं है।

२६७ अध्याय समाप्त।

कपिल बोले, सविशेष अवस्थामें स्थित, यम नियम आदिसे युक्त, योगी लोग इस्थल स्तूपसे परिच्छिन्न ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त कर्म्म फल अवलोकन करते हुए परमात्माका दर्शन किया करते हैं; सब लोकोंके बीच इन लोगोंके सङ्कल्प कभी मिथ्या न होवे। जो सर्द्दी, गर्म्मीसे उत्पन्न हुए हर्ष विषादसे रहित हैं, जो किसीको नमस्कार वा आशीर्व्वाद नहीं करते, ज्ञानयुक्त होनेसे वासनाके हेतु सब पापोंसे जो लोग मुक्त हुए हैं, वे स्वभावसिद्ध पवित्र और आनेवाले दोषोंसे रहित योगी पुरुष परम सुखसे विचरते रहते हैं। अपवर्ग और सन्न्यास विषयको वुद्धिसे जिन्होंने निश्चय किया है, वे ब्रह्माभिलाषी ब्रह्मभूत योगी लोग ब्रह्मको ही अवलम्बन किया करते हैं, जिन्हें शोक नहीं है, और रजोगुण नष्ट हुआ है, उनके निमित्त नित्य सिद्ध सनातन लोक निर्म्मित है, परमपद पाके फिर उन्हें गृहस्थ धर्म्मकी क्या आवश्यकता है।

स्यूमरश्मि बोले, यदि यही परम उत्कर्ष और यही चरम-गति हुई, तोभी विना गृहस्थोंके आसरेसे दूसरे आश्रमोंके निर्व्वाह नहीं होसकते। जैसे जननीका आसरा करके सब जन्तु जीवन धारण करते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रमके अवलम्बसे सब आश्रमवाले व॰मान रहते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ किया करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है, सुखकी इच्छा करके जो कुछ चेष्टा की जाती है, गार्हस्थ ही उसका मूल है। प्राणिमात्र ही सन्तानके उत्पन्न होनेसे सब भांतिसे सुखी होते हैं, गृहस्थाश्रमके अतिरिक्त दूसरे किसी आश्रममें भी वह पुत्रोत्पत्ति सम्भव नहीं होती, वाह्य औषधि धान्य आदि और शैलज औषधि सोमलता इत्यादि जो कुछ दीख पड़ती है, प्राण उन औषधि स्वरूप है; क्यों कि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यके निकट उपस्थित होती है, सूर्य्यसे वर्षा उत्पन्न होती है, जल वरसनेसे अन्न उपजता है, और अन्नसे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसलिये औषधि स्वरूप प्राणसे पृथक् जब दूसरा कोई पदार्थ नहीं दीखता, तब गृहस्थाश्रम ही जगत्की उत्पत्तिका कारण

[illegible] गृहस्थाश्रममें मोक्ष नहीं होती किस पुरुषका यह वचन सत्य होसकता है। श्रद्धा-रहित, बुद्धिहीन, सूक्ष्म दर्शन विवर्ज्जित, प्रति-ष्ठाहीन, आलसी, श्रान्त और निज कर्म्मसे ज्ञानयुक्त, कार्यात्व आदि दोषोंसे गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन करनेमें असमर्थ मूर्ख पुरुष ही संन्यासधर्म्ममें शमगुणकी अधिकता दर्शन किया करते हैं। तीनों लोकोंके हितके निमित्त यह नित्य नियत मर्य्यादा है, कि भगवान् वेद-वित् ब्राह्मण जन्म पर्य्यन्त पूजनीय हैं। प्रमा-[illegible] अगम्य स्वर्गादि और ऐहिक कर्म्म-फलादि विषयमें जो सब मन्त्र हैं, वह गर्भा-[illegible] पहलेसे ही द्विजातियोंमें निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

मृतदेहको जलाना, फिर शरीर प्राप्ति, [illegible] अनन्तर श्राद्ध तर्पण आदि वैतरणीके [illegible] गजदान, आद्य श्राद्धके समयमें वृषोत्सर्ग और सब पिण्डोंमें जल सिञ्चन, ये सब मन्त्र-[illegible] हैं, ज्योतिर्म्मय, कुशापर सोनेवाले [illegible] और पितर लोग मृतकके सम्बन्धमें [illegible] किये हुए कार्य्योंको मन्त्रसम्मत कहा करते हैं, [illegible] जब इन मन्त्रोंके कारणताकी घोषणा [illegible] रहे हैं और मनुष्य लोग जब पितर देवता [illegible] ऋषियोंके निकट ऋणी हैं, तब किसी [illegible] किस प्रकार मोक्ष होसकती है। सब [illegible] शरीर होन युक्त पुरुषोंके उपकारके [illegible] नहीं है, इसलिये उस प्रकार अशरीरता [illegible] मोक्ष नहीं है। वेदवाक्योंका जिसमें [illegible] ज्ञान नहीं होता, वह सत्यको [illegible] आभासमान मिथ्याधर्म्म है; सम्यक्-[illegible] परिडतोंके जरिये वह मिथ्या [illegible] हुआ है, जो वेदवित् ब्राह्मण [illegible] यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करता है [illegible] आन्त वा आक्रान्त नहीं [illegible] और [illegible] [illegible] करता है, और वह

स्वयं सर्व्वकामसे तृप्त होकर दूसरोंको तर्पित किया करता है; इसलिये अग्निहोत्र आदि कर्म्मसमुचित उपासनारूपी ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, इससे वह गृहस्थाश्रममें ही सिद्ध हुआ करती है। वेदोक्त कर्म्ममें अनादर, शठता वा मायासे पुरुष महत् ब्रह्मपद नहीं पाता, वेद जाननेवाले ब्राह्मण ही वेदोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठा-नसे ब्रह्मपद प्राप्त किया करते हैं।

कपिलमुनि बोले, दर्शपौर्णमास, अग्निहोत्र और चातुर्म्मास्य यज्ञ बुद्धिमान् मनुष्योंके चित्त-शुद्धिके कारण हुए हैं, इसलिये उक्त यज्ञादि कर्म्मोंमें सनातन धर्म्म विद्यमान है, हिंसायुक्त पशुवध आदि कार्य्योंमें कोई धर्म्म नहीं है। जो यज्ञादिकोंका अनुष्ठान नहीं करते, वेही धैर्य्यशील हैं, इससे वेही राग आदि दोषोंसे रहित ब्रह्मज्ञ शब्दके वाच्य होते हैं। वेही सन्तोषसे ब्रह्मदर्शनके जरिये अमृताभिलाषी देवर्षि और पितरोंको तृप्तिसाधन किया करते हैं। जो सब भूतोंके आत्मभूत और सब प्राणि-योंमें समदर्शी हैं, गुणाभिलाषी देवता लोग भी उस निर्गुण पुरुषके पदलाभ करनेमें मुग्ध हुआ करते हैं। बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ, ये चारों द्वारकी भांति जिसे आवरण कर रखते हैं; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ये चारों जिसके भोगसाधन सुखस्वरूप हैं, मनुष्य गुरू-पदेशसे इस शरीरके भीतर स्थित सर्व्वमय पुरु-षको विराट, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्ध-चैतन्य इन चारों भांतिसे जानता है। जो उसे जान-नेकी इच्छा करे, वह दोनों भुजा, वचन, उदर और उपस्थकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें यत्नवान् होवे। बुद्धिमान पुरुष जुआ न खेले, दूसरेका वित्त न हरे, जिनके संग यौन सम्बन्ध होनेकी सम्भावना नहीं है, उन्हें [illegible] न करे, क्रुद्ध होके किसीके ऊपर प्रहार न करे, [illegible] इस ही प्रकार आचरण करते हैं, उनके [illegible] [illegible] उत्तम रीतिसे रक्षित [illegible]

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैंने शास्त्रके अनुसार कर्म्मकी प्रशस्तता और सन्न्यास धर्म्मकी अप्रशस्तता वर्णन की है, शास्त्रके अर्थको बिना जाने वाक्यके विलाससे प्रवृत्ति नहीं होती। न्यायके अनुगत जो कुछ व्यवहार है, वही शास्त्र और जो अन्यायके अनुगत है, वही अशास्त्र है, ऐसी ही जनश्रुति श्रुतिगोचर हुआ करती है। यह निश्चय है, कि शास्त्रके अतिरिक्त कोई प्रवृत्ति नहीं होती, वेदशास्त्रोंसे जो भिन्न है, वही अशास्त्र है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। अविज्ञानके वशमें होकर हतप्रज्ञ हीनबुद्धि तमसे आवृत बहुतेरे पुरुष जो प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थका ही मान्य किया करते हैं, वे लोग केवल इस लोकको ही देखते हैं वे कृतहानि और अकृताभ्यागम आदि शास्त्रके दोषोंको नहीं देखते। जो अन्यान्य अवैदिक मतको अवलम्बन करके लोकायत नास्तिक लोग शोक किया करते हैं, हम लोग वैसे मतका आसरा करनेसे उन्हीं लोगोंकी भांति शोकभाजन होंगे। शीत उष्ण आदि स्पर्श पशु, पामर और पण्डित आदि सबके पक्षमें समान हैं, "हम लोग आत्माका अनुभव न कर सकनेसे स्वरूप निष्ठासे रहित हीनविषयोंमे बुद्धियुक्त हैं, इस ही लिये अज्ञानसे छिपे हुए हैं। सिद्धान्त-विषयमें सब तरहसे उपापोह-कुशल होकर-आपने अनन्त वाक्य प्रकाश करके एक मात्र सुखार्थी वर्ण और चारों आश्रमोंके प्रवृत्ति विषयमें हमारे चित्तकी शान्तिरूपी जलसे अभिषिक्त किया। केवल योगयुक्त सब तरहसे कृतकृत्य चित्त विजयी पुरुष शरीर मात्रके सहारे धर्म्माचरण करने और वेदवाक्यको अवलम्बन करके "मोक्ष है," यह वचन कहनेमें समर्थ होता है, अर्थात् जो लोग सब तरहसे धर्म्माचरण कर सकते है, उन्हें ही "मोक्ष है,"—इस वचनका उल्लेख करना उचित है। जिस पुरुषने नीतिशास्त्रकी अतिक्रम किया है, सब लोग ही उसकी निन्दा किया करते हैं, उसके पक्षमें कुटुम्बगण संश्रित कर्म्म करना अत्यन्त दुष्कर है; दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और समस्त व्यवहार, यह सब करनेपर भी यदि किसीको मोक्ष न हो, तब उस कर्त्ता और कार्य्यको धिक्कार है और वैसा परिश्रम भी निरर्थक है। यदि वेदवाक्यका अमान्य करके कोई ऊपर कहे हुए कर्म्मोंको न करे, तो उसकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। हे भगवन्! इसलिये मैं आपके समीप एक मोक्षविषयका जो वृत्तान्त विस्तारके सहित शीघ्र सुननेकी अभिलाष करता हूं, आप उसे वर्णन करिये, मैं आपके निकट आया हूं आप मुझे शिक्षा दीजिये। हे ब्रह्मन्! आप मोक्षके विषयको जिस प्रकार जानते हैं, मैं वैसी ही शिक्षाकी इच्छा करता हूं।

२६८ अध्याय समाप्त।

कपिल मुनि बोले, वेद ही सब लोगोंके धर्म्म शिक्षामें प्रमाण है, इसलिये वेद वाक्यका अमान्य करना किसीको भी उचित नहीं है। सब वेदवाक्य दो भागोंमें विभक्त हैं, पहला कर्म्मोपासना काण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड, इन दोनों काण्डोंको ही सबको जानना योग्य है। जो लोग कर्म्मोपासना काण्डमें निपुण हुए हैं, वे परब्रह्मको जाननेके अधिकारी होते हैं। गर्भाधान आदि वैदिक संस्कारोंसे जो शरीर शुद्ध होता है, वेसे पवित्र शरीरवाले ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य पात्र हुआ करते है। मोक्षके उपयोगी चित्त शुद्धि रूप कर्म्म फलोंकी सीमा नहीं है, इसे प्रत्यक्ष देखिये। यह फल अनुमान् वा ऐहिक प्रमाणके जरिये नहीं जाना जाता, यह इस लोकमे सात्विक प्रत्यक्ष फल है। धन संग्रहसे रहित, लोभहीन, राग, द्वेष वर्जित निष्काम पुरुष धर्म्म जाननेसे यज्ञ

[illegible] करते हैं। सत्पात्रको दान करनेसे ही [illegible] सार्थकता होती है, जिन लोगोंने कभी [illegible] का सहारा नहीं लिया है, अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंके अनुष्ठानमें सदा रत रहते हैं; जिनके मनके सङ्कल्प पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुए है। [illegible] शास्त्रमें निश्चय हुआ है; जिन लोगोंमें [illegible] असूया, अहङ्कार और मत्सरता नहीं है; ज्ञानके उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें जिनकी निष्ठा है; जन्म, कर्म्म और विद्या, ये [illegible] ही जिनके पवित्र हैं, जो सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वेही सत्पात्र हैं; उन्हें ही दान करनेसे धनकी सार्थकता हुआ करती है।

पहिले समयमें जनक आदि राजा और याज्ञवल्क्य आदि बहुतेरे ब्राह्मण गृहस्थ होके भी निज कर्मोंका समादर करते हुए विधिपूर्व्वक यज्ञके अनुष्ठानमें नियुक्त थे। वे सब भूतोंमें समदर्शी सरलतायुक्त, सन्तुष्ट और ज्ञाननिष्ठ थे, [illegible] और धर्म्म फल सत्य सङ्कल्पत्व आदि उन लोगोंको प्रत्यक्ष दीखते थे। वे लोग पवित्र और निरुपाधिक ब्रह्ममें श्रद्धावान् थे; वे लोग [illegible] चित्तशुद्धि करके व्रताचरण करते थे। [illegible] और दुर्गम स्थलमें भी सब कोई [illegible] धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, वही उन लोगोंका परम सुख था। उन लोगोंको किसी [illegible] प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी, [illegible] धर्म्मका अवलम्बन करके अत्यन्त [illegible] विषय बोध करानेवाली बुद्धिसे [illegible] होते थे, धर्म्म छल, और वञ्चना [illegible] जानते थे; वे सब कोई इकट्ठे [illegible] धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, [illegible] लिये कदाचित् कोई प्रायश्चित्त [illegible] था; जो कि जो लोग वैसे [illegible] हैं, उनके लिये कोई प्राय- [illegible], ऐसा सुना है कि दुर्बल [illegible] पुरुषोंके लिये प्रायश्चित्त [illegible]

इस ही भांति अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले प्राचीन ब्राह्मण तीनों वेदोंको अनुशीलन करते हुए वृद्ध हुए हैं, पवित्रता और सच्चरित्रताके सहारे यशस्वी हुए हैं, तथा नित्य यज्ञ करते हुए आशाबन्धन बिमोचन किये हैं, उन ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ और वेदोक्त कर्म्म आगमके अनुसार निर्व्वाहित हुआ करते हैं; जिन लोगोंके काम क्रोध वशीभूत हुए हैं, वे दुष्कर कर्म्मोंको क्रिया करते हैं, उनके सम्बन्धमें सब शास्त्र और समस्त सङ्कल्प यथा समय फलित होते हैं। जो लोग निज कर्म्मोंसे विख्यात् और स्वभावसे ही पवित्र चित्तवाले हैं, उन सरल, शमनिरत, निज कर्म्मोंको विधिपूर्व्वक करनेवाले योगियोंके सब कर्म्म अनन्त ब्रह्ममें अर्पित हुआ करते हैं, इसलोगोंकी शाश्वती श्रुति इसे प्रतिपादन करती है। वैसे अदीन स्वभाववाले दुष्कर कर्म्मशील निज कर्म्मसे सम्पूर्ण काम मनुष्योंकी तपस्या ही अविद्याको निवर्त्तन करनेमें समर्थ होती है। जो सदाचार साधुओंके आपद्धर्म्माचारसे विभिन्न है, सावधानतासे युक्त और काम क्रोधके जरिये अनभिभूत है, जिसके बीच पहले समयमें सब वर्णोंकी समस्त जातियोंमें अपूज्य लोगोंका पूजन और पूजने योग्य पुरुषोंका अपूजन आदि कोई व्यतिक्रम नहीं था, ब्राह्मण लोग कहते हैं, सूक्ष्म धर्म्मके अनुष्ठानमें असमर्थ पुरुषोंके जरिये वह एक ही सदाचार चार प्रकारके रूपसे विभक्त होकर चारों आश्रमोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। इस अद्भुत प्राचीन, नित्य, निश्चल सदाचारकी विधिपूर्व्वक अवलम्बन करनेसे साधु पुरुष गृहसे निकलके अर्थात् सन्न्यास धर्म्मके सहारे परम गति प्राप्त किया करते हैं। चारों आश्रमोंके बीच जो लोग ऊपर कही हुई विधिसे सदाचार अवलम्बन करते हैं, उनकी [illegible]

करके अन्तमें जङ्गलका सहारा लेते हैं। उक्त सदाचारसे युक्त द्विजाति लोग मुक्त होकर ज्योतिर्म्मय शरीर धारण करके आकाशमण्डलमें निजस्थानपर स्थित तारा वा नक्षत्रोंकी भांति दीख पड़ते हैं। ज्ञानी पुरुष वैराग्यसे वेदविहित अनन्त ब्रह्मत्व पाते हैं, वैसे पुरुषोंको यदि फिर संसारमें आना पड़े तो वे प्रारब्ध-कर्म्मसे योनि-प्रवेशके निमित्त पापफल दुःखादिसे लिप्त नहीं होते। जिन लोगोंने इस ही प्रकार ब्रह्मचर्य्य करते हुए मुमुक्षु होकर आत्मनिश्चय किया है और योगयुक्त हैं, वेही यथार्थ ब्राह्मण हैं, उनसे अतिरिक्त ब्राह्मण विप्रकी आकृति मात्र अर्थात् काठके हाथीकी भांति केवल नाम धारी हैं, इस ही प्रकार शुभ वा अशुभ कर्म्मही पुरुषके नामको प्रकाशित करते हैं। जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध हुई है, वे त्वं पदार्थका दर्शन और तत्वमसि वाक्यके अर्थको जाननेसे सब वस्तुओंको ही अनन्त ईश्वरमय समझते हैं, यही हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति है। वासना-हीन, शुद्धस्वभाववाले मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंकी जाग्रत,स्वप्न और सुषुप्त्राभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञोक्त चौथी अर्थात् परमात्म विषय-वाली जो उपनिषत विद्या है। उस ही निमित्त धर्म्म सब वर्ण और आश्रमोंके सम्बन्धमें साधारण हुआ करता है, अर्थात् सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधि स्वरूप धर्म्म वर्णाश्रम मात्रसे ही साधारण है। शुद्ध निरुद्धचित्त-वाले ब्राह्मण तुरीय ब्रह्मको पाते हैं। सन्तोष मूल त्यागशाली पुरुषको ज्ञानका अधिष्ठान कहा जाता है, जिसमें अपवर्गप्रद, ब्रह्म साक्षात्काररूपिणी नित्यवृत्ति वर्त्तमान है, वही सम्प्रदाय परम्परासे प्रचलित यतिधर्म्म है। उक्त धर्म्म आश्रमान्तर धर्म्मसे मिश्रित हो, अथवा न हो वैराग्यके अनुसार आराध्य होता है। कल्याणके लिये परम पुरुषके समीप जो मनुष्य गमन करते हैं, उनके बीच दुर्व्वल पुरुष भी अवसन्न नहीं होते, पवित्र पुरुष ब्रह्मपदकी कामना करके संसारसे मुक्त होते हैं।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! जो लोग प्राप्त धनसे विषयसम्भोग; दान, यज्ञ और अध्ययन करते हैं, तथा जो लोग सन्न्यास धर्म्मको अवलम्बन करते हैं; परलोकमें उनके बीच कौन पुरुष स्वर्गविजयी होता है। मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप इस ही विषयको यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, सब दान ही शुभ और गुण युक्त हैं, परन्तु त्याग करनेसे जो सुख होता है, उसे दान करनेवाले अनुभव नहीं कर सकते। त्यागशील पुरुष अनेक दृष्ट सुख लाभ करते हैं, इसे तुम भी अनुभव करते हो।

स्यूमरश्मि बोले, आप गृहस्थ होके भी ज्ञाननिष्ठ हैं, कर्म्मकाण्ड विषयमें भी निश्चय किये हैं; परन्तु आश्रमभावमें ही निष्पत्तिकालमें एक ही मोक्ष फल वर्णित हुआ करता है। ज्ञान और कर्म्मकी तुल्य प्रधानता अथवा प्रधान और निकृष्ट भावसे कुछ विशेषता नहीं दीख पड़ती, इसलिये आप इस विषयको विधि पूर्व्वक मेरे निकट यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, कर्म्मसे स्थूल और सूक्ष्म शरीर शोधित हुआ करता है। ज्ञान ही मोक्षका साधन है, सब कर्म्मोंके सहारे चित्तके दोष दूर होनेपर ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रीतिज्ञानमेंही निवास किया करती है। सब प्राणियोंमें दयारूपी अनृशंसता क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य बचन, सरलता, अद्रोह, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा और कर्म्मसे उपरति, येही ब्रह्म प्राप्तिके उपाय हैं, ज्ञानी लोग इस ही उपायके सहारे परमपद पाते हैं। विद्वान् पुरुष मन ही मन इस ही प्रकार कर्म्म निश्चय मालूम करे, सब भांतिसे शान्त स्वभाव, पवित्र चित्त, ज्ञाननिष्ठ और सन्तोष युक्त ब्राह्मणोंको जो गति मिलती है, उसे ही परमगति कहा जाता

है, जिसमें परम गतिका लक्षण निरूपित हुआ है। जो वेदोंसे जानने योग्य कर्म्म ब्रह्म-स्वरूप है, उनके अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान लाभ करके जो लोग निरहङ्काररूपसे दीखते हैं, पण्डित लोग उन्हें ही वेदज्ञ कहते हैं; उनके अति-रिक्त मनुष्य भाथी नामक चर्म्म कोष स्वरूप हैं, क्योंकि वे लोग केवल सांस लेते और छोड़ते हैं। वेदवित् पुरुष जानने योग्य सब विषयोंको जानते हैं, वेदमेंही समस्त ज्ञेय विषय प्रति-ष्ठित हैं; वर्त्तमान, अतीत और अनागत, सब विषयोंकी ही निष्पत्ति वेदमें विहित हुई है। यह दृश्यमान् जगत् प्रतीति कालमें वर्त्तमान रहता है, और बाधकालमें इसका अभाव होता है, अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्योंके निकट प्रतीयमान जगत् गन्धर्वनगरकी भांति असत् है, और अज्ञा-नियोंके निकट यह यथार्थमें असत् होनेपर भी [illegible]पिञ्जरेको भांति दृढ़ हुआ करता है। [illegible] पुरुषोंके समीपमें यह परिदृश्यमान् सब [illegible] ही सत्, असत् और निर्विशेष सविशेष [illegible] स्थान सब शास्त्रोंमें ही यह निष्पत्ति निरू-पित हुई है। क्षेत्र, आराम, गृह-पशु, पत्नी, पुत्र [illegible] शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अह-ङ्कार [illegible] परित्यक्त होनेपर निर्विकल्प समाधि अवस्थामें पूर्णरीतिसे आत्मदर्शन हुआ करता है, यह वेदवाक्यसे निश्चित हुआ है। मनुष्योंका जो एक ही आनन्द है, गन्धर्वोंका वह [illegible] आनन्द है, इत्यादि क्रमसे सौगुणा बढ़-कर ब्रह्मानन्दमें अकामहत श्रोत्रियको जो आनन्द होता है, वही आनन्द स्वरूप सन्तोष [illegible] अनुगत और प्रतिष्ठित [illegible] [illegible] सब स्वरूप अधिष्ठानरूप [illegible] [illegible] प्रपञ्चात्मक है, जो सबके [illegible] [illegible] और स्थावर जङ्गम शरीरोंमें [illegible] जानने योग्य है, जो दुःख-[illegible] है, जो सबमें [illegible] [illegible] [illegible] उत्पत्ति हुई है, वही अपरिणामी परब्रह्म है। तेज अर्थात् इन्द्रिय विजयकी सामर्थ्य क्षमा अर्थात् बुराई करनेवाले पुरुषके विषयमें भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् निष्कामरूप निबन्धन सब कार्य्योंसे उपरति, ये तीनों ही शुभ और अनामय हैं अर्थात् दुःखसे रहित सुख प्राप्तिके हेतु हैं, जो लोग बुद्धिके सहारे देखते हैं, वेही बुद्धि नेत्र-वाले पुरुषोंके उक्त क्षमा तेज और शान्तिके जरिये अज्ञान दूर होने पर आकाशकी भांति आसक्ति रहित अकृत्रिम जिस सनातन ब्रह्मको पाते हैं, ब्रह्मवित्से अभिन्न उस परब्रह्मको नम-स्कार करता हूं।

२६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह। वेदोंमें धर्म्म, अर्थ और काम, ये तीनों विषय वर्णित हैं, तिसके बीच कौनसे विषयका लाभ होना उत्तम है आप मेरे समीप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें कुण्डधारने प्रीति-पूर्व्वक भक्तके निमित्त जो उपकार किया था, इस विषयमें वही इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं। किसी निर्धन ब्राह्मणने फलकी कामनासे "धर्म्म करूंगा" इस ही प्रकार चिन्ता की थी। अनन्तर धर्म्म भी धनसाध्य है, ऐसा विचार करके यज्ञके लिये धनकी इच्छासे घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ। अन्तमें वह दृढ़-निश्चय करके देवताओंकी पूजा करने लगा, परन्तु देवपूजा करके भी अभिलषित धन न पाया। अनन्तर उसने सोचा, कि ऐसा भी [illegible] देवता है, जो मनुष्योंसे जड़ीभूत न हुआ हो और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ब्राह्मण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दूर रहा था, उस ही समय देवताओंके अनु-चर कुण्डधार नाम [illegible] [illegible] [illegible] दिखाई दिया। उस महाबाहु [illegible] [illegible],

ही उसे भक्ति उत्पन्न हुई, सोचा कि यही मेरे कल्याणका उपाय करेगा; क्यों कि इसका रूप कल्याणकारी बोध होता है। ऐसा सोचके वह अकेला उस देवके निकट जाके बोला, यही मुझे शीघ्र ही बहुतसा धन दान करेगा। अनन्तर ब्राह्मण अनेक प्रकारसे माला, गन्ध और धूप आदि बहुतसी पूजाकी सामग्रियोंसे जलधरकी पूजा की। थोड़े ही समयके बीच जलधर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणके उपकारके विषयमें अत्यन्त तत्पर होकर यह बचन बोले, कि ब्रह्महत्या करनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोर और भग्नव्रती पुरुषोंकी निष्कृतिके विषय साधुओंके जरिये विहित हुए हैं; परन्तु कृतघ्न पुरुषोंकी किसी प्रकार भी निष्कृति नहीं है। आशाका पुत्र धर्म, असूयाका पुत्र क्रोध और निकृतिके भी लोभ नामक पुत्र है, परन्तु कृतघ्न लोग पुत्रलाभके अधिकारी नहीं होते। अनन्तर उस ब्राह्मणने उस समय कुशकी शय्यापर सोनेसे कुण्डधारके प्रभावसे सब भूतोंको देखा, तपस्या इन्द्रियविजय और भक्तिवशसे भागवञ्चित वह शुद्धचित्तवाला ब्राह्मण रात्रिमें कुण्डधारके विषयमें भक्तिका निदर्शन देखा। हे युधिष्ठिर! उसने उस समय देखा कि "महाभाग महातेजस्वी माणिभद्र वहांपर देवआज्ञासे याचकोंको फल बांट रहे हैं"। उसने देखा, कि वेही देवता लोग शुभकर्म्म करनेवाले पुरुषोंको राज्य तथा धन आदि दान कर रहे हैं और अशुभ कर्म्म करनेवालोंसे पहलेके दिये हुए राज्य आदि प्रत्याहरण कर रहे हैं। हे भरतकुलतिलक! अनन्तर महातेजस्वी कुण्डधार यक्षोंके सम्मुख देवताओंके समीप पृथ्वीपर गिरे। देवताओंके बचनके अनुसार महात्मा माणिभद्र पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डधारसे बोले, हे कुण्डधार! क्या कामना करते हो?

कुण्डधार बोले, यह ब्राह्मण मेरे ऊपर अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ है; इसलिये देवता लोग यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो इसके ऊपर कुछ कृपा करें, मैं यही कामना करता हूं, और उसके सिद्ध होनेसे मैं सुखी होऊंगा।

अनन्तर माणिभद्र देवताओंके वचनके अनुसार महातेजस्वी कुण्डधारसे फिर कहने लगे। माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! उठो, उठो तुम्हारा कल्याण हो; तुम कृतकृत्य और सुखी होगे, यह विप्र यदि धनार्थी हुआ हो, तो इसे धन दान करूं। यह ब्राह्मण तुम्हारा सखा है, इससे यह जितना धन मांगे, वह असंख्य होनेपर भी देवताओंकी आज्ञासे मैं इसे वही दूंगा, हे युधिष्ठिर! कुण्डधार मनुष्य जीवन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर है, ऐसा समझकर ब्राह्मणकी तपस्याके निमित्त मनोयोगी हुए।

कुण्डधार बोले, हे धन देनेवाले! मैंने ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं की है, मैंने अनुगत भक्तके ऊपर कृपा की है, इसलिये दूसरी प्रकारकी कुछ अभिलाष करता हूं, रत्नपूरित पृथ्वी अथवा बहुतसे रत्न सञ्चय की मैं भक्तके लिये इच्छा नहीं करता हूं, यह धार्म्मिक हो, यही मेरा अभिलाष है, इसकी बुद्धि धर्म्ममें रत हो, यह धर्म्मको उपजीव्य करके जीवनका समय बितावे और यह धर्म्मको ही प्रधान जानके धर्म्मात्मा हो, मेरा यह अनुग्रह सफल होवे।

माणिभद्र बोले, राज्य और विविध सुख ही धर्म्मके फल हैं, इससे यह शारीरिक क्लेशसे रहित होके सदा उन सब फलोंको भोग करे।

भीष्म बोले, महायशस्वी कुण्डधारने बार बार धर्म्महीके लिये प्रार्थना की, क्यों कि निष्काम धर्म्म ही काम और अर्थसे उत्तम है, अनन्तर देवता लोग उस कुण्डधारके ऊपर प्रसन्न हुए।

माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! सब देवता लोग तुम्हारे और इस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न हुए हैं, यह ब्राह्मण धर्म्मात्मा होगा और

[illegible] मति धर्म्ममें ही अविचलित भावसे स्थित [illegible]। हे युधिष्ठिर ! अनन्तर जलधर दूसरे [illegible] लिये अत्यन्त दुर्लभ इच्छानुसार वर [illegible] प्रसन्न और कृतकार्य्य हुए, द्विज सत्तम भी [illegible] समीपमें सूक्ष्म चीरवस्त्र देखकर निर्व्वेद-[illegible] हुए।

ब्राह्मण बोला, मैं जब धर्म्मज्ञानसे अनभिज्ञ [illegible] तब और कौन पुरुष धर्म्मज्ञ होगा। इस-[illegible] में धर्म्मके जरिये जीवन व्यतीत करनेके [illegible] वनमें गमन करूं, वही मेरे विषयमें कल्या-[illegible] कारी है।

भीष्म बोले, हे महाराज ! वह द्विजवर [illegible] होकर देवताओंकी कृपासे उस समय [illegible] जाके घोर तपस्या करने लगा; क्रमसे [illegible] होकर अनेक वर्ष बिताया; तौभी [illegible] जीवन नष्ट न होनेसे वह अद्भुत बोध [illegible]। बहुत समयतक धर्म्ममें श्रद्धावान् और [illegible] तपस्यामें वर्त्तमान रहनेसे उसे दिव्य दृष्टि [illegible] हुई, ऐसी बुद्धि प्रकट होनेपर उसने [illegible] विचारा, कि अब मैं प्रसन्न होकर यदि [illegible] धन दान करूं, तो मेरा वचन मिथ्या [illegible] होगा। अनन्तर वह प्रसन्न वदन होकर [illegible] तपस्या करने लगा। जो वह केवल अभि-[illegible] किया करता था। सिद्ध होके बार बार [illegible] चिन्ता करने लगा, कि मैं प्रसन्न [illegible] यदि किसी पुरुषको राज्य दान करूं, [illegible] ही राजा होजाय, मेरा वचन [illegible] मिथ्या न होगा। हे भारत ! उस [illegible] तपस्याके योगसे सुहृदतासे आक-[illegible] होकर कुण्डधारने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, [illegible] द्विजवरने उस कुण्डधारको समागत [illegible] होकर उन्हें आलिङ्गन कर [illegible]। उस समय कुण्डधार [illegible] तुम्हें इसका दिव्य नेत्र प्राप्त [illegible] तुम इस [illegible] राजाओंकी [illegible], देखो, तब ब्राह्मण कुण्ड-धारके वचनके अनुसार दूरसे ही दिव्य नेत्रके सहारे सहस्रों राजाओंको नरकमें डूबते देखा।

कुण्डधार बोले, तुम इच्छानुसार मेरी पूजा करके यदि दुःख पाते हो, तब मैंने तुम्हारा क्या किया। तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा ही क्या हुई; देखो देखो, तुम फिर विशेष रूपसे अव-लोकन करो, मनुष्य किस लिये अभिलषित वस्तुकी कामना करता है; स्वर्गका द्वार सबके ही लिये अवरुद्ध होरहा है, विशेष करके मनु-ष्यको वहां प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस ब्राह्मणने काम, क्रोध, निद्रा, तन्द्रा, लोभ, मद और आलसको दूर करके कितने ही पुरुषोंको स्थित देखा। उस समय कुण्डधार बोले, इन्हीं सब लोगोंके जरिये स्वर्गका द्वार संरुद्ध होरहा है, क्योंकि मनुष्योंसे देवताओंको भय हुआ करता है। उक्त द्वारको रुद्ध करनेवाले देव वाक्यके अनु-सार सब प्रकारसे विघ्न उत्पन्न करते हैं, देव-ताओंके जरिये बिना अनुज्ञात हुए कोई पुरुष धार्म्मिक नहीं होता, इस समय तुम तपस्याके सहारे राज्य और धनदान करनेमें समर्थ हुए हो।

भीष्म बोले, अनन्तर वह धर्म्मात्मा ब्राह्म[illegible] सिर झुकाके कुण्डधारके चरणपर गिरा [illegible] उनसे कहा, आपने मेरे ऊपर बहुत ही कृ[illegible] की है। पहले मैंने काम और लोभके वश होकर आपके स्नेहको न जानके जो असू[illegible] की है, आप मेरे उस अपराधको क्षमा करि[illegible] कुण्डधारने उस द्विजवरसे "मैंने क्षमा किया, ऐसा कहके दोनों भुजाओंसे उसे आलिङ्ग[illegible] करके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। ब्राह्म[illegible] भी उस समय कुण्डधारकी कृपासे तपस्या[illegible] [illegible] सिद्धि प्राप्त करके सब लोकोंमें [illegible] लगा। उसने आकाश मार्ग [illegible] [illegible] सिद्धि और धर्म्म [illegible] परमगति मिलती है [illegible] देवता, ब्राह्मण साधु [illegible]

चारण गण इस लोकमें धार्म्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं। धनवाले तथा भोगाभिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता। तुम्हारी बुद्धि जब धर्म्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं, धनमें सुखका लेशमात्र नहीं है, धर्म्म ही परम सुख हुआ करता है।

२७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अनेक प्रकारके यज्ञ और तपस्याका फल चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर प्रीति है, इसलिये धर्म्म वा स्वर्ग फलके निमित्त विनियुक्ति यज्ञ कैसा है।

भीष्म बोले, यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसे ही वर्णन करता हूं।

नारदमुनि बोले, धर्म्म प्रधान विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्ति नाम कोई ब्राह्मण था, वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ। उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सूर्य्यपर्णी और सुवर्च्चला शाक स्वाभाविक तीते और विरस होनेपर भी उसके तपोप्रभावसे स्वादिष्ट हुए थे। हे शत्रु तापन! उसने वनके बीच सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये सिद्धिलाभ करके फल मूलके सहारे स्वर्ग साधन यज्ञ किया था। पुष्करमालिनी नाम उसकी एक साध्वी भार्य्या थी; वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृशित हुई थी, पतिको हिंसामय यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी गई, उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्त्तिनी हुई। स्वयं गलित मयूरपुच्छसे उसका वस्त्र विस्तारित था, यज्ञ कामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था; सद्धर्ममें उत्पन्न होकर यदि कोई भार्य्याका अनादर कर स्वयं यज्ञ करे, तो वह अधार्म्मिक होता है, इस ही लिये उन्होंने सपत्निक होकर यज्ञ किया था। उस वनमें निकटमेंही सहवासिक नाम एक मृग था। वह उस उञ्छवृत्तिके निकट आके बोला तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया है, मन्त्र और अङ्गहीन होकर यदि यह यज्ञ विकृत हो, तो तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ। अनन्तर सवितृमण्डलकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त इस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा वचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका वध न कर सकूंगा" सावित्री ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई। बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न है, वा नहीं, उसे जाननेके लिये उन्होने रसातलमें प्रवेश किया। तब मृग फिर उस बद्धाञ्जलि सत्य संज्ञक उञ्छवृत्ति ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेकी प्रार्थना की। सत्य ऋषिने हरिनका शरीर स्पर्श करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी। हरिन उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरी हिंसा करो, मैं मरके सद्गति पाऊंगा, मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। उससे तुम रमणीय अप्सराओं और महानुभाव गन्धर्व्वोंको विचित्र विमानोंपर देखो। अनन्तर सत्य-संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो' इस ही प्रकार स्पृहयालु नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक देखकर और हरिनको स्वर्गाभिलाषी समझके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया। धर्म्मने किसी कारणसे अनेक

हरिनका रूप धरके उस वनमें वास किया था। उन्होंने उसकी ही निष्कृतिके लिये यज्ञकी सुगतसे मोचन किया, नहीं तो हिंसा उसकी समीचीन विधि नहीं है। "पशु वध करके स्वर्ग लाभ करूंगा।" ऋषिके ऐसे अभिप्रायसे ही महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई, इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हित कारिणी नहीं है। अनन्तर भगवान् धर्मने स्वयं उस ऋषिको यज्ञ याजन कराया, ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिला-षिणी सुकरधारिणी पत्नीके सहित परम समाधिको प्राप्त हुए, अहिंसामय धर्म्म ही सब धर्मोंको देनेवाला है, हिंसा-धर्म्म स्वर्गप्रद होनेपर भी हितकर मात्र है। ब्रह्मवादी पुरुष जिस धर्मका आचरण करते हैं, मैंने तुम्हारे निकट उसी सत्य धर्मका विषय वर्णन किया।

२७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है। किस भांति धर्म्मा-चरण करता है। किससे निर्व्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे भरत कुलतिलक! सब धर्म्म तुम्हें विदित है, इस केवल मर्य्यादाके निमित्त तुम प्रश्न करते हो, इसलिये निर्व्वेदके सहित मोक्ष पाप और धर्म्मके विषयको सुनो। ... पहलेके अर्थको जानके मनुष्य ... में प्रवृत्त होता है, उन सब ... होकर उससे काम उत्पन्न होता ... है। अनन्तर मनुष्य विषयके ... और महत् कर्म्म आरम्भ ... और अभिलषित रूप और गन्धोंकी ... इच्छा किया करता ... राग द्वेष और मोहकी उत्पत्ति होती है। जो पुरुष लोभ मोहमें अभिभूत और राग द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्म्ममें प्रवेश नहीं करती, वह छल पूर्व्वक धर्म्माचरण किया करता है, कपटताचरण पूर्व्वक धर्म्मानुष्ठान करता है, और कपटतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है। हे कुरुनन्दन! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे उसहीमें बुद्धि निवेश करता है; पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करने पर भी पिवादि द्रोहरूपी पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; अहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोड़के सुखी होता है; इस ही प्रकार न्याया-नुगत विधि बोधित उत्तर देनेमें लज्जित नहीं होता। हे भारत! वैसे मनुष्योंके राग मोह जनित कायिक वाचिक, और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म्म वर्द्धित हुआ करते हैं। वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्म्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं, और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुताबन्धन किया करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोक-मेंही सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है, यहांतक जो कुछ कहा, उसे पापात्माका लक्षण जानो। अब धर्म्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो लोग दूसरोंके हितकर कार्य्योंको धर्म्म समझते हैं, वह कल्याण लाभ करते और कल्याणकारी धर्म्मके सहारे अभि-लषित गन्तव्य स्थानमें गमन किया करते हैं। जो लोग बुद्धिसे पहले ही उधर ... दोषोंको अवलोकन करते हैं, और ... निवारनेमें चतुर होकर ... किया करते हैं; उन्हें साधु ... और ... निरूपणमें ... बुद्धि ...

चारण गण इस लोकमें धार्म्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं। धनवाले तथा भोगाभिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता। तुम्हारी बुद्धि जब धर्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं, धनमें सुखका लेशमात्र नहीं है, धर्म ही परम सुख हुआ करता है।

२७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अनेक प्रकारके यज्ञ और तपस्याका फल चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर प्रीति है, इसलिये धर्म्म वा स्वर्ग फलके निमित्त विनियुक्ति यज्ञ कैसा है।

भीष्म बोले, यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसी को वर्णन करता हूं।

नारदमुनि बोले, धर्म्म प्रधान विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्ति नाम कोई ब्राह्मण था, वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ। उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सूर्य्यपर्णी और सुवर्च्चला शाक स्वाभाविक तीते और विरस होनेपर भी उसके तपोप्रभावसे स्वादिष्ट हुए थे। हे शत्रु तापन! उसने बनके बीच सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये सिद्धिलाभ करके फल मूलसे सहारे स्वर्ग साधन यज्ञ किया था। पुष्करमालिनी नाम उसकी एक साध्वी भार्य्या थी, वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृशित हुई थी, पतिको हिंसावर्जित यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी गई, उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्त्तिनी हुई। स्वयं गलित मयूर पुच्छसे उसका वस्त्र विस्तारित था, यज्ञ कामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था; सद्वंशमें उत्पन्न होकर यदि कोई भार्य्याका अनादर कर स्वयं यज्ञ करे, तो वह अधार्म्मिक होता है, इस हालिये उन्होंने सपत्निक होकर यज्ञ किया था। उस बनमें निकटमेंही सहवासिक नाम एक मृग था। वह उस उञ्छवृत्तिके निकट आके बोला तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया है, मन्त्र और अङ्गहीन होकर यदि यह यज्ञ विकृत हो, तो तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ। अनन्तर सवितृमण्डलकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त इस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा वचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका बध न कर सकूंगा" सावित्री ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई। बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न है, वा नहीं, उसे जाननेके लिये उन्होंने रसातलमें प्रवेश किया। तब मृग फिर उस बद्धाञ्जलि सत्य संज्ञक उञ्छवृत्ति ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेकी प्रार्थना की। सत्य ऋषिने हरिनका शरीर स्पर्श करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी। हरिन उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य। तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरी हिंसा करो, मैं मरके सद्गति पाऊंगा, मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। उससे तुम रमणीय अप्सराओं और महानुभाव गन्धर्व्वोंकी विचित्र बिमानोंपर देखो। अनन्तर सत्य-संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो' इस ही प्रकार स्पृहयालु नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक देखकर और हरिनको स्वर्गाभिलाषी समझके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया। धर्म्मने किसी कारणसे अनेक

वर्षतक हरिनका रूप धरके उस वनमें वास किया था। उन्होंने उसकी ही निष्कृतिके लिये आत्माको मृगत्वसे मोचन किया, नहीं तो हिंसा कभी यज्ञकी समीचीन विधि नहीं है। "पशु वध करके स्वर्ग लाभ करूंगा।" ऋषिके ऐसे अभिप्रायसे ही महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई; इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हित कारिणी नहीं है। अनन्तर भगवान् धर्म्मने स्वयं उस ऋषिको यज्ञ याजन कराया, ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिलाषिणी पुष्करधारिणी पत्नीके सहित परम समाधिको प्राप्त हुए, अहिंसामय धर्म्म ही सब फलोंको देनेवाला है, हिंसा-धर्म्म स्वर्गप्रद रूपसे हितकर मात्र है। ब्रह्मवादी पुरुष जिस धर्म्मका आचरण करते हैं, मैंने तुम्हारे निकट उस ही सत्य धर्म्मका विषय वर्णन किया।

२७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है। किस भांति धर्म्माचरण करता है। किससे निर्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे भरत कुलतिलक! सब धर्म्म ही तुम्हें विदित है, इस केवल मर्य्यादाके निमित्त तुम प्रश्न करते हो; इसलिये निर्व्वेदके सहित मोक्ष, पाप और धर्म्मके विषयको सुनो। शब्दादि विषय-पञ्चकके अर्थको जानके मनुष्य इच्छानुसार उसमें प्रवृत्त होता है, उन सब विषयोंके प्राप्त होनेपर उसमें काम अथवा द्वेष उत्पन्न होता है। अनन्तर मनुष्य विषयके निमित्त यत्नवान् होकर महत् कर्म्म आरम्भ करता है, और अभिलषित रूप और गन्धोंको बार बार सेवन करनेकी इच्छा किया करता है। क्रम क्रमसे उसमें राग द्वेष और मोहकी उत्पत्ति होती है। जो पुरुष लोभ मोहमें अभिभूत और राग द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्म्ममें प्रवेश नहीं करती, वह छल पूर्व्वक धर्म्माचरण किया करता है, कपटताचरण पूर्व्वक धर्म्मानुष्ठान करता है, और कपटतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है। हे कुरुनन्दन! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे उसहीमें बुद्धि निवेश करता है; पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करने पर भी पित्रादि द्रोहरूपी पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; आहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोड़के सुखी होता है; इस ही प्रकार न्यायानुगत विधि बोधित उत्तर देनेमें लज्जित नहीं होता। हे भारत! वैसे मनुष्योंके राग मोह जनित कायिक वाचिक, और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म्म बर्द्धित हुआ करते हैं। वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्म्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं, और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुताबन्धन किया करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोकमेंही सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है; यहांतक जो कुछ कहा, उसे पापात्माका लक्षण जानो। अब धर्म्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो लोग दूसरोंके हितकर कार्य्योंको धर्म्म समझते हैं, वह कल्याण लाभ करते और कल्याणकारी धर्म्मके सहारे अभिलषित गन्तव्य स्थानमें गमन किया करते हैं। जो लोग बुद्धिसे पहले ही ऊपर कहे हुए दोषोंको अवलोकन करते हैं, और सुख दुःखके विचारमें चतुर होकर साधुओंकी सेवा किया करते हैं; उन्हें साधु सदाचार और अभ्यास निबन्धनसे ज्ञान, बुद्धि तथा धर्म्ममें रति होती

है, और वे लोग धर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं। अनन्तर वे धर्म्मसे धन प्राप्त करनेमें मन लगाते हैं और जिसमें सब गुण देखते हैं, उसहीका मूल सींचा करते हैं; इस ही प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य धर्म्मात्मा होते और साधु मित्र लाभ करते हैं; वे लोग मित्र और धन लाभ निबन्धनसे इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होते हैं।

हे भारत। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयमें मनुष्य जो संकल्प सिद्धि लाभ करता है, उसे ही पण्डित लोग धर्म्मका फल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर। वैसे मनुष्य धर्म्म फल प्राप्त करके हर्षित नहीं होते, वह तृप्त न होकर ज्ञाननेत्रके सहारे वैराग्य लाभ करते हैं। प्रज्ञाचक्षु मनुष्य जिस समय काममें और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धमें अनुरक्त होते हैं, उस समय उनका चित्त चिन्ताके वशमें नहीं होता। वे कामसे रहित होते हैं। परन्तु धर्म्मको परित्याग नहीं करते। वे सब लोकोंको नाशमान देखके धर्म्मफल स्वर्गादिके परित्याग विषयमें यत्नवान् होते हैं। अनन्तर वे लोग उपायके अनुसार मोक्षके लिये अनुष्ठान करके धीरे धीरे निर्व्वेद लाभ करते और पापयुक्त कर्म्म परित्याग किया करते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य धर्म्मात्मा होते और परम मोक्ष पाते हैं। हे तात भारत! तुमने जो पाप धर्म्म, मोक्ष और निर्व्वेदका विषय मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप कहा। हे युधिष्ठिर। इसलिये तुम सब अवस्थामें ही धर्म्ममें प्रवृत्त रहना। हे कौन्तेय। जो लोग धर्म्म-पथमें निवास करते हैं, उन लोगोंको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है।

२७२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने कहा है, कि उपायके अनुसार मोक्ष होती है, अनु- पायके जरिये मोक्ष नहीं होती; परन्तु वह कौनसा उपाय है, उसे मैं विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित महाप्राज्ञ! तुम निपुण भावसे सदा जिस उपायके जरिये मोक्षकी खोज किया करते हो, तुममें ही उसका निद- र्शन समुचित होता है, अर्थात् मोक्षके उपाय विषयमें निज बुद्धि ही साक्षी देती है। घट बनानेके समय जैसी बुद्धि होती है, घट उत्पन्न होने पर वह नहीं रहती अर्थात् साध्य विषयमें चिकिर्षा बुद्धि उत्पन्न होती है; परन्तु सिद्धवस्तु ब्रह्मविषयमें आवरणका अपगम होनेपर ज्ञान- मात्र स्थित रहता है, इस लिये मोक्ष धर्म्म विषयमें प्रकाशकी भांति वस्तुतत्त्वके अभिव्यञ्जक शम दम आदि निवृत्ति धर्म्ममें दूसरे कोई प्रवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होते। यज्ञ आदि कर्म्म निष्काम पुरुषोंकी चित्त शुद्धि करके निवृत्ति- धर्म्मके हेतुमात्र हुआ करते हैं। पूर्व्व-समुद्र- गामी पथ कभी पश्चिम समुद्रमें गमन नहीं करता; इसलिये तुम एकमात्र मोक्षके ही मार्गको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप सुनो। धीर पुरुष क्षमाके जरिये क्रोधको नष्ट करे, संकल्प वर्ज्जित होके कामको त्यागे और आलस त्यागके सात्विक धर्म्म भगवद्ध्यान आदिसे निद्राको नष्ट करनेमें समर्थ होवे; सावधान- ताके जरिये लोकापवाद भयको रक्षा करे; 'तत्' पदार्थके अनुशीलनसे श्वास निरोध करे और धैर्य्यसे इच्छा, द्वेष और वनिताभिलाषको निवृत्त रखे; तत्ववित् पुरुष तत्वाभ्यासके जरिये भ्रम, संमोह और अनेक कोटिके संशयोंको परित्याग करे और ज्ञान अभ्यासके सहारे निद्रा और प्रतिभा अर्थात् अननुसन्धान और अन्यानु- सन्धान परिवर्ज्जित करे, दाह आदिसे अनुत्पा- दक हित, जीर्ण और परिमित भोजन आदिके जरिये श्लेष्म अजीर्ण प्रभृति उपद्रव तथा ज्वर वा अतीसार आदि रोगोंको जय करे; सन्तोष,

हेतु, लोभ, मोह और तत्त्वदर्शन अर्थात् सब विषयोंके अनर्थक रूप दर्शन निबन्धन विषयोंको जय करे, करुणासे अधर्म्म और प्रतिपालनके जरिये धर्म्मको जय करे। उत्तरकालके जरिये आशाको जीते और अभिलाष त्यागकर अर्थको जय करनेमें प्रवृत्त होवे। धीर पुरुष विषयोंकी अनित्यताके निमित्त स्नेह, वायु निग्रहके जरिये क्षुधा, करुणासे निज चित्तकी समुन्नति, परितोषसे तृष्णा, उद्योगसे आलस और वेदमें विश्वास करके विपरीत तर्कोंको जय करे। मौनावलम्बनसे बहुत बोलना और पराक्रमके जरिये भय परित्याग करे, बुद्धिसे वचन और मनको स्थिर करे, ज्ञाननेत्र अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थके बोधसे उस बुद्धिको संयम करे। ज्ञान अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थको आत्मबोधके जरिये अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है ऐसे ज्ञानके जरिये संयत करे और बुद्धिवृत्तिको परम चैतन्य प्रकाशके जरिये नियमित करे, अर्थात् इन्द्रियोंको मनमें मनको बुद्धिमें बुद्धिको 'त्वं' पदार्थमें, त्वं पदार्थको ब्रह्माकार वृत्तिमें और उस वृत्तिको विशुद्ध आत्मामें क्रमसे लीन करके निज रूपमें निवास करे। ऋषि लोग जो पञ्चयोग दोषोंको जानते हैं, उन्हें नष्ट करके प्रशान्त और पवित्र कर्म्मवाले मनुष्योंको इसे अवश्य जानना चाहिये।

योग साधनके लिये यत-वाक्य होके काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, इन पाचों दोषोंको त्यागके परमात्माकी सेवा करे; ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, वचन, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, अहारशुद्धि और इन्द्रिय-संयम, इन सबसे तेजकी वृद्धि तथा पापका नाश होता है। जो उक्त विधिके अनुसार आचरण करते हैं, उनके सब सङ्कल्प सिद्ध होते और विज्ञानमें प्रवृत्ति हुआ करती है। वे पापरहित, तेजस्वी लघु भोजन करनेवाले जितेन्द्रिय मनुष्य काम क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये अभिलाष करें। वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास निबन्धनसे असूढ़त्व, वैराग्यसे असङ्गत्व सन्तोष और क्षमाके जरिये दृढ़ता जनित काम क्रोधका त्याग परिपूर्ण कामनाके हेतु अदीनता, दर्प और अहंकारहीनता, निर्भयत्व निबन्धनसे अनुद्वेग और सदा किसी निर्दिष्ट स्थानमें अनवस्थिति, येही मोक्षके मार्ग हैं; ये मार्ग प्रसन्न निर्म्मल और पवित्र हैं, और कामना वा अकामनासे शरीर मन तथा वचनके नियमोंको भी मोक्षका मार्ग कहा जाता है। मोक्ष साधनमें प्रवृत्त पुरुषको निष्काम योग अवश्य करना चाहिये।

२७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, असित देवल और नारदके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंमें मुख्य वृद्ध देवल मुनिको सुखसे बैठा हुआ जानकर नारद मुनिने जीवोंकी उत्पत्ति और लयका विषय पूछा।

नारदमुनि बोले, हे ब्रह्मन्! यह दृश्यमान् स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयके समय किसमें जाके लीन होता है? आप मेरे निकट उसे ही कहिये।

असित मुनि बोले, परमात्मा निखिल प्राणियोंकी बुद्धि-वासनासे प्रेरित होकर कर्म्मोद्भवके समय जो आकाश आदिकोंसे जरायुजादि जीवोंको उत्पन्न करता है, भूतचिन्तक मनीषी लोग उन्हें ही पञ्चभूत कहा करते हैं। अधर्म्ममें रत, अधर्म्म त्यागनेकी इच्छा करनेवाले, धर्म्मारम्भी और धर्म्ममें रत, कलि, द्वापर, त्रेता तथा सत्य संज्ञक चतुर्युगात्मक काल बुद्धिसे प्रेरित होकर पञ्च महाभूतोंसे सब जीवोंको उत्पन्न करता है। यह काल, बुद्धि और पञ्चमहाभूत, चैतन्यस्वरूप ईश्वर तथा अचेतन

प्रकृति, इन सबसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु है,—जो लोग ऐसा कहते हैं, उनके वचन अत्यन्त अलीक हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे तात! इन पञ्च महाभूतोंको नित्य निश्चल और स्थिर जानो, ये अत्यन्त महत् तेजराशि स्वरूप हैं, काल स्वभावसे ही इनमें षष्ठस्वरूपसे कहा जाता है। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि इन पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कोई पदार्थ नहीं था, इसमें सन्देह नहीं है। ऊपर कहे हुए पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे कोई प्रमाण वा युक्ति अवलम्बन नहीं करते,—यह निःसन्दिग्ध है। सब कार्य्योंके अनुगत उक्त पञ्चभूत और काल जिसके कार्य्य हैं, उसे ह, असत् शब्द वाच्य जानो। पञ्च महाभूत, काल अर्थात् जीव, भावनापूर्व्वक संस्कार और अज्ञान ये अष्टभूत अनादि वा अखण्डरूपसे विद्यमान होरहे हैं; ये ही स्थावर जङ्गम सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। स्थावर जङ्गम सब जीव उक्त अष्टभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन होजाते हैं। उक्त भूतोंको अवलम्बन करके सब जन्तु पाच प्रकार विनष्ट हुआ करते हैं, जीवोंका शरीर भूमिमय है, कान आकाशमय है, नेत्र अग्निमय, है, वेग वायुमय है और रुधिर जलमय हुआ करता है। नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा, ये पांचो इन्द्रिया इन्द्रिय विषय शब्द आदि ज्ञानके द्वारस्वरूप है ऐसा कवि लोग कहा करते हैं। देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना, ये पाचो गुण पञ्च इन्द्रियोंमें युक्तिके अनुसार पाच प्रकारसे निवास करते हैं। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये पाचो गुण पञ्च इन्द्रियोंके द्वार हैं, पाच प्रकारसे इनकी प्राप्ति हुआ करती है इन्द्रियोंके सहारे रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये सब गुण मालूम नहीं होते, परन्तु क्षेत्रज्ञ अर्थात् विज्ञानात्मा इन्द्रियोंके जरिये इन सब गुणोंका ज्ञान किया करता है। इन्द्रियोंसे चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि उत्तम है और बुद्धिसे क्षेत्रज्ञ परम श्रेष्ठ है। जीव पहले इन्द्रियोंके जरिये सामान्य रीतिसे पृथक् पृथक विषयोंका ज्ञान करता है; फिर मनसे उन विषयोंका विचार करके बुद्धिसे निश्चय किया करता है। अध्यात्मविचार करनेवाले महर्षि लोग चित्त, श्रोत्रादि पाचो इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं; हाथ, पैर, गुदा, मेहन और मुख, इन पाचोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं, इसे सुनो। जल्पना और आहार साधनके निमित्त मुखको इन्द्रिय कहा जाता है, दोनों पाव गमनेन्द्रिय हैं, दोनों हाथ कार्य्य करनेकी इन्द्रिय हैं और गुदा तथा उपस्थ मल मूत्र और कामिक उत्सर्गके हेतु इन्द्रिय रूपसे बर्णित हुआ करती हैं। पञ्च इन्द्रियोंके बीच बल षष्ठरूपसे माना जाता है; ज्ञान, चेष्टा और इन्द्रियोंके सब गुणोंको शास्त्रके अनुसार मैंने वर्णन किया।

जब इन्द्रियां श्रमके कारण निज कर्म्मोंसे विरक्त होती हैं, उस समय इन्द्रियोंके सम्यक रूपसे परित्याग निबन्धनसे मनुष्य निद्रित हुआ करते हैं, इन्द्रियोंके शान्त होनेपर यदि मन शान्त न होकर विषय सेवन करे, तो जानना चाहिये, कि उसे ही स्वप्न दर्शन कहा जाता है। जाग्रत समयके सात्विक, राजसिक और तामसिक भोगप्रद कर्म्मयुक्त कर्म्मोद्भावक सब भाव स्वप्नकालमें भी प्रकाशित हुआ करते हैं। आनन्द ऐश्वर्य्य, ज्ञान और परम वैराग्य, ये सब सात्विकी बृत्ति हैं, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले पुरुषोंकी स्मृत वासना निमित्तीभूत उन आनन्द आदि भावोंकी स्वप्न समयमें भी अवलम्बन करती है, अर्थात् सात्विक पुरुष जाग्रद्वासनाके हेतु भूत आनन्द आदिको स्वप्नकालमें भी स्मरण किया करता है। कर्म्म गतिका-अनुसारिणी वासना सात्विक, राजसिक, और ताम

सिक जीवोंके बीच जो कोई जीव जाग्रत अवस्थामें जिस भावसे संस्थित रहते हैं, स्वप्नकालमें भी उस ही भावको स्मरण करा देती है, अर्थात् जाग्रत अवस्थामें किये हुए कर्म्मोंके संस्कार जनित वासनाके प्रभावसे स्वप्नकालमें भी उक्त सब भाव आलोचित होते हैं; इसलिये जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थामें ही तुल्य भाव हैं परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें मनके अभावसे समस्त कल्पनाका अभाव होता है, इससे उस अपुनरावृत्ति स्वभाव नित्य सुषुप्तिको ही मुक्ति कहा जाता है।

पूर्व्वोक्त चौदह इन्द्रियों अर्थात् पञ्चकर्म्म इन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय बलात्मक प्राण, चित्त, मन, बुद्धि और सत्, रज, तमोगुण, इन सत्तरहोंको अवलम्बन करके भोक्ता जीव शरीरमें निवास करता है; अथवा शरीरधारियोंके ऊपर कहे हुए सब गुण शरीरके सहित सस्थित होते हैं; शरीरका वियोग होनेपर वे शरीरयुक्त नहीं रहते, पक्षान्तरसे यह पञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंकी समष्टिमात्र है, इसमें एकमात्र अनुभव और भोक्ता शरीरके सहित पूर्व्वोक्त अठारह गुण निवास करते हैं। उक्त उन्नीस गुण जठरानलके सहित बीस होकर पञ्चभौतिक शरीरके आश्रित रहते हैं। इन बीस गुणोंके अतिरिक्त इक्कीसवां कोई महान् पदार्थ प्राणके सहित इस शरीरको धारण करता है और उसहीके प्रभावसे शरीरका नाश हुआ करता है। जैसे घटनाशके विषयमें मुद्गर निमित्तमात्र है, पुरुष ही घट भेद किया करता है, वैसेही देह धारण वा देहनाशमें वायु निमित्त मात्र है, महान् पदार्थ ही उसका कर्त्तृपदवाच्य है। जैसे घट आदि बाह्य पदार्थ उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर विनष्ट होते हैं, वैसेही जीव पुण्य पापोंके शेष होनेपर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। कालक्रमसे फिर सञ्चित पुण्य पापके जरिये प्रेरित होकर कर्म्मसम्भव शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे मनुष्य शीर्ण गृहसे गृहान्तरमें गमन करता है, वैसेही जीव काल प्रेरित होकर अविद्याकाम कर्म्मके जरिये देहान्तर सिद्ध करता हुआ एक शरीरको छोड़के दूसरा शरीर धारण किया करता है। कृतनिश्चय बुद्धिमान् लोग देह सम्बन्धी मरण आदिके विषयमें शोक नहीं करते, देह और पुत्रादिकोंके सहित आत्माका सम्बन्ध न रहने पर भी भ्रमवशसे सम्बन्ध देखनेवाले मूर्ख लोग मरन आदि निबन्धनसे शोक किया करते हैं। यह जीव किसीका भी नहीं है, और इसका भी कोई नहीं है, जीव सदा शरीरमें सुख दुःख भोगते हुए अकेला ही निवास करता है। जीवको जन्म मृत्यु नहीं होती, कालक्रमसे तत्त्वज्ञानके जरिये कर्म्म-फल नष्ट होने पर भी देह परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त हुआ करती है। जीव पुण्य पापमय शरीर व्यतीत करते हुए कर्म्म-क्षयनिबन्धनसे शरीर नष्ट होने पर फिर ब्रह्मभाव लाभ करता है। पुण्यपाप नाशके निमित्त सांख्य ज्ञान विहित हुआ करता है, इसलिये पुण्य-पाप नष्ट होनेपर पण्डितलोग जीवको ब्रह्मभावसे परमगति अवलोकन करते हैं।

२७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैं अत्यन्त पापशील और निठुर हूं, क्यों कि धनके लिये पिता, भ्रातापुत्र, पौत्र स्वजन और सुहृदोंका नाश किया है। अर्थसे जो तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है, हमने उसके वशमें होकर पाप कार्य्य किया है, इस समय उस तृष्णाको किस प्रकार निवृत्त करूं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें जिज्ञासु माण्डव्यके निकट विदेहराजके कहे हुए इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहराजने कहा था, मेरा कुछ भी

नहीं है, इसीसे मैं परम सुखसे जीवन व्यतीत करता हूं; सारी मिथिला नगरीके भस्म होने पर भी मेरा कुछ न जलेगा। ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब समृद्ध विषय विवेकियोंको अत्यन्तही दुःख स्वरूप है, समृद्धिशून्यता सदा अज्ञानी पुरुषोंको मोहित किया करती है। इस लोकमें जो कुछ कामसुख है, अथवा जो कुछ दिव्य महत् सुख देखा जाता है, वह तृष्णाक्षयजनित सुखके सोलह अंशका एक अंश भी नहीं है। कालक्रमसे वर्द्धित गऊकी सींग जैसे वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसेही बढ़ते हुए वित्तके सहित तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। जिस समय जिस किसी वस्तुमें ममता उत्पन्न होती है, उसका नाश परितापका हेतु हुआ करता है। कामका अनुरोध कर्त्तव्य नहीं है, काममें रति होनी ही दुःखकी मूल है, धर्म्म और अर्थ प्राप्त होने पर उसे उपभोग करना उचित है, और कामना उपस्थित होने पर उसे परित्याग करना चाहिये। विद्वान पुरुष सब भूतोंमें अपने सहित समान उपमा धारण करे और कृतकृत्य तथा शुद्ध चित्त होकर सर्व्वसङ्ग परित्याग करनेमें यत्नवान् हों। वे लोग सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय परित्याग करके प्रशान्त वा निरामय होवें। दुर्म्मति पुरुषोंसे जो अत्यन्त दुस्त्यज है, पुरुषके जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणियोंकी प्राणान्तिक रोगरूपी है, उस तृष्णाको जो लोग परित्याग करते हैं, वेही सुखभागी होते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष निज चरित्रको कलंकरहित चन्द्रमाकी भांति निरामय देखके इस लोक और परलोकमें परम सुखसे कीर्त्ति लाभ करते हैं, द्विजश्रेष्ठ माण्डव्य विदेहराजके ऊपर कहे हुए वचनको सुनके प्रसन्न हुए और उनके वचनका सम्मान करके मोक्षपथ अवलम्बन किया।

२७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहने पर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता-पुत्र सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था, मोक्षधर्म्मकी व्याख्यामें निपुण, लोक तत्वको जानने वाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंको परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है, इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें? आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये; जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्र कामना करे, अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए गमन करके मौनव्रती होनेके अभिलाषी होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्वि-कार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं।

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं, और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरणके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है; इसलिये उसे आप क्यों नहीं जान सकते हैं? जब यह जानता हूं कि यद्यपि मृत्यु, इ

स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है, तब मैं ज्ञाना-वरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सवेरा होते ही आयुक्षीण होती है, तब बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलि-योंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथ-नेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन मेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याणसा-धक कर्म्म है, उसे आज ही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे, कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनु-ष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कलह करना होगा उसे आज ही करना योग्य है, अपराह्णके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वाह्नमें ही करना चाहिये। मनुष्योंके कर्त्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती। मनुष्य युवा अवस्थामें ही धर्म्मशील होवे, क्यों कि यौवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्यु काल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इसलोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है।

मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे शेर सोये हुए हरिनको पकड़के चल देता है, वैसे ही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त संसारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंको अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी बञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे ग्राहक मेड़के बच्चे पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरु-षोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरु-षने क्षेत्र आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्ब्बल, क्या बलवान्, क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होते ही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, तब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मते ही जरा मृत्यु उनके नाशके लिये उनका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त होरही हैं। गावमें बास करनेके लिये लोगोंकी जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका सुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात् है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विवित्त बासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवा-लोंकी अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है, सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, बचन और शरी-रसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते और अर्थमें बाधा करनेवाले हिंसक जीव तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधि-रूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है तब सत्यके अतिरिक्त कोई कभी उसे निवारण नहीं

कर सकता। क्योंकि उस सत्यसे ही अमरणरूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके ऐक्यसाधन, सत्ययोगमें रत, वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरियेही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु, ये दोनों शरीरमें स्थित हैं, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं, और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं, इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त मननशील, प्रणव जपरूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्म्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान् पुरुष पिशाचके निष्फलचैत्य यज्ञकी तरह हिंसासाध्य पशु बधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके बचन, मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचों सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परम पद प्राप्त करते हैं। विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्माके जरिये आत्मजरूपके उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा, पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा-दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्ति हीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्। आपको जब अवश्य ही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये, आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं, उसे बिचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका बचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसा ही अनुष्ठान करो।

२७६ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य किस प्रकारके स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा ज्ञान और किसका अवलम्बन करनेसे निश्चल निर्व्विशेष ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

भीष्म बोले, मोक्ष धर्म्ममें रत पथ्य परिमित और पवित्र अन्नादि भोजन करनेवाले मनुष्य निश्चल निर्व्विशेष परमधाम पाते हैं। विवेकी पुरुष निज गृहसे निकलके लाभ हानिमें राग द्वेषसे रहित और मननशील होकर उपस्थित काम्य वस्तुओंमें निरपेक्ष होते हुए प्रवज्याश्रम अवलम्बन करें, नेत्र, मन, और बचनसे किसीको भी दूषित न करे, तथा किसीके प्रत्यक्ष वा परोक्ष दोषोंको किसीसे न कहे; सब लोगोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करे, सूर्य्यकी भांति केवल एक ही दिन एक स्थानमें बिचरे यह मनुष्य जीवन पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे; लोक निन्दाको सहन करे; किसीको उद्देश्य करके अहङ्कार प्रकाश न करे, लोग उसके विषयमें आक्रोश प्रकाश करें, तो वह उन लोगोंसे प्रिय बचन कहे और क्रोधित होने पर भी अनुकूल बचन कहे, जन समाजमें अनुकूल वा प्रतिकूल आचरण न करे, विपद-ग्रस्त न होनेसे पहले निमन्त्रित होकर किसीके गृहपर भिक्षा ग्रहण न करे, मूढ़ पुरुषोंके धूलि फेंकने और धिक्कार देने पर भी वह चपलता रहित और निज धर्म्ममें निष्ठावान् होके उन्हें बचनमात्रसे भी अप्रिय वाक्य न कहे; वह

दयावान होवे और जिघांसु लोगोंके विषयमें क्रूरता न करे; निर्भय और आत्मश्लाघासे रहित हो अर्थात् 'मैं धन्य हूं' इस प्रकार अपनी बड़ाई न करे, मौनव्रत अवलम्बी सन्न्यासी जब देखे कि गृहस्थोंके गृह धूंएंसे रहित, मूषल शब्द वर्ज्जित अग्नि शून्य हुए हैं, गृहस्थ लोग भोजन कर चुके हैं, और हाथमें परिवेषण पात्र ग्रहण करनेवाले पुरुषोंका आना जाना बन्द हुआ है, उस समय भिक्षा पानेकी अभिलाष न करे; उदरपूर्त्ति करके भोजन लाभमें अनादर प्रदर्शित कर प्राण धारणके लिये जो कुछ भोज्य वस्तु आवश्यक हों, वही भोजन करे, भोज्य वस्तुओंके अभावमें किसीकी भी हिंसा न करे और प्राप्त होनेपर भी हर्षित न होवे, सबकी योग्य स्रक चन्दन आदि साधारण लाभकी लिये उत्सुक न होवे और अत्यन्त पूजित होके भी भोजन न करे, क्योंकि सम्मानके सहित अन्नादि लाभकी वैसे पुरुष निन्दा किया करते हैं, अन्नके भूसी आदि दोषोंकी घोषणा न करे और किसी गुणके रहने परभी उसकी प्रशंसा न करे; निर्ज्जन स्थानमें सोने और बैठनेकी अभिलाष करे; सूने स्थान, वृक्षके मूल, वन अथवा गुफा, इन सब स्थानोंके बीच दूसरेकी अजानकारीमें गमन करके उन्हीं स्थानोंमें वास करे, अचल अर्थात् उत्क्रान्ति गतिके जरिये गतिशून्य तथा कूटस्थ वा कूटकी भाति निर्व्विकार भावसे निवास करके योगके अनुरोध और सङ्ग त्याग विषयमें समदर्शी होवे, दया द्वेष आदिके जरिये सुकृत वा दुष्कृत दोनोमेंसे किसीकी भी कामना न करे। जो नित्यतृप्त अत्यन्त सन्तुष्ट प्रसन्न बदन हैं, और जिनकी सब इन्द्रिया प्रसन्न हुई हैं, जो निर्भय, जपमें तत्पर हैं तथा मौनव्रत अवलम्बन किये हैं उन्होंने ही यथार्थ वैराग्य अवलम्बन किया है; जा बार बार जीवोंकी संसारमें आते जाते देखकर निस्पृह और समदर्शी होके फल मूल आदि खाके जीवन बिताते हुए स्वभावसे ही शान्तचित्त, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बचन, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थके वेग, इत्यादि इन सब वेगोंकी सहते हैं, वेही तपस्वी है, लोकनिन्दा उनके हृदयको दुःखित नहीं कर सकती। प्रशंसा और निन्दाके मध्यवर्त्ती वा समदर्शी होकर निवास करना परिव्राजक आश्रमका परम पवित्र पथ है।

महानुभाव परिव्राजक सब भांतिसे इन्द्रियोंको दमन कर और सबका सङ्ग परित्याग करके पहले कहे आश्रमके निवासस्थानमें विचरें और आप्तोंके सहित वार्त्तालाप न करके सबके प्रियदर्शन होकर गृहवासको त्यागके ध्याननिष्ठ होवें, वाणप्रस्थ और गृहस्थोंके गृहमे कदापि वास न करें, लोग यह न जान सकें, कि इन्हें भिक्षा लेनेकी इच्छा है। इस ही प्रकार भिक्षा पानेको इच्छा करें, कभी हर्षित न होवें। ज्ञानियोंके निमित्त यही मोक्ष धर्म्म है और अज्ञानियोंको इस मार्गमें पदार्पण करना परिश्रम मात्र है, हारित मुनिने पण्डितमण्डलीके बीच यह सब मोक्षसाधक विषय कहे थे। जो लोग सब भूतोंको अभय दान करते हुए गृहसे निकलकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे अनन्तकालके लिये सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प हुआ करते हैं।

२७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोग हमें धन्य कहा करते हैं, परन्तु हमारे समान दुःखित पुरुष इस लोकमें कोई भी नहीं है। हे कुरुसत्तम! हम लोग धर्म्म आदि देवताओंसे मनुष्य जन्म पाके और लोकमें सम्मानित होके भी जो दुःखभागी हुए हैं, उस दुःख विनाशी सन्न्यासधर्म्मको कब ग्रहण करेंगे; इस संसारमें शरीर धारण करना ही दुःखकर है, हे पिता-

महर! संशितव्रती मुनि लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रियोंसे विमुक्त हैं; श्रुति-विरोधी संसारवर्द्धक काम, क्रोध लोभ, भय, स्वप्न, इन पांचो योग दोषोंसे रहित और शब्द स्पर्श आदि पञ्च इन्द्रिय विषय तथा सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंसे रहित होके पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करते। हे परन्तप! वैसेही हम राज्य परित्याग करके कब सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके दुःख मोचन करेंगे।

भीष्म बोले, हे महाराज! दुःख अनन्त नहीं है, दुःखोंको नाशक मोक्ष अवश्य है; इस संसारमें सब विषयोंकाही परिच्छेद है, पूर्व्वजन्म भी प्रसिद्ध है, जगत्में कुछ भी अचल नहीं है; इसलिये राज्य, ऐश्वर्य्य आदिका अवश्य ही नाश होगा। हे राजन्! राज्यऐश्वर्य्य प्रभृतिको मोक्षका प्रतिबन्ध मत समझो, तुम लोग धर्म्मज्ञ हो। इसलिये ऐश्वर्य्यादिमें आसक्त रहने पर भी शम दम आदि साधनोंके जरिये कालक्रमसे मोक्ष लाभ करोगे। हे नरनाथ! यह जीव सदा सुख दुःखका ईश्वर नहीं है, क्यों कि उस सुख दुःखसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषमय अज्ञानसेही जीव स्वयं आवृत हुआ करता है। जैसे अञ्जनमय वायु मनःशिला सम्बन्धीय लाल और पीले वर्णके रजमें प्रवेश करके उसके समान रूप धारण करके सब दिशाओंको रंजित करती हुई लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है, वैसेही अज्ञानसे छिपे हुए अर्थात् अविद्या उपाधियुक्त जीव स्वयं विवर्ण होके भी अर्थात् रागादिहीनता निबन्धन दोषस्पर्शी न होके भी देह सम्बन्धके कारण देह धर्म्म गौरत्व, कारणत्व, खञ्जत्व, सुखित्व और दुःखित्व आदि कर्म्मफलोंके जरिये रञ्जित है, इसहीसे वर्णवान् होकर देह समूहमें भ्रमण किया करता है। जब जीव अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको ज्ञानसे दूर करता है, उस समय सत्स्वरूप एकमात्र ब्रह्म प्रकाशित होता है।

मुनि लोग उस परब्रह्मको अयत्न साध्य अर्थात् कर्म्मसे प्राप्त होनेकी उपाय रहने पर उसमें अनित्यत्व संघटित होता है; क्यों कि जो कर्म्मज है, वही उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य्य और विकार्य्य हुआ करता है। जिसमें विद्वानोंका अनुभव ही प्रमाण है, उस ही परब्रह्मकी उपासना करनी देवताओंकी भांति तुम्हें अवश्य योग्य है; इसही लिये महर्षि लोग ब्रह्मोपासनासे विरत नहीं होते। उद्योगी पुरुषोंको अवश्य ही ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है, इससे तुम भी उद्योगी बनो। हे राजन्! पहिले समयमें वृत्रासुरने देवताओंसे पराजित होनेसे राज्यहीन और ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर अकेलेही शत्रुव्यूहमें स्थितही नैष्ठिकी बुद्धि अवलम्बन करके शोक रहित अन्तःकरणसे इस विषयमें जिस प्रकार चेष्टा की थी, और जैसा कहा था, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे भारत! पहिले समयमें शुक्राचार्य्यने ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होने पर वृत्रासुरसे यह वचन कहा था कि, हे दानव! तुम इस समय पराजित हुए हो, तौभी तुम्हारे अन्तःकरणमें कुछ दुःख नहीं है, इसका क्या कारण है?

वृत्रासुर बोला, मैं अवाधित सत्य वचन और ध्यान मननकी आलोचनासे जीवोंकी सांसारिक गति और मुक्तिके विषयकी निःसंशयरूपसे जान कर शोक वा हर्षमें नहीं डूबता। जीव पुण्य वा पापके धर्म्म लक्षण कालके जरिये प्रेरित होते हैं कोई कोई अवश्य होके नरकमें डूबते हैं; कोई कोई स्वर्गमें गमन किया करते हैं; परन्तु मनीषी लोग ऐसा कहा करते हैं, कि वे समस्त जीवही परितुष्ट रहते हैं। वे काल प्रेरित जीव नरक वा स्वर्गमें परिमित समय बिताकर फिर संसारमें जन्म लेते हैं,। काम पाशमें बन्धे हुए जीवसमूह सहस्रों तिर्य्यग् योनि लाभ और नरकमें गमन करके अवश्य होकर बाहिर होते हैं। मैं अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त

होकर जीवोंकी इस ही प्रकार इस संसारमें गतागतिके विषयको जानता हूं, और जिसका जैसा कर्म्म है, उसे फल लाभ भी उसहीके अनुरूप हुआ करता है, इस शास्त्र निदर्शनको भी मानता हूं। जीव पहिले किये हुए प्रिय अप्रिय, सुख और दुःखके आचरणसे कोई तिर्य्यग् योनि पाते हैं, कोई नरकमें गमन करते हैं, कोई मनुष्य जीवन प्राप्त किया करते हैं, कोई देव शरीर धारण करते हैं, सब लोक ही कालकृत नियममें निबद्ध होकर पूर्व्वोक्त गतियोंको प्राप्त हुआ करते हैं, जीव-समूह जन्म और मृत्युके मार्गमें सदा घूम रहे हैं। शुक्रने इसही प्रकार काल संख्याके अनुसार गणित सृष्टि और स्थिति विषयके कहनेवाले उस वृत्रको असुर योनिमें जन्म लेने पर भी उसे इस प्रकार ज्ञानवान समझके आश्चर्य किया और उसके बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये बोले, हे तात। तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये किस निमित्त यह सब अनर्थक वचन कह रहे हो।

वृत्रासुर बोला, पहले मैंने जयलुब्ध होकर जो महत् तपस्या की थी वह आप तथा दूसरे मनीषी पुरुषोंको प्रत्यक्ष हुई थी। मैं निज वीर्य्यबलसे अनेक गन्ध और रसके आश्रयभूत सबको विमर्द्दन करते हुए तीनों लोकोंको आक्रमण करके वर्द्धित हुआ था। मैं ज्वाल-मालासे परिपूरित आकाशचारी और सदा निर्भय रहके सब भूतोंसेही अजेय था। हे भगवन्। तपस्यासे ऐश्वर्य्य लाभ हुआ था और निज कर्म्मसे वह नष्ट हुआ है, इसलिये मैं धैर्य्य अवलम्बन करके उसके लिये शोक नहीं करता। पहले जब मैंने महानुभव इन्द्रके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषकी, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए ऐश्वर्य्योंसे युक्त, सब जीवोंके लय स्थान, सर्व्वान्तर्य्यामी हरिको देखा। उस भूतोंके मेल करनेवाले पूर्ण पुरुष जो कि तीनों परिच्छेदोंसे रहित, अनन्त, शुद्ध, सर्व्वव्यापी, सनातन, मूंछके समान पीले केश और पिङ्गल वर्ण श्मश्रुयुक्त है, तथा जो सब भूतोंका पितामह शुद्ध ब्रह्म हैं, प्रसङ्ग क्रमसे उस परब्रह्मके दर्शनस्वरूप तपस्याका शेष फल इस समय भी कुछ विद्यमान है। हे भगवन्। उस ही तपोबलको अवलम्बन करके मैं कर्म्म-फल पूछनेकी इच्छा करता हूं। महत् ऐश्व-र्य्यस्वरूप परब्रह्म किस वर्णमें प्रतिष्ठित है और उस सर्वोत्तम ऐश्वर्य्यकी किस प्रकार निवृत्ति होती है। किस कारणसे जीव जीवन धारण करते हैं और किस लिये कर्म्मकी चेष्टा किया करते हैं। जीव किस प्रकार परम फल पाके ब्रह्मत्व लाभ करता है; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर नरनाथ। वृत्रासुरके ऐसा पूछने पर उस समय शुक्राचा-र्य्यने जो उत्तर दिया था, मैं उसे कहता हूं तुम सहोदर भाइयोंके सहित एकाग्रचित्त होकर सुनो।

२७८ अध्याय समाप्त।

शुक्र बोले, हे तात दानव-सत्तम! आका-शके सहित पृथ्वीतल जिसकी भुजाके बीच निवास करता है, उस सर्व्व ऐश्वर्य्य युक्त सर्व्व शक्तिमान भगवान्को नमस्कार करता हूं। जिसका शिर अनन्त मोक्षस्थान है, उस सर्व्व-व्यापी देवका परम माहात्म्य तुम्हारे समीप कहता हूं। वृत्रासुर और शुक्र इस ही प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय विष्णुकी कृपासे धर्म्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उन लोगोंके सन्देहको दूर करनेके लिये वहां आके उपस्थित हुए। हे राजन्। मुनिवर पहुंचते ही असुरेन्द्र और शुक्रसे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठे। महाप्राज्ञ मुनिके बैठनेपर शुक्र उनसे बोले, आप इस दानवेन्द्रके समीप भगवान् विष्णुका परममाहात्म्य कहिये।

अनन्तर सनत्कुमार ऐसा वचन सुनके बुद्धिमान् दानवेन्द्रके निकट विष्णुके माहात्म्य संयुक्त यथार्थ वाक्य कहने लगे। हे दैत्यराज! विष्णुका यह सब परम माहात्म्यका विषय सुनो। हे महातापन! समस्त जगत् विष्णुके अवलम्बसे स्थित है। हे महाबाहो! ये विष्णु ही स्थावर जङ्गम सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं, येही कालक्रमसे जीवोंको आकर्षण करते हैं, और कालक्रमसे फिर सृष्टि किया करते है, सब कोई इन्हींमें लीन होते और इन्हींसे उत्पन्न हुआ करते है। ज्ञानवान् मनुष्य तपस्या वा यज्ञसे इन्हें प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं हैं, और इन्द्रियोंको संयम करनेसे भी इन्हें प्राप्त नहीं किया जाता, जो यज्ञादि कर्म्मोंसे उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं, अथवा शान्त, दान, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर आत्मासे ही आत्माको देखते हैं। वे निष्ठावान् मनुष्य आभ्यन्तर और बाह्य कर्मयुक्त बुद्धिके सहारे चित्तशुद्धि करते हुए देहाभिमान छोड़के आत्मलोक लाभ करके मोक्षफल उपभोग किया करते हैं। जैसे सोनार अपने महत् प्रयत्नके जरिये बार बार अग्निमें डालके सुवर्ण आदि शोधन करता है, वैसेही जीव सैकड़ों जन्ममें पूर्व्वोक्त कर्म्मोंसे चित्तशोधन किया करता है, कोई एक ही जन्ममें अत्यन्त महत् प्रयत्नके सहित पूर्व्वोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे चित्तशुद्धि लाभ करता है। जैसे कोई कोई सहजमेंही निज शरीरकी अल्प मलिनता शुद्ध करते हैं, पुत्र कलत्र आदिमें अनुरागका उच्छेद वैसा नहीं है इसमें बहुत ही यत्नकी आवश्यकता है। जैसे थोड़े फूलोंसे बासित तिल वा सरसों निज गन्धको परित्याग नहीं करते, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन भी वैसाही है, तिल और सरसों बहुतसे फूलोंसे बार बार सुवासित होनेपर निज गन्ध त्यागके जैसे पुष्पगन्धमें मिलित होते हैं, वैसेही सैकड़ों जन्ममें सत्वादि गुणोंसे युक्त पुत्र कलत्र आदि कुटुम्बके संसर्ग जनित दोष योगाभ्यासके यत्न और बुद्धिसे निवर्त्तित हुआ करते हैं। हे दानव! कर्मवशसे अनुरक्त अथवा विरक्त जीव जिस प्रकारसे विशेष कर्म्मको प्राप्त होते हैं उसे सुनो। जीव जिस प्रकार कर्म्मकी चेष्टा करता और जिसमें स्थित रहता है, वह मैं तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, इस समय तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जिसका आदि अन्त नहीं है, जो सब भूतोंमें समभावसे निवास करता है, वही जीवोंका पाप हरता है, इसीसे उसे 'हरि' कहते हैं, वही उपाधि रहित स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी सृष्टि किया करता है, वही सब भूतोंमें सङ्घात और जीवरूपसे स्थित रहता है, और एकादश इन्द्रिय स्वरूप होकर इन्द्रियोंके जरिये समस्त जगत्का ज्ञान किया करता है। हे दैत्यराज! पृथ्वीमण्डल उसके दोनो चरण हैं, द्युलोक उसका शिर, दशोंदिशा उसकी भुजा हैं, और आकाशको उसका श्रोत्र (कान) जानना चाहिये। सूर्य्य उसके तेजसे प्रकाशमय हुआ है, उसकी बुद्धि चन्द्रमामें स्थिर होरही है। उसकी बुद्धि सदा ज्ञानगत अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपी हुई है, जल ही उसकी जिह्वा है। हे दानवसत्तम! सब ग्रह उसके दोनों भौंके निकटवर्त्ती होरहे हैं, नक्षत्र मण्डल उसके नेत्र हुए हैं। हे दानव! भूमितल उसके दोनों चरणोंमें वर्त्तमान है, सत, रज, और तम इन तीनों गुणोंको नारायण स्वरूप जानो। हे तात! वही सब आश्रमों और जप आदि कर्म्मोंका फल है, धीर लोग ऐसा ही ज्ञान किया करते हैं। वह अव्यय परम पुरुष ही निष्कर्म्म सन्न्यासका फल मोक्ष स्वरूप है। सब मन्त्र जिसके रोएं और प्रणव जिसका वाक्य है, अनेक वर्ण और सब आश्रम जिसका आश्रय है जिसे अनन्त सुख है तथा जो हृदयमें स्थित धर्म्म स्वरूप है, वह परब्रह्म ही आत्मदर्शनरूपी परम धर्म्म और कृच्छ्र-चान्द्रा-

यज्ञ आदि तपस्याका फल स्वरूप है, वही कार्य्य और कारण स्वरूप है। वह परमात्माही मन्त्र ब्राह्मण और प्रवर्त्तना वाक्यसे युक्त है; होता, उद्गाता, प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता आदि षोड़श ऋत्विकोंके जरिये सम्पादनीय क्रतु स्वरूप है। वही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अश्विनीकुमार, मित्रा-वरुण, यम और कुबेर स्वरूप है। उक्त ऋत्विक् गण पृथक् दर्शन होनेपर भी अर्थात् इन्द्रसे महेन्द्र विभिन्न और वैश्वानरसे अग्नि स्वतन्त्र है, इत्यादि रूपसे कर्म्मकी विभिन्नताके कारण पृथक दर्शन करनेपर भी उस एक मात्र महान् आत्माके सहित पूर्व्वोक्त प्रजापति आदि देवताओंको एकता अवलोकन किया करते हैं, इस समस्त जगत्को उस ही एक मात्र देवके अधीन जानो। हे दैत्यराज। धीर पुरुष कहते हैं, कि उसके नाना भूतोंमें निवास करनेपर भी यह जीव उसे एक ही देखता है, अनन्तर जीव ही विज्ञानवशसे ब्रह्मस्वरूपसे प्रकाशित होता है। हे दैत्येन्द्र। जगत्के लय और उदयको कल्प कहते हैं, कोई कोई जीव उस सहस्र कोटि कल्प परिमाण पर्य्यन्त स्थित रहते हैं, कोई स्थावर हुआ करते हैं कोई जङ्गम होके विचरते हैं, प्रजासृष्टिका परिमाण वक्ष्यमाण विधिसे सहस्र वापी सोखनेकी भांति अनन्त है। पचासकोस चौड़े और पचास कोस लम्बाईके परिमाण तथा गहराईसे दुरवगाह सहस्रों वापियाके प्रत्येक योजनके परिमाणसे वर्ज्जित होतो रहनेपर यदिप्रतिदिन केवल एकबार केशाग्रके जरिये उसमेंसे एक बूंद जल उठाया जावे और इस ही प्रकारके नियमसे एक एक वापीके जल सोखनेके क्रमसे काई सहस्र दार्घकालके नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो ज्ञानके बिना संसारका उच्छेद होसके। एककी मुक्तिसे एककी सृष्टिनाश होनेपर भी अनेक जीव वर्त्तमान रहते हैं। इससे किसी प्रकारसे भी संसारके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है। रज, सत और तमोगुण रञ्जकता, स्वच्छता और मलिनताके साम्यवशसे लाल, श्वेत और काले हुआ करते हैं। उक्त तीनों गुणोंके भाग भेदसे जीवका सफेद, लाल, काला, पीला, धूम्र और कृष्ण, ये छः प्रकारके वर्ण होते हैं, तीनों गुण परस्पर वियुक्त होनेपर स्थित नहीं रहते उसके बीच जिसमें तमोगुणकी अधिकता, सतोगुणकी न्यूनता और रजोगुणकी समता रहती है, उसका कृष्णवर्ण होता है, सत और रजोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतोगुणकी समता तथा रजोगुणकी न्यूनता होनेपर धूम्र वर्ण हुआ करता है, इस ही प्रकार रजोगुणकी अधिकता और सत्व तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समतासे नीलवर्ण हुआ करता है। सत्व और तमोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतोगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनतासे लोकोंके सह्यतर लालवर्ण उत्पन्न होता है, सतोगुणकी अधिकता और रज तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समता होनेपर सब लोक सुखकर पीत वर्ण हुआ करता है। सत्वकी अधिकता रजोगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनता होनेसे अत्यन्त सुखकर श्वेत वर्ण हुआ करता है।

हे दानवेन्द्र! स्थावर आदि सृष्टि क्रममें कृष्णवर्णसे कौमारसृष्टि पर्य्यन्त क्रमसे जो शुक्ल वर्ण होता है, वही राग-द्वेषहीनता निबन्धनसे निर्म्मल है, इससे शोकहीन और प्रवृत्ति नाशक श्रमरहित वह वर्ण ही सिद्धिके उपायोगी हुआ करता है। हे दैत्य! जीव सहस्रों बार जन्म ग्रहण करके अन्तमें सिद्धिलाभ करता है। हे असुरेन्द्र। सुरराज पुरन्दरने उत्तम शास्त्रज्ञान लाभ करके आत्मानुभवात्मिका जो शुभ गतिका विषय कहा था, अर्थात् "इस ब्रह्मका मैंने दर्शन किया" इत्यादि जो वचन प्रकाशित की थी, वही ब्रह्मज्ञान लाभकी प्रमाण स्वरूप है। सत्वादि गुणोंके तारतम्यके अनुसार प्रजा-समूहकी वर्ण-विहित गति हुआ करती है, प्रजाके वर्ण भी कालकृत अर्थात् पहले कहे

हुए चतुर्युगात्मक जीव कर्त्तृक विहित हैं, जीवोंके पूर्व जन्मके संस्कारसे जिस प्रकार सत्वादिकी उत्पत्ति होती है, वैसी ही गति हुआ करती है। हे दैत्यराज! सोपानारोहन क्रमसे इस लोकमें चौदह लाख बार जीवको ऊर्द्ध गति होती है, और उसहीके अनुसार स्थिति तथा अधोगति समझनी चाहिये, स्थावत्व-प्रापक कृष्णवर्णकी निकृष्ट गति होती है, क्यों कि वे जनिष्यमान स्थावर पदार्थ नरकप्रद कर्म्ममें संयत्त हुआ करते हैं, इसहीसे वे नरकमें निमग्न होते हैं, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि अनेक कल्पतक उनकी दुर्गति लोगोंके सहित स्थित हुआ करती है। इस ही प्रकार जीव स्थावर शरीरसे समय बिताते हुए अन्तमें तिर्य्यग् योनि लाभ किया करता है। जीव उस तिर्य्यग् योनिको लाभ कर शीत वातादिसे पोड़ित होकर युगत्रयमें सब प्रकारसे मृत्यु-भय दर्शन करते हुए पूर्व्व पुण्योदयके बिबेकसे व्याप्तचित्त होकर उक्त शरीरमें स्थिति करता है। कृष्ण और हरित वर्ण केवल भोगभूमि है, इसलिये इसमें भोगके जरिये जिसके पाप नष्ट होते हैं, दैवात् उसके पूर्व्व पुण्यके उदय होनेपर जीवका चित्त बिबेकसे संवृत हुआ करता है। जब जीव सतोगुणयुक्त होता है, उस समय निज बुद्धिसे तमोगुणकी प्रवृत्तिओंको दूर करते हुए कल्याणसाधन कर्म्ममें यत्नवान् हुआ करता है, तब सतोगुणकी उत्कर्षता होनेसे कामादिके अभिमानी देवभाव लाभ करता है, और सतोगुणके अपकर्ष होनेसे तिर्य्यग् योनिसे फिर तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होता अथवा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है। तब जीव मनुष्य लोकमें कल्प परिमित समय बिताके विधि निषेधरूपी निग-ड़निबद्धके जरिये क्लेशित होकर तपस्याका उपचय करते हुए सैकड़ों कल्प बीतनेपर देव-भाव लाभ किया करता है। हे दैत्यराज! जीव देवत्व लाभ करके भी सहस्रों कल्पतक विचरते हुए निवास करता है; देव लोकमें भी जीव विपय रहित होके पूर्व पूर्व्वकल्पोंके किये हुए पुण्य पापोंका फल भोग किया करता है।

अनन्तर दश हजार जन्मके बीतनेपर मनुष्य भोगप्रद कर्म्म और अन्यान्य जन्मोंसे मुक्ति लाभ करता है इसलिये स्वर्गको भी चयशील समझना चाहिये। जीव देवलोकमें सदा विहार किया करता है, अनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्य जीवन पाता है, देवता लोग मनुष्यत्व और मनुष्य भी देवत्व लाभ किया करते हैं। ऊपर कहे हुए कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, चित्त, मन और बुद्धि नामक आठों ज्ञानेन्द्रिय सैकड़ों कल्पतक मनुष्य शरीरमें निवास करती हुई अन्तमें देवत्वको प्राप्त होती है। अनन्तर वही जीव कालक्रमसे संकल्पकृत लयोदय प्रवाहसे भ्रष्ट होकर सबसे अपकृष्ट वर्ण अर्थात् तलभागकी भांति सबसे नीच स्थावर शरीरमें निवास करता है। हे असुर प्रवीर! यह जीव जिस प्रकार बिमुक्त होता है, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। एकके अनेकधा भावको व्यूह कहते हैं, मुमुक्षु जीव उन सत्तरह देवव्यूहोंको अवलम्बन करके लाल, पीला और अन्तमें सफेद वर्ण होकर क्रमसे अर्च्चनीय अष्टलोकोंमें विचरता है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि रूपसे सप्तधा भूत बुद्धिको उस ही उसी इन्द्रिय वृत्तिभेदसे सौ हजार व्यूह हुआ करता है, तिसके बीच शम दम आदि सात्विक भावोंसे युक्त देव व्यूह अवलम्बन करके पहले जो रक्तवर्ण होता है, वही शम दमादिके अभिमानी देवतास्वरूप है, इसमें वह अत्यन्तही शमदमादिसे युक्त हुआ करताहै।

अनन्तर पीत वर्ण देवशरीर होकर अन्तमें श्वेतवर्ण कौमारमूर्त्ति हुआ करती है, यह मूर्त्ति बालककी भांति रागद्वेषसे रहित होती है। अनन्तर सगुणात्म स्वरूप सब लोक प्राप्त होते हैं, क्रमसे धूम आदि मार्गप्राप्तिपूर्व्वक अर्च्चि

नीय चन्द्रलोकसे भी पूजनीय अर्च्चिरादि मार्ग-प्राप्य ब्रह्मलोक लाभ होता है। अनन्तर योग-फलभूत ज्ञानसे मिलने योग्य सब पूज्य लोक प्राप्त होते हैं। हे महानुभव दैत्यराज! पूर्ण प्रकाशयुक्त आत्मज्ञ पुरुष उक्त अष्टलोक और अविद्या काम कर्म आदि भेदसे विभिन्न जो एक सौ साठ लोक है, उन सबको मनसे ही विशेष रूपसे रुद्ध कर रखते है, अर्थात् मूढ़दृष्टिसे सब लोकोंके भिन्नरूपसे दीखनेपर भी ज्ञानियोंके मनमें वे एक रूपसे ही मालूम हुआ करते हैं, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसंज्ञक-तीनों लोक यदि संक्षेपसे मनहीके जरिये रुद्ध हों, तो शुक्लवर्णकी वही परम गति है, अर्थात् ऐसी अवस्थामें वेद प्रतिपाद्य, मङ्गलमय हैतरहित ब्रह्मको जाना जाता है। जीव एक मात्र भोगके स्थान शरीरको धारण करके सौ कल्पके परिमाणतक इस देहमें निवास किया करता है, योग ऐश्वर्य्यसे उपस्थापित दिव्य भोगोंको परित्याग करनेमें असमर्थ योगी योगबलके तारतम्यके अनुसार महः, जन, तपः और सत्यसंज्ञक ऐश्वर्य्यके तारतम्ययुक्त क्रममुक्ति स्थानोंमें वास किया करते हैं। जो शुद्ध ब्रह्मके दर्शनके जरिये जीवन मुक्त होनेमें समर्थ नहीं हैं और जिनके रागादि दोष नष्ट हुए हैं, वैसे ही योगसिद्ध होके भी ब्रह्म और आत्मामें अज्ञानके अभाव निबन्धनसे क्रममुक्तिभाजन हुआ करते हैं; और जो पुरुष पूर्णरीतिसे अनुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं है, वह परोक्षरूपसे निर्द्दिष्ट स्वर्गलोकमें सतोगुणको प्रवर्त्तक पूर्व्वोक्त श्रोत आदि पञ्चक और मन तथा बुद्धि के उत्कर्ष साधक पुरुष एक सौ कल्प पर्य्यन्त जबतक पूर्व्वकृत कर्म्मक्षय नहीं होते, तबतक निवास करता है। शुद्ध कर्म्मवाले साधु यदि योग सिद्धिके पहिले विरक्त हो, तो वह अथवा स्वर्गलोकमें गमन करते हैं अनन्तर वहांसे लौटकर मनुष्यजन्म पाके कुल शील और विद्याबुद्धिसे युक्त होकर सब लोगोंमें पूजनीय होते हैं। अन्तमें वही अपूर्ण योगी मनुष्य जन्मसे निकलके पूर्व्व अभ्यासके सहारे क्रमसे उत्तरोत्तर योगभूमिकामें आरोहण करते हैं, वह समाधि और समाधि भङ्गके समयमें प्रमायुक्त होके सातबार सब लोकोंमें पर्य्यटन किया करते है, अर्थात् प्रथम भूमिमें आरूढ़ योगी यदि मृत्युको प्राप्त हो, तो वह स्वर्गलाभ करके वहांसे च्युत होनेपर सार्व्वभौम्य पदवी लाभके जरिये उनका भूलोक विजय हुआ करता है। इस ही प्रकार उत्तरोत्तर योगकला वृद्धिके अनुसार क्रमसे सब लोक जय किया जाता है, अन्तमें ब्रह्मलोक लाभ करके भी जीव फिर संसारमें आगमन किया करता है, और यदि ध्येयवस्तुके सङ्ग आत्माकी अभेद प्रतीति उत्पन्न हो, तो प्रलयकालमें ब्रह्माके सहित जीवको मुक्ति हुआ करती है, अर्थात् कृतात्मा मनुष्य प्रजापतिके प्रलयकालमें उनके सहित परमपदमें प्रवेश करते हैं।

पक्षान्तरमें योगी पुरुष भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्य लोक अथवा मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सातोंको ज्ञानसे बाधित करके जीव लोकमें शोक मोहसे रहित होकर निवास करते है। वे लोग पृथ्वी आदि सातो लोक अथवा बुद्धि आदि सातों इन्द्रियोंको दुःख स्वरूप निश्चय करके शरीर त्यागनेपर अपरिणामी अनन्त अर्थात् परिच्छेद रहित शुद्ध ब्रह्मपद लाभ करते हैं। कोई कोई उस पदको महादेवका कैलास कहते है, कोई उसे विष्णुका बैकुण्ठ बतलाते हैं, कोई कोई सम्प्रदायवाले उसे ब्रह्माका ब्रह्मलोक कहा करते हैं, कोई कोई भक्तजन उसे अनन्त देवके धामरूपसे वर्णन करते हैं, सांख्य मतवाले मनीषी पुरुष उसे जीवोंकी परम निवृत्ति स्थान कहा करते हैं, और उपनिषत् अर्थात् वेदान्त, दर्शन

पण्डित लोग उसे द्योतमान् चिन्मात्र सर्व्वव्यापी परब्रह्मके धामस्वरूप रूपसे निर्णय किया करते हैं। संहारके समयमें जो लोग ध्यानरूपी अग्निसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको सब भांतिसे जलाये हैं, वेही सब प्रजा सदा परब्रह्मको प्राप्त होती हैं और चेष्टात्मक इन्द्रियें तथा ब्रह्मस्वरूपसे अर्व्वाचीन प्रकृति आदि भी परिदग्ध शरीर होकर संहारकाल अर्थात् जीवके मोक्ष समयमें परब्रह्ममें लीन हुआ करती हैं। प्रलयकालके आसन्न होनेपर जो लोग देवल लाभ करते हैं, उनके सब कर्म्मफल भोग न किये जानेसे पूर्व्व कल्पके अर्ज्जित उनके सब कर्म्मफल प्रत्यासन्न हुआ करते हैं; क्यों कि प्रति कल्पमें ही पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंकी सदृशता विद्यमान रहती है. और प्रलयकालमें जिसके कर्म्मफलोंके भोग निःशेषित होते हैं, उनका स्वर्गवास समाप्त होनेसे फिर मनुष्यत्व प्राप्त हुआ करता है, क्यों कि तत्वज्ञानके अतिरिक्त सौ कल्पमें भी किये हुए कर्म्मोंका नाश नहीं होता।

जो लोग क्रमसे सिद्ध लोकसे प्रच्युत होने की सामर्थ धारण करते हैं, दूसरे जीव लोग उनके समान बलवाले होकर क्रमसे उनकी गतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हीकी भांति पाप-पुण्यके फलोंको भोग किया करते हैं। एक कल्पमें ही जब बार बार ऊर्द्ध गति और अधोगति हुआ करती हैं, तब संसार भीरु पुरुषोंको तत्वज्ञानका आसरा अवश्य करना चाहिये।

ब्रह्मवित् पुरुष जबतक प्रारब्ध कर्म्मोंको परित्याग न करके उसे भोग करते हैं तबतक उनके अङ्गमें ब्रह्मस्वरूपसे प्रजासमूह और परा तथा अपरा विद्या विद्यमान रहती है। अनन्तर वह योगसंशोधित चित्त होनेपर अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि स्वरूप संयमका अनुष्ठान करनेसे इस आकाश आदि पञ्च महाभूतोंकी पञ्च इन्द्रियोंकी भांति जानते हैं; अज्ञ पुरुषके सम्बन्धमें विशुद्ध कैवल्य-पर्य्यन्त समस्त जगत दूरवर्त्ती नहीं है। जो लोग शुद्धचित्तसे श्रवण मनन और ध्यानाभ्याससे शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको जाननेकी इच्छा करते हैं, वे द्वैतजालको दूर करके उस शुद्ध परम गतिको प्राप्त होते हैं, शेषमें ब्रह्म साक्षात्कार होनेपर अक्षय मोक्षपद लाभ करते हैं। उस समय अविद्या आदि व्यवधानोंसे जो शाश्वत परब्रह्म दूसरोंको अत्यन्त अप्राप्य है, उसे वे गलेमें पड़े हुए कण्ठभूषणकी भांति सहजमें ही प्राप्त होते हैं। हे महाबलवान् दैत्यराज! यह मैंने तुम्हारे निकट नारायणका प्रभाव वर्णन किया।

वृत्रासुर बोला, हे भगवन्! आपने जो कहा, कि उसमें जगत मनरूपसे स्थित है, तब अब मुझे कुछ भी विषाद नहीं है और आपके कहे हुए वाक्यार्थको मैंने विशेष रूपसे आलोचना की है। हे महानुभाव! मैं आपके वचनको सुनके इस समय दुरदृष्टरहित और शोक मोहसे हीन हुआ। हे महर्षि! यह महातेजस्वी अन्तरहित विष्णुके चक्रकी भांति अनन्तवीर्य्ये आकर्षित हुआ, वही उसका सनातन स्थान है, जिससे समस्त सृष्टि हुआ करती है, वह महानुभाव विष्णु ही पुरुषोत्तम है, उसमें ही यह सब जगत् प्रतिष्ठित होरहा है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीपुत्र! दैत्यराज वृत्रने ऐसा कहके प्राणत्याग किया, उसने निज आत्माको परमात्मामें संयुक्त करके परम स्थान प्राप्त किया था। उस समय युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी ओर अङ्गुली दिखाके बोले, हे पितामह! पहिले समयमें सनत्कुमार मुनिने वृत्रासुरके निकट जिसकी महिमा कही थी, ये भगवान् जनार्द्दन वही देवता हैं।

भीष्म बोले, मूल अधिष्ठानकी भांति निर्व्विकार भावसे स्थित षड्विध ऐश्वर्य्यवान् चिदात्मा निज तेजपुञ्जसे अधिष्ठित रहके सत्य संकल्प आदि गुणयुक्त मानसमें अनेक प्रकार कार्य्य कारण स्वरूप वृक्ष बीज प्रभृति उत्पन्न करता

है। यह निश्चय जानो, कि उस मूलाधिष्ठानमें स्थित चिन्मय पुरुषके आठवें अंशसे वे मूर्त्तिमान माधव उत्पन्न हुए हैं, यह बुद्धिमान् केशव मूलाधिष्ठानके आठवें अंशसे उत्पन्न होकर उस अष्टम अंशके सहारे ही तीनों लोकोंकी सृष्टि किया करते है, जो इनके परवर्त्ती होकर समष्टि कार्य्य स्वरूपसे प्रतिपन्न होते हैं, वे हम लोगोंके शरीरकी अपेक्षा नित्य होके भी कल्पान्त कालमें लयको प्राप्त होते हैं, और जो अनन्त ब्रह्माण्डके लय उदयका बीजभूत है, वही अन्तर्य्यामी भगवान् प्रलयकालमें जलके बीच शयन किया करता है, अर्थात् जल रूपसे निरूपित रस स्वरूप एकमात्र अखण्ड परब्रह्ममें लीन होता है। विधाता शुद्धचित्त अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारसे निर्मुक्त होनेसे उस शाश्वत समष्टिरूप परब्रह्ममें लयको प्राप्त हुआ करता है, इसलिये चतुर्मुख आदि चेतनमात्रका ही एकमात्र परब्रह्म ही लय स्थान है। अन्तरहित परमात्माने कार्य्य कारण भूत सब पदार्थोंको निज सत्तास्फूर्त्ति प्रदान करके पूर्ण कर रखा है, वह सनातन अर्थात् सदा एक रूप होनेपर भी माया उपाधियुक्त इस दृश्यमान् श्रीकृष्णरूपसे सब लोगोंमें विचर रहा है। वह देव ऐसा होके भी हम लोगोंकी भांति उपाधि कर्म्मके जरिये निरुद्ध नहीं है, इसीसे वह अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, और वही महात्मा सब वस्तुओंका आधार कहा जाता है। बीजमें वृक्ष और फलमें बीजोंके स्थित रहनेकी भांति यह विचित्र जगत् उस ही परमात्मामें निवास करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे परमार्थज्ञ पितामह! बोध होता है, वृत्रासुरने आत्माकी गति अवलोकन की थी, उसने उस ही आत्मगतिको देख कर शुभ-निबन्धनसे सुखी होकर कभी शोक प्रकाश नहीं किया। हे पापरहित पितामह! शुक्लवर्ण और शुद्ध वंशमें उत्पन्न साध्य संज्ञक देवयोनि तिर्य्यग् योनिरूपी निरयसे निर्मुक्त होकर फिर दूसरी बार उसमें आवर्त्तित नहीं होती। हे पृथ्वीनाथ! पीतवर्ण अथवा रक्तवर्णमें वर्त्तमान मनुष्य तामस कर्म्मोंसे परिपूरित होकर तिर्य्यग् योनि लाभ किया करते हैं। हम लोग पीतवर्णसे च्युत होकर केवल रजप्रधान रक्त वर्णमें निवास करते हुए कभी सुखी कभी दुःखी और कभी बिना सुखके ही समय बिताकर नीलवर्ण मनुष्य योनि अथवा उससे भी निकृष्ट कृष्णवर्णकी तिर्य्यग् योनिके बीच कैसी गति पावेंगे, उसे नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! तुम लोग शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुए हो और तुम सबने ही तीव्र व्रत धारण किया है, इसलिये इसके अनन्तर तुम लोग देव लोकोंमें विहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे। प्रजासमूहके प्रलयकालमें तुम लोग देव लोकमें फिर अनायास ही सुख भोग करोगे, अन्तमें सिद्धोंके बीच तुम्हारी गिनती होगा, तुम लोगोंको भय नहीं है, इससे सब शङ्का त्यागके प्रसन्न रहो।

२७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरको धर्म्मिष्ठतासे आश्चर्य्य होता है। उसका जैसा अनन्य-साधारण विज्ञान था, भगवान्के विषयमें भक्ति भी वैसीही थी। हे तात! असीम महिमासे युक्त भगवान्की तत्व अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है, उसे वह तत्व किस प्रकार मालूम हुई थी। आपने जो इव विषयके अस्खलित वचन कहे, उसमें मेरी श्रद्धा होरही है, परन्तु वृत्रासुर वैष्णव था, वह कभी वधार्ह नहीं होसकता, तौभी आपकी वचन अनुसार उसका वध सुना जाता है, इस अन्यतर कोटि निश्चयिक विज्ञानके अभावसे फिर मुझे प्रश्न करनेकी इच्छा हुई है। हे पुरुषप्रवर! वृत्रासुर

धर्मिष्ठ विष्णुभक्त और वेदान्त वाक्यके अर्थ विचार विषयमें तत्वज्ञ था ; तब किस प्रकार वह इन्द्रके जरिये मारा गया ? मुझे यही सन्देह घोर हो है, इसलिये प्रश्न करता हूं आप मेरे निकट यह विषय वर्णन करिये। हे भरत प्रवर पितामह। वृत्रासुर जिस प्रकार इन्द्रसे हारा तथा जिस भांतिसे उन दोनोंका युद्ध हुआ था, आप उसे विस्तार पूर्व्वक वर्णन करिये ; इस विषयको सुननेकी मुझे बहुतही अभिलाषा है।

भीष्म बोले, पहिले समयमें देवराजने देवताओंके सहित रथपर चढ़के गमन करते हुए पुरमें द्वारपर स्थित पर्व्वतके समान वृत्र दैत्यको देखा। हे शत्रु दमन! उस समय वृत्र ऊंचाईमें पांचसौ योजन ऊंचा, और विस्तारसें तीनसौ योजन आयतरूप धारण किया था, वृत्रका त्रैलोक्य-दुर्जय वैसा रूप देखके देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए और किसी भांति शान्ति लाभ न कर सके। हे राजन्! उस विपर्य्याय रूपको देखकर भयसे उस समय इन्द्रका सहसा उरुस्तम्भ हुआ। अनन्तर देव असुरोंका वह युद्ध उपस्थित होनेपर महान् सिंहनाद और युद्धके बाजोंके शब्द होने लगे। हे कुरुकुल धुरन्धर! देवेन्द्रको उपस्थित देखके वृत्रासुरके अन्तःकरणमें सम्भ्रम भय वा चिन्ता नहीं हुई, अनन्तर सुरराज शक्र और महानुभाव वृत्रासुरका त्रिलोक भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। तलवार, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर अनेक तरहकी शिला, महा शब्दयुक्त धनुष अनेक प्रकारके दिव्य शस्त्र, अग्नि और उल्का समूहसे देवासुर सेनाके जरिये सब जगत् व्याकुल होने लगा। हे भरतप्रवर महाराज! प्रजापति आदि सब देवताओं और महानुभाव ऋषियोंने युद्ध देखनेके लिये आगमन किया। सिद्ध और गन्धर्व्व लोग अप्सराओंके सहित विमानोंमें चढ़के उस स्थानमें इकट्ठे हुए। अनन्तर धार्मिक प्रवर वृत्रासुरने पत्थरकी वर्षासे शीघ्र ही आकाशतलको परिपूरित करते हुए देवेन्द्रको छिपा दिया, तब देवता लोग क्रुद्ध होकर सब प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करके युद्धमें वृत्रासुरकी पत्थरवर्षाको निवारण करने लगे। हे कुरुवर! महा मायावी महाबली वृत्रासुरने माया युद्धसे देवेन्द्रको सब भांतिसे मोहित किया। जब इन्द्र वृत्रके जरिये अत्यन्त पीड़ित हुए, तब उन्हें मोह उत्पन्न हुआ, उस समय महर्षि वशिष्ठने रथन्तर साम उच्चारण करके उन्हें चैतन्य किया।

वशिष्ठ बोले, हे दैत्य दानव निसूदन देवराज। तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ और तीनों लोकोंके बलसे युक्त हो, इसलिये किसलिये विषाद कर रहे हो ; ये जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भगवान् सोमदेव तथा सब महर्षि लोग विद्यमान् हैं। हे सुराधिप शक्र। इसलिये तुम्हें साधारण पुरुषोंकी भांति मु न होना चाहिये ; युद्धमें साधु बुद्धि अवलम्ब करके शत्रुओंका संहार करो। हे सुरपति। सब लोकोंके नमस्कृत भगवान त्रिलोचन तुम् देखते हैं, इसलिये तुम मोह परित्याग कर हे शक्र! ये सब बृहस्पति आदि ब्रह्मर्षि ल जयके निमित्त दिव्य स्तवसे तुम्हारी स्तुति क रहे हैं।

भीष्म बोले, महानुभाव वशिष्ठ मुनिने उ इस प्रकार इन्द्रको चैतन्य किया, तब प्र पराक्रमी सुरराजका पराक्रम अत्यन्त बढ़ि हुआ, अनन्तर भगवान पाकशासनने बुद्धि स्थि करके महत् योगयुक्त होकर वृत्रासुरकी मा दूर की। अङ्गिराके पुत्र श्रीमान् सुराचार और पूर्व्वोक्त महर्षियोंने वृत्रासुरका विक्र देखकर सब लोकोंकी हितकामनासे महादेव निकट जाके उसके नाशके निमित्त प्रार्थना की अनन्तर जगत्पति महादेवका तेज घोर ज्वररू धारण करके उस ही समय दैत्यपति वृत्र शरीरमें प्रविष्ठ हुआ, और लोकरक्षामें तत्प

सब लोकपूजित भगवान् विष्णु ने देवराजके वज्रमें प्रवेश किया। अनन्तर बुद्धि शक्तिसे युक्त वृहस्पति, महातेजस्वी वशिष्ठ और वे सब महर्षि लोग लोकपूजित वरदाता इन्द्रके निकट आके एकाग्रचित्तसे यह वचन बोले कि, हे देवेश! तुम सब वृत्रासुरका बध करो।

महेश्वर बोले, हे शक्र! यह सुर स्वयं प्रबल है और महत् बलसमूहसे परिपूरित हुआ है यह पुरुष विश्वव्यापी और सर्व्वत्रगामी तथा अनेक प्रकार मायाजाल फैला सकता है, इस ही कारण विख्यात् है। हे सुरेश्वर! इसलिये तुम योग अवलम्बन करके इस त्रिलोकादुर्ज्जय दानवश्रेष्ठका बध करो, अवज्ञा मत करो। हे देवराज! इस वृत्रासुरने बलके निमित्त साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त तपस्या की थी, ब्रह्माने भी इसे योगियोंके बीच महत्व, महामायात्व और श्रेष्ठ तेजस्विता लाभके निमित्त वर प्रदान किया था। हे इन्द्र! यह मेरा तेज शीघ्र तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है, तुम इस ही तेजसे तेजस्वी होकर वज्रसे इस दानवका नाश करो।

देवराज बोले, हे सुरश्रेष्ठ भगवन्! आपकी कृपासे मैं आपके सम्मुखमें ही इस दुरासद दानवको वज्रसे मारूंगा।

भीष्म बोले, महासुर वृत्रासुरके शरीरमें शैवज्वर प्रविष्ट होनेपर देवता और ऋषियोंमें महान् हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। अनन्तर सहस्रों शङ्ख, नगाड़े पखावज और डिण्डिम बाजे बजने लगे। सब असुरोंकी इकबारगी स्मृति लुप्त होगई, क्षणभरके बीच प्रबल माया नष्ट हुई। देवता और ऋषि लोग इन्द्रके शरीरमें शिवतेजको प्रविष्ट हुआ जानके प्रशंसा वाक्यसे उनका उत्साह बढाने लगे। युद्धके समयमें जब महानुभाव महेन्द्र रथमें चढ़के ऋषियोंसे स्तुतियुक्त हुए, उस समय उनका रूप अत्यन्त भयानक होगया।

२८० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! जब वृत्रासुर सब तरहसे ज्वरके वशमें हुआ तब उस समय उसके शरीरसे जो सब लक्षण प्रकाशित हुए थे, उसे सुनो। उसका मुख अत्यन्त प्रज्वलित होनेसे विवर्ण होगया उसका शरीर अत्यन्त ही कांपने लगा, श्वास बढ़ने लगा, तीव्ररूपसे रोएं खड़े होगये और लम्बी सांस चलनी आरम्भ हुई। उसके मुखसे अशिवरूप अत्यन्त दारुण महाघोर रूपवाली सियारी निकली, हे भारत! वही उसकी स्मृति शक्ति थी। प्रज्वलित और प्रकाशमान लुक्कोंने उसके दोनों पार्श्वोंको घेर लिया। गृद्ध, कङ्क और बगुले वृत्रासुरके ऊपर इकट्ठे होकर चक्रकी भांति भ्रमण करते हुए दारुण शब्द करने लगे। अनन्तर देवताओंसे आप्यायित आहवके बीच सुरराजने उस रथपर चढ़के हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरकी ओर देखा, हे राजेन्द्र! उस समय तीव्रज्वरसे संयुक्त होकर वह महासुर अमानुष शब्द करके जमुहाई लेने लगा। जब वृत्र जमुहाई ले रहा था, उस ही समय इन्द्रने उसके ऊपर वज्र चलाया, वह कालाग्नि समान अत्यन्त महत् तेजसे युक्त वज्रने शीघ्र ही महाकाय वृत्रासुरको मारके गिरा दिया।

हे भारत! अनन्तर वृत्रासुरको मरा हुआ देखके चारों ओरसे फिर देवताओंकी हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। दानवारि देवराजने विष्णुयुक्त वज्रसे वृत्रासुरको मारके महायशस्वी होकर सुरपुरमें प्रवेश किया। हे कुरुनन्दन! अनन्तर वृत्रासुरके शरीरसे लोक भयावन रौद्ररूपिणी ब्रह्महत्या निकली। हे धर्म्मज्ञ भरतसत्तम! उसके सब दांत अत्यन्त कराल थे, उसका रूप भयङ्कर और विकृत था, रङ्ग काला और पीला था, उसके केश बिखरे और घोररूपी दोनों नेत्र थे। हे राजेन्द्र! कृत्याकी भांति कपालमालिनी वल्कल वस्त्र धारण करनेवाली रुधिरसे भीगी हुई, वैसी भयङ्कर रूपवाली वह स्त्री निकलते

ही इन्द्रको खोजने लगी। हे कुरुनन्दन! कुछ कालके अनन्तर वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्र सब लोकोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी ओर जारहे थे, उस समय उस ब्रह्महत्याने महातेजस्वी शक्रको निकला हुआ देखकर उन्हें ग्रहण किया और उस ही समयसे उनके शरीरमें लग गई। जब देवराजको ब्रह्महत्याका भय उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने कमलकी मृणालके बीच छिपकर अनेक वर्षतक वास किया था। हे कौरव। ब्रह्महत्याने भी उनका पीछा कर यत्न-पूर्वक उन्हें ग्रहण किया, तब वह अत्यन्त निस्तेज होगये। देवेन्द्रने उससे छुटकारा पानेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी उस ब्रह्महत्यासे न छूट सके। हे भरतकुल शिरो-मणि! अनन्तर सुरराजने उस ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होकर पितामहके निकट जाके सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया। हे भरतसत्तम! ब्रह्मा उस समय सुरराजको ब्रह्महत्यासे आक्रान्त जानके चिन्ता करने लगे। हे महा-बाहु युधिष्ठिर। उस समय पितामहने ब्रह्मह-त्याको मधुर वचनसे धीरज देकर कहा, हे भाविनि। तुम इस देवराजको छोड़के हमारा प्रियकार्य्य साधन करो। कहो मैं तुम्हारी कौनसी कामना सिद्ध करूं, इस समय तुम क्या अभिलाष करती हो?

ब्रह्महत्या बोली, हे देव! आप त्रिलोकपू-जित और तीनों लोकोंके कर्त्ता है, जब आप प्रसन्न हुए हैं तब मैं अपनी सब कामनाओंको पूर्ण हुई ही समझती हूं। अब मैं कहां वास करूंगी, आप इस विषयमें कोई उपाय निश्चय करिये, आपने लोकरक्षाके लिये यह महती मर्य्यादा स्थापित की है। हे सर्व्व-लोकेश्वर सर्व्वलोक नियामक धर्म्मज्ञ। आप जब प्रसन्न हुए है तब मैं अवश्य ही सुरराजके शरीरसे अन्तर्द्धान हूंगी, इससे अब मेरे वास करनेके लिये स्थान खोजिये।

भीष्म बोले, प्रजापतिने उस समय ब्रह्मह-त्यासे कहा, कि "वैसाही होगा।" फिर उन्होंने यत्नके सहित उसे इन्द्रके शरीरसे पृथक् किया। अनन्तर महानुभाव स्वयम्भूने अग्निको स्मरण किया, अग्निने स्मरण करते ही उनके समीप आके कहा, हे भगवन्! मैं आपके निकट उपस्थित हूं, हे अनिन्दित। हे देव। अब मुझे जो कुछ करना हो, उसके लिये आप आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, आज मैं इन्द्रके छुटकाराके निमित्त इस ब्रह्महत्याको कई भागमें विभक्त करूंगा, इसलिये तुम इसके चौथे भागका एक अंश ग्रहण करो।

अग्निदेव बोले, हे लोकपूजित प्रभु ब्रह्मन्। इससे मैं किस प्रकार मुक्त हूंगा, उसका आप विचार करिये; मैं इसे ही यथार्थ रूपसे जान-नेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, हे हव्यवाह अग्नि। जो मनुष्य मोहवशसे तुम्हें जलती हुई देखके भी बीज-ञ्जलि और सोम रससे तर्पित न करेगा, य ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करके उस ही निवास करेगी, इसलिये तुम अपना मान सिक शोक दूर करो।

भीष्म बोले, हव्यकव्य भोक्ता भगवान अग्नि ऐसा सुनके पितामहका वह वचन अङ्गीका करके उस ही समय ब्रह्महत्यासे आक्रान्त हुए हे महाराज। तिसके अनन्तर पितामह वृक्ष औषधि और तृणोंको आह्वान करके इस विष-यको कहना आरम्भ किया। हे राजन्। वृक्ष, औषधि और तृणसमूह ऊपर कहे हुए ब्रह्म-हत्याके विषयको सुनके अग्निकी भांति दुःखित होके ब्रह्मासे यह वचन बोले, हे लोक पिता-मह! हम ब्रह्महत्यासे कितने समयमें मुक्त होंगे; हम लोग तो दैवके जरिये पहलेसेही अभिहत होरहे है, इसलिये फिर हम लोगोंको निहत करना आपको उचित नहीं है। हे

देव। हम सर्दी, वर्षा, वायुके वेग, अग्नि और छेद भेदको सदा सहा करती हैं। हे त्रिलोकेश्वर! अब आपकी आज्ञासे इस ब्रह्महत्याको ग्रहण करेंगी; परन्तु आप हम लोगोंको इससे छूटनेकी उपाय विचारिये।

ब्रह्मा बोले, पर्व्वकालमें जो मनुष्य मोहके वशमें होकर तुम लोगोंको छेदन करेगा वा काटेगा, यह ब्रह्महत्या उसहीकी अनुगत होगी।

भीष्म बोले, अनन्तर वह औषधि और तृण समूह ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उनकी सब तरहसे पूजा करके शीघ्र ही निज निज स्थानपर चले गये। हे भारत! तिसके अनन्तर लोक पितामह अप्सराओंको आह्वान करके उन्हें मधुर वचनसे धीरज देके बोले, यह वराङ्गना ब्रह्महत्या रे इन्द्रके शरीरसे निकली है, इस लिये मैं कहता हूं, कि तुम लोग इसका अंश ग्रहण करो।

अप्सरा बोलीं, हे देवेश पितामह! आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसे ग्रहण करनेमें सम्मत हुई हैं, परन्तु इससे जिस प्रकार हमारी निष्कृति हो, आप वही उपाय करिये।

ब्रह्मा बोले, जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करेगा यह ब्रह्महत्या उस ही समय उसे आक्रमण करेगी, इसलिये तुम लोग अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो।

भीष्म बोले, हे भरतप्रवर! अप्सराओंने "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके प्रसन्नचित्त होकर निज निज स्थानमें जाकर क्रीड़ा करने लगी। फिर महातपस्वी त्रिलोककर्त्ता प्रजापतिने जलको स्मरण किया, स्मरण करते ही वह शीघ्र उपस्थित हुआ। हे राजन्! वह अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माके निकट जाके उन्हें प्रणाम करके यह वचन बोला। हे देव अरिन्दम! आपके शासनके अनुसार हम आपके निकट आये हैं, हे प्रभु लोकेश! हमें क्या करना होगा, इसके लिये आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, यह महाभयावनी ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे प्रकट होके इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, इस समय तुम इसका अंश ग्रहण करो।

जल बोला, हे प्रभु लोकेश! आपने मुझसे जो कहा वही होगा, परन्तु समयके अनुसार मैं जिस प्रकार इससे छूटूं आपको वैसा ही उपाय सोचना उचित है। हे देवेश! आप ही सब जगत्के एक मात्र अवलम्ब हैं, आपको छोड़के दूसरे किसको प्रसन्न करूं, जो हमें क्लेशसे उबारेगा।

ब्रह्मा बोले, जो मनुष्य मोहके वशमें होकर अल्प विचार करके तुम्हारे ऊपर मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा परित्याग करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करेगी और उसमें ही वास करती रहेगी, इस ही प्रकार तुम्हारी इससे निष्कृति होगी, यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्महत्या इन्द्रको परित्याग करके ऊपर कहे हुए स्थानोंमें गई। हे प्रजानाथ! इस ही प्रकार ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, उन्होंने पितामहकी कृपासे उससे छूटकर अन्तमें उनकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया। हे महाराज! मैंने सुना है, कि देवराज ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होनेपर शेषमें अश्वमेध यज्ञ करके पवित्र हुए थे। हे पृथ्वीनाथ! देवराजने सहस्रारि शत्रुओंको संहार करके श्रीसे युक्त होकर आनन्दित हुए थे। हे पृथापुत्र! वृत्रासुरके रुधिरसे जो शिखण्ड नाम कुक्कुट उत्पन्न हुए थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और विशेष करके दीक्षित तपस्वियोंके अभक्ष्य हैं। हे कुरुनन्दन! तुम भी सब समयमें इन सब द्विजातियोंके प्रिय कार्य्य को सिद्ध करो, येही पृथ्वीमण्डलपर देवतारूपसे विख्यात हैं। हे कुरुकुल धुरन्धर! इस ही प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सुरपतिने सूक्ष्मबुद्धिके सहारे उपाय रचके म

हतको मारा था। हे कुन्तीनन्दन! तुम भी शत्रुनाशन देवराज आखण्डलकी भांति अखण्ड पृथ्वीमण्डलपर अपराजित रहोगे। जो प्रति पर्व्वमें इस दिव्य देवेन्द्र कथाको विप्रोंके बीच कहेंगे, उन्हें कभी पापस्पर्श न कर सकेगा। हे तात! तुम्हारे निकट यह सुरपति और वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत महत् कर्म्म वर्णन किया अब क्या सुननेकी अभिलाषा करते हो?

२८१ अध्याय समाप्त।

वृत्र वध समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्र विशारद महा प्राज्ञ पितामह! वृत्रवध निबन्धनसे इस विषयमें मुझे यह पूछनेकी इच्छा है, कि आपने जो कहा हैं, कि वृत्रासुर ज्वरसे मोहित होकर इन्द्रके जरिये बज्रसे मरा। हे महाप्राज्ञ! वह ज्वर किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुआ था। उस ज्वरकी उत्पत्तिके विषयको मैं यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भारत! इस लोक बिख्यात् ज्वरकी उत्पत्तिका जैसा विषय है, उसे बिस्तारके सहित कहता हूं सुनो। हे महाराज! पहिले समयमें सुमेरु पर्व्वतपर त्रिलोकपूजित, सब रत्नोंसे बिभूषित और सवितृमण्डलाधिष्ठित ज्योतिष्क नाम एक शृङ्ग था। हे भारत! सब लोकोंके बीच वह शृङ्ग ही अप्रमेय और अधर्षणीय था, देवोंके देव सुवर्ण भूषित पर्य्यङ्ककी भांति उस शैलतलमें बैठकर बिराजते थे। शैलराजपुत्री सदा उनके पार्श्ववर्त्तिनी रहके शोभा पारही थीं; और महानुभाव देववृन्द, अत्यन्त तेजस्वी बस्तुगण, भिषग्वर महात्मा दोनों अश्विनीकुमार यक्षोंके राजा कैलासबासी गुह्यकोंसे घिरे हुए श्रीमान् कुबेर और महामुनि शुक्र उस महात्माकी उपासना कर रहे थे। सनत्कुमार आदि महर्षि अङ्गिरा आदि देवऋषि, विश्वावसु नाम गन्धर्व्व, महर्षि नारद और पर्व्वत तथा बहुतसी अप्सरा वहांपर उपस्थित हुईं। उस समय विविध सुगन्धियुक्त सुखस्पर्श पवित्र और कल्याणकर वायु बहने लगा वृक्ष सब ऋतुके पुष्पोंसे युक्त होकर फूलोंसे सुशोभित हुए। हे भारत। विद्याधर, सिद्ध और तपस्वी लोग देवोंके देव पशुपतिकी सब प्रकारसे उपासना करने लगे। हे महाराज। अनेक रूपवाले भूतवृन्द, महा रौद्र राक्षसगण महाबलवान पिशाच और महादेवके अनेक रूप तथा नाना शस्त्रोंको धारण करके प्रसन्न चित्तवाले सब सेवक वहांपर अग्निके समान रूप धरके स्थित थे। भगवान् नन्दी निज तेजसे प्रकाशित होकर प्रज्वलित शूल लेकर महादेवकी आज्ञानुसार वहां खड़े थे। हे कुरुनन्दन! सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई सरिद्वरा गङ्गा मूर्त्तिमान् होकर उस देवकी उपासना कर रही थीं। वह महातेजस्वी भगवान् महादेव इस ही प्रकार देवर्षि और देवताओंसे सब प्रकार पूजित होकर वहां निवास करते थे, कुछ समयके अनन्तर दक्ष नामक प्रजापतिने पूर्व्वोक्त बिधानके अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया। इन्द्रादि सब देवता उस समय सम्मत होके उनके यज्ञमें जानेके अभिलाषी हुए। ऐसा सुना जाता है, कि देवताओंने उन महादेवकी अनुमतिके अनुसार अर्क और गङ्गा द्वारमें गमन किया था। उस समय साध्वी शैलराजपुत्री देवताओंको जाते हुए देखकर निजपति देवोंके देव पशुपतिसे यह बचन बोली, हे तत्वज्ञ भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहां जा रहे हैं। उसे आप यथार्थ रीतिसे कहिये, मुझे अत्यन्त सन्देह होरहा है।

महादेव बोले, हे महाभागे! दक्ष नाम प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है, देवता लोग उस ही यज्ञमें गये हैं।

शर्व्वाणी बोली, आपने किस लिये उस

यज्ञमें गमन नहीं किया और किस प्रतिषेधके अनुसार आपका वहां जाना नहीं होता है।

महादेव बोले, हे महाभागे। पहले समयमें देवताओंने जो अनुष्ठान किया था, उस किसी यज्ञमें ही मेरा भाग कल्पित नहीं हुआ है वरवर्णिनि। पूर्व्व-अनुष्ठानपद्धतिके क्रमसे देवता लोग धर्म्मके अनुसार मुझे यज्ञभाग प्रदान नहीं करते।

भवानी बोली, हे भगवन्! आप गुणोंसे सब भूतोंके बीच अत्यन्त प्रभावसे युक्त हैं; तेज, यश और श्रीसम्पत्तिसे सबसे ही अजय और अधृष्य हैं, हे अनघ महाभाग! इसलिये आपके यज्ञभाग प्रतिषेधसे मुझे बहुत ही दुःख उत्पन्न हुआ है और सब शरीर शिथिल होरहा है।

भीष्म बोले, हे राजन्! देवीने देवोंके देव पशुपतिसे ऐसा कहके दह्यमान अन्तःकरणसे मौनावलम्बन किया। अनन्तर भगवान् देवीके हृदयके विकिर्षित विषयको जानके नन्दीको "तुम निवास करो" इस ही प्रकार आज्ञा करी अन्तमें वह सर्व्वयोगीश्वर महातेजस्वी पिनाकधारी महादेव योगबल अवलम्बन करके भयङ्कर अनुचरोंके सहारे सहसा उस यज्ञको विध्वंश करनेके लिये उद्यत हुए। हे राजन्! भूतोंके बीच किसी किसीने अत्यन्त दारुण शब्द करना आरम्भ किया, कोई विकट रूपसे हंसने लगे, किसीने उस यज्ञस्थलमें रुधिर प्रवाहके जरिये हव्यवाहको पूरित कर दिया। कोई कोई विकृतानन प्रमथगण यज्ञके यूपोंको उखाड़के घूमने लगे किसी किसीने मुखके जरिये परिचारकोंको ग्रास कर लिया। हे राजन्! अनन्तर उस यज्ञने सब प्रकारसे वध्यमान होकर हरिनका रूप धरके आकाशकी ओर गमन किया। निग्रहानिग्रहमें समर्थ शूलपाणिने उस यज्ञको मृगरूप धरके जाते हुए जानके बहुत बाण ग्रहण करके उसका पीछा किया। जिसके अनन्तर क्रोधके कारण उस अत्यन्त तेजस्वी महादेवके ललाटसे महाघोर पसीनेकी बूंद प्रकट हुई वह पसीनेकी बूंद पृथ्वीपर गिरते ही उस समय कालानल सदृश अत्यन्त महान् अग्नि प्रकट हुई। हे पुरुषपरवर! तब उस अग्निसे एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त ह्रस्व शरीरवाला था, उसके दोनों नेत्र लाल, श्मश्रु, पिङ्गलवर्ण, केश ऊपरको बढ़े हुए थे और बाज तथा उलूकको भांति उसका सब शरीर रोमयुक्त था। वह लाल वस्त्र काला वर्णवाला प्रबलपराक्रमी कराल पुरुष यज्ञको इस प्रकार जलाने लगा, जैसे अग्नि तृणसमूहको भस्म करती है। उस पुरुषने सब भांतिसे देवताओं और ऋषियोंकी ओर दौड़के उपद्रव मचाना आरम्भ किया, देवता लोग उससे डरके दशों दिशामें भाग गये। हे भरतश्रेष्ठ महाराज। उस समय उस पुरुषके भ्रमण करनेसे पृथिवी अत्यन्त ही विचलित हुई और सारा जगत् हाहाकार करने लगा,—उसे देखके प्रजापति पितामह महादेवके निकट उपस्थित हुए।

ब्रह्मा बोले, हे प्रभु सर्व्व देवेश्वर! सब देवता तुम्हें यज्ञका भाग प्रदान करेंगे, इसलिये तुम क्रोध परित्याग करो। हे परन्तप। हे महादेव! ये सब देवता और ऋषि लोग तुम्हारे क्रोधसे किसी प्रकार शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्म्मज्ञ। जो पुरुष तुम्हारे स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ है, वह लोकके बीच ज्वर नामसे विख्यात होगा। हे प्रभु। तुम्हारे एक भूतके तेजको धारण करनेमें सारी पृथ्वी भी समर्थ नहीं है, इसलिये इसे कई प्रकारसे विभक्त करो महादेवने प्रजापतिका वचन सुन और अपना यज्ञ भाग प्रकल्पित हुआ जानके अमित तेजस्वी सब ऐश्वर्य्यसे पूर्ण शिवने ब्रह्मासे कहा कि "ऐसा ही होगा।" तब पिनाकधारी महादेव प्रजापतिके दिये हुए यथा उचित यज्ञभागको पाकर परम प्रीतिसे सहित उत्साह युक्त हुए और वह सर्व्वधर्म्मज्ञ

सदाशिव सब प्राणियोंकी शान्तिके निमित्त प्रायुक्त ज्वरको अनेक प्रकारसे विभक्त करने लगे। हे तात! उन्होंने जिस जीवमें जिस प्रकार उस ज्वरको स्थापित किया उसे सुनो। हे धर्म्मज्ञ! हाथियोंमें शिरस्ताप, पर्व्वतोंमें शिलाजीत, जलमें शिवार, सांपोंमें केंचुलि, सौरभेयोंमें खुर रोग पृथिवीमें ऊसरपन, पशुओंमें दृष्टि अवरोध, घोड़ोंमें गल छिद्रके मांसखण्ड, मोरोंमें शिखोद्भेद और कोकिलोंमें नेत्र रोग, ये सबको उक्त महानुभावने ज्वर रूपसे वर्णन किया है और मैंने ऐसा सुना है, कि मेष जातीय पशुमात्रमें पित्तभेद ज्वर रूपसे निर्णीत हुआ है। हे धर्म्मज्ञ भारत! यह ज्वर मनुष्योंके जन्म मरण और जन्म मरणके मध्यकालमें सदा मनुष्य शरीरमें प्रवेश करता है। महादेवका तेज स्वरूप यह अत्यन्त दारुण सर्व्वनियन्ता ज्वर सब प्राणियोंका नमस्य और माननीय है। धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुर इस ही ज्वरसे आक्रान्त होके जमुहाई लेने लगा, तब देवराजने उसके ऊपर वज्र चलाया था। हे भारत! इन्द्रका चलाया हुआ वह वज्र वृत्रासुरके शरीरमें प्रविष्ट होके उसे बिदार किया था। महायोगी महासुर वृत्रने वज्रसे मरकर अत्यन्त तेजसे विष्णुके परम धाममें गमन किया, उस समय उसको विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्त हुआ था, इसलिये वृत्रासुरने युद्धमें मरके विष्णुका स्थान प्राप्त किया। हे पुत्र! यह मैंने तुम्हारे निकट वृत्र सक्रान्त महत् ज्वरका विषय विस्तारके सहित कहा है, अब दूसरा कौनसा विषय वर्णन करूं; जो लोग निर्भय चित्त और सावधान होकर इस ज्वरकी उत्पत्तिका विषय सदा पाठ करते हैं, वे रोग रहित, अत्यन्त सुखी और आनन्दित होकर सब अभिलषित विषयोंको पाते हैं।

२८२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार विनष्ट हुआ था। देवीको क्रोधित जानके सर्व्वमय महादेव क्रुद्ध हुए थे, फिर दक्षने उनकी कृपासे पुनर्व्वार किस प्रकारसे उस यज्ञको पूर्ण किया था। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहले समयमें हिमालय पर्व्वतपर गन्धर्व्व अप्सराओंसे युक्त अनेक वृक्ष लताओंसे परिपूरित गङ्गाद्वारमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया। उस यज्ञमें भूर्लोक, स्वर्गलोक और आकाशचारी सब लोग ऋषियोंके सहित धर्म्मात्मा प्रजापति दक्षके निकट हाथ जोड़के उपस्थित हुए थे। देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और हाहा हूहू नाम गन्धर्व्व, तथा तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, विश्वसेन आदि गन्धर्व्व, समस्त अप्सरा, आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण आदि सब देवता इन्द्रके सहित वहांपर आये थे। उष्मपा, सोमपा, धूमपा और आज्यपा आदि ऋषि और पितरो तथा ब्रह्माके सहित वहां इकट्ठे हुए थे। ये सब तथा दूसरे बहुतेरे प्राणी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चारों प्रकारके जीव आमन्त्रित होके वहां उपस्थित हुए थे। निमन्त्रित देवतावृन्द निज निज स्त्रियोंके सहित विमानोंमें निवास करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति विराजते थे। दधीचि उन लोगोंको देखकर क्रुद्ध होके बोले, जिस यज्ञमें भगवान् रुद्रदेव पूजित न हों, वह यज्ञ अथवा धर्म्म नहीं है; समयकी कैसी उलटी गति है, सबका ही सर्व्वनाश उपस्थित हुआ है, इस महायज्ञमें महाघोर प्राणिनाश होनेवाला है, मोह वशसे कोई उसे देखने वा जाननेमें समर्थ नहीं होता है। महायोगी दधीचि इतना कहके ध्यानयुक्त नेत्रसे देखने लगे।

ान् महादेव तथा वरदात्री देवीका
भौर देखा कि महात्मा नारद
ः वर्त्तमान हैं। योगीश्वर महर्षिने
इ मन देखकर परम सन्तुष्ट होके
इस यज्ञमें जब भगवान् शङ्कर नहीं
र, तब देवताश्रोंने मिलके एकमत
ासे इसके निकटसे कुछ दूरपर मुझे
। उचित बोध होता है। दधीचि
या निश्चय करके वहांसे पृथक्
कि पहले मैंने कभी मिथ्या वचन
ौर कदाचित कहूंगा भी नहीं;
ऋषियोंके बीच सत्य वचन ही
-अपूज्योंकी पूजा करने और पूज्य
न करनेसे मनुष्य नर हत्याके
ाजन होता है। देखो जगत्पति
यज्ञभोक्ता सर्व्वेश्वर पशुपति इस
हे हैं।

।, हाथमें त्रिशूल लिये जटाजूटधारी
द्रगण विद्यमान हैं, वे मुझे अवि-
परन्तु मैं महादेवको विशेषरूपसे
र सका।

ोले, जब महादेव इस यज्ञमें निम
ए, तब मुझे बोध होता है, सब
ापसमें सलाह करके एकता की
दक्षका यह वृहत् यज्ञ किसी
ध न होगा।

।, मैंने इस सुवर्णपात्रसे विधि और
त हवि स्थापित करके यज्ञपति
ुझे उद्देश्यसे समर्पण किया। ये
ज्ञपति विष्णु यज्ञभाग ग्रहण कर-
ते हैं, इसलिये उनके उद्देश्यसे
विहित है।

ो, मैं किस प्रकार दान, नियम वा
, जिससे कि मेरे पति अचिन्त्य
र इस समय आधा वा तीसरा भाग

नित्य सन्तुष्ट भगवान निज पत्नीकी क्षुब्ध-चित्तसे ऐसा कहते हुए सुनकर बोले, हे कृशोदराङ्गि देवि! क्या तुम मेरी महिमा भूल गई हो; तुम्हारा ऐसा वचन क्या युक्तिसङ्गत हुआ है। हे विशालनयनी! मैं जानता हूं, कि ध्यानहीन असत् पुरुष ही मुझे नहीं जानते, इन्द्रके सहित सब देवता और तीनों लोक तुमसे युक्त मोहके जरिये सब प्रकारसे विमूढ़ हुए हैं। प्रस्तोता साधु लोग अध्वरमें मेरी स्तुति किया करते हैं; साम गान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर सामरूपी मेरी महिमा गाया करते हैं; ब्रह्मविद् ब्राह्मण लोग मेरा यजन किया करते हैं और यजुर्व्वेदी अध्वर्य्युगण मेरे उद्देश्यसे यज्ञभाग प्रदान करनेमें तत्पर हुआ करते हैं।

देवी बोली, अत्यन्त साधारण पुरुष भी स्त्रियोंके निकट निःसन्देह आपकी प्रशंसा और गर्व्व किया करते हैं।

भगवान बोले, हे तनुमध्यमे वरारोहे वरवर्णिनि देवेशि! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूं, इस समय जिसे उत्पन्न करता हूं उसे देखो भगवानने प्राणसे भी अधिक प्यारी निज पत्नी उमासे ऐसा कहके निज बक्त्रसे ज्वालमाला संयुक्त शरीरवाले अनेक प्रकार भुजरूपी शस्त्रधारी महावीर प्रहर्षण एक अद्भुत भूत उत्पन्न किया। वह भूत उत्पन्न होतेही भगवानके समीप हाथ जोड़के बोला, कि "क्या आज्ञा है।" महादेवने उसे दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेकी आज्ञा दी।

अनन्तर महादेवके वक्त्रसे उत्पन्न हुआ सिंहके समान उस वीरने अकेलेही देवोंका क्रोध शान्त करनेके लिये दक्षके यज्ञको खेलकी भांति विध्वंस किया। महाभीमा महाकाली माहेश्वरी मन्युवशसे महादेवकी आज्ञा लेकर उनके चरणमें प्रणाम करके आत्मकर्म्म साक्षित साधन विषयमें उसके सहित अनुगामिनी हुई, पराक्रममें अपने समान बल और रूपसे युक्त

उन भगवान महेश्वरने ही क्रोध स्वरूप धारण किया। अनन्त बल वीर्य्यसे युक्त अशेष पौरुषके आधार महादेव देवीके मन्यु-मार्ज्जनके निमित्त वीरभद्र नामसे विख्यात हुए। उन्होंने निज रोमकूपोंसे रौम्य नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। अनन्तर वे सब रुद्रके समान वीर्य्यवान और पराक्रमशाली रौद्रगण दक्ष यज्ञको विध्वंस करनेके लिये शीघ्रही वहांसे बाहर हुए। सौ हजार भीमरूप महाकाय गणोंने किलकिला शब्दसे आकाशमण्डलको परिपूरित किया। यज्ञस्थलमें उनके उस भयङ्कर शब्दसे देवता लोग भयभीत हुए पर्व्वत टूटने लगे और पृथ्वी कांपने लगी; वायु घूमने हुए चलने लगा और समुद्रका जल उथलने लगा, अग्नि निस्तेज हुई और सूर्य्य प्रभाहीन होगया; ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमण्डल प्रकाशरहित होगये; देव, ऋषि और मनुष्य अप्रकाशित होकर स्थित हुए। इसी प्रकार सब जगत अन्धकारसे छिप गया, महादेवके अनिमन्त्रणसे अवमानित होकर रुद्रगण सबको जलाने तथा उनके ऊपर प्रहार करनेमें प्रवृत्त हुए। किसी किसीने घोर प्रचण्ड मूर्त्तिधारण करके यज्ञ यूपोंको उखाड़ा, कोई यज्ञस्थलके सब लोगोंको मर्द्दन करने लगे। वायुके समान वेगशाली मनोजव गणोंने दौड़के यज्ञपात्रों और दिव्य आभरणोंको चूर्ण कर दिया। उक्त यज्ञपात्र और सब आभरण टूटने-पर आकाशमण्डलमें स्थित तारा समूहकी भांति दिखाई देने लगे। दिव्य अन्न, पीने और खानेकी वस्तुओंकी पर्व्वतके समान राशि तथा घृत, दूधरूपी कीचड़ और दही मट्ठे रूपी जल तथा खाड़ शक्कर रूपी बालूसे युक्त प्रकाशमान षड़्‌रसशाली गुड़कुल्या मनोरम दिव्य क्षीरकी नदियें बहती हुई दिखाई देने लगीं। रुद्रकोपसे कालाग्निके समान महाकाय गण अनेक प्रकार मांस, बहुतसी खाने पीने और दिव्य लेह्य तथा चुष्य वस्तुओंको अनेक प्रकारके रूपसे भोजन करने लगे, किसी किसीने प्रायुक्त भक्ष्य वस्तुओंको लुप्त किया किसीने उठाके फेंक दिया। विविध रूपवाले गणोंने देवताओंको सेनामें सब तरहसे विभीषिका प्रदर्शित करके उसे विक्षुब्ध कर दिया और सुरयोषितोंको गिराके क्रीड़ा करने लगे। रुद्रकर्म्मा वीरभद्रने रुद्र क्रोधके वशमें होकर यत्नपूर्व्वक देवताओंसे रक्षित उस यज्ञको शीघ्र ही भस्म कर दिया और यज्ञका सिर काटके प्रसन्न होकर सर्व्वभूत भयङ्कर भैरव नाद करने लगे। अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, और प्रजापति दक्षने हाथ जोड़के कहा, "आप कौन हैं, यही वर्णन करिये।"

वीरभद्र बोले, मैं रुद्रदेव नहीं हूं, ये भी देवी नहीं हैं, और हम लोग यहांपर भोजन करनेके लिये नहीं आये हैं। देवीको क्रुद्ध हुई जानके सर्व्वात्मा महादेवने क्रोध किया है मैं विप्रेन्द्रगणोंको देखने वा कौतूहलसे यज्ञ नहीं आया हूं, तुम यह निश्चय जानो, कि तुम्हारे यज्ञको विध्वंस करनेके निमित्त आ[illegible] हूं। मैं रुद्रकोपसे उत्पन्न होके वीरभद्र ना[illegible] विख्यात् हूं, और ये भी देवीके क्रोधसे प्र[illegible] होके भद्रकाली नामसे विख्यात् हुई हैं। दोनों महादेवसे प्रेरित होकर इस यज्ञ स्[illegible] उपस्थित हुए हैं। हे विप्रेन्द्र! इसलिये तुम देवोंके देव उमापतिकी शरणमें [illegible] महादेवका क्रोध भी उत्तम है, और दूसरे[illegible] प्राप्त होना भी कार्य्यकारी नहीं है।

धार्म्मिक प्रवर प्रजापति दक्ष वीरभद्रका वचन सुनके महादेवको प्रणाम करके स्तुति वाक्यसे उन्हें प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

दक्ष बोले, "मैं दक्ष प्रजापति हूं, इस समय नित्य, निश्चल, अव्यय, समस्त जगत्‌के ईश्वर, महानुभाव महादेव ईशानका शरणागत होता हूं।" जिस यज्ञमें इकट्ठी की हुई यज्ञीय वस्तुओंके जरिये सब देवता और तपस्वी ऋषिवृन्द बुलाये गये हैं, उसमें विश्वकर्म्मा महेश्वर निम-

सिद्ध नहीं हुए; इसीसे महादेवीने क्रोधित होकर इस यज्ञ स्थलमें निज गणोंको भेजा है यज्ञस्थलके जलने ब्राह्मणोंके भागने और भयङ्कर अग्नि तारासमूहमें प्रविष्ट होनेपर तथा परिचारकोंके शूलसे भिन्न हृदय होके चिल्लाते रहनेपर गणोंने निखात यूपोंको उखाड़के उसहीसे सेवकोंको मारते हुए इधर उधर भगाना आरम्भ किया, मांसलोभी गिद्ध सब ओर उड़ने लगे, उनके पंखकी वायुसे सब लोक कांप उठे, सैकड़ों सियार भयावनी बोली बोल रहे थे, यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंसे यज्ञभूमि भर गई, शत्रुविजयी अनेक नेत्रवाले देवोंके ईश्वर महादेव यत्नपूर्व्वक वक्रसे प्राण और अपान वायुको निरोध करके सब तरफ देखते हुए सहसा अग्निकुण्डसे प्रकट भये। महादेव उस समय सम्वर्त्तक समान सहस्र सूर्य्यका तेज धारण करके हंसकर दक्षसे बोले, कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य सिद्ध करूं? अनन्तर देवगुरुने यज्ञाध्याय श्रवण कराया, तब प्रजापति दक्ष भयभीत, शङ्कित तथा डरवश होकर दुःखित शरीरसे आंखोंमें आंसू भरके हाथ जोड़कर कहने लगे।—दक्ष बोले, हे भगवान! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हों, अथवा यदि मैं आपका प्रियपात्र समझा जाऊं, अथवा मुझपर कृपा करके यदि आप बरदान करें, तो मैंने बहुत समयतक अनेक प्रयत्नोंसे जो जो सब यज्ञकी सामग्री सञ्चय की थी, जो आपकी आज्ञाके अनुसार खायी, पीयी, जलाई, नष्ट विध्वंस और दूर की गई, मेरे यज्ञकी साधन वे सब वस्तु जिसमें व्यर्थ न हों, मैं यही वर मांगता हूं।

धर्म्माध्यक्ष देव विरूपाक्ष त्रिलोचन प्रजानाथ रविनेत्र भगवान दक्षसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा अनन्तर दक्ष महादेवसे वर पाकर दोनों जानु पृथ्वीपर रखके एक सौ आठ नामके सहारे वृषभध्वजकी स्तुति करने लगे।

२८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित पितामह! प्रजापति दक्षने जिन सब नामोंके जरिये महादेवकी स्तुति की थी आप वह सब वर्णन करिये, मुझे उन नामोंके सुननेकी अत्यन्त श्रद्धा होरही है।

भीष्म बोले, हे भारत! अद्भुतकर्म्म करनेवाले महादेवके अप्रकाश्य और प्रकाश्य नामोंको सुनो।

दक्ष बोले, हे जगन्निर्माण क्रीड़ा परायण देवारि बल सूदन देवेश! तुम इन्द्रियों और बुद्धिके बलको विशेष रूपसे स्तब्ध किया करते हो, तुम इन्द्रादि देवताओं और बाण प्रभृति दानवोंसे पूजित हो, तुम सहस्राक्ष अर्थात् सर्व्वज्ञ हो और हम लोगोंसे विलक्षण व्यवहित विषयोंको जानते हो, इसीसे विरूपाक्ष हो; तुम सोम सूर्य्य और अग्नि रूपी तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही लिये त्रिलोचन कहाते हो; तुम यक्षाधिपति कुबेरके ऊपर प्रीति किया करते हो इससे तुम्हें नमस्कार है। हे देव! सब दिशाविभाग ही तुम्हारे कर चरणके समीप विद्यमान हैं, सब दिशामें ही तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख प्रकाशित होरहे हैं; सर्व्वत्र तुम्हारे श्रोत्र (कान) फैले हुए हैं, तुम लोकके बीच सब वस्तुओंमें परिपूरित होकर निवास कर रहे हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण और पाणिकर्ण, इन सात प्रकारके निजगणोंसे अभिन्न हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शतोदर, शतावर्त्त और शतजिह्वरूपी विश्वरूप हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तीनों सन्ध्या, गायत्री हो, जपमें रत मुनि लोग तुम्हारी ही महिमा गाया करते हैं, सूर्य्यकी उपासनामें तत्पर मनुष्य तुम्हें ही सवितृमण्डलाधिष्ठित जानके उपासना करते हैं। मुनि लोग तुम्हें ही शतक्रतु समझते और तुम्हें

सर्व्व उपाधिगम्यजल गत आकाशकी भांति प्रसङ्ग बोध किया करते हैं।

हे समुद्र और आकाशसदृश महामूर्त्ति! तुममें भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा और यजमानस्वरूप अष्टमूर्त्तिके बीच गोसारमें गौओंकी भांति सब देवता ही निवास करते हैं। तुम्हारे इस शरीरमें चन्द्रमा, अग्नि, आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा और बृहस्पतिको देखता हूं। तुम्हीं सब ऐश्वर्य्यसे युक्त होकर सत् और असत् पदार्थोंके कारण स्वरूप हो, तुम ही उत्पत्ति और प्रलयके कारण हो। तुम्हीं वरदाता, भव, सर्व्व और रुद्रदेव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्धक दानवको मारनेवाले पशुपति हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम त्रिजटा, त्रिशीर्ष, त्रिशूलपाणि हो; तुम शास्त्र, आचार्य्य और ध्यानरूप तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही कारण त्र्यम्बक और चन्द्रमा, सूर्य्य तथा अग्निरूपी तीनों- नेत्र प्रकट किये हो, इसीसे त्रिनेत्र कहाते हो, त्रिपुर दानवका वध करनेसे तुम्हारा त्रिपुरघ्न नाम हुआ है, इससे तुम्हें नमस्कार है। सबके संहार करनेमें समर्थ होनेसे तुम्हारा चण्डनाम हुआ है, तुम अपनेमें जगत्को धारण करनेमें समर्थ हो, इसीसे कुम्भ नामसे विख्यात हुए हो, तुम ब्रह्माण्ड स्वरूप हो और ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हो; तुम सबके शासनकर्त्ता होनेसे दण्डी नामसे अभिहित हुआ करते हो, तुम सीधे और टेढ़े हो; तुम दण्डधर और परिव्राजक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम ऊर्द्ध दंष्ट्र और ऊर्द्ध केश हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विशुद्ध हो और जगत् रूपसे विस्तृत हो; तुम विलोहित धूम्रवर्ण और नीलग्रीव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विरूप हो तथा तुम्हारे प्रतिरूपमें कोई भी नहीं है और तुम शिवस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सूर्य्यमण्डल स्वरूप हो और सूर्य्यमण्डलके मध्यवर्त्ती परमेश्वर तथा सूर्य्यके समान पताकायुक्त हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धनुर्द्धारी, शत्रुदमन, दण्डधारी और पर्णचीर पटधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यके जरिये कृतचूड़ और हिरण्यपति हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्तुत, स्तुत्य और स्तूयमान हो, तुम्हीं सर्व्वस्वरूप, सर्व्वभक्ष और सब भूतोंकी अन्तरात्मा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम होता और मन्त्रस्वरूप हो, तुम ही शुक्लवर्ण ध्वज पताकाशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त जगत्के नाभिस्थानीय हो, कार्य्य कारण प्रपञ्चरूप और सब आवरणोंके आवरक हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम कृशनास, कृशाङ्ग कृश और संहृष्ट हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम किलकिला शब्द विशेष स्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शयमान, शयित, उत्थित, अवस्थित तथा धावमान हो, तुम मुण्ड और जटी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सुखवाद्य करते हुए नर्त्तकशील, नदीसे उत्पन्न पद्म पुष्प उपहारमें लुब्ध और गीतवादित्रशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सबसे अवस्थामें ज्येष्ठ और गुणोंमें सबसे अधिक होनेसे श्रेष्ठ हो, तुम बलके अभिमानी देवेन्द्रके प्रमथनकारी हो, तुम कालके नियन्ता और सब कार्य्योंमें समर्थ हो; तुम महाप्रलय और अवान्तर प्रलयस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है भयङ्कर दुन्दभी नक्कारे आदि बाजेकी भांति तुम्हारी हांसी है, तुम अनशन आदि व्रत करते हो, तुम प्रचण्डरूप दशबाहु हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम कपालपाणि और चिताभस्म प्रिय हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम निर्भय और भयङ्कर हो, तथा शम दम आदि व्रतोंके जरिये तुम्हें जाना जा सकता है, इस ही लिये तुमने

गोव्रतधर नाम धारण किया है, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विकृत वक्त्र, खड्गजिह्व दंष्ट्री हो, तुम पक्वान्न वा आम मांसके लोभी हो और तुम्बी-निर्म्मित वीणाप्रिय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम वृष्टिकर्त्ता, धर्म्मङ्कित, धर्म्म, वृद्धिकारी और धर्म्म हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वायु आदि रूपसे नित्य गमनशील नियन्ता और सब प्राणियोंके संहारकर्त्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सबसे वरिष्ठ श्रेष्ठ और वरदाता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम उत्तम माला, गन्ध और सुगन्ध धारण किया करते हो, तुम लोगोंके अभिलषित वरसे भी अधिक वरदान करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अनुरक्त और विरक्त हो, तुम ही ध्यानकर्त्ता तथा अक्षमाली हो, तुम छाया रूप और आतप हो, और तुम कारण रूपसे सर्व्वत्र अनस्युत तथा कार्य्य रूपसे व्यावृत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम्ही अघोर तथा घोररूपी हो तुम सब भयङ्कर पदार्थोंसे भी भयङ्कर हो, तुम शिव, शान्त और शान्ततम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम एकपाद और बहुनेत्र तथा एकशीर्ष हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम रुद्र, क्षुद्रलुब्ध और संविभागप्रिय हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्वर्णकार, लोहकार और भचादि कर्म्मकर्त्ता विश्वकर्म्मा, सिताङ्ग और नित्य शान्त हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम शत्रुओंको शासन करनेके लिये भयङ्कर घण्टा धारण किया करते हो और तुम स्वयं घण्टानाद स्वरूप तथा नादके अभावमें भी तुम नादार्थमठ अर्थात् अनाहत ध्वनि-विशिष्ट हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम यागबलसे एकही बार सहस्र घण्टा निनाद करनेमें समर्थ हो, तुम घण्टामालाप्रिय हो, तुम्हारा प्राणवायुमें ही शब्दकी भांति मन्द्रका हेतु है, इसलिये तुम मन्द्रघण्टा हो; तुम अतिशय प्रसिद्ध गन्ध और कलकल महाध्वनि स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम क्रोधवर्ण्ण हुङ्कारके शान्तिस्वरूप हो, पृथ्वी आदि लोकोंसे अतीत परम शान्त ब्रह्म-स्वरूप हो; तुम ही तुरीय शान्त परब्रह्म हो; तुम क्रोधवर्ज्जित हुङ्कारप्रिय हो; तुम शान्त वा परम शान्त हो, पहाड़ और सब वृक्ष तुम्हारे स्थान है, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम हृदय जिह्वा वक्षस्थल आदि अवदानगत मांस भक्षणमें श्टगाल सदृश लुब्ध हो; तुम यज्ञभोक्तृ स्वरूपसे पाप मोचक हो तुम्हें ही अवलम्बन करके सब लोग पापसे छूटते हैं, तुम ही यज्ञ और यजमान स्वरूप हो, तुम ब्राह्मण तथा अग्निके मुखमें आहुति प्राप्त होनेसे परितृप्त हुआ करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम ऋत्विकादिरूपसे यज्ञ निर्व्वाहकर्त्ता जितेन्द्रिय, सतोमय और रजोमय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तट, तटिनी और तटिनीपति समुद्र स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अन्नदाता, अन्नपति और अन्नभोक्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शिर और सहस्र चरण हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शूल उद्यत करके निवास करते हो और तुम सहस्र नेत्र हो; तुम बालार्क सदृश वर्ण धारण करते और बालकका रूप धारण किया करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम बालक और अनुचर गणोंके रक्षा कर्त्ता, बाल क्रीड़नके स्वरूप हो; तुम वृद्ध लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तरङ्गाङ्कित केश वा मुञ्जसदृश केश धारण करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम षट्कर्म्म परितुष्ट और यजन अध्ययन वा दान, इन तीनों कर्म्मोंमें तत्पर हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वर्ण और आश्रमोंके पृथक् पृथक् कर्म्म समुदायोंके विधिपूर्व्वक निवर्त्तक हो; तुम श्रुत्य, घोष और कलकल ध्वनिस्वरूप हो, इससे तुम्हें

प्रणाम है। तुम श्वेत और पिङ्गल नेत्र, कृष्णा-वर्ण और लाल नेत्रवाले हो, तुम जितश्वास आयुधस्वरूप विदारणस्वरूप और कृश हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें तुम्हारी ही कथा कही जाती है; तुम निरीश्वरवादी सांख्य और ईश्वरवादी पातञ्जल हो; तुम वेदान्त विचार तथा निदिध्यासन योगके प्रवर्त्तक हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम कभी विरथ होकर पर्य्यटन करते हो; जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन चारोंमें ही तुम्हारे रथकी अव्याहत गति हुआ करती है। तुम काले मृगचालका वस्त्र धारण करते हो और सांपका यज्ञोपवीत पहना करते हो इससे तुम्हें प्रणाम है।

हे ईशान! हे वज्रसदृश कठोर शरीरवाले! हे पिङ्गलकेश! तुम्हें नमस्कार है। तुम त्रिलोचन अम्बिकानाथ हो, तुम ही कार्य्य और कारण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम काम स्वरूप कामदाता, कामहन्ता और तृप्तातृप्त विचारी हो; तुम सर्व्वस्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे महाबाहु महासत्व, महाबल, महाद्युति महामेघरूपी महाकाल! तुम्हें प्रणाम है। तुम स्थूल, जीर्णाङ्ग, जटिल और वल्कल वस्त्रधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकाशमान सूर्य्य और अग्निकी भांति जटाविशिष्ट हो, वल्कल और मृगचालका वस्त्र धारण करते हो। हे सहस्र सूर्य्य समान तपमें रत रहनेवाले! तुम्हें प्रणाम है। लोक व्यामाहक सैकड़ों तरङ्गसे युक्त गङ्गाजलसे तुम्हारा शिर आर्द्र हुआ है, तुम चन्द्रमाको बार बार आवर्त्तित करते हो, सब युगल और बादलोंको बार बार आवर्त्तन किया करते हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्न स्वरूप, अन्नपालक, अन्नदाता, अन्नभोक्ता, अन्नस्रष्टा, अन्नपक्ता, पक्कभुक्, पवन और अग्नि हो; तुम ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हो। हे देव देवेश! तुमही चार प्रकारके भूतग्राम हो। तुम स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के स्रष्टा और प्रतिहर्त्ता हो। हे ब्रह्मविदर! ब्रह्मज्ञ लोग तुम्हें ही ब्रह्म कहा करते हैं; तुम मनकी परम योनि हो, आकाश वायु और अग्निके अवलम्ब हो, ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हें ही ऋक् साम और ओंकार स्वरूपसे वर्णन करते हैं।

हे सुरश्रेष्ठ! साम गान करनेवाले ब्रह्मवादी लोग तुम्हें ही हायि हायि, हुवाहायि हुवा हायि, आदि सामगान पूरक स्तोभ वाक्य कहा करते हैं। यजुर्मय ऋग्वेदमय और आहुतिमय वेद हो और उपनिषदोंमें कही हुई सब स्तुति तुम्हारा ही वर्णन किया करती है, तुम ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हो। तुम्हीं बादलसमूह बिजली और सजल व निर्जल घन गर्जन स्वरूप हो; तुम ही सम्वत्सर, ऋतु, मास, मासार्द्ध, युग, निमेष और काष्ठास्वरूप हो, तुम ही ग्रह और नक्षत्र स्वरूप हो, तुम वृक्षोंके गुद्दा, और पहाड़ोंके शिखर, मृगासमूहके बीच बाघ, पक्षियोंमें तार्क्ष्य और भोगियोंके बीच अनन्त हो। तुम सब समुद्रके बीच क्षीरोद यन्त्रोंके बीच सत्य हो। तुम ही सब शास्त्रोंके बीच बज्र और व्रतोंमें सत्य हो। तुम ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय स्वरूप हो। तुम गदा, बाण, शरासन तथा खट्वाङ्गधारी और भर्भर वाद्यधारण किया करते हो; तुमही छेत्ता, भेत्ता प्रहर्त्ता, नेता और सन्तापितारूपसे शास्त्रकारोंके जरिये वर्णित हुए हो। तुम ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह यम, सन्तोष तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन दश प्रकारके लक्षणोंसे युक्त धर्म्म तथा काम स्वरूप हो। तुम ही गंगा आदि सब नदी समुद्र, पल्वल और तालाब हो। तुम ही लता, बल्ली, तृण, ओषधि, पशु, पक्षी और मृगस्वरूप

हो। तुम द्रव्य तथा सब कर्म्मोंके समारम्भ और पुष्प फलप्रद कालस्वरूप हो, तुम ही वेदोंके आदि और अन्त हो; तुम ही गायत्री और ओंकार हो, तुम ही हरित, लोहित, नील, कृष्ण, रक्त, अरुण, कपिल, पिंगल, कपोत, और मेचक, इस दस प्रकारके वर्ण स्वरूप हो। तुम वर्णहीन और सुवर्ण वर्णाकार तथा उपमारहित हो, तुम सुवर्ण नामा और सुवर्णप्रिय हो। तुम ही इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, उपराग, चित्रभानु, स्वर्भानु और भानु स्वरूप हो। तुम ही होम साधक अग्नि, होता, होम्यहुत और प्रभु हो; तुम त्रिसुपर्ण, मन्त्र शिक्षित ब्रह्म और यजुर्वेदमें स्थित शतरुद्रिय हो। तुम सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र और निखिल मंगलके भी मंगल हो। तुम पर्वतके तुल्य अचेतन शरीरको सचेतन करते हो, इस ही लिये गिरिक और हिण्डुक अर्थात् चिदाभास नामसे वर्णित हुए हो। तुम उपाधियुक्त होकर नाशमान हुआ करते हो, इस ही लिये वृक्ष स्वरूप और शुद्ध स्वरूपसे जीवित रहते हो, कभी विनष्ट नहीं होते, इसहीसे जीव स्वरूप हो, तुम पूर्ण और गलित स्वरूप हो, तुम पूर्ण और जलित हो। इसहीसे देहस्वरूप हो। तुम प्राणस्वरूप, और सत, रज, तम तथा अप्रमद अर्थात् प्रमादहीन ऊर्द्ध रेता हो। तुम प्राण, उदान, अपान, समान और व्यान वायुस्वरूप हो। तुम उन्मेष निमेष, क्षुत और जिम्भत हो तुम लोहित वा अन्तर्गत दृष्टि धारण करते हो, तुम महावक्त्र और महोदर हो। तुम सूई समान रोएं और पिंगलवर्ण श्मश्रु धारण करते हो, तुम ऊर्द्ध-केश और अत्यन्त चञ्चल हो। तुम गीतवाद्यके तत्त्वज्ञ और गीतवादप्रिय हो। तुम मत्स्यरूपी जलचर हो, सकारनदी जलमें विचरते हो, इस ही निमित्त वासनाजालसे बद्ध हो। तुम दुर्द्दर, अकाल, काल, सुकाल, अतिकाल, दुष्काल,

और कालस्वरूप हो। तुम मृत्यु और छेदन साधन क्षुरस्वरूप और छेदन योग्य हो, तुम सबके मित्र और शत्रु व्यूहके नाशक हो, तुम मेघकाल, महादंष्ट्र, सम्वर्त्तक और बलाहक हो। प्रकाशवान हो इस ही लिये घण्ड और मायाविलत रूपसे प्रच्छन्न प्रकाश हो, इसहीसे तुम्हारा नाम अव्यक्त है। तुम आप मनुष्योंके कर्म्मफलकी घटना करते हो, इसहीसे घटी और घण्टा धारण किया करते हो, इस ही निमित्त घण्टी कहाते हो। आप स्थावर जगम जीवोंके सहित क्रीड़ा करते हो, इसही कारण चरुचेली और सबके सहित संश्लिष्ट हो, इस ही निमित्त मिलि मिली नाम ऐसा धारण किया है। तुम ब्रह्म और बाह्य जाया स्वाहा हो, तुम ही दण्डी मुण्ड और त्रिदण्डधारी परमहंस हो। तुम चारो युग, चारो वेद और चतुर्होत्र प्रवर्त्तक हो। तुम भगनेत्राङ्कुश, चण्ड तथा सूर्य्यदन्त विनाशन हो। तुम स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, प्रणाम और प्रणामके प्रतिरूप नमोनमः स्वरूप हो। तुम गूढ़व्रती, गुह्यतपी, प्रणव और तारका मय हो। तुम आदि कर्त्ता हो, इस होसे धाता, भौतिक, स्रष्टा हो। तुम विधाता सब वस्तुओंको एकत्रित करके स्थापित करते हो, इस ही कारण सन्धाता, अदृष्ट कर्म्मोंके विधान करनेसे विधाता, सबके अधिष्ठानभूत होनेसे कारणात्मा और तुम्हारा कोई अधार नही है, इस ही लिये अधर हो। तुम ही ब्रह्मा, तपस्या, सत्य ब्रह्मचर्य्य, अर्ज्जुन, भूतात्मा भूतकृत, भूत और भूत भविष्यत् वर्त्तमानके उद्भव-कर्त्ता हो। तुम भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और ध्रुवलोक हो। तुम जितेन्द्रिय होनेसे महेश्वर कहाते हो, तुम ही दीक्षित, अदीक्षित, शान्त, दुर्दान्त और अदान्त नाशन हो। तुम चन्द्रमाके आवर्त्तनकारी मास, युगके आवर्त्तनकारी और सृष्टिके कारण प्रलय स्वरूप हो। तुम कामिनीके अभिलाष, काम, पुत्र,

बीजभूत तबीरे अग्र बिन्दुस्वरूप हो। आप सूक्ष्म, अचल और स्थूल हो; तुम कर्णिकाकी पुष्पमाला प्रिय हो। तुम आनन्द जनक, आनन्दमय और भयङ्कर सुख धारण करते हो। आप ही ससुख दुसुख और सुखविहीन हुआ करते हो। तुम चतुर्मुख बहुमुख और युद्धके समयमें अग्निसुखी होते हो। आप हिरण्यगर्भ और पक्षीकी भांति असङ्ग हो, तुम महोरगपति और विश्वव्यापी बिराट हो। आप अधर्महन्ता, महापार्श्व, चण्डधार और गणाधिप हो। आप कृष्णावतारमें गोपबालकोंके सङ्ग क्रीड़ाके समय गौवोंके समान शब्द करते थे, इसलिये गोनर्द हो; गौवोंको विषजलसे पूर्ण रीतिसे उबारनेसे तुम्हारा नाम गोप्रतार है; गोवृषेश्वर नन्दी ही तुम्हारा वाहन हैं। तुम त्रैलोक्यगोप्ता गोबिन्द हो, तुम इन्द्रियोंके हारस्वरूप और इन्द्रियोंके अगोचर हो। तुम ही श्रेष्ठ, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प और कम्प स्वरूप हो। तुम मृत्युरूपसे दुर्व्वारण तथा दुष्ट विषयोंके नाशक हो, इसीसे दुर्व्विषह हो। तुम युद्धमें दुःसह तथा तुम्हें कोई अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है, इस ही निमित्त दुरतिक्रम हो, तुम्हें कोई भीषित करनेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये तुम दुर्द्धर्ष हो, तुम्हें कोई कपानेमें समर्थ नहीं है, इस ही कारण तुम दुष्प्रकम्प हो, अत्यन्त दुःखसे भी लोग तुम्हारी महिमाकी सीमामें प्रवेश नहीं कर सकते इससे तुम दुर्व्विश हो, कोई तुम्हें जय करनेमें समर्थ नहीं है, इसहीसे दुर्ज्जय तथा तुम स्वयं जयरूपी धर्म्मराज हो। तुम शीघ्र गमन करनेमें समर्थ हो, इसहीसे तुम शश कहाते हो, तुम ही शशाङ्क और शमन हो, तुम ही शीत, तृष्णा, क्षुधा हो, स्वरम आदि व्याधि और आधि धारण किया करते हो। तुम ही आधि व्याधिके नाशक हो, तुम मेरे यज्ञमें मेरे लिये अर्घ स्वरूप हो। तुम ही सब व्याधियोंके आगम और अपगम स्वरूप हो। तुम शिखण्ड पुण्डरीकाक्ष और पुण्डरीक वनालय हो। तुम दण्डधार, विनीत, उग्रदण्ड और दण्डनाशन हो। तुम ही विषग्रपायी, सुरश्रेष्ठ, सोमपा और मरुत्पति हो। हे देव जगन्नाथ। तुम अमृत पीनेवाले देव गणेश्वर-विषग्निपायी मृत्युञ्जय, क्षीरपा और सोमपायी हो। तुम बिपदग्रस्थ लोगोंके त्राता, देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके भी रक्षाकर्त्ता हो। तुम हिरण्यरेता पुरुष हो, तुम ही स्त्री, पुरुष और नपुंसक हो; तुम ही बालक, युवा, वृद्ध और जीर्णदंष्ट्र हो; तुम ही नागेन्द्र और शक्र हो; तुम जगत्की सृष्टि करनेवाले, विश्व कर्त्ता और विश्व संहर्त्ता हो, तुम ही विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंके वरणीय हो। तुम पालन और पोषणके जरिये जगत्का धारण करते हो, इस ही लिये तुम्हारा नाम विश्ववाह है। तुम विश्वरूप, तेजस्वी और विश्वसुख हो, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे दोनोंनत्र हैं, तुम सबके हृदय स्वरूप और पितामह हो, तुम ही महासागर हो; तुम ही वर्णरूपी सरस्वती और वैराग्यबल स्वरूप हो, तुम ही अग्नि और वायु रूपी हो, समस्त अहोरात्र स्वरूप हो; तुम्हारे बिना ब्रह्मा आदि इन्द्र पर्य्यन्त कोई भी निमेष और उन्मेष कर्म्म साधन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

हे शिव! ब्रह्मा, विष्णु और पुराण जाननेवाले ऋषि लोग यथार्थ रूपसे तुम्हारे माहात्म्यको जाननेमें समर्थ नहीं है। तुम्हारी जो सब सूक्ष्म मूर्त्ति हैं, वे हमारे दृष्टिगोचर नहीं होतीं, जैसे पिता निज पुत्रकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम सदा मेरी रक्षा तथा परित्राण करो। हे अनघ! मैं तुम्हारा रक्षणीय हूं, इसलिये तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं। तुम सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त भगवान् हो, भक्तोंके ऊपर कृपा किया करते हो, मैं सदा तुम्हारा अनुरक्त भक्त हूं।

दूससे मेरी रक्षा करो। जो सहस्रों पुरुषोंको अज्ञानसे अभिभूत करके ज्ञेय ज्ञान और ज्ञातभावसे रहित होके सब कार्य्योंके समाप्त होनेपर अकेलाही निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षाका विधान करे। जितेन्द्रिय, प्राण जीतनेवाले, सत्वस्थ और संयतेन्द्रिय योगी लोग जिस योगी स्वरूपको देखते हैं, उस योगात्मा पुरुषको नमस्कार है। जो जटिल और दण्डधारी हैं, जिसका शरीर लम्बादरसे अलंकृत है, और कमण्डलु ही जिसका तूण स्वरूप है, अर्थात् कमण्डलुके जलसे ही जो यक्ष, राक्षस आदिका नाश करता है, उस चतुर्मुख ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है, जिसके केशमण्डलके बीच जो भूतगण अंगकी सन्धियोंमें नदियें, और कुक्षिमें चारों समुद्र वर्त्तमान हैं, मैं उस सलिलशायीका शरणापन्न हुआ हूं। जो रात्रिमें राहुके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमण्डलको और जो स्वयं स्वर्भानु होकर सूर्य्यको ग्रास किया करता है, वह सब भाँतिसे मेरी रक्षा करे। जो सब अत्यन्त शिशु सृष्टिमें प्रविष्ट हुए हैं और जो सब देवता तथा पितर लोग विधिपूर्व्वक यज्ञभाग ग्रहण करते हैं, उन्हें प्रणाम है, वे लोग स्वधा और स्वाहा मन्त्रके जरिये दी हुई हव्यकव्य प्राप्त करके हर्षित होवें; जो अङ्गुष्ठ परिमाण पुरुष अर्थात् जीव देहधारियोंके शरीरमें निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षा करे तथा मुझे आप्यायित करे। जो देहस्थ होके भी रोदन नहीं करता, और देहधारियोंको रुलाया करता है, स्वयं हर्षित न होके भी देहधारियोंको हर्षित किया करता है, उसे सदा प्रणाम करता हूं। जो नदी, समुद्र, पहाड़, गुफा, वृक्षकी जड़, गोष्ठ, कान्तार, गहन, चतुष्पद, रथ्या, चत्वर, तट, हाट, झाड़ और रथशाला, जीर्ण बगीचे और भवन, पञ्चभूत, दिशा, विदिशा तथा चन्द्रमा सूर्य्यके अन्तर्गत होके भी चन्द्र सूर्य्यके किरणमण्डलमें निवास करता है और जिन्होंने रसातलके मध्यगत होके भी ईश्वरके निमित्त वैराग्य अवलम्बन किया है उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूं। जिनकी संख्या और प्रमाण नहीं है तथा किसी प्रकारका रूप नहीं है उन अनगिनत रुद्रगणोंको प्रणाम करता हूं।

हे भूतनाथ! तुम सब भूतोंके सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो; तुम प्राणियोंकी अन्तरात्मा और सर्व्वभूतपति हो, इस ही निमित्त तुम्हें निमन्त्रण नहीं किया, तुम अन्तर्य्यामी और अन्तरात्मा होनेसे साधारण देवताओंकी भांति व्यवहित वा पृथक् भूत नहीं हो, इस ही लिये तुम्हारा मेरे यज्ञमें निमन्त्रण विहित नहीं हुआ। लोग विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे तुम्हारा ही यजन किया करते हैं और तुम ही सबके कर्त्ता हो, इसलिये निमन्त्रित नहीं हुए। हे देव! अथवा मैं आपकी सूक्ष्म मायासे मोहित हुआ था, उस ही कारणसे आपको निमन्त्रण नहीं किया। हे भव! मैं आपका भक्त हूं, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देव! हमारा मन, बुद्धि और हृदय तुममें ही समर्पित है।

प्रजापति दक्ष इस ही प्रकार महादेवकी स्तुति करके चुप हुए भगवान् भी अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर दक्षसे बोले, हे सुब्रत दक्ष! इस स्तुतिसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम हमारे निकटवर्त्ती होगे। हे प्रजापति! तुम मेरे प्रसादसे सहस्र अश्वमेध और एक सौ वाजपेय यज्ञके फलभागी होगे। अनन्तर लोकाधिपति वाक्यवेत्ता महादेव दक्षसे युक्तियुक्त धैर्य्यवचन कहने लगे। हे दक्ष! तुम इस यज्ञमें विघ्न होनेसे दीनता अवलम्बन मत करो, क्योंकि भावी कार्य्य अत्यन्त अप्रतिहार्य्य हैं। मैंने पूर्व्वकल्पमें तुम्हारा यज्ञ विध्वंस किया था, इससे सब कल्पोंकी ही समान रूपताके कारण इस

बार भी तुम्हारे यज्ञका नाशक हुआ। हे सुव्रत! मैं फिर तुम्हें वरदान करता हूं, तुम उसे ग्रहण करो और प्रसन्न बदन होकर एकाग्रचित्तसे उस विषयको सुनो। मैंने षड़ङ्गयुक्त वेद, सांख्य, योग और युक्ति शास्त्र अर्थात् तर्कसे उद्धार करके देवता-दानवोंके दुश्चर अत्यन्त तपस्या की थी; जो षड़ङ्ग वेद, सांख्य और तर्कसे अनधिगत, उपनिषदोंमें प्रकाशित, फल कालमें मङ्गलस्वरूप है, सब वर्ण और आश्रमोंके अधिकृत मोक्षका कारण हैं, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले अप्रकाश अज्ञानी कर्म्मठ पुरुषोंके निन्दित वर्ण धर्म्म और आश्रम धर्म्मोंसे विपरीत कोई कोई ग्रन्थ विशेषमें जो वर्णकर्म्म और आश्रमधर्म्म कहके वर्णित है तथा जो सिद्धान्तज्ञ पण्डितोंके जरिये निश्चित है, और जो परमहंस परिव्राजकोंके जरिये आचरित हुआ करता है, हे दक्ष! मैंने पहले समयमें उस शुभप्रद पाशुपत व्रतको उत्पन्न किया था, उक्त व्रतको करनेसे पुष्कल फल मिलता है। हे महाभाग! तुम्हें उस ही पाशुपत व्रतका फल मिले, तुम अपना मानसिक शोक परित्याग करो। अत्यन्त पराक्रमी महादेव दक्षसे ऐसाही कहके उनके सम्मुख ही पत्नी और अनुचरोंके सहित अन्तर्द्धान हुए, जो लोग दक्षके कहे हुए इस स्तोत्रको कहते वा सुनते हैं, उन्हें कुछ भी अशुभ नहीं होता, परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। जैसे सब देवताओंके बीच भगवान् महादेव वरिष्ठ हैं, वैसे ही सब स्तोत्रोंके बीच यह स्तोत्र उत्तम है, इसलिये यह वेदवाक्य सदृश है, इसमें वेदोंका अर्द्धभाग और पुराणोंका अर्द्धभाग विद्यमान है। जो लोग यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य्य, काम्य, विषय और धनकी इच्छा करते हैं, तथा जो लोग ब्रह्म दर्शनकी अभिलाष किया करते हैं, वे यत्न और भक्तिपूर्व्वक इसे सुने, इसके सुननेसे रोगी, दुःखी, दीन, चोरग्रस्त, भयसे पीड़ित अथवा राज कार्य्यके निमित्त अभियुक्त पुरुष महत् भयसे मुक्त होते हैं। इस स्तोत्रके सुननेसे मनुष्योंको इस ही शरीरसे प्रमथगणकी समता प्राप्त हुआ करती है, और तेजस्वी, यशस्वी तथा पापरहित होते हैं। जिसके गृहमें इस स्तोत्रका पाठ होता है, राक्षस पिशाच भूत और विनायकगण कभी वहां विघ्न नहीं करते। जो स्त्री महादेवमें भक्ति करके ब्रह्मचारिणी होकर श्रद्धायुक्त इस स्तोत्रको सुनती है, वह पितृकुल और मातृकुलमें देवताकी भांति पूजनीय हुआ करती है, जो मनुष्य सावधान होकर सम्पूर्ण स्तोत्र कहता वा सुनता है, वह सब कार्य्योंमें वारम्बार सिद्धिलाभ किया करता है। इस स्तोत्रके कहनेसे मनुष्योंके मनमें जो कुछ कार्य्य चिन्तित अथवा बचनसे वर्णित होते हैं, वे सब सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दम-नियममें तत्पर होकर महादेव, देवी भगवती, कार्त्तिकेय और नन्दीश्वरकी विहित पूजा करते हुए यथाक्रमसे इस स्तोत्रमें कहे हुए नामको ग्रहण करता है, वह अभिलषित अर्थ, काम और भोग्य वस्तुओंको पाता और परलोकमें गमन करके स्वर्गलाभ करता है, कदाचित तिर्य्यग् योनिमें जन्म नहीं लेता, इसे पराशर पुत्र भगवान व्यासदेवने कहा था।

२८४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषकी आत्मामें जो विद्यमान रहता है, उसे अध्यात्म कहते हैं, इसलिये दृश्य वस्तुओंके विवेकमें शास्त्र ही अध्यात्म है, उस अध्यात्मका कैसा रूप है, और जिससे यह अध्यात्म शास्त्र उत्पन्न हुआ है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहले अध्यात्म विषय वारम्बार वर्णित हुआ है, तौभी जब कि तुम मुझसे उक्त विषयको पूछ रहे हो, तब संक्षेपसे

इस सर्व्वज्ञानप्रद ब्रह्म साक्षात्कारका कारण अध्यात्म विषय तुमसे स्पष्ट रीतिसे कहता हूं, तुम उसकी यह वक्ष्यमाण व्याख्या सुनो, पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पञ्चभूत जरा युक्त आदि सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं। हे भरतप्रवर! स्थूल और सूक्ष्म शरीर इस ही पञ्चभूतके कार्य्य हैं; बुद्धि आदि भौतिकगुण परम कारण आत्मामें सदा लीन रहके फिर उत्पन्न हुआ करते हैं, जीव आत्मासे उत्पन्न होके फिर उसहीमें लीन हुआ करता है, जैसे सुषुप्ति अवस्थामें जीवकी उत्पत्ति होती और उसहीमें लय हुआ करती है, वैसे ही महासागरकी लहरकी भांति महाभूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है। जैसे कछुआ अपने अङ्गको पसारके फिर सहजमें ही समेट लेता है, वैसे ही आकाश आदि भूतोंसे सब क्षुद्र जीव सहजमें ही उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जो शब्द प्रसिद्ध होरहा है, वह आकाशका अंश है, शरीरमें जो कठोर अंश है, वह पृथिवीका गुण है; प्राण वायुका अंश है, रुधिर आदि द्रवभाग जलके अंश हैं, और गौरवादि तेजके अंश स्वरूपसे वर्णित हुआ करते हैं; इसलिये स्थावर जङ्गम जीवमात्र ही पञ्चभूतमय हैं, वे सब प्रलयकालमें भूतस्रष्टा पितामहके शरीरमें लीन होकर फिर उसहीसे उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतकर्त्ता अहङ्कारने देहके बीच जिन इन्द्रियोंकी जिस प्रकार कल्पना की है, और देहके बीच स्थित जिन कार्य्योंको वह अवलोकन करता है, उसे सुनो।

शब्द, श्रोत्र और सब इन्द्रिय आकाशयोनिज हैं, रस, स्नेह और जिह्वा जलके गुण हैं; रूप, नेत्र और विपाक ये तीनों अग्नि रूपसे वर्णित हुआ करते हैं। घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये भूमिके गुण हैं; प्राण, स्पर्श और चेष्टा वायुके गुण कहाते हैं। हे राजन्! यही पञ्चभौतिक गुणोंकी व्याख्या हुई। हे भारत! सत, रज और तमोगुण, भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्-काल निज निज विषयस्वरूप निश्चयरूपी कर्म्म-बुद्धि अर्थात् श्रवणेन्द्रियसे शब्द बोध, त्वचासे स्पर्शज्ञान, नेत्रसे रूप देखना, जीभसे रस चखना और नासिकासे सूंघना तथा आघ्राण-विषयके सब कार्य्योंके जानने और "यह वस्तु इस ही प्रकार है, वा नहीं" इस भांतिके संशयात्मक मनोवृत्तिमें मायावच्छिन्न ईश्वर प्रकट होता है। हे भारत! दोनों पांवके तलभागसे ऊपर सिरके निम्नस्थान पर्य्यन्त जो कुछ देखते हो इस सब शरीरके बीच बुद्धि निवास करती है। मनुष्यके शरीरमें जो पञ्चइन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहाता है और धीर लोग बुद्धिको उनके बीच सातवीं गिनते हैं; तथा क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव उक्त इन्द्रियोंके बीच आठवां कहा जाता है। सब इन्द्रियों और क्षेत्रज्ञकी कार्य्यविभागके जरिये खोज करनी उचित है। तम, सत और रजोगुण इन्द्रियनियन्ताको अवलम्बन करनेपर भावरूपसे अभिहित हुआ करते हैं। नेत्रके दृश्य बिषयोंकी आलोचनासे मन संशय करता है, बुद्धि उसे निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ सब बिषयोंमें साक्षीरूपसे माना जाता है। हे भारत! तम, सत और रजोगुण तथा काल और कर्म्म, इन पांच प्रकारके गुणोंसे बुद्धि बार बार बिषयोंमें प्रेरित हुआ करती है; सब इन्द्रियें और तम आदि गुण भी बुद्धिस्वरूप हैं। जब मनके सहित इन्द्रियें बुद्धिरूपसे गिनी गईं तब बुद्धिके अभावमें गुणोंके कार्य्य किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होसकते। बुद्धि जिसके सहारे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं जिससे सुनती है, उसका नाम कान है, जिसके जरिये सूंघती है, वह नासिका है; जिससे रसका स्वाद लेती है, उसे जीभ और जिससे स्पर्शज्ञान करती है, वह स्पर्शेन्द्रियत्वग रूपसे वर्णित हुई है; इसलिये बुद्धि बार बार विकृतिभावको प्राप्त होती है।

बुद्धि किसी विषयकी इच्छा करती है, तब उसका नाम मन हुआ करता है, पांच प्रकारकी इन्द्रियें पृथक् पृथक् रूपसे बुद्धिका अधिष्ठान हुआ करती हैं। जैसे अवयवके दोषसे अवयवी दूषित होता है, वैसे ही इन्द्रियोंके दुष्ट होनेसे बुद्धि भी दूषित हुआ करती है। साक्षिभूत पुरुषमें आध्यात्मिक सम्बन्धसे वर्त्तमान बुद्धि सात्विक आदि सुख दुःख मोहात्मक तीनों भावोंमें निवास करती है, वैसी बुद्धि कभी प्रसन्नता लाभ करती और कभी शोक भोग किया करती है, तथा किसी समयमें सुख दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती; वह भावमयी बुद्धि और सत्वादि तीनों गुणोंको अतिक्रम करके निवास किया करती है। जैसे तरङ्गमाला युक्त सरित्पति समुद्र तटको अतिक्रम न करके निवास करता है, वैसे ही इस प्रकारकी भावभूमिगत बुद्धि भावस्वरूप मनमें ही वर्त्तमान रहती है। उत्पद्यमान रजोगुण बुद्धिका अनुसरण किया करता है। प्रहर्ष प्रीति, आनन्द, सुख; शान्त-चित्तता आदि सात्विक गुण पुरुषके शरीरमें कथञ्चित संयुक्त हुआ करते हैं। दाह, शोक, सन्ताप, मूर्त्ति और क्षमाहीनता आदि रजोगुणके चिन्ह कदाचित कारणवशसे कभी बिना कारणके ही दीखते हैं। अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, असमृद्धि, दीनता, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि विविध तामस गुण कभी कभी उत्पन्न हुआ करते हैं, उनमेंसे जो शरीर और मनके प्रीतियुक्त होता है, उसमें ही सात्विकभाव वर्त्तमान रहता है, इसे ही अवलोकन करे; और जो दुःखकी संश्लिष्टताके कारण आत्माका अप्रीतिकर हुआ करता है, वही रजोगुणका कार्य्य है; इसलिये उस विषयके कोई कार्य्यको आरम्भ न करके केवल उसकी चिन्ता करे; जो शरीर और मनमें मोहसे मिला हुआ तर्क तथा ज्ञानके अगोचर है, उसे ही तमोगुण करके निश्चय करो। यह बुद्धिगत जो सब विषय कहे गये, इन्हें ही जाननेसे लोग बुध हुआ करते हैं; इसके अतिरिक्त और बुधका कौनसा लक्षण है।

अब सूक्ष्म सत्व और क्षेत्रज्ञका कितना प्रभेद है, उसे मालूम करो, इन दोनोंमें एक गुणोंको उत्पन्न करता है, दूसरा उससे विरत रहता है। वे दोनों स्वभावसे ही पृथक् भूत होनेपर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हुआ करते हैं। जैसे मछरी जलसे भिन्न होके भी सदा जलमें सम्प्रयुक्त रहती है सत्व और क्षेत्रज्ञ भी वैसे हैं। सत्वादि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं परन्तु आत्मा सब तरहसे गुणोंको जानता है। गुण संसर्गी मूढ़ मनुष्य समझते हैं, कि आत्माके संग गुणोंका गुण-गुणि भावका सम्बन्ध है, परन्तु यथार्थमें वह नहीं है। आत्मा अपनेमें गुणोंका तदात्म अध्यास न करके केवल उन्हें देखता है, बुद्धि सत्वका अवलम्ब अर्थात् उपादान कारण नहीं है केवल सत्वादि गुणोंके कार्य्यके जरिये उसकी चेतनाशक्ति अध्यस्त हुआ करती है, कारणभूत गुणोंको उत्पन्न करती है, यह महदादि कार्य्यके जरिये अनुमित होता है। कोई पुरुष किसी समयमें ही सब गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं होता, बुद्धिशक्ति ही गुणोंको उत्पन्न करती है, क्षेत्रज्ञ उसका साक्षिमात्र है; इसलिये उस सत्व और क्षेत्रज्ञका इस प्रकारका सम्बन्ध अनादिसिद्ध है बुद्धि इन्द्रियोंके जरिये प्रकाशके कार्य्य अर्थात् अन्धेरेको दूर करती है; अचेतन और अज्ञानयुक्त पुरुष इन्द्रियोंको ही आकाशकी भांति समझते हैं। जो पुरुष इसे ही स्वभाव समझके बुद्धि चालनके जरिये समय बिताता है, उसे शोक वा हर्ष कुछ भी नहीं होता और वह मत्सरताहीन हुआ करता है। जैसे मकड़ी जाला पूरती है, वैसेही बुद्धिशक्ति जिन गुणोंको उत्पन्न करती है, वे स्वभावसिद्ध हैं; इसलिये गुणोंको सूतकी भांति जानना उचित है। गुण

प्रवृत्त होनेपर फिर निवृत्त नहीं होते घट-कपालकी भांति निवृत्त गुणोंकी प्रवृत्ति सूक्ष्म अवयवोंके जरिये प्राप्त नहीं होती। प्रत्यक्षके सहारे परोक्ष पदार्थोंके अवरोध न होनेसे जैसे अनुमानसे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं, वैसे ही कोई कोई प्रवृत्तिका समर्थन करते हैं, दूसरे लोग उसे ही निवृत्त कहा करते हैं। इस ही प्रकार यह बुद्धि और चिन्तामय दृढ़हृदय ग्रन्थि तुड़ाकर शोकहीन तथा संशय रहित होके परम सुखसे निवास करना उचित है।

मनुष्य इस मोह पूरित संसार नदीमें पड़के दुःखोंको भोग करते हैं। मूर्खोंके अगाध जलमें डूबनेसे जैसा दीखता है, जीव भी बुद्धियोग लाभ करके वैसा ही हुआ करता है। अध्यात्मवित् विद्वान् धीर पुरुष संसार जलके किनारे पर उतरके कदाचित् क्लेश नहीं पाते, अकेला ज्ञान ही उन लोगोंके लिये परम नौका स्वरूप है। मूर्ख पुरुषोंको जिस प्रकार महत् भय हुआ करता है, विद्वानोंको वैसा भय नहीं होता। विद्वान् और मूर्खोंमें जैसा प्रभेद दीखता है, विद्वान् पुरुषोंमें परस्पर वैसा प्रभेद नहीं है। सकृतविभात ब्रह्मलोक विद्वानोंके पक्षमें समान है, मोक्ष विषयमें प्रत्ययावृत्तिका तारतम्य नहीं है। ज्ञानी लोग अज्ञान दशामें बहुतसा पाप करने पर भी ज्ञान उदय होने पर उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होते हैं, वे जो कुछ करते तथा जिसे दूषित करते हैं, वे दोनों ही उन्हें अप्रिय नहीं है।

२८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राणियोंको जन्म दुःख और मृत्युसे सदा भय हुआ करता रहता है हम लोगोंको जिस प्रकार उक्त दोनों न हों, आप उसहीका उपाय वर्णन करिये। भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और समंगके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासकी कहा करते हैं। नारद बोले, हे समंग! दूसरे लोग सिर झुकाके प्रणाम करते हैं, तुम वक्षस्थल पर्य्यन्त पृथ्वीसे मिलाकर प्रणाम करते हो और मानो दो भुजाओंसे संसारनदीको तर रहे हो तुम सदा प्रसन्नचित्त और शोकरहित दीखते हो, तुममें थोड़ी भी घबराहट नहीं दीख पड़ती; तुम नित्य तृप्त और स्वस्थ रहके बालककी भांति क्रीड़ा करते हो।

समङ्ग बोले, हे नारद! मैं भूत भविष्यत् और वर्त्तमानकालकी अविद्यमानता विशेष रूपसे जानता हूं; इस ही लिये दुःखित नहीं होता। मैंने लोकके बीच सब कार्य्योंकी गति कार्य्योंके फल और फलोंकी विचित्रताको विशेषरूपसे जाना है, इसहीसे शोक नहीं करता। हे नारद! मूर्ख और अप्रतिष्ठित अर्थात् धन, स्त्री आदिसे हीन पुरुष भी विपद्ग्रस्त और धनवान हुआ करते हैं, अन्धे और उन्मत्त मनुष्य भी जीवित रहते हैं, देखो, हम निरारम्भ होने पर भी जीवित है। आरोग्य शरीरवाले देवता, बलवान और निर्व्वल लोगभी पूर्व्वजन्मके किये हुए कर्म्मोंसे ही जीवित हैं, तब हम लोगोंका तुम सभाजन करो। सहस्रों परिवारयुक्त पुरुष भी जीवित रहते हैं और सैकड़ों परिवार विशिष्ट लोग जीवन धारण करते है; दूसरे लोग बहुतसा शोकभार ग्रहण करके भी प्राण धारण किया करते है और देखो हम भी जीवित हैं।

हे नारद! शोकके मूल अज्ञानके अभाव-निबन्धनसे जब हम शोकाकुल नहीं है, तब हमारे आत्मासे ब्राह्मणादिके अध्यास प्रभृति धर्म्म और लौकिक कार्य्योंका क्या प्रयोजन है। जब कि सुख दुःखकी समाप्ति होती है, तब वे अब हमें घर्षण न कर सकेंगे। जिस कारणसे मनुष्य ज्ञानी हुआ करते हैं, वह ज्ञान ही इन्द्रियोंके मोहादि हीनता रूपी प्र-

मूल कारण है; ज्ञानके अभावमें ही इन्द्रियें मुग्ध और शोकाकुल हुआ करती हैं; इसलिये मूढ़-इन्द्रिय मनुष्योंका ज्ञानलाभ नहीं होता। मूढ़ लोग जो अहंकार किया करते हैं, वही उनका मोहस्वरूप है; मूढ़ मनुष्यके लिये यह लोक और परलोक भी नहीं है, सब दुःख सदा उपस्थित नहीं होते और सदा सुख-लाभकी भी घटना नहीं होती। परन्तु मेरे समान देहाभिमान रहित मनुष्य कदाचित सब भांतिसे विद्यमान संसाररूपी संज्वर स्वीकार नहीं करते, अभिलषित भोग्य वस्तु और सुखके अनुरोधमें बाधित नहीं होते तथा अभ्यागत दुःखकी चिन्ता नहीं करते; इसलिये भोग्यवि-षय आदिकोंकी चिन्ता न करनी ही शोकहीनताका कारण है। योगयुक्त सावधान मनुष्य सुखकी स्पृहा वा अनागत लाभका अभिनन्दन नहीं करते वे बहुतसा धन पाके हर्षित नहीं होते और धन नाश होनेपर भी शोक नहीं करते। बन्धुजन, वित्त, कुलीनता, शास्त्रदर्शन, मन्त्र अथवा पराक्रम, ये कोई भी मनुष्योंको दुःखसे उबारनेमें समर्थ नहीं हैं; मनुष्य शम-दम आदि सदाचारके सहारे ही परलोकमें शान्ति लाभ किया करते हैं। अयुक्त पुरुषोंमें विज्ञान नहीं होता और योगके विना सुख भी नहीं मिलता। प्राण, मन और इन्द्रियोंके संयम करनेकी सामर्थ और दुःखका परित्याग ये दोनों ही सुख उत्पन्न होनेके कारण है। प्रिय वस्तुओंसे हर्ष उत्पन्न हुआ करता है, हर्षसे दर्पकी वृद्धि होती है, अभिमान ही नरकका हेतु हुआ करता है, इसलिये मैंने उसे परित्याग किया है। इस लोकमें जबतक शरीर नष्ट नहीं होता है, तबतक इन सब मोहकर शोक भय और गर्व आदिको सुख दुःखके साक्षि स्वरूपसे देखा करता हूं। मैं अर्थ और काम परित्याग करके तथा तृष्णा और मोहको छोड़के शोकरहित वा आनन्दित होकर इस पृथ्वीमण्डलपर विचरता हूं। मुझे मृत्यु, अधर्म्म अथवा लोभ आदि किसी विषयसे भी अमृत पीनेवाले पुरुषकी भांति इस लोक वा परलोकमें कुछ भय नहीं है। हे ब्रह्मन् नारद! मैंने उत्तम महत् तपस्या करके इसे ही जाना है, इस ही निमित्त देह स्वभाव, वा सर्दी गर्म्मीसे उत्पन्न हुए शोक मुझे दुःखित करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो पुरुष तार्किक, पाशुपत सांख्य, पातञ्जल आदि युक्ति प्रधान शास्त्रोंके यथार्थताको नहीं जानते है, जो सदा सन्देह-युक्त चित्त होकर आत्मदर्शनके निमित्त शम दम आदिका अनुष्ठान नहीं करते, उनके पक्षमें कल्याण क्या है; आप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ईश्वर परम गुरु है, इसलिये उसमें चित्त प्रणिधान, वृद्ध आचार्य्योंकी सदा उपासना और सब शास्त्रोंमें ही मोक्षका प्रतिपादन है, इस ही निमित्त गुरुमुखसे उन सबको सुनना, ये तीनों ही सदा कल्याणरूपसे वर्णित हुए हैं। प्राचीन लोग इस विषयमें देवर्षि नारद और गालव मुनिके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। कल्याणकी इच्छा करनेवाले गालव मुनि मोहक्लम रहित ज्ञान तृप्त, जितेन्द्रिय संयतचित्त विप्रवर नारदसे बोले, हे देवर्षि! इस लोकमें पुरुष जिन सब गुणोंसे सर्व्वसम्मत हुआ करते हैं, आपमें वे सब गुण स्थिररूपसे दीख पड़ते हैं, इसलिये आप परम ज्ञानी हैं, हम लोग सदा विमूढ़ रहके आत्मपदार्थ कुछ भी नहीं जानते, इससे हमारे संशयोंको दूर करनेके उपयुक्त आप ही हैं। जिस प्रकार अग्नि होत्रादि कार्य्योंके सहित शीघ्र ही ज्ञानसाधनमें प्रवृत्ति हो और हमारा जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे हम निश्चय करनेमें

समर्थ नहीं हैं; इसलिये उसे ही वर्णन करना आपको उचित है।

हे भगवन्! जिसके अनुष्ठानमें श्रम नहीं है, वे ज्ञानसाधन सब शास्त्र ही पृथक् पृथक् आचारका वर्णन किया करते हैं। वे सब शास्त्र "यही श्रेय है, यही कल्याणकारी है" ऐसे ही उपदेशसे मनुष्योंको प्रबोधित करते हैं। वे प्रबोधित मनुष्य विविध मार्गसे चलते और जैसे हम लोग निज शास्त्रसे परितुष्ट हैं, वैसे ही वे लोग भी निज निज शास्त्रोंके जरिये परितुष्ट हैं। देखनेसे सन्देह युक्त होकर अधिक कल्याणकारी क्या है, उसे हम लोग निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि सब शास्त्रोंका मत एक हो, तो श्रेय मालूम होसके, परन्तु अनेक प्रकारके शास्त्रोंके अनेक मत होनेसे श्रेय अत्यन्त निगूढ़ भावसे प्रवेशित हुआ है। इस ही निमित्त मुझे बोध होता है श्रेय बहुत सी शङ्कासे परिपूरित है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये मैं आपका निकटवर्त्ती शिष्य हूं, आप मुझे शिक्षा दीजिये।

नारदमुनि बोले, हे पुत्र गालव! शास्त्र चार प्रकारके हैं, तिसमेंसे "धर्म्म नहीं है," यह एक वेदसे वहिर्भूत शास्त्र है। दूसरा शाक्यसिंहका बनाया हुआ चैत्यवन्दनादि रूप धर्म्मशास्त्र है। तीसरा वेदोक्त धर्म्म ही धर्म्म है, दूसरा धर्म्म धर्म्म नहीं है। चौथा "धर्म्माधर्म्मसे अतीत वस्तु मात्र है, और कुछ भी नहीं है" ये सब शास्त्र सङ्कल्पके अनुसार पृथक् पृथक् रूपसे कल्पित हुए हैं। उनमेंसे जो जिसे कल्याणकारी समझता है; उसके पक्षमें वही उत्तम है। और तुम गुरुजनोंके निकटमें उनकी बातके आलोचना करो। उन सब शास्त्रोंमें अनेक भांतिके आत्मज्ञानके उपायभूत सब शास्त्रोंका दर्शन स्वतन्त्र स्वतन्त्ररूपसे देखोगे। शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखनेसे अभिप्रेत धर्म्म आचरण पूर्ण रीतिसे प्राप्त नहीं हो सकता, सूक्ष्मदर्शी धीर पुरुष सरलभावसे देखते हुए शास्त्रोंकी परम गति अवलोकन किया करते हैं। जो परम निश्श्रेयस्वरूप और निःसंशयात्मक है, जो सब प्राणियोंके अभयदाताओंको अनुग्रह और हिंसक मनुष्योंको निग्रहस्वरूप है तथा जो धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंका संग्रह करनेवाला है, मनीषी लोग उसे ही कल्याणकारी कहा करते हैं। पाप कर्म्मोंसे निवृत्ति सदा पुण्यशीलता और साधुओंके सङ्ग सदाचार, यही निःसन्देह कल्याणकारी है। सब जीवोंके विषयमें मृदु व्यवहार, व्यवहार विषयमें सरलता और मधुर वचन यही निःसन्देह कल्याण है। देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्तिसाधन, अन्नदान और सेवकोंको परित्याग न करना ही कल्याणकारी है। सत्य वचन ही उत्तम है, सत्य ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है तो प्राणियोंको अत्यन्त हितकर है, मैं उसे ही सत्यका विषय कहता हूं।

अहंकारका त्याग, प्रमादका निग्रह, सन्तोष और अकेले धर्म्माचरण करना सबसे उत्तम श्रेय कहके वर्णित हुआ करता है। धर्म्मके अनुसार वेद और वेदान्त शास्त्रको पढ़ना और ज्ञानके निमित्त प्रश्न करना, येही निःसन्देह कल्याणस्वरूप हैं। कल्याणकी इच्छावाले मनुष्य केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको कभी अधिक सेवन न करे तथा रात्रिको भ्रमण करना, दिनमें सोना, आलस, चुगलखोरी, मद, अधिक भोजन और बहुत थोड़ा भोजन छोड़ दे। दूसरेकी निन्दाकर अपने बड़ाईकी चेष्टा न करे, निज गुणोंके सहारे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे बड़ाई पानेके लिये यत्नवान होवे, नीचोंसे बड़ाईकी इच्छा कभी न करनी चाहिये। निर्गुण मनुष्य ही अपनेको अधिक सम्मान भाजन समझके अपने गुण और अपने ऐश्वर्य्यकी बड़ाई करके दूसरे गुणवान मनुष्योंके दोषोंको कहके उनकी निन्दा किया

करते हैं। जिन्होंने कभी शिक्षा नहीं पाई, वे अपने अभिमानसे मतवारे होकर महाजनोंसे अपनेको अधिक गुणवान समझते हैं और गुण-युक्त विपश्चित पुरुष किसीको भी निन्दा न करके और अपने उत्कर्षको वर्णन करनेमें विरत होके महत् यश लाभ किया करते हैं। पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध लानेवाला पवित्र वायु किसी प्रकारका वचन न कहके बहा करती है और निर्म्मल सूर्य्य कुछ भी न कहके आकाशमें प्रकाशित हुआ करता है। जिन्होंने ऊपर कहे हुए आत्म उत्कर्ष स्थापन आदि दोषोंको बुद्धिसे आलोचना करके परित्याग किया है और उक्त दोषोंका उल्लेख नहीं करते वे लोकसमाजमें यशस्वी हुआ करते हैं। मूर्ख लोग केवल अपनी प्रशंसासे लोकमें प्रकाशित नहीं होते और कृतविद्य पुरुष गढ़ेमें पड़े रहनेपर भी प्रकाशित हुआ करते हैं। ऊंचे स्वरसे असार-भावसे उच्चारण किया हुआ शब्द भी शान्त होजाता है, परन्तु सुभाषित शब्द मृदु भावसे उच्चारित होनेपर भी अवश्य ही लोकमें प्रका-शित हुआ करता है, जैसे बिभाकर सूर्य्यका-न्तमणिके संयोगसे अपना अग्निरूप प्रदर्शित करता है, वैसे ही गर्व्वित मूढ़ लोग भी असा-रमय बहुभाषणसे अन्तरात्माका क्षुद्र तमरूप प्रकट किया करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे कल्याणको इच्छा करनेवाले मनुष्य नानाशा-स्त्रोंके ज्ञानजनित बुद्धिको अभिलाष किया करते हैं, प्राणियोंको चाहे कितना ही लाभ क्यों न होवे, मेरे विचारमें बुद्धिलाभ ही सबसे उत्तम है।

बिना पूछे किसीसे कुछ बचन कहना उचित नहीं है और अन्यायपूर्व्वक पूछनेसे भी उत्तर देना अनुचित है, ज्ञानवान् मनुष्य मेधावी होनेपर भी जड़की भांति बैठे रहें; तथा स्वधर्म्ममें रत, वदान्य, धर्म्मनिष्ठ साधु लोगोंके समीप बास करनेकी इच्छा करें। जिस स्थानमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें सङ्कर हों; कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वहां किसी प्रकार भी निवास न करे। किसी मनुष्यको इस लोकमें कुछ कार्य्य न करके भी यथा प्राप्त वस्तुओंके जरिये सहजमें ही जीविका निभती है, कोई पुण्यवानके संसर्गमें रहके विमल पुण्य उपभोग करता है, कोई पापीके सङ्गमें रहनेसे पाप भोग किया करता है। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रकिरणके स्पर्श होते ही सर्दी गर्म्मी आदि सुखदुःखका अनुभव होता है, वैसे ही सत् और असत् संसर्गसे भो पाप पुण्य देखा जाता है। जो भोजनको वस्तुओंके रसका स्वाद न लेकर अर्थात् मीठे तीतेका केवल स्वाद न लेके पेट भरनेके निमित्त ही भोजन किया करते हैं, वही विघसाशी है, और जो भक्ष्यवस्तुओंको परीक्षा करके रसका स्वाद लेते हैं, उन्हें ही कर्म्मपाशके वशीभूत जानो; इसलिये इन्द्रियपोषक मनु-ष्योंको कभी संसारसे पार होनेको सम्भावना नहीं है। जिस स्थानमें प्रमाणजनित ज्ञान पूछ-नेवाले पुरुषोंके असत्कार पूर्व्वक पूछनेपर भी ब्राह्मण उनके निकट धर्म्म बर्णन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस स्थानको परित्याग करें, और जिस स्थानमें शिष्य और उपाध्यायके व्यव-हार उत्तम सावधानी तथा यथावत शास्त्रयुक्त हुआ करते हैं, कौन पुरुष उस स्थानको परि-त्याग कर सकता है। जिस देशमें अपने सम्मा-नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य विपश्चितोंके आकाशको बस्तुओंको भांति निरवलम्बन अर्थात् अविद्यमानतामें दोष बर्णन करते हैं, वहां कौन पण्डित वास करनेकी इच्छा करेगा, जिस देशमें लोभी पुरुषोंके जरिये प्रायः सब धर्म्मबन्धन शिथिल होते हैं। जलते हुए चेला-ञ्चलकी भांति उस देशको बिना त्यागे कौन निश्चिन्त रह सकता है। जिस देशमे मनुष्य मत्सरहीन और निःशङ्क होके धर्म्माचरण करते हैं, उस ही पुण्यशील साधुसेवित देशमें निवास

करना उचित है। जिस देशमें मनुष्य अर्थके निमित्त धर्म्माचरण करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य कदापि वहांपर निवास न करे, क्यों कि उस देशमें वसनेवाले सब मनुष्य ही पापकारी होते हैं, जिस देशमें पापकर्म्मोंसे जीवित रहनेकी इच्छा करके लोग निवास किया करते हैं, सर्प-युक्त गृहके समान उस देशसे शीघ्र ही प्रस्थान करना उचित है।

जिस कर्म्मके जरिये पूर्व्व वासनाका सम्बन्ध होके तीव्र दुःखग्रस्त न होना पड़े, जो अपने धनजीवनकी इच्छा न करे, पहलेसे ही उसे पूर्ण रीतिसे ऐसे कर्म्मका अनुष्ठान करना योग्य है। जिस राज्यमें राजा और राजपुरुष लोग कुटुम्बी जनोंके पहले भोजन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस राज्यको त्याग दे। जिस राज्यमें यजन और अध्यापन कार्य्यमें नियुक्त सनातन धर्म्ममें रत श्रोत्रिय पुरुष प्रथम भोजन करते हैं, उस राज्यमें वास करना उचित है जिस राज्यमें स्वाहा, स्वधा और वषट्कार मन्त्र पूर्ण रीतिसे अनुष्ठित होकर सदा वर्त्तमान रहते हैं, वहां किसी प्रकार विचार भी न करके निवास करे। जीविकाके वशमें आकर्षित ब्राह्मणोंको जहां अपवित्र देखे, उस राज्यमें पहुंचने पर भी उसे विष मिले हुए अन्नकी भांति परित्याग करे। जिस राज्यमें प्रियमान मनुष्य बिना मांगे दान करें, चित्त जीतनेवाला पुरुष कृतकृत्य और स्वस्थचित्त होकर वहां वास करे। जिस देशमें अविनीत पुरुषोंके विषयमें दण्डविधान और कृतबुद्धि लोगोंका सत्कार हुआ करता है, उस पुण्यशील साधुसेवित स्थानमें विचरना और निवास करना उचित है। जो लोग जितेन्द्रिय पुरुषोंके ऊपर क्रोध किया करते हैं, और जो साधुओंके विषयमें दुर्व्यवहार करते हैं, उन अविनीत लोभी पुरुषोंके निमित्त महत् दण्ड धारण करना चाहिये। जिस देशमें राजा धर्म्ममें तत्पर होकर धर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, और विषयाभिलाषको त्यागके सर्व्व सम्पत्तिशाली होता है, वहांपर कुछ विचार न करके निवास करना उचित है। जिन राजाओंका ऐसा चरित्र है, वे निज देशवासी प्रजाको कल्याण-युक्त करके शीघ्र ही उन्नतिशाली करते हैं। तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप यह कल्याणका विषय वर्णन किया। आत्माके श्रेयकी प्रधानताको वर्णन करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। इस ही प्रकार जीविकाके उद्देश्यसे जो-लोग सावधान-चित्त होंगे, उनका स्वधर्म्मके सहारे ही इस लोकमें अत्यन्त कल्याण होगा।

२८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मेरे समान राजा पृथ्वी पालनमें नियुक्त होकर किस प्रकार मोक्ष धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ होगा। और सदा कैसे गुणोंसे युक्त होनेसे आसक्ति-पाशसे छूटेगा।

भीष्म बोले, इस विषयमें प्रश्न करनेवाले सगरके सङ्ग अरिष्टनेमिके कहे हुए प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

सगर बोले, हे ब्रह्मन्! किस प्रकारके परम कल्याणयुक्त मनुष्य इस लोकमें सुख भोग करते हैं, और किस भांति शोकाकुल और क्षुब्ध नहीं होते। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डि-तोंमें अग्रगण्य अरिष्टनेमिने सगरकी बात सुनके उपदेशको योग्यता विचार कर यह उत्तर दिया। इस लोकमें मोक्ष सुख ही यथार्थ सुख है, धन धान्य और पुत्र वा पशुओंके पालनमें आसक्त मनुष्य उसे नहीं जान सकते। विषया-सक्त चित्त और अशान्त मन उन मूर्खोंके अज्ञान रोगकी चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मूढ़ मनुष्य स्नेहपाशसे बद्ध हुए हैं, वे

कदाचित मोक्ष पथके पथिक नहीं होसकते। अब स्नेहसे जो सब पाश उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहता हूं, तुम सावधान होकर मेरे समीप सुनो; विज्ञानवान मनुष्य ही उसे सुननेमें समर्थ हैं। कालक्रमसे पुत्रोंके यौवन सीमामें पहुंचनेपर उनका विवाह करके जब उन्हें जीविका निर्व्वाहमें समर्थ जाने तभी संसार बन्धनसे मुक्त होकर यथासुखसे धर्म्माचरण करे। प्रतिपालित पुत्रवत्सला भार्य्याको बूढ़ी जानके यथासमयमें उसे परित्याग करो और परम पुरुषार्थ मोक्ष पदार्थके अन्वेषण करनेमें यत्नवान होजाओ। इन्द्रियोंसे इन्द्रिय विषयोंको यथारीतिसे अनुभव करके सापत्य अथवा निरपत्य ही होके संसार बन्धनसे छूटकर यथा सुखसे विचरो। यदृच्छा प्राप्त विषयलाभमें रागद्वेषसे रहित होके विषयलाभ जनित उत्सुकता परित्याग करते हुए संसारसे मुक्त होकर यथा सुखसे भ्रमण करो। यह तुम्हारे समीप मैंने मोक्षका विषय संक्षेपमें वर्णन किया है, अब उसे ही विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। इस लोकमें जिन सब मनुष्योंने स्नेह बन्धनको तोड़ा है, वेही सुखी होकर विचरते हैं, और जो सब मनुष्य चित्तके विषयोंमें आसक्त है, वेही निःसन्देह विनष्ट होते हैं। चींटी आदि कीड़े भी आहार संग्रह करते हैं, परन्तु वे भी नष्ट होते हैं; इसलिये लोकमें जो पुरुष विषयोंमें अनासक्त हैं, वेही सुखी और जो लोग विषयासक्त हैं, वेहो नाशमान् हैं। तुम्हें यदि मोक्षकी इच्छा हुई हो, तो "यह मेरे बिना किस प्रकार जीविका निर्व्वाह करेगा" स्वजनोंके विषयमें ऐसी चिन्ता करनी उचित नहीं है। जीव स्वयं ही उत्पन्न होता, स्वयं ही बर्द्धित हुआ करता और स्वयं ही सुख दुःख भोग करता तथा मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होता है। मनुष्य पिता माताके संग्रहीत अथवा निज उपार्ज्जित अन्न वस्त्र पाया करता है, इस लोकमें ऐसा विषय नहीं है, जो पूर्व्व जन्ममें न किया गया हो। जीवमात्र ही निज कर्म्मोंके जरिये रचित होकर पूर्व्व जन्मकृत कर्म्म फलोंके विभाग करनेवाले विधाताके जरिये विहित भक्ष्य लाभ करते हुए पृथ्वीपर लोगोंकी ओर दौड़ते हैं जब कि मनुष्य मट्टीके पुतलेकी भांति तथा सदा परतन्त्र है, तब वह स्वयं अदृढ़ स्वरूप होकर किस प्रकार स्वजनोंके भरणपोषणका कारण होगा, जब तुम्हारे बहुत यत्न करनेपर भी तुम्हारे सम्मुखमेंही मृत्यु तुम्हारे स्वजनोंका नाश करती है, तब तुम्हें आत्माको जानना उचित है, स्वजनोंकी जीवदशामें तुम उनके भरण पोषणमें नियुक्त रहते हो; परन्तु उस भरण-पोषणके समाप्त न होते ही तुम स्वयं उन्हें परित्याग करके यमलोकके अतिथि बनोगे; जब तुम मरके स्वजनोंको सुखी वा दुःखी कुछ भी न जान सकोगे; तब तुम्हें इस प्रकार विवेचना करनी उचित है कि मुझे भी लोकान्तरमें जानेपर मेरे पुत्र मुझे न जान सकेंगे, इससे वे मेरा कुछ भी उपकार न करेंगे। तुम्हारे पुत्रोंके बीच कोई आत्मीय निज जरा आदि रोगोंको भोगेंगे और तुम उसे छुड़ानेमें समर्थ न होगे; इस ही प्रकार दूसरे लोग भी तुम्हारे रोगादिकोंको दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसे जानके तुम्हें आत्महितका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें कौन किसके निमित्त निश्चित है, इसे विशेषरूपसे जानके मोक्ष विषयमें मन लगाना चाहिये और फिर धारणा करो।

जिस मनुष्यने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह आदिकी जय किया है, वही सतोगुणकी अधिकतायुक्त मुक्त पुरुष है। जो मनुष्य जूआ खेलने, मद्य पीने, स्त्री सेवन करने और मृगया विषयमें सदा प्रमत्त नहीं होते अर्थात् आत्म विस्मृति पूर्व्वक उसमें आसक्त नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। प्रतिदिन कितना भोजन करना होगा और प्रति रात्रिमें ही कितना भोजन

करेगा; इस प्रकार जो पुरुष भोग विषयमें शोक प्रकाश करते हैं, उन्हें ही दोषदर्शी कहा जाता है। जो सावधान होकर बार बार खोसहसे अपना जन्म होता है, ऐसी ही आलोचना करते हैं, उन्हें ही यथावत् मुक्त पुरुष कहना चाहिये। जो जीवोंके जन्म मरन और जीवनके क्लेशको यथार्थ रूपसे जानते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं। सहस्र कोटि छकड़े पर जो अन्न ढोया जाता है, उसे और पुरुषके आहार परिमित अन्नको जो समभावसे देखते हैं, और प्रमाद वा मद्यमें जिन्हें समज्ञान है, वेही मुक्त होते हैं। जो सब लोगोंको मृत्युसे आक्रान्त देख कर पीड़ित नहीं होते, बल्कि सुखी हुआ करते हैं, और जो थोड़े लाभसे भी सन्तुष्ट हुआ करते हैं, इस लोकमें वे ही मुक्त पुरुष हैं। जठराग्नि, भोक्ता और भोज्य अन्न ही सोम स्वरूप है, यह सब जगत् उन दोनोंसे युक्त है, परन्तु मैं उन दोनोंसे पृथक् हूं, जो लोग इसे अवलोकन करते हैं, और जो सुख दुःख आदि अद्भुत मायिक भावोंसे संस्पृष्ट नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। पलङ्ग और भूमितल जिसके पक्षमें समान तथा चावल और कदन्नमें जिसे तुल्य ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष है। क्षौम वस्त्र और कुशचीर, कौशेय वस्त्र और वल्कल तथा कम्बल और चर्म्ममें जिसे समान ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष है। जो पञ्च-भूतोंसे उत्पन्न हुए सबको आत्म सदृश देखते हैं, और देखके उनके विषयमें वैसाही व्यवहार किया करते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं।

जिन्हें सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय, इच्छा, द्वेष, भय और उद्वेगमें समान ज्ञान रहता है, वेही सब प्रकारसे मुक्त पुरुष हैं। जो रक्त, मूत्र और मलके आधार इस शरीरमें बहुतसे दोषोंको देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो सबके सहारे वलीपतित-संयोग कृशता, विवर्ण और कुशल अवलोकन करते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो कालक्रमसे निज शरीरमें पुरुषत्वकी हानि, दर्शनशक्तिकी उपरति, बधिरता और दुर्व्वलता देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। प्रसिद्ध और प्रभावयुक्त सहस्रों राजेन्द्र इस पृथ्वीको छोड़के परलोकमें गये हैं, इसे जो विचारते हैं वेही मुक्त होते हैं। जो इस लोकमें सब अर्थ दुर्लभ, क्लेश कदम्ब ही सुलभ और कुटुम्बके निमित्त दुःख दर्शन करते हैं, वे मुक्त होते हैं। इस लोकमें अपत्योंमें विगुणत्व और लोकके बीच अधिकांश ही गुणहीन है, इसे देखके कौन पुरुष मोक्षका अभिनन्दन न करेगा। जो मनुष्य शास्त्रीय और लौकिक ज्ञानप्राप्त करके मनुष्य जन्मको असार समझता है, वही सब प्रकारसे मुक्त होता है। गार्हस्थ्य अथवा मोक्ष विषयमें यदि तुम्हारी बुद्धि विह्वल न हुई हो, तो मेरा यह वचन सुनके विमुक्तके समान व्यवहार करो। पृथ्वीपति सगरने अरिष्टनेमिके कहे हुए वचनको पूर्णरीतिसे सुनकर अदृष्टवल आदि ज्ञानज गुणोंसे युक्त होकर प्रजापालन किया था।

२८८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात कुरु पितामह! हमारे हृदयमें बहुत समयसे यह वक्ष्यमाण कौतूहल विद्यमान होरहा है, इसलिये आपके समीप में उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। महाबुद्धिमान् देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्य्यमें रत होकर किस कारण असुरोंके सदा प्रियकर थे और किस कारण अत्यन्त तेजस्वी देवताओंके तेजको क्षय किया था, दानव लोग ही किस लिये देवताओंके संग सदा वैरयुक्त थे। अमरद्युति उशना किस लिये शुक्रत्वको प्राप्त हुए और वह किस प्रकार समृद्धियुक्त हुए थे, आप मेरे समीप यह सब

वर्णन करिये। हे पितामह! वह तेजस्वी शुक्र किस कारणसे आकाशमण्डलके मध्यभागमें गमन नहीं करते इन सब विषयोंको मैं विस्तार पूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं

भीष्म बोले, हे पापरहित। मैंने जिस प्रकार निजबुद्धिके अनुसार इसे सुना है, वह तुम्हारे निकट कहता हूं। हे राजन्! तुम सावधान होकर यह सब विषय ज्योंका त्यों सुनो। यह दृढ़व्रती, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए माननीय मुनि किसी कारणसे देवताओंके अप्रियकारी हुए थे। इस विषयमें यह इतिहास है, कि दानव लोग देवताओंको पीड़ित करके भृगुपत्नीके आश्रममें प्रवेश कर आपदरहित होकर निवास करने लगे। देवता लोग वहां प्रवेश करनेमें समर्थ न होकर सर्व्वव्यापी भगवान हृषीकेशके शरणमें गये। अनन्तर भगवान विष्णुने सुदर्शन चक्रकी धारासे भृगुपत्नीका शिर काट डाला। तब अन्तमें मरनेसे बचे हुए असुरोंने उसके पुत्र भार्गवका आसरा ग्रहण किया। शुक्र मातृवधसे दुःखित होकर असुरोंको अभयदान करके देवताओंके विषयमें अत्याचार करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर जगन्नियन्ता पाकशासन इन्द्र और उनके धनाध्यक्ष यक्ष और राक्षसोंके स्वामी धनद कुबेर विरोध मिटानेके लिये शुक्रके निकट आये। योगसिद्ध महामुनि शुक्रने धनाधिपति कुबेरके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कर योगबलसे ही उन्हें रुद्ध करके उनका सब धन हर लिया, सब धन हरे जानेपर धनपति किसी प्रकार सुस्थ न रह सके; उन्होंने दीनदशासेयुक्त और व्याकुल होके सुरसत्तम शिवके निकट जाके प्रियदर्शन अनेक रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी देवश्रेष्ठ रुद्रदेवके निकटवर्त्ती होकर निवेदन किया, कि योगात्मा भार्गवने योगबलसे मेरे शरीरमें प्रविष्ट होके मुझे रुद्ध करके मेरा समस्त धन हर लिया है। वह महातपस्वी उशना योगबलसे सब धन अपने अधिकारमें करके मेरे शरीरसे निकल गये हैं। हे राजन्! महायोगी महेश्वर धनाधिपतिका ऐसा वचन सुनके क्रोधसे नेत्र लालकर शूल लेकर खड़े रहे। वह उस परमास्त्रको ग्रहण करके "वह कहां है? वह कहां है?" बारम्बार ऐसा ही कहने लगे, उशना उनका अभिप्राय जानके दूरसे उनके दृष्टिगोचर हुए।

योगसिद्ध शुक्र महायोगी महात्मा रुद्रदेवके रोषके विषयको जानके विचारने लगे, कि उनके निकट जाऊं अथवा इस स्थानसे प्रस्थान करूं। वा इस ही स्थानमें स्थित रहूं; अनन्तर योगसिद्ध उशनाने उग्र तपस्याके सहारे महानुभाव महेश्वरके विषयमें विचार करके यह निश्चय किया, कि "मैं शूलके ऊपर निवास करूं, तो महादेव मेरे ऊपर शूल न चला सकेंगे" ऐसा समझके वह शैव शूलके अग्रभागमें स्थित हुए। विज्ञानरूप तपसिद्ध शुक्रको शूलस्थ जानके देवेश महादेवने हाथसे उस शूलको नमित किया। उग्रायुध महादेवने अपरिमित प्रभावयुक्त हाथसे शूलको शरासर रूपसे नमित किया था, इससे ही उनका नाम पिनाकी हुआ। अनन्तर उमापति रुद्रदेवने भार्गवको हाथके बीच देख कर उसे हाथसे ही उठाके मुख बाके उसहीमें डाल दिया। महात्मा भृगुनन्दन उशना महादेवके उदरमें पैठकर वहा विचरने लगे, अन्न आदिकी भांति जीर्ण न हुए।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। महातेजस्वी भृगुनन्दनने महादेवके जठरके बीच किस निमित्त विचरण किया था और वहां किस प्रकार तपस्या की थी?

भीष्म बोले, पहले समयमें महाव्रती महादेवने स्थाणुकी भांति जलके बीच निवास करके तपस्याकी थी; उस तपस्यामें उनका दस हजार अर्व्बुद वर्ष बीत गया। अनन्तर वह दुश्चर

तपस्या करके महाह्रदसे निकले, तब देवश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा उनके समीप उपस्थित हुए। अविनाशी ब्रह्माने शिवके निकट जाके उनसे तप वृद्धि और कुशलका विषय पूछा, वृषभध्वजने तपस्या उत्तमरीतिके हुई है, ऐसा ही उत्तर दिया। अनन्तर सत्य धर्म्ममें रत अचिन्त्य स्वभाव महाबुद्धिमान शङ्करने देखा, कि तपस्याके संयोगसे शुक्रने भी उत्कर्ष लाभ किया है। हे महाराज! महायोगी वीर्य्यवान शुक्र उस तप रूप धनसे युक्त होकर त्रिभुवनमें विराजने लगे। अनन्तर योगात्मा पिनाकपाणिने ध्यानयोगमें समाधि लगाई, उशना भी व्याकुल होके उनके उदरके बीच लीन होरहे। महायोगी भार्गव महादेवके उदरसे निकलनेकी इच्छा करके उदरमें रहके ही उस देवदेवकी स्तुति करने लगे, परन्तु उससे कुछ भी फल न दीख पड़ा। अनन्तर जठरके मध्यवर्त्ती महामुनि उशना विनय वचनसे बोले, हे अरिन्दम! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये! जब शुक्र बार बार इस ही प्रकार कहने लगे, तब महादेव उनसे बोले, "तुम हमारे लिङ्गके मार्गसे निकलो" त्रिदशेश्वर महादेवने ऐसा वचन कहके सब इन्द्रिय द्वारोंको रुद्ध करते हुए लिङ्गद्वार सब भांतिसे शुक्रसे पिहित रहनेसे उसे नहीं देखा, अनन्तर उशना तेजसे प्रज्वलित होकर बाहर निकले, लिङ्गद्वारसे बाहर हुए थे इसहीसे उनका शुक्र नाम हुआ। और लिङ्गसे निकलनेसे ही वह अन्य लोगोंकी भांति आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन करनेमें समर्थ नहीं है। महादेव उस तेजपुञ्जसे प्रकाशमान शुक्रको निकला हुआ देखकर क्रोधयुक्त होकर हाथमें शूल लेकर खड़े हुए। निजपति महादेवको क्रुद्ध हुआ देखकर देवीने उन्हें निवारण किया महादेवके भवानीसे निवारित होनेपर शुक्रने देवीका पुत्रत्व लाभ किया।

देवी बोली, हे देव! जब शुक्र हमारा पुत्र हुआ, तब इसकी हिंसा करनी तुम्हें उचित नहीं है; तुम्हारे उदरसे निकलनेसे कोई कदापि विनष्ट न होगा। हे राजन्! अनन्तर भगवान् महादेव भगवतीके ऊपर प्रसन्न होकर हंसते हुए बार बार यह वचन बोले, इस समय इसकी जहां इच्छा हो, उस स्थानमें गमन करे, अन्तमें महामुनि बुद्धिमान् भार्गवने वरदाता महादेव और जगन्माता उमादेवीको प्रणाम करके निज अभिलषित स्थानमें गमन किया। हे तात भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा, मैंने तुम्हारे निकट उस ही महानुभाव भार्गवका चरित्र वर्णन किया।

२८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहु पितामह! इसके अनन्तर जो कल्याणकारी है, आप उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये आपके अमृत समान वचनको सुनके मुझे किसीसे भी तृप्ति नहीं होती है। हे पुरुषसत्तम! मनुष्य कैसा शुभ कर्म्म करके इस लोक और परलोकमें कल्याण लाभ करता है, आप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें पहले समयमें महा यशस्वी राजा जनकने महात्मा पराशरसे जो प्रश्न किया था, उसे ही मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं सुनो। "इस लोक और परलोकमें जो सब भूतोंके लिये कल्याणकारी है और जो सबका ही ज्ञेय विषय है आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये।" राजर्षि जनकका ऐसा वचन सुनकर सब धर्म्मोंके विधाताको जाननेवाले तपोबलसेयुक्त, मननशील पराशर मुनि राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा करते हुए वक्ष्यमाण वचन कहने लगे। पराशर मुनि बोले, उपार्ज्जित धर्म्मही इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है, मनीषी लोग जैसा कहते हैं, उससे बोध होता है, कि धर्म्मसे श्रेष्ठ वस्तु और कुछ

भी नहीं है। हे नृपसत्तम! मनुष्य धर्म्माचरण करके स्वर्गलोकमें वास करता है, देहधारियोंके योगयज्ञादि कर्म्म हो धर्म्ममय हैं, गार्हस्थ्य आदि आश्रयोंमें निवास करनेवाले सज्जन लोग धर्म्म-निष्ठ होकर इस लोकमें निज निज कार्य्योंको किया करते हैं। हे तात। इस लोकमें जीवन-यात्रा निभनेके उपाय चार प्रकारसे कहे गये हैं ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह, चत्रियोंको कर ग्रहण करना, वैश्योंके लिये कृषि वाणिज्य और शूद्रोंके निमित्त सेवा करनेकी वेतन, मनुष्य जिस स्थानमें निवास करते हैं, जीविका भी यदृच्छा-क्रमसे वहां उपस्थित होती है। प्राणि समूह अनेक प्रकारके पुण्य पापका कार्य्य करके पञ्च-भूतोंमें बिभक्त अर्थात् पञ्चत्व प्राप्त होनेपर उनकी नाना भांतिकी गति हुआ करती है। पापियोंको तिर्य्यग् योनि पुण्यात्माओंको स्वर्ग-बास पाप-पुण्य समान रहनेपर मनुष्य जन्म और तत्वज्ञानके सहारे पाप पुण्यका नाश होनेपर मुक्ति हुआ करतो है। जैसे ताम्रमय पात्रद्रवी भूत सुवर्ण वा रौप्यमें डाले जानेसे सोना तथा चांदीकी भांति दिखाई देता है, वैसे ही जीव पूर्व्वकर्म्मोंके वशमें होकर जन्म ग्रहण करता है बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती; जो बीज ग्रीष्मकालमें पांशुसे ढके रहनेसे नहीं दीख पड़ता, बर्षाकालमें वही अङ्कुर निकलनेसे जाना जाता है। इस ही भांति दृष्टादृष्ट कारणके जरिये सुख आदि उत्पन्न होते हैं, इसलिये पूर्व्व जन्ममें कुछ सुकृत न करनेसे जीव इस जन्ममें सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे सुकृतसे ही देहाधिपत्य अथवा देहक्षय प्राप्त होने-पर मनुष्य सुखोंको भोग करता है। हे तात। देवताओंमें कुछ पुण्य वा पापका लक्षण नहीं दीखता, उस विषयमें अनुमान वा साधन नहीं है। देव, गन्धर्व्व और दानव लोग स्वभावसे ही जन्म ग्रहण किया करते हैं; उनमें कोई कार-णान्तर नहीं है। मनुष्य परलोकमें जानेपर इस लोकके किये हुए सब कर्म्मोंको सदा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते; परन्तु उन कर्म्मोंके फलप्राप्त होनेपर पुण्य-पाप नीति वा अनीतिके जरिये प्रतिपादित चार प्रकारके कर्म्म स्मरण किया करते हैं। "पुण्यकर्म्मसे पवित्रता होती है" इत्यादि वेदाश्रय वचन लोकयात्रा निर्व्वाहके उपाय हुए हैं। हे तात! मनकी शान्तिके लिये लोकायत शास्त्र प्रणेता प्राचीन पुरुष वृहस्पति आदिकी ऐसी आज्ञा नहीं है। नेत्र, मन, वचन और कर्म्मसे मनुष्य चार प्रकारके कर्म्मोंको जिस भावसे किया करता है उस ही भावसे उसकी फलप्राप्ति होती है। हे राजन्! कदा-चित मनुष्य निरन्तर दुःख पाता है, कभी सुख दुःख दोनों ही मिश्रित भावसे भोग किया करता है; कल्याणकारी कर्म्म हो, अथवा पाप कर्म्म हो होवे, उसके निमित्त पुण्य-पापात्मक अपूर्व्वके भोगे बिना कदापि बिनाश नहीं होता, हे तात! संसारमें प्रायः डूबे मनुष्य दुःखोंसे छूटनेपर उनका सुकृत पक्षपात रहित होकर दुष्कृतके अविरोधमें निवास करता है।

हे मनुष्यराज! पुरुष दुःखका नाश करके सुकृत कर्म्मकी सेवा करता है, और सुकृत नाश होनेके अनन्तर दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोग किया करता है, ऐसा ही प्रणिधान करे। दम, क्षमा, धृति, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, व्यसन हीनता और दक्षता, ये दमोस्-खावह अर्थात् पुण्य-पापके समुच्छेद जनित सुख ढोया करते हैं। मनुष्य जीवन पर्य्यन्त सुख वा दुःखमें आसक्त न होवे, बुद्धिमान मनुष्य सदा ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधि करनेमें यत्नवान होवें। मनुष्य दूसरोंके सुकृत वा दुष्कृतको भोग नहीं करता, स्वयं जैसा कर्म्म करता है, वैसा ही फल भोग किया करता है। सुख और दुःखके हेतु पुण्य और पापको तत्वज्ञानके जरिये आत्मामें लीन करके पुरुष ज्ञान पथसे गमन करनेसे अभिलषित वस्तुओंको पाता है,

और जो पुरुष पृथ्वीपर स्थित होकर स्त्री, पुत्र, पशु, गृह, धन और आराम आदिमें आसक्त होता है, वह दूसरे मार्गमें गमन करता है,—वह स्वर्ग वा नरक विषयमें कोई उपकार नहीं करता। दूसरेका जो कार्य्य देखके निन्दा करना होती है, स्वयं उस निन्दनीय कर्म्मको न करे; योगी पुरुष यदि दोषदर्शी हों, तो अवश्य ही उन्हें निन्दनीय होना पड़ेगा। हे राजन्! क्षत्रिय होके कादर, ब्राह्मण होकर सर्व्वभक्षी, वैश्य होके कृषि वाणिज्यके कार्य्योंमें चेष्टा-रहित हीन वर्ण शूद्र होके आलसी, विद्वान होके असद्वृत्त, कुलीन होके वृत्तिहीन, वेदज्ञ होके सत्यसे भ्रष्ट, दुश्चरित्रवाली स्त्री, योगी होके विषयानुरागी, आत्म निमित्त पाचक, मूर्खवक्ता, राजासे रहित राज्य, वेदविहित योगाभ्याससे रहित होके भी प्रजासमूहके विषयमें स्नेह-हीन,—ये सभी शोचनीय हुआ करते हैं।

२६० अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, जो मनुष्य मनोमय शरीरको और इन्द्रिय विषय शब्द स्पर्श आदिको घोड़े रूपी जानकर ज्ञानसे उत्पन्न हुई रश्मि अर्थात् चित्त-प्रतिभाके सहारे परिचालित करते हुए विषयोंको चिन्मय रूपसे अवलोकन करते हैं, वेही बुद्धिमान हैं। हे राज सत्कारयुक्त महाराज! जिसका मन किसी अवलम्बका सहारा न करके निवास करता है, उस वृत्तिहीन पुरुषका ईश्वर प्रणिधान सबसे श्रेष्ठ है, अर्थात् निर्व्विकल्पक समाधिके सहारे निवास करनाही सबसे उत्तम है। चीण कर्म्म-वाले प्रव्रजित साधु पुरुष गुरुकी प्रसादसे उस अवलम्बनको प्राप्त करके निवृत्त होते हैं, वैसा अवलम्बन परस्पर समान पुरुषोंमें नहीं प्राप्त होता। हे मनुजेश्वर! दुर्लभ परमायु पाके ईश्वर सेवनसे उसे नष्ट करना उचित नहीं है। पुण्य, कर्म्मके सहारे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक प्राप्त होनेके लिये मनुष्यमात्रको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। सत, रज और तमोगुणकी ह्रास वृद्धिके तारतम्यके अनुसार कल्पित कृष्ण, धूम्र नील, लाल, पीला और सफेद, इन छःप्रकारके वर्णोंसे जो पुरुष परिभ्रष्ट अर्थात् उच्च वर्णसे नीच वर्ण लाभ करता है, वह कदापि सम्मान पानेमें समर्थ नहीं होता और जो लोग उच्च वर्ण लाभ करते राजस कर्म्मोंको सेवन नहीं करते, वेही सम्मान भाजन होते हैं इसलिये मनुष्य पुण्यकर्म्मसे ही श्रेष्ठ वर्ण लाभ किया करते हैं और पाप कर्म्मसे दुर्लभ वर्णको उत्कर्षता न प्राप्त कर सकनेसे बहुतेरे लोग आत्माको अनेक नरकोंमें डुबाते हैं। मनुष्य अज्ञानसे प्राप्त हुए दुःखको तपस्यासे दूर करे, जानके किया हुआ पाप कर्म्म केवल पापफलको ही उत्पन्न किया करता है; इसलिये परिणाममें दुःख ही जिसके फलरूपसे उत्पन्न होता है, वैसे पापकर्म्मका अनुष्ठान करना कदापि उचित नहीं है; पापयुक्त कर्म्मसे यदि महाफल उत्पन्न हो, तौभी जैसे पवित्र पुरुष चाण्डालका स्पर्श नहीं करता वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य उस पाप कर्म्मके अनुष्ठान करनेमें विरत रहे। पापकर्म्मका फल कुत्सित कष्ट मात्र ही दीख पड़ता है; पापके वशमें होकर विपरीत दृष्टिवाला मनुष्य देहादिको ही आत्मा जानता है। इस लोकमें जिस मूढ़ मनुष्योंके अन्तःकरणमें वैराग्यका सञ्चार नहीं होता, मरनेपर भी उसे अत्यन्त ही नरक यन्त्रणासे दुःख उत्पन्न हुआ करता है। जो वस्त्र स्वयं श्वेत है, वह यदि विपरीत रङ्गसे रङ्गा जावे, तो समय विशेषमें सफेद होसकता है; परन्तु काले रंग मल्लातकादिसे रगा हुआ वस्त्र कभी परिशुद्ध नहीं होता। हे मनुजेन्द्र! इसलिये मेरा यही मत है, कि प्रयत्नके जरिये किस पापसे पवित्रता लाभ की जा सकती है, और किस पापसे पवित्रता

नहीं प्राप्त होसकती, तुम इसहीको बिचारो। जो पुरुष जानके पापाचरण करके शेषमें शुभ-कर्म्मोंका अनुष्ठान करता है, वह प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पापपुण्य दोनोंके ही फलको पृथक् रूपसे भोग किया करता है, जानके किया हुआ पाप किसी भांति भी नष्ट नहीं होता।

यदि मनुष्य बिना जाने हिंसा करे, तो वेद-शास्त्रकी अनुसारिणी अहिंसाके जरिये उसके पापकी शान्ति होती है; ब्रह्मवादी लोग ऐसा कहा करते हैं, इसही प्रकार जानके किया हुआ पापकर्म्म अहिंसाके जरिये शान्त नहीं होता; वेद शास्त्र और स्मृतियोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका ऐसा ही मत है कामना वा अका-मनासे किया हुआ कर्म्म चाहे थोड़ा हो चाहे अधिक वह बिना भोगे नष्ट नहीं होता, परन्तु मैं देखता हूं कि जो किया हुआ कर्म्म विद्यमान रहता है, वह पुण्य कर्म्म रूपसे प्रकाशित होने पर पापके जरिये कभी नहीं छिपता। इस लोकमें सब सूक्ष्मकर्म्म "इसे इस प्रकारसे करे" इस भांति परामर्श करके अथवा "इसे इसभांति करना चाहिये" ऐसा निश्चय करके स्थूल सूक्ष्मके तारतम्यके अनुसार सुख दुःख आदि फल उत्पन्न हुआ करते हैं; अव्यभिचारी नर-कावह कर्म्मका फल थोड़ा भी होनेसे वह सेवन किया जाता है। हे धर्म्मज्ञ! उग्रकर्म्मसे अज्ञा-नकृत कर्म्म सम्पादित हुआ करते हैं, जैसे जान-कर किये हुए कर्म्मोंका अवश्य फल उत्पन्न होता है, अज्ञानकृत कर्म्म भी वैसे ही हैं। देवता और मुनियोंके जरिये सब कर्म्म विहित हुए हैं, धर्म्मात्मा मनुष्य उन कर्म्मोंका आचरण अथवा उसे सुनके निन्दा न करें, क्योंकि अलौ-किक कर्म्म कदापि मनुष्योंके अनुष्ठेय नहीं है। हे राजन्! आप जिन कर्म्मोंके करनेमें समर्थ हो, मनहीमन उसका अनुशीलन करके जो लोग शुभ कर्म्म करते हैं, वेही कल्याण लाभ किया करते हैं।

हे राजन्! नवीन कपालमें डाला हुआ जल नष्ट होता है और उस जलके सम्बन्धसे कपाल भी गल जाता है और परिपक्व कपालमें डाला हुआ जल अनायास ही स्थित रहता है; जैसे जलयुक्त पात्रमें और जल डालनेसे पात्रमें जलकी वृद्धि होती है, वैसे ही इस लोकमें बुद्धि-युक्त कर्म्म चाहे सम हो वा विषम हो पात्रके अनुसार पवित्रतायुक्त हुआ करते हैं। पाप पुण्यमें जो उदासीन हैं वैसे तेजस्वी पुरुषके कर्म्म कदापि हिंसा नहीं कर सकते, निस्ते[ज] मनुष्य ही पापसे पराभूत हुआ करते हैं।

शत्रुओंके उन्नत होनेपर भी उन्हें ज[य] करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है, प्रजासमूहको पूर्णरीतिसे अवश्य पालन करना चाहिये, अनेक भांतिके यज्ञसे अग्निचर्य्या अत्यन्त अनुष्ठेय है [मध्य] अवस्थाके परिणाममें अथवा मध्य अवस्थामें संसारसे विरक्त होकर जङ्गलके अवलम्बसे निवास करना उचित है। हे नरेन्द्र! दमयुत पुरुष धर्म्मशील होकर जीवोंको अपने समान देखे और वह अपनी शक्तिके अनुसार सत्य व सदाचारके जरिये सहजमेंही बड़ेपुरुषोंके समान करनेमें यत्नवान होवे।

२९१ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, इस लोकमें कौन किसका उपकार करता है। कौन किसे दान किया करता है, यह प्राणि अपनी तृप्तिकेलिये आप ही सब कर्म्मोंको करता है, दूसरेका प्रयो-जन सिद्धिके लिये कोई भी किसी कर्म्मको नहीं करता। "माताको देवी समान जानो, पिताको देवता समान मान्य करो" इत्यादि वेदवाक्यसे देवता समान आराधित माता पिता अवश्य ही पुत्रका उपकार करते हैं,—ऐसी आशङ्का उप-स्थित होनेपर भी जब कि यह देखा जाता है, कि अनुपकारी माता पिताको भी लोग परि[त्याग]

त्याग करते हैं, तब यह निश्चय मालूम होता है कि कोई किसीका उपकार नहीं करता। मनुष्य जो गौरवके लिये पिता माताकी आराधना करता है, वह अपनेही ऐहिक और पारलौकिक हितके निमित्त, पिता-माताके हितके लिये नहीं करता। सहोदर भाई भी जब स्नेह हीन होता है, तब उसेभी जब कि मनुष्य त्याग देते हैं, तब दूसरे सामान्य लोगोंकी बातही क्या है। विशिष्टोंका विशिष्टसे दान वा प्रतिग्रह तुल्य है, सम्प्रदाता ब्राह्मणका दान प्रयुक्त दोनोंसे पुण्ययुक्त है। न्यायसे उपार्ज्जित धनकी न्यायानुसार बढ़ाके यत्नपूर्व्वक धर्म्म, अर्थ की रक्षा करनी उचित हैं, यही शास्त्रीय निश्चय है। धर्म्मार्थी मनुष्य नीच कर्म्मसे धन उपार्ज्जन न करे, शक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको सिद्ध करे, धन सम्पत्ति स्मरण न करे। निर्द्धन मनुष्य सावधान होकर शक्तिके अनुसार यदि भूखे अतिथिको ठण्ढा वा अग्निसे गर्म्म किया हुआ जल प्रदान करे, तो वह अन्नदानका फल भोग किया करता है।

फल मूल और पत्रसे मुनियोंकी अर्च्चना करके रन्तिदेवने इस लोकमें ही सिद्धिलाभ की थी। पृथ्वीपति शैव्यने भी उस ही प्रकार फल-पत्रके जरिये सूर्य्यदेवको सन्तुष्ट करके उस ही फलसे परम स्थान पाया, मनुष्य देवता, अतिथि पितर, पत्र और आत्माके निकट ऋणी होता है, इसलिये उनसे अऋणी होवे। स्वशाखोक्त वेदाध्ययनसे महर्षियों, यज्ञसे देवताओं, श्राद्ध और दानसे पितरों, सत्कारसे अतिथियों वेदशास्त्रमयी श्रवण मनन आदि वाणी पञ्चयज्ञसे शेष बचे अन्नके भोजन तथा जीवोंपर दया करनेसे आत्मा और जातकर्म्म आदि कार्य्योंकी यथावत् निर्व्वाह करके पुत्रोंसे अऋण होवे। मुनि लोग निर्द्धन होके भी प्रयत्नके सहारे सिद्ध हुए हैं, उन लोगोंने वैदिक मन्त्रसे अग्निमें आहुति देकर सिद्धि लाभ की है, हे महाराज! ऋचीकपुत्र ऋग्मन्त्रके जरिये यज्ञभागि देवताओंकी स्तुति करके विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। उशनाने देवोंके देव महादेवको प्रसन्न करके शुक्रत्व लाभ किया; वह देवी भगवतीकी स्तुति करके यशस्वी होकर आकाशमण्डलमें विराजते हैं। असित, देवल, नारद, पर्व्वत, कक्षीवान्, जमदग्निपुत्र राम, बुद्धिमान ताण्ड्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्रवा, कुण्डधार और श्रुतश्रवा, ये सब महर्षि लोग तथा सावधानीसे ऋग्मन्त्रके जरिये बुद्धिमान् विष्णुकी स्तुति करके तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ की थी, भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपूज्य पुरुष भी पूज्य हुए हैं, इसलिये इस लोकमें जुगुप्सित कर्म्म करके कोई अपनी उन्नतिकी कामना न करे। धर्म्मसे जो सब अर्थ प्राप्त होता है, वही सत्य हैं और अधर्म्मसे जो उपार्ज्जित किया जाता है, वही निन्दित है; इसलिये धनकी अभिलाषसे इस लोकमें कोई नित्य धर्म्मको न त्यागे। जो धर्म्मात्मा आहिताग्नि हैं, वेही पुण्यात्माओंके बीच श्रेष्ठ हैं। हे प्रभु राजेन्द्र! वेदोंमें दाक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय, ये तीनों अग्नि निवास करती हैं। जिनकी क्रिया नष्ट नहीं होती, वे ब्राह्मण भी आहिताग्नि होते हैं। अनाहिताग्नित्व और निष्क्रिय अग्निहोत्र कदापि कल्याणकारी नहीं है। हे नरश्रेष्ठ! अग्नि ही आत्मा, अग्नि ही माता और जन्मदाता पिता है, तथा अग्नि ही गुरु है; इसलिये यथारीति अग्निकी परिचर्य्या करनी चाहिये। जो अभिमान त्यागके वृद्धोंकी सेवा करते हैं, वे कामहीन बुद्धिमान मनुष्य दयार्द्र दृष्टिसे सब जीवोंको देखा करते हैं। जो आलस रहित, धर्म्मपरायण और हिंसाहीन होते हैं, वे आर्य्य पुरुष ही इस लोकमें साधुओंके जरिये पूजित हुआ करते हैं।

२६२ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंसे हीनवर्ण शूद्रकी वृत्ति ही उत्तम है, क्योंकि शूद्रकी निर्द्दिष्ट सेवावृत्ति प्रीतिपूर्व्वक उपस्थित होकर सेवकोंको सदा धर्म्मिष्ठ किया करती है। शूद्रकी यदि पितृ-पितामह आदि क्रमसे कोई निर्द्दिष्ट वृत्ति न रहे, तौभी वह त्रैवर्णिक सेवाके अतिरिक्त वृत्त्यान्तरकी खोज न करे, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करनेमें ही नियुक्त होवे। सब अवस्थामें ही सदा धर्म्मदर्शी साधुओंका संसर्ग ही शोभा पाता है, असत् संसर्ग कभी न करना चाहिये,—यही मेरी विवेचना होती है। जैसे उदयाचल पर स्थित मणि सुवर्णादि सूर्य्यकी सन्निकर्षतासे प्रकाशित होते हैं वैसे ही सत्संसर्गसे नीच वर्ण शूद्र भी ज्ञानलाभ करके प्रकाशित हुआ करता है। जैसे श्वेत वस्त्र जिस रङ्गसे रङ्गा जाता है उसका रूप भी वैसा ही हुआ करता है, इसे ही तुम मेरे समीप मालूम करो; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, दोषोंमें कदापि अनुराग न करे, इस लोकमें मनुष्योंका चञ्चल जीवन अत्यन्त अनित्य है। बुद्धिमान् मनुष्य चाहे सुख अथवा दुःखरूपी किसी अवस्थामें निवास क्यों न करें, यदि वे शुभ कार्य्योंका सञ्चय करते हैं, तो अवश्य ही इस लोकमें कल्याण भाजन होते हैं। धर्म्मसे पृथक् कर्म्म यदि महाफल प्रदान करे तौभी बुद्धिमान मनुष्य उसे सेवन न करे; क्योंकि इस लोकमें वैसा कर्म्म हितकर कहके वर्णित नहीं हुआ है। प्रजासमूहके पालन विषयमें उदासीनता युक्त जो राजा दूसरेको सहस्र गऊ हरके दान किया करता है, वह नाम मात्रका फलभागी तस्कर होता है। स्वयम्भू पहले सब लोक सत्कृत धाताको उत्पन्न करते हैं। धाता सब लोकोंके धारण करनेमें रत होकर पर्ज्जन्यदेव नाम पुत्रको उत्पन्न करते हैं। वैश्य जाति उनकी पूजा करके जीविकाके लिये कृषि वाणिज्य और पशुपालन आदि किया करती है। क्षत्रिय प्रजा पालन करें और ब्राह्मण लोग हव्यकव्य प्रयोगमें निपुण होकर जीविका निबाहें। शूद्र लोग निर्म्मार्ज्जन अर्थात् भूमि-शुद्धि आदि कार्य्य करें; इस ही भांति सब कोई स्वकर्म्म साधन करनेसे धर्म्मभ्रष्ट नहीं होते। हे राजेन्द्र! धर्म्म नष्ट न होनेसे सब प्रजा सुखी रहती है, उन लोगोंके सुखके निमित्त सुर लोकमें देवता लोग प्रसन्न होते हैं; इससे जो राजा स्वकर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, जो ब्राह्मण वेद पढ़ता है, जो वैश्य कृषि वाणिज्य पशुपालन आदिसे धन उपार्ज्जन रत रहता है, और जो शूद्र सदा सावधा होकर तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहते वे सब कोई लोकसमाजमें सम्मानित होते हैं हे मनुजेन्द्र। इसमें अन्यथा करनेसे मनुष्य स्वधर्म्ममें च्युत होता है। प्राण सन्ताप पूर्व्वक वी वराटिका दान करनेसे भी महाफल हु करता है, और अन्यायसे उपार्ज्जित सहस्र ध दान करनेसे भी कुछ फल नहीं होता। नरनाथ! जो ब्राह्मणोंका सत्कार करके जि प्रकार दान करते हैं, वे सदा वैसा ही उर्ज्ज स्वल फलभोग किया करते हैं। जो दाता स्वय पात्रके निकट जाके उसकी तुष्टिके निमित्त दान करता है, पण्डित लोग उस दानको अभिष्टुत अर्थात् सब प्रकारसे प्रशसित कहते है, और मांगनेपर जो दान किया जाता है उसे मध्यम दान कहा करते हैं, तथा अवज्ञा वा अश्रद्धासे जो दान किया जाता है, सत्यवादी मुनि लोग उसे ही अधम दान कहते है। संसारसमुद्रमें प्रायः डूबते हुए मनुष्य विविध उपायके सहारे उससे पार होनेकी चेष्टा करें, और संसारजालसे जिस प्रकार छुटकारा मिल सके, मनुष्य मात्रको ही उस विषयमें चेष्टा करनी उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियोंके जीतने और क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे शोभित होता है।

वैश्य धनउपार्ज्जन करने, और शूद्र सदा कार्य्योंमें निपुणता प्रकाशित करनेसे शोभा पाता है ।

२९३ अध्याय समाप्त ।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मणोंको दानसे, क्षत्रियोंको युद्ध जीतने, वैश्योंको न्यायसे प्राप्त होने और शूद्रोंको सेवाके जरिये मिला हुआ धन अत्यन्त थोड़ा होनेपर भी प्रशंसित होता है, और धर्म्मार्थमें लगानेसे वह महाफलजनक हुआ करता है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा सेवा करनेवाले पुरुषको ही शूद्र कहा जाता है। वृत्तिहीन ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य धर्म्मका आचरण करनेसे पतित नहीं होता; परन्तु शूद्रका धर्म्म अवलम्बन करनेसे उस ही समय पतित होता है। अपने धर्म्ममें रहके जीविका लाभमें असमर्थ शूद्रके लिये वाणिज्य, पशुपालन और चित्र खींचना आदि शिल्प कर्म्मके जरिये जीविका निर्व्वाह विहित है; क्यों कि उक्त कार्य्य सेवामें ही परिगणित हुआ करते हैं। स्त्रीका वेष बनाके रङ्गभूमिमें जाना, रूप पलटना (बहुरूपी) अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र पहनके चर्म्ममय आकारके जरिये राजा और सेवकोंके आचरणको प्रदर्शित करना, मद्यमांस बेचके जीविका निभाने, लोहा और चमड़ेको बेचना, इन सब निन्दित कर्म्मोंको जिनके पूर्व्व पुरुषोंने कभी नहीं किया, उन्हें किसी प्रकार भी उसे न करना चाहिये; और जिनके पूर्व्व पुरुषोंने उक्त निन्दित कर्म्मोंको किया है, अध-स्तन (नीचेके) यदि कोई पुरुष उक्त कर्म्मको छोड़ दे, तो उन्हें बहुत ही धर्म्म हुआ करता है ऐसी ही जनश्रुति है। इस लोकमें बहुतसे धन वस्त्र आदि पाके मदोन्मत्त चित्त होकर जैसे जो पुरुष पापाचरण करता है, वैसा [illegible] कहे हुओंके जरिये अनुष्ठित होनेपर भी [illegible] सब भांतिसे अनर्थ्यो कार्य्य रूपसे वर्णित हुआ करता है। पुराणप्रबन्धमें सुना जाता है, कि प्रजासमूहने धिगदण्ड राजाके शासनके अनुसार जितेन्द्रिय, धर्म्मपरायण और न्याय धर्म्मानुयायी वृत्तिको अवलम्बन किया था। हे राजन्! इस लोकमें मनुष्योंके लिये धर्म्म ही सब समयमें श्रेष्ठ है; पृथ्वीमण्डलपर धर्म्मवृद्ध मनुष्य ही केवल गुणोंकी सेवा किया करते हैं। हे तात प्रजानाथ! काम क्रोध आदि असुर-स्वभाव वैरीवृन्द उस धर्म्मकी अवमानना करते थे। उस समय उनके क्रमसे वर्द्धित होते रहने पर प्रजा उनमें अनुप्रविष्ट हुई, तब प्रजा समूहमें धर्म्मनाशक दर्प उत्पन्न होने लगा; दर्पसे अभिमान और उसके अनन्तर उन लोगोंमें क्रोध उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे क्रोधयुक्त प्रजावृन्दका चरित्र लज्जाकर होगया। हे राजन्! अनन्तर उन लोगोंकी लज्जा नष्ट हुई, अन्तमें मोह उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजा मोहमें फंसकर अवमर्द्दनके जरिये यथा सुखसे वृद्धि लाभ करती हुई पहलेकी भांति आपसमें परस्परकी तत्वावधान करनेमें विरत हुई। राजा धिगदण्ड उन सब समुद्धत प्रजाको शासन करनेमें असमर्थ हुए। तब वे सब प्रजा ब्राह्मणोंकी अवमानना करके देवस्वभाव शम दम आदिसे सम्मुखीन हुईं। उस समय पहले कहे हुए देवता लोग माया वशसे बहुरूपधारी, नित्य ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंमें श्रेष्ठ वीरवर देवेश्वर शिवके शरणमें गये, शिवका दर्शन करनेसे उन लोगोंके तेजकी वृद्धि हुई, तब उन्होंने एक बाणसे ही दानव स्वभाववाले आकाशगत क्रोध आदि प्रजा समूहको स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके सहित पृथ्वीपर गिरा दिया। उक्त काम क्रोध आदि दानवोंका जो भीमपराक्रमी भयङ्कर महामोह नाम अधिपति था, वह देवताओंके पक्षमें भयानक होनेसे शूलपाणि महादेवके जरिये मारा गया। महामोहके मारे जानेपर मनुष्योंने निज निज भाव लाभ

किया और पह्लीकी भांति वेदशास्त्र प्राप्त हुए आदि सृष्टिमें जैसे मरीचि आदि महर्षि लोग एकमात्र वेदनिष्ठ होकर तत्वज्ञानसे अनन्तर जीवन मुक्त हुए थे, उस समयमें मनुष्योंका अन्तःकरण उस ही प्रकार अनादि सदासनासे एकमात्र वेदनिष्ठ हुआ था। अनन्तर सप्तर्षि वेद स्वरूप इन्द्रियोंके राज्यरूप वशिष्ठ विषयमें हृदयाकाश मय स्वर्ग लोक स्वरूप चैतन्यके जरिये शरीर वा इन्द्रियोंके निवास प्रवर्त्तक चिदात्माको अभिषिक्त करके मनुष्योंके शासन कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर सप्तर्षियोंसे उर्द्ध लोकमें स्थित अवयव उपचयसे रचित विपृथु नाम पार्थिव अर्थात् थिर स्थानमें सहस्रदल कमलपर अधिष्ठित परमात्मा और योगविघ्न षट् चक्राधिपति गणेशादि रूप विनाशि क्षत्रिय लोग पृथक् पृथक् मण्डलस्वरूपसे शरीरमें निवास करने लगे। जो सब पह्लेके वृद्धलोग महांशमें उत्पन्न हुए थे, उनके हृदयसे भी आसुर भाव दूर न हुआ; इससे भयङ्कर पराक्रमी पार्थिव लोग उस आसुर भावसे ही आसुर कार्य्योंको निवाहने लगे, जो सब मनुष्य अत्यन्त मूढ़ थे, वे आसुर भावोंमें प्रतिष्ठित रहे, सबने आसुर कार्य्योंको स्थापित किया है, और अबतक भी आसुर भावोंमें रत है, प्रकृत भावको प्राप्त न कर सके। हे राजन्! इसलिये मैं शास्त्र अनुशीलन करके तुमसे कहता हूं, कि आसुर भावकी निवृत्तिकेलिये आत्मज्ञानके सिद्ध करनेमें यत्नवान् होकर मनुष्यमात्रको ही हिंसात्मक कर्म्म अवश्य परित्याग करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य सत्कार कार्य्यसे धन पैदा न करे, न्याय पथमें जलाञ्जलि देकर जो धर्म्मार्थ धन उपार्जन करते हैं वह धन उनके लिये कल्याणकारी नहीं होता। तुम इस ही प्रकार सद्गुणोंसे युक्त, दान्त, और बन्धु प्रिय क्षत्रिय हो, इसलिये प्रजा, सेवक और पुत्रोंको स्वधर्म्मके अनुसार प्रतिपालन करो। इष्ट और अनिष्टके संयोगसे जो वैर और सुहृदता होती है, वह सहस्र जातियोंमें वह प्रवर्त्तित हुआ करती है; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, किसी मतसे दोषोंमें अनुराग प्रकाशित न करे; क्यों कि निर्गुण नीच बुद्धि पुरुष भी जब कभी अपने किसी गुणकी कथा सुनता है, तब वह अत्यन्त ही सन्तुष्ट होता है। हे महाराज! जैसे मनुष्य धर्म्माधर्म्ममें विद्यमान रहते हैं, मनुष्यहीन देशमें भी धर्म्म अधर्म्म दोनों ही हैं। धर्म्मशील विद्वान् मनुष्य अन्नार्थी ही हो, अथवा अनीह ही होवे, सदा सब भूतोंमें आत्मवित् ज्ञान करके जीवोंकी अहिंसाके जरिये जन समाजमें विचरे। जब उसका मन वासनाहीन, निरहंकार वा निर्गताज्ञान होगा, तब वह ब्रह्मानन्द लाभ करनेमें समर्थ होवेगा।

२९४ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, यह गृहस्थोंकी धर्म्मविधि कही गई, अब तपस्याकी विधि कहता हूं, सुनो। हे राजन्! राजस और तापस भावके प्रसङ्गसे प्रायः गृहस्थोंमें ममत्व उत्पन्न होती है, मनुष्य गार्हस्थ्य आश्रमको अवलम्बन करनेसे उनके गौ आदि पशु खेत, धन, स्त्री, पुत्र तथा सेवक प्रभृति हुआ करते हैं। इस ही भांति संसार आश्रममें प्रवृत्त मनुष्य प्रतिदिन निज सम्पत्तिकी उन्नति और नित्यताको देखते रहने पर भी क्रमसे उनके राग द्वेषकी विशेष रूपसे वृद्धि हुआ करती है। हे नरनाथ! मनुष्यके विषयासक्त होकर राग द्वेषसे अभिभूत होने पर मोह जनित रति उसे अवलम्बन करती है। रतिपरायण मनुष्यमात्र ही आत्माको भोगशील और कृतार्थ समझ कर अनुराग वशसे ग्राम्य सुखके अतिरिक्त दूसरे लाभको लाभ ही नहीं समझता। अनन्तर मनुष्य विषयोंमें आसक्त होनेसे लोभमें फसके कुटुम्ब और दासदासी

आदिके परिमाणकी वृद्धि करता है, अन्तमें उन्होंके प्रतिपालनके लिये कुसीद व्यापारसे धन बढ़ानेमें यत्नवान होता है। मनुष्य सन्तान सन्ततिमें स्नेहयुक्त होकर जिस कार्य्यको अकार्य्य समझा जाता है, धनके लिये वैसे कार्य्योंको भी करनेमें कुण्ठित नहीं होता; परन्तु उस अर्थके नष्ट होने पर परिताप किया करता है। अनन्तर अभिमानयुक्त होके जिस भांति अपनी पराजय न हो, उस विषयमें सदा सावधान मनुष्य किस प्रकारसे "मैं सुख भोग करूंगा"—ऐसी ही चिन्तामें निमग्न होता है, अन्तमें भोगाभिलाषसे आसक्त होकर मृत्युके मुखमें पड़ता है। जो मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं स्त्री आदि परिवारोंसे भोगवान हूंगा, वह उन परिजनोंसे ही विनष्ट होता है। जो सब प्रत्याशा रहित शाश्वत ब्रह्मवादी मनुष्य लोक निषिद्ध काम्य कर्म्म परित्याग करके शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही सुख लाभ हुआ करता है। हे राजन्। मनुष्य प्रीतियुक्त स्त्री पुत्रोंके नाश, धन नाश और आधिव्याधिके प्रभावसे दुःख पाता है। हे महाराज! उस ही निर्व्वेद निबन्धनसे आत्मबोध होता है, आत्मबोधसे शास्त्र दर्शन हुआ करता है, शास्त्रार्थ दर्शनसे मनुष्य तपस्याको ही कल्याणकारी समझता है। हे मनुजेन्द्र! सार असारमय विवेकयुक्त मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ है; पत्नीसे जो सुख उत्पन्न होता है, उससे जो मनुष्य क्लेश पाके उसमें दोष देखता है, वही तपस्या करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जितेन्द्रिय और दान्त पुरुषोंके स्वर्गमार्ग प्रवर्त्तक तपके नियम साधारण है, दम दया और दान आदिमें हीन वर्णोंका अधिकार है। हे राजन्! पहिले समय वर्त्तमान अवस्थामें प्रजापतिने किसी किसी समय व्रत अवलम्बन करके तपस्याके सहारे इस जगत्को उत्पन्न किया था। हे तात! आदित्यगण, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मरुत, विश्वदेव साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व्व, सुरपुरवासी सिद्ध लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे स्वर्गवासियोंने भी तपस्याके जरिये सिद्धि लाभकी है। आदित्य प्रभृति सबने ही यजमान होकर निज निज पदप्रापक कर्म्मोंको करके उसहीने उस ही पदको पाया है। पहले समयमें सृष्टिके आरम्भमें प्रजापतिने तपस्याके जरिये जिन सब ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे भूलोक और सुरलोक दोनों ही स्थानोंमें विचरते रहते हैं। मर्त्त्य लोकमें जिन राजाओं और गृहमेधी पुरुषोंने महावंशमें जन्म ग्रहण किया है, उनका वैसे सद्वंशमें जन्म होना तपस्याके फलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कौसिकवस्त्र मनोहर आभूषण, विचित्र आसन, वाहन और यान, ये सभी तपस्याके फल हैं। मनके अनुकूल सहस्रों रूपवती प्रमदा और कोठेके ऊपर निवास, ये सब तपस्याके ही फल है। उत्तम शय्या, अनेक प्रकारके उपादेय भोज्य और अभिप्रेत विषयोंकी सिद्धि शुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंको ही प्राप्त हुआ करती है। हे शत्रुतापन। तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तपस्याके जरिये प्राप्त न होसके, कृतकृत्यता-हीन मनुष्योंके लिये उपभोगका परित्याग अर्थात् वैराग्य ही तपस्याके फल रूपसे निर्दिष्ट हुआ करता है। हे नृपसत्तम! चाहे मनुष्य सुखी हो, वा दुःखी हो, मन तथा बुद्धिके सहारे शास्त्रको देखके लोभ त्याग करे। असन्तोष केवल दुःखका ही हेतु है, लोभसे इन्द्रियोंमें पूर्णरीतिसे भ्रम उत्पन्न हुआ करता है, इसलिये इन्द्रियभ्रमसे लोभी पुरुषोंकी प्रज्ञा अभ्यास रहित विद्याकी भांति होजाती है। जब मनुष्य नष्टबुद्धि होता है, तब उसकी न्याय दृष्टि नहीं रहती अर्थात् उस समयमें वह कर्त्तव्य अकर्त्तव्यके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये सुखकी समाप्ति होनेपर पुरुष उग्र तपस्या करे। प्राचीन लोग

कहा करते हैं, जो दृष्ट हैं, वही सुख है; और जो हेषयुक्त हैं, उसहीका नाम दुःख कहा जाता है। तपस्या करनेसे सुख, न करनेसे दुःख होता है, इसलिये कृतकृत्य तपस्याका जिस प्रकार फल हुआ करता है, उसे देखो। मनुष्य शुद्धतासे तपस्या करके सदा शुभ दर्शन वा सब बिषयोंको उपभोग करता तथा जनसमाजमें बिख्यात होता है; और फलकी इच्छावाला मनुष्य अप्रिय अवमानना तथा अनेक प्रकार दुःख लाभ करते हुए तपस्याका फल परित्याग करके विषमय फल पाता है। धर्म, तपस्या और दान विषयमें यथा समय कर्त्तव्यता होनेपर भी स्थिर कार्य्योंमें चिकीर्षा उत्पन्न होती है, नित्यकर्त्तव्य कार्य्यके समय जो पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक प्रवृत्त होकर अन्य कर्म्म करता है, वह वैसा पापाचरण करके नरकमें डूबता है। हे नरेन्द्र! जो मनुष्य सुख अथवा दुःखके समय भी निज धर्म्मसे विचलित नहीं होता, उसे ही शास्त्रदर्शी कहा जाता है। हे नरनाथ! जितने समयके बीच धनुषसे छुटा हुआ बाण पृथ्वीपर गिरता है, उतनेही समयमें देखना, चखना, सूंघना, सुनना और स्पर्शेन्द्रियके विषयसम्बन्ध निबन्धनसे अनुराग हुआ करता है, अनन्तर इन्द्रियजनित सुखकी समाप्ति होनेपर तीव्र दुःख उत्पन्न होता है, इसलिये मूढ़ लोग अनुत्तम मोक्ष सुखकी प्रशंसा नहीं करते, तब उस विषयमें यत्न क्यों करेंगे। बिषयके आकर तीव्र पीड़ाके हेतु बिबेक मात्रसे ही मोक्ष फलके लिये शम दम आदि साधनोंमें प्रवृत्ति हुआ करती है। बिबेकी मनुष्यके धर्म्मानुसार निवास करनेपर काम और अर्थ उसे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होते। गृहस्थ लोग प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सम्प्राप्त अयत्न-सिद्ध बिषयोंके सेवनसे विरत न होवें; क्यों कि उससे फल-विसम्वाद दर्शनके जरिये पुरुषके प्रयत्नकी दुर्ब्बलता देखी जाती है। धर्म्मविषयमें पुरुषार्थकी प्रबलता दीखती है; इसलिये यत्न अनुसार प्राप्त विषयोंका सम्भोग ही निज धर्म है, मेरी ऐसी ही विवेचना होती है। माननीय सत्कुलमें उत्पन्न सदा शास्त्र देखनेवाले मनुष्य जिन कार्य्योंको करते हैं, धर्म्मरहित मूढ़चित्तवाले मनुष्य उसे कदापि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। जब कि मनुष्योंके क्रियमाण कर्म विनष्ट हुआ करते हैं, तब उन्हें तपस्याके अतिरिक्त दूसरा कर्त्तव्य कर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महाराज! इसलिये मनुष्य यथाशक्ति कर्म्म करनेके लिये निपुणताके सहित निज धर्म्ममें स्थित होके स्थिर बुद्धिवाला होवे। जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाके निवास करती हैं, वैसे ही सब आश्रमोंके मनुष्य गृहस्थके अवलम्बसे निवास किया करते हैं।

२९५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे महर्षि! कृष्ण, धूम्र, नील, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकार वर्णोंके बीच किस प्रकार स्वभाविक वर्णोंके किन किन वर्णोंमें अधिकता उत्पन्न होती है, इसे ही मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तृवर। इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये; सतोगुणप्रधान ब्राह्मणोंका अपत्य सतोगुणनिष्ठ ही हुआ करता है। ऐसी जनश्रुति है कि मनुष्य पुत्ररूपसे स्वयं उत्पन्न होता है, परन्तु क्या कारण है, कि ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुए सन्तान क्षत्रिय आदि जाति विशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं।

पराशर मुनि बोले, आपने जो कहा वह यथार्थ है, जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसहीके रूप समान हुआ करता है, परन्तु तपस्याके अपकर्षसे जातिविशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं। पवित्र वीर्य्य और पवित्र क्षेत्रसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह अवश्य ही पवित्र होता है। क्षेत्र

और बीजमेंसे एकको हीनता होनेसे सम्भव है, इससे उत्पन्न हुए मनुष्य अपकृष्ट रूपसे उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसाही जानते हैं, कि लोकस्रष्टा प्रजापतिके मुख, बाहु, उरु और दोनों चरणसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। हे तात! उसमेंसे ब्राह्मण लोग प्रजापतिके मुखसे, क्षत्रिय बाहु, वैश्य उरु और परिचारक शूद्र लोग पांवसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। हे पुरुषप्रवर! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंकी ही उत्पत्तिका विषय निर्णीत है, इनसे अतिरिक्त जो सब दूसरी जाति हैं, वे सङ्करज हैं। हे नरनाथ! उक्त चारों वर्णोंके परस्पर अनुलोम और विलोम परिग्रहसे क्षत्रिय; अतिरथ अम्बष्ट उग्र, वैदेहक, श्वपाक, पक्कस, तेन, निषाद, सूत, मागध, अयोग, करण व्रात्य और चाण्डाल जाति उत्पन्न होती हैं।

जनक बोले, हे मुनिसत्तम! एकमात्र प्रजापतिसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें किस प्रकार गोत्रके अनुसार अनेकत्व हुआ करती है। इस लोकमें अनेक भांतिके गोत्र दीखते हैं, इसका क्या कारण है मुनिलोग स्वयोनिमें जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, परन्तु जिस किसी योनिमें जिन सब सन्तानोंको उत्पन्न किया है, उन लोगोंको ब्राह्मणत्व किस प्रकारसे हुआ; जो लोग शुद्ध योनिमें उत्पन्न होते हैं, वेही पवित्र हैं, और जो लोग विरुद्ध योनिसे उपजे हैं, वेही निकृष्ट हैं। काक्षीवानके जरिये शूद्रागर्भमें उत्पन्न हुए पुत्रोंने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! तपस्याके जरिये जो आत्माका ध्यान किया करते हैं, उन महात्माओंकी निकृष्ट जन्मके जरिये जो उत्पत्ति होती है वह कदापि ग्राह्य नहीं है। हे राजन्! मुनिलोग जिस किसी योनिसेही पुत्रोंको उत्पन्न करके निज तपोबलसे उसका ऋषित्व विधान किया है। हे विदेहराज! पहले मेरे पितामह कश्यप गोत्रमें उत्पन्न ऋष्यशृङ्ग, वेद, ताण्ड्य, कृप, काक्षीवान, कमठ आदि मुनि लोग यवक्रीत वक्त्र, वर द्रोण, आयु, मतग, दत्त, द्रुपद और मात्स्यआदि मनुष्य तपस्याके अवलम्बसे निज प्रकृतिको प्राप्त हुए थे। ये सब वेदवित् पुरुष इन्द्रिय विजय और तपस्याके जरिये धर्म्म मर्य्यादा रक्षक कहके प्रसिद्ध हैं। हे राजन्! पहले चार ही मूल गोत्र उत्पन्न हुए थे, अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु, येही उक्त चारों मूल गोत्रोंके प्रवर्तक हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे सब गोत्र कर्म्मसे उत्पन्न अर्थात् परमात्मासे कर्म्मके निमित्त ही वर्णाश्रम गोत्रकी कल्पना हुई है। तपस्याके जरिये उन सब गोत्रोंके जो सब नाम धेय कल्पित होते हैं ऋषि लोग उसे ही ग्रहण किया करते हैं, अर्थात् ऋषियोंसे समुद्दिष्ट वरण विवाह आदि श्रौत स्मार्त्त व्यवहार अवलम्बन करके पृथक् गोत्रोंके नामसे वर्णित हुए हैं।

जनक बोले, हे भगवन्! आप पहले मेरे समीप वर्णोंके विशेष धर्म्म वर्णन करिये, पीछे सामान्य धर्म्मोंका विवरण कहियेगा, आप सब विषयोंको ही वर्णन करनेमें विशेष पारदर्शी हैं।

पराशरमुनि बोले, हे नरपाल! प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन, ये ब्राह्मणोंके विशेष धर्म्म हैं, क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन ही उत्तम धर्म्म है, कृषि, पशु पालन तथा वाणिज्य वैश्योंके मुख्य धर्म्म है और द्विजोंकी सेवा ही शूद्रोंका धर्म्म है। हे तात नरनाथ! ये सब वर्णोंके विशेष धर्म्म कहे गये, अब मेरे मुखसे विस्तार पूर्व्वक साधारण धर्म्मोंको सुनिये। हे राजन्! अनृशंसता, अहिंसा, अप्रमाद, संविभाग, श्राद्धधर्म्म, अतिथि, सत्कार, सत्य, क्रोधहीनता, सन्तोष, पवित्रता, सदा, अनसूयता, आत्मज्ञान और तितिक्षा, ये तेरह धर्म्म सब वर्णों और आश्रमोंमें साधारण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनो वर्णही द्विजाति कहे जाते हैं। हे

राजन्! इसलिये ऊपर कहे हुए तेरह धर्म्मोंमें उन लोगोंका समान अधिकार है। जैसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वकर्म्ममें रत होकर साधु पुरुषोंका आसरा ग्रहण करनेसे उन्नत होते हैं, वैसे ही निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे पतित हुआ करते हैं। शूद्र जातिका कोई संस्कार नहीं है, इसीसे निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे उसके पतित होनेकी सम्भावना नहीं है। वेद विहित कर्म्मोंमें उसका अधिकार न रहनेसे पहले कहे हुए तेरह प्रकारके धर्म्म पालनके लिये शूद्रके विषयमें निषेध विधि कुछभी विहित नहीं है। हे महाराज विदेह! वेदज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग शूद्रको ब्रह्माके समान अर्थात् ब्राह्मण तुल्य कहा करते हैं, परन्तु मैं शूद्रको जगत्में प्रधान क्षत्रिय स्वरूप विष्णुरूपसे देखा करता हूं। पहिले कहा गया है, प्रजापति ब्राह्मण और विष्णु क्षत्रिय वर्ण हैं, इसलिये शूद्र वैश्य और क्षत्रिय जन्मके अनन्तर ब्राह्मणत्व लाभ करके विदेह कैवल्य लाभ करता है, यह वैदिक मत है, और मेरे मतमें शूद्र क्षत्रियजन्मके अनन्तर ही ब्राह्मणत्व लाभ करके मोक्षपद पाता हैं। शूद्र लोग यदि साधुओंके आचरित दम, दान, दया आदिका अनुष्ठान करते हुए काम क्रोध आदि दोषोंको नष्ट करनेके अभिलाषी होकर मन्त्रपाठ छोड़के पौष्टिकी क्रियाका निर्व्वाह करे, तो उसके लिये दूषित नहीं होते। साधारण लोगोंमें जो जिस प्रकार सदाचार अवलम्बन करते हैं, वे उस ही भांति सुख लाभ करके इस लोक और परलोकमें आनन्दित होते है।

जनक बोले, हे महामुनि! कोई कर्म्म और कोई जाति शूद्रको दूषित करती है, अर्थात् अत्यन्त हीन करनेमें समर्थ होती है; उस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये मेरे समीप आपको उस विषयकी व्याख्या करनी उचित है।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज। कर्म्म और जाति दोनों ही दोषकारक हैं, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिये उस विषयका विशेष वृत्तान्त सुनो। जाति और कार्य्यके जरिये जो कर्म्म दूषित होता है, पुरुष कदाचित उसका आचरण नहीं करता, और जो पुरुष जातिके जरि दूषित होता है, वह पापयुक्त कर्म्म करने विरत हुआ करता है। जातिके अनुसार प्रधा पुरुष यदि निन्दित कर्म्म करे, तो वह कर्म्म उसे दूषित करता है, इसलिये वैसा कर्म्म कदापि उत्तम नहीं है।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! इस लोक कौन कर्म्म धर्म्मयुक्त हैं, जिसे सदा अनुष्ठान कर नेसे भी सब भूतोंकी हिंसा नहीं होती।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज। जो स अहिंस्र कर्म्म मनुष्योंको सर्व्वदा रक्षा करते हैं उस विषयमें तुम मुझसे जो कुछ प्रश्न करते हो अब उसका उत्तर सुनो। परिव्राजक धर्म अवलम्बन कर अग्नि स्पर्श करके जो लो उदासीन हुए हैं, वे शोकरहित होकर यथाक्र मसे वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामव योगभूमिमें आरोहण करके निःश्रेयस कर्म्मपथ अवलोकन करते हैं। वे सब श्रद्धावान् विषयान्वित, दम परायण, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त मनुष्य लोग सब कर्म्मोंसे रहित होकर उस स्थानमे गमन किया करते हैं, जहांपर जरा नहीं है। हे राजन्! ब्राह्मण आदि सब वर्ण इस जीव लोकमें पूर्णरीतिसे कर्म्म कार्य्योंको सिद्ध करने सत्य वचन कहने और दारुण अधर्म्मके त्यागनेसे स्वर्गमें जाते हैं, इस विषयमें कुछ भी विचार करना उचित नहीं है।

२९६ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! भक्ति हीन पुरुषोंको पिता, सखा, पत्नी और गुरुजन आदि

हिंसाका फल दान करनेमें समर्थ नहीं होते, जो अनन्य भक्त होके प्रिय वचन कहा करता है, सब कोई उसके हितकारी और वशीभूत हुआ करते हैं। मनुष्योंके लिये पिता ही परम देवता है, पण्डित लोग पिताकी मातासे भी अधिक गौरवशाली कहा करते हैं, और पितासे ज्ञान लाभके कारण उसे परम श्रेष्ठ कहा जाता है; क्योंकि मनुष्य ज्ञान लाभसे इन्द्रिय विषयोंको जीतकर परमपद पाते हैं। जो राजपुत्र रणभूमिमें घायल होके शराग्नि शय्यापर शयन करके जलते हैं, वे देवताओंके भी अत्यन्त दुर्लभ लोकोंको पाके अनायास ही स्वर्गसुख भोग किया करते हैं। हे राजन्! संग्राममें श्रान्त, भीत, शस्त्रहीन, रोदन परायण जो भागे जाते हों, रथ घोड़े कवच आदिसे रहित, अनुद्योगी, रोगी, याचमान, बालक और वृद्धको किसी प्रकार भी हिंसा करनी उचित नहीं है। और जो क्षत्रिय युद्धमें रथ, घोड़े कवच आदिसे संयुक्त, उद्योगी तथा अपने समान हो, राजा उसे ही आक्रमण करे। ऐसा निश्चय है, कि अपने समान वा विशिष्टके जरिये मरना ही कल्याणकारी है; अत्यन्त हीन, कादर और कृपणसे मारा जाना बहुत ही निन्दित है। हे नरनाथ! पापात्मा पापाचारी और अत्यन्त हीन पुरुषसे जो वध होता है, वही पापयुक्त और नरकका निमित्त कहके निश्चित हुआ है। हे राजन्! मृत्युके मुखसे कोई छुटकारा वा जिसकी परमायु शेष हुई है उसे मृत्यु मुखसे आकर्षण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। मातृगणोंके जरिये क्रियमाण [illegible] कर्म्म और हिंसामय समस्त कर्म्मोंसे निवृत्त होना उचित है. दूसरेकी परमायुसे अपनी आयु अपित करनेकी कोई इच्छा न करे। [illegible] मृत्युकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ [illegible] यदि किसी तीर्थमें जीवन परित्याग करें, [illegible] मृत्यु परम उत्तम है। परमायु क्षय होनेसे ही मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है, यदृच्छा मरणसे किसीकी अकारण मृत्यु होती है। किसीकी अज्ञानमात्रके दूर होनेसे स्वतः सिद्ध मोक्ष फल तीर्थ-मरण आदि कारणसे सिद्ध हुआ करती है। जो पुरुष देह लाभ करके जल प्रवेशादिके जरिये उस शरीरका पञ्चत्व साधन करता है, वह देहत्यागी मनुष्य फिर दुःख भोगनेके निमित्त वैसा ही शरीर पाता है, पवित्र क्षेत्र तीर्थादिमें भी यदि किसीकी अवैध भावसे मृत्यु हो तो वह मोक्षका पथिक होके भी कुत्सित कार्य्य वशसे देहको त्यागके देहान्तर लाभ किया करता है, उस विषयमें दूसरा कारण और कुछ भी नहीं है। देहधारियोंकी वह यातना देह मोक्ष योग्य रुद्रपिशाचमें आत्महत्या जनित पापको ढोने और दुःख भोग करनेके निमित्त निवास करती है। अध्यात्म विचार करनेवाले विद्वान पुरुष इस चर्म्मसे ढके हुए शरीरको शिरा, स्नायु और हड्डी आदिसे युक्त बिभत्स तथा मलमूत्रसे परिपूरित, पञ्चभूत, दशों इन्द्रिय और वासना-मय विषयोंका स्थान कहा करते हैं। वह शरीर सुन्दरता आदि गुणोंसे हीन होनेपर भी पूर्व्व वासनासे मनुष्यत्वको प्राप्त होता है। यातना शरीर सबके आरम्भकभूतोंके प्रकृतिको प्राप्त होनेपर जीवसे परित्याग किये जानेसे चेत रहित होजाता है, तथा निश्चेष्ट होके पृथ्वीपर गिर पड़ता है। हे विदेहराज! यह शरीर जिस जिस स्थानमें मृत होता है, कर्म्म संयोगसे फिर उस ही स्थानमें जन्म ग्रहण करता है, परन्तु जो शरीर पहले परित्यक्त होता है, कर्म्म फल भोगनेके निमित्त पुनर्व्वार उत्पन्न हुआ शरीर तत्कालीयरूपसे नहीं दीखता। हे राजन्! जबतक पाप नष्ट नहीं होता, भूतात्मा रुद्रपिशाच तबतक निज स्वरूपसे प्रकट नहीं होता। महान् अम्बुदकी भांति आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है।

अन्तमें उपाधि जनित कलुषता छूटनेपर स्थान पाके फिर जन्मता है। मनसे आत्मा श्रेष्ठ और इन्द्रियोंसे मन उत्तम है। हे राजन्! जो सब अनेक प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं, और जङ्गम जीवोंके बीच दो पांववाले मनुष्य ही परम श्रेष्ठ हैं, दो पांववालोंमें द्विज लोग ही उत्तम हैं। हे राजेन्द्र! द्विजोंके बीच बुद्धिमान पुरुष ही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियोंमें योगी पुरुष और योगियोंके बीच योग ऐश्वर्य्यके दर्पसे रहित मनुष्य गरिष्ठ होते हैं। यह निश्चय है, कि मनुष्योंका मरना जन्मका ही अनुसरण किया करता है, सब लोग गुणके अनुसार क्षयशील कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं। हे राजन्। सूर्य्यके उत्तरायण गमन करनेपर पवित्र नक्षत्र और पवित्र मुहूर्त्तमें जिसकी मृत्यु होती है, वह किसी पुरुषको क्लेश न देकर पापोंको धोके आत्मशक्तिके अनुसार कर्म्म करते हुए कालकृत मृत्युके जरिये इस लोकको परित्याग करते हैं। विष भक्षण, उद्बन्धन, दाह, दस्युओंके हाथसे मारा जाना और दंष्ट्र पशुओंके जरिये जो मृत्यु होती है। वह प्राकृत मृत्यु कही जाती है। पुण्यशील मनुष्य आधिव्याधियोंसे पीड़ित होके भी ऐसे ही अनेक प्रकारके तथा अन्यान्य दुर्म्मरणकी कामना नहीं करते। हे नृपति! जो लोग उत्तरायणमें प्राणत्याग करते हैं, उन पुण्यवान मनुष्योंका प्राण सूर्य्यमण्डलका भेद-कर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मध्यम पुण्यशालि मनुष्योंका प्राण मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठा लाभ करता है, और पापी लोगोंका प्राण अधोलोकमें गमन करता है। हे राजन्! जो मनुष्य अज्ञानसे आवृत वा प्रेरित होकर अत्यन्त दारुण घोर कर्म्मोंको किया करता है, उस पुरुषको अज्ञानके समान कोई भी शत्रु नहीं है। हे राजपुत्र! जिसके प्रबोधके लिये वेद वा धर्म्मके अनुसार लोग वृद्धोंकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं वह अज्ञानरूप शत्रु-

यत्न साध्य प्रकाशरके जरिये उन्मथित होनेसे नष्ट हो जाता है। धर्म्मकी इच्छा करनेवा[ले] मनुष्य ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके वेदाध्य[यन] तपस्याके जरिये यज्ञ निर्व्वाह तथा यथाश[क्ति] पञ्चइन्द्रियोंको निग्रह करके निज वंश स्थापि[त] करते हुए मोक्षार्थी होकर वनमें गमन कर[ें।] हे तात! मनुष्य उपभोगहीन आत्माको कदा[पि] अवसन्न न करे, चाण्डालके घरमें जन्म होनेप[र] भी मनुष्य जीवनको सब प्रकारसे उत्तम समझे [।] हे पृथ्वीनाथ! आत्मा जिसे पाके शुभ लक्षण युक्त कर्म्मोंके जरिये अपना परित्राण करने[में] समर्थ होता है, वह मनुष्य जीवन ही प्रथ[म] योनि है। मनुष्य लोग श्रुतिप्रमाण्य दर्शन नि[ब]न्धनसे "किस प्रकार इस योनिसे च्युत न होऊं" इसे ही सोचके सदा धर्म्मका अनुष्ठान कर[ते] हैं। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ जीवन पाके इस[से] द्वेष करता है, वह धर्म्मावमन्ता कामात्मा पुरुष कामसे वञ्चित हुआ करता है। हे तात! जो पुरुष विरक्त होकर विषयोंकी ओर न देखकर प्रीतियुक्त नेत्रसे स्नेह सम्वर्द्धनीय दीपकको भांति जीवोंको देखते हैं, और धैर्य्य वचन, अन्नदान तथा प्रिय वाक्यसे सबके दुःख सुखमें मिलित होते हैं, वे परलोकमें पूजित हुआ करते हैं। हे भूपति! सरस्वती, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर अथवा पृथ्वीके बीच कुरुक्षेत्र आदि जो सब पवित्र क्षेत्र हैं, वहांपर दान, विषयासक्तिका परित्याग शान्तमूर्त्ति धारण तथा जल वा तपस्याके जरिये शरीरको शोधन करना उचित है। घरमें जिसका प्राण निकल जाता है, उसके मृत शरीरको जलाना ही उत्तम है, इसलिये मृत्यु शरीरको यानके जरिये श्मशानमें लेजाकर शौचविधिके अनुसार दाह करना ही योग्य है इष्टि, पुष्टि, यजन, याजन, दान और पुण्य कर्म्मोंके अनुष्ठान तथा शक्तिके अनुसार पितृ लोकके उद्देश्यसे जो कुछ विहित है, मनुष्य अपने ही लिये वह सब किया

करता है। हे नरनाथ! आत्मष्टकर्म्मा मनुष्योंके कल्याणके निमित्त ही धर्म्म शास्त्र, शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये षडङ्ग और सब वेद विहित हुए हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव पराशर मुनिने पहिले समयमें कल्याणके निमित्त विदेहराजके निकट इन सब विषयोंको कहा था।

२८७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, मिथिलाधिपतिने धर्म्म विषयसे कृत निश्चय होकर महात्मा पराशर मुनिसे फिर प्रश्न किया। जनक बोले, हे ब्रह्मन्! कल्याण साधन क्या है, गति किसे कहते हैं। कौन कर्म्म करनेसे वह नष्ट नहीं होता और कहां जानेसे मनुष्यको संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। हे महाबुद्धिमान आप मुझसे वही कहिये।

पराशर मुनि बोले, जो कुछ कल्याणके साधन हैं, आसक्तिहीनता ही उसका मूल है, ज्ञान ही परम तपस्या है, और सत्पात्रमें दानका फल कदापि विनष्ट नहीं होता। जब मनुष्य अधर्म्ममय पाशको काटके धर्म्म कार्य्यमें अनुरक्त होता है, उस समय वह सब भूतोंको अभय दान करके सिद्ध लाभ करता है। जो लोग सहस्रों गज और सैकड़ों घोड़े दान करते तथा सब भूतोंको अभय दान करते हैं, अभय सदा उनके सब ओर निवास करती है, अर्थात् उन्हें कभी किसी पुरुषसे भय नहीं होता। बुद्धिमान मनुष्य विषयके बीच निवास करके भी उसमें लिप्त नहीं होते और दुर्बुद्धि पुरुष सदा विषयोंमें ही आसक्त हुआ करते हैं। जैसे जल पुष्करपत्रमें संश्लिष्ट नहीं होता, वैसे ही अधर्म्म कभी बुद्धिमान् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता। समस्त पाप अप्राप्त पुरुषको ही जतुकाष्ठकी भांति आलिङ्गन किया करता है। कभी अधर्म्म फल दातात्मिका क्रियापेक्षी होकर कर्त्ताको परित्याग नहीं करता, कर्त्तृत्वाभिमानी मनुष्य यथा समयमें अधर्म्मका फल पाता है। आत्मप्रत्ययदर्शी कृतात्मा मनुष्य कदापि कर्म्म फलके जरिये क्लेशित नहीं होते; बुद्धि कर्म्म और इन्द्रिय सम्बन्धसे प्रमत्त होकर जो पुरुष अपनी बुरी चेष्टाको नहीं समझ सकता, वह शुभाशुभ विषयोंमें आसक्तचित्त होकर महत् भय पाता है। जो लोग सदा पूर्ण रूपसे राग रहित होके क्रोधको जीतते हैं, वह विषयोंमें लिप्त रहके भी पापयुक्त नहीं होते। जो विषयोंमें आसक्त रहके मर्य्यादारूपी नदीमें धर्म्मसेतु बांधते हैं, वे किसी प्रकारसे भी अवसन्न नहीं होते, वल्कि प्रति दिन उनके तपवृद्धिकी परिपुष्टि होती है। हे राजश्रेष्ठ! जैसे विशुद्धमणि नियमके अनुसार सूर्य्यके तेजको ग्रहण करती है, वैसे ही जीव योगके सहारे ब्रह्मभाव लाभ किया करता है। जैसे तिलोंका स्नेह पृथक् पृथक् पुष्प संश्रयसे अत्यन्त रमणीय होता है, वैसे ही आत्मध्यान परायण मनुष्योंमें बार बार वासनाभ्यास निबन्धनसे सतोगुण उत्पन्न हुआ करता है।

जब मनुष्य सुरपुरमें वास करनेकी अभिलाष करता है, तब पत्नी पुत्र आदि परिवार और अतुल सम्पत्ति अनेक प्रकारकी सत्क्रिया तथा निज पद परित्याग किया करता है; उस समय उसकी बुद्धि शब्द स्पर्श आदि विषयोंसे पृथक् होती है। हे राजन्! जिस मनुष्यकी बुद्धि विषयोंमें लिप्त होती है, वह कदापि आत्महित समझनेमें समर्थ नहीं होता। जैसे मछली वंशीमें मांस देखकर उसमें फंस जाती है, वैसे ही मनुष्य भी सर्व्वभाव अनुगत मानसके जरिये आकृष्ट हुआ करते हैं, देह इन्द्रिय आदि संघातकी भांति स्त्री-पुत्र पशु आदि परस्पर उपकारक होके भी कदली गर्भवत् निःसार हैं; जैसे नौका जलमें डूबती

ही ये भी विनष्ट हुआ करते हैं। पुरुषकी पक्षमें धर्म्मके समयका कुछ भी निश्चय नहीं है और "मनुष्यने धर्म्म नहीं किया है" इसके लिये मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। जब कि मनुष्य मृत्युमुखमें ही पड़ा हुआ है, तब उसे सदा धर्म्माचरण करना ही शोभा देता है। जैसे अन्धा अभ्यासके सहारे निज गृहमें गमन करता है, वैसे ही प्राज्ञ पुरुष अभ्यास और कुशल युक्तिके जरिये अगोचर पथमें गमन किया करते हैं। जन्मका निमित्त मरण है और मरणका अवलम्ब जन्म वर्णित हुआ है; अविद्वान् मनुष्य मोक्ष धर्म्ममें बद्ध होकर चक्रके समान भ्रमण किया करता है और जो लोग ज्ञान पथसे गमन करते हैं, वेही इस लोकमें सुखी होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्म्म केवल दुःखदायक मात्र हैं। यज्ञादि कर्म्मोंसे आत्माको कुछ फल नहीं मिलता, पण्डित लोग विषयत्यागको ही आत्माका हितकर समझते हैं। जैसे मृणाल निज शरीरमें लगी हुए कीचड़को शीघ्र परित्याग करता है, पुरुषका शरीर भी उस ही प्रकार मनके जरिये शीघ्र ही परित्यक्त होता है। मन आत्माको योगविषयमें उत्सुक करता है, अनन्तर वह आत्मा योगी होकर मनको परम पदमें लीन करता है। जब मन योगसिद्ध होता है, तब वह उस सर्व्व उपाधिरहित आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष दूसरेके निमित्त प्रवर्त्तमान होकर उसके कार्य्यको अपना कार्य्य समझकर अभिमान करता है, वह इन्द्रियविषयोंमें आसक्त मनुष्य योगरूपी स्वकार्य्यसे सब भांतिसे भ्रष्ट हुआ करता है। योगभ्रष्ट मनुष्य अधोलोकमें तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं और बुद्धिमान तथा उनसे इतर लोगोंकी आत्मा सुकृत कर्म्मोंके जरिये स्वर्गमें जाके इन्द्रलोक लाभ किया करती हैं। जैसे पके हुए मट्टीके पात्रमें द्रव-वस्तु जल आदि नहीं गिरते, वैसे ही जिस शरीरके जरिये सदा तपस्याकी आलोचना की जाती है, वह लिङ्ग शरीर ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंमें व्याप्त हुआ करता है, किसी स्थानसे च्युत नहीं होता। जो शरीर प्रकाशकी भांति सब विषयोंमें व्याप्त हुआ करता है, उससे निःसन्देह कभी विषयभोग नहीं होता; और जो शरीर भोग त्याग करता है, वह भोग करनेमें समर्थ होता है। शिश्नोदरपरायण जन्मान्ध मनुष्य जैसे अन्धकारसे परिपूरित होकर मार्ग नहीं देख सकता, वैसे ही आहतात्मा जीव छिपे हुए निज रूपको नहीं जान सकता। जैसे वणिक् समुद्रयात्राके सहारे मूल धनके अनुसार धनलाभ करता है, वैसेही इस संसार-सागरमें कर्म्मविज्ञानके अनुसार जीवकी गति हुआ करती है। जैसे सांप वायुको ग्रास करता है वैसे ही इस दिन रात्रिमय जीवलोकमें मृत्यु जरा रूपसे तरती हुई जीवोंको ग्रास किया करती है।

जीव जन्म लेके अपने किये हुए कर्म्मोंको भोग किया करता है, जो कुछ प्रिय और अप्रिय कोई बिना कर्म्मके उन्हें नहीं पासकता। मनुष्य सोया हो, अथवा चलता हो, बैठा हो, वा विषयोंमें प्रवृत्त ही रहे, शुभाशुभ कर्म्म सदा ही उसके निकटवर्त्ती होते हैं। किसी प्रकार समुद्रके दूसरे किनारे पहुंचके फिर वहांसे लौट नहीं सकता; परन्तु उसके पक्षमें समुद्रमें विनिपात ही दुर्लभ बोध होता है। महासागरमें खेवनेवालेके अभिप्रायके अनुसार जैसे तन्तुके सहारे नौका चलती है, वैसे ही मनके भावताभिनिवेशके जरिये शरीर चालित हुआ करता है। जैसे सब ओरसे नदियें आकर समुद्रमें मिलती हैं, वैसे ही योगके सहारे मन आद्याप्रकृतिका अवलम्बन करता है। जैसे वालूके गृह जलसे नष्ट होजाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार स्नेहपाशके जरिये अज्ञान वशसे संसक्त चित्तवाले मनुष्य विषय हुआ करते हैं। देहनिष्ट नाम और रूपको आत्म धर्म्मरूपसे

माननेवाले देहधारी यदि ज्ञानपथसे गमन करें, तो उन्हें इस लोक और परलोकमें परम सुख प्राप्त होता है। अग्निहोत्र आदि सब कर्म्म केवल क्लेश देनेवाले हैं, साध्विम सन्न्यास धर्म्म ही अत्यन्त सुखदायक है; यज्ञ आदि कर्म्मोंसे आत्माका कुछ उपकार नहीं होता, इसलिये वे सब केवल परार्थ हैं; पण्डित लोग वैराग्यको ही आत्म-हितकर जानते हैं। सङ्कल्पजनित त्रिवर्ग कारणात्मक स्वजनसमूह भार्य्या, पुत्र और दास दासी सब कोई केवल निज अर्थ उपभोग करते हैं। माता वा पिता किसीका भी पारलौकिक हित नहीं कर सकते। जो मनुष्य दानको ही स्वर्ग मार्गमें जानेकी सीढ़ी करता है, वह निज कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। माता, पुत्र पिता, भाई, भार्य्या और मित्रलोग देहचय निनादभूत ख्यास-मुद्रारेखा विशेष हैं; इससे स्वर्गकी भांति निज अदृष्ट ही अभ्युदयका हेतु है। जीव पूर्व्वजन्मकृत अपने शुभाशुभ कर्म्मोंको प्राप्त करनेपर अन्तरात्मा कर्म्मफल दान करनेके निमित्त बुद्धिको प्रेरणा करता है। जो उद्योग अवलम्बन करके सब उपाय संग्रह करते हैं, उनका कोई कार्य्य कदाचित् अवसन्न नहीं होता, जैसे किरण सूर्य्यको कभी परित्याग नहीं करती, वैसे ही एकाग्रचित्त योगयुक्त, शूर, धीर और विपश्चित पुरुषको भी कदापि नहीं त्यागती। अनिन्दनीय स्वभावसे युक्त मनुष्य आस्तिक्य और व्यवसाय बलसे उपाय वा गर्व्वहीनताके कारण बुद्धिके सहारे जिस कार्य्यको आरम्भ करते हैं, वह कदापि अवसन्न नहीं होता। जीवपूर्व्वजन्ममें यत्नपूर्व्वक जिन शुभाशुभ कर्म्मोंको करता है, मातोदरमें प्रविष्ट होनेके समयसे ही अपने पूर्व्व देहसे सब शुभाशुभ कर्म्म प्राप्त हुआ करता है, और जैसे वायु अत्यन्त विदारित पर्व्वत शरीरोंको स्थानान्तरित करता है, वैसे ही प्रचण्ड मृत्यु भी कालक्रमसे जीवोंको विनाश सुखमें डालती है, इसलिये यदृच्छा प्राप्त अन्न आदिके जरिये जीवन धारण करते हुए सबको ही मोक्षके निमित्त यत्न करना चाहिये। मनुष्य अपने किये हुए शुभा शुभ कर्म्मोंके जरिये पूर्व्वजन्मकी कर्म्मोंसे प्राप्त हुए निज कुलके अनुसार सुन्दरताई और परिग्रह सन्तान आदि सह प्रसभूति तथा द्रव्यसमृद्धि सञ्चय लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! पण्डित प्रवर पराशर मुनिने धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रगण्य राजा जनकसे जब ऐसी कथा कही, तब उसे सुनके वह परम आनन्दित हुए।

२९८ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम, चमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विषयमें आपका क्या मत है?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप हंस और साध्य लोगोंके सम्वाद-युक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं, जन्म रहित शाश्वत प्रजापति सुवर्णमय हंस होकर तीनों लोकमें भ्रमण करने लगे, अनन्तर उन्होंने सिद्धोंके निकट गमन किया।

साध्योंने पक्षिश्रेष्ठ हंसको निकटमें आया हुआ देखके कहा, हे द्विजवर! हम लोग देवताओंके अन्तर्गत साध्यगण तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम मोक्षवत् हो, इसलिये मोक्ष धर्म्म क्या है? उसे ही तुम हमसे कहो। हे महात्मन् पतत्रिन्! हमने सुना है, कि तुम धीरवादी पण्डित हो, तुम्हारी साधुताकी बड़ाई सर्व्वत्र सुनाई देती है, इससे तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हारा मन किस विषयमें रत है। हे विहङ्गवर! कार्य्योंके बीच जिस किसी एक कार्य्यको तुम श्रेष्ठ मानो, वही हम लोगोंके समीप

उपदेश करो। हे विहगेन्द्र! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे सब बन्धनोंसे शीघ्रही छुटकारा होता है। हमको वही करना उचित है।

हंस बोला, हे अमृत पीनेवाले देवगण! मैंने यही सुना है, कि स्वधर्माचरण, वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, यथार्थ वचन और चित्तको जीतना योग्य हैं; हृदयकी ग्रन्थिराग आदिको मोचन करके हर्ष और विषादको वशीभूत करना उचित हैं। किसीके मर्म्म छेदक वा निठुरभाषी होना उचित नहीं। नीच पुरुषोंसे शास्त्र ग्रहण करना अयोग्य है, लोकमें जिस वचनसे दूसरे लोग व्याकुल हों, उस अकल्याण कर नरकविधायक वचनको न कहना चाहिये। जो वाक्यरूपी सब बाण शरीरसे बाहर होते हैं, उससे लोग घायल होके रात दिन शोकार्त्त हुआ करते हैं; वे सब वाक्यबाण दूसरेके मर्म्म-स्थलके अतिरिक्त अन्य स्थानमें नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुषोंको उचित है, कि वैसे वाक्यबाणोंको दूसरेके ऊपर प्रयोग न करें दूसरे लोग यदि उन धीर पुरुषोंको अतिवाद बाणके जरिये अत्यन्त विद्ध करें, तो उन्हें शान्ति रस अवलम्बन करना उचित है। जो लोग दूसरेसे क्रुद्ध होनेपर भी उसपर रोष प्रकाश नहीं करते, बल्कि हर्षित होते हैं, वे दूसरोंके सुकृतको ग्रहण किया करते हैं, जो अधिक्षेपकारी पुरुष अभिनिवेशके कारण अप्रिय प्रज्वलित क्रोधको निग्रह करते हैं, वे दुष्टता-रहित, असूयाहीन प्रसन्न चित्तवाले मनुष्य दूसरोंसे सुकृत ग्रहण किया करते हैं। कोई मेरे विषयमें आक्रोश प्रकाश करे, तो मैं कुछ भी नहीं कहता और मेरे ऊपर प्रहार करे, तो भी मैं सदा उसे क्षमा किया करता हूं, ऐसा आचरण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि आर्य्य-लोग सत्य, सरलता, अनृशंसता और क्षमाकी प्रशंसा किया करते हैं। वेदाधिगमका फल सत्य है, सत्यका फल दम अर्थात् वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह है, दमका फल मोक्ष है, यह स शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है। जो लोग वाक् मन, क्रोध, विविदिषा उदर और उपस्थ इन स इन्द्रियोंके प्रबल वेगको सहनेमें समर्थ होते मैं उन्हें ही ब्रह्मिष्ठमुनि समझता हूं। क्रो पुरुषोंसे बिना क्रोधवाले, क्षमाहीनोंसे क्षमाव पुरुष, कुकर्म्मियोंसे सदाचारयुक्त मनुष्य मूर्खोंसे ज्ञानी लोग ही प्रशंसनीय हुआ कर हैं। पुरुष यदि दूसरेसे क्रोधित होने पर रोष प्रकाश न करके उसे क्षमा करे, तो उ तितिक्षु पुरुषकी क्षमा आक्रोशकारी पुरुष जला देती है और तितिक्षु पुरुष भी आक्रो करनेवालेके सुकृतको ग्रहण करता है। य कोई दूसरेके जरिये अत्यन्त निन्दित होने प भी धैर्य्य अवलम्बन करके उसके विषयमें अप्रिय वचन प्रयोग न करे, अथवा घायल हो भी मारनेवालेके ऊपर प्रहार न करे, और "उ मारनेवालेको पाप हो" ऐसी इच्छा भी न क तो वह इस लोकमें सदा देवताओंके स्पृहणी हुआ करता है। कोई पुरुष अपने समान व अपनेसे उत्कृष्ट वा निकृष्ट लोगोंके निक अवमानित होनेपर उनपर क्रोध न कर क्षमा करे तो उसे सिद्धि लाभ हुआ करती है मैं अध्ययनकी समाप्ति होने पर भी सदा आचा र्य्यकी उपासना किया करता हूं, किसी विषय मेरी तृष्णा वा रोष वर्द्धित नहीं होता। लिप्समान होकर अधर्म्म पथमें गमन नह करता और विषय वासनासे देवताओंके निक कुछ प्रार्थना भी नहीं करता। कोई मुझे शा दे, तो मैं उसे प्रतिशाप न देकर शान्ति अवल म्बन किया करता हूं; क्योंकि इस लोक दम ही मुक्तिका द्वार है, मैंने ऐसा ही निश्च किया है। हे साध्यगण! मैंने तुम्हारे समी इस गुप्त विषयको वर्णन किया, अब तुम लोग विचार करके देखो, मनुष्य जन्मसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान लोग धीरज धर

समयकी प्रतीक्षा करते हुए पापहीन होकर बादलसे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भांति सिद्धि लाभ करते हैं। जो सबके पूजनीय हैं, वेही ब्रह्माण्ड-मण्डपके सुख स्वरूप हुआ करते हैं और सब लोग जिससे प्रसन्न वचन कहते हैं, उस संयतात्माकी देवत्व प्राप्ति होती है। स्पर्द्धावान् पुरुष जिस प्रकार मनुष्योंके दोषोंको प्रकाश करनेके अभिलाषी होते हैं, उस प्रकार उनके कल्याणकर गुणोंको प्रकाशित करनेकी अभिलाष नहीं करते। जिनका वचन, मन सब प्रकार ही असत् मार्गसे निवृत्त और सदा सात्विक है, वे वेद, तपस्या और त्याग, यह सब प्राप्त करते हैं। विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे ताड़ित वा अवमानित होने पर उन्हें मूर्ख जानके उनकी निन्दा न करें, अनुरोधसे अप्रशंसित पुरुषकी प्रशंसा न करें और समान लोगोंकी हिंसा भी न करनी चाहिये। पण्डित लोग दूसरेके जरिये अपनी अवमाननासे अमृतकी भांति सन्तुष्ट होकर सुखकी नींद सोते हैं, परन्तु अवमानना करनेवाला असन्तुष्ट होकर शीघ्र विनष्ट होता है। क्रोधी पुरुष यज्ञ, दान तपस्या और होम आदि जो कुछ कर्म करता है, सूर्य्यपुत्र शमन उसके सब कर्मोंको हरण किया करता है, इससे क्रोधी लोगोंके सब परिश्रम निष्फल होजाते हैं।

हे सुरसत्तमगण! जिसके उपस्थ, उदर हाथ और वाक्य, ये चारों द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं, वेही धार्मिक हैं। जो लोग यत्न पूर्व्वक सत्य, सरलता, दम, अनृशंसता, धैर्य और तितिक्षा, इन सबकी सेवा करते हैं, तथा जो पराये वित्तकी वासना न करके निर्जनमें वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं, वेही ऊर्द्धगति लाभ किया करते हैं। जैसे गजका बछड़ा चारों स्तनोंका अनुगामी होता है, वैसे ही मैं सब पादका अनुसरण किया करता हूं; क्योंकि वर्णों पर सत्यसे अत्यन्त पवित्र और कुछ भी नहीं है, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है। मैं सर्व्वत्र भ्रमण करके मनुष्य और देवताओंसे यही कहा करता हूं, कि समुद्रसेतु नौकाकी भांति सत्य स्वर्गका सोपान है। पुरुष जैसे लोगोंके सहवासमें रहताहै, जैसे लोगोंकी उपासना करता और जैसा होनेकी अभिलाष करता है, वैसा ही हुआ करता है। जो जिस प्रकारके पुरुषकी सेवा करता है, वह उसहीके वशीभूत होता है। जैसे वस्त्र वर्णके वशमें होता है, वैसेही कोई साधु तपस्वीकी सेवा करनेसे उस तपस्वीके वशवर्त्ती होता है और असत् तस्करकी सेवा करनेसे उस तस्करके अधीन होता है। देवता लोग साधुओंके सङ्ग ही सर्व्वदा सम्भाषण किया करते हैं, मनुष्य भोगको विनाशी जानके देखनेकी भी इच्छा नहीं करते; क्योंकि चन्द्रमा वा वायुका समभाव सदा सम्भव नहीं रहता, भोगवशसे उनको भी उपचय और अपचय हुआ करती है इसलिये जो सब विषयोंके उच्चावच मालूम करते हैं, वेही सब जान सकते हैं। अन्तर्य्यामी पुरुषके राग द्वेषसे रहित होकर निवास करने पर सत्मार्गमें स्थित उस अन्तर्य्यामी पुरुषके जरिये ही देवता लोग तृप्त होते हैं। जो लोग सदा शिश्न और उदरके कार्य्यमें रत रहते हैं, जो सदा चोरीवृत्ति करते हैं, तथा जो सर्व्वदा कठोर वचन कहते हैं, उनके प्रायश्चित्त आदिसे निष्पाप होने पर देवता लोग उन्हें पापरहित समझके भी दूरसे ही परित्याग करते हैं। नीचबुद्धि, सर्व्वभक्षी और पाप कर्म्म करनेवाले नरकगामीसे देवता लोग कदापि परितुष्ट नहीं होते। परन्तु जो लोग सत्यव्रती कृतज्ञ और धार्म्मिक हैं, देवता लोग उनके सहित समभावसे सुखसेवन किया करते हैं। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मिथ्या न कहके चुप रहना ही कल्याणकारी है वह प्रथम कल्प है, द्वितीय कल्प यह है कि पड़े, तो सत्य ही कहे। मौन

कहना उचित है। चौथे कालमें प्रिय वचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किसके जरिये आवृत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है, कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्व्वल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्व्वल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है, साधुता किसे कहते है। इनसे असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है, आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योगशास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उद्भावन करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें महती युक्ति पूर्ण रीतिसे
वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भ
ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इ
लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विर
होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्च
ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं
इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवा
पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं
हे युधिष्ठिर! दोनों पथमें बलवान युक्ति विद
मान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत है
उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है, औ
अपने अपने पक्षमें निज निज मतके अनुय
वचन हितकर होता है; क्योंकि अपने स
सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लो
ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मत
अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण क
हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् शु
प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही म
मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधु
म्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठि
होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पाप
हित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विष
दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान,
सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोन
दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्
दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें
समान है, तब दोनोंके दर्शन किस नि

पृथक् हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापर हित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्। बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कन्तीपव राजेन्द्र। जैसे निर्ब्बल हरिन जालमें बंधकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अयत्न निर्बल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन। जैसे निर्ब्बल पक्षियें सूक्ष्म जालमें फंसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पक्षियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्बल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही [illegible] मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्ब्बल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निर्बल [illegible] वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वह अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस [illegible] अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे [illegible] योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति [illegible] सुखा सकते हैं। हे राजन्। जैसे [illegible] स्रोतसे बहिये बह जाता है, [illegible] निर्बल योगी भी अवश होकर विषयोंके [illegible] बहा करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही सह करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु, ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे हो युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कान्तीण्व। जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज तटपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी अत्यन्त

[illegible] है। [illegible] [illegible] उसका [illegible] [illegible] है।

[illegible] लोग बोले, [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है और [illegible] नहीं [illegible]।

हंस बोला, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में मग्न [illegible]।

[illegible] लोग बोले, [illegible] [illegible] [illegible] अनुभव किया [illegible] कौन पुरुष [illegible] और कौन पुरुष [illegible] है।

हंस बोला, [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] मान पुरुष [illegible] आनन्द अनुभव करता है। [illegible] जो बुद्धिमान हैं, वे [illegible] तथा जो [illegible] हैं, [illegible] हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें [illegible] क्या है; साधुता किसे कहते हैं। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही स्थिरता-पन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परित्या-दको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरी-रसे शुभाशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित हैं। हे कुरु-[illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] उचित है।

भीष्म बोले, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं, [illegible] योग-[illegible] उत्तम [illegible] करते हैं और [illegible] [illegible] मुक्ति [illegible] [illegible] दिखाते भी [illegible] [illegible] विरत [illegible] अनन्तर निषय [illegible] किया करते हैं। [illegible] सांख्य मतवाले [illegible] दर्शन कहते हैं। हे [illegible]! [illegible] [illegible] [illegible] हैं और [illegible] भिन्न भिन्न मतके अनुयायी [illegible] अपने अपने [illegible] मत [illegible] समान योग [illegible] है। हे तात! योग मतके अनुयायी [illegible] प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुस-म्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापर-हित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनो मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

युक्त हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र। जैसे निर्व्वल हरिन जालमें बन्धकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अयुक्त निर्बल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन। जैसे निर्व्वल पक्षियें सूक्ष्म जालमें फसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पक्षियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्बल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही सदैव मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्व्वल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निर्बल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है, तब वह अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस प्रकार अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे बलवान योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति जगत्को सुखा सकते हैं। हे राजन्। जैसे दुर्बल मनुष्य स्रोतके वरिये बह जाता है वैसे ही निर्बल योगी भी अवश होकर विषयोंसे आकृष्ट हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही सह करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु, ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज तटपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्लभ स्थान पाते हैं। जैसे सारथी उत्तम

कहना उचित है। चौथे कल्पमें प्रिय वचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किसके जरिये आवृत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है; कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्व्वल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्व्वल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है; साधुता किसे कहते है। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योगशास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उज्ज्वल करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें महती युक्ति पूर्ण रीतिसे वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भी ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इस लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विरत होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं। इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं। हे युधिष्ठिर! दोनों पक्षमें बलवान युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपने पक्षमें निज निज मतके अनुयाई वचन हितकर होता है; क्योंकि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुसम्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापरहित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनो मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

युक्त हुए। उसे मेरे समीप बिस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापर हित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कौरव राजेन्द्र! जैसे निर्व्वल हरिन जालमें बन्धकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्व्वल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके बशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन! जैसे निर्व्वल पच्छियें सूक्ष्म जालमें फंसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पच्छियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्व्वल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही परम मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्व्वल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर नृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निबल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वही अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस प्रकार अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे तेजस्वी योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति सब जगत्को सुखा सकते हैं। हे राजन्! जैसे दुर्ब्बल मनुष्य स्रोतके जरिये बह जाता है वैसे ही दुर्ब्बल योगी भी अवश होकर विषयोंके बशमें बद्ध हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही सह करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु, ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार बिभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे बिभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष स्थिर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीनन्दन! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज तटपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी अत्यन्त

कहना उचित है। चौथे कालमें प्रिय वचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किससे आवृत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है; कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्ब्बल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्ब्बल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है, साधुता किसे कहते हैं। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्ताभावको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित हैं। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी सन्यासी सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योग शास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उद्भावन करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें सहतो युक्ति पूर्ण रीतिसे वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भी ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इस लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विरत होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं। इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं। हे युधिष्ठिर! दोनों पथमें बलवान युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपने पक्षमें निज निज मतके अनुयायी वचन हितकर होता है; क्योंकि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुसम्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापरहित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान है, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

पूछता हूं। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पाचों दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र! जैसे निर्ब्बल हरिन जालमें बंधकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही बलहीन निर्ब्बल योगी पुरुष भी विना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन! जैसे निर्ब्बल पक्षियें सूक्ष्म जालमें फंसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पक्षियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्ब्बल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही परम मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निर्बल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्ब्बल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर नाशको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निर्बल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वह शीघ्र सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस प्रकार अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे तेजस्वी योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति जगत्को सुखा सकते हैं। हे राजन्! जैसे दुर्बल पुरुष स्रोतसे हरिके बह जाता है, वैसे ही निर्बल योगी भी अवश होकर विषयोंसे आकर्षित हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही सह करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर सक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात् योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज तटपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथि उत्तम

पृथक् हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग वागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गसे गमन करते हैं। हे कौन्तेय राजेन्द्र। जैसे निर्व्वल हरिन जालमें बन्धकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें आबद्ध होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्बल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन। जैसे निर्व्वल पच्छियें सूक्ष्म जालमें फसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पच्छियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्व्वल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही उनमें मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्व्वल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निबल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वह क्षण भरमें सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस प्रकार योगाभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे बलवान योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति सब जगत्को सुखा सकते हैं। हे राजन्। जैसे बलहीन मनुष्य सोतके जरिये बह जाता है, वैसे ही निर्बल योगी भी अवश होकर विषयोंके अधीन हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही रुद्ध करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु, ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्। बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कौन्तेय! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज तटपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्त्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी स्यन्दन

लोग इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, नाग, पितर, उनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माको जगत् कर्त्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्त्य लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके ऊपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्वक वर्णन किया, परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रको विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट है, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि ऋषियोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी प्रकारका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष दूर होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले महर्षियोंका वह सूक्ष्म तत्त्व तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी [illegible] आदिसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और [illegible] सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, [illegible] मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, [illegible] विश्वदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्जय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, प्रश्रयशीलता, सन्तोष, श्रद्धानल, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रसाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्ठमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगिन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णु [illegible] अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, [illegible] अग्नि, जलमें आसक्त शिव देवी, [illegible] आश्रित जल, वायुआश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु [illegible]

सावधान होकर उत्तम पोतोंके जरिये अर्ण-वमें पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृत्त करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे आसमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्ककी कणा या रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते हैं वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते हैं। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृपसत्तम! स्पृहाहीन ज्ञानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्ज्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्ज्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् धेयाकार प्रत्यय प्रमाद त्यागा अप्रमत्त अर्थात् प्रमाद अपवादो आसक्तिसे मुक्त होकर ध्यानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विषयित आत्माओंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे व्याघ्र वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित विषम, अनेक कांटोंसे युक्त मनुष्योंके रास्तोंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही योगके क्षुरधारकी भांति योगधारणाओंमें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, बरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें बिघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वको प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, पितर, वनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यच, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं । हे राजन् ! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माको जगत कर्त्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्तत्र लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं ।

याग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल ! आपने शिष्यके ऊपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया, परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये । तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्द्दिष्ट है, उन सबको आप जानते हैं ।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र ! कपिल आदि आचार्य्योंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी प्रकारका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष दूर होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले महात्माओंका वह सूक्ष्म तत्त्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो । हे राजन् ! मोचके उपयोगी ज्ञानके भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान आदि अनेक गुणयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, पशु पक्षी, मानव, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, महादेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्जय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्त्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, पुण्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानत्व, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्टमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गम्भर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं । और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णु, बल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त क्षिति देवी, तेजसामाश्रित जल, वायुसमाश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्वासे

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्कको कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते हैं वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते है। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृप सत्तम। स्पृहाहीन ज्ञानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्ज्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्ज्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे छूरधारकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, बरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वको प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

और इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और ताराओंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, नाग, पितर, उनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिशा, इन सबोंमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माकी अनन्त कर्म्मादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्योंकि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्त्य लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके ऊपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया, परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट है, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि सांख्योंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी प्रकारका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले यतियोंका वह सूक्ष्म तत्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी [illegible] भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और [illegible] युक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, [illegible] ऋषि, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, [illegible], देवगो प्रजापति और ब्रह्मा. इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्ञेय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, पुण्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानल, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्ठमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णु अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त सिद्ध देवी, तेजआश्रित जल, वायुआश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु अहंकार

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्द्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र। अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्कको कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते है वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते है। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृप सत्तम! स्पृहाहीन ज्ञानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्ज्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्ज्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् धेयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्दान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे छूरधारकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, वरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आलसतलको प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और वीरत्व, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

योगी लोग जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, सर्प, पितर, वनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिशा, इन सबोंमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माकी आत्म कर्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथा ओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग समाप्त विषयमें प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्य लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके ऊपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया; परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट है, इन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि यतियोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी प्रकारका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले पुरुषोंका वह सूक्ष्म तत्व तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी ज्ञानके मार्गसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और पुरुषार्थयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व और तिर्य्यग्गामी पितर, पक्षी, सर्प, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, विश्वेदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्याल दोषयुक्त सब दुर्ज्ञेय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञान-योग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, प्रणयशीलता, सन्तोष, श्रद्धानल, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्ठमस्वरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गम्भर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त नयनेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगिन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णु, उपादान अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त क्षिति देवी, जलसमाश्रित तेज, वायुसमाश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्तत्वमें

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे वाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन। जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्ककी कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते हैं वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते हैं। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृप सत्तम! स्पृहाहीन ध्यानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्मी, वर्षा, भय, शोक, उत्साह, पौरुष, विषय, दुर्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर वनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे छूरधारकी भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणासे पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उसमें योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, वरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महान्, आत्मा कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वकी प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धिदेवी, मित्र और [illegible] इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, सर्प, पितर, वनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माकी जगत् कर्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्त्य लोकको सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके पूछनेपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया, परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट है, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि यतीन्द्रोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी भांतिका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले मनुष्योंका वह सूक्ष्म तत्त्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी सात्विक भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और विज्ञानयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, नाग, पक्षी, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, विश्वदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्जय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्त्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञानयोग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, प्रख्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानत्व, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्टमस्वरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णु बल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, काष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त सित देवी, तेजसामाश्रित जल, वायुवाश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्तत्त्वसे

संयुक्त आकाश, बुद्धि समान्वित सत्त्व तम संयुक्त बुद्धि रजके अन्वित तत्त्व, सत्त्वाश्रित रज, आत्मा अर्थात् जीविताश्रित सत्ता, ईश्वर नारायण देवमें आसक्त आत्मा, मोक्षमें समासक्त नारायण देव, शिवमहिमामें प्रतिष्ठित मोक्ष, सोलह गुणोंसे युक्त लिङ्ग शरीर, लिङ्ग देहके आश्रित स्वभाव अर्थात् पूर्व्वकर्म्म वा चेतना अर्थात् बुद्धिवृत्ति, निष्पाप उदासीन अद्वितीय आत्मा, विषय वासनावान पुरुषोंके द्वितीय कर्म्म आत्माश्रित इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ वेदके अनुसार मोक्षके दुर्लभत्व प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान आदि पञ्चप्राण तथा अधः और प्रवाह इस ही प्रकारसे सप्तधा विहित सातों वायु प्रजापति, ऋषि अनेक भांतिके उत्कृष्ट धर्म्म मार्ग, सप्तर्षि, देवर्षि, सूर्य्यके समान दूसरे दूसरे महान् ब्रह्मर्षि, उक्त ऋषियोंकी कालवशसे ऐश्वर्य्यच्युति, महाभूतोंका नाश, पापाचारियोंकी अशुभ गति, यमलोकगामी लोगोंके वैतरनी पार होनेका दुःख जीवोंका विचित्र योनियोंमें भ्रमण और रुधिर जलके पात्र अशुभकर जठरके बीच वास, जीवके कफ, मूत्र, पुरीषसे परिपूरित तीव्र गन्धसे युक्त, बहुतसे शुक्रशोणित संयुक्त मज्जा और स्नायुसे परिवृत सैकड़ों नाड़ियोंसे परिपूरित अपवित्र नवद्वार युक्त पुरीके बीच निवास और उसमें विविध सम्बन्ध, रमणीय वस्तुमें आसक्तचित्त तामस और नास्तिक जन्तुओंके कुत्सित कर्म्म हैं, आत्मतत्त्ववित शाक्यवादियोंके गर्हित आचरण चन्द्रमा और सूर्य्यका घोर उपराग, तारोंका गिरना, नक्षत्रोंका विपर्य्यय, दम्पतियोंका विरह और दीनता, प्राणियोंके परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यकालमें मोह और देहका पतन, राग और मोह उपस्थित होनेपर किसी पुरुषमें सतोगुण आश्रित होता है, सहस्र लोगोंके बीच कोई पुरुष मोक्षबुद्धि अवलम्बन करता है, श्रुतिके अनुसार मोक्षका दुर्लभत्व, अप्राप्त वस्तुमें बहुमान, प्राप्तवस्तुमें उदासीनता विषयोंमें दौरात्म्य अर्थात् बन्धनकारित्व दोष मृतकोंके सुन्दर शरीर, जन्तुओंके गर्भवासरूपी दुःख, ब्रह्मप्न पतित पुरुषोंकी दारुण गति, मद्य पीनेमें आसक्त और गुरुस्त्रीमें रत, दुरात्मा ब्राह्मणोंकी अशुभ गति, जो मनुष्य माताके अनुवर्त्ती नहीं होते और जो देवस्थानमें वास नहीं करते, उन अशुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंकी गति, तिर्य्यग् योनिगत सब प्राणियोंकी पृथक् पृथक् गति, विचित्र वेदवाद ऋतुका बदलना, सम्वत्सर, महीना, पक्ष और दिवसका क्षय, चन्द्रमा, समुद्र; धन, इनकी घटती बढ़ती सम्बन्ध, युग, पहाड़, नदी वर्षा इन सबका बार बार नष्ट होना, जन्म, जरा, मृत्यु, देह दोष देहके दुःख, देह नष्ट करनेवालोंके दुःख, सब जीवस्थित आत्मदोष, निज शरीरसे उत्पन्न अशुभ गन्ध,—इन सबको यथार्थ रीतिसे जानकर मुक्ति लाभ किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित विक्रम! निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष अशुभरूप दीखते हैं, मेरे इस सन्देहके विषयको यथार्थ वर्णन करना आपको उचित है।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! मोक्षमार्गी कपिल प्रणीत सांख्य मतावलम्बी मनीषि लोग देहके बीच स्थित जिन सब दोषोंको कहा करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पण्डित लोग काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, इन पांचोंको दोष कहा करते हैं; वे सब दोष शरीरमें ही दीख पड़ते हैं, हे राजन्! मनीषि लोग क्षमासे दोष, संकल्प त्यागसे काम, तत्त्वसेवाके जरिये निद्रा, अप्रमादसे भय और अल्प आहारसे श्वासको दूर किया करते हैं।

हे नरनाथ! महाप्राज्ञ सांख्य मतावलम्बी पुरुष आत्मज्ञान महान् व्यापक ज्ञान सौ सैकड़ों गुणोंके जरिये सब गुणों, सैकड़ों

दोषोंके सहारे सब दोषों और विविध हेतुश-
तके जरिये अनेक प्रकारके हेतुओंको यथार्थ
रूपसे जानकर जलके फेन समान विष्णुकी
मायासे आवृत्त विचित्र भित्तिसदृश नलतृणकी
भांति अन्तःसार रहित अन्धकारसे परिपूरित
बिल-सदृश, वर्षाके बुलबुलेके समान, सुखहीन,
नष्टप्राय विनाशान्तर अवश, इन सब लोकोंको
देखते हुए कीचड़में फंसे अवश हाथीकी भांति
अन्धकारमें निमग्न रज और प्रजाकृत स्नेहको
त्यागके देहस्थित रज तथा तमोगुणसे उत्पन्न
वैसे अशुभ गन्ध और सतोगुणसे उत्पन्न सब
स्पर्शन पुण्यगन्धोंको ज्ञानरूपी शास्त्रसे शीघ्र
ही काटके जिसका दुःखरूप जल, चिन्ता वा
शोकरूपी भयङ्कर तालाब, व्याधि और मृत्यु-
रूपी महाग्राह, भयरूपी महासर्प, तमरूपी
कूर्म, रजोगुणरूपी मीन, बुद्धिरूपी नौका,
स्नेहरूपी कीचड़, ज्ञानरूपी दीपक, कर्म्मरूपी
अगाध, सत्यरूपी तीर, हिंसारूपी प्रबलवेग,
अनेक रस सदृश आकर, नाना प्रीतिरूपी महा-
रत्न, दुःख और ज्वररूपी वायु, शोक और तृष्णा-
रूपी महाआवर्त्त, तीक्ष्ण व्याधिरूपी महाहस्ती,
हड्डीरूपी सघट, कफ रूपी फेन, दानरूप
मुक्ताकी खान सीप, रुधिर ह्रदरूपी विद्रुम,
हंसी और रोदनरूपी निर्घोष और जो जराके
जरिये दुर्गम अनेक भातिके ज्ञानके सहारे
दुस्तर, रोदनके आंसू और मलरूप जिसका
खार तथा सङ्गत्यागरूप जिसका परम आश्रय
है, लोककी उत्पत्तिरूपी वेग, वान्धव और पुत्र
रूपी पत्तन, अहिंसा और सत्यरूपी सीमा प्राण-
त्यागरूपी महान् तरङ्ग वेदान्त गमनरूपी द्वीप
और जिसमें मोक्ष विषय अत्यन्त दुर्लभ है, वैसे
वाड़वानलसे युक्त सब भूतोंके दयारूप समुद्रको
ज्ञानयोगके जरिये पार हुआ करते हैं। हे
कुरुनन्दन! सांख्य मतवाले इस ही भांति
जाकेपनासे दुस्तर जन्मयुक्त स्थूल शरीरको
भूल कर हृदयरूपी निर्म्मल आकाशमें प्रविष्ट
होने पर वहां जिस भांति सुख संयोगसे अन्त-
श्छिद्र मृणाल दण्डके जरिये आकर्षित जल
भीतरमें प्रवेश करता है, वैसे ही चौदह भुवन
विहारी सूर्य्य आत्मामें प्रणिहित मनके जरिये
उन सुक्रतमान सांख्यमतवालोंके अन्तरमें प्रविष्ट
होकर उन लोगोंको चतुर्द्दश भुवनोंके विष-
योंको मालूम करानेसे वे उन्हीं सब विषयोंको
प्राप्त करते हैं। हे भारत! वहां प्रवह-वायु उन
रागरहित वीर्य्यवान तपोधन यतिसिद्ध सांख्य
लोगोंको ग्रहण करता है। अनन्तर शुभलोक-
गामी, सूक्ष्म, सुन्दर शीतलता सुगन्धि सुख
स्पर्श मरुत श्रेष्ठ वह प्रवहमान वायु उन्हें
आकाशकी चरम गति अर्थात् हृदयरूपी आका-
शमें लेजाता है। हे लोकेश! इस ही प्रकार
धीरे धीरे आकाशसे रजोगुणमें रजोगुणसे सत्वको
परमगति और सत्वसे परमात्मा प्रभु नाराय-
णको पाता है। फिर सब भूतोंके निवास स्थान
वे सांख्य लोग पवित्र परमात्माको पाके अमृत-
कल्प होते हैं, इसलिये उन लोगोंको फिर पुन-
रावृत्ति नहीं होती। हे पार्थ! सत्य और सर-
लतायुक्त सब भूतोंमें दयावान् भेद ज्ञानसे रहित
महात्माओंकी वही परमगति है।

युधिष्ठिर बोले, हे पाप रहित! स्थिरव्रत-
वाले सांख्योंके षड़गुण ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्म
स्वरूप मोक्षधाम मिलने पर उन्हें जन्म मरण
आदिका स्मरण और मोक्ष विषयका विशेष
ज्ञान रहता है, वा नहीं। तथा मोक्ष प्रतिपा-
दक श्रुतिमें मोक्ष विषयक ये दो प्रकारके
महान् दोष दीख पड़ते हैं, कि कोई कोई यति
मोक्ष धर्म्मकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष मार्गमें
प्रवृत्त होते हैं, कोई कर्म्मकाण्डकी प्रशंसा करते
हुए प्रवृत्ति मार्गमें प्रवृत्त होते हैं; मुझे भी
वही प्रवृत्ति धर्म्म प्रधान जंचता है, परन्तु यह
भी युक्ति सङ्गत है, कि मोक्षमार्गमें प्रविष्ट पुरु-
षोंका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे कौरवेन्द्र! इसलिये
इस विषयमें जो यथार्थ है, उसे यथावत वर्णन

करनेमें आप ही उपयुक्त हैं, आपके समान पुरुषके अतिरिक्त मैं और किसीसे पूछनेमें समर्थ नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, हे तात भरत श्रेष्ठ! तुमने जो युक्ति सङ्गत प्रश्न किया, वह अत्यन्त कठिन है, यद्यपि इस प्रश्नमें पण्डितोंको भी मोह उपस्थित होता है, तौभी कपिलोक्त सांख्य मतवालम्बी महात्मा लोग जिस परम तत्वको जानते हैं, उसे ही तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे राजन्! प्राणियोंकी निज देहमें स्थित इन्द्रियोंके जरिये ही आत्माको जाना जा सकता है, इसलिये वे इन्द्रियें आत्म ज्ञानकी हेतुभूत बोध होती हैं, क्यों कि सूक्ष्म चिदात्मा उन इन्द्रियोंके सहित ही अन्तर-वाह्य सब विषयोंको प्रकाश किया करतो है। परन्तु इन्द्रियें आत्मासे रहित होने पर काठ और कुड्यप्राय होकर महार्णवमें स्थित जन्म रहित फेनकी भांति विनष्ट होती हैं। हे शत्रुतापन! देहाभिमानी जोव इन्द्रियोंके सहित शयन करनेपर स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म अन्तरात्मा आकाश मण्डलवर्त्ती वायुकी भांति सर्व्वत्र विचरण किया करतो है। हे भारत! जाग्रत अवस्थाकी भांति स्वप्नमें भी वह सूक्ष्म अन्तरात्मा यथाक्रमसे रूप और स्पर्शविषयोंको दर्शन और स्पर्शन किया करती है। इस स्वप्नावस्थामें निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियें अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर विषरहित सर्पकी भांति आत्मामें लीन होती हैं। हे पार्थ! उक्त अवस्थामें अन्तरात्मा निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियोंकी सब वृत्ति और धर्म्म आदि सतोगुण, प्रवृत्ति आदि रजोगुण, अप्रवृत्ति आदि तमोगुण, अध्यवसाय आदि बुद्धिके गुण और संकल्प आदि मनके गुण, श्रोत्र आदि आकाशके गुण, स्पर्श आदि वायुके गुण, स्नेहन आदि अग्निके गुण, रस आदि जलके गुण और गन्ध आदि पृथ्वीके गुणोंको आक्रमण करके सर्व्वत्र विचरण करता है। हे युधिष्ठिर! अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ जीवस्थित उक्तानुक्त सत्वादि गुणसान्त और अमित माया गुणके जरिये आच्छादित करके जीवको आक्र- मण करती है, उसहीके अनुसार शुभाशुभ कर्म्म भी जीवको आच्छन्न किया करते हैं। अनन्तर क्षेत्रज्ञ जीवकार्थ्य उपाधि इन्द्रिय और कारणोपाधि प्रकृतिको अतिक्रम करके अव्य परमात्माको पाता है। हे भारत! क्षेत्रज्ञ जी मायातीत अनामय एकमात्र निर्गुण परमात नारायणमें प्रविष्ट होनेपर पुण्य-पापसे मु होती है, इससे उसकी फिर पुनरावृत्ति न होती। हे तात! समाधि भङ्ग होनेपर आत्मा लीन हुए अन्तःकरण और इन्द्रियें प्रार कर्म्मके अनुसार ईश्वरकी आज्ञा पालन कर नेके निमित्त फिर देह धारण किया करती है। अनन्तर थोड़े समयमें ही वर्त्तमान देहका पत होनेपर गुणार्थी, मोक्षकी इच्छावाले ज्ञानयु योगी लोग विदेह मुक्ति लाभ करते हैं।

हे राजन्! महाप्राज्ञ सांख्य लोग इस ज्ञानके सहारे परम गति पाते है, इसलि कोई ज्ञान भी इसके समान नहीं है। कुन्तीनन्दन! मेरी समझमें यह सांख्य ज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट और अक्षर अचञ्चल सनात पूर्णब्रह्म स्वरूप है; इसलिये इसमें तुम्हें औ सन्देह न करना चाहिये। मनीषि लोग जि अद्वैत उत्पत्ति, स्थिति और नाशरहित, नित अखण्ड, जगत्कर्त्ता कूटस्थ ब्रह्म कहा करते है जिससे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूपी स क्रिया उत्पन्न होती हैं, ऋषि लोग स शास्त्रोंमें जिसकी प्रशंसा किया करते हैं; स भूतोंमें समज्ञान करनेवाले साधु, ब्राह्मण और देवता लोग ब्राह्मणोंके परम हितकारी उस अच्युत अनन्त देवकी पार्थना किया करते हैं। विषयज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग मायिक गुणोंके सहारे जिसकी स्तुति करते हैं, अमित दर्शन सांख्य और योगसिद्ध योगी लोग उसे जगत्का

कारण कहके अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं ; और यह वेदमें प्रसिद्ध है, कि सांख्य उस अमूर्त्त शुद्ध विज्ञान परब्रह्मकी मूर्त्ति है तथा घटादि विषयक सब विषयोंका ज्ञान ही उसका महाज्ञान स्वरूप है ।

हे राजन् ! इस पृथ्वीपर जो स्थावर और जङ्गमात्मक दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें जङ्गम ही श्रेष्ठ हैं । हे महात्मन् ! अत्यन्त बिस्तृत वेद, सांख्य, योग, पुराण, इतिहास, शिष्टजन सेवित अर्थशास्त्र और इस लोकमें जो सब बिविध भांतिके ज्ञान दीख पड़ते हैं, वे सब इसी सांख्यज्ञानके अन्तर्गत हैं, हे राजन् ! शम, बल, सूक्ष्म ज्ञान, तपस्या और सुख, ये सब सांख्यज्ञानके बीच यथावत बिहित हुए हैं । हे पार्थ ! किञ्चित विकलता बशसे उस सांख्य ज्ञानका उदय न होनेसे सांख्य लोग देवलोकमें जाके वहां सदा सुखसे बास करके देवताओंके ऊपर आधिपत्य करते हुए कृतार्थ होकर भोगकी समाप्ति होनेपर यत्नशील विप्रकुलमें फिर पतित होते हैं । सांख्य लोग देह छोड़के देव लोकवासी देवताओंकी भांति देवलोकमें प्रवेश करके क्रमसे महापूज्य शिष्टोंसे सेवित सांख्य ज्ञानमें अधिक अनुरक्त हुआ करते हैं । हे राजन् ! कभी वे तिर्य्यग्गति, अधोगति वा पापात्माओंके अधिवासको प्राप्त नहीं होते ; क्यों कि जो द्विजाति एकमात्र ज्ञानमें अनुरक्त रहते हैं, वेही प्रधानता लाभ करते हैं । जो महात्मा महासागरकी भांति विशाल सुन्दर, अप्रमेय, पुरातन परम पवित्र सब सांख्यज्ञानको धारण अर्थात् दर्शन करते हैं वेही नारायण परब्रह्मरूप होते हैं । हे नरदेव ! मैंने तुम्हारे निकट यथावत् तत्व वर्णन किया ; वह जगदन्तर्यामी नारायण सृष्टि कालमें यही पुरातन विश्व उत्पन्न करता है, और प्रलयके समय फिर इस जगत्का संहार करता है । अन्तमें निज देह स्थित विषयादि कार्य्यजात अपनेमें लीन करते हुए कारण सलिलमें शयन किया करता है ।

३०१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन ! जिससे जीवोंकी पुनरावृत्ति रहित होती, जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है और जो अक्षर तथा क्षररूपसे वर्णित हुआ है, वह कौन है ? हे महाबाहो कुरुनन्दन ! उस अक्षर और क्षर दोनोंके प्रभेदको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये आपसे प्रश्न करता हूं । क्यों कि वेदपारग ब्राह्मण, महाभाग ऋषि और महात्मा योगी लोग आपको ज्ञाननिधि कहा करते हैं । हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! आपकी परमायुके दिन बहुत ही कम बाकी हैं, क्यों कि भगवान सूर्य्यके दक्षिणायनसे लौटनेसे ही आपको परमगति प्राप्त होगी । आप कुरुवंशके दीपक हैं, तथा ज्ञान दीपसे सदा प्रकाशित हैं, इसलिये आपके परमधाममें गमन करने पर हम लोग किसके समीप इस कल्याणकर बचनको सुनेंगे । हे राजेन्द्र ! इस ही निमित्त आपके समीप इन सब विषयोंके सुननेकी इच्छा करता हूं, इस लोकमें ऐसे अमृतमय वचनको सुनकर मैं परितृप्त नहीं होता हूं ।

भीष्म बोले, इस विषयमें करालजनक और बशिष्ठके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो । पहिले समयमें कराल नाम महाराज जनक सूर्य्यके समान तेजस्वी अध्यात्म विद्याके जाननेवाले, आध्यात्मिक अनुभव और निश्चययुक्त ऋषिश्रेष्ठ मित्रावरुण बशिष्ठको बैठे हुए देख उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़के सुन्दर अक्षरोंसे युक्त बिनीत कुतर्क रहित मधुर वचनसे मोक्ष सम्बन्धी परम ज्ञानका विषय पूछा कि, हे भगवन् ! जिससे मनुष्योंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है,

जिसमें यह जगत् लीन होनेसे चर रूप कहा गया है और जिसे अक्षर कहते हैं, उस संसार मोचक आनन्द स्वरूप निद्वन्द्व सनातन परब्रह्मके विषयकी सुननेकी इच्छा करता हूं, उसे आप मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये।

बशिष्ठ बोले, हे पृथ्वीपाल! यह जगत् जिस प्रकार नष्ट होता और किसी समयमें भी जो बिनष्ट नहीं होता है, उस ही चर और अक्षरको विशेष रीतिसे बर्णन करता हूं, आप सुनिये। देव परिमाणसे बारह हजार बर्षका एक युग होता है, चार युगका एक कल्प और हजार कल्पका ब्रह्माका एक दिन और इस ही परिमाणसे ब्रह्मरात्रि हुआ करती है। हे राजन्! उस ब्रह्माका नाश होनेपर अमूर्त्तात्मा शम्भु, परमेश्वर अनन्त कर्म्मा महाभूत मूर्त्तिमान विश्वरूप अग्रज हिरण्य गर्भको उत्पन्न करते हैं उसहीमें स्वयम्भु ब्रह्माके नित्य स्वतः-सिद्ध अणिमा आदि सब ऐश्वर्य्य विद्यमान हैं, सर्व्वनियन्ता ज्योतिमय, अविनाशी, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वग्राही, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन, सर्व्व-श्रोता वह हिरण्यगर्भ लोकमें सब वस्तुओंको आवरण करके स्थिति कर रहा है। यह सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त हिरण्यगर्भ वेद शास्त्रोंमें सूत्रात्मा और बुद्धि समष्टि कहके निर्द्दिष्ट हुआ है। योग शास्त्रमें इसे सृष्टिका प्रथम कार्य्य महान् विरञ्चि और अज कहते हैं, सांख्य शास्त्रमें यह अनेक नामसे विख्यात् है, अनेक शरीरधारी, बहुरूपी, विश्वात्मा, एक मात्र अक्षररूप कहा गया है। वही अक्षर स्वयं अनेक रूप होकर तीनों लोकोंको उत्पन्न करके उन्हें आवरण कर रहा है, इसलिये रूप निबन्धनसे लोग उसे विश्वरूप कहा करते हैं। यही महातेजस्वी विश्वरूप सूत्रात्मा विकृतभावसेयुक्त होकर स्वयं ही अपनेको उत्पन्न करके अहङ्कार और अहङ्काराभिमानी विराटकी सृष्टि करता है। पण्डित लोग अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्तभावापन्न उस विश्वरूपको विद्यासृष्टि और महान् कहा करते हैं और अहङ्कारको अविद्या सृष्टि कहते हैं। एक मात्र ईश्वरविषयकी उपासना वा ध्यानसम्बन्धमें जो विधि और अविधि दोनों उत्पन्न हुई हैं; वेदशास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले उन दोनोंको अविद्या कहके व्याख्या करते हैं। हे पार्थ! अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंकी जो सृष्टि होती है, वह तीसरी सृष्टि है और सात्विक, राजस तथा तामस आदि अहङ्कारसमूहके विकारकी चौथी सृष्टि समझिये। हे राजन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और शब्द स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये दशवर्ग, युगपत् उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इस सार्थक भौतिक सृष्टिको पांचवीं जानो। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये पांचो बुद्धि इन्द्रिय और नाक, हाथ, पाव लिङ्ग और गुदा, ये पाचो कर्म्मेन्द्रिय मनके सहित युगपत् उत्पन्न हुई हैं। ये चौबीस तत्व सब शरीरमें ही विद्यमान हैं, तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग इसे यथार्थरूपसे जानके शरीरके विषयमें शोक नहीं करते। हे नरेन्द्र! यह निश्चय जानो, कि तीनों लोकके बीच सब जीवोंमेंही ये चौबीस तत्व देहरूपसे बर्णित हुए हैं। देव, दानव, मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, भूत, महोरग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निसाचर, दंश, कीट, मशक, भनगे, कीड़े, चूहे, कुत्ते, स्वपाक, व्याध, चाण्डाल, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गधे, शार्द्दूल गज और वृक्ष आदि सब मूर्त्तिमान प्राणिमात्रमें ही इसके दृष्टान्त दीख पड़ते हैं और प्राणियोंका जल, भूमि और आकाशके अतिरिक्त अन्यस्थान नहीं है, इस ही भांति स्थिर सिद्धान्त भी सुना जाता है। हे तात! हिरण्यगर्भ आदि व्यक्तात्मक सब वस्तु ही सदा बिनष्ट होती हैं, इस ही लिये भूतात्मा पञ्चभौतिक शरीर चररूपसे कहा गया है। पण्डित लोग शुद्ध चिन्मय प्रत्यगात्माको अक्षर कहते हैं और व्यक्त वा अव्यक्त-

रज्ज महात्मक जगत्का चर कहा करते हैं। हे महाराज! आप जो मुझसे पूछते हैं, उसे मैंने तुमसे प्रथम ही चरकी दृष्टान्तभूत नित्य महान् और अग्रज हिरण्यगर्भका बिबरण कहा है। विष्णु निस्तत्व होके भी पञ्चविंशति तत्व-रूपसे गिने गये हैं; और वह सब तत्वोंके अवलम्ब हैं, इस ही लिये मनीषी लोग इन्हें तत्व कहते हैं। चौबीस तत्व अव्यक्त मूल प्रकृति मर्त्यरूपसे संहत होकर व्यक्त अर्थात् कार्य्य-रूपी जगत्की सृष्टि करती हुई उस मूर्त्तिमान जगत्की अधिष्ठाता होती है; परन्तु पचीसवाँ तत्व पुरुष अमूर्त्त और असंहत है, इससे वह जगत्का अधिष्ठाता नहीं है। वह अव्यक्त मूल प्रकृति ही चित्‌शक्तिसे युक्त होकर सब वस्तुओंके भीतर निवास करता है और सर्ग वा प्रलयधर्म्मिणी उस प्रकृतिके सहित वह नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभावसे मूर्त्तिहीन होके भी सर्ग और प्रलयरूपसे सबको दीख पड़ता है। इस ही भांति सर्ग और प्रलयवित् वह महान् आत्मा हिरण्यगर्भ प्रकृतिके संयोगसे विकृत और मूढ़ होकर "मैं" इस ही प्रकार अभिमान करता है, वा तम, रज और सतोगुणसे युक्त होकर इस लोकमें मूर्खोंकी सेवा तथा मूर्खताके कारण सब योगियोंमें लीन होता है और सहवास निबन्धनसे विनाशी होकर "मैं दूसरा नहीं हूं" इस ही भांति "मैं अमुकका पुत्र तथा अमुक ज्ञातीय हूं"—ऐसा कहके ब्राह्मणादि गुणोंके अनुवर्त्ती होता है। तमोगुणके जरिये क्रोधादि तामसभाव, रजोगुणसे प्रवृत्यादि राजसभाव और सतोगुणके सहारे प्रकाशादि सात्विकभाव प्राप्त होता है। स्वच्छता, रञ्जकता और मलिनता निबन्धनसे पहले कहे हुए सत, रज और तमो-गुणसे क्रमसः स्वेत, लाल और नीला, ये तीन प्रकारके रूप तथा इस लोकमें जो सब रूप विद्यमान हैं, वे सभी प्रकृतिके जरिये उत्पन्न हुए हैं। तामसिक लोग नरकमें गमन करते, राजस लोग मनुष्य लोकमें गमन करते और सात्विक लोग सुखभागी होकर देवलोकमें गमन किया करते हैं। जो लोग केवल पाप-कर्म्म करते हैं, वे तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं जो पाप पुण्य दोनों कर्म्म करते हैं, वे मनुष्य योनि पाते हैं और जो लोग केवल पुण्य कर्म्म ही करते हैं वे देव योनिको प्राप्त हुआ करते हैं, यह पचीसवां अक्षर पुरुष अज्ञानसे इस ही भांति अव्यक्त प्रकृतिके वशीभूत होकर मनीषी पुरुषोंके जरिये चररूपसे कहा जाता है और वही ज्ञानके सहारे सदा अक्षर रूपसे प्रकाशित होता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वशिष्ठ बोले, इस ही प्रकार वह अक्षर पुरुष प्रकृति संयोगवशसे अज्ञानका अनुवर्त्ती होकर एक शरीरसे अनेक शरीर धारण करता है और सत्वादि गुणोंकी सामर्थसे वह सत्वादि गुणोंके सहित कभी तिर्य्यग् योनि कभी देवयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है और मनुष्य लोकसे देवलोक, देवलोकसे मनुष्य लोक, वहांसे अनन्त नरक लोक पाता है। जैसे कोषकार कीट अत्यन्त सूक्ष्म सूत्ररूपी गुणके जरिये आपही बद्धहोता है, वैसे ही यह निर्गुण अक्षर पुरुष इस लोकमें तिर्य्यग् आदि योनियोंमें उत्पन्न होके सिरके रोग, नेत्र रोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्ड, विशूचिका, श्वित्रकुष्ट अग्निदग्ध श्वास, खांसी और मिरगी आदि सब रोगोंसे दुःख भोग करता है और शरीरमें जो सब दूसरे अनेक प्रकारके प्राकृत सुख दुःखरूपी द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, यह उन सब गुणोंको स्वयं ही ग्रहण करके "मैं दुःखी हूं मैं रोगी हूं" इस ही भांति अनुभव किया करता है। कभी तिर्य्यग् योनि और कभी देव योनिमें उत्पन्न होके अभिमानके कारण उस ही

योनिसे उत्पन्न हुए सब सुकृत अनुभव करता है और मूर्खताके सबब अभिमानी होकर सफेद वस्त्र परिधान चतुर्वस्त्र धारण, सदा नीचे स्थानमें शयन, मेढ़ककी भांति शयन करना, वीरासनसे बैठना, चीर धारण, सूने स्थानमें शयन और निवास, इष्टक पत्थर, काष्ठका पत्थर, भस्म पत्थर, भूमि, शय्यातल, वीरस्थान, जल, कीचड़ और फलक आदि विविध शय्यापर शयन करना फलकी बासनासे मूंजकी करधनी पहननी और वस्त्रोंको त्याग करना बाघके चमड़े, पट्टवास भुञ्जलच और कण्टक वस्त्रोंको धारण करना, पाटसूत्रके वस्त्र, चीर वसन और दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्रोंको पहनना विचित्र रत्न धारण करना, अनेक प्रकार भोजन, एक रात्रिके अनन्तर भोजन, एककालिक भोजन, दिनके चौथे, छठवें और आठवें समयमें भोजन षष्ठाह, सप्ताह, अष्टाह, दशाह और द्वादशाहके अनन्तर भोजन, एक मास उपवास, फल, मूल, वायु, जल, तिलकल्क दही, गोमय, गोमूत्र, शाक फूल, शैवाल, आमद्रव्य, सूखे पत्ते और गिरे हुए फलोंका भक्षण, सिद्धिकी कामनासे विविध कृच्छ्र अनेक प्रकारके व्रत, चिन्ह और विधि पूर्वक चान्द्रायण सेवन, चतुराश्रम विहित और अविहितमार्ग पाखण्डके विविधमार्ग पाशुपत अर्थात् पशुपति सम्मत पञ्चरात्र आदिमें कहे हुए दीक्षायोग विविक्त शिलाच्छाया झरने, निर्ज्जन वन पुलिन, पुण्यजनके देवस्थान, तालाव, पहाड़ गहके समान गुफा, गूढ़ जापके मन्त्र विविध व्रत, अनेक प्रकारके नियम तपस्या, अनेक तरहके यज्ञ, विधि, वाणिज्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंके व्यवसायका अवलम्बन तथा दीन अन्धे और कृपण पुरुषोंको अनेक प्रकारके धनदान आदि सब कार्य्योंको किया करता है। वह अक्षर आत्मा इस ही भांति प्रकृतिके संयोगसे शरीर धारण करके मूर्खताके कारण सत रज और तम, इन तीनों गुण तथा धर्म्म, अर्थ और काम, ये त्रिवर्ग "मुझमें विद्यमान हैं"—ऐसा समझके अभिमान करता है।

हे राजन्! स्वधाकार, वषट्कार, स्वाहाकार, नमस्कार, याजन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह यजन, अध्ययन, जन्म, मृत्यु और विवाद तथा युद्धमें जो कुछ शुभाशुभ कार्य्य हैं, इन सबको ही पण्डित लोग क्रियापथ कहा करते हैं, क्रीड़ाभिलाषिणी प्रकृति सृष्टि और संहार करती है जैसे सूर्य्य दिनके प्रारम्भमें अपनी किरणोंको फैलाकर दिनके शेषमें उन्हें समेटकर अकेले ही निवास करता है, वैसे ही आत्मा सृष्टिके समयमें सत्वादि गुणोंका विस्तार करके प्रलयकालमें उन्हें अपनेमें लीनकर अकेलाही निवास किया करता है। यह त्रिगुणाधिपति आत्मा इस ही भांति बार बार कल्पित अवस्था, वर्ण, कार्य्य और सत्वादि अनेक प्रकारके हृदयप्रिय ऐसे गुणोंके क्रीड़ार्थ जानता है और कर्म्ममार्गमें अनुरक्त होकर सर्ग तथा प्रलयधर्म्मिणी इस प्रकृतिको विकृत करते हुए त्रिगुणात्मक कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंको "यह कर्म्मका गुण है, यह फल है और इसे अवश्य करना चाहिये" ऐसा ही ज्ञान प्रदान करता है। हे विभो! प्रकृतिने इस समस्त जगत्को रज और तमोगुणके जरिये आच्छादन करती हुई अन्धीकृत कर रखा है, इस ही निमित्त सुख दुःखरूपी वे सब द्वन्द्व सदा आवर्त्तित हुआ करते हैं, हे नराधिप! इन द्वन्द्वोंको अपना समझनेसे ये इस लोक वा परलोक सर्व्वत्र ही जीवका पीछा किया करते हैं; इसलिये जीवको इन द्वन्द्वोंसे निस्तार पानेका उपाय सब प्रकारसे करनी उचित है। क्यों कि मूर्खतासे आत्मा ऐसा समझती है, कि मैं देवलोकगामी होकर द्वन्द्व वा सब सुकृत भोग करूंगा और इस लोकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंको भोगूंगा। इस लोकमें सदा

सुखका उपाय सुकृत कर्म्मोंको करना चाहिये, क्योंकि इसे एक बार कर सकनेसे जन्म जन्म जीवन पर्य्यन्त मुझे सुख होगा और यदि मैं इस लोकमें दुष्कृत कर्म्म करूंगा, तो मुझे अनन्तदुःख भोग करना होगा । मनुष्यता महादुःखका कारण है, मनुष्य ही नरकमें डूबता है । और कालक्रमसे नरकसे भी मनुष्यत्व प्राप्त होती है। मनुष्यत्वसे देवत्व, देवत्वसे फिर मनुष्यत्व और मनुष्यत्वसे पर्य्यायक्रमसे नरकमें जाना पड़ता है। जो निरात्मा अथवा चेतनत्व आदि आत्म गुणोंसे परिवृत होकर सदा ऐसा ही जानते हैं वे देव, मनुष्य और नरलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। जीव सदा ममतासे आवृत होकर अनन्तसृष्टिकालमें उस ममतायुक्त शरीरसे भ्रमण किया करता है। जो शुभाशुभ फलात्मक ऐसा कर्म्म करते हैं, वे त्रिलोकमें शरीरी होकर इस ही भांति फल पाते हैं। जो प्रकृतिके शुभाशुभ फलजनक कर्म्म करते हैं, वे तीनों लोकमें इच्छानुसार गमन करके उन सब कर्म्मोंको ग्रास करते हैं। इसलिये तिर्य्यगयोनि देवयोनि और मनुष्ययोनि इन तीनों स्थानोंको प्राकृत जानना चाहिये। सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति अलिङ्ग अर्थात् अनुमेय है, जैसे महदादि कार्य्योंसे प्रकृतिका अनुमान होता है, वैसेही आभास चैतन्यके जरिये पौरुष लिङ्ग अर्थात् पुरुष अन्नामक देहादिके अनुगत चैतन्यका अनुमान हुआ करता है। निर्व्विकार प्रकृतिसाधक वह पुरुष कर्म्मके अनुसार लिङ्गान्तर अर्थात् पुर्य्यष्टक गर्भ लाभ करके इन्द्रिय वर्गोंमें अधिष्ठान करते हुए इस स्थूल शरीरका अभिमान करता है। और इस स्थूल शरीरमें श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् आदि सब कर्म्मेन्द्रिय निज निज गुणोंके सहित गुणोंमें प्रवृत्त हुआ करती है। पुरुष इन्द्रियरहित और व्रणशून्य होके भी "मैं इन कार्य्योंको किया करता हूं, ये इन्द्रियें मेरी हैं और मैं व्रणवान हूं"—ऐसा ही ज्ञान किया करता है। वह मूढ़ता निबन्धनसे अलिङ्ग होनेपर भी लिङ्ग अर्थात् पुर्य्यष्टक, अमर होनेपर भी आत्माको मरणधर्म्मी बुद्धिसे पृथक् होके भी आत्माको बुद्धिमान् अतत्व अर्थात् अवस्तु देह आदिको आत्मतत्व, किसीका हन्ता न होनेपर भी आत्माको हन्ता अचर होके आत्माको चलनेवाला अक्षेत्र होके आत्माको क्षेत्र असर्ग होके आत्माको सर्ग अतपी होके आत्माको तपस्वी अगति अर्थात् गतागतिसे रहित होके आत्माकी गति, संसार रहित होके आत्माका संसारी अभय होके आत्माको भययुक्त और अक्षर होके आत्माको क्षर,—ऐसाही ज्ञान किया करता है ।

२०३ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! पुरुष इस ही भांति प्रकृति संसर्गके वशमें निज मूर्खता और मूर्खोंके सेवाकी समाप्तिमें पतनशील कोटिसहस्र सृष्टिलाभ किया करता है और चित्तलाके संयोगसे देव मनुष्य और तिर्य्यग्योनिमें भी मरणशील अनेक स्थान लाभ करता है। इस ही भांति पुरुष प्रकृतिके संयोगसे मूढ़ होकर चन्द्रमाकी भांति फिर उन सहस्र भूतयोनियोंको प्राप्त किया करता है, चिदाभासके सहित मूल प्रकृति, दशों इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय ये पन्द्रह कलायोनि हैं, सोम अर्थात् चिदात्मा षोड़श कला है, यह निश्चय जाने कि वे ही योनिभूत पञ्चदश कला और सोमरूप चिदात्मा षोड़श कलाकी प्रभा नित्य प्रकाशित हुआ करती है। अविद्यावशसे पुरुष बुद्धिहीन होकर योनिभूत उन पन्द्रहों कलामें वार वार निरन्तर जन्म ग्रहण करता है। अनन्तर दूसरे समस्त भूत उस जायमान पुरुषके भास अर्थात् आनन्द रूप षोड़श कलाको अव-

लम्बन करके फिर जन्म लिया करते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म उस षोड़श कलाको सोम अर्थात् चिदात्मरूपसे जानना चाहिये, चिदात्मा इन्द्रियोंसे रक्षित नहीं है, परन्तु वही सत्ता और स्फूर्त्ति प्रदान करके इन्द्रियोंकी पालन किया करता है ।

हे नृपसत्तम। षोड़श कला प्राणियोंके उत्पत्तिका कारण है, उसके बिना प्राणिसमूह किसी प्रकार भी जन्म ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते ; क्यों कि वह सोलहवीं कला ही प्राणियोंके सृष्टिकार्य्यकी प्रकृति रूप वर्णित हुई है। इस ही लिये पण्डित लोग कहते हैं, कि कार्य्यरूपी प्रकृतिके नष्ट होनेसे ही मुक्ति हुआ करती है। जो लोग उस सोलहवीं कला अर्थात् अव्यक्तसंज्ञक प्राकृत देहमें ममता करते हैं। वे लोग उस पच्चीसवें महात्मा पुरुष विमल विशुद्ध चिन्मय परब्रह्म स्वरूपको न जानकर उस ही देहमें बारबार भ्रमण किया करते हैं कदाचित मुक्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। क्रमसे वे शुद्ध और अशुद्ध लोगोंकी सेवा करके पवित्र तथा अपवित्र हुआ करते हैं।

हे राजन्! वे असङ्ग शुद्धात्मा होके "यह शरीर मेरा है"—ऐसा समझनेसे अशुद्ध होते हैं, ज्ञानवान होके मूर्खोंकी सेवा करनेसे मूर्खता प्राप्त हुआ करती है। और प्रतिकूल ज्ञान रहित होके भी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी परिचर्य्याके अनुसार त्रिगुणान्वित हुआ करते हैं।

३०४ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे भगवन्! जैसे लोकसमाजमें स्त्री और पुरुषोंका सम्बन्ध दृष्ट है, शास्त्रमें अक्षर और क्षर अर्थात् प्रकृति पुरुषका सम्बन्ध भी उस ही भांति कहा गया है, और जैसे इस लोकमें बिना पुरुषके स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती, वैसे ही पुरुष भी स्त्रीके बिना आकृति तयार करनेमें समर्थ नहीं होता। इस लिये सब योनियोंमें ही परस्परके सम्बन्ध वा परस्परके गुण संश्रयाधीन हैं, इस ही भांति सब रूप निवर्त्तित हुआ करते हैं। परन्तु रतिके निमित्त ऋतु कालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके सम्बन्ध और गुणसंश्रयसे जैसा रूप उत्पन्न होता है, उसका दृष्टान्त कहता हूं। हे द्विजश्रेष्ठ पिता-मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं, वे सब विभाग क्रमसे सन्तानमें उत्पन्न हुआ करते हैं। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें वर्णित है, कि अस्थि, स्नायु, मज्जा, तीनों मातासे उत्पन्न होते हैं, इसे मैं जानता हूं और इसलिये इसे अवश्य ही प्रमाणिक समझना होगा। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें जो प्रमाणरूपसे पठित होता है, वह और वेद वा शास्त्र ये दोनों ही सनातन प्रमान हैं। पुरुष प्रकृतिके जड़ता गुणको रोध करके दुःख अवलम्बन करता है, और प्रकृति पुरुषके आनन्द आदि गुणोंको रोध करके चैतन्यता अवलम्बन करती है। इस ही भांति प्रकृति और पुरुष परस्पर गुणरोध और गुणसंश्रय करते हुए नित्य मिलित हुए हैं। हे भगवन्। इसलिये मैं देखता हूं, कि इसमें मोक्ष धर्म्म किसी प्रकार विद्यमान नहीं रह सकता। यद्यपि दूसरा कोई मोक्ष विषयक निदर्शन हो, तो उसे यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये; आप सदा ही प्रत्यक्षदर्शी हैं, आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हम मोक्षगामी हैं, इससे जो अनामय, अदेह, अजर, अतीन्द्रिय ईश्वरसे भी अतिरिक्त और नित्य है, हम उसहीकी आकांक्षा करते हैं।

वसिष्ठ बोले, हे नरराज! आपने जो यह वेद और शास्त्रके प्रमाण कहे और मन ही मन जैसी धारणा की है, वह ठीक ऐसी ही है ; आपने वेद और शास्त्र दोनों ग्रन्थोंमें अभ्यास किया है, परन्तु उसमेंसे यथार्थ अर्थको ग्रहण न कर सके, जो लोग वेद और शास्त्रोंके

अध्यासमें अनुरक्त होकर उनके मर्मको यथावत ग्रहण नहीं कर सकते, उनका ग्रन्थ-अभ्यास निष्फल है। जो लोग ग्रन्थके अर्थको नहीं जान सकते, वे केवल ग्रन्थका बोझ ढोया करते हैं, जो उनके अर्थको यथार्थ रीतिसे जान सकते हैं, उनका अभ्यास निष्फल नहीं होता, वैसे अर्थवित् पुरुषोंसे यदि कोई ग्रन्थका अर्थ पूछे, तो जिस प्रकार जिज्ञासु पुरुष समझ सके, वैसे ही उसे अवश्य उपदेश देना योग्य है। जो स्थूलबुद्धि पण्डित सभामें ग्रन्थका अर्थ नहीं कह सकता, वह मन्दबुद्धि किस प्रकार निश्चय करके ग्रन्थकी व्याख्या करेगा। जब कि आत्मज्ञानी लोग भी यथार्थ रूपसे ग्रन्थके मतकी व्याख्या करते हुए उपहासको प्राप्त होते हैं, तब अज्ञानी लोग जो हास्य स्पद होंगे उसमें सन्देह ही क्या है। हे राजेन्द्र। इसलिये सांख्य योग और महात्म वे जिस प्रकार आत्मज्ञानियोंमें यथार्थ रूपसे दीखते हैं, उसे सुनो। योगी लोग अनुभव करते हैं, सांख्य लोग उसहीका अनुगमन किया करते हैं; इसलिये जो लोग योग और सांख्य दोनोंको ही एक जानते हैं, वेही बुद्धिमान हैं। हे तात। त्वक्, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रिया स्त्री पुरुषसे उत्पन्न होती है स्त्री-पुरुषकी भांति प्रकृति पुरुषसे शरीर सम्पादित होता है, यह जो वचन पहले मुझसे कहे थे, वह युक्तायुक्त नहीं है; क्यों कि द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रिय देहसे देह और बीजसे बीज उत्पन्न हुआ करते हैं। निरिन्द्रिय बीजशक्ति शून्य, निर्द्रव्य, अदेही निर्गुण महात्मा पुरुषसे किस प्रकार सब गुण उत्पन्न होंगे। समस्त गुण गुणसे ही उत्पन्न होते हैं, और उस होमें निविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये सब गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होके उसहीमें लीन होते हैं। त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और स्नायु, ये आठों शुक्रके जरिये प्रकृतिसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सबको प्राकृतिक जानना चाहिये। पुमान जीव, अपुमान पञ्चविषयादि और प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता ये लिङ्गत्रय प्राकृत है। विशुद्ध चिन्मात्र लिङ्गी प्राकृत पुमान् वा अपुमान् कुछ भी नहीं है। जैसे सब ऋतु फल और पुष्पके जरिये सदा मूर्त्तिमान रूपसे मालूम होती है, वैसे ही प्रकृति अलिङ्ग पुरुष पुरुषको प्राप्त होकर आत्मज लिङ्ग महदादि कार्य्योंके जरिये अनुभूत, हुआ करती है। इस ही भांति अलिङ्ग पुरुष भी अनुमानसे अनुभूत होता है। हे तात! पचीस तत्व लिङ्गके बीच नियतात्मा, उत्पत्ति विनाशसे रहित, अनन्त सर्व्वदर्शी निरामय पुरुष केवल देहादि गुणोंके अध्यासके कारण गुण रूपसे वर्णित हुआ है। जो गुणवान हैं, उन्हींमें संयोग आदि गुण विद्यमान रहते हैं, निर्गुण आत्मामें किसी प्रकार उक्त गुण विद्यमान नहीं रह सकते; इसलिये गुणदर्शी लोग ही उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं, जब कोई पुरुष प्राकृतकाल आदि गुणोंको जय करे, तब वह देहादिमें आत्मभावरूप भ्रम परित्याग करके परम पुरुषका दर्शन करनेमें समर्थ होगा। सांख्य और योगी लोग जिसे बुद्धिसे अतिरिक्त, अबुद्ध जड़ अहङ्कार आदिके परित्यागसे बुध्यमान, महाप्राज्ञ, अप्रबुद्ध अर्थात् अज्ञान गुणातीत, गुणसम्बन्धरहित अन्तर्य्यामी, नित्य, सर्व्वकार्य्योंके नियन्ता, प्रकृति और महदादि गुणोंकी अपेक्षा पचीसवीं कहके निर्द्देश करते हैं, सांख्य और योगमार्गमें कुशल पण्डित लोग ही उसे जान सकते है बाल्य आदि अवस्था और जन्मभयसे भीरु ज्ञानवान् पुरुष जब प्रमाता जीवको यथार्थ रूपसे जान सकेंगे, तब उनके जीव ज्ञानके समकालमें ब्रह्मज्ञान उदय होगा। हे अरिदमन! ज्ञानवान पुरुष जीव और ईश्वरके अभेद ज्ञानको शास्त्रसम्मत सम्यक वा पृथक् कहा करते हैं और अज्ञानी लोग जीव ईश्वरके अभेद ज्ञानको अशास्त्र, असम्यक् त

पृथक् कहा करते हैं, चर और अचर अर्थात् जीव ब्रह्मका निदर्शन परस्पर इस ही भांति कहा गया है, परन्तु पण्डित लोग एक मात्र अविनाशी पुरुषको अचर और अनेक रूप विनाशीको चर कहा करते हैं। जब पुरुष रज्जु सर्पकी भांति भ्रमात्मक पञ्चविंशति तत्वकी सब भांतिसे आलोचना करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह षड्विंश आत्माका दर्शन करते हुए आत्माके एकत्व शास्त्रसम्मत और नानात्व अशास्त्र, इसे विशेष रूपसे जानता है, तत्वजनित और निस्तत्व अजन्य दोनोंका निदर्शन पृथक् है, परन्तु मनीषी लोग पञ्चविंशति सर्गको तत्व कहके निर्द्देश करते हैं, पञ्चविंशके अतिरिक्त षड्विंश निस्तत्व है, और पञ्चविंश्यात्मक सर्गके प्रत्येक पांच पांच वर्ग विषयक जो ज्ञान है वही सत्य है।

३०५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे ऋषिसत्तम! आपने अनित्य चर और नित्य अचरके अनेकत्व और एकत्वरूप जो दो दृष्टान्त प्रदर्शित किये, उनमेंसे एकत्वमे बन्ध और मोक्ष विषयक व्यवस्थाकी अनुपपत्ति तथा अनेकत्वमें आत्मनाशका प्रसङ्ग;—इस प्रकारके संशयमें दोनों पक्षमें अवलोकन करता हूं। हे अनघ! मैं स्थूलबुद्धिके कारण मूर्ख और ज्ञानवान् पुरुषोंसे बध्यमान जीवात्माका तत्व निश्चय रूपसे नहीं जान सकता हूं; और आपने जो चर तथा अचर अनेकत्व एकत्वरूप कारण निर्द्देश किया है, बुद्धिकी अस्थिरता निबन्धनसे उसे भी मैं निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। हे भगवन्! इसलिये पहले कहे हुए नानात्व, एकत्व बुद्धज्ञाता, अप्रतिबुद्ध, प्रधानादि, बुध्यमान जीव नित्य अचर, अनित्य चर वस्तुतत्व-विवेक साङ्ख्य, चित्तवृत्ति निरोधयोग, पृथक् भेद और अपृथक् अभेद, इन सबको फिर यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

वसिष्ठ बोले, हे महाराज! आपने जिन विषयोंको पूछा है, मैं उनका यथार्थ वृत्तान्त तुमसे संक्षेप करके कहूंगा, अब आप मेरे समीप पृथक् रूपसे योगकृत्य सुनिये। योगियोंको योग अवश्य करना योग्य है, योगरूप ध्यान ही उनका परमबल है; विद्यावित् पुरुष उस ध्यानको चित्तकी एकाग्रता और प्राणायाम भेदसे दो प्रकारका कहा करते हैं। उनमेंसे प्राणायाम सगुण विषयमें और चित्तकी एकाग्रता निर्गुण विषयमें कही गई है। हे नरनाथ! भोजन, मूत्र और मलत्याग, इन तीनों कालके अतिरिक्त पुरुष आलसरहित होके सब समयमें ही योगका अनुष्ठान करे, बुद्धिमान मनुष्य शब्द आदि विषयोंसे अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंको निवृत्त करते हुए पवित्र होकर परमात्मतत्व जाननेके निमित्त नासिका पुटमें वायुको आकर्षण करके अंगूठेसे सिर पर्य्यन्त सब शरीर वायुके जरिये परिपूर्ण करके धीरे धीरे ब्रह्मारन्ध्रसे मस्तकमें, मस्तकसे भौंके बीच, भ्रूमध्यसे नेत्रमें; नेत्रसे नासामूलमें, नासामूलसे जिह्वामें, जिह्वासे कण्ठकूपमें, कण्ठकूपसे हृदयमें, हृदयसे नाभिस्थलमें, नाभिस्थलसे पीठ, पीठसे फिर हृदय, हृदयसे गुह्य, गुह्यसे उरुमूल, उरुमूलसे दोनों जानु, जानुसे चितिमूलमें, चितिमूलसे जङ्घामें, जङ्घासे गुल्फ और गुल्फसे पैरके अंगूठेमें वायुका आकर्षण तथा ध्यान धारणा समाधि और प्रकृति पुरुषका भेद ज्ञान, इन बाईस प्रकारके प्राणायामके जरिये मनीषी लोग जिसको सर्व्व शरीरमें स्थित और अजर कहा करते हैं, उस चौबीस तत्वके अतिरिक्त जीवको बाईस प्रकार प्रेरण करे। हे राजन्! मैंने ऐसा सुना है, कि उस बाईसों प्रकारके प्रेरणसे ही आत्माको सदा जाना जासकता है और यह निश्चय है, कि जिसका चित्त काम आदिके जरिये कभी आहत नहीं हुआ है, उन्हें ही यह योगरूप व्रत अनुष्ठेय है, ऐसे लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंका

अनुष्ठेय नहीं है। योगाचारी पुरुष अल्पाहारी जितेन्द्रिय और सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त होकर रात्रिके प्रथम और शेष भागमें आत्मासे मन संयुक्त करें।

हे मिथिलेश्वर! जो लोग मनके जरिये इन्द्रिय वर्गोंको स्थिरीकृत करके बुद्धिके सहारे चित्त स्थिर करते हुए पत्थरकी भांति निश्चल स्थाणु-प्राय अकम्प और पहाड़की भांति अविचल होसकें, विधि वा विधानवित् पण्डित लोग उन्हें ही योगी कहा करते हैं और जो लोग समाधि समयमें सुनना, सूंघना, चखना देखना और छूना आदि विषय ज्ञान तथा अन्य विषयक मनन वा अभिमान रहित काष्ठके समान किसी विषयका बोध नहीं करते, मनीषी लोग उन्हें विशुद्ध स्वभावसे युक्त योगी कहा करते हैं। जैसे निर्व्वात स्थानमें जलता हुआ दीपक उर्द्ध अध और तिर्य्यग् गतिसे रहित होकर अविचलित रूपसे प्रकाशित होता है, वैसेही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें बुद्धि आदि अन्तःकरण धर्म्मसे रहित होकर निश्चल भावसे प्रकाशित होता है। हे तात! जिस परमात्माके साक्षात्कार होनेसे हृदयस्थ अन्तरात्माका 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों मेरे समान पुरुषोंके जरिये अभिहित नहीं होते, समाधि समयमें समाधिस्थ पुरुष उस परमात्माको देख सकते हैं; उस समयमें धूमरहित अग्नि, रश्मिवान् सूर्य्य और आकाशस्थ वैद्युत अग्निकी भांति आत्मा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित हुआ करती है, जिस समय महात्मा धृतिमान मनीषी वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस अयोनि अमृत स्वरूप परब्रह्मका दर्शन करते हैं, तब वे उसे सूक्ष्म महत्तर, सर्व्व भूतोंमें विद्यमान और सबके अगोचर ऐसा ही वचन कहा करते हैं। हे तात! ज्ञानरूप द्रविणयुक्त मनुष्य मनोमय दीपकके जरिये महान् तमोगुणके पारमें स्थित लोकातिरिक्त भूरादि भुवनके कर्त्ता उस परमात्माका दर्शन करते हैं। सर्व्वज्ञ वेदपारग ब्राह्मण लोग इस ही प्रकार कहा करते हैं, कि उसे निर्म्मल तमसे रहित वाक्य मनके अगोचर निरुपाधि ब्रह्मका बोध होनेपर मनुष्य संसार-पासको छेदन करता है। हे राजन्! मैंने जो कहा, इसे ही योग कहते हैं, इसके अतिरिक्त योगका और कुछ भी लक्षण नहीं है। इस योगबलसे ही महात्मा योगी लोग सर्व्वदर्शी अजर परमात्माका दर्शन किया करते हैं। हे तात! मैंने तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त योग-ज्ञानको यथावत् वर्णन किया; परन्तु जिसके जरिये सब भ्रम दूर होके परमात्म दर्शन होता है; उस सांख्य ज्ञानको फिर तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

हे राजसत्तम! मैंने सुना है, कि प्रकृतिवादी आत्मदर्शी सांख्यलोग पहली प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और उसहीसे दूसरी महत्, महत्से तृतीय अहङ्कार और अहङ्कारसे सूक्ष्म तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है,—ऐसा ही कहा करते हैं। अव्यक्तसे पञ्चतन्मात्र पर्य्यन्त इन आठोंको प्रकृति और अन्तःकरणके सहित एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च स्थूल भूत, इन सोलहोंको विकार कहते हैं। इनमेंसे विषयादि पञ्चभूत विशेष रूपसे और शेष ग्यारहो निज निज विषयोंके प्रकाशक होनेसे इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुए हैं। सदा सांख्य मार्गमें रत मनीषी विधि विधानवित् पण्डितोंने सांख्यके बीच चौबीस तत्वोंको यहां-तक ही विचार किया है। हे नृपसत्तम! जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह उसहीमें लीन हुआ करती हैं। सृष्टि कालमें सब प्राणि अन्तरात्मासे अनुलोम क्रमसे उत्पन्न होकर प्रतिलोममें लीन होते हैं। इस ही प्रकार सब गुण समुद्रसे उत्पन्न हुई लहरकी भांति सदा गुणसे ही उत्पन्न होके उसीमें लीन हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र! सर्ग प्रलय केवल एक ही ... प्रकृति आदिकी उत्पत्ति और प्रलय

है। प्रलयकालमें पुरुषका एकत्व और सृष्टि कालमें उसका अनेकत्व होता है; ज्ञानवान् पण्डित लोग ऐसा ही जानते हैं। अव्यक्त प्रकृति ही इस एकत्व और अनेकत्वका निदर्शन है, इसलिये जो लोग प्रकृत्तिके अर्थको यथार्थ रीतिसे जानते हैं, वे ही एकत्व और अनेकत्वके कारणको समझ सकते हैं।

हे राजेन्द्र! चिदात्मा प्रसवात्मिका प्रकृतिको अनेक प्रकार विभक्त किया करता है वह प्रकृतिही क्षेत्ररूपसे वर्णित हुई है, महात्मा पञ्चविंशति तमपुरुष उसमें ही अधिष्ठान करता है, इसीसे योगी लोग पुरुषको अधिष्ठाता कहा करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि क्षेत्रोंके अधिष्ठान निबन्धनसे पुरुष अधिष्ठाता होता है और वह अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र जानता है, इस ही सबबसे क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित हुआ करता है; शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि जब पुरुष प्रकृतिक पुर्य्यष्टक क्षेत्रमें प्रविष्ट होता है, तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ये दोनों पृथक् रूपसे कहे जाते हैं। अव्यक्त क्षेत्र है, पञ्चविंशतितम पुरुष ज्ञाता है, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय परस्पर पृथक् हैं। इनमेंसे अव्यक्तज्ञान और पचीसवां पुरुष ज्ञेयरूपसे वर्णित हुआ है। शास्त्र अव्यक्तको क्षेत्र, सत्त्व, अर्थात् बुद्धि वा ईश्वर कहा करता है। हे राजन्! साङ्ख्य दर्शन इतना ही है। इस दर्शनके अनुसार सांख्य लोग स्थूल सूक्ष्म क्रमसे चिदात्मामें जो जगत्प्रपञ्च लीन होता है, उसे देखते हैं और प्रकृतिको जगत्का कारण कहते हैं। तथा वे लोग प्रकृतिके सहित चौबीसों तत्वोंकी यथावत् गिनती करके पचीसवें पुरुषको निस्तत्त्व कहा करते हैं। पचीसवां बुध्यमान जीव अप्रबुद्ध प्रकृतिको परित्याग करके आत्मदर्शन कर सकनेसे वह केवल शुद्ध चैतन्यरूपसे निवास करता है।

हे राजन्! मैं तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त सम्यक्दर्शन यथावत् वर्णन किया, लोग इसे विशेषरूपसे जाननेसे ही अवश्य ही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। परब्रह्मके साक्षात्कारको ही सम्यक् दर्शन कहते हैं; इसहीमें सर्पकी भांति अब्रह्मदर्शन भ्रान्तिदर्शन है, वह सम्यक् दर्शन नहीं है; जैसे निर्गुण पुरुषसे विभिन्नसहदादि व्यवहारिक प्रथाके अनुसार दृश्यत्व निबन्धन प्रत्यक्षरूपसे गिना जाता है, वैसे ही निर्गुण पुरुषका भी दर्शन हुआ करता है। इस ही भांति आत्मदर्शी विदेहमुक्त पुरुषोंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है और सदेहमुक्त पुरुषके अक्षरत्व निबन्धनसे सत्य काम और सत्य सङ्कल्प आदि ऐश्वर्य्य समाधिकालका निरुपाधिक सुख और अव्यय भाव हुआ करता है। हे अरिदमन! जो लोग एक मात्र परमात्मदर्शनके अतिरिक्त अनेक वस्तुओंका दर्शन करते हैं, वे पूर्णदर्शी नहीं हो सकते; बल्कि वे बार बार जन्म लेके इस लोकमें शरीर धारण किया करते हैं, और जो लोग अर्थके सहित इन वाक्योंको विशेष रूपसे जानेंगे, वे लोग सर्व्वज्ञताके कारण शरीरके वशवर्त्ती न होंगे। हे राजन्! अव्यक्त सर्व्व और पचीसवां पुरुष असर्व्वरूपसे कहा गया है, इसलिये जो लोग इस असर्व्व पचीसवें पुरुषको सब भांतिसे जान सकते हैं, उन्हें फिर संसारके दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता।

३०६ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपके समीप यहांतक ही सांख्यदर्शन वर्णन किया अब फिर विद्या और अविद्याके विषयको विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो। पण्डित लोग सर्ग और प्रलय धर्म्मयुक्त अव्यक्तको अविद्या तथा सर्ग वा प्रलयधर्म्मरहित पचीसवें पुरुषको विद्या कहा करते हैं। हे तात! ऋषियोंने सांख्य शास्त्रको सम्यक् निदर्शनस्वरूप परस्परकी विद्या जिस

प्रकार वर्णन की है, उसे तुम्हारे समीप विस्तारके सहित कहता हूं, सुनो। कर्म्मेन्द्रियोंकी विद्या बुद्धीन्द्रिय है बुद्धीन्द्रियकी विद्या विशेष अर्थात् विषयादि पञ्चस्थूलभूत विशेषकी विद्या मन, मनकी विद्या पञ्चमहाभूत, पञ्चभूतकी विद्या अहंकार, अहंकारकी विद्या बुद्धि अर्थात् महत्तत्व महदादि सब तत्वोंकी विद्या है, अव्यक्त परमेश्वरी प्रकृति है, ये विद्या सब पुरुषोंकी श्रेय है, इसलिये इनमें परम विधि वर्णित हुई है; अव्यक्तकी परम विद्या पचीसवां पुरुष है। हे राजन्। सर्व्व ज्ञानका ज्ञेय सर्व्व अव्यक्त कहा गया है और अव्यक्त ज्ञान, पचीसवां पुरुष ज्ञेय तथा अव्यक्त ज्ञान पञ्चविंशति तम पुरुष ज्ञाता है, यह पहले कहा गया है। हे राजन्। मैंने विद्या और अविद्याकी यथार्थ रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया; परन्तु पहले जो चर और अचर कहके वर्णित हुआ है, उसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। अनादि निवन्धनसे प्रकृति और जीव दोनों ही अचर रूपसे कहे गये हैं, और भूतोंके सहित विज्ञानघन आत्माका भी नाश होता है, इस युक्तिसे सबब प्रकृति तथा जीव दोनों ही चर रूपसे वर्णित हुए हैं। परन्तु मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार मैं इनका कारण यथार्थ रूपसे कहता हूं। ब्रह्मदर्शी ब्राह्मण लोग इस प्रकृति और जीव दोनोंको ही अनादि निवन्धन ईश्वर और तत्व कहके व्याख्या करते हैं और सर्ग वा प्रलय धर्म्मके कारण महदादि गुणोंको सृष्टिका निमित्त बार बार विकृत इस अव्यक्तको अचर कहा करते हैं। और परस्पर अधिष्ठानके हेतु पचीसवा चिदाभास जीव वा महदादि गुणोंकी उत्पत्ति स्थान कहके इसे चेत्र कहा करते हैं, इसलिये जीवको भी अचर कहना पड़ेगा। हे तात! जब योगी लोग परमात्मा अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप परब्रह्ममें गुणोंको लीन करते हैं, तब उन गुणोंके सहित पचीसवां पुरुष भी लीन होनेपर उस समय जैसे केवल एकमात्र प्रकृति ही विद्यमान रहती है, वैसे ही पचीसवां चेत्रज्ञ पुरुष भी निज उत्पत्ति स्थान छब्बीसवें परब्रह्ममें लीन होनेपर उस समय एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान रहता है। हे विदेहराज! जब पचीसवां चेत्रज्ञ पुरुष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त होता है, तब महदादि गुणोंसे युक्त अव्यक्त प्रकृति और देहाश्रित प्रत्येक श्रोत्र आदि गुणोंमें अविद्यमानताके कारण चरत्वको प्राप्त हुआ करता है। इस ही भांति चेत्रज्ञ भी चरत्वको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि यह चेत्रज्ञ पुरुष चेत्रज्ञान अर्थात् प्रकृति ज्ञानसे रहित होनेसे ही स्वभाविक निर्गुण होता है। हे राजन्! यह चेत्रज्ञ स्वभावसे चर होनेपर भी निर्व्विकल्प समाधिके समयमें जब गुणवती प्रकृतिको अपनेसे पृथक् बोध करता है, तब अपना निर्गुणत्व जान सकता है। और जब चेत्रज्ञ ज्ञानवान होकर "मैं अन्य हूं, प्रकृति मुझसे भिन्न है" ऐसा समझता है, तब प्रकृति परित्याग करनेसे वह केवल शुद्ध रूपसे स्थिति करता है। हे राजेन्द्र! प्रकृति परित्यक्त होनेसेही यह चेत्रज्ञ पञ्चविंशतितम रूप संज्ञा वा मिश्रभाव परित्याग करता है, क्योंकि चेत्रज्ञ प्रकृतिके सहित मिश्रित हुआ रहता है। परन्तु जब चेत्रज्ञ प्राकृत गुणोंको घृणास्पद बोध करता है, तब वह परब्रह्मका दर्शन करके फिर उसे परित्याग करना नहीं चाहता। बल्कि उस समय उसके अन्तःकरणमें इस प्रकार ज्ञान उदय होता है, कि मैंने क्या किया। जैसे मछली अज्ञानके कारण जालकी अनुवर्त्ती होती है, वैसे ही मैं इस लोकमें इस कालरूप प्राकृत शरीरका अनुवर्त्ती होता हूं। जैसे मछली जलको अपना जीवन समझके एक तालाबसे दूसरे तालाबमें जाती है। वैसे ही

वशसे एक देह छोड़के देहान्तरका अनुवर्त्ती होता हूं, और जैसे मछली मूर्खताके कारण अपनेको जलसे अलग नहीं समझती, वैसे ही मैं भी अज्ञानके वशमें होकर पुत्र आदिको आत्मासे पृथक् नहीं समझता हूं। इसलिये मैं अज्ञ हूं, मुझे धिक्कार है। क्यों कि मैं मोहके सबब इस विपद्ग्रस्त शरीरका बार बार अनुवर्त्ती होता हूं। मैं चाहे कोई क्यों न हूं, इस संसारमें यही मेरा सखा है, इसके सङ्ग हमारी योग्यता है, इसके सङ्ग मैंने समता और एकता लाभ की है, और इसके साथ मैं अपनी समानता देखता हूं ये निष्कपट हैं, मैं इस प्रकार हूं; क्यों कि अज्ञानतासे मैं इस जड़-स्वभाव प्रकृतिके सहित प्रवृत्त हुआ हूं। मैं आसक्ति रहित होके भी ससङ्ग प्रकृतिके सहित इस कालरूप देहमें निवास करता हूं, और इस प्रकृतिके वशमें होके यह जो काल स्वरूप शरीर है, उसे नहीं जान सकता। उत्तम देवता, मध्यम मनुष्य और अधम तिर्य्यग् रूपसे विकृत प्रकृतिमें मैं किस प्रकार निवास करूं, यह इसी प्रकार है, अब इसके सङ्ग मेरा सहवास होनेसे मैं कभी आत्माको न जान सकूंगा। इसलिये वञ्चना पूर्व्वक इस कालरूप प्रकृतिका सहवास त्याग करना ही उचित बोध होता है। मैं जो निर्व्विकार होके भी विकार स्वरूप प्रकृतिसे वञ्चित हुआ हूं, उसमें उसका कुछ अपराध नहीं है, अपना ही सारा अपराध स्वीकार करना होगा। जब मैं मूर्खताके सबब बाह्यविषयोंको भोग करनेकी अभिलाषासे इस प्रकृतिमें आसक्त हुआ हूं, तब अमूर्त्त होनेसे भी उस ही योनिमें वर्त्तमान रहनेसे मेरा चित्त ममतासे आक्रुष्ट होनेपर हमारा कितना अनिष्ट हुआ है, वह अवक्तव्य है। जो हो, अब इस प्रकृतिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है; क्यों कि यह प्रकृति अहंकारके जरिये आत्माके सर्व्वज्ञत्व आदि सब गुणोंको आवरण करती हुई अनेक शरीरमें विभक्त करके बार बार मुझे संसारमें नियुक्त करती है। जो ममता सदा अहंकारके जरिये हमारे बुद्ध्यादि धर्म्मोंका आवरण करती है, वह इसी प्रकृतिमें ही विद्यमान रहे, मैं जो ममतारहित और अहंकारशून्य हूं, उसे इस समय जान लिया है। इसलिये मैं प्रकृतिको परित्याग करके निरामय निर्द्वन्द्व परमात्माका आश्रय करूंगा। इस परमात्माका आसरा करनेसे अवश्य ही मेरा मङ्गल होगा; इसलिये इसके सङ्ग समता लाभ करूंगा। कदापि जड़-स्वभाववाली प्रकृतिके सङ्ग संसर्ग न करूंगा। जब पच्चीसवां पुरुष इस ही प्रकार अनामय परमात्माको समझ सकेगा, तब परमात्म बोधके सबब क्षरको परित्याग करके अक्षरत्व लाभ करेगा। हे मैथिल! अव्यक्त और व्यक्त धर्म्मयुक्त सगुण तथा निर्गुण है, उसमेंसे जो लोग अव्यक्तका भी आदि भूत निर्गुण परब्रह्ममें दर्शन कर सकते हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! क्षर और अक्षरके वेदविहित अनुभवयुक्त ज्ञानसे पूरित सूक्ष्म सन्देहरहित निर्दोष, इस निदर्शनको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर यथाश्रुत वही विषय तुमसे फिर कहता हूं, सुनो। दोनों शास्त्रोंके अनुभवके अनुसार सांख्य और योग दोनों ही मेरे जरिये कहे गये हैं; परन्तु जो शास्त्र सांख्योक्त है, उसे ही निश्चय योगदर्शन जानो। हे पृथ्वीपाल! मैंने शिष्योंके हितकामनासे उनके समीप इस प्रबोधक सांख्यज्ञानको विशिष्ट रूपसे प्रकाशित किया है। बुद्धिमान पण्डित लोग इस शास्त्रको बृहत् और शीघ्र फल देनेवाला कहते हैं; इसलिये योगी लोग वेद और शास्त्रका अत्यन्त ही समादर करते हैं। हे नरनाथ! सांख्य लोगोंने साख्य शास्त्रमें पञ्चविंशति तत्वके अतिरिक्त तत्व स्वीकार नहीं किया है; उन लोगोंका जो परम तत्व है, उसे ही यथावत् वर्णन किया है। साख्य लोग

करती हैं, कि लोग मूर्खतासे नित्य प्रवृत्त परमात्मा और जीवके एकत्व स्वरूपको न जानकर दोनोंमें भेद कल्पना किया करते हैं ; परन्तु यथार्थमें योगसे जीव ब्रह्मकी एकता मालूम हुआ करती है ।

३०७ अध्याय समाप्त।

वशिष्ठ बोले, हे राजन् ! अनन्तर बुद्ध परमात्मा वा सत्व आदि गुणोंकी विधिकर्त्ता प्रबुद्ध जीवका विषय कहता हूं, सुनो। परमात्मा मायाके सहारे अपनेको विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा और अन्तर्यामी रूपसे अनेक भागमें विभक्त करके उन सब रूपोंको यथार्थ कहके बोध करता है। उस समय बुध्यमान जीव "मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता हूं" इस ही प्रकार अभिमानके अनुसार सत्वादि गुणोंको धारण करते हुए स्रष्ठ्रादिके कर्तृत्वरूपसे विकृत होकर बुद्ध परब्रह्मको यथार्थरूपसे नहीं जान सकता।

हे प्रजानाथ । इस लोकमें क्रीड़ाके निमित्त जीव वारम्वार विकृत हुआ करता है और कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है मैं आपको नहीं जानता, "इस ही भांति अविद्या कार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहके निर्द्देश करते हैं। हे तात ! अव्यक्त अचेतन होनेसे कौन वस्तु सगुण है, कौन निर्गुण है, उसे किसी प्रकार भी जाननेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये लोग उसे अप्रतिबुद्ध कहा करते हैं। वेदमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि अव्यक्त प्रकृति, यद्यपि पञ्चविंश बुद्धमान और सङ्ग होनेसे उसे जान सकता है। तथापि वह परमात्माको नहीं जान सकता। पुरुष स्फुट अविकारी होनेपर भी ससङ्गत्व विषयसे लोग उसे मूढ़ कहा करते हैं ; और महात्मा पचीसवां पुरुष कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता" इस ही प्रकार अविद्याकार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहा करते हैं। उस ही निमित्त परमात्माको नहीं जान सकता, परन्तु केवल चैतन्यस्वरूप निर्म्मल बुद्ध अप्रमेय सनातन छव्वीसवां परमात्मा सदा चतुर्विंश अव्यक्त और पचीसवें पुरुषको जाननेमें समर्थ है। हे तात ! जो लोग दृश्य और अदृश्य अर्थात् कार्य्य तथा कारण रूप स्थूल सूक्ष्म समस्त पदार्थोंमें सदा स्वरूपसे अनुगत रहते हैं, वे केवल सत्भावसे ही षड़विंश शब्दसे कहे गये हैं ; इस ही लिये मनीषो लोग इस सजीव शरीरस्थ उस षड़विंशको अव्यक्त ब्रह्म कहके बोध करते हैं। जब बुध्यमान जीव अपनेको "मै अन्य हूं" ऐसा जानता है, तब केवल सत्स्वरूप षड़विंश, पचीसवां पुरुष और चतुर्विंश अव्यक्त प्रकृतिको प्रत्यक्ष करके उसे पराजय करनेमें समर्थ होता है, तब उसकी सर्व्वश्रेष्ठ विशुद्ध ब्रह्मविषयिणी बुद्धि उदय हुआ करती है।

हे राजशार्दूल ! उस ब्रह्मविषयक विद्याका उदय होने पर षड़विंश धर्म्मबुद्धत्व लाभ करके सर्ग और प्रलयधर्म्मवाली प्रकृतिको परित्याग किया करता है। जो निर्गुण होके सगुण अचेतन प्रकृतिको जान सकते हैं, वे षड़विंश होते हैं, इसलिये अव्यक्त प्रकृतिका साक्षात्कार होनेसे ही जीव षड़विंश हुआ करता है। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जीव तीनों उपाधिसे मुक्त होकर षड़विंशके सहित मिलित होनेपर अजर, अमर, अनारोपित, नित्य अपरोक्ष परमात्माको पाता है। हे मानद ! षड़विंश परमात्मा प्रत्यक्ष परि दृश्यमान शरीर आदि तत्वोंका आश्रय होनेपर भी तत्वरूपसे न माना जायगा ; क्यों कि मनीषी लोग पञ्चविंश पर्य्यन्त ही तत्व कहा करते हैं। हे ता

कार्य्य और कारण रूप उपाधि रहित ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म कार्य्यभूत महदादि तत्त्वोंमें कदापि विद्यमान नहीं रह सकता; क्यों कि यह निज तत्त्व बुध्यत्व लक्षण "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी वृत्ति भी परित्याग किया करता है। जीवके अन्तःकरणकी वृत्ति सदा षड्विंश आकारमें परिणत होने पर वह अजर और अमर होकर बलपूर्व्वक निश्चयही षड्विंशके सङ्ग समता लाभ करता है। जीव प्रबोध स्वरूप षड्विंश परब्रह्मके जरिये प्रबोधित होके भी अज्ञान वशसे उस परब्रह्मको न जान सकनेसे उस ही अज्ञानके अनुसार अनेकत्व अर्थात् प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है यह सांख्य और वेदमें वर्णित हुआ है। और जब ज्वरात्मक जीव चैतन्यतायुक्त होकर अपनेको "अहं" इस रूपसे नहीं बोध करता, उस ही समय उसका एकत्व हुआ करता है। हे मिथिलाधिपति नरेन्द्र! सुखादि संसर्ग अहंकाराभिमानी जीव जब ज्ञानके अगोचर उस षड्विंशके सहित समता लाभ करता है, तभी वह निःसङ्ग होता है। परन्तु जब जीव अज निःसङ्ग सर्व्वव्यापी षड्विंशको प्राप्त होकर विशेष रूपसे उसे जान सकता है, तभी वह अव्यक्त प्रकृतिको परित्याग किया करता है। इस ही प्रकार जब षड्विंशका बोध होता है, तब उसे चौबीस तत्त्व असार मालूम होते हैं। हे पाप रहित। वेदविहित अनुभवके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप अप्रतिबुद्ध, क्षर बुध्यमान और अक्षर बुद्ध ईश्वर विषयका यथावत वर्णन किया; परन्तु इस ही भांति शास्त्रके अनुसार अनेकत्व और एकत्वका विवरण अनुभव करो। जैसे उडुम्बरके सहित मशक और जलके संग मछलीकी परस्पर विभिन्नता मालूम होती है, वैसेही प्रकृतिके संग पुरुषका पार्थक्य, अनेकत्व और एकत्व मालूम करो। परन्तु सांख्य शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि प्रकृतिको अपनेसे पृथक् जाननेसे ही उसकी मुक्ति और उसही समयमें एकत्व व्यवहृत होती है नहीं तो उसकी सदा नानात्व व्यवहृत हुआ करती है। ऋषि लोग कहते हैं, कि इस पञ्चविंश पुरुषके शरीरमें जो षड्विंश परब्रह्म विद्यमान है, अव्यक्त ज्ञान और अज्ञानके विषय महदादिकोंसे उसे विमुक्त करना होगा, और ऐसा निश्चय है, कि अज्ञान नष्ट होनेसे ही षड्विंश परमात्मा मुक्त होता है, नहीं तो उसके मुक्ति लाभकी सम्भावना नहीं है। हे पुरुष श्रेष्ठ। यह चिदात्मा जीव इस लोकमें चेतके सहित एकीभूत होकर चेत-धर्म्मा होता है, और शुद्ध बुद्ध परमात्माके सहित मिलित होनेसे विशुद्ध धर्म्मा, मुक्तके संग संयुक्त होनेसे विमुक्त धर्म्मा वियोग धर्म्माके सहित मिलनेसे विमुक्तात्मा विमोक्षि संसर्गसे विमोक्ष शुचिकर्म्मा सहवाससे शुचि, विमलात्माके सहित एकत्रित होनेसे विमल आत्मा केवल सम्बलित होकर केवलात्मा स्वतन्त्र संयोगसे स्वतन्त्र होके स्वतन्त्रता लाभ किया करता है।

हे महाराज। मैंने तुम्हारे समीप इस यथार्थ तत्त्वको यथावत वर्णन किया है, आप मत्सरता रहित होके विशुद्ध आद्य सनातन परब्रह्म स्वरूप यह अर्थ परिग्रह करिये। हे राजन्। इस वेदमार्गमें श्रद्धाहीन प्राणियोंके प्रणत होनेसे उन्हें प्रबोधित करने और तत्त्वरत प्यासे लोगोंको आप ज्ञानका कारण परम तत्त्व प्रदान करिये, परन्तु अनृतात्मा, शठ, कायर, कुटिलबुद्धि, पाण्डित्याभिमानी और दूसरेको पीड़ित करनेवाले पुरुषोंको यह कदापि प्रदान न करिये। परन्तु जैसे पुरुषोंको इसका उपदेश देना चाहिये, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो। हे नरेन्द्र। जो लोग श्रद्धावान्, गुणवान्, सदा परापवादसे विरत, विशुद्ध, योगरत, पण्डित, क्रियावान्, क्षमाशाली, लोकहितैषी, पुण्यशील, विधिप्रिय, विवाद रहित, विज्ञ, हितकारी पुरुषोंके विषयमें क्षमावान्,

शम और दम गुणमें आसक्त हैं; उन्हें ही यह परम तत्व प्रदान करो। जो लोग ऐसे गुणोंसे हीन हों, उन्हें यह तत्व दान न करे। क्योंकि पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग निर्गुण अपात्रको यह परम तत्त्व दान करते हैं, वे कभी भी कल्याण लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। हे राजेन्द्र! इसलिये यदि कोई व्रतहीन मनुष्य आपको यह रत्नपूरित पृथ्वी प्रदान करे, तौभी उसे यह दान न करना, जितेन्द्रिय पुरुषोंको ही दान करना। हे महाराज कराल! आज जो तुमने मेरे समीप इस उत्पत्ति स्थितिरहित शोकशून्य परम पवित्र अक्षर परब्रह्मका विषय सुना है, उसमें तुम्हें और कुछ भी भय नहीं है। आप तत्त्वज्ञानको विशेष रूपसे जानके जन्म मरणसे रहित, निरामय, भयहीन, कल्याणकर, अपरिसीप उस परब्रह्मका दर्शन करके मोह और विषयको परित्याग करिये। हे नराधिप! जैसे आज तुमने मुझे परितुष्ट करके मेरे निकट यह सनातन ब्रह्मज्ञान लाभ किया है, वैसे ही मैंने अत्यन्त यत्नके सहित उस उग्रचेता हिरण्यगर्भ सनातन ब्रह्माको प्रसन्न करके उनके समीप यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। हे राजेन्द्र! जैसे आज आपने मोक्षवित् पुरुषोंके परमपद इस महत् ज्ञानके विषयमें प्रश्न करके मुझसे जाना है, उस ही भांति मैंने उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे इसे पूछके उनके समीप इसे पाया है।

भीष्म बोले, हे पाण्डुपुत्र महाराज! पञ्चविंश जीवका जिससे पुनरावृत्ति निवारित होती है, ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ मुनिके वचन अनुसार मैंने तुम्हारे समीप उस विषयको वर्णन किया। हे राजन्! बुध्यमान जीव अजर अमर अक्षर परब्रह्मके तत्त्वको यथावत् जानकर परमज्ञान लाभ कर सकनेसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। हे तात! देवऋषि नारदके समीप मैंने इस नित्य परम ज्ञानको जिस प्रकार सुना था, उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे निकट कहा। महात्मा वसिष्ठने पहले यह सनातन ब्रह्मज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे पाया, उसके अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे देवर्षि नारद और नारदसे मैंने पाके तुमसे कहा। हे कौरवेन्द्र! तुम इसे सुनकर अब शोक मत करो। हे राजन्! जो लोग क्षर और अक्षरको यथार्थ रूपसे जान सकते हैं, उन्हें कहीं भी भय नहीं रहता और जो लोग इसे प्रकृत रूपसे नहीं जान सकते, उन्हें सर्वत्र ही भय उपस्थित हुआ करता है। हे भारत! जीव अज्ञाननिबन्धनसे मूढ़ वा बारम्बार दुःखी होकर जीवन नष्ट होनेपर मरणशील सहस्रों जन्म भोग किया करता है। यद्यपि कालक्रमसे मुक्त होकर उस अज्ञानसागरसे पार होसके, तो धीरे धीरे तिर्य्यगसे मनुष्य और मनुष्यसे सुरलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ होवे। हे राजन्! भयङ्कर अज्ञानसागरकी अगाधता अर्थात् गहराई अव्यक्त प्रकृति है, प्राणि लोग प्रतिदिन उस अव्यक्त रूप अगाध अज्ञानसागरमें डूबते रहते हैं, तुम अव्यक्तारूपी उस अगाध समुद्रसे पार होनेके लिये रज और तमोगुणसे विरत होगे।

३०८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वसुमान नाम किसी एक जनक पुत्रने मृगयाके निमित्त निर्ज्जन वनमें घूमते घूमते ब्राह्मणोंमें मुख्य भृगुपुत्र ऋषिको देखा, अनन्तर वसुमानने उस बैठे हुए मुनिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहां बैठके उनसे यह प्रश्न किया। हे भगवन्! अनित्य देहमें वासनाविशिष्ट पुरुषकी इस लोक वा परलोकमें कौन कार्य्य कल्याणकारी है, वह मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। वह महात्मा महातपस्वी भृगुनन्दन जनकपुत्र वसुमानसे इस प्रकार सत्कृत और जिज्ञासित होकर उनसे कल्याणदायक यह वचन कहने लगे।

ऋषिने कहा, हे जनकपुत्र। तुम जितेन्द्रिय होके इस लोक वा परलोकमें मनके अनुकूल कार्य्योंको करो और प्राणियोंके विरोधी कार्य्योंसे निवृत्त रहो। हे तात। साधु पुरुषोंका धर्म्म हितकारी है, धर्म्म ही उनका अवलम्ब है, और धर्म्मसे ही चराचर तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं। हे मधुर रसके अभिलाषी! तुम्हें किस कामनामें तृष्णा नहीं होती। हे दुष्ट-बुद्धि! तू केवल मधु देखता है, मधुके पतनका पीछा करके नहीं देखता है। ज्ञान फलार्थी मनुष्य जैसे ज्ञानका परिचय करते हैं, धर्म्मफलकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उसी भांति धर्म्मकी जांच करें। धर्म्मकाम दुष्ट लोगोंसे पवित्र कार्य्यका होना अत्यन्त कठिन है; परन्तु कर्म्मकाम साधु पुरुषोंके लिये दुष्कर कर्म्म भी सरल हुआ करता है। साधु लोग वनमें रहके भी ग्रामीण लोगोंकी भांति ग्राम सुख भोगकर सकते हैं और गांवमें भी रहके बनवासियोंकी भांति बनसुख भोगनेमें समर्थ होते हैं। हे जन-कपुत्र! तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके दोष और गुणको विचारके स्थिर होकर शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक धर्म्ममें श्रद्धा करो। हे राजन्! तुम नित्य बहुतसा दान करना, साधुओंकी निन्दा न करना और देश कालके अनुसार व्रत तथा पवित्रताके सहारे सत्कृत प्रार्थना करना। शुभ विधिसे जो कुछ प्राप्त होता है, वही प्रकृत फल सिद्ध किया करता है। तुम क्रोधरहित होके पात्र विशेषको दान करना, दान करके कदापि पछतावा अथवा उसकी प्रशंसा न करना, जो ब्राह्मण वेदज्ञ, अनृशंस, पवित्र, दान्त, सत्यवादी, सरलता, युक्त शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए और पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, वेही पात्र हैं; सत्कृत अनन्य पूर्व्वा पत्नी ही पुत्रोत्पत्तिकी स्थान है, इसलिये वही इस स्थलमें योनि कहके अभिहित हुई है और ऋक्, यजु तथा साम, इन तीनों वेदोंके जाननेवाले षटकर्म्म शाली ब्राह्मण ही पात्ररू-पसे वर्णित हुए हैं। देशकालके अनुसार पात्र और कर्म्मविशेषमें उन्हीं लोगोंके विषयमें धर्म्म तथा अधर्म्म हुआ करता है। जैसे पुरुष खेल समाप्त होने पर धीरे धीरे शरीरसे सब धूलि धोता है, वैसे ही शरीरसे सब पापोंको बहुत यत्नसे सहित दूर करे। जैसे पुरुषके विचारके अनुसार घृतका पीना औषधकी तरह हित-कारी होता है, वैसे ही दान आदिके जरिये निष्पाप पुरुषका धर्म्म परलोकमें सुखकर हुआ करता है। चित्त शुभ और अशुभरूपसे सब प्राणियोंमें ही विद्यमान रहता है, पुरुष सदा पापसे चित्तको आकर्षित करके शुभकार्य्यों संयोजित करे। सब कोई सर्व्वदा अपने अपने कार्य्योंकी ही प्रशंसा किया करते हैं, इसलिये जिस प्रकार तुम्हारा धर्म्ममें अनुराग रहे, सदा प्राणपणसे उसकी ही चेष्टा करना। हे दुष्टात्मन्! तुम धीरज धारण करो। हे दुर्बुद्धे तुम बुद्धिमान् बनो, तुम बहुत ही अपशान्त और अज्ञ हो; इसलिये प्रशान्त होकर ज्ञानीकी भांति आचरण करो। धैर्य्यशाली पुरुष निज तेजबलसे जिस ऐहिक और पार लौकिक मङ्गलका उपाय प्राप्त करते हैं, उ मङ्गलका मूल ही परम धैर्य्य है। राजर्षि मह भिष उस धैर्य्यसे रहित होनेसे स्वर्गसे पतित हुए थे और ययातिने पुण्यक्षीण होके भी धैर्य्य बलसे स्वर्गलोक पाया। हे राजन्! इसलि तुम धीरज अवलम्बन करके तपस्वी धर्म्मशी पण्डितोंकी सेवा करनेसे अवश्य ही विपुल बु और अभिलषित कल्याण लाभ करोगे।

भीष्म बोले, हे राजन्! नत स्वभावयु जनकपुत्र वसुमानने उस भृगुपुत्र मुनिका ऐ वचन सुनके अन्तःकरणकी वृत्तियोंको का आदिसे निवृत्त करते हुए धर्म्ममार्गमें बुद्धि प्र र्त्तित की थी।

३०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो धर्म्माधर्म्म सब तरहके संशय, जन्म, मृत्यु, पुण्य, पापसे बिमुक्त और मङ्गल स्वरूप सर्व्वदा भय-रहित अविनाशी, अक्षर, अव्यय, स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयासरहित है, उसे ही आपको वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे भारत! देवराजके पुत्र प्रश्न-विशारद महायशस्वी महाराज जनकने ऋषि-श्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे जो विषय पूछा था, उस जनकके सम्वादयुक्त याज्ञवल्क्यके प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं।

जनक बोले, हे बिप्रर्षि! मैं आपके अनुग्रहका अत्यन्त अभिलाषी हूं, इसलिये इन्द्रिय संख्या, प्रकृतिका परिमाण और अव्यक्त क्या है; अव्यक्तसे पृथक् निर्गुण परब्रह्म क्या हैं? इन सबकी उत्पत्ति, नाश और कालकी संख्या कहिये। हे बिप्रेन्द्र! मैं अज्ञ हूं, आप ज्ञानमय रत्नस्वरूप हैं, इसलिये मैं आपके निकट इन सब विषयोंको निःसंशय रूपसे सुननेके निमित्त प्रश्न करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल! सांख्य और योगमें जो सब ज्ञान बिहित हैं, उनमेंसे कुछ भी आपको अविदित नहीं है, तोभी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब इस विषयको तुमसे मैं अवश्य कहूंगा, क्यों कि जब कोई किसीसे कुछ पूछे, तब उससे वह विषय यथार्थ रीतिसे कहना चाहिये, यह ऋषियोंका सनातन धर्म्म है; इसलिये आपने जो पूछा है, उसे विशेष करके कहता हूं सुनो। अध्यात्म-विचारवाले सांख्य लोग अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, इन आठोंको प्रकृति तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्, हाथ, पांव, गुदा और मेढ़ इन सबको विकार कहते हैं और महत् आदि सात पदार्थोंको उक्त कहा करते हैं। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द आदि दश पदार्थ विशेष नामसे विख्यात हैं। कान आदि पांचो बुद्धीन्द्रिय सविशेष कहके वर्णित हुई है। हे मैथिल! तुम और अध्यात्म गतिके बिचारनेवाले दूसरे पण्डित लोग मनको षोड़श बिकार कहा करते हैं। हे राजन्! भूतचिन्तक सांख्य लोग अव्यक्तसे उत्पन्न हुए महान् आत्माको प्रथम सर्ग और प्रधान कहते हैं, तथा महत्से उत्पन्न हुए अहङ्कारको बुध्यात्मक द्वितीयसर्ग अहङ्कारसे उत्पन्न भूत गुणात्मक मनको अहङ्कारिक तृतीय सर्ग, मनसे उत्पन्न पञ्च महाभूतोंको मानसिक चतुर्थ सर्ग, शब्दादि पञ्चकको भौतिक पञ्चमसर्ग कान आदि पांच इन्द्रियोंको बहुचिन्तात्मक मानसिक षष्ठ सर्ग, श्रोत्र आदिसे उत्पन्न वाक् आदि इन्द्रियोंको सप्तम सर्ग, सरल वृत्ति ऊर्द्ध प्रवाहयुक्त प्राण और तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान, उदान, व्यान ये कई एक अष्टम सर्ग और ऋजुवृत्ति अधोप्रवाहयुक्त अपान तथा तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान उदान, व्यान इन्हें नवम सर्ग कहा करते हैं। हे महाराज! वेदविहित प्रमाणके अनुसार मैंने आपके समीप इन नव प्रकारके सर्गों और चौबीस तत्वोंका यथावत् वर्णन किया; इसके अनन्तर महात्माओंने इन गुण सर्गोंकी जिस प्रकार कालसंख्या निरूपण की है, वह मेरे समीप सुनो।

३१० अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य बोले, हे नरश्रेष्ठ! मैं अव्यक्त प्रकृतिका कालसंख्या कहता हूं; उसे आप मेरे समीप सुनिये। हे नरनाथ! अव्यक्त प्रकृतिके दश हजार कल्पमें दिन और इस ही परिमाणसे उसकी रात्रि होती है, यह शास्त्रमें वर्णित है। प्रतिबुद्ध परमात्मा सबसे पहले प्राणियोंके जीवन स्वरूप अन्न अर्थात् अन्नमय सूक्ष्म मन उत्पन्न

करता है। फिर हिरण्य अण्डसे समुद्भूत ब्रह्माको उत्पन्न किया करता है। हे राजन्! वह ब्रह्मा ही सब भूतोंकी मूर्त्ति है, मैंने ऐसा ही सुना है। अनन्तर वह महामुनि प्रजापति ब्रह्मा सम्वत्सर पर्य्यन्त अण्डके बीच वास करके फिर वर्षके अनन्तर उस अण्डेसे बाहर होकर पृथ्वी, स्वर्ग और जड़ इन सबकी सृष्टि विषयक चिन्ता करने लगे। फिर उस ब्रह्माने पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें आकाशकी सृष्टि की। हे राजन्! वेदमें पृथ्वी और स्वर्गका विषय इस ही प्रकार कहा गया है। अध्यात्म चिन्तक वेद वेदाङ्ग जाननेवाले ब्राह्मण लोगोंने साढ़े सात हजार कल्पतक ब्रह्माका दिन और इस ही परिमाणसे रात्रि संख्या निरूपण की है। हे राजसत्तम! महान् ऋषि ब्रह्माने महद्भूतोंके उपादान कारण दैवतात्मक अहंकारकी सृष्टि करके, भौतिक देहके सहित उत्पत्ति समयमें बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार नाम, इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया; ये पितृ लोग महाभूतोंके पिता हैं, ऐसा ही मैंने सुना है। इसके अतिरिक्त हमने इस भांति सुना है, कि अन्तःकरण चतुष्टयके सहित इन्द्रिया पितृलोक महाभूतोंके पुत्र रूपसे कल्पित हुए और चराचर सब लोक उन्हीं महाभूतोंके सहारे परिपूरित होरहे हैं। हे राजन्! परमेष्ठी ब्रह्माने अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और मन आदि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न किया है। अहंकार करनेवाले तृतीय स्वर्गकारी इस अहंकारकी भी पांच हजार कल्प पर्य्यन्त दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या वर्णित हुई है। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचोंके नाम विशेष करके वर्णित हुए हैं। ये शब्द आदि सब विषय सदा प्राणियोंको आविष्ट करते हैं। परस्पर आपसमें हितैषी होकर परस्परकी स्पृहा करते हैं, आपसमें स्पर्द्धावान होकर एक दूसरेको अतिक्रम करते हैं और रूप आदि गुणोंसे परस्पर वध्यमान होकर तिर्य्यग् योनिमें प्रवेश करके इस लोकमें ही घूमा करते हैं। शास्त्रमें इनकी तीन हजार कल्पतक दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या निरूपित हुई है। हे नरनाथ! मनका भी तीन हजार कल्प तक दिनका परिमाण है और तीन हजार कल्पतक रात्रिका परिमाण कहा गया है। हे राजन्! मन ही इन्द्रियोंके जरिये प्रेरित होकर विषयोंको प्रत्यक्ष करता है, मनके बिना इन्द्रियोंको विषयोंके प्रत्यक्ष करनेकी सामर्थ नहीं है। देखो नेत्र मनके सहयोगसे ही रूपको देखता है, मनका सहयोग न रहनेसे कदापि नहीं देखता, क्योंकि मन व्याकुल होनेसे रूप आदि विषय नेत्रके सम्मुख होनेपर भी वह उसे ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता, जो लोग ऐसा कहा करते हैं, कि इन्द्रियें ही निज निज विषयोंका दर्शन करती है, वह वचन अमूलक है, क्यों कि इन्द्रियां कभी भी निज निज विषयोंको दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होतीं, केवल मन ही दर्शन किया करता है। हे राजन्! मनके विरत होनेसे इन्द्रिया उपरत होती है और मन ही इन्द्रियोंकी प्रधानता वा प्रभावको वर्द्धित किया करता है, इसहीसे ऐसा कहा गया है, कि मन ही इन्द्रियोंका ईश्वर है। हे महायशस्वी! इस लोकमें सब प्राणी बीस प्रकार कहे गये हैं।

३११ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! मैंने आपसे इन तत्त्वोंकी सर्ग संख्या और काल संख्या विस्तारपूर्वक कहा है, अनन्तर अनादि निधन अक्षर नित्य ब्रह्मा जिस प्रकार सब जीवोंको बार बार उत्पन्न करके संहार करता

है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं। हे महीपाल! भगवान् अव्यक्त ब्रह्मा रात्रि समयमें स्वप्न देखके प्राणियोंके दिनका क्षय काल उपस्थित जानके उनके संहारके लिये अहंकाराभिमानी महारुद्रको प्रेरण करते हैं। तिसके अनन्तर वह महारुद्र अव्यक्त ब्रह्माके जरिये प्रेरित होकर प्रज्वलित अग्निके समान द्युतिशाली सौहजार किरणवाले सूर्य्यकी मूर्त्ति धारण कर निज शरीरको बारह हिस्सेमें विभक्त करके अपने तेजसे उसही समय जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको जलाया करते हैं। हे राजन्! जिस सूर्य्यके प्रकाशमात्रसे ही कछुवेकी पीठ समान भूमि और स्थाणु जङ्गम आदि सब वस्तु विनष्ट हो जाती है, वह अमितबलशाली सूर्य्य सारे जगत्को जलाकर अनन्तर अधिक जलसे उस भस्मीभूत सारी पृथ्वीको परिपूरित करता है। हे राजेन्द्र! फिर कालाग्नि उस समस्त जलको सुखाकर स्वयं प्रज्वलित होती रहती है। उसके अनन्तर अत्यन्त बलशाली वायु निज शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके तिर्य्यग्, ऊर्द्ध और अधः-प्रदेशमें विचरते हुए प्राणियोंको उत्तापित करनेवाली जलती हुई सातशिख अग्निको भक्षण करता है। फिर क्रमसे वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको भूतात्मा प्रजापति अहङ्कार, वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत् महान् अहङ्कारको और अणिमा आदि शक्तियुक्त ज्योतिर्म्मय अव्यय सर्व्वग्राही सर्व्वग, सर्व्वदर्शी सर्व्वशिरा सर्व्वानन सर्व्वश्रोता सर्व्वव्यापक सब भूतोंकी बुद्धिके प्रवर्त्तक अंगुष्ठ परिमित अनन्त महात्मा शङ्कर उस अनुपम महात्मा महान् और संसारको ग्रास किया करता है। अनन्तर इस ही प्रकार सब वस्तु नष्ट होकर अक्षय, अव्यय, अजर अनघ, वर्त्तमान, भूत वा भविष्य कालके कर्त्ता उस ब्रह्मरूपमें विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! मैंने तुम्हारे समीप यह संहारका विषय यथावत वर्णन किया अब अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवका विषय कहता हूं सुनो।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग दो पादको अध्यात्म, गन्तव्यको अभिभूत और उसमें विष्णुको अधिदैव कहा करते हैं। तत्वार्थदर्शी पुरुष गुदाको अध्यात्म, विसर्गको अधिभूत और मित्रको अधिदैव कहते हैं। योगदर्शी लोग उपस्थको अध्यात्म, आनन्दको अधिभूत और प्रजापतिको अधिदैव कहते हैं। सांख्यदर्शी लोग दोनों हाथोंको अध्यात्म, कर्त्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें इन्द्रको अधिदैव कहते हैं। योग निदर्शी मनुष्य वाक्यको अध्यात्म, वक्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें अग्निको अधिदैव कहते हैं। यथाश्रुति निदर्शी पण्डित लोग नेत्रको अध्यात्म, रूपको अधिभूत और सूर्य्यको अधिदैव कहा करते हैं। वेदविहित अनुभवशाली मनुष्य कानको अध्यात्म, शब्दको अधिभूत और दिशाओंको अधिदैव कहा करते हैं। श्रुतिविहित निदर्शनशाली मनीषि लोग जीभको अध्यात्म, रसको अधिभूत और उसमें जलको अधिदैव कहा करते हैं, श्रुतिविहित निदर्शनशाली पण्डित लोग नासिकाको अध्यात्म गन्धको अधिभूत और पृथ्वीको अधिदैव कहते हैं। तत्त्वबुद्धिवाले ब्राह्मण लोग त्वचाको अध्यात्म स्पर्शको अधिभूत और पवनको अधिदैव कहते हैं। शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण मनको अध्यात्म, मन्तव्यको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैव कहते हैं। तत्त्व निदर्शनशाली विद्वान् लोग अहङ्कारको अध्यात्म, अभिमानको अधिभूत और इसमें बुद्धिको अधिदैव कहते हैं। यथार्थदर्शी पण्डित लोग बुद्धिको अध्यात्म, बोधव्यको अधिभूत और क्षेत्रज्ञ जीवको अधिदैव कहा करते हैं। हे तत्त्ववित्

महाराज! सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कालमें ही भूत प्रपञ्चके अनुसार उस एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी विभूतिको मैंने तुम्हारे निकट यथार्थ रीतिसे कहा। हे राजन्! प्रकृति इच्छानुसार क्रीड़ाके अनुसार निमित्त आत्मकामनाके सैकड़ों तथा हजारों तरहसे सबको विकृत कर रखती है। जैसे मर्त्य लोकवासी मनुष्य एक दीपकसे सहस्रों दीपक जलाते हैं, वैसे ही प्रकृति पुरुषके सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंको अनेक हिस्सोंमें विकृत किया करती है। सत्त्व, धैर्य्य, आनन्द, ऐश्वर्य्य, प्रीति, प्रकाश्य, सुख, शुद्धता, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धानता, कृपणता हीनता, असम्भ्र, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, आनृण्य, मार्द्दव, लज्जा, चपलता हीनता, पवित्रता, विनीतता, आचार, अचञ्चलता, असम्भ्रचित्तता दूसरेकी की हुई भलाई, बुराई और वियोगकी अविकल्पना, दानके सहारे आत्म ग्रहण, अस्पृहता, परोपकारिता और सब प्राणियोंमें दया, ये सत्त्वके गुण कहके वर्णित हुए हैं। सन्ताप, रूप, सुन्दरताई, विग्रह, अत्याग, करुणाहीनता, सुखदुःखका सेवन; परापवादमें रति, विवाद सेवन, अहंकार, असत्कारकी चिन्ता, वैरोपसेवा, परिताप, पराया धन हरना, लज्जानाश, अनार्ज्जव, भेद, पुरुषता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और अतिवाद, ये सब रजोगुण कहके वर्णित हुए हैं और मोह अप्रकाश, तामिस्र, अन्धतामिस्र, मरण, क्रोध भक्षण आदिमें अभिरुचि, भोजनमें अपर्य्याप्ति, पीनेमें अतृप्ति, विहार शयन और आसनमें गन्धवास आदिका स्वप्न अतिवाद तथा प्रमोदमें रति अज्ञान नृत्यगीत और बाजोंमें श्रद्धानता अथवा धर्म्मविशेषमें द्वेष प्रकाश, ये सब तामसगुण कहके निर्दिष्ट हुए हैं।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पुरुषोत्तम! सत, रज और तम ये तीनों प्रधान गुण हैं; ये गुण सदा समस्त जगत्के निमित्त कारण रूपसे निवास करते हैं। षड़ैश्वर्य्य शक्ति युक्त अव्यक्त रूप प्रधान, इन तीन प्रकारके गुणोंसे प्रत्यगात्म परमात्माको सैकड़ों, लाखों और करोड़ों प्रकारसे विभक्त कर रखता है। अध्यात्म विचार करनेवाले पण्डित लोग कहते हैं, कि इस लोकमें सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य लोग ही उत्तम स्थान, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यम स्थान और तमोगुणावलम्बी पुरुष अधम स्थान प्राप्त करते हैं। इस लोकमें जो लोग केवल अधर्म्म रूप पापकार्य्य करते हैं वे लोग अधोगति लाभ किया करते हैं। हे नराधिप! सत्त्व रज और तम, इन तीनों गुणोंके परस्पर मिलन तथा द्वन्द्वको मेरे समीप सुनिये सतोगुणमें रज, रजोगुणमें तम, तमोगुणमें सत और सतोगुणमें समता दीख पड़ती है। अव्यक्त ब्रह्म सत्त्वसे संयुक्त होकर देवलोक, रज और सतसे संयुक्त होकर मनुष्य लोक, रज और तमसे युक्त होके तिर्य्यग्योनि तथा सत्त्व, रज, तम गुण युक्त होके मनुष्यलोक लाभ करता है, और तत्त्वज्ञ पुण्य तथा पापरहित महात्मा लोग शाश्वत अव्यय अक्षय अमृत परमधाम पाते हैं। ज्ञानियोंका जन्म श्रेष्ठ और उनका स्थान अक्षय है, अच्युत, अतिन्द्रिय, निरवयव और जन्म मृत्यु, तथा अन्धकारसे रहित है। हे नरनाथ! आपने मुझसे जो परम धामका विषय पूछा था, वह स्थान अव्यक्त ब्रह्ममें विद्यमान रहता है, मनुष्य लोग उस अव्यक्त ब्रह्मको जानने ही उस स्थानको सहजमें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उस ब्रह्मका प्रकृति संसर्ग होनेसे ही लोग उसे प्रकृतिस्थ पुरुष कहा करते हैं। हे राजन्! प्रकृति अचेतन है, परन्तु उस ब्रह्मके अधिष्ठानसे ही वह सृष्टि और संहार किया करती है।

जनक बोले, हे महाबुद्धिमान ऋषिवर! प्रकृति और पुरुष दोनोंही अनादि निधन हैं, अमूर्त्त, अचल, अविचलित दोष-गुणसे युक्त और अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु इनमेंसे किस लिये प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन क्षेत्रज्ञ कहके वर्णित हुआ। हे विप्रेन्द्र आपने समस्त मोक्षधर्म्मकी उपासना की है; इसलिये आपके समीप सम्पूर्ण मोक्षधर्म्म यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे ऋषिसत्तम! हाथमें स्थित आमलककी भांति आपको सब विषय विदित हैं। इसलिये आप पुरुषके अखिल कैवल्य, भावरहित, देहा श्रित देवता यह सब और व्यग्र विपदग्रस्त जीवोंके स्थान तथा काल क्रमसे वे जिन स्थानोंको लाभ करते हैं, वह स्थान, सांख्य ज्ञान, पृथक् योग और मृत्युसूचक तत्त्व यह सब विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

३१४ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे तात! निर्गुणको सगुण और सगुणको निर्गुण करना जो महाकठिन दुःसाध्य है, उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप सुनो। तत्वदर्शी महात्मा मुनि लोग ऐसा कहते हैं, कि जिसमें गुणका संसर्ग है वह वस्तु ही गुणवान है; जिसमें गुणका संसर्ग नहीं वह वस्तु गुणवान नहीं है। अव्यक्त प्रधान गुणवान होनेसे सब गुणोंको त्यागनेमें असमर्थ होता है, और स्वभाविक अज्ञ होनेसे सदा वही इन गुणोंको भोग किया करता है। अव्यक्तमें वस्तु ज्ञान न होनेसे वह अज्ञ रूपसे गिना जाता है, परन्तु पुरुष स्वभाविक ही ज्ञानवान है, क्यों कि "मुझसे और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है" वह सदा ऐसा ही ज्ञान किया करता है। हे राजन्! इसही कारणसे अव्यक्त अचेतन है, परन्तु इतर निबन्धनसे उसमें भोक्तृत्व हुआ करता है। वह अज्ञानसे वार वार आत्माको गुणयुक्त किया करता है, इसलिये जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा मुक्ति-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, और आत्मा प्रकृत महदादि तत्वोंके कर्त्तृत्व निबन्धनसे मुक्त न हो सकनेसे तत्त्वधर्म्मा कहा जाता है। इस ही प्रकार वह सब स्वर्गोंके कर्त्तृत्व हेतुसे स्वर्ग धर्म्मा, योग कर्त्तृत्व हेतुसे योगधर्म्मा प्रकृति अर्थात् प्रजापुञ्जके कर्त्तृत्व निबन्धनसे प्रकृति-धर्म्मा, बीजके कर्त्तृत्व हेतुसे बीजधर्म्मा और शम दम आदि गुणोंकी सृष्टि तथा प्रलय कर्त्तृत्व हेतुसे गुणधर्म्मा कहके वर्णित होता है, आत्मा मिथ्या अभिमान वशसे सुख दुःख भोग किया करता है परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि अध्यात्मज्ञ अजर सिद्ध यति लोग साक्षित्व, अनन्यत्व वा अभिमानितासे आत्माको केवल अनित्य नित्य अव्यक्त तथा व्यक्त जानते हैं। परन्तु सब प्राणियोंपर दया करनेवाले केवल ज्ञानमें रत निरीश्वरवादी सांख्य लोग अव्यक्तको एकत्व और पुरुषको नानात्व कहा करते हैं और वे लोग बहुतसे दृष्टान्त दिखाके पुरुष तथा प्रकृतिमें इस प्रकार भेद कहते हैं; कि जैसे मूंजके भीतरकी सींक मूंजसे पृथक् है, गूलर फलके भीतर रहनेवाले मशक गूलरसे अलग है, जलमें रहनेवाली मछलियें जलसे स्वतन्त्र हैं, पत्थरमें रहनेवाली अग्नि पत्थरसे पृथक् है, और जैसे जलमें रहनेवाले कमल जलसे अलग हैं, वैसेही प्रकृतिमें निवास करनेवालेही पुरुषको भी प्रकृतिसे पृथक् जानो। हे राजन्! साधारण पुरुष इस सहवास और नित्य निवासको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते। जो इसे उलटा समझते हैं, वे सम्यक्दर्शी होनेमें समर्थ नहीं होते वरन वे लोग स्पष्ट ही वार वार घोर नरकमें डूबा करते हैं।

हे राजन्! मैंने जो यह परिसंख्या करके अनुत्तम सांख्य दर्शन तुमसे कहा है, सांख्य लोग इस ही प्रकार परिसंख्या करके कैवल्यता

लाभ किया करते हैं। परन्तु जो लोग सांख्यके अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी आलोचना करते हैं, उनके लिये यह निदर्शन कहा है, इसके अनन्तर योगानुदर्शन ज्योंका त्यों कहता हूं।

३१५ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपसे यथाश्रुत और यथादृष्ट सांख्यज्ञानको ज्योंका त्यों कहा, अनन्तर योगज्ञानको यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सांख्य ज्ञानके समान ज्ञान और योगबलके समान दूसरा बल नहीं है, तथा सांख्य वा योग दोनोंका ही अनुष्ठान एक वा दोनों ही अविनाशी कहके वर्णित हुए हैं। हे राजन्! जो मनुष्य मूढ़ हैं, वेही सांख्य और योगको पृथक् पृथक् समझते हैं, परन्तु निश्चय-हेतुसे मैं दोनोंको एक जानता हूं। योगी लोग योगके सहारे जिसका दर्शन करते हैं, सांख्य लोग भी ज्ञानके जरिये उसका दर्शन किया करते हैं; इसलिये जो लोग सांख्य और योग दोनोंको ही एक रूप जानते हैं, वेही तत्त्ववित् है। हे अरिंदमन! तुम निश्चय जानो, कि जितने प्रकारके योग हैं, उन सबमें ही प्राण और इन्द्रियोंको अवलम्बन करना पड़ता है, योगी लोग इस ही प्रकार योगका अनुष्ठान करके, उसी योगयुक्त देहसे सर्व्वत्र विचरण किया करते हैं। हे तात! योगियोंका स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी वे शारीरिक सुखको पुर्य्यष्टक सूक्ष्म शरीरमें स्थापित करके योगबलसे सब लोकोंमें विचरते रहते है। हे नृपसत्तम! मनीषी लोगोंने वेदमें अष्टांग योग ही कहे हैं, इसके अतिरिक्त इतर योगके विषय नहीं कहे हैं। परन्तु योगियों सब प्रकारसे योगके बीच शास्त्र सम्मत सगुण और निर्गुण, इन दोनों प्रकारके योगोंको ही उत्तम कहके वर्णन किया हैं। हे राजन्! प्राण वायुको निग्रह, मनको धारण और चित्तको एकाग्र करनेसे जो प्राणायामरूप दो योग वर्णित हुए हैं, उसमेंसे प्राणायामको सगुण और धारणाको निर्गुण जानो। हे मैथिल! वायुके मोचनस्थान अदृश्य होने पर यदि उस समय प्राणवायु मुक्त हो, तो वायुकी प्रबलता होजाती है; इसलिये उस समय वायु रेचन न करे। रातके प्रथम, मध्य वा शेष भागमें बारह प्रकारसे आत्माका प्रेरण करना होता है; इसलिये जो लोग शान्त, दान्त, सन्न्यासी, आत्माराम और शास्त्रज्ञ हैं, वे अवश्य इसही भांति आत्माको बारह प्रकारसे नियोग करेंगे, और पांचो ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादि दोषोंको निरास करते हुए विक्षेप तथा लयको संहार कर इन्द्रियोंको मनमें निवेश करें। अनन्तर मनको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको प्रकृतिमें स्थापित करें। हे राजन्! योगी लोग इस ही प्रकार क्रमसे अन्तःकरण आदिको परस्परमें लीन करके अन्तमें केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप, नित्य, अनन्त, कूटस्थ, अभेद्य, अजर, अमर, शाश्वत, अव्यय और ईशान ब्रह्मका सदा ध्यान किया करते हैं। हे महाराज! जैसे मन्दिरके चिन्हसे प्रसन्न पुरुष तृप्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं, वैसे ही समाधिस्थ पुरुषका लक्षण कहता हूं, सुनो। मनीषियोंने समाधिस्थ पुरुषोंका इस प्रकार लक्षण वर्णन किया है, कि जैसे निर्व्वातस्थलमें तेलसे भरा हुआ दीपक निश्चल और ऊर्द्ध्वशिख होकर जलता रहता है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें निश्चल भावसे निवास करते हैं। जैसे बक समूह जलकी बूंदसे पत्थरको आहत करके तनिक भी उसे विचलित नहीं कर सकते, वैसे ही समाधियुक्त पुरुषको भी वृष्टि आदिके जरिये कोई समाधिसे अणुमात्र भी सञ्चालित करनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसा ही क्यों, पुरुषके समाधि युक्त होने पर शंख,

नगाड़े आदि विविध बाजे और संगीत शब्दसे भी उसकी समाधि भंग नहीं होती; समाधि-युक्त पुरुषका ऐसा ही निदर्शन निर्द्दिष्ट है। और जैसे कोई पुरुष तेलसे भरे पात्रको दोनों हाथसे ग्रहण करके सोपान पर चढ़ते हुए तलवार धारण करनेवाले पुरुषके जरिये तर्ज्जित तथा उसके भयसे भीत होने पर भी संयतचित्त होकर पात्रसे बूंदभर भी नहीं त्यागता, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष भी उत्तम मार्गमें गमन करते हुए किसीके जरिये तर्ज्जित वा भय प्रदर्शित होनेपर भी एकाग्र चित्त होकर समाधि परित्याग नहीं करते। जो मुनि इन्द्रियोंके वहिर्मुखाकार वृत्तिको रोकके अन्तःकरणको अचल करके समाधि अवलम्बन करता है, उसहीमें इस प्रकार सब योग लक्षण दीखते हैं। हे राजन्! और ऐसी नित्य श्रुति निरूपित है, कि ऐसे लक्षणोंसे युक्त मनुष्य ही समाधियुक्त होके महतत्त्व और उसमें स्थित अग्नि सदृश अव्यय परब्रह्मका दर्शन करके, उस दर्शनबलसे अचेतन देहको त्याग कर बहुत समयके लिये कैवल्य लाभ किया करता है। हे राजन्! और दूसरा योगका क्या लक्षण कहूंगा, मैंने जो कहा सब प्रकार योगके बीच यह अत्यन्त उत्तम योग है, मनीषिलोग इस योगको विशेषरूपसे जानकर अपनेको कृतकृत्य विवेचना किया करते हैं।

३१६ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! हठयोग-कारी योगी लोग अन्तकालमें जिन जिन स्थानोंसे प्राणवायु बाहर करके जैसा फल पाते हैं, वह तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि योगी लोग पावके जरिये प्राणवायु परित्याग करके इन्द्रलोक, जानुके जरिये प्राणत्याग करनेसे साध्य लोक, गुदाके जरिये त्यागनेसे मैत्रलोक, जघनके सहारे प्राण छोड़नेसे पृथ्वी लोक, उरुके जरिये त्याग करनेसे ब्रह्मलोक, पार्श्वसे छोड़नेपर वायुलोक, नासिकासे त्याग करनेसे चन्द्रलोक, बाहुसे त्यागनेपर इन्द्रलोक, वक्षस्थलसे त्यागनेपर रुद्रलोक, ग्रीवाके जरिये परित्याग करनेसे उत्कृष्ट मनुष्य लोक, मुखसे त्यागने पर विश्वदेव लोक, कानसे त्यागनेपर दशदिक् लोक, घ्राणके सहारे त्यागनेसे गन्धवह वायु लोक नेत्रसे त्यागनेपर अग्नि लोक, भौंसे त्यागनेपर अश्विदेवलोक, ललाटसे त्यागने पर पितृलोक और सिरके सहारे त्यागनेसे ब्रह्मलोक पाते हैं।

हे मिथिलेश्वर! मैंने क्रमसे इन सब उत्क्रमण स्थानोंको तुम्हारे समीप वर्णन किया अनन्तर सम्वत्सरके बीच मरणशील देहधारियोंके जो मनीषियोंके जरिये विहित अरिष्ट हैं, उसे कहता हूं सुनो। हे पार्थिव! जो पुरुष दृष्टपूर्व्वा अरुन्धती और ध्रुवनक्षत्रको न देखे तथा पूर्णचन्द्र और दीपकको दक्षिने भागमें खण्डाभासरूपसे दर्शन करे, वह सम्वत्सर भर जीवित रहता है। हे राजन्! जो पुरुष दूसरेके नेत्र पुतरीके बीच अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखता वह भी सम्वत्सरभर जीवन धारण करता है। अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंकी निस्तेजस्कता, बुद्धिमानोंकी बुद्धिहीनता और स्वभावका उलटफेर अर्थात् कृपण पुरुषमें दातृत्व-शक्ति, ये सब छः महीनेके भीतर मृत्युके लक्षण हैं। जो लोग देवताओंकी अवज्ञा करें, ब्राह्मणोंसे विरोध करते रहें, जिनकी कान्ति काली तथा कपिश वर्णकी होजाती है, छःमहीनेभरमें उनकी मृत्यु हुआ करती है। जो लोग सूर्य्य और चन्द्रमण्डलको उर्णनाभ-चक्रकी भांति छिद्रयुक्त अवलोकन करें, सात रात्रिके बीच उनकी मृत्यु होती है। जो मनुष्य देवमन्दिरमें रहके गन्धको गन्धको मुर्देकी गन्धकी भांति आघ्राण करे,

सात रात्रिके बीच वह मृत्युभागी होता है। कान और नासिकाकी नम्रता, दांत और दृष्टिकी विरागिता, संज्ञा लोप और विरूपत्व ये सद्य मृत्युके निदर्शन हैं। हे नरनाथ! जिसके बायें नेत्रसे अकस्मात् आंसू बहे अथवा सिरसे धूआं बाहर हो, उसकी सद्य मृत्यु हुआ करती है। बुद्धिमान मनुष्य इन अरिष्टोंको मालूम करके दिन रात आत्माको परमात्मामें संयुक्त करें। जिस समयमें प्रेतत्व होगा, उस समयकी परीक्षा करते हुए यदि योगियोंका मरना इष्ट न हो, तो इस ही क्रियाके अनुष्ठान करनेकी इच्छा करनी उचित हैं। हे नरनाथ! मनुष्य समस्त गन्ध और सब रसोंको धारण करे, अन्तरात्माके आत्मानिष्ठ होनेपर मनुष्य मृत्युको जय करनेमें समर्थ होता है। हे नर-वर! अन्तःकरण आत्मनिष्ठ होनेपर योगी लोग उसहीके जरिये योगसे मृत्युको जय कर-नेमें समर्थ हुआ करते हैं। जो लोग इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वे अकृतबुद्धि पुरुषोंसे दुष्प्राप्य, अक्षय, पुनरावृत्तिसे रहित, कल्याण कर नित्य अचल लोक पाके वहां ही जाते हैं।

३१७ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नरनाथ! तुमने जो अव्यक्तघटित परम पदार्थका विषय मुझसे पूछा है, अब उस परम गुह्य प्रश्नका उत्तर कहता हूं, सावधान होकर सुनो। हे मिथि-लापति! मैं आर्य्यविधिके अनुसार अवनत होकर विचरते हुए जिस प्रकार आदित्यसे समस्त शुक्ल यजुर्व्वेद पाया है उसे सुनो। हे अनघ! मैंने उत्तम महत् तपस्याके जरिये सूर्य्यदेवकी सेवा की, अनन्तर वह मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले, हे विप्रर्षि! तुम्हें जिस अभि-लषित दुर्लभ बरकी इच्छा हो, वह मागो, मैं प्रसन्नचित्त होकर तुम्हें वही दान करूंगा, मेरी प्रसन्नता दूसरेके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है। अनन्तर मैंने सिर नीचाकर प्रणाम करके सूर्य्यदेवसे कहा। हे भगवन्! मैं अस्मदादिके उपयुक्त समस्त यजुर्वेद जाननेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर भगवान् भास्कर मुझसे बोले, हे द्विज! मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूंगा, तब वाग्देवी सरस्वती तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेंगी। अनन्तर भगवान् सूर्य्यदेव मुझसे बोले, तुम अपना मुंह पसारो, मैंने जब उनकी आज्ञानुसार मुख फैलाया, तब सरस्वती उसमें प्रविष्ट हुई। अनन्तर मैं विशेष रूपसे दह्यमान होकर महात्मा भास्करके अज्ञातसारमें अम-र्षवशसे जलके बीच प्रविष्ट हुआ। भगवान् सूर्य्य मुझे दह्यमान देखके बोले, "तुम मुहूर्त-भर दाह सहो, फिर शीतल होगे।" अनन्तर भगवान सूर्य्य मुझे शीतल होते देखके बोले, हे द्विज! अखिल आद्यन्त वेद तुममें प्रति-ष्ठित होगा। हे द्विजवर! तुम समस्त शतपथ ब्राह्मण प्रणयन करोगे, उनके प्रणयनकी समाप्ति होनेपर तुम्हारी बुद्धिशक्ति मोक्षपथकी अनुवर्त्तिनी होगी। सांख्य योगमें तुम्हारा जो अभीष्ट पद प्रार्थनीय है, उसे पाओगे। भग-वान् इतना मन्त्र कहके अस्त हुए। सूर्य्य देवका वचन सुन उनके अस्त होनेपर मैंने घर आके हर्षपूर्व्वक सरस्वती देवीका ध्यान किया। अनन्तर स्वर व्यञ्जनसे भूषित अत्यन्त शुभङ्करी सरस्वती देवी ओंकारको आगे करके मेरे सम्मुख प्रकट हुई।

अनन्तर मैंने बैठके सूर्य्यनिष्ठ होकर सरस्-वतीदेवी तथा तपनदेवको विधिपूर्व्वक अर्घ प्रदान किया। अनन्तर परमहर्षसे रहस्य-संग्रह और परिशिष्टके सहित समस्त शतपथ ब्राह्मण स्वयं प्रकट हुआ। हे महाराज! महानुभाव मातुल सशिष्य वैशम्पायनके प्रियकार्य्य साधनके लिये एक सौ शिष्योंको उक्त शतपथ पढ़ाके गभस्ति-गणके सहित सूर्य्यकी भांति सब शिष्योंके

सहित तुम्हारे महानुभाव पिताके यज्ञ कार्य्यको निर्व्वाह करनेमें प्रवृत्त हुआ। अनन्तर देवलके सम्मुखमें मेरे मातुलके वेद दक्षिणाके लिये महान् विमर्द्द उपस्थित हुआ। मैंने दोनोंको सम्मत करके दक्षिणाका आधा हिस्सा लेना अङ्गीकार किया। अनन्तर सुमन्त, पैल, जैमिनी, तुम्हारे पिता और अन्यान्य मुनियोंने मेरा सम्मान किया। हे अनघ! मैंने आदित्यसे पन्द्रह यजुर्मन्त्र पाये थे और रोमहर्षणके जरिये सारे पुराणका निश्चय किया था। हे नरनाथ! उस ही बीज और सरस्वती देवीको पुरस्कृत करके सूर्य्यदेवके प्रभावसे इस अपूर्व्व शतपथके प्रणयन करनेमें प्रवृत्त हुआ, और उनके प्रभावसे इसे सम्पन्न किया है। जो पथ मुझे अभिलषित था, वह पूर्णरूपसे तय्यार हुआ है, शिष्योंको संग्रहके सहित समस्त शतपथ अध्ययन कराया है, सब शिष्य पवित्र और परम हर्षित हुए हैं। इस पन्द्रह शाखाओंसे युक्त सूर्य्यकी उपदिष्ट विद्याकी प्रतिष्ठा करके मैं इच्छापूर्व्वक उस वेद्य पुरुषका ध्यान किया करता हूं। हे राजन्! वेदान्त ज्ञानकोविद विश्वावसु नाम गन्धर्व्वने उस शास्त्रमें ब्राह्मण जातिका हितकर सत्य क्या है, और इसमें अनुत्तम वेदवस्तु ही कौनसी है। ऐसी चिन्ता करके मेरे समीप आकर उस विषयमें प्रश्न किया। हे राजन्। अनन्तर उन्होंने मेरे निकट वेदके चौबीस प्रश्न किये और शेषमें निम्नलिखित आन्विक्षिकी विद्या अर्थात् युक्तिके जरिये आलोचना शास्त्र सम्बन्धीय पचीस प्रश्न किये। हे राजन्! वे प्रश्न ये हैं,—विश्व, अविश्व, अश्व, अश्वमित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, क, तपा, अतपा, सूर्य्यादि, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अव्यक्त, चल, अचल और अक्षय तथा क्षयशील वस्तु कौनसी है? यही सर्व्वोत्तम प्रश्न है। हे महाराज! अनन्तर मैंने सर्व्वोत्तम राजा विश्वावसुसे कहा, हे गन्धर्व्वराज! तुमने यथाक्रमसे अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त प्रश्न किया है। अब मुहूर्त्त भर निवास करो, मैं इसका अर्थ विचारता हूं। गन्धर्व्व मेरा वचन सुन मौनावलम्बन करके स्थित हुआ। अनन्तर मैंने फिर मन ही मन सरस्वती देवीका ध्यान किया। हे महाराज! ध्यान करतेही दहीसे घृत निकलनेकी भांति उस प्रश्नका उत्तर मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। मैंने परमश्रेष्ठ आन्विक्षिकी शास्त्र निरीक्षण करके उपनिषत् और परिशिष्ठ शास्त्रोंको मन ही मन मथा। हे राज शार्द्दूल! वार्त्ता, शास्त्र, दण्डनीति और आन्विक्षिकी इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी मोक्षकी निमित्त हितकरी साम्परायकी विद्या जो कि पञ्चविंश अर्थात् शरीरको आत्माको अधिकार करके निवास करती है, जिसे तुम्हारे समीप इसके पहले वर्णन किया हैं, उसे भी विश्वावसुके समीप कहा था। हे राजन्! उस समय मैंने गन्धर्व्वराज विश्वावसुसे कहा तुमने मेरे समीप जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर कहता हूं, सुनो। हे गन्धर्व्वेन्द्र! तुमने जो विश्वाविश्व कहके प्रश्न किया है, उसके बीच भूत भविष्य कालक पराविद्या अव्यक्तको विश्व कहके जानो। और गुण दार्त्तृत्व निबन्धन त्रिगुणात्मक निष्कल पुरुषको अविश्व समझो अर्थात् जो पुत्र और वित्तसे भी प्रिय है, दूसरी सब वस्तुओंसे अन्तरतर है और जो आत्मरूपसे सबके भी है, वही अविश्व शब्द प्रतिपाद्य है और उसके अतिरिक्त वस्तुमात्रको ही विश्व कहा जाता है। अश्वाश्व पदके वाच्य मिथुन अर्थात् प्रकृति पुरुष ही विदित हुआ करते हैं। स्त्रीरूपी प्रकृतिको अव्यक्त और जिसके प्रतिविम्बसे प्रकृति सब कार्य्योंका निर्व्वाह करती है, उस निर्गुणको पुरुष कहते हैं। इस ही प्रकार प्राचीन विपश्चितगण प्रकाशात्मक पुरुषको मित्र, जलको इस समस्त जगत्के उत्पन्न करनेका कारणहेतु प्रकृतिको वरुण

अर्थात् वरुण देवतारूपी निर्देश किया है। और प्रकाशमात्रसे ही जगज्जन्म आदिका कारण होना सम्भव नहीं होता, इसके जगज्जन्म आदिके उपयोगी जो ज्ञान है, वह मायावृत्ति है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको ही ज्ञान रूपसे वर्णन किया करते हैं, और ज्ञेय स्वरूप जो ज्ञान है, वही निष्कल अर्थात् सत्य ज्ञान है, वही ब्रह्म कहके बिहित हैं। ज्ञ और अज्ञ शब्दके प्रतिपाद्य ईश्वर तथा जीव है, क्यों कि कार्य्य उपाधिको जीव और कारण उपाधिको ईश्वर कहा जाता है। कार्य्य कारण उपाधि योगसे ब्रह्मको जीव तथा ईश्वर कहा जाता है, उस उपाधिसे रहित होनेसे ही वह निष्कल शब्दसे पुकारा जाता है। क, तपा और अतपा कौन पुरुष है। यह जो तुमने पूछा हैं, वह विषय कहता हूं सुनो। क शब्दसे आनन्द, तपासे प्रकृति और अतपासे निष्कल ब्रह्म स्मृत होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अज्ञान पुरुषार्थको प्रतिबन्ध करता है, वही अवेद्य है और आत्माही वेद्यरूपसे वर्णित हुआ है। तुमने जो चलाचलका उल्लेख करके प्रश्न किया है, वह भी मेरे समीप सुनो। लय और सृष्टिके कारण प्रकृतिको पण्डित लोग चला करते हैं, क्यों कि प्रकृति व क्रियमाण होकर जगत्को लय और उदय किया करती है, इस ही लिये निश्चल शब्दसे स्मृत होती है, यद्यपि शास्त्रके अनुसार इसके पहले प्रकृतिको अवेद्य और पुरुषको वेद्यरूप कहा गया है, तथापि वस्तु स्वभावकी पर्य्यालोचना करके देखा जाता है, कि प्रकृतिका दृश्यत्व निबन्धन ही वेद्य और अदृश्यत्व निबन्धनसे पुरुष अवेद्य है। प्रकृति जड़ है, इसलिये जैसे वह अपनेको नहीं जान सकती वैसे ही निष्कल आत्मा भी स्वप्रकाशसे वृत्ति विरोधके हेतु निज आत्माको नहीं जान सकता इस ही निमित्त प्रकृति तथा आत्मा दोनों ही अज्ञ हैं। अनादि और अक्षत परिणामी नित्यताके व्यवहारके कारण प्रकृति नित्य तथा पुरुष स्वतःसिद्ध नित्य पदार्थ है, पण्डित लोग अध्यात्म शास्त्रके निश्चय निबन्धनसे प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अज और नित्य कहा करते हैं। नित्य सृष्टि विषयमें अक्षतके कारण पण्डित लोग जन्म रहित पुरुषको अव्यय कहते हैं और इस अव्यय पुरुषको वे लोग अक्षय भी कहा करते हैं, क्यों कि उत्पन्न हुए घट पट आदि पदार्थोंकी भांति यह नष्ट नहीं होता। सत्त्व, रज और तमोगुणके क्षयवत्ता हेतु अर्थात् अप्राकृत लोगोंमें सत्त्वादि गुणोंकी सत्त्वासन्दिग्धता निबन्धन और आद्य प्रलयकालमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें गुण कार्य्योंका अवश्य नाश होता है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको अक्षय कहके पुरुषको भी अक्षय कहा करते हैं। मैंने तुम्हारे समीप यह मोक्षसाधनके उपायभूत आन्वि- क्षिकी विद्याका वर्णन किया; हे विश्वावसु! ऋक्, यजु, सामरूप तीनों वेदोंका युक्तिके सहित संयुक्त करके गुरुके समीप जाकर यत्नपूर्वक समस्त वेद तथा नित्यकर्म्म बिषयको विशेषरू- पसे जानना चाहिये। हे गन्धर्व्व सत्तम! ये आकाश आदि भूत जिस अधिष्ठानसे उत्पन्न होकर जिसमें लीन होते हैं, उस वेदार्थ प्रति- पाद्य वेद्य आत्माको जो लोग न जानें और यदि कोई साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़के वेदसे जानने योग्य उस आत्माको न जान सकें, तो वे वेदके बोझ मात्रको ढोनेवाले हैं। हे गन्धर्व्वस- त्तम! जो पुरुष घृतकी इच्छा करके खरा क्षीर मंथता है, वह उस क्षीरमें मैं केवल बिष्टा देखा करता है, शुद्ध घृत वा पवित्र मक्खन नहीं देखता। वैसे ही जो वेद जाननेवाला पुरुष अवेद प्रकृति और वेद्य पुरुषका दर्शन नहीं करता, वह मूढ़बुद्धि मनुष्य केवल ज्ञानका भार ढोनेवाला कहा जाता है। जिस दर्शनके जरिये जीवका बार बार जन्म और मृत्यु न होसके, प्रकृति और परमात्माकी अन्तरात्माके सहारे

इस ही भावसे सदा दर्शन करना उचित है। इस लोकमें अजस्र जन्म मृत्युके विषयकी चिन्ता करके चयशील कर्म्मकाण्डमें कहे हुए धर्म्मोंको परित्याग करके अक्षय योगधर्म्मको अवलम्बन करना उचित है। हे काश्यप! त्वं पदार्थके प्रतिपाद्य पुरुष प्रतिदिन यदि आत्माको अवलोकन करे, तब वह वाक्य नित्य ज्ञानके जरिये केवलीभूत और अविद्या विमुक्त होकर उस पदार्थके प्रतिपाद्य परमात्माको वश करनेमें समर्थ होगा। शाश्वत ईश्वर स्वतन्त्र है और पचीसवां जीव स्वतन्त्र है, मूढ़ लोग ऐसी सम्भावना किया करते हैं, परन्तु वेदान्तनिष्ठ साधु लोग उन दोनोंको अभिन्न रूपसे देखते हैं। यह मत समझो कि सांख्य और पातञ्जल मतावलम्बी मनुष्य जीव और ईश्वरके अभेद दर्शनको अभिनन्दन नहीं करते, जन्म मृत्यु भयके उद्वेगसे युक्त परम तत्त्वको खोजनेवाले सांख्य मतावलम्बी पुरुष स्पष्टरूपसे जीव और ईश्वरका अभेद कहते हैं और योगाचारी पण्डित लोग मोक्ष समयमें जब जीव सब क्लेशोंसे रहित होता है, उस समय निर्व्विशेष चिन्मात्रमें लीन हुआ करता है, इस ही भांति दोनोंका अभेद स्वीकार किया करते हैं।

विश्वावसु बोले, हे ब्राह्मणसत्तम। आपने जो जीव तत्त्वके विषय कहे अर्थात जीव अच्युत और परमात्मासे अभिन्न है, यह सत्य है, परन्तु जीवका ईश्वरत्व अत्यन्त दुर्व्वच है। यद्यपि इस विषयको मैंने बहुतोंके मुखसे सुना है, तौभी मुझे आपपर अधिक विश्वास रहनेसे आपको विचारके सहित इस विषयको वर्णन करनेका अनुरोध करता हूं। आप ही इस विषयको वर्णन करनेके उपयुक्त पात्र हैं। जैगीषव्य, असित, देवल, विप्रर्षि पराशर, बुद्धिमान वार्षगण्य, भृगु, पञ्चशिख कपिल, शुकदेव, गौतम, आर्ष्टिषेण, महात्मा गर्ग, नारद, आसुरि धीमान् पुलस्त्य, सनत्कुमार, महानुभाव शुक्र, काश्यप और अपने पिताके मुखसे पहले मैंने इस विषयको सुना था। तिसके अनन्तर रुद्र, धीमान् विश्वदेव देवताओं, पितरों और दैत्योंके समीप मैंने इस नित्य वेद्य विषयको जाना है, इसे ही सब कोई नित्य वस्तु कहा करते हैं। हे ब्रह्मन्! इसलिये मैं आपको बुद्धिके जरिये स्थिरीकृत इस तत्त्व विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, प्रगल्भ और अत्यन्त बुद्धिमान हैं, आपसे कुछ भी अविदित नहीं है; आप सब वेदोंके अवलम्ब रूपसे स्मृत हुए हैं। हे ब्राह्मण! देव लोक और पितर लोकमें यही कहा जाता है, कि ब्रह्म लोकमें गये हुए महर्षि लोग ही तत्त्व विषय कहा करते हैं। तापदाता आदित्य स्वयं आपके उपदेष्टा हैं। हे याज्ञवल्क्य! आपने समस्त सांख्य ज्ञान लाभ किया है, विशेष करके योग शास्त्र भी जाना है, और चराचर ज्ञान गोचर करके निःसन्दिग्ध रूपसे प्रबुद्ध हुए हैं। इसलिये मैं आपके निकट मण्डलमय घृतकी भांति अत्यन्त स्वादमय तत्त्व ज्ञानका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे गन्धर्व्व सत्तम! मैं विवेचना करता हूं, तुमने सब शास्त्रोंको जाना है, इस समय मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस विषयको मैंने जिस प्रकार सुना है, वैसे ही कहता हूं सुनो। हे गन्धर्व्वराज! पुरुष बुध्यमान अर्थात् जड़ प्रकृतिको प्रकाश करता है, परन्तु प्रकृति पुरुषको प्रकाश नहीं कर सकती। सांख्य और योगमतावलम्बी तत्त्वज्ञ लोग श्रुति दर्शनके अनुसार इस पुरुषके प्रतिरोध निबन्धन अर्थात् प्रकृतिमें चित्प्रतिबिम्बके कारण उस प्रकृतिको प्रधान कहा करते हैं। भूतात्मा एक होके भी सब भूतोंमें निवास कर रहा है, वह एक होके भी जलमें चन्द्रमण्डलके प्रतिबिम्बकी भांति अनेक दीखता है, चित्प्रतिबिम्बित बुद्धि ही 'मैं'—इस प्रत्ययका विषय है।

हे अनघ! चिदाभाससे स्वतन्त्र साची जाग्रत आदि अवस्थान अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकके समयमें विकारयुक्त अव्यक्त और आत्माको अवलोकन करती है, और सुषुप्ति अवस्थान अथवा निर्विकल्प समाधि समयमें परमात्म दर्शन लाभ किया करती है, इसलिये जबतक साची साच्यके सहित सम्बन्ध विशिष्ट रहता है, उस समय जीव और साच्य वियुक्त होनेसे ही आत्म स्वरूपसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष आत्माको अवलोकन करते हुए इसके सहित परमात्माका दर्शन करते हैं, वे कुछ भी दर्शन करनेमें समर्थ नहीं है। आत्मा यह अभिमान करता है, कि मुझसे श्रेष्ठ और दूसरा कोई भी नहीं है। ज्ञानदर्शी मनुष्य प्रकृतिको आत्म-भावसे ग्रहण नहीं करते। मछली जलको ही अनुगत हुआ करती है, वह तैसी प्रवृत्तिके कारण उसहीमें प्रवृत्त होती है; जैसे मछली जलमें रहके प्रकाशित होती है, आत्मा भी अव्यक्तसे आवृत रहके, उस ही भांति प्रकाशित हुआ करता है। सदा सहवास और साभिमा-नसे जीव स्नेहयुक्त होता है, जबतक जीवका परमात्माके सङ्ग अभेद नहीं होता, तबतक वह संसारमें निमग्न और उन्मग्न हुआ करता है। हे द्विज! मैं चिदात्मा अन्य हूं और ये विष-यादि आत्मासे पृथक् पदार्थ अन्य हैं,—जब जीव ऐसा समझता है, तब वह केवलीभूत होकर परमात्माका दर्शन करता है। हे राजन्! जीव पृथक् है और परमात्मा स्वतन्त्र है। परन्तु परमात्माका जीवमें अधिष्ठान रहनेके कारण साधु लोग दोनोंको एक भावसे अनुभव किया करते हैं।

हे महामुनि काश्यप! जन्म मृत्युके भयसे भीत योग और सांख्य मतावलम्बी मनीषी पुरुष जीवको अविनाशी कहके अभिनन्दन नहीं करते, वे लोग पवित्र तथा आत्मपरायण होके परमात्माका दर्शन करते हैं। आत्मा विशुद्ध होनेसे परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है, उस समय वह सर्व्ववित् और ज्ञानस-म्पन्न होकर फिर जन्म नहीं लेती। हे अनघ! यह मैंने वेद प्रमाणके अनुसार अप्रतिबुद्ध प्रकृति बुध्यमान जीव और बुद्ध ब्रह्मतत्त्वका यथावत् वर्णन किया। हे काश्यप! जो पुरुष द्रष्टा औ- उससे इतर पदार्थोंको नहीं देखता, मोचवि- षयमें स्थितकर तथा दृक् दृश्यके अन्यत्व निर्व्विक- ल्पभावको नहीं देखता, वह मोचनिर्म्मुक्त औ साचीस्वरूप चिदाभास जगत् कारण तथा मह- दादि कार्य्योंको देखनेमें समर्थ होता है।

विश्वावसु बोले, हे विभु! आपने सत्य, शुभ- कर और मोचसाधनके उपायभूत पूर्ण ब्रह्मत- त्त्वको यथावत् वर्णन किया है, इसलिये आपका सदा अच्चय मङ्गल होवे तथा आपका मन स- बुद्धियुक्त रहे।

याज्ञवल्क्य बोले, उस महात्माके ऐसा क- नेपर मैंने उसे परम परितोषके सहित देख- तब वह मेरी प्रदचिणा करके सौन्दर्य्ययु- शरीर धारण करके स्वर्गलोकमें गये। हे नरेन्- ब्रह्मलोकमें खेचरोंके निकट भूमण्डल औ रसातलमें जो लोग मोचपथको अवलम्बन कर- बास करते हैं, उन्होंने उन लोगोंके निकट इस मोच साधन शास्त्रको प्रदर्शित किया। जैसे सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्यधर्म्ममें रत हैं, वैसे ही पातञ्जल मतवाले मनुष्य योगधर्म्ममें अनुरक्त हैं, इनके अतिरिक्त जो सब मनुष्य मोचकी कामना किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें इस शास्त्रके फल प्रत्यच सिद्ध हैं। हे राजश्रेष्ठ नरेन्द्र! ज्ञान हेतुसे मोच हुआ करती है, अज्ञानसे मोच नहीं होती, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; इसलिये जिस ज्ञानके सहारे आत्माको जन्म मृत्युसे मुक्त किया जासकता है, यथार्थ रीतिसे उस ज्ञानकी खोज करनी उचित है। ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य अथवा नीच जाति शूद्रसे भी ज्ञान लाभ करके श्रद्धावान पुरुषको

इस विषयमें सदा श्रद्धा करनी योग्य है, क्यों कि श्रद्धावान पुरुषके निकट जन्म-मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। सब वर्ण ही ब्राह्मण हैं, क्यों कि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं, सभी सदा "ब्रह्म" ऐसा ही वचन कहा करते हैं; इसलिये मैंने ब्रह्म-बुद्धिसे तत्वशास्त्रकी व्याख्या की है, सब संसार ही ब्रह्ममय है, इससे यह दृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य और दोनों चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये सब वर्णोंको ही दूसरी भांति समझना उचित नहीं है। हे राजन्! इन सब वर्णोंका अज्ञानवशसे जिस प्रकार नाश होता है, उसहीके अनुसार कर्म्म-योनिकी भजना करते हैं और ये लोग ज्ञान हीन होकर घोर अज्ञानसे प्राकृत योनिजालमें पतित होते हैं। इसलिये सब वर्णोंके ज्ञानकी सब भांतिसे खोज करनी योग्य है, यही मैंने तुमसे कहा है। हे नरेन्द्र! जो ज्ञाननिष्ठ हैं, वेही ब्राह्मण हैं, इसलिये जिस ब्राह्मण वा क्षत्रियने ज्ञान अवलम्बन किया है, उसहीके लिये यह मोक्षशास्त्र नित्य सिद्ध है,—ऐसा ही प्राचीन पण्डित लोग कहा करते हैं। हे राजन्! तुमने जो पूछा था, मैंने यथार्थ रूपसे उस ही विषयका उपदेश दिया; इसलिये अब शोकरहित होकर ज्ञान आलोचनाके पारदर्शी बनो, तुमने उत्तम प्रश्न किया था, इससे तुम्हारी सदा स्वस्ति होवे।

भीष्म बोले, राजा मिथिलेश उस धीमान् याज्ञवल्क्यका ऐसा उपदेश सुनके प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर जब मुनिवर चले गये, तब देवरात पुत्र मोक्षवित् राजा जनकने उस समय ब्राह्मणोंको एक करोड़ गऊ, सुवर्ण और अञ्जलिपूर्ण रत्न दान किया। मिथिलाधिपति उस अपने पुत्रको राज्य देकर यति धर्म्म अवलम्बन करके निवास करने लगे। हे राजेन्द्र! वह पुरुष धर्म्माधर्म्मकी सब प्रकारसे निन्दा करके सांख्य ज्ञान और समस्त योग शास्त्रकी अध्ययन करनेमें प्रवृत्त हुए। मैं अनन्त अर्थात् तीनों परिच्छेदोंसे रहित हूं, ऐसा मनमें निश्चय करके सदा एकमात्र परमात्म तत्त्वका विचार करने लगे। और ऐसा निश्चय किया, कि धर्म्माधर्म्म, पुण्य पाप, सत्यासत्य जन्म मृत्यु; ये सभी मिथ्या हैं। हे नरनाथ! सांख्य और योग मतावलम्बी मनुष्य निज निज शास्त्रके कहे हुए लक्षणके अनुसार इन धर्म्मादिको व्यक्त और बुद्धि आदिको अव्यक्त भावसे सदा अवलोकन करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं इष्टानिष्टसे विमुक्त परात्पर ब्रह्म जो स्थाणुकी भांति सदा अचल भावसे निवास करता है, वही शुद्ध है, इसलिये तुम भी उसे जानके पवित्र होजाओ। हे महाराज! जो दान किया जाता है, जो प्राप्त किया जाता है, जो दान करनेमें अनुमित होता है, जो दान करता और जो परिग्रह करता है, वह दीयमान गऊ आदि सब वस्तु ही आत्मा है; उस एकमात्र आत्मासे भिन्न और कौन होसकता है, तुम सदा ऐसा ही जानो, विपरीत चिन्ता मत करो। जो पुरुष सगुण वा निर्गुण प्रकृतिको जाननेमें समर्थ नहीं है, उस विपश्चित मनुष्यको तीर्थसेवा और यज्ञानुष्ठान करना उचित है। हे कुरुनन्दन! स्व-शाखोक्त वेदाध्ययन तपस्या वा यज्ञ आदिके जरिये ब्रह्मपद नहीं मिलता, मनुष्य परब्रह्मको जाननेसे ही सब लोगोंमें पूजनीय होता है, और क्रमसे महत्तत्वके स्थान अहंकार और अहंकारके भी परतर स्थानोंको प्राप्त किया करता है। जो सब शास्त्र परायण मनुष्य अव्यक्तसे परम श्रेष्ठ, जन्म मृत्यु से रहित कार्य्यकारण भावसे सदसत् नित्य शुद्ध परमात्माको जान सकते हैं, वे परम पद पानेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! पहले मैंने राजर्षि जनकके समीप यह ज्ञान लाभ किया था, ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है, यज्ञ श्रेष्ठ नहीं है। ज्ञानसे

सहारे जीव जन्म मरण स्वरूप दुर्गसे पार होता है, यज्ञके जरिये उससे कदापि पार नहीं हो सकता।

हे राजन! ज्ञानवित् मनुष्य भौतिक जन्म मरणको ही दुर्ग कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दुर्ग नहीं है। मनुष्य यज्ञ तपस्या, नियम और व्रतके जरिये स्वर्ग लाभ करके फिर पृथ्वीपर पतित होता है, इसलिये पवित्र होके परात्पर विशोच विमल पवित्र परब्रह्मकी उपासना करो। हे पार्थिव! चित्र ज्ञानपूर्व्वक यथार्थ ज्ञान यज्ञकी उपासना करनेसे ज्ञानी होगे। उपनिषत् पाठ करनेसे जो उपकार होता है, पहले समयमें याज्ञवल्क्य मुनिने राजा जनकका वही उपकार किया था। उन्होंने जो शाश्वत अव्यय पुरुषका उपदेश दिया, उसहीसे जनक शुभ, अमृत और शोक रहित परमात्माको प्राप्त हुए।

३१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मनुष्य महत् ऐश्वर्य्य, विपुलवित्त अथवा दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको अतिक्रम करता है। महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्र ज्ञान वा रसायन प्रयोग, इनके बीच क्या करनेसे मनुष्य जरा मृत्युको प्राप्त नहीं होता।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चशिख नाम किसी सन्न्यासीके सहित जनककी जो वार्त्ता हुई थी, उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहवंशीय राजा जनकने धर्म्मार्थ संशय छेदन करनेवाले वेदवित्तम महर्षि पञ्चशिखसे पूछा,—हे भगवन्! तपस्या, बुद्धि, कर्म्म वा शास्त्रज्ञान, इन सबके बीच किसके जरिये मनुष्य जन्म और मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है। अपरोक्षवित् महर्षिने विदेहराजके ऐसा पूछनेपर यह उत्तर दिया,—जन्म मरणकी निवृत्ति नहीं है और किसी प्रकार उसकी निवृत्ति हो, वह भी नहीं है। दिन रात और महीनोंकी निवृत्ति नहीं होती, जो अनित्य होके भी सदाके लिये नित्यपथ अवलम्बन करते हैं, अर्थात् स्वधर्म्माचरण पूर्व्वक निवृत्ति मार्गमें निष्ठावान होते हैं, वेही जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ हैं। सर्व्वभूतोंका समुच्छेद मानो सदा ही स्रोतमें भासमान होरहा है, नौकारहित काल सागरमें जिसे भासमान देखा जाता है, वही डूबता है जरा मृत्युरूपी महाग्राहसे पकड़े जानेपर कोई फिर नहीं लौटता। कालसागरमें बहते हुए मनुष्यका कोई भी आत्मीय नहीं है और वह भी किसीका आत्मीय नहीं है पत्नी और दूसरे बान्धवोंके साथ मिलना पथिकोंके मिलनेकी भांति अचिर कालतक स्थायी मात्र है। जीवने पहले किसीके सङ्ग अत्यन्त सहवास लाभ नहीं किया है, जब जिसके साथ मिलन होता है, तभी उसके निमित्त रोदनके सहित वियोग हुआ करता है। जैसे वायुके वेगसे बादल छितरा जाते हैं, वैसे ही कालवशसे जो लोग गमन करते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। जरा मृत्यु भेड़ियेकी भांति प्राणियोंको भक्षण करती है। क्या बलवान, क्या निर्व्वल, क्या छोटे वा बड़े किसीको भी जरा मृत्युके समीपसे छुटकारा नहीं है। ऐसे अनित्य प्राणियोंके बीच नित्यभूत भूतात्मा स्थित है, इसलिये प्राणियोंके जन्मनेसे लोग किसलिये हर्षित होते और मरनेपर क्यों दुःख किया करते हैं। मैं कहांसे आया हूं, मैं कौन हूं, कहां जाऊंगा, मैं किसका हूं, कहां हूं, किस लिये किस स्थानमें जन्म ग्रहण करूंगा; क्या लोग इसकी आलोचना किया करते हैं; स्वर्ग वा नरकका द्रष्टा दूसरा कौन है? इसलिये सब शास्त्रोंको अतिक्रम न करके दान और यजन करना उचित है।

३१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुराजप्रसत्तम ! किस पुरुषने गार्हस्थ्यधर्म्म परित्याग न करके बुद्धिके विषयास्पद मोक्षतत्वको पाया है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। हे पितामह ! यह स्थूल शरीर तथा लिङ्ग शरीर कैसे परित्यक्त होता है और मोक्षका परम तत्व क्या है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भारत ! इस विषयमें सुलभा और जनकके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको पुराने लोगोंने इस विषयमें यह दृष्टान्त दिया करते हैं। पहिले समयमें मिथिलादेशमें संन्यास फलदर्शी जनक नाम कोई राजा थे, वह श्रेष्ठ धर्म्मध्वजा कहके विख्यात हैं। उन्होंने मोक्ष शास्त्र वेद और निज दण्डनीति शास्त्रमें विशेष श्रम किया था तथा इन्द्रियोंको समाधान करके इस पृथ्वीको शासन किया। हे नरनाथ! बुद्धिमान पुरुषोंने उस वेदविद् भूपतिकी उत्तम वक्तृता सुनके सब कोई उसके गुणके अनुरक्त हुए थे। उस सत्ययुगमें योगधर्म्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नामी भिक्षुकी अकेली ही इस पृथ्वीमण्डलपर विचरती थी। वह इस सारे जगत्में घूमती हुई जिस जिस स्थानमें उपस्थित होती थी, उस ही उस स्थानमें सन्न्यासियोंके मुखसे सुनती, कि पृथ्वीमण्डलके बीच मिथिलेश्वर ही मोक्ष धर्म्ममें अत्यन्त निष्ठावान हैं। उसने अत्यन्त सूक्ष्म वचन सुनके यह सत्य है वा नहीं, ऐसा सन्देह करके राजा जनकका दर्शन करनेके लिये सङ्कल्प किया। उस समय उस अनिन्दिताङ्गीने योगबलसे पूर्व्वरूपको परित्याग कर एक दूसरा उत्तम रूप धारण किया। वह कमलनयनी शीघ्रगामी अस्त्रकी भांति गति अवलम्बन करके पलभरमें विदेहकी राजधानीमें गई। अनेक लोगोंसे परिपूरित मिथिलानगरमें पहुंचके भैक्ष्यचर्य्याके छलसे मिथिलेश्वरको देखा। राजा इसकी अत्यन्त सुकुमारतायुक्त शरीर देखकर मनही मन "यह कौन है, किसकी कन्या है, कहांसे आई है?" ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए। अनन्तर राजाने उसको स्वागत प्रश्नकर बैठनेकी आज्ञा दी, फिर उसका चरण धोके पूजा और उत्तम अन्न दानकर उसे तृप्त किया। भिक्षुकी सुलभा भोजन करके प्रसन्न हुई और मिथिलापति मुक्त है, वा नहीं, इस विषयमें सन्देह कर समस्त भाष्यवित् अर्थात् सूत्रार्थ जाननेवाले ऋषियोंके बीच मन्त्रिमण्डलीमें घिरे हुए राजासे मोक्षधर्म्मका विषय पूछनेमें प्रवृत्त हुई। योग जाननेवाली सुलभाने मोक्षधर्म्मके विषयको पूछनेकी इच्छा करके पहले निज नेत्ररश्मिको संयत करती हुई निज बुद्धिसे राजाकी बुद्धिमें प्रवेश करके योगबलसे उन्हें वशीभूत किया। हे नृपवर ! राजा जनकने भी अपने अजेयत्व अभिमानसे गर्व्व करके सुलभाके आशयको अभिभव करनेकी इच्छासे उसका अभिप्राय निज अभिप्रायके जरिये ग्रहण किया, अर्थात् उसके सहित सखभावसे एक ही शरीरमें वास करने लगे। राजा राजचिन्ह छत्र आदि और सुलभा भी यति-चिन्ह त्रिदण्ड प्रभृति परित्याग करने अर्थात् दोनोंके स्थूल देहके सब चिन्ह परित्याग करनेपर उस एक मात्र अधिष्ठानमें जो वार्त्ता हुई थी उसे सुनो।

जनक बोले, हे भगवति! तुम्हारा यह आचरण कहांसे हुआ, तुम किसकी कन्या हो, किस स्थानसे आई हो, इस समय कहां जाओगी? पृथ्वीपति जनकने सुलभासे यही प्रश्न किया और कहने लगे, अवस्थाके अनुसार शास्त्रका ज्ञान अथवा जातिसे सद्भाव नहीं होता, इसलिये जब मेरे निकट समागम हुआ है, तब इन विषयोंका यथार्थ उत्तर जानना उचित है। मैंने राजा होके भी छत्रादि राजचिन्होंको परित्याग किया है, इसे यथार्थ रूपसे मालूम करो। मैं तुम्हें विशेष रूपसे जाननेकी

इच्छा करता हूं तुम मेरे निकट मान्य के योग्य हुई हो। पहले मैंने जिससे यह वैशेषिक ज्ञान लाभ किया है और मुझे छोड़के दूसरा कोई भी जिसका वक्ता नहीं है, वह मोक्षका हेतु मुझसे सुनो। पराशरके सगोत्र महात्मा वृद्ध भिक्षु पञ्चशिखका मैं प्रिय शिष्य हूं; सांख्य ज्ञान, योग और राजविधि, यह तीन प्रकारके मोक्षधर्मके पथमें बिचरते हुए मैंने संशयको नष्ट किया है। वह पञ्चशिख शास्त्रदृष्ट मार्गसे बिचरते हुए प्रतिवर्ष चार महीनेतक परम सुखसे मेरे निकट वास करते थे। उस सांख्य-ज्ञानी सुदृष्टार्थ गुरुके मुखसे मैंने त्रिविध मोक्षका हेतु सुना है, किन्तु राज्यसे बिचलित नहीं हुआ। मैं उस ही गुरुके उपदेशको ग्रहण करके रागरहित होके अकेला ही परम पदमें निवास करते हुए निखिल वृत्तिसे युक्त तीनों प्रकारकी मोक्ष संहिता आचरण किया करता हूं। वैराग्य ही इस मोक्ष साधनका उपाय है, ज्ञान हेतुसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे पुरुष मुक्त होता है। ज्ञानके जरिये मनोनाशके कारण योगाभ्यास हुआ करता है; योगाभ्यासके जरिये आत्मज्ञान प्राप्त होता है, आत्मज्ञान ही जीवके सुखदुःख आदि मोक्षका हेतु है और जिसके जरिये मृत्युको जय किया जा सकता है, उसे ही सिद्धि कहते हैं, मैंने आसक्तिहीन तथा मोह रहित होकर इस लोकमें बिचरते हुए सुखदुःखसे बर्ज्जित यह परम बुद्धि पायी है। जैसे जल भरनेसे नरम मिट्टी युक्त खेतमें अङ्कुर जमते हैं, वैसे ही मनुष्योंके कर्म्म भी बीज स्थानीय होकर पुनर्ज्जन्मके कारण हुआ करते हैं। जैसे पलमें भुने हुए बीज अङ्कुर उत्पत्तिके हेतु होनेपर भी अङ्कुर उत्पत्तिके असामर्थ निबन्धनसे उत्पन्न नहीं होते, वैसे ही भगवन् भिक्षु पञ्चशिख आचार्य्यने मेरी बुद्धिको वासना बीजसे रहित किया है, इसीसे वह विषयमें प्रवृत्त नहीं होती। मेरी बुद्धि शत्रु, वध आदि अनर्थमें वा वनिता-शक्ति विषयमें अनुराग प्रकाश नहीं करती, क्योंकि मैं रोष और रागकी व्यर्थताके कारण किसी विषयमें भी अनुरक्त नहीं हूं। यदि कोई पुरुष मेरी दहिनी भुजाको चन्दनसे तर करे और कोई पुरुष वसुलेसे मेरी भुजाको काटे, तो वे दोनों पुरुष ही मेरे निकट समान हैं। उस ही समयसे मैं सुखी, सिद्धार्थ लोष्ट्र पत्थर सुवर्णमें समदर्शी, आसक्ति रहित और दूसरे त्रिदण्डियोंके सहित निर्व्विशेष होके भी राजकार्य्य करता हूं। किन्हीं किन्हीं मोक्षवित मनीषियोंने मोक्ष विषयमें त्रिविध निष्ठा देखी है, कोई कोई लोकोत्तर ज्ञान और कर्म्मोंके एकही समयमें परित्यागको मोक्षका उपाय कहा करते हैं, कोई कोई मोक्ष शास्त्रके जाननेवाले पण्डित ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका साधन कहते हैं, और कोई कोई सूक्ष्मदर्शी यति लोग कर्म्मनिष्ठाकोही मोक्षको उपाय कहके विश्वास करते हैं, परन्तु महानुभाव पञ्चशिखने ज्ञान और कर्म्म दोनोको ही परित्याग करके कर्म्मकृत उपकारके निरपेक्ष केवल ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है, इसलिये यह तीसरी निष्ठा कहके विख्यात हुई है। यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ और स्नेह, इन सबके बीच यदि गृहस्थ पुरुषोंमें यम नियम आदि रहे तो वह सन्न्यासियोंके समान है और यदि सन्न्यासी काम द्वेषसे दम्भी हो, तो वह गृहस्थके सदृश है। यदि ज्ञानसे ही मोक्ष हो, तो त्रिदण्ड आदि धारण करनेकी क्या आवश्यकता है। परिग्रहकी यदि तुल्य कारणता हो, तो छत्र आदि धारण मोक्षके प्रतिबन्धक नहीं हैं, अर्थात् ज्ञानसे ही मोक्ष होती है,—जब ऐसा सिद्ध हुआ तो त्रिदण्ड धारण और छत्र धारण दोनों ही समान हैं। इस जगत्में जिस जिस कारणसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, स्वार्थ परिग्रह विषयमें सब कोई उस

ही कारणको अवलम्बन किया करते हैं, प्रयोजनकी अल्पता वा अधिकता बन्ध मोक्षका कारण नहीं होती, परन्तु उसमें आसक्ति और अनासक्ति ही बन्ध मोक्षकी कारण हुआ करती है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें दोष देखकर दूसरे आश्रममें गमन करता है, वह एक आश्रमको त्यागके दूसरे आश्रममें जानेसे आसक्तिसे नहीं छूटता। जब कि निग्रह और अनुग्रह स्वरूप आधिपत्य समान होरहा है, तब राजाओंके सहित भिक्षुकको समान जानना होगा, इसलिये भिक्षुक जब राजाओंके तुल्य ही हुए, तब किस कारणसे मुक्त होंगे। और ज्ञानके जरिये यदि सत्यमें ही आधिपत्य हो, तब इस देहमें रहके दोनों ही सब पापोंसे छूट सकते हैं। गेरुआ वस्त्र पहरना, सिर मुंड़ाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण आदि आश्रमके परिचय देनेवाले जो सब चिन्ह हैं, मेरे विचारमें वे सब उत्पथ स्वरूपमात्र हैं, मोक्षके कारण नहीं हैं। आश्रम परिचायक चिन्होंके रहनेपर भी यदि ज्ञान ही दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिमें कारण होता है, तब दण्डकमण्डलुको धारण करना निरर्थक है। अथवा दुःखको शिथिलता देखके यदि आश्रम-परिचायक चिन्ह धारण करनेमें प्रवृत्त हो, तो समान प्रयोजन निबन्धनसे छत्र आदि धारण करनेमें प्रवृत्ति क्यों न होगी। अकिञ्चनता रहनेसे ही मोक्ष नहीं होती, और किञ्चनता हेतुसे बन्ध नहीं होता, चाहे जीव अकिञ्चन हो, चाहे किञ्चन ही होवे, ज्ञानके सहारे ही मुक्त हुआ करता है। इसलिये बन्धनके स्थान धर्म्म, अर्थ काम और राज्य परिग्रहमें लगे रहनेपरभी मुझे मोक्ष पदमें स्थित जानो, मैं इस जगत्में मोक्षरूपी सानसे शोणित त्यागरूपी तलवारके जरिये बन्धनके बन्धनस्वरूप राज ऐश्वर्य्य मय पाशको काटा है, इसलिये आसक्तियुक्त पुरुष बद्ध होता है, और ज्ञान द्वारा मनुष्य ही मुक्त हुआ करता है।

हे भिक्षुकी मैं प्रागुक्त प्रकारसे मुक्त हुआ हूं। इस समय तुम्हारे ऊपर दया हुई है, तुम्हारा रूप योगानुष्ठानके योग्य नहीं है, उसे कहता हूं, मेरे समीप सुनो। तुम्हारी सुकुमारता, सुन्दरताई उत्तम श्री, शरीर और यौवनका समय, यह सभी है, और योग प्रभाव भी है। सुकुमारता आदि और योगानुष्ठान, ये परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु इन विरुद्ध धर्म्मोंने तुम्हें अवलम्बन किया है; इस ही लिये मुझे संशय होता है, कि तुम योगसिद्धा ब्राह्मणी अथवा यक्ष वा राक्षस योनिमें जन्मी हो। तुम्हारी दण्ड ग्रहणकी चेष्टा अत्यन्त ही असदृश है, क्यों कि उसमें शरीर सुखाना प्रभृति आवश्यकता है, परन्तु तुममें वह नहीं है। "यह पुरुष मुक्त है, वा नही" ऐसा संशय करके तुम रूप आदिसे मुझे मोहित करनेका उद्योग कर रही हो, परन्तु कामयुक्त योगियोंको त्रिदण्ड धारण करना विहित नहीं है, तुम भी इस आश्रम परिचायक चिन्हकी रक्षा नहीं करती हो और मुक्त पुरुषको कोई विषय गोपन करना भी उचित नहीं है। मेरे शरीरमें प्रवेश करने अर्थात् स्वभावसे मेरे पूर्व्व शरीरको अवलम्बन करनेके तुममें जो व्यतिक्रम अर्थात् व्यभिचार हुआ है, उसे सुनो। मेरे राज्य वा राजधानीके बीच तुमने किसकी सहायतासे प्रवेश किया और किसके निकटसे आके मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुई। तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो, मैं क्षत्रिय हूं; हम लोगोंका एकत्र याग नही होसकता, इसलिये वर्णसङ्कर मत करो। दूसरे तुम मोक्ष धर्म्ममें निवास करती हो, मैं गृहस्थाश्रममें बसता हूं। इसलिये आश्रमको सङ्कर करना भी तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त कष्टकर होता है। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो, वा असमान गोत्रा हो, उसे मैं नहीं जानता, परन्तु यदि तुमने सगोत्रके शरीरमें प्रवेश किया है, तो तुममें गोत्रसङ्कर दोष हुआ है। चौथे यदि

तुम्हारा पति जीवित हो, वा जीवित रहके किसी स्थानमें वास करता हो, तो पराये स्त्री अगम्या है, इससे तुममें धर्म्मसङ्कर दोष उपस्थित होता है; इसलिये यदि तुम सन्न्यासिनीके वेषसे गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेके लिये आई हो, जो पहले बिना गोत्र, आदिके जाने मेरे शरीरमें प्रवेश करना तुम्हें उचित नहीं था। और यदि तुम कार्य्यापेक्षिणी होकर अविज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञानसे पहले ही इन सब अकार्य्योंको करती हो, तो यह अत्यन्त अविहित है। यदि तुम निज दोषसे किसी दूसरे पुरुष पर स्वाधीनता प्रकाशित करो, तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता शास्त्रमें निषिद्ध है, इसलिये तुम्हें जो कुछ शास्त्रज्ञान है, वह भी निरर्थक होरहा है। तीसरे यदि तुम प्रकाश्यमें बाहर हुई हो, तो इससे भी तुम्हारा महान् प्रीति-विघातक दुष्ट लक्षण बोध होता है। तुमने जयकी अभिलाषिणी होकर केवल मुझे ही जीतनेकी इच्छा नहीं की है, मेरे इस सभा सम्बन्धीय सब पण्डितोंको भी जीतनेकी तुम्हारी अभिलाषा है। मेरे पक्षके प्रतिघात और निज पक्षको सिद्ध करनेके लिये तुम इन पूज्य पुरुषोंकी ओर देखरही हो। तुम दूसरेके उत्कर्षको असहिष्णुता रूपी आमर्ष जनित योगसमृद्धि मोहसे मोहित होकर विष और अमृतकी एकताकी भांति फिर योग अर्थात् परम बुद्धिके सहित निज बुद्धिका सम्बन्ध-विधान करती हो। यदि स्त्री पुरुष परस्पर अनुरक्त होके दोनों मिलित हों, तब उनका मिलना अमृत समान हुआ करता है और अनुरक्त दम्पतिका जो अमिलन है, वह विषकी समान दोषरूपसे परिणत होता है, इसलिये तुम मुझे स्पर्श मतकरो साधु ज्ञानसे संन्यासि शास्त्रको पालन करो। मैं मुक्त हूं, वा नहीं, इसे जाननेके लिये तुमने इच्छा की है, परन्तु गुप्तभावसे मेरे समीप यह सब अभिप्राय छिपाना तुम्हें उचित नहीं है। यदि तुमने निज कार्य्य अथवा दूसरे किसी महापतिके कार्य्यके लिये ऐसा किया हो, तो दूसरा वेष धरके मेरे निकट सत्यको छिपाना तुम्हें अत्यन्त अनुचित है। राजाके समीप मिथ्यावेषसे न जावे, ब्राह्मणके निकट कपट वेषसे उपस्थित न होवे और पतिव्रता स्त्रीके समीप कपटाचारसे न जाना चाहिये; जो लोग इनके निकट मिथ्या व्यवहार करते हैं, उनका नाश होता है। राजाओंका ऐश्वर्य्य बल है, ब्राह्मणोंका वेदज्ञ है और स्त्रियोंको रूप यौवन सौभाग्य ही उत्तम बल खरूप है, इससे ये लोग इन्हीं बलोंके सहारे बलवान हैं; तब जो पुरुष खार्थको इच्छा करे, उसे सरलभावसे इनके निकट जाना उचित है, इनके समीप कपटता करनेसे कपटीका विनाश हुआ करता है। जब तुम कपट आचारवाली हुई हो, तब तुम्हें जाति, शास्त्रज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आनेका प्रयोजन यथार्थ रूपसे कहना उचित है।

भीष्म बोले, सुलभा नरेन्द्रके जरिये यह सब रूखे, अयुक्त और असमञ्जस वचनसे पूछे जानेपर तनिक भी विचलित न हुई और राजाका वचन समाप्त होनेपर वह सुन्दरी उत्तम वचन कहने लगी।

सुलभा बोली, हे राजन्! गुरुतर अक्षर संयुक्तत्व आदि वक्ष्यमाण नव प्रकारके वाक्य दोष और वक्ष्यमाण काम आदि नव प्रकारके बुद्धिदोषसे रहित तथा अठारह गुणोंसे युक्त सङ्गतार्थ सूक्ष्म वाक्य, पूर्व्वपक्ष तथा सिद्धान्त पक्षके गुण दोषोंकी संख्या तथा गुणदोषोंके बलाबलका विचार, विनिर्णय अर्थात् सिद्धान्त और अनुष्ठान, इन पांचो विषयोंसे संयुक्त होनेसे वाक्य अर्थात् शब्दाख्यप्रमाण रूपसे अभिहित होता है। पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ इस चार प्रकारके भेदके अनुसार पहले कहे हुए सूक्ष्मादिके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो। जब ज्ञेय पदार्थोंके भिन्न भिन्न होनेसे ज्ञान विभिन्न होता है,

और जिसमें बुद्धि अनेक तरहसे संशय करती है उसीको सूक्ष्म अर्थात् दुर्ज्ञेय वा त्व कहते हैं। किसी विषयका अभिप्राय करके दोष और गुणोंको विचारके अनुसार बलाबल विचार करनेको संख्या कहके निश्चय करो और संख्यात गुण दोषोंके बीच यह प्रथम वक्तव्य है, उसे पश्चात् करना चाहिये। ऐसे बलाबल विचारको वाक्य-विद पुरुष क्रमयोग कहा करते हैं। धर्म्म, काम, अर्थ, मोक्षविषयमें विशेष रूपसे प्रतिज्ञा करके शास्त्रार्थ विचारकी समाप्ति होनेपर "यही वह सत्य वाक्य है" इस प्रकारके निश्चयको निर्णय करते हैं। हे राजन्! इच्छा द्वेष उत्पन्न हुए दुःखके जरिये जो उद्वेग उत्पन्न होता है अर्थात् इसे अवश्य करना चाहिये और यह अवश्य त्याज्य है, इस कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता विषयमें जो प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है, उसका ही नाम प्रयोजन है। हे प्रजानाथ! यथाक्रमसे कहे हुए ये सूक्ष्मादि एक अर्थसे पर्य्यवसित होकर पञ्च भङ्गयुक्त वाक्य होता है, इसलिये मेरे वचनके अनुसार उसका निश्चय करो। मैं प्राञ्जल और प्रसिद्ध अर्थसम्पन्न श्लाघ्यविशेषण-युक्त तथा संक्षिप्त श्लेष आदि आठ गुणोंसे पूरित असन्दिग्ध परम उत्तम वचन कहूंगी, जो सब वाक्य कहूंगी, उनमें बहुत अक्षर नहीं हैं, अश्लील अमङ्गल और घृणाकर शब्द नहीं है, वह अनृत, धर्म्मरहित अथवा धर्म्मकाम और अर्थ, इन त्रिवर्गोंसे विरुद्ध नहीं है। उसमें असङ्गत पद नहीं है, छन्द वा व्याकरण दोष युक्त शब्द नहीं हैं, क्लिष्ट शब्द अर्थात् बहुत कष्टसे जिसका अर्थ-बोध होता है, वैसा पद नहीं है, और वह [illegible] वा युक्तिहीन भी नहीं है। मैं काम क्रोध, भय, लोभ, दीनता, दर्प, दया, लज्जा और अभिमानके वशमें होकर कुछ वचन न कहूंगी। हे राजन्! वक्ता, श्रोता और वाक्य [illegible] समयमें अव्यग्रभावसे समान होते हैं, [illegible] अर्थ प्रकाशित हुआ करता है।

कहनेके समय यदि वक्ता श्रोताको अवज्ञा करे और निज प्रयोजनीय विषयको पराये प्रयोजन रूपसे प्रकाश करे तो वह वचन अंकुरित नहीं होता, जो मनुष्य स्वार्थ त्यागके दूसरेके निमित्त प्रकट करता है, उसमें शङ्का उत्पन्न होती है, तथा वैसा वचन भी दोषयुक्त होता है। हे राजन्! जो वक्ता अपने और श्रोताके अविरुद्ध वचन प्रकाश करता है, वह साधारण नहीं है, इसलिये अविक्षिप्त चित्त वा एकाग्र होकर वाक्य सम्पत्तिसे युक्त अर्थ सम्पन्न यह वचन तुम्हें सुनना उचित है। हे महाराज! तुमने जो मुझसे "तुम किसकी कन्या हो, कहांसे आई हो" ऐसा पूछा है उसका उत्तर एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे राजन्! जैसे जतु और काष्ठ पांशु तथा जलकी बूंद परस्पर संश्लिष्ट होती हैं, इस लोकमें प्राणियोंका सम्भव भी वैसा ही है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पञ्चेन्द्रिय अनेक रूप होकर जतुकाष्ठकी भांति आत्मामें संश्लिष्ट होती हैं। शब्द आदि विषय और कान आदि इन्द्रियां चाहे भिन्न हों, वा संहत हो होवें, उन्हें "तुम कौन हो?" ऐसी बात नहीं पूछी जाती, यह निश्चय है और वे परस्पर अपने तथा परायेको नहीं जानतीं। नेत्र निज रूपको देखनेमें समर्थ नहीं है, कान आप ही अपनेको नहीं जान सकता, ये परस्पर व्यभिचारके जरिये वर्त्तमान नहीं रहते और परस्पर संश्लिष्ट होके भी जल-मिश्रित धूलिकी भांति एक दूसरेको नहीं जान सकते, अर्थात् जैसे सूर्य्य घट पट आदि बाह्यवस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही आंख, कान आदि इन्द्रियां इकट्ठी होके भी अपने वा दूसरेको प्रकाश नहीं कर सकतीं। ये इतर बाह्य गुण अर्थात् प्रकाश आदिकी अपेक्षा किया करती हैं, यह भी मुझसे सुनो।

रूप नेत्र और प्रकाश, ये तीनों दर्शन ज्ञानके सहकारी कारण हुआ करते हैं; जैसा दर्शन ज्ञानका कारण है, श्रवण आदि ज्ञान

और ज्ञेय विषयमें वैसी सहकारिताके बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और ज्ञेय पदार्थके बीच मन एक विशेष गुण है, जिसके सहारे जीव सदसत्का विचार करता है, उसे ही मन कहते हैं। पञ्चभूत, पञ्चइन्द्रिय और मन, इन ग्यारहोंके अतिरिक्त बुद्धिको बारहवां गुण कहा जाता है, संशयात्मक बोधव्य विषयमें जीव जिसके सहारे निश्चय करता है, उसे ही बुद्धि कहते हैं। उस बुद्धिके बीच सत्त्वनाम और एक गुण हैं, उसे बुद्धिका उपादान कहा जाता है। रज और तमोगुणके अत्यन्त अभिभव होनेपर सतो गुणको मध्य वा और किञ्चित अभिभव होनेसे सहत्त्व होता है। जन्तु महासत्त्व अथवा अल्प सत्त्व हैं,—जिसके जरिये यह अनुमान किया जाता है, उसे ही सत्त्व कहते हैं। "यह पुरुष मेरा है और यह मेरा नहीं है" जिस सत्त्वके जरिये जीव ऐसा ज्ञान करता है, वह अहङ्कार नाम चौदहवां गुण कहा जाता है। हे राजन्! अहङ्कारका और एक पन्द्रहवां गुण स्मृत हुआ करता है, अर्थात् पञ्चप्राण, आकाश आदि पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन सोलहों कलाओंकी समग्रता जोकि वासनात्मक जगत् रूप अहङ्कारमें निवास करती है, उसे ही पञ्चदश गुण कहा जाता है। उस वासनामें उसके उपादान स्वरूप त्रिगुणात्मक संघातकी भांति जगत्की अंकुर बीजभूत अविद्या संज्ञक सोलह गुण वर्त्तमान हैं, माया और उसका प्रकाश, ये दोनों गुण उसके आश्रित होरहे हैं, इसलिये माया सत्तरहवीं और उसके प्रकाशको अट्ठारहवें गुण रूपसे गिनना होगा। और सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, लाभ, हानि यथाप्रिय, अप्रिय, ये द्वन्द्व योग इक्कीस गुण रूपसे कहे गये हैं, ये सब सुख दुःख आदि प्रकृतिके कार्य्य हैं और इक्कीसके ऊपर दूसरा एक कालनामक गुण है, इसहीमें सब भूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है, इसे बीसवें गुणके जरिये संख्यात जानो। इस बीसवें संघात और इसके आरम्भक अंशके अतिरिक्त पञ्चमहाभूत उसके अतिरिक्त सत् और असत् भावके सम्बन्धयुक्त प्रकाश दोनों गुणोंमें सप्तविंश गुण और विधि अर्थात् वासना बीजभूत धर्म्माधर्म्म, शुक्र अर्थात् वासनाका उद्बोधक संस्कारबल अर्थात् वासना विषय प्राप्तिका यत्न इन तीनोंके सङ्ग मिलके और ऊपर कहे हुए सत्ताईसों गुण गिनतीमें तीस होते हैं। ये सब गुण जिसमें वर्त्तमान रहते हैं, उसे शरीर कहा जाता है। निरीश्वरवादी सांख्य मतवाले पण्डित लोग अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिको इन तीसों गुणोंके उपादान रूपसे देखते हैं और स्थूलदर्शी कणाद आदि व्यक्त अर्थात् परमाणु आदिको उक्त गुणोंमें उपादान रूपसे देखते हैं। अव्यक्त ही हो, अथवा व्यक्त परमाणु प्रभृति ही होवे, किम्वा चार्व्वाक मतके अनुसार चार प्रकारके परमाणु ही हों, अध्यात्मवित् पुरुषोंके वे सभी अविरुद्ध हैं, क्योंकि मेरे समान अध्यात्मचिन्तक पुरुष प्रकृतिको ही सब भूतोंके उपादान रूपसे देखते हैं; इस अपरिस्फुटा प्रकृतिने प्रागुक्त तीसों कला रूपसे इश्यत्व लाभ किया है। हे राजेन्द्र! मैं तुम और दूसरे जो सब जीव हैं, सभी उस ही तीस कलात्मिका प्रकृतिसे पृथक् स्वयं ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रतिस्वरूपमें निवास करनेवाली आत्मा है, इसलिये हम लोगोंका तन्मात्रत्व सिद्ध है। बिन्दुन्यास आदि अवस्था अर्थात् रेतःसेक आदि शुक्रशोणितके संयोगसे हुआ करती है; जिसके मिलनेसे कलल अर्थात् शुक्रशोणितका परस्पर संघटन उत्पन्न होता है। उस कललसे बुद्बुदकी उत्पत्ति होती है, बुद्बुदसे गुठली उत्पन्न होती है, गुठलीसे अङ्ग उत्पन्न होते हैं और अङ्गसे नख तथा रोम निकला करते हैं।

हे मिथिलाराज! नवम महीना पूरा होने पर जठरस्थ जीवका स्त्री वा पुरुषके चिन्ह अनुसार नामरूप होता है। उत्पन्न होते ही ताम-

बर्ब नख और अङ्गुलीयुक्त जो कौमार रूप दीखता है, रूपान्तर होनेपर उसकी प्राप्ति नहीं होती। कौमार रूपसे जवानी और जवानीके अनन्तर बुढ़ापा प्रकाशित हुआ करता है, इत्यादि क्रमसे जो सब रूप उत्पन्न होते हैं, उसके जरिये पहलेके रूपकी प्राप्ति नहीं होती, सब भूतोंके बीच रूप आदिकी प्रकाश करनेवाली परिणामवती कलासे प्रतिक्षणमें ही रूपका विपर्य्यय होरहा है, परन्तु सूक्ष्मताके सबबसे वह मालूम नहीं होता। हे राजन्! दीपशिखाकी गतिके अनुसार प्रत्येक अवस्थामें रूपका उदय और लय होरहा है; परन्तु वह मालूम नहीं होता। जैसे उत्तम घोड़े सदा दौड़ते हैं, उस ही भांति जब कि ऐसे प्रभावयुक्त सब लोक धावित होरहे हैं, तब कौन कहांसे आया है, वा आता नहीं है, यह किसका है वा किसका नहीं है, कहांसे उत्पन्न होता है अथवा जन्म नहीं लेता,—इसका क्या निश्चय है; इस लोकमें शरीरका निज अवयवोंके सङ्ग क्या सम्बन्ध है? जब कि अपने अवयवोंके सङ्ग ही अपना सम्बन्ध नहीं है, तब तुमने जो मुझसे "तुम कौन हो, कहांसे आई हो?" इत्यादि प्रश्न किये हैं, वह अत्यन्त ही अयुक्त है। लोहेके सम्बन्धसे सूर्य्यकान्तमणि और घिसनेसे काठसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही कलाओंसे जीव जन्म लिया करते हैं, जैसे तुम अपने शरीरमें आप ही निमल आत्माको देखते हो, वैसे ही क्या दूसरे शरीरमें उस ही आत्माको नहीं देखते। यदि अपने और मूर्खोंके अतिरिक्त समता निश्चय करते हो, तो मुझसे "तुम कौन और किसकी हो" इत्यादि प्रश्न किस लिये किया?

हे मिथिलानाथ! "यह हमारा और यह हमारा नहीं है" ऐसा पुरुष इन द्वन्द्वोंसे मुक्त है, ऐसे पुरुषको 'तुम कौन, किसकी हो' इत्यादि पूछनेका क्या प्रयोजन है? जो राजा शत्रु, मित्र मध्यस्थ, विजय और सन्धिविग्रहमें विहित कार्य्योंको किया करता है, उसमें मुक्त लक्षण कौनसा है। धर्म्म, काम तथा अर्थ, ये त्रिवर्ग असंकीर्ण भावसे तीन और धर्म्मार्थ धर्म्म, काम वा कामार्थ धर्म्म, काम संकीर्णभावसे दोनों परस्पर मिलित होके तीन धर्म्मार्थ काम ये तीनों परस्पर संकीर्णभावसे एक; इस ही भांति सब कर्म्मोंमें सात प्रकारसे व्यक्त त्रिवर्गको नहीं जानता और जो त्रिवर्गोंमें आसक्त हो रहा है, उसमें मुक्त लक्षण क्या है? प्रिय, अप्रिय, निर्ब्बल और बलवान पुरुषमें जिसको समदृष्टि नहीं है, उसमें कौनसा मुक्तलक्षण है? हे राजन्! अपथ्यसेवी रोगीके औषध सेवनकी भांति तुम योगयुक्त न होके भी जो मोक्ष विषयका अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रोंको उचित है कि उस अभिमानको छुड़ावें।

हे अरिन्दम! सङ्ग स्थान पत्नी आदिका विचार करके आप ही अपनेमें देखें, इससे भिन्न दूसरा मुक्तका लक्षण और क्या होसक्ता है; मोक्षकी अवलम्बन करके जो मनुष्य निवास करता है, उसके विषयमें ये सब तथा दूसरे जो सूक्ष्म सङ्ग स्थान हैं, तथा शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र, इन चारों अङ्गोंसे युक्त जो सब सङ्ग स्थान विद्यमान हैं, वह मुझसे सुनो। जो इस अखण्ड पृथ्वीमण्डलकी एक छत्र करके शासन करता है, वही एकमात्र राजा है और एकमात्र वही पुरके बीच वास किया करता है। उस नगर जिसमें कि वह निवास करता है, वैसा उसमें उसका एक गृह रहता है, रात्रिके समय राजा जिसमें शयन करता है, गृहमें वैसी एक शय्या रहती है। उस शय्याका आधा हिस्सा उसके पत्नीके अधिकारमें रहता है, इस ही प्रकार प्रसङ्गके कर्म्मसे राजा फलभागी होता है। ऐसे ही वह भोज्यविषयोंको भोजन आच्छादन परिमेय गुणों और निग्रह विषयोंमें सदा परतन्त्र है, इसे स्वल्पविषयमें भी पूर्ण रीतिसे आसक्त होना पड़ता है, सन्धिवि-

ग्रहके सम्बन्धमें राजाकी स्वतन्त्रता कहां है? स्त्रियोंके निकट क्रीडा और विहारकालमें राजाकी सदा ही अधीनता है, विचारकार्य्य और मन्त्रि समाजमें उसकी स्वतन्त्रता कहां है। जिस समय वह सबके ऊपर आज्ञा प्रचार करता है, तब उसकी स्वाधीनता होती है, परन्तु उस समयमें भी सब कोई उसे अवश कर देते हैं। राजाके शयन करनेकी इच्छा करने-पर कार्य्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते, सोनेमें अनुज्ञात अथवा सोते हुए भी कार्य्यवश उसे उठना पड़ता है, इसलिये वह उस विषयमें भी स्वाधीन नहीं है। स्नान करिये, लीजिये, पीजिये. खाइये, अग्निमें होम करिये, पूजा करिये, आज्ञा दीजिये, सुनिये, इत्यादि वचनसे दूसरे लोग राजाको विवश करते हैं। याचक मनुष्य सदा राजाके निकट जाके धन मांगते हैं, राजा वित्तरक्षक होके महाजनोंको दान कर-नेमें उत्साहवान नहीं होता, दान करनेसे उसका खजाना खाली होता है, न करनेसे लोग उसके शत्रु होजाते हैं। क्षण भरमें उसके निकट वैराग्यकारक दोष उपस्थित होते हैं, बुद्धिमान शूर और वित्तसम्पन्न लोगोंके एक स्थानमें रहनेसे राजा लोगोंकी शङ्का करता है। जो लोग सदा राजाकी उपासना किया करते हैं, उनसे भयकी सम्भावना न रहने पर भी राजाको भीत होना पड़ता है। हे राजन्! मैंने जिनका विषय कहा है, वे लोग राजाको दोष दिया करते हैं, इसलिये आश्रित लोगोंसे जैसा भय उपस्थित होता है, उसे देखो।

हे जनकराज! अपने अपने घरोंमें सभी राजा हैं, सभी अपने घरके मालिक हैं, सभी अपने घरोंमें निग्रहानिग्रह करतेहुए राजाओंके समान हुआ करते हैं। राजाको स्त्री, पुत्र, शरीर, खजाना, मित्र और धन सञ्चय, आदिमें दूसरोंको स्त्री पुत्र आदिमें जैसी ममता है, उसे भी उनके सम्बन्धमें वैसी ही प्रीतिहुआ करती है। देश नष्ट होने, नगरके जलने, प्रधान हाथियोंके मरने, इत्यादि लोकके साधारण विषयोंमें राजा मिथ्या ज्ञानसे तापित होता है। इच्छा, द्वेष और भयसे उत्पन्न हुए मानसिक दुःख तथा सिरके रोग आदि पीड़ाओंसे साधारण पुरु-षोंकी भांति राजा भी कदाचित मुक्त नहीं होता। सुख दुःख आदिसे उपहत और सब तरहसे शङ्कित होकर रात्रि बिताते हुए अनेक विघ्नोंसे युक्त राज्यभोग किया करता है, इस-लिये कौन पुरुष अल्प सुखकर अत्यन्त दुःख जनक, सारहीन, फूसकी अग्निकी ज्वालाके समान तथा फेनके बुदबुदेके तुल्य राज्य पाके शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! "यह मेरा नगर है, मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा खजाना है, और हमारा ही सब है" तुम ऐसा ही ज्ञान किया करते हो, परन्तु ये सब विषय किसीके भी नहीं हैं। मित्र, सेवक, पुर, राज्य, कोष, दण्ड और राजा यह सप्ताङ्गयुक्त राज्य मेरे हाथमें स्थित त्रिद-ण्डके समान है। अन्यान्य गुणोंसे युक्त पुरुषोंके बीच कौन किससे अधिक गुणवान हो सकता है। उसके उस समय उस ही उस अङ्गकी उत्कृष्ट होते देखा जाता है, जिसके सहारे जो कार्य्य सिद्ध होते हैं, उसहीमें उसकी प्रधानता हुआ करती है। हे नृपोत्तम। सप्ताङ्गयुक्त राज्य स्वतन्त्र है और वृद्धि-क्षय स्थानाख्य नीति शास्त्रोक्त तीनों उदय स्वतन्त्र हैं, ये दसवर्ग मिलके राजाकी भांति राज्य भोग करते हैं। जो राजा महाउत्साह युक्त है, और क्षात्रधर्म्ममें अनुरक्त रहता है, वह दशभाग लाभ होनेसे प्रसन्न होता है, दूसरे राजा दसवें भागके न्यूनतासे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। असाधारण राजा कोई भी नहीं है, और अराजक राज भी नहीं है, राज्य न रहनेसे धर्म्म नहीं होता और विना धर्म्मके मोक्षसुख नहीं मिलता, जो

यह पवित्र और परम धर्म है। वह राजा तथा राज्यका ही धर्म है, जो दक्षिणामें पृथ्वी दान करते हैं, वे राजा अश्वमेध यज्ञके फलभागी होते हैं।

हे मिथिलाराज! मैं राजाओंके इन सब दुःखकर कर्मोंको सौ-हजार बार कह सकती हूं। जबकि मेरी निज देहमें आसक्ति नहीं है, तब पराया परिग्रह किस प्रकारसे सम्भव होगा। जबकि मैं इस प्रकार योगिनी हुई हूं, तब मुझे तुम्हारे शरीर सङ्गके कारण ऐसा वचन कहना उचित नहीं हुआ है। हे राजन्! तुमने पञ्चशिखके मुखसे समस्त मोक्षधर्म सुना है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, यम, नियम और परब्रह्ममें एकाग्र भावको जाना है, इससे जब तुम काम क्रोध आदिको पराजय करके मुक्तसङ्ग होरहे हो, तब तुम्हें, छत्र चंवर आदि राजचिन्ह धारण करनेका क्या प्रयोजन है। मुझे बोध होता है, तुमने जो शास्त्र सुना है, उससे तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ अथवा दम्भवशसे शास्त्रज्ञान किया है, किम्वा शास्त्र सदृश शास्त्राभास सुना होगा। यदि तुम नाममात्र इस लौकिक सम्पत्ति लाभसे प्रतिष्ठित हुआ करते हो, तो प्राकृत पुरुषोंकी भांति तुम भी सर्वसह अवरोधके जरिये बद्ध हुए हो। मैंने जो बुद्धिबलके जरिये तुममें प्रवेश किया, यदि तुम सब भांतिसे मुक्त हुए हो, तो मैंने उस प्रकारसे प्रवेश करके तुम्हारी क्या बुराई की है। यतियोंको सूने स्थानमें ही निवास करनेका नियम है। इसलिये मैं तुम्हारे बोधशून्य बुद्धिमें प्रवेश करनेसे किसके समीप दोषी हुई हूं। हे पापरहित नरनाथ। मैंने तुम्हें दोनों हाथ, चरण, उरु अथवा दूसरे किसी अवयवके जरिये स्पर्श नहीं किया है। तुम महाकुलमें उत्पन्न हुए लज्जाशील और दीर्घदर्शी हो, इसलिये हम लोगोंने परस्पर जो कुछ वचन उच्चार किया है, उसे इस सभाके बीच तुम्हें कहना उचित नहीं है। ये सब ब्राह्मण लोग गुरु और माननीय हैं, तुम भी सबके माननीय हो, इसलिये परस्परके विषयमें परस्परका इस प्रकार गौरव है, इसलिये वक्तव्य वा अवक्तव्य विषयका विशेष रीतिसे विचार न करके स्त्रीपुरुषके सहवास विषयको सभामें प्रकाशित करना तुम्हें अनुचित है। हे मिथिलाराज! जैसे कमलके पत्रमें स्थित जल उसे स्पर्श नहीं करता, वैसे ही मैं भी तुम्हें स्पर्श न करके तुममें निवास करती हूं। मेरे स्पर्श न करनेपर भी यदि तुम स्पर्श ज्ञान किया करते हो, तो इन भिक्षुकोंके जरिये तुम्हारा बीजहीन ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ। तुम गार्हस्थ्य धर्मसे च्युत होके और दुर्ज्ञेय मोक्ष धर्मको न जानकर दोनोंके बीचमें पड़के वार्त्तामात्रके अभिज्ञ होरहे हो, वास्तवमें मुक्त नहीं हो। मुक्त पुरुषको मुक्तके सहित और चिदात्मा प्रकृतिके साथ संयोग होनेपर अर्थात् आत्मा और प्रकृतिके संयोगसे वर्णसङ्कर नहीं होता। वर्ण और आश्रमोंसे पृथक् रूपसे निर्द्दिष्ट होनेपर जो पुरुष उसको अपृथक् भावसे देखता है, उसके पक्षमें शरीर भिन्न है, और आत्मा पृथक् है, जब मैं इसे प्रत्यक्ष देखती हूं, तब मेरे बुद्धिसत्वके अन्यत्र वर्त्तमान रहनेकी क्या सम्भावना है। करतलके एक स्थलमें यदि कोई पात्र हो, उस पात्रमें दूध और दूधमें मक्खी रहे, तो आश्रित तथा आश्रयके संयोगके पृथकत्वके अनुसार सबमें आश्रित रहती है, परन्तु पात्रमें दुग्ध भाव नहीं रहता, दूध भी मक्खी नहीं है, इसलिये पराश्रय भाव स्वयं प्राप्त होते हैं, आश्रमोंकी विभिन्नता और वर्णोंकी स्वतन्त्रताके हेतु तथा परस्पर पृथक्त्वके सबबसे तुम्हारा कहा हुआ वर्णसङ्कर किस प्रकार होसकता। मैं जातिके अनुसार तुमसे उत्तम वर्णवाली नहीं हूं, और वैश्य अथवा शूद्रा भी नहीं हूं। हे राजन्! मैं

तुम्हारी सवर्णा हूं, शुद्ध योनिमें जन्म ग्रहण किया है, और अपने चरित्रको अपवित्र नहीं किया ; बोध होता है, प्रधान नामक राजर्षिका नाम तुमने सुना होगा मैं उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है, मेरे पूर्व्व पुरुषोंके यज्ञके समयमें द्रोण, शतशृङ्ग और चक्रद्वार नामक तीनों पर्व्वत देवराजके जरिये इष्टिके स्थानमें निवेशित हुए थे, मैंने वैसे महावंशमें जन्म लेकर अपने समान पति न पाया, तब मोक्ष धर्म्मकी शिक्षा लेके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती हुई सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन किया है। मैं कपट सन्न्यासिनी, परस्वहरनेवाली अथवा धर्म्मको सङ्कर करनेवाली नहीं हूं, केवल निज धर्म्ममें रहके व्रत धारण किया है। हे प्रजानाथ! मैं अपनी प्रतिज्ञा विषयमें अस्थिर नहीं हूं, बिना बिचारे कोई बात नहीं कहती और विवेचना करके भी तुम्हारे निकट नहीं आई। मैंने कुशलकी अभिलाषिणी होकर और यह सुनके कि मोक्ष धर्म्ममें तुम्हारी बुद्धि विनिविष्ट हुई है,—मोक्षधर्म्म जाननेके लिये इस स्थानमें आई हूं। मैं स्वपक्ष वा परपक्षके बीच निज पक्ष अवलम्बन करके यह वचन नहीं कहती हूं, वरन तुम्हारे ही हितके निमित्त कहती हूं। जो पुरुष मल्लकी भांति अपनी जयके लिये वादश्रम नहीं करता अथवा जो शान्तिस्वरूप परब्रह्ममें उपशान्त होता है, वही युक्त पुरुष है सन्न्यासी लोग जैसे नरसे सूने स्थानमें एक रात्रि निवास करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे इस शरीरमें एक रात्रि वास करूंगी, हे मिथिलाराज! तुमने मानदायक वचन और आतिथ्यके जरिये मेरी पूजा की है, इसलिये मैं स्वन्दर्शनमें शयन कर प्रसन्न होके कल्ह चली जाऊंगा।

भीष्म बोले, राजा जनक यह सब युक्तियुक्त और प्रयोजन सम्पन्न वचन सुनके उत्तर देनेमें असमर्थ हुए अर्थात् गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करनेकी युक्ति अत्यन्त दुर्ल्लभ होती है, सन्न्यास धर्म्म ही कल्याणकारी है, इसलिये सुलभाके मतको ही सिद्धान्त वाक्य जाना।

३२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुल-धुरन्धर पितामह! पहले समयमें वैयासिकी शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य लाभ किया था, इसे सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयको सुननेके लिये मुझे अत्यन्त ही कौतूहल होरहा है। कार्य्य और कारणमें अनारोपित स्वरूप ब्रह्मतत्त्व तथा जन्मरहित नारायणसे जिन सब कार्य्योंको आपने बुद्धिसे निश्चय किया है, उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता वेदव्यासने निजपुत्र शुकदेवको प्राकृत चरित्रसे निर्भयचित्त होकर विचरते हुए देखकर उसे समस्त स्वाध्याय अर्थात् पितृ पितामह परम्परासे परिगृहीत वेदमार्ग अध्ययन कराके उपदेश दिया था।

व्यासदेव मुनि बोले, हे पुत्र! तुम धर्म्मकी सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर प्रचण्ड सर्दी गर्म्मी, भूख-प्यास और वायुको सदा जय करो। सत्य, सरलता, क्रोधहीनता, अनसूया, दम तपस्या, अहिंसा और अनृशंसताको विधिपूर्व्वक परिपालन करो। अनार्ज्जव विषयोंके त्यागके सत्यधर्म्ममें रत रहो और देवताओं तथा अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नसे सदा जीवनयात्रा निबाहो, भोजनके समयमें स्वादिष्ट वा अस्वादु वस्तुकी विवेचना मत करो। हे तात! जब कि शरीर फेनके समान और जीवन पक्षीके समान निवास किया करता है, जब कि प्रिय सहवास अनित्य होते हैं, तब तुम पुरुषार्थकी साधनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते। काम आदि शत्रु, अप्रमत्त जाग्रत और नित्य उद्योगयुक्त होके छिद्र खोज रहे हैं, तुम बालक

हो, इसलिये उसे नहीं समझ सकते, सब दिन अपनी परमायु क्षीण और जीवनकालको बीतते देखकर तुम क्यों नहीं देवता और गुरुके शरणागत होते हो। अत्यन्त नास्तिक लोग इस लोकमें मांस और रुधिरकी वृद्धिकी कामना करते हैं, परन्तु वे पारलौकिक कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। जो सब मूढ़-बुद्धि मनुष्य धर्म्मकी असूया करते हैं, उन कुपथगामी लोगोंका जो लोग अनुसरण किया करते हैं, वे भी पीड़ित होते हैं और जिन सब महाभाग महाप्राण सदा सन्तुष्ट श्रुतिपरायण मनुष्योंने धर्म्मपथमें आरोहण किया है, उन्हींकी उपासना करो और उन्हींसे धर्म्म जिज्ञासा करो। उन धर्म्मदर्शी मनीषियोंके मतको निश्चय करके उत्पथगामी चित्तको परम बुद्धिके जरिये नियमित करो। चैतन्यता-रहित सर्व्व भक्षी लोग इस समय दूसरा दिन दूर है, ऐसा समझके निर्भय होकर कर्म्मभूमिका अवलोकन करते हैं। धर्म्मस्वरूप सोपान अवलम्बन करके धीरे धीरे उसपर आरूढ़ होते हैं, कोषकारकी भांति आत्माको बाधके कुछ भी नहीं जान सकते हैं। नदीके तटको तोड़नेवाले प्रवाहकी भांति मर्य्यादा तोड़नेवाले नास्तिकोंको दण्ड उद्यत करनेवाले पुरुषके समान विश्वासी होकर बाईं ओर बार रखो। धैर्य्यमयी नौकाको अवलम्बन करके काम, क्रोध, मृत्यु और पञ्च इन्द्रिय जलसे युक्त नदीरूपी जन्म दुर्गको तरो। जब कि लोग जराके द्वारा आहत और मृत्युसे परिपीड़ित हो रहे हैं और परमायुका हरता हुई रात्रि सफल [illegible] दिया जाती है, तब धर्म्मस्वरूप स्रोतको अवलम्बन करके संसारसे तरो। जब मृत्यु [illegible] हुए मनुष्यको खोज रही है, तब [illegible] होकर मनुष्य किस प्रकार [illegible] लाभ कर सकता है। मनुष्यको पर्य्य-[illegible] करके काम भागसे परितृप्त न होते होते, मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है, जैसे बाघिन भेड़को ग्रहण करके चल देती है। अन्धकारमें प्रवेश करना होगा, इसलिये धर्म्मबुद्धिमय महान् दीपशिखाको क्रमसे उज्ज्वल करके यत्न-पूर्व्वक उसे धारण करो। हे पुत्र! अनेक शरीर धारण करके तब इस मनुष्य शरीरमें जीव कदाचित ब्राह्मणत्व लाभका तन पाता है; तुमने वह ब्राह्मणत्व लाभ किया है, इसलिये उसे परिपालन करो, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान ब्राह्मण शरीर काम भोगके निमित्त नहीं उत्पन्न होता, यह इस लोकमें तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और परलोकमें परम श्रेष्ठ सुख-सम्भोग करनेके निमित्त उत्पन्न होता है। बहुत तपस्यासे ब्राह्मणजन्म मिलता है, इस-लिये उसे पाकर रति-परायण होके अवहेला करना उचित नहीं है। पितर पितामह पर-म्परासे प्रचलित वेदपाठ, तपस्या और सदा इन्द्रियनिग्रहमें नियुक्त रहके मोक्षार्थी और कुशलपरायण होके उक्त विषयोंमें सर्व्वदा यत्न-वान होना चाहिये। मनुष्योंके यह अवस्था-रूपी घोड़े, अव्यक्त प्रकृति, पूर्व्वोक्त कला समूह रूप शरीर युक्त स्वभावसम्पन्न क्षणत्रुटि और निमिषरूपी रोयम छेदनयोग्य कृष्ण तथा शुक्ल पक्षरूपी दो नेत्र संयुक्त और मासरूपी अङ्ग-विशिष्ट होकर निरन्तर दौड़ रहे हैं। इन अवस्थारूपी घोड़ोंको सदा प्रचण्ड वेगसे अदृश्यभा-वसे दौड़ते हुए देखकर यदि तुम्हारे नेत्र अन्धेके समान न हों तो परलोकके विषयको सुनके तुम्हारा मन धर्म्मविषयमें रत होवे।

इस लोकमें जो लोग प्रचलित धर्म्मके विप-यमें स्वेच्छाचार करते हैं और सदा द्वेष प्रकाश करते हुए अनिष्ट-प्रयोग किया करते हैं, वे लोग यमलोकमें यातना शरीर धारण करके बहुतसी अधर्म्मक्रियाके जरिये क्लेश भोग करते हैं। राजा सदा धर्म्मपरायण और उत्तम अधम वर्णोंका पालक होके दुष्कृति लोगोंके

पाने योग्य लोकोंको पाता है, वह अनेक प्रकारके शुभ कर्म्म करके अनेक योनियोंमें अनुगत निरवेद्य मोक्षसुख लाभ किया करता है। जो पुरुष इस लोकमें माता पिता और गुरुजनोंके वचनको टालता है, उसका शरीर छूटनेपर नरकमें भयङ्कर शरीरवाले कुत्ते मुख बाये हुए कौवे महाबली गिद्ध तथा दूसरे बहुतेरे पक्षी और कदर्थ्य कीटसमूह उसे भक्षण करते हैं। स्वयम्भूके जरिये शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रताचरण और अपरिग्रह, यह दस प्रकारकी मर्य्यादा निर्द्दिष्ट हुई है, जो पापात्मा पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक उस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वे यम भवनरूपी वनमें अवगाहन करते हुए अत्यन्त दुःखसे निवास किया करते हैं। जो मनुष्य लोभसे लोकाप्रिय मिथ्या वचन कहता है, और छलसे ठगहारी चोरी आदि नीच कार्य्योंमें रत होता है, वह नीच कर्म्म करनेवाला पापात्मा परम नरकमें गमन करके बहुत दुःख अनुभव करता है, वह दुष्टात्मा गर्म्मजलवाली वैतरनी नामी महानदीमें स्नान करते हुए तलवारके पत्तोंसे युक्त वनमें बिदीर्ण शरीर होकर परशु वनमें सुलाया जाता है, फिर अत्यन्त आर्त्त होकर महा नरकमें पड़के उसमें वास करता है। "तुम ब्रह्मा आदिके स्थानोंको देखकर मैं धन्य हुआ" इत्यादि बड़ाई किया करते हो, परन्तु परम पदको नहीं देखते; शीघ्र ही जरा आवेगी, उसे नहीं समझ सकते हो, इसलिये निश्चिन्त चित्तसे क्यों बैठे हो? मोक्षमार्गमें प्रस्थान करो, सुखको दूर करनेवाला अत्यन्त दारुण महत् भय उत्पन्न होता है, इसलिये मोक्षसाधन विषयमें यत्न करो। मरने पर यमराजके शासन बशसे उनके समीप उपस्थित होगे; इससे अगाड़ीके दुःखके लिये दारुण कृच्छ्र ब्रतके जरिये सरलता साधनमें प्रयत्न करो। दुःखोंके जाननेवाले निग्रहनिग्रहमें समर्थ यमराज मूल बान्धवोंके सहित तुम्हारा जीवन हरेगा; कोई उसे निवारण करनेमें समर्थ न होगा। यमके अगाड़ी वायु प्रबल वेगसे बहेगा और वह वायु अकेले ही तुम्हें उसके निकट पहुंचावेगा, इसलिये जिससे पारलौकिक हित हो, उसहीका अनुष्ठान करो तुम्हारे प्राणको नष्ट करनेवाली वायु जो बहेगी इस समय वह कहां है। और तुम्हें महाभय उपस्थित होनेपर जो सब दिशा बिभ्रान्त होंगी वे भी इस समय कहां हैं?

हे पुत्र! जब तुम समाकुल होके गमन करोगे, उस समय तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय निरुद्ध होगी, इसलिये तुम परम उत्कृष्ट समाधि अवलम्बन करो। प्रमाद कर्म्मोंसे लिप्त पहलेके किये हुए शुभाशुभोंको स्मरण करके तुम दुःखित न होगे, केवल आश्रयणीय समाधि अवलम्बन करो। रोगोंकी सहाय कहके मृत्यु बलपूर्व्वक जीवन क्षय होनेके समय तुम्हारे शरीरको भेद करेगी, इसलिये महत् तपस्याका अनुष्ठान करो। मनुष्य देह-गोचर भयङ्कर कामादिरूपी भेड़िये सब भांतिसे दौड़ेंगे, इसलिये पुण्यशीलताके लिये यत्न करो। अकेले अन्धकार अवलोकन करोगे और पहाड़की शिखरपर मरन-चिन्ह स्वरूप हिरण्मय वृक्षोंको देखोगे, इसलिये पुण्य करनेमें शीघ्रता करो। हे पुत्र। कुसङ्ग तथा सुहृत् समान मालूम होनेवाले शत्रुओंके देखनेसे तुम्हारी बुद्धि बिचलित न हो, इसलिये जो परम वस्तु है उसहीकी खोजमें नियुक्त रहो। जिस धनकी रक्षा करनेमें राजभय नहीं है और चोरोंसे जिसमें भय उपस्थित नहीं होता जो धन मरे हुए मनुष्योंको भी परित्याग नहीं करता, उस ही धनको उपार्ज्जन करो। निज कर्म्मके जरिये प्राप्त हुआ जो धन परलोकमें परस्परके निकट बिभक्त नहीं होता, जिसका जो यौतुक धन है, परलोकमें उसेही वह भोग करता है। हे पुत्र!

परलोकमें जो धन उपजीव्य होता है, वही धन दान करो। जिस धनका नाश नहीं है, और जो सदा रहता है, तुम स्वयं उस ही धनका उपार्जन करो। महाजनभुक्त यव पिष्ट विकार जबतक परिपाक नहीं होता उतनेही समयके बीच तुम शीघ्र ही लयको प्राप्त होगे अर्थात् भोग विषयोंको भोग करके मोक्ष विषयमें यत्न करोगे, इस प्रकार मनन करना उचित नहीं है भोग्य विषय भोग न होतेही मृत्युभय आके उपस्थित होता है।

जब मनुष्य सङ्कटमें पड़के अकेले ही परलोकमें जाता है, उस समय माता, पुत्र, बान्धव और परिचित प्रिय लोग कोई भी उसका अनुगमन नहीं करते। हे पुत्र! जो कुछ पहलेका शुभाशुभ कर्म्म रहता है, परलोकमें जानेवाले मनुष्यके साथ केवल वही गमन करता है। शुभाशुभ कर्मोंके जरिये मनुष्योंके जो कुछ अर्जित सुवर्ण और रत्न हैं, देह नष्ट होनेके समय वे किसी कार्य्यके साधक नहीं होते। मनुष्योंके परलोक गमन करनेके समय कृत अकृत कर्म्मके साक्षी आत्माके समान और कोई भी नहीं है साक्षी चैतन्यके परलोकमें जानेपर मनुष्य देहशून्य होता है, ज्ञाननेत्रसे हृदयाकाशमें प्रवेश कर देखनेसे ही समस्त स्पष्टरूपसे दीख पड़ता है, अग्नि, सूर्य्य और वायु इस लोकमें इस शरीरको अवलम्बन किये हुए हैं, परलोकमें येही धर्मदर्शी साक्षी होते हैं। काम, क्रोध आदि दस्यु प्रकाश्य और गूढ़भावसे जब रातदिन स्पर्श कर रहे हैं, तब तुम केवल स्वधर्म्म पालन करो, परलोकके पथमें बहुतेरे परिपन्थी अर्थात् [illegible] तथा मेड़िये आदि विपक्षमें विद्यमान हैं और [illegible] वा भयङ्कर दंशमक्षियोंसे [illegible] हैं, इसलिये निज कर्म्मको [illegible] करो; स्वकृत कर्म्म परलोकमें गमन [illegible] करना है वह वहांपर विभक्त नहीं [illegible] जो सब कर्म्म किये जाते हैं;

परलोकमें वेही कर्म्मजनित फल भोग हुआ करते हैं। अप्सराहन्द और महर्षि लोग जो सुख भोग करते हैं, वैसे ही सुकृतशाली मनुष्य कामगामी होकर स्वकर्म्मजनित फल भोग किया करते है पापरहित कृतबुद्धि और शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इस लोकमें जिन शुभकार्य्योंको करते हैं, परलोकमें उसहीका फल प्राप्त होता है। उनमेंसे गृहस्थ धर्म्म-सेतुके जरिये कोई कोई ब्रह्मलोक कोई बृहस्पति लोक और कोई इन्द्रलोकमें गमन करके परम गति पाते हैं। मैं तुम्हें इसी भांति सहस्रसे भी अधिक उपदेश प्रदान कर सकता हूं, किन्तु निग्रहानुग्रहमें समर्थ धर्म्म मनुष्योंको मोहित कर रखता है, तुम्हारी चौबीस वर्ष अवस्था बीती है, अब पचीसवां वर्ष प्रवृत्त हुआ है; अवस्था बीती जारही है, इसलिये धर्म्म सञ्चय करो? प्रमाद गृहवासी अन्तक जब तक इन्द्रिय सेनाको अस्थल आदि दोष निबन्धन स्व-स्वविषयमें भोग हीन नहीं करता है, उतने ही समयके भीतर देह मात्रके जरिये उद्योगी होकर धर्म्मपालनमें शीघ्रता करो। तुम ही पश्चात् गमन करोगे, तुम्हीं आगे जाओगे, जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे, तब तुम्हें शरीरसे क्या प्रयोजन है और एत्रादिको ही क्या आवश्यकता है। जब कि भय उपस्थित होनेसे अकेलेही परलोकमें जाना होता है, तब परलोकके हितकर केवल धर्म्म ज्ञानको ही निधिकी भांति गोपन करके अवलम्बन करो। जब कि वह असङ्गवान मृत्यु, बालक, युवा और वृद्धोंके सहित मनुष्योंको अवश्य ही हरण करती है, तब धर्म्मका सहारा अवलम्बन करो।

हे पुत्र! मैंने निज दर्शन और अनुमानके अनुसार तुम्हारे योग्य यह निदर्शन कहा है, इसलिये मैंने जो कुछ वर्णन किया, तुम वैसाही आचरण करो। जो लोग निज कर्म्मके जरिये देहकी पुष्टि साधन करते हैं [illegible]

फलकी इच्छासे दान किया करते हैं, वेही एक-मात्र अज्ञान और बिपरीत ज्ञान मोहादि जनित दुःख प्रभृतिके सहित संयुक्त हुआ करते हैं। जो लोग शुभ कार्य्योंको सिद्ध करते हैं, उनका तत्त्वमसि वाक्य जनित ज्ञान अखण्ड ब्रह्माण्ड-मय व्याप्त होता है, अर्थात् वे सर्व्वज्ञ होते हैं, सर्व्वज्ञता ही मोक्षके निमित्त परम पुरुषार्थ प्रदर्शित करती है, इसलिये कृतघ्न पुरुषको जो उपदेश किया जाता है, वही सार्थक होता है, कृतघ्न मनुष्यको यह सब उपदेश प्रदान करनेसे बिफल होता है। ग्रामके बीच स्त्री पुत्र आदि परिवारसे घिरकर निवास करनेकी जो अभि-लाषा है, वही बन्धनरूपी रस्सी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रज्जुको काटके गमन करते हैं और पापकर्म्म करनेवाले मनुष्य उसे काटनेमें समर्थ नहीं होते।

हे पुत्र! जब तुम परलोकमें गमन करोगे, तब धन, सम्पत्ति, बन्धु-बान्धव और पुत्र-पौत्रा-दिसे क्या प्रयोजन है? हृदयाकाशके बीच आत्माको अन्वेषण करो, तुम्हारे पितामह प्रपितामह कहां गये हैं। जो कल्ह करना होगा, उसे आज पूरा करो और अपरान्हमें जो करना हो, उसे पूर्व्वान्हमें सिद्ध करो, मनुष्यके कर्त्तव्य कार्य्य सिद्ध हों, वा न हों मृत्यु इसके लिये प्रतीक्षा नहीं करती। मनुष्य शरीर नष्ट होनेपर स्वजन सुहृत् और बान्धव लोग उस मृत शरीरका अनुगमन करके उसे अग्निमें डाल-कर निवृत्त होते हैं, इसलिये तुम आलसहीन और विश्वस्त रूपसे परमपद पानेके अभिलाषी होकर पापबुद्धि निर्द्दयी नास्तिकोंका पीछे करो, जब कि लोग कालके जरिये इस प्रकारसे पीड़ित और सब भांतिसे नष्ट हो रहे हैं, तब तुम महत् धैर्य्य अवलम्बन करके सब प्रयत्नसे धर्म्माचरण करो। जो मनुष्य इस ही भांति मोक्षपथ देखनेके उपायको पूर्णरीतिसे जानता है, वह इस लोकमें सब भांतिसे स्वधर्म्माचरण करके परलोकमें सुखभोग करता है। देह नाश होनेसे मरण नहीं होता, इसे जानके जो लोग शिष्टजनोंके समादृत पथमें वर्त्तमान रहते हैं, उनका बिनाश नहीं है। जो धर्म्मकी वृद्धि करते हैं, वेही पण्डित हैं और जो पुरुष धर्म्मसे च्युत होता है वह मोहग्रस्त हुआ करता है। प्रयोक्ता जैसा कर्म्म करता है, कर्म्मपथमें प्रयुक्त निज शुभाशुभ कर्म्मोंका फल उस ही भांतिसे पाता है। हीनकर्म्म करनेवाला मनुष्य निरय-गामी होता है और धर्म्म करनेवाले मनुष्य सुरपुरमें जाते हैं। और स्वर्गके सोपान स्वरूप दुर्लभ मनुष्य जन्म पाके आत्माको उस ही भांतिसे समाहित करे; जिससे कि फिर भ्रष्ट होना न पड़े। जिसकी बुद्धि स्वर्गमार्गकी अनु-सारिणी होकर धर्म्मकी अतिक्रम नहीं करती, उस पुत्र-पौत्र प्रभृतिके अशोचनीय मनुष्यको लोग पुण्यकर्म्मा कहा करते हैं। जिसकी बुद्धि अबाधित होकर निश्चय अवलम्बन करती है, स्वर्गमें उसे स्थानाभाव नहीं होता और उसे महत् भय भी नहीं होता। जिसने तपोवनमें जन्म लेकर उसही स्थानमें प्राणत्याग किया है, उन काम भोगसे अनभिज्ञ तपस्वियोंके धर्म्म अत्यन्त अल्प हैं और जो लोग भोग विषयोंका त्यागके शारीरिक क्लेश आदिके जरिये तपस्या-चरण करते हैं, उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, वही फल मुझे सम्मत है।

सहस्रों माता, पिता, सैकड़ों स्त्री-पुत्र, अनागत और अतीत होते हैं, वे किसके हैं, और हम लोग ही किसके हैं। मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं भी दूसरे किसीका नहीं हूं, मैं जिसका हूं, ऐसा किसीको भी नहीं देखता और जो मेरा है, उसे भी नहीं देखता। तुम्हारे जरिये उनका कोई कार्य्य नहीं है और न उनके जरिये तुम्हारा ही कुछ कार्य्य है; उन्होंने अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये जन्म ग्रहण किया है, तुम भी निज कर्म्मोंके सहारे

गमन करोगे। इस लोकमें धनवान पुरुषोंके स्वजनसमूह स्वजनोंकी भांति व्यवहार करते हैं और दरिद्रोंके जीवित रहते ही उनके सब स्वजन विनष्ट होते हैं। मनुष्य पराये स्त्रीके अनुरोधसे अशुभ कर्म्म सञ्चय करता है, उसहीसे इस लोक और परलोकमें क्लेश मिलता है। हे पुत्र! जब जीवोंको अपने कर्म्मोंके जरिये विच्छिन्न देखते हो, तब मैंने जो सब कथा कही है, तुम उसहीके अनुसार आचरण करो। यह सब आलोचना करके जो लोग कर्म्मभूमिको अवलोकन करते हैं और जिन्हें परलोकमें गति मिलनेकी बहुत अभिलाषा रहती है, उन्हें शुभ आचरण करना चाहिये। मास और ऋतुओंकी संज्ञा परिवर्त्तन करनेवाला सब कर्म्म निष्पत्ति फलके साची सूर्य्यस्वरूप अग्नि और दिनरातरूपी काठके जरिये काल सब भूतोंको बलपूर्व्वक पका रहा है। जो धन किसीको दान नहीं किया जाता और न भोग ही किया जाता है, उस धनसे क्या प्रयोजन है? जिसके जरिये शत्रुओंको बाधित नहीं किया जाता, वैसे शास्त्रज्ञानका क्या प्रयोजन है; और जिसके जरिये जितेन्द्रिय और वशीभूत न होसके, वैसी आत्मासे ही क्या आवश्यक है?

भीष्म बोले, द्वैपायनके कहे हुए ऐसे हित-वाक्यको सुनके शुकदेव पिताको परित्याग कर मोक्षोपदेशकके निकट गये।

२२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या और गुरुसेवाके विषय यदि आपको मालूम हो, तो उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, मन अनर्थयुक्त बुद्धिके जरिये [illegible] होता है, अन्तमें निज कर्म्मोंको [illegible] करके महाक्लेशमें पतित हुआ करता है। [illegible] दरिद्र लोग एक दुर्भिक्ष निवा-रित न होते ही दूसरे दुर्भिक्षसे, एक क्लेशसे, न छूटते ही दूसरे क्लेशसे, एक भयके शान्त न होते ही दूसरे भयसे आविष्ट होते हैं, वे लोग मृतकसे भी अधिक अपदार्थ हैं। और श्रद्धा-शील, दान्त, शुभ कर्म्म करनेवाले धनवान लोग एक उत्सवसे दूसरे उत्सवमें स्वर्गसे स्वर्गान्तरमें और सुखसे सुखान्तरमें गमन करते हैं।

जो स्थान हिंसक जन्तु तथा हाथी आदिके जरिये दुर्गम है और जिस स्थलमें सांप वा चोर आदिका भय विद्यमान है, वहांपर दूसरेकी बात तो दूर रहे, नास्तिक लोग भी हस्तप्राप्य प्रदेशमें अग्रसर नहीं होते, जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंको प्रिय समझते हैं और वदान्य होकर दक्षिणा दान करते हैं, वेही बुद्धिमान मनुष्योंके मङ्गलास्पद पथमें निवास किया करते हैं। धान्यके बीच पुलाक अर्थात् तुच्छ धान्य और पक्षियोंमें जैसे पूत्यण्ड अर्थात् अत्यन्त क्षुद्र पतङ्ग विशेष गणनीय नहीं हैं, वैसे ही जिनकी धर्म्मविषयमें श्रद्धा नहीं है, वे मनुष्योंके बीच नहीं गिने जाते, जो पुरुष जैसा कर्म्म करता है, उसके अत्यन्त दौड़नेपर भी वह कर्म्म उसके साथ दौड़ता है और कृतकर्म्मा मनुष्यके सोते रहनेपर भी कर्म्म उसके साथ शयन करता है, स्थित रहनेपर भी पाप उसके निकट निवास करता है, दौड़नेपर भी उसके सङ्ग दौड़ता है। जो पुरुष कर्म्म करता है, उस कृतकर्म्मा पुरुषको छायाकी भांति पाप उसका सङ्ग नहीं छोड़ता। जिसके जरिये जिस भांतिसे जो जो कर्म्म पहले किये जाते हैं, उत्तरकालमें जीव अपने किये हुए उन्हीं कर्म्मोंको भोग किया करता है। समान कर्म्म विक्षेप विधान और परिरक्षायुक्त, इन सबको काल सब प्रका-रसे आकर्षण करता है, जैसे फूल फल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। मान, अपमान, लाभ, हानि, क्षय, अक्षय, ये सब प्रवृत्त और

निवृत्त होते हैं, सब ही पद पदमें नष्ट हुआ करते हैं।

जीव गर्भशय्या ग्रहण करते ही पूर्व्वदेह सम्बन्धीय अपने किये हुए सुख दुःखको भोग करता है। बालक, युवा अथवा वृद्ध होकर जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन पुण्य-पापोंको भोग किया करता है। सहस्र गऊके बीच जैसे बछड़ा अपनी माताका अनुसरण करता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे मैले वस्त्र जलसे साफ होते हैं, वैसे ही जो लोग उपवासके जरिये शरीरको सन्तप्त करते हैं उन्हें बहुत समयके लिये अनन्त सुख प्राप्त होता है। हे महाबुद्धिमान्! जिसके पाप धर्म्माचरणसे धोये गये हैं, उनके बहुत समय-तक सेवित तपस्याके जरिये सब मनोरथ पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके पद नहीं दीखते, पुण्य करनेवाले लोगोंकी गति भी वैसी ही है। दूसरी कथा कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बहुत वाक्य व्यय करनेसे व्यतिक्रम होजाता है, सार बचन यही है, कि अपने अनुरूप मनोहर हितका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।

३२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महातपस्वी शुकदेव किस प्रकार वेदव्याससे उत्पन्न हुए थे और किस प्रकार परम सिद्धि लाभ की थी; आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये। तपस्वी वेदव्यासने कौनसी स्त्रीके जरिये शुकदेवको उत्पन्न किया था, शुकदेवकी माता कौन है और किस प्रकार उस महात्माका उत्तम जन्म हुआ था, मैं उसे नहीं जानता। और बालक होनेपर भी इस लोकमें जो अन्य किसी दूसरे पुरुषसे सम्भव नहीं होता, वैसे सूक्ष्म ज्ञानमें किस प्रकार उनकी बुद्धि तत्पर हुई थी। हे महाबुद्धिमान्! इसे मैं विस्तारपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं, इस अत्यन्त उत्तम अमृत समान विषयको सुनके मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। हे पितामह! इसलिये महानुभाव शुकदेवका माहात्म्य आत्मयोग और विज्ञानके विषयको आप मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे पाण्डु-नन्दन! ऋषि लोग अवस्थासूचक वर्ष, जरा आदिके क्लेश कदम्बकी परिपक्कता वित्त अथवा बन्धुजनोंके सहारे धर्म्मोपार्ज्जन नहीं करते। उनके बीच जिन लोगोंने गुरुमुखसे छहों अङ्गके सहित समस्त वेद अध्ययन किये हैं, हमारे मतमें वेही महान् हैं, तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, उन सबकाही मूल तपस्या है, इन्द्रियोंको संयम करनेसे ही वह तपस्या होती है, अन्यथा किसी प्रकारसे भी उसकी सम्भावना नहीं होती। मनुष्य इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे दोषभागी होता है, और उन इन्द्रियोंको सयम कर सकनेसे ही सिद्धि लाभ किया करता है। हे तात! सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों बाजपेय यज्ञके फल इन्द्रिय-संयम स्वरूप योगके एक अंशके समान भी नहीं हैं। अब मैं अकृतात्मा पुरुषोंसे दुर्ज्ञेय शुकदेवके जन्म योग फल और श्रेष्ठगतिके विषय तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो। पहले समयमें कर्णिकाके बनसे परिपूरित सुमेरु पर्व्वतकी शिखरपर भगवान् भूतनाथ महादेव भयङ्कर भूतोंसे घिर कर विहार करते थे, शैलराज-पुत्री भवानी भी वहां पर निवास करती थीं। उस समय कृष्णद्वैपायनने वहा पर दिव्य तपस्या की थी। हे कुरुसत्तम! योग धर्म्म परायण व्यासने योगबलसे आत्मामें आविष्ट करके पुत्रके ही निमित्त वह तपस्या की थी। हे राजन्! अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके समान

मेरा पुत्र धैर्य्यशाली हो, उनका ऐसाही अभिप्राय था। उन्होंने अत्यन्त वृहत् तपस्या अवलम्बन करके इस ही भांति सङ्कल्प और योगके जरिये अकृतात्म-मनुष्योंसे दुष्प्राप्य देवेश्वरके निकट वर मांगाथा। वह अनेक रूपसे युक्त उमापति महादेवकी आराधना करते हुए एक सौ वर्ष तक वायु पीके रहे थे। उस स्थानमें समस्त ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोकपाल, साध्य, वसु, आदित्य, रुद्रगण, सूर्य्य, चन्द्रमा, इन्द्र तथा वायुगण, समुद्र और समस्त नदियें, दोनों अश्विनीकुमार सब देवता, गन्धर्व्व, नारद और पर्व्वत मुनि, गन्धर्व्वराज विश्वावसु, सिद्ध और अप्सरावृन्द उस महादेवकी उपासना करती थीं। जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके जरिये शोभायमान होता है, उस स्थानमें रुद्रदेव कर्णिकाकी कुसुममयी मनोहारिणी माला पहरके उस ही भांति शोभायुक्त हुए थे।

परमधर्म्मा महर्षि कृष्ण द्वैपायनने उस देव और देवर्षियोंसे परिपूरित दिव्य रमणीय वनमें पुत्रके निमित्त परम योग अवलम्बन किया था। उस समय उनकी प्राणवायु निर्व्वल न हुई और किसी प्रकारकी ग्लानि भी उत्पन्न नहीं हुई। उनका वैसा भाव स्वर्ग, मर्त्त्य पाताल, इन तीनों लोकोंमें अत्यन्त अद्भुत मालूम हुआ था। उस योगयुक्त अत्यन्त तेजस्वी द्वैपायनका तेजसे अग्निशिखा सदृश जटामण्डल प्रज्वलित होके दीख पड़ा था। भगवान मार्कण्डेयने इस विषयको मेरे समीप कहा था। वह सदा मेरे समीप देवताओंके सब चरित्र कहते थे। हे महाराज! इसमें भी महात्मा कृष्णद्वैपायनको तेजसे जरिये प्रदीप्त जटा अग्निवर्ण रूपसे दीख रही है। हे भारत! उनकी ऐसी भक्ति और तपस्यासे महेश्वर प्रसन्न होके प्रकट हुए। भगवान त्रिलोचन उस समय हंसके बोले, हे द्वैपायन! तुम जैसे पुत्रकी कामना करते हो, तुम्हारा वैसा ही पुत्र होगा। जैसे अग्नि, वायु और आकाश स्वतः शुद्ध हैं, तुम्हारा सुन्दर महान् पुत्र भी उस ही प्रकार शुद्ध होगा। तुम्हारा पुत्र तद्भावभावी अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसे ही आशय विशिष्ट होगा और केवल ब्रह्म भावनामात्र ही न करके तद्बुद्धि अर्थात् परब्रह्ममें ही निश्चय बुद्धि निवेश करेगा, तदात्मा अर्थात उसहीमें चित्त समर्पण करेगा, तदपाश्रय अर्थात् उसहीमें स्थिर रहेगा तथा निज तेजके सहारे तीनों लोकोंको परिपूरित करके यश लाभ करेगा।

३२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, सत्यवती पुत्र महादेवसे वह उत्तम वर पाके अग्नि उत्पन्न करनेकी अभिलाषासे दो अरणी ग्रहण करके मथने लगे। हे राजन्! अनन्तर भगवान ऋषि निज तेजप्रभावसे परम रूपवती घृताची नाम अप्सराको देखा। हे युधिष्ठिर! उस वनके बीच भगवान् व्यासदेव अप्सराको देखके सहसा कामसे मोहित हुए। हे महाराज! वह घृताची भी उस समय व्यासदेवको कामाकुलचित्त देखकर शुकी होके उनके निकट उपस्थित हुई। वह उस अप्सराको रूपान्तरके जरिये छिपी हुई देखके सर्व्वावयवव्यापी शरीरज कामके अनुगत हुए। महामुनि वेदव्यास महत् यत्नके जरिये हृदयस्थित कामवेगको निग्रह करनेके लिये यत्न करके विकृत मनको नियमित करनेमें समर्थ न हुए। उनके अन्तःकरणमें कामभावका उद्रेक होने पर घृताचीकी सुन्दरताईने उसे हरण किया था; अग्नि उत्पन्न करनेमें मन लगाके अत्यन्त प्रयत्नसे कामवेग शान्त करनेमें उद्यत हुए, तौभी सहसा अरणीके बीच उनका वीर्य्य स्खलित हुआ। हे नरनाथ! इसके अनन्तर वेदव्यास अविशङ्कित चित्तसे पहलेकी भांति अरणी मथने लगे। हे महाराज! उस अरणीके बीच

शुकदेवने जन्म लिया, इस ही निमित्त वह महायोगी परमर्षि अरणी गर्भसे उत्पन्न होने पर शुक्रके रकारको परित्याग कर शुक नामसे विख्यात हुए। जैसे अध्वरमें समिद्ध अग्नि हव्य ढोती हुई सुशोभित होती है, वैसे ही शुकदेव अपने तेजसे प्रज्वलित होके उत्पन्न हुए। हे कुरुकुल-धुरन्धर! वह पिताके परम उत्कृष्ट रूप और वर्ण धारण करके उस समय धूमरहित अग्निकी भांति प्रकाशित हुए।

हे जननाथ! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाने मूर्त्तिमती होकर सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आगमन कर निज जलसे उन्हें स्नान कराया। हे राजेन्द्र! महानुभव शुकके निमित्त आकाशसे पृथ्वीपर दण्ड और कृष्ण मृगचर्म्म गिरा गन्धर्व्व लोग बार बार गाने और अप्सरा नाचनेमें प्रवृत्त हुईं तथा महाशब्दसे युक्त देवताओंके नगाड़े बजने लगे। गन्धर्व्वराज विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद और हाहा हूहू नाम दोनों गन्धर्व्व उस शुकदेवकी स्तुति करने लगे। इन्द्र आदि सब लोकपाल, देवता, वृन्द, देवर्षि और महर्षि लोग वहां उपस्थित हुए वायु स्वर्गीय फलोंकी वर्षा करने लगे। स्थावर जङ्गम समस्त जगत् आनन्दित हुआ। महानुभाव महातेजस्वी महादेवने देवीके सहित स्वयं प्रीतिपूर्व्वक विधिके अनुसार उत्पन्न होते ही मुनिपुत्रका उपनयन संस्कार करके उसे अपना शिष्य किया। हे राजन्! देवराज इन्द्रने प्रीतिपूर्व्वक उन्हें दिव्य और अद्भुत दर्शन कमण्डलु तथा देवासन आदि प्रदान किये। हे भरतकुल तिलक! हंस शतपत्र अर्थात् दार्व्वाघाट नाम पक्षी विशेष, सारस, शुक और स्वर्णचातक आदि सहस्रों पक्षी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। अनन्तर महातेजस्वी अरणीसे उत्पन्न हुए मेधावी शुकदेव दिव्य जन्म पाके उस ही स्थानमें व्रतचारी और सावधान होकर निवास करने लगे। हे महाराज! रहस्य और संग्रहके सहित जैसे समस्त वेद उनके पिताके निकट प्रकाशित हुआ था, वैसे ही उत्पन्न होते ही सब वेद उनके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने धर्म्मकी चिन्ता कर वेद और वेदाङ्गोंके भाष्यको जाननेकी इच्छा करके वृहस्पतिको उपाध्याय रूपसे वरण किया। शुकदेवने निखिल रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद सारे इतिहास और राज शास्त्रोंको पढके गुरुदक्षिणा दान कर समावृत्त अर्थात् गुरुकुलसे प्रतिनिवृत्त हुए। उस महामुनिने ब्रह्मचारी और समाहित होकर उग्र तपस्या आरम्भ की। महा तपस्वी शुकदेव बालक अवस्थामें ही ज्ञान और तपस्याके कारण देवता तथा ऋषियोंके मन्त्रणीय वा माननीय हुए। हे नरनाथ! मोक्ष धर्म्मदर्शी उस शुकदेवकी बुद्धि किसी प्रकारसे भी गार्हस्थ मूलक तीनों आश्रमोंमें अनुरक्त नहीं हुई।

३२४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेव मोक्ष धर्म्मको उपादेयता जानके पिताके निकट गये, उस कल्याणकी इच्छा करनेवाले मुनिने विस्मययुक्त हो पिताको प्रणाम करके कहा, हे भगवन्! आप मोक्ष-धर्म्म वर्णन करनेमें अत्यन्त विज्ञ हैं। हे प्रभु! इसलिये जिस प्रकार मेरे मनमें शान्तिका सम्बन्ध हो, आप उसका उपाय वर्णन करिये। महर्षि वेदव्यास पुत्रका वचन सुनके उससे बोले, हे पुत्र! तुम मेरे समीप मोक्षशास्त्र और विविध धर्म्मशास्त्र अध्ययन करो।

हे भारत! धार्म्मिकप्रवर शुकदेवने पिताकी आज्ञानुसार निखिल योग और कपिलप्रोक्त सब शास्त्र सीखे। जब वेदव्यासने ब्रह्म तुल्य पराक्रमयुक्त विशारद पुत्रको ब्राह्मी श्रीसे संयुक्त जाना, तब उससे बोले, "तुम मिथिलाराज जनकके समीप जाओ; वह तुमसे निखिल मोक्षशास्त्रका अर्थ कहेंगे।" हे राजन्! शुक-

इसके पिताकी आज्ञा पाके मोक्षपरायण जनकके निकट धर्म्मनिष्ठा पूछनेके लिये मिथिला नगरमें गये। जानेके समय पिताने पुत्रसे यह वचन कहा, कि तुम अन्तरिक्षचर प्रभावके जरिये मत जाओ, विस्मययुक्त न होकर मनुष्यगम्य मार्गसे गमन करो। तुम सुखकी खोज न करके सरल भावसे गमन करना, किसी विषयका विशेष अनुसन्धान न करना, क्यों कि जो लोग विशेष खोज करनेवाले हैं, वेही विषयोंमें आसक्त होते हैं। उस यजमान नरनाथके निकट तुम अहंकार न करना, तुम उनके वशीभूत होके रहना; तब वह तुम्हारे सन्देहको दूर करेंगे। वह मोक्षशास्त्र विशारद धर्म्मज्ञ राजा मेरे यजमान हैं, इसलिये वह जैसा कहेंगे, तुम निःशङ्क चित्तसे वैसा ही करना।

धर्म्मात्मा मुनि पिताका ऐसा वचन सुन मिथिला-नगरमें गये। उन्होंने आकाशमार्गसे गमन करनेमें समर्थ होनेपर भी पैदल ही समुद्रके सहित पृथ्वीको अतिक्रम किया। पहाड़, नदी, तीर्थ अनेक सर्पोंसे परिपूरित अटवी तथा तालावोंको अतिक्रम करके धीरे धीरे इलावृतवर्ष, हरिवर्ष और हैमवत-वर्ष परित्याग करके भारत वर्षमें उपस्थित हुए। वह महामुनि चीन, हून आदि विशेष जातिके जरिये सेवित विविध देशोंको देखते हुए इस आर्य्यावर्त्त देशमें आये। जैसे आकाशगामी पक्षी अन्तरिक्षमें विचरता है, वैसे ही वह पिताके वचनके अनुसार उस ही विषयकी चिन्ता करते हुए अविश्रान्त चित्तसे गमन करने लगे। उन्होंने विविध समृद्धिशाली गांव, नगर और विचित्र रत्नोंको तुच्छ समझके देख कर भी उस ओर ध्यान न दिया, मार्गमें चलते चलते रमणीय बगीचा, देवालय और पवित्र तीर्थोंको अतिक्रम किया। वह थोड़े ही समयमें धर्म्मराज जनकके रक्षित विदेह देशमें उपस्थित हुए। वहां अनेक अन्न, रस आदि भोजनकी सामग्रियोंसे पूरित सब गांव, समृद्ध पल्ली तथा अनेक गांवोंसे युक्त पल्लियोंको देखते हुए शालि धान्य और यव तृणसे युक्त हंस सारस सेवित, सैकड़ों शोभाशालिनी कमलिनियोंसे अलंकृत समृद्धिवान् लोगोंसे युक्त विदेहदेशको नांघके रमणीय और समृद्धिवान् मिथिलाके उपवनमें उपस्थित हुए। मिथिला नगर हाथी घोड़ों और नर नारियोंसे परिपूरित होने पर भी इन्द्रिय-विजयी शुकदेव उसे अनादरके सहित देखते हुए गमन करने लगे। पिताने उन्हें जो उपदेश दिया था, मन ही मन उस ही प्रश्नभारको ढोते और मोक्ष विषयकी चिन्ता करते हुए वह प्रसन्न चित्त आत्माराम मिथिला राजधानीमें पहुंचे, वह राजधानीके द्वारपर आके द्वारपालोंसे पूछे जानेपर कुछ देरतक ध्यानपरायण और योग अवलम्बन करके खड़े रहे; फिर उन लोगोंको विदित होके राजपुरमें प्रवेश किया समृद्धिवान लोगोंसे युक्त राजपथमें पहुंचके धीरे धीरे राजस्थानके निकटवर्त्ती होकर उसमें प्रवेश किया, राजभवनमें प्रवेश करते ही द्वारपालोंने कठोर-वाक्यसे उन्हें भीतर जानेके लिये निषेध किया। शुकदेव उस समय क्रोध रहित होकर वहां ही खड़े रहे, धूपके क्लेश, मार्गको थकावट और भूख प्यासके श्रमसे वह दुःखी वा ग्लानियुक्त न हुए; और धूपकी गर्म्मीसे भी हटके निवास न किया; द्वारपालोंके बीच एक पुरुष शुकदेवको मध्यान्हकालके सूर्य्यको भांति स्थित देखकर दुःखी हुआ। अनन्तर उस द्वारपालने हाथ जोड़के विधिपूर्वक सम्मान करके उन्हें प्रणाम कर राजभवनकी पहली कक्षामें ले गया। हे तात! छाया और धूपको समान जाननेवाले महातेजस्वी शुकदेव उस प्रथम कक्षामें बैठके मोक्षकी चिन्ता करने लगे। मुहूर्त्तभरके बीच राजमन्त्री आके उन्हें दूसरी कक्षामें लिवा ले गया। वहां अन्तःपुरके समीप रमणीय नाना-

वसे युक्त, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित, चैत्ररथके समान सुन्दर विस्तीर्ण प्रमदावनमें शुकदेवको प्रवेशित करके उन्हें आसन देनेके लिये स्त्रियोंको आज्ञा देकर मन्त्री वहांसे निकल आया। अनन्तर उत्तम वेषवाली, ऊंचे नितम्ब देखनेमें प्रिय, सूक्ष्म लाल अम्बर पहरनेवाली, तपाये हुए सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त, बोलनेमें प्रवीण, नृत्यगीतिमें निपुण विचारके बोलनेवाली अप्सराओंकी भांति रूपशालिनी कामकलामें निपुण, भावज्ञ और सब विषयोंको पूर्णरीतिसे जाननेवाली पचास तरुणी बारबनिता उनके निकट उपस्थित हुईं। उन स्त्रियोंने उन्हें पाद्य अर्घ देकर परम सम्मानके सहित उनकी पूजा की और यथा समयपर उत्तम स्वादयुक्त अन्नदान करके उन्हें तृप्त किया। हे भारत! उनके भोजन कर चुकनेपर उन बार बार वनिताओंने एक एक करके उन्हें प्रमदावन दिखाया। वे सब हंसती खेलती और गाती हुई उस उदार प्रकृतिवाले शुकदेवकी सेवा करने लगी। शुद्धबुद्धि अहङ्काररहित, स्वकर्म्मकारी क्रोध-जीतनेवाले, इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले अरणीसे उत्पन्न शुकदेव उससे हर्षित वा कुपित न हुए। उन बारबनिताओंने उन्हें देव-योग्य रत्नभूषित बहुमूल्य वस्त्रोंसे युक्त दिव्य शय्या और आसन प्रदान किया। शुकदेव मुनि पैर धोकर सन्ध्योपासना समाप्त करके मोक्षवि-षयकी चिन्ता करते हुए पवित्र आसनपर बैठे। उन्होंने पूर्व रात्रिमें ध्यानपरायण रहके मध्य-रात्रि यथा न्यायसे निद्रामें बितायो, फिर मुहूर्त्तकालके अनन्तर उठके शौचकार्य्य समाप्त कर स्त्रियोंके बीच घिरकर ध्यान करने लगे। हे भारत! कृष्णद्वैपायननन्दन धैर्य्यसे च्युत न हुए, शुकदेव इस ही भांति विधिपूर्वक उस राजभ-वनमें दिन और रात्रि व्यतीत करने लगे।

३२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! अनन्तर राजा जनक मन्त्रियोंके सहित पुरोहित और सब अन्तःपुरवासी लोगोंको आगे करके विविध रत्न और आसनोंके साथ सिरपर अर्घ ग्रहण करके गुरुपुत्रके निकट उपस्थित हुए। उन्होंने उन परोहितोंके जरिये गृहीत परम पूजित अनेक रत्नोंसे भूषित बहुमूल्य वस्त्रसे युक्त सबसे उत्तम आसनको हाथसे ग्रहण करके गुरुपुत्र शुक-देवको दिया। पृथ्वीपति जनकने उस आसनपर बैठे हुए शुकदेवको शास्त्रके अनुसार पूजा की; पहले खड़ाऊं फिर अर्घ देकर गऊ दान किया। शुकदेवने भी यथा विधिसे मन्त्रके अनुसार पूजा प्रतिग्रह की। द्विज सत्तम महा-तेजस्वी शुकदेवने राजा जनकसे पूजा प्रतिग्रह और गोदान ग्रहण कर राजाका सम्मान करके उनका कुशल पूछा।

हे राजेन्द्र! जब शुकदेवने सेवकोंके सहित राजाका कुशल पूछा तब उदार प्रकृति राजा हाथ जोड़के खड़े रहे और उनकी आज्ञा पाके अनुचरोंके सहित पृथ्वीपर बैठगये, फिर राजाने व्यासपुत्रसे कुशल और अनामय प्रश्न करके आनेका प्रयोजन पूछा।

शुकदेव बोले, हे महाराज! आपका मङ्गल हो, मेरे पिताने कहा है, कि "जनक नाम विख्यात् विदेहराज मेरे यजमान हैं" वह मोक्ष-धर्म्मविषयके विशेषज्ञ है। यदि तुम्हारे अन्तःक-रणमें मोक्षविषयमें कुछ संशय हो, तो शीघ्र ही उनके निकट जाओ। प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयमें तुम्हें जो कुछ सन्देह है, वह "उसे छुड़ा देंगे।" हे धार्म्मिक प्रवर! इसही कारण मैं पिताकी आज्ञानुसार मोक्षकी चर्चा पूछनेके लिये आपके निकट आया हूं; इसलिये मेरे समीप उक्त विषयको आप यथावत् वर्णन करिये, इस लोकमें ब्राह्मणको क्या करना चाहिये, मोक्षके विषय कैसे हैं, और और ज्ञान अथवा तपस्याके जरिये किस प्रकार मोक्ष होती है।

जनक बोले, हे तात! इस लोकमें जन्म प्रभृति ब्राह्मणोंके जो कर्त्तव्य हैं, उसे सुनो। ब्राह्मण उपनयनके अनन्तर वेदपरायण होवे, तपस्या गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य्यके जरिये असूयारहित होके देवता और पितरोंसे अऋणी होवे। सदा वेद पढ़ते हुए गुरुदक्षिणा देकर उनकी आज्ञासे गृहपर लौट आवे; लौटनेपर गार्हस्थ धर्म्म अवलम्बन करके निज स्त्रीमें रत होकर वास करे, किसीकी असूया न करे और यथा न्यायसे अग्निमें आहुति दे। फिर पुत्र और पौत्र उत्पन्न करनेके अनन्तर पूर्व्वकृत अग्निको पूजा करके अतिथिप्रिय होकर वाणप्रस्थ आश्रममें निवास करे। वह धर्म्म जाननेवाला ब्राह्मण वनके बीच विधिपूर्व्वक आत्माको अग्नि स्वरूप मानके सुख दुःखसे रहित विरागी होकर सन्न्यास आश्रममें निवास करे।

शुकदेव बोले, हे प्रजानाथ! सुख दुःख रहित अन्तःकरणमें यदि शाश्वत ज्ञान और विज्ञान अर्थात् शास्त्रज बुद्धि तथा अनुभव उत्पन्न हो, तो क्या गार्हस्थ आदि आश्रमोंमें अवश्यही वास करना होगा। इसे ही मैं पूछता हूं आप मेरे निकट इस ही विषयको वेदार्थके अनुसार कहिये।

जनक बोले, ज्ञान तथा विज्ञानके विना मोक्षलाभ नहीं होता और गुरूपदेशके विना ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नहीं है। गुरु ज्ञानरूपी नौकाके जरिये शिष्यको संसारके पार उतारता है, इस ही लिये गुरुको प्लावयिता और ज्ञानको प्लव कहा जाता है। ज्ञानसे कृतकृत्य और उत्तीर्ण होकर उन दोनोंको परित्याग करे। लोक और कर्म्म नष्ट न हों, इस ही लिये पहिले महात्माओंके आचरित चारों आश्रमोंका क्रमसे अनुष्ठान करना होगा। इसी प्रकारसे क्रमके अनुसार अनेक जन्मोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त होता है। जब जीव संसारमें बहुत बार जन्म लेकर शोधित बुद्धिके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेसे प्रथम आश्रममें ही मोक्षभाजन हो सकता है। ब्रह्मचर्य्य आश्रममें ही जिसकी चित्तशुद्धि होती है, उस कृतकृत्य विपश्चित पुरुषको अन्य तीनों आश्रमोंसे क्या प्रयोजन है। राजस और तामस दोषोंको सदाही परित्याग करे और सात्विक पथका सहारा करके आपही अपनेको अवलोकन करे, सब भूतोंमें अनुगत आत्माको और आत्मामें अनुगत सब भूतोंको देखते हुए जलके बीच हंस आदिकी भांति निर्लिप्त रहे। जैसे भूचर जन्तु नीचे पर्व्वतसे ऊंचे पहाड़पर चढ़नेके समय नीचे मार्गका अनुसरण करके जाते हैं, पक्षी उस प्रकार गमन नहीं करते, वैसेही मुक्त पुरुष देह छोड़नेपर फिर नहीं जन्मते; वे सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित और शान्तिलाभ करके परलोकमें परम सुख भोग करते हैं। हे तात! इस विषयमें पहिले समयके ययाति राजाकी कही हुई गाथाको मोक्षशास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मण लोग धारण किया करते हैं, उसेही कहता हूं सुनो।

चिन्मात्र ज्योति केवल हृदयाधिष्ठानमें निवास करतो है, अन्यत्र उसका सहारा नहीं है और उसका सब जीवोंमें ही समभाव है। जिसका चित्त स्थिर हुआ है, वह स्वयं ही उसे देखता है। जिससे दूसरे लोग भीत नहीं होते और जो दूसरोंसे नहीं डरता तथा जिसे इच्छा वा द्वेष नहीं है, वही ब्रह्मभाव लाभ करता है, जब जीव मन वचन और कर्म्मके जरिये सब प्राणियोंके विषयमें पापकी इच्छा नहीं करता, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है, मोहिनी ईर्षाको त्यागके कामना और मोहहीन मनके सहित आत्माको संयुक्त करनेसे ब्रह्मभाव प्राप्त होता है। जब वह [illegible] सब भूतोंमें सुनने और देखनेके विषयमें समता ज्ञान करके सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहता है, तब वह ब्रह्मभाव लाभ करता है। जब वह [illegible],

निन्दा, सुवर्ण, लोहा, सुख, दुःख, सर्दी, गर्मी, अर्थ, अनर्थ, प्रिय, अप्रिय, जीने और मरनेको समभावसे देखता है, तब ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है जैसे कछुवा अपने अङ्गोंको पसारके फिर उसे समेट लेता है, वैसेही सन्न्यासियोंको मनके जरिये इन्द्रियोंको संयम करना उचित है, जैसे अन्धकारसे छिपा हुआ गृह दियेके जरिये दीखता है, वैसे ही ज्ञान-दीपके जरिये लोग आत्माको देखनेमें समर्थ होसकते हैं।

हे बुद्धिमत् प्रवर! तुममें इन सब भावोंको देखता हूं, मैंने जो कहा। उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ जानना होता है, उसे तुम यथार्थ रीतिसे जानते हो। हे ब्रह्मर्षि! तुमने पिताकी कृपा तथा पिताके समीप शिक्षा पाके विषयाभिलाष परित्याग की है, यह मुझे मालूम है। हे महामुनि उन्हींकी कृपासे मुझे यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसहीसे मैं तुम्हारे तत्त्वको जानता हूं। मुझसे बढ़के तुम्हें अधिक विज्ञान श्रेष्ठ गति और परम ऐश्वर्य हुआ है, परन्तु तुम उसे समझ नहीं सकते हो विज्ञान उत्पन्न होनेपर भी तुम बाल्यभाव, संशय अथवा अबिमोक्ष जनित भयसे उसकी गति मालूम करनेमें समर्थ नहीं हुए हो। मेरे समान पुरुषके जरिये सन्देह दूर होनेपर तुम विशुद्ध व्यवहारके सहारे हृदयकी ग्रन्थिको छुड़ाके परमगति पाओगे। हे ब्रह्मन्! तुममें विज्ञान उत्पन्न हुआ है, बुद्धि स्थिर हुई है, तुमने विषय बासनाको परित्याग किया है, किन्तु बिना व्यवसायके उस परम पदको न पाओगे। सुख दुःखमें तुम्हें विशेष नहीं है, तुम्हारी बुद्धि विषयोंमें लोलुप नहीं है, नृत्य गीत आदि देखने सुननेमें उत्सुक नहीं है और उसे देखनेपर भी तुम्हें अनुराग नहीं उत्पन्न होता, बन्धुजनोंके ऊपर तुम्हारा कुछ अनुबन्ध नहीं है, भयजनक विषयोंमें भी तुम्हें भय नहीं है। हे महाभाग! मैं तुम्हें लोष्ट, पत्थर और सुवर्णमें समदर्शी देखता हूं। मैं तथा दूसरे जो सब मनीषी पुरुष हैं, सब कोई तुम्हें उस अक्षय और अनामय परम पथमें आरोहण करके निवास करते हुए देख रहे हैं। हे ब्रह्मन्! इस लोकमें ब्राह्मणको जो प्रयोजन है और मोक्षका जैसा स्वरूप है, उसहीमें तुम विद्यमान हो, दूसरा और क्या पूछना है।

३२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुद्धबुद्धि शुकदेवने राजर्षि जनकसे ऐसे वचन सुनके आत्म निश्चय करके आप ही अपनेको अवलम्बन और स्वयं ही अपना दर्शन करते हुए कृतकृत्य, सुखी, शान्त और मौनावलम्बी होकर हिमालय पहाड़के ऊपर जानेकी इच्छासे उत्तरकी ओर वायुकी भांति गमन किया। इतने ही समयमें देवर्षि नारद सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमशैलको देखनेके निमित्त वहांपर उतरे। हिमालय अप्सराओंसे परिपूरित, सहस्रों किन्नरोंके प्रशान्त बाजोंके जरिये निनादित था, भृङ्गराज वृक्षोंपर सुशोभित थे; कारण्डव, खञ्जन, बिचित्र चकोर, सैकड़ों कुहुक ध्वनिसे युक्त चित्त वर्णके मोर, राजहंस और परम हर्षयुक्त कोकिलोंसे परिपूर्ण था। पक्षिराज गरुड़ जिसपर सदा निवास करते हैं, इन्द्र आदि चारों लोकपाल और ऋषियोंके सहित देवता लोग लोककी हितकामनासे वहां सदा इकट्ठे हुआ करते हैं। महानुभाव विष्णुने जिस स्थानमें पुत्रके निमित्त तपस्याकी थी, उस ही स्थानमें पार्वती पुत्र कुमारने देवताओंको उद्देश्य करके एक शक्ति छोड़ी थी, वह शक्ति तीनों लोकोंकी अवज्ञा करके पृथ्वीपर गिरी थी। उस समय कार्त्तिकेयने उस ही स्थानमें शक्ति छोड़के यह वचन कहा, कि तीनों लोकके बीच जो कोई मुझसे अधिक बलवान हो, मुझसे बढ़के ब्राह्मण लोग जिसे

अधिक प्रिय हों और ब्राह्मणोंकी आज्ञा पालन करनेके विषयमें जो अद्वितीय वीर्य्यवान हो, वह इस शक्तिको उठावे अथवा चलावे। कार्त्तिकेयका ऐसा वचन सुनके "इस शक्तिको कौन उठावेगा" ऐसा सोचकर सब लोग व्यथित हुए, अनन्तर भगवान् विष्णुने असुर और राक्षसोंके सहित देवताओंको चक्षुरिन्द्रिय तथा सम्भ्रान्तचित्त देखा; फिर उस विषयमें क्या करना चाहिये, ऐसी चिन्ता करके कुमारने जिस शक्तिको चलाया था, उसको कुछ भी विवेचना न करके उन्होंने उस अग्निपुत्रकी ओर देखा। विशुद्धात्मा पुरुषोत्तमने उस समय उस प्रज्वलित शक्तिको उठाकर बायें हाथसे चलाया। भगवान् विष्णुके जरिये उस शक्तिके कूटनेपर पहाड़, वन और महारण्यके सहित सारी पृथ्वी कांपने लगी। भगवान उस शक्तिको उठानेमें समर्थ होनेपर भी उस समय केवल उसे चलाया और स्कन्दराजकी धर्षणा हो, इस ही निमित्त उसकी रक्षा की भगवान उस शक्तिको चलाकर प्रह्लादसे बोले, कि कुमारका बल देखो दूसरा कोई इस शक्तिको उठानेमें समर्थ नहीं है। हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादने भगवानका वचन न समझा और शक्ति उठानेका निश्चय करके उस ही समय उसे ग्रहण किया; परन्तु विचलित न कर सका। वह उस समय चिल्लाके पहाड़पर मूर्च्छित और विह्वल होके गिर पड़ा, उस ही स्थानमें शैलराजके पार्श्वभागमें [illegible] और [illegible] वृषभध्वज महादेव अति कठोर [illegible] करते हैं, उनका आश्रम प्रकाशमान [illegible] चारों ओरसे परिपूरित रहता था। [illegible] नाम आदित्य पर्व्वत है, पुण्यहीन पुरुष [illegible] उसे अभिभव नहीं कर सकते यक्ष, [illegible] और दानव लोग वहां जानेमें समर्थ [illegible] उसकी दस योजनकी लम्बाई है और [illegible] ज्वालासे परिपूरित था। श्रीमान् [illegible] परिमाणसे स्वयं [illegible]

वहांपर खड़े रहनेपर भगवान् अग्नि उनके सब विघ्नोंको नाश करते हुए वहां स्वयं स्थित रहते थे। महादेवने देवताओंको सन्ताप देते हुए वहांपर अत्यन्त महत् तपस्या की थी। पराशरपुत्र महातपस्वी व्यासदेव उस ही शैलराजकी पूर्व्वदिशाको अवलम्बन करके विविक्त पर्व्वतपर शिष्योंको वेद पढ़ाते थे। सुमन्त, महाभाग वैशम्पायन, महाप्राज्ञ जैमिनि और तपस्वीप्रवर पैल नाम शिष्योंसे घिरे हुए महातपस्वी वेदव्यास जिस स्थानमें निवास करते थे, आकाशमण्डल स्थित सूर्य्यके समान विशुद्धात्मा अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके उस ही रमणीय आश्रम स्थानको देखा। अनन्तर व्यासदेवने सूर्य्यके समान तेजस्वी, जलती हुई अग्निके समान वृक्ष, पहाड़ और विषयोंमें अनासक्त योगयुक्त महानुभाव पुत्रको धनुषके रोदेसे छूटे बाणकी भांति आते हुए देखा। अरणीसे उत्पन्न शुकदेवने पिताके समीप पहुंचके उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया और वह महामुनि पिताके चारों शिष्योंसे यथा उचित मिले। अनन्तर जनक राजके सङ्ग उनकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे प्रसन्नचित्तसे पिताके समीप आदिसे अन्ततक वर्णन किया। वीर्य्यवान पराशरपुत्र महामुनि वेदव्यास हिमालयके ऊपर शिष्यगण और पुत्रको पढ़ाते हुए इस ही भांति निवास करते थे।

अनन्तर किसी समय वेदाध्ययन सम्पन्न शान्तचित्त और जितेन्द्रिय शिष्यवृन्द उन्हें घेरके स्थित थे, वे लोग साङ्ग वेदाध्ययन समाप्त करके तपस्या करते थे; उस समय उन शिष्योंने हाथ जोड़के गुरु व्यासदेवके निकट प्रार्थना की।

शिष्यवृन्द बोले, आपने जो हमपर कृपा की है, उसहीसे हम महातेजस्वी और यशस्वी हुए हैं, इस समय हमें एक ही विषयकी अभिलाष है, आपको उसके निमित्त अनुग्रह करना होगा। [illegible] व्यासदेव उन लोगोंका ऐसा

बचन सुनके बोले, हे तात! मुझे तुम लोगोंका जो कुछ प्रियकार्य्य करना होगा, उसे कहो। हे राजन्! शिष्योंने गुरुका ऐसा बचन सुनके प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़ शिर झुकाकर उन्हें प्रणामकर सबने मिलके यह उत्तम बचन कहा। हे मुनिसत्तम! उपाध्यायके प्रसन्न होनेसे हम लोग धन्य हुए। आप हम लोगोंको यह वर दीजिये, कि इस लोकमें अब आपका छठवां शिष्य कीर्त्ति लाभ न कर सके; आप इस ही प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न होइये; हम सब ब्रह्मर्षिसे इस ही वरकी अभिलाषा करते हैं। हम चार आपके शिष्य हैं और गुरुपुत्र पांचवां है, हम पांच पुरुषोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित रहे, यही हमारा अभिलषित वर है।

वेदार्थके तत्वज्ञ परलोकार्थ चिन्तक पराशरपुत्र बुद्धिमान् धर्म्मात्मा व्यासदेव शिष्योंके बचनको सुनके उनसे धर्म्मयुक्त कल्याणदायक बचन बोले। जो ब्रह्मलोकमें बास करनेकी आकांक्षा करें, दे वेदशुश्रुषु ब्राह्मणको वेदाध्ययन करावें, तुम लोगोंके जरिये वेदका खूब प्रचार होवे, तुम लोग वेदको बिस्तार करो। जो पुरुष शिष्य नहीं हैं, ब्रत नहीं करता और जिसकी बुद्धि शुद्धि नहीं हुई है, उसे वेद न पढ़ाना, यह सब शिष्यके गुणको यथार्थ रूपसे जानना चाहिये। जिसके चरित्रकी परीक्षा नहीं हुई है, उस पुरुषको विद्या दान न करे, जिस प्रकार अग्निमें तपाने, काटने घिसनेसे सुवर्णकी परीक्षा होती है, वैसे ही कुल, शील और गुणोंको देखकर शिष्योंकी परीक्षा करे। तुम लोग शिष्योंको नियोगानहे महाभय जनक विषयोंमें नियुक्त न करना, सभी लोग दुर्गम शास्त्रसागरसे पार हों, सभी कल्याणका सुख देखें। ब्राह्मणको अगाड़ी करके चारों वर्णोंको ही वेद सुनावे, वेद पढ़ना अत्यन्त महत् कार्य्य कहा गया है, देवताओंकी स्तुतिके निमित्त स्वायम्भू ब्रह्माने वेदोंको बनाया है।

जो पुरुष मोह वशसे वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह उस ही निमित्त निःसन्देह पराभूत होता हैं। जो पुरुष अधर्म्मके अनुसार पूछता है और जो अधर्म्मपूर्व्वक उत्तर देता है; उनके बीच एक दूसरेका विद्वेषभाजन होता और परलोकमें गमन करता है। यह सब तुम्हारे समीप वेदपाठकी विधि कही गई, शिष्योंका उपकार करना होगा, तुम्हारे हृदयमें ऐसी धारणा बनी रहे।

३२७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महातेजस्वो व्यासशिष्योंने गुरुका ऐसा बचन सुनके प्रसन्नचित्तसे परस्पर आलिङ्गन किया और कहने लगे। हे भगवन्! हमें आपने जो आज्ञा दी है, वह वर्त्तमान और भविष्यकालमें अत्यन्त हितकर है, वह हमारे अन्तःकरणमें दृढ़रूपसे स्थित हुई; हम इसके आज्ञाके अनुसार आचरण करेंगे। उन वाक्य विशारद शिष्योंने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे परस्पर इस ही प्रकार वार्त्तालाप करके फिर गुरुसे निवेदन किया कि, हे महामुनि! यदि आपकी सम्मति हो, तो वेदोंको विस्तारित करनेके लिये हम लोग यहांसे पृथ्वीतल पर गमन करनेकी इच्छा करते हैं। पराशरपुत्र निग्रहानुग्रहमें समर्थ व्यासदेवने शिष्योंका बचन सुनके धर्म्मार्थसे युक्त हितकर बचनसे उत्तर दिया कि, हे शिष्यवृन्द! यदि तुम लोगोंकी ऐसी अभिलाष हुई हो, तो मनुष्यलोक अथवा देवलोक जहांपर तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ तुम लोग सावधान होके रहना, वेदमें बहुत छल है, प्रमत्त होकर उसे भूल मत जाना। अनन्तर उन लोगोंने सत्यवादी गुरुकी आज्ञा पाके उनकी प्रदक्षिणाको और शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके वहांसे चले। उन ऋषियोंने पृथ्वीमण्डलपर पहुंचके ब्राह्मण, क्षत्रिय और

[illegible] याजन कर्म्म करते हुए चातुर्होत्र [illegible] अध्यात्म और अवियज्ञ कर्म्ममें अभेद दिखानेके लिये अग्निहोत्र आदि मन्त्रोंको प्रवर्तित किया। वे लोग गार्हस्थ धर्म्म अवलम्बन करके ब्राह्मणोंसे सदा पूजित होकर परम हर्षके सहित समय बिताने लगे, याजन और अध्यापन कार्य्य करते हुए लोकके बीच विख्यात् हुए।

शिष्योंके हिमालय पर्व्वतसे पृथ्वीपर उतरनेके अनन्तर धीमान् द्वैपायन केवल पुत्रके सहित ध्यानपरायण और मौनी होकर निर्ज्जनमें बैठे रहे। उस समय महातपस्वी नारदने उन्हें उस आश्रममें देखा और मधुर वचनसे कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे वशिष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए महर्षि! अब वेदध्वनि नहीं सुन पड़ती, तुम अकेले ही क्या सोचते हुए ध्यान परायण [illegible] मौनावलम्बन करके बैठे हो? यह पर्व्वत वेदध्वनिसे रहित हुआ है, इसीसे रज और तमोगुणसे परिपूरित होनेसे राहुग्रस्त चन्द्रमाकी भांति शोभित नहीं होता है। जैसे पहले इसकी शोभा थी, इस समय वैसी नहीं है; यह देवर्षियोंसे सेवित होने पर भी वेदध्वनिसे रहित होके निषादोंके स्थान समान हुआ है, महातेजस्वी ऋषिवृन्द, देवता और गन्धर्व्व लोग वेदध्वनिसे हीन होकर पहलेकी भांति प्रकाशित नहीं होते हैं।

द्वैपायन मुनिने नारदका वचन सुनके कहा। हे वेदवाद विचक्षण महर्षि! तुमने जो [illegible] कहा, वही मेरे मनके अनुकूल है, तुम्हीं [illegible] कह सकते हो, तुम सर्व्वज्ञ, सर्व्व[illegible] और सर्व्वत्र कुतूहली हो; तीनों लोकोंके [illegible] हुआ है, वह सब तुम्हारे मनमें [illegible] है। हे विप्रर्षि! अब मुझे क्या आज्ञा है [illegible] तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य्य करूं? हे [illegible] मुझे जिस विषयका अनुष्ठान करना [illegible] कहो। शिष्योंसे पृथक् होनेसे मेरा [illegible] नहीं है।

नारद मुनि बोले, वेदोंको अनावृत्त ही मल अर्थात् दोष है, ब्राह्मणोंको व्रत न करना ही मल है, वाहिक देश पृथ्वीका मल है, और स्त्रियोंको कौतूहल ही मल है। इसलिये तुम वेदध्वनिके जरिये राक्षस भय जनित तमको दूर करते हुए बुद्धिमान पुत्रके सहित वेद पाठ करो।

भीष्म बोले, परम धर्म्मज्ञ व्यासदेवने नारद मुनिका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित और वेदाभ्यासमें दृढ़व्रती होकर 'वही होगा' ऐसा वचन कहा। अनन्तर वह शिष्योंके सहित ऊंचे स्वरसे मानो सब लोकोंको पूरित करते हुए निज पुत्र शुकदेवके सहित वेदपाठ करने लगे। उन पिता-पुत्रके धर्म्म विषयक विविध वाद और वेद अभ्यास करते रहने पर समुद्रानिलके जरिये सञ्चालित वायु अत्यन्त प्रबल वेगसे बहने लगा। अनन्तर 'इस समय अनाध्याय है, इसलिये वेद पाठसे निवृत्त होजाओ' ऐसा वचन कहके वेदव्यासने पुत्रको निवारण किया। शुकदेवने निवारित होते ही कौतूहलयुक्त होकर पितासे पूछा, हे ब्रह्मन्! यह वायु कहांसे प्रकट हुआ, आप इसका समस्त वृत्तान्त कहिये।

व्यासदेवने शुकदेवका वचन सुनके अत्यन्त विस्मययुक्त होकर वायु अनध्यायका निमित्त क्यों हुआ, उस विषयमें यह वचन कहा। हे पुत्र! तुम्हें दिव्यनेत्र व्यवहित पदार्थ दर्शन निबन्धन योग संस्कृत भावसे उत्पन्न हुआ है, मन भी स्वयं निर्म्मल है, तुम तमोगुण और रजोगुणसे परित्यक्त होकर सर्व्वमङ्गलादिके हेतु भूत सत्त्व गुणमें निवास करते हो। जैसे दर्पणमें निज परछाईं देखी जाती है, वैसे ही तुम आप ही अपनेको देखते हो, इसलिये अपनेसे वेदोंको विभावित करके निजयात्मिका [illegible] करण वृत्तिको दिखाओ; अर्थात् वायु [illegible] उत्पन्न हुआ उसका विचार करो। [illegible] परमात्माके निकटवर्त्ती होनेके लिये देवयान

और पितृयान नाम दो मार्ग हैं, सात्विक उपासक लोग पुनरावृत्ति रहित जिस मार्गसे गमन करते हैं, उसका नाम देवयान है, और धूमादि पथके जरिये जिस पुनरावृत्तिप्रद स्थानमें गमन किया जाता है, उसे तामस पितृयान कहते हैं। परलोकमें गमन करनेके लिये ये दोही मार्ग हैं, इनके जरिये द्युलोक और भूलोकमें जीवोंका गमनागमन हुआ करता है। पृथ्वी और आकाशमण्डलमें जिस स्थान पर वायु गमन करता है, वह वायुके सञ्चारका स्थान सात प्रकारका है इसलिये उन सात स्थानोंके विषयको बिस्तारपूर्व्वक सुनो। देह पिण्ड और ब्रह्माण्डके अभेद निबन्धनसे शरीरमें भी पांच प्रकारको वायु निवास करती है, शरीरको अवलम्बन करके जो सब इन्द्रियें हैं, और अधिदेव साध्यगणोंको अधिकार करके जो सब महाबल महाभूत है, उन्हींके समान साम दुर्ज्जय वायुकी उत्पत्ति होती है। समानसे उदान, उदानसे व्यान, व्यानसे अपान और अपानसे प्राण उत्पन्न होता है। दुर्द्धर्ष शत्रु तापन प्राण अनपत्य है, अर्थात् प्राणका कार्य्यान्तर नहीं है, उसके पृथक् पृथक् कर्म्मोंको ज्योंका त्यों कहता हूं। वायु प्राणियोंकी पृथक् पृथक् चेष्टाको सब भांतिसे निर्व्वाह करता है, और प्राणियोंके प्राणका कारण होनेसे प्राण नामसे अभिहित होता है, तथा जो वायु धूमज और उष्मज अभ्रको प्रथम पथमें चालित करता है। उसे प्रवह वायु कहा जाता है। आकाशमें स्नेहगुणयुक्त जल बरसनेके समय जो वायु स्नेह क्रमसे विद्युत्को प्राप्त होके अत्यन्त द्युतिशाली होता है, वह शब्दकारी श्वसन आवह नामक द्वितीय वायु स्थानीय होकर होता है, और जो वायु सोम आदि प्रकाशमान पदार्थोंका सदा उदयकार्य्य निर्व्वाह करता है, मनीषी लोग जिसे शरीर स्थित उदान वायु कहा करते हैं, जो वायु चारो समुद्रोंके जलको धारण कर रहा है, जो वायु समस्त जल उठाके जीमूतगणको देनेके निमित्त लाता है, और जलके सहित जीमूतोंको संयोजित करके बादलोंको प्रदान करता है, उस वायुका नाम उद्वह है, यह तीसरा वायु अत्यन्त बृहत् है। और जो वायु बादलोंको ढोकर अनेक प्रकारसे बिभिन्न करता है, तथा जल वर्षा आरम्भ किया करता है, उस वारि पूर्ण और वारिहीन वायुको घनाघन कहा जाता है। इकट्ठे होने पर भी सब बादल जिसके जरिये पृथक् पृथक् होजाते है, राढ्यमान वेणुकी भांति शब्दायमान वह वायु नद नामसे प्रसिद्ध हुआ करती है। उक्त वायु प्रजापालनके निमित्त संहत और जो स्तनवत् रिक्त होके भी मेघल अर्थात् सेचन कारित्वको प्राप्त होती है, जलकी भांति नष्ट नहीं होता। जो वायु आकाश मार्गमें व्योमयानोंको चलाती है, वह पर्व्वतको मर्द्दन करनेमें समर्थ सम्वह संज्ञक वायु चतुर्थ रूपसे गिनी जाती है। इकट्ठे हुए समस्त बादल वेगवान रूक्ष और नागोंको प्रभञ्जन करनेवाली वायुसे उग्र होकर बलाहक अर्थात् बलके जरिये गमन करता है, इस व्युत्पत्ति लभ्य अभिधानको प्राप्त होता है, तथा जिससे दारुण उत्पात धूमकेतु और सम्वर्त्त मेघका सञ्चार हुआ करता है, जो आकाश मण्डलमें गर्ज्जते हुए बादल विशिष्ट होकर निवास करता है, वह विवह नाम महा बलवान वायु पञ्चम रूपसे निर्द्दिष्ट है। जिसके वेगबलसे समस्त दिव्य जल नीचे न गिरके आकाशमार्गके ऊपरके हिस्सेमें निवास करता हैं और आकाश गङ्गाका पवित्र जल जिससे विष्टब्ध हुआ करता है, सूर्य्य सहस्र किरणधारी होनेपर भी दूरसे जिसके प्रतिघातके कारण एक किरणकी भांति मालूम होके पृथ्वीको प्रकाशित करता है, चन्द्रमा क्षीण होके भी जिसके बलसे फिर मण्डलाकारसे पूर्ण होता है। हे जापक प्रवर! वह परिवह

नाम वायु षष्टमरूपसे गिनी जाती है। जो वायु प्रलयकालमें सब प्राणियोंके प्राणको संहार करता है, मृत्यु तथा वैवस्वत अर्थात् चौदह यमके अन्तर्गत मरण और सूर्य्य पुत्र यम, ये दोनों जिसके पथका अनुसरण किया करते हैं, हे अध्यात्म चिन्तक पुत्र! ध्यानाभ्यासमें अनुरक्त मनुष्योंके लिये जो अमृत रूपसे कल्पित होती है, उस बाह्याभ्यन्तर विषयोंसे उपरत बुद्धि वृत्तिके सहारे उसे अवलोकन करो। दक्ष प्रजापतिके दस हजार पुत्र वेगके कारण जिसके निकटवर्त्ती होकर ब्रह्माण्ड भेदके दिग्‌दिगन्तमें गमन किया है, जिसके जरिये जीव उपसृष्ट होकर फिर निवृत्त नहीं होते, वह परा नाम वायु सबसे श्रेष्ठ और सबसे दुरतिक्रमणीय है। इसी प्रकार आदिके खण्डन शून्य अदीना परिचितिको पुत्र परम अद्भुत वायु सर्व्वत्र गमन और समस्त वस्तुओंको धारण करते हुए सदा बह रही है। उस प्रवहमान वायुके जरिये जो यह उत्तम पर्व्वत सहसा कम्पित हुआ, यही अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है। हे तात! यह वेद सर्व्वव्यापी विष्णुकी निश्वास-वायु है, यह जब वेगपूर्व्वक समीरित होकर ऊंचे स्वरसे पाठ किया जाता है, तब स्थावर जङ्गमात्मक जगत् व्यथित हुआ करता है। मूल पुरुषका निश्वास यदि सहसा उत्थित होकर कदाचित जगत्‌को संहार करे, इसहीसे सब कोई व्यथित होते हैं,—इसलिये वेद ज्ञान-सम्पन्न पुरुष प्रबल वायु बहनेके समय वेद नहीं पढ़ते, वेदरूप वायु वेगपूर्व्वक उच्चारित होनेपर सबके भयजनक होता है। पराशर पुत्र प्रभु व्यासदेवने यह सब वचन कहके कहा, 'हे पुत्र! अध्ययन करो'—ऐसा कहके उस समय आकाश गङ्गामें स्नान करनेके लिये गमन किया।

३२८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इतने ही समयके बीच महर्षि नारद स्वाध्याय-रत शुकदेवसे वेदका समस्त अर्थ पूछनेकी अभिलाषा करके आकाश मार्गसे उनके समीप उपस्थित हुए। शुकदेवने देव-ऋषि नारदको आया हुआ देखके अर्घ दान करके वेदोक्त विधिके अनुसार उनकी पूजा की। अनन्तर नारद मुनि आनन्दित होके प्रसन्नचित्तसे बोले, हे तात धार्म्मिक प्रवर! कहो, तुम्हें कैसे कल्याणसे संयोजित करूं? हे भारत! शुकदेवने नारद मुनिका वचन सुनके उत्तर दिया, इस लोकमें जो हितकर हो, आप मुझे उस ही कल्याणसे सम्पन्न करिये।

नारद मुनि बोले, पहले समयमें आत्मानुशीलन परायण तत्त्वजिज्ञासु ऋषियोंके निकट भगवान् सनत्कुमारने यह कथा कही थी, कि विद्याके समान नेत्र नहीं है, सत्यके समान तपस्या नहीं है, रागके समान दुःख नहीं है, और त्यागके समान दूसरा सुख नहीं है। पाप कर्म्मोंसे सदा निवृत्त रहना ही पुण्यशीलता है, सद्व्यवहार और सदाचार ही अत्यन्त उत्तम कल्याण है। असुखकर मनुष्य जन्म पाके जो पुरुष विषयासक्त होता है, वह मुग्ध हुआ करता है, विषयासक्त पुरुष कदाचित दुःख मोचन करनेमें समर्थ नहीं होता, वह केवल दुःखका ही लक्षणमात्र है। विषयासक्त मनुष्यकी बुद्धि मोह जालसे जड़ित होकर विचलित होती है। जो मनुष्य मोह जालमें छिपा रहता है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख भोग करता है। जो लोग कल्याणकी इच्छा करें, उन्हें चाहिये कि सब प्रकारसे काम और क्रोधको निग्रह करें, क्योंकि काम और क्रोध कल्याणको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ करते हैं। क्रोधसे सदा तपस्याकी रक्षा करें, मत्सरसे लक्ष्मीको बचावें, मानापमानसे विद्याकी रक्षा करे और प्रमादसे आत्म-रक्षा करनी चाहिये। अनृशंसता ही परम धर्म है,

क्षमा ही परम बल है, आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, और सत्यसे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है। सत्य कहना ही कल्याणकारी है, और हित वचन कहे; जो प्राणियोंके लिये अत्यन्त हितकर है, मेरे मतमें वही सत्य है। सब कार्य्योंके त्यागी, आशारहित और निष्परिग्रह होकर जिन्होंने सब विषयोंको परित्याग किया है, वेही विद्वान् तथा वेही पण्डित हैं। इस लोकमें जो लोग अपनी वशीभूत इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रिय विषयोंको सम्भोग करते हैं, और जो सब विषयोंमें आसक्ति रहित, शान्त-चित्त, निर्व्विकार और समाहित होते हैं, और आत्मभूत देहेन्द्रियोंके सहित उपस्थित रहके स्वतन्त्र भावसे विद्यमान रहते हैं, तथा देह आदिके सहित तदात्म रहित होकर केवल स्वरूप होते हैं, वे थोड़े ही समयमें मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करते है।

हे मुनि! जिसका जीवोंके सहित सदा दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण नहीं होता, वह परम कल्याण लाभ करता है। किसी जीवको हिंसा न करे, सबके सङ्ग मित्रताचरण करे, यह मनुष्य जन्म पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे। चित्त विजयी आत्मज्ञ लोगोंकी अकिञ्चनता, सन्तोष और निराशाल ही परम कल्याण है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते है। हे तात! परिग्रह परित्याग कर जितेन्द्रिय होके इस लोक और परलोकमें शोक रहित स्थानमें निवास करो। जिन लोगोंके भोग वस्तु नहीं है, वे शोक नहीं करते, इसलिये अपनी जो कुछ भोग्यवस्तु हो, उसे परित्याग करो। हे प्रिय दर्शन! भोग्यवस्तुओंके त्यागनेसे तुम पाप तापसे मुक्त होगे। जो लोग अजित विषयोंको जय करनेकी इच्छा करें, उन्हें तपस्यामें रत, दान्त, मौनव्रती संयतचित्त और सब आसक्ति-योंसे विमुक्त होना उचित है। जो लोग ब्राह्मण गुणोंमें आसक्त और सदा एकचर्य्यारत होता है, वह थोड़े ही समयके बीच परम सुख लाभ करता है। द्वन्द्वाराम प्राणियोंके बीच जो अकेला मौनी होकर क्रीड़ा करता है, उसे प्रज्ञान-तृप्त जानना चाहिये। जो ज्ञानसे तृप्त होता है, वह कदाचित् शोक नहीं करता। शुभ कर्म्मके जरिये देवत्व प्राप्त होता है, शुभा-शुभ मिश्रित कर्म्मके जरिये मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ करता है, और केवल अशुभ कर्म्मोंके जरिये अधम जन्म अर्थात् तिर्य्यग् योनिमें जन्म होता है। इस संसारमें जीव मृत्यु और जराके दुःखसे सदा पीड़ित होकर परिणामको प्राप्त होता है, उसे तुम क्यों नहीं अनुभव करते हो; अहित विषयोंमें हितज्ञ, अनिश्चल वस्तुमें ध्रुव ज्ञान सम्पन्न और अनर्थ विषयमें अर्थज्ञ होकर तुम क्यों नहीं प्रवुद्ध होते हो? जैसे कोषकार बहुतसे आत्मज सूत्रके जरिये बंधकर मोह वशसे अपनेको नहीं जान सकता, तुम भी उस ही प्रकार अपनेको बांधके जाननेमें अस-मर्थ होरहे हो; इस संसारमें परिग्रहका कोई प्रयोजन नहीं है, क्यो कि परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषवान हुआ करते हैं, जैसे कोष-कार कीट निज परिग्रह निबन्धनसे बद्ध होता है। जैसे तालावके कीचड़में फसके जङ्गल हाथी विशीर्ण होते है, वैसे ही स्त्री, पुत्र कुटुम्बी लोगोंमें आसक्त जीव अवसन्न हुआ करते है। जैसे बड़े जालके सहारे मछलि खिंच कर स्थलमें लाने पर दुःखी होती है, वैसे ही स्नेह-जालके जरिये आकर्षित जीवोंको अत्यन्त दुःखित देखो। कुटम्ब, पुत्र स्त्री, शरीर और धन सञ्चय आदि जो कुछ रहता है, परलोकमें जानेपर वह सब न रहेगा अपना सुकृत और दुष्कृत कर्म्ममात्र ही स्थायी होगा। सब वस्तु परित्याग कर अवश्य होवे जब तुम्हें गमन करना होगा, तब तुम क्यों अनर्थमें आसक्त होकर अपने प्रयोजनका अनु-ष्ठान करनेमें विरत होरहे हो। विश्रान्ति

रहित आलम्बनहीन, पाथेय वर्ज्जित, अदेशिक अन्धकारसे परिपूरित दुर्गम मार्गमें तुम अकेले किस प्रकारसे गमन करोगे? तुम्हारे प्रस्थान करनेपर कोई भी पश्चात् न जायगा, तुम्हारे गमन करनेपर केवल सुकृत और दुष्कृत कर्म्म तुम्हारा अनुगमन करेंगे। विद्या, कर्म्म, शौचाचार और बहुत वृहत् ज्ञान प्रयोजनका अनुसरण नहीं करते, परन्तु जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ है, वैसा पुरुष मुक्त होता है। ग्रामवासी लोगोंका अनुराग ही यह बन्धन-रस्सी है, सुकृतात्मा मनुष्य इस बन्धन-रस्सीको काटके गमन करते हैं और दुष्कर्म्मी पुरुष उसे नहीं काट सकते। रूप जिसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप, रस लहर, गन्ध कीचड़, शब्द जल, स्वर्ग नौका चलानेका दण्ड और जिसका धर्म्म दोरा आकर्षित करनेकी रस्सी है; वह सत्यमयी स्वर्गमार्ग दुरावहा त्यागरूपी वायुपथगामिनी शीघ्रतासे गमन करनेवाली नौकासे नदीसे पार होगा। धर्म्म अधर्म्मको परित्याग करो और सत्य तथा मिथ्याको छोड़ो, सत्यानृत दोनोंको छोड़के जिसके जरिये त्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो सङ्कल्पहीनतासे धर्म्मको परित्याग करो और अलिप्सा निवन्धनसे अधर्म्मको छोड़ो, बुद्धिके सहारे सत्य और मिथ्याको परित्याग करो और परमार्थ निश्चय निवन्धनसे बुद्धिको त्यागो। हड्डी, स्थूणा, स्नायुयुक्त मांस, रुधिर लिपटे हुए चर्म्मावनद्ध दुर्गन्धि, मूत्र-पुरीषसे पूरित जरा-शोकसे युक्त रोगका स्थान, रजोगुण प्रधान इस अनित्य भूतावास शरीरको परित्याग करो।

[illegible] स्थावर जङ्गमात्मक समस्त संसार और [illegible] महत्तत्त्व बुद्धि महाभूतमय वे पांचो [illegible], पञ्चप्राण और पञ्च इन्द्रिय तथा सत्त्व, [illegible] ये सत्रहों गुण सम्मिलित होकर [illegible] प्रकार परलोकगामी जीव अव्यक्त-[illegible] निर्णीत होता है। व्यक्त अव्यक्त संज्ञक शब्द स्पर्श आदि इन्द्रियोंके विषय और मन्तव्य, बोधव्य तथा अहङ्कर्त्तव्यके सहित मिलके व्यक्तमय चौबीस गुण हुआ करते हैं, जो इन सब गुणोंसे संयुक्त होता है उसका नाम पुरुष है। त्रिवर्ग, सुख, दुःख, जीवन, इन सबको जो यथार्थरूपसे जानता है, वही उत्पत्ति और लय किस प्रकारसे होती है, उसे जान सकता है। जानने योग्य विषयोंमें जो कुछ जानना होता है, उसे पारम्पर्य्यक्रमसे जानना उचित है। इन्द्रियोंके जरिये जिन जिन विषयोंका ज्ञान होता है, उन्हीं विषयोंको व्यक्त कहा जाता है और अतिन्द्रिय विषयोंको अव्यक्त जानना चाहिये। जीव सदा इन्द्रियोंके जरिये धारावाहिक क्रमसे तृप्त होता है। लोगोंमें आत्माको वितत और आत्मामें लोगोंको वितत अवलोकन करे, सब अवस्थामें सदा सर्व्व-भूत-दर्शी परावर द्रष्टाकी ज्ञानमूलक शक्ति उसे नहीं देखती। अशुभ कर्म्मोंके जरिये सब भूतोंका संयोग साधित नहीं होता; ज्ञानके जरिये जिन्होंने विविध मोहज क्लेशोंको अतिक्रम किया है, लोकमें बुद्धि प्रकाशके जरिये उससे लोकाचार हिंसित नहीं होता। आत्मामें अधिष्ठित अनादि निधन अव्यय जीवको योगोपायवित् भगवान अकर्त्ता और अमूर्त्त कहते हैं, जो लोग अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये सदा दुःखित होते हैं, वे दुःखको मिटानेके लिये अनेक प्रकारसे जीवहिंसा किया करते हैं। अनन्तर वे फिर नये नये दूसरे प्रकारके बहुतेरे कार्य्य आरम्भ करते हैं, आतुर पुरुषके अपथ्य भोजनकी भांति वे अन्धकार उसके जरिये दुःखित हुआ करते हैं मोहसे अन्धे मनुष्य सदा दुःखकर विषयोंमें सुख ज्ञान करते हैं, इसीसे वे सदा अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये मथने योग्य वस्तुकी भांति मथित और नष्ट हुआ करते हैं, अनन्तर वे लोग कर्म्मोंके बन्धनमें [illegible] होते हैं और [illegible]

बहुत दुःख सहते हुए चक्रकी भांति संसारमें घूमा करते हैं। तुम कर्म्मोंसे निवृत्त होके बन्धनसे छूटे हो, इसलिये सर्व्ववित और सर्व्वजित होके भावरहित होजाओ। तपोबलसे संयमके हेतु दृष्टिमात्रसे उत्पन्न बन्धनको अतिक्रम करके बहुतोंने बाधा रहित सुखोदय युक्त सिद्धि प्राप्त की है।

३२८ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मनुष्य अशोक होने वा शोकनाशके निमित्त शान्तिकर तथा कल्याणस्वरूप शास्त्रको सुनकर ज्ञान लाभ करता है और उस ही ज्ञानको पाके सुखी होता है। सहस्रों शोकके विषय और सैकड़ों भयजनक कार्य्य प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंको घेरते हैं, पण्डितोंके निकट वे प्रविष्ट नहीं हो सकते; इसलिये अनिष्ट नाशके लिये मेरे समीप एक इतिहास सुनो। यदि बुद्धि वशमें रहे, तो शोक नष्ट होता है, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य अनिष्टके संयोग और इष्ट वियोगसे मानस-दुःखोंमें आक्रान्त हुआ करते हैं। विषयोंके अतीत होनेपर उनके गुणोंकी चिन्ता करे, जो पुरुष उसमें समादर करता है, वह स्नेह-बन्धनसे नहीं छूटता जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न हो, उसमें दोषदर्शी होवे, अनिष्टको बढ़ते हुए देखके मनुष्य उस ही समय विरक्त होवे। जो पुरुष अतीत विषयोंकी अनुशोचना करता है, उसमें धर्म्म, अर्थ और यश कुछ भी नहीं रहता, इसलिये जो नहीं है, उसमें नि[illegible]ता न होवे, उस विषयकी चिन्ता करनेसे वह कभी प्रत्यावृत्त न होगा, जैसे सब भूत गुणोंसे युक्त होते हैं, वैसे ही वियुक्त हुआ करते हैं, सब विषय एक ही पुरुषके शोकास्पद नहीं होते। जो लोग मृत वा अतीत लोगोंके लिये शोक करते हैं, वे दुःखके जरिये दुःख लाभ करके दो प्रकारके अनर्थमें फँसते हैं। लोकके बीच विस्तार अवलोकन करके ज्ञानवान पुरुष आंसू नहीं बहाते; सम्यकदर्शी मनुष्योंके किसी विषयमें भी आंसू नहीं गिरते। शारीरिक वा मानसिक दुःखके अभिघात उपस्थित होनेपर जिसमें यत्न नहीं किया जा सकता; उस विषयमें चिन्ता करनी अनुचित है। दुःखके विषयकी चिन्ता न करनी ही दुःख-नाशकी महौषधि है। दुःखकी चिन्ता करनेसे दुःख दूर नहीं होता, बल्कि अत्यन्त बर्द्धित होता है। बुद्धिसे मानस दुःख और औषधिके जरिये शारीरिक दुःख दूर करे, विज्ञानकी यही सामर्थ्य है, इसलिये बालकके सदृश समान न होवे रूप, यौवन, जीवन, धनसञ्चय, आरोग्य और प्रिय सहवास, ये सभी अनित्य हैं, इसलिये पण्डित लोग उनकी आकांक्षा नहीं करते। साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, एकबारही उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि दुःखका उपक्रम दीख पड़े, तो उसके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारकी चेष्टा करे। इस जीवनमें सुखकी अपेक्षा निःसन्देह दुःख ही अधिक है। इन्द्रिय विषयोंमें मोह वशसे स्नेह प्रकाश करना ही मरणके समान अप्रिय है।

जो मनुष्य सुख दुःख दोनो ही परित्याग करता है, वह अत्यन्त सुख स्वरूप ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है, पण्डित लोग उसके लिये शोक नहीं करते। सब अर्थोंके त्यागनेसे दुःख होता है, उसकी रक्षा करनेमें भी कोई सुख नहीं है। अर्थ उपार्ज्जन करनेमें भी बहुत दुःख सहना होता है; इसलिये अर्थ नाशके विषयकी चिन्ता न करे, साधारण मनुष्य पृथक् पृथक् रूपसे विशेष विशेष धनकी अवस्था प्राप्ति पूर्व्वक तृप्त न होकर विध्वंस लाभ करते है और पण्डित लोग सन्तोष लाभ किया करते है, सब विषयोंका ही अन्त होता है, उन्नति होनेसे ही पतन होता है, संयोग होनेसे वियोग उपस्थित हुआ करता है और उत्पन्न होनेसे

अवश्य मरना होता है। प्यासका अन्त नहीं है तुष्टि ही परम सुख है; इसलिये पण्डित लोग सन्तोषको ही परम धन समझते हैं, गमनशील अवस्था निमेष भर भी नहीं ठहरती, जब कि अपना शरीर ही अनित्य है, तब कौन नित्य-विषयका अनुशीलन करेगा। ज्ञानी लोग सत्य-का अवलम्बन करके प्राणियोंकी सत्ताका विषय अनुशीलन करके परम गति दर्शन करते हुए मनके अतीत वस्तुओंके निमित्त शोक नहीं करते।

मनुष्यके काम भोगसे तृप्त न होकर विषय सञ्चय करते रहनेपर मृत्यु इस प्रकार उसे ग्रहण करके चल देती है, जैसे वाघ हरिनको पकड़ ले जाता है। जिससे दुःख दूर हो, वैसा उपाय अवलोकन करे, शोक रहित होकर कार्य्यारम्भ करे, मनुष्य मुक्त होनेसे ही दुःख रहित होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके उपभोगके अतिरिक्त और कुछ भी सुख नहीं देखा जाता। जैसे प्राणियोंका पहले संयोग रहते दुःख नहीं होता, वैसे ही प्रकृतिस्थ पुरुषोंके वियोगमें भी दुःख न करे। धीरजके सहारे शिश्न और उदरकी रक्षा करे, नेत्रके सहारे हाथ और पांवकी रक्षा करे, मनके सहारे आंख तथा कानकी रक्षा करे और विद्याके सहारे मन तथा वचनकी रक्षा करनी चाहिये, परिचित वा अपरिचित लोगोंमें स्नेह परित्याग करके अनुद्धत होकर जो विचरता है, वही सुखी और वही पण्डित है। जो अध्यात्ममें अनुरक्त होकर निरपेक्ष और निरामिषभावसे स्थित रहता है और आत्माको सहायक करके विचरता है, वही सुखी होता है।

२२० अध्याय समाप्त।

ब्यास मुनि बोले, जब मनुष्योंकी सुख-दुःखकी ... अर्थात् सुखमें दुःखबुद्धि और दुःखमें सुखबोध होता है, तब प्रज्ञा सुनीति अथवा पौरुष उसका परित्राण नहीं कर सकते, स्वभावके अनुसार यत्न करे, जो यत्न करता है, वह अवसन्न नहीं होता; प्रियशरीरका जरा मरण रोगसे उद्धार करे। दृढ़ धनुर्द्धरोंके जरिये प्रयुक्त चोखे बाणोंकी भांति शारीरिक और मानसिक रोग शरीरको दुःख देते हैं। प्यासके कारण व्यथित हुए युक्त जीनेकी इच्छा करनेवाले अवश मनुष्योंके विनाशके निमित्त शरीर अपकृष्ट होजाता है। जैसे नदियोंके स्रोत सदा बहते रहते हैं, कदाचित निवृत्त नहीं होते, वैसे ही रात और दिन मनुष्योंकी परमायुको ग्रहण करते हुए बार बार गमन करते हैं। शुक्ल और कृष्णपक्ष दोनोंके ये अत्यन्त पौर्व्वापर्य्य उत्पन्न हुए जीवोंको जराग्रस्त करते हैं, निमिषभर नहीं ठहरते हैं। यह अजर आदित्य जो बार बार अस्त होके फिर उदय होता है, वही प्राणियोंके सुखदुःखको जीर्ण करता है। रात्रि मनुष्योंके अदृष्टपूर्व्व अपरिशङ्कित इष्टानिष्ट भावोंको आदान करके अस्त हुआ करती है। पुरुषका कर्म्म यदि पराधीन न हो, तो जो पुरुष जिस वस्तुकी इच्छा करें, कामनाके अनुसार वह उसे प्राप्त कर सके, संयमशील दक्ष और बुद्धिमान मनुष्य सब धर्म्मोंसे रहित होनेसे निष्फल होते दीख पड़ते हैं और दूसरे निर्गुण अधम पुरुष मूर्ख तथा आशाहीन होके भी सब काम्यवस्तुओंको भोगते हुए दीख पड़ते हैं।

कोई पुरुष सदा जीवहिंसा करनेमें उद्यत और लोगोंको ठगनेमें अनुरक्त रहके सुखसे समय बिताते हैं और किसी पुरुषके कुछ चेष्टा न करके वैसे रहनेपर भी लक्ष्मी उनके निकट उपस्थित होती है, तथा कोई मनुष्य अपने कर्म्मके अनुसार पाने योग्य अर्थको भी नहीं पाते हैं; पुरुषके स्वभावके अनुसार अपराध ... करो। अन्यत्र उत्पन्न हुआ ... अन्यत्र गमन करता है वही एक योनिमें उत्पन्न होके गर्भ ... है,

कभी नहीं भी होता, उसकी उपलब्धि आमके बौरकी भांति जानी जाती है। कोई मनुष्य पुत्रकी कामना करते हुए सदा पुत्रोत्पत्तिके निमित्त सावधान रहते हैं, तोभी उनके सन्तान नहीं होती और किसी किसीके विषधर सर्पकी भांति गर्भसे व्याकुल होनेपर भी उनके आयुष्मान पुत्र उत्पन्न होता है। सन्तानकी इच्छा करनेवाले मनुष्य देवपूजा और तपस्या करके दीनभावसे दश महीना बिताते हैं, परन्तु उनका पुत्र उत्पन्न होके अन्तमें कुलाङ्गार होजाता है। दूसरे पिताके सञ्चित बहुतसे धन धान्यको पाके कुशलपूर्व्वक सम्बर्द्धित होते हैं। स्त्री पुरुषोंके परस्पर अभिप्रायके अनुसार मैथुनके समागम समयमें गर्भ उपद्रवकी भांति आविष्ट होके योनिलाभ करता है। प्राणरोध होनेपर भी जीव उस ही समय स्वर्ग नरकके बीज भूत मांस श्लेष्मसे युक्त स्थूल शरीरान्तरको प्राप्त होता है, मरनेके अनन्तर सद्य ही शरीरान्तरके सहित सम्बन्ध हुआ करता है, देहबन्धका कभी विच्छेद नहीं होता। जैसे जलमें नौकाको डूबती हुई देखके चढ़नेवालोंकी सहायताके लिये दूसरी नौका आके उपस्थित होती है, वैसे ही परिणामशील शरीरकोबिनष्ट होते देखके जीवके अवलम्बके निमित्त कर्म्मफल उस ही समय देहान्तरकी संयोजना कर देते हैं। सङ्गतिक्रमसे जठरमें पड़े हुए रेतबिन्दुको किस प्रकार यत्नके जरिये तुम जीवित गर्भ रूपसे देख रहे हो। जिस जठरमें पड़के खाने पीनेकी सब वस्तु जीर्ण होती हैं, उस उदरमें अन्नकी भांति गर्भ क्यों नहीं जीर्ण होता? गर्भमें मूत्र और मलकी भांति स्वभावसेही रुकी रहती है, गर्भ धारण करने वा छोड़नेमें कोई अचेतन न कर्त्ता नहीं है। उदरमें उत्पन्न गर्भस्राव हुआ करता है, और उस गर्भस्राव निवन्धनसे बहुतोंकी मृत्यु भी होजाती है।

इस योनि सम्बन्ध निवन्धनसे जो लोग बीज छोड़ते हैं, वे पुत्र कन्याके बीच किसी एक सन्तानको पाते हैं और फिर द्वन्द्वयोगसे संयुक्त होते हैं। अनादि प्रवाह सम्बन्धसे देहकी आयुनष्ट होते रहनेपर गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार पौगण्ड, यौवन, स्थविरता, जरा, प्राणरोध और नाश इन दो अवस्थाओंके बीच सातवीं दशा स्थविरता अर्थात् पुत्र दारा कुटुम्ब आदिको पालन करनेके लिये व्याकुलता और नवीं दशा प्राणरोध ये दोनों अवस्था पञ्चभूतोंमें ही प्राप्त हुआ करती है; आत्माका इसके सङ्ग कुछ भी संसर्ग नहीं है। मनुष्योंके अभ्युदयके विषयमें कुछ उपाय नहीं है, इसमें सन्देह-विरह है, क्यों कि व्याधके जरिये चुद्र हरिनोंकी भांति, ये व्याधिसे सदा दिक हुआ करते हैं। व्याधिसे पीड़ित होकर जिसे बहुत साधन परित्याग करना होता है, चिकित्सक लोग यत्नवान होके भी उनके मनके क्लेशको दूर नहीं कर सकते। निपुण वैद्य जो कि चिकित्सा कार्य्यमें दक्ष होके औषध-सञ्चय कर रखते हैं, वे भी व्याधके जरिये प्रपीड़ित हरिनकी भांति मृत्युसे आक्रान्त होते हैं। वे लोग कषाय रस और बिबिध घृत सेवन करके भी मतवाले हाथोके जरिये टूटे हुए वृक्षकी भांति जरा जीर्ण दीख पड़ते हैं।

इस पृथ्वीमण्डल पर रोगसे आर्त्त मृग पक्षी, श्वापद और दरिद्र मनुष्योंकी कौन चिकित्सा किया करता है, ये सब प्रायःपीड़ित नहीं होते। जैसे प्रबल पशु निर्व्वल पशुओंको आक्रमण करते हैं, वैसे ही सब रोग घोर दुराधर्ष उग्र तेजस्वी राजाओंको आक्रमण करके आदान किया करता है। इस ही भांति दुःखसे पीड़ित मोहशोकसे युक्त सब लोग स्रोतमें छोड़ी हुई वस्तुकी भांति बलवान कालके जरिये हृत होरहे हैं। स्वभावको निग्रह करनेमें नियुक्त होकर देहधारी लोग बहुतसे धन राज्य वा तपस्याके जरिये कदाचित स्वभावको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। अभ्युदयका फल

उदय होने पर सभी सर्व्वकामी होते हैं, न्हत या कोई नहीं होते और अप्रिय दर्शन नहीं करते सब ही लोगोंके ऊपर ऊपर गमन करनेकी इच्छा करते हैं, और शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, परन्तु वह घटना नहीं होती; अप्रमत्त, शठ, शूर और विक्रमी मनुष्य ऐश्वर्य्य मदसे मत्त और मद्यमदसे मतवाले मनुष्योंकी सब भांतिसे उपासना किया करते हैं। किसी किसी पुरुषके क्लेश अधर्मोचित होकर निवृत्त होते हैं, और कोई कोई मनुष्य प्रकृत रूपसे सब क्लेशोंको भोग किया करते हैं। कर्म्म फल भोगनेके विषयमें महत् फलकी विषमता देखी जाती है, कोई कोई पालकी उठाते हैं, कोई पालकीमें चढ़के चलते हैं। धनादिकाम मनुष्योंके बीच जिनके रथ घोड़े आदि अग्रसर होते हैं, वे स्वतन्त्र हैं। कोई कोई मनुष्य सौ स्त्रियोंसे युक्त होते और उनके यहां अनेक प्रकारकी सैकड़ों स्त्रियां भी वर्त्तमान रहती हैं, स्त्री पुरुष दोनोंके संसर्गसे जो सब और सन्तुष्ट होते हैं, उनके बीच मनुष्य लोग एक एक करके जिस स्थानमें गमन करते हैं, वह स्थान स्वतन्त्र है, यह अवलोकन करो; इस विषयमें मोह मत करो। धर्म्म और अधर्म्मको तथा सत्य और मिथ्या दोनोंको परित्याग करो, जिसके जरिये त्याग करते हैं, उसे भी त्याग दो। हे ऋषिसत्तम! देवताओंने जिसके सहारे मर्त्य लोकको त्यागके स्वर्गमें गमन किया है, तुम्हारे समीप मैंने उस ही परम गुप्त विषयको कहा है।

[illegible] बुद्धिमान् धीर शुकदेव नारद मुनिका वचन सुनके उसे अनुशीलन करते हुए निश्चय करनेमें समर्थ हुए। उनने विचारा, कि पुत्र-कलत्रादिके प्रतिपालनमें महान् क्लेश और [illegible] अत्यन्त परिश्रम है, इसलिये जिसमें [illegible] हो और सर्व्वोत्कृष्ट हो, ऐसा [illegible] है; अनन्तर धर्म्मके परा-

वरज्ञ शुकदेवने मुहूर्त्त भर तक अपने उपायके निश्चय करनेमें प्रवृत्त रहके निःश्रेयस सम्बन्धिनी परम गति को निर्णय की, मैं जिस प्रकार फिर इस योनि सङ्कर-सागरमें न लौटूं, असंश्लिष्ट अर्थात् सर्व्व उपाधिसे छूटकर किस प्रकार उस परम धाममें गमन करूंगा, जिस स्थानमें जानेसे फिर लौटना नहीं पड़ता सर्व्व सङ्ग परि-त्याग करके मनही मन उस ही उपायको निश्चय करते हुए मैं उस परम भावकी आकाङ्क्षा करता हूं। जिस स्थानमें मेरी आत्मा शान्ति-लाभ करेगी और मैं जिस स्थानमें अक्षय अव्यय और शाश्वतभावसे निवास करनेमें समर्थ हूंगा। उस ही स्थानमें गमन करूंगा, योगके विना वह परम गति नहीं मिल सकती, और बुद्ध पुरुषका कर्म्मके जरिये देहबन्ध कदापि साधित नहीं होता। इसलिये गृह-स्वरूप देह परित्यागके योग अवलम्बन करते हुए वायुस्व-रूप तेजोमय सूर्य्यमण्डलके बीच प्रवेश करूंगा। इस सूर्य्य मण्डलका मेघमण्डलकी भांति नाश नहीं होता और जैसे चन्द्रमा देवताओंके जरिये कम्पित होके पृथ्वीमें पतित होता है, तथा फिर आकाशमें चढ़ता है, सूर्य्य वैसा नहीं है, चन्द्रमण्डल क्षीण होके फिर परिपूर्ण होता है, इस ही प्रकार ह्रास वृद्धिको मालूम करके मैं उसकी आकाङ्क्षा नहीं करता। सूर्य्य सदा तीक्ष्ण किरणोंके जरिये सब लोगोंको सन्तापित करता है और सदा अक्षयम[illegible] रहके सब पदार्थोंसे तेज आकर्षण किया करता है। इस ही कारणसे दीप्त तेजस्वी आदित्यमण्डलमें गमन करनेकी मेरी रुचि होती है। इस शरीरको छोड़के दुर्द्धर्ष होकर [illegible] निःशङ्क चित्तसे सूर्य्यके स्थानमें वास करूंगा। ऋषियोंके सहित मैं अप्रमत्त [illegible] प्रविष्ट हूंगा। नाग, पन्नग, गन्धर्व, [illegible], [illegible], [illegible], दानव, गन्धर्व, पिशाच, [illegible] और [illegible]

ही आमन्त्रण करता हूं। मैं सूर्य्यमण्डलमें निःसन्देह प्रवेश करूंगा। ऋषियोंके सहित सब देवता मेरे योगबलको अवलम्बन करें।

अनन्तर शुकदेव लोक विख्यात नारद महर्षिसे अनुमति मांगके उनकी आज्ञासे पिताके निकट गये। शुकदेवने महानुभाव कृष्णद्वैपायनमुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिण करके अपना अभिलषित विषय पूछा। महात्मा व्यासदेव शुकदेवका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न होकर उनसे बोले, हे पुत्र! तुम इस समय उतनी देरतक निवास करो, जबतक कि तुम्हें देखके मेरे दोनों नेत्र प्रसन्न हों। शुकदेवने निरपेक्ष निःस्नेह और संशयरहित होकर मोक्ष विषयको सदा विचारते हुए गमन करनेमें मन लगाया। वह मुनिसत्तम पिताको परित्याग करके सिद्धोंसे सेवित कैलाशपर्व्वतके ऊपर जानेमें प्रवृत्त हुए।

३३१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! द्वैपायनपुत्र शुकदेव पहाड़के शिखरपर चढ़के निर्ज्जन तृणरहित समतल स्थलमें बैठे। उस क्रमयोगके जाननेवाले शुकदेवने चरण प्रभृति समस्त शरीरमें, शास्त्रमें कही हुई बिधिके अनुसार बुद्धिको धारण किया। अनन्तर सूर्य्यके उदय होते न होते विद्वान् व्यासपुत्र पूर्व्वकी ओर मुंह करके हाथ-पांव स्थिर कर बिनीतभावसे बैठ रहे। बुद्धिमान व्यासपुत्रने जिस स्थानमें योग करनेका उपक्रम किया, वहांपर पक्षियोंका संघात, शब्द वा उत्कट दर्शन योग्य विषय कुछ भी न था। उन्होंने उस समय सर्व्वसङ्गसे मुक्त आत्माका दर्शन किया। शुकदेव आत्मदर्शन करनेके अनन्तर हंसने लगे। मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये उन्होंने फिर योग अवलम्बन करके महायोगेश्वर होकर आकाश अतिक्रम करनेका उपक्रम किया। अनन्तर वह देवर्षि नारदको प्रदक्षिण करके उस परमर्षिसे निज योगका विषय निवेदन करने लगे।

शुकदेव बोले, हे तपोधन! मैंने पथ देखा और उस ही मार्गमें गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। हे महातेजस्वी! आपकी स्वस्ति होवे, मैं आपकी कृपासे अभिलषित स्थानमें गमन करूंगा।

भीष्म बोले, द्वैपायन पुत्र शुकदेवने नारद मुनिकी आज्ञा पाके उन्हें प्रणाम करके फिर योग अवलम्बन करते हुए आकाशमें आवेश किया। श्रीमान् शुकदेव आकाश चर और निश्चित वायुभूत होकर कैलास पर्व्वतके ऊपरसे उठके आकाशमें गमन करने लगे। विनता पुत्रके समान तेजस्वी, मन और वायुके तुल्य वेगशाली उस द्विजवरने जब आकाश मार्गमें गमन किया, उस समय सब कोई उन्हें देखने लगे। अनन्तर अग्नि और सूर्य्यके समान तेजसे युक्त शुकदेव सर्व्वात्मता निश्चयके जरिये तीनों लोकोंका विचार करते हुए दीर्घ पथको अवलम्बन करके गमन करने लगे। उनके अव्यग्र और अकुतोभय होकर एकाग्रचित्तसे गमन करते रहने पर जङ्गम जीव उनका दर्शन करने लगे। देवताओंने निज शक्तिके अनुसार न्यायपूर्व्वक उनकी पूजा करते हुए फूलोंकी बर्षासे उन्हें परिपूरित किया। गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द उन्हें देखके विस्मित हुए तथा सम्यक सिद्ध ऋषि लोग भी उन्हें देखके अत्यन्त बिस्मययुक्त होरहे। तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करके यह कौन पुरुष आकाशमें बिचरता है? सूर्य्यकी ओर दृष्टि करके निज शरीरके अधोभागको न देखकर हम लोगोंके नेत्रके आनन्दको बढ़ा रहा है, सिद्धगणोंके इस प्रकार वितर्क करते रहने पर तीनों लोकमें विख्यात् परम धार्म्मिक शुकदेव पूर्व्वकी ओर वाग्यत होके तथा सूर्य्यकी तरफ दृष्टि करके और शब्दसे

[illegible] मानो अखिल आकाश मण्डलको परि-पूरित करते हुए गमन करने लगे। हे राजन्! [illegible] आदि अप्सराओंने अत्यन्त उत्फुल्ल नेत्र और सम्भ्रान्तचित्त होकर सहसा उन्हें आकाश मार्गमें गमन करते हुए देखके अत्यन्त विस्मित हुई और सोचने लगीं, कि यह कौन देवता [illegible] गति अवलम्बन करके निस्पृह और निश्चित विमुक्तकी भांति इस स्थानमें आगमन कर रहा है। अनन्तर उर्व्वशी और पूर्व्वचित्ति अप्सरा जिस स्थानमें सदा निवास किया करती है, शुकदेव उस मलयपर्व्वतकी ओर गमन करने लगे। वे दोनों उस ब्रह्मर्षिपुत्रके प्रभावको देखकर अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगीं, [illegible] आश्चर्य है! वेदाभ्यासमें रत ब्राह्मणकी [illegible] प्राण समाधान हुआ है। ये पितृसेवासे [illegible] ही समयके बीच परम श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके चन्द्रमाकी भांति आकाश मण्डलमें विचर रहे हैं, वे पितृभक्त, दृढ़ तपस्वी और पिताके [illegible] हैं, इसलिये उस अनन्यचित्त पिताके [illegible] किस प्रकारसे विसर्ज्जित हुए। परम [illegible] शुकदेवने उर्व्वशीका वचन सुनकर [illegible] वचनमें ध्यान देके सब ओर देखा। वह [illegible] समय आकाशमण्डल, पहाड़, वन और [illegible] युक्त पृथ्वीतल, तलाव और नदि-[illegible] देखने लगे। अनन्तर चारों ओरसे देवता [illegible] बहुमान करके हाथ जोड़के द्वैपायनपु-[illegible] देखने लगे, परम धर्म्मज्ञ शुकदेव उस [illegible] देवताओंसे यह वचन बोले, कि [illegible] यदि शुक कहके आवाहन करते हुए [illegible] अनुगमन करें, तो आप सब कोई उन्हें [illegible] करके उत्तर देना। मेरे ऊपर स्नेह-[illegible] मेरे इस वचनको प्रतिपालन [illegible] शुकदेवका वचन सुनके वनके सहित [illegible] समुद्र और पहाड़ोंने चारों [illegible] उत्तर दिया। हे शिष्यवर! आदर [illegible] हम लोग उसे स्वीकार करते हैं, जब महर्षि आपको बात पूछेंगे, तो हम लोग उन्हें प्रत्युत्तर देंगे।

३३२ अध्याय समाप्त।

भीस बोले, महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेव ऐसा कहके चार प्रकारके दोष अर्थात् मोक्ष-प्रतिबन्धक धर्म्मज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य मदको त्यागके सिद्धिमार्गमें प्रस्थान किया। बुद्धिमान शुकदेवने आठ प्रकारके पुर्य्यष्टक संज्ञक लिङ्ग शरीर परित्याग करके पांच प्रकारके रज अर्थात् शब्द स्पर्श आदि पांचो विषयोंके प्रवर्त्तक वासनामय रजोगुणको परित्याग किया, अनन्तर सत्त्व अर्थात् शुद्धिके जरिये सर्व्वत्याग करके, जिसके सहारे सर्व्वत्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो, नारद मुनिके इस उपदेशके अनुसार सतोगुणको भी परित्याग किया, वह मानो अद्भुत मालूम हुआ। अनन्तर वह प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी भांति नित्य निर्गुण लिङ्गवर्ज्जित आदित्यान्तर्य्यामी परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हुए। उस महापुरुषके उपरम समयमें जगत्के दुर्भाग्य सूचक उल्कापात, दिशादाह और भूमिकम्प होने लगा, वह भी अद्भुत मालूम हुआ। वृक्षोंकी शाखा और पर्व्वतोंका शिखर टूट टूट गिर पड़ी। हिमालय पहाड़ निर्घात् शब्दके जरिये मानो विदीर्ण हुआ। सहस्र किरणधारी सूर्य्य प्रकाशित न हुए। अग्नि देव भी प्रज्वलित न रहे; तालाव, नदी और समुद्र क्षुब्ध हुए। देवराज इन्द्र उस समय सुगन्धित जल बरसाने लगे। दिव्य सुगन्धियुक्त पवित्र वायु बहने लगी।

हे भारत! जिस समय शुकदेव मुनि हिम-[illegible] और [illegible] थे, उस समय उन्होंने उत्तर दिशाको अवलम्बन करके [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

शिखरमें प्रथम सौ योजन लम्ब मनोहर दिव्य दो शृङ्गोंको संश्लिष्ट देखा था। जब वह अविस्मृत्तचित्तकर वहांसे ऊपरको उठे, तब सहसा वे दोनों शृङ्ग अलग अलग होके दीख पडे। हे महाराज! वे उस समय अद्भुत रूपसे मालूम हुए थे। वह उस पहाड़की दोनो शिखरों परसे सहसा चले गये, उक्त गिरिराजने उनको गतिको न रोका, अनन्तर आकाश मण्डलमें देवताओंका अत्यन्त महान् शब्द प्रकट हुआ था। हे भारत! शुकदेवके प्रातिक्रान्त और शैल शृंगोंके द्विधा होनेपर शैलवासी गन्धर्व्व और ऋषियोंका "धन्य धन्य" शब्द सुनाई देने लगा। हे महाराज! उस कालमें गमन करनेके समय शुकदेव मुनि देवता, गन्धर्व्व ऋषि, यक्ष, राक्षस और विद्याधरोंसे पूजित हुए थे। आकाश मण्डल सब प्रकारसे दिव्य फूलोंके जरिये परिपूरित हुआ था। अनन्तर धर्मात्मा शुकदेवने ऊपरको ओर गमन करते हुए फूलोंसे युक्त बन और रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखा। इस नदीमें अप्सरावृन्द शून्याकारसे शुकदेवको देखकर वस्त्र रहित होके क्रीड़ा करनेमें ही अनुरक्त थीं। शुकदेवको प्रशान्त जानके पिता व्यासदेवने स्नेहयुक्त होके उत्तम गति अवलम्बन कर पुत्रके पश्चात् गमन करते हुए उसका अनुसरण किया इधर शुकदेवने वायु लोकके ऊर्द्ध भागमें आकाश गतिको अवलम्बन करके निज प्रभाव प्रदर्शित करते हुए ब्रह्मत्व लाभ किया। महा तपस्वी व्यासदेव दूसरी भांतिके महायोग युक्त गति अवलम्बन करके उठे और निमिष भरके बीच उस स्थान पर आके उपस्थित हुए, जहांसे शुकदेवने गमन किया था। वहां देखा कि शुकदेवने पर्व्वतकी शिखरको द्विधा करके गमन किया है; उस समय ऋषियोंने उनके पुत्रके उस कार्य्यको उनके समीप वर्णन किया। अनन्तर पिता व्यासदेव ऊंचे स्वरसे "शुक" इस दीर्घ शब्दके जरिये तीनों लोकोंको अनुनादित करते हुए रोने लगे। धर्म्मात्मा शुकदेव उस समय सर्व्वमुख और सर्व्वात्मा हुए थे; इसलिये उन्होंने 'भो' शब्दके जरिये अनुनाद करते हुए प्रत्युत्तर दिया। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् एकाक्षरनाद 'भो' इस शब्दको ऊंचे स्वरसे उच्चारण करके प्रत्युत्तर दिया। तभीसे अबतक उच्चारण किये हुए पृथक् पृथक् शब्दके अनुसार शुकके निमित्त सभी प्रत्युत्तर दिया करते हैं। शुकदेवने उस समय शब्द आदि विषयोंको परित्याग करते हुए निज प्रभाव प्रदर्शित किया और अन्तर्हित होकर परमपद पाया।

व्यासदेव अत्यन्त तेजशाली पुत्रको उस महिमाको देखकर उसहीको सदा चिन्ता करते हुए पहाड़को शिखर पर बैठ रहे। अनन्तर मन्दाकिनीके किनारे जो सब अप्सरा क्रीड़ा कर रही थीं, वे सब उस मुनिसत्तमको देखके अत्यन्त भयभीत और लज्जित हुईं, कोई जलमें ही बैठ रही, कोई गुल्म लताकी आड़में खड़ी होगईं, किसी किसीने शीघ्रताके सहित पहरनेका वस्त्र ग्रहण किया। उसे देखके महर्षिने निज पुत्रकी मुक्तता तथा अपनी सक्तता जानके प्रसन्न और लज्जित हुए। इतने ही समयमें देव गन्धर्व्वोंसे घिरे हुए महर्षियोंसे पूजित भगवान पिनाकपाणि महादेव उनके सम्मुख प्रकट हुए। महादेव उस पुत्र-शोकसे दुःखी द्वैपायन मुनिको धीरज देके बोले, कि पहले तुमने मेरे समीप अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके सदृश वीर्य्यवान पुत्र मांगा था, तुम्हारे वैसे ही लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न होके तपस्यासे सम्वर्द्धित हुआ और मेरी कृपासे ब्रह्म तेजमय तथा पवित्र हुआ था। हे विप्रर्षि! उसने अजितेन्द्रिय देवताओंसे भी दुष्प्राप्य परम गति पाई है, इसलिये तुम उसके लिये क्यों शोक करते हो; जब तक सब पर्व्वत विद्यमान रहेंगे, जब

जब समुद्र वर्त्तमान रहेगा, तबतक पुत्रके सहित तुम्हारी अक्षयकीर्त्ति होगी। हे महामुनि! मेरी कृपासे तुम इसलोकमें सब प्रकारसे अनपायिनी निज पुत्रकी सदृशी छाया देख सकोगे।

हे भारत! महामुनि द्वैपायन स्वयं भगवान् रुद्रदेवसे अनुनीत होके पुत्रकी छाया देखके परम हर्षके सहित वहांसे लौटे। हे भरतर्षभ! तुमने मुझसे जो पूछा था, यह मैंने तुम से शुकदेवके जन्म वृत्तान्तको विस्तारके सहित कहा है। हे राजन्! पहले समयमें देवर्षि नारद और महायोगी व्यासदेवने कथा प्रसङ्गसे मेरे निकट इस विषयको वर्णन किया था। जो लोग शमपरायण होके इस मोक्षधर्म्मयुक्त पवित्र इतिहासको धारण करेंगे, वे परमपद प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे।

३३२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और सन्न्यासी, इनके बीच जो [illegible] सिद्धि अवलम्बनकी अभिलाष करें, उन्हें कौनसे देवताकी पूजा करनी चाहिये। किसकी कृपासे इन्हें अनावृत्तिफलक स्वर्ग मिलेगा और किस प्रकार परम कल्याण प्राप्त होगा। देव और पितर कर्म्ममें कौन सी विधिके अनुसार आहुति देनी होगी, मुक्त होनेपर किस स्थानमें जाना होगा। मोक्ष किस प्रकार होती है, स्वर्ग जाकर ऐसा कौनसा कार्य्य करे, जिसके [illegible] फिर च्युत होना न पड़े। देवताओंका देवता कौन है। पितरोंका पिता कौन है, और उससे भी श्रेष्ठ और कौन है; [illegible] इन्हें ही वर्णन करिये।

[illegible] हे, हे अनघ! तुम प्रश्नवित होकर [illegible] मुझसे जिस गूढ़ प्रश्नका विषय पूछते [illegible] अनुग्रह वा ज्ञानागमके [illegible] भी [illegible] नहीं कहा जा सकता। हे शत्रुनाशन महाराज! इस कठिन आख्यानको भी तुम्हारे समीप व्याख्या करना मुझे उचित बोध होता है। प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और नरनारायण ऋषिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं।

हे महाराज! पहले समयमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें विश्वात्मा सनातन नारायण चार मूर्त्ति धारण करके धर्म्मात्मज रूपसे प्रकट हुए, मेरे समीप पिताने इस विषयको कहा था, कि नर-नारायण, हरि तथा कृष्ण इस चतुर्व्यूह स्वायम्भूभावसे उत्पन्न हुए, तिसमेंसे अव्यय नर और नारायणने बदरिकाश्रमको अवलम्बन करके शकटके समान पर प्रिरणीय मायामय शरीरसे निवास करते हुए तपस्या की थी। उस लोकप्रसिद्ध शरीरस्वरूप शकटको आठ प्रकारकी अविद्या चक्रकी भांति ढोया करती है, वह पञ्चभूतोंसे युक्त और मनोरम है। जिस शकटमें अधिष्ठित होकर आदि पुरुष लोकनाथ नरनारायण तपस्यासे कृश और धमनि-सन्ततिके जरिये आवृत्त होकर देवताओंके भी दुर्निरीक्ष्य हुए थे। वे जिसके ऊपर कृपा करते थे, वह उनकी अनुमतिके अनुसार अन्तर्यामीके जरिये प्रेरित होकर निश्चय ही उन दोनोंका दर्शन करनेमें समर्थ होता था। उस ही समय महामेरु पर्व्वतकी शिखरसे उतरकर महर्षि नारद गन्धमादन पर्व्वत पर्य्यन्त सब लोकोंमें भ्रमण कर रहे थे।

हे महाराज! शीघ्रगामी देवर्षि नारद नर नारायण ऋषिके [illegible] यज्ञादिके समय [illegible] बदरिकाश्रममें उपस्थित हुए, देव, असुर, गन्धर्व्व, किन्नर और महोरगोंके [illegible] लोक जिसमें प्रतिष्ठित है, [illegible] निवास स्थान है। [illegible] बहुत [illegible] हुआ। [illegible]

लिये चार प्रकार होकर धर्म्म आदिके जरिये विशेष रूपसे वर्णित हुई है। कैसा आश्चर्य है। नर-नारायण, कृष्ण और हरि, इन चारोंके जरिये इस समय धर्म्म अनुगृहीत हुआ है। कृष्ण तथा हरि किसी कारणान्तर निबन्धनसे धर्म्म प्रधान होकर स्थिति करते हैं, और ये दोनों तपोनिष्ठ होरहे हैं। ये परम तेजस्वी सब भूतोंके पिता और यशस्वी देवता हैं, इसलिये इनका उपासना कर्म्म क्या है? ये दोनों महाबुद्धिमान कौनसे देवता तथा पितर लोगके बीच किसकी पूजा करेंगे। महर्षि नारद मनही मन ऐसीही चिन्ता करते हुए नारायणमें भक्ति वशसे उस समय सहसा उन दोनों महात्माओंके सम्मुख प्रकट हुए। नर-नारायणने देव और पितृकार्य्यको पूरा करके नारदकी ओर देखा और देखते ही शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार उनकी पूजा की। भगवान् नारद ऋषि अपूर्व्व विधि विस्तर और महत् आश्चर्य्य अवलोकन करके उनके निकट बैठे। वह प्रसन्न अन्तःकरणसे महादेव नारायणको देखके उन्हें नमस्कार करके यह बचन बोले।

नारद मुनि बोले, हे देव! समस्त पुराणके सहित साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंके बीच तुम अज, नित्य, धाता और अनुत्तम अमृत रूपसे सम्मत तथा वर्णित होते हो; भूत-भविष्यत और यह समस्त जगत् तुममें प्रतिष्ठित है। गार्हस्थ्यमूलक चारों आश्रमवाले अनेक मूर्त्तियोंके अवलम्बसे तुम्हारी पूजा किया करते हैं। तुम समस्त जगत्‌के पिता, माता और शाश्वत गुरु हो; इस समय तुम कौनसे देवता तथा किस पिताकी पूजा करते हो, इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मन्! यह आत्मगुह्य सनातन विषय अवक्तव्य होनेपर भी तुम्हारी भक्तिमत्तासे कहना उचित समझके तुम्हारे समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करता हूं। जो दुर्लक्ष्य, अविज्ञेय अव्यक्त अचल और शाश्वत है; जो इन्द्रियविषयों और सब भूतोंसे रहित है; वही जीवोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित होता है, वही त्रिगुणातीत पुरुष रूपसे कल्पित हुआ करता है। हे द्विज सत्तम! उसहीसे त्रिगुणात्मक अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है; जो व्यक्त न होनेपर भी व्यक्त भावसे निवास करता है, वही अव्यया अर्थात् अपरिणामवती प्रकृति है। जो सत्ता स्वयं अव्यक्त अर्थात् घट पट आदि व्यक्त पदार्थोंमें सत्स्वरूपसे विद्यमान होरही है, वही प्रकृति है; उसे ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण जानो और जो सदसदात्मक अर्थात् निष्कल भावसे सत् असत् कार्य्योंके कारण है, उसकी कल्पनाके अधिष्ठानत्व निबन्धनसे तदात्मक है, उसे ही हम देव और पितर कल्पना करके पूजा करते हैं। हे द्विज! उससे बढके परम देव तथा परम पिता दूसरा कोई भी नहीं है, वही हम लोगोंको आत्मा है, इस ही लिये उसकी हम पूजा किया करते हैं। हे ब्रह्मन्! उसहीसे यह लोकभाविनी मर्य्यादा प्रसिद्ध हुई है, 'देव और पितृ कर्म्म करना चाहिये' यही उसकी आज्ञा है। ब्रह्मा, स्थाणु मनु, दक्ष, भृगु धर्म्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान, सोम, कर्द्दम, क्रोध, अर्व्वाक और क्रीत, ये इक्कीस प्रजापति उससे उत्पन्न हुए हैं और ये सभी उस परम देवताकी सनातनी मर्य्यादाका सम्मान किया करते हैं। उसके उद्देश्यसे देव और पितृ कर्म्म सदा करना योग्य है,—इसे यथार्थ जानके उत्तम द्विज लोग उसकी कृपासे आत्मज्ञान पाते हैं। स्वर्गवासी शरीरधारी जीव भी उसे नमस्कार करते हैं और वे लोग उसकी कृपासे तदादिष्ट गति पाते हैं। जो लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दशों इन्द्रिय इन सत्तरहों गुण और कर्म्मसे रहित हैं, यह निश्चय है, कि वे पन्द्रह कला अर्थात् स्थूल शरीर परित्याग

करके मुक्त हुआ करते हैं। हे ब्रह्मन्! मुक्त मनुष्योंकी गति चिवस्त है, वह सब गुणोंसे युक्त और निर्गुण रूपसे कहा जाता है और ज्ञान-योगके द्वारे दीख पड़ता है। हम दोनों उसीसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जानके उसी सना-तन आत्माकी पूजा किया करते हैं। वेद तथा धर्म्मके समाश्रित सब आश्रमवाले भक्तिपू-र्व्वक इसकी पूजा करते हैं और वह शीघ्र ही उन लोगोंको सद्गति प्रदान करता है। इस लोकमें जो लोग सद्भावसे युक्त होकर ऐका-न्तिकी भक्ति करते हैं, वे परिणाममें उसमें ही प्रवेश किया करते हैं। हे नारद! यह शुभ वृत्तान्त तुम्हारे समीप कहा गया। हे विप्रर्षि! मेरे ऊपर भक्ति और प्रीति करनेसे तुमने सह-स्रमें इसे सुना है।

३३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, द्विपदोंमें श्रेष्ठ महर्षि नारद पुरुषोत्तम नारायणका ऐसा वचन सुनके सब प्राणियोंके हितके अवलम्बन द्विपदोंमें वरिष्ठ नारायणसे फिर वक्ष्यमाण रीतिसे यह वचन कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे लोकनाथ! आपने स्वयम्भू होकर भी जिस निमित्त धर्म्मके स्थानमें चार रूपसे जन्म ग्रहण किया, उस लोक हित-कर कार्य्यको सिद्ध करिये। अब मैं आपकी [illegible] प्रकृतिका दर्शन करनेके लिये गमन करता हूं। मैं सदा गुरुजनोंकी पूजा किया करता हूं, पहिले कभी दूसरेके गुप्त विषयको [illegible] किया, वेदोंको भली भांति पढ़ा है, [illegible] रीतिसे तपस्या की है, तथा [illegible] मिथ्या वचन नहीं कहा है। हाथ, [illegible] और उपस्थ, इन चारोंको शास्त्रके [illegible] मैं सदा शत्रु-मित्रमें [illegible] आदिदेवके निकट शरणा-गत हुआ हूं और सदा एकान्त भावसे उसकी ही प्रार्थना किया करता हूं। इन सब कार्य्योंसे परिशुद्ध-सत्त्व होके भी मैं किस निमित्त अन्त रहित ईश्वरका दर्शन करनेमें असमर्थ होरहा हूं। नित्य धर्म्मकी पालन करनेवाले नाराय-णने विधातृपुत्र नारदका ऐसा वचन सुनके यत्नके सहित उनका विधिपूर्व्वक सम्मान करके गमन करनेके लिये आज्ञा दी।

अनन्तर नारद मुनि उस प्राचीन नारायण ऋषिकी पूजा करके उनके समीपसे विदा हुए और योगयुक्त होकर आकाशमें उठे और सहसा सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने उस गिरिशृङ्गके निर्ज्जन स्थानपर पहुंचके मुहूर्त्त भर वहां निवास किया। वहां स्थित होके वायुकोनकी ओर देखते देखते नीचे कहे हुए अद्भुत पदार्थको देखा, क्षीरोद-धिके ऊपरतरफ श्वेत नामसे विख्यात जो विशाल द्वीप है, वह सुमेरु पर्व्वतके मूल स्थानसे बत्तीस हजार योजन ऊंचा है, यह कवियोंके जरिये निश्चितरूपसे वर्णित हुआ है। वहांपर स्थूल शरीरकी आसक्तिसे रहित, शब्द आदि विषय योगसे हीन, निश्चेष्ट, परमात्माके ध्यानमें रत शुद्धसत्त्व प्रधान पुरुष निवास करते हैं। वे सब पापोंसे रहित हैं और तेजस्विता निबन्धनसे पापी मनुष्योंके नेत्रको मोषण किया करते हैं, वे वज्रके समान हड्डी और शरीर सम्पन्न हैं। मान अपमानको समान जाननेवाले दिव्य रूप-शाली और योगप्रभावजनित बलसे युक्त हैं। उनके मस्तक छत्रके समान हैं, उनका शब्द बादल गर्ज्जनके समान है, वृषण और पाद [illegible] रहित हैं, [illegible] रेखाओंसे युक्त हैं, उनके [illegible] [illegible] [illegible]

कालमय विश्ववक्षकी पायसकी भांति तेहन करते हैं। जिससे सब लोग उत्पन्न हुए हैं और जिससे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, सब वेद, धर्म, शान्त स्वभाववाले मुनि और देवता लोग जिसके वशमें स्थित हैं; उन लोगोंने भक्तिके जरिये उसही देवको हृदयमें व्यक्त किया है।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम। वे श्वेत-द्वीप निवासी पुरुष किस प्रकार निरिन्द्रिय निराहार, निश्चेष्ट और परमात्म-ध्यान-परायण हुए थे तथा उन लोगोंकी उत्तम गति किस प्रकारकी है; जो सब मनुष्य इस लोकमें मुक्त होते हैं, उनका जैसा लक्षण है, श्वेत द्वीपवासी पुरुषोंका भी वैसा ही लक्षण है; इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप मेरा सन्देह दूर करिये। आपलोही सब कथा आश्रय करती हैं, हम भी आपका आश्रय कर रहे हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्। यह वृत्तान्त बहुत बिस्तीर्ण है मैंने अपने पिताके निकट इसे सुना था। तुम्हारे समीप जो कहना होगा, वह सब कथाके बीच साररूपसे सम्मत हुआ है। पहले समयमें उपरिचर नाम पृथिवीके स्वामी एक राजा थे, वह देवराजके सखा और नारायणके भक्तरूपसे विख्यात् थे। वह धार्म्मिक सदा पितृभक्त और निरालस थे, इसीसे नारायणके वरप्रभावसे उन्होंने साम्राज्य पाया था। वह सब भूतोंके अहिंसक सत्यपरायण राजा प्रथम पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकार ज्ञान-विधिके अनु-सार सूर्य्यमुखनिःसृत भगवान विष्णुकी पूजा की, अनन्तर शेष बची हुई वस्तुओंसे पितरोंकी तृप्तिका विधान किया, पितरोंके तर्पणके अन-न्तर बची हुई सामग्रीके जरिये ब्राह्मणोंको सुविभागकर आश्रितोंको भोजन कराके सबके पीछे बचे हुए अन्नका स्वयं भोजन करते थे। वह आदि मध्य और अन्त रहित लोककर्त्ता अविनाशी देवोंके देव जनार्दनके विषयमें सब प्रकारसे भक्तिमान थे। वह शत्रुनाशन राजा नारायणमें अत्यन्त भक्ति करता था, इसीसे देव-राज उसे अपने साथ एक ही आसनपर बैठाते थे। निज राज्य, धन, स्त्री और वाहन आदि जो कुछ था, उस राजाने भगवानके उद्देश्यसे उन सब वस्तुओंको समर्पण किया था।

हे राजन्। वह राजा सावधान होकर काम्य और नैमित्तिक यज्ञीय कार्य्योंको सात्वत विधिके अनुसार निबाहता था। पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकारके ज्ञान सम्पन्न मुख्य मुख्य महानु भाव ब्राह्मण उसके स्थानमें भगवत् प्रोक्त उप-हारके सहित उत्तम भोज्य-सामग्रियोंको भोजन करते थे, उस शत्रुनाशन राजाके धर्म्मानुसार राज्यशासन करते रहनेपर उसका बचन कदापि मिथ्या नहीं हुआ और मन भी कभी किसी दोषके जरिये दूषित नहीं हुआ। उसने शरीरके जरिये अणुमात्र भी पाप कार्य्य नहीं किया। चित्र-शिखण्डि नाम जो सप्तऋषि बिख्यात् हैं, उन सबने एकवाक्य होकर महा-गिरि सुमेरुके ऊपर जिस श्रेष्ठ शास्त्रको बनाया वह सात मुखके जरिये बाहर होके अत्यन्त उत्तम लोक धर्म्म रूपसे बिख्यात् हुआ है। मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी बसिष्ठ, ये सात, पुरुष चित्र-शि-खण्डि नामसे महत् अहङ्कार आदि मूर्त्ति धारण करके सप्त प्रकृति रूपसे बिख्यात् हैं। स्वायम्भुव मनु आठवें हैं, ये मूल प्रकृति कहाते हैं, इन सबने लोकोंको धारण किया है और इन्होंसे शास्त्र प्रकट हुए हैं। एकाग्रचित्त, दांत 'संयममें रत' वर्त्तमान, भूत, भविष्यत, सत्य धर्म्म परायण इन मुनियोंने यही श्रेष्ठ है, यही ब्रह्म है, यही अनुत्तम हितकर है, मनही मन ऐसा विचार करके सब लोकों और शास्त्रोंको बनाया है। उस शास्त्रमें धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषय बर्णित है। द्युलोक और भूलोकमें बिख्यात् त्रिविध मर्य्यादा भी स्थापित हुई है।

[illegible] उत्पन्न हुए सब लोग उन ऋषियोंके [illegible] दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त तप [illegible] करके सर्व्वभूत संयोगी नारायण हरिकी आराधना करके उनके सहारे अनुशासित हुए हैं। उस समय सब लोकोंकी हितकामनासे सरस्वती देवीने उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रवेश किया था।

अनन्तर उन तपोवित् द्विजातियोंने शब्द, अर्थ और हेतु विषयमें इस प्रथम सृष्टिके लिये मर्य्यादा प्रवर्त्तन किया। जिस स्थानमें कारु-णिक नारायण निवास करते थे, पहले ऋषि-योंने उसपर ओंकारस्वर पूजित उस शास्त्रको उन्हें सुनाया। तब अनिर्द्दिष्ट शरीरगामी अदृश्य पुरुषोत्तम भगवान प्रसन्न होकर उन ऋषियोंसे बोले, सब लोकके धर्म्म जिससे प्रवृत्त हैं, इस ही प्रकारसे यह अत्यन्त उत्तम लक्ष श्लोकरचित हुई है। ये लोकमें प्रवृत्ति और निवृत्ति हेतुसे ऋक्, यजु, साम, अथर्व तथा आङ्गिरस वेदके जरिये सेवित होगी। मैंने प्रमाणके अनुसार दयासे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्रको उत्पन्न किया है, तुम लोग [illegible] प्रकृति सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि नक्षत्रसमूह अथवा भूत शब्दसे जो कुछ मालूम होता है, उसके सहित ब्रह्मवादी [illegible] यथार्थ रूपसे निज निज अधिकारमें वर्त्त-मान रहेंगे। प्रमाणके अनुसार यह शास्त्र ही [illegible] होगा और मेरी यह आज्ञा सबको [illegible] होगी। स्वायम्भुव मनु स्वयं इस [illegible] धर्म्म वर्णन करेंगे। उशना और वृह-[illegible] उत्पन्न होंगे, तब वे दोनों तुम [illegible] उद्धृत इस शास्त्रके [illegible] बोलेंगे।

हे [illegible] ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मनु [illegible], शुक्राचार्य्य और वृहस्प-[illegible] शास्त्रोंका सब लोकोंमें प्रचार [illegible] बृहस्पतिके निकट तुम लोगोंके बनाये हुए इस शास्त्रको पावेगा। वह सदभिप्रायशाली राजा मेरा भक्त होगा, वह लोकके बीच उस ही शास्त्रके अनुसार सब कार्य्योंको निबाहेगा। सब शास्त्रोंके बीच लोकमें यही सबसे उत्तम है, यह अर्थ और धर्म्म जनक तथा श्रेष्ठ रहस्यरूप गिना जावेगा। इस शास्त्रके प्रवर्त्तन हेतुसे तुम लोग प्रजावन्त होगे, प्रजापाल वसु राजा इस शास्त्रके प्रभावसे महान् और श्रीसंयुक्त होगा। उक्त राजाके इस लोकसे गमन करने पर यह शास्त्र अन्तर्हित होगा, यह सब वृत्तान्त मैंने तुम लोगोंके समीप वर्णन किया।

अदृश्य पुरुषोत्तमने इतनी बात कहके उन ऋषियोंको त्यागके किसी अनिर्द्दिष्ट दिशाको ओर प्रस्थान किया। अनन्तर सर्व्वलोकार्थ चिन्तक वे पितर लोग ऊपर कहे हुए धर्म्म योनि सनातन शास्त्रका लोकमें प्रचार करने लगे। प्रथम कल्पित-युगमें अङ्गिरासे वृहस्पति उत्पन्न हुए, उनके समीप सांग उपनिषत् शास्त्र स्थापित करके सर्व्व धर्म्म प्रवर्त्तक सब लोकोंको धारणकरनेमें समर्थ सप्तर्षियोंने तपस्या करनेका निश्चय करके यथाभिलषित देशमें गमन किया।

३३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महाकल्पके [illegible] जब अंगिराके पुत्र वृहस्पति उत्पन्न होके देव-ताओंके पुरोहित हुए, उस समय देवताओंने निवृत्ति लाभ की। हे राजन्! बृहत्, ब्रह्म और महत्, ये सब शब्द एक ही पर्य्यायवाची हैं, इसलिये बृहत्, ब्रह्म और महत् गुणसे युक्त उनका नाम बृहस्पति हुआ। वह [illegible] ही समयमें अत्यन्त [illegible] होगये। राजा उप-रिचर वसु उनके प्रधान शिष्य थे, उन्होंने पहिले समय चित्रशिखण्डियोंके शास्त्रके [illegible] [illegible], राजा उपरिचर वसु [illegible] [illegible]

अनुसार शुद्धसत्त्व होकर इन्द्रके सुरलोक पालन करनेकी भांति अखण्ड भूमण्डलको पालन किया था। उस महानुभाव राजाने अश्वमेध नाम महत् यज्ञका अनुष्ठान किया। उपाध्याय बृहस्पति उस यज्ञमें होताका कार्य्य निर्व्वाह करनेके लिये व्रत हुए। प्रजापतिके पुत्र महर्षि एकत, द्वित और त्रित, ये तीन पुरुष सदस्य हुए थे। अनन्तर धनुषाख्य, रैभ्य, अर्व्वावसु, मेधातिथिऋषि, महर्षि ताण्ड्य, शान्ति ऋषि, महाभाग वेदशिरा, ऋषिश्रेष्ठ कपिल शालिहोत्र-पिता, आद्य, कठ, तैत्तिरि, वैशम्पायन, पूर्व्वज कण्व और देवहोत्र ये सोलह ऋषि उस यज्ञमें दीक्षित हुए थे। हे राजन्! उस महायज्ञमें सब यज्ञकी सामग्री इकट्ठी की गई थी, उक्त यज्ञमें पशुहिंसा नहीं हुई थी, राजा यजमान होकर अत्यन्त श्रद्धावान था। वह अहिंस, पवित्र, अक्षुद्र और निराशी होकर सब कार्य्योंमें संस्तुत हुआ था। आरण्यक स्थानोद्भूत सब भाग उसमें कल्पित हुए थे। अनन्तर देवोंके देव भगवान्ने अन्य पुरुषोंके लिये अदृश्य होकर केवल राजाके ऊपर प्रसन्नता निबन्धनसे उसे स्वयं दर्शन दिया और निज यज्ञभाग पुरोडासको आघ्राण करके स्वयं ग्रहण किया। भगवान् हरिमेधा नारायणके अदृश्य होकर यज्ञभाग ग्रहण करनेसे बृहस्पति क्रुद्ध होकर स्रुवा उठाके वेगपूर्व्वक दौड़े। वह स्रुवासे आकाशमें आघात करते हुए क्रोधवश होकर आंसू बहाने लगे, और उपरिचर राजासे बोले, यह उपस्थित यज्ञभाग मेरे सम्मुखमें निःसन्देह स्वयं नारायणको ग्रहण करना होगा।

युधिष्ठिर बोले, इस यज्ञमें उपस्थित सब यज्ञभाग साक्षात् देवताओंके जरिये प्राप्त हुआ था, परन्तु सर्व्वभूत संयोगी हरि किस निमित्त नेत्र गोचर न हुए?

भीष्म बोले, अनन्तर भूमिपाल उपरिचर और दूसरे सदस्यगण क्रोधयुक्त बृहस्पति मुनिको प्रसन्नकरके सबने असम्भ्रान्त होकर उनसे कहा, कि आपको क्रोध करना उचित नहीं है। आपने जो क्रोध प्रकाश किया, वह सत्ययुगका धर्म नहीं है। हे बृहस्पति! जिसका यज्ञभाग उठ गया है, वह देवता क्रोधी नहीं है। आप अथवा हम लोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं। वह जिसके ऊपर कृपा करे, वही उसका दर्शन करनेमें समर्थ होसकता है। अनन्तर एकत, द्वित, त्रित और चित्रशिखण्डिगण उनसे बोले, कि हम प्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्ररूपसे विख्यात् हैं; और किसी समय हम लोगोंने निःश्रेयस लाभके निमित्त उत्तर दिशामें गमन किया, वहां सहस्र वर्षतक क्लेश सहके श्रेष्ठ तपस्याचरण करते हुए स्थिर होकर काठकी भांति एक चरणसे खड़े रहे। हमने जिस स्थानमें महादारुण तपस्या की थी, वह स्थान क्षीरोदसागरके किनारे सुमेरुके उत्तर तरफ है। हम वरदाता वरण्य देवोंके देव सनातन नारायणका किस प्रकार दर्शन करेंगे, किस उपायसे नारायण देवको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे, इस ही प्रकार चिन्ता करते हुए, जब व्रत समाप्त होनेपर, स्नान किया उस समय प्रहर्षणकारी अशरीरिणी वाणी कोमल और गम्भीर स्वरसे सुन पड़ी,—हे विप्रवृन्द! तुम लोगोंने प्रसन्न अन्तःकरणसे उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तुम लोग भक्त हो और किस प्रकार नारायणका दर्शन करोगे, उस विषयके जिज्ञासु हुए हो, इसलिये क्षीरसागरके उत्तर भागमें महाप्रभावयुक्त श्वेतद्वीप है, वहांपर चन्द्रमाके समान तेजसे युक्त नारायणमें रत मनुष्य एकान्त भावसे पुरुषोत्तममें भक्ति करके निवास करते हैं, श्वेतद्वीप निवासी सब पुरुष अतिन्द्रिय, निराहार, अनिस्पन्द, अत्यन्त भक्तिनिष्ठ और परमात्माके ध्यानमें रत हैं, वे लोग सनातन देव सहस्रार्चि

नारायणमें प्रवेश किया करते हैं । हे मुनिवृन्द ! इसलिये तुम लोग वहां ही जाओ, उस स्थानमें मेरा स्वरूप प्रकाशित है ।

अनन्तर हम लोग उस अशरीरिणी वाणीको सुनके यथा-प्रसिद्ध मार्गको अवलम्बन करके उस देशमें गये । जब हम लोग नारायणका ध्यान करते हुए उनके दर्शनकी इच्छासे उस महाद्वीपमें पहुंचे, तब वह हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए और नयनगोचर होते ही उस समय अन्तर्द्धान होगये । उनके तेजोप्रभावसे हम लोगोंकी दर्शनेन्द्रिय आच्छन्न होगई, इससे फिर हम उस पुरुषको न देख सके; किन्तु उनके दक्षिण दर्शन निबन्धनसे हम लोगोंमें दिव्यज्ञान उत्पन्न हुआ । जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे लोग सहसा उसे नहीं देख सकते, इससे हम लोगोंने एक सौ वर्षतक उस समयके अनुसार महत् तपस्या करके व्रत समाप्त होनेपर शुभाचार पुरुषोंको देखा; वे लोग चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण, सब लक्षणोंसे युक्त होके सदा हाथ जोड़के ऊर्द्ध मुख अथवा कोई कोई पूर्व ओर मुख करके जप कर रहे हैं । वे महात्मा लोग जो जप करते थे, उसका नाम मानस जप है, जैसी एकाग्रचित्तता निबन्धनसे नारायण प्रसन्न होते हैं, हे मुनिवर ! युग क्षयके समय सूर्यकी जैसी प्रभा होती है, उनमेंसे हर एककी वैसी ही प्रभा थी । हमने विचारा, कि यह द्वीप तेजका आधार है । उस द्वीपके निवासी मनुष्योंके बीच सभी समानतेजस्वी थे, कोई किसीसे अधिक तेजस्वी न दीख पड़े ।

हे वृहस्पति ! अनन्तर हमने फिर युगपत उदय हुए सहस्र सूर्य्योंकी प्रभाकी तरह निरीक्षण किया; अनन्तर वे समस्त मनुष्य हर्षित होके हाथ जोड़कर नमः शब्द उच्चारण करते हुए एक ओर जाने लगे । वे [illegible] महा विपुल ध्वनि सुनने लगी । अनन्तर उन मनुष्योंने उस देवकी पूजाका उपहार लाके उपस्थित किया, हम लोगोंके नेत्रकी ज्योति और इन्द्रियोंके अवसन्न होनेसे कुछ भी न दीख पड़ा । एक मात्र विततरूपसे उच्चारित शब्द ही हमें सुनाई देने लगा । हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम्हारी जय हो, हे विश्वभावन ! तुम्हें नमस्कार है, हे हृषीकेश महापुरुष ! हे पूर्व्वज ! तुम्हें नमस्कार है । शिक्षाचर युक्त इस ही शब्दको हम लोग सुनने लगे । उस समय सर्व्वगन्धवह पवित्र वायु-दिव्य पुष्पों और कर्म्मयोग्य औषधियोंसे युक्त होकर बहने लगा । उन अत्यन्त निष्ठायुक्त पञ्चकालज्ञ परम भक्तिमान मनुष्योंने वचन, मन, कर्म्मके जरिये नारायणकी पूजा की । उन लोगोंने जिस प्रकार वचन उच्चारण किया, बोध होता है, उस हरिके अनुसार वहां पर नारायण प्रकट हुए, परन्तु हम लोग उनकी मायासे मोहित होकर उन्हें देखनेमें समर्थ न हुए । हे अङ्गिरस प्रवर ! वायुके सम्यक् निवृत्त और पूजाका उपहार प्रतिपादित होनेपर हम लोगोंका चित्त चिन्तासे व्याकुल हुआ । उन शुद्धयोनि सहस्र मनुष्योंके बीच किसीने मन अथवा दर्शनके सहारे हम लोगोंका सम्मान नहीं किया । एक भावसे युक्त शान्त मुनियोंने ब्रह्मत्वका अनुष्ठान करते हुए हम लोगोंके विषयमें कोई भाव प्रकाशित न किया । अन्तमें जब हम लोग अत्यन्त थक गये और तपस्याके जरिये कर्षित हुए, तब आकाशसे कोई अशरीर भूत हमसे ऐसे कहा हुआ, [illegible] यह सब इन्द्रियोंसे रहित श्वेत-वर्ण पुरुष दीखते हैं, इन [illegible] द्वारा यह देवेश [illegible] दर्शन [illegible] है । हे मुनिवृन्द ! तुम लोग जिस स्थानसे आये [illegible] वहां ही [illegible] [illegible] [illegible]

अत्यन्त भक्तिनिष्ठ होने पर प्रभा-मण्डलके सहारे उस दुर्द्दर्श भगवानका तुम लोग दर्शन करनेमें समर्थ होगे; इसलिये तुम लोगोंको महत् कार्य्य करना होगा। हे विप्रवृन्द! इसके अनन्तर सत्ययुगके बीतने और विपर्य्यस्त होने पर वैवस्वत मन्वन्तरमें त्रेतायुगके प्रारम्भसमय देवताओंकी कार्य्य-सिद्धिके निमित्त तुम लोग सहाय होगे। अनन्तर हम लोग उस अमृत समान अद्भुत बचनको सुनके उनकी कृपासे शीघ्र ही अनुभिलषित स्थानमें चले आये। इस प्रकारकी कठोर तपस्या और हव्य कव्य प्रदान करने पर भी जब हम लोग ही उस देवका दर्शन न कर सके, तब तुम किस प्रकारसे उसके दर्शन करनेमें समर्थ होगे। विश्वस्रष्टा हव्य-कव्य भोक्ता महत् भूत अनादि-निधन अव्यक्त नारायण देव दानवोंसे पूजित हैं, इस-लिये उनका दर्शन करनेके लिये पुण्यपुञ्जकी आवश्यकता है। उदार बुद्धि बृहस्पतिने इस ही प्रकार एकतके बचन तथा हितके मतानुसार सदस्योंसे अनुनीत होकर यज्ञको समाप्त करके देवताओंकी पूजा की। राजा उपरिचर वसु यज्ञ समाप्त होनेपर प्रजापालन करने लगे। अनन्तर उन्होंने ब्रह्मशापद्वारा स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रवेश किया था। हे नृपश्रेष्ठ! वह सत्य-धर्म्मयुक्त सदा धर्म्मानुरागी राजा भूमिके अन्तर्गत होनेपर भी नारायण-परायण होकर नारायण मन्त्रको जपते हुए उनकी कृपासे फिर स्वर्गमें गये। उन्होंने नारायणमें निष्ठानिबन्धनके कारण पृथ्वीतलसे थोड़े ही समयके बीच ब्रह्मलोकमें जाकर परम पद पाया।

३३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि महात्मा राजा उपरिचर वसु परम भागवत थे, तब किस लिये वह स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए।

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें प्राचीन लोग ऋषिवृन्द और देवताओंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। यज्ञ करना होगा, अज शब्दसे बकरा जानना चाहिये, अन्य पशु नहीं; यही वैदिकी मर्य्यादा है।

ऋषिवृन्द बोले, यज्ञके समय 'बीजके जरिये त्याग करें' यही वैदिकी श्रुति है। बीजहीका नाम अज है, इससे बकरा मारना उचित नहीं है। हे देववृन्द! यज्ञमें पशुवध करना साधुओंका धर्म्म नहीं हैं, यह सत्ययुग सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसमें किस प्रकार पशुहिंसा होसकती हैं।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार देवताओंके सङ्ग ऋषियोंका विवाद होते रहने पर आकाशचर नृपश्रेष्ठ समग्रबल वाहनसे युक्त श्रीमान् राजा उपरिचर वसु उस स्थानमें उपस्थित हुए। द्विजातिवृन्द उस आकाशगामी वसुको सहसा गमन करते हुए देखके देवताओंसे बोले, यही राजा हम लोगोंके सन्देहको दूर करेगा, महात्मा वसुने बिधिपूर्व्वक यज्ञ किया है, यह दानपतिश्रेष्ठ और सर्व्वभूतोंके हितप्रिय है, इसलिये यह किस प्रकार अन्यथा बचन कहेगा। देवताओं और ऋषियोंने ऐसा ही विचारके सहसा उस वसुराजके निकट जाके पूछा, हे राजन्! अज अथवा औषधि इन दोनोंमेंसे किस बस्तुके सहारे यज्ञ करना चाहिये। आपका बचन हम लोगोंके समीप प्रमाण स्वरूपसे माना जायगा। राजा उपरिचर वसु हाथ जोड़के उन लोगोंसे बोले, हे द्विजोत्तम-गण! आप लोगोंके बीच किसका क्या मत है, उसे सत्य कहिये।

ऋषिवृन्द बोले, हे नराधिप! धान्यके जरिये यज्ञ करना चाहिये, यह हम लोगोंका पक्ष है, और देवताओंका पशुके जरिये ही यज्ञ करना मत है। हे राजन्! इन दोनों मतोंके बीच आपको जो सम्मत हो, उसे हम लोगोंके समीप प्रकट करिये।

भीष्म बोले, उपरिचर वसुने देवताओंका [illegible] उनके पक्षको अवलम्बन करके [illegible] यज्ञ करना उचित है, ऐसा ही [illegible]। अनन्तर सूर्य्यके समान तेजस्वी [illegible] मुनियोंने क्रुद्ध होकर देव-पक्षपाती विमा- [illegible] वसुसे कहा, हे राजन्! तुमने जिस [illegible] देवताओंका पक्ष ग्रहण किया है, उस [illegible] निमित्त स्वर्गसे गिरो और आजसे तुम्हारी [illegible] गति विनष्ट हुई। हमारे शापसे तुम पृथ्वीतल भेद करके उसमें प्रवेश करोगे।

हे राजन् उस समय उस ही मुहूर्त्तमें राजा उपरिचर वसुने नीचे गिरके भूविवरमें प्रवेश किया, परन्तु नारायणकी आज्ञावशसे स्मृति [illegible] परित्याग नहीं किया। इधर देवता [illegible] इकट्ठे होकर उक्त उपरिचर वसुके शाप [illegible] करनेके निमित्त अव्यग्र भावसे चिन्ता [illegible], यह उक्त राजाके सुकृतका फल [illegible] महानुभाव राजा हमारे लिये शाप- [illegible] हुआ है। हे देववृन्द! इसलिये हम [illegible] इकट्ठे होके इसका प्रत्युपकार करना [illegible]। देवता लोग इस विषयमें उद्योगी हो [illegible] निश्चय करके प्रसन्नचित्तसे उपरिचर [illegible] बोले, हे राजन्! तुम ब्राह्मण और देवता- [illegible] करते हो, इसलिये सुरासुरगुरु [illegible] अत्यन्त प्रसन्न होकर शाप विमोचन [illegible] हे नृपवर! महानुभाव ब्राह्मणोंका [illegible] करना योग्य है, उन लोगोंके [illegible] अवश्य उसका फल प्राप्त होगा। [illegible] कि तुम सहसा आकाशसे [illegible] गिरे हो, तब हमलोग [illegible] अनुग्रह करेंगे। हे निष्पाप! [illegible] सूर्य्यके छिद्रमें वास [illegible] हमारे अनुग्रह निबन्धनसे [illegible] होमे हुए वसुधारा पान करोगे, [illegible]

वरमें निवास करनेके समय तुम्हें भूख प्यास न लगेगी, वसुधारा पान करनेसे तुम तेजपुञ्जके जरिये परिपूरित होगे। हमारे वर-प्रभावसे भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें ब्रह्मलोकमें ले जायगे। उन देवताओंने इस ही प्रकार राजाको वरदान करके निज निज स्थानपर गमन किया और महा तपस्वी ऋषियोंने भी निजाश्रमको प्रस्थान किया।

हे भारत! अनन्तर उपरिचर वसुने विश्वक्सेन भगवान्‌की पूजा की और सदा नारायण मुखोच्चारित मन्त्रका जप करने लगे। वह भूविवरमें वास करके भी पञ्च महाकालमें पञ्च यज्ञके जरिये सुरपति हरिकी पूजा करते थे। अनन्तर भगवान नारायण उस अनन्यभक्त, जित चित्त हरिपरायण राजाकी भक्तिसे प्रसन्न हुए, वरदाता भगवान विष्णु उस समय निकटवर्त्ती महावेगशाली विहङ्गवर प्रियपात्र गरुड़से बोले, हे महाभाग खगेश्वर! मेरे वचनके अनुसार अवलोकन करो। संशितव्रत धर्म्मात्मा वसु नाम सम्राट् ब्राह्मणोंके कोपसे पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुआ है। हे खगवर! अब ब्राह्मण लोग उसके जरिये सम्मानित हुए हैं, इसलिये तुम मेरी आज्ञाके अनुसार उस भूविवरमें छिपे हुए राजाके निकट गमन करो। हे गरुड़! तुम उस पक्षवर राजाको शीघ्र ही नभचर करो। अनन्तर वायुके समान वेगशाली गरुड़ने दोनों पङ्ख फटकारते हुए जिस स्थानमें उपरिचर निवास करते थे, उस पृथ्वीविवरमें प्रवेश किया [illegible] गरुड़ सहसा उन्हें उठाके [illegible] आकाशमें उड़े और उन्हें आकाशमें परित्याग किया, उस ही मुहूर्त्तमें वह राजा फिर [illegible] हुआ और [illegible] गमन किया। हे [illegible]! [illegible] [illegible] [illegible]

आराधना करके थोड़ेही समयके बीच दिगभा-पसे कूटसे ब्रह्म लोकमें गये।

भीष्म बोले, हे नृपवर। जिस प्रकार मनुष्य-गण उत्पन्न हुए थे वह सब तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया। महर्षि नारदने जिस प्रकार श्वेत द्वीपमें गमन किया था, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो।

३३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भगवान् महर्षि नारदने श्वेत महाद्वीपमें पहुंचके उन सफेदवर्ण चन्द्रमा समान मनुष्योंको देखा और सिर नीचा करके उन लोगोंको पूजा की; फिर उनके जरिये मन-हीमन पूजित होकर नारायणका दर्शन कर-नेके अभिलाषी होकर जपपरायण और समस्त कृच्छ्रसाध्य व्रत करते हुए स्थित रहे। वह विप्र-वर एकाग्रचित्त समाहित और ऊर्द्ध बाहु होकर निर्गुण और गुणात्मक विश्वात्माकी स्तुति करने लगे।

नारद मुनि बोले, हे देवोंकेदेव! तुम जीवोंके अन्तर्यामी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम सर्व्वव्यापकत्व-निबन्धनसे निष्क्रिय हो; असङ्गत्व हेतुसे निर्गुण हो, उदासीन बोधरूप होनेसे लोकसाक्षी हो, देहद्वयके प्रकाशक जीव हो, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाते हो; शरीर और जीवेशसे ज्यायान होनेसे पुरुषोत्तम हो, देशकाल तथा यथार्थ में परिच्छेद रहित होनेसे अनन्त हो। स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके जलानेवाले होनेसे पुरुष हो, समष्ठि स्थूल शरीर आदिके दाहक हो, इसलिये महा पुरुष कहाते हो, अन्नमयादि पुरुषोंके बीच उत्तम अर्थात् सत्य ज्ञान और आनन्द स्वरूप होनेसे पुरुषोत्तम हो सत्त्व, रज और तमोरूप तथा त्रिगुण, तीनों गुणोंके सङ्घात रूप होनेसे प्रधान हो। तुम अमृत अर्थात् सुधा स्वरूप हो और अमृताख्य अर्थात् देवरूपी हो; अनन्ताख्य अर्थात् शेषनाग स्वरूप हो, तुम अव्याकृताख्य होनेसे व्योम हो; अनादि होनेसे सनातन हो; कार्य्य और कारण रूपसे व्यक्त तथा अव्यक्त हो, ऋतधाम अर्थात् सत्यप्रकाश हो; आदिदेव नारायण और कर्म्म फलदाता हो, इसही कारण वसुप्रद कहाते हो; तुम दक्ष आदि प्रजापति स्वरूप हो, मोक्षोपदे-शक सनकादि सुपति स्वरूप हो, अश्वत्थ प्रभृति वनस्पति स्वरूप हो। तुम महा प्रजापति अर्थात् चतुर्मुख स्वरूप हो। तुम ब्रह्मादि जीव रूपसे पशुओंके पति हो, इसलिये ऊर्ज्जस्पति कहाते हो। वाक्यके प्रवर्त्तक होनेसे वाचस्पति हो। तुम जगत्पति अर्थात् इन्द्र स्वरूप हो, मनस्पति अर्थात् सूत्रात्मा हो, दिवस्पति सूर्य्य स्वरूप हो, मरुत्पति प्राणवायु स्वरूप हो, जलपति वरुण स्वरूप हो, तुम्हीं पृथ्वीपति राजा हो, दिक्पति इन्द्र आदि दिक्पाल स्वरूप हो; अर्थात् महाप्रलयकालमें जगतके आधार होनेके पूर्व्वनिवास हो; अप्रकाश्य हो इसलिये गुह्य कहाते हो; ब्रह्माको वेद प्रदान किया है इसलिये ब्रह्म पुरोहित हो; ब्राह्मण शरीर साध्य यज्ञ और अध्ययनादि स्वरूप हो, इस निमित्त ब्रह्मकायिक कहाते हो, महारा-जिक नामक देवगण विशेष और चतुर्महारा-जिक, महाभास्वर, सप्त महाभाग अर्थात् सप्त संख्यक महत् यज्ञभाग स्वरूप हो। तुम यम-गण हो इसलिये याम्य कहाते हो; तुम चित्त-गुप्तादिरूप होनेसे महायाम्य कहे जाते हो; यमपत्नीमें आसक्त होनेसे संज्ञासंज्ञ हो; तुम तुषित और महातुषित देवगण स्वरूप हो; मृत्यु स्वरूप होनेसे प्रतर्द्दन कहाते हो; मृत्युकी सहायताके जरिये कल्पित काम रोगादि स्वरूप हो, इसीसे परिनिर्म्मित कहाते हो, तदन्य शम अर्थात् आरोग्य स्वरूप होनेसे अपरिनिर्म्मित हो; कामादि ग्रस्त न होनेसे वशवर्त्ती हो; शमादिमान हो, इसलिये अपरिनिन्दित कहाते

[illegible] आतीय स्वरूपोंमें अनन्त हो, इसीसे [illegible]नन्त कहाते हो; तुम शास्य होनेसे वश-[illegible] हो, और शास्ता हो, इसलिये अवशवर्त्ती कहाते हो। तुम अग्निहोत्र आदि यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ आदि महायज्ञ, यज्ञ सम्भव ऋत्विक आदि [illegible]निविद, यज्ञगर्भ अग्नि और यज्ञ हृदय [illegible] यज्ञादि उपासना स्वरूप हो। तुम यज्ञ [illegible], यज्ञभाग हर पञ्च यज्ञ हो और अहो-रात्र, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर इस पञ्च-[illegible]त्वस्वरूपसे जो गीतामें प्रसिद्ध हैं, तुम [illegible] पति हो, इसलिये पञ्चकाल कर्त्तृपति [illegible] हो, पञ्चरात्र नाम आगमगम्य होनेसे [illegible] पाञ्चरात्रिक हो। तुम अकुण्ठित हो, इससे [illegible] वैकुण्ठ कहाते हो; किसीके निकट [illegible] न होनेसे अपराजित हो। तुम मान-[illegible]धिक हो, इससे मानसिक कहाते हो और [illegible] विदित रहनेसे तुम्हारे नाम नामक हो [illegible] भी प्रभु हो, इसीसे परस्वामी [illegible] हो, तुमने वेद व्रत समाप्त किया है, [illegible] तुम्हारा नाम सुस्नात है। तुम विदग्ध-[illegible] हो, इसीसे हंस और परमहंस नाम है; [illegible] होनेसे महाहंस कहाते हो, तुम [illegible] सांख्ययोग और सांख्य मूर्त्तिस्व-[illegible] हो। तुम लोकमात्रमें शयन कर रहे हो; [illegible] नाम है; हृदयमें शयन करनेसे [illegible] हो, इन्द्रियोंमें शयन करनेसे देवे-[illegible] हो, समुद्रके जलमें शयन किया [illegible] हो, इसलिये कुशेशय हो, वेदके बीच [illegible] हो इससे ब्रह्मेशय नाम है, ब्रह्मा-[illegible] हो, इसीसे पद्मेशय कहाते हो, [illegible] ईश्वर होनेसे [illegible] हो, [illegible] पालन करनेसे [illegible] [illegible] तुम्हारा नाम [illegible] [illegible] तुम्हारा [illegible] है। [illegible] हो, तुम ही [illegible]

प्रकृति हो; अग्नि तुम्हारा ही मुख स्वरूप है, तुम्हीं वाड़वामुख अग्नि स्वरूप हो, तुम्हीं आहुति और सारथि अग्निरूप हो, तुमही वषट्-कार तुम्हीं ओंकार, तुम ही जप हो; तुम ही मन और चन्द्रमा हो, तुम ही आवेक्षणके जरिये संस्कृत यज्ञीय हवि स्वरूप हो। तुम ही सूर्य्य तुम्हीं दिग्गज, तुम्हीं दिग्भानु और तुम ही विदिग्भानु हो। तुमही हयशिरा, तुम्हीं तैत्ति रीय उपनिषदमें पठित प्रथम त्रिसुपर्ण मन्त्र अर्थात् आदित्यदेवत जगत्कर्त्ता हो, इस ही लिये प्रथम त्रिसौपर्ण कहाते हो, तुमने ब्राह्मण आदि वर्णोंको धारण किया है, इसीसे तुम्हारा नाम वर्णधर है। तुम गार्हपत्य, दक्षिण, आव-हनीय, सभ्य और आवसथ्य—पञ्चाग्नि स्वरूप हो। नाचिकेत नाम अग्निको तीन बार जिसने चयन किया है, तुम वही त्रिनाचिकेत-संज्ञक हो, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन षडङ्ग निधान वेद स्वरूप हो। तुम प्राग् ज्योतिष और ज्येष्ठ सामग नामक सामगान स्वरूप हो; तुमने सामगोंके व्रतको धारण किया है, इससे सामिक व्रतधर हो। तुम अथर्वशिरा नाम उपनिषत् रूप हो, सौर, शाक्त, गाणपत्य शैव और वैष्णव, इन पञ्चागमसे प्रतिपाद्य हो, इस ही निमित्त पद महाकल्प कहाते हो। तुम ही फेनपाचार्य, वालखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग और [illegible] सार हो। तुम ही युगादि, युगमध्य, युगनिधन आखण्डल प्राचीन इन्द्र हो, तुम्हीं प्राचीनगर्भ और कौशिकमुनि स्वरूप हो, तुम [illegible] स्तुत होते हो, इसीसे तुम्हारा नाम पुरु-ष्टुत है। तुम [illegible]

आराधना करके थोड़ेही समयके बीच द्विजशा- पसे छूटके ब्रह्म लोकमें गये।

भीष्म बोले, हे नृपवर। जिस प्रकार मनुष्य- गण उत्पन्न हुए थे वह सब तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया। महर्षि नारदने जिस प्रकार श्वेत द्वीपमें गमन किया था, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो।

३३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भगवान् महर्षि नारदने श्वेत महाद्वीपमें पहुंचके उन सफेदवर्ण चन्द्रमा समान मनुष्योंको देखा और सिर नीचा करके उन लोगोंकी पूजा की; फिर उनके जरिये मन- हीमन पूजित होकर नारायणका दर्शन कर- नेके अभिलाषी होकर जपपरायण और समस्त कृच्छ्रसाध्य व्रत करते हुए स्थित रहे। वह विप्र- वर एकाग्रचित्त समाहित और ऊर्द्ध बाहु होकर निर्गुण और गुणात्मक विश्वात्माकी स्तुति करने लगे।

नारद मुनि बोले, हे देवोंकेदेव! तुम जीवोंके अन्तर्य्यामी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम सर्वव्यापकत्व-निबन्धनसे निष्क्रिय हो; असङ्गत्व हेतुसे निर्गुण हो, उदासीन बोधरूप होनेसे लोकसाक्षी हो, देहद्वयके प्रकाशक जीव हो, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाते हो; शरीर और जीवेशसे व्यायान होनेसे पुरुषोत्तम हो, देशकाल तथा यथार्थ में परिच्छेद रहित होनेसे अनन्त हो। स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके जलानेवाले होनेसे पुरुष हो, समष्टि स्थूल शरीर आदिके दाहक हो, इसलिये महा पुरुष कहाते हो, अन्नमयादि पुरुषोंके बीच उत्तम अर्थात् सत्य ज्ञान और आनन्द स्वरूप होनेसे पुरुषोत्तम हो सत्त्व, रज और तमोरूप तथा त्रिगुण; तीनों गुणोंके सङ्घात रूप होनेसे प्रधान हो। तुम अमृत अर्थात् सुधा स्वरूप हो और अमृताख्य अर्थात् देवरूपी हो; अनन्ताख्य अर्थात् शेषनाग स्वरूप हो, तुम अव्याकृतात्मा होनेसे व्योम हो; अनादि होनेसे सनातन हो; कार्य्य और कारण रूपसे व्यक्त तथा अव्यक्त हो, ऋतधाम अर्थात् सत्यप्रकाश हो; आदिदेव नारायण और कर्म्म फलदाता हो, इसही कारण वसुप्रद कहाते हो; तुम दक्ष आदि प्रजापति स्वरूप हो, मोक्षोपदे- शक सनकादि सुपति स्वरूप हो, अश्वत्थ प्रभृति वनस्पति स्वरूप हो। तुम महा प्रजापति अर्थात् चतुर्मुख स्वरूप हो। तुम ब्रह्मादि जीव रूपसे पशुओंके पति हो, इसलिये ऊर्जस्पति कहाते हो। वाक्यके प्रवर्त्तक होनेसे वाचस्पति हो। तुम जगत्पति अर्थात् इन्द्र स्वरूप हो, मनस्पति अर्थात् सूत्रात्मा हो, दिवस्पति सूर्य्य स्वरूप हो, मरुत्पति प्राणवायु स्वरूप हो, जलपति वरुण स्वरूप हो, तुम्हीं पृथ्वीपति राजा हो, दिक्पति इन्द्र आदि दिक्पाल स्वरूप हो; अर्थात् महाप्रलयकालमें जगत्के आधार होनेके पूर्व्वनिवास हो; अप्रकाश्य हो; इसलिये गुह्य कहाते हो; ब्रह्माको वेद प्रदान किया है इसलिये ब्रह्म पुरोहित हो; ब्राह्मण शरीर साध्य यज्ञ और अध्ययनादि स्वरूप हो, इस निमित्त ब्रह्मकायिक कहाते हो, महारा- जिक नामक देवगण विशेष और चतुर्महारा- जिक, महाभास्वर, सप्त महाभाग अर्थात् सप्त संख्यक महत् यज्ञभाग स्वरूप हो। तुम यम- गण हो इसलिये याम्य कहाते हो; तुम वित्त- गुप्तादिरूप होनेसे महायाम्य कहे जाते हो; यमपत्नीमें आसक्त होनेसे संज्ञासंज्ञ हो; तुम तुषित और महातुषित देवगण स्वरूप हो; मृत्यु स्वरूप होनेसे प्रतर्द्दन कहाते हो; मृत्युकी सहायताके जरिये कल्पित काम रोगादि स्वरूप हो, इसीसे परिनिर्म्मित कहाते हो, तदन्य भ्रम अर्थात् आरोग्य स्वरूप होनेसे अपरिनिर्म्मित हो; कामादि ग्रस्त न होनेसे वशवर्त्ती हो; प्रमादिमान हो, इसलिये अपरिनिन्दित कहाते

हो ; सर्व्व-जातीय रूपोंमें अनन्त हो, इसीसे अपरिमित कहाते हो, तुम शास्य होनेसे वश-वर्त्ती हो, और शास्ता हो, इसलिये अवशवर्त्ती कहाते हो। तुम अग्निहोत्र आदि यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ आदि महायज्ञ, यज्ञ सम्भव ऋत्विक आदि यज्ञयोनिवेद, यज्ञगर्भ अग्नि और यज्ञ हृदय अर्थात् यज्ञादि उपासना स्वरूप हो। तुम यज्ञ स्तुत, यज्ञभाग हर पञ्च यज्ञ हो और अहो-रात्र, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर इस पञ्च-काल कर्त्तस्वरूपसे जो गीतामें प्रसिद्ध है, तुम उनके पति हो, इसलिये पञ्चकाल कर्त्तृपति कहाते हो; पञ्चरात्र नाम आगमगम्य होनेसे तुम पञ्चरात्रिक हो। तुम अकुण्ठित हो, इसही निमित्त वैकुण्ठ कहाते हो ; किसीके निकट पराजित न होनेसे अपराजित हो। तुम मान-सोपाधिक हो, इससे मानसिक कहाते हो और नामसे विदित रहनेसे तुम्हारे नाम नामक हो। तुम ब्रह्माके भी प्रभु हो, इसीसे परस्वामी कहाते हो, तुमने वेद व्रत समाप्त किया है, इससे तुम्हारा नाम सुस्नात है। तुम त्रिदण्ड-धारी हो, इसीसे हंस और परमहंस नाम है ; दण्डादि हीन होनेसे महाहंस कहाते हो, तुम परम याज्ञिक सांख्ययोग और साख्य मूर्त्तिस्व-रूप हो। तुम जीवमात्रमें शयन कर रहे हो ; इसीसे अमृतेशय नाम है, हृदयमें शयन करनेसे हिरण्येशय हो, इन्द्रियोंमें शयन करनेसे देवे-शय कहाते हो, समुद्रके जलमें शयन किया करते हो, इसलिये कुशेशय हो, वेदके बीच निवास करते हो, इससे ब्रह्मेशय नाम है, ब्रह्मा-रूपमें विद्यमान हो, इसीसे पद्मेशय कहाते हो, तुम विश्व संसारके ईश्वर होनेसे विश्वेश्वर कहाते हो ; भक्तोंको पालन करनेके लिये सब दिशाओंमें तुम्हारी सब सेना गमन करनेमें समर्थ है ; इसहीसे तुम्हारा नाम विश्वक्सेन है। जगतमें सत्त रूपसे तुम्हारा सम्बन्ध है। इसीसे तुम जगदन्वय हो, तुम ही जगत्‌की प्रकृति हो ; अग्नि तुम्हारा ही मुख स्वरूप है, तुम्हीं वाड़वामुख अग्नि स्वरूप हो, तुम्हीं आहुति और सारथि अग्निरूप हो, तुमही वषट्-कार तुम्हीं ओंकार, तुम ही जप हो ; तुम ही मन और चन्द्रमा हो, तुम ही आदित्यके जरिये संस्कृत यज्ञीय हवि स्वरूप हो। तुम ही सूर्य्य तुम्हीं दिग्गज, तुम्हीं दिग्भानु और तुम ही विदिग्भानु हो। तुमही हयशिरा, तुम्हीं तैत्ति-रीय उपनिषदमें पठित प्रथम त्रिसुपर्ण मन्त्र अर्थात् आदित्यदैवत जगत्कर्त्ता हो, इस ही लिये प्रथम त्रिसौपर्ण कहाते हो, तुमने ब्राह्मण आदि वर्णोंको धारण किया है, इसीसे तुम्हारा नाम वर्णधर है। तुम गार्हपत्य, दक्षिण, आव-हनीय, सभ्य और आवसथ्य—पञ्चाग्नि स्वरूप हो। नाचिकेत नाम अग्निको तीन बार जिसने चयन किया है, तुम वही त्रिनाचिकेत-संज्ञक हो ; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन षड़ङ्ग निधान वेद स्वरूप हो। तुम प्राग् ज्योतिष और ज्येष्ठ सामग नामक सामगान स्वरूप हो, तुमने सामगोंके व्रतको धारण किया है, इससे सामिक व्रतधर हो। तुम अथर्व्वशिरा नाम उपनिषत् रूप हो, सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव और वैष्णव, इन पञ्चागमसे प्रतिपाद्य हो, इस ही निमित्त पञ्च महाकल्प कहाते हो। तुम ही फेणपाचार्य्य, बालिखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग और अभग्नवि-चार हो। तुम ही युगादि, युगमध्य, युगनिधन आखण्डल अर्थात् इन्द्र हो, तुम्हीं प्राचीनगर्भ और कौशिकमुनि स्वरूप हो, तुम अनेक पुरु-षोंसे स्तुत होते हो, इसीसे तुम्हारा नाम पुरु-ष्टुत है। तुम पुरुहूत, विश्वकर्त्ता, विश्वरूप, अनन्तगति, अनन्त शरीर, अनन्त अनादि, अमध्य, अव्यक्तमध्य, अव्यक्त निधन, व्रतावास, समुद्राधिवास, यशोवास, तपोवास, दमावास लक्ष्म्यावास, विद्यावास, कीर्त्यावास श्रीवास, सर्व्वावास, वासुदेव और सर्व्व मनोरथप्रद हो,

इस ही निमित्त सर्व्वकृन्दक कहाते हो। तुमने रामावतारमें हनुमानको वाहन बनाया था, इसलिये हरिहय हो, तुम ही हरिमेध अर्थात् अश्वमेध यज्ञस्वरूप हो, तुम महायज्ञभाग हर, वरप्रद, सुखप्रद, धनप्रद, हरिमेध अर्थात् हरि-भक्त, यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र, सर्व्वकृच्छ्र नियमधर, निवृत्त भ्रम, प्रवचनगत अर्थात् अध्ययनमें प्रवृत्त ब्रह्मचारी हो, तुम पृश्निगर्भ प्रवृत्त अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पृश्नि जो कि जन्मान्तरमें अदितिरूपसे उत्पन्न हुई थी, उसके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। तुम वेद-प्रिय अज, सर्व्वगति, सर्व्वदर्शी, अग्राह्य, अचल, महाविभूत, महात्म-शरीर अर्थात् विराटमूर्त्तिधारी, पवित्र, महापवित्र, हिरण्मय, बृहत्, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय ब्रह्माग्र, प्रजासर्गकर, प्रजानिधनकर, महामायाधर, चित्रशिखण्डी, वरप्रद, पुरोडाशभागहर, गताध्वर, छिन्नतृष्ण, छिन्नसंशय, सर्व्वतोवृत, निवृत्तरूप, ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्त्ति, महामूर्त्ति, और बान्धव हो। हे भक्तवत्सल ब्रह्मण्यदेव! मैं तुम्हारा दर्शन करनेके निमित्त अभिलाष करता हूं, तुम एकान्त दर्शन मोक्षस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है।

३३८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, विश्वरूपधारी भगवानने इस ही प्रकार गुह्य और तथ्य नामोंके सहारे स्तुत होकर उस मुनिश्रेष्ठ नारदको दर्शन दिया। उस समय भगवानका वह शरीर चन्द्रमासे कुछ विशुद्ध और चन्द्रमासे किञ्चित प्रभेद विशिष्ट था, कुछ अग्निवर्ण और कुछ नक्षत्राकृतिके समान था, वह सर्व्वभूत संयोगी प्रभु किञ्चित शुक्लपक्षके समान कुछ स्फटिकसमान नीलाञ्जन चयप्रख्य और किञ्चित जातरूप सदृश प्रभायुक्त थे; किसी स्थलमें प्रवालाङ्कुर वर्ण, किसी स्थानमें श्वेतवर्ण, कहीं सुवर्ण वर्णाभ, किसी अंशमें वैदूर्य्य समान, कहीं नील वैदूर्य्य सदृश, किसी स्थानमें इन्द्र नील प्रभायुक्त, कहीं मयूरग्रीवाके समान आभासे युक्त, किसी स्थानमें मुक्ताहार सदृश सनातन नारायणने यह सब अनेक प्रकारका वर्ण और रूपधारण किया था, वही श्रीमान् भगवान् सहस्र नेत्र, सहस्र शीर्ष, सहस्रपात, सहस्रोदर और सहस्र बाहु है और कभी वह अव्यक्त भावसे निवास करता है; वह देवनारायण सुखमण्डलसे ओङ्कार और ओंकार सम्बन्धवती सावित्रीको उद्गीरण करते हुए अन्य मुखोंसे चारो वेदोंको उच्चारण करके आरण्यक मन्त्रोंका गान करने लगे। उन देवेश्वर हरिने उस समय यज्ञपतिकी मूर्त्ति धारणकर वशी होकर हाथके सहारे वेदी, कमण्डलु, सफेद वर्णकी मणि, दोनों उपानह, कुशसमूह, मृगचाल दण्डकाष्ठ और प्रज्वलित अग्निको धारण किया था। द्विजसत्तम नारदने प्रसन्नचित्त तथा संयतवाक्य होकर उस सत्तम प्रसन्न परमेश्वरको प्रणाम करके उनकी बन्दना की; आदि देव अव्यय हरि उस समय नतशिरा नारद मुनिसे कहने लगे।

श्रीभगवान् बोले, महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शनकी अभिलाषासे इस स्थानमें आये थे परन्तु वे लोग मेरा दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हुए, ऐकान्तिकके बिना कोई भी मुझे नहीं देख सकता; तुम योगियोंमें श्रेष्ठ हो, इसीसे मेरा दर्शन पाया है। हे द्विज। मेरा यह उत्तम शरीर धर्म्मके गृहमें उत्पन्न हुआ है, तुम सदा उसहीका भजन करो, जहांसे आये हो; अब उस ही स्थानमें गमन करो। हे विप्र। इस समय मेरे समीप जो वर मांगनेकी इच्छा हो, वह मांगो मैं अव्यय होके भी इस समय विश्वमूर्त्ति धारण करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।

नारद मुनि बोले, हे देव! मैंने जब भगवानका दर्शन किया, तब आज मेरी तपस्या,

सम और नियमका फल प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ। हे भगवन्! तुम विश्वदर्शी सिंहस्वरूप सर्व्वमूर्त्तिमय महा प्रभु और सनातन हो; इसलिये मैंने जब तुम्हारा दर्शन किया, तब इससे बढ़के दूसरा वर मेरे लिये कौनसा है?

भीष्म बोले, भगवान्‌ इसी भांति विधाता पुत्र नारदको दर्शन देकर फिर उनसे बोले, हे नारद! तुम गमन करो, देरी मत करो, ये सब अनिन्द्रिय अनाहार चन्द्रवर्चस पुरुष हमारे भक्त हैं, ये लोग एकाग्रचित्त होकर हमारा ध्यान करते हैं; इसलिये इन लोगोंके लिये विघ्न न होना चाहिये। ये सब महाभाग पुरुष सिद्ध हैं, और येही पहले मोक्षपथावलम्बी हुए हैं, ये तम और रजोगुणसे निर्म्मुक्त हैं, इससे ये लोग मुझमें निःसन्देह प्रवेश करेंगे। जो नेत्रसे देखे नहीं जाते, गन्धवत् सूंघनेके विषय नहीं हैं, और रस वर्ज्जित सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण जिनकी भजना नहीं करते; जो सर्व्वगत साक्षि चैतन्य रूपसे लोगोंकी आत्मा कहे जाते हैं। सब प्राणियों तथा शरीरके नष्ट होनेसे वह विनष्ट नहीं होते। जन्म रहित शाश्वत, नित्य, निर्गुण, निरस, निष्क्रिय पुरुष जो चौबीस तत्त्वोंसे भी अतीत पचीसवां कहके विख्यात् है, वही एकमात्र ज्ञानदृश्य है, ऐसा ही वर्णित हुआ करता है, इस संसारमें द्विजसत्तमगण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं, उसही सनातन वासुदेवको परमात्मा जानो। हे नारद! शुभाशुभ कर्म्मोंमे जो कदाचित लिप्त नहीं होता, उस देवकी महिमा और महात्म्य अवलोकन करो। सत्त्व, रज और तम, इन तीनोंको गुण कहते हैं, ये सब शरीरोंमें स्थित रहते तथा भ्रमण किया करते हैं। क्षेत्रज्ञ जीव इन सब गुणोंको भोग करता है, परन्तु गुण उसे भोग नहीं कर सकते। वह निर्गुण है, परन्तु गुणभोगी है, और गुणस्रष्टा होके भी गुणाधिक है।

हे देवर्षि! जगत्‌प्रतिष्ठा पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें लीन हुआ करता है, अग्नि वायुमें लय होती है, वायु आकाशमें लीन होजाती है, आकाश मनसे प्रलयको प्राप्त हुआ करता है, और परम भूत मन उस ही अव्यक्तमें लीन होता है। हे ब्रह्मन्! अव्यक्त भी निष्क्रिय पुरुषमें लीन होजाता है, उस सनातन पुरुषके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। उस एकमात्र शाश्वत पुरुष वासुदेवके अतिरिक्त इस जगत्‌में स्थावर जङ्गम कोई पदार्थ भी नित्य नहीं है। महाबलवान वासुदेव सब भूतोंके आत्मभूत हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत मिलके शरीरसंज्ञक होते हैं। हे ब्रह्मन्! जो क्षिप्रकारी अदृश्य होके इस शरीरमें प्रविष्ट होता है, वह यथार्थमें उत्पन्न न होके भी मानो उत्पन्न होके शरीर चेष्टा निर्व्वाह करता है; धातु संघातके अतिरिक्त शरीर कदापि उत्पन्न नहीं होता। हे ब्रह्मन्! जीवके बिना वायु चेष्टा नहीं कर सकती। इस शरीरमें जो प्रविष्ट होता है, वही जीव है, भगवानके व्यूह विशेष विश्वविधायक सङ्कर्षण और शेष नामसे वह प्रभु संख्यात् होता है। जो पुरुष निज कर्म्मोंके जरिये उससे जीवन्मुक्तत्व लाभ करते हैं, और प्रलयकालमें सब भूत जिसमें लीन होते हैं, वे सब भूतोंके मन प्रद्युम्न नामसे पठित हुआ करते हैं, जो सङ्कर्षणसे उत्पन्न होता है, वही कर्त्ता कारण और कार्य्य स्वरूप है, और प्रद्युम्नसे यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उत्पन्न होता है; इस हीका नाम अनिरुद्ध है; यही ईश्वर है, और सब कार्य्योंमें व्यक्त होरहा है। हे राजेन्द्र! भगवान् वासुदेव जो क्षेत्रज्ञ और निर्गुण स्वरूपसे वर्णित हुए हैं, उन्हें ही सङ्कर्षण अर्थात् जीव जानो; सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं, इसे ही मन कहा जाता है। प्रद्युम्नसे जो अनिरुद्ध उत्पन्न होते हैं, वह भी

अहंकार और ईश्वर हैं। हे नारद! मुझसे ही स्थावर जङ्गमसय समस्त जगत् सदसत् पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस लोकमें मेरे भक्त लोग मुझमें प्रविष्ट होके मुक्त होते हैं, मुझे निष्क्रिय पचीसवां पुरुष जानो, मैं निर्गुण निष्कल निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हूं। तुम ऐसा मत समझो, कि रूपवान होकर दीख पड़ता हूं। मैं इच्छा करनेसे मुहूर्त्त मात्रमें ही विलीन होसकता हूं, मैं जगत्का गुरु और नियन्ता हूं।

हे नारद! तुम जो मेरा दर्शन करते हो, यह मेरी ही उत्पन्न करी हुई माया है, इस ही प्रकार सब भूतोंमें गुणोंके सहारे संयुक्त न होनेसे तुम मुझे जाननेमें समर्थ न होते। हे नारद! तुम्हारे समीप मैंने इन चारों मूर्त्तियोंके विषयको पूर्ण रीतिसे वर्णन किया; मैं कर्त्ता, कार्य्य और कारण हूं, मैं ही जीव संघात अर्थात् जड़वर्ग हूं और मुझमें ही जीव स्थित होते हैं। "मैंने जीवका दर्शन किया"—तुम्हारी इस समय ऐसी बुद्धि न हो, हे ब्रह्मन्! मैं सर्व्वत्रगामी और सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हूं, प्राणियोंके शरीर नष्ट होनेपर मैं बिनष्ट नहीं होता। हे मुनि! वह मोक्षनिष्ठ महाभाग मनुष्य सिद्ध हुए हैं, वे लोग तम और रजोगुणसे छूटकर मुझमें प्रविष्ट होंगे। सब लोकोंके आदिभूत अनिर्व्वचनीय चतुर्म्मुख हिरण्यगर्भ सनातन देव ब्रह्मा मेरे अनेक विषयोंका ध्यान किया करते हैं। रुद्रदेव मेरे क्रोधवश ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। देखिये, ये ग्यारह रुद्र मेरी दहिनी ओर स्थित हैं, बारहों आदित्य मेरी बाईं ओर खड़े हैं, अगाड़ीमें सुरोत्तम आठों वसु निवास करते हैं, पीछे नासत्य और दस्र नाम सर्व्वव्यहय प्रजापति और सत्यात्मा सप्तर्षियोंको देखो। सब वेदों और सैकड़ों यज्ञों, अमृत और महौषधियोंको देखो, तपस्या, नियम और पृथक् पृथक् समस्त यम तथा अणिमा आदि अष्टगुणयुक्त ऐश्वर्य्यकी एकत्रित मूर्त्तिके समान देखो। श्री, लक्ष्मी, कीर्त्ति और ककुद्मिनी पृथ्वी अर्थात पर्व्वतमय ककुदयुक्त पृथ्वी और वेदमाता सरस्वती देवीको मुझमें निवास करती हुई देखो।

हे नारद। ज्योतिश्रेष्ठ आकाशचारी ध्रुव, अम्भोधर चारों समुद्र, नदियें और समस्त तालाव तथा मूर्त्तिमान पितरोंको देखो। हे मुनिसत्तम! देखो, सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण मूर्त्ति-रहित होकर मुझमें निवास करते हैं। हे मुनि। देवकार्य्योंसे पितृकार्य्य श्रेष्ठ है, एकमात्र मैं ही सब पितरोंका आदि पिता हूं, मैं पश्चिमोत्तर समुद्रमें हयशिरा होके श्रद्धान्वित होकर उत्तम रीतिसे होम किये हुए हव्य कव्यको पान करता हूं। मैंने पहले ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्होंने मेरे जरिये उत्पन्न होके स्वयं यज्ञरूपधारी होकर मेरी पूजा की थी। अनन्तर मैंने उनके ऊपर प्रसन्न होकर यह सब उत्तम वर प्रदान किया, कि सृष्टिके आरम्भमें तुम हमारे पुत्र और सब लोगोंके अध्यक्ष होगे और अहंकारको उत्पन्न करनेसे विधाता नामसे विख्यात् होगे। कोई पुरुष तुम्हारी निर्द्दिष्ट की हुई मर्य्यादाको अतिक्रम न कर सकेगा। हे संशितव्रत महाभाग तपोधन ब्रह्मन्! वर मांगनेवाले देवता, असुर, ऋषि और पितरोंको सदा तुम वरदान करोगे; तुम विवित प्राणियोंके उपास्य होगे। हे ब्रह्मन्। मैं देवकार्य्य साधन करनेके लिये सदा उत्पन्न होके पुत्रकी भांति तुम्हारा अनुशास्य और नियोज्य हूंगा।

अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको यह सब तथा और भी अनेक प्रकारके मनोहर वर देकर मैं प्रसन्न होकर निवृत्त हुआ था। सब धर्म्मकी परम निवृत्ति ही निर्व्वाणरूपसे कही गई है। इसलिये निवृत्तिनिष्ठ और सर्व्वाङ्ग निर्वृत होकर धर्म्माचरण करे, यह सांख्य शास्त्रका निश्चित-निश्चय है, आचार्य्योंने आदित्य मण्डलस्थ विद्यासहाय समाधिनिष्ठ कपिलसे कहा था, यह भगवान् हिरण्यगर्भ वेदमें विशेष रूपसे स्तुत

हुए हैं। हे ब्रह्मन्! मैं उस ही योगमें अनुरक्त होकर योगशास्त्रमें वर्णित हुआ हूं, मैं शाश्वत होके भी व्यक्तभावसे आकाशमें निवास करताहूं।

अनन्तर सहस्र युगोंके बाद जगत्‌का संहार करूंगा। सब चराचर भूतोंको अपनेमें स्थापित करके अकेला ही महाविद्याके सङ्ग विहार करूंगा। अन्तमें महाविद्याके जरिये फिर सारे जगत्‌को उत्पन्न करूंगा। जो मेरी चौथी मूर्त्ति है, उसने अव्यय शेषको उत्पन्न किया है, उस शेषको ही सङ्कर्षण कहते हैं, सङ्कर्षण ही प्रद्युम्नको उत्पन्न करता है। प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है। इस ही प्रकार बार बार मैं सृष्टि करता हूं; अनिरुद्धके नाभि-कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, ब्रह्मासे सब स्थावर जङ्गम जीव उत्पन्न होते हैं। इस लोकमें जैसे आकाशमें सूर्य्य उदय और अस्त होता है, वैसे ही कल्पके आदिमें बार बार यह सृष्टि हुआ करती है। जैसे सूर्य्यके अदृश्य होने पर महाबलवान काल बलपूर्व्वक फिर उसी को उपस्थित करता है, वैसे ही मैं सब प्राणियोंके हितके लिये वाराह मूर्त्ति धारण करके सागर-रसखला सर्पगणसे आक्रान्त नष्ट प्राय पृथ्वीको बलपूर्व्वक निज स्थानपर लाऊंगा और बलसे गर्व्वित हिरण्याक्ष दैत्यको मारूंगा। इसके अतिरिक्त मैं फिर देवताओंके कार्य्यको सिद्ध करनेके लिये नरसिंह शरीर धारण करके यज्ञ-नाशक दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको मारूंगा। विरोचनका पुत्र बलि नाम एक बलवान महासुर जन्मेगा, वह देवता, असुर और राक्षसोंसे अवध्य होकर इन्द्रको उनके राज्यसे निकाल बाहर करेगा। उसके जरिये तीनों लोक अपहृत और शचिपति इन्द्रके पराजित होनेपर मैं अदितिके गर्भमें कश्यपके वीर्य्यसे द्वादश आदित्यस्वरूपसे उत्पन्न हूंगा।

हे नारद! अनन्तर मैं अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रको राज्य देकर देवताओंको निज निज स्थान पर स्थापित करूंगा। दानियोंमें श्रेष्ठ बलि सब देवताओंसे अवध्य है, इसलिये मैं उसे पाताल तलमें बसाऊंगा। मैं त्रेतायुगमें भृगुवंशमें राम रूपसे उत्पन्न हूंगा और उस समय समृद्धिशाली बल-वाहन युक्त क्षत्रियोंका नाश करूंगा। त्रेता और द्वापरके सन्धिकाल उपस्थित होनेपर जगत्पति दाशरथि राम रूपसे अवतार लूंगा। हे द्विज! प्रजापतिके पुत्र एकत और द्वित ऋषि त्रितके विषयमें अत्याचार करनेसे कुरूप होकर वानरयोनि लाभ करेंगे, उनके वंशमें जो सब इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली महावीर्य्यवान बनवासी बन्दर उत्पन्न होंगे, वेही मेरे सुरकार्य्य साधनके विषयमें सहाय होंगे। अनन्तर मैं पुलस्त्य कुल कलंक महा घोर रौद्रमूर्त्ति सब लोकोंके कण्टकरूपी रावण राक्षस पतिको उसके अनुयायियोंके सहित मारूंगा। द्वापर और कलियुगके सन्धि-कालमें कंसके निमित्त मथुरामें मेरी उत्पत्ति होगी, उस समय मैं बहुतेरे देवकण्टक दानवोंका संहार करके कुशस्थली नाम द्वारकामें निवास करूंगा, द्वारकापुरीमें निवास करतेहुए अदितिके अप्रिय कार्य्य करनेवाले नरक, भौम, मुर और पीठ नामक दानवोंको मारूंगा। प्राग्ज्योतिषपुरवासी विविध धन रत्नोंसे युक्त दानव श्रेष्ठको मार कर समस्त स्त्री-रत्न कुशस्थलीमें लाऊंगा।

अनन्तर बाणराजाके प्रिय और हितैषी महेश्वर तथा महासेन नाम सदा उद्योगी दोनों दैत्योंको जिन्हें देवता लोग भी प्रणाम करेंगे, मैं पराजित करूंगा। अनन्तर बलिके पुत्र सहस्र भुजावाले बाणासुरको जीतके सौभ निवासी समस्त दानवोंका वध करूंगा। हे द्विजवर! गार्ग्य तेजसे परिपूरित कालयवन नामसे जो पुरुष उत्पन्न होगा, मैं उसका वध करूंगा। सब राजाओंके विरोधी जरासन्ध नामक जो बलवान असुर गिरिव्रजमें अत्यन्त प्रबल राजा होगा, मेरी ही बुद्धि कौशलसे

मृत्युका मुख देखेगा। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें मैं शिशुपालका बध करूंगा, पृथ्वी पर महाबली सब राजाओंके इकट्ठे होनेपर अकेला इन्द्रपुत्र धनञ्जय मेरा सहाय होगा मैं भाइयोंके सहित युधिष्ठिरको स्वराज्यमें स्थापित करूंगा, उस ही समय सब लोग कहेंगे, कि ईश्वर नर-नारायण ऋषि-रूपसे कार्य्यके निमित्त उद्योगी होकर क्षत्रियकुलको जला रहा है। हे सत्तम! पृथ्वीके अभिलषित भारको उतारके आत्मज्ञानके अनुसार द्वारकामें स्थित सब यदुवंशियोंमें घोर प्रलय उत्पन्न करूंगा। मैं चारों मूर्त्तियोंको धारण करके तथा अपरिमेय कार्य्योंको पूरा करके ब्रह्मासे सत्कृत होकर निज लोकोंमें गमन करूंगा। हे द्विजवर! मैं हंस कच्छप, मच्छ, बाराह, नृसिंह, दाशरथि राम, कृष्ण और कल्कि रूपसे उत्पन्न हूंगा। वेद-श्रुति जिस समय नष्ट होगी उस समयमें मैं उसे फिर लौटा लाऊंगा। पहले सतयुगमें मैंने जो सब वेदश्रुति बनाई थी, वह अतिक्रान्त हुई है, अथवा पुराणोंके बीच किसी किसी स्थलमें सुनी जाती है। मेरी बहुतेरी उत्तम उत्पत्ति व्यतीत हुई है, लोककार्य्योंको निर्व्वाह करके फिर निज प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! तुमने मोक्ष निष्ठायुक्त बुद्धि अवलम्बन करके इस समय जिस प्रकारसे मेरा दर्शन किया है, ब्रह्मा भी इस प्रकार मेरा दर्शन नहीं कर सकते। हे सत्तम! तुम भक्तिमान हो, इस ही लिये मैंने तुम्हारे समीप प्राचीन और भविष्य रहस्योंको वर्णन किया है।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार वह भगवान विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी देव इतनी कथा सुनाके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये। महा तेजस्वी नारद इप्सित अनुग्रह लाभ करके नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रममें गये। हे तात! महर्षि नारदने जिस प्रकार दर्शन किया और जिस प्रकार सुना था, उस की भांति ब्रह्माके स्थानमें नारायणके मुखसे वर्णित चारों वेदोंसे युक्त सांख्य योग संयुक्त पञ्चरात्र नामक यह महा उपनिषत सुनाया था।

युधिष्ठिर बोले, इस आश्चर्य्यभूत भगवान महात्माको क्या ब्रह्मा नहीं जानते थे, जो उन्होंने नारदके मुखसे सुना, भगवान पितामह उस ही देवसे उत्पन्न हुए हैं, इससे वह अत्यन्त तेजस्वी नारायणके प्रभावको किस लिये नहीं जानते थे?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! सौ हजार महाकल्पकी सृष्टि और प्रलय व्यतीत हुई हैं। हे राजन्! सृष्टिके आरम्भमें प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रभु प्रजापति उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह देवप्रवर आत्मप्रभव सर्व्वनियन्ता परमात्माको नारदसे भी अधिक जानते थे। ब्रह्माके स्थानमें जो सब सिद्ध लोग इकट्ठे हुए थे, नारदने उन्होंको वह वेद-सदृश पुराण सुनाया था। हे राजन्! अनन्तर सूर्य्यदेवने उन शुद्धचित्तवाले सिद्धोंके निकट उसे सुनके निज अनुगामी पवित्र बुद्धिवाले छः हजार ऋषियोंको सुनाया था। तापदाता सूर्य्यके समीप जो सब लोग स्थित थे, उन्होंने उनसे भी उक्त विषय कहा था। हे तात! सूर्य्यके अनुगामी ऋषियोंने सुमेरु पर्व्वतपर इकट्ठे हुए सब ऋषियोंको यह उत्तम उपाख्यान सुनाया था। हे राजेन्द्र! अनन्तर देवताओंके निकटसे द्विजवर मुनिसत्तम असितने उस विषयको सुनके पितरोंके समीप वर्णन किया था। हे तात! मेरे पिता शान्तनुने यह मुझसे कहा। हे भारत! मैंने उनसे सुनके इस समय तुम्हारे समीप वर्णन किया। निज देवता अथवा मुनियोंने इस पुराणको सुना है, वे लोग सब प्रकारसे परमात्माकी पूजा करते हैं। हे राजन्! इस परम्परासे प्रचलित ऋषिप्रणीत आख्यानको जो पुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है, तुम उससे किसी प्रकार न कहना। हे राजन्! तुमने मेरे समीपमें जो

सैकड़ों उपाख्यान सुने हैं, उन सबके बीच यह सारस्वरूपसे निकाला गया है। हे राजन्! सुरासुरोंने जिस प्रकार समुद्रको मथके अमृत निकाला था, वैसे ही पहले समयमें ब्राह्मणोंने इस कथारूपी अमृतको बाहर किया है। जो मनुष्य अत्यन्त सावधान और मोक्षमार्गमें आरूढ होके सदा इसे पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे श्वेतद्वीपमें जाके चन्द्रमाके समान मनुष्य शरीर धारण करके सहस्रार्च्चि युक्त परम देवमें प्रविष्ट होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। आर्त्त पुरुष आदिसे अन्ततक इस कथाको सुननेसे रोगसे छूट जाता है, जिज्ञासु पुरुष मनोवांच्छित फल पाता और भक्त निज गन्तव्य गतिको पाता है। हे राजन्! तुम भी सदा पुरुषोत्तमकी पूजा करना वह समस्त जगत्का पिता, माता और गुरु है। हे महाबाहु युधिष्ठिर! महाबुद्धिमान जनार्द्दन सनातन भगवान ब्रह्मण्यदेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! धर्म्मराज और उनके भ्रातृगण इस उत्तम आख्यानको सुनके सब कोई, नारायणमें रत हुए। हे भारत। "उस भगवानकी ही जय हुई" अनन्तर सब कोई जप परायण होके सदा इस ही बचनको उच्चारण करने लगे। हम लोगोंके गुरु महामुनि कृष्णद्वैपायनने नारायणका नाम उच्चारण करते हुए परम जप्य मन्त्रका जप किया। वह आकाशसे अमृतामय क्षीरसागरमें जाके देवेश्वरकी पूजा करके फिर अपने आश्रमपर चले आते थे।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! यह नारद मुनिका कहा हुआ उत्तम उपाख्यान तुम्हारे निकट कहा गया; यह परम्परा क्रमसे प्रचलित हुआ चला आता है, पहले पिताने मुझसे यह उपाख्यान कहा था।

सूत बोले, वैशम्पायनके सहारे यह सब विषय कहा गया. जनमेजयने उसे सुनकर विधिपूर्व्वक आचरण किया था। हे नैमिषारण्यवासी द्विजश्रेष्ठ पुरुषो! आप सब लोगोंने ही तपस्या और व्रताचरण किये हैं, सब कोई वेदज्ञ ब्राह्मणोंके बीच मुख्य होनेसे शौनकके महायज्ञमें दीक्षित हुए हैं, इस समय आप लोग होम और यज्ञके द्वारा शाश्वत परमेश्वरकी पूजा करिये। इस परम्परा प्रचलित आख्यानको पहले समयमें पिताने मुझसे कहा था।

३३९ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत! वह देव सर्व्व-शक्तिमान भगवान् स्वयं यज्ञेश्वर होकर किस प्रकार यज्ञ करता है, वह वेदकर्त्ता होके किस प्रकार वेद-वेदाङ्गवेत्ता कहके विख्यात हुआ। उस शान्तात्मा निखिल सामर्थवान भगवानने निवृत्ति धर्म्म अवलम्बन किया है; इसके अतिरिक्त वह निवृत्ति धर्म्मका विधान भी करता है, किस प्रकारसे देवताओंको प्रवृत्तिधर्म्मभागार्ह किया है; प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म्म परस्पर विरुद्ध होनेपर भी दोनों किस प्रकार उसमें स्थित हुए, तुमने सब धर्म्मसंहिता सुनी है, इसलिये हमारे इस गुप्त सन्देहको दूर करो।

सौति बोले, हे शौनकोत्तम! धीमान वेदव्यासके शिष्य वैशम्पायनको पूजा करके राजा जनमेजयने जो प्रश्न किया था, मैं उस ही पौराणिकी कथाको तुम्हारे समीप कहता हूं इन देहधारियोंके अन्तरात्माका माहात्म्य सुनके महाप्राज्ञ राजा जनमेजयने वैशम्पायन मुनिसे जो कहा था, उसे सुनो।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ये ब्रह्मसे युक्त सुरासुर और मनुष्योंके सहित सब लोग अभ्युदय विधिमें संसक्त हुए देखे जाते हैं। आपने कहा निर्व्वाण मोक्ष ही परम सुख है, इस लोकमें पुण्य पापसे रहित होकर जो लोग मुक्ति लाभ करते हैं, वेही सहस्रार्चि

अर्थात् अनन्तचिद्रूप देवमें प्रवेश किया करते हैं, मैंने ऐसा ही सुना है। यह पञ्चविधि मोक्ष प्रतिपादक धर्म्म अत्यन्त कष्टसे अनुष्ठान किया जाता है, देवता लोग जिसे परित्याग करके हव्य-कव्य भोजी हैं, उसका अनुष्ठान करना कितना कठिन है, वह इसीसे जाना जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, रुद्र, वलाराति देवराज इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, स्वर्ग और भूर्लोक तथा इनके अतिरिक्त जो सब देवतावृन्द हैं, वे सब आत्मपरिनिर्म्मित प्रलयसे अनभिज्ञ हैं। इस ही कारण जिन्होंने काल परिमाणसे स्मृति और प्रवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है, वे लोग शाश्वत, अव्यय और अक्षर निवृत्ति मार्गका आश्रय नहीं करते हैं; क्रियावान मनुष्योंमें काल परिमाणसे महान् दोष दीख पड़ता है। हे विप्र! मेरे हृदयमें यह संशय शल्यकी भांति उपस्थित है, तुम इतिहास कहके उसे छेदन करो, इस विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य होरहा है। हे द्विजवर। यज्ञके समय देवता लोग किस लिये भागहर रूपसे वर्णित हुए हैं? किस लिये देवता लोग यज्ञमें पूजित होते हैं। हे द्विजसत्तम। यज्ञ-स्थलमें जो लोग अपना हिस्सा लेते हैं, वे महायज्ञके सहारे याग करनेमें प्रवृत्त होने पर किसे यज्ञका भाग प्रदान किया करते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे प्रजानाथ! तुमने अत्यन्त गूढ़ प्रश्न किया है, जिन लोगोंने तपस्या, वेदाध्ययन तथा पुराणोंको नहीं सुना है, वे सहसा इसका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हैं। पहले मैंने भी इस विषयको अपने गुरु महर्षि वेदव्याससे पूछा था, उन्होंने हम लोगोंसे जो कहा था; वह तुम्हारे समीप कहूंगा। सिद्ध चारणोंसे सेवित रमणीक सुमेरु पर्व्वतके ऊपरमें महाभाग वेदव्यासके समन्त, जैमिनि, दृढ़व्रत, पैल, मैं और शुकदेव, येही पांच पुरुष शिष्य थे; वह इन सब समागत दमयुक्त, पवित्र आचारमें रत, क्रोध जीतनेवाले और जितेन्द्रिय पांचों शिष्योंको चारोंवेद तथा पांचवां वेद महाभारत पढाते थे। मेरे समान शिष्योंके वेदाभ्यास करते रहने पर कदाचित हम लोगोंको सन्देह हुआ था, तुमने जो पूछा है, हमने भी उस ही प्रकार गुरुके समीप वही प्रश्न किया था। हे भारत! इसलिये गुरुके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, इस समय तुम्हारे समीप वह सब वर्णन करूंगा। निखिल अज्ञान रूपी अन्धकारके हरनेवाले पराशरके पुत्र श्रीमान् व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके बोले कि, हे शिष्यवृन्द! मैंने परम दारुण अत्यन्त महत् तपस्या की थी, इसहीसे समस्त भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान विषय मुझसे छिपे नहीं हैं। मैंने तपस्या करके इन्द्रियनिग्रह किया है, इसीसे नारायणकी कृपासे क्षीरसागर तटके समीप मेरी इच्छाके अनुसार यह त्रैकालिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम लोगोंके संशयके विषयको विधिपूर्व्वक उत्तम रीतिसे कहता हूं, तुम सब कोई सुनो। सृष्टिके आरम्भमें जो घटना हुई थी, मैंने उसे ज्ञाननेत्रसे देखा है। सांख्य योगवाले पुरुष जिसे परमात्मा कहते हैं, वह निज कर्म्मके सहारे महापुरुष कहके प्रसिद्ध होता है, उसहीसे अव्यक्त उत्पन्न होता है, पण्डित लोग इस ही अव्यक्तको प्रधान समझते हैं। अव्यक्त ईश्वरसे ही लोक सृष्टिके लिये व्यक्त उत्पन्न हुआ था, लोग उसेही अनिरुद्ध और महान् आत्मा कहा करते हैं। जो व्यक्त होके पितामहको उत्पन्न करता है, उस सर्व्व तेजोमयको ही अहंकार कहा जाता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये महाभूत अहंकारसे उत्पन्न होते हैं। वह महाभूतोंको उत्पन्न करके फिर उनके गुणोंको प्रकट करता है। समस्त भूतोंसे जो मूर्त्तिमान रूपसे सिद्ध होते हैं उनके नाम सुनो।

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, महात्मा वसिष्ठ और स्वायम्भुव मनु, इन आठोंको अष्ट-प्रकृति जानना चाहिये, क्यों कि अष्ट-प्रकृतिसे ही सब लोक प्रतिष्ठित हैं। जगत् पितामह ब्रह्माने सब लोगोंकी सिद्धिके लिये वेदवेदाङ्गसंयुक्त और यज्ञाङ्ग सम्पन्न किया है। अष्ट-प्रकृतिसे ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। क्रोधयुक्त रुद्रने अवतार लेके स्वयं दशरुद्रोंको उत्पन्न किया है। ये सब ग्यारह रुद्र विकार पुरुषरूपसे वर्णित होते हैं। वे सब रुद्रगण प्रकृति और देवर्षि लोग उत्पन्न होके सब लोकोंकी कार्य्यसिद्धिके लिये ब्रह्माके समीप गये। वहां जाके बोले, हे पितामह! आपने प्रभुविष्णु होकर हम लोगोंको उत्पन्न किया है, इस समय हम लोगोंमेंसे जिसे जिस अधिकारमें स्थित रहना होगा, उस विषयमें उपदेश दीजिये। आपने जो अर्थ चिन्ता विषयक अधिकार निश्चय किया है, साहङ्कार कर्त्ता उसे किस प्रकार प्रतिपालन करेंगे। अधिकारके विषयमें कौन विचार करेगा और उसका कैसा बल होना चाहिये, आप उसे वर्णन करिये। महादेव प्रजापति ऐसा बचन सुनके उन देवताओंसे वक्ष्यमाण रीतिसे बचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे देवतावृन्द! तुम लोगोंने मेरे समीप उत्तम विज्ञप्ति की है, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम लोगोंने जैसा सोचा है, मुझे भी वैसी ही चिन्ता उत्पन्न हुई है। तीनों लोकोंको किस प्रकार धारण करना चाहिये, तुम्हारा और मेरा किस प्रकारसे बल नष्ट न हो, इसे जाननेके लिये चलो, हम सब कोई यहांसे गमन करके उस लोकसाक्षी अव्यक्त महापुरुषके शरणापन्न होवें, वह हमारे लिये जो हितकर होगा, वही उपदेश करेंगे।

अनन्तर वे लोकहितैषी ऋषिवृन्द और देवता लोग क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहां वे लोग ब्रह्मोक्त-वेद कल्पित तपस्याका अनुष्ठान करने लगे। वह दारुण तपस्याचरण महानियम नामसे विख्यात् हुआ। वे लोग ऊर्द्ध दृष्टि, ऊर्द्धबाहु और एकाग्रचित्त हुए सभी एक चरणसे निवास करते हुए काष्ठकी भांति स्थित रहे। इसी प्रकार उन लोगोंने देवपरिमाणसे सहस्र वर्षतक अत्यन्त दारुण तपस्या करके वेद वेदाङ्ग भूषित मधुर बाणी सुनी।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मा आदि देवतावृन्द! हे तपस्वीगण! तुम्हारा स्वागत पूछनेके अनन्तर उत्तम बचन सुनाता हूं। तुम्हारा कार्य्य मुझे मालूम हुआ है। वह कार्य्य अत्यन्त वृहत् और लोक-हितकर है, तुम लोगोंको प्राणवायुकी परिपुष्टि करनेवाली प्रवृत्तियुक्त उक्त कार्य्य करना योग्य है। हे देवगण! कामनाके निमित्त मेरी आराधनासे तुम लोगोंने उत्तम तपस्या की है। हे महा सत्त्वगण! तुम लोग इस तपस्याका महत् फल भोग करोगे। लोकगुरु लोकपितामह ब्रह्मा और सब देवतालोग स्थिर होकर मेरे उद्देश्यसे यज्ञ करें और तुम सब कोई यज्ञमें हमारे नित्य भागकी कल्पना करो, कि कौन किस अधिकारका स्वामी होगा, फिर उसमें जिस प्रकार तुम लोगोंका कल्याण होगा, उसे मैं वर्णन करूंगा।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर ब्रह्मा आदि देवता और महर्षि लोग यह बचन सुनके पुलकित हुए और वेदमें कही हुई विधिके अनुसार वैष्णव यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञमें ब्रह्माने स्वयं नित्य भागकी कल्पना की और देवता तथा देवर्षि वृन्द अपना अपना भाग स्थिर करने लगे। उस सत्ययुगमें धर्म्मयुक्त परम सत्कृत सब भाग आदित्य वर्ण, तमोगुणसे रहित सर्व्वव्यापी सर्व्वगामी, वरदाता पुरुष प्रभु ईशान देवके निकट उपस्थित हुए। अनन्तर शरीररहित आकाशमें वरदाता देव महेश्वरने उन सब स्थित देवताओंसे यह बचन कहा, कि जिसने जिस भागकी कल्पना की

थी, वे सब भाग उस ही प्रकार मेरे निकट उपस्थित हुए हैं, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं, अब आवृत्तिलक्षण फल प्रदान करूंगा। हे देवगण! तुम लोगोंके सम्बन्धमें मेरे प्रमादसे यह लक्षण उत्पन्न होगा, कि तुम लोग युगयुगमें अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञके जरिये यजन करते हुए प्रवृत्ति-फलभागी होगे। जो देवता अथवा मनुष्य लोग सब लोकोंके बीच यज्ञके जरिये पूजा करनेमें प्रवृत्त होंगे, वे तुम लोगोंके लिये वेदमें कहे हुए सब भागोंकी कल्पना करेंगे इस महायज्ञमें जिसने जिस भांति मेरे भागको कल्पित किया है, मैंने वेदसूत्रमें उसे वैसा ही यज्ञभागी किया है; इसलिये तुम लोग लोकके बीच निज अधिकारमें अधिष्ठित होके यज्ञभागके उचित फल और सर्व्वार्थ चिन्तक होकर सब लोगोंको उत्पन्न करोगे। जो सब कार्य्य प्रवृतिफलके सहारे सत्कृत होकर प्रचारित होंगे, उन्हीं सब कार्य्योंके जरिये तुम लोग अप्यायित और बलसंयुक्त होकर सब लोकोंको धारण करोगे। तुम लोगोंके विषयमें मेरी यह भावना होती है, कि तुम लोग सब यज्ञोंमें मनुष्योंके जरिये पूजित होगे। अनन्तर तुम लोग मेरा ध्यान करोगे। इस ही निमित्त सब वेद, यज्ञ और औषधि उत्पन्न हुई हैं; पृथ्वीतलमें यह सब वेदविधिके अनुसार पूर्व्वरीतिसे प्रयुक्त होनेसे देवता लोग प्रीति लाभ करेंगे।

हे सुरश्रेष्ठगण! जबतक यह कल्प नष्ट न होगा, तबतक तुम लोगोंकी प्रवृत्ति गुण कल्पित निर्म्माण, मेरे जरिये विहित हुआ है; इसलिये तुम लोग निज निज अधिकारके ईश्वर होकर लोकके हितका विचार करो। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये सातों मानससे उत्पन्न हुए हैं, ये लोग वेदवित् और मुख्य वेदाचार्य्य प्रवृत्तिधर्म्म-परायण प्रजापतिरूपसे कल्पित हुए हैं। क्रियावान पुरुषोंका यह सनातन पथ कहा गया है; सर्व्व शक्तिसंयुक्त अनिरुद्ध लोक सर्गकर रूपसे वर्णित हुए हैं। सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और ऋषिप्रसत्तम, ये ब्रह्माके मानसपुत्र कहाते हैं, इन लोगोंमें स्वयं विज्ञान उत्पन्न हुआ है, इन्होंने निवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है। ये सांख्य ज्ञान विशारद मुख्य योगवित् पुरुष धर्म्मशास्त्रोंके आचार्य्य और मोक्षधर्म्मके प्रवर्त्तक हैं। प्रथम जो अव्यक्तसे त्रिगुणात्मक अहङ्कार प्रकट हुआ, जो उससे भी परे हैं, वही क्षेत्रज्ञ रूपसे कहा गया है। वह अहङ्कार क्रियावान मनुष्यों अर्थात् पुनरावृत्ति विशिष्ट लोगोंके लिये दुर्लभ पथस्वरूप है। जो जीव जिस जिस कर्म्ममें जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं, प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति मार्गमें वे उस ही महत् फलको उपभोग करते हैं। ये लोकगुरु जगत्के आदिकर्त्ता प्रभावयुक्त प्रजापति तुम लोगोंके पिता, माता और पिता मह हैं; ये मुझसे अनुशिष्ट होकर सब प्राणियोंके वरप्रद होंगे। जो ललाटसे उत्पन्न होकर रुद्ररूपसे इनके आत्मज हुए हैं, वे ब्रह्माकी आज्ञासे सब भूतोंको धारण करनेमें समर्थ होंगे। अब तुम लोग अपने अपने अधिकारपर जाओ विधिपूर्व्वक विचार करो, समस्त लोगोंके बीच सब कार्य्योंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त रहो, बिलम्ब मत करो।

हे सुरोत्तम गण! इस लोकमें परमायुका परिमित समय है, इसलिये प्राणियोंके कर्म्म और गतिका विषय वर्णन करो। इस समय सब कालसे श्रेष्ठ सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ है; इस युगमें यज्ञीय पशु अहिंस्य रहेंगे, इसमें अन्यथा न होगा। हे देवगण! इस सतयुगमें सब धर्म्म चार चरणसे स्थित रहेंगे। अनन्तर त्रेतायुग प्रवर्त्तित होगा, उसमें तीनों वेद वर्त्तमान रहेंगे, धर्म्मका चौथा चरण न रहेगा, तिसके अनन्तर द्वापर नाम मिश्रकाल आवेगा,

उस युगमें धर्मके दो चरण रहेंगे। अन्तमें तिस नव युगमें कलियुगके उपस्थित होनेपर धर्म सर्व्वत्र एक चरणसे निवास करेगा।

लोक गुरु भगवानके ऐसा कहने पर देवता और देवर्षि लोग बोले, जब धर्म्म जिस किसी स्थान पर जाके एक चरणसे निवास करेगा, उस समय हम लोगोंको क्या करना योग्य है? आप उसे ही वर्णन करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे सुरोत्तमगण! कलिकालमें जिस स्थानमें वेद, यज्ञ, सत्य, तपस्या, दम और अहिंसा धर्म्म संयुक्त होकर प्रचारित होगी, तुम लोग उस ही स्थानमें निवास करोगे, ऐसा करनेसे अधर्म्म तुम लोगोंको स्पर्श न कर सकेगा।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंके सहित देवता लोग भगवानकी ऐसी आज्ञा सुनकर उन्हें नमस्कार करके निज निज अभिलषित स्थानपर गये। सुरपुरवासी देवताओंके सहित ऋषियोंके चले जानेपर, केवल एक मात्र ब्रह्मा अनिरुद्ध तनसे अधिष्ठित उस भगवानका दर्शन करनेके अभिलाषी होकर स्थित रहे। भगवानने कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करके साङ्ग वेदोंकी आवृत्ति करते हुए सुन्दर तथा महत् हयशिरा मूर्त्ति धारण करके उन्हें दर्शन दिया। लोककर्त्ता प्रभावशाली प्रजापतिने हयशिरा देवको देखकर सब लोकोंकी हित कामनासे सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़के खड़े रहे। भगवानने उस समय विधाताको आलिङ्गन करके उन्हें यह वक्ष्यमाण वचन सुनाया है।

भगवान् बोले, हे ब्रह्मन्! तुम सब लोकोंके कार्य्य तथा गतिको विधिपूर्व्वक विचारो, तुम सब भूतोंके विधाता हो, तुम ही जगत्के गुरु और प्रभु हो; मैंने तुम्हें भार समर्पण करके अनायास सन्तोष अवलम्बन किया है। जिस समय तुम्हें देवकार्य्य अविसह्य होगा, तब मैं आत्मज्ञान और उपायके अनुसार उत्पन्न हूंगा। हयशिरा ऐसा ही कहके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये ब्रह्मा भी उनको आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही निज लोकमें गये। हे महाभाग! इस ही प्रकार वह सनातन पद्मनाभ सब यज्ञोंके अग्रहर और नित्यकाल यज्ञधारी कहके अनेक भांतिसे वर्णित हुए हैं। उन्होंने अक्षय धर्म्मशालियोंकी गतिरूप निवृत्ति धर्म्मको अवलम्बन किया है और सब लोकोंकी विचित्रता करके प्रवृत्ति धर्म्मका विधान किया है। वही आदि है, वही ध्येय है, वही कर्त्ता और वही कार्य्य है; वह युगान्त कालमें सब लोकोंको उदरमें डालके प्रसुप्त होता है और युगके आरम्भमें सावधान होकर जगत्को सृष्टि किया करता है। तुम सब कोई उस देवको नमस्कार करो; वही निर्गुण, महात्मा, अज, विश्वरूप और स्वर्गबासियोंका धाम स्वरूप है। वही महाभूतोंका अधिपति रुद्र गणका स्वामी आदित्यपति तथा वसुगणका प्रभु है; वह दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वामी, मरुद्गणका प्रभु, वेदयज्ञादि तथा वेदांगपति है। वही सदा समुद्रवासी हरि और मुञ्जकेशी है, वह शान्त है, और सब भूतोंके मोक्ष धर्म्मानुभाषी है; वही तपस्या, तेज और यशका पति, वाक्य पति तथा सरित्पति है। वह कपर्द्दी, वाराह, एक शृङ्ग, धीमान, विवस्वान अश्वशिरा, चतुर्म्मूर्त्तिधारी, सदा गुह्य, ज्ञानदृश्य और चर स्वरूप है। यह सर्व्वत्र गमनशील अव्यय देव भ्रमण कर रहा है यही विज्ञाननेत्रके सहारे जानने योग्य परब्रह्म है, इस ही प्रकार ज्ञाननेत्रसे [illegible] समयमें इसे देखा था। हे शिष्यगण! तुम लोगोंके पूछनेपर यथार्थ रूपसे यह सब कहा गया अब मेरे वचनके अनुसार ईश्वर हरिको सेवा करो, वेदध्वनिके जरिये उनका यश गाओ और विधि पूर्व्वक पूजा करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस बुद्धि

व्यासने शिष्योंसे तथा परम धर्मज्ञ शुकदेवसे ऐसा ही कहा था। हे महाराज! गुरु हम लोगोंके सहित चतुर्व्वेदोक्त ऋङ्मन्तके जरिये उसकी सब प्रकारसे स्तुति करने लगे। हे महाराज! पहले समयमें गुरु वेदव्यासने मुभासे जो कहा था वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया जो पुरुष स्थिर बुद्धि होकर "नमो भगवते" ऐसा बचन करके इस विषयको सदा सुनता अथवा कहता है, वह बुद्धिमान मनुष्य बलरूपसे युक्त और रोगरहित होता है; आतुर पुरुष रोगसे और बद्ध पुरुष बन्धनसे छूट जाते हैं। कामी कामनाके अनुसार काम्य विषय प्राप्त करके दीर्घायु होते हैं। ब्राह्मण सब वेदोंके जाननेवाले, चत्रिय विजयी, वैश्य अत्यन्त धनवान और शूद्रसुखी हुआ करते हैं। पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होता है, कन्या अभिलषित पतिपाती है, लग्नगर्भा विमुक्त होती तथा पुत्र प्रसव करती है, बन्ध्या समृद्धिशाली पुत्र पौत्र प्रसव किया करती है, मार्गमें जो मनुष्य इसे पाठ करता है, वह निर्व्विघ्नताके सहित मार्गमें गमन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष जैसी कामना करता है, वह निश्चय ही उसे पाता है। यह महर्षिका निश्चित बचन है, और देवर्षि तथा देवताओंके समागमसे युक्त महात्मा पुरुषोत्तमकी कथा कहने अथवा सुननेसे भक्त जन परम सुख लाभ करते हैं।

३४० अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे भगवन्! शिष्योंके सहित वेदव्यास मुनिने जिन विविध नामोंके सहारे मधुसूदनकी स्तुति की थी, मैं प्रजापति हरिके उन सब नामोंके निरुक्त अर्थात् निर्व्वाचन सुननेके लिये अभिलाषी हुआ हूं; इसलिये जिसे सुनके मैं निर्म्मल शरदकालके चन्द्रमाकी भांति पवित्र हूंगा, आपही उस विषयको वर्णन करने योग्य हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! प्रभावशाली नारायणने अर्ज्जुनके ऊपर प्रसन्न होकर सर्व्वज्ञत्व आदि गुणों और जगत्सृष्टि प्रभृति कर्म्म-जनित नामोंका जो निरुक्त कहा था, उसे सुनो। शत्रुनाशन धनञ्जयने जिन नामोंसे नारायणका वर्णन किया जाता है, उन सबका निरुक्त पूछा था।

अर्ज्जुन बोले, हे भूत भव्येश भगवन्! सर्व्वभूतोंकी सृष्टि करनेवाले अव्यय! हे लोक धाम जगन्नाथ! हे लोकाभयप्रद! हे देव महर्षियोंके जरिये तुम्हारे जो सब नाम वर्णित हुए हैं और वेद तथा पुराणोंके बीच कर्म्मवश जो सब नाम गुप्त हैं, हे केशव! मैं तुम्हारे निकट उन नामोंका निर्व्वाचन सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन नामोंका निरुक्त वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है।

श्रीभगवान बोले, हे अर्ज्जुन! ऋग्वेद, यजुर्व्वेद, सामवेद और अथर्व्ववेद, उपनिषद पुराण, ज्योतिष, सांख्य, योगशास्त्र और आयुर्व्वेदके बीच महर्षियोंने मेरे अनेक प्रकार नाम वर्णन किये हैं, उसके बीच कोई कोई नाम कर्म्मज होनेसे गौण हैं। हे अनघ! इसलिये तुम सावधान होकर मेरे द्वारा उन कर्म्मजनामोंका निरुक्त सुनो। हे तात! पहलेसेही तुम मेरे अर्द्धाङ्ग रूपसे स्मृत हुए हो। विश्वात्मा निर्गुण और गुणमय अत्यन्त यशस्वी देहधारियोंकी अन्तरात्मा है, इससे उस नारायणको नमस्कार है। जिसकी कृपासे ब्रह्माने जन्म लिया और जिसके क्रोधसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए हैं, वह स्थावर जङ्गम सबकी उत्पत्तिका कारण है। सात्विकप्रवर! प्रीति, कार्य्य, उद्रेक, लघुता, सुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, चमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, आर्जव, समता; सत्य और अनसूया, इन अठारह गुणोंको सत्त्व कहते हैं। मेरी परा प्रकृति

अष्टादश गुणमयी है ; यह प्रकृति ही योगबलसे द्युलोक और भूर्लोकको धारण कर रही है। यही धाता अर्थात ब्रह्मलोक पर्य्यन्त कर्म्म फल स्वरूप है, सत्ता अर्थात् अबाधित चिन्मात्र स्वरूप है; अमरण धर्म्मशीला, अजया प्रकृति ही सब लोकोंकी आत्मसंज्ञा संयुक्ता है ; उस धातादि स्वरूप परमात्मामें पध्वस्त सत्त्वसे सृष्टि और प्रलय आदि सब बिक्रिया प्रवर्त्तित हुआ करती हैं। तपस्या और यज्ञस्रष्टा पुराण पुरुष अनिरुद्ध रूपसे बर्णित हुआ करता है, इसहीसे सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय होती है। हे पद्मनिभेक्षण ! ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत होनेपर उस अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल उत्पन्न हुआ था, उसी कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्मा उसहीकी कृपासे जन्म ग्रहण करते हैं। दिनके बीतने पर उस क्रोधाविष्ट देवके मस्तकसे संहार करनेवाला रुद्र नाम पुत्र उत्पन्न होता है। ये दोनों देवश्रेष्ठ भगवानकी कृपा और क्रोधसे उत्पन्न होते हैं और उनकी आज्ञानुसार यथायोग्य कार्य्यमें प्रवृत्त होकर सृष्टि और संहार करते हैं सब प्राणियोंके वरप्रद ब्रह्मा और रुद्र सृष्टि तथा संहार कार्य्यमें निमित्त मात्र हैं।

हे पाण्डवेय ! कपर्द्दी, जटिल, मूण्ड श्मशान गृहवासी, उग्र ब्रतधर परम दारुण योगी, दक्ष यज्ञहर, भगनेत्रहर रुद्रको युगयुगमें नारायण स्वरूप जानना चाहिये। हे पृथापुत्र ! उस देवोंकेदेव महेश्वरके पूजित होनेसे प्रभु नारायण पूजित होते हैं। हे पाण्डुपुत्र ! मैं सब प्राणियोंको अन्तरात्मा हूं, इसलिये रुद्रकी पहले पूजा किया करता हूं ; यदि वरदाता ईश्वरशिवकी मैं पूजा न करूं तो जो मेरे आत्माकी और पूजा न करेगा। सब लोग मेरे किये हुए प्रमाणका अनुसरण किया करते हैं, इसलिये प्रमाण रूपका ही पूज्य हैं, इसी निमित्त मैं इनकी पूजा किया करता हूं। जो पुरुष शिवको जानता है, वही मुझे भी जानता है, जो उसके अनुगत हैं, वही मेरे अनुगत हैं। हे कौन्तेय ! रुद्र और नारायण दो रूपसे एक ही है, इसलिये सब कार्य्योंमें व्यक्तिस्थ होकर लोकमें बिचरते हैं। हे पाण्डुपुत्र ! कोई पुरुष मुझे वर देनेमें समर्थ नहीं है, मै मनहीमन ऐसा ही बिचार करके पुराण ईश्वर रुद्रदेवको पुत्रके निमित्त आप ही अपनी आराधना की थी। सर्व्वव्यापी बिष्णु अपने सिवा और किसी देवताको प्रणाम नहीं करते, इसही निमित्त मैं रुद्रदेवकी आराधना करता हूं। ब्रह्मा रुद्र और इन्द्रके सहित सब देवता तथा ऋषि लोग देव श्रेष्ठ नारायण हरिकी पूजा करते हैं। हे भारत ! वर्त्तमान और भविष्यत् प्राणियोंके लिये भगवान विष्णु ही सबके सेवनीय और सदा पूजनीय हैं। हे कुन्तीपुत्र ! हव्यदाता बिष्णुको नमस्कार और शरण दाता हरिको प्रणाम करो, वरदाता बिष्णुको नमस्कार तथा हव्यकव्य भोक्ता भगवानको प्रणाम करो। मैंने ऐसा सुना है कि जिज्ञासु, आर्त्त, अर्थार्थी और ज्ञानी, इन चार प्रकारके पुरुष ही मेरे भक्त हैं, उसमेंसे जो लोग अपनेसे पृथक् दूसरे देवताओंको आराधना न करके केवल मुझमें ही अत्यन्त निष्ठावान हैं, वेही श्रेष्ठ हैं, उन निष्काम कर्म्म करनेवाले भक्तोंका मैंही अवलम्ब हूं। इसके अतिरिक्त जो तीन प्रकारके भक्त हैं, वे लोग फल कामना किया करते हैं ; इसलिये लोग धर्म्मभ्रष्ट होते हैं, इस ही कारणसे उन्हें धर्म्मच्युत कहा जाता है और जो लोग प्रतिबुद्ध हैं, वेही श्रेष्ठ हैं। प्रबुद्ध चर्म्म मनुष्य ब्रह्मा अथवा दूसरे नीलकण्ठ आदि देवताओंकी सेवा करते हुए मुझे ही पाते हैं। हे पार्थ ! भक्तके विषयमें मुझे जो विशेष है, यह तुम्हारे समीप वही विषय कहा गया। हे कौन्तेय ! तुम और मैं, अर्थात् हम दोनों नर-नारायण रूपसे पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये मनुष्य रूपसे उत्पन्न

हुए हैं। हे भारत! मैं अध्यात्म योग जाननेसे निवृत्ति लक्षण और अभ्युदयिक धर्म रूपसे स्मृति हुआ हूं। केवल एकमात्र सदा मैंही मनुष्योंका न स्थान अर्थात् अवलम्ब हूं, इसही निमित्त मेरा नाम नारायण है, अथवा जलस-मूहको नार कहते हैं, क्यों कि वह नरसे उत्पन्न हुआ है, सृष्टिके पहिले वही समस्त नार (जल) मेरा स्थान था, इस ही कारणसे मैं नारायण हूं। मैं सूर्य्य स्वरूपसे किरणोंके सहारे अखिल जगत्को परिपूर्ण करता हूं; और सब प्राणी मुझमें निवास करते हैं; इसही निमित्त मैं वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ हूं।

हे भारत! मैं सर्व्वभूतोंकी गति और उत्प-त्तिका कारण हूं। हे पार्थ! द्यूलोक और भूलोक मुझसे व्याप्त हो रहा है, मेरा तेज भी सबसे अधिक है; क्यों कि मेरे तेजसे समस्त जगत् प्रकाशित होरहा है। हे भारत! दिव्य अदिव्य सब प्राणी अन्तकालमें जिसे पानेकी इच्छा करते हैं, मैं वही ब्रह्म हूं। हे पार्थ! मैंने तीनों लोकोंको आक्रमण किया है, इसी कारणसे विष्णु नामसे विख्यात हुआ हूं। मनुष्य लोग मुझे पानेके लिये अपनी अपनी इन्द्रियोंको दमन करते हुए सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, इसीसे द्यूलोक, भूलोक और मध्यलोकवासी मुझे दामोदर कहते हैं, अर्थात् दाम शब्दसे "दमन" अर्थ जाना जाता है, इन्द्रिय दमन होनेसे जिसके जरिये स्वर्गादि लोग प्राप्त होते हैं, वही दामोदर है। अन्न, वेद, जल और अमृत, इन चारोंको प्रश्नि कहते हैं, ये सब सदा मेरे उदरमें विद्यमान हैं, इस-लिये मैं प्रश्निगर्भ हूं। 'हे प्रश्निगर्भ! एकत और द्वितके द्वारा कूएंमें गिराये हुए त्रितकी रक्षा करो, ऋषियोंने मुझे इस ही प्रकार कहा था। अनन्तर ब्रह्माके पुत्र; त्रित 'प्रश्निगर्भ' नाम लेनेसे कूएंसे बाहर हुए थे। लोकोंको तपाने-वाली सूर्य्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी सारी किरण जो प्रकाशित होती है, वह मेरे केशसंज्ञक हैं, इसी निमित्त सर्व्वज्ञ द्विजसत्तमगण मुझे केशव कहते हैं। हे अर्ज्जुन! महात्मा उतथ्यके सहारे बृहस्पतिकी पत्नीमें गर्भ अर्पित होनेपर देवमायासे जब उतथ्य अन्तर्द्धान हुए, तब महा-नुभाव बृहस्पति अपनी भार्य्याके निकट उप स्थित हुए। हे कौन्तेय! जब ऋषिश्रेष्ठ बृह स्पति मैथुनके निमित्त भार्य्याके निकट गये तब पञ्चभूतोंसे संयुक्त गर्भ बोला। हे वर देने वाले! मैं पहलेसे ही इस गर्भमें आया हूं, इस लिये आप मेरी माताको पीड़ित न करिये बृहस्पतिने ऐसा वचन सुनके क्रुद्ध होकर शाप दिया, कि मैं मैथुनके निमित्त आगमन करके जब तुमसे रोका गया हूं, तब तुम मेरे शापसे निःसन्देह अन्धे होगे। ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पतिके शापसे वह गर्भ अधिक अन्धकारको प्राप्त हुआ। इसही कारणसे पहले समयमें उस गर्भसे उत्पन्न ऋषि दीर्घतम नामसे विख्यात् हुए। उन्होने साङ्गोपाङ्ग चारोंसनातन वेदोंको पढ़के विस्तारके सहित विधिपूर्व्वक मेरे इस केशव नामको बार बार उच्चारण कियाथा, इसही नामके उच्चारण करनेसे वह नेत्रवान हुए और उस हो निमित्त गौतम नामसे विख्यात् हुए। हे अर्ज्जुन। इस ही प्रकार मेरा यह वर देनेवाला केशव नाम प्रसिद्ध हुआ, समस्त देवताओं और महानुभाव ऋषियोंके तापन और अध्यायन निबन्धनसे जठराग्नि, अन्नस्वरूप चन्द्रमाके सहित संयुक्त होकर एक योनित्वको प्राप्त हुए, इसलिये स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् अग्निचन्द्रमा-मय हुआ है, वर्त्तमान पुराणोंमें भी अग्नि और चन्द्रमा एक योनि है तथा देववृन्द अग्नि-मुख कहके प्रसिद्ध हैं, एक योनित्व प्रयुक्त होनेसे ये परस्पर भोक्तृभोग्य भावसे संयुक्त होके सब लोकोंको धारण करते हैं।

३४१ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे मधुसूदन! अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार पहले एक योनि हुए थे। मुझे बड़ा सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस संशयको दूर करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे पाण्डुपुत्र! अच्छा मैं तुम्हारे समीप अपने तेजसे उत्पन्न हुए प्राचीन विषयको वर्णन करता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। प्रलयकालके समय हजार चतुर्युगी बीतने और स्थावर जङ्गममय सब भूतोंके अव्यक्तमें लीन होनेपर जगत् अन्धकारसे परिपूरित अग्नि वायु और पृथ्वीसे रहित तथा जलवत् चैतन्य मात्र समुद्र समान सर्व्वत्र व्याप्त होने और समुद्रकी भांति अद्वितीय ब्रह्मके निज महिमामें निवास करनेपर जब रात्रि, दिन, प्रकृति, शून्य, व्यक्त परिमाणु और माया विचित्रित अव्यक्त कुछ भी न था; केवल निर्व्विशेष स्वभाव ब्रह्म ही स्थित था। ऐसी अवस्थामें नारायण गुण ऐश्वर्य्य आदिके अवलम्ब अजर, अमर, अनिन्द्रिय, अग्राह्य, असम्भव, सत्य, अहिंस, रत्नवत्, भावरूप, ललामभूत, विविध प्रवृत्ति विशेष, बैर रहित, मृत्यु, जरा और मूर्त्ति-विवर्ज्जित, सर्व्वव्यापी, सर्व्वकर्त्ता, अनादि तम सन्निधानसे चिदात्मा हुआ था, वही अहंप्रत्ययका विषय अव्यय हरि है। इस विषयमें यह वेदका प्रमाण है, कि सृष्टिके पहिले न रात्रि थी, न दिन था, न सत था, न असत् था, केवल विश्वरूप अन्धकार था, वह अन्धकार ही विश्वरूप रात्रि है, भाष्यके बीच ऐसा ही अर्थ जाना गया है। अनन्तर उस तमसे उत्पन्न ब्रह्मयोनि पुरुषसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उस पुरुष अर्थात् हरिने प्रजासमूहको उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दोनों नेत्रोंसे अग्नि और चन्द्रमाको उत्पन्न किया। अनन्तर भूतोंकी उत्पत्ति होने पर धीरे धीरे प्रजासमूह ब्राह्मण और क्षत्रिय रूपसे उत्पन्न हुए। जो सोम हैं, वही ब्रह्म है, जो ब्रह्म है, वही ब्राह्मण हैं, जो अग्नि है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रियसे ब्राह्मण बलवान हैं, लोक प्रत्यक्ष गुण ही इसमें कारण हैं। ब्राह्मणोंसे उत्तम जीव पहले उत्पन्न नहीं हुआ, जो लोग ब्राह्मणके मुखमें आहुति प्रदान करते हैं, वे दीप्यमान अग्निमें होम किया करते है; इस ही निमित्त कहता हूं, ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है, और वह सब भूतोंको प्रतिष्ठित करके तीनों लोकोंको धारण कर रहे हैं; इसहीके सहारे ब्राह्मण-माहात्म्यको प्रसिद्ध करनेवाला मन्त्रवाद भी सिद्ध होता है।

हे अग्नि! तुम सब यज्ञोंके होता स्वरूप ऋत्विक् हो; इसलिये समस्त देव मनुष्य और जगत्के हितकर हो। इस विषयमें यह प्रमाण है कि, हे अग्नि! तुम समस्त देवता मनुष्य और जगत्के हितकारनेवाले हो, इस ही निमित्त तुम यज्ञमें होता अर्थात् ऋत्विक्-स्वरूप हो। अग्नि ही यज्ञोंमें होता, कर्त्ता अर्थात् यजमान है और वह अग्नि ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण हैं। मन्त्रके बिना होम नहीं होता, बिना पुरुषके तपस्या नहीं होसकती और हवि तथा मन्त्रोंका सत्कार नहीं होता, तथा अग्निके बिना देवता, मनुष्य और ऋषियोंका सम्मान सम्भव नहीं है, इस ही निमित्त तुम होर्त्तृ स्वरूपसे नियुक्त हो क्योंकि ब्राह्मणोंमेंही याजन विहित है, क्षत्रिय और वैश्योंके द्विजाति होनेपर भी उनमें याजन विहित नहीं है; इसलिये ब्राह्मण लोग अग्नि स्वरूप होकर यज्ञोंको ढोते हैं, वही समस्त यज्ञ देवताओंको तृप्त करते हैं, देवता लोग यथा समयपर वर्षा आदिसे पृथ्वीपालन किया करते हैं। शतपथ ब्राह्मणमें यही प्रतिपन्न हुआ है, कि जो विद्वान् ब्राह्मणके मुखमें आहुति देता है, वह समृद्ध अग्निमें होम किया करता है। इस ही प्रकार अग्निरूपी विद्वान् ब्राह्मण अग्निको प्रकट करते हैं, सर्व्वव्यापी अग्निदेव विष्णु रूपसे सबके शरीरमें

होकर जीवोंके प्राणको धारण किया करता है। इसके अतिरिक्त सनत्कुमारके कहे हुए इस विषयमें ये श्लोक हैं, कि सबके पहले ब्रह्माने इस निरवस्कृत अर्थात् निष्कलंक जगत्को उत्पन्न किया था। ब्रह्मयोनि देवता लोग वेदध्वनिके जरिये स्वर्गमें गमन करते हैं, ब्राह्मणोंके वचन बुद्धि, कर्म्म, श्रद्धा, तपस्या और वाक्यामृत शैक्ष्य अर्थात् शिक्षकी भांति स्वर्ग और महीमण्डलको धारण कर रहे हैं। सत्यसे परम धर्म्म और कुछ भी नहीं है। माताके समान गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें विभूतिके निमित्त ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। जिसके राज्यमें ब्राह्मण वृत्ति रहित होके वास करते है, उसके रक्षा अर्थात् वृषभ अथवा सब बाहन सवारियोंको नहीं ले चलते, गर्गर अर्थात् दही जख और तेल आदि निष्पीड़नके यन्त्रदही प्रभृतिके सम्प्रदान विषयमें मथित नहीं होते, वह राजा क्रुधिरहित होके बिनष्ट होता तथा दस्युके समान हुआ करता है। वेद पुराण और इतिहासके प्रमाण अनुसार ब्राह्मण लोग नारायणके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, वेही सर्व्वात्मा, सर्व्वकर्त्ता और सर्व्वसत्त्व स्वरूप हैं। उस वरप्रद महादेवके वाक् संयमसे ब्राह्मण ही पहले उत्पन्न हुए और ब्राह्मणोंसे शेष तीनों वर्ण उत्पन्न हुए थे। इस ही प्रकार जब कि मैंने ब्राह्मणोंको सुरासुरोंसे भी श्रेष्ठ उत्पन्न किया है, तब ब्राह्मणोंसे ही देवता, असुर, महर्षि आदि स्थापित और निग्रहीत हुए हैं। अहल्याका धर्म्म नष्ट करनेसे गौतमके शापसे देवराज इन्द्र हरिश्मश्रु हुए हैं, कौशिकके निमित्त इन्द्र मुष्कहीन होकर मेषवृषणत्वको प्राप्त हुए। दोनों अश्विनीकुमारोंके ग्रह प्रतिषेधके निमित्त बज्र लिये हुए इन्द्रकी दोनों भुजा च्यवनके द्वारा स्तम्भित हुई थीं। यज्ञबिघातके हेतु क्रुद्ध होकर दक्षने बार बार तपस्याके सहारे आत्म संयोजना करके त्रिपुरासुरके वधके लिये रुद्रदेवके ललाटसे नेत्राकृति समान एक दूसरी शक्ति उत्पन्न की थी। शुक्राचार्य्यने दीक्षाके लिये निकट आये हुए रुद्रके सिरसे सब जटा काटके फेंक दीं, उस फेंकी हुई जटासे सर्पसमूह उत्पन्न हुए, उन सर्पोंसे पीड़ित होनेसे महादेवका कण्ठ नीलवर्ण हुआ है और पहले कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें नारायणके हाथके सहारे ग्रहण किये जानेसे रुद्रदेव नील कण्ठ हुए। अमृत उत्पन्न करनेके लिये पुनश्चरण करनेके हेतु अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिने जलको स्पर्श किया परन्तु वह प्रसन्न न हुआ तब बृहस्पति जलके विषयमें क्रुद्ध होकर बोले कि, मेरे स्पर्श करनेपरभी जब तुम कलुष रहे और किसी प्रकार प्रसन्न न हुए उसही कारण आजसे मकर मच्छ, कच्छप आदि जलजन्तुओंसे कलुष रहोगे। बृहस्पतिने जब ऐसा शापदिया तभीसे समस्त सलिल जल जन्तुओंसे भर गया।

त्वष्टापुत्र विश्वरूप देवताओंके पुरोहित थे, वह असुरोंके भानजे होनेपर भी देवताओंको प्रत्यक्षमें और असुरोंको परोक्षमें यज्ञ भाग प्रदान करते थे। अनन्तर असुरोंने हिरण्यकशिपुको अगाड़ी करके निज भगिनी विश्वरूपकी माताके निकट जाके वर मांगा कि, हे बहिन। तुम्हारा यह पुत्र त्वष्टातनय त्रिशिरा विश्वरूप-देवताओंका पुरोहित हुआ है, इसने देवताओंको प्रत्यक्ष और हमको परोक्षमें यज्ञभाग प्रदान किया है, इस ही कारणसे देवता लोग बर्द्धित और हम लोग क्षीण हुए हैं; इससे तुम इसे निवारण करो और जिस प्रकार यह हमारे बशमें हो, उसके निमित्त आज्ञा दो अनन्तर विश्वरूपकी माता नन्दनबनमें पहुंचके निज पुत्रसे बोली, हे पुत्र! तुम क्यों परपक्षवर्द्धक होके मातुलपक्ष बिनष्ट करते हो। तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है, विश्वमाताका बचन अनतिक्रमणीय समझके उसका सत्कार करके हिरण्यकशिपुके निकट गये। हिरण्यगर्भसे उत्पन्न

हिरण्यकशिपु वसिष्ठसे शापग्रस्त हुआ था, वह शाप यह था, कि जिस लिये तुमने दूसरे होताको वरण किया है, उस ही कारणसे यज्ञ समाप्त न होते ही मृत्युको प्राप्त होगे, उस ही शाप निबन्धनसे हिरण्यकशिपुका बध हुआ। अनन्तर विश्वरूपने मातृपक्ष वर्द्धित करनेके लिये घोर तपस्या की थी, उनके नियमको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने बहुतेरी अप्सराओंको नियुक्त किया। उन अप्सराओंको देखकर विश्वरूपका मन क्षुभित हुआ थोड़े ही समयमें वह उनमें आसक्त हुए। अप्सराओंने उन्हें अनुरक्त जानके कहा, हम जहांसे आई हैं वहांको जायंगी। विश्वरूप उनसे बोले, तुम लोग कहां जाओगी? मेरे सङ्ग वास करो, कल्याण होगा। अप्सराओंने कहा, हम देवपत्नी अप्सरा हैं, पहले वरदाता प्रभावशाली देवराज इन्द्रको वरण किया है। अनन्तर विश्वरूप बोले, आजसे ही इन्द्रादि देवताओंका अब कुछ प्रभाव न रहेगा,—ऐसा कहके उन्होंने मन्त्र जपा; उस मन्त्रके सहारे त्रिशिरा अत्यन्त वर्द्धित हुए। वह एक मुखसे सब लोकोंके बीच क्रियावान् ब्राह्मणोंके द्वारा यज्ञ स्थलमें यथावत् हुत सोम-पान करने लगे। एक मुखसे अन्न ग्रहण किया और अन्य मुखसे इन्द्रके सहित सब देवताओंको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुए।

अनन्तर इन्द्र उसे त्रिशीर्ष रूपसे वर्द्धित और सोमपानके सहारे सर्व्वशरीर आप्यायित देखकर देवताओंके सहित चिन्ता करने लगे। अन्तमें इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माके निकट गमन किया; वे लोग वहां पहुंचके बोले, विश्वरूप उत्तम हुत सोमपान करता है, हम सब कोई यज्ञभागसे रहित हुए हैं, असुर लोग वर्द्धित हुए और हम क्षीण होरहे हैं; इस-लिये इसके अनन्तर जिस प्रकार हमारा कल्याण हो, आपको उसका विधान करना उचित है। ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, भगुवंशमें उत्पन्न हुए महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं, उनके समीप जाके वर मांगो और वह जिस प्रकार शरीर परित्याग करें, वैसी ही उपाय करो। जब वे शरीर परित्याग करेंगे, तब उनकी हड्डीसे वज्र बनाना। अनन्तर जिस स्थानमें महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे थे, इन्द्र आदि देवता उस ही स्थानपर गये और वहां जाके उनसे बोले, हे भगवन्! आपकी तपस्यामें कुशल है न? कुछ विघ्न तो नहीं हुआ? दधीचि उन लोगोंसे बोले, आप लोग सुखसे आये हैं न? कहिये क्या करना होगा? आप लोग जो कहेंगे, मैं वही करूंगा। उन लोगोंने दधीचिसे कहा, सब लोकोंके हितके निमित्त आपको शरीर त्यागना उचित है। अनन्तर महायोगी दधीचिने पहलेकी भांति चित्त स्थिर कर सुख दुःखमें समान ज्ञान करके आत्मसमाधान करते हुए शरीर परित्याग किया, जब उनका आत्मा शरीरसे पृथक् हुआ, तब धाताने उनकी हड्डियोंको संग्रह करके वज्र बनाया। देवराज इन्द्रने उस ब्राह्मणकी हड्डीके बने हुए अभेद्य अनभिभवनीय विष्णु प्रविष्ट वज्रसे विश्वरूपका बध किया। विश्व-रूपके तीनों शिरोंको काटनेके अनन्तर उसके शरीरको मथके त्वष्टाने इन्द्रके शत्रु वृत्रको उत्पन्न किया; इन्द्रने उसका भी बध किया। अनन्तर दो ब्रह्महत्या प्रकट हुईं, तब डरके इन्द्रने देवराज्य परित्याग किया; देवताओंके राज्यको त्यागके इन्द्र जलसे उत्पन्न शीतल मानसरोवरवासिनी नलिनीके निकट उपस्थित हुए और ऐश्वर्य्य बलसे अणुमात्र होकर उस कमलिनीके मृणालकी ग्रन्थिमें प्रविष्ट हुए; अनन्तर तब त्रिलोकीनाथ इन्द्रके ब्रह्महत्याके भयसे छिपनेपर जगत् अनीश्वर हुआ। रज और तमोगुणने देवताओंको आक्रमण किया। महर्षियोंके मन्त्र निष्प्रभ हुए, राक्षसोंकी उत्पत्ति और वृद्धि होने लगी, वेद नष्ट होगये,

इन्द्रके अभावमें सब लोग निर्व्वल होनेसे अना-यास ही अभि भवनीय हुए। अनन्तर देवताओं और ऋषियोंने आयुके पुत्र नहुष नाम राजाको देवराज्यपर अभिषिक्त किया। नहुष सब प्राणियोंके तेजको हरनेवाले ललाटमें पांच सौ ज्योतिःयुक्त होके स्वर्ग राज्य शासन करने लगे। अनन्तर सब लोग प्रकृतिस्थ हुए, सभी स्वस्थ और हृष्ट होने लगे। उस समय नहुष बोले, शचीके अतिरिक्त इन्द्रकी उपभुक्त समस्त वस्तु मेरे निकट उपस्थित हुई है। वह ऐसा कहके शचीके निकट गये और उससे बोले, हे सुभगे! मैं देवताओंका अधिपति इन्द्र हूं, इस-लिये तुम मेरी सेवा करो। शचीने उन्हें उत्तर दिया, कि तुम स्वभावसे ही धर्म्म वत्सल विशेष करके चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो, इसलिये परायी स्त्रीका पातिव्रत्य नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है। नहुषने उससे कहा, मैं इन्द्रत्व पद पर अधिष्ठित हुआ हूं, इन्द्रके राज्य, धन और रत्नोंपर मेरा अधिकार है, तुम इन्द्रकी उपभुक्ता हो, इसलिये तुम्हें उप-भोग करनेसे मुझे कुछ अधर्म्म न होगा शची उस समय नहुषसे बोली, मेरा कोई अपरिस प्राप्त ब्रत है, उस व्रतके समाप्त होने पर स्नान करके कई एक दिनके बीच तुम्हारे निकट गमन करूंगी। इन्द्राणीका ऐसा बचन सुनके नहुषने वहांसे गमन किया।

अनन्तर नहुषके भयसे डरी हुई दुःखी और शोकार्त्ता शचीपतिको देखनेके निमित्त व्याकुल होकर बृहस्पतिके निकट गई। बृह-स्पति उसे अत्यन्त व्याकुल देख कर तथा ध्यान अवलम्बन करके भर्त्तृ कार्य्यमें तत्पर जानके बोले, तुम इस पतिब्रत और तपस्यासे युक्त होकर वरदायी उपश्रुति देवीको आवाहन करो। वह तुम्हें इन्द्रको दिखा देगी। अन-न्तर शची महानियमवती होकर वरदायी उपश्रुति देवीको मन्त्रके द्वारा आह्वान करने लगी। वह उपश्रुति देवी शचीके समीप आके बोली, तुम्हारे आह्वानके अनुसार मैं आई हूं, कौनसा प्रिय कार्य्य साधन करूं? शची सिर झुकाके उसे प्रणाम करके बोली, हे भग वति! तुम मेरे पतिको मुझे दिखा दो, तुम सत्य रूपिणी और परम सत्या हो। उपश्रुति उस समय शचीको मानसरोवरमें लेगई और वहांपर मृणालकी ग्रन्थिमें सूक्ष्म भावसे स्थि इन्द्रको दिखा दिया। इन्द्र निज पत्नीको कृशि और मलिन देखकर चिन्ता करने लगे। हाय मुझे यह कैसा दुःख उपस्थित हुआ, मेरे छिप पर भी मेरी दुःखार्त्ता पत्नी मुझे खोज सम्मुख उपस्थित हुई है। इन्द्र उससे बो कैसी हो? शचीने इन्द्रसे कहा, नहुष मु भार्य्या बनानेके लिये आह्वान करता है, मै उससे कुछ कालके निमित्त अवसर लिया है इन्द्रने उससे कहा, तुम नहुषके निकट जा उससे कहो, कि तुम अपूर्व्व ऋषियुक्त यानप चढ़के मुझसे उद्वाह करो। इन्द्रके अनेक प्रका उत्तम और महत् सब वाहन विद्यमान हैं, मै अपनी इच्छानुसार सब यानों पर आरोह किया है; तुम दूसरे किसी नवीन यान प चढ़के मेरे निकट आना। इन्द्रने जब ऐसा कह तब शची हर्षित होके वहांसे चली। इन्द्र फिर कमलकी नालमें प्रविष्ट हुए। तिस अनन्तर इन्द्राणीको आई हुई देखके नहु उससे कहा, तुम्हारा वह समय पूरा हुआ है उस समय शचीने उनसे वही बचन कहा, कि उससे इन्द्रने कहा था। अनन्तर नहु महर्षियुक्त सवारी पर चढ़के शचीके निक जाने लगे। उस समय मित्रावरुणि कुम्भयो ऋषिवर अगस्त्यने देखा, कि नहुषके द्वारा महर्षि धिक्कृत होरहे हैं, देखते देखते नहु उन्हें चरणसे स्पर्श किया।

अनन्तर अगस्त्य मुनि नहुषसे बोले, अकार्य्यमें प्रवृत्त पापी! तू पृथ्वी पर गिर। उ

तक भूमि और पहाड़ विद्यमान रहेंगे, तब तक तू सर्प होके निवास करेगा। नहुष महर्षिके ऐसा कहते ही उस ही समय यानसे नीचे गिरे। तीनों लोक फिर इन्द्रसे सूना हुआ अनन्तर देवता और ऋषियोंने इन्द्रके निमित्त भगवान् विष्णुको शरणमें जाके उनसे कहा। हे भगवान्! ब्रह्महत्यासे आक्रान्त इन्द्रका परित्राण करना आपको उचित है। देवताओं और ऋषियोंका वचन सुनके बरदाता विष्णु उनसे बोले, इन्द्र विष्णुके उद्देश्यसे अश्वमेध यज्ञ करे, तो फिर निज पदको पावेंगे। देवता और ऋषियोंने जब इन्द्रको न देखा; तब शचीसे कहा, हे सुभगे। जाओ इन्द्रको लिवा लाओ। शची फिर उस ही तालाबके निकट गई, तब इन्द्र उस सरोवरसे निकलकर वृहस्पतिके समीपमें उपस्थित हुए। वृहस्पति इन्द्रके निमित्त अश्वमेध महायज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, उस यज्ञमें कृष्णसारङ्ग मेध्य अश्व उत्सर्ग करके उन्हें वाहन बनाकर वृहस्पतिने सुरपति इन्द्रको निज पद प्रदान किया। अनन्तर वह स्वर्गवासी सुरराज देवताओं तथा ऋषियोंसे स्तुतियुक्त होकर निष्पाप हुए और स्त्री, अग्नि, वनस्पति और गऊ, इन चार स्थानमें गोहत्याको विभाग कर रखा। इस ही प्रकार इन्द्रने ब्रह्मतेजके प्रभावसे बर्द्धित होकर शत्रुका बध करके निज पद पाया था। पहिले समयमें महर्षि भरद्वाज आकाशगङ्गामें गमन करके उसे स्पर्श करनेसे त्रिविक्रम विष्णुसे विधृत हुए थे, भरद्वाजने चुल्लूमें जल लेके उसहीसे नारायणके वक्षस्थलमें आघात किया, तभीसे उनका वक्षस्थल चिन्हयुक्त होरहा है, महर्षि भृगुके अभिशापसे अग्निदेव सर्व्वभक्षो हुए हैं।

अदितिने देवताओंके निमित्त अन्नपाक किया था, वे लोग उस ही अन्नको खाके असुरोंको मारेंगे, यही उद्देश्य था। उस समय बुध व्रत समाप्त होने पर अदितिके निकट जाके भिक्षा मांगो। 'देवता लोग पहले इस अन्नको भोजन करेंगे, दूसरा कोई भी उसे भोजन न करने पावेगा'—इस ही निमित्त उसने बुधको भिक्षा नहीं दी। भिक्षा न पाने पर बुध स्वरूप भगवान्ने रुष्ट होकर अदितिको शाप दिया, कि तुम्हारे उदरमें पीड़ा होगी। अण्ड संज्ञित विवस्वानके द्वितीयबार जन्म लेनेके समय अण्डमाता अदितिको वही शाप स्मरण होता है, इसही निमित्त श्राद्धदेव विवस्वानका मार्त्तण्ड नाम हुआ था। दक्षको जो साठ कन्या थीं, उनमेंसे उन्होंने काश्यपको तेरह, धर्म्मको दश, मनुको दश और चन्द्रमाको सत्ताईस कन्या दान की, वे सभी समान तथा नक्षत्र नामसे विख्यात् थीं। सबके समान होने पर भी चन्द्रमा रोहिणीसे अधिक प्रीति करते थे, उसहीसे अन्य स्त्रियोंने ईर्षावती होकर पिताके निकट जाके इस विषयको बर्णन किया, हे भगवान्! हम सबके तुल्य प्रभा होनेपर भी रजनीनाथ रोहिणीसे अधिक प्रीति करते हैं। दक्ष बोले, 'चन्द्रमाके शरीरमें यक्ष्मा रोग प्रवेश करेगा।' दक्षके उस ही शापसे यक्ष्माने द्विजराज चन्द्रमाके शरीरमें प्रवेश किया; चन्द्रमा यक्ष्मायुक्त होकर दक्षके निकट गये। दक्ष इनसे बोले, तुम सब पत्नीके सम्बन्धमें समान व्यवहार नहीं करते, उस समय ऋषियोंने चन्द्रमासे कहा, तुम यक्ष्मासे क्षीण होते हो, इसलिये पश्चिम और समुद्रके निकट हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है, वहां जाके तुम स्नान करो।

अनन्तर सुधाकर उस हिरण्य सरोवर तीर्थमें गये, वहां जाके आत्मसेचन अर्थात् स्नान करके पापसे छूटे, चन्द्रमा उस तीर्थमें अवभासित हुए थे, उस ही समयसे वह प्रभास नामसे विख्यात् हुआ है। दक्षशापसे अब तक भी चन्द्रमा अमावस्यामें अप्रकाशित रहते और केवल पूर्णमासीको पूर्ण रूपसे अधिष्ठित होते हैं। जो मेघलेखा प्रतिच्छन्न शरीर दोख पड़ता

है, वह मेघ सदृश वर्ण हुआ है, इसका निर्म्मल अंश शश-कलङ्क रूपसे प्रकाशित है। स्थूल-शिरा महर्षिने सुमेरु पर्व्वतके पूर्व्वोत्तर दिशामें तपस्या की थी, जब वह तपस्या कर रहे थे, तब सर्व्वगन्धवाहक पवित्र वायुने बहते हुए उनका शरीर स्पर्श किया; वह तपस्यासे तापित और शरीरसे कृश हुए थे, इससे वायुसे उपवीज्यमान होकर हृदयसे परितुष्ट हुए। उस समय उनके उस अनिल-व्यञ्जनकृत परि-तोषके चिन्हस्वरूप वनस्पतियोंने पुष्पशोभा प्रदर्शित की। महर्षिने उन वनस्पतियोंको यह कहके शाप दिया, कि सब समयमें तुम पुष्प-वन्त न होगे। पहिले समयमें नारायण सब लोकोंके हितके निमित्त वाड़वामुख नामक महर्षि हुए थे, उन्होंने सुमेरु पर्व्वतपर तपस्या करते हुए समुद्रको आह्वान किया, परन्तु समुद्र आह्वान करनेपर उनके निकट उपस्थित नहीं हुआ, तब उन्होंने क्रुद्ध होकर निज शरीरकी उष्मतासे समुद्रको स्तिमित जल किया; पसीना भरनेसे समुद्रका जल खारा होगया, उन्होंने समुद्रसे कहा तुम अपेय होगे, तुम्हारा जल वाड़वामुखके सहारे पीयमान होनेसे मधुर होगा। इसीसे आजतक समुद्रका जल उसके अनुवर्त्ती वाड़वामुखके सहारे पीयमान होता है। रुद्रदेवने हिमालय शैलकी दुहिता उमाकी कामना की, उस समय महर्षि भृगु भी हिम-वानके निकट जाके बोले, यह कन्या मुझे दान करो। हिमालयने उनसे कहा, रुद्र इसके अभिलषित वर हैं। भृगुने उन्हें उत्तर दिया, कि जब तुमने मुझे कन्या देना अस्वीकार किया है, तब तुम अबसे रत्नोंके भाजन न होगे। आजसे ऋषिवचनके अनुसार तुम्हारी ऐसी ही अवस्था हुई। इसलिये ब्राह्मणोंके इस ही प्रकार बहुतसे माहात्म्य हैं। क्षत्रिय जाति भी ब्राह्मणोंकी कृपासे शाश्वती और अव्यया पृथ्वीकी पत्नीभावसे भजना करती है, ब्राह्मण

और दोनों तेजसे मिलके अग्नि-षोमीय ब्रह्मरू-पसे विख्यात होता है, उसके सहारे यह जगत् विधृत होरहा है, ऐसा कहा गया है, कि सूर्य्य और चन्द्रमा परमेश्वरके नेत्र हैं, अंशु उसके केश कहे गये हैं, चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को प्रबुद्ध और तापित करते हुए धारण कर रहे हैं; ये दोनों बोधन और तापन हेतुसे जगत्के हर्षण हुए हैं। हे पाण्डुनन्दन! अग्नि और चन्द्रमाके इन सब कर्म्मोंसे मैं हृषीकेश नामसे विख्यात हुआ हूं, उसका कारण यही है कि चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को हर्षित करते हैं, इस ही निमित्त उन्हें हृषीकेश कहते हैं, वेही अंशु अर्थात् हमारे केश हैं, इस ही लिये मेरा हृषीकेश नाम प्रसिद्ध हुआ है। मैं सब लोकोंका नियन्ता होनेसे ईशान; वरदाता होनेसे वरद और स्रष्टा होनेसे लोकभावन नामसे अभिहित हुआ करता हूं। और इडो-पहूता सहदिवा इत्यादि मन्त्रोंसे आहूत होकर यज्ञभाग हरण करता हूं, इस ही निमित्त अथवा मेरा वर्ण हरिन्मणिके समान है, इस ही लिये मैं हरि नामसे स्मृत हुआ करता हूं मैं सब लोकोंका श्रेष्ठधाम और अबाधित सत्य ऋत-स्वरूप हूं, इस ही से ब्राह्मण लोग मुझे ऋतधामा कहते हैं। पहिले समयमें मैंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीको धारण किया था, इस ही निमित्त देवता लोग गोविन्द नामसे मेरी स्तुति किया करते हैं। अवयवरहित निष्कल अर्थात् निरंशको शिपि कहते हैं, उस शिपिरूपसे मैं सब वस्तुओंमें प्रविष्ट होरहा हूं, इसीसे लोग मुझे शिपिविष्ट नामसे स्मरण करते हैं। यास्क ऋषिने अव्यग्र होकर अनेक यज्ञोंमें शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति की थी; इस ही लिये मैं शिपिविष्ट इस गुप्त नामको धारण किया है। उदार बुद्धिशक्तिसे युक्त यास्क ऋषिने शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति करके मेरी ही कृपासे वेद-हरणके समय पातालतलमें अन्तर्हित निरुक्त

लाभ किया था। मैं सब भूतोंका क्षेत्रज्ञ हूं, मैंने कभी जन्म ग्रहण नहीं किया, न करता हूं, न करूंगा, इस ही निमित्त अज नामसे अभिहित हुआ करता हूं। पहिले मैंने कभी क्षुद्र अथवा अश्लील वचन नहीं कहा, सत्या और परम सत्या ब्रह्मकन्या सरस्वती देवी सदा मेरे मुखसे बाहर हुआ करती हैं। हे कौन्तेय! सत् और असत् दोनों ही मेरे आत्मामें आवेशित हैं। मेरे नाभिसे प्रकट हुआ कमल ही ब्रह्माका उत्पत्ति स्थान है, ऋषि लोग मुझे ही सत्य स्वरूप जानते हैं। हे धनञ्जय! पहले मैं कभी सतसे च्युत नहीं हुआ, जानना चाहिये कि सत्‌ब्रह्म तथा उसकी सत्ता मेरे सहारेसे ही विहित हुई है; मेरी पहली समयकी सत्ता इस जन्ममें भी विद्यमान है। मैं निष्काम कर्म्म संयुक्त सत्वत अर्थात् सत्त्वके सहारे पालन किया करता हूं; मैं अकल्मष हूं, अर्थात् मुझमें कुछ पाप नहीं है, पञ्चरात्र आदि ज्ञानसे मैं दीख पड़ता हूं, इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे शाश्वत कहा करते हैं। मैं महान् हल फाल-रूपी होकर पृथ्वीका कर्षण किया करता हूं, और मेरा रूप कृष्ण वर्ण है, हे अर्ज्जुन! इसीसे मेरा कृष्ण नाम है। मैंने जलके सहित भूमि वायुके सहित आकाश और अग्निके सहित वायुको संश्लेषित किया है, अर्थात् पञ्चभूतोंके कुण्ठा अर्थात् मिलन-विषयमें असामर्थ्य विनष्ट किया है, इस ही निमित्त मेरा नाम वैकुण्ठ है। परम निर्व्वाण ही ब्रह्म है, वही परम धर्म्म रूपसे वर्णित हुआ करता है, उस धर्म्मसे मैं पहले कभी च्युत नहीं हुआ, इस ही निमित्त मेरा नाम अच्युत है। पृथ्वी और आकाश ये दोनों ही विश्वतोमुख कहके प्रसिद्ध हैं, उन दोनोंको परिपूर्णरीतिसे धारण करनेसे वेद-शब्दार्थ चिन्तक वेदवित् पुरुष मुझे यथार्थ रूपसे अधोक्षज अर्थात् जन्मलय, स्थिति और लय स्थान कहा करते हैं। ऋषि लोग यज्ञ-शालाके एक अंशमें अधोक्षज नामसे मेरी स्तुति करते हैं, महर्षियोंके सहारे पृथक् पदके द्वारा अधोक्षज शब्द उच्चारण किया जाता है, सर्व्व-शक्तिमान नारायणके अतिरिक्त अधोक्षज शब्दका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है। जन्तुओंका प्राणाधार घृत ही मेरे अग्नि रूपकी अर्च्चि है, इस ही निमित्त अव्यग्र वेदज्ञ पुरुषोंके द्वारा मैं घृतार्च्चि नामसे वर्णित हुआ करता हूं, पित्त कफ और वायु, ये तीनों कर्म्मज धातु विख्यात हैं, इन तीनोंको ही संघात कहते हैं; तीनों धातुओंसे सब जीव विधृत होरहे हैं, धातु क्षय होनेसे जीवन नष्ट हुआ करता है, इस ही निमित्त आयुर्व्वेदके जाननेवाले पुरुष मुझे त्रिधातु कहा करते हैं।

हे भारत! लोकमें भगवान धर्म्म वृष रूपसे विख्यात हैं, निघण्टु अर्थात् नाम-संग्रह पद-व्याख्यान विषयमें मुझे उत्तम वृष जानो। कपि शब्दसे वराह और श्रेष्ठ तथा धर्म्म शब्दसे वृष कहा जाता है, इस ही लिये प्रजापति कश्यप मुझे वृषाकपि कहते हैं। देवता और असुर किसी समयमें भी मेरा आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं जानते, इस ही निमित्त मैं अनादि अमध्य और अनन्त रूपसे वर्णित हुआ करता हूं, मैं लोक साक्षी सर्व्व शक्तिमान ईश्वर हूं। हे धनञ्जय! मैं शुचि और सुनने योग्य विषयोंको सुना करता हूं, पापोंको ग्रहण नहीं करता इस ही निमित्त मेरा नाम शुचि-श्रवा है। पहले समयमें मैंने आनन्दको बढ़ाने-वाले एक शृङ्ग वाराहमूर्त्ति धारण करके इस वसुन्धराका उद्धार किया था, इसीसे मैं एकशृङ्ग नामसे अभिहित होता हूं। जब मैंने इस भांतिसे वाराह रूप धरा, उस समय स्कन्ध, पीठ, सूकरके मुखाग्र तथा दांत ऊंचे हुए थे, इस ही निमित्त मैं त्रिककुद नामसे विख्यात हुआ हूं, सांख्यज्ञानी महर्षि लोग जो विरञ्चि कहा करते हैं, मैं चेतन निबन्धन कर्त्तृत्व रूपसे

वही प्रजापति हूं, इसीसे विरञ्चि नामसे प्रसिद्ध हुआ करता हूं। निश्चित-निश्चय सांख्य मतको अवलम्बन करनेवाले आचार्य्य लोग मुझे विद्या सहाय विशिष्ट आदित्यस्थ कापिल कहा करते हैं, जो द्युतिमान हिरण्यगर्भ रूपसे वेदके बीच स्तुत होता है, और योगी लोग जिसकी सदा पूजा किया करते हैं, इस भूलोकमें मैं उस ही रूपसे स्मृत हुआ हूं। वेद जाननेवाले पुरुष मुझे ही इक्कीस सहस्र ऋग्वेद और सहस्र शाखायुक्त सामवेद कहा करते हैं। मेरे भक्त दुर्लभ विप्रवृन्द आरण्यक वेदमन्त्रोंसे मेरा यश गाते हैं। जिस यजुर्व्वेदमें एक सौ एक शाखा विद्यमान हैं, यजुर्व्वेद जाननेवाले पुरुषोंके निकट मैं उस ही यजुः स्वरूपसे स्मृत हुआ हूं। पञ्चकल्पयुक्त अथर्व्व वेद जो अभिचार आदि कार्य्योंसे परिबृंहित होरहा है, अथर्व्व वेदके जाननेवाले ब्राह्मण लोग मुझे ही अथर्व्वरूपसे कल्पना किया करते हैं। जो समस्त शाखाभेद और शाखाओंमें जितने गीत तथा स्वर और वर्णोंके उच्चारण हैं, वह सब मुझसे ही उत्पन्न हुए जानो। हे पार्थ! हयशिरा रूपसे जो वरप्रद होके प्रकट होता है, मैं ही उस रूपसे क्रम क्रमसे अक्षर विभागका बोध किया करता हूं। मेरी ही कृपासे वामदेवके कहे हुए ध्यान मार्गके सहारे महानुभाव पाञ्चाल मुनि उस सनातन भूतसे क्रम अर्थात् दोनों पदके विभाग और अक्षर विभागको जानते हैं। बाभ्रव्यगोत्री पाञ्चाल मुनि नारायणके निकट वर पानेसे अनुत्तम याग प्राप्त करके पहले क्रमपारग रूपसे विख्यात हुए। कण्डरीककुलमें उत्पन्न गालव और प्रतापवान राजा ब्रह्मदत्त अक्षर विभाग तथा पदविभाग प्रणयन करके शिक्षाशास्त्र बनाते हुए जन्म-मरण जनित दुःखको बारबार स्मरण करके सात जन्ममें सुखप्राप्य निबन्धनसे योगसम्पत्ति प्राप्त की थी।

हे कुन्तीनन्दन! पहले समयमें मैं किसी कारणसे धर्म्मके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुआ था, इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे धर्म्मज कहके स्मरण करते हैं, पूर्व्वकालमें गन्धमादन पर्व्वतपर धर्म्म यानमें चढ़के अविनाशी नर-नारायणने तपस्या की थी, उस ही समयमें दक्षका यज्ञ हुआ था। हे भारत! उस यज्ञमें दक्षने रुद्रदेवके भागकी कल्पना नहीं की थी, उसई निमित्त महादेवने क्रुद्ध होकर दधीचिके वचः अनुसार दक्षका यज्ञ विनष्ट किया। उन्हों क्रुद्ध होकर बार बार प्रज्वलित शूल उत्प किया, वह शूल दक्षके यज्ञको भस्म करं बदरिकाश्रममें मेर निकट उपस्थित हुआ। पार्थ! वह शूल महावेगके सहित नारायण वक्षस्थलपर गिरा, नारायणके समस्त केश उ शूलके तेजसे परिपूर्ण होकर मुञ्जवर्ण हुए इस ही निमित्त मैंने मुञ्जकेश नाम धार किया है। अनन्तर वह शूल महात्मा नारायणके हुङ्कारसे पराजित और आहत होके फिर शङ्करके हाथमें चला गया। जब शूल हाथमें लौट आया, तब रुद्रदेव उन तपस्यायुक्त नर-नारायण दोनों ऋषियोंकी ओर दौड़े। रुद्रदेवके वेगपूर्व्वक उनके निकट आनेपर विश्वात्मा नारायणने हाथसे उनका कण्ठ धारण किया। कृष्णवर्ण नारायणके करसम्बन्ध रुद्रका बिनाशके कण्ठ नीलवर्ण होगया, उसही समयसे वह शितिकण्ठ नामसे विख्यात हुए, अनन्तर नरने रुद्रके निमित्त इषीका उठाया और शीघ्र ही मन्त्रयुक्त करनेसे वह अत्यन्त महान् परशु हुआ, वह परशु सहसा चलाये जानेपर खण्ड खण्ड होगया; परशु खण्डन करनेके कारण उस ही समयसे मैं खण्ड परशु नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अर्ज्जुन बोले, हे वृष्णिवंशनन्दन जनार्द्दन! उस समयमें इस त्रैलोक्य शमनसंग्राममें किसकी जय हुई, वह मेरे निकट वर्णन करो।

भगवान् बोले, रुद्र और नारायणके युद्धमें

प्रकट होनेपर सहसा सब प्राणी व्याकुल हुए। यज्ञके समयमें अग्निने शुभ्र और उत्तम रीतिसे होम करी हुई हविको ग्रहण नहीं किया; भावात्म ऋषियोंके निकट वेदोंकी प्रतिभा न रही। उस समय रज और तमोगुण वेदोंमें प्रविष्ट हुआ। पृथ्वी कांपने लगी और आकाश मण्डल विमिन्न होगया तेजस्वी पदार्थोंकी प्रभा हीन हुई और ब्रह्मा आसनसे च्युत हुए, समुद्र सूख गया और हिमालय पर्व्वत टूटने लगा। हे पाण्डुपुत्र! इस ही प्रकार उन अशकुनोंके उत्पन्न होनेपर जिस स्थानमें संग्राम होरहा था, वहां महानुभाव ऋषियों और देवताओंसे घिरकर प्रजापति ब्रह्मा शीघ्र ही उपस्थित हुए। निरुक्त प्रदेशमें जाके उस समय ब्रह्मा हाथ जोड़के रुद्रसे यह वचन बोले, "सब लोगोंका मङ्गल होवे"—हे विश्वेश्वर! जगत्की हितकामनाके लिये अस्त्रोंको परित्याग करो। जिसे सब लोग अक्षय, अव्यक्त ईश्वर लोक भावन कूटस्थ कर्त्ता निर्द्वन्द्व और अकर्त्ता जानते हैं, उसहीकी व्यक्तभाव निबन्धनसे यह शुभामूर्त्ति है, इन्होंने धर्म्मके वंशवृद्धिके लिये नर-नारायण रूपसे अवतार लिया है, येही महत् तपस्यायुक्त. महाव्रती और सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। मैं किसी कारणसे उस ही नारायणकी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। हे तात! तुम नित्य होने पर भी पहिले समयमें इनके क्रोधसे प्रकट हुए थे। इससे देवताओं, महर्षियों और मेरे सहित इस वरदाता देवको शीघ्र प्रसन्न करो, विलम्ब मत करो, सब लोकोंमें शान्ति होनी चाहिये। ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके रुद्रदेव क्रोधाग्निको परित्याग करके सर्व्व शक्तिमान नारायणदेवको प्रसन्न करने लगे और वरदाता आदि कर्त्ता वरणीय प्रभु नारायणके शरणापन्न हुए।

अनन्तर क्रोधविजयी जितेन्द्रिय वरदाता नारायण देव प्रसन्न होकर उस ही स्थानमें रुद्रके सहित मिले। जगदीश्वर हरि ऋषियों देवताओं और ब्रह्माके द्वारा विशेष रूपसे पूजित होकर देवेश्वर ईशानसे बोले, जो तुम्हें जानते हैं, वेही मुझे जान सकते हैं, जो तुम्हारे निकट हैं, वे मेरे भी निकटवर्त्ती हैं, मुझमें और तुममें कुछ भी प्रभेद नहीं है; इससे तुम अन्यथा बुद्धि मत करो। आजसे यह शूलचिन्ह मेरा श्रीवत्स चिन्ह होगा और तुम भी मेरे पाणिसे अङ्कित होकर आजसे श्रीकण्ठ होगे।

श्रीभगवान् बोले, नर-नारायण ऋषिने उस समय रुद्रके सङ्ग अतुल मित्रता और इस ही प्रकार परस्पर कृतलक्षण उत्पन्न करके देवताओंको त्यागके अव्यग्रचित्तसे तपस्या की थी। हे पार्थ! यह तुम्हारे निकट नारायणकी जय कही गई और गोपनीय समस्त नाम तथा निरुक्त जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए थे, वह भी कहे गये। हे कुन्तीपुत्र! मैं इस ही प्रकार अनेक भांतिके रूपसे भूलोक ब्रह्मलोक और शाश्वत लोकोंमें भ्रमण किया करता हूं। युद्धस्थलमें मैंने तुम्हारी रक्षा की थी, इसीसे तुमने महत् जय प्राप्त की है। हे कौन्तेय! सम्प्रति उपस्थित युद्धमें जो तुम्हारे आगे आगे गमन करते थे, उन्हें देवोंके देव कपर्दी रुद्र जानो, वही क्रोधज काल हैं, यह मैंने तुमसे पहिले ही कहा है, तुमने जो सब शत्रुओंका बध किया है, वे सब उस कालके जरिये पहलेसे ही मरे हुए थे। तुम सावधान होकर उस अप्रमेय प्रभावयुक्त देवोंकेदेव उमापति विश्वेश्वर अक्षर हरको नमस्कार करो। हे धनञ्जय! पहले तुम्हारे निकट वार वार जिन्हें क्रोधज कहा है, तुमने जो कुछ सुना, यह सब प्रभाव पहलेसे ही उनमें विद्यमान है।

३४२ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत नन्दन! तुमने जो उत्तम और महत् उपाख्यान कहा उसे सुन

मुनि अत्यन्त विस्मययुक्त हुए हैं। हे सूतपुत्र! नारायणकी कथा जैसा फल देती है, सब आश्रमोंमें गमन सब तीर्थोंमें स्नान वैसा फलप्रद नहीं है। यह सब पापोंको नष्ट करनेवाली नारायणाश्रया पुण्यदायक आदि कथा सुननेसे हम लोगोंका शरीर पवित्र हुआ। सब लोगोंसे नमस्कृत भगवान् नारायण ब्रह्माके सहित सब देवताओं और महर्षियोंसे भी अदर्शनीय हैं। हे सूतपुत्र! नारदने जो नारायण हरिका दर्शन किया था, वह बोध होता है, उन्हीं देवका अनुमोदित था, उन्होंने अनिरुद्ध शरीरसे स्थित जगन्नाथका दर्शन किया था, तौभी देवसत्तम नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये जो फिर वहांसे दौड़े, उसका कारण तुम मेरे निकट वर्णन करो।

सूत बोले, हे शौनक! परीक्षित पुत्र राजा जनमेजयने उस यज्ञकालमें विधि विहित कार्य्योंको करके पितामहके पितामह वेदनिधि निग्रहानुग्रहमें समर्थ महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यासदेवसे पूछा।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! देवऋषि नारदने श्वेत द्वीपसे लौटने पर भगवानके वचनको स्मरण करते हुए उसके अनन्तर क्या किया था? उन्होंने बदरिकाश्रममें आके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक वास किया और कौनसा प्रश्न किया था? हे तपोनिधि! सौ हजार श्लोकोंसे युक्त बृहत् भारताख्यानसे बुद्धिरूपी मंथानी दण्डके सहारे अत्यन्त उत्तम ज्ञान समुद्रको मंथके यह नारायण कथाके अवलम्बसे वाक्य रूपी अमृत आपके द्वारा इस प्रकार बाहर हुआ है, जैसे दहीसे घृत, मलयागिरिसे चन्दन, वेदोंसे आरण्यक विभाग और औषधियोंमें अमृत सार रूपसे निकाला गया है। हे द्विजसत्तम! वह भगवान् सब प्राणियोंके आत्मभूत और ईश्वर हैं। कैसा आश्चर्य है! नारायणका तेज क्या ही दुर्द्धर्ष है। प्रलयकालमें ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व और स्थावर जङ्गममय जो कुछ हैं, वह जब जिसमें प्रविष्ट होते हैं, बोध होता है, कि इस लोक और परलोकमें उससे परम पवित्र और कोई भी नहीं। नारायणकी कथा जिस प्रकार फल देनेवाली है, सब आश्रमोंमें जाना तथा सब तीर्थोंमें स्नान करना वैसा फलप्रद नहीं है। विश्वेश्वर नारायणकी यह सब पापोंको नाश करनेवाली आदि कथा सुनके इस समय हम लोग सब भांतिसे पवित्र हुए। मेरे पूज्य पितामह धनञ्जयने उस संग्राममें जो श्रीकृष्णकी सहायतासे अत्यन्त जय प्राप्त किया था, वह कुछ विचित्र कार्य्य नहीं किया। मुझे बोध होता है, तीनों लोकके बीच उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं था। त्रिलोकीनाथ नारायण जब उनके सहाय थे तब वह सब कुछकर सकते, क्योंकि जनार्दन उनके हित तथा मङ्गलकी चिन्ता करते थे। लोक पूजित भगवान्‌का तपस्याके सहारे दर्शन किया जा सकता है; किन्तु उन्होंने उस वत्स चिन्ह विभूषित हरिका प्रत्यक्ष दर्शन किया था, ब्रह्माके पुत्र नारद मुनि उन लोगोंसे अधिक धन्य हैं, जिन्होंने श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं हरिका दर्शन किया है, उस अविनाशी नारद ऋषिको मैं अल्प तेजस्वी नहीं समझता। कारण उन्होंने उस समयमें जो अनिरुद्ध शरीरसे स्थित हरिका दर्शन किया था, उनके व्यक्त रूपका दर्शन होना देवताओंकी कृपाके अनुगत है।

हे मुनि! नारदने किस कारणसे बदरिकाश्रममें फिर नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था। विधातापुत्र नारदने श्वेतद्वीपसे लौटकर बदरिकाश्रममें जाके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक वास किया और कौनसे प्रश्न पूछे थे। और महानुभाव नारद मुनिके श्वेत द्वीपसे लौटनेपर नर-नारायण ऋषिने ही उनसे क्या कहा था? यह सब

वृत्तान्त यथार्थ रूपसे मेरे समीप आपही वर्णन करने योग्य हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिसकी कृपासे मैं इस नारायण कथाको कहूंगा, उस अत्यन्त तेजस्वी भगवान वेदव्यास मुनिको नमस्कार करता हूं। हे महाराज! नारद मुनि श्वेत द्वीपमें जाकर नारायणका दर्शन करके वहांसे लौटकर वेगपूर्व्वक सुमेरु पर्व्वतपर आये थे। परमात्मा हरिने उनसे जो कहा था, उस ही भारको हृदयमें धारण करते हुए अन्तमें उन्हें महाभय हुआ था। मैं दूर स्थानमें जाके कुशल पूर्व्वक फिर इस ही स्थानमें आया हूं, अर्थात् यही मेरे लिये मङ्गल है। अनन्तर वह सुमेरुसे गन्धमादन पर्व्वतपर गये, वहांसे विशाल बदरीवनको देखकर आकाश मार्गसे उड़े। अनन्तर उन्होंने प्राचीन ऋषिसत्तम नर-नारायणका दर्शन किया। देखा कि वे दोनों आत्मनिष्ठ और दृढव्रती होकर तपस्या कर रहे हैं। वे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी थे, श्रीवत्स लक्षणसे युक्त पूजनीय जटाजूट मण्डित थे। उनकी दोनों भुजा हंसाकित, दोनों चरण चक्र लक्षणसे युक्त वक्षःस्थल विशाल तथा दोनों भुजा जानुतक लम्बी थी। वे मुष्क चतुष्क साठ दांतों आठ भुजाओं और बादल सदृश शब्दसे युक्त थे। उनका मुख अत्यन्त सुन्दर, ऊंचा ललाट, भौं, नेड़ो और नासिका अत्यन्त सुन्दर था। उन दोनों देवोंका सिर आतपत्रके समान तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त था, वे दोनों ऋषि महापुरुष नामसे विख्यात थे। नारद मुनि उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर मनही मन चिन्ता करने लगे। श्वेत द्वीपमें सर्व्व प्राणियोंसे नमस्कृत जिन सब ऋषियोंका मैंने दर्शन किया है, ये दोनों ऋषि भी वैसे ही हैं। नारद मनही मन ऐसाही विचारके उनकी प्रदक्षिणा करके कुशासन पर बैठ गये।

अनन्तर तपस्या, यश और तेजके अवलम्ब, शम दमसे युक्त नर-नारायण ऋषिने पूर्व्वाह्निक क्रिया समाप्त करनेके पश्चात् अव्यग्र चित्तसे पाद्य और अर्घसे नारद मुनिकी पूजा करी। हे राजन्! वे आसन पर बैठकर आतिथ्य और नित्य कर्म्मको निबाहने लगे। उनके वहां बैठने पर वह स्थान मानो घृत होमके द्वारा महाज्वालायुक्त तीनों अग्नियोंसे शोभित यज्ञ वाटकी भांति दिखाई देने लगा। अनन्तर नारद मुनिके वहां पर अतिथि सत्कारसे विश्रामयुक्त होकर सुखसे बैठने पर नारायणने उनसे यह वचन कहा।

नर-नारायण बोले, इस समय तुमने श्वेत द्वीपमें हमारी परम प्रकृतिका दर्शन किया है?

नारद मुनि बोले, विश्वरूपधारी अविनश्वर श्रीमान् सनातन पुरुषोंका मैंने दर्शन किया है, देवताओं और ऋषियोंके सहित सब लोक उसमेंही निवास करते हैं। इस समय तुम्हारा दर्शन करके उस सनातन पुरुषको ही अवलोकन करता हूं, वह अव्यक्त स्वरूप हरि सब लक्षणोंसे आक्रान्त है, तुम भी व्यक्त रूप धारण करके उन्हीं सब लक्षणोंसे विराज रहे हो। मैंने वहांपर परम देवके बगलमें तुम्हारा दर्शन किया है, परमात्माके समीपसे विदा होकर अब इस स्थानमें आया हूं। तीनों लोकमें धर्म्मपत्र तुम दोनोंके अतिरिक्त यश, तेज और श्रीके द्वारा कौन उसके समान होसकता है। क्षेत्रज्ञ संज्ञिक सब धर्म्म उन्होंने मुझसे कहे हैं, इस लोकमें जिस प्रकार उनके जो सब अवतार होंगे, उसे भी कहा है। वहां पर पञ्चेन्द्रियोंसे रहित जो सब श्वेत वर्ण पुरुष हैं, वे सभी भक्त और प्रतिबुद्ध हैं, तथा सदा उस पुरुषोत्तमकी पूजा किया करते हैं, वह भी उनके सहित निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। भगवान भक्तोंपर अनुरक्त हैं और द्विजातियोंको प्रिय समझते हैं, वह सदा भागवत प्रिय है; वह प.५

पूजित होनेसे ही प्रसन्न हुआ करता है। विश्वभुक् सर्व्वग भक्तवत्सल देव माधव अत्यन्त बल और द्युतिशाली हैं, वही कर्त्ता, कारण और कार्य्य खरूप है। वही महा यशस्वी सबका कारण है, सबका ही आज्ञापयिता और तत्त्व खरूप है। वह श्वेतद्वीपमें आत्माको तपयुक्त करके निज प्रभाके सहारे प्रवभासित होकर परम ज्योतिःखरूपसे सर्व्वत्र विख्यात होरहा है। उस विश्वविधाताने तीनों लोकके बीच शान्तिका विधान किया है। इस शुभ बुद्धिसे उसने नैष्ठिक व्रत अवलम्बन किया है। जब वह देवेश महादुश्चर तपस्या करता है, उस समय न उसे सूर्य्य तापित करता है, न चन्द्रमा उसके निकट विराजमान होता और न वायु बहता है। विश्वकर्त्ता नारायण पृथ्वी-पर आठ अंगुल ऊंची वेदी स्थापित करके उत्तर ओर मुह करके तथा ऊर्द्ध्वबाहु होके एक पदसे स्थित थे। ब्रह्मा, ऋषिवृन्द, स्वयं महादेव और दूसरे समस्त श्रेष्ठ देवता दैत्य, दानव, राक्षस, सर्प, गरुड़, गन्धर्व्व, सिद्ध और राजर्षि लोग सदा विधिपूर्व्वक जो सब हव्य, कव्य प्रदान करते हैं, वह सब उस देवके दोनों चरणमें उपस्थित होता है; अव्यभिचरित बुद्धिशाली अत्यन्त भक्तिनिष्ठ मनुष्य जो सब कार्य्य करते हैं, नारायण उन कार्य्योंको निज शिर पर ग्रहण किया करते हैं। ज्ञानसे प्रदीप्त महात्माओंसे भिन्न तीनों लोकके बीच दूसरा कोई भी उसे प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त उसमें अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ हूं। उस परमात्माके निकटसे बिदा होकर मैं इस स्थानमें आया हूं, मैंने जो कुछ कहा, भगवान् नारायणने मुझसे स्वयं वह सब कहा है। मैं परमात्म-परायण होकर सदा तुम्हारे सहित निवास करूंगा।

३४२ अध्याय समाप्त।

श्री नर-नारायण ऋषि बोले, हे देवर्षि! तुम धन्य और अनुगृहीत हो, क्यों कि स्वयं नारायणका दर्शन किया है; दूसरेकी बात तो दूर रहे, स्वयं पद्मयोनि ब्रह्माने भी उसका दर्शन नहीं किया है। हे नारद! अव्यक्तयोनि भगवान् पुरुषोत्तम दुर्द्दर्श हैं, यह तुमने हमसे यथार्थ वचन कहा है। हे द्विजोत्तम! लोकके बीच भक्तोंसे आतिरिक्त उसे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त स्वयं अपना दर्शन दिया है। हे विप्रवर! परमात्मा जिस स्थानमें तपस्या करता है, हमारे अतिरिक्त दूसरे किसीको भी वह स्थान नहीं प्राप्त होता। जैसा सहस्र सूर्य्यका प्रकाश होता है, वह जिस स्थानमें विराजता है, उसकी स्वयं ही वैसी शोभा हुआ करती है। हे क्षमायुक्त विप्रवर! उस विश्वविधाता विश्वेश्वर देवसे क्षमा उत्पन्न होती है, जिस क्षमासे वसुन्धरा संयुक्त होरही है। उस सब भूतोंके हितैषी नारायणसे रस उत्पन्न हुआ है। जल उस ही रसके सहित मिलित तथा द्रवत्वको प्राप्त होता है। रूप गुणात्मक तेज उससेही प्रकट हुआ है, जिससे सूर्य्य संयुक्त होकर लोकके बीच विराज रहा है। उस पुरुषोत्तमसे स्पर्श उत्पन्न होता है, जिसके संयोगसे वह वायु लोकमें वह रहा है, उस सर्व्व लोकेश्वर प्रभुसे शब्द उत्पन्न हुआ है, जिसके सहित आकाश संयुक्त होरहा है, और उस ही निमित्त असंवृत्त हुआ करता है। उस देवसे ही सर्व्वभूत स्थित मन उत्पन्न होता है, जिस मनके सहित संयुक्त होकर चन्द्रमाने प्रकाश गुण धारण किया है। जिसमें हव्य कव्य भोक्ता भगवान् विद्या सहाय होकर निवास करते हैं, उस प्राणियोंके उत्पादक नित्य स्थानका नाम वेद है। हे द्विजसत्तम! लोकमें जो लोग पुण्य पापसे रहित, निष्कलुष, कल्याण पथमें गमन-शील हैं, उन सब पुरुषोंके सम्बन्धमें सब लोकोंके बीच तमनाशक आदित्य ही द्वार

स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है। दरवाजेमें प्रवेश करनेके समय लोगोंके सब अङ्ग जलते हैं, इसीसे कोई उन्हें कभी नहीं देख सकते। वे लोग परमाणु स्वरूप होकर उस ही देवमें प्रवेश करते है, उससे निर्मुक्त होकर अनिरुद्ध शरीरमें स्थित रहते हैं।

अनन्तर मन स्वरूप होकर प्रद्युम्न शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, तिसके अनन्तर प्रद्युम्न शरीरसे निकलके भागवत और सांख्ययोग अवलम्बी पुरुष जीव स्वरूप सङ्कर्षणमें प्रवेश किया करते हैं। शेषमें वे तीनों गुणोंके सहित द्विजश्रेष्ठ पुरुष निर्गुणात्मक चेत्रज्ञ परमात्मामें शीघ्र प्रवेश करते है; उसे ही यथार्थ रूपके सर्व्वावास वासुदेव और चेत्रज्ञ जानो। जो लोग सदा स्थिरचित्तवाले संयतेन्द्रिय और एकान्त भावसे युक्त है, वेही वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। हे द्विजसत्तम। हमने भी धर्म्मके गृहमें जन्म लेकर रमणीय बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या अवलम्बन किया है। हे द्विज। देवताओंके प्रिय कार्य्य साधनके निमित्त तीनों लोकके बीच नारायणको जा सब उत्पत्ति होंगी, उनको स्वस्ति होवे। हे द्विजोत्तम तपोधन! हमने पहलेकी भांति निज बिधिसे युक्त और सर्व्वोत्कृष्ट सर्व्वोत्तम व्रत अवलम्बन करते हुए श्वेत द्वीपमें तुम्हें अवलोकन किया है। तुमने भगवानके निकटसे समागत होकर जो सङ्कल्प किया है, उसे भी जाना है। सचराचर तीनो लोकके बीच जो कुछ शुभाशुभ होगा, हुआ और होता है, वह सब हमसे छिपा नहीं है। हे महामुनि। देवोंकेदेव नारायणने तुमसे सब विषय ही कहे हैं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि हाथ जोड़के नर-नारायणके मुखसे यह कथा सुनके नारायण परायण होकर उग्र तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें देव परिमाणसे सहस्र वर्ष तक वास करके अनेक प्रकारसे नारायण मन्त्रको विधिपूर्व्वक जप किया। महातेजस्वी भगवान नारदऋषि उस परम देव और नारायणको सब प्रकारसे पूजा करते हुए उनके आश्रममें निवास करने लगे।

३४४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुछ कालके अनन्तर परमेष्ठि पुत्र नारदने विधिपूर्व्वक देवकृत्य करके उसके अनन्तर पितर कार्य्य किया। अनन्तर जेठे धर्म्मपुत्र सर्व्व ऐश्वर्य्यवान नरने उनसे यह बचन कहा कि, हे द्विजश्रेष्ठ। तुम इस कल्पित दैव और पित्र्य कार्य्यसे किसकी पूजा करते हो? हे मतिमत्प्रवर! तुम यह कौनसा कर्म्म कर रहे हो और इससे कैसा फल पानेकी कामना करते हो? उसे मेरे निकट शास्त्र विधिके अनुसार बर्णन करो।

नारदमुनि बोले, दैव कर्म्म करना चाहिये, ऐसा तुमने पहले कहा था, परम दैव सनातन परमात्मा परम पूजनीय है, उस ही निमित्त मैं उसमें रत होके अविनाशी वासुदेवकी सदा पूजा किया करता हूं। उस नारायणसे ही प्रथम लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए है, परमेष्ठि हरिने प्रसन्न होके मेरे पिताको उत्पन्न किया था, मैं उनका प्रथम सङ्कल्पज पुत्र हूं। हे साधो। इसीसे नारायणकी पूजा करता हूं, वह जगत्पति भगवान पिता, माता और पितामह है; इसलिये वह पितृ यज्ञमें सदा पूजित होते हैं। पितरोंने वेद सुनना प्रनष्ट होनेपर उन्होंने पुत्रोंसे उसे पढ़ा था अर्थात् देवताओंने अग्निष्वात्तादि पुत्रोंको वेद पढ़ाके असुरोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था। उस संग्राममें बहुत दिनतक प्रवृत्त रहनेसे श्रुति स्मरण न हुई, इसलिये उन लोगोंने पुत्रोंके निकट फिर वेद पढ़ा। इस ही निमित्त मन्त्रदाता

स्तत्व प्रभृति पितृत्वको प्राप्त हुए हैं, देवताओंको यह मालूम है, और आप लोग भी आत्मवित् हैं, इसलिये आपसे भी यह छिपा नहीं है, कि पुत्रों और पितरोंने परस्पर पूजा की थी। उन्होंने पृथ्वीपर पहले कुश बिछाकर तीन पिण्ड स्थापित करके पूजा की थी। यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि पहले समयमें पितरोंकी किस प्रकार पिण्ड संज्ञा हुई।

नर-नारायण बोले, हे नारद! पहले समयमें नारायणने वाराह देह धारण करके इस नष्टप्राय सागर मेखला वसुन्धराका शीघ्र उद्धार किया था। पुरुषोत्तम गोविन्द पृथ्वीको स्वस्थानमें स्थापित करनेके निमित्त लोककार्य्य सिद्धिके हेतु उद्योगी होनेपर उनका समस्त अङ्ग जलयुक्त कीचड़से लिप्त हुआ था। सूर्य्यके मध्यस्थानमें गमन करने पर जब उनके सन्ध्या करनेका समय उपस्थित हुआ, तब उन्होंने दांतमें लगे हुए तीनो पिण्डोंको निकालके पृथ्वीतलमें कुश बिछाकर उसे उसहीके ऊपर रख दिया। उन्होंने उन तीनों पिण्डोंमें आत्माके उद्देश्य करके विधिपूर्व्वक पितृकार्य्य पूरा किया। उस सर्व्व शक्तिमान देवेशने विधिपूर्व्वक तीनों पिण्डोंकी कल्पना किया और स्वयं पूर्व्व और मुख करके निज शरीरकी उष्मतासे उत्पन्न हुए स्नेहगर्भ तिलके सहारे पिण्ड प्रोक्षण करके प्रदान किया; और मर्य्यादा स्थापित करनेके लिये यह बचन बोले,।

वृषाकपि बोले, मैं स्वयं लोककर्त्ता होनेपर भी पितरोंको उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हुआ हूं, पितृकार्य्य विधिका बिचार करते करते मेरे दोनों दांतोंसे ये तीनों पिण्ड बाहर होकर दक्षिण-दिशामें पृथ्वीको अवलम्बन कर रहे हैं; विष्णुके शालग्राम मूर्त्तिकी भांति ये पितृमूर्त्ति सम्पन्न हुए। पितर लोग मूर्त्तिविहीन होनेपर भी मेरे सहारे उत्पन्न हुई इस ही पिण्डमूर्त्तिको धारण करके लोकमें सनातन रूपसे विख्यात होंगे। मुझे ही इन तीनों पिण्डोंके बीच पिता पितामह और प्रपितामह रूपसे स्थित हुआ जानो। मुझसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, दूसरा कौन पुरुष मेरा पूज्य है, लोकमें मेरा पिता कौन है? मैं ही पितामह और प्रपितामह हूं, मैं ही इस विषयमें कारण हूं। हे विप्र! देवताओंके प्रभु वृषाकपि ऐसा वचन कहके वराह पर्व्वतपर बहुतसे पिण्डप्रदान पूर्व्वक अपनी ही पूजा करके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। हे ब्रह्मन्! पिण्डसंज्ञिक पितृगण जो सदा पूजित हुआ करते हैं, वृषाकपिका बचन ही उनकी मर्य्यादाका हेतु है। जो लोग मन, वचन और कर्म्मसे पितर; देवता, गुरु, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पृथ्वी और माताकी पूजा करते हैं, वे लोग विष्णुकी ही पूजा किया करते हैं। सर्व्व प्राणियोंके शरीरगामी वह भगवान सबमें ही व्याप्त है, वह सब भूतोंमें समान और सुख दुःखका ईश्वर, महान् नारायण, महात्मा और सर्व्वात्मा कहा जाता है।

३४५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि नर-नारायणके मुखसे ऐसी कथा सुनके उनमें अत्यन्त भक्तिमान होकर एकान्तित्वको प्राप्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें सहस्र बर्ष पर्य्यन्त वास करके भगवानका आख्यान सुनके तथा अबिनाशी नारायणका दर्शन करके जिस स्थानमें उनका अपना आश्रम था, उस ही हिमालय पर्व्वतपर गमन किया। बिख्यात तपस्वी नर-नारायण दोनों ऋषि भी उस रमणीय आश्रममें उत्तम तपस्या करने लगे। हे नृपसत्तम! तुम पाण्डवकुल धुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी हो, आज इस आदिकथाको सुनके तुम्हारा आत्मा पवित्र हुआ। जो पुरुष

अविनाशी विष्णुसे वचन, मन और कर्म्मके द्वारा विद्वेष करता है, उसके लिये यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है। जो पुरुष देवताओंमें श्रेष्ठ नारायण हरिसे विद्वेष करता है; उसके पितर सदा नरकमें डूबते रहते हैं। हे पुरुषप्रवर। क्या किसीका आत्मा द्वेषी हो सकता है; विष्णुको ही सबकी आत्मा जानो, यही शास्त्रकी मर्य्यादा है। हे तात! गन्धवती पुत्र महर्षि वेदव्यास जो कि हमारे गुरु हैं, उनने ही यह अव्यय परम माहात्म्य कहा था, हे निष्पाप! मैंने उनसे सुनके यह विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे नरनाथ! नारद मुनिने साक्षात् जगन्नाथ नारायणसे यह सरहस्य संग्रहयुक्त धर्म्म प्राप्त किया था, हे नृपवर! पहले हरिगीताके बीच संक्षिप्त विधिके अनुसार यह महान् धर्म्म तुम्हारे निकट कहा गया था। हे पुरुषश्रेष्ठ भूमण्डलमें कृष्णद्वैपायन व्यासदेवको ही नारायण जानो. उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष महाभारतका रचनाकर्त्ता हो सकता है? और उस अनन्त शक्तिमानके अतिरिक्त कौन अनेक भांतिके धर्म्म वर्णन करनेमें समर्थ होता? तुमने जैसा सङ्कल्प किया है, उस हीके अनुसार तुम्हारा महायज्ञ पूरा होवे, तुमने अश्वमेध यज्ञका संकल्प करके यथार्थ धर्म्म सुना है।

सौति बोले, नृपसत्तम जनमेजयने यह महत् आख्यान सुननेके अनन्तर यज्ञसमाप्तिके लिये सब कार्य्य आरम्भ किया। नैमिषारण्यवासी शौनक आदि ऋषियोंके पूछने पर मैंने यह नारायणका आख्यान कहा। पहले समयमें नारदने जो कथा देवगुरुके निकट कही थी, ऋषि गण और पाण्डवोंके बीच कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर वही वर्णित हुई थी। सब प्राणी और भुवनके पति पृथु, धरणिधर धर्म्म तथा नियमके आधार, शम परायण, यम-नियममें निष्ठावान वह परमर्षि द्विजवरोंके सहित तुम्हारे अवलम्ब होवे। देवताओंके हितकारी, असुरोंके वध करनेवाले, उत्तम महत् तपस्याके आधार, यशके पात्र, मधुकैटभहन्ता, सत्य धर्म्मज्ञ पुरुषोंके गतिदाता, अभयदाता, यज्ञभागहर वह हरि तुम्हारी रक्षा करें। जो तीनो गुणोंसे युक्त और गुणहीन है, जिसने वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों मूर्त्तियोंको धारण किया है, जो धाता आदि पूर्तकर्म्म और अग्निहोत्र आदि इष्ट कर्म्मका फलभार ग्रहण करता है; वह नित्य अपराजित अत्यन्त बलशाली भगवान सुकृतशाली ऋषियोंकी आत्मगामिनी गतिका विधान करे। उस लोकसाक्षी जन्मरहित पुराण पुरुष आदि वर्ण अखिलगति ईश्वरको एकाग्रचित्तसे प्रणाम करो, क्योंकि सलिलोद्भव अर्थात् जलकी उत्पत्तिके कारण शेषशायी नारायण भी उस वासुदेवके निकट प्रणयन हो रहे हैं। वह सब लोकोंकी उत्पत्तिका कारण, अमृतधाम, सूक्ष्म अचल परम पद है, निरुद्ध चित्तवाले सांख्ययोगी लोग उस सनातन नारायणको बुद्धिके बीच उदाररूपसे धारण किये हैं।

३४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! सर्व्वैश्वर्य्ययुक्त परमात्माका महात्म और उसका धर्म्मके गृहमें नर-नारायण स्वरूपसे जन्मवृत्तान्त सुना। महावाराह सृष्टिके हेतु प्राचीन पिण्डोत्पत्ति और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषयमें जिस प्रकार जैसा धर्म्म कल्पित हुआ था, आपके कहे हुए वह सब वृत्तान्त मैंने सुना। पहले जो आपने पूर्व्वोत्तर महासागरके समीप हव्य-कव्य भोक्ता हरिका उत्तम और महत् हयशिरा अवतार कहा है, भगवान परमेष्ठि ब्रह्माने उसका दर्शन किया। हे धीमान्! लोकोंको धारण करनेवाले हरिने किस निमित्त यह

महाप्रभावयुक्त अद्भुत रूप उत्पन्न किया। हे मुनि! उस अत्यन्त तेजस्वी देवप्रवर पवित्र और अद्भुत अश्वशिराको देखकर ब्रह्माने क्या किया था। हे ब्रह्मन्! हमें इस पुराणाख्यानमें सन्देह होता है, हे उत्तमबुद्धिवाले! भगवानने किस निमित्त महापुरुष रूपसे अवतार लिया, पवित्र कथा कहनेवाले पुरुषोंमेंसे आप हम लोगोंको पवित्र कर रहे हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान वेदव्यासने राजा जनमेजयके निकट जो कुछ कहा था, वह वेद तुल्य पुराण मैं तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। राजा जनमेजयने भगवान अश्वशिरा मूर्त्तिकी कथा सुनके सन्देहयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

राजा जनमेजय बोले, हे सत्तम! ब्रह्माने जो हयशिरा देवका दर्शन किया था, वह मूर्त्ति किस निमित्त उत्पन्न हुई थी। उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! इस जगत्‌में जिस किसी शरीरमें सत्त्व विद्यमान है, वह सब ईश्वरके सङ्कल्प मात्रसे पञ्चभूतोंके द्वारा परिपूर्ण है। सर्व्व शक्तिमान नारायणके समीप ईश्वर ही जगत् स्रष्टा हैं, वह सब भूतोंकी अन्तरात्मा, वरदाता, सगुण और निर्गुण है। हे नृपसत्तम! सब प्राणियोंकी अत्यन्तिक प्रलयका विषय सुनो, पहिले समयमें जगत्‌के समुद्रमय होजाने पर पृथ्वी जलमें लीन हुई, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें और आकाशके मनमें लीन होने पर मन महत्तत्त्वमें लीन हुआ और महत्तत्त्व अव्यक्तता अर्थात् महत् गुणोंकी साम्य अवस्थामें प्राप्त होनेसे अव्यक्त पुरुषमें और पुरुषके परब्रह्ममें लीन होनेपर सब तमोमय होकर विशेष विज्ञान लुप्त होगया था, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था। तमःसन्निधानके जगत्कारण परव्योमाख्य ब्रह्म प्रकट हुआ। तमसे ही अधिष्ठान मात्रमें प्रपञ्चात्मक ब्रह्मने वैराज शरीर अवलम्बन करके विश्व नाम धारण किया है, उसे ही अनिरुद्ध कहा जाता है, और उसको ही पण्डित लोग प्रधान कहा करते हैं। हे नृपसत्तम! उस प्रधानको ही अव्यक्त और त्रिगुणात्मक जानो। विद्या अर्थात् निर्व्विशेष चिन्मात्ररूपी वृत्तिके सहायक भगवान विश्वक्सेन हरिने जगत्‌की विविध विचित्र रचना सृष्टिके विषयको विचारते हुए योगनिद्राके सहारे जलमें शयन किया था। उन्होंने सोचा, कि मैं सृष्टिकार्य्य अर्थात् प्रजा रूपसे अनेक होऊंगा,— ऐसा विचारते हुए आत्मगुण महान्‌को स्मरण किया, उस महान्‌से अहंकार उत्पन्न हुआ। वही चार मुखवाले हिरण्यगर्भ लोक पितामह ब्रह्मा हैं, वह उस समय अनिरुद्धसे उत्पन्न होकर सहस्र पत्रवाले कमल अर्थात् ब्रह्माण्डमें बैठ गये, वह द्युतिमान पद्मनिभेक्षण और सनातन हैं। उस आश्चर्य रूपवाले ब्रह्माने पहले जलमय समस्त लोकोंको देखा। अनन्तर उस सत्त्वस्थ अनादि निधन ब्रह्मा भूतगणोंको उत्पन्न करते हुए सूर्य्यकी किरण समान प्रभायुक्त पद्मके पत्र अर्थात् एक अखण्ड स्थानसे पहले नारायण-विरचित गुण प्रधान जलकी दो बूंद देखीं। उसके बीच जलकी पहली बूंद मधुकी भांति आभा और मनोहर प्रभासे युक्त थी, वह इस समय नारायणकी आज्ञानुसार तामस मधु नामसे उत्पन्न हुई, दूसरी बूंद कठोर थी इसलिये रज प्रधान कैटभ रूपसे प्रकट हुई। उस तम और रजोगुणसे युक्त बलवान हाथमें गदा लिये हुए पद्मनालके अनुसार मधु और कैटभ जन्मते ही सब ओर दौड़े। उन्होंने सुन्दर विग्रह और चारों वेदोंके उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको कमलके बीच स्थित देखा। अनन्तर उन विग्रह-विशिष्ट दोनों असुर श्रेष्ठ पुरुषोंने वेदोंको देखते ही ब्रह्मासे छीन लिया। अन्तमें

वे दोनों दानव सनातन वेदोंको लेके जलयुक्त महासमुद्रके मार्गसे शीघ्रही पातालमें चले गये। वेदोंके हरे जानेपर ब्रह्मा मोहयुक्त हुए, वह वेद रहित होके ईश्वरसे यह वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, वेद ही मेरे परमनेत्र हैं, वेद ही मेरा परम बल है, वेद ही मेरा परमधाम है, सब वेद ही मेरी परम तपस्या है। दोनों प्रबल दानवोंने इस स्थानसे बलपूर्व्वक मेरे वेदोंको हर लिया है, वेदके बिना सब लोक मुझे अन्धकारमय बोध होता है। बिना वेदके मैं किस प्रकार सब लोकोंकी सृष्टि करूं। हाय। वेद नष्ट होनेसे मुझे महत् दुःख उपस्थित हुआ; मैं शोकरूपी समुद्रमें डूब रहा हूं, इस समय कौन इससे मेरा उद्धार करेगा। कौन नष्ट हुए वेदोंको फिर ले आवेगा। मैं किसका प्रिय हूंगा। हे नृपसत्तम! हे बुद्धिमत्‌प्रवर! ब्रह्माके इस ही प्रकार विलाप करते रहने पर नारायणके स्तोत्रके लिये उनमें बुद्धि उत्पन्न हुई। अनन्तर ब्रह्मा हाथ जोड़के परम जप्यमन्त्रको जपने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे ब्रह्महृदय! तुम्हें नमस्कार है, तुम मुझसे पहले उत्पन्न हुए हो; तुम सब लोकोंकी आदि भुवनश्रेष्ठ और सांख्ययोगके आश्रय हो, तुम सर्व्वशक्तिमान हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे अचिन्त्य। तुम व्यक्त जगत् और अव्यक्त परमाणु आदि उत्पन्न करते हो, तुम क्षेमकर पथमें निवास कर रहे हो। हे अयोनिज। तुम विश्वभुक् और तुम ही सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हो। हे लोकधाम! तुम स्वयम्भू हो, मैं तुम्हारी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। पहले तुमसे ही मेरा द्विजोंसे सत्कृत मानस जन्म हुआ, और दूसरी बार पुरातन चाक्षुक जन्म हुआ था, तुम्हारी कृपासे तीसरी बार मेरा महत् वाचिक जन्म हुआ। हे विभु! तुमहीसे मेरा चौथा श्रवणज जन्म हुआ, तुमसे ही मेरा उत्तम नासत्य जन्म पांचवा कहा जाता है, तुमसे ही मेरा छठवां जन्म अण्डज कहा गया है। हे प्रभु! मेरा सर्व्व प्राणियोंकी बुद्धिवासनाका उद्बोधक यह वर्त्तमान पद्मजन्म सातवां कल्पके विख्यात हुआ है। प्रति सर्गमें ही मैं तुम्हारे त्रिगुणरहित पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ था। हे पुण्डरीकाक्ष! तुमने ही पहले प्रधान गुणकल्पित अर्थात् शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण किया है; तुमने ही ईश्वर स्वभाव और स्वायम्भुके कर्म्मबन्धनका विधान किया है। मैं वेदरूपी नेत्रसे युक्त हूं, इसलिये कालविजयी होनेपर भी तुम्हारे सहारे उत्पन्न हुआ हूं। इस समय मेरा वही नेत्रस्वरूप वेद अपहृत हुआ है, इसहीसे मैं अन्ध हुआ हूं इससे तुम जाग्रत होके मुझे नेत्र दान करो, मैं तुम्हारा प्रिय हूं और तुम भी मेरे प्रिय हो।

सर्व्वतोमुख पुरुष भगवानने उस समय इस प्रकार स्तुत होकर निद्रा परित्याग की। उस समय उन्होंने वेदकार्य्यके लिये ऐश्वर्य्य प्रयोगके द्वारा दूसरा शरीर धारण किया। तब प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त शरीरके द्वारा चन्द्रप्रभा समानहोके श्वेतवर्ण हयशिरा रूपसे वेदोंके अवलम्ब हुए। नक्षत्र और तारोंसे युक्त आकाशमण्डल उनका शिर हुआ, सूर्य्यकिरण समान प्रकाशसे युक्त उनके केश अत्यन्त लम्बे हुए। आकाश और पाताल उनके दोनों कान, प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती कटि, समुद्र उनके दोनों भौं, सूर्य्यचन्द्रमा उनके दोनों नेत्र तथा सन्ध्या उनकी नासिका स्वरूप हुई। ॐकार उनका संस्कार हुआ और बिजली उनकी जिह्वारूप हुई। हे राजन्! सोमपान करनेवाले पितर लोग उनके दांत रूपसे कहे गये, गोलोक और ब्रह्मलोक उस महात्माका ओठ तथा अधररूपसे प्रकाशित हुआ। हे महाराज! गुणप्रधान कालरात्रि उनकी ग्रीवा हुई; वह सर्व्व शक्तिमान विश्वेश्वर अनेक मूर्त्तियोंसे आवृत यह ह्याग

मूर्त्ति धारण करके अन्तर्हित होकर उस ही समय पातालमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने परम योग अवलम्बन करके शिक्षा सम्बन्धीय स्वरके सहारे उद्गीथस्वर उत्पन्न किया। वह सब भांतिसे कोमल प्रतिध्वनि युक्त स्वर रसातलमें प्रकट होके सब प्राणियोंको हितकर हुआ।

अनन्तर वे दोनों असुर वेदोंको समय नियन्त्रित करके रसातलमें फेंक दिया और जिधर वह शब्द होता था उधर ही दौड़े। हे राजन्! इतने ही समयमें हयग्रीव हरिने पातालमें जाके निखिल वेदोंको ग्रहण किया और वह समस्त वेद ब्रह्माको फिर प्रदान करके निज प्रकृतिको प्राप्त हुए पूर्वोत्तर समुद्रतटके समीप वेदोंके आश्रय, तथा वेदोंके उद्धार निमित्त ही भगवान अश्वशिरा हुए थे। अनन्तर दानवश्रेष्ठ मधु और कैटभ कुछ भी न देखकर वेगपूर्वक उस स्थानपर आये, जिस स्थानमें वेदोंको फेंका था, उस स्थलको भी सूना देखा, फिर वे दोनों बलवान असुर अत्यन्त वेगके सहित शीघ्र ही पातालसे उठे और चन्द्रमा समान विशुद्धात्मा अनिरुद्ध शरीरमें स्थित श्वेतवर्ण सर्व्वशक्तिसम्पन्न आदि पुरुषको देखा। वह अत्यन्त विक्रमशाली निष्कल्मष सत्त्वसम्पन्न मनोहर प्रभायुक्त भगवान आत्म प्रमाण रचित, जलके ऊपर कल्पित ज्वालमालासे परिपूरित नागभोगाढ्य शय्यापर फिर निद्रित हुए थे, वे दोनों दानवेन्द्र उन्हें देखकर ऊंचे स्वरसे हंसने लगे और रज तथा तमोगुणसे युक्त होकर बोले, यह वही श्वेत पुरुष निद्रित होकर सोरहा है, निःसन्देह इसी पुरुषने पातालसे वेद हरण किया है। यह पुरुष कौन है? किसका पुत्र है, किसलिये भोगशय्यापर सोरहा है। दोनों दैत्योंने ऐसा ही वचन कहके नारायणको जगाया। पुरुषोत्तमने सावधान होके उन दोनों असुरेन्द्रोंको युद्धार्थी समझा और उन्हें देखकर युद्ध करनेमें चित्त लगाया। अनन्तर उन दोनोंके सङ्ग नारायणका युद्ध हुआ। मधु और कैटभका शरीर रज और तमोगुणसे परिपूरित था। मधुसूदनने ब्रह्माका सम्मान करके उन दोनोंका बध किया। पुरुषोत्तमने शीघ्र ही उनका नाश किया और वेद लाके ब्रह्माका शोक दूर किया। अनन्तर वेदसे सत्कृत होनेपर ब्रह्माने हरिसे परिवृत्त होकर उस समय स्थावर जङ्गम समस्त भूतोंकी सृष्टि की। देवोंके देव हरि पितामहको लोक रचनाकी उत्तम बुद्धि प्रदान करके जिस स्थानसे आये थे, उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये नारायणने यहग्रीव शरीर धारण कर उन दोनों दानवोंका बध करनेके अनन्तर फिर प्रवृत्ति धर्म्मके लिये पूर्व्व विग्रह ग्रहण किया। महाभाग हरि इस ही प्रकार अश्वशिरा हुए थे, बरदाता ईश्वरका यह प्राचीन रूप प्रसिद्ध है। जो पुरुष परब्रह्मका यह माहात्म्य सुनता अथवा धारण करता है, उसका अध्ययन कदापि विनष्ट नहीं होता। पाञ्चाल मुनिने उग्र तपस्याके सहारे हयग्रीव देवकी आराधना करके देवादेशित पथसे गति प्राप्तकी थी। हे महाराज! तुमने मुझसे जो पूछा था, उस वेदतुल्य प्राचीन हयशिरा आख्यानको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। भगवान नारायण किसी कार्य्यके अनुष्ठान विषयमें जैसी मूर्त्ति धारण करनेकी इच्छा करें, वह स्वयं ही वैसी मूर्त्ति धारण कर सकते हैं। वेही वेदोंके अवलम्ब हैं, वेही श्रीमान् तपस्याके निधि हैं, वेही सांख्ययोग परब्रह्म और सर्व्वशक्तिमान हरि हैं। सब वेद नारायण पर, समस्त यज्ञ नारायणात्मक, सब तपस्या नारायणाश्रय, सब गति नारायण-पर; सत्य नारायणनिष्ठ, ऋत अर्थात् परम सत्यनारायणात्मक, पुनरावृत्ति दुर्लभ धर्म्म नारायणपर, प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म भी नारायणात्मक है, उत्तम गन्ध जो कि भूमिमें अनुप्रविष्ट होरही हैं, वेभी

नारायणात्मक हैं। हे राजन्। जलके गुण समस्त रस नारायणमय हैं, ज्योतिका परमरूप नारायण स्वरूप है, वायुका गुण स्पर्श भी नारायण स्वरूप कहा गया है, आकाशसे उत्पन्न हुआ शब्द भी नारायणात्मक है। पुरुष प्रकृत, स्वभाव, धर्म्म और दैव, ये सब जगत्के कारण हैं, अधिष्ठान कर्त्ता पृथक् रूपसे कारण है, विविध चेष्टा और दैव ये पञ्चकारण रूपसे गिने गये हैं, ईश्वर इन पांचों कारणोंमें ही अधिष्ठित होरहा है। अव्यक्तगुण लक्षणयुक्त मन उसहीसे उत्पन्न हुआ है, काल और ज्योतियुक्त पदार्थोंका अयन नारायण परायण है। कीर्त्ति, श्री, लक्ष्मी और देवता नारायणपरायण हैं, सांख्य और योगशास्त्र भी नारायणात्मक हैं। एकमात्र सर्व्वशक्तिमान महायोगी हरि ही ब्रह्म है। वह केशव सब लोकोंके सहित ब्रह्मा आदि देवताओं महानुभाव ऋषियों, सांख्य मतवाले योगियों और आत्मज्ञ यतियोंके मनोवाञ्छित विषयोंको विशेष रीतिसे जानता है; परन्तु वे सब उसके अभिप्रायको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सब लोकोंके बीच जो पुरुष देव और पितर कर्म्म करता है, दान करता तथा महत् तपस्या करता है, विष्णु ही उन सबके अवलम्ब हैं। वेही ऐश्वर्य्ययुक्त और सब प्राणियोंके निवास स्थान हैं, इस ही निमित्त वासुदेव नामसे विख्यात हैं।

वह नारायण परम नित्य महर्षि महाविभूति और गुणवर्ज्जित है, तथा जैसे काल ऋतुओंके सहित संप्रयुक्त होता है, वैसे ही ईश्वर भी कार्य्यवशसे शीघ्र ही गुणोंमें संयुक्त हुआ करता है, इस लोकमें उस महात्माकी गतिको कोई भी प्राप्त नहीं होता और उसकी अगतिको भी कोई देखनेमें समर्थ नहीं होता है। जो सब ज्ञानमय महर्षि विद्यमान हैं, वे ही उस गुणाधिक नित्य पुरुषको अवलोकन करते हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, कैसा आश्चर्य्य है। कि भगवान् नारायण सब सुसुच्च पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होते और वह स्वयं विधिपूर्व्वक पूजा ग्रहण करते हैं। इस लोकमें जिन लोगोंकी वासना विनष्ट हुई है और जो लोग पुण्यपापसे रहित हैं, उनकी परम्परा प्राप्त गति अर्थात् ज्ञानके विषयको आपने वर्णन किया है। वे लोग चौथी गति अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सङ्कर्षणको उपेक्षा करके वासुदेव पुरुषोत्तमको पाते हैं। ऐकान्तिक पुरुष अर्थात् निष्काम भक्त लोग परम पद लाभ करते हैं। मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि यह एकान्त धर्म्म ही श्रेष्ठ तथा नारायणको प्रिय है। क्योंकि ऐकान्तिक पुरुष तीनों गति अनिरुद्ध प्रभृतिकी उपासना करके ही अव्यक्त हरिको पाते हैं। जो सब विप्र यत्नवान होकर विधिपूर्व्वक उपनिषदोंके सहित वेद पाठ करते हैं और जो लोग यतिधर्म्मसे युक्त हैं, उनसे ऐकान्तिक पुरुषोंकी गति उत्तम मालूम होती है। कौन देवता तथा किस ऋषिके द्वारा यह धर्म्म वर्णित हुआ है। ऐकान्तिक पुरुषोंके कैसे आचरण हैं और किस समयमें वे उत्पन्न हुए थे। हे विभु! मेरा यह सन्देह दूर करो; इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! संग्रामभूमिमें कुरु पाण्डवोंकी सेना उपस्थित होने पर जब अर्ज्जुन अन्यमनस्क हुए थे, उस समय स्वयं भगवानने जो कहा था वह अगति और गतिका विषय पहले मैं तुम्हारे समीप कह चुका हूं; यह धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है और अविशुद्ध मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है। पहिले समय आदि युगमें यह धर्म्म सामवेदके सहित प्रजापतिसे निर्म्मित हुआ और स्वयं ईश्वर नारायणने इसे धारण किया है। हे महाराज! इस धर्म्मके निमित्त नारद ऋषियोंके बीच हुआ और भीष्मके सुनते रहनेपर नारद

आगे नारद मुनिसे पूछा था। हे नृपसत्तम! मेरे गुरुने भी इस विषयको वर्णन किया था; उस समय नारद मुनिने उन लोगोंसे जिस प्रकार कहा था, उसे सुनो।

हे पृथ्वीपाल भारत! जिस समय नारायणके मुखसे ब्रह्माका मानस जन्म हुआ था, उस समय स्वयं नारायणने उक्त धर्म्मके सहारे देव और पितरकर्म्म किया था, फेनप ऋषियोंने वही धर्म्म ग्रहण किया। फेनप ऋषियोंसे वैखानस मुनियोंने उस धर्म्मको पाया। वैखानस मुनियोंके निकटसे उस धर्म्मको चन्द्रमाने पाया, अन्तमें वह धर्म्म अन्तर्हित होगया। हे राजन्! जब ब्रह्माका दूसरा चाक्षुष जन्म हुआ, तब उन्होंने चन्द्रमाके निकट वह धर्म्म सुना था। हे महाराज! नारायणस्वरूप ब्रह्माने वह धर्म्म रुद्रको दिया था, अनन्तर जब सतयुगमें रुद्रने योग अवलम्बन किया था, उस समय उन्होंने बालखिल्य ऋषियोंको वह धर्म्म प्रदान किया, अनन्तर रुद्रदेवकी मायासे वह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे राजन्! जब ब्रह्माका महत् वाचिक नामक तीसरा जन्म हुआ था, उस समय यह धर्म्म स्वयं नारायणसे फिर प्रकट हुआ सुपर्णनाम ऋषिने पुरुषोत्तमके निकटसे उक्त धर्म्म प्राप्त किया था। उन्होंने उत्तम रीतिसे अनुष्ठित तपस्या, दम और नियमके द्वारा प्रतिदिन तीनवार इस उत्तम धर्म्मकी आवृत्ति की थी, इस ही निमित्त यह त्रिसौपर्णव्रत रूपसे कहा जाता है। यह दुश्चरव्रत ऋग्वेदके बीच पठित हुआ है। हे राजन्! जगत्प्राणवायुने इस सनातन धर्म्मको सुपर्णसे पाया था। ऐसा कहा जाता है। कि वायुसे विघसाशी ऋषियोंने उसे पाया, ऋषियोंसे यह उत्तम धर्म्म समुद्रको मिला, अनन्तर नारायणसे समाहित होकर यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब महात्मा ब्रह्माकी श्रवणज अर्थात् अनाहत ध्वनिरूपी उत्पत्ति हुई थी, उस समयमें जैसी घटना हुई उसे कहता हूं, सुनो।

देवोंकेदेव नारायण हरिने स्वयं जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा करके किसी पुरुषकी चिन्ता की। अनन्तर चिन्ता करते रहने पर उनके दोनों कानोंसे प्रजाकी सृष्टि करनेवाला पुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस समय जगत्पति नारायणने उससे कहा, हे पुत्र! तुम मुख और पदसे समस्त प्रजा उत्पन्न करो। हे सुव्रत! मैं तुम्हारे बल, तेज और कल्याणका विधान करूंगा। तुम मुझसे सात्वत नामक धर्म्म ग्रहण करो और उस ही सात्वत धर्म्मसे उत्पन्न हुए सत्ययुगको विधिपूर्व्वक स्थापित करो। अनन्तर ब्रह्माने उस देवेश्वर हरिको नमस्कार करके उनसे रहस्य और संग्रहके सहित श्रेष्ठ धर्म्म ग्रहण किया। फिर उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको आरण्यक उपनिषत्के सहित नारायण मुखसे उत्पन्न हुए धर्म्मका उपदेश करके तुम युग धर्म्मोंके कर्त्ता होगे, ऐसा कहकर निष्काम कर्म्म नामक तमोगुणसे अतीत अव्यक्त रूपसे जिस स्थानमें पहले स्थित थे, उस ही स्थान पर चले गये अनन्तर लोक पितामह वरदाता ब्रह्माने समस्त लोकोंको उत्पन्न किया, उस समय पहले शुभ सत्ययुग प्रवृत्त हुआ, उस युगमें सात्वत धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होके स्थित रहा, जगत्स्रष्टा ब्रह्माने उस आद्य धर्म्मसे सर्व्वशक्तिमान देवेश्वर हरिकी पूजा की। अनन्तर सब लोकोंकी हितकामनासे धर्म्मकी प्रतिष्ठाके लिये उस समय ब्रह्माने वह धर्म्म स्वारोचिष मनुको पढ़ाया। हे राजन्! सर्व्वलोकपति स्वारोचिष मनुने अव्यग्र भावसे निज पुत्र शङ्खपदको उक्त धर्म्मका उपदेश दिया। हे भारत! शङ्खपदने भी अपने औरस पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभको पढ़ाया। अनन्तर त्रेतायुग उपस्थित होनेपर फिर वह धर्म्म अन्तर्हित हुआ। हे महाराज! अनन्तर प्रजापतिके नासत्य जन्मके समय इस

हरि अरविन्दलोचन देव नारायणने ब्रह्माके सम्मुख उक्त सात्वत धर्म्मको वर्णन किया था। हे राजन्! उनसे सनत्कुमारने प्रथम इसे अध्ययन किया। हे कुरुपुङ्गव! सत्ययुगके प्रारम्भमें प्रजापति वीरणने सनत्कुमारके निकट इस सात्वत धर्म्मको पढ़ा था। वीरणने इसे पढ़के रैभ्य मुनिको अध्ययन कराया; रैभ्यने पवित्र उत्तम व्रत करनेवाले मेधावी दिक्पाल धार्म्मिक कुक्षि नामक निज पुत्रको उक्त धर्म्म प्रदान किया था। अनन्तर नारायणके मुखसे उत्पन्न हुआ यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। ब्रह्माके अण्डज जन्ममें नारायणके मुखसे प्रकट होके फिर यह धर्म्म हरियोनि प्रजापतिके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। ब्रह्माने विधिपूर्व्वक प्रयुक्त उस धर्म्मको ग्रहण किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने उसे बर्हिषद नामक मुनियोंको पढ़ाया। बर्हिषद मुनियोंसे सामवेदके पारदर्शी जेष्ठ नामक प्रसिद्ध विप्रने इसे पाया था, इस ही लिये इसका नाम जेष्ठ सामव्रत हुआ है। जेष्ठसे अविकम्पन राजाके निकट वह धर्म्म संक्रान्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर फिर यह भगवान हरिका धर्म्म अन्तर्द्धान हुआ। हे महाराज! ब्रह्माका यह कमलसे सातवां जन्म हुआ है। इस बार युगके प्रारम्भमें हरिने लोक विधाता शुद्धसत्त्व प्रजापतिके निकट इस धर्म्मको वर्णन किया था। अनन्तर पितामहने पहले समयमें दक्षको यह धर्म्म उपदेश किया था। हे भारत! दक्षने अपने जेठे दौहित्र सविताके अग्रज आदित्यको इसे प्रदान किया। उनसे विवस्वान इस धर्म्मको ग्रहण किया। अनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वानने निज पुत्र वैवस्वत मनुको यह धर्म्म प्रदान किया, मनुने सब लोकोंको पालन करनेके निमित्त अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुको यह धर्म्म अध्ययन कराया। हे महाराज! इक्ष्वाकुके द्वारा प्रचारित होकर यह धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है। कल्पान्तके समय फिर यह नारायणमें लीन होगा।

हे नृपोत्तम! यतियोंका जैसा धर्म्म है, वह पहले गीताके बीच संक्षिप्तविधिके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप कहा है। हे राजन्! नारद मुनिने रहस्य और संग्रहके सहित इस धर्म्मको साक्षात् नारायणके समीप प्राप्त किया था। हे राजन्! इस ही प्रकार यह महान् धर्म्म आद्य नित्य है, यह भक्ति रहित मनुष्योंसे दुर्व्विज्ञेय और दुष्कर है, सात्वत मतावलम्बी मनुष्य इसे सदा धारण किया करते हैं। यह धर्म्म ज्ञानपूर्व्वक उत्तम रीतिसे प्रयुक्त कर्म्म तथा अहिंसा धर्म्मयुक्त इसका ज्ञान होनेसे जगदीश्वर हरि प्रसन्न होते हैं। वह कभी एकव्यूह, कभी दो व्यूह, कदापि तीन व्यूह और कभी चतुर्व्यूहसे विभक्त होकर दीख पड़ते हैं। हरि ही क्षेत्रज्ञ, निर्म्मल, निष्कल और पञ्चभूतोंके गुणोंको अतिक्रम करके सब प्राणियोंमें निवास करता है। हे महाराज! नारायण ही कान आदि पांचो इन्द्रियोंके परिचालक, मन अथवा अहङ्कार रूपसे प्रसिद्ध है। वह बुद्धिमान हरि ही सब लोकोंका सृष्टि कर्त्ता है, वही सब लोकोंका प्रवर्त्तक और अन्तर्य्यामी है। वही कर्त्ता है, वही कार्य्य तथा वही कारण है। हे महाराज! वह अविनाशी पुरुष जिस प्रकार इच्छा करे, उस ही भांति क्रीड़ा किया करता है। हे नृपसत्तम! यह मैंने गुरुकी कृपासे तुम्हारे समीपसे अपवित्र बुद्धिवाले पुरुषोंसे दुर्व्विज्ञेय निष्काम भक्तोंके धर्म्मका वर्णन किया। हे महाराज! निष्काम भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे कुरुनन्दन! यदि वैसे अहिंसक आत्मज्ञ सब प्राणियोंके हितमें रत, निष्काम भक्तोंके द्वारा जगत् परिपूरित होता, तो सदा ही सत्ययुग वर्त्तमान रहता और समस्त काम्यकर्म्म नष्ट होजाते। हे नरनाथ! मेरे गुरु द्विजश्रेष्ठ धर्म्मज्ञ भगवान व्यासदेवने

ऋषियोंके निकट कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर धर्म्मराजसे इस ही प्रकार धर्म्म विषय वर्णन किया था, इससे पहिले महा तपस्वी नारदने यह धर्म्म विषय कहा था। नारायण-परायण भक्त लोग जिस स्थानमें गमन किया करते हैं, वह श्वेतवर्ण चन्द्रमा तुल्य प्रकाशमान अच्युत देव ही परब्रह्म है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ज्ञानियोंके द्वारा इस ही प्रकार अनेक भांतिसे धर्म्म निरूपित हुए थे, परन्तु अन्य ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके नियमोंसे स्थित होके किस कारणसे इस धर्म्मका आचरण नहीं किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतवंश अवतंस महाराज! जीवोंके बीच सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन भांतिकी प्रकृति निर्म्मित हुई है। हे कुरुवंशधर पुरुष-प्रवर! देहयुक्त जीवोंके बीच सात्त्विक पुरुष श्रेष्ठ हैं, और वे ही मोक्षके हेतु निश्चय किये गये हैं। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक पुरुषोंके बीच सात्त्विक मनुष्य ही ब्रह्म-वित्तम पुरुषको जान सकते हैं। मोक्ष नारायणनिष्ठ है, इसही लिये मुमुक्षु पुरुष सात्त्विक कहके प्रसिद्ध हैं। अत्यन्त भक्तियुक्त नारायण परायण पुरुष सदा पुरुषोत्तमका ध्यान करते हुए मनोवाञ्छित विषय प्राप्त करते हैं; जो सब मोक्ष धर्म्म अवलम्बी मनीषि पुरुष यतिव्रत अवलम्बन करते हैं, हरि ही उन तृष्णा रहित पुरुषोंके योग-क्षेम विधान किया करते हैं। मधुसूदन कृपा पूर्व्वक जिसे जन्म मरण आदिक दुःखोंका पात्र अवलोकन करते हैं, वही मोक्ष विषयमें निश्चित तत्पर रहता है, और उसे ही सात्त्विक पुरुष जानना चाहिये। ऐकान्तिक भक्तोंसे सेवित धर्म्म सांख्ययोगके सहित समान है, इस ही लिये नारायणात्मक मोक्ष विषयमें सात्त्विक मनुष्य परम गति पाते हैं। जिस पुरुषके ऊपर नारायणकी कृपा दृष्टि होती है, वही प्रतिबुद्ध अर्थात् तत्त्व-ज्ञानसे युक्त हुआ करता है। हे महाराज! आपनी इच्छासे कोई तत्त्वज्ञानी नहीं होसकता, हे राजन्! राजसी और तामसी ये दोनों मिलीजुली अर्थात् दोषयुक्त प्रकृति कहके वर्णित हुई हैं। उस स्वरूपसे उत्पन्न हुए प्रवृत्ति लक्षणयुक्त पुरुषकी ओर स्वयं नारायण अवलोकन नहीं करते। रज और तमोगुणसे जिसका मानस परिप्लुत होता है, उन उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंको लोकपितामह ब्रह्मा प्रवृत्तिमार्गमें नियुक्त करते हैं। हे नृपोत्तम। देवता और ऋषि लोग सब भांतिसे सत्त्वस्थ हैं। जो लोग सूक्ष्म तत्त्वोंसे हीन हैं, उन्हें वैकारिक कहा जाता है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैकारिक पुरुष किस प्रकारसे पुरुषोत्तमको पाते हैं, आपने जैसा देखा हो और उन लोगोंकी जिस प्रकारकी प्रवृत्ति होवे, उसे ही विधिपूर्व्वक वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वैकारिक अहङ्कार अर्थात् पञ्चविंशति जीव अत्यन्त सूक्ष्म है, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जाता, वह अनारोपित रूपयुक्त अधिष्ठान मात्र, अकार उकार और मकार, इन तीनों अक्षरोंसे संयुक्त तथा निष्क्रिय पुरुषको प्राप्त होता है। समस्त सांख्य, आत्मानात्म विवेक चित्तवृत्ति निरोधरूप योग, जीव ब्रह्मके अभेद पर तत्त्वमसि आदि वाक्यजनित आरण्यक वेद और भक्तिमार्गरूप पञ्चरात्र, ये सब एक होनेपर भी परस्परमें एक दूसरेके अङ्गस्वरूप हैं; इसलिये यही नारायणनिष्ठ ऐकान्तिक अर्थात् निष्काम भक्तोंका धर्म्म कहा जाता है। हे महाराज! जैसे समुद्रसे उठके जल बरसता है और फिर समुद्रमें ही प्रवेश करता है, उसही प्रकार यह सब ज्ञानस्वरूप महासागर नारायणमें फिर प्रविष्ट हुआ करता है। हे कुरुनन्दन यह मैंने तुम्हारे समीप सात्वत धर्म्मका वर्णन

किया है। हे भारत। यदि तुम समर्थ हो, तो विधिपूर्व्वक इस ही प्रकार धर्म्माचरण करो। महाभाग नारदने मेरे गुरुके निकट इस ही भांति गृहवासी काषाय वस्त्रधारी यतियोंकी ऐकान्तिकी गतिका विषय वर्णन किया था। व्यासदेवने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके समीप इसे कहा था, उस ही गुरुदेवके द्वारा प्रचारित इस धर्म्मको मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया है। हे पार्थिव सत्तम। यह धर्म्म अत्यन्त दुष्कर है, तुम इसे सुनके जिस प्रकार मोहित हुए हो, दूसरे पुरुष भी इसे सुननेसे उस ही भांति मोहित हुआ करते हैं। हे महाराज! कृष्ण ही सब लोकोंका पालन करते और वही सबको मोहित किया करते हैं, वही सबके संहार करनेवाले और कारण स्वरूप हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मर्षि! सांख्ययोग, पञ्चरात्र और वेदके आरण्यक भाग ये सब ज्ञानकाण्ड लोकमें प्रचारित हैं। हे मुनि! ये सब ज्ञानकाण्ड एकनिष्ठ हैं, अथवा पृथक्‌निष्ठ है? मैं इसे ही पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक इस ही वृत्तान्तको वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सत्यवतीने द्वीपके बीच धातयोग निबन्धनसे पराशरके द्वारा यपत्त उदार जिस परम उत्कृष्ट बहुज्ञ पुत्रको प्रसव किया था, उस अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले परम ऋषिको नमस्कार करता हूं। पण्डित लोग जिसे पितामहके आदिभूत नारायणके पञ्च और हिरण्य गर्भके ऐश्वर्य्ययुक्त वेदोंके महानिनाद महर्षि द्वैपायन कहा करते हैं, उसे नारायणसे निर्गत करके छठवां अवतार जानना चाहिये। पहले समयमें महा तेजस्वी उदारस्वभाव तेजस्वी नारायणने वेदोंके महानिनाद पुराण जन्म रहित उस महानुभाव व्यासदेवको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया।

महाराज जनमेजय बोले, हे द्विज-सत्तम! पहले आपने ही व्यासदेवकी उत्पत्तिका विषय कहा था, कि वसिष्ठके पुत्र शक्ति, शक्तिके पुत्र पराशर और पराशरके पुत्र कृष्ण द्वैपायन मुनि हैं। अब आप फिर उन्हें नारायणका पुत्र कहते है, इसलिये अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवका क्या वह पहला जन्म है? हे महा बुद्धिमान्! व्यासदेवकी जिस प्रकार नारायणसे उत्पत्ति हुई थी, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! समस्त वेदार्थ जाननेकी इच्छासे जब धर्म्मिष्ठ तपस्या करनेमें निष्ठावान तपोनिधि मेरे गुरुने हिम गिरिपर्व्वतकी शिखरपर निवास किया था, उस समय उस धीमान ऋषिके भारता ख्यान बनाके तपसे श्रान्त होनेपर हम लोगोंने उनकी सेवा की थी। सुमन्त, जैमिनी, दृढ़व्रती पैल और मैं, हम चारों उनके शिष्य हैं, और व्यासदेवके पुत्र शुकदेव पांचवें थे, इन्हीं पांचों प्रधान शिष्योंसे व्यासदेव सदा घिर कर हिमालय पहाड़पर भूतोंसे घिरे हुए भूतपति महादेवकी भांति विराजते थे। हम लोग अङ्गके सहित सब वेदोंकी आवृत्ति करते और भारतके अर्थको सब प्रकारसे विचारते हुए उस एक चित्तदान्त गुरुकी स्थिर होकर सेवा करते थे। अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे हम लोगोंने उस द्विजवरको वेदार्थ भारतका अर्थ और नारायणसे उनके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त पूछा, तत्त्ववित् व्यासदेवने पहले वेदार्थ और भारतका अर्थ कहके नारायणसे अपनी उत्पत्तिका पूर्व वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, हे विप्रगण! पहले समयमें प्रकट हुआ यह ऋषि प्रणीत उत्तम आख्यान जो कि मुझे तपस्याके सहारे मालूम हुआ है, उसे कहता हूं सुनो। प्रजापति ब्रह्मा [illegible]

लसे यह सातवां जन्म हुआ है, उस समय प्रजा उत्पन्न करनेके लिये शुभाशुभ कर्मोंसे रहित अत्यन्त तेजस्वी महायोगी नारायणके नाभि-कमलसे पहले ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर नारायण उनसे बोले, हे ब्रह्मन्। तुम प्रजा उत्पन्न करनेकी शक्तिसे संयुक्त होकर मेरे नाभि कमलसे उत्पन्न हुए हो; इसलिये जड़ और चैतन्य विविध प्रजाकी सृष्टि करो। ब्रह्माने नारायणका ऐसा वचन सुनके विमुख हुआ तथा चिन्तासे व्याकुल होकर वरदाता ईश्वर तेजस्वी हरिको प्रणाम करके बोले, हे देवेश! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, प्रजाको उत्पन्न करनेमें मेरी क्या सामर्थ है। हे देव! मैं बुद्धिमान नहीं हूं, इसलिये इसके अनन्तर जैसा करना हो, तुम उसका विधान करो। अनन्तर बुद्धिमत्प्रवर देवेश्वर भगवान प्रजापति ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होकर विचार करने लगे। भगवानके चिन्ता करते रहनेपर मूर्त्तिमयी बुद्धि सर्व्व ऐश्वर्य्यशाली नारायणके निकट प्रकट हुई। उस समय अविनाशी नारायणने उस ऐश्वर्य्य योग अवलम्बन करनेवाली गतिशालिनी सती बुद्धिसे यह वचन बोले, कि तुम लोक सृष्टि सिद्ध करनेके लिये प्रजापति ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रवेश करो। अनन्तर ईश्वरकी आज्ञासे बुद्धि शीघ्र ही ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हुई, जब नारायणने ब्रह्माको बुद्धियुक्त देखा, तब फिर प्रकट होके उनसे कहा, हे ब्रह्मन्! इन सब विविध प्रजासमूहको उत्पन्न करो। उस समय ब्रह्माने उनकी आज्ञाको माथेपर चढ़ाया, भगवान ऐसी ही आज्ञा देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये और मुहूर्त्तकालके बीच देव नामक निज स्थानमें गमन किया। वहां पूर्व्व-प्रकृतिको प्राप्त होकर एक भावसे निवास करने लगे; उस समय उनमें अन्य प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई। इधर परमेष्ठी प्रजापतिके द्वारा ये सब प्रजा उत्पन्न हुईं। यह तपस्विनी वसुमती दैत्य, दानव, गन्धर्व्व और राक्षसोंसे परिपूरित होनेसे उनके बोझसे आक्रान्त हुई। पृथ्वीमण्डलपर बहुतेरे दैत्य, दानव और राक्षस लोग बलवान होंगे और वे लोग तपस्या करके उत्तम वर पावेंगे, वे सब वरके अभिमानसे मत्त होकर अवश्य ही देवताओं और तपोधन ऋषियोंके कार्य्यमें बाधा करेंगे, उस समय पृथ्वीका भार उतारना मेरा न्यायकार्य्य होगा। अनन्तर पृथ्वीपर विधिपूर्व्वक अनेक प्रकारके अवतारोंके सहारे पापाचारियोंके निग्रह और साधुओंको पालन करनेसे दुःखिनी पृथ्वी आनन्दित होगी। मैं पातालमें भोगीरूपसे इस पृथ्वीको धारण कर रहा हूं, मैंने इसे धारण किया है, इसहीसे यह स्थावर जङ्गमात्मक निखिल जगतको धारण करती है। इसलिये मैं अवतार लेके इसका परित्राण करूंगा। भगवान मधुसूदनने इस ही प्रकार चिन्ता करके उत्पात्तविषयमें अनेक प्रकारका रूप धारण किया। वाराह, नरसिंह, वामन और मनुष्य, इन सब मूर्त्तियोंके सहारे मैं दुर्व्विनीत दानवोंको मारूंगा।

अनन्तर जगत्स्रष्टा हरिने 'भो' शब्दके सहारे अनुनाद करते हुए वाक्य उच्चारण किया, उस वाक्यसे उत्पन्न होनेके कारण सारस्वत और अपान्तरतमा नामसे भूतभव्य भावष्यज्ञ सत्यवादी, दृढ़व्रती, वाक्यसम्भव सुत उत्पन्न हुआ। देवोंके देव अविनाशी हरि उस नतवदनवाले पुत्रको सम्बोधन करके बोले, हे मतिमत्प्रवर! तुम वेदाख्यान सुनोगे। हे मुनि! मैंने जैसी आज्ञा दी है, उसहीके अनुसार तुम मेरे वचनको प्रतिपालन करो। उसने भगवानकी आज्ञानुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदोंका विभाग किया भगवान हरि उसके वैसे कर्म्म और उत्तम रीतिसे अनुष्ठान की हुई तपस्या तथा यम नियमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए

और उससे बोले, हे पुत्र ! हे ब्रह्मन् ! तुम सब मन्वन्तरमें इस ही प्रकार अचल और अप्रधृष्य होकर सदा ऐसे ही वेदोंके प्रवर्त्तक होगे। फिर कलियुगके प्रारम्भमें भरतवंशमें कौरवनामक महानुभाव राजा भूमण्डलमें प्रसिद्ध होंगे।

हे द्विजसत्तम ! तुमसे उत्पन्न हुए उन कौरवोंका परस्पर नाश होनेके समय तुम्हारे अतिरिक्त सबका ही वंश नष्ट होगा। उस समय तुम तपस्या युक्त होकर वेदोंको अनेक प्रकारसे विभिन्न करोगे। कलियुगमें तुम कृष्णवर्ण होगे, तुम विविध धर्म्मोंके कर्त्ता और ज्ञान प्रवर्त्तक होगे और तपसे युक्त होनेपर भी रागरहित न होगे। महादेवकी कृपासे रागरहित परमात्मा तुम्हारे पक्ष होंगे, मेरा यह वचन मिथ्या न होगा। ब्राह्मण लोग जिसे पितामहका मानसपुत्र वशिष्ठ कहते हैं, जो उत्तम बुद्धिसे युक्त सबसे श्रेष्ठ और तपोनिधि है, जिसका तेज सूर्य्यको भी अतिक्रम करता है, उनके वंश पराशर नाम महाप्रभावयुक्त महर्षिका जन्म होगा, वही वेदनिधि वरिष्ठ महातपस्वी तपोनिधि तुम्हारे पिता होंगे। तुम उस ही महर्षिके द्वारा कन्याके गर्भसे उत्पन्न होके उनके पुत्र कहे जाओगे। तुम भूत, भविष्यत् वर्त्तमान समस्त विषयोंके संशयको नष्ट करोगे। हे मुनि ! पहले जो सहस्रयुग व्यतीत हुए हैं, तुम तपस्यायुक्त होकर मेरे द्वारा उन सब युगधर्म्मोंको अवलोकन करोगे और अनादिनिधन मेरा सदा ध्यान करनेसे फिर अनेक सहस्र युगोंको देखनेमें समर्थ होगे। मेरा यह वचन मिथ्या न होगा।

हे तात ! तुम अतुल-सत्त्वसे युक्त और अत्यन्त विख्यात होगे। सूर्य्यपुत्र शनैश्चर्य्य सम-[illegible] मनु होंगे, उस मन्वन्तरमें तुम मेरी [illegible] निःसन्देह मन्वादिकोंमें अग्रगण्य होगे। [illegible] जो कुछ विद्यमान है, वह सब हमारा [illegible] कार्य्य है, दूसरे लोग अन्य भांति की चिन्ता करते हैं परन्तु मैं स्वच्छन्दतासे सबका विधान किया करता हूं। ईश्वरने अपान्तरतमा सारस्वत ऋषिसे ऐसा ही वचन कहके उन्हें प्रस्थान करनेके निमित्त आज्ञा दिया उस हरिमेधा देवकी कृपा तथा उनकी आज्ञाके अनुसार मैंने उसही अपान्तरतमा नामसे जन्म ग्रहण किया था। पुनर्व्वार मैं वशिष्ठ कुलका आनन्द वर्द्धक होकर उत्पन्न होके विख्यात हुआ हूं। मेरा जो नारायणकी कृपासे उनहीके अंशसे जन्म हुआ था, उसे मैंने वर्णन किया। हे मतिमत्प्रवर ! पहले समयमें मैंने परम समाधिके सहित अत्यन्त ही दारुण तपस्या की थी। हे शिष्यवृन्द ! तुम लोगोंने जो पूछा था, भक्तोंपर स्नेह वशसे मैंने यही अपना पूर्व्व जन्म और भविष्यत् जन्मका समस्त वृत्तान्त तुम लोगोंके समीप कहा है। इसके अनन्तर और वृतान्त सुनो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजर्षि ! सांख्ययोग, पञ्चरात्र, समस्त वेद और पाशुपतमत, इन सब ज्ञान प्रतिपादक शास्त्रोंको अनेक मतोंसे संयुक्त जानना चाहिये। सांख्य शास्त्रके वक्ता कपिल मुनि हैं, वह परमर्षि रूपसे वर्णित हुए हैं, प्राचीन हिरण्यगर्भ योगशास्त्रको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अपान्तरतमा ऋषि वेदाचार्य्य कहके वर्णित हुए हैं, इस लोकमें कोई कोई उन्हें प्राचीनगर्भ ऋषि कहा करते हैं। ब्रह्माके पुत्र उमापति, भूतनाथ, श्रीकण्ठ शिवने सावधान होकर यह पाशुपत ज्ञान-शास्त्र कहा है। हे नृपवर ! भगवान स्वयं समस्त पञ्चरात्रके जाननेवाले हैं, इन सब शास्त्रोंके बीच यही दीख पड़ता है, कि आगम और अनुभवके अनुसार सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त परमात्मा ही सब शास्त्रोंका परम तात्पर्य्य और विषयीभूत है। हे नरनाथ ! मोहसे छिपे हुए मनुष्य लोग नारायणको इस प्रकार नहीं जान सकते। शास्त्र जाननेवाले

मनीषियोंने उस नारायण ऋषिको ही शास्त्रोंका तात्पर्य कहा है, शास्त्रोंका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है, इसे मैं भी स्वीकार करता हूं। पुरुषोंमें निःसन्देह नारायण सदा निवास कर रहा है, और संशय करनेवाले कुतर्की मनुष्योंमें वह स्थिति नहीं करता। हे महाराज। जो लोग पञ्चरात्रके जाननेवाले, क्रमपरायण और निष्काम धर्ममें निष्ठावान् हैं, वेही नारायणमें प्रवेश किया करते हैं। हे राजन्! सांख्य योगशास्त्र और निखिल वेद-स्मृति प्रतिपादनका हेतु आदि अन्तसे रहित हैं, इस हीसे सनातन कहाता है, समस्त ऋषियोंके द्वारा ऐसा ही निरूपित हुआ है, कि पुराण पुरुष नारायण ही यह दृश्यमान समस्त जगत्रूप है। वेद विहित जो शुभ अशुभ अथवा अशुभ कर्म्म सब लोकोंमें अर्थात् द्युलोक, भूलोक, अन्तरीक्ष और जलके बीच प्रवर्त्तित होते हैं, उन्हें यह जानना चाहिये, कि वे सब उसही परम ऋषि नारायणसे प्रवर्त्तित हुए हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्। पुरुष अनेक अथवा एक ही है; श्रेष्ठ पुरुष कौन है और उसकी योनि कौनसी है?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर। सांख्य और योगशास्त्रको विचार करके देखनेसे व्यवहारके समय अनेक पुरुष दीखते हैं, उक्त मतावलम्बी पुरुष एक पुरुषवादको अङ्गीकार नहीं करते। अनेक पुरुषोंकी जिस प्रकार एक योनि कही जाती है और विश्वमय एक पुरुष जिस भांतिसे गुणाधिक होता है, उस विषयके कहनेके पहले मैं आत्मतत्त्वके जाननेवाले, तपस्वी, दांत, बन्दनीय निज गुरु महर्षि व्यासदेवको नमस्कार करके उसकी व्याख्या करता हूं। हे महाराज। यह पुरुषसूक्त समस्त वेदोंमें नीच नत्य, परम सत्य ऋषिश्रेष्ठ व्यासदेव मुनिके द्वारा चिन्तितरूपसे विख्यात् है। हे भारत। कपिल आदि ऋषियोंने अध्यात्म योगके सहारे सामान्य और विशेष विधिके अनुसार बहुतेरे शास्त्रोंका वर्णन किया है। व्यासदेवने जो संक्षेपमें एक पुरुष वाद कहा है, मैं उन्ही अमित तेजस्वी ऋषिकी कृपासे उसे ही तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्माके सहित महादेवके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं।

हे महाराज। क्षीरसागरके बीच सुवर्ण समान प्रभासे युक्त वैजन्तु नाम विख्यात एक उत्तम पर्व्वत है, प्रजापति ब्रह्मा वैराजस्थानसे नित्य वहांपर आके एकान्तमें अध्यात्मगतिका विचार करते हुए उस पहाड़ पर निवास करते हैं। एक बार जब बुद्धिमान ब्रह्मा वहांपर बैठे थे, उस ही समय उनके ललाटसे प्रकट हुए महायोगी तीन नेत्रवाले शिव आकाशमार्गसे इच्छापूर्व्वक उस स्थानपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने शीघ्र ही आकाशसे उस पहाड़की शिखरपर प्रजापति ब्रह्माके अगाडी आके उपस्थित और प्रसन्न होके उनके दोनों चरणोंकी बन्दना की। चरणपर गिरते हुए देखकर उस समय अकेले भगवान प्रजापतिने उन्हें बायें हाथसे उठाया और बहुत समयके अनन्तर आये हुए पुत्रसे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे महाबली पुत्र। तुमने सुखसे आगमन किया है न; भाग्यसे ही तुम मेरे समीप आये हो, तुम्हारा वेदाध्ययन और तपस्या कुशलपूर्व्वक होती है न? तुम सदा उग्रतपस्या किया करते हो, इस ही निमित्त बार बार पूंछता हूं।

महादेव बोले, हे भगवन्। आपकी कृपासे मेरे स्वाध्याय, तपस्या तथा समस्त जगत्का मङ्गल है, बहुत समय व्यतीत हुआ कि मैंने

वैराजभवनमें आपका दर्शन किया था, इस ही निमित्त आपके चरणसेवित इस पर्व्वतपर आया हूं, आपके इस अत्यन्त निर्ज्जन स्थानमें आगमन करनेसे मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है। हे भगवन्! इस निर्ज्जन स्थानमें आनेका कारण सामान्य होगा, वैसा भी मुझे नहीं मालूम होता है। परन्तु आपका स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ, भूख प्याससे रहित अत्यन्त तेजस्वी ऋषियों और सुरासुरोंसे अध्युषित है, गन्धर्व्व और अप्सराओंके सदा निषेवित हैं, इसलिये वैसे स्थानको परित्याग करके किस लिये आप अकेले इस पर्व्वतपर आये हैं। ब्रह्मा बोले, मैं इस वैजन्तपर्व्वतपर सदा निवास करता हूं, इस स्थानपर एकान्तचित्तसे विराटपुरुषका ध्यान किया करता हूं।

महादेव बोले, हे ब्रह्मन्! आपने स्वयम्भु होकर अनेक पुरुषोंको उत्पन्न किया है और दूसरी अनेक प्रकारकी सृष्टि होती हैं; परन्तु विराट पुरुष एकही है; इसलिये आप एकमात्र जिस पुरुषोत्तमका ध्यान करते हैं; वह कौन है? आप मेरे इस सन्देहके विषयको वर्णन करिये; इसमें मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र! तुमने जिन समस्त पुरुषोंका विषय कहा है, वे अनेक हैं; और जिसका मैं ध्यान करता हूं, वह इन सबको अतिक्रम करके स्थित है, इस ही निमित्त दृष्टिगोचर नहीं है वह एकमात्र पुरुषही समस्त पुरुषोंका निवासस्थान है, और वही अनेक पुरुषोंको देकर कहके वर्णित हुआ करता है। उस विश्वरूपी कारण स्वरूप सूत्रात्मा सनातन पुरुषमें निर्गुण पुरुष प्रवेश किया करते हैं।

३५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र। यह पुरुष पूर्णत्वके कारण जिस प्रकारसे पुरुष शब्द वाच्य है, कर्मसे रहित होनेसे शाश्वत है, अपरिणामी होनेसे अव्यय कहाता है; अवयव रहित है, इस ही निमित्त अक्षर कहा जाता है, वचन और मनके अगोचर होनेसे अप्रमेय है, तथा सबके उपादान कारण होनेसे जिस प्रकार सर्व्वगस्वरूपसे वर्णित होता है, उसे सुनो। हे सत्तम! तुम, मैं अथवा दूसरे पुरुष उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं, ज्ञान इन्द्रियके सहित निर्गुण अथवा शम दम आदिसे रहित निर्गुण मूढ़ पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकते। वह विश्वात्मा केवल ज्ञानसे देखा जाता है अर्थात् चिन्मात्रके सहारे ही उस स्वयं प्रकाशका दर्शन किया जाता है। वह स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरसे रहित होनेपर भी सर्व्व शरीरमें निवास कर रहा है, और शरीरमें वास करने पर भी कर्मसे लिप्त नहीं होता। वही मेरी अन्तरात्मा, तुम्हारी अन्तरात्मा और दूसरे जो सब शरीर हैं, उन सबकी अन्तरात्मा है। वही सबका साक्षी है, कोई भी उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता। वह विश्वमुख, विश्वभुज, विश्वपाद, विश्वनयन और विश्व-नासिक है; वही अकेला स्वेच्छाचारी होकर सर्व्व शरीरोंमें सुख पूर्व्वक भ्रमण कर रहा है। वह योगात्मा क्षेत्र अर्थात् समस्त शरीर और शुभाशुभ बीजको जानता है, इसीसे क्षेत्रज्ञ नामसे वर्णित होता है। प्राणियोंके बीच उसकी अगति और गतिका विषय सांख्यविधि और योगके द्वारा कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है; उसकी गतिको मैं विचार रहा हूं, परन्तु उत्तम गतिको जान नहीं सका; उसको अगति और गतिके विद्यमान रहते भी यथार्थमें वह नहीं है; इस ही निमित्त वह जाना नहीं जाता, आत्मामें गति है, इतना ही जानना होगा। वह एक और महान् हैं, अकेला वही पुरुषस्वरूपसे वर्णित होता है, वह सनातन पुरुष ही महापुरुष शब्दसे प्रतिपादित है। एक ही अग्नि अनेक प्रकारसे प्रज्वलित होती है; सूर्य्य एक है, और तमस्का योनि एक ही है। एक ही वायु लोकमें अनेक प्रका-

रवि कहती है और समस्त जलकी योनि महासागर एक ही है। विश्वरूप निर्गुण पुरुष एक है, उसहीमें सब प्राणी लीन होते हैं। गुणमय अर्थात् देहेन्द्रिय आदि अहंकारको छोड़के उसही निबन्धनसे शुभ अशुभ कार्य्योंको परित्याग करनेसे सत्य और मिथ्या अर्थात् जीवाख्य अक्षर तथा प्रधान अर्थात् भोक्ता और भोग्यको त्यागनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है। उस निर्गुणको मनके अगोचर सत्तामात्रके सूक्ष्मरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण, वासुदेव-पर पर्य्याय अर्थात् विराट, सूत्रात्मा, अन्तर्य्यामी और शुद्ध ब्रह्मरूप जानके जो लोग स्थूल सूक्ष्म प्रतिपालन क्रमसे नित्य समाधिका अनुष्ठान करते हैं, वेही अत्यन्त शान्तसाधक मनुष्य परम पुरुषको प्राप्त होते हैं। कोई कोई योग मतावलम्बी पण्डित लोग इस ही प्रकार योग मार्गके द्वारा परमात्माको जाननेकी इच्छा करते हैं। दूसरे ज्ञानचिन्तक अर्थात् सांख्यमत वाले मनीषी पुरुष प्रत्यगात्माको एकात्मा अर्थात् ब्रह्मके सहित अभिन्न समझते हैं। परमात्मा सदा ही निर्गुण है, उसे ही नारायण और सर्व्वात्मा जानना चाहिये; जैसे कमलका पत्ता जलसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह भी कर्म्मफलसे लिप्त नहीं है। दूसरे जो सब कर्म्मात्मा जीव हैं, वेही बन्ध और मोक्षके द्वारा युक्त हुआ करते हैं, वेही पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय, इन सत्तरहोंके सहित संयुक्त होते हैं। इस ही प्रकार अनेक प्रकारके पुरुषोंका विषय तुम्हारे समीप विधिपूर्व्वक कहा गया, सोपाधिक आत्मा जीव कर्म्मभेदसे देवता, तिर्य्यक् मनुष्य आदि रूपसे अनेक प्रकार होता है। जो चैतन्य ज्योति सब लोकोंकी प्रकाशक है, वही परम वेद्य, बोद्ध, बोधनीय, ईश्वर और जीव कहाता है; वही मन्ता और मन्तव्य है, वही भोक्ता और भोगनीय है, वही घ्राता और घ्रेय है, वही स्पर्शित और स्पर्शनीय है, वही द्रष्टा तथा द्रष्टव्य है; वही श्रावित्ता और श्रावणीय है, वही ज्ञाता तथा ज्ञेय कहाता है, वही सगुण और निर्गुण है।

हे तात! पहले जो प्रधान नामसे वर्णित हुआ है, जो महत्तत्त्वोंकी योनि है, वह भी इस चैतन्य ज्योतिसे पृथक् नहीं है; क्योंकि वह नित्य अर्थात् नाशरहित, शाश्वत अर्थात अनादि अव्यय अर्थात् अपरिणामी है। जो पहले ब्रह्माको प्रकट करके महत्तत्त्वोंको उत्पन्न करता है ब्राह्मण लोग उसे ही अनिरुद्ध कहते हैं। लोकों जो अग्नियुक्त उत्तम वैदिक कर्म्म हुआ करत है, उसे उसहीका कार्य्य जानना चाहिये। सब देवता साधु तथा शान्त मुनिलोग उसहीको यज्ञ भाग प्रदान करके पूजा किया करते हैं। मैं प्रजासमूहका आदि प्रभु ब्रह्मा हूं, मैं उस ई देवसे उत्पन्न हुआ हूं, और तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो। हे पुत्र! मुझसे ही स्थावर जङ्गममय जगत् और रहस्यके सहित सब वेद उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जो मेरा पूजनीय है, वह स्थावर जङ्गमात्मक जीवगणोंका भी आराधनीय है सब प्राणियोंको उचित है, कि उसकी पूजा करें वह पुरुष वासुदेव आदिरूपसे चार प्रकारसे विभक्त होकर इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहा है; परमात्मा इस ही भांति स्वरूपाभिन्न ज्ञानके सहारे जाना जाता है। हे पुत्र! तुमने जो पूछा था, मैंने उस ही सांख्यज्ञान और योगशास्त्रके मतके अनुसार निगूढ़ तत्त्वको तुम्हारे समीप वर्णन किया।

३५१ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने मोक्षधर्म्मके सहारे पवित्र धर्म्म वर्णन किया, अब आश्रमवासियोंका श्रेष्ठ धर्म्म कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! सब आश्रमोंके विहित धर्म्म ही स्वर्गसाधन, सत्यफल देनेवाले और बहुतेरे उत्तम महत यज्ञ तथा दान जिसका द्वारस्वरूप है, उस धर्म्मके कार्य्य

इस लोकमें बिफल नहीं होती। सब आश्रमोंमें ही स्वर्ग और मोक्ष है, उसके बीच जिसकी जिसमें रुचि होती है। वह उसहीके सहारे कृतकृत्य होकर दूसरे धर्म्मको अवलम्बन नहीं करता। हे राजन्! पहले समयमें महर्षि नारद मुनिके सङ्ग सुरराज इन्द्रकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे मैं कहता हूं, तुम सुनो। हे महाराज! तीनों लोकोंमें बिख्यात सिद्ध महर्षि नारद मुनिने अव्याहत गतिवाली वायुकी भांति क्रमसे सब लोकोंमें भ्रमण किया। अनन्तर वह किसी समय महा धनुर्धर देवराज इन्द्रके भवनमें गये। वहां जाके इन्द्रसे सत्कारयुक्त होके उनके निकट बैठ गये, उनके बैठने और बिश्राम करनेपर शचिपति इन्द्रने उनसे पूछा, हे पापरहित महर्षि! आपने कौनसा आश्चर्य्य-युक्त विषय देखा है, जब आप सिद्ध होके कौतूहलके लिये साक्षीकी भांति सदा सचराचर तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया करते हैं, तब लोकके बीच कुछ भी आपसे छिपा नहीं है, इससे आपके द्वारा जो कुछ श्रुत, अनुभूत अथवा दृष्ट विषय हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये। हे महाराज! वक्तृवर नारद मुनिने उस समय सुखसे निकटमें बैठे हुए इन्द्रसे जो विपुल कथा कही थी, तथा द्विजसत्तम नारद मुनिने इन्द्रके पूछनेपर जिस प्रकार जिस कल्पमें उनसे जो कथा कही थी, उसे तुम मेरे समीप सुनो।

३५२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ! गङ्गाके दक्षिणे किनारेपर महापद्मनामक उत्तम नगरके बीच [illegible]गोत्रमें प्रियदर्शन वा समाहित नाम कोई ब्राह्मण था, उसने वेदपथको जानके संशयको छेदन किया था. वह धर्म्ममें रत, क्रोधको जय करनेवाला, सदा तृप्त रहनेवाला और जितेन्द्रिय था। वह तपस्या तथा स्वाध्यायमें रत, सत्यवादी और सज्जनसम्मत था। वह न्यायसे [illegible]के द्वारा जीविका निर्व्वाह तथा वह स्वजनों सम्बन्धियोंसे युक्त, पुत्र स्त्री आदिसे सम्पन्न होकर उत्तम बिख्यात महत् वंशमें श्रेष्ठ बृत्ति अवलम्बन करके निवास करता था। हे महाराज! उसने अनेक पुत्रोंको देखकर बहुत सा कार्य्य अवलम्बन किया और कुलधर्म्मके सहारे धर्म्माचरण करनेमें यत्नवान हुए। अनन्तर उन्होंने वेदमें कहे हुए निजधर्म्म, शास्त्रोक्त धर्म्म और शिष्टोंके आचरित धर्म्म, इन तीन प्रकारके धर्म्मोंको मनही मन बिचार करके क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा, मैंने क्या किया है और कौन धर्म्म मेरा परम अवलम्बन है, इसे ही बिचारते बिचारते दुःखित होने लगा और कुछभी निश्चय न करसका, वह परम धर्म्म अवलम्बन करके जब इस प्रकार क्लेशित हुआ, उस ही समय एक समाहित अतिथि ब्राह्मण उसके समीप उपस्थित हुआ; उसने यथायोग्य अतिथिसत्कार करके उसे सम्मानित किया और अतिथिके बिश्राम करके सुखपूर्व्वक बैठनेपर उससे यह वक्ष्यमाण बचन कहनेलगा।

३५३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे अनघ! मैं तुम्हारे वचनकी कोमलतासे बद्ध हुआ हूं, मै कुछ कहता हूं मेरा बचन सुनो। हे बिप्रवर! मैंने पुत्रोत्पादन पर्य्यन्त गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन किया है, इस समय कौनसा परम धर्म्म अवलम्बन करूं; मैं कौनसे मार्गका सहारा लूं? मैंने आत्माको आसरा करके आत्मज्ञानके निमित्त अकेले ही निवास करनेकी इच्छा की है, बिषयपाशमें बद्ध होकर किसी कर्म्मकी करनेकी इच्छा वा अभिलाषा नहीं करता। मेरी पुत्रफलान्वित अवस्था जबसे व्यतीत हुई है, तभीसे मैं पारलौकिक पथको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। इस संसारके पार जानेकी आकांक्षा होनेसे मुझे ऐसी ही बुद्धि उत्पन्न हुई है, कि संसारसागरको तरनेमें समर्थ धर्म्ममयी नौका कहां पाऊंगा। देवता आदि और-

मातकोही संयुज्यमान और पीड़ित सुनके तथा प्रजासमूहके ऊपर यमराजके ध्वजदण्डकी भांति रोग सन्ततिको प्रकोथ्यमान देखकर मेरा मन विषयभोगमें अनुरक्त नहीं है, और परिव्राजकोंको दूसरेके गृहपर अन्न मांगते हुए देखकर यतिधर्म्ममें भी मेरा मन अनुरक्त नहीं होता। हे अतिथि! इसलिये तुम बुद्धिबलके सहारे धर्म्मके द्वारा मुझ डावाडोल पुरुषको धर्म्ममें नियुक्त करो। भीष्म बोले, बुद्धिमान अतिथि उस धर्म्मभाषी ब्राह्मणका वचन सुनके मधुर वचन कहने लगा।

अतिथि बोला, मैं भी इस विषयमें मुग्ध होरहा हूं, मेरी भी यही मनोकामना है; अनेक द्वार त्रिविष्टप प्राप्ति विषयमें मैं भलीभांति निश्चय नहीं कर सका। कोई कोई ब्राह्मण मोक्षको प्रशंसा करते हैं, कोई यज्ञ फलको श्रेष्ठ कहा करते हैं, कोई वानप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन कर रहे हैं, कोई गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करके निवास करते हैं, किसीने राजधर्म्मको अवलम्बन किया है, कोई पुरुष आत्मबलका सहारा करके निवास करते हैं, कोई कोई गुरु-धर्म्म अवलम्बन करनेकी प्रशंसा किया करते है, कोई कोई पुरुष वाक्यसंयमको ही श्रेष्ठ कहा करते है। कोई कोई मनुष्य पितामाताकी सेवा करनेसे स्वर्गमें गये हैं, किसीने अहिंसासे और किसीने सत्य बचन कहनेसे स्वर्ग प्राप्त किया है। कोई पुरुष सम्मुख संग्राममें मरकर सुर लोकवासी हुए है, किसीने उञ्छवृत्तिका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होकर स्वर्गमार्ग अवलम्बन किया है। कोई कोई बुद्धिमान मनुष्य वेदव्रत परायण पढ़नेमें अनुरक्त, प्रसन्नचित्त और जितेन्द्रिय होकर स्वर्गमें जाकर सुख भोग करते है। कितने ही पुरुषोंने सरलतायुक्त होनेसे भी स्वर्गमें गमन किया है। कोई कोई सरल स्वभाववाले मनुष्य अविनीत पुरुषोंके द्वारा मरके भी शुद्धचित्तसे नाकपृष्ट पर निवास करते हैं। जैसे वायुके सहारे बादल इधर उधर होजाते हैं, वैसे ही जगत्के बीच इसही प्रकार अनेक अनावृत धर्म्मोंके द्वारा हमारी भी बुद्धि पूर्णरूपसे भ्रान्तियुक्त होरही है।

२५४ अध्याय समाप्त।

अतिथि बोला, हे विप्र! मेरे गुरुने मुझे जैसा उपदेश दिया है, उसहीके अनुसार मैं तुमसे ज्योंका त्यों कहता हूं, तुम इस विषयको भलीभांति सुनो। पहले समयमें जिस स्थानमें धर्म्मचक्र प्रवर्त्तित हुआ था, उस नैमिष तीर्थमें गोमतीके तीर हस्तिना नामक एक नगर है। हे द्विजवर! उस स्थानमें सब देवताओंने यज्ञ किया था; जहांपर यज्ञ करके राजसत्तम मान्धाताने इन्द्रको अतिक्रम किया था। इस ही स्थानमें महात्मा पद्मनाम नामक पद्म इस ही रूपसे विख्यात् महान् चक्षुःश्रवा महानाग वास करता है। हे द्विजश्रेष्ठ! वह कर्म्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गोंमें स्थित रहके वचन, मन और कर्म्मसे प्राणियोंको प्रसन्न करता है; साम, भेद, दान और दण्डके सहारे चार प्रकारके विषमस्थ और सब प्रकारके नेत्र ध्यान बलसे धारण कर रहा है। तुम उसके समीप जाके विधिपूर्व्वक मनोवाञ्छित विषय पूछ सकते हो, वह परम धर्म्मको मिथ्या प्रदर्शित न करेगा। वह नाग सबका आतिथ्य करता है, वह बुद्धिमान और शास्त्रोंका जाननेवाला है, वह उत्तम गुणोंसे युक्त और समस्त अभिप्सित-सम्पन्न है; वह स्वाभाविक ही जलके समान निर्म्मल है, सदा अध्ययनमें रत रहता है; तपस्या, इन्द्रिय निग्रह और अत्युत्तम चरित्रोंसे संयुक्त है। वह यज्ञ करनेवाला, दाता, क्षमाशील, सच्चरित्र, सत्यवादी असूयारहित, शीलवान और संयतेन्द्रिय है, वह यज्ञसे शेष बचेहुए अन्नको भोजन करनेवाला अनुकूल वचन कहनेवाला, हितैषी, विनय

और श्रेष्ठ विषयोंमें कृतार्थ, कृतज्ञ, शत्रुतारहित, प्राणियोंके हितमें नियुक्त और गङ्गाके ह्रद जल स्वरूप पवित्र सद्वंशमें उत्पन्न हुआ है।

३५५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, अत्यन्त भारसे युक्त मनुष्योंके बोझ उतरनेकी भांति मैंने आपका यह अत्यन्त धीरजमय उत्तम महत् वचन सुना, मार्गसे थके हुए पुरुषका सोना, स्थान रहित पुरुषको बैठनेका सहारा, प्यासेको जल, भूखेको भोजन, अतिथिको यथा समयसे अन्न प्राप्त होना, बूढ़े पुरुषको कालक्रमसे पुत्र लाभ और मनही मन विचार हुए प्रीतियुक्त पुरुषका दर्शन होनेकी भांति आपके मुखसे निकले हुए वचन मुझे अत्यन्त ही आनन्दित कर रहे हैं। प्रज्ञानबचनके हेतु आपने मुझे जो उपदेश दिया, उसे मैं आकाशगत दृष्टिकी भांति देखता तथा विचारता हूं; आपने मुझसे जैसा कहा है, उसे मैं अवश्य ही करूंगा। हे साधु! आप यह रात्रि मेरे साथ व्यतीत करिये, सबेर सुखसे उठनेके नित्य कर्म्म करनेके अनन्तर जिस स्थानमें जानेकी इच्छा होगी, वहां जाइयेगा। इस समय यह भगवान सूर्य तेजरहित तथा अस्त होरहे हैं।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! अनन्तर उस अतिथिने ब्राह्मणके द्वारा आतिथिसत्कारसे युक्त होकर उसके सङ्ग वह रात्रि वहां ही बिताई। उस समय उन दोनोंके मोक्षधर्म्मविषयक वार्त्तालाप होते रहनेसे वह रात्रि दिनकी भांति परम सुखसे व्यतीत हुई। अनन्तर भोरके समय वह अतिथि निज कार्य्यसिद्धिकी अभिलाष करने वाले उस ब्राह्मणके द्वारा शक्तिके अनुसार पूजित होकर वहांसे प्रस्थान किया, इधर वह धर्म्मिष्ठ ब्राह्मण कर्त्तव्य कार्य्यका निश्चय करके स्वजनोंकी अनुमति लेकर उस समयमें एकनिश्चय अवलम्बन करके अतिथिके उपदेशके अनुसार भुजगेन्द्रके स्थानमें जानेके निमित्त शीघ्र प्रस्थान किया।

३५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह ब्राह्मण क्रमसे विचित्र वन तीर्थों और समस्त तालावोंको अतिक्रम करके जाते जाते किसी मुनिके समीप उपस्थित हुआ। ब्राह्मणने उस अतिथिके कहे हुए वचनके अनुसार उक्त मुनिसे विधिपूर्व्वक नागेन्द्रका वृत्तान्त पूछा और उनके निकट उस नागका समाचार सुनके जाने लगा। वह अर्थवित् ब्राह्मण यथारीतिसे नागके स्थानपर जाकर 'भो' शब्दकेद्वारा पुकारके यह वचन कहा, कि "मैं आया हूं।" पतिव्रता धर्म्मभीरु परम रूपवती नागपत्नीने उसका ऐसा वचन सुनकर उसे दर्शन दिया। धर्म्मवत्सला नागभार्य्याने उस आयेहुए ब्राह्मणकी विधिपूर्व्वक पूजा की और स्वागत प्रश्न करके बोली, कि "कहिये विप्र कौनसा कार्य्य करूं"?

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! मैं तुम्हारा उत्तम मधुर और पवित्र वचन सुननेसे विश्रामयुक्त तथा सत्कृत हुआ हूं, इस समय सर्व्वोत्तम नागेन्द्रदेवका दर्शन करनेकी अभिलाष करता हूं, उनका दर्शन मिलना ही मेरा परम कार्य्य और एक मात्र अभिलषित विषय है, इस ही निमित्त आज मैं पन्नगके स्थानपर आया हूं।

नागपत्नी बोली, हे विप्र! मेरा स्वामी महीना भरके लिये सूर्य्यका रथ खींचनेके निमित्त गया है, आप सात अथवा आठदिनके बीच उसका निःसन्देह दर्शन करेंगे। मेरे पतिके अन्य स्थानमें जानेका कारण आपको मालूम हुआ; परन्तु आपका और जो कुछ कार्य्य हो, उसके लिये आज्ञा करिये।

ब्राह्मण बोला, हे पतिव्रता देवि! मैं उस ही नागके दर्शनके निमित्त इस स्थानमें आया हूं, इसलिये उसके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए इस महावनमें निवास करूंगा। तुम आनेपर इस स्थानमें मेरे आनेका समाचार अव्यग्रभावसे सुनाना और समयके अनुसार उन्हें मेरे समीप गमन करनेके लिये अनुरोध करना। मैं उस समयकी प्रतीक्षा करते हुए परिमित आहार

स्वीकार करके इस गोमती नदीके पवित्र स्थानमें वास करूंगा। अनन्तर वह ब्राह्मण नागभार्य्यासे बारबार ऐसा ही निवेदन करके गोमती नदीके पवित्र स्थानमें चला गया।

३५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर उस तपस्वी ब्राह्मणके निराहार निवास करते रहने पर नागराजके बान्धव भुजङ्गवृन्द दुःखित हुए। उसके भाई, पुत्र, भार्य्या और सब बान्धव इकट्ठे होकर उस ब्राह्मणके निकट गये। उन्होंने उस निर्जन नदीके तटपर नियतव्रत, निराहारी, जपपरायण ब्राह्मणको बैठे हुए देखा। वे सब कोई उस अतिथि ब्राह्मणके निकट उपस्थित होकर बार बार उसकी पूजा करते हुए यह सन्देह रहित वचन बोले। हे धर्म्मवत्सल तपोधन! छःदिन आपको इस स्थान पर आये होगये, परन्तु भोजनके लिये आपने कुछ भी न कहा। आप हमारे समीप आये हैं, हम लोग भी आपके निकट उपस्थित हैं; अतिथिका सत्कार करना हमारा कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि हम सब कोई उस नागेन्द्रके कुटुम्ब हैं। हे द्विजसत्तम! फल, मूल, पत्र अथवा दूध वा आहारके निमित्त तुम्हें अन्न भोजन करना उचित बोध होता है। तुम्हारे आहार परित्याग करके इस वनमें निवास करनेसे धर्म्म-सङ्कर होनेके कारण ये सब बालक और बूढ़े पीड़ित होरहे हैं। हमारे वंशमें कोई ब्रह्म-हत्या करनेवाला पुत्र उत्पन्न अथवा मृत नहीं हुआ और देवता अतिथि तथा बान्धवोंके भूखे रहनेपर किसीने पहले कभी भोजन नहीं किया।

ब्राह्मण बोला, तुम लोगोंके उपदेशके सहारे ही मेरा आहार हुआ, मैं नागके आगमनके निमित्त आठ रात्रिकी उपेक्षा करता हूं, आठ रात्रिके अनन्तर यदि पन्नगराज आगमन न करेंगे, तब मैं भोजन करूंगा, उस ही निमित्त यह व्रत-धारण किया है, तुम लोग कुछ भी दुःख मत करो, जिस स्थानसे आये हो, वहां ही चले जाओ; मैंने नाग आगमनके लिये जो व्रत किया है, उसे भङ्ग करना तुम लोगोंको उचित नहीं है। हे नरनाथ। भुजङ्गवृन्द पूरीरीतिसे उस ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात तथा अकृतकार्य्य होकर निज स्थानपर चले गये।

३५८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर समय पूरा होनेपर नागने सूर्य्यकी आज्ञा पाके कृतकार्य्य होके निज स्थान पर आगमन किया। उसकी भार्य्या पाव धोनेको निकट आई तब नागने उससे पूछा, हे कल्याणि! हे सुश्रोणि! स्त्रीबुद्धिके कारण तुमने मेरे वियोगमें अकृतार्थ धर्म्मसे विमुक्त होकर पहलेकी भांति युक्तियुक्त विधिके अनुसार देवता और अतिथि पूजा कार्य्यमें शिथिलता तो नहीं की?

नागपत्नी बोली, शिष्योंको गुरुसेवा, ब्राह्मणोंको वेदाध्ययन, सेवकोंको स्वामीकी आज्ञा प्रतिपालन करना, राजाका प्रजापालन, और इस लोकमें सब प्राणियोंके परित्राण करनेको ही क्षत्रधर्म्म कहा जाता है। वैश्योंको आतिथ्ययुक्त यज्ञ कार्य्यका निर्व्वाह करना और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका कर्म्म है। हे नागेन्द्र! सब प्राणियोंको हितैषिता, नियताहारता और नित्य व्रताचरण विधिपूर्व्वक गृहस्थ धर्म्मके कहके वर्णित हुआ है। इन्द्रियोंके धर्म्म सम्बन्धसे विशेष प्रकारका धर्म्म हुआ करता है, मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, मैं किसका हूं, और हमारा ही कौन है? मोक्षाश्रममें इस ही प्रकार ज्ञानका प्रयोजन होता है। हे नागराज! भार्य्याका पतिव्रत ही परम धर्म्म है, तुम्हारे उपदेशके अनुसार मैं उसे यथार्थ रूपसे जानती हूं, इसलिये धर्म्ममें रत तुम्हारे सहारे मैं धर्म्म जानकर किस प्रकार सत् पथको छोड़की

कुपथमें पांव रखूंगी। हे महाभाग! देवताओंके कर्म्ममें धर्म्म परित्यक्त नहीं हुआ और अतिथियोंके सत्कार विषयमें मैं आलस रहित होके सदा नियुक्त रहती हूं। आज सात आठ दिन हुआ, यहां पर एक ब्राह्मण आया है; उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं कहा वह केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाष करता है, वह संशितव्रती ब्राह्मण गोमतीके तटपर वेदकी आवृत्ति करतेहुए तुम्हारा दर्शनपानेके निमित्त बैठा है।

हे नागेन्द्र! उस महाभाग ब्राह्मणने मुझसे यह सत्य वचन कहा है, कि नागराजके आनेपर उन्हें तुम मेरे निकट भेजना। हे महाप्राज्ञ! इसलिये यह वृतान्त सुनके उस स्थानपर तुम्हें जाना उचित है। हे दर्शनश्रव! उस ब्राह्मणको दर्शनदेना तुम्हारा उचितकार्य्य मालूमहोता है।

३५६ अध्याय समाप्त।

नाग बोला, हे शुचिस्मिते! तुमने ब्राह्मण रूपसे जिसे देखा है, वह कौन है? केवल मनुष्य जातिका ब्राह्मण है अथवा कोई देवता है? हे यशस्विनी! मनुष्य होके कौन मुझे देखनेमें समर्थ होसकता है। और दर्शन करनेके निमित्त अभिलाषी होकर कौन इस प्रकार आज्ञासूचक वचन कह सकता है। हे भाविनि! देवता असुर और महर्षियोंके बीच सुरभिगन्धवाहक बलवान् नागगण ही महावीर्य्यशाली, वन्दनीय और वरद हैं, मैं भी उन्हींका अनुयायी हूं, मुझे यह निश्चय है, कि मैं मनुष्योंका दर्शनीय नहीं हूं।

नागपत्नी बोली, हे पवनाशन! उसका जैसा [illegible] और सरलता है, उससे जाना जाता है, कि वह देवता नहीं है, वह भक्तिमान और [illegible] स्वभाववाला ब्राह्मण है। वह [illegible] इच्छा करनेवाले चातककी भांति [illegible] अभिलाषी है, जैसे वर्षाप्रिय [illegible] बादलके बरसनेकी कामना करता है, वैसे ही वह तुम्हारे दर्शनकी आकांक्षा कर रहा है; तुम्हारे दर्शनके अतिरिक्त वह अन्य किसी विघ्नको नहीं मानता; समान वंशमें उत्पन्न होके कोई किसीकी उपासना नहीं करता। इसलिये सहज रोष परित्याग करके उसे दर्शन देना तुम्हारा उचित कार्य्य है। उसकी आशाको भङ्ग करके इस समय तुम्हें आत्माको पवित्र जलाना उचित नहीं है, जो लोग आशा करके निकट आया करते हैं, उन लोगोंके आंसूको न पोंछनेसे राजा हो अथवा राजपुत्र ही हो, उसे अवश्य ही भ्रूणहत्याके पापमें लिप्त होना पड़ता है।

मौनावलम्बनसे ज्ञान फलकी प्राप्ति होती है, दानके सहारे महत् यश और सत्य वचनके द्वारा इस लोकमें वाग्मितालाभ करके मनुष्य परलोकमें पूजनीय हुआ करता है। भूमि दान करनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके पाने योग्य स्थान मिलता है, न्याय विषयके प्रतिपादनसे अवश्य ही फल भोग हुआ करता है। अभिप्रेत अर्थसंश्लिष्ट आत्म हितकर कर्म्म करके कोई नरकमें नहीं पड़ता, धर्म्म जाननेवाले महात्मा पुरुष ऐसा ही वचन कहा करते हैं।

नाग बोला, हे पतिव्रते! अभिमानके हेतुसे मुझमें अहङ्कार नहीं है, जाति-दोषसे पहले मैं महान् अहंकारपदसे मत्त था, परन्तु मेरा वह संकल्प जनित रोष इससमय तुम्हारे वचनस्वरूप अग्निसे जलगया, हे साध्वि! मैंने रोषवशसे अधिक तमोगुण दर्शन नहीं किया, भुजङ्गगण उस विषयका विशेष वक्तव्य कह सकते हैं।

देवराज इन्द्रके साथ द्वेष करनेवाला अत्यन्त प्रतापशाली रावण क्रोधके वशमें होकर युद्धमें रामचन्द्रके द्वारा मारा गया। अन्तःपुरमें स्थित बछड़े परशुरामके द्वारा हरण किये गये, इसे सुनके क्रूरस्वभाव तथा क्रोधी कार्त्तवीर्य्यके सब पुत्र मारे गये। इन्द्रके समान पराक्रमी महाबलवान कार्त्तवीर्य्य भी क्रोधके वशमें होकर जमदग्निपुत्र परशुरामके हाथ

मारा गया। इसलिये तुम्हारा यह वचन सुनके मैंने तपस्यामें विघ्नकारी और कल्याणयुक्त कार्य्योंके बाधक क्रोधको निग्रह किया।

हे विशालनयनी! जब तुम मेरी अनपायिनी और गुणशालिनी भार्य्या हो, तब मैं अपनी भी विशेष रूपसे प्रशंसा करता हूं। अब मैं उस स्थानमें जाता हूं, जहांपर वह ब्राह्मण निवास करता है, तुमने सब प्रकारसे सारी कथा कही है, अब वह अतिथि ब्राह्मण निःसन्देह कृतकार्य्य होकर प्रस्थान करेगा।

३६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, नागराजने मनही मन उस ब्राह्मणके कार्य्यकी चिन्ता तथा विचार करते हुए उसके समीप गमन किया। हे महाराज! स्वभावसे ही धर्म्मवत्सल वह बुद्धिमान नागराज ब्राह्मणके निकट जाके यह मधुर वचन बोला।

हे क्षमाशील! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम क्रोध प्रकाशित न करना। तुम किस निमित्त इस स्थानमें आये हो, तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है। हे द्विज! मैं सम्मुख आके स्नेहपूर्व्वक तुमसे पूछता हूं, कि तुम मनुष्यरहित इस निर्ज्जन स्थानमें गोमतीके पवित्र तटपर किसकी उपासना वा आराधना करते हो।

ब्राह्मण बोला, मैं धर्म्माग्रगण्य द्विजश्रेष्ठ पद्मनाभ नागका दर्शन करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, उन्हींके समीप मेरा प्रयोजन है, उनके स्वजनोंके निकट मैंने यह वचन सुना है, कि वह यहांपर नहीं हैं, इतना वृत्तान्त सुनके मैं इस प्रकार उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, जैसे कृषक जल-वर्षाकी प्रतीक्षा करते हैं। मैं योगयुक्त और निराहारी रहके उस नागराजके अक्लेश और स्वस्ति होनेके लिये वेद-पाठ करता हूं।

नाग बोला, अहो! तुम क्या ही शुभ चरित्रयुक्त साधु और क्या ही सज्जन हो। हे महाभाग! तुम्हारे चरित्रकी कथा क्या कहूं, तुम मेरे ऊपर अत्यन्त ही स्नेहदृष्टि कर रहे हो। हे विप्रर्षि! मैं वही नाग हूं, तुम मुझे जानते हो, मैं वैसा ही हूं, तुम इच्छानुसार आज्ञा करो, मैं तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य्य साधन करूं। स्वजनोंके मुखसे तुम्हारा इस स्थानमें आना सुनकर मैं यहांपर स्वयं तुम्हें देखनेके लिये आया हूं। हे महाभाग विप्रवर! जब तुम इस स्थानमें आये हो, तो आज कृतकार्य्य होकेजाओगे. हे द्विजश्रेष्ठ! तुम विश्वासी होकर मुझे निज अभिलषित विषयके निमित्त आज्ञा करो। तुमने अपने विशेष गुणके सहारे मुझे क्रय किया है, क्योंकि तुमअपना हित परित्याग करके मेरे निमित्त शुभानुध्यायी हुए हो।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग भुजङ्गम! मैं तुम्हारे दर्शनका अभिलाषी होकर यहांपर आया हूं, मैं अर्थानभिज्ञ हूं, इसलिये तुमसे कोई विषय पूछनेकी इच्छा करता हूं। मैं आत्मा अर्थात् जीवका विश्रामस्थान अन्वेषण करते हुए आत्मस्थ अर्थात् समस्त विषयोंसे विरत होके चलचित्तके बीच वासार्थी महाप्राज्ञ आत्माकी उपासना करता हूं, मैं अनुरक्त वा विरक्त नहीं हूं। तुम यशपूरित गभस्तियुक्त चन्द्रकिरण सदृश स्पर्श सुखकर हृदयग्राही आत्म प्रकाशित निज गुणोंके सहारे विख्यात हुए हो। हे अनिलाशन! इसलिये मेरे अन्तःकरणमें जो प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसका उत्तर देके तुम उस सन्देहको छेदन करो, इसके अनन्तर फिर मैं अपने प्रयोजनका विषय कहूंगा, वह तुम्हें सुनना उचित है।

३६१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, तुम पर्य्यायक्रमसे सूर्य्यदेवका एक चक्र रथको खींचनेके निमित्त जाया करते हो, वहांपर यदि कोई आश्चर्य्यविषय दीख पड़ता हो तो उसे मेरे निकट वर्णन करो।

नाग बोला, भगवान् सूर्य्य अनेक आश्चर्य्योंके स्थान हैं, तीनों लोकोंमें स्थित सब प्राणी उन

होते उत्पन्न होते हैं। जैसे पचीवृन्द वृक्षकी शाखाके अवलम्बसे निवास करते हैं उस ही प्रकार उनकी सहस्र किरणोंके अवलम्बसे देवतायोंके सहित सिद्ध और मुनिवृन्द निवास करते हैं, सूर्य्यकिरणके अवलम्बसे ही महान् वायु जिससे प्रकट होके आकाशमें चलती है, वहांपर इसकी अपेचा और आश्चर्य्य क्या होगा। हे विप्रर्षि! प्रजासमूहकी हितकामनासे उसही वायुको पुरोहितादि रूपसे विभक्त करके जो वर्षाकालमें जल वरसाता है इससे बढ़के और आश्चर्य्य दूसरा क्या होगा? जिसके मण्डलके मध्यवर्त्ती आत्मा परम तेजसे प्रदीप्त होकर सब लोकोंको अवलोकन करता है, उससे बढ़के और आश्चर्य्य क्या होगा? जो आठ महीनेतक पवित्र किरणोंके सहारे आकर्षित जलको फिर कालक्रमसे बरसाता है, इससे बढ़के और आश्चर्य्य क्या होगा? उसके तेज विशेषमें स्वयं आत्मा प्रतिष्ठित है। जिसके कारण चराचरोंसे युक्त पृथ्वीने बीज धारण किया है, जिसमें महाबाहु शाश्वत अनादि निधनदेव पुरुषोत्तम विराजमान है,—हे विप्र। इससे बढ़के और कौनसा आश्चर्य्य होगा? निर्म्मल आकाशमें अम्बर मणिके वहां मैंने जिन सब आश्चर्य्योंका भी आश्चर्य्य देखा है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो।

पहले समयमें मध्यान्हकालके बीच जब भगवान् सूर्य्य सब लोकोंको तपा रहे थे, उस समय आदित्यान्तर तुल्य तेजस्वी दूसरा कोई पुरुष दीख पड़ा। उसने निज तेज और कान्तिके सहारे समस्त लोकोंको प्रकाशित करके मानो आकाश मण्डलको विपाटन करते हुए आदित्य मण्डलकी ओर आने लगा। जिस अग्निमें आहुति दी गई है, वैसी अग्नि ज्योतिकी निज तेजपुञ्ज रूप किरणोंके द्वारा आवरण करते हुए, वह अनिर्देश्य रूपसे द्वितीय सूर्य्यकी भांति आके उपस्थित हुआ, उसके आगमन करते ही भगवान् दिवाकरने उससे मिलनेके लिये दोनों हाथ उठाया। उसने भी उनकी पूजा करनेके लिये दाहिना हाथ प्रदान किया।

अनन्तर वह आकाशको भेद करके किरणमण्डलमें प्रविष्ट हुआ, वह तेज आदित्यके सङ्ग मिलकर क्षणभरमें एकत्रित हुआ। उस समय उन दोनोंके तेज एकत्रित होने पर हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ, कि रथस्थ और आगन्तुक, इन दोनोंमेंसे सूर्य्य कौन है? जब हम लोगोंको ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, तब हमने दिवाकरसे पूछा, कि आकाशको आक्रमण करते हुए दूसरे सूर्य्यकी भांति जिसने आगमन किया है, वह कौन है?

३६२ अध्याय समाप्त।

सूर्य्य बोले, ये वायुके मित्र अग्निदेव अथवा असुर तथा पन्नग नहीं हैं, इस मुनिने उञ्छवृत्ति व्रतसे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन किया है, यह फल मूलाहारी होके तथा सूखे पत्ते खाकर अन्तमें जल वायु पानके द्वारा जीवन धारण करनेवाले समाधिमें निष्ठावान ब्राह्मण थे। इस ब्राह्मणने वेदपाठसे भगवान भवकी सब भांतिसे स्तुति की थी, इसहीके सहारे स्वर्ग-द्वारका कपाट खोलके इन्होंने स्वर्गधाममें गमन किया है। इसे किसी विषयमें आसक्ति वा अभिलाषा नहीं थी, यह सदा उञ्छवृत्ति और भिक्षाचार परिप्राप्त वृत्तिके सहारे जीविका निर्व्वाह करता था, यह ब्राह्मण सदा सब प्राणियोंके हितकर कार्य्योंमें रत रहता था। उत्तम गति पानेवाले प्राणियोंके ऊपर देवता, गन्धर्व्व, असुर और पन्नगगण प्रभुत्व करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! उस सूर्य्यमण्डलमें इसही प्रकार मैंने आश्चर्य्य अवलोकन किया था। हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य इच्छानुसार पूरी रीतिसे सिद्ध होकर उस सिद्धस्थानमें गमन करता है, वह सूर्य्यके सहित पृथ्वीपर परिभ्रमण करनेमें समर्थ होता है।

३६३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भुजङ्गम ! यह अवश्य आश्चर्य है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, तुमने यथार्थ कथा कहके मुझे मार्ग दिखाया है, इससे मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं । हे साधु भुजङ्ग-सत्तम ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं गमन करता हूं, अन्वेषण और नियोजनके सहारे मैं तुम्हारा स्मरणीय हुआ । नाग बोला, हे द्विज ! तुम अपने मनके कार्य्यको विना कहे, इस समय कहां जाते हो ? तुम जिस निमित्त इस स्थानमें आये हो, उसे वर्णन करो । हे सुव्रत विप्रवर ! यह सब पृष्ठ अथवा अपृष्ठ विषय स्नेह वशसे मेरे द्वारा वर्णित हुआ है, तुम मुझे आमन्त्रण करोगे, अनन्तर मेरी अनुमतिके अनुसार निज अभिलषित स्थानपर जानेमें समर्थ होगे । हे विप्रर्षि ! तुम प्रणयवान होकर इस स्थानमें मुझे अकेला देखकर वृक्षमूलमें समागत पुरुषकी भांति त्यागके चले जाओगे,—ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है, हे निष्पाप विप्रवर ! मैं तुम्हारे ऊपर भक्तिमान हूं, तुम भी निःसन्देह मुझमें अनुरक्त हो, ये सब लोग तुम्हारे ही अनुगत हैं, इसलिये मेरे समान मुझ मित्रके वर्त्तमान रहते तुम्हें क्या चिन्ता है ?

ब्राह्मण बोला, हे आत्मतत्त्वके जाननेवाले महाबुद्धिमान् भुजङ्गम ! देवता लोग सब प्रकार तुमसे यथार्थ रूपसे पृथक् नहीं हैं, जो तुम हो, वही मैं हूं और जो मैं हूं, वही तुम हो, तुमने जो आदित्यान्तर्व्वर्त्ती पुरुषकी कथा कही है; तुम मैं और आकाश आदि समस्त भूत सदा उसमें ही निवास कर रहे हैं । हे नाग-राज ! मुझे पुण्य सञ्चय विषयमें सन्देह था । हे साधु ! अब मैं तुम्हारे उपदेशके अनुसार परमार्थसाधनके लिये उञ्छव्रतका आचरण करूंगा, यही मुझे श्रेष्ठ साधन निश्चय हुआ है, हे साधु ! अब मैं तुम्हें आमन्त्रण करता हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे भुजङ्गम ! अब मैं कृतार्थ हुआ ।

३६४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे महाराज ! वह ब्राह्मण कृत निश्चय होकर नागराजको आमन्त्रण करके दीक्षाभिलाषी अर्थात दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि करके उञ्छव्रत करनेके निमित्त अभिलाषी होकर भृगुवंशमें उत्पन्न हुए च्यवनका आसरा ग्रहण किया । वह च्यवन मुनिके द्वारा संस्कार किये जाने पर धर्म्मनिष्ठावान हुआ । हे राजेन्द्र ! महाराज जनकके स्थानपर भार्गव च्यवन मुनिने महात्मा नारद मुनिके निकट यह पवित्र कथा कही थी ।

हे भरतश्रेष्ठ ! हे राजेन्द्र ! अक्लिष्टकर्म्मा नारद मुनिने देवराजके स्थानमें पूछे जानेपर इस कथाको कहा था । हे पृथ्वीनाथ ! पहले समयमें देवराज इन्द्रने सब श्रेष्ठ विप्रोंसे यह कल्याणदायिनी कथा कही थी । हे राजन् ! जिस समय परशुरामके सङ्ग मेरा अत्यन्त दारुण संग्राम हुआ था, उस समय वसुगणोंने इस कथाको मेरे समीप वर्णन किया था ।

हे धार्म्मिकप्रवर महाराज ! तुमने यथार्थ रीतिसे मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने तुम्हारे समीप उस पवित्र धर्म्मयुक्त उत्तम कथाको वर्णन किया है । हे भारत ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, यह वही परम धर्म्म मैंने कहा है । धर्म्मार्थ विषयमें अनभिलाषी धीर पुरुषोंके जितेन्द्रिय होकर निष्काम कर्म्म करनेसे उनके लिये मोक्षका द्वार खुला रहता है ।

हे महाराज ! वह उञ्छव्रत साधनमें निश्चय करनेवाला ब्राह्मण नागराजकी आज्ञानुसार आत्मकृत्य निबाहते तथा यम नियमको सहन करते हुए उञ्छव्रत अवलम्बनके सहारे जीवन धारण करके वनमें प्रविष्ट हुआ था ।

३६५ अध्याय समाप्त ।

शान्ति पर्व्व-समाप्त ।

महाभारत।

अनुशासन पर्व्व।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय शब्द उच्चारण करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! शोकसे पार होनेके उपाय स्वरूप सूक्ष्म शम अनेक तरहका रूप धरता है इसे आपने कहा है, परन्तु शान्तिका ऐसा प्रभाव सुनके भी स्वजनोंके बधरूपी शोकसे मेरा अन्तःकरण शान्त नहीं होता है। हे पितामह! इस विषयमें आपने अनेक प्रकार शान्तिके विषय कहे हैं, अनेक प्रकार शम जाननेसे किये हुए पापोंकी शान्ति किस प्रकार हो? हे वीर! आपका शरीर बाणोंसे इस प्रकार परिपूरित और तीव्र घावोंसे युक्त देखकर निज पापोंको सोचके मैं सुख लाभ करनेमें असमर्थ होरहा हूं। हे पुरुषप्रवर! झरनेवाले पर्वतकी भांति आपके रुधिरसे परिपूरित अङ्गोंको देखकर मैं वर्षाकालके बादलकी भांति अवसन्न होता हूं। हे पितामह! इससे बढ़के और क्या कष्ट होगा, कि हमारे लिये शत्रुओंके विरुद्ध खड़े होनेपर मेरे कारण अर्जुन और शिखण्डी आदिसे आप इस अवस्थामें युक्त पड़े और दूसरे राजा लोग भी पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मेरे ही लिये मारे गये, इससे बढ़के और दुःख क्या है। हे राजन्! हम लोग तथा धृतराष्ट्रके पुत्र काल[illegible]के वशमें होकर इस निन्दित कर्म्मके करनेसे [illegible] गति पावेंगे। हे प्रजानाथ! दुर्योधनके देहमें इस कल्याणकारी दोष होता है, कि वह आपको ऐसी अवस्थामें पड़े हुए नहीं देखता है। मैं आपका नाशक और सुहृदोंका बध करानेवाला होकर आपको पृथ्वीपर पड़े और दुःखित देखकर किसी प्रकार भी शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। दुष्टात्मा कुलनाशक दुर्योधन युद्धमें सब सेना और सहोदर भाइयोंके सहित, इस क्षत्रधर्म्मसे मरा है; वह दुष्टात्मा इस समय आपको पृथ्वीपर पड़े हुए नहीं देखता है, इसलिये मैं मरना ही कल्याणकारी समझता हूं, जीवनको इस समय उत्तम नहीं समझता। हे वीर! हे अच्युत! पहले यदि मैं भाइयोंके सहित मारा जाता, तो आपको इस प्रकार बाणोंसे पीड़ित और दुःखसे आर्त्त न देखता। इसलिये, हे नरनाथ! मुझे निश्चय बोध होता है, कि विधाताने हम लोगोंको पापकर्म्म करनेके ही लिये उत्पन्न किया है। हे राजन्! आप यदि मेरी प्रियकामना करते हो, तो उपदेश करिये कि जन्मान्तरमें किस प्रकार इस पापसे मुक्त हूंगा।

भीष्म बोले, हे महाभाग! काल, प्रारब्ध और ईश्वरके आधीनमें रहनेवाले आत्माको तुम किस लिये पाप पुण्यका कारण समझते हो? आत्माका कर्त्तृत्व सूक्ष्म है, इससे वह मनसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये अतीन्द्रिय है, प्राचीन लोग इस विषयमें गौतमी, व्याधा, सर्पके सहित मृत्यु और कालके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका वर्णन करते हैं।

कुन्तीपुत्र! गौतमी नामी एक शम गुणसे युक्त बूढ़ी ब्राह्मणीने निज पुत्रको सांपके काटनेसे चेत-रहित देखा। अनन्तर अर्जुन नाम किसी व्याधाने क्रोधके वशमें होकर उस सांपको तांतके जालसे बांधके गौतमीके समीप लाकर कहा; हे महाभागे! यह अधम सर्प तुम्हारे पुत्रका नाशक है, इसलिये किस प्रकार इसका बध करूं, सो शीघ्र कहो। इसको आगमें डालूं अथवा टुकड़े टुकड़े करके काटूं? यह बालकका नाशक पापात्मा बहुत समय तक जीवित रहनेके योग्य नहीं है।

गौतमी बोली, हे अर्जुन! तुम इसे छोड़ दो तुम्हें बुद्धि नहीं है, तुम इसका वध न करना। कौन पुरुष प्राप्त होनेवाली लोक-चिन्ता न करके अपनेको पापभारसे नरकमें डाला करता है। इस लोकमें धर्मसे जो लोग हल्के हुए हैं, वेही जलके बीच नौकाकी भांति दुःखरूपी समुद्रसे पार होते हैं, और जो लोग पापके द्वारा भारी हुए हैं, वे जलके बीच गिरे हुए शस्त्रकी भांति डूब जाते हैं। इसे मारनेसे मेरा मरा हुआ पुत्र जीवित न होगा, और इस सर्पके जीते रहनेसे ही तुम्हारी कौनसी बुराई होगी। इस प्राणयुक्त जीवको मारके कौन पुरुष अनन्त नरकमें जायगा।

व्याधा बोला, हे गुण और गुणोंको जाननेवाली देवी! मैं जानता हूं, बड़े लोग सबकीही पीड़ासे पीड़ित हुआ करते हैं, परन्तु ये सब उपदेश भले चङ्गेके लिये है, दुःखितके वास्ते नहीं हैं, इसलिये इस क्षुद्र सर्पको मैं मारता हूं। शमयुक्त मनुष्य "कालके सहारेही इस पुरुषका नाश हुआ है" ऐसा समझकर शोक नहीं करते और प्रति-कार करनेवाले पुरुष उस ही समय शत्रुको मारके शोक परित्याग किया करते हैं, दूसरेलोग नित्य मोह निबन्धनसे कल्याणका नाश होता है, जानके शोक प्रकाश करते हैं, इसलिये मेरे हाथसे इस सांपके मरनेसे तुम शोक परित्याग करो।

गौतमी बोली, मेरे समान लोगोंको इस प्रकार पुत्र शोक जनित पीड़ा नहीं होती, क्योंकि सज्जन लोग सदा ही धर्मपरायण हुआ करते हैं; इस बालकको मृत्युका यही समय निर्द्दिष्ट था। इसलिये इस सांपके नाश करनेमें असमर्थ हूं। ब्राह्मणोंमें क्रोध न होना चाहिये क्योंकि कोपके कारण दुःख हुआ करता है। हे साधु! इसलिये तुम मृदुता अवलम्बन करके क्षमा करो और इस सर्पको छोड़ दो।

व्याधा बोला, इसे मारनेसे परलोकको हितकर अविनश्वर गति प्राप्त होगी जैसे यज-मान पशुओंको मारके अपने सङ्ग पशुओंको भी स्वर्गमें लेजाता है, वैसे ही शूर पुरुषोंको बलि-दानसे बड़ाई मिलती है। इस निन्दित अपकारी शत्रुके मरनेसे जो लाभ होगा, वह क्या तुम्हारे सम्बन्धमें शाश्वत सत्य और कल्याणकारी नहीं है।

गौतमी बोली, शत्रुको पराजित करके मारनेसे क्या लाभ है। और शत्रुको अपने वशमें करके फिर उसे छोड़ देनेसे क्या इष्ट-सिद्धि नहीं होती? हे प्रिय दर्शन! इसलिये किस निमित्त इस सर्पके विषयमें क्षमा न करूंगी और किस कारणसेही इसके छुड़ानेके निमित्त यत्नवती न हूंगी?

व्याधा बोला, हे गौतमी! इस एक जीवसे अनेक प्राणियोंकी रक्षा करनी उचित है और अनेकको त्यागके एककी रक्षा करनी योग्य नहीं है। धर्म जाननेवाले मनुष्य अपराधीको नष्ट किया करते हैं, इसलिये तुम इस पापी सांपका वध करो।

गौतमी बोली, हे व्याध! इस सर्पके मार-नेसे मेरा पुत्र जीवित न होगा और इसका वध करनेसे और कुछ पुण्य भी नहीं दीखता है, इसलिये इस सर्पको जीते ही छोड़ दो।

व्याधा बोला, इन्द्रने वृत्रासुरको मारके श्रेष्ठ भाग लाभ किया है, शूलधारी महादेवने यज्ञ नष्ट करके यज्ञ-भाग पाया है, इसलिये देवता-

वैसे ही व्यवहारका आचरण करना योग्य है; शीघ्र ही इस सर्पको मार डालो, इसमें कुछ भी शङ्का मत करो।

भीष्म बोले, व्याधने सापको मारनेके लिये गौतमीको बार बार उत्तेजित किया, परन्तु उस महाभागाने पापकार्य्यमें मन नहीं लगाया। अनन्तर पाश-पीड़ित सर्प लम्बी स्वास छोड़के अत्यन्त कष्टसे धीरज धरके मृदुस्वरसे मनुष्य वाक्य बोलने लगा।

सर्प बोला, हे मूर्ख अर्ज्जुन! इस विषयमें मेरा क्या दोष है। मैं पराधीन और परवश हूं, इसलिये मृत्युने ही मुझे प्रेरण किया है, मैंने मृत्युकी आज्ञानुसार इसे काटा है, कोप अथवा कामानुसार दंशन नहीं किया है, इसमें यदि पाप हो, तो जिसने मुझे प्रेरण किया है, वह पाप उसे ही लगेगा।

व्याधा बोला, हे भुजङ्ग! तुम यदि दूसरेके वशमें होकर यह अशुभ कर्म्म किया करते हो, तौभी तुम इस विषयमें कारण हो, इसलिये तुम भी पापभागी हो। हे सर्प! जैसे मट्टीके पात्र बनानेमें दण्ड, चक्र, जल और सूत्र कारण रूपसे कल्पित होते हैं, वैसे ही तुमभी इस विषयमें कारण होनेसे पापभागी हो। हे पन्नग! पाप करनेवाले मेरे बध्य है, तुम भी पापी मालूम होते हो और इस विषयमें अपनेको ही कारण कहते हो।

सर्प बोला, दण्ड चक्र प्रभृतिकी भांति सब ही परतन्त्र हैं, इसलिये मैं भी अवश हूं, इससे मेरा यह दोष तुम्हारे समीप युक्ति-सम्मत नहीं हो सकता, अथवा यदि तुम्हें ऐसा ही सम्मत हो, तो दण्डचक्र प्रभृति परस्परकी प्रयोजक हो सकते हैं और परस्परकी प्रेरणावशसे कार्य्य कारणमें सन्देह हुआ करता है; यदि ऐसा ही माना जावे, तौभी मेरा दोष नहीं है, मैं बध करनेके योग्य अथवा पापी नहीं हूं, यदि तुम इसमें पाप होना समझते हो, तो सम-वायकोही पाप होसकता है, अर्थात् यदि चेतनत्व निबन्धनसे मेरा बध करना ही तुम्हें सम्मत है, तो एकमात्र बध-कार्य्यमें साक्षात् और परस्पर सम्बन्धसे अनेकोंको प्रयोजकता है, इसलिये विभागके अनुसार सबको ही पाप लगेगा, केवल मैं ही पापी नहीं हूं।

व्याधा बोला, तुम यदि बिनाश कार्य्यमें अपनेको कारण अथवा कर्त्ता नहीं समझते हो, तौभी इस बिनाशके विषयमें साक्षात् सम्बन्धसे तुम ही कारण हो, इसलिये मेरे बिचारसे तुम बध करनेके योग्य हो। हे भुजङ्ग! पाप कार्य्य करके भी यदि कर्त्ता अपनेको उससे लिप्त न समझे, तब तो इस विषयमें कोई भी कारण नहीं होसकता, इसलिये उपस्थित विषयमें तुम ही कर्त्ता हो, इसीसे बध्य मालूम होते हो, क्यों तुम बड़ीबोल बोलते हो?

सर्प बोला, कर्त्ताके रहनेपर कुठारोद्यमन आदि कार्य्यसे छेदन क्रिया हुआ करती है, और कर्त्ताके न रहनेपर भी वृक्षोंकी डालियोंका आपसमें सङ्घर्षण होनेसे कार्य्यवशसे उससे ही अग्नि प्रगट होके वनको जला देती है, इसलिये कारणके रहने अथवा न रहने पर भी जैसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस तुल्य हेतुके स्थलमें मेरा कारणत्व विशेष रीतिसे विचारना चाहिये। हे व्याध! यदि मैं कारण अर्थात् प्रयोजक कर्त्तृरूपसे यथार्थमें ही तुम्हारे समीप युक्तिसम्मत होऊं, तो शाखाके प्रयोजक वायुकी भांति मेरा प्रयोजक दूसरा कोई कर्त्ता अवश्य है, इस जीवके नाश विषयमें वही पापी हो सकता है।

व्याधा बोला, रे नीच बुद्धि अधम सर्प! तू जानकर इस बालकका प्राण-नाशकर्त्ता अत्यन्त नृशंस कार्य्य करके बध्य हुआ है; वह ... भी बार बार बड़ी बात करता है।

सर्प बोला, हे व्याध! जैसे ऋत्विक् लोग यज्ञमें उनकी आहुति देनेसे इनके ...

नहीं होते, इस विषयको फल सम्बन्धमें भी वैसा ही है।

भीष्म बोले, मृत्यु-प्रेरित सर्पके ऐसा कहते रहने पर मृत्यु स्वयं उस स्थानपर उपस्थित हुई और उस सर्पसे कहने लगी।

मृत्यु बोली, हे सर्प! मैंने कालके द्वारा प्रेरित होकर तुम्हें प्रेरणा किया था, इसलिये तुम इस बालकके विनाश-विषयमें कारण नहीं हो, मैं भी इसके नाशका कारण नहीं हूं। हे सर्प! जैसे वायु बादलोंको इधर उधर कर देता है, वैसे ही मैं भी बादलकी भांति कालके वशमें हूं; जो सब सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भाव हैं, वे सभी कालात्मक होकर प्राणिमात्रमें निवास करते हैं। हे भुजङ्ग! द्युलोक वा भूलोकमें जितने स्थावर जङ्गम जीव हैं, वे सभी कालात्मक हैं, इसलिये यह जगत् कालस्वरूप कहा जाता है; इस लोकमें प्रवृत्ति निवृत्ति अथवा जो कुछ प्राणियोंकी विकृति होती है, वह सब कालात्मकरूपसे वर्णित हुआ करती है, हे पन्नग! सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, पर्जन्य, अदिति, नदी, समुद्र, ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य, ये सब ही कालके सहारे बार बार उत्पन्न और संहृत होते हैं। हे सर्प! ऐसा जानके भी तुम मुझे क्यों दोषी समझते हो? यदि इससे मुझे दोष लगे, तो तुम भी दोषी हो।

सर्प बोला, हे मृत्यु! मैं तुम्हें सदोष वा निर्दोष नहीं कहता हूं, मैं केवल तुम्हारे द्वारा प्रेरित हुआ हूं, इतनाही कहता हूं। यदि कालको दोष लगता हो अथवा उसमें दोष लगना अभिलषित न हो;—उस दोषकी परीक्षा करना मेरा कार्य्य नहीं है, क्योंकि उस विषयमें मैं अधिकारी नहीं हूं, इस दोषको निर्म्मोचन करना जैसे मेरा कर्त्तव्य है, वैसे ही इस विषयमें जिस प्रकार मृत्युका भी दोष न हो, वह भी मेरा प्रयोजन है।

भीष्म बोले, अनन्तर सर्प अर्जुनसे बोला, हे व्याध! तुमने मृत्युका वचन सुना, मैं निरपराधी हूं, मुझे पाशबन्धनके द्वारा दुःखित करना तुम्हें उचित नहीं है।

व्याध बोला, हे भुजङ्ग! मैंने मृत्युका और तुम्हारा वचन सुना है, परन्तु इससे तुम्हारी निर्दोषिता सिद्ध नहीं होती है, मृत्यु और तुम इस बालकके विनाशविषयमें कारण हो, मैं तुम दोनोंको ही कारण समझता हूं, कारण नहीं है, उसे कारण नहीं कहता साधुओंको दुःख देनेवाली क्रूर दुष्टात्मा मृत्यु धिक्कार है और पापके हेतु पापात्मा तुम्हें धिक्कार है; मैं तुम्हारा अवश्य बध करूंगा

मृत्यु बोली, हम निर्द्दिष्ट कार्य्य करनेवा परवश तथा कालके वशमें हैं, इसलिये यदि तुम पूरीरीतिसे विचार करोगे, तो हम लोगोंको दोषयुक्त न कह सकोगे।

व्याध बोला, हे मृत्यु! हे सर्प! यदि तु दोनों ही कालके वशमें हो, तब हम लोगों परोपकारकके विषयमें हर्ष और अपकारी विषयमें जिस प्रकार द्वेष उत्पन्न होता है, उ स्पष्टरूपसे प्रकट करो, मैं इसे जाननेक इच्छा करता हूं।

मृत्यु बोली, इस जगत्के बीच प्राणियो जो कुछ कार्य्य संघटित होते हैं, काल ही उ सबका प्रयोजक है। हे व्याध! कालकी प्रेरणा नुसार जो सब कार्य्य हुआ करते हैं, उन्हें मैंने पहले ही कहा है, ईश्वरके वशमें रहने वाला पुरुष सत् वा असत् कर्म्म करके स्तुतियुक्त अथवा निन्दनीय नहीं होता; इसलिये हम दोनों ही कालके वशमें होकर यथा निर्द्दि कार्य्य करते हैं। हे व्याध! इसलिये तुम हमलो गोंको किसी विषयसे दोषी नहीं सिद्धकर सकते।

भीष्म बोले, अनन्तर उस धर्म्मार्थ संशयकेस्थल काल स्वयं उपस्थित होकर सर्प, मृत्यु और अर्जुन नामक व्याधसे यह वचन कहने लगा

काल बोला, हे व्याध! मृत्यु, मैं और सर्प, हम तीनों ही जीवोंकी मृत्युके विषयमें निष्पाप हैं, क्यों कि हम लोग केवल प्रयोजक मात्र हैं, हे अर्जुन। इस बालकने जैसा कर्म्म किया था, वह कर्म्म ही हम लोगोंका प्रयोजक है. इसके विनाशका कारण दूसरा कोई भी नहीं है, यह बालक निज कर्म्मवशसे मरा है इस पुत्रने जो कर्म्म किया था, उसहीके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ; इसलिये कर्म्म ही इसके विनाशका कारण है, हम सब लोग कर्म्मके वशीभूत हैं, कर्म्मसे ही लोगोंकी उत्तम गति मिलती है अर्थात् कर्म्म पुत्रकी भांति लोगोंका उद्धार करता है, कर्म्मफलके मिलनेसे ही लोगोंका पुण्य पाप जाना जाता है; जैसे सब कर्म परस्परके प्रयोजक होते हैं, हम लोग भी वैसे ही हैं। जैसे कर्त्ता मट्टीके पिण्डसे जैसी इच्छा करता है, वैसा ही पात्र बनाता है, मनुष्य भी उस ही प्रकार अपने किये हुए कर्म्म फलको पाता है। जैसे छाया और धूपका सदा सम्बन्ध है, वैसे ही कर्म्म और कर्त्ता सदा ही अपने कर्म्मोंके द्वारा सम्बन्धविशिष्ट हैं। इसलिये मैं, मृत्यु, सर्प, तुम अथवा बूढी ब्राह्मणी, हम लोग कोई भी इस बालककी मृत्युके कारण नहीं हैं, बालक ही इस विषयमें कारण है। हे राजन्। कालके ऐसा कहते रहनेपर 'सब लोग अपने कर्म्मसे ही स्वर्ग नरक भोग करते हैं' ब्राह्मणी गौतमी ऐसा निश्चय करके अर्जुनसे कहने लगी।

गौतमी बोली, काल, सर्प और मृत्यु, इनमेंसे कोई भी इस बालकके मरनेके विषयमें कारण नहीं हैं, इस बालकने निज कर्म्मोंके कारण ही मृत्यु लाभ की है। मैंने भी ऐसा ही कर्म्म किया था, जिससे कि मेरा यह पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है; इस समय काल और मृत्यु स्वस्थानको जायें. हे अर्जुन! तुम भी सर्पको छोड़ दो।

भीष्म बोले, अनन्तर काल, मृत्यु और सर्पके चले जानेपर अर्जुनका शोक छूटा और गौतमी भी शोक रहित हुई। हे महाराज। इसे सुनके तुम शान्ति अवलम्बन करो, शोक मत करो। हे महाराज! सब कोई निजकर्म्म-निबन्धनसे स्वर्ग और नरकलोकमें गमन किया करते हैं। राजा लोग जिन कर्म्मोंके सहारे मारे गये, वे तुम्हारा अथवा दुर्य्योधनके कृत कर्म्म नहीं थे; जानना चाहिये, कि वे कालके द्वारा विहित हुए थे।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी धर्म्मज्ञ युधिष्ठिर भीष्मका ऐसा वचन सुनके शोकरहित हुए और उनसे यह वच्यमाण वचन कहने लगे।

१ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाप्राज्ञ पितामह। मैंने यह महत् आख्यान सुना, अब फिर आप धर्म्मार्थयुक्त जो इतिहास कहें, उसे मैं सुननेकी अभिलाष करता हूं, इसलिये आपको उसकी व्याख्या करनी उचित है। हे नरनाथ! किस गृहस्थने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस वृत्तान्तको आप यथार्थ रूपसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, गृहस्थ मनुष्यने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुरान इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे राजन्! प्रजापति मनुके इक्ष्वाकु नामक एक पुत्र था, उस सूर्य्य समान तेजस्वी राजाके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे भारत! उनके दसवें पुत्रका नाम दशाश्व था, वह महापराक्रमी धर्म्मात्मा माहिष्मती नगरीका राजा हुआ था। दशाश्वका पुत्र परम धर्म्मात्मा मदिराश्व नामक राजा एकचित्त होके

प्रसिद्ध हुआ था। सत्य, तपस्या और दान विषयमें उसका चित्त सदा रत रहता था और वह धनुर्व्वेद तथा वेदमें भी अनुरक्त था। मदिराश्वके पुत्रका नाम द्युतिमान था, वह महाबली, महातेजस्वी, महाभाग और महासत्त्वशाली था। द्युतिमानका पुत्र परम धार्म्मिक सुवीर नाम राजा सब लोकोंमें विख्यात हुआ, वह धर्म्मात्मा अधिक धन-सम्पत्तिशाली और दूसरे इन्द्रके समान रूपवान था। सुवीरका एक सर्व्व संग्राम दुर्ज्जय सब शास्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ सुदुर्ज्जय नामसे विख्यात था। सुदुर्ज्जयके इन्द्रके समान शरीरसे युक्त अग्नि सदृश तेजस्वी महाराज दुर्य्योधन नामक पुत्र हुआ। उस इन्द्र समान पराक्रमशाली युद्धमें अपरांमुख राजाके राज्यमें देवराज पूरीरीतिसे जलकी वर्षा करते थे। अनेक प्रकारके शस्य, पशु और धन रत्नसे उस समय उसका राज्य तथा नगर परिपूर्ण था; उसके राज्यमें कोई कृपण वा दरिद्र नहीं था, और उसके राज्य शासनके समयमें कोई पुरुष रोगी अथवा कृश नहीं हुआ था। हे भारत। उस मृदुभाषी, असूया रहित, जितेन्द्रिय, धर्म्मात्मा, अनृशंस, पराक्रमी, अनात्म श्लाघा परायण, विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले, अन्तरिन्द्रिय-निग्रहशील, मेधावी, ब्रह्मनिष्ठ, सत्य, सङ्गर, अनवमन्ता, बदान्यवर, वेदवेदान्तके जाननेवाले उत्तम दक्षिणा देनेवाले पुरुषप्रवर पृथ्वीपालकी शीतल जलसे युक्त कल्याणदायिनी पुण्यतमा देवनदी नर्म्मदाने स्वाभाविक कामना की थी। हे महाराज। राजा दुर्य्योधनने उस नर्म्मदा नदीसे एक सुदर्शना नामकी राजीवलोचना कन्या उत्पन्न की, वह कन्या केवल नामसे ही नहीं, रूपसे भी सुदर्शना थी। हे युधिष्ठिर। दुर्य्योधनकी कन्या जैसी सुन्दरी थी, स्त्रियोंके बीच वैसी सुन्दरी स्त्री पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। हे राजन्! अग्निने स्वयं ब्राह्मणका वेष धरके उस राजकन्या सुदर्शनाकी कामनासे राजाके निकट उसे पानेके लिये प्रार्थना की थी। ब्राह्मण मेरा असवर्णा और दरिद्र है, ऐसा समझके राजाने उस विप्रको सुदर्शना कन्या दान करनेकी अभिलाषा नहीं की। अनन्तर उस भूपतिके वृ ताग्निसाध्य यज्ञमें हव्यवाहन अग्निदेव अन्तर्द्धान हुए, राजा उस समय अत्यन्त दुःखित होकर ब्राह्मणोंसे यह वचन बोला, हे द्विजश्रेष्ठगण। मुझसे अथवा आप लोगोंसे ऐसा कौनसा पापकर्म्म हुआ है, जिससे कि कुपरुषके उपकारकी भांति अग्निदेव अदृश्य हुए। हम लोगोंका अल्प पाप नहीं है; क्यों कि अग्नि विनष्ट हुई। यह हमारा अथवा आपका पाप है, उसे यथार्थ रीतिसे विचारिये, हे भरतप्रवर। उस समय वे सब ब्राह्मण राजाका बचन सुनके नियमनिष्ठ और वाक्संयत होकर अग्निदेवके शरणागत हुए। शरत्कालके सूर्य्य समान तेजस्वी भगवान हव्यवाहनने उस समय निज रूपको प्रकाशित करके ब्राह्मणोंको दर्शन दिया। अनन्तर महानुभाव अग्नि उन ब्राह्मणोंसे बोले, मैं अपने लिये दुर्य्योधनकी कन्याको चाहता हूं। इस वचनको सुनके ब्राह्मण लोग विस्मित हुए और अग्निने जो कुछ कहा था, भोरके समय उठके वह सब वृत्तान्त राजाके समीप वर्णन किया। उस बुद्धिमान् राजा ब्रह्मवादियोंके मुखसे ऐसा वचन सुनके परम हर्षित होके कहा, कि ऐसा ही होगा और भगवान् अग्निके निकट शुल्कस्वरूप यह वर मागा कि, हे विभावसु। इस स्थानमें आप सदा निवास करिये, भगवान अग्निदेव राजाका बचन सुनके बोले, कि "ऐसा ही होवे।" तभीसे माहिष्मती नगरीमें अग्नि सदा विद्यमान है, जब सहदेवने दक्षिण दिशा जीतनेके लिये प्रस्थान किया था, तब उन्हें प्रत्यक्ष दीख पड़ा था। अनन्तर राजा दुर्य्योधनने उस कन्याको नवीन वस्त्र पहराके सब आभूषणोंसे भूषित करके महात्मा

अग्निको प्रदान किया, अग्निने भी अध्वरमें वसुधाराकी भांति उस राजकन्या सुदर्शनाको प्रतिग्रह किया। उसके कुल-शील शरीरकी सुघराई और श्रीवृद्धिसे अग्निदेव प्रसन्न होके उसे पुत्र प्रदान करनेमें मनोयोगी हुए। अग्निके द्वारा उस राजकन्याके गर्भसे सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; सुदर्शन सुघराई और गुणमें पूर्णचन्द्रके समान हुआ, उसने बालक अवस्थामें ही सम्पूर्ण सनातन वेद अध्ययन किया।

नृग राजाके पितामह ओघवान् नामके राजा थे, उनके ओघवती नामकी कन्या और ओघरथ नामका पुत्र था, ओघवानने स्वयं विद्वान् सुदर्शनके साथ अपनी देवरूपिणी कन्याका विवाह किया। हे महाराज! सुदर्शनने उस ओघवतीके साथ गृहस्थाश्रममें रत होके कुरुक्षेत्रमें निवास किया था। हे नरनाथ! महातेजस्वी धीमान् सुदर्शन 'गृहस्थ होके मृत्युको जय करूंगा' ऐसी ही प्रतिज्ञा करके पत्नीसे बोले, कि तुम भी अतिथियोंके विषयमें किसी प्रकारसे प्रतिकूल आचरण न करना; प्रतिदिन अतिथि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा प्रसन्न हों, तुम आत्मप्रदान करके भी उस कार्यका सिद्ध करना, इस विषयमें कुछ भी विचार न करना। हे सुश्रोणि! मेरे हृदयमें सदा यह व्रत विद्यमान है, कि गृहस्थ मनुष्योंके निमित्त अतिथिसे बढ़के और कुछ भी नहीं है। हे शोभने! हे वामोरु! यदि तुम मेरा वचनका मानो, तो सन्देहरहित होके सदा इस ही वचनको हृदयमें धारण करो। हे कल्याणि! हे पापरहिते; मैं चाहे घरसे बाहर रहूं, अथवा घरमें ही रहूं, मेरा वचन यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम अतिथिकी अवमानना न करना। ओघवती उस समय हाथ जोड़के उनसे बोली, तुम्हारी आज्ञा हर प्रकारसे मुझे पालन करना उचित है। हे राजन्! उस समय मृत्यु, उस गृहस्थ सुदर्शनके जिगीषा परवश और छिद्रान्वेषी होकर सदा उसके पीछे पीछे घूमने लगी। जब अग्निपुत्र सुदर्शनने काष्ठ लानेके निमित्त गमन किया, तब धर्मने ब्राह्मणका वेष धरके अतिथि होकर उस ओघवतीसे कहा, हे वरवर्णिनि! गृहस्थाश्रम-सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो मेरा तुम आतिथ्य करो, मेरी यही अभिलाषा है। हे नरनाथ! यशस्विनी राजपुत्री उस ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके वेदविहित विधिके अनुसार उसका सत्कार करने लगी, तथा ब्राह्मणको आसन और पाद्य देकर बोली, हे विप्रवर! आपका कौनसा प्रयोजन है? तब ब्राह्मण उस सुन्दरी राजकन्यासे बोला, हे कल्याणि। मैं तुम्हें ही चाहता हूं, तुम निःशङ्क होकर ऐसा ही आचरण करो। हे राजकन्या! गृहस्थाश्रम सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम आत्मप्रदान करके मेरा प्रियकार्य्य सिद्ध करो। राजपुत्रीने अन्य अन्य अभिलषित वस्तु देनेका ब्राह्मणको लोभ दिखाया, तो भी उसने उसके आत्म प्रदानके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु न मांगी। तब राजकन्याने पतिका वचन स्मरण करके लज्जापूर्वक ब्राह्मणसे कहा, कि "ऐसा ही होवे।" अनन्तर उस राजकन्याने गृहस्थाश्रमकी इच्छा करनेवाले पतिका वचन स्मरण करके हंसकर उस ब्राह्मणके साथ निर्जन गृहमें बैठी; अनन्तर अग्निपुत्र सुदर्शन काठ लेकर घरपर आके उपस्थित हुए। रौद्र भावयुक्त मृत्यु, अदृश्य भावसे सदा उनके निकटवर्त्ती था।

अनन्तर अग्निपुत्र उस समय अपने आश्रममें आके उस ओघवतीको 'कहां गई' ऐसा कहके बार बार आह्वान करने लगे। पतिव्रता सती उस समय उस ब्राह्मणके दोनों हाथोंसे आलिङ्गित रहनेसे पतिको कुछभी उत्तर न देसकी। मैं पतिके समीप उच्छिष्ट हुई, ऐसा विचारती हुई लज्जित होकर वह साध्वी चुप होरही, तथा कुछ भी न बोली, अनन्तर सुदर्शन फिर

उसे पुकार कर कहा, 'वह साध्वी कहां है?' वह कहां चली गई? इससे बढ़के और गुरुतर विषय दूसरा कौनसा होगा? पतिव्रता सत्यशीला, सदा सरल स्वभाववाली वह प्रियतमा किस निमित्त विस्मययुक्त होकर आज पहलेकी भांति प्रकाशित नहीं होती है। सुदर्शन ऐसा ही वचन कह रहे थे, उस समय कुटीमें स्थित ब्राह्मणने उन्हें उत्तर दिया, कि हे अग्निपुत्र! तुम्हें विदित हो, कि मैं अतिथि उपस्थित हुआ हूं। हे सत्तम। मैं तुम्हारी भार्य्याके द्वारा अनेक प्रकारके सत्कारोंसे प्रलोभित होने पर भी केवल इसको ही प्रार्थना की है, यह वही शुभानना विधिपूर्व्वक मेरा सम्मान करती है, इस विषयमें दूसरा जो कुछ कार्य्य तुम्हें उपयुक्त बोध हो, अर्थात् स्त्री-दूषणके अनुसार यदि दण्ड देना उचित हो, तो तुम उसका अनुष्ठान करो। "अतिथिव्रत परित्याग करके जो प्रतिज्ञासे भ्रष्ट होता है, उसका वध करूंगा", ऐसा विचार कर मृत्युदेव लौहदण्ड धारण करके उस पुरुषको अनुगामी हुए हैं। सुदर्शन ऐसा वचन सुनके कर्म्म, मन, नेत्र और बचनसे ईर्षा तथा क्रोध परित्याग करके विस्मित होकर यह बचन बोले, हे बिप्रवर! आपका सुरत हो, मुझे उससे परम प्रसन्नता होगी; अतिथि-सत्कार ही गृहस्थका परम धर्म्म है। जिस गृहस्थके घरमें अतिथि आकर पूजित होके गमन करता है, उससे बढ़के दूसरा कोई भी श्रेष्ठ धर्म्म नहीं है,—ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं। मेरा प्राण, पत्नी और दूसरा जो कुछ धन है, वह सब अतिथियोंको दान करूंगा, यही मेरा सङ्कल्पित व्रत है। हे विप्र! मैंने सन्देहरहित होकर जिस प्रकार यह बचन कहा है, वैसे ही सत्यके सहारे स्वयं, आत्माको अवलम्बन करता हूं।

हे धार्म्मिक प्रवर! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पांच और बुद्धि, आत्मा, मन, काल तथा दिशा, ये दश सदा देहधारियोंके शरीरमें स्थित रहके सुकृत और दुष्कृत कर्म्मोंको अवलोकन करते हैं। आज मैंने जो यह सत्य बचन कहा है, उस सत्यके सहारे देवता लोग मुझे पालन करें, अथवा भस्म करें। हे भारत! अनन्तर "यही सत्य है, इसमें कुछ भी झूठ नहीं है," ऐसा ही शब्द सब ओरसे प्रकट हुआ। अनन्तर उदयशील वायुकी भांति शरीरके सहारे वह ब्राह्मण उस कुटीसे बाहर निकला और उदात्तादि धर्म्मविशिष्ट स्वरसे प्रथम उस धर्म्मज्ञ सुदर्शनका नाम लेके उन्हें आमन्त्रण करके यह वचन बोला, हे पापरहित! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं धर्म्म हूं, मैं तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये इस स्थानमें आया था। हे सत्यज्ञ! जाननेसे अब तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति हुई। छिद्रान्वेषी मृत्यु जो कि सदा तुम्हारा पीछा कर रही है, तुमने उसे जय किया है और धैर्य्य गुणसे वशीभूत किया है। हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे इस पतिव्रता साध्वीको स्पर्श करनेकी बात तो दूर है, इसकी ओर देखनेकी भी तीनों लोकके बीच किसीकी सामर्थ नहीं है। यह तुम्हारे गुणसे तथा पतिव्रता गुणसे रक्षित हुई है। यह अदूष्या साध्वी जो कहेगी, वह मिथ्या न होगा। यह ब्रह्मवादिनी निज तपस्यासे संयुक्त होकर लोकको पवित्र करनेके लिये श्रेष्ठ नदी होगी। तुम इस जन्ममें इस ही शरीरसे सब लोकोंमें गमन करोगे, और यह महाभागा आधे शरीरसे ओघवती नामकी नदी होगी और आधे शरीरसे तुम्हारा अनुगमन करेगी, योगबलसे यह दो शरीर धारण कर सकेगी, क्यों कि योग इसके वशमें है, तुमने तपोबलसे जिन लोकोंको प्राप्त किया है, इसके सहित उन्हीं लोकोंमें जाओगे, जहांपर जानेसे फिर मर्त्यलोकमें नहीं आना होता, तुम इस ही शरीरसे उस शाश्वत सनातन लोकमें गमन

करोगे। मृत्यु तुमसे निर्ज्जित हुई है, तुमने उत्तम ऐश्वर्य्य पाया है, तुमने निज वीर्य्य-बलसे मनोजव होकर पञ्चभूतोंको अतिक्रम किया है। तुमने इस गृहस्थधर्म्मके सहारे काम और क्रोधको जीता है। हे ऋषिराज! इस राजपुत्रीने तुम्हारी सेवाके सहारे स्नेह, राग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको विशेष रूपसे जय किया है।

भीष्म बोले, अनन्तर देवराज इन्द्र सफेद रङ्गवाले हजार घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथ लेकर उस ब्राह्मणके निकट उपस्थित हुए। हे नरनाथ! उस ब्राह्मणने अतिथिके विषयमें भक्तिवश मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, व्योम, काम तथा क्रोधको जय किया था, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुषके लिये अतिथिके समान दूसरा कोई भी देवता नहीं है, इसे मनही मन विचारो। अतिथि पूजित होनेसे मनही मन जो शुभचिन्ता करता है, उसकी समानता सौ यज्ञके फल भी नहीं कर सकते, इसलिये पण्डित लोग कहा करते हैं कि अतिथि सत्कारका फल उससे भी अधिक हुआ करता है। शीलवान् सत्पात्र अतिथिके उपस्थित होनेसे जो पुरुष उसका सत्कार नहीं करता, उसे वह अतिथि अपना पापका फल देकर उसके पुण्यफलको लेकर चल देता है। हे तात! पहिले समयमें गृहस्थ पुरुषके द्वारा मृत्यु जिस प्रकार पराजित हुई थी, यह वही उत्तम आख्यान मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया है। यह उत्तम आख्यान धन यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इसे सब पापोंको नष्ट करनेवाला समझते हैं। हे भारत! जो विद्वान् पुरुष नित्य इस सुदर्शन चरित्रको कहता है, वह पुण्य लोक पाता है।

२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको यदि ब्राह्मणत्व प्राप्त होना दुष्प्राप्य है, तो महानुभाव विश्वामित्रने क्षत्रिय होके किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था। इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषश्रेष्ठ धर्म्मात्मा पितामह! आप मेरे समीप इस विषयका वर्णन करिये। हे पितामह! उस अत्यन्त वीर्य्यशाली विश्वामित्रने तपस्याके प्रभावसे महात्मा वशिष्ठके एक सौ पुत्रोंका नाश किया था। उनके शरीरमें क्रोध उत्पन्न होनेपर उन्होंने कालान्तक समान बहुतेरे महातेजस्वी यातुधान राक्षसोंको उत्पन्न किया था। एक सौ ब्रह्मर्षियोंसे युक्त विद्यावान् अत्यन्त महान् कुशिक वंश इस मनुष्य लोकमें ब्राह्मणोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर स्थापित हुआ है; ऋचीकके पुत्र महातपस्वी शुनःशेफ पशुत्वको प्राप्त होकर महायज्ञसे विमोचित हुए, हरिश्चन्द्र निज तेजके सहारे यज्ञमें देवताओंको सन्तुष्ट करके बुद्धिमान् विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। देवताओंने विश्वामित्रको देवरात नामक जो पुत्र प्रदान किया था, उसके ज्येष्ठ तथा राजा होनेपर भी उनके अन्य पुत्रोंने उसे प्रणाम नहीं किया, इसीसे उन्होंने उन पचास पुत्रोंको शाप दिया, वे सब चाण्डाल होगये। इक्ष्वाकुका पुत्र त्रिशङ्कु वशिष्ठके शापसे चाण्डाल होगया, इसीसे उसके बान्धवोंने उसे परित्याग किया। अनन्तर उनके दक्षिण दिशाको अवलम्बन करके अवाक्शिरा होनेपर विश्वामित्रने उसे स्वर्गमें भेजा। विश्वामित्रकी कौशिकी नामकी देवर्षियोंसे सेवित एक बड़ी नदी थी, उस कल्याणी पुण्यसलिलवाली श्रेष्ठ नदीको देवता और ब्रह्मर्षिलोग सदा सेवा करते थे। पञ्चचूड़वती उत्तम और प्रसिद्ध रम्भानामवाली अप्सरा उनकी तपस्यामें विघ्न करनेसे शाप वशसे शिला होगई थी। इनहीके भयसे पहिले समयमें वशिष्ठ मुनि [illegible]

जलमें डूबे थे और विपाश होकर फिर जलसे ऊपर उठे थे, तभीसे उस पवित्र सलिलवाली महानदी महात्मा वसिष्ठके उस ही कर्म्मसे विपाशा नामसे विख्यात् हुई है। जब विश्वामित्र त्रिशङ्कुसे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, तब वसिष्ठ मुनिके पुत्रोंने उन्हें यह कहके शाप दिया, कि "जब तुम चाण्डालके पुरोहित हुए हो, तो स्वयं चाण्डाल होजाओगे।" इस ही शापके सत्य होनेके निमित्त किसी आपद्‌कालमें विश्वामित्रने चौर्य्यवृत्तिसे कुत्ते का निकृष्ट मांस चुराकर उसे पकाना आरम्भ किया था, इतने ही समयमें इन्द्रने बाजपक्षीका रूप धरके उस मांसको हरण किया। उस समय विश्वामित्रने वचनसे भगवान् इन्द्रकी स्तुति की, इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें शापसे मुक्तकर दिया उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव और ब्रह्मर्षियोंके बीच जो उदीची दिशाको अवलम्बन करके सदा नक्षत्र रूपसे प्रकाशित होरहे हैं, हे कौरव! उस विश्वामित्रके ये सब तथा अन्यान्य कर्म्मोंको सुनके, कि क्षत्रियके द्वारा यह सब घटना हुई थी, इससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ! यह घटना किस प्रकार हुई थी, आप उसे वर्णन करिये। विश्वामित्र बिना दूसरा शरीर धारण किये ही किस प्रकार ब्राह्मण हुए। हे तात! हमारे समीप इन समस्त वृत्तान्तोंको वर्णन करनेके योग्य आप ही हैं, जैसा मतङ्गका वृत्तान्त है, वैसे ही इसे भी आप मेरे निकट वर्णन करिये। हे भरतप्रवर! मतङ्गने शूद्रके सहारे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होके कठिन तपस्या करनेपर भी ब्राह्मणत्व लाभ नहीं किया, वह युक्तिसङ्गत है, परन्तु विश्वामित्रने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया।

३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! पहले समयमें विश्वामित्रने जिस प्रकार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया था। उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो। हे भरतप्रवर! भरतवंशमें आजमीढ़ नामक यज्ञ करनेवाला धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ एक राजा था। गङ्गा जिसकी पुत्री कहाती हैं, वही जन्हु उसके मुख्य पुत्र थे; उनके महायशस्वी सिन्धुद्वीप गुणोंमें उन्हींके सदृश पुत्र हुआ, सिन्धुद्वीपसे महाबली बलाकाश्व राजर्षि उत्पन्न हुआ। साक्षात् धर्म्म-समान उसके वल्लभ नाम पुत्र हुआ। इन्द्रके समान तेजस्वी उसका पुत्र कुशिक हुआ, कुशिकका पुत्र श्रीमान गाधि नामक राजा था, वह अपुत्र होनेसे वनवासी हुआ था। जब वह वनमें निवास कर रहा था, तब उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका सत्यवती नाम रखा, पृथ्वी मण्डलमें वैसी रूपवती और कोई स्त्री नहीं थी। महातपस्वी भृगुवंशी च्यवन मुनिके पुत्र जो कि ऋचीक नामसे विख्यात हैं, उन्होंने राजासे उस कन्याके निमित्त प्रार्थना किया, शत्रुनाशन गाधिराज पहले महानुभाव ऋचीकको दरिद्र समझके अपनी कन्या देनेमें सम्मत नहीं हुए। अनन्तर जब ऋचीक मुनि वहांसे लौटकर चलने लगे, तब नृपसत्तम गाधिराजने उनसे कहा, कि तुम मुझे शुल्क प्रदान करो, तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे।

ऋचीक मुनि बोले, मैं तुम्हारी कन्याका क्या शुल्क प्रदान करूं, उसे तुम निःसन्देह मुझसे कहो।

महाराज गाधि बोले, हे भार्गव! चन्द्रमाकी किरण समान प्रकाशमान वायुके सदृश बलशाली और जिनके एक कान श्यामवर्ण हैं, वैसे एक हजार घोड़े मुझे दो।

भीष्म बोले, अनन्तर उस भृगुवंशीय च्यवन मुनिके पुत्र ऋचीकने अदितिपुत्र जलाधिपति वरुणदेवसे कहा कि, हे देवसत्तम! एककर्ण श्यामवर्ण और चन्द्रकिरण समान सफेद, वायु समान वेगशाली एक हजार घोड़े पानेके लिये मैं आपके समीप भिक्षा मांगता हूं। अदिति-

पुत्र वरुणदेवने भृगुसत्तम ऋचीक मुनिसे कहा 'बहुत अच्छा'—तुम्हें जिस स्थानपर उन घोड़ोंके निमित्त अभिलाषा होगी, उस ही स्थानमें ऐसे लक्षणोंसे युक्त एक हजार घोड़े प्रकट होजायगे। अनन्तर ऋचीक मुनिके ध्यान करते ही महातेजस्वी चन्द्रमा समान सफेद एक हजार श्यामकर्ण घोड़े गङ्गाजलसे प्रकट हुए, कान्यकुब्ज देशके समीप जिस स्थानमें वे घोड़े प्रकट हुए थे, अबतक भी मनुष्य उसे अश्वतीर्थ कहा करते हैं। हे तात! अनन्तर तपस्वी श्रेष्ठ ऋचीक मुनिने प्रसन्न होकर शुल्कके निमित्त महाराज गाधिको वेही एक हजार उत्तम श्यामकर्ण घोड़े प्रदान किये, गाधिराज उसे देखकर विस्मित हुए और शाप भयसे डरके अपनी कन्याको सब आभूषणोंसे भूषित करके ऋचीक मुनिको प्रदान किया। ब्रह्मर्षिसत्तम ऋचीक मुनिने विधिपूर्व्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया, वह भी उन्हें पति रूपसे पाके परम हर्षित हुई। हे भारत! ब्रह्मर्षि ऋचीक उसके चरित्रसे हर्षित हुए और उससे कहा, कि तुम्हें पुत्र दान करूंगा, इस प्रकार वर देके उस वरवर्णिनिको प्रलो-भित किया। हे भारत! कन्याने वह सब वृत्तान्त अपनी मातासे कह दिया।

अनन्तर माताने उस अधोवदनवाली अपनी पुत्रीसे कहा, हे पुत्री! तुम्हारा पति मुझ पर भी कृपाकर सकता है, वह महातपस्वी पुत्र देनेमें समर्थ है। हे राजन्! इतनी बात सुनके [illegible] पतिके निकट जाके माताका [illegible] अभिप्राय कह सुनाया। तब ऋचीक [illegible] उससे कहा हे कल्याणि! मेरे प्रसादसे [illegible] माताके शीघ्रही गुणवान पुत्र जन्मेगा। [illegible] गुणवान और यशस्वी हमारे वंशको [illegible] करनेवाला श्रीमान महान् पुत्र उत्पन्न [illegible] है तुमसे सत्य ही कहता हूं, [illegible] तुम और तुम्हारी माता ऋतुमती होकर स्नान करने पर अश्वत्थ और उडुम्बर वृक्षको आलिङ्गन करना, तब मेरे वचनके अनुसार तुम दोनोंको पुत्र लाभ होगा। हे शुचिस्मिते! वह और तुम इस मन्त्रयुक्त दो चरु भोजन करना, तब तुम दोनोंको ऐसे ही गुणोंसे युक्त दो पुत्र होंगे। अनन्तर सत्यवती अत्यन्त हर्षित होके माताके निकट गई, और ऋचीक मुनिने जो कुछ कहा था, वह सब वृतान्त तथा चरुके विषयको वर्णन किया। तब उसकी माता निज पुत्री सत्यवतीसे बोली, हे पुत्री! मैं तुम्हारे पतिसे भी तुम्हारे समीप मान-नीय हूं, इसलिये तुम मेरा वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारे पतिने तुम्हें जो मन्त्रयुक्त चरु दिया है, वह मुझे दो और जो चरु मुझे दिया है, उसे तुम लो। हे शुचिस्मिते! हे अन-न्दिते! मैं तुम्हारी माता हूं, यदि मेरा वचन तुम्हें प्रमाण हो, तो हम दोनों उन दो वृक्षोंको आलिङ्गन करें। सब कोई अपने लिये उत्तम और निर्म्मल पुत्रकी कामना करते हैं, भगवान् ऋचीकने भी अवश्य इस ही प्रकार किया होगा यह शेषमें मालूम होजायगा। हे सुमध्यमे! इस ही निमित्त तुम्हारे वृक्ष और चरुमें मेरी अभिरुचि हुई है। जिस प्रकार तुम्हारा भाई श्रेष्ठ हो, तुम वैसीही चिन्ता करो।

हे युधिष्ठिर! सत्यवती और उसकी माताने ऊपर कहे हुए वचनसे उस ही प्रकार आचरण किया अनन्तर वे दोनों गर्भवती हुईं, भृगुसत्तम ऋचीक मुनिने अपनी भार्य्या सत्यवतीको गर्भ वती देखकर दुःखित होकर कहा, हे कल्याणि! चरु अदल बदल करना तुम्हारा उपयुक्त कार्य्य नहीं हुआ है, यह पीछे मालूम होगा और तुमने जो इसमें उलट फेर किया है, यह स्पष्ट ही मालूम होरहा है। मैंने तुम्हारे चरुमें [illegible] परिपूरित किया था और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज भरा हुआ था तुम्हारे [illegible] [illegible] [illegible]

विख्यात् ब्राह्मण पुत्र हो और तुम्हारी माताके क्षत्रिय पुत्र होवे, इस ही लिये मैंने ऐसा किया था। हे शुभे! तुम दोनोंने जब उसमें हेर फेर किया है, तब तुम्हारी माताके एक उत्तम ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारे प्रचण्ड कर्म्म करनेवाला एक क्षत्रिय पुत्र होगा। हे भद्रे! हे साविनि! तुमने मातृस्नेहके वशमें होकर इस प्रकार वृक्ष और चरुको बदलके उत्तम कार्य्य नहीं किया।

हे महाराज! वह वरवर्णिनि सत्यवती ऐसा वचन सुनके शोकित तथा दुःखित होकर टूटी हुई मनोहारिणी लताकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी। कुछ समयके अनन्तर गाधिराज पुत्री सावधान होके हाथ जोड़के सिर झुकाकर भार्गव श्रेष्ठ पतिको प्रणाम करके कहने लगी। हे वेदज्ञवर विप्रर्षि! मैं तुम्हारी भार्य्या हूं, इससे प्रसन्न होके आप मुझपर कृपा करिये,— जिससे कि मेरे क्षत्रिय पुत्र न हो। यदि आपकी इच्छा हो, तो मेरा पौत्र उग्र कर्म्म करनेवाला क्षत्रिय होसकेगा, परन्तु जिसमें मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, वही करिये। हे ब्रह्मन्! आप मुझे यही वर दीजिये, महातपस्वी ऋचीकमुनि अपनी भार्य्यासे बोले,—'ऐसा ही होगा।' हे राजेन्द्र! अनन्तर सत्यवतीके शुभलक्षणसे युक्त यमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और यशस्विनी गाधिराजकी भार्य्या ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि विश्वामित्रकी जननी हुई। महातपस्वी विश्वामित्रने क्षत्रिय होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया और नीचेलिखे ब्राह्मण वंशके कर्त्ता हुए। उनके महानुभाव सब पुत्र ब्राह्मण वंशकी वृद्धि करनेवाले, तपस्वी, ब्रह्मवित् और गोत्रकर्त्ता हुए थे; उनके ये नाम हैं,—भगवान् मधुच्छन्द, वीर्य्यवान् देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, कालपथ, विख्यात् याज्ञवल्क्य, महाव्रतस्थूण, उलूक, मुद्गल, सैन्धवायन, ऋषि, भगवान् वल्गुजङ्घ, महर्षि गालव, रुचि, विख्यात्वज्र, सालङ्कायन, लीलाढय, नारद, कूर्चामुख, वाहुलि, मूषल, वक्षोग्रीव, आङ्घ्रिक, नैकदृक्, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायत, श्यामायन, गार्ग्य, जावालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर पौरवतन्तव, महर्षि कपिल, ताडकायन ऋषि, उपगहन, आसुरायणि ऋषि, मार्गमऋषि, हिरण्याक्ष, जङ्घारि, वाभ्रवायन, भूति, विभूति सूत, सुरकृत्, आरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु बकनख, सयन, यति, अम्भोरुह, अमत्स्याशी, शिरीषी, गार्द्दभि, उर्ज्जयोनि, रुदापेक्षी और महर्षि नारदी, ये सब विश्वामित्रके पुत्र ब्रह्मवादी मुनि थे।

हे महाराज युधिष्ठिर! महातपस्वी विश्वामित्रके क्षत्रिय होनेपर भी ऋचीक मुनिके द्वारा जो पहले चरुमें ब्रह्मतेज प्रवेशित किया गया था, उस ही निमित्त उन्होंने क्षत्रियवीर्य्यसे उत्पन्न होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया था। हे भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप चन्द्रमा सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी विश्वामित्रकी उत्पत्तिका वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन किया। हे नृपसत्तम! फिर जिन विषयोंमें तुम्हें सन्देह हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारा सब सन्देह मिटा दूंगा।

४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मज्ञ पितामह! मैं आनृशंस्य धर्म्म और भक्तोंके गुणको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें महानुभाव शुक और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। काशिराजके राज्यमें कोई व्याधा गांवसे निकलकर विषमें बुझे हुए बाण ग्रहण करके हरिनोंको खोजमें घूम रहा था। मृगयाके समय महाव-

गई कर मांसलोभी व्याधने थोड़ी दूरपर हरि- नोंके झुण्ड देखकर बाण साधा । दुर्व्वारितास्त्र व्याधने उन मारनेके लिये बाण चलाया, वह उन हरिनोंसे फिसलकर वनमें एक वृहत् वृक्षमें लगा हुआ । वह वृक्ष विषमें बुझे हुए तीखे बाणसे बलपूर्वक वेधित होनेसे फल और पत्तोंको त्यागके सूखने लगा । उस वृक्षकी ऐसी अवस्था होनेपर भी उसके कोटरमें बहुत समयसे निवास करनेवाला एक शुकपक्षी भक्ति- वशसे वहांसे पृथक् न हुआ । धर्म्मात्मा कृतज्ञ शुक निष्प्रचार, निराहार, ग्लानियुक्त और खिन्न होकर वृक्षके सहित सूखने लगा । इन्द्र उस अतिमानुषी बुद्धिवाले उदार और सुख दुःखको समान माननेवाले महाप्राणी शुकको देखकर विस्मित हुए । उन्होंने सोचा, कि इस पक्षीने किस प्रकार तिर्य्यग् योनिमें असम्भव पराये दुःखसे दुःखितभाव अवलम्बन किया है । अथवा इन्द्रको इस विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम हुआ, क्यों कि मनुष्य पशु पक्षी आदि सब प्राणी तथा सब जातियोंमें ही दया और निठुरता प्रभृति दीख पड़ती हैं । अनन्तर इन्द्र ब्राह्मणवेषसे मनुष्य रूप धारण कर पृथ्वीपर उतरके उस शुक पक्षीसे बोले, हे पक्षिप्रवर शुक ! दक्ष दौहित्री तुम्हारे द्वारा उत्तम प्रजायुक्त हुई है, मैं तुमसे पूछता हूं, कि तुम किस लिये इस वृक्षको परित्याग नहीं करते ?

अनन्तर शुक पूछनेपर सिर झुकाके उन्हें प्रणाम करके बोला, हे देवराज ! आपने सुखसे आगमन किया है न ? मैंने ज्ञानदृष्टिसे तुम्हारे रूपको पहचाना है । अनन्तर इन्द्रने 'साधु साधु' कहके मनमें कहा और दया ही आश्चर्य- जनक है, ऐसा विचारके मनसे उस की प्रशंसा करने लगे । यद्यपि इन्द्रने उस शुकको धर्म्मात्मा परम धार्म्मिक समझा था तौभी इसके निमित्त उसके सत्कर्म्मकी ताका विषय पूछा । यह वृक्ष पत्तारहित फल- हीन, सूखा और पक्षियोंका अनाश्रय है, इस- लिये इस महावनके बीच दूसरे, सजीव वृक्षोंके विद्यमान रहते किस निमित्त तुम इस सूखे वृक्षमें वास करते हो ? इस महावनमें दूसरे बहुतेरे वृक्ष हैं, उनका कोटर पत्तोंसे परिपूर्ण है, देखनेमें सुन्दर है, तुम उन वृक्षोंपर सहज- हीमें उड़के जासकते हो । हे धीर ! इसलिये तुम बुद्धिसे इसारे विचार करके इस निर्ज्जीव, सामर्थ्यरहित, सारहीन, श्रीरहित सूखे वृक्षको परित्याग करो ।

भीष्म बोले, धर्म्मात्मा शुक इन्द्रका वचन सुनके लम्बी सांस छोड़ते हुए दुःखित होके कहने लगा । हे शचिपति सुरराज ! देव वचन अनतिक्रमणीय है, जिस विषयमें आपने प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिये । मैंने इस वृक्ष- पर जन्म लिया है, बाल्य अवस्थासे प्रतिपालित और सद्गुणयुक्त हुआ हूं, शत्रुओंसे कभी आक्रान्त नहीं हुआ । हे पापरहित ! मैं पराये दुःखसे दुःखित, अभियुक्त भक्त और अनन्य गतिसे युक्त हूं, आप क्यों करुणा करके मुझमें उसका शोक उत्पन्न करते हैं ? दया ही साधुओंके महत् धर्म्मका लक्षण है, वही उन्हें सदा प्रसन्न किया करती है । देवता लोग सन्देहयुक्त होनेसे आपसे ही इस विषयमें प्रश्न करते हैं । हे देव ! इस ही निमित्त आप देव- ताओंके आधिपत्य पर प्रतिष्ठित हुए हैं । हे सहस्रलोचन ! मुझे कदापि इस वृक्षको त्याग करना उचित नहीं है । जब यह वृक्ष समर्थ था, तब इसे उपजीव्य करके इस समय किस प्रकार इसे परित्याग करूं । धर्म्मात्मा इन्द्र शुकका प्रिय वचन सुनके हर्षित होकर उससे बोले, मैं तुम्हारी अनृशंसतासे सन्तुष्ट [illegible] हुआ हूं, [illegible] मांगो । तब दयापरायण शुक [illegible] यह वृक्ष पुनः [illegible] हो, [illegible] किया [illegible]

वृक्षपर दृढ़भक्ति और शील सम्पत्ति मालूम करके प्रसन्न हुए और शीघ्र ही अमृत छिड़कके उस वृक्षको हरा कर दिया। अनन्तर वह वृक्ष शुकके दृढ़ भक्ति निबन्धनसे फल पत्र और मनोहर शाखासे युक्त होकर श्रीमान् हुआ। हे महाराज! शुकने भी उस आनृशंस कर्म्मके सहारे आयु शेष होनेपर इन्द्रके समान लोक प्राप्त किया। हे मनुजेन्द्र! जैसे वृक्षने शुकको आश्रय देकर सिद्धि लाभ की, वैसे ही जो लोग भक्तिमान पुरुषको आश्रय देते हैं, वे सब प्रयोजनोंमें सिद्धि लाभ करते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विशारद महाप्राज्ञ पितामह! दैव (भाग्य) और पुरुषकार (उद्योग) इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठ कहा जायगा। भाग्य सब विषयोंका मूल होने पर भी बिना पुरुषार्थके कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता; इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा करने वाले मनुष्योंको अवश्य ही पुरुषार्थ करना उचित है। इसमें यदि दोनों विषय ही श्रेष्ठ हुए, तब इन दोनोंके बीच अधिक श्रेष्ठ कौन होगा?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और वशिष्ठ मुनिके सम्वाद-युक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहिले समयमें भगवान् वसिष्ठ मुनिने सोचा, कि दैव अर्थात पूर्व्वकर्म्म और मानुष अर्थात् वर्त्तमान कर्म्म, इन दोनोंमेंसे श्रेष्ठ कौन है? अनन्तर उन्होंने यह विषय पितामहसे पूछा था। हे महाराज! अनन्तर कमलसे उत्पन्न भये देवोंके देव पितामह ब्रह्मा अर्थ तथा युक्तियुक्त मधुर वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती और बिना बीजके फलको भी उत्पत्ति नहीं होती; बीजसे ही बीज उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये यह निश्चित है, कि बीजसे ही फल होता है। कृषक खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है, वैसे ही सुकृत रूपी बीजको बोके लोग उस ही भांति फल पाते हैं। जैसे बिना खेतके उक्त बीज निष्फल होते हैं, वैसे ही पुरुषार्थके बिना भाग्यकी कदापि सिद्धि नहीं होती; इसलिये पण्डित लोग पुरुषार्थको खेत भाग्यको बीज रूपसे उदाहरण दिया करते हैं, खेत और बीजके सम्बन्ध निबन्धनसे शस्योंकी वृद्धि हुआ करती है। यह लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, कि कर्त्ता स्वयं अपने सुकृत वा दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोगता है। किये हुए कर्म्म सर्व्वत्र ही फलित होते हैं और अकृत कर्म्मोंका फल कहीं भी नहीं दीख पड़ता। सब कृती पुरुष ही भाग्यके अनुसार प्रतिष्ठा पाते हैं और अकृति मनुष्य भ्रष्ट होकर खेतमें क्षार सेचन लाभ किया करता है, मनुष्य तपस्यारूपी कर्म्मके सहारे रूप, सौभाग्य और विविध रत्नोंको पाता है, अकृतात्मा पुरुष दैववशसे उसे नहीं पा सकता। इसके अतिरिक्त समस्त भोग, स्वर्ग और मनोकामना युक्त जो कुछ निष्ठा हैं, उन सबको विहित कर्म्म करनेवाला पुरुष प्रयत्नके सहारे पाता है। पुरुषार्थसे ही नक्षत्रों, देवताओं, नागों, यक्षों, चन्द्रमा, सूर्य्य और मरुद्गणोंने मनुष्यत्व उलङ्घन करके देवत्व लाभ किया है। अर्थ मित्र और कुल परम्परासे प्रचलित ऐश्वर्य्य तथा श्रीसम्पत्ति अकृतकर्म्मा मनुष्योंको प्राप्त होनी अत्यन्त दुर्लभ हैं। ब्राह्मण पवित्रतासे श्री लाभ करता है, क्षत्रिय पराक्रमसे सम्पत्तिवान होता है, वैश्य पुरुषार्थके सहारे धनी होता और शूद्र सेवासे ही श्रीसम्पन्न हुआ करता है। सब अर्थ अदाताकी सेवा करते हैं और कादर, क्रियारहित, निषिद्ध कर्म्म करनेवाले, निबल और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, वेभी अर्थवान नहीं होते।

जिसने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और देवता तथा दैत्य जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह यही भगवान विष्णु समुद्रगर्भमें तपस्या करता है। यदि अपने किये हुए कर्म्मोका फल न रहे, तो सब लाभ ही निष्फल होजावें, भाग्यको लक्ष्य करके उदासीन होना न चाहिये। बिना पुरुषार्थ किये जो पुरुष भाग्यका अनुवर्त्तन करता है, सोई निकट लीव पतिकी भांति वह पुरुष भी वृथा परिश्रम किया करता है। पापकर्म्मसे देवलोकमें जैसा भय उत्पन्न होता है, मनुष्य लोकमें शुभाशुभ कर्म्मोसे वैसा भय नहीं होता। उत्तम रीतिसे पुरुषका विहित प्रयत्न भाग्यके ही अनुसार किया करता है, बिना कर्म्म किये दैव किसीको भी कुछ देनेमें समर्थ नहीं होता, अकस्मात् निधि प्राप्त होनेपर भी उसमें किञ्चित कर्म्मकी सहायता है। जब कि देव लोकमें इन्द्रादि स्थान भी अनित्य दीख पड़ते हैं, तब बिना पुण्य कर्म्मके देवता लोग ही किस प्रकार स्थित रहेंगे और कैसे अन्य प्राणियोंको स्थापित करेंगे। देवता लोग इस लोकमें किसी पुरुषके पुण्यकर्म्मका अनुमोदन नहीं करते, कर्म्ममें विघ्न करनेवाले उग्रकर्म्म आत्माभिभवकी शङ्कासे विशेष आसक्त उत्पन्न करते हैं। ऋषिवृन्द और देवताओंको सदा ही शत्रुता उत्पन्न हुआ करती है अर्थात् ऋषियोंको तपस्याके समय देवता लोग विघ्न आचरण करते हैं और यह प्रसिद्ध है, कि च्यवन आदि ऋषियोंने इन्द्रादि देवताओंको पराजित किया था। [illegible] यदि देवर्षियोंका भी इस प्रकार कर्म्म-[illegible] हुआ है, तोभी यह नहीं कहा जासकता कि "भाग्य नहीं है," क्योंकि भाग्य ही [illegible] कर्म्ममें प्रवृत्त कराया करता है। [illegible] है। कर्म्मका प्रवर्त्तक हुआ, तब [illegible] जिस प्रकार कर्म्मकी उत्पत्ति [illegible] है पुण्यवान पुरुष निज धर्म्ममें [illegible] है, धर्म्मसे पुष्ट रहता है, नहीं तो सभी धर्म्ममें प्रवृत्त न होते। जैसे इस लोकमें अत्यन्त धनवान पुरुष वाणिज्यका फैलाव करके अतुल अर्थ उपार्ज्जन करता है, वैसे ही पुण्यवान पुरुष स्वर्ग लोकमें पुण्यके सहारे बहुतसा भोग उपभोग किया करता है। जीव आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है, आप ही अपने कृत और अकृत कर्म्मफलका साक्षी है। कर्म्म करनेसे ही पाप पुण्य प्रकाशित होता है; सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म्म यथार्थरूपसे फलदायक नहीं होते, उसका कारण यह है, कि पुण्यके द्वारा पाप और पापसे पुण्य नष्ट होके दोनोंके फल स्वर्ग और नरकका भोग नहीं प्राप्त होता। पुण्य ही देवताओंका गृहस्वरूप है, पुण्यसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है, पुण्यवान् मनुष्यके निकट दैव क्या कर सकता है, पुण्यकी अधिकता होनेसे दैव कर्म्म भी नष्ट हुआ करता है।

पहले समयमें राजा ययाति स्वर्गसे भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गिरे और पुण्य कर्म्म करनेवाले दौहित्रोंके द्वारा फिर स्वर्ग लोकमें चले गये, राजऋषि पुरूरवा जो इलाका पुत्र करके विख्यात है, वह राजा पहले समयमें ब्राह्मणोंसे अभिहित होकर स्वर्गमें गया। अयोध्याके राजा सौदास अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा सत्कृत होके भी महर्षिके शापवशसे मनुष्यभक्षी राक्षस हुए थे। अश्वत्थामा और परशुराम दोनों ही मुनिपुत्र और महाधनुर्द्धर होके भी इस लोकमें अपने किये हुए कर्म्मोके द्वारा स्वर्ग लोकमें न जासके। दूसरे इन्द्रके समान वसुने सौ यज्ञ पूरा करके भी एक ही बार मिथ्या वचन कहनेसे रसातलके नीचे गमन किया है। विरोचनका पुत्र राजा बलि देवताओंके धर्म पाशसे बद्ध होकर विष्णुके पुरुषार्थके [illegible] निवास करता है। और [illegible] पाप भी उसका कारण नहीं हुआ। [illegible] देवताओंके, तिमिङ्गिल-इन्द्रका [illegible]

करनेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका वध करते हुए क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञान वशसे ब्रह्महत्या करके भी बालक वध निबन्धनसे क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। और पुण्य भी किसी किसी पुरुषके परित्राणका हेतु नहीं होता, पहली समयमें राजऋषि नृग सहायज्ञमें ब्राह्मणोंको गोदान करके भी गिरगिट योनिको प्राप्त हुए थे। युवनाश्व राजऋषि यज्ञ करते ही करते जराग्रस्त हुए, वह देवताओंके दिये हुए वरको परित्याग करके गिरिव्रजमें निद्रित हुए थे, यज्ञका फल नहीं पाया। महाबली पराक्रमी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्य्योधन आदिने पाण्डवोंका राज्य हर लिया था, परन्तु पाण्डवोंने अपने भुजबलसे उस हृत राज्यको फिर ले लिया; उसमें दैव कुछ भी कारण नहीं है। तप नियमसे युक्त संशितव्रती मुनि लोग क्या दैवबलसे ही शाप दिया करते हैं? क्या कर्म्म-वशसे वे लोग अभिशाप नहीं देते? लोकमें अत्यन्त दुर्लभ महत्त वस्तु पापी पुरुषोंको प्राप्त होके फिर उसे परित्याग किया करती है, लोभ मोहसे युक्त मनुष्योंका दैव कभी परित्राण नहीं कर सकता जैसे बहुत थोड़ी अग्नि वायुके द्वारा बढ़के महान् होती है, वैसे ही कर्म्म संयुक्त दैव उत्तम रीतिसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे तेलके नष्ट होनेसे दीपकका नाश होता है, वैसे ही कर्म्म नष्ट होनेसे भाग्य भी नष्ट होजाता है। इस लोकमें कर्म्महीन मनुष्य बहुतसा धन, उपभोग विषय और स्त्रियोंको पाके भी उप-भोग करनेमें समर्थ नहीं होते; और सदा उद्योगी मनुष्य भाग्यके सहारे बच्यमाण पृथ्वीमें पड़ी हुई निधि भी पाते हैं। सदाप्रिय देवता लोग व्ययशाली साधु पुरुषोंके सदाचारके निमित्त संशय करते हैं, अर्थात् अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उसे ही उपजीव्य किया करते हैं। मनुष्य लोकसे देवलोकको उत्तम देखकर साधु लोग श्रेष्ठ फल पानेके लिये सर्व्वस्व व्यय करके भी यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते हैं; और मनुष्योंका गृह अनेक प्रकारकी समृद्धियोंसे परिपूरित होनेपर भी यदि उसमें यज्ञ आदि कर्म्म न हों, तो देवता लोग उस स्थानको श्मशानके समान देखते हैं। जीव लोकमें कर्म्महीन मनुष्यकी तृप्ति लाभ नहीं होती और केवल दैवकुमार्गी मनुष्योंको निवारित करके नहीं रख सकता; इसलिये दैवकी कुछ भी प्रभुता नहीं है। परन्तु जैसे शिष्य गुरुका अनुसरण करता है, वैसे ही दैवकर्म्म पुरुषार्थ जिन जिन विषयोंमें उत्तम रीतिसे अनुष्ठित होता है, उन्हीं विषयोंमें भाग्यकी उत्पत्ति हुआ करती है। जब यत्नके सहारे पुरुषकी कार्य्य सिद्धि होती है, तब लोग कहते हैं, कि "दैवकी अनुकूलतासे यह कार्य्य सिद्ध हुआ है।" हे मुनिसत्तम! मैंने यथार्थ रूपसे योगयुक्त दृष्टिके द्वारा अनुभव करके तुम्हारे समीप यह सब पुरुषार्थका फल वर्णन किया है। भाग्यके उदय होने तथा पूरी रीतिसे कर्म्म प्रारम्भ करने अर्थात् शास्त्रविहित कर्म्मसे लोकमें स्वर्गपथ प्राप्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे प्रश्न करता हूं, आप शुभ कर्म्मोंका फल मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतकुल धुरन्धर युधिष्ठिर! बहुत अच्छा, तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं तुम्हारे समीप वही विषय कहता हूं। मरनेके अनन्तर दूसरा शरीर मिलनेपर जिस कर्म्मसे जो चिरप्सित फल प्राप्त होता है, ऋषियोंके उस रहस्य विषयको सुनो। जो पुरुष जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता

है अर्थात् मनके द्वारा किये हुए कर्म्मोंके फल स्वप्नावस्थामें मनके ही सहारे भोगे जाते हैं और शरीरके द्वारा जो कर्म्म किये जाते हैं, वे जाग्रत अवस्थामें शरीरसे ही भोगे जाते हैं। मनुष्य, बालक, युवा अथवा आपद वा निरापद अवस्थामें जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता है। इस जन्ममें पञ्च इन्द्रियोंके द्वारा नित्यके किये हुए कर्म्म कभी निष्फल नहीं होते, वे पांचों इन्द्रियें और छठवां आत्मा सदा उस कर्म्म करनेवालेके साक्षी हुआ करते हैं। अभ्यागत पुरुषके विषयमें कोमल दृष्टि कर, सत्य और प्रिय वचन कहे, उसका अनुगमन कर और उसकी उपासना करनी चाहिये, यही पञ्च दक्षिणायुक्त यज्ञ है। जो लोग अनदेखे तथा मार्गके थके हुए पथिकको उत्तम अन्नदान करते हैं, उन्हें अपरिमित पुण्यफल मिलता है। वाणप्रस्थ व्रताचारी कुशापर शयन करनेवाले मनुष्योंको गृह तथा शय्या आदि प्राप्त होती हैं और चीरवल्कलधारी योगयुक्त तपस्वियोंको वस्त्र, आभूषण, वाहन, यान आदि फलस्वरूपसे प्राप्त हुआ करते हैं, अग्निके समीप शयन करनेवाले लोगोंको राजाका पौरुष प्राप्त होता है, रसोंको प्रतिसंहार करनेसे सौभाग्य हुआ करता है। मांसका प्रतिसंहार करनेसे पशु और पुत्र प्राप्त होते हैं, जो अवाक्शिरा होकर लटकते रहते हैं और जो लोग जलमें निवास करते हैं, तथा जो [illegible] सदा अकेले ही शयन करते अर्थात [illegible] व्रत अवलम्बन किया करते हैं, वे लोग [illegible] गति पाते हैं। जो लोग अतिथिपू[illegible] पाद्य, अर्घ्य, आसन, दीपक, अन्न, [illegible]-स्थान दान करते हैं, वे यज्ञदाक्षिण्य [illegible] होते हैं, जो लोग रत्नभूमिमें [illegible] और काष्ठशय्यापर शयन करते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं। हे महाराज। दान करनेसे धन लाभ होता है, मौन रहनेसे अविच्छिन्न आज्ञा प्राप्त हुआ करती है, तपस्यासे उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वारा दीर्घजीवन लाभ होता है, अहिंसासे ऐश्वर्य्य और आरोग्य भोग प्राप्त होता है, फलमूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता खानेवालोंको स्वर्ग मिलता है। हे महाराज! योगयुक्त होके बैठनेवालोंके लिये सर्व्वत्र सुख वर्णित हुआ करता है। जो लोग केवल शाक भोजन करके नियम अवलम्बन करते हैं, वे लोग गोसमूहसे पूजित होते हैं। तृणभोजी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते हैं। स्त्री सहवास परित्याग करके जो लोग नियमपूर्व्वक तीन बार स्नान करते तथा वायु पीके रहते हैं, वे सत्य संकल्पत्व लाभ करते हैं, सत्यके द्वारा स्वर्ग मिलता है, और यज्ञके सहारे उत्तम कुलमें जन्म हुआ करता है। जो संस्कारयुक्त ब्राह्मण जलशायी होते हैं उनके अविच्छिन्न अभिलाष सम्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रोंको सिद्ध करते हैं, उन्हें राज्य मिलता है। अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे स्वर्गलोकमें वास होता है। हे राजन्! बारह वर्षके यथाक्रम उपवास व्रतके लिये ब्राह्मणको दूध आदि पीना व्रत है, और क्षत्रीको यवागूका आहार ही व्रत है, वैश्यको आमिक्षा आहार ही व्रत और अभिषेक अर्थात् बारह वर्षकाल तीर्थ भ्रमण व्रत करनेसे और स्नान स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मनुष्य सब वेदोंको पढ़नेके सहारे लिये दुःखोंसे छूट जाता है, [illegible] [illegible] धर्म्माचरण करनेसे स्वर्ग लाभ [illegible] है। नीचबुद्धि पुरुषोंसे जो दुस्त्यज्य है, [illegible] बूढ़े होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होता [illegible] प्राणान्तिक रोग स्वरूप है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे अप्रेरित फल और फूल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। बूढ़े पुरुषोंके केश झड़ जाते, दांत गिर जाते, दोनों नेत्र और दोनों कान जीर्ण होजाते हैं, परन्तु एकमात्र तृष्णा कभी जीर्ण नहीं होती। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके द्वारा प्रजापति प्रसन्न होते हैं, और जिसके द्वारा माताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके सहारे पृथ्वी पूजित होती है। जिन कर्म्मोंसे गुरुको प्रीति युक्त किया जाता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है; पिता, माता और गुरु, ये तीनों ही जिससे आदरयुक्त होते हैं, उसके सब धर्म्म ही आदृत होते हैं, और ये तीनों जिससे अनादृत होते हैं, उसकी समस्त क्रिया ही निष्फल होती है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुरुप्रवीर पुरुष भीष्मके ऐसे वचनको सुनके विस्मित हुए और उस समय वे लोग प्रसन्नचित्त तथा प्रीतियुक्त हुए थे। जैसे जिगीषा आदिके निमित्त मन्त्रका उच्चारण निष्फल होता है, जैसे बिना दक्षिणाके सोमयाग निष्फल होजाता है, जैसे बिना मन्त्रके होमसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् इन तीनोंसे जो पाप हुआ करता है, मिथ्या बोलनेवालेको वह सब पाप प्राप्त होता है। हे महाराज! शुभाशुभ फलकी प्राप्तिके निमित्त यह मैंने ऋषियोंके कहे हुए समस्त विषय वर्णन किया अब कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करते हो?

७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये; आप किन लोगोंको नमस्कार करते हैं। यह सब तथा आप जिन लोगोंकी स्पृहा करते हैं, वह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये, अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी आपका मन जिसमें अनुरक्त रहता है, मनुष्य लोक तथा परलोकमें जो कुछ हितकर हो, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जिन लोगोंका, आत्मप्रत्यय ही स्वर्ग स्वाध्यायसाधन ही तपस्या और ब्रह्म ही परम धन है, मैं उन ब्राह्मणोंकी ही सदा स्पृहा किया करता हूं; जिनके बालक और बूढ़े पितर पितामहके भारको उठाया करते हैं और अवसन्न नहीं होते, मैं उन्हीं लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। हे तात युधिष्ठिर! विद्याविनयसे सम्पन्न, दान्त, कोमल वचन कहनेवाले, शास्त्र-ज्ञान और सच्चरित्रसे युक्त ब्रह्मवित् साधु पुरुषोंको सभाके बीच हंसके जल परित्याग करके दूध पीनेकी भांति आत्मानात्म विचार करके वचन बोलते रहनेपर उनके मङ्गलमय मनोहर बादलके दिव्य शब्दसमान पूरी रीतिसे कहे हुए सब वचन सुनाई देते हैं, सेनायुक्त राजाके समीप कहे हुए वे सब वचन इस लोक और परलोकमें सुखदायक हुआ करते हैं। विज्ञानगुणसे युक्त सभाके बीच सम्मानभाजन जो सब मनुष्य सदा साधुओंके कहे हुए वचनोंको सुनते हैं, मैं उन लोगोंकी भी बड़ाई किया करता हूं। हे युधिष्ठिर! जो लोग श्रद्धापूर्व्वक उन ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके निमित्त उत्तम, पवित्र और सुगन्धयुक्त अन्न दान करते हैं, मैं उन लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। रणभूमिमें संग्राम करनेमें अनायास ही सामर्थ्य होती है, परन्तु असूयारहित भावसे दान करना सहज नहीं है। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें सैकड़ों शूरवीर पुरुष हैं, जिनकी गिनती करनेके समय दानवीर ही सबसे श्रेष्ठ होता है, हे प्रियदर्शन! तप और विद्यामें रत धर्म्मकी गति सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है, मैं जन्मान्तरमें कुत्सित् ब्राह्मणकुलमें जन्म पानेसे

भी श्रेय हूंगा, हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र ! इस लोकमें तुमसे बढ़के मेरे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं। हे कुरुसत्तम ! जब ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं तो इस ही सत्यके प्रभावसे मैं उन लोकोंमें गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु विराजमान हैं। ब्राह्मणोंसे बढ़के पिता, पितामह और दूसरे सुहृद लोग भी मेरे अधिक प्रिय नहीं हैं। इस लोकमें ब्राह्मणोंके निकट मुझे किसी फल पानेकी आशा नहीं है, पूज्य समझके ही देवताओंकी भांति मैं उनकी पूजा किया करता हूं; साधुकार्य्यमें मैं तनिक तथा अधिक परिमाणसे फलकी आशा नहीं करता।

हे शत्रुतापन ! कर्म, मन और वचनसे मैंने ब्राह्मणोंकी जो कुछ आराधना की है, इस समय शरशय्यामें पड़े रहनेपर भी मैं उस ही ब्राह्मण पूजाके प्रभावसे दुःखित नहीं हुआ। प्राचीन लोगोंने मुझे ब्राह्मण जातिके पराभव करनेमें असमर्थ कहा है, मैं उसही वचनसे सन्तुष्ट हुआ हूं, यह समस्त पवित्रतासे भी परम पवित्रता कहके वर्णित हुआ है। हे तात ! मैं सब लोकोंको ही पवित्र और निर्म्मल देखता हूं, मैं ब्राह्मणोंका दास हूं, इसलिये शीघ्र ही सदाके लिये उन पवित्र लोकोंमें गमन करूंगा। हे युधिष्ठिर ! जैसे इस लोकमें पति ही स्त्रियोंकी देवता है, वैसे ही ब्राह्मण ही क्षत्रियोंके [illegible] और ब्राह्मण ही क्षत्रियोंकी गति है; इसके अतिरिक्त क्षत्रियोंके लिये दूसरी कोई [illegible] नहीं है। जो [illegible] वर्षकी अवस्था वाला [illegible] और दस वर्षकी अवस्थावाला उत्तम [illegible] पर रहनेसे [illegible] होते हैं इन [illegible] ब्राह्मण ही गुरु है। जैसे स्त्री [illegible] पतिको [illegible] तुल्य मानती है, [illegible] ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रियको [illegible] है। [illegible] दस-

लिये क्षत्रियोंको चाहिये कि पुत्रकी भांति ब्राह्मणोंकी रक्षा करें, ब्राह्मण गुरु समान पूजनीय और अग्निकी भांति उपचारके योग्य हैं, इसलिये सरल साधु सत्यशील सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले क्रुद्ध विषैले सर्प समान ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करनी योग्य है।

हे युधिष्ठिर ! तेज और तपस्यासे सदा भय करना उचित है, तपोबल और तेजोबल दोनों ही परित्याज्य हैं। क्षत्रियोंके तेज और ब्राह्मणोंकी तपस्या इन दोनोंके फल अत्यन्त तीव्र हैं। हे महाराज ! परन्तु तेजस्वी क्षत्रियकी अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मण क्रुद्ध होने पर शीघ्रही मनुष्योंका नाश करते हैं। अक्रोधी ब्राह्मणके निकट प्रयोग किया हुआ तेज और तप, वे दोनों ही अधिक होने पर भी खण्डित होते हैं, और दोनों ही यदि शेष करें, तो क्षमा रागके द्वारा खण्डित तेजका जो कुछ अंश शेष रहेगा, वह निःशेष न करनेपर भी अवश्य ही निःशेष होगा। जैसे गोपाल सदा हाथमें दण्ड लेकर गौवोंको पालन करता है, वैसेही क्षत्रिय राजा ब्राह्मण और वेदोंकी सब प्रकारसे रक्षा करे। जैसे पिता पुत्रोंको पालन करता है, वैसेही धर्म्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी रक्षा करे और उन लोगोंके गृह तथा जीविका निर्वाहके योग्य कोई वस्तु है वा नहीं, उसे ज्ञान किया करे, यदि कोई वस्तु न हो, तो उसे दान करे।

८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महातेजस्वी धार्म्मिकश्रेष्ठ पितामह ! जो सब दुराचारी मनुष्य ब्राह्मणोंको दान देनेका [illegible] करके फिर [illegible] उसमें [illegible] नहीं देते हैं, [illegible] [illegible] दशा होती है, [illegible] [illegible] [illegible]

भीष्म बोले, जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दान करनेका [illegible] करके फिर [illegible]

दान नहीं करता, उसकी सब आशा इस प्रकार नष्ट होजाती है, जैसे नपुंसक पुरुषकी पुत्रकी लालसा नष्ट होती है। हे भारत। जीव जिस समय जन्मता और जिस समय नष्ट होता है, उस जन्म और मृत्युके मध्यकाल अर्थात् जीवनके समयमें उसका जो कुछ सुकृत होता है, तथा वह जो कुछ होम, दान और तपस्या करता है,—उस पुरुषके वे सभी कर्म्म निष्फल हुआ करते हैं। हे भरतश्रेष्ट! धर्म्मशास्त्र जाननेवाले मनुष्य परम युक्तिवती बुद्धिसे विचार करके उक्त वचन कहा करते हैं और वे लोग यह भी कहते हैं, कि एक हजार श्यामकर्ण घोड़े दान करनेसे इसका प्रायश्चित्त होता है, इस अशक्य कार्य्यका अनुष्ठान असाध्य है, इसीसे पाप नष्ट नहीं होता। हे भरतनन्दन! प्राचीन लोग इस विषयमें सियार और बन्दरके सम्वाद युक्त यह पुराना इतिहास कहते हैं,—हे शत्रुतापन! पहले मनुष्य जन्ममें वे दो भाई थे। इस समय दूसरे जन्ममें एक सियार योनि और दूसरा बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ था। अनन्तर बन्दरने सियारको श्मशानके बीच मरे मनुष्योंका मांस भक्षण करते हुए देखकर पूर्व्वजाति स्मरण करके कहा, कि तुमने पहले जन्ममें ऐसा कौनसा दारुण पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे इस श्मशानमें निन्दनीय मृतक शरीरको भक्षण करते हो। सियार उस समय ऐसा वचन सुनके बन्दरसे बोला, मैंने ब्राह्मणोंको देनेको कहके उन्हें दान नहीं किया था। हे शाखाविहारी! इस ही निमित्त मैं पापयोनिको प्राप्त हुआ हूं और उसही कारणसे भूखा होकर इस प्रकार निन्दित भक्ष्य भक्षण करता हूं।

भीष्म बोले,—हे नरोत्तम। सियारने फिर बन्दरसे कहा, तुमने क्या पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे बन्दर हुए हो।

बन्दर बोला, मैं सदा ब्राह्मणोंका फल खाया करता था, इस ही कारण बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये विद्वान् पुरुषोंको उचित है, कि ब्राह्मणोंको वस्तुको हरण न करें। ब्राह्मणोंके सङ्ग विवाद करना योग्य नहीं है और उन्हें देनेको कहके अवश्य दान देना उचित है।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले जब मेरे गुरु यह ब्राह्मणोंकी कथा कह रहे थे, तब उनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। हे नरनाथ! जब धर्म्मज्ञ व्यासदेव पवित्र और प्राचीन इतिहास कह रहे थे, तब उनके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी थी। हे पाण्डव। फिर ब्राह्मणोंके विषयमें श्रीकृष्णके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी है; ब्राह्मणोंका धन हरना उचित नहीं है, सदा उन लोगोंके विषयमें क्षमा करनी चाहिये। चाहे ब्राह्मण बालक हो, दरिद्र हो अथवा कृपण ही होवे, उसकी कदापि अवमानना न करनी चाहिये, ब्राह्मण लोग मुझे सदा ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं, ब्राह्मणोंके समीप देनेका सङ्कल्प करके उन्हें दान देना ही उचित है, ब्राह्मणोंकी आशाको निष्फल करना योग्य नहीं है। हे पृथ्वीपाल! ब्राह्मण लोग पहलेकी की हुई आशासे जलती हुई अग्निकी भांति समृद्ध हुआ करते हैं। हे महाराज। वे पहलेकी आशासे संयुक्त होके क्रोधपूर्व्वक जिसकी ओर देखते हैं, उसे इस प्रकार भस्म किया करते हैं, जैसे अग्नि तृण काठ प्रभृतिको जला देती है और जब वेही प्रसन्न होकर प्रशान्त वचनसे जिसे अभिनन्दित करते हैं, उसका राज्यचिकित्सकके समान होता है, उसके निकट कोई आपदा नहीं रहती, पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव, मन्त्री, पुर और प्रजा, सबको ही वह पुरुष शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे पालन करता है; पृथ्वीपर सहस्र किरणवाले सूर्य्यके तेज समान ब्राह्मणोंका यह परम तेज दीख पड़ता है। हे भरतसत्तम युधिष्ठिर! यदि कोई उत्तम जाति प्राप्त

[illegible]की इच्छा करे, तो उसे योग्य है, कि ब्राह्मणोंके निकट देनेका सङ्कल्प करके दान करे। ब्राह्मणोंको दान देनेसे अत्यन्त उत्तम अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, इसलिये दानके समान महत् कार्य्य और कुछ भी नहीं है इस लोकमें दान करनेसे देवता और पितर लोग जीवन धारण किया करते हैं, इसलिये ज्ञानवान् मनुष्य ब्राह्मणोंको देने योग्य वस्तु दान करें, क्यों कि ब्राह्मण ही दानका पात्र है. हे भरतश्रेष्ठ। ब्राह्मण ही महत् तीर्थरूपमें वर्णित होते हैं, इसलिये किसी समयमें ही ब्राह्मण अपूजित होकर गमन न करें।

९ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजर्षि! उपकारकी इच्छा करके जो लोग उपकार करते हैं, वैसी मित्रता और उपकारकी इच्छा न करके जो पुरुष उपकर्त्ता बनते हैं, वैसी मित्रतासम्बन्धके वशमें होकर यदि कोई पुरुष नीच जातिको उपदेश करे, तो उसे कुछ दोष होता है, वा नहीं? हे पितामह! जिससे मनुष्य लोग मोहित होते हैं, वह धर्म्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिये ऊपर कहे हुए विषयको यथार्थ रूपसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले ऋषियोंने [illegible] वर्णन किया था, मैं जिस प्रकार [illegible] तुम्हारे समीप कहता हूं. [illegible] किसी नीच जातिको उपदेश करना [illegible] है क्यों कि [illegible] शास्त्रमें वर्णित [illegible] मनुष्यको उपदेश करनेसे उपदेश [illegible] महत् दोष होता है। हे भरत [illegible] पहले समयमें [illegible] [illegible] [illegible] ब्रह्माश्रमके निकट एक पवित्र आश्रम है, वह अनेक प्रकारके वृक्ष गुल्म और लताओंसे परिपूरित, हरिण और पक्षियोंसे सेवित, सिद्ध-चारणोंसे युक्त और फूले हुए वनसे शोभित रहनेसे अत्यन्त रमणीय था; वह स्थान बहुतेरे ब्रह्मचारी और वाणप्रस्थ पुरुषोंसे परिपूर्ण था, सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण लोग वहां सदा निवास करते है। हे भरतश्रेष्ठ। वह आश्रम नियम व्रतयुक्त, दीक्षित, मिताहारी शुद्धचित्तवाले तपस्वियोंसे परिपूरित था। हे भरतप्रवर। वह तपस्या और अध्ययनके शब्दसे निनादित तथा बहुतेरे वालखिल्य वा सन्यासियोंसे निषेवित था। पहले समयमें प्राणियोंके अभय निबन्धनसे दयायुक्त होकर कोई शूद्र सन्यास धर्म्म अवलम्बन करके भली भांति उत्साहपूर्व्वक उस आश्रममें उपस्थित हुआ। शूद्र सन्यासीको आश्रममें आया हुआ देखके तपस्वियोंने उसका बहुत आदर किया। हे भारत। वह उन मुनियोंको देवताओंके समान महातेजस्वी और अनेक प्रकारके नियमोंसे युक्त देखके अत्यन्त हर्षित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उसके मनमें यह विचार हुआ कि "मैं तपस्या करूं" हे भारत! तब वह कुलपतिके दोनों चरणोंको पकड़के बोला, हे द्विजवर! मैं आपकी कृपासे धर्म्म जाननेकी अभिलाष करता हूं हे भगवान्। इसलिये आप मुझसे धर्म्म कहने और परित्याग करानेमें उपयुक्त हैं। हे प्रभु। मैं नीचवर्ण शूद्र जाति हूं, इसलिये आपकी सेवा करनेकी इच्छा करता हूं, आप मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न होइये।

[illegible] बोले, [illegible] शूद्र इस आश्रममें निवास करनेमें समर्थ नहीं होता, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम आश्रममें [illegible] सेवा करो; [illegible] [illegible]

भीष्म बोले, महाराज [illegible]

शूद्रसे ऐसा कहा, तब उसने सोचा, कि "मैं इस स्थानमें क्या करूंगा? मुझे धर्मनिष्ठामें श्रद्धा है, मैं अपना प्रियकार्य्य करूंगा, इस ही प्रकार मालूम होवे" अनन्तर उसने उस आश्रमसे दूर जाके एक कुटी बनाई और वहां पूजाके निमित्त वेदी, शयन करनेका स्थान तथा देवताओंका स्थान बनाया। हे भरतश्रेष्ठ! उसने उस ही कुटीमें प्रवेश करके नियमनिष्ट होकर मौनव्रत अवलम्बन किया। वह शूद्र सन्न्यासी त्रिसन्ध्या स्नान करके देवस्थानमें नियम पूर्वक बलि और होम करके उनको पूजा करता था, सङ्कल्पित नियमनिष्ठ और जितेन्द्रिय होके फल भोजन करता तथा औषधि और फलसे सदा निकटवर्त्ती अतिथियोंकी यथावत् पूजा करता था। इस ही प्रकार उसका बहुत समय व्यतीत हुआ।

अनन्तर कोई मुनि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये उसके आश्रममें उपस्थित हुए। उसने उस ऋषिसे स्वागत प्रश्न करके भली भांति विधिपूर्व्वक पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। परम तेजस्वी संशितव्रती धर्म्मात्मा ऋषि उसके सङ्ग अनुकूल वचन कहके जिस निमित्त आये थे, वह उससे समीप वर्णन किया, हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इस ही प्रकार वह ऋषि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये बार बार उसके आश्रम पर आते थे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर शूद्र उस तपस्वीसे बोला, मैं पितृकार्य्य करूंगा, आप उस विषयमें मेरे ऊपर कृपा करिये। हे भारत! ब्राह्मणने उसका वचन स्वीकार किया, तब शूद्र पवित्र होकर ऋषिके निमित्त पाद्य ले आया। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर दाभ और वनकी औषधि, पवित्र आसन तथा व्रती पुरुषोंके लिये आसन लाया। अनन्तर दक्षिण दिशाको आवरण करके अन्यायपूर्व्वक व्रतीका आसन पश्चिमाग्र रूपसे रखा गया था, उसे देख कर ऋषिने उस शूद्रसे कहा, "इस आसनको पूर्व्वशीर्ष करो और तुम पवित्र तथा उदङ्मुख होकर बैठो।" जब ऋषिने ऐसा कहा तब शूद्रने वैसाही किया। धर्म्ममार्गमें गमन करनेवाला मेधावी शूद्र दाभ, अर्घ हव्यकव्य आदिसे जिस प्रकार पितर कार्य्य करना योग्य था, वह सब उस तपस्वी ऋषिके वचनके अनुसार पूरा किया, जब उसका पितृकार्य्य पूरा हुआ, तब ब्राह्मणने उसके समीपसे बिदा होकर प्रस्थान किया।

अनन्तर वह शूद्र तपस्वी बहुत समयतक तपस्याचरण करके वनके बीच पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। हे तात! महातेजस्वी शूद्र उस पूर्व्वजन्मके पुण्य सञ्चयसे महाराजवंशमें उत्पन्न हुआ और वह विप्रर्षि उस ही समयमें मरके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए। हे भरतश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह शूद्र और मुनि उस स्थानमें उत्पन्न होके दोनों ही धीरे धीरे वर्द्धित होकर विद्या विषयमें दक्ष होगये। ऋषि अथर्व्व वेद तथा ऋक् यजु और साम, इन तीनो वेदोंमें सुशिक्षित हुए, तथा सूत्रोक्त यज्ञ प्रयोग और ज्योतिषशास्त्रके भी पारदर्शी हुए, सांख्य शास्त्रमें भी उनकी परम प्रीति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हुई। इधर पिताके परलोकमें गमन करनेपर राजपुत्र सो पवित्र चरित्रवाली प्रजासमूहसे अभिषिक्त होकर पृथ्वीपति हुआ। उसने अभिषिक्त होकर उस ऋषिको अपना पुरोहित बनाया।

हे भरतश्रेष्ठ! राजा उसे पुरोहित बनाके परम सुखसे वास करने लगा, वह धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करते हुए राज्य शासन करता था, वह राजा सदा धर्म्मकर्म्ममें पुण्याहवाचनके समय पुरोहितको देखकर उपहास करके हंसता था। पुरोहित बार बार उस राजाको उपहास करते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ। अनन्तर पुरोहितने एक समय एकान्त स्थानमें राजाके सङ्ग मिलके अनुकूल वचनसे उसे प्रसन्न किया। हे भरतर्षभ! फिर उस पुरोहितने राजासे कहा, हे महातेजस्वी! मेरी यह इच्छा

है, कि आप मुझे एक वरदान करिये । राजा बोला, हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपको एक सौ वर प्रदान करूं, अथवा एक ही वर दूं ? प्रीति और बहुमान वससे आपको देनेके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ।

पुरोहित बोला, हे महाराज ! यदि आप प्रसन्न हुए हो, तो मैं एक वर मांगता हूं, आप प्रतिज्ञा करके सत्य वचन कहना, मिथ्या न बोलना ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! राजाने उससे कहा 'ऐसा ही होगा' परन्तु यदि मुझे मालूम होगा, तो मैं कहूंगा और यदि न मालूम होगा, तो न कह सकूंगा ।

पुरोहित बोला, प्रतिदिन धर्मकार्य्यके उपलक्षमें पुण्याहवचनके समय और शान्ति तथा होमके समयमें आप मेरी ओर देखके किस निमित्त हंसते हैं । आपके हंसनेसे मेरा मन अत्यन्त लज्जित होता है । हे महाराज ! मैं इसका कारण जाननेके लिये अपना अङ्ग स्पर्श कराके आपसे शपथ कराता हूं, कि आप मिथ्या न कहें । आपकी हंसी अकारण न होगी, इससे अवश्य ही कुछ स्पष्ट कारण है, इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है ; आप यथार्थ रीतिसे इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये ।

राजा बोला, हे विप्र ! आपने जब इस प्रकार कहा है, तब मेरे पक्षमें यह विषय न कहने योग्य होनेपर भी मैं अवश्य कहूंगा, [illegible] चित्त एकाग्र करके सुनिये । हे द्विजश्रेष्ठ ! [illegible] हुआ था, [illegible] कहता हूं, [illegible] हे द्विजसत्तम ! पूर्वजन्ममें मैं अत्यन्त [illegible] था, उस समयमें आप भी उग्र [illegible] हे पापरहित ब्रह्मन् [illegible] [illegible] उपदेश दिया था । हे मुनिसत्तम ! [illegible] [illegible] विषयमें [illegible]

आसन, दास और हव्य-कव्य आदि सब कृत्य-कौशल आपने जिस प्रकार मुझे उपदेश दिया था, मैंने उसहीके अनुसार सब कार्य्य किया था, इस ही कर्म्मदोषसे आप मेरे पुरोहित ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं और मैं राजा हुआ हूं । हे विप्रवर ! इससे कालको उलटी गति देखिये, मैं शूद्र होके भी जातिस्मर हुआ हूं और आप मुनि होनेपर भी पुरोहित हुए हैं ; आपने जो मुझे उपदेश दिया था, उसका यही फल प्राप्त हुआ है । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस ही कारणसे मैं आपको देखकर हंसता हूं, आपका उपहास करनेके लिये मैं नहीं हंसता, क्यों कि आप मेरे गुरु हैं । इस उलटी गतिको देखकर मुझे जो दीनता हुई है, उसहीसे मेरा अन्तःकरण दुःखित होता है, मैं जातिको स्मरण करता हूं, इस ही लिये आपको देखकर हंसता हूं । इस ही प्रकार उपदेश करनेसे आपकी दारुण तपस्या नष्ट हुई है, इसलिये आप पुरोहितका कार्य्य परित्याग करके अगाड़ीके वास्ते प्रयत्न करिये । हे द्विज ! जिससे कि आप इससे भी बढ़के दूसरी कोई अधम योनि न पावें । हे ब्रह्मन् ! आप इस विपुल वित्तको ग्रहण करके पुण्यात्मा होइये ।

भीष्म बोले, अनन्तर वह विप्र राजाके समीपसे विदा मांगके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, भूमि और ग्राम दान किया । ब्राह्मणोंके [illegible] हुए कृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करके तीर्थोंमें गमन करके ब्राह्मणोंको गोदान तथा [illegible] भांति भां[illegible] वस्तु दान देकर [illegible] [illegible] हुआ और [illegible] आकर [illegible] स्वाचरण करने लगा । हे राजसत्तम ! [illegible] उस ब्राह्मणने [illegible] [illegible] [illegible] हे कुरुसत्तम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उपदेश न दें ।

राज। ब्राह्मण सदा ही उपदेश देनेसे विमुख नहीं, उपदेश देनेसे उन्हें क्लेश मिलता है। हे नृपसत्तम। ब्राह्मणको योग्य है, कि सदा वचनको संयम कर रखे, इस लोकमें हीनवर्णवाले पुरुषसे कुछ भी न कहे। हे महाराज! ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनोंवर्ण द्विजाति हैं, इन्हें उपदेश करनेसे ब्राह्मण कदापि दूषित नहीं होता है; परन्तु किसीके निकट कुछ भी न कहना। साधुओंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि धर्म्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है इसहीसे वह अकृतात्म पुरुषोंको नहीं मालूम होती, इसही कारणसे मुनि लोग आदरयुक्त होके भी मौनव्रत अवलम्बन करते हैं; यदि कुछ वचन कहनेसे दोषी होना पड़े, इस ही भयसे वे लोग कुछ भी नहीं कहते। धार्म्मिकगण, तथा सत्य और सरलतायुक्त मनुष्य भी न कहने योग्य वचन कहनेसे पापभागी होते हैं। इसलिये कदापि किसीके विषयमें उपदेश करना उचित नहीं है, ब्राह्मण लोग जिसे उपदेश करते हैं, उसके पापके फलभागी होते हैं, इस लिये धर्म्मकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको उचित है, कि विचारके वचन कहे। वाणिज्य और धनके लाभसे जो उपदेश किया जाता है, वह उपदेश करनेवालेका अवश्य ही नष्ट करता है। पूछने पर विशेष निश्चय करके बोलना उचित है। जिससे धर्म्म प्राप्त हो, वैसा ही उपदेश करना चाहिये। यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सब वृत्तान्त कहा और उपदेश भी किया, अधम पुरुषको उपदेश देनेसे अत्यन्त क्लेश प्राप्त होता है, इसलिये इस लोकमें वैसे पुरुषोंको उपदेश करना उचित नहीं है।

१० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। कैसे पुरुष अथवा कैसी स्त्रीमें कमलालक्ष्मी सदा निवास करती है? आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें जैसी घटना हुई थी और मैंने जिस प्रकार सुना है, तथा श्रीकृष्णके निकट रुक्मिणीने लक्ष्मीसे जो प्रश्न किया था, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो प्रद्युम्नकी माता नारायणके अङ्कवासिनी रुक्मिणी कमलवर्णा प्रकाशमान लक्ष्मीको उत्तम प्रकार नेत्रसे देखकर कौतूहलवशसे प्रश्न किया। हे महर्षि कान्ते। त्रिलोकेश्वर कान्ते। इस लोकमें तुम कैसे मनुष्यके निकट हाथी घोड़ेके स्कन्धसे तथा धीरज सुन्दरताई वा पराक्रम आदि रूपसे निवास करती हो और कैसे लोगोंके समीप नहीं जाती? इस विषयको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन करो। जब गरुड़ध्वजके सम्मुखमें रुक्मिणी देवीने लक्ष्मीसे ऐसा प्रश्न किया, तब वह चन्द्रमुखी प्रसन्न होकर उत्तम और मधुरवचन कहने लगी।

लक्ष्मी बोली, हे सुभगे। मैं प्रतिभावन, निरालसी, कार्य्यदक्ष, क्रोधरहित, देवताओंकी आराधनामें निष्ठावान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उद्योगी पराक्रमी पुरुषके निकट सदा निवास किया करती हूं और जो पुरुष कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं है, जो नास्तिक, वर्णसङ्कर करनेवाले, कृतघ्न, भिन्न चरित्र, निठुर वचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंकी असूया करनेवाले है,—उनके निकट कदापि निवास नहीं करती और जो लोग अल्पपराक्रमी, अल्प बलवाले, अल्प बुद्धि तथा अल्प मानयुक्त हैं, जो किसी विषयमें पुरुषके निकट क्लेश पाते और क्रोध करते हैं वैसे गुप्त-मनोरथी अर्थात् जो एक विषयकी चिन्ता करते हुए दूसरे विषयमें जा पड़ते हैं वैसे मनुष्योंके समीप में कभी स्थित नहीं होती। इसके अतिरिक्त जो पुरुष अपनी किसी प्रकारकी उन्नतिकी इच्छा नहीं करते, जिनका अन्तरात्मा स्वभावहीसे उपहत हुआ है, उन अल्प सन्तोषवाले मनुष्योंके निकट मैं पूरीरीतिसे निवास नहीं करती। स्वधर्म्ममें निष्ठावान,

[illegible], वृद्धोंकी सेवामें रत रहनेवाली, दान्त, [illegible], क्षमाशील, सत्यस्वभाव, सरल, देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाली स्त्रियोंमें मैं निवास करती हूं। जिसके घरकी सामग्रियें इधर उधर बिखरी रहती हैं जो स्त्री बिना विचारे कार्य करती है, सदा पतिके विषयमें प्रतिकूल आचरण किया करती है, जो पराये घरमें [illegible] करनेमें अनुरक्त तथा लज्जाहीन होती है, मैं वैसी स्त्रीको परित्याग किया करती हूं। और पतिव्रता, कल्याणशीला, विभूषित, सत्यवादिनी, प्रियदर्शना, सौभाग्ययुक्त और गुणवती स्त्रीके निकट मैं सदा निवास करती हूं। और दयारहित, अपवित्र, अवलेहिनी अर्थात् सदा शयन करनेवाली स्त्रीको मैं परित्याग किया करती हूं। सब प्रकारकी सवारियें, कन्यासमूह, विभूषण, यज्ञस्थान, वृष्टियुक्त मेघमण्डल, फूले हुए कमलदलों, शरदकालकी [illegible], गजयूथ, गो-समूह आसन और प्रकाशमान उत्पल और कमलयुक्त तालावों, अधिक [illegible] वहां, समस्त रसगोंक दस्तुभोग ही [illegible] निवास किया करती हूं। हंस और सारस [illegible] शब्दसे निनादित वृक्षोंसे शोभित, [illegible] सिद्ध और ब्राह्मणोंसे निषेवित, अधिक [illegible] निद तथा हाथियोंसे परिपूरित [illegible] मैं सदा निवास करती हूं। मतवाले [illegible], गऊ, वृषभ, राजसिंहासन, सत्पुरुषो [illegible] स्थानमें मनुष्य अग्निमें होम करते हैं, [illegible] गऊ ब्राह्मण वा देवताओंकी पूजा [illegible] है, इन स्थानमें मैं सदा निवास करती [illegible] स्वाध्यायमें रत रहनेवाले ब्राह्मण, [illegible] तत्पर रहनेवाले क्षत्रिय, कृषिकार्य [illegible] और प्रतिदिन [illegible] [illegible] निकट मैं निवास किया करती हूं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

और प्रियत्व सदा प्रतिष्ठित है। हे देवि! मैं नारायणके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें मूर्त्तिमयी होकर निवास नहीं करती. इस समय यह नहीं कह सकती, कि मैं जिस पुरुषके निकट आदरके सहित निवास करती हूं वह धर्म, अर्थ और कामसे वर्द्धित होता है।

११ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! स्त्री-पुरुषोंके परस्पर संयोगमें वैषयिक सुख किसे अधिक होता है, इस संशयके विषयको आप यथावत् कहनेमें समर्थ हैं।

भीष्म बोले, पहले समयमें भङ्गास्वन राजाके सहित इन्द्रकी जो शत्रुता हुई थी प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे पुरुषप्रवर! पहले समयमें भङ्गास्वन नामक अत्यन्त धार्म्मिक एक राजर्षि था वह पुत्ररहित था, इसलिये [illegible] निमित्त यज्ञ किया था। उस महाबलवान राजऋषिने इन्द्रके द्वेषी अग्निष्टुत यज्ञ करना आरम्भ किया अर्थात इस यज्ञमें इन्द्रकी प्रधानता न [illegible] उनका इस यज्ञसे द्वेष था। [illegible] होम यज्ञमें अग्निदेव ही [illegible] स्तुत [illegible] पुत्र प्रदान करते हैं, इस [illegible] नाम इससे अग्निष्टुत कहके प्रसिद्ध है। [illegible] [illegible] कामनासे प्रायश्चित [illegible] समय अग्निष्टुत [illegible] करता [illegible] राजन्! महाभाग [illegible] [illegible] होता हुआ आनके [illegible] [illegible] [illegible]

सहारे भ्रमण करते हुए भूख प्यासमें पीड़ित होकर दिशाको न जान सका। महाराजने परिश्रमसे प्यासा होकर इधर उधर भ्रमण करके निर्मल जलसे पूरित एक मनोहर तालाब देखा। उसने उस ही तालाबपर जाके पहले घोड़ेको जल पिलाया और पानी पिलाके घोड़ेको एक वृक्षमें बांधकर जलमें स्वयं स्नान किया, स्नान करते ही स्त्री होगया। राजा अपनेको स्त्री रूपधारी देखके राजाकी इन्द्रियें और मन उस समय अत्यन्त व्याकुल हुआ। चिन्ताकरने लगा. "मैं किस प्रकार घोड़ेपर चढ़ूं, कैसे नगरमें जाऊं, अग्निष्टुत यज्ञसे सहारे मेरे महाबलवान एक सौ औरस पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मै उनसे क्या कहूंगा और पुरवासी तथा जनपद वासियोंसे ही क्या कहूंगा?" उस समय वह इन्हीं सब विषयोंको विचारने लगा। "धर्म्म तत्वार्थदर्शी ऋषि लोग कहते हैं, कि मृदुल, तनुत्व तथा विह्वलत्व, ये तीन स्त्रियोंके गुण हैं और व्यायाम् कठोरताई और वीर्य्य ये तीन पुरुषोंके गुण हैं; इस समय मेरा सब पौरुष बिनष्ट हुआ, न जाने किस कारणसे स्त्रित्व उत्पन्न हुआ? स्त्रित्व निबन्धन अब फिर घोड़े-पर चढनेका मैं किस प्रकार उत्साह करूं। यह सब बिचारके राजा अत्यन्त यत्न पूर्व्वक घोड़ेपर चढ़के फिर स्त्रीरूपसे नगरमें आया। उसके पुत्र. स्त्रियें, पुरबासी तथा जनपद-वासि-योंने यह क्या हुआ? ऐसा ही सोचकर बिस्मययुक्त हुए।

अनन्तर उस स्त्रीरूपी वक्तृप्रवर राजऋषिने कहा, मैं सेनाके सहित मृगयाके लिये गया था, दैव बशसे मार्ग भूलकर एक घोर बनमें प्रबिष्ट हुआ, उस भयङ्कर बनके बीच मैं प्याससे आर्त्त हुआ था, अनन्तर वहांपर पक्षियोंसे परिपूरित एक मनोहर तालाब दीख पड़ा; उसमें स्नान करते ही दैव बशसे मेरा ऐसा रूप होगया है। वह राजा पत्नी और मन्त्रियोंको अपना नाम गोत्र सुनाकर अन्तमें कुमार बालकोंसे बोला हे पुत्रगण! मैंने राजा होके स्त्रित्व लाभ किया है, इसलिये बनमें गमन करता हूं, अब तुम लोग परस्पर प्रीतिपूर्व्वक राज्यभोग करो। उसने अपने एक सौ पुत्रोंसे ऐसा कहके बनमें गमन किया; बनमें जाके वह एक तपस्वीके आश्रममें पहुंचके उसके समीप निवास करने लगा। उस आश्रममें तपस्वीके द्वारा उसके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उसने उन पुत्रोंको सङ्ग लेके पहलेके पुत्रोंके निकट आके कहा। तुम लोग मेरी पुरुष अवस्थाके पुत्र हो और मेरे स्त्रित्व प्राप्त होनेपर ये सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं। हे पुत्रगण। इसलिये तुम लोग इनके सङ्ग मिलके राज्य भोग करो।

अनन्तर वे सब भाई मिलके उस समय राज्य भोग करने लगे। देवराजने उन लोगोंको भ्रातृभावसे उत्तम प्रकार राज्यभोग करते हुए देखकर क्रुद्ध होके मनमें सोचा, कि मैंने तो इस राजऋषिका उपकार ही किया है, इसका अपकार तो कुछ भी न हुआ। अनन्तर शत क्रतु इन्द्र ब्राह्मणका रूप धरके उस नगरमें जाकर राजपुत्रोंका भेदित करनेमें प्रबृत्त हुए। उन्होंने कहा, जो लोग एक पिताके पुत्र हैं, वैसे भाइयोंमें भी सौभ्रात नहीं रहता, कश्यपके पुत्र देवता और असुर लोग परस्पर बिबाद किया करते हैं। तुम लोग भङ्गास्वन राजाके पुत्र हो, और ये लोग तपस्वीके पुत्र हैं, जब कि देवता और असुर, दोनो कश्यपके पुत्र होनेपर भी राज्यके निमित्त बिबाद किया करते है, तब तपस्वीके पुत्र जो तुम्हारे पैतृक राज्यको भोग करते है, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। राजपुत्र लोग इन्द्रके द्वारा भेदित होनेपर युद्धमें परस्पर एक दूसरेका नाश करते हुए सब नष्ट होगये। तपस्विनी यह बृत्तान्त सुन-कर अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगी। इन्द्र ब्राह्मण वेष धरके उस तापसीके निकट

[illegible] बोले, हे वरानने! तुम किस दुःखसे [illegible] होकर रोदन कर रही हो? [illegible] उस समय ब्राह्मणको देखकर महा [illegible] स्वरसे कहा, हे ब्रह्मन्! मेरे दो [illegible] पुत्र कालवशसे नष्ट होगये हैं। हे विप्रवर! [illegible] मैं राजा था, उस समय मेरे समान रूप- [illegible] एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, अनन्तर किसी [illegible] मैं मृगयाके निमित्त गृहसे निकलके घने [illegible] मार्ग भूल गया, हे द्विजोत्तम। उस वनके [illegible] तालाबमें स्नान करनेसे मैं स्त्री [illegible]। अनन्तर पुत्रोंको राज्य देकर जब मैं [illegible] होकर वनके बीच इस आश्रममें आई, [illegible] महानुभाव तपस्वीके द्वारा मेरे एक सौ [illegible] उत्पन्न हुए, मैं उन्हें नगरमें लेगई थी। [illegible]। कालक्रमसे मेरे उन सब पुत्रोंमें [illegible] उत्पन्न हुआ; मैं दैवके द्वारा पुत्ररहित [illegible] इस समय शोककर रही हूं। इन्द्रने उसे [illegible] देखकर कठोर वचन कहा, हे भद्रे! [illegible] मेरे अधिष्ठित रहनेपर भी मुझे आह्वान [illegible] करके इन्द्रद्विष्ट अग्निष्टोम यज्ञ करके तुमने [illegible] चित्तमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न किया था। हे [illegible]! मैं वही इन्द्र हूं मैंने तुम्हारे विषयमें [illegible] पलटा ले रहा हूं। उस समय राज- [illegible] इन्द्रको देख उनके दोनों चरणोंपर [illegible] सिर रखके बोले, हे देवश्रेष्ठ! आप [illegible] होइये, मैंने पुत्रकी इच्छासे यज्ञ किया [illegible] इस विषयमें मुझपर क्षमा करनी उचित [illegible] इन्द्र [illegible] विनतीसे सन्तुष्ट होके वरदान [illegible] लिये उद्यत होके बोले, हे राजन्! [illegible] पुरुषसे जो सब पुत्र उत्पन्न हुए थे, [illegible] स्त्री देहसे जिन पुत्रोंने जन्म ग्रहण [illegible] उनके बीच कौनसे पुत्र जीवित होवें, [illegible] उसे कहो। अनन्तर तापसी हाथ [illegible] हाथ जोड़के इन्द्रसे बोली, हे [illegible] स्त्री अवस्थामें मेरे जो एक सौ पुत्र उत्पन्न [illegible] वेही जीवित होवें। तब इन्द्रने विस्मित

होके उस स्त्रीसे पूछा, कि पुरुषशरीरसे उत्पन्न हुए पुत्र तुम्हें अप्रिय क्यों हुए? और स्त्री होनेपर जो सब पुत्र जन्मे हैं, उनके ऊपर तुम्हारा अधिक स्नेह क्यों है? मैं उसका कारण सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये इस विषयको तुम्हें मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

स्त्री बोली, हे देवराज! स्त्रीको स्नेह अधिक होता है, पुरुषका वैसा नहीं होता, इसही लिये मेरी स्त्री अवस्थामें जो सब पुत्र उत्पन्न हुए हैं वेही जीवित होवें।

भीष्म बोले, इन्द्र उस तापसीका वचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक बोले, हे सत्यवादिनी! तुम्हारे सब पुत्र ही जीवित होवें। हे उत्तम व्रत करनेवाली राजेन्द्र! पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व, इन दोनोंमेंसे जो इच्छा हो, वह वर मांग लो।

स्त्री बोली, हे इन्द्र! मैं स्त्रीत्वको ही अभिलाष करती हूं, पुरुषत्वकी इच्छा नहीं करती। देवराजने ऐसा वचन सुनके फिर उससे कहा, हे महाराज! तुमने पुरुषत्वको परित्याग करके किस लिये स्त्रित्वकी इच्छा की? स्त्रीरूप- धारी राजाने देवराजका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया, हे देवेन्द्र! पुरुषके संयोगमें स्त्रीको ही अधिक प्रसन्नता हुआ करती है, यह सत्य है, कि स्त्री शरीरमें ही रतिका अधिक सुख मिलता है, मैं स्त्रीभावमें ही सन्तुष्ट हूं। हे देवराज! आपकी जहां इच्छा हो, वहां जाइये। इन्द्र बोले, ऐसा ही हो; यह वचन [illegible] तापसीको आमन्त्रण करके देवलोकमें चले गये। हे महाराज! इसी प्रकार स्त्रीको [illegible] में अधिक [illegible] सुख वर्णित हुआ है।

[illegible] अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर [illegible] [illegible] [illegible]

पारलौकिक कल्याणकी इच्छा करनेवाले हितैषी मनुष्यको इस विषयमें क्या करना चाहिये और कैसे स्वभावसे युक्त होके लोक-यात्रा निबाहे।

भीष्म बोले, शरीरसे तीन, वचनसे चार और मानससे तीन इन दश प्रकारके कर्मोंको परित्याग करे। प्राणिहिंसा, चोरी और परस्त्री हरण ये तीनों शारीरिक पाप परित्यागके योग्य हैं। हे राजेन्द्र। ग्रामवार्त्तादि, निठुर वचन कहना, राज द्वारमें पराये दोष प्रकट करना, असत्प्रलाप वा मिथ्या अर्थात् दूसरेको पीड़ित करनेवाला मिथ्या वचन, इन चार प्रकारके पापोंकी जल्पना और चिन्ता न करे अर्थात् 'ऐसा कहूंगा' यह मनमें भी न सोचे परधनकी चिन्ता, दूसरेकी बुराईकी चिन्ता करना और बाद विषयमें नास्तिकता, ये तीनों पाप कर्म्मोंको मनसे परित्याग करना चाहिये। परस्व विषयकी चिन्ता न करनी, सब जीवोंमें सुहृद्भाव और कर्म्म फलका अस्तित्व स्वीकार मन ही मन इन त्रिविध विषयोंका आचरण करे। इसलिये मनुष्य वचन, शरीर और मनके द्वारा अशुभ आचरण न करे, शुभ वा अशुभ कर्म्म करनेसे उसका फल भोगना पड़ता है।

१२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे गङ्गानन्दन पितामह। आपने जगत्पति महेश्वरके नामोंको सुना है, इसलिये इस समय उस ही जगन्नियन्ता अन्तर्य्यामी विशाल विश्वरूप महाभाग सुरासुर गुरु जगत्की उत्पत्ति और लयके कारण स्वयम्भू देवके नामोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जो देव सर्व्व उपादान निबन्धनसे सर्व्वगत होके भी सर्व्वत्र नहीं दीख पड़ता, उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। जो विराटसूत्रात्मा वा प्राज्ञका उपादान तथा निमित्त कारण है, ब्रह्मा आदि देवता और पिशाच प्रभृति जिसकी उपासना करते हैं, पञ्चतन्मात्र अहङ्कार महत् अव्यक्त विश्वकारण प्रकृतिके परम हेतु भोक्ता पुरुषसे भी परतर रूपसे योगवित् तत्वदर्शी ऋषि लोग जिनका ध्यान किया करते हैं। जो अपरिणामी परब्रह्म, अव्याकृत कारण, रज्जु सर्पवत् भासमान होके भी अनिर्व्वचनीय है। जिसने अपने तेजप्रभावसे माया और उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको प्राणि-कर्म्मानुरोधसे साम्यावस्थामें स्थापित करते हुए निज सत्तामें स्फूर्त्ति प्रदान करके ब्रह्माको उत्पन्न किया है। जब कि उस देवोंके देवसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, तब गर्भ जन्म जरायुक्त मृत्यु सम्पन्न कौन मनुष्य उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ होगा। हे तात। शंखचक्र गदाधारी नारायणके अतिरिक्त मेरे समान कोई मनुष्य उस परमेश्वरको नहीं जान सकता। ये गुणोंमें श्रेष्ठ परम दुर्ज्जय दिव्य दृष्टि महातेजस्वी विद्वान विष्णु योगनेत्रके सहारे उसे देख सकते हैं। रुद्र भक्तिके हेतु महात्मा कृष्णके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त होरहा है। हे भारत। बदरिकाश्रममें इन्होंने उस ही देवको प्रसन्न करके दिव्य दृष्टि महेश्वरके प्रभावसे उस समय सब लोकोंके बीच योगत्र वस्तुओंसे भी प्रियतरत्व प्राप्त किया है। इस ही कृष्णने पूरी रीतिसे एक हजार वर्षतक तपस्या की थी, चराचर गुरु वरदेव शिवको प्रसन्न करके कृष्णने युगयुगमें महेश्वरको सन्तोषयुक्त किया है और इस महात्माकी परम भक्तिसे महादेव प्रसन्न हुए हैं। जगद्-योनि महादेवका जैसा ऐश्वर्य्य है, उसका इस अच्युत हरिने पुत्रके निमित्त साक्षात् दर्शन किया है। हे भारत। उससे परे मैं और किसीको भी नहीं देखता; ये महाबाहु कृष्ण ही उस महादेवके नामोंको अशेषरूपसे कह सकते

मैं इस भगवान्‌के पुत्रोंको दर्शन करनेके लिये महाराज ! विष्णु महेश्वरको सच्चि- दानन्द मूर्त्ति निश्चयपूर्वक दर्शन करनेके उद्यत हैं। ... सनत्कुमार मुनि बोले, महायशस्वी भीष्म पितामह उस समय सब-शास्त्रार्थविदने ऐसा वचन महादेवसे कहने लगे।

... बोले, हे सुरासुर गुरु विष्णुदेव ! ... जिससे उन्हें खसे युधिष्ठिरने मुझसे ... किया है, तुम उस विषयको वर्णन करने समर्थ हो। जिसके एक हजार नाम भी ... पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप ब्रह्मयोनि ... द्वारा वर्णित हुए हैं. द्वैपायन आदि ... व्रत करनेवाले दान्त तपस्वी ऋषि लोग तुम्हारे मुखसे उन नामोंको सुनें, कूटस्थ ज्ञान- स्वरूप कर्मफल दान करके रक्षा करनेवाले विश्वस्रष्टा गार्हपत्य अग्निस्वरूप ... यथार्थसे निवृत्त कपर्दी उपाधि- ... युक्तविशिष्ट विश्वेश्वरका ऐश्वर्य वर्णन करिये।

... चन्द्र बोले, हिरण्यगर्भ आदि तथा ... सहित समस्त देवता लोग और महर्षि- ... उनके कर्मोंकी गतिको यथार्थ रूपसे ... नहीं समर्थ नहीं है। सूक्ष्मदर्शी इन्द्रिया- ... जिसका दाहाकाशाख्य स्थानको ... वह साधुओंकी गतिस्वरूप ... महादेवका किस प्रकार माहात्म्य होगा। ... निकट उस व्रतपूर्वक ... देनेवाले सहस्रनामक भगवा... यथार्थ रीतिसे वर्णन करता।

... भगवान् कृष्ण इस ... भगवान् महादेवके गुणोंका वर्णन ... ॥ ...

था, इसी ही करने सकता। पहले मैंने समा- धिके द्वारा इस भगवान्‌का दर्शन किया था। बुद्धिमान् रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नके हाथसे शम्बरा- सुरके मारे जानेपर बारह वर्षके अनन्तर जाम्ब- वतीने मुझसे कुछ कहनेकी इच्छा की। हे धर्मराज ! रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदिको देखकर उसने कामना करके मेरे निकट आके बोली, हे अच्युत ! तुम थोड़े ही समयके बीच मोच ही मुझे शूर, बल- वान् कान्तरूप और अकल्मष अपने समान पुत्र प्रदान करो। हे यदुकुल धुरन्धर ! तीनों लो- कोंके बीच तुम्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इच्छा करनेसे तुम दूसरे लोकोंकी सृष्टि कर सकते हो। तुमने बारह वर्षका व्रत करके शरीर सुखाकर महादेवकी आराधना करके रुक्मि णीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया है अर्थात् चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु, ये जैसे सुन्दर तथा पराक्रमी पुत्र जैसे रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं; हे मधुसूदन ! वैसे ही मुझे भी एक पुत्र प्रदान करो। जाम्बवतीका ऐसा वचन सुनके मैंने उस सुन्दरीसे कहा, हे रानी ! तुम अनु- मति दो मैं तुम्हारे वचनका प्रतिपालन करूंगा, उसने मुझसे कहा, तुम विजय और मङ्गलके निमित्त गमन करो। हे यादव ! ब्रह्मा, शिव, काश्यप, नदियें, मनके अनुगामी सब देवता, ... औषधियें, ... ऋग्, यजुः, साम ... ... समुद्र, ...

यग किया, तब मैंने उस राजपुत्रीकी अनुमति लेकर फिर पुरुषसत्तम पिता तथा माता और राजा आहुककी निकट जाके जाम्ववतीने अत्यन्त दुःखित होके मुझसे जो कुछ कहा था, उसे निवेदन करके अति कष्टसे उनकी आज्ञासे गद और महाबलवान बलदेवकी निकट सब वृत्तान्त वर्णन करके उनकी अनुमति मांगी। उस समय उन्होंने प्रसन्न होके कहा, तुम्हारे तपकी निर्व्विघ्न वृद्धि होवे, अनन्तर मैंने गुरुजनोंकी आज्ञा पाके गरुड़को स्मरण किया। गरुड़पर चढ़के मैं हिमालय पहाड़पर गया और वहां पहुंचके मैंने उसे विदा किया। अनन्तर उस पर्व्वतपर आश्चर्यमय विषयोंको देखने लगा। वैयाघ्रपद्य गोत्र महानुभाव उपमन्युका दिव्य आश्रम जो तपस्वियोंका क्षेत्र कहके विख्यात् था, मैंने उस अद्भुत और उत्तम स्थानको देखा वह आश्रम देवताओं और गन्धर्व्वोंसे पूजित तथा ब्राह्मी लक्ष्मीसे समावृत था, धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरवक, केतकी, जामुन, पाटल, वट, वरुण, वत्सनाभ, बेल, सरल, कपित्थ, पियाल, शाल, ताल, वदरी, कुन्द, पुन्नाग, अशोक, अतिमुक्त मधुक, कोविदार, चम्पा, पनस और दूसरे अनेक प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त वृक्षोंसे घिरा हुआ था। वह आश्रम पुष्प, गुल्म और लताओंसे परिपूरित, केलेके खम्भोंसे शोभित, विविध पक्षियोंके भोज्य फल और वृक्षोंसे अलंकृत, यथायोग्य स्थानमें रखी हुई भस्मसे ढकी हुई अग्निसे विभूषित, रुरु वन्दर शार्दूल सिंह हरिन वर्हिण मार्जार भुजगन्द और तेंदुओंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके मृगसमूह भैंसे और वृक्षोंसे निषेवित मत्त प्रभृति हाथियोंसे विभूषित अनेक प्रकारके प्रहृष्ट पक्षियोंसे सेवित और बादलके समान उत्तम फूले हुए वृक्षोंसे विचित्र बोध होता था, वहांपर विविध पुष्पोंकी सुगन्धियुक्त दिव्य स्त्रियोंके संगीत समान सुखस्पर्श युक्त वायु बह रही थी। हे वीर! वह स्थान जलधारा निनाद, पक्षियोंकी बोली, हाथियोंके मनोहर चिग्घाड़, किन्नरोंके उदार गीत और सामगान करनेवाले ब्राह्मणोंकी पवित्र ध्वनिसे अलंकृत था; दूसरे पुरुषोंको मनसे भी अचिन्तनीय, तड़ागोंमें अलंकृत और विशाल तथा कुसुम वृत अग्निगृहोंके द्वारा उत्तम शोभासे युक्त था।

हे महाराज! वह आश्रम पवित्र जलवाहिनी जन्हुनन्दिनीसे सदा सेवित और विभूषित तथा अग्निके समान तेजस्वी महात्माओंसे अलंकृत था। वायु तथा जल पीनेवाले जपमें रत मैत्री प्रभृति नियम करके शोधन करनेवाले ध्याननिष्ठ योगी जन और धूमप्राश उष्मप और क्षीरप ब्राह्मणेन्द्रोंके द्वारा सब भांतिसे सेवित था। गोचारी अर्थात् जो लोग गऊके समान मुखसे आहार किया करते हैं; अश्मकुट, दन्तोलूखलिक, मरीचिप अर्थात् चन्द्रकिरण पान करके जीवन धारण करनेवाले, फेनप, मृगचारी, अश्वत्थफल भोजी, जलमें शयन करनेवाले, चीर और चर्म्माम्बरधारी तथा वल्कल और अत्यन्त कष्टसे जो लोग उन सब नियमोंमें तत्पर रहते हैं, वैसे अनेक प्रकारके तपस्वी मुनियोंका दर्शन करके मैंने उस स्थानमें प्रवेश करनेकी इच्छा की। हे भारत! हे राजन्! आकाशमण्डलमें चन्द्रमण्डलकी भांति वह आश्रममण्डल पुण्यकर्म्म करनेवाले महानुभाव भव आदि देवताओंसे सदा उत्तम रीतिसे पूजित होकर विराजमान था। महातपस्वी महात्माओंके सहवास और प्रभावसे वहांपर नेवल विषधर सांपोंके साथ और बाघ मृगयूथोंके सङ्ग मित्रकी भांति क्रीड़ा करते थे। वेदवेदान्त जाननेवाले विविध नियमोंसे विख्यात द्विजवर्य्य महानुभाव महर्षियोंसे सेवित उस सर्व्वभूत मनोरम श्रेष्ठ आश्रमस्थलमें प्रवेश करते ही मैंने जटा चीरधारी तेज और तपस्याके द्वारा

[illegible] समान प्रकाशमान, शिष्योंसे अनुगत शान्त ब्राह्मणवत्स निग्रहानुग्रहमें समर्थ द्विज-वर उपमन्युका दर्शन किया। जब मैंने सिर झुका करके उनको वन्दना की, तब वह मुझसे बोले, हे पुण्डरीकाक्ष! तुमने सुखसे आगमन किया है न? हम लोगोंकी तपस्या सफल हुई, क्यों कि तुम पूज्य होके भी हमारी पूजा करते हो और हमारे दर्शनीय होनेपर भी हम लोगोंके दर्शनकी इच्छा करते हो। मैंने हाथ जोड़के उनसे मृग, पक्षी, अग्नि, धर्म्म और शिष्य के विषयमें अनामय प्रश्न किया।

अनन्तर भगवान उपमन्यु मुझसे परम मनो-हर शान्त वचनसे बोले, हे कृष्ण! तुम अपने समान पुत्र निःसन्देह प्राप्त करोगे। तुम उत्तम महत् तपस्या अवलम्बन करके सर्व्वनियन्ता महादेवको सन्तुष्ट करो। हे अधोक्षज! वह देव अपनी पत्नीके सहित होके इस ही स्थानमें विराजमान हैं, हे जनार्द्दन! पहिले समयमें ऋषियोंके [illegible] देवताओंने इस ही स्थानमें तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सत्य और इन्द्रियनिग्रहके द्वारा उस महादेवको सन्तुष्ट करके शुभवासनाओंको प्राप्त किया था। हे शत्रुनाशन! तुम जिसकी प्रार्थना करते हो, वह तपोनिधि और तेजके आधार [illegible] इस ही स्थानमें शुभाशुभ [illegible] करते हुए अभिप्रायको उत्पन्न [illegible] देवीके सहित विराजमान हैं।

[illegible] पर्व्वतको कंपानेवाला जो हिरण्यक-[illegible] दानव था, उसने महादेवकी कृपासे [illegible] वर्ष पर्य्यन्त सब देवताओंका ऐश्वर्य्य [illegible] । [illegible] पुत्र एक मन्दर नामसे [illegible] है, उसने महादेवके वरप्रभावसे [illegible] वर्ष इन्द्रके साथ युद्ध किया था। हे [illegible] विष्णु! यह भीषण और [illegible] एक महादेव [illegible] मन्द-[illegible] छिन्न हुआ था।

[illegible]

जलान्तरचर बलगर्व्वित दैत्यको मारके तुम्हें जो चक्र दिया था, तथा उस दैत्यको मारनेके लिये वृषभध्वजने जो अग्निके समान प्रकाशमान चक्र उत्पन्न किया था, भगवानने जो तुम्हें अद्भुत तेजसे युक्त दुर्द्धर्ष चक्र प्रदान किया था, पिनाकीके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकता। इस ही निमित्त महा-देवने उस समय कहा था, कि यह सुदर्शन होवे; तभीसे लोकोंके बीच वह सुदर्शन नामसे प्रतिष्ठित हो रहा है। हे तात केशव! वह चक्र मन्दरके अङ्गमें लगके जीर्ण तृणके समान व्यर्थ हुआ था। महादेवने उस मन्दर असुरको यह वर दिया था, कि तुम सब शस्त्रोंसे अवध्य होगे, इस ही वरके प्रभावसे वह धीमान् प्रबल बल-शाली असुर निज अङ्गपर चक्र और सैकड़ों वज्र आदि शस्त्रोंकी चोट सहजमें ही सह सकता था। जब बलवान मन्दरने देवताओंको अत्यन्त पीड़ित किया, तब देवताओंने महा-देवके दिये हुए वरके प्रभावसे गर्व्वित दानवोंके दलको नष्ट किया था, देवताओंके बुद्धि कौशलसे वे लोग आपसमें कलह करके विनष्ट हुए।

महादेवने विद्युत्प्रभ दानवके ऊपर प्रसन्न होके उसे तीनों लोकका ऐश्वर्य्य दान किया था, वह सौ हजार वर्षतक सब लोकोंका ईश्वर हुआ था। भगवानने उसे कहा था, कि तुम मेरा ही अनुचर होगा और उसे [illegible] पुत्र प्रदान किया था। [illegible] भगवानने [illegible] कुशद्वीप दान किया

[illegible]

ब्रह्मविद्यासे उत्पन्न शाश्वत वर प्रदान करियो। निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवानने उसका वह वचन सुनके कहा, 'ऐसा ही होगा।'

स्वायम्भुवक्रतु भी पुत्रके निमित्त योगके सहारे तीन सौ वर्ष तक हिरण्य गर्भसे आविष्ट हुए थे भगवानने उसे क्रतु परिमित सहस्र पुत्र प्रदान किया। हे कृष्ण। वेदमें वर्णित योगेश्वरको तुम निःसन्देह जानते हो। परम धार्म्मिक ऋषि जो याज्ञवल्क्य नामसे विख्यात हैं; वह महादेवकी आराधना करके अतुल यशस्वी हुए हैं।

पराशर पुत्र महामुनि योगिवर वेदव्यासन भी शङ्करकी आराधना करके अशेष यशलाभ किया है। पहले समयमें बालखिल्य मुनियोंने देवराजके द्वारा अवज्ञात होनेसे क्रुद्ध होकर तपस्याके सहारे महादेवको सन्तुष्ट किया। जगत्पति महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले, तुम लोग तपस्याके द्वारा सोम हरनेवाले गरुड़को उत्पन्न करोगे।

पहले समयमें महादेवके क्रोधवश समस्त जल नष्ट हुआ था। महेश्वरने सप्त कपाल अर्थात् त्र्यम्बक दैवत मन्त्रके सहारे जलको फिर उत्पन्न किया। अनन्तर महादेवके प्रसन्न होनेपर पृथ्वीमण्डलपर समस्त जल पीने योग्य हुआ था।

अत्रिमुनिकी ब्रह्मवादिनी भार्य्या पतिको परित्याग करके प्रतिज्ञा की, कि मैं अब फिर कभी किसी प्रकारसे भी उस मुनिकी वशवर्त्ती न हूंगी, ऐसा कहके वह महेश्वरकी शरणागत हुई थी। उसने अत्रिके भयसे अनाहारी होके-तीन सौ वर्षतक महादेवकी कृपाके निमित्त मूषल अर्थात् लोह हलके अग्रभागमें शयन किया। महेश्वरने हंसके उससे कहा, कि रुद्रमन्त्रके प्रभावसे बिना पतिके ही तुम्हारे निःसन्देह पुत्र होगा, और वंशके बीच वह तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा।

हे मधुसूदन। भगवान भक्तिमान विकर्णने महादेवको प्रसन्न करके सिद्धि लाभ की थी। हे केशव। संशतचित्त शाकल्यने नव सौ वर्षतक मनो-यज्ञमें महादेवकी आराधना की थी। भगवान प्रसन्न होके उससे बोले, हे तात! तुम ग्रंथ कर्त्ता होगे। और तीनों लोकके बीच तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति होगी, महर्षि कुलके द्वारा अलंकृत तुम्हारा वंश अक्षय होगा और तुम्हारा पुत्र द्विजश्रेष्ठ तथा सूत्रकर्त्ता होगा।

सतयुगमें सावर्णि नाम एक विख्यात ऋषि थे, उन्होंने इस स्थानमें छःहजार वर्षतक तपस्या की थी; भगवान रुद्रदेव स्वयं उनसे बोले, हे अनघ। मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं तुम अजर और अमर होके लोकमें प्रसिद्ध ग्रंथकर्त्ता होगे।

हे जनार्द्दन। पहले समयमें दिग्वासा भगवान रहीत भगवान काशीधाममें भक्तवर इन्द्रके द्वारा पूजित हुए थे, उन्होंने महादेवकी आराधना करके देवराज्य पाया।

पहले समयमें नारद मुनिने भक्ति भाव महादेवकी आराधना की थी, देवगुरु महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले; तेज तपस्या और कीर्त्तिके द्वारा तुम्हारे समान कोई भी न होगा, गीत और बाजेके द्वारा तुम सदा मेरे अनुगत रहोगे। हे तात। हे विभुमाधव। मैंने जिस प्रकार पहले समयमें देवोंके देव पशुपतिका साक्षात दर्शन किया था, उसे भी तुम विस्तारके सहित सुनो। हे अनघ। पहले देवोंकेदेव महादेवसे मैंने सावधान होके जिस प्रकार उन्हें प्रबोधित किया था, इस समय उसे पूर्ण रीतिसे कहता हूं। हे तात! पहले सत्ययुगमें वेदवेदाङ्ग जाननेवाले महायशस्वी व्याघ्रपाद नामसे विख्यात एक ऋषि थे, मैं उनका पुत्र था और धौम्य मेरा भाई था। हे माधव! किसी समय मैं धौम्यके सङ्ग खेलते हुए बाल मुनियोंके आश्रममें उपस्थित हुआ। वहां

[illegible] दूध देनेवाली गऊका दूध दूहना देखा, वह दूध अमृतके समान स्वादयुक्त मालूम हुआ।

अनन्तर बाल्यकालकी सुलभ चञ्चलतासे मैंने अपनी मातासे कहा, हे माता! मुझे क्षीरयुक्त भोजन प्रदान करो। उस समय मेरी माताने [illegible] अभावसे दुःखित होकर चावल पीसकर उसका पिष्ट बनाया और जलमें घोलके उसे [illegible] दिया। हे तात माधव! मैंने पहले एक बार गऊका दूध पीया था, यज्ञके समय पिता [illegible] एक महत् ज्ञातिकुलमें लेगये थे, वहां दिव्य गऊ सुरनन्दिनीका दूध भरता था, मैंने उसका वही अमृत समान दूध पीके दूधका गुण और जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता था, इसलिये वह पिष्टरस मुझे रुचिकर [illegible] हुआ। हे तात! अनन्तर मैंने बाल-स्वभावसे [illegible] होकर उस समय अपनी मातासे कहा, हे माता! तुमने मुझे जो दिया है, वह दूध [illegible] है। हे माधव! अनन्तर दुःख शोकसे युक्त माताने पुत्रस्नेहवश मुझे गोदीमें मस्तक सूंघ-[illegible] बोली, हे पुत्र! सदा वनवासी कन्दमूलफल [illegible] करनेवाले आत्मज्ञ ऋषियोंके पासमें [illegible] कहां है? जो लोग बालखिल्य[illegible] [illegible] दिव्य नदीको अवलम्बन किये हुए [illegible] और पर्व्वतनिवासी मुनियोंके [illegible] दूध कहांसे आवेगा? हे पुत्र! आश्रम-[illegible] वायु और जल पीनेवाले तथा ग्राम्य [illegible] इतर जङ्गलके फल खानेवाले ऋषि-[illegible] [illegible] रहित उनमें दूध नहीं [illegible]। [illegible] और [illegible] सब लोग [illegible] रत हुआ करते हैं, इस-[illegible] [illegible] महेश्वर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

महादेवकी शरणागत होना उचित है, उनको कृपासे तुम सब वाञ्छनीय फल पाओगे।

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस समय हाथ जोड़के विनयपूर्व्वक मैंने उससे यह वचन कहा, हे माता! वह महादेव कौन हैं? और वह किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? वह देव किस स्थानमें निवास करता है और किस प्रकारसे उसका दर्शन किया जाता है, किस भांति वह महेश्वर सन्तुष्ट होता है, उसका कैसा रूप है? किस प्रकार लोग उसे प्रसन्न हुआ जान सकते हैं? हे माता! तुम मेरे निकट यह सब वृत्तान्त वर्णन करो।

हे कृष्ण! उस समय जब मैंने पुत्रवत्सला मातासे ऐसा वचन कहा, तब वह मेरा मस्तक सूंघकर आंसू भरे हुए नेत्रसे युक्त होकर शरीर-पर हाथ फेरकर दीनता अवलम्बन करके बोली।

माता बोली, महादेव दुर्व्विज्ञेय (शास्त्रसे जानना अशक्य है) दुराधार (शास्त्रसे ज्ञान होने पर भी मनमें धारण करना [illegible] है। दुराबाध (ध्रियमाण होनेपर भी [illegible] [illegible] द्वारा सङ्कटयुक्त है,) क्योंकि वह [illegible] है, (अर्थात् उसमें मन [illegible] दूषित हुआ [illegible]) [illegible] वह दुष्प्राप्य है। [illegible] नहीं जाना जाता और [illegible] दुर्दर्श है (वैराग्यके भी [illegible] नहीं होता) [illegible] प्रकारके रूप, विचित्र [illegible] भांति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मुनियोंके मुखसे उनके शुभ चरित्रोंको मैंने जिस प्रकार सुना है, हे तात। ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त उन्होंने जो सब रूप धारण किये थे, देवताओंके कहे हुए उन सब विषयोंको संक्षेपमें सुनो। तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, वह सब वृत्तान्त मैं तुमसे कहती हूं।

माता बोली, भगवान महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और विश्वदेवगणके रूपको धारण करते हैं। पुरुष, स्त्री, प्रेत, पिशाच, किरात, शवर और विविध जलचर तथा वनचर जीवोंका रूप धारण किया करते हैं। वह कूर्म्म, शङ्ख और प्रवालांकुर-भूषण वसन्तकाल स्वरूप होते हैं। वह देव, यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव और विलासिगणके रूपको धारण करते हैं। बाघ, सिंह, हरिन, तेंदुआ भालू, पक्षी, उल्लू और सियारोंके रूपको अवलम्बन करते हैं, वह हंस, कौआ, मोर, कृकलास, सारस, वक, गिद्ध, चक्रवाक, स्वर्णचातक तथा पर्व्वत आदिके रूपको भी धारण किया करते हैं। महादेव गऊ, हाथी, घोड़े, ऊंट और खरकी आकृति भी अवलम्बन करते हैं। वह बकरे और शार्दूलके रूपको धारण करते तथा अनेक प्रकारके मृगोंका रूप अवलम्बन किया करते हैं। महेश्वर दिव्य अण्डजोंकी आकृति धारण करते हैं, तथा वह दण्ड, छत्र और कुण्डल धारण करके द्विजोंको अवलम्बन किया करते हैं। वह षड्-मुख और अनेक मुखवाले, त्रिलोचन और बहुशीर्षक हैं। वह अनेक कटि, अनेक चरण, अनेक उदर और शरीर धारण करते हैं। वह अनेक हाथ, अनेक पार्श्व और अनेकों गणोंसे युक्त रहते हैं। वह ऋषिरूप, गन्धर्व्वरूप और सिद्ध चारणोंका रूप धारण किया करते हैं। उनका शरीर भस्मके द्वारा पाण्डुर वर्ण और अर्द्धचन्द्रसे विभूषित है; वह विविध वरसे सन्तुष्ट और अनेक स्तोत्रोंसे संस्कारयुक्त हैं। वह सब भूतोंके नाशक होके सब लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं; सर्व्व स्वरूप, सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा, सर्व्वग और सर्व्वभाषी वह भगवान सर्व्वत्र विद्यमान है, और देहधारियोंके हृदयमें निवास कर रहा है। जो लोग जिस विषयकी अभिलाषा करके जिस निमित्त उसकी पूजा किया करते हैं, वह देवेश महेश्वर उन सब विषयोंको जानता है; इसलिये यदि इच्छा हो, तो तुम उसकी शरणमें जाओ। वह अनिन्दित होता, कुपित होता और हुङ्कार प्रकाश किया करता है। वह चक्र, शूल, गदा, मूषल और पट्टिश धारण किया करता है; वह पर्व्वत होके नागकी बनी हुई मौञ्जीमेखला धारण करता है; वह सांपोंका जनेऊ पहरता और गजाम्बर धारण किया करता है। वह हंसता, गाता, मनोहर रीतिसे नाचता और भूतोंमें घिरकर विचित्र बाजा बजाया करता है। वह बात करता, जमुहाई लेता, रोता और रुलाता है। वह उन्मत्तरूप वा मत्त स्वरूप और उत्तम स्वरसे वार्त्तालाप किया करता है। वह रौद्र रूपसे तीनों नेत्रोंके द्वारा लोगोंको त्रासित करके अत्यन्त भयङ्कर हास्य किया करता है; वह जागता, सोता और सुखपूर्व्वक जमुहाई लेता है। वह जप करता है, और सब लोग उसका जप किया करते हैं, वह तप करता है, और उसके निमित्त लोग तपस्या किया करते हैं। वह दान करता और प्रतिग्रह ग्रहण किया करता है, योग करता और ध्यान करता है। वेदी, यूप गोसमूहके बीच और अग्निमें कभी दीख पड़ता तथा कभी अदृश्य होता है। वही बालक, वृद्ध और युवा है, वही ऋषि-कन्या तथा ऋषिपत्नियोंके सङ्ग क्रीड़ा करता है। वह ऊर्द्धकेश, महालिङ्ग, नग्न और विशृ-तनेत्र है। वह गौर, श्याम, कृष्ण, पाण्डुर, धूम्र और लालवर्णसे युक्त है; वह विकृताक्ष, विशा-लाक्ष, दिगम्बर और सर्व्वाम्बर अर्थात् सबका

[illegible] है; उस रूपरहित अर्थात् आद्य-रूपी निष्फल, मायावी, अतिरूप, नाशकार्य्येके कारण, पापरूप, हिरण्यगर्भ, अनादि, अनन्त, [illegible] महेश्वरका अन्त यथार्थ रीतिसे कौन जान सकता है? जो हृदयके बीच प्राण, मन और जीवस्वरूप अर्थात् अन्नमय मनोमय और विज्ञानमय कोषरूपसे वर्णित होता है। [illegible] आत्मा तथा आनन्दमय है, वही योगसं-[illegible] योगी कहा जाता है, वह परम शुद्ध [illegible] परमात्मा महेश्वर सूक्ष्म मनोवृत्तिके [illegible] भी मालूम होने योग्य नहीं है। वही [illegible], गीतगानेवाला, सहस्रशतलोचन, एक [illegible] आनन्दभुक्, द्विजित्त, लिङ्गदेह और जीव-स्वरूप है, विपक्ष स्थूल शरीरके सहित पूर्व्वोक्त [illegible] शरीर स्वरूप और अनेक वक्र अर्थात् [illegible] होता है। हे पुत्र! तुम उसहीके भक्त [illegible] उसीमें चित्त लगाओ, उसीमें निष्ठा करो और [illegible] रत होके महादेवकी ही आरा-[illegible] करो, तब तुम अभिलषित विषयोंको [illegible] होगे।

हे [illegible] अनुशासन! माताका ऐसा वचन [illegible] उस ही समय महादेवके विषयमें मेरी [illegible] भक्ति उत्पन्न हुई। अनन्तर मैंने तपस्या [illegible] महादेवको सन्तुष्ट किया, बायें पैरके [illegible] स्थित होकर एक हजार वर्ष बिताये, [illegible] वर्षतक फल भोजन करके रहा; [illegible] सौ वर्षतक सूखे पत्तोंको [illegible], फिर एक सौ वर्षतक जल पीके [illegible], अनन्तर सात सौ वर्षतक वायु [illegible] प्रकार दिव्य परिमाणसे एक [illegible] महेश्वर मेरे द्वारा पूजित हुए। [illegible] देवेश महादेव प्रसन्न [illegible] [illegible]

दांत, तीक्ष्णविष, स्तब्धकर्ण, महा उत्कट विशाल भुजा, घोररूपी चार दांतवाले महा मातङ्गपर चढ़के अपने तेजसे प्रकाशमान होकर हार किरीट और कुण्डल विभूषित शरीरसे आगमन किया। उनके सिरपर पाण्डुर आतपत्र शोभित था, वह दिव्य गन्धर्व्वोंके सङ्गीतध्वनि और अप्सराओंके द्वारा सेव्यमान थे।

अनन्तर देवराजरूपी भगवानने कहा, हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाष हो, वह वर मुझसे मांगो। इन्द्रका वचन सुनके मैं प्रसन्न-चित्त नहीं हुआ। हे कृष्ण! उस समय मैंने देवराजसे यह वचन कहा, मैं तुमसे तथा महादेवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे भी वरकी अभिलाष नहीं करता यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं। हे शक्र! मेरा यह भली भांति निश्चित वचन अत्यन्त सत्य है; [illegible] महेश्वरके अतिरिक्त मेरी दूसरे किसीके वचनमें भी रुचि नहीं होती है। पशुपतिके वचन अनु-सार मैं उस ही समय कृमि अथवा अनेक शाखा-युक्त वृक्ष हूंगा और महादेवके अतिरिक्त मैं दूसरेके वर वा कृपासे तीनों लोकके राज्य तथा ऐश्वर्य्यकी भी इच्छा नहीं करता। [illegible] रत होकर मेरा चाण्डालकुलमें जन्म हो, सोभी उत्तम है और अनीश्वर भक्त होके इन्द्रभवनमें भी मेरा जन्म न होवे। [illegible] [illegible] भक्ति नहीं है, उस [illegible] [illegible] भक्षण वा प्राशन करके [illegible] [illegible]

[illegible]

और लवमात्र समयमें भी जो शङ्करके प्रसाद पानेमें समर्थ नहीं है, उसकी उनमें भक्ति नहीं होती। महादेवकी आज्ञानुसार चाहे कीट वा पतङ्ग योनि। सभी ही उत्पन्न होऊं। हे देवराज! परन्तु तुम्हारे दिये हुए तीनों लोकोंको भी मैं कामना नहीं करता; महेश्वरके वचनसे चाहे कुत्ता भलेही बनूं। क्यों कि वेही मेरे परम प्रार्थनीय हैं; और उनको आज्ञा न पानेसे देवताओंके राज्यकी भी इच्छा नहीं करता। मैं स्वर्गलोककी अभिलाष नहीं करता, देवराज्यकी इच्छा नहीं करता, ब्रह्मलोककी वाञ्छा नहीं है, निष्कलत्वकी स्पृहा नहीं करता और समस्त काम्य विषयोंकी भी कामना नहीं करता; केवल हरके दासत्व-प्राप्तिकी इच्छा करता हूं। जबतक शशाङ्कधवल, प्रसन्न, वृषभौलि भगवान महेश पशुपति प्रसन्न नहीं होते, तब तक जरा मरण और सैकड़ों जन्मोंसे अभिघातके देह विहित क्लेशोंको ढोता रहूंगा। सूर्य्य चन्द्रमा और अग्निके द्वारा प्रकाशमान त्रिभुवन सारभूत और जिससे बढ़के सारभूत और कुछ भी नहीं है, उस एकमात्र आदि पुरुष अजर अमर रुद्रदेवको बिना प्रसन्न किये इस जगत्में कौन पुरुष शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होगा? मेरे दोषसे यदि मेरा पुनर्व्वार जन्म हो, तो उन जन्मोंमें भी महादेवके विषयमें मेरी अक्षय भक्ति उत्पन्न होवे।

इन्द्र बोले, जब तुम महेश्वरके अतिरिक्त दूसरे किसी देवताके प्रसन्नताकी इच्छा नहीं करते हो, तब उस कारणके भी कारण ईश्वरकी सत्ताके विषयमें कौनसी युक्ति है। जो प्रलयकालमें समस्त जगत्का नाश करता है। तापकी शान्तिके निमित्त अग्निके निकट गमन करनेकी भांति उसके निकट वरकी इच्छा करनी तुम्हारा मूढ़ताका कार्य्य होरहा है।

उपमन्यु बोले, ब्रह्मवादी लोग जिसे सत्प्रवाद वा अनादि; असत् शून्य, व्यक्त, परमाणु और अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, जो नित्य, असंहत कार्य्य कारणात्मक है, उस परम शिवाख्य परमेश्वरसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है, जो ज्ञान, ऐश्वर्य्यमय और अचिन्तित परमात्मा है, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिससे सब ऐश्वर्य्य उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यय है, जिसका बीज नहीं है, इसके अतिरिक्त जिससे सब बीज उत्पन्न हुए हैं, मैं उसहीसे वर पानेकी इच्छा करता हूं। जो अन्धकारको दूर करनेवाला परम ज्योति और अपनेमें निष्ठावान लोगोंके निमित्त परम तपस्वरूप है, जिसे जाननेसे पण्डित लोग शोक नहीं करते, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। हे पुरन्दर! जो आकाश आदि भूतों और जीवोंको उत्पन्न करता है और जो सबके अभिप्रायको जानता है, तथा जो सब प्राणियोंका नाश करनेमें समर्थ है, मैं उसही सर्व्वगत, सर्व्वद देवकी पूजा करता हूं। हे देवराज! पण्डित लोग जिसे मघवाला सुरेश्वर कहते हैं, उस गुरुदेवके निकट मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसने बीजभूत अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माण्ड रूपसे पूर्ण करके पहले लोकभावन प्रजापतिको उत्पन्न किया है। अग्नि, जल वायु, अवनी, आकाश अहङ्कार, मन और महत्तत्त्व,—इन सबको परमेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उत्पन्न कर सकता है? हे देवराज! मन शब्द वाच्य अव्यक्त और मति शब्दसे अभिधेय महत्तत्त्व तथा अहङ्कार तत्त्व पञ्चतन्मात्र और इन्द्रियें, इन सबके परम अवलम्ब शिवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष हो सकता है,—उसे तुमही वर्णन करो। इस लोकमें सब कोई पितामहको जगत् स्रष्टा कहा करते है, परन्तु वह प्रजापति देवेश्वर महेश्वरको आराधना करके महती समृद्धि भोग किया करता है, एक एक

गन्ध प्रदान उपाधिक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रदेवके तृतीय मूर्त्तिवाले भगवानके निकटसे जो, उत्तम ऐश्वर्य्य विद्यमान हैं, वह भी उन्हें महादेवके द्वारा प्राप्त हुए हैं, इसलिये कहो तो सही, परमेश्वरसे श्रेष्ठ और दूसरा कौन ईश्वर है? दैत्य दानवोंके बीच जिन्होंने प्रधानता प्राप्त की है, उन्हें आधिपत्य प्रदान और असुरोंको मर्द्दन करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु प्रभृतिको ऐश्वर्य्ययुक्त करनेमें देवेश्वर महादेवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष समर्थ होसकता है। दिशा, काल, सूर्य्य, तेज, ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्रों तथा दैत्योंको जो परपीड़ा और दूसरोंको निग्रह करनेकी सामर्थ है, वह महेश्वरके वशमें जानना योग्य है; इसलिये परमेश्वर महादेवसे श्रेष्ठ दूसरा कौन है? यज्ञ और त्रिपुरासुरकी उत्पत्ति तथा विनाशके विषयमें तथा दैत्य दानवोंके बीच मुख्य पुरुषोंके आधिपत्य प्रदान करनेमें असुरोंको मर्द्दनेवाले परमेश्वरके सिवा दूसरा और कौन समर्थ होसकता है। हे सुरसत्तम पुरन्दर! मैं जिस महेश्वरकी कृपासे तुम्हें ही देवताओंमें पूजित देखता हूं, हे कौशिक! महादेवकी कृपासे सिद्ध, गन्धर्व, देवता और [illegible] इन्द्र सहस्राक्षकी पूजा किया करते [illegible] इस विषयमें अधिक हेतु वादका क्या [illegible] यह सब कार्य्य महादेवके ही [illegible] है। हे देवराज! चेतन अचेतन [illegible] पदार्थोंमें सर्वव्यापक ईश्वरका व्याप्य [illegible] वस्तुओंमें दिखाई देता है। [illegible] भोग्यवस्तु भोग करता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हे इन्द्र! देवता और असुर लोग यदि महादेवके समान दूसरी आकृति अवलोकन करते, तो वे लोग तथा असुरकुलके द्वारा अर्द्दित असुर लोग क्या उनके शरणापन्न न होते? यक्ष, राक्षस, सर्प और देवताओंके परस्पर विनाशरूप सन्निपातके समय महादेव ही यथायोग्य स्वस्थानस्वरूप ऐश्वर्य्य प्रदान किया करते हैं। भला कहो तो सही, अन्धक, शम्भ, दुन्दुभी, महर्षि, यक्ष, इन्द्र, बल, राक्षस और निवात कवचोंको वरदान तथा उनके नाश करनेके विषयमें महेश्वरके सिवाय दूसरा कौन समर्थ होसकता है? किस पुरुषके मुखमें पहले समय सुरासुर गुरुके रेत हुत हुए थे? दूसरे किस पुरुषका इस प्रकार रेत है, जिसके द्वारा हिमगिरि निर्म्मित हुआ है। किसके अर्द्धाङ्गमें कान्ता निवास करती है? किस पुरुषके द्वारा अनङ्ग निर्ज्जित हुआ था? हे देवराज! कहो तो सही! किसके परम स्थानकी देवता लोग प्रशंसा किया करते हैं? श्मशानके बीच क्रीड़ाके निमित्त नृत्य विषयमें कौन अभिभाषित होता है? किसका ऐश्वर्य्य समान भावसे रहता है? कौन पुरुष भूतगणके सङ्ग क्रीड़ा करता है? देवता लोग किसके बलसे बलवान होके ऐश्वर्य्यका अभिमान किया करते हैं? किसके अचल स्थानको त्रैलोक्यपूजित कहके लोग घोषणा करते हैं, उनके अतिरिक्त दूसरा कौन [illegible] [illegible] है? कौन [illegible] प्रज्वलित होता है? किसके द्वारा ओषधि सम्पत्ति हुआ करती है? कौन वसुको धारण करता है? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कहा करता हूं। स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, अज्ञेय, गुणगोचर, गुणहीन, और गुणाध्यक्ष महेश्वर पद ही परमपद है। जो स्थिति और उत्पत्तिका कारण है, जो सब लोकोंका कारण है, जो वर्त्तमान, भूत और भविष्यको जानने-वाला तथा सबका कारण है, जो अक्षय, क्षर और अव्यक्त है, जिससे विद्या, अविद्या, कृता-कृत, धर्म्म, प्रवर्त्तित होते हैं,—हे देवराज! मैं उसको ही कारण कहा करता हूं। हे देव-राज! सृष्टि और संहारके हेतु देवोंके देव महादे द्वारा समाश्रित लिङ्ग इस समय प्रत्यक्ष अवलो-कन करो। हे शक्र! पहले माताने मुझसे कहा था, "लोक कारण महेश्वर सबके ही कारण हैं, महादेवसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये यदि इच्छा हो, तो उनके शरणमें जाओ।" हे सुरेश्वर! यह भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम है, कि सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादि रेतसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है, वह योनिसंयोग विशिष्ट लिङ्गसे उत्पन्न है; क्यों कि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस लोग सहस्रों कामनासे छन्दित बुद्धि होकर भी जिससे बढ़के दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा कहा करते हैं, वह चराचरोंमें विदित विख्यात देवोत्तम कल्याण दाता महादेवको मैं कामार्थी और सावधान चित्त होकर मोक्षके निमित्त प्रार्थना किया करता हूं। अन्यान्य युक्तियोंका क्या प्रयोजन है? ईश्वर ही सब कारणोंका कारण है, देवताओंके द्वारा दूसरेके लिङ्गका पूजित होना मैंने कभी नहीं सुना। महेश्व-रको छोड़के देवता लोग दूसरे किसी देवताके लिंगकी पूजा करते वा किये हों,—उसे यदि तुमने सुना हो, तो वर्णन करो। ब्रह्मा, विष्णु और समस्त देवताओंके सहित तुम भी सदा जिसके लिङ्गकी पूजा किया करते हो, उससे बढ़के और इष्ट दूसरा कौन है? इसलिये वही सब लोगोंका आत्यन्तिक इष्ट है। जब वि प्रजागणमें पद्म चिन्ह, चक्रचिन्ह और वज्रचि न्हसे युक्त नहीं हैं, केवल लिङ्ग हैं, चिन्हित और योनिचिन्हित हुई है, तब अवश्य ही वह महे-श्वर सम्बन्धीय हैं। देवीके कारणरूप भावज-नित समस्त स्त्रियें योनिचिन्हसे युक्त और सब पुरुष महादेवके लिंगके द्वारा प्रत्यक्ष चिन्हित होरहे हैं। जो दुर्बुद्धि मनुष्य ईश्वरके अतिरिक्त दूसरेको कारण कहता है, तथा जो देवी चिन्हसे अङ्कित नहीं है, उसे कारण कहता है वह पुरुष चराचरयुक्त तीनों लोकसे बाहर हुआ करता है। पुल्लिंगमात्र ही महादेव और स्त्रीलिंगमात्रको ही भगवती जानो; स्त्री-पुरुष, इन दो शरीरोंके द्वारा स्थावर जंगमात्मक यह जगत् व्याप्त होरहा है।

हे बलनिसूदन सुरराज! मैं उस ही महे-श्वरसे वर अथवा मृत्युकी कामना करता हूं। तुम इच्छानुसार गमन करो अथवा निवास करो। मेरी यह अभिलाषा है, कि महेश्वरके द्वारा मुझे वर मिले अथवा शाप ही प्राप्त होवे परन्तु दूसरे देवताओंके सर्व्वकाम फलप्रद होने-पर भी मैं उनकी आकांक्षा नहीं करता। देव-राजसे ऐसा कहके मैं दुःखपूर्व्वक व्याकुलेन्द्रिय हुआ; महादेव किस लिये मुझपर प्रसन्न नहीं होते हैं, ऐसी ही चिन्ता करके क्षणभरके बीच फिर उस ही ऐरावतको हंसकुन्द और इन्दुस दृश मृणाल और रजत समान प्रकाशमान साक्षात् क्षीरसागरकी भांति वृषरूपधारी देख उस महाकाय वृषकी पूंछ कृष्णवर्ण थी, ने मधुकी भांति पिंगल वर्ण थे। वह वृषभ तप हुए सुवर्ण समान प्रकाशमान, उत्तम तीक्ष्ण मृदु और रक्ताग्र वज्र सारमय था, सींगों मानो पृथ्वीको विदीर्ण करता था, वह सुवर्णके बने हुए दावेंसे सब प्रकार अलङ्कृत उसके मुख, कान, नासिका, कटि, कोखे अ सुन्दर थे, कन्धा विशाल था। उस

[illegible]

[illegible] दिया उसके तेजसे व्याप्त [illegible] होगई। मैं [illegible] चित्त [illegible] करने लगा, कि यह क्या है? [illegible] मनमें जो तेज [illegible] था, महादेवकी मायाके प्रभावसे मुहूर्त-मात्रमें [illegible] प्रशान्त हुआ।

अनन्तर मैं धूमरहित अग्निकी भाँति शोभायमान मनोहर सर्वाङ्गी पार्वतीके सहित [illegible] पर स्थित नीलकण्ठ महानुभाव [illegible] निधि [illegible] भुज [illegible] आभूष-[illegible] सफेद वस्त्र और [illegible] माला [illegible] ध्वजा, जटाजूट [illegible] महेश्वर परमेश्वरका दर्शन [illegible] पराक्रम, रूप, [illegible] दिव्य [illegible] द्वारा [illegible] हैं, [illegible] माला [illegible] है। उस देवके [illegible] हे गोविन्द! मन [illegible]

[illegible] और [illegible] था। [illegible] भगवान् नारायण [illegible] और [illegible] था। हे गोविन्द! महादेवने [illegible] एक बार [illegible] किया था, [illegible] यदि महादेवकी भुजासे [illegible] चराचर [illegible]। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंमें [illegible] नहीं है। हे तात! [illegible] आश्चर्य और अद्भुत [illegible] था। [illegible] दूसरा परम [illegible] महादेवका त्रिशूल [illegible]

[illegible]

इसके अतिरिक्त पहिले महादेवने प्रसन्न होके रामको जो चत्रियोंका नाशक तीक्ष्ण धारवाला परशु प्रदान किया था, जिसके द्वारा महासंग्राममें चक्रवर्त्ती राजा कार्त्तवीर्य्य मारा गया, उसे भी मैंने उनके निकट देखा। हे गोविन्द! अक्लिष्टकर्म्मा जामदग्न्य रामने जिसके सहारे इक्कीस बार पृथ्वीको निःचत्रिय किया था, वह तीक्ष्णधारवाला रौद्रमुख सर्प-कण्ठाग्रमें अधिष्ठित जलती हुई अग्निकी शिखा समान परशु महादेवके समीप था। हे अनघ! उस धीमान्‌के निकट और भी अनगिनत अस्त्र थे, मुख्य करके तुमसे मैंने इन तीन अस्त्रोंका विषय वर्णन किया है। उस देवके दाहिनी ओर लोकपितामह ब्रह्मा हंसयुक्त मनोजव दिव्य विमानमें स्थित थे, बाईं ओर शंख चक्र गदाधारी नारायण गरुड़पर चढ़के विराजमान थे। देवीके निकट द्वितीय अग्निकी भांति स्कन्द शक्ति और घण्टा धारण करके मयूरपर निवास करते थे। महादेवके सम्मुख द्वितीय शङ्करकी भांति शूल ग्रहण करके खड़े हुए नन्दीको देखा। स्वायम्भुव आदि मुनि, भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता उस स्थानमें उपस्थित थे। समस्त भूत और विविध मातृकागण उस महात्माको सब प्रकारसे घेरके और प्रणाम करके स्थित थी। देवताओंने उस समय विविध स्तोत्रोंसे महादेवकी स्तुति की थी, अनन्तर ब्रह्मा रथन्तर साम उच्चारण करते हुए महेश्वरकी स्तुति करने लगे। नारायणने देवेश्वरकी अत्यन्त प्रसन्न करनेके लिये जेष्ठ साम गान किया। देवराज उत्कृष्ट शतरुद्रिका पाठ करते हुए परब्रह्मकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा, नारायण और देवराज कौशिक, ये तीनों महानुभाव तीनों अग्निकी भांति शोभित हुए। देवोंके देव भगवान् महेश्वर बीचमें शरदकालके बादलोंसे रहित सूर्य्यकी भांति विराजमान थे। हे केशव! उस समय मैंने आकाशमण्डलमें दश सहस्रके परिमाणसे चन्द्रमा और सूर्य्य देखे। अनन्तर मैं समस्त जगत्‌के प्रभु महादेवकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुआ।

उपमन्यु बोले, तुम देवादिदेव हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है, तुम शक्ररूप, शक्र, शक्रवेषधारी महादेव हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम कृष्णवासा, कृष्णाकुञ्चित केश, कृष्णाजिन वस्त्रधारी, कृष्णाष्टमीरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शुक्लवर्ण, शुक्ल, शुक्लाम्बरधर, श्वेतभस्मधारी और शुक्ल कर्म्ममें रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम रक्तवर्ण रक्ताम्बरधारी, रक्तध्वज पताका और लालमालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम पीताम्बरधारी, पीतवर्ण ध्वजा पताकायुक्त और पीली माला धारण करनेवाले हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम उच्छ्रितच्छत्र, किरीटवरधारी, अर्द्धहार, अर्द्धकेयूर और अर्द्ध-कुण्डलकर्णी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम ही वायुवेग हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है, हे देव! तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम उत्पल मिश्रित, पद्मार्द्ध-मालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम अर्द्धचन्दन लिप्त, अर्द्धमाल्य अनुलेपी आदित्य वक्र, आदित्यतनय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम आदित्य वर्ण, आदित्यप्रतिम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम सोम, सोमवक्त्रधर, सौम्यरूप मुख, सौमदन्त विभूषित हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्याम गौर, अर्द्धपीत और पाण्डुवर्ण हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; नरनारीरूप, स्त्री-पुरुष स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम वृषभ-वाहन, गजेन्द्रगमन, दुर्गम और अगम्यगमन हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम गणगीत, गणवृन्द रत, गणानुजातमार्ग और गणनित्यव्रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्वेताद्र्र वर्ण, सन्ध्यारागप्रभ, अनुद्दिष्टाभिधान स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है;

तुम रक्तग्रीवा, रक्तवस्त्रधर, लालमाला भूषित, रक्ताम्बरधारी, मणिभूषितमूर्द्धा और अर्द्धचन्द्र भूषित हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम दिव्य मणिमण्डित मस्तकपर अष्टकुसुमधारी, अग्निमुख, अग्निनेत्र और सहस्र शशिनेत्र हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम अग्निरूप काल ग्रहण हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम ईश्वर और गोचराभिरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम भूचर भुवन, अनन्त, शिव, दिगम्बर, पुष्पादि गन्धवासित और उत्तम वस्त्र धारी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम जगन्निवास, प्राण और सुखस्वरूप हो, सदा उद्दण्ड मुकुट, महाकेयूरधारी सर्व्वकण्ठोपहार, विचित्र आभूषण, लोकयात्रा निर्व्वाहक अग्नि-सूर्य्य चन्द्र रूप तीनों नत्रोंके नेत्रस्वरूप और सहस्र [illegible] हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम स्त्रीपुरुष और नपुंसक हो, तुम हो साङ्ख्य [illegible] हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम यज्ञ-[illegible], यज्ञपाद, पुण्यकर्त्ता, देवताओंके प्रसाद-[illegible] हो, अथवा तुम सर्व्वार्त्ति नाशकर और [illegible] हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; [illegible] बादलोंके बीच गर्जना शब्द और बह्न [illegible] हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, [illegible] पाल, चित्रपाल और स्रष्टा हो, इससे [illegible] नमस्कार है, तुम सब देवताओंके ईश [illegible] हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, — [illegible], पवनरूपी, काञ्चनमाला और [illegible] पर्व्वतके बीच कौञ्चपरायण [illegible] नमस्कार है, तुम सुरारिमाल [illegible] हो, [illegible] और [illegible] [illegible] नमस्कार है, तुम [illegible] [illegible] हो; इससे तुम्हें नम-[illegible] [illegible], [illegible] हो, इससे तुम्हें [illegible] [illegible] [illegible]

तुम्हें नमस्कार है; तुम भव, सर्व्व, विश्वरूप, ईशान, भवन्न और अन्तकालक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विश्वमायावी, चिन्त्य, अचिन्त्य हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम हमारे लिये श्रेष्ठ तथा गतिस्वरूप हो, तुम हो हम लोगोंके हृदयस्वरूप हो, तुम सब देवताओंके बीच ब्रह्मा, रुद्रगणोंके बीच नीललोहित सर्व्व प्राणियोंकी आत्मा और साङ्ख्ययोगमें पुरुषरूपसे वर्णित हुआ करते हो; तुम पवित्र लोगोंके बीच ऋषभ, योगियोंमें निष्कल शिव, आश्रमापुरुषोंमें गृहस्थ और ईश्वरोंमें महेश्वर हो, तुम यक्षोंके बीच कुवेर हो, यज्ञोंमें विष्णु कहके वर्णित होते हो, तुम पर्व्वतोंमें मेरु और नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो, ऋषियोंमें वसिष्ठ और ग्रहोंके बीच सूर्य्य कहके अभिहित हुआ करते हो; तुम जङ्गली पशुओंके परम ईश्वर हो सिंह और ग्रामवासी पशुओंके बीच लोकपूजित गऊ वृषभस्वरूप हो, तुम आदित्योंके बीच विष्णु, वसुओंमें अग्नि, पक्षियोंमें गरुड़, सर्पोंके बीच अनन्त, वेदोंमें सामवेद, यजुर्व्वेदके बीच शतरुद्रीय, योगियोंमें सनत्कुमार और साङ्ख्योंके बीच कपिलस्वरूप हो। हे देव! तुम देवताओंके इन्द्र तथा पितरोंके देवराज हो, तुम लोकोंके बीच ब्रह्मलोक और गतियोंके बीच मोक्षरूपसे वर्णित हुआ करते हो। तुम समुद्रोंमें क्षीरसागर पर्व्वतोंके बीच हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण, विप्रोंके बीच विद्वान् ब्राह्मण हो, तुम सब लोकोंके आदिकर्त्ता और [illegible] हो, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, यह सब [illegible] है, — ऐसा [illegible] बुद्धिमें निश्चय हुआ है। [illegible] भगवन्! [illegible] तुम्हें नमस्कार है, [illegible] तुम्हें प्रणाम है; [illegible] तुम्हें नमस्कार है। [illegible] प्रणाम करता हूं, [illegible] [illegible]

इस मनेश्वर्य्ययुक्त भक्तको पति होइये। हे परमेश्वर! हे देवेश! मैंने अज्ञानके वशमें होकर जो कुछ अपराध किया है, आपको मुझे अपना भक्त समझकर उन अपराधोंको क्षमा करना उचित है। हे देवेश्वर! मैं तुम्हारे रूपविपर्य्यय वशसे मोहित हुआ था, इसही निमित्त मैं तुम्हें पाद्य अर्घ प्रदान नहीं कर सका। इस ही प्रकार मैंने महादेवकी स्तुति करके भक्ति भावसे हाथ जोड़के पाद्य अर्घ आदि प्रदान किया। हे तात! अनन्तर मेरे शिरपर शीतल जलसे पूरित दिव्य गन्धयुक्त शुभ पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंके सेवक दिव्य दुन्दुभी बजाने लगे। पवित्र गन्धवाला सुखदायक पुण्यजनक वायु बहने लगा। उसके अनन्तर सपत्नीक वृषभध्वज महादेव प्रसन्न होकर उस समय मानो मुझे हर्षित करते हुए देवताओंसे बोले, हे देववृन्द! मेरे विषयमें महात्मा उपमन्युकी एकाग्र भावसे स्थित परम भक्ति अवलोकन करो।

हे कृष्ण! जब शूलपाणिने देवताओंसे ऐसा कहा, तब वे लोग हाथ जोड़के वृषभध्वजको नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! हे देवदेवेश जगत्पति लोकनाथ! यह द्विजवर आपके निकटसे सब काम्यमान फल लाभ करें। भगवान् शङ्कर ब्रह्मा प्रभृति देवताओंका ऐसा बचन सुनके हंसकर मुझसे कहने लगे।

भगवान् बोले, हे पुत्र मुनि पुङ्गव उपमन्यु! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरा दर्शन करो। हे विप्रर्षि! तुम मेरे दृढ़ भक्त हो, इस ही निमित्त मैं तुमसे पूछता हूं। तुम्हारी भक्तिके वशमें होकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये इस समय तुम्हारी जो कुछ अभिलाष होगी, उन सब काम्य विषयोंको प्रदान करूंगा। धीमान् महादेवका ऐसा बचन सुनके हर्षपूर्व्वक मेरे नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे और रोएं खड़े होगये। उस समय मैं दोनो जानु पृथ्वीपर स्थापितकर उस देवको बार बार प्रणाम करके हर्षित होकर गद्गद बचनसे कहने लगा, कि जब सुरासुर गुरु महादेव मेरे आगे निवास करते हैं, तब आज मेरा जन्म ग्रहण करना सफल हुआ। देवता लोग आराधना करके भी जिस देवेश्वरका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते मैंने उसका दर्शन किया, इसलिये मेरे समान और कौन धन्य पुरुष है? विद्वान् लोग इस ही सम्मुखवर्त्ती मूर्त्तिरूप सनातन परम तत्वका ध्यान किया करते हैं। यह महादेव ही देवान्तर अपेक्षा विशिष्ट मूर्त्ति होके भी नित्य अक्षर उत्पत्तिरहित ज्ञान स्वरूपसे विख्यात् है। यह वही भगवान् सत्वादि अव्यय देव, सर्व्वतत्व विधानज्ञ-प्रधान परम पुरुष है, जिसने दक्षिण अङ्गसे लोक-विधाता पितामहको और बाम-अंगसे लोकरक्षाके निमित्त विष्णुको उत्पन्न किया है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर ईश्वर रुद्रको उत्पन्न करता है, वही रुद्र स्थावर जंगममय समस्त जगत्को संहार करते हुए सम्वर्त्तक अग्निकी भांति महा तेजस्वी काल स्वरूपसे युगके अन्तमें सब भूतोंको ग्रास करके स्थित होता है। यह महादेव सचराचर जगत्की सृष्टि करता और कल्पान्तमें सबकी स्मृति लोप करके निवास करता है। यही सर्व्वग, सर्व्वभूतात्मा, सर्व्वभूत, प्रभवोद्भव, सदा सर्व्वगत होके भी सब देवताओंको नहीं दीख पड़ता। हे देव! हे सुरेश्वर! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हुए हो और मुझे बरदान करना उचित समझते हो, तो मैं यही बर मांगता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मेरी सदा भक्ति बनी रहे। हे विभु! हे सुरसत्तम! भूत, बर्त्तमान और जो कुछ भविष्य विषय हैं, उसे मैं तुम्हारी कृपासे जान सकूं, यही मेरी प्रार्थना है और मैं बान्धवोंके सहित अक्षय क्षीरोदन भोजन करूं तथा मेरे आश्रमके निकट आपका निवास रहे। लोकपूजित चराचर गुरु महातेजस्वी भगवान् महेश्वर मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके मुझसे बोले।

[illegible] बोले, हे द्विजवर! तुम मेरे [illegible] [illegible] धर्मसे, और [illegible] [illegible] होकर ऋषियोंमें आदरणीय होगे। [illegible] ज्ञान, सर्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे। [illegible] [illegible] और यौवन [illegible] [illegible] तुम्हारी इच्छाके अनु- [illegible] [illegible] तुम [illegible] [illegible] [illegible] निकट [illegible] हे द्विजेन्द्र! तुम्हारे आश्रमोंमें [illegible] सदा [illegible] होगा और [illegible] [illegible] रहेगी। हे द्विजोत्तम! [illegible] मेरे निकट रहोगे। हे [illegible] इच्छानुसार निवास करो, कल्याणित [illegible] [illegible] भी मैं तुम्हें [illegible]। [illegible] समान प्रकाशमान युक्त [illegible] [illegible] होकर तुम [illegible] अन्तर्धान होगये।

हे कृष्ण! इस ही प्रकार समाधिके द्वारा [illegible] देव महादेवका दर्शन किया था। [illegible] कहा था सो सब प्राप्त [illegible]। हे कृष्ण! प्रत्यक्ष देखो, सिद्ध, ऋषि, [illegible] गन्धर्व और अप्सरागण स्थित [illegible] वृक्ष, लता और गुल्म [illegible] ये सब ऋतुओंमें ही फल फूल [illegible] और मनोरम होरहे हैं। हे महा- [illegible] देवदेव [illegible] [illegible]।

[illegible] दर्शनादि आदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उपमन्यु बोले, हे तात महाबाहो! [illegible] जिस प्रकार दर्शन किया था, तुम भी [illegible] उस ही भांति महादेवका दर्शन करोगे। हे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महादेवका दर्शन करोगे। हे [illegible] [illegible] [illegible] महादेवके निकट [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महा- [illegible] इस [illegible] [illegible] और अविच्छिन्न [illegible] [illegible] [illegible] है, हे माधव! आगत [illegible] [illegible] [illegible] तब तुम [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे समान पुरुषके [illegible] समागम होना देवताओंमें [illegible] है। मैं तुम्हें [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible], उसहीके द्वारा तुम महादेवका दर्शन करनेमें समर्थ होगे।

विष्णु बोले, मैंने उनसे कहा, हे ब्रह्मन्! हे महामुनि! मैं आपकी कृपासे [illegible] [illegible] [illegible] दर्शन [illegible]। हे भारत! अनन्तर इस ही प्रकार [illegible] [illegible] कहते कहते [illegible] [illegible] दिन बीत गया। आठवे दिन मैंने [illegible] [illegible] दीक्षा पाई। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

महेश्वर देवीके सहित उस ही नीरदमण्डलमें स्थित रहके तपोतेज कान्ति और दीप्यमान उमाके सहित मेघमण्डलमें स्थित चन्द्रमासे युक्त सूर्य्यकी भांति विराजते थे। हे कुन्तीनन्दन! मैंने लोमाञ्चित शरीर और विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे देवताओंकी गति तथा अर्त्तिहर महादेवका दर्शन किया। मैंने देखा, कि ये ही किरीट मण्डित हाथमें लिये हुए, शूलपाणि, बाघाम्बरधारी जटिल दण्डपाणि पिनाकी वज्री तीक्ष्णदन्त शुभाङ्गद व्याल यज्ञोपवीती देव वर्षोंके समाप्तिमें सन्ध्याके सहित घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति वक्षःस्थलमें गुल्फ पर्य्यन्त अनेक वर्णोंकी दिव्यमाला धारण करके निवास करते हैं। शरदकालमें निर्म्मल दुष्प्रेक्ष्य प्रकाशमान सूर्य्यकी भांति भूतगणोंसे सब प्रकार घिरे हुए थे, ग्यारह सो रुद्रगण मन और कर्म्मसे सदा शुभ कर्म्मशील उस वृषभवाहन महेश्वरकी स्तुति करते थे। आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वदेव और दोनों अश्विनीकुमार विश्वस्तुतिके सहारे उस विशेश्वरकी आराधना करते थे। अदिति-नन्दन इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मा महादेवके निकट रथान्तर सामगान करते थे। हे राजन्! बहुतेरे योगेश्वरवृन्द पुत्रोंके सहित ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, ग्रह, मास, पक्ष, सब ऋतु, रात्रि, सम्वत्सर, क्षण, मुहूर्त्त, निमेष, युगपर्य्याय, दिव्य विद्या और सत्यवित् सब प्राणी उस योगदाता, पिता तथा गुरुको नमस्कार करते थे। सनत्कुमार, समस्त वेद, इतिहास, मरीचि, अङ्गिरा अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सप्तमनु, सोम, अथर्व्वा, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, काश्यप, वसिष्ठ, काश्य, समस्त छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हवि, मूर्त्तिमत यज्ञके उपकरण तथा सब सामग्री, समस्त प्रजापालगण, नदियें, पन्नग और नागगण, देवगणोंकी माता, कन्या और समस्त स्त्रियें, सहस्र अयुत और अर्व्बुद संख्यक मुनिवृन्द, पर्व्वत, समुद्र और सब दिशा, गीतवाद्य जाननेवाले गन्धर्व्व तथा अप्सरागण दिव्य तानके सहित गान करती हुई शान्त विभुको प्रणाम और अद्भुतभावसे स्तुति कर रही थीं। हे महाराज! विद्याधर, दानव, गुह्यक राक्षस और स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी वचन मन और कर्म्मसे उस महेश्वरको प्रणाम करते थे; देवेश्वर महादेव मेरे अगाड़ी स्थित थे। हे भारत! मेरे अगाड़ी महादेवको खड़े हुए देखके ब्रह्मा और इन्द्र पर्य्यन्त सब लोग मुझे देखने लगे। उस समय महादेवको ओर देखनेमें मेरी सामर्थ्य न हुई। अनन्तर महेश्वर मुझसे बोले, हे "कृष्ण! तुम मेरा दर्शन करो और जो कुछ अभिलाष हो, वह मुझसे कहो। तुमने सैकड़ों सहस्रों बार मेरी आराधना की है, तीनों लोकोंके बीच तुम्हारे समान प्रियपात्र मेरा कोई भी नहीं है।" मैंने जब सिर नीचा करके महादेवकी वन्दना की, तब उमादेवी प्रसन्न हुईं। अनन्तर मैंने ब्रह्मादि देवताओंके स्तवनीय महादेवसे कहा।

विष्णु बोले, हे अपरिणामिन् सर्व्वयोनि शङ्कर! तुम्हें प्रणाम है, ऋषि लोग तुम्हें सब वेदोंके स्तवनीय कहते हैं, साधु लोग तुम्हें ही तप, सत्त्व, रज, तम और सत्यस्वरूप कहा करते हैं। तुम ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, धाता (ईश्वर,) त्वष्टा (रूप निर्म्माता) विधाता (धर्म्माधर्म्मरूपी कर्म्मफल देनेवाले) और तुम सर्व्वतोमुख प्रभु हो। स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, ये चराचरोंके सहित तीन लोक तुमसे प्रकट हुए हैं। इस शरीरमें जो सब इन्द्रियें, मन और प्राण आदि पञ्चवायु हैं, और गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य, आवसथ्य, ये पांचों श्रौत, छठवीं स्मार्त्त, सातवीं लौकिक, ये सात प्रकारकी अग्नि और देव अर्थात् सूत्रात्मामें जिनकी समाप्ति हुई हैं, तथा जो स्तुतिके योग्य

[illegible] है, उन सबके नेत्र और [illegible] ऋषि [illegible] गोचर कहा करते हैं। सब वेद, [illegible] दक्षिणाग्नि, हवि तथा जो कुछ [illegible] सामग्री हैं, भगवान् ही निःसन्देह उन [illegible] स्वरूप हैं। इष्टदत्त अधीन व्रत, नियम, [illegible] कीर्त्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और सिद्धि, वे [illegible] स्वरूप प्राप्तिके कारण हैं। हे [illegible] काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, [illegible] आदि और व्याधि, वे सब तुम्हारे पुत्र [illegible] क्रिया विकार अर्थात् क्रिया फलभूत हर्ष [illegible] भाव प्रकट वासनाबीज प्रधान [illegible] परमयोनि शाश्वत प्रभाव अज्ञान अव्यक्त [illegible] पवित्रचित्तमें ज्योतिरूपी सूर्य्य तथा [illegible] तत्त्वोंकी आदि हो, आप ही उन सबके [illegible] अर्थात् नदियोंके निमित्त समुद्रको [illegible] प्राप्य स्थान ; महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, [illegible], स्वयम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, [illegible], धृति, स्मृति, आदि पर्य्यायवाचक [illegible] द्वारा वेदार्थ जाननेवाले पुरुषोंसे तुम [illegible] महान् आत्मा कहके वर्णित हुआ [illegible] हो। विद्वान् ब्राह्मण लोग तुम्हें जानके [illegible] अज्ञान निवारण करते हैं। तुम सब [illegible] हृदयमें वास करनेवाले क्षेत्रज्ञ और [illegible] स्तवनीय हो। तुम्हारे पाणि और [illegible] सर्व्वत्र विद्यमान है। तुम्हारे नेत्र, [illegible] मुख सब ठौर विराजमान है, तुम [illegible] होकर सारे जगत्‌को परिपूर्ण [illegible] हो, तुम ही सूर्य्यकी प्रभा तथा [illegible] आदि [illegible] हो, तुम [illegible] [illegible] तुम [illegible] [illegible] तुम [illegible] [illegible]

निर्मल गुहाशय प्रभु पुराण, पुरुष [illegible] स्वरूप [illegible] और बुद्धिमान पुरुषोंकी परम गतिको जानते हैं, अथवा जानके [illegible] हैं, वे सदा बुद्धिमान [illegible] बुद्धिको अतिक्रम करके निवास किया करते हैं। विद्वान् [illegible] सूक्ष्म विषयों अर्थात् सहत [illegible] तथा [illegible] और [illegible] अर्थात् सर्व्वज्ञता, तृप्ति [illegible], [illegible], स्वतन्त्रता, [illegible], [illegible] शक्ति और [illegible] शक्तियुक्त तुम्हें मूर्त्तिमान स्वरूप जानके और चित्तसत्त्वको [illegible] रूपसे [illegible] विधिके अनुसार योगयुक्त होकर तुममें ही प्रवेश करते हैं। हे पार्थ! [illegible] महादेवसे जब मैंने ऐसा कहा, उस समय चरा-चरोंसे युक्त समस्त जगत् सिंहनाद करने लगा। उस समय ब्राह्मण, देवता, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, पक्षीसमूह राक्षस, समस्त प्राणियों तथा महर्षियोंने उन्हें प्रणाम किया। मेरे सिरपर दिव्य सुगन्धियुक्त फूलोंकी वर्षा हुई, और सुखस्पर्श वायु बहने लगा। [illegible] भगवान [illegible] और उमादेवी, मुझे और इन्द्रको देखके स्वयं [illegible] लगे। हे शत्रुनिसूदन कृष्ण! यह मैं जानता हूं कि मुझपर तुम्हारा परमभक्ति है, तुम [illegible] [illegible], तुमपर मेरा परम प्रीति उत्पन्न [illegible]। [illegible] [illegible] तुम [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible]! तुम [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] समाप्त।

[illegible]

पानेके लिये आपके निकट प्रार्थना करता हूं। महादेव मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके बोले, "ऐसा ही होवे।" अनन्तर जगन्माता सर्व्वधारिणी सर्व्वपावनी तपस्याकी निधि सर्व्वाणी उमादेवीने मुझसे कहा, हे पापरहित कृष्ण! भगवानने तुम्हें शाम्ब नामक पुत्र प्रदान किया। अब तुम निज अभिलषित आठ वर मुझसे मांगो, मैं तुम्हें वर देती हूं। हे पाण्डुनन्दन! मैंने उस समय सिर झुकाके देवीको प्रणाम करके कहा, हे माता! ब्राह्मणोंके विषयमें अक्रोध पिताकी प्रसन्नता, शतपुत्र, परम भोग, कुलमें प्रीति माताकी कृपा, शमप्राप्ति और दक्षताकी मैं प्रार्थना करता हूं।

उमा बोली, हे परमप्रभाव। तुमने जो वर मांगा वह तुम्हें प्राप्त होगा; इसके अतिरिक्त मैं और भी आठ वर देती हूं, मैं कदापि मिथ्या नहीं कहती इसलिये तुम भी महाप्रभावयुक्त होगे और मिथ्या न कहोगे, तुम्हारे सोलह हजार भार्य्या होंगी, उनपर तुम्हारा प्रियत्व और धनधान्य आदिका अक्षयत्व रहेगा, तुम बान्धवोंके निकट परम प्रीति प्राप्त करोगे; तुम्हारे शरीरकी कमनीयता होगी और तुम्हारे गृहमें प्रतिदिन सत्तर सौ अतिथि भोजन करेंगे, मैंने तुम्हें यह आठ वर और प्रदान किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे भीमाग्रज भारत! महादेव और देवी इस ही प्रकार चौबीस वर देके उस ही समय निजगणोंके सहित अन्तर्द्धान हुए। हे नृपवर! यह अत्यन्त अद्भुत समस्त विषय पहले मैंने ब्राह्मणश्रेष्ठ तेजस्वी उपमन्युके समीप वर्णन किया। हे सुव्रत! उन्होंने महादेवको नमस्कार करके कहा।

उपमन्यु बोले, महादेवके समान देवता नहीं है, न महादेवके समान गति है, दानविषयमें महादेवके समान कोई नहीं है और न कोई पुरुष संग्राममें ही महादेवके समान है।

१५ अध्याय समाप्त।

उपमन्यु बोले, हे तात! सत्ययुगमें नामसे विख्यात् एक ऋषि था, उस भक्त हजार वर्षतक ध्यान योगके सहारे होकर महादेवकी आराधना की थी, पूर्ण होनेपर उन्हें जो फल प्राप्त हुआ उसे उन्होंने विभु महादेवका दर्शन करके [illegible] युक्त वचनसे उनका स्तव किया था, तण्डि मुनि तपोयोग निबन्धनसे अव्यय महात्मा परमात्माका इस ही प्रकार ध्यान करके अत्यन्त विस्मय युक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन बोले, सांख्यवादी लोग जिस परमप्रधान पुरुष अधिष्ठाता ईश्वरकी स्तुति किया करते हैं, योगीजन जिसका सदा ध्यान करते हैं, ज्ञानी लोग जिसे उत्पत्ति और विनाशका कारण कहते हैं; देवता, असुर और मुनियोंके बीच जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, मैं उस जन्मरहित अनादि निदान सर्व्व शक्तिमान अत्यन्त सुखी पापरहित महादेवकी शरणागत होता हूं। तण्डि मुनिने ऐसा वचन कहते कहते उस अव्यय तपोनिधि अतुल अचिन्तनीय शाश्वत कूटस्थ निष्कल और निर्गुण गुणगोचर ब्रह्मका दर्शन किया। वही योगियोंका परम आनन्द अविनाशी और मोक्ष संज्ञित है; वही मनु, इन्द्र अग्नि, वायु, जगत् और देवताओंका अवलम्ब है। वह अग्राह्य अचल, शुद्ध बुद्धिसे मालूम होने योग्य और मनोमय है। वह दुर्विज्ञेय असंख्येय और अकृतात्म लोगोंको दुष्प्राप्य है; वह समस्त जगत्की योनि है, तमोगुणके परे स्थित पुराण पुरुष और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ देवता है, जो आत्माको प्राणविशिष्ट करके उसमें आवृत जीव तथा मनोरूप ज्योति स्वरूपसे स्थित रहता है, उस ही देवके दर्शनकी इच्छा करके तण्डि ऋषि अनेक वर्ष पर्य्यन्त उग्रतपस्या करनेके अनन्तर ईश्वरका दर्शन करके स्तुति करने लगे।

तण्डि बोले, हे मतिमताम्बर! तुम गङ्गा आदि पवित्र पदार्थोंमें भी पवित्र और श्रेष्ठ

[illegible] हो, नेत्र आदि तेजस्वी पदार्थोंके तेज [illegible] प्रकाशक और समस्त तपस्याकी भी [illegible] हो। तुम विश्वावसु हिरण्याक्ष और [illegible]के नमस्कार हो ; हे मोक्षदाता [illegible] तुम परम सत्य हो इससे तुम्हें प्रणाम है। हे विभु! तुम जन्म मरण और वर्त्तमान [illegible] निर्व्वाणदाता हो। हे सहस्रांशु! हे [illegible]! तुम्हें प्रणाम है। ब्रह्मा, विष्णु, [illegible], [illegible] और महर्षि लोग तुम्हें यथार्थ [illegible] नहीं जानते तब मैं तुम्हें किस प्रकार [illegible] करूंगा? तुमसे ही जगत् उत्पन्न होता और उत्पन्न होके तुमहीमें प्रतिष्ठित रहता है। तुम ही काल, तुम ही पुरुष और तुम ही [illegible] हो। पुराण जाननेवाले देवर्षि लोग [illegible] कालाख्य, पुरुषाख्य और ब्रह्माख्य [illegible] विष्णु और रुद्राख्य इन तीनों [illegible] स्मरण किया करते हैं। हिरण्यगर्भादि [illegible] पर अधिकार करके जो विधान [illegible] है, तुम ही वह अधिदैवरूप विधान [illegible] हो, देहमें अधर और उत्तर [illegible] [illegible] अधिकार करके [illegible] उत्पन्न होता है, [illegible] स्वरूप हो। [illegible] और [illegible] तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको [illegible] करके जो विधान होता है, तुम ही [illegible] अधिदैवत हो, तुम ही [illegible] अधिदैवत और [illegible] स्वरूप [illegible] तुम्हें किस प्रकारसे देवता- [illegible] [illegible] [illegible] हे विभु! [illegible] [illegible] तुम ही [illegible] [illegible]

रुद्र, विष्णु, स्कन्द, इन्द्र, सूर्य्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता और कुवेर हो। तुम ही पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, वचन, बुद्धि, स्थिति और मतिस्वरूप हो ; तुम ही सत्यानृत दोनों कर्म हो और तुम ही [illegible] पकी भांति मालूम होते हो, परन्तु स्वयं [illegible] जगत्कारण प्रधानरूपसे विद्यमान नहीं हो, तुम ही इन्द्रियोंके इन्द्रिय विषय प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ और निश्चल हो। तुम कार्य्यकारणसे भिन्नभाव सत्तामात्र स्वरूप हो, तुम औपाधिक रूपसे चिन्तनीय और निरुपाधिभावसे अचिन्त्य हो। जिसे परब्रह्म तथा जिसे परम पद कहते हैं और जो सांख्ययोगकी परम गति है, वह तुम ही हो ; इसमें सन्देह नहीं है, कि ज्ञानके सहारे जिनकी बुद्धि निर्म्मल हुई है, वे जिस गतिकी अभिलाष करते हैं, मुझे वही साधुओंकी गति प्राप्त हुई है, [illegible] निश्चय ही कृतार्थ हुआ। पण्डित लोग [illegible] शाश्वत कहते हैं, मैंने जो इतने समयतक [illegible] परम देवको [illegible] जाना, इससे [illegible] [illegible] तक [illegible] था। [illegible] वाले, जिस देवके जाननेसे लोग [illegible] करते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सम्यक् सिद्ध नाम मनुष्योंका जो सम्यग्ज्ञान है, वह ईश्वर ही वह गतिस्वरूप है। जो देव देवताओंके सहित पृथ्वी आदि सब लोकोंको उत्पन्न करके आठ मूर्त्तियोंके द्वारा उन्हें धारण और पालन करता है, इसहीसे सब जगत् उत्पन्न होके इसहीमें प्रतिष्ठित है और इसहीमें प्रलयके समय लीन होता है, केवल वह ईश्वर ही नित्य है। अव्यभिचारी सत्य अर्थात् वेदोक्त कर्म्मफल स्वरूप जो स्वर्ग है, उन स्वर्ग काम साधुओंके येही केवल सत्यलोक हैं और येही योगियोंके अपवर्ग और आत्मवित् पुरुषोंके कैवल्य स्वरूप है। यह प्रभु देवता और असुरोंके बीच अप्रकाशित रहता है, इस ही लिये ब्रह्मा आदि मन्त्र व्याख्याता सिद्धोंके द्वारा शास्त्र स्वरूप गुहामें स्थित है। देवता असुर और मनुष्य लोग यथार्थ रूपसे इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। हृदयस्थ और अप्रकाश इस ईश्वरके द्वारा सभी मोहित होरहे हैं। जो लोग भक्तिभावसे ध्यान करके इसका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, यह हृदयरूपी गुफामें शयन करनेवाला भगवान उन्हें स्वयं ही दर्शन देता है। जिसे जाननेसे फिर जन्म वा मृत्यु नहीं होती, जिस परम वेद्य परमेश्वरके जाननसे फिर कुछ भी जाननेके लिये शेष नहीं रहता, जिसे पाके विद्वान् पुरुष फिर किसी लाभको अधिक नहीं समझते, जिसे सूक्ष्म और परम प्राप्ति समझके विद्वान पुरुष अक्षय तथा अव्यय होते हैं, जिन्होने ज्ञानके द्वारा लिङ्ग अतिक्रम किया है, वेही सांख्य शास्त्र जाननेवाले गुणतत्त्वज्ञ सांख्यमतवाले पण्डित लोग सूक्ष्म पुरुषको जानके बन्धनसे छूट जाते हैं। वेद जाननेवाले विद्वान् लोग जिसे वेद्य कहके जानते है, जो वेदान्त शास्त्रके बीच प्रतिष्ठित होरहा है। सदा प्राणायाममें रत रहनेवाले मनुष्य जिसमें प्रवेश करते तथा जिसका जप करते हैं, वे लोग ओंकार रूपी

रथमें चढ़के जिस महेश्वरमें प्रवेश किया करते हैं, यह वही देवयान पथका द्वार आदित्यरूपसे कहा गया है; यही पितृयानका द्वार चन्द्रमा रूपसे अभिहित हुआ करता है। येही काष्ठा, दिशा, सम्वत्सर और युग आदि हैं, येही दिव्या दिव्य अर्थात् इन्द्र और सार्व्वभौम लाभ तथा दक्षिणोत्तर अयन स्वरूप हैं। पहले प्रजापतिने इसे नील लोहित की अनेक भांतिसे आराधना करके प्रजाके निमित्त वर मांगा था। ब्रह्म-वादी ब्राह्मण लोग अनारोपित रूप विषयमें ऋक्मन्त्रोंसे जिसका वर्णन करते हैं; यजुर्व्वेद जाननेवाले अध्वर्यु गण श्रौत स्मार्त्त और ध्यान, इन त्रिविध यज्ञोंसे वेद्य जिसके निमित्त अध्वरमें यजुर्मन्त्रके द्वारा होम किया करते हैं; शुद्धबुद्धि सामवेदी ब्राह्मण सामवेदके मन्त्रोंसे जिसका यश गाते तथा अथर्व्ववेदी ब्राह्मण जिस यज्ञके फल सत् स्वरूप परब्रह्मकी स्तुति किया करते हैं,— येही वह यज्ञयोनि और यज्ञ फल कहके स्तुत होते हैं। रात्रि तथा दिन जिसके कर्ण और नेत्र हैं, पक्ष तथा महीना जिसके शिर और भुजा है, ऋतु जिसका वीर्य्य तपस्या धैर्य्य और वर्ष जिसके गुह्य, ऊरु और चरण है, येही मृत्यु, यम, अग्नि, संहार वे भगवान काल, कालकी परम योनि और सनातन काल स्वरूप हैं। येही नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य्य वायुके सहित समस्त ग्रह, ध्रुव सप्तर्षि और सातो भुवन स्वरूप है। येही प्रधान महत् अव्यक्त, सवैकृत विशेषान्त ब्रह्मादि स्तम्ब पर्य्यन्त सद्रूप भूमि, जल, अग्नि और असद्रूप वायु तथा आकाश स्वरूप हैं। येही भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार, इन अष्ट प्रकृति स्वरूप और प्रकृतिसे भी मायावी तथा मायावीके अंश समस्त प्रपञ्च स्वरूप हैं। येही आनन्दमय ईश्वर रसे भी परम शुद्ध आनन्द स्वरूप और समस्त नित्य वस्तुओंसे भी नित्य हैं; येही विरक्तोंकी गति और साधुओंके परमभाव हैं। येही अनु-

[illegible] तथा येही सनातन ब्रह्म हैं। [illegible] और वेदाङ्ग जाननेवाले पुरुषोंके येही [illegible] ध्यानस्वरूप हैं। येही स्तुति- [illegible] परम काष्ठा हैं, येही परम कला हैं, [illegible] परम सिद्धि और येही परम गति हैं। [illegible] परम शान्ति तथा परम निर्व्वृत्ति हैं, [illegible] जिसे पाके यह समझते हैं, कि 'मैं [illegible] हुआ हूं'—ये वही तुष्टि, सिद्धि, श्रुति [illegible] आदि जनित अनुभूति और स्मृतिस्व- [illegible], येही योगियोंकी [illegible] गति अर्थात [illegible] स्वरूपवाली गतिस्वरूप हैं। येही [illegible] पुरुषोंको अपुनरावर्त्तिनी प्राप्तिस्वरूप [illegible]। [illegible] दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञोंसे सहारे [illegible] कामनावान मनुष्योंका जो गम्यस्थान [illegible] वह करनेवाले पुरुषोंको निःसन्देह तुम ही [illegible] गति हो। हे देव! पूरी रीतसे जप योग [illegible] नियम और देहको तपाते हुए तपस्या [illegible] मनुष्योंको जो गति प्राप्त होती है [illegible] वह परम गति हो। हे सनातन! कर्म्म [illegible] पुरुषोंको [illegible] जो [illegible] तुम ही वह [illegible] हो, जो [illegible] और सदा [illegible] हैं, उन मनुष्यों- [illegible] प्राप्त होता है, हे सनातन! [illegible] तत्स्वरूप हो। हे देव! [illegible] निरञ्जन [illegible] होता है, तुम ही [illegible] और [illegible]

[illegible]

उपमन्यु बोले, देवप्रभु भगवान् महादेव उमाके सहित ब्रह्मवादी तण्डि मुनिके द्वारा इस ही प्रकार स्तुति युक्त होकर [illegible] ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, विश्वेदेव और महर्षि लोग भी तुम्हें नहीं जानते इस ही वचनसे महादेव प्रसन्न होकर तण्डिसे कहने लगे।

भगवान् बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रसादसे अक्षय, अव्यय, दुःख रहित, यशस्वी और दिव्यज्ञानसे युक्त होगे और तुम्हारा पुत्र ऋषियोंका माननीय तथा सूत्रकर्त्ता होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे तात! कहो, तुम्हें कौनसी अभिलाषा है, मैं इस समय तुम्हें वरदान करूंगा। तण्डि मुनि हाथ जोड़के उस समय यह वचन बोले, हे देव! तुममें मेरी दृढ़ भक्ति रहे।

उपमन्यु बोले, देवोंसे वन्दनीय और देवताओंसे स्तूयमान महादेव तण्डि मुनिको वह सब वरदान करके उस ही स्थानमें अन्तर्धान होगए, हे यादवेश्वर! जब भगवान सेवकोंके सहित अन्तर्हित हुए तब महर्षि तण्डिने इस आश्रममें आकर मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा था। पहले जो कुछ विदित हुआ था, तण्डि मुनिने वह सब मुझसे कहा। हे मधुसूदन! उन्होंने भगवानके [illegible] नामोंका वर्णन किया था, तुम [illegible] वह सब सुनो। पितामहने देवताओंके समीप भगवान्के दश सहस्र नामका वर्णन किया था, परन्तु शास्त्रमें और महादेवके सहस्र नाम विख्यात हैं। हे अच्युत! हे देव! पहिले समयमें तण्डि मुनिने [illegible] इन्होंको हृदयमें [illegible] महादेवसे [illegible] कहा था।

[illegible] समाप्त।

[illegible]

उपमन्यु बोले, मैं ब्रह्मा और ऋषियोंके द्वारा वेदवेदाङ्गोंमें वर्णित नामोंसे सब लोकोंमें विख्यात् स्तुतियोग्य महेश्वरकी स्तुति करूंगा। जो सब स्तुतिके वचन सर्व्वार्थ साधक, नित्य, सत्य, महत् और सुविहित हैं, जिसे तण्डि महर्षिने वेदोंसे विभिन्न करके ग्रथित किया है; तत्त्वदर्शी विख्यात साधु और मुनियोंके द्वारा जो वर्णित हुआ है, सर्व्वत्र प्रसिद्ध ब्रह्मलोकसे प्रकट उस अन्वर्थ वचनसे सबसे श्रेष्ठ प्रथम स्वर्गाग्र सब भूतोंके हितैषी गुह्य स्वरूप शंकरकी स्तुति करूंगा। हे यदुकुल श्रेष्ठ! वेदमें वर्णित उस सनातन परब्रह्मके नामोंका वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। तुम परमेश्वरमें भक्ति करते हो, इसलिये उस भवानीपति महादेवको वरण करो। तुम उसके भक्त हो, इसहीसे मैं तुम्हें उस सनातन परब्रह्मका नाम सुनाऊंगा, कोई पुरुष भी महादेवकी समस्त महिमा विस्तारपूर्व्वक वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। हे माधव! विभूतियुक्त पुरुष एक सौ वर्षमें भी उसे नहीं जान सकता। देवता लोग जिसको आदि मध्य और अन्त जाननेमें असक्त हैं, उसके सब गुणोंको वर्णन करनेमें कौन समर्थ होगा? परन्तु उस बुद्धिशक्तिसे युक्त महादेवकी कृपासे मैं निज शक्तिके अनुसार संक्षिप्तार्थ पद और अक्षरयुक्त चरित वर्णन करूंगा। बिना उसकी कृपासे कोई उसकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं होता, जब मैं उससे अनुज्ञात हुआ हूं, तभी स्तुति किया है। मैं आदि अन्तसे रहित जगद्योनि महानुभाव अव्यक्त योनिके नामोंका किञ्चित उद्देश्य करूंगा। हे कृष्ण! वरदाता वरणीय विश्वरूपी धीमान् शङ्करके जो सब नाम ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुए हैं उसे सुनो। पितामह ब्रह्माने जो दश सहस्र नाम कहा है, वह सब मनहीमन मथके उसके बीचसे यह सार रूपसे इस प्रकार निकाला गया है, जैसे दहीसे घृत, पहाड़से सुवर्ण, फूलसे मधु और दूधसे मक्खन निकाला जाता है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला चारोंवेदोंसे युक्त नामोंको सावधान चित्त होकर लोगोंको जानना तथा धारण करना उचित है। इन मङ्गलजनक पुष्टिकर रक्षोघ्न महत् पावन नामोंको श्रद्धावान् आस्तिक भक्तोंको सुनाना चाहिये; अश्रद्धावान् नास्तिक और अजितेन्द्रिय पुरुषोंको कदापि उपदेश करना उचित नहीं है। हे कृष्ण। कारण स्वरूप देवाधिदेव ईश्वरके विषयमें जो लोग असूया करते हैं, वे पूर्व्व पुरुष तथा पुत्रोंके सहित नरकमें डूबते हैं। इन नामोंका जप कर सकनेसे ही ध्यान आदिका फल प्राप्त होते हैं, यह योग और अनुत्तम ध्येय है, यही जप, यही ज्ञान तथा यही श्रेष्ठ रहस्य है। अन्तकालमें जिसको जाननेसे परम गति प्राप्त होती है, यह पापनाशक अभ्युदयकारी यज्ञ फलदायक और परमानन्द स्वरूप है। पहले समयमें सर्व्वलोक पितामह ब्रह्माने इस स्तोत्रको समस्त दिव्य स्तोत्रोंके राजत्व पर अभिषिक्त किया। उस ही समयसे महानुभाव देवताओंसे पूजित यह स्तोत्र जगत्में स्तवराज रूपसे विख्यात् हुआ है। यह स्तवराज ब्रह्म लोकसे स्वर्गमें उतरा और स्वर्गसे पहले समयमें इसे तण्डि मुनिने पाया, इस ही निमित्त यह तण्डिकृत कहके प्रसिद्ध हुआ है। तण्डिके द्वारा यह स्वर्गसे भूलोकमें उतरा है।

हे महाबाहो! समस्त मङ्गलोंका मङ्गलकारी सर्व्व पापोंका नाश करनेवाला सब स्तोत्रोंके बीच उत्तम स्तोत्र वर्णन करूंगा। जो वेदोंका भी वेद अर्थात् वाक्यका भी वाक्य स्वरूप है, सब श्रेष्ठ वस्तुओं अर्थात् इन्द्रियार्थ मन बुद्धि महत् अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ पुरुष, तेजस्वी पदार्थों अर्थात् नेत्र आदिका तेज स्वरूप है, तपस्या गङ्गा आदि पुण्य तीर्थोंका भी पुण्यस्-

[illegible] के [illegible]योंका भी [illegible] है, [illegible] [illegible]लोकों भी [illegible] है, जो [illegible] तथा [illegible] जितेन्द्रिय, [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] ज्योतियोंका भी [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वस्तु [illegible] । [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सुनो । हे [illegible] ! [illegible] [illegible] प्राप्त होगी । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, इस [illegible] [illegible] [illegible] वस्तु प्रदान [illegible] [illegible] जगतको [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] हैं, इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निवास करता है, इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है [illegible] [illegible] [illegible] २४. [illegible] होनेसे [illegible] २५. [illegible] है, [illegible] [illegible] २६, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्थानमें गमन करते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता है, [illegible] [illegible] [illegible] २७, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] २८, [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] २९ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३०, पापियोंको [illegible] करता है, इस [illegible] [illegible] [illegible] ३१ [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] ३२ [illegible] आदि [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] ३३, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३४, आकाश आदि भूतोंको [illegible] [illegible] [illegible] करता है, इसहीसे भूतभावन ३५. [illegible] [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] [illegible] ३६, [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] है इसहीसे [illegible] और [illegible] ३७, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३८ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

देवेश्वरी अश्वतरी उसके रथको खींचती हैं, इस ही कारणसे हयगर्द्दभी ४६, संसार भज-पातसे त्राण करता है, इस ही निमित्त पवित्र ५०, पूज्य है, इसलिये महान् ५१, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि नियमके सहारे वह प्राप्त होता है, इस ही निमित्त नियम ५२, और उक्त नियमोंके आश्रित है, इस ही लिये नियमाश्रित ५३, समस्त शील्प कार्य्य विश्वकर्म्मा है, इसहीसे सर्व्वकर्म्मा ५४, नित्य सिद्ध होनेसे स्वयम्भूत ५५, सबसे प्रथम होनेसे आदि ५६, हिरण्यगर्भ-स्रष्टा है, इसीसे आदिकर ५७, पद्म शंख प्रभृति अक्षय ऐश्वर्य्यस्वरूप है, इस ही निमित्त निधि ५८, अनन्त कर चरण नयनादिमान् अथात् देवेन्द्र स्वरूप होनेसे सहस्राक्ष ५६, अतीत अनागतके प्रकाशक नेत्रसम्पन्न है, इसहीसे विशालाक्ष ६०, चन्द्र वा यज्ञीय स्वरूप होनेसे सोम ६१, आकाशमें प्रकाशमान शरीरसे नक्षत्रोंके कारण होनेसे नक्षत्रसाधक ६२, चन्द्र ६३, सूर्य्य ६४, शनि ६५, केतु ६६, राहु ६७, ग्रहपति (क्रूरत्व-निबन्धन) मङ्गल ६८, वर (वरणीय पूज्य वृहस्पति) ६६, अत्रि अर्थात् अत्रिगोत्रापत्य बुध है, इसलिये सर्व्व ग्रहस्वरूप ७०, दुर्व्वासा-रूपसे अत्रिपत्नी अनुसूयाका पुत्र होके उसे नमस्कार करनेसे अत्र्यानमस्कर्त्ता ७१, मृगरूपधारी यज्ञमें बाण चलाया था, इसीसे मृगवाणार्पण ७२, यज्ञघ्न होनेपर भी तेजस्वी और स्वतन्त्र होके निष्पाप है, इसहीसे अनघ ७३, जगत्सृष्टिक्षम आलोचना की थी, इसहीसे महातपा ७४, विश्वसंहार क्षम आलोचनाविशिष्ट है, इसलिये घोरतपा ७५, महात्मा होनेसे अदीन ७६, शरणागतोंका इष्टसाधक है, इसलिये दीनसाधक ७७, कालचक्रके प्रवर्त्तक ध्रुव आदि ज्योतिर्गणस्वरूप है, इसहीसे सम्वत्सरकर ७८, मननहेतु त्राणकारी प्रणवादिरूप है, इसहीसे मन्त्र ७६, वेदशास्त्रादिरूप होनेसे प्रमाण ८०, और योगके द्वारा आत्मदर्शनस्वरूप होनेसे परमतप ८१, योगनिष्ठ है, इसलिये योगी ८२, योगके सहारे ब्रह्ममें प्रविलापनीय है, इस ही निमित्त योज्य ८३, कारणका कारण है, इसलिये महाबीज ८४, महात्माकी स्फूर्त्ति मन्त्राप्रद है, इसलिये महारेता ८५, श्रेष्ठ सामर्थ्यवान है, इसीसे महाबल ८६, हिरण्मय ब्रह्माण्डका स्रष्टा है, इस ही निमित्त सुवर्णरेता ८७ आयावृत्तिसे सबको ही जानता है इसलिये सर्व्वज्ञ ८८, अधिकारी होके बीजभूत है, इसहीसे सुबीज ८८, अविद्या काम कर्म्मात्मक बीज ही उसका इस लोक और परलोक सञ्चारके निमित्त वाहनस्वरूप है, इस ही लिये बीजवाहन ६०, दशबाहु ६१, अनिमिष ६२, नीलकण्ठ ६३, उमापति ६४, विश्वरूप ६५, स्वयं श्रेष्ठ ६६, सामर्थ्यके सहारे विक्रान्त होनेसे बलवीर ६७, विना चेतन प्रयोगके चलनेकी सामार्थ्यसे युक्त है, इसलिये अबल ६८, अव्यक्त, महत् अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, ग्यारह इन्द्रिय और पञ्च महाभूत, ये चौबीस तत्व, पचीसवां भोक्ता तथा स्वयं षड्विंश है, इसहीसे गण, ६६, इस ही भांति गणोंका कर्त्ता है, इसी कारण गण कर्त्ता वा गणपति १००, कद्रके वर्णित होता है दारुकावनमें मुनिपत्नियोंको मोहित करनेके लिये दिगम्बर हुए थे अथवा अनन्त दिशाओंके आच्छादक है, इसही लिये दिग्वासा १०१, अभिलाष स्वरूप होनेसे काम १०२ पाठ और अर्थके अनुसार मन्त्रोंको जानता है, इस ही लिये मन्त्रवित १०३, आत्मतत्वानुशीलनरूप विचार स्वरूप होनेसे परम मन्त्र १०४ अखिलकारण होनेसे सर्व्व भावकर १०५, सबके नाशके कारण होनेसे हर १०६, कमण्डलुधर १०७, धन्वी १०८, बाणहस्त १०६, कपालवान ११०, अशनी १११, शतघ्नी ११२, खड्गी ११३, पट्टिशी ११४, आयुधी ११५, महान् ११६, हाथमें यज्ञपात्र धारण किया करते हैं, इस ही निमित्त स्रुवहस्त ११७, शोभा-

[illegible] युक्त है, इस ही लिये सुक्षण ११८, [illegible] तेजनिधि ११९, भक्तोंके कान्ति- [illegible] निरन्तर निधि १२०, [illegible] १२१, [illegible], १२२, [illegible] रूप होनेसे उग्र १२३, [illegible] है, इसीसे [illegible] १२४, दीर्घ १२५, [illegible] तत्त्वदर्शका प्रकाशक है, इस ही [illegible] १२६, उत्तम तीर्थ स्वरूप है, [illegible] सुतीर्थ १२७, [illegible] [illegible] निर्वृति वाचक [illegible] है. इस [illegible] परब्रह्म अर्थ होता है, इस ही [illegible] १२८, [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] होनेके लिये बैठनेपर [illegible] लिये इन्होंने जो [illegible] [illegible] था, उसकी [illegible] प्रसिद्ध होनेसे [illegible] [illegible] १२९, [illegible] ही उसके [illegible] पदार्थ [illegible] ही निमित्त [illegible] १३० परिव्राट् [illegible] १३१, सर्व [illegible] १३२, [illegible] [illegible] १३३ बहुरूप १३४, [illegible] [illegible] सुगन्धित वस्तु धारण करते हैं. [illegible] निमित्त गन्धधारी १३५, जटाजूट धारण [illegible] १३६, [illegible] [illegible] १३७ [illegible] १३८. [illegible] [illegible] १३९ [illegible] [illegible] ही [illegible] है, इस ही [illegible] १४०, [illegible] १४१ [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible] विधाता १५३. [illegible] और [illegible] प्रकृतिको [illegible] है, इस ही लिये [illegible] १५४ [illegible] [illegible] होनेसे [illegible] [illegible] १५५, [illegible] है इस ही निमित्त [illegible] १५६. [illegible] है, [illegible] निमित्त [illegible] १५७, [illegible] होनेसे [illegible] १५८, [illegible] समाप्त होती है. इसलिये [illegible] १५९, [illegible] उपासनाके लिये [illegible], [illegible] और [illegible] उपाय है इस ही निमित्त [illegible] १६० [illegible] होनेसे [illegible] १६१. [illegible] १६२, भूतचारी १६३, [illegible] [illegible] भी महान् है. इस ही निमित्त [illegible] १६४, [illegible] है इस ही लिये [illegible] १६५, [illegible] धारण कर [illegible] है. इस ही लिये [illegible] १६६, [illegible] [illegible] युक्त [illegible] होनेसे [illegible] १६७, [illegible] नहीं है, इस ही निमित्त [illegible] १६८, [illegible] होनेसे [illegible] १६९, [illegible] १७०, [illegible] है, इस लिये [illegible] १७१, [illegible] १७२, [illegible] [illegible]

[illegible]

१८५, बौद्धावतार रूपसे यज्ञघ्न है, इस ही निमित्त यज्ञहा १८६, कामनाशक १८७, दक्षयज्ञापहारी १८८, प्रियदर्शन होनेसे सुसह १८९, मृदुप्रिय दर्शन है, इसलिये मध्यम १९०, तेजापहारी १९१, इन्द्ररूपसे बलनामक असुरको पराजित करते हैं, इसीसे बलहा १९२, कारण रूपसे नित्य आनन्दयुक्त है, इस ही लिये मुदित १९३, धनरूपसे अर्थनीय है, इस ही निमित्त अर्थ १९४, अजित १९५, उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये अवर १९६, गम्भीरघोष १९७, गम्भीर १९८, गम्भीर बलवाहन १९९, ऊर्द्ध मूल नीचीशाखावाला अश्वत्थ रूपसे संसार वृक्ष स्वरूप है इस ही निमित्त न्यग्रोधरूप २००, वट निकटवासी दक्षिणा मूर्त्ति अथवा मार्कण्डेय दृष्ट समुद्रमें वट पत्रपर शयन करनेवाले बालक रूपधारी महाविष्णु स्वरूप है, इस ही निमित्त न्यग्रोध २०१, वृक्षके कर्णोकी भांति पत्रपर प्रलय कालमें स्थित था, इस ही लिये वृक्ष कर्णास्थिति २०२, हरि हर दुर्गा गणेश आदि विविध रूपसे भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त उत्पन्न होता है, उस ही निमित्त विभु २०३, अनेक ब्रह्माण्ड चर्वक चर्वण क्षम दांतोंसे युक्त है, इस ही निमित्त सुतीक्ष्ण दर्शन २०४, महाकाय २०५, महानन २०६, उसके प्रयाण करने पर समस्त दैत्यसेना सब भांतिसे पालन करती है, अर्थात् उसकी सारीसेना सब प्रकारसे पूज्य है, इस ही निमित्त विष्वक्सेन २०७, वह आपदोंको हरता है, अथवा सर्व्व संहारक है, इसलिये हरि २०८, सृष्टिका बीज स्वरूप है, इस ही निमित्त यज्ञ २०९, संग्राममें ध्वजभूत वृष ही उसका वाहन है, इसलिये संयुग पीढ़ वाहन २१०, अग्निस्वरूप होनेसे तीक्ष्णताप २११, सूर्य्य स्वरूप होनेसे हर्य्यश्व २१२, जीवका सखा है, इसलिये सहाय २१३, दश आदि कर्म्मोंका समयज्ञ है, इस निमित्त कर्म्म फलवित् २१४, चक्र पानेके निमित्त विष्णुने उसे प्रसन्न किया था, इस ही लिये विष्णु प्रसादित २१५, यज्ञरूपी होनेसे यज्ञ २१६, सागर स्वरूप है, इसलिये समुद्र २१७, जो अग्नि समुद्रके जल... प्रतिदिन भक्षण कर रही है, तत्स्वरूप होनेसे वाडवामुख २१८, वायु स्वरूप होनेसे हुताशन सहाय २१९, निस्तरङ्ग सागरके सदृश होनेसे प्रशान्तात्मा २२०, अग्निरूप होनेसे हुताशन २२१, दुःसह स्पर्श है, इसलिये उग्रतेजा २२२, सब ठौर प्रकाशित है, इसलिये महातेजा २२३, संग्राम निपुण होनेसे जन्य २२४, विजयकालवित् २२५, जिस शास्त्रमें ग्रह-नक्षत्रोंका गमन वर्णित है, उसका नाम ज्योतिष है, उस शास्त्रके आश्रय होनेसे ज्योतिषामयन २२६, नाम है। जयरूपी है, इसलिये सिद्धि २२७, काल प्रभृत सभी उसका शरीर है, इस निमित्त सर्व्व विग्रह २२८, शिखावान गृहस्थ है, इसलिये शिखी २२९, शिखारहित सन्यासी है, इसलिये मुण्डी २३०, जटावान वाणप्रस्थ है, इसलिये जटी २३१, ज्वालावान पञ्चिरादि मार्ग है, इस ही निमित्त ज्वाली २३२, मूर्त्तिमें प्रकट होता है, इसलिये मूर्त्तिज २३३, सहस्रारमें गमन करनेसे मूर्द्धग २३४, बलवान् होनेसे बली २३५, बांसुरी ढोल तानाख्य वाद्यविशेष विशिष्ट है, इसलिये वैणवी २३६, पणवी २३७, ताली २३८, धान्यस्थान सम्पन्न हैं, इसलिये खली २३९, कालको आव रण करनेवाली ईश्वरी माया है, उसे भी आवरण कर रहा है, इसलिये कालकटङ्क २४०, उसकी मति ग्रहतारा प्रभृति विग्रहवि शिष्ट कालचक्रानुसारिणी है, इसलिये नक्ष विग्रह मति २४१, गुणकार्य्य बुद्धि विशिष्ट जी रूपी है, इस ही लिये गुणबुद्धि २४२, उसमें सब वस्तु लय होती हैं, इस ही निमित्त ल २४३, अचञ्चल कूटस्थ चिन्मात्र है, इसलि अगम २४४, विराट है, इसलिये निमित्त प्रजा

[illegible] अनन्तकी प्राणियोंकी भुजा हो उसके [illegible] इन्द्रोंने विद्धबाहु २४६. व्यष्टिकार्य्य [illegible] विभाग २४७, समष्टि कार्य्य स्वरूप है इसलिये सर्व्वांग २४८, भोग साधन रहित [illegible] है इसलिये अभोग २४९, संसार मोचक [illegible] विमोचन २५०, अनायास ही प्राप्य है, [illegible] निमित्त सुशरण २५१, जो रहता है, [illegible] है अर्थात् मायाके विकारभूत [illegible] आवरक शरीरमें उसकी उत्पत्ति [illegible] इस ही लिये हिरण्य कवचोद्भव २५२, [illegible] उसकी उत्पत्ति होती है इस [illegible] निमित्त मेढ्रज २५३, शबररूपसे वन [illegible] विचरता है, इसलिये बलचारी २५४, [illegible] पृथ्वीपर विचरता है, इसलिये महीचारी २५५. सर्व्वत्र गत है, इस निमित्त स्रुत [illegible] सर्व्वतूर्य्यनिनादी २५७, सब जीव ही उसके [illegible] इसलिये सर्व्वतोद्य परिग्रह अथवा [illegible] २५८. शेषनागरूप होनेसे व्यालरूप [illegible] गुहावासी २६०, कार्त्तिकेय [illegible] २६१. वनमालाधारी होनेसे सारी [illegible] तरङ्गसमान जानता है, [illegible] तरङ्गवित् २६२, प्राणियोंका [illegible] ये तीनों दण्ड उसहीसे प्रगट [illegible] त्रिदश २६४, [illegible]

यज्ञोय हवि प्रकृतिके विभागाभिज्ञ है. [illegible] कारण यज्ञभागवित २७५. उसका सर्व्वत्र [illegible] स्थान है, इसलिये सर्व्ववास २७६. [illegible] रता है. इस ही निमित्त सर्व्वचारी २८०, [illegible] आर्द्र गजचर्म्म उसका वस्त्र है इस ही कारण दुर्व्वासा २७८, इन्द्रस्वरूप होनेसे वासव २७९. अमर २८०, हिमालयरूपी है, इसलिये हैम २८१, सुवर्णकर्त्ता है, इसलिये हैमकार २८२, निष्कर्म्मा है. इसलिये अयज्ञ २८३, समस्त [illegible] फलोंका धारण करता है, इस ही निमित्त सर्व्वधारी २८४, दिग्गज कूर्म्म और शेष प्रभृतिका धारण करनेवाला है तथा स्वयं [illegible] धार है, इस ही निमित्त धरोत्तम २८५. [illegible] ताक्ष २८६, महाक्ष २८७, विजयके उपलक्षण रथविशिष्ट है, इसलिये विजयाक्ष २८८, [illegible] है, इस ही निमित्त विशारद २८९, [illegible] प्रकृतिका [illegible] संग्रह २९०, इन्द्र आदि देवता [illegible] [illegible]

इस निमित्त वेग ३१४, महावेग ३१५, मनोवेग ३१६, पानियाको भांति विषय भोग करता है, इसलिये निशाचर ३१७, सब्बशरीरमें वास करता है, इसहीसे सर्व्ववासी ३१८, श्मशानोंमें निवास करता है, इसलिये श्मशानवासी ३१९, उपदेशकार ३२०, मौनभावसे स्थित होकर उपदेश करता है, इसलिये अकार ३२१, मुनि ३२२, आत्माकोही निश्चय करके देहादि उपाधिसे निकालकर अवलोकन करता है इसलिये आत्मनिरालोक ३२३, सम्यक् सेचित होनेसे सम्मान ३२४, अनन्त धनदाता होनेसे सहस्रद ३२५, गरुड़स्वरूप है इसीसे पची ३२६, मित्ररूपसे सहाय है, इस ही निमित्त पचरूप ३२७, अक्षतेज अभिभवके कारण कोटि सूर्य्य सदृश है इस लिये अतिदीप्त ३२८, प्रजासमूहका पति है, इसलिये विशाम्पति ३२९, उन्मत्तकारक है, इस ही लिये उन्माद ३३०, मोहक होनेसे मदन ३३१, कामप्रमान है, इसलिये काम ३३२, संसार वृक्ष है, इस निमित्त अश्वत्थ ३३३, धनप्रद है, इसलिये अर्थकर ३३४, कीर्त्तिदाता है, इसलिये यश ३३५, कर्म्मफलोंका विभाजक है, इसलिये वामदेव ३३६, कर्म्मफलरूप है, इसलिये वाम ३३७, सबका आदि होनेसे प्राक् ३३८, तीनों लोकों को आक्रमण करनेमें समर्थ है, इस ही निमित्त दक्षिण ३३९, बलिको ध्वंश करनेवाले होनेसे वामन ३४०, सनत्कुमार आदि रूपसे सिद्ध योगी ३४१, वशिष्ठ आदि रूपसे महर्षि ३४२, दत्तात्रेय आदि रूपसे सिद्धार्थ ३४३, याज्ञवल्क्य आदि रूपसे विद्वत्सन्न्यासी है, इसलिये सिद्ध साधक ३४४, लिङ्गधारी हंस है, इसलिये भिक्षु ३४५, लिङ्गहीन परमहंस है, इसलिये भिक्षुरूप ३४६, निर्व्यवहार है, इसहीसे विपण ३४७, सब प्राणियोंको अभयदाता है, इसलिये मृदु ३४८, निर्व्विकार अर्थात् मान अपमानमें हर्ष विषादसे रहित है, इसलिये अव्यय ३४९, देव सेनापति कार्त्तिकेय स्वरूप होनेसे महासेन ३५०, विशिख ३५१, षष्टितत्त्व उसके भोक्ता हैं, इसलिये षष्टिभाग ३५२, इन्द्रियोंका चालक है, इसलिये गवांपति ३५३, इन्द्रस्वरूप है, इस निमित्त वज्रहस्त ३५४ विस्तारवान होनेसे विष्कम्भी ३५५, दैत्यसेनाको स्तम्भन करनेवाला है, इसलिये चमूस्तम्भन ३५६, युद्धमें रथके द्वारा मण्डली करण-वृत्त और परसेनाको भेद करके अक्षत शरीरसे उसमेंसे आगमन करनेमें प्रवृत्त, इन दोनोंका कर्त्ता है, इसलिये वृत्तावृत्तकर ३५७, संसार सिन्धुतल अथवा आधार है, इस ही कारण ताल ३५८, वसन्तरूप होनेसे मधु ३५९, मधुकी भांति पिङ्गल नेत्र है, इसलिये मधुकलोचन ३६०, वृहस्पतिकी भांति पुरोहित कर्म्म कर्त्ता है, इसलिये वाचस्पत्य ३६१, शाखा विशेषका प्रवर्त्तक अध्वर्य्यु कर्म्म कर्त्ता है इस ही कारण वाजसन ३६२, नित्य आश्रम पूजित ३६३, ब्रह्मचारी ३६४, लोकचारी ३६५, सर्व्वचारी ३६६, विचारवित् ३६७, अन्तर्य्यामी रूपसे नियन्ता है, इस ही निमित्त ईशान ३६८, सर्व्वव्यापी होनेसे ईश्वर ३६९, लोगोंके पुण्य-पापके फल देनेके लिये गिनती करता है इसलिये काल ३७० ब्राह्मीनिशा महा प्रलयकालमें प्रत्यगानन्द अनुभव करता है, इस ही निमित्त निशाचारी ३७१, रक्षाकारी धनुर्द्धारी होनेसे पिनाकधिक् ३७२, दैत्यरूप लक्ष्यमें अन्तर्य्यामी रूपसे स्थित है, इसलिये निमित्तस्थ ३७३, विश्वरूप होनेसे लक्ष्य स्वरूप है, इस ही लिये निमित्त ३७४, ज्ञान-सम्पत्तियुक्त है, इसलिये नन्दी ३७५, सम्पत्ति कर होनेसे नन्दिकर ३७६, हनुमान रूपसे रामके सहाय होनेसे हरि ३७७, निजवाहन नन्दीका ईश्वर है, इसलिये नन्दीश्वर ३७८, गण रूपसे नंदी ३७९, आनंददाता होनेसे नंदन ३८०, दी हुई सम्पत्तिकी वृद्धि करता है, इसलिये नंदिवर्द्धन ३८१, इन्द्रादिकोंका भी ऐश्वर्य्य हरण करता है, इस ही

लिङ्ग धारी ३८२, मृत्यु, रूप होनेसे निरुक्ता ३८३, शान्त जगत्के आश्रय होनेसे व्याल ३८४, अतन्त्र ईश्वर् है इसलिये ब्रह्मा ३८५, जगत्पिता ब्रह्मा भी पिता है, इस ही निमित्त पिता-मह पितारूप चतुर्म्मुख है ३८६, सुरासुर आदि समस्त महत् प्राणी उसही लिङ्गकी पूजा करते हैं, इस ही लिये महालिङ्ग ३८७, [illegible] वेषधारी होनेसे चारुलिङ्ग ३८८, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका अध्यक्ष अर्थात् प्रवृत्ति [illegible] नियामक है, इस ही लिये लिङ्गा-ध्यक्ष ३८९, सुराध्यक्ष ३९०, योगाध्यक्ष ३९१, [illegible] तारतम्यविशिष्ट सत्य त्रेता द्वापर कलि युगका प्रवर्त्तक है इसलिये युगावह ३९२, धर्माधर्म्मका फलदाता है, इसलिये [illegible] ३९३, बीजकर्त्ता ३९४, आत्माको [illegible] करके प्रवृत्त शास्त्रोंका अनुसरण करके साधन है, इस ही निमित्त अध्यात्मानु-[illegible] ३९५ बलि प्रभृति सब बल उससे वर्त्तमान है इसलिये बल ३९६, भारतादि रूपी इतिहास ३९७, यज्ञकल्प प्रयोग विधिके [illegible]

तारूप होनेसे उत्तम ४१३, गतनु रूप होनेसे ब्रह्म ४१४, नीति ४१५, [illegible] ४१६ महात्मा ४१७, गुरु ४१८ सान्त ४१९ [illegible] संहारस्वरूप है इसलिये गतागत ४२० [illegible] वाद ४२१, सुखप्र ४२२, बिम्ब प्रतिबिम्ब [illegible] नारूपद है, इस ही निमित्त दर्पण ४२३ [illegible]-वजित् ४२४, वेदकार ४२५, मन्त्रकार ४२६ विद्वान् ४२७ समरमर्द्दन ४२८, प्रलयकालके महामेघसमूहसे अविछाली रूपसे वास करता है इस ही लिये महामेघनिवासी ४२९, प्रलय कर्त्तृत्वके निमित्त महाघोर ४३०, [illegible] वर्त्ती है, इसलिये वशी ४३१, संहारकर्त्ता है, इसलिये हर ४३२, अग्निको [illegible] इसलिये अग्निज्वाल ४३३, महाज्वाल ४३४, कालाग्नि रूपसे सबको [illegible] समय [illegible] धूम्रमय होनेसे अतिधूम्र ४३५, [illegible] होता है इसलिये हुत ४३६, [illegible] है, इसलिये हवि ४३७ [illegible] धर्म है, इस निमित्त वृषण ४३८ [illegible] होनेसे [illegible] ४३९ [illegible]

इस निमित्त वेग २१४, सम्हावेग ३१५. मनोवेग ३१६, गणियाकी भांति विषय भोग करता है, इसलिये निशाचर ३१७, सर्वशरीरमें वास करता है, इसहीसे सर्व्ववासी ३१८, त्रगसन्नोंमें निवास करता है, इसलिये श्रियावासी ३१९, उपदेश-कार ३२०, मौनभावसे स्थित होकर उपदेश करता है, इसलिये अकार ३२१, मुनि ३२२, आत्माकोही निश्चय करके देहादि उपाधिसे निकालकर अवलोकन करता है इसलिये आत्म-निरालोक ३२३, सम्यक् सेवित होनेसे सम्भग्न ३२४, अनन्त धनदाता होनेसे सहस्रद ३२५. गरुड़स्वरूप है इसीसे पक्षी ३२६, मित्ररूपसे सहाय है, इस ही निमित्त पक्षरूप ३२७, अग्नि तेज अग्निसबके कारण कोटि सूर्य्य सदृश है इस लिये अतिदीप्त ३२८, प्रजासमूहका पति है, इसलिये विशाम्पति ३२९, उन्मत्तकारक है, इस ही लिये उन्माद ३३०, मोहक होनेसे मदन ३३१, कामप्रमान है, इसलिये काम ३३२, संसार वृक्ष है, इस निमित्त अश्वत्थ ३३३, धनप्रद है, इसलिये अर्थकर ३३४, कीर्त्तिदाता है, इसलिये यश ३३५, कर्म्मफलोंका विभाजक है, इसलिये वामदेव ३३६, कर्म्मफलरूप है, इसलिये वाम ३३७, सबका आदि होनेसे प्राक् ३३८, तीनों लोकोंको आक्रमण करनेसे समर्थ है, इस ही निमित्त दक्षिण ३३९, बलिके ध्वंस करनेवाले होनेसे वामन ३४०, सनत्कुमार आदि रूपसे सिद्ध योगी ३४१, वशिष्ठ आदि रूपसे महर्षि ३४२, दत्तात्रेय आदि रूपसे सिद्धार्थ ३४३, याज्ञवल्क्य आदि रूपसे सिद्धस-न्यासी है, इसलिये सिद्ध साधक ३४४, लिङ्ग-धारी हंस है, इसलिये भिक्षु ३४५, लिङ्गहीन परमहंस है, इसलिये भिक्षुरूप ३४६, निर्व्यव-हार है, इसहीसे विपण ३४७, सब प्राणियोंको अभयदाता है, इसलिये मृदु ३४८, निर्व्विकार अर्थात् मान अपमानमें हर्ष विषादसे रहित है, इसलिये अव्यय ३४९, देव सेनापति कार्त्तिकेय स्वरूप होनेसे महासेन ३५०, विशाख ३५१, पशितख उसके भोग्य हैं, इसलिये पष्टिभाग ३५२, इन्द्रियोंका चालक है, इसलिये गवांपति ३५३, इन्द्रस्वरूप है, इस निमित्त वज्रहस्त ३५४ विस्तारवान होनेसे विष्कम्भी ३५५, दैत्यसे-नाको स्तम्भन करनेवाला है, इसलिये चमूस्त-म्भन ३५६, युद्धमें रथके द्वारा मण्डली करण-वृत्त और परसेनाको भेद करके अक्षत शरी-रसे उसमेंसे आगमन करनेमें प्रवृत्त, इन दोनोंका कर्त्ता है, इसलिये वृत्तावृत्तकर ३५७, संसार सिन्धुतल अथवा आधार है, इस ही कारण ताल ३५८, वसन्तरूप होनेसे मधु ३५९, मधुकी भांति पिङ्गल नेत्र है, इसलिये मधुक-लोचन ३६०, वृहस्पतिकी भांति पुरोहित कर्म्म कर्त्ता है, इसलिये वाचस्पत्य ३६१, शाखा विशेषका प्रवर्त्तक अध्वर्य्यु कर्म्म कर्त्ता है इस ही कारण वाजसन ३६२, नित्य आश्रम पूजित ३६३, ब्रह्मचारी ३६४, लोकचारी ३६५, सर्व्व-चारी ३६६, विचारवित् ३६७, अन्तर्य्यामी रूपसे नियन्ता है, इस ही निमित्त ईशान ३६८, सर्व्व-व्यापी होनेसे ईश्वर ३६९, लोगोंके पुण्य-पापके फल देनेके लिये गिनती करता है इसलिये काल ३७० ब्राह्मीनिशा महा प्रलयकालमें प्रत्य-गानन्द अनुभव करता है, इस ही निमित्त निशाचारी ३७१, रक्षाकारी धनुर्द्धारी होनेसे पिनाकधिक् ३७२, दैत्यरूप लक्ष्यमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित है, इसलिये निमित्तस्थ ३७३, विश्वरूप होनेसे लक्ष्य स्वरूप है, इस ही लिये निमित्त ३७४, ज्ञान-सम्पत्तियुक्त है, इसलिये नन्दी ३७५, ऋष्यति कर होनेसे नन्दिकर ३७६, हनुमान रूपसे रामके सहाय होनेसे हरि ३७७, निजवाहन नन्दीका ईश्वर है, इसलिये नन्दी-श्वर ३७८, गण रूपसे नंदी ३७९, आनंददाता होनेसे नंदन ३८०, दी हुई सम्पत्तिकी वृद्धि करता है, इसलिये नंदिवर्द्धन ३८१, इन्द्रादि-कोंका भी ऐश्वर्य्य हरण करता है, इस ही

लिये भगधारी ३८२, मृत्यु रूप होनेसे निहन्ता ३८३, चौंसठ कलाको आश्रय होनेसे व्याल ३८४, अत्यन्त वृहत् है इसलिये व्रह्मा ३८५, जगत्पिता विष्णुका भी पिता है, इस ही निमित्त पितामह विधातरूप चतुर्म्मुख है ३८६, सुरासुर प्रभृति समस्त महत् प्राणी उसके लिङ्गकी पूजा करते हैं, इस ही लिये महालिङ्ग ३८७, रमणीय वेषधारी होनेसे चारुलिङ्ग ३८८, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका अध्यक्ष अर्थात् प्रवृत्ति निवृत्तिका नियामक है, इस ही लिये लिङ्गाध्यक्ष ३८९, सुराध्यक्ष ३९०, योगाध्यक्ष ३९१, पुण्य-पापके तारतम्यविशिष्ट सत्य त्रेता द्वापर और कलियुगका प्रवर्त्तक है इसलिये युगावह ३९२, धर्म्माधर्म्मका फलदाता है, इसहीसे बीजाध्यक्ष ३९३, बीजकर्त्ता ३९४, आत्माको अधिकार करके प्रवृत्त शास्त्रोंका अनुसरण करनेसे साधक है, इस ही निमित्त अध्यात्मानुगत ३९५, धृति प्रभृति सब बल उसमें वर्त्तमान रहते हैं, इसलिये बल ३९६, भारतादि रूपी होनेसे इतिहास ३९७, यज्ञकल्प प्रयोग विधिके सहित सम्बन्धविशिष्ट है, इसलिये सङ्कल्प ३९८, तर्कशास्त्रका प्रणेता होनेसे गौतम ३९९, चन्द्ररूप है; इसलिये निशाकर ४००, शत्रुओंको दमन करता है, इसलिये दम्भ ४०१, अदम्भ ४०२, धर्म्मध्वजिससे रहित है, इसलिये वैदम्भ ४०३, भक्ताधीन होनेसे वश्य ४०४, दूसरेको वशीभूत करनेमें समर्थ है, इसलिये वशकर ४०५ देवासुर परस्परके वैरकर्त्ता होनेसे कलि ४०६ चौदहो भुवनोंकी सृष्टि करनेवाला है, इसलिये लोककर्त्ता ४०७, व्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त जीव और पशुओंका पालक है, इस निमित्त पशुपति ४०८, पञ्चभूतोंका स्रष्टा है, इसलिये महाकर्त्ता ४०९, अभोक्ता होनेसे अनौषध ४१०, इन्द्रियहीन होनेसे अक्षर ४११, ब्रह्मादि और व्रह्मासे भी श्रेष्ठ आनन्दमय है, इसलिये परब्रह्म ४१२, बलके अभिमानी देवतारूप होनेसे बलवत ४१३, शतक्रतु रूप होनेसे शक्र ४१४, नीति ४१५, अनीति ४१६, शुद्धात्मा ४१७, शुद्ध ४१८, मान्य ४१९, गमनशील संसारस्वरूप है, इसलिये गतागत ४२०, बहुप्रसाद ४२१, सुस्वप्न ४२२, बिम्ब प्रतिबिम्ब दर्शनास्पद है, इस ही निमित्त दर्पण ४२३, अमित्रजित् ४२४, वेदकार ४२५, मन्त्रकार ४२६, विद्वान् ४२७, समरमर्द्दन ४२८, प्रलयकालके महामेघमण्डलमें अधिष्ठात्री रूपसे वास करता है, इस ही लिये महामेघनिवासी ४२९, प्रलय कर्त्तृत्वके निमित्त महाघोर ४३०, सभी उसके वशमें है, इसलिये वशी ४३१, संहारकर्त्ता है, इसलिये हर ४३२, अग्निकी भांति तेजस्वी है, इसलिये अग्निज्वाल ४३३, महाज्वाल ४३४, कालाग्नि रूपसे सबको जलानेके समय अत्यन्त धूम्रमय होनेसे अतिधूम्र ४३५, होमसे प्रसन्न होता है, इसलिये हुत ४३६, पय प्रभृतिस्वरूप है, इसलिये हवि ४३७, कर्म्म फल बरसानेवाला धर्म्म है, इस निमित्त वृषण ४३८, सुखदाता होनेसे शङ्कर ४३९, नित्यवर्च्चस्वी ४४०, वह्निरूप होनेसे धूमकेतन ४४१, मरकत वर्ण होनेसे नील ४४२, नील वा अनील लिङ्गमें नित्य सन्निहित रहता है, इसलिये अङ्गलुब्ध ४४३, कल्याणका हेतु है, इसलिये शोभन ४४४, प्रतिबन्धरहित मनोरथोंकी वृष्टि करनेवाला है, इस ही लिये निरवग्रह ४४५, स्वस्तिद ४४६, अस्तिभाव है, इस ही लिये स्वस्ति भाव ४४७, यज्ञमें भगवान कहाता है, इसलिये भागी ४४८, भागकर ४४९, लघु ४५०, असंगरूप होनेसे उत्संग ४५१, महाग ४५२, प्रजानात्मक कन्दर्प है, इस ही लिये महागर्भपरायण ४५३ विष्णु रूप है, इसलिये कृष्णवर्ण ४५४, साम्बरूप होनेसे श्वेतवर्ण और सुवर्ण ४५५ समस्त प्राणियोंकी इन्द्रिय ४५६, महापाद ४५७, महाहस्त, ४५८ महाकाय ४५९, महायशा ४६०, महामूर्द्धा, ४६१ महाप्रसाद है, इसलिये महामात ४६२, महानेत्र ४६३, निशालों

भांति अविद्या उसमें लीन होती है, इस ही कारण निशालय ४६४, महान्तक ४६५, महाकर्णा ४६६, महोष्ट ४६७, महाहनु ४६८, महानाश ४६९, महाकम्बु ४७०, महाग्रीव ४७१, श्मशानभाक् ४७२, महारक्षा ४७३, महोरस्क ४७४, अन्तरात्मा ४७५, मङ्गाधिराधिपत मृगचन्द्र रूपसे मृगालय ४७६, जैसे वृक्षोंके फल लटके रहते हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड उसे अवलम्बन कर रहा है, इस ही निमित्त लम्बन ४७७, प्रलयकालमें विश्वग्रास करनेके निमित्त लम्बित ओष्ठ ४७८, महामाय ४७९, क्षीरोदसमुद्र रूप होनेसे पयोनिधि ४८०, महादन्त ४८१, महादंष्ट्र ४८२, महाजिह्वा ४८३, महामुख ४८४, नृसिंह रूप होनेसे महानख ४८५, वराहरूप होनेसे महारोमा ४८६, महाकेश ४८७, महाजट ४८८, प्रसन्न ४८९, प्रसाद ४९०, प्रत्यय ४९१, युद्धमें पर्व्वत ही उसके जयके कारण हैं इस ही लिये गिरिसाधन ४९२, पिताकी भांति प्रजासमूहके ऊपर स्नेह करता है, इसलिये स्नेहन ४९३, स्नेह न करनेसे अस्नेहन ४९४, अजित ४९५, महामुनि ४९६, संसार वृक्ष ही उसका आकार है, इसलिये वृक्षाकार ४९७, वृक्षकेतु ४९८, अनल ४९९, वायुवहन ५००, क्षुद्र पर्व्वतोंमें गमनशील होनसे गण्डली ५०१, मेरुधामा ५०२, देवाधिपति ५०३, अथर्व्वशीर्ष ५०४, सामास्य ५०५, ऋक्सहस्रामितेक्षण ५०६, यजु ५०७, पाजसुज-गुह्य ५०८, (उपनिषद्देश) कर्म्मकाण्ड रूपसे प्रकाश ५०९, मनुष्य पशु आदि रूप है, इसलिये जगम ५१०, उसके निकट प्रार्थना करनेसे निष्फल नहीं होती, इस ही निमित्त अमोघार्थ ५११, दयालु हैं, इस ही लिये प्रसाद ५१२, सुखप्राप्य होनसे अभिगम्य ५१३, सुदर्शन ५१४, प्रीणन रूप होनेसे उपकार ५१५, सुखदायी रूप होनेसे प्रिय ५१६, सम्मुख आगमन करनेसे सर्व्व ५१७, स्वर्गादि प्रियवस्तु रूप होनेसे कानक ५१८, काञ्चनच्छवि ५१९, जगत्का मध्यस्थल होनेसे नाभि ५२०, यज्ञ फलकी वृद्धि करता है इसलिये नन्दिकर ५२१, यज्ञश्रद्धा रूपसे भा: ५२२, ब्रह्माण्डकी रचना करता है, इसलि पुष्करस्थ पति ५२३, पर्व्वतादि स्थावररूप होने स्थिर ५२४, मनुष्योंके गर्भवासादि ५२५, द प्रकारकी अवस्थाके बीच मृत्यु दशम है, ख एकादश और मोक्ष द्वादश है, तत्स्वरूप होने द्वादश ५२६, त्रासन ५२७, आद्य ५२८, जो ब्रह्मकी संगति कारणरूपी योग है, इसलिये य ५२९, योगके द्वारा प्राप्त होता है, इसलिये य समाहित ५३०, अप्रकाश इसलिये नक्त ५३ कलिके कार्य्य काम क्रोधादि रूप होनेसे का जन्म मरण प्रवाहकी सञ्चालन करता है, इसलि काल ५३२, मकराकार शिशु मार चक्रकाल व्यापक और तत्स्वरूप होनेसे मकर ५३३, मृत्युके द्वारा पूजित है, इसलिये काल पूजित ५३४, प्रमथादियुक्त होनेसे सगण ५३५, बाणादिको अपना भक्त किया था, इसलिये गणकर ५३६, भूतगणोंके योगक्षेम निर्व्वाह कर्त्ता ब्रह्मा उसका सारथि कहा जाता है, इस ही निमित्त भूतवाहनसारथि ५३७, पापोंका भस्मन करता है, इस ही लिये भस्मशय ५३८, भस्मसे जगत्को रक्षा करता है, इस ही निमित्त भस्मगोप्ता ५३९, मरुकणक नामक मुनि निज हाथसे बाहर हुए शाक रसको देखकर नाचने लगे, उनके नृत्यकी शान्तिके लिये महादेवने अपनी अङ्गुली काटके उसमेंसे भस्म दिखाया था, इसलिये उसका शरीर केवल भस्ममय होनेसे भस्म भूत ५४०, कल्पवृक्ष स्वरूप है, इसलिये तरु ५४१, भृंगरिटि नान्दकेश्वर प्रभृति गण स्वरूप, है, इसलिये गण ५४२, चौदहो भुवनोंका पालक होनेसे लोकपाल ५४३, लोकातीत होनेसे अलोक ५४४, पूर्ण है, इस ही निमित्त महात्मा ५४५, सर्व्व पूजित ५४६, शुद्ध है इसलिये शुक्ल ५४७, काय मन और वचन, ये तीनो ही उसके पवित्र हैं इस ही कारण त्रिशुक्ल

५४८, कैवल्य प्राप्त होनेसे सम्पन्न ५४६, असङ्ग होनेसे शुचि ५५०, पूर्व्वाचार्य्योंसे सेवित है, इस लिये भूतनिषेवित ५५१, चारों आश्रमोंमें धर्म्म रूपसे स्थित है, इस ही निमित्त आश्रमस्थ ५५२, धर्म्मके पूर्व्वरूप यज्ञादिकर्म्म और अवस्थासे युक्त होनेसे क्रियावस्थ ५५३, विश्वकर्म्माका कौशलस्वरूप है, इसलिये विश्वकर्म्ममति ५५४, लक्ष्मी स्वरूपसे प्रार्थनीय है, इसलिये वर ५५५, दीर्घबाहु होनेसे विशालशाख ५५६, ताम्रोष्ठ ५५७, जलस्वरूप होनेसे अम्बु जाल ५५८, पर्व्वतादिरूप है, इसलिये सुनिश्चल ५५६, कपिल ५६०, कपिश ५६१, शुक्ल ५६२, जीवन कालस्वरूप होनेसे आयु ५६३, प्राचीनरूपसे पर ५६४, अर्व्वाचीन रूपसे अपर ५६५, चित्ररथ आदि रूपसे गन्धर्व्व ५६६, देवमाता वा पृथिवी रूपसे अदिति ५६७, गरुड़रूपसे तार्क्ष्य ५६८, सुविज्ञेय ५६६, शोभनवाक् होनेसे सुशारद ५७०, परश्वधायुध ५७१, देव ५७२, अनुकारी ५७३, सुबान्धव ५७४, तुम्ववीणा ५७५, महाक्रोध ५७६, ऊर्द्धरेता ५७७, जलेशय ५७८, उग्र ५७६, वंशकर ५८०, वंश ५८१, वंशनाद ५८२, अनिन्दित ५८३, सर्व्वाङ्गरूप ५८४, मायावी ५८५, सुहृद ५८६, अनिल ५८७, अनल ५८८, बन्धन ५८६, बन्धकर्त्ता ५६०, सुबन्धन बिमोचन ५६१, यज्ञशत्, दैत्योंके संग वास करता है, इस लिये सनकारी ५६२, कामविजयी योगियोंके सदा निवास करता है, इस निमित्त सकामारी ५६३, महादंष्ट्र ५६४, महायुध ५६५, दारुकावनमें अत्यन्त मनोहर रूप धरके दिगम्वर होकर ऋषिपत्नियोंके चित्तको मोहित करनेमें प्रवृत्त होनेपर ऋषियोंने उसकी अनेक प्रकारसे निन्दा की थी, इस ही निमित्त बहुधानिन्दित ५६६, मुनियोंको मोहित किया था, इस ही निमित्त शर्व्व ५६७, मुनियोंका कल्याण उसकी करना था, इसलिये शङ्कर ५६८, उन लोगोंको शङ्कर की थी, इस ही कारण शङ्कर

५६६, अधन ६००, अमरेश ६०१, महादेव ६०२, बिश्वदेव ६०३, सुरारिहा ६०४, पातालमें शेषरूपसे वर्त्तमान है, इसलिये अहि ६०५, वायुकी भांति अप्रत्यक्ष है, इसलिये अनिलाभ ६०६, अत्यन्त ज्ञानवान् है, इसलिये चेकितान ६०७, भोक्ताकी भोग्यवस्तुस्वरूप है, इस निमित्त हवि ६०८, एकादश रुद्रोंके बीच अन्यतम है, इस ही कारण अजैकपात् ६०६, ब्रह्माण्डके अधीश्वर होनेसे कापाली ६१०, सर्व्व जीवस्वरूपसे त्रिशङ्कु ६११, अजित ६१२, शिव ६१३, धन्वन्तरि ६१४, धूमकेतु ६१५, स्कन्द ६१६, वैश्रवण ६१७, धाता ६१८, शक्र ६१६, विष्णु ६२०, मित्र ६२१, त्वष्टा ६२२, ध्रुव ६२३, धर ६२४, प्रभाव ६२५, सर्व्वग ६२६, वायु ६२७, अर्य्यमा ६२८, सविता ६२६, रवि ६३०, नृपति विशेषरूपसे उपंशु ६३१, विधाता ६३२, मान्धाता (नृपविशेष) ६३३, भूतभावन ६३४, विभु ६३५, श्वेत पीत आदि वर्णोंको विविधरूपसे उत्पन्न किया है, इसलिये वर्ण-विभावी ६३६, सर्व्वकामवह ६३७, पद्म नाभ ६३८, महागर्भ ६३६, चन्द्रवक्र ६४०, अनिल ६४१, अनल वायु और अग्निके अधिष्ठात्री देवतास्वरूप ६४२, बलवान् ६४३, उपशान्त ६४४, पुराण ६४५, पुण्यचञ्चु ६४६, लक्ष्मीरूप ६४७, कुरुक्षेत्रकी निर्म्माता होनेसे कुरुकर्त्ता ६४८, कुरुवासी ६४६, कुरुभूत ६५०, ऐश्वर्य्यज्ञान वैराग्य प्रभृतिके भी औषधका उद्दीपक है, इस ही निमित्त गुणौषध ६५१, सबका सुषुप्ति स्थान है, इसलिये सर्व्वाशय ६५२, अन्तर्व्वेदिस्थ कुशरूपसे हवि भक्षण करता है, इसीसे दर्भचारी ६५३, समस्त प्राणियोंका पति ६५४, देवदेव ६५५, सुखासक्त ६५६ कारण और कार्य्यरूपसे सदसत ६५७, सर्व्वरत्नवित् ६५८ कैलास गिरवासी ६५६, हिमवत् गिरिसंश्रय ६६०, महाप्रवाह रूपसे कूलहारी ६६१ पुष्कर आदि महातड़ागोंका कर्त्ता है इसलिये कूलकर्त्ता ६६२ बहुविद्य

६६३, बहुप्रद ६६४, वणिज ६६५, तक्ष रूपसे वर्द्धकी ६६६, तक्षणीय संसारवृक्ष है, इसलिये वृक्ष ६६७, वकुल (वृक्षविशेष) ६६८, चन्दन ६६९, छद (सप्तपर्णी) ६७०, सारग्रीव (दृढ़ कन्धर) ६७१, महाजत्रु ६७२, अलोल ६७३, ब्रीहियवादि रूपसे महौषध ६७४, सिद्धार्थकारी ६७५, सिद्धार्थ ६७६, सिंहनाद ६७७, सिंह-दंष्ट्र ६७८, सिंहग ६७९, सिंहवाहन ६८०, प्रभावात्मा ६८१, जगत्काल (जगत् ग्रासकर्ता) ६८२, लोकहित ६८३, तारण कर्ता होनेसे तरु ६८४, सारङ्ग (पक्षिविशेष) ६८५, नवचक्राङ्ग (नवीनहंस) ६८६, केतुमाली (मयूर कुक्कुट आदि पक्षिरूप) ६८७, धर्म्मपरीक्षाके स्थानकी रक्षा करता है, इसलिये सभावन ६८८, भूतालय ६८९, भूतपति ६९०, अहोरात्र ६९१, अनिन्दित ६९२, समस्त भूतोंको वहन करता है, इसही निमित्त सर्व्वभूतवाहिता ६९३, सर्व्वभूत निलय ६९४, विभु ६९५, वर्त्तमान है, इसलिये भव ६९६, अमोघ (नैष्फल्य रहित) ६९७, संयत (धारणा ध्यान समाधिमान्) ६९८, उच्चैश्रवादि स्वरूपसे अश्व ६९९, भोजन (अन्नदाता) ७००, प्राणधारण ७०१, धृतिमान् ७०२, मतिमान् ७०३, दक्ष (उत्साही) ७०४, सत्कृत (आदरयुक्त) ७०५, धर्म्माधर्म्मका फल देनेवाला है, इस ही निमित्त युगाधिप ७०६, इन्द्रियोंका पालयिता है, इसलिये गोपाली ७०७, किरणोंका पति सूर्य्यादि है, इस ही निमित्त गोपति ७०८, ग्राम (समूह) ७०९, गोचर्म्मवसन ७१०, भक्तोंके दुःख हरनेसे हरि ७११, हिरण्यबाहु ७१२, योगियोंके शरीरकी रक्षा करता है, इस ही निमित्त गुहापाल ७१३, प्रकृष्टारि (उत्तम साधक) ७१४, महा-हर्ष ७१५, जितकाम ७१६, जितेन्द्रिय ७१७, गान्धार (स्वरविशेष) ७१८, सुवास ७१९, तपःसक्त ७२०, रति (प्रीतिरूप) ७२१, नर (विराटरूपसे ब्रह्माण्डप्रापक) ७२२, महागीत ७२३, महानृत्य ७२४, अप्सराओंसे से ७२५, इप ही उसका केतु अर्थात् ध है, इस ही निमित्त महाकेतु ७ मेरु पर्व्वतरूपी महाधातु ७२७, अनेक शि प्रचारी होनेसे नैकसानुचर ७२८, दुर्गह इसलिये चल ७२९, वचनके अगोचर होनेसे भी गुरुओंके द्वारा उपदेशके योग्य है, इसलिये आवेदनीय ७३०, साक्षात् उपदेश स्वरूप है, इसलिये आदेश ७३१, सर्व्वगन्ध सुखावह ७३२, पुरद्वार आदि रूपसे तोरण ७३३, तारण ७३४, वात ७३५, परिधि दुर्गादि स्वरूप ७३६, पति तथा खेचर गरुड़ आदि रूप ७३७, संयोगवर्द्धन-वृद्ध (स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध) ७३८, ज्ञानै-श्वर्य्य आदि गुणाधिक होनेसे अतिवृद्ध ७३९, नित्य आत्मसहाय ७४०, देवासुरपति ७४१, पति ७४२, समरमें नन्द है, इसलिये युक्त ७४३, मलुमर्द्दन बाहु-विशिष्ट है, इसलिये युक्तबाहु ७४४, स्वर्गमें इन्द्रका आराधनीय है, इसलिये देव ७४५, सर्व्वसहन सामर्थप्रद है, इस ही लिये आषाढ़ ७४६, सुषाढ़ ७४७, ध्रुव (अचञ्चल) ७४८, श्वेत है इससे हरिण और संहार कर्त्ता होनेसे हर ७४९, स्वर्गच्युत पुरुषोंको वपुप्रदाता है, इसलिये वपुः ७५०, धनसे भी अधिक प्रिय है, इसलिये वसुश्रेष्ठ ७५१, शिष्टाचार स्वरूप वा महापक्ष ७५२, विचारपूर्व्वक ब्रह्माका शिर हरण किया था, इस ही निमित्त शिरोहारी ७५३, सर्व्व लक्षण लक्षित (सामुद्रिकमें कहे हुए सब लक्षणोंसे युक्त) ७५४, रथ सम्पान दारु होनेसे अक्ष ७५५, रथयोगी ७५६, महाबल ७५७, देवस्वरूप होनेसे समाम्नाय ७५८, स्मृति इतिहास पुराण और आगम आदि रूपसे असम्नाय ७५९, तीर्थदेव ७६०, महारथ ७६१, अचेतन प्रपञ्च रूपसे निर्ज्जीव ७६२, अचेतन देहादिके चैतन्यप्रदाता होनेसे जीवन ७६३, प्रणवादि रूपसे मन्त्र ७६४, शान्तदृष्टि है, इस-लिये शुभाक्ष ७६५, संहर्त्ता रूपसे बहुकर्कश

प्रचुर रत्न समन्वित हैं, इसलिये रत्नप्रभूत रत्नाङ्ग ७६८, महार्णव निपातवित् ७६९, संसार वृक्षका मूल ७७०, अत्यन्त शोभायमान है, इसलिये विशाल ७७१, अमृत ७७२, कार्य्य कारण रूपसे व्यक्ताव्यक्ति ७७३, तपोनिधि ७७४, परम पदमें आरोहण करनेके वास्ते इच्छुक है, इसलिये आरोहण और उसमें अधिरूढ़ होनेसे अधिरोहन ७७५, सदाचार सम्पन्न है, इसलिये शीलधारी ७७६, महायशा ७७७, समस्त सेनाका अलङ्कार स्वरूप है, इसलिये सेनाकल्प ७७८, दिव्यभूषण है, इसलिये महाकल्प ७७९, योग (चित्तवृत्ति-निरोध) ७८०, सब युग उसके हाथमें विद्यमान हैं, इसलिये युगकर ७८१, पदाभिमानी देवता होनेसे हरि ७८२, युगरूप ७८३, महारूप ७८४, महानागहन (गजासुरघ्न) ७८५, वध (मृत्यु) ७८६, न्याययुक्त दाता होनेसे निर्व्वाण ७८७, त्रिविक्रम है, इस हो लिये पाद ७८८, परोक्ष ज्ञानी है, इसलिये पण्डित ७८९, अचलोपम (निश्चल) ७९०, बहुमान ७९१, महामान ७९२, शशीहर सुलोचन ७९३, विस्तीर्ण लवण समुद्र रूप होनेसे विस्तार लवणकूप ७९४, कलिके बहिर्भूत होनेसे त्रियुग ७९५, सफलोदय ७९६, शास्त्र आचार्य्य ध्यान, ये तीनों उसके नेत्र सदृश हैं, इसलिये त्रिनेत्र ७९७, भूम्यादि अष्टमूर्त्तियोंका विशेष रूपसे निरन्वय है, इस ही निमित्त विषणाङ्ग ७९८, कानमें कुण्डल धारण करता है इस ही लिये मणिविद्ध ७९९, जटाधर ८००, बिन्दुविसर्ग रूपसे व्यक्ति-वर्ण है, इसलिये मुख ८०१, शर ८०२, सर्व्वायुध ८०३, सब कुछ सहता है, इसलिये सह ८०४, निवेदन ८०५, सुखागत ८०६ सुगन्धार ८०७, महाधनु ८०८, गन्धपाती भगवान् ८०९, समस्त कर्म्मोंके उत्थान ८१०, जगत्को आलोड़ित करनेमें समर्थ होनेसे महाप्रलयानिल है, इसलिये सर्व्व बहुलवायु ८११, पूर्ण है, इसलिये

सकल ८१२, सर्व्वलोचन ८१३, तरन्ताल (करतल बाद्य विशेष) ८१४, करस्थाली (हाथ ही भोजनका पात्र है) ८१५, दृढ़ शरीर है, इसलिये ऊर्द्ध-संहनन ८१६, महान् ८१७, छत्र ८१८, सुछत्र ८१९, विख्यात लोक ८२०, त्रिविक्रम इससे पदके सहारे तीनों लोकोंको आक्रमण किया था, इस ही निमित्त सर्व्वाश्रयक्रम ८२१, मुण्ड ८२२, विरूप ८२३, विकृत ८२४, दण्डी ८२५, कुण्डी ८२६, कर्म्मके द्वारा अप्राप्य है, इसलिये विकुर्व्वाण ८२७, सिंहरूपसे हर्य्यक्ष ८२८, सर्व्वदिक् रूपसे ककुभ ८२९, बज्री ८३०, शतजिह्व ८३१, सहस्रपात् ८३२, सहस्रमूर्द्धा ८३३, देवेन्द्र ८३४, सर्व्वदेवमय ८३५, गुरु ८३६, सहस्रबाहु ८३७, वह सर्व्वत्र प्राप्त हो सकता है, इसलिये सर्व्वांग ८३८, शरण्य ८३९, सर्व्वलोककृत ८४०, पवित्र ८४१, ककुद उच्च स्थानोंकी भांति बीज शक्ति और कीलक, ये तीनों ही उसके मन्त्र हैं, इस ही निमित्त त्रिककुन्मन्त्र ८४२, अदितिके कनिष्ठ पुत्र वामनरूपी विष्णु स्वरूप है, इसलिये कनिष्ठ ८४३, हरिहर मूर्त्ति रूपसे कृष्ण पिंगल ८४४, ब्रह्मदण्ड विनिर्म्माता ८४५, शतघ्नी-पाश शक्तिमान ८४६, ब्रह्मारूपसे पद्मगर्भ ८४७, महागर्भ ८४८, ब्रह्मगर्भ ८४९, वह समुद्रसे प्रकट हुआ था इसलिये जलोद्भव ८५०, रश्मि स्वरूपसे गभस्ति ८५१, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत ८५२, वेदध्यायी है, इसलिये ब्रह्मा ८५३, वेदार्थवित् है, इसलिये ब्रह्मवित् ८५४, ब्रह्मनिष्ठ है, इसलिये ब्राह्मण ८५५, ब्रह्मनिष्ठोंका परम अयन है, इसलिये गति ८५६, अनन्तरूप ८५७, अनेकात्मा ८५८, ब्रह्माके विषयमें दृष्टि रखता है, इसलिये तिग्मतेजा ८५९ ऊर्द्धगात्मा ८६०, पशुपति ८६१, वातरंहा ८६२, मनोजव ८६३, शरीरमें चन्दन लगानेसे चन्दनी ८६४, किसी समयमें ब्रह्मा निज आश्रय पद्मनालकी जड़ देखनेकी इच्छासे उस मार्गसे गमन करके उसकी आदि न देख

सके, इसलिये उसका अनन्तरूप होनेसे पद्मनाभ ८६५, किसी समय ब्रह्माने विष्णुके विपर्यमें स्पर्द्धा करके गऊसे कहा तुम साक्षी दो, कि मैंने महादेवका शिरस्थल देखा है, सरभीने ब्रह्माके भयसे मिथ्या साक्षी दी थी। अनन्तर महादेवने उसे यह कहके शाप दिया, कि तेरी सब सन्तति अपवित्र वस्तु भक्षण करेगी,— इस ही शापके कारण कामधेनुको ऊर्द्ध पदसे अधःपदमें लेआनेसे सुरभ्युत्तरण ८६६, सब जीवोंका नाश करता है, इसलिये नर ८६७, कर्णिका महा स्रग्वी ८६८, नीलमौलि (नील-मणिमय किरीट शोभित मौलि) ८६९, पिनाक-धृक् ८७०, उमानामी ब्रह्मविद्याके यथेष्ट विनियोगके हेतु स्वामी है, इसलिये उमापति ८७१, ब्रह्मविद्याके प्रणयीकृत होनेसे उमाकान्त ८७२, जान्हवीधृक् ८७३, पार्व्वतीका पति है, इसलिये उमाधव ८७४, आदम्भूमिका उद्धार-कर्त्ता है, इस ही निमित्त वरवराह ८७५, अनेक अवतारोंके द्वारा जगत्‌की पालन करता है, इस ही निमित्त जगत्पालन ८७६, वरद होनेसे वरेण्य ८७७, हयग्रीव रूपसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया था, इस ही लिये सुमहास्वन ८७८, महाप्रसन्न ८७९, दमन, ८८० शत्रुहा अर्द्धनारी नटेश्वर रूपसे दक्षिणार्द्धमें कर्पूरगौर और बामार्द्धमें कनकपिंगल है, इस ही निमित्त श्वेतपिंगल ८८१, प्रीतात्मा अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पांचो आत्मासे पृथक् आनन्द मात्र स्वरूप है, इस ही निमित्त परमात्मा ८८२, निर्म्मल शुद्धचित्त होनेसे प्रयतात्मा ८८३, त्रिगुणात्मक जगत्कारण प्रधानाख्य अज्ञानका अधिष्ठान है, इसलिये प्रधानधृक् ८८४, पञ्चवक्त्र रूपसे सर्व्व पार्श्वमुख ८८५, चन्द्र सूर्य्य और अग्निरूप तीनों नेत्रोंसे युक्त है, इसलिये त्र्यक्ष ८८६, पुण्यानुरूप प्रसाद स्वरूप है, इसहीसे सर्व्वसाधारण वर ८८७, चराचरात्मा ८८८, सूक्ष्मात्मा ८८९, अमृत ८९०, पृथ्वीपति धर्म्मका ईश्वर है, इस ही निमित्त गो-वृषीश्वर ८९१, देवोंका देवता और साधग्रोंका ऋषि है, इसलिये साधर्षि ८९२, अदितिके पुत्र वसु स्वरूप होनेसे आदित्यवसु ८९३, अंशुजालवान होनेसे विवस्वान ८९४, जगत्प्रसव कर्त्ता होनेसे सविता और यज्ञीय सोम स्वरूप है, इसलिये अमृत ८९५, पुराण इतिहासोंका कर्त्ता है, इसलिये व्यास ८९६, उसके बनाये हुए पुराण आदिमें सर्ग सूत्र तथा भाष्यादि रूपसे सुसंक्षेप वा विस्तर ८९७, समष्टिरूप वैश्वानर है, इसलिये पर्य्यनर ८९८, ऋतु ८९९. सम्वत्सर ९००, मास ९०१, पक्ष ९०२, ऋतुओंकी संख्या समाप्त करनेवाली संक्रान्ति दर्शपौर्णमासादि रूपसे सङ्ख्यासमापन ९०३, कला ९०४. काष्ठा ९०५, लव ९०६, मात्रा ९०७, मुहूर्त्त अहःक्षपा ९०८, क्षण ९०९, विश्वक्षेत्र ९१०, प्रजाबीज ९११, लिंग ९१२, आद्यनिर्गम (अङ्कुर रूपी) ९१३, सत् ९१४, असत् ९१५, व्यक्त (इन्द्रिये ग्राह्य) ९१६, मैं नहीं जानता,— यह अनुभव वेद्य अज्ञान होनेसे अव्यक्त ९१७, पिता ९१८, माता ९१९, पितामह ९२०, तपरूपसे स्वर्गद्वार ९२१, राजरूपसे प्रजाद्वार ९२२ वैराग्य रूपसे मोक्ष द्वार ९२३, स्वर्ग स्वरूपसे त्रिपिष्टप ९२४, मोक्षरूपसे निर्व्वाण ९२५, आनन्दजनक होनेसे ह्लादन ९२६, ब्रह्मलोक ९२७, सत्यलोका परागति ९२८, देवसुर विनिर्म्माता ९२९ देवासुर परायण ९३०, देवासुर गुरु ९३१, देवासुर ९३२, देवासुर नमस्कृत ९३३, देवासुर महामात्र ९३४, देवासुर गणाश्रय वा देवासुर गणाधार ९३५, देवासुरगणाग्रणी ९३६, इन्द्रादिको अतिक्रमकरके स्वयं प्रकाशमान है, इसलिये देवातिदेव ९३७, देवर्षि ९३८, देवासुर वरप्रद ९३९, अन्तर्य्यामी रूपसे देवासुरेश्वर ९४०, जगत् गर्भमें होनेसे विश्व ९४१, अन्तर्य्यामी ईश्वरका अधिष्ठान है, इसलिये देवासुर महेश्वर ९४२, सर्व्व देवमय ९४३, अचिन्त्य, ९४४, देवतात्मा ९४

आत्मसम्भव (स्वतःसिद्ध) ६४६, उद्भिद ६४७, त्रिविक्रम ६४८, विद्यावान है, इसलिये वैद्य ६४६, निर्म्मल होनेसे विरज ६५०, रजोगुणसे रहित है, इसलिये नीरज ६५१, अविनाशी होनेसे अमर ६५२, स्तवनीय होनेसे ईड्य ६५३, काशहस्तीश्वर नाम वायव्यलिंग रूपसे हस्तीश्वर ६५४, व्याघ्रेश्वर नामक लिंग स्वरूपसे व्याघ्र ६५५, देवताओंके बीच पराक्रमी है, इस ही निमित्त देवसिंह ६५६, मनुष्योंके बीच श्रेष्ठ है, इस ही लिये नरर्षभ ६५७, विशेष प्राज्ञ है, इसलिये विबुध ६५८, सबसे अगाड़ी यज्ञ भाग वरण करता है, इस ही लिये अग्रवर ६५६, दुर्ल्लक्ष्य रूपसे सूक्ष्म ६६०, सर्व्वदेव ६६१, तपोमय ६६२, सुयुक्त ६६३, शोभन ६६४, वज्री ६६५, प्रास आदि अस्त्रोंकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रास प्रभाव ६६६, अव्यय ६६७, कुमार रूपसे गुह ६६८, आनंदकी पराकाष्ठा स्वरूप है, इसलिये कान्त ६६६, अपनेसे अभिन्न है, इसलिये निजसर्ग ६७०, मृत्युके क्लेशसे परित्राण करता है, इस निमित्त पवित्र ६७१, सर्व्वपावन ६७२, वृषादि रूपसे शृंगी ६७३, शैल शृंगाश्रय है, इसलिये शृंगप्रिय ६७४, शनैश्चर होनेसे वभ्र ६७५, राजराज (कुवेर) ६७६, निर्दोष है, इस लिये निरामय ६७७, अभिराम ६७८, सुरगण ६७६, सर्व्वोपरम रूपसे विराम ६८०, सर्व्वसाधन ६८१, ललाटाक्ष ६८२, विश्वदेव ६८३, मृगरूप होनेसे हरिण ६८४, दिव्य तपसे युक्त तेजस्वी है, इसलिये ब्रह्मवर्चस ६८५, हिमाचल आदि रूपसे स्थावर पति ६८६, नियमन्द्रिय वर्द्धन ६८७, सिद्धार्थ ६८८, सिद्ध भूतार्थ (द्विविध मोक्ष स्वरूप) ६८६, साधारण उपास्यसे पृथक् है, इसलिये अचिन्त्य ६६०, अर्हसिद्ध होनेसे सत्य व्रत ६६१, निर्म्मलचित्त है, इसलिये शुचि ६६२, समस्त व्रतोंका फलदाता है, इस निमित्त व्रताधिप ६६३, विष्णुतैजस प्राज्ञ नाम अपर ब्रह्मसे श्रेष्ठ तुरीय शिवाख्य श्रुति-प्रसिद्ध है, इसलिये पर ६६४, देशकाल और वस्तुओंसे परिच्छेद रहित अखण्ड एक रस तन्मात्र रूपसे ब्रह्म है ६६५, भक्तोंकी परमगति ६६६, मुक्ततेजा होनेसे विमुक्त (लिङ्ग शरीरसे रहित) ६६७, श्रीमान् ६६८, श्रीवर्द्धन ६६६, नित्य रूपान्तर प्राप्त होनेसे जगत् १०००, मैंने प्रधानताके अनुसार भक्ति पूर्व्वक इस ही प्रकार भगवान्की स्तुति की थी ब्रह्मादि देवता और महर्षि लोग जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस स्तवनीय वन्दनीय और पूजनीय जगदीश्वरकी दूसरा कौन स्तुति कर सकेगा? मैंने भक्तिपूर्व्वक यज्ञपति मतिमताम्वर विभुको पुरस्कार करके उनसे सब भांतिसे अनुज्ञात होके स्तुति की थी। नित्य युक्त शुद्धचित्तवाले, भक्तजन यदि इन पुष्टिवर्द्धन नामोंसे महादेवकी स्तुति करें, तो वे स्वयं ही आत्मलाभ करनेमें समर्थ होवें। यही ब्रह्मप्राप्तिके विषयमें श्रेष्ठ साधनयुक्त विद्या है, इसे जपनेसे कैवल्य प्राप्ति होती है, इस ही लिये ऋषि तथा देववृन्द इन नामोंसे महादेवकी स्तुति किया करते हैं। आत्मसंस्थावर अर्थात् मोक्षदाता भक्तापर कृपा करनेवाले भगवान् विभु महादेव एकाग्रचित्तवाले भक्तोंके द्वारा इस स्तोत्रसे स्तुतियुक्त होके प्रसन्न होते हैं। मनुष्योंके बीच जो लोग आस्तिक तथा श्रद्धावान् हैं, वे अनेक जन्ममें इस स्तवके द्वारा अनन्य साधारण सनातन परम देवको वचन मन कार्य्यसे सब प्रकार आराधना करनेसे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। सोने, जागने, चलने, बैठने पलक खोलने और बन्द करनेके समय वे लोग महेश्वरका बार बार ध्यान करके उनके गुणोंको सुनने कहने और गाकर स्तुति करनेपर स्तूयमान होकर सन्तुष्ट और सुखी होते हैं। सहस्त्र कोटि जन्म तक अनेक प्रकार योनिमें भ्रमण करनेसे जब जीवके पाप दूर होते हैं, तब महादेवमें भक्ति उत्पन्न होती है। सब साधनोंसे युक्त मनुष्योंमें आत्मभावसे ...

प्रकार महेश्वरमें अनन्यभक्ति अर्थात् अपने आत्माको अभिन्न जानके उनमें जो भक्ति हुआ करती है, वही उत्पन्न होती है। रुद्रमें अव्यभिचारी निर्विघ्न और निर्मल भक्ति देवताओंको भी दुर्लभ है, वह मनुष्य मण्डलमें नहीं प्राप्त होती; उसकी कृपासे ही मनुष्योंमें भक्ति उत्पन्न होती है, जिसके सहारे उसके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले पुरुष परम सिद्धि पाते हैं। जो लोग सब प्रकारसे अनुगत होकर महेश्वरके शरणापन्न होते हैं, भक्तवत्सल महादेव उन्हें संसारसे पार करते हैं। संसारसे मुक्त करनेवाले महादेवके अतिरिक्त अन्यदेवता मनुष्योंके तपोबलको नष्ट किया करते हैं, क्यों कि मनुष्योंको तपस्याके अतिरिक्त और दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है। हे कृष्ण! इस ही प्रकारसे वह इन्द्र कल्प शुद्ध बुद्धि तण्डि मुनिने सदा रुद्रपति भगवान् शङ्करकी स्तुति की थी और उन्हींके द्वारा महादेवके निकट यह स्तव गाया गया था, तुम ब्राह्मण हो इसलिये इसे समझ सकोगे। यह स्तोत्र पुण्यप्रद पवित्र सदा पापोंको नष्ट करनेवाला योगद मोक्षद स्वर्ग और सन्तोषप्रद है; इस ही प्रकार जो लोग एकाग्रचित्त महादेवमें भक्ति करके इसका पाठ करते हैं, उन्हें सांख्य योगियोंकी गति प्राप्त होती है। यदि भक्त लोग एक वर्षतक महादेवके समीप इस स्तोत्रका पाठ करें, तो इप्सित फल प्राप्त कर सकते हैं। यह परम रहस्य ब्रह्माके हृदयमें स्थित था, अनन्तर ब्रह्माने इन्द्रसे कहा, इन्द्रने मृत्युसे कहा और मृत्युने रुद्रगणोंके निकट वर्णन किया, रुद्रगणोंके द्वारा यह स्तोत्र तण्डिमुनिको मालूम हुआ। तण्डिने ब्रह्म स्थानमें महत् तपस्याके सहारे इसे पाया। हे माधव! तण्डिने शुक्रसे कहा, शुक्रने गौतमसे और गौतमने वैवस्वत मनुके निकट इसे वर्णन किया; वैवस्वत मनुने नारायण नामक बुद्धिमान् प्रियपात्र साध्यको इस स्तोत्रका उपदेश किया, अच्युत साध्य नारायणने यमसे कहा, सूर्य पुत्र भगवान् यमने नचिकेतासे कहा। हे वृष्णिवंश प्रसूत! नचिकेताने मारकण्डेय मुनिके समीप वर्णन किया। हे जनार्दन। यह स्तोत्र नियमपूर्वक मुझे मार्कण्डेय ऋषिके समीप प्राप्त हुआ है।

हे शत्रुनाशन! मैं तुम्हें यह अभिश्रुत स्तोत्र प्रदान करूंगा। यह स्वर्ग और आरोग्य जनक आयुष्कर धनप्रद तथा वेद तुल्य हैं; यक्ष, राक्षस, दानव, पिशाच यातुधान वा सर्पादि इसमें विघ्न नहीं कर सकते। हे पार्थ! जो पुरुष पवित्र ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और अखण्डित योगसे युक्त होकर एक वर्षतक सदा इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।

१७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि कहने लगे, हे तात! तुम स्तोत्र पाठ करो, तुम्हारा कल्याण होगा और महादेव तुमपर प्रसन्न होंगे। हे तात महाराज! पहले जब मैंने पुत्रके निमित्त सुमेरु पर्व्वतपर परम तपस्याकी थी, उस समयमें इस ही स्तोत्रका पाठ किया था। हे पाण्डुनन्दन मैंने इस ही स्तोत्रका पाठ करके अभिलषित वस्तुओंको पाया था, वैसे ही तुम्हारी भी सब कामना महादेव पूरी करेंगे।

अनन्तर सांख्य शास्त्र बनानेवाले देवसत्तम कपिल मुनि बोले, मैंने अनेक जन्मतक भक्तिपूर्वक महादेवकी आराधना की थी, तब भगवानने मुझपर प्रसन्न होकर संसार विनाशन ज्ञान दान किया।

अनन्तर इन्द्रके प्रियमित्र आलम्बायन गोत्र करुणामय विख्यात् चारुशीर्ष बोले, हे पाण्डु नृपनन्दन! पहले समयमें मैंने गोकर्ण तीर्थमें जाके एक सौ बर्षतक तपस्या करके महादेवसे

अयोनिज दान्त धर्म्मज्ञ अत्यन्त तेजस्वी अजर और दुःख रहित सौ हजार वर्षकी परमायु विशिष्ट एक सौ पुत्र प्राप्त किया था।

भगवान् वाल्मीकि मुनि राजा युधिष्ठिरसे बोले, वेद विपरीत वाद विषयमें साग्निक मुनियोंने मुझे "ब्रह्म हत्यारा" कहा था। हे भारत। क्षणभरमें मैं उस अधर्म्मसे आविष्ट हुआ था, अनन्तर ब्रह्म हत्या पापसे युक्त होकर उस समय मैं अनघ अमोघ ईशान देवका शरणागत हुआ उनका शरणागत होके मैं पापसे छूटा, उसहीसे मेरा दुःख नष्ट हुआ। उस समय महादेवने मुझसे कहा, तुम्हें श्रेष्ठ यश प्राप्त होगा।

धार्म्मिक प्रवर जामदग्न्य (परशुराम) ऋषियोंके बीच प्रकाशमान सूर्य्यकी भांति निवास करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे पाण्डवाग्रज। मैं पितृतुल्य ब्राह्मणोंका बध करनेसे अत्यन्त आर्त्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर पवित्र होकर महादेवकी शरणमें गया और इन्हीं नामोंसे उनकी स्तुतिकी अनन्तर महादेव मुझपर प्रसन्न हुए और मुझे दिव्य अस्त्रोंमें श्रेष्ठ परशु प्रदान किया फिर बोले, कि तुम्हें पाप न होगा तुम सबसे अजेय होगे, सर्वविग्रह शिखण्डि मुझे ऐसा ही कहते हैं, उस धीमान्की कृपासे मैंने यह सब पाया है।

अनन्तर विश्वामित्र मुनि बोले, मैं जब क्षत्रिय था, तब ब्राह्मण बननेकी इच्छासे महेश्वरकी आराधना की थी, उनकी कृपासे मैंने अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया है।

असित देवल मुनि पाण्डु पुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे विभु कौन्तेय! पहले धर्म्म शास्त्रके किसी विषयको अन्यथा करनेसे इन्द्रने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दिया, शापके प्रभावसे मेरा धर्म्म नष्ट होगया, अनन्तर प्रभु महादेवने मुझे धर्म्म उत्तम यश और परमायु प्रदान किया। बृहस्पतिके समान तेजस्वी इन्द्रके प्रियमित्र भगवान् गृत्समद अजमीढ़ वंशीय राजा युधिष्ठिरसे बोले, चाक्षुष मनुके पुत्र भगवान् वरिष्ठ अचिन्तनीय शतक्रतुके सहस्र वार्षिक यज्ञके वर्त्तमान कालमें मैंने विपरीत रीतिसे साम उच्चारण किया, तब वह मुझसे बोले, हे द्विजश्रेष्ठ। यह रथान्तर साम पूर्णरूपसे उच्चारित नहीं हुआ। हे द्विजोत्तम! तुम मिथ्याभिनिवेश पाप परित्याग करके फिर बुद्धिके सहारे विचार करो। रे अत्यन्त नीच बुद्धिवाले! तैने अयज्ञ वाही पाप अर्थात् अन्यथा रीतिसे साम पाठ रूपी अपराध किया है। वह ऐसा कहके महाक्रोधसे रुष्ट होकर फिर बोले, 'तुम बुद्धिहीन, दुःखयुक्त भीत बनचारी क्रूर मृग होकर जल और वायुसे रहित अन्य हरिनोंसे वर्ज्जित अयज्ञीय वृक्षोंसे युक्त रुरु मृग तथा सिंहोंसे निसेवित बनके बीच महा दुःखसे संयुक्त होकर दश हजार तीन सौ अस्सी वर्षतक वास करोगे' हे पार्थ। उनका वचन शेष होते ही मैं मृग हुआ। अनन्तर जब मैं शिवका शरणागत हुआ तब महायोगी महेश्वर मुझसे बोले, तुम अजर अमर और दुःख रहित होगे। इन्द्रके सङ्ग तुम्हारा अवैषम्य तथा सुख समृद्धि प्राप्त हो और यज्ञ भी बर्द्धित होता रहे। भगवान् महेश्वर इस ही प्रकार अनुग्रह किया करते हैं। वेही सदा सुख दुःखके विधाता हैं, वे भगवान् वचन मन और कर्म्मसे अगोचर हैं। हे तात युधिष्ठिर! उसकी कृपासे विद्या विषयमें मेरे समान पण्डित कोई भी नहीं है।

अनन्तर मतिमतांवर श्रीकृष्णचन्द्र फिर कहने लगे, कि मैंने सुवर्णाक्ष महादेवको तपस्याके सहारे सन्तुष्ट किया था। हे धर्म्मराज! अन्तमें सर्व्वज्ञाता भगवान् प्रसन्न होकर मुझसे बोले, हे कृष्ण! धर्म्मका फल और कामका मूल अर्थ ही सबसे प्रिय है, तुम इस अर्थसे भी सबको अधिक प्रिय होगे, अर्थात् मेरे प्रसादसे तुम सबको अन्तरात्माकी भांति प्रिय -

करोगे और तुम युद्धमें पराजित न होगे, तुम्हारा तेज अग्निकी भांति होगा। इस ही प्रकार महादेवने मुझे सहस्र बार वर दान किया है; पहले भवतारमें मणिमन्त पर्व्वतपर अयुत सहस्र और सौ हजार वर्षतक महादेव मेरे द्वारा पूजित हुए थे। अनन्तर भगवान्ने प्रसन्न होकर मुझसे यह वचन कहा, कि तुम्हारा मङ्गल हो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मागो। तब मैंने सिर झुका कर उन्हें प्रणाम करके कहा, हे सर्व्वभूत संयोगी महादेव! आप यदि मेरी परम भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं। तो यही वर दीजिये कि सदा तुम्हारे विषयमें मेरी भक्ति स्थिर रहे, भगवान् "एव मस्तु" कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये।

जैगीषव्य बोले, हे युधिष्ठिर! पहले समयमें काशीपुरीमें बलशालियोंमें श्रेष्ठ भगवान्ने यत्नपूर्व्वक मुझे अष्टगुण ऐश्वर्य्य दान किया था।

गार्ग बोले, हे पाण्डव! भगवानने सरस्वती नदीके तट पर मेरे मनोयज्ञके द्वारा सन्तुष्ट होकर मुझे चौंसठ अंगविशिष्ट अद्भुत कलाज्ञान दान किया और मेरे समान ब्रह्मवादी एक हजार पुत्र तथा पुत्रोंके सहित दश हजार एक सौ वर्षकी परमायु प्रदानकी है।

पराशर बोले, हे महाराज! पहले मैंने महेश्वरको प्रसन्न करनेके लिये मन ही मन ध्यान किया था, कि महातपस्वी महातेजस्वी महायोगी महायशस्वी वेदव्यास महादेवकी कृपासे मेरा अभीप्सित पुत्र हो। अनन्तर सुरसत्तम महादेव मेरे हृदयका अभिप्राय जानके बोले, मुझमें जो तुम भक्ति रखते हो, उसके फलसे तुम्हारे कृष्ण नामक पुत्र होगा, वह सावर्णिक मनुका सप्तर्षि होगा, वेदोंका वक्ता और कुरुवंशका रचाकर्त्ता होगा; जगत्का हितैषी तुम्हारा वह पुत्र इन्द्रका दयित वा महामुनि होगा। हे पराशर! तुम्हारा पुत्र अजर तथा अमर होगा। हे युधिष्ठिर! वह महायोगी वीर्य्यवान अक्षय और अव्यय भगवान इस ही प्रकार कहके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये।

माण्डव्य बोले, मैं चोर न होनेपर भी चोरशंकाके हेतु शूलीपर चढ़ाया गया था, उस समय शूलीपर रहके भी मैंने महेश्वरकी स्तुति की तब वह मुझसे बोले, हे विप्र! तुम शूलीसे छूट जाओगे और अर्व्वुद वर्षतक जीवित रहोगे, तथा तुम्हें इस शूलीसे कुछ भी पीड़ा न होगी, तुम आधि व्याधिसे रहित होगे। हे मुनि! तुम्हारा यह शरीर जब धर्म्मके चौथे चरण सत्यसे उत्पन्न हुआ है, तब तुम अवश्य ही अनुपम होगे, इसलिये अपना जन्म सफल करो। तुम बिना विघ्नके सब तीर्थोंके अभिषेक जनित फल पाओगे। हे विप्र! तुम्हारे निमित्त उज्ज्वल अक्षय स्वर्गका विधान करता हूं। हे महाराज! कृत्तिवास महातेजस्वी देवश्रेष्ठ वृष वाहन वरणीय भगवान् महेश्वर ऐसा कहके उस ही स्थानमें अपने गणोंके सहित अन्तर्द्धान हुए।

गालव मुनि बोले, मैंने विश्वामित्रकी आज्ञा पाके पिताके समीप गमन किया, अनन्तर माता अत्यन्त दुःखित होके रोदन करती हुई मुझसे बोली, हे निष्पाप पुत्र! तुम विश्वामित्रकी आज्ञा पाके घर आये हो, परन्तु तुम्हारे पिता तुम्हें नहीं देखते हैं। मैंने माताका वचन सुनके पितृदर्शनसे निराश होकर संयतचित्तसे महादेवका दर्शन किया, वह मुझसे बोले, हे पुत्र! तुम पितामाताके सहित मृत्यु रहित होगे इसलिये शीघ्र गृहमें प्रवेश करो। हे तात युधिष्ठिर! मैंने भगवान्की आज्ञानुसार फिर गृहमें जाके देखा। पिता यज्ञ करके कुशकाठ लेकर तथा वृक्षके स्वयं गिरे हुए फलोंको स्पर्श करते हुए गृहसे आ रहे हैं। हे पाण्डव! पिताको देखके मैंने प्रणाम किया, उन्होंने हाथमें स्थित कुशकाठ

परित्याग करके आखोंमें आंसू भरके मुझे आलिङ्गन किया और मेरा मस्तक सूंघके बोले, हे पुत्र! भाग्यसे ही मैंने तुम्हें कृतविद्य होकर घरमें आया हुआ देखा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुनियोंके कहे हुए महानुभाव महादेवके यह सब अत्यन्त अद्भुत कर्म्म सुनके विस्मित हुए अनन्तर सर्व्वनियन्ता मतिमताम्वर श्रीकृष्णचन्द्र महेन्द्र सदृश धर्म्मनिधि युधिष्ठिरसे फिर कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, तपनशील सूर्य्यकी भांति उपमन्यु मुझसे कहने लगे, कि जो सब पापी मनुष्य अशुभ कर्म्मोंसे दूषित हुए हैं, वे तामस तथा राजस वृत्तिसे युक्त पुरुष महादेवको नहीं पाते और जो सब ब्राह्मण सदा उनका ध्यान किया करते हैं, वेही ईश्वरको पाते है; जो भक्त परमेश्वरमें सब प्रकारसे चित्त लगाता है, वह शुद्धचित्तवाले वनवासी मुनियोंके सदृश है। रुद्रदेव प्रसन्न होनेपर ब्रह्मत्व, केशवत्व, देवताओंके सहित इन्द्रत्व अथवा तीनों लोकोंका राज्य प्रदान करते हैं। जो मनुष्य मनसे भी शिवके शरणापन्न होते हैं, वे सब पापोंसे छूटके देवताओंके सङ्ग निवास किया करते है। जो लोग गृह तड़ाग आदि भेदके तथा समस्त जगत् विध्वंश करते हुए विरूपाक्ष देवकी पूजा करते हैं, वेभी पापमें लिप्त नहीं होते। सब लक्षणोंसे रहित तथा समस्त पापोंसे युक्त होकर भी यदि कोई मन ही मन महेश्वरका ध्यान करे, तो वह ध्यान ही उसके पापोंको खण्डन करता है। हे केशव। कीट पक्षी, पतंग आदि तिर्य्यग् योनिवाले भी यदि महादेवके शरणागत हों तो उन्हें भी कहीपर भय नहीं। भूमण्डलके बीच जो लोग एकमात्र महेश्वरमें भक्ति करते हैं, वे संसारके वशगामी नहीं होते, यही मेरे मनमें निश्चय है। अनन्तर श्रीकृष्ण धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

विष्णु बोले, हे महाराज! सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, वसुगण, विश्वगण, धाता, अर्य्यमा, शुक्र, वृहस्पति, रुद्रगण, साध्य, ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण, सत्य स्वरूप ब्रह्मा, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेद पढ़नेवाले, सोम, यजमान, हव्य वाहवि, रक्षा, दीक्षा तथा जो कोई संयमशील हैं, स्वाहा वौषट् ब्राह्मणवृन्द सौरभेयी, श्रेष्ठ धर्म्म, कालचक्र, वल, यश, दम, बुद्धिमानोंकी स्थिति और शुभाशुभ, सप्तर्षि, उत्तम बुद्धि, मन दर्शन, स्पर्श कार्य्य सिद्धि, देवगण, उष्मप, सोमप, मेघ, उत्तम साम, ऋषिगण, ब्रह्मकायगण, आभासुरगण, गन्धपगण, वाणी और मनके अविरुद्ध, शुद्ध निर्म्माणरत, देवगण, स्पर्शासन, दर्पण और आज्यपगण, हे आजमीढ़ वंशीय महाराज! इनके अतिरिक्त जो सब चिन्ताद्योत अर्थात् सङ्कल्प मात्रसे जिनके सम्मुख सब वस्तु प्रकाशित होती हैं, देवताओंके बीच जो ऐसे मुख्य देवता हैं और गरुड़ गन्धर्व्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण, पन्नगगण स्थूल अतिसूक्ष्म, मृदु, असूक्ष्म, दुःख सुख, अनन्तर दुःख तथा श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ साङ्ख्ययोग इत्यादि जो कुछ वर्णित हुए हैं, वे सभी महेश्वरसे उत्पन्न भये हैं। भूत सृष्टिकारी आकाश आदि उस आनन्दमात्र शरीरवाले महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं; वे शुद्धतत्त्व-प्रेप्सु उपासकोंके वरणीय हैं, वेही देव स्वरूपसे जगत्का पालन किया करते हैं। जो इस पृथ्वीमें आविष्ट होकर उस देवके इस पुरातनी सृष्टिकी रक्षा करते हैं तपस्याके सहारे जिनकी आलोचना की जाती है, वह उनसे भी वृद्ध और प्राणका हेतु है, मैं उस हीको प्रणाम करता हूं; वह सर्व्व शक्तिमान अविनाशी महेश्वर मुझसे सन्तुष्ट होकर हमें सदा अभिलषित वर प्रदान करें।

जो मनुष्य संयतेन्द्रिय, योगयुक्त और पवित्र होकर एक महीनेतक सदा इस स्तोत्रका

करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। हे पार्थ! ब्राह्मण इस स्तोत्रका पाठ करनेसे समस्त वेद पाठका फल पाते, क्षत्रिय अखण्ड भूमण्डलको जय करते वैश्योंको लाभ-निपुणता प्राप्त होती और शूद्र मरनेके अनन्तर सद्गति तथा सुख लाभ करनेमें समर्थ होता है। यशस्वी पुरुष इस सर्व्व दोष नाशक पवित्र और पुण्य युक्त स्तवराज पाठ कर रुद्रके विषयमें मन स्थिर करते हैं। हे भारत! इस शरीरमें जितने रोमकूप हैं, इस स्तवराजको पाठ करनेसे मनुष्य उतने ही सहस्र वर्षके परिमाणसे स्वर्ग लोकमें निवास करता है।

१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय जो सहधर्म्म शब्द उच्चारित होता है, यह क्या ऋषियोंके बनाये हुए मन्त्रके द्वारा प्रकाशित धर्म्म है अथवा प्रजापतिके सहारे सन्तानके लिये प्रसिद्ध हुआ है, अथवा आसुर अर्थात् केवल इन्द्रिय प्रीतिके निमित्त साहित्य है। पहले महर्षियोंने जिसे सहधर्म्म कहा है, वह मेरे विचारमें बिरुद्ध मालूम होनेसे उसमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। इस लोकमें जो सहधर्म्म शब्दसे वर्णित होता है, परलोकमें वह किस प्रकार बिहित हुआ करता है? हे पितामह! सहधर्म्माचरणके द्वारा मृतलोगोंको स्वर्ग मिलता है, पहले एक व्यक्तिके मरनेसे दूसरा कहां रहता है? जब कि मनुष्य धर्म्मके अनेक फलों तथा अनेक भांतिके कर्म्मोंसे युक्त हैं और अन्तमें अनेक निरयनिष्ठ होते हैं; इसके अतिरिक्त धर्म्मप्रवक्ता ऋषियोंने स्त्रीको अनृत कहके वर्णन किया है, इसलिये जब स्त्रियां अनृत (मिथ्या) हुई, तब सहधर्म्म किस प्रकार हो सकता है? और वेदमें भी स्त्रियां अनृतरूपसे वर्णित हुई हैं, धर्म्म प्रथम संज्ञामात्र है, पाणिग्रहण आदि विधि वेदविहित होनेपर भी पुरुषकी इच्छाके अनुरोधसे ही हुआ करते हैं, यथार्थमें वह धर्म्म नहीं, केवल उपचार मात्र है। हे महाप्राज्ञ पितामह! सदा इस विषयकी चिन्ता करनेसे यह मुझे अत्यन्त गहन बोध होता है, इसलिये आपने जिस प्रकार सुना हो, निसन्दिग्ध रूपसे वह सब वृत्तान्त तथा यह विषय जिस प्रकार प्रवर्तित हुआ है, वह मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें अष्टावक्र और दिग्भिमानी देवीके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहले समयमें महातपस्वी अष्टावक्रने दारपरिग्रह करनेकी अभिलाष करके महानुभाव वदान्य नामक ऋषिकी सुप्रभा नामी कन्या पानेके लिये प्रार्थना की थी, वह कन्या पृथ्वीमण्डलमें अत्यन्त सुन्दरी और गुण, प्रभाव, शील तथा चरित्रके द्वारा परम श्रेष्ठ थी। वसन्तकालमें पुष्पयुक्त बनशोभाकी युक्त उस उत्तम नेत्रवाली कन्याने अष्टावक्रकी ओर दृष्टि करते ही उनके मनको हरण किया था। वदान्य ऋषि उनसे बोले, मैं जिस प्रकार तुम्हें अवश्य कन्या प्रदान करूंगा, उसे सुनो। इस समय तुम पवित्र उत्तर दिशामें गमन करो, तब तुम देखोगे।

अष्टावक्र बोले, वहां मैं क्या देखूंगा? आप मुझसे वह विषय वर्णन करिये, आप मुझे जो कहेंगे इस समय मुझे वही करना योग्य है।

वदान्य ऋषि बोले, हिमालय पर्व्वत और कुबेरको अतिक्रम करके सिद्धचारणोंसे सेवित रुद्रका स्थान देखोगे। वह स्थान हर्षयुक्त नाचनेवाले अनेक सुखवाले पार्ष्वदों और दिव्याङ्गरागसे संयुक्त पिशाच तथा दूसरे अनेक प्रकारके प्रमथगणोंसे परिसेवित है। पाणिताल, सुताल अर्थात् कांसमय भाण्ड, शम्या ताल अर्थात्

विद्युतकी भांति अत्यन्त चपल भ्रमणादि-घटित नृत्यक्रियामान विशेष और भ्रमणादि रहित समतालके द्वारा प्रसन्नचित्त नृत्य करनेवालोंसे महादेव वहांपर सेवित होते हैं। उस पहाड़पर निवास करना ईश्वरको अभि-लषित है, इसीसे वह दिव्य लोक कहाता है, मैंने ऐसा ही सुना है। महादेव सदा वहांपर उपस्थित रहते हैं और उनके पारिषद लोग सदा उस स्थानमें निवास किया करते हैं। देवीने वहां महादेवके निमित्त अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी, मैंने सुना है, उस ही लिये वह महादेव और उमादेवीका इष्टस्थान है। पहले समयमें वहांपर देवके उत्तर भागमें महापार्श्व पर्व्वतपर समस्त धातु कालरात्रि और दिव्य मनुष्य इत्यादि सबकी ही मूर्त्ति धारण करके महादेवकी उपासना करती थीं, तुम उस स्थानको अतिक्रम करके गमन करोगे। अन-न्तर मेघवर्ण मनोहर रमणीय वन देखोगे। वहां महाभाग तपस्विनी दीक्षानुष्ठानकारिणी एक वर्षीयसी स्त्रीका दर्शन करोगे। वह तुम्हारी यत्नपूर्व्वक दर्शनीय और पूजनीय है। जब उसे देखके तुम निवृत्त होगे, तब मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे, तुम यदि ऐसा नियम करना चाहते हो, तो वहां जाके इन विषयोंको साधन करो।

अष्टावक्र बोले, हे साधु! ऐसा ही होगा, आपने जिस प्रकार कहा है, मैं अवश्य ही वहां जाके इन विषयोंको साधन करूंगा, आपका वचन सत्य होवे।

भीष्म बोले, अनन्तर भगवान्ने उत्कर्षशाली उत्तर दिशामें सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमालय पहाड़पर गमन किया। उस द्विजश्रेष्ठने महा-गिरि हिमालयपर जाके बाहुदानामी धर्म्म-दायिनी पवित्र नदीमें प्रवेश किया। अनन्तर उसके विमल तीर्थमें स्नान और तर्पण करके वहांपर सुखपूर्व्वक कुशशय्यापर निवास करने लगे। अनन्तर रात्रि बीतनेपर उस द्विज-वरने प्रातःकालमें उठके स्नान किया और वेदमन्त्रोंसे स्तुति करके अग्नि प्रकट की। महादेव और पार्व्वतीकी पूजा करके उस ही हृदपर विश्राम करने लगे। विश्राम करनेके अनन्तर उठके कैलास पर्व्वतकी ओर गमन किया। वहां जाके परम शोभासे दीप्यमान एक काञ्चनद्वार देखा और महानुभाव कुवेरकी नलिनी तथा मन्दाकिनीका दर्शन किया। अन-न्तर मणिभद्र आदि राक्षस जो कि उस नलिनी की सदा रक्षा करते हैं, वे लोग भगवान् अष्टा-वक्रको देखके उठ खड़े हुए, उन्होंने भी उन भीमविक्रमी राक्षसोंको प्रत्यभिनन्दित करके कहा, कि कुवेरके निकट जाके शीघ्र मेरे आनेका समाचार दो। हे राजन्! उन राक्ष-सोंने भगवान अष्टावक्रसे कहा, ये राजाओंके राजा, धनके स्वामी स्वयं ही आपके समीप आरहे हैं, भगवान कुवेरको आपके आगमनका कारण मालूम है। आप इस तेजस्विताके द्वारा प्रज्वलित महाभागको अवलोकन करिये। अनन्तर धनेश्वर अनिन्दित ब्रह्मर्षि अष्टावक्रके निकट आके विधिपूर्व्वक कुशल प्रश्न करके बोले, हे द्विजवर। आपने सुखसे आगमन किया है न? मेरे समीप आप क्या अभिलाष करते हैं, आप जो कहेंगे, मैं उसे पूर्ण करूंगा। हे द्विजोत्तम! आप इच्छापूर्व्वक मेरे गृहमें प्रवेश करिये, यहांपर सत्कृत और कृतकार्य्य होकर निर्व्विघ्नताके सहित गमन करना, कुवेरने उस द्विजवरको सङ्ग लेकर निज गृहमें प्रवेश किया और वहां जाके उन्हें आसन पाद्य और अर्घ प्रदान किया। उन दोनोंके बैठनेके अनन्तर मणिभद्र प्रभृति यक्ष राक्षस और किन्नर आदि कुवेरके सब गण बैठ गये। अन-न्तर सबके बैठनेपर कुवेरने कहा यदि आपकी इच्छा हो, तो अप्सरावृन्द नृत्य करनेमें प्रवृत्त हों, आपकी सेवा तथा आतिथ्य करना मेरा

कर्त्तव्य नाहीं है। तब मुनिने मृदु वचनसे कहा, "नृत्य आरम्भ होवे।" अनन्तर उर्व्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्व्वसी, अलम्बुषा घृताची, सिला, चित्रांगदा, रुचि मनोहरा, सुकेशी, सुमुखी, हासिनी, प्रभा, विद्युता, प्रशमी, दान्ता, विद्योता, रति और दूसरी अनेक अप्सरा नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुईं। गन्धर्व्वगण विविध बाजे बजाने लगे। दिव्य गीतनाद आरम्भ हुआ, महात्मा महातपस्वी अष्टावक्र देव परिमाणके एक वर्षतक वहां बैठे रहे और अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर राजा वैश्रवण भगवान अष्टावक्रसे बोले, हे विप्र! देखते देखते इस स्थानमें ही आपको कुछ अधिक एक वर्ष बीत गया, हे ब्रह्मन्! इसलिये अब यह नृत्य गीतादि परित्याग करना उचित है, इस समय आप इच्छानुसार निवास करिये, अथवा आप जैसा कहें, वैसा ही होवे। आप पूजनीय अतिथि हैं, और यह गृह भी आपका है, इसलिये आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय, हम सब कोई आपके अधीन हैं।

अनन्तर भगवान् अष्टावक्र प्रसन्न होके कुवेरसे बोले, हे धनेश्वर! मैं यथायोग्य पूजित हुआ, अब यहांसे गमन करूंगा। हे धनाधिप! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूं, तुमने जो किया है, वह तुम्हारे ही योग्य है, तुम्हारी कृपा और महानुभाव भगवान् वदान्य ऋषिके आज्ञानुसार अब मैं जाता हूं तुम बुद्धिमान और समृद्धिमान बने रहो। अनन्तर भगवान अष्टावक्र कुवेरके स्थानसे बाहर होके उत्तर दिशाकी ओर चले। कैलास, मन्दर और सुमेरु पर्व्वतपर विचरते हुए उन सब महापर्व्वतोंको अतिक्रम करके अत्यन्त उत्कृष्ट कैरातस्थानमें पहुंचे। उन्होंने प्रयत और नतशिर होके उस स्थानकी प्रदक्षिणा की। अनन्तर पृथ्वीपर उतरके वह उस समय हर्षित हुए और उस पर्व्वतकी तीन बार प्रदक्षिणा करके प्रसन्न चित्तसे उत्तरकी ओर समतल भूमिपर चलने लगे। अनन्तर उन्होंने और एक वनस्थल देखा। वह वन सब ऋतुओंके फूल, फल, मूल और पक्षियोंसे युक्त था और जगह जगह रमणीय शोभासे विभूषित था। भगवान अष्टावक्रने उस स्थानमें एक दिव्य आश्रम देखा। वहांपर विविध रत्नोंसे भूषित सुवर्णमय पर्व्वत और मणिमय भूमिपर मनोहर तालाब विद्यमान थे; तथा दूसरे बहुतेरे विषयोंको देखकर वह शुद्धचित्त महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस स्थानमें कुवेरके गृहसे भी श्रेष्ठ अद्भुत सब्रांग सर्व्व रत्नमय एक दिव्य सुवर्णसे बना हुआ भवन देखा। जिस स्थानमें उत्तम महत मणिकाञ्चनमय विविध पर्व्वत अनेक प्रकारके रत्न और समस्त रमणीय विमान विद्यमान थे मन्दार पुष्पोंसे परिपूरित मन्दाकिनी नदी, स्वयं प्रभायुक्त मणियों और हीरोंसे सब भूमि भूषित थी। अनेक प्रकारके मुक्ताजालसे खचित मणिरत्नोंसे विभूषित मणिमय तोरणों और मनोहर दर्शनीय रमणीय पवित्र वस्तुओंसे युक्त तथा वह मनोहर आश्रम ऋषियोंसे आवृत था अनन्तर अष्टावक्रके अन्तःकरणमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि कहां "निवास करूं?" अन्तमें वह उस गृहके द्वारपर जाके खड़े होकर बोले, इस स्थानमें जो हो, उसे मालूम होवे, कि "मैं अतिथि यहांपर आया हूं।" हे विभु! अनन्तर अनेक रूपधारिणी मनको हरनेवाली सात कन्या उस घरसे बाहर हुईं। उन्होंने जिस कन्याको देखा, उसीने उनके मनको हरण किया। निवारण करनेमें अशक्त होनेसे उनका मन अवसन्न हुआ। अनन्तर उस धीमान् विप्रके धृति उत्पन्न हुई, तब प्रमदागणोंने उनसे कहा, हे 'भगवान! भीतर चलिये।' उन्होंने उन सुन्दरियों तथा भवनको देखके कौतूहलयुक्त होकर गृहके भीतर प्रवेश किया। भीतर जाके उन्होंने जरायुक्त अम्लान अम्बरधारिणी सब आभूष-

योंसे भूषित एक वर्षीयसी स्त्रीको पलङ्गपर बैठी हुई देखा; देखते ही उन्होंने उससे कहा, "स्वस्ति हे", उसने भी उस समय वैसा ही प्रत्युत्तर दिया और उठके उस विप्रवरको बैठनेको कहा।

अष्टावक्र बोले, सब कोई अपने अपने स्थान पर जावें जो अत्यन्त ज्ञानवती और प्रशान्त चित्तवाली हो, वही अकेली मेरे निकट उपस्थित रहे; शेष सब अपने अभिप्राय और इच्छानुसार स्थानान्तरमें गमन करें, अनन्तर वे सब कन्या उस समय ऋषिको प्रदक्षिणा करके घरसे निकल गईं, केवल वह वृद्धा वहांपर निवास करने लगी, ऋषि सफेद शय्यापर शयन करके वृद्धासे बोले, हे भद्रे! रात्रि बीती जाती है, इसलिये तुम भी शयन करो। परस्पर कथा प्रसंगसे जब ब्राह्मणने ऐसा कहा, तब वर्षीयसीने प्रकाशमान दूसरी शय्यापर शयन किया। अन्तमें वह शीतज्वरसे कांपती हुई महर्षिकी शय्यापर जा चढी। हे राजन्! भगवानने उस आगत अबलासे स्वागत प्रश्न किया, उसने प्रीतिपूर्व्वक दोनो भुजासे ऋषिको आलिङ्गन किया। ऋषिको काठकी भांति निर्व्विकार देखके दुःखित होकर उस वृद्धाने उनके संग उस समय वार्त्तालाप आरम्भ किया। वह बोली, हे विप्रवर। पुरुषको पाके स्त्रियोंको स्वभावसे ही धैर्य नहीं रहता, इसलिये कामसे मोहित होकर मैं तुम्हें आलिंगन करती हूं, तुम मेरा मनोरथ सफल करो। हे विप्रर्षि! तुम प्रसन्न होके मेरे संग संगत होकर मुझे आलिङ्गन करो, मैं तुम्हें देखके अत्यन्त ही कामार्त्त हुई हूं। हे धर्म्मात्मन्! यह तुम्हारी तपस्याका प्रार्थित फल प्रशंसनीय है, कि देखकर ही मैं तुम्हारी सेवामें तत्पर हुई हूं, इसलिये तुम स्वीकार करो। मेरा यह सब धन तथा दूसरा वस्तु जो देख रहे हो, तुम उन सबके और तथा मेरे भी निःसन्देह स्वामी हो, तुम मेरे सङ्ग सङ्गम करो, मैं तुम्हारी सब कामना पूरी करूंगी। हे विप्र! सर्व्वकाम फलप्रद इस रमणीय वनमें तुम मेरे संग क्रीड़ा करोगे, मैं तुम्हारे वशमें होकर रहूंगी और दिव्य मानुष काम विषयोंको उपभोग करोगे, पुरुषके संसर्गसे हमें जैसा परम फल है, स्त्रियोंको इससे बढ़के कदाचित और कुछ भी सुख नहीं है। काम प्रेरित स्त्रियें सुखस्वच्छन्दतासे निवास करती हैं, वे सन्तप्त पांशुमय मार्गमें गमन करनेपर भी नहीं जलतीं।

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे! मैं कदापि परस्त्री गमन नहीं करता; धर्म्मशास्त्रज्ञ पण्डितोंके द्वारा परदाराभिगमन अत्यन्त दूषित कहके वर्णित हुआ है। हे कल्याणि! मैं सत्यके द्वारा शपथ करता हूं, कि इस संसार-आश्रममें प्रवेश करनेकी मैंने इच्छा की है। मैं विषयसे अनभिज्ञ हूं, केवल धर्म्मार्थ सन्तानकी अभिलाष की है, अपत्य उत्पन्न करनेसे निःसन्देह श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करूंगा। हे भद्रे! तुम धर्म्मको जानो तथा जानके दूर रहो।

स्त्री बोली, हे द्विज! वायु, अग्नि, वरुण अथवा दूसरे कोई देवता स्त्रियोंको वैसे प्रिय नहीं हैं, जैसे रतिशील नारियोंका एकमात्र रतिपति प्रियतम है। हजार स्त्रियोंके बीच कदाचित कोई एककिनी पाई जाती है और कहा नहीं जा सकता, कि सौ हजार स्त्रियोंके बीच भी कोई पतिव्रता है। वे पिताको नहीं जानती, कुलको नहीं मानती, माताको भी मान्य नहीं करती, भाइयोंके शासनमें भी नहीं रहती, स्वामीपर भक्ति, पुत्रोंमें स्नेह और देवरोंका समादर नहीं करती; जैसे नदियें तटको निर्मूल करती हैं, वैसे ही वे भी लीलाक्रमसे कुल नष्ट किया करती हैं; प्रजापतिने इनके सब दोषोंको जानके यह वार्त्ता कही था।

भीष्म बोले, अनन्तर अष्टावक्र एकाग्र होकर उस वर्षीयसीसे बोले, तुम इच्छानुसार बैठो

और मुझे क्या करना योग्य है वह कहो। वृद्धा बोली, हे भगवन्! देशकालके अनुसार सब देखोगे। हे महाभाग! बैठिये, कृतकृत्य होइयेगा।

हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्मर्षिने उससे कहा, "ऐसा ही होगा।" मेरा जबतक उत्साह रहेगा, तब तक मैं तुम्हारे समीप निःसन्देह निवास करूंगा। अन्तमें ऋषि उस स्त्रीको जराजीर्ण देखकर अत्यन्त चिन्ता करके मानो सन्तापित हुए। उस विप्रवरने उस अंगनाके जिस जिस अंगको अवलोकन किया, उनकी रूप विरागवती दृष्टि उस समय उसमें अनुरागवान् नहीं हुई। उन्होंने सोचा, यह इस गृहकी अधिष्ठात्री देवी है, किसीके शापसे कुरूपा हुई है। मैं सहसा इसका कारण जाननेमे समर्थ नहीं होता हूं; इस विषयको जाननेके निमित्त इस ही भांति चिन्ता करते हुए व्याकुल चित्तसे ऋषिका वह दिन शेष हुआ। अनन्तर वह स्त्री बोली, हे भगवन्! सूर्य्यका सन्ध्याराग रञ्जितरूप अवलोकन करिये, इस समय आपके निकट क्या लाऊं। वह उस स्त्रीसे बोले, इस समय यहां मेरे स्नान करनेके लिये जल लाओ। इसके अनन्तर मैं एकाग्र और संयतेन्द्रिय होकर सन्ध्या उपासना करूंगा।

१६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर उस स्त्रीने कहा, बहुत अच्छा, 'ऐसा ही होगा'—यह कहके वह दिव्य तेल और स्नानका वस्त्र ले आई। उस समय वर्षीयसीने उस महानुभाव मुनिकी आज्ञानुसार उनके शरीरमें तेल लगाया और धीरे धीरे जाके स्नानागारमें उपस्थित हुई। अनन्तर ऋषिवर अभिनव उत्तम आसन पर बैठनेके लिये वहां गये, जब वह उस उत्तम आसन पर बैठे, तब उस स्त्रीने धीरे धीरे सुखस्पर्श हाथके द्वारा ऋषिको स्नान करा दिया और उनके सम्मुख विधिपूर्वक दिव्य उपचारोंको लाके उपस्थित किया। महाव्रती मुनि उस स्त्रीके अत्यन्त सुखजनक तथा उष्ण हाथके सहारे सुखसे सेवित होकर यह न जान सके, कि सारी रात बीत गई। अनन्तर मुनि उठके अत्यन्त विस्मित हुए और पूर्व ओर आकाशमण्डलमें सूर्य्यको उदित देखा। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ, कि 'क्या यह मोह है, अथवा यथार्थ होगा?' अन्तमें वह सूर्य्यकी उपासना करके उस स्त्रीसे बोले, 'इस समय मैं क्या करूं?' तब वर्षीयसी उनके लिये अमृतरसके सदृश अन्न ले आई। ऋषि उस अन्नके प्रति स्वादुतानिबन्धनसे अधिक भोजन न कर सके। उस दिनके बीतने पर फिर सन्ध्या उपस्थित हुई। अनन्तर उस स्त्रीने भगवान् अष्टावक्रको शयन करनेके लिये कहा; उन दोनोंके अलग अलग दिव्य शय्या कल्पित हुई। मुनि और वह वृद्धा स्त्री अपनी अपनी शय्यापर जा सोये, आधी रातके समय वह स्त्री मुनिके समीप उपस्थित हुई, अष्टावक्र बोले, हे भद्रे मेरा अन्तःकरण परस्त्रीमें आसक्त नहीं होता हे कल्याणि! तुम उठो और स्वयं विरत रहो तुम्हारा मंगल होगा।

भीष्म बोले, उस समय वह वृद्धा धीरजके सहारे निवर्त्तित होके बोली, मैं स्वतन्त्रता हूं, तुम्हे धर्म्मच्छल अर्थात् परपुरुष प्रलोभन नहीं है।

अष्टावक्र बोले, स्त्रियोंकी स्वाधीनता नहीं है, स्त्रियें निश्चय ही पराधीन हैं, प्रजापतिका ऐसा मत है, कि स्त्रियें कभी स्वाधीनताके योग्य नहीं हैं।

स्त्री बोली, हे विप्र! कन्दर्प पीड़ा मुझे व्याकुल कर रही है, तुम मेरी भक्ति देखो, यदि तुम मुझे अभिनन्दित न करोगे, तो तुम्हें अधर्म्म होगा।

अष्टावक्र बोले, यथेच्छाचार मनुष्यके दोषोंको हरता है। हे कल्याणि। मैं सदा धीरज धारण करनेमें समर्थ हूं, तुम अपनी शय्या पर जाओ।

स्त्री बोली, हे विप्र। मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करती हूं, मुझ पर तुम्हें कृपा करनी उचित है। हे निष्पाप। तुम पृथ्वीमें पड़ी हुई मुझ शरणागताकी रक्षा करो। यदि तुम परस्त्री विषयक दोष देखते हो, तो मैं तुम्हें आत्म समर्पण करती हूं, हे द्विज। तुम मेरा पाणिग्रहण करो। मैं सत्य कहती हूं, कि तुम्हें कुछ भी दोष न होगा, मुझे तुम आत्म-प्रदान करनेमें स्वाधीना समझो, इससे जो अधर्म्म होगा, वह मुझे ही होगा। मैंने तुम्हें मन समर्पण किया है, मैं स्वतन्त्रा हूं, इसलिये तुम मुझे अङ्गीकार करो।

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे। तुम किस प्रकार स्वाधीना होसकती हो? कौमार अवस्थामें पिता रक्षा करता है, युवा अवस्थामें पति रक्षा किया करता है, वृद्धावस्थामें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियोंकी कभी स्वतन्त्रता नहीं रहती है।

स्त्री बोली, मैं कौमार ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करनेके हेतु निःसन्देह कन्या ही हूं, हे विप्र! इसलिये तुम मुझे अपनी पत्नी करो, मेरी श्रद्धा निष्फल मत करो।

अष्टावक्र बोले, मैं आत्म-दृष्टान्तके सहारे तुम्हें कामातुरा जानता हूं, तुम भी निज सङ्गम प्रकाश करके अपना अभिप्राय प्रकट करती हो, वदान्य ऋषि मुझे जाननेके लिये जो चेष्टा करते हैं, क्या सत्य ही उसमें विघ्न न होगा; इस स्त्रीको पहले अत्यन्त जीर्णरूपसे देखा था, अब इसे कन्या देखता हूं, इससे यह आश्चर्य्यका विषय है ... ा मैं पूर्व परिणीता कन्याको परित्याग करूंगा अथवा इसे स्वीकार करूंगा; क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा? यह दिव्याभरण वस्त्रधारिणी कन्या मेरे निकट उपस्थित हुई है, इसका यह परम सुन्दर रूप पहले किस प्रकार जीर्ण हुआ था। इस समय तो इसे कन्या रूपसे देखता हूं, इसके अनन्तर न जाने क्या होगा? मुझे जो काम दमन करनेकी सामर्थ्य है, उस धीरजसे मैं किसी प्रकार विचलित न होकर पहले प्राप्त हुई कन्याको परित्याग न करूंगा, पूर्व्वप्राप्तको परित्याग करनेमें मेरी रुचि नहीं होती; इसलिये मैं सत्य धर्म्मके सहारे दारपरिग्रह करूंगा।

२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। वह स्त्री परम तेजस्वी अष्टावक्रके शापसे क्यों न डरी और भगवान् अष्टावक्र किस प्रकार वहांसे निवृत्त हुए, यह वृत्तान्त आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अष्टावक्रने उस स्त्रीसे पूछा, कि तुम किस प्रकार रूप पलटती हो? मिथ्या न कहना, ब्राह्मणको मान रखनेकेलिये सत्य कहो।

स्त्री बोली, हे ब्राह्मणसत्तम! द्युलोक अथवा भूलोकके जिस किसी स्थानमें निवास करें, उस ही स्थानमें स्त्री-पुरुषोंका परस्पर ऐसा ही अभिप्राय है। हे सत्यविक्रम! सावधान होकर यह समस्त विषय सुनो। हे निष्पाप! तुम्हें स्थिर करनेके लिये मैं इस प्रकार परीक्षा करती थी। हे सत्य पराक्रम! पूर्व्वप्रतिज्ञाका परित्याग न करनेसे तुमने सब लोकोंको जय किया है। मुझे उत्तर दिशा जानो; स्त्रियोंकी चपलता भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम हुई। मैथुनज्वर वृद्धा स्त्रियोंको भी पीड़ित करता है। इस समय प्रजापति तुमपर प्रसन्न हुए तथा इन्द्रके सहित सब देवता तुम पर प्रसन्न हैं। हे द्विजवर! तुम जिस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आये तथा उस कन्याके पिता

वदान्य विप्रके द्वारा जिस निमित्त मेरे समीप आये हो, तुम्हें उपदेश करनेके लिये मैंने उन्हीं कार्य्योंका अनुष्ठान किया। तुम उत्तम रीतिसे मङ्गलपूर्ब्बक घर जाओ, तुम्हें कुछ भी श्रम न होगा, हे विप्र! तुम उस कन्याको पाओगे और वह पुत्रवती होगी। तुमने ज्ञान-लिप्साके निमित्त मुझसे प्रश्न किया, इस ही लिये मैंने उत्तम रीतिसे वर्णन किया; ब्राह्मण कामना तीनों लोकमें सब लोगोंको ही सदा अनतिक्रमणीय है। हे विप्रर्षि अष्टावक्र! इस समय पुण्य सञ्चय करके गमन करो और यदि सुननेकी अभिलाष है, मैं वह भी यथार्थ रीतिसे कहती हूं। हे द्विजवर। मैं तुम्हारे निमित्त ऋषिके द्वारा प्रसादिता हुई हूं उनके सम्मानके लिये तुमसे यह कथा कही है।

भीष्म बोले, कि वह विप्रवर। उसका वचन सुनके हाथ जोड़के खड़े हुए और उसकी आज्ञा पाके फिर अपने स्थानमें लौट आये। हे कुरुनन्दन! उन्होंने घरमें आके विश्राम कर स्वजनोंसे कुशल प्रश्न करके न्यायपूर्व्वक उस ब्राह्मणके समीप गमन किया। उस समय वह वदान्य विप्रको देखकर पूछने पर समस्त वृत्तान्त कहने लगे। उन्होंने कहा, मैं आपकी आज्ञानुसार गन्धमादन पर्व्वत पर जाके उसकी उत्तर ओर एक उत्तम महती देवीका दर्शन किया। मैंने उससे अनुज्ञात होकर आपका नाम सुनाया। हे प्रभु! उसका वचन सुनके फिर निज स्थान पर लौट आया। तब विप्रवर वदान्य उनसे बोले, तुम उत्तम पात्र हो, इस-लिये नक्षत्र और वेदविधिके अनुसार मेरी कन्याका पाणि ग्रहण करो।

भीष्म बोले, हे महाराज! परम धर्म्मात्मा अष्टावक्र उस समय "ऐसा ही होवे"—यह कहके उस कन्याको ग्रहण करके अत्यन्त प्रीति-युक्त हुए। वह द्विजवर उस परम सुन्दरी कन्याको भार्य्यारूपसे प्रतिग्रह करके शोक रहित और प्रसन्न होके अपने आश्रममें सुख-पूर्व्वक वास करने लगे।

२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! सनातन ब्राह्मण लोग यति ब्रह्मचारी ब्रह्मवित् ब्राह्मणको अथवा दण्डादि चिन्हधारी सन्यासीको पात्र कहा करते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! प्राचीन लोग आपके निर्व्वाहके लिये निज वृत्ति अवलम्बन करनेवाले दण्डादि चिन्हधारी वा अचिन्हित स्वधर्म्म जीवी ब्राह्मण इन दोनोंको ही दानके पात्र कहते हैं, क्योंकि वे दोनों ही तपस्वी हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अपवित्र पुरुष यदि परम श्रद्धा पूर्व्वक द्विजातिको हव्य-कव्य दान करे, तो उस दानमें क्या दोष होता है, उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी तात! नीच मनुष्य भी यदि श्रद्धाके द्वारा पवित्र हो, तब वह अवश्य ही सब ठौर पवित्र है, इसमें सन्देह नहीं है, श्रद्धा ही उसे पवित्र करती है।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य सदा देव कर्म्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, हव्य प्रदानके समय अर्थात् पितृ कर्म्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा करनी चाहिये, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं, देवताओंको श्रद्धाप्रियत्व निबन्धनसे देवकर्म्म देवताओंकी कृपासे ही पूर्ण होता है, और पितृ-कर्म्म ब्राह्मणकी कृपासे सिद्ध हुआ करता है।

भीष्म बोले, ब्राह्मण कभी देवकार्य्य सिद्ध नहीं करते, वह देवताओंकी कृपासे ही सिद्ध होता है, देवताओंके प्रसादसे यजमान यज्ञ किया करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! पितर पितामह आदि पूजनीय वरिष्ठ लोगोंके बीच धी-शक्ति सम्पन्न मारक-ण्डेयने पहले समयमें ब्राह्मणोंको ही ब्रह्म-वादी कहा था।

युधिष्ठिर बोले, अपूर्व्व अर्थात् पूर्व्वापरिचित विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी अथवा यज्ञशील, ये किस प्रकार दानके पात्र होंगे।

भीष्म बोले, पहले जो तुमने तीन पात्रोंका उल्लेख किया है, अर्थात् अपूर्व्व विद्वान् और इसी प्रकारके सम्बन्धसे युक्त, ये यदि कुलीन, कर्म्मठ वेदवित् अनृशंस लज्जाशील सरल और सत्यवादी हों, तभी दानके पात्र हुआ करते हैं, तपस्वी और यज्ञशील भी अवश्य ही दानके पात्र होंगे। हे पार्थ! इस विषयमें पृथ्वी काश्यप अग्नि और मार्कण्डेय, इन तेजस्वी अर्थात् सर्व्वज्ञ चतुष्टयका मत सुनो।

पृथ्वीने कहा है, जैसे समुद्रमें फेंकनेसे पांशु पिण्ड शीघ्र ही विनष्ट होता है, वैसे ही याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह, इन तीनों वृत्तियोंके द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हैं, उनके समीप सब दुश्चरित निमग्न हुआ करते हैं। हे महाराज! काश्यपने कहा है, षड़ङ्गोंके सहित सब वेद, सांख्य, पुराण और सत्कुलमें जन्म इन सदाचारोंसे भ्रष्ट द्विजोंसे प्रतिग्रह नहीं होता। अग्निने कहा है, जो पुरुष पढ़के अपनेको पण्डित समझता है और जो विद्याके सहारे दूसरेके यशको नष्ट करता है, वह पुरुष सदाचरण नहीं करता, इसहीसे भ्रष्ट होता है और उसके सब लोक नष्ट हुआ करते हैं। मारकण्डेयने कहा है, सहस्र अश्वमेध और एकमात्र सत्य यदि तुलादण्ड पर तौले जाय, तो सहस्र अश्वमेध सत्यके आधे फलके समान होगा, वा नहीं इसमें मैं कह नहीं सकता, इसलिये इन गणोंके एकतमके अभावसे पात्रत्व नहीं होता।

भीष्म बोले अत्यन्त तेजस्वी पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और विराट् भृगुनन्दन, मारकण्डेय, इन चारोंने पृथ्वीका वचन कहके गमन किया था।

युधिष्ठिर बोले, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें रत रहके ब्राह्मण लोग जो यह हवि भोजन करते हैं, ब्राह्मणकी कामार्थ प्रदत्त उस हविके द्वारा उसके व्रत नाशनिबन्धनसे किस प्रकार सुकृत होता है?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेवाले वेदपारग विप्र यदि ब्राह्मणकी कामनावशसे श्राद्धका अन्न भोजन करे, तो उसका व्रत नष्ट होगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पण्डित लोग धर्म्मको अनेकान्त अर्थात् अनेक फलाकार और बहुद्वार कहा करते हैं, इसलिये इस विषयमें किस प्रकार निष्ठा हो सकती है। आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! अहिंसा, सत्य अक्रोध, अनृशंसता, दम और आर्ज्जव, ये कई एक धर्म्मके लक्षण कहके निर्दिष्ट हुए हैं। जो लोग धर्म्मकी प्रशंसा करते हुए इस पृथ्वीपर विचरते हैं, वे लोग यदि उस धर्म्मके अनाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, तो सङ्करधर्म्ममें अभिरत कहके वर्णित हुआ करते हैं। जो नियमनिष्ठ मनुष्य उन्हें सुवर्ण, रत्न गऊ अथवा अन्नदान करता है, वह दश वर्षतक विष्ठा भक्षण किया करता है। जो ब्राह्मण होके भी राग अथवा मोहके वशमें होकर दूसरेके किये वा विना किये हुए पापकर्म्मको प्रकाशित करते हैं, वे मृत गऊ, भैंस आदिके मांसका भक्षण करनेवाले भेद जाति और स्वभाविक ब्राह्मण आदिकी हिंसा करनेवाले पक्कश जातिकी भांति गिने जाते हैं। हे राजेन्द्र! जो मूढ़ पुरुष ब्रह्मचारी विप्रको वैश्वदेव बलि प्रदान नहीं करते, वे अशुभ लोकोंको भोग किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ब्रह्मचर्य्यमें कैसा क्या है? धर्म्मका क्या लक्षण होता है और कैसे पवित्रता किसे कहते हैं? इसे कहिये, आप मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! मद्य-मांस परित्याग करनेवाले ब्रह्मचर्य्यमें ... [illegible] विद्वानोंसे

योंको निवृत्त रखना ही सबसे श्रेष्ठ है, पति-व्रता और मर्य्यादाके अन्तर्गत धर्म्मका लक्षण ही उत्कृष्ट है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किस समय धर्म्माचरण करे? किस समय अर्थ व्यवहार करे और किस समयमें सुखी होवे? आप मुझसे येही विषय कहिये।

भीष्म बोले, प्रातःकालमें अर्थ सेवा करे, फिर धर्म्माचरण करे उसके अनन्तर कामकी सेवा करके सुखी हो, परन्तु उसमें आसक्त न होवे ब्राह्मणोंका मान्य करे, गुरुओंका सम्मान करे, सब प्राणियोंके अनुकूल रहके मृदुस्वभाव और प्रियवादी होवे, अधिकारके बीच मिथ्या व्यवहार, राजकुलमें चुगली और गुरुजनोंके निकट अलीक व्यवहार करना ब्रह्महत्याके समान है। राजाके ऊपर प्रहार न करे, गऊको न मारे; जो पुरुष ऊपर कहे हुए दोनों कार्य्योंको करता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप होता है। अग्निको कभी परित्याग न करे, वेदको कभी न त्यागे। ब्राह्मणोंके विषयमें द्रोह न करे, आक्रोश करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे ब्राह्मण साधु कहाते हैं? किन लोगोंको दान देनेसे महाफल होता है और किस प्रकारके ब्राह्म-णोंको भोजन कराना उचित है? आप मुझे इस ही विषयका उपदेश करिये।

भीष्म बोले, जो लोग क्रोधरहित धर्म्मपरा-यण सत्यमें रत और इन्द्रियोंको दमन करनेमें तत्पर हैं, वेही उत्तम ब्राह्मण हैं, वैसे ही ब्राह्म-णोंको दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग अभिमानी नहीं हैं, सब कुछ सहते दृढ़-प्रतिज्ञ जितेन्द्रिय और सब प्राणियोंके हितमें रत रहते तथा सबको शुभ-कामना किया करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग लोभरहित, शुचि, वेदज्ञ, लज्जाशील और सत्यवादी तथा निज कर्म्मोंमें रत रहते हैं, उन्हें ही दान करनेसे महाफल हुआ करता है। जो ब्राह्मण अङ्ग सहित चारों वेदोंको पढ़ते और यजन याजन आदि षट् कर्म्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, ऋषि लोग उन्हें ही दानका पात्र कहा करते हैं। जो लोग ऊपर कहे हुए गुणोंसे युक्त हों, उन्हें दान करनेसे महाफल होता है। गुणी पात्रको दान करनेसे दाताको सहस्र गुण फल प्राप्त होता है। बुद्धि, शास्त्र, ज्ञान, सच्चरित्र और शील सम्पन्न एक ब्राह्मण भी समस्त कुलका उद्धार करनेमें समर्थ है, वैसे ब्राह्म-णको गऊ, घोड़े, अर्थ, अन्न तथा दूसरी समस्त वस्तु दान करना चाहिये, ऐसा करनेसे परलो-कमें शोक नहीं करना पड़ता। इस लोकमें जब एक ही उत्तम ब्राह्मण समस्त कुलका उद्धार करता है, तब जो अनेक ब्राह्मण उद्धार करेंगे, उसमें सन्देह ही क्या है? इसलिये पात्रका विचार करके दान करना उचित है। साधु-सम्मत गुणयुक्त ब्राह्मणका नाम सुननेसे ही उसे दूरदेशसे लाके सत्कार करके सब प्रकार उसकी पूजा करे।

२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! देव और पितर श्राद्धके समय देवर्षियोंके द्वारा जिस प्रकार विहित हुए हैं, उसे आप वर्णन करिये, मैं इसे ही सुननेकी अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, मङ्गलाचार सम्पन्न पवित्रता-युक्त यत्नवान् मनुष्य पूर्व्वान्हमें देवकार्य्य और अपरान्हमें पितृकार्य्य करे और मध्यान्ह कालमें आदरयुक्त होके मनुष्योंको दान करे। जो दान समयसे रहित होता है, उसे पण्डित लोग राक्षसोंका भाग समझते हैं। जो पांवसे लङ्घित है, जीभसे चाटा जाता, कलहसे बनता और जिसे रजस्वला स्त्री देखती है, धीर लोग उसे

राक्षसोंका अंश समझते हैं। हे भारत! घोषणा (ढिंढोरा) के द्वारा जो अन्न दान किया जाता है, जिसे व्रतहीन पुरुष भोजन किया करते हैं, और जिस अन्नको कुत्तेने स्पर्श किया हो, पण्डित लोग उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझते हैं। जो अन्न केश, कीट आदिसे युक्त, छूतसे दूषित तथा अवज्ञाके हेतुसे बना हो, और पुरुष उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। हे भारत! अननुज्ञात अथवा जो गूढ़ शस्त्र-जीवी और दुष्टात्मा मनुष्योंके द्वारा उपभुक्त हुआ करता है, और पुरुषोंने उसे राक्षसोंका भाग कहा है। जो दूसरेका जूठा भोजन किया जाता है और जो देवता अतिथि तथा बालकोंको न देकर स्वयं भोजन किया जाता है,—देव और पितृ कार्य्योंमें वह सदा राक्षसोंका भाग कहके विदित हुआ करता है, हे नरश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंके द्वारा मन्त्रहीन और क्रिया रहित जो यज्ञकी वस्तु परिवेषित होती है, पण्डित लोग उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। घृतकी आहुतिके अतिरिक्त जो कुछ वस्तु परिवेषित होती है और जिसे दुराचारी मनुष्य भोजन किया करते हैं, उसे धीर पुरुषोंने राक्षसोंका भाग कहा है। हे भरत श्रेष्ठ! राक्षसोंके जो भाग हैं, वह सब कहे गये, अब पात्रभूत ब्राह्मणोंके विषयमें दानकी परीक्षा सुनिये।

हे महाराज! जो सब ब्राह्मण पतित अर्थात् महापातक करनेसे जातिसे बाहर किये गये हैं, तथा जो जड़ वा उन्मत्त हैं, वे दैव तथा पैतृकार्य्योंमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे महाराज! श्वेतकुष्ठी, क्लीव, मण्डलकुष्ठी और जो पुरुष यक्ष्मारोगसे आक्रान्त, अपस्मार रोगसे ग्रस्त तथा अन्धे हैं, वे निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन्! जो सब ब्राह्मण चिकित्सक, [illegible] देवार्चनवृत्तिजीवी, वृथा नियम-धारी और सोमविक्रयी हैं, वे भी निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। गाने, नाचने, कूदने बजानेवाले, जल्पक (वृथालापी) और योधक पुरुष भी निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे महाराज! जो ब्राह्मण शूद्रोंके याजक, अध्यापक तथा उनके सेवक हैं, वे भी निमन्त्रणके योग्य नहीं है। हे भारत! जो ब्राह्मण अनुयोक्ता अर्थात् वेतन लेकर वेद पढ़ावे और अनुयुक्त अर्थात् जो वेतन देकर वेद पढ़े, वे दोनो ही श्राद्धीय अन्नके उपयुक्त नहीं हैं, क्यों कि वे दोनों ही वेद बेचनेवाले है। जो ब्राह्मण पहले सबमें अग्रणी रहे हों और पीछे हीन वर्णवाली शूद्रा स्त्रीको परिग्रह करे वह सर्व्वविद्या सम्पन्न होनेपर भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हो सकता। हे महाराज! जो सब ब्राह्मण श्रौत स्मार्त्तकर्म्मसे रहित हैं, जो मृतकोंका दान लेते और निज कर्म्मसे भ्रष्ट तथा पतित हैं, वे लोग भी निमन्त्रणके योग्य नहीं है। हे भारत! जो मनुष्य पहले अपरिज्ञात, गणपूर्व्व अर्थात् नीच स्वभाव और पुत्रिकापुत्र अर्थात् "इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा कहावेगा,"—ऐसा नियम करके जो कन्या दान की जाती है, उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह पितृगोत्रसे भ्रष्ट होकर मातृगोत्रोपजीवी होनेसे निन्दनीय होता है, इसलिये ऐसे पुरुष भी श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन्! जो मनुष्य ऋणकर्त्ता, कुसीदजीवी और प्राणियोंको बेंचकर जीवनका समय बिताता है, वह श्राद्धकालमें निमन्त्रित नहीं हो सकता। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग स्त्री जाति तथा स्त्रीपण्योपजीवी, वेश्यापति और सन्ध्या वन्दनसे रहित हैं, वे ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं।

हे भरतश्रेष्ठ! दैव और पितृश्राद्धके समय जो ब्राह्मण निर्दिष्ट होते तथा दाता और गृहीताके सम्बन्धमें जो अभ्यनुज्ञान है, इस समय उसे सुनो। हे महाराज! जो व्रताचरण किया करते गुणयुक्त और याजक, गायत्रीज्ञ और क्रियावान् हैं, वे ही श्राद्धमें निमन्त्रणके य

युद्धमें चात्रधर्म्म युक्त होनेपर भी कुलीन ब्राह्मणको निमन्त्रण करे। हे तात! परन्तु वणिक्-वृत्तिवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण न करे, जो ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा जो ग्रामवासी हुआ करते हैं और जो अस्तेय अर्थात् कभी दूसरोंकी वस्तु हरण नहीं करते तथा जो लोग अतिथिप्रिय हैं, वेही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो वेदान्तिक और व्रतकर्त्ता हैं, तथा सम्पत्तिसम्पन्न गृहमें भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके जीवनका समय व्यतीत करते हैं, वेही श्राद्धके समय निमन्त्रणके योग्य हैं। जो ब्राह्मण तीनों कालमें गायत्रीका जप करते और भिक्षावृत्ति करके भी क्रियावान हैं, वेही निमन्त्रणके योग्य हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण पहले दरिद्र रहके फिर समृद्धिमान हो, जो अहिंसक और अविचलादि दोषोंसे रहित हो, वही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ! हे राजन्! जो ब्राह्मण अव्रती, धूर्त्त, अपहारक, प्राणिविक्रयी और वणिकवृत्तिसे युक्त होके भी देवताओंको दान करके पश्चात् सोमपान करता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य है। हे राजन्! पहले दारुण कर्म्मोंसे धनोपार्ज्जन करके पीछे सर्व्वातिथि होता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य है। वेद बेंचके जो धन प्राप्त होता है, जो धन स्त्रियोंके द्वारा उपार्ज्जित हुआ करता है और दीन बचन तथा मिथ्या शपथ आदिके सहारे जो धन संग्रह किया जाता है, वह पितरोंको अदेय है,

हे भरतर्षभ! श्राद्धकी समाप्ति होनेपर जो ब्राह्मण "अस्तुस्वधा" इत्यादि बचन नहीं कहते, उन्हें गोशपथ पापके समान अधर्म्म हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! अमावस्या, ब्राह्मण, दही, घृत और जङ्गली हरिनका मांस जब प्राप्त हो, वही श्राद्धका समय है। श्राद्धकी समाप्तिके समय प्रदाताके "स्वधोच्यत" बचन कहने पर ब्राह्मण यदि "अस्तुस्वधा" कहे, तो वह बचन पितरोंको प्रीतिकर होता है। चत्रियको श्राद्ध समाप्त होनेके समय "पितृगण प्रसन्न होवें" ऐसा बचन कहना होगा। हे भारत! वैश्यका श्राद्धकार्य्य समाप्त होनेके समय "अक्षय्य" उच्चारण और शूद्रको श्राद्ध समाप्त होनेके समय "स्वस्ति" शब्दका प्रयोग करना चाहिये। ब्राह्मणके देवकार्य्यमें ओंकारयुक्त पुण्याह-वाचन विहित है, चत्रियोंके पक्षमें ओंकार रहित पुण्याहवाचन करना चाहिये और वैश्यके देव कार्य्यमें केवल "देवतावृन्द प्रसन्न होवें"—इतना ही कहना योग्य है। कर्म्मोंके आनुपूर्व्वी क्रमसे भी विधिपूर्व्वक जो कार्य्य करना होता है, उसे सुनो। हे भारत! ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्यके विषयमें ऊपर कही हुई सब क्रिया सन्त्रोक्त कहके निर्द्दिष्ट हैं। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंकी रसना मुञ्जमयी, चत्रियोंकी रसना मौर्व्वी और वैश्योंकी रसना वल्वज तृणमयी कही जाती है, यही धर्म्म है। अब दाता और प्रतिग्रहीताके धर्म्माधर्म्म सुनो।

एक कार्षापणके निमित्त मिथ्यावादी ब्राह्मणको जितने परिमाणसे पातक दैहिक अधर्म्म होता है, चत्रियको उस विषयमें चौगुना और वैश्यको अठगुणा हुआ करता है। ब्राह्मणको उचित है, कि विप्रके द्वारा पहले निमन्त्रित होकर दूसरेके यहां भोजन न करे, यदि करे, जो पहले निमन्त्रण देनेवालेके निकट वह निकृष्ट होता है, और पशुहिंसासे जो पाप हुआ करता है, उसे भी वही पाप लगता है। चत्रिय भी यदि वैश्यसे निमन्त्रित होके दूसरेके यहां भोजन करे, तो उसके समीप निन्दित होके पशुहिंसाके पापका अर्द्ध-भाग पाता है। हे राजन्। ब्राह्मण आदिके देव अथवा पितृकार्य्यमें जो ब्राह्मण बिना स्नान किये भोजन करता है, उसे मिथ्या बचन और गोवध-जनित अधर्म्म हुआ करता है। हे महाराज! जो ब्राह्मण जन्म मृत्यु आदिके अशौचसे युक्त

होकर दूसरेके देव और पितृकार्य्यमें जानके अथवा लोभ वशसे भोजन करता है, उसे गोवध और मिथ्याभाषण जनित अधर्म्म हुआ करता है। हे भारत! जो पुरुष तीर्थ यात्रा आदिके मिषमें जीविकार्थी होकर अर्थ लाभकी इच्छा करता अथवा कार्य्यके लिये दाताके निकट धन मांगता है, हे राजेन्द्र। उसे भी गोहत्या और मिथ्या भाषण जनित अधर्म्म होता है। जो पुरुष वेदाध्ययन, व्रताचरण और चरित्र संशो-धन नहीं करता, उसे यदि ब्राह्मण आदि तीनोंवर्ण मन्त्रोचारण पूर्व्वक परिवेशन करें तो उन्हें भी गोवध और मिथ्या वचन जनित अधर्म्म हुआ करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पित्र और देवकार्य्यमें जो कुछ दान किया जाता है, वह दानकी वस्तु कैसे पुरुषोंको दान करनेसे महत् फल हुआ करता है? मैं इसे ही जाननेकी अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर। जैसे कृषक लोग उत्तम वृष्टिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही जिन लोगोंकी स्त्रियें भोजन पात्रके शेष बचे हुए अन्नके सहित थालीमें स्थित परिशिष्ट अन्नकी प्रतीक्षा किया करती हैं, उन लोगोंको भोजन करावे। हे महाराज! जो लोग चरित-निरत कृश और कृश वृत्तिवाले हैं, और जिनके निकट अतिथि गमन किया करते हैं, उन्हें दान कर-नेसे महत् फल होता है। हे राजन्! चरित्र ही जिनका उपजीव्य है, चरित्र ही जिनका पुत्र आदि परिवारवर्ग है, चरित्र ही जिनका इस और परलोक गमनका अवलम्ब है, जो लोग द्रव्यका प्रयोजन होने पर ही अर्थी बनते हैं, केवल धन संग्रहके लिये नहीं जांचते, उन्हें दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! जो तस्कर अथवा शत्रुसे भयार्त्त होके व्याकुल होके पहले भोजन करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महा फल हुआ करता है। निष्पाप ब्राह्मण दरिद्रतावशसे हाथमें धन लिये हो और कोई भूखा ब्राह्मण उससे मांगे, तो उसे दान करनेसे महाफल होता है। जो ब्राह्मण देशविप्लवके समय स्त्री आदि सर्व्वस्व हरे जानेपर धनके लिये सम्मुख आवे, तो उसे दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। जो लोग तपस्वी और तपसे निष्ठा-वान् हैं, जो पुरुष उनके निमित्त भैक्षचर्य्य किया करते हैं, तथा जो याचक होके किञ्चित भीख मांगते हैं, उन्हें दान देनेसे महाफल होता है। जो ब्राह्मण व्रतनिष्ठ नियमस्थ और श्रुतिसम्मत होकर व्रतादि समाप्तिके निमित्त धनकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। प्रभुविष्णुगणने जिनका सर्व्वस्व हरण किया है, जो लोग निर्दोष हैं तथा जो किसी प्रकारसे पेट भरनेके लिये भोजनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें दान कर-नेसे महत् फल होता है। जो लोग पापण्ड-मर्य्यादासे युक्त धर्म्मसे बहुत दूर निवास किया करते हैं, जो दुर्ब्बल और धनहीन हैं, उन्हें दान करनेसे महाफल होता है। हे भरतश्रेष्ठ! दान विषयमें यह महाफलकी विधि तुमने सुनी, अब जिसके द्वारा लोग नरक और स्वर्ग गमन करते हैं, उसे सुनो।

हे युधिष्ठिर! गुरुके लिये अथवा अभय-दानके निमित्त, इन दो प्रकारके प्रयोजनोंके अतिरिक्त जो लोग मिथ्या कहते हैं, वे नरक-गामी होते हैं। जो पराया स्त्री हरता है, अथवा परस्त्री गमन करता है, वा परनारी हर-नेमें सहायता वा प्रस्ताव करता है, वह नरक-गामी होता है। जो परस्वापहारी अर्थात् परस्व नाश करता है, वा दूसरेके दोषोंकी सूचना करता है, वह नरकमें पड़ता है। हे भारत! जो मनुष्य पानीयशाला सभा सङ्क्रम अर्थात् सेतु और गृह भेद करते हैं; जो मनुष्य अनाथ, दासी, कन्या, डरी हुई और

दुःखिनी स्त्रीको ठगते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं। हे भारत! जो लोग वृत्तिच्छेद, दारच्छेद, मित्रच्छेद करते और आशा तोड़ते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। जो दूसरेके निकट राजाकी चुगली करते हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंकी मर्य्यादा तोड़ते हैं, परवृत्तिको उपजीव्य किया करते और मित्रोंके निकट अकृतज्ञ हुआ करते हैं; जो लोग वेदविरोधी और पाखण्डी हैं, और जो साधुओंकी निन्दा करते तथा धर्मसङ्केतकी भी निन्दा किया करते हैं, जो मार्गसे पतित हैं, वे सभी नरकमें गमन किया करते हैं। जो लोग सबके विरोधी विपयोंका व्यवहार करते, जो परोचाररहित हैं, तथा जो प्राणिहिंसामें प्रवृत्त रहते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। जो लोग आशावान, कृतनिर्द्देष, वेतनयुक्त और परिश्रम किये हुए पुरुषोंको भेदित करके स्वामीके समीपसे दूर कर देते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं, जो पत्नी, अग्नि, सेवक और अतिथियोंको परित्याग करते हैं, तथा जिन लोगोंमें पितृ पूजा और देवार्चना नष्ट हुई है, वे भी नरकमें जाते हैं। जो वेदोंको बेंचते हैं वेदोंके दोष वर्णन करते हैं और जो वेद लेखक हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। जो मनुष्य चारों आश्रमोंसे बाहर होके वेद विरुद्ध अकर्म्मके सहारे जीवन बिताते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। हे राजन्! जो लोग केश, विष और क्षीर बेचते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, गऊ और कन्यागणके कार्य्य विषयमें जो विघ्नकारी होता है, वह नरकमें गमन करता है। हे धर्म्मराज! जो लोग शस्त्र बेंचते और बनाते हैं, तथा शल्य और धनुषको बनाते तथा बेचते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो शिला शङ्कु अथवा गढ़के सहारे मार्गरोकता है, वह नरकगामी होता है। हे भरतश्रेष्ठ! जो उपाध्याय, सेवक, भक्त और निरपराधिनी-स्त्रीको परित्याग करता है, वह नरकगामी हुआ करता है, जो अप्राप्त दम्यावस्थामें पशुओंकी नाक छेदता है और अण्डकोशको मर्द्दन करके उनके बलवीर्य्यको नष्ट करता है, वह भी नरकगामी होता है। जो राजा प्रजाकी रक्षा न करके छठवां भाग कर लेता है और समर्थ होके दान नहीं करता, वह भी नरकगामी हुआ करता है। जो कृतकार्य्य होकर क्षमाशील, दान्त, बुद्धिमान और बहुत समयके सहवासी मनुष्यको परित्याग करता है, वह भी नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य बालक, बूढ़े और सेवकोंको अन्न न देकर स्वयं अगाड़ी भोजन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग नरकमें जाते हैं, उनका विषय कहा गया; अब जो मनुष्य स्वर्गलोकमें गमन करते हैं, उनका विषय कहता हूं।

हे भारत! देव आदि समस्त कार्य्योंमें ब्राह्मणोंका अतिक्रम करनेसे पुत्र, पशु प्रभृति विनष्ट होते हैं, इसलिये जो ब्राह्मणातिक्रम नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य दान, तपस्या और सत्यके सहारे धर्म्मपूर्व्वक कार्य्य करते हैं, वे स्वर्गगामी हुआ करते हैं। जो मनुष्य गुरुसेवा और तपस्यासे विद्या उपार्ज्जन करके प्रतिग्रहसे निवृत्त रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जिसके द्वारा लोग भय, पाप, सङ्कट, दरिद्रता और व्याधिसे मुक्त होते हैं, वे पुरुष भी स्वर्गगामी होते हैं। क्षमावान, धीर, सब कार्य्योंमें उद्यत रहनेवाले और मङ्गलाचारयुक्त पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष मधु, मांस और परस्त्री गमनसे निवृत्त रहते तथा मद्य पान करनेमें प्रवृत्त नहीं होते, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन करते हैं। हे भारत! जो सब आश्रमोंको पालन करनेवाले कुल, देश तथा नगरोंके रक्षाकर्त्ता हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग वस्त्र और आभूषण दान करते, अन्न जल वितरण करते और कुटुम्बका

प्रतिपालन करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सर्व्वहिंसासे निवृत्त होकर सब कुछ सहते हैं और सबके अवलम्ब हैं, वे भी स्वर्गमें गमन करते हैं। जो सब मनुष्य जितेन्द्रिय होकर मातापिताकी सेवा करते हैं और भाइयोंके विषयमें स्नेहवान रहते हैं, वेभी स्वर्गमें गमन करते हैं।

हे भारत! जो मनुष्य बलवान, यौवनसम्पन्न, आढ्य, जितेन्द्रिय और वीर होते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जो अपराधी पुरुषके ऊपर भी स्नेहयुक्त, कोमल स्वभाव और मृदुवत्सल होते हैं, तथा आराधनासे दूसरोंको सुखी करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सहस्र पुरुषोंको परिवेशन करते तथा उनका त्राण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग सुवर्ण और गऊ दान करते हैं, तथा यान और वाहन प्रदान किया करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो लोग वैवाहिक वस्तु वस्त्र आभरण आदि तथा दास दासी प्रभृति दान करते हैं, वे भी स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग विहार स्थान, आयस, बगीचा, कूप आराम, सभा, पानीयशाला और देव आदि निर्म्माण करते हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। हे भारत! जो मनुष्य निवेशनयुक्त गृह और वासगृह दान तथा प्रार्थित विषय प्रदान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो पुरुष रस, बीज और धान्य आदि स्वयं उत्पन्न करके दान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष सत्कुलमें उत्पन्न होकर बहु पुत्रसे युक्त और शतायु होकर दयावान तथा क्रोधजयी होते हैं, वे स्वर्गमें गमन करते हैं। हे भारत! परलोकके निमित्त सब ऋषियोंके द्वारा देव वा पितृ कार्य्यमें जो दानधर्म वर्णित हुआथा, उसेही मैंने कहा है।

२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित हुई है? इसे आप मेरे निकट यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! पहले समयमें व्यासदेवको आमन्त्रण करके मैंने जो पूछा था, इस समय वह विषय तुमसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

मैंने व्यासदेवसे पूछा, हे मुनि! आप वसिष्ठके प्रपौत्र हैं, इसलिये यथार्थ विषय वर्णन करिये,—कि हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित होती है? हे राजन्! पराशर पुत्र व्यासदेव मेरा प्रश्न सुनके धर्म्म विषयमें निपुणभाव और निःसंशय रूपसे उत्तम वचन कहने लगे। जो मनुष्य गुणशाली ब्राह्मणको भिक्षा देनेके लिये स्वयं आह्वान करके फिर "नहीं" कहके लौटा देता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। हे भारत! जो दुर्बुद्धि वाला पुरुष षड़ङ्ग सहित वेद पढ़नेवाले मध्यस्थ ब्राह्मणकी वृत्ति हरता है, उसे ब्रह्मघाती जानना चाहिये, जो मनुष्य समुचार्य्यमाण श्रुति अथवा मुनियोंके द्वारा पूर्ण रीतिसे बने हुए शास्त्रोंको अनभिज्ञ लोगोंके निमित्त दूषित करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानना होगा। जो पुरुष रूपवान नहीं कन्या, सदृश वरको नहीं दान करता, उसे ब्रह्मघाती जानना चाहिये। जो अधर्म्ममें रत रहनेवाला मूढ़ मनुष्य द्विजातियोंको निरर्थक मर्म्मान्तिक पीड़ा प्रदान करता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। जो पुरुष नेत्रहीन जड़ और पंगुओंका सर्व्वस्व धन हरण करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानो।

२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ भरतर्षभ! तीर्थ दर्शन, तीर्थ स्नान और तीर्थ माहात्म्य

सुनना अत्यन्त कल्याणकारी है, इसलिये मैं उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु भरतर्षभ। पृथिवीपर जो सब तीर्थ पवित्र हों, वह आप मेरे समीप वर्णन करिये, मैं सदासे उसके सुननेका अभिलाषी हूं।

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी! इस तीर्थ प्रसङ्गको अङ्गिरा मुनिने कहा है, उसे सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा तथा तुम्हें उत्तम धर्म्म प्राप्त होगा। शंसितव्रती गोतमने तपोवनमें स्थित, धीर विप्र महामुनि अङ्गिराके निकट जाके प्रश्न किया,—हे भगवान् महामुनि! मुझे तीर्थ विषयक धर्म्ममें कुछ सन्देह है, इसलिये उसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये। हे महाप्राज्ञ मुनिश्रेष्ठ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे परलोकमें क्या फल मिलता है, आप मुझसे वही कहिये।

अङ्गिरा बोले, सप्ताह भर निराहार रहके चन्द्रभागा और तरङ्गमालायुक्त वितस्ता नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य मुनियोंकी भांति पवित्र होता है। काश्मीर राज्यसे जो नदियें महानद सिन्धुमें गिरती हैं, उनमें जाके स्नान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। पुष्कर, प्रभास, नैमिष, सागरोदक देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दुमें स्नान करनेसे पुरुष विमानपर चढ़के अप्सराओंसे स्तुत और विबोधित होता है। हिरण्य बिन्दुमें स्नान करके प्रयत होकर उसे प्रणाम करने और कुशेशय नदमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। गन्धमादनके निकट इन्द्रतोया और कुरङ्ग देशकी करतोया नदीमें त्रिरात्र उपवास करके प्रयत और पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त्त, बिल्वक नीलपर्व्वत और कनखलमें स्नान करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सुरलोकमें गमन करता है। ब्रह्मचारी, जितक्रोध, सत्यसन्ध और अहिंसक मनुष्य जल ह्रदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। जिस स्थानमें भागीरथी गङ्गा उत्तर दिशामें गिरती हैं, जो मनुष्य निराहार रहके एक महीनेतक उस महेश्वरके स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, तीनों स्थानोंमें अभिषिक्त होता है, वह सब देवताओंका दर्शन करता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्गमें तर्पण करके जो मनुष्य फिर जन्म ग्रहण करते हैं, सुधा भोजन करनेमें समर्थ होते हैं। जो लोग अग्निहोत्र परायण, पवित्र और एक महीनेतक निराहारी होके महाश्रममें अभिषिक्त होते हैं, वे एक महीनेके बीच सिद्धि लाभ कर सकते हैं। जो पुरुष त्रिरात्र उपवास करके अलोलुप होकर महाह्रद भृगुतुङ्गमें स्नान करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। कन्याकूप और बलाकामें स्नान करनेसे देवताओंके बीच कीर्त्तिमान होकर मनुष्य यशोराशिसे विभूषित होता है। देविका और सुन्दरिका ह्रदमें अश्विनी नक्षत्रमें स्नान करनेसे मनुष्य परलोकमें रूप और तेजोयुक्त हुआ करता है। एक पक्षतक निराहार रहके महागङ्गा और कृत्तिकाङ्गारकमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर स्वर्गमें जाते हैं वैमानिक तथा किङ्किणिकाश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके दिव्य निवासमें कामचारी होकर वास करता है। कालिकाश्रममें जाके बिपासा नदीमें त्रिरात्र स्नान करनेसे ब्रह्मचारी और जितक्रोध होकर मनुष्य संसारसे विमुक्त होता है। जो पुरुष कृत्तिकाश्रममें स्नान करके पितृ तर्पण करता है, वह महादेवको सन्तुष्ट करके निर्म्मल होकर स्वर्गमें गमन किया करता है। त्रिरात्र उपवास करके पवित्र होकर महापुरमें स्नान करनेसे मनुष्य पाप रहित और कृतोदक होकर देव लोक पाता है। शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्म्म पदमें जो मनुष्य जल गिरनेके समय स्नान करते हैं, वे अप्सराओंसे सेवित होते हैं। चित्रकूट, जनस्थान और मन्दाकिनीके जलमें

निराहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्य राजल-क्ष्मीके द्वारा निषेवित होता है। श्यामाके आश्र-ममें आगमन करके निराहारी होकर एक पक्ष वहां निवास करके जो पुरुष अभिषिक्त होता है, वह अन्तर्द्धानका फल अर्थात् गन्ध-र्व्वादि भोगोंको भोगता है। कौशिकी नदीमें जाके वायुभक्षी और अलोलुप होकर त्रिरात्र उपवास करनेसे गन्धर्व्व नगरमें वास होता है। एक महीनेतक निराहार रहके रम्य और गन्धतारकमें स्नान करनेसे मनुष्य अन्तर्द्धानका फल पाता और इक्कीस रात्रिमें स्वर्ग लोकमें जा सकता है। जो पुरुष मतङ्गवापीमें एक रात स्नान करता है, वह सिद्ध होकर सहजमें ही सनातन आश्रय लोक पाता है। जितेन्द्रिय पुरुष नैमिष और स्वर्ग तीर्थमें जलस्पर्श करके एक महीनेतक स्नान करनेसे पुरुषमेधका फल पानेमें समर्थ होता है। गङ्गाह्रद और उत्पलाव-नमें एक महीनेतक स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गंगा यमुनाके तीर्थमें और कालञ्जर पर्व्वतपर एक महीनेतक स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल प्राप्त होता है। षष्ठि ह्रदमें स्नान करना अन्नदानसे भी श्रेष्ठ है।

हे भरतश्रेष्ठ! माघके महीनेमें प्रयागमें तीन करोड़ दस हजार तीर्थ इकट्ठे होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! माघमासमें प्रयागमें सदा संशि-तव्रत होकर स्नान करनेसे मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग लोक पाता है। मरुद्गण और पितृगणके आश्रम तथा वैवस्वत तीर्थसे पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थ स्वरूप होता है। ब्रह्म सरोवर तथा भागीरथीमें जाकर निराहारी होकर एक महीनेतक स्नान करनेसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है। उत्पातक और अष्टावक्र तीर्थमें बारह दिन अनाहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गयाके अन्तर्गत अश्मपृष्ठमें स्नान करनेसे पहली ब्रह्महत्या निरविन्द पर्व्वत एक दूसरी ब्रह्महत्या और क्रौञ्चपदीमें स्नान करनेसे मनुष्य तीसरी ब्रह्महत्यासे भी छूट जाता है। कलविंगमें स्नान करनेसे भूरिवारि विदित हो सकती है। अग्निपुरमें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निकन्यापुरीमें निवास करता है। करवीरपुर और विशाला नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य नन्दनवनमें अप्सराओंसे सेवित होता है। कार्त्तिकी पूर्णमासीको समाहित होकर उर्व्वशीतीर्थमें जाके लौहित्य नदमें विधिपूर्व्वक स्नान करनेसे मनुष्य पुण्डरीक फल पा सकता है। बारह दिन निराहार रहके रामह्रद और विपाशा नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है। मनुष्य एक महीनेतक निरा-हारी रहके शुद्धचित्तसे महाह्रदमें स्नान करे, तो यमदग्निकी गति पानेमें समर्थ होवे। सत्य-सन्ध अहिंसक मनुष्य विन्ध्या-तीर्थमें आत्माको सन्तप्त करके विनयके सहित तपस्या अवलम्बन करनेसे एक महीनेमें सिद्धि लाभ कर सकता है। नर्म्मदा और सुपारकोदकमें एक पक्षतक निराहारी रहके स्नान करनेसे मनुष्य राजपुत्र होता है। जम्बूमार्गमें तीन महीनेतक संयत और उत्तम रीतिसे समाहित होकर रहनेसे मनुष्य एक दिन रातमें सिद्धिलाभ करता है। मनुष्य शाकभक्षी और चीरवासा होकर कोका-मुखमें स्नान करके चाण्डालिकाश्रममें जानेसे कुमारी संज्ञक दश तीर्थोंको पाता है, वह पुरुष कदापि यमपुरीमें नहीं जाता। कन्या ह्रदमें वास करनेवाले देवलोकमें जाते हैं। हे महाराज! प्रभास तीर्थमें अमावस्या तिथिको एक रात्रि समाहित चित्तसे निवास करके जो लोग सिद्धि लाभ करते हैं, वे अमर होते हैं। आर्ष्टिषेणके आश्रम, पिङ्गातक और पिङ्गार आश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है। कुल्या तीर्थमें स्नान कर तीनरात्र उपवास करके अघमर्षण मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। पिण्डा-

स्कर्मे स्नान दानके एक रात उपवास करनेसे मनुष्य पवित्र होकर रात्रि बीतनेपर अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। धर्मारण्यमें शोभित ब्रह्मसरोवरमें जाके स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होके पुण्डरीक फल पाता है। मेनाक पर्वतपर स्नान करके सन्ध्या उपासना करनेसे मनुष्य एक महीनेमें कामको जीतकर सर्व्वमेध यज्ञका फल पाता है। भ्रूणहत्या करनेवाला मनुष्य एक सौ योजनसे कालोदक नन्दिकुण्ड और उत्तर मानसमें जानेसे उक्त पापसे मुक्त होता है। नन्दीश्वरको मूर्त्तिका दर्शन करनेसे पापसे छुटकारा मिलता है। मनुष्य स्वर्गमार्गमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें गमन करता है। महादेवका श्वशुर हिमवान् नाम विख्यात पर्व्वत सब रत्नोंकी खान तथा सिद्ध चारणोंसे निषेवित है, उस स्थानमें अनशन व्रत अवलम्बन करके जो वेदान्तपारदर्शी ब्राह्मण जीवनको अनित्य समझकर विधिपूर्व्वक देवताओं और मुनियोंको पूजा तथा उन्हें नमस्कार करके शरीर छोड़ते हैं, वे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन करते हैं और अन्तमें सनातन ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो पुरुष काम, क्रोध और लोभको जीतके तीर्थमें वास करता है, तीर्थगमन निबन्धनसे उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। जो सब तीर्थ अगम्य, दुर्गम और विषम हैं, सर्व्वतीर्थोंकी समीक्षाके हेतु मनसे सहारे उन तीर्थोंमें गमन करे, यही मध्य, पवित्र और यही उत्तम स्वर्गजनक है; यह देवताओंका रहस्य है, इसलिये अश्राव्य तथा अत्यन्त पावन है। यह द्विजातियोंको दान करे, आत्महितकर साधु सुहृद और अनुयायी शिष्योंके कानमें इसका जप करे। महातपस्वी अङ्गिरा मुनिने इसे गौतमको दान किया था, अङ्गिरा धीमान् कश्यपके द्वारा पूर्णरीतिसे अनुज्ञात हुए थे; यह महर्षियोंका जप्य है, समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच उत्तम है; मनुष्य उठकर नित्य इसे जपनेसे पापरहित होके स्वर्गलोक पाते हैं। जो लोग अंगिरासम्मत इस रहस्यको सुनते हैं, वे उत्तम कुलमें जन्म लेकर निज जातिस्मर हुआ करते हैं।

२५ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमें वृहस्पति क्षमामें ब्रह्मा, पराक्रममें इन्द्र और तेजमें सूर्य्यके समान अत्यन्त तेजस्वी भीष्म जब युद्धक्षेत्रमें अर्ज्जुनके द्वारा घायल होकर शरशय्या पर शयन करते थे, जिस समय युधिष्ठिर भाइयों तथा अन्य पुरुषोंके सहित उनसे धर्म्म विषय पूछ रहे थे, उस समयमें उस कालाकांक्षी भरत श्रेष्ठको देखनेकी इच्छा करके महर्षि अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, गौतम, अगस्त्य, सुयतात्मवान्, सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, सम्वर्त्त, प्रमति, दम, वृहस्पति, उशना, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्व्वासा, जमदग्नि, मारकण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रितस्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्व्वत, सुधन्वा, एकत, द्वित, नितम्भ, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण जामदग्न्य राम और कच आदि महात्मा महर्षि लोग भीष्मको देखनेके लिये वहां पर उपस्थित हुए। भाइयोंके सहित युधिष्ठिरने उन आये हुए महानुभाव महर्षियोंको विधिपूर्व्वक पूजा की। महर्षि लोग पूजित होकर सुखसे बैठके भीष्माश्रित उत्तम मधुर सर्व्वेन्द्रिय मनोहर कथा कहने लगे। भीष्मने उन भावितात्मा ऋषियोंका बचन सुनकर परम सन्तुष्ट होकर अपनेको स्वर्गमें पहुंचा हुआ समझा।

अनन्तर वे महर्षिवृन्द भीष्म और पाण्डवोंको आमन्त्रण करके सबके सम्मुखमें ही अन्तर्द्धान होगये। महाभाग महर्षियोंके अन्तर्हित होनेपर भी पाण्डवगण बारम्बार उनको

स्तुति तथा प्रणति करने लगी । अनन्तर वे सब प्रसन्न होकर कुरुसत्तम गंगानन्दनके निकट इस प्रकार उपस्थित हुए, जैसे मन्त्रकोविद ब्राह्मण उदयशील सूर्य्यके सम्मुख उपस्थित होते हैं। पाण्डव लोग ऋषियोंके प्रभावसे सब दिशाओंको प्रकाशमान देखके परम विस्मित हुए। उन लोगोंने ऋषियोंके योग ऐश्वर्य्य अर्थात् आकाश गमन और अन्तर्द्धान आदि महासिद्धि-भावके विषयकी चिन्ता करके भीष्मके सग उनके प्रभावकी कथाका प्रस्ताव किया। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कथा समाप्त होनेपर धर्म्मनन्दन पाण्डव युधिष्ठिरने भीष्मके दोनों चरणोंको मस्तकसे स्पर्श करके धर्म्मयुक्त प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कौन देश, जनपद, आश्रम, पर्व्वत और नदियें पुण्यप्रभा-वसे प्रकृष्ट तथा जानने योग्य हैं ?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग शिलोञ्छवृत्ति और सिद्धके सम्वा-दयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। कोई श्रेष्ठ पुरुष इस शैल भूषित पृथिवीकी वारम्वार परिक्रमा करके एक उत्तम शिलवृत्ति गृहस्थके गृहमें उपस्थित हुआ। वह सम्पूर्ण सब भाग नाम ऋषिने वहां उपस्थित होते ही उससे विधिपूर्व्वक पूजित होकर एक रात्रि उस स्थानमें वास किया। शिलवृत्ति दूसरे दिन भोरके समय कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्तकर पवित्र होकर उस कृतकृत्य सिद्ध अतिथिके निकट उपस्थित हुआ। वे दोनों महात्मा सुखसे एकत्र बैठके वेद उपनिषत सम्बन्धीय कथा कहने लगे। कथा शेष होनेपर बुद्धिमान् शिल-वृत्ति यत्नपूर्व्वक सिद्धको आमन्त्रण करके यही [illegible], कि तुम मुझसे पूछ रहे हो।

शिलवृत्ति बोला, कौन कौनसे देश, जन-पद, आश्रम, पर्व्वत और नदियें परम प्रभावसे [illegible] तथा किन्हें विशेष रूपसे जानना [illegible] मुझसे आप वर्णन करिये।

सिद्ध बोला, वेही देश, जनपद, आश्रम और पर्व्वत उत्तम हैं, जिनके बीचसे नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथी गङ्गा गमन करती हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, यज्ञ और दानसे जीवकी जो गति प्राप्त होती है, गंगाको सेवन करनेसे लोग उस ही गतिको पानेमे समर्थ होते हैं। जिन देह-धारियोंका शरीर गंगाजलसे स्पर्श होके नष्ट होता है, उनके उस देहत्यागसे स्वर्गलोक विहित हुआ करता है। हे विप्र! जिन लोगोंके सब कार्य्य गङ्गाजलसे सम्पन्न होते हैं, वे मनुष्य पृथिवीको त्यागके स्वर्गमें निवास करते हैं। जो मनुष्य पहली अवस्थामें पापकार्य्य करके पीछे गंगातीरपर वास करते हैं, वे भी उत्तम गति पासकते हैं, पवित्र गंगाजलमें स्नान करके जो लोग प्रसन्नचित्त हुए हैं, उन मनु-ष्योंका जितना पुण्य बढ़ता है, सैकड़ों यज्ञोंसे भी वैसा पुण्य लाभ नहीं होता। मनुष्यकी हड्डी जितने समयतक गंगाजलमें स्थित रहती है, उतने सहस्र वर्षतक वह स्वर्गलोकमें वास किया करता है। जैसे सूर्य्य उदय होनेके समय घोर अन्धकारका नाश करके शोभित होता है, गंगाजलमें स्नान करनेवाले मनुष्य भी उस ही प्रकार पापोंको नष्ट करके प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमासे रहित रात्रि और पुष्पहीन वृक्षोंकी भांति कल्याणकारी गंगाजलसे रहित दिशा और देश शोभाहीन हुआ करते हैं। धर्म्माचा-ररहित आश्रम और होम रहित यज्ञकी भांति गंगाके बिना जगत् शोभा नहीं पाता। सूर्य्यरहित आकाशमण्डल, पहाड़रहित पृथ्वी तथा वायुहीन आकाशकी भांति सब देश और सब दिशा निःसन्देह प्रभाहीन होती हैं। तीनों लोकके बीच जो सब प्राणी हैं, वे पवित्र गंगा-जलसे तर्पित होकर परम तृप्ति लाभ करते हैं। जो पुरुष सूर्य्य सन्तप्त गंगाजल पीता है, उसे गोबरके भीतरसे बाहर हुए जव [illegible] भक्षण करने तथा [illegible];

फल प्राप्त होता है। जो पुरुष शरीर शुद्ध करनेके लिये सहस्र चान्द्रायण व्रत करता है और जो मनुष्य गंगाजल पीता है नहीं कह सकते, कि वे दोनों समान होते हैं, वा नहीं; यदि कोई पुरुष सहस्र युग पर्य्यन्त एक पदसे निवास करे और दूसरा पुरुष यदि एक महीनेतक गंगाके तीरपर वास करे, तो वे दोनों समान होसकते हैं और नहीं भी होसकते। जो पुरुष दश हजार युगतक अवाक्‌शिरा होकर लटकता रहता है और जो पुरुष गंगाके तटपर वास करता है वह पहले कहे हुए पुरुषसे श्रेष्ठ होता है। हे द्विजोत्तम! जैसे अग्निमें पड़ी हुई रुई भस्म होजाती है, वैसे ही जो पुरुष गंगामें स्नान करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। इस लोकमें दुःखयुक्त चित्त और उपायकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गंगाके समान और कोई भी गति नहीं है। जैसे सर्प तार्च्य दर्शन निबन्धनसे विषरहित होते हैं, वैसेही मनुष्य भी गंगाका दर्शन करते ही पापोंसे छूट जाते हैं। जो लोग प्रतिष्ठारहित होके अधर्म्मको अवलम्बन किया करते हैं, इस लोकमें गंगा ही उन लोगोंके लिये सहारा है, सुख और संरक्षण धर्म्म-स्वरूप है। अनेक प्रकारके प्रकृष्ट पापग्रस्त अधम पुरुष नरकमें पड़ते पड़ते भी यदि गंगाका आश्रय करें, तो गंगा उन्हें परलोकमें भी उत्तीर्ण करती है। हे मतिसत्तम्वर! जो लोग सदा गंगाकी ओर गमन करते हैं, इन्द्रके सहित देवताओं और मुनियोंके द्वारा निश्चय ही वे संविभक्त हुआ करते हैं। हे विप्र! जो सब विनयाचार और कल्याणरहित अधम पुरुष भी गंगाके निकट आश्रित हुआ करते हैं, वे शिवस्वरूप हैं। जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंके लिये सुधा है, मनुष्योंके लिये गंगाजल भी वैसे ही है। जैसे भूखे बालक माताकी उपासना करते हैं; इस लोकमें कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उस ही भांति गंगाकी आराधना किया करते हैं। जैसे स्वायम्भुव पद सबसे श्रेष्ठ कहा गया है, वैसे ही इस लोकमें स्नातक लोगोंके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा है सबसे उत्तम करके वर्णित हुआ करती है। जैसे उपजीवी लोगोंके लिये गऊ और देवताओंके लिये पृथ्वी है, वैसे ही प्राणियोंके पक्षमें गङ्गा है। जैसे देववृन्द सोम-सूर्य्य संस्थ-सत्रादिके सहारे अमृत उपभोग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य गंगाजलको उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं। जान्हवीपुलिनसे उड़ते हुए बालुकाओंसे पूरित शरीरको लोग स्वर्गस्थके समान शोभित समझते हैं। जो लोग गंगाके तीरकी मृत्तिका सिर पर चढ़ाते हैं, वे अन्धकार नाशके निमित्त सूर्य्यकी भांति निर्म्मल रूप लाभ करते हैं। गंगाकी तरंगसे युक्त वायु पुरुषको स्पर्श करते ही उसका पाप हरण किया करती है। विपदमें पड़के जो मनुष्य विनष्ट होते हों, उनकी गंगादर्शन-जनित प्रीति विपदको खण्डन करती है। हंस चक्रवाक और अन्य पक्षियोंके शब्दके सहारे गंगाने गन्धर्वों और पुलिनके द्वारा शिला समूहकी स्पर्द्धा की है। हंस प्रभृति अनेक भांतिके पक्षी-व्यूहसे परिपूरित और गोकुल सम्बाधशालिनी गंगाका दर्शन करनेसे स्वर्ग भी भूल जाता है। गंगातीरमें मनुष्योंको जैसी प्रीति उत्पन्न होती है, सर्व्वकाम फल भोगनेवाले स्वर्गवासी पुरुषोंको भी वैसी प्रीति नहीं होती। वचन, मन और कर्म्मज पापग्रस्त मनुष्य इस लोकमें गंगाका दर्शन करनेसे ही पवित्र होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष गंगाका दर्शन करता, गंगाजल स्पर्श करता तथा उसमें स्नान करता है, वह पहलेके सात और पीछेके सात पुरुषों तथा इसके अतिरिक्त जो सब पितर हैं, उन्हें भी उत्तीर्ण करता है। विशेष रीतिसे गंगामाहात्म्य सुनना, गंगातीरमें जानेकी अभिलाष, गंगाजल पीने, स्पर्श

करके, देखने तथा उसमें स्नान करनेसे मनुष्य पितृकुल और मातृकुल,—दोनोंकाही उद्धार करता है। देखने, स्पर्श करने, पीने और गंगाका नाम लेनेसे भी वह एक सौ पुरुषोंको पवित्र करता है। जो लोग जन्म, जीवन और शास्त्र पाठ सफल करनेकी इच्छा करें, वे गंगामें जाकर पितरों और देवताओंका तर्पण करें। गंगामें गमन करनेसे पुरुष जो फल पाता है, पुत्र, वित्त और कर्म्मसे वह फल नहीं मिलता। जो समर्थ होके भी पुण्यजल-वाली कल्याणदायिनी गंगाका दर्शन नहीं करता, वह जन्मान्ध मृतक और पंगुके समान है। भूत-भविष्यको जाननेवाले महर्षियों और इन्द्र आदि देवताओंसे पूजित गंगाको कौन मनुष्य सेवा न करेगा? वाणप्रस्थ, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी और विद्यावान् पुरुषोंसे अवलम्बित गंगाका कौन मनुष्य आश्रय न करेगा? प्राण निकलनेके समय जो मनुष्य एकाग्र और शिष्ट अन्तःकरण होकर मन ही मन गंगाका ध्यान करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है। इस लोकमें जो मनुष्य शरीर छूटनेतक गंगाकी उपासना करता है, उसे पाप तथा व्याघ्र आदि अथवा राजासे भी भय नहीं होता। आकाशसे पतनमात्र जिस महापवित्र गंगाको महेश्वरने शिर पर धारण किया था, स्वर्गमें सब कोई उसकी ही सेवा किया करते हैं। जिसके तीनों पवित्र मार्गसे त्रिभुवन अलंकृत होरहा है, जो पुरुष उस गंगाजलको सेवन करता है, वह कृतार्थ होता है। जैसे देवताओंमें आदित्य [illegible] चन्द्रमा और मनुष्योंमें राजा श्रेष्ठ है, [illegible] गंगा भी वैसी ही उत्तम है। [illegible] वियोगसे जैसा दुःख होता है, माता, [illegible], और धनके विरहसे वैसा दुःख नहीं [illegible]। गंगाके दर्शनसे जैसी प्रसन्नता होती [illegible] अभिलषित विषय पुत्र और धन [illegible] वैसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती। जैसे पूर्णचन्द्रमाके दर्शनसे मनुष्योंके नेत्र प्रसन्न होते हैं, वैसे ही पृथ्वीगामिनी गंगाका दर्शन करनेसे नेत्र प्रसन्न हुआ करते हैं। जो लोग गंगाहीमें भावना करते, उसहीमें चित्त लगाके तथा उसीमें निष्ठावान् होके भक्तिपूर्वक गंगाके अनुगत होते हैं, वे लोग उसे प्रिय हुआ करते हैं। भूमिचर आकाशचर और स्वर्गवासी अनेक प्रकारके प्राणियोंको गंगामें सदा स्नान करना चाहिये; यह साधुओंका अवश्य कर्त्तव्य कार्य्य है। सब लोकोंमें गंगाकी कीर्त्ति विख्यात है, क्यों कि उन्होंने सगरके भस्मीभूत पुत्रोंको इस लोकसे स्वर्गमें भेजा था। वायुके बहनेसे उत्तम मनोहर अत्यन्त वेगसे उठती हुई तरंगोंसे युक्त होकर गंगामें निर्दोष रूपसे प्रकाशमान मनुष्य सहस्ररश्मिके सदृश होते हैं। पयस्विनी, घृतशालिनी, अत्यन्त उदार, वेगवती, और दुर्व्विग्राह्य गंगामें जाकर जो लोग शरीर परित्याग करते हैं, वे धीर पुरुष देवताओंकी समता लाभ करते हैं। इन्द्रके सहित देवताओं मुनियों और मनुष्योंसे सेवित यशस्विनी, बृहती, विश्वरूपा गंगा अन्धे, जड़, और धनहीन पुरुषोंकी सब कामना पूरी करती है। जो लोग ऊर्जावती अर्थात् अन्न पय्यादिशालिनी, महापुण्य मधुमती अर्थात् कर्म्म फलवती, त्रिपथगामिनी, त्रिलोकपावनी गंगाका आसरा करते हैं, वे स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो मनुष्य भी गंगाके तटपर निवास करते अथवा गङ्गाका दर्शन करते हैं, गंगाके दर्शन और उसके जलका स्पर्श करनेसे महत्त्व पाये हुए देवतावृन्द उसे परम सुख प्रदान करते तथा उसको अभिलषित गति प्रदान किया करते हैं। तारनेमें समर्थ [illegible] जननी, [illegible] [illegible], [illegible] दायिनी, [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible]— [illegible] गंगामें [illegible] किया है, [illegible]

लोक पाते हैं। जिसकी ख्याति अर्थात् पवित्र कीर्त्ति आकाशमण्डल द्युलोक और दिशा विदिशाओंमें सर्वत्र निवास करती है, गंगाजलको सेवन करके मनुष्य कृतकृत्य हुआ करते हैं। गंगाका दर्शन करके जो पुरुष दूसरेको "इदं गंगा" इस वचनसे गंगाको दिखा देते हैं, उनके लिये गंगा ही मुक्तिका हेतु हुआ करती है। जो कार्त्तिकेय और सुवर्णकी गर्भधारिणी है, भोरके समय जिसमें स्नान करनेसे त्रिवर्ग लाभ होता है; जो घृतस्वरूप जलसे युक्त होकर बहती है, वह पाप सम्पर्कसे रहित जगत्के प्राणियोंके लिये प्रियजलवाली गंगा स्वर्गसे उतरी है। हे महाराज! जो मेरु और हिमालय पर्व्वतकी पुत्री, महादेवकी पत्नी और स्वर्ग अथवा पृथ्वीमण्डलकी भूषण रूपी है, पृथिवीमें कल्याणदायिनी, ऐश्वर्य्यशालिनी वह भागीरथी तीनों लोकोंकी पवित्रताका विधान करती है। धर्म्म द्रवमयी रूपसे मधु झरनेवाली घृतधारा अर्थात् तेजप्रवाहयुक्त घृतकी भांति जलमयी महातरङ्गवाली और ब्राह्मणोंसे शोभित गंगा स्वर्गसे महादेवके सिरपर भ्रमित होके हिमालय पर्व्वतसे पृथ्वीपर उतरकर त्रिदिवनिवासी देवताओंकी माता हुई। परमकारणस्वरूपिणी, निर्म्मल, सूक्ष्म रूपवाली, मृत्युमध्यारूपिणी शीघ्रगामिनी जलवहा, यशोदा, विश्वपालन—कर्त्री, सत्ता, सामान्य-स्वरूपिणी और सिद्धगणकी अभिलषित गंगा, स्नान करनेवाले मनुष्योंके लिये स्वर्गमें गमन करनेका पथस्वरूप है। क्षमा गोपन और धारण विषयमें पृथ्वीके समान, तेजमें अग्नि और सूर्य्य सदृश गंगा ब्राह्मण जातिके विषयमें कृपा करके ।नषादों तथा ब्राह्मणोंमें अत्यन्त सम्मत हुई हैं। ऋषियोंमें स्तुतिसे युक्त पवित्र जलमयी विष्णुके चरणसे उत्पन्न जन्हुपुत्रीका इस लोकमें प्रत्यक्ष दर्शन तो दूर रहे, शुद्धचित्तसे यदि मनुष्य मनसे भी गंगाका आसरा करें, तो वे ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जैसे माता सन्तानोंको देखती है, वैसे ही गंगा सब गुणोंसे युक्त लोकोंको सब प्रकारसे नाशमान अवलोकन करती है,—इसीसे ब्रह्मपदकी अभिलाष करनेवाले चित्तजयी पुरुष सदा उसकी उपासना किया करते हैं। सिद्धकाम आत्मवान मनुष्य पुष्टि करनेवाली अमृत दूध, सर्व्वदा अन्नवती विश्वभोज्या शैलजननी शिष्टोंसे अवलम्बित अपरिमित ब्रह्माके मनको हरनेवाली गंगाका आसरा करते हैं। भागीरथी उग्र तपस्यासे ईश्वरके सहित समस्त देवताओंको प्रसन्न करके तब गंगाके सम्मुख जाकर उसे पृथ्वीपर लाये हैं, उनके समीपमें सदाके लिये मनुष्योंको कुछ भय नहीं है। मैंने बुद्धिसे सब प्रकार आलोचना करके तुम्हारे गुणोंका एक ही भाग वर्णन किया है, तुम्हारे गुणोंको वर्णन और परिमाण करनेमें मुझे कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। वरन सुमेरुके पत्थरों और समुद्रके जलकी यत्नपूर्व्वक संख्या होसकती है, परन्तु गंगाजलके गुणोंको वर्णन और परिमाण करनेकी शक्ति नहीं होती। इसलिये मैंने परम श्रद्धाके सहित यह जो जान्हवीके गुणोंका वर्णन किया है, उसे सदा सुनके बचन, मन और कर्म्मके द्वारा अभियुक्त तथा श्रद्धावान होना चाहिये। इन तीनों लोकोंमें यश फैलाकार दुष्प्राप्य महती श्री पाके तुम गंगा-विनिर्म्मित लोकोंमें थोड़े ही समयके बीच विहार करोगे। महानुभावा गंगा स्वधर्म्मयुक्त गुणोंसे तुम्हारी और मेरी बुद्धिको सदा संयुक्त करे, क्यों कि वह भक्तजनवत्सला भक्तिमान् पुरुषोंको सुखयुक्त किया करती है।

भीष्म बोले, द्युतिमान् विद्वान परम बुद्धिमान् सिद्धने शिलवृत्तिको इस ही प्रकार गंगानुगत यथार्थ गुणोंको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करके पृथ्वीपर प्रकाशित किया। शिलवृत्तिने उस समय सिद्धका बचन सुनकर विधिपूर्व्वक गंगाको उपासना करके दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की। है

कौन्तेय! तुम उस ही भांति परम भक्तियुक्त होकर नित्य गंगाके निकट गमन करके परम सिद्धि प्राप्त करोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित भीष्मके कहे हुए भागीरथीका स्तवसंयुक्त इतिहास सुनके परम प्रसन्न हुए। जो मनुष्य गंगाके स्तवयुक्त इस पवित्र इतिहासको सुनता अथवा पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धार्म्मिकप्रवर! आप जैसे प्रज्ञा, शास्त्रज्ञान, चरित्र, सद्वृत्त, विविध गुणों और अवस्था क्रमसे संयुक्त हैं; वैसे ही बुद्धि प्रज्ञा और तपस्या विषयमें भी विशिष्ट हैं, इस लिये मैं आपसे धर्म्मविषय पूछता हूं। हे नरनाथ! हे राजसत्तम! तीनों लोकोंमें क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रके बीच आपके समान ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जिससे धर्म्मजिज्ञासा किया जाय। इसलिये जिस पुरुषके सहारे ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है, आप मेरे निकट उसकी ही आख्या करिये। अत्यन्त महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्रज्ञानसे यदि ब्राह्मणत्वकी इच्छा की जाय, तो वह किस प्रकार प्राप्त हो? हे पितामह! आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे तात! युधिष्ठिर क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके द्वारा ब्राह्मणत्व-प्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है, परन्तु वह ब्राह्मणत्व सब प्राणियोंका अवलम्ब है। हे तात! जीव अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए बार बार जन्म लेकर उसके अनन्तर किसी जन्ममें ब्राह्मण होकर जन्मता है। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें पण्डित लोग मतङ्ग और गदहीके सम्वादयुक्त पुराने इतिहास कहा करते हैं। किसी द्विजातिका पुत्र मतङ्ग नाम उत्तम द्विजात् सब गुणोंसे युक्त और वर्ण-वर्जित होके भी जातकर्म्मादि संस्कार निवन्धनसे तुल्य वर्णा एक पुत्र था। हे शत्रुतापन युधिष्ठिर! उस पुत्रने यज्ञमें ऋत्विक कर्म्म करते हुए पिताकी आज्ञासे शीघ्रगामी गर्दभयुक्त रथपर चढ़के अग्नि लानेके निमित्त प्रस्थान किया। हे महाराज! उसने माताके संग रथ खींचनेवाले अशिक्षित गधेकी नाकमें कोड़ा मारा।

पुत्रवत्सला गदहीने पुत्रकी नाकमें तीव्र घाव देखकर उससे बोली, हे पुत्र! तुम शोक मत करो, तुम्हारे ऊपर चाण्डाल चढ़ा हुआ है, ब्राह्मण दारुण कर्म्म नहीं करते, ब्राह्मण सब प्राणियोंके मित्र हैं, सब भूतोंके शास्ता आचार्य्य क्या कभी प्रहार किया करते हैं? यह पापप्रकृतिवाला बालकपर दया नहीं करता, यह स्वयोनिका समादर करता है, जातिस्वभाव बुद्धिको मार्गान्तरसे आकर्षण किया करता है।

मतङ्ग गधीका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही रथसे उतरकर उससे बोला, हे कल्याणि रासभी! मेरी माता किसके द्वारा दूषित हुई है? तथा तुमने मुझे चाण्डाल किस प्रकार जाना? यह मुझसे शीघ्र कहो। लोकदृष्ट ब्राह्मणत्व जिसके द्वारा विनष्ट होता है, मैं वही चाण्डाल हूं,—तुम्हें यह विषय किस प्रकार मालूम हुआ? हे महाबुद्धिमति! तुम यह विषय विशेष रूपसे यथार्थ कहो।

गर्द्दभी बोली, तुम प्रमत्ता ब्राह्मणीके गर्भसे चाण्डाल नाईके द्वारा उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम चाण्डाल हो, इस ही कारण तुम्हारा ब्राह्मणत्व विनष्ट हुआ है।

भीष्म बोले, मतङ्ग गर्द्दभीका वचन सुनके घरमें लौट आया, पिताने उसे लौटा हुआ देखके कहा मैंने यज्ञसिद्धिके निमित्त तुम्हें गुरुतर कार्य्यमें नियुक्त किया है, तब तुम किस कारणसे लौट आये? क्या तुम्हारा कुशल है?

मतङ्ग बोला, जो पुरुष [illegible]
[illegible]

प्रकार कुशली होसकता है? हे पिता! यह जिसकी माता है, उसे कुशल कहां? हे पिता। यह अमानुषी गर्दभी मुझे ब्राह्मणीग चाण्डालसे उत्पन्न हुआ कहती है, इसलिये मैं अत्यन्त महत् तपस्या करूंगा। उसने पितासे ऐसा कहकर निश्चय करके प्रस्थान किया।

अनन्तर महारण्यमें जाके अत्यन्त महत् तपस्या करने लगा। कालक्रमसे मतंगने उत्तम रीतिसे आचरित तपोबलसे अनायाससे ही ब्राह्मणत्व लाभके निमित्त घोर तपस्यासे युक्त होकर देवताओंको सन्तापित किया। देवराज इन्द्र उसे इस प्रकार तपयुक्त देखके बोले, हे मतंग! तुम मनुष्य भोग परित्याग करके किस निमित्त तपस्या करते हो? अच्छा, मैं तुम्हें वरदान करताहूं, तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मांगो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अप्राप्य मालूम होता है, वह सब कहो, बिलम्ब मत करो।

मतंग बोला, मैंने ब्राह्मणत्वकी कामना करके यह तपस्या आरम्भ की है, वह प्राप्त होनेसेही इस स्थानसे गमन करूंगा, मैं यही वर मांगता हूं।

भीष्म बोले, इन्द्रने उसका वचन सुनके कहा, रे नीचबुद्धिवाले! तू अकृतात्मा पुरुषोंसे अप्राप्य ब्राह्मणत्वकी इच्छा करता है, इसलिये बिनष्ट होगा, इस कारण तू विरत होगा, देरी मत कर। तपस्या सब प्राणियोंके श्रेष्ठत्वको बशीभूत नहीं कर सकती। तू उस श्रेष्ठत्वकी इच्छा करनेसे शीघ्र ही नष्ट होगा। देवता असुर और मनुष्योंके बीच जो परम पवित्र कहके वर्णित हुआ है, चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसे किसी प्रकार नहीं पा सकता।

२७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे अच्युत! शंसितात्मा यतव्रती मतंग इन्द्रका ऐसा बचन सुनके एक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़ा होकर निवास करने लगा। अनन्तर महायशस्वी पाकशासन इन्द्र फिर उससे बोले, हे तात! ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, तुम कोटिशः प्रार्थना करनेपर भी उसे नहीं पाओगे। हे मतंग! तुम परम स्थानकी प्रार्थना करके विनष्ट होगे। हे पुत्र! तुम साहस मत करो, यह तुम्हारे धर्मका पथ नहीं है। रे नीचबुद्धिवाले! तू इस लोकमें ब्राह्मणत्व लाभ करनेमें समर्थ न होगा, अप्राप्य विषयकी प्रार्थना करनेसे थोड़े ही समयमें नष्ट होगा। हे मतङ्ग! तू बार बार मेरे निवारण करने पर भी सब प्रकारसे तपस्याके सहारे परम पद पानेकी इच्छा करता है, परन्तु उस विषयमें कृतकार्य्य न होसकेगा। तिर्य्यक्‌योनिके समस्त जीव यदि मनुष्यत्व प्राप्त करें, तो वे पहले पुक्कस अथवा चाण्डाल होके जन्म ग्रहण करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे मतङ्ग! इस लोकमें पुक्कस अथवा पापयोनिमें जो कोई दीख जन्मता है, वह उस ही योनिमें बहुत समय तक बार बार भ्रमण किया करता है। फिर सहस्र वर्षके अनन्तर शूद्रत्व लाभ करता है। शूद्रयोनिमें भी वह अनेक बार परिभ्रमण करता है, फिर तीस गुण समय बीतने पर वैश्यत्व प्राप्त होता है, वैश्ययोनिमें भी बहुत समयतक उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है। अनन्तर साठगुण समय बीतनेपर क्षत्रिय होकर जन्म लेता है, क्षत्रिय योनिमें भी बहुत समयतक उसे परिभ्रमण करना होता है। अनन्तर साठगुण समय बीतने पर ब्रह्मबन्धुता प्राप्त होती है, ब्रह्मबन्धु होनेपर भी उस ही योनिमें बहुत समयतक घूमना पड़ता है। अनन्तर उससे दो सौगुण समय बीतनेपर शस्त्रजीवित्व लाभ होतो है। शस्त्रजीवी होके भी उस ही योनिमें बहुत समयतक परिभ्रमण करता है। अनन्तर उससे तीन-सौगुण समय बीतनेपर गायत्री मात्र जप करनेवालोंके वंशमें

जन्म होता है, वैसा जन्म पाने पर भी उसे बहुत समयतक उस ही कुलमें बार बार उत्पन्न होना पड़ता है। अनन्तर चार सौ वर्ष बीतने पर श्रोत्रियकुलमें जन्म होता है, श्रोत्रिय अर्थात् वेदाध्ययनशील होकर बहुत समयतक उस ही योनिमें परिभ्रमण करता है।

हे तात! इसलिये इस ही प्रकार काम, द्वेष, शोक, हर्ष, अभिमान और अतिवाद उस द्विजाधममें प्रविष्ट होते हैं; यदि वह उन शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हो, तो सद्गति लाभ कर सकता है और यदि काम द्वेष प्रभृति शत्रुगण उसे जय करें, तो वे ताड़वृक्षकी चोटीके गिरनेकी भांति उसे अत्यन्त नीच योनिमें डाल देते हैं, हे मतंग! मैंने तुमसे जो कहा है, तुम उसकी भली भांति आलोचना करके दूसरे अभीष्ट विषयकी प्रार्थना करो, क्योंकि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है।

२८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, संशितात्मा यतव्रती मतंग देवराजका ऐसा वचन सुनके सहस्र वर्षतक एक पदसे निवास करके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुआ; इन्द्रने फिर उसे देखनेके लिये आगमन करके पुनर्व्वार उससे पूर्व्वोक्त वचन कहा।

मतंग बोला, सहस्र वर्षतक मैंने समाहित तथा ब्रह्मचारी होकर एक पदसे निवास किया; परन्तु किस लिये ब्राह्मणत्व न पाया?

इन्द्र बोले, जिस पुरुषने चाण्डालयोनिमें जन्म लिया है, उसे ब्राह्मणत्व किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त हो सकता, तुम दूसरा वर्ष मांगो, जिससे तुम्हारा यह परिश्रम निष्फल न हो।

देवराजने ऐसा कहा, तब मतंग शोक [illegible] गया [illegible] एक सौ वर्ष [illegible] अंगूठेके सहारे निवास करने [illegible] सुना है, कि यह धर्मात्मा दुर्बल योग अवलम्बन करके धमनिसन्तत और अस्थि-चर्म्म-सार होकर गिर पड़ा। सर्व्वभूतोंके हितमें रत रहनेवाले भगवान् इन्द्र उसे गिरा हुआ देखके दौड़े और वहांपर जाके उसे धारण किया।

इन्द्र बोले, हे मतंग! इस समय तुम्हारे पक्षमें ब्राह्मणत्व अत्यन्त विरुद्धभावसे युक्त दीख पड़ता है, दुर्लभ ब्राह्मणत्व कामादि परिपन्थी गुणोंसे संवृत हो रहा है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे सुखभोग प्राप्त होता है, पूजा न करनेसे दुःख हुआ करता है। ब्राह्मण ही सर्व्वभूतोंको योगक्षेम समर्पण करनेवाले हैं। पितर और देवबृन्द ब्राह्मणोंसेही परितृप्त होते हैं। हे मतंग! ब्राह्मण सब भूतोंमें श्रेष्ठ करके वर्णित हुआ करते हैं, क्योंकि जैसी इच्छा की जाती है, ब्राह्मण ही वह वाञ्छित सिद्धि करते हैं। हे तात! जीव अनेक योनियोंमें प्रवेश करते हुए बार बार जन्म ग्रहण करके इस लोकमें किसी पर्य्यायमें ब्राह्मणत्व लाभ करता है, इसलिये तुम अकृतात्मा पुरुषोंसे दुष्प्राप्य ब्राह्मणत्व लाभकी वासना परित्याग करके अब दूसरा वर मांगो, क्योंकि यह वर तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है।

मतंग बोला, मैं दुःखसे आर्त्त हुआ हूं, मुझे क्यों दुःखित करते हो? मरे हुएको मारते हो। जो पुरुष ब्राह्मणत्व लाभ करके भी मेरे समान तपस्वी पुरुषके विषयमें करुणा नहीं करता, उसने ब्राह्मणत्व पाके भी नहीं पाया है, इसलिये मैं तुम्हारे निमित्त शोक नहीं करता। हे इन्द्र! यदि क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व दुष्प्राप्य हुआ है, तथापि मनुष्य इस अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाके भी सदा [illegible] नहीं करते अर्थात् ब्राह्मणके योग्य शम, दम, तप, [illegible] दया, [illegible], ध्यान, विचार और [illegible] वह सब धर्म्माचरण नहीं करते। [illegible]

सहस्र ब्राह्मणत्व लाभ करके जो पुरुष उसका अनुष्ठान करना नहीं जानता, वह पापियोंसे भी पापी तथा उससे भी अधम है। पहले तो ब्राह्मणत्व ही अत्यन्त दुष्प्राप्य है, प्राप्त होनेपर भी उसका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन है, इस दुःखापह विषयको पाके भी मनुष्य इसका अनुष्ठान् नहीं करते। हे इन्द्र! मैं एकाराम, निर्द्वन्द्व निष्परिग्रह अहिंसा और इन्द्रियदमन अवलम्बन करके भी किस निमित्त ब्राह्मणत्व पानेके योग्य नहीं हूं? हे पुरन्दर! मैं धर्म्मज्ञ होके भी मातृदोषके कारण ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह कैसा पूर्व्व कर्म्म है? हे प्रभु! पुरुषार्थसे दैवको अतिक्रम नहीं किया जा सकता, जिसके निमित्त इस प्रकार यत्नवान होके भी कोई विप्रत्व लाभ नहीं कर सकता है। हे धर्म्मज्ञ! यदि ऐसा ही होवे और मैं तुम्हारा कृपापात्र होऊं, यदि मेरा कुछ सुकृत हो, तो आप मुझे वरदान कर सकते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बलवृत्त-हन्ता इन्द्रने उस समय उससे कहा "वरमांगो" तब मतङ्ग इन्द्रकी आज्ञा पाके यह वचन कहने लगा। मैं कामरूपी पक्षी होकर स्वेच्छापूर्व्वक विहार करूं और मुझे ब्राह्मण क्षत्रियोंके अविरुद्ध पूजा प्राप्त होवे। हे पुरन्दर। हे देव! जिस प्रकार मेरी अक्षय कीर्त्ति हो, आप वैसा ही करिये, मैं प्रणत होके आपको प्रसन्न करता हूं।

इन्द्र बोले, हे तात! तुम छन्दोदेव नामसे विख्यात होकर स्त्रियोंके पूजनीय होगे, और तुम्हारी अतुल कीर्त्ति तीनों लोकोंके बीच व्याप्त होगी। इन्द्र उसे ऐसा वर दान करके अन्तर्द्धान हुए। मतङ्गने भी प्राणत्यागके परम पद पाया। हे भारत! ब्राह्मणत्व अत्यन्त श्रेष्ठपद है, महेन्द्रके वचनानुसार दूसरे वर्णोंके लिये दुष्प्राप्य जानना चाहिये।

२९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर वक्तृवर! आपने ब्राह्मणत्वको अत्यन्त दुष्प्राप्य कहा और यह महत आख्यान मैंने आपके समीप सुना। हे सत्तम। आप ब्राह्मणत्वको दुष्प्राप्य कहते हैं, परन्तु ऐसा सुननेमें आता है, कि पहले, समयमें विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व लाभ किया था और मैंने सुना है, कि वीतहव्य राजाने भी ब्राह्मणत्व लाभ किया है। हे प्रभु गंगानन्दन! इसलिये मैं इस विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं, वे राजसत्तम, वर अथवा तपस्यासे भी परे किस कर्म्मसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए? उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महायशस्वी राजा राजर्षि वीतहव्यने जिस प्रकार लोक सत्कृत दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया था, उसे सुनो हे तात! धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालक महात्मा मनुके शर्य्याति नामक एक पुत्र था। हे महाराज। उस ही वत्सराज शर्य्यातिके वंशमें विजयी हैहय और तालजङ्घ नामक दो राजा हुए थे। हे भरतवंशावतंस राजेन्द्र! हैहयकी दश पत्नियोंसे एक सौ पुत्र हुए, वे सभी शूर, युद्धमें अपराजित, तुल्यरूप, तुल्यप्रभाव, बलवान, युद्धशाली धनुर्व्वेद और वेदमें सर्व्वत्र परिश्रम किये हुए थे। हे महाराज। काशी-राज्यमें भी दिवोदासके पितामह विजयीप्रवर हर्य्यश्व नामक एक राजा था! हे पुरुषश्रेष्ठ! वह वीतहव्यके वंशधरोंके हाथसे गंगा यमुनाके बीच युद्धमें मारा गया, भयसे रहित महारथ हैहयगणने उस राजाको मारके वत्सराजकी रमणीय पुरी प्रवेश किया। हर्य्यश्वके उत्तराधिकारी साक्षात् धर्म्मसदृश देवसङ्काश काशिराज सुदेव उस राज्यपर अभिषिक्त हुआ। वह धर्म्मात्मा काशिराजका पुत्र पृथ्वी--पालन करने लगा वीतहव्यके वंशवालोंने आके उसे भी पराजित किया, वे लोग उसे युद्धमें पराजित करके निज स्थानपर लौट गये। अनन्तर काशिराज सुदे

...का पुत्र दिवोदास उस राज्यपर अभिषिक्त हुआ। महातेजस्वी दिवोदासने हैहयवंशियोंके कर्मको जानके इन्द्रकी आज्ञानुसार वाराणसी पुरी बसाई। वह पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णों तथा अनेक प्रकारकी समृद्ध विपणि और आपणयुक्त गंगाके उत्तरतटके निकट तथा गोमतीके दक्षिण तटपर राजसत्तम दिवोदासके द्वारा इन्द्रकी अमरावतीकी भांति निर्म्मित हुई। हे भारत। पृथ्वीपति राजश्रेष्ठ दिवोदास जब वाराणसीमें वास करने लगे, तब हैहयगणने फिर आके उन्हें आक्रमण किया, महाबलवान महातेजस्वी दिवोदास पुरीसे निकलके हैहयगणके सङ्ग देवासुर सदृश घोर संग्राम करने लगे। हे महाराज। उन्होंने उस युद्धमें दश हजार दिनतक संग्राम करके अनेक वाहनोंके मारे जाने पर स्वयं दीनता अवलम्बन किया। हे महाराज। वह पृथ्वीपति दिवोदास सेना और कोष ... होनेपर पुरी परित्याग करके भाग गये। ... शत्रुदमन। उस समय वह राजा बुद्धि...ष्टियुक्त भरद्वाजके आश्रममें जाकर हाथ जोड़के उनके शरणागत हुआ। बृहस्पतिके ...पुत्र शीलसम्पन्न पुरोधा भरद्वाज राजा ...दाससे बोले, हे महाराज! तुम्हारे आगमनका क्या कारण है, वह सब मेरे निकट कहो। जो तुम्हें प्रिय होगा, मैं वही करूंगा, मुझे इस विषयमें विचार नहीं है। राजा बोला, हे भगवन्! वीतहव्यवंशीय ...के द्वारा मेरा वंश नष्ट हुआ है, अकेला ... निराश होकर आपकी शरणमें आया हूं। हे भगवन्! आप शिष्यस्नेहसे मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन पापकर्म्मियोंने मेरे ... वंशको नाश किया है। प्रतापवान ... भरद्वाज ऋषि उससे बोले, 'भय नहीं ... है।' हे सुदेवनन्दन! तुम्हारा भय ...। हे महाराज! मैं तुम्हारे पुत्रके निमित्त यज्ञ करूंगा, उसके द्वारा तुम सहस्र वीतहव्योंको पराजित करोगे। अनन्तर भरद्वाज ऋषिने उसके लिये पुत्र कामनासे यज्ञ किया। उस यज्ञके प्रभावसे दिवोदासके प्रतर्द्दन नाम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र उत्पन्न होते ही तेरह वर्षीय पुरुषकी भांति वर्द्धित हुआ। हे भारत! उसने जब सब वेद और धनुर्व्वेद पढ़ लिया, तब बुद्धिमान भरद्वाज योगबलसे उसके शरीरमें प्रविष्ट हुए, उन्होंने सार्व्वलौकिक तेजसंग्रह करके प्रतर्द्दनके शरीरमें प्रवेश किया। अनन्तर प्रतर्द्दन कवच और धनुष धारण करके देवर्षियोंसे स्तूयमान तथा वन्दीगणसे वन्दित होकर उदित सूर्य्यकी भांति शोभित हुए। वह बद्धपरिकर होकर रथपर चढ़के अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे; तलवार ढाल और शरासन धारण करके धनुष कंपाते हुए गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। सुदेवपुत्र राजा दिवोदास पुत्रको देखके परम हर्षित हुए और मनहीमन वीतहव्यके पुत्रोंको जले हुए जाना। अनन्तर राजा प्रतर्द्दनको युवराजपदपर स्थापित करके अपनेको कृतकृत्य समझके अभिनन्दन किया। फिर महीपति वीतहव्यका वध करनेके लिये निज पुत्र शत्रुदमन प्रतर्द्दनको भेजा। वह पराक्रमी परपुर विजयी प्रतर्द्दन रथके सहित शीघ्र ही गङ्गाके पार होके वीतहव्यकी पुरीमें जा पहुंचे। वीतहव्यके पुत्रोंने समुन्नत रथका शब्द सुनके पराये रथको पीड़ित करनेमें समर्थ नगराकार रथोंके द्वारा बाहर हुए। वे विचित्र योधी कवचधारी नरपुङ्गवगण नगरसे निकलकर बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतर्द्दनकी ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। हे युधिष्ठिर! जैसे बादल हिमवान पर्व्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे लोग प्रतर्द्दनके ऊपर अनेक प्रकारके शस्त्र बरसाने लगे। महातेजस्वी राजा प्रतर्द्दनने फिर अस्त्रोंसे उनके सब शस्त्रोंको निवारण करके दावानल

सहस्र बाणोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया। हे महाराज। वे लोग सौ हजार भल्लास्त्रके द्वारा सिरश्छिन्न होके तथा रुधिरसे भीगके कटे हुए फूले पलाशवृक्षकी भांति पृथ्वीपर गिर गये, उन समस्त पुत्रोंके मारे जानेपर राजा वीतहव्य नगर छोड़के भागकर भृगुके आश्रममें जा छिपे। हे महाराज! भृगु मुनिने भी उस राजाको अभय दान किया। अनन्तर उनके पश्चात् ही प्रतर्द्दन भी उस आश्रममें आके उप स्थित हुए। प्रतर्द्दन उस आश्रमपर पहुंचके बोले, महानुभाव भृगुके शिष्योंमेंसे कौन कौन इस आश्रममें है? मैं उस मुनिके दर्शनकी अभिलाष करता हूं। उनके समीप मेरी प्रार्थना निवेदन करो। भृगु मुनिने प्रतर्द्दनका आना सुनके उस ही समय आश्रमसे निकलकर उस राजसत्तमका विधिपूर्व्वक सत्कार किया। हे राजेन्द्र! भृगुने उनसे कहा, महाराज। किस प्रयोजनके निमित्त तुम इस स्थानमें आये हो? तब वह अपने आनेका कारण कहने लगे।

राजा प्रतर्द्दन बोले, हे ब्रह्मन्! राजा वीतहव्य इस स्थानमें निवास कर रहे हैं, इस-लिये आप उन्हें परित्याग करिये। हे ब्रह्मन! उनके पुत्रोंके द्वारा मेरा समस्त वंश और काशीपुरीका राज्य तथा रत्नसञ्चय नष्ट हुआ है। इस वीर्य्यदीप्त राजाके एक सौ पुत्र मेरे हाथसे मारे गये हैं, अब इसका वध करके मैं पिताके समीप अऋण होऊंगा।

धार्म्मिकश्रेष्ठ भृगु मुनि कृपायुक्त होकर उनसे बोले, यहांपर कोई क्षत्रिय नहीं है, क्यों कि ये सभी ब्राह्मण हैं,। प्रतर्द्दन धीरे धीरे भृगु मुनिका दोनों चरण छूके प्रसन्न होकर बोले, हे भगवन्। ऐसा होनेपर भी मैं निःसन्देह कृत कृत्य हुआ। क्यों कि यह राजा मेरे पराक्रमके द्वारा स्वजातिसे च्युत हुआ। हे ब्रह्मन्। अब मुझे आज्ञा करिये और मेरे कल्याणकी चिन्ता कीजिये। हे भृगुवंश धुरन्धर। इस राजाको मैंने जातित्याग कराई है। हे महाराज।

राजा प्रतर्द्दन भृगुकी आज्ञा पाके इस प्रकार निज स्थानपर चले गये, जैसे सांप विष उगलके चल देता है। हे राजन। वीतहव्यने भी भृगुके वचन मात्रसे ही ब्रह्मर्षित्व और ब्रह्मवादित्व लाभ किया। उनके घराने में इन्द्रके समान गृत्समद नाम उनका पुत्र था, जो कि इन्द्रके भ्रमसे दैत्योंके द्वारा निगृहीत हुआ था, हे ब्रह्मन! ऋग्वेदमें जिस महात्माकी श्रुति वर्त्त-मान है, वह गृत्समद जिसके समीप रहते थे, वहां ही ब्राह्मणोंसे पूजित होते थे। ब्रह्मचारी श्रीमान् गृत्समद ब्रह्मर्षि हुए थे। गृत्समदका पुत्र सुतेजा भी ब्राह्मण हुआ था। सुतेजाका पुत्र वर्च्चा, वर्च्चाका पुत्र विहव्य, विहव्यका पुत्र वितत्य, वितत्यका पुत्र सत्य, सत्यका पुत्र सन्त, सन्तका पुत्र श्रवा ऋषि, श्रवाका पुत्र तम, तमका पुत्र द्विजसत्तम प्रकाश, प्रकाशका पुत्र जापकश्रेष्ठ वागिन्द्र, वागिन्द्रका पुत्र प्रमति जो कि वेद वेदाङ्ग पारग थे। घृताची अप्सराके गर्भमें प्रमतिके रुरु नामक विप्रर्षि पुत्र उत्पन्न हुआ था। महर्षि रुरुके सुनक नाम विप्रर्षि पुत्र हुआ, जिसका पुत्र शौनक नामसे विख्यात है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ। नरनाथ वीतहव्यने इस ही प्रकार भृगुकी कृपासे विप्रत्व लाभ किया था। हे महाराज! यह तुम्हारे समीप मैंने गृत्समदके वंशका विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया। अब और क्या पूछनेकी इच्छा है?

३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ। इन तीनों लोकोंके बीच कौन कौनसे मनुष्य पूज्य हैं? आप मेरे समीप इसे ही विस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये। आपके वचन सुनके मुझे किसी प्रकार तृप्ति नहीं होता है।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग नारद ऋषि और श्रीकृष्णके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा

करते हैं। ब्राह्मणोंकी पूजाके हेतु नारदको हाथ जोड़े हुए देखकर श्रीकृष्णने पूछा। हे भग वन्! आप किसे नमस्कार करते हैं? हे भग वन्! आप ब्राह्मणोंका बहुमान करते हुए जिन लोगोंका नमस्कार करते हैं? हे धर्म्मवित्तम! यदि यह विषय मेरे सुननेके योग्य हो, तो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं आप वर्णन करिये।

नारद मुनि बोले, हे अरिंदमन गोविन्द! जिनकी पूजा करता हूं, वह कहता हूं, इस लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त और कौन पुरुष यह विषय सुननेके योग्य होगा? जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, पर्य्यन्य, अग्नि, स्थाणु, स्कन्द, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, वाचस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथिवी और सरस्वतीको सदा नमस्कार करते हैं,—हे विभु! मैं उन्ही लोगोंको नमस्कार किया करता हूं। हे प्रभु! जो अनाला आशापरायण मनुष्य अभुक्त रहके देवकार्य्य करते तथा जो सन्तुष्ट और क्षमायुक्त हैं, मैं उन्होंको नमस्कार किया करता हूं, हे यादव! जो लोग क्षमाशील, दान्त और जितेन्द्रिय होकर पूर्णरीति यज्ञ करते, सत्य और धर्म्मकी पूजा करते तथा ब्राह्मणोंको भूमि और गज दान करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो लोग वनके बीच फलमूल भोजन करके तपस्या करते और सञ्चय न करके कर्म्म किया करते हैं, हे यादव! मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं, जो सेवकोंको भरण करनेमें समर्थ हैं सदा अतिथिव्रत और देवता-के शेष तथा हुत अन्न आदि भोजन करते हैं, मैं उन्होंको नमस्कार किया करता हूं। जो सब [illegible] ब्रह्मचारी वेदज्ञान लाभ करके [illegible] होते और जो लोग सदा याजन और [illegible] कार्य्योंमें नियुक्त रहते हैं, मैं उन्होंकी पूजा करता हूं। जो सब लोगोंके [illegible] सदा प्रसन्नचित्त रहते और [illegible] [illegible]

नियुक्त रहते हैं, मैं उन लोगोंकी पूजा करता हूं। हे यादव! जो सब स्थिरव्रती मनुष्य गुरुकी प्रसादसे स्वाध्यायपाठमें यत्नवान रहते, गुरुकी सेवा करते और किसीकी निन्दा नहीं करते, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। हे यादव! जो सब उत्तम व्रतवाले मुनि और सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मणगण हव्यकव्य वहन किया करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। हे यादव! जो लोग भैक्ष्यचर्य्यमें तत्पर रहते, कृश गुरुकुलाश्रय, सुखरहित और निर्द्धन हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो सब मनुष्य ममतारहित, निष्प्रतिद्वन्द, दिगम्बर, निष्प्रयोजन और वेदलाभ करके अनभिभव-नीय वाग्मी, ब्रह्मवादी, अहिंसारत, सत्यव्रत, दान्त और शमपरायण हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं जो सब गृहस्थ पुरुष देवता तथा अतिथि पूजामें नियुक्त रहते और सदा कपोतवृत्ति अर्थात् कण ग्रहणपूर्व्वक सञ्चय न करके जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। जो लोग धर्म्म अर्थ और काम, इन त्रिवर्ग कार्य्योंमें वर्त्तमान रहते हैं, कदापि परित्यक्त नहीं होते तथा जो शिष्टाचारमें प्रवृत्त रहते हैं, मैं उन्हें ही सदा नमस्कार किया करता हूं। हे केशव! जो ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर धर्म्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं, जो अलोलुप और पुण्यशील हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं, जो लोग जल तथा वायु पीके निवास करते और जो सुधा अर्थात् देवदेवके अवशिष्ट अन्न भक्षण किया करते हैं सदा विविध व्रतोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो लोग [illegible] और जो [illegible] [illegible] तथा [illegible] हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं [illegible] [illegible] [illegible] हैं मैं उन्हें [illegible]

योंको नमस्कार किया करता हूं। हे धार्मिक! इसलिये तुम भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करो। हे अनघ! वे पूजनीय पुरुष पूजित होनेसे सुख सम्पत्ति प्रदान किया करते हैं। इस लोक और परलोकमें ये लोग सुखप्रद होकर सदा विचरते रहते हैं, ये मान्ययुक्त होनेसे तुम्हारा उत्तम विधान करेंगे। जो लोग सदा सब लोगोंका आतिथ्य किया करते हैं, गऊ-ब्राह्मण और सत्यवचन कहनेमें रत रहते हैं, वे सब क्लेशोंसे पार होसकते हैं। जिस तपस्वी तथा कुमार ब्रह्मचारीने सदा तपस्यामें रत रहके आत्माको जाना है, वह क्लेशोंसे पार हो सकता है। जो लोग सदा शमपरायण, अनसूयक और नित्य स्वाध्यायशील हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। जो लोग देवता, अतिथि, पितर और सेवकोंकी अर्चनामें अनुरक्त तथा शिष्टान्नभोजी हैं, वेभी क्लेशोंसे छूट जाते हैं। जो अग्नि लाकर प्रणत होके उसे धारण करते और सोम आहुति प्राप्त करते हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। हे वृष्णिशार्दूल! जो लोग तुम्हारी भांति माता, पिता और गुरुके निकट सदा पूर्णरूपसे निवास करते हैं,—इतनी कथा कहके ही नारद मुनि चुप होगये। हे कौन्तेय! इसलिये तुम भी पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों और अतिथियोंकी सदा पूरी रीतिसे पूजा करते हो, इससे अभिलषित गति पाओगे।

३१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ भरतसत्तम पितामह! मैं आपके समीप धर्म्म सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज आदिके बीचसे किसीको शरणागत होनेपर उसकी रक्षा करते हैं, उस शरणागतकी रक्षा करनेका यथार्थ फल क्या है?

भीष्म बोले, हे महाप्राज्ञ महायशस्वी धर्मनन्दन! शरणागतकी रक्षाके विषयमें यह महाफलजनक प्राचीन इतिहास सुनो। कोई प्रियदर्शन कपोत बाजपक्षीके झपटनेसे आकाशसे गिरके महाभाग वृषदर्भ राजाके शरणमें गया। उस विशुद्धात्मा राजाने उसे भयसे निज गोदीमें छिपा हुआ देखके धीरज देके कहा। हे अण्डज! तुम्हें भय नहीं है, तुम धीरज धरो किस निमित्त तुम्हें महत् भय हुआ है, कहांपर तुमने कैसा कार्य्य किया है, जिससे सज्ञारहित और भ्रान्तचित्त होकर इस स्थानमें आये हो? हे सुदर्शन। हे नवनीलोत्पलनिर्म्मित भूषण सदृश उत्तम रूपवाले! हे दाड़िम और अशोक पुष्पसदृश नेत्रवाले। तुम भय मत करो, तुम्हें यहांपर कुछ भय नहीं है। जब तुम रक्षार्थ पुरस्कृत मेरे समीप उपस्थित हुए हो, तब कोई पुरुष तुम्हें मनसे भी ग्रहण करनेका उत्साह न कर सकेगा। हे कपोत! मैं आज ही तुम्हारे लिये काशिराज्य तथा जीवन परित्याग करूंगा, तुम विश्वासी होके रहो, तुम्हें कुछ भय नहीं है।

बाज बोला, हे राजन्! विधाताके द्वारा यह नष्ट-जीवितप्राय पक्षी मेरे भक्षरूपसे विहित तथा प्रयत्नपूर्व्वक प्राप्त हुआ है, इसलिये आप इसका परित्राण न कर सकेंगे। इसका रक्त, मांस, मज्जा, मेद मेरा हितकर है, यह मुझे परितोषकर है, इसलिये आप इसके अगाड़ी न आवें। हे राजन्। अत्यन्त उग्र तृष्णा मुझे पीड़ित और क्षुधा मानो निःशेष करके भस्म किया चाहती है। इसलिये आप इसे परित्याग करिये, मैं क्षुधाकी मन्दता नहीं रोक सकता हूं। मेरे पंख और नखसे यह पक्षी घायल हुआ है, मैंने इसका अनुसरण किया है। इसका थोड़ासा श्वास वा निश्वास चल रहा है; हे राजन्! इसलिये आप इसकी रक्षा न कर सकेंगे। हे महाराज! आप नि

राज्यमें मनुष्योंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, परन्तु इसीप्रकार खेचरोंकी रक्षाकार्य्यमें उत्तम रीतिसे प्रभु नहीं हैं। आप शत्रु, सेवक, स्वजन, व्यवहारविषय और इन्द्रिय विषयमें विक्रम प्रकाश करिये, आकाशचारियोंके ऊपर पराक्रम न कीजिये। आज्ञा भङ्ग करनेवाले, शत्रुओंके विषयमें आपको पूरी रीतिसे पराक्रम प्रकाश करके प्रभुता करना उचित है; आप यदि इस समय धर्म्मार्थी हो, तो मेरी ओर भी दृष्टि करनी योग्य है। भीष्म बोले, हे राजर्षि! बाजपक्षीका ऐसा वचन सुनके विस्मित हुए और उसके वचनका आदर करके उत्तर देने लगे।

राजा बोला, गज, बैल, वराह, हरिन अथवा भैंसे आज तुम्हारी क्षुधाकी शान्त करें, मैं शरणागतको परित्याग नहीं करता; यही मेरा निश्चित व्रत है। हे विहङ्ग! देखो, यह कपोत मेरा अंग परित्याग नहीं करता है।

बाज बोला, हे महाराज! मैं वृष, वराह अथवा दूसरे विविध पक्षियोंको भक्षण न करूंगा, मुझे इन सब अन्न आदिसे क्या प्रयोजन है? स्वयं देवताओंने मेरे सनातन भक्ष्यका कुछ विधान किया है। उसे ही भक्षण करूंगा। "बाजपक्षी कबूतरोंका भक्षण करते हैं—यह सनातन मर्य्यादा है।" हे पापरहित उशीनर! इस कपोतके विषयमें यदि आप स्नेह करते हो, तो तुलादण्डपर इसहीके परिमाणमें निज मांस मुझे प्रदान करिये।

राजा बोला, मुझपर तुम्हारी बहुत ही कृपा दीख पड़ती है, क्यों कि अब तुम मुझसे ऐसा कहते हो, बहुत अच्छा, मैं इस ही प्रकार करूंगा। उस राजसत्तमने ऐसा वचन कहके अपना मांस काटके तराजूपर तौला। अनन्तर [illegible] रत्नभूषित स्त्रियें यह वृत्तान्त [illegible] दुःखित होकर हाहाकार करती [illegible] निकलीं। उन स्त्रियों, मन्त्रियों और [illegible] रोदनसे बादल गर्ज्जनकी भांति महान् शब्द होने लगा। निर्म्मल आकाश बादलोंसे परिपूरित होगया। उस राजाके उत्यकार्य्यसे पृथ्वी हिलने लगी। राजाने दोनों कोखें, दोनों भुजा और छातीका मांस काटके शीघ्र ही तराजूको पूरित किया, तौभी वह सारा मांस कपोतके सङ्ग न तुला। जब राजाका शरीर मांस रहित हुआ केवल हड्डी ही रह गई और लोहू भरने लगा। तब वह निज मांस स्थान शरीरको छोड़के कपोतके संग तुल्यभावसे तराजूपर चढ़े, अनन्तर इन्द्रके सहित तीनों लोकके सब प्राणी उस राजाके निकट उपस्थित हुए। आकाशचारी प्राणी भेरी और दुन्दुभी बजाने लगे। राजा वृषदर्भ अमृतसे अभिषिक्त हुए और उनके शरीरपर अत्यन्त सुखकर दिव्य मालाकी बार बार बर्षा होने लगी। जैसे देवता, गन्धर्व और अप्सरा पितामहके निकट नृत्यगीत आरम्भ करती हैं, वैसे ही उनके समीप नाच और गीत होने लगा। तब वह राजर्षि निज कर्मोंसे सुवर्ण भूषित मणि काञ्चन और वैदूर्य्य मणिके स्तम्भोंसे युक्त विमानपर चढ़के नित्य स्वर्गमें गये।

हे युधिष्ठिर! तुम भी शरणागत पुरुषोंके विषयमें ऐसा ही व्यवहार करो। भक्त अनुरक्त और आश्रितोंकी जो मनुष्य रक्षा करते तथा जो लोग सब जीवोंके विषयमें दयावान् होते हैं, उन्हें परलोकमें सुख मिलता है। जो राजा सुशील होकर इस लोकमें सदाचारका अनुष्ठान करता है, उसे उस अनुष्ठित विमल कर्मोंके सहारे कौन विषय नहीं प्राप्त होता। वह शुद्ध-चित्तवाला वीर धीर सत्यपराक्रमी काशिराज राजर्षि निज कर्मोंसे तीनों लोकमें विख्यात हुआ है। हे भरतसत्तम! दूसरा भी पुरुष इस ही प्रकार शरणागत लोगोंकी रक्षा करता है, उसे भी सद्गति प्राप्त होती है। जो पुरुष राजर्षि वृषदर्भका यह चरित्र प्रतिदिन पाठ करता वा सुनता है, वह इस लोकमें [illegible] पावन होता है।

[illegible]

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! सब प्राणि-योंके विषयमें राजाका गुरुतरकार्य्य क्या है और कैसा कार्य्य करनेसे राजा इस लोकमें तथा परलोकमें सुख भोग करता है?

भीष्म बोले, हे भारत! अत्यन्त सुखकी इच्छा करनेवाले अभिषिक्त हुए राजाके लिये ब्राह्मणोंकी आराधना ही मुख्य कार्य्य है। हे नरेन्द्र! राजाको जो करना योग्य है, उसे तुम सुनो। राजा पूजनीय ब्राह्मणोंकी प्रतिदिन पूजा करे, पुरवासी और जनपदवासी बहुविद्या विशिष्ट ब्राह्मणोंकी सान्त्वना, वचन, भोग, दान तथा नमस्कारके सहारे अर्च्चना करे। राजाका यह अवश्य कर्त्तव्य है, इसका सदा विचार करना चाहिये; जैसे राजा अपने पुत्रोंका प्रति-पालन करता है, वैसे ही ब्राह्मणोंका प्रतिपा-लन करे, उन लोगोंके बीच जो पूजनीय हों, उनको दृढ़रूपसे पूजा करनी योग्य है, वे लोग जिस जिस राज्यमें शान्त रहते हैं, वही राज्य सब भांतिसे स्थिर रहता है। वे लोग पितरोंकी भांति पूजनीय, माननीय और नमस्कारके योग्य हैं। जैसे वर्षासे प्राणियोंकी जीवनयात्रा निभती है, वैसे ही ब्राह्मणोंसे समस्त लोकयात्रा हुआ करती है। सत्यपराक्रमी ब्राह्मण लोग कुपित तथा उग्रता अवलम्बन करके सङ्कल्पसे ही लौकिक शास्त्र सिद्धश्येनादि अभिचार उपायके सहारे सबको जलाते तथा सभीको निःशेष कर सकते हैं, इनका अन्तःकरण जाना नहीं जाता, सब दिशा इनके निमित्त अनावृत्त है, ये क्रुद्ध होनेपर दावानलके मध्यमें स्थित अग्निशिखाकी भांति दीख पड़ते हैं। साहसिक पुरुष भी इनसे डरते हैं, इनके गुणकी सीमा नहीं है; इनके बीच कोई जड़भरत आदिकी भांति तृणसे छिपे हुए कूएंके सदृश और कोई वशिष्ठ आदिकी भांति आकाशवत् विशुद्ध हैं, कोई कोई दुर्व्वासा आदिकी भांति असह्य पीड़ा देने-वाले और कोई गौतम आदिकी भांति कार्पा-सवत् मृदुता अवलम्बन करनेवाले हैं, इनके बीच बहुतेरे अगस्त्यकी भांति अत्यन्त शठ और बहुतेरे तपस्वी भी हुआ करते हैं, कितने ही कृषिकार्य्य और गोपालन करते हैं कोई कोई भिक्षावृत्ति अवलम्बन किया करते हैं। कोई कोई वाल्मीकि और विश्वामित्रआदिकी भांति चौर्य्यवृत्तिमें रत रहते और कितने ही नारद प्रभृतिकी भांति मिथ्या कलहप्रिय और कितने ही भरत आदि मुनियोंकी भांति नट वर्त्तक हैं। हे भरतश्रेष्ठ! दूसरे अनेक प्रकारके ब्राह्म णवृन्द राजा तथा अन्य लोगोंके समीप समस्त कार्य्य कर सकते हैं, अधिक क्या कहें वे लोग समुद्र सोखनेमें भी समर्थ हैं। शरीर प्रच्छाद-नके निमित्त अथवा लोकरक्षाके लिये निषिद्ध कर्म्मके सहारे अनेक विषयोंमें अनुरक्त तथा बहुतेरे कर्म्मोपजीवी धर्म्मज्ञ साधु ब्राह्मणोंका सदा नाम लेना उचित है। हे जननाथ! पहले समयमें महाभाग ब्राह्मण लोग पितर, देवता, मनुष्य, उरग और राक्षसोंके भी पूज्य थे। देवगण, पितृ, गन्धर्व्व, राक्षस, असुर और पिशा-चोंसे द्विजातिवृन्द कदापि पराजित नहीं होसकते, ये लोग अदेवको देव और देवको अदेव कर सकते हैं, ये जिसके निमित्त इच्छा करें, वह राजा होजावे, जो इनका इष्ट नहीं है वह पराभूत होता है। हे महाराज! जो अज्ञानी मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, मैं सत्य ही कहता हूं, कि वे लोग निसन्देह विनष्ट होते हैं। हे राजन्! जो लोग निन्दा और प्रशंसा करनेमें निपुण तथा कीर्त्ति-अकीर्त्तिपरायण हैं, वे ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले पुरुषोंके ऊपर सदा कोपित हुआ करते हैं। ब्राह्मण लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह पुरुष बर्द्धित होता है और जिसको ब्राह्मण लोग निकृष्ट समझते हैं, वह क्षणभरमें पतित होता है। शक, यवन, काम्बोज आदि क्षत्रिय जाति ब्राह्म-णोंके अनुग्रह निबन्धनसे चाण्डालकी प्राप्त

हुए हैं। द्राविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कौलिसर्प और माहिषक प्रभृति क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंकी कृपाके अभावसे वृषलत्वको प्राप्त हुई है। हे विजयिवर! उनके निकट पराजय होनी उत्तम है, जय कल्याणकारी नहीं है। इन समस्त प्राणियोंको मारना एक ब्राह्मणके तुल्य नहीं है, महर्षियोंने कहा है, कि ब्रह्महत्या महादोष है। द्विजातियोंकी निन्दा न सुननी चाहिये, उस समय सिर नीचा करके बैठा रहे अथवा मौनावलम्बन करके उठके दूसरे स्थानमें चला जावे। जो ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके सुखसे जीनेका उत्साह करता है, इस भूमण्डलपर ऐसा कोई पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ और न होगा। हे महाराज! जैसे वायु मुट्ठीमें ग्रहण नहीं की जाती, जैसे चन्द्रमाको हाथसे स्पर्श करना सम्भव नहीं है और जैसे पृथिवीको धारण नहीं किया जा सकता, वैसे ही इस पृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणोंको भी कोई जीतनेमें समर्थ नहीं होता।

३३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंकी सदा पूरी रीतिसे पूजा करे, येही सुख दुःखके नियन्ता और चन्द्रमा ही इनके राजा हैं। हे महाराज! ये [illegible] भोग नमस्कार आभूषण तथा दूसरे अभि-[illegible] विषयोंसे सदा पूजनीय और पितृवत् [illegible] हैं। जैसे इन्द्रके सहारे भूतोंको शान्ति [illegible] है, वैसे ही ब्राह्मणोंके द्वारा राज्यमें [illegible] करती है। राज्यमें पवित्र ब्राह्मण [illegible] होकर उत्पन्न हों और क्षत्रिय [illegible] सदा सब तापन होवें। प्रथम नारद [illegible] यह कथा कही थी। हे महा-[illegible] [illegible] निमित्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नहीं है। ब्राह्मणोंको जो हवि दिया जाता है देवता और पितर उसे ही ग्रहण करते हैं. सब प्राणियोंके बीच ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी और सब दिशा ब्राह्मणोंसे आविष्ट होकर सदा अन्न उपभोग करती है। जिसके घरमें कोई ब्राह्मण भोजन नहीं करता, उसके पितर और देवतावृन्द भी उस पापाचारी ब्राह्मणद्वेषीका अन्न ग्रहण नहीं करते। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट रहनेसे पितर लोग सदा प्रसन्न रहते हैं और देवता लोग भी उसी भांति प्रसन्न होते हैं, हे महाराज! इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है। जिनको दान की हुई वस्तुओंको देवता और पितरवृन्द ग्रहण करते हैं, वे लोग भी प्रसन्न हुआ करते हैं, वेही परलोकमें जाके विनष्ट नहीं होते, बल्कि परम गति पाते हैं। मनुष्य जिन जिन वस्तुओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, देवता और पितृगण उन्हीं वस्तुओंसे तृप्तिलाभ किया करते हैं। जिससे प्रजा-समूहकी उत्पत्ति होती है, ब्राह्मणोंसे ही वे यज्ञादि उत्पन्न हुए हैं। यह जीव जिससे उत्पन्न होता है और परलोकमें जिस स्थानमें जाता है, उसे ही स्वर्ग और नरकका मार्ग जानो। हे भरतश्रेष्ठ! द्विपदोंके बीच ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, जो लोग आगत और अनागत विषयोंको जाननेमें समर्थ हैं तथा जो अपना धर्म्म जानते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, जो निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं, वे पतित नहीं होते, परलोकमें जाकर विनष्ट नहीं होते और न उनका पराभव होता है। जो सब [illegible] महात्मा लोग [illegible] [illegible] हुए वचनको [illegible] करते हैं [illegible] नहीं होता। हे भरतश्रेष्ठ! [illegible] [illegible]

किया और भरद्वाजने वीतहव्य, ऐल तथा चित्रा-युध आदि राजाओंको जीता था, इसलिये पार गये हुए पुरुषको परित्याग करके जिसके सहारे पार जा सके, उसे ही अवलम्बन करे। इस लोकमें जो कुछ कहा सुना वा पढ़ा जाता है, वह सब लकड़ीके बीच छिपी हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणोंमें विद्यमान है। हे भरतश्रेष्ठ। इस विषयमें श्रीकृष्ण और पृथ्वीके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है।

श्रीकृष्ण बोले, हे शुभे! तुम सब प्राणियोंकी जननी हो, इसलिये तुमसे मैं यह सन्देहका विषय पूछता हूं, कि गृहस्थ मनुष्य किस कर्म्मके सहारे पापसे छूटते हैं?

पृथ्वी बोली, ब्राह्मणकी ही सेवा करे, यही उत्तम और पवित्र कर्म्म है, जो लोग ब्राह्म-णोंकी सेवा करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते है। ब्राह्मणकी सेवा करनेसे ऐश्वर्य्य, कीर्त्ति और आत्मज्ञान प्राप्त होता है। शत्रु तापन महा-रथ क्षत्रिय वाञ्छनीय हैं। नारद मुनिने मुझसे यह कहा था, कि जातिसम्पन्न, संशित-व्रतो धर्म्मज्ञ ब्राह्मणको सबकी ऐश्वर्य्यके निमित्त इच्छा करनी उचित है। श्रेष्ठ और निकृष्टके बीच जो लोग श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं, वे ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य वर्द्धित होता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह शीघ्रही नष्ट हुआ करता है। जैसे महासागरमें फेंकनेसे कच्चे ढेले विनष्ट होते हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके निकट दुश्चरित्र पुरुषोंका पराभव हुआ करता है। देखिये, चन्द्रमा कलङ्कसे और समुद्र खारे पानीसे युक्त है और महेन्द्र सहस्र भगचिन्हसम्पन्न होकर फिर ब्राह्मणोंके प्रभावसे सहस्रनयनवाले हुए हैं। उन लोगोंके प्रभावसे ही देवराज शतक्रतु हुए है। हे माधव! द्विजगणका समान प्रभाव अवलोकन करो। हे मधुसूदन! जो पुरुष कीर्त्ति ऐश्वर्य्य और शुभ लोककी कामना करता है, वह पवित्र तथा शुद्धचित्त होकर ब्राह्मणोंके अनुगामवर्त्ती होवे।

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! मधुसूदनने पृथ्वीका यह सब वचन सुनके साधु साधु कहके उसे अभिनन्दित किया। हे कुरुनन्दन! तुम इस ही उपमाको सुनके सावधान होकर ब्राह्मणोंको सदा पूजा करो, तो तुम्हारा कल्याण होगा।

३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महानुभाव ब्राह्मणवृन्द संस्कार आदि न होनेपर भी उन्नत ही सब प्राणियोंके नमस्य और अतिथि होकर भली भांति पके हुए अन्न आदिके प्रथम भोक्ता हैं। हे तात। देवताओंके सुखस्वरूप ब्राह्मण लोग सबके ही मित्र हैं और उनके प्रभावसे ही धर्म्मादि अर्थ सिद्ध होते हैं, वे मङ्गलयुक्त वचनव्यूहसे पूरित होनेपर कल्याणकी कामना करते हैं। हे तात। ब्राह्मणोंने हम लोगोंके विपक्षव्यूहके द्वारा कठोर वाक्यसे असम्मानित होनेपर क्रुद्ध होकर उन्हें अभिशाप दिया है। पुराण जाननेवाले, पण्डित लोग इस विषयमें जिस प्रकार पहले विधाताने द्विजातियोंको उत्पन्न करके नियमित किया था, उस ही प्रथम कही हुई अपूर्व्व गाथाको गाया करते हैं। इस लोकमें ब्राह्म-णोंको विधिपूर्व्वक निर्दिष्ट कर्म्मके अतिरिक्त और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। हे ब्राह्मणवृन्द। तुम लोग रक्षित होकर सबकी रक्षा करो, उससे तुम्हारा उत्तम कल्याण होगा। अपना कर्म्म करनेसे तुम लोगोंको ब्राह्मी श्री प्राप्त होगी, तुम लोग सब भूतोंके कर्त्तव्यके निश्चय करने-वाले और नियन्ता होगे। विद्वान् ब्राह्मणको शूद्रका कर्म्म करना उचित नहीं है। ब्राह्मण यदि शूद्रका कर्म्म करे, तो उसका धर्म्म नष्ट हुआ करता है। तुम लोग श्री, बुद्धि, तेज, प्रतापशालिनी विभूति और निज शाखोक्त वेद

पानेमें विपुल माहात्म्यको प्राप्त होगे। महाऐश्वर्य प्रतिष्ठा लाभ करके यावतनीय देवताओंका पद्धति देकर माताके निकट शिशु सन्तानोंकी भांति सबके अग्रभाज्य और ब्राह्मी श्रीके पात्र होगे। धनमित्रोंसे प्राप्त परम श्रद्धायुक्त और दम स्वाध्यायमें रत होकर समस्त काम्य-वस्तु पाओगे। मनुष्य लोक और देवलोकमें जो कुछ है, वह सब ज्ञान नियम और तपस्याके सहारे सिद्ध होता है। हे पापरहित! यह मैंने ब्रह्मगीत समस्त वचन कहा है; ब्राह्मणोंके विषयमें अनुग्रहके लिये बुद्धिशक्तिसे युक्त प्रजापतिने यह गाथा कही थी। जैसा राजाका बल है, तपस्वियोंका भी वैसा ही बल समझा जाता है। ब्राह्मण लोग दुरासद प्रचण्ड वेगशाली और क्षिप्रकारी होनेपर भी पूजनीय हैं। इनके बीच कोई कोई सिंहके समान बलशाली हैं कोई कोई शार्दूलके सदृश पराक्रमी हैं, कोई वराहके समान तेजस्वी कोई मृग सदृश स्वभावयुक्त हैं, कितने ही जलसदृश बलसे युक्त हैं कोई कोई सर्पस्पर्श सदृश हैं, कोई वाक्यके सहारे नष्ट करते और कोई नेत्रसे ही भस्म करते हैं। कोई कोई विषधर सर्पके समान हैं और कोई कोई मन्द प्रभाववाले भी हैं। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें द्विजोंका चरित्र अनेक प्रकारका है। मेकलद्रविड़, लाट, पौण्ड्र, कोम्वशिरा, शौण्डिक, दरद दर्व्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात और यवन प्रभृति सब क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंके कोपको सहनेमें असमर्थ होनेसे चाण्डालत्वको प्राप्त हुई हैं। ब्राह्मणोंके [illegible] करनेसे असुरवृन्द पातालमें वास करते हैं और देवगण ब्राह्मणोंकी कृपासे स्वर्गवासी हुए हैं। आकाशको स्पर्श नहीं किया जा सकता, हिमालय पहाड़को चलानेमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है, [illegible] नहीं किया जाता और इस [illegible] ब्राह्मणोंका क्षय नहीं किया जा सकता; ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके इस पृथ्वीको शासन करनेमें किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। महानुभाव ब्राह्मणगण देवताओंके भी देवता हैं, इसलिये यदि इस सागर मेखला पृथ्वीको भोग करनेकी इच्छा करते हो, तो दान और सेवासे सदा उन लोगोंको पूजा किया करो। हे पापरहित! प्रतिग्रहके द्वारा ब्राह्मणोंका तेज शान्त होता है। हे महाराज! इस लिये जो प्रतिग्रह करनेकी इच्छा न करें, उनकी तुम रक्षा करना।

३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग इन्द्र और शम्बरके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं, तुम सुनो। देवराजने वेष बदलके तथा जटी रजोगुणी होकर निकृष्ट रथपर चढ़के शम्बरसे प्रश्न किया था।

इन्द्र बोले, हे शम्बर! तुम कैसे व्यवहारसे अपनी जातिके बीच श्रेष्ठ रूपसे निवास करते हो? किस लिये तुम्हें सब कोई श्रेष्ठ समझते हैं? इस विषयको यथार्थ रीतिसे वर्णन करो।

शम्बर बोला, मैं ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, मेरा मत ब्राह्मणोंके अनुगत है, जो सब ब्राह्मण शास्त्रीय कथा कहते हैं, मैं सुखपूर्व्वक उनका सम्मान किया करता हूं। शास्त्र सुनके मैं अवज्ञा नहीं करता, कभी किसीके समीप अपराधी नहीं होता, बुद्धिमान् द्विजातियोंकी पूजा करता, उनके चरण ग्रहण करता तथा उन लोगोंके समीप प्रश्न किया करता हूं। वे लोग विश्वासी होकर कहते और मुझसे सदा प्रश्न किया करते हैं, उनके असावधान रहनेपर भी मैं अप्रमत्त तथा उनके शयन करनेपर भी मैं सदा जागता रहता हूं। [illegible]

णामृतसमान विद्यासेचन किया करते हैं। वे लोग सन्तुष्ट होकर जो कुछ कहते हैं, मैं बुद्धिके सहारे उसे ग्रहण करता हूं, सदा अनुलोम भावसे अपनी ब्रह्मनिष्ठा सोचा करता हूं। जैसे चन्द्रमा नक्षत्रमण्डलीका स्वामी है, वैसे ही जिन लोगोंके वाक्यन्त्रके अग्रभाग जिह्वामें विद्यारूपी अमृत है, उन ही विद्यारूपी रसका पान करते हुए निजजातिके बीच श्रेष्ठरूपसे निवास करता हूं। ब्राह्मणोंके मुखसे शास्त्र सुनके उसके अनुसार जैसा अनुष्ठान किया जाता है इस लोकमें वही अमृत है और वही उत्तम नेत्रस्वरूप है। पहले समयमें मेरे पिता इस कारणको जानके तथा देवासुर युद्धको देखकर प्रसन्नचित्त और विस्मित हुए थे। उन्होंने महानुभाव ब्राह्मणोंकी महिमा देखकर चन्द्रमासे पूछा था, कि ये लोग किस प्रकार सिद्ध हुए हैं?

चन्द्रमा बोले, ब्राह्मणोंकी तपस्याके सहारे सदा वाक्‌बल सिद्ध होता है, राजा लोग बाहुबलशाली और ब्राह्मण लोग वाक्यरूपी बलसे सम्पन्न हैं। ब्राह्मण लोग गुरुके गृहमें निवास करके क्लेश सहते हुए वेदाध्ययन करें। निर्मन्यु निर्व्वाण और समदर्शी होकर परिव्राजक धर्म्माचरण करे। यदि ज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण पितृगृहोंमें श्लाघनीय होकर समस्त वेद पढ़े, तौभी लोग ग्राम्य कहके उसकी निन्दा करते हैं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले जीवोंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमिका तेज योद्धारहित राजा और अप्रवासी ब्राह्मणको ग्रास किया करता है। अभिमान अल्पबुद्धि पुरुषकी श्री नष्ट करता है, गर्भके कारण कन्या दूषित होती है और गृहवास निबन्धनसे ब्राह्मण दूषित होता है। जैसे मेरे पिता अद्भुतदर्शन चन्द्रमाके निकट यह वृत्तान्त सुनकर महाव्रती ब्राह्मणोंकी जिस प्रकार पूजा करते थे, मैं भी उस ही भांति उन लोगोंकी पूजा किया करता हूं।

भीष्म बोले, देवराजने दानवेन्द्र शम्बरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुनकर पूर्वरीतिसे ब्राह्मणोंकी पूजा की थी, उसहीसे महेन्द्रत्व पाया है।

३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पहलेका परिचित, चिरोषित और दूरदेशका अभ्यागत, इन तीनों पात्रोंके बीच कौन पात्र उत्तम है?

भीष्म बोले, अपूर्व्व चिरोषित और दूरसे आया हुआ अभ्यागत, इन तीन प्रकारके पात्रोंमेंसे कोई कोई यज्ञ करनेके निमित्त और परिवारको पालन करनेके लिये जांचते हैं; कोई मौनव्रत वा सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन किया करते हैं, उनके बीच जो जिस वस्तुके निमित्त प्रार्थना करें, सेवकोंको पीड़ित न करके उन्हें वही प्रदान करूंगा, ऐसा ही अंगीकार करना चाहिये, किसीको भी प्रत्याख्यान करना उचित नहीं है; मैंने ऐसा सुना है, कि सेवकोंको पीड़ित करनेसे अपनी ही बुराई होती है। यज्ञादि कर्म्म और मौनव्रत आदिके तारतम्यके अनुसार पात्रमें भी तारतम्य हुआ करता है। चिरोषित और दूरदेशके अभ्यागत पात्रके लिये अपूर्व्ववत् भावना करनी चाहिये. पण्डितोंने इस ही प्रकार पात्र कहे हैं

युधिष्ठिर बोले, जीवोंके अपीड़न और धर्म्मकी अहिंसाके सहारे यथार्थ रीतिसे ऐसे पात्र निर्णय करे, जिसे दान करनेसे प्रदेयवस्त्वभिमानी देवता सन्तापित न हों, इसलिये वैसे पात्र कौन है?

भीष्म बोले, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य्य शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, शास्त्रज्ञ और निन्दारहित पुरुष मात्र ही पूज्य और माननीय हैं और जो लोग इनके विपरीत हैं, वे सत्कारके योग्य नहीं हैं, इसलिये सदा प्रणिधानपूर्व्वक पुरुषोंकी परीक्षा करनी उचित है। हे भारत!

जिस पुरुषमें अक्रोध, सत्यवचन, अहिंसा, तपस्या सरलता, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा, शम और दम दीखते हैं और स्वभावसे ही समस्त अकार्य्य निषिद्ध नहीं होते, वही पात्र सम्मानका भाजन है, विरोधित, सम्प्रति आगत पूर्व्व परिचित और अपूर्व्व पात्र भी वैसे ही सम्मानका भाजन है। वेदोंको अप्रमाणित करना, शास्त्रोंकी उल्लङ्घन और सब विषयोंकी अव्यवस्था ही निज अपावनताका लक्षण है। जो ब्राह्मण वेदनिन्दक और पाण्डित्यभिमानी होकर निरर्थक श्रुतिविरोधी मोक्षको अनुपयोगी आन्वीक्षिकी तर्कविद्यामें अनुरक्त रहता है और साधुओंके बीच समस्त हेतुवाद प्रकट करते हुए शास्त्रसम्मत हेतुवादिक सभाओंमें भी विजेता बनता है, सदा ब्राह्मणोंके विषयमें ईर्षा किया करता है, तथा जो पुरुष अतिरिक्त सर्व्वशङ्की मूढ़, बालस्वभाव और कटुभाषी हो, उन्हें अस्पृश्य जानना योग्य है, हे तात! क्यों कि वैसे पुरुषको बुद्धिमान लोग कुत्तेके समान समझते हैं। जैसे कुत्ता काटने और भक्षण करनेके लिये सदा उद्यत रहता है, उसी भांति सम्भाषण और सर्व्व शास्त्र विनष्ट करनेके लिये मूर्ख मनुष्य उद्योगी हुआ रहता है। लोकयात्रा निबाहनेके लिये शिष्टाचार आदि व्यवहार श्रुति स्मृतिके द्वारा नियमित और आत्महितकर शम, दम आदिके विषयमें पुरुषको दृष्टि रखनी उचित है। जो पुरुष इस ही प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वह सदा वर्द्धित होता है। यज्ञके द्वारा देवऋण, वेदपाठसे ऋषिऋण, पुत्र उत्पन्न करनेसे पितृऋण, दान और मानके द्वारा विप्रऋण, [illegible] देहके अन्तमें उपस्थित पुरुषोंका [illegible] अतिथि-ऋण, इन पांचों ऋणोंसे [illegible] दया रीतिसे पवित्र और उत्तम [illegible] व्यवहार सहस्रसे छूटता। [illegible] नहीं होता।

३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! मैं स्त्रियोंका स्वभाव सुननेकी इच्छा करता हूं, क्यों कि स्त्रियें सब दोषोंकी मूल हैं, वे वायुतुल्य लघुचित्तवाली कहके वर्णित हुआ करती हैं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चचूड़ा पुंश्चलीके सङ्ग नारद मुनिके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

पहिले समयमें देवर्षि नारदने सब लोकोंमें विचरते हुए ब्रह्मलोकवासिनी पञ्चचूड़ा नाम अप्सराको देखा, मुनिने उस सर्व्वाङ्ग सुन्दरी अप्सराको देखकर पूछा;—हे सुमध्यमे! मेरे अन्तःकरणमें कुछ संशय है, उसे तुम दूर करो।

भीष्म बोले, उसने कहा, कि आप मुझे समर्थ समझते हैं, परन्तु यदि मुझमें कहनेकी योग्यता रहेगी तो अवश्य कहूंगी।

नारद मुनि बोले, हे भद्रे! तुममें योग्यता न रहनेसे मैं कदापि तुम्हें इस विषयमें नियुक्त न करूंगा। हे वरानने! मैं तुम्हारे समीप स्त्रियोंके स्वभावका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, अप्सराओंमें मुख्य पञ्चचूड़ाने देवर्षिका वचन सुनके उत्तर दिया, कि मैं स्त्री होकर किस प्रकार स्त्रियोंकी निन्दा कर सकूंगी। हे देवर्षि! स्त्रियें जैसी हैं और जैसा उनका स्वभाव है, वह आपको अविदित नहीं है, इसलिये मुझे ऐसे कार्य्यपर नियुक्त करना तुम्हें उचित नहीं है।

देवराज नारदमुनिने उससे फिर कहा, [illegible] सुमध्यमे! तुम सत्य कहती हो, [illegible] परन्तु मिथ्या बोलनेमें ही दोष हुआ करता है, सत्य कहनेमें दोष नहीं है। [illegible] पञ्चचूड़ा देवर्षि [illegible] करके [illegible] निश्चित उद्यत हुई।

पञ्चचूड़ा बोली, हे नारद! [illegible] उत्पन्न हुई स्त्रियें [illegible]

मर्य्यादा अतिक्रम करती हैं, यही स्त्रियोंका दोष है। स्त्रियोंसे पापी और दूसरा कोई भी नहीं है, यह तुम जान रखो, कि स्त्रियें ही सब दोषोंकी मूल हैं। स्त्रियां आज्ञाकारी, समृद्धिशाली, रूपवान और वशीभूत पतिको भी अवकाश पानेपर प्रतीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होतीं। हे प्रभु! हम स्त्री जाति हैं, इसलिये हमारा यह धर्म्म उत्तम नहीं है। हम जो लज्जा छोड़के पापी पुरुषोंकी सेवा करती हैं, यह अत्यन्त ही असद्धर्म्म है। जो पुरुष स्त्रियोंकी प्रार्थना करता है और स्त्रियोंके निकट जाता है वा अधिक सेवा करता है, स्त्रियें उस पुरुषकी ही अभिलाष किया करती हैं। पुरुषोंके प्रार्थनाभाव और परिजनोंके भय-निबन्धनसे मर्य्यादारहित स्त्रियें पतिके निकट मर्य्यादाकी रक्षा करती हैं। स्त्रियोंके लिये अगम्य कोई भी नहीं है, इन्हें अवस्थापर निश्चय नहीं है, कुरूप हो अथवा रूपवान् ही होवे, पुरुषको पानेसे ही उसे भोग किया करती हैं। स्त्रियें भय, दया, अर्थहेतु अथवा जाति-कुल सम्बन्धसे पतिके निकट अनुगत नहीं रहतीं। यौवनवती उत्तम वस्त्र-आभूषणोंसे भूषित स्वैरचारिणी स्त्रियोंकी कुल कामिनी-वृन्द स्पृहा किया करती हैं। जो सब बहुमता दयिता स्त्रियें सदा रक्षिता होती हैं, वे भी कूबरे, अन्धे, जड़ और वामनोंके सङ्ग पूरीरीतिसे आसक्त हुआ करती हैं। हे देवर्षि। हे महामुनि! पशुओंके बीच जो लोग कुत्सित मनुष्य हैं और दूसरे जो लोग चाहे कैसे ही बुरे क्यों न हों, इस लोकमें स्त्रियोंके लिये उनके बीच कोई भी अगम्य नहीं है। हे ब्रह्मन्! यदि स्त्रियें किसी प्रकार पुरुषको नहीं पातीं, तो परस्पर ही स्त्री-पुरुष रूपसे प्रसक्त हुआ करती हैं, तथापि पतिके बहुत दूर रहनेपर उसकी उपेक्षा करके धीरज नहीं धरतीं। पुरुषको न पानेपर पड़ोसियोंके डर और बध बन्धनके भयसे स्त्रियें स्वयं रक्षित हुआ करती हैं। इस लोकमें बुद्धिमान् पुरुषोंके वचनकी भांति स्त्रियें चञ्चलस्वभाव, दुःसेव्य और स्वाभाविक दुर्ग्राह्य हैं अर्थात् उनका अभिप्राय जाना नहीं जाता। काठसे अग्नि, जलसे समुद्र, समस्त भूतोंसे मृत्यु, और पुरुषोंसे स्त्रियें तृप्त नहीं होतीं। हे देवर्षि! सारी स्त्रियोंका यह भी एक रहस्य विषय है, कि मनोहर पुरुषको देखते ही उनकी योनि क्लेदयुक्त होती है। स्त्रियें काम-दाता मनको प्रसन्न करनेवाले अपने पतिसे रक्षित होनेपर भी उसके विषयमें क्षमा नहीं करती। जैसे स्त्रियें रतिविषयमें पतिके अनुग्रहकी अभिलाष करती हैं, विपुल कामभोग, आभूषण और निवास स्थानका वैसा आदर नहीं करती। यम, पवन, मृत्यु, पाताल, वाड़वामुख, क्षुरधारा, विष और अग्निकी भांति अकेली स्त्री, विनाश साधन करती है। हे नारद! जिससे पञ्चमहाभूत विहित हुए हैं, जिससे विधाताने लोकरचना की है, जिससे पुरुष और स्त्रियें उत्पन्न हुई हैं; उस ही स्वभावके द्वारा स्त्रियोंमें सब दोष विहित हुए हैं।

३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! जगत्के बीच ये सब मनुष्य दैवसृष्ट मोहसे अत्यन्त आविष्ट होकर स्त्रियोंमें बहुत ही आसक्त होते हैं और स्त्रियें भी पुरुषोंमें अत्यन्त अनुरक्त हुआ करती हैं, यह लोक साक्षिक और प्रत्यक्ष है; इसलिये इस विषयमें मेरे हृदयमें तीव्र संशय विद्यमान है। हे कुरुनन्दन! पुरुष किस कारणसे इनका सङ्ग करते हैं और स्त्रियें किस पर अनुरक्त रहती हैं तथा फिर क्यों विरक्त होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! किस प्रकारसे पुरुषवृन्द उनकी रक्षा नहीं कर सकते, मुझसे यह विषय वर्णन करना आपको उचित है। जैसे

और नये लताको ग्रहण करती हैं, वे भी वैसे ही नवीन नवीन पुरुषोंको अवलम्बन किया करती हैं। शम्बरासुर, नमुचि, बलि और कुम्भीनसीर की जो माया थी, वे भी काल क्रमसे उन ही मायाको अवलम्बन किया करती हैं। शुक्राचार्य और वृहस्पति जो शास्त्र जानते हैं, स्त्रियोंकी बुद्धिसे वह श्रेष्ठ नहीं है, इसलिये मनुष्य ऐसी स्त्रियोंको किस प्रकार रक्षा करेगा? हे वीर! जो मिथ्याको सत्य कहती और सत्यको मिथ्या करती है, उसकी पुरुष किस प्रकार रक्षा करेगा? हे शत्रुनाशन! बोध होता है, वृहस्पति आदि साधु पुरुषोंने स्त्रियोंकी ही शक्तिके अव निकर्षसे अर्थशास्त्रोंको रचना की है। स्त्रियें पुरुषोंसे पूरीरीतिसे सत्कृत वा असादृत होनेपर भी उनका मन विकृत करती है और पुरुष जब स्त्रीको परित्याग करता है, तब उसके लिये भी चित्त विकृत किया करती हैं। हे महावाहो! हमने यह सुना है, कि स्त्रीरूपी प्रजावृन्द धार्म्मिक हैं, वे सत्कृत वा असत्कृत होनेपर सदा मन विकृत करती हैं। हे कुरुनन्दन महाभाग! कौन उनको रक्षा करनेमें समर्थ होता है? इसमें मुझे अत्यन्त संशय है, इसलिये आप इस ही विषयको वर्णन करिये, हे कुरुश्रेष्ठ! कदाचित यदि उनको रक्षा की जा सके, अथवा पहले यदि किसीने उनकी रक्षा की हो, तो आप मेरे समीप उसकी व्याख्या करिये।

३९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर महाराज! तुमने स्त्रियोंके विषयमें जो कहा, वह सब सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। पहले महात्मा विपुलने जिस प्रकार स्त्रियोंकी रक्षा की थी, वह विषय तुम्हारे समीप कहता हूं, [illegible] हे भरतश्रेष्ठ महाराज! प्रजापतिने जिस प्रकार और जिस लिये प्रजावृन्दको उत्पन्न किया है, तुमसे वह भी कहता हूं। हे तात! स्त्रियोंसे पापी और कोई भी नहीं है। हे विभु! स्त्री जलती हुई अग्नि अथवा मायास्वरूप है, एक मात्र स्त्री ही क्षुरधारा, विष, सर्प और अग्निस्वरूप है। हे महावाहो! हमने सुना है, कि स्त्री रूपी प्रजावृन्द पहले धार्म्मिक थीं, वे स्वयं देवत्व लाभ करती थीं, उस समय देवता वृन्द भयभीत हुए, हे शत्रुदमन! अनन्तर वे देववृन्द पितामहके निकट गये और अभिप्राय सुनाकर सिर नीचा करके खड़े रहे। उन्ने शक्तिमान प्रजापतिने देवताओंका अन्तर्गत अभिप्राय जानके मनुष्योंके विनोदके लिये कृत्यारूपी स्त्रियोंको उत्पन्न किया। हे कुन्तीनन्दन! पहले सर्गमें स्त्रियें साध्वी थीं; फिर प्रजापतिकी कृत्यासृष्टिके अनन्तर असाध्वी रूपसे उत्पन्न हुईं। पितामहने इच्छानुसार उनकी सब कामना पूरी की। वे कामलुब्ध स्त्रियें सदा पुरुषोंको बाधित करने लगीं। सर्व्वशक्तिमान देवेशने क्रोधको कामकी सहायताके लिये उत्पन्न किया। प्रजासमूह काम क्रोधके वशमें होकर धर्माचरणमें असमर्थ हुई। स्त्रियोंके लिये कोई क्रिया नहीं है, ऐसा ही धर्म व्यवस्थित हुआ। ऐसी जनश्रुति है, कि निरिन्द्रिय शास्त्रवर्ज्जित स्त्रियें मिथ्या स्वरूप हैं। प्रजापतिने स्त्रियोंको शय्या, आसन, आभूषण, अन्न, पान, अनार्य्यता, दुर्वाक्य और रति प्रदान किया। पुरुषगण किसी प्रकारसे भी उनकी रक्षा करनेमें समर्थ न होंगे। हे तात! जब जगत्कर्त्ता स्वयं ही रक्षा नहीं कर सके, तब इस लोकमें दूसरे पुरुष [illegible] [illegible] रक्षा करनेमें समर्थ होंगे? [illegible]

उनकी भार्य्याका नाम रुचि था, पृथ्वीमण्डलमें उसके समान सुन्दरी कोई न थी। हे राजेन्द्र! देव, गन्धर्व्व, दानव, तथा विशेष करके बलहन्ता इन्द्र उसकी सुघराई देखके मत्त हुए थे। स्त्री चरित जाननेवाले महामुनि देवशर्म्मा शक्ति और उत्साहके अनुसार अपनी भार्य्याकी सब भांतिसे रक्षा करते थे। वह इन्द्रको परस्त्रीगामी जानते थे, इस ही निमित्त बलपूर्व्वक भार्य्याकी रक्षा करनेमें यत्नवान थे। हे तात! किसी समय उस ऋषिने यज्ञ करनेकी इच्छा करके उस समय विचारा, कि किस प्रकार भार्य्याकी रक्षा करनी चाहिये। उस महातपस्वीने मनही मन भार्य्याकी रक्षाका उपाय निश्चय करके भार्गवगोत्री निज शिष्य विपुलको आह्वान करके कहा।

देवशर्म्मा बोले, हे भृगुत्तम! मैं यज्ञ करनेके लिये गमन करूंगा, इन्द्र सदा इस रुचिको चाहता है, इसलिये तुम शक्तिके अनुसार इसकी रक्षा करना; इन्द्रके विषयमें तुम सदा अप्रमत्त रहना, क्यों कि वह विविध रूप धारण किया करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! अग्नि और सूर्य्यके समान तेजस्वी, सदा उग्र तप करनेवाले, नियतेन्द्रिय धर्म्मज्ञ, सत्यवादी तपस्वी विपुलने गुरुका बचन सुनके उत्तर दिया, कि ऐसा ही करूंगा। हे महाराज! जब गुरु चलनेको उद्यत हुए, तब उन्होंने उनसे फिर पूछा।

विपुल बोले, हे मुनि! देवराजके आगमन करनेपर उनका कैसा रूप होता है, उनका शरीर और तेज कैसा है? आप मेरे निकट इस विषयकी व्याख्या करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! अनन्तर भगवान् देवशर्म्मा महानुभाव विपुलसे इन्द्रको मायाका यथार्थ तत्व कहने लगे।

देवशर्म्मा बोले, हे विप्रर्षि! भगवान इन्द्र अनेक प्रकारकी माया जानते हैं, वह बार बार अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न करते हैं; कभी किरीटी, वज्रधारी, वज्री, मुकुटी और बद्धकुण्डली होते तथा मुहूर्त भरके बीच चाण्डालके सदृश दीख पड़ते हैं। हे तात! वह कभी शिखावान कभी जटावान होते, कभी चीरवसन पहरते, कभी विपुल शरीर और कृश हुआ करते हैं। वह श्वेत, श्याम तथा कृष्ण प्रभति विविध वर्ण धारण करते हैं। वह कभी कुरूप कभी रूपवान्, कभी युवा, कभी वृद्ध कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य और कभी शूद्र होते हैं; शतक्रतु समस्त प्रतिलोम तथा अनुलोम हो सकते हैं। वह शुक और कौवाका रूप धारण करते, कोकिल तथा हंसका रूप धारण कर सकते और सिंह, बाघ तथा हाथी आदिका रूप भी धारण किया करते हैं। देव, दैत्य और राजाओंका शरीर धारण करते तथा वह अकृश, वायु, भुग्नाङ्ग, शकुनि, विकृत, चतुष्पाद, बहुरूप और पुनर्व्वार मूर्ख होते तथा मक्षिका मशक आदिका शरीर धारण करते हैं। हे विपुल! दूसरेको बात तो दूर है, जिसने इस जगत्‌की रचना की है, वह विश्वकर्त्ता भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते। इन्द्र अन्तर्हित होनेपर ज्ञाननेत्रसे दीख पड़ते और फिर वायु रूप होकर देवराज होते। हे विपुल! इन्द्र इस ही भांति समस्त रूप धारण किया करते हैं, इसलिये इस क्षीणमध्याकी यत्नपूर्व्वक रक्षा करो। हे भृगुसत्तम! उपस्थित यज्ञको हविको कुत्ता खाता है, उसी भांति देवेन्द्र रुचिको अवलेहन न करे।

हे भरतसत्तम! अनन्तर उस महाभाग यज्ञकारी देवशर्म्मा मुनिने ऐसा बचन कहके गमन किया। विपुल भी गुरुका बचन सुनके चिन्ता करने लगे और महाबलवान देवराजसे गुरुपत्नीकी रक्षा करनेके लिये यत्नवान रहे। उन्होंने सोचा कि सुरराज अत्यन्त वीर्य्यवान् दुरभिभवनीय और मायावी है, इसलिये क्या मैं उसके

गुरुपत्नीकी रक्षा कर सकूंगा? आश्रम अथवा कुटीको बिना बन्द किये इन्द्रको निवारण करना दुःसाध्य है, क्यों कि उनमें अनेक प्रकारके रूप धारण करनेकी योग्यता है, अथवा यदि देवराज वायुरूपसे गुरुपत्नीको धर्षण करें। इसलिये मैं आजसे इसके शरीरमें प्रवेश करके रहूंगा, नहीं तो मैं पौरुषसे इसकी रक्षा न कर सकूंगा। क्यों कि सुना है भगवान इन्द्र अनेक प्रकारका रूप धारण किया करते हैं। इसलिये इसकी रक्षा करनेके लिये योगबलसे इसके शरीरमें प्रवेश करूंगा, तब इन्द्रसे इसकी रक्षा कर सकूंगा। दिव्य ज्ञानसे युक्त महात्मा मेरे गुरु यदि आज अपनी भार्याको उच्छिष्ट देखेंगे, तो क्रुद्ध होके निःसन्देह शाप देंगे। जैसे मनुष्य दूसरी स्त्रीको रक्षा नहीं कर सकते, वैसे ही इसकी रक्षा करनी मेरे लिये असाध्य कार्य्य है; क्यों कि देवेन्द्र अत्यन्त ही मायावी है। हाय! मैं क्या ही संशयमें पड़ा हूं। इस समय गुरुकी आज्ञा मुझे अवश्य ही प्रतिपालन करनी उचित है, यदि मैं इसे प्रतिपालन कर सकूं, तो महत् आश्चर्य कार्य्य होगा। योगबलसे मैं गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश करके और कमलके पत्ते पर स्थित जलकी बूंदकी भांति चञ्चल होकर भी आसक्त न होऊं। रजोगुणसे निर्म्मुक्त रहनेपर मेरा कुछ अपराध न होगा। जैसे पथिक मार्गमें सूने स्थानमें वास करता है, आज मैं उस ही भांति गुरुपत्नीके शरीरको वासस्थान करूंगा, इस ही भांति सावधान होकर मैं इसके शरीरमें स्थित रहूंगा।

हे राजन्! भृगुवंशीय विपुलने इस ही प्रकार धर्म्मकी आलोचना और सब भांतिसे वेद और शास्त्रोंकी पर्य्यालोचना की और गुरु तथा गुरुपत्नीकी अवलोकन करनेपर निश्चय करके योगबलसे अत्यन्त रक्षाका अनुष्ठान करने लगे। उस महातपस्वी विपुलने गुरुपत्नीके समीपमें बैठ हुए उनके नेत्रोंमें अपने नेत्रोंको यथार्थ विषयमें लाभ प्रदर्शित किया था। विपुलने अपने नेत्रके तेजसे उसके दोनों नेत्रोंका तेज संयोजित करके इस प्रकार उसके शरीरमें प्रवेश किया, जैसे पवन आकाशमें प्रवेश करता है। मुनि छायाकी भांति अन्तर्हित होकर लक्षणसे लक्षण और शरीरसे शरीरको चेष्टारहित न करके निवास करने लगे। अनन्तर विपुल गुरुपत्नीके शरीरको स्तम्भित करके उसकी रक्षामें नियुक्त होकर स्थित रहे, वह उन्हें न जान सकी। हे महाराज! जबतक उस महात्माके गुरु यज्ञ समाप्त करके अपने गृहपर नहीं आये, तबतक वह सब भांतिसे गुरुपत्नीकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त रहे।

४० अध्याय समाप्त।

अनन्तर किसी समयमें इन्द्रने दिव्य सौन्दर्य्ययुक्त शरीर धारण करके अवकाशका समय विचारके उस आश्रमकी ओर आगमन किया। हे प्रजानाथ! वह परछाईं रहित सुन्दर रूप धारण करके अत्यन्त दर्शनीय होकर उस आश्रममें प्रविष्ट हुए। उन्होंने उस समय चित्रलिखितकी भांति स्तब्धनेत्र और चेष्टारहित होकर बैठा हुआ विपुलका शरीर देखा तथा निविड़ नितम्ब, और पीन-पयोधर, पद्मपत्रके समान विशालनयनी, पूर्णचन्द्रसदृश मुख और उत्तम अंगवाली रुचिको अवलोकन किया। रुचिने इन्द्रको देखते ही सहसा उठनेकी इच्छा की और उसके रूपसे विस्मित होकर तुम कौन हो, मानो ऐसा वचन कहनेकी अभिलाषा हुई। हे नरनाथ! वह सती [illegible] द्वारा निरुद्ध और निश्चेष्ट रहनेसे उठनेकी इच्छा करके भी न उठ सकी। तब इन्द्रने उससे परम मनोहर प्रिय वचन कहे। हे पवित्रहासिनी! मैं देवेन्द्र हूं, तुम्हारे ही निमित्त यहां आया हूं; हे सुभ्रु, मैं तुम्हारे [illegible] [illegible] होकर आया हूं, [illegible] [illegible]

समझो ; समय बीता जाता है। इन्द्र ऐसा कह रहे थे, उसे विपुल मुनिने सुना और गुरुपत्नीके शरीरमें रहके ही उन्हें देख लिया।

हे महाराज! वह अनिन्दिता विपुलके द्वारा विष्टब्ध रहनेसे उठने अथवा वाक्य कहने न सकी। हे प्रभु! उस भृगुकुल-धुरन्धर महातेजस्वी विपुलने गुरुपत्नीका आकार जानके भली भांति बलपूर्व्वक योगके सहारे उसे निग्रह कर रखा। हे महाराज! इन्द्रने उसे योगबलसे मोहित और विकाररहित देखकर पीड़ित होकर फिर उससे कहा कि "आओ! आओ।" अनन्तर रुचिने उन्हें प्रत्युत्तर देनेकी इच्छा की, परन्तु विपुलने गुरुपत्नीका वह वचन परिवर्त्तन कर दिया। रुचिके चन्द्र सदृश शरीरसे 'ऐ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?' ऐसा ही सत्कृत वचन बाहर हुआ। परवश होनेसे रुचि उस समय ऐसा वचन कहके लज्जित हुई, इन्द्र भी वहांपर अत्यन्त दुःखित होकर स्थित रहे। हे महाराज! देवराज इन्द्रने उसका वह विकृत भाव जानके उस समय दिव्य-दृष्टिके सहारे देखा, उन्होंने दर्पणमें प्रतिबिम्बकी भांति गुरुपत्नीके शरीरमें तथा शरीरान्तर गोचर विपुलका शरीर अवलोकन किया। इन्द्र उसे घोर तपस्यायुक्त देखके बहुत डरे और शापभयसे डरके उस समय कांपते हुए खड़े रहे। तब महातपस्वी विपुल गुरुपत्नीको परित्याग करके निज शरीरमें प्रविष्ट होकर डरेहुए इन्द्रसे कहने लगे।

विपुल बोले, रे नीचबुद्धिवाले अजितेन्द्रिय पापी पुरन्दर! देववृन्द और मनुष्य तेरा सदा सम्मान न करेंगे। हे शक्र! परन्तु गौतमके द्वारा भगाङ्कसे चिन्हित होकर जो तू मुक्त हुआ, क्या वह याद नहीं है? क्या उसे भूल गया? मैं तुझे मूढ़बुद्धि अकृतात्मा अधीश्वर जानता हूं। रे मूढ़! रे पापी! यह मेरे द्वारा रक्षित होरही है, तू जिस स्थानसे आया है, वहां ही चला जा, रे मूढ़ात्मा इन्द्र! आज मैंने अपने तेजसे तुझे नहीं जलाया, मैंने कृपा करके तुझे भस्म करनेकी इच्छा नहीं की; मेरे वह अत्यन्त बुद्धिमान् गुरु तुझ पापीको देखते ही क्रोधयुक्त नेत्रसे इस ही क्षणमें निःशेष करके भस्म करेंगे। हे इन्द्र! तू फिर ऐसा कर्म न करना; ब्राह्मणवृन्द तुम्हारे माननीय हैं, इसलिये ब्रह्मबलसे पीड़ित होकर पुत्र और सेवकोंके सहित विनष्ट न होना। अपनेको अमर समझके मेरी अवज्ञा मत करो, तपस्यासे कुछ भी असाध्य नहीं है।

भीष्म बोले, इन्द्र महानुभाव विपुलका ऐसा वचन सुनके लज्जासे आर्त्त होकर कुछ भी न कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। मुहूर्त्त भर समय बीतनेपर महातपस्वी देवशर्म्मा यज्ञ समाप्त करके इच्छानुसार अपने आश्रमपर आये। हे राजन्! गुरुके आनेपर प्रियकार्य्य करनेवाले विपुलने अनिन्दिता गुरुपत्नीकी जिस प्रकार रक्षा की थी, वह सब उनके समीप कह सुनाया। वह शान्तचित्त गुरुवत्सल विपुल गुरुको प्रणाम कर पहलेकी भांति आशङ्कित होकर गुरुकी सेवा करने लगे। जब वह विश्राम करके भार्य्याके सहित बठे, तब विपुलने उनसे इन्द्रका सब कार्य्य सुना दिया। उस प्रतापवान् मुनिश्रेष्ठने विपुलका वचन सुनके उसका स्वभाव, चरित्र, तपस्या, नियम, गुरुसेवा और गुरुके विषयमें भक्ति तथा धर्म्ममें स्थिरता देखकर साधु साधु कहके उसे धन्यवाद दिया। महाबुद्धिमान् धर्म्मात्मा देवशर्म्माने शिष्यको धर्म्मपरायण जानके उससे कहा, कि वर मांगो। गुरुवत्सल विपुलने गुरुके समीप यह वर मांगा, कि धर्म्ममें मेरी स्थिति रहे, वर पाके गुरुकी आज्ञासे उत्तम तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। वह महातपस्वी देवशर्म्मा भी इन्द्रसे निडर होकर भार्य्याके सहित निर्ज्जन वनमें विचरने लगे।

४१ अध्याय समाप्त।

और बोली, अनन्तर वीर्य्यवान् विपुलने गुरुका वचन प्रतिपालन करके तीव्र तपस्याच- रणके अपनेको तपयुक्त समझा। हे महाराज ! वह निज कर्म्मसे कीर्त्ति और वर लाभ करके प्रसन्न होकर स्पर्द्धा करते हुए निर्भयचित्तसे पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे। हे कौरव ! उन्होंने परले कहे हुए कार्य तथा अत्यन्त तपस्याद्वारा गुरुके सहारे जाना, कि मैंने इस लोक और परलोकको जय किया है। हे कुरुनन्दन ! अनन्तर कुछ समय बीतनेपर रुचिकी भगिनीका बहुतसे धनधान्यसे युक्त पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ, उस ही समय कोई दिव्य वराङ्गनाने परम मनोहर रूप धारण करके आकाशमार्गसे गमन किया। हे भारत ! उस आकाशसे [illegible] ही दूरपर उस दिव्याङ्गनाके अङ्गसे दिव्यगन्धयुक्त बहुतसे फूल पृथ्वीपर गिरे। हे महाराज ! अनन्तर ललितनयनी रुचि उन फूलोंको ग्रहणकर रही थी, उस ही समय [illegible] शीघ्र ही उसके समीप एक निमन्त्रण आया। हे तात ! प्रभावती नाम उसकी जेठी भगिनी अङ्गदेशके राजा चित्ररथकी भार्य्या थी, [illegible] रुचि आमन्त्रित होनेपर केशमें [illegible] फूलोंको गूथके अंगराजके स्थानपर गई। उस समय अङ्गराजकी उत्तम नयनवाली स्त्री उन फूलोंको देखकर अपनी बहिनसे बोली मेरे लिये ऐसे ही फूल मंगा दो। सुन्दर मुखवाली [illegible] भगिनीका वचन पतिके निकट कह [illegible], उन्होंने उसके वचनका समादर किया। हे भारत ! अनन्तर महातपस्वी देवशर्म्मा[illegible] आह्वान करके फूल लानेके निमित्त [illegible] हे महाराज ! महातपस्वी विपुल गुरुके [illegible] अनादर न करके बोले, कि [illegible] फिर उस ही स्थानपर गमन [illegible] स्थानपर [illegible] फूल गिरे [illegible] [illegible] [illegible] अनन्तर [illegible]

तपोबलसे उन दिव्य गन्धवाले मनोहर पुष्पोंको पाके ग्रहण किया। गुरुके वचनको पालन करनेवाले विपुलने उस समय उन फूलोंको पाके प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र ही चम्पकमालिनी चम्पानगरकी ओर प्रस्थान किया। हे तात ! उन्होंने उस निर्ज्जन वनके बीच पाणिके द्वारा कर ग्रहण करके चक्रकी भांति परिवर्त्तनकारी नर मिथुन देखा। हे राजन् ! उन दोनोंके बीच एक शीघ्र गमन कर रहा था, दूसरा उसके पदमें विषमता प्रतिपादन करते हुए साथमें गमन करता था, अनन्तर उस समय वे दोनों कलह करने लगे। एक कहता था, तुमने शीघ्र गमन किया है, दूसरा कहने लगा, मैंने शीघ्र गमन नहीं किया है।

हे राजन् ! वे दोनों आपसमें नहीं, नहीं, ऐसा ही वचन कहने लगे। उस समय इस ही भांति विवाद होते रहनेपर उन दोनोंने विपुलको उद्देश्य करके यह शपथ किया, कि इस विपुल ब्राह्मणकी परलोकमें जो गति होगी हम दोनोंके बीच जो मिथ्या कहता है, उसकी भी वही गति होगी। विपुलने ऐसा वचन सुनके विलख-वदन होकर सोचा, कि मैं ऐसा तपस्वी हूं, इसलिये मुझे उद्देश्य करके इस मिथुनने जो वचन कहा है, इन दोनोंके लिये यह कष्ट- कर मालूम है, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है, जो इनको भी वही गति होगी ? इस समय इन दोनोंने मेरी [illegible] गतिका विषय कहा है, वह सब प्राणियोंकी अनभिलषित है, हे राजन् ! विपुल इस ही भांति चिन्ता करके [illegible] [illegible] होकर फिर [illegible] करके अपने [illegible] [illegible] [illegible] करने लगे।

अनन्तर [illegible] [illegible] [illegible]

शपथ करते थे। अनन्तर वे लोग विपुलको उद्देश्य करके यह वचन बोले, हम लोगोंके बीच जो लोभवशसे विषम आचरण करेगा, वह उस ही गतिको प्राप्त होगा, जैसी विपुलकी परलोकमें सद्गति होगी। हे कौरव! ऐसा वचन सुनके विपुलने जन्म पर्य्यन्त विचारके देखा, परन्तु अपनेको धर्म्म अपकारी नहीं समझा। हे राजन्! वह इस प्रकार शाप सुनके अग्निमें अर्पित काष्ठकी भांति दह्यमान होके चिन्ता करने लगे। हे तात! उनके चिन्ता करते रहनेपर अनेक दिन और रात्रि व्यतीत हुई, अनन्तर उनके अन्तःकरणमें गुरुपत्नी रुचिके विषयमें रक्षाजनित व्यवहार उदित हुआ स्त्री पुरुषके असाधारण लक्षणको लक्षणसे और शरीरका शरीरसे निरटीन करके मैंने गुरुके निकट इस विषयको सत्य नहीं कहा है। हे कौरव! उस समय महातपस्वी विपुलने अपना ऐसा दुष्कृत जाना और वही निश्चय पाप था, इसमें सन्देह नहीं है। अनन्तर उन्होंने चम्पानगरीमें आकर गुरुको फूल दिया और उस गुरुप्रिय विपुलने विधिपूर्व्वक उनकी पूजा की।

४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ! अनन्तर महातेजस्वी देवशर्म्माने उस शिष्यको आया हुआ देखकर जो वचन कहा था उसे सुनो।

देवशर्म्मा बोले, हे शिष्य विपुल! तुमने उस महावनके बीच क्या देखा था? हे विपुल! वे मुझे, रुचिको, और तुम्हें जानते हैं।

विपुल बोले, हे विभु ब्रह्मर्षि! जो लोग मुझे यथार्थ रीतिसे जानते हैं और जिनका विषय आप मुझसे पूछते हैं, वे मिथुन कौन हैं और वे सब पुरुष ही कौन हैं?

देवशर्म्मा बोले, हे ब्रह्मन्! तुमने जो मिथुन देखा है, जो कि चक्रकी भांति भ्रमण कर रहा
है, उसे अहोरात्रि जानो; वे तुम्हारे ..
कर्मको जानते हैं। हे विप्र! जो सब पुरुष
तकी भांति अक्षक्रीड़ा कर रहे हैं, उन्हें
जानो, वे तुम्हारा दुष्कृत जानते हैं। मुझे
नहीं जानता है, ऐसा विचार करके विश्वा
करना योग्य नहीं है। पापात्मा मनुष्य निर्ज्ज
नमें पापाचरण करता है, मनुष्यके सदा
नमें पापाचरण करनेपर ऋतु और अहोरात्रि
उसे देखा करते हैं। कर्म्म करके न कहनेपर
तुमने मेरे समीप जैसा किया है, वैसे पाप कर
नेवालोंकी जैसी गति होती है, उसे भी वे स
अवलोकन करते हैं। ऋतु प्रभृतिने तुम्हें गुरुके
निकट निज कर्म्म निवेदन न करके हर्षि
गर्व्वित देखके इस विषयको स्मरण करानेके
लिये जो कहा है, वह तुमने सुना। अहोरात्र
और छहों ऋतु अशुभ कर्म्मशील पुरुषोंके शुभ
वा अशुभ कर्म्मोंको सदा जानते हैं। हे द्विज!
तुमने जो मेरे समीप व्यभिचारवशसे भयानक
कर्म्म प्रकाश नहीं किया, उसे ही जानके उन
सबने तुमसे ऐसा कहा है। तुमने मेरे समीप
जैसा कहा, वैसा कर्म्म करके न कहनेसे उस
पापकारीको परलोकमें जो गति होती है,
तुम्हारी भी उक्त कर्म्मवशसे वैसी ही ग
होगी। हे द्विज! तुम दुश्चरित्रा स्त्रीकी र
करनेमें समर्थ हो, उस विषयमें तुमने
पाप नहीं किया, इस ही निमित्त मैं तुम
प्रसन्न हुआ हूं। हे द्विजसत्तम! यदि मैं तु
दुर्वृत्त देखता, तो क्रोधवश अभिशाप देता;
विषयमें मुझे विचार नहीं है। स्त्रियें जो
दोपर अनुरागवती होती हैं, पुरुषोंका व
पुष्कल अर्थ है; यदि तुम अन्यथाचरण क
तो मैं उसे जानके अवश्य ही तुम्हें अभि
देता। हे तात! तुमने यथार्थ रीतिसे रक्षा
है और वह वृत्तान्त मुझे सुनाया है। हे पु
इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। तुम स
रहके स्वर्गमें गमन करोगे। महर्षि देवशर्म

[illegible] कर विपुलसे इतनी कथा कहके भार्य्या और [illegible] सहित स्वर्गमें जाकर अतिप्रीति [illegible] की थी।

हे राजन्! पहले समयमें महामुनि मार्क-ण्डेयने कथा प्रसङ्गमें मेरे समीप यह उपाख्यान कहा था। हे पार्थ! इस ही लिये तुमसे कहता हूं, सदा स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये। स्त्रियें सदा साधु और दुष्ट दोनोंही दीख पड़ती हैं। हे महाराज! महाभागा वधूगण सब लोकोंकी माता हैं, तथा वन और काननके सहित इस पृथ्वीमण्डलको धारण किये हुई हैं। हे नर-नाथ! असाध्वी दुर्वृत्ता कुलघ्नी पाप कर्म्मवाली स्त्रियोंको शरीरमें उत्पन्न हुई हाथ पांवकी रेखा तथा दुष्ट लक्षणसे मालूम करना चाहिये। महा-[illegible] मनुष्य इस ही प्रकार स्त्रियोंकी उत्तम [illegible] रक्षा करनेमें समर्थ हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अथवा स्त्रियें रक्षणीय नहीं हैं। हे मनुजश्रेष्ठ! [illegible] तथा तीक्ष्ण पराक्रमशालिनी हैं, [illegible] जो इनके साथ सहवास करता है, वही इनके लिये प्रिय है, उसके अतिरिक्त और कोई भी प्रिय नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! ये कृत्या [illegible] प्राणघातिनी मृत्युरूपी हैं, व्यभिचा-[illegible] होनेपर प्राण हरण किया करती हैं, [illegible] और एक पुरुषको अङ्गीकार है। हे पाण्डुनन्दन! ये एक पुरुषमें रत नहीं होतीं, हे प्रजानाथ! स्त्रियोंके विषयमें मनुष्योंको [illegible] ऐसा करनी उचित नहीं है। [illegible] अप्रीतिपूर्व्वक इन्हें भोग [illegible] हे कौरवनन्दन! मनुष्य इनमें [illegible] हुआ करता है। हे राजेन्द्र! [illegible] सब ठौर समादरणीय हैं। [illegible] विपुलने ही स्त्रीकी रक्षा की थी। [illegible] स्त्रियोंकी [illegible] समर्थ नहीं है।

॥ अध्याय समाप्त ॥

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पितृलोक, देवता, अतिथि, स्वजन, गृह और सब धर्म्मोंका जो मूल है, आप मुझसे वही कहिये। हे पृथ्वीनाथ! यही सब धर्म्मोंके बीच अत्यन्त चिन्त-नीय आपको सम्मत है, कि कैसे वरको कन्या दान करे?

भीष्म बोले, स्वभाव चरित्र विद्या योनि अर्थात् मातृकुल और पितृकुलकी शुद्धि तथा कर्म्मको भली भांति जानके साधु पुरुष गुणवान् वरको कन्यादान करें। उक्तगुणोंसे युक्त विवा-हके योग्य वरको बुलाकर धन दानादिसे सन्तुष्ट करके जो कन्यादान की जाती है, साधु ब्राह्म-णोंका यही ब्राह्मधर्म्म है और शिष्टक्षत्रियोंका भी यही सनातन क्षात्रधर्म्म है। हे युधिष्ठिर! अपने अभिप्रायका परित्याग करके जिस वरको कन्या चाहती हो और जो वर कन्याको चाहता हो, उसहीको कन्या दान करनेको वेद जान-नेवाले पुरुष गान्धर्व्व विवाह कहा करते हैं। हे महाराज! बान्धवोंको लुभाके अथवा बहुतसे धनसे खरीद मोल लेके जो विवाह होता है, पण्डित लोग उसे आसुर विवाह कहते हैं। हे तात! रोते हुए मनुष्योंको मारके तथा उनका सिर काटके रोती हुई कन्याको घरसे जबर्दस्ती हरके जो विवाह होता है, वह राक्षस विवाह कहा जाता है। राक्षस विवाहके अन्तर्गत पैशाच विवाह है, इन पांच प्रकारके विवाहों-[illegible] तीन धर्म्मसङ्गत हैं और दो धर्म्मविरुद्ध हैं, [illegible] कन्या हरण करके जो विवाह होता है, [illegible] और आसुर विवाह किसी प्रकार भी न करना चाहिये। हे राजन्! ब्राह्म, क्षात्र और गान्धर्व्व, ये तीन प्रकारके विवाह ही धर्म्मसङ्गत हैं, पृथक् अथवा मिश्रित [illegible] तीन प्रकारके विवाह हो सकते हैं, इस [illegible]

वैश्यके लिये स्वजातीय भार्य्या होवे, इन सब स्त्रियोंसे जो सन्तान उत्पन्न हों वे सब सम्मानित होंगे। ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणी भार्य्या और क्षत्रियोंकी क्षत्रियापत्नी ज्येष्ठा कहाती है। रतिके लिये ब्राह्मणकी शूद्रा भार्य्या न होगी, ऐसा ही दूसरे लोग कहा करते हैं। शूद्रा स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न करना साधु पुरुषोंके बीच प्रशंसित नहीं है, यदि ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करे, तो वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। तीस वर्षका पुरुष अजात कुचोद्गम आदि लक्षणवाली दश वर्षकी कन्या और इक्कीश वर्षकी अवस्थावाला पुरुष सात वर्षकी कन्याको भार्य्यारूपसे ग्रहण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जिस कन्याके भाई अथवा पिता न हो, उसे कदापि न व्याहे, क्योंकि वह कन्या अपने पिताके पुत्र-स्थानीय होसकती है। कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक उपेक्षा करे, चौथा वर्ष लगनेपर स्वयं स्वामी खोज लेवे। स्वयं पति खोज लेनेसे स्त्री सन्तानरहित वा रतिविहीन नहीं होती। जो नारी इससे अन्यथाचरण करती है, वह प्रजापतिके निकट निन्दनीय होती है। जो कन्या माताकी सपिण्ड और पिताकी सगोत्रा न हो, उसे ही व्याहे, मनुने इसे ही सनातन धर्म्म कहा है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कोई शुल्क दान करे, दूसरा मैंने दान किया, ऐसा वचन कहे, कोई जबर्दस्ती हरनेकी कहे, कोई पुरुष धन दिखावे, और कोई पाणिग्रहीता हो, तब उनमेंसे वह कन्या किसकी भार्य्या होगी? हम तत्वजिज्ञासुओंके पक्षमें आप नेत्रस्वरूप हैं।

भीष्म बोले, मनुष्योंके हितजनक "यह इसकी भार्य्या है" इत्यादि व्यवस्थाजनित जो कुछ कर्म्म मन्त्र जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा मन्त्रित दीख पड़ता है, उसे मिथ्या करनेसे पाप हुआ करता है। भार्य्या, पुत्र, ऋत्विक, आचार्य्य शिष्य और उपाध्याय मिथ्या कहनेपर प्रायश्चित्तके भागी होते हैं, दूसरे नहीं,—ऐसाही कहा गया है। अकाम मनुष्योंके सङ्ग सहवास करनेकी मनु प्रशंसा नहीं करते, मिथ्या धर्म्म प्रकाश करना अयश और अधर्मयुक्त है; एक पुरुषमें एकान्त दोष उत्पन्न नहीं होता। पाणिग्रहण विधिके अनुसार बन्धुजन जो कन्या दान करें, उसे हरनेमें दोष नहीं है। हे भारत! बन्धुजन धर्मके अनुसार जो कन्या प्रदान करें, अथवा जिसे बेचें, बान्धवोंकी अनुज्ञा होनेपर उसके सम्बन्धमें मन्त्र और होम प्रयोग करे, तब वे सब मन्त्र सिद्ध होते हैं, बान्धवोंके द्वारा अदत्ता कन्याके सम्बन्धमें मन्त्र प्रयोग करनेसे वह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। यद्यपि स्वजनोंका किया हुआ सम्प्रदान नियम गुरुतर है, परन्तु पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं कि बन्धुजनोंके सम्प्रदानके अनन्तर भार्य्या पति दोनोंके लिये निर्जनमें मन्त्रके द्वारा किया हुआ नियम अत्यन्त गुरुतर है। पति धर्म्मके शासन वशसे भार्य्याको प्राक्तन कर्म्मदत्ता अथवा ईश्वरकी दी हुई जानके ग्रहण करता है; वह देवी और मानुषीवाणीको मिथ्या समझके परित्याग करता है।

युधिष्ठिर बोले, यदि कन्याके लिये किसी पुरुषने शुल्क दान किया हो, फिर धर्म्म, काम, अर्थ और कुलशील आदिसे युक्त दूसरा वर यदि उस कन्याको ग्रहण करे, तो वह निन्दनीय होगा, अथवा वह विवाह असिद्ध होगा। शिष्टातिक्रम और बन्धु, सम्मतिपूर्व्वक विक्रयातिक्रम दोनों और दोष उपस्थित होनेपर कर्त्ता किस श्रेष्ठ पक्षको कल्याणकारी समझके अवलम्बन करे? यही हम लोगोंको सब धर्मोंके बीच अत्यन्त विचारणीय है। हम तत्व-जिज्ञासा कर रहे हैं आप हमारे नेत्रस्वरूप होइये, इन सब विषयोंको वर्णन करिये, आपका वचन सुनके हम लोगोंकी तृप्तिकी सीमा नहीं होती है।

भीष्म बोले, शुल्क ग्रहण करनेसे ही विवाहकी सिद्धि होती है, कर्त्ता ऐसा जानके कुछ

[illegible] नहीं करता और साधु लोग शुल्क [illegible] कदापि कन्या दान नहीं करते, [illegible] आह्निक क्रयविक्रय व्यवहार कन्याप्र[illegible] दोषमें कारण नहीं होता । यदि वर [illegible] अधिक होता है, तो बान्धवगण शुल्क [illegible] मानते हैं । जो अनुकूल भावसे दान करता है [illegible] कन्याको आभूषण देके विवाह करनेको [illegible] करता है । जो कन्याको इस प्रकार दान [illegible] करता है, वैसा विवाह शुल्क ग्रहणपूर्व्वक विक्रय नहीं होता । प्रतिग्रह करनेसे ही दान करना पड़ता है, यही सनातन धर्म्म है । मैं तुम्हें कन्या दान करूंगा, जो पहले ऐसा वचन कहके और [illegible] पुरुष अवश्य दान करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वे सब अनुक्त वचनके समान हैं, इसलिये [illegible] पाणिग्रहण नहीं होता, तबतक कन्या और वर परस्पर प्रार्थना किया करते हैं । मैंने ऐसा सुना है, कि जबतक कन्या प्रदान नहीं [illegible] जाती, तबतक उसके निमित्त सभी प्रार्थना [illegible] सकते हैं, देवताओंने कन्याके सम्बन्धमें [illegible] ही वरदान किया है, अनिष्टपात्रको कन्या दान [illegible], यह ऋषि वाक्य है । कन्या ही [illegible] और अपत्यको मूल है, इसलिये जो पुरुष [illegible] दौहित्रकी इच्छा करता है, वह [illegible] [illegible] श्रेष्ठ पात्रको कन्या दान करे, [illegible] ऐसा ही निश्चय है । चिरपरिचय वशसे [illegible] पहलेसे दोषोंका देखकर मालूम [illegible] इस ही कामा विवाह विधिके विषयमें [illegible] था, वह कहता हूं सुनो ।

[illegible] मैं मगध, काशी और [illegible] [illegible] राजाओंको जीतके [illegible] [illegible] थी, उनमेंसे [illegible] [illegible], दूसरी [illegible] [illegible] नहीं [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

यह विषय पूछा ; पितृव्यके समीप धर्म्म जाननेके लिये मेरी अत्यन्त प्रबल इच्छा हुई थी ; हे राजन् । अनन्तर आचार जाननेके लिये अभिलाषी होकर मैंने बार बार कहा, कि मैं यथार्थ रीतिसे आचार जाननेकी इच्छा करता हूं ।

हे महाराज । जब मैंने ऐसा कहा, तब धार्म्मिक-श्रेष्ठ मेरे पितृव्य वाह्लिक बोले, यदि तुम्हारे मतमें शुल्कसे ही विवाह सिद्ध हो, तो फिर पाणिग्रहणकी क्या आवश्यकता है, जिस कन्याके लिये शुल्क दिया गया है, उसके निमित्त होमकी वस्तुओंको लानेका क्या प्रयोजन है ; धर्म्म जाननेवाले पुरुष वाग्दानको कन्या दान विषयमें प्रमाण नहीं कहते, किसका शुल्क दानसे ही विवाह सिद्ध होता हो, उसका पाणिग्रहण वैसा कार्य्यकारी नहीं है । ऐसा अभिप्राय है, कि दान विषयमें उनके वचन प्रसिद्ध नहीं हैं और इसमें लोगोंको विश्वास नहीं होता । शुल्कको जो लोग क्रयमूल्य समझते हैं, वे धर्म्मज्ञ नहीं हैं, वैसे पुरुषोंको कन्यादान करना उचित नहीं है और इस प्रकारकी कन्याका भी व्याहना अनुचित है । कदाचित भार्य्याको क्रय अथवा विक्रय करना उचित नहीं है । जो लोग भार्य्याका दासीकी भांति क्रय विक्रय करते हैं, उन पापबुद्धि मनुष्योंको [illegible] निष्पत्ति हुआ करती है, परन्तु उससे [illegible] [illegible] नहीं होता । पहले समयमें [illegible] [illegible] सत्यवानके पुत्र [illegible] [illegible] कन्याके निमित्त [illegible] [illegible] किया हो उसके [illegible] [illegible] पाणिग्रहण किया करता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हो, उसे ही कन्यादान करे, इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है; जीवित शुल्कदाताको भी अनादर करके शिष्ट लोग इस ही प्रकार इच्छानुसार दान किया करते हैं इसलिये मरे हुएके विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शुल्कदाताके मरनेपर युगान्तरमें कन्या देवरको वरण करे, अथवा उस पाणिग्रहीताको कामनासे व्रत अवलम्बन करके तपस्याचरण करे। किसी किसी पुरुषके मतमें देवर प्रभृति अनुपभुक्त भ्रातृ भार्य्याके सुरतकार्य्यमें प्रवृत्त करें, दूसरे लोगोंके मतमें यह प्रवृत्ति मन्थरा अर्थात् यह ऐच्छिकी प्रवृत्ति वैधी नहीं है। इस विषयमें जो लोक विवाद करते हैं, वे पूर्व्वोक्त रीतिसे निश्चय किया करते हैं, इसलिये पाणिग्रहणके पहले अथवा उसके बीच जो सब हरिद्रा-लेपन स्नान प्रभृति मङ्गल कार्य्य और मन्त्र पाठ आदि जिसमें निष्पन्न होते हैं, वैसा अवकाशकाल जिसमें रहता है, उसमें ही पूर्व्वोक्त नियमसङ्गत होते हैं और सङ्कल्पपूर्व्वक प्रदानकी हुई कन्याको हरने तथा उसके लिये मिथ्या वचन कहनेसे पाप होता है। सात पद चलनेके अनन्तर पाणिग्रहणके मन्त्रोंकी निष्पत्ति हुआ करती है, जल स्पर्श करके जिसे कन्या दान की जाती है, उस ही पाणिग्रहीताकी भार्य्या हुआ करती है। वक्ष्यमाण रीतिसे कन्या सम्प्रदान करना योग्य है, पण्डित लोग इसे निश्चय ही जानते हैं, द्विजश्रेष्ठ अनुकूल स्ववंश और अनुरूप भ्रातृदत्ता कन्याको अग्निके निकट न्यायपूर्व्वक परिक्रमा देकर ग्रहण करे।

४४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कन्याका शुल्कप्रद पति प्रोषित हो, तब उस विषयमें उसे कैसा व्यवहार करना योग्य है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, समृद्धिशाली अपुत्रक पिताको प्रतिपालनीय कन्याके लिये जो शुल्क ग्रहीत हुआ था, यदि वह परपक्षीय पुरुषोंको प्रत्यर्पित किया जाय, तो वह कन्या पिताकी ही प्रतिपाल्य रहेगी और यदि शुल्क प्रत्यर्पण न किया जाय, तो उसे शुल्कदाताकी मोल ली हुई होकर रहना होगा। उस शुल्कदाताके निमित्त जिस प्रकार होसके, सन्तानोत्पत्तिके लिये चेष्टा करे; इसलिये उस शुल्कदाताके अतिरिक्त और कोई भी उस कन्याके सङ्ग मन्त्र उच्चारण करके विवाह न करे।

सावित्रीने पिताकी आज्ञानुसार जिसे स्वयं वरण किया था। उसहीके सङ्ग विवाह किया, उसके वैसे कार्य्यकी कोई प्रशंसा करते हैं, परन्तु धर्म्मज्ञ मनुष्य उस विषयका अनुमोदन नहीं करते, क्योंकि दूसरे साधु पुरुषोंने ऐसा आचरण नहीं किया है, साधुओंका आचार ही धर्म्मका गुरुतर लक्षण है। विदेहराज महाराज जनकके नाती सुक्रतुने इस प्रकरणमें ही वक्ष्यमाण वचन कहा है, कि दुष्टोंके आचरित पथमें किस प्रकार अनुवर्त्तन किया जा सकता है? इस विषयमें साधुओंके निकट प्रश्न अथवा संशय करे। स्त्रियोंके अस्वाधीनता-धर्म्मको खण्डन करना आसुरधर्म्म है, पहलेके बूढ़ोंके विवाहकार्य्यमें स्त्रियोंकी स्वाधीनतापद्धति मैंने कदापि नहीं सुनी है। भार्य्या और पतिके अदृष्ट सम्बन्धरूपी धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है, वह सर्व्वाङ्गसुन्दर न होनेपर सिद्ध नहीं होता, इसलिये वैसा सम्बन्ध उपस्थित न होनेपर केवल रतिके निमित्त कदापि दारपरिग्रह करना उचित नहीं है। उस राजाने यह भी कहा था, कि रति साधारण धर्म्म है। युधिष्ठिर बोले, जब पिताके निकट कन्या भी पुत्रके तुल्य है, तब किस प्रमाणके अनुसार अन्य पुरुष धन ग्रहण करते हैं?

भीष्म बोले, जैसी आत्मा है, पुत्र भी वैसा ही है, पुत्री पुत्रके तुल्य है, इसलिये आत्मस्व-

[illegible]

[illegible] होते हैं, इसलिये पुत्री [illegible] धर्ममें [illegible]

[illegible] नहीं दीख पड़ता [illegible]

[illegible] उत्पन्न हुआ पुत्र दायभागी न [illegible] कन्याको बेचके लोभ [illegible] साहुर विवाह [illegible] है उनसे अस्पृश्यता [illegible] धर्मनिष्ठ और [illegible] निन्दित वृत्तिवाले [illegible] उत्पन्न होते [illegible] जाननेवाले धर्मशास्त्रमें [illegible] लोभवश पण्डित लोग साहुर बिना- [illegible] कन्याकी नहीं हुई यथा वर्णन [illegible] करते है। जो मनुष्य पुत्रको बेचके धन [illegible] करते हैं, अथवा लोभवश लिये शुल्क [illegible] करके कन्या प्रदान करते हैं, वे मूढ [illegible] कालसूत्र नामक घोर नरकमें [illegible] मूत्र, मेद, मूत्र और विष्ठा [illegible]

[illegible]

[illegible] नहीं है [illegible]

[illegible]

[illegible] दान करें. यदि [illegible] नहीं करते, तो [illegible]

[illegible]

जानेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको मनने स्त्री दान की है, स्त्रियोंके तन ढांपनेका वस्त्र थोड़े ही परिश्रमसे छीना जाता है, इसको सहत् तथा गत्यजिष्णु मनुष्य ईर्षायुक्त होकर कामना करते हैं, उग्रस्वभाववाले मनुष्य सहृदता नहीं करते और कुछ भी नहीं समझते। हे मनुष्य-इन्द्र! स्त्रियें सम्मानशालिनी हैं, इसलिये उनका सम्मान करो। स्त्रीसे ही धर्म और रति योग हुआ करता है, तुम्हारी परिचर्य्या तथा नमस्कार स्त्रियोंके वशमें होवे। देखिये, पुत्र उत्पन्न करने उत्पन्न हुए पुत्रोंको पालने और लोकयात्राकी प्रीतिके विषयमें स्त्री ही कारण है। इनके सम्मान करनेसे सब कार्य्य प्राप्त होंगे, विदेहराजकी दुहिताने इस स्त्री-धर्म्मके विषयमें श्लोक कहा है, कि स्त्रियोंके लिये कोई यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध तथा उपवास नहीं है, स्त्रियोंके लिये निज पतिकी सेवा ही धर्म्म है, उसहीसे वे स्वर्गको जीतती हैं। बालकपनमें पिता कन्याकी रक्षा करता है, जवानीमें पति स्त्रीकी रक्षा किया करता है और बुढ़ापेमें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियें कभी स्वाधीनता पानेके योग्य नहीं हैं। स्त्रियें श्रीस्वरूप हैं, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुष उनका सम्मान करें। हे भारत! स्त्रियें पाली जाने तथा उत्तम रीतिसे रक्षित होनेपर लक्ष्मीस्वरूप होती हैं।

४६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विधानके जाननेवाले राजधर्म्मज्ञ श्रेष्ठ पितामह! आप अत्यन्त संशयच्छेता कहके पृथ्वीपर विख्यात् हैं, मुझे कुछ सन्देह है, उसे आप दूर करिये। हे राजन्! ऐसा संशय उपजनेपर हम लोग दूसरे किससे पूछेंगे? हे महाबाहो! धर्म्म-मार्गमें गमन करनेवाले मनुष्यका जो कुछ कर्त्तव्य हो, आपको वह सब वर्णन करना उचित है। हे पितामह! रतिकी कामनावाले ब्राह्मणको निमित्त ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, ये चार प्रकारकी भार्य्या विहित हुई हैं। हे कुरुनन्दन! उन सबसे हो पुत्र उत्पन्न होंगे उनमेंसे आनुपूर्व्वीत क्रमसे कौन पैतृक-अंश पानेके योग्य होगा? हे पितामह! उनके बीच कौन एक कितने परिमाणसे उस पिताका धन लेगा? शास्त्रके अनुसार उन लोगोंका जैसा हिस्सा है, उसे आप वर्णन करिये, मैं यही सुननेकी अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं, इन सबके लिये ब्राह्मणोंका धर्म्म विहित हुआ है। हे शत्रुतापन! वैषम्य अथवा लोभ तथा कामवशसे ब्राह्मणकी शूद्रा पत्नी होती है, शास्त्रके अनुसार वह नहीं होसकती। ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीको निज शय्यापर सुलानेसे अधोगति पाता है और विधि दृष्ट कर्म्मके द्वारा प्रायश्चित्तार्ह हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! शूद्रा स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न होने पर ब्राह्मणको द्विगुण प्रायश्चित्त करना पड़ता है। हे भारत! जो जैसा अंश पावेगा, वह कहता हूं। लक्षणयुक्त गज, वृषभ, सवारी तथा दूसरे जो कुछ अत्यन्त उत्तम वस्तु रहेंगी ब्राह्मणीका पुत्र पितृधनमेंसे उस ही मुख्य हिस्सेको पावेगा। हे युधिष्ठिर! शेषमें जो कुछ ब्राह्मणस्व रहेगा, वह दश हिस्सेमें बटेगा; ब्राह्मणीका पुत्र उस पितृधनमेंसे चार भाग लेगा; क्षत्रिया स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी निःसन्देह ब्राह्मण है, वह पुत्र माताकी विशिष्टताके अनुसार तीन हिस्सा पावेगा। हे युधिष्ठिर! तृतीय वर्णवाली वैश्या स्त्रीसे जो पुत्र ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मस्वमेंसे दो भाग ग्रहण करेगा। ब्राह्मणके द्वारा जो पुत्र शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न होता है, उसे नित्य देय धन कहा जाता है अर्थात् उसे सब भांतिसे धन अदेय है।

[illegible] भारत शूद्रा स्त्रीके पुत्रको एक अंश धन देना [illegible]। दस हिस्सेमें बटे हुए धनके [illegible] [illegible] इसी प्रकार देना चाहिये और सवर्णा [illegible] उत्पन्न हुए पुत्रोंमें समान हिस्सा देना [illegible]। बिना यज्ञोपवीत संस्कार हुए शूद्रा [illegible] ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए पुत्रको [illegible] समझा जाता है। ब्राह्मणी, क्षत्रिया [illegible] और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए [illegible] ब्राह्मण हुआ करते हैं।—चारवर्ण ही [illegible], इनसे भिन्न पांच वर्ण नहीं हैं.

[illegible] पुत्र पितृ धनमेंसे दसवां हिस्सा पावेगा [illegible] पिता जो दान दे, वह उसे ही लेवे [illegible] वस्तुको न ले सकेगा। हे भारत [illegible] अवश्य धन दान करना उचित है. [illegible] ही परम धर्म है, इस ही निमित्त [illegible] पड़ता है। अनृशंसता जिस स्थानमें [illegible] है, वहांपर ही गुण भी हेतु हुआ [illegible]। हे भारत! ब्राह्मणके सुपुत्र [illegible] हो, शूद्रापुत्रको दसवें [illegible] देवे। ब्राह्मणके समीप लेवा- [illegible] अधिक धन [illegible] हो, तो उस [illegible]

[illegible]

युधिष्ठिर बोले, शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको यदि धन अदेय है, तो किस प्रकारकी विशेषतासे उसे दसवां हिस्सा दिया जाता है। ब्राह्मणी स्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ पुत्र निःसन्देह ब्राह्मण होता है, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुआ सन्तान भी वैसा ही है। हे नृपसत्तम। इससे जब आपने इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मण कहा है, तब वे किस लिये न्यून हिस्सा भोग करेंगे?

भीष्म बोले, हे परन्तप! लोकसमाजके बीच धर्म कामकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके आदरकी पात्र दारा है [illegible] एक साथ नामके भार्या नाम कहा जाता है; पहले कहे हुए नामसे यही अत्यन्त महान् विशेषता होती है, कि यदि ब्राह्मण पहले क्षत्रिया आदि तीन भार्याओंके साथ पाणिग्रहण करके पश्चात् ब्राह्मणीके सङ्ग विवाह करे, तब वह ब्राह्मणी कनिष्ठा होनेपर भी पितृ गौरवके कारण जेठी पूजनीय तथा प्रधान भार्या होती है। पतिके स्नान प्रसाधन दन्तधावन अञ्जन और हव्यकव्य आदि जो कुछ धर्म कार्य उसमें करना योग्य हो, ब्राह्मणीके घरमें उपस्थित रहते, क्षत्रिया प्रभृति [illegible] कदापि नहीं कर सकतीं। [illegible]

[illegible]

रहती है, जगत्के बीच जातिमें क्षत्रिया ब्राह्म-णीके समान नहीं होसकती। हे राजसत्तम युधिष्ठिर! ब्राह्मणीका पुत्र पहला तथा जेठा होता है और वह पितृधनमेंसे अधिक अंश पानेका अधिकारी है, जैसे क्षत्रिया कभी ब्राह्म-णीके समान नहीं होसकती, वैसे ही वैश्या भी कदापि क्षत्रियाके सदृश नहीं है। हे युधिष्ठिर! राज्य सम्पत्ति खजाना और सागर मेखला पृथिवी क्षत्रियोंके ही निमित्त विहित हुई दीख पड़ती है, क्यों कि क्षत्रिय निज धर्मके सहारे बहुत सी सम्पति प्राप्त करता है। हे राजन्! क्षत्रिय ही राज्यदण्ड धारण करता है, क्षत्रि-यके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। महाभाग ब्राह्मणवृन्द देवता-ओंके भी देवता हैं। हे राजन्! ऋषियोंके प्रणीत शाश्वत अव्यय धर्मकी आलोचना करके विधिपूर्व्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करनेमें प्रवृत्त रहे। डाकुओंसे धन लुटे जाने तथा स्त्री हरी जानेपर क्षत्रिय ही सब भांतिसे उसकी रक्षा किया करता है, राजा ही सब वर्णोंका त्राण-कर्त्ता होता है; इसलिये वैश्याके पुत्रसे क्षत्रि-याके पुत्रकी श्रेष्ठताके विषयमें सन्देह नहीं है। हे युधिष्ठिर! पूर्व्वोक्त कारणसे ही क्षत्रि याका पुत्र पितृधनमेंसे वैश्यापुत्रसे अधिक हिस्सा लेगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने ब्राह्म-णके दायविभागके नियम विधिपूर्व्वक कहे, दूसरे लोगोंके विषयमें उक्त नियम किस प्रका-रका होगा।

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! क्षत्रियके निमित्त क्षत्रिया और वैश्या, येही दो भार्य्या विहित है तीसरी शूद्रा भार्य्या शास्त्रके अनुसार सम्भव नहीं होती, तब केवल कामभोगके लिये हुआ करती है। हे प्रजानाथ युधिष्ठिर! क्षत्रियोंके दायविभागका यह नियम है, कि क्षत्रियस्व आठ हिस्सेमें विभक्त करना होगा, क्षत्रियाका पुत्र उस पितृ-धनमेंसे चार हिस्सा ग्रहण क[...] और पिताके रथ, हाथी, घोड़े आदि जो [...] युद्धकी उपयोगी वस्तु हों, उन्हें भी वही ले[...] वैश्याका पुत्र तीन भाग और शूद्राका पुत्र एक हिस्सा पावेगा, अन्यथा उसे अदत्त धन ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं है। हे कुरुनन्दन! वैश्य जातिके लिये एक ही भार्य्या विहित है दूसरी शूद्रा भार्य्या शास्त्रके अनुसार नहीं होस[...] कती, किन्तु काम क्रीड़ाके निमित्त हु[...] करती है। हे भरतश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र! वैश्[...] अथवा शूद्रापत्नीमें वर्त्तमान वैश्यका सम[...] नियम न होगा। हे प्रजानाथ भरतर्ष[...] वैश्यस्वको पांच हिस्सेमें विभक्त करना होग[...] वैश्या और शूद्रासन्तानके विषयमें जैसा हि[...] मिलेगा, वह कहता हूं।

हे भारत! वैश्याका पुत्र पितृधनमेंसे [...] हिस्सा लेगा और शूद्रासन्तानके लिये केवल पाचवा भाग कहा गया है। शूद्रापुत्र पिता-का दिया हुआ धन ले और यदि पिता उसे न दे तो वह उसे हरण न कर सकेगा, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके द्वारा उत्पन्न हुआ शूद्रापुत्र पितृधनका अधिकारी नहीं होता, तब पिता इच्छा करनेसे उसे केवल एक हिस्सा दे सकता है। शूद्रके लिये केवल सवर्णा भार्य्या हुआ करती है, किसी भांति दूसरी भार्य्या नहीं होती। उसके यदि जो पुत्र भी हों, तथापि वे समान हिस्सा पावेंगे। समान वर्णवाली भार्य्याके गर्भसे उत्पन्न हुए स[...] पुत्र ही पितृधनके समभागी होंगे, किन्तु जे[...] पुत्रकी प्रधानताके हेतु उसके लिये एक भा[...] पृथक् देना होगा, हे पार्थ! पहले स्वयम्भु[...] द्वारा यह विधि वर्णित हुई है। हे राज[...] सवर्णा भार्य्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें अन्य कुछ विशेष नहीं है, केवल विवाहकी विशिष्ट[...] निबन्धनसे पहले पहलके पुत्रही श्रेष्ठ होते सवर्णा भार्य्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंके समान [...]

पुत्र ... जेठा पुत्र प्रधान हिस्सा लेगा, मझला ... उससे छोटा पुत्र न्यून हिस्सा पावेगा। इसी प्रकार सब जातिमें ही सवर्ण सन्तानोंमें बंटना व्याप्त हुई है, महर्षि मरीचिके पुत्र कश्यपने ऐसा ही कहा है।

४७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोभ अथवा कामसे तथा सब वर्णोंके निश्चय न होनेपर यह प्रसिद्ध है, कि उत्तम वर्णवाली स्त्री [illegible]गामिनी होती है, इस ही कारण गूढ़ोत्पत्ति सम्भव निबन्धनसे वर्णका निश्चय नहीं होता, तब वर्णोंको न जाननेसे वर्ण सङ्करकी उत्पत्ति होती है। ऐसी जो विधिके अनुसार [illegible] उत्पन्न हुए पुरुषोंके लिये कौनसे [illegible] और धर्म है? वह विषय आप मेरे समीप [illegible] करिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें प्रजापतिने [illegible] निमित्त चारों वर्णोंके कर्म और केवल चारों वर्णोंको उत्पन्न किया था, तिसके बीच [illegible] लिये साक्षात् सम्बन्ध यज्ञ [illegible] नहीं [illegible] उससे [illegible] प्राप्त हुआ करता है। ब्राह्मणोंके लिये चार भार्या हैं, उनमेंसे [illegible] पुत्र उत्पन्न होते हैं, [illegible] और क्षत्रिया भार्यासे जो पुत्र [illegible] है; [illegible] [illegible]

रीतिसे उद्धार करे, परन्तु ब्राह्मणसे अवस्थामें जेठा होनेपर भी ब्राह्मणके निकट कनिष्ठकी भांति व्यवहार करे और सेवाके रहित दानपरायण होवे। क्षत्रियकी तीनों भार्याओंके बीच क्षत्रिया और वैश्यासे क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न होता है और यह स्मरण है, कि शूद्रा पत्नीसे हीनवर्ण उग्रनाम शूद्रजाति उत्पन्न होती है। वैश्यके लिये दो भार्या हैं, दोनों स्त्रियोंसे दो वैश्यपुत्र जन्मता है। शूद्रके लिये केवल शूद्राभार्या है, उससे शूद्र जातीय पुत्र उत्पन्न होता है।

निज पितासे अवशिष्ट अधम शूद्र यदि ब्राह्मणी गमन करे, तो चारोंवर्णोंसे बहिर्भूत चाण्डाल आदि बाह्यवर्ण उत्पन्न किया करता है। क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे चारोंवेदोंसे पृथक् राजाओंकी स्तुति करनेवाला सूत जातीय पुत्र उत्पन्न होता है। वैश्य ब्राह्मणीके गर्भसे अन्तःपुरकी रक्षा-कार्य्य करनेवाले संस्कार रहित वैदेह जातीय सन्तान उत्पन्न किया करता है। शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त उग्रस्वभाव वधार्ह चोर प्रभृतिके सिरको काटना प्रभृति कार्य्योंका करनेवाला और ग्रामके बाहिरी भागमें निवास करनेवाला चाण्डाल सन्तान उत्पन्न होता है, [illegible] वैश्य [illegible] मागध [illegible] सन्तान [illegible]। शूद्रके द्वारा क्षत्रियाके [illegible] निषाद [illegible] [illegible]

आदि दो सार्थोंमें अजातीय सन्तान उत्पन्न होती है, स्वजातिके अनन्तर यथा जाति अनुसार बाह्य वर्णोंको उत्पात्त हुआ करती है, वे भी स्वयोनिमें सदृश वर्णवाले सन्तान उत्पन्न करते हैं और परस्परमें अन्य स्त्रियाम निन्दनीय सन्तानोंका जन्म हुआ करता है। जैसे शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त नीचवर्ण चाण्डाल उत्पन्न होता है, वैसे ही चारोवर्णसे पृथक् हीन वर्णोंसे अत्यन्त नीचवर्णकी उत्पत्ति हुआ करती है। हीन वर्णोंसे प्रतिलोमजात वर्णोंकी वृद्धि होती है। नीच वर्णोंसे दास आदि पन्दरह निकृष्ट वर्ण उत्पन्न हुआ करते हैं। अगम्यागमन निबन्धनसे वर्ण सङ्करोंकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्णोंसे पृथक् सब वर्णोंके नीच सैरिन्ध्री और मागध जातिसे राजाओंके प्रसाधन कार्य्यज्ञ तथा दिव्य अङ्गराग अर्पण और स्तुति आदिसे सन्तुष्ट करनेवाला अदास वा दास जीवन जाति उत्पन्न होती है। मागध विशेषसे सैरन्ध्रयोनिमें वागुरावन्धजीवी अयोगव जातिकी उत्पत्ति होती है। मागधीमें वैदेहके द्वारा मद्यकार मैरेयक नामकी सन्तान उत्पन्न हुआ करती है। निषाद जातसे मद्गुर अर्थात् मद्गु नाम मल्लापजीवी नौकापजीवी दास सन्तान उत्पन्न होती है और चाण्डाल स्वपाक नामसे विख्यात मृतप अर्थात् श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न किया करता है। मागधीसे वागुरोपजीवीचार प्रकारके क्रूर पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनका कार्य्य मांस बेचना है। और मांस संस्कारवशसे उनका मांस तथा स्वादुकर नाम हुआ है। अन्य दो क्षौद्र और सौगन्ध नामसे वर्णित हुए हैं, इसलिये मागध जातिके निमित्त चार प्रकारकी वृत्ति निर्दिष्ट हुई है। अयोगवीसे पापी वैदेहके द्वारा जायोपजीवी, क्रूर निषादके द्वारा गधेके सवारी पर चलनेवाले मद्रनाभ और चाण्डालके द्वारा गज घोड़े तथा हाथियोंके मांस खानेवाली पञ्चम

जाति उत्पन्न होती है, यह जाति मृतकका वस्त्र पहनता और टूटे पात्रमें भोजन किया करती है, अयोगवीसे तीन नीच वर्ण उत्पन्न होते हैं। निषादीमें वैदेहके द्वारा क्षुद्र, अन्ध और अन्तर्ग्राम पशुवाध मांससे जीविका निर्वाह करनेवाले कारावर नामक चर्म्मकार, ये तीन प्रकारके पुत्र उत्पन्न होते हैं, ये लोग ग्रामसे बाहिर श्मशानमें निवास किया करते हैं। निषादीके गर्भसे चर्म्मकारके द्वारा कारावर और चाण्डालसे वेणुव्यवहारोपजीवी पाण्डुसौपाकजाति उत्पन्न होता है। वैदेहीके गर्भसे निषादके द्वारा आहिण्डक नाम पुत्र उत्पन्न होता है। चाण्डालके द्वारा सौपाकीमें चाण्डाल सदृश व्यवहारयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ करता है, निषादीके गर्भसे चाण्डालके द्वारा बाह्यवर्णोंसे पृथक् श्मशानवासी अन्तेवसायी सन्तान उत्पन्न होती है। माता पिताके रद-बदलसे येही सब सङ्कर जाति उत्पन्न होती हैं। वे चाहे छिपे रहें अथवा प्रकाश भावसे ही रहें, इन्हें इनके स्वकर्म्मके सहारे जाना जाता है। शास्त्रमें ब्राह्मण आदि चारो वर्णोंके धर्म्म कहे गये हैं, अ धर्म्म हीनजाति भेदके बीच किसीके धर्म्म नियम अथवा विधि नहीं है। ब्राह्मण आ चारो वर्णोंसे छः अनुलोमजात और छः वि लजात हुए हैं। इन बारह प्रकारके सं वर्णोंसे छाछठ अनुलोम और छाछठ प्रतिल हुए हैं, इनके अतिरिक्त एक सौ बत्तीस व शङ्कर जाति हुई हैं, फिर उनके अनुलोम प्रतिलोमकी गिनती करनेसे अनन्त भेद होत हैं, इसलिये इनमें ही प्रायुक्त पन्दरह भेद बीच अन्तर्भाव हुआ करता है, इस ही लि सबकी संख्या नहीं कही गई। यदृच्छाक्र अर्थात् जातिका नियम न रहनेपर मिथुनीभ वही प्राप्त यज्ञ तथा साधुओंसे पृथक् बाह्य वर्णसङ्कर जातियें स्वेच्छानुरूप कर्म्मके अ सार जीविका और जाति विशेषकी प्राप्त हु

[illegible] हैं । वे चतुष्पथ, श्मशान, पर्व्वत और वृक्षोंके निकट सदा वास करनेवाले आभूषण [illegible] जिन कर्म्मोंसे जीविका निर्व्वाह करना हुआ उनका आचरण करके वास कर, [illegible] वान्य तथ सामग्री तैयार [illegible] , व [illegible] और ब्राह्मणोंका [illegible] । ब्रह्मसत्ता, दया, [illegible], क्षमा और निज शरीरसे विपद्‌ [illegible] उत्पन्न वर्णोंका [illegible] है । [illegible] इस विषय [illegible] नहीं है । बुद्धिमान्‌ मनुष्य [illegible] इन्हें [illegible] उत्पन्न करे, क्या कि जैसे जलमें [illegible] करनेवाले मनुष्यका संवर [illegible] करता है, वैसे ही [illegible] हुआ पुत्र [illegible] करता है [illegible] स्वयं [illegible] आत्माको वशमें करके [illegible] हो [illegible] जाता है । स्त्रियां [illegible] स्वभाव [illegible] पुरुष [illegible] नहीं होता ।

[illegible] उत्पन्न हुए [illegible]

पिताके रूपरहस्य [illegible] हैं, वैसे ही पुरुष निज योनिको प्राप्त होता है । [illegible] जिसकी योनि [illegible] होती है, वह मनुष्य जिस पुरुषके औरससे उत्पन्न होता है, उसके थोड़े अथवा अधिक चरित्र [illegible] उसमें दीख पड़ते हैं । [illegible] पथसे विचरनेवाले पुरुषके उत्तम वा निकृष्ट वर्णोंके निश्चय विषयमें उनके स्वभाव ही उसे प्रकाश किया करते हैं । जैसे [illegible] होनेपर भी [illegible] के समय [illegible] होता है और दुर्व्वर्ण अर्थात्‌ रूपा जैसे सदा कोमल रहके भी कार्य्यके समय कठोर हो जाता है, सुजात और कुजात पुरुषोंके चरित्र भी वैसे ही हैं । विविध कर्म्मोंमें रत अनेक प्रकारके चरित्र जीवोंके चरित्र उपचरित [illegible] परित्याग करके [illegible] सकता है [illegible] वर्णोंके चरित्र शास्त्रीय [illegible] नहीं [illegible] प्रबलताके कारण [illegible] बुद्धि [illegible] प्रबलता होनेपर भी शरीरान्तक [illegible] और [illegible] तुल्य [illegible] है, [illegible] उत्पन्न [illegible]

[illegible]

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुल श्रेष्ठ। आप सब वर्णोंके पृथक् पृथक् विषय वर्णन करिये। कैसी पत्नीसे कैसे पुत्र होंगे। वे सब पुत्र किसके तथा क्या कहे जांयगे? हे राजन। पुत्र विषयमें विविध प्रवाद सुना जाता है, इसहीसे इस विषयमें हम मुग्ध होते हैं, इसलिये आप ही हमारे सन्देहको छुड़ाने योग्य हैं।

भीष्म बोले, आत्मा ही पुत्र रूपसे कहा गया है, उसके बीच अनन्तरज (औरस) निज क्षेत्रमें दूसरेको वीर्य डालनेके लिये नियुक्त करने पर उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे निरुक्तज जानो और अनिरुक्त अर्थात् नियुक्त न होने पर भी कोई यदि चपलताईसे दूसरेके क्षेत्रमें वीर्य डाले, तो उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, उसका नाम प्रसृतज है। निज भार्यामें पतित पुरुषके द्वारा उत्पन्न हुआ पुत्र, दत्तक, मोल लिया हुआ और अध्यूढ अर्थात् जिसकी माता गर्भवती होनेपर व्याही गई थी, वह और नीच कहे हुए छः प्रकारके अपध्वंसजकानीन अर्थात् विवाहके पहले कन्याके गर्भसे उत्पन्न सन्तान तथा छः प्रकारके अपसद,—यही बीस प्रकारकी सन्तान कही जाती है। हे भारत! इसलिये इन्हें विधिपूर्वकतिसे मालूम करो।

युधिष्ठिर बोले, छःप्रकारके अपध्वंसज कौन हैं और छः प्रकारके अपसद ही आपको किनके होते हैं। कहना उचित है, मेरे समीप इस विषयको यथार्थ रीतिसे व्याख्या करिये।

भीष्म बोले, हे भारत युधिष्ठिर! ब्राह्मणसे अन्य तीन वर्णोंमें अनुलोमजात जो तीन प्रकारकी सन्तान होती है, क्षत्रियसे अन्य दो वर्णोंमें अनुलोमजात दो प्रकारको सन्तान हुआ करती है और वैश्यसे दूसरे वर्णमें जो एक प्रकारकी सन्तान जन्मती है, इन छहोंको अपध्वंसज जानो अब अपसदका विषय सुनो। शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुई सन्तान चाण्डाल, क्षत्रियामें व्रात्य अर्थात् संस्कार रहित और वैश्यामें वैद, ये तीन प्रकारके अपसद जाने जाते हैं, फिर वैश्यके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे मागध तथा क्षत्रियासे नामक ये दो, सन्तान दीख पड़ती हैं, और क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे केवल अकेला सूत जातीय सन्तान दीखता है, इसलिये येही छः प्रकारकी सन्तान अपसद नामसे वर्णित हुए हैं। हे नरनाथ! इन्हें सन्तान मिथ्या कारन अर्थात् ये सन्तान नहीं हैं, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किसी किसी सन्तानको क्षेत्रज और किसी किसीको शुक्रज कहते हैं, ये सन्तानलक्ष रूपसे तुल्य होनेपर भी किसके कहाते हैं, इसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, रेतज अर्थात् औरस और बीजके लिये परित्यक्त पत्नीसे जो सन्तान होती है, वह क्षेत्रज है, औरस तथा क्षेत्रज सन्तान तुल्य हैं, और नियम भङ्ग करके गर्भवतीको व्याहने पर उससे जो सन्तान होती है, उसे अध्यूढ कहा जाता है, मेरे समीप इस विषयको सुनो।

युधिष्ठिर बोले, हम औरस सन्तानको ही सन्तान कहके जानते हैं, परन्तु क्षेत्रज सन्तानके विषयमें सन्तानत्व किस प्रकार सिद्ध होता है, औरसमयको भङ्ग करके अध्यूढ किस प्रकार सन्तान हो सकता है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, जो पुरुष आत्मज सन्तान उत्पन्न करके लोकापवादवशसे उसे परित्याग करता है, उसमें वीर्य कारण नहीं है, उस पुत्रका क्षेत्र स्वामी अधिकारी होता है। हे नरनाथ! पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष पुत्रके निमित्त जिस गर्भवती कन्याको ग्रहण करता है, उसके गर्भसे जो पुत्र होता है, वह परिणेताका क्षेत्रज कहके माना जाता है, वीर्य डालनेवालेका न कहा जावेगा। हे भरतश्रेष्ठ! पराये क्षेत्रमें उत्पन्न पुत्र अमुकके सदृश कहलाके उसहीके

... प्रकार जाना जाता है, अपनेको छिपाया नहीं जा सकता, वह प्रत्यक्ष ही मालूम हुआ करता है, इसलिये अध्यूढ़ पुत्र अप्रकाशित नहीं रहता, परिणेताको पुत्रकी इच्छा न हो, तो अध्यूढ़ पुत्र वीर्य डालनेवालेका ही हुआ करता है; हे भारत! शुक्र और क्षेत्र इन दोनोंसे जब उसका प्रमाण नहीं मालूम होता, तब किसी कारणवशसे कृतक पुत्र कहा जाता है।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जब शुक्र और क्षेत्रका परिमाण नहीं मालूम होता, तब किसप्रकारसे कृतक पुत्र जाना जाता है, वह [illegible]

भीष्म बोले, माता-पिताके द्वारा जो पुत्र मार्गमें परित्यक्त होता है, उसे ही कृतक पुत्र कहना चाहिये। उसके पितामाता ऐसा न जानें कि यह कृत्रिम हुआ है। जिसका कोई स्वामी नहीं, उसका जो मालिक बने, तथा जिस वर्णका मनुष्य उसे प्रतिपालन करे, वह उस ही वर्णत्वके धर्मको प्राप्त होगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो पुरुष पितामातासे परित्यक्त हुआ हो, उसका किसके द्वारा किस प्रकार संस्कार होगा और वह किसका पुत्र कहावेगा, किस भांतिसे उसे कन्या दी जावेगी? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पितामाताके त्यागे जानेपर [illegible]

गोत्रका प्रयोजन हुआ करता है। सावर्णोंका निश्चय होनेपर कानीन और अध्यूढ़ पुत्रको निकृष्ट जाने। यह निश्चय है, कि अपने पुत्रकी भांति उनका भी संस्कार करना चाहिये। क्षेत्रज, अपसद अथवा जो अध्यूढ़ पुत्र हो, ब्राह्मण आदिको चाहिये अपने समान उनका संस्कार करें। धर्मशास्त्रोंमें सब वर्णोंका ऐसा ही निश्चय दीख पड़ता है। मैंने यह समस्त विषय तुमसे कहा, अब किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो?

४९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दूसरेको पीड़ा देखके कैसा स्नेह करना चाहिये तथा दूसरोंके सङ्गमें किस भांति अनृशंसताका अनुष्ठान करना योग्य है और गौओंका कैसा माहात्म्य है, इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाद्युति! बहुत अच्छा, मैं तुम्हारे समीप नहुष राजा और च्यवन महर्षिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं। हे भरतर्षभ! पहिले समयमें भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महाव्रती च्यवन महर्षिने जलवास करना आरम्भ किया, वह अभिमान, क्रोध, हर्ष और शोकरहित होके बारह वर्षतक [illegible]

करते थे. महामुनि काष्ठरूपी होके जलके बीच भी रहते थे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह धीमान मुनि वहां बैठके स्थित रहते भी और वे जलचारी जीवोंके प्रीतिपात्र हुए थे। उस समय सब जलचर प्रसन्नचित्त होकर उनके ओठको सूंघते थे। उनको उस जलमें निवास करने रह-नेपर बहुत समय बीत गया। हे महातेजस्वी! अनन्तर किसी समयमें किसी देशके मछुवाहे हाथमें जाल लेकर उस स्थानमें गये। मछलि-योंके धरनेका निश्चय करके बलवान शूर जलमें भ्रमण करनेमें अपरामुख बड़े शरीरवाले निषा-दोंने वहां जाल फैलानेका निश्चय किया। हे भरतसत्तम प्रजानाथ! वे उस ही स्थानमें मछ-लियोंसे परिपूरित जल पाके लगातार जाल फैलाने लगे। अनन्तर उन मछलियोंके अभि-लाषी मल्लाहोंने अनेक प्रकारसे उपाय रचके जालके सहारे गङ्गा और यमुनाके जलको रोका, उन लोगोंने उन स्थानमें जो जाल छोड़ा था, वह अत्यन्त दृढ़ नये सूतोंसे बना हुआ लम्बा और चौड़ा था। अनन्तर वे लोग जलमें उतरकर महत् और बलवत् जालको खींचने लगे। वे सब निर्भय प्रसन्न और परस्परमें वशवर्त्ती होकर मछलियों तथा अन्य जलचरोंको बांधने लगे। हे महाराज! उन लोगोंने यदृच्छाक्रमसे मछलियोंसे घिरे हुए भृगुनन्दन च्यवन मुनिको जालके सहारे आकर्षण किया। उस हरिश्मश्रु जटाधारी अङ्गमें नदीके सिवार लिपटे तथा शङ्ख नाम जलजन्तुओंके नख लिपटे हुए शरी-रसे युक्त वेद जाननेवाले मुनिको जालके द्वारा खिंचे हुए देखके वे सब हाथ जोड़कर सिर नीचा करके पृथ्वीपर गिरे। जालके द्वारा खिंचे जानेसे शोक तथा भयसे सब मछलियें स्थल स्पर्श करते ही विपदग्रस्त हुईं। मुनि उस समय उन मछलियोंकी महत् पीड़ा देख-कर बार बार लम्बी सांस छोड़ते हुए अत्यन्त कृपायुक्त हुए।

निषादोंने कहा, हे महामुनि! हम लोगोंने बिना जाने जो पाप किया है, उस विषयमें आप क्षमा कीजिये। हम लोग आपका कौन सा प्रिय कार्य करें, उसके लिये हमें आज्ञा करिये। मछलियोंके बीचमें च्यवन मुनि मल्लाहोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय मेरी जो महत् अभिलाषा है, उसे तुम लोग सावधान होकर सुनो। मैं मछलियोंके सहित प्राणत्याग वा इनके सङ्ग अपनेको बेचूंगा, जलके बीच एकत्र सहवासके कारण इन्हें परित्याग न कर सकूंगा, जब मुनिने ऐसा कहा, तब निषादोंने भयसे कांपते तथा उदास होके नहुष राजाके निकट जाके समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

५० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा नहुष च्यवन मुनिको वैसी अवस्थामें सुनके मन्त्री और पुरो-हितके सहित शीघ्र ही वहां गये। राजाने यथा रीतिसे शरीर शुद्धि करके हाथ जोड़कर और सिरसे प्रणाम करके च्यवन मुनिसे निकट अपना नाम कहा। हे महाराज! राजाका पुरोहित उस सत्यव्रती देवसदृश महात्माकी पूजा करनेमें प्रवृत्त हुआ।

नहुष बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! कहिये मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य्य करूं? हे भगवन्! यदि कर्त्तव्य कार्य्य अत्यन्त दुष्कर भी होगा, तौभी मैं उसे सिद्ध करनेमें समर्थ हूं।

च्यवन बोले, मत्स्यजीवी मल्लाहवृन्द बहुत थक गये हैं, इसलिये इन लोगोंको मछलियोंके मूल्यके सहित मेरा भी मूल्य दो।

नहुष बोले, हे पुरोहित! भगवान भृगु-नन्दनने जिस प्रकार कहा, उन्हें मोल लेनेके लिये निषादोंको एक सहस्र मुद्रा दो।

च्यवन बोले, हे महाराज! मैं सहस्र मुद्रा मूल्यके योग्य नहीं हूं, भला तुमही क्या विचार

[illegible] अपनी बुद्धिके सहारे निश्चय करके [illegible] उपयुक्त मूल्य दो ।

[illegible] बोले, हे विप्र! निषादोंको एक [illegible] मुद्रा दो । हे भगवन्! यही मूल्य हुआ [illegible], आप क्या समझते हैं?

[illegible] बोले, हे सत्तम! मैं एक सहस्र मुद्राके [illegible] बिकने योग्य नहीं हूं, इसलिये [illegible] मेरा उपयुक्त मूल्य दीजिये ।

नहुष बोले, हे पुरोहित! निषादोंको एक [illegible] मुद्रा दो, यदि यह भी मूल्य न होता हो, [illegible] भी अधिक मूल्य प्रदान करो ।

[illegible] बोले, हे महातेजस्वी महाराज! [illegible] अथवा उससे अधिक धनके भी मैं उप[illegible] नहीं हूं, ब्राह्मणोंके सङ्ग विचार करके [illegible] मूल्य दो ।

नहुष बोले, निषादोंको अर्द्ध राज्य अथवा [illegible] राज्य दे दो, मैं यही मूल्य समझता हूं, [illegible]! आपके विचारसे क्या जान पड़ता है?

[illegible] बोले, हे महाराज! आधा अथवा [illegible] मेरे उपयुक्त नहीं है, ऋषियोंके [illegible] मेरे सदृश मूल्य प्रदान करो ।

[illegible] बोले, यह नहुष राजा च्यवन मह- [illegible]

भगवान् भार्गव क्रुद्ध होनेपर तीनों लोकोंको नष्ट कर सकते हैं मैं केवल बाहुबलसे युक्त तपस्यासे रहित हूं, इसलिये मुझसे जो विनष्ट करेंगे, उसमें कौनसी विचित्रता है? हे विप्रर्षि! मैं मन्त्री और पुरोहितके सहित अगाध जलमें डूब रहा हूं, आप हमारे लिये नौका स्वरूप होइये, महर्षिका मूल्य विशेष रीतिसे निश्चय करिये ।

भीष्म बोले, प्रतापशाली गवीजने नहुषका वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित उस राजाको हर्षयुक्त करते हुए कहा, हे पृथ्वीश्रेष्ठ महाराज! वर्णोंके बीच ब्राह्मण और गऊ श्रेष्ठ तथा अनर्घेय हैं अर्थात् गऊ और ब्राह्मणका मोल नहीं है, इसलिये गऊका मूल्य समझिये । हे महाराज! अनन्तर नहुष महर्षिका वचन सुनके मन्त्री और पुरोहितके सहित अत्यन्त हर्षित होकर दृढ़व्रती भृगुनन्दन च्यवनके समीप जाके उन्हें वचनसे प्रसन्न करके कहने लगे । नहुष बोले, हे भृगुनन्दन विप्रर्षि! आप उठिये, आप गऊके द्वारा मोल लिये गये । हे धार्मिकश्रेष्ठ! मैंने यही आपका मूल्य निश्चय किया है ।

च्यवन मुनि बोले, हे पापरहित राजेन्द्र! अब मैं उठता हूं, तुमने यथार्थमें मुझे मोल

महत् तेज और सुख देनेवाली है, गौयें जिस स्थानमें स्थित होकर निर्भय होके सांस लेती हैं, उस स्थानको भूषित करती हुई उसका पाप दूर किया करती हैं। गऊ ही स्वर्गलोककी सोपान स्वरूप हैं, गौओंका समूह स्वर्गमें भी पूजित हुआ करता है, गऊ देवी स्वरूप हैं, वे काम दोहन किया करती हैं। यह मालूम है, कि दूसरी कुछ भी वस्तु गौओंसे श्रेष्ठ नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! यह गौओंका माहात्म्य कहा गया, इनके एकही गुणको आदिसे अन्त तक वर्णन करना असाध्य है, सब गुणोंको वर्णन करना तो बहुत दूरकी बात है।

निषादवृन्द बोले, हे मुनि! आपका इस लोगोंके सङ्ग दर्शन और वार्त्तालाप हुआ है, साधुओंकी सातपग उच्चारण-निबन्धनसे मित्रता होती है, हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंपर प्रसन्न हूजिये। जैसे अग्नि समस्त हवि उपभोग करती है, वैसे ही आप भी धर्मात्मा प्रतापवान् पुरुषाग्नि हैं। हे विद्वन्! हम लोग प्रणत होके आपको प्रसन्न करते हैं, इसपर कृपा करके आप इस गऊको प्रतिग्रह करिये।

च्यवन बोले, जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तृणोंको जलाती है, वैसे ही दान हीन कृपण मुनि और विषधर सर्पके नेत्र मनुष्योंको मूलके सहित भस्म किया करते हैं। हे कैवर्त्तवृन्द! मैंने तुम लोगोंको गऊ प्रतिग्रह किया, तुम लोग पापरहित होके जलसे उत्पन्न हुई मछलियोंके सहित शीघ्र ही स्वर्गमें गमन करो।

भीष्म बोले, अनन्तर निषादोंने उस पवित्रचित्तवाले महर्षिके प्रभावसे उनके वचनके अनुसार मछलियोंके सहित स्वर्गमें गमन किया। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर राजा नहुष मछलियोंके सहित मल्लाहोंको स्वर्गमें जाते देखके विस्मित हुए। अन्तमें वह गवोज और भृगुनन्दन च्यवन मुनि राजा नहुषको यथा उचित दो वर देनेके लिये सम्मान करनेमें प्रवृत्त हुए। हे भरतसत्तम! अनन्तर महापराक्रमी पृथ्वीपति राजा नहुषने उस समय प्रसन्न होके कहा, उतना बहुत है। उस इन्द्रतुल्य राजाने धर्ममें निष्ठा रहनेके निमित्त वर मांगा, उन्होंने यह कहा, कि ऐसा ही होवे। तब राजाने प्रसन्न होके दोनों ऋषियोंकी पूजा की। च्यवन मुनि दीक्षा समाप्त करनेके अनन्तर अपने आश्रमपर गये, महातेजस्वी गवोजने भी निज आश्रमकी ओर गमन किया। राजा नहुष वर पाके अपने नगरमें आये। हे तात युधिष्ठिर! दर्शन और सहवाससे जैसा स्नेह होता है तथा गौओंका माहात्म्य और धर्म विषय विषयमें तुमने जो मुझसे प्रश्न किया था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे वीर! फिर क्या कहूं? तुम्हारे अन्तःकरणमें किस विषयके जाननेकी अभिलाषा है?

५१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ महाबाहो! मुझे समुद्र समान महान् सन्देह है, आप उसे सुनिये और सुननेपर उस विषयकी व्याख्या करनेके लिये आप ही उपयुक्त हैं। हे प्रभु! धार्म्मिक श्रेष्ठ जामदग्न्य रामके विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य होरहा है। आप मेरे समीप इस ही विषयको वर्णन करिये। वह सत्य पराक्रमी राम किस प्रकार उत्पन्न हुए थे? उनकी उत्पत्तिका विषय आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। हे महाराज! क्षत्रिय कौशिकवंशमें किस प्रकार ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई? हे पुरुषश्रेष्ठ! महानुभाव राम और विश्वामित्रमें अत्यन्त महत् आश्चर्य प्रभाव था, पुत्रोंको छोड़के नातियोंमें यह दोष किस प्रकार सम्भव हुआ, आप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें च्यवन और कुशिकके सम्वादयुक्त

[illegible] करते हैं, महाबुद्धिमान् [illegible] तपोधन महामुनि च्यवन [illegible] इस अविध्य कोपको पहले भी [illegible] सब समस्त [illegible] । दान और [illegible] कुशिकनन्दनको मस्त [illegible] । च्यवन मुनि कुशिकके समीप [illegible], हे पार्थिव! तुम्हारा [illegible] एकत्र [illegible] मुझे इच्छा हुई है।

[illegible] हे भगवन्! बुद्धिमान पण्डि- [illegible] व्याख्यान करनेके समय यह [illegible] हुआ करता है। हे तपोधन! [illegible] जो अतिक्रान्त हुआ है, [illegible] समझके कहूंगा, इसलिये इस [illegible] आज्ञा करिये।

[illegible] अनन्तर [illegible] सहित [illegible] च्यवनके लिये आसन लेकर [illegible] थे, वहीं आये। राजाने [illegible]) [illegible] देकर [illegible] लिये [illegible] दिया और [illegible] पूरा कर दिया। अनन्तर महा- [illegible] नियतव्रती [illegible] विधिपूर्वक मधुपर्क दिया। [illegible] सत्कार करके फिर उनसे [illegible] हम आपके अधीन हैं, [illegible] ! यदि [illegible], धन, दान [illegible] आज्ञा करिये, [illegible] आपकी [illegible]

[illegible]

यदि तुम्हारी इच्छा है, तो तुम दोनों निर्मल हृदयसे प्रणत होकर मेरी सेवा करो। हे भारत! च्यवनके ऐसा कहनेपर राजा और रानी दोनोंने अत्यन्त हर्षित होके उन्हें उत्तर दिया 'ऐसा ही होगा'। अनन्तर ब्राह्मण प्रसन्न होकर उन्हें अत्यन्त रमणीय मन्दिरमें लिगये और देखने योग्य सब वस्तुओंको उन्हें दिखाके बोले,—हे भगवन्! यही आपकी शय्या है, आप इच्छानुसार इस स्थानमें निवास करिये। हे तपोधन! हम आपकी प्रीति पूरी करनेके लिये प्रयत्न करेंगे, उन लोगोंके इस ही प्रकार वार्तालाप करते रहनेपर सूर्यदेवने अस्ताचल पर गमन किया। अनन्तर महर्षि च्यवनने अन्नजल लानेके लिये आज्ञा की, राजा कुशिकने उस समय प्रणत होके उनसे पूछा, हे भगवन्! कौन अन्न आपको रुचते हैं? मैं कैसा भोजनकी सामग्री मंगाऊं। हे भारत! अनन्तर उस महर्षिने परम हर्षके सहित राजाको उत्तर दिया, कि युक्तिसंगत अन्न प्रदान करो। राजा कुशिक च्यवनके वचनका आदर करके बोले, कि 'ऐसा ही होगा।' अन- न्तर कुशिकने उन्हें युक्तियुक्त अन्न प्रदान किया। [illegible] भोजन [illegible] भगवान् च्यवन [illegible] अनन्तर [illegible] मुझे [illegible] है, [illegible] इच्छा [illegible] । अनन्तर [illegible] भगवान [illegible] शयन किया। राजा [illegible] निरत रहा।

[illegible]

करने लगे। अनन्तर उस विप्र भगवान्ने राजाको इसही प्रकार आज्ञा करके इक्कीस दिन तक एक पार्श्वसे सोके निद्रावस्थामें समय अतीत किया। हे कुरुनन्दन! राजा कुशिक पत्नीके सहित निराहार होके च्यवनकी आराधनामें अनुरक्त और प्रसन्न रहके सब भांतिसे उनकी उपासना करने लगे, तपोधन भृगुनन्दन स्वयंही उठे, वह महातपस्वी कुछ भी वचन न कहके गृहसे बाहर निकले। राजा और रानी दोनो-नेही भूखे श्रमयुक्त होके भी उनके पीछे चले। उनके आनेपर भी मुनिने उनकी ओर न देखा, हे राजेन्द्र! भार्याके सहित राजा कुशिकने देखते रहनेपर भी भृगुकुलोद्वह च्यवन अन्तर्द्धान हुए, उनके अन्तर्हित होते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़ा। महातेजस्वी राजाने भार्याके सहित मुहूर्त्त भरके अनन्तर धीरज धरके उस समय उन्हें अन्वेषण करनेमें अत्यन्त यत्न किया।

५२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भार्याके सहित वह राजा ऋषिको न देखनपर बहुत थकके लज्जित तथा चेतरहित होके निवृत्त हुआ। वह दुःखित होके नगरमें प्रवेश करके कुछ भी न बोला, केवल च्यवनके उसही कार्य्यकी चिन्ता करने लगा। अनन्तर राजा चुपचाप निज भवनमें प्रवेश करके भृगुनन्दन च्यवनको उसही शय्यापर सोये हुए देखा। दम्पती उस समय ऋषिको देखके विस्मित हुए और उस विषयको आश्चर्य्य समझके उनके दर्शन निबन्धनसे विश्राम करने लगे। वे यथा स्थानमें स्थित होके फिर ऋषिकी चरण सेवा करनेमें प्रवृत्त रहे। महामुनि दूसरी करवट होके निन्द्रा-सुख भोगने लगे। वीर्य्यवान च्यवन जितने दिनतक एक पार्श्वसे निद्रित थे, उतने ही समयतक दूसरी करवट निद्रित रहके जागे। भार्याके सहित राजाने भयसे शङ्कित होकर किसी प्रकार विचार नहीं किया। हे भारत नरनाथ! उस मुनिने सावधान होके उनसे कहा, मेरे समस्त शरीरमें तेल लगाओ, मैं स्नान करूंगा। भार्याके सहित राजा भूखे और श्रमयुक्त होनेपर भी उनका वचन अङ्गीकार करके महा मूल्यवान शतपाक तेल ले आया। अनन्तर वे दोनों वाक्संयम करके उस सुखसे बैठे मुनिके शरीरमें तेल मलने लगे। महातपस्वी भार्गवने कहा यह पर्य्याप्त हुआ। अनन्तर जब भृगुनन्दनने उस राजा और राजरानीको निर्व्विकार देखा, तब सहसा उठके स्नानगृहमें गये, स्नानशालामें राजाके योग्य स्नानीय जल आदि सब वस्तु तैयार थीं, वह राजाके सम्मुखमें ही उन सबका निरादर करके उसही स्थानमें फिर अन्तर्द्धान हुए।

हे भरतश्रेष्ठ! राजदम्पतीने उस विषयमें कुछ भी असूया न की। हे कुरुनन्दन! अनन्तर नियमानियमके समय च्यवन भगवान्ने स्नान करके सिंहासनपर बैठके सपत्नीक कुशिक राजाको दर्शन दिया। प्रज्ञायुक्त राजा कुशिकने भार्याके सहित प्रसन्न वदन और निर्व्विकार चित्त होके मुनिसे कहा, कि भोजन तय्यार है, मुनिने भी राजासे कहा, लाओ। तब राजा भार्याके सहित वह प्रस्तुत अन्न मुनिके समीप ले आया। अनेक प्रकारके मांस विविध शाक अनेक भांतिके रसाश्रित पिष्टक, विचित्र लड्डू, अपूर्व्व खाण्डव अनेक प्रकार रस मुनि-भोजनके योग्य वनके फल इसके अतिरिक्त सब राज्यभोग बहुतसे विचित्र फल बदर, इङ्गुद, काश्मर्य्य, भल्लातक आदि गृहस्थ और वनवासियोंके खाने योग्य जो सब फल हैं, मुनिके शापभयसे राजाने वह सब संगाया था, अनन्तर च्यवनके अगाड़ी समस्त भोजनकी सामग्री रखी गई। भृगुनन्दन च्यवन मुनि उन सब भोजनके पात्रोंके सहित शय्या और आसन सगाकर उसे सफेद वस्त्रसे ढांकके जला दिया। महाबुद्धिमान

[illegible] इसमें भी [illegible] हुए उनको देखते [illegible] वह सुन्दर फिर अन्तर्धान हुए, तथापि [illegible] भार्याके सहित व्याकुलचित होकर [illegible] इन दोनों [illegible] निवास किया, उस [illegible] नहीं हुए। राजर्षि प्रति- [illegible] उत्तम शय्या उपस्थित [illegible] स्नान, भोजन तथा शयन [illegible] सञ्चित [illegible] च्यवन [illegible] देखते हैं। फिर राजा [illegible] निज स्थानमें [illegible] [illegible] रहित [illegible] हो [illegible]। उस [illegible] होकर सर्वविधि [illegible], [illegible] हे भगवन्! इस क्रीड़ा [illegible] रथमें आपको ले चले। [illegible] प्रसन्नचित्त होकर मुनिसे ऐसा [illegible] वचन [illegible] होके [illegible] पुरञ्जय [illegible] तुम्हारा [illegible] रथ है, [illegible] सज्जित करो। जो [illegible] अस्त्र, [illegible] सुवर्णपात्रों [illegible]

दान [illegible]। [illegible] वस्तुएँ लिये [illegible], [illegible] नके सहित उन्हें [illegible] हे राजन्! [illegible] तुम [illegible] करो, इस विषयमें कुछ भी विचार मत करो। राजा उनका वचन सुनके [illegible] मुनि जो कुछ कहें, तब राजा [illegible] वह सब प्रदान करना। अनन्तर [illegible] रत्नवृन्द, [illegible], [illegible] तथा [illegible] सुवर्ण [illegible] पाड़ियोंके [illegible] समस्त राजसेवक उस स्थानसे [illegible] लगे। नगर [illegible] सब लोग [illegible] हाहाकार करने लगे। राजा [illegible] कोड़ेसे [illegible] तथा [illegible] हुए तथा [illegible]

पर प्रसन्न हुए और उस श्रेष्ठ रथसे उतारकर उन्हें छोड़ दिया। हे भारत! भृगुनन्दन उस राजा और राजमहिषीको विधिपूर्वक रथसे मुक्त करके उत्तम कोमल गभीर प्रसन्नतिसर्ग यह वचन बोले, मैं तुम्हें अत्यन्त उत्तम वर दूंगा, जो इच्छा हो वह मांगो। हे भरतसत्तम! उस मुनिसत्तमने स्नेहवशसे अमृतमय हाथसे अत्यन्त विद्व सुकुमार दम्पतीका शरीरस्पर्श किया। अनन्तर राजाने भार्गवसे कहा, आपकी कृपासे हमें श्रम नहीं हुआ, अब हम श्रमरहित हुए हैं, शेषमें भगवान च्यवन अत्यन्त हर्षित होकर उस समय उनसे बोले, जब मैंने पहले कभी वृथा वचन नहीं कहा, है, तब वह अवश्य ही सिद्ध होगा। हे महाराज! पवित्र गङ्गाका तट अत्यन्त रमणीय स्थल है, मैं कुछ समयतक व्रतनिष्ठ होकर इस ही स्थलमें निवास करूंगा, तुम अपने नगरमें जाओ, वहां विश्राम करके फिर इस ही स्थानमें आना। हे नरनाथ! कलह तुम भार्य्याके सहित आके मुझे यहां ही देखोगे। तुम क्रोध अथवा शोक मत करो, तुम्हारे कल्याणका समय उपस्थित हुआ है, तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाष है, वह निश्चय ही सिद्ध होगी। कुशिक ऐसा वचन सुनके प्रसन्न चित्त होकर उस मुनिश्रेष्ठसे यह अर्थयुक्त वचन बोले, हे महाभाग! हमें क्रोध अथवा शोक नहीं है, हम आपके प्रसादसे पवित्र हुए। हम तेज और बलसे युक्त होकर बलस्थ हुए हैं। आपने कोड़ेसे हमारे शरीरमें जो सब घाव उत्पन्न किये थे, उसे अब नहीं देखता हूं, इस समय मैं भार्य्याके सहित स्वस्थ हुआ हूं। इस देवीको मैंने पहले जिस प्रकार देखा था, उससे भी बढ़के श्री सम्पन्न और शरीरकी सुघराईमें अप्सरासदृश देखता हूं। हे महामुनि! आपके प्रसादसे ही यह सब हुआ है। हे सत्यपराक्रमी भगवन्! आपमें ये सब आश्चर्य नहीं हैं, च्यवन उस समय ऐसा सुनके कुशिकसे बोले, हे नरनाथ! तुम भार्य्याके सहित इस ही स्थानमें आना। राजर्षि कौशिकने महर्षिका ऐसा वचन सुनके उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञानुसार विदा होके सौन्दर्य्ययुक्त शरीरसे देवराजकी भांति नगरमें गमन किया। अनन्तर पुरोहितके सङ्ग अमात्यवृन्द, सेना और गणिकाओंके सहित समस्त प्रजा उनके निकट उपस्थित हुई। कुशिकने उस समस्त प्रजासमूहसे घिरके परम श्रीसम्पन्न और वन्दिजनोंसे पूजित होकर नगरमें प्रवेश किया। अनन्तर महातेजस्वी राजा नगरमें प्रविष्ट होकर पूर्वाह्णिकी क्रिया समाप्त करनेके अनन्तर भोजन करके भार्य्याके सहित रात्रि बिताने लगा। उस समय वे शोकरहित होके देवसदृश परस्परको नवयौवन देखके हृदयमें हर्ष हुए श्रीसम्पन्न शरीर धारण करके साकर आनन्दित हुए। अनन्तर भृगुकुलकी कीर्त्ति बढ़ानेवाले तपस्वी च्यवनने मनोयोगके द्वारा अनेक प्रकारके रत्नभूषित सम्पद्युक्त अत्यन्त रमणीय ऐसा बगीचा रचा कि जिसका इन्द्रकी अमरावती नगरीमें भी दर्शन होना दुर्लभ है।

५३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महात्मा राजा कुशिक रात्रि बीतनेपर सावधान होके पूर्वाह्णिक कार्य्योंको समाप्त करके भार्य्याके सहित उस बगीचेमें गये। हे भारत! अनन्तर राजा कुशिकने गन्धर्व नगर सदृश सहस्र मणिमय स्तम्भोंसे युक्त एक सुवर्णमय प्रासाद देखा। वह उस समय वहांपर सब दिव्य अभिप्राय देखने लगे। रमणीय सानुमय पर्वत, कमलोंके सहित नलिनीदल अनेक प्रकारकी चित्रशाला और विचित्र तोरण अवलोकन किया। सुवर्ण प्रासादके नीचेके हिस्सेमें शाद्वल घाससे युक्त भूमि प्रफुल्लित केतकी, उद्दालक, धव, अशोक, कुन्द

[illegible] अतिमुक्तक चम्पक, तिलक, सुन्दर [illegible] बकुल और फूले हुए कर्णिकाके वृक्ष [illegible] स्थानमें देखे, श्यामवर्ण वारणपुष्प और [illegible] लताओंको [illegible] उस स्थानमें [illegible] देखा। हे भारत! किसी स्थानमें सब [illegible] आदि सब वृक्ष विमानको [illegible] सदृश ऊंचे समस्त प्रासाद, उत्तम [illegible], किसी किसी स्थानमें गर्भ [illegible] स्थानमें विचित्र आसन उत्तम शय्या, [illegible] युक्त रत्न, सुवर्णमय [illegible] प्रकारके भक्ष्य और भोजनको [illegible] स्थानमें उत्तम [illegible] सज्जित [illegible]। [illegible] शुक सारिका, भृङ्गराज [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible] पक्षिया और [illegible]। राजाने चारों ओर प्रमुदित [illegible] किसी स्थानमें [illegible] और [illegible] स्त्रियोंके सङ्ग रत अन्यान्य [illegible] देखा; देखके फिर उनकी ओर दृष्टि [illegible] उस स्थानमें उत्तम मधुर [illegible] और [illegible]। [illegible] राजाने एक बहुत [illegible] [illegible] विचार किया कि [illegible]

[illegible]

अनन्तर राजाने किसी दूसरे [illegible] उस महात्मा जपमें रत मुनिका फिर दर्शन किया। [illegible] च्यवन मुनि इस ही प्रकार योगबलसे राजाको मोहित करके [illegible] और उस वस्तुओंके सहित [illegible] हुए अन्तर्हित हुए, महाराज गंगाका तट फिर निःशब्द हुआ जैसे पहिले [illegible] और [illegible] ही रहे। अनन्तर राजा भार्याके सहित महत् अद्भुत कार्य देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अनन्तर हर्षयुक्त होके भार्यासे बोला, हे कल्याणी! हमने [illegible] प्रसादसे अत्यन्त दुर्लभ विचित्र [illegible] अवलोकन किया, [illegible] तपोबलके [illegible] [illegible] हो सकता है [illegible] मनो-रथसे प्राप्त नहीं होता, वह तपस्यासे सहजमें प्राप्त हुआ करता है, तीनों लोकोंके [illegible] तपस्या ही श्रेष्ठ है [illegible] तपस्या [illegible] [illegible] प्रमाण है। [illegible] और [illegible]

[illegible]

स्वयं सबकी सहित सब इन्द्रियोंको पूर्वही जीतिके जय किया है, इस ही निमित्त तुम कौशिकी राजा हुए। हे तात! वरमांगो, मैं तुम्हारे दाना पूर्ण रीतिसे पूजित हुआ हूं तुममें सूक्ष्म भी आभासमात्रभी किञ्चितमात्र पाप नहीं है। हे महाराज! अब मुझे निज स्थानपर जानेके लिये अनुमति दो। हे राजेन्द्र! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम वर मांगो।

कुशिक बोले, हे भृगुश्रेष्ठ! मैं आपके समीप अग्निके बीच पड़े हुए पतङ्गकी भांति विद्यमान रहके जो भस्म नहीं हुआ, यही बहुत है। हे ब्रह्मन् तपसे भूषित भृगुनन्दन! यही मैंने मुख्य वर पाया, कि आप मुझपर प्रसन्न हुए और मेरे कुलकी रक्षा हुई है। यही मेरे ऊपर कृपा हुई है, यही मेरे जीवनका प्रयोजन है और यही मेरे राज्य और तपस्याका फल है। हे विप्र भृगुनन्दन! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हो, तो मुझे कुछ सन्देह है, उस विषयको आपको व्याख्या करनी उचित है।

५४ अध्याय समाप्त।

च्यवन बोले, हे राजन्! मेरे समीप वर ग्रहण करो और तुम्हारे मनमें जो सन्देह हो, वह भी कहो, मैं तुम्हारी सब वासना सिद्ध करूंगा।

कुशिक बोले, हे भगवन् भार्गव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो आपने मेरे गृहमें जिस लिये निवास किया था, उसका कारण कहिये, मैं उसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे मुनिश्रेष्ठ! आप एक पार्श्वसे सोये रहके कुछ भी न कहके बाहर निकले और अकस्मात् अन्तर्धान हुए, फिर दर्शन दिया। फिर इक्कीस दिनतक सोये रहे, तेल लगाके गमन किया, मेरे भवनमें विविध भोजनकी सामग्री मंगाके अग्निके सहारे उसे भस्म कराया, गहना रथपर चढ़के नगरमें घूमे, धन दान किया और वन प्रदर्शित करके अनेक प्रकारके सुवर्णमय प्रासाद मणि और विद्रुम-निर्मित पलङ्ग आदि प्रदर्शित किया, फिर उन सब वस्तुओंका अदर्शन हुआ। हे महामुनि! इन सबके कारणको मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भृगुकुलधुरन्धर! मैं इन सब विषयोंकी चिन्ता करते हुए अत्यन्त मुग्ध होरहा हूं। हे तपोधन! इसलिये मैं यह समस्त विषय सत्य तथा यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

च्यवन बोले, हे महाराज! ये सब विषय जिस कारणसे हुए हैं, उसे सुनो। जिसने इसे देखा है, वह इन सब विषयोंको नहीं कह सकता। पहले समयमें देवताओंके इकट्ठे होनेपर पितामहने जो कथा कही थी, उसे मैंने सुना था। हे राजन्! इस समय उसे कहता हूं सनो। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके परस्पर विरोधके कारण कुल सङ्कर होगा। हे महाराज! तेज और पराक्रमसे युक्त तुम्हारे एक पौत्र जन्मेगा। इस ही लिये मैं तुम्हारा वंश नाश करनेके निमित्त तुम्हारे समीप आया था, कुशिकवंशके नाश करनेकी कामना करके हुए तुम्हारे वंशको जलानेके लिये मेरी इच्छा थी। उस ही निमित्त मैंने तुम्हारे गृहमें आ पहलेही यह वचन कहा था, कि मैं कोई नियम आरम्भ करूंगा, तुम लोग मेरी सेवा करो। मैंने तुम्हारे गृहमें कोई दुष्कर कार्य न किया; हे राजर्षि! इस ही लिये तुम जीवित हो, तुम्हारी प्रकृतिमें कुछ विकृत नहीं हुई है। मैं यही विचारके इक्कीस दिनतक गृहमें सोता था, कि यदि कोई इतने समयके बीच मुझे जगावे। हे नृपसत्तम! परन्तु मेरे सोनेपर जब भार्य्याके सहित तुमने मेरी सेवा करते हुए निद्रा भङ्ग नहीं की, उस ही समय मैं तुम्हारे ऊपर मन ही मन प्रसन्न हुआ था। हे महाराज! जब उठके बाहर निकला, उस समय यदि तुम

तुमने पूछा कि 'कहां जाओगे?' तो मैं तुम्हें कहूंगा। हे महाराज! अनन्तर मैं अन्तर्धान होकर तुम्हारे गृहमें योग अवलम्बन करके इक्कीस दिन सोया था। हे नरनाथ! तुम क्या भूखे अथवा परिश्रमसे थककर मेरे विषयमें असूया करो,—ऐसा ही विचारके मैंने तुम्हें क्षुधासे कर्षित किया था। हे नरश्रेष्ठ महाराज! भार्याके सहित तुम्हारे अन्तःकरणमें अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणसे भी विकार नहीं हुआ, इसलिये मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ था। भोजनकी सारी सामग्री मंगाके उस समय मैंने जो भस्म कराई थी, उसका यही कारण था, कि यदि तुम लोग मत्सरताके वश होकर मेरे विषयमें क्रोध करते, तो मैं तुम्हें शाप देता, परन्तु उस समय तुमने मेरे विषयमें क्षमा की थी। हे नरनाथ! अनन्तर मैं रथपर चढ़के तुमसे कहा कि तुम भार्याके सहित "रथमें जुतकर मुझे ले चलो" तुमने क्षत्रिय दुर्लभ है क्षत्रियपनेमें प्राप्त होनेपर तपस्विता अत्यन्त दुर्लभ है। जो हो तुम्हारी यह वासना सफल होगी। इसीसे कौशिक द्विज बनेगा, तुम्हारी तीसरी पीढ़ीमें ब्राह्मणत्व संक्रान्त होगा। हे नृपश्रेष्ठ! भृगुवंशके तेजसे तुम्हारा वंश सहित होगा, तुम्हारा पौत्र ब्राह्मण तपस्वी और अग्निके समान तेजस्वी होगा, वह तीनों लोकोंके बीच सदा ही देववृन्द और मनुष्योंको भय उत्पन्न करेगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे राजर्षि! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो, मैं सब तीर्थोंमें घूमनेके लिये जाऊंगा, समय बीत रहा है।

कुशिक बोले, हे महामुनि! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है। हे पापरहित! आप जैसा कहते हैं, मेरा पौत्र ब्राह्मण होवे। हे भगवन्! मेरा वंश ब्राह्मण होवे, यही मेरे लिये वर है। मेरा यह अभिलाषा है, कि

उत्पन्न करेगा, पर्व्वतों और वनोंके सहित पृथ्वी मण्डलको भस्मीभूत करेगा। वह मुनिसत्तम समुद्रके बीच बाड़वामुखमें उस अग्निको डाल कर कुछ समयके लिये शान्त रखेगा। हे पाप-रहित महाराज। उनके पुत्र भृगुनन्दन ऋचिकके समीप समस्त धनुर्व्वेद मूर्त्तिमान् होके उपस्थित होगा। दैव कारणसे क्षत्रियोंके अभावके हेतु वह उस धनुर्व्वेदको ग्रहण करके तपस्याके सहारे शुद्ध चित्तवाले निजपुत्र जमदग्निमें उसे स्थापित करेंगे। हे भृगुश्रेष्ठ। जमदग्नि उसही धनुर्व्वेदको धारण करेंगे। हे धर्म्मात्मन्। वही जमदग्नि तुम्हारे वंशसे कन्या ग्रहण करके उससे वंशकी उत्पत्तिके निमित्त विवाह करें। महातपस्वी जमदग्नि तुम्हारे पौत्र गाधिकी पुत्रीको पाके उसके गर्भसे क्षत्रिय-धर्म्मयुक्त ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न करेगा और वही महातेजस्वी तुम्हारे वंशमें गाधिके वीर्य्यसे तेजमें वृहस्पतिके समान अत्यन्त धार्म्मिक महातपस्याशाली विप्रकर्म्म करनेवाला विश्वामित्र नामक क्षत्रिय पुत्र प्रदान करेगा। उस परिवर्त्तन विषयमें दोनों स्त्रीही कारण होंगी; पितामहके नियोगसे यह अन्यथा न होगा। तीसरी पीढ़ीमें तुम्हारे वंशमें ब्राह्मणत्व होगा। तुम शुद्धचित्त भार्गवोंके सम्बन्धी होगे।

भीष्म बोले, हे भरत सत्तम! उस समय धर्म्मात्मा राजा कुशिक महानुभाव च्यवन मुनिका वचन सुनके आनन्दित हुए और कहा कि ऐसाही होवे। महातेजस्वी च्यवनने फिर उस राजासे वर मांगनेको कहा। राजा उनसे बोला, हे महामुनि। अच्छा मैं आपके समीप इच्छानुसार वर मांगता हूं, मेरा वंश ब्राह्मणकुलमें परिणत होवे और इस वंशकी बुद्धि धर्म्ममें रत रहे। च्यवन मुनि राजाका वचन सुनके बोले, कि ऐसा ही होगा, अनन्तर राजासे अनुमति लेकर तीर्थ यात्राके लिये गमन किया। हे राजन्। यह मैंने भृगु और कुशिक गणोंके परस्पर सम्बन्धका कारण विस्तारपूर्व्वक तुमसे कहा है। हे महाराज। च्यवन ऋषिने राम और विश्वामित्र मुनिके जन्म विषयमें जिस प्रकार कहा था, उस समय वैसा ही हुआ।

५६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! मैं आपका वचन सुनके बार बार इसे विचारके तथा श्रीमान् राजाओंसे रहित इस पृथ्वीकी दशाको पर्य्यालोचना करके बहुत ही मुग्ध होता हूं। हे भारत। मैं पृथ्वीमण्डल जीतकर सैकड़ों राज्य पाके भी करोड़ों पुरुषोंका संहार करनेसे इस समय परिताप करता हूं। जो सब वरवर्णिनी स्त्रियें पति, पुत्र, भ्राता और मामा आदिसे हीन हुई हैं, उनकी कैसी अवस्था होगी? हम उस कुरुकुल, स्वजनों और सुहृदोंको मारनेसे अवाक्शिरा होके निःसन्देह नरकमें पड़ेंगे। हे भारत। मैं उग्र तपस्यासे शरीरको संयुक्त करनेकी इच्छा करता हूं। हे नरनाथ! इस समय मु आपका यथार्थ उपदेश सुननेकी अभिलाष है

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा भी युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके बोले, हे नरनाथ तुममें जो अद्भुत रहस्य प्रकट भया है। उ विषयमें मरनेके अनन्तर जिस पुरुषको जो ग प्राप्त होती है, उसे कहता हूं, सुनो।

हे विभु। तपस्याके सहारे स्वर्ग मिलत है, तपस्यासे योग लाभ हुआ करता है, तप स्यासे ही परमायुकी प्रकर्षता तथा भोग प्र होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ। तपस्याके सहारे ज्ञान विज्ञान, आरोग्यता, रूप, सम्पति और सौभाग प्राप्त होता है। मौनव्रतसे जगतके प्राणियों पर आज्ञा प्रदान करनेकी सामर्थ प्राप्त होती है। दानसे समस्त उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वार

[illegible] द्वारा परमायु प्राप्त होती है। अहिं-
[illegible] उत्पन्न है, दीक्षाका सत्कुलमें जन्म,
[illegible] भोजन करनेवाले मनुष्योंका फल
[illegible] और दूध खानेवालोंको स्वर्गप्राप्ति हुआ
करती है। जो लोग व्रत पीके रहते हैं, उन्हें
[illegible] मिलता है। दानके सहारे मनुष्य अधिक
[illegible] हुआ करता है, गुरुसेवासे विद्या
मिलती है और प्रतिदिन श्राद्ध करनेसे सन्तति
[illegible] होता है। शाक भोजन करनेसे मनुष्य
[illegible] युक्त हुआ करता है। ऋषि लोग
[illegible] कहते हैं, कि तृण भक्षणसे स्वर्ग
मिलता है। जो लोग तीन बार स्नानकर वायु
[illegible] प्राणायाम करके निवास करते हैं,
[illegible] प्रजापति लोक प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण
प्रतिदिन स्नान करके प्रातः और सायं सन्ध्याको
[illegible] जप करता है, वह दक्ष प्रजापति होता
है, जो पुरुष जलरहित स्थलमें साधना करता
है उसे राज्य मिलता और अनशन व्रत अव-
लम्बन करनेसे नाकपृष्ठमें वास हुआ करता
है। [illegible] सोनेवाले तपस्वियोंको गृह और
[illegible] मिलता है, चीर और वल्कल वसन दान
[illegible] वस्त्र तथा समस्त आभूषण
[illegible] शय्यापर शयन करते हैं, वे [illegible]
विमुक्त होते हैं। देवसेवासे राज्य और दिव्य-
रूप प्राप्त होता है, दीपक जलाने या दान
करनेसे मनुष्य नेत्रवान हुआ करते हैं। प्रेक्ष-
णीय प्रदान करनेसे स्मृति और बुद्धि प्राप्त
होती है, सुगन्ध और माला दान करनेसे बहु-
तसी कीर्त्ति हुआ करती है, केश तथा श्मश्रु-
धारी मनुष्योंको श्रेष्ठ सन्तति होती है।

हे महाराज! बारह वर्षतक सब भोगोंको
परित्याग करके जप आदि नियमोंका स्वीकार
और त्रिकाल स्नान करनेसे परलोकमें भी
श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। हे पुरुषश्रेष्ठ! ब्राह्म-
विवाहकी विधिके अनुसार कन्या दान करनेसे
मनुष्य दासदासी आभूषण क्षेत्र और गृह प्राप्त
पाता है। हे भारत! यज्ञ और उपवासके
द्वारा मनुष्य सुरपुरमें गमन करता है, फल
फूलसे परमेश्वरकी आराधना करनेसे मनुष्य
[illegible] ज्ञानयुक्त ज्ञान लाभ किया करता है।
सोनेकी सींगसे शोभित [illegible] गऊ दान
करनेसे मनुष्य स्वर्गमें वास पाकर देवलोक
पाता है, स्वर्गवासी देववृन्द [illegible] किया
करते हैं। [illegible]

उद्धार करती है। जो लोग प्राजापत्यकी विधिके अनुसार कन्यादान करते, जो लोग ब्राह्मणको भूमि प्रदान करते अथवा जो लोग विधिपूर्व्वक अन्न दान करते हैं, उन्हें इन्द्रलोक मिलता है। जो मनुष्य स्वाध्याय, चरित्र और गुणयुक्त ब्राह्मणको सर्व्व गुणमयी गृहकी सामग्री शय्या आदि प्रदान करते हैं, उनका उत्तर कुरुदेशमें निवास हुआ करता है। धुर्य्य प्रदान और गऊ दान करनेसे मनुष्यको अराग गौओंका लोक मिलता है, सुवर्ण दान स्वर्गका हेतु हुआ करता है और अस्सी रत्तीके परिमाणसे कनकका दान उससे भी श्रेष्ठ है। छत्र-दान करनेसे उत्तम स्थान, उपानह दानसे सवारी और वस्त्र दान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूप प्राप्त होता है और सुगन्धित वस्तु दान करनेसे मनुष्य सुगन्धशाली हुआ करता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको फल अथवा फले हुए वृक्ष दान करता है, उसे सहजमें ही स्त्री, समृद्धि और अनेक रत्नोंसे युक्त गृह प्राप्त होता है। ब्राह्मण भोजनके योग्य अन्न और पीने योग्य रस दान करनेवाले मनुष्योंको विधिपूर्व्वक सब रस प्राप्त होते हैं और जो लोग घर छानेकी सामग्री दान करते हैं, उन लोगोंको निःसन्देह वे समस्त उत्तम विषय प्राप्त होते हैं।

हे नरनाथ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको माला, धूप, लगानेको सुगन्ध और स्नानकी वस्तु दान करता है, वह इस लोकमें परम सौन्दर्य्य लाभ करके रोगरहित हुआ करता है। हे राजन्! जो पुरुष ब्राह्मणको अन्नसे भरा हुआ शय्यायुक्त गृहदान करता है, वह अनेक रत्नोंसे युक्त पवित्र और मनोहर निवासस्थान पाता है। जो लोग ब्राह्मणोंको तकिये और विचित्र बिछावनेके सहित सुगन्धियुक्त शय्या दान करते हैं, उन्हें सहजमें ही रूपवती मनको हरनेवाली महत्कुलमें उत्पन्न हुई भार्य्या प्राप्त होती है। जो मनुष्य वीरशय्यापर शयन करता है, वह जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, उस पितामहके समान होता है,—ऐसा महर्षि लोग कहा करते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भीष्मके यह समस्त वचन सुनके प्रसन्न-चित्त होकर वीरमार्गकी कामना करके आश्रममें वास करनेकी अभिलाष नहीं की। अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ प्रजापति युधिष्ठिर पाण्डवगणसे बोले, कि पितामहने जो कथा कही है, उसमें तुम लोगोंकी रुचि होवे। उस समय पाण्डवगण और यशस्विनी द्रौपदीने युधिष्ठिरके वचनको स्वीकार करके उनका सम्मान किया।

५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुपुङ्गव भरतश्रेष्ठ! आराम तथा तालावोंके उत्सर्ग निबन्धनसे जो फल होता है, इस समय आपके निकट मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, इस लोकमें उत्तम देखने योग्य अनेक शास्त्रोंके उत्पत्तिकी मूल विचित्र धातुओंसे विभूषित समस्त प्राणियोंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठ रूपसे वर्णित हुआ करती है। वैसी भूमिके क्षेत्र विशेषमें आराम और तड़ाग प्रभृति समस्त जलाशयोंके विषयको मैं क्रमसे कहता हूं और तड़ाग आदि बनानेसे जो फल होते हैं, वह भी कहूंगा। तड़ागवान् मनुष्य तीनों लोकोंके बीच सब स्थानोंमें पूजनीय होते हैं, अथवा मित्र गृह सदृश उपकारक मत्स्य उत्पत्तिके हेतु मैत्र अर्थात् सूर्य्यके प्रीतिपात्र और मित्र अर्थात् देवताओंके विशेष रीतिसे पोषक तड़ागका स्थापन करना बहुत ही कीर्त्तिजनक हुआ करता है। देशके बीच उत्तम रीतिसे बनाहुआ सहाश्रय तड़ागको मनीषि लोग धर्म्म, अर्थ और कामके फल स्वरूप कहा करते हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रका

[illegible] प्राणियोंके पक्षमें तड़ाग उपकार जनक है, [illegible] आदि सब जलाशय श्रेष्ठ श्री प्रदान [illegible]। देवता, मनुष्य, गन्धर्व्व, पितर, सूर्य्ये, [illegible] और समस्त स्थावरोंके लिये जलाशय [illegible] हुआ करता है। उस तालावमें स्नान [illegible] फल होता है और उस विषयमें [illegible] जिस प्रकार जल प्राप्तिका विषय [illegible] हैं, वह भी कहता हूं, वर्षा-कालमें [illegible] तालावमें जल रहता है, उसे अग्निहो- [illegible] मिलता है, ऐसा मनीषिवृन्द कहा [illegible]। शरत्कालमें जिसके तालावमें जल [illegible] है, वह परलोकमें जाके सहस्र गोदानके [illegible] पाता है। हेमन्त ऋतुमें जिसका [illegible] जलरहित नहीं होता, उसे बहुतसे [illegible] दानसे युक्त यज्ञके फल प्राप्त होते हैं। [illegible] जिसका तालाव जलसे परिपूर्ण [illegible] है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता [illegible] लोग ऐसा ही कहा करते हैं। [illegible] तालाव वसन्तऋतुमें विधिपूर्व्वक जलसे [illegible] रूप होते हैं, वे अतिरात्र यज्ञके फल [illegible]। ग्रीष्मकालमें जिसके तालावमें [illegible] जल विद्यमान रहता है, उसे

स्वर्गलोकमें सह आमोद करते हैं [illegible] परलोकमें ये समस्त विषय अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जलदान समस्तदानसे बढ़के तथा विशिष्ट है, इसलिये जलदान अवश्य करना चाहिये। यह सब तालावके उत्कर्ष कहे गये, अब वृक्षोंके लगानेका फल कहता हूं। स्थावर प्राणियोंकी छः प्रकारकी जाति कही गई है; उसके बीच अश्वत्थ वट प्रभृति वृक्ष, कुशस्तम्ब आदि गुल्म, वृक्षादिकों पर फैली हुई पाटली आदि लता, पृथ्वीपर पड़ी हुई कूष्माण्ड प्रभृति वल्ली, काश आदि त्वक्सार, उलप प्रभृति तृण जाति हैं। इन छः प्रकारके वृक्ष जातिके लगानेसे ये समस्त गुण प्राप्त हुआ करते हैं,—मनुष्य लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें शुभ फल मिलता है तथा जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उनका पितरोंके सह एकत्र नाम होता है, देवलोकमें जानेपर भी उनका नाम लुप्त नहीं होता। हे भारत! जो लोग वृक्ष लगाते हैं, वे अतीत और अनागत दोनों ओरके पितृकुलका उद्धार किया करते हैं, इसलिये वृक्षोंको लगाना चाहिये। जो पुरुष वृक्षोंको लगाता है, वृक्ष [illegible] निःसन्देह उसके पुत्र बनते हैं, [illegible] पर

वाले और जिन ब्राह्मणोंने यज्ञ किये हैं तथा जो सत्यवादी हैं, वे सभी लोग स्वर्गमें निवास किया करते हैं, इसलिये तालाब खुदवाना और बाड़ोंमें वृक्ष लगाना चाहिये, [illegible] यज्ञके सहारे देवताओंको तृप्त करे और सदा सत्य वचन कहे।

५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुश्रेष्ठ! आपने वेदोंके बीच जो सब दानके विषय कहे गये, उनमेंसे आपके मतमें विशिष्ट दान कौनसा है? हे प्रभु! उस विषयमें मुझे बहुत ही संशय है, इसलिये जो दान दाताका अनुगमन करता है, आप मेरे समीप उस ही दानका विषय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, सब प्राणियोंके विषयमें अभय दान, विपत्कालमें अनुग्रह और प्यासे याचकोंको जो अभिलषित वस्तु दान की जाती है, उसे ही देके दाता दी हुई समझे, वह दान सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। हे भरतश्रेष्ठ! जो दान दिये जानेपर दाताका अनुगमन करता है, वह यही है,—जीवोंके विषयमें अभयदान और विपत्कालमें अनुग्रह प्रकाश करनेपर समय और सामर्थ्य होनेपर उपकृत पुरुषका ऋण चुकानेके लिये दाताके अनुगत हुआ करता है। सुवर्ण, गऊ और पृथ्वी,—इन तीनोंका दान ही पवित्र है, ये पापी पुरुषका भी उद्धार करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसलिये तुम साधुओंको सदा इन्हीं वस्तुओंका दान करो। दान ही केवल सब पापोंसे अवश्य मुक्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। लोगोंको जो जो वस्तुएं इष्ट हों तथा घरके बीच दाताको जो प्यारी वस्तु हों, उन प्रिय वस्तुओंको अक्षय करनेवाले मनुष्योंको योग्य है, कि वे उन्हें गुणवान मनुष्योंको दान करें। प्रियवस्तु देने तथा प्रियकार्य्य करनेवाले पुरुष सदा प्रिय हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर। जो दीन पुरुष दूसरेको समर्थ जानके अनासक्त भावसे उसके समीप प्रार्थना करें, उसे यदि वह शक्तिके अनुसार दान न करे, तो नृशंस कहाता है। शत्रु भी यदि दीन होकर शरणागत होवे, उसपर भी विपत्कालमें जो पुरुष कृपा करता है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। जो लोग कृश, कृतविद्य, वृत्तिरहित और अवसन्न पुरुषकी क्षुधाको शान्त करते हैं, उनके समान पुरुष और कोई भी नहीं है। हे कुन्तीपुत्र! निज धर्म्ममें रत साधु, पुत्र और भार्य्या आदिसे कर्षित तथा अयाचक मनुष्यको सब प्रकारके उपायसे निमन्त्रण करे। हे भारत! जो लोग देवता और मनुष्योंके निकट कुछ आशा नहीं करते उन पूजनीय सदा सन्तुष्ट और प्राप्त हुई वस्तुसे जीविका निबाहनेवाले विषैले सर्पके समान ब्राह्मणोंसे अपनी रक्षा करो वैसे ब्राह्मण और उत्तम ऋत्विकोंके भावको जानके जो कार्य्यको करनेमें समर्थ हो, वैसे मनुष्यके द्वारा पूछके निमन्त्रण करना।

हे कौरव! सर्व्वकाम सुखप्रद श्रेष्ठ और परिच्छदके सहित आश्रम प्रभृति प्रदान करके उन पुरुषोंको निमन्त्रण करना योग्य है। हे युधिष्ठिर! यदि वे पुण्यकर्म्मशील धार्म्मिक पुरुष श्रद्धाके सहित उन वस्तुओंको ग्रहण करें, तो वे धर्म्मार्थ ही धर्म्म किया करते हैं। जो लोग विद्यास्नात, व्रतस्नात तथा जो स्वामीके आसरेगीर न होकर जीवन धारण करनेकी अभिलाष करते हैं, जिनके स्वाध्याय और तपस्या अत्यन्त गूढ़ तथा जो संशितव्रती हैं, उन पापरहित जितेन्द्रिय निज स्त्रीमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले ब्राह्मणोंका यदि तुम उपकार करोगे, तो तुम्हारा वह कल्याण लोकमें विख्यात होवेगा। जैसे सन्ध्या और सवेरेके समय द्विजातियोंके अग्निहोत्र उत्तम रीतिसे जलते रहते हैं, वैसे ही संयतचित्तवाले ब्राह्मणोंको जो दान

किया जाता है, वह वैसा ही है। हे तात! ... वडायुक्त दक्षिणा युक्त निपव ... वही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। तुम ... इसलिये तुम्हारे समीप सदा ही यश ... है। हे युधिष्ठिर! जैसे ब्राह्मणोंको ... किया जाता है, वह पितृतर्पणको ... इन लोगोंको ... दान करो ... उनकी पूजा करो तो देवताओंके समीप ... होगे। जो ब्राह्मण प्रियवादी होते हैं, वे ... नहीं करते और कणमात्र भी ... करते, वेही हमारे लिये अत्यन्त ... हैं। ... निष्पृह हैं, इसलिये ... सम्मान नहीं करते और अन्य विष- ... नहीं होते, वे लोग पुत्रकी भांति ... प्रतिपालन करने योग्य हैं, ... उनके ही प्रसाद तथा ... स्वर्ग और ... दोनों ही प्राप्त ... क्षत्रिय, ... और नहीं है हमारे लिये ब्राह्मणवृन्द ... हैं। हे तात! क्षत्रियोंका दारुण कर्म देखकर ब्राह्मण लोग अपूजित होके यदि इसे परित्याग करें, तो ब्राह्मणोंके बिना ... हीन लोकनिन्दित वृत्तिरहित क्षत्रियोंके जीनेका क्या प्रयोजन है? हे राजन्! इस विष- यमें जो सनातन धर्म है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। ऐसी जनश्रुति है, कि पहिले सत्ययुगमें क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंकी सेवा की थी, वैश्य क्षत्रियोंकी और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे। शूद्र इसमें जलती हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणोंकी सेवा करे। क्षत्रिय और वैश्य ... ब्राह्मणोंकी सेवा करें। कोमलता, सत्यशीलता और सत्य धर्मसे पालन ... ब्राह्मणोंकी सेवा करो। ... हुए ... और उनके ... प्रताप हुए हैं, ब्राह्मणोंके सहित ... तपस्या और ...

युधिष्ठिर बोले, यदि दो ब्राह्मण समान आचार, जन्म और विद्यामें सदृश हों, उनमेंसे एक याचक और दूसरा अयाचक हो, तो उन दोनोंमेंसे किसे दान करनेसे विशेष फल होता है?

भीष्म बोले, हे पार्थ। याचककी अपेक्षा न मांगनेवाले ब्राह्मणको दान करना कल्याणकारी है, धीरज रहित दीनकी अपेक्षा धैर्य्यशाली पूजनीय है। रक्षा करना ही क्षत्रियोंका धैर्य्य है और न मांगनाही ब्राह्मणोंका धैर्य्य है, सन्तुष्ट चित्त धृतिमान् विद्वान ब्राह्मण देवताओंको सन्तुष्ट किया करते हैं। हे भारत! दरिद्र पुरुषके याचनेकोही पण्डित लोग तिरस्कार कहते हैं, जब मनुष्य जांचते हैं, तब वे दस्युकी भांति उद्वेगजनक हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर। मांगनेवाले, मनुष्य ही मरे हुएके तुल्य हैं, देनेवाला कदापि नहीं मरता, दाता दान करते हुए याचक तथा अपनेको जीवित करता है। याचक पुरुषोंको जो वस्तु प्रदानकी जाती है, वह अनृशंसताही परम धर्म्म है, बिना जांचे जो लोग अवसन्न होरहे हों, उन्हें जिस उपायसे हो सके निमन्त्रण करना योग्य है। यदि वैसे श्रेष्ठ द्विज तुम्हारे राज्यमें वास करें, तो तुम यत्न पूर्व्वक उन्हें छाईसे छिपी हुई अग्निकी भांति जानना। हे कुरुवंशावतंस। तपस्याके सहारे दीप्यमान ब्राह्मण यदि पूजित न हों, तो वे इस पृथ्वीको जला सकते हैं, इसलिये वैसे पुरुष अवश्य पूजाके योग्य हैं। हे शत्रुतापन! वे लोग ज्ञान, विज्ञान, तपस्या और योग युक्त होनेसेही पूजनीय हैं, इसलिये उन ब्राह्मणोंकी पूजा-करना। वेदविद्या व्रतसे युक्त अयाचक ब्राह्मणोंके निकट जाके अनेक प्रकारसे धन प्रभृति दान करनेसे पुरुष दाता होता है, सन्ध्या और भोरके समय अग्निहोत्रमें होम करनेसे जो फल होता है, उन्हें दान करनेसे वैसा ही फल कहा गया है। हे कौन्तेय! जो लोग विद्यास्नात, वेदस्नात, व्रतस्नात और स्वामीके आसरेमें रहके जीविका निर्व्वाहकी इच्छा नहीं करते, जिनके निज शाखोक्त वेदपाठ और तपस्या अत्यन्त गूढ़ है, उन संशितव्रती ब्राह्मणोंको बने हुए मनोहर आश्रम, वस्त्र सेवक तथा दूसरी समस्त आवश्यकीय वस्तुओंके द्वारा निमन्त्रण करे।

हे युधिष्ठिर। वे सूक्ष्मदर्शी धर्म्मज्ञ ब्राह्मण लोग कर्त्तव्य कार्य्य जानके श्रद्धापूर्व्वक दान प्रतिग्रह किया करते हैं, वैसेही ब्राह्मणोंके भोजन करनेके अनन्तर घर जानेपर जिनकी स्त्रियां जांचनेवाले बालकोंको निज स्वामीके आनेपर "खानेको दूंगी,"—ऐसा कहके धीरज दिया करती हैं, वैसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करे। हे तात! प्रातःकालमें सदा ब्रह्मचारी ब्राह्मण अन्न भोजन करते हुए गार्हपत्य आवहनीय और दक्षिणाग्नि, इन तीनों अग्नियोंको प्रसन्न करते हैं। हे तात! दिनके मध्यानमें तुम यज्ञ करते हुए गऊ, सुवर्ण और वस्त्र दान करो, उससे इन्द्र तुमपर प्रसन्न होंगे, हे युधिष्ठिर! तीसरे बार सन्ध्याको वैश्वदेव करना चाहिये जोकि देवता, पितर और ब्राह्मणोंको प्रदान किया जाता है। सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसा, भागके अनुसार सविभाग, दम, त्याग, धृति और सत्य तुम्हारे अवभृतके निमित्त हुआ करते हैं। यह तुम्हारे निकट श्रद्धायुक्त सदक्षिणा यज्ञका विषय कहा गया, यही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। हे तात! तुम्हारी इस यज्ञमें सदा प्रवृत्ति होवे।

६० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस लोकमें दान और यज्ञ करनेसे परलोकमें महाफल होता है, परन्तु इन दोनोंके बीच किसका फल श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है? कैसे पुरुषोंको दान करना चाहिये और किस प्रकारसे किस

[illegible] करना उचित है ? हे भारत ! इसे [illegible] जाननेकी इच्छा करता हूं । [illegible] मैं यही पूछता हूं, मुझे समस्त दान [illegible] उपदेश करिये । हे तात ! अनृशंस [illegible] सत्त्ववेदिके बीच जहां पुण्येन [illegible] जाता है, क्या वही कल्याणकारी [illegible] है ? इसही विषयको मेरे समीप [illegible] करिये ।

[illegible] हे तात ! क्षत्रियोंमें सदा ही [illegible] रहते हैं, इसलिये दान ही उनके [illegible] है । साधु लोग पाप कर- [illegible] दान नहीं लेते, इसलिये [illegible] यज्ञ करें । यदि राजा परम [illegible] प्रतिदिन दान करें और ब्राह्मण [illegible] प्रतिग्रह करें, तो वही परम पवित्र [illegible] है । सब प्राणियोंके अभयदाता वेदज्ञ [illegible] और तपस्यायुक्त ब्राह्मणोंसे तुम [illegible] यज्ञविषयमें यत्नवान् होके, ब्राह्मण [illegible] तुम्हारा दान ग्रहण न करेंगे, तो [illegible] इसलिये उनके निमित्त सहारे, अन्न और गया पर्यन्त दान करना । हे भारत ! निन्दा न जानके व्रतिनिष्ठित ब्राह्मणोंको ये सब दक्षिणायुक्त विधान दान करने योग्य हैं । प्रच्छन्न वा प्रकाश भावसे वृत्ति दान करके ब्राह्मणोंको प्रतिपालन करना उचित है, क्षत्रियोंके लिये यह कार्य अश्वमेध और राजसूय यज्ञसे भी श्रेष्ठ है । इस ही प्रकार तुम पापोंसे छूटके तथा पवित्र होके स्वर्गलोक पाओगे, तुम फिर कोश सञ्चय करके राज्य पालन करोगे, उसहीके सहारे तुम्हें समस्त धन और ब्राह्मणत्व प्राप्त होगा । हे भारत ! तुम अपनी और दूस- रेकी वृत्तिकी रक्षा करो, पुत्रकी भांति [illegible] [illegible] और प्रजा समूहको प्रतिपालन करो । हे भारत ! ब्राह्मणोंमें सदा तुम्हारा योगक्षेम रहे, तुम्हारा जीवन ब्राह्मणोंके निमित्त ही [illegible] होवे । उन लोगोंके प्रतिपालन करनेमें कदापि विरत न होना, यह ही उत्तम धर्म [illegible] [illegible] है, यह तुम्हारा नहीं परम ब्राह्मणोंका ही धन है । [illegible] अधिराज और [illegible]

और जयापात पाखंडियोंके धनकी रक्षा करनी चाहिये और सदा पहलेपर जो लोग कुआं खोदके खेतमें धान्य ले सींचते हैं, उनके और सहन करनेवालोंके धन यज्ञके लिये लेना उचित नहीं है। जो राजा कसाईकी भांति व्यवहार करता है, वही नवकार उनके राजश्रीको निनष्ट करता है, इसलिये राजा उत्तम सहत् भोग्यवस्तु दान करे और साधुओंकी क्षुधा तथा भय दूर करे भारतश्रेष्ठ जिसके भोजनकी सुस्वादु वस्तुओंको केवल देखा ही करते हैं, कदापि पाते नहीं, अथवा विधिपूर्व्वक भोजन नहीं कर सकते, उससे अधिक दूसरा पातकी कौनसा है? तुम्हारे ऐसे राज्यमें विद्वान ब्राह्मण यदि क्षुधाके द्वारा अवसन्न होंगे, तो मानो तुम अत्यन्त पाप करके भ्रूणहत्या अपराधका फल पाओगे। राजा शिविने ऐसा कहा है, कि जिसके राज्यमें ब्राह्मण अथवा अन्य कोई मनुष्य क्षुधासे खिन्न होता है, उस राजाके जीनेको धिक्कार है। जिस राजाके राज्यमें स्नातक ब्राह्मण क्षुधासे अवसन्न होते हैं, उसकी राज्यकी वृद्धि नहीं होती और इकबारगी बहुतसे राजा एकत्र होके उसके विपक्षी बनते हैं। जिसके राज्यमें रोनेवाले पति और पुत्रोंके बीचसे रुदन करती हुई स्त्री हरी जाती है, वह राजा मरे हुएके तुल्य है, उस समय वह जीता नहीं है। अरक्षित, हर्त्ता, लोपकर्त्ता, अनायक और निर्गुण कलि समान राजाको प्रजा एकत्र होके नाश करे। मैं तुम लोगोंका रक्षक हूं। ऐसा वचन कहके जो राजा रक्षा नहीं करता, उस उन्मत्त तथा आतुर राजाको प्रजा इकट्ठी होके कुत्तेकी भांति मार डालती है।

हे भारत! प्रजा राजासे अरक्षित होनेपर जो कुछ पाप करती है, राजा उसमेंसे चौथा भाग ग्रहण करता है। कोई कहते हैं, प्रजाका किया हुआ समस्त पाप राजाको लगता है, कोई कहते है, आधा हिस्सा मिला करता है; मनुकी आज्ञा सुनके चौथा भाग ही मुझे अभिमत है। हे भारत! राजासे सुरक्षित प्रजा जो सब शुभ कर्म करती है, उस पुण्यमें भी राजा चतुर्थ भाग प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर! तुम जीवित रहो, प्रजा तुम्हारी अनुजीवी होवे। जैसे समस्त प्राणी जलके, पक्षीवृन्द महावृक्षके, राक्षसगण कुवेरके और देववृन्द महेन्द्रके अनुजीवी होते हैं, वैसे ही स्वजन और सुहृद तुम्हारे अनुजीवी होवें।

६१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यह देय है, यह दातव्य इस ही प्रकार श्रुति अत्यन्त आदरके स... दानकी विधि कहा करती है, राजा ... बहुतेरे वस्तुओंका स्मरण करते हैं, उनके ... सबसे श्रेष्ठ दान कौनसा है?

भीष्म बोले, सब दानोंमें भूमिदान ... श्रेष्ठ है, अचला और अचला भूमि स... उत्तम कामना पूरण किया करती है। ... रत्न, ब्रीहि यव प्रभृतिको पृथ्वीही दोहन ... करती है, इसलिये भूमि देनेवाला सब प्र... ओंके बीच सदा ही वर्द्धित होता है। हे ... ष्ठिर! इस लोकमें जबतक भूमि विद्य... रहती है, भूमि दान करनेवाला उतने ... पर्य्यन्त वर्द्धित होता है; इसलिये भूमि ... श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। हमने सुना ... सबके बीच बहुत ही थोडे लोग भूमि ... किया करते है, वे भूमि भोग करनेमें ... होते हैं। पुरुष इस लोक और परलोकमें ... कर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन बिता... महादेवी पृथ्वी भूमिदाताको अपना ... किया करती है। हे राजसत्तम! जो लो... अक्षया भूमिको दक्षिणामें दान करते ... फिर मनुष्यत्व लाभ करके पृथ्वीपति हो... जैसा देगा वैसा ही भोग प्राप्त होगा

दौड़ती है, वैसे ही भूमिदाताको और भूमि गमन करती है। हलसे जोती हुई बीजयुक्त और फलशालिनी भूमि तथा महत् गऊदान कर- नेसे मनुष्य कामदाता होता है। हव्ययुक्त आहि- ताग्नि और पवित्र व्रत करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करनेसे मनुष्य परम पद पाता है। जैसे प्रतिदिन चन्द्रमाकी वृद्धि होती है, वैसे ही भूमिदान प्रतिशस्योंमें वर्द्धित हुआ करता है। इस विषयमें प्राचीन पण्डित लोग भूमि- गीताकी समस्त गाथा कहा करते हैं, जिसे सुनके जामदग्न्य रामने कश्यपको भूमिदान किया था। "हमेंही ग्रहण करो, हमें ही दान करो, हमें ही दान करके मुझे ही पाओगे" इस लोकमें जो दान किया जाता है, परलोकमें फिर वही मिलता है।

जो ब्राह्मण इस वेदतुल्य व्याहृतिको जानता है, वह क्रियमाण श्राद्धसे ब्रह्मत्व अर्थात् वृहत् फल पाता है। यही अनन्त प्रबल मन्त्रमयी मारणके निमित्त शक्ति सबके घोर पापोंको नष्ट करती है। जो लोग भूमिदान करके प्रायश्चित्त करते हैं, वह पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र किया करते हैं, और जो लोग इस वेदवाक्यको जानते हैं, वे भी ऊपर कहे हुए दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जगत्में मनुष्योंकी सम्वाहिनी भूमि ही सब प्राणियोंकी प्रकृति रूपसे सम्मत हुई है। राजाको अभिषेक करते ही यह शास्त्र उसे सुनावे, जिसे सुनके राजा भूमि दान करे और साधु पुरुषोंको भूमि न लेवे। यह भूमि दान विषयक शास्त्र ब्राह्मण और राजा- ओंके लिये वर्णित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। धर्म जाननेवाला राजा ही पहले ऐश्वर्य्य- सूचक भूमि दान करे। जिन लोगोंका राजा अधर्मज्ञ और नास्तिक होता है, वे सुखसे सावधान तथा सुखी नहीं होते; मनुष्य उसके दुर्व्यवहारोंसे अत्यन्त व्याकुल होते हैं, बहुतेरे योगक्षेमसमर्थ पुरुष उसके राज्यमें वास कर- नेकी इच्छा नहीं करते। और जिनका राजा बुद्धिमान तथा धार्मिक होता है, वे लोग सुखसे जागते और परम सुखसे सोते हैं। उस राजाके पवित्र राज्यमें शुभकर्म्मोंके सहारे मनु- ष्योंकी निवृत्ति हुआ करती है, योगक्षेम पुष्टि तथा निज कर्म्मके द्वारा विशेष रीति अर्जित होता है। जो लोग भूमिदान करते हैं वेही कुलीन, वेही पुरुष, वेही बन्धु, वेही पुण्य करनेवाले, वेही बलवान् और वेही दाता होते हैं। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको अधिक भूमि दान करते हैं, वे भूमण्डलपर तेजपुञ्ज सहारे सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होते हैं। भूमिमें पड़ा हुआ अन्न जैसे अङ्कुररूपसे उत्पन्न होता है, वैसे ही भूमिदानसे अर्ज्जित सब कामना पूर्ण हुआ करती हैं। सूर्य्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् शिव भूमिदाताको अभिनन्दित करते हैं। मनुष्य भूमिपर ही जन्मते और भूमि ही पर पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं, इसलिये वे जरायुज आदि चार प्रकारके जीव मात्र ही पार्थिव गुणमय हैं। हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह पृथ्वी ही जगत्की माता और पिता है, इसलिये इसके समान कोई भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें वृहस्पति और इन्द्रके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने उत्तम महत् दक्षिणायुक्त एक सौ यज्ञ करके वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वृहस्पतिसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

इन्द्र बोले, हे वक्तृवर भगवन्! कौन वस्तु दान करनेसे स्वर्गसे भी अधिक सुख समृद्धि होती है, तथा जो दान महार्घ और अक्षय हो, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर देवताओंके पुरोहित महातेजस्वी वृहस्पतिने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उन्हें उत्तर दिया।

वृहस्पति बोले, हे वृत्रनाशन महाप्राज्ञ!

घोड़े प्रभृति वाहनोंसे युक्त, माणिक्यमय उपार्ज्जित रत्नभरा और अन्न वस्त्रोंसे युक्त पृथ्वी दान करते हैं, उन्हें समस्त ... प्राप्त होते हैं, वही उनका स्वामयश है। जो लोग पृथ्वीदान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटके रजोगुणसे रहित और साधु सम्मत होकर उनमें लोकमें निवास किया करते हैं। हे इन्द्र! जैसे जलमें डालनेसे तेलकी बूंद दूरतक फैलती है, वैसेही भूमिदानका पुण्य प्रति शस्याके सङ्ग वर्द्धित हुआ करता है। हे सुरराज! जो सब कुलव शोभित शूरवीर राजा सम्मुख संग्राममें मरते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं, उनके समीप जिस प्रकार दिव्य मालासे विभूषित नृत्य, गीतमें निपुण स्त्रियां उपस्थित होती हैं भूमिदान करनेवालेकी भी सुरलोकमें उस ही प्रकार वे सब उपासना किया करती हैं। जो पुरुष इस लोकमें विधिपूर्व्वक ब्राह्मणको भूमिदान करता है, वह सुरपुरमें देवताओं और गन्धर्व्वोंसे पूजित होकर सुखसे प्रसन्न होता है। हे देवेन्द्र! ब्रह्मलोकमें भूमिदाताके निकट सैकड़ों अप्सरा उपस्थित होती हैं। भूमि देनेवाले पुरुषोंके समीप सदा समस्त फूल पहुंचते हैं, भूमिदानसे शङ्ख, भद्रासन, छत्र, श्रेष्ठ घोड़े, उत्तम सवारी, फूल तथा सुवर्णकी राशि, अप्रतिहत आज्ञा, जय शब्द और वसु द्रव्य उपस्थित हुआ करते हैं। हे इन्द्र! भूमिदानके पुण्यफल स्वर्गमें सुवर्ण पुष्पयुक्त ओषधियें, कुश और काञ्चन शाद्वल हैं, जो पुरुष भूमिदान करता है, वह अमृत उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी पाता है भूमिदानके समान दूसरा दान नहीं है। माताके समान गुरु, सत्यके समान धर्म्म और दानके तुल्य निधि नहीं है।

भीष्म बोले, देवराज इन्द्रने वृहस्पतिके मुखसे इतनी कथा सुनके उन्हें ही उस समय धन रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीदानकी थी। जो लोग श्राद्धके समय इस भूमिदानकी कथा सुनते हैं, उन्हें राक्षस अथवा असुरोंके भागकी कल्पना नहीं करनी पड़ती, वे पितरोंको जो दान करते हैं, वह निःसन्देह अक्षय होता है। इस लिये विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको यह विषय सुनावें। हे पापरहित भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप सब दानोंके बीच श्रेष्ठदानका विषय कहा है, फिर कौनसे विषयको सुननेकी इच्छा करते हो?

६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! इसलोकमें राजा किन किन विषयोंके दान करनेकी कामना करके अधिक गुणवाले ब्राह्मणोंको प्रदान करे? ब्राह्मण लोग कैसे दानसे उस ही समय प्रसन्न होते हैं? प्रसन्न होके क्या प्रदान करते हैं? हे महाबाहो! मेरे निकट इस पुण्यजनक महत् फलके विषयकी वर्णन करिये, हे राजन्! कौन वस्तु दान करनेसे इसलोक और परलोकमें फलित होती है? उसे मैं आपके समीप सुननेकी इच्छा करता हूं, आप यह विषय मेरे निकट विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, पहले यह विषय मैंने देवर्षि नारदसे पूछा था, उन्होंने जो कथा कही थी, उसे कहता हूं सुनो।

नारद मुनि बोले, देवता और ऋषि अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं, समस्त लोक यात्रा और बुद्धि अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। अन्नदानके सदृश दूसरा दान न हुआ और न होगा, इसही लिये मनुष्य विशेष रीतिसे अन्नदान करनेकी इच्छा करते हैं। इस लोकमें अन्न ही बलकारक है, सब प्राणका अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। हे प्रभु! सारे जगत्को अन्न ही धारण किये है, इस लोकमें सज्जनके ही लिये लोग गृहस्थ होते हैं और अन्नहीके निमित्त भिक्षुक तथा तपस्वी हुआ करते हैं। यह निःसन्देह प्रत्यक्ष है, कि

[illegible] उत्पन्न होता है। जो मनुष्य [illegible] इच्छा करे, वह कुटुम्बको [illegible] करके भी सद्भावयुक्त [illegible] [illegible] उत्पन्न हुए [illegible] पल्दान करते हैं, वे अपने [illegible] निर्धिका विधान किया करते हैं, [illegible] इच्छा करते हुए [illegible] हुए, [illegible] उपस्थित [illegible] पाये पतिथिको [illegible] करें।

हे महाराज! [illegible] पल्दान [illegible] स्वर्ग तथा इस लोकमें [illegible] होते हैं। उपस्थित [illegible] [illegible] करें, [illegible] [illegible] पल्दान [illegible] [illegible] नहीं होता। [illegible] पवित्र [illegible]

[illegible] किया [illegible] ब्राह्मण स्वयं "देहि" [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पल्दान करके [illegible] प्राप्त करता है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है।

होजाता है। हे नरश्रेष्ठ! अन्नके बिना लोकयात्रा निर्वाह और यज्ञ नहीं निभते, इस अन्नके अभावमें वेदभी लुप्त होजाता है। स्थावर जङ्गम जो कुछ हैं, वे सभी अन्नसे होते हैं, इसलिये पण्डितोंको योग्य है, कि तीनों लोकोंमें धर्म्म अर्थके लिये अन्नदान करें। हे राजन्! अन्नदाता मनुष्यका बल, वीर्य, यश और कीर्ति त्रिभुवनके बीच सदा वर्द्धित होती है। हे भारत! प्राणोंका पति पवन बादलोंके ऊपर निवास करता है, इन्द्र उन बादलोंसे जल बरसाता है, सूर्य अपनी किरणोंसे भूमिका रस आकर्षण करता है, पवन आदित्यसे प्रतप्त रसोंको फिर बरसाया करता है। हे भारत! जब बादलोंसे जल पृथ्वीपर गिरता है, तब पृथ्वीदेवी शीतल होती हैं। अनन्तर भूमिसे सब शस्य उन अन्नसे मांस, मेदा, हड्डी और वीर्य्य प्रभृतिकी उत्पत्ति हुआ करती है। हे पृथ्वीपति! उस शुक्रसेही प्राणिसमूह उत्पन्न होते हैं अग्नि और चन्द्रमा उस शुक्रको उत्पन्न तथा पोषण करते हैं इस ही भांति अन्नके हेतु सूर्य्य, पवन तथा शुक्र एकही राशि कहके स्मृत हुए हैं, और इसहीसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। हे भरतर्षभ! जो लोग गृहमें आये हुए अतिथिको अन्नदान करते हैं वे सब जीवोंको प्राणदान तथा तेज प्रदान किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! नारद-मुनिके मुखसे यह कथा सुनके उस ही समयसे मैं सदा अन्नदान किया करता हूं, इसलिये तुम असूयाशून्य तथा शोक रहित होके अन्नदान करो। हे महाराज! तुम सद्वंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे स्वर्गलोक पाओगे। हे प्रजानाथ! अन्नदाता पुरुषोंको जो सब लोक प्राप्त होते हैं उसे सुनो। स्वर्गमें उन महानुभावोंके लिये जो सब भवन प्रकाशित हैं, वे उनके अनुसार रूप-सम्पन्न विविध स्तम्भ, चन्द्रमण्डलकी भांति श्वेत, वा किङ्किणिजाल तरुणादित्यवर्ण स्थावर जङ्गम कई भी भोगपदार्थों और मत्त कौंगनरोंसे युक्त, वैदूर्य्य तथा सूर्य्य सदृश प्रकाशमान चांदी और सोनेके समस्त गृह विद्यमान हैं, उन गृहोंमें सर्व्वकाम फलप्रद वृक्ष लगे हुए हैं। चारों ओर बापी, वीथी, सभा, कूप, दीर्घिका, सहस्रों मोतियोंके ढेर, भक्ष्य और भोज्यमय पर्व्वत, वस्त्र, आभूषण, दूध बहानेवाली नदियें, और अन्नोंके पर्व्वत, पाण्डुरवर्ण आभासे युक्त समस्त गृह और सुवर्णखचित शय्या प्रभृति विद्यमान है, अन्नदाता उन वस्तुओंको पाता है, इसलिये तुम अन्नदान करो। महानुभाव पुण्य करनेवाले अन्नदाता पुरुषोंके लिये ये समस्त लोक निश्चित हैं, इसलिये पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको योग्य है, कि सब प्रकार प्रयत्नके सहारे अन्नदान करें।

६३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मैंने अन्नदानकी विधि विषयक आपका वचन सुना, अब नक्षत्रयोगमें दान करनेसे जो फल होता है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें देवकी और नारद महर्षिके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। देवर्षि नारदके द्वारकामें उपस्थित होनेपर देवकीने उस धर्मदर्शीसे यही विषय पूछा। हे नरनाथ! अनन्तर देवर्षि नारदने देवकीके पूछनेपर जो कथा कही थी, उसे तुम सुनो।

नारद बोले, हे महाभागे! कृत्तिका नक्षत्रमें घृत सहित पायससे साधु ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। रोहिणी नक्षत्रमें अनृणके हेतु ब्राह्मणोंको अञ्जली भरके मृगमांस और घृत, दूध तथा अन्नदान करना चाहिये। सोमदैवत मृगशिरा नक्षत्रमें बछड़े युक्त दूध देनेवाली गऊ दान कर-

सर्व्वभक्ष्य फलोंसे युक्त होकर मनुष्य परलोकमें सुखी होता है। उत्तर भाद्रपद नक्षत्रमें जो लोग भेड़का मांस दान करते हैं, वे पितरोंको प्रसन्न करते हुए परलोकमें अनन्त सुख भोग किया करते हैं, जो लोग रेवती नक्षत्रमें कांसेके दोहनपात्रसे युक्त गोदान करते हैं, उनके परलोकमें जानेपर वही गऊ सर्व्वकाम्य विषयोंको ग्रहण करके उस दाताके निकट उपस्थित होती है। हे पुरुषर्षभ! अश्विनी नक्षत्रमें घोड़े युक्त रथ दान करनेसे मनुष्य हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण कुलमें जन्मता है। भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिल गऊ दान करनेसे मनुष्य परलोकमें उत्तम यश और बहुतसी गौओंको पाता है।

भीष्म बोले, नारद मुनिने देवकीसे नक्षत्रयोगके अनुसार यही सब दानका लक्षण कहा, और देवकीने अपनी पतोहुओंसे यह सब वृत्तान्त कहा था।

६४ अध्याय समाप्त।

———

भीष्म बोले, ब्रह्माके पुत्र अत्रि भगवानने ऐसा कहा है, कि जो लोग सुवर्ण प्रदान करते हैं, वे समस्त काम्यवस्तु दान किया करते हैं; मनुष्येन्द्र हरिश्चन्द्रने कहा है, कि सुवर्ण पवित्र आयुष्य और पितरोंके उद्देश्यसे देनेपर अक्षय होता है। मनुने सब दानोंके बीच जल दानको परम दान कहा है, इसलिये बावली, कूप और तालाव प्रभृति खुदवाना चाहिये। प्रतिदिन लोग जिस कूएंके जलको पीते हैं, वह कूआं कूप खोदनेवालेके पापका आधा भाग हर लेता है। जिसके खोदे हुए तालावमें ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा जल पीते हैं, वह तालाववाला अपने समस्त वंशका उद्धार किया करता है। ग्रीष्म ऋतुमें जिसका तालाव जलसे भरा रहता है, वह कदापि विषम क्लेशोंको नहीं पाता। घृतके सहारे भगवान् बृहस्पति, पूषा, भग, दोनों अश्विनीकुमार और अग्नि प्रसन्न होते हैं। घृत ही परम औषध है, इसलिये घृत ही अत्यन्त उत्कृष्ट है, यह रसोंके बीच श्रेष्ठ और सब फलोंमें उत्तम है। जो पुरुष सदा फल, यश और पुष्टिकी कामना करता है, वह पवित्र और संयतचित्त होकर ब्राह्मणोंको घृत दान करे। क्वार मासमें ब्राह्मणोंको घृत दान करनेसे इस लोकमें दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होके उसे रूप प्रदान किया करते हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित पायस दान करते हैं, राक्षस लोग कदापि उनके गृहमें पीड़ा नहीं दे सकते। जो लोग कमण्डलु नामक जलपात्र दान करते हैं, प्याससे नहीं मरते, गृहकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण रहते और कदापि विपद्ग्रस्त नहीं होते। जो पुरुष सावधान होके परम श्रद्धाके सहित ब्राह्मणोंको दान करता है, वह सदा उनके पुण्यका छठवां भाग ग्रहण किया करता है। हे राजेन्द्र! जो लोग साधन और तापके लिये व्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंको काष्ठ देते हैं, उनके सब प्रयोजन तथा विविध कार्य्य सदा सिद्ध होते और वे शत्रुओंके ऊपर तेजपुञ्ज युक्त शरीरसे प्रकाशित होते हैं। भगवान् अग्नि सदा उनके विषयमें प्रसन्न रहते, पशुवृन्द उन्हें परित्याग नहीं करते और वे संग्राममें विजयी होते हैं। जो लोग छत्र दान करते हैं, वे पुत्र और श्री लाभ किया करते हैं। जो लोग ग्रीष्म अथवा वर्षा ऋतुमें छत्र दान करते हैं, कभी उनके मनमें ताप नहीं होती।

हे नरनाथ! सब दानोंकी अपेक्षा शकट दान करनेसे मनुष्य शीघ्र ही विषम क्लेशोंके बीच लाभ किया करता है। महाभाग भगवान् शाण्डिल्य ऋषिने ऐसा ही कहा है।

६५ अध्याय समाप्त।

———

हे महाराज! वह प्राण पुरुष आनन्दित होके इन्द्रके सङ्ग एकाव वास करता है। जो पुरुष वासस्थान प्रदान करते हैं, वे स्वर्गमें निवास किया करते हैं। अध्यापक संगमें उत्पन्न संयतन्द्रिय श्रोत्रिय ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर जिसके गृहमें निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक भोग किया करता है। गौवोंके वासके लिये दिया हुआ सर्दी वर्षा सहने योग्य उत्तम दृढ़ गृह सातवें कुल पर्य्यन्त उद्धार करता है। जो लोग क्षेत्रभूमि दान करते हैं, वे लोकके बीच पवित्र श्रीसम्पन्न होते हैं। जो लोग रत्नभूमि देते हैं, वे कुल तथा वंशकी वृद्धि किया करते हैं। ऊसर और जली भूमि किसी प्रकारसे भी न देनी चाहिये तथा श्मशानसे घिरी हुई पापपूरित भूमि भी दानके योग्य नहीं है। जो पुरुष दूसरेकी भूमिमें पितरोंका श्राद्ध करता है, अथवा पितरोंके उद्देश्यसे दूसरेकी भूमि दान करता है, उसका किया हुआ श्राद्ध तथा भूमि दान-कर्म्म दानोंही निष्फल होते हैं। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य अल्प परिमाण भूमि मोल लेके दान करे, क्योंकि उस मोल ली हुई भूमिमें पितरोंके निमित्त दिया हुआ पिण्ड शाश्वत होता है। वन, पर्व्वत, नदी और तीर्थोंको पण्डित लोग अस्वामिक कहते हैं, इसलिये उन स्थानोंमें पितरोंका श्राद्ध करनेमें कुछ दोष नहीं है। हे नरनाथ! यह तुमसे भूमिदानका फल कहा है। हे पापरहित! इसके अनन्तर गोदानका फल वर्णन करता हूं। सब तपस्वियोंमें ही गोधन विद्यमान है, इस ही लिये महादेवने गौवोंके सहित तपस्या की थी।

हे भारत! ब्रह्मलोकमें गौवें चन्द्रमाके सङ्ग निवास करती हैं। सिद्ध और ब्रह्मर्षिलोग जिस परमपदकी इच्छा करते हैं, गोदान करनेसे सब पापोंसे छूटकर मनुष्य उसही गतिको पाते हैं हे भारत! ये गौवें ही दही, दूध, घृत, गोमय चर्म्म, हड्डी, सींग और पूंछके बालसे सबका उपकार करती हैं, इन्हें सर्दी, गर्मीका भय नहीं है, ये सदा ही कार्य्य किया करती हैं, वर्षा इन्हें दुःख नहीं होता, इसलिये ये ब्राह्मणों सहित परमपदमें गमन करती हैं, इसी पण्डित लोग गऊ और ब्राह्मणोंको एकही कहा करते हैं। हे महाराज! रन्तिदेव राजाके यज्ञ गौवें पशु रूपसे कल्पित हुई थीं, उस गोचर्म्म चर्म्मण्वती नदी प्रवर्त्तित हुई है। दानके लि उपकल्पित गौवें पशुत्वसे मुक्त हुई थीं।

हे पृथ्वीनाथ! जो लोग श्रेष्ठ ब्राह्मणों गोदान करते हैं, वे विषम अवस्थामें पड़के क्लेश तथा आपदोंसे पार होते हैं। हे नरनाथ सहस्र गोदान करनेसे परलोकमें जानेपर पुरु नरकमें नहीं पड़ता और सब ठौर विजय प्राप्त होती है। इन्द्रने गौवोंके दूधको ही अमृत कहा है, इसलिये जो पुरुष गोदान करता है वह अमृत प्रदान किया करता है। वेद जाननेवाले पुरुष अग्निके सम्बन्धमें इसे ही अव्यय होम साधन समझते हैं, इससे जो लोग गोदान करते हैं, वे होम साधन प्रदान किया करते हैं यह गोपति वृषभ ही मूर्त्तिमान स्वर्ग स्वरूप है जो लोग गुणवान ब्राह्मणोंको वृषभ देते हैं, स्वर्गमें निवास किया करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ गौवें प्राणियोंकी प्राणस्वरूप कही गई हैं, इस लिये जो लोग गऊ देते हैं, वे प्राण प्रदान किया करते हैं। वेद जाननेवाले पुरुष गौवोंको सब प्राणियोंकी शरण्य रूपी जानते हैं, इसलिये जो लोग गऊ देते हैं, वे शरण दिया करते हैं हे भरतश्रेष्ठ! पापाचारी नास्तिकको वधके निमित्त गऊ देनी योग्य नहीं है और गोजीवी पुरुषोंको भी गोदान करना अनुचित है। महर्षियोंने ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य वैसे पापियोंको गोदान करता है, वह अक्षय नरकमें पड़ता है। ब्राह्मणोंको कृशित, बछड़ा रहित बन्ध्या, रोग युक्त, विकलाङ्गी और थकी हुई गऊ दान न करे। दश हजार गौवोंको दान

[illegible] मनुष्य स्वर्गमें इन्द्रके सङ्ग आनन्द [illegible] और सौ हजार गौओंको दान करने- [illegible] लोकोंको पाता है। हे भारत! [illegible] और भूमिदानका विषय कहा [illegible] अन्नदानका फल सुनो।

हे कुरुनन्दन! महर्षिलोग अन्नदानकी [illegible] प्रशंसा किया करते हैं, राजा रन्तिदेवने [illegible] करनेहि देवलोकमें गमन किया है। हे [illegible], जो लोग शुद्ध और भक्तिका अन्न- [illegible] हैं, वे ब्रह्माके उत्तम अव्यय स्थानमें [illegible]। हे भरतवंशावतंस नरनाथ! मनु- [illegible] अन्नदानसे जैसा कल्याण होता है, सुवर्ण [illegible] अन्य वस्तु दान करनेसे वैसा कल्याण [illegible] प्राप्त होता। अन्नही प्रथम द्रव्य है, अन्न [illegible] सबही समान है, अन्नसे प्राण, [illegible] और वीर्य उत्पन्न होता है। पराशर

[illegible] लोकमें [illegible] है। हे पितामह! इन लोकोंके [illegible] फल होता है। इसलिये यह [illegible] विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे सत्यपराक्रमी [illegible] अच्छा अब मैं तुम्हारे निकट [illegible] विधिपूर्वक वर्णन करता हूं, तुम [illegible] हे पापरहित! मैं जलदानसे [illegible] करता हूं। अन्न और जल दान [illegible] का फल मानते हैं, [illegible] दान और [illegible] नहीं है। हे [illegible] समस्त प्राणधारी [illegible] है, [illegible] लिये इस लोकमें ही [illegible] कृपा करता है। [illegible] बल और तेज [illegible] प्रशंसित [illegible]

पन्न, अमृत, नागोंका सुधा, पितरोंका स्वधा, पशुओंका तृण और मनुष्योंका प्राण ही अन्न है। हे नरश्रेष्ठ! ये सभी जलसे प्रवर्त्तित होते हैं, इसलिये जलदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य अपने ऐश्वर्य्यकी कामना करे, तो वह सदा जल दान करे। इस लोकमें जल दान धन्य यशस्कर और आयुष्कररूपी कहा गया है। हे कुन्तीनन्दन! जलदाता सदा शत्रुओंके ऊर्द्धमें निवास करता है, वह समस्त काम्यविषय तथा शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करके परलोकमें जाके अनन्त फल भोग करता तथा सब पापोंसे मुक्त होता है। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! मनुने कहा है, कि जलदाता स्वर्गमें जाके अक्षय लोकोंको पाता है।

६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! तिल दान और दीप दान कैसे दान है? अन्न और वस्त्र दान किस प्रकार करना होता है? आप फिर मेरे निकट इसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्राह्मण और यमके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे नरनाथ। मध्यदेशमें गङ्गा यमुनाके बीच यामुन पर्व्वतको तराईसे पर्णशाला नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका अत्यन्त रमणीय एक बड़ासा गांव था। अनन्तर यमने काला वस्त्र पहरनेवाले लालनेत्र ऊर्द्धरोम कौवेकी भांति जङ्घानेत्र और नासिकायुक्त किसी पुरुषसे कहा, कि तुम ब्राह्मणोंके गांवमें जाके वहांसे अगस्तगोत्री शर्म्मि नाम ब्राह्मणको लाओ। वह हमारे अनावृत्त विद्वान् अध्यापकमें प्रविष्ट हुआ है, पासमेंसे दूसरे किसी उनके सगोत्री ब्राह्मणको न लाना। वह गुणोंमें हमारे अध्यापकके तुल्य हैं, उनके पुत्र भी उन्हींके सदृश हैं। इसलिये मैंने जैसा कहा, उस ही भांति उन्हें लाओ, उनकी पूजा करनी होगी। उस पुरुषने वहां जाके यमकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य्य किया, उन्होंने जिसे लानेको निषेध किया था, उसे ही आक्रमण करके ले आया। वीर्य्यवान् यम उठकर उनका सत्कार करके बोले, इन्हें ले जाओ और दूसरे पुरुषको लाओ। धर्म्मराजका वचन सुनके वह ब्राह्मण उनसे बोला, मैं पढ़नेसे निर्व्विण्ण हुआ हूं, मेरा जितना समय शेष है, उतने ही समय तक इस यमलोकमें निवास करूंगा।

यम बोले, मैं कालके द्वारा विहित परमायुका प्रमाण नहीं जानता, जो लोग धर्म्माचरण करते हैं, केवल उन्हें ही जानता हूं। हे महातेजस्वी विप्र। इसलिये तुम आज ही अपने स्थानपर जाओ। और कहो, मैं क्या करूं?

ब्राह्मण बोला जिस कार्य्यके करनेसे भूलोकमें उत्तम महत् पुण्य होता है, मुझे वही उपदेश करो। हे उत्तम। तुम ही तीनों लोकोंके धर्म्माधर्म्म विषयमें प्रमाण हो।

यम बोले, हे विप्रर्षि। श्रेष्ठ दानकी विधि सुनो, इस लोकमें तिलदान परम पवित्र और नित्य फल देनेवाला है। हे द्विजवर। जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन सबको ही शक्तिके अनुसार तिल दान करना योग्य है, सदा दान करनेसे तिल दान समस्त कामना पूरी करता है, पण्डित लोग श्राद्धमें तिल दानकी प्रशंसा किया करते हैं, इसीसे यह दान सबसे उत्तम है; इसलिये विधिविहित कर्म्मके सहारे ब्राह्मणोंको तिल दान करो। वैशाखी पौर्णमासीको द्विजातियोंको तिल दान करे, तिल भोजन करावे और जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन्हें उचित है, कि तिलसे सदा उद्वर्त्तन करें। तिल दानकी भांति सदा जल देना और निःसन्देह जल पीना चाहिये।

न्न, अमृत, नागोंका सुधा, पितरोंका स्वधा, पशुओंका तृण और मनुष्योंका प्राण ही अन्न है। हे नरश्रेष्ठ! ये सभी जलसे प्रवर्तित होते हैं, इसलिये जलदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य अपने ऐश्वर्यकी कामना करे, तो वह सदा जल दान करे। इस लोकमें जल दान धन्य यशस्कर और आयुप्रद रूपी कहा गया है। हे कुन्तीनन्दन! जलदाता सदा शत्रुओंके ऊर्द्धमें निवास करता है, वह समस्त काम्यविषय तथा शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करके परलोकमें जाके अनन्त फल भोग करता तथा सब पापोंसे मुक्त होता है। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! मनुने कहा है, कि जलदाता स्वर्गमें जाके अक्षय लोकोंको पाता है।

६७ अध्याय समाप्त।

—— ——

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! तिल दान और दीप दान कैसे दान हैं? अन्न और वस्त्र दान किस प्रकार करना होता है? आप फिर मेरे निकट इसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्राह्मण और यमके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे नरनाथ! मध्यदेशमें गङ्गा यमुनाके बीच यामुन पर्वतको तराईमें पर्णशाला नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका अत्यन्त रमणीय एक बड़ासा गांव था। अनन्तर यमने काला वस्त्र पहरनेवाले लालनेत्र ऊर्द्धरोम कौवेकी भांति जङ्घानेत्र और नासिकायुक्त किसी पुरुषसे कहा, कि तुम ब्राह्मणोंके गांवमें जाके वहांसे अगस्तगोत्री शर्म्मि नाम ब्राह्मणको लाओ। वह हमारे अनावृत्त विद्वान् अध्यापकमें आविष्ट हुआ है, पासमेंसे दूसरे किसी उसके सगोत्री ब्राह्मणको न लाना। वह गुणोंमें हमारे अध्यापककी तुल्य हैं, उनके पुत्र भी उन्हींके सदृश हैं। इसलिये मैंने जैसा कहा, तुम उसी भांति उन्हें लाओ, उनकी पूजा करनी होगी। उस पुरुषने वहां जाके यमकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य्य किया, उन्होंने जिसे लानेको निषेध किया था, उसे ही आक्रमण करके ले आया। शक्तिमान् यम उठकर उनका सत्कार करके बोले, इन्हें ले जाओ और दूसरे पुरुषको लाओ। धर्म्मराजका वचन सुनके वह ब्राह्मण उनसे बोला, मैं पढ़नेसे निर्व्वेग हुआ हूं, मेरा जितना समय शेष है, उतने ही समय तक इस यमलोकमें निवास करूंगा।

यम बोले, मैं कालके द्वारा विहित परमायुका प्रमाण नहीं जानता, जो लोग धर्म्माचरण करते हैं, केवल उन्हें ही जानता हूं। हे महातेजस्वी विप्र! इसलिये तुम आज ही अपने स्थानपर जाओ। और कहो, मैं क्या करूं?

ब्राह्मण बोला जिस कार्य्यके करनेसे भूलोकमें उत्तम महत् पुण्य होता है, मुझे वही उपदेश करो। हे सत्तम! तुम ही तीनों लोकोंके धर्म्माधर्म्म विषयमें प्रमाण हो।

यम बोले, हे विप्रर्षि! श्रेष्ठ दानकी विधि सुनो, इस लोकमें तिलदान परम पवित्र और नित्य फल देनेवाला है। हे द्विजवर! जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन सबको ही शक्तिके अनुसार तिल दान करना योग्य है, सदा दान करनेसे तिल दान समस्त कामना पूरी करता है, पण्डित लोग श्राद्धमें तिल दानकी प्रशंसा किया करते हैं, इसीसे यह दान सबसे उत्तम है; इसलिये विधिविहित कर्म्मके सहारे ब्राह्मणोंको तिल दान करो। वैशाखी पौर्णमासीको द्विजातियोंको तिल दान करे, तिल भोजन करावे और जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन्हें उचित है, कि तिलसे सदा उद्वर्त्तन करें। तिल दानकी भांति सदा जल देना और निःसन्देह जल पीना चाहिये

हे द्विजोत्तम ! पृथ्वीपर तालाब तलायी और कूआ प्रभृति खुदवावे ; इस लोकमें ये सब कार्य्य अत्यन्त ही दुर्लभ हैं । तुम सदा जलदान करना, यही सबसे उत्तम पुण्य है । हे द्विजसत्तम ! तुम सदा जलदानके निमित्त जलशाला बनाना, अन्न भोजन करने पर भी विशेष रीतिसे जल देना योग्य है ।

भीष्म बोले, उस समय जब उस ब्राह्मणने यमका यह सब वचन सुनलिया, तब यमदूतने उसे उसके गृहमें पहुंचाया ; फिर जिस प्रकार यमने उसे उपदेश किया था, उसहीके अनुसार उसने सब कार्य्य किया । अनन्तर यमदूत उस शर्म्मीको लेकर यमके स्थानपर गया और धर्म्मराजके समीप उसका वृत्तान्त सुनाया । प्रतापवान् धर्म्मराजने उस धर्म्मज्ञ ब्राह्मणकी पूजा की और उसके सङ्ग वार्त्तालाप करके वह जहांसे आया था उसे वहां जानेके लिये बिदा किया । यमने उन्हें जैसा उपदेश किया था, उसने यमलोकसे लौटकर धर्म्मराजके कहे हुए सब कार्य्योंको किया । यमराज पितृलोकोंकी हितकामनासे दीपदानकी प्रशंसा करते हैं । इसलिये सदा दीप दान करनेवाला मनुष्य पितरोंका उद्धार किया करता है । हे विभु भरतसत्तम ! इसलिये सदा दीप दान करना योग्य है, क्योंकि दीपक देवताओं और पितरोंके नेत्रके लिये हितकर कहा गया है । हे प्रजानाथ ! रत्न दान करनेसे उत्तम महत् पुण्य होता है, ऐसा कहा गया है, कि जो ब्राह्मण रत्न बेचके यज्ञ करता है, उसे कुछ भय नहीं होता । जो ब्राह्मण रत्न दान करता और जो उसे लेता है, वह दाता तथा ग्रहीता दोनोंके लिये अक्षय फलजनक हुआ करता है । धर्म्मज्ञ मनुने कहा है, कि जो लोग मर्य्यादासे स्थित होके ब्राह्मणोंको रत्नदान देते तथा लेते हैं, उन दोनोंको ही अक्षय धर्म्म होता है । मैंने ऐसा सुना है, कि निज स्त्रीमें रत रहनेवाले मनुष्य वस्त्र दान करनेसे सुन्दर तथा रूपवान होते हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! वेदप्रमाणके अनुसार गऊ, सुवर्ण और तिल दानका विषय कई बार कहा गया । मनुष्योंको विवाह करना, तथा विवाह करके अवश्य पुत्र उत्पन्न करना योग्य है । हे कौरव ! सब लाभोंके बीच पुत्र लाभ ही सबसे श्रेष्ठ है ।

९८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ कुरुश्रेष्ठ ! आप फिर समस्त दानोंकी श्रेष्ठ विधि विशेष करके भूमिदानका विषय कहिये । क्षत्रिय यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करे, ब्राह्मण भी उसे विधिपूर्व्वक ले, क्षत्रियके अतिरिक्त दूसरे पुरुष भूमिदान करनेमें समर्थ नहीं हैं । सब वर्ण ही फलकी कामना करके जो वस्तु दे सकें और वेदमें जो पूरी रीतिसे वर्णित हो, आपको मेरे निकट उन्हींकी व्याख्या करनी उचित है ।

भीष्म बोले, तुल्य नाम अर्थात् गोपद-वाची गऊ, भूमि और वाणी है, इन तीनोंको ही दान करना उचित है, इन तीनोंके दानका फल समान हो है और इस लोकमें इनके सहारे सब प्रयोजन तथा फल प्राप्त होते हैं ; जो लोग शिष्यसे धर्म्मयुक्त वचन कहते हैं, वे भूमि और गोदानके तुल्य फल पाते हैं । इसही प्रकार सब कोई गोदानकी प्रशंसा किया करते हैं, गोदानसे श्रेष्ठदान और कुछ भी नहीं है । हे युधिष्ठिर ! गौओंका फल अत्यन्त ही सन्निकृष्ट अर्थात् अल्प धनसे ही वह सिद्ध हुआ करता है । सबको सुख देनेवाली गौवें सब प्राणियोंकी माता हैं, जो लोग वृद्धिकी कामना करें, उन्हें प्रतिदिन गौवोंकी प्रदक्षिणा करनी योग्य है । गौवोंको पांवसे न मारे, गौवोंके बीचमें न जावे, मङ्गलकी स्थान देवी स्वरूप गौवें सदा पूजनीय हैं । यज्ञके लिये अथवा

खेतीके निमित्त कार्य्यमें नियुक्त बलवान बैलके ऊपर दैवकृत कोड़ेसे प्रहार करनेमें दोष नहीं होता, और यज्ञके लिये ताड़ना करना ही कल्याणकारी है, केवल खेतीके ही लिये प्रहार करना निन्दनीय तथा दूषित है। पण्डित पुरुष चरने और बैठनेके समय गौवोंको उद्वेगयुक्त न करें, गौवें प्यासी होकर देखनेसे मनुष्योंको बान्धवोंके सहित नष्ट करती हैं। जिन लोगोंका पितृ और देवस्थान गोमयसे सदा पवित्र हुआ करता है, उससे अधिक पवित्र और कौन है? जो लोग स्वयं तक्र आदि न पीके भी वर्षभर गौवोंको घास देते हैं, उन्हें उस व्रतसे सर्व्वकाम फल प्राप्त होता है। वे पुत्र, यश, धन तथा श्री सम्पन्न होते, उनके पाप नष्ट होते और दुःस्वप्न विनष्ट होजाते हैं।

युधिष्ठिर बोले, कैसे लक्षणोंसे युक्त गौवोंको दान करना योग्य है, और कैसी न देनी चाहिये? कैसे पुरुषको दान देना योग्य है और कैसे मनुष्यको दान न देना चाहिये?

भीष्म बोले, असद्वृत्तिवाले पापाचारी, लोभी, झूठ बोलनेवाले और हव्य कव्यसे रहित पुरुषोंको किसी प्रकार गोदान करना उचित नहीं है, भिक्षुक, बहुपुत्रक, श्रोत्रिय और आहिताग्नि ब्राह्मणोंको दश गऊ दान करनेसे दाता सबसे श्रेष्ठ लोकोंको पाता है; दान लेनेवाला जो कुछ धर्म्माचरण करता है और उसके धर्म्मका जो कुछ फल रहता है, दाता उन सबमें अंशभागी होता है; इसीसे उसके निमित्त प्रवृत्ति होती है। जो इन्हें उत्पन्न करते, जो भयसे परित्राण करते तथा जो लोग इन्हें जीविका दान करते हैं, वे तीनों ही इनके पिता हैं। गुरुकी सेवा करनेसे पाप दूर होता है, अभिमान बड़े यशको भी नष्ट कर देता है, तीन पुत्र जन्मनेसे अपुत्रता नहीं रहती और दश गऊ हत्तिहीनताको नष्ट करती हैं। वेदान्तनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानतृप्त जितेन्द्रिय शिष्ट दान्त संयत और जो लोग सब जीवोंके विषयमें सदा प्रिय वचन कहा करते हैं, जो ब्राह्मण भूखा होने पर भी निकृष्ट कर्म्म नहीं करता, जो मृदु शान्त अतिथिप्रिय तुल्यशील और स्त्री पुत्र आदिसे युक्त हो उस ब्राह्मणकी वृत्ति देनी चाहिये। सत्पात्रको गोदान करनेसे जितना धर्म्म होता है, ब्राह्मणस्व हरनेसे उतने ही परिमाणसे अधर्म्म हुआ करता है। ब्राह्मणस्वका हरण सारी बुराइयोंका हेतु है, और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको दूरसेही त्यागना योग्य है।

६६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुरुवंशधुरन्धर! ब्राह्मण हरनेके विषयमें राजा नृगने जैसा महत् [illegible] पाया था, साधु लोग उसे ही वर्णन किया क[illegible] हैं हे पार्थ! मैंने सुना है, कि पहले द्वारका[illegible] रोमें प्रवेश करनेके समय जल पीनेके अ[illegible] लाषी मनुष्योंने तृण लतासे परिपूरित [illegible] महाकूप देखा था। उन लोगोंने उस कू[illegible] जल पीनेके निमित्त बहुत प्रयत्न करने [illegible] परन्तु उस कूपका जल अत्यन्त ही ढका र[illegible] वे सब बहुत थक गये थे। अनन्तर उन लो[illegible] उस कूएंके बीचमें स्थित एक बड़ा शरीरवा[illegible] गिरगिट देखा, उन्होंने गिरगिटको निकाल[illegible] लिये सहस्रों बार यत्न किया, रस्सी, चमड़े [illegible] वस्त्रोंसे उस पर्वत सदृश गिरगिटको [illegible] उसे निकाल न सके, तब वे सब कोई कृ[illegible] समीप गये। उन लोगोंने कृष्णसे कहा, [illegible] एक बहुत बड़ा गिरगिट कूएंका आकाश[illegible] रोकके स्थित है, ऐसा कोई नहीं है, जो [illegible] ऊपर उठावे। उस गिरगिटरूपी राजा [illegible] श्रीकृष्णके द्वारा कूएंसे निकाले जाने तथा [illegible] नेपर अपना कार्य्य कहा और पहले समयमें [illegible] सहस्र यज्ञ किया था, वह भी कह सुनाया। [illegible] उन्होंने ऐसा वचन कहा, तब श्रीकृष्णचन्द्र [illegible]

होते, आपने पापकर्म्म नहीं किया, शुभकार्य्य ही किया है। हे नरेन्द्र ! तब आप किस प्रकार ऐसी दुर्गतिमें पड़े थे ? तुम्हारा ऐसा रूप क्यों हुआ, उसे वर्णन करो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें आपने ब्राह्मणोंको बार बार सौ सहस्र, एक एक सौ, आठ सौ और दश सहस्र गोदान किया था। हे महाराज ! आपके वे समस्त फल कहां गये ?

अनन्तर राजा नृग कृष्णसे बोले, प्रोषित अग्निहोत्री ब्राह्मणकी एक गऊ भूलसे हमारे गोसमूहमें आ घुसी थी, हमारे पशुपालकोंने उस गऊको भी मेरी सहस्र गौवोंके बीच गिना था। मैंने परलोकके फलकी आकांक्षासे ब्राह्मणको वह गऊ दान की थी। अग्निहोत्री ब्राह्मणने उस गऊको खोजते हुए उसे दूसरे ब्राह्मणके निकट देखा। वह गऊ पहले जिसकी थी, उसने कहा, कि यह गऊ मेरी है। वे दोनों ही झगड़ते हुए क्रुद्ध होके मेरे समीप आये और दोनों मुझसे बोले, कि "आप ही दाता तथा पाप ही हर्त्ता हैं।" मैंने एक सौ गऊके पलटेमें प्रतिग्रहीतासे पहलेकी दान की हुई गऊ मांगी, उसने मुझसे कहा, देशके अनुसार दूध देनेवाली क्षमाशालिनी अत्यन्त वत्सला स्वादिष्ट दूध देनेमें धन्य गऊ प्रतिदिन मेरे स्थानमें दूध देती हुई स्तनहीन मेरे कृश पुत्रोंको प्रतिपालन करती है, इसलिये मैं उसे न दे सकूंगा। ऐसा कहके वह चला गया, तब मैंने दूसरे ब्राह्मणको उस गऊके पलटेमें सहस्र गऊ लेनेको कहा। हे मधुसूदन ! तब वह ब्राह्मण बोला, जब मैं स्वयं उपार्जनमें समर्थ हूं, तब राजाओंका प्रतिग्रह न करूंगा, इसलिये मुझे वही गऊ दो। मैंने उसे घोड़ेयुक्त सोने चांदीसे खचित रथ देनेको अङ्गीकार किया ; तौभी उसने उसे नहीं लिया, बल्कि वह ब्राह्मण क्रोधित होकर चला गया। इतने ही समयमें मैं कालसे प्रेरित होकर पितृलोकमें जाके धर्म्मराजके समीप उपस्थित हुआ। यमने मेरा सम्मान करके शेषमें यह कहा। हे महाराज ! तुम्हारे पुण्यकर्म्मके शेषकी संख्या नहीं की जाती, परन्तु तुमने भूलसे एक पापकर्म्म किया है, आगे उस पापका फल भोगोगे, वा पीछे भोगोगे ? जो इच्छा हो, वह कहो। "मैं रक्षा करनेवाला हूं,"—यह तुम्हारी प्रतिज्ञा ब्राह्मणकी गऊ खोई जानेसे मिथ्या हुई है और ब्राह्मणस्व ग्रहण करनेसे तुम्हें दो प्रकारका पाप हुआ है।

हे प्रभु ! मैंने धर्म्मराजसे कहा, कि मैं पहले पापका फल भोगके तब पुण्यका फल भोगूंगा। ऐसा कहते ही मैं पृथ्वीपर गिरा और गिरते हुए ऊंचे स्वरसे कहा हुआ धर्म्मराजका यह वचन सुना, कि जनार्द्दन कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे ; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर तुम्हारा पाप कर्म्म नष्ट होगा, तब तुम निज कर्म्मके सहारे विजित शाश्वत लोकोंको पाओगे। मैंने नीचे शिर करके अपनेको कूएंके बीच पड़ा हुआ देखा, तिर्य्यग्योनिको प्राप्त होनेपर भी स्मृतिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे कृष्ण ! आज तुम्हारे द्वारा मेरा उद्धार हुआ, तपोबलके अतिरिक्त दूसरेके सहारे ऐसी घटना नहीं हो सकती ; इसलिये आज्ञा दो, अब मैं स्वर्गको जाऊं। हे शत्रुनाशन ! अनन्तर राजा नृग गिरगिट रूपको त्यागके श्रीकृष्णसे बिदा हो उन्हें प्रणाम कर दिव्य विमानपर चढ़के सुरलोकको गये। हे भरतसत्तम कुरुनन्दन ! अनन्तर राजा नृगके स्वर्गमें जानेपर श्रीकृष्णने यह वक्ष्यमाण वचन कहा, कि जानके ब्राह्मणस्व हरना योग्य नहीं है, जैसे ब्राह्मणकी गऊने राजा नृगको विनष्ट किया था, उसी भांति ब्राह्मणस्व सत्यको विनष्ट किया करता है। हे पार्थ ! साधुओंका समागम कभी निष्फल नहीं होता ; हे युधिष्ठिर ! गौवोंके विषयमें बुरा आचरण न करना।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित महाबाहो! गोदान करनेवालोंकी फलप्राप्तिको विस्तारपूर्वक कहिये, मैं जितना ही सुनता हूं, किसीसे भी तृप्त नहीं होता हूं, इसलिये इसे जो यथार्थ वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें उद्दालकि ऋषि और नाचिकेतके सम्वादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, बुद्धिमान् उद्दालकि ऋषिने निज पुत्र नाचिकेतके निकट जाके कहा, कि तुम मेरी टहल करो। उस नियमके समाप्त होनेपर महर्षिने पुत्रसे कहा, कि मैंने स्नान करके वेदपाठ करते हुए नदीके तीरपर समित, कुश, पुष्प, जल, कलश और भोजनकी सामग्री भूल आया हूं, तुम जाके वह सब वस्तु इस स्थानपर लाओ। उसने जाके नदीके वेगसे विचलित उन वस्तुओंको न पानेपर पिताके निकट आके कहा, कि "मैंने नहीं देखा।" महातपस्वी उद्दालकि मुनि उस समय भूख प्याससेयुक्त और थके हुए थे, इसलिये पुत्रको शाप दिया, कि 'यमका दर्शन करो।' पुत्र पिताके वाग्वज्रसे अभिहित होकर हाथ जोड़के बोला, 'प्रसन्न होइये' ऐसा कहते कहते चेतरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पिता नाचिकेतको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखके दुःखसे मूर्च्छित होकर 'यह मैंने क्या किया' ऐसा कहके स्वयं पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके दुःखित होकर पुत्रके लिये शोक करते रहनेपर दिनका शेष भाग और भयङ्करी रात्रि व्यतीत हुई।

हे कुरुद्वह! सूखा हुआ शस्य जैसे वर्षासे फिर हरा होता है, वैसे ही नाचिकेत पिताके आंसू गिरनेपर कुशशय्यासे उठे। पिताने उस सोतेस्वप्नकी भांति उठे हुए दिव्य गन्धसेयुक्त पुनर्व्वार आये हुए तनचोगा पुत्रसे कहा। हे पुत्र! तुमने निजकर्म्मसे समस्त शुभ लोकोंको जय किया है, दैववशसे मैंने तुम्हें फिर पाया; तुम्हारा मनुष्य शरीर नहीं है। सब विषयोंके प्रत्यक्षदर्शी उनका पुत्र पिताके पूछनेपर उनसे अन्यान्य साधु महर्षियोंके बीच समस्त वृत्तान्त सुनाने लगा। मैं आपका शासन प्रतिपालन करते हुए शीघ्र ही अत्यन्त विशाल रुचिर प्रभायुक्त वैवस्वती सभामें गया, सहस्र योजन जाके उस सुवर्णकी भांति प्रभायुक्त सभा देखा। यमराजने मुझे सम्मुख पहुंचा हुआ देखके आसन देनेके लिये आज्ञा देकर पाद्य अर्घसे मेरी पूजा की। अनन्तर मैंने सभासदोंसे घिरके तथा पूजित होकर मृदुस्वरसे कहा, हे धर्म्मराज! मैं आपके अधिकारमें आया हूं, इसलिये मैं जिन लोकोंके योग्य होऊं उसका विधान करिये। यम मुझसे बोले, हे प्रियदर्शन! तुम मरे नहीं हो, तुम्हारे उस जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी पिताने तुम्हें केवल इतना ही कहा है, कि "यमका दर्शन करो" इसलिये उसे मैं मिथ्या न कर सकूंगा। हे तात! तुमने मुझे देखा, इसलिये अब लौट जाओ, यह तुम्हारा देहकर्त्ता पिता शोक करता है। मैं तुम्हें अभिलषित विषय दान करता हूं, तुम मेरे प्रिय अतिथि हो, इसलिये जो इच्छा हो, वह वर मांगो। धर्म्मराजके ऐसा वचन सुनके मैंने उनसे कहा, कि जिस स्थानमें आनेसे फिर कोई लौटके नहीं जाता, मैं आपके उस ही अधिकारमें आया हूं, यदि आप मुझे वर प्रदानके योग्य समझते हैं, तो मैं पुण्यात्मा पुरुषोंके समृद्ध लोकोंको देखनेकी इच्छा करता हूं।

हे द्विजेन्द्र! अनन्तर उस देवने मुझे प्रकाशमान समान वाहनयुक्त उत्तम प्रभावाले यान पर चढ़ाके उस समय पुण्यात्माओंके लोकोंको दिखाया। मैंने वहां महात्माओंके प्रकाशमय गृहोंको देखा, उन गृहोंकी बनावट अनेक प्रकारकी थी और वे सब रत्नमय चन्द्रमण्डलकी भांति सफेद थे; किङ्किणि जालसे युक्त ऊपर ऊपर विशिष्ट कई सौ प्रासादमय जा

और बन उनके बीचमें स्थित थे, वह वैदूर्य्य तथा सूर्य्यकी भांति प्रकाशमान थे, रौप्य और स्वर्णमय तरुण सूर्य्यकी भांति वर्णविशिष्ट स्थावर और गमनशील भक्ष्य, भोज्यमय पर्व्वत, वस्त्र, शय्या और सर्व्वकाम फलप्रद उन गृहोंमें स्थित थे। नदी, वीथी, सभा, वापी, खांई शब्दयुक्त सवारियें, सहस्रों मोती, दूध बहनेवाली नदियें, पर्व्वत, सर्पिपुञ्ज, निर्म्मलजल और वैवस्वतके बहुतेरे घटष्टपूर्व्वक स्थानोंको मैंने देखा। मैंने वह सब देखके पुराण प्रभु धर्म्मराजसे कहा, ये सब सदा स्रोतयुक्त दूध और घृतके नदियें किनको भोज्यरूपी निर्दिष्ट हुई हैं?

यम बोले, ये जिनकी भोज्य हैं, वह तुम सुनो। जो साधु पुरुष गोरस दान करते हैं, ये उनके ही भोज्य हैं, जो लोग गऊ प्रदान करनेमें रत रहते हैं, उन सब शाश्वत शोकरहित लोगोंसे दूसरे स्थान परिपूरित हैं। इन गौवोंका केवल दानही श्रेष्ठ नहीं है, वैसे गौवोंका पालन करना भी अत्यन्त श्रेष्ठ है, पात्रकाल विधि और गऊ इन सबोंसे ही विशेष है। हे विप्र! विशेष रीतिसे जानके गोरस दान करना योग्य है, क्योंकि अग्नि और सूर्य्य स्वरूप गऊका विशेष ज्ञान होना अत्यन्त दुःखकर है, जो ब्राह्मण निज शाखायुक्त वेदपाठ किया करते हैं, जो अत्यन्त तपस्वी और यज्ञ करनेवाले हैं, वेही गोदानके पात्र होते हैं; कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत निबन्धन तथा पोषण करनेसे अभ्यागत गो विशेष कर इन समस्त व्रत आदिके कारण होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। केवल जल पीके तथा भूमिपर सोकर त्रिरात्रव्रत करके प्रतिदिन एक एक गऊ दान करे और गोरसके द्वारा जीविका निबाहे, इस ही प्रकार व्रत करके तीन गऊ दान करना उचित है। जिन गौवोंको दान करे, वे बछड़ेके सहित अत्यन्त प्रसन्न उत्तम सन्ततिवाली हों और उन्हें, अलंकृत करके दान करना चाहिये। कांसेकी दोहनीसे युक्त उत्तम स्वभाववाली कल्याणयुक्त सबत्सा और जो भागती न हों, वैसी गऊ दान करनेसे उस शरीरमें जितने परिमाणसे रोएं रहते हैं, दाता उतने वर्षतक स्वर्गलोकमें सुख भोगता है। और ब्राह्मणकी बोझा ढोनेवाले उत्तम बलवान युवा वीर्य्यवान कुलानुजीवी वृषभ दान करनेसे दान करनेवाला गोदाताके समान लोकोंको भोग किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग गौवोंके विषयमें क्षमा करते, गऊ ही जिनके लिये अवलम्ब है, वैसे कृतज्ञ वृत्तिहीन ब्राह्मण गोदानके पात्र हैं। वृद्ध पुरुषोंके रोगयुक्त होनेपर उनके पथ्यके लिये, दुर्भिक्षके समय यज्ञके निमित्त, कृषि, होम और पुत्र जन्मनेपर गुरुके लिये तथा बालककी पुष्टिके निमित्त गऊ दान करनेसे देश और कालके अनुसार विशिष्ट दान होता है। जो गौवें दुग्धवती मालूम हों, जो मोल लेने वा ज्ञानसे प्राप्त हुई हों, जो प्राणव्यत्ययके द्वारा ली गई तथा निर्ज्जित हों और विवाहके समयमें जो श्वशुर प्रभृतिके निकट यौतुकमें प्राप्त होती हैं, उन गौवोंके दान करनेमें देश और कालके विशिष्टताकी आवश्यकता होती है।

नाचिकेत बोले, मैंने वैवस्वतका बचन सुनके फिर उनसे कहा, गोदानके अभावमें लोग किस प्रकार गोदाताओंके लोकमें जावेंगे? अनन्तर बुद्धिमान यम गोप्रदानकी परम गति कहने लगे। गोदानके बिना गोप्रदानका अनुकल्प है, इसलिये अनुकल्प दान करनेसे भी गोदानका फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर घृत और गऊ प्रदान करते हैं, उनके लिये ये घृतवाहिनी नदियें वत्सलाकी भांति बह रही है। घृतके अभावमें जो पुरुष यतव्रती होकर तिल और गऊ प्रदान करते हैं, वे गऊके द्वारा क्लेशोंसे छूटकर क्षीरनदीमें प्रमुदित होते हैं। जो मनुष्य यतव्रत होकर तिलके अभावमें जल-गऊ दान करता है, वह इस

कामप्रवाह शीतल जलवाहिनी नदीमें सुख भोग किया करता है। धर्म्मराजने ,, इसी प्रकार वहां मुझे सब विषयोंको दिखाया। हे तात! मैं वह सब देखके परम हर्षित हुआ, मैं आपके समीप यह प्रिय वृत्तान्त सुनाता हूं, गोदान-रूपी यज्ञ अत्यन्त महान् है और इसमें थोड़ा ही धन लगता है।

हे तात! मुझे वही यज्ञलाभ हुआ है वह मेरे द्वारा प्रकट हुआ है, आप वेदविधिसे प्रवृत्त होकर उस यज्ञका फल पावेंगे। मेरे विषयमें आपका यह शाप अनुग्रहके निमित्त ही हुआ था, जिसके प्रभावसे मैंने धर्म्मराजका दर्शन किया। हे महात्मन्! मैं वहांपर दानके फलको देखके अहङ्काररहित होकर दान धर्म्मा-चरण करूंगा। हे महर्षि! धर्म्मराजने अत्यन्त प्रसन्न होके यह भी मुझसे बार बार कहा है, कि जो लोग दान विषयमें सदा यत्न करते हैं वे विशेष रीतिसे गोदान करें। शुद्ध धर्म यही है, कि धर्म्मकी अवमानना मत करो, देश कालके अनुसार पात्रको दान देना उचित है, इसलिये तुम कुछ संशय न करके सदा गोदान करो। पहले समयमें दानपथमें स्थित शान्त-चित्तवाले मनुष्य सदा गोदान करते थे, वे लोग उग्र तपस्याविषयमें श्रद्धा करते हुए शक्तिके अनुसार दान करनेमें प्रवृत्त होते थे। यथा समय शक्तिके अनुसार मत्सरतारहित होके पवित्रचित्तवाले श्रद्धावान् पुण्यशील मनुष्य गोदान करनेसे परलोकमें जाके स्वर्गके बीच प्रकाशित होते हैं। गौवोंके आहार आदिकी परीक्षा करके न्यायसे प्राप्त हुई गौवें ब्राह्म-णोंको दान करो और कास्यष्टमीमें दशाहके समय गोमय, गोमूत्र तथा गोरसके आहार जीवन बिताओ। वृषभ दान करनेसे पुरुष देवव्रती होता है, युवा गऊ दान करनेसे वेद प्राप्त होते हैं, गोयुक्त रथ तथा शकट आदि दान करनेसे तीर्थ लाभ हुआ करता है और कपिला गऊ देनेसे पाप नष्ट होता है। न्यायसे प्राप्त हुई एक ही कपिला गऊ दान करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हुआ करता है। गोरससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, इस ही लिये पण्डित लोग गोदा-नको अत्यन्त महत् कहा करते हैं। गौवें दूध देती हुई लोगोंका उद्धार करती हैं, इस लोकमें गौवें ही अन्न उत्पन्न करती हैं, जो इसे जानके गौवोंको भक्ष्य जल वा तृण उन्हें नहीं देता, वह पापी मनुष्य नरकमें पड़ता है। जो लोग बछड़े सहित सहस्र गऊ दान करते अथवा सौ, दश, पांच तथा एक गऊ साधु ब्राह्मणको देते हैं, तो वही दानकी हुई गऊ परलोकमें दाताके पक्षमें पुण्यतीर्थवाली नदी स्वरूप हुआ करती है। प्राप्ति पुष्टि और लोगोंकी रक्षाके हेतु इस पृथिवीमें गौवें सूर्य-किरण सदृश हैं, गोशब्दसे सूर्यकिरण और गऊ, इन दोनोंका ही बोध हुआ करता है। सन्तान और उपभोग प्राप्त होते हैं इसलिये गोदान करनेवाला सूर्यकी भांति बिराजता है, शिष्य गुरुके समीप गोदान विषयमें वर मांगे, तो वह अवश्य ही स्वर्गगामी होगा। जो लोग गुरुकी आराधना करना जानते हैं, उनके लिये यह उत्तम महान् धर्म है, योगज्ञान प्रभृति सब विधि गुरुसेवा स्वरूप आद्यविधिके बीच प्रविष्ट होती है। न्यायसे प्राप्त हुआ गोधन द्विजातियोंको दान करके परीक्षाके लिये केवल पालने दो, तुम प्रसिद्ध पुण्यशाल हो, इसलिये देवता मनुष्य तथा हम सब कोई तुम्हारी प्रशंसा किया करते हैं। हे द्विजर्षि! धर्म्मराजने जब मुझसे इतनी कथा कही, तब मैंने सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे लौटके आपके चरणमूलमें आगया हूं।

७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह नाचिकेत ऋषिका प्रमाण देके आपने जो गोदा-

नका फल और माहात्म्य कहा, तथा महात्मा राजा नृगने बिना जाने केवल एक ही अपराधसे महत् दुःख पाया था, उसे भी वर्णन किया। द्वारकापुरी बननेपर जिस प्रकार उनका उद्धार हुआ, तथा कृष्ण जिस प्रकार उनके मोक्षके हेतु हुए थे, वह भी मैंने निश्चय किया; परन्तु गोदान करनेसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें मुझे सन्देह है। हे प्रभु! इसलिये गोदान करनेवाले मनुष्य जिन लोकोंमें निवास करते हैं, उस वृत्तान्तको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, इन्द्रने यही विषय ब्रह्मासे पूछा था, प्राचीन लोग ऐसे स्थलमें उस ही पुरातन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं।

इन्द्र बोले, गोलोकवासियोंको स्वकर्म्मके सहारे स्वर्गवासियोंकी लक्ष्मी अभिभव करके गमन करते हुए देखके इस विषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे पापरहित भगवन्! कहिये गोलोक किस प्रकार है? जिस स्थानमें दाता पुरुष निवास करते हैं, उसे जाननेकी अभिलाष करता हूं। गोलोक कैसा है, उसका फल क्या है और वहांपर उत्तम गुण कौनसा है? मनुष्य किस प्रकार क्लेशरहित होके वहां जाते हैं; दाता कितने समयके अनन्तर दानका फल भोगता है? किस भांति थोड़े अथवा अनेक प्रकारके दान होते हैं; बहुतसी गौवोंके दानका कैसा फल है? थोड़े दानका फल किस प्रकारका तथा बिना गोदानके भी किस लिये पुरुष गोदाता हुआ करते हैं? उसे भी मेरे समीप वर्णन कहिये। हे प्रभु! बहुतसा दान करनेवाले किस प्रकार अल्पदाताके समान होते हैं और थोड़ा दान करनेवाले किस भांति बहुप्रद हुआ करते हैं? हे भगवन्! इन सब विषयोंको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे आप ही वर्णन करनेके उपयुक्त हैं।

७२ अध्याय समाप्त ।

ब्रह्मा बोले, हे देवराज! तुमने जो गोदान विषयमें प्रश्न किया लोकके बीच तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस विषयमें जिज्ञासु नहीं है। हे शक्र! अनेक प्रकारके ऐसे लोक हैं, जो कि तुम्हारे नेत्र-गोचर नहीं हुए, केवल मैं ही उन लोकोंको देखता हूं, वहांपर पतिव्रता स्त्रियें, उत्तम व्रत करनेवाले ऋषि और शुभ बुद्धियुक्त ब्राह्मण लोग अत्यन्त शुभ कर्म्मके सहारे निज शरीरसे गमन किया करते हैं। इस लोकमें उत्तम व्रत करनेवाले पुरुष शरीर-न्यासरूपी मोक्ष और निर्म्मलचित्तके सहारे उन स्वप्नभूत लोकोंको देखते हैं। हे सहस्राक्ष! वे सब लोक जैसे गुणयुक्त हैं, उसे सुनो। वहां काल किसीको भी आक्रमण नहीं करता जरा तथा अग्नि किसी पुरुषको आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं होती, वहां किसी भांतिके पाप, व्याधि और क्लेश नहीं है। हे वासव! यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि गो समूह उस स्थानमें मनहीमन जो कुछ अभिलाष करें, वह उन्हें मिलता है। वे काम गामिनी और कामचारिणी होकर इच्छानुसार काम्य विषयोंको भोग करती हैं, बावली, तालाब, नदी, विविध वन, गृह, पर्व्वत तथा जो कुछ वस्तु हैं, सब प्राणियोंके समस्त मनोहर विषय वहां दिखाई देते हैं ऐसे विपुल लोकसे उत्तम तथा वैसा लोक दूसरा नहीं है। हे शक्र! वहां सबके विषयमें क्षमाशील गुरुके वशवर्त्ती और अहङ्काररहित उत्तम पुरुष गमन किया करते हैं। जो पुरुष सदा धर्म्म और सत्यमें रत रहके माता और पिताकी पूजा तथा सेवा करता है और किसी प्रकारका मांस भक्षण नहीं करता, वह ब्राह्मणोंके समीप निन्दनीय नहीं होता। जो गऊ और ब्राह्मणोंपर क्रोध नहीं करते तथा जो लोग धर्म्ममें रत शुश्रूषायुक्त, जन्मसे ही सत्य आचार और दान करनेमें रत, अपराधमें क्षमाशान कोमलता

दान्त, वेद जाननवाले सर्व्वातिथि और दयावान हैं, ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्य उस शाश्वत अक्षय गोलोकमें गमन करते हैं। पराई स्त्रीमें रत रहनेवाले पुरुष इस गोलोकको देखनेमें भी समर्थ नहीं होते, गुरुद्रोही, मिथ्याप्रलापी सदा विदेशमें रहनेवाले और ब्राह्मणोंसे बैर करनेवाले जो दुष्टात्मा पुरुष इन दोषोंसे युक्त हैं, वे गोलोकमें नहीं जा सकते। मित्रद्रोही, वञ्चक, कृतघ्न, शठ, कोमलता रहित, धर्म्मद्वेषी और ब्रह्मघाती पुरुष पुण्यात्माओंके निवास स्थान गोलोकको मनसे भी देखनेमें समर्थ नहीं होते, हे सुरेश्वर! यह मैंने तुमसे निपुणभाव गोलोकका सब विषय कहा। हे शतक्रतु! अब गोदानमें रत मनुष्योंके फल सुनो।

जो पुरुष निज भागके धनसे गऊ मोल लेके दान करते हैं और जो लोग धर्म्मोपार्ज्जित धनसे गऊ मोल लेके देते हैं, उन्हें अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। हे शक्र! जो लोग द्यूतक्रीड़ामें धन जीतनेपर गऊ मोल लेके दान करते हैं, वे दश हजार वर्षतक दिव्य फल भोग किया करते हैं अथवा भागसे प्राप्त हुई गौको दान करनेसे अक्षय लोक मिलता है। हे शचिपति! जो शुद्धचित्तवाले पुरुष गो प्रतिग्रह करके दान करते हैं, वे भी अक्षय लोकोंको इस लोकमें अवश्य प्राप्त होना समझते हैं। जो नियतेन्द्रिय और क्षमावान होकर जन्मसे ही सत्य वचन कहते हैं, गुरु, ब्राह्मणोंके अपराधको सहनेवाले उन पुरुषोंकी गौवोंके सहित समान गति प्राप्त होती है। हे शचिनाथ! ब्राह्मणोंकी निन्दा रहनेपर भी उसे कदापि कहना उचित नहीं है। जो लोग गोभक्ति तथा गौवोंके विषयमें दयावान होंगे, वे मनसे भी कभी गो द्रोह न करेंगे। हे शक्र! जो पुरुष सत्य धर्म्ममें रत रहता है उसका फल सुनो। सत्य धर्म्मानुयायी मनुष्यकी एक ही गऊ सहस्र गऊके तुल्य होती है, क्षत्रियोंके भी इन गुणोंके द्वारा समान फल सुनो। यह विशेष रीतिसे निश्चित है, कि उनकी गऊ ब्राह्मणकी गऊके तुल्य होती है। वैश्यमें यदि ये सब गुण रहें तो उसकी एक गऊ पांचसौ गऊके सदृश है। विनय युक्त शूद्रके लिये चौगुना फल कहा गया है। सत्य और गुरु सेवामें रत दक्ष क्षान्त देवताओंके लिये प्रशान्त पवित्र शुद्ध धर्म्मशील और अनहङ्कार होकर जो मनुष्य इस विषयका अनुष्ठान करता है, वह महत् फल पाता है इस विधिके अनुसार दूध देनेवाली गऊदान करनेसे महा फल हुआ करता है; इसलिये एकभक्त, सत्यमें रत और गुरुसेवामें नियुक्त रहके गोदान करे। हे शक्र! जो वेदपाठी सदा गौवोंके विषयमें भक्ति करते और जो लोग गौवोंका दर्शन करके उन्हें अभिनन्दित करते हैं, उनका फल सुनो। राजसूय यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, बहुतसा सुवर्ण दान करनेसे जो फल होता है, समस्त साधु पुरुष तथा ऋषिलोग उनके लिये इन दोनोंके सदृश फल कहा करते हैं। जो लोग गोव्रती और सत्यवादी होके भोजनकी वस्तुओंका अग्रभाग भोजन न करके सदा गौवोंको देते हैं, वे लोभरहित शान्त पुरुष वर्षभरमें सहस्र गोदानका फल पाते हैं। जो एकबार भोजन करते, जो लोग एक गऊदान करते, जो गोव्रती है तथा गौवोंके विषयमें कृपा करते हैं, वे दश वर्षतक अनन्त सुख भोग किया करते हैं। हे देवराज! जो लोग एकबार भोजन करके धन सग्रह करते और उससे गऊ मोल लेके दान करते हैं गऊके शरीरमें जितने रोम हैं, उन्हें उतने परिमाणसे नित्य-फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको गोदान विषयमें येही सब फल मिलते हैं। अब क्षत्रियोंका फल सुनो, क्षत्रियके लिये गोदान निबन्धनसे पांच वर्षतक अनन्त सुख भोग कहा गया है, वैश्यको क्षत्रियोंसे आधा और शूद्रको वैश्योंका अर्द्ध भाग फल प्राप्त हुआ करता है, जो लोग आत्म-

विक्रयसे गऊ मोल लेके दान करते हैं, जबतक ब्रह्माण्डमें गौवें दीख पड़ती हैं, उतने समय तक वे गोलोकमें निवास किया करते हैं। हे महाभाग। जो लोग संग्राम जीतनेपर प्राप्त हुई गोदान करते हैं, गऊके प्रतिलोमके परिमाणसे उनके लोक अक्षय होते हैं; हे कौशिक! यह जान रखो, कि उन्हें आत्मविक्रयके तुल्य शाश्वत फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर तिल-गऊ प्रदान करते हैं, वे गऊके सहारे सब क्लेशोंसे मुक्त होकर क्षीर-नदीमें प्रमुदित होते हैं। गौवोंका दान मात्रही श्रेष्ठ नहीं है; पात्र, काल, गोविशेष, विधि, कालज्ञान, अग्नि और सूर्य्यस्वरूप विप्र तथा गौवोंके अन्तरको मालूम करना दुःसाध्य है। स्वाध्याययुक्त, शुद्धयोनि, प्रशान्त, वैतानस्थ, पापभीरु, बहुज्ञ, गौवोंके विषयमें क्षमावान, अत्यन्त कठोरतारहित, शरण्य और वृत्तिग्लान पुरुषोंको पण्डित लोग गोदानके पात्र कहा करते हैं। वृत्तिहीन, अवसन्न, कृषिकार्थ्य होम पुत्र उत्पन्न होनेपर तथा गुरु और बालककी वृद्धिके लिये देशकालके अनुसार गऊ दान करे। हे शक्र! जिन गौवोंके अन्तरमें दूध उत्पन्न हुआ हो, जो ज्ञानके सहारे प्राप्त हुई हो, प्राण देके ली गई हों, तेजसे उपार्ज्जित तथा दहेजमें मिली हों, कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण आदि व्रतोंमें जो सब गौवें प्राप्त हों, जो पोषणके निमित्त पाई हों, वे सब विशेष विशेष गऊ इन्हीं कारणोंसे श्रेष्ठ हुआ करती हैं। जो गौवें शीलवन्तसे युक्त और सुगन्धवती होती हैं, उनकी सब कोई प्रशंसा करते हैं, जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ है, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है। तीन रात्रि केवल जल पीके ही प्राण धारण करके पृथ्वीपर सोनेवाले तृप्तियुक्त ब्राह्मणको घन आदिके सहारे परितृप्त गऊ दान करना योग्य है, दूध पीनेवाले पुष्ट बछड़ोंके सहित उत्तम गऊ दान करके त्रिरात्र गोरसके सहारे वृत्तिनिर्व्वाह करनी उचित है। सहजमें दूध देनेवाली कल्याणदायक बछड़े युक्त न भागनेवाली उत्तम गऊ दान करनेसे उसके शरीरमें जितने रोएं रहते हैं, उतने वर्ष पर्य्यन्त दाता परलोकमें सुख भोग करता है। इस ही भांति ब्राह्मणकी बोझा ढोनेवाले युवा बलवान विनीत हल खींचनेवाले अनन्त वीर्य्यवान बैल दान करनेसे दाताको दश गौवोंके तुल्य लोक प्राप्त होते हैं।

हे देवराज! दुर्गम मार्गमें ब्राह्मण और गऊका परित्राण करनेसे गऊ तथा ब्राह्मण कल्याणके सहित विमुक्त होते हैं, इसलिये जो लोग उन्हें ऐसे मार्गसे उबारते हैं, उनका फल सुनो। जो लोग सस्त्रीक ब्राह्मण और गोकुलका परित्राण करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञके तुल्य नित्य फल पाते हैं। हे सहस्राक्ष! वे लोग मृत्युकालमें जिस वृत्तिकी अभिलाष करते हैं और उनके हृदयमें जो सब लोक वर्त्तमान रहते हैं, वे इस ही धर्म्मके सहारे उन सब लोकोंको पाते हैं और गौवोंके बीच भली भांति सम्मानित होकर सब ठौर निवास करनेमें समर्थ होते हैं। हे देवराज! जो लोग इस उद्देश्यसे गौवोंका अनुगमन करते तथा तृण गोमय-पर्णाशी होके निस्पृह और सदा पवित्र रहते हैं, वे निष्काम तथा आनन्दित होके मेरे लोकमें देवताओंके सहित अथवा जिस लोकमें उनकी इच्छा हो वहां निवास करें।

७३ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, जो पुरुष जानके गऊ हरता अथवा धनके निमित्त बेचता है, उसकी कैसी गति होती है? मैं इसे यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, खाने, अथवा बेचनेके लिये जो लोग गऊ हरते और ब्राह्मणको दान करनेके

लिये जो पुरुष गऊ मोल लेते हैं, उस विषयके फल सुनो। जो पुरुष निठुर होके बेचनेके लिये गऊको मारता वा भक्षण करता है, तथा जो अर्थी होकर घातक पुरुषोंको अनुमति देता है, गऊके शरीरमें जितने रोम रहते हैं, उतने वर्ष पर्य्यन्त मारनेवाले, खानेवाले और अनुमति देनेवाले नरकमें डूबते हैं। हे प्रभु! ब्राह्मणके यज्ञको नष्ट करनेसे जैसा दोष होता है, गऊ बेचने और हरनेसे भी उतना ही दोष हुआ करता है। जो पुरुष गऊ हरके ब्राह्मणको दान करता है, गोदानका जितना फल है, उतने समयतक वह दाता नरकमें गमन करता है, हे महाद्युति। पण्डित लोग गोदानके समय सुवर्णकी दक्षिणा कहा करते हैं, दक्षिणाके निमित्त निःसन्देह सुवर्ण ही श्रेष्ठ है। मनुष्य गोदान करनेसे सात ऊपरके और सात नीचेके पुरुषोंका उद्धार करता है, सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे उसका दूना फल कहा गया है, सुवर्ण ही परम दान और परम दक्षिणा है। हे शक्र! सुवर्ण ही समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच पावन करके वर्णित हुआ है। हे देवराज! सुवर्णको पण्डितोंने समस्त कुलके लिये पावन कहा है। हे महाद्युति। यह मैंने संक्षेपमें दक्षिणाकी कथा कही है।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पितामहने यह विषय देवराजसे कहा था, इन्द्रने दशरथसे, दशरथने रामसे, रामने अपने प्रिय भाई यशस्वी लक्ष्मणसे कहा और लक्ष्मणने वनवासके समयमें यह विषय ऋषियोंके समीप वर्णन किया था। शंसितव्रती और धार्म्मिक राजाओंने इस ही परम्पराक्रमसे आते हुए इसदुर्द्धर विषयको धारण किया था। हे युधिष्ठिर। इस विषयको मेरे उपाध्यायने मेरे निकट वर्णन किया था। जो ब्राह्मण इसे सदा ब्राह्मणोंकी सभामें कहता है, गोदान अथवा दोनोंके समागममें उसके समस्त लोक सदा देवताओंके सहित अक्षय होते हैं, उस सर्व्व शक्तिमान भगवान परमेश्वर ब्रह्माने यह कथा कही थी।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे प्रभु पितामह! आपके सब धर्म्म वर्णन करनेसे मैं विश्वस्त हुआ, पर मैं कुछ सन्देहके विषय पूछता हूं, आप मुझे उसका उत्तर दीजिये। हे महातेजस्वी! व्रतोंका कैसा फल कहा गया है और वे कैसे हैं? नियमोंका क्या फल है? उत्तम रीतिसे अध्ययन करनेका कैसा फल होता है? इन्द्रिय निग्रहरूपी दमका क्या फल है; वेदोंको धारण करनेसे क्या फल होता है? पढानेसे कैसा फल हुआ करता है, यह सब जाननेकी इच्छा करता हूं। हे पितामह! जगत्में प्रतिग्रह न करनेसे क्या फल होता है? जो पुरुष दान करता है, उसके दानका कुछ भी फल देखा तथा सुना गया है, वा नहीं? निजकार्य्यमें रत रहनेवाले शूर पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है? शौचाचारका क्या फल कहा गया है? ब्रह्मचर्य्यका क्या फल है? पिता माताकी सेवा करनेका क्या फल होता है? आचार्य्य और गुरुकी सेवा करनेका कैसा फल है? अनुक्रोश अर्थात् दूसरेके दुःखसे दुःखी होना और अनुकम्पा अर्थात् दूसरेके दुःखको दूर करनेका क्या फल है? हे पितामह! इन विषयोंको यथार्थ रीतिसे जाननेकी अभिलाष करता हूं, इसमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है।

भीष्म बोले, जो लोग एक भक्त आदि यथा विहित व्रतको भली भांति आरम्भ करके पूर्ण रीतिसे उसे समाप्त करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है। हे राजन्! इस लोकमें नियमोंका फल प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है। भली भांति पढ़नेका फल इस लोक और परलोकमें दीखता है। पढ़ानेवाले मनुष्य इस लोकमें

नियत सुख भोगके ब्रह्मलोकमें प्रमुदित होते हैं। हे महाराज! तुम मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक दमका फल सुनो। दमयुक्त पुरुष सर्व्वत्र सुख भोगते हैं और सब स्थानोंमें ही निवृत्त हुआ करते हैं। उनको जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जा सकते हैं और समस्त शत्रुओंको नष्ट करते हैं, दान्त पुरुष जिस वस्तुके निमित्त प्रार्थना करते हैं, उसे निःसन्देह पाते हैं। हे पाण्डव! दमयुक्त पुरुष सर्व्वकाम सम्पन्न हुआ करते हैं। जैसे पुरुष तपस्या और पराक्रमके सहारे स्वर्गमें प्रमोद करते हैं, वैसेही क्षमावान् दमयुक्त मनुष्य विविध दान और यज्ञके सहारे आनन्दित हुआ करते हैं। दानसे दम श्रेष्ठ है; द्विजातियोंको जो दान करता है, वह दाता कदाचित कुपित हो सकता है, परन्तु दमयुक्त पुरुष कभी क्रुद्ध नहीं होते, इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। जो लोग सोना रूपा दान करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, जब कि क्रोध दानको विनष्ट करता है, तब दानसे दम ही श्रेष्ठ है। हे महाराज! सुरपुरमें ऋषियोंके दश हजार अदृश्य स्थान हैं, जिन स्थानोंमें देववृन्द इस लोकसे गमन किया करते हैं, वेही सब लोकोंके बीच उत्तम हैं। हे महाराज! कामगामी परमर्षिवृन्द दमके सहारे वहां प्रस्थान करते हैं, वही महत् स्थान है, इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। अध्यापक लोग अध्यापन कार्य्यसे अत्यन्त क्लेश सहनेके कारण अक्षय फल उपभोग करते हैं। हे नरनाथ! विधि पूर्व्वक अग्निमें आहुति देकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें गमन किया करता है। जो लोग वेदको पढके न्याय पूर्व्वक लोगोंको पढ़ाते हैं, वे इस ही गुरुकर्म्मके सहारे स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। जो क्षत्रिय अध्ययन, यजन और दान कार्य्यमें नियुक्त रहके युद्धमें परित्राता बनता है, वह भी स्वर्गमें पूजित हुआ करता है; निज कर्म्ममें रत वैश्य दानसे महत्त्व पाता है और निज कर्म्ममें रत रहनेवाला शूद्र भी सेवाके सहारे स्वर्गमें जाता है। अनेक प्रकारके शूर कहे जाते हैं, मेरे समीप उनका विषय सुनो।

शूरवंशीय शूरोंका फल निर्दिष्ट है, यज्ञशूर, दमशूर, सत्यशूर, युद्धशूर, दानशूर, ज्ञानशूर, और यागशूर प्रभृति अनेक प्रकारके मनुष्य शूर कहे गये हैं, इसके अतिरिक्त वन, गृह और त्याग विषयमें बहुतेरे शूर हुआ करते हैं। कोई कोई बुद्धिशूर कोई क्षमाशूर और कोई सरलता विषयमें शूर हैं, कोई मनुष्य समता विषयमें शूर रूपसे वर्त्तमान है, पहले कहे हुए नियमके द्वारा दूसरे अनेक प्रकारके शूर हुआ करते हैं। कोई वेद पढ़नेमें शूर है, कोई विद्यामें रत रहनेसे शूर है, कोई गुरुसेवा विषयमें शूर हैं, कोई मनुष्य भिक्षा विषयमें शूर हैं। वनमें गृह-वास और अतिथि पूजनमें कोई कोई मनुष्य शूर हुआ करते हैं, ये सभी पुरुष निजकर्म्म फलसे अर्ज्जित लोकोंमें गमन करते हैं। वेदोंका पाठ करनेवाले तथा तीर्थोमें स्नान करनेवाले सदा सत्यवादीके समान होते अथवा नहीं हो सकते। सहस्र अश्वमेध यज्ञ और अकेला सत्य तराजू पर तौला गया था, परन्तु सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य ही विशिष्ट हुआ। सत्यसे ही सूर्य्य तपता है, सत्य होसे अग्नि जलती है, सत्यसे ही वायु बहती है, इसलिये सत्यसे ही सब प्रतिष्ठित है। सत्यसे देवता प्रसन्न होते और सत्यसे ही पितर तथा ब्राह्मणवृन्द प्रसन्न हुआ करते हैं। सत्यको ही ऋषिलोग परम धर्म्म कहते हैं, इसलिये सत्यको न मानना उचित नहीं है। मुनिवृन्द सत्यमें ही रत हैं, मुनियोंका सत्य ही विक्रम है, मुनियोंको शपथ सत्य है, इसलिये सत्य ही सबसे विशिष्ट होता है।

हे भरतश्रेष्ठ! सत्यवादी मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्दित हुआ करते हैं। दम ही सत्यफलकी प्राप्ति स्वरूप है, इसे पहले ही

प्रकारसे कहा है, विनययुक्त मनुष्य निःसन्देह स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। हे पृथ्वीनाथ! अब ब्रह्मचर्य्यके गुण सुनो, जो पुरुष इस लोकमें जन्मसे मरण पर्य्यन्त ब्रह्मचारी होता है, उसे कुछ भी अप्राप्त न जानना। ऋषियोंके बीच ब्रह्मचारी पुरुष कई करोड़ वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। हे महाराज! सदा सत्यमें रत, दान्त, ऊर्द्ध्वरेता विशेष करके ब्रह्मचर्य्य व्रतनिष्ठ ब्राह्मणके सब पापोंको जला देता है, क्योंकि ब्राह्मण अग्निरूपी कहे गये हैं, ब्राह्मणोंके तपस्वी होनेपर यह प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, कि जिसके प्रभावसे ब्रह्मचारीसे धर्षित होने पर इन्द्र डरते हैं, ऋषियोंके उस ब्रह्मचर्य्यका फल इस लोकमें दिखाई देता है। माता पिताकी पूजा करनेसे जो धर्म्म होता है, वह मुझसे सुनो। हे महाराज! जो लोग पिताकी सेवा करते हैं और कभी उनके विषयमें असूया नहीं करते, तथा माता, भ्राता, गुरु और आचार्य्यके विषयमें पितृवत् व्यवहार करते हैं, स्वर्गलोकमें उन्हें पूजित स्थान मिलता है, इसे ही फल जानो। आत्मवान् पुरुष गुरुसेवाके सहारे कदापि नरक नहीं देखता।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिसके द्वारा शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, आपके समीप उस गोदानकी विधिको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! गोदानसे श्रेष्ठ दूसरे कोई भी विषय विद्यमान नहीं हैं, क्योंकि न्यायसे प्राप्त हुई गऊ दान करनेसे दाता शीघ्र ही अपने कुलका उद्धार करता है। हे महाराज! जो विधि साधुओंके निमित्त पूरी रीतिसे प्रकट है, इन प्रजाओंके लिये भी वही ज्योंकी त्यों रचित है; इसलिये पहले समयसे प्रसिद्ध उस गोदानकी विधिको मेरे समीप सुनो।

पहले समयमें गौवोंके उपस्थित होनेपर उनके विषयमें मान्धाताके शङ्कायुक्त होके प्रश्न करनेपर वृहस्पतिने उत्तर दिया था। अपने आरम्भिक कृत्य, उपस्थित हुई दानके नियत व्रती उसपर लाल रङ्गवाली गऊ दान करे। गौवोंको "समङ्गे बहुले"—इस वाक्यके द्वारा आह्वान करे और गौवोंके बीच प्रवेश करके इस अगमागत श्रुतिका पाठ करना होगा। गऊ हमारी माता और वृषभ पिता मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें; गौवोंसे हमारी प्रतिष्ठा हो, ऐसा मन्त्र उच्चारण करके गोसमूहमें प्रवेश करे और मौनावलम्बन करके वहां एक रात्रि वास करे, गोदानके समय फिर वचन कहे, यही गोदानका पूर्व्वाङ्ग-व्रत है। साधुओंके बीच जो पुरुष एक रात्रि गौवोंके सहित असमग्र और समव्रती अर्थात पृथ्वीपर सोके दंश मशकादिके अनिवारण प्रभृति गुणोंसे युक्त हुआ करते हैं, वे गौवोंके सहित एकात्मा गमन निबन्धनसे ही समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। सूर्य्योदयके समय बछड़ेयुक्त गऊ दान करनेसे तुम स्वर्गलोक पाओगे और तुम अर्थवादरूपी आशीर्व्वाद प्राप्त होंगी। गौ ऊर्ज्जस्विनी अर्थात् उत्साह बलविधायनी, प्रज्ञा वर्द्धिनी, यज्ञकर्म्ममें अमृत अर्थात यज्ञ साध हविकी गर्भभूत, इस जगत्की प्रतिष्ठास्वरूप और सदा पृथ्वीका प्रवाहरूप प्राजापत्य,— सब अर्थवाद गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। गौवें मेरा पाप दूर करें, सूर्य्य और सोमदैवत गौवें मेरे स्वर्ग गमनमें कारण होवें, मेरे चित्तमें माताके समान अवलम्ब हों, दोनों सन्तोंमें कहा हुआ तथा अनुक्त आशीर्व्वाद मेरे निमित्त सफल होवे। रोग-उपद्रवको दूर करने और देहमें चक्के समय पञ्चगव्यादि सेवन करनेपर गौवें सरस्वती नदीकी भांति कल्याणके हेतु हुआ करती हैं। हे गोवृन्द! तुम लोग सदा पुण्य ढोया करती हो; इसलिये तुम प्रसन्न होकर

मुझे अभिलषित गति प्रदान करो। इस समय जो तुम हो, मैं भी वही हूं, आज हम लोगोंकी एकता होती है, मैं तुम्हें दान-करके आत्मप्रदाता बनता हूं, तुम लोग दाताके ममत्व अभिमानसे रहित होके मेरे ममताकी आस्पद हुई हो, तुम लोग सौम्य और उग्ररूपसे युक्त होकर दाताको अभीष्ट भोगके सहारे प्रकाशित करो। विधिपूर्व्वक गोदान करनेवाला ग्रहीताके अगाड़ी पहले कहे हुए श्लोकका अर्द्धभाग पढ़े और प्रतिग्रहीता द्विजाति गोदान लेनेके समय पहले कहे हुए श्लोकका शेष आधा हिस्सा पाठ करे, गोदानके समय जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, वे ही विधि जाननेवाले हैं। जो लोग गोदानकी प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहारिक गऊका मूल्य वस्त्र वा वित्त दान करते हैं, उन्हें भी गोदाता कहना योग्य है। गऊका मूल्य दान करनके समय ऐसा वचन कहे, कि तुम्हें ऊर्द्धास्या गऊ प्रदान करता हूं, तुम ग्रहण करो। वस्त्र दान करनेके समय भवितव्या और वसुधेनु दानके समय वैष्णवी वाक्य प्रयोग करें, संख्याके अनुसार गौवोंके ऊर्द्धास्या प्रभृति नाम कहना चाहिये। यथाक्रमसे प्रतिनिधि दान प्रभृतिका ऐसा ही फल जानो; गऊका मूल्य देनेसे छत्तीस हजारगुणा फल होता है, वस्त्रधेनु देनेसे आठ हजारगुणा और वसुधेनु दान करनेसे बीस-हजारगुणा फल हुआ करता है। साक्षात् गोदान करनेवालेको आठपग गमन करते ही समस्त फल प्राप्त होते हैं, अर्थात् ग्रहीताके गृहमें गऊके पहुंचते ही उसके बालक, अतिथि और अग्निहोत्र आदिका प्रतिदिन निर्व्वाह होता है। गोदाता शीलवान् होता, मूल्य देनेवाला निर्भय हुआ करता है और वस्त्रदाता कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग उषाकालमें प्रातःस्नान आदि किया करते हैं और जिन्हें विशेष रीतिसे महाभारत विदित है, वे चन्द्रमाकी भांति प्रकाशयुक्त लोक वैष्णवरूपसे विख्यात होते हैं, इसलिये वैसे ब्राह्मणोंको गोदान करना उचित है। गोदान करके मनुष्य त्रिरात्र गोव्रती होवे और एक रात्रि इस लोकमें गौवोंके सहित निवास करे तथा काम्याष्टमीमें त्रिरात्रके समय गोरस गोमय और गोमूत्रके द्वारा जीवन बितावे। वृषभ दान करनेपर मनुष्य देवव्रती अर्थात् सूर्य्यमण्डलभेत्ता ब्रह्मचारी हुआ करता है, दो गऊ दान करनेसे वेद प्राप्ति होती है और यज्ञ करनेवाला पुरुष विधिपूर्व्वक गोदान करनेसे उत्तम लोक पाता है। जो लोग विधि जाननेवाले नहीं हैं, उन्हें उन लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। जो लोग कामदुघा-गऊ दान करते हैं और जो लोग एकसस्य समस्त पार्थिव काम्यविषय दान देते हैं, उनमेंसे हव्य काव्यवती गौवे ही श्रेष्ठ होती हैं और गऊकी अपेक्षा वृषभ दान करनेसे अधिक फल प्राप्त होता है। जो पुरुष शिष्य नहीं है, जो व्रत नहीं करता, जो लोग श्रद्धावान् नहीं हैं, उनके समीप यह धर्म्मविषय न कहे, यह धर्म्म सब लोगोंको ही गोपनीय है, इसलिये जहां तहां इस धर्म्मकी जल्पना करनी उचित नहीं है। इस लोकमें बहुतसे श्रद्धावान् मनुष्य हैं और मनुष्योंके बीच बहुतेरे क्षुद्रबुद्धि तथा राक्षस हैं, जिनसे कहनेसे बुराई हो और जो सब अल्प पुण्यवाले मनुष्य नास्तिकता अवलम्बन किये हों, उनके निकट यह विषय न कहें। हे महाराज! यह सब वृहस्पतिसम्बन्धीय वचन सुनके जिन राजाओंने गोदान करके पवित्र लोकोंको पाया है, उन पुण्यशील राजाओंका विषय सुनो। उशीनर, विष्वगश्व नृग, विख्यात भगीरथ, यौवनाश्व, मान्धाता, राजा मुचकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरुरवा, चक्रवर्त्ती भरत,—"जिसके वंशमें जन्म लेके सब राजा भारत नामसे विख्यात हुए हैं," और श्रेष्ठ दाशरथि राम, इनके अतिरिक्त दूसरे जो

सब राजा कीर्त्तिमान रूपसे विख्यात थे और पृथुकर्म्मा दिलीपने विधिपूर्व्वक गोदानके सहारे स्वर्गलोक पाया है। महाराज मान्धाता यज्ञ, दान, तपस्या, राजधर्म्म और गोदान विषयमें सदा नियुक्त थे। हे पार्थ! इसलिये तुम भी मेरी कही हुई इस गाङ्गरूपी वाणीको धारण करो। तुमने कौरवोंका राज्य पाया है, इसलिये प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको पवित्र गऊ दान करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर जिस प्रकार भीष्मने गोदानका विषय कहा, धर्म्मराजने उसे उस ही भांति किया, मान्धाताके समीप जो विषय बृहस्पतिके द्वारा वर्णित हुआ था, राजाओंने उस ही धर्म्मको पूर्ण रीतिसे धारण किया। हे महाराज! इस ही भांति गोदानके समय गोमयके साथ यवस भक्षण और पृथ्वीपर शयन करते हुए शिखावान होकर वृषभकी भांति वह नृपश्रेष्ठ संयतचित्त हुए थे। राजा लोग सदा गौवोंके विषयमें प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति करते हुए राजाओंमें अग्रणी होके उत्तम आकाशमें जिस स्थानमें इच्छा होती, वहां जाते थे।

७६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बुद्धिशक्तिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने विनयपूर्व्वक फिर शान्तनुनन्दन भीष्मसे गोदानका विषय पूछा।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! गोदानका समस्त फल फिर मेरे समीप पूरी रीतिसे वर्णन करिये। हे वीर! मैं ऐसे अमृतको कानसे पीते हुए किसी प्रकार तृप्त नहीं होता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ भीष्म धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके उनसे केवल गोदानका फल पूरी रीतिसे कहने लगे।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको गुणयुक्त सवत्सा तरुणी गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। जिन लोकोंमें सूर्य्य नहीं है। गऊदान करनेसे मनुष्य उन लोकोंमें नहीं जाता। जिस गऊने जल पीया है, और पीवेगा, जिसने तृण खाई हो, फिर न खाय, जिसका दूध नष्ट हुआ है, फिर न होगा, और जिसकी इन्द्रियें निःशेष हुई हों वैसी जरारोगयुक्त जलरहित वापीकी भांति जीर्ण गऊ दान करनेसे घोर अन्धकारके बीच प्रवेश करना होता है, जो पुरुष ऐसी गऊ दान करता है, वह ब्राह्मणको दुःखयुक्त किया करता है। दुष्ट, व्याधियुक्त, दुबली और जिस गऊको देके कोई न ले, वैसी गऊ दान करना उचित नहीं है। जो पुरुष ब्राह्मणोंको निरर्थक क्लेश प्रदान करता है, उसके उत्तम लोक निष्फल और निर्व्वीर्य्य होते हैं। वह मोटी और अच्छी युक्त सुगन्धवती गऊको सब कोई प्रशंसा किया करते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ है, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह! गोदान समान होनेपर भी साधु लोग किस लिये कपिला दानको श्रेष्ठ कहते हैं? इस वृत्तान्तको मैं विशेष रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप भी कहनेमें समर्थ हैं।

भीष्म बोले, हे तात! मैंने प्राचीन पण्डितोंसे जो कथा सुनी है और रोहिणीवृन्द जिस प्रकार उत्पन्न हुई हैं, वह सब पूरी रीतिसे कहता हूं। पहले स्वयम्भूने दक्षको प्रजा उत्पन्न करनेके लिये आज्ञा दी, तब उन्होंने प्रजा समूहके हितकामनासे पहले बृत्ति उत्पन्न की। हे विभु! जैसे देववृन्द अमृतके आसरे विद्यमान हैं, वैसे ही सब प्रजा बृत्तिको अवलम्बन करके वर्त्तमान है। स्थावर जीवोंसे जङ्गम मनुष्य ही सदा श्रेष्ठ है, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, क्यों कि ब्राह्मणोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं। यज्ञोंके सहारे सोमरस प्राप्त होता है, परन्तु वे यज्ञ गौवोंसे प्रतिष्ठित हैं,

यज्ञसे ही देववृन्द प्रमुदित होते हैं, इसलिये पहले वृत्ति और शीघमें प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुई है। जीवगणने उत्पन्न होके जीविकाके निमित्त चिल्लार किया था, प्रजापतिने पिता माताकी भांति उन तृषित प्रजा समूहको वृत्तिदान करके कृपा की थी। भगवान् प्रजापतिने इसही प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न करनेके लिये मनही मन आलोचना करके उस समय उन्हें अमृत पिलाया था। प्रजावृन्द तृप्त होवें, ऐसा विचार करके सुरभि-गन्ध उद्गीरण करते हुए वहां जाके उसके उद्गारसे उत्पन्न तथा मुखसे प्रकट हुई सुरभीको देखा। उस सुरभीने प्रजाओंकी वृत्ति विधायनी, सुवर्ण रङ्गवाली कपिला सर्व्वलोक मातका सौरभेयी गौवोंको उत्पन्न किया था। जैसे नदीके तरङ्गसे फेन उत्पन्न होता है, वैसे ही सब प्रकारसे दूध देनेवाली अमृत वर्ण सौरभेयी गौके अमृतसे फेन उत्पन्न हुआ, वह फेन बछड़ेके मुखसे पृथ्वीपर स्थित महादेवके मस्तकपर गिरा। सर्व्व शक्तिमान महादेवने क्रुद्ध होकर माथेके नेत्रसे रोहिणीको मानो जलानेके लिये उसकी ओर देखा। हे नरनाथ! अनन्तर जैसे सूर्य्य मेघमालाको अनेक वर्णका करता है, वैसे ही उस रौद्रतेजने कपिला गौवोंको विविध वर्ण किया। जो कपिला गौवें उस रुद्रतेजसे अपक्रान्त होकर चन्द्रमण्डलमें जाके स्थित हुई थी, वे जिस प्रकार सुवर्ण होके उत्पन्न हुई थी, वैसी ही रहीं, उनका दूसरा रङ्ग नहीं हुआ। अनन्तर महादेवके क्रुद्ध रहनेपर प्रजापतिने उनसे कहा, तुम अमृतसे अभिषिक्त हुए हो, गौवोंके फेन प्रभृति कुछ भी जूठे नहीं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृत ग्रहण करके फिर उदित होता है, वैसे ही रोहिणीगण अमृतसे उत्पन्न दूध दिया करती हैं, अग्नि, वायु, सुवर्ण और समुद्र दूषित नहीं होते, अमृतको यदि कोई पीवे, तौभी दूसरे लोग उसे पीनेसे दूषित नहीं होते और बछड़ेके पीनेपर समस्त गौवें भी दूषित नहीं हैं। ये घृत दूधके सहारे इन सब लोकोंका भरण करेंगे, सब कोई इनके अमृतमय शुभ ऐश्वर्य्यकी इच्छा किया करते हैं। प्रजापतिने महादेवको प्रसन्न करनेके लिये गौवोंके सहित एक बृषभ दिया। हे भारत! उन्होंने वृषभ देके रुद्रका मन प्रसन्न किया, महादेवने प्रसन्न होकर उस बैलको अपनी ध्वजा तथा अपना वाहन किया था, इस ही निमित्त वे वृषभध्वज नामसे विख्यात हुए हैं। अनन्तर देवताओंने उस समय महादेवको पशुपति किया, वे गौवोंके बीच रहनेसे वृषभाङ्क नामसे वर्णित हुए। इस ही भांति अव्यग्र वर्ण महातेजस्विनी कपिला गौवोंका दान प्रथम कल्प कहा गया है। लोकमें जेठी, लोगोंकी वृत्तिके लिये प्रदत्ता, रुद्रापिता, सोमाविस्पन्द-भूत, सौम्य, पुण्यकामदा और प्राणदा गौवोंको दान करनेसे मनुष्य सर्व्वकामप्रद होता है। सदा मङ्गलाभिलाषी पुरुष गौवोंके इस उत्तम उत्पत्ति-विषयका पाठ करनेसे पापोंसे छूट जाते और सदा श्री, पुत्र, धन और पशु पाते हैं। हे महाराज! दाता गोदान करके हव्य कव्य तर्पण, शान्तिकर्म्म, यान, वसन, बालक और बूढ़ोंकी तुष्टि, ये समस्त फल पाते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अजमीढ़ वंशावतंस पृथापुत्र महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित पितामहका वचन सुनके ब्राह्मणोंको सुवर्ण रङ्गके वृषभ और गऊ दान किया, तथा उन्होंने श्रेष्ठ लोकोंको जय करने अथवा कार्य्यके निमित्त यज्ञके उद्देश्यसे दक्षिणामें सौ हजार गऊ दान किया था।

७७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इसके अनन्तर इक्ष्वाकु वंशीय वक्तृवर राजा सौदास सर्व्वलोकचारी सिद्ध

वेदनिधि नित्य पुरोहित ऋषिसत्तम वशिष्ठको प्रणाम करके प्रश्न करना आरम्भ किया।

सौदास बोले, हे अनघ भगवन्! तीनों लोकोंके बीच मनुष्य जिसका सदा नाम लेते हुए पुण्यसञ्चय करता ऐसा पवित्र क्या है?

भीष्म बोले, विद्वान् वशिष्ठ पवित्र होकर गौवोंको प्रणाम करके उस समय प्रश्नकर्ता राजासे गौवोंके विषयमें उपनिषत् वचन कहने लगे।

वशिष्ठ मुनि बोले, गौवें सुरभिगन्ध और गुग्गुलगन्धविशिष्ट हैं, गौवें सब भूतोंकी प्रतिष्ठा और सब लोकोंके लिये महत् स्वस्त्ययनस्वरूप हैं, गऊ ही भूत-भविष्य हैं, गौवें ही सनातनी पुष्टि स्वरूप हैं। गौवें ही लक्ष्मीकी मूल हैं और जो कुछ गौवोंको दिया जाता है, वह विनष्ट नहीं होता। गऊ ही देवताओंके परम हवि और अन्नस्वरूप हैं, स्वाहा और वषट्-कार सदा गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। गऊ ही यज्ञके फल हैं, गौवें ही यज्ञमें प्रतिष्ठित होरही हैं। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! सन्ध्या और भोरके समय सदा गौवें ऋषियोंके होम साधन घृत आदि प्रदान किया करती हैं। हे महाराज! चाहे कोई कैसाही पापी क्यों न हो, गोदान करनेसे उसके सब पाप नष्ट हुआ करते हैं, जिसके दश गऊ हों, वह एक गऊदान करे, जो लोग एक सौ गऊवाले हों, वे दश गऊ दान कर सकेंगे और जो लोग सहस्र गायुक्त हैं, वे एक सौ गऊ दान करें, परन्तु ये सब कोई तुल्य फल भोग करेंगे। सौ गऊवाला पुरुष यदि आहिताग्नि न हो और सहस्र गऊवाला पुरुष यदि विधिपूर्व्वक यज्ञ न करे, तथा जो पुरुष समृद्ध होके भी कृपण हो, वे तीनों ही अर्थलाभके योग्य नहीं हैं। जो लोग सवत्सा कांस्यदोहना उत्तमव्रत और वस्त्रसे युक्त कपिला गऊ दान करते हैं, वे इस लोक तथा परलोकको जय किया करते हैं। हे शत्रुतापन! जो लोग श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको सैकड़ो यूथपति युवा सर्व्वे-न्द्रियमत्त, बड़े गौवोंसे अलङ्कृत गवेन्द्र वृषभ दान करते हैं, वे बार बार जन्म लेके ऐश्वर्य्यलाभ किया करते हैं। गौवोंके बिना नाम लिये सोना न चाहिये, उन्हें बिना स्मरण किये चलना अनुचित है, सन्ध्या और सबेर गौवोंको प्रणाम करनेसे पुष्टि प्राप्त होगी। गौवोंके मूत्र और पुरीषके विषयमें किसी प्रकार घबड़ाना न चाहिये और कदाचित इनका मांस भक्षण न करे, तो पुष्टि प्राप्त होगी। सदा गोमयसे स्नान करे, करीषके बीच जावे, स्वेद मूत्र पुरीष और प्रतिघातका त्याग देवे। गौवोंका सदा नाम ले, उनको कभी अवज्ञा न करे, मनुष्य बुरे स्वप्न देखनेपर गौवोंका नाम लेवे। प्रोक्षणके द्वारा गोचर्म्मके भींगनेपर बैठके भोजन करे, वरुणसे पालित पश्चिम दिशाकी ओर देखे। जो लोग वाक्संयत होके पृथ्वीपर बैठते हैं, वे गौवोंके दूध घृतके सहारे सदा पुष्टि लाभ किया करते हैं। घृतसे होम करे, घृतके द्वारा स्वस्तिवाचन करावे, घृत दान करे और घृत प्राशन करे, तो गौवोंको पुष्टि भोग कर सकेगा। जो लोग गोमती विद्याके द्वारा मन्त्र पढ़के तिलधेनु दान करते हैं, उन्हें कृत और अकृत विषयोंके लिये शोक नहीं करना पड़ता। जैसे सब नदियां समुद्रके निकट उपस्थित होती हैं, वैसे ही सुवर्ण शृङ्गसे युक्त दूध देनेवाली सुरभि सौरभेयी गौवें मेरे समीप उपस्थित होवें। हम सदा गौवोंका दर्शन करें, गौवें मुझे सदा अवलोकन करें। गौवें हमारी हैं और हम उनके हैं, जहांपर गऊ हैं हम भी उस ही स्थानमें हैं। मनुष्य रात दिन, सम वा विषम स्थलमें महाभय उपस्थित होनेपर इस ही प्रकार गौवोंका यश गाके भयसे मुक्त होता है।

७८ अध्याय समाप्त।

वशिष्ठ बोले, हे परन्तप! पहले उत्पन्न हुई गौओंने सबसे अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी इच्छासे लाख हजार वर्षतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी। इस लोकमें समस्त दक्षिणाके बीच हम श्रेष्ठ होंगी तथा हम किसी दोषमें लिप्त न होंगी। लोग हमारे पुरीषके द्वारा स्नान करनेसे सदा पवित्र होंगे, देवता और मनुष्य हमारे गोमयके सहारे पवित्रताका विधान करेंगे। और स्थावर जङ्गम समस्त जीवोंके बीच जो लोग हमें प्रदान करेंगे, वेही हमारे लोकोंमें गमन कर सकेंगे। गौओंने इसी प्रकार कामना करके तपस्या की थी, उनकी तपस्या पूरी होनेपर सर्व्व-शक्तिमान ब्रह्माने स्वयं उनसे कहा, कि ऐसा ही होवे. तुम लोग सबका उद्धार करो, ऐसा वचन कहके उन्हें यही वर दिया था। भूत-भविष्यकी माता वे सब गौवें मनोरथ पूरा होनेपर उठीं। प्रातःकालसे उन्हें नमस्कार करनेसे पुष्टि प्राप्त होती है।

हे महाराज! तपस्या शेष होनेपर गौवें लोकपरायण हुई थीं, इसलिये महाभागा गौवें परम पवित्र रूपसे वर्णित हुआ करती हैं और इस ही निमित्त वे सब लोगोंके ऊर्द्ध्वमें निवास करती हैं। मनुष्य सवत्सा उत्तमव्रत और वस्त्रसे युक्त दूधवाली कपिला गऊ दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। लाल वर्णवाली तुल्यवत्सा, उत्तम व्रतवाली दुग्धवती गऊको वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य सूर्य्यलोकमें पूजित हुआ करता है। समानवत्सा बलयुक्त उत्तम व्रतवाली वस्त्रपूरित पयस्विनी गऊ दान करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें पूजित होता है। वस्त्र उढ़ाके उत्तम व्रतयुक्त समान वत्सा सफेद गऊ दान करनेसे मनुष्यको इन्द्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। समानवत्सा उत्तमव्रतवाली श्यामवर्णवाली पयस्विनी गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य अग्निलोकमें पूजित होता है। उत्तम व्रतवाली समानवत्सा धूम्रवर्णकी दुग्धवती गऊ दान करनेसे मनुष्य यमलोकमें पूजनीय होता है। जलके फेनके रङ्ग समान बछड़ा और वस्त्र दोहनपात्रसे युक्त गऊ दान करनेसे मनुष्य वरुणलोकमें सुख भोग करता है। वातरेणुके समान रङ्गवाली कांसेके दोहनपात्र तथा वस्त्र पूरित सवत्सा गऊ दान करनेसे पुरुष वायुलोकमें अभिनन्दित हुआ करता है। सुवर्ण-रङ्गवाली पिङ्गाक्षी सवत्सा कांसेकी दोहनीके सहित वस्त्र उढ़ाके गऊदान करनेसे मनुष्य कुवेर लोकमें सुख भोगता है. धूम्रवर्णवाली गऊ कांसेके दोहनीके सहित वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य पितृलोकमें पूजित होता है। गर्द्दनमें कम्बलकी झूलसे अलंकृत करके सवत्सा गऊ दान करनेसे मनुष्यको वैश्वदेव नामक बाधारहित उत्तम लोक प्राप्त होता है, दूध देनेवाली सवत्सा उत्तम गऊको वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य वसुलोक पाता है। पाण्डुरकम्बलके रङ्ग समान दूध देनेवाली सवत्सा गऊको कांसेकी दोहनीके साथ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे साध्योंके समस्त लोक प्राप्त होते हैं। जो लोग सब रत्नोंसे अलंकृत करके दृढ़ पीठवाले वृषभ दान करते हैं, वे मरुद्गणके लोकमें गमन किया करते हैं। मनुष्य सब रत्नोंसे युक्त काला वृषभ दान करनेसे गन्धर्व्व और अप्सराओंके लोकको पाता है। गर्द्दनमें कम्बलकी झूल और कण्ठको सब रत्नोंसे अलंकृत करके दान करनेसे पुरुष शोकरहित होकर प्रजापतिके लोकको पाता है। हे महाराज! गोदान करनेवाला मनुष्य मेघजालको भेदता हुआ अर्कवर्ण विमानके द्वारा सुरपुरमें जाके विराजमान होता है। मनोहर वेषवाली सुश्रोणि सहस्र सुन्दरी उस गोदानमें रत पुरुषके संग क्रीड़ा करती हैं वह सोनेपर उन हरिणाक्षियोंकी वीणा, वल्लकी, नूपुरकी झनकार तथा हंसीसे जाग्रत होता है। गऊके शरीरमें जितने परिमाणसे रोम रहते हैं,

गोदान करनेवाला उतने वर्षतक स्वर्गमें पूजित होता है, अन्तमें वह स्वर्गसे च्युत होके मर्त्यलोकमें सद्वंशमें जन्म लेता है।

७९ अध्याय समाप्त।

वशिष्ठ बोले, घृत दूध देनेवाली गौयें घृतयोनि हैं और उन्हींसे घृत उत्पन्न होता है, इसीसे घृतोद्भव कहाती हैं, गौयें घृतकी नदी तथा घृतकी आवर्त्त हैं, इसलिये हमारे गृहमें सदा वे गौयें निवास करें। घृत ही हमारा हृदय है, घृत ही हमारी नाभिमें सदा प्रतिष्ठित होरहा है; घृत हमारे सारे शरीर और मनमें निवास करता है। गौयें हमारे आगे पीछे और सब ओर हैं, मैं गौओंके बीच वास करता हूं, जो पुरुष सन्ध्या और सबेरेके समय आचमन करके सदा इसका जप करता है, वह दिन भरके किये हुए पापोंसे मुक्त होगा। जिस स्थानमें सुवर्णमय प्रासाद विद्यमान है, वसुधारारूपी मन्दाकिनी विराज रही हैं और गन्धर्व्व अप्सरा वर्त्तमान हैं, सहस्र गऊ दान करनेवाला मनुष्य वहां ही जाता है। मक्खनरूपी पङ्क, क्षीररूपी जल और दधिरूपी शैवालयुक्त नदियें जिस स्थानमें वह रही हैं, हजार गऊ दान करनेवाला पुरुष उस ही स्थानमें गमन करता है। जो लोग विधिपूर्व्वक एक सौ तथा सहस्र गऊ दान करते हैं, वे इस लोकमें परम समृद्धिवान होके स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं, पुत्र गोदान करनेसे माता-पिता दोनोंकुलोंके दश पुरुषोंको पितामहके सुकृतलोकमें भेजके कुल पवित्र करता है। गऊके प्रमाण अनुसार तुल्य परिमाणसे तिलगऊ दान करने तथा जलधेनु देनेसे मनुष्यको यमलोकमें कोई पीड़ा नहीं प्राप्त होती। परम पवित्र जगत्की प्रतिष्ठा देवताओंकी माता अप्रमेय गौओंकी स्तुति और प्रदक्षिणा करे और समय विचारके उपयुक्त पात्रको दान दे, कांसेके दोहनपात्रसे युक्त विशाल सींगवाली कपिला गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य भयरहित होके दुर्निवार्य्य यमसभामें प्रवेश करता है। मनुष्य सदा ऐसा वचन कहे, कि उत्तम रूपवाली बहुरूपा विश्वरूपिणी मातृस्वरूपी गौवें मेरे निकट उपस्थित होवें। गोदानसे बढ़के पुण्यजनक दान दूसरा कुछ भी नहीं है; इससे बढ़के पुण्यका फल भी और कुछ नहीं है लोकमें इससे श्रेष्ठ न कुछ हुआ और न होगा गौवें त्वचा, रोम, सींग, पुच्छलोम, क्षीर और मेदसे युक्त होकर यज्ञको पूर्ण करती हैं, इसलिये उनसे बढ़के और कौन है? यह स्थावर जङ्गममय सारा जगत जिससे व्याप्त होरहा है उस भूतभविष्यकी जननी गऊको सिर झुकाके प्रणाम करता हूं। यह मैंने तुम्हारे समीप गौओंके अत्युत्तम प्रशंसावादका केवल एक ही अंश वर्णन किया है। इस लोकमें गोदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है और गौओंके अतिरिक्त अन्य कोई परम अवलम्ब नहीं हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महान भाव सौदास राजाने वशिष्ठ ऋषिके इस श्रेष्ठ वचनको वर समझके संयतचित्तसे द्विजोंको बहुतसी गऊ दान किया और अन्तकालमें गोलोक पाया।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। लोकमें पूर्व्वोक्त विषयोंके अतिरिक्त जो समस्त पवित्रोंके बीच पवित्र तथा परम पावन है, वह मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम। महार्थ पवित्र गौवें मनुष्योंका उद्धार करती हैं, वे घृत और दूधके सहारे समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं। गौवोंसे पवित्र और कुछ भी नहीं है, वे ही त्रिभुवनके बीच पुण्यदा, पवित्र और सत्तम

हैं। गौवें देवताओंके भी ऊर्द्धभागमें निवास करती हैं, मनीषिवृन्द गौदान करके कुल उद्धार करते हुए स्वर्गमें गमन किया करते हैं। मान्धाता, युवनाश्व, ययाति और नहुष राजाने सैकड़ों सहस्रों गऊ दान करके देवताओंसे भी दुर्लभ परम स्थानमें गमन किया था। हे अनघ! इस विषयमें मैं तुमसे पौराणिकी कथा कहता हूं।

पवित्रतायुक्त सावधानचित्तवाले बुद्धिमान शुकदेवने नित्य कर्म्मसे निवृत्त होकर ऋषियोंमें श्रेष्ठ परावर लोकदर्शी पिता कृष्ण द्वैपायनको प्रणाम करके प्रश्न किया, हे विभु! सब यज्ञोंके बीच किस यज्ञको आप श्रेष्ठ जानते हैं? मनीषिगण कौन कर्म्म करनेसे परम स्थान पाते हैं? देववृन्द किस पवित्र वस्तुके द्वारा स्वर्गलोकमें सुखभोग करते हैं? यज्ञका यज्ञत्व क्या है? यज्ञ किससे प्रतिष्ठित होरहा है? देवताओंके निमित्त उत्तम क्या है? हे पिता! इस लोकमें परम लक्ष्य क्या है और जो पवित्रोंके बीच पवित्र हो, वह मेरे निकट प्रकट करिये। हे भरतश्रेष्ठ! परम धर्म्मज्ञ व्यासदेव इतनी बात सुनके पुत्रके निकट यथार्थ रीतिसे सारी कथा कहने लगे।

व्यासदेव बोले, गौवें ही प्राणियोंकी प्रतिष्ठा स्थान, परम अवलम्ब, पुण्य, पवित्र और परम पावन हैं। हमने ऐसा सुना है, कि पहले गौवोंके सींग नहीं थे, अनन्तर उन्होंने सींगके लिये अव्ययप्रभु प्रजापतिकी उपासना की थी। तब सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्माने गौवोंको योगयुक्त देखके उन हर एकको ही अभिलषित वर दिया। हे पुत्र! उनके बीच जिसकी जैसी अभिलाषा थी, उनके वैसे ही सींग उत्पन्न हुई, वे अनेक वर्णवाले सींगोंसे युक्त होकर सुशोभित हुई। जब ब्रह्माने उन्हें वर दान किया, तब वे कल्याणदायिनी गौवें, हव्यकव्य प्रदान करनेवाली और पुण्य पवित्र, सुभगा, दिव्य अवयव लक्षण युक्त हुई। गौवें उत्तम महत् दिव्य तेजस्वरूप हैं, जो मत्सररहित साधु पुरुष इन्हें दान करते हैं, वेही सुकृती तथा सर्व्वदान प्रदाता हैं। हे पापरहित! उन्हें ही पवित्र गोलोक मिलता है। हे द्विजसत्तम! जिस स्थानमें वृक्षोंमें मधुर फल लगते और दिव्य पुष्प तथा फलसम्पन्न होते हैं, सब पुष्प भी दिव्य और सुगन्धियुक्त हुआ करते हैं; जिस स्थानमें सारी भूमि मणिमयी सुवर्ण बालुकासे युक्त सब ऋतुओंमें सुखस्पर्श पङ्करहित रजोगुण वर्जित और शुभदायनी रहती हैं, वहांपर समस्त तालाब तरुण सदृश लाल पत्थरसे युक्त वन और हिरण्मय मणिखण्डोंसे शोभित हैं, महाई मणिकी भांति पत्र, सुवर्ण प्रभायुक्त केशर, नीलोत्पलयुक्त विविध भांतिके कमल शोभित तालाबोंसे अलंकृत करवीर, सहस्र आवर्त्तसे परिपूरित सन्तानक कानन, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित निर्म्मल मुक्ताजाल और महाप्रभ मणियों तथा सुवर्णके सहारेकी वहां नदियोंकी तट भूमि प्रकट हुई है। कोई वृक्ष सुवर्णमय और कोई वृक्ष अग्निसदृश प्रभायुक्त हैं, वैसे सर्व्वरत्नमय विचित्र वृक्षोंसे परिपूरित उस स्थानमें सुवर्णमय सब पर्व्वत मणिरत्न शिला तथा सर्व्वरत्नमय ऊंचे मनोहर शृङ्गोंसे शोभित होरहे हैं।

हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर उस नित्यफल पुष्पोंसे युक्त वृक्षों और पक्षियोंसे परिपूरित स्थानमें पुण्यकर्म्मवाले मनुष्य सर्व्वकाम समृद्धार्थ और शोकरहित तथा मन्युहीन होकर सदा दिव्य गन्धवाले फूलों और दिव्य रसयुक्त फलोंसे प्रमुदित होते हैं। हे भारत! पुण्यकर्म्मा यशस्वी मनुष्य वहांपर विचित्र रमणीय विमानोंमें विहार करते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं। हे महाराज! उत्तम रूपवाली अप्सरायें उनके निकट क्रीड़ा करती हैं। हे युधिष्ठिर! गोदान करनेसे मनुष्य इन्हीं लोकोंको पाता है। सूर्य्य

और बलवान वायु जिनके प्रभु हैं, ऐश्वर्य्याधिप-थमें जिनके राजा वरुण हैं, सत्य प्रभृति युगोंको धारण करनेसे जिनका युगन्धर नाम हुआ है, उन उत्तम रूपवाली बहुरूपिणी विश्वरूपा मातृगणोंकी माताओंका यतव्रती होकर सदा जप करे,—ब्रह्माके द्वारा यही तपस्या कही गई है। जो लोग गौवोंकी सेवा करते हैं और सब भांतिसे उनके अनुगत होते हैं, उनपर वह प्रसन्न होके दुर्लभ वर दिया करती हैं। मनुष्य मनसे भी कभी गौवोंसे द्रोहाचरण न करे, सदा उनके लिये सुखदाता होवे, गौवोंकी सदा अर्चना करे तथा नमस्कार करके उनकी पूजा करे। दमयुक्त और दयावान मनुष्य सदा गौवोंकी समृद्धि भोग किया करते हैं। तीन दिन उष्ण गोमूत्र पीवे फिर तीन दिन गर्म्म दूध पीवे, अनन्तर गऊका दूध पीके तीन दिन उष्ण घृत पीवे; तीन दिनतक गर्म्म घृत पीकर त्रिरात्र वायु पीके रहे। देववृन्द जिस पवित्र वस्तुके सहारे उत्तम लोकोंको भोगते हैं, जो कि पवित्र वस्तुओंके बीच पवित्र है, उस घृतको माथेपर रखे। घृतसे अग्निमें होम करे, घृतसे स्वस्ति-वाचन करे, घृतप्राशन करे और घृत दान करे तो गौवोंकी पुष्टिभोग प्राप्त होगा। गौवोंके द्वारा गोमयके सहित परित्यक्त यवको यावक कहते हैं, जो लोग एक महीने तक यावक भोजन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यासदृश पाप इसहीके सहारे छूट जाते हैं। दैत्योंके पराभवके हेतु देवताओंने इसे पवित्र किया है, इसीसे वे देवत्व पाके सम्यक सिद्ध और महाबलसे युक्त हुए हैं। गौवें परम पवित्र महत् पावन और पुण्यप्रद हैं, मनुष्य द्विजातियोंको गऊ दान करनेसे स्वर्ग भोग करता है। गौवोंके बीच पवित्र होकर मनही मन गोमती ऋक्के सहारे प्रकाशित अर्थ जपे, मनुष्य पवित्र जलसे आचमन करके मन्त्र जपनेसे पवित्र और निर्म्मल होता है। अग्नि तथा गौवोंके बीच और ब्राह्मणोंके समाजमें विद्या, वेदव्रतस्ना प्रशस्तकर्म्म वाले ब्राह्मणोंको उचित है, शिष्योंको यज्ञसंमित गोमती ऋक् पढावें। त्रिरात्र उपवासयुक्त होनेसे गोमती ऋक् प्रभावसे वर प्राप्त होता है। पुत्र कामनावा मनुष्य पुत्र पाते हैं, धनके अभिलाषी मनुष्यों धन मिलता है। पतिकी इच्छा करनेवाली स्त्र पति पाती है, मनुष्योंका इसके सहारे सब प्रयो जन सिद्ध होता है। इस ही प्रकार वे महाभा यज्ञाहितकारी सर्व्वकामद गौ सन्तुष्ट होक निःसन्देह वर दान करती हैं; इन गौवों रोहिणी जानो इनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। महातेजस्वी शुकदेवने महानुभाव पिताक ऐसा वचन सुनके प्रतिदिन गौवोंकी पूजा क थी; इसलिये तुम भी उनकी पूजा करो।

८१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैंने सुना है कि गौवोंका पुरीष श्रीयुक्त है, इसलिये इ विषयमें मुझे सन्देह है, इसीसे मैं इसे सुननेक इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज प्राचीन लोग इस विषयमें लक्ष्मीके सहित इ लोकमें गौवोंके सम्वादयुक्त यह पुरातन इति हास कहा करते हैं। लक्ष्मीने मनोहर शरी धारण करके इस लोकमें गौवोंके बीच प्रवे किया, गौवें उनकी सुन्दरताई-सम्पत्ति देखक विस्मित हुईं।

गौवोंने कहा, हे देवि! तुम कौन हो किस स्थानसे आई हो? भूलोकमें तुम्हा रूपकी उपमा नहीं है। हे महाभागे! तुम्हा रूपसम्पत्तिसे हम विस्मययुक्त हुई हैं। तु कौन हो, कहां जाओगी, हमें इसे जाननेकी इच्छा है। हे वरवर्णिनि! इसलिये तुम यथार्थ रीतिसे मेरे निकट यह सब यथार्थ वृत्तान्त कहो।

लक्ष्मी बोली, तुम लोगोंका मङ्गल होवे, मैं लोककान्ता श्रीनामसे विख्यात हूं; दैत्य लोग मुझसे परित्यक्त होकर बहुत समयसे नष्ट हुए हैं और देववृन्द मुझे पाके सदा प्रमुदित होरहे हैं। इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण और अग्नि प्रभृति देवगण तथा ऋषिवृन्द मुझसे युक्त होकर सिद्ध होते हैं। हे गोवृन्द! मैं जिसमें प्रविष्ट नहीं होती, वह सब प्रकारसे विनष्ट होता है। धर्म्म, अर्थ और काम मुझसे संयुक्त होनेपर ही सुखदायक हुआ करता है। हे सुखप्रद गोगण! मुझे ऐसे ही प्रभावयुक्त जानो, मैं सदा तुम्हारे निकट निवास करनेकी इच्छा करती हूं। मैं तुम्हारे निकट आके प्रार्थना करती हूं, कि तुम लोग श्रीयुक्त रहो।

गौवोंने कहा, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम अस्थिर और चपला हो, इसीसे अनेक पुरुषोंके संग समान भावसे रहती हो, इसलिये हम सब तुम्हें नहीं चाहती है, जिस स्थानमें तुम अनुरक्त रहो, वहां जाओ। हम सब कोई वपुष्मती हैं इस समय तुम हमारी कौनसी इष्टसिद्धि करोगी? तुम्हारी जहां इच्छा हो, वहां जाओ, हम सब कृतकार्य्य हुई हैं।

लक्ष्मी बोली, हे गोवृन्द! तुम लोग जो मुझे अभिनन्दित नहीं करती हो, क्या यह तुम्हें उचित है; मैं दूसरोंके लिये दुर्लभ सती साध्वी हूं, तब तुम लोग किस निमित्त मुझे नहीं ग्रहण करती हो? हे उत्तमव्रती गोगण! लोकमें जो यह लोकापवाद प्रचलित है, कि स्वयं उपस्थित होनेपर पराभव होती है, वह सत्य तथा निश्चित है। मनुष्य, देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसगण अत्यन्त उग्रतपस्या करते हुए मेरी सेवा किया करते हैं। हे गोवृन्द! तुम्हारा तो यही प्रभाव है, इसलिये मुझे ग्रहण करो। हे प्रियदर्शना! चराचर जगन्मय तीनों लोकके बीच मैं किसीके भी अपमानको पाती नहीं हूं।

गौवोंने कहा, हे देवि! हम अपमान वा तुम्हारा पराभव नहीं करती हैं, तुम अस्थिर और चलचित्ता हो, इस ही लिये तुम्हें परित्याग करती हैं, बहुत वचन कहनेसे क्या फल है? तुम्हारी जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जाओ; हम सब वपुष्मती हैं। हे पापरहिते! तुमसे हमारा क्या होगा?

लक्ष्मी बोली, हे मानदात्रीगण! तुम लोग यदि मुझे प्रत्याख्यान करोगी, तो मैं सब लोगोंके निकट अवज्ञात होऊंगी, इसलिये तुम्हें मुझपर प्रसन्न होना चाहिये। तुम सबकी शरण्य महाभागा हो, इसलिये मुझ सदा भजमान अनिन्दनीय शरणागताका परित्राण करो। हे कल्याणीगण! मैं तुम्हारे समीप सम्मानकी अभिलाष करती हूं, मुझे तुम्हारे अधोवर्त्ती अत्यन्त निकृष्ट एक अङ्गमें वास करनेकी इच्छा है। हे पापरहित गोवृन्द! तुम्हारे शरीरके बीच कोई स्थान भी कुत्सित नहीं दीखता है, तुम लोग पुण्यदा, पवित्र और सुभगा हो, इसलिये मुझे आज्ञा दो; मैं तुम्हारे देहके जिस स्थानमें वास करूंगी, उसे तुम्हें कहना उचित है।

हे नरनाथ! करुणावत्सला कल्याणदायिनी गौवोंने लक्ष्मीका ऐसा वचन सुनके इकट्ठी होकर विचारके उनसे कहा, हे कल्याणदायिनि यशस्विनि! हम लोगोंको तुम्हारा अवश्य सम्मान करना योग्य है, इसलिये तुम हमारे गोमयमूत्रमें निवास करो, क्यों कि हमारा यही पवित्र है। लक्ष्मी बोली, प्रारब्धसे ही तुमने मुझपर प्रसन्न होके कृपा की है, इसलिये ऐसा ही होगा। हे सुखप्रद गोवृन्द! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं पूजित हुई हूं। हे भारत! श्रीदेवीने गौवोंके सङ्ग इसी भांति नियमबद्ध होकर उन लोगोंके सामने वहां ही अन्तर्हित होगई। हे तात! यह मैंने तुम्हारे निकट गोमयका माहात्म्य वर्णन किया, अब फिर गौवोंका माहात्म्य कहता हूं सुनो।

८२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! जो लोग गोदान करते तथा जो होमके शेषमें भोजन किया करते हैं, उनको यज्ञ वा सत्र सदा सिद्ध होते हैं। इस लोकमें दही और घृतके बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता, इसही निमित्त यज्ञका यज्ञत्व और मूल कहा जाता है। सब दानोंके बीच गोदान श्रेष्ठ है, गौवें सबसे उत्तम तथा पवित्र हैं और वेही अत्यन्त पावन हैं। पुष्टि और शान्तिके निमित्त इनकी सेवा करे, इनके दूध, दही और घृत समस्त पाप नष्ट करते हैं। इस लोक तथा परलोकमें गौवें परम तेज स्वरूप कही गई हैं। हे भरतश्रेष्ठ! गौवोंसे बढ़के परम पवित्र वस्तु और कुछ भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग ब्रह्मा और इन्द्रके सम्वादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे कौरवराज! किसी समयमें दैत्यदलके पराजित होनेपर त्रिलोकीनाथ इन्द्र सत्य धर्ममें रत समस्त प्रजा, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, राक्षस, देव, असुर और सुपर्ण, प्रजापति, नारद, पर्वत, विश्वावसु और हाहा हूहू प्रभृति दिव्य तान गान करते हुए सब भांतिसे ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। उस समय वायु दिव्य पुष्पोंसे युक्त होकर बह रहा था, छहो ऋतु पृथक् पृथक् सुगन्धि लाने लगीं। उस सुरसभामें सब प्राणियोंके समागमके समय दिव्य बाजोंके सहित दिव्याङ्गनाओं और चारणोंसे सभास्थान परिपूरित होनेपर देवराजने ब्रह्माको प्रणाम करके विनयपूर्व्वक प्रश्न किया। हे भगवन् पितामह! लोकेश्वर गोलोक किस निमित्त देवताओंके ऊर्द्ध में स्थापित हुआ है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं, हे ईश्वर! इस लोकमें गौवोंने कौनसी तपस्या वा ब्रह्मचर्य्य किया था, कि जिसके प्रभावसे रजोगुणसे रहित होकर सहजमें ही देवताओंके ऊर्द्धमें निवास करती हैं।

अनन्तर ब्रह्मा उस बल-निसूदन इन्द्रसे बोले, हे पाकशासन! गौवोंकी तुम सदा अवज्ञा किया करते हो, इस ही निमित्त तुम इस माहात्म्यको नहीं जानते। हे सुरेश्वर! इस लिये तुम गौवोंका परम प्रभाव और माहात्म्य सुनो। हे इन्द्र! गौवें यज्ञके अङ्ग तथा यज्ञरूपी कही जाती हैं; गौवोंके बिना किसी प्रकारसे यज्ञ पूरा नहीं होता। गौवें घृत और दूधसे सारी प्रजाको धारण कर रही हैं; इनके पुत्र कृषिकार्य्योंको निबाहते हुए विविध धान्य तथा बीज उत्पन्न किया करते हैं। उस होसे यज्ञ और हव्य कव्य प्रारम्भ होते हैं। हे देवराज! ये गौवें तथा इनके दूध, दही और घृत अत्यन्त पवित्र हैं। ये भूख प्याससे अधिक पीड़ित होके भी विविध भार ढोया करती हैं। ये कार्य्योंसे मुनियों तथा समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं। हे इन्द्र! ये निष्कपट व्यवहार करती हैं, इसीसे कर्म्म और सुकृतके सहारे सदा हम लोगोंके ऊर्द्ध में निवास किया करती हैं। हे देवराज! यह मैंने तुमसे देवताओंके ऊर्द्धमें गौवोंके निवासका कारण कहा है। हे इन्द्र! इन्होंने वर पाया है और वर देनेमें भी समर्थ हैं। हे सुरसत्तम बल-सूदन! पुण्यकर्म्मशालिनी शुभलक्षणवाली पावन गौवें जिस निमित्त पृथ्वीपर गई हैं, वह भी मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो।

हे तात! पहले समय सत्ययुगमें महानुभाव देवेन्द्र त्रिभुवनका शासन कर रहे थे, उस समय अदितिके सदा एक पदसे स्थित होकर घोर दुश्चर तपस्या करनेसे भगवान विष्णु उसके गर्भस्थ हुए, उसी समय दक्षपुत्री सुरभि नामी देवीने महादेवी अदितिको उत्तम महत् तपस्या करते देखकर हर्षपूर्व्वक धर्म्मपरायण होके घोर तपस्या की थी। वह परम योग अवलम्बन करके देव गन्धर्व्वोंसे सेवित रमणीय कैलास पर्व्वतकी शिखरपर दश हजार दश सौ वर्षतक एक चरणसे निवास करने लगी। देवता, महर्षि और महोरगगण उस देवीको

तपस्यासे सन्तप्त होकर मेरे सहित वहां जाके उस कल्याणीकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर मैंने उस तपस्या करनेवाली देवीसे कहा, हे अनिन्दिते देवि! तुम किस निमित्त घोर तपस्या करती हो? हे महाभागे शोभने! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं। हे देवि! जो इच्छा हो, वर मांगो, मैं तुम्हें वर देता हूं।

सुरभि बोली, हे लोकपितामह भगवन्! मुझे वरसे क्या प्रयोजन है? हे अनघ! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है।

ब्रह्मा बोले, हे त्रिदशेश्वर शचिपति देवेन्द्र! उस सुरभि देविके ऐसा कहनेपर मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह सुनो। हे शुभानने देवि! तुम्हारी अलोभकामना और तपस्यासे मैं प्रसन्न होकर तुम्हें अमर वर देता हूं और तुम तीनों लोकोंके ऊर्द्धमें निवास करोगी; मेरे प्रसादसे वह गोलोक नामसे विख्यात होगा, हे महाभागे! तुम्हारी सन्तान वा दुहितावृन्द मनुष्यलोकमें शुभ कर्म करके गोलोकमें आकर निवास करेंगी। तुम मनहीमन ध्यान करनेसे ही दिव्य मानुष भोग पाओगी। हे शुभे! हे देवि! स्वर्गमें जो कुछ सुख है, उसे तुम वहांपर उपभोग करोगी। हे सहस्राक्ष! सुरभिके समस्त लोक सर्व्वकाम संयुक्त हैं, वहांपर जरा-मृत्यु अथवा अग्नि सङ्क्रमण करनेमें समर्थ नहीं है। हे इन्द्र! वहां कुछ भी दैव-अशुभ नहीं है, उस स्थानमें दिव्यवन, समस्त आभरण काम-गामी उत्तम वाहनोंसे युक्त विमान विद्यमान हैं। हे कमल नेत्र! ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, सत्य, दम, विविध दान, बहुतसे पुण्य, तीर्थसेवन, उत्तम महत् तपस्या और सुकृत कर्म्मके सहारे वह लोक प्राप्त होसकता है। हे असुरसूदन! तुमने जो प्रश्न किया था, तुम्हारे समीप वह सब कहा गया, इसलिये तुम्हें गौओंका अपमान करना योग्य नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इन्द्र ऐसा सुनके सदा गौवोंकी पूजा और उनका बहुमान करने लगे। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह तुम्हारे समीप परम पवित्र पावन और सर्व्वपाप नाशक गौवोंका अत्यन्त उत्तम माहात्म्य कहा गया। जो लोग समाहित होके हव्य, कव्य, यज्ञ और पितृकार्य्यमें ब्राह्मणोंको सदा यह विषय सुनाते हैं। उनका सर्व्वकामिक अक्षय फल पितरोंके निकट उपस्थित होता है। मनुष्य गौवोंके भक्त होनेपर इच्छानुसार फल पाते हैं और जो स्त्रियें गौवोंमें भक्ति करती है, उन्हें सो सब काम्य-विषय प्राप्त होते हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाते, कन्याकी इच्छा करनेवालोंको कन्या प्राप्त होती है; धनकी इच्छावाले धन पाते और धर्म्मार्थी मनुष्योंको धर्म्म प्राप्त होता है, विद्यार्थीको विद्या मिलती है, सुख चाहनेवाले सुख उपभोग किया करते हैं। हे भारत! जो लोग गौवोंमें भक्ति करते हैं, उन्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें उत्कृष्ट गोदानका विषय पितामहके द्वारा वर्णित हुआ, धर्म्मदर्शी राजाओंके लिये यह विशेष हितकर है। पवित्रचित्तवाले राजाओंके पक्षमें राज्य सदा दुःखकर और दुर्द्धर है, प्रायः राजाओंकी शुभ गति नहीं होती, इसलिये वे लोग सदा भूमि दान करके पवित्र होते हैं। हे कुरुनन्दन! आपने मेरे समीप सब धर्म्मोंका वर्णन किया और राजा नृगके द्वारा गोदानका विषय तथा नाचिकेत ऋषिने जो कहा था, वह पहले ही प्रमाणित हुआ है। वेद और उपनिषद्के सहारे सब कार्य्यों तथा यज्ञोंमें भूमि, गऊ और सुवर्ण दक्षिणारूपसे निर्दिष्ट है, ऐसी जनश्रुति है, कि इनके बीच सुवर्ण ही [illegible] श्रेष्ठ दक्षिणा है। हे पितामह! [illegible]

विषयका यथार्थ वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करता हूं। सुवर्ण क्या है? किस समयमें किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका स्वरूप क्या है? क्या यह देवी है? इसका फल क्या है? किस निमित्त श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ? मनीषि-गण किस निमित्त सुवर्ण दानकी प्रशंसा किया करते हैं? यज्ञकर्मोंमें दक्षिणाके लिये किस हेतु सुवर्ण श्रेष्ठ है? हे पितामह! भूमि और गऊसे सुवर्ण किस निमित्त पावन और श्रेष्ठ है तथा दक्षिणाके लिये किस कारणसे वह परम श्रेष्ठ है? यह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! सुवर्णकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत बड़ा कारण जो मुझे मालूम हुआ है, तुम सावधान होकर उसे सुनो, मेरे पिता महातेजस्वी शान्तनुके मरनेपर मैं उनका श्राद्ध करनेके लिये गङ्गाद्वारमें गया था। हे तात! मैंने वहां जाके श्राद्धकर्म आरम्भ किया, उस समय मेरी माता जान्हवीने इस विषयमें सहायताकी थी। अनन्तर अग्रभागमें ऋषियोंको बैठाके जल दान प्रभृति कार्य्य आरम्भ किया। मैं सावधान होकर यथारीतिसे पूर्वकर्म्म समाप्त करके विधिपूर्वक पूरी रीतिसे श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ। हे नरनाथ! अनन्तर उस दाभको भेदकर मनोहर अङ्गद तथा आभूषणोंसे युक्त एक लम्बी भुजा समुत्थित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मैं अपने पिताको स्वयं प्रतिग्रहीता होते तथा उनकी भुजाको निकली हुई देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अनन्तर शास्त्रके अनुसार विचार करके मैं फिर सावधान हुआ, वेदके बीच हाथमें पिण्ड देनेकी विधि नहीं है, इसलिये मैंने विचारा कि पितर लोग साक्षात् सम्बन्धसे इस लोकमें कदापि मनुष्योंका पिण्ड ग्रहण नहीं करते, ऐसा ही विहित है, इस हेतु कुशके बीच पिण्डदान करना चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर मैंने पिताके उस हस्त-निदर्शनका अनादर करके शास्त्रप्रमाणके अनुसार पिण्डदानकी सूक्ष्म विधि स्मरण करते हुए वह सब पिण्ड कुशके बीच ही प्रदान किया; जान रक्खो, कि यह शास्त्रके अनुसार ही हुआ।

हे नरनाथ! अनन्तर मेरे पिताकी बाहु अन्तर्हित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मृतपिता स्वप्नमें मुझे दर्शन देके बोले, तुम जो शास्त्र प्रमाणके अनुसार इस विज्ञानसे मुग्ध नहीं हुए, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं। आत्मा धर्म्मयुत समस्त वेद ऋषियोंके सहित पितृगण साक्षात् पितामह ब्रह्मा और गुरुजन-ये सब कोई प्रमाणमें स्थित हैं और मर्य्यादा भी विचलित नहीं हुई। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इसलिये आज तुमने पूरा कार्य्य किया है, किन्तु भूमि और गौओंके निमित्त सुवर्ण दान करो। हे धर्म्मज्ञ! ऐसा करनेसे मैं और मेरे समस्त पितामहगण पवित्र होंगे, क्यों कि सुवर्ण परम पवित्र है। मेरे पिताने कहा था, कि जो लोग सुवर्ण दान करते हैं, वे दश ऊपरके और दश नीचेके पुरुषोंका उद्धार किया करते हैं। हे नरनाथ! अनन्तर मैं सावधान होनेपर विस्मित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! तब मैंने सुवर्ण दान करनेकी इच्छा की। हे महाराज! जामदग्न्यसम्बन्धीय धन तथा आयुष्कर इस पुराने इतिहासको सुनो।

पहले समयमें तीव्रवीर्ययुक्त जामदग्न्य रामने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था। हे महाराज! अनन्तर महावीर राजीवलोचन रामने अखण्ड पृथ्वीमण्डलको जीतके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे पूजित सर्व्वकामयुत वाजिमेध यज्ञ आरम्भ किया। वह यज्ञ सर्व्व भूतोंके लिये पावन, तेज तथा द्युतिको बढ़ानेवाला है। जमदग्निपुत्र तेजस्वी रामने उस यज्ञसे पापरहित होके भी अपने चित्तको पवित्र न पाया। महात्मा भृगुनन्दन रामने दक्षिणायुक्त यज्ञ करके वेद जाननेवाले ऋषियों और देवताओंसे पूछा। हे महाभागगण! उ

कर्म्ममें रत रहनेवाले मनुष्योंके लिये जो परम पावन हो, उसे ही वर्णन करिये, जब रामने करुणायुक्त होकर ऐसा कहा, तब वेदशास्त्र जाननेवाले महर्षिवृन्द उनका वचन सुनके बोले, हे राम। वेदप्रमाणके अनुसार ब्राह्मणोंका सम्मान करो। पावनके सम्बन्धमें फिर विप्रर्षियोंसे प्रश्न करो, वे महाप्राज्ञ महर्षिवृन्द जैसा कहें, वैसा ही करो।

अनन्तर महातेजस्वी भृगुनन्दनने देवर्षि वशिष्ट, अगस्त्य और कश्यपसे यही विषय पूछा, उन्होंने कहा। हे विप्रेन्द्र! मेरी ऐसी मति हुई है, कि मैं कैसे कर्म्म तथा कौनसी वस्तु प्रदान करनेसे पवित्र हूंगा? हे सत्तम! यदि मुझपर आप लोगोंको कृपा है, तो जिस प्रकार मेरी पवित्रता हो, उसे वर्णन करिये।

ऋषिवृन्द बोले, हे भृगुनन्दन। मैंने सुना है, कि पापी मनुष्य गऊ, भूमि और धन दान करके पवित्र होते हैं। हे विप्रर्षि! अन्य एक महत् पवित्र दिव्य अद्भुत रूपवाले, अग्निके पुत्र सुवर्णका दान विषय सुनो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें वीर्य्यके प्रभावसे सब लोकोंको जलाके सुवर्ण उत्पन्न हुआ था। ऐसे विख्यात सुवर्णको दान करनेसे मनुष्य सिद्धिलाभ करता है। अनन्तर संशितव्रती वशिष्ठ मुनि बोले, हे राम। अग्निसे जिस प्रकार सुवर्ण उत्पन्न हुआ, उसे सुनो। जिसके दान करनेसे तुम्हें परम फल प्राप्त होगा, इस समय उसहीका वर्णन होता है। हे महाबाहो! सुवर्ण यतस्वरूप है, क्यो कि वह जैसा गुणावत्तर है, वह सब मैं कहता हूं सुनो, इस सुवर्णको निश्चय ही अग्नि और चन्द्रस्वरूप जानो। हे भृगुनन्दन! ऐसा देखा तथा सुना गया है, कि अज, अग्नि, वरुण, मेष, सूर्य्य, अश्व, कुञ्जर, नाग, महिष, असुरगण और कुक्कुट, वराह, राक्षस, दर, भूमि गऊ, पय, चन्द्रमा तथा पृथ्वी, इस समस्त जगतको मंथके तेजपुञ्ज उत्पन्न हुआ था। हे विप्रर्षि! इन सबसे अत्यन्त उत्तम रत्न सुवर्ण उत्पन्न हुआ। इस ही निमित्त देवता, गन्धर्व्व, सर्प, राक्षस, मनुष्य और पिशाचगण सावधान होके उसे धारण किया करते हैं। हे भृगुवंशधुरन्धर। वे सुवर्णके बने हुए मुकुट कवच आदि अनेक भांतिके अलंकारोंसे शोभित होते हैं। हे मनुजश्रेष्ठ। इन्हीं कारणोंसे भूमि गऊ तथा रत्न प्रभृति सब पवित्र वस्तुओंके बीच सुवर्ण परम पवित्र कहा गया है। इस लोकमें भूमि और गऊ दान करके अन्य जो कुछ श्रेष्ठ दान किया जाता है, उन सबके बीच सुवर्णदान ही श्रेष्ठ हुआ करता है। हे देवद्युति। सुवर्ण अक्षय और पवित्र है, इसलिये इसे ब्राह्मणोंको दान करो, क्यों कि यह उत्तम तथा पावन है। समस्त दक्षिणा विषयमें सुवर्णही विहित हुआ है। जो लोग सुवर्ण दान करते हैं, वे सर्व्वप्रदाता होते है। जो लोग सुवर्णदान देते हैं, वे देवता दान किया करते हैं, क्यो कि अग्नि ही समस्त देवतात्मक है और सोना अग्निस्वरूप है, इसलिये सुवर्णदाता समस्त देवता दान करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ। पण्डित लोग सुवर्ण दानसे श्रेष्ठ और किसीको भी नहीं जानते। हे सर्व्व शास्त्रविशारद विप्रर्षि। मैं फिर कहता हूं, मेरे समीप सुवर्णका माहात्म्य सुनो।

हे भृगुनन्दन। पहले प्रजापतिने न्यायपूर्व्वक जो कहा है, उसे मैंने पुराणमें सुना है। हे भृगुकुल धुरन्धर! सर्व्वश्रेष्ठ हिमालय पर्व्वतपर महानुभाव भगवान शूलधारी रुद्रके सहित रुद्राणी देवीका विवाह होनेपर महानुभाव भगवान शिवका देवीके सङ्ग समागम होनेके समय समस्त देववृन्द घबड़ाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए। हे भृगुनन्दन। वे सब लोग बैठे हुए महादेव और उमादेवीको सिर भुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले, हे देव। देवीके सग आपका यह समागम आप अत्यन्त तेजस्वी तपस्वी हैं और

तेजस्विनी तपस्विनी हैं। हे देव! आपका तेज असह्य है, हमारेलोगोंका तेज भी वैसा ही है; हे देव। हे विभु। आपका अत्यन्त बलवान् पुत्र होगा, वह पुत्र तीनों लोकके बीच किसीको भी अवशिष्ट न रक्खेगा, यह निश्चय ही बोध हो रहा है। हे विशालनेत्र लोकेश। इसलिये आप इन प्रणत देवताओंके हितके लिये यह दान करिये। हे विभु! आप पुत्रके निमित्त परम तेजको रोकिये। आप त्रिभुवनके सारस्वरूप हैं, इसलिये सब लोकोंको सन्तापित न करिये, आपका वह पुत्र निश्चय ही देवताओंको अभिभव करेगा। हमारे विचारमें देवी पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश, ये सब आपके तेजको धारण करनेमें समर्थ न होंगी। तब यह समस्त जगत आपके तेजप्रभावसे एकबारही भस्म होगा। हे प्रभु भगवन्। इसलिये आपको हमपर प्रसन्न होना उचित है। हे सुरसत्तम। इस देवीमें आपका पुत्र होना सम्भव नहीं है, इसलिये धीरजके सहारे अत्युत्तम जलते हुए तेजको निग्रह करिये।

हे विप्रर्षि। देवताओंके ऐसे वचन सुनकर भगवान् वृषभध्वजने उन्हें 'एवमस्तु' कहके उत्तर दिया। वृषवाहन शिवने उनका वचन स्वीकार करके निज वीर्य्यको ऊर्द्धमें धारण किया; तभीसे उनका नाम ऊर्द्धरेता हुआ। अनन्तर इस प्रकारसे पुत्र न होनेपर रुद्राणीने क्रुद्ध होकर स्त्रीस्वभावके अनुसार सहजहीमें क्रोधवशसे देवताओंको यह कठोर वचन बोलीं, कि जिस कारणसे पुत्रकी इच्छा करनेवाले मेरे स्वामी तुम लोगोंके द्वारा पुत्रलाभसे निवृत्त हुए, उस ही निमित्त तुम लोगोंके पुत्र नहीं होगा। हे देववृन्द! तुम लोगोंने जिस प्रकार मेरे पुत्र नहीं होने दिये, उसी भांति तुम्हारे भी सन्तान न होंगी। हे भृगुनन्दन! उस शाप देनेके समय अग्निदेव वहांपर उपस्थित नहीं थे। देवीके ऐसे शापसे देववृन्द उसी समयसे अनपत्य हुए, उस समय रुद्रदेवने अप्रतिम तेज धारण किया। अनन्तर उनसे कुछ तेजस्खलित होके पृथ्वीपर गिरा। वह अद्भुत तेज पृथ्वीपर गिरते ही अग्निमें मिलकर बढने लगा। वह तेज अग्निमें मिलकर आत्मयोनिलको प्राप्त हुआ, उस ही समयमें इन्द्रादि देववृन्द तारक नाम असुरके द्वारा अत्यन्त सन्तापित हुए आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार और साध्यगण दैत्यके पराक्रम भयभीत हुए थे। देवताओंके स्थान, पुर विमान और ऋषियोंके आश्रमोंको असुरे हर लिया था। देवता और ऋषि लोग दीन चित्त होकर अजर अमर विभु ब्रह्माके शरणागत हुए।

८४ अध्याय समाप्त।

देववृन्द बोले, हे प्रभु! आपने जिसे दान किया है, वह तारक नाम महासुर देवताओं और ऋषियोंको क्लेश दे रहा है, इसलिये उसके मारनेकी युक्ति करिये। पितामह! उससे हम लोगोंको भय हुआ है, इसलिये आप हमें उबारिये, हम लोगोंको और दूसरा उपाय नहीं है।

ब्रह्मा बोले, इस लोकमें सब प्राणी मोक्ष-युक्त अधर्म्मकी अभिलाष नहीं करते, इसलिये देवताओं और ऋषियोंको पीड़ा देनेवाले ताड़कासुरको शस्त्रसे मारो। हे सुरसत्तम! वेद और धर्म्म नष्ट न होजावे, इस विषयमें मैंने पहले ही उपाय रचा है, इसलिये तुम्हारा दुःख दूर होवे।

देववृन्द बोले, आपके वरप्रभावसे वह दैत्य बलसे गर्व्वित हुआ है, इसलिये देवतावृन्द उसे मारनेमें समर्थ नहीं हैं, तब वह किस प्रकार नष्ट होगा? हे पितामह। तारकासुरने 'मैं देव दानव और राक्षसोंके द्वारा न मरूं'—

ऐसा ही कहके आपके समीप वर लिया है। पहले रुद्राणीको पुत्र कामना नष्ट होनेसे उन्होंने देवताओंको यह शाप दिया है, कि तुम लोगोंके सन्तान न होगी।

ब्रह्मा बोले, हे सुरोत्तमगण! उस शाप देनेके समय वहांपर अग्निदेव नहीं थे, वे देवद्वेषियोंको मारनेके लिये पुत्र उत्पन्न करेंगे। वह पुत्र देव, दानव, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व्व, नाग और पक्षियोंको अतिक्रम करके जिस तारकासुरसे तुम लोगोंको भय हुआ है, उसे अव्यर्थपात शक्ति,अस्त्रसे तथा देवशत्रु अन्य असुरोंको मारकर 'सनातन सङ्कल्पकाम' इस नामसे विख्यात होगा। रुद्रका वीर्य्य स्खलित होके जो अग्निमें प्रविष्ट हुआ है, उस ही तेजसे अग्निदेव द्वितीय अग्निकी भांति गङ्गाके गर्भसे देवशत्रुओंको मारनेवाला एक महत् पुत्र उत्पन्न करेंगे। अग्निदेव शापके समयमें छिपे हुए थे इस ही निमित्त वे शापग्रस्त नहीं हुए। हे देवगण! इसलिये उसहीसे तुम लोगोंके भयको छुड़ानेवाला पावकनन्दन उत्पन्न होगा। अब तुम लोग अग्निदेवको खोजके इस कार्य्यमें नियुक्त करो। हे अनघगण! यह मैंने तारकासुरके बधका उपाय कहा है। तेजस्वियोंका शाप तेज पदार्थको अभिभव नहीं कर सकता, बल प्रबल पुरुषोंके समीप अबल हुआ करता है। तपस्विगण अवध्य वरयुक्त पुरुषोंका भी नाश करनेमें समर्थ हैं। सनातन जगत्पति अनिर्देश्य सर्वग सर्व्वभावन सब प्राणियोंके हृदयमें शयन करनेवाले काम्यमान् अग्निदेव पुत्रविषयमें कामनायुक्त होवें। वे रुद्रदेवसे भी जेठे और सर्व्वशक्तिमान हैं. अब तेजपुञ्ज अग्निको शीघ्र खोज करो. वही अग्निदेव तुम लोगोंकी इच्छा पूरी करेंगे। तिसके अनन्तर देवताओंने महानुभाव ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके सङ्कल्प सिद्ध होनेसे अग्निको खोजनेके लिये प्रस्थान किया। ऋषियों और देवताओंने अग्निके दर्शनकी इच्छा करके उन्हें तीनों लोकोंमें खोजने लगे। हे भृगुश्रेष्ठ! परम तपस्यायुक्त लोकविख्यात् सिद्धगण अग्निको खोजते हुए सब लोकोंमें घूमने लगे। किन्तु जलमें लीन रहनेसे अग्निदेव नहीं दीख पड़ते थे, इसीसे उन्हें न जान सके। अनन्तर अग्निके तेजसे प्रदीप्त और दुःखितचित्त होके एक जलचर मेढ़क रसातलसे निकलके अग्निके दर्शनकी इच्छा करनेवाले डरे हुए देवताओंसे बोला। हे देवगण। अग्निदेव रसातलके तले निवास करते हैं, मैं उनके उत्तापसे दुःखी होके इस स्थानमें आया हूं। हे देवगण। वह हव्यवाहन भगवान अपने तेजके सहारे जलका संसर्ग करके उसके बीच सोरहे हैं। हम उनके प्रभावसे सन्तापित हुए हैं। हे देवगण। यदि तुम लोगोंकी इच्छा अग्निदेवके दर्शन करनेकी हो और उनके सहारे तुम्हारा किसी कार्य्यको सिद्ध करनेका प्रयोजन हो, तो जाओ उस ही स्थानमें उन्हें पाओगे। हे देववृन्द! मैं अग्निके भयसे दुःखित हुआ हूं, इसलिये जाता हूं। मेढ़क ऐसा कहके शीघ्र ही जलमें प्रविष्ट हुआ हुताशनने उस समय मेढ़ककी खलता जान ली और उन्होंने उसे यह कहके शाप दिया, कि तुम्हें 'रसका ज्ञान न होगा।' सर्व्वशक्तिमान अग्निदेव मेढ़कको ऐसा शाप देके शीघ्रही वहांसे दूसरे स्थानमें निवास करनेके लिये चले गये; देवताओंको दर्शन नहीं दिया। हे महाबाहो भृगुश्रेष्ठ। देवताओंने मेढ़कोंपर जिस भांति कृपा की, मैं वह सब कहता हूं सुनो।

देवगण बोले, अग्निके शापसे यद्यपि तुम जिह्वारहित तथा रसज्ञानसे हीन हुए हो, तौभी तुम लोग अनेक प्रकारके वाक्य बोलोगे। बिलवासी, निराहारी, अचेतन, गतप्राण और सूख जानेपर भी पृथ्वी तुम लोगोंको धारण करेगी, तुम लोग घोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समयमें भी विचरोगे। देववृन्द मेढ़कसे ऐसा वचन कहके अग्निको खोजनेके निमित्त [

हुए पृथ्वीपर घूमने लगी, किन्तु हुताशनको न देखसके। हे भृगुनन्दन। अनन्तर देवेन्द्रके ऐरावत सदृश किसी हाथीने देवताओंसे कहा, कि अग्निदेव अश्वत्थवृक्षमें निवास करते हैं। तब अग्निने क्रुद्ध होके सब हाथियोंको शाप दिया।

हे भृगुवंशधुरन्धर! हाथीके द्वारा सूचित होनेपर अग्निदेवने उसे शाप दिया, कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होगी। अग्नि भी ऐसा शाप देकर अश्वत्थवृक्षसे निकलकर शयन करनेकी इच्छासे शमीवृक्षमें प्रविष्ट हुए। हे भृगुकुलश्रेष्ठ! अनन्तर जिसी देवताओंने प्रीतिपूर्व्वक जिस प्रकार हाथियोंपर कृपाकी थी, उसे सुनो।

देवबृन्द बोले, तुमलोग उलटी जीभसे भी सब वस्तु खाओगे और ऊंचे स्वरसे अस्पष्ट वाक्य उच्चारण करोगे देवताओंने ऐसा कहके फिर अग्निका अनुसरण किया। अग्नि भी अश्वत्थवृक्षसे निकलकर शमीगर्भमें जाकर बैठ रहे। हे विप्र! अनन्तर सुग्गेके सुखसे अग्निके निवासका विषय सुनके देवबृन्द उस ही ओर दौड़े। तब अग्निदेवने सुवाको शाप दिया कि तुम वाक्यरहित होगे और उसकी जिह्वा ऐंठ दी। देवताओंने अग्निको देखके दयायुक्त होकर सुवासे कहा, हे शुक! तुम्हारा वचन एक-बारगी नष्ट होगा, जिह्वा ऐंठी रहनेपर भी तुम्हारा वचन बालककी भांति अव्यक्त मधुर अद्भुत और अत्यन्त मनोहर होगा। शुक पक्षीको ऐसा कहके देवताओंने शमीगर्भमें अग्निदेवको देखके उस शमीवृक्षको ही सब कार्य्योंके लिये पवित्रस्थान किया। तभीसे अग्नि शमीगर्भसे उत्पन्न हुआ करती है। उस ही समयसे मनुष्योंको शमीकी शाखासे अग्नि उत्पन्न, करनेका उपाय मालूम हुआ। हे भार्गव। रसातलमें जो सब जल अग्निके द्वारा स्पर्शयुक्त हुआ था, जिसमें अग्निदेव सोये थे और जो अग्निके तेजसे उत्तप्त हुआ था; वही पर्व्वतके झरनेके सहारे उष्णता परित्याग किया करता है। जो हो, उस समय अग्निदेव देवताओंको देखके दुःखित हुए और उनसे पूछा कि तुम लोग किस निमित्त आये हो? उन देवताओं और परमर्षियोंने अग्निसे कहा, कि हम लोग तुम्हें किसी कार्य्यमें नियुक्त करेंगे, वह तुम्हें करना होगा, उसे करनेसे तुम्हारा भी उत्तम महान् गुण प्रकटेगा।

अग्निदेव बोले, हे देवबृन्द! कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य है? मैं उसे करूंगा। मुझे तुम लोगोंके नियोज्य विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

देवबृन्द बोले, तारक नाम असुर ब्रह्माके वरसे दर्पित होकर बलपूर्व्वक हम लोगोंको पीड़ित करता है, इसलिये उसके वधका विधान करो। हे महाभाग पावक! इन देवताओं, ऋषियों और प्रजापतिका परित्राण करो। हे प्रभु। तेजसे युक्त वीरपुत्र उत्पन्न करो। हे हव्यवाहन। उस असुरसे हम लोगोंको भय हुआ है उसे नष्ट करो। हम लोग महादेवीके द्वारा शापयुक्त हुए हैं, इस समय तुम्हारे पराक्रमके अतिरिक्त हमारे लिये और कुछ भी सहारा नहीं है। हे प्रभु। इस लिये हमारा परित्राण करो। अनन्तर दुर्द्धर्ष भगवान हव्यवाहनने कहा, "ऐसा ही होगा" इतना कहके वह भागीरथी गङ्गाके समीप गये गङ्गाके निकट जाके उनके सङ्ग सहवास किया और उसी समय गङ्गाको गर्भ रह गया। तब कोषमें कृष्णवर्त्माकी भांति वह गर्भ बढ़ने लगा, अग्निके तेजसे गङ्गा बिह्वल तथा अचेत होकर बहुत ही सन्तापित हुईं, वह उसे सह न सकीं अग्निके द्वारा तेजयुक्त गर्भके स्थित होनेपर किसी असुरने भयङ्कर शब्द किया। अकस्मात् उत्पन्न हुए उस महाशब्दसे गङ्गा डरके सम्भ्रान्तनयन बिह्वल, चेतहीन तथा सञ्चाररहित होकर देहके सहित गर्भको ले चलनेमें असमर्थ हुईं।

हे विप्र! तब गङ्गा तेजसे परिपूरित होके

आपती तथा गर्भबलसे आक्रान्त होकर अग्नि-देवसे बोलीं, हे भगवन्! मैं आपके इस तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं हूं। मैं इस तेजसे विमूढ़ हुई हूं, पहलेकी भांति मेरा स्वास्थ्य नहीं है। हे अनघ भगवन्! मैं विह्वल हुई हूं, मेरी चेतनशक्ति नष्ट होरही है। हे तपताम्बर! मैं इस तेजको धारण नहीं कर सकती इसलिये मैं दुःखपूर्व्वक इसे त्यागती हूं और स्वेच्छानुसार त्यागना नहीं चाहती। हे देव विभावसु! मेरा कभी किसी तेजके साथ संस्पर्श नहीं है। हे महाद्युति! आपदके हेतु यह आपके संग अत्यन्त सूक्ष्म सम्बन्ध हुआ। हे हुताशन! इस विषयमें जो कुछ दोष गुण अथवा धर्म्माधर्म्म होगा, उसे मैं तुम्हारा ही विचारती हूं।

अनन्तर हुताशनने उनसे कहा, मेरे तेजसे युक्त इस गर्भको धारण करो, इससे महागुण तथा फल प्राप्त होगा। तुम निज शक्तिबलसे इस अखण्ड भूमण्डलको धारण करने तथा उठानेमें समर्थ हो, गर्भ धारणके अतिरिक्त तुम्हें और कुछ भी अप्राप्य नहीं है। अग्नि और देवताओंसे निवारित होके भी गर्भ धारण करनेमें असमर्थ होनेसे सरिद्वरा गङ्गाने उस समय पर्व्वत श्रेष्ठ सुमेरुके ऊपर उस गर्भको परित्याग किया, वह गर्भधारण करनेमें समर्थ होनेपर भी रुद्ररूपी अग्निके तेजसे प्रधर्षित होके निज तेजके सहारे गर्भ धारण न कर सकीं। हे भृगुकुलधुरन्धर! जब गङ्गाने उस अग्निसदृश प्रभायुक्त प्रदीप्त गर्भको परित्याग करके निवास किया, तब अग्निदेव उस सरिद्वराको दर्शन देके बोले, हे देवि! गर्भ सुखसे उदित हुआ है? उसका कैसा वर्ण है? कैसा दीखता है और वह कैसे तेजसे संयुक्त है? यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो।

गङ्गा बोलीं, हे अनघ! वह गर्भ सुवर्ण-वर्ण और तेजमें तुम्हारे सदृश है, विमल सुवर्ण समान उस प्रदीप्त गर्भने पर्व्वतको प्रकाशित किया है। हे तपताम्बर! वह गर्भ पद्मोत्पल-युक्त ह्रदकी भांति शीतल है, उसकी सुगन्धि कदम्बपुष्पकी भांति है, सूर्य्यके समान तेजयुक्त उस गर्भकी किरणोंके सहारे पृथ्वी और पर्व्वतकी जो कुछ वस्तु स्पर्शित हुई हैं, वे सब काञ्चनरूपी दिखाई देती हैं। वह गर्भ तेजके सहारे स्थावर जङ्गमात्मक त्रिभुवनको प्रदीप्त करते हुए पर्व्वत, नदी और झरनोंमें दौड़ रहा है। हे हव्यवाहन! आपका पुत्र ऐसे ऐश्वर्य्यसे युक्त है, कि तेजमें सूर्य्य तथा वैश्वानरके समान और कान्तिमें द्वितीय चन्द्रमा हुआ है। हे भृगुनन्दन! भागीरथी देवी इतना कहके वहीं अन्तर्हित हुईं, तेजस्वी पावक भी उस समय देवताओंके कार्य्यको सिद्ध करके अभिलषित स्थानमें चले गये। इन्हीं सब कर्म्मों तथा गुणोंसे लोकमें देवताओं और ऋषियोंके द्वारा अग्निका 'हिरण्यरेता' नाम वर्णित हुआ करता है। पृथिवीदेवी भी उसी समयसे वसुमती नामसे विख्यात हुई हैं। गङ्गाके गर्भसे गिरके वह अग्निसे उत्पन्न अद्भुतदर्शन तेजयुक्त गर्भ दिव्य शरवणको प्राप्त होके वहां बढ़ने लगा। कृत्तिकागणोंने उस बालकसदृश तेज सम्पन्न सन्तानको देखा, वे लोग उस बालक पुत्रको स्तनका दूध पिलाके पालने लगीं। इस ही निमित्त उस परम तेजस्वी बालकका नाम कार्त्तिकेय हुआ। गङ्गाके गर्भसे स्खलित होनेसे उनका नाम स्कन्द और गुहामें वास करनेसे गुह नाम हुआ था। इस ही भांति अग्निका पुत्र सुवर्ण उत्पन्न हुआ। सुवर्ण अनेक भांतिका होनेपर भी उसके बीच जाम्बूनद नाम स्वर्ण ही सबसे श्रेष्ठ है, वह देवताओंका भूषण होनेसे जातरूप नामसे विख्यात हुआ है यह सब रत्नोंके बीच उत्तम रत्न तथा समस्त भूषणोंके बीच उत्तम भूषण और पवित्र वस्तुओंसे पवित्र और सब सङ्गलोंका मङ्गल

है। सुवर्ण ही भगवान अग्नि ईश और प्रजापति स्वरूप है। हे द्विजसत्तम! सोना सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र है, आगरूप अग्निसोमात्मक रूपसे वर्णित हुआ करता है।

वशिष्ठ बोले, हे राम! पहिले समयमें जो परमात्मा पितामह ब्रह्माको ब्रह्मदर्शन हुआ था, मैंने वह कथा सुनी है। हे तात! वारुणी मूर्त्तिधारी महादेवके वारुण ऐश्वर्य्यके समय अग्नि आदि देवताओं और मुनियोंने ईश्वर रुद्रदेवके निकट आगमन किया था। यज्ञके सब अङ्ग, मूर्त्तिमान वषट्कार, सशरीर समस्त साम, सहस्रों यजुर्मन्त्र और पद तथा क्रम विभूषित ऋग्वेदने वहांपर आगमन किया। समस्त लक्षण, देवताओंकी स्तुति, निरुक्त, सुरपंक्ति ओंकार और निग्रह प्रग्रह नाम यज्ञके दो नेत्र, ये सब वहांपर स्थित हुए। उपनिषदोंके सहित सब वेद, सावित्री विद्या, वर्त्तमान, भूत और भविष्य आदिको भगवान महादेवने धारण किया था। उस समय उन्होंने स्वयं ही अपनेको आहुति प्रदान की। पिनाकधारी महादेवने बहुरूप यज्ञको शोभित किया। सर्व्व भूतपति ये भगवान महादेव ही स्वर्ग, आकाश पृथिवी, भूपति, सर्व्वविघ्नेश्वर श्रीमान् विभावसु, ब्रह्मा, शिव, रुद्र, वरुण और अग्नि हैं तथा येही प्रजापतिस्वरूपसे वर्णित होते हैं। हे भृगुकुलधुरन्धर! उस पशुपतिके यज्ञ, तपस्या तथा सब क्रिया निर्व्वाहित होती रहनेपर दीप्तव्रती दीक्षा देवी, दिगीश्वरके सहित सब दिशा, देवपत्नी, देवकन्या और देवमातृगण महात्मा वरुणके ऊपर प्रसन्न होके सब कोई मिलकर महादेवके यज्ञमें आयीं। देवकन्या प्रभृतिको देखके स्वयम्भूका वीर्य्य पृथ्वीपर गिरा। पूषाने उनके शुक्रके निस्पन्दवशसे पृथ्वीपरसे दोनों हाथोंसे वीर्य्यके सहित पांशु संग्रह करके उसी अग्निमें डाल दिया। उस प्रज्वलित अग्निसेयुक्त उस यज्ञके पूर्ण होनेपर होमकर्त्ता प्रजापतिके द्वारा परम श्रेष्ठ धातुकी उत्पत्ति हुई, हे भृगुनन्दन! धातु स्खलित होते ही उन्होंने उसे स्रुवामें लेकर मन्त्र पढ़के घृतकी भांति होम किया।

अनन्तर वीर्य्यवान भगवान् ब्रह्माने उस तेजमें चार प्रकारके प्राणियोंको उत्पन्न किया। उस होमसे इस लोकमें प्रवृत्ति प्रधान समस्त जङ्गम प्राणी उत्पन्न हुए, उस वीर्य्यके तम अंशसे स्थावरोंकी उत्पत्ति हुई; स्थावर और जंगम दोनों ही सत्त्वांशमें सन्निविष्ट रहे। वह सत्त्वही प्रकाशरूपी बुद्धिका नित्यगुण है, सत्त्व ही बुद्धि स्वरूप है, उस बुद्धिसत्त्वसे आकाश आदि सारा जगत् उत्पन्न हुआ। तमोमय जड़ शरीरमें सत्त्व अर्थात् प्रकाश वा उत्तम तेज तथा धर्म्मप्रवृत्ति स्थित रहती। अग्निके बीच प्रजापतिका वीर्य्य होम किये जानेपर उससे निज निज कारणज गुणोंके सहित तीन मूर्त्तिमान पुरुष उत्पन्न हुए। अग्निज्वाला भृगसे पहिले भृगु उत्पन्न हुए, अङ्गारसे अंगिरा जन्मे। अंगारकी अल्प ज्वालासे कवि नाम पुरुष उत्पन्न हुआ। भृगु ज्वालमालाके सहित उत्पन्न हुए थे, इसहीके निमित्त भृगु अर्थात् ज्वालाके नामके सहारे उनका भृगु नाम हुआ है। मरीचि अर्थात् किरणोंसे मरीचि उत्पन्न हुए, मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई। हे तात! अंगारसे अंगिरा और कुशोंसे बालखिल्य मुनि उत्पन्न हुए अत्र अर्थात् इन कुशोंसे ही अत्रि जन्मे थे, इसलिये पण्डित लोग उन्हें अत्रि कहा करते हैं भस्मसे ब्रह्मर्षियोंसे सम्मत तपस्या शास्त्रज्ञ और गुणाभिलाषी वैखानस मुनिवृन्द उत्पन्न हुए उनके आंसूसे सुन्दरतायुक्त दोनों अश्विनीकुमार जन्मे। अवशिष्ट प्रजापतिवृन्द उनकी इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए। रोम कूपसे ऋषि, स्वेदसे छन्द और वीर्य्यसे मनकी उत्पत्ति हुई। शास्त्र ज्ञानसे युक्त ऋषि लोग वेद प्रमाण देखके इस ही निमित्त अग्निको सर्व्व देवमय कहा करते हैं। यज्ञस्थानमें जो सब दारु थीं, वे मांस और

द्राक्षगत जो लाक्षादि द्रव्य थे, वे पक्ष, मुहूर्त्त तथा अहोरात्र नामसे विख्यात हुए। वरुणको ज्योतिको पित्त और रुद्रको ज्योतिको पण्डित लोग लोहित कहते हैं, ऐसा वर्णित है, कि लोहितसे स्वर्ण उत्पन्न हुआ है। सुवर्णका अधिष्ठात्री देवता मित्र है, इसलिये इसे मैत्र जानो। यह कारण है, कि धूमसे वसुगण उत्पन्न भये हैं। ज्वालासे रुद्र और महातेजस्वी आदित्य उत्पन्न हुए, यज्ञस्थलमें जो सब अंगार थे, वेही आकाशस्थित ग्रह नक्षत्ररूपसे वर्णित हुए हैं। जो जगत्‌के आदिकर्त्ता हैं, वेही परब्रह्म, वेही ध्रुव तथा सर्व्व कामप्रदाता है। प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उन्होंने अपना निज रहस्य कहा था।

अनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर पानात्मके महादेव वरुण बोले, हमारा ही दिव्य शस्त्र है, इस समय मैं ही ग्रहपति हूं, पहले जो भृगु, अंगिरा और कवि नाम तीन अपत्य उत्पन्न हुए हैं, वे निःसन्देह हमारे ही पुत्र हैं। हे देवगण! वह हमारे ही यज्ञका फल जानो।

अग्निदेव बोले, पूर्व्वोक्त तीनों पुत्र मेरे अंगसे उत्पन्न हुए हैं और मेरा ही आसरा किये हैं, इसलिये वे मेरे ही पुत्र हैं, वरुणका चित्त अवश हुआ है, इसीसे ये भ्रममें पड़े हैं।

अनन्तर लोकगुरु सर्व्वलोक पितामह ब्रह्मा बोले, हमारे उस वीर्य्यके होम करनेपर जो तीन अपत्य उत्पन्न हुए हैं, वे मेरे ही पुत्र है, मैं ही यज्ञकर्त्ता और वीर्य्यहोम करनेवाला हूं, इसलिये यदि वीर्य्य कारण हो, तो जिसका बीज है, उसहीका फल होसकता है।

अनन्तर देववृन्द पितामहके समीप आके हाथ जोड़ सिर झुकाके उन्हें प्रणाम करके बोले, हे भगवन्! हम सब कोई स्थावर जगमात्मक समस्त जगत्‌के सहित तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं इसलिये आप ही हम लोगोंके उत्पत्ति विषयमें कारण हैं, किन्तु विभावसु अग्नि, वरुण और देवेश्वर अपना अभिलषित विषय प्राप्त करें। ब्रह्माके स्वभाव तथा आज्ञाके अनुसार यादोगणके स्वामी वरुणने सूर्य्यके समान तेजस्वी जेठे पुत्र भृगुको ग्रहण किया। ईश्वरने अंगिराको अग्निका पुत्र कर दिया और तत्त्ववित् पितामह ब्रह्माने कविको निजपुत्र कहके ग्रहण किया। तभीसे प्रसवकर्म्मकारी भृगु वारुण नामसे विख्यात् हुए। श्रीमान् अंगिरा आग्नेय नामसे प्रसिद्ध हुए और महायशस्वी कवि ब्राह्म नामसे विख्यात हुए। भार्गव और आंगिरस इस लोकमें लोकविस्तारके कारण हुए। ये तीनों प्रजापति समस्त पुत्रोंको उत्पन्न करने लगे। यह निश्चय जानो कि सब कोई इन्हींके सन्तान हैं। च्यवन, वज्रशीर्ष, शुचि, और्व्व, वरणीय शुक्र, विभु और सवन, ये सातो भृगुके पुत्र हैं, ये सब कोई भृगुके सदृश गुणयुक्त हैं। तुम जिनके वंशमें उत्पन्न हुए हो, वे भार्गवगण भी वारुण हैं। और वृहस्पति, उतथ्य, पयस्य, शान्ति, घोर, विरूप, सम्वर्त्त और सुधन्वा ये आठो अंगिराके पुत्र हैं, ये सभी ज्ञाननिष्ठ, निरामय और वह्निज होनेपर भी वारुण कहा है। ब्रह्माके पुत्र कवि हैं, कविके आठ पुत्र हुए, वेभी वारुण नामसे वर्णित हुआ करते हैं, ये सब गुणयुक्त, कारण और कल्याणकारी हैं, इनके ये नाम हैं,—कवि, काव्य, धृष्णु, बुद्धिमान् उशना, भृगु, विरजा, काशी और धर्म्मज्ञ उग्र, ये आठो कविके पुत्र हैं, इनसे सारा जगत् व्याप्त है। इन्हींके सहारे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुई है, इस ही निमित्त ये प्रजापति हैं। हे भृगुश्रेष्ठ! इस ही प्रकार अंगिरा, कवि और भृगुके वंशीय सन्तान परम्पराक्रमसे जगत् व्याप्त हुआ है। हे विप्र! हे तात! सर्व्वशक्तिमान सर्व्वनियन्ता वरुणने पहले कवि और भृगुको ग्रहण किया था, इस ही निमित्त वे दोनों वारुण नामसे विख्यात हुए हैं। और ज्ञानवान अग्निदेवने अंगिराको ग्रहण किया

इसीसे उनके वंशमें उत्पन्न हुए सन्तानोंको आंगिरस जानो। पितामह ब्रह्मा पहले देवताओंके द्वारा इस ही भांति प्रसन्न हुए थे, कि ये नियन्तृगण जगत्में प्रजापुञ्जको सहारे इस लोगोंको पूरी रीतिसे तारेंगे। इसलिये ये सब कोई प्रजापति तथा तपस्वी होकर आपकी कृपासे सब लोकोंका उद्धार करेंगे और आपके तेजकी वृद्धि करते हुए वंशकर्त्ता होंगे। ये प्राजापत्य महर्षिगण प्रियदर्शन और देवपक्षमें श्रेष्ठ होकर परम तपस्या तथा ब्रह्मचर्य लाभ करेंगे।

हे प्रभु पितामह! हम और ये लोग सब कोई तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, आप देवताओं और ब्राह्मणोंके विधाता हैं, मरीचि प्रभृति समस्त भार्गवगण आपके अपत्य हैं, यह देखके हम लोग आपके उत्कर्षके लिये परस्परको अभिभव करनेमें यत्नवान् न होंगे। वे लोग क्षमाशील होके प्रजा उत्पन्न करेंगे और इस ही प्रकार उत्पत्ति और प्रलयके अन्तरालमें आपको स्थापित करेंगे। लोक पितामह ब्रह्माने उस समय देवताओंका वचन सुनके 'तथास्तु' कहा, तब देववृन्द अपने अपने स्थान पर गये। आदिकालमें वारुणी मूर्त्तिधारी देवश्रेष्ठके उस यज्ञमें ऐसी ही घटना हुई थी, अग्नि ही ब्रह्मा, महादेव, सर्व्वरुद्र और प्रजापतिस्वरूप है। ऐसा निश्चय है, कि यह सुवर्ण अग्निका पुत्र है। प्रमाणज्ञ जामदग्न्य वेदश्रुतिके निदर्शननिबन्धनसे अग्निके अभावमें उसके स्थानमें सुवरण स्थापित किया करते हैं। ऐसी जनश्रुति है, कि कुशस्तम्बमें अग्निमें होम करे; वहांपर स्थित सुवर्णमें तथा वल्मीक, वपा, बकरेके दहिने कान, शकट, भूमि, तीर्थके जल और ब्राह्मणके हाथमें होम करनेसे भगवान् हुताशन प्रसन्न होते हैं। हमने सुना है, कि समस्त देववृन्द अग्निनिष्ठ हैं। ब्रह्मासे अग्निदेव प्रकट हुए और अग्निसे सुवर्ण उत्पन्न हुआ है; ऐसा सुना गया है, कि जो दर्शी मनुष्य सुवर्ण दान करते हैं, वे देवता प्रदान करते हैं। हे भार्गव! वे गति पानेवाले मनुष्य तमरहित लोकोंमें कौवराज्यमें अभिषिक्त होते हैं। सूर्य होनेके समय जो लोग विधिपूर्व्वक मन्त्र सोना दान करते हैं, उनके दुःस्वप्न नष्ट करते है। जो लोग भोरके समय सुवरण करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं, मध्य कालमें सुवरण दान करनेसे दाताके पाप नष्ट हुआ करते हैं। जो लोग यत होकर सायं सन्ध्याके समय सुवरण प्र करते हैं, उन्हें ब्रह्मा, वायु, अग्नि और च माके सदृश लोक प्राप्त होते हैं और लोकोंमें शुभ प्रतिष्ठा मिलती है, इस लो यश पाके पापरहित होकर प्रमुदित होते है अनन्तर वे परलोकमें सदा अप्रतिम, अनावृ गतिसे युक्त और कामचारी होते है, उन यश कभी क्षीण नहीं होता, बल्कि सर्व्वत्र म यश व्याप्त होता है। अक्षय सुवरण दान क नेसे मनुष्य पुष्कल लोकोंको पाता है। जो ल सूर्य्य उदय होनेके समय अग्नि जलाके व्रत उद्देश्यसे सुवरण दान करते है, उन्हें समस्त काम्य भोग प्राप्त होता है। ऐसा प्राचीन लो कहा करते हैं, कि सूर्य्योदयके समय सुवरण दान पूर्ण गुणयुक्त, ज्ञानप्रवर्त्तक और दानरो चक होनेसे सुखावह है। हे पापरहित भृगुन न्दन! यह मैंने तुमसे सुवरण और कार्त्तिकेयक उत्पत्तिका बिषय कहा है, इसलिये इसे मालूम करो। हे भृगुकुल धुरन्धर! उस समय कार्त्तिकेय बहुतसा समय बीतनेके अनन्तर बर्द्धित होके इन्द्रादि देवताओंके सेनापति पदपर अभिषिक्त हुए। अभिषिक्त होके इन्द्रको आज्ञासे सब लोकोंकी रक्षाके लिये तारक नाम दैत्य तथा दूसरे बहुतेरे असुरोंको मारा। हे बिभु! सुवरण दानके जो सब फल हैं, वह

मैंने तुमसे कहा। हे दातवर ! इसलिये तुम ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान करो।

भीष्म बोले, प्रतापवान् जामदग्न्य रामने वशिष्ठका ऐसा वचन सुनके ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान किया, और उस ही कारणसे पापरहित हुए। हे महाराज युधिष्ठिर ! यह मैंने सुवर्णदानका फल और सुवर्णकी उत्पत्तिका विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया, इसलिये तुम भी ब्राह्मणोंको बहुतसा सोना दान करो। हे महाराज ! तुम सुवर्ण दान करनेसे पापरहित होगे।

८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपने विधानके अनुसार सुवर्णदानके गुण और श्रुतिसिद्ध लक्षण तथा सुवर्णकी उत्पत्तिका कारण विस्तार पूर्व्वक वर्णन किया, परन्तु वह तारकासुर किस प्रकारसे मारा गया ? मेरे समीप यह विषय वर्णन करिये। हे राजन् ! पहले आपने कहा, कि वह देवताओंसे अवध्य था, तब किस प्रकार उसकी मृत्यु हुई ? उसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। हे कुरुकुलधुरन्धर ! मैं तुम्हारे समीप उस तारकासुरके वधका विषय विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल हुआ है।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! देवताओं और ऋषियोंके सब कार्य्य विनष्ट होनेसे उन्होंने सन्तानको पालनेके लिये कृतिकागणको भेजा। देवताओंके बीच कोई देवी भी अग्निके द्वारा अर्पित गर्भको धारण करनेमें समर्थ नहीं है, कृतिकागण ही निज तेजके प्रभावसे उस गर्भको धारण कर सकेंगी, ऐसा विचारके देवताओंने उन्हें अनुमति दी थी। अग्निने उन कृतिकाओंको अपना परमसुन्दर वीर्य्ययुक्त तेज अर्पण किया, उनके गरुड़रूपसे उस वीर्य्यको पीकर छः प्रकारसे गर्भधारण करनेसे अग्निदेव अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। छहों कृतिका जातवेदाके अर्पित गर्भको धारण करने लगीं। हुताशनका समस्त तेज छः कृतिकाओंके गर्भमें जानेसे छः स्थानमें स्थित हुआ था। अनन्तर वृद्धिशील महानुभाव कुमारका तेज उनके सब अवयवोंमें व्याप्त हुआ, उन्हें किसी स्थानमें भी सुखप्राप्त न हुआ।

हे पुरुषश्रेष्ठ ! अनन्तर प्रसवका समय उपस्थित होनेपर तेजपरितापी कृतिकागणने एक ही समयमें गर्भको परित्याग किया, प्रसवके अनन्तर वह षड्धिष्ठान गर्भ एकत्र हो गया। वसुमतीने सुवर्णके समीपसे उस गर्भको ग्रहण किया। दीप्यमान अग्निसे उत्पन्न हुआ वह दिव्यावयव प्रियदर्शन गर्भ दिव्य शरवनमें वर्द्धित होने लगा। कृतिकागणने उस सूर्य्यसदृश तेजसे युक्त सन्तानको देखा, देखते ही पुत्रस्नेह और सुहृदताके वशमें होकर उसे स्तनका दूध पिलाके पालने लगीं। वह बालक कृतिकाओंके द्वारा प्रतिपालित होनेपर चराचर तीनों लोकोंके बीच कार्त्तिकेय नामसे विख्यात हुआ। गंगाके गर्भसे स्खलित होनेसे स्कन्द और गुहामें वास करनेसे उसका गुह नाम हुआ था। अनन्तर तेंतीस देववृन्द, दिगीश्वरके सहित दशों दिशा, रुद्र, धाता, विष्णु, यम, पूषा, अर्य्यमा, भग, अंश, मित्र, साध्यगण, वसुगण, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, जल, वायु, आकाश, चन्द्रमा, नक्षत्रगण, सारे ग्रह, सूर्य्य और मूर्त्तिमान ऋक्, यजु, साम प्रभृति वेदोंने उस अद्भुत ज्वलनात्मज कुमारको देखनेके निमित्त आगमन किया। ऋषि लोग उस षडानन बारह नेत्रवाले द्विजप्रिय कुमारकी स्तुति करने लगे और गन्धर्व्वोंने गीत गाना आरम्भ किया। पीनस्कन्ध, बारह भुजा, भिन्न और सूर्य्यसदृश तेजस्वी, शरस्तम्भमें सोये हुए कुमारको देखकर महातेजस्वी ऋषियोंके

देवता लोग परम हर्षित हुए और तारकासुरको मरा समझा। अनन्तर देवताओंने उस ठौरसे कुमारके लिये समस्त प्रियवस्तु ला दिया। जब वह खेलने लगे, तब देवताओंने उन्हें खेलने योग्य अनेक प्रकारके पक्षी दिये और उनके चढ़नेके लिये गरुड़के पुत्र विचित्र वर्णयुक्त मयूरको ला दिया, राक्षसोंने वराह और भैंसे दिये, अरुणाने स्वयं उन्हें अग्निसदृश कुक्कुट दिया। चन्द्रमाने भेड़ा दिया और सूर्य्यने उन्हें रुचिर प्रभा दी, गौवोंकी माता सुरभिने उन्हें सौ हजार गौ दान किया, अग्निने बकरे दिये और इलाने बहुत सुन्दर फूल तथा फल दिया। सुधन्वाने उन्हें शकट तथा अनेक कूबरयुक्त रथ दिया। वरुणने दिव्य सुन्दर वारुण हाथी दिये, देवराजने सिंह, शार्दूल, हाथी तथा अनेक भांतिके पक्षी, अनेक प्रकारके घोर श्वापद और विविध छत्र प्रदान किये। राक्षस तथा असुरगण उस कुमारके अनुगत हुए। तारकासुरने उसे बढ़ते हुए देखके अनेक प्रकारके उपायोंसे मारनेकी चेष्टा की, परन्तु उस सर्व्वशक्तिमान् कुमारको मारनेमें समर्थ न हुआ, देवताओंने उन्हें सेनापतिका पद देके पूजा करके तारकासुरके उपद्रवके विषय कहे, देव सेनापति प्रभु कार्त्तिकेयने विशेष रूपसे वर्द्धित होकर तारकासुरको अमोघ शक्तिसे मार डाला। जब कुमारने खेल करते हुए उस असुरको मार दिया, तब इन्द्र फिर देवराज्यपर स्थापित हुए। अनन्तर प्रतापशाली देवसेनापति स्कन्द देवताओंके नियन्ता तथा रक्षक और शङ्करके प्रियकारी होकर सुशोभित हुए। हिरण्यमूर्त्ति भगवान अग्निपुत्र कुमारने इस ही भांति देवसेनापतिका पद पाया था, अग्निके परम तेज तथा कार्त्तिकेयके संग उत्पन्न होनेसे सुवरण मंगलकर श्रेष्ठ और अक्षय रत्न है। हे कुरुनन्दन! पहले समयमें वशिष्ठ मुनिने रामसे यह कथा कही थी। हे नरनाथ! इसलिये तुम सुवरण दानके लिये सदा यत्नवान रहो। रामने सुवरण दान करनेसे पापरहित होके सुरपुरमें मनुष्योंके लिये असुलभ स्थान पाया था।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मात्मन् राजन्! आप जिस प्रकार चारों वर्णोंके धर्म्म कहे वैसे मेरे निकट श्राद्धकी समस्त विधि वर्णन करिये। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शान्तनुपुत्र भी उस समय युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके श्राद्ध सब विधि कहने लगे।

भीष्म बोले, हे परन्तप पृथ्वीनाथ! सावधान होके इस धन, यश और पुत्रदायक शुभ पितृयज्ञ श्राद्धकर्म्मकी विधि सुनो। देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व्व, सर्प, राक्षस, पिशाच और किन्नर प्रभृति सबके ही लिये पितृगण सदा पूजनीय हैं। पहले पितरोंकी पूजा करके पीछे सब कोई देवताओंको तृप्त किया करते हैं; इसलिये पुरुषोंको सदा सब प्रकार यत्नपूर्व्वक पितरोंकी पूजा करनी योग्य है। हे महाराज! प्रति महीनेमें पितरोंकी तृप्तिके निमित्त जो श्राद्ध किया जाता है, उसे अन्वाहार्य्य कहते हैं, पितरोंकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध करना योग्य है, यह प्रथम कल्पित अर्थात् सामान्य विधि है, अमावस्या तिथिमें जिस दिन चन्द्रमा नहीं दीखता उस दिन अपराह्नमें पिण्डदानरूपी पितृयज्ञ करे, इस विशेष विधिके द्वारा बाधित होवे। जिस किसी दिन होसके, श्राद्ध करनेसे ही पितामहगण प्रसन्न होते हैं, इस हेतु तुमसे तिथि और आतिथ्यके गुण दोष तथा समय कहता हूं। हे पापरहित! जिन दिनोंमें श्राद्ध करनेसे जो जो सब फल प्राप्त होते हैं, वह तुम्हारे समीप पूरी रीतिसे कहता हूं सुनो।

प्रतिपदामें पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य निज गृहमें सुन्दरी तथा बहुसन्तान उत्पन्न

करनेवाला स्त्री पाता है। द्वितीयामें श्राद्ध करनेसे कन्या जन्मती है। तृतीया तिथिमें पितरोंको पिण्डदान करनेसे मनुष्यको बहुतसे घोड़े मिलते हैं। चतुर्थीमें श्राद्ध करनेसे गृहमें अनेक प्रकारके क्षुद्र पशु होते हैं। हे राजन्! पञ्चमीमें श्राद्ध करनेवालोंको बहुतसे पुत्र जन्मते हैं, षष्ठिमें जो लोग श्राद्ध करते हैं, वे तेजस्वी होते हैं। हे महाराज! सप्तमी तिथिमें श्राद्ध करनेवाले कृषिभागी हुआ करते हैं। अष्टमीमें जो लोग श्राद्ध करते हैं, उन्हें वाणिज्यसे लाभ होता है। नवमीमें श्राद्ध करनेवालोंको कई भांतिके एक खुरवाले पशु प्राप्त होते हैं। दशमीमें श्राद्ध करनेवालेकी गौवें विशेष रूपसे वर्द्धित होती हैं। हे राजन्! एकादशी तिथिमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य श्रेष्ठपात्र आदि धनसे युक्त होता और उसके गृहमें ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र जन्मते हैं। द्वादशीमें श्राद्ध करनेवालोंके घरमें सदा बहुत सा धन रूपा वा मनोहर सुवर्ण दीखता है। जो लोग त्रयोदशी तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे स्वजनोंके बीच श्रेष्ठ हुआ करते हैं। चतुर्द्दशीमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य युद्धभागी होता है और उसके गृहमें वशीभूत सब युवा पुरुष पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं। अमावस्या तिथिमें पिण्डदान करनेसे मनुष्यके सर्व्वकाम अक्षय प्राप्त होते हैं। कृष्णपक्षकी चतुर्द्दशीको त्यागिके दशमीके पहले जो सब तिथि पड़ती हैं, वेही श्राद्धकर्म्ममें श्रेष्ठ हैं, अन्य तिथि वैसी श्रेष्ठ नहीं है। जैसे पहलेसे दूसरा पक्ष श्रेष्ठ है, वैसे ही श्राद्धकर्म्मके विषयमें पूर्व्वाह्नसे अपराह्न विशेषरूपसे श्रेष्ठ है।

८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पितरोंके निमित्त कौन वस्तु दान करनेपर अक्षय होती है, कौन हवि सदाके लिये तथा अनन्तकी सिद्धि कल्पित हुआ करती है?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! श्राद्धवित पण्डित लोग श्राद्धकल्पमें जिसे हविरूपी जानते हैं, उन काम्यविषयों तथा उनके फल मेरे समीप सुनो। हे राजन्! तिल, व्रीहि, यव, मांस, जल और फलमूलके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरगण एक महीनेतक प्रसन्न हुआ करते हैं। मनुने कहा है, कि वर्द्धमान तिल श्राद्ध अक्षय होता है। समस्त भोजनकी वस्तुओंके बीच तिल सबसे मुख्य कहा गया है। मत्स्यके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरगण दो महीनेतक तृप्त रहते हैं। भेड़के मांससे श्राद्ध करनेसे तीन महीने और खरहेके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरगण चार महीनेतक प्रसन्न हुआ करते हैं। हे राजन्! बकरेके मांससे श्राद्ध करनेसे पितर लोग पांच महीनेतक प्रसन्न रहते हैं। वराहके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरगण सात महीनेतक तृप्त रहते हैं। चित्रमृगके मांससे श्राद्ध करनेपर आठ महीने और कृष्णसार मृगके मांससे श्राद्ध करे तो पितरगण प्रसन्न होके नव महीनेतक निवास करते हैं, गवय मांससे श्राद्ध करनेपर पितरोंको दश महीनेकी तृप्ति होती है। भैंसेके मांससे श्राद्ध करनेपर पितरोंको ग्यारह महीनेकी तृप्ति हुआ करती है। ऐसा वर्णित है, कि गव्यके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरोंकी एक वर्षतक तृप्ति होती है। जैसा गव्य है, घृतके सहित पायस भी वैसा ही उपयोगी है। महोक्ष पक्षिविशेष, वा बकरा विशेषके, मांसके द्वारा पितरोंकी बारह वर्षकी तृप्ति होती है। पितृयज्ञमें खड्गि मांस दिये जानेपर आनन्त्यकी हेतु हुआ करता है। कालशाक काञ्चन वृक्षके पुष्प आदि और बकरे अनन्त रूपसे वर्णित होते हैं। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें जो लोग पितृगीत गाया गाया करते हैं, पहले उसयने भगवान सनत्कुमारने मेरे समीप समस्त गाया कही थी। हमारे निज वंशमें जो पुरुष उत्पन्न हों, वे त्रयोदशीमें हम लोगोंका श्राद्ध करें

और दक्षिणायनके मघा नक्षत्रमें सर्पियुक्त पायस दान करेंगे। मघा नक्षत्रमें गतव्रती होकर गज कालुन छाग पाय आदिसे उन्हें तृप्त करेंगे। कृत्तिकायामें विधिपूर्वक पायस आदि प्रदान करेंगे। बहुतसे पुत्रोंके लिये कामना करनी योग्य है, क्यों कि गया जानेवालोंमें एक पुत्र भी गयाधाममें जाय, जहांपर अक्षयवट लोकोंके बीच विख्यात है। पितृयज्ञमें जल, मूल, फल, मांस और अन्न प्रभृति मधुमिश्रित जो कुछ वस्तु दी जाती है, वही अनन्त-फलजनक रूपसे कल्पित हुआ करती है।

८८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, यमने शशबिन्दुसे जो सब श्राद्ध विषय कहा था, उस पृथक् पृथक् नक्षत्रोंमें विहित काम्य श्राद्धका विषय मेरे समीप सुनो। जो मनुष्य कृत्तिका नक्षत्रमें सदा श्राद्ध करता है और अग्नि जलाके यज्ञ क्रिया करता है, वह अपत्योंके सहित शोकरहित होता है। पुत्रकामनावाले मनुष्य रोहिणी नक्षत्रमें और तेजके अभिलाषी मनुष्य मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करें। आर्द्रा नक्षत्रमें श्राद्ध दान करनेसे मनुष्य क्रूरकर्मा होता है। पुनर्व्वसु नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य कृषिभागी हुआ करता है। पुष्टिकी इच्छावाले मनुष्य पुष्प नक्षत्रमें श्राद्ध करें, जो मनुष्य अश्लेषा नक्षत्रमें श्राद्ध करते हैं, उनके वीर पुत्र उत्पन्न होते हैं। मघा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवालोंकी स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता प्राप्त होती है। पूर्व्वफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्त्ता सौभाग्यशाली होता है। उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले पुत्रवान् हुआ करते हैं। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य फलभागी होता है। चित्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले रूपवान् पुत्र पाते हैं। स्वाती नक्षत्रमें पितरोंकी अर्च्चना करनेसे पुरुष वाणिज्य उपजीवी होता है। पुत्रकामनावाले मनुष्य विशाखा नक्षत्रमें [
यज्ञ करनेसे बहुतसे पुत्र पाते हैं।
नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य राजचक्रका प्र-
र्त्तक होता है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें पितृतर्पण कर-
नेसे मनुष्यको आधिपत्य प्राप्त होता है। मू
नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे आरोग्यता प्रा
होती है। हे कुरुकुल श्रेष्ठ! श्रद्धा--दम
युक्त पूर्व्वाषाढा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनु
ष्यको उत्तम यश मिलता है। उत्तराषाढा नक्ष
त्रमें पितरोंकी पूजा करनेवाले मनुष्य शोक
रहित होके पृथ्वीमें ऊपर विचरते हैं। उत्त
राषाढाके शेषपाद और श्रवणाके प्रथम चारों
दण्ड, अभिजित नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवालोंको
श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होती है। श्रवण नक्षत्रमें
श्राद्ध दान करनेवालोंको परलोकमें सद्गति
मिलती है। धनिष्ठा नक्षत्रमें पितृयज्ञ करने
वाले मनुष्य सदा राज्यभागी होते हैं। शत
भिषा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे भिषक् सिद्धि प्रा
होती है। पूर्व्वभाद्रपद नक्षत्रमें पितरोंकी पूज
करनेसे मनुष्य बहुतसे बकरे और मेंषादि प
पाता है। उत्तरभाद्रपदमें श्राद्ध करनेसे मनु
ष्यको बहुतसी गऊ मिलती हैं, रेवती नक्षत्र
श्राद्ध करनेसे मनुष्य सोना रूपाके अतिरि
बहुत सा धन पाता है। अश्विनी नक्षत्रमें श्रा
करनेसे उत्तम घोड़े और भरणी नक्षत्रमें पि
रोंकी पूजा करनेसे मनुष्यको उत्तम आयु प्र
होती है। शशबिन्दुने इस श्राद्धविधिको सुन
वैसा ही अनुष्ठान किया और उन्होंने बि
क्लेशके ही पृथ्वीमण्डलको जीतके उसे शा
किया था।

८९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुलश्रेष्ठ पितामह
कैसे द्विजोंको दान करनेसे श्राद्ध सिद्ध होता
उसको आप मेरे समीप व्याख्या करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! दान धर्म्मके जाननेवाले क्षत्रियोंको देवकार्य्यमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनी योग्य नहीं है, किन्तु ऋषियोंने ऐसा कहा है, कि पितृकार्य्यमें न्यायपूर्व्वक ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनी योग्य है। मनुष्य देवकार्य्यमें केवल देवताओंकी पूजा किया करते हैं, इसलिये उसमें देवताओंके उद्देश्यसे ब्राह्मण मात्रको ही दान देना उचित है, परन्तु विद्वान् मनुष्य श्राद्धके समय कुल, शील, अवस्था, रूप और मर्य्यादाके सहारे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करे। हे महाराज! ब्राह्मणोंके बीच कोई कोई पंक्तिदूषण और कोई पंक्ति-पावन हैं, उनमेंसे दुष्कर्म्म आदिसे जो लोग पांति बाहर हैं, उनका विषय कहता हूं, सुनो। धूर्त्त, भ्रूण-हत्यारे यक्ष्मा रोगग्रस्त, पशुपालक, अध्ययनादि रहित, ग्रामप्रेष्य, वार्द्धुषिक अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन प्रयोग करनेवाले, गायक, सर्व्व-विक्रयी, स्थान जलानेवाले, गरद, कुण्डाशी, सोमविक्रयी, सामुद्रिक, राजसेवक, तेलीका कर्म्म करनेवाले, कूटकारक, पिताके संग विवाद करनेवाले, जिनके गृहमें उपपति है वैसे पुरुष अभिशस्त, चोर, जो पुरुष शिल्पकार्य्यके सहारे जीवन धारण करते हैं, पर्व्वकार अर्थात् वेशा-कारधारी, चुगल, मित्रद्रोही, पारदारिक, शूद्रोंके उपाध्याय, शस्त्रजीवी जो पुरुष कुत्तेके सहारे मृगया करता है, जिसे कुत्तेने काटा हो, बड़े भाईके क्वांरे रहते यदि लहुरा व्याह करे तो वह परिवेत्ता हुआ करता है। दुश्चर्म्मा, गुरुशय्यागामी कुशीलव, कृषीवल, देवल और जो लोग नक्षत्र निरूपण करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे हो पांतिसे बाहर हैं। हे युधिष्ठिर! वेदवादी लोग कहते हैं, कि ऐसे अपांक्तेय ब्राह्मण लोग जिस जिस श्राद्धमें भोजन करते हैं, उस श्राद्धके हविको राक्षस लोग भक्षण किया करते हैं। जो शूद्रास्त्रीगामी ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके अध्ययन करता है, श्राद्ध करनेवालेके पितर उस ब्राह्मणके पुरीषमें एक महीनेतक शयन किया करते हैं। सोमबेचने-वालेको जो दान किया जाता है, वह विष्ठास-दृश है। भिषक् वृत्तिवाले ब्राह्मणोंको जो दान किया जाता है, वह पीवशोणित समान है। देवलको जो वस्तु दान की जाती है, वह नष्ट हुआ करती है, वार्द्धुषिक ब्राह्मणको दान कर-नेसे अप्रतिष्ठा होती है। वाणिज्य व्यवसायी ब्राह्मणको जो दान किया जाता है, वह इस लोक और परलोकमें कार्य्यकारी नहीं होता। पौनर्भव ब्राह्मणको दान देना राखमें घृतकी आहुति सदृश हुआ करता है। धर्म्मसे विच-लित और दुश्चरित ब्राह्मणको जो लोग हव्य-कव्य प्रदान करते हैं, उनका वह दान परलो-कमें विनष्ट होता है। जो अल्पबुद्धि मनुष्य जानके ऐसे अपांक्तेय ब्राह्मणोंको श्राद्धसमयमें दान करते हैं, उनके पितृगण निश्चय ही पर-लोकमें पुरीष भक्षण करते हैं। जो अल्पबुद्धि-वाले ब्राह्मण शूद्रोंको उपदेश करते हैं, उन्हें और पहले कहे हुए अधम द्विजोंको पांतिबाहर जानो। हे महाराज! यदि कोढ़ी पुरुष ब्राह्म-णोंकी पांतिमें बैठे, तो वह साठ ब्राह्मणोंको दूषित करता है, क्लीव पुरुष एक सौ ब्राह्म-णोंको दूषित करता और श्वित्ररोगी जहांतक देखता है, उतनी दूरके ब्राह्मणोंको दूषित किया करता है। जो लोग सिर बांधके खाते, जो दक्षिणास्य होके भोजन करते तथा जो लोग जूता पहरके खाते हैं, उन्हें असुर जानो, जो असूयावशसे दिया जाय और जो श्रद्धाविवर्ज्जित रूपसे दान किया जाता है, ब्रह्माने असुरेन्द्र बलिके निमित्त उस समस्त भागकी कल्पना की है। कुत्ते और पंक्ति दूषित ब्राह्मण किसी प्रकार श्राद्धको न देखने पावें इस ही निमित्त आवृत स्थानमें पितरोंके उद्देश्यसे दान करे और तिल छोड़े। जो श्राद्ध बिना तिलके किया जाता है, जो लोग क्रोधके वशमें होकर श्राद्ध

करते हैं, राक्षस और पिशाचगण उस श्राद्धको दृष्टिको लुप्त किया करते हैं। अपांक्तेय ब्राह्मण पांतिके बीच जितने भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको देखता है, कर्त्तव्यविमूढ़ दाता का उतने परिमाणसे फल भ्रष्ट किया करता है।

हे भरतश्रेष्ठ! पहले अपांक्तेय ब्राह्मणोंका विषय कहा है, अब जो लोग पंक्तिपावन हैं, उनका विषय कहता हूं, तुम वैसे ब्राह्मणोंको परीक्षा करना। विद्यास्नात, व्रतस्नात, वेदस्नात और सदाचारयुक्त सब ब्राह्मणोंको ही सर्व्वपावन जानो। जो लोग पांक्तेय हैं, उनका विषय कहता हूं, तुम उन्हें पंक्तिपावन जानना। जिन्होंने त्रिनाचिकेत मन्त्र पढ़ा है, जिन्होंने गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य और सर्व्वाग्नि, इन पांच प्रकारके अग्निका अनुष्ठान जाना है, जिन्हें त्रिसुपर्ण नाम बह्वृचगणके तीनों मन्त्र विदित हैं, जो लोग शिक्षा, कल्प, प्रभृति वेदके षड़ाङ्गवेत्ता हैं, जो वंश परम्परासे वेद पढ़ाया करते हैं, उनके वंशमें जो लोग उत्पन्न हुए हों, जो लोग ज्येष्ठ सामगान करनेमें समर्थ हैं, तथा जो माता पिताके वशीभूत हों, जिनके दश पुरुष श्रोत्रिय हों, जो सदा ऋतुकालमें धर्म्मपत्नी गमन करते हैं और जो लोग वेद विद्या तथा व्रतस्नात हैं, वे ब्राह्मण ही पातको पवित्र किया करते हैं। जो लोग अथर्व्ववेदके शिरोभागको पढ़ते हैं, जो ब्रह्मचारी और यतव्रती है, जो लोग सत्यवादी, धर्म्मशील और निजकर्म्ममें रत हों; जो लोग पुण्यतीर्थोंमें स्नान करनेके लिये श्रम करते हैं, जिन्होंने यज्ञोंमें अवभृत स्नान किया है, जो लोग क्रोध-रहित, चपलताहीन, क्षमाशील, दान्त, जितेन्द्रिय और सब प्राणियोंके हितमें रत हों, उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रण करे। इन लोगोंको दान करनेसे अक्षय फल होता है, इन्हें ही पंक्तिपावन जानो। जो लोग मोक्षधर्म्मके जाननेवाले, यति योगचारी और उत्तम रीतिसे व्रत करते हैं, तथा जो लोग सावधान होकर उत्तम द्विजोंके इतिहास सुनाया करते हैं, जो लो[ग] भाष्यवेत्ता और व्याकरण शास्त्रमें रत र[हते] हैं, जो लोग पुराण शास्त्र अथवा धर्म्मशा[स्त्र] पढ़ा करते हैं और पढ़के विधिपूर्व्वक उ[सका] अनुष्ठान करते हैं, जिन्होंने गुरुकुलमें नि[वास] किया है, जो सत्यवादी तथा सहस्रदाता [हैं], सब वेदशास्त्रोंमें जो लोग अग्रगण्य हैं, वे जहांतक देखते हैं, उतने परिमाणसे लो[गोंको] पवित्र किया करते हैं, इसलिये पंक्तिको [पवित्र] करनेसे वे लोग पंक्तिपावन नामसे वर्णित हुए हैं। ब्रह्मवित् पुरुष ऐसा कहते हैं, कि जो लोग वंशपरम्परासे वेद पढ़ाते हैं, वैसे वंशमें जो पुरुष उत्पन्न हुए हों, वे अकेले ही कोस आधकोस अथवा तिहाईकोससे पातको पवित्र किया करते हैं। ऋत्विक् अथवा उपाध्याय गुणहीन होनेपर भी यदि कोई उनकी अनुमतिके बिना पहले आसनपर बैठे, तो भी पंक्तिके दुष्कृतको हरण किया करते हैं पातकदोषसे रहित वेद जाननेवाले विप्र यदि पतित न हों, तो वे पंक्तिपावन हैं। इसलिये सब भांतिसे यत्नपूर्व्वक परीक्षा करके निज कर्म्ममें रत, सत्कुलमें उत्पन्न तथा अन्य वह[ुश्रु]त ब्राह्मणोंको आमन्त्रण करे। दैव और पितृकार्य्यमें जिसका मित्रभोजन ही मुख्य उद्देश्य है, तथा जो पुरुष पितरों और देवताओंको परितृप्त नहीं करता, वह स्वर्गमें जाने[में] समर्थ नहीं होता। जो श्राद्धके निमित्त बन्धु बान्धवोंके सङ्गमें मिलाता है, वह देवयानपथमें गमन नहीं कर सकता, वह श्राद्धमित्र म[नुष्य] बन्धनसे मुक्त होके स्वर्गलोकसे च्युत होता [है] इसलिये श्राद्ध करनेवाला मित्र पुरुषोंका [सत्कार] न करे, अन्य समयमें संग्रहके निमित्त मित्रोंको धन देवे। जिसे शत्रु वा मित्र नहीं [समझा] जाता, हव्यकव्य दानके समय उस मध्यस्थ [ब्राह्मण]को भोजन करावे। जैसे ऊसरभूमिमें

बोनेसे अङ्कुर नहीं निकलता तथा बोनेवाला जैसे उस बीजका अंश नहीं पासकता, वैसे ही अयोग्य ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन करानेसे इस काल तथा परलोकमें भी श्राद्धका फल नहीं मिलता। बिन पढ़ा हुआ ब्राह्मण तृणकी अग्निकी भांति शान्त होता है, इसलिये उसे श्राद्धीय दान करे,—क्यों कि भस्ममें कदापि होम नहीं होता। सत्भोजनी अर्थात् परस्पर दीयमान दक्षिणाको पिशाचदक्षिणा कहते हैं; जैसे पिशाचोंको जो पुरुष भोजन कराता है, वे भी उसे ही भोजन कराया करते हैं, यह भी उसीके तुल्य है, इसलिये ऐसे दानका फल पितलोक अथवा देवलोकमें नहीं मिलता। जैसे नष्टवत्सा गऊ गृहके भीतर भ्रमण करती है, वैसे ही वह पुण्यहीन दक्षिणा इस लोकमें ही घूमा करती है। जैसे अग्नि बुझ जानेपर उसमें घृतकी आहुति देनेसे वह देवलोक अथवा पितृलोकमें नहीं पहुंचती, नाचने गानेवाले तथा मिथ्यावादियोंको जो दान किया जाता है, वह भी वैसा ही है। झूठ बोलनेवालाको जो दक्षिणा दी जाती है, वह उसी दाताके दोनों कुलोंको नष्ट करती है और उसे पालन नहीं करती; वह अंघातिनी निन्दनीय दक्षिणा स्वयं पतित होकर प्रदाताको प्रेतोंके देवयान पथसे च्युत करती है। हे युधिष्ठिर! जो लोग सदा ऋषियोंके नियमाचरण करते हैं, वे निश्चितबुद्धि सब धर्म्मोंके जाननेवाले पुरुषोंको देवता लोग भी ब्राह्मण जानते हैं। हे भारत! स्वाध्याय-निष्ठ, तपोनिष्ठ और कर्म्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको ऋषि जानो। हे भारत! ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणोंको कव्य प्रदान करना योग्य है। जो लोग ज्ञाननिष्ठ होते हैं, वे ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते। जो कल्पनाके समय ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं श्राद्धमें उन्हें भोजन न करावे। हे महाराज! ब्राह्मण लोग निन्दित होनेपर तीन पुरुषतक कुलको नष्ट किया करते हैं। हे महाराज! वैखानस ऋषियोंका यह वचन सुना जाता है, कि वेदपारग ब्राह्मणोंको दूरसे परीक्षा करे; वे प्रिय हों अथवा अप्रिय ही होवें, श्राद्धकालमें उन्हें दान करना योग्य है। हे भारत! जो मनुष्य सहस्रों झूठे ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं, वे केवल मन्त्र जाननेवाले एक ही ब्राह्मणको भोजन कराके प्रसन्न करनेसे उन सबके फलको पाते हैं।

९० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किन पुरुषोंके द्वारा श्राद्ध सङ्कल्पित हुआ है? किस समय श्राद्ध करना उचित है? श्राद्धका कैसा स्वरूप है? जिस समय भृगु और अंगिराके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंके अतिरिक्त और कोई न थे, उस समय किस मुनिके द्वारा श्राद्ध प्रवर्त्तित हुआ? श्राद्धके समय कौन कौनसे कर्म्म वर्ज्जित हैं? कौन कौनसे फलमूल धान्य त्यागने योग्य हैं? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ! जिस प्रकार श्राद्ध प्रवृत्त हुआ है, जिस समय श्राद्ध करना होता है, श्राद्धका जैसा रूप है, जिसके द्वारा सङ्कल्पित हुआ है, वह वृत्तान्त मेरे समीप सुनो। हे कुरुवंशधुरन्धर महाराज! स्वयम्भूके पुत्र अत्रि नामसे एक प्रतापवान् परमर्षि विख्यात हैं, उनके वंशमें दत्तात्रेय उत्पन्न हुए। दत्तात्रेयके निमि नाम एक तपस्वी पुत्र हुआ था निमिके श्रीयुक्त श्रीमान् नाम पुत्र था, वह दुष्कर तपस्या करके सहस्र वर्ष पूरा होनेपर काल धर्म्मसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। पुत्रशोकसे युक्त निमि विधिपूर्व्वक शौचकार्य्य करके बहुत ही सन्तापित हुए। अनन्तर महाबुद्धिमान् निमि चतुर्दशी तिथिमें शोकके समय मिष्टान्न और वस्त्र आदि सामग्री लाके शोक चिन्ता करते करते रात्रि

उन्होंने शोकसे व्यथित हृदय होकर अत्यन्त वन्धकारण शोकविषयसे मनको हटाया। अर्थात शोकको परित्याग करके सावधान होनेपर उनकी बुद्धि विस्तारगामिनी हुई। शेषमें वह समाहित होकर श्राद्धकल्पका विचार करने लगे। उनके पास जो सब फल मूल भोज्य थे और दूसरी जो कुछ वस्तु उनकी कही हुई तथा इष्ट थी, महाप्राज्ञ तपोधन निमिने मनही मन सबका निश्चय करके अमावस्या तिथिमें पूजित ब्राह्मणोंको लाके स्वयं प्रदक्षिणावर्त्तित आसनोंका स्थापित किया। अनन्तर उन्होंने सात ब्राह्मणोंको एकवारही भोजन करनेके लिये बैठाया और बिना लवणके सांवा अन्न खानेको दिया। शेषमें जो सब ब्राह्मण अन्न भोजन कर रहे थे, उनके दोनो चरणोंके समीप आसनके बीच अग्रभागमें दहिनो ओर दाभ रक्खी गई। उन्होंने सावधान और पवित्र होकर दाभोंको अग्रभागमें दहिनो ओर करके नाम तथा गोत्र उच्चारण करके श्रीमान्‌के उद्दे-श्यसे पिण्ड प्रदान किया। मुनिश्रेष्ठ निमिने धर्म्मसङ्कर करके अर्थात् वेदमें पितरोंके उद्दे-श्यसे पिण्डदान धर्म्म दीख पड़ता है, इसलोकमें पुत्रके निमित्त पिण्डदान स्वेच्छानुसार कल्पित हुआ है, ऐसा समझके अत्यन्त पश्चात्तापसे परितापित होके चिन्ता करने लगे। उन्होंने सोचा, कि पहले मुनियोंने जिसे नहीं किया, मैंने किस निमित्त उसका अनुष्ठान किया, ब्राह्मण लोग शापके द्वारा मुझे क्यों नहीं जलाते हैं? अनन्तर वह अपने वंश कर्त्ताका ध्यान करने लगे; ध्यान करते ही तपोधन अत्रि निमिको इस प्रकार पुत्रशोकसे दुःखित देखके अभिलषित वचनके सहारे अत्यन्त ही धीरज देने लगे। उन्होंने कहा, हे तपोधन निमि! तुम मत डरो, तुम्हारा सङ्कल्पित यह पितृयज्ञ पहले स्वयं ब्रह्माके द्वारा धर्म्मरूपसे देखा गया है, तुम्हारा यह सङ्कल्पित धर्म्म स्वयं उत्तम रीतिसे विहित हुआ है, ब्रह्माके अतिरिक्त और कौन पुरुष श्राद्धसम्बन्धीय विधि बना सकता है। हे पुत्र! मैं तुम्हारी इस उत्तम श्राद्धसम्बन्धीय विधिको व्याख्या करूंगा। हे पुत्र! यह ब्रह्माके द्वारा विहित है, इसलिये इसका अनुष्ठान करो और इसका विवरण मेरे समीप सुनो। हे तपोधन! पहले मन्त्र पढ़के अग्निमें करणहोम करके फिर चन्द्रमा वरुण और विश्वदेव, जो कि पितरोंके सङ्ग सदा विचरते हैं, स्वयम्भूने उनके निमित्त स्वयं सब भाग कल्पित किये हैं। निरपधारिणी पृथ्वीकी इस ही समय वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया कहके स्तुति करनी होगी। जल लानेके विष-यमें प्रभु वरुणको स्तुति करे। हे पापरहित! अग्नि और चन्द्रमाको तुष्ट करना होगा। पितृ नामक जो देवगण स्वयम्भूके द्वारा निर्म्मित हुए हैं और जो सब महाभाग उष्णपगण हैं, उनका भी हिस्सा कल्पित है। वे सब श्राद्धके द्वारा पूजित होनेपर नरकादि रूप क्लेशोंसे छूटते हैं। सप्त पितृवंश पहले ब्रह्माके द्वारा जाना गया है और अग्नि आदि विश्वदेवगण पहले ही गिने गये हैं। इस समय उन हिस्सा लेनेवाले महानुभावोंका नाम कहता हूं। बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत, पावन पार्ष्णिक्षेमा समूह, दिव्यसानु, विवस्वान, वीर्य्यवान, ह्रीमान, कीर्त्तिमान, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य्य, दीप्तरोमा भयङ्कर, अनुकर्म्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान, शैलाभ, परम क्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज वज्री, वरी, सनातन विश्वदेवगण, विद्युद्वर्चा सोमवर्चा, सूर्य्यश्री, सोमप, सूर्य्यसावित्र दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शङ्कर, भव ईश, कर्त्ता, कृति, दक्ष, भुवन, दिव्य, कर्म्मकृत गणित, पञ्चवीर्य्य, आदित्य, रश्मिवान, सप्तकृत, सोमवर्चा, विश्वकृत, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर, इस कालके गतिके अनुसार

जिन्हें जाना जा सकता है, वेही सब महाभाग गण वर्णित हुए। इसके अनन्तर जो वस्तु श्राद्धमें अदेय हैं, उन्हें कहता हूं। कोदों धान्य और पुलाक अर्थात् टूटे हुए चावल, तुच्छ धान्य, हींगसे बनी वस्तु, सब भांतिके शाक, प्याज, लहसुन, सोभाञ्जन, कोविदार अर्थात् लाल पीले रङ्गके फूल, गृञ्जन प्रभृति, कुम्हड़ा जातीय सब वस्तु अलावू काला नमक पाले हुए सूअरका मास और जो कुछ वेजानी वस्तु हो, कालाजीरा, बीटलवन, जो सब अन्न शरद्-ऋतुमें पकते हैं, सिंघाड़ा और वंशकरीर प्रभृति श्राद्ध श्राद्धमें वर्ज्जित हैं; सब प्रकारके नमक और जामुनका फल श्राद्धमें त्यागना चाहिये, श्राद्धके समय अवचुत और रोदन वर्ज्जित है, पितरोंके उद्देश्यसे दान काव्य और हव्यकव्यमें सदर्शन शाक अत्यन्त निन्दनीय है। श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर चाण्डाल और श्वपच जातिवाले पुरुषोंको बहुत दूरसे स्थित करे। यदि वे लोग हविको देख लेवे, तो उसे पितर और देवगण ग्रहण नहीं करते। श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर गेरुआ वस्त्रवाले, कुष्टरोगी, पतित, ब्रह्महत्यारे, नीचयोनिसे जन्मे हुए ब्राह्मण और पतित पुरुषसे संसर्ग रखनेवाले पुरुष, इन सबको पण्डित लोग उस समय वहांपर न आने देवें। पहले समयमें तपोधन ऋषि भगवान् निजवंशमें उत्पन्न हुए निमिऋषिसे ऐसी कथा कहके ब्रह्माकी दिव्य सभामें चले गये।

९१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! निमिके इस प्रकार श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त होनेपर सब महर्षिवृन्द विधि दृष्ट कर्मके सहारे पितृयज्ञ करने लगे। धर्मनिष्ठ व्रतव्रती ऋषि लोग श्राद्ध करके तीर्थके जलसे तर्पण करने लगे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके द्वारा निवाप पाके पितर और देवगण तृप्त होके उस समय अन्नजीर्ण करने लगे। पितरोंके सहित देववृन्द प्रतिदिन प्राप्त हुए अन्नको पचानेमें असमर्थ होके अजीर्ण रोगसे ग्रस्त हुए। उस समय वे लोग अन्नसे पीड़ित होकर चन्द्रमाके समीप गये। वे अजीर्णसे पीड़ित पितृगण चन्द्रमाके निकट जाके बोले, हम अन्नसे पीड़ित होरहे हैं, इसलिये जिस प्रकार इस विषयमें हमारा कल्याण हो, आप वैसा ही उपाय करिये। अनन्तर चन्द्रमाने उन लोगोंको उत्तर दिया कि, हे सुरगण! यदि तुम लोगोंको कल्याणकी इच्छा हुई हो, तो ब्रह्माके स्थानपर जाओ, वह तुम्हारे कल्याणको उपाय करेंगे। हे भारत! पितरोंके सहित वे सब देवगण चन्द्रमाका वचन सुनके सुमेरु पर्व्वतके शिखरपर सुखसे बैठे हुए ब्रह्माके निकट गये।

पितरवृन्द बोले, हे भगवन्! हम लोग निवाप अन्नसे अत्यन्त पीड़ित होरहे हैं। हे देव! इसलिये आप प्रसन्न होके हमारे कल्याणका विधान करिये। ब्रह्मा उन लोगोंका ऐसा वचन सुनके बोले, मेरे निकटमें स्थित यह अग्निदेव तुम्हारे कल्याणका विधान करेंगे।

अग्निदेव बोले, पितरोंके उद्देश्यसे दान उपस्थित होनेपर हम सब कोई मिलके उसे भक्षण करेंगे, हमारे सङ्ग खानेसे तुम लोग अन्नको निःसन्देह पचा सकोगे। पितर लोग अग्निका ऐसा वचन सुनके उस समय प्रोत्कर्षित हुए। हे महाराज! इस ही निमित्त पहले अग्निके निमित्त अन्न दिया जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहले अग्निको निवाप देनेसे ब्रह्मराक्षसगण उसे नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होते और अग्निदेवके उपस्थित रहनेपर राक्षसवृन्द दूर भागते हैं।

पहले पिताको पिण्ड देवे, फिर पितामहको पिण्ड देना योग्य है, अनन्तर प्रपितामहको पिण्ड प्रदान करे, इस ही प्रकार श्राद्धकी विधि वर्णित हुई है। श्राद्धकालमें

होके प्रत्येक पिण्ड देनेके समय गायत्री जपे और "सोमाय पितृमते" इत्यादि वचन कहना योग्य है। श्राद्धके समयमें रजस्वला, बहिरी, तथा अंगहीन स्त्रीको वहांपर न आने दे अर्थात ये लोग निवापको न देखने पावें और दूसरे वंशकी स्त्रियोंको पाकके निमित्त संग्रह न करे। जलमें उतरके पितामह आदिका नाम उच्चारण करे और नदीमें स्नान करके पितरोंको पिण्ड दे तथा तर्पण करे। पहले अपने वंशवालोंको जलसे तर्पण करके फिर सुहृद और सम्बन्धियोंको अञ्जली भरके जल देवे। विचित्र रूपवाले दो गौवोंसे युक्त गाड़ी तथा नौकाके ऊपर चढ़कर जो लोग अपार जलसे पार होते हैं, उनके पितर उनके समीप गऊके पूंछके सहित तर्पणकी अभिलाष किया करते हैं। इसलिये जो लोग इसे जानते हैं, वे सावधान होकर शकट अथवा नौकाके सहारे नदी उतरनेके समय पितरोंका तर्पण करते हैं। अर्द्ध-मासके कृष्णपक्षकी अमावस्या तिथिमें पितरोंका श्राद्ध करना योग्य है, पितृभक्ति रहनेपर पुष्टि, आयु, बल और श्री हुआ करती है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ। पितामह, पुलस्त्य, वशिष्ठ, पुलह, अंगिरा, क्रतु और कश्यप, ये महायोगीश्वर नामसे वर्णित हुए हैं, ये भी पितर हैं। हे महाराज! यही श्रेष्ठ श्राद्धकी विधि है, इस श्राद्धकर्म्मके सहारे परलोकमें गये हुए पितरोंका प्रेतत्व छूट जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह निर्द्दिष्ट श्राद्धकी उत्पत्तिका विषय शास्त्रके अनुसार कहा गया; इसके अनन्तर दानका विषय कहता हूं।

९२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो व्रतयुक्त ब्राह्मण लोग दशाह आदिमें यजमानकी इच्छासे हवनीय वस्तु अथवा अन्न भोजन करते हैं, सो कैसा है? अर्थात् इसमें व्रत करनेवाले ब्राह्मणोंका व्रतलोप होता है अथवा ब्राह्मणकी कामनाभंग गुरुतर है?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अवेदोक्त व्रतचारी ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंकी इच्छासे भोजन करके पर व्रतहीन नहीं होते और जो लोग वेदविहित यज्ञागभूत व्रताचरण करते हैं, वे ब्राह्मणकी कामनानुसार श्राद्धमें भोजन करनेसे लुप्तव्रत हुआ करते हैं, इसलिये उन्हें व्रतलोपके हेतु प्रायश्चित्त करना योग्य है, साधारण ब्राह्मण न मिलनेपर व्रती ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके प्रायश्चित्त करें, परन्तु श्राद्धलोप न करें।

युधिष्ठिर बोले, साधारण लोग जो उपवासको तपस्या कहते हैं, उस उपवासको ही इस स्थलमें तपस्या कहा है अथवा अन्य भांतिके किसी नियमसे तपस्या होती है?

भीष्म बोले, साधारण लोग जो एक महीना अथवा अर्द्धमासके उपवासको तपस्या कहते हैं, वह तपस्या नहीं होसकती, क्यों कि जो पुरुष अपने शरीर और कुटुम्बको कष्ट देकर उपवास करता है, वह तपस्वी वा धर्म्मज्ञ नहीं है, धन दानको भी श्रेष्ठ तपस्या कहा जाता है। व्रतचारी मनुष्य सदोपवासी होते हैं, जो ब्राह्मण सदा वेदमन्त्र जपता है, वह मुनि हुआ करता है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कुटुम्बिक और सदा अस्वप्न होवे सर्व्वदा अमासाशी हुआ करे और सदा पवित्र जप करे, सदा सत्य बोले और निरन्तर स्थिर होके निवास करे; सदा विघसाशी और अतिथिप्रिय होवे; सर्व्वदा अमृताशी और पवित्र रहे।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! किस प्रकार लोग सदा उपवासी होते हैं? किस भांति ब्रह्मचारी हुआ करते हैं? किस प्रकार विघसाशी होते और किस प्रकार अतिथिप्रिय हुआ करते हैं?

भीष्म बोले, जो मनुष्य प्रातर्भोजन और सन्ध्याकालके भोजनके अतिरिक्त फिर भोजन

नहीं करते, वेही सदोपवासी होते हैं। जो लोग ऋतुकालमें भार्य्या गमन करते हैं और जो मनुष्य सत्यवादी तथा दानशील हैं, उन्हें ब्रह्मचारी कहा जाता है। यज्ञ आदिके अतिरिक्त जो लोग वृथा मांस भक्षण नहीं करते वे अमांसाशी होते हैं जो लोग दान करते हैं, वे पवित्र होते हैं। जो लोग दिनको नहीं सोते, उन्हें अस्वप्न कहा जाता है। हे युधिष्ठिर। जो मनुष्य सबके तथा अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करता है, जान रखो, कि वही अमृत भोजन किया करता है। जो मनुष्य ब्राह्मणके भूखा रहनेपर भोजन नहीं करता, उस अभोजन निबन्धनसे वह स्वर्गको जीतता है। देवताओं पितरों और आश्रितोंको अन्न देकर जो लोग शेषमें बचा हुआ अन्न खाते हैं, धीर लोग उन्हें ही विघसाशी कहते हैं। हे प्रजानाथ। ब्रह्माके स्थानमें उन विघसाशी पुरुषोंके लोकोंकी सीमा नहीं है, उनके निकट गन्धर्वोंके सहित अप्सरावृन्द उपस्थित होती हैं। जो लोग देवता, अतिथि और पितरोंके सहित भोजन करते हैं, वे पुत्र-पौत्रोंके सहित सुख भोग किया करते हैं और उन्हें श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह। जो लोग ब्राह्मणोंको विविध वस्तु दान करते हैं, उन देनेवाले और लेनेवालोंमें क्या विशेषता है?

भीष्म बोले, जो ब्राह्मण साधु वा असाधु पुरुषोंसे प्रतिग्रह लेता है, वह गुणवान पुरुषोंसे प्रतिग्रह ग्रहण करनेके हेतु थोड़ा दोषी होता है और निर्गुण पुरुषसे लेकर ग्रहण करनेसे पापमें डूबता है। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें वृषादर्भि और सप्तर्षियोंके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि ये सप्तऋषि हैं और पतिव्रता अरुन्धती इन लोगोंकी गण्डा नामक एक परी थी, पशुसख नाम शूद्र उसका पति हुआ था, वे सब कोई समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोक पानेके निमित्त इस पृथ्वीमण्डलपर विचरते थे। हे कुरुनन्दन! अनन्तर अनावृष्टि होनेपर उस समय सब कोई क्षुधातुर होके कृच्छ्रप्राण हुए थे। पहले समय किसी यज्ञमें शिविराजके पुत्र शैव्यने ऋत्विकोंको दक्षिणा देनेके लिये अपना पुत्र प्रदान किया था। इस ही समयमें वह आयु नष्ट होनेसे मर गया, क्षुधासे परिपीड़ित ऋषियोंने उस मृतराजपुत्रको घेर लिया। हे भारत। क्षुधासे आर्त्त ऋषियोंने उस राजपुत्रको मरा हुआ देखके उसे स्थालीमें पकाया। यह मर्त्त्यलोक अन्नसे रहित होनेपर तपस्वियोंने शरीररक्षाकी इच्छा करके कृच्छ्रवृत्ति अवलम्बन की थी। अनन्तर पृथ्वीनाथ शैव्य वृषादर्भिने मार्गमें विचरते हुए उन क्लेशित ऋषियोंको पाक करते देखा।

वृषादर्भि बोले, दान लेनेसे पुरुष क्लेशसे छूट जाता है। हे तपस्विगण! इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रतिग्रह ग्रहण करिये। मेरे समीप जो वस्तु हो, उसे आप लोग मांगिये। मांगनेवाले ब्राह्मण ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, इसलिये मैं आप लोगोंको सहस्र अश्वतरी देता हूं, मैं आप लोगोंको एक एक वृषभके सहित शीघ्रगामी सफेद रोमवाली सत्प्रसूत गऊ दान करता हूं और वंशको पालनेमें समर्थ बोझा ढोनेवाले एक एक सौ सफेद बैल सबको देता हूं, पहले ही गाभिन हुई लाल शरीरवाली श्रेष्ठ उत्तम सत्प्रसूता गऊ देता हूं, श्रेष्ठ ग्राम, व्रीहि, रस, यव और इसके अतिरिक्त जो सब दुर्लभ रत्न हैं, कहिये उनके बीच से क्या दूं? आप लोग इस अभक्ष्य वस्तुमें ऐसा अभिप्राय न करिये। आपलोगोंकी पुष्टिके निमित्त कौनसी वस्तु दूं?

ऋषिगण बोले, हे महाराज। राजाओंका प्रतिग्रह मधुकी भांति स्वादयुक्त होता है,

किन्तु विषके समान है, तुम उसे जानके भी किस निमित्त उसमें लोभ दिखा रहे हो? देवताओंको ब्राह्मण शरीरका सहारा है, वे देवतास्वरूप ब्राह्मण तपस्याके द्वारा प्रसन्न होनेसे सबको प्रीतिका विधान करते हैं, ब्राह्मणको एक दिनमें भी जो तपस्या उपार्ज्जित होती है, कदाचित प्राप्तहुआ राजप्रतिग्रह दावानलकी भांति उसे जलाया करता है, हे महाराज! दानके सहित सदा तुम्हारा कुशल होवे इसलिये तुम याचकोंको सब वस्तु दान करो, ऐसा कहके ऋषियोंने दूसरे मार्गसे गमन किया। वे महानुभावगण जो मांस पकाते थे, वह अपक्व हो रहा। अनन्तर वे सब कोई उसे छोड़के आहारकी इच्छासे वनमें चले गये। अनन्तर राजाके भेजनेपर उनके मन्त्रियोंने वनमें जाके उडुम्बरका फल तोड़के उन्हें देना आरम्भ किया और हैमगर्भ अन्य उडुम्बर देने लगे। तब उनके सेवक उन स्वर्णपूरित उडुम्बरोंको ग्रहण करनेके लिये दौड़े। अत्रिने उसे गुरुतर जानके अग्राह्य समझकर यह वचन कहा, 'हम मन्दविज्ञानी तथा मन्दबुद्धि नहीं हैं, जानता हूं, कि ये सब सुवर्णमय हैं, इसलिये सावधान होकर जागता हूं। इस लोकमें इसे ग्रहण करनेसे परलोकमें बहुत कष्ट होता है, इस लोक तथा परलोकमें जो लोग सुखकी अभिलाष करें उनकेलिये यह अप्रतिग्राह्य है।'

वशिष्ठ बोले, एकसौ उडुम्बरसे निष्क और सहस्र उडुम्बरसे संमित गिना जाता है, इस प्रकार बहुतसा सुवर्ण प्रतिग्रह करनेसे मनुष्यकी पापियोंकी गति प्राप्त होती है।

काश्यप बोले, पृथ्वीमें जो सब व्रीहि यव, हिरण्य, पशुवृन्द और स्त्रियां हैं, वे एकको ही पर्य्याप्त नहीं हैं, इसलिये विद्वान् ब्राह्मण शान्ति अवलम्बन करे। भरद्वाज बोले, उत्पन्न होके बढ़नेवाले रुरु मृगके सींग क्रमसे बढ़ते हैं, इसलिये पुरुषकी प्रार्थनाके सदृश छोटापन नहीं है।

गौतम बोले, लोकमें ऐसी वस्तु नहीं है, लोगोंको परिपूर्ण करे, पुरुष समुद्रसदृ इसलिये यह कभी पूर्ण नहीं होता।

विश्वामित्र बोले, काम्यविषयकी इ करनेवाले मनुष्यकी तृष्णा जब पूरी नहीं होती है तब तृष्णारूपी दूसरा काम बाण भांति इस पुरुषको विद्ध करता है।

जमदग्नि बोले, निश्चय है, कि प्रतिग्रह यंग संयम ही तपस्याको धारण करता लोभ करनेसे ब्राह्मणका वह तपस्यारूपी नष्ट होता है।

अरुन्धती बोली, इस लोकमें धर्मार्थके द्रव्य सञ्चय करना पाण्डित्य सम्मत है, इस इस लोकमें द्रव्य सञ्चयसे तपस्यासञ्चय का ही श्रेष्ठ है।

गण्डाने कहा, मेरे प्रभु बलवान होके जब इस प्रचण्ड भयसे डर रहे हैं, तब मु निबलकी भांति इनसे भी अधिक भय है।

पशुसख बोला, लोभ आदि दोषोंसे भ्रष्ट होनेपर श्रेष्ठपद नहीं मिलता, ब्राह्मण लोग उस श्रेष्ठ पदको ही धन जानते हैं, इ लिये मैं उत्तम शिक्षाके लिये इन विद्वानों उपासना करूं।

ऋषियोंने कहा, जिनकी प्रजा छलयु फल दान नहीं करती, उस दाताके दान कुशल होता है,

भीष्म बोले, अनन्तर वे धृतव्रती ऋषि लो हैमगर्भ फलोंको त्यागके दूसरी ओर चले गये

मन्त्रिगण बोले, हे महाराज! आप विदित होवे कि वे लोग छल करके फलोंको त्यागके दूसरे मार्गसे जा रहे हैं।

राजा वृषादर्भि मन्त्रियोंका ऐसा वच सुनके बहुत ही क्रुद्ध हुए और उनके प्रति कारके निमित्त सब कोई गृहपर गये। राजाने आवहनीय अग्निके समीप जाक तीव्र नियम अवलम्बन करके संस्कृत मन्त्रों

…एक आहुति दी। उस अग्निसे लोक-… कृत्या निकली; वृषादर्भिने उसका …यातुधानी नाम रखा। कालरात्रिकी भांति वह …हाथ जोड़के वृषादर्भिके निकट उपस्थित …बोली, मैं क्या करूं?

वृषादर्भि बोले, सप्तर्षियों और अरुन्धतीके …निकट जाओ, उनके तथा उनकी दासिगर्भा वा …पत्नीके नामका अर्थ मनहीमन निश्चय करो …और इन सबके नामको जानकर उनका …नाश करो। उनके नष्ट होनेपर जहां तुम्हारी …इच्छा हो, वहां जाना। यातुधानी स्वरूपिणी …कृत्या "ऐसा ही करूंगी" इस प्रकार …स्वीकार करके जिस वनमें वे महर्षिवृन्द विच…रते थे, वहां गई।

भीष्म बोले, हे राजन्! अनन्तर अत्रि …आदि महर्षिगण उस वनमें फलमूल खाते हुए …विचरते थे, उस समय उन्होंने लाल हाथ, …लाल चरण, लाल मुख और पीतोदरयुक्त एक …स्थूल शरीरवाले परिव्राजकको कुत्तेके सहित …भ्रमण करते हुए देखा। अरुन्धती उस सर्व्वा-…सुन्दर परिव्राजकको देखके ऋषियोंसे बोली, …आप लोग ऐसे नहीं हैं।

वशिष्ठ बोले, इस समय हम लोगोंका …अग्निहोत्र नहीं होता, सन्ध्या और सवेरे होम …करना चाहिये, वह भी नहीं होता, इसलिये …नित्यकर्म्मोंके लोप होनेसे हम लोग इस प्रकार …दुर्बल हुए हैं। इनका नित्यकर्म्म लोप नहीं …हुआ है, इसी लिये ये कुत्तेके सहित इस …प्रकार लक्षित हैं।

…अत्रि बोले, क्षुधासे हम लोगोंका बल …जिस प्रकार नष्ट होरहा है और अत्यन्त कष्टसे …जैसा हुई विद्या जिस भांति विनष्ट हुई है, …इनकी वैसी नहीं हुई, इसी निमित्त ये इस …प्रकार कुत्तेके सहित लक्षित हैं।

…विश्वामित्र बोले, हम लोगोंका शास्त्र-…विहित धर्म्म जिस प्रकार शीर्ण हुआ है, हम जैसे भूखे आलसी और मूर्ख हुए हैं, ये वैसे नहीं हैं, इसीसे कुत्तेके सहित लक्षित हैं।

जमदग्नि बोले, हम लोग जिस भांति वर्षिक अन्न और काष्ठकी चिन्ता करते हैं, इन्हें उस प्रकार कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती, इसीसे ये कुत्तेके सहित ऐसे लक्षित हैं।

कश्यप बोले, जैसे हमारे चारों सहोदर देहि देहि, करके भीख मांगते हैं, इनके भाई वैसे नहीं हैं, इसीसे ये कुत्तेके सहित लक्षित हैं।

भरद्वाज बोले, हमें भार्याके अपवादवश जैसा शोक हुआ है, इस अल्पचित्त ब्रह्मबन्धुको वैसी घटना नहीं हुई, इसी लिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसे लक्षित हैं।

गौतम बोले, हम लोगोंकी कुशरज्जुसे गुंथा हुआ त्रिवर्षीय रंकुमृगचर्म्म जिस प्रकार पुराना हुआ है, इनका वैसा नहीं है, इसीलिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसा लक्षित है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस परिव्राजकने सप्तर्षियोंको देखके उनके समीप जाकर न्याय-पूर्व्वक हाथसे स्पर्श किया और बोला, आप-लोगोंकी वनके बीच जिस प्रकार भूख मिटेगी, मैं उसी भांति तुम्हारी टहल करूंगा, परस्परकी ऐसा कहनेपर वे सब कोई इकट्ठे होकर निवास करने लगे। वे सब एक ही कार्य्यके अभिलाषी होकर वनके बीच फलमूल ग्रहण करते हुए विचरनेमें प्रवृत्त हुए। किसी समय उन्होंने विचरते हुए उत्तम वृक्षोंसे पूरित और पवित्र जलसे युक्त एक सुन्दर तालाब देखा। वह तालाब बालसूर्य्यसदृश कमलोंसे सुशोभित था, वैदूर्य्य वर्णसदृश पद्मपत्रोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंसे अलंकृत था, उसमें प्रवेश करनेके लिये एक ही द्वार था और उस कमल तथा तालाबके जलको नहीं ले सकते थे, उसमें जानेके लिये एक ही मार्ग था और कीचड़ नहीं था। वृषादर्भि राजाके द्वारा भेजी हुई वह भयङ्कर कृत्या यातुधानी

नामसे विख्यात थी, वह उस तालाबकी रक्षा करती थी। पशुसखके सहित महर्षि लोग मृणालके निमित्त उस कृत्यारचित तालाबकी ओर गये। अनन्तर महर्षियोंने तालाबके तटपर स्थित यातुधानी कृत्याको देखके कहा, तुम अकेली किसके लिये यहांपर निवास करती हो? तालाबके तटको अवलम्बन करके तुम्हारे निवास करनेका क्या प्रयोजन है और तुम क्या करनेकी इच्छा करती हो, उसे कहो।

यातुधानी बोली, मैं चाहे जो कोई क्यों न होऊं, मुझसे तुम लोगोंको कुछ पूछना न चाहिये। हे तपस्वीवृन्द! तुम्हें मालूम हो, कि मैं इस तालाबकी रक्षामें नियुक्त हूं।

ऋषिवृन्द बोले, हम लोग क्षुधासे आर्त हैं हमारे पास कुछ भी नहीं है, तुम्हारी सम्मति हो, तो हम लोग मृणाल लें।

यातुधानी बोली, तुम लोग एक नियमके अनुसार अपने नामका अर्थ कहके स्वेच्छापूर्वक इसमेंसे मृणाल ग्रहण करो।

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे व्याकुलचित्त अत्रिने उस यातुधानी कृत्याको नाशका अर्थ जाननेमें समर्थ और ऋषियोंके मारनेकी इच्छा जानके यह वचन कहा।

अत्रि बोले, जो इस सारे जगत्‌को पापसे उबारता है, वेद उसे अत्रि नामसे पुकारता है, इसलिये जो पापसे परित्राण करता है, वह अत्रि है और काम क्रोध आदि शत्रु जिसे अवलम्बन किया करते हैं, उसे अर अर्थात् पाप कहा जाता है, उस पापसे जो बचाता है, वह अरात्रि है, इसलिये जो अरात्रि हो, वही अत्रि है, अत् शब्दका अर्थ मृत्यु है, उससे जो त्राण करता है, उसे भी अत्रि कहा जाता है, इसलिये धर्म्म भी अत्रिपदवाच्य है, अद्य अर्थात् वर्त्तमान कालमें जो तीनबार अधिगत नहीं होता, अतीत पुत्रादिके समुत्पत्ति समयमें आगतके निवर्त्तनमें, उत्पत्तिकालमें वर्त्तमान हेतु और नाश होनेपर अतीतलके द्वारा जो जाना नहीं जाता, जिसका इस विचार अधिगम नहीं है केवल वर्त्तमान ही है; जो अवस्था ज्ञानीके शास्त्र नमस्कारणप्राप्त सर्व्व पापविनाशिनी है उसे ही अरात्रि कहते हैं। हे सुन्दरी! इसलि जब मैं ही अरात्रि हूं, तब तुम मेरा ना अत्रि निश्चय करो।

यातुधानी बोली, हे महाद्युति! तुमने समीप जो नाम कहा, वह मनमें भी धार करना बहुत कठिन है। इसलिये तुम ना तालाबमें उतरो।

वसिष्ठ बोले, अग्नि, पृथ्वी, वायु, आका स्वर्ग, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण और श्रु प्रसिद्ध वस्तु अर्थात् जिन्हें अवलम्बन करके कोई वास करते हैं, ये जिसके अधीन होते वह अणिमा आदि ऐश्वर्य्यशाली महायोगी ये सब मेरे वशीभूत हैं, इस ही निमित्त वसिष्ठ और अत्यन्त महान् होनेसे वरिष्ठ त सब आश्रमोंके उपजीव्य वास योग्य गृहस्था में निवास किया करता हूं, इसलिये व ष्ठत्व और वास करनेसे मुझे वसिष्ठ जानो, सबका अवलम्ब हूं, इसलिये देवता लोग मे रक्षा करते हैं।

यातुधानी बोली, तुमने जो अपने नाम निरुक्त कहा, उसका अक्षरार्थ अत्यन्तदुःखसे बो होता है, इसलिये इसकी धारणा नहीं को सकती, अच्छा जाओ, तुम तालाबमें उतरो

कश्यप बोले, मैं प्रति शरीरमें एक हूं, इ लिये मेरा नाम कश्यप है। अर्थात् कश्य अश्वरूपी इन्द्रियोंको कश्य कहते हैं, उन इन्द्रि योंका अवलम्ब शरीर भी कश्य है, इसलि कश्यको रक्षा करनेसे कश्यप द्विज और अर्थात् पृथ्वीकी जो रक्षा करता है, उसे कु अर्थात् जल कहा जाता है, उस कुप अर्थात् जलको जो पीता तथा सोखता है, वह कुक अर्थात् द्वादश-सूर्य्य मेरा पुत्र है, इसलिये मैं कुक

हूं, दीप्तिमान होनेसे काश्य और काशपुष्पसदृश अंशयुक्त होके सदा तपस्यासे प्रदीप्त हूं।

यातुधानी बोली, हे महाद्युति! तुमने मेरे समीप जिस प्रकार अपना नाम कहा, वह मनमें भी धारण नहीं किया जाता, इसलिये जाओ तालावमें उतरो।

भरद्वाज बोले, मैं अभिष्य अर्थात् शासन न करने योग्य शत्रुओंको भी करुणासे वशीभूत करके प्रतिपादन करता और असुत अर्थात् उदासीन, दीन हीन लोगोंको प्रतिपालन किया करता हूं, देवताओंको भरण करता और द्विजोंको भी भरण किया करता हूं, भार्य्या, पुत्र और सेवकोंको दूसरे लोग जिस प्रकार पालते हुए पृथ्वीकी भांति सर्व्वसह और अन्नप्रद होते हैं, मैं भी वैसा ही हूं। हे सुन्दरि! इसलिये मैं अनन्य, अर्थात् मायाके द्वारा लोकहितके लिये उत्पन्न होनेसे अनव्याज हूं; इससे तुम मुझे भरद्वाज जानो।

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका ऐसा निर्व्वचन तथा अक्षरार्थ कहनेमें अत्यन्त कष्ट होता है, यह धारण नहीं किया जा सकता, इसलिये जाओ तालावमें उतरो।

गौतम बोले, मैं जितेन्द्रिय होनेसे गोपद वाच्य, स्वर्ग और भूमिको वशीभूत करनेसे गोदम तथा धूमरहित अग्नितुल्य होनेसे अधूम हूं, इसलिये तुमसे समदर्शन निबन्धनसे अदम अर्थात् दूसरेसे दमनीय नहीं हूं। हे यातुधानी सुआ! मेरे जन्मते ही मेरी गौ अर्थात् किरणके सहारे तम अर्थात् अन्धकार नष्ट हुआ था, इसलिये मेरा नाम गौतम जानो, मैं अग्निकी भांति तुम्हारे लिये दुष्पधर्ष हूं।

यातुधानी बोली, हे महामुनि! मेरे समीप तुमने जो नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो।

विश्वामित्र बोले, इन्द्रादिके देवगण मेरे मित्र हैं और मैं इन्द्रियोंका मित्र हूं। हे यातुधानी! इसलिये तुम मुझे विश्वामित्र जानो।

यातुधानी बोली, तुम्हारे इस नामका निरुक्त और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो।

जमदग्नि बोले, यज्ञादिकोंमें जो बारबार हवि भक्षण करते हैं, उन्हें याजमन्त कहा जाता है। उस याजमन्त अर्थात् देवगणका जिसके द्वारा यजन किया जाता है, उसका नाम यज अर्थात् अग्नि जानो। हे सुन्दरि! उसके आविर्भावमें मैंने जन्म लिया है, इसलिये तुम मुझे जमदग्नि जानो।

यातुधानी बोली, हे महामुनि! तुमने जिस प्रकार मेरे समीप अपना नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो।

अरुन्धती बोली, मैं पतिकी अनुगामिनी होकर धर अर्थात् पर्व्वत, धारणी और वसुधा अर्थात् देवगणोंके निवास स्थान स्वर्गमें वास करती हूं, तथा पतिके मनका अनुरोध किया करती हूं, इसलिये मुझे अरुन्धती जानो।

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निर्व्वचन और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये तुम भी जाओ तालावमें उतरो।

गण्डा बोली, हे अग्निसम्भवे! मुखके एक स्थानको पण्डित लोग गण्ड कहते हैं, मेरा वह स्थान ऊंचा है, इसलिये मुझे गण्डा जानो।

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणाके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालावमें उतरो।

पशुसख बोला, हे अग्नि सम्भवे! मैं पशु अर्थात् जीवोंको देखते ही रक्षा वा रञ्जन किया करता हूं, इसलिये मैं सदा पशुसखा कहाता हूं, इस ही गुणसे सम्बन्धके मेरा पशुसख नाम जानो।

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणा करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालाबमें उतरो।

शुनःसख बोले, हे यातुधानी! इन लोगोंने जिस प्रकार अपना अपना नाम कहा, मैं उस भांति कहनेका उत्साह नहीं करता, इसलिये मुझे शुनःसखा अर्थात धर्म्मके सखा मुनियोंके सखारूपसे निश्चय करो।

यातुधानी बोली, तुमने सन्दिग्ध भाषासे निज नामका निर्व्वचन किया है, हे द्विज! इसलिये अब एकबार अपना यथार्थ नाम कहो।

शुनःसख बोले, मैंने एक बेर अपना नाम कहा, उसे यदि तू नहीं समझ सकी, तो इस त्रिदण्डकी चोटसे शीघ्र ही जलके खाक होगी।

यातुधानी कृत्या उस समय ब्रह्मदण्डसदृश त्रिदण्डकी चोट सिरपर लगतेही पृथ्वीपर गिरके उसी समय भस्म होगई। शुनःसखा भी उस महाबलशालिनी यातुधानीको मारके पृथ्वीपर त्रिदण्ड रखके शाद्वल तृणके बीच बैठ गये।

अनन्तर वे मुनिवृन्द स्वेच्छापूर्व्वक कमल मृणाल लेके हर्षित होकर तालाबसे निकले। उन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे मृणालोंको इकट्ठा कर तालाबके तटपर रखकर जलसे तर्पण किया। अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठ ऋषिगण जलसे निकलके स्थलमें आकर एकत्रित हुए, किन्तु मृणालकी राशि नहीं देखा। ऋषिगण बोले, हम लोग क्षुधातुर होके खानेकी इच्छासे जो सब मृणाल लाये, उसे न जाने किस पापी नृशंस मनुष्यने हर लिया? वे द्विजसत्तमगण शङ्कित होके आपसमें इसी प्रकार पूछने लगे। हे अरिकर्षण! तब उन्होंने निषिद्ध कार्य्यके अकर्त्तव्यताच्छलसे शपथ करनेके लिये कहा। वे सब क्षुधार्त्त और अत्यन्त श्रमयुक्त थे, इसलिये ऐसा ही करूंगा, कहके सब कोई उस समय शपथ करनेको उद्यत हुए।

अत्रि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह पांवसे गऊको स्पर्श करे, सूर्य्यकी ओर मूत्र परीष परित्याग करे और अनध्यायके समय अध्ययन करे।

वसिष्ठ बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह लोकके बीच अनद गाय परायण होके क्रीड़ा वा मृगालके निमित्त सारमेय आकर्षण करे, परिव्राट होके, स्वेच्छाचारी होके, शरणागत पुरुषको मारे, निज दुहिताको उपजीव्य करे अर्थात् शुल्क लेकर अपनी कन्या बेंचके जीवन बितावे, तथा कर्षकके समीप धनकी अभिलाषा करे।

कश्यप बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह सब ठौर सब विषयोंमें आलाप करे, न्यस्तधन लुप्त करे, झूठी साक्षी दे, यज्ञादि निमित्तके अतिरिक्त वृथा मांसाशी हो, नट नर्त्तक प्रभृतिको वृथा दान करे और दिनमें स्त्री सम्भोग करे।

भरद्वाज बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह धर्म्मत्यागी होकर स्त्रीजाति और गौवोंके विषयमें निठुर आचरण करे अथवा ब्राह्मणोंको जय करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह उपाध्यायको अग्राह्य करके ऋक् और यजुर्व्वेद पढ़े और तृणयुक्त अग्निमें होम करे।

जमदग्नि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, जलमें विष्ठा फेंके, गौवोंको मार तथा गौवोंके विषयमें द्रोहाचरण करे, ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें मैथुन करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सबका द्वेषी होवे, भार्य्याकी उपजीव्य करके जोवन बितावे, उसके बन्धुजन पृथक रहें, सदा वैर युक्त हो और परस्परमें अतिथि होवे।

गौतम बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह वेदोंको पढ़के उन्हें त्याग देवें, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय अग्निको

परित्याग करे, सोमविक्रयी होवे, एकमात्र कूएंके द्वारा जिस स्थानमें जीवन धारण किया जाता है, वैसे देशमें ब्राह्मण होके भी जो वृषलीपति हुआ करता है,—जिसने मृणाल हरण किया है, वह वैसे ब्राह्मणोंकी सहयताको प्राप्त होवे।

विश्वामित्र बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, उसके जीवित रहते ही दूसरे लोग उसके गुरुजनों तथा सेवकोंका पालन करें, वह गतिहीन और बहुपत्र-युक्त होवे। जिसने मृणाल हरण किया है, उसके वेद अपवित्र हों, वह सम्पत्ति पानेपर अहङ्कार करे तथा वह कर्षक और मत्सरी हो, जिसने मृणाल हरण किया है, वह वर्षाकालमें विचरे, राजाका वेतन भोगी सेवक हो, साधारण लोगोंका पुरोहित और अयाच्य पुरुषका अयाचक होवे।

अरुन्धती बोली, जो स्त्री मृणाल हरण किये हो, वह सदा सासको परिभव करे, स्वामीके समीप मन मलिन होवे, अकेली स्वादु वस्तु खावे। जिसने मृणाल हरण किया है, वह स्वजनोंका अनादर करके गृहमें रहके दिन बीतनेपर सत्तू खाय और अभोग्य तथा घोर प्रसविनी होवे।

गण्डा बोली, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सर्व्वदा झूठ बोले, बन्धुजनोंके सङ्ग विरोध करे, शुल्क लेके कन्यादान करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह अन्न पाक करके स्वयं भोजन करे, दास्यकर्म्म करके बूढ़ी होवे, और जारके द्वारा गर्भ धारण करके मृत्युको प्राप्त होवे।

पशुसख बोला, जिसने मृणाल हरण किया है, वह दास होकर जन्मे, सन्तान रहित हो, दरिद्र न रहे और देवताओंको नमस्कार न करे।

शुनःसख बोले, जिसने मृणाल हरण किया है, वह चारों वेद जाननेवाले अथवा सामवेदज्ञ ब्रह्मचर्य्य युक्त ब्राह्मणको कन्यादान करे तथा वह विप्र अथर्व्ववेद पढ़के स्नान करे।

ऋषिगण बोले, हे शुनःसख! तुमने जो शपथ किया, वह तो ब्राह्मणकी ही अभिलषित है, इसलिये तुमने ही हम लोगोंका मृणाल हरण किया है। शुनःसख बोले, आप लोगोंने इस समय न्यस्तधनको न देखके कृतकर्म्मा होकर जो वचन कहा, वह सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, मैंने ही मृणाल हरण किया है, देखिये, ये सब मृणाल मेरे द्वारा लुप्त हुई हैं। हे अनघगण! मैंने आप लोगोंकी परीक्षाके लिये ऐसा किया है, मैं तुम लोगोंकी रक्षाके लिये इस स्थानमें आया हूं, इस अत्यन्त क्रूर यातुधानी कृत्याने आप लोगोंके वधकी इच्छा की थी। हे तपोधनगण! राजा वृषादर्भिने इसे भेजा था, मैंने उसे मारा है। यह दुष्टा हिंसा पापिन आप लोगोंके निमित्त अग्निसे उत्पन्न हुई थी। हे विप्रगण! इस ही निमित्त मैं यहांपर आया हूं, आप लोग मुझे इन्द्र जानो। आप लोगोंने लोभत्यागनेसे सर्व्वकाम सम्पन्न लोकोंको पाया है। हे द्विजगण! इसलिये यहांसे चलिये, आप लोगोंको शीघ्रही वे समस्त लोक प्राप्त होंगे।

भीष्म बोले, अनन्तर महर्षिवृन्द प्रसन्न होके इन्द्रसे बोले, "ऐसा ही होवे" इतना कहके देवराजके सङ्ग सुरपुरमें गये। इस ही भांति उन महात्माओंने राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके भोगोंसे प्रलोभित होनेपर भी भूखको बहुत ही सहा था, परन्तु उस समय कुछ भी लोभ न किया, इस ही निमित्त उन्होंने स्वर्गलोक पाया। इसलिये मनुष्य सब अवस्थामें ही लोभ परित्याग करे। हे राजन्! यही परम धर्म है, इसलिये अवश्य ही लोभ त्यागना योग्य है। मनुष्य इस चरित्र विषयको जनसमाजमें कहनेसे अर्थ-भागी होता है, कदाचित उसे दुर्गम स्थान नहीं मिलते, पितर, ऋषि और देववृन्द उसपर प्रसन्न होते हैं, वह मनुष्य परलोकमें जाकर यश धर्म्म और अर्थभागी होता है।

९३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें यह पुराना इतिहास कहते हैं, तीर्थयात्राके समय शपथके विषयमें जो घटना हुई थी, उसे सुनो। हे भरतसत्तम महाराज! कमलनालके लिये इन्द्रने जिस प्रकार चोरीकर्म किया और मुनियोंने शपथ की थी, राजर्षि और द्विजर्षियोंके द्वारा उस ही भांति शपथ हुई थी। पाश्चिम प्रदेशमें ऋषियोंने एकत्र होके प्रभास तीर्थमें यह विचार किया कि हम लोग समस्त पृथ्वीमण्डलमें विचरते हुए क्रमानुसार पुण्यतीर्थोंमें गमन करेंगे। हे राजन्! शुक्र, अङ्गिरा विद्वान् कवि, अगस्त्य, नारद, पर्व्वत, भृगु, वशिष्ठ कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव ऋषि, अष्टक, भरद्वाज अरुन्धती और बालखिल्य मुनिगण, राजा शिवि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष ययाति, धुन्धुमार और पुरु आदि राजाओंने महानुभाव वृत्रहन्ता देवराजको अगाड़ी करके तीर्थोंमें गमन किया; वे लोग अनेक तीर्थोंमें घूमकर माघीपूर्णिमाके दिन पुण्यतीर्थ कौशिकीमें उपस्थित हुए।

अनन्तर उन अग्निसदृश तेजस्वी ऋषियोंने देवतीर्थके जलमें स्नान और पुष्करभोजन करके सब तीर्थोंके पापको नष्ट करते हुए ब्रह्मसरोवरमें गये। हे महाराज! कोई कोई वहां विष खनने लगे दूसरे ब्राह्मण लोग मृणाल लानेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर उन्होंने अगस्त्यको उस ह्रदमें बढ़े हुए कमलोंको तोड़ते देखा। अगस्त्य उन ऋषियोंसे बोले, किसने मेरा सुन्दर कमल लिया है? मैं तुम लोगोंपर शङ्का करता हूं, तुम लोग मुझे कमल दो, पद्मको हरण करना तुम्हें उचित नहीं है। मैंने सुना है, कि कालक्रमसे धर्म्मबल विनष्ट होगा, वही काल इस समय उपस्थित हुआ है, अधर्म्मसे पीड़ा होती है, जबतक इस लोकमें अधर्म्म विद्यमान नहीं होता है, उतने ही समयके बीच में सदाके लिये सुरलोकमें जाऊंगा, इसके अनन्तर ब्राह्मण लोग गांवके बीच स्पष्ट स्वरसे वृषलोंको वेद सुनावेंगे और राजा लोग व्यवहारमें प्रजाके धर्म्म को न देखेंगे; इसलिये अब मैं परलोकमें जाऊंगा। जबतक उत्तम लोगोंके मनुष्य निकृष्ट और मध्यम लोगोंकी अवज्ञा नहीं करते हैं, तथा जबतक यह जगत अज्ञानसे परिपूरित नहीं होता है, उतने ही समयके बीच में सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा। इसके बाद बलवान मनुष्योंके द्वारा निर्व्वल मनुष्योंको भुज्यमान देखूंगा, इसलिये मैं सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा, इस लोकमें जीवोंको देखनेका उत्साह नहीं करता।

ऋषिवृन्द आर्त्त होकर उस महर्षिसे बोले, हे महर्षि! हमने आपका पुष्कर नहीं लिया है, आप हम लोगोंपर निरर्थक क्रोध न करिये। हम लोग तीव्र शपथ करते हैं। हे पुरुषेन्द्र! उस समय उन महर्षियोंने निश्चय करके इस धर्म्मको देखकर राजपुत्र और राजपौत्रोंके सहित क्रम क्रमसे शपथ करनेमें प्रवृत्त हुए।

भृगु बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह इस लोकमें निन्दित होके दूसरेकी निन्दा करे, ताड़ित होके दूसरेको मारे और पीठपर चढ़के वृषभ और ऊंटोंका मांस भक्षण करे।

वसिष्ठ बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह लोकके बीच अस्वाध्यायपरायण होके कुत्तेको आकर्षण करे और पुरीके बीच भिक्षुक होके रहे।

कश्यप बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह सब ठौर समस्त वस्तुओंको पण करके क्रय विक्रय करे, न्यस्त धन लोप करे और मिथ्या साक्षी दे।

गौतम बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह बुद्धिहीनतासे विषम काम क्रोध आदिके सहारे अहंकारयुक्त होके जीवन धारण करे और कर्षक तथा मत्सरी होवे।

अङ्गिरा बोले, जिसने आपका कमल लिया

है, वह अपवित्र तथा कपटी ब्राह्मण होवे, कुत्तेको आकर्षण करे, ब्रह्महत्या करके प्रायश्चित न करे।

धुन्धुमार बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह मित्रोंके निकट अकृतज्ञ होवे, शूद्राके गर्भमें जन्मे और उत्तम रीतिसे बने हुए अन्नको अकेला ही भोजन करे।

दिलीप बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह जिस गांवमें एक मात्र कूएंके जलसे जीवन धारण किया जाता है, वैसे गावमें जो ब्राह्मण वृषलीपति होके वास करता है,—उसे प्राप्त होने योग्य लोकोंमें जावे।

पुरु बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त रहे, भार्य्याके सहारे पुष्टि लाभ करे और श्वसुरके द्वारा उसकी जीविका चले।

शुक्र बोले, जिसने आपका कमल हर लिया है, वह वृथा मांस भक्षण करे, दिनमें मैथुन करे और राजाका प्रेष्यदूत होवे।

यमदग्नि बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अनध्यायमें पढ़े, श्राद्धकालमें मित्रोंको भोजन करावे।

शिवि बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अनहिताग्नि होके मृत्युके मुखमें पड़े, यज्ञके समयमें विघ्न करे और तपस्वियोंके सङ्ग विरोध करे।

ययाति बोले, जिसने आपका कमल लिया है वह व्रती और जटाधारी होके ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें भार्य्याके द्वारा सन्तान उत्पन्न करे और वेदोंका निरादर करे।

नहुष बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह संन्यासी होके गृहस्थ होवे, दीक्षित होके स्वेच्छाचारी बने और वेतन लेके विद्यादान करे।

[illegible] बोले, जिसने आपका कमल लिया है वह धर्मत्यागी होके स्त्रीजाति और गौओंके विषयमें नृशंस होवे तथा ब्रह्महत्या करे।

नारद बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गृहमें ज्ञानी होके बाहरमें विस्वर-पद युक्त शास्त्र पढ़े और गुरुजनोंकी अवज्ञा करे।

नाभाग बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह सदा मिथ्या वचन कहे, साधुओंके सङ्ग विरोध करे और पण लेके कन्या दान करे।

कवि बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह पांवसे गऊको मारे, सूर्य्यकी ओर मलमूत्र परित्याग करे।

विश्वामित्र बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह धनसे खरीदे जानेपर वृष्टि प्रतिबन्ध करे, राजाका पुरोहित हो और अयाच्य पुरुषोंका याचक होवे।

पर्व्वत बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गांवमें सेवक होके रहे, गधेकी सवारीपर चले और वृत्तिके निमित्त कुत्तोंकी आकर्षण करे।

भरद्वाज बोले, जिसने आपका कमल लिया है, नृशंस व्यवहार और झूठ कहनेसे जो पाप होता है, उसे वही पाप सदा प्राप्त होवे।

अष्टक बोले, जिस राजाने आपका कमल लिया है, वह अकृतप्रज्ञ, काम वृत्तिवाला तथा पापी हो और अधर्म्मपूर्व्वक पृथ्वीको शासन करे।

गालव बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह मनुष्य पापियोंसे भी अपूज्य और पापी होवे और दान करके कहता फिरे।

अरुन्धती बोली, जिस स्त्रीने आपका कमल हरण किया है, वह ससुरकी निन्दा करे, पतिके समीप मन मारके स्थित रहे और अकेली स्वादिष्ट वस्तुओंको खाय।

बालखिल्यगण बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह वृत्तिके लिये गांवके पथमें एक चरणसे निवास करे और धर्म्म जाननेवाला होके भी धर्म्म त्यागी। शुनःसख बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह ब्राह्मण अतिथि-योंका अनादर करके स्वर्ग जावे और परिव्राट् होके भी भिक्षा चारी होवे।

सुरभि बोली, जिसने आपका कमल लिया है, वह कैशज अथवा मल्लज रूपको वनगोमें गौवोंको दूहनके समय पांच गांवकी दूसरे प्राणि‍योंके द्वारा दूध दूहै और कांसेके वर्त्तन उसके पात्र होवें।

भीष्म बोले, हे कौरवेन्द्र। अनन्तर उन सबके अनेक प्रकारसे शपथ करते रहनेपर देव राज सहस्राच उस मुख्य विप्रको क्रुद्ध देखके अत्यन्त हर्षित हुए। हे महाराज। अनन्तर देवराज उस क्रोधी तपस्वीसे वार्त्तालाप करके अपना अभिप्राय कहने लगे, कि ब्रह्मर्षि देवर्षि और राजर्षियोंके बीच सबको अपना जानो।

इन्द्र बोले, जिस ब्राह्मणने कमल हरण किया है, वह यजुर्व्वेद जाननेवाले ब्राह्मण तथा सामवेद अध्ययन करनेवाले विप्रको अथवा जिसने ब्रह्मचर्य्य किया हो, वैसे ब्राह्मणको कन्या दान करे और अथर्व्व वेद पढ़के स्नान करे। जिसने आपका कमल लिया, वह वेदोंको पढ़े पुण्यशील तथा धार्म्मिक हो और ब्रह्मलोकमें जावे।

अगस्त्य बोले, हे बलसूदन! तुमने जो शपथ किया, वह तो आशीर्व्वाद है, इसलिये मुझे मेरा कमल दो, यही सनातन धर्म्म है।

इन्द्र बोले, हे भगवन्! इस समय मैंने लोभसे कमल नहीं लिया है, धर्म्म सुननेके लिये मैंने हरण किया था, इसलिये मुझपर तुम्हें क्रोध करना योग्य नहीं है। यह ऋषियोंकी कही हुई धर्म्मश्रुतिका पूर्ण उत्कर्ष, अनामय, अव्यय शाश्वत धर्म्मरूपी तरनेका उपाय मैंने सुना। हे विद्वन् द्विजसत्तम! इसलिये यह अपना कमल लीजिये। हे अनिन्दित भगवन्! आपको मेरा अपराध क्षमा करना योग्य है। अत्यन्त क्रोधी बुद्धिमान अगस्त्य मुनि महेन्द्रके ऐसा कहनेपर अपना कमल लेके प्रसन्न हुए। अनन्तर उन वनवासी मुनियोंके संग फिर तीर्थयात्रा की और पवित्र तीर्थोंमें स्नान करने लगे।

जो लोग योगयुक्त होके प्रति पर्व्वमें इतिहासको पढ़ते हैं, उनके मूर्ख पुत्र न जन्मते और वह स्वयं मूर्ख नहीं होते; कोई आपदा उन्हें स्पर्श नहीं करती, वह शोक रहित होते और उन्हें जरा अवस्था नहीं प्राप्त होती, वे रजोगुणसे रहित और कल्याणयुक्त होके परलोकमें जाकर स्वर्गलोक पाते। जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित शास्त्र पढ़ते हैं, वे उत्तम पुरुष अव्यय ब्रह्मलोकमें जाते हैं।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ। श्राद्धकर्म्ममें जो छत्र और पादुका दिया जाता है, वह किस पुरुषके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है? यह किस लिये उत्पन्न हुआ और किस निमित्त दिया जाता है, केवल श्राद्धकर्म्ममें ही क्यों, स्त्रियोंके व्रतादि पुण्योत्सवके समयमें भी पादुका और छत्र दिया जाता है। अनेक कारणोंसे यह पुण्यके अवलम्बसे दिया जाता है। हे राजन्! इसे विस्तारपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे महाराज। छत्र और पादुका जिस प्रकार लोकमें प्रचलित हुआ तथा जिसके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, उसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सावधान होके सुनो। हे नरनाथ! यह जिस प्रकार अक्षय और पवित्र हुआ है, उसे मैं पूरीरीतिसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! महाप्रभाव दिवाकर और जमदग्निके सम्वादयुक्त इस पहले कहे हुए इतिहासको सुनो। हे महाराज। पहले समयमें भगवान् भार्गव स्वयं धनुष लेकर क्रीड़ा करते हुए सन्धान करके बाण चला रहे थे, रेणुका उस प्रदीप्त तेजसेयुक्त चलाये हुए बाणोंको बार बार लाके उन्हें देने लगी। अनन्तर वह उस बाणके शब्दसे अत्यन्त हर्षित होके बाण चलाने लगे, रेणुकाने उन बाणोंको फिर ला दिया। अनन्तर सूर्य्यके मध्य-

वेवाले नक्षत्रोंके बीच रोहिणी नक्षत्र और ज्येष्ठाके समसूत्रमें जानेपर मध्यान्हके समय ब्रह्मर्षि जमदग्निने शीघ्रगामी वाण चलाकर रेणुकासे कहा, हे विशालनयनी। जाओ, धनुषसे छूटे हुए बाणोंको लाओ। हे सुन्दरि! मैं फिर इन बाणोंको चलाऊंगा। हे प्रजानाथ। रेणुका चलनेके समय सूर्य्यके धूपसे पाव और शिर झुलसनेपर वृक्षकी छायामें मुहूर्त्त भर ठहरी। वह असितेक्षणा कल्याणि मुहूर्त्त भर खड़ी रहके पतिके शापभयसे डरकर फिर बाणोंको लानेके निमित्त चली। यशस्विनी सुन्दरी रेणुका उन बाणोंको लेकर दोनों पावोंमें फफोले पड़नेसे क्लेश पाके लौटी और पतिके भयसे कांपती हुई उनके समीप उपस्थित हुई, जमदग्निने क्रुद्ध होके उस उत्तम नेत्रवालीसे बार बार कहा, हे रेणुका। तू किस लिये बहुत देरीसे आई?

रेणुका बोली, हे तपोधन! मेरा सिर और दोनों पाव बहुत परितप्त हुए थे मैंने सूर्य्यके तेजसे रुकके वृक्षकी छायाका सहारा लिया था, हे ब्रह्मन्! इस ही निमित्त मैं बहुत देरीमें बाणोंको ले आई। हे विभु तपोधन। आप ऐसा सुनके मुझपर क्रोध न करिये।

जमदग्नि बोले, हे रेणुके! मैं इसही समय तुम्हें दुःख देनेवाले सूर्य्यको अस्त्रानलके सहारे गिरा दूंगा।

भीष्म बोले, अनन्तर जमदग्नि दिव्य धनुष खींचके जिधर सूर्य्य जारहे थे, उस ही ओर मुंह करके खड़े हुए। हे कौन्तेय। सूर्य्यदेव उन्हें रणकवच देखके ब्राह्मण स्वरूप धरके उनके समीप आके बोले, सूर्य्यने तुम्हारा क्या अपराध किया है? सूर्य्य आकाशमें निवास करते हुए रसोंको आकर्षण करता है और वर्षाऋतुमें उन्हीं रसोंको बरसाता है, हे विप्र! उस रससे मनुष्यके सुखके लिये अन्न उत्पन्न होता है, अन्नही प्राण है, यह वेदमें वर्णित है।

अनन्तर सूर्य्य आकाशमें रहके किरणोंके द्वारा इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है। हे प्रभु। वही जल औषधि, लता पुष्प और पत्रोंमें पड़के अन्नरूपसे उत्पन्न होता है। हे भार्गव। जातकर्म्म प्रभृति सब कार्य्य, व्रत, उपनयन, गोदान, विवाह और यज्ञसमृद्धि, सब शास्त्र, सब भांतिके दान और धन सञ्चय, सब विषय जिसे तुम जानते हो, उनमें अन्नसेही पूरी रीतिसे प्रवृत्ति हुआ करती है। जो सब उत्तम विषय हैं और जो आरम्भ हुआ करते हैं, वह सब अन्नसेही उत्पन्न होता है, इसलिये जो मुझे विदित है, वह तुमसे कहता हूं। हे विप्र! मैंने जो कहा, तुम वह सब विषय जानते हो। हे विप्र! इसलिये मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूं। सूर्य्यको गिरानेसे तुम्हें कौनसा फल मिलेगा?

९५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, भगवान् सूर्य्यके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी मुनिसत्तम जमदग्निने क्या किया?

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम। अग्नि सदृश प्रभायुक्त वह जमदग्नि मुनि सूर्य्यकी ऐसी प्रार्थना करनेपर भी शान्त न हुए। हे नरनाथ! अनन्तर विप्ररूपधारी सूर्य्य हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम करके मृदुस्वरसे बोले, हे विप्रर्षि। सूर्य्य सदा चलता रहता है, इसलिये वह चललक्ष्य है, इसलिये वह सदा चललक्ष्य है। जब सदा गमनशील सूर्य्य चललक्ष्य हुआ तब तुम उसे किस प्रकार बिद्ध करोगे?

जमदग्नि बोले, मैं ज्ञाननेत्रसे तुम्हें स्थिर और गमनशील, दोनोंही जानता हूं, इसलिये आज मैं अवश्य तुम्हें शिक्षा दूंगा। हे दिवाकर! तुम मध्यान्हमें अर्द्ध निमिषभर ठहरते हो, उसी समय मैं तुम्हें बिद्ध करूंगा। हे भास्कर! इस विषयमें मुझे कुछ विचार नहीं है।

जैसा नक्षत्रोंके बीच रोहिणी नक्षत्र और अङ्गाके समसूत्रमें जानेपर मध्यान्हके समय दिव्यदेह जमदग्निने शीघ्रगामी बाण चलाकर रेणुकासे कहा, हे विशालनयनी। जाओ, धनुषसे छूटे हुए बाणोंको लाओ। हे सुन्दरि। मैं फिर इन बाणोंको चलाऊंगा। हे प्रजानाथ। रेणुका चलनेके समय सूर्य्यके धूपसे पांव और सिर झुलसनेपर वृक्षको छायामें मुहूर्त भर ठहरी। वह असितेक्षणा कल्याणी मुहूर्त भर खड़ी रहके पतिके शापभयसे डरकर फिर बाणोंको लानेके निमित्त चली। यशस्विनी सुन्दरी रेणुका उन बाणोंको लेकर दोनों पांवोंमें फफोले पड़नेसे क्लेश पाके लौटी और पतिके भयसे कांपती हुई उनके समीप उपस्थित हुई, जमदग्निने क्रुद्ध होके उस उत्तम नेत्रवालीसे बार बार कहा, हे रेणुका। तू किस लिये बहुत देरीमें आई?

रेणुका बोली, हे तपोधन। मेरा सिर और दोनों पांव बहुत परितप्त हुए थे मैंने सूर्य्यके तेजसे सन्तप्त वृक्षको छायाका सहारा लिया था, हे ब्रह्मन्। इस ही निमित्त मैं बहुत देरीमें बाणोंको ले आई। हे विभु तपोधन। आप ऐसा सुनके मुझपर क्रोध न करिये।

जमदग्नि बोले, हे रेणुके! मैं इसही समय तुम्हें दुःख देनेवाले सूर्य्यको अस्त्राग्निके सहारे गिरा दूंगा।

भीष्म बोले, अनन्तर जमदग्नि दिव्य धनुष खींचके जिधर सूर्य्य जारहे थे, उस ओर मुंह करके खड़े हुए। हे कौन्तेय! सूर्य्यदेव उन्हें सन्नद्ध देखके ब्राह्मण स्वरूप धरके उनके समीप आके बोले, सूर्य्यने तुम्हारा क्या अपराध किया है? सूर्य्य आकाशमें निवास करते हुए रसोंको आकर्षण करता है और वर्षाऋतुमें उन्हीं रसोंको बरसाता है, हे विप्र! अन्न रहके मनुष्यके सुखके लिये जो उप काररूपी प्राण है, उसे वेदमें वर्णित है.

अनन्तर सूर्य्य आकाशमें रहके किरणोंके द्वारा इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीपर जलको वर्षा करता है। हे प्रभु। वही जल औषधि, लता पुष्प और पत्तोंमें पड़के अन्नरूपसे उत्पन्न होता है। हे भार्गव। जातकर्म्म प्रभृति सब कार्य्य, व्रत, उपनयन, गोदान, विवाह और यज्ञसमृद्धि, सब शास्त्र, सब भांतिके दान और धन सञ्चय, सब विषय जिसे तुम जानते हो, उनमें अन्नसेही पूरी रीतिसे प्रवृत्ति हुआ करती है। जो सब उत्तम विषय हैं और जो आरम्भ हुआ करते हैं, वह सब अन्नसेही उत्पन्न होता है, इसलिये जो मुझे विदित है, वह तुमसे कहता हूं। हे विप्र! मैंने जो कहा, तुम वह सब विषय जानते हो। हे विप्र! इसलिये मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूं। सूर्य्यको गिरानेसे तुम्हें कौनसा फल मिलेगा?

९५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, भगवान् सूर्य्यके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी मुनिसत्तम जमदग्निने क्या किया?

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम। अग्नि सदृश प्रभायुक्त वह जमदग्नि मुनि सूर्य्यके ऐसा प्रार्थना करनेपर भी शान्त न हुए। हे नरनाथ! अनन्तर विप्ररूपधारी सूर्य्य हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम करके मृदुस्वरसे बोले, हे विप्रर्षि। सूर्य्य सदा चलता रहता है, इसलिये वह चलक्ष्य है, इसलिये जब सदा चलता है। जब सदा गमनशील सूर्य्य चलता हुआ तब तुम उसे किस प्रकार विद्ध करोगे?

जमदग्नि बोले, मैं ज्ञाननेत्रसे तुम्हें स्थिर और गमनशील, दोनोंही जानता हूं, इसलिये आज मैं अवश्य तुम्हें शिक्षा दूंगा। हे दिवाकर! तुम मध्यान्ह समय निमिषभर ठहरते हो, उसी समय मैं तुम्हें विद्ध करूंगा। हे भास्कर। इस विषयमें मुझे कुछ विचार नहीं है।

सुरभि बोली, जिसने आपका कमल लिया है, वह कैशज अथवा नल्वज रस्सीको वमरोगे गौवोंको दूहनेके समय पांथ गांतेको दूसरे टह-लुवेके द्वारा दूध दूहे और कांसेके वर्तन उसके पास होवें।

भीष्म बोले, हे कौरवेन्द्र! अनन्तर उन सबके अनेक प्रकारसे शपथ करते रहनेपर देव राज सहस्राक्ष उस मुख्य विप्रको क्रुद्ध देखके अत्यन्त हर्षित हुए। हे महाराज! अनन्तर देवराज उस क्रोधी तपस्वीसे वार्त्तालाप करके अपना अभिप्राय कहने लगे, कि ब्रह्मर्षि देवर्षि और राजर्षियोंके बीच सबको अपना जानो।

इन्द्र बोले, जिस ब्राह्मणने कमल हरण किया है, वह यजुर्वेद जाननेवाले ब्राह्मण तथा सामवेद अध्ययन करनेवाले विप्रको अथवा जिसने ब्रह्मचर्य किया हो, वैसे ब्राह्मणको कन्या दान करे और अथर्व्व वेद पढ़के स्नान करे। जिसने आपका कमल लिया, वह वेदोंको पढ़े पुण्यशील तथा धार्म्मिक हो और ब्रह्मलोकमें जावे।

अगस्त्य बोले, हे बलसूदन! तुमने जो शपथ किया, वह तो आशीर्वाद है, इसलिये मुझे मेरा कमल दो, यही सनातन धर्म्म है।

इन्द्र बोले, हे भगवन्! इस समय मैंने लोभसे कमल नहीं लिया है, धर्म्म सुननेके लिये मैंने हरण किया था, इसलिये मुझपर तुम्हें क्रोध करना योग्य नहीं है। यह ऋषि-योंकी कही हुई धर्म्मश्रुतिका पूर्ण उत्कर्ष, अनामय, अव्यय शाश्वत धर्म्मरूपी तरनेका उपाय मैंने सुना। हे विद्वन् द्विजसत्तम! इस लिये यह अपना कमल लीजिये। हे अनिन्दित भगवन्! आपको मेरा अपराध क्षमा करना योग्य है। अत्यन्त क्रोधी बुद्धिमान अगस्त्य मुनि महेन्द्रके ऐसा कहनेपर अपना कमल लेके प्रसन्न हुए। अनन्तर उन बनवासी मुनियोंके संग फिर तीर्थयात्रा की और पवित्र तीर्थोंमें स्नान करने लगे।

जो लोग योगयुक्त होके प्रति पर्व्वमें इस इतिहासको पढ़ते हैं, उनके मूर्ख पुत्र नहीं जन्मते और वह स्वयं मूर्ख नहीं होते; कोई आपदा उन्हें स्पर्श नहीं करती, वह शोक रहित होते और उन्हें जरा अवस्था नहीं प्राप्त होती, वे रजोगुणसे रहित और कल्याण युक्त होके परलोकमें जाकर स्वर्गलोक पाते हैं। जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित शास्त्र पढ़ते हैं, वे उत्तम पुरुष अक्षय ब्रह्मलोकको जाते हैं।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! श्राद्धकर्म्ममें जो छत्र और पादुका दिया जाता है, वह किस पुरुषके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है? यह किस लिये उत्पन्न हुआ और किस निमित्त दिया जाता है, केवल श्राद्धकर्म्ममें ही क्यों, स्त्रियोंके व्रतादि पुण्योत्सवके समयमें भी पादुका और छत्र दिया जाता है। अनेक कारणोंसे यह पुण्यके अवलम्बसे दिया जाता है। हे राजन्! इसे विस्तारपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे महाराज! छत्र और पादुका जिस प्रकार लोकमें प्रचलित हुआ तथा जिसके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, उसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सावधान होके सुनो। हे नरनाथ! यह जिस प्रकार अक्षय और पवित्र हुआ है, उसे मैं पूरीरीतिसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! महाप्रभाव दिवाकर और जमदग्निके सम्वाद-युक्त इस पहले कहे हुए इतिहासको सुनो। हे महाराज! पहले समयमें भगवान् भार्गव स्वयं धनुष लेकर क्रीड़ा करते हुए सन्धान करके बाण चला रहे थे, रेणुका उस प्रदीप्त तेजसेयुक्त चलाये हुए बाणोंको बार बार लाके उन्हें देने लगी। अनन्तर वह उस बाणके शब्दसे अत्यन्त हर्षित होके बाण चलाने लगे, रेणुकाने उन बाणोंको फिर ला दिया। अनन्तर सूर्य्यके मध्य-

नक्षत्रोंके बीच रोहिणी नक्षत्र और ... मस्तकमें जानेपर मध्याह्नके समय ... जमदग्निने शीघ्रगामी बाण चलाकर रेणुकासे कहा, हे विशालनयनी। जाओ, धनुषसे छूटे हुए बाणोंको लाओ। हे सुन्दरि! मैं फिर इन बाणोंको चलाऊंगा। हे प्रजानाथ! रेणुका चलनेके समय सूर्य्यके धूपसे पांव और सिर झुलसनेपर वृक्षकी छायामें मुहूर्त्त भर ठहरी। वह असितेक्षणा कल्याणी मुहूर्त्त भर खड़ी रहके पतिके शापभयसे डरकर फिर बाणोंको लानेके निमित्त चली। यशस्विनी सुन्दरी रेणुका उन बाणोंको लेकर दोनों पांवोंमें फफोले पड़नेसे क्लेश पाके लौटी और पतिके भयसे कांपती हुई उनके समीप उपस्थित हुई, जमदग्निने क्रुद्ध होके उस उत्तम नेत्रवालीसे बार बार कहा, हे रेणुका! तू किस लिये बहुत देरीमें आई?

रेणुका बोली, हे तपोधन! मेरा सिर और दोनों पांव बहुत परितप्त हुए थे मैंने सूर्य्यके तेजसे रुककर वृक्षकी छायाका सहारा लिया था, हे ब्रह्मन्! इस ही निमित्त मैं बहुत देरीमें बाणोंको ले आई। हे विभु तपोधन! आप ऐसा सुनके मुझपर क्रोध न करिये।

जमदग्नि बोले, हे रेणुके! मैं इसही समय तुम्हें दुःख देनेवाले सूर्य्यको अस्त्रानलसे संहार किया दूंगा।

भीष्म बोले, अनन्तर जमदग्नि दिव्य धनुष खींचके जिधर सूर्य्य जारहे थे, उस ही ओर मुंह करके खड़े हुए। हे कौन्तेय! सूर्य्यदेव उन्हें कवच देखके ब्राह्मण स्वरूप धरके उनके समीप आके बोले, सूर्य्यने तुम्हारा क्या अपराध किया है? सूर्य्य आकाशमें निवास करके ... रसको आकर्षण करता है और वर्षाकालमें उन्हीं रसोंको बरसाता है, हे विप्र! ... रहके मनुष्यके सुखके लिये ... अन्न ही प्राण है, यह वेदमें दर्शित है.

अनन्तर सूर्य्य आकाशमें रहके किरणोंके द्वारा इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है। हे प्रभु! वही जल औषधि, लता पुष्प और पत्रोंमें पड़के अन्नरूपसे उत्पन्न होता है। हे भार्गव! जातकर्म्म प्रभृति सब कार्य्य, व्रत, उपनयन, गोदान, विवाह और यज्ञसमृद्धि, सब शास्त्र, सब भांतिके दान और धन सञ्चय, सब विषय जिसे तुम जानते हो, उनमें अन्नसेही पूरी रीतिसे प्रवृत्ति हुआ करती है। जो सब उत्तम विषय हैं और जो आरम्भ हुआ करते हैं, वह सब अन्नसेही उत्पन्न होता है, इसलिये जो मुझे विदित है, वह तुमसे कहता हूं। हे विप्र! मैंने जो कहा, तुम वह सब विषय जानते हो। हे विप्र! इसलिये मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूं। सूर्य्यको गिरानेसे तुम्हें कौनसा फल मिलेगा?

९५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, भगवान् सूर्य्यके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी मुनिसत्तम जमदग्निने क्या किया?

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम! अग्नि सदृश प्रभायुक्त वह जमदग्नि मुनि सूर्य्यके ऐसी प्रार्थना करनेपर भी शान्त न हुए। हे नरनाथ! अनन्तर विप्ररूपधारी सूर्य्य हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम करके मृदुस्वरसे बोले, हे विप्रर्षि! सूर्य्य सदा चलता रहता है, इसलिये वह चञ्चल है, इसलिये जब सदा चलता है। जब सदा गमनशील सूर्य्य चलता हुआ तब तुम उसे किस प्रकार विद्ध करोगे?

जमदग्नि बोले, मैं ज्ञाननेत्रसे तुम्हें स्थिर और गमनशील, दोनोंही जानता हूं, इसलिये आज मैं अवश्य तुम्हें शिक्षा दूंगा। हे दिवाकर! तुम मध्याह्नके समय निमेषभर ठहरते हो, उसी समय मैं तुम्हें विद्ध करूंगा। हे भास्कर! इस विषयमें मुझे कुछ विचार नहीं है।

सूर्य्य बोले, हे धन्विवर! तुम मुझे अवश्य ही बिद्ध करोगे इसमें सन्देह नहीं है। हे भगवन्! यद्यपि मैंने तुम्हारा अपकार किया है, तौभी इस समय मुझे अपना शरणागत जानो।

भीष्म बोले, अनन्तर भगवान् जमदग्निने हंसके कहा। हे सूर्य्य! तुम्हें डरना उचित नहीं है, क्योंकि तुम प्रणत हुए हो। ब्राह्मणोंमें जो सरलता है, पृथ्वीमें धैर्य्य, चन्द्रमामें मनोहरताई, वरुणमें, गम्भीरता, अग्निमें प्रकाश, सुमेरुमें प्रभा और सूर्य्यमें ताप इन सबको जो मनुष्य अतिक्रम करता है, वही शरणागत पुरुषको मार सकता है। जो पुरुष शरणमें आये हुएको मारता है, वह पुरुषही ब्रह्महत्यारा हुआ करता और वह मनुष्यही सुरा पीता है। हे तात! इसलिये इस दुर्नीति विषयके नियमको बिचारो, तुम्हारी किरणसे तापित मार्गके बीच जिस प्रकार सुखसे लोग चल सकें, उसका उपाय कहो।

भीष्म बोले, भृगुसत्तम जमदग्नि इतना कहके चुप होरहे। अनन्तर सूर्य्यदेवने उन्हें शीघ्र ही छत्र और पादुका दिया। सूर्य्यने कहा, हे महर्षि! मेरी किरण जिससे निवारित होता है, उस शिरस्त्राण और पदत्राण (दोनो चर्म्म-पादुका) ग्रहण करो, आजसे इस लोकमें इसका समस्त पुण्यकार्य्योंमें परम अक्षयरूपसे प्रचार होगा।

भीष्म बोले हे भारत! छत्र और पादुका दान सूर्य्यके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, तीनो लोकमें यह परम पवित्र रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये तुम ब्राह्मणोंको उत्तम छत्र और पादुका दान करो, उससे तुम्हें महान् धर्म्म होगा, इस विषयमें हम लोगोंको बिचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ। जो लोग द्विजातियोंको एक सौ शलाकासे युक्त छाता दान करते हैं, वे परलोकमें जाके सुखी होते हैं। हे भरतर्षभ! वे लोग अप्सरा, गन्धर्व्व और द्विजोंसे पूजित होकर इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। हे महाबाहो! जो लोग तापयुक्त स्नातक ब्राह्मणों तथा संशितव्रती द्विजातियोंको दो पादुका दान करते हैं, वे भी देवताओंसे पूजित लोकको प्राप्त होते हैं तथा वे परलोकमें जाकर प्रीतियुक्त होके गोलोकमें निवास करते हैं। हे भरतसत्तम। यह मैंने विस्तारपूर्वक तुमसे छत्र और पादुकादानका फल कहा

९६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! आप समस्त गार्हस्थ्यधर्म्म वर्णन करिये, मनुष्य क्या करके इस लोकमें समृद्धि पाता है।

भीष्म बोले, हे भरतकुल तिलक प्रजानाथ इस विषयमें मैं तुमसे श्रीकृष्ण और पृथ्वीके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास कहूंगा। हे भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे इस समय जो प्रश्न किया है, प्रतापवान् कृष्णने पृथ्वीदेवीकी यथा योग्य स्तुति करके यही विषय पूछा था।

श्रीकृष्ण बोले, हे पृथ्वी! मैं अथवा मेरे समान पुरुष गृहस्थधर्म्मको अवलम्बन करके नियमपूर्व्वक कौनसा कार्य्य करें तथा क्या करनेसे वह सिद्ध होगा?

पृथ्वी बोली, हे माधव! ऋषि, देवता, पितर और मनुष्यवृन्द गृहस्थ पुरुषोंके लिये अवश्य ही पूजनीय हैं, यज्ञकर्म्म अवश्य करना चाहिये, और भी मुझसे सुनो। हे मधुसूदन! देवता सदा यज्ञसे तृप्त होते और मनुष्य सदा आतिथ्यके द्वारा तृप्त होते हैं, इसलिये अभिप्रायके अनुसार पूजनीय लोगोंकी सदा सेवा करनी योग्य है, ऐसे कार्य्यसे ऋषि लोग प्रसन्न होते है। सदा अभुक्त रहके अग्निकी परिचर्य्या करे, तथा बलिवैश्वदेव दान करे, उससे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरोंकी प्रीतिका विधान करते हुए अन्न

अथवा दूध, फल, मूल आदिके सहारे, श्राद्ध करे, सिद्ध अन्नके द्वारा विधिपूर्व्वक वैश्वदेव दान करे और हुताशनमें अग्नि, चन्द्रमा अनन्तर धन्वन्तरिके लिये होम करे, प्रजापतिके निमित्त पृथक् होम करना योग्य है। आनुपूर्व्विक क्रमसे बलि देनी चाहिये, दक्षिण दिशामें यमको, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें चन्द्रमा, वास्तुके बीच प्रजापतिको, पूर्व्वोत्तर भागमें धन्वन्तरि और पूर्व्व दिशामें इन्द्रको पूजाका उपहार प्रदान करे तथा मनुष्योंको गृहके द्वारपर अन्न प्रभृति दान करे। हे माधव! ऋषि लोग इसे ही बलि कहा करते हैं। मरुद्गण तथा देवताओंको गृहके भीतर बलि प्रदान करे और विश्वदेवगणको सूने स्थानमें बलि देनी योग्य है, निशाचर और भूतगणोंको रात्रिके समयमें बलि दे। इस ही भांति सबको बलि देके ब्राह्मणोंको भिक्षा देवे ब्राह्मणोंकी अनुपस्थितिमें अन्नका अग्राशन आगमें डाले। जब मनुष्य पितरोंके श्राद्ध करनेकी इच्छा करे, तब श्राद्धकर्म्मके पूर्ण होनेपर पितरोंकी तृप्तिका विधान करनेके अनन्तर विधिपूर्व्वक बलि देना चाहिये। अनन्तर वैश्वदेव करके ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करे। शेषमें अन्नादिसे अतिथियोंको सत्कार करके भोजन करावे। हे महाराज! ऐसा कार्य्य करनेसे अतिथिवृन्द मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न हुआ करते हैं। जिनके आनेकी तिथि नियत न हो, उन्हें अतिथि कहते हैं। आचार्य्य, पिता, मित्र, आप्त पुरुष और अतिथिका 'मेरे गृहमें आज भोजनको ये वस्तु उपस्थित हैं' गृहस्थ पुरुष सदा ऐसा निवेदन करे, ऐसा ही धर्म्म विहित है। हे कृष्ण! गृहस्थ पुरुष सदा सबके शेषमें अन्न भोजन करे, राजा, ऋत्विक, स्नातक, गुरु और श्वशुरके वर्षभर तक इसके वास करनेपर भी उनकी मधुपर्कसे पूजा करे। कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंको उन्हीं और इसके पृथ्वीपर अन्न देवे, इसहीका नाम वैश्वदेव विहित है। जो लोग असूयारहित होके इन गृहस्थधर्म्मोंको प्रतिपालन करते हैं, वे इस लोकमें ऋषियोंसे वर पाके परलोकमें सुरपुरमें निवास किया करते हैं।

भीष्म बोले, प्रतापवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका वचन सुनके वैसा ही आचरण किया था, इसलिये तुम भी इस ही प्रकार अनुष्ठान करो। हे प्रजानाथ! तुम इस गृहस्थधर्म्मका अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें यश पाके परलोकमें स्वर्ग पाओगे।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! दीप दान कैसा है? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका क्या फल है, यह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रजापति मनु और सुवर्णके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे भारत! सुवर्ण नाम कोई तपस्वी थे, वह रूपमें सुवर्णसदृश होनेसे सुवर्ण नामसे विख्यात हुए उन्होंने कुलशील गुणयुक्त स्वशाखोक्त वेदपाठमें पारदर्शी होकर निज गुणोंके सहारे स्ववंशीय अनेक पुरुषोंको अतिक्रम किया था। किसी समय उस ब्राह्मणने प्रजापति मनुको देखा और देखते ही उनके समीप उपस्थित हुआ; उस समय उन दोनोंने परस्परमें कुशल प्रश्न किया। अनन्तर वे दोनों सत्यसङ्कल्प सुवर्ण शैल सुमेरुके बीच एक रमणीय शिलापर बैठे। उस स्थानमें वे दोनों वार्त्तालाप करते हुए महानुभाव ब्रह्मर्षियों देवताओं और दैत्योंकी अनेक प्रकारकी पुरातन कथा कहने लगे। सुवर्णने स्वायम्भुव मनुसे कहा, हे प्रजानाथ! आपको इन लोगोंके हितके निमित्त मेरे प्रश्नका उत्तर देना योग्य है। मनुने [illegible]

देवताओंकी पूजा करते हैं, यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका फल क्या है? आप मुझसे यह विषय कहिये।

मनु बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग महानुभाव शुक्र और बलिके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। विरोचनपुत्र बलि जब त्रिभुवन शासन कर रहे थे, उस समय उनके निकट भृगुकुलधुरन्धर शुक्राचार्य्य आये। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, दानशील असुरराज बलि विधिपूर्व्वक अर्घ आदिसे भार्गवकी पूजा करके आसनपर बैठे। तब फूल, दीप और धूप दान करनेसे क्या फल होता है, तुमने इस विषयमें जैसा प्रश्न किया है, वैसा ही वहांपर प्रश्न हुआ था। अनन्तर दैत्येन्द्रने शुक्राचार्य्यसे उत्तम प्रश्न किया।

बलि बोले, हे ब्रह्मावत् द्विजश्रेष्ठ! फूल, धूप और दीप दान करनसे क्या फल होता है? आप इसे कह सकते हैं।

शुक्र बोले, पहले तप उत्पन्न हुआ था, फिर धर्म्म प्रकट हुआ, इसके अनन्तर लता, ओषधी, अमृत, विष और तुल्य जाति विविध लता तथा अनेक प्रकारकी सोमलता पृथ्वीपर उत्पन्न हुई। अमृत मनको प्रसन्न करनेवाला तथा सदा सन्तोष, प्रदान करता है और प्रचण्ड विषकी गन्ध मनको सब प्रकारसे ग्लानियुक्त करती है। अमृतको मङ्गल और विषको महाअमङ्गल जानना चाहिये। ओषधिया अमृत और अग्निसे उत्पन्न हुआ तेज ही विष है। सब पुष्प मनको प्रसन्न तथा शोभायुक्त करते है, इस ही लिये पुण्यकर्म्म करनेवाले मनुष्य पुष्प फलोंको सुमनस कहा करते हैं। जो मनुष्य पवित्र होके देवताओंको सुमनस दान करता है, देववृन्द उसपर प्रसन्न होके उसे पुष्टि प्रदान करते है। हे प्रभु दैत्यराज! जिन जिन देवताओंके उद्देश्यसे फल दिये जाते हैं, वे दाताके मङ्गलके निमित्त उनपर प्रसन्न होते हैं। बहुवीर्य्य और अनेक रूपवाली पृथक् पृथक् ओषधियोंको उग्र, मनोहर और तेजस्वी जानो। वृक्षोंमें जो यज्ञीय तथा अयज्ञीय हैं, वह मुझसे सुनो और जो सब माला देवताओं तथा जो असुरोंके लिये हितकर हैं, वह भी सुनो। जो फूल राक्षस, सर्प और यक्षोंको प्रिय हैं, तथा जो मनुष्य पितरोंके लिये मनोहर हैं, उसे विस्तार पूर्व्वक सुनो। जो फल जङ्गली और ग्रामीण हैं, तथा जो भूमि खोदके लगाये गये हैं; जो फूल पर्व्वतीय, कांटेरहित और कांटेयुक्त हैं; जो सुगन्धि, सुन्दरताई और रसमय हैं, उनका विषय सुनो। फूलकी दो प्रकारकी गन्ध होती है, एक इष्ट दूसरी अनिष्ट, जिनकी सुगन्धि इष्ट हैं, उन्हें ही देवताओंके फूल निश्चय करो। कांटेरहित वृक्षोंके फूल प्रायः सफेद होते हैं, उन वृक्षोंके फूल सदा देवताओंके अभिलषित हैं। कमल प्रभृति जो सब जलज पुष्प उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य उन फूलोंको यक्ष सर्प और गन्धर्व्वोंको प्रदान करे। कटु और कांटेयुक्त ओषधियां तथा लाल पुष्प शत्रुओंके अभिचारके निमित्त अथर्व्व वेदमें वर्णित हुए है। तीक्ष्णवीर्य्य, कांटे युक्त, दुराक्रम्य, लाल काले फूल भूतोंको उपहार देवे। मन और हृदयके आनन्दको बढ़ानेवाले, मलनेसे मधुर, मनोहर फूल मनुष्योंके लिये विहित हैं। विवाहादि पुष्टियुक्त कार्य्यों और सुरता विजन कार्य्योंमें श्मशान और देवस्थानमें उत्पन्न हुए पुष्पोंको न लाना चाहिये। हे सौम्य पर्व्वतीय वृक्षोंके फूलोंको धोके स्मृतिके अनुसार यथायोग्य देवताओंको प्रदान करे। देवता फूलकी सुगन्धिसे प्रसन्न होते हैं, यक्ष और राक्षस फूलको देखनेसे सन्तुष्ट होते हैं। सर्पगण पूर्ण रीतिसे फूलोंको उपभोग करनेसे प्रसन्न होते हैं और मनुष्य लोग सूंघने देखने और उपभोग इन तीन प्रकारकी उपायसे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। सब फूल देवताओंको निवेदन करते ही प्रसन्न

करते हैं; वे सङ्कल्पसिद्ध हैं, इसलिये प्रसन्न होके मनुष्योंका मनोरथ इच्छितके सहारे वर्द्धित करते हैं। देववृन्द प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको सदा प्रीतियुक्त करते हैं, वे सम्मानित होनेपर मनुष्योंको सम्मानयुक्त करते और अवज्ञात तथा अवधूत होनेपर अधम मनुष्योंको निश्चय ही जला देते हैं। अब धूपदान विधिका फल मुझसे सुनो। धूप अनेक प्रकारका है, उसमें उत्तम और निकृष्ट दो भेद हैं। गुग्गुल प्रभृति निर्य्यासके बने हुए एक प्रकारके धूपको निर्य्यास कहते हैं। काठ और अग्निके संयोगसे निकाले हुए धूपका नाम सारि है और अष्ट-गन्ध द्रव्योंसे बने हुए धूपको कृत्रिम कहते हैं, इस प्रभेदके अनुसार धूप तीन प्रकारका है। गन्ध इष्ट और अनिष्ट भेदसे दो प्रकार है, उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक सुनो। सल्लकीरहित निर्यास धूप देवताओंको दिया जाता है, सब निर्यासोंके बीच गुग्गुल ही श्रेष्ठ कहके निश्चित हुआ है। यक्ष, राक्षस और भोगियोंके भोगके लिये सारवान वस्तुओंके बीच अगरु ही श्रेष्ठ है। दैत्योंको सल्लकी तथा उसके सदृश दूसरे निर्यास ही अभिलषित हैं। हे राजन्! सर्ज्ज-रस आदि गन्ध और देवदारुकी सुगन्ध फूली हुई मल्लिका प्रभृति फूलोंकी मकरन्द गन्धके सङ्ग मिलनेपर जो धूप बनती है, वह मनुष्योंके लिये विहित है और ऐसा वर्णित है, कि वह देव, दानव तथा भूतोंको सदा प्रीतियुक्त करती है। इसके अतिरिक्त जो विहार भावके उपयुक्त है, वह मनुष्योंके लिये विहित है। दीपक दान करनेसे जो उत्तम फल मिलता है और जिस समय जिसके द्वारा जिस प्रकार जैसा दीपक दान करना चाहिये; वह भी कहता हूं। यह भी कहा जाता है, कि ऊर्द्ध्वगामी दीपादि तेज तथा [illegible] प्रदान करते हैं; दीपदानसे मनुष्योंके [illegible] वृद्धि होती है। अन्धकार और दक्षिणा-[illegible] नाम नरक स्वरूप है, इसलिये उत्तरायणकी रात्रिमें दीपदान करना उत्तम है, दीप ज्योति ऊर्द्ध्वग और अन्धकारका नाशक है, इस ही लिये वह ऊर्द्ध्वगति प्रदान करती है, इस विषयमें ऐसा ही निश्चय है। दीपदानसे ही देववृन्द तेजस्वी, भावयुक्त और प्रकाशमान हुए हैं और दीपदान करनेसे राक्षसोंका तामस भाव प्राप्त हुआ है; इसलिये दीपदान करना उचित है। मनुष्य दीपदान करनेसे नेत्रवान और प्रभायुक्त होते हैं, इसलिये दीपदान करके हिंसा न करे, न हरे और नष्ट न करे। जो पुरुष दीपक हरता है, वह अन्धा होता है अन्धकारमें चलता है, तथा उसकी उत्तम प्रभा नहीं रहती और दीपक दान करनेवाला स्वर्ग-लोकमें दीपमालाकी भांति विराजता है। घृतसे दीप दान करना प्रथम कल्प है, तिल, सरसों और ओषधियोंके तेलसे दान करना द्वितीय कल्प है। जो मनुष्य पुष्टिकी कामना करे, उसे उचित है, कि चर्व्वी, मेद, हड्डी प्रभृति प्राणियोंके अवयवोंसे निकले हुए तेल और निर्यासके द्वारा दीप दान न करे। जो अपने ऐश्वर्य्यकी अभिलाष करे उसे पहाड़के झरने, वन, चैत्यस्थान और चौहारोंमें सदा दीप दान करना चाहिये, दीप दाता सदा कुलप्रदीप और पवित्रचित्त होके प्रकाशित होता और उसे ज्योतिर्गणोंके सदृश लोक प्राप्त होते हैं। देव, यक्ष, सर्प, मनुष्य, भूत और राक्ष-सोंके बलिकर्म्मके विषयमें कर्म्मफल उदय होनेसे जो उत्कर्षता प्राप्त होती है, उसे कहता हूं।

ब्राह्मण, देवता, अतिथि और बालकवृन्द जिसके गृहमें अगाड़ी भोजन नहीं करते, उन निर्व्विमुक्तचित्त अमाङ्गलिक लोगोंको राक्षस जानना चाहिये; इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करना योग्य है तथा सावधान और अतन्द्रित होके माथे नवाके दी हुई बलियों देववृन्द सदा ग्रहण करते हैं, आग-न्तुक अतिथि और [illegible]

गृहमें आनेसे शङ्कित होते हैं। देवता और पितर लोग इस लोकमें दो हुई हव्यकव्य बलिके द्वारा जीवन धारण करते हैं, वे प्रसन्न होके दाताको आयु, यश और धनके सहारे सन्तुष्ट किया करते हैं। दही, दूधयुक्त, पवित्र, सुगन्धित और उत्तम बलि फूलके सहित देवताओंको देवे। यक्ष राक्षसोंको रुधिर और मांसयुक्त बलि देनी योग्य है; उस सारीबलिको सुरा दूब और अरक विभूषित करे। पद्मोत्पल-मिश्रित बलि सर्पोंको प्रिय है। गुड़युक्त तिल भूतोंको उपहार देवे। अग्रदाता अगाड़ी भोजन करनेवाला, बल और वर्णयुक्त होता है इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करे। गृह और गृहके देवता रात दिन प्रज्वलित होते हैं, इसलिये ऐश्वर्य्यकी कामना करनेवाला मनुष्य उन्हें प्रसूताग्र प्रदान करके उनकी पूजा करे। भृगुनन्दन शुक्राचार्य्यने असुरेन्द्र बलिसे यह सब कथा कही थी। मनुने उसे सुवर्णसे कहा, सुवर्णने नारदसे और नारदने मेरे समीप यह सब फलका विषय कहा था। हे महातेजस्वी पुत्र! तुम भी यह सब मालूम करके ऐसा ही आचरण करो।

९८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मैंने फूल धूप प्रभृति दान करनेवालोंका फल और बलि विधानका विषय सुना, यह विषय आपको फिर कहना योग्य है, धूपदान और दीपदानका क्या फल है? किस लिये गृहस्थ लोग बलि दिया करते हैं? इसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें अगस्त्य, भृगु और नहुषके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे महाराज। महातपा राजर्षि नहुषने इस लोकके सुकृत कर्म्मोंसे देवराज्य पाया था। हे महाराज! राजा नहुष दिव्य और मानुष विविध क्रिया करने लगे। हे महाराज! उस महात्माकी मानुषी क्रिया तथा स्वर्गीय क्रिया उस स्वर्गके बीच निभने लगीं। अग्निकार्य्यमें समिध, कुश, पुष्प और दूबके सहित धूपदान तथा दीप दान प्रभृति सब कार्य्य उस महानुभाव राजाके स्थानमें होने लगे, वह सुरपुरमें भी जप यज्ञ और मनोयज्ञ करने लगा। हे अरिन्दम! वह देवताओंका राजा होनेपर भी उनकी विधिपूर्व्वक पूजा करता था। अनन्तर "मैं इन्द्र हूं" ऐसा जानके वह अहङ्कारयुक्त हुआ। हे महाराज! उसके अभिमानयुक्त होनेपर उसकी सब क्रिया नष्ट हुई। उसने वर पाके मतवाला होकर ऋषियोंको सवारी ढोनेमें प्रवृत्त किया और क्रियारहित होके अत्यन्त निर्बल होने लगा। उसके अहङ्कारयुक्त होके मुख्य तपस्वी ऋषियोंको वाहन बनाते रहते बहुत समय व्यतीत हुआ। हे भारत! अनन्तर वह पर्यायक्रमसे सब ऋषियोंको सवारी ढोनेके लिये नियुक्त करनेमें उद्यत हुआ, कालक्रमसे अगस्त्य मुनिका समय उपस्थित हुआ ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी भृगु उस समय अगस्त्यके आश्रममें जाके यह वचन बोले, हे महामुनि! हम इस नीच बुद्धि देवेन्द्र नहुषके ऐसे अहङ्कारको किस प्रकार क्षमा करेंगे?

अगस्त्य बोले, हे मुनिवर! वरदाता प्रजापतिने जिसे वर दिया है, मैं उसे किस प्रकार शाप देनेमें समर्थ होऊंगा? आपसे भी यह छिपा नहीं है। जब वह स्वर्गमें जाने लगा, तब प्रजापतिके समीप यह वर मांगा, कि 'मैं जिसे देखूं' वह मेरे वशमें हो जाय, इस ही निमित्त वह निःसन्देह मेरे अथवा तुम्हारे तथा अन्य किसी मुख्य ऋषिके द्वारा भस्म तथा स्वर्गसे च्युत नहीं हुआ। महानुभाव पितामहने पहले समयमें इसे पीनेके लिये अमृत दिया था इस ही निमित्त हम उसे नष्ट करनेमें असमर्थ

। प्रजापतिने इसे प्रजापुञ्जसे दुःखकर
गा है, इसीसे यह पुरुषाधम ब्राह्मणोंके
धर्म्मयुक्त व्यवहार करता है। हे
। इस विषयमें हम लोगोंके लिये जो
उपस्थित हुआ है, आप उसे ही कहिये,
आकहेंगे, मैं निःसन्देह वैसाही करूंगा।
ु बोले, दैववशसे मोहित बलशाली नहु-
तिकार करनेके लिये मैं पितामहकी
ुसार आपके समीप आया हूं। वह
ह देवराज आज आपको रथमें नियुक्त
मैं आज ही इस अनिन्द्रको निज तेजके
गर्व्वित करूंगा। मैं आज ही आपके
में उस अत्यन्त नीचबुद्धि पापीको इन्द्र-
पृथक् करके शतक्रतुको निजपदपर
करूंगा। आज ही वह मन्दबुद्धि कुदे-
दैववशसे अपने नाशके लिये पांवसे तुम्हें
करेगा। मैं धर्म्मपानिवन्धनसे अत्यन्त
होके उस विधर्म्मी द्विजद्रोही पापीको
पसे "सर्प होजाओ" कहके शाप दूंगा।
ामुनि। अनन्तर उस अत्यन्त दुर्बुद्धि
ो धिक् शब्दसे तेजरहित करके आपके
में ही पृथ्वीपर गिरा दूंगा। हे मुनि।
दवसे मोहित पापी नहुषको जिस
करनेके लिये आपकी जैसी रुचि होगी,
ही करूंगा। मैत्रावारुणि अविनाशी
मुनि भृगुका ऐसा वचन सुनके परम
और शोकरहित हुए।

९९ अध्याय समाप्त।

ष्ठिर बोले, राजा नहुष किस प्रकार
स्त हुए? किस प्रकार पृथ्वीपर गिरे
और इन्द्र पदसे भ्रष्ट हुए? यह विषय
दर्णन करना योग्य है।

बोले, अगस्त्य और भृगुके इस प्रकार
करते रहनेपर महात्मा नहुष

राजाके दिव्य और मनुष्य कार्य्य होने लगे। सब सामग्रियोंसे युक्त दीपदान, बलिकर्म्म तथा पृथक् पृथक् रीतिसे दूसरे सब कार्य्य प्रवृत्त थे। देवलोक और नरलोकमें जो सब सदाचार वर्णित हुए हैं, महानुभाव देवराज नहुषके वे सब कार्य्य पूरे हुए। हे राजेन्द्र! यदि साधु-सम्मत सदाचार पूर्ण हो, तो गृहस्थ मनुष्य समृद्धियुक्त होता है। धूपदान, दीपदान, नमस्कार, ब्राह्मणको सिद्धान्नका अग्रभाग प्रदान और गृहमें बलि देनेसे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। बलिकर्म्म विषयमें गृहस्थ पुरुष जिस प्रकार सन्तुष्ट होता है, देवताओंको उससे उन लोगोंसे एक सौ गुण अधिक प्रीति हुआ करती है; इसलिये साधु पुरुष आत्मगुणी वह नमस्कार-युक्त धूप और दीप दान किया करते हैं। विद्वान् पुरुष पवित्र जलसे स्नान करके जो कुछ कार्य्य करता है, उससे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। महाभाग पितर, तपस्वी, ऋषि और गृहदेवता विधिपूर्व्वक पूजित होनेपर प्रसन्न होते हैं। राजा नहुषने इस ही निमित्त ऐसी बुद्धि अवलम्बन करके महत् सुरेन्द्रत्व पाके भी अद्भुत रीतिसे पूर्व्वोक्त कार्य्योंको किया था। कुछ समयके अनन्तर भाग्यक्षयका समय उपस्थित होनेपर पूर्व्वोक्त कार्य्योंको अवज्ञा करके वह नीचे कहे हुए कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हुए थे। अनन्तर वह देवेन्द्र होके बलिकर्म्मसे रहित हुए और धूपदीप दान तथा पितरोंका तर्पण विधिपूर्व्वक करनेसे विरत रहे, अन्तमें उनके यज्ञ स्थानमें राक्षस लोग विचरने लगे। अनन्तर उस महाबली राजाने गर्व्वित होकर ब्रह्मर्षियोंके तट से अगस्त्य महर्षिको सवारी के ... लिये शीघ्र ही बुलाया। तब महातेजस्वी भृगु अगस्त्यसे बोले, हे ... तुम्हारी ... मान ... [illegible] ... मुझ अपने ... [illegible] ... [illegible]

स्वर्गसे च्युत करनेके लिये उनके जटाजूटमें प्रवेश किया। हे नरनाथ! अनन्तर देवराजने सवारी ले चलनेके लिये अगस्त्य मुनिको पाया, तब अगस्त्यने सुरपतिसे कहा, हे सुरराज! मुझे जल्दी सवारीमें नियुक्त करो, मैं तुम्हें किस स्थानपर ले चलूं? हे देवराज! आप जहां कहो, वहां ही मैं आपको ले चलूंगा; नहुषने अगस्त्यका वचन सुनके उन्हें सवारीमें नियुक्त किया; भृगु उनके जटाजूटमें रहके अत्यन्त हर्षित हुए। वह महानुभाव नहुषके वर पानेका प्रभाव जानते थे, इसलिये उस समय उनके नेत्रके सामने नहीं हुए। नहुषने जब अगस्त्यको सवारीमें नियुक्त किया, तब भी वह उनपर क्रुद्ध नहीं हुए।

हे भारत। राजा नहुषने उन्हें कोड़ेसे मारा, उसपर भी वह धर्मात्मा क्रुद्ध न हुए, अनन्तर देवराजने क्रुद्ध होके उस समय अगस्त्यके सिर पर बाईं लात मारी। अगस्त्यके सिरपर लात मारनेसे उनके जटाके भीतर भृगुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस पापबुद्धि नहुषको शाप दिया। रे नीचबुद्धिवाले! तूने क्रोधके वशमें होकर इस महामुनिके सिरपर लात मारी है, इसलिये शीघ्र ही सर्प होकर पृथ्वीमें जाओ। हे भरतर्षभ। उस समय नहुष अगोचर भृगुके द्वारा इस प्रकार शापयुक्त होके पतित हुए। हे महाराज। यदि नहुष उस समय भृगुको देख लेते तो वह निज तेजसे उन्हें भ्रष्ट न कर सकते। हे महाराज। राजा नहुष पृथ्वीमें गिरते भी पूर्व्वोक्त धूप दीप प्रदान करने तथा तप-नियमके सहारे स्मृतिशक्तिसे युक्त थे, वह शापके अन्त होनेके लिये भृगुको प्रसन्न करने लगे। हे महाराज। अनन्तर अगस्त्यने कृपायुक्त होके शापान्तके लिये भृगुको प्रसन्न किया; उन्होंने कृपाल होके शापान्तका नियम कह दिया।

भृगु बोले, युधिष्ठिर नाम एक वंशधर राजा होगा, वही तुम्हें शापसे मुक्त करेगा; इतना कहके भृगु अन्तर्द्धान हुए। महातेजस्वी भी शतक्रतुका कार्य्य करके द्विजातियोंसे पूजि[त] होके अपने आश्रमपर गये। हे महाराज। [तु]म्ही निमित्त नहुषका तुमने उद्धार किया है। हे प्रजानाथ! नहुष तुम्हारे द्वारा शापसे छूटे तुम्हारे सम्मुखसे ही ब्रह्मलोकमें गये हैं। उस समय भृगु नहुषको पृथ्वीपर गिराके ब्रह्माके स्थानमें गये और उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। अनन्तर ब्रह्मा देवराजको बुलाके देवताओंसे बोले, हे देवगण। मेरे वरदानसे नहुषने देव-राज्य पाया था; वह क्रुद्ध अगस्त्यके द्वारा भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गया है। हे देवगण। राजाके बिना किसी स्थानमें कोई वास नहीं कर सकता; इसलिये पाकशासनको तुम लोग फिर देवराज्यपर अभिषिक्त करो। हे नरनाथ पार्थ! देवताओंने ब्रह्माका वचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर 'एवमस्तु' कहके उनकी बात स्वीकार की। हे नृपवर। इन्द्र भगवान् ब्रह्माके द्वारा देवराज्यपर अभिषिक्त होके पहलेकी भांति विराजमान हुए। नहुषके विषयमें व्यतिक्रम होनेसे पहले ऐसी घटना हुई थी, उन्हें पूर्व्वोक्त कर्म्मोंके सहारे पूरी रीतिसे सिद्धि प्राप्त हुई; इसलिये गृहमेधी पुरुषोंको सन्ध्याके समय दीपदान करना उचित है। दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाके दिव्यनेत्र पाता है। वह तक अर्च्चिनिमिष प्रकाशमान रहते हैं, उतने वर्ष पर्य्यन्त दीपदान करनेवाले- पूर्णचन्द्रके समान स्वर्गमें विराजते हैं और दीपदान करनेवाले मनुष्य रूपवान तथा बलवान होते हैं।

१०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ। जो नीचकर्म करनेवाले मन्दबुद्धि मूढ मनुष्य ब्राह्मणका धन हरते हैं, वे किस लोकमें जाते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत। प्राचीन लोग इस विषयमें किसी क्षत्रिय और चाण्डालके सम्वाद

पुरुष पुराना इतिहास कहा करते हैं। क्षत्री बोला, रे चाण्डाल! तू बूढ़ा होनेपर भी बालकोंकी भांति क्यों चेष्टा करता है? तू कुत्ते और गधोंकी धूलिसे अवगुण्ठित होकर किसलिये गौवोंको व्याकुल करता है? साधु लोग चाण्डालके कार्यको अत्यन्त निन्दित कहते हैं। तू किसलिये चोरवृन्दसे युक्त गौवोंको जलकुण्डके बीच कर रहा है?

चाण्डाल बोला, हे राजन्! पहले समयमें किसी ब्राह्मणकी गौवें हरी गई थीं, उनके स्तनसे गिरे हुए दूधने सोमरसको नष्ट किया था। ब्राह्मणोंने उस सोमरसको पिया और यज्ञ करनेवाले राजाने भी उन्हीं गौवोंके दूधसे युक्त सोमपान करनेपर यज्ञ करानेवालोंके सहित उस ब्रह्मस्वको भोगनेसे नरकमें प्रवेश किया था। जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दूसरे मनुष्योंने उस गऊ हरनेवालेके गृहमें घी, दही वा दूध पीया था, वे सब कोई नरकमें डूबे। गौवें साधु व्यवहारसे पशुओंकी प्रतीक्षा करती, खासी और बछड़ोंके वियोगसे काँप रही थीं, वैसी दशामें जिसने उन्हें हरण किया था, उनके पुत्र पौत्र और दम्पती अल्पायु हुए। हे महाराज! मैं ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर उस गऊ हरनेवाले मनुष्यके गृहमें निवास करता था। हे नरनाथ! उन हरी हुई गौवोंकी धूलसे मेरा भिक्षान्न विनष्ट हुआ था, हे नरनाथ! मैंने उसी गोरजसे युक्त अन्न खाया था, इसीसे मैं चाण्डाल हुआ और वह ब्रह्मस्व हरनेवाला राजा भी अप्रतिष्ठित हुआ, इसलिये कभी किसी ब्राह्मणका धन हरना उचित नहीं है। ब्रह्मस्वके रजसे परिपूरित भिक्षान्न खाके मैं कैसा हुआ हूं, उसे देखिये। विपश्चित पुरुष कदापि सोमविक्रय न करें, इस लोकमें सोमविक्रय करनेसे मनीषिवृन्द निषिद्ध रीतिसे निन्दा किया करते हैं। हे तात! जो लोग सोमरस बेचते हैं, और जो मनुष्य उसे मोल लेते हैं, वे सब कोई यमके समीप पहुंचके रौरव नरकमें पड़ते हैं। यह मत समझो, कि श्रोत्रिय ब्राह्मण विधिपूर्वक ब्रह्मस्व संयुक्त सोमरस बेचके वार्द्धुषी अर्थात् व्याजजीवी होके शीघ्र नष्ट नहीं होता, वह तीस नरकमें भ्रमता हुआ विष्ठा भक्षण करता है। नीचसेवा, अभिमान और मित्रकी स्त्रीके साथ अत्याचार, इन तीनोंको ही तुला-दण्डपर रखके तुल्य जाने, अभिमानी मनुष्य धर्म्मको अतिक्रम करनेसे अधिक पापी होता है अर्थात् अभिमानी मनुष्य नीचसेवी और मित्रकी स्त्री हरनेवालेसे अधिक पापी है। देखिये पापी कुत्ता विवर्ण और कृश होता है, कुत्ते सब प्राणियोंके विषयमें क्रुद्ध होके अभिमानसे ही ऐसी गतिको प्राप्त हुए हैं। हे विभु! मैं दूसरे जन्ममें धनयुक्त बड़े कुलमें उत्पन्न होके ज्ञानविज्ञानसे युक्त हुआ था, उस समय इन दोषोंके विषयको जानके भी मैं अभिमानपूर्वक क्रुद्ध होके लोगोंका पृष्ठमांस भक्षण करता था। मैं उस ही चरित्र तथा वैसे आचरणसे ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, इसलिये समयका विपर्य्यय अवलोकन करो। मुझे तीक्ष्णपुच्छवाले भौंरोंके झुण्डसे पीड़ित आदीप्त वस्त्रवाले पुरुषके सदृश अत्यन्त सरधा भाके दौड़ते हुए तथा रजोगुणसे युक्त देखिये। गृहस्थी मनुष्य स्वाध्यायपाठ तथा अनेक प्रकारके दानसे महत् पाप हरण करते हैं, पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, उसके अनुसार आश्रमस्थ पापी द्विजको वेद उद्धार करता है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ भूपाल! मैं पापयोनिमें पड़ा हूं, निश्चय नहीं कर सकता, कि किस प्रकार मुक्त हूंगा। हे महाराज! मैं पूर्वजन्मके किये हुए किसी शुभकर्मसे जाति-स्मर हुआ हूं, उस ही निमित्त मोक्षकी अभिलाष किया करता हूं। [illegible] मुझे शरणागत समझके [illegible] कृपा करके बताइये, मैं चाण्डालत्वसे किस प्रकार मुक्त हूंगा।

क्षत्रिय बोला, रे चाण्डाल! तू जिसके सहारे मोक्ष पावेगा, उस विषयमें प्रतिज्ञा कर, तू ब्राह्मणोंके निमित्त प्राणत्यागनेसे अभिलषित गति पावेगा। ब्राह्मणके निमित्त राक्षसोंको शरीर दान करके युद्धरूपी अग्निमें प्राण समर्पण करनेसे तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगी, अन्यथाचरण करनेसे मोक्ष न होगी।

भीष्म बोले, हे शत्रुतापन! उस समय चाण्डालने उस क्षत्रियका ऐसा वचन सुनके ब्राह्मणस्वके निमित्त युद्धमें मरके अभिलषित गति पाई थी। हे भरतश्रेष्ठ महाबाहो वत्स! यदि तुम शाश्वती गतिकी इच्छा करते हो, तो सदा ब्रह्मस्वकी रक्षा करना।

१०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! सुकृतशाली मनुष्य एक लोकमें ही निवास करते हैं, अथवा उस स्थानमें भी वे लोग पृथक् पृथक् लोकोंमें वास किया करते हैं। मेरे समीप आप यह विषय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे पार्थ! मनुष्य निज कर्म्मके सहारे अनेक प्रकारके लोकोंमें गमन किया करते हैं, पुण्य करनेवाले पुरुष पुण्यलोकमें जाते हैं और पापी मनुष्य पापलोकोंमें जाते हैं। हे तात! प्राचीन लोग इस विषयमें इन्द्र और गौतम मुनिके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। गौतम नाम जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव, दम, शील और व्रत करनेवाले किसी ब्राह्मणने वनके बीच मातारहित तथा अत्यन्त दुःखी एक हाथीके बच्चेको देखकर दयायुक्त होके उसे पालके जिला रखा था। हाथीका बच्चा बहुत समयके अनन्तर अत्यन्त बलवान और बड़ा हुआ। पर्व्वतसदृश उस महाहस्तीको देखके इन्द्रने धृतराष्ट्रका रूप धरके उस हाथीको ले लिया। महातपस्वी संशितव्रती गौतम उस हाथीको हरते हुए देखके राजा धृतराष्ट्रसे बोले, हे अकृतज्ञ धृतराष्ट्र! अत्यन्त कष्टसे पाले हुए मेरे इस पुत्रतुल्य हाथीको मत हरो। हे महाराज! साधुलोग सात पग वार्त्तालापसे ही मित्रता कहा करते हैं, इसलिये तुम्हें मित्रद्रोह स्पर्श न करे। यह हाथी यूथसे बिछुड़ कर मेरे आश्रममें निवास करके मुझे काष्ठ और जल ला देता है, यह आचार्यकुलमें अत्यन्त विनीत, गुरुके कार्य्यमें रत, शिष्ट, धार्म्मिक, कृतज्ञ और सदा मुझे प्रिय है। हे महाराज! इसलिये मेरे इस प्रकार चिल्लाते रहनेपर तुम्हें हाथी हरना उचित नहीं है।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! मैं आपको एक हजार गऊ, एक सौ दासी, पांच सौ सुहर तथा और भी अनेक प्रकारका धन देता हूं, आप ब्राह्मण हैं, आपको हाथी लेनेसे क्या प्रयोजन है?

गौतम बोले, हे नरनाथ महाराज! गऊ दासी और सुहरोंके सहित अनेक प्रकारके रत्न और बहुतसा धन तुम्हारे ही रहे, इस लोकमें ब्राह्मणोंको धनसे क्या प्रयोजन है।

धृतराष्ट्र बोले, हे विप्र! ब्राह्मणोंका हाथीके सहारे कुछ कार्य्य नहीं होता, हाथी क्षत्रियोंके ही चढ़नेके लिये हैं, इसलिये अपने चढ़नेके लिये इस श्रेष्ठ हाथीको लेजानेसे मुझे कुछ अधर्म्म नहीं है। हे गौतम! इसलिये आप इस कार्य्यसे निवृत्त हो।

गौतम बोले, हे महात्मन् जिस स्थानमें पुण्य कर्म्म करनेवाले प्रेत आनन्दित होते और पापी प्रेत शोक किया करते हैं, उस यमके स्थानपर मैं तुमसे यह अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग क्रिया रहित नास्तिक, श्रद्धावर्ज्जित, पापी और इन्द्रियोंके विषयोंमें फंसे हैं, वे ही यमयातना भोगते हैं; परन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, यमपुरी सब लोगोंको संयम कारिणी है, जहांपर झूठ नहीं कहा जाता,

केवल सत्य ही विराजता है, जहां निबल लोग बलवानोंको दुःखभोग कराते हैं, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो मदमत्त मनुष्य जेठी बहिन और पितामाताके विषयमें शत्रु ताचरण करते हैं, वैसे लोगोंके लिये यमपुरी बनी है, किन्तु मैं वहा न जाऊंगा।

गौतम बोले, कुवेरराजमें भोगियोंको प्रविष्ट करानेवाली महाभागा मन्दाकिनी नदी है, जिसको गन्धर्व अप्सरा और यक्षगण सदा सेवा किया करते हैं; उसी स्थानमें मैं निज फल-स्वरूप हाथीको तुमसे लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सदा अतिथि और ब्राह्मणोंको आश्रय देते हैं तथा आश्रितोंको देकर शेषमें अन्नादि भोजन करते हैं; वेही मन्दाकिनीको विभूषित किया करते हैं, किन्तु मैं वहा न जाऊंगा।

गौतम बोले, सुमेरुके अग्रभागमें जो उत्तम रीतिसे फूला हुआ किन्नरी गीतसंयुक्त वन विराजमान है और जहांपर सुदर्शन जामुनका विशाल वृक्ष विद्यमान है, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना फल स्वरूप हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो ब्राह्मण मृदुस्वभाव, सत्यशील और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले हैं, तथा जो सब प्राणियोंके मनोहर इतिहासके सहित पुराणोंको पढ़ा करते हैं, वा मधुमांस-रहित ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हैं। हे महर्षि! वैसे ही लोगोंके लिये ऊपर कहे हुए लोक बने हैं, परन्तु मैं वहा न जाऊंगा। इसलिये यदि आपको मेरे योग्य कोई स्थान मालूम हो तो कहिये, मैं वहा जाऊं?

गौतम बोले, सुन्दर फूलोंसे युक्त किन्नर-राजसेवित, देवर्षि नारद, गन्धर्व और अप्सरा-ओंके लिये सदा प्रिय नन्दन नाम एक वन है, वहांपर मैं तुमसे अपना फलस्वरूप हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो मनुष्य नृत्य-गीत आदि विषयोंमें निपुण, अयाचक और सदा संहतियुक्त होके विचरते हैं यह लोक वैसे ही लोगोंके लिये बना है किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, हे नरेन्द्र! जहांपर उत्तर कुरुदेशवासी लोग देवताओंके सङ्ग सुख भोगते हैं। जहां अग्नियोनिज, जलयोनिज और पर्वत योनिज प्राणी निवास किया करते हैं, जहांपर इन्द्र अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है; जहां स्त्रियां कामचारिणी होती हैं, जहां नर-नारियोंमें परस्पर ईर्षा नहीं है, उसी स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो लोग सब जीवोंके विषयमें निवृत्तिकाम होके मांस भक्षण नहीं करते और न्यस्तदण्ड होके विचरते हैं, जो लोग स्थावर जङ्गम जीवोंकी हिंसा नहीं करते, जो सब जीवोंको आत्मवत्, आशारहित, निर्मोह, रागहीन, हानि लाभ, स्तुति और निन्दाको समान जानते हैं, ऐसे ही लोगोंके लिये वह लोक बना है, किन्तु मैं वहा न जाऊंगा।

गौतम बोले, उससे श्रेष्ठ, पवित्र, सुगन्धयुक्त रजोगुण तथा शोकवर्ज्जित सनातन लोक महात्मा सोमराजके स्थानमें शोभित है, वहां ही मैं तुमसे निज फलस्वरूप हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो दानशील मनुष्य प्रतिग्रह नहीं करते तथा दूसरेके धन नहीं लेते, पूज्य पुरुषोंके लिये जिनके निकट कुछ भी अदेय नहीं है, जो अवश्य ही आतिथ्य किया करते हैं; तथा जो लोग प्रभु, क्षमा-शील हैं और लोगोंके समीप अपने गुणोंकी जल्पना नहीं करते, सबोंके विषयमें आच्छादन स्वरूप होके सदा उनकी रक्षा किया करते हैं, तथा जो लोग [illegible] हैं, उन्हींके लिये वह लोक बना है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, हे महाराज! [illegible] हैं। [illegible] रथ और [illegible]

शोकहीन सनातन लोक सुशोभित है, वहां ही मैं तुमसे निज फलस्वरूप हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो लोग स्वाध्यायशील गुरुसेवामें रत, तपस्वी, उत्तमव्रती, सत्यसन्ध, आचार्य्यके विषयमें अनुकूल वचन कहनेवाले, सदा उद्योगी और गुरुके कार्य्योंमें सर्व्वदा स्वयं प्रवृत्त रहते हैं, वैसे ही वाग्यत तथा सत्यमें स्थित महात्माओंके लिये यह लोक विहित हुआ है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, हे महात्मन्! उससे अतिरिक्त और भी सनातन लोक वरुणराजके स्थानमें विराजमान हैं, वे लोक पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुणसे रहित और शोकहीन हैं; उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो मनुष्य सदा चातुर्म्मास याग किया करते हैं, जो लोग दस सौ यज्ञका फल पाते हैं; जो मनुष्य यथा समयमें स्नान करके श्रद्धापूर्व्वक तीन वर्ष अग्निहोत्रमें होम करते हैं, जो धर्म्मात्मा पुरुष धर्म्मभार उठानेके लिये उत्तम रीतिसे अपनी रक्षा किया करते हैं, जो लोग शास्त्रोक्त मार्गमें निवास करते हैं, उन्हीं महात्माओंका उक्त लोकमें गति प्राप्त होती है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, इन्द्रलोक रजोगुणसे रहित शोकहीन, दुरत्यय और मनुष्योंकी अभिलषित है। हे महाराज! मैं अत्यन्त तेजसे युक्त इन्द्रलोकमें तुमसे अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो शूर मनुष्य एक सौ वर्ष तक जीवित रहके अप्रमत्त होकर वेद पढ़ते तथा यज्ञ करते हैं, वेही इन्द्रलोकमें जाते हैं, किन्तु मैं वहांपर न जाऊंगा।

गौतम बोले, स्वर्गके ऊपर शोकहीन महत् पुष्कल प्राजापत्य लोक वर्त्तमान है, वह सबकी ही अभिलषित है; इसलिये मैं उस ही स्थानमें तुमसे यह हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो राजा राजसूय यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं, जो धर्म्मात्मा प्रजाके रक्षक हैं, तथा जिन्होंने अश्वमेध यज्ञमें अवभृत स्नान किये हैं, उन्हीं लोगोंके निमित्त प्राजापत्य लोक विहित है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, इससे पवित्र, सुगन्धयुक्त रजोगुणसे रहित शोकहीन सनातन गोलोक शोभित होरहा है, उस दुर्लभ अधर्ष गोलोकमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, जो दानशील मनुष्य प्रतिवर्ष एक लाख गऊदान करते हैं, तथा जो लोग शक्तिके अनुसार एक हजार गोदान करते, अथवा जो लोग इस लोकमें दस पुरुषोंको एक गऊ देते हैं, वा पांच पुरुषोंको एक गऊ दान किया करते हैं, तथा जो ब्रह्मचर्य्य व्रत करते हुए बूढ़े होते हैं, जो लोग सब भांतिसे वेदवाक्यकी रक्षा करते हैं, वे सब तीर्थयात्रा करनेवाले मनस्वी पुरुष गोलोकमें सस्त्रीक होके निवास किया करते हैं। प्रभास, मानस तीर्थ, पुष्कर, महत् सरोवर, पवित्र, नैमिष तीर्थ, बाहुदा, करतोया, गङ्गा, गयशिरा, विपाशा, स्थूलवालुका, कृष्णगङ्गा, पञ्चनद, महाह्रद गोमती, कौशिकी, पम्पा, सरस्वती, दृषद्वती और यमुना तीर्थमें जो सब व्रत करनेवाले महानुभाव मनुष्य जाके स्नान करते हैं, वे गोलोकमें दिव्य शरीर धारण करके दिव्य मालासे विभूषित और पवित्र गन्धसे युक्त होके निवास करते हैं, किन्तु मैं वहां न जाऊंगा।

गौतम बोले, जिस स्थानमें शर्दी और गर्म्मीका कुछ भी भय नहीं है, जहां भूख प्यासकी ग्लानि और सुख दुःख नहीं होता, जहांपर कोई शत्रु, मित्र, बन्धु, द्वेषी वा प्रिय नहीं है; जहांपर जरा मृत्यु, और पुण्य-पाप कुछ भी नहीं है, उस रजोगुणसे रहित निर्म्मल ब्रह्मरूपमें स्थित पवित्र स्वयंभूके स्थानमें तुम मुझे हाथी प्रदान करोगे।

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सर्व्वसङ्ग रहित, कृत-

हुए, व्रतव्रती, अध्यात्म योग स्थापन करनेमें नियुक्त रहके स्वर्गमें गये हैं, वेही सतोगुणसे हुतपुरुष पवित्र ब्रह्मस्थानमें गमन किया करते हैं। हे महामुनि! वहांपर आप मुझे न देखेंगे।

गौतम बोले, जहांपर वृहत् रथान्तर सामवेद गाया जाता है, जहां सफेद सरसिजकी द्वारा सब वेदी शोभित हैं, जहांपर लोग घोड़ेके सवार चन्द्रलोकमें गमन किया करते हैं, वहांपर मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। मैं यह जानता हूं, कि तुम वृत्रहन्ता इन्द्र सब लोकोंमें विचरते हो। मैंने मनके पराभववश कदापि वचनके सहारे तुम्हारा कुछ अपराध तो नहीं किया है?

इन्द्र बोले, मैं देवराज हूं, हाथीके अपवाद विषयमें प्रजासमूहके मार्गका अनुगमन किया है, इसलिये मैं प्रणत होता हूं; कहिये आपकी क्या आज्ञा है? आप जो कहेंगे मैं वह सब कार्य्य पूर्ण करूंगा।

गौतम बोले, हे सुरेन्द्र! मेरा श्वेतवर्ण दशवर्षीय बालक पुत्रस्वरूप जिस हाथीको तुमने हर लिया है, मेरे अकेले वनमें वास करनेपर जो हाथी द्वितीय हुआ था, आप मुझे वही हाथी दीजिये।

इन्द्र बोले, हे द्विजवर! वह तुम्हारा पुत्रस्वरूप हाथी तुम्हें देखकर आ रहा है, अपने मस्तकसे तुम्हारे दोनों चरण सूंघता है। मैं आपको प्रणाम करता हूं, इसलिये मेरे कल्याणके लिये चिन्ता करिये।

गौतम बोले हे सुरेन्द्र! मैं सदा ही तुम्हारे कल्याणकी चिन्ता करता तथा सर्वदा तुम्हारी पूजा किया करता हूं। हे देवराज! आप भी मेरा कल्याण करिये, आपका दिया हुआ हाथी ग्रहण करता हूं।

इन्द्र बोले, जिन सत्यवादी महात्माओं [illegible] हृदयाकाशमें वेद स्थित हैं [illegible] एक मात्र महात्मा हैं [illegible] द्वारा सावधान होनेसे इस समय मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। हे विप्रवर! आप निज पुत्र कुञ्जरके सहित सदाके लिये शुभ लोक पानेके निमित्त शीघ्र ही चलिये। वज्रधारी इन्द्र पुत्रस्वरूप हाथीके सहित गौतमको सङ्ग लेकर साधुओंकी दुरासद सुरलोकमें गये। जो लोग जितेन्द्रिय होके सदा इस कथाको सुनते वा पढ़ते हैं, वे गौतम ब्राह्मणकी भांति ब्रह्मलोकमें गमन किया करते हैं।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने अनेक प्रकारके दानके विषय शान्ति, सत्य, अहिंसा और निज स्त्रीमें सन्तुष्टि तथा दान करनेसे जो फल होते हैं, उन्हें वर्णन किया; तपबलके अतिरिक्त और दूसरा आपको क्या विदित है? तपस्यासे श्रेष्ठ दूसरा क्या है? उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जबतक तपस्याकी कथा कही जाती है, तबतक लोक विश्रुत रहते हैं, मेरा यह मत है, कि अनशनसे बढ़के दूसरी तपस्या और कुछ भी नहीं है। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और भगीरथके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे भारत! मैंने सुना है, कि भगीरथ सुरलोक और गोलोकको अतिक्रम करके ऋषिलोकमें गये। ब्रह्माने उस भगीरथको देखके यह वचन कहा, हे भगीरथ! तुमने किस प्रकार इस दुरासद स्थानमें गमन किया? हे भगीरथ! देव, गन्धर्व और मनुष्यगण बिना तपस्या किये इस स्थानमें आनेमें समर्थ नहीं होते, इसलिये तुम किस प्रकार यहां आये?

[illegible]

रात्रिमें दश तथा पांच रात्रिसाध्य दश यज्ञ और ग्यारह रात्रिमें सिद्ध होनेवाले ग्यारह यज्ञ तथा एक सौ ज्योतिष्ठोम यज्ञ किया था, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। मैंने जो एक सौ वर्षतक तपस्या करते सदा गङ्गाके तटपर निवास किया था, और उस ही स्थानमें एक हजार अश्वतरी तथा कन्याभवन प्रदान किये थे, उसके फलसे इस स्थानमें नहीं आया हूं। पुष्कर तीर्थमें द्विजातियोंको दश अयुत घोड़े और बीस अयुत गोदान किया था; चन्द्रमाकी भांति सफेद सुवरणके आभूषण धारण करनेवाली साठ हजार उत्तम कन्या दान की थी; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे लोकनाथ। मैंने प्रति गो सव यज्ञमें एक एक ब्राह्मणको दश दश गऊ दान करते हुए बछड़ेयुक्त दूधवाली सुवरणमय दोहनपात्रसे युक्त दश अर्व्बुद गऊ दान की है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। सोमयागमें प्रत्येक ब्राह्मणको उत्तम व्यायी हुई दूध देनेवाली रोहिणी गऊ दान करते हुए सैकड़ों तथा सहस्रों गऊ दान की है। हे ब्रह्मन्! अन्तमें मैंने हर एक ब्राह्मणको एक एक सौ गऊ दान की थी, उसके फलसे यहांपर नहीं आया हूं। दश अयुत सुवर्ण मालायुक्त श्वेतवर्ण वाह्लिज घोड़े दान किये हैं, उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन! एक एक यज्ञमें प्रतिदिन अट्ठारह करोड़ स्वर्णमुद्रा दान किया है, उसके फलसे यहां नहीं आया। हे पितामह! हे ब्रह्मन्। मैंने काले हरे रङ्गवाले स्वर्णमालायुक्त सत्तरह करोड़ घोड़े और ईखसदृश दांतयुक्त बड़े शरीरवाले, सोनेकी मालासे विभूषित सत्तरह हजार हाथी दिये हैं। हे देवेश। सोनेके दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत सुवरणखचित दश हजार रथ दान किये हैं और वेदमें जो दक्षिणाके अङ्गरूपसे वर्णित हुए है, वैसे ही अलंकृत घोड़ोंसे युक्त रथ ब्राह्मणोंको दान दिये हैं, दस बार वाजपेय यज्ञमें पूर्व्वोक्त रथादि दिये गये हैं। यज्ञ और विक्रमके सहारे इन्द्रके सदृश प्रभावयुक्त सोनेकी सुहर गलेमें पहरनेवाले एक हजार राजाओंको दक्षिणामें दान दिया है। हे पितामह। मैं सब राजाओंको जीतके आठ राजसूय यज्ञ किये थे, उस हेतुसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे जगत्पति! मेरी दी हुई दक्षिणासे गङ्गाके सब स्रोत परिपूरित होगये थे, उस कारणसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। एक एक सौ स्वर्णमुद्रा भूषित दो दो हजार घोड़े और एक एक सौ उत्तम गाव मैंने हर एक ब्राह्मणको तीन बार दान किये थे, मैंने शान्ति अवलम्बन करके वाग्यत नियताहारी और तपस्वी होके हिमालयमें बहुत दिनोंतक गङ्गाकी उस दुस्सह धाराको धारण किया था, जिसे महादेवने सिरपर रक्खा; हे पितामह। मैं उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। पृथुबुध अर्थात् स्थूल और गोलाकार काष्ठदण्ड बलवान् पुरुषके द्वारा फेंके जानेपर जितनी दूरमें गिरता है, जिस यज्ञमें उतने ही परिमाणसे वेदी हुआ करती है, उसे शम्याक्षेप यज्ञ कहते हैं। हे देव। मैं उस ही शम्याक्षेप यज्ञ, पुण्डरीक और सद्यस्क नाम अयुत यज्ञ तथा बारह वा तेरह दिनोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञोंसे देवताओंकी पूजा की थी; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। मैं हर एक ब्राह्मणको आठ हजार ककुद्मी सोनेके सींगसे युक्त सफेद वृषभ दान किये हैं और उन्हें सुहरके कण्ठसे युक्त गऊ भी प्रदान की हैं। सुवरण, रत्न, रत्नोंके पर्व्वत और धनधान्यसे युक्त एक एक हजार गांव दान किये हैं। निरालसी होके बहुतेरे महायज्ञोंमें देवताओंकी पूजा करके ब्राह्मणोंको एक एक सौ उत्तम व्यायी हुई गऊ दान किया है; उसके फलसे भी यहां नहीं आया हूं। हे देव! मैंने ग्यारह दिनमें दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ

किया और दो वार वारह दिनमें अश्वमेध यज्ञ तथा सोलह वार आर्कायण नाम यज्ञ किया है। हे ब्रह्मन्! इनके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। एक योजन लम्बा अत्यन्त चौड़ा रत्नविभूषित सुवर्णमय वृक्षोंसे युक्त वन दान किया है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। तीस वर्षतक क्रोधहीन रहके अनभि- भवनीय उत्तरायणव्रत किया है, प्रतिदिन ब्राह्म- णोंको नव सौ गोदान किया है। हे लोकनाथ सुरेश! मैंने सदा ब्राह्मणोंको बैल और दूध देनेवाली गऊ प्रदान की है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन्! मैं सदा अग्निहोत्र करते हुए तीस वर्षतक निवास किया है। आठ सर्व्वमेध, सात नरमेध, एक हजार अठारह विश्वजित् यज्ञ किया है। हे देवेश! उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। सरयु, वाहुदा, गङ्गा और नमिषक्षेत्रमें सौ अयुत गौ दान किया है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे वरेण्य! इन्द्रके हृदयाकाशमें तपस्याके द्वारा प्रवेश करके शुक्रने जो [illegible] प्राप्त किया था, शुक्रके तेजसे जो इस लोकमें प्रकाशित है, मैंने उसे सिद्ध किया है, मेरे द्वारा वह कार्य्य सिद्ध होनेपर ब्राह्मण लोग परस्पर सन्तुष्ट हुए थे और उस ह्रदो स्थानमें एक हजार ऋषि इकट्ठे हुए थे। हे प्रभु! वे [illegible] मुझसे बोले, 'तुम ब्रह्मलोकमें जाओ।' इस प्रकार ब्राह्मणोंने प्रसन्न होके मुझसे ऐसा कहा है, इस ही निमित्त मैं इस स्थानमें आया हूं। इसलिये आप इस विषयकी चर्चा करिये। हे सुरश्रेष्ठ! विधाताने जिसका [illegible] विधान किया है और मुझसे पूछा है, [illegible] भी व्याख्यानसे कहना योग्य है। मेरा [illegible] है कि [illegible] कोई [illegible] नहीं है। हे देव! मैं आपको [illegible] हूं, आप सुन्दर [illegible] होइये। [illegible]

कथा कही, तब प्रजापति ब्रह्माने विधि विहित कार्य्यसे उस पूजने योग्य राजाकी पूजा की। इसलिये तुम अनशन व्रत अवलम्बन करके प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करो, ब्राह्मणोंके वचनसे इस लोकमें सब कामना सिद्ध होती हैं। वस्त्र, अन्न, गऊ और शुभस्थानके सहारे ब्राह्मण लोग देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, इसलिये लोभरहित होके इस परम गोपनीय विषयका अनुष्ठान करो।

१०३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुष शतायु तथा शतवीर्य्य होके जन्मता है, परन्तु बाल्य अवस्थामें भी मनुष्य किस कारणसे मृत्युके मुखमें पड़ता है? किस प्रकार मनुष्य आयु- ष्मान हुआ करता है और किसलिये अल्पायु होता है? किस भांति कीर्त्ति प्राप्त होती है और कैसे लक्ष्मी मिलती है? तपस्या ब्रह्मचर्य्य, जप, होम, औषध, कर्म्म, मन और वचन, इन सबके बीच किस कारणसे ऊपर कहे हुए कार्य्य हो सकते हैं? हे पितामह! मेरे समीप आप यही विषय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार अल्पायु तथा दीर्घायु हुआ करता है, जिस भांति कीर्त्तिमान और लक्ष्मीयुक्त होता है तथा जिस प्रकार [illegible] पुरुषका कल्याण होता है, वह विषय तुमसे कहता हूं। आचारसे ही पुरुषकी आयु बढ़ती है, आचारहीसे लक्ष्मीयुक्त होता है और आचा- रसे ही इस लोक तथा परलोकमें कीर्त्ति प्राप्त होती है। दुराचारी मनुष्यको इस लोकमें [illegible] नहीं मिलती; [illegible] भय तथा परिभव प्राप्त होती है, [illegible] दुराचारी [illegible] है; [illegible]

लोकमें सदाचरण करे, सदाचरण पापयुक्त शरीरका भी कुलचण हर लेता है। आचार, लक्षण, धर्म और चरित्रसे साधु लोग जाने जाते हैं; साधुओंका चरित्र ही आचारका लक्षण है। सत्कर्म करनेवाले धर्मचारी पुरुषोंको बिना देखे ही लोक समाजमें सब कोई उनका नाम सुनते हैं, उन्हें प्रिय समझते हैं। जो लोग नास्तिक क्रियारहित पुरुष गुरु और शास्त्रका वाक्य उल्लङ्घन करते हैं, जो अधर्मी तथा दुराचारी हैं, वेही गतायु होते हैं। जो लोग दुःशील मर्यादा तोड़नेवाले, सदा सङ्कीर्णताके सहित मैथुन करते है, वे इस लोकमें अल्पायु होके मरनेके अनन्तर नरकमें गमन करते हैं, जो मनुष्य सब लक्षणोंसे रहित होके भी सदाचारी होता है, जो श्रद्धावान् और असूयारहित है, वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जो अक्रोधी, सत्यवादी, जीवोंकी हिंसा न करनेवाला, अनसूय और कपटरहित हैं, वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जो मनुष्य ढेलोंको फोड़ता तिनका तोड़ता, नखवादी, उच्छिष्टभोजी और सदा अस्थिर चित्तवाला होता है, वह इस लोकमें दीर्घायु नहीं पा सकता। ब्राह्म मुहूर्त्तमें सावधान होवे और उस समय धर्म्म अर्थका विचार करे; उठके आचमन करके हाथ जोड़के पूर्व्वसन्ध्याकी उपासना करे। उदयशील सूर्य्यको न देखे और अस्त होते हुए भी दिवाकरको न देखना चाहिये, राहुग्रस्त, जलके बीच और आकाशके मध्यमें गये हुए सूर्य्यको देखना योग्य नहीं है। ऋषि लोग सदा सन्ध्यावन्दन करते हैं, इसीसे उन्हें दीर्घायु प्राप्त हुई है; इसलिये पूर्व्व और पश्चिम सन्ध्याके समय वाग्यत होके रहे। जो ब्राह्मण प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करते, धार्म्मिक राजा उनसे शूद्रोंका कार्य्य करावे सत्वर्णोंके बीच कदापि पराई स्त्री गमन करना उचित नहीं है, पुरुषके लिये जैसा परस्त्री गमन आयुका नाशक है, लोकमें वैसा युष्य और कुछ भी नहीं है। स्त्रियोंके रमें जितने रोम हैं, परस्त्री गामी पुरुष ही सहस्र वर्ष तक नरकमें निवास करता केश संवारना अञ्जन लगाना, दांत धोना देवताओंकी पूजा पूर्व्वान्हमें ही करनी मल-मूत्र न देखे और कदापि वहां निवा करे। अत्यन्त भोर, मध्यान्ह और समय मल-मूत्र परित्याग न करे, पुरुषके सङ्ग न चले, अकेले अथवा सहित मार्गमें चलना उचित नहीं है। पहरा हुआ वस्त्र और पादुका न पहरे; ब्रह्मचारी होवे पांवसे पांवकी आक्रमण न ब्राह्मण, गऊ, राजा, वृद्ध, बोझा ढोने गर्भिणी स्त्री और निबल पुरुषको देखके जानेके लिये मार्ग देवे। विख्यात बनस्पति प्रदक्षिणा करे, चौराहोंकी प्रदक्षिण उचित है। मध्यान्ह रात्रि, विशेष करके रात, सन्ध्या और भोरके समय चौराहे जावे। अमावस्या पूर्णमासी, दोनों चतुर्दशी और अष्टमीमें सदा ब्रह्मचर्य्य करे। वृथा मांस भक्षण न करे और पृष्ठमांस खानेसे विरत होवे, आक्रोश, परिवाद और चुगलखोरी न करनी चाहिये। किसीके ऊपर गुस्सा न करे, निठुर बचन न कहे; नीच पुरुषसे श्रेष्ठ द्रव्य लेना अनुचित है। जिस बातसे दूसरा पुरुष घबड़ाय, वैसी पापयुक्त अकल्याणकारी बात न कहे। जो वाक्यबाण मुखसे बाहर होते हैं, उससे घायल हुए पुरुष रात दिन शोक करते हैं, वे वाक्यरूपी बाण मनुष्योंके मर्म्मस्थलके अतिरिक्त और कहीं नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुष वैसे वाक्य बाणोंको न चलावे। बाणविद्ध और परशुसे कटा हुआ वन फिर अङ्कुरित होता है, किन्तु जो मर्म्मभेदी वचनसे घाव होता है, वह फिर पुरित नहीं होता। कर्णि, नालीक और बाण शरीरसे निका

…जाते हैं, परन्तु हृदयमें लगी हुए वाक्यवाणको निकालनेमें किसीको सामर्थ नहीं होती। हीन अङ्गवाले अत्यन्त रिक्ताङ्ग, निन्दनीय, विद्यारूप और धनसे रहित तथा निर्बल पुरुषकी निन्दा न करे। नास्तिकता, वेद और देवताओंकी निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान तथा तीक्ष्णता परित्याग करे। दूसरेके ऊपर दण्ड न उठावे, क्रुद्ध होके दूसरेके ऊपर प्रहार न करे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षाके निमित्त ताड़न करनेमें कोई बाधा नहीं है। ब्राह्मणोंकी निन्दा और नक्षत्र निर्देश न करे, पक्षीय तिथि न कहे, तो आयु नहीं घटती। मलमूत्र त्यागने, मार्गसे आने, वेदपाठ और भोजनके समय पैर धोवे। देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन विषयोंको पवित्र रूपसे कल्पना किया है, अदृष्ट जल प्रक्षालन तथा जो वचनके द्वारा उत्तम होता है संयाव (घृत-दूधसे बना हुआ पिष्टक कृशर) तुल्य तिलान्न, मांस, पूरी और पायस अपने ही लिये न बनावे, देवताओंके लिये इसे प्रस्तुत करे। सदा अग्निकी परिचर्य्या करे, प्रतिदिन भिक्षा देवे और वाग्यत होके दतून करे, सूर्य्य उदय होनेपर सोता न रहे, सूर्य्य उदय होनेपर सोनेवाला मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। उठके पहले मातापिताको प्रणाम करे, अनन्तर आचार्य्य और दूसरे गुरुजनोंकी वन्दना करे, तो दीर्घायु होता है। दतून करके उसे त्याग देवे, वह सदा ही त्यागने योग्य है। उत्तर ओर मुख करके समाहित होकर शौचकार्य्य करे, विना दतून किये देवपूजा न करे और विना देवपूजा किये कदापि गुरु, वृद्ध, धार्म्मिक तथा पण्डितोंको छोड़कर दूसरे किसी स्थानमें न जावे। बुद्धिमान मनुष्य मलिन दर्पणमें न देखे, अनजानी स्त्रीके निकट कदापि न जावे और गर्भिणी स्त्रीके सङ्ग गमन करना अनुचित है। उत्तर और पश्चिम ओर सिर करके न सोवे, बुद्धिमान मनुष्य पूर्व्व और दक्षिण ओर सिर करके शयन करे। टूटी फटी शय्यामें सोना अनुचित है अत्यन्त अन्धेरे स्थान, नारीयुक्त शयनगृहमें और उलटा होके कदापि न सोवे, कार्य्य वा समय, वशसे कदाचित नास्तिकके निकट न जावे, पांवसे आसन आकर्षण करके मनुष्य उसपर न बैठे। वस्त्रहीन होके नदी प्रभृति अथवा रात्रिके समयमें कदापि स्नान न करे, बुद्धिमान मनुष्य स्नान करनेके अनन्तर शरीर मार्जन न करे; विना स्नानके अनुलेपन विहित नहीं है, स्नानके अनन्तर वस्त्र धोना अनुचित है। मनुष्य सदा भींगे वस्त्रको न पहरे, गलेसे स्वयं माला निकालके फेंकना योग्य नहीं है, बाहिरी हिस्सेमें माला न धारण करे। रजस्वला स्त्रीके सङ्ग कदापि वार्त्तालाप न करे, खेत और गांवके समीप मलत्याग न करे, जलमें मल मूत्रका त्यागना वर्ज्जित है। अन्न भोजनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य मुखमें तीनवार जल स्पर्श करे; अन्न भोजन करके उसी भांति तीनवारके अनन्तर फिर दो वार मुंह धोवे। प्रतिदिन पूर्व्व ओर मुंह करके चुप होकर अन्नकी निन्दा न करके भोजन करे। भोजन करके किञ्चित शेषान्न छोड़ दे और भोजनके अनन्तर मनहीमन अग्नि स्पर्श करे। परमायु बढ़नेकी इच्छासे पूर्व्व ओर मुंह करके भोजन करे; यशकी कामनासे दक्षिण ओर मुंह करके भोजन करे, धन प्राप्तिकी इच्छासे पश्चिम ओर मुंह करके भोजन करना चाहिये और सत्यता पानेकी इच्छावाले मनुष्य उत्तर ओर मुंह करके भोजन किया करते हैं। अग्नि स्पर्श करके जलसे नासिका प्रभृति सब छिद्र शरीर, नाभि और करतल धोवे भूस, केश, राख और कपालिकाके ऊपर कदापि न बैठे, दूसरेके स्नानके जल दूरसे ही परित्याग करे, शान्ति और होम करे, सदा गायत्री मन्त्र जपे, बैठके भोजन करे, चलते कदापि न खावे। खड़ा होकर

पेशाब न करे, भस्म और गोस्थानमें पेशाब न करना चाहिये। भीगे पांवसेयुक्त होके न सोवे पांव धोके भोजन करे, जो लोग पैर धोकर भोजन करते हैं, वे एक सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। जूठे रहके अग्नि, ब्राह्मण और गऊ इन तीनों तेजस्वियोंको कदापि न छूवे, छूनेसे आयु नष्ट होती है। सूर्य्य, चन्द्रमा और नक्षत्र इन तीनों तेजस्वियोंको जूठे रहके कदापि न देखना चाहिये। बूढ़े पुरुषके सम्मुख आनेपर युवा पुरुषोंके प्राण ऊपरको उठते हैं, उठके प्रणाम करनेसे वेही प्राण फिर निजस्थानमें स्थापित हुआ करते हैं। वृद्धोंको प्रणाम करे और उन्हें स्वयं आसन देवे, हाथ जोड़के उनके सामने खड़ा रहे, जब वे चलने लगें, तो उनके पीछे पीछे चले। कटे फटे आसनपर न बैठे कांसेका पात्र परित्याग करे, एक वस्त्र होकर भोजन न करे, वस्त्ररहित होके स्नान करना उचित नहीं है। वस्त्रहीन होके न सोवे, जूठे रहके सोना न चाहिये; जूठा रहके सिर न छूवे, क्यों कि समस्त प्राण शिरकोही अवलम्बन करके रहते हैं; केश ग्रहण न करे, शिरमें प्रहार न करे और दोनों हाथोंसे सिर न खुजलावे; बार बार सिरपर जल डालके स्नान न करे, इन कार्य्योंके करनेसे आयु नष्ट होती है। सिरमें तेल मलके दूसरे अङ्गको स्पर्श न करे; तिलसंयुक्त भ्रष्ट वस्तु न खावे, जो लोग इन कार्य्योंको करते हैं, उनकी परमायु नष्ट होती है। जूठा रहके कदापि न पढ़ावे और पढ़ना भी अनुचित है। वायुयुक्त तथा दुर्गन्धित स्थानका मनसे भी ध्यान न करे; इतिहास जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें यमकी कही हुई गाथा वर्णन करते हैं,—"जो पुरुष जूठे मुहसे चलता और स्वाध्याय पाठ करता है, मैं उसकी आयु नष्ट करता तथा उसके पुत्रोंको ग्रहण किया करता हूं।" जो ब्राह्मण अनध्यायके समय मोहवशसे वेदाभ्यास करता है, उसके वेद विनष्ट होते और आयु क्षीण होजाती है; इसलिये अनध्यायके समय कदापि न पढ़े। सूर्य्य, अग्नि, गऊ और ब्राह्मणके सम्मुख जो लोग मलमूत्र फेंकते हैं, वे गतायु होते हैं। दिनमें उत्तर ओर और रात्रिमें दक्षिण ओर मुह करके मलमूत्र परित्याग करनेसे आयु नहीं घटती। जो जीवित रहनेकी इच्छावाले मनुष्य दीर्घायुकी आशा करते हैं उन्हें उचित है, कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्पको निर्बल जानके अवज्ञा न करे, क्यों कि ये तीनों ही आशीबिष स्वरूप हैं। जैसे सर्प नेत्रसे देखकर जलाया करता है, वैसे ही जब क्षत्रिय क्रुद्ध होके देखता है, तो उस ही समय तेजके सहारे भस्म करता है; ब्राह्मण क्रुद्ध होनेपर ध्यान और नेत्रके सहारे तत्क्षण ही वंशनाश करता है; इसलिये पण्डित लोग यत्नपूर्व्वक इन तीनोंकी सेवा करें। हे युधिष्ठिर! गुरुके साथ कभी शत्रुता न करना चाहिये, गुरुके क्रुद्ध होनेपर उनका मान्य तथा उन्हें प्रसन्न करना योग्य है। गुरुके मिथ्या प्रवृत्ति होनेपर भी पूरी रीतिसे उनके समीप उपस्थित रहना उचित है। गुरुनिन्दा निःसन्देह मनुष्योंकी आयु हरती है, हितैषी मनुष्य आश्रमके बाहर पेशाब करे और हाथ पैर धोवे; दूर जाके जूठ फेंके। पण्डित लोग कमल और कुवलयके अतिरिक्त दूसरे लाल रङ्गके फूलोंकी माला न पहरें, पण्डितोंको सफेद फूलोंकी माला पहरनी उचित है। लालरङ्गके फूल तथा वानेय पुष्पोंको सिरपर रखना योग्य है, काञ्चन पुष्पकी माला पहरनेमें कदापि कुछ दोष नहीं होता।

हे नरनाथ! स्नात पुरुषको सदा आर्द्र वर्णका दान करे, बुद्धिमान मनुष्य दोनों वस्त्रोंका उलट फेर न करे अर्थात् धोतीको दुपट्टा और दुपट्टाको धोती बनाना अनुचित है। हे पुरुषश्रेष्ठ! दूसरेके पहरे हुए तथा

दशाहीन वस्त्रको पहरना योग्य नहीं है, अथवा और वस्त्र स्वतन्त्र होना चाहिये, मार्गमें चलनेके समय पृथक् वस्त्र और देवपूजाके समय पृथक् वस्त्र पहरना योग्य है। बुद्धिमान् मनुष्य प्रियङ्गु, चन्दन, बेल तथा तगरसे अनुलेपन करके केशरसे पृथक् अनुलेपन करे। स्नात, शुचि और अलङ्कृत होके ब्रह्मचर्य्य करे, सब पर्व्वोंमें ब्रह्मचारी होके रहे। हे प्रजानाथ! एक पात्रमें दो मनुष्य समान अन्न भोजन न करें और रजस्वलाके हाथसे बना हुआ भोजन करना अनुचित है। जिसका सारपदार्थ निकाला गया हो, वैसी वस्तु न खावे और भोजनके समयमें यदि कोई देखता रहे, तो उसे भोजनकी वस्तु विना दिये भोजन करना विहित नहीं है। साधुओंके समीप मेधावी मनुष्य अपवित्र होके अन्न भोजन न करे, श्राद्धादिके प्रतिषिद्ध वस्तुओंको श्राद्धके अभावमें भक्षण करना अनुचित है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष पीपल, वट, शणशाक और उडुम्बर न खावे। बकरीका दूध और मयूरका मांस त्याग देवे, सूखा मांस और वासी अन्न त्यागने योग्य हैं। विद्वान् पुरुष हथेलीमें और रात्रिके समय नमक, दही, शक्कर, सत्तू न खाय, वृथा मांस खाना उचित नहीं है। समाहित पुरुष सन्ध्या, सबेर और समयके शेषमें भोजन न करे, केशयुक्त अन्न आदि न खाय। शत्रुके घर और मनुके श्राद्धमें भोजन करना अनुचित है। वाग्यत होके एक वस्त्र पहरके और [illegible] बैठे कदापि भोजन न करे, उदा भूमिमें बैठके भोजन न करे, भोजन करनेके समय चुप रहे। हे नरनाथ! बुद्धिमान मनुष्य अतिथि[illegible] पहले जल देके, तब अन्न दान करे, [illegible] उपस्थित होकर स्वयं भोजन करे, हे [illegible] एक पात्रसे बैठे हुए सुहृदोंको [illegible] दिना भोजन करावे जो पुरुष [illegible] [illegible] [illegible] होता है [illegible]

विष खाता है। जल, सत्तू, पायस, दूध, दही, घृत और मधु खाके उसका शेषभाग पुत्रादिके अतिरिक्त दूसरे लोगोंको न देवे। हे पुरुषश्रेष्ठ! मनुष्य भोजन करते समय भोज्यवस्तु परिपक्व होगी, वा नहीं, ऐसी शङ्का न करे; परिपक्व होनेके निमित्त छाछ पीवे, आचमन करके एक हाथसे दहिने पावके अङ्गूठेके जलसे धोवे, सिरपर हाथ रखके अग्निको स्पर्श करके जो लोग समाहित होते हैं, व्यवहारमें निपुण उन मनुष्योंको स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता प्राप्त होती है। जलसे प्राण स्थित करके नाभि और पाणितल स्पर्श करके प्रस्थान करे, भीगे हाथसे स्पर्श न करे, अङ्गूठेके नीचे ब्राह्मतीर्थ कही गई है और कनिष्ठा अङ्गुलीके नीचे देवतीर्थ वर्णित हुई है। हे भारत! अंगूठा और तर्जनी अङ्गुलीके मध्यभागके सहारे जल स्पर्श करके दूसरेका अपवाद न करे कदापि अप्रिय वचन न कहे, मङ्गलकी कामना करनेवाला मनुष्य किसी भांति क्रोध न करे। पतित पुरुषोंके साथ वार्त्तालाप न करे, उसे देखना न चाहिये और उसका संसर्ग न करे, तो दीर्घायु प्राप्त होती है। दिनमें मैथुन न करे, कन्या, रजस्वला और व्रती स्त्री गमन न करे, इन नियमोंके प्रतिपालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। निज निज तीर्थोंमें आचमन करके पूर्व रीतिसे उपस्थित कार्य्योंमें तीनबार जलके घूंट पीके दो बार इसे करनेसे मनुष्य पवित्र होता है। पुरुष एक बार नाना इन्द्रियोंको स्पर्श करते हुए तीन बार आचमन करके वेदविहित [illegible] देव और पितरोंके [illegible] करे। हे कुरुनन्दन! ब्राह्मणके [illegible] शौचाचार [illegible] [illegible] [illegible]

आर्थ्य करानेपर जल स्पर्श करके पवित्र होवे, वृद्धों, खजनों और मित्रोंके दरिद्र होनेपर उन्हें निज गृहमें रक्खे; ऐसा करनेसे धन और आयुकी वृद्धि होती है। कबूतर तथा शुकशारिका प्रभृतिके गृहमें रहनेसे समृद्धि हुआ करती है; ये तथा तैलपायिका प्रभृति गृहमें रहनेसे अनिष्ठके कारण नहीं होती, बल्कि अभ्युदयको हेतु हुआ करती हैं। उद्दीपनकारी गिद्ध बनके कपोत और भौंर यदि गृहके बीच सहसा प्रविष्ट हों, तो उस समय शान्ति अवलम्बन करे; ये सब कार्य्य तथा महात्माओंके विषयमें आक्रोश प्रकाश करना अमांगलिक है, महात्माओंके अत्यन्त गोपनीय विषयको किसी स्थानमें कहना उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! अगम्या स्त्रीगमन न करे; राजपथमें, वृद्ध बालक और वैद्यकी स्त्री, सखी, सेवककी भार्य्या, वधु, ब्राह्मणी, शरणागत पुरुषकी स्त्री और सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंसे रमण करना अनुचित है; हे राजेन्द्र! इन सब विषयोंकी पालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। हे नरनाथ! ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियोंकी सम्मतिके द्वारा जो स्थान बनाया जावे, कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सदा उसहीमें वास करे। हे महाराज! मेधावी मनुष्य सन्ध्याके समय न सोवे तथा विद्याभ्यास और भोजन न करे; इन नियमोंके पालनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है। रात्रिके समय पितृकार्य्य न करे और भोजनके अनन्तर केश सवारना अनुचित है, जो लोग ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें रात्रिमें स्नान आदि जलक्रिया न करनी चाहिये। हे भारत! रातके समय सत्तू खाना बर्जित है, भोजनके समय शेषान्न निर्म्मल होनेपर भी जलमें न छोड़े। जबतक एक मनुष्य तृप्त न होजाय, तबतक दूसरे पुरुषको भोजन कराना उचित नहीं है; रात्रिके समय निज अन्नको भोजन करनेमें उक्त आचरण न करे। पक्षियोंकी मारना उचित नहीं है, पक्षिमांस खावे, परन्तु स्वयं न मारके मोल लिया हुआ मांस भक्षण करे। अत्यन्त प्राज्ञ पुरुष महत् कुलमें उत्पन्न हुई श्रेष्ठ लक्षणयुक्त यथायोग्य अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करनेके योग्य होगा। हे भारत! अनन्तर पुत्र उत्पन्न करके वंश स्थापित करते हुए उन्हें ज्ञान और कुलधर्म्म सिखानेके लिये विद्वान् पुरुषके निकट समर्पण करे और कन्या उत्पन्न होनेके अनन्तर सद्वंशमें उत्पन्न हुए बुद्धिशक्तिसे युक्त पात्रको दान करे, पुत्रोंका भी सत्कुल सम्बन्धमें व्याह करे, मनुष्य जिस नक्षत्रमें जन्मा है, उसमें पूर्व्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, कृत्तिका और स्वाती नक्षत्र जोड़के नवसे भाग करनेपर जो तारा पञ्चमी होवे, उस प्रत्यरि नक्षत्र तथा दारुण नक्षत्रोंमें देव और पितृकर्म्म न करे। हे भारत! ज्योतिष शास्त्रमें ये सब विषय कहे गये हैं; पूर्व्व और उत्तर ओर मुंह करके समाहित होकर चौरकार्य्य करावे। हे राजेन्द्र! ऐसा आचरण करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। अपना तथा दूसरेका अपवाद न करे, हे भरतश्रेष्ठ। ऐसा वर्णित है, कि परिवाद अधर्म्मका हेतु हुआ करता है। हे पुरुषोत्तम! न्यूनाङ्गी स्त्री और कन्याको परित्याग करे, तुल्य प्रवर, विरूपाङ्गी, अधिकाङ्गी, मातृकुलमें उत्पन्न हुई. वर्षीयसी, प्रव्रजिता, पतिव्रता, निकृष्टवर्णा और श्रेष्ठ वर्णवाली कन्या परिवर्ज्जन करे। बुद्धिमान् मनुष्य कुलशीलको बिना जाने तथा हीन कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके सङ्ग रमण न करे। तुम्हें पिङ्गल वर्णवाली और कुष्ट रोगग्रस्त स्त्रीगमन करना योग्य नहीं है। हे नरनाथ! अपस्मार युक्त पुरुषके गृहमें जो कन्या उत्पन्न हुई, जो कन्या श्वित्ररोगयुक्त पुरुषके कुलमें उत्पन्न हुई हो तथा जो कन्या अत्यन्त हीन कुलमें जन्मी हो उसे ग्रहण न करे। जो कन्या सुल-

न तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हो, मनोहर और दर्शनीय हो उसके साथ तुम विवाह कर सकते हो। हे युधिष्ठिर! महत् वंश तथा महत्कुलमें विवाह करना योग्य है, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य हीनवर्णवाली और पतित स्त्रीको ग्रहण न करें। यत्नपूर्व्वक तीनों अग्नि उत्पन्न करके वेदमें जो सब क्रिया वर्णित हुई हैं, ब्राह्मणोंके द्वारा उनका अनुष्ठान करें। स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा न करनी चाहिये, स्त्रियोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनी उचित है; स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा करनेसे आयु घटती है, इसलिये ईर्षा न करनी चाहिये, दिनका तथा भोरका सोना आयुको घटाता है, जो लोग रात्रिके प्रथमभागमें सोते तथा जूठे रहके निद्रित होते हैं, वे अल्पायु होते हैं। परनारी हरनेसे आयु घटती है, चौरकर्म्म कराके स्नान न करनेसे आयुकी ह्रास हुआ करती है। हे भारत! सन्ध्याके समय भोजन, अध्ययन और स्नान न करना चाहिये; उस समय ध्यानयुक्त होके और कुछ कार्य्य न करें। हे भारत! स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे, व्रती होकर देवपूजा करे और गुरुजनोंको प्रणाम करे। हे भारत! विना निमन्त्रित हुए पुरुष कहीं न जावे, केवल यज्ञस्थल देखनेके लिये जा सकता है, जाके सत्कृत न होनेसे आयु क्षीण होती है। एक पुरुषके साथ देशान्तरमें जाना उचित नहीं है और रात्रिके समय मार्गमें घूमना अनुचित है, सन्ध्या न होते ही गृहमें आके निवास करना चाहिये। माता, पिता और गुरुजनोंकी आज्ञा माननी उचित है। उनके उपदेशसे चाहे भलाई हो या बुराई होवे उसमें भलि भांति उसमें विचार करना उचित नहीं है। हे भारत! धनुर्व्वेद, वेदपाठ, हाथी और घोड़ेकी पीठपर चढ़ने और रथ हांकनेके विद्या ग्रहण करना योग्य है। हे राजेन्द्र! तुम्हें ... चाहिये, क्योंकि मनुष्य सर्व्व होता है और शत्रुओं सेवकों तथा स्वजनोंके विषयमें अनभिभवनीय हुआ करता है, प्रजा पालनमें नियुक्त रहके कहीं भी क्षतिग्रस्त नहीं होता। हे भरतकुलवर्द्धन नरनाथ! तुम्हें युक्तिशास्त्र, शब्दशास्त्र, गन्धर्व्व और नृत्यगीतादि विद्या जाननी योग्य है; पुराण, इतिहास, आख्यान और महानुभाव मनुष्योंमें चरितोंको सदा सुनना उचित है। बुद्धिमान मनुष्य रजस्वला स्त्रीके निकट न जावे और उसे आवाहन भी न करे, चौथे दिन ऋतुस्नात स्त्रीके निकट जावे; पांचवें दिनमें कन्या और छठे दिनमें पुत्र जन्मता है, पण्डित पुरुष इसही विधिके अनुसार भार्य्याके निकट जाय। स्वजन, सम्बन्धी और मित्रगण सब भांतिसे पूजनीय हैं। शक्तिके अनुसार विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे देवताओंकी पूजा करना चाहिये। हे नरनाथ! इसके अनन्तर वनवासी होना उचित है। हे युधिष्ठिर! मैंने तुम्हारे निकट आयुष्कर लक्षणोंको संक्षेपमें कहा है, अवशिष्ट लक्षणोंको तीनों वेदोंके जाननेवाले पण्डितोंके समीप मालूम करना। आचारसे ऐश्वर्य्य होता है, आचारही कीर्त्तिको बढ़ाता है, आचारसे ही आयु बढ़ती है, आचारही अलक्षणोंको हरता है, सब शास्त्रोंमें आचार ही श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुआ है। आचारसे ही धर्म्म होता है, धर्म्मसे ही परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। ब्रह्माने सब लोगोंके विषयमें कृपा करके यह यशदायक, आयु बढ़ानेवाला और स्वर्ग-सुखकर महत् स्वस्त्ययन कहा है।

१०४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जेठा भाई कनिष्ठ भाइयोंसे कैसा व्यवहार करे और कनिष्ठोंका कैसा आचरण करना उचित है, वह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! तुम ज्येष्ठ [illegible] व्यवहार करते हो [illegible]

हो। हे भारत! गुरुके विषयमें शिष्योंको जैसा व्यवहार करना योग्य है, अकृतप्रज्ञ गुरुके निकट शिष्यगण उस प्रकार उपस्थित नहीं रह सकते। हे भारत! गुरुके लिये जैसी दीर्घ दर्शिता होनी चाहिये शिष्योंको भी वैसी ही दूरदर्शिताकी आवश्यकता होती है। गुरुके दोष देखनेके समय अन्धा होवे, अबुधपुरुष जड़ होके रहे उसमें यदि कुछ व्यतिक्रम रहे, तो उस विषयको टालके अन्य वार्त्ता करे। हे कौन्तेय! शत्रुगण भ्रातृभेदकी इच्छा करते हैं उनकी श्री देखकर उनका हृदय बिदीर्ण होता है, इसलिये वे भाइयोंमें फूट करादेते हैं। ज्येष्ठ चाहे वंशकी बृद्धि करे अथवा कुलका नाश करे; वह सब कुछ बिनष्ट कर सकता है, क्यों कि उसहीसे वंशकी उत्पत्ति होती है। जो ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंको ठगता है, वह जेठा नहीं है, वह अंशभागी नहीं होसकता, राजाओंको योग्य है, कि वैसे जेठेको शासित करें। प्रवञ्चक मनुष्य निःसन्देह पापलोकोंमें जाता है, ऐसा वर्णित है, कि बेतवृक्षके पुष्प सदृश पिताका वैसा पुत्र निरर्थक ही है। जिस बंशमें पापी मनुष्य जन्म लेता है, वहां सब अनर्थ हुआ करते हैं, वह अकीर्त्ति उत्पन्न करके कीर्त्ति लोप करता है। कुकर्म्मी सहोदरगण पैतृक अंश ग्रहण करनेके योग्य नहीं होते कनिष्ठोंको बिना हिस्सा दिये जेठा भाई कदापि दायविभाग न करे। प्रवासी पुरुष पैतृक धनमें हस्तक्षेप न करके निज जङ्घाश्रमसे उत्पन्न हुआ फलपाता है, अकाम मनुष्य स्वयं समाहित होनेके प्राप्त धनको दान करनेमें समर्थ नहीं होता, अविभक्त भाइयोंको भोजनादि तथा धनविभाग एक साथ करना योग्य है, पिता कदापि पुत्रोंको विषम भाग प्रदान न करे। जेठा भाई चाहे दुष्कृती हो अथवा सुकृती हो, कदापि उसको अवज्ञा न करनी चाहिये। स्त्री अथवा कनिष्ठ भ्राता यदि दुष्कृत कर्म्म करें, तौभी जिस भांति उनका कल्याण हो, वैसा कार्य्य करे। धर्म्म जाननेवाले पुरुष कल्याणको ही धर्म्म कहते हैं, दश आचार्य्योंसे उपाध्याय श्रेष्ठ है, दश उपाध्यायसे पिता श्रेष्ठ है और दश पितासे माता श्रेष्ठ कही गई है, माता गौरवके सहारे सारी पृथ्वीको अभिभव करती है। इसलिये माताके समान गुरु नहीं है, माताके गरीयसी होनेसे ही लोग उसका मान्य किया करते हैं। हे भारत! पिताके परलोकमें जानेपर जेठा भाई पितातुल्य है। क्यों कि वही कनिष्ठ भाइयोंका वृत्तिदाता है, वही इन्हें प्रतिपालन करता है, छोटे भाई बड़ेके वशवर्त्ती होके उसे नमस्कार करें और जैसे पिताके आसरे जीवन बिताते थे, वैसे ही जेठे भाईके अवलम्बसे जीवनका समय बितावें हे भारत! मातापिता इस शरीरको उत्पन्न करते हैं और आचार्य्यके शासन अनुसार जो उत्पत्ति होती है, वह सत्य, अजर तथा अमर है। हे भरतश्रेष्ठ! जेठी बहिन मातातुल्य और जेठे भाईकी भार्य्या भी मातृसदृश है, क्यों कि बाल्यावस्थामें उसके स्तनका भी दूध पीया जाता है।

१०५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, सब वर्णों तथा म्लेच्छोंको भी उपवास करनेकी मति देखता हूं, किन्तु मैं इसका कारण कुछ भी नहीं जानता, ब्राह्मण और क्षत्रियोंके विषयमें ही मैंने नियमाचरणकी विधि सुनी है। हे पितामह! परन्तु उन लोगोंको किस प्रकार उपवास करना चाहिये? हे राजन्! सबके ही नियम और उपवासके विषय वर्णन करो। हे तात! उपवासयुक्त मनुष्यकी कैसी गति प्राप्त होती है? उपवास परम पुण्य और उपवासही परम अवलम्ब है। हे नरश्रेष्ठ! इस लोकमें उपवास करनेसे क्या फल मिलता है? किसके सहारे

…मनुष्य अधर्म्मसे छूटता है ? हे भरतसत्तम ! …मनुष्य किस प्रकार पुण्यात्मा होता और स्वर्ग-…को पाता है ? हे नरनाथ ! उपवास करके …या दान किया जाता है ? जिस धर्म्मके सहारे …सुखदायक विषय प्राप्त होते हैं आप उसे …र्णन करिये ।

वैशम्पायन मुनि बोले, जब धर्म्मपुत्र …प्रश्न कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने ऐसा प्रश्न किया …धर्म्मतत्त्वके जाननेवाले शान्तनुनन्दन भीष्म …नसे कहने लगे ।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उपवा-…विषयमें जो सब गुण हैं, उस विषयमें मैंने यह …तन प्रबन्ध सुना था । हे भारत ! जैसा …मने तुमसे पूछा है, इस ही भांति मैंने पहले …पोधन अङ्गिरा ऋषिसे प्रश्न किया था । हे …रतसत्तम ! जब मैंने अग्निपुत्र अङ्गिरा ऋषिसे …पवित्र उपवास विषयमें प्रश्न किया, तब …होंने मेरे प्रश्नका उत्तर दिया ।

अङ्गिरा बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ कुरुनन्दन ! …ह्मणों और क्षत्रियोंके लिये त्रिरात्र उपवास …हित है, द्विरात्र, त्रिरात्र और एक रात्र भी …हित है, जो वैश्य और शूद्र मोहके वशमें …कर द्विरात्र अथवा त्रिरात्र उपवास करते हैं, …न्हें उससे कुछ भी फल नहीं मिलता । वैश्य …और शूद्रके लिये चतुर्थ भक्त क्षपण अर्थात् एक …रात्र उपवास कहा गया है और पहले …या दूसरे दिन एकबार भोजन करना विहित …, धर्म्मदर्शी धर्म्मज्ञ ऋषियोंने वैश्यों और शूद्रोंके …त्रिरात्र उपवासकी विधि नहीं कही है । … पञ्चमी, षष्ठी और पौर्णमासी तिथिमें … जितेन्द्रिय मनुष्य एक-भक्त-द्वारा … करनेसे क्षमावान, रूपवान और श्रुत-… हुआ करता है । … मनुष्य … [illegible] … [illegible] … [illegible]

ब्राह्मणोंको भोजन करावे । हे कुरुनन्दन ! कृष्णपक्षकी चतुर्द्दशी तिथिमें उपवास करनेसे मनुष्य व्याधिरहित तथा वीर्य्यवान होता है । मार्गशीर्ष महीनेमें जो पुरुष दिनमें एक बार भोजन करके महीना व्यतीत करता और भक्ति पूर्व्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह व्याधि तथा पापसे छूट जाता है । सर्व्वकल्याणमय तथा सर्व्वौषधियुक्त मनुष्य पूर्व्वोक्त तिथिमें उपवास करनेसे व्याधिरहित और वीर्य्यवान होके जन्मता है, वह कृषिभागी तथा अधिक धनधान्ययुक्त होता है । हे कौन्तेय ! जो लोग दिनमें एक बार खाके पूस महीना बिताते हैं, वे सुन्दर, दर्शनीय और यशभागी होते हैं । जो लोग माघ महीनेभर दिनमें एक बार भोजन करके समय व्यतीत करते हैं, वह लक्ष्मीयुक्त वंशमें स्वजनोंके बीच महत्व पाते हैं । फाल्गुन महीने भर जो लोग दिनमें एक बार भोजन करके समय बिताते हैं, वे स्त्रियोंके प्यारे होते और स्त्रियें उनके वशमें रहती हैं । जो लोग दिनमें एक बार भोजन करके चैत महीना बिताते हैं, वे सुवर्ण, मणि और मुक्तायुक्त महत्कुलमें जन्मते हैं । जो जितेन्द्रिय स्त्री अथवा पुरुष दिनमें एक बार भोजन करके वैशाख महीना व्यतीत करता है, उसे स्वजनोंमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है । जेठ महीनेमें जो लोग दिनमें एकबार भोजन करके समय बितानेवाले पुरुष वा स्त्री उत्तम अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होती है । जो लोग एकाहारी और अतन्द्रित … आषाढ़ महीना व्यतीत करते हैं, वे अधिक धनधान्य युक्त तथा … होते हैं । जो मनुष्य … एकबार भोजन करके … महीना बिताता है, … [illegible] … [illegible] … [illegible]

आश्विन महीना बिताता है, वह पतिव्रता स्त्री और बहुपुत्रयुक्त तथा बाहनानाढ्य होता है। कार्त्तिक महीनेमें जो मनुष्य एकाहारी होके रहता है, वह शूर बहुतसी स्त्रियोंसे युक्त और कीर्तिमान होता है। हे नरश्रेष्ठ महाराज! प्रति महीनेमें एकाहारी पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह कहा गया; अब तिथियोंके नियम सुनो। हे भारत! एक एक पक्ष बीतनेपर जो लोग भोजन करते हैं, वे गोधन, बहु पुत्र-युक्त तथा दीर्घायु होते हैं। बारह वर्ष-तक जो लोग महीने महीने त्रिरात्र व्रत करते हैं, उन्हें अनाविल, निःसपत्नी और गणाधिपत्य प्राप्त होता है। हे भरतश्रेष्ठ! प्रवृत्तिके वशवर्त्ती मनुष्योंको बारह वर्षतक इन नियमोंको प्रतिपालन करना चाहिये। हे नरनाथ! जो पुरुष भारसे सन्ध्यापर्य्यन्त भोजन करनेके अनन्तर जल नहीं पीता और अहिंसामें रत होके अग्निमें होम करता है, वह निःसन्देह छः वर्षके बीच सिद्ध होता है, वही अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है, वह रजोगुणसे रहित सुकृती मनुष्य अप्सराओंके नृत्यगीतयुक्त स्थानमें सहस्र स्त्रियोंसे घिरके क्रीड़ा करता है, तपाये हुए सुवर्ण सदृश प्रभायुक्त बिमानपर चढ़ता है और पूरे एक हजार वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है; अन्तमें पुण्यक्षीण होनेपर इस लोकमें आके महानुभावताको प्राप्त होता है। जो मनुष्य पूरे वर्ष भरतक एकाहार करता है, वह अतिरात्र यज्ञका फल भोग किया करता है और दश हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करके पुण्यक्षय होनेपर इसलोकमें आनेसे उसे बहुतसी सहायता मिलती है। जो लोग अहिंसामें रत, सत्यवादी जितेन्द्रिय होके सम्वत्सरके चतुर्थ भाग अर्थात् तीन महीनेतक एकाहारी होते हैं, वे वाजपेय यज्ञका फल भोगते और दश हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। हे कौन्तेय! दिनके छठवें भागमें भोजन करके जो मनुष्य एक वर्षतक समय बिताते हैं। उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वे चक्रवाकके द्वारा चलनेवाले बिमानपर चढ़के गमन करते हैं तथा चालीस हजार वर्षतक देवलोकमें परम सुखसे निवास किया करते हैं। हे महाराज! जो मनुष्य दिनके आठवें भागमें भोजन करके वर्षभर जीवित रहते हैं, वे गवामय यज्ञका फल पाते हैं, हंस सारसयुक्त बिमानपर चलते और पचास हजार वर्ष देवलोकमें प्रमुदित हुआ करते हैं। हे राजन्! एक पक्ष बीतनेपर दूसरे पक्षमें जो लोग भोजन किया करते हैं, उनका वर्षभरके बीच छः महीना अनशन व्रत होता है,—भगवान अङ्गिराने कहा है, कि ऐसे व्रतधारी पुरुष साठ हजार वर्षतक स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। हे नरनाथ! वे निद्रित होनेपर बीणा, बल्लकी और बांसुरीकी मधुरध्वनिके सहारे जागते हैं। हे महाराज! जो लोग वर्ष भरके बीच एक महीनेतक केवल जल पीके जीवन धारण करते हैं, वे विश्वजित यज्ञका फल पाते हैं और सिंह व्याघ्रयुक्त बिमानके द्वारा चलते हैं तथा सत्तर हजार वर्षतक सुरलोकमें प्रमुदित होते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! एक महीनेसे अधिक उपवास करनेकी विधि नहीं है। हे पार्थ! धर्म्म जाननेवाले पुरुष अनशन व्रत किया करते हैं, जो पुरुष अनार्त्त और व्याधिरहित होके अनशन व्रत ग्रहण करता है, उसे निःसन्देह पद पदमें यज्ञका फल मिलता है, वह हंसयुक्त बिमानके सहारे सुरलोकमें भ्रमण करता है, सौ हजार वर्षतक देवलोकमें प्रभु होके आनन्दित होता है, एक सौ अप्सरा उस पुरुषको प्रमुदित करती हैं। आर्त्त अथवा व्याधिग्रस्त मनुष्य यदि उपवास करे, तो वह सौ हजार वर्षतक स्वर्गमें आनन्द भोगता, निद्रित होके काञ्ची और नूपरके शब्दसे जाग्रत होता और सहस्र हंसयुक्त बिमानके सहारे गमन करता है।

रहता है। वह स्वर्ग में जाके एक सौ स्त्रियोंसे युक्त उत्तम मनोहर स्थानमें रमण करता है। अनशन व्रतके द्वारा क्षीण लोगोंको आप्यायन होती गई है, घायल पुरुषके घाव आरोग्य हुए होते गये है। उपवास व्याधियुक्त पुरुषके लिये परम पाथयो है, क्रुद्ध पुरुषोंको प्रसन्न करने-वाला, पद और मानका हेतु तथा दुःखित पुरुषोंके दुःख दूर करनेका उपायस्वरूप है। सुख-सम्भोगके अभिलाषी क्षीणत्वादि अवस्था युक्त स्वर्ग काम मनुष्योंको इन आप्यायन आदि विषयोंमें अभिरुचि नहीं होती, बल्कि वैसे पुरुष अनशन आदि दुःखसहिष्णु होके निज तपस्याकी वृद्धि करते हैं, इसलिये वे पवित्र पुरुष अकाम और अलंकृत होकर एक सौ स्त्रियोंसे युक्त सुवरण सदृश विमानमें विहार किया करते हैं। स्वस्थ, सफल, सङ्कल्पसुखी और निष्पाप पुरुष अनशन व्रत करके उसका फल भोगते हैं वे लोग बाल सूर्य्य तथा सुवर्णसदृश प्रभायुक्त वैदूर्य्य मुक्ताखचित वीणा, पखावजकी ध्वनिसम्पन्न पताका, दीपिका और दिव्य घण्टा शब्दसे परिपूरित एक हजार स्त्रियोंसे भरे हुए विमानमें सुखभोग किया करते हैं। हे पाण्डव! उनके शरीरमें जितने रोए रहते हैं, उतने हजार वर्ष तक वे सुरपुरमें प्रमुदित होके वास करते हैं। वेदसे श्रेष्ठ शास्त्र नहीं है, माताके समान गुरु नहीं है, धर्म्मसे बढ़के परम लाभ कुछ भी नहीं है, गङ्गाके समान नदी नहीं और उपवाससे बढ़के दूसरी श्रेष्ठ तपस्या कुछ भी नहीं है। जैसे इस लोक और स्वर्गलोकमें ब्राह्मणके समान पावन अन्य कोई नहीं है, वैसे ही अनशनके समान तप दूसरा कुछ भी नहीं है। देवताओंने विधिपूर्वक तपस्या करके त्रिदिव- [illegible] ऋषियोंने भी उपवाससे परम [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, [illegible] उन्हें ब्राह्मण पद मिला। च्यवन, जमदग्नि, वशिष्ठ, गौतम और भृगु प्रभृति क्षमाशील महर्षिवृन्द स्वर्गलोकमें गये हैं। पहिले समयमें अङ्गिराने यह विषय महर्षियोंके बीच कहा था, जो लोग सदा इसे प्रदर्शित करते हैं, वे दुःख नहीं पाते।

हे कौन्तेय! अङ्गिरा महर्षिके द्वारा यह विधि प्रचलित हुई है, जो मनुष्य सदा इसे पढ़ते वा सुनते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। जो उत्तम पुरुष इस विषयको सुनते वा पढ़ते हैं। सब सङ्कटोंसे छूट जाते हैं, उनका चित्त पापकर्म्ममें अभिभूत नहीं होता, वे बियोनिज यक्षादिकोंकी बोली जान सकते और निश्चय ही कीर्ति लाभ करते हैं।

१०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! महानुभाव ब्रह्माके द्वारा विधिपूर्व्वक सब यज्ञ कहे गये हैं और इस लोक तथा परलोकमें यज्ञोंके फल सब प्रकारसे वर्णित हुए हैं; परन्तु दरिद्र लोग उन यज्ञोंके फलको पानेमें समर्थ नहीं होते, क्यों कि यज्ञोंमें बहुतसे उपकरण तथा यज्ञकी सामग्री लानी होती है। हे पितामह! उसका फल राजा अथवा राजत्व ही पा सकते हैं, धनरहित, गुणहीन अकेले और सहायता-वर्ज्जित मनुष्योंके द्वारा यज्ञ नहीं हो सकता। हे पितामह! इसलिये जो विधि सदा दरिद्रोंके करने योग्य और इन सब यज्ञफलोंके तुल्य हो, उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! [illegible] है, कि उपवास [illegible] [illegible] सदृश है; इसलिये तुम उसे सुनो। [illegible] [illegible] करते हुए [illegible] और [illegible] [illegible] करके [illegible] [illegible] नहीं करते, [illegible]

होते हैं; वे मनुष्य तपाये हुए सुवर्णसदृश विमान पाते और देवस्त्रियोंके नृत्यगीत तथा बाजे युक्त स्थानमें ब्रह्मलोक वा अग्निके समीप सौ करोड़ वर्षतक निवास करते हैं। जो लोग सदा धर्मपत्नीमें रत रहके तीन वर्षतक क्रमसे दिनमें एक बार भोजन करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञ और इन्द्रके प्रिय बहुतसे सुवर्णके यज्ञोंका फल पाते हैं, वे सत्यवादी, दानशील, ब्रह्मनिष्ठ, अनसूयक, दमयुक्त और जितक्रोध होके परम गति प्राप्त करते हैं, व्रत पूरा होनेपर पाण्डुर-प्रभा और हंसचिन्हयुक्त विमानमें दो सौ करोड़ वर्षतक अप्सराओंके सङ्ग निवास करते हैं। जो लोग अग्निमें होम करते हुए एक वर्षके बीच एक रात्रि उपवास करके दूसरे दिन एक बार भोजन करते हैं और प्रतिदिन अग्निकर्म्ममें रत होके भोरको जागते हैं, वे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते हैं और इन्द्र लोकमें बारा-ङ्गनाओंके बीच घिरके हंस-सारसयुक्त विमा-नमें निवास किया करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए तीसरे दिन केवल एक बार भोजन करते तथा प्रतिदिन अग्निहोत्र करके भोरको जाग्रत होते हैं, वे अतिरात्र यज्ञका फल पाते हैं, उन मनुष्योंको मयूर हंसयुक्त विमान मिलता है और सप्तर्षि-योंके लोकमें सदा अप्सराओंके सङ्ग निवास किया करते हैं। तीन सौ करोड़ वर्षके अन-न्तर वहांसे उनकी पुनरावृत्ति होती, इसे पण्डित लोग जानते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए चौथे दिन एकबार भोजन करते हैं, उन्हें वाजपेय यज्ञका उत्तम फल मिलता है, वे इन्द्रकन्याके द्वारा अधिरूढ़ विमान पाके समुद्रके पार इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं, और सदा देवराजकी क्रीड़ा अवलोकन करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए पांचवें दिन एक बार भोजन करते हैं और अलुब्ध, सत्यवादी, ब्रह्मनिष्ठ, हिंसारहित, असूया शून्य औ निष्पाप होते हैं। सुवर्णमय हंस-चिन्हवाले सू किरण सदृश प्रभासे युक्त पाण्डुरवर्ण गृहसह विमानमें चढ़ते और एकावन सौ पद्म वर्षत उस ही स्थानमें सुखसे वास करते हैं। लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति दे हुए सदा मननशील होके छठें दिन भोज करते हैं और सदा त्रिकाल स्नान करनेवा ब्रह्मचारी और असूयारहित हुआ करते वे गोमेध यज्ञका फल पाते हैं। वे अग्निज्व लाके सदृश प्रभायुक्त हंसबर्हिण युक्त सुवर्णम उत्तम विमान पाते हैं और अप्सराओंक गोदीमें सोके नूपुर-मेखलाकी ध्वनिसे जाग्र होते हैं, वे तीन तीन हजार तीन सौके अट्ठारह पद्म, दो महापद्म, पांच सौ अयुत औ सौ सौ ऋचोंके चमड़ोंमें जितने रोएं र हैं, उतने वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास कर हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहु देते हुए सातवें दिन एक बार भोजन कर और चुप होके ब्रह्मचर्य्य व्रत करते हैं त स्रक्, चन्दन, मधु और मांस परित्याग कर हैं, वे देवलोकके बीच इन्द्रलोकमें जाते हैं औ उन स्थानोंमें पुरुष सिद्धार्थ होके देवकन्या पूजित होते हैं, वेही मनुष्य बहुतसे र यज्ञका फल पाते हैं और पूर्व्वोक्त लो असंख्य समय तक निवास किया करते हैं। लोग देवकार्य्यमें रत होकर अग्निमें एक तक आहुति देते हुए क्षमाशील होके आ दिनमें एकबार भोजन करते हैं, वे पुण्ड यज्ञका फल पाते और पद्मवर्ण सदृश विमा चढ़ते तथा उन्हें निःसन्देह कृष्णवर्ण, कनक श्यामाङ्गी युवा सुन्दरी स्त्रियें प्राप्त होती जो लोग एक वर्षतक प्रतिदिन अग्निमें आ देते हुए नवें दिन एक बार भोजन करते सहस्र अश्वमेधका फल पाते हैं, और पुण्डरीक सदृश प्रकाशमान विमान मिलता

[illegible]

[illegible] नहीं करते, माता पिताके हित को, [illegible] नहीं छोडते, वे निरन्तर [illegible] इस महादेवके समीप जाते और [illegible] फल पाते हैं तथा [illegible] सन्मुख पहुंचा हुआ देखते हैं और [illegible] [illegible] हैं। वे प्रलयकालमें [illegible] [illegible] अनन्त समय तक [illegible] करोड़ और दो सौ करोड़ [illegible] [illegible] महादेवको प्रणाम [illegible], महादेव [illegible]

[illegible]

निनादित, दिव्यगुणयुक्त बिजलीकी प्रभासदृश विमानमें चढ़ते हैं, वे खड्ग और कुञ्जर वाहनसे युक्त होकर उस दिव्य यानमें सहस्र युगतक वास किया करते हैं। जो लोग एक बर्षतक सदा सोलहवें दिन एकबार भोजन करते हैं, उन्हें सोमयज्ञका फल मिलता है, वे लोग सोमकन्यागणोंके स्थानमें सदा निवास किया करते हैं, वे सौम्यगन्धसे अनुलिप्त और कामचारी गतिसे युक्त होते हैं। जब वे विमान पर चढ़ते हैं, तब उत्तम दर्शनीय मीठे बचनवाली स्त्रिया उनकी पूजा करती हैं, वे बहुतसे कामभोगके द्वारा सेवित होते हैं, ऐसे व्रतपरायण मनुष्य एक सौ दश पद्म परिमित महाकल्प और चारों आवर्त्तन परिमित समयतक फल भोग करते हैं जो लोग एक बर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए सत्तरहवा दिन उपस्थित होनेपर घृतप्राशन करते हैं, वे बरुण, इन्द्र और रौद्रलोकमें अधिरोहण किया करते हैं और वेही पुरुष मारुत उशनस तथा ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, वहांपर देवकन्यागण आसन देके उनकी सेवा करती हैं; भूलोक, भुवर्लोक और देवर्षि बिश्वरूपका दर्शन करते हैं। वहांपर बत्तीस भांतिकी रूपधारिणी दर्शनीय मृदु भली भांति अलंकृत देवाधिदेवकी कुमारीगण उनके सङ्ग क्रीड़ा करती हैं, हे प्रभु। जबतक काल आदित्य और चन्द्रमा आकाशमण्डलमें बिचरते हैं, तबतक उक्त बीर सुधा तथा देवभोज्य अमृतरस पीते हुए रुद्रलोकमें निवास किया करते हैं। जो लोग बारह महीनेतक सदा एकबार भोजन करते हैं, वे सातो लोकोंका दर्शन किया करते हैं, देवकन्याधिरूढ़ भ्राजमान उत्तम रीतिसे अलंकृत बन्दिजनोंके शब्दसे युक्त रथ उनके पीछे पीछे चलते हैं, वे अत्यन्त सुखी होके सिंह-व्याघ्र युक्त बादलसदृश शब्दसे परिपूरित उत्तम दिव्य बिमानपर चढ़ते हैं। वहांपर वे सहस्र कल्पतक कन्यागणोंके सङ्ग प्रमुदित हुआ करते हैं और अमृतसदृश उत्तम अमृत रस भोजन करते हैं। जो लोग सदा बारह महीनेतक उन्नीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, वे सप्तलोकोंका देखनेमें समर्थ होते हैं और अप्सराओंसे सेवित उत्तम स्थान पाते हैं, उन्हें गन्धर्व्वोंके द्वारा सूर्य्यवर्च्चस विमान मिलता है,वह उसपर वे शोक रहित दिव्यास्वर धारी तथा श्रीमान होकर शौ सौ अयुत परिमित समयतक देवताओंकी बाराङ्गनाओंके सहित प्रमुदित हुआ करते हैं। जो लोग बारह महीनेतक सत्यवादी घृतव्रती अमांसाशी ब्रह्मचारी और सब जीवोंके हितमें रत होके बीसवा दिन पूरा होनेपर एक बार भोजन करते हैं, वे आदित्यगणोंके बिपुल रमणीय लोकोंमें सुख भोग किया करते हैं। दिव्य मालाधारी गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द तथा दिव्य यानके विमान उनके पीछे पीछे चलते है। जो लोग एक बर्षतक सदा अग्निमें आहुति देते हुए बाइसवें दिन एक बार भोजन करते हैं और अहिंसामें रत धीमान सत्यवादी तथा अनसूयक हुआ करते है, वे सूर्य्यके सदृश प्रभायुक्त होके बसुलोकको पाते है, वे कामचारी सुधाहारी होकर श्रेष्ठ बिमानमें चढ़ते और दिव्याभरणोंसे बिभूषित होकर देवकन्याओंके सङ्ग क्रीड़ा करते है, जो मिताहारी और जितेन्द्रिय पुरुष बारह महीनेतक सदा तेइसवें दिन एक बार भोजन करता है, वह वायुलोक भार्गवलोक और रुद्रलोकमें गमन किया करता है, वह कामचारी और कामगामी अप्सराओंसे पूजित और दिव्याभरण भूषित बिबिध गुणोंसे युक्त बिमानपर चढ़के देवकन्याओंके सहित क्रीड़ा करता है। जो पुरुष बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देतेहुए चौबीसवा दिन उपस्थित होनेपर घृतप्राशन करता है, वह दिव्य माला दिव्याम्बर धारण करके तथा दिव्यगन्धोंसेयुक्त होकर आदित्यगणोंके निवासस्थानमें प्रमुदित

होके सदा वास करता है, हंसयुक्त मनोहर दिव्य विमानमें सहस्र और अयुत देवकन्याओंके सहित क्रीडा करता है। जो लोग बारह महीनेतक सदा पच्चीसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे उत्तम विमानमें चढ़ते और सिंहव्याघ्रयुक्त बादलसदृश शब्द तथा आनन्दवर्द्धक ध्वनिसे युक्त देवकन्याओंसे परिपूर्ण सौ सौ ... सुवर्णके रथ उनका अनुगमन करते हैं, वे ... मनोहर उत्तम दिव्य विमानमें चढके ... सौ सौ स्त्रियोंसे परिपूरित स्थानमें अमृतसदृश सुधारस पीते हुए सहस्र कल्पतक निवास करते हैं। जो लोग सदा संयताहारी जितेन्द्रिय और रागरहित होके एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए छब्बीसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे सब रत्नोंसे अलंकृत दिव्य स्फटिक विमानके द्वारा सप्त मरुत और अष्टवसुके ... उपभोग करते हैं दिव्य तेजसे युक्त होकर देवपरिमाणसे दो हजार युगतक गन्धर्व्व और अप्सराओंसे पूजित होकर प्रमुदित रहते हैं। जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए सत्ताईसवें दिन सदा एकबार भोजन करते हैं, वे विपुल फलवाले देवलोकमें ... करते हैं वहां अमृताशी होकर ... करते हुए तृष्णारहित होके प्रमुदित होते हैं। हे महाराज! वे दिव्य शरीरधारी मनुष्य ... विमानमें चढके देवर्षि चरित तथा राज... ... लोकोंमें गमन करते हैं, वे ... स्त्रियोंके सहित मदमत्त होके रमण करते हुए तीन सहस्र युग परिमित कल्पतक ... निवास किया करते हैं। जो लोग जित... और जितेन्द्रिय होके बारह महीनेतक ... अट्ठाईसवें दिन एकबार भोजन करते हैं ... ...

वाली सुकुमारी स्त्रियें सूर्य्यसदृश कामगामी मनोरम दिव्य विमानमें एक सौ अयुत कल्प परिमित वर्षतक उनका मन प्रसन्न करती हैं। जो लोग सत्यव्रत परायण होके बारह महीनेतक सदा उन्तीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, उनके निमित्त देवर्षि और राजर्षियोंसे पूजित दिव्य पवित्रलोक तैयार रहते हैं, वे सब रत्नोंसे विभूषित अप्सराओं और गन्धर्व्वोंके गीतसे युक्त सूर्य्य तथा चन्द्रमासदृश सुवर्णमय दिव्य विमानमें चढते हैं, वहां दिव्याभरण भूषित मनको प्रसन्न करनेवाली मदविह्वल कोमलाङ्गी पवित्र स्त्रियें उन्हें आनन्दित करती हैं। वे भोगवान तेजस्वी अग्निप्रभासदृश मूर्त्ति धारण करके देवताओंकी भांति प्रकाशमान दिव्य रूपसे वसुगण मरुद्गण, साध्य, रुद्रगणके लोक और ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जो शमगुणसे युक्त पुरुष एक वर्षतक सदा एक मास बीतनेपर एक बार भोजन करता है, उसे ब्रह्मलोक मिलता है, वह सुधारस पीके श्रीमान् और सर्व्वजन मनोहर हुआ करता है। तेज श्री और शोभासे सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होता है, वह दिव्य मालाम्बरधारी दिव्य गन्धयुक्त सुखमें रत योगी दुःखरहित ... विमानमें ... स्वयं प्रभायुक्त स्त्रियोंके सहित विमानमें विराजता है और रुद्र तथा देवर्षिकन्याओंसे सदा सब भांति पूजित होता है। ... ... स्त्रियोंसे ... आदि तथा ... भांतिसे ... ...

वर्षतक ब्रह्मलोकमें वास वर्णित है, वर्षाकालमें आकाशसे जितनी जलको बूंद गिरती हैं, उतने समयतक वह अमरप्रभा अतिक्रम करके सुरपुरमें वास करता है। महीनेभर उपवास करनेवाला मनुष्य दश वर्षतक ऐसे ही कठोर व्रत प्रतिपालन करते हुए महर्षिल पद पाके सशरीरसे ही उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें गमन किया करता है। मननशील, दान्त, क्रोधविजयी; सौ सौ जित शिश्नोदर, तीनों अग्निमें आहुति देनेवाले, सदा सन्ध्या उपासना करनेवाले जो मनुष्य इस प्रकारके बहुतसे नियमोंसे पवित्र होके महीनेके शेषमें एक बार भोजन करते हैं, वे आकाशके अवकाशकी भांति निर्म्मल शीलसम्पन्न और सूर्य्यकान्ति सदृश तेजस्वी पुरुष सशरीर सुरपुरमें जाके देवताओंकी भांति इच्छानुसार पवित्र स्वर्गसुख उपभोग करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! यह तुम्हारे समीप उपवास फलात्मक श्रेष्ठ यज्ञकी विधि विस्तारपूर्व्वक कही गई। हे पार्थ! दरिद्र मनुष्य इन्हीं उपवासोंको करके यज्ञका फल पाते हैं तथा उन्हें परम गति मिलती है। हे भरतसत्तम! तुम देव और द्विजोंकी पूजामें रत हो, इसी लिये तुम्हारे समीप यह उपवासकी विधि विस्तारपूर्व्वक वर्णित हुई। हे भारत! सदा अप्रमत्त, पवित्रतायुक्त, दम्भद्रोहसे निवृत्त, कृत बुद्धि, अचञ्चल, असवधानरहित महान् भावोंके समीप इस विषयमें तुम्हें सन्देह न होवे।

१०७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! सब तीर्थोंके बीच जो श्रेष्ठ है और जिससे पवित्रता होती हैं, उसे आप मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, सब तीर्थ मनीषियोंके लिये फलदायक हैं, उनके बीच जो पवित्र तीर्थ है, समाहित होके उसे सुनो। अपरिच्छिन्न विमल शुद्ध सत्यज जल और धैर्य्यरूपी तालाव युक्त मानसतीर्थमें शाश्वत सत्य अवलम्बन करके स्नान करना उचित है। अनर्थित्व, आर्ज्जव, मार्द्दव, सब जीवोंकी अहिंसा, अनृशंसता और शमदम, ही पवित्र तीर्थ है। जो लोग ममतारहित निरहङ्कारी, सुख दुःख आदि द्वन्द्व सहनेवाले और निष्परिग्रह हैं तथा जो लोग भिक्षान्न भोजन करते हुए जीवन विताते हैं, वेही पवित्र तीर्थस्वरूप हैं। अहंज्ञानसे रहित तत्त्ववित पुरुषश्रेष्ठ तीर्थ कहके वर्णित होते हैं; स समदर्शन ही पवित्रताका लक्षण है। जि चित्तसे रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण नि हुआ है, जो लोग शौचाशौच समायुक्त स्वक निभानेमें सदा तत्पर, सर्व्वत्यागमें सब भा अनुरक्त, सर्व्वज्ञ, सर्व्वदर्शी और शौचके सद जिनमें पवित्रता उत्पन्न हुई है, वेही तीर्थ त वेही पवित्र हैं। जलसे शरीर धोनेवाले पु षको स्नात नहीं कहा जाता, जो लोग द स्नात हैं, उन्होंने ही स्नान किया है, वे बाहर और भीतरसे पवित्र हैं। जो लोग अती विषयोंमें अनपेक्ष, प्राप्तविषयमें ममतारहि तथा जिन्हें स्पृहा उत्पन्न नहीं होती, वे परम पवित्र है। प्रज्ञान ही शरीरका विशे शौच है और निष्किञ्चनता ही मनकी प्रसन्नत है। चरित्रशुद्धि, मनशुद्धि और तीर्थशुद्धि, इन तीनों शुद्धियोंकी अपेक्षा ज्ञानसे उत्पन्न हुई शुद्धि ही परम पवित्र मानी गई है। ज्ञानसे निर्म्मल हुआ मन और ब्रह्मज्ञान जलके सहारे जो लोग मानस तीर्थमें स्नान करते हैं, उनका नहाना ही स्नान है, तत्त्वदर्शियोंकी ऐसा ही स्नान अभिमत है। शीलसम्पन्न, नियत भावसे समाहित गुणवान मनुष्य निश्चय ही सदा पवित्र हैं। हे भारत! ये सब शरीरस्थ तीर्थ कहे गये हैं, पृथ्वीके बीच जो सब पवित्र तीर्थ हैं, उसे भी सुनो। जैसे शरीरके अवयव पवित्र रूपसे वर्णित हुए हैं, वैसे ही पृथ्वीके सब अंश और जल

[illegible] कहे गये हैं। जो लोग तीर्थोंमें [illegible] तीर्थोंमें स्नान और पितृतर्पण करते [illegible] वे तीर्थोंमें पाप धोके स्वर्गमें ही सुखपूर्व्वक [illegible] किया करते हैं। साधुओंके संसर्ग तथा [illegible] और जलके तेजसे सहारे तीर्थ-सेवी मनुष्य [illegible] पुण्यभागी होते हैं। मनके तीर्थके [illegible] पृथ्वीके तीर्थ स्वतन्त्र हैं, जो लोग [illegible] तीर्थोंमें स्नान करते हैं, वे शीघ्र ही सिद्ध [illegible] हैं। जैसे क्रियारहित बल और बलरहित क्रिया इस लोकमें कार्य्य साधन करनेमें समर्थ [illegible] होती, परन्तु दोनोंके मिलनेपर कार्य्य [illegible] होता है, वैसे ही शरीर शौच और तीर्थ [illegible] पवित्र मनुष्यको दो प्रकारकी [illegible] शौचरूपी सिद्धि प्राप्त होती है।

१०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो सब उपवासोंके बीच [illegible] कारी, महत् फलजनक और लोकस- [illegible] संशयरहित हो, उसे ही आप मेरे समीप [illegible] करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज। स्वयम्भू ने स्वयं [illegible] वर्णन किया है, जिसे करनेसे मनुष्योंको [illegible] प्राप्त होती है उसका विषय सुनो। [illegible] महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र [illegible] पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल [illegible] है, तथा जो लोग पूजा करते हैं, उनके [illegible] । [illegible] पौष महीनेमें नारा- [illegible] पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल [illegible] है और परम सिद्धि प्राप्त होती है। [illegible] महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र [illegible] [illegible]

लोकमें गमन किया करते हैं। चैत्र महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र विष्णुको स्मरण करते हुए उनकी पूजा करते हैं, वे पुण्डरीक यज्ञका फल पाके देवलोकमें जाते हैं। वैसाख महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग मधुसूदनकी पूजा करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते और सोमलोकमें गमन किया करते हैं। ज्येष्ठ महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग अहोरात्र त्रिविक्रमकी पूजा करते हैं, वे गोमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा प्रमुदित हुआ करते हैं। आषाढ़ महीनेकी द्वादशीको जो लोग वामनदेवकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य नरमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा आनन्दित हुआ करते हैं। सावन महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र श्रीधरकी पूजा करते हैं, वे पञ्च यज्ञका फल पाके देवलोकमें प्रमुदित होते हैं। भादों महीनेकी द्वादशीमें जो लोग हृषीकेशकी पूजा करते हैं, वे सौत्रामणि यज्ञका फल पाके पवित्रचित्त होते हैं। आश्विन महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग माधवकी पूजा करते हैं, वे निःसन्देह सहस्र गोदानका फल पाते हैं। कार्त्तिक महीनेकी द्वादशी तिथिमें दामोदरकी पूजा करनेसे सब यज्ञोंके पवित्र फल प्राप्त होते हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। जो लोग इसी प्रकार [illegible] हृषीकेशकी पूजा करते हैं, वे [illegible] पाते तथा उन्हें [illegible] प्राप्त [illegible] पूजा [illegible] हैं, वे [illegible] [illegible]

[illegible]

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने शरशय्याशायी कुरुपितामह बूढ़े भीष्मके निकट जाके फिर प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले, अङ्ग लोगोंको रूप, सौभाग्य और प्रियत्व किस प्रकार हुआ करता है तथा धर्म्मार्थयुक्त पुरुष किसभांति सुखभागी होता है?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्लप्रतिपदामें मूल नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर निज देवताके सहित मूल-नक्षत्रका-चन्द्रमाके अङ्ग दो पद कल्पना करे और रोहिणी नक्षत्रके सहित चन्द्रमाको जङ्घा कल्पना करे। अश्विनी नक्षत्रके सहित दोनों सक्थि; पूर्व्वाषाढा और उत्तराषाढाके सहित दोनों ऊरुस्तम्भ; उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रके सहित कटिकी कल्पना करे। पूर्व्व और उत्तर भाद्रपदके सहित नाभी; रेवती नक्षत्रके सहित दोनों नेत्र, धनिष्ठानक्षत्रके सहित पीठ, अनुराधा नक्षत्रके सहित उदर, विशाखा नक्षत्रके सहित दोनों भुजा और हस्त नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर दोनों हाथ निर्देश करे। हे महाराज! पुनर्व्वसु नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका सम्बन्ध होनेपर अङ्गुलियें और अश्लेषा नक्षत्रके योगसे नखोंकी कल्पना करे। हे राजेन्द्र! ज्येष्ठा नक्षत्रके योगसे ग्रीवा और श्रवण नक्षत्रके संयोगसे दोनों कान, पुष्य नक्षत्रके योगसे नासिका, मृगशिरा नक्षत्रके योगसे दोनों नेत्र और चित्रा नक्षत्रके सहित ललाटकी कल्पना करे। भरणी नक्षत्रके योगसे सिर और आर्द्रा नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर उसके केशोंको कल्पना करे। हे नरनाथ! इस चन्द्रव्रतके समाप्त होनेपर वेदपारग ब्राह्मणोंको घृत दान करे, इस प्रकार व्रत करनेसे मनुष्य सुभग दर्शनीय तथा ज्ञानभागी होकर जन्मता है और पूर्णिमाके चन्द्रमा सदृश परिपूर्णाङ्ग हुआ करता है।

११० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्रविशारद पितामह! मनुष्योंकी श्रेष्ठ संसारविधि जाननेकी इच्छा करता हूं। हे राजेन्द्र नरपाल! पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको किस प्रकार उत्तम व्यवहार करनेसे श्रेष्ठ स्वर्ग अथवा नरक प्राप्त होता है पुरुष काष्ठ और लोष्ट्रसदृश शरीरको त्याग परलोकमें जाता है, तब उस समय कौन उनः अनुगमन किया करता है?

भीष्म बोले, ये उदार बुद्धिशक्तियुक्त बृहस्पति आरहे हैं, इन्हीं महाभागसे यह सनातन गोपनीय विषय पूछो। इस समय इनके अतिरिक्त कोई भी यह विषय नहीं कह सकता, बृहस्पतिके समान दूसरा वक्ता कहीं भी विद्यमान नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिर और भीष्म इसी प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उसी समय पवित्र-चित्तवाले बृहस्पति स्वर्गसे उतरके आये। अनन्तर धृतराष्ट्र आदि राजाओंके सहित सब सभासदोंने उठके उनकी अनुपम पूजा की। तब धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भगवान् बृहस्पतिके निकट जाके न्यायपूर्व्वक यथार्थ रीतिसे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्रविशारद सर्व्व-धर्म्मज्ञ भगवन्! पिता, माता, पुत्र, गुरु, स्वजन, सम्बन्धी और मित्रमण्डलीके बीच मनुष्योंका सहाय कौन है? पुरुष काष्ठ और लोष्ट्रसदृश मृत शरीरको परित्याग करके गमन करता है तब परलोकमें कौन उसका अनुगमन किया करता है?

बृहस्पति बोले, हे महाराज! पुरुष अकेला ही जन्मता और एकला ही मरता है, एकला ही क्लेशोंसे पार होता और अकेले ही दुः ही भोगने पड़ते हैं। पिता, माता, पुत्र, मित्र, भ्राता, गुरु, स्वजन और सम्बन्धियोंमेंसे कोई भी इस सहाय नहीं होता। पुरुष काष्ठ और लोष्ट्रसमान शरीर त्यागके मुहूर्त्त भरतक मानो रोदन कर

धर्मसे विमुख होकर चला जाता है, तब अकेला धर्म ही उस पिता माताके परित्यक्त पुरुषका अनुगमन करता है, इसलिये धर्म्म ही पुरुषोंका सहाय है, धर्म्मकी ही मनुष्योंको सदा सेवा करना उचित है। धर्म्मयुक्त प्राणियोंको स्वर्गमें श्रेष्ठ गति मिलती है और अधर्म्मयुक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। इसलिये पण्डित पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनसे धर्म्मकी सेवा करे। अकेला धर्म्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहाय होता है; अल्प बुद्धिवाले मनुष्य पराये धनके लोभसे मोहित होके लोभ, मोह, अनुक्रोश और भय निबन्धनसे अकार्योंको किया करते हैं; धर्म, अर्थ और काम ये तीनों जीवित कालके फल हैं, इसलिये अधर्म्मको त्यागके इन त्रिवर्गोंको प्राप्त करना उचित है।

युधिष्ठिर बोले, आपके समीप मैंने धर्म्मयुक्त परम हितकर वचन सुना, अब शरीरकी अवस्था जाननेके लिये अत्यन्त अभिलाष हुई है। मनुष्योंका मृत शरीर सूक्ष्म रीतिसे अव्यक्तताको प्राप्त होनेसे नयनगोचर नहीं होता, तब धर्म किस प्रकार उसका अनुगामी होता है?

बृहस्पति बोले, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, बुद्धि और आत्मा तथा ... रात्रि और दिन, ... इस ... अवलोकन करते हैं, ये सब धर्म और ... अनुगामी होते हैं। हे महाद्युतिमान् ... त्वचा, हड्डी, मांस, शुक्र और रुधिर, ... रहित शरीरको छोड़ देते हैं, अनन्तर ... और दूसरा शरीर धारण करता है, ... इस ... देवता ... कर्मोंको देखते हैं। ... और परलोकमें ... और ...

... [illegible]

वीर्य्य प्रकट होता है ? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

बृहस्पति बोले, हे नरनाथ! ... अन्न भक्षण किया जाता है, शरीरमें रहनेवाले देवगण, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और छठवें मनके सन्तुष्ट होनेपर वही भोजन किया हुआ अन्न महत् वीर्य्यस्वरूप होता है। हे राजन्! अनन्तर स्त्री पुरुषोंके संयोगसे गर्भ उत्पन्न हुआ करता है। यह सब तुम्हारे समीप कहा गया, फिर क्या सुननेकी इच्छा है?

युधिष्ठिर बोले, जिस प्रकार गर्भ उत्पन्न होता है, वह आपके द्वारा वर्णित हुआ; अब जिस भांति पुरुषकी उत्पत्ति होती है, उसे कहिये।

बृहस्पति बोले, उत्पत्तियुक्त पुरुष पञ्चभूतोंके गुणोंसे अभिभूत होता है और उन्हीं संयुक्त तत्त्वोंसे अपरागति प्राप्त हुआ करता है अर्थात् तदात्माभिमान रूप आभास ... सर्व्वभूतस्वरूप होकर कर्त्तृत्वादि ... होता है, उस समय पञ्चतत्त्वोंके देवता ... शुभाशुभ कर्म्मोंको देखते हैं। फिर कौनसा विषय सुननेकी इच्छा है?

युधिष्ठिर बोले, हे भगवन्! ... और ... परित्याग करनेसे ... होकर वह और किस स्थानमें रहके सुख दुःख भोग करता है?

बृहस्पति बोले, ... [illegible]

प्रवृत्त होता है। जो जीव अधर्म्मयुक्त हैं, वे यमलोकमें जाके दुःखके सहित तिर्य्यक्योनिमें जन्मते हैं। मोहयुक्त जीव इस लोकमें जिन कर्म्मोंके सहारे जिन योनियोंमें उत्पन्न हुआ करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो। इतिहासके सहित शास्त्रों और वेदोंमें यह वर्णित है, कि मर्त्यलोकवासी जीव घोर यमपुरीमें गमन करते हैं। हे पृथ्वीनाथ। वहांपर देवलोकसदृश पवित्रस्थान विद्यमान हैं, वहां तिर्य्यक्योनिमें उत्पन्न हुए जीव नहीं जासकते; इसके अतिरिक्त सब जीवोंकी ही उस स्थानमें गति हुआ करती है। ब्रह्मलोकसदृश दिव्य यमभवनमें जीव सदा कर्म्मगुणोंसे बद्ध होकर विविध दुःख भोग करता है। जैसे भाव और कर्म्मोंसे पुरुषकी घोर कठोर गति प्राप्त होती है, इसके अनन्तर मैं तुमसे वह विषय कहता हूं। ब्राह्मण यदि चारों वेदोंको पढ़के मोहवश पतित पुरुषसे प्रतिग्रह लेवे, तो वह गर्दभयोनिमें जन्मता है। हे भारत! वह गधा होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, गधा मरनेपर बलवान बैल होता है, बलीवर्द्द सात वर्ष जीवित रहता है, बलीवर्द्द मरके ब्रह्मराक्षस रूपसे जन्मता है, ब्रह्मराक्षस तीन महीने जीवित रहके मरनेपर ब्राह्मण होता है। पतित पुरुषका याजन करनेसे कृमियोनिमें जन्म हुआ करता है। हे भारत। वह कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता हैं, कृमियोनिसे छूटके गर्द्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके पन्द्रह वर्ष, फिर शूकर होके पाच वर्ष, पांचवर्ष तक कुक्कुट, पांच वर्ष तक सियार और एक वर्ष तक कुत्ता होके रहता है, अनन्तर मनुष्य होता है। जो निर्बुद्धि शिष्य उपाध्यायके निकट पाप करता है, वह जीव इसलोकमें तीनवार निःसन्देह तिर्य्यक्योनिमें उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! वह पहले कुत्ता होता है; तिसके अनन्तर मांसभोजी हिंसक जन्तु होके जन्मता है, फिर गधा होके उत्पन्न होता है, अनन्तर रूप होके पश्चात् ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होत जो पापाचारी शिष्य मनसेभी गुरुपत्नी गमनक है, वह अधर्म्मयुक्त चित्त परलोकमें जाके लोकमें उग्र जन्म पाता है। वह पहले र निमें उत्पन्न होकर तीस वर्ष तक जी रहता है, श्वान योनिमें मरके कृमियो जन्मता है। कृमि होके एक वर्ष तक जी रहता है, अनन्तर मरके ब्राह्मणयोनिमें जन है। गुरु यदि अपनी इच्छानुसार पुत्र शिष्यके ऊपर विना कारणताकेही प्रहार क है तो वह भी हिंसक जन्तु होके उत्पन्न करता है। हे महाराज। जो पुत्र पिता मात अवमानना करता है, वह मरके पहले गर्द्दभ योनिमें उत्पन्न होता है, गधा होके दश वर्ष तक जीवित रहता है, एक वर्ष तक कुम्भीर अर्थात् शतपदीयुक्त जन्तु विशेष होकर अन्तमें मनुष्य जन्म पाता है। जिस पुत्रके ऊपर माता पिता दोनों ही रुष्ट होते हैं, वह गुरुजनोंके असन्तोषवशसे मरके गर्द्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके दश महीनेतक जीवित रहता, फिर कुत्ता होकर चौदह महीनेतक जीता है, अनन्त बिड़ाल होकर सात महीना बिताके अन्त मनुष्य जन्म पाता है। जो पुरुष पितामाता विषयमें आक्रोशप्रकाश करता है, वह सारि अर्थात् शालिक पक्षी होके उत्पन्न होता है। महाराज! पितामाताके ऊपर प्रहार करने पुरुष तीन वर्ष तक कच्छप होके जन्मता है कछुआ तीन वर्ष तक शल्यक और छःमहीनेतक साप होके जीवित रहता है, अन्तमें मनुष्य होके जन्मता है, जो लोग स्वामीका अन्न खा हुए राजाविपक्षोंकी सेवा करते हैं, वे मोहयुक्त मनुष्य मरके वानरयोनिमें जन्मते हैं। बन्दर होके दशवर्ष, चूहा होके पाच वर्ष अनन्तर कुत्ता होके छः मास समय विताके मरनेपर मनुष्य जन्म पाते हैं। न्यस्त धन हरनेवाले

मनुष्य यमलोकमें जाकर सैकड़ों योनियोंमें भ्रमण करके शेषमें कृमियोनिमें जन्मते हैं। हे भारत! वे उस कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहते हैं अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्मते हैं। असूयक मनुष्य मरके मृगयोनिमें जन्मता है। विश्वासघाती नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। हे भारत! वह मछली होनेपर आठ वर्ष तक जीवित रहके मृगयोनिमें जन्मता है, मृग होके चार महीनेके अनन्तर छागयोनिमें उत्पन्न होता है। एक वर्ष पूरा होनेपर बकरा मरके कीटयोनिमें जन्मता है, अनन्तर वही जीव फिर मनुष्य योनि पाता है। हे महाराज! जो पुरुष मोहके वशमें होकर, धान्य, यव, कुलत्थ, सरसों, चना, उड़द, मूंग, गेहूं, तीसी वा अन्य शस्योंको हरता है, वह निर्लज्ज मूषकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे महाराज! अनन्तर वह मरके मृग होता है, फिर शूकर होके जन्मता और उत्पन्न होते ही रोगके वशमें होकर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर वह निज कर्म्मवशसे श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होकर पांचवर्ष समय बिताके अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है। पराई स्त्री हरनेसे मनुष्य वृकयोनिमें उत्पन्न होता है, क्रमसे वह कुत्ता, सियार, गिद्ध, सांप और बगुला होता है। हे महाराज! जो पापी मोहित होकर भाईकी स्त्री हरता है, वह [illegible] मरनेके पुंस्कोकिलत्व प्राप्त होता है। जो पुरुष कामके वशमें होकर मित्रभार्य्या, गुरुभार्य्या और राजभार्य्या गमन करता है, वह मरनेपर शूकरयोनिमें उत्पन्न होता है। शूकर [illegible]

[illegible]

होनेपर फिर मनुष्ययोनिमें जन्मता है। हे भारत! विवाह, यज्ञ अथवा दानके समय जो मनुष्य मोहवशसे उसमें विघ्न करता है, वह मरके कृमियोनिमें जन्मता है, कृमि होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अन्तमें अधर्म्म नष्ट होनेपर मनुष्य शरीर पाता है। हे महाराज! पहले एक पुरुषको कन्यादान करके जो दूसरे पुरुषको दान करनेकी इच्छा करता है, वह जीव मरके कृमियोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! कृमियोनिमें तेरह वर्ष तक जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म्म नष्ट होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्मता है। जो पुरुष देवकार्य्य और पितरकार्य्य न करके स्वयं भोजन करता है, वह मरनेपर कौआ होता है, काग होके एक सौ वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर कुक्कुट होता है, कुक्कुट जन्मके बाद एक महीने तक काला सर्प होके रहता है, अन्तमें मनुष्य शरीर धारण करता है। जो पुरुष पितासदृश जेठे भाईकी अवमानना करता है, वह मरके क्रौञ्चयोनिमें जन्मता है। क्रौञ्च होके [illegible] महीने जीवित रहता है, अन्तमें मरके मनुष्य तन पाता है। शूद्र ब्राह्मणी गमन करनेसे कृमियोनिमें जन्मता है, अनन्तर फिर मरके शूकर होता है, हे महाराज! शूकर जन्म लेते ही रोगसे मरता है। हे राजन्! [illegible] कर्म्मके वशमें होकर श्वानयोनिमें जन्मता है, [illegible] होता है। [illegible]

हे महाराज [illegible]

[illegible]

प्रवृत्त होता है। जो जीव अधर्म्मयुक्त हैं, वे यमलोकमें जाके दुःखके सहित तिर्य्यक्योनिमें जन्मते हैं। मोहयुक्त जीव इस लोकमें जिन कर्म्मोंके सहारे जिन योनियोंमें उत्पन्न हुआ करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो। इतिहासके सहित शास्त्रों और वेदोंमें यह वर्णित है, कि मर्त्यलोकवासी जीव घोर यमपुरीमें गमन करते हैं। हे पृथ्वीनाथ। वहांपर देवलोकसदृश पवित्रस्थान विद्यमान हैं, वहां तिर्य्यक्योनिमें उत्पन्न हुए जीव नहीं जासकते, इसके अतिरिक्त सब जीवोंकी ही उस स्थानमें गति हुआ करती है। ब्रह्मलोकसदृश दिव्य यमभवनमें जीव सदा कर्म्मगुणोंसे बद्ध होकर विविध दुःख भोग करता है। जैसे भाव और कर्म्मोंसे पुरुषकी घोर कठोर गति प्राप्त होती है, इसके अनन्तर मैं तुमसे वह विषय कहता हूं। ब्राह्मण यदि चारों वेदोंको पढ़के मोहवश पतित पुरुषसे प्रतिग्रह लेवे, तो वह गर्दभयोनिमें जन्मता है। हे भारत। वह गधा होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, गधा मरनेपर बलवान बैल होता है, बलीवर्द्द सात वर्ष जीवित रहता है, बलीवर्द्द मरके ब्रह्मराक्षस रूपसे जन्मता है, ब्रह्मराक्षस तीन महीने जीवित रहके मरनेपर ब्राह्मण होता है। पतित पुरुषका याजन करनेसे कृमियोनिमें जन्म हुआ करता है। हे भारत! वह कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, कृमियोनिसे छूटके गर्द्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके पन्द्रह वर्ष, फिर शूकर होके पांच वर्ष, पांचवर्ष तक कुक्कुट, पांच वर्ष तक सियार और एक वर्ष तक कुत्ता होके रहता है, अनन्तर मनुष्य होता है। जो निर्बुद्धि शिष्य उपाध्यायके निकट पाप करता है, वह जीव इसलोकमें तीनबार निःसन्देह तिर्य्यक्योनिमें उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! वह पहले कुत्ता होता है, तिसके अनन्तर मांसभोजी हिंसक जन्तु होके जन्मता है,

फिर गधा होके उत्पन्न होता है, अनन्तर प्र-
रूप होके पश्चात् ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होता
जो पापाचारी शिष्य मनसेभी गुरुपत्नी गमनकर
है, वह अधर्म्मयुक्त चित्त परलोकमें जाके इ
लोकमें उग्र जन्म पाता है। वह पहले स्व
निमें उत्पन्न होकर तीस वर्ष तक जीवि
रहता है, स्वान योनिमें मरके कृमियोनि
जन्मता है। कृमि होके एक वर्ष तक जीवि
रहता है, अनन्तर मरके ब्राह्मणयोनिमें जन्म
है। गुरु यदि अपनी इच्छानुसार पुत्रतु
शिष्यके ऊपर बिना कारणताकेही प्रहार कर
है तो वह भी हिंसक जन्तु होके उत्पन्न हु
करता है। हे महाराज! जो पुत्र पिता माता
अवमानना करता है, वह मरके पहले गर्द्दभ
योनिमें उत्पन्न होता है, गधा होके दश वर्ष त
जीवित रहता है, एक वर्ष तक कुम्भीर अर्था
शतपदीयुक्त जन्तु विशेष होकर अन्तमें मनु
जन्म पाता है। जिस पुत्रके ऊपर माता पि
दोनों ही रुष्ट होते हैं, वह गुरुजनोंके अवर्त्त
षवशसे मरके गर्द्दभयोनिमें जन्मता है, गध
होके दश महीनेतक जीवित रहता, फिर कुत्त
होकर चौदह महीनेतक जीता है, अनन्त
बिड़ाल होकर सात महीना बिताके अन्त
मनुष्य जन्म पाता है। जो पुरुष पितामाता
विषयमें आक्रोशप्रकाश करता है, वह सारि
अर्थात् शालिक पक्षी होके उत्पन्न होता है।
महाराज! पितामाताके ऊपर प्रहार करने
पुरुष तीन वर्ष तक कच्छप होके जन्मता है
कछुआ तीन वर्ष तक शल्यक और छःमहीनेतक
साप होके जीवित रहता है, अन्तमें मनुष्य
होके जन्मता है, जो लोग स्वामीका अन्न खा
हुए राजाशत्रुओंकी सेवा करते हैं, वे मोहयुक्त
मनुष्य मरके वानरयोनिमें जन्मते हैं। वन्द
होके दशवर्ष, चूहा होके पांच वर्ष अनन्तर
कुत्ता होके छः मास समय बिताके मरनेपर
मनुष्य जन्म पाते हैं। न्यस्त धन हरनेवाले

मनुष्य यमलोकमें जाकर सैकड़ों योनियोंमें भ्रमण करके शेषमें कृमियोनिमें जन्मते हैं। हे भारत। वे उस कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहते हैं अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्मते हैं। असूयक मनुष्य मरके मृगयोनिमें जन्मता है। विश्वासघाती नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। हे भारत! वह मछली होनेपर आठ वर्ष तक जीवित रहके मृगयोनिमें जन्मता है, मृग होके चार महीनेके अनन्तर छागयोनिमें उत्पन्न होता है। एक वर्ष पूरा होनेपर बकरा मरके कीटयोनिमें जन्मता है, अनन्तर वही जीव फिर मनुष्य योनि पाता है। हे महाराज। जो पुरुष मोहके वशमें अचेत होकर, धान्य, यव, कुलत्थ, सरसों, चना, उड़द, मूंग, गेहूं, तीसी वा अन्य शस्योंको हरता है, वह निर्लज्ज मूषिकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे महाराज! अनन्तर वह मरके मृग होता है, फिर शूकर होके जन्मता और उत्पन्न होते ही रोगके वशमें होकर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर वह निज कर्म्मवशसे श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके पाचवर्ष समय बिताके अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है। पराई स्त्री हरनेसे मनुष्य वृकयोनिमें उत्पन्न होता है, क्रमसे वह कुत्ता, सियार, गिद्ध, साप और बगुला होता है। हे महाराज! जो पापी मोहित होकर भाईकी स्त्री हरता है, उसे वर्ष भरतक पुंस्कोकिलत्व प्राप्त होता है। जो पुरुष कामके वशमें होकर मित्रभार्य्या, गुरुपत्नी और राजभार्य्या गमन करता है, वह मरनेपर शूकरयोनिमें उत्पन्न होता है, शूकर होके पाचवर्ष समय बिताके दश वर्ष तक मेड़िया होके रहता है। अनन्तर पांच वर्ष तक बिड़ाल, दश वर्ष तक कुक्कुट, तीन महीनेतक चींटी और एक महीना कीट होनेके अनन्तर कृमियोनिमें जन्मता है, उस कीटयोनिमें चौदह महीनेतक जीवित रहता है। अन्तमें धर्म नष्ट होनेपर फिर मनुष्ययोनिमें जन्मता है। हे भारत! विवाह, यज्ञ अथवा दानके समय जो मनुष्य मोहवशसे उसमें विघ्न करता है, वह मरके कृमियोनिमें जन्मता है, कृमि होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अन्तमें अधर्म्म नष्ट होनेपर मनुष्य शरीर पाता है। हे महाराज! पहले एक पुरुषको कन्यादान करके जो दूसरे पुरुषको दान करनेकी इच्छा करता है, वह जीव मरके कृमियोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर। कृमियोनिमें तेरह वर्ष तक जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म्म नष्ट होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्मता है। जो पुरुष देवकार्य्य और पितर कार्य्य न करके स्वयं भोजन करता है, वह मरनेपर कौआ होता है, काग होके एक सौ वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर कुक्कुट होता है, कुक्कुट जन्मके बाद एक महीनेतक काला सर्प होके रहता है, अन्तमें मनुष्य शरीर धारण करता है। जो पुरुष पितासदृश्य जेठे भाईको अवमानना करता है, वह मरके क्रौञ्चयोनिमें जन्मता है। क्रौञ्च होके चौबीस महीना जीवित रहता है, अन्तमें मरके मनुष्य तन पाता है। शूद्र ब्राह्मणी गमन करनेसे कृमियोनिमें जन्मता है, अनन्तर फिर मरके शूकर होता है, हे महाराज! शूकर जन्म लेते ही रोगसे मरता है। हे राजन्! वह मूढ़ उक्त कर्म्मके वशसे होकर श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके कर्म्मफल भोगते हुए अन्तमें मनुष्य होता है। मनुष्य जन्ममें पुत्र उत्पन्न करके मरनेपर मूषिकयोनिमें जन्मता है।

हे महाराज कृतघ्न मनुष्य मरनेके अनन्तर यमपुरीमें जाकर क्रुद्ध यमदूतोंके द्वारा दारुण पीड़ा पाता है। हे भारत! वह यमके स्थानमें दण्ड, मुद्गर, शूल, दारुण अग्निकुण्ड, तरवारपत्रके धार वन, बालू और काटेयुक्त शाल्मली तथा और भी अनेक प्रकारकी उग्र यातना पाके अन्तमें वध्य हुआ करता है। हे भरत-

श्रेष्ठ। अनन्तर वह कृतघ्न वहांपर प्रचण्डदण्डके द्वारा नष्ट होकर संसारचक्रको अवलम्बन करके कृमियोनिमें जन्मता है। हे भारत! वह पन्द्रह वर्ष कृमि होके रहता है, अनन्तर गर्भमें जाता है, वह गर्भ शिशु अवस्थामें ही नष्ट होता है; फिर सैकड़ों बार गर्भमें उत्पन्न होके मरता है, बहुतसे जन्मके बाद तिर्य्यक्योनिमें उत्पन्न होता है, अनन्तर इसलोकमें कई वर्षतक दुःख अनुभव करके पुनर्जन्म-रहित होके कूर्म्मयोनिमें जन्मता है। नीचबुद्धि मनुष्य दही हरनेसे बकपक्षी होता है और असंस्कृत मत्स्य हरनेसे प्लव अर्थात् कारण्डव पक्षी होके जन्मता है। जो दुर्ब्बुद्धि पुरुष मधु हरता है, वह दंश होके उत्पन्न होता है। फलमूल और अपूप हरनेसे मनुष्य चींटीयोनिमें जन्मता है, राजमाष हरनेसे हलगोलक अर्थात् लम्बी पूंछवाले गोलाकार कीटयोनिमें जन्म लेता है, पायस हरनेवाला तीतर पक्षी होता है, पिष्टमय पूप हरनेवाला उलूकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। दुर्म्मति मनुष्य लोहा हरनेसे काकयोनिमें जन्मता है; नीचबुद्धि पुरुष कांसा हरनेसे हारीत पक्षी होता है, चांदीके पात्र हरनेवाला कपोतयोनिमें जन्म लेता है, स्वर्णपात्र हरनेवाला कृमियोनिमें जन्मता है। धोये हुए कौशेय वस्त्र हरनेवाला क्रकर पक्षी होके जन्मता है। कृमिकोशसे उत्पन्न हुए वस्त्रोंको हरनेसे मनुष्य वत्तक पक्षी होता है। साधारण वस्त्रोंको हरनेवाला मनुष्य मरके शुकपक्षी होता है; पट्टवस्त्र हरनेवाला पुरुष मरनेपर हंस होता है, सूती वस्त्र हरनेवाला मनुष्य मरनेके अनन्तर क्रौञ्चयोनिमें उत्पन्न होता है। हे भारत! पट्टवस्त्र तथा भेड़ प्रभृतिके रोमसे बने हुए कम्बल वा दुकूल वस्त्र हरनेसे मनुष्य शशजन्तु होके जन्मता है, हरितालादि वस्त्र हरनेसे पुरुष मरके मयूरयोनिमें जन्मता है। लालवस्त्र

हरनेवाला मनुष्य चकोरपक्षीयोनिमें जन्मता है। हे महाराज! लोभी मनुष्य इस लोकमें वर्णक (रङ्ग) प्रभृति तथा सुगन्धित वस्तु हरनेसे छछून्दर योनिमें जन्मता है। उस इं अवस्थामें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म्म नष्ट होनेपर मनुष्य जन्म पाता है। दूध हरनेवाला पुरुष वगुला होता है। हे महाराज! जो पुरुष मोहके वशमें होकर तेल हरता है, वह मरके तैलपायीयोनिमें उत्पन्न होता है। धनकी इच्छासे अथवा बैरी होकर शस्त्रधारी अधम पुरुष अशस्त्र मनुष्यको मारनेसे मरनेके अनन्तर खरयोनिमें जन्मता है गधा होके दो वर्ष जीवित रहता है, फिर शस्त्रसे मरके मृग होता और मृगयोनिमें सदा उद्विग्नरूपसे जन्म लेता है; एक वर्ष बीतनेपर वह मृग शस्त्रसे मरके मीनयोनिमें जालसे वध होता है, अनन्तर श्वापदयोनिमें जन्मता है। श्वापद होके दश वर्ष फिर द्वीपी होके पांच वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर मरके कालवशसे अधर्म्म नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। हे महाराज! नीचबुद्धि मनुष्य परस्त्री हरनेसे यमके स्थानमें जाकर अनेक प्रकारके क्लेश भोगता हुआ इक्कीस योनि भ्रमण करके कीटयोनिमें उत्पन्न होता है। बीस वर्ष कृमियोनिमें रहके तब मनुष्यजन्म पाता है। भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य मक्खी होके जन्मता है और कई महीनेतक मक्खीसमूहके वशमें रहता है, अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्यत्व पाता है। धान्य हरनेवाला मनुष्य लोमश होके जन्मता है, पिन्याकयुक्त भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य बभ्रु सदृश बड़ा दारुण मूषिक होता है, वह पापात्मा मनुष्योंको दंशन करते हुए जीवित रहता है, दुर्ब्बुद्धि मनुष्य घृत हरनेसे काकमद्गु अर्थात् शृङ्गवान जलपक्षी होता है, नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्य हरनेसे कौवा होता है। नमक हरनेवाला चीरी-काकरूपसे उत्पन्न होता है। और

मनुष्य विश्वासवशसे दूसरेके रखे हुए धनको हरता है, वह मरनेपर मत्स्ययोनिमें जन्मता है, मत्स्ययोनि पाके मरनेके अनन्तर मनुष्य-जन्म पाता है, मनुष्यत्व पाके क्षीणायु होता है। हे भारत। मनुष्य अनेक प्रकारके पाप-कर्म्म करके तिर्य्यक् योनिमें जन्मते हैं, वे आत्म-प्रमाणके अनुसार कुछ भी धर्म्म नहीं जानते, जो सब मनुष्य अनेक प्रकारके पापाचरण करके व्रत अवलम्बनपूर्व्वक निवास करते हैं, वे सुख दुःखसे संयुक्त होके सदा रोगी रहते हैं। लोभ मोहसे युक्त पापी मनुष्य म्लेच्छतुल्य हैं, वे लोग निःसन्देह सहवासके योग्य नहीं हैं। जो मनुष्य जन्मसे ही पाप नहीं करते, वे रूप-वान, रोगरहित तथा धनवान् होते हैं। स्त्रियें इन उपरोक्त कार्य्योंके करनेसे पापग्रस्त होके इन्हीं जन्तुओंकी भार्य्या हुआ करती हैं। हे भारत। परस्व हरनेसे जो सब दोष होते हैं, वे वर्णित हुए, यह विषय मैंने तुम्हारे समीप संक्षेपमें ही कहा है। हे भारत! अन्य कथाप्र-संगमें फिर सुनोगे। हे महाराज! मैंने पहले समयमें देवर्षियोंके बीच यह विषय ब्रह्माके मुखसे सुना था और तुम्हारे पूछनेपर पूरी रीतिसे वर्णन किया। हे महाराज। इसे सुन-कर तुम सदा धर्म्ममें मन स्थित करो।

१११ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे अनघ वक्तृवर ब्रह्मन्! आपने मेरे समीप अधर्म्मकी गति वर्णन की; अब मैं धर्म्मको गति सुननेकी इच्छा करता हूं। पापकर्म्म करनेसे किस प्रकार उत्तम गति मिलती है और कैसे कार्य्य करनेसे शुभ गति प्राप्त होती है?

बृहस्पति बोले, पुरुष अधर्म्मके वशमें होकर पापकर्म्म करता है और विपरीत ज्ञानसे नरक प्राप्त होता है। जो पुरुष मोहके वशमें होकर अधर्म्म करके शोक करता और मनको संयत रख सकता है, वह पापफल नहीं भोगता। जिसका अन्तःकरण जिस प्रकार पापकर्म्मकी निन्दा करता है, उस ही भांति उसी शरीरसे वह पुरुष अधर्म्मसे छूटता है। यदि पुरुष अपना किया हुआ पाप धर्म्मज्ञ ब्राह्मणोंसे कहे, तो वह उस ही समय अधर्म्मयुक्त अपवादसे छूट जाता है; मनुष्य अपने किये हुए पापोंको जिस प्रकार वर्णन करेगा, सावधानचित्त होके उस ही भांति मुक्त होगा। जैसे सर्प पुरानी केंचुली छोड़ देता है, वैसे ही समाहित चित्तसे ब्राह्मणोंको विविध दान देकर मनुष्य सद्गति पाता है। हे युधिष्ठिर! जो सब दान करना होता है, वह तुमसे कहता हूं, जिसे करनेसे मनुष्य धर्म्मके सहारे अधर्म्मसे छूट जाता है। सब दानके बीच अन्न दान ही श्रेष्ठ है, इसलिये धर्म्मकी इच्छा करनेवाला सरल भावसे पहले अन्न दान करे। अन्न ही मनुष्योंका प्राण है, अन्नसे ही प्राणियोंका जन्म होता है, जीव उत्पन्न होके अन्नसे प्रतिष्ठित रहते हैं; इस ही निमित्त अन्न प्रशंसनीय है। देव, ऋषि, पितर और मनुष्यवृन्द अन्नकी ही प्रशंसा किया करते हैं, रन्तिदेवने अन्नदान करके स्वर्गलोक पाया है। शुद्धचित्तसे वेद पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त हुआ अन्न दान करना चाहिये, एक सौ दश ब्राह्मण जिसके यहां शुद्धचित्तसे दिया हुआ अन्न भोजन करते हैं, उसका तिर्य्यग् योनिमें जन्म नहीं होता; और एक हजार दश ब्राह्मण जिसके दिये हुए अन्नको भोजन करते हैं वह पुरुष अधर्म्मसे छूटकर सदा योगशील होता है। जो ब्राह्मण वेदपाठी ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्व्वक अन्नदान करता है, वह सुखी होता है। हे पाण्डव। जो क्षत्रिय ब्राह्म-णके धनमें लोभ न करके निज उपार्ज्जित धनके सहारे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको पवित्र और समा-हित होकर अन्न दान करता है, वह उस

धर्मके सहारे सब पाप कर्मोंका नाश करता है। वैश्य यदि निज उपार्ज्जित कृषिकार्य्यका छठवां भाग ब्राह्मणोंको दान करे, तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। ब्राह्मणको प्राणसंशय उपस्थित होनेपर शूद्र अत्यन्त कठिनाईसे प्राप्त हुआ धन दान करनेसे पापरहित होता है। जो अहिंसक, मनुष्य निजबलसे अन्न उत्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान करता है, उसे दुःख नहीं मिलता। मनुष्य हर्षयुक्त होके वेदवृद्ध ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त अन्नदान करनेसे पापोंसे छूट जाता है। सत्पथकी अनुवृत्ति करनेसे पुरुषके सब पाप नष्ट होते हैं। इस लोकमें ऊर्ज्जस्कर अन्न दान करके पुरुष ऊर्ज्जस्वी होता है। दातगणके द्वारा जो मार्ग बना हुआ है, मनीषि लोग उस ही पथसे गमन करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन्हींसे सनातन धर्म्म रक्षित हुआ करता है। मनुष्योंको उचित है, कि सब समयमें न्यायसे उपार्ज्जित अन्न ही सत्पात्रोंको दान करें, क्यों कि अन्न ही परम गति है। अन्नदानके सहारे मनुष्य भयङ्कर विषयोंकी सेवा नहीं करता, इसलिये अन्यायरहित अन्नदान करना योग्य है। गृहस्थ मनुष्य पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके तब स्वयं अन्न भोजन करनेमें यत्नवान होजावे, अन्नदानसे मनुष्य दिन पूरा करे, हे महाराज। मनुष्य न्यायपूर्व्वक दश सौ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे घोर नरकमें नहीं जाता वा बार बार संसारमें भ्रमण नहीं करता; परलोकमें सर्व्वकाम युक्त होकर सुख भोग करता वा शोकरहित होके विलास करनेमें प्रवृत्त होता है, वही पुरुष-रूपवान्, कीर्त्तिमान् और धनवान् हुआ करता है। हे भारत। यह तुम्हारे निकट उत्तम अन्नदानका महत् फल कहा, यही समस्त धर्म्म और दानका मूल है।

११२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसा, वैदिककर्म्म, ध्यान, इन्द्रियसंयम, तपस्या और गुरुसेवा इन सबके बीच पुरुषके पक्षमें कल्याणकारी क्या है?

बृहस्पति बोले, हे भरतश्रेष्ठ। ये छः विषय ही धर्म्मसङ्गत हैं, वे प्रत्येक ही पृथक् पृथक् धर्म्मके द्वार स्वरूप हैं, इसलिये इनका विषय वर्णन करता हूं, सुनो। जो मनुष्य हिंसारूप धर्म्मसाधन किया करता है, वह जीवोंको निरर्थक ही नष्ट करता है, इसलिये मैं उस धर्म्मको श्रेष्ठ नहीं कहता। पुरुष काम क्रोध और लोभरूपी तीनों दोषोंको सब भूतोंमें अर्पण करके अपनेमें उक्त दोषोंको संयत करनेसे सिद्धिलाभ करता है। जो पुरुष अपने सुखकी इच्छासे अहिंसक जीवोंको दण्डसे मारता है, वह परलोकमें जाके सुखी नहीं होता। जो मनुष्य सब जीवोंके विषयमें आत्मसदृश दण्डरहित और जितक्रोध हैं, वे परलोकमें जाके सुखी होते हैं। जो निज दुःखकी भांति दूसरोंके दुःखसे व्याकुल होते हैं, सब प्राणियोंको आत्मरूपसे तत्त्वदृष्टिके द्वारा देखते हैं, उन गति विषयमें अत्यन्त हीनल हेतु मार्ग सूचकरहित स्थानान्वेषी पुरुषके पथदर्शन विषयमें देवता लोग भी मुग्ध होते हैं। जो विषय अपने प्रतिकूल हो वह दूसरेके विषयमें सन्धान न करे; संक्षेपरीतिसे यही धर्म्म है, कामवशसे अन्य धर्म्म भी प्रवर्त्तित हुआ करता है। पुरुष प्रत्याख्यान, दान, प्रिय, अप्रिय, सुख और दुःखमें अपनी उपमाके द्वारा प्रमाण पाता है। अन्य पुरुष दूसरेके विषयमें जैसा व्यवहार करता है अर्थात् हिंसित होकर हिंसा किया करता है और पाले जानेपर पालन करता है; इसलिये जीवोंको पालना चाहिये, हिंसा करनी योग्य नही है। जीव लोकमें इस ही उपमाके द्वारा जो धर्म्म हुआ करता है, वह निपुण पुरुषोंके सहारे उपदिष्ट हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिशक्तिसे युक्त

देवगुरु बृहस्पति धर्म्मराज युधिष्ठिरसे इतनी कथा कहके हम लोगोंके देखते ही स्वर्गलोकमें चले गये।

११३ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर वक्तृवर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने शरशय्यामें सोये हुए पितामहसे फिर प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान्! वेद प्रमाण दर्शननिबन्धसे ऋषि ब्राह्मण और देवगण अहिंसालक्षण धर्म्मकी ही प्रशंसा किया करते हैं। हे राजसत्तम! मनुष्य वचन मन और कर्म्मसे हिंसा करते हुए किस प्रकार दुःखोंसे मुक्त होता है?

भीष्म बोले, हे शत्रुसूदन! ब्रह्मवादी ऋषि लोग अहिंसाको मन, वचन, कर्म्म और लक्षण भेदसे चारप्रकार कहा करते हैं, उसकेबीच एकके व्यक्त होनेसे भी सब भांतिसे अहिंसा नहीं होती, हे महाराज! जैसे सब चौपाये जीव तीन पांवसे स्थित नहीं होते, वैसे ही यह अहिंसा तीन कारणोंसे वर्णित नहीं होती। जैसे पैरसे चलनेवाले जीवोंके क्षुद्र पदचिन्ह हाथीके पदचिन्हमें लीन होते हैं, वैसे ही अहिंसामें सब धर्म्म समाविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये पहले समयसे ही सब धर्म्मोंके बीच अहिंसा श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुई है। जीव वचन मन और कर्म्म द्वारा लिप्त होता है, पहले मन ही मन त्याग करके अनन्तर वचन और कर्म्मसे परित्याग करते हुए जो लोग तीन प्रकारके मांस भक्षण नहीं करते, वे मुक्त होते हैं। ब्रह्मवादियोंने मन वचन और आनन्द, इन तीनोंको ही कारण कहे हैं, ऐसा सुना जाता है, कि इन तीनोंमें ही सब दोष प्रतिष्ठित हैं। तद्युक्त मनीषि पुरुष इन्हीं कारणोंसे मांस भक्षण नहीं करते। हे राजन्! अब मेरे निकट मांस भक्षणके दोष सुनो। हे महाराज! जो मोहयुक्त मूढ़ पुरुष पुत्र मांससदृश मांस भक्षण करते हैं, वे अधम पुरुष कहाते हैं। जैसे सदा पितामाताके संयोगसे पुत्र जन्मता है, वैसे ही अवश पापाचारी हिंसा करके बार बार पापयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। प्रति जिह्वामें जिस प्रकार रसका ज्ञान होता है, वैसे ही अस्वादिष्ट वस्तुओंसे राग उत्पन्न होता है, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णित है। असंस्कृत नमकीन अथवा बिना लवणके जिस प्रकार भोजनकी वस्तु तैयार होती हैं, चित्त भी उसी भांति उसमें निरुद्ध हुआ करता है, मांस भक्षण करनेवाले नीच पुरुष परलोकमें भेरी, मृदङ्ग तथा अत्यन्त मधुरतन्त्रीके शब्दको किस प्रकार सुनेंगे; जो लोग अचिन्तित अनिर्दिष्ट और असङ्कल्पित रसकी आकांक्षासे अभिभूत होते हैं, वे फलार्थी पुरुष ही प्रशंसा किया करते हैं। मांसकी प्रशंसा भी दोषकर्म्मयुक्त है, बहुतेरे साधु पुरुष अपना जीवन त्यागके निज मांससे दूसरोंके जीवनकी रक्षा करके स्वर्गमें गये हैं। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट सर्व्वधर्म्मानुसंहिता चारों कारणोंसे परिवृत अहिंसाका विषय कहा गया।

११४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसाको आपने बार बार परम धर्म्म कहा है, परन्तु यह भी वर्णन किया है, कि श्राद्धमें पितर लोग मांसके अभिलाषी होते हैं। पहले आपने अनेक प्रकारके मांसके श्राद्धानुष्ठानका विषय कहा है, बिना हिंसाके मांस कहां मिलेगी इसलिये [illegible]
पूर्व्व वाक्यसे विरोध होता है, [illegible]
त्यागरूपी धर्म्ममें हम [illegible]
हुआ है; [illegible]
है? और न [illegible]
हैं? स्वयं मार [illegible]

मरे हुए जीवका मांस भक्षण करनेसे क्या दोष होता है? जो दूसरेके लिये पशु मारते हैं और जो लोग मोललेके भक्षण करते हैं, उन्हें क्या दोष होता है? हे पापरहित! इस विषयको आप यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, मैं इस सनातन धर्म्मको निश्चय करनेकी इच्छा करता हूं। पुरुषको किस प्रकार परमायु प्राप्त होती है? किस प्रकार मनुष्य बलवान हुआ करता है? किस लिये अव्यङ्ग होता है और किस कारणसे लक्षण सम्पन्न होके जन्मता है?

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन महाराज! मांस भक्षण न करनेसे जो धर्म्म होता है और इस विषयमें जो श्रेष्ठ विधि है, उसे मेरे निकट यथार्थ रीतिसे सुनो। जो लोग सौन्दर्य्य, अव्यङ्गता, आयु, बुद्धि, सत्त्व, बल और स्मृति प्राप्त करनेकी कामना करते हैं, उन महानुभावोंके द्वारा हिंसा परित्यक्त हुआ करती है। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! इस विषयमें ऋषियोंके बहुतसे सम्वाद हैं, इसलिये उन लोगोंका मत सुनो। हे युधिष्ठिर! जो लोग यतव्रती होके प्रति महीने अश्वमेध यज्ञ करते हैं, वे समकालमें ही मधमांस परित्याग करें। हे महाराज! सप्तर्षि, बालखिल्य मुनि और मरीचिप मनीषिवृन्द मांस भक्षण करनेकीही प्रशंसा किया करते हैं। जो लोग मांस भक्षण नहीं करते और पशुओंको नहीं मारते, स्वायम्भुव मनुने उन्हें ही सब प्राणियोंका मित्र कहा है। जो लोग मांस परित्याग करते हैं, वे सर्व्वभूतोंके अधर्षणीय, सब जीवोंके विश्वसनीय और सदा साधुसम्मत होते हैं। धर्म्मात्मा नारद मुनि कहते हैं, कि जो पुरुष दूसरेके मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करते हैं, वे सदा अवसन्न होते हैं। बृहस्पति कहते हैं, मद्य पीने और मांस भक्षणसे निवृत्त होना दान, यज्ञ तथा तपस्याके तुल्य है। जो लोग एक सौ वर्षतक प्रति महीने अश्वमेध यज्ञ करते और जो लोग मांस भक्षणसे निवृत्त रहते हैं, मेरे मतमें वे दोनों समान हैं। मद्यमांस त्यागनेसे पुरुष सदा द्वारा यज्ञ करता है, सदा दान करनेका पाता और सदा तपस्वी हुआ करता है भारत! जो पुरुष मांस भक्षण करके प निवृत्त होता है, उससे जो फल हुआ व है, उस फलको वेद प्रदान नहीं करसकते यज्ञ भी उस फलको प्रदान करनेके योग्य ... है। रसज्ञान होनेपर मांस परित्याग करना अत्यन्त दुष्कर कर्म्म है, सब प्राणियोंको अभय प्रद यज्ञ व्रताचरण अत्यन्त श्रेष्ठ है। जो विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभय दक्षिणा दान करता है, वह लोकमें निःसन्देह प्राणदाता होता है। मनीषिवृन्द इस परम धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं, जैसे अपना प्राण सबको प्रिय जीवोंका प्राण भी वैसा ही है; शुद्धचित्तवाले बुद्धिमान् मनुष्योंको आत्म उपमाके सहारे मनन करना योग्य है। जब ऐश्वर्य्यके अभिलाषी विद्वानोंको भी मृत्यु है भय है, तब मांस-उपजीवी पापी पुरुषोंके द्वारा हन्यमान रोगहीन निष्पाप जीवोंको तो मृत्युका भय होही सकता है। हे महाराज! इसलिये मांस त्यागको धर्म्म, अर्थ और सुखका उत्तम स्थान जानो, अहिंसा ही परम तपस्या और अहिंसा ही परम सत्य है अर्थात् अहिंसासे ही सत्य प्रवृत्त होता है। तृण, काष्ठ और पत्थरसे मांस नहीं उत्पन्न होता, जीवहिंसा करनेसेही मांस प्राप्त होता है, इसीसे उसके भक्षण करनेमें दोष हुआ करता है। सत्य और सरलताप्रिय देववृन्द स्वाहा और स्वधा मन्त्रोंसे प्रदान किया हुआ अमृत भोजन करते हैं और जिह्वा रसपरायण मांसाशियोंको राजस प्रकृति जानो, हे महाराज। दुर्गम पथ, घोर दुर्ग गहन वन रात्रि-दिन और सन्ध्याके समय, चौराहे, सभा, उद्यतशस्त्रमण्डली तथा सर्प भयमें मांस भक्षण न करनेसे दूसरोंके द्वारा भय नहीं होता। जो लोग मांसभक्षण नहीं करते, वे अ

वोंके शरण्य, सबके विश्वासी, सब लोगोंके द्वेगकर होते और स्वयं भी सदा व्याकुल नहीं होते। यदि खानेवाला न रहे, तो घातक नहीं होता, खानेवालेके निमित्त ही घातक होता है; मनुष्य मांस-भक्षकके लिये पशुओंका बध किया करते हैं, यह अभक्ष्य है, इसी निमित्त हिंसाकी निवृत्ति होती है; इसलिये खानेवालोंके ही लिये मृगादिकोंकी हिंसा प्रवर्त्तित हुई है। हे महाद्युति! हन्यमान जीव हिंसकोंकी आयु ग्रास करता है, इसलिये जो लोग निज उन्नतिकीअभिलाष करते हैं, वे मांस भक्षण न करें, प्राणि हिंसक रौद्रकर्म्म करनेवाले मनुष्योंको किसी स्थानमें भी पवित्रता नहीं प्राप्त होती, वे मांसभक्षी जीवोंकी भांति सब जीवोंके ही उद्वेगजनक होते हैं। लोभ, बुद्धि, मोह, बलवीर्य्य अथवा पापियोंके संसर्गसे मनुष्योंकी अधर्म्ममें रुचि होती है। पराये मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य व्याकुलहोके निवास करता और जहां तहां जन्म लिया करता है। संयतचित्तवाले परमर्षिगण मांसत्यागको धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला स्वर्गजनक तथा महत् स्वस्त्ययन कहते हैं। हे कौन्तेय! मांस भक्षणसे जो सब दोष होते हैं, पहले समयमें महामुनि मारकण्डेयके मुखसे मैंने उसे सुना था। जीनेकी इच्छा करनेवाले मृत वा मारे हुए जीवोंका जो पुरुष मांस भक्षण करता है, वह मारनेवालेके सदृश है, कोई धनसे मांस क्रय करते है, कोई उपभोगके लिये भक्षण करते हैं, कोई बध और बन्धनादिसे पशुओंको मारते है। मांस क्रय करना, भक्षण और मारना, ये तीन प्रकार बध हैं। जो पुरुष स्वयं मांस भक्षण न करके भक्षकका अनुमोदन करता अथवा मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें प्रवृत्त होता है, वह पुरुष भी दोषोंसे लिप्त होता है, जो लोग मांस भक्षण न करके प्राणियोंके विषयमें दयावान् होते हैं, वे सब जीवोंके अनभिभवनीय, आयुष्मान्, रोगरहित और सुखी हुआ करते हैं। मैंने सुना है, कि हिरण्यदान, गोदान और भूमिदानकी अपेक्षा मांस भक्षण न करनेसे अधिक धर्म्म होता है। अपरोक्षित विधिसे रहित वृथा मांस भक्षण न करे; यदि मनुष्य वैसा मांस भक्षण करता है, तो निःसन्देह नरकमें जाता है। प्रोक्षित अथवा अभ्युक्षित अथवा ब्राह्मणोंकी कामनासे यदि मांस भक्षण करे, तो उसमें अल्प दोष जानना चाहिये और यदि इसके विपरीत क्रिया जाय, तो मनुष्य दोषोंसे लिप्त हुआ करता है। जो अधम पुरुष खानेवालोंके लिये पशुओंको मारता है, उस विषयमें घातक ही महादोषसे लिप्त होता है, खानेवाले उसकी भांति दोषयुक्त नहीं होते। जो यज्ञोपनिषद-बाधसे रहित मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञ तथा वेदमें कहे हुए उपायको अवलम्बन करके जीवहिंसा करते हैं, उस यज्ञच्छलसे मांसके अभिलाषी पुरुष नरकगामी होते हैं। जो पुरुष मांस खाके पश्चात् उसे भक्षण करनेसे विरत होता है, उसे भी महान् धर्म्म हुआ करता है, क्यों कि वह पापसे निवृत्त होता है। आहर्त्ता, अनुमन्ता, घातक और क्रय-विक्रय करनेवाले, संस्कारकारक और उपभोक्ता, ये सब कोई खादक हैं, प्राचीन ऋषियोंसे सेवित वेदोंमें प्रतिष्ठित विधिके अनुसार एक दूसरा प्रमाण कहता हूं। हे नृपश्रेष्ठ! प्रजार्थी पुरुषोंने जो प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्म्मका वर्णन किया है, वह मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंका धर्म्म नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! वेदोक्त प्रमाण और पितरोंके श्राद्धके समयमें जो मांस मन्त्रसे संस्कारयुक्त प्रोक्षित और अभ्युक्षित होता है, वही पवित्र हविस्वरूप है; इसके विपरीत वृथा मांसको मनुने अभक्ष्य, अस्वर्ग्य, अयशस्य तथा राक्षसोंका भक्ष्य कहा है। हे महाराज! पहले मनुष्य अवैध मांस भक्ष

करे, क्यों कि यज्ञोचित अवैध मांस मनुष्योंको भक्षण करना उचित नहीं है। सुखकी इच्छा करनेवाला पुरुष सब प्रकारसे प्राणियोंके मांस भक्षण न करे। सुना जाता है, कि पहिले समयमें मनुष्योंके ब्रीहिमय पशु थे, पुण्यलोकपरायण यज्ञ करनेवाले उन्हींके सहारे यज्ञ करते थे। पहले समयमें ऋषियोंने चदीपति वसुसे सन्देहयुक्त होकर प्रश्न किया था, अभक्ष्य मांसको भी भक्ष्य कहनेवाले राजा स्वर्गसे पृथ्वीपर आगमन करते हैं, वह भी ऐसा कहनेसे फिर पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए थे। प्रजाकी हितकामना करनेवाले महाभाग अगस्त्यने तपस्याके सहारे सर्व्व दैवत आरण्यक मृगोंको प्रोक्षण किया था, पितर और देवसम्बन्धीय कार्य्य मांसके द्वारा किये जानेपर निकृष्ट नहीं होते। पितर लोग न्यायपूर्व्वक मांससे तृप्त होकर प्रीतियुक्त होते हैं। हे नरनाथ पापरहित राजेन्द्र! मांस भक्षण न करनेसे जो सुख होता है, उसे कहता हूं, सुनो। जो लोग एक सौ बर्षतक दारुण तपस्या करते और जो लोग मांस परित्याग किया करते हैं, मेरे मतमें वे दोनों ही समान हैं। हे नरनाथ! कौमुदीमय शुक्लपक्षमें मधुमांस परित्याग करे, क्यों कि उससे धर्म्म होता है। जो लोग बर्षके बीच चार महीनेतक मांस त्यागते हैं, उन्हें कीर्त्ति, आयु, यश और बल प्राप्त होता है। अथवा जो लोग एक महीना मांस भक्षण नहीं करते, वे सब क्लेशोंको अतिक्रम कर निरामय होके परम सुखसे जीवनका समय बिताते हैं। जो लोग एक महीना वा एक पक्ष मांस नहीं खाते, उन हिंसानिवृत्त लोगोंके लिये ब्रह्मलोक विहित है। हे पार्थ! जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको जाना है और सब जीवोंको आत्मस्वरूप जानते हैं, वे राजा लोग शुक्लपक्षमें मांस भक्षण नहीं करते। नाभाग, अम्बरीष, महानुभाव गय आयु, अनरण्य, दिलीप, रघु, पुरु, कार्त्तवीर्य्य, अनिरुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विष्वक्सेन, शशविन्दु, युवनाश्व, शिवि, उशीनर, मुचुकुन्द, मान्धाता और हरिश्चन्द्र, इन सब राजाओंने सर्व्वकालमें शुक्लपक्षमें मांस भक्षण नहीं किया था। सत्य वचन कहो, झूठी बात मत कहो, सत्य ही सनातन धर्म्म है; राजा हरिश्चन्द्र सत्यके सहारे सुरपुरमें चन्द्रमाकी भांति विहार करते हैं।

हे राजेन्द्र! श्येनचित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सृञ्जय, कृप, भरत, दुष्मन्त, करुष, राम, अलर्क, नल, विरूपाश्व, निमि, धीमान् जनक, ऐल, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु, शम्भु, श्वेत, सगर, अज, धुन्धु, सुबाहु, हर्यश्व, क्षुप और भरत, ये सब तथा दूसरे राजा लोग शरत्कालके शुक्लपक्षमें मांस त्याग करनेसे स्वर्गलोकमें गये हैं और श्रीसम्पन्न तथा दीप्यमान होके ब्रह्मलोकमें निवास करते हुए सहस्र स्त्रियोंसे युक्त होकर गन्धर्व्वोंसे पूजित हुए करते हैं। इसलिये जो महात्मा इस अहिंसा धर्म्मलक्षणयुक्त उत्तम धर्म्माचरण करते हैं, स्वर्गमें वास किया करते हैं। इस लोकमें धार्म्मिक पुरुष जन्मसे ही मधुमांस परित्याग करते और मद्य नहीं पीते, वेही मुनि स्मृत होते हैं। जो लोग यह अमांसाद धर्म्माचरण करते अथवा दूसरोंको सुनाते हैं, वे यदि अत्यन्त दुराचारी भी हों, तौभी नरकमें नहीं जाते। हे महाराज! जो लोग इस ऋषिपूजित पवित्र अमांसभक्षण धर्म्मका सदा पाठ करते अथवा निरन्तर सुनते हैं, वे सब पापोंसे छूटकर सर्व्वकामके द्वारा पूजित होते और स्वजनोंके बीच विशिष्टता प्राप्त होती है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। विपद्युक्त पुरुष आपदोंसे मुक्त होता है, बद्ध पुरुष कारागारसे छूट जाता है, आतुर मनुष्य रोगरहित होता और दुःखित पुरुषको दुःखसे छुटकारा मिलता है। हे कुरुश्रेष्ठ! जो मनुष्य मांस भक्षण नहीं करता, वह तिर्य्यग्योनि प्राप्त

नहीं होती, वह रूपवान् और समृद्धिमान् होके महत् यश पाता है। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट मांस परित्याग विषयमें प्रवृत्ति और निवृत्तियुक्त ऋषियोंकी कही हुई विधि वर्णित हुई।

११५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जगत्के बीच ये मांसभोजी मनुष्य विविध भक्ष्य त्यागके महाराक्षससमूहकी भांति नृशंस होते हैं। ये लोग जिस प्रकार मांसभक्षणकी अभिलाष किया करते हैं, अनेक प्रकारके अपूप, शाक और खाण्डव वस्तुओंको भोजन करनेमें वैसी इच्छा नहीं करते; इसलिये इस विषयके विचारनेमें मेरी बुद्धि अत्यन्त मुग्ध होती है। मेरी समझमें मांससे बढ़के उत्तम मधुर रसयुक्त वस्तु और कुछ भी नहीं है। हे प्रभु भरतश्रेष्ठ! मांसके न खानेसे जो फल होता तथा भक्षण करनेसे जो दोष होते हैं, उसे भी सुननेकी इच्छा करता हूं। हे धर्म्मज्ञ! कौन वस्तु भक्ष्य है, कौनसी अभक्ष्य है, उसे धर्म्मपूर्व्वक पूरी रीतिसे कहिये। हे पितामह! यह विषय जैसा है, तथा इसके त्यागनेसे जो फल मिलते और भक्षण करनेसे जो दोष हुआ करते हैं, उसे मेरे समीप वर्णन करो।

भीष्म बोले, हे महाबाहो भरतश्रेष्ठ! तुमने जो कहा, वह यथार्थ है, भूलोकमें मांससे बढ़के परम रस और कुछ भी नहीं है। क्षुधित, क्षीण, सन्तप्त, ग्राम्य धर्म्ममें रत और मार्गसे थके हुए मनुष्योंके पक्षमें मांससे बढ़के श्रेष्ठ भक्ष्य दूसरा कुछ भी नहीं है। हे परन्तप! मांस सदा ही बलको बढ़ाता तथा उत्तम पुष्टिका विधान करता है, इसलिये कोई भक्ष्य भी मांससे श्रेष्ठ नहीं है। हे कौरवनन्दन! मांस न खानेसे जो सब फल प्राप्त होते हैं, उसे मैं कहता हूं, सुनो। जो मनुष्य दूसरेके मांससे निज मांस बढ़ानेकी अभिलाष करता है, उससे अत्यन्त क्षुद्र तथा नृशंस पुरुष दूसरा कोई भी नहीं है। जगत्के बीच प्राणसे अधिक प्रियपदार्थ और कुछ भी विद्यमान नहीं है, इसलिये जिस प्रकार मनुष्य अपने प्राणको बचाता है, दूसरोंके विषयमें भी उसी भांति दया करे। हे तात! शुक्रसे मांस उत्पन्न होता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है; इसलिये उसे भक्षण करनेसे महान् दोष और भक्षण निवृत्तिको ही पुण्य कहा जाता है; परन्तु इस लोकमें वेदविहित विधिके अनुसार मांस भक्षण करनेसे दोष नहीं होता; ऐसी जनश्रुति है, कि "यज्ञके लिये पशुवृन्द उत्पन्न हुए है।" वेदविधिसे अन्यथा आचरणमें प्रवृत्त मनुष्योंके अनुष्ठानको राक्षसधर्म्म कहते हैं, क्षत्रियोंकी जो विधि दीख पड़ती है, उसे भी सुनो। क्षत्रियको बाहुबलसे प्राप्त हुए मांसको भक्षण करनेसे दोषयुक्त नहीं होता। हे महाराज! पहले समयमें अगस्त्य मुनिके द्वारा सर्व्व देवताओंके उद्देश्यसे जङ्गली पशु सब प्रकारसे प्रोक्षित हुए, इसहीसे मृगया प्रशंसनीय हुआ करता है, अपने प्राणकी आशाको बिना त्यागे मृगया नहीं होता। हिंसक पशुओंसे अपने प्राणनाशकी सम्भावना रहती है, इसलिये प्राणपणसे होनेवाला मृगया दोषका कारण नहीं है; समतायुक्त होके मनुष्य मृगयामें पशुओंको मारता है अथवा पशुओंके द्वारा मारा जाता है। हे भारत! इस ही लिये राजर्षि लोग मृगयाके निमित्त जाते हैं, इसमें वे पापसे लिप्त नहीं होते और मृगयाको पाप नहीं समझते। हे कौरवनन्दन! सब जीवोंके विषयमें दया करनेके सदृश धर्म्म इस लोक और परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है, दयावान् मनुष्योंको कदापि भय नहीं होता, दयावान् तपस्वियोंको इस लोक और

जय होती है। धर्मज्ञ पुरुष अहिंसाको ही धर्मका लक्षण जानते हैं; जो कर्म अहिंसायुक्त हो, आत्मवान् पुरुष उसे ही करे, पितृ यज्ञ और देवयज्ञमें प्रोक्षित मांस ही हवि रूपसे वर्णित हुई है। मैंने सुना है, कि जो लोग दयावान् होके सब जीवोंको अभयदान करते हैं, सब जीव भी उन्हें अभय प्रदान करते हैं। घायल, स्खलित, च्युत, पतित, और क्लेशित पुरुषोंकी सम विषम स्थलमें सब जीव ही रक्षा किया करते हैं। जो पुरुष भयके समयमें दूसरोंका भय छुड़ाता है, उसे हिंसक जीव और पिशाच राक्षस भी नहीं मारते; वह भय उपस्थित होनेपर उससे छुटकारा पाता है। प्राणदानसे बढ़के परम दान न हुआ और न होगा। यह निश्चय है, कि आत्मासे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं हैं। हे भारत! मरना सब जीवोंको ही अनभिलषित है, जीवको मृत्युके समय सदा ही दुःख होता है, सब जीव गर्भवास और जन्म जरा दुःखके सहारे सदा संसार-सागरमें परिभ्रमण करते हैं और मरनेसे डरते हैं। सब प्राणी गर्भवासके समय मूत्र, श्लेष्म और पुरीष प्रभृतिकी अत्यन्त दारुण उत्कट, खार खट्टे और कड़वे रसोंसे पच्यमान हुआ करते हैं, मांसलोभी पुरुष जन्म लेके भी उस समय अवश तथा विवश रहनेसे बार बार छिद्यमान और पच्यमान् दीख पड़ते हैं, वे लोग उन्हीं योनियोंमें जन्म लेके फिर कुम्भीपाक नरकमें पकते हैं, वे आक्रान्त तथा म्रियमाण होके बार बार भ्रमण करते हैं। पृथ्वीपर खोजनेसे आत्मासे अधिक प्रिय पदार्थ और कुछ भी नहीं देखा जाता, इसलिये आत्मावान् पुरुष सब प्राणियोंमें ही दयावान् होवे। हे महाराज। जो लोग जन्मसे ही मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें निःसन्देह सुरपुरमें उत्तम महत् स्थान प्राप्त होता है। जो लोग जीनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंका मांस भक्षण करते हैं, वे उन्हीं जीवोंके द्वारा भक्षित होते हैं, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, हे भारत! जब कि वह मुझे भक्षण करता है तब मैं भी उसे भक्षण करूंगा, 'मांस' शब्द यही मांसत्व मालूम करो। हे महाराज। घातक सदा ही वध्य होता है, अनन्तर भक्षक पुरुष वध्य हुआ करता है; आक्रोष्टा पुरुष सदा ही आक्रुष्ट होता और द्वेष करनेवालेको द्वेषफल प्राप्त हुआ करता है। जो पुरुष जिस शरीरसे जैसा कर्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन फलोंको भोगता है। अहिंसा परमधर्म, अहिंसाही परम दम, अहिंसाही परमदान अहिंसाही परम तपस्या है, अहिंसा परम यज्ञ, अहिंसाही परम तप, अहिंसा परम बल, अहिंसा ही परम मित्र, अहिंसा परम सुख, अहिंसा परम सत्य और अहिंसा ही परम श्रुत है। सब यज्ञोंमें जो दान किया जाता है, सब तीर्थोंके स्नान तथा सब दानोंके फल अहिंसाके सदृश नहीं हैं। अहिंस्र मनुष्योंकी तपस्या अक्षय होती है, अहिंसक पुरुष सदा ही यज्ञ करता और हिंसारहित मनुष्य सब जीवोंके पितामाता सदृश है। हे कुरुपुङ्गव! यह मैंने अहिंसाका फल कहा, इसकी अपेक्षा और जो सब अत्यन्त अधिक फल हैं, वे एक सौ वर्षमें भी नहीं कहे जा सकते।

११६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो लोग अकाम अथवा सकाम होकर महाध्वरमें मरते हैं, उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है? हे महाप्राज्ञ! महाध्वरमें मनुष्योंका प्राणत्यागना अत्यन्त दुःखकर है। समृद्धि, असमृद्धि शुभ या अशुभ समयमें प्राण परित्याग करना जो अत्यन्त दुष्कर है, उसे आप जानते हैं; इसलिये इस विषयका कारण मेरे समीप वर्णन करिये। मैं आपको सर्वज्ञ जानता हूं।

भीष्म बोले, हे पृथ्वीपति युधिष्ठिर! सम्भूत अथवा असम्भूत शुभ वा अशुभ वंशमें इस संसारके बीच उत्पन्न हुए प्राणिवृन्द जिस भावसे रत रहते हैं, मेरे समीप उसका कारण सुनो; तुमने यह उत्तम प्रश्न किया है। हे राजन युधिष्ठिर! इस विषयमें द्वैपायन और कीटके सम्वादयुक्त पुराना इतिहास कहता हूं। पहले समयमें विप्रवर कृष्णद्वैपायन ब्रह्मरूपसे विचर रहे थे, उस समय उन्होंने शकटके मार्गमें शीघ्रताके सहित दौडते हुए एक कीटको देखा सब जीवोंके गतिज्ञ और शरीरधारी मात्रकी भाषा जाननेवाले सर्व्वज्ञ वेदव्यासने उस समय कीटको देखकर यह वचन कहा —

व्यासदेव बोले, हे कीट! तुम अत्यन्त भयभीत और आतुर दीख पडते हो, तुम दौडके कहां जाओगे? तुम्हें किससे भय हुआ है?

कीट बोला, हे महाबुद्धिमान्! इस बहुत शकटका शब्द सुनके मुझे भय हुआ है, यह अत्यन्त दारुण शब्द सुननेमें आता है, परन्तु उसने मेरा जीवन नष्ट नहीं किया, इसी लिये इस स्थानसे जाता हूं। प्रहार करनेमें जिस प्रकार निश्वासयुक्त गजके बछडोंका शब्द होता है, वैसे ही इस शब्दको सुनता हूं। बहुत सा भार ढोनेवाले मनुष्योंके सन्निकर्षनिस्स्वनसे शकटके अनेक प्रकारके शब्द कानके छिद्रमें प्रवृष्ट होते हैं। मेरे सदृश कीटयोनिमें उत्पन्न हुए जीव ऐसे शब्दको नहीं सुन सकते, इस ही निमित्त अत्यन्त दारुण भयसे इस स्थानको छोडके दूसरे स्थानमें जाता हूं, जीवोंको मृत्यु मे ही दुःख है, जीवन अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिये मैं डरके भागता हूं और सुख छोडके दुःखमें भी नहीं जाता हूं।

भीष्म बोले, व्यासदेवने कीटका ऐसा वचन सुनके उससे कहा, हे कीट! किस प्रकार तुम्हें सुख होता है, तुम शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और अनेक भांतिकी भोज्यवस्तुओंको भोगना नहीं जानते। हे कीट! इसलिये तुम्हारा मरना ही कल्याणकारी है।

कीट बोला, हे महाप्राज्ञ! जीव सब ठौर रत रहता है, इसलिये इस योनिमें भी मुझे सुख है, ऐसा जानके ही मैं जीवित रहनेकी अभिलाष करता हूं। इस कीटशरीरमें भी देहके अनुसार सब विषय प्रवर्त्तित हुए हैं, जङ्गम और स्थावर जीवोंके भाग पृथक् पृथक् हैं। हे प्रभु! मैं पहले जन्ममें अधिक धनवाला शूद्र जातीय मनुष्य था, मैं ब्रह्मनिष्ठ न होकर नृशंस कृपण, वृद्धिजीवी, तीक्ष्णबादी, अतिनिकृतिप्रज्ञ और सब भांतिसे लोगोंका द्वेषी था। परस्परमें छल करके परधन हरनेमें रत रहता था, गृहके बीच सेवकों और अतिथियोंको परित्याग करके स्वयं पहले भोजन करता और मत्सरतासे स्वादुकाम तथा नृशंस होकर भोजन करनेकी इच्छा करता, अर्थकाम होके देव और पितृयज्ञके लिये श्रद्धापूर्व्वक अन्न प्रदान नहीं करता था; पहले अन्न दान करनेकी इच्छा करके भी फिर उससे विमुख रहता था। गुप्तभावसे जो लोग शरणागत होनेके लिये मेरा आसरा करते और जो लोग डरके मेरे शरणागत होते थे, मैं अकस्मात् उन्हें परित्याग करता था और जो लोग अभय प्रार्थना करते थे, उनका परित्राण नहीं करता था। दूसरोंके धन, धान्य, पीनेकी वस्तु, अद्भुत वस्त्र और सम्पत्ति देखके मैं निरर्थक डाह करता था, मैं दूसरेके ऐश्वर्य्यकी इच्छा न करके लोगोंके सुखको देखनेसे ही ईर्षा करता था। अपने प्रयोजनके लिये दूसरोंका भी धर्म्म, अर्थ और काम, नष्ट करता था, पूर्व्व जन्ममें मैंने नृशंस तथा बहुतसे गुणयुक्त कार्य्य किये थे; मैं जिस प्रकार अपने पुत्रको परित्याग करनेसे दुःख होता है, मैं इस समय उन कर्म्मोंको स्मरण करके उसी भांति शोक करता हूं। मैंने जो कुछ सत्कर्म्म ।८। उसका कुछ भी फल नहीं जानता,

जननीका सत्कार करता तथा ब्राह्मण लोग भी मेरे द्वारा पूजित हुए थे। हे ब्रह्मन्! एकबार जाति-गुणसे युक्त कोई अतिथि सङ्गतिक्रमसे मेरे गृहपर आया था, मैंने उसकी पूजा की थी, इसही लिये स्मरणशक्तिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे तपोधन। मैं कर्म्मके सहारे भविष्यत सुख देखता हूं, इसलिये आपके समीप उस कल्याणके विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं।

११७ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हे कीट। तू जो तिर्य्यक्-योनिमें जन्म लेके शुभकर्म्मके सहारे भस्म नहीं होता है, वह मेरा ही कार्य्य है, मैं तपबलसे देखते ही तेरा उद्धार करूंगा, तपोबलसे प्रबल और कुछ भी नहीं है। मैं जानता हूं कि तू अपने किये हुए पापकर्म्मोंसे कीटानुकीट हुआ है, यदि धर्म्मको मानो, तो फिर धर्म्म प्राप्त होगा। देव और तिर्य्यक् प्रभृति सब कोई कर्म्म भूमिमें अपने किये हुए पाप पुण्यका फल भोग किया करते हैं। मनुष्योंका धर्म्म और गुण कामका हेतु हुआ करता है। बचन बुद्धि हाथ पावसे रहित विपश्चित अथवा मूर्ख जो जीवित रहते हैं, उनका लोग उपहास करते हैं; श्रेष्ठ विप्र जीवित रहके सूर्य्य चन्द्रमाकी पूजा करते और उत्तम कथा कहा करते हैं। हे कीट! इसलिये मैं तुझे उस ही ब्राह्मणयोनिमें प्रेरण करूंगा, तू ब्राह्मणत्व पानेसे कर्म्मोंका फल भोगेगा और सब जीवोंको परित्याग करेगा, तब मैं तुझे परब्रह्ममें लीन करूंगा अर्थात् तुझे ब्रह्मविद्या दान करूंगा। वह कीट 'ऐसा ही हो,' यह बचन कहके मार्गमें ही स्थित हुआ, इतने ही समयमें यदृच्छाक्रमसे बृहत् शकटस-मूह आ पहुंचा, पहियेके नीचे दबकर उस कीटने उसी समय प्राण परित्याग किया, अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवकी कृपासे वह कीट अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुआ; वह श्वावित, गोधा, बराह, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और क्रमसे वैश्यजातीय होकर जब जिस योनिमें जन्मता था, तभी उस ऋषिसत्तमका दर्शन करनेके लिये जाता था। वह कीट उस सत्यवादी ऋषिके द्वारा इसी प्रकार उपदिष्ट होके प्रतिजन्ममें ही स्मरण करते हुए दोनों हाथ जोड़के सिरसे उनका चरण छूता था। अनन्तर वह कीट क्षत्रिय होके बोला, मैंने दशजन्ममें यह अभिलषित अतुल पद पाया है, क्योंकि मैं कीटत्व प्राप्त करके राजपुत्र हुआ हूं; मैं सुवर्णमालासे युक्त अत्यन्त बलवान हाथियोंपर चढ़ता हूं। रथमें जुते हुए काम्बोज देशीय घोड़े, ऊंट और अश्वतरी मुझे ले चलनेके लिये तय्यार हैं; मैं बान्धवों और सेवकोंके सहित पलान्न भक्षण करता हूं। हे महाराज! मेरे समीप वायुयुक्त पंखे चल रहे हैं और मैं महामूल्यवान् शय्यापर उत्तम रीतिसे पूजित होकर सुखसे सोता हूं। जिस प्रकार देववृन्द इन्द्रकी स्तुति करते हैं, वैसे ही रात बीतनेपर सूत, मागध और बन्दीजन मेरी स्तुति किया करते हैं। आप अत्यन्त तेजस्वी और सत्यसन्ध हैं, आपकी कृपासे मैंने कीट होके भी राज्य लाभ पाया है। हे महाप्राज्ञ। इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूं, कहिये कौनसा कार्य्य करूं? मैंने आपके तपोबलके सहारे यह निर्द्दिष्ट पद पाया है।

व्यासदेव बोले, हे राजन! आज मैं तुम्हारे यदृच्छा बचनसे पूजित हुआ, कीटत्वको प्राप्त होके भी तुम्हें इस समय जुगुप्सित स्मृतिशक्ति उत्पन्न हुई है। पहले तुमने अत्यन्त आततायी धनी शूद्र होके जिन पापोंको किया था, उसका विनाश नहीं है। तुमने जो तिर्य्यक्योनिमें जन्म लेकर मेरी पूजा की थी, उस ही सुकृतके सहारे मेरा दर्शन पाया है। तुम रणभूमिमें ब्राह्मणके निमित्त अपना प्राण देके राजपुत्रत्व त्यागके

ब्राह्मणत्व पाओगे। हे राजपुत्र! तुम सहजमें ही आप्त दक्षिणायज्ञ पूरा करके स्वर्गलोकमें सुखी तथा अव्यय ब्रह्ममय होके प्रमुदित होगे। तिर्य्यक्योनिसे शूद्रत्व प्राप्त होता है, शूद्रत्वसे वैश्यत्व और वैश्यत्वसे क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ करता है, साधुवृत्त क्षत्रिय ब्राह्मणत्व पाते और सत्स्वभाव सुशील ब्राह्मणोंको स्वर्गलोक मिलता है।

११८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! उस वीर्य्यवान कीटने क्षत्रियत्व पाके पूर्व्व वृत्तान्त स्मरण करते हुए विपुलतपस्या की थी, उस धर्म्मार्थवेत्ताकी वैसी महत् तपस्या देखकर उस समय कृष्णद्वैपायन उसके समीप गये।

व्यासदेव बोले, हे कीट! क्षात्रधर्म्म सब प्राणियोंकी प्रतिपालन करनेसे देवव्रत है, इसलिये क्षत्रियधर्म्मको देवव्रतरूपसे ध्यान करते हुए मरनेपर तुम्हें विप्रत्व प्राप्त होगा। तुम शुभाशुभवेत्ता और आत्मवान् होकर पूरीरीतिसे प्रजाका पालन करो। पवित्र शुभकार्य्योंसे अशुभ कर्म्मोंका सम्विभाग करो; स्वधर्म्माचरणमें रत रहके आत्मवान् तथा प्रसन्न रहो, अनन्तर क्षत्रिय शरीर त्यागनेपर ब्राह्मणत्व पाओगे।

भीष्म बोले, हे नरसत्तम युधिष्ठिर! वह कीट महर्षि कृष्णद्वैपायनका वचन सुनके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन करके अन्तमें वनवासी हुआ और प्रजा पालन करनेसे परलोकमें जाकर ब्राह्मणत्व पाया। अनन्तर महायशस्वी महाप्राज्ञ कृष्णद्वैपायन मुनि उस समय उसे ब्राह्मण देखकर फिर उसके निकट गये।

वेदव्यास बोले, हे श्रीमान् विप्रवर! तुमने शुभयोनिमें शुभकर्म्म किया और पापयोनिमें पापाचरण किया है, तथापि तुम किसी प्रकार व्यथित न होना, यदि तुम्हें धर्म्म लोपका भय हो, तो उत्तम धर्म्माचरण करो।

कीट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासे ही मैंने सुखसे भी अधिक सुख पाया है; धर्म्ममूल सम्पत्तियोंको पानेसे अब मेरा पाप नष्ट हुआ है।

भीष्म बोले, हे महाराज! कीटने भगवान् व्यासदेवके बचनानुसार दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके पृथ्वीको सैकड़ों यज्ञयूपोंसे अङ्कित किया। हे पार्थ! अनन्तर उस ब्रह्मवित्तम कीटने ब्रह्मसालोक्य पाके व्यासदेवके वाक्य अनुसार उस समय स्वकर्म्म फल निवृत्त सनातन ब्रह्मपद पाया। हे तात! तुम्हारे प्रभावसे जो सब क्षत्रिय युद्धमें मरे हैं, उन्होंने भी पवित्र गति पाई है, इसलिये तुम शोक मत करो।

११९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुश्रेष्ठ पितामह! विद्या तपस्या और दान, इन तीनोंके बीच श्रेष्ठ क्या है? इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग मैत्रेय और कृष्णद्वैपायनके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। हे महाराज! कृष्णद्वैपायन मुनि अज्ञातरूपसे विचरते हुए काशीपुरीमें मुनिमण्डलीके बीच मैत्रेयके समीप उपस्थित हुए। मुनिसत्तम मैत्रेयने उन्हें समागत और समासीन जानकर उनकी पूजा की और उत्तम भोजन कराया। महात्मा वेदव्यास मुनि उस श्रेष्ठ सुगन्धियुक्त सार्व्वकामिक उत्तम अन्न भोजन करके प्रस्थान करते हुए प्रसन्न तथा विस्मित हुए। मैत्रेय ऋषि उस कृष्णद्वैपायन मुनिको विस्मययुक्त जानके बोले, हे धर्म्मात्मन्! आप किस निमित्त विस्मित हुए? उसका कारण कहिये। हे विद्वन्! आप तपस्वी और धृतिमान् हैं, तब आपको किस लिये प्रमोद हुआ? मैं आपको प्रणाम करके पूछता हूं, कि यह आपका तपोभाग्य अथवा

सुखभाग्य है ? क्यों कि आश्चर्य दर्शनके अतिरिक्त बिस्मय नहीं होता। उपाधिपरिच्छिन्न जीव और अनुपाधिक ब्रह्म पृथक् आचरण करनेपर भी जीवन्मुक्त और मुक्तामुक्त उभयात्मक आत्माकी अपेक्षा मैं आत्माको अल्पान्तर जानता हूं, क्यों कि आप मेरा भाग्य देखकर विस्मित हुए हैं; इसलिये मैं आपकी अपेक्षा आत्माको अल्पान्तर रूपसे अनुमान करता हूं और मित्रवंशसे आपको विशिष्ट समझता हूं।

व्यासदेव बोले, समुद्र शोषणसदृश अत्यन्त अशक्य विषय अतिक्रान्त और अतिवादके द्वारा यह बिस्मय पूरी रीतिसे उत्पन्न हुआ है, यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि वेद वचन सत्य नहीं है ? वेद किसलिये मिथ्या कहेगा ? पुरुषके इन तीनों विषयोंको पण्डित लोग उत्तम व्रत कहते हैं,—किसीसे द्रोह न करना, दान और सत्य वचन कहना। ऋषियोंके द्वारा यह वेदोक्त विधि पहले ही परिकल्पित हुई है, इस समय इसे ही करना चाहिये और पहले भी ऐसा ही सुना गया था। अवश्य कर्त्तव्य दान अल्प होनेपर भी महाफलजनक हुआ करता है। तुमने असूयारहित हृदयसे प्यासे पुरुषको जल दान किया है, तुमने स्वयं तृषित होके भी मुझे प्यासा जानकर यह अन्न दान किया है, इसलिये महायज्ञके सहारे जिन लोकोंको जय किया जाता है, तुमने इस अन्नके सहारे उन महत् लोकोंको जय किया है, इसी लिये मैं तुम्हारे पवित्र दान और तपस्यासे विस्मित हुआ हूं। तुम्हारे सत्त्व पुण्यसे तुम्हारा दर्शन भी पुण्यसापेक्ष है, तुम्हारा विधानन कर्म्म भी पुण्य गन्धयुक्त मालूम होता है। हे तात! तीर्थ और वेद व्रत समाप्त करनेकी अपेक्षा तुम्हारे दर्शनादि अत्यन्त पवित्र हैं। हे द्विज! सब पवित्र विषयोंके बीच दान ही परम शुभ है, यदि सब पवित्र विषयोंसे दान श्रेष्ठ न होवे, तब तुम उत्तम वेदोक्त विधानोंकी प्रशंसा करते हो, उन सबसे दान ही उत्तम है, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। दातागणने जो मार्ग बनाया है, मनीषि लोग उस ही मार्गमें गमन किया करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन दातागणमें ही सबके धर्म्म प्रतिष्ठित हैं। उत्तम रीतिसे पढ़ा हुआ वेद जिस प्रकार श्रेष्ठ है, इन्द्रिय संयम और सर्व्वत्याग जैसा विशिष्ट है, दान भी उसी भांति अत्यन्त श्रेष्ठ है। हे तात! तुम सहजमें ही उत्तम सुख पावोगे, बुद्धिमान् मनुष्य सुखसे भी अधिक सुख पाता है। हमारे प्रत्यक्षमें निःसन्देह इसके मिलनेपर अर्थ, दान और समस्त यज्ञोंके फल श्रीमान् पुरुषको सुखसे प्राप्त होते है। हे महाप्राज्ञ! सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख सदा स्वभाविकसे दिखाई देते हैं। पण्डित लोग मनुष्योंके तीन प्रकारके वृत्त वर्णन करते हैं,—पुण्य, पाप और पुण्यपातक; इन तीनोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, स्वकर्म्मसे निवृत्त पुण्य-पापकी भांति ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका पुण्यपाप नहीं गिना जाता यज्ञ, दान तथा तपस्या करनेवाले मनुष्य ही पुण्यात्मा हैं और जो लोग जीवोंके विषयमें द्रोह करते, वेही पापी हैं, जो लोग दूसरेका द्रव्य लेते, वे दुःखी तथा पतित होते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य जो सब कर्म्म हैं, वे न पुण्य हैं और न पाप ही हैं। क्रीड़ा करो, वृद्धिवान् हो, आनन्दित रहो दान और यज्ञ करो, तो वैद्य तथा तपस्वीवृन्द तुम्हें अभिभव करनेमें समर्थ न होंगे।

१२० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अत्यन्त श्रीसम्पन्न कुलमें उत्पन्न बुद्धिमान् बहुदर्शी कर्म्मकी प्रशंसा करनेवाले मैत्रेय ऋषिने ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया।

मैत्रेय बोले, हे महाप्राज्ञ! आपने जैसा कहा, वह निःसन्देह वैसा ही है। हे विभु!

परन्तु मैं आपकी अनुमतिसे कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं।

व्यासदेव बोले, हे महाप्राज्ञ मैत्रेय! आप जिस विषयकी जहांतक कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं तुम्हारा बचन सुननेको अभिलाष करता हूं।

मैत्रेय बोले, दानसम्बन्धीय विद्या और तपस्यासे भी निर्म्मल है, आपने निःसन्देह आत्मज्ञान लाभ किया है, आपको आत्मज्ञान निवन्धनसे महत् लाभ हुआ है, मैं फिर सुसंवृद्ध तपस्यायुक्तकी भांति न्यायबुद्धिसे आलोचना करके देखता हूं,—आपके दर्शनसे हम लोगोंका अभ्युदय होता है। ये जो स्वाभाविक कार्य होते हैं, उसे मैं आपको कृपासे ही हुआ समझता हूं। तपस्या, शास्त्रज्ञान और योनि, यही ब्राह्मणत्वको हेतु है,—इन तीनों गुणोंके समुदित होनेपर पुरुष द्विज हुआ करता है। ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर पितर और देववृन्द तृप्त होते हैं, शास्त्रज्ञानयुक्त ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, अन्न ही तपस्वरूप है, अन्नके बिना कुछ भी मालूम नहीं होता, चारो वर्णोंके विधान, धर्म्माधर्म्म और सत्य मिथ्या कुछ भी नहीं रहते। जैसे मनुष्यको उत्तम रीतिसे जुते हुए खेतमें फल प्राप्त होते हैं, वैसे ही दाता शास्त्रसम्पन्न ब्राह्मणोंको दान करनेसे उसका फल भोग किया करता है। शास्त्रज्ञान और सुचरित्रयुक्त दानका प्रतिग्रहीता ब्राह्मण यदि विद्यमान् न रहे, तो धनियोंका धन निरर्थक होता है। अविद्वान् पुरुष अन्न भक्षण करके अर्थको नष्ट किया करता और अद्यमान अन्न भी उसे नष्ट करता है। जो अन्न रक्षा करता है, उसे ही अन्न कहते हैं; जो अन्नको नष्ट करता है, वह मूर्ख पुरुष नष्ट होता है। विद्वान् पुरुष ही अन्न भोजन करनेमें समर्थ है, वो ईश्वर होके अन्न उत्पन्न करते और अन्नसे उत्पन्न हुआ करते हैं; यह व्यतिक्रम अत्यन्त सूक्ष्म है। दाता को जैसा पुण्य होता है, प्रतिग्रहीताको भी उस ही प्रकार पुण्य हुआ करता है; ऋषियोंने ऐसा कहा है, कि दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही लोकतन्त्र निभाते है। शास्त्रज्ञान और सच्चरित्र युक्त ब्राह्मण जिस स्थानमें निवास करते हैं, उसी स्थानमें पवित्र दानका फल इस लोक और परलोकमें भोग किया जाता है। जो लोग शुद्धयोनिमें उत्पन्न होके सदा तपस्या करनेमें रत रहते है और जो लोग दान तथा अध्ययनयुक्त हैं, वे सदा पूजने योग्य हैं, उन साधुओंने जो पथ तय्यार किया है, उस ही मार्गसे गमन करनेपर मनुष्य मुग्ध नहीं होता, वे लोग सनातन यज्ञवाह स्वर्गमार्गके प्रदर्शक हैं।

१२१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भगवान् वेदव्यासने मैत्रेयका ऐसा बचन सुनके उत्तर दिया; कि भाग्यसे ही तुम ऐसे ज्ञानवान् हुए हो, भाग्यसेही तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है, लोग आर्य्य पुरुषोंके गुणोंकी भली भांति प्रशंसा करते हैं। भाग्यसे ही रूपमान, बयोमान और श्रीमान तुम्हें निःसन्देह अभिभव नहीं किया, यह तुम्हारे ऊपर दैवकी कृपा है। दानसे बढ़के जो कुछ श्रेष्ठवस्तु है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। इस लोकमें जो सब आगम शास्त्र तथा जो कुछ प्रवृत्ति हैं, वे वेदको अगाड़ी करके यथारीतिसे प्रवृत्त हुई हैं। मैं दानकी प्रशंसा किया करता हूं, आप तपस्याज्ञानकी प्रशंसा करते है; तपस्या ही पवित्र और तपस्या ही वेद तथा स्वर्गकी साधन है। तपस्या और विद्यासे मनुष्यको महत्व मिलता है, मैंने ऐसा सुना है, कि जितने दुष्कृत हैं, वे तपस्यासे नष्ट होते हैं। दुरन्वय, दुष्प्रधर्ष दुष्प्राप्य और दुरतिक्रम जो कुछ विषय हैं, वे सब तपस्यासे प्राप्त होते हैं, इसलिये तपस्या ही वलवान् है। सुरापीनेवाले, परधनहारी, भ्रूणहत्यारे और गुरुतल्पगामी मनुष्य तपस्याके सहारे सब

उत्तीर्ण होते तथा समस्त पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग सर्व्वज्ञ होकर ज्ञाननेत्रसे सब विषयोंको अवलोकन करते हैं और जो लोग किसी प्रकारके तपस्वी हों, उन्हें नमस्कार करना उचित है। शास्त्रज्ञानयुक्त तथा तपस्वी मनुष्य सबके ही पूजनीय हैं; दान देनेवाले मनुष्य इसलोकमें श्रीसम्पन्न होकर परलोकमें सुख पाते हैं। जो लोग यहांपर सुकृत कर्म्म करते हैं, वे अन्नदानके सहारे इसलोक, ब्रह्मलोक तथा बलवत्तर लोकोंको पाते हैं। पूजित पुरुष इनकी पूजा करते और सम्मानित मनुष्य सम्मान करते हैं; वे दाता पुरुष जिन स्थानोंमें जाते हैं, उन्हीं स्थानोंमें सब भांतिसे प्रशंसित होते हैं। चाहे अकर्त्ता हो, चाहे कर्त्ता ही होवे, जिसका जैसा कर्म्म है, वह वैसा ही फल पाता है। चाहे ऊर्द्धमें हो, चाहे अधोभागमें ही होवे, तुम निजलोकमें ही जाओगे और वहां खाने पीनेकी अथवा जो कुछ इच्छा करोगे, उसे ही पाओगे। तुम मेधावी सद्वंशमें उत्पन्न हुए हो, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, अनृशंसतायुक्त, कौमार ब्रह्मचारी और व्रतवान् हो, इसलिये जीवोंके सुहृद बनो; गृहमेधियोंका यह पहला धर्म्म ग्रहण करो। जो पति भार्य्यासे प्रसन्न रहता है और जो भार्य्या पतिसे सन्तुष्ट रहती है, जिस कुलमें सब कोई इसी प्रकार हैं, उसी वंशमें कल्याण विद्यमान रहता है। जैसे जलसे शरीर निर्म्मल रहता है और जिस प्रकार सूर्य्यके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही दान और तपस्यासे सब पाप नष्ट हुआ करते हैं। हे मैत्रेय! तुम्हारी स्वस्ति होवे, मैं निज स्थानपर जाता हूं, इस विषयको मनमें रखना, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। अनन्तर मैत्रेयने प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणाकी और हाथ जोड़के बोले, कि "आपको स्वस्ति प्राप्त होवे।"

१२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वधर्म्मज्ञ पितामह! मैं आपके समीप सती स्त्रियोंके समुदाचार सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, सुमना नामी केकयराजकी पुत्रीने देवलोकमें सर्व्वज्ञा सब तत्त्वोंको जाननेवाली मनस्विनी शाण्डिलीसे प्रश्न किया। हे कल्याणि! तुम कैसे चरित्र और कैसे आचारसे देवलोकमें आई हो? तुम अग्निशिखाकी भांति निज तेजसे प्रज्वलित होती हो और ताराधिपकी पुत्रीसदृश अपने प्रभावसे द्युलोकमें आई हो; क्लान्तिहीन होके तुमने रजोरहित श्वेत वस्त्र धारण किया है। हे शुभे! विमानमें रहके अपने तेजके द्वारा तुम्हें सहस्र गुण शोभा प्राप्त हुई है। तुम अल्प तपस्या, दान और नियमके सहारे इसलोकमें नहीं आई हो; इसलिये मुझसे तुम अपना यथार्थ वृत्तान्त कहो। चारुहासिनी शाण्डिलीने सुमनाका ऐसा प्रश्न सुनके मधुर भावसे उत्तर दिया। मैं गेरुआवस्त्र धारण करनेवाली तथा वल्कलधारिणी नहीं हूं, मैंने सिर मुड़ाने अथवा जटायुक्त होनेसे स्वर्गलोक नहीं पाया; मैंने अप्रमत्त रहके कदाचित पतिको अहित वा कठोर वचन नहीं कहा है। देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंकी पूजामें सदा सावधान रहती और सास-ससुरकी सेवा करनेमें सदा नियुक्त रहती थी। चुगलीके कार्य्यमें कभी प्रवृत्त नहीं होती थी और न यह मुझे अभिमत है, घरके बाहर कदापि निवास नहीं करती थी और बहुत समयतक किसीके साथ वार्त्तालाप भी नहीं करती थी। किसी असत्कर्म्म, हांसी अथवा कार्य्यमें अहित किम्वा रहस्य वा अरहस्य किसी विषयमें मैं सर्व्वथा प्रवृत्त नहीं होती थी। कार्य्यके निमित्त घरसे निकलके फिर जब मेरे पति घरपर आते थे तब उन्हें बैठाके सावधान होकर उनकी पूजा करती थी। मेरे पति जिस अन्नको उन्हें

नहीं जानते और जिसका अभिनन्दन नहीं करते थे, वैसी भक्ष्य वा लेह्य वस्तुओंको मैं परित्याग करती थी। परिवारके निमित्त जो कुछ वस्तु लाई जाती तथा जो कुछ कर्त्तव्यकार्य्य रहता था, भोरके समय उठके मैं स्वयं उन कार्य्योंको करती तथा दूसरोंसे कराती थी; किसी कार्य्यसे यदि मेरे पति बिदेशमें जाते थे, तो उस समय मैं माङ्गलिक सूत्र धारण करके संयत होके रहती थी। पतिके बिदेश जानेपर मैं अञ्जन, महावर, स्नान, माला धारण, उब-टन और प्रसादनका अभिनन्दन नहीं करती थी। पतिके सुखसे शयन करनेपर मैं आन्त-रिक कार्य्य रहनेपर भी उठके उन्हें परित्याग करके नहीं जाती थी, उससे मेरा मन सन्तुष्ट रहता था। कुटुम्बके निमित्त स्वामीको सदा आयासयुक्त नहीं करती थी, गोपनीय बिषयोंको गुप्त रखती और सदा हर्षयुक्त रहती थी। जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म्मपद्धतिको पालन करती है, वह स्त्रियोंके बीच अरुन्धतीकी भांति स्वर्गलोकमें निवास किया करती है।

भीष्म बोले, महाभागा तपस्विनी शाण्डिली देवी सुमनासे यह पतिधर्म्म कहके उस समय अन्तर्द्धान हुई। हे पाण्डव! जो लोग प्रति-पर्व्वमें यह आख्यान पाठ करते हैं, वे देवलोक पाके नन्दनकाननमें सुखी हुआ करते हैं।

१२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! साम और दान इन दोनोंमेंसे आपके मतमें कौनसा श्रेष्ठ है? इन दोनोंके बीच जो उत्तम हो, आप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, कोई पुरुष सान्त्वनावाक्यसे प्रसन्न होते और कोई दानसे प्रसन्न हुआ करते हैं, इसलिये पुरुष प्रकृतिको मालूम करके साम और दानकी सेवा करे। हे भरतश्रेष्ठ! प्रचण्ड प्राणी भी जिस प्रकार सान्त्ववादसे आराधना करते हैं, उस सामवादके समस्त गुण मेरे समीप सुनो।

किसी वनमें एक ब्राह्मण राक्षस द्वारा पकड़े जानेपर जिस प्रकार छूटा था, इस विष-यमें प्राचीन लोग उस ही पुरातन इतिहासको कहा करते हैं। किसी वाग्बुद्धियुक्त ब्राह्मणने वनके बीच भूखे राक्षसके द्वारा पकड़े जानेपर क्लेश पाया था, उस बुद्धिशक्तिसे युक्त, शास्त्र-ज्ञान निपुण ब्राह्मणने मुग्ध वा व्यथित न होकर अत्यन्त भयङ्कर राक्षसको देखके उसके विषयमें सान्त्ववाक्य प्रयोग किया। राक्षसने उस ब्राह्म-णको बचनसे सम्मानित करके कहा, कि मेरे प्रश्नका उत्तर देनेसे तुम्हें छुटकारा मिलेगा। मैं किसलिये पाण्डुवर्ण तथा कृश हुआ हूं? मेरे इस ही प्रश्नका उत्तर दो। अनन्तर ब्राह्म-णने मुहूर्त्त भर सोचके अव्यग्रभावसे इस गाथाके सहारे निशाचरके प्रश्नका उत्तर दिया।

ब्राह्मण बोला, तुम बिदेशमें रहके अन्य स्थानोंमें रहनेवाले सुहृदोंके अतिरिक्त अकेले ही बिपुल ऐश्वर्य्य भोगते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण तथा कृश हुए हो। हे निशाचर! तुम्हारे मित्रगण उत्तम रीतसे सेवा करनेपर भी निज दोषसे तुम्हारे विषयमें बिरक्त हुए हैं, इस ही लिये तुम पाण्डुवर्ण वा कृशित होते हो। बोध होता है, कि तुम गुणवान् होकर अन्य सम्मानयुक्त मनुष्योंको निर्गुण देखते हो और तुम बिनीतचित्त तथा प्राज्ञ होकर अन्य पुरुषोंको मूर्ख जानते हो, इससे पीले वा कृश होते हो। समान अथवा अधिक धन ऐश्वर्य्य-युक्त तथा तुम्हारे गुणोंकी अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट मूर्ख लोग बोध होता है, तुम्हारी अवज्ञा करते हैं, इससे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि तुम वृत्तिके बिना क्लेशित होके भी वृत्तिप्राप्तिका नि-करते हुए महानुभावताके कारण

होनेसे पीले और दुबले हुए हो। हे साधु! श्रेष्ठलके वशमें होकर आपको पीड़ित करके कोई पुरुष तुम्हारे द्वारा मरके तुम्हें पराजित समझता है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मुझे बोध होता है, कि काम क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष कुपथमें पड़के क्लेश पाते हैं, तुम उनके निमित्त सोच करते हो, इसीसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, तुम बुद्धिमान् होके भी मूर्खोंसे मिलकर दुर्वृत्त लोगोंसे क्रियमान होनेसे पीले और दुबले हुए हो। बोध होता है, कि मित्रमुख शत्रुने साधुकी भांति आचरण करके तुम्हें ठगा है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। जान पड़ता है, तुम प्रकाशार्थ गति और रहस्य विषयमें निपुण तथा कृती होनेपर भी तत्त्वज्ञ पुरुषोंसे पूजित नहीं होते, इसी निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। अभिनिविष्ट असत् पुरुषोंके निकट तुम्हारे संशयरहित विषयोंके कहनेपर भी तुम्हारे गुणका विकाश नहीं हुआ, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि तुम धन बुद्धि और शास्त्रज्ञानसे रहित होके केवल तेजस्वितासे ही महत्पदकी इच्छा करते हो, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मैं तुम्हें तपस्याके सहारे प्रायश्चित्त चित्त और बनवासका अभिलाषी जानता हूं, बान्धवगण तुम्हें अभिनन्दित नहीं करते हैं, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो दृढ़रूपसे हृदयप्रिय श्रुतपूर्व प्राज्ञ मूर्खको विनयपूर्वक मनानेमें समर्थ नहीं हुए, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुम भार्य्याके विषयमें प्रीति किया करते हो, कोई तुम्हारा प्रतिवेशी महाधनशाली युवा पुरुष सुन्दर और कामी है, इसीलिये तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। अर्थवान पुरुषोंके बीच यथासमयमें अभिहित तुम्हारा उत्तम वचन शोभित नहीं हुआ, इस ही निमित्त तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, कि किसी इच्छित कार्य्यमें कोई तुम्हें आसक्त करके सदा तुम्हारे समीप प्रार्थना करता है, इस ही हेतु तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, तुम्हें सुन्दर गुणयुक्त और पूज्यमान जानके कोई सुहृद अपना अर्थज्ञान करता है, इस ही निमित्त तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। भीतरी अभिप्राय रहनेपर भी बोध होता है, कि तुम लज्जापूर्वक अभिप्रेत विषयकी इच्छा नहीं कर सकते, और प्राप्त विषयोंमें शिथिलता निबन्धनसे विचार करनेमें असमर्थ हो, इसीलिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। जगत्में अनेक प्रकारकी बुद्धि और रुचियुक्त मनुष्योंको तुम निज गुणोंके सहारे ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो, बोध होता है, इस ही हेतु तुम कृश तथा पाण्डुवर्ण हुए हो। तुम मूर्ख और भीरु होके अल्प धन, विद्या, विश्राम तथा दानसे यशकी इच्छा करते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुमने किसी चिरभिलषित फलको नहीं पाया और अन्य पुरुषोंने तुम्हारी बुराई की है, इस ही कारण तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। बोध होता है, तुम अपने किये हुए दोषोंको न देखकर अकारण ही अभिशप्त होनेसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुमने सुहृदों और आर्त्त पुरुषोंको पीड़ा तथा दुःख दूर नहीं किया, तुम अत्यन्त अर्थहीन और गुणरहित हो, इस ही लिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुम साधुओंको गृहस्थ, दुष्टोंको बनवासी और मुक्त पुरुषोंको आश्रममें देखके पाण्डुवर्ण, तथा कृश होते हो। लोग तुम्हारे यथा समयमें अभिहित धर्म्म, अर्थ और कामयुक्त वचनमें विश्वास नहीं करते मालूम होता है, इस ही लिये तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुम मनीषी तथा जिज्ञासु होकर अनिपुण लोगोंके द्वारा धन देके उसे पाकर जीविका निर्व्वाह करते हो,

बोध होता है इस ही निमित्त पाण्डुवर्णा और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि बुद्धियुक्त मनुष्योंके पाप और अवसन्न मनुष्योंके कल्याणको देखकर तुम सदा निन्दा किया करते हो, इस ही लिये पाण्डुवर्णा और कृश हुए हो। तुम सुहृदोंके अनुरोधसे परस्पर विरुद्ध पुरुषोंके प्रियकार्य्यको करनेकी इच्छा किया करते हो, बोध होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्णा और कृश हुए हो। तुम श्रोत्रिय पुरुषोंको विकर्म्मस्थ और ज्ञानियोंको अजितेन्द्रिय समझतेहो, मालूम होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्णा और कृश हुए हो, इसही प्रकार राक्षसने अत्यन्त पूजित होकर उस ब्राह्मणकी पूजा करके उससे सङ्ग मित्रता की और बहुतसा धन देके उसे बिदा किया।

१२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह गङ्गानन्दन। अत्यन्त दुर्लभ कर्म्मक्षेत्रमें मनुष्यजन्म पाके कल्याणकी इच्छा करनेवाले दरिद्र पुरुषोंका जो कर्त्तव्य हो सब दानोंके बीच जो उत्कृष्ट तथा मान्य हो और पूज्य पुरुषोंको जो वस्तु जिस प्रकार देनी योग्य है, आप उस रहस्यविषयको वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! यशस्वी पाण्डुपुत्रका प्रश्न सुनके भीष्मने उनसे सब धर्म्मोंका परम गोपनीय विषय कहना आरम्भ किया।

भीष्म बोले, हे भरतवंशावतंस महाराज! पहले समयमें भगवान् व्यासदेवने मेरे समीप जिन गोपनीय धर्म्मोंका वर्णन किया था, तुम सावधान होके उसे ही सुनो। हे महाराज! यह विषय देवताओंके समीप भी गोपनीय है। पहले अक्लिष्टकर्म्मा यमने नियुक्त होके इसे पाया था। हे अनघ! जिसके सहारे देव, पितर, ऋषि, राक्षसगण, श्री, चित्रगुप्त और सब दिग्गज प्रीतियुक्त होते हैं, जिसमें सरहस्य महाफलजनक ऋषि धर्म्म स्मृत हुआ करता है और जिसमें महादान तथा समस्त यज्ञोंके फल स्मृत होते हैं; चाहे लोग दोषयुक्त हों वा निर्दोष होवें, जो इस विषयको जानते हैं अथवा जानके इसका आचरण करते हैं, वे उन सब गुणोंसे युक्त होते हैं। जिस स्थानमें दश पशु मारे जाते हैं, उस स्थान और पशुघाती जातिको दशसूना कहते हैं, एक चक्रवान तैलिक दशसूनाके तुल्य है, ध्वज अर्थात् सुरा पीनेवाला दश चक्र अर्थात् तेलीके सदृश है, एक वेश्या दश सुरा पीनेवालेके समान है और एक चद्र राजा दश वेश्याके तुल्य है। राजा इन सबको अर्द्धरूपसे तुलना करते हुए अधिक कहा गया है, प्रतिग्रहके निमित्त यह सब तारतम्य वर्णित हुआ करता है। दुष्प्रतिग्रहसे विमुख मनुष्योंको पुण्य लक्षणयुक्त पवित्र धर्म्मार्थ काम शास्त्रको जानना उचित है; देवताओंके द्वारा विहित हुआ पवित्र धर्म्म व्याकरण महत् रहस्य और धर्म्मसंयुक्त आख्यान सुनना चाहिये। श्राद्धकर्म्ममें जो पितरोंका गुप्त विषय और समस्त देवताओंका अखिल रहस्य कहा जाता है; जिसमें सरहस्य महाफलजनक ऋषिधर्म्म स्मृत होता है। जो मनुष्य इसे पाठ करते हैं, उन्हें महायज्ञ और समस्त दानोंके फल प्राप्त होते और उनके समीप सब शास्त्र पूरी रीतिसे स्फुरित हुआ करते हैं, जो लोग सुनके फल कहते हैं, वे स्वयं नारायण स्वरूप हैं। जो मनुष्य अतिथियोंकी पूजा करते हैं, उन्हें गोदान, तीर्थफल और यज्ञोंका फल मिलता है। जो लोग शास्त्र सुनते और श्रद्धायुक्त होके कार्य्य करते हैं, जिनका अन्तःकरण पवित्र है, उन श्रद्धावान् साधु पुरुषोंके द्वारा सब लोक विजित होरहे हैं। श्रद्धावान् साधु पुरुष पापोंसे छूट जाते, वे कभी किसी पापमें लिप्त नहीं होते, ५–७। जानेपर उन्हें सदा धर्म्म प्राप्त होता है

समयके अनन्तर देवदूतने अन्तर्हित होके इन्द्रसे पूछा, उस काम गुणसे युक्त भिषग्वर दोनों अश्विनीकुमारोंकी आज्ञासे मैं मनुष्यों, पितरों और देवताओंके समीप उपस्थित हुआ हूं; किसलिये श्राद्ध विषयमें कर्त्ता और भोक्ता मैथुन विवर्ज्जित हुए हैं और किसलिये तीन पिण्ड पृथक् पृथक् प्रविभक्त हुए हैं। पहला पिण्ड किसे देना चाहिये, मध्यम पिण्ड किसे मिलता है और पिछला पिण्ड किसके लिये स्मृत हुआ है? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। श्रद्धावान् दूतका यह धर्म्मसङ्गत वचन सुनके पूर्व्व दिशामें स्थित देवताओं और पितरोंने उस खेचरकी पूजा करके कहा।

पितृगण बोले, हे खेचरोत्तम! तुमने सुखसे आगमन किया है न? तुम्हारा मङ्गल हो, तुमने गूढ़अर्थयुक्त परम उत्तम प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। जो पुरुष श्राद्ध करके वा श्राद्धमें भोजन करके स्त्रीके समीप जाता है, उसके पितर उस महीनेमें उस ही वीर्य्यके बीच शयन किया करते हैं। अब तीनों पिण्डोंके विभागको विस्तारके सहित कहता हूं। जो पिण्ड नीचेको गमन करता है, उसे जलमें आविष्ट हुआ जाने, मध्यम पिण्डको पत्नी भोग किया करती है, उनमेंसे जो तीसरा पिण्ड है, उसे अग्निमें डाले, यह धर्म्मपूर्व्वक कही गई श्राद्धविधि कदापि लुप्त नहीं होती। जो लोग श्राद्ध करते हैं, उनके पितर प्रसन्नचित्त और सदा सन्तुष्ट रहते हैं, उनकी सन्तान वृद्धि होती तथा उसका धन अक्षय होता है।

देवदूत बोला, आप लोगोंने विस्तारपूर्व्वक क्रमसे सब पिण्डोंके पृथक् पृथक् विभागके विषय कहे और तीनो पिण्डोंमें पितरोंका निरुक्त भी वर्णन किया; एक मात्र समुद्धृत पिण्ड अधःप्रदेशमें किसके समीप जाता है और वह किस प्रकार देवताओंको प्रसन्न करता तथा पितरोंका उद्धार किया करता है? पत्नी अनुज्ञात मध्यम पिण्ड भोजन करती है, पितरगण किस निमित्त उसका कव्य भोग किया करते हैं, इसके बीच जो अन्तिम पिण्ड अग्निके निकट जाता है, उसकी क्या गति होती है और वह किसके निकट गमन किया करता है? तो पिण्डोंकी जो गति होती है और पिण्डदाता जो फल व्यवहार तथा पथ प्राप्त होता है, उ सुननेकी इच्छा करता हूं।

पितृगण बोले, हे गगनेचर! तुमने जो प्र किया वह अत्यन्त महत् रहस्ययुक्त औ अद्भुत है, हम लोग इससे प्रसन्न हुए हैं, देवत तथा मुनिगण ऐसे ही प्रश्नकी प्रशंसा किया करते हैं, वेभी इसी प्रकार पितृकार्य्यका विशेष निर्णय नहीं जानते। केवल महानुभाव चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि जो कि पितृभक्तिसे वर पाके महायशस्वी हुए हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे लोग इस विषयको नहीं जानते। भगवानके समीप तीनों पिण्डोंकी गति सुनके देवदूतने श्राद्धविधिके निश्चयमें जो प्रश्न किया था, साव धान होकर मेरे समीप उन तीनों पिण्डोंकी गति सुनो। जो पिण्ड जलमें समर्पण किया जात है, वह चन्द्रमाको प्रसन्न करता है। हे महाबुद्धिमान्! चन्द्रमा देवताओं और पितरोंको प्रीतियुक्त करते हैं। पुत्र कामनावाली पत्नी पितरोंकी आज्ञानुसार जो मध्यम पिण्ड भोजन करती है, उससे पितामहगण पुत्र प्रदान किया करते हैं। जो पिण्ड अग्निमें डाला जाता है, उसका विषय सुनो, उससे पितरवृन्द परितृप्त होते और प्रसन्न होके अभिलषित दान किया करते हैं। तीनों पिण्डोंके बीच जैसी गति हं है, वह विषय तुम्हारे समीप कहा गया। भोक्ता ब्राह्मण यजमानके पितृत्वको प्राप्त है। श्राद्धके दिन मैथुन न करना साधुसम्मत है खेचरोत्तम! सदा पवित्र होकर श्रा भोजन करना चाहिये, मैंने जिन सब दार्षा कथा कही है, वे उस ही प्रकार होते

अन्यथा नहीं होते इसलिये ब्राह्मण स्नान करके पवित्र और सुसाशील होकर अद्यान्न भोजन करे; जो लोग पूर्वरीतिसे इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, उनकी पूजाकी वृद्धि होती है। अनन्तर विद्युतप्रभ नामक महातपस्वी ऋषि जिनका रूप सूर्य्यके तेजसदृश प्रकाशमान था, वह धर्म्म रहस्योंको सुनके देवराजसे बोले, मनुष्य मोहित होकर तिर्य्यग्योनिके समस्त कीट, चींटी, सर्प, भेड़, मृग और पक्षियोंकी हिंसा किया करते हैं, इस कार्य्यसे वे लोग अत्यन्त ही पापभाजन होते हैं, इसलिये इन लोगोंकी प्रतिक्रिया किस प्रकार होसकती है? अनन्तर देवताओं, तपस्वियों, ऋषियों और महाभाग पितरोंने उस मुनिकी पूजा की।

इन्द्र बोले, कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास और पुष्कर प्रभृति सब तीर्थोंका मन ही मन ध्यान करके अन्तमें जलसे स्नान करनेपर पुरुष इस प्रकार पापोंसे छूट जाता है, जैसे राहुके मुखसे चन्द्रमा मुक्त हुआ करता है, वह मनुष्य तीन दिन स्नान करके निराहारी रहे और गौवोंकी पीठ स्पर्श करके बालधीको नमस्कार करे।

अनन्तर विद्युत्प्रभने इन्द्रसे कहा, हे देवराज। यह अत्यन्त सूक्ष्म धर्म्म है, इसलिये इसे सुनो। बटजटाकषाय द्वारा घृष्ट और प्रियङ्गुसे अनुलिप्त होकर मनुष्य क्षीरके सहित साठ रात्रितक पके धान्यको भक्षण करनेसे सब पापोंसे रहित होता है, ऋषियोंका विचारा हुआ और एक गोपनीय रहस्य सुनो। इसे मैंने महादेवके समीप उनके सङ्ग वार्त्तालाप करते हुए बृहस्पतिके मुखसे सुना है, हे देवेश शचिपति। तुम उसे सुनो, मनुष्य पहाड़पर चढ़के एक पावसे स्थित होकर निराहारी ऊर्द्ध्वबाहु तथा हाथ जोड़के सूर्य्यको देखे इस ही प्रकार महत् तपस्यायुक्त पुरुष उपवासका फल पाता है और सूर्य्यकिरणोंसे परितापित होकर सब पापोंसे रहित होता है, ग्रीष्मकाल और शीतके समय ऐसा आचरण करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। अनन्तर पापहीन पुरुषोंकी शाश्वती द्युति हुआ करती है, तब वे निज तेजसे सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होके फिर चन्द्रमा समान शोभित होते हैं। अनन्तर देवताओंके बीच देवराज शतक्रतु बृहस्पतिसे अत्युत्तम मधुर वचन बोले, मनुष्योंके गोपनीय धर्म्म और रहस्यके सङ्ग जो सब दोष हैं, उसे आप यथावत् वर्णन करिये।

बृहस्पति बोले, हे शचिपति! जो लोग सूर्य्यकी ओर मल मूत्र परित्याग करते, वायुके विषयमें द्वेष करते, जलती हुई अग्निमें समिध होम नहीं करते, जो लोग दूधके निमित्त बाल वत्सा गऊ दूहते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। हे इन्द्र। सूर्य्य, वायु, अग्नि और लोकमाता गौवोंको ब्रह्माने उत्पन्न किया है, ये सब देववृन्द तथा मनुष्योंके परित्राण करनेमें समर्थ हैं। आप सब कोई एक एक धर्म्मनिश्चय सुनिये जो सब दुर्व्वृत्त पुरुष और दुर्व्वृत्ता स्त्रियें सूर्य्यकी ओर मल-मूत्र परित्याग करती हैं, वे क्रियासी वर्ष कुल पाशन हुआ करती हैं। हे देवराज। जो लोग वायुसे द्वेष करते हैं, उनकी गर्भस्थ प्रजा च्युत होती है। जो लोग महाप्रदीप्त अग्निमें समिध होम नहीं करते, उनके अग्निकार्य्यमें पावकदेवता हव्य भक्षण नहीं करते। इस लोकमें जो मनुष्य बालवत्सा गौवोंका दूध पीता है, उसके दुग्धपोषय कुलवर्द्धन सन्तान नहीं जन्मती। इसलिये प्रजाक्षय निबन्धनसे उसका कुल और वंश नष्ट होता है, कुलवृद्ध द्विजातियोंने पहले समयमें इसे देखा था, इसलिये मैं उसे कहता हूं, कि ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य त्यागने योग्य विषयोंको परित्याग करे और कर्त्तव्य विषयोंका अनुष्ठान करनेमें सदा यत्नवान् रहे।

अनन्तर मरुद्गणके सहित देवताओं और

महाभाग ऋषियोंने पितरोंसे प्रश्न किया, कि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंके किन कार्य्योंसे पितर लोग प्रसन्न होते हैं और उर्द्ध दैहिक दान किस प्रकार अक्षय होता है? मनुष्य लोग कैसे कार्य्यों द्वारा पितरोंके अऋण होते हैं, इसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं, इस विषयमें हम लोगोंको अत्यन्त कौतूहल हुआ है।

पितृगण बोले, हे महाभाग। आप लोगोंने न्यायपूर्व्वक यह सन्देहका विषय पूछा है, उत्तम कार्य्य करनेवाले मनुष्योंके जिस कर्म्मोंसे हम लोग प्रसन्न होते हैं, उसे सुनो। मनुष्य अमावस्या तिथिमें काले रङ्गका वृषभ छोड़के तिलोदकसे तर्पण करे और वर्षाकालमें दीपक दान करनेसे पितरोंके निकट अऋण होता है, यह दान अक्षय निर्व्वलीक और महाफल दायक है, इससे हम लोगोंको सन्तोष होता है, इसीसे यह अक्षय रूपसे वर्णित हुआ है। जो मनुष्य श्रद्धावान होकर सन्तान उत्पन्न करते हैं, वे प्रपितामहगणको दुर्गम नरकसे उद्धार किया करते हैं। महातेजस्वी तपस्वी गर्ग पितरोंका वचन सुनके पुलकित होकर उनसे बोले, हे तपोधनगण! नीलवर्ण वृषभ छोड़ने, वर्षाकालमें दीपदान करने तथा तिलोदकसे तर्पण करनेसे क्या फल होता है?

पितृगण बोले, काले बैलकी पूंछसे यदि जल उठे, तो उससे पितृगण साठ हजार वर्ष तक तृप्त हुआ करते हैं। यदि वृषभ तटसे शृङ्गगत कीचड़ उद्धार करके स्थित हो, तो पितरगण उसके सहारे निःसन्देह सोमलोकमें गमन करते हैं। वर्षाकालमें दीप दान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाकी भांति शोभित होता है, जो लोग दीपक दान करते हैं, वे तमोरूप नहीं होते। हे तपोधन! जो मनुष्य अमावस्या तिथिमें उडुम्बपात्रके द्वारा मधुयुक्त तिलोदक दान करते हैं, उनका यथार्थमें रहस्यके सहित श्राद्धकार्य्य सिद्ध होता है, उनकी सन्तान सदा हृष्टचित्त हुआ करती है। पिण्डदाताको कुल और वंश वृद्धिरूपी फल प्राप्त होता है, जो लोग श्रद्धावान् होके श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंके समीप अऋण होते हैं, इस ही प्रकार श्राद्धका समय और श्राद्धकी विधि निर्द्दिष्ट हुई है, इसलिये विधि पात्र और फल पूरीरीतिसे कही गई।

१२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर युवराजने विष्णुसे पूछा, किनकार्य्योंसे आप प्रसन्न होते और किस प्रकार आपको सन्तोष होता है?

विष्णु बोले, ब्राह्मणोंका परिवाद मुझे अत्यन्त ही विद्विष्ट है, ब्राह्मणोंके सदा पूजित होनेपर मैं निःसन्देह पूजित होता हूं। ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करनेके योग्य हैं, भोजनके अनन्तर सन्ध्याके समय शिष्टाचारके हेतु अपने दोनों पग अभिवादनीय हैं, जो मनुष्य गोमयसे लीपकर सुदर्शन मन्त्रके द्वारा पूजा करते हैं, मैं उन सब मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं। वामन ब्राह्मण और बिलसे निकले हुए वराहको देखके जो लोग उद्धृत धरतीपर सिर रखते हैं, उन्हें कोई अशुभ वा पाप नहीं होता। जो मनुष्य सदा अश्वत्थ, रोचना और गऊकी पूजा करता है, उसके द्वारा देव, असुर तथा मनुष्योंके सहित समस्त जगत् पूजित होता है, मैं अपना रूप प्रकाशित करके यथार्थ रीतिसे उसकी पूजा ग्रहण करता हूं। जबतक सब लोग प्रतिष्ठित रहते हैं, तबतक यह मेरी ही पूजा है, दूसरेकी न जानना, अल्पबुद्धि मनुष्य इसे अन्यथा समझकर वृथा पूजा किया करते हैं, मैं उसे प्रतिग्रह नहीं करता, वह मुझे सन्तुष्ट नहीं करती।

इन्द्र बोले, चक्र, दोनों चरण, वराह, वामन और उद्धृत धरतीको आप किसलिये प्रणाम करते हैं? आपने सब जीवोंको उत्पन्न किया

है, आप ही सब प्राणियोंका संहार करती हैं, आप ही सब जीवों और मनुष्योंकी सनातनी प्रकृति हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर विष्णुने हंसकी यह बचन कहा, कि चक्रसे दैत्यदलका नाश हुआ है और पदसे वसुन्धरा आक्रान्त हुई थी, वराह रूप धरके मैंने हिरण्याक्ष दैत्यको मारा और वामनरूप धरके राजा बलिको जय किया था; इसलिये मैं इस ही प्रकार महानुभाव मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं, जो लोग मेरी पूजा करते है, उनकी पराभव नहीं होती। ब्राह्मण वा ब्रह्मचारीको आया हुआ देखके अगाड़ी ब्राह्मणको आहुति प्रदान करनेसे उसका अमृत भोजन होता है। जो लोग सूर्य्यकी ओर मुख करके प्रातःसन्ध्या उपासना करते हैं, उन्हें सब तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता और वे सब पापोंसे छूट जाते है। हे तपोधनगण! आप लोगोंने जो सन्देहयुक्त होके प्रश्न किया था, उसका गुप्त विषय कहा गया, फिर क्या कहूं?

बलदेव बोले, मनुष्योंको सुख देनेवाला परम गुह्य विषय सुनो; जिसे मूढ़ लोग न जाननेसे प्राणियोंके द्वारा पीड़ित होके क्लेश पाते हैं। भोरके समय उठके जो मनुष्य गऊ, घृत, दही, सरसों और प्रियङ्गू फल स्पर्श करते हैं, वे पापरहित हुआ करते है। तपस्वी लोग अगाड़ी और पश्चात् भागमें समस्त प्राणियों तथा क्षुद्र विषयक उच्छिष्टको परित्याग करते हैं।

देववृन्द बोले, उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके जल भरे उडुम्बर पात्र लेकर जो मनुष्य व्रतसङ्कल्प तथा उपवास करता है, उससे देवता लोग प्रसन्न होते और उसकी कामना सिद्ध होती है, इसके विपरीत मूर्ख लोग व्रथा उपवास करते हैं। उपवास और पूजाके कार्य्यमें ताम्रपात्र श्रेष्ठ है। ताम्रपात्रसे ही बलि, भिक्षा, अर्घ और पितरोंको तिलोदक देना योग्य है, अन्यथा करनेसे अल्प फल होता है। देववृन्द जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, वह गुप्त विधि वर्णित हुई।

धर्म्म बोले, राजपुरुषोंके कार्य्य करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण, घण्टा बजानेवाले सेवक, गोरक्षक, वाणिज्य करनेवाले, कारुकुशीलव, मित्रद्रोही, अपढ़ और वृषलीपतिको देव तथा पितृकार्य्यमें किसी प्रकार दान देना उचित नहीं है, उन्हें दान देनेसे पिण्डदाताकी हीनता होती है और वह पितरोंको प्रसन्न नहीं कर सकता। अतिथि आशारहित होकर जिसके घरसे लौट जाता है, उसके पितर, देवता और तीनों अग्नि अतिथिके अप्रतिग्रह निबन्धनसे निराश होकर उसके गृहसे प्रस्थान करते हैं। जिसके गृहपर आके अतिथि अपूजित होकर चला जाता है, वह स्त्रीघ्न, गोघ्न, कृतघ्न, ब्रह्मघाती और गुरुतल्पग पुरुषके सदृश दोषभागी होता है।

अग्निदेव बोले, जो नीचबुद्धि मनुष्य पैरसे गौवों, महाभाग ब्राह्मणों और दीप्यमान अग्निको छूते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। जो पुरुष ऐसा कार्य्य करता है, उसका नाम-वाचक शब्द स्वर्गको स्पर्श नहीं करता, उसके पितर भयभीत होते है और उससे देवताओंकी अधिक अप्रसन्नता होती है, महातेजस्वी अग्निदेव उसका हव्य ग्रहण नहीं करते। वह एकसौ जन्म नरकमें पड़ता है, किसी स्थानमें भी उसकी निष्कृति नहीं है; इसलिये गौवोंको कदापि पांवसे छूना उचित नहीं है और महातेजस्वी ब्राह्मणों तथा दीप्यमान अग्निको पैरसे स्पर्श न करना चाहिये। जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी कामना करें, वे गऊ ब्राह्मण और अग्निको पांवसे स्पर्श न करें। जो पुरुष इन तीनोंको पैरसे छूता है, उसके विषयमें ये सब उपरोक्त दोष मेरे द्वारा वर्णित हुए।

विश्वामित्र बोले, धर्म्मसंहता सम्बन्धीय परम गोपनीय रहस्य सुनो। भादों महीनेके कृष्णपक्षमें मघा नक्षत्रकी त्रयोदशी तिथि... छाया योग होनेपर जो लोग दक्षिण

करके कृतपक्षे समय जिस मन्त्रसे पितरोंकी पूजा करते हैं, उस दानसे जैसा अधिक फल होता है, उसे सुनो। पूर्व्वोक्त रीतिसे जो लोग पितरोंका उपहार दान करते हैं, उनके द्वारा इस लोकमें तेरह वर्षमें होनेवाला उत्तम महत् श्राद्ध कर्म्म सिद्ध होता है।

गौवोंने कहा, पहले समय ब्रह्मपुरमें इन्द्रके यज्ञ विष्णुपद और विश्वावसुके पथमें स्थित गौवोंका बहुला, सुभद्रा, शतोतुभया, क्षेमासखी और भूयसी नाम हुए थे। अनन्तर नारदके सहित सब देवताओंने सर्व्वसहा नाम रखा था। जो लोग इस मन्त्रके सहारे गौवोंको अभिनन्दित करते हैं, उनके सब पापकर्म्म नष्ट होते और उन्हें इन्द्रलोक मिलता है, इसलिये गौवोंकी सेवा करनेसे चन्द्रमाकी भांति द्युति प्राप्त होती है। जो लोग पर्व्वके समय गोसमूहके बीच इस देवगण सेवित मन्त्रको पढ़ते हैं, उन्हें न पाप है, न भय है, न शोक है और वे लोग इन्द्रलोकमें गमन किया करते हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर लोकविख्यात वशिष्ठ प्रभृति महानुभाव सप्तर्षिगण पद्मयोनि प्रजापतिकी प्रदक्षिणा करके हाथ जोड़कर खड़े हुए तब उनके बीच ब्रह्मवित् वशिष्ठदेव यह वक्ष्यमाण वचन कहनेमें प्रवृत्त हुए। यह प्रश्न सब प्राणियोंको विशेष करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंको हितकर है। द्रव्यहीन सच्चरित्र दरिद्र मनुष्य किस प्रकार किसी कर्म्मके सहारे इस लोकमें यज्ञका फल पाते हैं? प्रजापति उनका वचन सुनके कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे महाभागगण! तुम लोगोंने जो प्रश्न किया है, उसका अर्थ अत्यन्त गूढ़ और सूक्ष्म है, यह मनुष्योंके लिये परम शुभ तथा कल्याणकारी है। हे तपोधनगण! जिस प्रकार मनुष्योंको निःसन्देह यज्ञका फल प्राप्त होता है, उसे मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। पौष महीनेके शुक्लपक्षमें जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हुआ करता है, उस नक्षत्रयोगमें मनुष्य सूने स्थानमें शयन करे और एक वस्त्रधारी पवित्र स्नात श्रद्धायुक्त तथा समाहित होकर सोमरश्मि पान करनेसे महायज्ञका फल पा सकेगा। हे सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शी द्विजसत्तमगण! तुम लोगोंने मुझसे जो प्रश्न किया, मैंने तुम्हारे समीप उसका यह परम गुह्य विषय कहा है।

१२६ अध्याय समाप्त।

विश्वावसु बोले, जो मनुष्य पौर्णमासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाकी ओर मुंह करके उसे अञ्जली भरके जल और घृतयुक्त अक्षत बलि उपहार रूपसे प्रदान करता है, उसका अग्निकार्य्य सिद्ध होता अर्थात् विधिमें होम करनेसे जो फल हुआ करता है, वह सिद्ध होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्या तिथिमें वनस्पतियोंकी शाखा पल्लव काटता है, वह एक पत्ता तोड़नेसे भी ब्रह्महत्या दोषसे लिप्त होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्याको दतून करता है, उससे चन्द्रमा हिंसित होते और उसके पितर व्याकुल हुआ करते हैं; पर्व्वके समय सुपर्णगण उसके हव्यको ग्रहण नहीं करते, उसके पितरवृन्द क्रुद्ध होते हैं और उसका कुल वंशहीन होजाता है।

लक्ष्मी बोली, जिस पापयुक्त गृहमें जल पीनेके पात्र, आसन तथा अन्य भाजन इधर उधर पड़े रहते हैं और स्त्रियें आहत होती हैं, उस पापयुक्त गृहसे उत्सव और पर्व्वके समय देवता तथा पितृगण निराश होके गमन करते हैं।

अङ्गिरा बोले, जो पुरुष एकवर्षतक सुनके लालताकी जड़ हाथमें लेकर करञ्जक वृक्षके समीप दीपदान करता है, उसकी प्रजा बढ़ती है।

गार्ग्य बोले, मनुष्य सदा अतिथिसेवा करे, यज्ञशालामें दीपदान करे, दिनको न सोवे और

मांस भक्षण न करे। गऊ ब्राह्मणोंकी हिंसा न करे, तीर्थोंका नाम लेवे; यह महाफलजनक सरहस्य धर्म श्रेष्ठ है। सैकड़ों यज्ञ करनेवालेका हवि क्षययुक्त होता है, परन्तु श्रद्धावान् मनुष्योंके आचरित धर्म्मका नाश नहीं होता, इसके अतिरिक्त श्राद्धविधि, तीर्थसम्बन्धीय देवकार्य्य और पूर्व्वकालका यह परम गोपनीय विषय सुनो। रजस्वला, श्वित्ररोगवाली और वन्ध्या स्त्री जिस हविको देखती है, उसे देवहन्द भक्षण नहीं करते; जिसके हविको पूर्व्वोक्त स्त्रियें देखती हैं, उसके पितर तेरह बर्षतक असन्तुष्ट रहते हैं। श्वेतवस्त्र पहरके पवित्र होकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन और महाभारतका पाठ करावे, तो हवि अक्षय होती है।

धौम्य बोले, टूटे पात्र, खाट और कुक्कट था गृहमें जो वृक्ष रहते हैं, वे सब अप्रशस्त हैं। पहलेके आचार्य्योंने कहा है, कि फूटे बरतन रहनसे कलह होता है, टूटो खाट रहनेसे नका नाश हुआ करता है, कुक्कुट अथवा त्ता रहनेपर देवगण हविभक्षण नहीं करते, वृक्षो जड़मे निश्चय ही सर्प बिच्छू आदि णी रहते हैं, इसलिये घरके बीच वृक्ष गाना उचित नहीं है।

जमदग्नि बोले, जो पुरुष सैकड़ों अश्वमेध जपेय यज्ञ करता है अथवा अवाक्‌शिरा होके टकता है, तथा बहुतसे सत्र करता है, परन्तु दि उसका हृदय शुद्ध न रहे, तो वह निश्चय नरकमें गमन किया करता है, यज्ञ, सत्र र अन्तःकरणकी शुद्धि ये तीनों ही तुल्य हैं। ऐसी पुरुषने शुद्धचित्तसे ब्राह्मणको एक प्रस्थ तू दान करके ब्रह्मलोकमें गमन किया था, स विषयमें उसहीका प्रमाण पर्य्याप्त है।

१२७ अध्याय समाप्त।

मनु बोले, मनुष्योंके लिये सुखदायक कुछ विषय कहता हूं और रहस्यके सहित जो सब दोष हैं, उसे सावधान होकर सुनो! जो लोग बर्षभरके बीच चार महीनेतक वेदजानने वाले ब्राह्मणोंको तिलोदक दान करते और शक्तिके अनुसार भोजन कराते हैं, अवश्य कर्त्तव्य अग्निकार्य्य निभाते, परम अन्नके सहारे भोजन कराते, पितरोंको तिलोदक देते और दीपदान करते हैं, वे श्रद्धावान् समाहित मनुष्य इस ही बिधिसे एक सौ पशुबन्ध यज्ञका पुष्कल फल पाते हैं। इसे भी परम गोपनीय और अप्रशस्त जानो कि शूद्र यदि अरिणीकी अग्निको देशान्तरमें ले जाय और यदि स्त्रियें सौमाज्यपथ प्रभृति यज्ञसे बचे हुए हविके द्वारा मूढ़ होवे, उसे जो ब्राह्मण धर्म्म समझता है, वह अधर्म्मसे लिप्त हुआ करता है। तीनों अग्नि उसपर क्रुद्ध होतो, उसे शूद्रयोनि प्राप्त होती है, विशेष करके देव और पितृगण उसके बिषयमें प्रसन्न नहीं रहते। उस विषयमें जो प्रायश्चित्त है, जिसे करनेसे मनुष्य भली भांति सुखी और शोकरहित होता है, उसे कहता हूं, सुनो। मनुष्य निराहारी और समाहित होकर तीन दिन गोमूत्र, गोमय, दूध और घृतसे अग्निकार्य्य करे, अनन्तर एक वर्ष पूरा होनेपर देवगण उसकी दान की हुई वस्तु प्रतिग्रह करते हैं और श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर उसके पितर हर्षित होते हैं। यह रहस्यके सहित अधर्म्म और धर्म्मविषय कहा गया, स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके परलोकमें गमन करनेपर यह स्वर्गमें सुखदायक हुआ करता है।

१२८ अध्याय समाप्त।

लोमश बोले, जो लोग दारपरिग्रह न करके पराई स्त्रीमें आसक्त होते हैं, श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर उनके पितृगण निराश हुआ करते हैं। जो पुरुष पराई स्त्रीमें रत रहता, जो वन्ध्याकी उपासना करता और जो

ब्रह्मस्व हरता है, वे तीनों ही तुल्य दोषभागी होते हैं; उनके पितर निःसन्देह असन्तुष्ट हुआ करते हैं; देवता और पितृगण उनके दिये हुए हविको आदरपूर्व्वक-ग्रहण नहीं करते; इसलिये परस्त्री तथा बन्ध्या नारीको परित्याग करे। जो लोग अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करें, उन्हें ब्रह्मस्व हरना उचित नहीं है; धर्म्मसम्बन्धीय एक और गुप्त रहस्य सुनो। जो श्रद्धावान् मनुष्य सदा गुरुजनोंकी आज्ञा प्रतिपालन करता और प्रतिमहीनेकी द्वादसी और पूर्णिमासीके दिन ब्राह्मणोंको घृत अक्षत दान करता है, उसके द्वारा चन्द्रमा तथा महोदधि समुद्रकी वृद्धि होती है, इन्द्र उस प्रदाताको अश्वमेध यज्ञका चौथा भाग फल स्वरूप प्रदान करते हैं। एक दूसरा रहस्ययुक्त महाफलजनक धर्म्म सुनो, यह इस कलियुगमें मनुष्योंको सुखदेनेवाला है। जो मनुष्य अत्यन्त भोरके समय उठके स्नान करता और समाहित होके ब्राह्मणोंको सफेद वस्त्र दान किया करता तथा जो मधुके सहित पितरोंको तिलोदक, दीप और कृशर प्रदान करता है, उसका फल सुनो। भगवान् इन्द्रने तिलपात्र दानका फल कहा है, कि जो लोग गोदान तथा शाश्वत भूमि प्रदान करते हैं तथा जो लोग बहुतसी दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करते हैं, देवगण तिलपात्र दानके सहित उन सब दानों और यज्ञके फलोंको तुल्य समझते है। पितर लोग श्राद्धके समय तिलोदकको सदा अक्षय जानते हैं, दीपदान कृशर दान करनेसे दाताके पितामहगण प्रसन्न होते है। स्वर्गलोक और पितृलोकमें देवताओं तथा पितरोंसे पूजित यह ऋषिदृष्ट पुरातन विषय मैंने कहा है।

१२९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर सब ऋषियों देवताओं और पितरोंने सावधान होकर तपोवृद्धा अरुन्धतीसे प्रश्न किया। अरुन्धती तपोवृद्धा समा[illegible] व्रतचारिणी है और जैसा महानुभाव वसिष्ठका प्रभाव है, इसका चरित्र भी वैसा ही है; इस लिये ऋषि लोग इसी भांति निश्चय करके अरुन्धतीसे बोले, हे भद्रे! हम लोग तुम्हारे समी[illegible] धर्म्मरहस्य सुननेकी अभिलाष करते हैं, तुम्हा[illegible] समीप जो धर्म्म अत्यन्त गोपनीय भावसे विद्यमा[illegible] हो, तुम्हें उसका विषय वर्णन करना योग्य है।

अरुन्धती बोली, हे तपोधनगण! आ[illegible] लोगोंके स्मरण करनेसे ही मेरे तपकी वृ[illegible] हुई, आप लोगोंकी कृपासे मैं रहस्यके सहि[illegible] शाश्वत धर्म्म कहती हूं, उसे पूरी रीति[illegible] सुनिये। श्रद्धावान् मनुष्य तथा जिनका म[illegible] पवित्र हो, उन्हींके समीप इसे कहना योग[illegible] है। अश्रद्धावान्, अहङ्कारी, ब्रह्महत्यारे और गुरुतल्पगामी, इन चारों पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप करना योग्य नहीं है। इसलिये इनके निकट धर्म्म प्रकाश न करे। जो लोग बारह बरसतक प्रतिदिन एक एक कपिला गऊ प्रदान करते, जो मनुष्य प्रति महीने सदा सत्र किया करते और जो लोग ज्येष्ठ पुष्करमें सहस्र गौ दान करते हैं, उनके धर्म्मका फल जिसके गृहमें अतिथि सन्तुष्ट होते हैं, उसके सदृश नहीं है। मनुष्योंको सुख देनेवाला दूसरा धर्म्म सुनो। श्रद्धावान मनुष्योंको यह रहस्ययुक्त धर्म्म प्रतिपालन करना उचित है। भोरके समय उठके जलयुक्त दाभ ग्रहण करके वही जल गौसमूहमें सेचन करे और निराहारी रहके वही जल माथेपर चढ़ावे, उससे जो फल होता है, उसे सुनो। तीनों लोकोंके बीच जो सब सिद्ध चारणों और मनीषियोंसे सेवित तीर्थ हैं, उनमें स्नान करनेसे जो फल होता है, गौओंके शृङ्गोदकसे अभिषिक्त होनेपर उसके समान फल हुआ करता है। अरुन्धतीका ऐसा वचन सुनके देवताओं, पितरों और सब प्राणियोंने सन्तुष्ट होकर धन्य धन्य कहके उसकी पूजा की।

ब्रह्मा बोले, हे महाभागे! तुमने जो रहस्ययुक्त धर्म्म कहा, वह अत्यन्त आश्चर्य्ययुक्त है। हे धन्ये! मैं तुम्हें वर देता हूं, सदा तुम्हारे तपकी वृद्धि हो।

यम बोले, तुम्हारे समीप मैंने जो दिव्य कथा सुनी, वह अत्यन्त रमणीय है। अब हमारे प्रिय चित्रगुप्तका बचन सुनो। यह धर्म्मयुक्त रहस्य महर्षियोंको भी सुनना योग्य है, जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी इच्छा करते हैं, उनका किया हुआ पाप पुण्य कुछ भी विनष्ट नहीं होता। पर्व्वके समय जो कुछ आदित्यके समीप पहुंचता है, मनुष्यके परलोकमें जानेपर भगवान् सूर्य्य उन सब विषयोंको जानते हैं और पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं विषयोंको भोग किया करते हैं। चित्रगुप्तका कुछ पवित्र मत कहता हूं, जल, दीपक, पादुका और कपिला गऊ सदा दान करना योग्य है; पुष्कर तीर्थमें वेद जाननेवाले ब्राह्मणको कपिला (कामधेनु) गऊ दान करना उचित है। सब भांतिसे यत्नपूर्व्वक अग्निहोत्र करे, इसके अतिरिक्त दूसरे धर्म्म भी चित्रगुप्तके द्वारा वर्णित हुए हैं। हे सत्तमगण! इसके फल पृथक् पृथक् रीतिसे सुनने योग्य हैं। कालक्रमसे सब प्राणी ही प्रलयको प्राप्त होंगे, उस समयमें वे दुर्गम स्थानोंमें पहुंचके भूख प्याससे पीड़ित तथा दह्यमान होकर परिपाकावस्था लाभ करेंगे, वहां भागनेका उपाय नहीं है. अल्पबुद्धि मनुष्य घोर अन्धकारमें प्रवेश करेंगे। उस समय जिसके सहारे पुरुष दुर्गम स्थानोंसे पार होता है, वह धर्म्म कहता हूं। थोड़े व्ययसे होनेवाले महत् प्रयोजन साधक कार्य्यसे परलोकमें सुख मिलता है, जलदानके दिव्य फल परलोकमें विशेष रीतिसे उपकारक हुआ करते हैं, वहांपर जलदाताके लिये पुण्योदका नदी विहित है, उसमें अक्षय शीतल जल अमृतसदृश हुआ करता है। जो लोग इस लोकमें जलदान करते हैं, वे परलोकमें उस नदीके जलको पीनेके अधिकारी हैं। दीपकदानसे जो फल होता है, उसे सुनो। दीपदाता मनुष्यको सदा अन्धकार नहीं दिखाई देता, उसे चन्द्रमा अग्नि और सूर्य्य प्रभा प्रदान करते हैं, देववृन्द उसका सम्मान किया करते और सब दिशा उसके समीप निर्म्मल होती हैं। दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाकर सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होता है, इसलिये दीपदान और विशेष रीतिसे जलदान करना चाहिये। जो लोग पुष्कर तीर्थमें वेदपारग ब्राह्मणको कपिला गऊ प्रदान करते हैं, उनका उस विषयमें विशेष फल सुनो। जो लोग पुष्करमें कामधेनु दान करते हैं, उन्हें वृषभके सहित एक सौ गऊका फल मिलता है, जो कोई पाप ब्रह्महत्याके सदृश भी हो, उसे भी वह दान की हुई एक सौ गौवोंके सदृश कपिला गऊ दूर करती है, इसलिये पुष्करतीर्थमें जाके शुक्लपक्षमें कपिला गऊ अवश्य दान करना चाहिये। जो लोग सत्पात्र ब्राह्मणको दो पादुका दान करते हैं, उन्हें किसी विषयमें कुछ दुःख तथा कांटेका भय नहीं होता। छत्र दान करनेवाले मनुष्यको परलोकमें जानेपर सुखकरी छाया प्राप्त होती है, इस लोकमें दान करनेसे कदापि उसका विनाश नहीं होता, चित्रगुप्तका मत सुनके महातेजस्वी भगवान् सूर्य्य पुलकित होकर सब देवताओं और पितरोंसे बोले, कि जो श्रद्धावान् मनुष्य महानुभाव ब्राह्मणोंको यह सब वस्तु दान करते हैं, उन्हें किसी प्रकारका भय नहीं होता। कर्म्मदोषयुक्त नीचे कहे हुए इन पांचो पुरुषोंकी निष्कृति नहीं है, वे असम्भाष्य अनाचारी अधम मनुष्य परित्याज्य हैं,—ब्रह्महत्यारे, गोघाती, परस्त्री रत, अश्रद्धावान् और जो पुरुष स्त्रीको उपजीव्य किया करता है। ये सब पापकर्म्म करनेवाले प्रेतलोकमें जाकर रुधिरपीप खानेवाली मछलियोंकी भांति परिपाक लाभ करते

हैं। पितर, देवता, स्नातक ब्राह्मण और इनके अतिरिक्त जो सब तपस्वी हैं, उन्हें योग्य है, कि उक्त पांच पुरुषोंसे वार्त्तालाप न करें।

१३० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महाभाग देवताओं, पितरों और ऋषियोंने राक्षसोंसे कहा। हे निशाचरगण! तुम सब कोई महाऐश्वर्य्यशाली अपरोक्ष निशाचर हो, तुम किस प्रकार जूठे अपवित्र और क्षुद्र मनुष्योंकी हिंसा किया करते हो? ऐसा रक्षोघ्न उपाय क्या है, जिसके सहारे तुम लोग गृहके बीच ही प्रनष्ट होजाओ, हम लोग इस विषयको तुम्हारे समीप सुननेकी इच्छा करते हैं।

निशाचरोंने कहा, मनुष्य मैथुनके द्वारा सदा जूठे होते हैं और जो लोग हीन पुरुषोंको श्रेष्ठ करते उत्तम जनोंका अपमान किया करते हैं, वे सदा जूठे है। जो मनुष्य मोहवश होकर मांस भक्षण किया करते, वृक्षकी जड़में सोते सिरपर मांस रखके शयन किया करते तथा शय्यापर पांवके स्थानमें सिर रखके सोते हैं, वे सभी जूठे हैं, इसलिये मनुष्योंके बहुतसे छिद्र हैं। जो लोग जलके बीच अपवित्र वस्तु और श्लेष्म परित्याग करते है, वे सब मनुष्य निःसन्देह हम लोगोंके भक्ष्य और बध्य हैं, जिनके इसी प्रकार स्वभाव और ऐसे ही व्यवहार हैं, उन्हीं मनुष्योंको हम लोग धर्षण किया करते हैं और जिसके कारणसे हम हिंसा करनेमें असमर्थ होते हैं, उन प्रतिघात विषयोंको सुनो। जो पुरुष गोरोचन मसालम्भन और हाथमें वचा धारण करता है और उसमें रत होके माथेपर घृत अक्षत लगाता है तथा जो लोग मांस भक्षण नहीं करते, हम उनकी हिंसा करनेमें समर्थ नही हैं। जिसके गृहमें रातदिन अग्नि जलती रहती है, जिन गृहस्थोंके घरमें तरक्षु व्याघ्रके चमड़े तथा दांत रहते हैं, पर्व्वतकी गुफामें शयन करनेवाले स्थूल कच्छप, घृतका धूम, बिड़ाल और काले तथा पीले बकरे विद्यमान रहते हैं, महाघोर राक्षसगण उन गृहोंमें जानेमें समर्थ नहीं हैं। हमारे समान पुरुष सुखपूर्व्वक सब लोकोंमें विचरते हैं, इसलिये गृहमें इन सब विषयोंके रहनेपर राक्षस लोग उन गृहोंमें उपद्रव नहीं कर सकते। जिसमें तुम लोगोंको महान् सन्देह हुआ था, वह विषय तुम्हारे समीप वर्णित हुआ।

१३१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर पद्म प्रतीकाश कमलयोनि ब्रह्मा देवताओं तथा शचिपति इन्द्रसे यह वचन बोले, यह रसातलचारी महाबली पराक्रमी रेणुक नाम तेजस्वी नाग है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त तेजस्वी महाबलवान महाहस्तीगण पर्व्वत और बनके सहित समस्त पृथ्वीमण्डलको धारण कर रहे हैं; रेणुक तुम लोगोंकी अनुमतिके अनुसार वहां जाकर उन महागजोंसे गोपनीय धर्म्म पूछे। देवताओंने पितामहका वचन सुनके उस समय जिन स्थानोंमें वे धरणीधर दिग्गज अव्यक्त प्रभावसे वर्त्तमान थे, वहां रेणुकको भेजा।

रेणुक बोले, हे महाबली गजगण! मैं आप लोगोंके समीप गोपनीय धर्म्मोंको सुननेके लिये देवताओं और पितरोंकी आज्ञासे आया हूं। हे महाभागगण! इसलिये आप लोग समाहित होकर धर्म्मविषय कहिये।

दिग्गजगण बोले, कार्तिक महीनेमें कृष्णपक्षके अश्लेषा नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथिमें लोग श्राद्धके समय यताहारी और क्रोधरहित होकर नीचे कहे हुए मन्त्रको जपकर गुड़ोदन दान करें। बलदेव प्रभृति जो सब बलवान अनन्त अक्षय नित्यभोगी महाबली नाग हैं और

उनके कुलमें उत्पन्न हुए जो महाभुज सर्प हैं, वे बल और तेजकी वृद्धिके लिये मेरे बलको प्रतिग्रह करें। जिस समय श्रीमान् नारायणने वसुन्धराका उद्धार किया था, पृथ्वीका उद्धार करनेवाले उस ही विष्णुके सदृश बल होवे, इस मन्त्रको पढ़के बिलके बीच बलि निवेदन करे, जब सूर्य्य अस्त होजाय, तब गजेन्द्र पुष्पसेयुक्त काले वस्त्रसे ढकीहुई बलिको बिलमें डाले। इसके प्रभावसे रसातलमें हम लोग भारसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी सन्तुष्ट होते हैं और पृथ्वीको धारण करनेका परिश्रम मालूम नहीं होसकता, हम लोग इस ही प्रकार भारार्त्त और निरपेक्ष होकर सब विषयोंको जानते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यदि उपवासी होकर एक वर्षतक इस ही प्रकार दान करें, तो उन्हें बहुत फल होता है। वाल्मीकमें बलि प्रदान करनेपर हमारे मतसे अत्यन्त फल हुआ करता है, तीनों लोकोंमें जो सब महापराक्रमी नाग हैं, एक सौ वर्षतक यथार्थ रीतिसे उनका आतिथ्य होता है। देवताओं, पितरों और महाभाग ऋषियोंने दिग्गजोंका ऐसा वचन सुनके रेणुकको विधिवत् पूजा की।

१३२ अध्याय समाप्त।

महेश्वर बोले, तुम लोगोंने सारतत्त्व उद्धार करके साधु-धर्म्म वर्णन किया, अब मेरे समीप सब कोई गोपनीय धर्म्म सुनो। जिन मनुष्योंकी बुद्धि धर्म्मयुक्त है और श्रद्धावान हैं, उन्हें यह महाफल जनक रहस्ययुक्त धर्म्म उपदेश करना चाहिये। जो लोग सावधान होकर एक महीनेतक गवाह्निक नाम गो सेवा करते और दिनमें एकबार भोजन किया करते हैं, उन्हें जो फल मिलता है, उसे सुनो। ये सब महाभाग गौवे परम पवित्र रूपसे कही गई हैं, ये देव, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंको धारण कर रही हैं, इनकी सेवा करनेसे महापुण्य और महाफल मिलता है। गौवोंकी सेवा करनेवाले पुरुष प्रतिदिन धर्म्म उपार्ज्जन किया करते हैं; पहले सत्ययुगमें गोगण मेरे द्वारा अनुज्ञात हुई थी, अनन्तर पद्मयोनि प्रजापतिने मुझसे विनय की, उस ही निमित्त वृषभ मेरे ध्वजस्थानमें निवास करता है, मैं गौवोंके सहित क्रीड़ा करता हूं, इस ही निमित्त वे सदा पूजनीय हैं। महाप्रभावयुक्त वर देनेवाली गौवें उपासित होनेपर वरदान करती हैं, मनुष्य सब कर्म्मोंके करनेसे जो फल पाता है, गौवें वह सब अनुमोदन किया करती हैं। जो लोग एक महीनेतक गौवोंकी सेवा करते हैं उन्हें उस फलका चौथा भाग प्राप्त होता है।

१३३ अध्याय समाप्त।

स्कन्द बोले, सब कोई सावधान होके मेरा अनुमित धर्म्म सुनो। काले वृषभके दोनों सींगोंसे मृत्तिका लेकर जो लोग तीन दिन अभिषेक करते हैं, उस धर्म्मका फल कहता हूं। वे सब पापोंसे रहित होकर परलोकमें आधिपत्य पाते हैं और वे मनुष्य जन्म लेनेपर शूर होते हैं। और भी एक दूसरा गोपनीय रहस्य सुनो। उडुम्बरपात्रमें मधुके सहित पक्वान्न रखके पौर्णमासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाको बलि प्रदान करे। हे श्रद्धावान् तपोधनगण! उस विषयका नित्य धर्म्मफल सुनो। साध्यगण रुद्रगण आदित्यगण विश्वदेवगण दोनों अश्विनीकुमार मरुद्गण और वसुगण उस बलिको प्रतिग्रह करते हैं, उससे चन्द्रमा और महार्णव समुद्रकी वृद्धि होती है। यह रहस्ययुक्त सुखदायक धर्म्म मेरे द्वारा वर्णित हुआ।

विष्णु बोले, जो पुरुष असूयारहित श्रद्धावान् और सावधान होकर प्रतिदिन देवताओं

तथा ऋषियोंके गोपनीय धर्म्मोंका पाठ करता अथवा सुनता है, उसे कुछ भी विघ्न नहीं प्राप्त होते और न किसी भांतिका भय रहता है। जो सब रहस्ययुक्त शुभ और पवित्र धर्म्म वर्णित हुए हैं, जो पुरुष विशेष रीतिसे जितेन्द्रिय होके उसका पाठ करता है, उसे उन्हीं धर्म्मोंका फल प्राप्त होता है, उसके पाप छूट जाते और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। यह सब धर्म्म रहस्य पढ़के सुनानेवालोंको भी फल मिलता है, पितर और देवगण उनका अक्षय हव्यकव्य भोग करते हैं। जो मनुष्य पर्व्वके समय सावधान होके ब्राह्मणोंको यह विषय सुनाते हैं, वे ऋषियों देवताओं और पितरोंके अभिमत श्रीमान् और धर्म्मविषयमें सदा प्रवृत्त हुआ करते हैं; मनुष्य महापातकके अतिरिक्त सब पाप कर्म्म करके भी यह रहस्य धर्म्म सुननेसे पापहीन होता है।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! व्यासदेवके कहे हुए सर्व्वदेव नमस्कृत देवताओंका यह धर्म्म रहस्य मेरे द्वारा वर्णित हुआ, यह रत्नपूरित पृथ्वीमें अत्यन्त उत्तम ज्ञानस्वरूप है; इसलिये धर्म्मज्ञ मनुष्योंको यह विषय अवश्य सुनना चाहिये। अश्रद्धावान्, नास्तिक, नष्टधर्म्म, नीच कर्म्म करनेवाले दुष्ट, अनात्मभूत पुरुषों और गुरुद्रोहियोंके निकट यह कथा न कहे।

१३४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! इस संसारमें ब्राह्मणोंका भोज्य अन्न क्या है? क्षत्रिय किसका अन्न भोजन करे? वैश्यका भोज्य क्या है और शूद्र लोग किसका अन्न खायंगे।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोजन करनेमें कुछ हानि नहीं है, केवल शूद्रका अन्न ब्राह्मणोंके लिये वर्ज्जित है। क्षत्रियके विषयमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोज्य है। केवल नीचकर्म्म क[illegible] वाले सर्व्वभक्षी शूद्रोंका अन्न परित्याज्य [illegible] वैश्योंके लिये ब्राह्मण और क्षत्रियोंका [illegible] भोज्य है, जो लोग सदा अग्निहोत्र वि[illegible] करते, विविक्त और चातुर्मास्य व्रतमें रत [illegible] उन वैश्योंको ब्राह्मण और क्षत्रियोंका [illegible] खाना योग्य है। जो ब्राह्मण शूद्रका अन्न खा[illegible] है, वह पृथ्वीका मल भोग किया करता [illegible] वह मनुष्यों तथा सब लोगोंका मल-भोज[illegible] किया करता है। जो ब्राह्मण शूद्रोंका अ[illegible] खानेवाले हैं, वे पृथ्वीका मल भोजन करते त[illegible] पृथ्वीका सारा मल भोग किया करते हैं। सन्ध्यावन्दन आदि श्रेष्ठकर्म्मोंसे युक्त ब्राह्म[illegible] लोग यदि शूद्रकी सेवा करें, तो वे सब को[illegible] नरकगामी होते हैं। ब्राह्मणगण स्वाध्यायपाठ और मनुष्योंके स्वस्त्ययनमें रत रहें। क्षत्रिय लोगोंकी रक्षा और वैश्य मनुष्योंके पुष्टिकार्य्यमें प्रवृत्त होवे। प्राचीन ऋषियोंने कहा है, कि वैश्य जो कार्य्य करके धनप्राप्त करता है, उसे दान करनेसे जीवित रहता है, खेती गोरक्षा और वाणिज्य वैश्योंके कर्म्म हैं, इसलिये इसमें कुछ निन्दा नहीं है। जो पुरुष अपना कार्य्य छोड़के शूद्रका कर्म्म करता है, उसे शूद्रसदृश जानो, उसका अन्न किसी प्रकार भोजनके योग्य नहीं है। वैद्य, शस्त्रजीवी, पुराध्यक्ष, पुरोहित और बरस दिनतक वृथाध्यायी,—ये सब कोई शूद्रके समान हैं। इनके यहां जो पुरुष निरपत्रप होकर शूद्रकर्म्ममें भोजन करता है, उसे अभोज्य भोजन करनेसे दारुण भय प्राप्त होता है, उसका कुल वीर्य्य और तेज नष्ट होजाता है और वह धर्म्मसे रहित होके कुत्तेकी भांति क्रियाहीन होनेसे मरके तिर्य्यक्योनिमें जन्मता है। जो पुरुष वैद्यका अन्न-भोजन करता है, वह पुरीष भक्षण किया करता है, पुंश्चलीका अन्न मूत्र स्वरूप है, शिल्पीका अन्न रुधिरके तुल्य है। जो साधुसम्मत ब्राह्मण विद्या उपजी-

षीका अन्न भोजन करता है, उसे शूद्रान्न भोजनका फल मिलता है, इसलिये साधु ब्राह्मण वैसे अन्नको भोजन न करे। प्राचीन लोग कहा करते हैं, कि निन्दनीय पुरुषका अन्न खाना रुधिरहुदन्न भक्षणसदृश है। पण्डित लोग खलान्न भोजनको ब्रह्महत्यासदृश जानते हैं, असत्कृत तथा बिना निमन्त्रणके कदापि भोजन न करना चाहिये; यदि ब्राह्मण इस प्रकार भोजन करे तो वह शीघ्र ही व्याधियुक्त होता और उसका कुल नष्ट होता है। नगररक्षकका अन्न भोजन करनेसे चाण्डालत्व प्राप्त हुआ करता है। गोघाती, ब्रह्मघाती, सुरा पीनेवाले और विमातृगामीका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मण राक्षसोंके कुलकी वृद्धि करता है। न्यस्त धन हरनेवाले क्लीव और कृतघ्नका अन्न भोजन करनेसे मध्यदेशसे बाहर सबरस्थानमें जन्म हुआ करता है। हे कुन्तीपुत्र! यह मैंने अभोज्य और भोज्यका विषय विधिपूर्व्वक वर्णन किया, अब मेरे समीप तुम दूसरे किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो?

१३५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने जिसका अन्न भोज्य है और जिसका अभोज्य है, उसे वर्णन किया, परन्तु मुझे इस विषयमें सन्देह होता है, इसलिये आप उस संशयको दूर करिये। ब्राह्मणोंका हव्यकव्य प्रतिग्रहमें विशेष करके अनेक प्रकारके भोज्य विषयोंमें जो सब प्रायश्चित्त हैं, वह विषय आप मेरे समीप कहिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव ब्राह्मण लोग प्रतिग्रह और भोज्य विषयोंमें जिसके सहारे पापोंसे छूटते हैं, वह तुम्हारे समीप कहता हूं। हे युधिष्ठिर! घृत प्रतिग्रह करनेसे सावित्री मन्त्रके द्वारा समिध होम करना होता है, तिल प्रतिग्रहको भी घृतके समान जानो। मधुमांस और नमक प्रतिग्रह करनेसे सूर्य्यके उदयकाल पर्य्यन्त खड़ा रहनेसे ब्राह्मण पवित्र होता है। काञ्चन प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण गुरुश्रुति जप करते हुए लोगोंके सम्मुख कृष्णायस धारण करके सब पापोंसे मुक्त हुआ करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस ही प्रकार स्त्रियोंके धन और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण उपरोक्त जप करनेसे पापरहित होता है। अन्न प्रतिग्रह करने और पायस ऊखका रस, ऊख, तेल तथा पवित्र वस्तुओंको लेनेसे त्रिसन्ध्या जलमें निमज्जन करना होगा। धान्य, फूल, जल पिष्टमय वस्तु, यावक और दही, दूध प्रतिग्रह करनेसे एक एक सौ बार गायत्री जप करे। ऊर्द्धदैहिक कार्य्य सम्बन्धीय पादुका और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे समाहित होकर एक सौ बार गायत्री जपने पर पापोंसे मुक्ति होती है। ग्रहण और अशौचकालमें क्षेत्र प्रतिग्रह करनेसे त्रिरात्र उपवास करके उस पापसे छूटेगा। जो ब्राह्मण कृष्णपक्षमें पितरोंका श्राद्धान्न भोजन करता है, वह उस अन्न भोजनके निमित्त रात दिन उपवास करनेसे पवित्र हुआ करता है, बिना स्नान किये सन्ध्या उपासना न कर, जप करनेमें प्रवृत्त न होवे और दिनमें दूसरी बार भोजन न करे, तो ब्राह्मण पवित्र होगा। अपराह्नमें क्षुद्रोधके हेतु पितरोंका श्राद्ध कहा गया है, उस समय पहले निमन्त्रित लोग अन्न भोजन करें। मृत पुरुषके घरमें तीसरे दिन जो ब्राह्मण अन्न भोजन करता है, वह त्रिसन्ध्या स्नान करते हुए बारहवें दिन पवित्र होता तथा द्वादशाह बीतनेपर विशेष रीतिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको घृतदान करनेसे पापरहित होगा। दश रात्रितक मृत पुरुषके घरमें अन्न भोजन करनेसे निम्नलिखित प्रायश्चित्त करना होगा, गायत्री जप रैवत साम पवित्रेष्टि वद्देवादेव हैलन यह अनुवाक पढ़के और

मन्त्र जप करे। जो लोग मृत पुरुषके गृहमें त्रिरात्र भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण सप्त-त्रिपवण स्नान करनेसे पवित्र होकर विपुल सिद्धि लाभ करते तथा पाप ग्रस्त नहीं होते। जो ब्राह्मण शूद्रके सङ्ग एकत्र भोजन करता है, उसका विधिपूर्व्वक अशौच ग्रहणके सहारे शुद्धि विहित है। जो ब्राह्मण वैश्यके साथ एकत्र भोजन करता है, त्रिरात्र भिक्षा करके जीवन व्यतीत करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। जो ब्राह्मण क्षत्रियके सहित एकत्र भोजन करता है, वह वस्त्रके सहित नहानेसे उस पापसे रहित हुआ करता है; एकत्र भोजन शूद्रके कुलको नष्ट करता, वैश्योंके पशु और बान्धवोंको विध्वंश करता, क्षत्रियोंको श्रीभ्रष्ट और ब्राह्मणोंका तेज नष्ट करता है; इसलिये उसके प्रायश्चित्त और शान्तिके लिये होम गायत्री जप, रैवत नामदृष्टि और अघमर्षण प्रभृति जप करे। यदि परस्परमें जूठा भोजन किया जावे, तो रोचना दूब और हरिद्रादि मङ्गल समालम्भन करे, इस विषयमें सन्देह नहीं है।

१३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत पितामह! दान और तपस्यामेंसे कौन विषय श्रेष्ठ है? उसे कहके आप हमारे मनका दुःख दूर करिये

भीष्म बोले; जिन दान पुण्यमें रत धर्म्ममें तत्पर तपस्याके सहारे शुद्धचित्त राजाओंने सन्देहरहित होकर श्रेष्ठ लोकोंको पाया है, उसे सुनो। हे महाराज! अत्रेय मुनिने शिष्योंसे सत्कृत होकर उन्हें निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करके उत्तम लोकोंको पाया था। उशीनर शिवि-राजा ब्राह्मणके लिये अपना पुत्र प्रदान करके इस लोकसे स्वर्गमें गये थे। काशीपति प्रतर्द्दन ब्राह्मणके निमित्त अपना पुत्र दान करनेसे इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्ति भोगते हैं। सांकृतिपुत्र रन्तिदेवने महानुभाव वशिष्ठको विधिपूर्व्वक अर्घ प्रदान करके उत्तम लोकोंको पाया है। देवावृध राजाने यज्ञके निमित्त ब्राह्मणोंको एक सौ वलाकायुक्त दिव्य सुवर्णमय शुभ छत्र प्रदान करके सुरपुरमें गमन किया है। भगवान, अम्बरीष राजाने अत्यन्त ब्राह्मणोंको समस्त राज्य दान करके सुरलोक पाया है। सूर्य्यवंशीय जनमेजय राजाने ब्राह्मणको दिव्य कुण्डल और गज दान करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि वृषादर्भि ब्राह्मणोंको विविध रत्न और रमणीय आश्रम दान करके अमरलोकमें गये हैं। महायशस्वी जामदग्न्य रामने ब्राह्मणोंको भूमिदान करनेसे और मन सङ्कल्पसे भी अधिक अक्षय भूदेवराज वशिष्ठको प्राणियोंके जीवित रखनेसे अक्षय गति प्राप्त हुई है। दशरथ पुत्र राम जिसका जगतके बीच महत् यश विख्यात् है, उन्होंने यज्ञोंमें धनदान करके अक्षयलोकोंमें गमन किया है। राजर्षि कक्षसेन महानुभाव वशिष्ठको विधिपूर्व्वक न्यस्त धन प्रदान करनेसे अत्यन्त यशस्वी होकर स्वर्गमें गये हैं। करन्धम अविक्षितका पुत्र मरुत्त अङ्गिराको कन्या दान करके शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गया। धार्म्मिकश्रेष्ठ पाञ्चाल देशीय राजा ब्रह्मदत्तने शङ्खरत्न दान करके परम गति पाई है। मित्तसह राजा महात्मा वशिष्ठको दमयन्ती नामी प्रिय भार्य्या दान करके देवलोकमें गया है। मनुके पुत्र सुद्युम्नने महात्मा लिखितको धर्म्मपूर्व्वक चौरयोग्य हस्तच्छेदरूपी दण्डसे उद्धार करके उत्तम लोकोंको पाया है। महायशस्वी राजर्षि सहस्रचित्तने ब्राह्मणोंके लिये प्रिय प्राण परित्याग करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। शतद्युम्न राजा मौद्गल्य मुनि सर्व्वकामयुक्त स्वर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गया है। पहली समयमें सुमन्यु राजा शाण्डिल्य मुनिको पर्व्वत सदृश भक्ष्य भोज्य वस्तुओंकी राशि दान करके

स्वर्गलोकमें गये। द्युतिमान नाम महातेजस्वी शाल्वराज ऋचीक ऋषिको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्त मुनिको सुमध्यमा कन्या दान करके देवताओंसे अधिष्ठित लोकोंमें गमन किया है। लोमपाद राजर्षि ऋष्यशृङ्गको शान्तानामी कन्या दान करके सर्व्वकामयुक्त हुए। राजर्षि भगीरथने कौत्सऋषिको हंसी नामी यशस्विनी कन्यादान करके अक्षयलोकोंमें गमन किया है, राजा भगीरथने कोहल मुनिको शत हजार सवत्सा गऊ दान करके उत्तम लोकोंको पाया है।

हे युधिष्ठिर। ये सब तथा दूसरे बहुतेरे राजा दान तथा तपस्याके सहारे स्वर्गमें गये हैं और बार बार निवृत्त होते हैं, जबतक पृथ्वी है, तबतक उनकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी। हे युधिष्ठिर। जिन गृहस्थोंने दान और तपस्याके सहारे सब लोकोंको जय किया है, यह उन शिष्ट पुरुषोंका चरित मैंने वर्णन किया, इन्होंने दान यज्ञ और पुत्रोत्पादनके द्वारा स्वर्गलोक पाया है। हे कुरुकुलधुरन्धर! पूर्व्वोक्त राजा लोग सदा दान करते हुए धर्म्मयुक्तबुद्धिको दान तथा यज्ञकार्य्यमें नियुक्त रखा था। हे नृपश्रेष्ठ! जिस विषयमें सन्देह हो, उसे कल्ह भोरके समय कहना क्यों कि, अब सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ है।

१३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यव्रत सत्यपराक्रमी पितामह! उत्तम महत् दानधर्म्मके सहारे जो सब राजा देवलोकमें गये हैं, मैंने वह सब आपके समीप सुना। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ! अब कितने प्रकारके दान देने योग्य हैं और उससे क्या फल प्राप्त होता है? जिस प्रकार किन लोगोंको धर्म्मपूर्व्वक दान करना उचित है, यह सब धर्म्मविषय यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित भरत वंशावतंस कुन्तीपुत्र। सब वर्णोंको जिस प्रकार दान करना होता है, वह मेरे समीप यथार्थ रीतिसे सुनो। हे भारत! धर्म्म, अर्थ, मोक्ष, काम और कारणवशसे दानको पांच प्रकारका जानो, जिस कारणसे जो दान किया जाता है, उसे सुनो। असूयारहित होके ब्राह्मणोंको दान करना योग्य है, दान करनेसे मनुष्य इसलोकमें परम कीर्त्तिवान होकर परलोकमें सुख पाता है। यह पुरुष मुझे दान करता है, करेगा अथवा किया है,—अर्थियोंको ऐसा वचन सुनके उन्हें सब वस्तु दान करनी योग्य है। न मैं इसका हूं और न यह पुरुष मेरा है, परन्तु यह अवमानित होनेपर पापकार्य्य करेगा, ऐसा समझके पण्डित लोग दृढ़ भयसे मूढ़ मनुष्योंको दान करते हैं। यह मेरा प्यारा है और मैं भी इसे प्रिय हूं, बुद्धिमान पुरुष ऐसा जानके साव-धान होकर मित्र पुरुषको दान करते हैं। यह पुरुष अत्यन्त दीन है, इसलिये जाचता है और थोड़ेमें ही सन्तुष्ट होगा, ऐसा विचार कर करु-णावशसे दरिद्रोंको दान करे। प्रजापतिने कहा है, कि ये पांच प्रकारके दान पुण्य और कीर्त्तिकी वृद्धि करते हैं, इसलिये शक्तिके अनु-सार दान करना योग्य होता है।

१३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्रविशारद महा-प्राज्ञ पितामह! आप हमारे इस श्रेष्ठवंशमें अनेक प्रकारके शास्त्रज्ञानसे युक्त हैं। हे अरि-दमन! आपके समीप उत्तरकालमें सुखदायक लोगोंके लिये आश्चर्य्य स्वरूप धर्मार्थयुक्त वचन सुननेकी अभिलाष करता हूं। यह समय स्वजनों और बान्धवोंके लिये दुर्लभ है। हे

षश्रेष्ठ। आपके अतिरिक्त हम लोगोंके लिये दूसरा कोई भी उपदेष्टा नहीं है। हे पापरहित। मैं भाइयोंके सहित यदि आपका कृपापात्र होऊं, तो मैं जो पूंछता हूं उसका आपको उत्तर देना उचित है। ये सब राजाओंके सम्मानभाजन श्रीमान् नारायण आपका बहुमान और विनयके सहित सेवा करते हैं, इनके और सब राजाओंके सम्मुख मेरे और भ्रातृगणोंकी प्रीतिके निमित्त आप इस विषयको वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गङ्गानन्दन भीष्मने युधिष्ठिरका वचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक सम्भ्रमयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा।

भीष्म बोले, पहले समयमें मैंने विष्णुका जो प्रभाव सुना था, वह अत्यन्त मनोहर कथा तुम्हारे समीप कहूंगा। वृषभध्वजका जैसा प्रभाव सुना है उसे और रुद्र रुद्राणीको जिस प्रकार संशय हुआ था, वह कथा भी मेरे समीप सुनो। पहले समयमें धर्म्मात्मा कृष्णने बारह वर्षका व्रताचरण किया था, दीक्षित होनेपर पर्व्वत, नारद, कृष्णद्वैपायन, जापकश्रेष्ठ धौम्य देवल, काश्यप और दूसरे दीक्षा दमयुक्त शिष्योंके सहित साधु महर्षिगण तथा देवकल्प सिद्ध तपस्वियोंने उनका दर्शन करनेके लिये आगमन किया। देवकीपुत्र कृष्णने उन लोगोंके आनेसे प्रसन्न होकर देवतुल्य पूजनीय अतिथियोंका यथायोग्य कुलके अनुसार सत्कार किया, महर्षिगण हरे और सुवर्ण वर्णवर्हि निर्म्मित नवीन आसनोंपर कृष्णके समीप बैठे। अनन्तर वे तपस्वी और राजर्षि लोग देवताओंके धर्म्मयुक्त मधुर कथा कहने लगे। अनन्तर अद्भुत कर्म्म करनेवाले कृष्णके मुखमण्डलसे व्रतचर्य्यारूपी इन्धनके सहारे नारायण तेजस्वरूप अग्नि निकलकर वृक्ष, लता क्षुद्र तरु, पक्षी, मृग, श्वापद और सरीसृपोंके सहित उस पर्व्वतको जलाने लगी। अनेक प्रकारके मृगसमूह हाहाकार करते हुए अचेत हुए, उस पर्व्वतका शिखर स्थान दीनदशायुक्त और मथित होने लगा, उस महाज्वालायुक्त अग्निने निःशेष रूपसे सबको जलाकर विष्णुके निकट आके शिष्यकी भांति उनके दोनों चरणोंको स्पर्श किया। अरिकर्षण नारायणने उस पर्व्वतको निःशेष रीतिसे जलते हुए देखकर सौम्यदृष्टिके सहारे फिर उसे प्रकृतिस्थ किया। वह पर्व्वत पहलेकी भांति वृक्ष लता पुष्प और पक्षियोंके शब्द और श्वापद सरीसृपोंसे परिपूरित हुआ, मुनिगण उस समय उस अद्भुत और अचिन्त्य व्यापारको देखकर अस्रुपूरित नेत्रयुक्त हुए। अनन्तर वक्तृवर नारायण उन ऋषियोंको विस्मित देख कर विनयपूर्व्वक नम्र मधुर तथा स्निग्ध वचन बोले,। सदा आसक्ति और ममतारहित वेद जाननेवाले ऋषियोंको किस निमित्त विस्मय उपस्थित हुआ? हे तपोधनगण। आप लोग सब कोई अनिन्दित ऋषि हैं, इसलिये आप लोगोंको मेरे इस सन्दिग्ध विषयका निश्चित अर्थ कहना उचित है।

ऋषिगण बोले, हे मधुसूदन। आपने ही सब लोकोंकी सृष्टि की है, फिर आपही सबका संहार करते हैं, तुम्हीं शीत हो, तुम ही उष्ण हो और तुम ही वर्षा करते हो। पृथिवीपर जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, आप ही उनके पिता, माता, प्रभु और प्रभव हो। हे कल्याण रूप मधुसूदन। इससे जिस हेतु तुम्हारे मुखसे अग्नि निकलनेसे हम लोगोंको विस्मययुक्त सन्देह हुआ है, तुम ही उस सन्देहके विषयको कह सकते हो। हे हरि। हे अरिकर्षण! अनन्तर हम लोग त्रासरहित होके जो देखा तथा सुना है, वह सब कहेंगे।

वासुदेव बोले, मेरे शरीरसे जो यह वैष्णव तेज निकला था, यह प्रलयकालकी अग्नि सदृश आभायुक्त था, जिसके सहारे यह महापर्व्वत मथित हुआ और क्रोधविजयी जितेन्द्रिय देवकल्प तपस्वी ज्ञानयुक्त आपलोग भी पीड़ित

तथा व्यथित हुए थे। तपस्विव्रत सेवन तथा व्रताचरणयुक्त होनेसे मेरे शरीरसे अग्नि प्रकट हुई थी; इसलिये आप लोग व्यथित न होवें। मैं व्रताचरण करनेके लिये इस पवित्र पर्व्वतपर आके वीर्य्यबलसे अपने सदृश पुत्र पानेके लिये तपस्या कर रहा हूं। अनन्तर मेरी देहमें जो आत्मा है, वही अग्निरूपसे निकलकर सर्व्वलोक पितामह वरददेवका दर्शन करनेके लिये गया था। हे मुनिसत्तमगण! वृषभध्वजने कहा "मेरा आत्मा अर्द्ध तेजसे तुम्हारा पुत्र होगा,"— ऐसा कहके उन्होंने पुत्रके निमित्त अपने आत्माको मेरे समीप भेजा है। यह वही अग्नि परिचर्य्याके निमित्त शिष्यकी भांति मेरे चरणमूलपर पहुंचके शान्त और प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे तपोधनगण! यह बुद्धिमान पद्मनाभका रहस्यविषय मैंने आप लोगोंके समीप वर्णन किया, इसलिये आप लोग भय न करिये। आपलोग दीर्घदर्शी हैं, आपलोगोंकी ज्ञानविज्ञान शोभित तपस्वी व्रत सन्दीप्त सर्व्वत्र अव्यग्र गति विद्यमान है, इसलिये आप लोगोंने द्युलोक वा भूलोकमें जो परम आश्चर्य सुना वा देखा हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये, आपलोग तपोवननिवासी महर्षि हैं, आप लोगोंके कहे हुए अमृत सदृश वचन-मधु आस्वादन करनेको मुझे अभिलाष हुई है। हे अमरदर्शन तपस्वोवृन्द! यदि मैं द्युलोक अथवा भूलोकमें आप लोगोंके अतिरिक्त कोई अद्भुत दर्शन दिव्य विषय देखूं, तो वह मेरी परम प्रकृति है, वह सर्व्वत्र अप्रतिहत मेरी आत्माका ऐश्वर्य्य आश्चर्य्य रूपसे मालूम नहीं होता। श्रद्धापूर्व्वक कहा हुआ विषय सज्जनोंके श्रवणगोचर होनेपर पर्व्वतमें अर्पित लेखकी भांति पृथ्वीमण्डलपर सदा स्थिति करता है, इसलिये मैं आप लोगोंके आगम समयमें सज्जनोंके मुखसे निकले हुए ऋषियोंका बुद्धि उद्दीपनकारी विषयोंका वर्णन सुनूंगा। अनन्तर मुनिगण कृष्णके निकट विस्मित होकर कमलदल सदृश नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। कोई मधुसूदनकी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त हुए, कोई पूजा करने लगे; कितने ही ऋक् मन्त्रविभूषित वचनसे उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर मुनियोंने उस समय वाक्यकोविद नारद मुनिको कथा कहनेके लिये नियुक्त किया। मुनियोंने कहा, हे मुनि! तीर्थयात्रामें रत मुनियोंने हिमालयमें चिन्तनीय आश्चर्य्य अनुभव किया है, ऋषियोंके हितके निमित्त हृषीकेशके निकट वह सब जिस प्रकार देखा गया था, उसे आदिसे अन्ततक वर्णन करो। देवर्षि नारदमुनिने उन मुनियोंका वचन सुनके पहले समयका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।

१२९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर नारायणके सुहृद भगवान नारद ऋषि उमाके सङ्ग महादेवका जो वार्त्तालाप हुआ था, उसे कहने लगे।

नारद मुनि बोले, सिद्ध चारणोंसे सेवित, औषधियों, पुष्पों, अप्सराओं और भूतोंसे परिपूरित रमणीय हिमालय पर्व्वतपर धर्म्मात्मा देवताओंके ईश्वर वृषभध्वजने तपस्या की थी। महादेव उस स्थानमें सैकड़ों भूतसमूहोंके बीच घिरके हर्षित थे, प्रेतगण अनेक रूप धारण करते थे, कोई विकटरूप, कोई दिव्यरूप, कोई अद्भुतदर्शन, कोई सिंह व्याघ्रसदृश, कोई सर्व्वगतियुक्त, कोई शृगालवदन, कोई चीतेके सदृश रूपवाले, कोई ऋक्षमुख, कोई उलूकानन, कोई भयङ्कर, कोई वृक और बाजपेयपक्षीकी भांति मुखयुक्त, अनेक प्रकारके मृगमुखवाले, सर्व्व जातियुक्त किन्नर यक्ष गन्धर्व्व राक्षस और भूतों तथा दिव्य पुष्पोंसे परिपूरित दिव्य ज्वाला और दिव्य चन्दनयुक्त दिव्य धूपसे धूपित वह वृषभध्वजकी सभा मृदङ्ग, ढोल, शंख तथा भेरी आदि दिव्य बाजोंके शब्दसे परिपूरित थी, नाचनेवा

भूतों और मयूरोंके सहित वहांपर अप्सरायें नृत्य कर रही थीं, देवर्षिगण वहांपर सदा निवास करते थे; वह सभा अत्यन्त दर्शनीय, अनिर्द्देश्य, दिव्य और अद्भुत थी। वह पर्व्वत महादेवकी तपस्यासे सुशोभित हुआ था, स्वाध्यायपाठमें रत ब्राह्मणोंके वेदध्वनिसे निनादित था। हे माधव! वह पर्व्वत षट्पदगणोंके उपस्थित होनेसे अप्रतिम हुआ था। हे जनार्द्दन! महोत्सव सदृश भीमरूपधारी शङ्करको देखकर मुनियोंके मनमें परम प्रीति उत्पन्न हुई। महाभाग मुनिगण, ऊर्द्धरेता सिद्धगण, इन्द्रके सहित विश्वदेवगण, यक्ष, सर्प, पिशाचगण, सब लोकपाल अग्नि, वायु और सब महद्भूत वहांपर उपस्थित थे। सब समयके छहों ऋतुके फल वहां फूल रहे थे, ओषधियें प्रज्वलित होकर उस वनको प्रकाशित करती थीं, पक्षिसमूह हर्षित होके नाचते और गाते थे, रमणीय पर्व्वतके शिखरपर जनप्रिय पक्षीवृन्द विचर रहे थे। उस दिव्य धातुविभूषित गिरिपर महामना महादेव पर्य्यङ्कपर बैठे हुएकी भांति विराजमान थे। उस समय वे व्याघ्रचर्म्मधारी तथा बाघम्बर ओढ़े व्याल यज्ञोपवीतयुक्त लोहिताङ्गसे भूषित थे। हरिश्मश्रुजटी भीम देवद्वेषियोंको भयभीत करनेवाले, सब जीवोंके अभयदाता, भक्तोंको भयसे परित्राण करनेवाले वृषभध्वज उस स्थानमें विराजमान थे।

महर्षिगणने उन्हें देखकर सिर झुकाकर पृथ्वीपर गिरके साष्टाङ्ग प्रणाम किया, प्रणाम करते ही वे लोग क्षमाशील होकर सब पापोंसे मुक्त हुए; वह भूपतिका आश्रम उस समय भीमरूप धारण करके शोभित हुआ, वह उस समय अप्रधृष्य और महोरगोंसे परिपूर्ण होगया। हे मधुसूदन! क्षण भरके बीच उस स्थानमें आश्चर्य दीख पड़ा; वह वृषभध्वजकी सभा भयङ्कर रूप धारण करके शोभित होने लगी। रके सदृश अम्बरधारिणी समान व्रतचारिणी शैलनन्दिनीने भूत भामिनियोंके बीच [illegible] उनके समीप गमन किया। वह उस समय [illegible] तीर्थोंके जलसे युक्त सुवरण कलश धारण [illegible] गिरि निर्झरिणियोंके द्वारा पश्चाद्भागमें [illegible] होकर शोभित होने लगीं, उन्होंने [illegible] प्रकारकी सुगन्ध और फूलोंको वर्षा क[illegible] हुई हिमवत् पार्श्व सेवापूर्व्वक हरके पा[illegible] आगमन किया। अनन्तर उस चारुदर्शना देवी[illegible] हंसकर कौतुकके निमित्त अपने हाथोंसे सह[illegible] महादेवके दोनों उत्तम नेत्र मूंद लिये। महा[illegible]देवके नेत्र बन्द होनेपर सहसा जगत् तमोमय और अचेतन हुआ और निर्मोह तथा वषट्काररहित होगया; सब प्राणी मन मलिन और भयभीत हुए, महादेवके नेत्र बन्द होनेपर मानो सूर्य्य छिप गया। अनन्तर क्षण भरके बीच सब लोक अन्धकाररहित हुए, महादेवके मस्तकसे महत् प्रदीप्त ज्वाला निकली और प्रलयकालके प्रज्वलित सूर्य्यके समान उनका तीसरा नेत्र प्रकट हुआ, जिसके सहारे वह पर्व्वत मथित होने लगा। अनन्तर विशाललयनी शैलाधिराजपुत्रीने प्रदीप्त अग्नि सदृश नेत्रवाले त्रिलोचनको सिर झुकाके प्रणाम किया। शाल, सरल, वृक्ष रमणीय चन्दनवन और दिव्य ओषधियोंसे प्रकाशमान उस वनके जलनेपर मृगगण भयभीत होके दौड़े और किसी स्थानमें ठहरनेका आश्रय न पाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए, वह सभा सन्नाटायुक्त होके शोभित होने लगी। अनन्तर गगनस्पर्शी ज्वालामालायुक्त तड़िल्लता सदृश उज्ज्वल द्वितीय प्रलयाग्निकी भांति द्वादशादित्य सङ्काश उत्कट अग्निके द्वारा क्षण भरके बीच हिमालय निःशेष होकर जल गया। धातु, शिखर, झरने, वन और सब ओषधियें जल गईं। अनन्तर शैलपुत्री उस पर्व्वतको भस्म हुआ देखकर हाथ जोड़के भगवानकी शरणमें गईं। महादेव उस समय उमाको स्त्री स्वभाव सुलभ मार्द्दवशालिनी और

पिताकी विपद देखनेकी अनभिलाषिणी देख-कर प्रीतिपूर्व्वक हिमालयकी ओर देखा। क्षण-भरके बीच हिमालय प्रकृतिस्थ और दर्शनीय हुआ, पक्षिसमूह प्रमुदित और बनके वृक्ष उत्तम पुष्पोंसे युक्त हुए। अनिन्दिता उमाने उस समय हिमवान्‌को प्रकृतिस्थ देखकर प्रसन्न होके सर्व्वलोक प्रभु निजपति महादेवसे कहा।

उमा बोली, हे सर्व्वभूतेश महाव्रती शूल-धारी भगवन्! मुझे अत्यन्त ही सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये। हे देव! किसलिये आपके माथेमें तीसरा नेत्र प्रकट हुआ? किस निमित्त पक्षियों और बनके सहित पर्व्वत भस्म हुआ, किस हेतु आपने मेरे पिताको प्रकृतिस्थ और पहलेकी भांति वृक्षोंसे परिपूरित किया।

महेश्वर बोले, हे अनिन्दिते देवि! तुमने जो बालस्वभावसे मेरे नेत्रोंको मूंद लिया, उससे क्षणभरके बीच सब लोक प्रकाशरहित हुए। हे नगनन्दिनि! जब सब लोक आदित्यरहित होनेसे तमोमय हुए, तब मैंने प्रजा समूहकी रक्षा करनेके लिये अपना तीसरा प्रदीप्त नेत्र प्रकट किया, उस ही नेत्रके महत् तेजसे यह पर्व्वत मथित हुआ। हे देवि! तुम्हारी प्रीतिके निमित्त मैंने फिर शैलराजको प्रकृतिस्थ किया।

उमा बोली, हे भगवन्! किस निमित्त आपका चन्द्रमा सदृश शोभायुक्त प्रियदर्शन आनन पूर्व्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्द्ध्वमुख हुआ और किस कारणसे रौद्ररूप धारण किया? किस हेतु कपिल वर्णकी जटाजूट हुई? किसलिये आपने अपने कण्ठको बर्हिवर्ह सदृश नीलवर्ण किया। हे देव! किसलिये आप हाथमें सदा पिनाक धनुष धारण किया करते हैं। हे प्रभु! हे वृषभध्वज! मैं आपकी सहधर्म्मचारिणी तथा आपके विषयमें भक्तिमती हूं, इसलिये आपको मेरे सन्देहके विषयोंकी विधिपूर्व्वक वर्णन करना उचित है।

नारद मुनि बोले, भगवान् पिनाकपाणि शैलपुत्रीका ऐसा वचन सुनके उसके धैर्य्य और बुद्धिसे प्रसन्न हुए, अनन्तर उससे बोले, हे सुमुखि सुभगे! जिन कारणोंसे मेरे ये सब रूप हुए हैं, उसे सुनो।

१४० अध्याय समाप्त।

श्रीभगवान् बोले, पहले समयमें ब्रह्माकी तिलोत्तमा नामी एक उत्तम कन्या थी, सब रत्नोंका सार भाग निकालकर वह शुभाङ्गी निर्म्मित हुई थी। हे देवि! भूलोकमें अप्रतिम सुन्दरताई युक्त वह सुमुखि मेरी प्रदक्षिणा करके प्रलोभित करती हुई सम्मुख आई। वह सुन्दरी जिस जिस दिशामें मेरी ओर आई, उस ही ओर मेरे मनोहर मुख बाहिर हुए। उसे देखनेके लिये अभिलाषी होकर मैंने चार मूर्त्तिया धारण कीं और उत्कृष्ट योगके द्वारा चतुर्म्मुख हुआ। मैं पूर्व्व शरीरसे इन्द्रत्वका अनुशासन करता हूं। हे अनिन्दिते! उत्तर शरीरसे तुम्हारे सङ्ग क्रीड़ा करता हूं, मेरा पश्चिम मुख अत्यन्त प्रियदर्शन है, यह सब प्राणियोंको सुखी करता है और दक्षिणमुख अत्यन्त भयङ्कर तथा रौद्र होकर प्रजाका संहार किया करता है। मैं सब लोकोंको हितकाम-नासे जटिल और ब्रह्मचारी हुआ हूं। देव-कार्य्यसिद्धिके निमित्त मैंने हाथमें पिनाक धारण किया है। पहले समय इन्द्रने श्रीकामना करते हुए मेरे ऊपर वज्र चलाया था, उस वज्रने मेरा कण्ठ जला दिया, उसीसे मैं श्रीकण्ठ हुआ हूं।

उमा बोली, हे सत्तम! इस स्थानमें दूसरे श्रीमान् वाहनोंके रहते भी वृषभ आपका वाहन क्योंकर हुआ।

महादेव बोले, ब्रह्माने दूध देनेवाली देव-धेनु सुरभीको उत्पन्न किया, सुरभी उत्पन्न होकर दूधरूपी अमृत प्रदान करती हुई अनेक हुई, उसके बछड़ेके मुखसे फेन मेरे शरी-

गिरा था। अनन्तर गौवें मेरे द्वारा जलके अनेक वर्णकी होगई ; अन्तमें अर्थवेत्ता लोकगुरु ब्रह्माने मुझे शान्त किया और उन्होंने मुझे ध्वजाके निमित्त यह वृषवाहन प्रदान किया।

उमा बोली, हे भगवन्! स्वर्गके बीच सब भांतिकी सुन्दरतासे युक्त अनेक प्रकारके निवासस्थान हैं, उन सबको परित्याग करके आप केश हड्डीसे परिपूरित भयङ्कर कपाल और कालसङ्कुल बहुतेरे गिद्ध सियारोंसे सेवित सैकड़ों चितानलयुक्त अपवित्र मांस चर्व्वी रुधिर मज्जावली और हड्डियोंसे भरे सियारोंके शब्दसे निनादित श्मशानमें किसलिये क्रीड़ा करते हैं?

महादेव बोले, मैं पवित्र स्थान खोजते हुए इस पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करता हूं, परन्तु श्मशानसे बढ़के उत्तम और कुछ भी नहीं दीखता, इस ही निमित्त समस्त निवासस्थानोंके बीच वटशाखासे परिपूरित विच्छिन्न स्रग्विभूषित श्मशानमें मेरा मन रत होता है। हे शुचिस्मिते! ये सब भूत उस श्मशानमें ही क्रीड़ा करते हैं। हे देवि! भूतगणोंके बिना मैं निवास करनेका उत्साह नहीं करता। हे शुभे! मेरा यह श्मशानवास ही पवित्र और स्वर्गीय है, पवित्रताकी अभिलाष करनेवाले इस परम पवित्र स्थानकी उपासना किया करते हैं।

उमा बोली, हे सर्व्वधर्म्मभृतांवर सर्व्वभूतेश पिनाकपाणि भगवन्! मुझे इन मुनियोंके तपस्या विषयमें महान् सन्देह है, नख लोम जटाधारी तपस्वीवेषवाले अनेक भांतिके लोग जगत्के बीच भ्रमण करते हैं। हे अरिन्दम! इन ऋषियोंकी तथा मेरी प्रिय कामनासे आपको मेरा यह महत् सन्देह दूर करना उचित है। धर्म्मका क्या लक्षण है और जो मनुष्य धर्म्मज्ञ नहीं हैं, वे किस प्रकार धर्म्माचरण करनेमें समर्थ होंगे? हे धर्म्मज्ञ! आप इसे ही मेरे समीप वर्णन करिये।

नारद मुनि बोले, अनन्तर उन मुनियोंने ऋग्विभूषित वाक्यों और अर्थविशारद स्तोत्रोंसे उमादेवीकी पूजा की।

महादेव बोले, अहिंसा, सत्यवचन, सब जीवोंके विषयमें दया, शम और शक्तिके अनुसार दान ही गृहस्थोंका श्रेष्ठ धर्म्म है। पराई स्त्रियोंमें आसक्त न होना, स्त्रीकी रक्षा करनी, अदत्त दानसे विरत रहना और मधुमांसको परित्याग करना, ये पांच प्रकारके धर्म्म अनेक शाखायुक्त तथा सुखदायक हैं, धर्म्मपरायण देहधारियोंको शरीरसाध्य धर्म्माचरण करना योग्य है।

उमा बोली, हे भगवन्! मैं आपसे सन्देहका विषय पूछती हूं, इसलिये आपको मेरे समीप वह विषय कहना उचित है। चारों वर्णोंके बीच निज निज धर्म्मही सुखदायक है, ब्राह्मणका धर्म्म कैसा है और क्षत्रिय किस प्रकार धर्म्माचरण करेगा, वैश्योंके धर्म्मलक्षण क्या हैं और शूद्रोंका कैसा धर्म्म है?

श्रीभगवान् बोले, हे महाभागे! तुमने न्यायपूर्व्वक यह संशयका विषय पूछा है, महाभाग द्विजातिगण जगत्के बीच सदा भूमिदेव कहके विख्यात हैं, ब्राह्मणोंके लिये हर समयमें नियमसे उपवास ही धर्म्म है, धर्म्मार्थयुक्त ब्राह्मण ब्रह्मत्व लाभके योग्य है। हे देवि! न्यायपूर्व्वक ब्रह्मचर्य्य ही उनकी धर्म्मक्रिया, व्रत और उपनयन ही उनका धर्म्म है, जिससे कि ब्राह्मणको प्राप्ति होती है। गुरु और देवताओंकी पूजाके निमित्त धर्म्मपरायण पुरुषोंको धर्म्म और स्वाध्याय पाठ करना चाहिये।

उमा बोली, हे भगवन! मुझे कुछ सन्देह है, आपही उसे दूर करनेके योग्य हैं, इसलिये चारों वर्णोंके धर्म्म आप निपुणतासे वर्णन कीजिये।

महेश्वर बोले, रहस्य सुनना, वेदव्रतका सेवन, अग्नि कर्म्म और गुरुकार्य्य ... भिक्षाचरण ही धर्म्म है, सदा यज्ञोपवीत धारण और ब्रह्मचर्य्य परम धर्म्म है, सदा स्वाध्याय पाठ और

ब्रह्मचर्य्य व्रत करना ब्राह्मणोंका धर्म्म है। ब्राह्मण गुरुकी अनुमतिसे समावर्त्तन संस्कार करके विधिपूर्व्वक अनुरूप भार्य्या परिग्रह करे, ब्राह्मणके लिये शूद्रान्न त्याग, सन्मार्ग सेवन, उपवास और ब्रह्मचर्य्य धर्म्म हैं। गृहस्थ मनुष्य आहिताग्नि स्वाध्यायशील संयतेन्द्रिय, सदा होम करनेवाला विघसाशी, यताहारी, सत्यवादी और पवित्र होवे। अतिथिसेवा करना गृहस्थका धर्म्म है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय अग्निको धारण करना ब्राह्मणोंका धर्म्म है। सब यज्ञों और यज्ञोंसे पशुबन्धन कार्य्यको ब्राह्मण विधिपूर्व्वक न करे। जीवोंको अहिंसामय यज्ञ करना परम धर्म्म है, अपूर्व्व भोजन और विघसाशित्व धर्म्म है, स्वजनोंके भोजन करनेके अनन्तर पश्चात् भोजन करना धर्म्म कहके वर्णित हुआ है, गृहस्थों वा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको अवश्यही यह धर्म्माचरण करना चाहिये। गृहमेधियोंके लिये समान शीलत धर्म्म हुआ करता है। गृह देवताओंको सदा पुष्प आदिसे पूजा करनी योग्य है। सदा उपलेपन और उपवास धर्म्म कहा गया है। उत्तम रीतिसे लिपे पुते गृहमें घृत धूम रहेगा। द्विजगणके लोक धारण इस गार्हस्थ धर्म्ममें साधु ब्राह्मण सदा प्रवृत्त होते हैं। हे देवि! तुमने क्षत्रिय धर्म्मके विषयमें जो प्रश्न किया है, मैं तुमसे उसका विवरण करता हूं, सावधान होके सुनो। प्रथम क्षत्रियोंके लिये प्रजा पालन धर्म्म स्मृत हुआ है। निर्द्दिष्ट फलभोक्ता राजा धर्म्मयुक्त होता है, जो राजा धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करता है, उसे प्रजापालन रूपी सञ्चित धर्म्मसे पुण्यलोक प्राप्त होते हैं। इन्द्रिय दमन, स्वशाखोक्त, वेदपाठ, अग्निहोत्र दान और अध्ययन क्षत्रियका परम धर्म्म है। यज्ञोपवीत धारण, यज्ञ करना, सेवकोंका पालना और कृत कर्म्मोंको सफलता हो धर्म्म है, दण्डविधान पूर्व्व रीतिसे अव्यादान्त रक्षा करनी, वेदोक्त यज्ञ कर्म्मोंका व्यवहार स्थिति और सत्य वचनमें रति क्षत्रियका धर्म्म है। प्रीतिपूर्व्वक हाथसे दान करनेवाले क्षत्रिय इसलोक और परलोकमें पूजित होते है, अश्वमेध यज्ञ करनेसे लोगोंको जो लोक मिलते हैं, ब्राह्मणके निमित्त युद्ध करने तथा संग्राममें मरनेवाले, क्षत्रिय उन्हीं लोकोंमें जाते हैं।

सदा पशुओंको पालना और कृषिकर्म्म करना वैश्योंका धर्म्म है। अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, वाणिज्य, सत्पथमें स्थिति, अतिथिसेवा प्रशम, दम, ब्राह्मणोंका स्वागत प्रश्न और धनदान करना वैश्योंका सनातन धर्म्म है। सन्मार्गमें स्थित वैश्य वाणिज्यकार्य्यमें नियुक्त होकर सुगन्ध, तिल और चर्व्वी न बेचे, सब प्रकारसे अतिथि सत्कार करके शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्म्मार्थ कामको सेवा करे।

द्विजातियोंकी सदा सेवा करनीही शूद्रोंका परम धर्म्म है, जो पुरुष संशितव्रती, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर उपस्थित अतिथिको सेवा करते हुए महत् तपस्या सञ्चय करता है, वही शूद्र है, देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करनवाला शुभाचारी बुद्धिमान् शूद्र अभिलषित फल पाता है। हे सुन्दरि! हे सुभगे! मैंने तुम्हारे समीप चारो वर्णोंके धर्म्म कहे और अब क्या सुननेकी इच्छा करती हो?

उमा बोली, हे भगवन्! आपने चारो वर्णोंके हितकर तथा शुभकर पृथक् पृथक् धर्म्म कहे, अब जो धर्म्म सर्व्वव्यापी हो उसे हो मेरे समीप वर्णन करिये।

महेश्वर बोले, गुणाभिलाषित विधाताने सब लोगोंका उद्धार करनेके निमित्त मनुष्योंके बीच भूदेव ब्राह्मणोंको सर्व्वलोकोंके आरतस्वासे बनाया है, उनका धर्म्म, जन्म फलोदय कहता हूं। ब्राह्मणोंके धर्म्म ही परम धर्म्म हैं। लोगोंके धर्म्मके हेतु स्वाटक समय ब्रह्मा कहे हुए तीन धर्म्म प्रकट किये हैं, उ

वेदोक्त धर्म्म, स्मृति शास्त्रोंमें वर्णित धर्म्म और शिष्टाचार ये तीनों धर्म्म ही सनातन कहे गये हैं। तीनों विद्यामें विद्वान् ब्राह्मण ऋक् मन्त्र अध्ययन करके जीवन बिताते हुए दान अध्ययन और यजन, इन तीनों कर्म्मोंसे युक्त होवे, त्रिपुराक्रान्त अर्थात् काम, क्रोध और लोभ इन तीनोंको परित्याग करनेवाले और सर्व्वभूतोंमें समदर्शी पुरुषको द्विज कहा जाता है। लोकेश्वर प्रजापतिने ब्राह्मणोंकी वृत्तिके निमित्त निम्नलिखित छः धर्म्मोंका वर्णन किया है।

यजन, याजन, दान, परिग्रह, अध्ययन और अध्यापन, इन षट् कर्म्मोंको करनेवाले ब्राह्मण धर्म्मभागी होते हैं। सदा स्वाध्याय पाठ, और सनातन यज्ञोंको करना ब्राह्मणोंका धर्म्म है, ब्राह्मण शक्तिके अनुसार विधिपूर्व्वक उत्तम दान करे; साधुओंमें नित्य प्रवृत्त शान्ति ही परम धर्म्म है। शुद्धाचरणवाले गृहस्थोंका उत्तम नाम ही महान् धर्म्म है, जो यज्ञ करनेवाला शुद्धचित्त, सत्यवादी, असूयारहित, दाता, ब्राह्मणोंका सम्मानकर्त्ता, उत्तम स्वच्छ गृहमें निवास करनेवाला, अभिमान हीन, सदा सरल और कोमल वचन कहनेवाला, अतिथि तथा अभ्यागतोंके विषयमें अनुरक्त रहता तथा शेषमें बचे हुए अन्नको भोजन करता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंको पाद्य, अर्घ, आसन, शय्या, दीपक और गृह प्रदान करता है, वही धार्म्मिक है। जो लोग प्रातःकालमें उठनेपर आचमन करके भोजनके निमित्त ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करते और उनका सम्मान पूर्व्वक अनुगमन करते हैं, उन्हें सनातन धर्म्म होता है। सब भांतिसे अतिथि सत्कार और शक्तिके अनुसार धर्म्म, काम, अर्थको सेवन करना शूद्रोंका विख्यात् धर्म्म है। गृहस्थोंके विषयमें प्रवृत्ति लक्षणयुक्त धर्म्म विहित है, इसलिये सब प्राणियोंके हितके लिये उस प्रवृत्ति लक्षणयुक्त धर्म्मका वर्णन करता हूं। शक्तिके अनुसार बार बार यज्ञ तथा दान करना चाहिये और ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको पुष्टि कार्य्यका विधान करना उचित है। धर्म्मसे धन पैदा कर, धर्म्मसे प्राप्त हुआ धन तीन प्रकारका है; मनुष्य यत्न पूर्व्वक धर्म्मार्थके हेतु धन वितरण करे। ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य एक अंश धनके सहारे धर्म्मार्थ आचरण करे, एक भागसे काम भोग करे और एक हिस्सेसे धर्म्मकी वृद्धि करनी चाहिये।

हे देवि! एक निवृत्तिलक्षण धर्म्म ही मोक्षका हेतु हुआ करता है, उसका वृत्तान्त मैं यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो, मोक्षकी आकांक्षा वाले पुरुषोंके लिये सब जीवोंमें दया, सदा एक गांवमें वास न करना और आशापाशसे रहित होना ही श्रेष्ठ धर्म्म है। मोक्षार्थी मनुष्य गृह, जल, वस्त्र, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और रक्षकके स्थानमें आसक्त न होवे। जिसका चित्त अध्यात्मपथमें विचरता है, वह उसहीमें मन लगावे, उसहीमें तत्पर होकर योग और समाधिमें सदा अनुरक्त रहे। वृक्षके मूलमें निवास करनेवाले, सूने स्थान, नदी-पुलिनशायी तथा नदीके तटपर रहनेवाले जो ब्राह्मण सर्व्व आसक्ति तथा स्नेहबन्धनसे रहित हैं, वे आत्मामें ही निज भावसे समासक्त होवें; मोक्ष दृष्ट कर्म्मके सहारे स्थाणुस्वरूपसे निराहारी होके रहें। जो लोग योगी होके परिव्रज्या करते हैं, उन्हें सनातन धर्म्म होता है। एक स्थानमें आसक्त न होवे, एक गांवमें सदा वास न करे और एक ही पुलिनमें शयन करना योग्य नहीं है; मुक्त पुरुष निर्मुक्त होकर भ्रमण करे; यही मोक्षवित् साधुओंका वेदोक्त सत्पथस्वरूप धर्म्म है, जो लोग इस पथके अनुगामी होते हैं, उनके लिये कोई व्यवसाय नहीं रहता। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस भेदसे चार प्रकारके संन्यासी हैं, जो पहलेसे पीछे कहे गये हैं, वे उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। कुटीचक

और बहूदक, ये दोनों ही दण्ड धारण करते हैं, इनके बीच पहले कहे हुए भिक्षु गृहमें निवास करते हैं, दूसरे तीर्थोंमें पर्य्यटन किया करते हैं, तीसरे पुरुष संन्यासाश्रम धर्म्ममें रत रहते हैं, और चौथे पुरुष निर्गुणपथमें विचरते हैं। परमहंसाश्रमसे बढके सुख दुःखहीन, प्रियदर्शन, अजर, अमर और अव्यय आश्रम दूसरा नहीं है, अत्यन्त रोगके भयसे लोग इसका आचरण नहीं करते।

उमा बोलीं, गार्हस्थ्य और सज्जनोंसे आचरित मोक्षधर्म्म जो जीवलोकका महान् कल्याणकारी पथ है, उसे आपने वर्णन किया। हे धर्म्मज्ञ! इसके अनन्तर मैं ऋषिधर्म्म सुननेकी इच्छा करती हूं, तपोवन निवासी ऋषियोंके धर्म्मको सुननेके निमित्त मुझे सदा अभिलाष हुआ करती है। हे महेश्वर! घृतके धूएंसे परिपूरित तपोवनको देखनेसे मेरा मन सदा प्रसन्न होता है। हे प्रभु! हे सब धर्म्मार्थ तत्त्वज्ञ देवेश! मुनि धर्म्मविषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे महादेव! इसलिये मैने जो विषय पूछा, आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे शुभे! संन्यासी मुनिगण जैसा आचरण करके निज तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करते हैं, मैं तुम्हारे समीप वह उत्तम मुनिधर्म्म कहता हूं। हे धर्म्म जाननेवाली महाभागे! धर्म्मवेत्ता फेनप साधु ऋषियोंका जो धर्म्म है, उसे ही तुम मेरे समीप पहले सुनो। जो लोग ब्रह्म-सजातीय, सम्बन्धमें श्रेष्ठ फेनहत्त अग्रान्न समूह क्रमसे आदान करते हैं, वेही उस अविनाशी ब्रह्माके द्वारा यज्ञस्थल, पीतमध्वर तथा वृष्टि प्रभृति यज्ञाङ्गस्वरूप और स्वर्गमें दिव्य भोगके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। हे तपस्विनि! यह उन्हीं पवित्र फेनपायी ऋषियोंके धर्म्मचर्य्याका मार्ग कहा गया, अब बालखिल्यगणका धर्म्म सुनो। धर्म्मज्ञ तपस्वि बालखिल्य मुनिगण सूर्य्यमण्डलमें शाकुनी वृत्ति अवलम्बन करके उञ्छवृत्तिसे निवास करते हैं, वे मृगचर्म्म और अथवा वल्कलवस्त्र पहरते हैं; तपस्वी बालखिल्य मुनिगण निर्द्वन्द्व होकर सत्पथको अवलम्बन किया करते हैं। वे लोग अङ्गुष्ठपर्व्व समान होकर निज निज धर्म्ममें निवास कर रहे हैं और तपश्चरणकी चेष्टा किया करते हैं, उनका धर्म्मफल अत्यन्त महत् है, सुरकार्य्य सिद्धिके निमित्त उन्हें देवताओंकी समता प्राप्त होती है और वे लोग तपस्याके सहारे पापकर्म्मोंको जलाकर दशों दिशाको प्रकाशित किया करते हैं। दूसरे जो सब शुद्धचित्तवाले दया धर्म्मपरायण ऋषिवृन्द निवास स्थानसे रहित होकर चक्रकी भांति घूमते हैं और पवित्र होकर चन्द्रलोकमें विचरण किया करते हैं, वे पितृलोकके निकट पहुंचकर चन्द्रकिरण पान करते हैं। जो लोग भली भांति पात्रोंको धोते, दूसरे दिनके लिये कुछ भी सञ्चय करके नहीं रखते तथा सम्प्रक्षाल अश्मकुट्ट और दन्तोलूखलिक जो सब ऋषि हैं, वे सब कोई तथा सोमप और उष्मप मुनिगण देवताओंके निकटवर्त्ती होके सस्त्रीक और नियतेन्द्रिय होकर उञ्छवृत्ति अवलम्बन किया करते हैं। अग्नि परिचर्य्या, पितरोंकी पूजा और पञ्चयज्ञ करना उनका धर्म्म कहा गया है। हे देवि! चक्रकी भांति भ्रमण करनेवाले देवलोकचारी द्विजोंके द्वारा यह ऋषिधर्म्म सदा आचरित हुआ करता है, इसके अतिरिक्त और जो सब धर्म्म हैं, वह भी मेरे समीप सुनो। सबको ऋषिधर्म्ममें संयतेन्द्रिय होकर आत्मज्ञान साधन करना योग्य है, अनन्तर काम-क्रोधको जीतना चाहिये। मेरे विचारमें अग्निहोत्र, सनातन धर्म्मका सदा अनुष्ठान, सामयज्ञ, दान, पञ्चयज्ञ, दक्षिणा, सदा यज्ञकार्य्य, पितरों और देवताओंकी पूजामें अनुराग और उञ्छवृत्तिसे हुए अन्नके सब प्रकार अतिथि द्वारा धर्म्म है। इस प्रकारके गार्ह्य धर्म्म

शम विषयमें रति, स्थण्डिल शयनमें योग, शाक पत्ते और फलमूलको भोजन, वायु, जल और शैवाल भक्षण ये ऋषियोंके नियम हैं, इन्हींके सहारे वे लोग अजित गतिको जय किया करते हैं। धूआं, अग्नि और मूषल ध्वनिसे रहित समय, युद्ध, सब लोगोंके भोजन करने और पात्र सञ्चाररहित होने तथा भिक्षुगणके चले जानेपर भी जो लोग अतिथि-कामना करते और शेष अन्न भोजन किया करते हैं, वेही सत्यधर्ममें रत शान्त पुरुष मुनि धर्मयुक्त होते हैं। जड़ता और अभिमानयुक्त न होवे, अप्रसन्न तथा विस्मित न होना चाहिये; मित्रशत्रुमें समदर्शी और सर्व्व भूतोंमें दयावान् पुरुष ही श्रेष्ठ धर्मज्ञ हैं।

१४१ अध्याय समाप्त।

उमा बोलीं, रमणीय स्थानों, नदीतट, झरनों पहाड़ों, बनोंमें फलयुक्त पवित्र स्थानों और मूलविशिष्ट मध्यदेशमें उत्तम रीतिसे समाहित सदा व्रत करनेवाले मुनिगण निवास किया करते हैं। हे शङ्कर! मैं उन लोगोंका विविध पुण्य सुननेकी इच्छा करती हूं। हे देवेश। स्वशरीरोपजीवी वाणप्रस्थ धर्मको भी सुननेकी मुझे इच्छा है।

महेश्वर बोले, हे देवि! सावधान होके वाणप्रस्थोंका धर्म सुनो और एकाग्रचित्तसे सुनके तुम्हें धर्मबुद्धि परायण होना योग्य है। नियमोंके द्वारा पूरी रीतिसे सिद्ध हुए बनवासी साधु वाणप्रस्थ पुरुषोंको जैसा कर्म करना चाहिये, उसे कहता हूं। सबेरे, मध्यान्ह और सन्ध्या, इन तीनों समयमें स्नान, पितरों और देवताओंकी पूजा, अग्निहोत्र इष्टि और होमका अनुष्ठान, नीवारग्रहण, फलमूल निषेवन चिकनाईके लिये इङ्गुद और एरण्डका तेल मलना कर्त्तव्यरूपसे निर्द्दिष्ट हुआ है। योगचर्य्या करनी, काम क्रोधको त्यागना सिद्ध वीरस्थान और ... निवास करना चाहिये। वीरशय्या उपासक योगरत साधु योगीगण जो ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा किया करते हैं और जो लोग हर्षयोगमें रत होके सब कार्य्योंको निभाते हैं, सदा प्रवेशन रूप वीरासनसे बैठते हैं और स्थण्डिल पर शयन किया करते हैं, वे धर्मबुद्धियुक्त मनुष्य शीतजल और अग्निसे यागयुक्त होके वर्त्तमान रहें। उपवासी, वायुभक्षी, शैवालभोजी, अश्मकूट, दान्त, सम्प्रक्षाल तथा दूसरे चीरवल्कल और मृगचर्म्म पहरनेवाले मुनिवृन्द यथा समयमें विधिपूर्व्वक यथायोग्य धर्मयात्रा करें। बनके बीच सदा निवास करनेवाले बनचर बनस्थ बनगोचर बनवासी मुनि लोग बनको गुरुकी भांति पाके वहांपर वास करें। उन लोगोंके लिये होमकर्म्म, पञ्चयज्ञ भाग और अनुपालन ही धर्म है, अष्टमी यज्ञपरता, चातुर्मास्य निषेवन, पौर्णमास प्रभृति सब यज्ञ तथा नित्य यज्ञ धर्मरूपसे विहित है। जो लोग दार परिग्रहसे रहित हुए हैं और सब सङ्कटोंसे छूटे हैं, वे मुनिगण पापहीन होके बनमें विचरते हैं। जो लोग सदा सक्रुभाण्ड सञ्चयमें रत रहते, जिनके गृहमें तीनों अग्नि विद्यमान रहती हैं, जो सब साधुलोग सदा सत्पथमें निवास करते हैं, वेही परम गति पाते हैं। सत्य धर्माव लम्बी सिद्ध मुनिगण महापवित्र ब्रह्मलोक और शाश्वत सोमलोकमें गमन किया करते हैं। हे शुभे देवि! मैंने वाणप्रस्थाश्रित धर्म जो स्थूलरूपसे सम्पन्न होता है, उसे विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया।

उमा बोलीं, हे सर्व्वलोक नमस्कृत सर्व्व भूतेश भगवन्! जो धर्म मुनियोंकी सिद्धिके सम्बन्धमें है, उसे वर्णन करिये। जो लोग सिद्ध वादमें सुसिद्ध बनवासी स्वेच्छाचारी और कदाचित दारपरिग्रहकारी हैं, उनका धर्म किस प्रकार स्मृत हुआ करता है?

महादेव बोले, जो लोग तपस्याके सहारे यथेष्ट आचरण किया करते हैं, उन्हें मुण्डन तथा गेरुआ वस्त्र धारण करना उचित है, ...

लोग दारपरिग्रह करके विहार करते हैं, उन्हें कहीं भी रात्रिवास करना योग्य नहीं है; वैरिगणकी भांति इन लोगोंके लिये स्वेच्छा-विहार विहित नहीं होता। प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय स्नान, ऋषिकृत महत् अग्निहोत्र, समाधि, सत्पथमें निवास और यथा-योग्य कार्य्योंको पूरा करना ही वनवासी मुनि-योंका धर्म है। पहले जो सब धर्म्म वर्णित हुए हैं, वही वनवासी ऋषियोंके धर्म्म हैं; यदि मनुष्य इन धर्म्मोंकी सेवा करे, तो महत् फल पाता है। जो लोग निज स्त्रोमें रत और नियतेन्द्रिय होकर दम्पति धर्म्मके अनुसार कार्य्य करते हैं, उन धार्म्मिकोंका ऋषियोंके द्वारा आचरित धर्म्म सिद्ध होता है। धर्म्मदर्शी मनुष्योंको स्वेच्छाचारी होकर कामसेवन करना योग्य नहीं है। जो मनुष्य हिंसारहित चित्तसे सब जीवोंको भली भांति अभयदक्षिणा दान करता है, वही धार्म्मिक है। सब वेदोंको पढके स्नान करना और सर्व्वभूतोंमें सरलता प्रदर्शित करनी ये दोनो ही समान हो सकते हैं, अथवा वेद स्नानसे सरलता श्रेष्ठ है। जो लोग सब प्राणियोंके विषयमें दयावान् हैं, सब जीवोंके सम्बन्धमें सरलता प्रकाशित करना जिनका व्रत है और सर्व्वभूतोंको आत्मस्वरूप जानते हैं, वेही धार्म्मिक हैं। प्राचीन लोग सर-लताको धर्म्म कहते और कुटिलताको अधर्म्म कहा करते हैं, मनुष्य इस लोकमें सरलतायुक्त होनेसे धार्म्मिक होता है। जो लोग सदा सरल-तामें रत रहते हैं, वे देवताओंके समीप निवास करते हैं, इसलिये जो लोग धार्म्मिक होनेकी इच्छा करें, वे सरल होवें। क्षान्त, दान्त, क्रोध जीतनेवाले, धर्म्ममय अहिंसक और नित्य धर्म्ममें चित्त लगानेवाले मनुष्य धर्म्मयुक्त हुआ करते हैं। जो धर्म्मात्मा मनुष्य आलसरहित होके शक्तिके अनुसार सत्पथको अवलम्बन करता और निज चरित्रकी उत्तम रीतिसे रक्षा करता है, वह बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मस्वरूप लाभ कर-नेमें समर्थ होता है।

उमा बोली, हे देव! जो सब तपोधन तप-स्वोवृन्द आश्रमधर्म्ममें अनुरक्त हैं, वे कैसे आच-रणसे दीप्तिमान होते हैं, हे भगवन्! निर्धन, महाधनी, राजा और राजपुत्रगण किन कर्म्मोंके सहारे महाफल पाते हैं? हे देव! वे लोग नित्यस्थानमें गमन करते हुए दिव्य चन्दनसे भूषित होकर किन कर्म्मोंसे वनवासी होते हैं। हे देव! हे त्रिपुरनाशन त्रिलोचन! मेरे इस तप-श्चर्य्याश्रित शुभ सन्देहके विषयोंको आप विस्तार पूर्व्वक वर्णन करिये।

महादेव बोले, अहिंसारत सत्यवादी दमन-शील मनुष्य अनामय और सम्यक्‌सिद्ध होके परलोकमें जाकर गन्धर्व्वोंके सहित आनन्द भोग किया करते हैं। जो धर्म्मात्मा मनुष्य यथा रीतिसे विधिपूर्व्वक मण्डूक योग शय्यामें शयन करके दीक्षा आचरण करते हैं, वे नागगणके सहित प्रमुदित होते हैं। जो लोग दीक्षित और समाहित होके मृगगणोंके सहित मृगके द्वारा उत्सृष्ट शस्योंको सेवन करते हैं, वे अम-रावती पुरीमें गमन किया करते हैं। जो लोग शैवाल अथवा सूखेपत्तोंको खाके तपस्या करते और सदा शीलवान रहते हैं, उन्हें परम गति प्राप्त होती है। वायु, जल और फल मूलाशी योगी लोग यक्षलोकमें ऐश्वर्य्य लाभ करके अप्स-राओंके सहित आनन्द करते हैं, ग्रीष्मकालमें विधिविहित कर्म्मोंके सहारे बारह वर्ष पञ्च-तपा करनेसे मनुष्य राजा होता है; बारह वर्षतक मौनावलम्बन पूर्व्वक आहारका नियम करके यत्नके सहित मरुसाधन अर्थात् जल पर्य्यन्त परित्याग करनेसे मनुष्य पृथ्वीपति राजा होता है। स्थण्डिलमें बिना आसनके बैठकर शुद्ध आकाशमें हर्ष पूर्व्वक प्रवेश करके जो लोग द्वादश वार्षिकी दीक्षाग्रहण करते और अनशन व्रत अवलम्बन करके शरीर त्यागते हैं,

वे स्वर्गमें सुख समृद्धि भोग किया करते हैं। हे भामिनी! ऋषि लोग यान, शय्या और महामूल्य चन्द्रमाकी भांति सफेद गहोंकी स्थण्डिल शयनका फल कहते हैं, जो लोग सदा आत्माकी उपजीव्य करके नियताहारी होकर अथवा अनशन व्रतके सहारे देह परित्याग करते हैं, वे स्वर्गभोग किया करते हैं, आत्मउपजीवी द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके महासर्वणामें शरीर परित्याग करनेवाले वरुणलोकमें सुख भोगते हैं। जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा अवलम्बन करते और पापलेद्वारा दोनों चरण भेदते हैं, वे गुह्यक लोकमें प्रमुदित होते हैं, जो लोग निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर आत्माके सहारे आत्मसाधन करके द्वादशवार्षिकी इस मनोहर दीक्षाको अवलम्बन करके स्वर्गलोक पाते हैं, वे देवताओंके सङ्ग आनन्द भोग करते हैं और जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके अग्निमें देह परित्याग करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें निवास किया करते हैं। हे देवी! जो द्विज यथारीतिसे दीक्षित और संयत होकर आत्मामें आत्मसाधन करते हुए ममता रहित होके धर्मकी अभिलाष करता है और बारह वर्ष तक इस मनोगत दीक्षाका अनुष्ठान करके तरुस्कन्धमें अरणीके सहित अग्नि परित्यागकर अनावृत्त होकर गमन करता है, वह वीरपथसे गमन करते हुए सदा वीरासन गतिसे युक्त होके वीर लोकमें निवास करता और उसी वीरगति प्राप्त होती है; वह इन्द्रलोकमें जाकर सदा सर्व्वकामके सहारे पुरस्कृत होता और दिव्य पुष्पोंसे युक्त तथा दिव्य चन्दनसे विभूषित होता है, वह धर्म्मात्मा देवलोकमें देवताओंके सहित सुखसे निवास करता है, वीरलोकमें गये हुए वीर पुरुष सदा वीरयोग युक्त हुआ करते हैं। जो लोग सतोगुणी होकर सब वस्तुओंको त्यागके सदा पवित्र रहके दीक्षित होते और वीरपथसे गमन करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, वे इच्छानुसार कामगामी विमानपर विचरते तथा वे श्रीमान मनुष्य निरामय होके इन्द्रलोकमें जाकर प्रमुदित होते हैं।

१४२ अध्याय समाप्त।

उमा बोली, हे भगनेत्रनाशी सूर्यदन्त विनाशन दक्षयज्ञ विध्वंशी त्रिलोचन भगवन्। मुझे यह महान सन्देह है, कि ब्रह्माने पहले चारों वर्णोंकी सृष्टि की है। उनके बीच वैश्य किस कर्म्म विपाकसे शूद्रत्व पाता है। क्षत्रिय वैश्य हुआ करते और ब्राह्मण, क्षत्रिय होते हैं, हे देव। प्रतिलोमगत धर्म्म किस प्रकार निभ सकते हैं? हे विभु। ब्राह्मण किस कर्म्मके सहारे शूद्रयोनिसें जन्मता है और क्षत्रिय कैसे कर्मके द्वारा शूद्रत्व लाभ करता है? हे भूतपति अनघदेव। आप मेरे इस सन्देहको दूर करिये इस लोकमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वभाविक हैं, तब किस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं।

महादेव बोले, हे देवि। ब्राह्मणके स्वभावके अतिरिक्त ब्राह्मण्य प्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है। मेरे विचारमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वभावके अनुसार हुआ करते है। ब्राह्मण श्रेष्ठवर्ण लाभ करके भी दुष्कृत कर्म्मोंसे स्थानभ्रष्ट होता है, इसलिये ब्राह्मणको सदा रक्षा करनी उचित है, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणधर्म्ममें स्थित रहके यदि ब्राह्मण्य-उपजीवी होवे, तो उन्हें ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। जो लोग ब्राह्मत्व परित्यागके क्षत्रिय धर्म्मको सेवा करते है, वे ब्राह्मणत्वसे परिभ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न हुआ करते हैं, जो अल्पबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके लोभ मोहके वशमें होके सदा वैश्योंका कर्म्म करता है, उसे वैश्यत्व प्राप्त होता है और वैश्य भी शूद्रकर्म्म करके शूद्र हुआ करता है। ब्राह्मण निज धर्म्मसे भ्रष्ट होनेपर शूद्रत्व लाभ करता है, शूद्र होके वर्णभ्रष्ट होनेपर सर्व

बहिष्कृत तथा नरकगामी होता है। ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोकसे परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाभागे धर्म्मचारिणि! क्षत्रिय अथवा वैश्य यदि अपने कर्म्मको त्यागके शूद्रका कर्म्म करते हैं, तो वे निज स्थानसे च्युत होकर वर्णसङ्कर होते हैं। वैसे ब्राह्मणों, अथवा वैश्योंको शूद्रत्व प्राप्त होता है। जो लोग निज धर्म्मसे बोधयुक्त हुए हैं, जो लोग ज्ञान-विज्ञानयुक्त पवित्र, धर्म्मज्ञ और सदा धर्म्ममें रत हैं, वेही धर्म्मफल भोग करते हैं। हे देवि। मैंने जो कहा उसे तथा अन्यान्य विषयोंको ब्रह्माने स्वयं वर्णन किया है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले साधु पुरुष इस नैष्ठिक अध्यात्म विषयका अनुष्ठान किया करते हैं। हे देवि। उग्र जातिका अन्न अत्यन्त निन्दनीय है। गणान्न, श्राद्धीय अन्न, सूतकान्न तथा दुष्टोंका अन्न भोजन करना उचित नहीं है और शूद्रोंका अन्न कदापि भोजन न करे। हे देवि! महानुभाव देवगण शूद्रान्नको सदा निन्दित जानते हैं, इसमें पितामहके मुखके कहे हुए प्रमाण हैं, मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि ब्राह्मण आहिताग्नि और याज्ञिक होके जठरमें अवशिष्ट शूद्रान्न रहनेसे पञ्चत्व लाभ करता और उसे शूद्रगति प्राप्त होती है। अवशिष्ट शूद्रान्न जठरमें रहनेसे ब्राह्मण ब्रह्मस्थानसे च्युत होकर शूद्रत्व पाता है, इस विषयमें कुछ भी विचार नहीं है, जिसका अवशिष्ट अन्न जठरमें विद्यमान रहनेसे ब्राह्मण प्राण परित्याग करता है, वह जिसके अन्नको उपजीव्य करता था, उस ही योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ पवित्र ब्राह्मणत्व पाके उसकी अवज्ञा करते तथा अभोज्य अन्न भोजन करते हैं, वे पतित होते हैं। सुरा पीनेवाले ब्रह्मघाती, शूद्र, चोर, भग्नव्रती, अपवित्र, स्वाध्यायरहित, पापाचारी, लोभी, शठ, कपटी, शठ, अव्रती, वृषलीपति, कुण्डाशी अथवा जो पुरुष पाकपात्रमें भोजन करता है, सोम बेचनेवाले और नीचोंकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनिसे पतित होते हैं। गुरुतल्पगामी, गुरुके विषयमें द्वेष करनेवाला और गुरुकी निन्दा करनेमें अनुरक्त ब्राह्मण ब्रह्मवित् तथा ब्रह्मवित्तम होनेपर भी पतित होता है।

हे देवि! इन्हीं पवित्र कार्य्यों और पवित्र आचरणोंसे शूद्रभी ब्राह्मण हुआ करता और वैश्यभी क्षत्रियत्व पाता है। शूद्र सदा सत्पथमें निवास करते हुए खिन्नचित्त न होकर न्याय तथा विधिपूर्व्वक यत्नके सहित ज्येष्ठ वर्णको सेवा तथा टहल करे यही शूद्रोंका निर्दिष्ट कर्म्म है। देवताओं और ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाला, सबका आतिथ्य करनेमें व्रतयुक्त, ऋतुकालमें भार्य्यागामी, सदा नियमित भोजी, स्वयं मनोहर और मनोहर लोगोंका अन्वेषी, तथा शेषान्नभोजी शूद्रको वैश्यत्व प्राप्त होता है।

सत्यवादी, अहङ्कार रहित निर्द्वन्द्व, शमयुक्त, स्वाध्यायरत और पवित्र होकर जो वैश्य यज्ञके द्वारा देवार्च्चना करता है, जो दान्त द्विजोंका सम्मान करके सर्व वर्णोंको भूषित किया करता है और जो गृहस्थ व्रत अवलम्बन करके दोबार भोजन करता है, जो शेषान्नभोजी नियताहारी, निष्काम और अहङ्कार रहित है, जो अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्व्वक आहुति प्रदान करता है, सबका आतिथ्य किया करता, बचा हुआ अन्न भोजन करता और दक्षिणाग्नि गार्हपत्य तथा आवहनीय अग्निकी परिचर्य्यामें सावधान रहता है, वह पवित्र वैश्य महत् क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होता है। जन्मविधि संस्कृत वह वैश्य क्षत्रिय और उपनीत व्रतयुक्त तथा सत्कृत होकर द्विज हुआ करता है।

जो लोग दान करते और समृद्ध प्रदक्षिण यज्ञके सहारे योग किया करते हैं और अध्ययन करते हुए सदा तीनो अग्नियोंके शरणापन्न होते हैं, आर्त्त पुरुषोंको भोजन देते, धर्म्मके

वे स्वर्गमें सुख समृद्धि भोग किया करते हैं। हे भामिनी। ऋषि लोग यान, शय्या और महामूल्य चन्द्रमाकी भांति सफेद ग्रहोंकी स्थण्डिल शयनका फल कहते हैं, जो लोग सदा आत्माको उपजीव्य करके नियताहारी होकर अथवा अनशन व्रतके सहारे देह परित्याग करते हैं, वे स्वर्गभोग किया करते हैं, आत्मउपजीवी द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके महासर्वणमें शरीर परित्याग करनेवाले वरुणलोकमें सुख भोगते हैं। जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा अवलम्बन करते और पापकेद्वारा दोनों चरण भेदते हैं, वे गुह्यक लोकमें प्रमुदित होते हैं, जो लोग निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर आत्माके सहारे आत्मसाधन करके द्वादशवार्षिकी इस मनोहर दीक्षाको अवलम्बन करके स्वर्गलोक पाते हैं, वे देवताओंके सङ्ग आनन्द भोग करते हैं और जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके अग्निमें देह परित्याग करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें निवास किया करते हैं। हे देवी! जो द्विज यथारीतिसे दीक्षित और संग्रत होकर आत्मामें आत्मसाधन करते हुए ममता रहित होके धर्मकी अभिलाष करता है और बारह वर्ष तक इस मनोगत दीक्षाका अनुष्ठान करके तरुस्कन्धमें अरणीके सहित अग्नि परित्यागकर अनावृत्त होकर गमन करता है, वह वीरपथसे गमन करते हुए सदा वीरासन गतिसे युक्त होके वीर लोकमें निवास करता और उसी वीरगति प्राप्त होती है; वह इन्द्रलोकमें जाकर सदा सर्व्वकामके सहारे पुरस्कृत होता और दिव्य पर्प्पोंसे युक्त तथा दिव्य चन्दनसे विभूषित होता है, वह धर्मात्मा देवलोकमें देवताओंके सहित सुखसे निवास करता है, वीरलोकमें गये हुए वीर पुरुष सदा वीरयोग युक्त हुआ करते हैं। जो लोग सतोगुणी होकर सब वस्तुओंको ..के सदा पवित्र रहके दीक्षित होते और वीरपथसे गमन करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, वे इच्छानुसार कामगामी विमानपर विचरते तथा वे श्रीमान मनुष्य निरामय होके इन्द्रलोकमें जाकर प्रमुदित होते हैं।

१४२ अध्याय समाप्त।

उमा बोली, हे भगनेत्रनाशी सूर्य्यदन्त विनाशन दक्षयज्ञ विध्वंसी त्रिलोचन भगवन मुझे यह महान सन्देह है, कि ब्रह्माने पहले चारों वर्णोंकी सृष्टिकी है। उनके बीच वैश्य किस कर्म्म विपाकसे शूद्रत्व पाता है। क्षत्रि वैश्य हुआ करते और ब्राह्मण, क्षत्रिय होते हैं हे देव। प्रतिलोमसगत धर्म्म किस प्रकार नि सकते हैं? हे विभु। ब्राह्मण किस कर्म्मके सहा शूद्रयोनिमें जन्मता है और क्षत्रिय कैसे कर्म्मके द्वारा शूद्रत्व लाभ करता है? हे भूतपति अन घदेव! आप मेरे इस सन्देहको दूर करिये इस लोकमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वभाविक हैं तब किस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं।

महादेव बोले, हे देवि। ब्राह्मणकी स्वभावके अतिरिक्त ब्राह्मण्य प्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है मेरे विचारमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वभावके अनुसार हुआ करते है। ब्राह्मण श्रेष्ठवर्ण लाभ करके भी दुष्कृत कर्म्मोंसे स्थानभ्रष्ट होता है इसलिये ब्राह्मणको सदा रक्षा करनी उचित है क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणधर्म्ममें स्थित रहके यदि ब्राह्मण्य-उपजीवी होवे, तो उन्हें ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। जो लोग ब्राह्मणत्व परित्याग करके क्षत्रिय धर्म्मकी सेवा करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे परिभ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न हुआ करते हैं, जो अल्पबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके लोभ मोहके वशमें होके सदा वैश्योंका कर्म्म करता है, उसे वैश्यत्व प्राप्त होता है और वैश्य भी शूद्रकर्म्म करके शूद्र हुआ करता है। ब्राह्मण निज धर्म्मसे भ्रष्ट होनेपर शूद्रत्व लाभ करता है, शूद्र होके वर्णभ्रष्ट होनेपर मर्त्य

बहिष्कृत तथा नरकगामी होता है। ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोकसे परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाभागे धर्म्मचारिणि! क्षत्रिय अथवा वैश्य यदि अपने कर्म्मको त्यागके शूद्रका कर्म्म करते हैं, तो वे निज स्थानसे च्युत होकर वर्णसङ्कर होते हैं। वैसे ब्राह्मणों, अथवा वैश्योंको शूद्रत्व प्राप्त होता है। जो लोग निज धर्म्मसे बोधयुक्त हुए हैं, जो लोग ज्ञान-विज्ञानयुक्त पवित्र, धर्म्मज्ञ और सदा धर्म्ममें रत हैं, वेही धर्म्मफल भोग करते हैं। हे देवि! मैंने जो कहा उसे तथा अन्यान्य विषयोंको ब्रह्माने स्वयं वर्णन किया है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले साधु पुरुष इस नैष्ठिक अध्यात्म विषयका अनुष्ठान किया करते हैं। हे देवि! उग्र जातिका अन्न अत्यन्त निन्दनीय है। गणान्न, श्राद्धीय अन्न, सूतकान्न तथा दुष्टोंका अन्न भोजन करना उचित नहीं है और शूद्रोंका अन्न कदापि भोजन न करे। हे देवि! महानुभाव देवगण शूद्रान्नको सदा निन्दित जानते हैं, इसमें पितामहके मुखके कहे हुए प्रमाण हैं, मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि ब्राह्मण आहिताग्नि और याज्ञिक होके जठरमें अवशिष्ट शूद्रान्न रहनेसे पशुत्व लाभ करता और उसे शूद्रगति प्राप्त होती है। अवशिष्ट शूद्रान्न जठरमें रहनेसे ब्राह्मण ब्रह्मस्थानसे च्युत होकर शूद्रत्व पाता है, इस विषयमें कुछ भी विचार नहीं है, जिसका अवशिष्ट अन्न जठरमें विद्यमान रहनेसे ब्राह्मण प्राण परित्याग करता है, वह जिसके अन्नको उपजीव्य करता था, उस ही योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ पवित्र ब्राह्मणत्व पाके उसकी अवज्ञा करते तथा अभोज्य अन्न भोजन करते हैं, वे पतित होते हैं। सुरा पीनेवाले ब्रह्मघाती, शूद्र, चोर, भग्नव्रती, अपवित्र, स्वाध्यायरहित, पापाचारी, लोभी, शठ-कण्ठक, शठ, अव्रती, वृषलीपति, कुण्डाशी तथा जो पुरुष पाकपात्रमें भोजन करता है, सोम बेचनेवाले और नीचोंकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनिसे पतित होते हैं। गुरुतल्पगामी, गुरुके विषयमें द्वेष करनेवाला और गुरुकी निन्दा करनेमें अनुरक्त ब्राह्मण ब्रह्मवित् तथा ब्रह्मवित्तम होनेपर भी पतित होता है।

हे देवि! इन्हीं पवित्र कार्य्यों और पवित्र आचरणोंसे शूद्रभी ब्राह्मण हुआ करता और वैश्यभी क्षत्रियत्व पाता है। शूद्र सदा सत्पथमें निवास करते हुए खिन्नचित्त न होकर न्याय तथा विधिपूर्व्वक यत्नके सहित ज्येष्ठ वर्णकी सेवा तथा टहल करे यही शूद्रोंका निर्दिष्ट कर्म्म है। देवताओं और ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाला, सबका आतिथ्य करनेमें व्रतयुक्त, ऋतुकालमें भार्य्यागामी, सदा नियमित भोजी, स्वयं मनोहर और मनोहर लोगोंका अन्वेषी, तथा शेषान्नभोजी शूद्रको वैश्यत्व प्राप्त होता है।

सत्यवादी, अहङ्कार रहित निर्द्वन्द्व, शमयुक्त, स्वाध्यायरत और पवित्र होकर जो वैश्य यज्ञके द्वारा देवार्च्चना करता है, जो दान्त द्विजोंका सम्मान करके सब वर्णोंको भूषित किया करता है और जो गृहस्थ व्रत अवलम्बन करके दोबार भोजन करता है, जो शेषान्नभोजी नियताहारी, निष्काम और अहङ्कार रहित है, जो अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्व्वक आहुति प्रदान करता है, सबका आतिथ्य किया करता, बचा हुआ अन्न भोजन करता और दक्षिणाग्नि गार्हपत्य तथा आवहनीय अग्निकी परिचर्य्यामें सावधान रहता है, वह पवित्र वैश्य महत् क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होता है। जन्मविधि संस्कृत वह वैश्य क्षत्रिय और उपनीत व्रतयुक्त तथा सम्मान होकर द्विज हुआ करता है।

जो लोग दान करते और बहुत आप्तदक्षिणा यज्ञके सहारे योग किया करते हैं और अध्ययन करते हुए सदा तीनों अग्नियोंके शरणापन्न होते हैं, आर्त्त पुरुषोंको धीरज देते, धर्म्मके

अनुसार प्रजापालन किया करते हैं, जो सुखदर्शन तथा सत्यवादी होके सत्य कार्य्योंको सदा निभाते हैं, धर्म्मदण्डके द्वारा धर्म्मकार्य्योंका अनुशासन करते हैं, कार्य्य और कारणके द्वारा नियन्त्रित होके राज्यग्राह्य छठवां भाग ग्रहण करते हैं, वह अर्थशास्त्र जाननेवाले धर्म्मात्माराजा स्वच्छन्दता पूर्व्वक ग्राम्य धर्म्मको सेवा न करें और ऋतुकालमें सदा भार्य्याके समीप शयन करे। सदोपवासी, सदा स्वाध्यायमें रत, पवित्र कर्म्मसे युक्त अग्निगृहमें सदा शयन करनेवाला, प्रसन्नचित्तसे धर्म्मार्थ न्यासके अनुसार सबका आतिथ्यकर्त्ता, अन्न चाहनेवाले शूद्रोंको सदा अन्न देनेवाला मनुष्य अर्थ अथवा कामवशसे किञ्चितमात्र अहङ्कार प्रकाश न करे। जो लोग पितरों, देवताओं और अतिथियोंके सत्कारके लिये उपाय विधान करते, निज गृहमें यथा रीतिसे भिक्षादान करते हैं, तीनोंकालमें विधि पूर्व्वक अग्निहोत्रमें आहुति प्रदान किया करते हैं, गौ-ब्राह्मणके निमित्त संग्राममें मरते हैं, वे क्षत्रिय त्रेताग्नि सन्तपूत बस्ल पहरके द्विज हुआ करते हैं। ज्ञान विज्ञान तथा संस्कारयुक्त वेदपारग धर्म्मात्मा क्षत्रिय निज कर्म्मोंके सहारे ब्राह्मण होते हैं। हे देवि! इन कर्म्मफलोंके द्वारा न्यूनजाति कुलमें उत्पन्न हुआ शास्त्र सम्पन्न शूद्र भी संस्कारयुक्त द्विज होता है और ब्राह्मणभी असद्वृत्त तथा सब सङ्कर जातिवालोंका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मणत्व परित्यागके शूद्र हुआ करता है। हे देवि! शुद्धचित्तवाला जितेन्द्रिय शूद्रभी पवित्र कर्म्मोंके सहारे ब्राह्मणकी भांति सम्मानित होता है, ब्रह्माकी आज्ञा तथा मेरे मतसे पवित्र स्वभाव और पवित्र कर्म्म करनेवाले शूद्रको द्विजातियोंसे श्रेष्ठ जानना चाहिये। ब्राह्मणत्वके विषयमें योनि कारण नहीं है, संस्कार, शास्त्रज्ञान और सन्ततिभी कारण नहीं है, केवल पवित्र चरित्रही कारण है। जगत्‌में चरित्रसेही लोग ब्राह्मण जाने जाते हैं; उत्तम चरित्रयुक्त शूद्रकोभी ब्राह्मणत्व मिल सकता है। हे कल्याणि! निर्गुण निर्म्मल ब्रह्म जिसमें निवास करे वही ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मण है। हे देवि! प्रजाकी सृष्टि करनेवाले वरदाता ब्रह्माने स्वयं इस स्थानमें भागनिदर्शक योनिफलोंका वर्णन किया है, जगत्‌में सबकी गतिस्वरूप ब्राह्मण लोग क्षेत्रस्वरूपसे विचरण किया करते हैं, उस क्षेत्रमें जो लोग बीज बोते हैं, परलोकमें उनका वह कृषिकार्य्य सफल होता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा विघशाशी तथा सत्पथावलम्बी होवे और जो लोग ऐश्वर्य्यकी कामना करते हैं, उन्हें ब्राह्मपथ अवलम्बन करके समय बिताना चाहिये। गृहमेधी मनुष्योंको गृहमें संहित अध्ययन करना योग्य है, सदा स्वाध्यायरत होना चाहिये; किन्तु अध्ययन मात्रका ही उपजीव्य न करे। इसी प्रकार जो विप्र सत्पथमें स्थित रहता और आहिताग्नि होकर अध्ययन करता है, वह ब्रह्मस्वरूप लाभ करनेमें समर्थ हुआ करता है। हे शुचिस्मिते! यतचित्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्व लाभ करके यानि परिग्रह आदान और कर्म्मसे उसकी रक्षा करे, शूद्र जिस प्रकार ब्राह्मण होता और ब्राह्मण धर्म्मच्युत होकर जिस भांति शूद्रत्व लाभ करता है; मैंने उस गोपनीय विषयको तुम्हारे समीप वर्णन किया।

१४३ अध्याय समाप्त।

उमा बोली, हे सुरासुर नमस्कृत सर्व्वभूतेश देव भगवन्! हे विभु! मनुष्योंका धर्म्म अधर्म्म वर्णन करिये, इस विषयमें मुझे सन्देह है। मनुष्य वचन, मन और कर्म्महेतु त्रिविध बन्धनपाशसे बद्ध होता है, अथवा उससे मुक्त हुआ करता है। हे देव! मनुष्य लोग इसलोकमें किस भांतिके चरित्र, कैसे कर्म्म और किन गुणोंके सहारे स्वर्गमें गमन करते हैं।

महादेव बोले, हे धर्म्मार्थतत्वको जाननेवाली धर्म्म और दमनिरत देवि! तुमने जो प्रश्न किया, वह सब प्राणियोंके लिये हितकर और बुद्धिवर्द्धन है, इसलिये उसका उत्तर सुनो। सत्यधर्म्ममें रत सर्व्वलिङ्ग बिवर्ज्जित जो सब साधुजन धर्म्मलब्ध अर्थ भोग करते हैं, वे सब मनुष्य ही स्वर्गमें गमन किया करते हैं; जिन लोगोंका सन्देह छूटा है, वे धर्म्म अथवा अधर्म्मसे बद्ध नहीं होते। प्रलय और उत्पत्तिके तत्वोंको जाननेवाले सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी रागरहित पुरुष कर्म्मबन्धनसे मुक्त होते हैं, जो लोग वचन, मन और कर्म्मसे किसीकोभी हिंसा नहीं करते हैं। तथा मनहीमन किसी विषयमें भी आसक्त नहीं होते, वे कर्म्मसे बद्ध नहीं होते। इन्द्रियविषयोंसे जो लोग विरत हुए हैं और जो लोग शीलवन्त तथा दयावान् हैं, शत्रु मित्रको समान जाननेवाले दमनशील पुरुष कर्म्मबन्धनोंसे छूट जाते हैं। जो लोग सर्व्वभूतोंमें दयावान् सब प्राणियोंमें बिश्वासी और हिंसावृत्तिसे रहित हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो लोग सदा परधनमें ममता रहित, परस्त्रीसे विरत रहते और धर्म्मसे प्राप्त हुआ अन्न भोजन करते हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य परस्त्रीके विषयमें मातृवत् स्वसृवत् और दुहितृवत् व्यवहार करते हैं। वे भी स्वर्गगामी होते हैं, जो लोग सदा चौरकार्य्यसे विरत रहते हैं, निज धनसे सन्तुष्ट और स्वबीर्य्यभाग्य उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग सदा पराई स्त्रीके विषयमें चरित्रके सहारे मैत्री क्रिया रखते हैं, जो लोग संयतेन्द्रिय और शीलपरायण हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं, पण्डितोंको इस देवपथसे विचारना चाहिये, यह अकषाय कृतसाग विद्वान् पुरुषोंका सदा सेवनीय है, जो लोग निज स्त्रीमें सदा ऋतुकालमें गमन करनेवाले हैं और जो लोग ग्राम्यसुख नहीं भोगते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। दान, धर्म्म, तप, शील शौच और दयायुक्त पथवृत्तिके निमित्त तथा धर्म्महेतुसे बुद्धिमानको सदा सेवनीय है, जो लोग स्वर्गबासकी अभिलाष करते हैं, उन्हें उक्तपथके अतिरिक्त धर्म्मसेवा करनी योग्य नहीं है।

उमा बोली, हे अनघ भूतनाथ! जिन वाक्योंके सहारे मनुष्य बद्ध होता है और जिन कर्म्मोंके द्वारा मुक्त होता है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

महादेव बोले, अपने लिये अथवा दूसरोंके निमित्त वा परिहासके छलसे भी जो लोग इस लोकमें मिथ्या नहीं कहते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते है। वृत्तिके निमित्त अथवा धर्म्मके लिये वा स्वेच्छापूर्व्वक जो लोग मिथ्यावचन नहीं कहते, वे सब पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग निठुर और कडुवेवचन नही कहते, जो पिशुनता रहित तथा साधु हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग कठोरवचन और परद्रोह परित्याग करते तथा जो सब जीवोंमें समदर्शी और दान्त है, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग मित्रभेदकारी चुगलीयुक्त वचन नहीं कहते, सत्य तथा हितकर बात कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग असत प्रलापसे बिरत रहते, बिरुद्ध कार्य्योंको नहीं करते और प्रिय वचन कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग क्रोधपूर्व्वक हृदयबिदारक वचन नहीं कहते, क्रुद्ध होके भी शान्त वाणी बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे देवि! मनुष्योंको इस ही प्रकार वाक्यजनित धर्म्म सदा सेवन करना योग्य है, यह शुभकर और सत्य फलप्रद है; इसलिये विद्वान् मनुष्योंको मिथ्यावचन कदापि न कहना चाहिये।

उमा बोली, हे महाभाग देवोंके देव पिनाकधारी! पुरुष मनहीमन जिन कर्म्मोंको करके बद्ध होता है, आप मेरे निकट उसे बर्णन करि

कदाचित महानरकसे बाहिर होकर अत्यन्त निन्दित नीचकुलमें जन्मते हैं। जो लोग गुरु और वृद्ध लोगोंकी अवज्ञा करते हैं, वे चाण्डाल पुक्कश प्रभृति निर्बुद्धि लोगोंके निन्दित कुलमें उत्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग अभिमानी तथा अहंकारी नहीं हैं और देव ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोगोंके बीच पूज्य होते हैं। जो लोग गुरुजनोंको नमस्कार करते और बिनययुक्त होके मधुरबचन कहते हैं, वे सब वर्णोंको प्रिय तथा सर्व्वभूतोंके हितकर हुआ करते हैं। हे देवि। द्वेष न करनेवाले महासुखशाली, अत्यन्त मृदुभाषी और जो लोग स्वागतप्रश्नसे सदा कोमल वचन कहते हैं, सब जीवोंकी हिंसा न करनेवाले अतिथियोंको यथायोग्य सत्कारसे पूजा करते हैं, पथप्रदान करने योग्य पुरुषको पथ देते हैं, बड़े लोगोंको गुरुकी भांति पूजा किया करते हैं; जो लोग अतिथिसेवामें अनुरक्त रहते और अभ्यागतोंकी पूजा करते हैं, स्वर्गगति प्राप्त होती है। अनन्तर मनुष्यत्व पाके श्रेष्ठकुलमें जन्म लेते हैं, वहांपर वेही पुरुष सब रत्नोंसे युक्त बिपुल भोगके द्वारा पूज्य पुरुषोंको यथा योग्य दान करते और धर्म्मचर्य्यापरायण होते हैं। ऐसे मनुष्य श्रेष्ठकुलमें जन्मते और सदा उत्तम महत् कुलको प्रकाशित किया करते हैं। मैंने जो यह धर्म्म विषय कहा है, इसे स्वयं बिधाताने वर्णन किया था। हे सुन्दरि! जिस पुरुषका व्यवहार अत्यन्त भयङ्कर है, जिसको देखके सब प्राणी भयभीत होते हैं, जो पुरुष हाथ, पांव, रस्सी वा दण्ड लोष्ट्र स्तम्भ अथवा दूसरे किसी उपायसे प्राणियोंको मारनेके लिये दौड़ता है, जिसकी बुद्धिवृत्ति हिंसाके निमित्त निकृष्ट पथमें भ्रमण करती है, जो सब जीवोंको व्याकुल करता है, सदा प्राणियोंको उद्वेगजनक होकर उन्हें आक्रमण करता है, ऐसे व्यवहारोंसे युक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। कालक्रमसे वह पुरुष मानुषत्व पाके अनेक प्रकारकी बाधा और क्लेशोंसे युक्त होकर अधमवंशमें उत्पन्न होता है। जगत्में ऐसे मनुष्य सब पुरुषोंसे अधम है। हे देवि। यह जान रखो कि, अपने किये हुए कर्म्मोंसेही मनुष्य स्वजनों तथा बान्धव प्रभृतिके बीच अधम हुआ करते हैं। दयावान्, शत्रुता रहित नियतेन्द्रिय मैत्रदृष्टि मनुष्य पिताकी भांति सब भूतोंको समदृष्टिसे देखता है, वह जीवोंको व्याकुल तथा दुःखित नहीं करता; उत्तम नियमित हाथ पांवके सहारे सब प्राणियोंका बिश्वास पात्र होता है। मृदुकर्म्म करनेवाला दयावान् मनुष्य रस्सी, दण्ड, लोष्ट्र वा अस्त्रोंसे जीवोंको उद्वेगयुक्त नहीं करता, ऐसे स्वभाव और व्यवहारसे युक्त पुरुष स्वर्गलोकमें जाकर सुरपुरके दिव्य स्थानोंमें देवताओंकी भांति निवास किया करता है। वह मनुष्य कर्म्मक्षय होनेपर मनुष्य लोकमें जन्म लेकर अल्प बाधायुक्त और निरातङ्क होकर सुखसमृद्धि भोग किया करता है, वह सुखभागी निरायास और सदा निरुद्वेगयुक्त होता है। हे देवि। यही साधु पुरुषोंका पथ है, इसमें कुछ भी बाधा नहीं है।

उमा बोली, ये सब पूर्व्वपक्ष तथा सिद्धान्त विशारद ज्ञानबिज्ञानयुक्त अर्थज्ञ मनुष्य जन्मते हुए दीख पड़ते हैं। हे देव। दूसरे लोग दुर्ब्बुद्धि और ज्ञान-बिज्ञानसे रहित होके उत्पन्न होते हैं। हे बिरूपाक्ष। किन विशेष कर्म्मोंसे पुरुष प्रज्ञावान होता और किस प्रकार अल्पबुद्धि हुआ करता है? हे सर्व्वधर्म्मज्ञ श्रेष्ठ। आप मेरा यह सन्देह दूर करिये। हे देव! मनुष्योंके बीच कोई कोई अन्धे हो उत्पन्न होते हैं, कितने ही रोगी और कितने ही क्लीव दीखते हैं, इस विषयका कारण वर्णन करिये।

महादेव बोले, निपुण लोग वेदज्ञानेवाले धर्म्मज्ञ बुद्धिमान ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुशल पूछते और उनकी सदा शुभ सेवा करते हुए

अशुभ कर्म्मोंको परित्याग किया करते हैं; इसीसे वे लोग इसलोकमें सुख भोगकर स्वर्ग-गति प्राप्त करते है। यदि वे फिर मनुष्यजन्म पाते ता बुद्धिमान होते और उनका शुभ प्रज्ञा-नुयायी कल्याण होता है। जो महामूढ़ मनुष्य पराई स्त्रीकी ओर दृष्टि करते हैं, वे उस ही दुष्ट स्वभावसे जन्मान्ध होते हैं, जो लोग दुष्टचि-त्तसे नङ्गी स्त्रीको देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगार्त्त हुआ करते हैं। जो सब दुर्बुद्धि दुराचारी मूढ़ मनुष्य विरुद्धयोनियों और पुरुषोंसे मैथुन करनेमें रत होते हैं, वे नपुंसक हुआ करते, हैं। जो लोग पशुहत्या करते, जो गुरुपत्नी गमन करते और जो लोग सङ्कीर्ण मैथुन करते हैं, वे सब मनुष्य नपुंसक हुआ करते है।

उमा बोली, हे देवसत्तम! कैसे कर्म्म बुरे और कौनसे उत्तम हैं? किन कर्म्मोंके करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है?

महादेव बोले, जो लोग कल्याणयुक्त पथकी खोज करते हुए उस विषयमें ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हैं, वे धर्म्मान्वेषी गुणके अभिलाषी स्वर्ग भोग करते हैं। हे देवि! वैसे मनुष्य यदि कदाचित मनुष्यत्व लाभ करें, तो वे मेधावी धारणायुक्त और बुद्धिमान होके उत्पन्न होते है। हे देवि! इसे ही साधुओंका ऐश्व-र्य्ययुक्त कर्म्म जानो; मनुष्योंके हितके निमित्त मैंने तुम्हारे समीप इस धर्म्मको वर्णन किया।

उमा बोली, कितने ही धर्म्मद्वेषी अल्प विज्ञानयुक्त मनुष्य वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके समीप जानेकी इच्छा नहीं करते; कोई कोई मनुष्य व्रतयुक्त और कोई श्रद्धा धर्म्म परायण हैं। कोई कोई अव्रती, कोई भ्रष्ट नियमवाले और कोई राक्षसके सदृश हैं। कोई विधिपू-र्व्वक यज्ञ करते, कितने ही होमरहित हैं; इसलिये वैसे कर्म्मविपाकके सहारे इस लोकमें मनुष्यगण ऐसे नैमित्तिक-धर्म्मोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये।

महादेव बोले, आगम शास्त्रोंमें लोगोंके कर्म्म और समस्त मर्य्यादा पहलेसे ही वर्णित है, दृढ़व्रती मनुष्य प्रमाणका अनुसरण करके दृढ़ हुआ करते है; जो लोग मोहके वशीभूत होते हैं, वे अधर्म्मको ही धर्म्म कहते हैं, वेही अव्रती मर्य्यादाभ्रष्ट और ब्रह्मराक्षस कहाते हैं, वे अधम मनुष्य समयके अनुसार इसलोकमें उत्पन्न होके होम तथा वषट्कार रहित हुआ करते हैं। हे देवि! मैंने तुम्हारा सन्देह दूर करनेके लिये मनुष्योंके हितायुक्त समस्त धर्म्म-सागर वर्णन किया।

१४५ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, सर्व्वशक्तिमान् महादेवने इतनी कथा कहके स्त्रीधर्म्म सुननेकी इच्छासे पार्श्ववर्त्तिनी अनुकूल प्रियासे प्रश्न किया।

महादेव बोले, हे परावरज्ञ धर्म्म जाननेवाली तपोवन निवासिनी साध्वि उत्तमकेश-वाली हिमपर्व्वतात्मजा! हे दक्षे शम दमयुक्त ममतारहित धर्म्मचारिणी वरारोहे! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम पूछनेपर मेरे अभिलषित विषयको वर्णन करो। ब्रह्माकी साध्वी भार्य्या सावित्री, इन्द्रकी पत्नी शची, मारकण्डेयकी सत भार्य्या धूम्रोर्णा, कुबेरकी पत्नी ऋद्धि, वरुणकी भार्य्या गौरी, सूर्य्यकी स्त्री सुवर्णला, चन्द्रमाकी साध्वी पत्नी रोहिणी, अग्निकी भार्य्या स्वाहा और काश्यपकी पत्नी अदिति, ये सभी स्त्रियें पतिको देवता समझती थीं। हे देवि! इन पतिव्रताओंसे तुमने सदा प्रश्न किया और उनकी उपासना की है। हे धर्म्मवादिनी धर्म्मज्ञे! इस ही निमित्त मैं तुमसे यह विषय पूछता हूं, तुम पहले स्त्रीधर्म्म वर्णन करो, इसीसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। तुम मेरी सहधर्म्मिणी समशीला और समव्रतचारिणी

हो, तुम्हारा प्रभाव तथा बल मेरे समान है और तुमने तीव्र तपस्या की है। हे देवि! इसलिये तुम जो स्त्रीधर्म कहोगी वह विशेष रीतिसे श्रेष्ठ होगा और जगत्के बीच प्रमाण स्वरूप हुआ करेगा। स्त्रीही स्त्रियोंके लिये परमगति है,—यह गति परम्परा क्रमसे सदा भूर्लोकमें गमन किया करती है। हे सुश्रोणि। मेरा शरीर तुम्हारे अर्द्धशरीरसे बना है, तुम लोक विस्तारकारिणी होकर सुरकार्य्य सिद्ध किया करती हो। हे शुभे। सब शाश्वत स्त्रीधर्म्म तुम्हें भलीभांति विदित है; इसलिये उत्तम रीतिसे विस्तार-पूर्व्वक तुम निजधर्म्मका वर्णन करो।

उमा बोली, हे सर्व्वभूतेश भूतभव्य भवोद्भव भगवन्! तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह वचन प्रकाशित होगा। हे देवेश! ये सब तीर्थ तथा नदियें जलयुक्त होकेभी तुम्हें स्पर्श करनेके लिये तुम्हारे समीप गमन करती हैं, इसलिये मैं इनके सङ्ग विचार करके विस्तार पूर्व्वक सब विषयोंको कहूंगी। हे भगवन्! जो व्यक्ति अनहंवादी है, वही पुरुष कहाता है। हे भूतेश। स्त्रियें सदा स्त्रियोंकाही अनुधावन किया करती है। ये नदियें सबके बीच श्रेष्ठ हैं, पुण्यनदी सरस्वती सब नदियोंकी अग्रगण्या समुद्रगामिनी विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, ऐरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गोमती और सब तीर्थोंसे घिरी हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ देवनदी गङ्गादेवी जो आकाशसे पृथ्वी पर आई है, ये सब मुझसे सम्मानित होवें। धर्म्मवत्सला देवमहिषी धर्म्मधारिणी महादेवकी पत्नी उमाने इतनी कथा कहके हंसकर उन स्त्रीधर्म्म जाननेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृतिसे स्त्रीधर्म्म विषय पूछा।

उमा बोली, ये भगवान स्त्रीधर्म्म सम्बन्धीय प्रश्न किये हैं, मैं तुम लोगोंके सङ्ग परामर्श करके शङ्करके समीप वह विषय कहनेकी अभिलाष करती हूं। हे सागरगामिनीगण! भूमण्डल अथवा स्वर्गलोकमें कोई विज्ञान एक व्यक्तिसाध्य नहीं दीखता, इस ही निमित्त मैं तुम्हारी सम्मानना करती हूं।

इसही प्रकार जब उमाने कल्याणदायिनी सब पवित्र नदियोंसे प्रश्न किया; तब देवनदी गङ्गा प्रत्युत्तर देनेमें नियुक्त हुई। अनेक भांतिकी बुद्धिसे युक्त, स्त्रीधर्म्म की जाननेवाली शुचिस्मिता, पुण्य पाप भयापहा बुद्धिके सहित विनय सम्पन्न, सर्व्वधर्म्म विशारदा बहुबुद्धिशालिनी गङ्गा शैलराजपुत्रीको पूजा करके मुसकुराकर बोलीं। हे धर्म्मपरायणे देवि! हम सब कोई धन्या और अनुग्रहकी पात्री हुई हैं; क्यों कि तुम समस्त जगत्की माननीय होकर भी नदी स्वरूपिणी हमारी सम्मानना करती हो। जो लोग जिज्ञासु जनोंका सम्मान करते हैं, मेरे मतसे वे धर्म्मज्ञ पण्डित कहे जाने योग्य हैं, जो ज्ञानविज्ञान युक्त उपापोहविशारद प्रवक्ताओं तथा अन्यान्य पुरुषोंसे पूछके कार्य्य करते हैं, वे कदापि आपदग्रस्त नहीं होते, अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य यदि सभाके बीच वचन कहे तो वह अहंवादी होनेसे दुर्ब्बल वाक्य कहा करता है। हे दिव्यज्ञानयुक्त द्युलोकमें मुख्य दिव्य पुण्यसम्पन्न देवि! तुमही हमारे निकट स्त्रीधर्म्म वर्णन करने योग्य हो। अनन्तर सुरसुन्दरी पार्व्वती गङ्गाके द्वारा अनेक प्रकारसे प्रशंसित होकर पूरी रीतिसे स्त्रीधर्म्म विषयोंको कहनेके लिये उद्यत हुईं।

उमा बोली, विधिपूर्व्वक स्त्रीधर्म्म मुझे जिस प्रकार मालूम है, उसे कहती हूं, सावधान होके सुनो। पहले विवाहके समय बान्धवोंके द्वारा यह स्त्रीधर्म्म विहित हुआ है, कि स्त्रियें अग्निके समीप पतिकी सहधर्म्मचारिणी होती हैं। उत्तम स्वभाव तथा श्रेष्ठवचनवाली सुशीला सुखदर्शना सीमन्तिनी सदा पुत्रके मुखसदृश पतिका मुख देखनेवाली और नियताचारी साध्वी स्त्री धर्म्मचारिणी होती हैं। सहधर्म्मकृत

भदम्पती धर्म्म सुनके जो नारी धर्म्मपरायण होती है और पतिके सदृश व्रताचरण करती है, वह पतिव्रता पतिको सदा देवतुल्य देखा करती है। जो देवतासदृश पतिकी सेवा टहल करती है, पतिके वशमें होकर सब भांति अन्तःकरणसे सन्नचित्त, उत्तमव्रतवाली और सुखदर्शना होती है; तथा जो नारी अनन्यचित्तवाली तथा प्रसन्न-मुखी है, वही धर्म्मचारिणी हुआ करती है। पतिके निठुर वचन कहने और क्रुद्ध नेत्रसे देखनेपर भी जो नारी स्वामीके सम्मुख प्रसन्न मुख होके स्थित रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री चन्द्र, सूर्य्य तथा पुरुष नामधारी वृक्षोंको ओर भी नहीं देखती, वह पतिव्रता वरारोहा ही धर्म्मचारिणी होती है। जो स्त्री दरिद्र, रोगी, पथसे थके हुए पतिको पुत्रकी भांति सेवा करती है, वह धर्म्मचारिणी होती है। जो नारी सावधान और गृहकार्य्योंमें दक्ष हो, जो पुत्रवती हो, जो नारी पतिव्रता तथा पतिप्राणा हो, वही धर्म्मचारिणी है। जो नारी प्रसन्न, विनयवती और अनन्यमना होकर सदा पतिकी सेवा टहल करती है, वह धर्म्मभागिनी है। जो प्रतिदिन अन्न देकर कुटुम्बका प्रतिपालन करती है, जो पतिके अनुरागके अनुसार काम, भोग, ऐश्वर्य्य और सुखकी अभिलाष करती हैं, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। भोरके समय उठनेका जिसे अनुराग है, गृहके कार्य्यको करनेमें जिसका मन लगता है, जो गृहको उत्तम रीतिसे धोती और गोमयसे लीपती है, जो सदा कार्य्योंमें तत्पर रहती, सदा पुष्प बलि प्रदान करती, पतिके सहित देवताओं अतिथियों और सेवकोंको यथा रीतिसे दान करके विधिपूर्व्वक शेषान्न भोजन करती है, जिसके परिजन सदा सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। जो गुणवती सती सास ससुरकी चरणवन्दना करती और माता पिताके विषयमें भक्ति किया करती है, वही तपस्विनी है। जो नारी ब्राह्मण, निबल, अनाथ, दीन, अन्धे और कृपापात्रोंको अन्न देकर प्रतिपालन करती है, वह पतिव्रतभागिनी होती है, जो अल्पप्राण होके भी सदा दुश्चर व्रतोंको करती है तथा जो पतिमें चित्त लगाती वा पतिकी हितकारिणी है, वही पतिव्रतभागिनी होती है। जो नारी पतिको परम श्रेष्ठ जानती है, जो सती पतिव्रता होती है, उसके लिये पतिकी सेवा ही पुण्य है, पतिसेवा ही तपस्या और वही सनातन स्वर्ग है। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु, पति ही गति है पतिके समान गति नहीं है; जैसा पति है, देवता भी वैसे नहीं हैं, स्त्रियोंके विषयमें पतिकी प्रसन्नता और स्वर्गवास समान नहीं होसकता। हे देव महेश्वर! तुम्हारे प्रसन्न रहते मैं स्वर्ग-वासकी अभिलाष नहीं करती। पति यदि दरिद्र किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त, दुःखी, शत्रुके वशीभूत अथवा ब्रह्मशापयुक्त होके भी किसी अकार्य्य अधर्म्म अथवा प्राण नाश करनेकी भी आज्ञा करे, उसे भी आपद्धर्म्म अवलोकन करके निशङ्क भावसे करना योग्य है। हे देव! यह मैंने तुम्हारे कथा क्रमसे स्त्रीधर्म्म कहा है, जो नारी इन आचरणोंसे युक्त हो, वह पतिव्रता है।

नारद मुनि बोले, देवेश्वर महादेवने ऐसी कथा सुनके पार्व्वतीका समादर करते हुए अनुचरोंके सहित सब लोगको विदा किया। अनन्तर भूतगणों, नदियों, गन्धर्व्वों और अप्सराओंने सिर झुकाके महादेवको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

१४६ अध्याय समाप्त।

ऋषिवृन्द बोले, हे पिनाकधारी भगनेत्र-हारी सर्व्वलोक नमस्कृत शङ्कर! हम लोग आपके समीप वासुदेवका माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हैं।

हो, तुम्हारा प्रभाव तथा बल मेरे समान है और तुमने तीव्र तपस्या की है। हे देवि! इसलिये तुम जो स्त्रीधर्म्म कहोगी वह विशेष रीतिसे श्रेष्ठ होगा और जगत्के बीच प्रमाण स्वरूप हुआ करेगा। स्त्रीही स्त्रियोंके लिये परमगति है,—यह गति परम्परा क्रमसे सदा भूर्लोकमें गमन किया करती है। हे सुश्रोणि! मेरा शरीर तुम्हारे अर्द्धशरीरसे बना है, तुम लोक विस्तारकारिणी होकर सुरकार्य्य सिद्ध किया करती हो। हे शुभे! सब शाश्वत स्त्रीधर्म्म तुम्हें भलीभांति विदित है; इसलिये उत्तम रीतिसे विस्तार-पूर्व्वक तुम निजधर्म्मका वर्णन करो।

उमा बोली, हे सर्व्वभूतेश भूतभव्य भवोद्भव भगवन्! तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह वचन प्रकाशित होगा। हे देवेश! ये सब तीर्थ तथा नदियें जलयुक्त होकेभी तुम्हें स्पर्श करनेके लिये तुम्हारे समीप गमन करती हैं; इसलिये मैं इनके सङ्ग विचार करके विस्तार पूर्व्वक सब विषयोंको कहूंगी। हे भगवन्! जो व्यक्ति अनहंवादी है, वही पुरुष कहाता है। हे भूतेश! स्त्रियें सदा स्त्रियोंकाही अनुधावन किया करती हैं। ये नदियें सबके बीच श्रेष्ठ हैं, पुण्यनदी सरस्वती सब नदियोंकी अग्रगण्या समुद्रगामिनी विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, ऐरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गोमती और सब तीर्थोंसे घिरी हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ देवनदी गङ्गादेवी जो आकाशसे पृथ्वी पर आई है, ये सब मुझसे सम्मानित होवें। धर्म्मवत्सला देवमहिषी धर्म्मधारिणी महादेवकी पत्नी उमाने इतनी कथा कहके हंसकर उन स्त्रीधर्म्म जाननेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृतिसे स्त्रीधर्म्म विषय पूछा।

उमा बोली, ये भगवान स्त्रीधर्म्म सम्बन्धीय प्रश्न किये हैं, मैं तुम लोगोंके सङ्ग परामर्श करके शङ्करके समीप वह विषय कहनेकी अभिलाष करती हूं। हे सागरगामिनीगण! भूमण्डल अथवा स्वर्गलोकमें कोई विज्ञान एक व्यक्तिसाध्य नहीं दीखता, इस ही निमित्त मैं तुम्हारी सम्माननना करती हूं।

इसही प्रकार जब उमाने कल्याणदायिनी सब पवित्र नदियोंसे प्रश्न किया, तब देवनदी गङ्गा प्रत्युत्तर देनेमें नियुक्त हुई। अनेक भांतिकी बुद्धिसे युक्त, स्त्रीधर्म्मको जाननेवाली शुचिस्मिता, पुण्य पाप भयापहा बुद्धिके सहित विनय सम्पन्न, सर्व्वधर्म्म विशारदा बहुबुद्धिशालिनी गङ्गा शैलराजपुत्रीकी पूजा करके मुसकुराकर बोलीं। हे धर्म्मपरायणे देवि! हम सब कोई धन्या और अनुग्रहकी पात्री हुई हैं; क्योंकि तुम समस्त जगत्की माननीय होकर भी नदी स्वरूपिणी हमारी सम्माननना करती हो। जो लोग जिज्ञासु जनोंका सम्मान करते हैं, मेरे मतसे वे धर्म्मज्ञ पण्डित कहे जाने योग्य हैं, जो ज्ञानविज्ञान युक्त ऊहापोहविशारद प्रवक्ताओं तथा अन्यान्य पुरुषोंसे पूछके कार्य्य करते हैं, वे कदापि आपदग्रस्त नहीं होते, अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य यदि सभाके बीच वचन कहे तो वह अहंवादी होनेसे दुर्व्वल वाक्य कहा करता है। हे दिव्यज्ञानयुक्त द्युलोकमें मुख्य दिव्य पुण्यसम्पन्न देवि! तुमही हमारे निकट स्त्रीधर्म्म वर्णन करने योग्य हो। अनन्तर सुरसुन्दरी पार्व्वती गङ्गाके द्वारा अनेक प्रकारसे प्रशंसित होकर पूरी रीतिसे स्त्रीधर्म्म विषयोंको कहनेके लिये उद्यत हुई।

उमा बोली, विधिपूर्व्वक स्त्रीधर्म्म मुझे जिस प्रकार मालूम है, उसे कहती हूं, सावधान होके सुनो। पहले विवाहके समय बान्धवोंके द्वारा यह स्त्रीधर्म्म विहित हुआ है, कि स्त्रियें अग्निके समीप पतिकी सहधर्म्मचारिणी होती हैं। उत्तम स्वभाव तथा श्रेष्ठवचनवाली सुशीला सुखदर्शना सीमन्तिनी सदा पुत्रके मुखदर्शन पतिका सुख देखनेवाली और नियताहारी साध्वी स्त्री धर्म्मचारिणी होती हैं। सहधर्म्मकृत

शुभदम्पती धर्म्म सुनके जो नारी धर्म्मपरायण होती है और पतिके सदृश व्रताचरण करती है, वह पतिव्रता पतिको सदा देवतुल्य देखा करती है। जो देवतासदृश पतिकी सेवा टहल करती है, पतिके वशमें होकर सब भांति अन्तःकरणसे प्रसन्नचित्त, उत्तमव्रतवाली और सुखदर्शना होती है, तथा जो नारी अनन्यचित्तवाली तथा प्रसन्नमुखी है, वही धर्म्मचारिणी हुआ करती है। पतिके निठुर वचन कहने और क्रुद्ध नेत्रसे देखनेपर भी जो नारी स्वामीके सम्मुख प्रसन्न मुख होके स्थित रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री चन्द्र, सूर्य्य तथा पुरुष नामधारी वृक्षोंको ओर भी नहीं देखती, वह पतिव्रता वरारोहा स्त्री धर्म्मचारिणी होती है। जो स्त्री दरिद्र, रोगी, पथसे थके हुए पतिकी पुत्रकी भांति सेवा करती है, वह धर्म्मचारिणी होती है। जो नारी सावधान और गृहकार्य्योंमें दक्ष हो, जो पुत्रवती हो, जो नारी पतिव्रता तथा पतिप्राणा हो, वही धर्म्मचारिणी है। जो नारी प्रसन्न, विनयवती और अनन्यमना होकर सदा पतिकी सेवा टहल करती है, वह धर्म्मभागिनी है। जो प्रतिदिन अन्न देकर कुटुम्बका प्रतिपालन करती है, जो पतिके अनुरागके अनुसार काम, भोग, ऐश्वर्य्य और सुखकी अभिलाष करती है, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। भोरके समय उठनेका जिसे अनुराग है, गृहके कार्य्यको करनेमें जिसका मन लगता है, जो गृहको उत्तम रीतिसे धोती और गोमयसे लीपती है, जो सदा कार्य्योंमें तत्पर रहती, सदा पुष्प बलि प्रदान करती, पतिके सहित देवताओं अतिथियों और सेवकोंको यथा रीतिसे दान करके विधिपूर्व्वक शेषान्न भोजन करती है, जिसके परिजन सदा सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। जो गुणवती सती सास ससुरकी चरणवन्दना करती और माता पिताके विषयमें भक्ति किया करती है, वही तपस्विनी है। जो नारी ब्राह्मण, निबल, अनाथ, दीन, अन्धे और कृपापात्रोंको अन्न देकर प्रतिपालन करती है, वह पतिव्रतभागिनी होती है, जो अल्पप्राण होके भी सदा दुश्चर व्रतोंको करती है तथा जो पतिमें चित्त लगाती वा पतिकी हितकारिणी है, वही पतिव्रतभागिनी होती है। जो नारी पतिको परम श्रेष्ठ जानती है, जो सती पतिव्रता होती है, उसके लिये पतिकी सेवा ही पुण्य है, पतिसेवा ही तपस्या और वही सनातन स्वर्ग है। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु, पति ही गति है पतिके समान गति नहीं है; जैसा पति है, देवता भी वैसे नहीं हैं. स्त्रियोंके विषयमें पतिकी प्रसन्नता और स्वर्गवास समान नहीं होसकता। हे देव महेश्वर! तुम्हारे प्रसन्न रहते मैं स्वर्गवासकी अभिलाष नहीं करती। पति यदि दरिद्र किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त, दुःखी, शत्रुके वशीभूत अथवा ब्रह्मशापयुक्त होके भी किसी अकार्य्य अधर्म्म अथवा प्राण नाश करनेकी भी आज्ञा करे, उसे भी आपद्धर्म्म अवलोकन करके निःशङ्क भावसे करना योग्य है। हे देव! यह मैंने तुम्हारे कथा क्रमसे स्त्रीधर्म्म कहा है, जो नारी इन आचरणोंसे युक्त हो, वह पतिव्रता है।

नारद मुनि बोले, देवेश्वर महादेवने ऐसी कथा सुनके पार्व्वतीका समादर करते हुए अनुचरोंके सहित सब लोगको बिदा किया। अनन्तर भूतगणों, नदियों, गन्धर्व्वों और अप्सराओंने सिर झुकाके महादेवको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

१४६ अध्याय समाप्त।

ऋषिवृन्द बोले, हे पिनाकधारी भगनेत्र-हारी सर्व्वलोक नमस्कृत शङ्कर! हम लोग आपके समीप वासुदेवका माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हैं।

महेश्वर बोले, शाश्वत पुरुष हरि पितामह ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ अभ्रशून्य अम्बरमें उदित सूर्य्यकी भांति कृष्णवर्ण होनेपर भी सुवरणसदृश प्रभाशाली हैं, वह महातेजस्वी दशबाहुयुक्त और देवताओंके आधि निसूदन हैं; श्रीवत्स चिन्हधारी हृषीकेश सब देवताओंके पूज्य हैं। ब्रह्मा उनके उदरसे उत्पन्न हुए और मैं उनके सिरसे प्रकट हुआ हूं; उनके केशोंसे अग्नि और रोमावलीसे समस्त सुरासुर उत्पन्न हुए, ऋषिगण और समस्त शाश्वत लोकोंकी उनके देहसे उत्पत्ति हुई है। वह त्रिभुवनेश्वर स्वयं साक्षात् पितामहके गृह तथा इस समस्त पृथिवीकी सृष्टिकर्त्ता है और वही स्थावर-जङ्गम समस्त भूतोंके संहर्त्ता है। वही देवश्रेष्ठ स्वयं देवनाथ तथा परन्तप हैं; वह सर्व्वज्ञ, सर्व्वसंश्लिष्ट, सर्व्वग और सर्व्वतोमुख हैं। वह परमात्मा हृषीकेश सर्व्वव्यापी महेश्वर हैं, त्रिभुवनमें उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, वह सनातन भगवान् मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। वह सानद मनुष्य शरीर धारण करके देवकार्य्यके निमित्त युद्धमें सब राजाओंको मारेगा। देवगण त्रिविक्रमके बिना किसी कार्य्यको करनेमें समर्थ नहीं हैं, देववृन्द नायकहीन होके सुरकार्य्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते, वह सब भूतोंका नायक है और वहीसब भूतोंका नमस्कृत है। उस ही देवकार्य्यरत देवनाथ ब्रह्मर्षि शरण्य ब्रह्मस्वरूपी शरीरमें सुखसंस्थित और गर्भस्थ होकर ब्रह्मा निवास किया करते हैं, सर्व्वसुख संश्रित होके उसके शरीरमें सुखसे संश्रित हुए है। देवता लोग सुखपूर्व्वक उसके शरीरमें निवास करते हैं। वह देव पुण्डरीकाक्ष श्रीगर्भ लक्ष्मीके सहित निवास किया करता है; शार्ङ्ग धनुष और चक्र उसके आयुध हैं और वह खड्गी तथा गरुड़ध्वज है। वह उत्तम शील, पवित्रता, दम, पराक्रम, वीर्य्य, वपु, दर्शन, आरोह, प्रमाण, धैर्य्य, आर्ज्जव, सम्पत्ति, अनृशंसता रूप और बलसे युक्त है। अद्भुतदर्शन, दिव्यास्त्रधारी योगमायायुक्त, सहस्राक्ष, निरवद्य और महामना है। वह वीर मित्रकी श्लाघा करनेवाला, स्वजनों तथा बन्धुजनोंको प्रिय, क्षमावान् अनहंवादी ब्रह्मण्य और ब्रह्मनायक है। वह भयार्त्तोंका भयहर्त्ता तथा मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला है; वह सब जीवोंका शरण्य तथा सबको पालन करनेमें अनुरक्त है। वह श्रुतवान् अर्थसम्पन्न और सब भूतोंका नमस्कृत है; वह समाश्रितोंका बहुत ही उपकारक और शत्रुओंके भी धर्म्मको जाननेवाला है। वह नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय है; इस लोकमें देवताओंकी उत्पत्तिके निमित्त परम बुद्धियुक्त धर्म्म रक्षित प्रजापति सम्बन्धीय शुभ मनुष्यपथ तथा महानुभाव मनुके वंशमें उस ही गोविन्दकी उत्पत्ति होगी।

मनुका पुत्र अङ्ग, उसका पुत्र अन्तर्द्धामा और उसका पुत्र हविर्धामा अनिन्दित प्रजापति रूपसे वर्णित होगा, हविर्धामाका महान् पुत्र प्राचीन बर्हि नामसे विख्यात होगा, उससे प्रचेता प्रभृति दश पुत्र होंगे, प्रचेतासे इस लोकमें दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति होगी, दक्षकी कन्या अदितिसे आदित्यकी उत्पत्ति होगी, आदित्यसे मनुका जन्म होगा, मनुके वंशमें इला और सुद्युम्न जन्मेंगे, बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म होगा, उससे आयुकी उत्पत्ति होगी, आयुसे नहुषका जन्म होगा, नहुषका पुत्र ययाति, ययातिके महाबलवान यदु नाम पुत्र होगा, उससे क्रोष्टा जन्मेगा, क्रोष्टाके महाबली पुत्रका वृजिनीवान नाम होगा, वृजिनीवानसे अपराजित उषङ्गु नाम पुत्र जन्मेगा, उषङ्गुका पुत्र चित्ररथ और चित्ररथका कनिष्ट पुत्र शूर नामसे विख्यात होगा। विख्यात वीर्य्य, चरित्र गुणसम्पन्न, विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले, अत्यन्त पवित्र ब्राह्मणसम्मत, यदुवंशमें क्षत्रियश्रेष्ठ, महावीर्य्य, महायशस्वी,

मानदाता, शूर निज वंशकी बृद्धि करनेवाले बसुदेव नामसे बिख्यात् आनक दुन्दुभी नामक पुत्र उत्पन्न करेगा। चतुर्व्वाहु बासुदेव उसके पुत्र होंगे, वह दाता ब्राह्मणोंका सत्कारकर्त्ता ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मण प्रिय होकर मगधराज जरासन्धके द्वारा कैद हुए राजाओंको छुड़ावेंगे। वह वीर्य्यवान् बासुदेव गिरिगह्वरके बीच राजा जरासन्धको पराजित करके सब राजाओंको रत्नराजिके सहारे समृद्धवान् होंगे और वह निजपराक्रमसे पृथ्वीके बीच अप्रतिहत तथा विक्रमयुक्त होकर सब राजाओंके ऊपर आधिपत्य करेंगे। नीतिज्ञ भगवान् शूरसेन देशमें पूर्णरीतिसे बुद्धियुक्त होकर द्वारकामें निवास करके जयलक्ष्मी बसुन्धरा देवीका सदा पालन करेंगे। आप लोग जिस प्रकार उत्तम अर्हणा द्रव्य और वचनरूपी मालासे प्रशस्त ब्रह्माकी पूजा करते हैं, वैसे ही उनके निकट जाकर विधिपूर्व्वक पूजा करिये। जो लोग मेरे अथवा पितामह ब्रह्माके दर्शनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें प्रतापवान् भगवान् बासुदेवका दर्शन करना उचित है, उनका दर्शन होनेसे ही मेरा और देवेश पितामहका दर्शन हुआ करता है, इस विषयमें मैं कुछ भी विचार नहीं करता। हे तपस्वीवृन्द! तुम लोग यह जान रखो, कि वह पुण्डरीकाक्ष जिसपर प्रसन्न होंगे, ब्रह्मादि देवगण भी उसके विषयमें प्रसन्न रहेंगे। लोकमें जो मनुष्य उस केशवका आसरा करेगा, उसकी जय तथा कीर्त्ति होगी और उसको स्वर्ग मिलेगा। वह धर्म्मभागी मनुष्य साक्षात् सब धर्म्मोंका उपदेशक होगा। धर्म्म जाननेवाले पुरुष सदा उद्योगी होकर उस देवेश्वरको नमस्कार करें, उस सर्व्वशक्तिमान् बासुदेवके पूजित होनेसे परमधर्म्म होता है। उस महातेजस्वी देवेशने प्रजाको हितकामनासे धर्म्मके निमित्त कोटि ऋषियोंकी सृष्टि की है। वे सनत्कुमार प्रभृति ऋषिगण उसके द्वारा उत्पन्न होके गन्धमादन पर्व्वतपर तपयुक्त होकर निवास करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस ही निमित्त वह वाग्मी धर्म्मज्ञ वासुदेव सबके ही नमस्य हैं। सर्व्वलोकोंके बीच सर्व्वशक्तिमान् भगवान् नारायण ही श्रेष्ठ हैं, वह वन्दित होने पर वन्दना पूजित होनेसे पूजा, सम्मानित होनेसे सम्मान और सदा अर्च्चित होनेपर प्रतिपूजा किया करते हैं। वह दृष्ट होनेसे दिनरात देखते और संश्रित होनेसे आश्रय किया करते हैं। हे द्विजसत्तमगण! वह देव अत्यन्त पूजित होनेपर सदा पूजा करता और उस अनन्दनीय विष्णुका यही परमव्रत है, महानुभाव आदिदेवके चरितोंका सज्जन लोग सदा आचरण किया करते हैं, वही सनातन देवलोकके बीच सदा देवताओंके द्वारा पूजित होता है। जो लोग उसपर अनुरक्त रहते, वे अनुरूप अभययुक्त हुआ करते हैं, इसलिये द्विजगण सदा उसे वचन, मन और कर्म्मसे नमस्कार करें। यत्नवान मनुष्य उपासनाके सहारे देवकीनन्दनका दर्शन करें। हे मुनिसत्तमगण! यह मेरे द्वारा आप लोगोंका पथ वर्णित हुआ। उसका सब भांतिसे दर्शन करनेपर सब देवताओंका दर्शन होता है। उस महा वराहरूपी सर्व्वलोक पितामह जगत्पति देवेश्वरको मैं भी सदा नमस्कार किया करता हूं। उसमें तुम लोगोंको निःसन्देह त्रिवर्ग दीखेगा, हम सब देवताओंके सहित उन्हींके शरीरमें निवास करते हैं उनके जेठे भाई श्वेतशैल सदृश प्रभायुक्त धराधारी बलदेव नामसे विख्यात होंगे। उस देवकी स्वर्णमय तृणराज त्रिशिरा तालवृक्ष चिन्हयुक्त रथकी ध्वजा होगी, उस सर्व्वलोकेश्वर महाबाहुका सिर महाभोग युक्त महानुभाव नागगणसे परिवेष्टित रहेगा। सब अस्त्र शस्त्र ध्यान करते ही उनके निकट उपस्थित होंगे, वह भगवान हरि ही अनन्त नामसे वर्णित होते हैं, जिनके प्रतापसे कश्यपके पुत्र बलवान् सुप

पूरी होती और वह मनुष्य परलोकमें जाकर निःसन्देह स्वर्गसुख भोगता है। कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको चाहिये, कि जनार्द्दनको जानें, हे महाराज। ब्राह्मण लोग इस अव्यय जनार्द्दनकी स्तुति किया करते हैं। हे कुरुराज! जो सब धर्म महेश्वरके मुखसे बाहिर हुए थे, तुम अहोरात्र मन ही मन उन धर्मोंको धारण करना। इस ही प्रकार तुम पूरी रीतिसे दण्डधारी होके वर्त्तमान रहने और दक्षता प्रकाशित करनेपर स्वर्गलोकमें गमन करोगे। हे महाराज! तुम धर्म्मपूर्व्वक प्रजाकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, प्रजाकी रक्षाके लिये जो बिपुल दण्ड विहृत होता है, वही सम्यक् धर्म्मस्वरूपसे वर्णित हुआ करता है। हे महाराज! मैंने सज्जनोंके निकाट जो यह उमाके सहित महादेवका धर्म्मसंयुक्त सम्वाद वर्णन किया है, उसे सुनकर तथा [illegible] विज-अभिलाषी होके जो लोग अपनी [illegible] हुआ इच्छा करते हैं, वे पवित्र चित्तसे वृषभ[illegible] लोकाश पूजा करें। हे पाण्डव। यह उस अनि[illegible] भांति महान् भाव नारदमुनिका देवपूजाहे [illegible] प्रकार बा[illegible]य है, इसलिये तुम उसे प्रतिपालन करो। हे महाराज कुन्तीनन्दन! पवित्र हिमालयमें वासुदेव और महादेवकी यह अप्राकृतिक घटना अत्यन्त अद्भुत हुई थी; इस शाश्वत वासुदेवने बदरिकाश्रममें दश सहस्र वर्षतक विपुल तपस्या करी थी। हे महाराज! ये पुण्डरीकाक्ष वासुदेव और धनञ्जय त्रेतायुगसे नारद तथा व्यासदेवके द्वारा सभी विदित हैं। इस महाबाहु महातेजस्वी पुण्डरीकाक्षने बाल्य अवस्थामें ही स्वजनोंके परित्राणके निमित्त कंसका महत् बधकार्य्य साधन किया था। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर। मैं इस शाश्वत पुराण पुरुषके कर्म्मों की सख्या करनेका उत्साह नहीं करता। हे तात! ये पुरुषपुङ्गव जनार्द्दन जब तुम्हारे सखा हैं, तब अवश्य ही तुम्हारा परम मङ्गल होगा। और दुर्ब्बुद्धि दुर्योधन स्वर्गमें गया है, तौभी मैं उसके निमित्त शोक करता हूं, जिसके कारण यह समस्त महिमण्डल घोड़ो और हाथियोंके सहित विनष्ट हुआ है, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारोंके अपराधसे सारा कुरुकुल निर्म्मूल हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुष श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर उन सब महात्माओंके बीच चुप होरहे। धृतराष्ट्र प्रभृति सब राजा इस कथाको सुनके विस्मित हुए और मनही मन हाथ जोड़के कृष्णकी पूजा की। नारद प्रभृति ऋषियोंने भीष्मका वचन प्रतिग्रह करके उनका सम्मान तथा अभिनन्दन किया। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित यह उत्तम महाश्चर्य्य पवित्र भीष्मानुशासन इस ही प्रकार प्रीतिके लिये यह गोपनीय [illegible] उदाहृत हुआ, तीनों लोकोंके बीच आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हे विभो। उत्पत्ति तथा प्रसूति अथवा दूसरे जो कुछ कारण हैं, वे सब आपसे छिपे नहीं है, हम लोग बहुतसी चपलता गोपनीय बिषयोंको धारण करनेमें असमर्थ हैं। हे प्रभु। इसलिये आपके रहते हम लोग जो विषय कहें, वह लघुता हेतुसे प्रलाप मात्र है। आप जिसे न जानें, वैसा अद्भुत विषय इस लोकमें कुछ भी नहीं है। हे देव! [illegible]लोक वा भूलोकमें जो कुछ आश्चर्य हैं, वे सब [illegible]पको मालूम हैं। हे कृष्ण! अब हम लोग [illegible] हैं, आप वृद्धि और पुष्टिलाभ करिये। हे [illegible] आपके सदृश अथवा तुमसे भी उत्कृष्ट संसारमें [illegible]

भीष्म[illegible], दीप्तिमान् कीर्त्तियुक्त सर्व्वशक्तिमान प्रभु अनन्त पुरुषोत्तमकी सहस्र नामसे स्तुति करते हुए उस अव्यय पुरुषकी भक्तिपूर्व्वक पूजा करे। यजमान मनुष्य उस अनादिनिधन सर्व्व लोक महेश्वर विष्णुका ध्यान स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार करें। उस लोकाध्यक्ष नारायणकी सदा स्तुति करते हुए पुरुष सब दुःखोंको

अतिक्रम करता है। ब्रह्मण्य सर्व्वज्ञ, सर्व्वलोककीर्त्तिवर्द्धन, लोकनाथ, महद्भूत और सर्व्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारण नारायणकी स्तुति करे, यह धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ और यही मुझे अभिमत है; जिस धर्म्मके विषयमें मनुष्य सदा भक्ति पूर्व्वक स्तुति करते हुए भगवानका पूजन करते हैं। जो परम महत् तेज, जो परम महत तप, जो परम महत् ब्रह्म तथा जो परम परायण है, जो सब पवित्र पदार्थोंके बीच पवित्र, जो सब मङ्गलोंका मङ्गल, जो देवताओंका देवता और भूतोंका अव्यय पिता है। हे पृथ्वीनाथ! जिससे आदियुगमें सब प्राणी उत्पन्न होके युगक्षयमें जिसमें फिर लीन होते हैं, उस लोकप्रधान जगन्नाथ विष्णुका सहस्र नाम सुनो, महान भाव नारायणके जो
र्त्तिके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। माधव अत्यन्त
तर अर्थतत्त्वोंके वक्ता और कर्त्ता हैं। हे
त। नारायणके अवलम्बसे ही तुम्हारी जय
र अतुल कीर्त्ति हुई तथा सब पृथ्वी तुम्हारे
गत होरही है। ये अचिन्तनीय नारायण
हारे नाथ और गति हैं, इस ही निमित्त
ने अध्वर्य्युके निकट रहके राजाओंकी युद्ध-
अग्निमें प्रलयानल सदृश कृष्णरूपी स्रुवासे
ति प्रदान की है। जिस दुर्ब्बुद्धिने क्रोध-
हरिको गाण्डीवमूर्त्ति धारण कराई थी,
दुर्योधनको ही पुत्र, भ्राता और बान्धवोंके ८-
शोचनीय दशा हुई है। महाकाय मह व्यय
दैत्य और दानवेन्द्रगण दावानलमें प्र उरुष-
की भांति जिसके चक्राग्निके बी चर १६,
, पराक्रम शक्ति और बलहै ारके क्षेत्रज्ञ
परमात्माके एकत्व भावना योगसे प्राप्य है,
ी हेतु योग १७, योगवितजनोंका नेता १८,
ति और पुरुषका नियन्ता है, इसही निमित्त
न पुरुषेश्वर १९, नरसिंहवपु २०, श्रीमान्
लम्बे केशोंसेयुक्त है, इसही निमित्त केशव
चराचर दोनोंसे उत्तम है, इसीलिये

पुरुषोत्तम २३। कारण रूपसे अनुगत है, इसीलिये सर्व्व २४, सबको हिंसा करता है, इसही हेतु शर्व्व २५, सब कोई उसमें शयन करते हैं, इसही निमित्त शिव २६, स्थिर है इसहीसे स्थाणु २७, भूतादिकोंकी अव्ययनिधि २८, धर्म्मस्थापन करनेके लिये प्रति युगमें उत्पन्न होता है, इसही लिये सम्भव २९, सब भोक्ता पुरुषोंको फल देनेवाला है, इसी हेतु भावन ३०, प्रपञ्चजगतके अधिष्ठान रूपसे भर्त्ता ३१, जगदुत्पत्तिके कारण होनेसे प्रभव ३२। सर्व्वशक्तिमान होनेसे प्रभु ३३, सबका नियन्ता होनेसे ईश्वर ३४, स्वयम्भू ३५, भक्तोंके सुखका विधान करता है, इसहीलिये सम्भु ३६, अदितके पुत्र होनेसे आदित्य ३७, कमलके समान नेत्र हैं, इसीसे पुष्कराक्ष ३८, मेरे भक्त विनष्ट न हों
प्रति यादि वेद उसका वचन है, इस ही निमित्त
सकते। स्वन ३९, उसका जन्म और विनाश नहीं
भारे ग ोलिये अनादिनिधन ४०, अनन्तरूपसे
इसलि को धारण करनेसे धाता ४१, कर्म्म और
हो, इ फलोंका विधान करनेसे विधाता ४२,
करन उससे भी श्रेष्ठ है, इसलिये ईधातुरुत्तम ४३,
नेत्र यह अनुमान और उपमान अर्थापत्ति अनुप-
है लब्धि प्रभृति शास्त्रीय प्रमाणोंसे उसे जाना
नहीं जाता इसही निमित्त अप्रमेय ४४, इन्द्रियोंका ईश्वर होनेसे हृषीकेश ४५, जगत्कारण पद्म उसके नाभीमें विद्यमान है, इसही लिये पद्मनाभ ४६, अमरणधर्म्म विशिष्ट देवताओंका ईश्वर होनेसे अमरप्रभु ४७, जगत्की रचना करता है, इसलिये विश्वकर्म्मा ४८, मननशील होनेसे मनु ४९, प्रलयके समय जगत्का नाश करता है, इसीसे त्वष्टा ५०, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ट ५१, स्थिरत्व प्रयुक्त स्थविर ५२, निश्चय है, इसलिये ध्रुव ५३, मनके सहित वचनसे अथवा बलपूर्व्वक उसे ग्रहण नहीं किया जाता, इसही निमित्त अग्राह्य ५४, शाश्वत अर्थात् सब समयमें स्थायी रहनेसे

शाश्वत् ५५, देखते ही स्त्रियोंका मन हरता अथवा कृष्णवर्णा है, इसोलिये कृष्ण ५६, लोहितनेत्र होनेसे लोहिताच ५७, प्रलयकालमें विश्वसंसारका नाश करता है, इस ही निमित्त प्रतर्द्दन ५८, ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंसे युक्त है, इस ही निमित्त प्रभूत ५९, ऊर्द्ध, अध और मध्यभेदसे तीनों धाम है, इस ही हेतु त्रिककुद्धाम ६०, पवित्र ६१, परम मङ्गल ६२, सर्व्वभूतोंका नियन्ता होनेसे ईशान ६३, प्राणप्रदाता होनेसे प्राणद ६४, सब प्राणियोंको जीवन स्वरूपहोनेसे प्राण ६५, अत्यन्त वृद्ध है, इस ही निमित्त जेष्ठ ६६, अत्यन्त प्रशस्त होनेसे श्रेष्ठ ६७, प्रजापति ६८, विरञ्चिस्वरूपसे अथवा हिरण्मयान्तर्व्वर्त्ती होनेसे हिरण्यगर्भ ६९, पृथिवीका कारण है अर्थात पृथिवी उसके गर्भमें है, इसलिये भूगर्भ ७०, माधव ७१, मधुसूदन ७२, अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य्योंसे युक्त है, इसलिये ईश्वर ७३, विक्रमी ७४, धन्वी ७५, मेधावी ७६, वि अर्थात् गरुड़पक्षीके द्वारा गमन करता है, इसलिये विक्रम ७७, जगत्को आक्रमण कर रहा है, इसही निमित्त क्रम ७८, उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है, इसीसे अनुत्तम ७९, शत्रुओंसे दुराक्रमणीय होनेसे दुराधर्ष ८०, प्राणियोंके पुण्य पाप-जनित सब कर्म्मोंको जाननेसे कृतज्ञ ८१, पुरुष प्रयत्नस्वरूप है, इस ही हेतु कृति ८२, निज महिमासे प्रतिष्ठित है, इसलिये आत्मवान् ८३, सुरेश ८४, दुःख नाश करनेसे शरण ८५, सुखस्वरूप होनेसे शर्म्म ८६, विश्व ही उसका वीर्य्यस्वरूप कार्य्य है, इसलिये विश्वरेता ८७, प्रजाकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रजाभव ८८, दिनकी भांति प्रकाशस्वरूप है, इसही निमित्त अह ८९, अखण्ड कालस्वरूप होनेसे सम्वत्सर ९०, बन्धनहीन है, इस ही हेतु व्याल ९१, ज्ञानस्वरूप होनेसे प्रत्यय ९२, अपने भक्तोंको देखता है, इसलिये सर्व्वदर्शन ९३, जन्मरहित होनेसे अज ९४, ईश्वरोंका भी ईश्वर है, इसलिये सर्व्वेश्वर ९५, नित्य निष्पन्नस्वरूप होनेसे सिद्धि ९६, सुप्रसिद्धरूप होनेसे सिद्धि ९७, सर्व्वभूतोंका कारण है, इस ही निमित्त सर्व्वादि ९८, निज रूपसे च्युत नहीं होता, इस ही लिये अच्युत ९९, समस्त कामनाओंकी वर्षा करता है, इस ही लिये वृष अर्थात् धर्म्म और वराह अवतार रूपसे कपि है, इस ही लिये वृषाकपि १००, उसका स्वरूप बुद्धिसे जाना नहीं जाता, इस ही हेतु अमेयात्मा १०१, सब सम्बन्धोंसे पृथक् असङ्ग पुरुष है, इसलिये सर्व्वयोगोविनिःसृत १०२, वसु सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वसु १०३, राग आदि क्लेशोंसे उसका मन दूषित नहीं होता, इस ही निमित्त वसुमना १०४, सत्यरूप होनेसे सत्य १०५, एकात्मा होनेसे समात्मा १०६, अपरिच्छिन्न है, इसलिये असम्मित १०७, सब समयमें विकाररहित होनेसे सम १०८, सत्यफलरूप होनेसे अमोघ १०९, हृदयाख्य पुण्डरीकमें व्याप्त है, इसलिये पुण्डरीकाक्ष ११०, उसके सब कर्म्म धर्म्ममय हैं, इस हेतु वृषकर्म्मा १११, धर्म्म अर्थ ग्रहण करनेसे ही वृषाकृति ११२, शिवके सहित अभिन्न है तथा संहारके समय प्रजा समूहको रुलाता है, इस ही निमित्त रुद्र ११३, सहस्र शीर्षा पुरुष है, इस ही हेतु बहुशिरा ११४, सब लोकोंको धारण कर रहा है, इस ही निमित्त बभ्रु ११५, विश्वयोनि ११६, उसके सब नाम पवित्र हैं, इसलिये शुचिश्रवा ११७, उसकी मृत्यु नहीं होती, इसलिये अमृत ११८, सब समय और सब स्थानोंमें रहनेसे शाश्वत ११९, स्थाणु १२०, उसमें आरोहण करना ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उसे पानेसे पुनरावृत्ति नहीं होती, इस ही निमित्त वरारोह १२१, सब विषयोंका उसे ज्ञान है, इसलिये महातपा १२२, सर्व्वग १२३, हरएक विषयोंको जाननेवाला तथा प्रकाशमान होनेसे सर्व्वविद्भानु १२४, जरासन्ध प्रभृतिकी सेना उसके

द्वारा सब दिशाओंमें अगाई गई थी, इस ही निमित्त विष्वक्सेन १२५, दस्युओंको पीड़ित करनेसे जनार्द्दन १२६, ज्ञानदीपस्वरूप होनेसे वेद १२७, अर्थ और पाठक्रमसे वह वेदोंको जानता है; इसलिये वेदवित् १२८, वह सर्व्वावयव सम्पन्न है, इसलिये अव्यङ्ग १२९, वेदाङ्ग स्वरूप १३०, वेद लाभ करनेसे वेदवित् १३१, अतिक्रान्त दर्शी होनेसे कवि १३२, लोकोंको प्रत्यक्ष करता है, इसलिये लोकाध्यक्ष १३३. इन्द्र आदि देवताओंका अधिपति है, इसलिये सुराधक्ष १३४, धर्म्माधक्ष १३५, कार्य्य कारणरूपसे कृताकृत १३६, सृष्टिके प्रारम्भमें पृथक् पृथक् चतुर्व्विध ब्रह्मा दक्षादिरूपसे चतुरात्मा १३७, वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपसे चतुर्व्यूह १३८, नृसिंहरूपसे चतुर्दंष्ट्र १३९, चतुर्भुज १४०। अत्यन्त दीप्तिमान होनेसे भ्राजिष्णु १४१, भोज्यरूपसे भोजन १४२, भोजनकर्त्ता होनेसे भोक्ता १४३, सहनशील होनेसे सहिष्णु १४४, हिरण्यगर्भ रूपसे जगत्के आदिकालमें जन्म लेनेसे जगदादिज १४५, निष्पाप होनेसे अनघ १४६, ज्ञान वैराग्य प्रभृति ऐश्वर्य्योंके द्वारा जययुक्त होनेसे विजय १४७, सबसे उत्कृष्ट है, इसलिये जेता १४८, विश्वयोनिमें बार बार अवतार लेके बास करता है, इसलिये पुनर्व्वसु १४९। उपेन्द्र १५०, बामन १५१, बामनरूपसे तीनों लोकोंको आक्रमण किया, इसलिये प्रांशु १५२, अमोघ १५३, अत्यन्त पवित्र होनेसे शुचि १५४, गोवर्द्धनादि धारण करनेसे ऊर्ज्जित १५५, कल्पवृक्ष हरण आदि कार्य्योंमें इन्द्रको अतिक्रम करनेसे अतीन्द्र १५६, भक्तोंका संहार करता है, इसलिये सङ्ग्रह १५७ कार्य्यरूपसे उत्पन्न होता है, इस ही हेतु सर्ग १५८, एक रूपसे जन्मादि रहित है, इसलिये धृतात्मा १५९, प्रजा समूहको निज निज अधिकारमें नियमित करनेसे नियम १६०, अन्तर्य्यामी प्रयुक्त यम १६१। अज्ञात प्रयुक्त वेदनाई है, इसलिये वेद्य १६२, सब विद्या अध्ययन करता है, इस ही निमित्त वैद्य १६३, सर्व्व क्रियामें कर्त्तृत्वके रहते भी यथार्थमें अकर्त्तृत्व प्रयुक्त होनेसे महायोगी १६४, दैत्यदलनाशक होनेसे बीरहा १६५, भगवद्विद्याका ईश्वर है, इसलिये माधव १६६, वसन्तकी भांति प्रीतपद होनेसे मधु १६७, इन्द्रियोंके अगोचर होनेसे अतीन्द्रिय १६८, अत्यन्त कृपावान् होनेसे महामाय १६९, महोत्साह १७०, बाल्यकालमें पूतना आदि बध करनेके समय अत्यन्त बल प्रकाशित किया था, इसलिये महाबल १७१। महाबुद्धि १७२, महावीर्य्य १७३, महाशक्ति १७४, महाद्युति ७५ यह है, वह है, इत्यादि रूपसे उसका निरूपण नहीं होता, इसलिये अनिर्द्देश्य वपु १७६, श्रीमान् १७७, अमेयात्मा १७८, पृथ्वी, गोवर्द्धन तथा मन्दर पर्व्वतको धारण किया था, इसलिये महाद्रिधृत् १७९, महाधनुर्धारी होनेसे महेष्वास १८०, महीभर्त्ता १८१, श्रीनिवास १८२, साधुओंका अवलम्ब होनेसे सतांगति १८३ कोई शत्रु उसे रोकनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये अनिरुद्ध १८४, देवताओंको आनन्दित करता है, इसलिये सुरानन्द १८५, पहले समयमें पृथ्वीका उद्धार किया था, इसलिये गोविन्द १८६, वेदवादियोंको विशेषरूपसे पालन करता है, इस ही निमित्त गोविदांपति १८७। दुष्ट लोग उसके द्वारा विनष्ट होते हैं, इसलिये मरीचि १८८, वह दुष्टोंको शासन करता है, इस ही निमित्त दमन १८९, शुद्धत्व प्रयुक्त हंसकी भांति अथवा संसारबन्धनको काटता है, इसीसे हंसपक्षीकी भांति सुपर्ण १९०, शेषरूप होनेसे भुजगोत्तम १९१, सुवर्णकी भांति प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उसके नाभिस्थानमें वर्त्तमान है, इसलिये हिरण्यनाभ १९२, नरनारायण रूपसे सुतपा १९३, पद्मनाभ, १९४ प्रजापति १९५, अमृत्यु १९६, सर्व्वदर्शी होनेसे सर्व्वदृक् १९७, दन्तवक्र आदि दुष्ट दस्युगणको मारनेसे

सिद्ध १९८, सन्धिकर्त्ता होनेसे सन्धाता १९९, सन्धिमान २००, भक्तोंके अन्तःकरणमें स्थिरताके सहित स्थित रहनेसे स्थिर २०१। शिशुपालके बधके लिये चक्र चलाया था, इसही हेतु अज २०२. दुःखसे उसे सहन किया जाता है, इसलिये दुर्मर्षण २०३, दुष्टोंको दण्ड देता है, इसही निमित्त शास्ता २०४, शास्त्र प्रसिद्ध बिराट देहधारी है, इस हेतु विश्रुतात्मा २०५, सुरारिहा २०६, भक्तियोग उपदेश करनेसे गुरु २०७। उपदेष्टा पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये गुरुत्तम २०८, सबको धारण करनेसे धाम २०९, त्रिकाल बाधारहित होनेसे सत्य २१०, अप्रतिहत सामर्थयुक्त है, इस ही निमित्त सत्यपराक्रम २११, विशेष रीतिसे दर्शन करनेसे निमिष २१२. निमिषहीन होनेसे अनिमिष २१३, वैजयन्ती माला धारण करनेसे स्रग्वी २१४, वाक्यके अधिपति होनेसे वाचस्पति २१५, महाबुद्धि हेतुसे उदारधी २१६। सबसे पहले पूजनीय है, इसलिये अग्रणी २१७, मथुरा ग्रामसे सब लोगोंको द्वारकामें लेजानेसे ग्रामणी २१८, श्रीमान् २१९, श्रुति, स्मृति और पुराणोंके तात्पर्य्यको विशेष रीतिसे जानता है, इसलिये न्याय २२०, धर्म्मफल प्रापक है, इसलिये नेता २२१, सम्यक् रीतिसे उसका ईरण अर्थात् भाषण होता है, इस ही निमित्त समीरण २२२, बिराटरूप होनेसे सहस्र मूर्द्धा २२३, विश्वात्मा २२४, सहस्राक्ष २२५, सहस्रपात २२६। धर्म्म रक्षाके निमित्त बार बार उत्पन्न होता है, इसलिये आवर्त्तन २२७ उसका चित्त परम वैराग्ययुक्त है, इस ही निमित्त निवृत्तात्मा २२८, योगमायासे परिपूरित रहनेसे संवृत्त २२९, दुष्टोंको मर्द्दन करता है, इसलिये सम्प्रमर्द्दन २३०, सूर्य्यरूपसे दिनका प्रवर्त्तक है, इस ही हेतु अह २३१, सम्प्रवर्त्तक अग्निरूपसे देवताओंका हवि ढोता है, इसी हेतु वह्नि २३२, कंसको जीतकर उग्रसेनको पृथ्वी दान करनेसे उसके इला अर्थात् भूमि न थी, इस ही निमि अनिल २३३, अनन्त अथवा वराहरूपसे भूमि धारण करता है, इस ही हेतु धरणीधर २३४ उसकी प्रसन्नतासे सब प्रकारके आलस दूर हो हैं, इसलिये सुप्रसाद २३५, भक्तोंके अपरा करनेपर भी उसका चित्त अप्रसन्न नहीं होत इसलिये प्रसन्नात्मा २३६, विश्वधृक् २३७, विश्व भुक् २३८, विविध रूप धारण करनेसे वि २३९, धर्म्मरक्षाके हेतु गोब्राह्मणोंका सत्क करता है, इस ही निमित्त सत्कर्त्ता २४०, पूजि पुरुषोंसेभी पूजनीय होनेसे सत्कृत २४१, न्याय कार्य्यसे दूसरोंका कार्य्य सिद्ध करता है, इसलिये साधु २४२, संहारसमयमें प्राणियोंको हरण करनेसे जह्नु, २४३, प्रलयकालमें नारा अर्थात् जल ही उसका अयन अर्थात् आश्रय था, इस ही हेतु नारायण २४४, सनातन परमात्मा होनेसे नर २४५। अनिर्व्वचनीय होनेसे असंख्येय २४६, अप्रमेयात्मा २४७, सबसे उत्कृष्ट होनेसे विशिष्ट २४८ वेदोक्त कर्म्म करता है, इसलिये शिष्टकृत् २४९, शुचि २५०, सिद्धार्थ २५१, सिद्धसङ्कल्प २५२, सिद्धिद २५३, त्रैवर्गिक फल साधन करनेसे सिद्धिसाधन २५४, धर्म्मयुक्त द्वादश अह अर्थात् दिवस विशिष्ट होनेसे वृषाहि २५५, अभिलषित विषय दान करता है, इसलिये वृषभ २५६, चरण संक्रमणसे जगतको वेष्टन कर रहा है, इस हेतु विष्णु २५७, धर्म्म ही उसका सोपान होनेसे वृषपर्व्वा २५८, धर्म्म उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये वृषोदर २५९, भक्तोंके किये हुए अल्प विषयोंको भी वृद्धि करता है, इसलिये वर्द्धन २६०, वर्द्धमान २६१, पवित्र होनेसे विविक्त २६२, वेदोंके तात्पर्य्यका विषय होनेसे श्रुतिसागर २६३। सुभुज २६४, दुर्द्धर २६५, वाग्मी २६६, महेन्द्र २६७, वसुद २६८, वसु २६९, नेकरूप २७०, बृहद्रूप २७१, शिपिविष्ट २७२, प्रकाशन २७३, ओज तेज प्रताप द्युति तथा देहकान्ति धारण करन

है, इस ही निमित्त ओजस्तेज द्युतिधर २७४, प्रकाशात्मा २७५, प्रतापन २७६, परिपूर्ण होनेसे ऋद्ध २७७, स्पष्ट २७८, अक्षर २७९, मन्त्रके द्वारा बोधित होनेसे मन्त्र २८०, चन्द्रांशु भास्कर द्युति २८१। समुद्र मथके चन्द्रमाको उत्पन्न करनेसे अमृतांशूद्भव २८२, दीप्तिमान होनेसे भानु २८३, शशसदृश अनेक प्रकार के वर्णोंसे युक्त होनेसे शशबिन्दु २८४, सुरेश्वर २८५, संसाररोग निवर्त्तक होनेसे औषध २८६, जगत्में सेतुरूपी होनेसे जगत्सेतु २८७, सत्यधर्म्म-पराक्रम २८८, भूतभव्य २८९, भवन्नाथ २९०, पवन २९१, पावन २९२, अनल २९३, भक्तोंको अपना रूप प्रदान करके उनके कामका विनाश करता है, इसलिये कामहा २९४, प्रद्युम्नका उत्पादक होनेसे कामकृत् कान्त २९५, मुमुक्षुजनोंका काम्यकाम २९६, कामप्रद २९७, दिव्यरूपसे प्रकट होनेसे प्रभु २९८, युगादिकृत २९९, चारों युगोंका आवर्त्तन करता है, इसलिये युगावर्त ३००, नैकमाय ३०१ महाशन ३०२, अदृश्य ३०३, अव्यक्तस्वरूप ३०४, सहस्राजित् ३०५, अनन्तजित् ३०६, परमानन्दस्वरूप युक्त अथवा सबसे पूजित होनेसे इष्ट ३०७, सर्व्वान्तर्य्यामी सर्वाङ्ग रूपसे विशिष्ट ३०८, शिष्टोंका इष्ट होनेसे शिष्टेष्ट ३०९, मयूरपूंछसे युक्त होनेसे शिखण्डी ३१०, मायासे भूतोंको बद्ध करता है, इसलिये नहुष ३११, अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है, इसलिये वृष ३१२, भक्तोंके क्रोधको विनष्ट करनेसे क्रोधहा ३१३, दुष्टोंके विषयमें क्रोध करता है, इस ही निमित्त क्रोधकृत ३१४, कार्य्यमात्रके कर्तृत्व युक्त होनेसे कर्त्ता ३१५, विश्वबाहु ३१६, महीधर ३१७, अच्युत ३१८, प्रथित ३१९, प्राण ३२०, प्राणद ३२१, वासवानुज ३२२, अपांनिधि ३२३, अधिष्ठान ३२४, अप्रमत्त ३२५, निज महिमामें स्थित रहनेसे प्रतिष्ठित ३२६, वायुरूपसे शोषण करनेसे स्कन्द ३२७, वायुको धारण करनेसे स्कन्दधर ३२८, जगत्का भार उठाता है, इसलिये धुर्य्य ३२९, अभिलषित पदार्थोंके दान करनेसे वरद ३३०, वायुकी भांति वेगवान् विनतानन्दन गरुड़ उसका वाहन है, इस ही निमित्त वायुवाहन ३३१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ३३२, चन्द्र और सूर्य्यरूपसे बृहद्भानु ३३३, आदिदेव ३३४, शत्रुपुर विदारण करनेसे पुरन्दर ३३५, अशोक ३३६, तारण ३३७, शत्रुओंका भी उद्धार करता है, इसलिये तार ३३८, पराक्रमयुक्त होनेसे शूर ३३९, शूरकी सन्तान होनेसे शौरि ३४०, जनेश्वर ३४१, अनुकूल ३४२, वह सैकड़ों बार प्रकट होता है, इसलिये शतावर्त्त ३४३, हाथमें पद्मधारण करनेसे पद्मी ३४४, पद्मनिभेक्षण ३४५। पद्मनाभ ३४६, अरविन्दाक्ष ३४७, पद्मगर्भ अन्नरूपसे शरीर पोषण करता है, इस ही निमित्त शरीरभृत् ३४८, उसकी महती सम्पत्ति है, इसलिये महर्द्धि ३४९, प्रपञ्चरूपसे वृद्धरूपी है, इसलिये ऋद्ध ३५०, पुरातन आत्मा होनेसे वृद्धात्मा ३५१, महाक्ष, ३५२, गरुड़ध्वज ३५३, उसकी उपमा नहीं है, इसलिये अतुल ३५४, शरीरके बीच प्रत्यागात्म रूपसे प्रकाशमान है, इस ही निमित्त शरभ ३५५, उससे सब कोई डरते हैं, इसीसे भीम ३५६, समयज्ञ ३५७, हवनीय रूपसे हवि ३५८, समस्त पाप हरनेसे हरि ३५९, सब शास्त्रोंका तात्पर्य्य विषय होनेसे सर्व्वलक्षण लक्षण्य ३६०, लक्ष्मीवान् ३६१, समर विजयी होनेसे समितिञ्जय ३६२। उसका विनाश नहीं है, इसलिये विक्षर ३६३, मत्स्यरूप धारण करनेसे रोहित ३६४, भक्तोंका अन्वेषणीय है, इसलिये मार्ग ३६५, निमित्त-उपादान, दोनों कारणरूप होनेसे हेतु ३६६, रज्जुसे बद्ध होनेसे उदरमें उस चिन्हको स्वधारण करता है, इसलिये दामोदर ३६७, सब कुछ सहता है, इस हेतु सह ३६८, गिरिरूपसे महीधर ३६९, परम भाग्यवान् होनेसे महाभाग ३७०, वेगवान् ३७१, सर्व्वसंहर्त्ता होनेसे अमिताशन ३७२, उससे संसार उत्पन्न हुआ है, इस-

लिये उद्भव ३७३, शत्रुओंको क्षुब्ध करनेसे क्षोभण ३७४, क्रीड़ा करता है, इसलिये देव ३७५, जगत्रूपी बिभूति उसके उदरमें बिद्यमान है, इसलिये श्रीगर्भ ३७६, परमेश्वर ३७७, साधकतम होनेसे करण ३७८, कारण ३७९, कर्त्ता ३८०, बिकर्त्ता ३८१, दुर्व्विज्ञेय होनेसे गहन ३८२, स्वरूप सम्बरण करता है, इस ही निमित्त गुह्य ३८३, सम्वितरूपसे व्यवसाय ३८४, जगत् उसहीमें स्थित है, इसलिये व्यवस्थान ३८५, उसमें ही सबकी समाप्ति होती है, इसलिये संस्थान ३८६, भक्तोंको वैकुण्ठ प्रभृति स्थान दान करता है, इस ही निमित्त स्थानद ३८७, अनेक कर्म्म कर्त्तृत्वयुक्त होनेपर भी स्वरूपसे निश्चल है, इसलिये ध्रुव ३८८, परम ऐश्वर्य्यशाली होनेसे परर्द्ध ३८९, स्वप्रकाश ज्ञानरूपसे परम स्पष्ट ३९०, परमानन्दरूप होनेसे तुष्ट ३९१, पूर्णत्वयुक्त होनेसे पुष्ट ३९२, शुभेक्षण ३९३, उसमें योगिजन रमण करते हैं, इसलिये राम ३९४, उसमें जगत्का ठहराव होता है, इसही निमित्त बिराम ३९५, रजोगुण-रहित होनेसे बिरज ३९६, पथ प्रदर्शक है, इसलिये मार्ग ३९७, भक्तजन उसे निज हृदयमें लेजा सकते हैं, इसलिये नेय ३९८, भक्तोंका अल्प उपहार भी ग्रहण करता है, इसलिये नय ३९९, अभक्तोंका दिया हुआ अधिक उपहार भी नहीं लेता, इसही निमित्त अनय ४००, युद्ध, दान, सत्य और दया बिषयमें बीर ४०१, शक्तिमान पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये शक्तिमतां श्रेष्ठ ४०२, धर्म्म बर्णन करता है, इसलिये धर्म्म ४०३, धर्म्मज्ञोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये धर्म्मविदुत्तम ४०४। जिनका कुण्ठा अर्थात् प्रतिघात बिगत हुआ है, वैसे भक्तोंका बाध्य है, इसलिये वैकुण्ठपुरुष ४०५, वेदरूप शब्दही उसका प्राण है, इसही हेतु प्राण ४०६, ब्रह्माको वेददान करनेसे प्राणद ४०७, प्रकृष्टरूपसे स्तवनीय है, इसलिये प्रणव ४०८, व्यापक होनेसे पृथु ४०९, प्रशस्त गर्व्वनिबन्धनसे हिरण्यगर्भ ४१०, शत्रु ४११, व्यापक होनेसे व्याप्त ४१२, सर्व्वत्र गमन करता है, इसलिये वायु ४१३, इन्द्रियजनित ज्ञान उसे प्रकाशित नहीं कर सकता, इसलिये अधोक्षज ४१४। वह ऋतुओंके बीच बसन्त है, इसलिये ऋतु ४१५, सुदर्शन ४१६, काल ४१७, सबसे श्रेष्ठ स्थानमें निवास करता है, इस निमित्त परमेष्ठी ४१८, मुमुक्षुजन अन्य देवताओंको परित्याग करके उसे ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह ४१९, सदाशिवरूपसे उग्र ४२०, जो जैसा कर्म्म है, उसमें उस ही भांति पूर्ण रीतिसे बास करता है, इसलिये सम्वत्सर ४२१, सत्कर्म्मोंमें आलस रहित होनेसे दक्ष ४२२, जगत्का बिश्राम स्थान है, इसलिये बिश्राम ४२३, सब बिषयोंमें सरल होनेसे बिश्वदक्षि ४२४। उसमें जगत् बिस्तीर्ण होरहा है, इस निमित्त बिस्तार ४२५, सर्व्वत्र स्थितिशील होनेसे स्थावर ४२६, स्थिर होनेसे स्थाणु ४२७, प्रमाण सत्यबादी है, इसलिये प्रमाण ४२८, अव्ययबीज ४२९, प्रार्थनीय होनेसे अर्थ ४३०, उससे बढ़ और कोई नहीं है, इसही निमित्त अनर्थ ४३१, आनन्दमय होनेसे महाकोश ४३२, महाभोग ४३३, महाधन ४३४। भक्तोंके कार्य्यमें निर्व्वेदयुक्त नहीं होता, इसलिये अनिर्व्विण्ण ४३५, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ठ ४३६, सत्तारूपसे धर्म्मस्वरूप सदृश है, इसलिये धर्म्मयूप ४३७, सब का ही महान् सखा है, इसलिये महामख ४३८, सुधाकर सदृश आनन्द जनक है, इसही हेतु नक्षत्रनेमि ४३९, उसके जन्म समयमें श्रेष्ठ नक्षत्र रहनेसे नक्षत्री ४४०, अल्प पूजा करनेसे ही अपराध क्षमा करता है, इसलिये क्षम ४४१, भक्तोंके दुःखी होनेपर वह भक्तकी भांति क्षाम होता है, इसही हेतु क्षाम ४४२, उसकी सब चेष्टा पूर्ण रीतिसे सिद्ध होती है, इसलिये समीहन ४४३। राजसूय यज्ञमें पूज्य होनेसे यज्ञ ४४४, उसकी महती पूजा हुआ करती है,

इस हेतु महेज्य ४४५, अनेक कार्य्य करता है, इसलिये क्रतु ४४६, सत्रकी भांति आचरण करता अथवा सत्रयाग स्वरूप है, इसही निमित्त सत्र ४४७, साधुओंकी गति है, इसी लिये सतागति ४४८, सर्व्वदर्शी ४४९, विमुक्तात्मा ४५०, सर्व्वज्ञ ४५१, इन्द्रियभिन्न ज्ञानरूप होनेसे उत्तम ज्ञान ४५२। सुव्रत ४५३, सुमुख ४५४, सूक्ष्म ४५५, सुघोष ४५६, सुखद ४५७, सुहृत् ४५८, मनोहर ४५९, जितक्रोध ४६०, वीरबाहु ४६१, विदारण ४६२। भक्तोंको उत्तात्मा समर्पण करनेसे स्वापन ४६३, स्ववश ४६४, व्यापी ४६५, अनेकोंकी आत्मा होनेसे नैकात्मा ४६६, विविधि कर्म्मोंको करता है, इसलिये नैककर्म्मकृत् ४६७, गऊ और गोपियोंको वत्स दान कर नेसे वत्सर ४६८, भक्तोंके विषयमें स्नेहवान् होनेसे वत्सल ४६९, चरानेके लिये उसके बछड़े थे, इसलिये वत्सी ४७०, रत्नगर्भ ४७१, धनेश्वर ४७२, धर्म्मकी रक्षा करता है, इसलिये धर्म्मगुप ४७३, धर्म्मवेत्ता होनेसे धर्म्मकृत् ४७४, धर्म्मी ४७५, सूक्ष्मरूपसे सत् ४७६, स्थूलरूपसे असत् ४७७, विनाशी होनेसे क्षर ४७८, अविनाशी भावसे अक्षर ४७९, ज्ञातरूप नहीं है; किन्तु ज्ञानरूप है, इसलिये अविज्ञात सहस्रांशु ४८०, विधाता, उसके सब लक्षण प्रख्यात हैं, इसलिये कृतलक्षण ४८१। सब उसका नामस्वरूप है, इसलिये गभस्तिनेमि ४८२, सत्त्वस्थ ४८३, अत्यन्त विक्रमशाली होनेसे सिंह ४८४, भूतोंके उत्सवका ईश्वर है, इसही निमित्त भूतमहेश्वर ४८५, आदिदेव ४८६, महादेव ४८७, देवेश ४८८, देवभृद्गुरु ४८९। सबसे श्रेष्ठ होनेसे उत्तर ४९०, गोपति ४९१, रक्षाकर्त्ता होनेसे गोप्ता ४९२, ज्ञानगम्य ४९३, पुरातन ४९४, शरीररूप भूतगणको धारण करता है, इसलिये शरीर भूतभृत ४९५, भोक्ता ४९६, सुग्रीवको परम ऐश्वर्य्यशाली किया था; इसलिये कपीन्द्र ४९७, वह अनेक लोगोंके निकट सरल है, इसलिये भूरिदक्षिण ४९८। रघुनाथ रूपसे अनेक यज्ञ करके सोमपान किया था, इसही निमित्त सोमप ४९९, अमरगणकी रक्षा करनेसे अमृतप ५००, चन्द्रमाकी भांति आनन्दजनक होनेसे सोम ५०१, अनेक पुरुषोंको जीतनेसे पुरुजित ५०२, पुरुषोत्तम ५०३, विशेष नीति सम्पन्न होनेसे विनय ५०४, क्रोधादि जय करनेसे जय ५०५, सत्य सन्ध ५०६, दानपात्र अथवा दशार्ह वंशमें उत्पन्न होनेसे दाशार्ह ५०७, यादवोंका प्रभु है, इसही निमित्त सात्वतांपति ५०८, जीव ५०९, विनयी लोगोंका विनयिता साक्षी है, इसलिये विनयिता-साक्षी ५१०, मुक्तिदाता होनेसे मुकुन्द ५११, अमितविक्रम ५१२, देवताओंकी निधिकी भांति उपादेय है, इसलिये अम्भोनिधि ५१३, श्रीमान् अनन्त बलभद्रमें उसका चित्त सन्निविष्ट है, इस ही निमित्त अनन्तात्मा ५१४, महोदधिशय ५१५, अन्तक ५१६। अशुद्ध हृदयसे उत्पन्न नहीं होता, इसही लिये अज ५१७, महापूज्य होनेसे महार्ह ५१८, निज भक्तोंका चिन्तनीय होनसे स्वाभाव्य ५१९, जितामित्र ५२०, प्रमोदन ५२१, आनन्द ५२२, नन्दन ५२३, स्वयं समृद्धि सम्पन्न होनसे नन्द ५२४, सत्यधर्म्मा ५२५, तीनों लोकोंके बीच गरुड़के सहारे गमन करता है, इसलिये त्रिविक्रम ५२६। महर्षि ५२७, कपिलाचार्य्य ५२८, कृतकर्म्मोंको जानता है, इसलिये कृतज्ञ ५२९, रामावतारमें मेदिनीपति ५३०, त्रिपद ५३१, त्रिपशाध्यक्ष ५३२, महत् प्रभुत्वयुक्त होनेसे महाश्टङ्ग ५३३, सिद्धान्त कर्त्ता होनेसे कृतान्तकृत् ५३४। लोकोत्तर वाराह है, इसलिये महावाराह ५३५, गऊ चरानेसे गोविन्द ५३६, सेनाके सहित भली भांति शत्रुयुद्धमें गमन करता है, इसही निमित्त सुषेण ५३७, स्वर्णमय केयूरधारी होनेसे कनकाङ्गदी ५३८, परम रहस्यरूपसे गुह्य ५३९, गूढ़ाभिप्राय निबन्धनसे गभीर ५४०, दुष्प्रवेश होनेसे गहन ५४१, इन्द्रि-

योंका आग्राह्य होनेसे गुप्त ५४२, चक्रगदाधर ५४३। भक्तोंका हितसाधन करता है, इसलिये वेधा ५४४, स्वभक्तजन उसके अङ्ग हैं, इसलिये स्वाङ्ग ५४५, शत्रुगण उसे जीत नहीं सकते, इसही निमित्त अजित ५४६, कृष्णवर्ण होनेसे कृष्ण ५४७, समर्थ होनेसे दृढ ५४८, पूर्णरीतिसे भक्तोंका दुःख कर्षण करता है, इसलिये संकर्षण ५४६, अच्युत ५५०, अपनेको वरण करनेसे वरुण ५५१, वरुण लोकसे आगत होनेसे वारुण ५५२, संसारवृक्षको छेदन करता अथवा भक्तजनोंका कल्पतरु है, इसही हेतु वृक्ष ५५३, पुष्कराक्ष ५५४, उन्नतचित्त होनेसे महामना ५५५, समस्त ऐश्वर्य्य धर्म्म यश श्री ज्ञान और वैराग्यविशिष्ट है, इसलिये भगवान् ५५६, प्रलयकालमें ऐश्वर्य्य नष्ट करता है, इसलिये भगहा ५५७, नित्यसुखी होनेसे आनन्द ५५८, वनमाली ५५९, हलायुध ५६०, अदितिका अपत्य होनेसे आदित्य ५६१, ज्योतिसमूहमें कोटि सूर्य्य सदृश है, इसलिये ज्योतिरादित्य ५६२, सहिष्णु ५६३, गतिसत्तम ५६४, सुधन्वा ५६५, उसका परशु शत्रुओंको खण्ड खण्ड करता है, इसलिये खण्डपरशु ५६६, विरोधियोंके विषयमें दारुण है, इसलिये दारुण ५६७, धनदाता होनेसे द्रविणप्रद ५६८, वावन अवतारमें द्युलोक आक्रमण करनेसे दिवस्पृक् ५६९, सर्व्वदर्शी ५७०, वेदव्यास स्वरूपसे उत्पन्न हुए इसलिये व्यास ५७१, वाचस्पति ५७२, अयोनिज ५७३, वेदव्रत समाख्यात नामक तीनों साम उसके प्रतिपादक हैं, इस लिये त्रिसामा ५७४, वह ब्रह्मवित रूपसे साम गान करता है, इसही निमित्त साम ५७५, परमानन्द रूप होनेसे निर्व्वाण ५७६, अच्युतानन्द गोविन्द इत्यादि नामोंके उच्चारण करनेसे रोग नष्ट होता है। इसलिये भेषज ५७७, संसारतारक विद्याका उपदेशक होनेसे भिषक् ५७८, मोक्षके हेतु सन्न्यास किया करता है, इस ही निमित्त सन्न्यास सकृत् ५७९, सन्न्यासियोंको शान्तिका विषय उपदेश करता है, इसलिये शम ५८०, सुखमें अनासक्त है, इसलिये शान्त ५८१, प्रलयकालमें सब भूत उसमें निवास करते हैं, इसही निमित्त निष्ठा ५८२, अविद्या निवृत्तिरूपसे शान्ति ५८३, पुनरावृत्तिरहित अवलम्ब होनेसे परायण ५८४, शुभाङ्ग ५८५, शान्तित ५८६, स्रष्टा ५८७, पृथ्वी तलसे आमोदयुक्त होनेसे कुमुद ५८८, प्रलयकालमें जलमें शयन करता है, इस ही निमित्त कुवलेशय ५८९, गौवोंका हितकारी होनेसे गोहित ५९०, पृथिव्यादिका पति होनेसे गोपति ५९१, गोप्ता ५९२, धर्म्म ही उसका नेत्र है, इसलिये वृषभाक्ष ५९३, धर्म्म ही उसे प्रिय है, इस ही हेतु वृषप्रिय ५९४, कार्म्मोंसे निवृत्त नहीं होता, इस ही निमित्त अनिवर्त्ती ५९५, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त हुआ है, इसलिये निवृत्तात्मा ५९६, वेदोंके अर्थको गीतामें संक्षेप करनेसे संक्षेप्ता ५९७, उसे स्मरण करनेसे पवित्रता होती है, इस हेतु क्षेमकृत् शिव ५९८, श्रीवत्सवक्षा ५९९, श्रीवास ६००, श्रीपति ६०१, श्रीमतांवर ६०२, श्रीद ६०३, श्रीश ६०४, श्रीनिवास ६०५, श्रीनिधि ६०६, कर्म्मके अनुसार श्री प्रदान करनेसे श्रीविभावन ६०७, श्रीधर ६०८, श्रीकर ६०९, श्रेय ६१०, श्रीमान् ६११, लोकत्रयाश्रय ६१२, उसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियें उत्तम हैं, इस ही निमित्त स्वक्ष ६१३, सुन्दर अङ्गयुक्त होनेसे स्वङ्ग ६१४, अपरिमित आनन्द स्वरूप होनेसे शतानन्द ६१५, आनन्दित करनेसे नन्दी ६१६, ज्योतिर्गणेश्वर ६१७, विजितात्मा ६१८, कोई उसके सङ्ग विग्रह करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये विधेयात्मा ६१९, सत्कीर्त्ति ६२०, छिन्नसंशय ६२१, उदीर्ण ६२२, सर्व्वतश्चक्षु ६२३, उसका कोई ईश्वर नहीं है, इसलिये अनीश ६२४, सब समय सर्व्वस्थानोंमें व्याप्त रहनेसे शाश्वतस्थित ६२५, सीताके प्रणय समय समुद्रके तीर भूमिपर शयन करनेसे भूशय ६२६, सबको भूषित करनेसे भूषण ६२७,

भूति ६२८, विशोक ६२९, शोकनाशन, ६३०, अर्च्चिष्मान ६३१, अर्च्चित कुम्भकी भांति उसमें सब प्रतिष्ठित है, इसलिये कुम्भ ६३२, विशुद्धात्मा ६३३, विशोधन ६३४, अनिरुद्ध ६३५, अप्रतिरथ ६३६, प्रकृष्टधनशाली होनेसे प्रद्युम्न ६३७, अमितविक्रम ६३८, कालनेमि नाम असुरको मारनेसे कालनेमिनिहा ६३९, वि अर्थात् गरुड़को चलानेसे वीर ६४०, शूर अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे शौरि ६४१, शूरजनेश्वर ६४२, त्रिलोकात्मा ६४३, त्रिलोकेश ६४४, बड़े केशोंसे युक्त है, इसलिये केशव ६४५, केशी नाम दानवको मारनेसे केशिहा ६४६, पापोंको हरनेसे हरि ६४७, कामनीय रूप होनेसे कामदेव ६४८, भक्तोंकी वाञ्छा पूरण करनेसे कामपाल ६४९, [illegible]ामी ६५०, कान्त ६५१, वेदप्रणेता होनेसे [illegible]तागम ६५२, अनिर्द्देश्य-वपु ६५३, द्युलोक [illegible]ौर भूलोकमें व्याप्त होनेसे विष्णु ६५४, वीर [illegible]५५, अनन्त ६५६, धनञ्जय ६५७, तपस्या प्रभृ[illegible]के निमित्त हितू है, इसलिये ब्रह्मण्य ६५८, [illegible]कर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत् ६५९, सृष्टिकर्त्ता [illegible]नेसे ब्रह्मा ६६०, आत्मसंवेद्य ज्ञानस्वरूप है, [illegible]लिये ब्रह्म ६६१, तपकी वृद्धि करनेसे ब्रह्म[illegible]र्द्धन ६६२, तत्त्ववेत्ता होनेसे ब्रह्मवित् ६६३, प्रवर्त्तक होनेसे ब्राह्मण ६६४, ब्रह्मतत्त्वयुक्त इसलिये ब्रह्मी ६६५, जीवरूपसे मैं ही ब्रह्म [illegible]ऐसे ज्ञानविशिष्ट होनेसे ब्रह्मज्ञ ६६६, ब्राह्म[illegible]ण उसे प्रिय है, इसलिये ब्राह्मणप्रिय ६६७, [illegible]क्रम ६६८, महाकर्म्मा ६६९, महातेजा ६७०, [illegible]महोरग ६७१, महाक्रतु ६७२, महायज्वा ६७३, [illegible]महायज्ञ ६७४, महाहवि ६७५, स्तुतियोग्य [illegible]होनेसे स्तव्य ६७६, स्तवप्रिय ६७७, गुण प्रतिपा[illegible]दक शब्दरूपसे स्तोत्र ६७८, गुणकीर्त्तन क्रिया[illegible]रूपसे स्तुति ६७९, स्तुतिकर्त्ता होनेसे स्तोता [illegible]६८०, रणप्रिय ६८१, पूर्ण ६८२, पूरयिता ६८३, [illegible]पुण्य ६८४, पुण्यकीर्त्ति ६८५, अनामय ६८६, [illegible]मनोजव ६८७, तीर्थङ्कर ६८८, सुवर्ण रेता होनेसे वसुरेता ६८९, धनदाता होनेसे वसुप्रद ६९०, धनखण्डन करता है, इसलिये वसुप्रद ६९१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ६९२, मायासे स्वरूप आच्छादन करता है, इसलिये वसु ६९३, सर्व्वत्र अविनाशी रूपसे उसका मन बसता है, इस ही निमित्त वसुमना ६९४, ब्रह्ममें कर्म्मफल अर्पित होनेसे हवि ६९५, सद्गति ६९६, सत्कृति ६९७, सर्व्वत्र प्रतीयमान अधिष्ठान रूपसे सत्ता ६९८, उससे साधुओंको ऐश्वर्य्य मिलता है, इस लिये सद्भूति ६९९, साधु भक्तोंके अभीष्ट होनेसे सत्परायण ७००, उसकी सारी सेना बलवान है, इसलिये शूरसेन ७०१, यदुश्रेष्ठ ७०२, साधुओंका आश्रय होनेसे सन्निवास ७०३, यमुनाके उत्तम तटपर गोपालोंने उसे परिवेष्टन किया था, इसलिये सुयामुन ७०४, उसमें सर्व्वभूत निवास करते हैं, इसही निमित्त भूतावास ७०५, विशुद्ध सत्त्वमें अधिष्ठित होनेसे वासुदेव ७०६, सब प्राण प्रभृतिका आश्रय है, इसही हेतु सर्व्वासुनिलय ७०७, उसके शक्ति सम्पद्की सीमा नहीं है, इसलिये अनल ७०८, दर्पहा ७०९, दर्पद ७१०, दृप्त ७११, दुर्द्धर ७१२, अपराजित ७१३, विश्वमूर्त्ति ७१४, महामूर्त्ति ७१५, दीप्तमूर्त्ति ७१६, अमूर्त्तिमान् ७१७, अनेकमूर्त्ति ७१८, अव्यक्त ७१९, शतमूर्त्ति ७२०, शतानन ७२१, स्वगत सजातीय और विजातीय भेदरहित होनेसे एक ७२२, मायाके सहारे बहुरूप होनेसे अनेक ७२३, उससे सोम उत्पन्न होता है, इसलिये यज्ञरूपसे सव ७२४, सुख अथवा ब्रह्मा स्वरूपसे क ७२५, विचार्य्य होनेसे कि ७२६, भक्तोंके हितसाधनके हेतु उनके स्थानोंमें जाता है, इसलिये यत् ७२७, अनेक लीला फैलानेसे तत ७२८, अनुत्तम आश्रय होनेसे पदमनुत्तम ७२९, लोकबन्धु ७३०, लोकनाथ ७३१, माधव ७३२, भक्तवत्सल ७३३, हिरण्मय एरूप रूपसे सुवर्णवर्ण ७३४, हेमाङ्ग ७३५, वराङ्ग ७३६, चन्दनाङ्गी ७३७, धर्म्मरक्षाके हेतु

बीर असुरोंको मारनेसे बीरहा ७३८, उसके समान कोई नहीं हैं, इसलिये विषम ७३९, सब धर्म्मोंसे रहित होनेसे शून्य ७४०, आशाहीन आप्तकाम होनेसे घृताशी ७४१, निजरूपसे विचलित नहीं होता, इसलिये अचल ७४२, प्राणीरूपसे चल ७४३, अमानी ७४४, मानद ७४५, मान्य ७४६, लोकस्वामी ७४७, त्रिलोकधृक् ७४८, सुमेधा ७४९, गिरियज्ञमें इन्द्रमख निवारण करनेके लिये अन्नकूट भोक्ता रूपसे उत्पन्न होनेसे मेधज ७५०, धन्य ७५१, सत्यमेधा ७५२, शेषरूपसे धराधर ७५३, आदित्यरूपसे वर्षा करता है, इसलिये तेजोवृष ७५४, द्युतिधर ७५५, सर्व्वशस्त्रभृतावर ७५६, भक्तोंके द्वारा उपहृत पूजा प्रकर्षरूपसे ग्रहण करता है, इसलिये प्रग्रह ७५७, दण्डनीय लोगोंके विषयमें दण्डविधान करता है, इसलिये निग्रह ७५८, भक्तोंपर अनुग्रह विषयमें विहस्त है, इस ही हेतु व्यग्र ७५९, चतुर्शृङ्ग मन्त्र वर्ण होनेसे नैकशृङ्ग ७६०, गदनाम श्रीकृष्णका भ्राता है, उससे पहले जन्मलेनेसे गदाग्रज ७६१, हिरण्यगर्भादि रूपसे चतुर्म्मूर्त्ति ७६२, चतुर्व्वाहु ७६३, चतुर्व्यूह ७६४, चारों वेदोंका तात्पर्य्यविषय होनेसे चतुर्गति ७६५, मनबुद्धि, अहंकार और चित्तस्वरूप होनेसे चतुरात्मा ७६६, चारों आश्रमके धर्म्मरूपसे चतुर्भाव ७६७, चतुर्व्वेदवित् ७६८, जगत रूपसे एकपात् ७६९ संसारचक्रको पूर्ण रीतिसे आवर्त्तन करता है, इसलिये समावर्त्त ७७०, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त है, इसलिये निवृत्तात्मा ७७१, दुर्ज्जय ७७२, दुरतिक्रम, ७७३, दुर्लभ ७७४, दुर्गम ७७५, अत्यन्त दुःखसे प्राप्त होता है, इसलिये दुर्ग ७७६, दुरावास ७७७, दुरारिहा ७७८, शुभाङ्ग ७७९, लोकशारङ्ग ७८०, उसहीका यह सब उत्तम प्रपञ्च तन्यमान है, इसलिये सुतन्तु ७८१, उक्त तन्तुकी वृद्धि करनेसे तन्तुवर्द्धन ७८२, इन्द्र उसका कर्म्म है, इसलिये इन्द्रकर्म्मा ७८३, महाकर्म्मा ७८४, कृतकर्म्मा ७८५, चतुर्व्विध पुरुषार्थ प्रापण उसका आगमन प्रयोग है, इ लिये कृतागम ७८६, उससे जगत् उत्पन्न होत है, इसलिये उद्भव ७८७, जगतमें अत्यन्त सौन य्यशाली होनेसे सुन्दर ७८८, चिद्घनभव होनेसे सुन्द ७८९, रत्न सदृश उसकी नाभि इसलिये रत्ननाभ ७९०, वेदरूपी नेत्रयुक्त है, लिये सुलोचन ७९१, अर्च्चनीय होनेसे अर्क ७९२, अन्नदान करता है, इसलिये वाजसन ७९३, मत्स्यावतारमें उनके शृंग था, इसही निमित्त शृङ्गी ७९४, जयशील होनेसे जयन्त ७९५, सर्व्ववित् ७९६, जयी ७९७, उसके अवयव सुवर्णयुक्त हैं, इसलिये सुवर्ण बिन्दु ७९८, अक्षोभ्य ७९९, सर्व्ववागीश्वरेश्वर ८००, महाह्रद ८०१, महारथ होनेसे महागर्त्त ८०२, महाभूत ८०३, महानिधि ८०४, भूमण्डलमें आमोदित होता है, इसलिये कुमुद ८०५, कुन्दकी भांति स्वच्छफल दान करता है, इसही निमित्त कुन्दर ८०६, कुन्ददामकृत कौतुक रूपी होनेसे कुन्द ८०७, मेघकी भांति पापनाशन होनेसे पर्ज्जन्य ८०८, पावन ८०९, पवन ८१०, अमृतांश ८१ , अमृतवपु ८१२, सर्व्वज्ञ ८१३, सर्व्वतोमुख ८१४, नामगान नृत्यादिसे सहजहीमें प्राप्त होता है, इसलिये सुलभ ८१५, सुव्रत ८१६, सिद्ध ८१७, शत्रुजित ८१८, शत्रुतापन ८१९, सब भूतोंको नीचे रोक रखता है, इसलिये न्यग्रोध ८२०, अन्नादि रूपसे पोषण करता है, इसही निमित्त उदुम्बर ८२१, प्रपञ्चरूपसे विस्तीर्ण है, इसलिये अश्वत्थ ८२२, चाणूरनामक रन्ध्रदेशीय कन्सके मल्ल नाश किया था, इसही हेतु चाणूरान्ध्रनिसूद ८२३, सहस्रार्च्चि ८२४। काली, कराली, मनो जवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी विश्व रुचिनामी सप्तजिह्वा विशिष्ट अग्निस्वरूप होने सप्तजिह्व ८२५, सात समितयुक्त होनेसे सप्त ८२६, सूर्य्यरूपसे सप्तवाहन ८२७, अनस रहित होनेसे अमूर्त्ति ८२८, निष्पाप है, लिये अनघ ८२९, अचिन्त्य ८३०, भयकृ

भयभीत करता है, इसलिये भयकृत ८३१, भक्तोंका भय दूर करता है, इसलिये भयनाशन ८३२, सूक्ष्म होनेसे अणु ८३३, वृद्धिशील होनेसे बृहत् ८३४, कृश ८३५, स्थूल ८३६, कल्याण-धाता होनेसे गुणभृत् ८३७, परमार्थ होनेसे निर्गुण ८३८, नाममात्रसेही जगत्का उद्धार करता है, इसलिये महान् ८३६, कोई उसे धारण नहीं कर सकता, इसलिये अधृत ८४० स्वमहिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये स्वधृत् ८४१, उत्तम वेद उसके मुखसे निकलते हैं इस ही कारण स्वास्य ८४२, उसका प्रथमवंश है, इसही निमित्त प्राग्वंश ८४३, परीक्षितकी रक्षा करके पाण्डवोंकी वृद्धि करनेसे वंशवर्द्धन ८४४, अनन्त रूपसे पृथ्वीका भार धारण करता है, इसलिये भारभृत् ८४५, श्रुतिके तात्पर्य्य विषयी कृत होनेसे कथित ८४६, चित्तवृत्ति-निरोध युक्त होनेसे योगी ८४७, योगीश ८४८, सर्व्वकामद ८४६, संसाररूपी वनमें विचरनेवाले जीवोंके विश्रामस्थान होनेसे आश्रम ८५०, भक्त विरोधियोंको खेदित करनेसे श्रमण ८५१, प्रलयकालमें प्रजा समूहका नाश करता है, इसलिये क्षाम ८५२, उसके उत्तम छन्द संसारवृक्षके पत्ते हैं, इसलिये सुपर्ण ८५३, वायुको चलानेसे वायु-वाहन ८५४, धनुर्द्धर ८५५, धनुषके गुण दोषोंका जाननेवाला है, इसलिये धनुर्व्वेद ८५६, दमनकारी होनेसे दण्ड ८५७, मन्वादि-रूपसे प्रजा समूहको दमन किया था, इसही निमित्त दमयिता ८५८, दण्डके फल दम्यनिष्ठ होनेसे दम ८५६, अपराजित ८६०, सर्व्वसह ८६१, नियन्ता ८६२, नियम ८६३, अयम ८६४, सतो-गुणी होनेसे सत्त्ववान् ८६५, प्राधान्य रूपसे स्थित है, इसही निमित्त सात्त्विक ८६६, सत्य ८६७, सत्यधर्म्म परायण ८६८, पुरुषार्थकांक्षी पुरुषोंका अभिप्रेत होनेसे अभिप्राय ८६६, प्रियार्ह ८७०, असनादिसे पूज्य है, इसलिये अर्ह ८७१, प्रियकृत ८७२, प्रीतिवर्द्धन ८७३, वह आकाशमें गमन करता है, इसही कारण विहाय सगति ८७४, द्युतिशील होनेसे ज्योति ८७५, सुरुचि ८७६, देवताओंके उद्देश्यसे दी हुई हवि भोजन करनेसे हविभुक् ८७७, विभु ८७८, रस आदान करनेसे रवि ८७६, विशेष-रूपसे रुचिशील है, इसलिये विरोचन ८८०, आकाशसे गमन करनेसे सूर्य्य ८८१, जगत् सृष्टिकर्त्ता होनेसे सविता ८८२, सूर्य्य उसका नेत्र है, इसलिये रविलोचन ८८३, उसका अन्त नहीं है, इसही निमित्त अनन्त ८८४, अग्निरूपसे हवनीय घृतादि भोजन करता है, इसही कारण हुतभुक् ८८५, प्रकृतिका कार्य्यदर्शी होनेसे भोक्ता ८८६, अभक्तोंका सुख खण्डन करता है, इसही हेतु सुखद ८८७, अनेकवार बहुतेरे स्थानोंमें विविध भक्तोंसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये अनेकज ८८८, हिरण्य गर्भ रूपसे अग्रज ८८६, अनिर्व्वेद शून्य होनेसे अनिर्व्विस्थ ८६०, साधुओंके विषयमें क्षमा प्रदर्शित करनेसे सदामर्षी ८६१, सब लोकोंका अधिष्ठान कारण होनेसे लोकाधिष्ठान ८६२, अत्यन्त शक्तिमान् होनेसे अद्भुत ८६३, कालरूप होनेसे सनात् ८६४, ब्रह्मादिकाभी कारण है, इसलिये सनातन तम ८६५, कर्द्दम प्रजापतिके द्वारा देवहूतीके गर्भसे कपिल रूपसे उत्पन्न हुए, इसलिये कपिल ८६६, वराहश्रेष्ठ रूपसे कपि ८६७, जगत् उसमें लीन होता है, इसलिये अव्यय ८६८, स्वस्तिद ८६६, अभक्त जनोंका स्वस्ति छेदन करता है, इस ही निमित्त स्वस्तिकृत् ६००, कल्याणरूप होनेसे स्वस्ति ६०१, भक्तजनोंका मङ्गल पालन करता है, इसलिये स्वस्तिभुक् ६०२, कल्याण विषयमें अनुकूल रहता है, इसही निमित्त स्वस्तित ६०३, दक्षिण ६०४, अरौद्र ६०५, कुण्डली ६०६, चक्री ६०७, विक्रमी ६०८, उर्ज्जितशासन ६०६, वचनसे उसका वर्णन नहीं होसकता, इसलिये शब्दातिग ६१०, शब्दोंका अपने सङ्ग एक तात्पर्य्य करता है,

इसही निमित्त शब्दसह ६११, संसार तापनाशक होनेसे शिशिर ६१२, शर्व्वरीकर ६१३, अक्रूर ६१४, मनोहर होनेसे पेशल ६१५, शीघ्रकारी होनेसे दक्ष ६१६, क्षमिणाम्बर ६१७, विद्वत्त ६१८, वीतभय ६१९, पुण्यश्रवण कीर्त्तन ६२०, संसारसे उत्तीर्ण करता है, इसलिये उत्तारण ६२१, पापोंको नाश करनेसे दुष्कृतिहा ६२२, पुण्य करता है वा कहता है, इसलिये पुण्य ६२३, दुस्वप्ननाशन ६२४, संसारकी विविधिगति हरनेसे वीरहा ६२५, रक्षा करता है, इसलिये रक्षण ६२६, विद्या विनय वृद्धिके निमित्त वर्त्तमान है, इसलिये सन्त ६२७, जीवित रखता है, इसलिये जीवन ६२८, विश्वव्यापक होनेसे पर्य्यवस्थित ६२९, अनन्तरूप ६३०, अनन्तश्री ६३१, जितमन्यु ६३२, भयापह ६३३, कर्म्मके अनुरूप फलदाता होनेसे न्याय ६३४, समवेत होनेसे चतुरस्र ६३५, गम्भीरचित्त है, इसही निमित्त गभीरात्मा ६३६ विविधफल दान करता है, इसलिये विदिश ६३७, विशेष रूपसे आदेश करता है, इसलिये व्यादिश ६३८, वेदरूपसे आदेशकर्त्ता है, इसही निमित्त दिश ६३९, अनादि पृथवीकी भांति सबका अवलम्ब है, इसलिये भू ६४०, पृथ्वीकी शोभा है, इसलिये भुवोलक्ष्मी ६४१, सुवीर ६४२, रुचिराङ्गद ६४३, उस होसे प्रद्युम्न प्रभृतिकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जनन ६४४, जन्ममात्रसेही आदि हैं, इसलिये जन जन्मादि ६४५, भयका हेतु होनेसे भीम ६४६, भीमपराक्रम ६४७, भौतिकाश्रय महाभूतोंका आधार है, इसलिये आधारनिलय ६४८, उसका कोई भी धारक नहीं है, इसही हेतु अधीता ६४९, पुष्पकी भांति उसकी हांसी आनन्द जनक है, इसलिये पुष्पहास ६५०, प्रकृष्ट जागरण विशिष्ट होनेसे प्रजागर ६५१, ऊर्द्ध्वग ६५२, सत्पथाचार ६५३, प्राणद ६५४, प्रणव ६५५, भक्तोंके सहित व्यवहार करता है, इसलिये पण ६५६, यादवोंमें मर्य्यादा रूप होनेसे प्रमाण ६५७, जीवोंका अवलम्ब है लिये प्राणनिलय ६५८, प्राणभृत् ६५९, प्रा[illegible]वन ६६०, अबाधित सत्यस्वरूप होनेसे ६६१, तत्त्ववित् ६६२ एकात्मा ६६३, जन्म मृत्यु ६६५, जरातिग ६६६, भूर्लोक भु[illegible] और स्वर्ग लोकमें कल्पवृक्षकी भांति अभी[illegible] प्रद है, इसलिये भूर्भुवःस्वस्तरु ६६७, भक्तों[illegible] तारनेसे तार ६६८, सर्व्व साधारण रूपसे पि[illegible] है, इसलिये सपिता ६६९, पितामहका पिता [illegible] इसलिये प्रपितामह ६७०, पूज्य है, इस[illegible] यज्ञ ६७१, यज्ञपति ६७२, यजमान रूपसे यज्[illegible] ६७३, यज्ञाङ्ग ६७४, वह यज्ञसे प्राप्त होता [illegible] इसलिये यज्ञवाहन ६७५, यज्ञभृत् ६७६, य[illegible]कृत् ६७७, यज्ञी ६७८, यज्ञभुक् ६७९, युधिष्ठि[illegible]रका अनेक उपायसे सिद्ध कराया, इसलि[illegible] यज्ञसाधन ६८०, यज्ञान्तकृत् ६८१, यज्ञगु[illegible] ६८२, उसहीसे सब प्राणी भक्षण करते हैं, इ[illegible] लिये अन्न ६८३, भोक्ता होनेसे आनन्द ६८[illegible] आत्माही उसको योनि अर्थात् उपदान कार[illegible] है, इसलिये आत्मयोनि ६८५, स्वयजात ६८[illegible] खनसम्वलित होनेसे वैखान ६८७, सामगाय[illegible] ६८८, देवकीनन्दन ६८९, स्रष्ट ६९०, क्षिती[illegible] ६९१, पापनाशन ६९२, शङ्खभृत् ६९३, नन्दक नाम खड्गधारी होनेसे नन्दकी ६९४, चक्री ६९५, शार्ङ्ग धन्वी ६९६, गदाधर ६९७, रथाङ्ग पाणि ६९८, अक्षोभ्य ६९९, सर्व्वप्रहरणायुध १०००, ओं नमः। यह कीर्त्तनीय महात्म केशवका दिव्य सहस्र नाम अशेष रूपसे वर्णित हुआ। जो मनुष्य सदा इसे सुनता, सुनाता व[illegible] कहता है, उसे इस लोक अथवा परलोकमें कुछभी अशुभ प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण इसे पाठ करनेसे वेदान्त पारदर्शी होता, क्षत्रियको विजय प्राप्त होती, वैश्य धन सम्पन्न होता और शूद्रको सुख मिलता है। धर्मार्थी मनुष्य धर्म लाभ करते, अर्थार्थी पुरुषोंको अर्थलाभ हुआ करता है। कामीजनोंको काम प्राप्त होता

ौर प्रजार्थी लोगोंको प्रजा प्राप्त हुआ करती ै। जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठके पवित्र ौर तद्गतचित्त होकर वासुदेवका यह सहस्र-ाम पाठ करते हैं, उन्हें विपुल यश स्वजनोंके नकट प्रधानता, अचला लक्ष्मी और उत्तम ल्याण प्राप्त होता है, उन्हें किसी स्थानमें य नहीं होता, वीर्य्य और तेज लाभ करते, रोगी, द्युतिमान और बलरूपसे युक्त होते हैं, ोगार्त्त पुरुष इसे सुननेसे रोग रहित होता ौर बद्ध मनुष्य कारागारसे छूट जाते हैं। ीत मनुष्य भयसे और विपद्ग्रस्त आपदोंसे ुक्त हुआ करते हैं; मनुष्य भक्तियुक्त होकर ादा पुरुषोत्तमका इन्हीं सहस्रनामोंके सहारे तव करनेसे शीघ्रही क्लेशोंसे छूटता है और ासुदेवका आश्रय करने और वासुदेव परायण ोनेसे सब पापोंसे रहित तथा पवित्रचित्त ोकर ब्रह्मपद पाता है। वासुदेवके भक्तोंको दाचित अशुभ नहीं होता और न उन्हें जन्म त्यु, जरा तथा व्याधिका भय होता है। जो ोग श्रद्धा और भक्तिपूर्व्वक इस स्तवका पाठ रते हैं, वे आत्मसुख, क्षमा, श्री, धृति और ीर्त्तियुक्त होते हैं,। पुरुषोत्तममें भक्तियुक्त ुण्यवान पुरुषोंको क्रोध, मत्सरता, लोभ और शुभ बुद्धि नहीं होती। चन्द्र, सूर्य्य, स्वर्ग और क्षत्रोंके सहित आकाश मण्डल सब दिशा था समुद्र महानुभाव वासुदेवके वीर्य्यसे विधृत ो रहा है। सुरासुर, गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस और रगोंके सहित सचराचर जगत् श्रीकृष्णके वश-र्त्ती होकर विद्यमान है। इन्द्रियें, मन, बुद्धि, त्त्व, तेज, बल, धृति, शरीर, जीव, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ सभी वासुदेवमय हैं। सब शास्त्रोंकी पेक्षा आचार ही पहले परिकल्पित होता है, आचारसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है और च्युत वासुदेव ही धर्म्मके प्रभु हैं। ऋषि, पितर, देवता महाभूत, सब धातु और स्थावर जङ्गमात्मक यह जगत् नारायणसे उत्पन्न हुआ है। योगज्ञान, सांख्ययोग, सब विद्या, शिल्पकर्म्म वेद, शास्त्र, समस्त विज्ञान, ये सब जनार्द्दनसे प्रकट हुए हैं। भूतात्मा अव्यय एक मात्र विष्णु ही महद्भूत और अनेक रूपसे पृथक् भूत हैं, वही विश्वभुक् त्रिभुवनमें व्यापक होके भोग कर रहा है। जो मनुष्य कल्याण तथा सुखलाभकी इच्छा करे, वह वेदव्यासके कहे हुए भगवान विष्णुका यह स्तोत्र पाठ करे, जो लोग जगतकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण जन्मरहित कमल-नयन विश्वेश्वरदेवका भजन करते हैं, उनको कदापि पराभव नहीं होतो।

१४९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्र विशारद महा-प्राज्ञ पितामह! कैसे जप्य मन्त्रको सदा जप-नेसे महत् धर्म्मफल होता है? प्रस्थानकाल, प्रवेशके समय अथवा कार्य्य आरम्भ होनेपर दैव वा श्राद्धकालमें कौनसा मन्त्र कार्य्य सिद्ध करता है? जिसे जपनेसे शान्ति, पुष्टि, रक्षा, शत्रुहानि तथा भय विनाश होता है, और जो वेदतुल्य हो, आप उसे वर्णन कर सकते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! तुम एकाग्रचित्त होकर यह व्यासदेवका कहा हुआ मन्त्र सुनो, यह सावित्री द्वारा विरचित हुआ है और इसे पाठ करनेसे तुरन्तही पाप छूटता है। हे अनघ! हे पाण्डव! जिसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है, मैं उस मन्त्रकी सारी विधि कहता हूं, तुम सुनो। हे धर्म्मज्ञ नृपवर! रात्रि और दिनमें जिसके सहारे मनुष्य पापपु-ञ्जसे लिप्त नहीं होता, उसे मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे नृपनन्दन! जिसे सुननेसे पुरुष आयुमान होता और सुसिद्ध अर्थ होकर इस लोक तथा पर-लोकमें प्रमुदित हुआ करता है। हे महाराज! पहले समयमें क्षत्रधर्म्मनिष्ठ सत्यधर्म्म परायण सत्तम राजर्षियोंके द्वारा यह मन्त्र सेवित हुआ

था। हे भरतश्रेष्ठ। जो सब राजा संयत होकर अव्यग्रभावसे सदा इस सन्त्रका जप करते हैं, उन्हें उत्तम श्री प्राप्त हुआ करती है। महाव्रत वशिष्ठदेवको नमस्कार है, वेदनिधि पराशरको प्रणाम करके महोरग अनन्तदेवको नमस्कार है तथा इसलोकमें अक्षय सिद्धों और ऋषियोंको नमस्कार है। श्रेष्ठोंके बीच श्रेष्ठ देवताओंकेभी देव, वरणीयोंके वरद शिवस्वरूप सहस्रशीर्ष, सहस्रनाम जनार्द्दनको नमस्कार है। अजैकपाद, अहिबुध्न, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवनईश्वर, इन नामोंसे त्रिलोकेश्वर ग्यारह रुद्र प्रसिद्ध हैं, शतरुद्रीकेबीच उन्हीं महानुभाव रुद्रगणके एक सौ नाम वर्णित हैं। अंशभर्ग, मित्र, जलेश्वर, वरुण, धाता, अर्य्यमा, वैजयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य काश्यपकी सन्तान कहाते हैं। धव, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये अष्टवसु वर्णित हुए हैं। नासत्य और दस्र, दोनों अश्विनीकुमार विख्यात् हैं, ये मार्त्तण्ड अर्थात् सूर्य्यके आत्मज सज्ञाके नासिकासे बाहिर हुए हैं। इसके अनन्तर सब लोकोंके कर्म्मसाक्षी, अज्ञान और सुकृतकार्य्य वेत्ता, सब भूतोंमें अदृश्य रहकेभी जो त्रिदशेश्वरगण शुभाशुभ कर्म्मोंको अवलोकन करते हैं, वेही मृत्यु काल, विश्वदेवगण, पितृगण, मूर्त्तिमान तपोधनगण, तपस्या और मोक्षपरायण, शुचिस्मित सिद्ध मुनिगण, जो कीर्त्तनकारी मनुष्योंको शुभ सम्प्रदान करते हैं, जो दिव्यतेज प्रभावसे प्रजापतिके बनाये हुए लोकोंमें निवास करते हैं, सर्व्वलोकों और समस्त कार्य्योंमें जो प्रयत हुआ करते हैं, प्राणोंके ईश्वर, इन सबके नामकीर्त्तन करनेसे मनुष्य सदा विपुल धर्म्मार्थ कामसे युक्त होता है और उसे विश्वेश्वरकृत शुभ लोक प्राप्त होते हैं। ये तैंतीस देवगण सब भूतोंके ईश्वर हैं,

महाकाय नन्दीश्वर ग्रामणी, वृषभध्वज, ग… श्वर और विनायक सब लोकोंके ईश्वर हैं… सौम्यगण, रौद्रगण, योगभूतगण, समस्त… ज्योतिष, नदियें, आकाश, पतगेश्वर, सुप… पृथ्वीके समस्त सिद्ध तपस्वी, स्थावर-जङ्गम… हिमालय पर्वतके सहित चारों समुद्र,… सदृश पराक्रमी शिवके अनुचर वृन्द, देव… विष्णु; विष्णु और अम्बिकाके सहित स्क… इन देवताओंको सावधान होके स्मरण कर… मनुष्य सब पापोंसे छूटता है। इसके अनन्… माननीय ऋषिसत्तमोंका नाम कहता हूं… यवक्रीत, रैभ्य, अर्व्वावसु, परावसु, औशि… काक्षीवान्, अङ्गिराके पुत्र बल, मेधातिथि… बर्हिषदेवकेपुत्र कण्वऋषि, ये सब कोई ब्रह्म… मय और लोक भावन कहके वर्णित होते… ये सब रुद्र अग्नि और वसुतुल्य प्रभाशाली सु… गण शुभलाभ करते, ये भूलोकमें शुभ… करके द्युलोकमें देवताओंके सहित दिव्य… किया करते हैं। महेन्द्रके गुरु सप्तर्षि पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं, जो लोग साव- धान होके इनका नाम लेते हैं, वे इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं। उन्मुच, प्रमुच, वीर्य्य- वान् स्वस्त्यात्रेय दृढव्य, ऊर्द्धबाहु, तृणसोम, अङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान अगस्त्य, ये सातों धर्म्मराजके पुरोहित होकर दक्षिण दिशाको अवलम्बन किये हैं। दृढेयु, ऋतेयु, कीर्त्तिमान, परिव्याध, आदित्य तुल्य एकत, द्वित और त्रित, अत्रिके पुत्र धर्म्मात्मा सारस्वत ऋषि ये सातो वरुणके पुरोहित पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं। अत्रि भगवान वशिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज कुशि- कवंशोद्भव विश्वामित्र, ऋचिकके पुत्र उग्र और प्रतापशाली जमदग्नि, ये सातो धनेश्वर कुबेरके गुरु उत्तर दिशामें वास करते हैं। दूसरे स… मुनि सब दिशाओंमेंही अधिष्ठित हैं, वे मनुष्योंके कीर्त्ति और कल्याणकर तथा लोकभावन कहे…

वर्णित हुए हैं। धर्म्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल, ये सातों धरणीधर हैं। भृगुराम, व्यासदेव, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और लोमश, ये दिव्य मुनि हैं। इन मुनियोंके बीच प्रत्येक सात सात प्रकारके हैं, लोकमें येही शान्ति और स्वस्ति कर रहे हैं, ये जिस दिशामें रहें, उसही ओर मुह करके उनका शरणागत होवे, ये सब भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन रूपसे विख्यात् हैं। सम्वर्त्त, मेरुसावर्णि, धार्म्मिक मारकण्डेय, सांख्ययोग, नारद और महर्षि दुर्वासा, ये अत्यन्त तपनिरत तथा दान्त होनेसे प्रसिद्ध हैं। दूसरे ब्रह्मलोकनिवासी मुनिगण रुद्रसदृश कहके वर्णित होते हैं। इनका नाम लेनेसे अपुत्र पुरुषको पुत्र लाभ होता, दरिद्र पुरुष धन पाते और धर्म्मार्थ काम विषयमें सिद्धिलाभ किया करते हैं। पृथिवी जिसकी कन्या हुई थी, उस वेणु नृपनन्दन प्रजापति सार्व्वभौम पृथु-राजाका नाम लेवे। सूर्य्यवंशीय महेन्द्रसदृश पराक्रमी त्रिलोक विख्यात इलापुत्र पुरुरवा जो बुधका प्रियपुत्र है, उस वसुधाधिपका नाम लेवे। त्रिलोक विख्यात् वीरवर भरतका नाम और जिन्होंने सतयुगमें गामेधयज्ञ किया था, उस परम तेजस्वी महाराज रन्तिदेवका नाम कीर्त्तन करना योग्य है, विश्वविजयी तपस्यायुक्त सुलक्षण लोक-हितकर महा तेजस्वी राजर्षि श्वेतका नाम लेवे। जिसने महादेवको प्रसन्न किया था, जिसके निमित्त अन्धक दैत्य मारा गया, जो महादेवकी कृपासे भूमण्डलमें गङ्गा देवीको ले आया, जिसने सगर सन्तानोंको प्लावित तथा उद्धृत किया है, उस परम तेजस्वी राजर्षि भगीरथका नाम लेवे। अग्नि सदृश महा रूपवान् महातेजस्वी उग्रकाय महाबल कीर्त्तिवर्द्धन नृपनन्दनगणका नाम कीर्त्तन करना योग्य है। देवगण, ऋषिगण, जगत्के नियन्ता नृपतिगण परम सांख्ययोग और हव्य कव्य परम श्रुतिपरायण परब्रह्मरूपसे वर्णित होते हैं। हे भारत। सर्व्व भूतोंके मङ्गलकारी अनेक विषयोंको वर्णन किया है, यह सब व्याधियोंका नाश और सर्व्व कार्य्योंमें पुष्टिसाधन करता है, इसलिये सबेरे सन्ध्याके समय संयत होके इन्हें स्मरण करे। येही रक्षा करते, येही वर्षा करते, येही दीप्ति लाभ करते है, येही वहन तथा सृजन करते हैं, येही विनायक श्रेष्ठ, दक्ष, दान्त और जितेन्द्रिय हैं, इसलिये ये लोग कीर्त्तित होनेसे मनुष्योंके समस्त अशुभ दूर किया करते हैं, ये सब महात्मा पाप और पुण्यके साक्षी स्वरूप हैं, जो लोग भोरके समय उठके इन सब महात्माओंका नाम लेते, वे कल्याण परम्परा उपभोग किया करते हैं। जो मनुष्य सदा इनका नाम लेते हैं, उन्हें अग्नि और चोरका भय नहीं होता, उनके मार्गको कोई नहीं रोकता तथा उनके दुःस्वप्न नष्ट हुआ करते हैं। जो ब्राह्मण संयत होकर समस्त दीक्षाकालमें इसे पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूटता और स्वस्तिमान होके गृहमें गमन करनेमें समर्थ होता है। न्यायवान्, आत्मनिरत, क्षान्त, दान्त, अनुसूयक, रोगार्त्त अथवा व्याधियुक्त मनुष्य इसे पाठ करनेसे पाप-रहित हुआ करते हैं। गृहमें इसे पाठ करनेसे कुलका मङ्गल होता है, जो लोग क्षेत्रमें पाठ करते हैं, उनके क्षेत्रमें सब अङ्कुर उत्पन्न होते हैं, गमनशील मनुष्यके मार्गमें मङ्गल हुआ करता है, अन्य ग्राममें गया हुआ मनुष्य इसे पाठ करते हुए आत्म सुतके सहारे धन, बीज और औषधियोंकी रक्षा करे। संग्रामके समय इस मन्त्रको जपनेवाले क्षत्रियोंके सब शत्रु विनष्ट होते हैं और उसका कल्याण हुआ करता है। देव और पितृ कार्य्यमें जो पुरुष इन सब नामोंका पाठ करता है, उसके पितर और देवगण हव्य कव्य भोजन किया करते हैं। जो लोग इन नामोंका पाठ करते, उन्हें व्याधि नहीं होती, स्वापदोंका भय नहीं रहता, हिंस्र

और तस्करोंसे भय नहीं होता, पाप घटता तथा वे पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग उत्तम सावित्री पाठ करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णों विशेष करके सदा आश्रमोंको शान्ति किया करते है। जो लोग सावित्री गुण कीर्त्तनरूप महत् वेद ग्रहण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता और वे परमगति पाते हैं, गौवोंके बीच सावित्री पाठ करनेसे गौवें बहुवत्सला होती है। प्रस्थानकाल वा प्रवेशके समय जिस किसी अवस्थामें स्थित होके सर्व्वदा ही सावित्री पाठ करे। हे नरनाथ! जपपरायण होमनिष्ठ और सदा सावधानचित्त ऋषियोंका यह परम जप्य तथा गुप्त मन्त्र है। पहले समयमें यह पराशर-सम्मत पुरातन इतिहास यथार्थ रीतिसे देवराजके निकट वर्णित हुआ था, वही इतिहास पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप कहा गया। यह सनातन ब्रह्म स्वरूप, सर्व्वभूतोंका हृदय तथा सनातनी श्रुति है, चन्द्रवंशीय, सूर्य्यवंशीय, रघुवंशीय तथा कुरुवंशीय राजा लोग सदा पवित्र होकर यह परम पवित्र सावित्री पाठ किया करते हैं। देवताओंके निकट सप्तर्षिमण्डल और ध्रुव नक्षत्रके समीप इसे पाठ करनेसे सब पाप विनष्ट होते हैं और इसका पाठ अशुभसे सदा विमुक्त करता है। कश्यप गौतम प्रभृति वृद्धगण, और भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अगस्त्य, वृहस्पति प्रभृति ब्रह्मर्षिगण सेवित ऋचीक पुत्रोंके द्वारा अधिगत यह भरद्वाज सम्मत सावित्री वशिष्ठके निकट पाके देवराज और वसुओंने दानवोंका दल नष्ट किया था। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेके सींगसे युक्त एक सौ गऊ दान करते और दिव्य भारत कथाको नित्य पाठ किया करते हैं, उनके सदृश इसे पाठ करनेसे फल होता है। भृगुका नाम लेनेसे विशेष रीतिसे धर्म्मकी वृद्धि होती है, वसिष्ठको प्रणाम करनेसे वीर्य्यकी वृद्धि हुआ करती है, रघुको नमस्कार करनेसे पुरुष युद्धमें विजयी होता है और दोनों अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होता। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट शाश्वती ब्रह्म सावित्री वर्णित हुई। हे भारत! तुम अब भी विवक्षु हो, इसलिये और जो सुननेकी इच्छा हो उसे कहो।

१५० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये? किनके सङ्ग कैसा व्यवहार करना होता है? कैसे पुरुषके साथ कैसा आचार करनेसे मनुष्य हिंसित नहीं होता?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंको परिभव करनेसे देववृन्द भी अवसन्न होते हैं, ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे पुरुष हिंसित नहीं होता। ब्राह्मण ही पूज्य हैं, वेही नमस्कारके योग्य है, उनके समीप पुत्रकी भांति वर्त्तमान रहे, वे मनीषि ब्राह्मण लोकोंको धारण कर रहे हैं। जो लोग धन परित्याग करके अभिराम अथवा जो वाक्यसंयममें रत हैं, वेही सब लोगोंके लिये महान् धर्म्मसेतु स्वरूप हैं। जो व्रतवती रमणीय और सेवकोंके निधान हैं तथा जो लोक शास्त्रोंके प्रणेता हैं, वे ही यशस्वी होते है। तपस्या ही जिनका नित्यधन और वाक्य ही विपुल बल है, वे सूक्ष्मदर्शी धर्म्मज्ञ ब्राह्मण धर्म्मप्रभव हैं। धर्म्मकामना करनेवाले मनुष्य सदा सत्यधर्म्ममें स्थित रहते हैं, वे ही धर्म्मसेतुस्वरूप हैं, जिन्हें सम्यक् रीतिसे ही धर्म्मसेतुस्वरूप हैं, जिन्हें सम्यक् रीतिसे अवलम्बन करके चार प्रकारकी प्रजा जीवन व्यतीत करती है। सनातन यज्ञवाही ब्राह्मण लोग सबके नेता और मार्ग प्रदर्शक हैं, वेही पितृ पितामह सम्बन्धीय गुरुतर भारोंको सदा वहन करते हैं। साधुओंकी भांति जो लोग विपुल भार उठानेसे अवसन्न नहीं होते, ब्राह्मण देवता और अतिथिगण जिनके सुखस्वरूप है,

जो हव्य कव्यका अग्रभाग भोजन करते और भोजनमात्रसे ही तीनों लोकोंको महत् भयसे परित्राण किया करते हैं, वेही सब लोकोंके दीपस्वरूप, वेही नेत्रवान मनुष्योंके नेत्रस्वरूप हैं, समस्त शिक्षा और श्रुति ही जिनका धन है, जो निपुण, मोक्षदर्शी, सब लोकोंके गतिज्ञ और अध्यात्मगति चिन्ताशील हैं। जो आदि मध्य और अन्तको ज्ञाता है, जिनके सब सन्देह दूर हुए हैं, जो परावर, विशेषज्ञ हैं, वेही परमगति पाते हैं, जो लोग विमुक्त, पापरहित, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, सनार्ह और मानवित् महात्माओंके द्वारा सदा मानित हैं, जो चन्दन और मलपङ्कको समान जानते हैं, भोज्य और अभोज्य वस्तुमें तुल्य बुद्धि किया करते हैं, दुकूल और पटवस्त्रमें जिन्हें सम-ज्ञान है, बहुत दिनोंतक बिना भोजन किये जो लोग निवास कर सकते हैं, जो संयतेन्द्रिय होकर स्वशाखोक्त वेदपाठके समय शरीर सुखाया करते हैं, जिनकी कोपाग्नि आजतक भी दण्डकमें उपशान्त नहीं हुई; जो देवताओंके भी देवता, कारणोंके भी कारण और प्रमाणोंके भी प्रमाण-स्वरूप हैं; कोई ज्ञानवान् मनुष्य उन ब्राह्मणोंको अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता; वे अदैवको दैव कर सकते और दैवको अदैव करनेमें समर्थ हैं, तथा क्रुद्ध होनेपर दूसरे लोकों वा लोकपालोंको उत्पन्न कर सकते हैं। जिन महात्माओंके शापसे समुद्र भी अप्रिय हुआ है, जिनके बीच वृद्ध, बालक सभी सम्मानके योग्य हैं, तप विद्या विशेषके सहारे वे लोग परस्परमें सम्मान प्रदर्शित किया करते हैं। अविद्वान् ब्राह्मण भी देवस्वरूप और महत् पवित्र पात्र है, विद्वान् ब्राह्मण उससे अधिक देवतुल्य और पूर्णसमुद्र सदृश है। जैसे संस्कृत और असंस्कृत अग्नि महत देवता है, वैसे ही अविद्वान् अथवा विद्वान् ब्राह्मण भी महत् देवतास्वरूप है। तेजस्वी अग्नि श्मशानमें भी दूषित नहीं होती, विधिपूर्व्वक हविर्यज्ञ और गृहके बीच विशेष रूपसे शोभित होती है। ब्राह्मण यदि सदा अनिष्ट कार्य्योंमें भी वर्त्तमान रहे, तौभी सब भांतिसे माननीय है, उसे परम देवता जानो।

१५१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ नरनाथ! किस प्रकारके फलको देखके तथा कैसे कर्म्मोदयको जानकर आप उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें पवन और अर्ज्जुनके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। माहिष्मती नगरीमें सहस्र भुजयुक्त महाबली श्रीमान् कार्त्तवीर्य्य-अर्ज्जुन नाम राजा समस्त जगतका प्रभु हुआ था। उस हैहयवंशीय सत्यपराक्रमी वीरने रत्नाकरवती ससागराम्बरा सद्वीपा समस्त पृथ्वीमण्डलको शासित किया था, उन्होंने किसी कारणसे दत्तात्रेय मुनिको निज वित्त प्रदान किया था, उस कृतवीर्य्यात्मज अर्ज्जुनने क्षत्रधर्म्म विनय और प्रश्रयान्वित होकर उस मुनिकी आराधना की थी। मुनिवरने प्रसन्न होकर उसे तीन वर मांगनेको कहा, राजा मुनिके समीप तीन वर पानेकी बात सुनके बोला, कि सेनाके बीच मेरी हजार भुजा होवें और गृहमें इस विषयमें अन्यथा हो। युद्धमें सैनिक-पुरुष मेरी हजार भुजा अवलोकन करें, मैं संशितव्रती होकर पराक्रमसे समस्त पृथ्वीमण्डल जय करूंगा और धर्म्मपूर्व्वक उसे पाकर आलसरहित होके पालन करूंगा। हे द्विजसत्तम! मैं इन्हीं तीनों वरोंको मांगता हूं, परन्तु आपके समीप मैं और एक चौथा वर पानेके लिये प्रार्थना करता हूं। हे अनिन्दित! आप मुझपर कृपा करके उसे प्रदान कर सकते हैं, यदि मैं आपके आश्रयमें रहके मिथ्या

होऊं, तो साधुगण मुझे अनुशासित करें। ब्राह्मणने राजाका ऐसा बचन सुनके उसे तथास्तु कहके वर दिया। इस ही प्रकार उस दीप्त तेजस्वी राजाने ब्राह्मणसे वर पाया था। अनन्तर वह राजा सूर्य्य और अग्निसदृश तेजस्वी रथपर चढकर बीर्य्य सम्मोहके वशमें होकर कहने लगा,—"धैर्य्य, बीर्य्य, यश, शौर्य्य, पराक्रम और तेजमें मेरे समान कौन है?" उसका बचन शेष होनेपर आकाशमें 'अशरीरिणी आकाशवाणी हुई। रे मूढ। क्या तू नहीं जानता, कि ब्राह्मण क्षत्रियसे श्रेष्ठ हैं; क्षत्रिय-ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर इस लोकमें प्रजाशासन करते हैं।'

अर्ज्जुन बोले, मैं सन्तुष्ट होनेपर सबभूतोंकी सृष्टि कर सकता और क्रुद्ध होनेपर सबको बिनष्ट करनेमें समर्थ हूं, इसलिये बचन, मन और कर्म्मसे मेरी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं हैं। ब्राह्मणोंका प्राधान्यवाद पूर्व्वपक्ष और क्षत्रियोंका आधिक्य बाक्य सिद्धान्तपक्ष है, तुमने हेतुयुक्त दोनों बाक्य कहा, किन्तु उस बिषयमें बिशेष दीखता है। ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंका आसरा किया करते हैं, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंका आसरा नहीं करते, ब्राह्मण वेदाध्ययन छलनिबन्धनसे क्षत्रियोंको उपजीव्य किया करते है। प्रजासमूहके धर्म्म क्षत्रियोंके आश्रित हैं, क्षत्रियोंसे ब्राह्मणोंकी जीविका हुआ करती है, तब उन क्षत्रियोंसे ब्राह्मण किस प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं? मैं सब प्राणियोंकी अपेक्षा उन प्रधानभिक्षा वृत्तिशाली ब्राह्मणोंको अपने अधीनमें स्थापित करूंगा। सुरलोकमें इस आकाशवाणीने असत्य बचन कहा है, मैं अवश्य तथा अजिन वस्त्रधारी ब्राह्मणोंको जय करूंगा। तीनों लोकोंके बीच ऐसा कोई देवता वा मनुष्य नहीं है, जो मुझे राज्यसे च्युत कर सके। इसलिये मैं ब्राह्मणोंसे अवश्यही श्रेष्ठ हूं। मैं ब्राह्मण-प्रधान लोककी क्षत्रियप्रधान करूंगा, क्यों कि युद्धके बीच मेरे बलको सहनेमें किसीकाभी उत्साह नहीं है, आकाशवाणी अर्ज्जुनका बचन सुनके भयभीत हुई। अनन्तर आकाशसे वायुने उससे कहा, यह दूषितभाव परित्याग करके ब्राह्मणोंको नमस्कार करो ब्राह्मणोंके बिषयमें पापाचरण करनेसे राज्य नष्ट होगा अथवा महाबली ब्राह्मण लोगही तुम्हें शान्त करेंगे, वे तुम्हें उत्साहरहित करके राज्यसे निराश करेंगे। राजाने उनसे पूंछा, तुम कौन हो? वायुने कहा, मैं देवदूत पवन तुमसे हित-बचन कहता हूं।

अर्ज्जुन बोले, क्याही आश्चर्य है। इस समय तुम ब्राह्मणोंके बिषयमें भक्ति अनुराग प्रदर्शित करके ब्राह्मणोंको पृथ्वीके सदृश कहते हो, ब्राह्मणगण वायुके सदृश वा जलके समान, किम्वा अग्नि तुल्य, सूर्य्य अथवा आकाशके सदृश हैं।

१५२ अध्याय समाप्त।

वायु बोले, हे मूढ। महानुभाव ब्राह्मणोंके कई एक गुण सुनो। हे महाराज! तुमने जिनका नाम लिया, ब्राह्मण लोग उनसेभी श्रेष्ठ हैं। पृथ्वी अङ्गराजके सङ्ग स्पर्द्धा करके बिनष्ट हुई थी बिप्रवर कश्यपने उस पृथ्वीका फिर उद्धार किया था। महाराज ब्राह्मण लोग इस लोक और सुरलोकमेंभी सदा अजेय हैं। पहले समयमें अङ्गिराने निज तेज प्रभावसे समस्त जलपान किया था, वह महात्मा क्षीरकी भांति जलको पीकेभी तृप्त नहीं हुए। हे पार्थिव! उन्होंने महाप्रवाहसे समस्त पृथ्वी मण्डलको परिपूरित किया था, उनके क्रुद्ध होनेपर मैंने भी जगत् छोड़के गमन किया और अङ्गिराके भयसे बहुत समय तक अग्निहोत्रमें निवास किया था, और भगवान इन्द्र अहल्याकी कामना करके गौतमके द्वारा अभिशप्त होकर धर्म्मार्थमात्र हिंमित नहीं हुए। हे राजन्। समुद्र मीठे जलसे युक्त प्रकट हुआ था, वह ब्राह्मणोंके शापसे लवणोदक हुआ है। सुवर्णवर्ण निर्धूम-

युक्त उद्दंशिख कवि हुताशन क्रुद्ध अङ्गिराके द्वारा अभिशापित होकर पूर्व्वोक्त गुणोंसे रहित हुए थे। हे राजन्! देखिये सगरके पुत्रगण जिन्होंने महोदधिकी उपासना की थी, वे सब उत्तम ब्राह्मणवर्णधारी द्विजाति कपिलके द्वारा अभिशापयुक्त हुए। हे नरनाथ तुम ब्राह्मणोंके सदृश नहीं हो, तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करो, भगवान गभस्थ ब्राह्मणोंकोभी सदा नमस्कार करते हैं। दण्डक राजाओंका महत्-राज्य ब्राह्मणोंके द्वारा नष्ट हुआ; तालजङ्घ नाम महा क्षत्रिय एकले उर्व्वके द्वारा नष्ट हुआ। तुम्हेंभी दत्तात्रेय मुनिकी कृपासे विपुल राज्य, बल, धर्म्म और परम दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त हुआ है। हे अर्ज्जुन! तुम ब्राह्मणरूपी अग्नि-देवको किस निमित्त सदा पूजा करते हो? वेही सब लोकोंके हव्य कव्यको वहन करते हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानते? अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रतिभूतोंकेही पालन कर्त्ता हैं, इसलिये ब्राह्मणोंको जीवलोकका कर्त्ता जानकेभी तुम क्यों मुग्धहोते हो? अव्यक्त अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जिन्होंने इस स्थावर-जङ्गमयय निखिल विश्वकी सृष्टि की है, कोई-कोई मूर्ख उस ब्रह्माको अण्डसे उत्पन्न हुआ कहनेकी इच्छा करते हैं, अण्ड विभिन्न होनेपर उससे पर्व्वत दिग्मण्डल जल, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित होता है, यह द्रष्टव्य नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा अज होकर किस प्रकार उत्पन्न हुए? आकाश अण्डरूपसे स्मृत हुआ है, पितामह उसही आकाशसे प्रकट हुए हैं, उस समय कुछभी नहीं था, इसलिये ब्रह्माने वहां किस भांति निवास किया? उसे वर्णन करो। हे राजन्! सर्व्वतेजगत प्रभु अहङ्कार नामसे अभिहित होते हैं, लोक-विधाता ब्रह्मा उसके अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। वायु उस समय इतनी कथा कहके चुप होरहे, अनन्तर फिर कहने लगे।

१५३ अध्याय समाप्त।

वायु बोले, हे महाराज! पहले समयमें अङ्ग नामक राजाने ब्राह्मणोंको दक्षिणा स्वरूपमें इस भूमिको दान करनेकी इच्छा की; उस समय पृथ्वीने सोचा, कि मैं सर्व्वलोकधारिणी ब्रह्मसुता हूं; तब यह राजा-मुझे पाके किस निमित्त ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये अभिलाषी हुआ है? जो हो, मैं भूमित्व परित्याग करके ब्रह्मलोकमें चलूं, यह राजा राज्यहीन होवे, ऐसा विचार करके धरणी ब्रह्मलोकमें चली गई। अनन्तर कश्यपने पृथ्वीको जाती हुई देखके उसही समय योगबलसे अपना शरीर परित्याग करके निर्ज्जीव महीदेहमें प्रवेश किया। तब पृथ्वी तृण ओषधियोंसे युक्त तथा सब भांतिसे समृद्धिसम्पन्न हुई। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीपर धर्म्मकी प्रधानता हुई और सब भय नष्ट हुआ। हे महाराज। इस ही प्रकार देवपरिमाणसे तीस हजार वर्षतक कश्यपके द्वारा अधिष्ठिता भूमि सदा अतन्द्रित हो रही। हे राजन्। अनन्तर पृथ्वीने ब्रह्मलोकसे आके कश्यपको नमस्कार किया और उस समय महानुभाव कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी नामसे प्रसिद्ध हुई। हे महाराज! कश्यप ब्राह्मण ऐसे पराक्रमी थे, तुम ही बताओ कोई क्षत्रिय कश्यपसे श्रेष्ठ है वा नहीं? इतनी कथा सुनके राजा चुप हो रहा।

पवन बोले, हे राजन्! आङ्गिरस कुलमें उत्पन्न उतथ्यका वृत्तान्त सुनो। सोमकी कन्या भद्रा परम रूपवती थी, सोमने उतथ्यको उसके योग्य पति जाना था। उस चार्व्वङ्गीने परम नियम अवलम्बन करके उतथ्यके निमित्त घोर तपस्या की। अनन्तर सोमके पिता अत्रिने उतथ्यको आह्वान करके वह यशस्विनी कन्या दान की, भूरिदक्षिण उतथ्यने भी उसे भार्य्या रूपसे विधिपूर्व्वक ग्रहण किया। श्रीमान् वरुणने पहले उस कामिनीके लिये कामना की थी, इसलिये वह वनस्थलसे आगमन करके

नाके तटपर उसे हरके निज पुरीमें लेपाये, वरुणपुरीसे बढ़के और कोई लोक उत्तम न थे, उसमें परम अद्भुत षट् सहस्र शत ह्रद थे, वह प्रासाद अप्सराओं और दिव्यकामसे शोभित था। हे राजन्। जलेश्वर उस पुरीके बीच उतथ्यभार्य्याके सङ्ग क्रीड़ा करने लगे। अनन्तर नारदने उतथ्यसे उसकी भार्य्या हरनेका वृतान्त कहा, उतथ्य नारदके मुखसे ऐसा समाचार सुनके उस समय उनसे बोले, आप वरुणके निकट जाके उससे परुष वाक्य कहिये, कि मेरे वचनके अनुसार मेरी भार्य्याको छोड दो, तुमने क्यों उसे हरण किया? तुम लोकपाल हो, लोकोंके विलोपकारी नहीं हो, सोमने मुझे भार्य्या दी है, तुमने इस समय उसे क्यों हरण किया? उतथ्यका यह सब वचन नारदमुनिके द्वारा जलेश्वर सुनके तिरस्कृत हुए और जब नारदने कहा, तुम उतथ्यकी भार्य्या परित्याग करो, तुमने उसे क्यों हरण किया है? तब वरुण उनसे बोले. यह भीरु मेरी भी अत्यन्त प्यारी है, मैं इसे परित्याग नहीं कर सकता। जब वरुणने ऐसा वचन कहा, तब नारद रुष्ट चित्तसे उतथ्य मुनिके निकट आके बोले, वरुणने मुझे गर्द्दनमें हाथ लगाकर बिदा किया, तुम्हारी भार्य्या नहीं दी। अब तुम्हें जो करना हो, वह करो। महातपस्वी उतथ्य मुनि नारदका वचन सुनके क्रुद्ध और प्रज्वलित हुए और निज तेजोप्रभावसे जलको विष्टम्भन पूर्व्वक पान किया। जब सब जल उतथ्यने पीलिया, उस समय जलेश्वरने सुहृदोंसे तिरस्कृत होकर भी उनको भार्य्या न दी। अनन्तर द्विजवर उतथ्य क्रुद्ध होकर भूमिसे बोले, हे भद्रे। छः हजार एक सौ ह्रद विशिष्ट स्थल मुझे दिखाओ। अनन्तर वह स्थल मरुभूमि और समुद्र भी सूख गया। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने सरस्वती नदीसे कहा, हे भीरु सरस्वती। तुम इस देशसे गमन करो, हे भीरु। तुमसे रहित होके यह देश पुण्यहीन होवे। अनन्तर उस देशके पूरो होतिसे सूखनेपर वरुण भद्राको लेकर उतथ्यके शरणागत हुए और उन्हें उनकी भार्य्या प्रत्यर्पण की। हे हैहय। उतथ्य अपनी भार्य्या पाके प्रसन्न हुए और जगत् दुःखसे मुक्त हुआ। महातेजस्वी धर्म्मज्ञ उतथ्यने अपनी भार्य्या पाके वरुणसे जो वचन कहा, सुनो। "हे जलाधिप। तुम्हारे आक्रोश प्रकाश करनेपर भी मैंने इसे तपस्याके द्वारा पाया है," ऐसा वचन कहके वह अपनी भार्य्या लेकर निजगृहपर गये। हे राजन्। वह उतथ्य ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। अब मैं तुमसे पूछता हूं, कि उतथ्यको अपेक्षा कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ है?

१५४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह राजा इतनी कथा सुनके चुप होरहा। अनन्तर वायुने कहा, हे महाराज। द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यका माहात्म्य सुनो असुरोंके द्वारा पराजित देवगण निरुत्साह हुए थे, उनका यज्ञभाग और पितरोंका स्वधा मन्त्रके द्वारा प्रदत्त कव्यादि भी हृत हुआ था। हे हैहयश्रेष्ठ। ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्यका यज्ञकर्म्म नष्ट होनेसे देवगण ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर इस पृथ्वीतलमें विचरते थे, हे महाराज। अनन्तर किसी समय उन देवताओंने आदित्य सदृश तपस्वी प्रदीप्त विपुलव्रती तेजसे युक्त अगस्त्यको देखा। हे नरनाथ। वे लोग उस महात्मा अगस्त्यको प्रणाम करके कुशलप्रश्नके अनन्तर यह वचन बोले, हे मुनिपुङ्गव। हम लोग युद्धमे दानवोंके द्वारा पराजित तथा ऐश्वर्य्यभ्रष्ट हुए हैं, इसलिये आप हमें तीव्रभयसे परित्राण करिये। अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कुपित हुए और वह तेजस्वी प्रलयकालकी कालाग्नि सदृश प्रज्वलित होगये।

हे महाराज। उस समय सहस्रों दानवगण उस प्रदीप्त किरणजालसे एकबारही जल

आकाशसे निपतित हुए। दैत्यगण अगस्त्यके तेजसे दह्यमान होकर भूलोक और स्वर्गलोक परित्याग करके दक्षिण दिशामें गये। बलि उस समय पृथ्वीतलमें अश्वमेध यज्ञ करता था, इसीसे वह और उसके अतिरिक्त जो सब महा सुर नीचे तथा पृथ्वीतलमें थे, वे भस्म नहीं हुए। हे नृप। अनन्तर भय शान्त होनेपर देवताओंके द्वारा सब लोक फिर व्याप्त हुआ, तब देवताओंने फिर अगस्त्यसे कहा, आप भूमिमें रहनेवाले असुरोंका नाश करिये। हे राजन्। अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, मैं भूमिस्थ दानवोंको जलानेमें समर्थ नहीं हूं, क्यों कि उससे मेरी तपस्या नष्ट होनेकी सम्भावना है। हे राजन्। इस ही प्रकार पवित्रचित्तशाली अगस्त्यने निज तेजके सहारे दानवोंको जलाया था। हे अनघ। अगस्त्य ऐसे ही थे,—यह मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। अब मैं कहता हूं, अथवा तुमही कहो, क्या अगस्त्यकी अपेक्षा क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? भीष्म बोले, राजा ऐसा प्रश्न सुनके चुप होरहा।

अनन्तर वायु बोले, हे महाराज! यशस्वी वशिष्ठके मुख्य कर्म्म सुनो। आदित्यगण मन ही मन वशिष्ठका गौरव जानके उनके समीप वैखानस नाम सरोवरपर जाके यज्ञ करते थे। पर्व्वतसदृश खलि नाम दानवोंने देवताओंको यजमान और यज्ञदीक्षासे कृश देखकर बध करनेकी इच्छा की। उन लोगोंके निकटमें ही ब्रह्मदत्त नाम तड़ाग था, दानवगण हताहत होके उस तड़ागमें स्नान करते ही जीवित होते थे; वे महाघोर पर्व्वत परिघ और वृक्षोंको लेकर एक सौ योजन समुत्थित जलको आन्दोलित करते थे। अनन्तर दश हजार दानव देवताओंकी ओर दौड़े, देवगण दानवोंसे पीड़ित होके देवराजके शरणागत हुए; देवराज देवताओंके दुःखसे पीड़ित होकर वसिष्ठके शरणमें गये। अनन्तर भगवान् वसिष्ठ ऋषिने उन लोगोंको अभय दिया, कृपापरायण मुनिने उस समय देवताओंको दुःखित जानके निज तेज प्रभावसे क्षणभरमें उन खलि नामक दानवोंको जला दिया। महातपस्वी वसिष्ठ कैलाशपर्व्वतसे चलनेवाली गङ्गा नदीको उस दिव्य सरोवरमें लिवा लाये, तब वह तड़ाग गङ्गामें मिल गया, गङ्गासे मिलकर उस सरोवरका सरयू नाम हुआ। जिस स्थानमें खलि दानवगण मारे गये थे, उस देशका खलिन नाम हुआ। इस ही प्रकार इन्द्रके सहित सब देवताओंकी वसिष्ठ मुनिने रक्षा की थी और ब्रह्मदत्त वरदीप्त दैत्योंका महात्मा वसिष्ठके द्वारा नाश हुआ। हे अनघ। यह मैंने तुमसे वसिष्ठका माहात्म्य कहा, मैं कहता हूं तथा तुम ही कहो, क्या वसिष्ठसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं?

१५५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनने इतनी कथा सुनके मौनावलम्बन किया था। अनन्तर वायु उससे कहने लगे। हे हैहयश्रेष्ठ। मेरे समीप महात्मा अत्रिका कर्म्म सुनो। देवता और दानवगण घोर अन्धकारके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करते थे, उस युद्धमें राहुने वाणोंसे सूर्य्य और चन्द्रमाको विद्ध किया। हे नृपश्रेष्ठ। अनन्तर अन्धकारसे ग्रस्त देवगण उस समय बलवान दानवोंसे मारे जाने लगे। देवताओंने असुरदलसे बध्यमान तथा क्षीणबल होकर तपस्वी अत्रि नाम ब्राह्मणको तपस्या करते देखा। अनन्तर देवगण उस शान्त जितेन्द्रिय अत्रिसे बोले, हम दोनों सूर्य्य और चन्द्रमा हैं, दानवोंने वाणोंसे हमें विद्ध किया है, हम लोग अन्धकारयुक्त स्थानमें शत्रुओंके द्वारा व्यथित होते हैं, शान्ति लाभ नहीं कर सकते। हे प्रभु। इसलिये आप हम लोगोंका भयसे परित्राण करिये। ऋषिने कहा, मैं किस प्रकार आप लोगोंकी रक्षा करूंगा?

देवगण बोले, आप चन्द्रमा और अन्धकार-नाशक सूर्य्य होकर हमारे शत्रुओंका नाश करिये। अत्रि देवताओंका ऐसा वचन सुनके उस समय तमानुद शशी हुए और सौम्यभावसे चन्द्रमाकी भांति प्रिय दीखने लगे। हे महा-राज! उस समय अत्रिने सूर्य्य और चन्द्रमाको प्रभायुक्त न देखकर निज तेजसे रणभूमिको प्रकाशित किया, जगत् अन्धकाररहित और प्रकाशमान हुआ। उन्होंने निज तेजके सहारे देवताओंके शत्रुओंको जय किया, देवगण महाघोर बिकराल असुरोंको अत्रिके द्वारा दह्यमान देखकर आप भी उनसे रक्षित होकर दानवोंसे युद्ध करने लगे। अनन्तर सूर्य्य उदय होनेसे देवताओंका परित्राण हुआ और दान-वगण मारे गये, अत्यन्त तेजस्वी अत्रिने दान-वोंको सामर्थ्य हरण की। हे राजर्षि! द्वितीय अग्निसदृश मृगचर्म्म धारी जपपरायण फल खाने-वाले अत्रिने जो कार्य्य किया था, उसे अवलो-कन करो। मैंने महात्मा अत्रिके कार्य्यको विस्तारपूर्व्वक कहा, अब मैं कहता हूं, वा तुम्हीं बताओ, क्या अत्रिसे भी क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? अर्जुन ऐसा बचन सुनके चुप होरहा।

अनन्तर वायु बोले, हे राजन्! महात्मा च्यवनका महत् कर्म्म सुनो। च्यवन मुनि दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिश्रुत होकर देव-ताओंके सहित इन्द्रसे बोले, इन दोनो वैद्योंको सोमपान कराओ। इन्द्र बोले, हमने इन्हें परित्याग किया है, इसलिये ये लोग किस प्रकार सोमपान कर सकते हैं? देववृन्द इनकी प्रशंसा नहीं करते, इसलिये आप हमसे ऐसा बचन न कहिये। हे महाव्रत विप्रवर! हम लोग दोनों अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान करनेकी इच्छा नहीं करते, आप और जो कुछ कहें, उसे हम प्रतिपालन करेंगे।

च्यवन मुनि बोले, दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे सङ्ग सोमपान करेंगे; हे सुरेश्वर! ये दोनों अमर और सूर्य्यके पुत्र हैं। हे देवगण! मैंने जैसा कहा, उसे प्रतिपालन करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, नहीं तो तुम लोगोंके विषयमें अमङ्गल होगा।

इन्द्र बोले, हे द्विजवर! हम अश्विनीकुमा-रोंके सहित सोमपान न करेंगे। जिनकी इच्छा हो, वे पीयें, किन्तु मैं इनके सङ्ग सोमपान करनेका उत्साह नहीं करता।

च्यवन बोले, हे बलसूदन! यदि तुम मेरी बात न मानोगे, तो यज्ञमें मेरे द्वारा प्रमथित होके उस ही समय सोमपान करोगे।

वायु बोले, अनन्तर अश्विनीकुमारोंके हितके निमित्त च्यवनने सहसा यज्ञकर्म्म आरम्भ किया। उनके मन्त्रसे देववृन्द अभिभूत हुए, इन्द्रने उस कर्म्मको आरम्भ हुआ देखके वज्रके सहित बिपुल पर्व्वत उठाके क्रोधपूर्व्वक च्यवनकी ओर दौड़े। तपस्वी भगवान् च्यवनने इन्द्रको आते हुए देखकर क्रोधपूर्व्वक जल छिड़कके वज्र और पर्व्वतके सहित उन्हें स्तम्भित कर दिया। महामुनि च्यवनने आहुतिमय एक मुख बाये हुए महाघोर मद नाम पुरुषको इन्द्रका शत्रु बनाके उत्पन्न किया। उसके सहस्र दांत एक सौ योजन लम्बे थे और उसके परम दारुण दांत दो सौ योजनके बीच व्याप्त थे। उसका एक ओठ भूमि और दूसरा आकाशम ण्डलमें जा लगा। जैसे समुद्रमें सब मछलियें तिमिके मुखमें समा जाती हैं, वैसे ही इन्द्रके सहित सब देवता उसके जिह्वामूलमें स्थित हुए अनन्तर देवताओंने आपसमें विचार करके मदके समीप जाकर देवराजसे कहा, इस द्विज-वरको प्रणाम करो; हम लोग प्रसन्न होकर दोनों अश्विनीकुमारोंके सङ्ग सोमपान करेंगे। अनन्तर इन्द्रने प्रणत होके च्यवनका बचन प्रतिपालन किया, च्यवन मुनिने दोनों अश्वि नीकुमारोंको सोमपान कराया। अनन्तर मुनि श्रेष्ठ वीर्य्यवान च्यवनने कर्म्म प्रत्याहरण किया

और जूआ, मृगया, मद्यपान तथा स्त्रियोंमें मदको विभाग कर दिया। हे राजन्! मनुष्योंका निःसन्देह इन्हीं दोषोंसे नाश होता है, इसलिये मनुष्य इन दोषोंको एकबारगी परित्याग करे। हे महाराज। यह च्यवनके कर्म्म तुम्हारे समीप वर्णित हुए। मैं कहता हूं, तथा तुम ही कहो, क्या ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं?

१५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अर्जुनके चुप हो रहनेपर पवनने उससे फिर कहा, हे जननाथ! ब्राह्मणोंके जो मुख्यकर्म्म हैं, वह सब मेरे मुखसे सुनो। जब इन्द्रादि देवता मदके मुखके भीतर चले गये तब च्यवनने उनकी भूमि हरण की। दोनों लोक हरे जानेपर महानुभाव देवगण अत्यन्त दुःखित और शोकार्त्त होकर ब्रह्माके शरणागत हुए। देवगण बोले, हे लोकपूजित। जब हम लोग मदके मुखके भीतर थे, उस समयमें च्यवन मुनिने हमारी भूमि हर ली और रूप नामक दानवोंने स्वर्गलोक हर लिया।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्रादि देवगण! तुम लोग शीघ्र ही ब्राह्मणोंके शरणमें जाओ, उन्हें प्रसन्न करनेसे पहलेकी भांति तुम लोग दोनों लोकोंको पाओगे। अनन्तर इन्द्रके सहित सब देवता ब्राह्मणोंके शरणागत हुए।

ब्राह्मणगण बोले, हम किसे जय करें? देवइन्द्र ब्राह्मणोंका ऐसा बचन सुनके बोले, इस समय आप लोग रूपनाम दैत्योंको जीतिये, द्विजगण बोले, हम भूमिगत दैत्योंको जीतनेमें समर्थ हैं। अनन्तर ब्राह्मणोंने रूपनाशन कर्म्म आरम्भ किया, रूपगणने यह वृत्तान्त सुनके धनी नाम दूतको उनके समीप भेजा। धनी उस समय भूलोकविनाशी ब्राह्मणोंसे रूपका कहा हुआ बचन कहने लगा। "रूपगण आप लोगोंके सदृश हैं, इसलिये इस समय यह क्या कारण है? वे सभी वेद जाननेवाले प्राज्ञ हैं, सभी यज्ञ करनेवाले, सब कोई सत्यव्रती और सभी महर्षियोंके तुल्य हैं, उनमें सदा श्री निवास करती है, वेभी श्रीको धारण करते तथा स्त्रीगमन नहीं करते, वृथा मांस भक्षण नहीं करते, जलती हुई अग्निमें होम करते हैं, गुरुबचनके वशीभूत रहते हैं, सभी नियतचित्तवाले हैं, बालकोंको खानेकी वस्तु विभाग करके देते हैं। वे लोग धीरे धीरे गमन करते हैं, रजस्वलाकी सेवा नहीं करते, स्वर्गमें गति लाभ करते तथा वे लोग शुभ कर्म्मशाली हैं। गर्भिणी तथा वृद्धोंके भूखे रहते, वे लोग भोजन नहीं करते, पूर्व्वाह्नमें क्रीड़ा नहीं करते और दिनमें शयन नहीं करते"—इन सब गुणों तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे गुणोंसे युक्त रूपगणको तुम क्यों जय करोगे, इस कार्य्यसे निवृत्त हो जाओ निवृत्त होनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा।

ब्राह्मणोंने कहा, हम लोग रूपगणको जीतेंगे, देवताओंके सहित हम लोग अभिन्नभावसे स्मृत हुए हैं, इसलिये रूपगण हमारे बध्य हैं। हे धनी! तुम जिस स्थानसे आये हो, वहांही जाओ। धनी रूपगणके समीप जाके बोला, ब्राह्मण लोग तुम्हारे प्रियङ्कर नहीं हैं, ऐसा सुनकर रूपगण अस्त्र लेकर ब्राह्मणोंकी ओर दौड़े। ब्राह्मणोंने रूपगणकी ऊंची ध्वजाके सहित आते हुए देखकर उनके प्राणनाशके निमित्त जलती हुई अग्नि चलाई। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी चलाई हुई अग्नि रूपगणका नाश करके आकाश मण्डलमें बादलकी भांति विराजमान हुई। देवता लोग इकट्ठे होकर युद्धमें दानवोंके दलका संहार करके ब्राह्मणोंके द्वारा रूपगणके मारे जानेका वृत्तान्त न जान सके। हे विभु! अनन्तर महातेजस्वी नारद मुनि आके बोले, महाभाग ब्राह्मणोंके तेजसे रूपगण मारे गये। नारदमुनिका बचन सुनके सब देवता प्रसन्न हुए और यशस्वी ब्राह्मणों तथा द्विजगणोंकी प्रशंसा करने लगे अनन्तर

देवताओंके तेज और वीर्य्यकी वृद्धि हुई और उन्होंने तीनों लोकोंमें पूजित होकर अमरत्व लाभ किया। हे महाबाहो नरनाथ। जब पवनने इतनी कथा कही, तब अर्ज्जुनने उनको पूजा करके जो उत्तर दिया उसे सुनो।

अर्ज्जुन बोले, हे प्रभु। मैं सब प्रकारसे सदा ब्राह्मणोंके निमित्त जीवित हूं, मैं व्रतनिष्ठ होकर ब्राह्मणोंको प्रतिदिन प्रणाम किया करता हूं। दत्तात्रेयके प्रसादसे, मैंने यह बल पाया है और इस लोकमें मेरी परम कीर्त्ति हुई है तथा मैंने महत्‌कर्म्म किया है। हे मारुत! तुमने जो ब्राह्मणोंके अद्भुत कर्म्म वर्णन किये, उसे मैंने सावधान होकर सुना है।

वायु बोले, तुम ब्राह्मण और इन्द्रियोंको क्षत्रधर्म्मके अनुसार पालन करो, समयके अनुसार भृगुवंशसे तुम्हें घोर भय प्राप्त होगा।

१५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे जननाथ। आप संशितव्रती ब्राह्मणोंकी सदा अर्च्चना करते हैं, परन्तु कौनसा फलोदय देखके उनकी पूजा किया करते हैं? हे महाव्रत महाबाहो! ब्राह्मणपूजासे क्या फल दीखता है, जिससे आप उन लोगोंकी अर्च्चना करते हैं। यह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मणपूजाके फलदर्शी ये महाव्रत महाबुद्धिमान केशव तुमसे समस्त फलका विषय कहेंगे। आज मेरा बल, दोनों कान, बचन, मन, दोनों नेत्र और ज्ञान विशुद्ध नहीं है, जान पड़ता है शरीर त्यागमें अब अधिक विलम्ब नहीं है; सूर्य्य भी शीघ्र प्रयाण नहीं करता है। हे राजन्। पुराणोंके बीच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके जो महत् धर्म्म वर्णित है, और वे लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं, उसका शेषभाग कृष्णके निकट सीखो। मैं ही इस कृष्णको यथार्थ रीतिसे जानता हूं, इनका स्वरूप तथा इनका पुराण बल मुझे अविदित नहीं है। हे कौरवेन्द्र। केशव अमेयात्मा हैं, इसलिये येही सन्देहके स्थलमें धर्म्मका वर्णन करेंगे। कृष्णने ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गको सृष्ट की है, कृष्णके देहसे ही महिमण्डलकी उत्पत्ति हुई है, येही भीमबल पुराण बराह हैं; इन्होंने ही पर्व्वतों तथा सब दिशाओंको उत्पन्न किया है। येही पाताल, आकाश, सुरपुर, चारो दिशा तथा चारों विदिशामें व्याप्त हैं, यह सृष्टि इन्हींसे प्रकट हुई है, इन्होंने ही इस दृश्यमान पुरातन जगत्‌को उत्पन्न किया है; इन्हींकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जिससे अत्यन्त तेजसे स्वयं हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। हे पार्थ। जिन्होंने घोर अन्धकारको दूर किया है, वेही अनल स्पर्शी अपार समुद्रमें निवास कर रहे हैं। सत्ययुगमें पूरा धर्म्म था, त्रेतायुगमें विवेक प्रबल हुआ था, द्वापर युगमें बलको प्रधानता थी। हे पार्थ। कलिकालमें पृथ्वीपर अधर्म्म आया है। इस कृष्णने ही पहले दैत्योंको मारा, येही पहले देव और सम्राट् हुए थे, येही सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण हैं, यही भूत-भविष्यत और येही समस्त जगत्‌के रक्षाकर्त्ता हैं। जिस समय असुरवशमें धर्म्म ग्लानियुक्त होता है, उस समय कृष्ण मनुष्यलोकमें अवतार लेते हैं। येही विशुद्धस्वभाववाले भगवान् धर्म्ममें स्थित रहके परापर लोकोंकी रक्षा किया करते हैं। हे पार्थ! ये असुरोंके बधके निमित्त त्यज्य पुरुषोंका परित्याग किया करते हैं। यह देव ही कार्य्य, अकार्य्य, कारण, कृत, भविष्यत और क्रियमाण है, इसे ही राहु, चन्द्रमा तथा इन्द्र जानो, येही विश्वकर्म्मा, येही विश्वरूप, येही विश्वभुक्, येही विश्वस्रष्टा और येही विश्वजित हैं; येही शूलधारी शरीरधारी कराल हैं, कर्म्मके द्वारा विदित होनेवाले इस देवको सब कोई स्तुति किया करते हैं। गन्धर्व्व, अप्सरा

और सैकड़ों देवता सदा इनकी उपासना करते हैं, राक्षसगण इन्हींका कीर्त्तन किया करते हैं, येही एक मात्र धनपोषक और विजिगीषु हैं। यज्ञमें उद्गातृगण इनकी स्तुति करते हैं, सामगान करनेवाले रथन्तर सामके सहारे इनकी स्तुति किया करते हैं, ब्राह्मण लोग ब्रह्ममन्त्रसे इनका स्तव करते हैं, अध्वर्य्युगण इन्हींके उद्देश्यसे हवि प्रदान किया करते हैं। गोवर्द्धन पर्व्वत धारण करनेके समय इन्द्रादि देवताओंने वाणीके सहारे इनकी स्तुति की थी।

हे भारत! अकेले येही समस्त जीवों तथा पशुओंके नियन्ता हैं, येही पुरातनी गुहाके बीच प्रविष्ट ब्रह्म हैं। हे भरतकुलप्रदीप! इन्होंने ही पहले पृथिवीका छादन और मज्जन दर्शन किया है। येही श्रेष्ठ कर्म्मशील पुरुष दैत्य और असुरोंको विक्षोभित करके पृथ्वीका उद्धार करता है। पण्डित लोग इनका विविध भक्ष्य निर्द्देश करते और इन्हें युद्धमें जय प्रापक कहा करते हैं। आकाश, पृथ्वी और स्वर्गादि इनके वशमें हैं, इन्होंने ही मित्रावरुणको रेतकुम्भसे उत्पन्न किया, जिसमें उत्पन्न हुए ऋषिको लोग वसिष्ठ कहा करते हैं। येही सर्व्वव्यापी मातरिश्वा वेगवान् अश्व हैं, येही किरणधारी सूर्य्य और आदि देव हैं; इन्हीके द्वारा सब असुर पराजित हुए हैं, इन्होंने ही त्रिपाद विक्षेपसे त्रिभुवन जय किया है। येही देवताओं, मनुष्यों और पितरोंके आश्रय हैं। पण्डित लोग इन्हें ही यज्ञवित पुरुषोंका यज्ञ कहा करते हैं। येही कालका विभाग करके उदित होते हैं, इनकी दक्षिण और उत्तर, दोनों गतिको अयन कहा जाता है। इनकी समस्त किरण मेदिनीमण्डलको प्रकाशित करती हुई, ऊपर नीचे और तिर्य्यक्प्रदेशमें विचरती हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग इनकी ही सेवा किया करते हैं, सूर्य्य इनकी ही प्रभाका पाके प्रकाशित होता है। यज्ञकारी होकर प्रतिमासमें यज्ञका विधान करते हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मणगण यज्ञमें इन्हींकी स्तुति किया करते हैं। ये सर्दी, गर्म्मी, वर्षाका समय, गर्भ त्रिनाभियुक्त सम्वत्सर चक्ररूपसे वर्णित होके सप्ताश्वयुक्त वर्षा वात उस-प्रकार तीनों धाम वहन करते हैं। येही महातेजस्वी सब भांतिसे सब लोकोंकी हिंसा करते हैं, पापोंको आकर्षण करनेसे इनका कृष्ण नाम हुआ है; ये अकेले ही सब लोकोंको धारण किये हुए हैं। हे वीरवर पार्थ! ये ही सूर्य्यरूपसे अन्धकारका नाश करते हैं, इसलिये इस कृष्णको ही तुम कर्त्ता जानके इनका आसरा करो। जिस महात्माने किसी समयमें कक्षगत सर्व्व शक्तिमान् नित्य-सन्तुष्ट धूमकेतुरूपसे खाण्डववनमें राक्षसों और उरगोंको पराजित करके सर्व्वत्रगामी होकर अग्निमें सब आहुति प्रदान की थी, उसीने धनञ्जयको सफेद घोड़े प्रदान किये हैं; उसहीने घोड़ों तथा अन्य समस्त जीवोंकी सृष्टि की है। वही संसार-रथको योजना करनेवाला है। ऊर्द्ध, मध्य और अधः लोकोंमें उसके रथकी गति हुआ करती है, इसलिये उसका रथ त्रिचक्र और त्रिवृत-शिरा नामसे विख्यात है। काल, अदृष्ट, ईश्वरेच्छा और सङ्कल्प ये चारों उसके रथके घोड़े हैं। श्वेत कृष्ण और शुक्लकृष्ण मिश्रित त्रिविध-धर्म्मगर्भ है, इसलिये त्रिनाभि और वही पञ्चभूतोंका अवलम्ब है, इसलिये पञ्चनाभि कहाता है। उसने ही पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्षकी सृष्टि की है, उसीने वन पर्व्वतोंको उत्पन्न किया है। वह विषयेन्द्रियोंका नियन्ता है, इसलिये हृषीकेश कहाता है और वही अपरिमित प्रदीप्त अग्निसदृश तेजस्वी है। उसने ही नदियोंकी जिघांसा करते हुए उन्हें लङ्घन किया था; वज्र प्रहार करनेके लिये उद्यत देवराजको पराजित किया था; एक मात्र वही यज्ञमें महेन्द्ररूपसे ब्राह्मणोंके द्वारा पुरातन

ऋग्वेदके सहस्र मन्त्रोंसे स्तुतियुक्त हुआ करता है। हे राजन्! महातेजस्वी दुर्व्वासाको गृहमें निवास करानेके लिये इनके अतिरिक्त और कोई भी समर्थ न हुआ। पण्डित लोग उन्हें ही एक मात्र पुरातन ऋषि कहा करते हैं, वही विश्वकर्त्ता है, वही अपने सहारे सब जीवोंका विधान करता है। जो देवाधिदेव होकर वेदोंको स्थापन करता है, वही अग्निहोत्र प्रभृतिका आश्रय करता है। पुरातन विधि, काम, वेद और लौकिकमें जो कुछ फल होते हैं, विश्वक्सेन नारायणको ही फलस्वरूप जानना चाहिये। सब लोकोंमें जो सब शुक्लवर्ण ज्योतिके पदार्थ हैं, तीनोंलोक तीनोंलोकपाल तीनोंअग्नि. तीनों व्याहृति और समस्त देवगण देवकीनन्द नस्वरूप हैं। वेही सम्वत्सर, वेही ऋतु, वेही पक्ष, वेही अहोरात्र हैं, वेही कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त्त, लव और क्षण हैं,—यह सब विश्वक्सेनका ही स्वरूप जानो। हे पार्थ! चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सब पर्व्व, पौर्णमास, नक्षत्रयोग और ऋतु,—ये सब विश्व-क्सेन नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार साध्यगण, विश्वगण, मरुद्गण, प्रजापति, देव माता आदिति और सप्तर्षि कृष्णसे ही उत्पन्न हुए हैं। वही विश्वरूप वायु होकर जगतको विक्षिप्त कर रहा है, वही अग्नि होकर जगतको जलाता है, वही जल होके सबको डुबाता है और ब्रह्मा होके सबकी सृष्टि करता है। वही वेद-प्रतिपाद्य वेदवस्तुओंका बोध कराता है और विधि होकर वेद तथा विधेय विषयोंका आश्रय करता है। धर्म्म, वेद, बल तथा चराच-रात्मक सब विषयोंको ही केशवस्वरूप जानो। जिसकी प्रभाके सहारे यह परम ज्योतिस्वरूप पूर्व्व दिशामें प्रकाशित है, उस सर्व्व-भूतात्मा विश्वरूपने पहले जलकी सृष्टि करके अनन्तर सब विश्व निर्म्माण किया है। सब ऋतु, उत्पात, विविध अद्भुत विषय, मेघमण्डल, बिजली ऐरावत और स्थावर जङ्गम सबकोही विश्वात्मा विष्णु जानो। पण्डित लोग उसी विश्वावास, निर्गुण वासुदेव, सङ्कर्षण और जीवस्वरूप कहते हैं, उसी प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार उत्पन्न होता है। वह आत्मयोनि महात्माही दे असुर, मनुष्य, श्वापद और तिर्य्यक,—इन पां रूपसे पञ्चजनोत्पन्न पञ्चभूतयुक्त जगतकी स करनेके लिये अभिलाषी होकर आज्ञा प्र किया करता है। हे पार्थ! अनन्तर वह पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि और जलकी सृष्टि करता है, वह इस स्थावर जङ्गमात्मक चतुर्व्विध लोकोंकी सृष्टिकरता और अन्तरिक्ष तथा भूमितलमें भूरि वारि स्थापित करता है। हे राजन्! उसने ही इस विश्वको बनाया है, वह आत्मयोनि स्वय सबको जीवित रखता है। अनन्तर वह भूपति सुरासुर मनुष्यलोक, ऋषिगण, पितृगण, प्रजा समूह तथा प्राणियोंको सङ्क्षेप रीतिसे विधि र्व्वक उत्पन्न करनेका अभिलाषी होकर शुभ शुभ स्थावर और जङ्गमोंकी सृष्टि करता है, लिये जानना चाहिये कि विश्वक्सेनसे कोई उत्पन्न हुए हैं। जो वर्त्तमान है, जो होगा, तुम वह सब इन केशवको ही जानो। शाश्वत धर्म्मवाही कृष्ण ही प्राणियोंके अन्तकालमें साक्षात् मृत्युस्वरूप हैं। इस लोकमें जो कुछ अतीत हुआ तथा जो विषय हम लोगोंको मालूम नहीं है, उन सबको भी विश्वक्सेन नारायण जानो। लोकमें जो कुछ प्रसस्त प्रथम जो कुछ शुभ अशुभ अचिन्तनीय विषय हैं, वे सब केशवके ही रूप हैं, जो उससे भिन्न है वही बिपरीत है। केशवका ऐसा ही प्रभाव है, इसही निमित्त ये नारायण परम अव्यय हैं, ये जगतको आदि, मध्य और अन्तमें निवास करा हैं। येही जगतकी उत्पत्तिके कारण हैं, इनका विनाश नहीं है, इन्हें जाननेको इच्छा करो।

१५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है, उसे तुम वर्णन करो, तुम ही इस विषयके जाननेवाले हो और पितामह तुम्हें विशेष रीतिसे जानते हैं।

वासुदेव बोले, हे कुरुसत्तम भरतकुलधुरन्धर महाराज ! मैं यथार्थ रीतिसे ब्राह्मणोंके गुणोंको वर्णन करता हूं, तुम सावधान होकर सुनो। हे कुरुनन्दन ! पहले द्वारकानगरमें मेरे बैठे रहनेपर प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंके द्वारा प्रकोपित होकर मुझसे पूछा, हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है और इस लोक तथा परलोकमें किस निमित्त उनका ईश्वरत्व हुआ है ? हे मानद ! सर्व्वदा द्विजातियोंकी पूजा करनेसे क्या फल है ? आप स्पष्ट रीतिसे मेरे समीप उसका उपदेश करिये ; इस विषयमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। हे महाराज ! जब प्रद्युम्नने ऐसा कहा, तब मैंने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसे सावधान होके सुनो। हे रुक्मिणीनन्दन ! ब्राह्मणोंकी पूजाका फल मेरे समीप सुनो। त्रिवर्ग, अपवर्ग, यश, श्री और रोगशान्तिविषयमें देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करनेके समयमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना हम लोगोंका कर्त्तव्य कार्य्य है। हे रुक्मिणीपुत्र ! ये सोमराज हैं, येही इस लोक और परलोकमें सुख-दुःखके ईश्वर हैं, ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति अतिकल्याणी है, इस विषयमें मैं विचार नहीं करता। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे आयु, कीर्त्ति, यश और बलकी वृद्धि होती है, जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोकेश्वर होते हैं। हे पुत्र ! मैं ईश्वर होके भी किस हेतु ब्राह्मणोंका समादर न करूंगा ? हे महाबाहो ! द्विजोंके विषयमें तुम्हें मन्यु न होवे। इस लोक और परलोकमें ब्राह्मण ही महाभागी हैं, प्रत्यक्षदर्शी ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होनेसे इस जगतको भस्म कर सकते हैं, और दूसरे लोकों तथा लोकेश्वरोंकी सृष्टि भी कर सकते हैं। जिनमें पूर्ण ज्ञान और सुन्दर तेज हैं, ब्राह्मणोंके अधीनमें क्यों न वर्त्तमान रहेंगे। हे तात ! मेरे गृहमें चीरवासा बेलका दण्ड धारण करनेवाला दीर्घश्मश्रु, अत्यन्त कृश पिङ्गलवर्ण एक ब्राह्मण वास करता था। भूलोकमें जो सब दीर्घ मनुष्य हैं, वह उन सबसे अधिक दीर्घ था, वह मनुष्यलोक तथा समस्त दिव्य लोकोंमें विचरता था, वह चत्वर और सभाओंके बीच यह गाथा गाता था, कि 'दुर्व्वासा ब्राह्मणको सत्कारपूर्व्वक कौन गृहमें वास करा सकता है ? अल्प अपराध करनेपर भी मैं सर्व्वभूतोंके विषयमें रोष प्रकाश किया करता हूं, मेरा वचन सुनके कौन मुझे आश्रय देगा ? जो कोई मुझे गृहमें वास करावेगा, वह मुझे प्रकोपित न कर सकेगा'। दुर्व्वासा ब्राह्मणके ऐसी कथा प्रचार करते रहनेपर जब किसीने भी उनका आदर न किया ; तब मैंने उन्हें निज गृहमें वास कराया। उन्होंने एक ही बार सहस्र लोगों तथा उससे भी अधिक लोगोंका अन्न भोजन किया, किसी बार थोड़ा ही भोजन किया ; पुनर्व्वार गृहमें न आये। सहसा हंसे कभी अकस्मात रोदन करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय पृथ्वीपर उनके तुल्य अवस्थावाला पुरुष न था।

अनन्तर उन्होंने आश्रममें जाके बिछाई हुई शय्या और अलङ्कृत कन्याओंको जलाकर वहांसे प्रस्थान किया। अन्तमें वह संशितव्रती मुनि मुझसे फिर बोले, हे कृष्ण ! मैं शीघ्र ही पायस भोजन करनेकी इच्छा करता हूं। मैं उनका मन जानता था, इसलिये पहलेसे ही परिजनोंको सब अन्न पान तथा अनेक प्रकारको भक्ष्यवस्तु तय्यार रखनेको कहा था। अनन्तर मैंने उन्हें उष्ण पायस प्रदान किया, वह शीघ्र ही उसे भोजन करके बोले, मेरे सारे शरीरमें पायस लगाओ। मैंने उनके वचनमें कुछ भी विचार न करके वैसा ही किया ; वह जूठा पायस उनके शरीर और मस्तकमें लगा

दिया, उन्होंने उस समय तुम्हारी शुभानना जननीको देखा और हंसके उसके शरीरमें भी पायस लगाया, उस समय मुनिने पायस लिप्ताङ्गी तुम्हारी माताको शीघ्र ही रथमें योजना किया और उस रथपर चढ़के मेरे गृहसे बाहिर हुए, उस जलते हुए अग्निवर्ण रथ ध्वर्थ्यवत श्रीमान् ब्राह्मणने मेरे सम्मुखमें ही बालिका रुक्मिणीको कोड़ेसे मारा। उस समय मुझे ईर्षाजनित अल्पमात्र भी दुःख न हुआ, वह प्रशस्त राजपथके द्वारा बाहर निकले।

दाशार्हगण उस महत् आश्चर्यको देखकर क्रुद्ध हुए, उनके बीच कोई कोई आपसमें वार्त्तालाप करते हुए जल्पना करने लगे, कि ब्राह्मणगण ही यथार्थमें जन्म ग्रहण करते हैं, अन्य वर्ण किसी प्रकारसे पुरुष ही नहीं है। दूसरा कौन पुरुष इस रथपर चढ़के जीवित रहनेमें समर्थ होगा? आशीविस सर्पका विष तीक्ष्ण है, ब्राह्मण उससे भी अधिक तीक्ष्ण है; जो पुरुष ब्राह्मण रूपी विषसे जलता है, उसका कोई चिकित्सक नहीं है। उस दुर्द्धर्ष दुर्व्वासाके गमन करते रहनेपर मार्गमें रुक्मिणी शिथिल होगई, श्रीमान् मुनिने उस विषयमें क्रुद्ध होकर वेगपूर्व्वक रथको चलाया। अनन्तर वह द्विजवर अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथसे उतरके पादचारी हुए और दक्षिणको ओर ऊर्द्ध मार्गसे दौड़े। उनके ऊर्द्ध मार्गसे दौड़नेपर मैंने उस द्विजवरका अनुधावन किया और उस ही भांति पायस लिप्त रहके उनसे कहा,—हे 'भगवन्! प्रसन्न होइये।' अनन्तर उस तेजस्वी ब्राह्मणने मुझे देखकर कहा, हे महाभुज कृष्ण! तुमने स्वभावसे क्रोधका जय किया है। हे सुव्रत! इस विषयमें मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं देखा। हे गोविन्द! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। हे तात! मेरे प्रसन्न होनेसे जो फल होता है, उसे विधिपूर्व्वक देखो। जबतक मनुष्योंकी अन्नमें अभिलाष रहेगी, तबतक लोकके बीच तुम्हारे पुण्यका वर्णन होगा; उतने समयतक तीनों लोकोंके बीच तुम्हें विशिष्टता प्राप्त होगी। हे जनार्द्दन! तुम सब लोकोंमें अत्यन्त ही प्रिय होगे; तुम्हारा जो कुछ टूटा, जला वा नष्ट हुआ है, उन सब वस्तुओंको तुम वैसे ही तथा उससे भी उत्कृ[illegible] देखोगे। हे मधुसूदन! हे अच्युत! तुम्हारे शरीरमें जितने परिमाणसे पायस लिप्त हुआ है, तुम जबतक इच्छा करो इसके सहारे तुम[illegible] मृत्युका भय नहीं है। हे वत्स! तुम्हारे दो[illegible] पदतल किस हेतु लिप्त नहीं हुए इस वचन[illegible] उत्तर मुझे प्रिय नहीं है। उन्होंने प्रस[illegible] होकर उस समय मुझसे ऐसा ही वचन कहा था। जब उन्होंने ऐसा कहा, तब मैंने अप[illegible] शरीरको श्रीसम्पन्न देखा।

अनन्तर वह प्रसन्न होके रुक्मिणीसे बो[illegible] हे सुन्दरी! लोकके बीच तुम सब स्त्रियो[illegible] श्रेष्ठ यश और कीर्त्ति लाभ करोगी। [illegible] भाविनि! तुम्हें जरा, समस्त रोग अथ[illegible] वैवर्ण्य स्पर्श न कर सकेगा। तुम पवित्र सुगन्[illegible] युक्त होकर कृष्णकी आराधना करोगी। केश[illegible] वकी सोलह हजार स्त्रियोंके बीच तुम वरिष्ठ होगी और कृष्णके तुल्य लोकोंमें निवास करोगी[illegible]

हे पुत्र! प्रस्थान करनेमें उद्यत महातेज[illegible] दुर्व्वासाने अग्निकी भांति महाप्रज्वलित हो[illegible] तुम्हारी मातासे इतनी बात कहके मुझसे फि[illegible] कहा। हे केशव! ब्राह्मणोंके विषयमें तुम्हा[illegible] ऐसी ही बुद्धि रहे। वह विप्रवर उस सम[illegible] इतनी कथा कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हि[illegible] हुए। उनके अन्तर्द्धान होनेपर मैंने उपांशु व्रत[illegible] चरण किया, ब्राह्मण लोग जो कुछ कहेंग[illegible] वही करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारी माताके सहि[illegible] मैंने यही व्रत करके अन्तमें परम हृष्टचित्त[illegible] गृहमें प्रवेश किया। हे पुत्र! अनन्तर नि[illegible] भवनमें प्रविष्ट होकर उस विप्रके द्वारा जो [illegible]

भिन्न वा भस्म हुआ था उन सबको मैंने नूतन देखा। हे रुक्मिणीनन्दन। मैं सब वस्तुओंको नवीन तथा दृढ़ देखके विस्मित हुआ और सदा ब्राह्मणोंकी मनहीमन पूजा करने लगा। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय रुक्मिणीपुत्रके पूछनेपर मैंने श्रेष्ठ विप्रका यही सब माहात्म्य कहा था। हे प्रभु कुन्तीनन्दन! आप भी महाभाग ब्राह्मणोंकी सदा धन और गौवोंके सहारे पूजा करिये, मैंने ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही इस प्रकार फल पाया है। हे भरतर्षभ! भीष्मने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है।

१५९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन! दुर्व्वासाके प्रसादसे उस समय तुम्हें जो विज्ञान प्राप्त हुआ था मेरे समीप तुम्हें उसको व्याख्या करनी योग्य है। हे मतिमतप्रवर! उस महात्माके महत् भाग्य और नामोंको जाननेकी अभिलाष करता हूं।

वासुदेव बोले, हे महाराज! अच्छा मैंने जो कुछ कल्याण लाभ तथा यश उपार्ज्जन किया है, कपर्द्दीको नमस्कार करके वह सब विषय आपके समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! मैं प्रातःकालमें उठकर प्रयत तथा प्राञ्जलि होकर जो अध्ययन किया करता हूं, वह शतरुद्रीय आपके निकट कहता हूं, सुनिये। हे तात! महातपस्वी प्रजापतिने तपस्याको समाप्तिमें उसे रचा है, शङ्करने इस स्थानपर जङ्गममय समस्त प्रजाको सृष्टि की है। हे नरनाथ! महादेवसे श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है, इस त्रिभुवनके बीच वह सब प्राणियोंके बीच श्रेष्ठ है; उस महात्माके आगे कोई भी निवास करनेका उत्साह नहीं कर सकता, तीनों लोकोंके बीच उनके समान कोई भी विद्यमान नहीं है, उनके क्रुद्ध होनेपर संग्राममें शत्रुगण उनको गन्धके द्वाराही संज्ञा रहित तथा बहुतेरे हत होकर कांपते वा गिरते हैं। बादल गर्ज्जनेकी भांति उनका घोर शब्द सुनके देवताओंका भी हृदय विदीर्ण होता है. पिनाकधारी क्रुद्ध होके जिन्हें घोर रूपसे देखते हैं, उनका भी हृदय विदीर्ण होजाता है। लोकोंके बीच उनके कुपित होनेपर देवता, असुर, गन्धर्व्व और पन्नगगण, गुफामें प्रविष्ट होकेभी सुख लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। यजमान प्रजापति दक्षके विस्तृत यज्ञको महादेवने निर्भय और कुपित होकर विद्ध किया था। उन्होंने शरासनसे बाण छोड़कर घोर निनाद किया उस शब्दको सुनके सुख और शान्ति कहां? देववृन्द भयभीत हुए, सहसा यज्ञ विद्ध हुआ और महेश्वरके क्रुद्ध होनेपर उस ज्यातलशब्दसे सब लोक समाकुल तथा अवश हुए। हे पार्थ! देव असुर सब कोई विषण्ण हुए, जल उथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। सब पर्व्वत विद्रुत हुए और आकाश मण्डल विदीर्ण होगया, सब लोक अन्धतमसाच्छन्न होके प्रकाशरहित हुए। हे भारत! सूर्य्यके सहित ज्योतिवाले पदार्थोंकी प्रभा नष्ट हुई। अनन्तर सर्व्वभूत तथा आत्महितैषी ऋषिगण अत्यन्त भयभीत होकर शान्ति और स्वस्त्ययन करने लगे।

अनन्तर रौद्र पराक्रमी रुद्रदेव क्रुद्ध होकर देवताओंकी ओर दौड़े, उन्होंने क्रुद्ध होकर प्रहारके द्वारा भगका दोनों नेत्र विनष्ट किया और रोषित तथा पादचारी होकर पूषाकी ओर दौड़े। पूषाके उस समय पुरोडाश भक्षण करते रहनेपर रुद्रदेवने क्रुद्ध होकर उसके सब दांतोंको उखाड़ दिया। अनन्तर उन देवताओंने प्रणत होकर शङ्करको प्रणाम किया; रुद्रदेवने फिर प्रदीप्त शाणित बाण सन्धान किया, ऋषियोंके सहित सब देवता महादेवका पराक्रम देखके भयभीत हुए। अनन्तर उन श्रेष्ठ देवताओंने शङ्करको प्रसन्न किया, देवगण उस समय हाथ जोड़के शतरुद्री जप करने लगे,

महेश्वर देवताओंके द्वारा सब प्रकारसे स्तुतियुक्त होकर प्रसन्न हुए, देवताओंने रुद्रदेवके यज्ञभागकी विशिष्टरूपसे कल्पना की।

हे महाराज! देववृन्द डरकर महादेवके शरणमें गये, तब महादेवने प्रसन्न होकर उस यज्ञको सन्धित किया, उस यज्ञमें जो जो वस्तु अपहृत हुई थी, उन्हें वह सब उसही भांति फिर सजीव कर दी।

सुरलोकमें वीर्य्यवान असुरोंके लोहमय, रजतमय और तीसरा स्वर्णमय,—ये तीन पुर थे, इन्द्र समस्त अस्त्रोंसे उसे भेद करनेमें समर्थ नहीं हुए। अनन्तर देववृन्द पीड़ित होकर महारुद्रके शरणागत हुए, समागत महानुभाव देवगण बोले, हे रुद्रदेव! पशुगण सब कर्म्मोंमेंही अत्यन्त भयंकर होते हैं। हे मानद! इसलिये त्रिपुरके सहित दैत्योंका संहार करके सब लोगोंका परित्राण करिये। उन्होंने देवताओंका वचन सुनके कहा, "ऐसा हो होगा" इतनी बात कहके विष्णुको श्रेष्ठ वाण, अग्निको शल्य, वैवस्वत यमको पुङ्ख, वेदोंको धनुष, सावित्रीको रोदा और ब्रह्माको सारथी करके सबके संयोग तथा कालक्रमसे त्रिपर्व्वयुक्त तीन शल्यके सहारे उन तीनों पुरोंको भेद किया। हे भारत! रुद्रदेवने प्रलयकालकी अग्निसदृश तेजसम्पन्न आदित्यवर्ण शरके सहारे तीनों पुरोंके सहित असुरोंको जलाया था। वेही पञ्चशिख बालकरूपसे अङ्कगत हुए तब उमाने पूछा, "ये कौन हैं?" उस समय देवराज असूया करते हुए वज्रसे प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए, तब उन्होंने इन्द्रको परिघसदृश भुजाको वज्रके सहित स्तम्भित किया था, देवगण उस भुवनेश्वरको नहीं जान सके, प्रजापतिके सहित सब कोई ईश्वरविषयमें मोहित हुए थे। अनन्तर भगवान् ब्रह्माने उस अत्यन्त तेजस्वी रुद्रदेवको ध्यानके सहारे जाना, कि "येही श्रेष्ठ हैं," ऐसा जानके उन्होंने उमापतिको वन्दना की थी। अनन्तर देवताओंने उमादेवी और रुद्रदेवको प्रसन्न किया, तब बल-निसूदन देवराजको भुज पहलेकी भांति होगई। उस रुद्र देवने दुर्व्वास नामक वीर्य्यवान ब्राह्मण होकर द्वारकापुरीमें मेरे गृहके बीच बहुत समयतक वास किया था उन्होंने मेरे गृहमें अनेक प्रकारके दुःसह व्यवहार किये, तौभी मैंने उदारताके सहित उ दुःसह व्यवहारोंको सहा था। वेही रुद्र, वेही शिव, वेही अग्नि, सर्व्व और सर्व्वजित् हैं; वेही इन्द्र और वायु है, वह अश्विनीकुमार और बिद्युत हैं; वेही चन्द्रमा, वेही ईशान, वेही सूर्य्य और वेही वरुण हैं। वेही काल, वेही अन्तक तथा मृत्यु हैं, वेही तम, वेही रात्रि और दिवस है। वेही पक्ष, महीना, दोनों सन्ध्या और सम्वत्सर हैं; वेही धाता, वेही बिधाता, वेही विश्वकर्म्मा और वेही सर्व्ववित् हैं; वेही सब नक्षत्र, ग्रह, चारो दिशा और विदिशा हैं। वह अमरद्युति भगवान् विश्वमूर्त्ति तथा अमेयात्मा हैं, वेही ब्रह्मरूपसे एक प्रकार और जीव ब्रह्म भेदसे दो प्रकार हैं, प्रपञ्चरूपसे अनेक प्रकार सहस्र प्रकार तथा सैकड़ों हजारों प्रकारके हैं। वह भूयान भगवान् जन्मरहित महादेव ऐसे ही हैं; सौ वर्षमें भी उनके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता।

१६० अध्याय समाप्त।

वासुदेव बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! अनेक रूप और अनेक नामयुक्त महानुभाव रुद्रदेवका जो महत् ऐश्वर्य्य है, वह मेरे समीप सुनो। महेश्वर महादेवको अग्नि, स्थाणु, इकाक्ष, त्र्यम्बक, विश्वरूप और शिव कहते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस देवको द्विविध देह कहा करते हैं; उनमेंसे एक मूर्त्ति घोरा और दूसरी शिवा है; वेही दोनो मूर्त्तियें अनेक प्रकारकी हुआ करती हैं। जो उग्र तथा घोर मूर्त्ति है, वही अग्नि, बिजली और सूर्य्य

उसकी शिव तथा सौम्यमूर्त्ति धर्म्म, जल और चन्द्रमा है। उनके शरीरका अर्द्धभाग अग्नि और अर्द्धभाग सोम कहा गया है; उनकी शिवा-मूर्त्ति ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती है और घोरा मूर्त्ति प्रलयकालमें जगत्का संहार किया करती है। ईश्वरत्व और महत्त्वयुक्त होनेसे उनका महेश्वर नाम हुआ है। जो जलाके निःशेष करता तथा जो तीक्ष्ण, प्रतापवान् है और मांस शोणित-मज्जा भक्षण करता है, उसे रुद्र कहा जाता है। जो देवताओंमें उत्तम महान् है, महत्त्व जिसका विषय है, जो महत् विश्वको पालन करता है, वही महादेव नामसे स्मृत होता है। धूम्ररूप निबन्धनसे उसे धूर्य्यटी कहा जाता है। वह सदा कल्याणकी कामना करते हुए सब मनुष्योंको कर्म्मोंके सहारे पवित्र करता है, इस ही निमित्त उसका नाम शिव है। वह जड़में स्थिर रहके मनुष्योंके प्राणोंको दहन करता है और सदा स्थिरलिङ्ग है, इस ही निमित्त स्थाणु नामसे स्मृत हुआ करता है। स्थावर, जङ्गम, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भेदसे उसके अनेक प्रकारके रूप हैं, इसी लिये वह बहुरूप नामसे प्रसिद्ध है। विश्वदेवगण उसका आश्रय कर रहे हैं, इसलिये उसका विश्वरूप नाम है। सब स्थानोंमें उसके नेत्र हैं, इस ही निमित्त उसे सहस्राक्ष और अयुताक्ष कहा जाता है। उसके नेत्रोंसे प्रकट हुए तेजका अन्त नहीं है, वह सब प्रकारसे पशुओंकी पालन करता, उनके सङ्ग क्रीड़ा करता और उनका अधिपति होनेसे पशुपति नामसे प्रसिद्ध है। उसकी मूर्त्ति सदा ब्रह्मचर्य्यव्रतमें रत रहती है, इसही निमित्त लोग उस महात्माकी प्रियमूर्त्तिकी पूजा किया करते हैं। जो लोग उस महानुभावके विग्रह अथवा लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे लिङ्गपूजक सदा महती समृद्धि सम्भोग किया करते हैं। ऋषिवृन्द, देवगण, अप्सरा और गन्धर्व्वगण उस ऊर्द्ध स्थित लिङ्गकी ही अर्चना करते हैं। लिङ्गके सदा पूजित होनेसे महेश्वर प्रमुदित होते है और भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्नचित्त होकर भक्तोंको सुख प्रदान करते हैं। वह देव श्मशानके बीच निःशेष करके जलाते हुए निवास किया करता है। श्मशानके बीच जो पुरुष उसकी पूजा करते हैं, वे वीरस्थानमें निवास करनेके योग्य होते हैं। वही प्राणियोंके शरीरमें मृत्युस्वरूप है और वही शरीरधारियोंके शरीरमें प्राण तथा अपान वायुस्वरूप है; उसके रूप घोर, प्रकाशमान तथा अनेक प्रकारके हैं। लोकमें उसके जो सब रूप पूजित होते है, उसे विद्वान्-ब्राह्मण लोग जानते हैं। उसके कर्म्म तथा चरितके सहारे देवताओंके बीच बहुत्वप्रयुक्त होनेसे यथार्थ नामधेय हुआ करते हैं। ब्राह्मण लोग वेदके बीच उनकी शतरुद्रिय पाठ करते है और वेदव्यासने उस महात्माके जो सब नाम वर्णन किये हैं, उन्हें भी जानते हैं। वह सब लोगोंके सुखप्रदाता विश्व और महत् रूपसे वर्णित होते हैं, ब्राह्मण लोग तथा दूसरे ऋषिवृन्द इन्हें सबसे श्रेष्ठ कहते है, वेही देवताओंके बीच आदिपुरुष हैं; उन्होंने ही मुखसे अग्नि उत्पन्न की थी। अनेक प्रकारके ग्रहोंसे सत्त्व प्राण परित्याग करनेसे वह शरण्य पुण्यात्मा शरणागत पुरुषोंको कदापि परित्याग नहीं करता, वही मनुष्योंको आयु, आरोग्यता ऐश्वर्य्य और पुष्कल काम प्रदान करता है, फिर वही आक्षेपपूर्व्वक ग्रहण किया करता है। इन्द्रादि देवताओंमें उसका ही ऐश्वर्य्य वर्णित होता है, वह तीनों लोकोंके बीच शुभाशुभ विषयोंमें सदा व्यापृत होरहा है। वह ऐश्वर्य्यके हेतु सब कार्य्योंका ईश्वर कहा जाता है; वह सब लोकोंका महेश्वर है और महद्भूतोंका भी ईश्वर है। उसके अनेक भांतिके रूपसे यह विश्व जगत् व्याप्त होरहा है, उस देवका मुख ही समुद्रमें बड़वामुख है।

१६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवकीनन्दन कृष्ण जब इतनी कथा कह चुके, तब युधिष्ठिरने शान्तनुनन्दन भीष्मसे फिर प्रश्न किया। हे सर्व्व-धर्म्मज्ञश्रेष्ठ महाप्राज्ञ! निर्णय अथवा प्रत्यक्ष आगम इन दोनोंके बीच कारण क्या है?

भीष्म बोले, हे प्राज्ञ! इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है, मेरे मनमें ऐसी धारणा है, कि तुमने सम्यक् प्रश्न किया है; मैं यह विषय कहता हूं, सुनो। इसमें संशय सुगम परन्तु निर्णय अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें संशय दीखता है वह दृष्टश्रुत अथवा अचिन्त्य है। हेतुवादी लोग प्रत्यक्ष कारणको देखकर अपनेको प्राज्ञ समझके अभिमान करते हैं; संशयको सत्यजानके 'नास्ति' ऐसा वचन कहा करते हैं, जो पण्डिताभिमानी बालकवत् ऐसा कहते हैं, वह युक्तिसिद्ध नहीं है। यदि ऐसा समझो, कि पक्षान्तरमें एक मात्र कारण होता है, तो बहुत समयतक निरालस तथा तन्मनस्की होनेसे उसे जान सकोगे। हे भारत! अनेक प्रकारकी प्राणयात्रा है, इसको जो लोग जल्पना करते हैं, वे तत्पर पुरुष ही इसे देख सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते। कारणोंका अन्त जाननेसे विपुल उत्तम ज्ञानज्योति लोगोंके अन्तःकरणमें प्राप्त होती है। हे महाराज! कारणोंका ज्ञान कदाचित ज्ञान नहीं है, अग्राह्य और अनिबद्ध विषयोंका परित्याग करना चाहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकमें सिद्धि प्रत्यक्ष होती है, लौकिक और आगमपूर्व्वक शिष्टाचार अनेक प्रकारका है, इसलिये आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! बलवान दुरात्माओंके द्वारा क्रियमान धर्म्मकी संस्थिति उन्होंने ही की है, कालक्रमसे वह विभिन्न हुआ है। तृणसे ढके हुए कूएंकी भांति अधर्म्म धर्म्मरूपसे प्रकाशित होरहा है, उस ही निमित्त चरित्र विभिन्न होता हैं। जो लोग शिष्टाचारविहीन श्रुतित्याग परायण, धर्म्मविद्वेषी तथा नी[illegible] कहके वर्णित हुए हैं और शिष्टाचार खण्ड[illegible] करते हैं, वैसे प्रत्यक्षानुमानचारी पुरुषों[illegible] सन्देह होता है। जिन्होंने साधुओंके निक[illegible] तृप्ति लाभ की है, शास्त्रकी आलोचना[illegible] जिनकी बुद्धि शुद्धि हुई है, तथा जो लोग सन्तु[illegible] हैं, वेही श्रेष्ठ प्रमाण हैं, उन्हींको उपासन करो और उन्हींसे पूछो। लोभ मोहके अनुग[illegible] काम और अर्थको पीछे करके धर्म्मशोध कर[illegible] हुए उनकी उपासना करो और पूछो, उनके चरित्र यज्ञ और स्वाध्याय कर्म्म भिन्न नहीं होते। प्रत्यक्ष दृष्ट चरित्र शौच आदि आचार तथा वेद, इन तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म्म होता है, वह धर्म्म ही साधनीय है।

युधिष्ठिर बोले, अपार पथकी खोज करनेवाले पार न पाके जिस प्रकार दीखते हैं, वैसे ही फिर मेरी बुद्धि सन्देहसे मुग्ध होती है। वेद, प्रत्यक्षदृष्ट चरित्र और आचार, ये तीनों ही यदि धर्म्मविषयमें प्रमाण हुए, तौभी इनमें पृथकत्व मालूम होता है, तीनों प्रमाणोंके द्वारा प्रतिपाद्य प्रमेयधर्म्म किस प्रकार एक होगा?

भीष्म बोले, हे राजन्! बलवान् दुष्टात्माओंके द्वारा ह्रियमान धर्म्मके सम्बन्धमें यदि तुम ऐसी शङ्का करते हो, तौभी धर्म्मकी विवेचना तीन प्रकारसे होती हैं; तीनों प्रमाणोंके सम्वादसे एक मात्र धर्म्म परीक्षणीय है। धर्म्म-दर्शन त्रिविध होनेपर भी धर्म्म एक ही है; तीनों प्रमाणोंके पृथक् होनेपर भी प्रमेय धर्म्म पृथक् नहीं है; तीनों प्रमाण पृथक् पृथक् रीतसे धर्म्मके प्रतिपादक नहीं होते तीनोंके मिलनसे एक मात्र धर्म्म हुआ करता है। तीनों प्रमाणोंका जो पथ वर्णित हुआ है, उसका उस ही प्रकार आचरण करो, धर्म्म विषयमें तर्क करके प्रश्न करना योग्य नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! इस विषयमें तुम्हें सदा संशय न होवे; अन्धे और जड़की भांति शंकारहित

होके जैसा कहता हूं, वैसाही आचरण करो। हे अजातशत्रु! अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता और दान, ये चारों ही सनातन धर्म्म हैं, इसलिये तुम इन चारोंकी सेवा करो। ब्राह्मणोंके विषयमें पितृ पितामहोचित जो वृत्ति है, उसहीका अनुसरण करो, क्यों कि येही धर्म्मके उपदेशक हैं। जो अज्ञानी मनुष्य अप्रमाणको प्रमाण करते है, वह कदाचित प्रमाण नहीं होता केवल विषादजनक हुआ करता है, ब्राह्मणोंका सम्मान करते हुए अधिक आदरके सहित सेवा करो, यह जान रखो, कि ब्राह्मणोंसे ही ये सब लोग प्रतिष्ठित होरहे हैं।

युधिष्ठिर बोले, जो लोग धर्म्मकी असूया करते और जो मनुष्य धर्म्मको सेवा किया करते हैं, वे लोग किन स्थानोंमें जाते हैं? आप मेरे निकट इस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जिनका चित्त रजोगुण और तमोगुणसे ढंका है, वे धर्म्मविद्वेषी मनुष्य नरकमें गमन किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग सब प्रकारसे धर्म्मकी उपासना करते हैं, वे सत्य और सरल चित्तवाले पुरुष स्वर्गभोग किया करते हैं; आचार्य्यकी उपासनाके हेतु धर्म्मही उनकी गति है, जो लोग धर्म्मकी उपासना करते हैं, उन्हें देवलोक प्राप्त होता है। मनुष्य अथवा देवगण लोभ-हर्षसे रहित होके शरीरको उपताप देकर धर्म्मसे सुख लाभ करते हैं। मनीषिगण ब्रह्माके पुत्रको प्रथम धर्म्म कहते हैं, जैसे भोक्ताका मन पके फलकी भोग करता है, वैसेही धार्म्मिक लोग फलकी उपासना किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, दुष्टोंका क्या लक्षण है? साधु लोग क्या किया करते हैं? साधु और दुर्जन कैसे हैं? यह सब आप मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, दुष्ट लोग दुराचारी दुर्द्धर्ष और दुर्मुख हैं और साधुजन शील सम्पन्न तथा सदा शिष्टाचार लक्षणस्वरूप हैं। हे राजेन्द्र! धार्म्मिक मनुष्य राजमार्ग, गोसमूह और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते। साधु लोग देव, पितर, भूत, अतिथि और कुटुम्ब इन पांचोंको अन्नदान करके शेषमें स्वयं भोजन करते हैं, वे लोग भोजन करते करते जल्पना नहीं करते, आर्द्र पाणि होकर सोते नहीं। जो लोग चित्रभानु, वृषभ, देवता, गऊ, चतुष्पथ, ब्राह्मण, धार्म्मिक और वृद्ध पुरुषोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, जो लोग बूढ़े, भारसे थके हुए पुरुषों, स्त्रियों, अनेक ग्रामोंके स्वामी, ब्राह्मणों, गौवों और राजाओंको पथ प्रदान करते हैं, वेही साधु हैं। अतिथि, प्रेष्य स्वजनों और शरणागत पुरुषोंको प्रतिपालन तथा स्वागत प्रश्न करना चाहिये। सन्ध्या और सवेरे मनुष्योंका भोजन देवनिर्म्मित है, जो लोग उसके अनन्तर भोजन नहीं करते उसेही उपवास विधि कहते हैं। जैसे होमकालमें अग्नि समयकी प्रतीक्षा करती है, वैसेही ऋतुकालमें स्त्रियें ऋतुकी प्रतीक्षा किया करती हैं; ऋतुकालके अनन्तर अन्य समयमें जो लोग स्त्रीसङ्ग नहीं करते, वही उनका ब्रह्मचर्य्य कहाता है। अमृत, ब्राह्मण और गौवें,—ये तीनोंही समान हैं; इसलिये ब्राह्मण और गौवोंकी विधिपूर्व्वक पूजा करे। वेदमन्त्रोंसे संस्कारयुक्त मांस भक्षण करनेमें दोष नहीं होता, पृष्ठमांस वृथामांस और पुत्रमांस,—ये तीनोंही समान हैं। निज देश तथा परदेशमें अतिथिको उपवासी न रखे, अध्ययन कार्य्य समाप्त करके गुरुजनोंको दक्षिणा दान करे, बड़े लोगोंको प्रणाम करे और पूजा करके आसन देना योग्य है। गुरुजनोंकी पूजा करनेसे परमायु यश श्रीके सहित वृद्धि होती है, वृद्धोंकी कदापि निन्दा न करे और उन्हें किसी कार्य्यके निमित्त प्रेरण करना योग्य नहीं है। बड़े लोगोंके खड़े रहनेपर बैठा न रहे, इस प्रकार आदरण करनेसे आयु नहीं घटती। वस्त्ररहित

स्त्री-पुरुषोंकी ओर न देखे, सदा गुप्तभावसे मैथुन और आहार करे। गुरुजन सब तीर्थोंके भी तीर्थस्वरूप हैं, सब पवित्र पदार्थोंके बीच हृदय ही अत्यन्त पवित्र है, इन्द्रियोंके बीच ज्ञानही परम श्रेष्ठ और सन्तोष ही परमसुख है। सन्ध्या और सबेरेके समय वृद्ध लोगोंका पुष्कल बचन सुने, सदा बूढ़ोंकी सेवा करनेसे मनुष्य ज्ञानवान् होता है, वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् यज्ञोपवीती होवे, बचन, मन और इन्द्रियोंको सदा संयत करे। संस्कार किया हुआ पायस, यवागू, कृशर और हविके सहारे ग्रहोंकी पूजा और पितृदैवत्य अष्टका श्राद्ध करे। ब्रह्मायु-कर्ममें मङ्गलबचन कहे, च्युत होनेपर शत-ञ्जीव इत्यादि बचनसे अभिनन्दन करे, पीड़ित पुरुषोंको परमायुके निमित्त प्रार्थना करे। आपद्ग्रस्त होके कदापि महत् पुरुषोंको "तुम" न कहे, विद्वानोंको तुम कहने और बध करनेमें विशेष अन्तर नहीं है, कनिष्ठ लोगों, बराबर वालों और शिष्योंको तुम कहना योग्य है। पापकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका हृदय ही सदा उन्हें पापी कहा करता है, अर्थात् कर्मके सहारे उनका हृदय जाना जाता है। महाजनोंके निकट जानके कृतकर्म्मोंको गोपन करनेसे वह कर्म विनष्ट होता है; दुष्ट लोग ही जानके कृतकर्म्मोंको गोपन किया करते हैं। मुझे मनुष्य लोग नहीं देख सकते और देवता लोग भी नहीं देखते है, ऐसा ही समझके पापसे परि-पूरित पापाचारी मनुष्य पापमें ही निमग्न हुआ करता है। जैसे वृद्धजीवी लोग देहभेदसे वृद्धिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही धर्म्मसे ढका हुआ पाप धर्म्मकी वृद्धि किया करता है। जैसे नमक जलमें पड़नेसे गल जाता है, वैसे ही प्रायश्चित्तके द्वारा पापकर्म्म उस ही समय विनष्ट हो जाते हैं, इसलिये पापकर्म्मोंको न छिपावे, छिपानेसे ही वह बढ़ता है, पाप करनेपर उसे साधुओंके निकट कहनेसे वे लोग उस पापको नष्ट किया करते है। आशाके सहारे सञ्चित किया हुआ द्रव्य कालक्रमसे उपभुक्त होता है, जो पुरुष सञ्चय करता है, उसके वियोगमें दूसरा उसे भोग किया करता है। मनीषीवृन्द सब जीवोंके मानसको ही धर्म्म कहते हैं, इसलिये सब जीव धर्म्मका ही आसरा कर रहे हैं। एक मात्र धर्म्मका ही आचरण करे, धर्म्मध्वजी न होवे; जो लोग धर्म्मको उपभोग करते हैं, वे धर्म्मवणिक् हैं। दम्भरहित होकर देवताओंकी पूजा करे, निष्कपट होके गुरुकी सेवा करे, परकालके लिये निधि स्थापन करे और सत्पात्रको दान करे।

१६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, भाग्यहीन मनुष्य अत्यन्त बलवान होनेपर भी धनवान् नहीं होता और भाग्यवान् मनुष्य कृशित तथा बालक होनेपर भी अर्थ लाभ करता है। जब मिलनेका समय नहीं रहता, तब प्रयत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त होता और मिलनेके समयमें बिना यत्नके ही बहुतसा धन मिलता है। ऐसे सैकड़ों लोग दीखते हैं, जो कि यत्न करके निष्फल हुए हैं और बहुतेर पुरुष बिना यत्नके ही बर्ज्जित होते दीख पड़ते हैं। यदि यत्न करनेसे मनुष्योंको उस ही समय फल प्राप्त होता, तो विद्वान् पुरुष मूर्खोंके निकट वृत्तिके निमित्त आश्रित न होते। हे भरतसत्तम! मनुष्योंकी न मिलनेवाली वस्तु प्राप्त नहीं होती, देखा जाता है, कि प्रयत्न करनेपर भी बहुतेरे निष्फल होते हैं। कोई सैकड़ों नीति बचनके सहारे धन चाहते हैं, कोई बिना प्रार्थना किये ही सुखी होते हैं। देखनेमें आता है, कि कितने लोग बार बार दुष्कर्म्म करके निर्द्धन हो जाते हैं और दूसरे लोग निर्द्धन होनेपर भी निज कर्म्ममें रत होके धनवान् होते हैं। कोई पुरुष नीतिशास्त्रोंको पढ़के भी

न्त्रिल पदमें नियुक्त नहीं होते और क्या कारण है, कि कितने ही मूर्ख पुरुष मन्त्रिल पदपर नियुक्त होते हैं? क्या विद्वान् विद्याहीन है तथा क्या धनवान् दुर्ब्बुद्धि है? यदि विद्याके अवलम्बसे मनुष्य सुखी होता, तो विद्वान् मनुष्य वृत्तिके निमित्त मूर्खोंका आसरा न करते। जैसे पुरुष जल पाके प्यास बुझाता है, वैसेही इष्टार्थी पुरुष विद्याके सहारे अर्थरूपी प्यासकी शान्ति किया करता है; तथापि विद्या परित्याग नहीं करता। जिसका समय नहीं पहुंचा है, वह सैकड़ों बाणोंसे बिद्ध होनेपर भी नहीं मरता और जिसका काल पहुंच गया है, वह तृणकी नोकसे छूए जानेपर भी जीवित नहीं रहता।

भीष्म बोले, कार्य्योंकी चेष्टा करते हुए यदि अर्थ लाभ न होवे, तो उग्र तपस्यामें प्रवृत्त होना चाहिये, क्यों कि बिना बीजके कदापि अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता। मनीषिवृन्द कहा करते हैं, कि दान करनेसे मनुष्य भोगवान् होता है, वृद्धोंकी सेवा करनेसे मेधावी हुआ करता है और अहिंसासे महादीर्घायु होता है। इसलिये दान करे जाचना योग्य नहीं है। धार्म्मिक लोगोंकी पूजा करे, उत्तम बचन कहे; प्रियकारी, शुद्ध और सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसक होवे। हे युधिष्ठिर! जब कर्म्म और स्वभाव दंश, कीट तथा चींटी प्रभृतिके सुख दुःख प्राप्तिविषयमें प्रमाण है, तब अपने विषयमें भी वैसा ही जानके तुम्हें स्थिर होना चाहिये।

१६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो सत् वा असत कर्म्म किया जाता तथा कराया जाता है; किम्वा कृत वा अकृत हो; उसके बीच सत्कर्म करके उसपर विश्वास करे और असत् कार्य्योंमें विश्वास न करना चाहिये। काल ही सब समयमें निग्रह-अनुग्रह प्रदान करता हुआ प्राणियोंकी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर धर्म्म अधर्म्मका प्रवर्त्तक होता है। जिस समय धर्म्मार्थ प्रदर्शन हेतु पुरुषकी बुद्धिमें धर्म्म कल्याणकारी बोध होता है, उस समय धर्म्मात्मा मनुष्य आश्वस्त होवे; अदृढ़ बुद्धि पुरुष धर्म्मफलमें बिश्वास नहीं करते। प्राणियोंकी इतनी ही धर्म्ममें विश्वासवत्ता प्राज्ञ लक्षण है। जो लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य दोनोंको जानते हैं, वे समयके अनुसार जैसा उचित होता है, वैसा ही आचरण किया करते हैं। जैसे ऐश्वर्य्यशाली मनुष्य रजोगुणसे युक्त सन्तान उत्पन्न नहीं करता, इस लोकमें धार्म्मिकपुरुष उस ही प्रकार आप ही अपना सम्मान किया करते है। काल कदापि दुःखके हेतु स्वरूपसे धर्म्म दान नहीं करता; इसलिये धर्म्मचारी मनुष्य अपनेको पवित्र जाने। सन्तत अधर्म्म कालके द्वारा परिरक्षित जलती हुई अग्निसदृश धर्म्मको स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं है। विशुद्धता और अधर्म्मका अस्पर्श धर्म्मके द्वारा ही करना चाहिये; क्यों कि धर्म्म ही विजयाः वह है, धर्म्म ही तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है। कोई बुद्धिमान् पुरुष मनुष्यको हाथसे पकड़के धर्म्ममें प्रवृत्त नहीं कर सकता, परन्तु वह धर्म्मभय तथा लोकभयके छलसे उसे धर्म्मानुष्ठानके निमित्त प्रेरणा करता है, अर्थात् प्राज्ञ पुरुषोंके द्वारा लोकभय प्रभृति छलसे प्रेरित होकर मनुष्य धर्म्मानुष्ठानमें प्रवृत्त होता है। "मैं शूद्र हूं मुझे चारों आश्रमोंके धर्म्मसेवनमें अधिकार नहीं है" ऐसा वचन कहके दूसरे लोग अधिकारके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वह छल नहीं है, इसलिये समस्त प्रवर्त्तना व्यर्थ है। सदृशचित्तवाले प्राणियोंका पञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष होनेपर भी 'यह पवित्र है, यह अपवित्र है', इस ही प्रकार विशेष व्यवस्थापन लौकिक धर्म्म और शास्त्रीय धर्म्म निमित्त कृत हुए हैं; पशु, पामर, पण्डित प्रभृति प्राणीवृन्द जिस प्रकार पूर्वनिर्दिष्ट एकान्त लाभ करते हैं शास्त्रमें विस्तारपूर्व्वक वही धर्म्म

नियम वर्णित है, इसलिये चारों वर्णोंका विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं। लोक अनित्य है और धर्म्म नित्य है, यह किस प्रकार स्मृत हुआ? लोक और धर्म्मके कार्य्य-कारण भाव हेतुसे कार्य्यकी अनित्यता युक्तियुक्त नहीं होती। हे तात! इसलिये सङ्कल्पस्वरूप काल अर्थात् निष्काम धर्म्म ही नित्य है, उसका फल कभी सकाम नहीं हो सकता; इसलिये धर्म्मही सनातन है। तुल्य देहविशिष्ट तथा सदृशचित्तवाले प्राणियोंके सम्बन्धमें धर्म्मयुक्त सङ्कल्प ही विशेष रूपसे स्वयं उपदेशक होता है, जब जीवोंका पूर्व्वकृत कर्म्म उनके जन्मनेपर सुख दुख साधनका प्रवर्त्तक हुआ; तब जीवोंको धर्म्म सेवन अर्थात् कर्म्म फल भोगनेमें दोष नहीं है, क्योंकि तिर्य्यक्योनिमें वर्त्तमान जीवोंकी सदसत् प्रवृत्तिविषय पूर्व्वकर्म्मके अनुसार लोकमें गुरुतर दीखता है; विधि नियन्त्रित होकर लोक दृष्टान्तके अनुसार लोकसमाज ही उपदेष्टा हुआ करता है।

१६४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल धुरन्धर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने हिताकांक्षी होकर शरशय्याशायी भीष्मदेवसे पापासह हितविषय पूछा।

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है? क्या करनेसे मनुष्यको सुख मिलता है? किन कर्म्मोंके सहारे पुरुष निष्पाप होता है और किस प्रकार कर्म्म पापोंको नाश करता है?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मदेव सेवा करनेवाले युधिष्ठिरके निकट देववंश वर्णन करने लगे। भीष्म बोले, हे तात! ऋषिवंश युक्त इस देववंशका त्रिसन्ध्या पाठ करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। पुरुष दिनमें इन्द्रियोंके सहारे जो पापाचरण करता है अथवा जानके वा बिना जाने रात्रि तथा दोनो सन्ध्यामें जो पाप करता है, सदा पवित्र होके इस देववंशका पाठ करनेसे उन पापोंसे छूट जाता है। इसे पाठ करनेसे पुरुष कालक्रमसे अन्धा वा बहिरा नहीं होता, सदा स्मृतिमान् होता है, तिर्य्यक् योनि, नरक और सङ्करजातिमें गमन नहीं करता, उसे मरनेसे भय, दुःख और मोह नहीं होता। देवासुर गुरु सर्व्वभूत नमस्कृत अचिन्त्य अनिर्देश्य सर्व्वप्राण अयोनिज देव पितामह ब्रह्माकी सती सावित्री, वेदसू वेदकर्त्ता विष्णु नारायण प्रभु उमापति विरूपाक्ष, सेनापति स्कन्द, विशा हुतभुक्, वायु, चन्द्रमा, प्रभाकर सूर्य्य, शचीपति शक्रदेव, धूमोर्णाके सहित यम, गौरीके सहित कुवेर, सौम्यगज सुरभीदेवी, महर्षि विश्रव सङ्कल्पसागर, गङ्गा प्रभृति नदीगण, मरुद्गण तपसे सिद्ध बालखिल्यगण, कृष्ण द्वैपायन, पर्व्वत विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत विश्रुत, महाभागा देवकन्यागण, अप्सरा वृन्द, उर्व्वशी मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुष विश्वाची घृताची, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार पितृगण, धर्म्म, श्रुत, तप, दीक्षा व्यवसाय, पितामह, शर्व्वरी, दिवस, मारीच, काश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध राहु, सनैश्चर, सब नक्षत्र, सब ऋतु, मास, पक्ष, सम्वत्सर, वैनतेय, समुद्र, कद्रुज, पन्नगगण, शतद्रु विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा, महानदी, वेणा, कावेरी, नर्म्मदा, कुलपुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी महानदी लोहित, ताम्रारुणा, वेत्रवती पर्णाशा, गौतमी, गोदावरी, वेणा, कृष्णावेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, कावेरी, वंक्षु, मन्दाकिनी, प्रभास, प्रयाग, पवित्र नैमिषक्षेत्र, विमल सरोवर जहांपर विश्वेश्वरका स्थान है, पुण्यतीर्थोंके बीच उत्तम कुरुक्षेत्र, सिन्धूत्तम, तप, दान, जम्बू मार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, नदी, वेद, स्मृति, वेदवती, माल वा अश्ववती, भूमिके समस्त पवित्र

स्थान, गङ्गासागर, पवित्र ऋषिकुल्या, चित्रवहा नदी, पवित्र नदी चर्म्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी नदी, बाहुदा, महानदी, महेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, सरस्वती, नन्दा, अपरनन्दा, महाह्रद, तीर्थ गया, फल्गू तीर्थ, देवताओंसे परिपूरित धर्म्मारण्य, पुण्या देवनदी, ब्रह्मनिर्म्मित तीनों लोकमें विख्यात् सब पापोंको हरनेवाला कल्याणकारी पुण्यसरोवर, दिव्य औषधियोंसे युक्त हिमालय पर्व्वत, धातुओंसे चित्रित विन्ध्य, औषधीयुक्त तीर्थवान् मेरु, महेन्द्र, मलय, रौप्ययुक्त श्वेत पर्व्वत, शृङ्गवान, मन्दर, नील, निषद, दर्दुर, चित्रकूट, अञ्जनाभ, गन्धमादन पर्व्वत, पवित्र सोमगिरि इनके अतिरिक्त अन्य समस्त पर्व्वत, दिशा, विदिशा, सारीपृथ्वी, समस्त, वृक्ष, विश्वदेवगण, आकाश, नक्षत्रगण, ग्रहगण और ये समस्त देवगण जो मेरे द्वारा कीर्त्तित अथवा अकीर्त्तित हुए हैं, वे सब कोई सदा हमारी रक्षा करें।

मनुष्य इन्हीं नामोंके पाठ करनेसे सब पापोंसे छूटता है, इन सबकी स्तुति तथा अभिनन्दन करनेसे पुरुष समस्त भयसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग देवता स्तवकी प्रशंसा करते हैं, वे सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। देवताओंके अनन्तर तपसे सिद्ध अधिक तपस्यायुक्त सब पापोंके नाशक विख्यात् ब्राह्मणोंका नाम वर्णन करता हूं।

यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान, औशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, शक्तिमान, मेधातिथि और गुरुसम्पन्न वर्ही, ये पूर्व्वदिशाको अवलम्बन किये हैं। दक्षिण दिशाको अवलम्बन करनेवाले महाभाग उन्मुच, प्रमुच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय, मित्रा वरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, दृढायु और ऊर्द्धवाहु नामसे विख्यात् दोनों ऋषिसत्तम हैं। जो पश्चिम दिशाको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उनके नाम सुनो। ऋत्विग्गणोंके सहित उषङ्गु वीर्य्यवान् परिव्याध, दीर्घतमा ऋषि, गौतम, काश्यप, महर्षि, एकत, द्वित और त्रित, तथा अत्रिके पुत्र धर्म्मात्मा शक्तिमान सारस्वत। जो लोग उत्तर दिशाको अवलम्बन करके वास करते हैं, उनके नाम सुनो। अत्रि, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, ऋचीक पुत्र राम, उद्दालकि ऋषि, श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्म्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेतु, लोमहर्षण, उग्रश्रवा ऋषि, भार्गव और च्यवन। हे महाराज! सर्व्वपापोंका नाशक ऋषिदेव समन्वित यह आदि समवाय प्रकीर्त्तित हुआ। नृग, ययाति, नहुष, यदु, वीर्य्यवान, पुरु, सगर, धुन्धुमार, प्रतापवान्, दलीप, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान्, दुष्मन्त, महात्मा, चक्रवर्त्ती भरत, पवन, जनक, राजा धृष्टरथ, महाराज रघु, राजा दशरथ, राक्षसोंके नाशक वीर श्रेष्ठ रामचन्द्र, शशविन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, राजा दृढरथ, महोदर अलर्क, नरनाथ ऐल, नरश्रेष्ठ करन्धम, नराधिप काश्मीर, दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, महायशस्वी, रैवत, कुरु, सम्वरण, सत्यविक्रम मान्धाता, राजर्षि, मुचकुन्द, जान्हवी, सेवित, जन्हु, आदिराज वेणुके पुत्र पृथु, मित्रभानु, प्रियङ्ग, राजत्र सदस्यु, राजर्षिसत्तम श्वेत, विख्यात् महाभिष, राजा निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षूप, नरनाथ कक्षेयु, प्रतर्द्दन, दिवोदास, कोशलराज सुदास, ऐल, राजर्षि नल, प्रजापति, मनु, हविध्र, पिपध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीन वर्हि महायशस्वी, इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ और राजर्षि, कक्षसेन, इनका तथा इनके अतिरिक्त जो वर्णित हुए, इनके नामोंका भी प्रातःकालमें उठके सूर्य्योदय और सूर्य्यास्तके समय दोनो सन्ध्यामें पवित्र और एकाग्रचित्त होकर जो लोग पाठ करते हैं, वे धर्म्मफलभागी होते हैं। देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियोंकी स्तुति करनेसे ईश्वर हमारे

लिये पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग विधान करेगा, मुझे विघ्न प्राप्त न हो, पाप न हो और मेरे शत्रु न होवें, मेरी सदा निश्चय जय होवे और परलोकमें गति प्राप्त होवे ।

१६५ अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेवके शरशय्या तथा पाण्डवगण प्रणीत वीर शय्यापर शयन करते रहनेपर मेरे पूर्व्व पितामह महाप्राज्ञ युधिष्ठिर सब धर्म्मशास्त्र और दानकी विधि सुनके संशयके विषयों तथा धर्म्मार्थ विषयमें सन्देह रहित होकर और जो कुछ कार्य्य किया था, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह समस्त राजमण्डली पट लिखित चित्रकी भांति मुहूर्त्त भर निश्चल हुई । अनन्तर राजाओंके चुप होनेपर सत्यवती पुत्र व्यासदेव मुहूर्त्तभर सोचके उस समय सोये हुए नरनाथ गङ्गानन्दनसे बोले,—

हे राजन्! कुरुराज युधिष्ठिर भाइयों और सब अनुयाई राजाओंके सहित प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं । हे नरनाथ! युधिष्ठिर कृष्णके सहित आपकी उपासना कर रहे हैं ; अब आप इन्हें नगरमें जानेके लिये अनुमति दे सकते हैं, पृथ्वीपति गङ्गानन्दनभीष्मदेवने वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित युधिष्ठिरको अनुमति दी । हे महाराज! शान्तनुनन्दन भीष्मने राजा युधिष्ठिरसे यह मधुर वचन कहा । हे राजन्! अब तुम नगरमें जाओ, तुम्हारा मानसिक शोक विनष्ट होवे, हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त और दान्त होकर ययातिकी भांति बहुतसे अन्न सम्पन्न आप्त दक्षिण विविध यज्ञके द्वारा यजन करो ।

हे पार्थ! तुम क्षत्रधर्म्ममें रत रहके पितरों और देवताओंकी तृप्ति विधान करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा । तुम्हारा मानसिक दुःख नष्ट होवे, तुम प्रजारञ्जन करो । प्रकृतिगणको सब प्रकारसे धीरज दो और फल सत्कारके सहारे यथा योग्य सुहृदोंको सम्माननना करो । हे तात! चैत्यस्थान स्थित फलयुक्त वृक्षका जैसे पक्षीवृन्द आसरा किया करते हैं, वैसे ही मित्र और सुहृदजन तुम्हें अवलम्बन करके जीवन करें । हे महाराज! सूर्य्य दक्षिणायनसे विनिवृत्त तथा उत्तरायणमें प्रवृत्त होनेपर मेरा समय उपस्थित होगा, उस समय तुम मेरे समीप आना, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर 'ऐसा ही करूंगा,' इतना वचन कहके परिवारके सहित हस्तिनापुरकी ओर चले । हे कुरुश्रेष्ठ महाराज! उन्होंने धृतराष्ट्र और गान्धारीको आगे करके ऋषियों, भाइयों, श्रीकृष्ण, पुरवासी और जनपदवासी लोगों तथा मन्त्रियोंके सहित हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ।

१६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर पुरवासी और जनपदवासियोंको यथा रीतिसे सम्मान करके गृहमें जानेके निमित्त अनुमति दी । उस समय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मरे हुए वीरोंकी स्त्रियां वा पतिहीन नारियोंको बहुतसा धनदान करके धीरज देनेमें प्रवृत्त हुए । वह पुरुषश्रेष्ठ महाप्राज्ञ युधिष्ठिर राज्य पाके समस्त प्रजासमूहको बुलाकर अभिषिक्त हुए । धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर श्रीमान् धीमान् पुरुषश्रेष्ठ ब्राह्मणों सेनापतियों और वेदशास्त्र जाननेवाले पुरुषोंसे उत्तम आशीर्वाद पाके नगरके बीच पचास रात्रि वास करके कौरवोंमें अग्रगण्य भीष्मदेवका समय स्मरण किया । वह याचकोंके बीच घिरकर हस्तिनापुरसे बाहिर हुए आदित्यको निवृत्त और उत्तरायणमें प्रवृत्त देखकर भीष्मदेवके संस्कारके निमित्त पहले घृत, माला, पटवस्त्र, सुगन्ध, अगर प्रभृति चन्दन कालीयक द्रव्य, महामूल्यवान माला और विविध रत्न भेजके राजा धृतराष्ट्र यशस्विनी गान्धारी, माता

पृथादेवी और भाइयोंको अगाड़ी करके जना-र्द्दन धीमान् विदुर, युयुत्सु और सात्यकीके सहित राजाओंके योग्य उत्तम महत् परिवारके द्वारा घिरकर तथा स्तूयमान होकर भीष्मके संस्कारक अग्निका अनुगमन करते हुए देव-राजकी भांति उस नगरसे बाहिर हुए। अन-न्तर वह महातेजस्वी राजा कुरुक्षेत्रमें शान्तनु-पुत्रके समीप उपस्थित हुए। हे राजर्षि! राजा युधिष्ठिरने उस समय पराशरनन्दन बुद्धिमान व्यासदेव, नारद, देवल, असित और मरनेसे बचे हुए अनेक देशोंके समागत राजाओंके द्वारा उपासित और रक्षकोंसे रक्षित वीरशय्यापर सोये हुए भीष्मदेवका दर्शन किया। अनन्तर धर्मराजने भाइयोंके सहित रथसे उतरकर अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पितामहको अभिवादन तथा द्वैपायन प्रभृति ब्राह्मणोंको प्रणाम किया; उन सब लोगोंने उन्हें अभिनन्दित किया। धर्मराज युधिष्ठिर ऋत्विकगण और भाइयोंके सहित ऋषियोंसे घिरकर शरशय्यापर सोये हुए गङ्गानन्दन भीष्मदेवसे बोले। हे नरनाथ जान्ह-वीनन्दन! मैं युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूं। हे महाबाहो! यदि आप सुनते हों, तो कहिये मैं आपका कौनसा कार्य्य करूं? हे विभु! मैं अग्नि लेकर आपके समयपर उपस्थित हुआ हूं। आचार्य्य, ऋत्विकगण, ब्राह्मणगण आपके पुत्र महातेजस्वी प्रजानाथ धृतराष्ट्र और मन्त्रियोंके सहित वीर्य्यवान् वासुदेव उपस्थित हुए हैं। मरनेसे बचे हुए सब राजा और कुरु-जाङ्गलके सब लोग आये हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! इस-लिये आप दोनों नेत्र उघारके सबको देखिये। इस समय जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब मैंने स्पष्ट किया है, समयपर आपने जो कुछ कहा था, वह सब कर्म मैंने सिद्ध किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान कुन्ती-पुत्रका ऐसा वचन सुनके भीष्मदेवने नेत्र उघा-रके देखा, कि सब भारतगण उन्हें घेरकर खड़े हैं। अनन्तर बलवान वाग्मी भीष्मदेव विपुल भुजा ग्रहण करके उद्यत मेघ सदृश गम्भीर स्वरसे बोले। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! प्रारब्धसे-ही तुम मन्त्रियोंके सहित उपस्थित हुए हो; भगवान सहस्र किरणधारी दिवाकर परिवृत्त हुए हैं। चोखे बाणोंके अग्रभागपर आज अट्ठावन रात्रि पर्य्यन्त मैं सोया हूं, परन्तु बोध होता है, मानो एक सौ वर्ष व्यतीत हुआ है। हे युधिष्ठिर। यह चान्द्रमाघमास उप-स्थित है, यह शुक्लपक्ष है इस महीनेका तीनभाग इस समय भी शेष रह सकता है। भीष्मदेव युधिष्ठिरसे इतना वचन कहके धृतराष्ट्रको आमन्त्रण करके उस समयके अनुसार वचन कहने लगे।

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम धर्म्मज्ञ हो, तुमने विषय संशयका उत्तम रीतिसे निर्णय किया है; शास्त्रोंके जाननेवाले बहुतेरे ब्राह्म णोंकी तुमने उपासना की है। हे मनुजेश्वर! तुम्हें सूक्ष्म वेदशास्त्र सब धर्म्मों और चारों वेद मालूम हैं। हे कौरव! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है, जो होनहार था, वह हुआ है। तुमने कृष्ण द्वैपायनसे वेदरहस्य सुना है। हे महाराज! जैसे पाण्डुके पुत्रगण धर्म्म पूर्व्वक तुम्हारे पुत्र हो हैं; इसलिये तुम धर्म्ममें तत्पर रहके उन सेवा करनेवाले पाण्डुपुत्रोंका पालन करो। शुद्धचित्त धर्म्मराज तुम्हारे आज्ञा-वर्त्ती रहें अनृशंसता परायण तथा गुरुवत्सल जानो। तुम्हारे पुत्रगण दुरात्मा, क्रोध-मोहप-रायण, ईर्षायुक्त और दुर्व्वृत्त थे, इसलिये उन लोगोंके निमित्त तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवश्रेष्ठ भीष्म-देव, महाराज धृतराष्ट्रसे इतनी कथा कहके फिर महाबाहु वासुदेवसे कहने लगे।

भीष्म बोले, हे देवदेवेश्वर सुरासुर नम-स्कृत शङ्खचक्र गदाधारी त्रिविक्रम भगवन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम वासुदेव, हिरण्यात्म,

सविता विराट पुरुष हो; तुम ही जीवस्वरूप अनुरूप सनातन परमात्मा हो; मैं तुम्हारा भक्त तुममें ही चित्त लगाके तथा अदार होके परिवारगणके बीच घिरा हूं। हे पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम। तुम सदा मेरा परित्राण करो। हे वैकुण्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण! मुझे अनुमति दो, आप जिनके अवलम्ब हैं, उन पाण्डवोंकी रक्षा करिये। पहले मैंने दुर्बुद्धि मूर्ख दुर्योधनसे कहा था, कि जिस पक्षमें कृष्ण है, वहां ही धर्म्म है, जहां धर्म्म है, उस ही पक्षमें जय है। हे तात। वासुदेवकी उपाय अवलम्बन करके पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करो; सन्धि करनेसे तुम्हारा समय उत्तम होगा। मेरे बार बार ऐसा कहनेपर भी मन्दबुद्धि मूढ़ दुर्योधनने मेरा बचन न माना। इस समय पृथ्वीके सब राजाओंको मरवाकर स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ है। हे देव! मैं तुम्हें बदरिकाश्रममें नरके सहित बहुकालवासी पुराण ऋषिसत्तम देव कहके जानता हूं; नारद मुनि और महातपस्वी व्यासदेवने मुझसे कहा है, कि ये नर नारायण मनुष्य लोकमें अवतार लिये हैं। हे कृष्ण! अब मैं शरीर परित्याग करता हूं, तुम मुझे अनुमति दो, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मुझे परम गति प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पार्थिव भीष्म। मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, तुम्हें समस्त वसुलोक प्राप्त हों, हे महातेजस्वी। इस लोकमें तुम्हारा तनिक भी पाप नहीं है, तुम पितृभक्त तथा द्वितीय मारकण्डेय सदृश हो, क्योंकि मृत्यु दासीकी भांति सिर झुकाके तुम्हारे वशमें ही रही है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मदेवने कृष्णका ऐसा वचन सुनके पाण्डवगण तथा धृतराष्ट्र प्रभृति समस्त सुहृदोंसे कहने लगे। "मैं प्राण परित्याग करनेके लिये अभिलाषी हुआ हूं, उस विषयमें तुम लोग अनुमति करो। तुम लोग सत्यमें यत्नवान रहना, सत्य ही परम बल है। हे भारत। तुम लोग सदा अनृशंसतापरायण नियत-चित्त, ब्रह्मनिष्ठ धर्म्मशील और तपमें रत होना।" बुद्धिमान् भीष्मदेव सब सुहृदोंसे इतनी कथा कहके सबको आलिङ्गन करके फिर युधिष्ठिरसे यह बचन बोले। हे प्रजानाथ। ब्राह्मणगण, विशेष प्राज्ञजन, आचार्य्य और ऋत्विकगण सदा सर्व्वदा तुम्हारे पूजनीय हैं

१६७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन कुरुनन्दन! वह शान्तनव भीष्मने उस समय सब कौरवोंसे इसी प्रकार कहके मुहूर्त्तभर मौनावलम्बन किया। अनन्तर यथाक्रमसे मूलधारादि अधिष्ठानमें मनके सहित प्राणादि वायुको धारण करनेसे उस महात्माका प्राणादि वायु सम्यक् निरुद्ध होकर ऊर्द्ध्वगामी हुआ। शान्तनुनन्दन भीष्म उस समय जिस जिस अवयवके जिस अंशको परित्याग करने लगे, उस योगयुक्त महानुभावका वह अङ्ग विशल्य हुआ। क्षणभरमें सबके सम्मुखमें ही वह विशल्य हुए। वासुदेव प्रभृति व्यासादि मुनियोंके सहित सब कोई उसे देखकर विस्मित होरहे, उन्होंने सब अवयवोंमें प्राणसंयुक्त मनको निरोध करके मस्तक भेदकर स्वर्गमें गमन किया। आकाशमें पुष्पवृष्टिके सहित देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे। सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण साधु साधु कहके हर्ष प्रकाश करने लगे। हे प्रजानाथ! भीष्मदेवके मस्तकसे महोल्काकी भांति कोई पदार्थ निकलकर आकाशमें प्रवेश करते हुए क्षणमात्रके बीच अन्तर्हित हुआ। हे नृपश्रेष्ठ! इसी प्रकार वह भरतकुल धुरन्धर नरनाथ शान्तनुनन्दन उस समय कालके सहित संयुक्त हुए अनन्तर महानुभाव पाण्डवगण विदुर और युयुत्सुने बहुतसा काठ और विविध सुगन्धि लाकर चिता बनाई, और सब लोग देखने लगे।

युधिष्ठिर और अत्यन्त श्रेष्ठ महाबुद्धिमान

बिदुर दोनोंनेही कुरुश्रेष्ठ भीष्मको वसन और मालासे परिपूरित किया, युयुत्सुने उनके ऊपर उत्तम छत्र धारण किया। भीमसेन और अर्जुन, दोनों सफेद चवंर लेकर डुलाने लगे। नकुल और सहदेवने उष्णीष धारण किया। युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र कुरुकुल धुरन्धर भीष्म-देवके पांवके तलेसे सब शरीरपर तालका बेना सञ्चालन करने लगे। अनन्तर सबने उस महात्माका विधिपूर्व्वक पितृयज्ञ निर्व्वाह किया, अग्निमें बार बार यजन किया, सामग ब्राह्मणगण सामगान करने लगे। अनन्तर धृतराष्ट्र प्रभृति प्रचन्दनकाष्ठ और कालीयक, कालागुरु, प्रभृति अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे गङ्गानन्दनको आच्छादित करके अग्नि जलाकर प्रदक्षिणा की। कुरुकुल धुरन्धर कुरुसत्तमगण कुरुश्रेष्ठ भीष्मका संस्कार करके ऋषियोंसे सेवित पवित्र भागीरथीके तटपर गये। व्यासदेव, असित, नारद, कृष्ण, भरतकुलकी स्त्रियें और जो सब पुरवासी वहांपर इकट्ठे हुए थे, वे सब कोई उनका अनुगमन करने लगे।

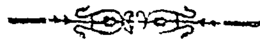
हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उन लोगोंने विधिपूर्व्वक महात्मा भीष्मदेवका तर्पण किया। अनन्तर गङ्गादेवी पुत्रका तर्पण होनेपर उस जलसे उठके रोदन करती हुई शोकसे विह्वल होकर विलाप करते करते कौरवोंसे बोलीं, हे निष्पापगण! जो घटना हुई है उसे मैं कहती हूं, सब कोई सुनो। जो मेरा पुत्र राजचरित्र, प्रज्ञा और नियम सम्पन्न था, जो कुरुवृद्धगणका सत्कार करनेवाला, पितृभक्त और महाव्रत था, पहिले जो परशुरामके निकट पराजित नहीं हुआ; आज वही महावीर शिखण्डीके द्वारा दिव्य अस्त्रोंसे मारा गया। हे नृपगण! मेरा हृदय निश्चयही पाषाणमय है, क्यों कि उस प्रिय पुत्रको न देखकर अबतक भी विदीर्ण नहीं हुआ। काशीपुरीके बीच स्वयम्बर सभामें इकट्ठे हुए समस्त क्षत्रिय राजाओंको एक रथसेही जीतकर जिसने तीनों कन्याओंको हरण किया था, पृथ्वीपर जिसके समान बलशाली और कोई भी न था, वह पुत्र शिखण्डीके हाथसे मारा गया है,—इस बातको सुनके मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ!! कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें जामदग्न्य-राम जिस महात्माके द्वारा सहजमें ही पीड़ित हुए थे, आज वह शिखण्डीके द्वारा मारा गया!!! महानदी गङ्गाके उस समय इसही प्रकार बहुत विलाप करते रहनेपर विभु दामोदरने उसे सान्त्वना वाक्यसे धीरज दिया।

हे प्रियदर्शने भद्रे! तुम धीरज धरो, शोक मत करो; तुम्हारा वह पुत्र परम लोकमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे शोभने! यह भीष्म महा तेजस्वी वसु थे, शापदोषसे इन्हें मनुष्यत्व प्राप्त हुआ था; इसलिये इनके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है। वह क्षत्रियधर्म्मके अनुसार रणभूमिमें संग्राम करते हुए अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं। हे देवि! शिखण्डीने उनका वध नहीं किया। कुरुश्रेष्ठ भीष्मदेवके महायुद्धमें बाण उद्यत करके स्थित होनेपर साक्षात् शतक्रतु इन्द्र भी उनका वध करनेमें समर्थ नहीं थे। हे शुभानने! तुम्हारा पुत्र स्वच्छन्दताके सहित स्वर्गमें गया है, युद्धमें समस्त देवता भी उसका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे गाङ्गा देवि! इसलिये तुम कुरुनन्दनके निमित्त शोक मत करो। यह तुम्हारा पुत्र वसुलोकमें गया है। हे देवि! तुम शोकरहित हो। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! नदियोंमें श्रेष्ठ जाह्नवी कृष्ण और व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके शोकरहित होके प्रकृतिको प्राप्त हुई। हे प्रजानाथ! कृष्ण प्रभृति सब कोई उस समय उनका सत्कार करके तथा उनकी अनुमति लेकर निवृत्त हुए।

१६८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारत।



अश्वमेध पर्व्व।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको नमस्कार करके जयजयकार करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहु युधिष्ठिर कृततर्पण राजा धृतराष्ट्रको आगे करके व्याकुलचित्तसे गङ्गासे बाहर हुए। वह आंसू डबडबाये हुए नेत्रसे गङ्गासे उत्तीर्ण होकर व्याधके द्वारा बिद्ध हाथीकी भांति तटपर गिर पड़े। अनन्तर कृष्णकी आज्ञानुसार भीमने उस अवसन्न युधिष्ठिरको पकड़ा और पर-बलपीड़क कृष्णने युधिष्ठिरसे कहा, कि "आप ऐसा न करिये।" हे महाराज! उस समय पाण्डवगण उस नरनाथ धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरका भूतलशायी, शोकार्त्त, दीनचित्त, ज्ञानरहित और लम्बी सांस छोड़ते हुए देखकर अत्यन्त शोकयुक्त होके बैठ गये। अनन्तर पुत्रशोकसे सन्तापित प्रज्ञाचक्षु, महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र नरनाथ युधिष्ठिरसे बोले। हे कुरुशार्दूल। तुम उठके इसके अनन्तर कर्त्तव्य कर्म्मोंको सम्पादन करो। हे कुन्तीनन्दन। तुमने क्षत्रियधर्म्मके अनुसार इस पृथ्वीको जीता है, इसलिये सुहृदो और भाइयोंके सहित इसे भोग करो। हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! इस समय शोक करना उचित नहीं है, क्यों कि तुम्हारे लिये शोकका कारण कुछ भी नहीं देखता हूं। हे महिपाल! जिसके सपनेसे मिले हुए धनकी भांति एक सौ पुत्र नष्ट हुए हैं, उस गान्धारी और मुझे ही शोक करना उचित है। हे महाराज! मैंने दुर्ब्बुद्धिके वशमें होकर महात्मा हितैषी विदुरके महत् अर्थयुक्त वचनको न सुननेसे इस समय परितापित होता हूं। दिव्यदर्शी महात्मा विदुरने मुझसे कहा था "हे महाराज! दुर्योधनके अपराधसे ही आपका श्रेष्ठ कुल नष्ट होगा, यदि आप अपने कुलका कुशल चाहते हैं, तो मेरे वचनके अनुसार इस दुष्टात्मा मन्दबुद्धि राजा दुर्योधनको परित्याग करिये। जिस प्रकार कर्ण तथा शकुनिके सङ्ग इसकी भेंट न हो और अप्रवादसे इनकी द्यूतक्रीड़ा निवारित होवे, उसहीका विधान करिये। हे राजन्! धर्म्मात्मा युधिष्ठिरको ही राज्यपर अभिषिक्त करिये, वह चित्तको वशमें करनेवाला धर्म्मपुत्र राज्यपर अभिषिक्त होनेसे धर्म्मपूर्व्वक पृथ्वी पालन करेगा अथवा यदि उस कुन्तीपुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करनेके लिये आपकी एकबारही इच्छा न हो, तो आप मध्यस्थ होकर स्वयं राज ग्रहण करिये। हे ज्ञातिवर्द्धन नरनाथ! जब आप सब प्राणियोंके विषयमें समभावसे विद्यमान रहके राज्यपालन करोगे, तो स्वजनवृन्द आपका आश्रय करके जीविका निर्व्वाह करेंगे।" हे कुन्तीनन्दन! दोषदर्शी महात्मा विदुरके ऐसा कहनेपर भी मैं दुर्ब्बुद्धि वशमें होकर उनके वचनको न मानके पापात्मा दुर्योधनका अनुवर्त्ती हुआ था। उस धीरवर विदुरके मधुर वचनको टालनेसे ही यह फल पाके महान् दुःखमें [illegible] मग्न हूं

हुआ हूं। हे प्रजानाथ! तुम उस दुःखित वृद्ध पिता माताकी ओर देखो, इस समय तुम्हारे शोकका विषय कुछ भी नहीं दीखता है।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मेधावी युधिष्ठिर बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके जब मौनभावसे ही स्थित रहे, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उनसे कहा। हे प्रजानाथ! जो मन ही मन अत्यन्त शोक करता है, उसके प्रेतीभूत पूर्व्वपितामहगण अधिक सन्तापित होते हैं; इसलिये आप शोक परित्याग करके दक्षिणायुक्त विविध यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवताओंका विधिपूर्व्वक पूजन और सोमके सहारे तर्पण करके स्वधामन्त्रसे पितरोंको तृप्त करिये। हे महाराज! इस समय आपके सदृश महाप्राज्ञ पुरुषको अन्न और जलसे अतिथियों तथा अन्य प्रकारकी कामनासे दरिद्र मनुष्योंके मनकी अभिलाषको पूरण करना ही उचित है, इस प्रकार मुग्ध होना योग्य नहीं है। हे महाराज! आपने गङ्गानन्दन भीष्म, कृष्ण द्वैपायन व्यास, नारद और विदुरके निकट सब जानने योग्य कर्त्तव्य विषयोंको जाना तथा समस्त राजधर्म्म सुना है, इसलिये आपको इस प्रकार मूढ़वृत्तिका अनुवर्त्ती होना उचित नहीं है, आप पितृ-पितामहकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यका भार उठाइये। देखिये क्षत्रियोंके यशस्वरूप क्षत्रधर्म्म युद्धके सहारे जो स्वर्गलाभ होना उचित है, उन लोगोंके विषयमें वैसा ही हुआ है, क्यों कि कोई शूर युद्धमें परांमुख होके नहीं मरे। हे महाराज! जो होनहार था, वही हुआ है, इस विषयमें आप अब शोक न करिये, शोक परित्याग करिये; आपने जिन्हें संहार किया है, उन्हें फिर कदापि न देखेंगे। हे महाराज! जब गोविन्द धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहके विरत हुए, तब महातेजस्वी युधिष्ठिर उनसे कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे गोविन्द! मुझपर तुम्हारी जैसी प्रीति विद्यमान है और प्रेम तथा सुहृदताके सहित तुमने जो मेरे विषयमें अनुकम्पा की है, वह सब मुझे विदित है। हे श्रीमान् चक्र गदाधारी! अब यदि तुम मुझे सन्तुष्टचित्तसे तपोवनमें जानेके लिये आज्ञा दो, तो तुम्हारे द्वारा मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य्य सिद्ध होगा। संग्राममें अपराङ्मुख पुरुषश्रेष्ठ कर्ण और भीष्म पितामहको मारके तपोवनमें जानेके अतिरिक्त किसी प्रकारसे भी मैं शोकशान्तिका उपाय नहीं देखता हूं। हे जनार्द्दन! जिस कार्य्यके करनेसे मैं इस पापसे छूटूं और मेरा चित्त पवित्र हो, तुम उसहीका विधान करो।

जब पृथापुत्र युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रसे ऐसा वचन कहा, तब महातेजस्वी धर्म्मज्ञ व्यासदेव उन्हें धीरज देते हुए अर्थयुक्त कल्याणकारी वचन कहने लगे। हे तात! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त ही अपरिपक्व है, तुम बार बार बाल्यस्वभावसे ही मुग्ध होते हो, क्या हम लोग उन्मत्तकी भांति बार बार आकाशसे वचन कहेंगे? जिनकी युद्धसे जीविका निभती है, उन क्षत्रियोंको सब धर्म्म विदित हुए हैं। जो राजा न्यायपूर्व्वक कार्य्य करता है, उसे आधिरूपी बन्धनमें बद्ध नहीं होना पड़ता, तुमने इसे भी जाना है और निखिल मोक्षधर्म्म यथार्थ रीतिसे सुना है, तथा मैंने भी अनेक बार तुम्हारे कामज सन्देहोंको दूर किया है। तुम दुर्व्बुद्धिके वशमें होकर हम लोगोंके वचनमें श्रद्धा नहीं करते हो, तुम्हारी स्मरणशक्ति निश्चय ही लुप्त होगई है, तुम्हें ऐसा न होना चाहिये, तुम्हारे लिये ऐसा अज्ञान अयुक्त है। हे पापरहित! तुम्हें सब प्रायश्चित्त विदित है, तुमने राजधर्म्म और दानधर्म्म सुना है, इसलिये सब धर्म्मोंको जानके तथा सर्व्वशास्त्र

विशारद होकर किस निमित्त बारम्बार अज्ञानकी भांति मोहित होते हो ?

२ अध्याय समाप्त ।

व्यासदेव बोले, हे युधिष्ठिर! मुझे बोध होता है, कि तुम्हारी प्रखर बुद्धि नहीं है, क्यों कि कोई मनुष्य भी स्वयं स्ववश होके कार्य्य नहीं करता। हे मानद! पुरुष ईश्वरकी प्रेरणासे जो उत्तम अधम कार्य्य करता है, उसमें क्या परिदेवना है? हे भारत! यदि तुम निश्चय ही अपनेको पापी समझते हो, तो जिस प्रकार पाप छूटता है, उसे सुनो। हे युधिष्ठिर! मनुष्य लोग सदा बहुतसे पापकर्म्म करके तपस्या, यज्ञ और दानके सहारे उससे मुक्त हो सकते हैं। हे नरेन्द्रनाथ! पापी मनुष्य यज्ञ, तपस्या और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं; महात्मा देववृन्द और असुर लोग भी पुण्यके लिये यज्ञकार्य्यमें समधिक यत्न करते हैं, इस ही निमित्त यज्ञ श्रेष्ठ हुआ है। महानुभाव देवगण यज्ञके द्वारा ही असुरोंसे अधिक हुए, इसही लिये क्रियावान् देवताओंने दानवोंके दलको धर्षित किया है। हे युधिष्ठिर! इसलिये दशरथ-पुत्र रामकी भांति तुम राजसूय, अश्वमेध, सर्व्वमेध और नरमेध यज्ञ करो तथा विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त बहुकाम अन्न और वित्तसमन्वित अश्वमेध यज्ञ करो। तुम्हारे पितामह दुष्मन्तपुत्र शकुन्तलानन्दन महावीर पृथ्वीपति राजा भरतने इस ही प्रकार सब यज्ञ किया था।

युधिष्ठिर बोले, "अश्वमेध यज्ञ निःसन्देह राजाओंको पवित्र करता है, परन्तु इस विषयमें मेरा जो अभिप्राय है, उसे भी आपको सुनना उचित है। हे द्विजोत्तम! मैं यह महत् स्वजनवध करके अल्पदान न कर सकूंगा। और बहुत दान करनेके लिये भी मेरे पास धन नहीं है तथा मैं इन आर्द्रघाव युक्त अत्यन्त कष्टसे वर्त्तमान राजपुत्रोंके निकट धन मांगनेका उत्साह नहीं कर सकता। हे द्विजसत्तम! मैं स्वयं पृथ्वीका विनाश करके यज्ञके लिये फिर किस प्रकार कर लूंगा? हे मुनिसत्तम! दुर्य्योधनने ही हमें अकीर्त्तिकर कार्य्यमें नियुक्त किया है और उसके अपराधसे ही पृथ्वीके सब राजा मारे गये हैं। उस धृतराष्ट्रपुत्र नीचबुद्धि दुर्य्योधनने लोभसे पृथ्वी क्षय की है और उसका कोष भी विशीर्ण होगया है। इससे इस यज्ञमें पृथ्वी दक्षिणा ही प्रथम कल्प है, यही विधि विद्वान् पण्डितोंके द्वारा परिदृष्ट हुई है, इसमें अन्यथा होनेसे विधिमें विपर्य्यय हुआ करता है। हे तपोधन! मैं इस विधिको प्रतिनिधि करनेकी कामना नहीं करता, इसलिये इस विषयमें आपको पूरी रीतिसे मेरा मन्त्रिल करना उचित है।" उस समय कृष्णद्वैपायन व्यास पृथापुत्र युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनकर मुहूर्त्तभर चिन्ता करके धर्म्मराजसे कहने लगे।

व्यासदेव बोले, "हे पार्थ! जो खजाना खाली हुआ है, वह परिपूर्ण होगा, महात्मा मरुत्तराजके यज्ञकालका ब्राह्मणोंका उत्कृष्ट धन हिमालय पर्व्वतमें विद्यमान है, उसही धनको मंगाओ, उसीसे पर्य्याप्त होगा।"

युधिष्ठिर बोले, हे वक्तृप्रवर! मरुत्तराजके यज्ञमें किस प्रकार धन सञ्चित हुआ था और वह किस समय राजा हुए थे?

व्यासदेव बोले, हे पार्थ! वह महाधनशाली महावीर जिस समयमें राजा हुए थे, उसे यदि तुम्हें सुननेकी इच्छा है, तो उस कारन्धम राजाका वृत्तान्त सुनो।

३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मज्ञ! मैं उस राजर्षि मरुत्तका विवरण सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक उनकी कथा यथार्थ कहिये।

व्यासदेव बोले, हे तात! सत्ययुगमें मनुनाम प्रजापालकदण्डधारी राजा थे, उनका पुत्र महाबाहु प्रसन्धि नामसे विख्यात् हुआ था; प्रसन्धिका पुत्र चुप और चुपका पुत्र इक्ष्वाकु राजा हुआ था। हे महाराज! उस महात्मा इक्ष्वाकुके परम धार्म्मिक एक सौ पुत्र हुए थे, उन्होंने उन एक सौ पुत्रोंको ही महिपाल किया था। धनुर्द्धारियोंमें मुख्य विंश उनके बीच जेठे थे, विंशका पुत्र परमसुन्दर विविंश हुआ था; विविंशके पन्द्रह पुत्र हुए थे। विविंशके सब पुत्र धनुर्विद्यामें विक्रान्त, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी दानधर्म्ममें रत, शान्त और सदा प्रियवादी थे। उनमें जेठे खनीनेत्र थे, उन्होंने सबको पीड़ित किया था, खनीनेत्र अत्यन्त पराक्रमी थे, उन्होंने अकण्टक राज्य जय किया, तौभी प्रजा उनमें अनुरक्त न हुई, इसीसे राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। हे राजेन्द्र! प्रजा उन्हें त्यागके उनके पुत्र सुवर्चाको राज्यपर अभिषिक्त करके आनन्दित हुई थी। वह सुवर्चा पिताको विक्रिया तथा राज्यसे उन्हें निर्व्वासित होते देखकर प्रजासमूहकी हितकामनासे संयत होकर रहता था। प्रजा उस ब्रह्मनिष्ठ सत्यवादी, पवित्र, शमदम युक्त, मनस्वी और धार्म्मिक सुवर्चामें अनुरक्त थी। अनन्तर जब धर्म्ममें प्रवृत्त सुवर्चाका कोष और वाहन विशीर्ण हुए तब सामन्तगण उन्हें सब भांतिसे पीड़ित करने लगी। खजाना, घोड़े तथा वाहनोंसे रहित होनेपर वह राजा सामन्तगणोंके द्वारा पीड़ित हो... पुरजनके सहित परम दु...

उसही सेनाके सहारे उसने निज सीमाके अन्तवर्त्ती सब राजाओंको जय किया था। हे महाराज! इसही कारण वह करन्धम नामसे विख्यात हुआ था। त्रेतायुगके प्रारम्भमें करन्धमके इन्द्र सदृश श्रीमान् देवताओंसे भी दुर्जय कारन्धम नाम पुत्र हुआ था। उस समयमें उसने बल और वित्तके सहारे सबका सम्राट होकर सब राजाओंको अपने वशमें किया था। वही कारन्धम अविक्षित नामसे विख्यात् हुए थे, वह धर्म्मात्मा अविक्षित इन्द्रके समान पराक्रमी, यज्ञशील, धर्म्ममें रत रहनेवाले धृतिमान्, संयतेन्द्रिय, सूर्य्यसदृश तेजस्वी, पृथिवीकी भांति क्षमाशील वृहस्पतिके समान बुद्धिमान तथा हिमवानकी भांति स्थिर थे। उस पृथ्वीपति अविक्षितने मन, वचन, कर्म्म, दम और शमके द्वारा प्रजासमूहके चित्तको आनन्दित किया था। जिस प्रभु अविक्षितने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किया था, विद्वान् अङ्गिराने स्वयं जिसका यज्ञ कराया था, उस अविक्षितके पुत्र धर्म्मज्ञ चक्रवर्त्ती दश हजार हाथियोंके सदृश बलवान साक्षात् द्वितीय विष्णुरूप महायशस्वी मरुत्तने निजगुणोंके सहारे पिताको अतिक्रम किया था। उस धर्म्मात्मा मरुत्तने यज्ञ करनेके लिये सु... णमय सहस्र पात्र सुशोभित किया था। उत्त... हिमालयके उत्तर भागमें मेरु पर्व्वत प... वहीं उत्तम महान् काञ्चनमय प्रत्यन्त पर्व्वत... कर्म्म किया था। वहांपर सुनारोंने अ... सुवर्णमय कुण्ड, पात्र और पीढ़ा आ... बनाया था, उसके समीपमें ही यज्ञवाट ब... धर्म्मात्मा पृथ्वीपति मरुत्तने सब राजाओं... ...स्थानमें यज्ञ किया था।

इस समय वे सब वस्तु कहां हैं और हमें किस प्रकार मिलेंगी ?

वेदव्यास बोले, हे तात । जैसे दक्षप्रजापतिके सुर और असुर बहुतसे पुत्र होकर सदा परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, उसी भांति अङ्गिराके तुल्य व्रतशाली तपोधन सम्वर्त्त और बृहत्तेजस्वी बृहस्पति नाम दो पुत्र हुए थे । हे महाराज । वे दोनों अत्यन्त स्पर्द्धित होनेसे पृथक् पृथक् स्थानमें रहते थे ; परन्तु बृहस्पति सदा सम्वर्त्तको दुःख देते थे । हे भारत । वह सम्वर्त्त जेठे भाई बृहस्पतिके द्वारा सदा पीड़ित होनेसे दिगम्बर होकर समस्त अर्थ परित्यागकर बनवासकी अभिलाष करके वनमें चले गये ।

इधर वासवने असुरोंको जय तथा मारके तीनो लोकोंका इन्द्रत्व पाकर अङ्गिराके जेठे पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ बृहस्पतिको अपना पुरोहित बनाया । जगतके बीच अप्रतिम बलवित्त वीर्य्यसम्पन्न इन्द्रके समान तेजस्वी सशितव्रती धर्म्मात्मा राजा कारन्धम पहले अङ्गिराके यजमान थे । उनके अत्यन्त सुन्दर वाहन बलवान योद्धा, बुद्धिमान विविध मित्र और महामूल्यवान शय्या थी । उन्होंने ध्यानबलसे राजा होकर निज गुणों तथा सुखवायुसे सब राजाओंको वशीभूत किया था । वह निज अभिलषित समय पर्य्यन्त जीवित रहके सशरीर स्वर्गमें गये । अनन्तर ययातिकी भांति धर्म्म जाननेवाले शत्रुञ्जित अविक्षित नाम उनके पुत्रने पृथ्वीको अपने वशमें करके निज विक्रम और गुणोंके सहारे पिताकी भांति राज्य किया था । इन्द्रके सदृश वीर्य्यवान मरुत्त उनके पुत्र थे ; समुद्रके सहित सारी पृथ्वी उनपर अत्यन्त अनुरक्त हुई थी । हे पाण्डुनन्दन । वह पृथ्वीपति मरुत्त देवराजके सङ्ग स्पर्द्धा करते थे । ऐसा हो नहीं सकता इन्द्र अनेक यत्न करनेपर भी उस गुणवान पवित्र चित्तवाले पृथिवीपति मरुत्तसे विशिष्टता लाभ न कर सके ।

एक बार हरिवाहन इन्द्रने वैशिष्ट लाभमें असमर्थ होकर देवताओंको सङ्ग लेकर बृहस्पतिको आह्वान करके उनसे कहा । हे बृहस्पति । आप यदि मेरे प्रियकार्य्य करनेकी इच्छा करते हैं ; तो आप किसी प्रकार मरुत्त-राजाके दैव अथवा पितृकर्म्म न करने पावेंगे । हे बृहस्पति । देवताओंके बीच मैंने ही तीनो लोकोंका आधिपत्य लाभ किया है, मरुत्त केवल पृथिवीका अधिपति हुआ है । हे ब्रह्मन् । आप असरण धर्म्मयुक्त सुरपति इन्द्रका याजन कराके किस प्रकार अशङ्कचित्तसे उस मरण धर्म्म विशिष्ट राजा मरुत्तका याजन करेंगे ? हे बृहस्पति । यदि आप अपना कुशल चाहते हैं, तो केवल मुझे अथवा महीपति मरुत्तको वरण करिये ; अथवा मरुत्तको परित्यागके सुखपूर्व्वक मुझेही भजिये ।

हे कुरुनन्दन । बृहस्पति देवराज इन्द्रका ऐसा वचन सुनके मुहूर्त्तभर सोचकर उनसे बोले, हे बलसूदन । आप सब प्राणियोंके अधिपति हैं, तुम्हारेही द्वारा सब लोक प्रतिष्ठित हैं, आपने विश्वरूप नमुचि और बलको नष्ट किया है, आपनेही अकेले देवताओंकी वीरश्री हरणकी है और आपही सर्व्वदा पृथिवी तथा स्वर्गको पालन करते हैं । हे पाकशासन् । इसलिये मैं आपका पुरोहित होकर किस प्रकार मनुष्य महीपति मरुत्तका यज्ञ कराऊंगा ? हे देवेन्द्र । आप आश्वासित होइये, आप नियमही मेरा यह वचन जान रखिये, कि मैं कभी भी उस मनुष्य मरुत्तके यज्ञमें स्रुवा ग्रहण न करूंगा । यदि हिरण्यरेता अग्निमें उष्णता न रहे, पृथिवी उलट जाय और सूर्य्य प्रकाशित न हों, तोभी मेरा सत्य विचलित न होगा । वैशम्पायन मुनि बोले, उस समय देवराज इन्द्र बृहस्पतिका ऐसा वचन सुनके मत्सररहित होकर उनकी प्रशंसा करके निज भवनमें प्रवेश किया ।

५ अध्याय समाप्त ।

व्यासदेव बोले, हे तात। सत्ययुगमें मनुनाम प्रजापालकदण्डधारी राजा थे, उनका पुत्र महाबाहु प्रसन्धि नामसे विख्यात् हुआ था; प्रसन्धिका पुत्र क्षुप और क्षुपका पुत्र इक्ष्वाकु राजा हुआ था। हे महाराज। उस महात्मा इक्ष्वाकुके परम धार्म्मिक एक सौ पुत्र हुए थे, उन्होंने उन एक सौ पुत्रोंको ही महिपाल किया था। धनुर्द्धारियोंमें मुख्य विंश उनके बीच जेठे थे, विंशका पुत्र परमसुन्दर विविंश हुआ था, विविंशके पन्द्रह पुत्र हुए थे। विविंशके सब पुत्र धनुर्विद्यामें विक्रान्त, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी दानधर्म्ममें रत, शान्त और सदा प्रियवादी थे। उनमें जेठे खनीनेत्र थे, उन्होंने सबको पीड़ित किया था, खनीनेत्र अत्यन्त पराक्रमी थे, उन्होंने अकण्टक राज्य जय किया, तौभी प्रजा उनमें अनुरक्त न हुई; इसीसे राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। हे राजेन्द्र। प्रजा उन्हें त्यागके उनके पुत्र सुवर्चाको राज्यपर अभिषिक्त करके आनन्दित हुई थी। वह सुवर्चा पिताको विक्रिया तथा राज्यसे उन्हें निर्व्वासित होते देखकर प्रजासमूहकी हितकामनासे संयत होकर रहता था। प्रजा उस ब्रह्मनिष्ठ सत्यवादी, पवित्र, शमदम युक्त, मनस्वी और धार्म्मिक सुवर्चामें अनुरक्त थी। अनन्तर जब धर्म्ममें प्रवृत्त सुवर्चाका कोष और वाहन विशीर्ण हुए तब सामन्तगण उन्हें सब भांतिसे पीड़ित करने लगे। खजाना, घोडे तथा वाहनोंसे रहित होनेपर वह राजा सामन्तगणोंके द्वारा पीड़ित होकर सेवकों और पुरजनके सहित परम दुःखित हुए थे। हे युधिष्ठिर। वह सुवर्चा राजा बल नष्ट होनेपर भी सदा धर्म्ममें प्रवृत्त था, इसलिये सामन्तगण उसे विनष्ट करनेमें समर्थ न हुए। परन्तु जब वह पृथ्वीपति सुवर्चा पुरजनोंके सहित परम पीड़ा पाने लगा, तब उसने अपना हाथ अग्निमें डालकर उससे बल उत्पन्न किया। अनन्तर उसही सेनाके सहारे उसने निज सीमाके पर्य्यन्तवर्त्ती सब राजाओंको जय किया था। हे महाराज। इसही कारण वह करन्धम नामसे विख्यात् हुआ था। त्रेतायुगके प्रारम्भमें करन्धमके इन्द्र सदृश श्रीमान् देवताओंसे भी दुर्जय कारन्धम नाम पुत्र हुआ था। उस समयमें उसने बल और वित्तके सहारे सबका सम्राट होकर सब राजाओंको अपने वशमें किया था। वही कारन्धम अविक्षित नामसे विख्यात् हुए थे, वह धर्म्मात्मा अविक्षित इन्द्रके समान पराक्रमी, यज्ञशील, धर्म्ममें रत रहनेवाले धृतिमान्, संयतेन्द्रिय, सूर्य्यसदृश तेजस्वी, पृथिवीकी भांति क्षमाशील वृहस्पतिके समान बुद्धिमान तथा हिमवानकी भांति स्थिर थे। उस पृथ्वीपति अविक्षितने मन, वचन, कर्म्म, दम और शमके द्वारा प्रजासमूहके चित्तको आनन्दित किया था। जिस प्रभु अविक्षितने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किया था, विद्वान् अङ्गिराने स्वयं जिसका यज्ञ कराया था, उस अविक्षितके पुत्र धर्म्मज्ञ चक्रवर्त्ती दश हजार हाथियोंके सदृश बलवान् साक्षात् द्वितीय विष्णुरूप महायशस्वी मरुत्तने निजगुणोंके सहारे पिताको अतिक्रम किया था। उस धर्म्मात्मा मरुत्तने यज्ञ करनेके लिये सुवर्णमय सहस्र पात्र सुशोभित किया था। उन्होंने हिमालयके उत्तर भागमें मेरु पर्व्वत पार्श्वमें वहीं उत्तम महान् काञ्चनमय अत्यन्त पर्व्वतपर कर्म्म किया था। वहांपर सुनारोंने असंख्य सुवर्णमय कुण्ड, पात्र और पीढा आसन बनाया था; उसके समीपमें ही यज्ञवाट था। धर्म्मात्मा पृथ्वीपति मरुत्तने सब राजाओंके सहित उस ही स्थानमें यज्ञ किया था।

४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे वाग्मिवर। वह महत राजा कैसे वीर्य्यसम्पन्न थे और किस भांत उन्होंने सुवर्ण सञ्चय किया था? हे भगवन्

इस समय वे सब वस्तु कहां हैं और हमें किस प्रकार मिलेंगी ?

वेदव्यास बोले, हे तात। जैसे दक्षप्रजापतिके सुर और असुर बहुतसे पुत्र होकर सदा परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, उसी भांति अङ्गिराके तुल्य व्रतशाली तपोधन सम्वर्त्त और बृहत्तेजस्वी बृहस्पति नाम दो पुत्र हुए थे। हे महाराज ! वे दोनों अत्यन्त स्पर्द्धित होनेसे पृथक् पृथक् स्थानमें रहते थे, परन्तु बृहस्पति सदा सम्वर्त्तको दुःख देते थे। हे भारत! वह सम्वर्त्त जेठे भाई बृहस्पतिके द्वारा सदा पीड़ित होनेसे दिगम्बर होकर समस्त अर्थ परित्यागकर बनबासकी अभिलाष करके बनमें चले गये।

इधर वासवने असुरोंको जय तथा मारके तीनो लोकोंका इन्द्रत्व पाकर अङ्गिराके जेठे पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ बृहस्पतिको अपना पुरोहित बनाया। जगत्के बीच अप्रतिम बलवित्त वीर्य्य-सम्पन्न इन्द्रके समान तेजस्वी संशितव्रती धर्म्मात्मा राजा करन्धम पहले अङ्गिराके यजमान थे। उनके अत्यन्त सुन्दर वाहन बलवान योद्धा, बुद्धिमान विविध मित्र और महामूल्यवान शय्या थी। उन्होंने ध्यानबलसे राजा होकर निज गुणों तथा सुखवायुसे सब राजाओंको वशीभूत किया था। वह निज अभिलषित समय पर्य्यन्त जीवित रहके सशरीर स्वर्गमें गये। अनन्तर ययातिकी भांति धर्म्म जाननेवाले शत्रुजित अविक्षित नाम उनके पुत्रने पृथ्वीको अपने वशमें करके निज विक्रम और गुणोंके सहारे पिताकी भांति राज्य किया था। इन्द्रके सदृश वीर्य्यवान मरुत्त उनके पुत्र थे, समुद्रके सहित सारी पृथ्वी उनपर अत्यन्त अनुरक्त हुई थी। हे पाण्डुनन्दन ! वह पृथ्वीपति मरुत्त देवराजके सङ्ग स्पर्द्धा करते थे। ऐसा ही नहीं, वरन इन्द्र अनेक यत्न करनेपर भी उस गुणवान शंसित चित्तवाले पृथिवीपति मरुत्तसे विशिष्टता लाभ न कर सके।

एक बार हरिवाहन इन्द्रने वैशिष्ट लाभमें असमर्थ होकर देवताओंको सङ्ग लेकर बृहस्पतिको आह्वान करके उनसे कहा। हे बृहस्पति ! आप यदि मेरे प्रियकार्य्य करनेकी इच्छा करते हैं, तो आप किसी प्रकार मरुत्त-राजाके दैव अथवा पितृकर्म्म न करने पावेंगे। हे बृहस्पति। देवताओंके बीच मैंने ही तीनो लोकोंका आधिपत्य लाभ किया है; मरुत्त केवल पृथिवीका अधिपति हुआ है। हे ब्रह्मन् ! आप असरण धर्म्मयुक्त सुरपति इन्द्रका याजन कराके किस प्रकार अशङ्कचित्तसे उस मरण धर्म्म विशिष्ट राजा मरुत्तका याजन करेंगे ? हे बृहस्पति। यदि आप अपना कुशल चाहते हैं, तो केवल मुझे अथवा महीपति मरुत्तको बरण करिये, अथवा मरुत्तको परित्यागके सुखपूर्व्वक मुझीको भजिये।

हे कुरुनन्दन। बृहस्पति देवराज इन्द्रका ऐसा बचन सुनके मुहूर्त्तभर सोचकर उनसे बोले, हे बलसूदन। आप सब प्राणियोंके अधिपति हैं, तुम्हारेही द्वारा सब लोक प्रतिष्ठित हैं, आपने विश्वरूप नमुचि और बलको नष्ट किया है, आपनेही अकेले देवताओंकी वीरश्री हरणकी है और आपही सर्व्वदा पृथिवी तथा स्वर्गको पालन करते हैं। हे पाकशासन् ! इसलिये मैं आपका पुरोहित होकर किस प्रकार मनुष्य महीपति मरुत्तका यज्ञ कराऊंगा ? हे देवेन्द्र ! आप आश्वासित हाइये, आप निश्चयही मेरा यह बचन जान रखिये, कि मैं कभी भी उस मनुष्य मरुत्तके यज्ञमें स्रुवा ग्रहण न करूंगा। यदि हिरण्यरेता अग्निमें उष्णता न रहे, पृथिवी उलट जाय और सूर्य्य प्रकाशित न हों, तोभी मेरा सत्य विचलित न होगा। और ... ... बोले, उस समय देवराज इन्द्र बृहस्पतिका ऐसा बचन सुनके मत्सररहित होकर उनकी प्रशंसा करके निज भवनमें प्रवेश किया।

५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास मुनि बोले, हे युधिष्ठिर! इस स्थलमें पण्डित लोग बृहस्पति और बुद्धिमान मरुत्तके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। पृथ्वीनाथ मरुत्तने इन्द्रके सहित बृहस्पतिकी निश्चित प्रतिज्ञा सुनकर एक उत्तम महत् यज्ञ आरम्भका विचार किया। करन्धम सुतात्मज वाग्मिवर मरुत्त मनहीमन यज्ञका सङ्कल्प स्थिर करके बृहस्पतिके निकट जाकर उनसे बोले, हे भगवन! आपने पहले मेरे समीप जाकर जिस यज्ञका प्रस्ताव किया था, मैंने आपके वचन अनुसार उस यज्ञकी अभिसन्धि की है। हे साधु! मैंने उस यज्ञके करनेका अभिलाषी होकर यज्ञकी सब सामग्री सञ्चय की है, मैं आपका यजमान हूं, इसलिये आप उन सामग्रियोंको ग्रहण करके यज्ञसम्पादन करिये।

बृहस्पति बोले, हे पृथ्वीनाथ! मैं आपका यज्ञ करानेकी इच्छा नहीं करता, मैंने देवराजसे रोके जानेपर उनके निकट प्रतिज्ञा की है।

मरुत्त बोले, मैं आपका पैतृक यजमान होनेसे आपका अत्यन्त सम्मान किया करता हूं, इस समय मुझे आपकी याज्यता प्राप्त हुई है, इसलिये आप मेरा यज्ञ कराइये।

बृहस्पति बोले, हे मरुत्त! मैं अमर्त्यका याजन करके किस प्रकार मर्त्य मनुष्यका याजन करूं। इसलिये आप जाइये, वा न जाइये, अब मैं फिर यज्ञ करानेमें प्रवृत्त न होऊंगा। हे महाबाहो! अब मैं आपका यज्ञ न करा सकूंगा, इसलिये आपकी जिसे उपाध्याय करनेकी इच्छा हो और जो आपका यज्ञ करे, आप उसीको वरण करिये।

वेदव्यास मुनि बोले, पृथ्वीपति मरुत्त बृहस्पतिका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त लज्जित हुए और सुसंविग्नचित्तसे लौटकर मार्गमें नारदमुनिको देखा। जब पृथ्वीनाथ मरुत्त मार्गमें नारदमुनिका समागम होनेपर यथा रीति हाथ जोड़के स्थित हुए, तब नारद मुनि उनसे बोले, हे राजर्षि! आप अत्यन्त असन्तुष्ट क्यों हुए हैं? हे पापरहित! आपका मङ्गल तो है? आप कहां गये थे? कहांपर इस प्रकार अप्रीति प्राप्त हुई? हे पार्थिवर्षभ! यदि मेरे सुननेके उपयुक्त हो तो आप मुझसे यह विषय कहिये मैं सब प्रकारसे यत्नपूर्वक आपके मनका दुःख दूर करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मरुत्तने महर्षि नारदका ऐसा वचन सुनके उपाध्याय बृहस्पतिका समस्त बिसम्वाद उन्हें सुनाया।

मरुत्त बोले, मैं अङ्गिराके पुत्र देवगुरु बृहस्पतिका यज्ञमें ऋत्विक करनेके लिये उनका दर्शन करने गया था, उन्होंने मुझे अभिनन्दित नहीं किया, बल्कि मुझे परित्याग किया है। हे नारद! इसलिये जब मैं गुरुके द्वारा दूषित और परित्यक्त हुआ, तब अब जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता।

वेदव्यास मुनि बोले, हे महाराज! देवर्षि नारद राजा मरुत्तका ऐसा वचन सुनके अविचितपुत्र मरुत्तको वाक्यके द्वारा जीवित करते हुए कहने लगे।

नारद मुनि बोले, अङ्गिराके पुत्र धर्मशील सम्वर्त्त दिगम्बर होकर प्रजा समूहको मोहित करते हुए सब दिशाओंमें भ्रमण करते हैं। यदि बृहस्पति एकवारही आपका याजन करनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तो आप उस महा तेजस्वी सम्वर्त्तके निकट जाइये, वह प्रसन्न होकर आपका यज्ञ करेंगे।

मरुत्त बोले, हे वाग्मिवर नारद! आपके इस वचनके सहारे मैं जीवित हुआ, परन्तु आप बताइये, कहांपर मैं उस सम्वर्त्तका दर्शन पाऊंगा और मुझे किस प्रकार उनके समीप रहना होगा? किस प्रकार वह मुझे परित्याग न करेंगे? वह उपाय उपदेश करिये, मैं उनसे परित्यक्त होनेपर जीवित न रह सकूंगा।

नारद मुनि बोले, हे महाराज! वह सम्वर्त

उन्मत्त वेष बनाके महेश्वरके दर्शनकी अभिलाषसे काशीमें सुखपूर्व्वक विचरते हैं। हे पृथ्वीनाथ! आप उस काशीपुरीके द्वारपर उपस्थित होके उसके किसी स्थानमें एक मुर्दा रखियेगा, उस मुर्देको देखके जो वहांसे निवृत्त होगा, उसीको सम्वर्त्त जानना। वह वीर्य्यवान् सम्वर्त्त जिस स्थानपर जावें, आप भी हाथ जोड़के उनका अनुगमन करते हुए उन्हें एकान्त स्थानमें पानेसे हाथ जोड़के कहना, कि "मैं आपका शरणागत हुआ।" यदि वह सम्वर्त्त आपसे पूछे, कि मेरा सन्धान तुम्हें किसने बताया? तो आप कहना, कि नारदने मुझसे आपका पता कह दिया है। यदि वह आपको मेरे अनुगमन करनेकी आज्ञा करें, तो आप निःशङ्कचित्तसे कहना, कि उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया है।

वेदव्यास मुनि बोले, राजर्षि मरुत्तने नारद मुनिका वचन स्वीकार करके उनकी पूजा की और उनकी अनुमतिसे वाराणसी पुरीमें गये। महायशस्वी मरुत्त वाराणसी पुरीमें जाकर नारद मुनिके वचनको स्मरण करते हुए उस नगरीके द्वारपर यथोक्त शव स्थापित किया। विप्रवर सम्वर्त्त समकालमें ही पुरीद्वारमें प्रविष्ट होकर द्वारदेशसे सहसा शवदर्शन करके वहांसे निवृत्त हुए। अविचलितव्रत पृथ्वीनाथ मरुत्त उन्हें निवृत्त होते देखकर उनके निकट शिक्षित होनेके निमित्त हाथ जोड़के उनके पीछे पीछे चले। सम्वर्त्तने महाराज मरुत्तको पीछे देखके निर्जन स्थानमें उन्हें पांशु, कर्दम, श्लेष्मा और थूकके सहारे समाच्छन्न किया। पृथ्वीनाथ मरुत्तने सम्वर्त्तके द्वारा इस प्रकार बाधित होके हाथ जोड़के उन्हें प्रसन्न करते हुए उनका अनुगमन किया। कुछ समयके अनन्तर सम्वर्त्त थककर अनेक शाखाओंसे युक्त न्यग्रोध वृक्षकी शीतल छायामें बैठ गये।

६ अध्याय समाप्त।

सम्वर्त्त बोले, तुमने मुझे किस प्रकार जाना और किस पुरुषने तुमसे मेरा परिचय कह दिया? यदि तुम मेरे प्रिय होनेके अभिलाषी हो, तो इसे यथार्थ रीतिसे मेरे निकट कहो। यदि तुम इस विषयमें सत्य कहोगे, तो तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, झूठ बोलनेसे तुम्हारा सिर एक सौ टुकड़े हो जायगा।

मरुत्त बोले, आप मेरे गुरुपुत्र हैं, यह वृत्तान्त मैंने मार्गके बीचमें भ्रमण करनेवाले नारद मुनिके समीप सुना है, तभीसे आपके विषयमें मेरी उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई है।

सम्वर्त्त बोले, वह नारद मुनि मुझे याज्ञिक जानते हैं, यह वचन तुमने मेरे समीप सत्य कहा है, अच्छा मुझसे बताओ, कि अब वह इस समय कहां हैं?

मरुत्त बोले, उस देवर्षिसत्तम नारदमुनिने मुझसे आपका परिचय कहके तथा आपके निकट गमन करनेकी अनुमति देकर अग्निमें प्रवेश किया है।

वेदव्यास मुनि बोले, सम्वर्त्त पृथ्वीपति मरुत्तका ऐसा वचन सुनके अधिक सन्तुष्ट होकर उनसे बोले, "मैं भी ऐसा कार्य्य करनेमें समर्थ हूं।" हे राजन्! अनन्तर सम्वर्त्त उन्मत्त होकर कठोर वचनसे मरुत्तकी बार बार निन्दा करते हुए बोले, मैं वायु रोगग्रस्त हूं, इसलिये मेरे चित्तमें जिस समय जो उदय होता है, उस समय वही किया करता हूं, तब तुम ऐसे स्वभाववाले ब्राह्मणके द्वारा क्यों यज्ञ करनेकी अभिलाष करते हो? यज्ञकार्य्यमें समर्थ मेरे भाई वृहस्पति इन्द्रके सङ्ग मिलकर उनके याज्य-कार्य्यमें नियुक्त हैं, तुम उन्हींके सहारे अपना कार्य्य सिद्ध करो। मेरे पूर्व्वज वृहस्पतिने मेरे इस शरीरके अतिरिक्त जो कुछ गृहमें स्थित सामग्री गृह देवता और यजमान थे, उन सबको हर लिया है। हे अविक्षितपुत्र! वह मेरे पूज्य हैं उनकी अनुमतिके बिना मैं किसी प्रकार

तुम्हारा यज्ञ न कर सकूंगा। इसलिये यदि तुम यज्ञ करनेकी इच्छा करते हो, तो उस बृहस्पतिके निकट जाकर उनकी अनुमति लेकर आओ, तब मैं तुम्हारा याजनकर्म्म करूंगा।

मरुत्त बोले, हे सम्वर्त्त! मैं आपके समीप बृहस्पतिका वृत्तान्त कहता हूं, आप उसे सुनिये। मैं पहलेही बृहस्पतिके निकट गया था, वह इन्द्रको यजमान करनेकी कामनासे मुझे यजमान करनेके अभिलाषी नहीं हैं। हे विप्र! मैंने बृहस्पतिके निकट जाकर पहले यज्ञका वृत्तान्त कहा था। वह मुझसे बोले, कि इन्द्रने मुझसे कहा है, कि मरुत्त पृथ्वीपति होकर सदा मेरे सङ्ग स्पर्द्धा किया करता है, इसलिये आप उसका याज्यकर्म्म न करने पावेंगे। ऐसा कहके उन्होंने मुझे निषेध किया है, इसलिये मैं देवता यजमान पाकर मनुष्यका याज्यकर्म्म न करूंगा। हे मुनिपुङ्गव। इन्द्रने आपके भ्राता बृहस्पतिको मेरा यज्ञकर्म्म करनेके लिये निषेध किया है, वह उसमें ही स्वीकृत हुए हैं। हे मुनिवर! आप यह निश्चय जानिये, कि उन्हें देवराजका सहारा मिला है, इसीसे मैं प्रीतिपूर्व्वक उनके निकट गया था, तथापि वह मुझे यजमान करनेमें अभिलाषी नहीं हुए। उसही हेतु मैं सर्व्वस्व व्यय करके भी आपके द्वारा यज्ञ कराने तथा आपके गुणोंके सहारे इन्द्रको अतिक्रम करनेकी इच्छा करता हूं। हे ब्रह्मन्! जब मैं बिना अपराधके ही उस बृहस्पतिके द्वारा प्रत्याख्यात हुआ हूं, तब मेरा मन फिर उनके निकट जानेके लिये प्रवृत्त नहीं होता है।

सम्वर्त्त बोले, हे पार्थिव! यदि तुम मेरी सब अभिलाष पूरी कर सको, तो मैं तुम्हारे अभिलषित कार्य्योंको निश्चयरूपसे करनेकी इच्छा करता हूं। परन्तु मुझे एक संशय उपस्थित हुआ है, कि मैं जब तुम्हारा याजनकर्म्म करनेमें प्रवृत्त होऊंगा तब बृहस्पति और इन्द्र दोनो ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुमसे द्वेष करेंगे। इसलिये इस विषयमें जिस प्रकार मेरी स्थिरता रहे, तुम उसका निश्चय करो, यदि किसी प्रकारसे उसमें अन्यथा होगी, तो मैं उसी समय तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म करूंगा।

मरुत्त बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं आपका सङ्ग छोड़ूं तो जबतक सूर्य्य प्रकाशित रहेंगे तथा समस्त पर्व्वत विद्यमान रहेंगे, तबतक मुझे उत्तम लोक न प्राप्त होवे और यदि मैं आपका सङ्ग परित्याग करूं, तो मैं कदापि शुभबुद्धि लाभ न कर सकूं तथा विषयोंके सहित मेरी आसक्ति होवे।

सम्वर्त्त बोले, हे अविक्षित पुत्र! सुनो जिस प्रकार कर्म्ममें तुम्हारा सुन्दर मनोयोग हुआ है, मेरे अन्तःकरणमें भी उस ही प्रकार याजन विद्यमान है। हे महाराज! मैं कहता हूं, कि तुम्हारी सब उत्कृष्ट सामग्री अक्षय होगी और तुम गन्धर्व्वों तथा देवताओंके सहित इन्द्रको अभिभव करोगे। परन्तु याजन वा धनमें मेरी स्पृहा नहीं है, मैं केवल उन भ्राता बृहस्पति और इन्द्र दोनोंका ही विप्रिय कार्य्य करूंगा। मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं, कि निश्चय ही मैं तुम्हें इन्द्रके सहित समता लाभ कराऊंगा

७ अध्याय समाप्त।

सम्वर्त्त बोले, हिमालय पर्व्वतके पृष्ठमें मुञ्जवान नाम एक पर्व्वत है, भगवान् उमानाथ वहां नित्य तपस्या किया करते हैं। शूलपाणि महातेजस्वी महेश्वर अनेक भूतगणोंसे घिरकर उमाके सहित उस शैलराजकी गुहा, विषम शृंग और वहांके वनस्पतियों तथा वृक्षोंके तले सदा इच्छानुसार सुखपूर्व्वक निवास करते हैं। वहां रुद्रगण, वसुगण, यम, वरुण, सहचरोंके सङ्ग कुबेर, भूत, पिशाच, दोनों अश्विनीकुमार नासत्य, गन्धर्व्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य मरुत और यातुधान सब कोई महात्मा बहु-

रूपी उमापतिकी उपासना किया करते हैं। हे पृथ्वीपति! भगवान् शङ्कर विकृत और विकृताकार क्रीड़ा करनेवाले कुवेरके अनुचरोंके सहित वहां क्रीड़ा करते हैं। बालादित्य सदृश द्युतिशाली वह शैलपर निज सौन्दर्य्यसे प्रज्वलित अग्निकी भांति लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है। मांसलोचन युक्त कोई प्राकृत प्राणी उसके रूप तथा अवयवोंको किसी प्रकार निर्द्दिष्ट करनेमें समर्थ नहीं होता। हे महाराज! वहां गर्म्मी, सर्दी, वायु, सूर्य्य, जरा, भूख, प्यास, मृत्यु और भय नहीं है। हे विजयी प्रवर! उस पहाड़के चारों ओर सूर्य्यकिरण सदृश प्रभाशाली सुवर्णकी बहुतसी आकर (खान) विद्यमान है। हे महाराज! महात्मा कुवेरके प्रियचिकीर्षु उद्यत शस्त्रधारी सहायवन्त उन आकरोंकी रक्षा करते हैं। तुम वहां जाकर उस भगवान् शर्व्व, विधाता, रुद्र, शितिकण्ठ, सुरूप, सुवर्च्च कपर्द्दी, कराल, हर्य्यक्ष, वरद, त्रिलोचन, सूर्य्यदण्डभेदी, वामन, शिव, दक्षिणामूर्त्ति, अव्यक्तरूपी, सद्वृत्त, शङ्कर मङ्गल्य, हरिकेश, स्थाणु, पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, कृश, उत्तर, भास्कर, सुतीर्थ, देवदेव, रंह, उष्णीषी, सुवक्र, सहस्राक्ष, मीढ़ान, गिरीश, प्रशान्त, यतिचीरवासा, बिल्वदण्ड, सिद्ध सर्व्वदण्डधारी, मृग, व्याध, महान्, धन्वी, भव, वर, सोमवक्त्र, सिद्धमन्त्र, नेत्रस्वरूप, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, लेलिहान, गोष्ठ, सिद्धमन्त्र, सर्व्वव्यापी, पशुपति, भूतपति, वृष, मातृभक्त, सेनानी, मध्यम, स्रुवहस्त, यती, धन्वी, भार्गव, अज, कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण दीप्त, दीप्ताक्ष, महातेजा, कपालमाली, सुवर्णमुकुटधारी, महादेव, कृष्ण, त्र्यम्बक, अनघ, क्रोधन, नृशंस, मृदु, बाहुशाली, दण्डी, तपस्वी, अक्रूर, कर्त्ता सहस्रशिर, सहस्रपाद, स्वधास्वरूप, बहुरूप, दंष्ट्री, पिनाकी, महादेव, महायोगी, अव्यय, त्रिशूलहस्त, वरद, भुवनेश्वर, त्रिपुरघ्न, त्रिलोकेश, सर्व्वभूतप्रभव, सर्व्वभूताधार, धरणीधर, ईशान, शङ्कर, शर्व्व, शिव, विश्वेश्वर, भव, उमापति, विश्वस्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, पशुपति, दशभुज, दिव्य, गोवृषभध्वज, उग्र, स्थाणु, शिव, रौद्र, गिरीश, ईश्वर, शितिकण्ठ, अज, शुक्र, पृथु, पृथुहर, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, अनङ्गाङ्ग, हर, शरण्य, चतुर्म्मुख, महादेवको सिर झुकाकर प्रणाम करके उनका शरणागत होना। हे पृथ्वीपति! उस महारंह महात्मा महादेवको इस ही प्रकार नमस्कार करके उनका शरणागत होनेसे तुम वह सुवर्ण पाओगे। जो सब मनुष्य ऐसा ही करके वहां जाते हैं, वेही सुवर्ण लाभ कर सकते हैं। अनन्तर करन्धमपुत्र मरुत्तने सम्वर्त्तका ऐसा वचन सुनके वैसाही कार्य्य करते हुए अमानुषयज्ञीय संविधि सञ्चय की। शिल्पीगण वहांपर सुवर्णमय भाण्ड बनाने लगे। अनन्तर बृहस्पति पृथ्वीनाथ मरुत्तकी देवताओंसे सौ अधिक समृद्धि सुनके अत्यन्त सन्ताप करने लगे, बृहस्पति मनही मन "मेरा शत्रु सम्वर्त्त वसुमान् होगा" ऐसी चिन्ता करके सन्तप्त, वैवर्ण्य और कृशताको प्राप्त हुए, तब देवराज बृहस्पतिके सन्तापका वृत्तान्त सुनकर देवताओंके बीच घिरकर उनके समीप आके कहने लगे।

८ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे गीष्पति! आपको सुखपूर्व्वक नींद लगती है न? परिचारकगण आपके मनके अनुसार हुए तो हैं? हे विप्रवर! आप देवताओंके सुखकी कामना करते हैं न? देवगण आपको पालन करते हैं न?

बृहस्पति बोले, हे देवराज! मैं शय्यापर सुखसे सोता हूं, परिचारकगण मेरे मनके अनुसार हुए हैं, मैं सदा देवताओंके सुखकी कामना किया करता हूं और देवगण भी मुझे परम आदरसे पालन किया करते हैं;

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्। तब किस कारण, आपको शारीरिक तथा मानसिक दुःख उपस्थित हुआ? आज किस निमित्तसे आप पाण्डु और विवर्ण हुए हैं? जिनसे आपको यह दुःख उत्पन्न हुआ है, आप मुझे बताइये, मैं इसी समय उन दुःख देनेवालोंका बध करूं।

बृहस्पति बोले, हे मघवन्। मैंने परम्परासे सुना है, कि मरुत्त उत्तम दक्षिणायुक्त एक महायज्ञ करेगा, सम्वर्त्त ही उस मरुत्तका यज्ञ करावेगा; इसलिये मेरी यह अभिलाष है, कि जिसमें सम्वर्त्त मरुत्तका यज्ञ न कराने पावे, आप वही उपाय करिये।

इन्द्र बोले, हे विप्र। जब आप देवताओंके मन्त्रज्ञ उत्तम पुरोहित हुए हैं और जरा तथा मृत्यु दोनोंको ही अतिक्रम किया है, तब सम्वर्त्त आपका क्या करेगा?

बृहस्पति बोले, हे देवेन्द्र। शत्रुओंके बीच किसीके समृद्धिसम्पन्न होनेसे वह दुःखकर बोध होता है। जैसे आप देवताओंके सहित असुरोंके वंशको खण्डन करके उनके बीच जिसे जिसे समृद्धिसम्पन्न देखते हैं उन्हीं असुरोंको मारनेकी इच्छा किया करते हैं, उस ही प्रकार मैं भी अपने शत्रु सम्वर्त्तको समृद्धित होते हुए सुनके दुःखसे विवर्ण हुआ हूं। हे इन्द्र। इसलिये आप सब भांतिसे उपायके सहारे उस मरुत्तको दमन करिये।

इन्द्र बृहस्पतिका बचन सुननेके अनन्तर अग्निको सम्बोधनपूर्वक आह्वान करके बोले, हे अग्निदेव। तुम मेरी आज्ञाके अनुसार बृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेके लिये उसके समीप जाकर कहो कि बृहस्पति तुम्हारा याजनकर्म्म करेंगे और अमर करदेंगे।

अग्निदेव बोले, हे भगवन्। मैं बृहस्पतिको मरुत्तके निकट देनेके लिये आपका दूत होकर इस समय उसके समीप जाता हूं, अग्निने इन्द्रसे ऐसा कहके बृहस्पतिका सम्मानवर्द्धन और पुरन्दरका बचन सत्य करनेके निमित्त मरुत्तके निकट गमन किया।

व्यासदेव बोले, तिसके अनन्तर महात्मा धूमकेतु अग्निदेव हिमके शेषमें इच्छानुसार वर्द्धमान महावेगशाली शब्दायमान वायुकी भांति समस्त वन और वृक्षोंको विमर्द्दित करके मरुत्तके निकट उपस्थित हुए।

मरुत्त समागत अग्निको रूपवान् देखके विस्मयपूर्व्वक बोले, हे मुनि। आज मैंने यह अत्यन्त विस्मययुक्त व्यापार अवलोकन किया क्योंकि अग्निदेव निज रूप धारण करके आये हैं, इसलिये आप इन्हें आसन, जल, पाद्य और गऊ प्रदान करिये।

अग्निदेव बोले, हे अनघ। मैं तुम्हारा आसन, जल और पाद्य ग्रहण करता हूं, परन्तु तुम मुझे ऐसा जानो, कि मैं इन्द्रकी आज्ञानुसार उनका दूत होकर तुम्हारे निकट आया हूं।

मरुत्त बोले, हे धूमकेतु। श्रीमान् देवराज सुखसे तो हैं? वह हमारे विषयमें सन्तुष्ट तो हैं और देवगण उनके वशमें हैं न? हे देव। आप यह सब बृत्तान्त मुझसे यथार्थ रीतिसे कहिये।

अग्निदेव बोले, हे पार्थिवेन्द्र! देवराज परम सुखसे निवास करते हैं और देवगण भी उनके वशीभूत हुए हैं; परन्तु तुम देवराजका बचन सुनो। वह तुम्हारे सहित प्रीति तथा तुम्हें अमर करनेके अभिलाषी हुए हैं और बृहस्पतिको तुम्हें देनेके लिये उन्होंने मुझे तुम्हारे निकट भेजा है। हे राजन्। वह सुरगुरु बृहस्पति तुम्हारा याजनकर्म्म करेंगे।

मरुत्त बोले, ये द्विजसत्तम सम्वर्त्त ही मेरा याजनकर्म्म करेंगे, उस बृहस्पतिके निकट मैं हाथ जोड़ता हूं; उनसे अब मेरा प्रयोजन नहीं है और महेन्द्रका यज्ञ कराके इस समय मनुष्यका याजनकर्म्म करानेसे उनकी वैसी प्रतिभा न रहेगी।

अग्निदेव बोले, यदि बृहस्पति तुम्हारा

याजनकर्म्म करे, तो देवराजकी कृपासे देवलोकके बीच तुम्हें सब उत्तम स्थान प्राप्त होंगे और तुम महायशस्वी होकर निश्चय ही स्वर्ग जय करोगे। हे नरेन्द्र। इसके अतिरिक्त यदि बृहस्पति तुम्हारा यज्ञकर्म्म करेंगे, तो तुम मनुष्यलोक, देवलोक, समस्त देवराज्य तथा प्रजापतिके बनाये हुए जितने लोक हैं, उन सबका जय कर सकोगे।

सम्वर्त्त बोले, हे पावक। तुम बृहस्पतिका मरुत्तके निकट देनेके लिये कदापि इस प्रकार फिर न आना। जो तुम फिर आओगे, तो निश्चय जान रखो, कि मैं क्रुद्ध होकर दारुण दृष्टिके द्वारा तुम्हें भस्म करूंगा। व्यासदेव बोले, अनन्तर धूमकेतु अग्निदेव जलनेके भयसे अश्वत्थपत्रकी भांति कांपकर देवताओंके निकट गये। तब महात्मा शक्र हव्य वाहक अग्निको बृहस्पतिके निकट देखकर उनसे कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे जातवेद। तुम जो बृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेकेलिये मेरी प्रेरणासे उसके निकट गये थे, उस विषयमें क्या हुआ? वह यज्ञमान पृथ्वीपति मरुत्त क्या बोला? उसने उस वचनको स्वीकार किया है न?

अग्निदेव बोले, मैंने मरुत्तको बारम्बार आपका वचन सुनाया, परन्तु वह उसमें सम्मत न हुआ, बरन वह बृहस्पतिको हाथ जोड़के बोला, "सम्वर्त्त ही मेरा याजनकर्म्म करेंगे।" और उसने यह वचन कहा, कि मनुष्यलोक, स्वर्गलोक तथा प्रजापतिने जिन सब उत्कृष्ट लोकोंकी सृष्टि की है, मैं उन्हें पानेके लिये अभिलाष नहीं करता; यदि मेरे मनमें वैसी इच्छा होती, तो मैं उनके सङ्ग सम्भाषण करता।

इन्द्र बोले, तुम फिर उस पृथ्वीपति मरुत्तके समीप जाके मेरे इस अर्थयुक्त वचनसे उसे सावधान करो; यदि वह फिर तुम्हारे वचनको प्रतिपालन न करेगा तो मैं उसके ऊपर वज्रसे प्रहार करूंगा।

अग्निदेव बोले, हे वासव! यह गन्धर्व्वराज दूत होकर वहां जाय फिर वहां जानेमें मुझे भय होता है, क्योंकि उस ब्रह्मचर्य्यसम्पन्न तीक्ष्ण रोषसे युक्त सम्वर्त्तने सरम्भपूर्व्वक मुझे कहा है, कि यदि तुम बृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेके लिये फिर यहांपर आओगे, तो मैं क्रुद्ध होकर दारुण दृष्टिके सहारे तुम्हें जला दूंगा।

इन्द्र बोले, हे जातवेद! तुम सबको जलाया करते हो, तुम्हारे अतिरिक्त कोई भस्मकर्त्ता विद्यमान नहीं है और तुम्हारे स्पर्शसे ही सब लोग भयभीत हुआ करते हैं। हे हव्यवाह। इसलिये तुमने जो कहा, वह मुझे अश्रद्धेय बोध होता है।

अग्निदेव बोले, हे देवेन्द्र! आपने निज बलसे स्वर्ग, मर्त्य और अन्तरिक्ष, इन तीनों लोकोंको वेष्टन किया है, परन्तु ऐसे त्रिलोकविहारी आपके यहांपर विद्यमान रहते भी पहिले वृत्रासुरने किस प्रकार स्वर्गको हरण किया था।

इन्द्र बोले, हे अग्नि! मैं पर्व्वतोंको मशक प्रभृतिकी भांति सह्य कर सकता हूं, परन्तु मैं शत्रुओंका सोमपान नहीं करता—इससे वृत्रासुरने मेरी आराधना नहीं की और मैं निर्व्बल पुरुषके ऊपर वज्र नहीं चलाता,—इसीसे वह मेरे द्वारा निर्ज्जित नहीं हुआ तथापि कोई मनुष्य मेरे ऊपर प्रहार करके सुखसे नहीं रह सकता। हे अग्नि! इसके अतिरिक्त मैंने कालकेय असुरोंको पृथ्वीमें प्रव्राजित किया है, अन्तरिक्षसे दानवोंके दलको दूर किया है और प्रह्लादको स्वर्गमें बसाया है, इसलिये कौन मनुष्य सुखमें रहनेके लिये मुझपर प्रहार करेगा।

अग्निदेव बोले हे महेन्द्र! पहिले च्यवनने अश्विनीकुमारोंके सहित शर्य्यातिका यज्ञ कराके उन्हींहीको सोमपान कराया था; आपने उनके ऊपर क्रुद्ध होकर जो शर्य्यातिका यज्ञ निवारण किया था, उसे एक बार स्मरण करिये।

हे पुरन्दर। आप बज्र ग्रहण करके च्यवनके ऊपर घोर प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए थे, उस विप्रने क्रुद्ध होकर तपोबलसे बज्रके सहित आपकी भुजा ग्रहण की थी। अनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर आपके लिये फिर एक ऐसा शत्रु उत्पन्न किया, कि आपने उस विश्वरूप भयङ्कर मद नाम असुरको देखते ही उस समय नेत्र मूंद लिया था। उस दानवका एक बड़ा ओठ पृथ्वी और दूसरा स्वर्गमें व्याप्त था, एक सौ योजन पर्य्यन्त उसके तीक्ष्ण दांत थे, उनमेंसे चार दांत वृत्त और स्थूल रजतस्तम्भकी भांति सफेद दो सौ योजन लम्बे थे; वह मद आपको मारनेकी इच्छासे दांतोंको कटकटाता हुआ घोरशूल उठाके तुम्हारी ओर दौड़ा था। उस समय उस घोररूपवाले असुरको देखकर आप ऐसे हुए थे, कि सब कोई दर्शनीयकी भांति तुम्हारी ओर देखने लगे। अनन्तर आप उससे डरके हाथ जोड़कर उस महर्षि च्यवनके शरणागत हुए। हे शक्र! क्षत्रबलसे ब्रह्मबल श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, इसलिये मैं ब्रह्मतेजको विशेष रीतिसे जानके सम्वर्त्तको जय करनेकी इच्छा नहीं करता।

९ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, यह सत्य है, कि सब बलोंसे ब्रह्मबल गरीयान् और ब्राह्मणोंसे दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु अविक्षितपुत्र मरुत्तके बलको मैं कदापि न सहूंगा, उसके ऊपर घोर बज्रसे प्रहार करूंगा। हे धृतराष्ट्र! इसलिये तुम मेरे भेजनेसे सम्वर्त्तके सहित मिलके उस मरुत्तसे यह वचन बोलो, कि महाराज! तुम वृहस्पतिके निकट शिक्षित हो, यदि तुम ऐसा न करोगे, तो इन्द्र तुम्हारे ऊपर घोर बज्रसे प्रहार करेंगे। व्यासदेव बोले, तिसके अनन्तर गन्धर्व्व धृतराष्ट्र पृथ्वीपति मरुत्तके समीप जाकर उनसे इन्द्रका वचन कहने लगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे नरेन्द्र! आप मुझे धृतराष्ट्र गन्धर्व्व जानिये, मैं आपसे इन्द्रका वचन कहनेकी इच्छासे तुम्हारे समीप आया हूं। हे राजन्! इसलिये लोकाधिपति महात्मा महेन्द्रने आपको जो कहा है, उसे सुनिये। आपको इतना ही कहा है, कि "तुम वृहस्पतिको यज्ञमें याजकरूपसे बरण करो, यदि इस वचनको प्रतिपालन न करोगे, तो मैं तुम्हारे ऊपर घोर बज्रसे प्रहार करूंगा।"

मरुत्त बोले, आप पुरन्दर, विश्वदेव, वसुगण और अश्विनीकुमार, ये सब कोई जान रखें, कि इस लोकमें मित्रद्रोही पुरुषको निष्कृति नहीं होती। मित्रद्रोह महापाप और वह ब्रह्महत्याके सदृश है। हे राजन्! इस समय वृहस्पति और इन्द्रके वचनमें मेरी अभिरुचि नहीं होती है, वृहस्पति उस बज्रधारी महेन्द्रका याजनकर्म्म करें और मेरा यज्ञक सम्वर्त्त करेंगे।

गन्धर्व्व बोला, हे राजसिंह! आप नभस्थल गर्ज्जनेवाले इन्द्रका घोर शब्द सुनिये। सहस्रलोचन स्पष्टरूपसे ही आपके ऊपर बज्र छोड़ेंगे हे राजन्! इसलिये अब आप अपने कुशलका विचार करिये।

व्यासदेव बोले, पृथ्वीपति मरुत्त धृतराष्ट्र गन्धर्व्वका ऐसा बचन सुनके नभस्थलमें उत्कट शब्दायमान इन्द्रका शब्द सुनकर धर्म्मवित् पुरुषोंमें वरिष्ठ सम्वर्त्तको शक्रका कार्य्य सुनाने लगे।

मरुत्त बोले, हे विप्रेन्द्र! आज समीपमें ही मेघ उदय होनेसे निकटमें जो इन्द्र दीख पड़ते हैं, इसलिये अपने सुखलाभकी सम्भावना नहीं देखता। हे विप्रवर! आप इन्द्रसे मुझे अभयदान करिये। यह बज्रधारी पुरन्दर भयङ्कर असामान्यरूपसे दशों दिशाओंको प्रकाशित कर मेरे सदस्योंको त्रासित करते हुए आ रहे हैं।

सम्वर्त्त बोले, हे राजसिंह! तुम्हें शक्रसे भय न होगा; मैं शीघ्र ही स्तम्भनी विद्याके

बचाके तुम्हारे इस घोर भयको खण्डन करूंगा; इसलिये तुम धीरज धरो; इन्द्रके अभिभवसे कदापि भयभीत न होना। हे नरनाथ! तुम इन्द्रसे मत डरो, मेरे स्तम्भन करनेसे ही देवताओंके सब अस्त्र निष्फल होंगे। वज्र दिशा दिशामें गमन करे, वायु बादल होकर इस स्थानमें आकर वनके बीच जलकी वर्षा करे और समस्त जल आकाशमें प्लावित होवे। हे महाराज! यह जो बिजली दीख पड़ती है, वह व्यर्थ है, उससे तुम मत डरो। हे महाराज! इन्द्रने जो तुम्हारे वधके निमित्त जल समूहसे प्रज्वमान घोर अशनि यथा स्थानमें स्थापित किया है, उसे करे, उससे तुम भयभीत न होना; क्यों कि अग्निदेव तुम्हारी सब भांतिसे रक्षा करेंगे तथा समस्त कामना पूर्ण करेंगे।

मरुत्त बोले, हे विप्रवर! वायुके सहित अशनिका यह महास्वनयुक्त भयङ्कर शब्द मेरे श्रवण-विविरमें प्रविष्ट होनेसे मेरा आत्मा बार बार व्यथित होता है, इसलिये किसी प्रकार भी मेरा स्वास्थ्य नहीं होता है।

सम्वर्त बोले, हे नरनाथ! इस उग्र वज्रसे तुम्हारा भय दूर होवे, मैं इसी समय वायु होकर वज्रको निरस्त करता हूं, इसलिये तुम भय परित्याग करो और तुम्हारे मनमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो; मैं उसे सिद्ध करूंगा।

मरुत्त बोले, हे विप्रवर! इन्द्र प्रत्यक्ष होकर यज्ञमें सहसा आके हवि प्रतिग्रह करें और देवगण अपना अपना यज्ञभाग ग्रहण करके सोमपान करें, मैं यही वर मांगता हूं।

सम्वर्त बोले, हे महाराज! आज मैं मन्त्रके द्वारा इन्द्रको सशरीर आकर्षण करता हूं। शीघ्रताके सहित देवताओंके द्वारा स्तूयमान वह इन्द्र मेरे मन्त्रके द्वारा आकर्षित होकर घोड़ोंके सहारे इस यज्ञमें आ रहा है, तुम प्रत्यक्ष इन्द्रको अवलोकन करो। तिसके अनन्तर देवराज उन सर्व्वोत्कृष्ट घोड़ोंके रथमें युत करके देवताओंके सहित अविच्छिन्नपुत्र अप्रमेयात्मा मरुत्तके यज्ञमें आके सोमपान करने लगे। मरुत्तने पुरोधा सम्वर्त्तके साथ देवताओंके सहित समागत इन्द्रको देखके उठकर अभिवादन करके प्रसन्न चित्तसे शास्त्रके अनुसार देवराजकी उत्तम रीतिसे कुशल आदि पूंछके पूजा की और सम्वर्त्त देवराजसे स्वागत प्रश्न करने लगे।

सम्वर्त बोले, हे पुरुहूत! आपका कुशल है न? हे विद्वन्! आज आपके यहां आनेसे यह यज्ञ अत्यन्त ही शोभित हुआ। हे बलवृत्तघ्न! इसलिये आज आप मेरे द्वारा तैयार हुए, यह सोम फिर पान करिये।

मरुत्त बोले, हे सुरेन्द्र! आपको नमस्कार है, आप कुशलनेत्रसे मुझे देखिये, इस यज्ञमें आपके आनेसे मेरा जीवन सफल हुआ। हे सुरराज! वृहस्पतिके भाई यह विप्रश्रेष्ठ सम्वर्त्त मेरा यज्ञ करते हैं।

इन्द्र बोले, हे नरनाथ! तुम्हारे गुरु वृहस्पतिके भ्राता तिग्म तेजस्वी तपोधन सम्वर्त्तको मैं जानता हूं, इनके आह्वानसे ही मुझे आना पड़ा है। आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, तुम्हारे विषयमें जो मेरा कोप था, वह नष्ट हुआ।

सम्वर्त बोले, हे देवराज! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो स्वयं यज्ञका विधान करिये और स्वयं समस्त कार्य्य करिये। हे देव! इन सब लोकोंको देवराजकृत जानिये।

व्यासदेव बोले, इन्द्रने आङ्गिरापुत्र सम्वर्त्तका ऐसा वचन सुनकर स्वयं देवताओंको आज्ञा दी, कि तुम लोग चित्रकी भांति सुन्दर अत्यन्त उत्कृष्ट एक हजार गृह और सभा तैयार करो। गन्धर्व्वों और अप्सराओंके चढ़नेके लिये शीघ्र ही समस्त सामान स्थूल तथा दृढ़ करो; जिस स्थानमें अप्सरावृन्द नृत्य करेंगी, उसे स्वर्गकी भांति सुशोभित करो। हे मरुद्गण! स्वर्गवासी देववृन्द इन्द्रकी आज्ञा-

सार शीघ्र ही उस कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर इन्द्र पृथ्वीपति मरुत्तसे बोले, हे महाराज! मैं तुम्हारी पूजासे परम प्रसन्न हुआ। हे नरेन्द्र! इस स्थानमें तुम्हारे सङ्ग मेरे मिलनेसे आपके सब पूर्व्वपुरुषों और देवताओंने सन्तुष्ट होकर तुम्हारी हवि प्रतिग्रह की है। हे महाराज! इस समय ब्राह्मणश्रेष्ठगण, अग्निदेव सम्बन्धीय लोहितवर्ण और विश्वदेव सम्बन्धीय बहुरूप तथा नीलवर्ण चलच्छिश्न पवित्र विधिबोधित वृषभ वध करें।

हे महाराज! तिसके अनन्तर पृथ्वीपति मरुत्तका यज्ञ वर्द्धित होने लगा। उस यज्ञमें स्वयं देवगण अन्न ग्रहण करने लगे और हरिमान् देवराज उस यज्ञमें सदस्य हुए। अनन्तर प्रज्वलित अग्निसदृश महात्मा सम्वर्त्तने चैत्यगत होकर ऊंचे स्वरसे देवताओंको आवाहन करके प्रसन्नचित्तसे अग्निमें घृताहुति प्रदान की। अनन्तर बलसूदन इन्द्रने पहले सोमपान किया और अन्य सब सोमपीनेवाले देवताओंने इन्द्रकी आज्ञानुसार पृथ्वीपति मरुत्तके सहित सुखपूर्व्वक सोमपान करके प्रसन्न और प्रीतियुक्त होकर प्रस्थान किया। अनन्तर शत्रुनाशन राजा मरुत्त कई स्थानोंमें सुवर्णका ढेर लगाकर ब्राह्मणोंको बहुतसा धन बांटते हुए धनाध्यक्ष कुवेरकी भांति विराजने लगे। अनन्तर उन्होंने उत्साहपूर्व्वक विविध वित्त खजानेमें अर्पित करके गुरुकी आज्ञानुसार वहांसे निवृत्त होकर समुद्र सहित वसुन्धराका शासन किया। हे नरेन्द्र! जिसके यज्ञमें बहुतसा सुवर्ण सञ्चित हुआ था, इस पृथ्वीपर वह ऐसे गुण सम्पन्न राजा थे। तुम उस सुवर्णको मंगाकर विधि विधान पूर्व्वक देवताओंका तर्पण करते हुए यज्ञको करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर सत्यवतीसुत वेदव्यासका वचन सुनकर प्रसन्न होके उस धनसे यज्ञ करनेका निश्चय करके मन्त्रियोंके सङ्ग फिर विचार करने लगे।

१० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिर अद्भुत कर्म्मा वेदव्यासका ऐसा बचन सुन चुके, तब महातेजस्वी बासुदेव कहने लगे। वृष्णिकुलोद्भव कृष्ण धर्म्मपुत्रपृथानन्दन राजा युधिष्ठिरको बन्धु तथा स्वजनोंके मारे जानेसे धुएं युक्त अग्नि और राहुग्रस्त सूर्य्यकी भांति निष्प्रभ दीनचित्त तथा खिन्नमन देखकर आश्वास बचनके सहारे आश्वासित करते हुए कहनेको उद्यत हुए।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्! सब भांतिकी कुटिलता मृत्युको आस्पद और सब प्रकारकी सरलता ब्रह्मपद है; इतना ही ज्ञानका विषय है, मनुष्यगण विशेष रीतिसे इसे जाननेसे कुछ भी प्रलाप नहीं कर सकते। हे महाराज! आपके कर्म्म निःशेषित और शत्रुगण पराजित नहीं हुए, क्योंकि आप निज शरीरमें रहनेवाले शत्रुको नहीं जान सकते हैं। इसलिये मैं आपके समीप यथाधर्म्म तथा यथाश्रुत इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धका वृत्तान्त वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! पहले समयमें वृत्रासुरके द्वारा पृथ्वी व्याप्त होनेसे गन्धका विषय हृत तथा पृथ्वी हरणजनित दुर्गन्ध उत्पन्न हुई; उसे देखकर इन्द्र वृत्रके ऊपर क्रुद्ध हुए। अनन्तर इन्द्रने क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र चलाया, वृत्र उस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रके वज्रसे बहुत ही घायल होकर जलमें प्रविष्ट हुआ। वृत्रके द्वारा जल संगृहीत तथा जलका विषय रस अपहृत होनेपर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र छोड़ा। तब वृत्र उस अमिततेजस्वी इन्द्रके वज्रसे अत्यन्त घायल होकर सहसा अग्निके बीच प्रविष्ट हुआ। अनन्तर वृत्रने अग्निके बीच प्रवेश करके तेजग्रहण तथा तेजके विषय रूपको

हरण किया; तब इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र छोड़ा। अनन्तर वृत्रासुरने अमित पराक्रमी बलसूदनके वज्रसे वध्यमान होकर सहसा वायुके बीच प्रवेश किया। उस समय वृत्रासुरके द्वारा वायु व्याप्त और वायुका विषय स्पर्श अपहृत होनेपर फिर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र चलाया। अनन्तर वृत्रासुर अमित-तेजस्वी इन्द्रके वज्रसे घायल होकर आकाशमें गया। उसके अनन्तर वृत्रासुरके द्वारा आकाश व्याप्त और आकाशका विषय शब्द अपहृत होनेपर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र चलाया। तब वृत्रासुरने अमिततेजस्वी इन्द्रके वज्रसे घायल होकर सहसा उन्हें ही ग्रहण किया और इन्द्र वृत्रासुरके द्वारा पकड़े जानेपर महान् मोहको प्राप्त हुए। हे तात भरतर्षभ! हमने ऐसा सुना है, कि जब इन्द्र वृत्रासुरके द्वारा पकड़े जानेपर अत्यन्त विमोहित हुए उस समय वसिष्ठने उन्हें सावधान किया, तब उन्होंने अदृश्य वज्रके सहारे निज शरीरस्थ उस वृत्रासुरका वध किया। हे जननाथ! तुमने जिस विषयको सुना, इस धर्म्म रहस्यको इन्द्रने पहले महर्षियोंके निकट और, महर्षियोंने मेरे समीप वर्णन किया था।

११ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! शारीरिक और मानसिक, ये दो प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होती हैं, परन्तु परस्परके सहयोगसेही उनकी उत्पत्ति हुआ करती है। जो व्याधि शरीरसे उत्पन्न होती है, वह शारीरिक और जो मनसे उत्पन्न होती है, वह मानसिक कहाती है। हे राजन्! सर्द्दी, गर्म्मी, अर्थात् कफ और पित्त, तथा वायु, ये शरीरके गुण हैं, इन गुणोंकी साम्यावस्थाको ही पण्डित लोग स्वस्थ शरीरका लक्षण कहा करते हैं। परन्तु सर्द्दी-गर्म्मी अर्थात् कफ और पित्त, इन दोनोंके बीच एककी अधिकता होनेसे इतरवर्द्धक औषधादिके सहारे उससे उत्पन्न हुए दोषोंको दूर करे। सत, रज और तम, ये तीनो ही आत्म-गुण कहके वर्णित हुए हैं, इन तीनो गुणोंकी साम्यावस्थाको ही पण्डित लोग स्वास्थ्य कहा, करते हैं, परन्तु इनके बीच अन्यतमकी वृद्धि होनेपर उसकी शान्तिको उपाय करना चाहिये। हे महाराज! शोकसे हर्ष और हर्षसे शोकमें बाधा हुआ करती है। कोई दुःखमें वर्त्तमान रहके सुखको स्मरण और कोई सुखमें वर्त्तमान रहके दुःखको स्मरण करनेकी इच्छा करते हैं, हे कौन्तेय! परन्तु आप सुखदुःखरूपी दोनो व्याधियोंसे रहित होकर सुख वा दुःख किसीकी भी इच्छा नही करते हैं, तब क्या आप दुःखविभ्रमसे और कुछ इच्छा करते हैं? हे पृथापुत्र! अथवा यह दुःखिलादिही आपका स्वभाव है, क्यों कि इसहीके द्वारा आप आकर्षित होते है। हे महाराज! आपने जो पाण्डवोंके सम्मुख रजस्वला एकवस्त्रवाली द्रौपदीको सभाके बीच आती हुई देखा था, इस समय उसे स्मरण करना आपको उचित नहीं है। नगरसे प्रवासित होना, मृगछाला, पहरना महावनके बीच निवास, जटासुरसे क्लेश मिलना चित्रसेनके सङ्ग संग्राम, सैन्धवके द्वारा क्लेश भोगना, अज्ञातवासमें कीचकका द्रौपदीको लात मारना और भीष्म तथा द्रोणके सङ्ग युद्ध, इन विषयोंका अब आप स्मरण न करिये। हे अरिदमन! अकेले मनके सङ्ग युद्ध करना होता है, इस समय आपके लिये वही युद्ध उपस्थित हुआ है। हे भरतर्षभ! इसलिये आप युद्धके निमित्त मनके सम्मुख होकर योग और निज कर्म्मोंके सहारे उस अव्यक्तरूप मनको जीतकर उससे पार होइये। हे महाराज! इस युद्धमें बाण, सेवक और बान्धवोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल मनके सङ्ग युद्ध करना होता है, इस समय आपके लिये वही युद्ध उपस्थित हुआ

है। उस युद्धको न जीतनेसे आपको दुःखकी बाहुल्यता प्राप्त होगी। हे कुन्तीनन्दन! इसलिये आप इसे जानकर कार्य्य करनेसे कृतकार्य्य होंगे, हे महाराज! आप इस बुद्धि और प्राणियोंकी गति तथा अगतिको, विशेष रीतिसे निश्चय करते हुए पितृ पितामह वृत्तिके अनुवर्ती होकर यथा उचित राज्यशासन करिये।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे भारत! वाह्यराज्यादि परित्याग करनेसे सिद्धि अर्थात् मोक्ष नहीं होती; शारीरिक कामादिको परित्याग करनेसे ही मोक्ष हुआ करती है; परन्तु, शुष्क वैराग्ययुक्त विवेक विहीन मनुष्योंका मोक्ष विषयमें निश्चय नहीं है। वाह्यवस्तु राज्यादिमें विरक्ति और शारीरिक वस्तु कामादिमें आसक्ति युक्त पुरुषोंको जो धर्म्म और सुख होता है, शत्रुओंको वही प्राप्त होवे। संसार विषयमें ममतारूप द्व्यक्षर मृत्यु कहके वर्णित हुआ है और संसार विषयमें निर्म्ममतारूप त्र्यक्षर शाश्वत ब्रह्म कहा गया है। हे महाराज। वह ब्रह्म और मृत्यु, दोनोंही अदृश्य भावसे मनुष्यचित्तके बीच विद्यमान रहके प्राणियोंको युद्धमें प्रवर्त्तित किया करते हैं। हे भारत! यदि इस जगत्में अविनाश, निश्चित होता तो कोई किसी प्राणीका शरीर भेद करनेसे उसे हिंसाजनित पाप न भोगना पड़ता। हे पृथापुत्र! यदि कोई स्थावर जङ्गमोंके सहित समस्त पृथ्वीको पाके उसमें ममता न करता, तो यह पृथिवी उसके लिये फलदायिनी न होती और जो लोग वनवासी होकर वनके फलमूलोंसे जीविका निर्व्वाह करते हुए, वाह्य वस्तु राज्यादिमें ममता करते हैं, वे मृत्युमुखमें वास किया करते हैं। हे भारत! आप ध्यानयोगसे वाह्य तथा आन्तरिक शत्रु, राज्य और कामादिक मायामयस्वरूप स्वभाव अवलोकन करिये। जो लोग इस अनादि मायामय स्वभावको विशेष रीतिसे जान सकते हैं, वेही महाभयङ्कर संसारसे मुक्त हुआ करते हैं, लोकसमाज कामनावान् पुरुषकी प्रशंसा नहीं करता और इसलोकमें कामना सबके मनकी अङ्गभूत होनेसे कामनाके बिना किसी विषयमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये योगवित पण्डित लोग बार बार जन्मके अभ्यासयोगसे शुद्धचित्त होकर सदा श्रेष्ठ मोक्षमार्गका ध्यान करते हुए समस्त कामना संहार किया करते हैं। जो मनुष "ये जो कामना करते हैं, वह धर्म्म नहीं है," इसे विशेष रीतिसे जानके कामनापूर्व्वक व्रत, यज्ञ और ध्यान योगका अनुष्ठान नहीं करते, वे कामनानिग्रहको ही धर्म्म और मोक्ष मूल समझते हैं। हे युधिष्ठिर। परन्तु, इस विषयमें कामके दुरुच्छेद्यत्ववादी पुराण जाननेवाले पण्डित लोग कामगीत बहुतसी गाथा कहा करते हैं। मैं आपके समीप गाथा पूरी रीतिसे कहता हूं सुनिये।

काम कहता है, निर्म्ममता और योगाभ्यासरूपी उपायके अतिरिक्त कोई प्राणी भी मुझे जीतनेमें समर्थ नहीं होता, जो कामवान मनुष्य मनके बीच मेरे बलको मालूम करके वागादि इन्द्रियसाध्य जपादिरूपी शस्त्रसे मुझे नष्ट करनेके लिये यत्नवान होता है, मैं उसके चित्तमें "मैंही सबसे उत्कृष्ट और जपकर्त्ता हूं,—इसी प्रकार अभिमान रूपसे प्रकट होकर उसके जपादिको विफल किया करता हूं। जो पुरुष विविध दक्षिणायुक्त यज्ञके सहारे मुझे जीतनेमें प्रयत्नवान होता है, उत्तम योनिमें उत्पन्न हुए धर्म्मात्मा मनुष्यकी भांति मैं उसके चित्तमें दम्भादि रूपसे फिर प्रकट हुआ करता हूं। जो पुरुष वेद और वेदाङ्ग साधनके द्वारा मुझे विनष्ट करनेके लिये प्रयत्नवान होता है, स्थावरयोनिमें अनभिव्यक्त रूपसे उत्पन्न हुए जीवोंकी भांति मैं उसके चित्तके बीच प्रकट हुआ करता

हूं। जो सत्यपराक्रम मनुष्य धैर्य्यके सहारे मुझे जीतनेके लिये यत्नवान् होता है, मैं उसके समीप चित्तरूपसे प्रकट होता हूं; इसलिये वह मुझे नहीं जान सकता। जो संशितव्रत मनुष्य तपस्याके द्वारा मुझे जीतनेके निमित्त यत्नवान होता है, मै उसके चित्तमें तपरूपसे उत्पन्न होता हूं, इसलिये वह मुझे नहीं जान सकता, जो पण्डित पुरुष नित्य मुक्त आत्माको न जान कर मोक्षके निमित्त मोक्षमार्ग अवलम्बन करके मुझे नष्ट करनेके लिये यत्नवान होता है, मैं सब प्राणियोंसे अवध्य सनातन अद्वितीय उस मोक्षरतिस्थ मूर्ख पुरुषकी उपहास करते हुए उसके समीप नृत्य किया करता हूं।"

हे महाराज! जब निष्कामपूर्व्वक योगाभ्यासके अतिरिक्त कामजय करनेका दूसरा उपाय नहीं दीखता है, तब उस कामको परित्याग करके विविध दक्षिणायुक्त यज्ञका अनुष्ठान करनेसे ही आपकी कल्याणसिद्धि होगी; इसलिये आप निष्काम होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त वाजिमेध तथा दूसरे प्रकारके सदक्षिणा यज्ञका अनुष्ठान करिये। आप युद्धमें मरे हुए बान्धवोंको बार बार स्मरण करके वृथा दुःखित न होइये। जो लोग इस रणभूमिमें मारे गये हैं, आप अब उन्हें फिर न देख सकेंगे। इसलिये आप शोक सम्वरण करके दक्षिणायुक्त महायज्ञके द्वारा देवताओंकी पूजा करनेसे इस लोकमें अनुत्तम यश पाके उत्कृष्ट गति लाभ कर सकेंगे।

१३ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, एतवस्तु राजर्षि युधिष्ठिर उन तपोधन मुनियोंके द्वारा ऐसे ही अनेक प्रकारके वाक्यके सहारे पूरी रीतिसे आश्वासित हुए। हे पार्थिव! फिर धर्म्मराजने भगवान विष्टरश्रवा, द्वैपायन, कृष्ण, देवस्थान, नारद, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, बुद्धिमान् अर्ज्जुन तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों और शास्त्रदर्शी ब्राह्मणोंके द्वारा अनुनीत होकर मानसिक शोकसन्ताप और दुःख परित्याग किया। अनन्तर धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने बान्धवोंका माासिक प्रभृति प्रेतकार्य्य पूरा करके देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए समुद्र सहित पृथ्वीको अपने वशमें किया। कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर निज राज्य पाकर प्रशान्तचित्तसे व्यास नारद तथा अन्यान्य मुनियोंसे कहने लगे, कि आप लोग मुनियोंके बीच प्रधान, पुरातन और प्राचीन हैं, इसलिये आप लोगोंके द्वारा आश्वासित होनेसे अब मुझे अणुमात्र भी दुःख नहीं है। विशेष करके जिसके सहारे देवताओंकी पूजा करना होगी, वह महान् अर्थ भी मुझे प्राप्त हुआ है, इससे आज हम आप लोगोंको अगाड़ी करके यज्ञ करेंगे। हे द्विजसत्तम पितामह! हमने सुना है, कि वह स्थान अत्यन्त ही आश्चर्य्ययुक्त है; इसलिये जिस प्रकार हम आप लोगोंके द्वारा रक्षित होकर हिमालय पर्व्वतपर जा सकें वैसा ही उपाय करिये। हे विप्रर्षि! हमारा वह यज्ञ आप लोगोंके ही अधीन होरहा है और भी भगवान देवस्थान तथा देवर्षि नारदने बहुतसा कल्याण युक्त वचन कहा है; कोई भाग्यहीन मनुष्य व्यसनमें पड़के साधुसम्मत सुहृत् तथा इस प्रकार गुरु लाभ नहीं कर सकता। अनन्तर वे महर्षिगण राजा युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके उन्हें और कृष्ण अर्ज्जुनको हिमालय पर्व्वतपर जानेकी आज्ञा देकर सबके सम्मुखमें वहीं अन्तर्द्धान हुए और धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर उस स्थानमें बैठे। उस समय पाण्डवगण भीष्मकी मृत्यु होनेपर उनका शौचकर्म्म करने लगे, उन लोगोंका वह अत्यन्त दीर्घसमय अतिवाहित न हुआ। कुरुसत्तम युधिष्ठिरने भीष्म और कर्ण आदि कौरवोंके और्द्धदैहिक कार्य्य पूरा करके ब्राह्मणोंको बहुत दान प्रदान किया और फिर

उन्होंने धृतराष्ट्रके सहित ऊर्द्ध्वदैहिक कार्य्य करके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दान किया। अनन्तर वह प्रज्ञाचक्षु पिता धृतराष्ट्रको अगाड़ी करके धीरज देते हुए हस्तिनापुरमें प्रवेश करके भाइयोंके सहित पृथिवी शासन करने लगे।

१४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजयने वैशम्पायन मुनिसे पूंछा, हे द्विजसत्तम! पाण्डवोंके द्वारा राष्ट्र विजित और प्रशान्त होनेपर महावीर वासुदेव और धनञ्जयने क्या किया?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! पाण्डवोंके द्वारा राष्ट्र जित और प्रशान्त होनेपर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अत्यन्त हर्षित होकर सुरपुरमें प्रविष्ट दोसुरपति तथा नन्दन काननविहारी दोनों अश्विनीकुमारोंकी भांति हृष्ट अन्तःकरणसे विचित्रवन, पर्वत सानु, उत्तमपुण्ययुक्त तीर्थ, पल्वल तथा नदीके बीच बिचरते हुए विहार करने लगे। हे भारत! महात्मा कृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन दोनोंही इन्द्रप्रस्थमें अनेक प्रकार क्रीडा करते हुए सभाके बीच प्रविष्ट होकर बिहार करने लगे। उस सभाके बीच वे लोग अनेक प्रकारकी वार्त्ता करते हुए युद्धके क्लेशोंको वर्णन करने लगे। उस समय पुराण ऋषिसत्तम महात्मा कृष्ण अर्जुन दोनोंही परम प्रसन्न होकर ऋषियों तथा देवताओंका वंश कहने लगे। निश्चयज्ञ केशिनिसूदन कृष्ण सहस्रों ज्ञातियोंके मरनेसे शोकसन्तप्त जननी और पुत्रशोकसे सन्तापित पृथा पुत्र अर्जुनकी विचित्र अर्थप्रद और निश्चययुक्त मधुर वचनसे सान्त्वना की, विज्ञानज्ञ महातपस्वी कृष्ण अर्जुनको विधिपूर्व्वक आश्वासित करके मानो शरीरका बोझा हरकर विश्राम करने लगे।

तिसके अनन्तर वाक्यकी समाप्ति होनेपर गोविन्द गुड़ाकेश अर्जुनका मधुरवचनके सहारे सान्त्वना करते हुए हेतुयुक्त वचन कहना प्रारम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे शत्रुतापन सव्यसाचिन् राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे बाहुबलके अवलम्बन इस समुद्र सहित पृथ्वीको जय किया है। नरोत्तम! भीमसेन और यमज नकुल सहदेव प्रभावसे धर्म्मराज असपत्ना पृथ्वीभोग करते हैं हे धर्म्मज्ञ! धर्म्मराजने धर्म्मबलसे ही अकण्टक राज्य पाया है और धर्म्मबलसे ही युद्धमें राजा सुयोधनको मारा है। हे कुरुदह! अधर्म्माभिलाषी सदा अप्रिय वचन कहनेवाले लोभी दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्रोंके बान्धवोंके सहित युद्धभूमिमें सोनेपर धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अखिल प्रशान्त भूमण्डल भोग करते हैं और मैं भी तुम्हारे सङ्ग बनके बीच क्रीड़ा करता हूं। हे अमित्रकर्षण! मैं तुमसे अधिक क्या कहूं,—तुम पृथा, धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, महाबली भीम और माद्रवतीपुत्र नकुल-सहदेव तुम लोग जहांपर रहते हो, उसही स्थानमें मेरा अत्यन्त ही अनुराग हुआ करता है। हे अनघ! स्वर्गतुल्य रमणीय पुण्यजनक सभाओंके बीच मुझे तुम्हारे सङ्ग रहते हुए बहुत समय बीत गया। वसुदेव, बलदेव और वृष्णिगङ्गव पुरुषोंको बहुत कालतक न देखनेसे मुझे द्वारकापुरीमें जानेके लिये अत्यन्त ही अभिलाष हुई है, हे पुरुषश्रेष्ठ! इसलिये मेरे जानेमें तुम्हें सम्मत होना योग्य है। जब राजा युधिष्ठिर अत्यन्त शोकार्त्त हुए, तब उस शोककी निवारण करनेके लिये भीष्मके सहित हम लोगोंने उन्हें अनेक प्रकारकी युक्तियुक्त उपदेश वचन कहे थे। महात्मा युधिष्ठिर हम लोगोंके शास्ता और पण्डित होनेपर भी हमने उन्हें जो अनुशासन वाक्य कहा था, उन्होंने उस वाक्यमें अवहेला न करके पूरी रीतिसे ग्रहण किया है। धर्म्मपुत्रके अत्यन्त धर्म्मज्ञ कृतज्ञ तथा सत्यवादी होनेसे उनका धर्म्म तथा उत्कृष्ट बुद्धि और मर्य्यादा कभी भी विचलित न होगी।

हे अर्ज्जुन ! यदि तुम मेरे जानेमें सम्मत हो, तो महात्मा प्रजानाथ युधिष्ठिरके निकट जाकर उनसे मेरे जानेकी बात कहो । हे महाबाहो ! उनकी सम्मतिके अतिरिक्त मैं किसी कार्य्यको नहीं कर सकता, द्वारकापुरीमें जाना तो दूर रहे, मेरे प्राणत्यागका समय उपस्थित होनेपर भी मैं उनके अनभिलषित कार्य्यको नहीं कर सकता । हे पृथापुत्र ! मैं तुम्हारा प्रीतिकर तथा हिताभिलाषी होनेसे यह सब सत्य वचन कहा है, इसे कदापि मिथ्या न समझना । हे अर्ज्जुन ! देखो, सबल, सपद और अनुयाइयोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्र सुयोधनके मारे जानेसे इस समय यहांपर मेरे वास करनेका प्रयोजन निवृत्त हुआ है । हे तात ! पर्व्वत, बन और काननयुक्त अनेक भांतिके रत्नोंसे परिपूर्ण समुद्र सहित पृथ्वी धर्म्मपुत्र धीमान् धर्म्मज्ञ राजा युधिष्ठिरके वशमें हुई है ; इस समय वह अनेक भांतिसे महानुभाव सिद्धोंके द्वारा उपासित और बन्दिजनोंसे सदा स्तुत होकर धर्म्मपूर्व्वक इस समस्त पृथिवीका पालन करें । आज तुम मेरे सङ्ग कुरुवर्द्धन राजा युधिष्ठिरके समीप चलके उनसे मेरे द्वारकागमनका विषय पूंछो । हे पार्थ ! वह कुरुपति महाबुद्धिमान युधिष्ठिर मेरे माननीय और प्रिय हैं, मैंने यह अपना शरीर तथा गृहस्थित सारा धन उन्हें अर्पण किया है । हे नृपनन्दन ! जब यह पृथ्वी तुम्हारे और उत्तम चरित्रवाले गुरु युधिष्ठिरके वशमें हुई है, तब तुम्हारे अतिरिक्त यहांपर मेरे रहनेका कुछ भी कारण वा प्रयोजन नहीं है । हे पार्थिव ! उस समय अमितपराक्रमी अर्ज्जुनने महात्मा कृष्णका ऐसा वचन सुनके उनका पूरी रीतिसे सत्कार करके दुःखपूर्व्वक कहा कि "ऐसा ही होगा ।"

१५ अध्याय समाप्त ।

अनुगीतापर्व्व आरम्भ ।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्र ! महात्मा केशव और अर्ज्जुनने शत्रुओंको मारके उस सभाके बीच निवास करते हुए कौनसी कथा कही थी ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज ! पृथापुत्र अर्ज्जुन निज राज्य पाकर हर्षपूर्व्वक कृष्णके सङ्ग उस सभामें विहार करने लगे । अनन्तर प्रहृष्टचित्त केशव और अर्ज्जुनने स्वजनोंमें घिरकर इच्छानुसार स्वर्गस्थानसदृश किसी सभामण्डपमें गमन किया । अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन कृष्णके सहित उस रमणीय सभाको देखके अधिक सन्तुष्ट होकर उनसे यह वचन बोले । हे महाबाहो देवकीतनय ! उपस्थित संग्रामके समयमें आपका वह ईश्वररूप और माहात्म्य मुझे विशेष रीतिसे विदित हुआ है । हे केशव ! पहले आपने सुहृदता पूर्व्वक मुझसे जो सब कथा कही थी, मेरा चित्तभ्रंश होनेसे वे सब विषय भूल गये हैं । हे माधव ! आप भी शीघ्र द्वारकामें जायंगे, परन्तु उन विषयोंको फिर सुननेकी मुझे अभिलाष होती है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी वाग्मिवर श्रीकृष्ण फाल्गुन अर्ज्जुनका ऐसा वचन सुनके उन्हें आलिङ्गन करके कहने लगे ।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ ! तुमने मेरे समीप समस्त गुप्तविषयोंका सुना है और स्वरूपयुक्त सनातन धर्म्म तथा शाश्वत लोकोंको जाना है । तुमने मूर्खताके जो मेरे कहे हुए वचनको ग्रहण नहीं किया, वह मुझे अत्यन्त अप्रिय हुआ है, क्योंकि आज मेरी वह स्मृति फिर न प्रकट होगी । हे पाण्डुपुत्र ! इसलिये मुझे निश्चय बोध होता है कि तुम दुर्म्मेधा तथा श्रद्धाहीन हो ; अब मैं उन विषयोंको तुमसे [illegible] कहनेमें समर्थ नहीं होता हूं । हे धनञ्जय ! [illegible] वह [illegible] ही कहा है, मैं फिर तुम्हें पहलेकी भांति उस

अशेष रूपसे नहीं कह सकता हूं । पहले मैंने योगयुक्त होकर तुमसे उस परब्रह्मका विषय कहा था ; अब उस विषयमें पुरातन इतिहास कहता हूं । हे धार्म्मिकवर । तुम जैसी बुद्धि अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ गति लाभ कर सकोगे ; इसलिये तुम सावधान होकर मेरा समस्त वचन सुनो ।

हे अरिदमन । एक बार कोई दुर्द्धर्ष ब्राह्मण स्वर्ग और ब्रह्मलोकसे मेरे पास आया, मैंने उसकी पूजा करके धर्म्मविषय पूछा । उसने दिव्यविधिके अनुसार मुझसे जो कहा था, तुम विचार न करके उसे सुनो ।

ब्राह्मण बोला, हे कृष्ण । तुम प्राणियोंके विषयमें अनुकम्पा करके मोक्षधर्म्म अवलम्बन पूर्व्वक मोहच्छेद करो , तुमने मुझसे जो विषय पूछा; है, उसे मैं यथावत् कहता हूं, सावधान होके सुनो । तपस्वी धर्म्मवित्तम काश्यप नाम किसी विप्रने धर्म्मसमूहके आगमज्ञ किसी द्विजवरको पाया था । मेधावी विप्रवर काश्यपने गतागत विषयोंमें अधिक ज्ञानविज्ञान-पारग, लोकतत्वार्थ कुशल, सुख दुःखके तात्पर्य्य और जन्ममरणके तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्य कोविद, उच-नीच द्रष्टा, कर्म्मविद देहधारियोंके गतिज्ञ, मुक्तवत् विचरणशील, सिद्ध, प्रशान्त, संयतेन्द्रिय ब्रह्मतेजसे दिप्यमान, सर्व्वत्रगामी और अन्तर्द्धान गतिज्ञ उस द्विजवरको यथार्थ रीतिसे जानकर तथा अन्तर्हित चक्रधर सिद्धगणके सहगामी, एकान्तमें सम्भाषमाण उन लोगोंके सङ्ग समासीन, पवनकी भांति यदृच्छाचारी धर्म्मकाम उस द्विजवरके वैसे अत्यन्त महत् अद्भुत कार्य्यको अवलोकन करके विस्मित होकर उन्होंने परिचर्य्याके सहारे उनका परितोष किया । हे परन्तप । काश्यपके विशुद्ध चित्तसे शास्त्र और सच्चरित्रयुक्त सिद्ध द्विजवरको गुरुभक्तिके सहारे सन्तुष्ट करनेसे उसका वह कार्य्य युक्तियुक्त हुआ था । हे जनार्द्दन । वह सिद्ध द्विजवर शिष्य काश्यपकी परमा सिद्धिकी पर्य्यालोचना करते हुए उसपर परितुष्ट होकर प्रसन्नचित्तसे उससे जो विषय कहा था, उसे तुम मेरे समीप सुनो।

सिद्ध बोला, हे तात ! मनुष्य विविधकर्म्मोंके सहारे इस लोकमें गति और केवल पुण्ययोगके द्वारा देवलोकमें संस्थिति लाभ किया करते हैं । परन्तु उससे उन लोगोंको किसी प्रकारका अत्यन्त सुख वा शाश्वती स्थिति लाभ नहीं होता, बल्कि दुःखसे प्राप्त हुए अत्युच्च स्थानसे बार बार उनका पतन ही होता है।

हे अनघ ! मैंने विषयतृष्णासे मोहित, काम तथा मन्युयुक्त होकर बहुतसे पापकार्य्योंका अनुष्ठान करते हुए अनेक प्रकारकी कष्टकारी अशुभगति पाई है ; बार बार जन्म-मरणकी दुःख पीड़ा सही है, विविध आहार भोजन, अनेक प्रकारके स्तनपान, विविध माता और पृथग्विध पितादर्शन तथा विचित्र सुख और दुःख भोग किये हैं । मैंने बहुतेरे प्रियजनोंके सहित विवास तथा अप्रियजनोंके सहित संवास किया है, बहुत कष्टसे जो सब धन अर्ज्जन किया था, उसे भी नष्ट किया है । राजा और स्वजनोंसे अवमान, क्लेश, शारीरिक और मानसिक दारुण वेदना, अत्यन्त विमानता तथा दारुण बधबन्धनको प्राप्त कर चुका हूं । मैं नरकगमन, यमगृहकी यन्त्रणा और मैंने इस लोकमे सदा जरा, रोग विविध व्यसन प्रभृति अनेक प्रकारके द्वन्द्वज दुःखोंको अनुभव किया है । तसके अनन्तर किसी समयमें मैंने दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर वैराग्य और निराकार ब्रह्मभाव अवलम्बन करते हुए इस लोकतन्त्रको परित्याग किया है । मैंने इस लोकमें सब विषयोंको भोगकर अन्तमें इस योगमार्गका अनुष्ठान करते हुए मनके प्रसादसे ऐसी अन्तर्हान आदि सिद्धि लाभ की है ; इसलिये अब मैं इसलोकमें न आऊंगा और सब लोकोंको अवलोकन करूंगा । हे द्विजश्रेष्ठ ! समस्त प्रजाकी सृष्टि

मोक्ष पर्य्यन्त आत्माकी शुभगति प्राप्त होनेसे मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हुई है, इसके अनन्तर मैं ब्रह्मका परमपद पाऊंगा, इसमें तुम कुछ भी सन्देह मत करो। हे परन्तप! मैं अब इस लोकमें आके मर्त्यलोकका दर्शन न करूंगा। हे महाप्राज्ञ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये कहो, तुम्हारे निमित्त क्या करूं, यदि तुम्हें कुछ अभिलाष हो, तो वह सिद्ध होगी; उसका यही समय उपस्थित हुआ है। तुम जिस लिये मेरे समीप आये हो, उसे मैंने जाना है; मैं थोड़े ही समयके बीच चला जाऊंगा, इसी लिये तुम्हें आदेश करता हूं। हे विचक्षण! मैं तुम्हारे स्वभावसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं; इसलिये मैं यह वचन कहता हूं, कि तुम्हारी जिसमें कल्याणकामना हो, मुझसे तुम वही पूछो। हे काश्यप! जब तुम मुझे जान सके हो, तब मैं तुम्हारी बुद्धिकी बड़ाई और प्रशंसा करता हूं और तुम्हें ही मेधावी बोध करता हूं।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण ब्राह्मणसे बोले, अनन्तर धार्म्मिकप्रवर काश्यपने उस सिद्ध द्विजवरके दोनों चरण ग्रहण करके उनसे सुदुर्व्वच प्रश्न किया, तब उन्होंने उससे सब धर्म्म कहा था।

काश्यप बोले, आत्मा किस प्रकार शरीर परित्याग करता है? किस प्रकार शरीर पाता और कष्टकर संसारमें आगमन करते हुए किस प्रकार उससे मुक्त होता है? प्रकृतिको परित्याग करके किस प्रकार उस शरीरको छोड़ता है और शरीरसे छूटनेपर किस भांति दूसरा शरीर ग्रहण करता है; यह मनुष्य किस प्रकार शुभाशुभ कर्म्मोंको भोग करता है और जब मनुष्य देहरहित होता है, तब उसके कर्म्म कहां निवास करते हैं?

ब्राह्मण बोला, हे वार्ष्णेय! सिद्धने काश्यपके पूछनेपर इन प्रश्नोंका जो उत्तर दिया था, उसे विस्तारपूर्व्वक तुमसे कहता हूं सुनो।

सिद्ध बोला, जीव वर्त्तमान शरीरसे आयु और कीर्त्तिकर जो सब कार्य्य करता है, अन्य शरीर ग्रहण करनेपर उन कार्य्योंके क्षय होनेसे क्षीणायु होकर विपरीत कार्य्य करनेमें प्रवृत्त होता है और उसका विनाश समय उपस्थित होनेपर विपरीत बुद्धिके अनुवर्त्ती हुआ करता है, उस समय अपना सत्त्व बल तथा कालको न जानके आत्मज्ञानसे रहित होकर निजविरुद्ध कर्म्मोंका पूर्ण रीतिसे आचरण करता है। जब जीवको अनेक प्रकारके बहुतेरे क्लेश उपस्थित होते हैं, उस समय उसे उन क्लेशोंको पूर्ण रीतिसे भोगना पड़ता है, कदापि नहीं भी भोगना पड़ता। अत्यन्त जीर्ण न होनेपर दुष्ट अन्न, मांस पीनेकी वस्तु तथा अन्यान्य विरोधी गुरुतर वस्तुओंको अधिक परिमाणसे भोजन करता है। अधिक कसरत तथा व्यायाम सेवन करता है और सदा कर्म्मलोभसे उपस्थित वेगोंको धारण किया करता है। भोजन किये हुए अन्नका परिपाक समय उपस्थित न होनेपर रससे अभियुक्त अन्न तथा दिनमें स्वप्नशीलता सेवा करके स्वयं सब दोषोंका प्रकोपित किया करता है। इस ही प्रकार निज दोषोंको प्रकापित करनेसे मरणान्तिक रोग लाभ करता तथा उद्बन्धन आदि विपरीत कार्य्योंका अनुष्ठान किया करता है। इन्हीं कारणोंसे उस समय जीवके शरीरका नाश होता है, परन्तु जीवितका विषय मैं पूर्ण रीतिसे कहता हूं, उसे सुनो।

ऊष्मा तीव्र वायुके द्वारा सञ्चालित होकर शरीरमें प्रविष्ट होकर प्राणोंको रोक करता है, इसी प्रकार वह शरीरके [illegible], [illegible] और [illegible] होकर [illegible] मर्म्मोंको भेद किया करता है, [illegible] उस समय [illegible] होकर [illegible]

हुआ करता है। हे द्विजसत्तम। मर्म्मस्थानोंके काटनेसे जीव पीड़ासे व्यथित होकर शरीर परित्याग किया करता है। हे द्विजश्रेष्ठ! जीवगण जन्म मरणसे सदा संविग्न होनेपर भी शरीरको त्यागते हैं। गर्भका संक्रमण और मर्म्मोंका अत्यन्त विसर्पण होनेसे पुरुषको फिर उस ही प्रकार पीड़ा प्राप्त होती है, सन्धिस्थानोंके भिन्न होनेपर वह शरीरस्थ जलके सहारे क्लेशित होता है; इसलिये उस समय पञ्चभूतोंका मेल निराकृत होजाता है; तब शीतनिबन्धनसे वायु शरीरके बीच अत्यन्त कुपित हुआ करता है। पञ्चभूतोंके बीच जो वायु प्राण और अपान वायुके सङ्ग स्थित होता है, वह अत्यन्त कष्टसे शरीरको परित्याग करनेके निमित्त ऊर्द्धगामी हुआ करता है। जीव इसही प्रकार शरीर परित्याग कर उच्छ्वास, उष्मा, श्री और चेतरहित होकर लोगोंका दर्शनीय होता है। जब मनुष्य पूरी रीतिसे आत्मासे परित्यक्त होता है, तब लोग उसे मृतक कहा करते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेपर जिन स्रोतोंके द्वारा इन्द्रियार्थ समूह विदित होते हैं, उन्हीं स्रोतोंके सहारे आहारसम्भूत प्राण मालूम हुआ करता है। जो जीव उस शरीरमें प्राणकी रक्षा कर सके उसे ही सनातन जानो। उस ही प्रकार किसी किसी सन्निपातमें जा जा युक्त रहता है, शास्त्रदृष्टिके अनुसार उसे ही मर्म्म जानना चाहिये। उन मर्म्मोंके भिन्न होनेपर जीव बाहर होकर जन्तुके हृदयमें प्रवेश करते हुए शीघ्र ही सत्त्वको निरोध किया करता है; उसके अनन्तर जीव सचेतन होनेपर कुछ भी नहीं जान सकता, मर्म्मोंके संवृत्त होनेपर तमके द्वारा संवृतज्ञान वही जीव निरधिष्ठान होकर वायुके सहारे सञ्चालित होता है। अनन्तर अत्यन्त उच्छ्वास परित्याग करते हुए निकलकर उस अचेतन शरीरको शीघ्र ही कम्पित किया करता है। जीव शरीरसे च्युत होकर अपने शुभकर्म्म, शुभ पुण्य तथा पापसे परिवृत हुआ करता है। पूरी रीतिसे शास्त्र निश्चयवान ज्ञानयुक्त ब्राह्मणगण उस कृतपुण्य कर्म्म और पापोंको लक्षणसे जानते हैं। ज्ञाननेत्रवाले सिद्धगण दिव्यनेत्रके द्वारा अन्धकारमें इधर उधर विलीयमान खद्योतकी भांति विलय प्राप्त जायमान योनिप्रविष्ट जीवका दर्शन किया करते हैं। शास्त्रके अनुसार वह जीव इसलोकमें त्रिविध स्थानोंमें दीखता है। जन्तुगण जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, वह स्थान ही उनको कर्म्मभूमि कहके वर्णित हुआ है। जीवगण उस ही कर्म्मभूमिसे निज कर्म्मके सहारे शुभ, अशुभ और उच्चावचभोगोंको प्राप्त करते हैं पापी मनुष्योंका निज कर्म्मसे इस लोकमें ही नरक प्राप्त होता है, जिस स्थानमें वे लोग क्लेशभोग करते हैं, वह अधोगति ही उनके लिये कष्टकर होती है। इस ही निमित्त मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है, उससे आत्माको सब भांतिसे रक्षा करनी चाहिये। इसलोकमें जीवगण ऊर्द्ध्वगामी होकर जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंका मैं तुमसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं, उसे सुनो।

जिस स्थानमें यह चन्द्रमण्डल और तारा विद्यमान हैं और जहांपर सूर्य्यमण्डल निज तेजसे प्रकाशित होता है, उन स्थानोंका मेरे समीप सुनके नैष्ठिकीबुद्धि अवलम्बन करके कर्म्मोंका निश्चय करो। पुण्यवान लोग कर्म्मके अनुसार इन सब स्थानोंमें गमन करते हैं, कर्म्म क्षय होनेपर वहांसे फिर पतित होते हैं, उस स्वर्गलोकमें भी ऊंचा, मध्यम और नीच, ऐसी ही विशेषता है; वहांपर जीवगण प्रकाशमान श्री देखकर सन्तुष्ट नहीं होते। यह सब गति पृथक् रीतिसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे द्विज। इसके अनन्तर मैं तुमसे गर्भकी उत्पत्ति कहता हूं, तुम सावधान होकर उसे सुनो।

१७ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इसलोकमें शुभ और अशुभ कर्म्मोंका नाश नहीं होता, उस ही हेतुसे जीवगण कर्म्मोंके अनुसार वैसे ही देहको प्राप्त होकर सुख दुःख भोग किया करते हैं। जैसे फलनेवाला वृक्ष बहुतसा फल प्रदान करता है, वैसे ही शुद्धमनसे किया हुआ पुण्य विपुल पुण्य प्रदान करता है और पापचित्तसे कृतपाप बहुत सा पाप प्रदान किया करता है; क्यों कि आत्मा मनको अगाड़ी करके कर्म्ममें प्रवृत्त होता है। मनुष्य काम और मन्युसे समावृत होकर कर्म्मोंके अनुसार जिस प्रकार गर्भमें प्रविष्ट होता है, उसे सुनो। शुक्र शोणितके सङ्ग मिलके स्त्रियोंके गर्भाशयमें जाकर शुभ कर्म्मज देहको प्राप्त होता है। परन्तु वह जीव ब्रह्मवित् होनेपर उस शरीरसे शाश्वत ब्रह्मको जानके अभिलषित सिद्धि लाभ करते हुए सूक्ष्म और अव्यक्तभाववशसे किसी विषयमें ही आसक्त नहीं होता। वह शाश्वत ब्रह्म सब प्राणियोंका बीजस्वरूप है, इसलिये जीवगण उसहीसे द्वारा जीवन धारण किया करते हैं। वह ब्रह्म जीवरूपसे गर्भके सब अवयवोंको विभागपूर्व्वक सञ्चार करते हुए चित्तउपाधि ग्रहण करके प्राणस्थानमें स्थित होकर अभिमान धारण करता है, अनन्तर वह गर्भ चेतनायुक्त होकर अङ्गोंको स्पन्दित किया करता है। जैसे लोहा द्रव ताम्र आदि आधारमें निषिक्त होकर विम्बरूप विग्रह धारण करता है, जीवोंके गर्भ प्रवेशको भी वैसा ही जानो। जैसे अग्नि लोहपिण्डमें प्रविष्ट होके उसे अत्यन्त ही तापित करती है, वैसे ही जीव गर्भमें प्रविष्ट होकर उस गर्भको चैतनायुक्त किया करता है। जैसे दीपक गृहके बीच प्रज्वलित होकर गृहको प्रकाशित करता है, वैसे ही जीव समस्त शरीरको चैतनायुक्त किया करता है। जीव इस शरीरसे [illegible] [illegible] कर्म्म करता है, अन्य शरीर [illegible] करनेपर भी उसे पूर्व देहकृत उन कर्म्मोंको अवश्य ही भोगना पड़ता है। परन्तु, उपभोगसे उन कर्म्मोंका नाश होनेपर जबतक मोक्ष योगस्थ धर्म्म परिग्रह नहीं होता, तबतक फिर अन्य कर्म्म प्रवर्द्धित हुआ करते हैं। हे सत्तम। जीव अन्यान्य योनिमें आवर्त्तमान रहके जिन कर्म्मोंसे सुखी होता है, उसे कहता हूं। दान, व्रत, ब्रह्मचर्य्य, यथोक्त ब्रह्मधारण, दम, प्रशान्तता, प्राणियोंके विषयमें अनुकम्पा, संयम अनृशंसता, परधन ग्रहण न करना, पृथ्वीके बीच प्राणियोंके अन्तःकरणसे दुःख दूर करना, माता पिताकी सेवा, देवता तथा अतिथि पूजन, गुरुपूजा, करुणा, शौच, सदा इन्द्रिय संयम और शुभ कर्म्मोंका प्रवर्त्तन, ये सब साधुओंके वृत्त कहके वर्णित हुए हैं, जो धर्म्म शाश्वती प्रजा प्रतिपालन करता है, वही धर्म्म इन सबके सहारे वर्द्धित हुआ करता है। जिस समय साधुओंके बीच सदा ऐसे कार्य्य दीखते हैं, उस ही समयमें वे लोग नित्य स्थिति लाभ करते हैं, इसके अतिरिक्त जिसमें शान्तगुण सदा निवास करते हैं, पण्डित लोग उसे आचार धर्म्म कहा करते हैं, वह कर्म्म साधुओंमें ही निक्षिप्त हुआ है। जो सनातन धर्म्म कहके वर्णित है, वह धर्म्म जिस पुरुषको सब भांतिसे प्राप्त होसकता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। इसलिये सब लोग धर्म्ममार्गके पथिक होनेके लिये सदा संयत रहें, क्यों कि जो लोग योगमार्ग अवलम्बन करते हैं, वे मुक्त होकर सबसे श्रेष्ठ हुआ करते हैं। धर्म्ममार्गानुसारी मनुष्य जिस शरीरसे जिस किसी प्रकारका शुभकर्म्म क्यों न करे, बहुत समयके अनन्तर इसही संसारसे मुक्ति होगी। जीव इस ही प्रकार पूर्व्वकृत कर्म्मोंको सदा भोगता है, आत्मा जिसके द्वारा विकृत होकर देहको प्राप्त होता है, उस विषयमें कर्म्म ही इसके कारण हैं।

इससे अतिरिक्त [illegible] जिससे आत्माके [illegible] [illegible] [illegible] यदि [illegible]

बीच ऐसा संशय उपस्थित हो, इसलिये उसे भी मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। सर्व्वलोक पितामह ब्रह्माने पहले आत्माके शरीरकी कल्पना करके स्थावर और जङ्गमकेसहित जगत्‌की सृष्टि की। अनन्तर जिसके द्वारा यह समस्त जगत व्याप्त होरहा है, लोग जिसे श्रेष्ठ समझते हैं, देहधारियोंकी अभिव्यक्त स्थान देहादिके आकार स्वरूप उस प्रधान प्रकृतिको उन्होंने उत्पन्न किया। उस जड़स्वभाववाली प्रकृतिको लोग चर कहा करते हैं, परन्तु शुद्ध ब्रह्म चैतन्य उसमें प्रतिविम्बित होकर जीव तथा ईश भावसे आक्रान्त होनेसे अमृत अचर कहके वर्णित होता है। वह चर अक्षर तथा शुद्धके बीच चर वा अक्षर प्रतिपुरुषोंमें मिथुनभावसे निवास करते हैं। इस प्रकार पुरातनी जनश्रुति है, कि प्रजापतिने स्थावर और जङ्गमोंके सहित सब प्राणियोंके विषयादि भूतोंकी सृष्टि की। अनन्तर उस प्रजापति पितामहने शरीर ग्रहणका समय और परिमाण निर्दिष्ट करके भूत गणके बीच सुर, नर और तिर्य्यगादि रूपसे परिवृत्ति तथा प्राणियोंकी पुनरावृत्ति सृजन की। जैसे कोई मेधावी मनुष्य इस जन्ममें परमात्माका दर्शन करनेसे पूर्व्वजन्मके वृत्तान्त और संसारकी अन्तवत्ताका विषय कहा करता है, वैसे ही मैं भी जातिस्मर होकर जो कहूंगा, वह सब यथावत् उत्पन्न होगा। जो लोग सुख और दुःखको पूरी रीतिसे अनित्य जानके बुद्धिसञ्जात कर्म्मोंके सहित शरीरको विनष्टप्राय जानते हैं और थोड़े सुखको दुःखरूपसे स्मरण करते हैं, वेही घोर दुस्तर संसारसागरसे पार होसकते हैं। हे सत्तम। प्रधानवित् पुरुष जरा मृत्यु और रोगसे आक्रान्त होकर चेतनाविशिष्ट प्राणियोंके बीच चैतन्यका एकत्व अवलोकन करते हुए परमपद अन्वेषण करनेसे जिस प्रकार निर्व्वेद लाभ करता है, उस विषयमें यथावत् उपदेश वचन कहता हूं। हे विप्र! शाश्वत अव्यय ब्रह्मके विषयमें जो ज्ञान उत्तम है, वह मैं तुमसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो।

१८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, जो मनुष्य पहलेके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करके सबके एकमात्र अधिष्ठानभूत परब्रह्ममें लीन होकर दूसरी किसी प्रकारकी चिन्ता न करते हुए मौनभावसे निवास करता है, वही संसार-बन्धनसे छूटता है। सब लोगोंका मित्र, सर्व्वसह, चित्त निग्रहमें अनुरक्त जितेन्द्रिय पुरुष जबतक योग सिद्ध न हो, तबतक उस विषयमें दैन्य वा द्वेषरहित तथा जितचित्त होनेसे मुक्त होता है। जो मनुष्य संयत, पवित्र, अहङ्कार तथा अभिमानसे रहित होकर सब प्राणियोंके विषयमें आत्मवत् आचरण करता है, वह सब प्रकारसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग जीना, मरना, सुख, दुःख, लाभ, हानि, प्रिय और अप्रियमें समभावसे ध्यान करते हैं, वे मुक्त होते हैं। जो मनुष्य निर्द्वन्द्व और निस्पृह होकर किसीके धनमें अभिलाष नहीं करता तथा किसीकी भी अवज्ञा नहीं करता, वह सब भांतिसे मुक्तिलाभ किया करता है। मनुष्य किसी प्रकारके शत्रुओंसे रहित, बन्धुविहीन, अनपत्य, धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंसे रहित तथा निराकांक्षी होनेसे मुक्त होसकता है। पुरुष धर्म्मसे रहित एकमात्र प्रारब्धकर्म्मका प्रापक शरीरात्मक धातुओंके क्षयनिबन्धनसे प्रशान्तचित्त और निर्द्वन्द्व होनेसे मुक्त हुआ करता है। निराकांक्षी सन्न्यासी पुरुष जगत्‌को अनित्य अश्वत्थ, अवश अचैतन्य और जन्म-मृत्यु तथा जरायुक्त देखता है। वैराग्य बुद्धियुक्त मनुष्य सदा आत्मदोषदर्शी होकर शीघ्र ही आत्माको बन्धनसे विमुक्त किया करता है। जो मनुष्य गन्ध, स्पर्श, रूप, रस, शब्द और परिग्रहरहित अनभिज्ञ आत्माका दर्शन करता है,

वही मुक्त होता है। पुरुष पञ्चभौतिक स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरसे रहित, निर्गुण तथा सत्त्व, रज, तमरूपसे विषयभोक्ता परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ करता है। मनुष्य ज्ञानपूर्व्वक शारीरिक और मानसिक सङ्कल्पोंको परित्याग करनेसे अग्निकी भांति धीरे धीरे निर्व्वाण लाभ किया करता है। जो मनुष्य सब संस्कारोंसे निर्म्मुक्त निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर तपस्याके सहारे इन्द्रियोंको निग्रह करता है, वही मुक्त होता है। योगी लोग योगयुक्त होकर चित्त निग्रहरूपी उपायके बीच चित्तको अन्तर्म्मुख करते हुए जिस प्रकार नित्यसिद्ध परमात्माका दर्शन करते हैं, इसके अनन्तर मैं उस अनुत्तम योगशास्त्र तथा उसका उपदेश तुम्हारे निकट यथावत् वर्णन करता हूं, सुनो। हे विप्र! पुरुष इन्द्रियोंको निज निज विषयोंसे निवृत्त करके चित्तको क्षेत्रज्ञ जीवात्मामें धारण करें; अनन्तर तीव्र तपस्या करके मोक्षयोग आचरण करे। मनीषी तपस्वी सदा तपमें निष्ठावान होकर योगशास्त्राचरण करते हुए मनके द्वारा देहके बीच आत्माका दर्शन करें। परन्तु यदि वे साधु तपस्वी एकाग्रचित्तसे आत्माको देहके बीच करनेमें समर्थ हों, तो वह शरीरमें आत्माका दर्शन पाते हैं। संयत, सदा योगयुक्त जित चित्त जितेन्द्रिय पुरुष पूरी रीतिसे प्रयुक्त होनेसे मनके सहारे आत्माका दर्शन करता है। जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें किसी अदृष्टगोचर पुरुषको देखकर जागनेपर फिर उसे देखनेसे 'यह वही पुरुष है' ऐसा ही बोध करता है, उस ही प्रकार समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें आत्माको देखकर उत्थित होकर उसका विश्वात्मरूपसे दर्शन किया करता है। जैसे कोई मनुष्य मुञ्जसे सींक निकालकर लोगोंको दिखाता है, वैसेही योगी पुरुष आत्माको निकालके दर्शन किया करता है। संयत योग शरीरको मुञ्ज और आत्म-

निष्ठ जगदाकारसे भासमान मायाको इषीका कहते हैं, योगवित् पण्डितजन भी ऐसा ही अनुत्तम निदर्शन कहा करते हैं। मनुष्य देह धारण करके शरीरके बीच आत्माका पूरी रीतिसे दर्शन करनेसे इस लोकमें कोई पुरुष ही उसका प्रभु नहीं होसकता; ऐसा ही नहीं वरन त्रिलोकाधिपति भी उसके ईश्वर नहीं हो सकते। वह मनुष्य इच्छा करनेसे देव, गन्धर्व्व और मनुष्य प्रभृतिका शरीर धारण करनेमें समर्थ होता है; और जरामृत्युको अतिक्रम करके उससे शोकार्त्त वा हर्षित नहीं होता। चित्तको वशमें करनेवाला मनुष्य योगयुक्त होकर देवताओंका भी देवल विधान करनेमें समर्थ होता है और अनित्य देह परित्याग करके नित्य ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। प्राणियोंके विनष्ट होनेसे वह भीत नहीं होता और प्राणियोंके किसीके सहारे क्लेशित होनेसे वह दुःखी नहीं होता। युक्तात्मा निष्पृह प्रशान्तचित्त मनुष्य सङ्ग और स्नेहसे उत्पन्न भयङ्कर भय, शोक तथा दुःखसे विचलित नहीं होता। समस्त शस्त्र ऐसे मनुष्यका विनाश करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये जगत्के बीच कहीं भी इस योगसे बढ़के सुखकर अन्य कुछ नहीं है तथा मृत्यु भी इसके निकट विद्यमान नहीं रह सकती, वा कुछ भी नहीं दिखाई देता। योगी पुरुष मनको आत्मामें पूरी रीतिसे नियुक्त करके निवास करते हैं और जरा, दुःख तथा सुख, इन सबसे विशिष्टरूपसे निवृत्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं। वे इच्छानुसार इस मनुष्य शरीरको परित्याग करके अन्य शरीर धारण कर सकते हैं, परन्तु जब वे योगबलसे ऐश्वर्योंको भोगेंगे, उस समय कदापि इससे विरत न होंगे। जिस समय वे मनको आत्मामें पूरी रीतिसे संयुक्त करके [illegible] परमात्माका दर्शन करेंगे उस समय साक्षात् [illegible]

परन्तु पुरुष जिस प्रकार ध्यानशील होकर योग लाभ करता है, उसे सुनो। पुरुष वेदान्त सुनकर गुरुउपदिष्ट उपदेशको पर्य्यालोचना करके देहके बीच वास करे। मनको उस शरीरके बाहिरी भागमें न रखके अभ्यन्तरमें ही स्थापन करे। स्वयं उसके अभ्यन्तरमें रहके मूलधारादि अन्यतम जिस किसी चक्रमें वास करते हुए उसके सहित मनको धारणा रखे। जिस समय वह चक्रके बीच रहके सर्व्वात्मक ब्रह्मका ध्यान करेगा, उस समय उसका मन कदापि बहिर्मुख न होने पावेगा। निर्ज्जन, शब्दरहित बनके बीच इन्द्रियोंको निग्रह करते हुए एकाग्र होकर देहके बाहिर तथा भीतरमें परिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करे। और योगके साधनस्वरूप दांत, तालू, जिह्वा, गला, हृदय वा हृदयमें बंधी हुई नाड़ियोंका ध्यान करे अर्थात् दांतसे भोजनकी सब सामग्रियोंको शुद्ध करे, जिह्वाको तालूके सङ्ग संयुक्त करे, गला तथा ग्रीवांको भूख प्याससे निवृत्त करे और हृदय तथा हृदयस्थित नाड़ियोंको परिष्कृत कर रखे। हे मधुसूदन। वह मेधावी शिष्यने मेरे द्वारा इतनी कथा सुनके फिर मुझसे सुदुर्व्वच मोक्षधर्म्म पूछा।

शिष्य बोला, हे अनघ! कोष्ठके बीच किस प्रकार भोजन किया हुआ अन्न परिपाक होता है? किस प्रकार वह रसत्व तथा शोणितत्वको प्राप्त होता है और किस भांतिसे वह जीवोंके समस्त शरीर मांस, मेद स्नायु और हड्डियोंको पुष्ट करता है? वर्द्धमान वा बली-पुरुषोंके शरीर तथा बल किस प्रकार वर्द्धित होते और किस प्रकारसे निर्ब्बल पुरुषके मल पृथक् पृथक् भावसे बाहिर होते हैं? यह पुरुष द्वारा निश्वास प्रश्वास करता है तथा यह आत्मा किस स्थानको अवलम्बन करके शरीरके बीच निवास करता है? जीव नाड़ीमार्गमें चेष्टमान होकर किस सूक्ष्म शरीरको वाहन करता है? नाड़ीमार्गका कैसा वर्ण है और इससे फिर किस प्रकार शरीर प्राप्त हुआ करता है। हे भगवन्! यह सब मेरे निकट आपको यथार्थ रीतिसे वर्णन करना उचित है।

हे महाबाहो माधव! मैंने उस ब्राह्मणका इस विषयमें प्रश्न सुनके उससे यह समस्त यथाश्रुत विषय कहा। जैसे पुरुष निज धन रखके घड़ेमें डालकर घरमें प्रवेश करके विवेचनाके द्वारा घड़ेको खोजकर उसे पाता है, वैसे ही निज शरीरमें मनको डालकर प्रमाद परित्याग करके अनिश्चल इन्द्रियोंके द्वारा उस शरीरके बीच आत्माको खोज करे। इस ही प्रकार सदा उद्योगी होकर प्रसन्नचित्तसे खोज करनेसे मनुष्य जिसके दर्शनसे प्रधानवित् होता है, थोड़े ही समयके बीच उस ब्रह्मको पाता है। नेत्रसे परमात्माको देखा नहीं जाता, वह किसी इन्द्रियसे भी ग्राह्य नहीं है; केवल मनरूपी दीपकके द्वारा ही मनुष्यके दृष्टिगोचर हुआ करता है। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वव्यापी, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता इसलिये समस्त जगतको परिपूरित करके निवास किया करता है। जब वह शरीरसे निकले, तब जीव उसका दर्शन कर सकता है। जीव सब लक्षणोंसे आक्रान्त सब वस्तुओंको परित्याग करके मनको निजरूपमें धारण करनेसे मानो मनहीमन हंसते हुए निर्गुण परब्रह्मका दर्शन किया करता है। जीव इस प्रकार उस परमात्माको अवलम्बन करके मुक्तलीन होता है।

हे द्विजोत्तम। मैंने तुम्हारे निकट इस रहस्यको यथावत् वर्णन किया; अनन्तर मैं तुम्हें अनुमति प्रदान करता हूं, कि तुम यथासुखसे गमन करो, मैं तुम्हें साधन कराऊंगा। हे कृष्ण! मेरे शिष्य वह महातपस्वी संशितव्रती विप्रने मेरे ऐसे वचनको सुनके इच्छानुसार गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! मोक्षधर्म्मावलम्बी वह द्विजवर मुझसे यह सब विषय पूर्ण रीतिसे

कहके अन्तर्हित हुए। हे पार्थ! तुमने तो एकाग्रचित्तसे एक बार मेरे निकट यह विषय सुना था, वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं होता। हे अर्जुन! इसमें मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि जो पण्डित पुरुष व्यग्रचित्त तत्त्वविद्याविहीन और अकृतात्मा है, वह इसे भली भांति नहीं जान सकता। हे भरतश्रेष्ठ! मैंने तुमसे जो कहा है, वह देवताओंके निकट भी गोपनीय है; इस लोकमें किसीने कभी इसे नहीं सुना। हे अनघ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य इसे सुननेके उपयुक्त नहीं है। जिसका अन्तरात्मा अत्यन्त व्यग्र है, वह पुरुष उत्तम रीतिसे इसे नहीं जान सकता। हे कुन्तीनन्दन! देखो क्रियावान मनुष्योंके द्वारा देवलोक समावृत है, मर्त्यरूप निवर्त्तन करना देवताओंको अभिलषित नहीं है। मनुष्य देह परित्यागकर जिससे अमरत्व लाभ करके सर्व्वदा सुखभोग करता है, वह सनातन परब्रह्मही परम गति है।

हे पार्थ! स्वधर्म्ममें रत, ब्रह्मलोकपरायण ब्राह्मण और बहुश्रुत क्षत्रियोंकी तो बात ही क्या है, पापयोनिसे उत्पन्न हुए पुरुष, स्त्री, वैश्य और शूद्र लोग भी इस मोक्षधर्म्मको अवलम्बन करनेसे परम गति पाते हैं। जिससे सिद्धि फल मोक्ष और दुःखका विनिर्णय होता है, मेरे द्वारा उस मोक्षधर्म्म साधनका उपाय और ऐसी हेतुयुक्त कथा कही गई। हे भरतश्रेष्ठ! इससे बढ़के सुखकर और कुछ भी नहीं है। जो सब बुद्धिमान् श्रद्धावान् और पराक्रान्त मनुष्य इस ही उपायके सहारे इस लोकके सारभूत धनादिको तृणादिकी भांति परित्याग करते हैं, वे शीघ्र ही परम गति प्राप्त करते हैं। हे पार्थ! मैं इतना कह सकता हूं, कि इसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है, क्यों कि जो पुरुष छः मासतक सदा इसमें नियुक्त रहता है उसमें योग सम्यक्रूपसे प्रवृत्त होता है।

१८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! इस प्रश्न विषयमें पण्डित लोग दम्पतीके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। कोई ब्राह्मणी ज्ञानविज्ञानपारग निज स्वामीको निर्ज्जन स्थानमें बैठे हुए देखकर बोली। हे स्वामी! आप अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंसे विहीन मेरे सदृश भार्य्याके विषयमें निर्द्दय तथा मेरे अनन्य गतित्वमें अनभिज्ञ हैं; तब मैं आपके सदृश पतिका आसरा करके किस लोकमें गमन करूंगी? मैंने ऐसा सुना है, कि भार्य्या पतिकृत लोकोंको पाती है, मैं आपको पति पाकर कौनसी गति लाभ करूंगी?

प्रशान्तचित्त ब्राह्मण भार्य्याका ऐसा वचन सुनके हंसके बोला, हे सुभगे पुण्यशीले! मैं तुम्हारे इस वचनको असूया नहीं करता। दीक्षा और व्रतादिग्राह्य द्रव्य तथा सत्य प्रभृति जो सब कर्म्म विद्यमान हैं, कर्म्म करनेवाले इसे ही कर्त्तव्य कर्म्म कहके व्यवहार किया करते हैं। परन्तु ज्ञानहीन मनुष्य इस लोकमें शरीरायास साध्य कर्म्मके द्वारा केवल मोहका निग्रह करते हैं, एक मुहूर्त्तके लिये नैष्कर्म्म लाभ नहीं कर सकते। कर्म्म, मन और वचनसे उत्थित शुभाशुभ, जन्मस्थित भङ्ग और अनेक योनियोंमें भ्रमणरूपी कर्म्म सर्व्व भूतोंमें विद्यमान हैं। द्रव्य वस्तु साम तथा घृतादिविशिष्ट सब कर्म्ममार्ग दुर्ज्जनोंके द्वारा श्रेष्ठ कहे गये हैं, मैं उन कर्म्ममार्गोंसे विरत होकर निज शरीरस्थ भी और नासिकाके मध्यवर्त्ती [illegible] स्थानका दर्शन किया करता हूं। जिस स्थानमें वह अद्वैत ब्रह्म विद्यमान रहता है और जहां इड़ा तथा पिङ्गलानाड़ी निवास करती हैं, वहां [illegible] और वायु सब भूतोंको धारण करते हुए सदा सञ्चार किया करता है। [illegible] योगिगण और [illegible] जितेन्द्रिय विद्वान् [illegible] उपासना करते हैं; [illegible]

नासिकासे सूंघा नहीं जाता, जीभसे आस्वादन नहीं किया जाता और त्वचासे स्पर्श नहीं किया जाता; केवल मनसे ही जाना जाता है। वह दर्शन तथा श्रवणेन्द्रियसे अतीत है; गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द और लक्षणविहीन है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान प्रभृति सृष्टि व्यापार जिससे प्रवर्त्तित होकर जिसमें प्रतिष्ठित हुआ करता है, वे प्राणादि वायु उससे प्रवर्त्तित होकर उसमें ही प्रवेश करते हैं। प्राण, अपान, समान और व्यानके बीच विचरण किया करता है। उस अपानके सहित प्राणके प्रसुप्त अर्थात् भौं और नासिकाके बीच निरुद्ध होनेपर समान और व्यान विलीन होते हैं और उदान, अपान तथा प्राणके बीच निवास करते हुए दोनोंमें व्याप्त रहता है, इसीसे प्राण अपान सोये हुए पुरुषको परित्याग नहीं कर सकते, प्राणादिके अधिकारत्व तथा चेष्टाजनकत्व निबन्धनसे पण्डित लोग उसे उदान कहा करते हैं; उस एकमात्र उदानमें प्राणादिका अन्तर्भाव होता है, इसीसे ब्रह्मादि विप्रगण सहत परात्मप्रापक तपस्याका निश्चय किया करते हैं। परस्पर भक्षक शरीरमें रहनेवाले प्राणादि वायुके बीच समान वायुके निवासस्थान नाभिमण्डलमें वैश्वानर नाम अग्नि निवास करती है, वह अग्नि सात हिस्सेमें बटके उसके बीच प्रकाशित हुआ करती है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये सातो उस वैश्वानर अग्निकी जिह्वा हैं। सूंघना, देखना, पीना, सुनना, मनन और बोध करना, ये सातो समिध हैं। सूंघनेवाला, खानेवाला, देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला और बोद्धा—ये सात ऋत्विक हैं। हे सुभगे! घ्रेय, पेय, दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, मन्तव्य और बोधव्य, इन सात विषयोंको सर्व्वदा हवि बोध करनी चाहिये। पहले कहे हुए सात प्रकारके विद्वान् होतागण सात प्रकारकी ब्रह्माग्निमें सात भांतिके हवि डालकर पृथि व्यादि उत्पन्न किया करते हैं। पृथ्वी, वायु आकाश, जल, अग्नि, मन और बुद्धि, ये सा योनि कहके वर्णित हुई हैं। हविर्भूत गु घ्रेयादि विषय अग्निके गुणगन्धादि ज्ञानरू धीवृत्तिमें प्रविष्ट होकर संस्कारात्मक अन्तर्व्वा चित्तके बीच बास करते हुए निज यानिभू प्राणादिमें उत्पन्न होता और प्रलयकाल उ स्थित होनेपर भीतर ही लीन हुआ कर है। अनन्तर उस अन्तर्व्वाससे गन्ध, गन्धसे र रससे रूप, रूपसे स्पर्श, स्पर्शसे शब्द, शब्द मन और मनसे बुद्धि उत्पन्न होता है; पण्डि लोग इस ही प्रकार सात भांतिकी उत्पत्ति मालूम किया करते हैं। प्राचीन पण्डितग इस ही प्रकार वेदसे प्राणादिरूप ग्रहण क हैं; सब लोग प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता त्रिविध पूर्णाहुति अर्थात् पूर्ण यज्ञके प्राप आह्वानके द्वारा परिपूर्ण होकर निज ते सहारे परिपूर्ण हुआ करते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि। इस स्था पण्डित लोग दश प्रकारके होता-विधानसं यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वा हाथ, पांव, पायु और उपस्थ, ये दश होता शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्य, क्रि गति, रेत, मूत्र-पुरीषका त्याग,—ये दश हैं। दिशा, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अ विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र,—ये अग्नि हैं। हे भामिनि! पहले कहे हुए श्रोत दशेन्द्रिय रूप होतागण इन्द्रियोंके अधि देवता दिगादि रूप दश प्रकारकी अग्निमें नीय शब्दादि दश प्रकारके विषयरूप समिध आहुति प्रदान किया करते हैं। उस य चित्तरूप स्रुवाके सहारे घृतरूप इन्द्रियार्थों

आहुति देकर दक्षिणार्थ अग्निमें चित्तरूप अ,वा और सुकृत दुष्कृतको डालनेपर केवल पवित्र उत्तम ज्ञान शेष रहता है ; मैंने ऐसा सुना है, कि यह जगत् उस ज्ञानसे पृथक् भूत होकर स्थित है। सब ज्ञेय वस्तु ही चित्त है, ज्ञान उस चित्तको केवल प्रकाश करता है, उसमें संसक्त नहीं होता। जीव वीर्य्य हेतुसे स्थूल शरीरधारी पाककौशिक शरीरमें ही सूक्ष्म शरीराभिमानी होकर निवास करता है। वह सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव गार्हपत्य और उससे अन्यमन आवहनीय नामसे विख्यात् होता है ; उसमेंही हवि डाली जाती है। उससे पहले वाचस्पति वेद उत्पन्न होता है, तिसके अनन्तर मन उत्पन्न होकर उस वाचस्पतिको पर्य्यवेक्षण करता है, अनन्तर काला पीला प्रभृति वर्णविहीनरूप अर्थात् प्राणवायु उत्पन्न होकर मनका अनुगामी हुआ करता है।

ब्राह्मणी बोली, जब वचन मनके द्वारा सोचके कहा जाता है, तब किस निमित्त पहले वचन और पीछे मन उत्पन्न हुआ? किस प्रमाणके अनुसार प्राण मनका अनुगामी होता है और सुषुप्ति समयमें उदित होकर विषयभोग न करनेपर भी कौन उसकी ज्ञानशक्तिको हरण करता है।

ब्राह्मण बोला, अपान प्राणका प्रभु होकर उस प्राणको मनका अनुगामी करता है, इस ही हेतु पण्डित लोग प्राणकी उस अपानता गतिको मनकी गति कहा करते हैं। और तुमने मुझसे मन तथा वचन विषयक प्रश्न किया है मैं तुमसे उस वाक्य और मनका सम्वाद करता हूं, सुनो।

एक बार वाक्य और मन दोनो ही भूता- [illegible] निकट जाकर उससे बोले हैं [illegible] इस [illegible] नहीं [illegible] [illegible] हमारा सन्देह दूर करिए [illegible] [illegible]

वाग्देवीने उनसे कहा, कि तुम जो सोचते हो, मै उसे प्रकाश करती हूं ; तब मैं तुम्हारी कामधुक् हुई इसलिये तुमसे मै श्रेष्ठ हूं। वाक्य और मन जब इसी भांति आपसमें विरोध करने लगे, तब मन ब्राह्मणीरूपी होकर दोनोंके विषय विभाग द्वारा समता सम्पादन करते हुए कहने लगा।

ब्राह्मणीरूपी मन बोला, स्थावर बाह्य इन्द्रियोंके विषय तथा जङ्गम अतीन्द्रिय स्वर्गादि विषय, दोनोंको ही मेरा मन जानो ; परन्तु, स्थावर मेरे निकट और जङ्गम तुम्हारे समीप विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्र वर्ण और स्वरके द्वारा प्रकाशित वह जङ्गम स्वर्गादि विषय मनको प्राप्त होकर जङ्गम हुआ करते हैं ; उस ही निमित्त तुम मनसे श्रेष्ठ हो। हे शोभने। जब वाग्देवी स्वयं कामधुक् होकर मनके निकट आती हैं, तब मन उच्छ्वासको प्राप्त होकर वाक्य कहा करता है। हे महाभागे। वाग्देवी प्राणके द्वारा प्रेरित होकर मनोवृत्ति विशेष प्राण और अपानके भीतर सदा निवास किया करती है, परन्तु जब वह प्राणकी सहायताके विना अत्यन्त नीच होती है, तब प्रजापतिके निकट जाकर ऐसा वचन कहा करती है, कि "हे भगवन्! मुझपर प्रसन्न होइये।" अनन्तर जब प्राण वाक्यको आप्यायित करके प्रकट होता है, तब वाग्देवी प्राणसे उच्छ्वास लाभ करके मौनावलम्बन किया करती है। घोषणी और अघोषा वाक्य सदा प्रवर्त्तित होती है, उनमें वाक घोषिणी वाग्देवी प्राणके आप्यायनकी अपेक्षा करती है, पर मन्त्रस्वरूपिणी अघोषा वाग्देवी प्राणके आप्यायनकी अपेक्षा नहीं करती। [illegible]

[illegible]

शुचिस्मिते! गोरूपी वाग् देवी दिव्य देवताया-कर्षण और अदिव्य व्यवहार प्रकटरूप दोनों भांतिके प्रभावसे प्रकाशित होती है, सूक्ष्म और स्यन्दमान इन दोनों भांतिके वाक्योंका इतना ही अन्तर जानो।

ब्राह्मणी बोली, वाक्य उत्पन्न न होनेपर बिवक्षासे प्रेरित वाङ्मयी सरस्वती देवी उस समय कैसी अवस्थामें निवास करती है?

ब्राह्मण बोला, वह वाग् देवी शरीरके बीच प्राणवायुके सहयोगसे प्रस्फुरित होकर प्राणसे अपानको प्राप्त होती है; अनन्तर उदानभूत होकर प्राण छोड़के व्यानके सहित सारे आकाशको आवरण किया करती है। तिसके अनन्तर वह समानमें प्रतिष्ठित होकर पहलेकी भांति सबको विदित होती है। उक्त कारणसे स्थावरत्व निबन्धन मन विशिष्ट और जङ्गमत्व निबन्धनसे वग् देवी श्रेष्ठ होती है।

२१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! इस वाक्य और मनके सम प्राधान्य विषयमें पण्डित लोग जिस प्रकार सप्तहोताके विधानसंयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो। नासिका, नेत्र, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि,—येही सात होता हैं, ये पृथक् पृथक् स्थानमें निवास किया करते हैं। हे शोभने! ये सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते तुम इन स्वभावसिद्ध सातों होताओंको विशेष रीतिसे मालूम करो।

ब्राह्मणी बोली, हे भगवन्! वे सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए किस निमित्त परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते और उनका स्वभाव कैसा है? यह विषय आप विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, घ्राण आदि सातों होताओंकी निज निज गुणको ग्रहण करनेकी अनभिज्ञता है, इसलिये वे परस्परमें परस्परके गुण कदापि नहीं जान सकते। जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये गन्धको ग्रहण नहीं करते, केवल नासिका ही गन्धको ग्रहण किया करता है। नासिका, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रसको नहीं जानते, केवल जिह्वासे ही उसका बोध होता है। नासिका, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रूपको ग्रहण नहीं करते, केवल नेत्र ही रूपको ग्रहण किया करता है। नासिका जिह्वा, नेत्र, कान, मन और बुद्धि, ये स्पर्शगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल त्वचा ही उस स्पर्शगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, मन और बुद्धि, ये शब्दगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल कान ही उस शब्दगुणको ग्रहण किया करता है, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और बुद्धि, ये संशय गुणको ग्रहण नहीं करते, केवल मन ही उस संशयगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और मन ये निष्ठागुणको ग्रहण नहीं करते; केवल बुद्धि ही उस निष्ठागुणको ग्रहण किया करती है। हे भामिनि। इस विषयमें पण्डित लोग मन और इन्द्रियोंके सम्वाद युक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो।

मन बोला, मेरे बिना नासिका गन्ध, नेत्ररूप, जिह्वा, रस, त्वचा स्पर्श और कान शब्दको ग्रहण करनेमें किसी प्रकार समर्थ नहीं होते, इसलिये सब भूतोंके बीच मैं ही प्रधान तथा नित्य हूं। इन्द्रिया मुझसे रहित होनेपर शून्य गृह तथा शान्तार्च्चिष अग्निकी भांति प्रकाशित नहीं होती। सब जन्तु मुझसे रहित होनेसे यतमान इन्द्रियोंके द्वारा आर्द्र तथा सूखे हुए काठकी भांति गुणार्थोंको ग्रहण नहीं कर सकते।

इन्द्रियोंने कहा, आप जैसा समझते हैं, यदि सत्य ही यह इसी प्रकार हो, यदि आप हम लोगोंके बिना हमारे विषयोंका भोग कर सकें,

हमारे प्रलीन होनेपर यदि आप तर्पण प्राण धारण तथा अपनी इच्छानुसार विषयोंकी भोग करें, अथवा हमारे प्रलीन होने तथा विषयोंके विद्यमान रहनेपर यदि आप यथार्थमेंही सङ्कल्प मात्रसे विषयोंको भोगकर सकें और हमारे विषयमें आप अपने मनकी अभिलाष सिद्ध करनेमें समर्थ हो ; तो आप नासिकासे रूप, नेत्रसे रस, कानसे गन्ध, जिह्वासे स्पर्श, त्वचासे शब्द तथा बुद्धिसे स्पर्श ग्रहण करिये। निर्ब्बलोंके पक्षमें ही नियम निर्द्धारित होता है बलवान लोगोंमें कुछभी नियम विहित नहीं होता, आप जूठे भोजनके योग्य नहीं हैं, इसलिये आप यह सब अपूर्व्व भोग ग्रहण करिये।

जैसे शिष्य वेदका अर्थ जाननेके लिये गुरुके समीप जाकर उसकी निकट श्रुतिको ग्रहण करके उसके अर्थको अनुभव करता है, वैसे ही स्वप्न और जाग्रत अवस्थामें अतीत और अनागत विषय हम लोगोंके द्वारा दर्शित होनेपर आप उन विषयोंको अनुभव किया करते हैं। और ऐसा देखा जाता है, कि हम लोगोंके निज निज अर्थ शब्दादि ग्रहण करनेपर अल्पचित्त वैमनस्य जन्तुओंका प्राणधारण होता है। जन्तुगण सङ्कल्पनिबन्धन बहुतसे स्वप्नोंकी सन्निधि उसकी उपासना करते हुए बुभुक्षासे पीड़ित होकर विषयोंकी ओर दौड़ते हैं। प्राणिगण द्वाररहित गृहकी भांति विषयोंसे विद्ध हुए भोग समूहमें प्रवेश करते हुए जिस प्रकार काठ क्षय होनेसे प्रज्वलित आग शान्त हो जाती है, उस ही प्रकार प्राण क्षय होनेसे शान्तिको प्राप्त हुआ करते हैं। इच्छानुसार हम लोगोंका निज निज गुणोंमें अधिकार है, परन्तु परस्परके गुणोंकी उपलब्धि नहीं होती और तुम्हारे अतिरिक्त हम लोगोंको शब्द उपलब्ध नहीं होता।

२२ अध्याय समाप्त।

——— ———

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! इस विषयमें पण्डित लोग पञ्च-होताके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। बुद्धिमान लोग प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—इस पञ्च वायुको पञ्चहोता समझते तथा इनके परम तत्वको जानते हैं।

ब्राह्मणी बोली, पहले मैंने आपके समीप स्वभाव सिद्धसप्तहोताओंका विवरण मालूम किया है। अब इस समय पञ्च होताओं और उनके परम तत्वोंको विस्तारपूर्व्वक कहिये।

ब्राह्मण बोला, वायु प्राणसे उत्पन्न होनेपर अपानरूपसे परिणत होता है, अनन्तर अपानसे प्रकट होके व्यान और व्यानसे उत्पन्न होकर उदान तथा उदानसे उत्पन्न होके समान रूपसे परिणत हुआ करता है।

एक समय उन प्राणादि पञ्चवायुने एकत्रित होकर पूर्व्वजात पितामह ब्रह्मासे इस प्रकार पूंछा। हे ब्रह्मन्! आप बताइये, हम लोगोंके बीच श्रेष्ठ कौन है? आप जिसे श्रेष्ठ कहेंगे, वही हम लोगोंमें श्रेष्ठ होगा।

ब्रह्मा बोले, प्राणियोंके शरीरमें जिस प्राणके प्रलीन होनेसे सब प्राणोंही प्रलयको प्राप्त होते हैं और जिस प्राणके प्रबोधित होनेसे फिर प्रकाशित होते हैं, वही तुम लोगोंमें श्रेष्ठ है, इस समय तुम लोगोंकी जहां अभिलाष हो, वहां जाओ।

प्राण बोला, प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राण ही प्रलीन होते हैं और मेरे प्रबोधित होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं। इसलिये मैं ही श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं तुम सब कोई पर्य्यालोचन करो।

ब्राह्मण बोला, हे शुभे! प्राण प्रलीन होके फिर और प्रबोधित होनेपर समान और उदान [illegible] हे प्राण! तुम हमारी भांति इन शरीरोंमें [illegible] इसलिये [illegible]

हो। प्राण इतनी बात सुनके फिर प्रचीर्ण हुआ, तब अपान उससे कहने लगा।

अपान बोला, प्राणियोंके शरीरमें मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही पलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान और उदान अपानसे बोले, हे अपान! तुम हम लोगोंसे श्रेष्ठ नहीं हो, प्राणही तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम प्राणहीके निकट श्रेष्ठ हो सकते हो। अनन्तर अपानके प्रकाशित होनेपर व्यान उससे फिर कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते है और मेरे प्रचीण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं; अब मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान प्रलीन होके पुनर्व्वार प्रकाशित हुआ, तब प्राण, अपान, उदान और समान उससे कहने लगे। हे व्यान। तुम हमारे प्रभु नहीं हो सकते, परन्तु समान तुम्हारे वशमें है, इसलिये तुम उसके ही प्रभु हो। व्यान ऐसा सुनके फिर प्रकाशित हुआ, तब समान कहने लगा, जिस लिये मैं सबसे श्रेष्ठ हूं उसे तुम लोग सुनो।

प्राणियोंके शरीरके बीच जब मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सभी प्रादुर्भूत होते हैं, तब मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग अवलोकन करो। अनन्तर समानके प्रकाशित होनेपर उदान उससे कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सब फिर प्रादुर्भूत हुआ करते हैं, इसलिये मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग देखो। तिसके अनन्तर उदानके प्रलीन होकर फिर प्रकट होनेपर प्राण, अपान, समान और व्यान उससे बोले, हे उदान। व्यान तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम व्यानके ही प्रभु हो, हम लोगोंके प्रभु नहीं हो सकते।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा उन प्राणादि वायुसे बोले, कि तुम सब निज निज विषयमें श्रेष्ठ हो और परस्पर परस्परके धर्म्मावलम्बी हो; परन्तु परस्पर कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। जैसे एक प्राणही स्थिर और अस्थिर होकर आत्माको अधिकार करते हुए उपाधिभेदसे पञ्चवायु रूपसे परिणत होता है, उसही भांति एक आत्मा ही उपाधिभेदसे बहुरूपी हुआ करता है। परस्परमें परस्परके सुहृत होकर परस्परको धारण करनेसे तुम लोगोंका मङ्गल है; तुम लोग इस समय आपसका विरोध त्यागके गमन करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो।

२३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इस विषयमें पण्डित लोग देवमत ऋषि और नारदके सम्वाद युक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

देवमत बोले, हे नारद! उत्पन्न होनेवाले, जीवके विषयमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, इन पञ्चवायुके बीच प्रथम कौनसा प्रवृत्त होता है?

नारद मुनि बोले, जीव जिस कारणसे उत्पन्न होता है, उत्पत्तिके पहले उसी कारणसे अन्य कोई वस्तु संयुक्त होती है, इसही निमित्त तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध और प्राणद्वन्द्वको विशेष रीतिसे जानना उचित है।

देवमत बोले, जीव कहांसे उत्पन्न होता है और उससे भिन्न कौन पहले प्राप्त होता है और

तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध इन सबका रूप तथा प्राण-द्वन्द्व क्या है? यह तुम सब मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

नारद मुनि बोले, ईश्वरकी आलोचनार्थ ध्यानसे जीव प्रकट होनेपर पहले भूतसृष्टि होती है, फिर वैदिक शब्दके अनुसार रसरूप अर्थात् तत्व विषयिणी वासनासे प्रजापतिके द्वारा भौतिकसृष्टि होती है। अनन्तर शोणित संसृष्ट अर्थात् वासनामिश्रित शुक्ररूप अदृष्टसे पहले प्राण प्रवृत्त होता है, फिर शुक्ररूप अदृष्टके प्राणसे विकृत होनेपर अपान प्रवृत्त होता है। रस स्वरूप वासना संसृष्ट शुक्ररूप अदृष्टसे हर्ष स्वरूप उदानका रूप उत्पन्न होता है, इस हर्षरूप और कार्य्यके बीच आनन्द स्वरूप ब्रह्म निवास करता है। कामसे शुक्ररूप अदृष्ट और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। सामान्य शुक्र तथा शोणित समान और व्यानसे उत्पन्न हुआ करते हैं। प्राण और अपान इस काम प्रवृत्याख्य द्वन्द्वको प्राप्त होकर जीव उपाधि ग्रहण करते हुए ऊपर और नीचे गमन करते हैं, उक्त रीतिके अनुसारही व्यान और समान तिर्य्यक् भाव तथा द्वैतभावको प्राप्त होते हैं। वेदशास्त्रानुसार अग्निही सर्व्वदेवता है, उस परमात्मरूप अग्निसे ब्राह्मणीय बुद्धियुक्त ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। उस उत्तम तेजयुक्त अग्निका तमोरूप धूम और रजोरूप भस्म, जिसमें एविरूपी भोग वस्तुएं डाली जाती हैं, उसी अग्निसे सबकी उत्पत्ति हुआ करती है। समान और व्यान बुद्धितत्वसे उत्पन्न होते हैं, यह यज्ञवो ऋषियोंका अनुभवसिद्ध है। प्राण और अपान आज्यभाग हैं, इस प्राणापानके [illegible] परमात्मरूप अग्नि विद्यमान रहती है। ब्राह्मण लोग उदानके इस हर्षरूपको [illegible] बोध करते हैं परन्तु [illegible] हैं, [illegible] कहता हूं, तुम सावधानतासे मेरे निकट [illegible]। दिन और [illegible]

ही द्वन्द्व है, उसके बीच वह परमात्मारूप अग्नि विद्यमान रहती है; ब्राह्मणगण उस उदानके रूपको परब्रह्म बोध करते हैं। (सत्) कार्य्य, (असत्) कारणरूप द्वन्द्व इसके बीच परमात्मारूपी अग्नि विद्यमान रहती है, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं। वह अर्द्धब्रह्म जो सङ्कल्पाख्य हेतुके द्वारा समान और व्यानरूपसे उत्पन्न होता है, उस सङ्कल्पसे ही सब कर्म्म विस्तृत हुआ करते हैं; तृतीय सुषुप्तिरूप समान और व्यानके द्वारा फिर निश्चित होता है। शान्तिके निमित्त समान, व्यान, सनातन ब्रह्म ये तीनो एक मात्र शान्ति-शब्दसे वर्णित होते हैं, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म कहके बोध किया करते हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! इस विषयमें पण्डित लोग चातुर्होत्र विधानकी विधि संयुक्त पुराने इतिहासको जिस प्रकार कहा करते हैं, मैं वह सब विधान विधिपूर्व्वक वर्णन करता हूं, तुम मेरे समीप यह अद्भुत रहस्य सुनो। हे भामिनि! कर्त्ता, कर्म्म, करण और मोक्ष, ये चारों होता हैं, इनके द्वारा यह जगत् आवृत्त होरहा है। पहले प्राणादि यद्यपि दश और सात होताओंके बीच वर्णित हुए हैं, परन्तु उनके बीच कौन [illegible] हैं, यह नहीं कहा गया है, इस समय युक्तियुक्त अवलम्बन करके हेतुओंके साधनको विशेषरूपसे कहता हूं, सुनो। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि इन सातोंको हेतुगण अर्थात् करण [illegible]। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श मन्तव्य और बोद्धव्य, ये सात विषय हैं। [illegible] [illegible]

हो। प्राण इतनी बात सुनके फिर प्रचीर्ण हुआ, तब अपान उससे कहने लगा।

अपान बोला, प्राणियोंके शरीरमें मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही पलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान और उदान अपानसे बोले, हे अपान! तुम हम लोगोंसे श्रेष्ठ नहीं हो, प्राणही तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम प्राणहीके निकट श्रेष्ठ हो सकते हो। अनन्तर अपानके प्रकाशित होनेपर व्यान उससे फिर कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं; अब मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान प्रलीन होके पुनर्व्वार प्रकाशित हुआ, तब प्राण, अपान, उदान और समान उससे कहने लगे। हे व्यान। तुम हमारे प्रभु नहीं हो सकते, परन्तु समान तुम्हारे वशमें है, इसलिये तुम उसके ही प्रभु हो। व्यान ऐसा सुनके फिर प्रकाशित हुआ, तब समान कहने लगा, जिस लिये मैं सबसे श्रेष्ठ हूं उसे तुम लोग सुनो।

प्राणियोंके शरीरके बीच जब मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सभी प्रादुर्भूत होते हैं, तब मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग अवलोकन करो। अनन्तर समानके प्रकाशित होनेपर उदान उससे कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सब फिर प्रादुर्भूत हुआ करते हैं, इसलिये मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग देखो। तिसके अनन्तर उदानके प्रलीन होकर फिर प्रकट होनेपर प्राण, अपान, समान और व्यान उससे बोले, उदान! व्यान तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम व्यानके ही प्रभु हो, हम लोगोंके प्रभु नहीं हो सकते।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा उन प्राणादि वायुसे बोले, कि तुम सब निज निज विषयमें श्रेष्ठ हो और परस्पर परस्परके धर्म्मावलम्बी हो; परन्तु परस्पर कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। जैसे एक प्राणही स्थिर और अस्थिर होकर आत्माका अधिकार करते हुए उपाधिभेदसे पञ्चवायु रूपमें परिणत होता है, उसही भांति एक आत्मा भी उपाधिभेदसे बहुरूपी हुआ करता है। परस्परमें परस्परके सुहृत होकर परस्परको धारण करनेसे तुम लोगोंका मङ्गल है; तुम लोग इस समय आपसका विरोध त्यागके गमन करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो।

२३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इस विषयमें पण्डित लोग देवमत ऋषि और नारदके सम्वाद युक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

देवमत बोले, हे नारद! उत्पन्न होनेवाले जीवके विषयमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, इन पञ्चवायुके बीच प्रथम कौनसा प्रवृत्त होता है?

नारद मुनि बोले, जीव जिस कारणसे उत्पन्न होता है, उत्पत्तिके पहले उसी कारणसे अन्य कोई वस्तु संयुक्त होती है, इसही निमित्त तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध और प्राणद्वन्द्वको विशेष रीतिसे जानना उचित है।

देवमत बोले, जीव कहांसे उत्पन्न होता है और उससे भिन्न कौन पहले प्राप्त होता है और

तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध इन सबका रूप तथा प्राण-द्वन्द्व क्या है? यह तुम सब मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

नारद मुनि बोले, ईश्वरके आलोचनार्थ ज्ञानसे जीव प्रकट होनेपर पहले भूतसृष्टि होती है, फिर वैदिक शब्दके अनुसार रसस्वरूप अर्थात् तत्त्व विषयिणी वासनासे प्रजापतिके द्वारा भौतिकसृष्टि होती है। अनन्तर शोणित संसृष्ट अर्थात् वासनामिश्रित शुक्ररूप अदृष्टसे पहले प्राण प्रवृत्त होता है, फिर शुक्ररूप अदृष्टके प्राणसे विकृत होनेपर अपान प्रवृत्त होता है। रस स्वरूप वासना संसृष्ट शुक्ररूप अदृष्टसे हर्ष स्वरूप उदानका रूप उत्पन्न होता है; इस हर्षरूप और कार्य्यके बीच आनन्द स्वरूप ब्रह्म निवास करता है। कामसे शुक्ररूप अदृष्ट और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। सामान्य शुक्र तथा शोणित समान और व्यानसे उत्पन्न हुआ करते है। प्राण और अपान इस काम प्रवृत्याख्य द्वन्द्वको प्राप्त होकर जीव उपाधि ग्रहण करते हुए ऊपर और नीचे गमन करते हैं, उक्त रीतिके अनुसारही व्यान और समान तिर्य्यक् भाव तथा द्वैतभावको प्राप्त होते है। वेदाज्ञानुसार अग्निही सर्व्वदेवता है, उस परमात्मरूप अग्निसे ब्राह्मणीय बुद्धियुक्त ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। उस उत्तम तेजयुक्त अग्निका तमोरूप- धूम और रजोरूप भस्म, जिसमें हविरूपी भोग वस्तुएं डाली जाती हैं, उसही अग्निसे सबकी उत्पत्ति हुआ करती है। समान और व्यान बुद्धिसत्वसे उत्पन्न होते हैं, यह यशस्वी ऋषियोंका अनुभवसिद्ध है। प्राण और अपान आज्यभाग हैं, उस प्राणापानके बीच वह परमात्मरूप अग्नि विद्यमान रहती है। ब्राह्मण लोग उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं, परन्तु यह जो अद्वैत है, उसे मैं कहता हूं, तुम सावधानतासे मेरे निकट सुनो। विद्या और अविद्यारूपी यह अहोरात्र ही द्वन्द्व है, उसके बीच वह परमात्मारूप अग्नि विद्यमान रहती है, ब्राह्मणगण उस उदानके रूपको परब्रह्म बोध करते हैं। (सत्) कार्य्य, (असत्) कारणरूप द्वन्द्व इसके बीच परमात्मारूपी अग्नि विद्यमान रहती है, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं। वह अर्द्धब्रह्म जो सङ्कल्पाख्य हेतुके द्वारा समान और व्यानरूपसे उत्पन्न होता है, उस सङ्कल्पसे ही सब कर्म्म विस्तृत हुआ करते हैं; तृतीय सुषुप्तिरूप समान और व्यानके द्वारा फिर निश्चित होता है। शान्तिके निमित्त समान, व्यान, सनातन ब्रह्म ये तीनों एक साथ शान्ति-शब्दसे वर्णित होते है, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म कहके बोध किया करते हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! इस विषयमें पण्डित लोग चातुर्होत्र विधानकी विधि संयुक्त पुराने इतिहासको जिस प्रकार कहा करते हैं, मैं वह सब विधान विधिपूर्व्वक वर्णन करता हूं, तुम मेरे समीप यह अद्भुत रहस्य सुनो। हे भामिनि! कर्त्ता, कर्म्म, करण और मोक्ष, ये चारों होता हैं, इनके द्वारा यह जगत् आवृत्त होरहा है। पहले प्राणादि यद्यपि दश और सात होताओंके बीच वर्णित हुए हैं, परन्तु उनके बीच कौन किसके हेतु हैं, वह नहीं कहा गया है; इस समय युक्तिबल अवलम्बन करके हेतुओंके साधनको विशेषरूपसे कहता हूं, सुनो। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि इन सातोंका हेतुगुण अर्थात् अविद्या है। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श मन्तव्य और बोधव्य, ये सात हेतुकर्म्म है। घ्राता भक्षयिता, द्रष्टा, वक्ता, श्रोता, मन्ता और बोद्धा, ये सात कर्त्तृत्वादिके हेतु हैं। ये घ्राता प्रेरित सातों उपाधिरूप घ्रातृत्वादि धर्म्मविशिष्ट होकर

निज निज गन्ध आदि गुणोंको भोग किया करते हैं; परन्तु गन्धादिका प्रमाता अस्मद् शब्द-वाच्यमें निर्गुण और अनन्त हूं, और ये घ्रातादि निजनिज उपाधि तथा घ्रातृत्वादि अभिमान परित्याग करके चिन्मात्ररूपसे स्थित होनेपर मोक्षके हेतु होते हैं। बुद्धिमान तत्वज्ञानियोंके नासिका प्रभृति इन्द्रियोंके निज निज अधिष्ठान अविद्या आदि सर्व्व-देवताभूत होकर नियमानुसार सदा घ्रेयादि विषयोंको भोग किया करते हैं। जैसे पुरुष अपने लिये अन्नपाक कराके ममतासे नष्ट होता है, वैसेही अज्ञ पुरुष घ्रेय आदि विषय-भोगमें लिप्त होकर ममतासे विनष्ट हुआ करते हैं, अभक्ष्य भक्षण और मद्यपानके विषय वैसेही पुरुषको नष्ट किया करते हैं, जो विद्वान् इस अन्न अर्थात् घ्रेयादि विषयोंको भोग करता है, वही ईश्वर होकर फिर उन्हें उत्पन्न किया करता है, यथार्थमें वह उक्त अन्नोंसे उत्पन्न नहीं होता, क्यो कि वह यदि अन्नसे उत्पन्न हो, तो उसमें कार्य्य कारणभाव विपरीतता होजाय। मन आदि छः इन्द्रियोंको निग्रह करनेपर जो मनसे जाना जाता है, जो वाक्यसे प्रकाशित होता, जो कानसे सुनाजाता है, जो नेत्रसे देखा जाता, जो स्पर्शसे स्पृष्ट होता और जो नासिकासे सूंघा जाता है, वह सभी हवि अर्थात् अन्नरूपसे परिगणित हुआ करता है। गुणविशिष्ट पावक कारण ब्रह्म मेरे शरीरके बीच प्रकाशित है। योग ही मेरा यज्ञ, ज्ञान अग्नि, प्राण स्तोत्र, अपान शस्त्र और सर्व्वस्वत्याग ही दक्षिणा है। योगियोंका कर्त्ता (अहङ्कार) अनुमन्ता (मन) और आत्मा (बुद्धि) ये तीनों ब्रह्म होकर क्रमसे होता, अध्वर्य्यु और उद्गाता हुआ करते हैं; सत्यवाक्य ही उनका शास्त्र और कैवल्य-दक्षिणा हुआ करती है। नारायणवित् पुरुष इस ही यज्ञमें ऋक् पाठ करते हैं, और नारायण-देवके उद्देश्यसे घ्रेयादि अन्न तथा सब विषयोंको पशुरूपसे प्रदान किया करते हैं। हे भीरु! इस यज्ञमें योगी लोग जिसके उद्देश्यसे सामगान करते हैं और जिसमें दृष्टान्तस्वरूपसे जिसका कीर्त्तन करते हैं, उस सर्व्वात्मा नारायणदेवको तुम मालूम करो।

२५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि! जो प्राणियोंके हृदयके बीच अन्तर्य्यामी रूपसे वास करता है वह नारायणदेव ही एक मात्र शास्ता है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी शास्ता नहीं है मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं। जैसे जल प्रवणभूमिमें गमन करता है, वैसे ही मैं उस नारायणदेवके द्वारा जिस प्रकार उक्त तथ नियुक्त होता हूं, वैसा ही किया करता हूं जो जीवोंके हृदयके बीच वास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र गुरु है, उसके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी नहीं है; मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं, उस गुरुसे ही सब कोई शिक्षित होवें, जो लोग लोकद्वेषी हैं, वे सर्पसदृश हैं। जो प्राणियोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र बन्धु है, जिसके अतिरिक्त दूसरा बन्धु और कोई भी नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं। हे पार्थ! बन्धुवन्त बान्धव, सप्तर्षि तथा सभी उसके द्वारा शिक्षित होकर आकाश मण्डलमें प्रकाशित हुआ करते हैं, जो सब भूतोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एक मात्र श्रोता है, उसके अतिरिक्त दूसरा श्रोता और कोई भी नहीं है, मैं उसका ही विषय तुम्हारे समीप कहता हूं। इन्द्रने उस गुरुके निकट सदा वास करके सब लोगोंके बीच अमरत्व लाभ किया है। जो सब प्राणियोंके अन्तरमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र द्रष्टा है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी द्रष्टा नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं; उस गुरुके

द्वारा सब कोई सदा शिक्षित होवें, जगत्में दोषवान् पुरुष सर्पतुल्य करके परिगणित हुआ करते हैं।

पतग और देवर्षियोंने प्रजापतिके निकट जो कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें उस ही सम्वादयुत यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। देवता, ऋषि, नाग और असुरवृन्द प्रजापतिके निकट जाकर बैठके उनसे बोले। हे भगवन्! हम लोगोंका जिससे कल्याण हो, आप हमारे लिये वही विषय कहिये।

भगवान् प्रजापति कुशल पूछनेवाले उन आदिदेव असुरोंसे बोले, कि ओंकार स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ही एकमात्र कल्याणकारी है; वे लोग इतना वचन सुनके अनेक दिशामें भाग गये। निज उपदेश ओंकारात्मक एकाक्षर ब्रह्मका यथार्थ अर्थ ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर भागनेवाले उन आदिदेव असुरोंके बीच पहले सर्प वृन्द ओंकार उच्चारणसे निज मुख उन्मीलन और निमीलन होनेसे अपने स्वभावज मुखोन्मीलन साध्य दंशनको ही कल्याणकारी समझकर दंशन विषयमें ही प्रवृत्त हुए। अनन्तर दानवदल ओंकार उच्चारणमें ओष्ठचालन होनेसे दम्भको ही कल्याणकारी समझके दम्भभाव; देवताओंने ओंकारका अर्थ प्रार्थित वस्तुका स्वीकार जानके दान व्यवसाय और महर्षियोंने आकारके उच्चारणसे ओष्ठ प्रवृत्तिका उपसंहार देखकर सब प्रवृत्तियोंके उपसंहारके हेतु दमको कल्याणकारी जानके दमको ही अवलम्बन किया, देव, ऋषि, दानव और सर्प वृन्दने एक मात्र गुरु पाके एक शब्दसे उपदिष्ट होकर अनेक व्यवसायमें प्रवृत्त हुए। शिष्यगण इस गुरुसे जो पूछते हैं, यह उस विषयको शिष्योंको सुनाता तथा यथार्थ रीतिसे ग्रहण कराता है, इसीसे इनके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी विद्यमान नहीं है, इसलिये इसकी आज्ञानुसार सब कर्म्म प्रवृत्त तथा सम्पादित हुआ करते यह गुरु ही बोद्धा, श्रोता और द्रष्टा है, यही सबके हृदयके बीच निवास किया करता है। यह गुरु इस लोकमें पापपथसे विचरनेसे पापाचारी शुभमार्गसे चलनेपर शुभाचारी इन्द्रियसुखमें रत होकर कामपथसे विचरनेपर कामचारी और इन्द्रियोंको जीतनेमें रत होकर ब्रह्मपथसे विचरनेसे ब्रह्मचारी हुआ करता है। जो लोग इस लोकमें व्रतादि कर्म्मोंको परित्याग कर केवल ब्रह्ममार्गसे निवास करते हुए ब्रह्मचारी और ब्रह्मभूत होकर जगत्के बीच विचरते तथा ब्रह्ममें समाहित होते हैं; उनके लिये ब्रह्म ही समिध, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही जल और ब्रह्म ही गुरु हुआ करता। पण्डित लोग ऐसे कार्य्यको ही सूक्ष्म ब्रह्मबोध करते हैं और वे तत्त्वदर्शी गुरुके द्वारा इस ही प्रकार शिक्षित होकर ब्रह्मज्ञान लाभ करके ब्रह्मको पाते हैं।

२६ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! सङ्कल्प जिस पथमें दंश और मशक है, शोक और हर्ष जिसमें शर्दी तथा गर्म्मी है, मोह जिसमें अन्धकार, लोभ और व्याधि जिसमें सर्प, विषय जिसमें एकमात्र नाशक और काम क्रोध जिसमें प्रतिबन्धक हैं; मैं उस संसारमार्गको अतिक्रम करके महादुर्गम ब्रह्मरूपी महावनमें प्रविष्ट हुआ हूं।

ब्राह्मणी बोली, हे महाप्राज्ञ! वह वन कहां है और उस-वनके वृक्ष, नदी, गिरि, पर्व्वत और पथ कितने हैं।

ब्राह्मण बोला, वह वन स्वतन्त्र वा अस्वतन्त्र रूपसे कहीं भी नहीं है, उसकी अपेक्षा दूसरा और कुछ भी सुख नहीं है और उससे बढ़के दूसरा कोई दुःखतारक कर्म्म भी नहीं है। इससे सूक्ष्म, महत् वा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म

कुछ नहीं है और उसके समान दूसरा कोई सुख नहीं है। द्विजगण उस वनके बीच प्रविष्ट होनेपर शोकार्त्त, नष्ट वा किसीसे भीत नहीं होते और दूसरे किसीको उनके समीप भय प्राप्त नहीं होता। उस वनके बीच महत् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र, ये सात महावृक्ष हैं, यागादि अपूर्व सात फल हैं, यज्ञकर्म्मके देवता सात अतिथि हैं, उस यागक्रियाका कर्त्ता सप्ताश्रम हैं, रागादि सात समाधि और धर्म्मान्तर परिग्रह लक्षणादि सप्तदीक्षा हैं, येही अरण्यरूपसे बिद्यमान हैं; जीव और वृत्तिभेदसे अनेक प्रकार मखरूपी प्रीति प्रभृति वृक्ष, उस वनमें शब्दादि पञ्चरूपसेयुक्त मनोहर पुष्प और शब्दादि अनुभवरूपी पांच प्रकारके फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर स्थित है। नेत्र प्रभृति सब वृक्ष उस बनके बीच श्वेत, पीत, उत्तम वर्ण तथा सुख दुःखरूपी दोनो वर्णोंसे युक्त फूल और बिधिपूर्व्वक फलोंको उत्पन्न करतेहुए व्याप्त होकर स्थिति करते हैं। यज्ञादि वृक्ष उस महा बनके बीच स्वर्गादि रूप सुरभि और सुख दुःखरूपी दोनों वर्णोंसे युक्त सब फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर बिद्यमान है। ध्यानादि वृक्ष उस बनके बीच स्वर्गादि प सुरभि और सुखरूपी एक वर्णयुक्त अनेक फूल तथा फलोंको उत्पन्न करते हुए उस बनमें व्याप्त है। बुद्धि और मनरूपी दो महावृक्ष अतीत, अनागत और व र्त्तमान स्वरूप अव्यक्त वर्ण, पुष्प तथा फलोंको परित्याग करते हुए उस बनमें व्याप्त हैं। उस बनमें उत्तम मनवाला ब्राह्मण, एक सात परमात्मारूपी अग्निमें मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय समाधि होमके काष्ठ होम करता है; उस हवनीय काष्ठरूप पञ्चइन्द्रियोंसे मुक्ति होती है; मुक्त पुरुषोंके उपदेश दीक्षागुणभूत अपूर्व्व रूपवाले फल उत्पन्न होते और देवतारूपी अतिथि उन फलोंको भोजन किया करते हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठात्र देवतारूपी महर्षिवृन्द उस बनमें आतिथ्य प्रतिग्रह किया करते हैं उन लोगोंके आतिथ्यसे सन्तुष्ट होकर प्रलो होनेपर वह अद्वैतरूप प्रतिभासमान हुआ करता है। जो साधु लोग प्रज्ञारूपी वृक्ष, मोक्षरूपी फल, शान्तिरूपी छाया, ज्ञानरूपी आश्रय तृप्तिरूपी जल और अन्तःक्षेत्रज्ञरूपी सूर्य्य युक्त उस बनको जानके प्रज्ञावृक्षपर आरूढ़ होते हैं, उन्हें भय नहीं होता; क्यों कि उस प्रज्ञावृक्षका ऊपर नीचे और तिर्य्यक् किसी दिशामें भी अन्त नहीं मिलता। मन और बुद्धिके सहित नासिका प्रभृति इन्द्रियोंकी वृत्तिरूप, पुरुषोंको वशमें करनेमें असमर्थ होनेसे अधोमुखी चिज्ज्योतिर्म्मयी सङ्कल्पादि सात स्त्रियें उस प्रज्ञावृक्षपर बास करती हुई प्रजासमूहके लिये अनित्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट नित्यकी भांति, विषयज्ञानजनित आनन्दरूप अत्यन्त उत्कृष्ट समस्त रस भोग किया करती हैं और उस वृक्षपरही मन और बुद्धिके सहित पञ्चइन्द्रिय रूपी सिद्ध सप्तर्षि बशिष्ठ प्रभृति ऋषियोंके सहित अर्थात् अत्यन्त तेजके सहित उद्धतभावसे बास करते हैं। वहां यश, बर्च्च, भय, बिजय, सिद्धि और तेज प्रभृति सातों ज्योति क्षेत्रज्ञ सूर्य्यकी अनुवर्ती हुआ करती हैं। वहां गिरि तथा समस्त पर्व्वत एकत्र निवास करते हैं और नदियें ब्रह्मसे उत्पन्न हुए जलसे युक्त होकर बहा करती हैं। जहांपर सब नदियोंका सङ्गम होता है, उस अत्यन्त गूढ़ हृदयाकाशके बीच स्वभाविक सन्तुष्टचित्त सिद्ध यतियोंको पितामहका दर्शन मिला करता है। वहांपर कृशाश, सुव्रताश और तपस्याके सहारे पापोंको जलानेवाले सिद्ध यतिवृन्द हृदयाकाशमें परमात्मा ब्रह्माको संस्थापित करके उपासना किया करते हैं। बिद्यारण्यवित् ब्रह्मज्ञ पुरुष घोरकी भांति उस बनको पाके शमगुणहीको प्रशंसा करते हैं। ब्राह्मण लोग ऐसे बनको पुण्यरूप

बोध करते और चेतनके द्वारा शिक्षित होकर उस स्थानमें निवास किया करते हैं ।

२७ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण बोला, मैं न गन्धको सूंघता, न रसको चखता, न रूपको देखता, सर्द्दी गर्म्मी आदि स्पर्श नहीं करता, किसी प्रकारके शब्दको नहीं सुनता और मनके बीच किसी प्रकार सङ्कल्पभी नहीं करता । जैसे प्राण और अपान वायु इच्छा अनिच्छाके वशमें न होकर स्वाभाविक जीवोंके शरीरमें प्रविष्ट होकर निज कार्य्य अन्नादि पाकक्रिया सम्पादन करती हैं, वैसेही मेरे इष्टवस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा न करनेपर भी बुद्धि स्वभावके वशवर्त्ती होकर इष्ट वस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा किया करती है । योगी लोग बाह्य घ्राण घ्रेयादि विषयोंसे विभिन्न स्वप्नजनित वासनामय घ्राण घ्रेयादि विषयोंमें नित्य अनुगत जो सब विषय है, उनसे भी अतिरिक्त जिस भूतात्माको शरीरके बीच लक्ष्य किया करते हैं, मेरे उसही भूतात्मामें निवास करनेसे काम, क्रोध, जरा और मृत्यु किसी प्रकारभी आक्रमण नहीं कर सकती इसलिये मैं असङ्गभरूपसे निवास करता हूं । मैं सब प्रकारसे काम्य वस्तुओंमें कामना और दूषित वस्तुओंसे द्वेष नहीं करता, इसीसे पद्मपत्रमें निर्लिप्त जलकी बूंद समान काम और द्वेष मुझमें स्वाभाविक लिप्त नहीं हो सकते । यह नित्य प्रदृश्यमान असङ्ग पुरुषकी सब कामना नित्य हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें लिप्त नहीं होती, वैसेही पुरुषके कृतकर्म्मोंके भोग समूह प्राणादिके स्वभावभूत होकर पुरुषमें आसक्त नहीं हो सकते ।

हे यशस्विनि ! परम पुरुष परमात्माके असङ्ग विषयमें पण्डित लोग अध्वर्य्यु और यतिके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो । यज्ञस्थलमें बैठे हुए किसी यतीने अध्वर्य्युको पशुप्रोक्षण करते देखकर निन्दा उसकी करते हुए बोला, कि "आप ऐसे हिंसा कार्य्यमें प्रवृत्त हुए हैं ?" ऐसा वचन सुनके अध्वर्य्यु उससे बोला, वेदके अनुसार यज्ञकर्म्ममें जन्तु हिंसित होनेसे कल्याणयुक्त होते हैं ; इसलिये बकरा विनष्ट न होगा । यह बकरा यज्ञमें हिंसित होनेसे इसका जो पार्थिवभाग है, वह पृथ्वीमें मिल जायगा, जलीयअंश जलमें प्रविष्ट होगा, नेत्रके तैजस अंश सूर्य्यमें शब्द आकाशभाग दिशाओंमें और प्राणवायु आकाशमें प्रविष्ट होगा, इसलिये इसमें मुझे कुछ दोष नहीं है ।

यति बोला, यदि यज्ञकर्म्ममें जन्तुओंके प्राण वियोग होनेसे उनका मङ्गल देखते हो, तो बकरेके निमित्तही यज्ञ वर्त्तमान है, उसमें तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है ? और इस यज्ञमें बकरा आपका पिता, माता, भ्राता तथा सखा जाने और आपभी इस पराधीन बकरेको ऊर्द्ध्वगामी करनेकी उपाय करिये, जब जन्तुगण आपको पित्रादिरूपसे बोध करेंगे, तब आप उनकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे, तथा उनका मत सुनके विचार करेंगे । परन्तु मुझे ऐसा बोध होता है, कि यह बकरा यज्ञमें विनष्ट होनेसे इसका प्राण छागयोनिमें प्रविष्ट होगा, केवल अचेतन शरीर मात्र अवशिष्ट रहेगा । जो लोग चेतनाविहीन काष्ठसदृश शरीरके द्वारा हिंसामय यज्ञ करनेके अभिलाषी होते हैं, पशु ही उनके यज्ञीय काष्ठ हुआ करते हैं । वृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि सब धर्म्मोंमें अहिंसा ही प्रशंसनीय है ; परन्तु हम लोग ऐसी विवेचना किया करते हैं, कि यदि कर्म्म हिंसायुक्त हो, तो वह कर्त्तव्य है । इसके अनन्तर यदि कहना पड़े, तो कदापि मैं हिंसा करनेको नहीं कह सकता, क्यों कि अहिंसा ही हमारा प्रतिश्रुत धर्म्म है, जो मैं हिंसा करनेके लिये कहूंगा,

तो आप अनेक प्रकारके दूषित कर्म्म करनेमें उद्यत होंगे। सब भूतोंकी अहिंसा ही हम-लोगोंकी चिर अभिलषित है, हम लोग प्रत्यक्ष वस्तुको ही साधन किया करते हैं, अप्रत्यक्षको उपासना नहीं करते।

अध्वर्य्यु बोला, हे द्विज! आप जो भूमिके गन्धगुणको भोजन करते जलके रस गुणको पीते, अग्निके रूप गुणको देखते, वायुके स्पर्श-गुणको स्पर्श करते और आकाशके-शब्दगुणको सुनते हैं तथा मनके द्वारा मनन करते हैं, इन सब भूतोंको ही प्राण बोध करते हैं; तो आप किस प्रकार प्राणदानसे निवृत्त होंगे? आप तो हिंसामें ही नियुक्त होरहे हैं; क्यों कि विना हिंसाकी चेष्ठा नहीं हो सकती; इसलिये आप अहिंसा किस प्रकार समझते हैं?

यति बोला, आत्माको क्षर और अक्षर दो प्रकारकी अवस्था है, उसके बीच सद्भाव अक्षर और स्वभाव क्षर कहके वर्णित हुआ है। मायाके सहित अवस्थित प्राण, जिह्वा, मन और सत्त्व, ये सद्भाव कहाते हैं, आत्मा इन सब भावसे विमुक्त होनेसे निर्द्वन्द्व और आशावर्ज्जित है। जो पुरुष सर्व्वभूतोंमें समभाव, निर्म्मम, जितात्मा और सब भांतिसे मुक्त है, वह कहीं भी भयभीत नहीं होता। अध्वर्य्यु बोला, हे द्विजवर! आपका मत सुनके मुझे ऐसा बोध होता है, कि इस लोकमें साधुओंके सङ्ग सम्वास करना ही उचित है। हे भगवन्! मैं भागवतबुद्धिसे युक्त होकर कहता हूं, कि मैं मन्त्रकृत व्रत किया करता हूं, इसलिये इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर यतिने उप-पत्तिके अनुसार मौनावलम्बन किया और अध्वर्य्यु भी मोहविहीन होकर महायज्ञका प्रचार करने लगा। ब्राह्मण लोग इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म मोक्षको जानके अर्थदर्शी क्षेत्र-ज्ञके सङ्ग निवास करते हैं।

२८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस विषयमें पण्डित लोग कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुन और समुद्रके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, जिन्होंने शरासनके सहारे समुद्रके सहित वसुन्धराको ओरसे छोरतक जीता था, वह कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुन नाम विख्यात राजा था हमने सुना है, कि उसने किसी समय निज तेजसे दर्पित होकर समुद्रके तीर विचरते हुए एक सौ वाणोंसे समुद्रको समाच्छन्न किया, तब समुद्र हाथजोड़के उन्हें नमस्कार करके बोला, हे वीर! आप मुझपर वाण न चलाइये। कहिये मुझे आपका कौनसा कार्य्य करना होगा। हे राजेन्द्र! मेरे आश्रित प्राणिवृन्द आपके द्वारा छोड़े हुए महाशरोंसे मर रहे हैं। हे विभु! आप उन्हें अभय प्रदान करिये।

अर्ज्जुन बोले, यदि युद्धमें मेरे समान शरासनधारी कोई विद्यमान हो और वह मेरे सङ्ग युद्धमें खड़ा होनेमें समर्थ हो, तो मुझसे तुम उसका वृत्तान्त कहो।

समुद्र बोला, हे महाराज! यदि आप जमदग्नि महर्षिको विशेष रीतिसे जानते हैं, तो उनके पुत्रके निकट जाइये, वह विधिपूर्व्वक आपका आतिथ्य करनेमें समर्थ होंगे।

तिसके अनन्तर राजा कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके आश्रममें जाकर उस परशुरामके निकट उपस्थित हुआ। राजाने बान्धवोंके सहित महात्मा रामके प्रतिकूल कार्य्य करके उन्हें क्रोधित किया। हे कमललोचन! उस समय वह अमित तेजस्वी रामको क्रोधाग्नि शत्रुसेनाको जलाती हुई प्रज्वलित हुई। अनन्तर रामने सहसा परशु लेकर बहुतसी शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भांति सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनको काट डाला। बान्धवगण राजाको मरके गिरा हुआ देखकर सब कोई इकट्ठे होकर तलवार और शक्ति ग्रहण करके भृगु-नन्दन रामकी ओर दौड़े। इधर रामने भी

धनुष लेकर रथपर चढ़के बाण बरसाते हुए राजाके समस्त बलको व्यथित किया। अनन्तर कितनेही क्षत्रिय जमदग्निपुत्र रामके भयसे भीत होकर सिंहार्द्दित मृगकी भांति गिरिकन्दरामें प्रविष्ट हुए। क्रमसे क्षत्रियोंको रामके भयसे निज विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान न करनेपर उनके पुत्रगण वेदज्ञानसे रहित होकर शूद्रत्वको प्राप्त हुए। इसही प्रकार क्षत्रधर्म्मावलम्बी शवरके सहित द्रविड़, आभीर और पुण्ड्र येभी निज धर्म्मका अनुष्ठान न करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त हुए अनन्तर ब्राह्मणोंके द्वारा हतवीरा विधवा क्षत्रिय स्त्रियोंसे जो सब क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होने लगे, जमदग्नि पुत्र राम उनकाभी वध करने लगे। रामने इसी भांति इक्कीस बार युद्धयज्ञ पूरा किया; अन्तमें वह सर्व्वजन परिश्रुत मधुर अशरीरिणी देववाणीने उनसे कहा। "हे राम! तुम बार बार इन क्षत्रबन्धुओंको विनष्ट करके कौनसा गुण अवलोकन करते हो? हे तात! तुम इस निठुर कार्य्यसे निवृत्त हो जाओ"। हे महाभागे! उस समय ऋचीक आदि पितामहोंने भी उस महात्मा रामको निवृत्त किया। परन्तु राम पितृवधसे शान्त न होकर ऋषियोंसे बोले। हे पितामहगण! इस विषयमें मुझे निवारण करना आप लोगोंको उचित नहीं है।

पितृगण बोले, हे विजयप्रवर! वे सब क्षत्रबन्धु तुम्हारे बधके योग्य नहीं हैं, विशेष करके ब्राह्मण होकर क्षत्रियोंको मारना तुम्हारे पक्षमें युक्तियुक्त नहीं होता है।

२९ अध्याय समाप्त।

पितृगण बोले, हे द्विजसत्तम! इस अहिंसा विषयमें पण्डित लोग जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे सुनकर तुम्हें वैसाही करना योग्य है। पहले समयमें महातपस्वी धर्म्मज्ञ सत्यवादी महात्मा दृढव्रती अलर्क नाम एक राजर्षि थे। उन्होंने शरासनसे समुद्रके सहित इस बसुन्धराको जीतते हुए अत्यन्त दुष्कृत कर्म्म करके सूक्ष्म विचारमें मन लगाया, हे महाप्राज्ञ! वह एक बार निज उत्तम महत् कर्म्मोंको परित्याग करके वृक्षके मूलमें बैठकर सूक्ष्म परब्रह्मका विचार करने लगे। अलर्क मनही मन चिन्ता करके बोले, कि मेरे मनका बल अत्यन्त प्रबल होगया है; इसलिये मनको जीतनेसे मुझे नित्य जय प्राप्त होगी; इस समय मैं इन्द्रियरूपी शत्रुओंसे घिरा हुआ हूं; इन बाह्य इन्द्रियरूपी शत्रुओंके विषयमें हठयोगरूपी बाण चलाऊंगा। जब मनकी चपलतासे ही ये कर्म्म मनुष्यको गिरानेकी इच्छा करते हैं, तब मनकी ओर ही मैं हठ योगरूपी इन बाणोंको छोड़ूंगा।

मन बोला, हे अलर्क! ये बाण मुझे कदापि छेदन न कर सकेंगे, ये तुम्हारेही मर्म्मोंको बेधेंगे, तब तुम मर्म्मोंके कटनेसे दुःखी होगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे मारोगे उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा सुनके सोचकर बोले, नासिका अनेक प्रकार गन्धको सूंघती हुई सुगन्धकी ही अभिलाष किया करती है; इसलिये उस नासिकाके विषयमें मैं इन शाणित बाणोंको छोड़ूंगा।

नासिका बोली, हे अलर्क! तुम मेरी ओर जिन बाणोंको छोड़ोगे, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे। बल्कि वे बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करेंगे, तब तुम ही भिन्नमर्म्मा होकर मृत्युमुखमें पतित होगे। इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे नष्ट कर सकोगे, उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर सोचके बोले, कि यह जिह्वा सुस्वादु रसको भोजन करके उस रसकी ही अभिलाष किया करती है, इसलिये मैं जिह्वाके विषयमें ही यह शाणित बाण छोड़ूंगा।

जिह्वा बोली, हे अलर्क ! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको चलानेकी इच्छा करते हो, वे बाण कदापि मुझे स्पर्श न कर सकेंगे, वरन तुम्हारे ही मर्म्मोंको भेदकर तुम्हें नष्ट करेंगे ; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उसका ही अनुसन्धान करो। अलर्क ऐसा सुनकर क्षणभर सोचके बोले, कि त्वचा विविध स्पर्शको स्पर्शन् करके उस स्पर्शकी ही आकांक्षा किया करती है ; इसलिये मैं कङ्कपत्रयुक्त विविध बाणोंसे त्वचाको नष्ट करूंगा।

त्वचा बोली, हे अलर्क ! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंके चलानेकी इच्छा करते हो, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे, वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे, इसलिये तुम इसके अतिरिक्त जिस बाणसे मुझे नष्ट कर सकोगे, उसकी खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर चिन्ता करके बोले, कि कान विविध शब्द सुनके शब्दकी ही आकांक्षा किया करता है ; इसलिये मैं इन शाणित बाणोंको कानके ऊपर चलाऊंगा।

कान बोला, हे अलर्क ! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको छोड़नेकी इच्छा करते हो, वे शर कदापि मुझे भेदित न कर सकेंगे। बल्कि वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हारा जीवन नष्ट करेंगे, इसलिये इनके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे विनष्ट करोगे, उसको खोज करो।

अलर्क इतना वचन सुनके क्षणभर चिन्ता करके बोले, नेत्र अनेक भांतिके रूपको देखकर उस रूपकी ही आकांक्षा किया करता है, इसलिये मैं इन शिकल किये हुए बाणोंसे नेत्रको नष्ट करूंगा।

नेत्रने कहा, हे अलर्क ! तुम इन बाणोंसे किसी प्रकार मुझे विनष्ट न कर सकोगे, बल्कि ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे ; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उस ही बाणको खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर चिन्ता करके बोले, यह बुद्धि प्रज्ञाके द्वारा अनेक प्रकारकी निष्ठा निष्पन्न किया करती है, इसलिये मैं शाणित बाणोंको बुद्धिके ऊपर छोड़ूंगा।

बुद्धि बोली, हे अलर्क ! तुम इन बाणोंसे मुझे कदापि विनष्ट न कर सकोगे, वरन ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें नष्ट करेंगे ; यदि मेरे विनाश करनेके लिये तुम्हें अत्यन्त अभिलाष हुई हो ; तो तुम इसके अतिरिक्त और कोई बाण खोजो।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर अलर्क उस स्थानमें घोर दुष्कर तपस्या करके भी पूर्व्वोक्त सातों इन्द्रियोंके विषयमें बलपूर्व्वक बाण न छोड़ सके। हे द्विजसत्तम ! अनन्तर प्राज्ञवर प्रभु अलर्क समाहित चित्तसे बहुत समयतक सोचकर परम कल्याण लाभ न कर सकनेसे एकाग्रचित्त होकर निश्चलभावसे योगमार्ग अवलम्बनपूर्व्वक एक बाणसे शीघ्र ही उन इन्द्रियोंको विनष्ट किया और योगबलसे परमात्मामें प्रविष्ट होकर परम सिद्धि प्राप्त की। अनन्तर राजर्षि अलर्कने विस्मित होकर यह गाथा गाया, कि ओहो। कैसा कष्ट है ! क्योंकि पहले मैं भोगतृष्णासे आक्रान्त होकर उन बाह्यवस्तु राज्यादिकी उपासनामें नियुक्त था, अब मैंने निश्चय जाना, कि योगसे बढ़के सुखदायक और कुछ भी नहीं है।

हे राम ! तुम इसी विशेष रीतिसे जानके क्षत्रियोंके वधसे निवृत्त होकर घोर तपस्याचरण करनेसे कल्याण लाभ कर सकोगे। महाभाग जमदग्निपुत्र रामने पितामह गणोंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कठोर तपस्याका अनुष्ठान करते हुए दुर्गम सिद्धि प्राप्त की।

३० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, सतोगुणसे उत्पन्न प्रहर्ष, प्रीति और आनन्द ये तीनों ही लोकके बीच शत्रुरूपसे गिने गये हैं; येही वृत्तिभेदसे नव प्रकार हुआ करते हैं। तृष्णा, क्रोध तथा संरम्भ, ये तीनों रजोगुणसे और श्रम, तन्द्रा तथा मोह, ये तीनों तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं। धृतिमान, जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त पुरुष इन सबको छेदन करके तन्द्राविहीन होकर शरसमूहसे शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत होवे। इसी समयमें प्रशान्तचित्त राजा अम्बरीषने जिस गाथाको गाया था, पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें वही गाथा कहा करते हैं; शमगुण अन्तर्हित और रजोगुणके पूरी रीतिसे उदित होनेपर महायशस्वी राजा अम्बरीषने सहसा राज्य ग्रहण किया। अनन्तर वह आत्माके रजोगुणको निग्रह करके शमगुणकी सम्मानना करनेसे महती श्री लाभ करके यह गाथा गाने लगे। मैंने शत्रुओंको जीता और दोषोंको विनष्ट किया है, परन्तु अवश्य वध्य एक महान् दोष है, उसे नष्ट नहीं कर सका। इस ही लिये इस जन्ममें प्रयुक्त होकर वितृष्णा लाभ नहीं कर सका, तृष्णार्त्त होकर मूर्खकी भांति नीच कर्म्मोंकी ओर दौड़ रहा हूं। मनुष्य इसलोकमें इसहीके द्वारा प्रयुक्त होकर अकार्य्योंकी सेवा किया करता है, उसहीको तीक्ष्ण तलवारके सहारे नष्ट करे; क्योंकि लोभसे तृष्णा उत्पन्न होती है और उससे चिन्ता प्रवृत्त हुआ करती है, मनुष्य लिप्समान होकर प्रचुर परिमाणसे राजसगुण लाभ करता है परन्त राजसगुण प्राप्त न होनेसे तामसगुण प्राप्त हुआ करता है। देहबन्धन उन गुणोंके सङ्ग मिलित होनेसे पुरुष बार बार जन्म ग्रहण करके कर्म्मकी आकांक्षा किया करता है और जीवन नष्ट होनेसे भिन्न तथा विच्छिन्न देह होकर जन्मके सहित मृत्युको प्राप्त हुआ करता है। इसलिये पूरी रीतिसे पर्य्यालोचना करते हुए लोभको देहके बीच रोकके राज्यकी इच्छा करे। आत्मा ही राजा और इसलोकमें लोभका रोकना ही राज्य है, इससे बढ़के अन्य राज्य और कुछ भी नहीं है, इस ही भांति यथावत जानना चाहिये। लोभको निग्रह करनेवाले राजा अम्बरीषने अधिराज्यके उपलक्ष्यमें यह गाथा गाई थी।

३१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस लोभनिग्रह विषयमें पण्डित लोग ब्राह्मण और जनकके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। राजा जनक किसी अपराधी ब्राह्मणको अनुशासन करनेके लिये बोले, कि तुम मेरे राज्यमें बास न करने पाओगे।

ब्राह्मण राजाका ऐसा वचन सुनके बोला, हे महाराज! जो आपके वशवर्त्ती हो, वही विषय आप मुझसे कहिये। हे विभु! मैं आपकी आज्ञानुसार अन्य राज्यमें बास करके शास्त्रके अनुसार आपके वचनको प्रतिपालन करनेकी इच्छा करता हूं। उस समय राजा यशस्वी ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके बार बार गर्म्म सास छोड़ते हुए कुछ भी उत्तर न दे सके। अमित तेजस्वी राजा जनक बैठके चिन्ता करते हुए राहुग्रस्त सूर्य्यकी भांति सहसा मोहग्रस्त हुए। अनन्तर थोड़े समयके बाद आश्वासित होकर मुहूर्त्तभरके बीच मोह रहित होकर उठके उस ब्राह्मणसे कहने लगे।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! पितृपितामहराज्य और समस्त जनपद वशीभूत होनेपर भी मुझे पृथ्वीमें खोजनेपर यह विषय प्राप्त न हुआ, तब मिथिलामें खोजा, मिथिलामें भी न पाकर प्रजाके बीच अन्वेषण किया; फिर जब प्रजाके बीच भी न पाया, तब मुझे मोह उपस्थित हुआ। अनन्तर मोह शान्त होनेसे बुद्धि उदित होनेपर मुझे ऐसा बोध हुआ, कि कोई विषय

भी मेरा नहीं है और सब विषय ही मेरे हैं; आत्मा मेरा नहीं है और सारी पृथ्वी मेरी है। ये सब विषय जैसे मेरे हैं, वैसे ही दूसरोंके भी हैं। हे द्विजवर। इसलिये जहां आपकी इच्छा हो, वहां वास करो और जो अभिरुचि हो, वह भोग करो।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज। पितृपितामह राज्य और जनपदके वशीभूत रहनेपर भी आपने कौनसी बुद्धि अवलम्बन करके उसकी ममता परित्याग की? और किस बुद्धिके सहारे ऐसी विवेचना की, "कि सब विषय मेरे तथा मेरे नहीं हैं।"

जनक बोले, इस लोकमें आढ्यत्व और दरिद्रत्व प्रभृति सब अवस्था नश्वर हैं, यह सब कर्म्म ही मुझे विदित है, इस ही निमित्त ऐसा नहीं समझता, कि 'यह मेरी होगी' यह विषय, यह धन किसीका भी नहीं है, इस वेद वाक्यके अनुसार मैं इसे अपना नहीं समझता हूं; इस ही बुद्धिको अवलम्बन करके मैंने ममता परित्याग किया है और जिस बुद्धिके सहारे मैं सब विषयोंको अपना कहा करता हूं, उसे सुनो। मैं अपने निमित्त नासिकामें गई हुई सुगन्धिको भी नहीं सूंघता, इसहीसे यह भूमि मेरे द्वारा परित्यक्त होकर सदा मेरे वशवर्त्ती होकर निवास करती है, मैं मुखमें गये हुए रसको भी नहीं पीता, इस ही निमित्त जल मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा निवास करता है। मैं अपने निमित्त नेत्रकी ज्योतिरूपको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे ज्योति मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा मेरे वशवर्त्ती होरही है। मैं अपने लिये त्वग्गत स्पर्शको स्पर्श करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे वायु मुझसे निर्ज्जित होकर मेरे वशवर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त कानमें गये हुए शब्दको नहीं सुनता, इसलिये शब्द मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर निरन्तर मेरे वशवर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त अन्तरस्थित मनको मनन करनेकी इच्छा नहीं करता इस हेतु मन मुझसे निर्ज्जित होकर सदा मेरे वशवर्त्ती है। मैं देवताओं, पितरों, प्राणियों और अतिथियोंके लिये समस्त द्रव्यादि संग्रह किया करता हूं। अनन्तर ब्राह्मण जनकसे हंसकरके फिर बोले, कि आज मैं तुम्हें जाननेकी इच्छासे आया था, तुम मुझे धर्म्म कहके मालूम करो। तुम ही इस सत्त्वरूपनेमिसे निरुद्ध चक्रस्वरूप अनिवर्त्ती दुर्व्वार ब्रह्मलाभके एकमात्र प्रवर्तक हुए हो।

३२ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भीरु। तुम निज बुद्धि अनुसार मुझे जैसा समझके तर्ज्जन करती हो मैं जगत्के बीच उस प्रकार विचरण नहीं करता, मैं ब्रह्मचारी, गृही व्रतवान ब्राह्मण जीवन्मुक्त हूं। हे सुन्दरि। तुम मुझे जैसा देखती हो, मैं वैसा नहीं हूं, इस जगतमें शुभ और अशुभ जो कुछ देखा जाता है, वह सब मेरे द्वारा व्याप्त होरहा है। इस जगत्के बीच स्थावर जङ्गम प्रभृति जितने जन्तु हैं, काठको जलानेवाली अग्निकी भांति मुझे उनका अन्तक जानो। समस्त पृथ्वी और स्वर्गका जैसा राज्य है, वह इस बुद्धिके द्वारा विदित है, परन्तु बुद्धि ही मेरा राज्यधन है। ब्राह्मणोंके लिये ज्ञान ही एकमात्र पथ है, ब्रह्मवित ब्राह्मण लोग उस पथसे ही गृह, वनवास गुरुवास और भिक्षुवासके लिये गमन किया करते हैं। वे लोग अचञ्चल अनेक-प्रकारके चिन्ह धारण करते हुए एकमात्र बुद्धिकी उपासना किया करते हैं, अनेक लिङ्ग तथा अनेक आश्रमवालोंकी बुद्धि शमगुणावलम्बिनी होनेसे एक ही समुद्रमें गमन करनेवाली नदियाओंकी भांति वे लोग एक ही भावको प्राप्त होते हैं। यह पथ बुद्धिके द्वारा प्राप्त होता है, शरीरके द्वारा नहीं प्राप्त होता

सकता, सब कर्म्म आदि और अन्त विशिष्ट हैं, शरीर कर्म्मके द्वारा बद्ध होता है। हे सुभगे! तुम्हें परलोकका भय नहीं है, मेरे भावमें रत होनेसे तुम्हें मेरा ही देह प्राप्त होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणी बोली, इस विषयको अल्पात्मा तथा अकृतात्मा पुरुष जाननेमें समर्थ नहीं होता; मेरा मत बहुत थोड़ा, संक्षिप्त और विप्लुत है। जिसके सहारे यह बुद्धि प्राप्त होती है, आप मुझसे उसका उपाय कहिये। परन्तु चाहे किसीके द्वारा यह बुद्धि क्यों न प्रवृत्त होवे, आपको ही मैं उसका कारण समझती हूं।

ब्राह्मण बोले, ब्राह्मणी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठा बुद्धि अध अरणी और ब्रह्मज्ञानको गुरु उत्तर अरणी जानो, दोनों अरणी मनन निदिध्यासन और वेदान्त सुननेपर मथित होनेसे उनसे ज्ञानाग्नि उत्पन्न होता है।

ब्राह्मणी बोली, क्षेत्रज्ञ नामक यह ब्रह्म-लिङ्ग जिसके द्वारा जाना जाता है, उसका लक्षण क्या है?

ब्राह्मण बोला, ब्रह्म अलिङ्ग और निर्गुण है; इसलिये उसका कारण मालूम नहीं होता, तब जिसके द्वारा वह गृहीत हो, वा न हो, उसका उपाय कहता हूं। जैसे ऊपरमें उड़-नेवाले भौरोंके द्वारा सुरासगन्ध मालूम होते हैं, वैसे ही पूर्व्वोक्त श्रवण आदि उपाय पूरी रीतिसे मालूम होता है। जिसकी बुद्धि कर्म्मके द्वारा परिशोधित नहीं होती, वह पुरुष अबु-द्धिसे असङ्ग ब्रह्मको भी बुद्धिके अश्रित ससङ्ग कहके बोध किया करता है। मोक्ष विषयमें "यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है,"—ऐसा उपदेश नहीं होसकता, क्योंकि देखने तथा सुननेवाले आत्माकी बुद्धि स्वयं ही मोक्षविष-यमें उत्पन्न होती है। इस संसारमें मोक्षका शम अनेक अर्थयुक्त समस्त पदरूपी, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणरूपी, अव्यक्त माया अविद्यारूपी और व्यक्त शब्दादिरूपसे सैकड़ों सहस्र प्रका-रका है; इतना ही नहीं वरन जितने प्रका-रके अंशोंकी कल्पना हो सके, तितने प्रकारके अंशोंकी कल्पना करे; परन्तु शम आदि पूरी-रीतिसे अभ्यस्त होनेपर जिसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है, वह वस्तु प्राप्त होगी।

श्रीभगवान् बोले, उसके अनन्तर क्षेत्रजीवके परमात्मामें लीन होनेपर उस ब्राह्मणीकी बुद्धि क्षेत्रज्ञानके अनन्तर क्षेत्रज्ञस्वरूपमें प्रवृत्त हुई।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! जिन्होंने यह सिद्धि प्राप्त की है, वह ब्राह्मण और ब्राह्मणी कहां हैं।

श्रीभगवान बोले, हे धनञ्जय! मेरे मनको ब्राह्मण और मेरी बुद्धिको ब्राह्मणी जानो और जिसका क्षेत्रज्ञरूपसे वर्णन हुआ है, वह मैं हूं।

३४ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! जो परब्रह्म ज्ञेय है, उसकी तुम मेरे समीप व्याख्या करो, तुम्हारे ही प्रसादसे मेरी बुद्धि सूक्ष्म विषयोंमें रमण करती है।

श्रीकृष्ण बोले, इस विषयमें पण्डित लोग मोक्षयुक्त गुरु-शिष्यके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। हे परन्तप! किसी मेधावी शिष्यने बैठे हुए शंसितव्रती ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यसे पूछा, हे प्रभु! इस जगत्के बीच कल्याण क्या है? यह विषय आप मेरे समीप कहिये। मैं मोक्षपरायण होके आपकी शर-णागत हुआ हूं, मैं सिर झुकाके आपके निकट यही प्रार्थना करता हूं, कि आप मेरे प्रश्नका यथावत उत्तर दीजिये। हे पार्थ! शिष्यका ऐसा वचन सुनके गुरुने उससे कहा, हे द्विज! जिसमें तुम्हें संशय उपस्थित हुआ है, वह सब विषय तुमसे कहूंगा। हे महाबुद्धिमान्! गुरुवत्सल शिष्यने गुरुका ऐसा वचन सुनके हाथ जोड़के गुरुसे जो पूछा था, उसे सुनो।

शिष्य बोला, हे विप्र! मैं कहांसे उत्पन्न हुआ हूं? आप किससे उत्पन्न हुए हैं? चराचर स्थावर प्रभृति प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं? वे सब किसके द्वारा जीवित रहते हैं? उनकी परमायुकी क्या संख्या है? सत्य क्या है? तपस्या क्या है और पण्डितोंके द्वारा कौनसे गुण वर्णित हुए हैं? यह सब मुझसे सत्य ही कहिये। हे सुव्रत! कौनसा पथ शुभकर है? सुख क्या है? पाप क्या है? इन सब प्रश्नोंका आपको यथार्थ रीतिसे उत्तर देना उचित है। हे विप्रर्षि! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन प्रश्नोंका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं है। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ! आप इसे विस्तारपूर्व्वक कहिये, इसमें मुझे कौतूहल हुआ है, आप लोकमें मोक्षधर्म्मार्थ कुशल कहके गिने गये हैं। आपके अतिरिक्त सब संशयोंको नष्ट करनेवाला और कोई भी नहीं है, हम लोग संसारभीरु और मोक्षके अभिलाषी हैं।

श्रीकृष्ण बोले, हे अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पार्थ! धृतव्रत मेधावी गुरु उस जिज्ञासु, सद्गुण सम्पन्न प्रतिपन्न, शान्त, दान्त, प्रियवर्त्ती, छायास्वरूप, यति, ब्रह्मचारी शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रीतिसे देने लगा।

गुरु बोला, तुमने वेदविद्या अवलम्बन करके जो प्रश्न किया है, उस विषयमें ब्रह्माने ऋषियोंके द्वारा सेवित अवाधितार्थके विचारयुक्त यह वचन कहा था। जो पुरुष निश्चित रीतिसे ज्ञानरूपी परब्रह्म, संन्यास रूपी श्रेष्ठ तपस्या, बाधारहित ज्ञान तत्त्व और सर्व्वभूतस्थ आत्माको जान सकता है, वह सब प्रकारसे कामना भोग करनेमें समर्थ होता है। जो विद्वान मनुष्य जात-स्वभाव अविद्या और चिन्मय परमात्माका सहवास, पृथक् वास, एकत्व और अनेकत्व दर्शन करता है, वह सदा घोर दुःखभोगसे मुक्त होता है। जो किसी विषयमें अभिमान नहीं करता, वह इस लोकमें रहकर अर्थात् सशरीरही मुक्त होता है। जो मनुष्य निर्म्मम और अहङ्काररहित होकर प्रधानमाया सत्वादि गुणों और सर्व्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारणको जान सकता है, वही मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। अव्यक्त अज्ञान जिसका मूल है, बुद्धि स्कन्ध अहङ्कार पल्लव, इन्द्रियें कोटरस्थ पत्राङ्कुर, विषयादि पञ्च महाभूत- पुष्पकोरक और स्थूलकार्य्य जिसकी उपशाखा हैं; पुरुष सदा गिरनेवाला पत्ता, कर्म्मरूपी पुष्प और सुखदुःखरूपी फलसे युक्त सब जीवोंका उपजीव्य संसारवृक्षके बीज भूत इस सनातन ब्रह्मको विशेष रीतिसे जानकर ज्ञानरूपी तलवारके द्वारा इस वृक्षको अव्यक्तादिरूप मूल प्रभृति शाखा प्रशाखाओंको काटकर मनुष्य अमृतत्व लाभ करके जन्ममृत्युसे रहित होनेमें समर्थ होता है।

हे महाप्राज्ञ! पहले मनीषी महर्षिगण इकट्ठे होकर निज निज बुद्धिके अनुसार जिस विषयको आपसमें पूछकर सशरीर मुक्त हुए थे, सिद्धसमूहोंसे परिज्ञात,-वर्त्तमान, भूत, भविष्यत्, धर्म्म-काम और अर्थके निश्चययुक्त वह अत्यन्त श्रेष्ठ सनातन मोक्षपद आज मैं तुमसे कहता हूं। पहले प्रजापति भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन जमदग्नि, वसिष्ठ, काश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि विप्रोंने मार्गोंमें परिभ्रमण करते हुए निज निज कर्म्मोंके द्वारा परिश्रान्त होकर अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिको अगाड़ी करके ब्रह्मभवनमें जाकर निर्म्मल ब्रह्माका दर्शन किया। अनन्तर महर्षियोंने सुखसे बैठे हुए उस ब्रह्माको प्रणाम करके विनीतभावसे उनसे मुक्तिका विषय इस प्रकार पूछा। हे ब्रह्मन्! साधुलोग कैसा कर्म्म करेंगे? किस प्रकार पापोंसे छूटेंगे, हमलोगोंके लिये कौनसे मार्ग मङ्गलजनक हैं? सत्य क्या है? दुष्कृत क्या है? कर्म्मोंके दक्षिण और उत्तर दोनों मार्ग कौनसे हैं? प्रलय किसे कहते हैं? अपवर्ग क्या है और

भूतोंकी उत्पत्ति तथा विनाश किसे कहते हैं? यह सब मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। हे शिष्य! पितामह ब्रह्माने मुनियोंका ऐसा प्रश्न सुनके उनसे जो कहा था, मैं तुमसे वही विषय कहता हूं, सुनो।

ब्रह्मा बोले, हे सुव्रत द्विजगण! तुम लोग यह निश्चय जानो, कि सत्य अर्थात् त्रिकालावस्थायी ब्रह्मसे अव्यक्त प्रभृति सब भूत, विषयादि स्थावर और जरायुजादि चर समूह उत्पन्न होकर तपरूपी कर्म्मके द्वारा जीवित रहते हैं, परन्तु जब वे लोग निज योनिभूत ब्रह्मपथ अतिक्रम करते हैं, तब ध्यानसे च्युत होकर केवल निज कर्म्ममार्गमें ही स्थित रहते हैं, व्यवहारिक गुणयुक्त सत्य पांच हैं, परन्तु अकेला ब्रह्म ईश्वर सत्य है। तप अर्थात् धर्म्म सत्य है, प्रजापति जीव सत्य है, सत्यसे उत्पन्न सब भूत सत्य हैं और भूतमय जगत् सत्य है। इसही निमित्त सत्याश्रित क्रोध और सन्ताप विहीन नियतेन्द्रिय तथा नियत योग परायण विप्रगण धर्म्मसेतु कहाते हैं। जो लोग परस्परके भयसे धर्म्मको अतिक्रम नहीं करते, वे विद्वान् धर्म्मसेतु प्रवर्त्तक और शाश्वत लोकचिन्तक ब्राह्मणोंका विषय मैं तुमसे कहता हूं। हे द्विजगण! मनीषीवृन्द चतुष्पाद एकमात्र जिस धर्म्मको नित्य कहा करते हैं, वही धर्म्म धर्म्मार्थ काम और मोक्षप्रद चारों विद्या, ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्यादि चारों आश्रमोंको पृथक् रीतिसे कहता हूं। हे महाभागगण। पहले मनीषिवृन्द ब्रह्मप्राप्तिके निमित्त सदा इसलोकमें जिस पथसे गमन करते थे, वह मोक्ष तथा मङ्गलजनक दुर्व्विज्ञेय परम पथ सब भांति तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम लोग सुनो।

पण्डित लोग ब्रह्मचर्य्य आश्रमको प्रथम पद गार्हस्थ्य आश्रमको दूसरा पद वाणप्रस्थ आश्रमको तीसरा पद और परमात्मप्रापक सबके द्विज्ञेय सन्न्यासाश्रमको चतुर्थ पद कहा करते हैं। जीव जबतक आध्यात्मिक सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन करके परमात्माका दर्शन नहीं करता, तबतक अग्नि, आकाश आदित्य वायु इन्द्र और प्रजापति प्रभृति विश्वका दर्शन किया करता है, वायु, फलमूलाशी बनवासी मुनियोंकी अध्यात्म दर्शनकी उपाय पहले कहता हूं उसे सुनो। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों द्विजातियोंके लियेही वाणप्रस्थ आश्रम विहित है, अन्य वर्णोंको केवल गार्हस्थ्य आश्रम अवलम्बन करना योग्य है। पण्डित लोग श्रद्धा अर्थात् आस्तिक्य बुद्धिको ही धर्म्मका मुख्य लक्षण कहा करते हैं, यही तुम लोगोंके देवयान मार्ग प्राप्तिका पथ वर्णित हुआ है, साधु लोग निज कर्म्मोंके सहारे धर्म्मके सेतु स्वरूप पथसे गमन किया करते हैं। जो संशितव्रती मनुष्य इन सबके बीच एक मात्र धर्म्मको ही पृथक् रूपसे अवलम्बन करता है, वह कालक्रमसे सर्व्वदा प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश दर्शन करता है।

इसके अनन्तर युक्तिके अनुसार बुद्धिस्थ वर्त्तमान तत्त्वोंको विभाग क्रमसे यथावत कहता हूं, सुनो। महान् आत्मा, अव्यक्त प्रकृति, अहंकार, श्रोत्रादि, दशो इन्द्रिय, मन विषयादि पञ्चमहाभूत और शब्दादि पञ्च विशेषगुण, ये सनातनी सृष्टि हैं, इस ही प्रकार पचीस तत्त्वोंकी संख्या वर्णित हुई है। जो मनुष्य इन पचीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति और विनाशकी विशेष रीतिसे जान सकता है, उस धीरको सब प्राणियोंसे मोह नहीं प्राप्त होता और जो मनुष्य पचीस तत्त्वों, सत्त्वादि गुणों तथा देवताओंको विशेष रीतिसे जानता है, वह निष्पाप होकर बन्धनोंसे छूटकर निर्म्मल लोक प्राप्त करता है।

३५ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, उन तत्त्वोंके बीच जो त्रिगुणात्मक सर्व्वकार्य्यव्यापी अविनाशी और पचञ्चल है, उसे ही जानना चाहिये, कि वही प्रकृति

अव्यक्त प्रभृति उद्रिक्त होकर नवद्वार युक्त पञ्च-धातुमय पुरस्वरूपसे परिणत होता है। जिसमें जीवात्मा विषयभोग वासनासे जिसके द्वारा परि॰च्छिन्न होता है और मनसे सङ्कल्पसम्मत सब विषय प्रकट होते हैं, उन ग्यारह इन्द्रियोंसेयुक्त बुद्धि स्वामिकपुरके बीच परब्रह्म अध्यासित होकर ग्यारह भागमें विभक्त होता है। धर्म्म प्राबल्य हिंसारहित शुक्ल, हिंसा प्राबल्य कृष्ण तथा हिंसायुक्त प्रवृत्तिधर्म्म, प्राबल्य शुक्ल कृष्ण, ये तीनो उस पुरस्थित नदीके स्रोत हैं, ये स्रोत त्रिगुणात्मक संस्काररूप तीन नाड़ियोंके द्वारा बार बार आप्यायित तथा सब नाड़ियोंसे बार बार वर्द्धित हुआ करते हैं। पण्डित लोग तम, रज और सत्त्व, इन तीनोंको गुण कहा करते हैं, ये तीनो गुण परस्पर अनुजीव्य अवलम्बन करनेसे मिथुनभावको प्राप्त होकर दम्पतीका कार्य्य उत्पन्न करते हैं। परस्परके अनुवर्त्ती होकर आपसमें एक दूसरेके अवलम्ब होते हैं और अग्नि, जल तथा अन्न इन तीनों कारणोंकी भांति परस्परमें मिलके पञ्चभूत तथा भौतिकस्वरूपसे परिणत होते है। तमोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभिभावक रज, रजोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभिभावक तम है अर्थात् तमोगुणके उदय होनेसे सतोगुण अन्तर्हित होता है; सतोगुणके उदय होनेसे रज और रज तथा तमोगुणके उदय होनेसे सत्त्व अन्तर्हित होता है। जिसे स्थलमें तमोगुण दूर होता है, उस स्थानमें जो गुण प्रवर्त्तित हुआ करता है और जिस स्थानमें रजोगुण अन्तर्हित होता है, उस स्थलमें सतोगुण प्रवर्त्तित हुआ करता है। पापकर्म्ममें विरत अधर्म्म लक्षण मोह नामक नैशात्मक तमको त्रिगुणात्मक जानो। पण्डित लोग सर्व्वभूतोंमें प्रवृत्त, उत्पत्तिलक्षण दृश्य वैपरीतकारक रजोगुणको प्रकृत्यात्मक कहा करते हैं और सर्व्वभूतोंमें प्रकाशमान धर्म्मज्ञानादि रूप श्रद्धावानता प्रभृति सौष्ठव सात्विकगुण साधुसम्मत हैं, इन्हादिगुणोंके समास और व्यासयुक्त कार्य्यस्वरूप सब तत्त्व हेतुके द्वारा यथार्थ रीतिसे वर्णित हुए हैं; तुम लोग उसे सुनो। सम्मोह, अज्ञान, अत्याग, कर्म्मोंका अविनिर्णय, निद्रा स्तम्भ, भय, लोभ, शोक, सुकृत, दूषण, अस्मृति, अविपाक, नास्तिक्य, भिन्न वृत्तिता, निर्व्विशेषत्व, अन्धत्व, जघन्य अर्थात् चाण्डालादि गुणवृत्तत्व, अकृतमें कृतमानित्व, अज्ञानमें ज्ञानशालिता, अमैत्रीकृतता, विविध क्रिया भावत्व, अश्रद्धा, मूढ़भावना, अनार्जव, असङ्गत्व, पापकारित्व, अचेतनत्व, गुरुत्व अर्थात् आलससे जड़ता, सन्नभावत्व अर्थात् देवादिमें भक्तिहीनता, अजितेन्द्रियत्व और नीच कर्म्मानुरागिता,—ये सब तामसगुण कहके वर्णित हुए है। इस लोकमें भावसञ्चित दूसरे जो सब भाव विहित हैं, तामसगुण उन्हीं भावोंमें नियमके अनुसार उपस्थित हुआ करता है।

सदा ब्राह्मणोंकी परिवाद कथा और निन्दा, अत्याग, अभिमान, मोह, मन्यु, क्षमा, सबका शुभ द्वेष, वृथा आरम्भ, वृथा दान, वृथा भक्षण अतिवाद, अतितिक्षा, मात्सर्य्य, अभिमानिता और श्रद्धाहीनता,—ये सब तामसवृत्ति कहके वर्णित हुई हैं। इस लोकमें इस ही प्रकार जो सब पापकर्म्मवाले मर्य्यादारहित मनुष्य विद्यमान हैं, वे सब तामस कहके वर्णित हुए हैं। वे पापकर्म्मवाले तामस मनुष्योंकी नियतयानियोंका प्रकृष्टरूपसे कहूंगा; वे लोग अधःपतनके निमित्त तिर्य्यक्‌योनिमें गमन किया करते हैं। पापकर्म्मवाले तामसी मनुष्य तमसाच्छन्न होकर क्रमसे स्थावर, पशु, वाहन, क्रव्याद दन्दशूक, कृमि, कीट, विहङ्ग, अण्डज, चतुष्पद जन्तु, उन्मत्त, वधिर, मूक, पापरोगी अपने किये हुए कर्म्मोंके लक्षणसम्पन्न दुर्व्वृत्त और अधोगामी—ये सब तामसयोनि सम्भूत कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर उन लोगोंके

उत्कर्ष उद्रेक तथा वे लोग पुण्यकर्म्मा होकर जिस प्रकार सुकृत लोक लाभ कर सकते हैं, वह कहता हूं। इस प्रकार वैदिक श्रुति है, कि निज कर्म्ममें रत, शुभाकाङ्क्षी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके निमित्त हिंसित होकर तिर्य्यक् स्थावरादि योनि लाभ करते हैं, वे वैदिक संस्कारसे स्थावर आदि योनिसे च्युत होकर यत्नपूर्व्वक सालोकता अर्थात् ब्राह्मणत्व जाति लाभ करते हुए ऊर्द्धदेवलोक तथा स्वर्गमें गमन किया करते हैं। तिर्य्यक् स्थावर आदि योनिसम्भूत तामसी पुरुष निज कर्म्मोंसे निवृत्त होकर पुनरावृत्त धर्म्म ग्रहण करते हुए इस लोकमें मनुष्य योनिको प्राप्त हुआ करते हैं। चाण्डाल, मूक और चूचक प्रभृति मनुष्य पापयोनिको प्राप्त होकर पर्य्याय-क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वर्णोंको प्राप्त होते हैं। अन्यान्य तामसगुण शूद्रयोनि अतिक्रम करके तमोगुणके स्रोतमें आगमन करते हुए तामस-गुणमें ही वर्त्तमान रहते हैं। काममें अभिष्वङ्ग अर्थात् आसक्ति महामोह नामसे विख्यात् हुई है; सुखके अभिलाषी ऋषि, मुनि और देवगण इस महामोहसे मुग्ध हुआ करते हैं। क्रोध नामक मोह, महामोह, तामिस्र, मरण अन्ध-तामिस्र और क्रोध,—ये सब तमस्रूपसे वर्णित हुए हैं। हे विप्रगण। वर्ण, गुण, योनि और तत्त्वके अनुसार सब प्रकारके तमका तुम्हारे निकट विधिपूर्व्वक वर्णन किया। परन्तु कौन पुरुष इसे उत्तम समझेगा तथा कौन पुरुष ही इसे उत्तम रीतिसे देखेगा? जो पुरुष अतलमें तत्त्वदर्शी होता है, उसमें ही तमोगुणके प्रकृत लक्षण मालूम हुआ करते हैं, अनेक प्रकारके तमोगुण वर्णित हुए और परावर तम यथावत कहा गया। जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह समस्त ताम-सगुणोंसे मुक्त होता है।

३६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजसत्तमगण। तुम लोगोंसे रजोगुण और रजोगुणकी वृत्ति यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सङ्घात रूप, आयास सुख, दुःख, शर्द्दी, गर्म्मी, ऐश्वर्य्य, विग्रह, सन्धि हेतु-वाद, रति, क्षमा, बल, शौर्य्य, मद रोष, व्यायाम कलह, ईर्षा ईप्सा, पिशुनता, युद्ध, ममता परि-पालन, बध, बन्धन, क्लेश, क्रय, विक्रय, कतरो, काटो, छेदन करो, ऐसा कहके पराये मर्म्मको छेदन करना, उग्र, दारुण, आक्रोश परछिद्रा-नुसन्धान, लोकचिन्ता, मत्सरता, परिपालन, मृषावाद, मिथ्यादान, विकल्प, परिभाषण, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, प्रताप, परिधर्षण, परि-चर्य्या, शुश्रूषा, सेवा, तृष्णा, व्यापाश्रय, व्यूह, नीति, प्रमाद, परिवाद, परिग्रह, लोकके बीच नर-नारी, भूतद्रव्य और सब आश्रमोंमें सब संस्कार, सन्ताप, अप्रत्यय, व्रत नियम आशिर्युक्त विविध पौर्त्तकर्म्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधा-कार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन, अध्य-यन, दान, प्रतिग्रह, प्रायश्चित्त, यह मेरा है, यह मेरे स्नेहोंसे गुण उत्पन्न हुआ है। अभि-द्रोह, माया, निकृति, मान, स्तैन्य, हिंसा, जुगु-प्सा, परिताप, जागरण दम्भ, दर्प, राग, भक्ति, प्रीति, प्रमोद, द्यूत, जनवाद स्त्रीकृत सम्बन्ध, नृत्य, बाजा और गीत,—ये सब रजोगुणकी वृत्ति कहके वर्णित हुई हैं।

रजोगुणावलम्बी मनुष्य पृथ्वीपर वर्त्तमान, भूत और भविष्यत विषयोंकी चिन्ता करते हैं, धर्म्म अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंमें सदा तत्पर रहते हैं, वे लोग कामवृत्ति अवलम्बन करके सब प्रकारसे काम तथा समृद्धिके सहित प्रमु-दित होते वा ऊर्द्धमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग इस लोकमें वार वार जन्म लेकर ऐहिक और जन्मान्तरीय कुश-लकी आकाङ्क्षा करते हुए अत्यन्त आनन्दित होते और हर्षपूर्व्वक दान, परिग्रह, तर्पण तथा होम किया करते हैं। हे द्विजगण। अनेक

प्रकारसे रजोगुण तथा रजोगुणकी वृत्ति तुम्हारे निकट बर्णित हुई ; परन्तु जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह सब प्रकार रजोगुणसे मुक्त होता है।

३७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजगण। इसके अनन्तर इस लोकमें सब भूतोंके हितकर साधुओंके लिये अनिन्दित धर्मस्वरूप उत्तम तृतीय सतोगुण तुम लोगोंसे कहता हूं, सुनो।

आनन्द, प्रीति, उन्नति, प्रकाश्यसुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, शौच, दाक्षिण्य और पराक्रम,—ये सब सतोगुण हैं। जो पुरुष शास्त्रीय ज्ञानवृत्त सेवा और श्रम, इन सबको व्यर्थ समझके योगी-धर्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें परमपदको प्राप्त हुआ करता है। निर्म्मम, निरहङ्कार, निराकांक्षा, सर्व्वत्र समता तथा आकाम, येही साधुओंके सनातन धर्म्म हैं। विस्रम्भ, लज्जा, तितिक्षा, त्याग, शौच, अतन्द्रिता, अनृशंसता, असम्मोह, सब भूतोंमें दया, अपिशुनता, हर्ष, तुष्टि, विस्मय, विनय, साधुवृत्तिता, शान्ति कर्म्ममें शुद्धि, शुभबुद्धि, विमोचन, उपेक्षा, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वस्व परित्याग, निर्म्ममता निराकांक्षत्व और अपरिक्षत धर्म्मता,-ये सब सतोगुणकी वृत्ति हैं। इसलोकमें जो सब सतोगुणावलम्बी धीर ब्राह्मण दान, यज्ञ, अध्ययन, व्रत, परिग्रह, धर्म्म और तपस्याको मिथ्या जानके ब्रह्मयोनिमें निवास करते हैं, वेही साधुदर्शी होते है। साधुदर्शी मनुष्य राजस और तामस पापकर्म्मोंकी परित्याग करके निःशोक होकर स्वर्गमें जाकर अनेक प्रकारके शरीर सृजन किया करते हैं। वे महात्मा त्रिदिववासी देवताओंकी भांति अणिमादि ऐश्वर्य्य लाभ करके मनकी अनेक प्रकारके आकारसे विकृत किया करते हैं। ऊर्द्ध्वगामी देवगण वैकारिक नामसे विख्यात हुए हैं ; वे प्रकृति अर्थात् भोगजसंस्कारके द्वारा पुनर्व्वार भोग करनेके निमित्त चित्तको विकृत करते हुए स्वर्गमें जाकर जो इच्छा करते हैं, सङ्कल्प मात्रसे ही उन वस्तुओंको पाते तथा दूसरोंको दान किया करते हैं।

हे द्विजेन्द्रगण! तुम लोगोंके निकट यह जो सात्त्विकी वृत्ति कही गई, मनुष्यगण इसे विशेष रीतिसे जाननेपर अभिलषित विषयोंको पा सकते हैं। मैंने सात्विक गुण तथा विशेष करके सतोगुणकी वृत्ति तुम लोगोंसे कही है। जो मनुष्य इन गुणों तथा गुणकी वृत्तियोंको जान सकता है, वह सर्व्वदा सतोगुण भोग करते हुए उसमें लिप्त हुआ करता है।

३८ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, सब गुणोंको पृथक् करके नहीं कहा जा सकता ; सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण अपरिच्छन्न रूपसे लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करते है। परस्परमें एक दूसरेके आश्रय तथा अनुजीव्य अवलम्बन करते हुए परस्परके अनुवर्त्ती होकर परस्परके अनुराग भाजन होते हैं। जिस स्थानमें सत्त्व विद्यमान रहता हैं, उस स्थानमें रजोगुण प्रवृत्त होता है और जितना तम और सत्त्वप्रकाशित होता है, उतनाही रजोगुण प्रकाशित हुआ करता है। सहतस्वभाव एक व्यवहारसम्पन्न सत्त्वादि सब गुण मिलके लोक यवहार सम्पादन करते हैं और हेतु तथा अहेतुके सहित वैषम्यभावसे निवास किया करते हैं। एक दूसरेके आश्रित उन सत्त्वादि गुणोंके परस्परकी उद्बोधक सामग्री न रहनेपर जिस प्रकार उनकी अन्यूनता तथा अनधिकता अर्थात् सबके रूप समान होते हैं, उसे कहना होगा। परन्तु जिस स्थलमें तमोगुण अतिरिक्त और तिर्य्यक्‌भावसे रहित होता है, उस स्थानमें अल्प रजोगुण और किञ्चित

सतोगुन जानो। जिस स्थानमें रजोगुण उदित तथा मध्य स्रोतगत होता हैं, उस स्थलमें अल्प तमोगुण तथा अल्पही रजोगुण बोध करना चाहिये। सत्त्व इन्द्रियोंको अहङ्कारसम्बन्धिनी योनि है, सत्त्वही इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादि प्रकाश करता है, इसलिये सत्त्वसे श्रेष्ठ दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। सत्त्वगुणावलम्बी मनुष्य ऊर्द्ध गामी, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यगामी और निकृष्ट तमोगुणावलम्बी पुरुष अधोगामी हुआ करते हैं। तमोगुण शूद्रोंमें रजोगुण क्षत्रियों और उत्तम सतोगुण ब्राह्मणोंमें विद्यमान रहता हैं, इसही प्रकार सत्त्वादि तीनों गुण तीनों वर्णोंमें प्रवर्त्तित हुए हैं। तम, सत्त्व और रज, इन तीनों गुणोंको हम पृथक् पृथक् जानते हैं; परन्तु ये दूरसे मिले हुए तथा संचारि रूपसे दीख पड़ते हैं। सूर्य्यके उदय होनेपर कुकर्म्मी मनुष्यगण डरते और दुःखभागी पथिक गर्म्मीसे सन्तापित होते हैं। सूर्य्यकी भांति स्वप्रकाश सतोगुण, कुकर्म्मचारियोंका भय स्वरूप तमोगुण और पथिकोंका परिताप रजोगुण कहके वर्णित हुआ है। प्रकाशात्मक आदित्य सत्त्व, सन्ताप रज और पर्व्वसम्बन्धी उपप्लवको तम जानो। इस ही प्रकार समस्त ज्योतिवाले पदार्थोंमें सत्त्वादि तीनो गुण पर्य्यायक्रमसे प्रवृत्त और निवृत्त हुआ करते हैं। परन्तु स्थावर पदार्थोंमें तम तिर्य्यक् भाव अर्थात् अधिकताको प्राप्त होता है, रमणीयतादि रूप रजोगुणसे विवर्त्तित होता है और सलक्षे स्वभाव अर्थात् प्रकाशस्वरूपसे स्थित हुआ करता है। दिन, रात, महीना, पक्ष, वर्ष, ऋतु, सन्धि, दान, यज्ञ, लोक, देवता, विद्या, गति, वर्त्तमानादि काल, धर्म्मादि वर्ग और प्राणादि वायु,—इन सबको ही त्रिगुणात्मक जानो। इसलोकमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी त्रिगुणात्मक हैं, तीनों गुण पर्य्याय क्रमसे सब वस्तुओंमें ही प्रवर्त्तित हुआ करते हैं। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण अव्यक्त रूपसे सदा प्रवर्त्तित होते हैं; इन गुणोंको सनातन जानके तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव अर्थात् उत्पत्ति, विनाश, अनुद्रिक्त, अन्यून अकम्प, अचल, ध्रुव, सत् असत्, अव्यक्त और त्रिगुण,—अध्यात्मचिन्तक मनुष्य इन्हें अव्यक्त नामसे मालूम करें। तो मनुष्य अव्यक्तके नाम गुण और गतिको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह विभागतत्त्वज्ञ पुरुष मुक्त और निरामय होकर सब प्रकारके गुणोंसे मुक्त होता है।

३६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले अव्यक्तसे महामति महात्मा महान् उत्पन्न होता है, वह सबको आदि तथा प्रथम कल्प कहके वर्णित हुआ है। महात्मा महान, महान्आत्मा, मति, विष्णु, जिष्णु, शम्भु, वुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, ख्याति, धृति और स्मृति, ये सब पर्य्यायवाचक शब्दसे विभावित होते हैं, विद्वान् ब्राह्मणगण उस महान्को जाननेसे मोहको नहीं प्राप्त होते। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता है; वही समस्त जगत्में व्याप्त होकर निवास कर रहा है। वह महाप्रभाव पुरुष सबके ही हृदयमें निश्चित है, वही अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईशान, अव्यय और ज्योतिस्स्वरूप है। जो सब वुद्धिमान सद्भावमें रत, ध्यानपरायण सदा योगाचारी, सत्यसन्ध जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, अलुब्ध, जितक्रोध, प्रसन्नचित्त, धीर, निर्म्मल और निरहङ्कारी मनुष्य उसमें रत रहते हैं तथा जो लोग उस महात्मा महान्की पुण्यगतिको जान सकते हैं, वे सबसे ही मुक्त होकर महत्त्व लाभ करते हैं, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूत उन पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न होकर शब्द, स्पर्श, रूप,

रस और गन्ध,—इन सब क्रियागुणसे युक्त होते हैं। हे धीरगण! उन महाभूतोंका अन्त तथा प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। वही महावीर महान् सब लोकोंके बीच मोहको नहीं प्राप्त होता; वह स्वयम्भू ही आदिसर्गका प्रभु है। जो पुरुष गुहाशय विश्वरूप हिरण्मय बुद्धिमानोंकी परमगति पुराण परम पुरुष प्रभुको इस प्रकार जानता है, वही बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिको अतिक्रम करके निवास करता है।

४० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले, जो महान् उत्पन्न हुआ, वह "अहं" ऐसा अभिमान करते हुए अहङ्कार तथा द्वितीय सर्ग कहके वर्णित हुआ। वह अहङ्कार सब भूतोंकी आदि है, विकृत महत्से उत्पन्न तेज विकार चेतना पुरुष और प्रजापतिरूपसे उत्पन्न हुआ है। वही इन्द्रिय और मनकी उत्पत्तिस्थान त्रिलोककर्त्ता है, वह सब वस्तुओंमें "अहं" रूप अभिमान करनेसे अहंकार नामसे प्रसिद्ध हुआ। अध्यात्मज्ञानसे परितृप्त परमात्मचिन्तक स्वाध्याय क्रतुके द्वारा सिद्ध मुनियोंका यही सनातन लोक है, अहंकारसे शब्दादि गुणभोक्ता पुरुषका आदिभूत विकृत महत्से उत्पन्न है। वह भूकिर्त्ता अहंकार विषयादि भूतोंकी सृष्टि करते हुए निज तेजके द्वारा समस्त जगत्को रञ्जित करके विशेष रीतिसे चेष्टा करता है।

४१ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि ये पांचो महाभूत अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य आदि सब प्राणी निमित्तभूत शब्दादिगुणविमिश्रित उन पञ्चमहाभूतोंसे मुग्ध होते हैं। हे धीरगण! महाभूतोंके विनाश तथा प्रलयका समय उपस्थित होनेपर सब प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे उसहीमें लीन होते हैं; तथा वे सब अनुलोम क्रमसे उत्तरोत्तर उत्पन्न होते और प्रतिलोम क्रमसे लीन हुआ करते हैं। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक सब भूतोंके प्रलीन होनेपर उस समय धीरवर स्मृतिवान् मनुष्य कदाचित् लीन नहीं होते। सूक्ष्म शब्दादि विषय और विषय ग्रहणरूप सब क्रिया करणात्मक मन रूपसे नित्य होती और मोहसञ्चित अर्थात स्थूल शब्दादि विषय तथा उन विषयोंको ग्रहणरूपी क्रिया अनित्य हुआ करती हैं। लोभजनक कर्म्मसे उत्पन्न निर्व्विशेष, मलिछन मांसशोणित संयुक्त, दीन अर्थात् क्षुधा प्रभृतिके द्वारा उपद्रुत, कृपणजीव, अन्यान्य उपजीवी बहिरात्मा अर्थात् समस्त स्थूल शरीरको अनित्य जानो। प्राणादि पंचवायु और वाक्य, मन तथा बुद्धि, ये आठों उपाधिरूप अन्तरात्माके सम्बन्ध होकर जगदाकाररूपसे भासमान होते हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, बचन सयत तथा मन विशुद्ध वा बुद्धि अव्यभिचारिणी होती है, तथा ये आठों अग्निस्वरूप होकर जिसके चित्तको सदा नहीं जलाते, वह विद्वान् मनुष्य सर्व्वाधिक शुभ ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें पण्डित लोग एकादश इन्द्रिय कहा करते हैं; मैं तुम लोगोंके समीप उन एकादश इन्द्रियोंकी विवरण विशेष रीतिसे कहता सुनो। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, चर हाथ, पायु, उपस्थ, वाक्य और मन, ये एकाद इन्द्रिय हैं; पहले इन इन्द्रिय ग्रामोंको व भूत करनेसे पूर्णब्रह्म प्रकाशित होता है पण्डित लोग बुद्धियुक्त श्रोत्रादि पांचको ज्ञानेन्द्रिय और संयुक्त वागादि पांचोंको कर्मेन्द्रिय कहा करते हैं, परन्तु दोनों प्रकारके इन्द्रियोंमें अनुगत मनको एकादश और

बुद्धिको द्वादश जानो। यथाक्रमसे ये ग्यारह इन्द्रियां वर्णित हुई हैं, पण्डित लोग इन ग्यारहों इन्द्रियोंको विशेष रीतिसे जानकर कृतकृत्य हुआ करते हैं। हे द्विजगण! इसके अनन्तर सब इन्द्रियां आकाश आदि विविध भूतों तथा उनके अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवतको तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। आकाश प्रथम भूत है, उसमें श्रोत्र, अध्यात्म, शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैवत कहके वर्णित हुई हैं। वायु द्वितीयभूत है, उसमें त्वचा अध्यात्म, स्पृष्टव्य अधिभूत और बिजली अधिदैवत कहके विख्यात हुई है। अग्नि तृतीयभूत है, उसमें नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्य अधिदैवत कहा गया है। जल चतुर्थभूत है उसमें जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत और चन्द्रमा अधिदैवत कहके गिना गया है। पृथ्वी पञ्चमभूत है, उसमें नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत और वायु अधिदैवत कहके वर्णित हुआ है। इसके अनन्तर पञ्चभूतोंके अन्तर्गत अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत, इन तीनोंमें जो विधि विहित हुई है, उस विधि और कर्म्मेन्द्रियोका वर्णन करता हूं, सुनो। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण लोग चरणको अध्यात्म उसके गन्तव्यको अधिभूत और विष्णुको अधिदैवत कहा करते हैं। आवाक्गति अपानमें पण्डितोंके द्वारा पायु अध्यात्म, विसर्ग अधिभूत मित्र अधिदेवता कहके वर्णित हुए हैं। सब प्राणियोंके प्रजनक उपस्थ अध्यात्म, शुक्र अधिभूत और प्रजापति अधिदैवत रूपसे वर्णित हुए हैं। अध्यात्मवित् लोग हाथको अध्यात्म, उसके कर्मको अधिभूत और शक्रको अधिदेवता कहा करते हैं। वाक्यरूप वैश्वदेवी अध्यात्म, उसमें वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदेवता है। पण्डित लोग भूतात्मकारक मनको अध्यात्म, उसके सङ्कल्पको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदेवता कहा करते हैं। सर्व्व संस्कारकारक अहङ्कार अध्यात्म, उसमें अभिमान अधिभूत और रुद्र अधिदेवता कहके वर्णित हुए हैं। पण्डित लोग षड़िन्द्रियचारिणी बुद्धिको अध्यात्म, उसके मन्तव्यको अधिभूत और ब्रह्माको अधिदेवता कहते हैं। प्राणियोंके जल, स्थल और आकाश, ये तीन स्थान हैं, इनके अतिरिक्त चौथे स्थानकी उपलब्धि नहीं होती। सब प्राणियोंके अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज, यह चार प्रकारके जन्म दीखते हैं। अन्य अपकृष्ट भूतों, खेचरों तथा सरीसृपोंको अण्डज जानो। इस ही प्रकार कृमि प्रभृति जघन्य जन्तु समूह स्वेदज वा जघन्य कहके वर्णित हुए हैं; यह द्वितीय जन्म है। समय पर्य्यायसे जो भूत पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होते हैं। द्विजगण उन्हें उद्भिज्ज कहा करते हैं। हे सत्तमगण! द्विपाद, बहुपाद, तिर्य्यक् गतिविशिष्ट जरायुज प्राणिगण विकृत कहके वर्णित हुए हैं। सनातन ब्रह्मोपलब्धि स्थान दो प्रकारका जानो, पण्डितोंकी ऐसी नीति है, कि वे पुण्यकर्म्मको ही तपस्या कहा करते हैं। कर्म्म अनेक प्रकारके हैं, उनके बीच यज्ञ और दानको मुख्य जानो। हे द्विजेन्द्रगण! बृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि ब्राह्मणोंके लिये वेदाध्ययन ही पुण्यकर्म्म है, जो पुरुष इसे विधिपूर्व्वक जानता है, वही उपयुक्त हुआ करता है और यह भी जान रखो, कि वही पुरुष सब पापोंसे छूटता है, यह मैंने अध्यात्म विधिका तुम लोगोंके समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन किया है। हे धर्म्मज्ञगण! इस लोकमें ज्ञानवान् पुरुष ही इस अध्यात्म विधिको जानते हैं, इसीसे वे लोग इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और पञ्च महाभूत, इन सबको सन्धान करते हुए मन मात्रमें निवास करते हैं। मनके सब प्रकारसे क्षीण होनेपर जो पुरुष निर्व्विकल्प सुख अनुभव करता है, उसे पुत्र, कलत्र, परिच्छदजनित संसारसुख अभिलषित नहीं होता; परन्तु जिन विद्वान्

मनुष्योंकी बुद्धि आत्मानुभव संयुक्त है, उनकी लिये वही सुखस्वरूपसे सम्मत होता है। इसके अनन्तर मनकी सूक्ष्मत्वकारी निवृत्ति तुम लोगोंसे कहता हूं, ब्राह्मणादि सब प्राणी मृदु तथा कठिन योगके सहारे निवृत्ति साधनमें यत्नवान् होवें। शौर्य्य आदि गुणागुणयुक्त अभिमान रहित एकान्तवास अवच्छिन्न एक अर्थात् सर्व्वसुख-गर्भ सुखको पण्डित लोग ब्राह्मणोंके वृत्त कहा करते हैं। निज अङ्ग समेटनेवाले कछुवेकी भांति जो विद्वान् मनुष्य सब कामना पूरी रीतिसे संहार करते हुए रजोविहीन होता है, वह सब भांतिसे मुक्त होकर सदा सुखभोग किया करता है। जो समाहितचित्तवाला पुरुष मनुष्य देहके बीच सब कामना संयत करते हुए संसारवासना नष्ट करता है, वह सब प्राणियोंका सुहृत् तथा मित्र होकर ब्रह्मत्व लाभ करता है। विषयाभिलाषी इन्द्रियोंका निरोध और जनपद त्याग निबन्धनसे मुनियोंकी अध्यात्म अग्नि प्रज्वलित होती है। जैसे अग्नि काष्ठके द्वारा प्रज्वलित होकर महाज्योतिस्वरूपसे प्रकाशित होती है, वैसे ही इन्द्रियनिरोधसे परमात्मा प्रकाशित हुआ करता है। जब अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे पुरुष सब भूतोंको निज हृदयमें अवलोकन करता है। तब वह अत्यन्त सूक्ष्म अनुत्तम ज्योतिको प्राप्त होता है। जिस समय कृष्ण तथा गौरादि रूप अग्नि, प्रवाह जल स्पर्श वायु, पंकरूप अस्थ्यादिधारी पृथिवी, श्रवणरूप आकाश और रोग शोक समाविष्ट, इन्द्रियगोलक रूप पञ्चश्रोत युक्त, पञ्चभूत समायुक्त-नवद्वार विशिष्ट जीव और ईश्वर रूप दो देवताओंसे युक्त, रजोविशिष्ट, अदृश्य त्रिगुण और त्रिटातुमय, संशयाभिरत और अचेतन वस्तु शरीर कहके निश्चित है। सब लोकोंमें समाश्रित सत्त्वबुद्धि दुस्तर अर्थात् व्याधिसे आक्रान्त होनेपर इस लोकमें कालचक्रसे प्रवर्त्तित हुआ करती है। यह मोह नामक अगाध भयंकर महार्णव विक्षिप्त होकर अमर लोकके सहित जगत्को प्रबोधित करता है। काम, क्रोध, भय लोभ और अनृत, ये सब दुस्त्यज विद्यमा[न] विषय इन्द्रियनिरोधके द्वारा परित्यक्त होते हैं इसलोकमें जिसका त्रिगुण और पंचधातुयु[क्त] स्थूल शरीर योगबलसे निर्ज्जित होता [है] आकाशके बीच उसे अनन्त परमपद ब्रह्मस्था[न] प्राप्त हुआ करता है। जिसके पञ्चेन्द्रिय मह[ा] तट, मनका वेग महाजल और मोह ह्रद[,] पुरुष वैसी नदीसे पार होकर काम तथा क्रो[ध] इन दोनोंको जय करे। फिर वह सब दोषों[से] मुक्त होकर हृदय पुण्डरीकमें मनको स्थ[िर] कर सकनेसे देहके बीच उस परमात्मा[का] दर्शन करेगा। सर्व्वज्ञ तथा सर्व्वदर्शी पुरुष निज शरीरसे परमात्माको पाते और एक वा अनेक रूपसे विकृत हुआ करते हैं। जैसे एक दीपकसे सैकड़ों दीपक प्रवर्त्तित होते हैं, वैसे ही योगि पुरुष संकल्प मात्र निज शरीरसे सैकड़ों शरीर उत्पन्न कर सकते हैं, वेही विष्णु मित्र, वरु[ण], अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, सर्व्वतामुख, प्रभु, सर्व्वभूतोंके हृदय और परमात्मस्वरूपसे प्रकाशित हुआ करते हैं। विप्र, सुरासुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और महर्षिगण उनका सदा स्तव किया करते हैं।

४२ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, रजोगुणप्रधान राजन्य क्षत्रिय मनुष्योंके राजा हैं, हाथी वाहनोंके, सिंह वनवासियोंके, मेष पशुओंके, सर्प बिलवासियोंके, गोवृषभ गोसमूहके, पुरुष स्त्रियोंके, बट, अश्वत्थ, जामुन, शाल्मलि, शिंशपा, मेषशृङ्गी और कीचकवेणु वृक्षोंके; हिमवान, पारिपात्र, सह्य, त्रिकूटवान, विन्ध्य, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र और माल्यवान पर्व्वतोंके, सूर्य्य ग्रहोंके, चन्द्रमा नक्षत्रोंके,

यम पितरोंके, समुद्र नदियोंके, वरुण जलके, इन्द्र मरुद्गणोंके, अर्क उष्ण वस्तुओंके, इन्दु, ज्योतिसमूहके, अग्नि सब भूतोंके, बृहस्पति ब्राह्मणोंके, सोम औषधियोंके, विष्णु बलवानोंके, त्वष्टा रूपसमूहके, शिव पशुओंके, यज्ञ दीक्षित वा देवताओंके, उदीची दिशा समूहके, चन्द्रमा ब्राह्मणोंके, कुवेर रत्नोंके, पुरन्दर देवताओंके, प्रजापति प्रजासमूहके और ब्रह्मस्वरूप महान् मैं सब भूतोंका अधिपति हूं, इसे ही भूताधिप सर्ग जानो। विष्णु तथा मुझसे परे अन्यभूत और कुछ भी नहीं है, ब्रह्ममय महा विष्णु ही सब भूतोंके राजाधिराज हैं और अकृत-कर्त्ता हरिकोही मनुष्योंका ऐश्वर्य जानो। वह हरि, नर, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, उरग, राक्षस, देव, दानव और नागोंका ईश्वर है। कामुकोंको अनुगत स्त्रियोंके बीच माहेश्वरी महादेवी पार्व्वतीही वामलोचना कहके वर्णित हुई हैं। स्त्रियोंके बीच उमादेवी श्रेष्ठ हैं; सब प्रीतिसुखके बीच धनशालिता प्रीति और स्त्रियोंके बीच अप्सराओंको श्रेष्ठ जानो।

हे द्विजेन्द्रगण! धर्म्मकाम राजा और ब्राह्मणवृन्द धर्म्मसेतु हैं, इसलिये राजा ब्राह्मणोंकी रक्षामें यत्नवान् होवे। जिन राजाओंके राज्यमें साधुगण अवसन्न होते हैं, वे राजा लोग निज गुणोंसे रहित होकर परलोकमें उन्मार्गगामी हुआ करते हैं और जिन राजाओंके राज्यमें साधु लोग सब भांतिसे रक्षित होते हैं, वेही राजा इसलोकमें अत्यन्त आनन्द अनुभव करके परलोकमें परम सुख भोग किया करते हैं। हे द्विजर्षभगण! इसलिये तुम लोग यह निश्चय जानो, कि महात्मा विद्वान् मनुष्यही विश्व संसारके ऐश्वर्य्यको पाते हैं। हे विप्रगण! इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे धर्म्मादिका लक्षण कहता हूं, सुनो। धर्म्मका लक्षण अहिंसा, अधर्म्मका लक्षण हिंसा, देवताओंका लक्षण प्रकाश, मनुष्योंका लक्षण कर्म्म, आकाशका लक्षण शब्द, वायुका लक्षण स्पर्श, अग्निका लक्षण रूप, जलका लक्षण रस, सर्व्वधात्री पृथिवीका लक्षण गन्ध, स्वर और व्यञ्जनसंस्कारवती सरस्वतीका लक्षण शब्द तथा मनका लक्षण संशयात्मिका चिन्ता है। इस शरीरमें मनके जो सब विषय चिन्तित होते हैं और बुद्धि उनका निश्चय किया करती है, इस ही निमित्त बुद्धि निश्चयके द्वारा मालूम होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। मनका लक्षण ध्यान, साधुका लक्षण अव्यक्त, योगका लक्षण प्रवृत्ति और ज्ञानका लक्षणसन्न्यास है, इसही निमित्त बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानको अगाड़ी करके सन्न्यास अवलम्बन करें। सन्न्यासी पुरुष ज्ञानयुक्त होनेसे द्वन्द्वातीत होकर अज्ञानमृत्यु और जराको अतिक्रम करते हुए परम गति पाते हैं, हे द्विजेन्द्रगण! मैं तुम लोगोंसे विधिपूर्व्वक धर्म्म तथा लक्षणादिका वर्णन किया। अब भूत तथा इन्द्रियोंके ग्राहकोंका पूरी रीतिसे वर्णन करता हूं, सुनो। नासिका पृथिवीके गुण गन्धको ग्रहण करती है, घ्राणस्थित वायु उस गन्ध ग्रहणको अनुकूलता करती है। जिह्वा जलके गुण रसको ग्रहण करती है, जिह्वामें स्थित सोम रस ग्रहणकी अनुकूलता किया करता है। नेत्र अग्निके गुण रूपका ग्रहण करता है, नेत्रस्थित आदित्य उस रूपको ग्रहण करनेमें सहायता किया करता है। त्वचा वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करता है, उस त्वक्में स्थित वायु हो उस स्पर्श ज्ञानका साधक होता है। कान आकाशके गुण शब्दको ग्रहण करता है, श्रोत्रस्थित सब दिशा उस शब्दज्ञानकी अनुकूलता किया करती हैं। प्रज्ञा मनके गुण चिन्ताको ग्रहण करती है, हृदयस्थ सारभूतचेतना चिन्ता ग्रहणकी अनुकूलता किया करता है। भूत और इन्द्रिया जिस प्रकार कारणान्तरके सहारे गृहीत हुआ करते हैं, वैसेही बुद्धिस्वरूप अध्यवसायके द्वारा और महान् स्व-स्वरूपके ज्ञानसे

गृहीत हुआ करता है, परन्तु स्व स्वरूप निश्चयरूपसे लिङ्गके द्वारा बुद्धि और स्वरूप असदके अस्तित्व ज्ञानरूप लिङ्गके द्वारा महान् व्यक्तरूपसे गृहीत होनेपर भी यथार्थमें उसका व्यक्तरूप मालूम नहीं होता। इस ही निमित्त नित्य निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ किसी प्रकार लिङ्गसे गृहीत न होनेसे वह अलिङ्ग वा केवल उपलब्धिस्वरूप है। क्षेत्रलिङ्गस्थ अर्थात् स्थूल वा सूक्ष्म शरीरमें अवस्थित सत्त्वादि गुणोंकी उत्पत्ति और विनाशकी हेतुभूत अव्यक्तको मैं सदा विलीनरूपसे देखता, जानता और सुनता हूं। पुरुष उस अव्यक्तके सहित क्षेत्रको जानता है, इसीसे पण्डित लोग उसे क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं, वह क्षेत्रज्ञ उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंशविशिष्ट, सृज्यमान अचेतन गुणावृत्त अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति तथा होमादि दर्शन करता है। सब गुण कूटस्थ परमात्माके द्वारा बार बार उत्पन्न होके उसे नहीं जान सकते। गुण वा गुणभूत अर्थात् भोज्यवस्तुओंसे श्रेष्ठ उस कूटस्थ आत्माको कोई नहीं पा सकता; परन्तु क्षेत्रज्ञ उसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धर्म्मज्ञ मनुष्य इसलोकमें गुण और सत्त्वको परित्यागके दोषरहित वा गुणातीत होकर क्षेत्रज्ञमें प्रविश करे। क्यों कि वह क्षेत्रज्ञ ही निर्द्वन्द्व, श्रेष्ठ नमस्कार और स्वाहाकार-विहीन अचल अनिकेत तथा विभु है।

४३ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजेन्द्रगण! जो जन्मादि युक्त ग्रहण उपाय-विशिष्ट तथा नामलक्षण संयुक्त है, वह सब मैं तुम लोगोंसे यथार्थरीतिसे कहता हूं सुनो।

पहले दिन, तिसके अनन्तर रात्रि, उसके बाद शुक्लादि मास, उसके अनन्तर श्रवण आदि नक्षत्र और उसके बाद शिशिर आदि ऋतु उत्पन्न होती हैं; गन्धकी आदि भूमि है, रसकी आदि जल, रूपकी आदि ज्योतिर्म्मय आदित्य, स्पर्श समूहकी आदि वायु और शब्दकी आदि आकाश है, ये भूतगण कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे भूतादि तथा उत्तम कहता हूं, सुनो। ज्योतिकी आदि आदित्य, जरायुजादि भूतगणोंकी आदि जठराग्नि, सर्व्वविद्याकी आदि सावित्री, देवताओंकी आदि प्रजापति वेदोंकी आदि ओंकार, वाक्यकी आदि प्राण इसलोकमें जो ब्राह्मणादि वर्णोंकी उपासनाके निमित्त नियत है, वही सावित्री कहके वर्णित हुई है। सब छन्दोंकी आदि गायत्री; पशुओंकी आदि अज, चतुष्पद जन्तुओंकी गऊ, मनुष्योंकी आदि द्विजातिगण, पक्षियोंकी आदि बाज, यज्ञोंकी आदि हुत, सब सरीसृपोंकी आदि सर्प, युगोंकी आदि सत्य; रत्नोंकी आदि हिरण्य, ओषधियोंकी आदि यव है समस्त भक्ष्य तथा भोज्य वस्तुओंके बीच अन्न उत्तम कहके गिना गया है। सब पीनेवाली वस्तुओंके बीच जल उत्तम है, सब स्थावर भूतोंके बीच ब्राह्मण शरीरके सदृश सदा पवित्र प्लक्ष अश्वत्थ वृक्ष प्रथम गिना गया है। मैं सब प्रजापतियोंके बीच अग्रज हूं, स्वयम्भू अचिन्त्यात्मा विष्णु मेरे अग्रज हैं, पर्व्वतोंका अग्रज महामेरु, सब दिशाओंसे पहली पूर्व्व दिशा है, नदियोंके बीच त्रिपथगामिनी गङ्गा बड़ी हैं, तालावों तथा उपादानोंका अग्रज समुद्र है। देव, दानव, भूत, पिशाच, उरग, राक्षस, नर, किन्नर और यक्षोंका प्रभु ईश्वर है; ब्रह्ममय महाविष्णु संसारकी आदि है, क्यों कि तीनों लोकके बीच उससे श्रेष्ठ भूत और कुछ भी विद्यमान नहीं है। आश्रमोंके बीच निःसन्देह गार्हस्थाश्रम ही उत्तम है अव्यक्त सब लोकोंकी आदि और अन्त है, दिन समस्त अस्तमयन्त, रात्रि उदयान्त, सुखका अन्त दुःख, दुःखका अन्त सुख है, सब वस्तु क्षयान्त हैं; उन्नतिके अन्तमें अवनति, संयोगके अन्तमें वियोग, और

नके अन्तमें मरण, सबक्कत वस्तुओंका बिनाशान्त और उत्पन्न हुई वस्तु अन्तमें नाशवान् हैं; क्यों कि इस लोकमें स्थावर जङ्गम प्रभृति सब वस्तु अनित्य हैं। इष्ट दत्त, तपस्या, अध्ययन ब्रत और नियम, ये सभी बिनाशो हैं; परन्तु ज्ञान अनन्त है, उसका अन्त नहीं है; इस ही लिये जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त निर्म्मम निरहङ्कारी मनुष्य केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं।

४४ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजगण। जिसकी बुद्धि सारस्वरूप, मन स्तम्भस्वरूप, इन्द्रिय ग्रामबन्धन रज्जुरूपी और जो पञ्चभूत समूहात्मक है, निवेश जिसकी नेमिस्वरूप है, जो जरा वा शोकसे समाविष्ट हैं, व्याधि और व्यसनकी उत्पत्ति स्थानभुत, देश और कालके सहित विचरणकारी, व्यायामजनित श्रम जिसका शब्द अहोरात्र जिसके परिचालक, सर्द्दी और गर्म्मी जिसके परिमण्डल, सुख और दुःख जिसकी सीमा, क्लेश जिसका संश्लेष, भूख और प्यास जिसके अन्तःप्रविष्ट अर, छाया और धूप जिसके उत्खात हैं; जो निमेष तथा उन्मेषसे आकुल, भयङ्कर मोहरूपी जलसे आकीर्ण सदा गमनशील अचेतन जड़स्वरूप, मासादि समयके द्वारा परिमित अनेकरूप, ऊर्द्ध मध्य और अधोलोकमें बिचरनेवाला, तमोगुणके द्वारा ज्ञान यथाकर्म्मके निरोधरूप मलिनतासे युक्त, रजोगुणके द्वारा विहित तथा निषिद्ध कर्म्मोंमें प्रवृत्त महाअहङ्कारसे प्रदीप्त, सत्त्वादि गुणोंमें अवस्थित, शोक और दुःखसे जीवित, क्रिया कारण युक्त, राग जिसका आयत, लोभ तृष्णा जिसके अध और उर्द्ध हैं, जो मायासे उत्पन्न, भय और मोहसे परिवृत, भूतोंका सम्मोहकारक, वाह्य सुख, आनन्द और प्रोतिके सहित बिचरणशील, काम और क्रोध जिसका मूल, महदादि विशेष जिसका अन्त है, वह अनिरुद्ध भावसे संचरणशील संसारकारण अव्ययस्वरूप, मनकी भांति वेगशाली और अत्यन्त मनोहर कालचक्र प्रवर्त्तित होता है। मान अपमान द्वन्द्वयुक्त यह अचेतन कालचक्र सुरपरके सहित जगत्को उत्पन्न, संहार और प्रबोधित किया करता है। जो मनुष्य इस कालचक्रकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको विशेषरूपसे जाना है, वह प्राणियोंके बीच मुग्ध नहीं होता। बल्कि वह सब द्वन्द्वोंसे रहित, सर्व्वसंस्कार और सब पापोंसे मुक्त होकर परमगति पाता है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और भिक्षुक, ये चारों आश्रम गार्हस्थ्यामूलक कहके वर्णित हुए हैं। इस लोकमें जो कई बिधि निषिधक शास्त्र प्रकीर्त्तित हुए हैं, उनका अनुगमन करना कल्याणकारी है, इस कीर्त्तिको ही सनातनी जानो। गुणविशिष्ट जातिमें उत्पन्न तत्त्ववित् मनुष्य पहले स्वजायुक्त संस्कारके द्वारा संस्कृत होकर ब्रतोंका पूरी रीतिसे अनुष्ठान करके गुरुकुलसे प्रत्यागमन करें। अनन्तर इस लोकमें सदा निज स्त्रीमें रत रहके शिष्टाचारयुक्त जितेन्द्रिय तथा श्रद्धावान् होकर पञ्चमहायज्ञोंकेद्वारा अर्च्चना करें। देवताओं और अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नभोजन करें, देवकर्म्ममें रत रहें और शक्तिके अनुसार सुखपूर्व्वक यज्ञ तथा दानकर्म्ममें नियुक्त होवें। मननशील मनुष्य हाथ, पांव, नेत्र, तथा अङ्गको परिचालित न करें येही शिष्ट पुरुषोंके लक्षण है। इसके अतिरिक्त सदा यज्ञोपवीत तथा सफेदवस्त्र पहरे, पवित्र ब्रतका अनुष्ठान करे और यम तथा दानमें रत होकर सदा शिष्ट पुरुषोंके सहित संवास करे। मैत्र मनुष्य शिष्टाचार युक्त होकर उदर तथा शिश्नको संयत करते हुए जलयुक्त कमण्डल तथा बासकी लाठी धारण करे। अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः प्रकारके गुणा वृत्तिका आचरण करे।

हे द्विजगण! याजन, अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह, इन तीनों कर्म्मोंको ब्राह्मणोंकी जीविका जानो। धर्म्मज्ञ, दान्त, मैत्र, चमायुक्त, सर्व्वभूतोंमें समदर्शी और मननशील मनुष्य अवशिष्ट दान, अध्ययन और यज्ञ, इन तीनों धर्म्मयुक्त कर्म्ममें प्रमाद न करे। पवित्रचित्त-वाला संशितव्रती गृहस्थ विप्र शक्तिके अनुसार इन सब कार्य्योंको नियमपूर्व्वक पूर्ण करते हुए उसमें नियुक्त रहनेसे स्वर्गजय करनेमें समर्थ होता है।

४५ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, ब्रह्मचर्य्यवान् पुरुष पहले कहे हुए इस ही मार्गके अनुसार अध्ययन करे। स्वधर्म्ममें रत, जितेन्द्रिय, गुरुप्रिय, तथा हित-कारी, सत्यधर्म्म परायण, पवित्रचित्त, हविष्य, और भैच्यभुक्, स्थानासन विहारवान् विद्वान्, मननशील मनुष्य गुरुके द्वारा पूरी रीतिसे अनुज्ञात होकर निन्दा न करके अन्न भोजन करे। पवित्र तथा समाहित होकर बेल वा पलासका दण्ड धारण करके दोनों समय अग्निमें आहुति डाले। गेरुआ तथा लालरङ्गके चौम वा सूती वस्त्र अथवा मृगछाल पहरे। मूञ्जकी करधनी और जटा धारण करे, सदा जलयुक्त, यज्ञोपवीती, स्वाध्यायी, अलुब्ध तथा नियतव्रती होकर पवित्र जलके द्वारा सदा देव-ताओंका तर्पण करे; क्योंकि ब्रह्मचारी संयत होकर विशुद्धभावसे इस प्रकार आचरण कर-नेसे प्रशंसित हुआ करता है। ऊर्द्धरेता ब्रह्म-चारी समाहित होकर इसही भांति युक्त होनेसे स्वर्गजय करनेमें समर्थ होता है और परमपद अवलम्बन करते हुए जातिके बीच संहारी नहीं होता। ब्रह्मचर्य्य विशिष्ट मननशील मनुष्य सब संस्कारोंसे संस्कृत तथा निज ग्रामसे बाहिर होकर प्रव्रज्या अवलम्बन करते हुए वनके बीच वास करे। चर्म्म और वल्कल वस्त्रधारी होकर सन्ध्या तथा सवेरे जलस्पर्श करे और सदा वनवासी होकर फिर ग्राममें प्रवेश करनेसे निवृत्त होवे, फल, पत्र, चद्रमूल और सावांके द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हुए तथा समयमें उपस्थित अतिथियोंकी पूजा करके उन्हें आश्रय प्रदान करे। दोहाके अनुसार अतन्द्रित होकर उपस्थित जल, वायु और वनके फलमूलादिको क्रमसे भोजन करे। वनवासी मुनि सदा अत न्द्रित होकर फलमूलकी भिचाके सहारे समा गत अतिथियोंकी अर्च्चना करे और भिचाके द्वारा जो वित्त प्राप्त होवे, उसमेंसे कुछ अंश भिचा प्रदान करना चाहिये। सदा वाग्यत होकर देवताओंका आश्रय तथा आशिर्व्वाद पाके देवता तथा अतिथि पूजाके अनन्तर प्रह्र ष्टरूपसे भोजन करे। वाणप्रस्थ मनुष्य मैत्र, चमायुक्त, सत्यधर्म्म, परायण, स्वाध्यायशील केशश्मश्रुधारी, होमकारी, पवित्र, देहधारी, दच, वननिरत, समाहित चित्त और जितेन्द्रिय ऐसे गुणोंसे युक्त होनेसे स्वर्गकी जय किया करते हैं। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ पुरु षोंके बीच जो लोग मोचमार्ग अवलम्बन कर-नेकी इच्छा करें, वे उत्तम वृत्ति अवलम्बन करें। सब भूतोंके सुखदायक, मैत्र सब इन्द्रि-योंको दमन करनेवाले मननशील मनुष्य सब भूतोंको अभय प्रदान करके नैष्कर्म्माचरण करें। भिचुक मनुष्य अग्निहोत्रीय अग्नि प्रज्ज लित करके होमकार्य्यको पूरा करके धूमरहित तथा जनपदोंके भोजनकार्य्य सिद्ध होनेपर यथ चित असङ्कृप्त तथा अनिच्छा प्राप्त भोजन यथ भिचारूपसे ग्रहण करे। मोचवित् मनुष्य यदा वक्स्मात सम्पन्न होनेपर भिचा प्राप्तिमें अभि इच्छा करे और लाभसे हृष्ट तथा अलाभसे असन्तुष्ट न होवे। जीवनयात्रा निभानेकी इच्छा करनेवाले भिचुक समाहित होकर समयकी उपेचा करते हुए भिचामांगनेमें प्रवृत्त होवे परन्तु साधारण लाभ ग्रहण करनेकी इच्छा न

करे और किसी पुरुषके द्वारा समादृत होकर भोजन न करे; क्योंकि भिक्षुक समादरके सहित भिक्षा पानेसे निन्दाभाजन हुआ करते हैं। भिक्षुक तीता, कडुआ और कसैला खाद्य भोजन करे, मधुर रसयुक्त भोज्य वस्तुओंका स्वाद न लेकर केवल प्राणधारणके निमित्त भोजन करे। मोक्षवित् पुरुष प्राणियोंको रुद्ध न करके वृत्तिलाभकी इच्छा करे और भिक्षामें प्रवृत्त होकर दूसरेके अन्नकी कदापि अभिलाष न करे, भिक्षुक किसी प्रकार धर्म्म नष्ट न करे, रजोगुणसे रहित होकर मुक्तिमार्गमें विचरे, आश्रमके निमित्त सूना स्थान, अरण्य, वृक्षमूल, नदी और पर्व्वतकी गुफा अवलम्बन करे। ग्रीष्मकालमें ग्राममें एक रात्रि वास करे, वर्षाकाल उपस्थित होनेपर एकत्रवास करे; सूर्य्यके उदित होनेसे मार्ग प्रकाशित होनेपर कीटकी भांति पृथ्वीपर विचरण करे। प्राणियोंके विषयमें दया प्रकाशित करके तथा समस्त पर्य्यवेक्षण करते हुए पृथ्वीपर पर्य्यटन करे, किसी वस्तुको सञ्चय न करे और स्नेहवाससे रहित होवे। मोक्षवित् पुरुष सदा पवित्र जलसे कार्य्य करे और सदा उद्धृत जलसे आचमन करे। पुरुष इन्द्रियनिग्रह पूर्व्वक अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, दम और अपिशुनता, इन आठ प्रकारके व्रतोंमें नियुक्त रहके सदा पाप, शठता और कुटिलता रहित व्रताचरण करे। ग्राममें आके निस्पृह होकर भोज्य वस्तु मांगे और केवल प्राणयात्रा निभानेकेलिये भोजन करे। धर्म्मसे प्राप्त हुई वस्तु भोग करे, कदापि कामके अनुवर्त्ती न होवे और ग्रासाच्छादनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको कदापि ग्रहण न करे तथा दूसरोंके निकट प्रतिग्रह वा दूसरेको दान न करे, प्राणिगण दीनतासे सबका विभाग करके जो दान करे, पण्डित पुरुष आयाचित होकर उस परस्वको ग्रहण न करे, कार्य्यवान् मनुष्य किसी विषयको एक बार भोग करके फिर उसमें स्पृहा न करे, उपस्थित मृत्तिका, जल, अन्न, पत्र पुष्प और फल, यह सब अनावृत्त रहनेपर ग्रहण करे, आवृत्त होनेपर ग्रहण न करे। शिल्पवृत्तिके द्वारा जीविका निर्व्वाह न करे, सुवर्णकी कामना न करे, किसीका उपदेष्टा वा द्वेष्टा न होवे; केवल श्रद्धारादिसे रहित होकर निवास करे। आयाचित वृत्ति अवलम्बन करके सब विषयोंमें अनासक्त होकर श्रद्धापूत वस्तुओंको भोजन करे, समस्त निमित्त वर्ज्जित होवे और प्राणियोंसे अज्ञात रूपसे निवास करे। आशिर्व्वादयुक्त तथा हिंसायुक्त कर्म्म तथा लोकसंग्रह न करे, न दूसरेसे द्वारा करावे। सब भावोंको अतिक्रम करके दण्ड कमण्डलु प्रभृति भिक्षुकोंकी उपासना सामग्रियोंको अल्प परिमाणसे ग्रहण करके परिभ्रमण करे और समस्त चराचर प्राणियोंके विषयमें समदर्शी होवे।

जो लोग दूसरोंको उद्वेगयुक्त नहीं करते और स्वयं किसीके निकट उद्विग्न न होकर सबके विश्वासपात्र होते हैं, वेही उत्तम मोक्षवित् कहके वर्णित हुआ करते हैं। वैसे मोक्षवित् मनुष्य कालाकांक्षी और समाहित होकर अनागत तथा अतीत विषयोंका अनुध्यान न करे और वर्त्तमान विषयमें उपेक्षा करे। नेत्र, मन और वचनके द्वारा किसी प्रकार दोष न करे और प्रत्यक्ष वा परोक्ष किसी दुष्ट विषयका आचरण न करे। सर्व्वतत्त्वज्ञ भिक्षुक मनुष्य अङ्गसङ्कोच करनेवाले कूर्म्मकी भांति इन्द्रियोंको सङ्कुचित करते हुए इन्द्रिय, मन तथा बुद्धिको क्षीण करके निरीह निर्द्वन्द्व, निर्नमस्कार, निःस्वाहाकार, निर्म्मम, निरहङ्कार, निर्विकार, निर्योगक्षेम, निराशी, निर्गुण निरासक्त, निराश्रय, आत्मवान्, शान्त, आत्मसङ्गी तथा तत्त्वज्ञ होनेसे निश्चय मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग हाथ, पाव, पीठ, शिर उदरसे गुण तथा कर्म्मविहीन, निर्म्मल, अद्वितीय, अविनाशी, गन्ध रस

स्पर्श रूप और शब्द रहित अनुगम्य, अनासक्त, अमांस, निश्चिन्त, अव्यय, दिव्य गृहस्थ तथा सर्व्वभूतस्थ उस आत्माका दर्शन करते हैं। वे मृत नहीं होते उस आत्मामें बुद्धि, इन्द्रिय, देवता, वेद, यज्ञ, तपस्या, व्रत तथा सब लोक गमन नहीं कर सकते। ज्ञानियोंको दण्ड कमण्डल प्रभृति चिन्ह धारण करना अनुचित होनेसे अलिङ्ग धर्म्मज्ञ मनुष्य धर्म्मतत्त्वाचरण करे। गृहधर्म्माश्रित विद्वान् मनुष्य विज्ञान चरित विषय आचरण करे और अमूढ़ होकर मूढ़रूपसे दूषित न करके धर्म्माचरण करे। फिर मानो भिक्षुक सदा धर्म्मकी निन्दा करने वाली वृत्तिको अवलम्बन करके भी साधुओंके धर्म्मकी निन्दा न करके धर्म्माचरण करे। जो लोग ऐसी वृत्तिसे युक्त होते हैं, वेही उत्तम मुनि कहके वर्णित हुआ करते हैं। वे मुनि इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, पञ्च महाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार अव्यक्त और पुरुष, इन सबकी प्रकृष्टरूपसे संख्या करके सब तत्त्वोंका यथावत् निश्चय करें। तत्त्ववित् पुरुष इन सब तत्त्वोंकी परिसंख्या करनेसे सब बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वर्ग लाभ करते हैं। अनन्तर निर्ज्जन स्थान अवलम्बन करके ध्यान करनेसे आकाशगामी वायुकी भांति निराश्रय तथा सर्व्वसङ्गसे निर्म्मुक्त होकर मुक्त होते और क्षीणकोष तथा निरातङ्क होकर परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं।

४६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, निश्चितवादी वृद्ध लोग सन्न्यासको तपस्या कहा करते हैं और ब्रह्मयोनिस्थ ब्राह्मणगण ज्ञानको परब्रह्म बोध करते हैं। रजोगुणसे रहित, निर्म्मलचित्त पवित्र स्वभाव वाले धीरगण ज्ञान तथा तपस्यासे अत्यन्त दुराराध्य वेदविद्याके सहारे निर्द्वन्द्व निर्गुण नित्य अचिन्त्य गुणवाले उस अनुत्तम परब्रह्मका दर्शन किया करते हैं। सन्न्यासमें रत ब्रह्मवित् पुरुष तपस्याके सहारे परमेश्वरके मङ्गलमय पथमें गमन किया करते हैं। पण्डित लोग तपस्याको प्रदीप और आचारको धर्म्मसाधक कहा करते हैं, परन्तु सन्न्यासको उत्तमतपस्या और ज्ञानको सबसे उत्कृष्ट जानना चाहिये। जो पुरुष सब तत्त्वोंका निश्चय करते हुए बाधारहित ज्ञानस्वरूप सर्व्वभूतस्थ परमात्माको जान सकता है, वह सर्व्वत्रगामी हुआ करता है। जो विद्वान् मनुष्य आत्माका सहवास, निवास, एकत्व और अनेकत्व अवलोकन करता है, वह दुःखोंसे मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है। जो मनुष्य इस लोकमें विद्यमान रहके किसी विषयकी कामना अथवा किसीकी अवज्ञा नहीं करता, वह ब्रह्मत्व लाभ करता है। जो मनुष्य विधि, गुण, तत्त्व तथा सर्व्वभूतोंके प्रधानको जानके अहङ्कार वा ममताविहीन होता है, वह निश्चय ही मुक्त हुआ करता है। निर्द्वन्द्व, निर्नमस्कार, निःस्वधाकार पुरुष प्रमगुणके द्वारा सब विषयों तथा सत्य मिथ्या, इन दोनोंको परित्याग करनेसे अवश्य ही मुक्ति लाभ कर सकता है। अव्यक्त जिसका मूल, बुद्धि महास्कन्ध, अहङ्कार दल, इन्द्रियें जिसके अङ्कुर वा कोटर हैं, महाभूत जिसका विस्तार विशेष, यतिवृन्द जिसको शाखा हैं, सदा पत्र पुष्प और शुभाशुभरूपी फलोदययुक्त वह सनातन ब्रह्मवृक्ष सब भूतोंका आजीव्य है। ज्ञानवान मनुष्य तत्त्वज्ञानरूपी तलवारके द्वारा ऐसे ब्रह्मवृक्षको छेदन तथा भेदकर जन्म मृत्यु, जरा तथा उदययुक्त सङ्गमय पाशोंको छेदन करते हुए निर्म्मम और निरहङ्कारी होकर निश्चय मुक्त हुआ करते हैं। जीव और ईश्वर, ये दो पक्षी नित्य, सखा वा अचेतन हैं, इससे जो पर है, वह चेतनावान कहके वर्णित होता है। अचेतनकी भांति अर्द्धलिङ्गगम्य जो जीव प्राणि संख्यासे विमुक्त होकर बुद्धिके अतीत वस्तु चेतनायुक्त करता है, वह क्षेत्रज्ञ नामक ...

रात्मा ही समस्त बुद्धिका साक्षी है; वह गुणोंसे युक्ति होनेपर सब दोषोंसे दूषित होता और गुणातिग होनेपर सब पापोंसे मुक्त हुआ करता है।

४७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, कितने ही मनुष्य वृक्ष और वनरूपी जगत्को ब्रह्ममय कहके निर्द्देश करते हैं, कोई ब्रह्मको अव्यक्त निर्व्विकार परमात्मा कहते हैं और कोई कोई प्रकृतिको इस समस्त जगत्की उत्पत्ति और लयका कारण कहा करते हैं। जो पुरुष मृत्युकालमें निश्वास पतनकाल मात्र समदर्शी होते, वह हृदयके बीच परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ किया करते हैं। यदि केवल निमिष कालमात्र देहके बीच आत्माको संयत कर सकें, तो उसे परमात्माकी कृपासे पण्डितोंकी अक्षय परम गति प्राप्त हुआ करती है। यदि कोई दश वा बारह बार प्राणायाम करते हुए प्राणको बार बार संयत करनेमें समर्थ हो, तो वह चौबीस तत्त्वों तथा अव्यक्तातीत पञ्चविंश पुरुषको प्राप्त हुआ करता है; इस ही प्रकार पुरुष प्रथम प्रसन्न होकर जो कुछ अभिलाष करे, उसे ही प्राप्त कर सकेगा, परन्तु जब अव्यक्त लाभके अनन्तर पुरुषमें सत्त्वगुण उदित होगा, तब वह अमृतत्त्व लाभ करेगा।

हे द्विजसत्तमगण! मोक्षवित् पण्डित लोग सत्त्वके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी अत्यन्त उत्कृष्ट कहके प्रशंसा नहीं करते, मैं भी अनुमानसे पुरुषको सत्त्वगुणका अवलम्ब जानता हूं, क्यों कि जो पुरुष सतोगुणावलम्बी न होता, जो उसे कोई न जान सकता। क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग और सन्न्यास, इन सबको सात्त्विकवृत्ति जानो; इन वृत्तियोंके विशेष रीतिसे विदित होनेपर पुरुषको जाना जा सकता है। मनीषिगण इस ही प्रकार अनुमानके द्वारा सत्त्व तथा पुरुषमें अभेद बोध करते हैं, उसमें और विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञानसिद्ध कोई कोई पण्डित ऐसा कहा करते हैं, कि सत्त्व और क्षेत्रज्ञ पुरुषका ऐक्य युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता। पुरुषसे जो सत्त्व पृथक् है, इसमें विचार नहीं करना पड़ता, वरन समुद्रकी तरङ्गसमान सत्त्व और पुरुषका पृथक् भाव स्वभाविक जानो। इस विषयमें पण्डित लोग ऐसी युक्ति दिया करते हैं, कि जैसे मशक और उडुम्बरका ऐक्य तथा पार्थक्य दीखता है, वैसे ही सत्त्व तथा पुरुषका एकत्व और अनेकत्व जानना चाहिये। और जिस प्रकार मछली तथा जलका पार्थक्य है, तथा जैसे पद्मपत्र और जलको बूंदका सम्बन्ध है, सत्त्व और पुरुषका वैसा ही पार्थक्य तथा सम्बन्ध जानो।

गुरु बोला, जब लोक पितामह ब्रह्माने उन मुनिसत्तम विप्रोंसे ऐसा कहा, तब वे लोग फिर संशययुक्त होकर उनसे पूछने लगे।

४८ अध्याय समाप्त।

ऋषिगण बोले, हे ब्रह्मन्! सब धर्म्मोंके बीच कौन धर्म्म एकान्त अनुष्ठेय है? क्यों कि हम लोग धर्म्मको विविधगतिको व्याहतरूपसे देखते हैं। कोई कोई नास्तिक कहते हैं, कि देहनाश होनेपर भी आत्मा निवास करता है, लोकायत गण देहान्त होनेपर उसका अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करते; कोई कोई उस विषयमें संशय और कोई निश्चय किया करते हैं। मीमांसक लोग आत्माको नित्य, तार्किक लोग अनित्य शून्यवादीगण अस्ति सौगत लोग नास्ति कहा करते, योगाचारी लोग एकरूप और द्विरूप, उडुलोमा अनेक रूप अर्थात् भिन्न वा अभिन्न कहा करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग एकमात्र ब्रह्मको विद्यमान समझते हैं; सगुण ब्रह्मोपासक मनुष्यगण ब्रह्मको

पृथक् पृथक् ज्ञान करते हैं, परमाणुवादी लोग ब्रह्मका अनेकत्व स्वीकार किया करते हैं और ज्योतिर्व्विद लोग देशकाल दोनोंको ब्रह्म कहते हैं, वृद्ध लोग स्वप्नराज्यका मिथ्या चिद्विलास-स्वरूप कहा करते हैं।

कितने ही लोग जटाजिनधारी होकर ब्रह्मकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कोई मुण्डित तथा असंवृत होते हैं, कोई स्नान करके और कोई बिना स्नानके ही उपासनामें प्रवृत्त हुआ करते है। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग पवित्र आचारकी उपासना किया करते हैं। कोई कोई भोजन करके उपासनामें प्रवृत्त होते और कोई निराहारी रहके ही उपासना किया करते हैं। कोई कोई धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे मनुष्य शान्तिकी प्रशंसा किया करते हैं। कोई देश तथा काल, कोई मोक्ष, कोई पृथग्विध भोगोंकी प्रशंसा करते हैं, कोई उपास्यके साधन धनको इच्छा करते, दूसरे लोग निधनत्वकी अभिलाष करते हैं और कोई पुरुष कुछ भी इच्छा नहीं करते। कोई कोई अहिंसामें रत, कोई हिंसापरायण होते हैं, कोई पुण्य और यशके निमित्त यत्न करते हैं, कोई यश और पुण्य कुछ भी स्वीकार नहीं करते। कोई कोई सद्भावमें रत, कोई संशयमें स्थित होते हैं, कोई सुखके निमित्त और कोई दुःखके निमित्त ध्यान किया करते हैं। कोई कोई विप्र यज्ञ, कोई दान, कोई तपस्या और कोई स्वाध्यायकी प्रशंसा किया करते हैं। कोई ज्ञान, कोई सन्न्यास और वस्तु तत्त्व-विचारक कोई कोई पण्डित स्वभावकी प्रशंसा करते हैं, कोई सबकी कोई कोई एक विषयोंकी प्रशंसा किया करते हैं।

हे सुरसत्तम! इस ही प्रकार धर्म्म व्युत्थापित और अनेक प्रकारसे प्रबोधित होनेपर हम लोग अज्ञानपूर्व्वक उसका निश्चय नहीं कर सकते हैं। लोगोंके बीच कोई यह कल्याणकारी है, कोई यही श्रेय है, ऐसा ही बोध करके जिसकी जिस धर्म्ममें प्रवृत्ति होती है वह सदा उसकी ही पूजा किया करता है। इसहीसे हम लोगोंकी बुद्धि विचलित तथा मन अनेक विषयोंमें दौड़ता है। हे सत्तम! इसलिये कल्याण क्या है? उसे आप हमलोगोंसे कहिये, हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। इसके अनन्तर जो गुह्य है, उसे और सत्त्व तथा क्षेत्रज्ञका किस कारणसे सम्बन्ध होता है, वह आपको कहना होगा। धर्म्मात्मा बुद्धिमान् लोकभावन ब्रह्मा ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके उन लोगोंसे यथार्थ रीतिसे कहने लगे।

४६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे सत्तमगण! तुम लोगोंने मुझसे जो विषय पूछा है; गुरु उपयुक्त शिष्यके समीप जिस विषयको कहा करता है; वही विषय मैं तुम लोगोंसे कहता हूं, सावधान होके सुनो। तुम लोग मेरे समीप उन विषयोंको सुनकर पूरी रीतिसे निश्चय करो। अहिंसा ही सब प्राणियोंके विषयमें श्रेष्ठ कर्म्म है; यह साधुसम्मत तथा धर्म्मका वरिष्ठ लक्षण है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। निश्चितदर्शी वृद्धगण ज्ञानको मोक्ष कहते हैं, इसही निमित्त प्राणिवृन्द केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त होसकते हैं और जो लोग हिंसापरायण, नास्तिक धर्म्मावलम्बी तथा लोग लोभ, मोहके वशवर्त्ती हैं; वे नरकगामी हुआ करते हैं। परन्तु जो सब मनुष्य अतन्द्रित होकर आशीर्युक्त समस्त कर्म्म करते हैं, वे इस लोकमें बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए प्रमुदित हुआ करते हैं। जो सब विपश्चितगण श्रद्धापूर्व्वक धर्म्म कर्म्म करते हैं, वे साधुदर्शी पुरुष आशियोंसे संयुक्त नहीं होते। हे सत्तमगण! सत्त्व और क्षेत्रज्ञका जिस प्रकार संयोग तथा वियोग होता है, इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे वह

विषय कहता हूं तुम लोग सावधान होकर सुनो। इस स्थलमें विषय और विषयीभाव सम्बन्ध कहा गया है, उसके बीच सत्वको विषय और पुरुषको विषयी जानो। जैसे पहले मशक तथा उडुम्बरका भोज्य भोक्तृभाव सम्बन्ध कहा गया है, वैसे ही इस स्थलमें भी सत्व और पुरुषका भोग्यभोक्तृभाव सम्बन्ध वर्णित होता है। अचेतन सत्वभोक्ता पुरुषके द्वारा भुज्यमान होकर अपनेको नहीं जान सकता, परन्तु भोक्ता पुरुष मशककी भांति भुज्यमान सत्त्व तथा अपनेको जान सकता है। मनीषिगण सत्त्वको सर्व्वदा सुख दुःखादि द्वन्द्व समायुक्त कहते हैं और पुरुषको नित्य, निर्द्वन्द्व, निष्कल, निर्गुणात्मक ब्रह्म कहा करते हैं। सर्व्वत्र विद्यमान असङ्ग अधिष्ठानभूत वह परम पुरुष पद्मास्तभूत सलके ससंचलको प्राप्त होकर सलिल उपभोगी कमलके पत्रकी भांति वह सदा सत्त्वको उपभोग किया करता है। विद्वान् पुरुष सब भांतिसे गुणोंके द्वारा व्यतिषक्त होनेपर भी पद्मिनीपत्र संस्थित चञ्चल जलबिन्दुकी भांति उसमें लिप्त नहीं होते; इसलिये पुरुषके असङ्ग होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा निश्चय है, कि सत्त्व पुरुषका द्रव्यमात्र है, सत्त्व और पुरुष, दोनों मिलकर द्रव्यमात्र हुआ करते हैं, कर्त्ता और द्रव्यका जैसा सम्बन्ध है, सत्त्व तथा पुरुषका वैसाही सम्बन्ध जानो। जैसे कोई पुरुष दीपक लेकर अन्धकारके बीच गमन करता है, वैसेही परमपदके अभिलाषी मनुष्य सत्त्वरूपी प्रदीपके द्वारा प्रकाश करते हुए गमन किया करते हैं। जबतक तेल और बत्ती विद्यमान रहती है तबतक दीपक जलता है, परन्तु तेल और बत्तीके क्षीण होनेपर ज्योति अन्तर्हित होजाती है। जैसे प्रदीप तेल और बत्तीसे युक्त होकर गृह, आकाश तथा अपनेको प्रकाशित करता है और तेल तथा बत्तीके क्षीण होनेपर स्वयं अन्तर्हित होता है, वैसे सत्त्वगुण कर्म्मके द्वारा चरम-वृत्तिरूपसे अभिव्यक्त होकर पुरुष तथा अपनेको पृथक्‌रूपसे प्रकाशित करता है और कर्म्म शेष होनेपर स्वयं अन्तर्हित हुआ करता है; परन्तु पुरुष अव्यक्त भावसे निवास करता है। हे विप्रगण! यह विषय तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं औरभी तुम लोगोंसे अन्यप्रकार कहता हूं, सुनो। दुर्मेधा मनुष्य सहस्रवार उपदिष्ट होनेपर भी नहीं समझ सकता, परन्तु बुद्धिमान मनुष्य चौथीवार उपदिष्ट होनेसेही उस विषयको हृदयङ्गम करके सुख अनुभव किया करता है। इसही प्रकार उपायके द्वारा धर्म्मका साधन विशेष रीतिसे मालूम करे, क्योंकि उपायज्ञ मेधावी मनुष्य ही अत्यन्त सुख भोग किया करता है। जैसे पाथेय विहीन प्रसन्नचित्त मनुष्य महत्कष्टसे मार्गमें गमन करता है और बीचमें विनष्ट भी होता है उसही प्रकार जानना चाहिये, कि ज्ञानके साधनभूत कर्म्मसे फल उत्पन्न होते तथा विनष्ट होते हैं। परन्तु पुरुषका चित्त स्थित कल्याण विषयमें शुभाशुभ दृष्टान्त है, अर्थात् पुरुषका बहुतसा पुण्य सञ्चय होनेपर सम्पूर्ण योग लाभ होता है और अल्प पुण्य सञ्चय होनेसे मृत्यु-लाभ हुआ करता है। तत्त्व दर्शनसे हीन मनुष्य अदृष्टके अनुसार पैरके सहारे जिस दीर्घ-पथमें गमन करता है, तत्त्वदर्शी पुरुष शीघ्र-गामी रथके द्वारा उस पथमें गमन किया करते हैं, इसलिये बुद्धिमानोंकी ऐसीही गति जाननी चाहिये। पुरुष पर्व्वतके ऊपर चढ़के भूतकालको न देखे अर्थात् परमपद प्राप्त होनेपर शास्त्र तथा उसके विहित कर्म्मको परित्याग करे। विद्वान मनुष्य कर्म्मसे क्लेशित आत्माको अवलोकन करते हुए जबतक कर्म्म नष्ट न हों, तबतक कर्म्म मार्गमें ही गमन करे; परन्तु कर्म्म नष्ट होनेपर उस कर्म्म मार्गको परित्याग करके ज्ञानपथमें गमन करे। तत्वयोग विधानवित गुणज्ञ मेधावी मनुष्य इस ही प्रकार सन्न्यासान्-

मसे धीरे धीरे उत्तरोत्तर अर्थात् हंस परमहंस आश्रमको पूर्व्व रीतिसे आलम्ब करके गमन करें। नौकारहित पुरुष मोहके वशमें होकर महाघोर समुद्र पार होनेके निमित्त बाहुसे तैरते हुए थककर निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होता है; परन्तु विभागवित प्राज्ञ पुरुष आरत्रयुक्त नौकाके सहारे जलमें गमन करते हुए अनायास शीघ्रही ह्रदसे पार हुआ करता है। मैंने जिस प्रकार पहले रथी और पदातिका वृत्तान्त कहा है, वैसे ही ममतारहित मनुष्य ह्रदसे पार होकर नौका परित्यागके किनारे गमन करे। जैसे नाववाला कैवर्त्त स्नेहके वशमें मूढ़ होकर नौकामें ही परिभ्रमण करता है, वैसे ही पुरुष ध्यानयोग प्राप्त न कर सकनेसे ममतासे मूढ़ होकर उस गुरुके निकटमें ही परिभ्रमण किया करता है। जैसे पुरुष नौकामें चढ़के स्थलके बीच भ्रमण नहीं कर सकता; वैसे ही रथपर चढ़के जलके बीच विचरनेमें समर्थ नहीं होता। इसही प्रकार कर्म्मकृत फलको अनेक रूप तथा आश्रमस्थ फलको पृथक् पृथक् जानो, इसलोकमें जिस प्रकार कर्म्म अनुष्ठित होता है, उस ही प्रकार फल प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो गन्ध, रस, रूप स्पर्श और शब्दयुक्त नहीं है, विद्वान् मुनिगण उसे प्रधान कहा करते हैं। वही प्रधान अव्यक्त है, उस अव्यक्त प्रधानका गुण महान् है, उस महत् है; उस महत्‌रूपी प्रधान भूतका गुण अहङ्कार है। अहङ्कारसे आकाश आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए हैं, शब्दादि प्रत्येक विषय पञ्चमहाभूतोंसे गुण कहके वर्णित हुए हैं; उस अव्यक्तको बीजधर्म्मा अर्थात सृष्टिका कारण तथा प्रसवात्मक अर्थात् कार्य्यरूपी जानो। हमने ऐसा सुना है, कि महात्मा महान्, अहङ्कार तथा पंचमहाभूत, ये सभी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहके वर्णित हुए हैं। पण्डित लोग शब्दादि विषयोंको भी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहा करते हैं; चित्त उनका व्यावर्त्तक होता है। उन पंच महाभूतोंके बीच आकाशमें एक गुण, वायुमें दो गुण, अग्निमें तीन गुण जलमें चार गुण और सर्व्वभूतकारी शुभाशुभ निदर्शनी चराचरोंसे परिपूरित पृथिवी पंच गुणयुक्त कहके वर्णित हुई है।

हे द्विजगण! शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध इन पांचोंको पृथिवीका गुण जानो। गन्ध पार्थिव गुण है, वह गन्ध अनेक प्रकारसे वर्णित हुआ है; उस गन्धके सब गुणोंको विस्तारपूर्व्वक तुम लोगोंसे कहता हूं। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रूक्ष और विषद, यह दश प्रकार पार्थिव गन्ध जानो, शब्द, स्पर्श, रूप और द्रव्य, ये सब जलके गुण कहे गये हैं, परन्तु रस अनेक प्रकारका कहा गया है, रसज्ञान विस्तारपूर्व्वक कहता हूं। मीठा, खट्टा, कड़वा, तीता, कषैला और खारा ये छः प्रकार रसके विस्तार हैं, ये जलमय कहके वर्णित हुए हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनो अग्निके गुण कहे गये हैं। अग्निका गुण रूप अनेक प्रकारका है। सफेद, कृष्ण, लाल, नीला, पीला, अरुण, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चौकोन और गोलाकार ये बारह प्रकारके अग्निके रूप वर्णित हुए हैं। इसही प्रकार शब्द और स्पर्श ये सब सत्यवादी ब्राह्मणोंके द्वारा विशेष रीतिसे विज्ञात हुए हैं। वायुमें दो गुण है, वायुका गुण स्पर्शके कई भेद वर्णित हुए हैं। रूखा, शीतल, उष्ण, स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, दारुण, मृदु और विस्तार, ये बारह प्रकार वायुके गुण हैं, इन्हें तत्त्वदर्शी धर्म्मज्ञ सिद्ध ब्राह्मणगण विधिपूर्व्वक जानते हैं।

इसके अतिरिक्त हमने ऐसा सुना है, कि उन भूतोंके बीच आकाशमें भी एक गुण शब्द वर्णित हुआ है, उस शब्दके कई गुणोंको विस्तार

पूर्व्वक कहता हूं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, निषाद, धैवत, इष्ट और विभाग विशिष्ट सहित ये दश प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूतोंके बीच आकाश उत्तम है, आकाशसे उत्तम अहङ्कार ; अहङ्कारसे श्रेष्ठ बुद्धि उससे श्रेष्ठ आत्मा, आत्मासे श्रेष्ठ अव्यक्त और अव्यक्तसे पुरुषको श्रेष्ठ जानो। जो लोग सब भूतोंके परापर तथा सब कर्म्मोंकी विधिको विशेष रीतिसे जानते हैं, वे सब भूतोंके आत्मभूत आत्मास्वरूप होकर अव्यय परमात्माको प्राप्त हुआ करते हैं।

५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, मन पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति स्थिति और विनाशके विषयमें प्रभु होता है। मन पञ्चभूत तथा महतका अधिष्ठाता है, बुद्धि मनका ऐश्वर्य्य कहके वर्णित हुई है, वह मन ही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। जैसे सारथी उत्तम घोड़ोंको नियोग करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको नियोग किया करता है और इन्द्रियें बुद्धिको सर्व्वदा क्षेत्रज्ञसे युक्त करती है। भूतात्मा शरीराभिमानी जीव महत और इन्द्रिय रूपी घोड़े तथा बुद्धिरूपी सारथीयुक्त रथमें चढ़के सर्व्वत्र भ्रमण करता है। जिसमें वशीभूत इन्द्रियग्राम अश्वरूपसे नियुक्त, मन सारथी और बुद्धि प्रतोदस्वरूप है, उस ब्रह्मके विकारभूत शरीरको महारथ जानना चाहिये। जो ध्यानशील विद्वान् मनुष्य इस ब्रह्ममय रथको विशेष रीतिसे जानता है, वह प्राणियोंके बीच कदापि मोहित नहीं होता। आदिभूत अव्यक्त और शेषस्वरूप विशेषयुक्त स्थावर तथा जङ्गममय, चन्द्रमा और सूर्य्यकी प्रभासे प्रकाशित, ग्रह तथा नक्षत्रमण्डलसे मण्डित, नदी और पर्व्वतोंसे परिभूषित, जलके द्वारा विविध रूपसे समलंकृत, सर्व्वभूतोंके आजीवभूत तथा सब प्राणियोंकी गतिस्वरूप परब्रह्म सदा विराजित है, उसमें ही क्षेत्रज्ञ विचरण किया करता है। इसलोकमें जो सब स्थावर और जङ्गम प्रभृति सत्व हैं, पहले वेही सब लीन होते हैं, फिर सूक्ष्म शरीरात्मक पञ्चमहाभूत तिसके अनन्तर भूतोंके सब शब्दादि गुण लीन हुआ करते हैं ; येही दो शरीररूपी भूतसमुच्चय जानो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व्व, पिशाच, असुर और राक्षस, ये सब स्वभावसे उत्पन्न होते हैं, क्रिया वा कारणसे उत्पन्न नहीं होते। हे विप्रगण! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठके यथा समयमें उसहीमें लीन होती है, वैसे ही ये विश्वस्रष्टा मरीच्यादि प्रजापतिगण पञ्च महाभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन हुआ करते है। परन्तु विश्वस्रष्टा भूतोंके लय होनेपर पञ्च महाभूत विद्यमान रहते हैं, पुरुष उन्हीं भूतोंसे मुक्त होनेसे परम गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रभु प्रजापतिने इच्छा मात्रसे ही इस समस्त जगत्की सृष्टि की है, ऋषियोंने तपस्याके द्वारा देवत्व लाभ किया है। फल-मूल भोजन करनेवाले सिद्ध मुनिगण साधनके अनुसार तपस्यासे समाहित होकर त्रैलोक्यदर्शन करते हैं, रोगनाशक औषधी तथा अनेक विद्या तपस्याके द्वारा सिद्ध होती है, क्यों कि तपस्याकोही साधनका मूल जानो। जो दुष्प्राप्य इन्द्रपदादि, दुराम्नाय वेदादि, दुराधर्ष व्याघ्र आदि और प्रलयादि दुरत्यय है, वे सब तपस्यासे सिद्ध हुआ करते हैं; इसलिये तपस्या दुरतिक्रमणीय है। जो लोग सुरा पीनेवाले, ब्रह्महत्यारे, स्तेयी, भ्रूणहत्यारे तथा गुरुतल्पगामी हैं वे भी सुतप्त तपस्याके द्वारा उन सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। मनुष्य सदा तपस्यापरायण होनेसे उस तपोबलसे ही सिद्ध होता है। महामायाविशिष्ट देवताओंने उस तपोबलसे ही स्वर्गमें गमन किया है।

जो लोग अतन्द्रित होकर आशीयुक्त कर्म्म करते हैं, वे अहङ्कार समायुक्त होकर प्रजापतिके निकट निवास करते हैं। जो सब महा

केवल ध्यानयोग करते हैं, वे ममतारहित तथा निरहङ्कारी होकर उत्तम महत लोक पाते हैं, प्रसन्नचित्त उत्तम आत्मवित पुरुष ध्यानयोग पर्य्याप्त होनेसे सदा लौकिक प्रकृतिमें प्रविष्ट हुआ करते हैं। ममतारहित निरहङ्कारी मनुष्य ध्यानयोगसे निवृत्त होनेपर इसलोकमें अव्यक्तमें प्रवेश करते हुए उत्तम महत् लोक पाते हैं; प्राणिवृन्द प्रकृतिसे उत्पन्न होके फिर प्रकृति संज्ञा लाभ करते हैं। जो पुरुष रज और तमोगुणसे निर्म्मुक्त होता है, वह केवल सतोगुण अवलम्बन करते हुए सब पापोंसे रहित होकर समस्त जगत्‌को उत्पन्न करता है; उसे ही निष्कल क्षेत्रज्ञ ईश्वर जानो। उसे जो पुरुष जान सकता है, वही वेद जाननेमें समर्थ होता है। मननशील मनसे संपूर्ण ज्ञानको लाभ करते हुए सदा संयत होके रहे, और जो चित्त है, उसे ही मन कहते हैं, इस मनके वशीभूत होनेपर इसेही सनातन ईश्वर जानना चाहिये; अव्यक्तादि विशेषान्त अविद्याके लक्षण कहके वर्णित हुए हैं; तुम लोग गुणके द्वारा इन लक्षणोंको विशेष रीतिसे मालूम करो। "मम" ये दो अक्षर मृत्यु और "न मम,"—इन तीन अक्षरोंको शाश्वत ब्रह्म जानो, मन्दबुद्धि-रत कोई कोई मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा करते हैं जो महात्मा ज्ञानवृद्ध हैं, वे कर्म्मकी निन्दा किया करते हैं। पञ्चमहाभूत और एकादश विकार, यह षोड़षात्मक जीव कर्म्मके द्वारा मूर्त्तिमान होकर जन्म ग्रहण किया करता है। विद्या जो उस षोड़षात्मक पुरुषको ग्रास करती है, उसे ही अमृताशियोंका उपादेय ग्राह्यविषय जानो। इसही निमित्त पारदर्शी पुरुष कर्म्मसे प्रीति न करें; यह पुरुष विद्यामय है, कर्म्ममय नहीं है; जो लोग इस ही प्रकार उस अमृत, नित्य, अग्राह्य परमश्रेष्ठा अविनाशी जितचित्त और असङ्ग पुरुषको जानते हैं। वे अमर हुआ करते हैं। जो मनुष्य अपूर्व्व, अकृत्रिम, नित्य अपराजित आत्माको प्राप्त कर सकता है, वह इन सब कारणोंसे ही निश्चय अग्राह्य और अमृत हुआ करता है। जो पुरुष चित्तके मैत्रादि संस्कारोंको दृढ़ करते हुए हृदयपुण्डरीकमें चित्तको निरोध कर सकता है, वही उस सर्व्वाधिक शुभङ्कर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होता है, चित्त प्रसन्न रहनेसे पुरुष शान्ति लाभ कर सकता है; स्वप्न दर्शन चित्त-प्रसादका लक्षण जानो। ज्ञानसिद्ध मुक्त पुरुषोंकी गति इस ही प्रकार जाननी चाहिये; योगिगण परिणामज प्रवृत्तियोंका दर्शन किया करते हैं; संसारसे विरत प्राणियोंकी ऐसी गति और यह सनातन धर्म्म, ज्ञानवान् पुरुषोंकी प्राप्ति तथा अनिन्दित वृत्तियोंको इस ही प्रकार जानना योग्य है। सर्व्वभूतोंमें समनिःस्पृह, निराशिष और सर्व्वत्र समदर्शी मनुष्य निज शक्तिके अनुसार इसगतिको प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु बोला, उन महात्मा मुनियोंने गुरु ब्रह्माका ऐसा बचन सुनके इस ही प्रकार आचरण करके उत्तम लोकोंको पाया था। हे महाभाग! मैंने यह सब तुमसे ब्रह्माका बचन यथार्थ रीतिसे कहा है। हे शुद्धात्मन्! तुमभी इसकापूरी रीतिसे आचरण करनेसे सिद्धिलाभ कर सकोगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुन्तीनन्दन! उस समय जब गुरुने शिष्यसे उस ही प्रकार अनुत्तम धर्म्म कहा, तब शिष्यने उन सब धर्म्मोंका पूरी रीतिसे आचरण करके मुक्ति लाभ किया। हे कुरुकुलोद्वह! जिस स्थानमें जानेसे पुरुष शोक नहीं करता, शिष्य उसही पदको पाकर कृतकृत्य हुआ।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! आपने जिस ब्राह्मण और शिष्यकी कथा कही है, वह ब्राह्मण तथा शिष्य कौन है? हे विभु! यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो, तो आप कृपा करके इसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो! मुझे गुरु और मेरे मनको शिष्य जानो; हे धनञ्जय!

तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति रहनेसे मैंने तुमसे यह गुप्त विषय कहा है। हे कुरुकुलोद्वह! यदि मेरे विषयमें तुम्हारी नित्य प्रीति हो, तो तुम इस अध्यात्म-विषयको मेरे समीप सुनके इसका पूरी रीतिसे आचरण करो। हे अरिकर्षण! तुम इस धर्मको पूरी रीतिसे आचरण करनेपर सब पापोंसे मुक्त होकर कैवल्यमोक्ष लाभ करोगे। हे महाबाहो! पहले युद्धके समयमें इस ही विषयको मैंने तुमसे कहा था, इस निमित्त इस विषयमें मन संयोग करो। परन्तु मैंने बहुत समयसे प्रभु पिताका दर्शन नहीं किया, अब उन्हें देखनेको अभिलाष होती है। हे भरतश्रेष्ठ। इसलिये तुम्हें इस विषयमें सम्मति देनी योग्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब कृष्णने अर्जुनसे इतनी कथा कही, तब धनञ्जयने कहा, हे कृष्ण! आओ हम लोग अब इस नगरसे हस्तिनापुरको चलें, फिर आप वहां धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरको राज्यपालन करनेकी आज्ञा देकर निज पुरीमें गमन करियेगा।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कृष्णने दारुकको रथमें अश्व जोतनेकी आज्ञा दी, दारुक मुहूर्त्तभरके बीच रथमें घोड़ोंको जोतकर कृष्णसे बोला, 'रथ तैयार है' इधर पाण्डुपुत्र अर्जुन अनुगामी सैनिक पुरुषोंसे बोले, हम लोग हस्तिनापुरमें जायेंगे, तुम लोग सुसज्जित होके रहो। हे पृथ्वीनाथ! सैनिक पुरुष अमित तेजस्वी पृथापुत्र अर्जुनकी आज्ञानुसार सुसज्जित होकर उनसे बोले, कि हम लोग सज्जित हुए हैं। हे पृथ्वीपति! तिसके अनन्तर कृष्ण और अर्जुन प्रसन्नचित्तसे रथपर चढ़के आपसमें अनेक प्रकारकी वार्त्ता करते हुए नगरकी ओर चले। हे भरतसत्तम! महातेजस्वी धनञ्जय उस रथमें स्थित वसुदेवपुत्र कृष्णसे फिर इस प्रकार कहने लगे। हे वृष्णिकुलोद्वह! आपकी कृपासे सब शत्रु मारे गये और राजा युधिष्ठिरने अकण्टक राज्य लाभ करके जय पाई है। हे मधुसूदन! आप पाण्डवोंके नाथ हैं, पाण्डव लोग प्लवस्वरूप आपको पाके कुरुसागरसे पार हुए हैं। हे विश्वात्मन्! हे विश्वकर्म्मन्! हे विश्वसत्तम! आपको नमस्कार है; मैं आपको जिस प्रकार जानता हूं, आप वैसे ही हैं। हे मधुसूदन! भूतात्मा नित्य आपके तेजसे उत्पन्न होता है। हे विभु! रति आपकी क्रीड़ामयी लीला है और द्युलोक तथा भूलोक आपकी माया है। स्थावर जङ्गमके सहित यह समस्त जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है, आप ही सब भूतोंको चार भांतिसे विभक्त किया करते हैं। हे मधुसूदन! पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, निर्म्मल जोन्हा, छहों ऋतु और इन्द्रियें, ये सब आपकी हांसी हैं। हे मतिमन्! सदा गमनशील वायु आपका प्राण है, क्रोध सनातन मृत्यु है, पद्मालया लक्ष्मी आपमें नित्य विद्यमान रहती हैं। हे अनघ! आप रति, तुष्टि धृति, क्षान्ति, मति, कान्ति और समस्त चराचर हैं, इन सबको इस काल तथा प्रलयकालमें संहार किया करते हैं। हे कमलनेत्र! मैं अनन्तकालमें भी आपके गुणोंको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हूं, आप ही आत्मा और आप ही परमात्मा हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। हे दुर्द्धर्ष! मैंने नारद, देवल, कृष्णद्वैपायन और कुरुपितामह भीष्मके निकट आपको जाना है। आपमें सब वस्तु समासक्त है, आप ही एकमात्र जनेश्वर हैं; आपने कृपा करके जो सब विषय मुझसे कहा है, मैं उसका पूरी रीतिसे आचरण करूंगा; आपने मेरे हितके लिये यह अत्यन्त अद्भुत कर्म्म किया है। धृतराष्ट्रपुत्र पापात्मा दुर्य्योधन जो युद्धमें मारा गया, आपने ही उसकी सेना जलाई है। मैंने जो युद्धमें विजय पाई है, वह आपकी वृद्धि तथा पराक्र-

मसे ही दुर्य्योधनके युद्धमें मुझे जय प्राप्त हुई है, ये सब कार्य्य तुम्हारे ही द्वारा पूरे हुए हैं। कर्ण, पापात्मा सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवाके बधकी उपाय तुम्हारे ही द्वारा प्रदर्शित हुई। हे देवकीनन्दन! आपने प्रसन्नचित्त होकर मुझसे जो कहा है, मैं वही करूंगा; इसमें मुझे कुछ भी विचार नहीं है। हे अनघ! मैं धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर तुम्हारे गमन करनेके निमित्त उनसे निवेदन करूंगा। हे प्रभु! आपके द्वारका-गमन विषयमें मुझे भी अभिलाष होती है। हे जनार्द्दन! आप शीघ्र ही उस मेरे मातुल वसुदेव, दुर्द्धर्ष बलदेव तथा अन्यान्य वृष्णिपुङ्गवोंका दर्शन करेंगे।

अनन्तर वे कृष्णार्ज्जुन, दोनों इसी प्रकार वार्त्तालाप करते हुए हस्तिनापुरमें पहुंचकर प्रहृष्ट जनसमूहसे परिपूरित उस पुरीके बीच प्रविष्ट हुए। हे महाराज! श्रीकृष्ण और अर्ज्जुनने इन्द्रभवन सदृश धृतराष्ट्रके गृहमें जाकर प्रजानाथ धृतराष्ट्र, महाबुद्धिमान विदुर, राजा युधिष्ठिर, दुर्द्धर्ष भीम, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव, धृतराष्ट्रके समीप बैठे हुए अपराजित युयुत्सु, महाबुद्धिमती गान्धारी, पृथा, भामिनी द्रौपदी, सुभद्रा प्रभृति भरतकुलकी स्त्रियोंको देखा। तिसके अनन्तर अरिदमन वासुदेव और अर्ज्जुन, दोनों उस राजा धृतराष्ट्रके निकट अपना अपना नाम सुनाकर उनके दोनों चरण ग्रहण किये। अनन्तर गान्धारी, पृथा, धर्म्मराज युधिष्ठिर और भीमके दोनों चरण ग्रहण किये। फिर विदुरको आलिङ्गन करते हुए कुशल पूंछके उनके सहित बूढ़े राजा धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे। अनन्तर महाराज मेधावी धृतराष्ट्रने रात्रिके समयमें शयन करनेके लिये युधिष्ठिर प्रभृति कुरुवह और जनार्द्दन कृष्णके निमित्त गृह विभाग कर दिया। वे लोग राजा धृतराष्ट्रके द्वारा शयन करनेकी आज्ञा पाकर निज निज गृहमें गये, परन्तु वीर्य्यवान् कृष्णने धनञ्जयके गृहमें गमन किया। अर्ज्जुनके सहायवान् मेधावी कृष्णने धनञ्जयके गृहमें सब प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा विधिपूर्व्वक पूजित होकर उस स्थानमें शयन किया। रात्रिके अनन्तर प्रभात होनेपर श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन प्रातःकृत्य करके पार्श्वित होकर जिस स्थानमें महाबल धर्म्मराज मन्त्रियोंके सहित निवास करते थे, उस गृहमें उपस्थित हुए। महात्मा कृष्ण और अर्ज्जुन धर्म्मराजके अत्यन्त सुशोभित गृहमें प्रवेश करके इन्द्रका दर्शन करनेवाले अश्विनीकुमारकी भांति उनका दर्शन करने लगे। वृष्णि और कुरुपुङ्गव कृष्णार्ज्जुन राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर प्रसन्नचित्तसे उनके द्वारा अनुज्ञात होकर बैठे। तिसके अनन्तर वाग्मिवर मेधावी राजा युधिष्ठिर भाषणोन्मुख कृष्ण और अर्ज्जुनको देखकर कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे वीरवर यदुकुरुद्वह कृष्णार्ज्जुन! मुझे मालूम होता है, कि तुम लोग कुछ कहोगे, इसलिये वक्तव्य विषयमें विचार न करके शीघ्र कहो, तुम लोग जैसा कहोगे, मैं वही करूंगा। वाक्यविशारद फाल्गुन अर्ज्जुन धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनकर उनके निकट जाके विनीतभावसे कहने लगे। महाराज! प्रतापवान् श्रीकृष्णचन्द्रको द्वारकासे आये बहुत समय बीत गया, अब आपकी अनुमति होनेसे ये पिता माताके दर्शनके निमित्त द्वारकापुरीमें जानेकी इच्छा करते हैं। हे महावीर! यदि आप सम्मत होकर इन्हें आज्ञा दें, तो ये आनर्त्तनगरीकी ओर गमन करें, इसलिये आपको अनुमति देनी उचित है।

युधिष्ठिर बोले, हे पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन! तुम्हारा कल्याण हो, तुम आज शूरसुत वसुदेवका दर्शन करनेके लिये द्वारका नगरीमें जाओ। हे महाबाहु केशव! तुमने मेरे मामा वसुदेव और देवकी देवीका बहुत समयसे दर्शन नहीं किया, इसीसे तुम्हारे गमन विषयमें

मुझे अभिलाष होती है। हे महाप्राज्ञ! तुम मेरे मामा वसुदेव और बलदेवके निकट जाकर उनकी यथायोग्य पूजा करना। हे मानद! तुम सदा मुझे और बलिश्रेष्ठ भीम, फाल्गुन अर्ज्जुन, सहदेव और नकुलको स्मरण करना। हे महाभुज! तुम आनर्त्तनगरवासी प्रजागण, पिता वसुदेव और वृष्णिवंशियोंको देखकर मेरे अश्वमेध यज्ञमें फिर आना। हे सात्वत! विविध रत्न, धन तथा दूसरी जिन वस्तुओंके लिये तुम्हारी इच्छा हो, तुम उन्हें ग्रहणकरके गमन करो। हे केशव! तुम्हारी कृपासे ही यह समुद्रके सहित पृथ्वी हमारे हस्तगत हुई और सब शत्रु मारे गये हैं।

कुरुपति धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे। श्रीकृष्ण बोले, हे महाभुज! यह पृथिवी, रत्न और सब धन तुम्हारा है, मेरे गृहमे जो सब अन्यान्य धन है, तुम ही उस समस्त धनके स्वामी हो।

अनन्तर बलवान गदाग्रज श्रीकृष्णचन्द्रने धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके द्वारा प्रतिपूजित तथा उस ही प्रकार उक्त होकर पितृष्वसा कुन्तीकी विधिपूर्व्वक प्रदक्षिणा करते हुए उससे कहके भली भांति सम्मानित होकर गमन किया। अनन्तर चतुर्भुज गदाग्रज कृष्ण कुन्ती और विदुर प्रभृति मनुष्योंसे प्रतिनन्दित होकर दिव्य रथमें चढ़के नागपुरसे बाहिर हुए। महाभुज जनार्द्दन युधिष्ठिर तथा पितृष्वसा कुन्तीकी अनुमतिके अनुसार निज भगिनी सुभद्राको रथपर चढ़ाके पुरवासियोंके बीच घिरकर हस्तिनापुरसे बाहिर हुए। कपिध्वज (अर्ज्जुन) सात्यकि, माद्रवतीपुत्र नकुल सहदेव, अगाधबुद्धि विदुर और गजराज-विक्रम भीमसेन उस माधवके अनुगामी हुए। अनन्तर जनार्द्दनने कुरुराष्ट्रवर्द्धन भीमादि तथा विदुरको लौटाकर दारुक और सात्यकिको शीघ्र रथ चलानेके लिये आज्ञा दी।

अनन्तर जैसे इन्द्र शत्रुओंको मारके स्वर्गपुरमें गमन करते हैं, वैसे ही अरिगणप्रमर्द्दन प्रतापवान जनार्द्दनने शत्रुओंको संहार करके सात्यकीके सङ्ग आनर्त्तपुरीमें गमन किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वृष्णिकुलनन्दन कृष्णके द्वारकाकी ओर गमन करनेपर परन्तप भरतश्रेष्ठ अनुयात्रिकगण उन्हें आलिङ्गन करके उनके समीपसे निवृत्त हुए। फाल्गुन अर्ज्जुन वृष्णिवंशीय कृष्णको बार बार आलिङ्गन करके जबतक वह नेत्रोंसे दीख पड़ते थे, तबतक उन्हें बार बार देखने लगे, अनन्तर अर्ज्जुनने गोविन्दमें निवेशित निज दृष्टिको अत्यन्त कष्टसे संहार की और अपराजित कृष्णने भी अति कष्टसे निज दृष्टि निवारण की।

महात्मा कृष्णके चलनेके समयमें जो सब अद्भुत निमित्त प्रकट हुए थे, वह सब विषय मैं कहता हूं, तुम सुनो। वायु रथके अगाड़ी सारे मार्गको कङ्कड़, धूलि और कांटोंसे रहित करके महावेगपूर्व्वक प्रवाहित होने लगा, इन्द्र शार्ङ्गधन्वा कृष्णके रथके अगाड़ी सुगन्धित उत्तम शीतल जल तथा दिव्य फूलोंकी वर्षा करने लगा। अनन्तर महाबाहु कृष्ण समतल मरुभूमिमें गमन करते हुए अमिततेजस्वी मुनिश्रेष्ठ उतङ्कका दर्शन किया। विशाल नेत्रवाले तेजस्वी कृष्णने मुनिकी पूजा करके अनामय कुशल प्रश्न किया, ब्राह्मणश्रेष्ठ उतङ्क कृष्णके द्वारा कुशल पूछे जानेपर माधवकी पूजा करते हुए पूछने लगे। हे शौरि! आपने जो कुरुपाण्डवोंके गृहमें जाकर अचल सौभ्रात्र किया है, वह सब मेरे निकट वर्णन करो। हे वृष्णिपुङ्गव केशव! आप अपने सदा प्रियसम्बन्धी उन वीरोंको एकत्रित करके आये हैं न? हे परन्तप! पाण्डुके पांचो पुत्र और धृतराष्ट्रके सब पुत्र आपके सहित विहार करते हैं न? हे केशव! आपके

प्रभु होकर कौरव कुलकी सान्तना करनेसे सब राजा निज राज्यके बीच सुख भोग करेंगे न ? हे तात। मेरी जो सम्भावना तुममें नित्य निवास करती है, तुम भरतकुलके विषयमें उसे सफल किया है न ?

श्रीभगवान् बोले, मैंने पहले कौरवोंके लिये सन्धिविषयमें विशेष यत्न किया था, जब वे लोग शान्ति अवलम्बन करनेमें समर्थ न हुए, तब वे सब पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए, कोई पुरुष बल वा बुद्धिसे दैवको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता। हे पापरहित महर्षि। उन कौरवोंने जो भीष्म, बिदुर तथा मेरे मतको अतिक्रम किया था, उसे आप जानते हैं, उसहीसे वे सब परस्पर लड़के यमलोकमें गये हैं ; मित्रों और पुत्रोंके मारे जानेपर केवल पांचो पाण्डव अवशिष्ट हैं और धृतराष्ट्र पुत्रगण पुत्रों तथा बान्धवोंके सहित मारे गये हैं। कृष्णके ऐसा कहनेपर उतङ्क अत्यन्त क्रुद्ध होकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उनसे कहने लगे।

उतङ्क बोले, हे कृष्ण। जब तुमने परित्राण करनेमें समर्थ होके भी उन प्रिय सम्बन्धी कुरु-पुङ्गवोंका परित्राण नहीं किया, उसही निमित्त मैं तुम्हें निश्चयही शाप दूंगा। हे मधुसूदन। क्योंकि तुमने उसही समय उन लोगोंको निग्रह करके निवारित नहीं किया, इसही निमित्त मैं मन्युयुक्त होकर तुम्हें शाप दूंगा। हे माधव! तुमने समर्थ होके भी मिथ्या आचरण किया है, इसीसे कुरुपुङ्गवगण उपेक्षित होकर विनष्ट हुए हैं।

श्रीकृष्ण बोले, मैं विस्तारपूर्व्वक जो कहता हूं, उसे सुनो। तुम तपस्वी हो, इसलिये मैं जो तुमसे बिनय करता हूं, उसे ग्रहण करो, मैं जो अध्यात्म विषय कहता हूं, उसे सुनके इस समय शाप मोचन करो ; कोई पुरुष अल्प तपस्यासे मुझे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता, हे तपताम्बर! तुम्हारी तपस्या नष्ट करनेकी मैं इच्छा नहीं करता, क्यों कि तुमने अत्यन्त कष्टसे उस उत्तम महद्दीप्त तपस्या उपार्जन तथा गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है। हे द्विजसत्तम ! तुम्हारा कौमार ब्रह्मचर्य्य विशेष रीतिसे बिदित है, तुमने अधिक दुःख करके जो तपस्या उपार्ज्जनकी है, उसे मैं नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करता।

५३ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे केशव। आप मुझसे अनिन्दित अध्यात्म विषय यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं उस अध्यात्म विषयको सुनकर आपके शापका उत्तम रीतिसे अभिधान करूंगा।

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विज। तम, रज और सत्त्व इन सब गुणोंको मेरे आश्रित जानो और रुद्र तथा बसुगणको मुझसे उत्पन्न हुआ समझो। सब भूतोंमें मैं विद्यमान हूं और यह निश्चय जानो ; कि मुझमें सब भूत विद्यमान रहते हैं। हे द्विज। दैत्य, यक्ष, गन्धर्व्व, राक्षस, अप्सराओं और नागोंको मुझसे ही उत्पन्न हुआ समझो, पण्डित लोग जिसे सत्, असत्, अव्यक्त, व्यक्त, अक्षर और क्षर कहा करते हैं, उन सबको ही मदात्मक जानो। हे मुनि ! चारों आश्रमोंमें जो चार प्रकारके धर्म्म और वैदिक कर्म्म विहित है, वे सब आपको बिदित हैं, उन सबको भी सदा मदात्मक जानो। असत् 'शश विषाणादि' सदसत 'घटपटादि' और सदसतपर अव्यक्तात्मयरूपसे मैंही बिश्वमें देवदेव सनातन हूं, इस लिये मुझसे जगत् भिन्न नहीं है। हे भृगुद्वह! मुझेही ओंकार प्रभृति सब वेद, यूप, सोम, चरु होम और यज्ञमें त्रिदशाप्यायन जानो।

हे भृगुनन्दन। मुझेही होता, हव्य, अध्वर्य्यु, कल्पक और परम संस्कृत हवि जानो, महायज्ञोंमें उद्गाता गीतघोषके द्वारा मेराही स्तव किया करते हैं और प्रायश्चित्तमें शान्ति तथा मङ्गलवाचक ब्राह्मणगण विश्वकर्म्मा करके

मेरीही स्तुति किया करते हैं। हे द्विजसत्तम! धर्म्मको मेरा ज्येष्ठ पुत्र और सर्व्वभूत दयात्मक मानसको दयित जानो। हे सत्तम! जो सब मनुष्य इस धर्म्म में वर्त्तमान और निवृत्त रहते हैं, मैं उसही उस मनुष्यरूपसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए धर्म्म संस्थापन तथा धर्म्मरक्षाके हेतु निवास किया करता हूं। हे भार्गव! मैं तीनों लोकोंके बीच वही रूप तथा वही वेष धारण करता हूं। मैंही विष्णु, मैंही ब्रह्मा तथा मैंही उत्पत्तिलयकर्त्ता प्रभु हूं। मैंही सब भूतोंकी सृष्टि तथा संहारकर्त्ता हूं और अधर्म्ममें विद्यमान मनुष्योंके बीच मैंही अच्युत हूं। मैं प्रजासमूहकी हितकामनासे युग युगमें उसही उस योनिमें प्रविष्ट होकर धर्म्मका सेतुबन्धन किया करता हूं।

हे भृगुनन्दन! जब मैं देवयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, तब देववत्, जब गन्धर्व्वयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय गन्धर्व्वसदृश, जिस समय नागयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय नागसदृश और यक्ष राक्षस प्रभृति जब जिस योनिमें प्रवृत्त होता हूं, तब उस ही प्रकार आचरण किया करता हूं। मैंने मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होकर उन कौरवोंके समीप कृपणभावसे बहुत ही याञ्चा की थी, क्रुद्ध होकर महत् भय दिखाके त्रासित किया तथा यथायोग्य शिक्षाप्रदान की थी, परन्तु उन लोगोंने महामोहसे विमोहित होकर मेरे वचनको ग्रहण नहीं किया। बल्कि उन लोगोंने कालधर्म्मसे घिरके तथा अधर्म्मसंयुक्त होकर धर्म्मके द्वारा युद्धमें मरके सुरपुरमें गमन किया है। हे द्विजोत्तम! पाण्डवोंको भी जगतके बीच बड़ाई प्राप्त हुई है। हे विप्रवर! आपने मुझसे जो पूछा था, मैंने वह विषय पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

५४ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे जनार्द्दन! मैं आपको जगतकर्त्ता कहके जान सका हूं, निश्चय ही यह आपकी कृपा है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। हे अच्युत! मेरा चित्त आपमें आसक्त होनेसे प्रसन्न होकर शापसे निवृत्त हुआ। हे जनार्द्दन! यदि आपकी किञ्चित कृपा हो, तो मैं आपका ईश्वररूप देखनेकी इच्छा करता हूं, आप अनुग्रह करके वह रूप मुझे दिखाइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धीमान् धनञ्जयने जिस शाश्वत वैष्णवरूपका दर्शन किया था, कृष्णने परम प्रसन्न होकर उतंकको वही मूर्त्ति दिखाई। उतङ्कने महात्मा महाभुज विश्वरूप सहस्रसूर्य्य तथा जलती हुई अग्निसदृश सर्व्वव्यापी सर्व्वतोमुख कृष्णका दर्शन किया अनन्तर विप्रवर उतङ्क उस अद्भुत परम रूप परमेश्वरका दर्शन करके अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगे।

उतङ्क बोले, हे विश्वकर्म्मन विश्वात्मन्! आपको नमस्कार है। हे विश्वसम्भव! आपके दोनों चरणोंसे पृथ्वी, शिरसे आकाश जठरके द्वारा द्युलोक तथा भूलोकका मध्य और दोनों भुजासे सब दिशा आवृत होरही हैं। हे अच्युत! आप ही इस विश्वरूपसे निवास करते हैं। हे देवदेव! यह समस्त अक्षय अनुत्तम रूप सहार करिये। मैं फिर आपको उस ही कृष्णरूपसे देखनेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय गोविन्द कृष्ण प्रसन्न होकर उतङ्कसे बोले, कि तुम मुझसे वर मांगो। तब उतङ्कने उनसे यह वचन कहा, हे पुरुषोत्तम कृष्ण! आज मैंने आपके इस रूपका जिस प्रकार दर्शन किया, वही मुझे यथेष्ट वर प्राप्त हुआ है। कृष्ण फिर उतङ्कसे बोले, कि तुम निश्चय ही मेरा यह अमोघ दर्शन पाओगे, इसमें और विचार मत करो।

उतङ्क बोले, हे विभु! यदि आप इसे अवश्य करणीय बोध करते हैं, तो इस मरुभूमिके बीच जिस स्थानमें मैं इस दुर्लभ जलको

राजा जनमेजय बोले, महात्मा उतङ्कने ऐसी कौनसी तपस्या की थी कि जगत्प्रभु विष्णुको शाप देनेके लिये उद्यत हुए ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय । उतङ्क महातप निष्ठ थे, वह केवल तेजस्वी गुरुकी पूजा करते थे और किसीकोभी अर्च्चना नहीं करते थे । हे भारत । ऋषिपुत्रगण उतङ्कको गुरुभक्ति देखकर ऐसा समझते थे, कि हमें भी उतङ्ककी गुरुवृत्ति प्राप्त होगी । हे जनमेजय । गौतमके जितने शिष्य थे, उनके बीच उतङ्कके विषयमें उनकी अधिक प्रीति तथा स्नेह उत्पन्न हुआ, गौतम उतङ्कके दम, पवित्रता विक्रम और समधिक सेवासे परम प्रसन्न हुए थे, एकसमय गौतमऋषिने किसी कार्य्य उपलक्षमें शिष्योंको घर जानेके लिये आज्ञा दी; परन्तु परम प्रीतिके वशमें होकर उतङ्कको आज्ञा देनेकी इच्छा नहीं की । हे तात । क्रमसे उस उतङ्क मुनिको जरा प्राप्त हुई, परन्तु उस समय वह गुरुवत्सल उतङ्क उसे न जान सके । हे राजेन्द्र । अनन्तर वह किसी समय काष्ठ लानेके लिये गये और बहुतसा काष्ठ उठाकर लाने लगे । उन्होंने काष्ठभारसे अभिभूत, परिश्रान्त और भूखे होनेसे काष्ठका बोझा पृथ्वीपर फेंका, उस समय उनकी रौप्य-सदृश प्रभाशालिनी जटा काष्ठमें फंस गई थी, उससे वह काष्ठके सहित गिर पड़े । हे भारत ! जब क्षुधाविष्ट उतङ्क काष्ठभारसे निष्पिष्ट होके पृथ्वीपर गिरे, उस समय कमलनयनी गुरुपुत्री उनकी वैसी अवस्था देखकर आर्त्तस्वरसे रोदन करने लगी; पृथुलोचना सुश्रोणी धर्म्म जाननेवाली गुरुपुत्रीने पिताकी आज्ञानुसार सिर नीचा करके अश्रुजल ग्रहण किया । वह अश्रुजल उसके दोनों हाथोंको जलाते हुए पृथ्वीपर गिरा, पृथ्वीभी उस अश्रुधाराको धारण न कर सकी ।

उस समय गौतमने प्रसन्नचित्तसे उतङ्क विप्रसे कहा, हे तात । आज तुम्हारा मन शोकातुर क्यों हुआ है । हे विप्रर्षि ! तुम धीरे धीरे मेरे समीप यथार्थ रीतिसे कहो, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं ।

उतङ्क बोले, मेरा मन आपमें लगा रहनेसे विप्र चिकीर्षा वशसे तथा मैं आपकी भक्ति वा भावके अनुगत होनेसे जरा और सुख न जान सका । मैं जो इस स्थानमें एक सौ वर्षसे वास करता हूं तोभी आपने मुझे अनुमति न देकर जो मुझसे अपकृष्ट थे, वैसे सैकड़ों सहस्रों शिष्योंको अनुज्ञा की; उससे वे लोग कृतकार्य्य हुए ।

गौतम बोले, हे द्विजर्षभ । तुम्हारे गुरुसेवासे तुमपर अधिक प्रसन्न रहनेसे मैं यह न जान सका, कि अधिक समय किस प्रकार व्यतीत हुआ है । हे भार्गव । यदि आज तुम्हें गृहपर जानेकी अभिलाष हो, तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, तुम शीघ्र निज गृहपर जाओ ।

उतङ्क बोले, हे द्विजसत्तम ! कहिये मैं आपको क्या दक्षिणा दूं ? हे विभु ! आप जो कहें, मैं वही ले आऊं ।

गौतम बोले, हे ब्रह्मन् ! ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं, कि गुरुजनोंका परितोष ही दक्षिणा है; इसलिये मैं तुम्हारे सदाचारसे ही परितुष्ट हुआ हूं । हे भृगुद्वह । तुम मुझे परितुष्ट जानो । हे ब्रह्मन् ! यदि आज तुम षोड़ष वर्षीय युवा होते, तो मैं अपनी कन्या तुम्हें पत्नीरूपसे दान करता, इस कन्याके अतिरिक्त दूसरी कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ न होगा । अनन्तर उतङ्क मुनि युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी कन्याको ग्रहण करके गुरुपत्नीसे बोले, तुम्हें क्या गुरुदक्षिणा दूं ? उसके लिये मुझे आज्ञा करो, मैं प्राण और धनसे तुम्हारे प्रिय तथा हितकी आकांक्षा करता हूं । इस लोकमें जो रत्न दुर्लभ हैं, मैं तपोबलसे निःसन्देह उन अद्भुत महारत्नोंको लाऊंगा ।

अभिलाष करूं, उस स्थानमेंही मेरी अभिलाषा सिद्ध होवे। अनन्तर ईश्वरने उस तेजको संहार करके उतङ्कसे कहा, कि "तुम्हें जब जिस बिषयमें अभिलाष होवे, उस समय मुझे स्मरण करना"—ऐसा कहके कृष्ण द्वारकामें गये अनन्तर किसी समय भगवान् उतङ्कने मरुभूमिमें घूमते हुए जलकी अभिलाष करके अच्युत कृष्णको स्मरण किया। अनन्तर धीमान् उतङ्कने मरुभूमिमें दिगम्बर मलिन श्वयूथ परिवेष्टित बद्ध बाण और धनुषधारी एक भीषण मातङ्ग चाण्डालको देखा और उसके पांवके नीचे बहुत सा निर्म्मल जलका स्रोत अवलोकन किया। मातङ्गने उनका मत जानके हंसकर कहा। हे भृगुद्वह उतङ्क! तुम मेरे समीप आके जल ग्रहण करो, तुम्हें तृष्णातुर देखके मुझे अत्यन्त दया हुई है। उस मुनिवर उतङ्कने मातङ्ग चाण्डालका ऐसा बचन सुनके अभिनन्दन न किया, वरन उस चाण्डालको उग्र वचनसे निन्दा करने लगे, मातङ्ग भी बार बार उतङ्कको जल पीनेके लिये कहने लगा। उतङ्कने अन्तरात्मा क्षुधित होनेपर भी क्रोधित होकर उस जलको न पीया, जब उतङ्कने निश्चय करते हुए उसे प्रत्याख्यान किया; तब वह वहांपर कुत्तोंके सहित अन्तर्द्धान हुआ। उस समय उतङ्कने उसे अन्तर्हित होते देखकर लज्जितचित होकर अपनेको कृष्णके द्वारा प्रलोभित समझा। अनन्तर शङ्ख, चक्र, गदाधारी कृष्ण उस ही मार्गसे उतङ्कके निकट उपस्थित हुए और महाबुद्धिमान् उतङ्क उनसे कहनेलगे।

उतङ्क बोले, हे पुरुषसत्तम! आपको उस प्रकार चाण्डाल रूप धरके ब्राह्मणको जल प्रदान करनेके लिये आना उचित नहीं हुआ। उतङ्कका ऐसा बचन सुनके महाबुद्धिमान् जनार्द्दन कृष्ण मधुर बचनसे उन्हें सान्त्वना करते हुए कहने लगे।

कृष्ण बोले, इस स्थानमें जिस प्रकार दान करना उचित है, उसही प्रकार दिया जाता था, तुम उसे समझ न सके। मैंने तुम्हारे निमित्त बज्रपाणि पुरन्दर इन्द्रसे कहा था, कि उतङ्कको तोयरूपी अमृत दान करो। हे भृगुनन्दन! देवेन्द्रने ऐसा बचन सुनके मुझसे कहा, कि मर्त्यको अमर्त्यता न प्राप्त होगी, इसलिये उन्हें अन्य वर प्रदान करो। परन्तु मैंने उनसे कहा, कि उतङ्कको अमृत वर ही देना होगा, तब वह मुझे प्रसन्न करके फिर बोले, हे महामति! यदि उतङ्कको यही वर देना योग्य है, तो मैं मातङ्ग होकर उस महात्मा भृगुनन्दनको अमृत दान करूंगा। हे विभु! आज यदि भृगुनन्दन उतङ्क इस ही प्रकार अमृत प्रतिग्रह करें, तो मैं उन्हें अमृत देनेके लिये जाता हूं, परन्तु यदि मैं उनसे प्रत्याख्यात होऊंगा, तो मैं कदापि उन्हें अमृत दान न करूंगा। वह इन्द्र मेरे निकट ऐसा ही अङ्गीकार करके तुम्हें अमृत देनेके लिये चाण्डालरूपी होकर तुम्हारे निकट उपस्थित हुए थे। तुम जान न सके, इसीसे उन्हें प्रत्याख्यान किया है। उस चाण्डालरूपी भगवान् इन्द्रके तुम्हारे द्वारा प्रत्याख्यान होनेसे तुम्हारी महान् व्यतिक्रम हुआ है; परन्तु मैं शक्तिके अनुसार फिर तुम्हारे अभिलषित विषयको सिद्ध करूंगा। हे ब्रह्मन्! जिस दिन तुम्हें जलकी इच्छा होगी उस ही दिन मैं तुम्हारी उस दुरन्त जललालसा सफल करूंगा। हे भृगुनन्दन! उस दिन मरुभूमिमें बादल जलसे पूरित होकर तुम्हें सुस्वादु जल प्रदान करेंगे और उतङ्क मेघ नामसे विख्यात होंगे। हे भारत! उस विप्रने कृष्णका ऐसा बचन सुनके अत्यन्त प्रीति लाभ की। इस ही लिये आज तक उतङ्क मेघ उस महाशुष्क मरुभूमिमें वर्षा किया करते हैं।

५५ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, महामना उतङ्कने ऐसी कौनसी तपस्या की थी कि जगत्प्रभु विष्णुको शाप देनेके लिये उद्यत हुए ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय ! उतङ्क महातप निष्ठ थे, वह केवल तेजस्वी गुरुकी पूजा करते थे और किसीकोभी अर्च्चना नहीं करते थे। हे भारत ! ऋषिपुत्रगण उतङ्ककी गुरुभक्ति देखकर ऐसा समझते थे, कि हमें भी उतङ्ककी गुरुवृत्ति प्राप्त होगी। हे जनमेजय। गौतमके जितने शिष्य थे, उनके बीच उतङ्कके विषयमें उनकी अधिक प्रीति तथा स्नेह उत्पन्न हुआ, गौतम उतङ्कके दम, पवित्रता विक्रम और समधिक सेवासे परम प्रसन्न हुए थे, एकसमय गौतमऋषिने किसी कार्य्य उपलक्षमें शिष्योंको घर जानेके लिये आज्ञा दी ; परन्तु परम प्रीतिके वशमें होकर उतङ्कको आज्ञा देनेकी इच्छा नहीं की। हे तात ! क्रमसे उस उतङ्क मुनिको जरा प्राप्त हुई, परन्तु उस समय वह गुरुवत्सल उतङ्क उसे न जान सके। हे राजेन्द्र ! अनन्तर वह किसी समय काठ लानेके लिये गये और बहुतसा काठ उठाकर लाने लगे। उन्होंने काठभारसे अभिभूत, परिश्रान्त और भूखे होनेसे काठका बोझा पृथ्वीपर फेंका ; उस समय उनकी रौप्य-सदृश प्रभाशालिनी जटा काठमें फंस गई थी, इससे वह काठके सहित गिर पड़े। हे भारत ! अब क्षुधाविष्ट उतङ्क काठभारसे निष्पिष्ट होके पृथ्वीपर गिरे, उस समय कमलनयनी गुरुपुत्री उनकी वैसी अवस्था देखकर आर्त्तस्वरसे रोदन करने लगी ; पृथुलोचना सुश्रोणी धर्म्म जानने-वाली गुरुपुत्रीने पिताकी आज्ञानुसार सिर नीचा करके अश्रुजल ग्रहण किया। वह अश्रुजल उसके दोनों हाथोंको जलाते हुए पृथ्वीपर गिरा, पृथ्वीभी उस अश्रुधाराको धारण न कर सकी।

उस समय गौतमने प्रसन्नचित्तसे उतङ्क विप्रसे कहा, हे तात ! आज तुम्हारा मन शोकातुर क्यों हुआ है। हे विप्रर्षि ! तुम धीरे धीरे मेरे समीप यथार्थ रीतिसे कहो, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

उतङ्क बोले, मेरा मन आपमें लगा रहनेसे विप्र चिकीर्षा वशसे तथा मैं आपकी भक्ति वा भावके अनुगत होनेसे जरा और सुख न जान सका। मैं जो इस स्थानमें एक सौ वर्षसे वास करता हूं तोभी आपने मुझे अनुमति न देकर जो मुझसे अपकृष्ट थे, वैसे सैकड़ों सहस्रों शिष्योंको अनुज्ञा की ; उससे वे लोग कृत-कार्य्य हुए।

गौतम बोले, हे द्विजर्षभ ! तुम्हारे गुरुसे-वासे तुमपर अधिक प्रसन्न रहनेसे मैं यह न जान सका, कि अधिक समय किस प्रकार व्यतीत हुआ है। हे भार्गव ! यदि आज तुम्हें गृहपर जानेकी अभिलाष हो, तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, तुम शीघ्र निज गृहपर जाओ।

उतङ्क बोले, हे द्विजसत्तम ! कहिये मैं आपको क्या दक्षिणा दूं ? हे विभु ! आप जो कहें, मैं वही ले आऊं।

गौतम बोले, हे ब्रह्मन् ! ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं, कि गुरुजनोंका परितोष ही दक्षिणा है, इसलिये मैं तुम्हारे सदाचारसे ही परितुष्ट हुआ हूं। हे भृगुद्वह ! तुम मुझे परितुष्ट जानो। हे ब्रह्मन् ! यदि आज तुम षोड़ष वर्षीय युवा होते, तो मैं अपनी कन्या तुम्हें पत्नीरूपसे दान करता, इस कन्याके अतिरिक्त दूसरी कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ न होगी। अनन्तर उतङ्क मुनि युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी कन्याको ग्रहण करके गुरुपत्नीसे बोले, तुम्हें क्या गुरुदक्षिणा दूं ? उसके लिये मुझे आज्ञा करो, मैं प्राण और धनसे तुम्हारे प्रिय तथा हितकी आकांक्षा करता हूं। इस लोकमें जो रत्न दुर्लभ हैं, मैं तपोबलसे निःस-न्देह उन अद्भुत महारत्नोंको लाऊंगा।

अहल्या बोली, हे विप्र! मैं तुम्हारी इस भक्तिसे ही परितुष्ट हुई हूं, यह भक्ति ही यथेष्ट हुई है। हे तात! इस समय तुम्हारा मङ्गल हो, तुम इच्छानुसार गमन करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्कने अहल्यासे कहा, हे माता! कहो, मुझे कौनसा प्रियकार्य्य करना होगा?

अहल्या बोली, सौदास राजाकी भार्य्या जो दिव्य मणिमय कुण्डल पहरती है, तुम वही कुण्डल ले आओ; ऐसा करनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा और गुरुदक्षिणा सिद्ध होगी। हे जनमेजय! उतङ्कमुनि "वही करूंगा," ऐसी प्रतिज्ञा करके गुरुपत्नीके प्रीतिके निमित्त कुण्डल लानेके लिये चले। अनन्तर ब्राह्मणश्रेष्ठ उतङ्क शीघ्र ही पुरुषाद सौदासके निकट गये। गौतमने निज पत्नी अहल्यासे पूछा, कि आज उतङ्कको नहीं देखता हूं, उतङ्क कहा है? अहल्याने गौतमका वचन सुनके कहा, कि उतङ्क कुण्डल लानेके निमित्त गये हैं।

तिसके अनन्तर गौतमने पत्नीसे कहा, कि तुमने यह अच्छा कार्य्य नहीं किया; क्यों कि वह सौदास उतङ्कके द्वारा अभिशप्त होनेसे निश्चय ही उनका बध करेगा।

अहल्या बोली, हे भगवन्! मैंने बिना जाने उस ब्राह्मणको भेजा है, परन्तु आपके प्रसादसे उतङ्कको कुछ भी भय उपस्थित न होगा। गौतम अहल्याका ऐसा वचन सुनके उससे बोले, तुमने जो कहा, वही होवे, इधर उतङ्कने भी निर्ज्जन बनके बीच राजाको देखा।

५६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क मुनि दीर्घश्मश्रुधारी मनुष्य शोणितसे समुक्षित घोरदर्शन राजा सौदासको देखकर व्यथित न हुए, परन्तु महा तेजस्वी शमन सदृश भयप्रद राजा सौदासने उतङ्कसे कहा। हे द्विजसत्तम। मैं भक्ष्य खोज रहा हूं, तुम प्रारब्धसे हो। छठवें भागमें मेरे निकट आके उपस्थित हु[illegible]

उतङ्क बोले, हे राजन्। मैं गुरुके नि[illegible] धन मांगनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, गुरुके लिये अर्थप्रार्थी जानो; मनीषि[illegible] गुरुके निमित्त उद्युक्त मनुष्यको अबध्य करते हैं।

राजा बोला, हे द्विजसत्तम। इस दि[illegible] छठवें भागमें तुम मेरे अहाररूपसे वि[illegible] हुए हो, मैं अत्यन्त ही भूखा हूं, इसलिये तुम्हें परित्याग नहीं कर सकता।

उतङ्क बोले, हे महाराज! आप जो अ[illegible] लाष करते है, वही होगा, परन्तु आप [illegible] प्रतिज्ञा सफल करिये, मैं गुरुका कार्य्य [illegible] करके फिर तुम्हारे अधिकारमें आऊंगा। [illegible] राजसत्तम। मैंने जो धन गुरुको दान कर[illegible] निमित्त प्रतिज्ञा की है, वह धन तुम्हारे अध[illegible] है; इसलिये उसे तुम्हारे निकट भिक्षा मांग[illegible] हूं। हे नरेश्वर! इस पृथ्वीके बीच आप दा[illegible] और मैं प्रतिग्रहीता हूं; हे नृपसत्तम। मु[illegible] प्रतिग्रहका पात्र हो जावो। हे अरिदम[illegible] आपके निकटसे वह अर्थ गुरुके निमित्त [illegible] जाकर मैं प्रतिज्ञाके अनुसार फिर आप[illegible] वशमें होऊंगा। हे राजन्! मैं जो प्रति[illegible] करता हूं, वह कभी मिथ्या न होगी, क्यों कि मैंने इच्छापूर्व्वक पहले कभी मिथ्या वच[illegible] नहीं कहा है; इसलिये किसी प्रकार इस[illegible] अन्यथा न होगी।

सौदास बोले, मैं तुम्हें प्रतिग्रह कर सकूंगा, यदि तुम ऐसा स्वीकार करो, तो तुम उस गुरुदक्षिणाके धनको मेरे निकट प्राप्त हुआ ही निश्चय करो।

उतङ्क बोले, हे पुरुषर्षभ! आप मुझे प्रतिग्राह्य कहके अभिमत हुए हैं, इस [illegible] निमित्त मैं आपके निकट मणिकुण्डल मांगनेके लिये आया हूं।

सौदास बोले, हे विप्र! वह मणिकुण्डल मेरी स्त्रीका है, मुझे उसे दान करनेका अधिकार नहीं है; इसलिये और जो कुछ धन मांगोगे, मैं उसे ही दान करूंगा।

उतङ्क बोले, हे पार्थिव। यदि मुझपर आपका विश्वास हुआ हो, तो आप अब व्यर्थ छल न करके मुझे कुण्डल प्रदान करके सत्यवादी होइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा उतङ्कका ऐसा वचन सुनके फिर उनसे बोला। हे सत्तम! मेरे वचनके अनुसार मेरी पत्नीके निकट जाकर कहो, कि आप मुझे कुण्डल प्रदान करिये। हे द्विजवर। मेरे वचनके अनुसार वह मेरी शुचिव्रता भार्य्या तुम्हारा ऐसा वचन सुनके निश्चय ही तुम्हें कुण्डल प्रदान करेगी।

उतङ्क बोले, हे नरेश्वर। मैं आपकी पत्नीको कहां देखूंगा? आप स्वयं भार्य्याके निकट किस लिये नहीं जाते हैं?

सौदास बोले, आज बनमें किसी झरनेके समीप उसे देखोगे। मैं आज दिनके छठवें भागमें उसे न देख सकूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क राजाका ऐसा वचन सुनके वहांसे जाकर बनके बीच सौदासकी भार्य्या मदयन्तीको देखा, और उसे सौदासके वचनके अनुसार अपना प्रयोजन सुनाया।

सौदासकी भार्य्या बोली, हे अनघ। आपने जो कहा, वह सत्य है, परन्तु इस विषयमें किञ्चित अभिज्ञान लाना उचित है। देवता, यक्ष और महर्षिगण अनेक प्रकारके उपायके सहारे मेरे इस दिव्य मणिमय कुण्डलको हरनेकी अभिलाषासे सदा छिद्र अन्वेषण करते हैं। यह रत्न पृथ्वीपर गिरनेसे सर्पगण उच्छिष्ठ अवस्थासे धारण करनेसे और यक्षगण निद्रावस्थामें धारण करनेसे देववृन्द हरण किया करते हैं। हे द्विजसत्तम! इन सब छिद्रोंके उपस्थित होनेपर भी मेरा यह कुण्डल देवता, राक्षस और सर्पोंके द्वारा अपहृत होता है; इसलिये अप्रमत्त होके इसे धारण करना चाहिये। हे द्विजवर। मेरे इस दिव्य कुण्डलसे रात्रिके समय सुवर्ण झरता है और रात्रिसमयमें ग्रह-नक्षत्रों तथा तारोंकी प्रभा आकर्षित करके निवास करता है। हे भगवन्! इस कुण्डलको धारण करनेसे मनुष्य भूखप्याससे पीड़ित नहीं होता। इतना ही नहीं; बरन विष, अग्नि तथा अन्यान्य भयजनक जन्तुओंसे उसे कदाचित भय नहीं होता। थोड़ी अवस्थावाला पुरुष इसे धारण करे, तो उसकी प्रकृत अवस्था ही रहती है। मेरे इस परम पूजित मणिमय कुण्डलका गुण तीनो लोकोंके बीच विख्यात है, इसलिये आप उसका अभिज्ञान ले आइये।

५७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उतङ्क मुनिने मित्रतापूर्वक सौदासके निकट जाकर अभिज्ञानके निमित्त प्रार्थना की; तब उस इक्ष्वाकुप्रवर सौदासने उन्हें यह वाक्यरूपी अभिज्ञान प्रदान किया।

सौदास बोले, हमारे लिये यह राक्षसयोनिरूपी गति मङ्गलकारी नहीं है, तथा इस कुण्डलदानकी अपेक्षा मुक्तिरूपी गति और कुछ भी नहीं है, इसलिये तुम मेरा ऐसा मत जानके इन्हें मणिमय कुण्डल प्रदान करो।

उतङ्कने सौदासका ऐसा वचन सुनके सौदासपत्नीको उसके स्वामीका वचन सुनाया, उसने स्वामीका वचन सुनके उतङ्कको वह मणिमय कुण्डल प्रदान किया। उतङ्क वह मणिमय कुण्डल पाके फिर राजासे बोले, हे महाराज! इस गुप्त वाक्यका क्या अर्थ है? मैं उसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

सौदास बोले, ब्राह्मणगण प्रजा उत्पन्न करते हैं, इसीसे क्षत्रिय पुरुष उनकी पूजा किया

करते हैं, तौभी ब्राह्मणोंके निकट क्षत्रियादिके बहुतसे दोष प्रकट होते हैं। मैं अपनी भार्य्या मदयन्तीके सहित ब्राह्मणोंके निकट दोषयुक्त होकर उनके समीप सदा प्रणत हुआ करता हूं; इसके अतिरिक्त और गति मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देती है। हे गतिप्रवर। ब्राह्मणोंके निकट प्रणत रहनेके अतिरिक्त इसलोकमें सुखभोग तथा स्वर्गद्वारमें गमन करनेका दूसरा उपाय नहीं दिखाई देता है। राजा चाहे कितनाही ऐश्वर्य्यशाली क्यों न हो, द्विजातियोंके सङ्ग विरोध करनेसे वह इसलोकमें निवास तथा परलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं होता; इस ही कारण मैंने तुम्हारे अभिलषित अपना मणिमय कुण्डल तुम्हें प्रदान किया है; परन्तु आज आपने मेरे समीप जो अङ्गीकार किया है, उसे सफल करना।

उतङ्क बोले, हे महाराज! मैं फिर आपके निकट आके अपने अङ्गीकार किये हुए वचनको सफल करूंगा। हे परन्तप। परन्तु मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछके यहांसे निवृत्त होता हूं।

सौदास बोले, हे विप्र। आपकी जो इच्छा हो, मुझसे वही विषय पूंछिये, मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूंगा और बिना बिचारे आज आपका सब सन्देह खण्डन करूंगा।

उतङ्क बोले, धर्म्म जाननेवाले पण्डितगण संयतवाक्यवाले मनुष्यको मित्र कहा करते हैं और जो पुरुष मित्रोंके बीच विषम चित्तवाला होता है, उसे तस्कर समझते हैं। हे पार्थिव। आज आप मेरे मित्र हुए, इसलिये आप मुझे निज धर्म्मबुद्धि प्रदान करिये। आज मैंने आपके निकट धन पाया है, आप पुरुषादक हैं; इसलिये मुझे बतलाइये, कि फिर आपके समीप मुझे आना योग्य है, वा नहीं?

सौदास बोले, हे द्विजवर। इस स्थलमें जो करना योग्य है, वह मैं आपसे कहता हूं, आप मेरे निकट कदापि न आना। हे भृगुकुलोद्वह! मेरे निकट न आना ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी है, यदि आप आवेंगे, तो निश्च यही आपकी मृत्यु होगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब बुद्धिमान राजा सौदासने उतङ्कसे ऐसा वचन तथा कर्त्तव्य विषय कहा, तब उन्होंने पृथ्वीपति सौदासको राजप्रपालन करनेकी आज्ञा देकर महल्याके निकट जानेके लिये प्रस्थान किया। उतङ्क दिव्य मणिमय कुण्डल लेकर महावेगपूर्व्वक गौतमके आश्रममें जाकर अहल्याके प्रीति पात्र हुए। मदयन्तीने कुण्डलरक्षाका जिस प्रकार उपाय कहा था, उतङ्क उसही भांति उसे कृष्णाजिनमें बांध रखा था। कुण्डल लेकर चलनेके समयमें उतङ्क क्षुधाविष्ट होकर फलके भारसे युक्त एक बेलका वृक्ष देखकर उसपर चढ़े।

हे अरिदमन। द्विजवर उतङ्क कुण्डलके सहित कृष्णाजिन बेलवृक्षकी शाखामें बांधके बेलका फल तोड़ने लगे। हे विभु! जब उतङ्क बेलका फल तोड़ने लगे, उस समय उनका नेत्र बेलकी चोटसे पीड़ित होनेसे जिस शाखामें कुण्डलके सहित कृष्णाजिन बांधा था, उस ही मृगचाल युक्त शाखापर बेलके फल गिरे, अनन्तर बेलके प्रहारसे कृष्णाजिनका बन्धन छूट जानेसे कुण्डलके सहित वह काले हिरणका चर्म्म सहसा पृथ्वीपर गिरा, जब बन्धन छूटनेसे वह कृष्णाजिन भूमिपर गिरा, तब वहां किसी सर्पने उस मणिमय कुण्डलको देखा, अनन्तर ऐरावत वंशमें उत्पन्न हुआ वह सर्प शीघ्रताके सहित मुखमें कुण्डल धारण करके कुण्डल समेत बिलमें घुस गया। उतङ्क सर्पके द्वारा कुण्डल अपहृत होते देखकर अत्यन्त दुःखित तथा कोपित होकर उद्वेग पूर्व्वक वृक्षसे गिर पड़े। अनन्तर वह ब्राह्मणसत्तम उतङ्क क्रोध तथा अमर्षपूर्व्वक अत्यन्त सन्तापित होकर दतुन लेकर पैंतीस दिन उस बिलको खोदते रहे। दतूनके प्रहारसे विछिन्नकलेवरयुक्त वसुन्धरा

नागलोकमें जानेके निमित्त मार्ग बनानेकी अभिलाषी धरणीतल विदारी उतङ्कको असह्य वेगको न सह सकनेसे अत्यन्त आकुल आई। अनन्तर महातेजस्वी वज्रपाणि इन्द्रने घोड़ोंसे युक्त रथ पर चढ़के उस स्थानमें आके उतङ्कको देखा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण करके उतङ्कके दुःखसे दुःखी होकर उनसे बोले, कि यह तुम्हारे लिये साध्य नहीं है, नागलोक यहांसे एक हजार योजन है, इसलिये मुझे बोध होता है, कि आप इसे दतूनसे न खोद सकोगे।

उतङ्क बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं नागलोकसे कुण्डल पानेमें असमर्थ होऊं, तो आपके सम्मुखमें ही प्राण परित्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब उतङ्क नागलोकका निश्चय करनेमें असमर्थ हुए तब इन्द्रने निज वज्रके सहित उस दतूनकोयुक्त कर दिया अनन्तर इन्द्रके वज्रके प्रहारसे वसुन्धरा विदीर्ण करके नागलोकका पथ किया। उन्होंने उस ही मार्गसे नागलोकमें प्रवेश करके सहस्र योजन व्यापी नागलोक अवलोकन किया। हे महाभाग! वह नागलोक दिव्य मणि तथा मोतियोंसे अलङ्कृत, सुवर्णमय दीवारोंसे घिरा हुआ था, उसके बीच तत्र वापी स्फटिकके द्वारा बनी थीं, सोपानके सहित नदियोंको विमल जलयुक्त तथा वृक्षोंको अनेक भांतिके पक्षियोंके द्वारा परिपूरित देखा। भृगुनन्दन उतङ्क पांच योजन चौड़ा एक सौ योजन लम्बा नागलोकका द्वार देखकर वहां दीनभावयुक्त होकर कुण्डल पानेसे निराश हुए। उस द्वारके स्थानमें तांबेके समान मुख लालनेत्र सफेदवर्णकी पूंछयुक्त निज तेजसे प्रज्वलित एक काले रङ्गका घोड़ा उतङ्कसे बोला। हे विप्र! यह अपान भूमि मेरी है, इस स्थानमें अपान करनेसे तुम कुण्डल पाओगे। ऐरावत नागका पुत्र तुम्हारा कुण्डल इस ही स्थानमें ले आया है। हे पुत्र! तुम इस पान विषयमें कदापि निन्दा न करना; क्यों कि तुम पहले गौतमके आश्रममें ऐसा आचरण करते थे।

उतङ्क बोले, मैं आपको नहीं जान सकता हूं, मैंने पहले उपाध्यायके आश्रममें जैसा आचरण करता था, उसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

अश्व बोला, हे विप्र! मैं तुम्हारे गुरु गौतमका गुरु हूं, तुम मुझे ज्वलन्त जातवेदा (अग्नि) जानो; तुम गुरुके प्रयोजनके निमित्त शुद्धभावसे सदा मेरी पूजा करते थे, इस ही निमित्त मैं तुम्हारे कल्याणका उपाय करूंगा। मैंने जैसा कहा, तुम शीघ्र वैसा ही करो विलम्ब मत करो। उतङ्कने चित्रभानुका ऐसा वचन सुनके वैसा ही किया। अनन्तर घृतार्चि (अग्निदेव) उतङ्क प्रसन्न होकर नागलोक जलानेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए। तब वहांपर उनके रोमकूपसे नागलोकको भयभीत करनेवाला निविड़ धूआं प्रकट हुआ। हे भारत! उस धूआंके अत्यन्त वर्द्धित होनेपर नागलोकमें कुछ भी न दीख पड़ा, अनन्तर ऐरावतनागके गृहमें वासुकी प्रभृति नागोंका हाहाकार शब्द होने लगा। हे भारत! उस समय नीहारावृत वन तथा पर्व्वतकी भांति धूएंसे परिपूरित होकर सब गृह अप्रकाशित हुए, धूएंसे नेत्र लाल तथा अग्निके तेजसे तापित होकर सब नागोंने महात्मा भृगुनन्दन उतङ्कका निश्चय जाननेके लिये आगमन किया। उन सबने महर्षिका निश्चय सुनके भयजनित चञ्चलतायुक्त नेत्रसे उनकी पूजा की; नागगण हाथ जोड़के बालकों तथा बूढ़ोंको आगे करके सिरसे प्रणाम करके बोले, हे भगवन्! आप हम लोगोंपर प्रसन्न होइये। नागोंने ब्राह्मणको प्रसन्न करते हुए पाद्य अर्घ देकर परम पूजित दिव्य मणिमय कुण्डल उन्हें प्रदान किया। अनन्तर प्रतापवान उतङ्कने नागोंके द्वारा वहांपर पूजित होकर अग्निको प्रदक्षिण करके

गुरुके गृहपर गमन किया। हे महाराज! उन्होंने शीघ्र ही गुरु गौतमके गृहपर जाकर गुरुपत्नी अहल्याको वह दिव्य कुण्डल प्रदान किया और वासुकि प्रभृति नागोंका वृत्तान्त गुरुके निकट पूरी रीतिसे वर्णन किया। हे जनमेजय! वह महात्मा उतङ्क इस ही प्रकार त्रिलोक परिभ्रमण करके उस दिव्य मणिमय कुण्डलको ले आये थे। हे भरतर्षभ! तुमने जिसका विषय मुझसे पूंछा था, उस परम तपस्वी मुनिवर उतङ्कका ऐसा ही प्रभाव मालूम करो।

५८ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे द्विजसत्तम! महायशस्वी महाबाहु गोविन्दने उतङ्कको वर देकर उसके अनन्तर क्या किया?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गोविन्दने उतङ्कको वर देकर सात्यकिके सहित शीघ्रगामी घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के तालाव, नदी और पर्व्वतोंको अतिक्रम करते हुए द्वारकामें गमन किया। हे महाराज! उस समय रैवतक पर्व्वतका उत्सव उपस्थित होनेपर पुण्डरीकाक्ष गोविन्द युयुधानके सहित वहां जा पहुंचे। हे भरतकुल! वह गिरवर रैवतक अनेक विचित्र वर्णोंसे अलंकृत, रत्नमय कोषसे पूरित, उत्तम सुवर्णमय माला मनोहर पुष्प, वस्त्र, कल्पवृक्ष तथा सुवर्णमय दीपवृक्षसे सुशोभित होनेसे उसकी गुफा तथा निर्झर स्थान दिनकी भांति प्रकाशित होने लगे। चारों ओर घण्टायुक्त विचित्र पताका और स्त्री पुरुषोंके समूहसे परिपूरित होकर मानो उत्तम गीत होने लगी; मणियोंके द्वारा विभूषित होनेसे सुमेरुकी भांति दर्शनीय हुआ। प्रमत्त तथा हर्षित स्त्रियें और गीत गानेवाले पुरुषोंके गगनस्पर्शी शब्दके द्वारा ऐसा मालूम होने लगा, कि मानो वह पर्व्वतेन्द्र ही गान कर रहा है। प्रमत्त, मत्त और सम्मत प्राणियोंके क्ष्वेड़ित तथा उत्कृष्ट शब्दोंसे वह स्थान परिपूरित होगया; उस समय वह पर्व्वत किलकिला शब्दके द्वारा मनोहर तथा विपण, आपण, भक्ष्यभोज्य और विहारकी वस्तुओंसे युक्त होनेसे अत्यन्त मनोरम हुआ, वहांपर ढेरके ढेर वस्त्र, माला, वीणा, वेणु, मृदङ्ग, मैरेय सुरा और अनेक प्रकारकी भक्ष्य भोज्य उपस्थित रहने अथवा दीन, अन्धे और कृपण पुरुषोंको लगातार दान करनेसे उस रैवतक महागिरिका महोत्सव अत्यन्त आनन्दजनक हुआ था। रैवतकके उत्सवमें पुरुषोंने वृष्णिवंशीय वीरोंके पवित्र गृहयुक्त विहारस्थानमें निवास किया था। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय गृहसमूहसे परिव्याप्त होकर वह गिरिवर कृष्णकी सान्निध्य पाके इन्द्रालय तथा देवलोककी भांति प्रकाशित हुआ था।

अनन्तर गोविन्द सात्यकिके सहित सम्मानित होकर बहुत समय तक प्रवासमें रहनेसे प्रहृष्टचित्तसे निज भवनमें गये। दानवोंके दलको दमन करके इन्द्रके अमरावती नगरीमें आनेपर देववृन्द जिस प्रकार उनके निकट गमन करते हैं, उस ही प्रकार वृष्णिकुलनन्दन कृष्णने जब कुरुकुलध्वंसरूपी दुष्कर कर्म्म करके द्वारकापुरीमें प्रवेश किया, तब भोज, वृष्णि तथा अन्धकवंशीय पुरुष उनके निकट उपस्थित हुए। मेधावी कृष्णने उन लोगोंको सम्मानना करते हुए कुशलादि पूछकर प्रसन्नचित्तसे पिता तथा माताको प्रणाम किया। महाभुज कृष्ण पिता माताके द्वारा आलिङ्गित तथा सान्त्वित होकर समीपमें बैठे हुए उन वृष्णिवंशियोंके द्वारा परिवेष्टित हुए। जब महातेजस्वी कृष्ण पांव धोकर विश्रान्त भावसे बैठे, तब पिताके द्वारा युद्धका वृत्तान्त पूछनेपर उनसे उस युद्धका सारा वृत्तान्त कहने लगे।

५९ अध्याय समाप्त।

वसुदेव बोले, हे वृष्णिकुलनन्दन कृष्ण। उस कुरुक्षेत्रमें नित्य कथा प्रसङ्गसे परस्पर विवाद करनेवाले मनुष्योंका जो परम अद्भुत संग्राम हुआ था, उसे मैंने सुना है; परन्तु तुमने प्रत्यक्ष देखा तथा तुम्हें उसका रूप मालूम है। हे अनघ। इसलिये उस संग्रामका यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो। भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य, इनके सङ्ग महात्मा पाण्डवोंका तथा अनेक वेश वा रूपविशिष्ट अनेक देशवासी अन्यान्य कृतास्त्र क्षत्रियोंका जिस प्रकार युद्ध हुआ था, उसे भी कहो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुण्डरीकाक्ष कृष्ण माताके समीप पिताका ऐसा वचन सुनके युद्धमें जिस प्रकार कौरवोंको मृत्यु हुई थी, उसे कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, महात्मा क्षत्रियोंका वह सब अत्यन्त अद्भुतकर्म्म एक सौ वर्षमें भी नहीं कहा जा सकता, तब संक्षेपमें मुख्य मुख्य राजाओंके कार्य्यका यथावत् वर्णन करता हूं, सुनिये। कुरुवंशावतंस कौरवोंके सेनापति भीष्म सुरसेनापति इन्द्रकी भांति कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके अधिपति हुए थे। पाण्डवपक्षके नेता धीमान् शिखण्डी सात अक्षौहिणीके अधिपति हुए, श्रीमान् सव्यसाची अर्ज्जुन उनकी रक्षा करते थे। उन महात्मा कुरु-पाण्डवोंमें दशदिन तक रोमहर्षजनक युद्ध होता रहा, अनन्तर शिखण्डीने गाण्डीवधारी अर्ज्जुनके सहित महासंग्राममें युध्यमान गङ्गानन्दन भीष्मको अनेक बाणोंसे मारा। उस समय भीष्मने दक्षिणायन भर शरशय्यापर रहके उत्तरायण उपस्थित होनेपर प्राण परित्याग किया। अनन्तर दैत्यगुरु भार्गवकी भांति कुरुकुलके गुरु महास्त्रवित् द्रोण कौरवोंके सेनापति हुए। वह युद्धमें प्रशंसित द्विजसत्तम द्रोण अवशिष्ट नव अक्षौहिणी सेनासे घिरकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए, कृप तथा मुख्य क्षत्रियगण उनकी रक्षामें नियुक्त हुए थे। मेधावी महास्त्रवित् धृष्टद्युम्न पाण्डवोंके सेनापति हुए, मित्रोंके द्वारा रक्षित वरुणकी भांति वह भीमसे रक्षित हुए थे। उस महामना धृष्टद्युम्नने पिताका परिभव स्मरण करते हुए द्रोणको मारनेकी इच्छा करके सेनासमूहसे घिरकर युद्धमें अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया था। कई दिशाओंसे आये हुए राजा लोग उस द्रोण और धृष्टद्युम्नके युद्धमें प्रायः सभी मृत्युको प्राप्त हुए। पांच दिनतक वह दारुण संग्राम हुआ, उसके अनन्तर द्रोणाचार्य्य विश्रान्त होकर धृष्टद्युम्नके वशवर्त्ती हुए। तब कर्ण दुर्योधनकी सेनाके बीच अवशिष्ट पांच अक्षौहिणी सेनासे घिरकर युद्धमें सेनापतिके कार्य्यपर नियुक्त हुए। पाण्डवोंकी ओर बहुतसे वीरोंके मरनेपर अवशिष्ट तीन अक्षौहिणी सेना अर्ज्जुनके द्वारा रक्षित होकर युद्धमें स्थित हुई। अनन्तर दूसरे दिन सूतनन्दन अत्यन्त प्रचण्ड कर्णने अग्निमें पड़े हुए पतङ्गकी भांति पृथापुत्र अर्ज्जुनको प्राप्त होकर पञ्चत्व लाभ किया। कर्णके मरनेपर कौरवोंने तेजरहित तथा निरुत्साह होकर मद्रराज शल्यको तीन अक्षौहिणी सेनाका अधिपति किया, पाण्डवोंने भी वाहन आदि नष्ट होनेपर निरुत्साही होकर शल्यके संङ्ग युद्ध करनेके लिये युधिष्ठिरको एक अक्षौहिणी सेनाका सेनापति किया। कुरुराज युधिष्ठिरने आधे दिनतक मद्रराज शल्यके सहित अत्यन्त दुष्कर संग्राम करके उन्हें संहार किया। शल्यके मरनेपर महामना अमितविक्रम सहदेवने उस कलहके मूल शकुनिको मार डाला। शकुनि और सब सेनाके नष्ट होनेपर धृतराष्ट्रपुत्र राजा सुयोधनने अत्यन्त दुःखित होकर गदा लेके भागकर द्वैपायन ह्रदमें निवास किया, इधर प्रतापवान् भीमसेन क्रुद्ध होकर उनका अनुसन्धान करते हुए उन्हें द्वैपायन ह्रदके बीच अवलोकन किया। अनन्तर पांचों पाण्डव प्रसन्नचित्तसे आरनेके

बची हुई सेनाके सहित तालाबमें स्थित सुयोधनको घेरकर वहां बैठकर उनकी निन्दा करने लगे। जलके बीच सुयोधन वाक्यवाणसे अत्यन्त पीड़ित होकर हाथमें गदा लेकर जलसे निकलकर युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए; तब भीमसेनने युद्धमें राजाओंके सम्मुख विक्रम-प्रकाश करके धृतराष्ट्रपुत्र दुर्य्योधनको मारा। अनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पिताके बधसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर रात्रिके समय शिविरमें सोई हुई पाण्डवोंकी समस्त सेनाका संहार किया। उस समय मेरे तथा सात्यकिके अतिरिक्त पुत्र, बल तथा मित्रोंके सहित केवल पाच पाण्डव शेष रहे; अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य तथा कृतवर्म्माके सहित युद्धसे निवृत्त हुए और कुरुबंशीय युधिष्ठिर पाण्डवोंके निकट रहनेसे बच गये। कौरवेन्द्र सुयोधन जब बान्धवोंके सहित मारे गये, तब विदुर और सञ्जय धर्म्मराजके निकट उपस्थित हुए। हे प्रभु! इस ही प्रकार वह युद्ध अठारह दिन हुआ था, उसमें जो सब राजा मारे गये, वे स्वर्गलोकमें गये हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वृष्णिवंशीय पुरुष यह लोमहर्षण कथा सुनके दुःख तथा शोकसे अत्यन्त शोकित हुए।

६० अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाबुद्धिमान् प्रतापवान् कृष्ण उस भारत-युद्धका वृत्तान्त वर्णन करते हुए अभिमन्युका वृत्तान्त वसुदेवको अप्रिय होगा, ऐसा समझके उसे अतिक्रम करके कहने लगे। वसुदेव दौहित्रवधका वृत्तान्त सुननेसे दुःख तथा शोकसे अत्यन्त सन्तापित होंगे, ऐसा विचारके उसे न कहा; परन्तु सुभद्रा कृष्णसे बोली, "हे कृष्ण! तुमने जो मेरे पुत्र अभिमन्युका वध वृत्तान्त गोपन किया है, उसे कहो," इतना कहके पृथ्वीपर गिर पड़ी। उस समय सुभद्राको पृथ्वीमें गिरती देखकर वसुदेव भी दुःखसे मूर्छित होकर भूमिमें गिरे। अनन्तर वसुदेव दौहित्र वधजनित शोकसे पीड़ित होकर कृष्णसे बोले। हे पुण्डरीकाक्ष। तुम जो सत्यवादी कहके पृथ्वीमें विख्यात् हुए हो, उसमें मुझे विश्वास नहीं होता; क्योंकि आज तुमने मेरे समीप दौहित्रवध वृत्तान्त प्रकाश न किया। हे कृष्ण। तुम अपने भानजेका बध-वृत्तान्त मुझसे यथार्थ रीतिसे कहो। हे वार्ष्णेय। तुम्हारे नेत्र सदृश नयन सम्पन्न सुभद्रापुत्र अभिमन्यु अकालमें मनुष्योंके सहित दुर्म्मरणकी भांति युद्धमें शत्रुओंके द्वारा क्यों मारा गया? हे कृष्ण। इतने पर भी दुःखसे मेरा हृदय सौ टुकडे होकर विदीर्ण न हुआ? जब वह अभिमन्यु युद्धमें मारा गया, उस समय उसने अपनी माता सुभद्राकी ओर मुझे क्या कहा था? हे पुण्डरीकाक्ष! वह चञ्चलनेत्रवाला सुभद्रापुत्र अभिमन्यु मेरा परम प्रियपात्र था, क्या युद्धमें पराङ्मुख होनेपर शत्रुओंने उसे मारा है? हे गोविन्द! शत्रुओंने युद्धमें उसका मुख विकृत तो नहीं किया? हे कृष्ण! वह महातेजस्वी मेरे निकट तो प्रशंसित हुआ था? वह बाल भावसे सबके निकट अपनी विनय कहता था। हे केशव! वह बालक द्रोण, कर्ण, कृप प्रभृति तथा क्षत्रियोंके द्वारा तो नहीं मारा गया? वह शत्रुके द्वारा मरकर जिस प्रकार पृथ्वीपर सोया था, वह मुझसे कहो। वह दुहिताका पुत्र अभिमन्यु युद्धमें द्रोण, भीष्म और अत्यन्त बलशाली कर्णकी स्पर्द्धा करता था।

जिस समय वसुदेव दुःखके सहित इस प्रकार अनेक भांति विलाप करने लगे; तब गोविन्द अत्यन्त दुःखित होकर उनसे बोले, कि अभिमन्युने युद्ध भूमिमें बक्त्र विकृत नहीं किया, बल्कि युद्धसे पराङ्मुख न होकर दुस्तर सग्राम किया था। सैकड़ों सहस्रों राजाओंको मारकर द्रोणाचार्य्य और कर्णके द्वारा पीड़ित होकर

दुःशासनपुत्रके वशवर्त्ती हुआ था। हे प्रभु! यदि कौरवगण। अकेले अकेले अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करते, तो कोई भी उसे पराजित न कर सकता, कौरवोंकी बात तो दूर रहे, वज्र पाणि इन्द्र भी युद्धमें अकेले उसका बध करनेमें समर्थ न होते। उस समय जब अर्ज्जुन संसप्तकोंके सङ्ग पृथक् होकर युद्ध करने लगे, तब द्रोण प्रभृति योद्धाओंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे घेर लिया। हे पिता। इतनेपर भी सुभद्रापुत्र युद्धमें अत्यन्त महत् तथा समधिक शत्रुओंका सहार करके अन्तमें दुःशासनपुत्रके वशवर्त्ती हुआ। हे महाप्राज्ञ! वह सुभद्रापुत्र निश्चय ही स्वर्गमें गया है, आप उसके लिये शोक न करिये, शोक परित्याग करिये; इस विषयमें आपके सदृश कृतबुद्धि पुरुषोंको व्यसनमें पड़के अवसन्न होना उचित नहीं है। जब कि महेन्द्र सदृश बलशाली कर्ण प्रभृति वीरगण जिसके सङ्ग युद्ध करके स्वर्गमें गये हैं, तब वह अभिमन्यु स्वर्गमें क्यों न जायगा? हे दुर्द्धर्ष। आप शोक परित्याग करिये, मन्युके वशमें न होइये, उस पराये देशको जीतनेवाले अभिमन्युकी निश्चय ही शस्त्रपूत गति प्राप्त हुई है। उस वीर अभिमन्युके मरनेपर मेरी यह सुभद्रा बहिन दुःखसे आर्त्त होकर पृथाके निकट जाकर कुररिकी भांति अत्यन्त रोदन करती हुई दुःखित चित्तसे द्रौपदीसे पूछा, कि हे आर्य्ये! पुत्रगण कहां हैं? मैं उन्हें एक बार देखूंगी। सुभद्राका ऐसा वचन सुनकर कुरुस्त्रीगण दोनों भुजाओंसे इसे धारण करके अत्यन्त आर्त्तकी भांति रोने लगीं। सुभद्रा कुरुस्त्रियोंके सहित उत्तरासे बोली, भद्रे। तुम्हारा स्वामी कहां गया है, तुम मुझसे बताओ, वह कब आवेगा? हे विराटनन्दिनी! जब मैं अभिमन्युको बुलाती थी, तब वह मेरी बात सुनते ही उसी समय तुम्हारे सहित गृहसे बाहिर होता था; आज तुम्हारा पति क्यों नहीं आता है? हे अभिमन्यु! तुम्हारे इस स्थानमें रहनेपर तुम्हें युद्धप्रिय जानके तुम्हारे मामा तुमसे युद्धका कुशलादि वृत्तान्त कहते थे। हे अरिदमन। आज तुम मुझसे पूरीरीतिसे संग्रामका वृत्तान्त कहो। इस समय मैं इस प्रकार विलाप करती हूं, तुम किस निमित्त प्रत्युत्तर नहीं देते हो?

पृथा वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुई सुभद्राका ऐसा विलाप सुनकर अत्यन्त दुःखितचित्तसे धीरे धीरे उससे बोली, हे सुभद्रे। वह बालक अभिमन्यु युद्धमें श्रीकृष्ण, सात्यकि और निजपिता अर्ज्जुनके द्वारा लालित होनेपर भी कालधर्म्मके अनुसार मारा गया है। हे यदुनन्दिनि! मृत्युधर्म्म ही ऐसा है, इसलिये इस विषयमें शोक मत करो; तुम्हारे उस दुर्द्धर्ष पुत्रको निश्चयही परमगति प्राप्त हुई है। हे पद्म-पलाश नयनी! तुम महात्मा क्षत्रियोंके बीच महतकुलमें जन्मी हो, हे चञ्चलनयनी! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। हे शुभे। तुम गर्ब्भिणी उत्तराको अवलोकन करो, यह भाविनी उत्तराके गर्भसे शीघ्रही उस अभिमन्युकापुत्र उत्पन्न होगा, हे यदुकुलोद्वह! कुन्तीने इसही प्रकार सुभद्राको धीरज देकर शोक परित्याग करके अभिमन्युका श्राद्धादि किया। धर्म्म जाननेवाली कुन्ती अभिमन्युके उद्देश्यसे दान करनेके निमित्त युधिष्ठिर, भीम, यमसदृश यमज नकुल सहदेवको आज्ञा करके बहुत सा धन दान दिया। अनन्तर वह ब्राह्मणोंको बहुतसी गऊप्रदान करके विराटपुत्री उत्तराको बुलाकर बोली। हे अनिन्दिते विराट नन्दिनि। इस समय तुम्हें पतिके लिये सन्ताप करना उचित नहीं है, तुम गर्भस्थ शिशुको रक्षा करो। हे महातेजस्वी। कुन्ती उत्तराको ऐसाही कहके विरत हुई, इधर मैं सुभद्राको ले आया। हे दुर्द्धर्ष मानद। आपके दौहित्रकी इसी प्रकार मृत्यु हुई है, इसलिये आप शोक परित्याग करिये, तथा चित्तको शोकाकुल न करिये।

६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय धर्म्मात्मा शूरनन्दन वसुदेवने पुत्रका इस प्रकार वचन सुनके शोक परित्याग करके अनुत्तम श्राद्ध तथा दानादि कार्य्य किया। वासुदेवने भी पिताके प्रियपात्र स्वस्थपत्र महात्मा अभिमन्युका ऊर्द्धदैहिककार्य्य किया। अनन्तर साठ सौ सहस्र महातेजस्वी ब्राह्मणोंको सर्व्वगुणयुक्त भोजद्रव्य विधिपूर्व्वक भोजन कराया। उस समय महाबाहु कृष्णने वस्त्र आदिसे ब्राह्मणोंको इस प्रकार धनतृष्णा दूर की थी, कि वह सबके विषयमें लोमहर्षणकारी हुई थी। उस समय सुवरण, गऊ शय्या और वस्त्र दान करनेसे ब्राह्मण लोग "बढती हो,"—ऐसा ही वचन कहने लगे। अनन्तर सात्यकिके सहित दाशार्ह वासुदेव और सात्यक, ये लोग जिस प्रकार अभिमन्युका श्राद्ध करते हुए दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर उस समय शान्तिलाभ न कर सके; उस ही भांति महावीर पाण्डवगण भी अभिमन्युके बिरहसे हस्तिना नगरमें शान्तिलाभ नहीं कर सके। हे राजेन्द्र! विराटपुत्री उत्तराने पतिके विरहजनित दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर बहुत दिनतक भोजन नहीं किया, उस समय उसे महत् करुणा उपस्थित हुई और भोजनके अभावसे उसका कुक्षिस्थ गर्भ प्रलीन होगया। अनन्तर धीमान् महातेजस्वी व्यासदेव दिव्य दृष्टिके सहारे उसे जानके वहां आकर पृथुलोचना पृथा और उत्तरासे बोले, कि तुम लोग शोक मत करो; तुम्हारे महातेजस्वी पुत्र होगा। वह पुत्र वासुदेव तथा मेरे वचनके अनुसार पाण्डवोंके अनन्तर पृथ्वी पालन करेगा। हे भारत! व्यासदेव धर्म्मराजके सम्मुख अर्जुनको देखकर उन्हें हर्षित करते हुए बोले,—हे अर्जुन! तुम्हारे महामना भाग्यवान् पौत्र उत्पन्न होगा, वह पौत्र धर्म्मपूर्व्वक समुद्रके सहित पृथ्वीपालन करेगा। हे अरिकर्षण कुरुपुङ्गव! इसलिये तुम शोक परित्याग करो; मैंने जो कहा, इसमें तुम कुछ भी बिचार मत करो, यह वचन सत्य होगा। हे कुरुनन्दन! पहले वृष्णिप्रवर कृष्णने जो कहा है, वही होगा, इसमें तुम सन्देह मत करो, उस वीर श्रेष्ठ अभिमन्युने निज अर्ज्जित अमरलोक पाया है, इसलिये वह तुम्हारे तथा दूसरे कुरुगणोंका शोचनीय नहीं है। हे महाराज! धर्म्मात्मा धनञ्जय पितामह व्यासका ऐसा वचन सुनके शोक परित्याग कर हृष्टचित्त हुए। हे धर्म्मज्ञ! तुम्हारे पिता उस गर्भके बीच इच्छानुसार शुक्लपक्षके चन्द्रमाको भांति बढने लगे। अनन्तर व्यासदेव धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये आज्ञा देकर अन्तर्द्धान हुए। मेधावी धर्म्मराजने भी व्यासदेवका वचन सुनके धन लानेके निमित्त चलनेकी सम्मति की।

६२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! युधिष्ठिरने महात्मा व्यासदेवका वचन सुनके फिर अश्वमेधका किस प्रकार अनुष्ठान किया? हे द्विजसत्तम! मरुत्तने जो रत्न पृथ्वीतलमें सञ्चय कर रखा था, उन रत्नोंको उन्होंने जिस प्रकार पाया, वह विषय मुझसे कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर व्यासदेवका वचन सुनके अपने भाई अर्ज्जुन, भीम और माद्रीपुत्र यमज नकुल सहदेवको बुलाकर बोले, हे वीरगण! कुरुकुलहितैषी सुहृदोंके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले तपोवृद्ध धीमान् महात्मा कृष्णने सुहृदतापूर्व्वक जो कहा था और अद्भुतकर्म्मा धर्म्मशील गुरु व्यासदेव तथा भीष्म, इन्होंने भी जो कहा था, उसे तुम लोगोंने सुना है। हे पाण्डवगण! इस समय वह हमारे स्मृतिगोचर होनेसे हम सबके वर्त्तमान तथा भविष्यतके लिये हितजनक उस कार्य्यको करनेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि ब्रह्मवादियोंके वाक्य फलोत्पत्तिके विषयमें

कल्याणकर हुआ करते हैं। हे कुरुद्वहगण! इस वसुन्धराके वसुरहित होनेसे ही उस समयमें व्यासने मरुत्तके धनकी कथा कही थी। हे नृपगण। इसलिये यदि आप लोग इसे कर्त्तव्य तथा बहुमत समझते हो, तो उस धनको हम यहांपर ले आवें। हे भीम! कहो इस विषयमें तुम्हारा क्या मत है? हे कुरुकुलोद्वह! उस समय जब राजा युधिष्ठिरने ऐसा कहा तब भीमसेन हाथ जोड़के राजेन्द्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

भीमसेन बोले, हे महाबाहो! आपने व्यासदेवके उपदेश अनुसार धन लानेके विषयमें जिस प्रकार कहा, वह मुझे अभिमत है। हे प्रभु। यदि अविक्षित पुत्र मरुत्तका वह धन मिल जाय, तो मुझे बोध होता है, कि उससे ही हम लोगोंके सब कार्य्य पूरे होंगे, इसलिये आपके कल्याणके निमित्त हम कपर्द्दी गिरीश महात्मा महादेवको प्रणाम कर उनकी विधिपूर्व्वक पूजा करके वह धन लावेंगे। हम लोग वचन, कर्म्म और ज्ञानसे उस देवाधिदेवपति विभु भूतनाथ तथा उनके सेवकोंको प्रसन्न करनेसे निश्चय ही वह धन पा सकेंगे। वृषभध्वजके प्रसन्न होनेपर जो सब रौद्र दर्शन किन्नर उस धनकी रक्षा करते हैं, वे भी वशीभूत होंगे।

हे भारत। जब भीमसेनने इतनी बात कही तब राजा युधिष्ठिर उसे सुनके अत्यन्त प्रसन्न हुए और अर्ज्जुन प्रभृति भाइयोंने कहा, 'ऐसा ही होगा।'

अनन्तर पाण्डवोंने रत्न लानेका निश्चय करके उत्तम नक्षत्रयुक्त दिनमें सेनाको उस ओर चलनेके लिये आज्ञा दी। अनन्तर पाण्डुपुत्रोंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके मोदक, पायस और पिष्टकके सहारे देवोंके देव महेश्वरको पूजा करते हुए महात्मा युधिष्ठिरको आश्वासित करके अत्यन्त हर्षके सहित यात्रा किया। उनके चलनेके समय वहांपर नगरवासी लोग माङ्गलिक कार्य्य और ब्राह्मणगण शुभ आशिर्व्वाद करने लगे। अनन्तर उन लोगोंने अग्निके सहित ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा तथा सिर झुकाके प्रणाम करते हुए पुत्र शोकयुक्त भार्य्याके सहित राजा धृतराष्ट्र और पृथुलोचना पृथाकी अनुमति पाके वहांसे प्रस्थान किया। कुरुवंशीय धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सुको धृतराष्ट्र तथा कुन्तीके निकट सौंपकर पुरवासियों तथा मनीषि ब्राह्मणोंके द्वारा भली भांति सम्मानित हुए।

६३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर प्रहृष्ट नरवाहन युक्त पाण्डवगण आनन्दित होकर बहुतसे रथशब्दके द्वारा पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। उस समय सूत, मागध और बन्दिजन स्तुतिवाक्यसे उनका स्तव करने लगे, वे लोग मानो निज किरणोंसे युक्त सूर्य्यकी भांति अपनी सेनाके बीच घिरकर चले, उस समय सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छाता लगानेसे राजा युधिष्ठिर पूर्णमासीमें उदय हुए चन्द्रमाकी भांति शोभित हुए। पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने मार्गमें प्रहृष्ट पुरुषोंके जययुक्त आशिर्व्वादको विधि तथा नीतिके अनुसार प्रतिग्रह किया। हे राजन्! राजाके अनुगामी सैनिक पुरुषोंका हलहला शब्द गगनमण्डलको स्तब्ध करके स्थित हुआ। अनन्तर महाराज युधिष्ठिर तालाब, नदी, वन और उपवनोंको अतिक्रम करके पर्व्वतके समीप उपस्थित हुए। हे राजेन्द्र! जिस स्थानमें उस मरुत्त राजाका उत्तम धन रखा था, युधिष्ठिर पाण्डव तथा सैनिक लोगोंके सहित उसही स्थानमें पहुंचकर वासस्थान तय्यार कराने लगे। हे भरतसत्तम! राजा लोग तपस्या, विद्या और दमगुणयुक्त ब्राह्मणों तथा वेद वेदाङ्ग जाननेवाले अग्निवेश्य धौम्य पुरोहितको अगाड़ी करके उस समतल शुभकर स्थानमें पुरोहित और ब्राह्मणोंके

सहित शान्ति करके सेवकोंके सहित राजा युधिष्ठिरका मध्यवर्त्ती कर विधिपूर्व्वक उन्हें घेरके स्थित रहे। द्विजगणके लिये छः राजमार्ग और नव बासस्थान युक्त एक गृह बनाकर मतवारे हाथियोंके रहने योग्य एक हयशाला तय्यार कराया। अनन्तर राजेन्द्र युधिष्ठिर वासस्थान तय्यार कराके ब्राह्मणोंसे बोले, हे द्विजेन्द्रगण! उत्तम नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें यज्ञ कार्य्य सम्पन्न करना होगा; इसमें आप लोगोंकी जैसी अभिलाष हो, वैसाही करना चाहिये; परन्तु जिसमें हम लोगोंके समयमें विलम्ब न हो, वैसाही निश्चय करके उसके अनन्तर कर्त्तव्य कार्य्योंको सिद्ध करिये। धर्म्मराजके हितकी अभिलाष करनेवाले पुरोहितके सहित ब्राह्मण लोग राजाका ऐसा बचन सुनके प्रसन्न चित्तसे बोले। हे महाराज। आज उत्तम नक्षत्र तथा पुण्याह है, इसलिये आज ही हम लोग श्रेष्ठ कार्य्यके लिये एकत्र होंगे, हम लोग इस स्थानमें आज जलपीके निवास करें और आप भी उपवास करिये। राजाओंने ब्राह्मणोंका बचन सुनके प्रसन्नचित्तसे उपवास करते हुए रात्रिके समय यज्ञस्थलमें प्रज्वलित अग्निकी भांति कुशशय्यापर शयन किया। ब्राह्मणोंके धर्म्मयुक्त बचनको सुनते सुनते रात बीत गई, अनन्तर निर्म्मल प्रभातका समय उपस्थित होनेपर ब्राह्मण लोग धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे कहने लगे।

६४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणगण बोले, हे नरनाथ! पहले आप महात्मा त्रयम्बककी पूजा करिये उसके अनन्तर हम लोग तुम्हारे अर्थसिद्धिके विषयमें यत्नवान होंगे। राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंका बचन सुनके महादेवके लिये विधानपूर्व्वक पूजाकी सामग्री मंगाई। तब पुरोहितने संस्कारयुक्त घृतसे अग्निकी विधिपूर्व्वक पूजा करते हुए मन्त्रसिद्ध चरु तय्यार करके गमन किया। हे प्रजानाथ! उन्होंने मन्त्रपूरित पुष्प, मोदक, पायस और मांस प्रभृति बलि मगाकर महादेवकी पूजा की, अनेक प्रकारके फूल उच्चावच लाजकेसहित सब उत्तम वस्तुओंको संग्रह कर यक्षेन्द्र कुबेर और मणिभद्र प्रभृति किङ्करोंको बलि प्रदान किया। अनन्तर कृशर, मांस तिलयुक्त निवाप और घड़े भर जलके द्वारा अन्यान्य यक्षों तथा भूतपतिकी पूजा की, उस समय राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको सहस्र गऊ देकर रात्रिचर भूतोंको बलिप्रदान करनेके लिये आज्ञा दी।

हे पार्थिव। देवाधिदेव महादेवका स्थान धूप सुगन्धसे निरुद्ध तथा अनेक प्रकारके फूलोंसे परिपूरित होनेसे अत्यन्त शोभित हुआ। अनन्तर राजा युधिष्ठिर रुद्र और उनके गणोंकी पूजा करते हुए व्यासदेवको अगाड़ी करके यक्ष तथा निधिके निकट गये। वहांपर वीर्य्यवान युधिष्ठिरने विचित्र पुष्प, पिष्टक और कृशरके द्वारा धनाध्यक्ष कुबेर शङ्खादि निधि तथा निधिपालोंकी पूजा करते हुए दण्डवत् तथा प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। कुरुपति युधिष्ठिर ब्राह्मणोंके पुण्याह शब्द तथा तेजके सहित स्थित होके प्रसन्नचित्तसे उस धनको खुदवाने लगे।

अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर उस खजानेसे करकाके सहित अनेक प्रकारके मनोरम पात्र, भृङ्गार, कटाह, कलश, सराव तथा सैकड़ों सहस्रों विचित्र पात्रोंको बाहिर निकाला। हे राजन्। वहां बहुतसे महत् करपुराकार पात्र थे, वे सब पुरुषके तुलार्द्ध परिमित पात्र उष्ट्रादिके ऊपर बद्ध थे; परन्तु वहांपर पाण्डवोंके भार ढोनेवाले वाहन साठ सौ हजार ऊंट, उससे दूने घोड़े, सौ हजार हाथी, शकट, रथ, करेणु, असंख्य गधे तथा मनुष्य विद्यमान थे। राजा युधिष्ठिर सोलह, आठ और चौबीस हजार भार उस वित्त खानिसे बाहिर करके फिर महादेवकी पूजा करके उन वस्तुओंको सब

वाहनोंके ऊपर सामर्थ्यके अनुसार बांधकर हस्तिनापुरकी ओर चले। अनन्तर वेदव्यासकी आज्ञाके अनुसार पुरोहितको आगे करके प्रति दिन दो कोसको दूरीपर निवास करने लगे। हे राजन्! वह नगरकी ओर चलनेवाली बहुतसी सेना द्रविण भारसे थककर भी अत्यन्त कष्टसे बोझा ढोती हुई कौरवोंको हर्षित करने लगी।

६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इतनेही समयके बीच पुरुषश्रेष्ठ वीर्य्यवान् कृष्ण निज पुरी द्वारका नगरीकी ओर चलनेके समय धर्म्मराजने जो वचन कहा था, उस बाजिमेधके समयको स्मरण करके वृष्णिवंशीय रौक्मिणेय, युयुधान, चारुदेष्ण, शाम्ब, गद, कृतवर्म्मा, वीरवर सारण, निशठ और उल्मुख, इन सबके सहित सुभद्राको सङ्ग लेकर बलदेवको अगाड़ी करके हस्तिनापुरमें आके उपस्थित हुए। अनन्तर कृष्ण वृष्णिवंशियोंके सहित द्रौपदी, उत्तरा, पृथा तथा अन्यान्य स्वामीरहित क्षत्रिया स्त्रियोंको धीरज देते हुए आने लगे, तब राजा धृतराष्ट्र और महात्मा विदुरने उन वृष्णिवंशियोंको समागत देखकर सम्मानके सहित आह्वान किया, पुरुषश्रेष्ठ महातेजस्वी कृष्ण विदुर और युयुत्सुके द्वारा उत्तम रीतिसे सम्मानित होकर वृष्णिवंशियोंके सहित उस स्थानमें बैठे।

हे जनमेजय! अनन्तर वृष्णिवंशियोंके वहां बैठनेपर तुम्हारे पिता परवीरघाती परीक्षित उत्पन्न हुए। परन्तु सबके हर्ष और शोक निवर्त्तनसे वह राजा परीक्षित गर्भकेबीच ब्रह्मास्त्रके द्वारा पीड़ित होनेसे मृतकरूपसे भूमिष्ठ हुए। उस समय हर्षयुक्त पुरुषोंके सिंहनादके सहित तुमुल शब्द प्रकट होके सब दिशाओंमें प्रवेश करते हुए फिर उपरत हुआ। अनन्तर कृष्णने व्यथितेन्द्रिय तथा दुःखितचित्त होकर सात्यकिके सङ्ग अत्यन्त शीघ्रतापूर्व्वक अन्तःपुरमें प्रवेश किया। कृष्णने रनिवासमें प्रवेश करके देखा, कि निज पितृस्वसा पृथा ऊंचे स्वरसे रोदन करती तथा 'शीघ्र श्रीकृष्णके निकट चलो', ऐसा वचन कहती हुई शीघ्रतापूर्व्वक आरही है, उसके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा तथा बान्धवोंकी अन्यान्य स्त्रियें भी करुणा स्वरसे रोती हुई चली आती है। हे राजशार्दूल! उस समय भोजराजपुत्री कुन्ती कृष्णकी निकट पाके बिलखाकर गद्गद वचनसे बोली, हे महाबाहु कृष्ण! तुम्हारे ही द्वारा देवकी सुप्रजा हुई हैं, हे कृष्ण! तुम ही हमलोगोंकी एक मात्र गति तथा प्रतिष्ठा हो, यह कुरुकुल तुम्हारेही अधीन हुआ है। हे यदुप्रवीर! इसलिये जो तुम्हारा स्वस्रोयात्मज अश्वत्थामाके अस्त्रसे मरकर उत्पन्न हुआ है, तुम उसे जीवित करो। हे यदुनन्दन! ऐषिकास्त्र चलानेके समयमें तुमने ऐसी प्रतिज्ञा की थी, कि मृत पुत्र होनेपर भी मैं जीवित करूंगा। हे तात! देखो इस समय यह मरा हुआ पुत्र जन्मा है? हे यदुवीर! इसलिये तुम इस बालकको जिलाकर उत्तरा सुभद्रा, द्रौपदी धर्म्मपुत्र, भीम, अर्ज्जुन, नकुल दुर्द्धर्ष सहदेव और मेरी रक्षा करो। विशेष करके यह बालक पाण्डवोंका प्राण और पाण्डु तथा मेरे श्वशुरके पिण्डका अधिकारी हुआ है। हे जनार्द्दन! तुम्हारे प्रियपात्र मृत अभिमन्युका मङ्गल होवे, आज तुम इस बालकको जिलाकर उसका प्रिय कार्य्य करो। हे शत्रुसूदन! पहले अभिमन्युने प्रणयवशसे उत्तरासे जो कहा था, उसके उस वचनमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे दाशार्ह! उस समय अर्ज्जुनपुत्र अभिमन्युने विराटपुत्री उत्तरासे कहा था, हे भद्रे! तुम्हारा पुत्र मेरे मातुलकुलमें जाकर उस वृष्णि तथा अन्धकवंशमें ही धनुर्व्वेद, विचित्र अस्त्र तथा नीतिशास्त्र ग्रहण करेगा। हे तात! परवीरघाती दुर्द्धर्ष सुभद्रापुत्रने जो प्रणय निबन्धनसे इस ही प्रकार कहा था, निश्चय ही वैसा हुआ। हे मधुसूदन!

हम लोग सिर नीचा करके तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हैं, कि इस कुरुकुलके हितके विषयमें जिस प्रकार उत्तम कल्याण हो, तुम वैसा ही करो।

पृथुलोचना पृथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंके सहित वृष्णिवंशीय कृष्णसे ऐसा ही कहके अत्यन्तदुःखितचित्तसे दोनों भुजा उठाके पृथ्वीपर गिरी। इधर आखोंमें आसू भरे हुए कौरवोंकी स्त्रियें कहने लगीं, कि श्रीकृष्णके भानजेका पुत्र मरा हुआ जन्मा है। हे भारत! सबके इसही प्रकार कहते रहनेपर जनार्द्दन पृथ्वीपर गिरी हुई कुन्तीको उठाकर धीरज देने लगे।

६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय कुन्तीके उठनेपर सुभद्रा अपने भाई कृष्णको देखकर दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर रोती हुई यह वचन बोली। हे पुण्डरीकाक्ष! देखो कुरुकुलके परिक्षीण होनेसे ही यह बुद्धिमान अर्ज्जुनका पौत्र परिक्षीण तथा गतायु होके उत्पन्न हुआ है। द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने जो भीमसेनके वधके लिये ऐषिकास्त्र चलाया था, वह अस्त्र अर्ज्जुन और मेरे विद्यमान रहते भी उत्तराको लगा था। हे केशव! इस समय उस पुत्र सहित अभिमन्युको न देखनेपर मेरा हृदय विदीर्ण होनेसे मुझमें ही विद्यमान रहा। धर्म्मात्मा धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन और माद्री पुत्र नकुल-सहदेव ये लोग अभिमन्युके पुत्रको मरा उत्पन्न हुआ सुनके क्या कहेंगे? हे कृष्ण! इससे मानो पाण्डव लोग द्रोणपुत्रके द्वारा अपहृत हुए। हे वार्ष्णेय! अभिमन्यु जो सब भाइयोंका प्रियपात्र था, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है; परन्तु वे लोग इस वृत्तान्तको सुनके क्या कहेंगे? क्या वे लोग द्रोणपुत्रके अस्त्रसे निर्ज्जित हुए? हे जनार्द्दन! अभिमन्युके मृतपुत्र उत्पन्न होनेसे इससे अधिक दुःखका विषय और क्या होगा? हे पुरुषोत्तम! आज मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रसन्न करती हूं, तुम इस पृथा तथा द्रौपदीकी ओर देखो। हे माधव! जिस समय द्रोणपुत्रने पाण्डवोंकी वधुओंका गर्भ विनाश किया, उस समय तुमने क्रुद्ध होके उससे कहा था, रे नराधम ब्रह्मबन्धु! मैं अभिमन्युके पुत्रको जीवित करके तेरी कामना विफल करूंगा; मैं यह वाक्य सुनकर तुम्हारा बल मालूम करके तुम्हें प्रसन्न करती हूं, तुम अभिमन्युके पुत्रको जीवित करो। हे वृष्णिशार्द्दूल! यदि तुम ऐसी प्रतिज्ञा करके इस समय उस प्रतिश्रुत वचनको सफल न करोगे, तो जान रखो, कि मैं तुम्हारे सम्मुखमें निश्चय ही प्राण परित्याग करूंगी। हे वीर! यदि यह अभिमन्युका पुत्र जीवित न होगा, तो तुम्हारे जीवित रहते मैं तुम्हें लेके क्या करूंगी? हे दुर्द्धर्ष! इसलिये जैसे बादल जलकी वर्षा करके शस्यको जीवित करते हैं, वैसे ही तुम अभिमन्युके इस मरे हुए पुत्रको जीवित करो। हे केशव! तुम धर्म्मात्मा सत्यवादी सत्यपराक्रमी तथा तुम ही मिथ्या वचनको सत्य करनेमें समर्थ हो; इस मृत उत्पन्न हुए परमप्रियपात्र भानजेके पुत्रको जीवित करना, तुम्हारे पक्षमें कुछ बड़ी बात नहीं है, क्यों कि तुम इच्छा करनेसे त्रिलोकवासी समस्त मृत लोगोंको जीवित कर सकते हो। हे कृष्ण! मैं तुम्हारा प्रभाव जानती हूं, इस ही लिये तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हूं, तुम पाण्डुपुत्रोंके विषयमें यह परम अनुग्रह प्रकाशित करो। हे महाबाहो! बहिन जानके तथा हतपुत्रा अथवा शरणमें आई हुई समझके मेरे विषयमें तुम्हें दया करनी उचित है।

६७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र! जब सुभद्राने ऐसा कहा, तब केशिनिसूदन कृष्ण दुःखसे मूर्च्छित होकर ऊंचे स्वरसे 'ऐसा ही

होगा,' इतना वचन कहके वहां पर सब लोगोंको हर्षित किया। जैसे सूर्य्यकी धूपसे आर्त्त हुआ पुरुष जल सेचनसे सुखो होता है, वैसे ही उस समय पुरुषश्रेष्ठ कृष्णके उस बचनसे सब कोई अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। अनन्तर उन्होंने शीघ्र ही तुम्हारे पिताके जन्मगृहमें प्रवेश करके देखा, कि वह गृह सफेद मालासे विधिपूर्व्वक सज्जित चारों ओर जलभरे कलशोंसे युक्त है, घृत, तिन्दुक, वृक्षोंके पल्लव, सर्षप, बिमल अस्त्र और अग्नि यथायोग्य स्थानपर स्थित है, वहां-पर सेवा टहलके लिये बूढ़ी रमणीय परिचा-रिका खड़ी हैं, चिकित्साके लिये उत्तम निपुण वैद्य विद्यमान हैं और कुशल पुरुषोंके द्वारा रक्षोघ्न वस्तुएं विधिपूर्व्वक स्थापित होरही हैं। हृषीकेश तुम्हारे पिताका ऐसा जन्मगृह देखकर अत्यन्त हर्षित होके धन्य धन्य कहने लगे। वृष्णिनन्दन कृष्णके ऐसा कहनेपर द्रौपदी शीघ्रताके सहित विराटनन्दिनी उत्तराके पास जाकर उससे बोली, हे भद्रे! ये तुम्हारे श्वशुर पुराण ऋषि अचिन्त्यात्मा अपराजित मधुसूदन कृष्ण तुम्हारे निकट आरहे हैं। उत्तरा देवी द्रौपदीका बचन सुनके शोकयुक्त बचन और आंसूके जलको रोककर देवताकी भांति कृष्णको देखके अवगुण्ठनवती हुई। अनन्तर वह तपस्विनी विराटपुत्री आये हुए गोविन्दको देखकर शोकपूरित हृदय होकर करुणायुक्त बचनसे इस प्रकार बिलाप करने लगी। हे पुण्डरीकाक्ष। देखिये, मैं बालक विहीन हुई हूं; अभिमन्युकी तथा मुझे भी मरी हुई जानो। हे मधुसूदन! मैं सिर नीचा करके आपके निकट यह प्रार्थना करती हूं, कि आप द्रोणपुत्रके अस्त्रसे जले हुए मेरे इस पुत्रको जीवित करिये, हे पुण्डरीकाक्ष! यदि धर्म्मराज, भीमसेन अथवा आप ऐसा कहते, कि ऐषिकास्त्र इस अज्ञानवती गर्भिणीका वध करे, तो उस समय मेरा विनाश होनेसेही भला होता, क्यों कि तब ऐसी घटना न होती। दुर्ब्बुद्धि द्रोण-पुत्रने ब्रह्मास्त्रसे इस गर्भके बालकको मारके कौनसा फल पाया? हे शत्रुनिबर्हण! मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रसन्न करती हुई प्रार्थना करती हूं, कि आप इस बालकको जीवित करिये। हे गोबिन्द! यदि यह बालक जीवित न होगा, तो मैं आपके सामने ही प्राण परि-त्याग करूंगी। हे साधो! इस विषयमें मेरे मनमें जो सब मनोरथ उत्पन्न हुए थे, द्रोणपुत्रने उसे नष्ट किया है, तब किस लिये प्राण धारण करूंगी? हे कृष्ण! पहले मेरी यह इच्छा थी, कि मैं आपको प्रणाम करूंगी, परन्तु उस समय मेरे पूर्णगर्भा रहनेसे वह विफल हुआ है। हे पुरुषर्षभ! मेरे मनमें जो सब मनोरथ उत्पन्न हुए थे, चञ्चललोचना यह पुत्र मृत होनेसे वे सब मनोरथ निष्फल हुए हैं। हे मधुसूदन! वह चपलाक्ष आपको परम प्रियपात्र थे, देखिये उनका यह पुत्र ब्रह्मास्त्रसे मरा हुआ है, इसका पिता जैसा कृतघ्न और नृशंस था, यह बालक भी वैसा ही हुआ, क्यों कि आज इस बालकने पाण्डवी श्री परित्याग करके यमके स्थानमें गया है। हे केशव! पहले मैंने उनके समीप ऐसी प्रार्थना की थी, हे वीर अभिमन्यु! यदि तुम युद्धभूमिमें मरोगे, तो उसी समय मैं तुम्हारे निकट गमन करूंगी, हे कृष्ण! मैंने नृशंसताके वशमें होकर जीनेकी आशासे ऐसा नहीं किया, इस समय मेरे वहां जानेपर वह फाल्गुनि मुझे क्या कहेंगे?

६८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह पुत्राभिला-षिणी तपस्विनी उत्तरा कातर होके पागलि-नोकी भांति करुण वाक्यसे इस ही प्रकार बिलाप करके पृथ्वीपर गिरी। दुःखसे आर्त्त कुन्ती और अन्यान्य भरतकुलकी स्त्रियें उस पुत्र और वस्त्ररहित उत्तराको पृथ्वीपर गिरती

हुई देख ऊंचे स्वरसे रोने लगीं। हे राजेन्द्र! उस समय पाण्डवोंके गृह मुहूर्त्तभरके बीच आर्त्तस्वरसे निनादित होकर दर्शनीय हुए। हे राजन्! उस समय पुत्रशोकसे सन्तापित बिराट-पुत्री उत्तरा मूर्च्छित हुई, अनन्तर वह सावधान होकर उस मरे हुए पुत्रको गोदीमें लेकर उससे कहने लगी, कि तुम धार्म्मिकके पुत्र होकर वृष्णिप्रवीर कृष्णको प्रणाम न करनेसे तुम्हें जो अधर्म्म होता है, उसे क्या तुम नहीं जानते हो? हे पुत्र! तुम अपने पिताके निकट जाकर मेरा यह वचन उनसे कहना, कि हे वीर! आप प्राणियोंके मृत्युकाल उपस्थित न होतेही क्यों अकालमें मृत हुए? आपके सदृश पति और पुत्रका विरह होनेसे मेरा मरनाही कल्याण-कारी है; इतनेपर भी जो अबतक मैं जीवित हूं, उससे मेरा कौनसा मङ्गल होगा? हे महा-भुज! मैं धर्म्मराजकी अनुमति लेकर घोर विष-भक्षण अथवा अग्निमें प्रवेश करूंगी।

हाय! मैं पुत्र और पतिसे हीन हुई हूं, तौभी मेरा यह दुर्द्धर हृदय सहस्र टूकड़े होके न फट गया? हे पुत्र! तुम उठकर दुःखित शोकसे आर्त्त विपद ग्रस्त दीन तथा शोकमें डूबी हुई सात्त्वतवंशीय इस अपनी प्रपितामही आर्य्या कुन्ती, तपस्विनी द्रौपदी और व्याधाके द्वारा विद्ध हुई हरिनोकी भांति मुझे अवलो-कन करो। हे पुत्र! तुम उठके अपने चपलनेत्र पिताके मुखमण्डलकी भांति बुद्धिमान् लोक-नाथके पद्मपलास सदृशनेत्र सम्पन्न वदनमण्डल देखो। उत्तराके पृथ्वीमें गिरके इसही प्रकार बिलाप करती रहनेपर उन स्त्रियोंने उसे देख-कर अत्यन्त दुःखित होकर फिर उसे उठाया। तब मत्स्यराज-पुत्रीने उठकर धीरज अव-लम्बनकर हाथ जोड़के पुण्डरीकाक्ष कृष्णको प्रणाम किया।

अनन्तर वह पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण उत्तराका बहुत सा विलाप बचन सुनके जलस्पर्श करके ब्रह्मास्त्र प्रतिसंहार करने लगे। विशुद्धात्मा अच्युत दाशार्ह कृष्ण बालकके जीवनदानकी प्रतिज्ञा करके अखिल भूमण्डलको सुनाकर बोले, हे उत्तरा! मैं मिथ्या नहीं कहता, मैंने जो कहा है, वह सत्य होगा, देखो सबके सामनेही मैं इस बालकको जिलाता हूं। जब कि पहले मैंने किसी प्रकार तनिकभी मिथ्या नहीं कहा तथा युद्धमें पराजित नहीं हुआ हूं, तब उस पुण्यबलसेही यह बालक जीवित होवे। जिस प्रकार धर्म्म और ब्राह्मणगण मुझे प्रिय हैं, अभिमन्युका पुत्रभी वैसाही प्रिय है, इस लिये यह मरके जन्मा हुआ पुत्र जीवित हो, जो मैंने विजय अर्ज्जुनके सङ्ग कभी विरोध न किया हो, तो उसही सत्यके अनुसार यह मरा हुआ पुत्र जीवित होवे। सत्य और धर्म्म मुझमें सदा प्रतिष्ठित हो, तो अभिमन्युका यह मृतपुत्र जी जाय। जो कंस और केशी धर्म्म पूर्व्वक मेरे हाथसे मारे गये हों, तो उसही सत्यधर्म्मके अनु-सार यह मरा हुआ बालक जीवित होवे। हे भरतश्रेष्ठ! जब कृष्णने इतना वचन कहा, तब वह बालक धीरे धीरे सचेत होकर अङ्ग प्रत्यङ्ग सञ्चालन करने लगा।

७९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब कृष्णने उस ब्रह्मास्त्रको प्रतिसंहार किया, तब तुम्हारे पिताके तेजप्रभावसे वह गृह प्रदीप्त हुआ। अनन्तर राक्षसगण उस गृहको छोड़के भाग गये, इधर आकाशसे केशवके विषयमें साधुवाद होने लगा। हे प्रजानाथ! उस समय उस अस्त्रके प्रज्वलित होकर पितामहके निकट जानेपर तुम्हारे पिता फिर जीवित हुए। अनन्तर जब वह बालक निज अङ्गोंको सञ्चालन करने लगा, तब भरत कुलकी स्त्रियें बल और उत्साहके सहित हर्ष प्रकाश करने लगीं। वे सब हर्षित होकर कृष्णकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन

त्तराके जनार्द्दनकी प्रशंसा करने लगीं। जैसे पार जानेवाले लोग नौका पाके आनन्दित होते हैं, वैसेही कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा प्रभृति भरतकुलकी सब स्त्रियें मृत बालकको जीवित देखकर हर्षित हुई। वहांपर मल्ल, नट, ज्योतिषी, सुखशयन, जिज्ञासु, सूत और मागधगण कुरुवंशके स्तवसूचक आशीर्व्वचनके द्वारा जनार्द्दनकी स्तुति करने लगे। हे भारत! उत्तराने समयके अनुसार उठके प्रसन्नचित्त होकर पुत्रके सहित यदुनन्दन कृष्णको प्रणाम किया। कृष्णने अत्यन्त हर्षित होकर उसे बहुत तथा रत्न प्रदान करते हुए अन्यान्य वृष्णिवंशियोंकी भांति उसका नामकरण किया। हे महाराज! भरतकुल क्षीणप्राय होनेपर अभिमन्युका पुत्र उत्पन्न हुआ, उस समत सत्यसन्ध जनार्द्दन कृष्णने कहा, 'इसका नाम परीक्षित होवे', इसही लिये तुम्हारे पिताका परीक्षित नाम हुआ।

हे प्रजानाथ! तुम्हारे पिता समयके अनुसार वर्द्धित होकर सबके चित्तको आनन्दित करने लगे। हे वीर! आपके पिताकी एक महीनेकी अवस्था होनेपर पाण्डवलोग बहुत सा रत्न लेकर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए, वृष्णिपुङ्गवगण उन लोगोंकी आगमन वार्त्ता सुनके उन्हें देखनेके लिये गृहसे बाहिर हुए; हे नरनाथ! जनपद तथा पुरवासी पुरुषोंने अनेक प्रकारकी माला, विचित्र पताका, अनेक भांति की ध्वजा और पूजाकी विविध वस्तुओंसे हस्तिना नगर, राजभवन तथा देवालयोंको अलंकृत किया। अनन्तर विदुरने पाण्डुपुत्रोंकी परम प्रियकामनासे राजमार्गोंको पुष्पमालाके द्वारा सुशोभित करनेके लिये आज्ञा किया। हे महाराज! उस समय नाचनेवाले नर्त्तक और गीतगानेवालोंके सङ्गीत शब्दसे राजनगरी प्रतिध्वनित होकर शब्दायमान समुद्रकी भांति शोभित हुई। वहांपर चारों ओर निर्जन स्थानोंमें सश्लोक बन्दिगणके स्तुतिवाद करते रहनेसे उस समय वह राजमन्दिर कुवेरके भवनकी भांति प्रकाशित होने लगा। सब पताका वायुके द्वारा सञ्चालित होकर मानो उत्तर और दक्षिण कुरुगणको प्रदर्शन करने लगीं और राजभाराधिकृत पुरुषगण उस समय इस प्रकार घोषणा करने लगे, कि पाण्डवगण रत्न लानेके निमित्त जाकर सब राष्ट्रोंमें विहार करके आज हस्तिनानगरमें प्रवेश करेंगे।

७० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शत्रुसूदन श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंकी आगमनवार्त्ता सुनके उन्हें देखनेकी इच्छासे मन्त्रियोंके सहित उनके समीप गये। हे राजन्! पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग धर्म्मपूर्व्वक मिलकर नगरमें प्रवेश किया। उस समय उस महासेनामें स्थित वाहनोंके खुर तथा रथके शब्दसे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल और समस्त जगत् परिपूरित हुआ। अनन्तर पाण्डव लोग रत्नकोष आगे करके प्रसन्नचित्तसे मन्त्रियो और सुहृदोंके सहित निज पुरमें प्रविष्ट हुए, वे सब लोग मिलकर न्यायके अनुसार प्रजानाथ धृतराष्ट्रके समीप अपना अपना नाम कहकर उनके दोनो चरणोंको बन्दना करने लगे। हे राजेन्द्र! भरतसत्तम पाण्डवगण धृतराष्ट्रकी चरणवन्दना करके क्रमसे सुवलनन्दिनी गान्धारी, कुन्ती और वैश्यापुत्र विदुरकी पूजा करतेहुए पुरवासियोंसे पूजित होकर विशेष रूपसे प्रकाशित होने लगे।

फिर उन लोगोंने तुम्हारे पिताका वह परमाश्चर्य्य विचित्र अद्भुत जन्मवृत्तान्त और बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैसा विस्मयकर कर्म्म सुनके पूजनीय देवकीपुत्र कृष्णकी पूजा की। अनन्तर कुछ दिनके बाद सत्यवतीपुत्र व्यासदेव हस्तिनापुरमें आये। कुरुद्वह पाण्डवगण वृष्णि तथा अन्धकवंशीय लोगोंके सहित व्यासदेवकी पूजा

करके उनको उपासना करने लगे; तब वहां धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर व्यासके समीप अनेक भांतिकी वार्त्ता करके उनसे बोले, हे भगवन्। आपकी कृपासे ये सब रत्न लाये गये हैं, मैं उन सब रत्नोंको अश्वमेध यज्ञमें व्यय करनेकी इच्छा करता हूं। हे मुनिसत्तम। हम सब कोई आपके तथा कृष्णके वशमें हैं, इसलिये यह प्रार्थना करता हूं, कि उस विषयमें आप मुझे अनुमति दीजिये।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे राजन्! मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, इसके अनन्तर यदि और कुछ कार्य्य हो, तो उसे तुम पूरा करके विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करो। हे राजेन्द्र! अश्वमेध यज्ञ सब पापोंसे पवित्र करता है, इसलिये तुम उस यज्ञको करनेसे निश्चय ही पापरहित होगे; इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस धर्म्मात्मा कुरुराज युधिष्ठिरने व्यासदेवका ऐसा वचन सुनकर अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये सम्मति की। वाग्मिवर राजा युधिष्ठिर कृष्णद्वैपायन मुनिसे सब वृत्तान्त कहके वसुदेवपुत्र कृष्णके निकट जाकर उनसे बोले, हे पुरुषसत्तम! तुम्हारे द्वारा देवकी उत्तम प्रजावती हुई हैं, हे महाबाहो! मैं तुमसे जो कहता हूं, तुम उसे सुनो। हे यदुनन्दन! हम लोग तुम्हारे प्रतापसे अर्ज्जित भोग्य वस्तुओंको भोगते हैं, तुमने ही पराक्रम और बुद्धिसे इस पृथ्वीको जीता है; तुमही हम लोगोंके परम गुरु हो, हे दाशार्ह! इसलिये तुम्हें स्वयं यज्ञमें दीक्षित होना योग्य है, क्यों कि तुम्हारे दीक्षित होनेसे मैं निष्पाप होऊंगा। मैंने यह निश्चय जाना है, कि तुमही यज्ञ, तुमही अक्षर, तुमही धर्म्म, तुमही प्रजापति और तुम ही सब प्राणियोंकी गति हो।

श्रीकृष्ण बोले, हे अरिन्दम! आपको ऐसा कहना चाहिये, परन्तु मुझे ऐसा निश्चय ज्ञान है, कि आप ही सब भूतोंकी गति हैं, और आप कुरुवीर पुरुषोंकी आदि होकर इस लोकमें धर्म्मरूपसे विराजते है। हे राजन्! हम सब कोई आपके गुणीभूत हुए हैं, हम आपको ही अपना गुरु जानते हैं; इसलिये मैं कहता हूं, कि आप इस यज्ञमें दीक्षित होकर जो जो करनेकी इच्छा हो, उन कार्य्योंके लिये मुझे आज्ञा करिये। हे अनघ! मैं आपके समीप सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं भीमसेन, अर्ज्जुन और माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, हम सब कोई आपके सब कार्य्य करेंगे। हे राजन्! आपका इष्ट साधन होनेसे सबकी अभिलाष पूर्ण होगी।

७१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपुत्र मेधावी युधिष्ठिरने कृष्णका ऐसा वचन सुनके व्यासदेवको आह्वान करके कहा, कि आप अश्वमेध यज्ञके समयको विशेष रीतिसे जानते हैं, इसलिये उस ही समयमें मुझे दीक्षित करिये; क्यों कि यह मेरा यज्ञ आपहीके अधीन है।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे कौन्तेय! मैं पैल और याज्ञवल्क्य,—हम लोग जिस कार्य्यका जो विधान और समय है उसे निरूपण किया करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! चैत्रीपूर्णिमामें तुम्हारी दीक्षा होगी, इसलिये तुम लोग यज्ञकी सामग्रियोंको इकट्ठी करो। अश्वविद्या जाननेवाले सूत और ब्राह्मण लोग तुम्हारी यज्ञसिद्धिके लिये मेध्य अश्व-परीक्षा करें। हे पार्थिव! घोडेकी परीक्षा होनेपर शास्त्रके अनुसार उसे छोड़ो, वह घोड़ा तुम्हारे प्रदीप्त यशको प्रदर्शित करते हुए सागराम्बरा पृथ्वीपर भ्रमण करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मवादी व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके "वही करूंगा" इसही प्रकार स्वीकार करके श्रीव्यासदेव मुनिके वचनके अनुसार सब कार्य्य करने लगे। हे महाराज! सामग्रियोंको

एकत्रित होनेपर अमेयात्मा धर्म्मपुत्र नरनाथ युधिष्ठिरने उन सञ्चित सामग्रियोंको इकट्ठो करके कृष्णद्वैपायन मुनिसे सब वृत्तान्त कहा। तब महातेजस्वी व्यासदेव मुनि धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे बोले, कि समय और योगके अनुसार हम लोग तुम्हारी दीक्षाके निमित्त सज्जित हुए हैं; अब तुम स्फ्य अर्थात् काष्ठका खड्ग, कूर्च्च, आसनके लिये कुशमुष्ठि और यज्ञकी अन्यान्य उपकरण सामग्रियोंको सुवर्णके द्वारा निर्म्माण कराओ। आजही पृथ्वीके बीच यथाक्रमसे घोड़ा छोड़ो और विधिपूर्व्वक तथा शास्त्रके अनुसार जिससें घोड़ा उत्तम रीतिसे रक्षित होवे उसका उपाय करो।

युधिष्ठिर बोले, हे ब्रह्मन्! घोड़ा उत्सृष्ट होकर जिस भांति पृथ्वीमें विचरण कर सके, आप उस उपायका विधान करिये। हे मुनि! घोड़ाके स्वेच्छापूर्व्वक पृथ्वीपर विचरण करते रहनेपर कौन पुरुष उसकी रक्षा करेगा, वहभी आप निश्चय करके कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र! कृष्णद्वैपायन व्यासदेवने युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके कहा, कि भीमसेनके भाई सब धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ जिष्णु सहिष्णु धृष्णु अर्ज्जुन उस अश्वको पालन करेंगे। निवातकवचके नाशक धनञ्जय पृथ्वीको जीतनेमें समर्थ हैं, उनके पास दिव्यअस्त्र, दिव्य संहनन, दिव्य धनुष और दिव्य बाण विद्यमान हैं; इसलिये वह अर्ज्जुन ही घोड़ेके अनुगामी होवें। हे राजेन्द्र! वह धर्म्मार्थ कुशल और सर्व्वविद्या विशारद हैं, इस लिये वही शास्त्रके अनुसार तुम्हारे घोड़ेको विचरण करानेमें समर्थ होगा। हे पृथ्वीनाथ! अमित पराक्रमी कुन्तीपुत्र भीमसेन और नकुल राज्यकी रक्षा करें। महायशस्वी बुद्धिमान सहदेव सब कुटुम्बतन्त्रको विधिपूर्व्वक सावधान करें। जब व्यासदेवने युधिष्ठिरसे इन सब कार्य्योंको विधिपूर्व्वक समाधान करनेको कहा, तब उन्होंने अर्ज्जुनको घोड़ेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया।

युधिष्ठिर बोले, हे अर्ज्जुन! आओ तुम इस घोड़ेकी रक्षा करनेमें सब प्रकारसे यत्नवान् रहो। हे वीरश्रेष्ठ! तुम्हारे अतिरिक्त कोई मनुष्यही इसको रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। हे महाबाहो! यदि कोई कोई राजा तुम्हारे विरुद्ध आचरण करनेमें प्रवृत्त हों, तो जिस भांति तुम्हारे सङ्ग उनका संग्राम न हो, वही उपाय करना और उन राजाओंको मेरे इस यज्ञका वृत्तान्त कहके यज्ञके समयमें उन्हें आनेके लिये निमन्त्रण करना।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने भाई अर्ज्जुनसे ऐसा कहके भीम और नकुलको नगरकी रक्षामें नियुक्त किया और महीपाल धृतराष्ट्रकी अनुमति लेकर यूथपति सहदेवको कुटम्बतन्त्रमें नियोग किया।

७२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर उन महाऋत्विजोंने राजाको विधिपूर्व्वक दीक्षित किया। पाण्डुपुत्र महातेजस्वी धर्म्मराज पशुबन्धनके काष्ठाको संग्रह करके ऋत्विजोंके सहित समधिक प्रकाशित होने लगे। ब्रह्मवादी अमिततेजस्वी स्वयं व्यासदेवके द्वारा विधि और शास्त्रके अनुसार अश्वमेधके लिये वह घोड़ा छोड़ा गया। धर्म्मराज युधिष्ठिर दीक्षित होकर गलेमें सुवर्णकी माला तथा सुवर्णकण्ठी पहरके उस समय प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे। हे पृथ्वीपति! उनके ऋत्विक्गण भी वैसा ही वेष धारण करके उस ही प्रकार शोभित हुए। धनञ्जय अर्ज्जुन सफेद घोड़ेपर चढ़के उस श्यामकर्ण घोड़ेका अनुसरण करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति शोभायमान हुए। हे नरेन्द्र! जब अर्ज्जुन घोड़ेके अनुगामी हुए, तब वेद

जाननेवाले बहुतसे ब्राह्मण तथा अन्य पुरुषोंने उनसे कहा, "तुम इस समय गमन करो, तुम्हारा मङ्गल हो, फिर आगमन करना; हम लोगोंने युद्धके समय इन्हें इस प्रकार नहीं देखा था, यह जो भयङ्कर निर्ह्रादयुक्त धनुष दीखता है, इसहीका नाम गाण्डीव है।" हे महीपाल! चर्म्मपादुका और अङ्गुलीत्राणधारी अर्ज्जुन धर्म्मराजकी आज्ञानुसार गाण्डीव धनुष चढ़ाकर हर्षपूर्व्वक उस घोड़ेका अनुसरण करने लगे। हे राजन्! आबालवृद्ध पुरवासीवृन्द घोड़ेका अनुसरण करनेवाले कुरुकुलश्रेष्ठ धनञ्जयको देखनेके लिये आये, उस समय उन लोगोंकी परस्पर भीड़से अत्यन्त ही उष्मा उत्पन्न हुई। हे महाराज! उसके अनन्तर उस समय घोड़ेके अनुगामी अर्ज्जुनके दर्शनकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके कोलाहल शब्दसे दशों दिशा तथा आकाशमण्डल परिपूर्ण होगया, वे लोग कहने लगे, कि यह प्रदीप्त घोड़ा जा रहा है, इसके पीछे वह महाबाहु कुन्तीपुत्र धनञ्जय उत्तम धनुष धारण करके गमन करते हैं। महाबुद्धिमान् जिष्णु धनञ्जयने उन लोगोंका ऐसा ही वचन सुना। हे भारत! दूसरे पुरुषोंने अर्ज्जुनको देखकर यह कहना आरम्भ किया। हे अर्ज्जुन! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम गमन करो, फिर आना। हम लोगोंने युद्धके समयमें अर्ज्जुनको इस प्रकार नहीं देखा था और भीम निर्ह्रादयुक्त गाण्डीव-धनुष भी नहीं देखा था। हे अर्ज्जुन! तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो, अरिष्ट दूर हो, तुम्हारा मार्ग भयविहीन होवे। हमलोग ऐसी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारे लौटनेपर फिर हम लोग इसी प्रकार तुम्हें देखें। हे भरतर्षभ! महाबुद्धिमान अर्ज्जुन पुरुष और स्त्रियोंका ऐसा मधुर वचन सुनके चलने लगे। धर्म्मराजकी आज्ञानुसार शान्ति करनेके निमित्त यज्ञकार्य्यमें प्रवीण याज्ञवल्क्यके शिष्य वेदपारग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंने महात्मा धनञ्जयके सङ्ग गमन किया। हे महाराज! पाण्डवोंके अस्त्र-प्रभावसे जो सब देश जीते गये थे, घोड़ा उन्हीं देशोंमें विचरने लगा।

हे वीर! वहांपर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुनका जिस प्रकार विचित्र महायुद्ध हुआ था, उसे कहूंगा। हे राजन्! वह घोड़ा पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए जिस प्रकार उत्तरसे पूर्व्व दिशामें आया था, उसे सुनो। हे महाराज! वह घोड़ा तथा श्वेत घोड़ेपर चढ़े हुए महारथी अर्ज्जुन क्रमसे राजाओंके राष्ट्रको विमर्द्दित करके भ्रमण करते रहनेपर उस समय जिन सब हतबान्धव क्षत्रियोंने उनके सङ्ग युद्ध किया था, उसकी गिनती नहीं हो सकती। हे महाराज! पहलेके निर्ज्जित धनुर्द्धारी बहुतेरे सैकड़ों किरात, यवन अनेक भांतिके म्लेच्छ और मद्गद नरवाहन आर्य्य राजा लोग युद्धदुर्म्मद होकर पांडवपुत्रसे लड़नेके लिये उनके समीप आये। हे पृथ्वीनाथ! वहां अनेक देशोंके समागत राजाओंके संग जिस प्रकार अर्ज्जुनका युद्ध हुआ था और उस युद्धमें दोनों ओरकी जो समस्त महासेना प्रतप्त हुई थी, वह सब मैं तुमसे विशेष रीतिसे कहता हूं।

७३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहले, पांडवोंने त्रिगर्त्तवासी जिन सब लोगोंको मारा था, उनके महारथी पुत्र और पौत्रगण अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे। उन महावीर त्रिगर्तोंने पांडवोंका यज्ञीय घोड़ा आया हुआ जानके तूणीर बांधकर घोड़ोंपर चढ़के उस अश्वको घेरकर पकड़ना चाहा। तब शत्रुसूदन अर्ज्जुनने उन लोगोंकी चिकीर्षा जानके सान्त्वना पूर्व्वक उन्हें निवारण किया। वे सब कोई अर्ज्जुनके वचनका अनादर करके बाण चलाने लगे; तब अर्ज्जुनने तम तथा रजोगुणसे युक्त उन बाणोंको निवारण किया और हंसके बोले, हे अधर्म्मज्ञगण! यदि तुम लोग निज जीवनकी कुशल चाहो

हो, तो निवृत्त हो जाओ। 'चलनेके समयमें धर्मराजने अर्ज्जुनसे कहा था। हे पार्थ! हतबान्धव राजाओंके विरुद्धाचारी होनेपर भी तुम उन्हें न मारना,' उन्होंने धर्म्मराजका वही वचन स्मरण करके उन लोगोंसे कहा, कि तुम लोग निवृत्त हो जाओ; परन्तु वे लोग निवृत्त न हुए। तब वह शरजालसे त्रिगर्त्तराज सूर्य्यवर्म्माको जीतकर हंसने लगे। तिसके अनन्तर वे लोग रथ तथा रथचक्रकी घरघराहटसे सब दिशाओंको परिपूरित करते हुए अर्ज्जुनके निकट आये। अनन्तर सूर्य्यवर्म्माने अपनी लघुहस्तता प्रकाशित करके अर्ज्जुनके ऊपर एक सौ नतपर्व्व बाण चलाया और उसके अनुयाई अन्यान्य धनुर्द्धारी पुरुष अर्ज्जुनके बधकी अभिलाष करके बहुतसा बाण बरसाने लगे। हे महाराज! उस समय अर्ज्जुनने धनुषसे छूटे हुए कई सौ बाणोंसे उनके चलाये हुए बाणोंको काटके उन्हें पृथ्वीमें गिरा दिया। सूर्य्यवर्म्माके गिरनेपर उसका भाई युवा तेजस्वी केतुवर्म्मा भ्राताके निमित्त यशस्वी अर्ज्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ। परवीरघाती विभत्सु अर्ज्जुनने केतुवर्म्माको युद्ध करनेके लिये आया हुआ देखकर शिकल किये हुए बाणोंसे उसे घायल किया। केतुवर्म्माके घायल होनेपर महारथ धृतवर्म्मा शीघ्रगामी रथपर चढ़के आया और जिष्णु अर्ज्जुनको बाणोंसे छिपा दिया; महातेजस्वी गुड़ाकेश अर्ज्जुन उस बालक धृतवर्म्माका हस्तलाघव देखकर परम सन्तुष्ट हुए। जब धृतवर्म्मा बाण बरसाने लगा, उस समय इन्द्र पुत्र अर्ज्जुन उसके बाणग्रहण और सन्धानको लक्ष्य करनेमें समर्थ न हुए। बल्कि वह धृतवर्म्माको हर्षित करते हुए मुहूर्त्तभर मनहीमन उसको प्रशंसा करने लगे, महाबाहु कुरुवीर धनञ्जयने सर्पकी भांति क्रुद्ध उस धृतवर्म्माको मानो उपहास करते हुए प्रीतिपूर्व्वक उसका प्राण संहार न किया। उस समय धृतवर्म्माने अमित तेजस्वी अर्ज्जुनसे इस प्रकार रक्षित होकर उनके ऊपर प्रदीप्त बाण चलाया; धनञ्जयका हाथ धृतवर्म्माके द्वारा अत्यन्त विद्ध होनेसे मोहवशसे उनके हाथसे गाण्डीव धनुष पृथ्वीपर गिरा। हे विभु! सव्यसाचीके हाथसे गाण्डीव धनुष गिरनेसे उस समय उसका इन्द्रधनुषके सदृश रूप प्रकट हुआ। हे महाराज! युद्धमें उस दिव्य महा धनुषके गिरनेपर धृतवर्म्मा ऊंचे स्वरसे हंसने लगा। अनन्तर जिष्णु धनञ्जय क्रोधित हो हाथसे रुधिर पोंछकर उस दिव्य धनुषको ग्रहण करके बाण बरसाने लगे। तब धनञ्जयके वैसे कर्म्मकी प्रशंसा करनेवाले अनेक प्रकारके प्राणियोंका हलहला शब्द आकाश मण्डलमें प्रकट हुआ। तिसके अनन्तर त्रिगर्त्तवासी योद्धाओंने कालान्तक यमकी भांति क्रुद्ध उस जिष्णु धनञ्जयको घेर लिया। अन्तमें उन लोगोंने धृतवर्म्माकी जयप्राप्तिके निमित्त उसके समीप जाकर गुड़ाकेशकी निन्दा करने लगे, उससे उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महेन्द्रवज्र सदृश कई सौ आयत बाणोंसे शीघ्र ही उनकी अठारह सेना संहार की। धनञ्जय उस सारी सेनाको भागती हुई देखकर ऊंचे स्वरसे हंसते हुए शीघ्रतापूर्व्वक सर्पसदृश बाणोंसे शत्रुओंका संहार करनेलगे, महाराज! वे त्रिगर्त्तवासी महारथगण अर्ज्जुनके बाणोंसे अर्द्दित होकर कई ओर भागने लगे। अनन्तर वे लोग संशप्तक निसूदन पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयके निकट आके उनसे बोले, हे पार्थ! हम सब तुम्हारे किङ्कर तथा अनुवर्त्ती हुए, हम सब प्रेष्य होकर स्थित हैं, आप हम लोगोंको आज्ञा करिये। हे कौरवनन्दन! हम लोग तुम्हारा समस्त प्रियकार्य्य करेंगे। उस समय अर्ज्जुनने उन त्रिगर्त्तवासियोंको इस प्रकार आज्ञा की, हे नृपगण! मैंने तुम लोगोंके जीवनकी रक्षा की है, तुम लोग मेरे शासनको प्रतिग्रह करो।

७४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह उत्तम घोड़ा प्रागज्योतिषपुरमें जाकर विचरने लगा, तब भगदत्तका पुत्र रणकर्कश वज्रदत्त वहां उपस्थित हुआ। पृथ्वीपति वज्रदत्तने अपने देशमें आये हुए उस पाण्डुपुत्रके घोड़ोंको पकड़नेकी इच्छा की। हे राजन्! अनन्तर वह भगदत्तका पुत्र नगरसे निकलकर समागत घोड़ेको उन्मथित करते हुए नगरकी ओर चला। उस समय कुरुश्रेष्ठ महाबाहु अर्ज्जुन उसे देखकर सहसा गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उसकी ओर दौड़े। तब वीर वज्रदत्त धनञ्जयके बाणोंसे घायल तथा विमोहित होकर घोड़ेको छोड़के अर्ज्जुनकी ओर दौड़ा। अनन्तर वह नृपश्रेष्ठ वज्रदत्त बाणोंसे घायल होकर नगरमें जाके फिर महामातङ्गपर चढ़के नगरसे बाहिर हुआ। उस समय उसके ऊपर पाण्डुर आतपत्र धरा था और अङ्गपर सफेद चंवर सञ्चालित होता था। अनन्तर वह महारथ पार्थके समीप पहुंचके बाल्यस्वभाव तथा मोहनिबन्धनसे रणभूमिमें युद्धके लिये अर्ज्जुनको आह्वान करने लगा। हे महाराज! उस वज्रदत्तने अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्वेताश्व अर्ज्जुनके निकट अचल सदृश शास्त्रकी भांति कल्पित संग्राममें विवश युद्धदुर्म्मद महामेघकी भांति मदचूनेवाले मतवारे हाथीको चलाया। उस समय वह महाबली गजराज वज्रदत्तके अङ्कुशकी ताड़नासे मानो आकाशमार्गमें उड़ता हुआ मालूम हुआ। हे महाराज! अर्ज्जुन उस हाथीको आया हुआ देखके अत्यन्त क्रुद्ध हुए, और पृथ्वीपर रहके हाथीपर चढ़े हुए उस वज्रदत्तके सङ्ग युद्ध करने लगे। तब वज्रदत्तने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र ही वेगवान शलभ समूहकी भांति अर्ज्जुनके ऊपर अग्निसदृश बहुतसे तोमर चलाये। उस समय अर्ज्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समीपमें आये हुए तोमरोंको आकाशमें ही दो तीन टुकड़े कर डाला। भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तने तोमरोंको कटते हुए देखकर शीघ्रतापूर्वक बहुतसे प्रसक्त बाण अर्ज्जुनकी ओर चलाये। अनन्तर अर्ज्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र ही वज्रदत्तके ऊपर शीघ्रगामी रुक्मपुङ्ख बाण छोड़ा। वह महाते जस्वी अर्ज्जुनके बाणोंसे उस महायुद्धमें अत्यन्त घायल तथा विद्ध होकर पृथ्वीपर गिरा, परन्तु उसकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। तिसके अनन्तर वह जयकी इच्छा करनेवाला वज्रदत्त भी परित्याग करके सावधानचित्तसे फिर युद्धभूमिमें अर्ज्जुनकी ओर उस श्रेष्ठ हाथीको चलाया। जिष्णु धनञ्जयने अत्यन्त क्रुद्ध होकर बहुतसे आशीविष तथा अग्निसदृश बाण उस हाथीके ऊपर चलाया। उस समय वह श्रेष्ठहस्ती बाणोंसे विद्ध होकर रुधिर झरते हुए गेरुके झरनेयुक्त पर्व्वतकी भांति प्रकाशित हुआ।

७५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतर्षभ! जिस प्रकार पहले वृत्रासुरके सङ्ग इन्द्रका संग्राम हुआ था, उसही भांति राजा वज्रदत्तके सङ्ग अर्ज्जुनका यह तीन रात्रितक युद्ध हुआ था।

अनन्तर चौथे दिन महाबली वज्रदत्तने ऊंचे स्वरसे हंसकर अर्ज्जुनसे कहा, कि अर्ज्जुन! अर्ज्जुन!! तुम खड़े रहो, जीवन रहते मेरे निकटसे तुम उबरने न पाओगे। तुमने अपने पितृसखा मेरे पिता वृद्ध भगदत्तको मारा है, मैं शिशु हूं, आज मेरे सङ्ग युद्ध करो। हे कौरव! नरनाथ वज्रदत्तने अर्ज्जुनसे ऐसा कहके उनकी ओर हाथी चलाया। वह गजराज धीमान् वज्रदत्तके चलानेपर मानो आकाशमार्गसे कूदता हुआ वेगपूर्वक अर्ज्जुनके समीप उपस्थित हुआ। जैसे बादल जलकी वर्षासे नीलगिरिको सेचन करते हैं, वैसे ही अग्रहस्त प्रयुक्त शीकरसमूहके द्वारा उस गजराजने गुडाकेशको सेचन किया। वह नागेन्द्र राजा वज्र-

दत्तके चलानेपर बार बार अर्ज्जुनकी ओर दौड़ा। हे महाराज! वज्रदत्तके द्वारा प्रेरित वह नागेन्द्र मानो नृत्य करते हुए वेगपूर्व्वक कौरवोंके महारथ अर्ज्जुनके पास आया। शत्रुसूदन धनञ्जय वज्रदत्तके हाथीको आया हुआ देखकर विचलित न हुए। उन्होंने भगदत्तके पहले बैरको स्मरण करके बल पूर्व्वक क्रुद्ध होकर राजा वज्रदत्तके हाथीको कार्य्यमें विघ्नकारी समझा। अनन्तर जैसे तट समुद्रको रोकता है, वैसे ही उन्होंने क्रुद्ध होकर शरजालके द्वारा उस हाथीको निवारण किया। भगदत्तपुत्र राजा वज्रदत्त हाथीको निवारित होते देखकर क्रोधसे मूर्च्छित होके अर्ज्जुनकी ओर शिकल किये हुए बाण चलाने लगे। महाबाहु अर्ज्जुनने शत्रुसंहारक बाणोंके द्वारा उन बाणोंको अद्भुतरूपसे निवारण किया।

अनन्तर प्राग्ज्योतिषाधिपति राजा वज्रदत्तने क्रोधित होकर फिर पर्व्वतके सदृश बलवान हाथीको चलाया। इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनने उस नागेन्द्रको आते हुए देखकर बलपूर्व्वक उसके ऊपर अग्निसदृश बाण चलाया। हे राजन्! बाणोंके द्वारा मर्म्मस्थलोंमें अत्यन्त चोट लगनेसे वह हाथी वज्रसे टूटे हुए पर्व्वतकी भांति सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय वह गजेन्द्र अर्ज्जुनके बाणोंकी चोटसे गिरके वज्रसे प्रपीड़ित पृथ्वीमें प्रविष्ट पर्व्वतकी भांति शोभित हुआ।

जब वज्रदत्तका हाथी मरके गिर पड़ा, तब अर्ज्जुन पृथ्वीपर रहके राजा वज्रदत्तसे बोले, तुम्हें भय नहीं है। मेरे चलनेके समयमें महातेजस्वी युधिष्ठिरने मुझसे कहा था, कि हे "धनञ्जय! राजा लोग यदि तुम्हारे प्रतिकूलचारी होवें, तौभी तुम युद्धमें उन्हें तथा उनकी सेनाको न मारना; बल्कि उन्हें कहना, कि आप लोग सुहृदोंके सहित युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें उपस्थित होवें।" हे नरनाथ! मैं भाईकी आज्ञानुसार तुम्हें न मारूंगा, जो किया है, वह यहांतक हो हुआ, तुम्हें भय नहीं है, तुम उठके कुशलपूर्व्वक गमन करो। उपस्थित चैती पूर्णिमामें बुद्धिमान धर्म्मराजका अश्वमेध यज्ञ होगा, उस समय तुम वहां गमन करना।

अनन्तर भगदत्तका पुत्र राजा वज्रदत्त अर्ज्जुनके द्वारा निर्ज्जित तथा उनका ऐसा वचन सुनके बोला, कि 'वही होगा।'

७६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! अनन्तर मरनेसे बचे हुए सिन्धुराजवंशियोंके सङ्ग अर्ज्जुनका युद्ध होने लगा। सिन्धुराजगण श्वेताश्व अर्ज्जुनको राज्यमें आया हुआ सुनके असहाता पूर्व्वक युद्ध करनेके लिये उनके सामने आये। उन सिन्धुराजगणने निज राज्यके बीच विषसदृश घोड़ेको पकड़ लिया, भीमसेनके भाई अर्ज्जुनसे भयभीत न हुए। उन महाक्रमी राजाओंने पहले शरनिकृत होनेसे जिगीषाके वशमें होकर अर्ज्जुनके समीप जाकर यज्ञीय अश्वके अनुगामी पदातिरूपसे स्थित धनुर्धारि धनञ्जयको घेर लिया। उन लोगोंने युद्धमें अपना अपना नाम गोत्र और विविध कर्म्म कहके बाणोंकी वर्षासे इन्द्रपुत्र अर्ज्जुनको छिपा दिया। राजाओंने युद्धमें जयकी अभिलाषा करके वारणनिवारण बाणोंको चलाते हुए कुन्तीपुत्र धनञ्जयको घेरा; वे वीर लोग रथपर चढ़के पैदलस्थित श्यामवर्ण शरीरसे युक्त उग्रकर्म्म करनेवाले अर्ज्जुनको देखकर सब कोई एकवारही युद्ध करने लगे। अनन्तर उन लोगोंने निवात कवचान्तक संसप्तकोंके नाशक सैन्धव संहारकारी अर्ज्जुनको घायल किया।

हे कौरव! युद्धमें सव्यसाचीके हाथसे सिन्धुराज जयद्रथका वध स्मरण करके वे लोग एक हजार रथ और दश हजार घोड़ोंके द्वारा अर्ज्जुनको घेरकर अत्यन्त हर्षित [illegible] जब वे लोग अर्ज्जुनको भांति बाणोंसे

लगे, उस समय अर्ज्जुन उनके बाणोंसे छिपकर इस प्रकार शोभित हुए जैसे बादलोंके बीच सूर्य्य शोभित होता है। हे भारत! वह बाणोंसे छिपकर पञ्जरान्तर-सञ्चारी शकुनकी भांति शोभायमान हुए; अनन्तर कुन्तीपुत्रके बाणोंसे अति पीड़ित होनेपर त्रिलोकवासी सब प्राणी हाहाकार करने लगे और सूर्य्य तेजरहित होगया। हे महाराज! उस समय रोएंको खड़ा करनेवाला वायु बहने लगा, राहुने एक ही समयमें चन्द्रमा सूर्य्यको ग्रास किया, उल्का-समूहसे सूर्य्य सब प्रकारसे छिप गया, कैलाश-गिरि कांपने लगा और सप्तर्षि तथा देवर्षि लोग दुःखित तथा शोकार्त्त होकर अत्यन्त गर्म्म श्वास छोड़ने लगे। अनन्तर आकाशसे चन्द्रमंडल गगनमण्डलको भेदकर पतित हुआ, सब दिशा धूएंसे परिपूरित होनेसे विपरीत बोध होने लगीं, रासभारुणवर्ण्ण विश्लिष्ट धनुष और बिजलीयुक्त सब बादल आकाशमंडलमें भ्रमण करते हुए मास और रुधिरकी बर्षा करने लगे। हे भरतर्षभ! जब वीरश्रेष्ठ धनञ्जय बाणोंकी वर्षासे छिप गये, तब इसही प्रकार अनेक भांतिकी अद्भुत घटना होने लगीं। अर्ज्जुनके शरजालसे छिपनेपर मोहवशसे उनके हाथसे गाण्डीव और हाथके रोदेकी चोटको रोकनेवाली चर्म्मपट्टिका गिर पड़ी, महारथ अर्ज्जुनके मूर्च्छित तथा चेत रहितहोनेपरभी सिन्धुराजगण उनकेऊपर शीघ्र शरजाल छोड़नेसे निवृत्त न हुए। तब द्युलोक-वासी देवतावृन्द अर्ज्जुनको मूर्च्छित जानकर त्रासित चित्तसे उनकेनिमित्त शान्तिकरनेमें प्रवृत्त हुए और देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा सप्तर्षिवृन्द बुद्धिमान अर्ज्जुनके लिये विजयरूप जप करने लगे।

हे राजन्! तिसके अनन्तर देवताओंके द्वारा तेजसे प्रदीप्त होनेपर वह परमास्त्रवेत्ता बुद्धिमान अर्ज्जुनने युद्धमें अचलकी भांति निवास किया। फिर उनके दिव्य धनुषकी कर्षणा करते होनेपर उसका बार बार महान् शब्द होने लगा। अनन्तर जैसे इन्द्र जल बरसते है, वैसेही अर्ज्जुन दिव्य धनुषके द्वारा विरुद्धाचारी शत्रु-ओंके ऊपर बाणोंको वर्षा करने लगे। जैसे वृक्ष समूह शलभ समूहसे परिपूरित होते हैं, वैसे ही राजाके सहित सिन्धुदेशीय योद्धा लोग अर्ज्जुनके बाणोंसे छिपकर अदृश्य हुए; सैन्धव-गण उनके शब्दसे त्रासित, भयार्त्त और शोकार्त्त होकर आखोंसे आसू बहाते हुए इधर उधर होने लगे। हे महाराज! बलवान अर्ज्जुन शर-जालसे सैन्धव वीरोंको परिपूरित करते हुए अलात चक्रको भांति भ्रमण करने लगे। शत्रु-घाती धनञ्जय बज्रधारी महेन्द्रकी भांति सब दिशाओंमें इन्द्रजाल सदृश बाणजाल चलाया। हे महाराज! कौरवेन्द्र धनञ्जय बाणवृष्टिके द्वारा मेघजाल सदृश सैन्धव-वीरोंकी सब सेना बिदारित करते हुए शरदकालके सूर्य्यसमान सुशोभित हुए।

७७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर गाण्डीवधारी दुर्द्धर्ष अर्ज्जुन युद्धके निमित्त रण भूमिमें उपस्थित होकर हिमाचलकी भांति प्रकाशित हुए; तब सैन्धवी सेना अधिक संर-म्भके सहित फिर युद्धमें उपस्थित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगी।

महाबाहु कुन्तीपुत्र मुमूर्षु सैन्धवोंगणको फिर युद्धमें उपस्थित होते देखकर हसते हुए यह मधुर बचन बोले, कि तुम लोग समधिक शक्तिके अनुसार युद्ध करके मुझे जीतनेके लिये यत्न करो और सब कार्य्य उत्तम रीतिसे पूरा करो; तुम लोगोंको महान् भय उपस्थित हुआ है। मै अकेलाही शरजाल निवारण करके तुम लोगोंके साथ युद्ध करता हूं, तुम लोग युद्धमना होकर थोड़े समयतक स्थिर रहो, मै शीघ्रही तुम लोगोंका घमंड तोड़ दूंगा।

हे भारत! अर्ज्जुन इतनी बात कहके उस

समय जेठे भाईने जो कहा था, कि हे तात! युद्धमें जिगीषु क्षत्रियोंको न मारना, केवल जय करना' उसे स्मरण करके ऐसी चिन्ता करने लगे, कि राजेन्द्र धर्म्मराजने नरहत्या करनेको निषेध किया है, वह शुभवचन किस प्रकार मिथ्या न होगा। यदि राजा लोग मुझे न मारें, तभी उनकी आज्ञा प्रतिपालित होगी, पुरुष-श्रेष्ठ अर्ज्जुन ऐसाही विचार करके उन युद्धदुर्म्मद सैन्धव वीरोंसे बोले, कि जिससे तुम लोगोंका कल्याण होगा, मैं तुमसे वह वचन कहता हूं; तुम लोग मेरे समीप हार मानके मेरे शरणागत होनेसे मैं तुम्हें न मारूंगा, तुम लोग मेरा यह वचन सुनके अपने हितका उपाय करो। यदि इसके विपरीत कार्य्य करोगे तो मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश पाओगे।

कुरुपुङ्गव अर्ज्जुन उन वीरोंसे इतना वचन कहके अत्यन्त क्रुद्ध विजयकी इच्छा करनेवाले सैन्धवोंके सङ्ग क्रोध पूर्व्वक युद्ध करने लगे। हे महाराज! उस समय सैन्धवगण गाण्डीवधारी अर्ज्जुनके ऊपर सैकड़ों तथा सहस्रों नतपर्व्व बाण चलाने लगे, अर्ज्जुनने अपने चोखे बाणोंसे उनके समागत विषैले सर्प्प सदृश विषसे बुझे हुए बाणोंको आकाशमें ही काटके गिरा दिया फिर उन्होंने युद्धमें चोखे बाणोंसे सैन्धवोंके कङ्कपत्रयुक्त शिलापर घिसे हुए बाणोंको शीघ्र ही काटके उन्हे वेधने लगे। अनन्तर सिन्धुराजगण जयद्रथके वधका वृत्तान्त स्मरण करके फिर अर्ज्जुनके ऊपर प्रास और शक्ति चलाने लगे महाबली अर्ज्जुनने सैन्धवोंके प्रास और शक्तिको आकाशमें ही काटके उनके सङ्कल्पको व्यर्थ करके आक्रोश प्रकाश किया और जयकी इच्छा करनेवाले समागत सैन्धव वीरोंका शिर नतपर्व्व भल्लास्त्रके द्वारा काटके गिराने लगे। उन लोगोंके लौटने और फिर वेगपूर्व्वक अर्ज्जुनके सामने आते रहनेपर परिपूर्ण समुद्रकी भांति तुमुल शब्द उत्पन्न हुआ। उस समय वे लोग अमित तेजस्वी अर्ज्जुनके द्वारा घायल होके शक्ति और उत्साह पूर्व्वक उनके सङ्ग युद्ध करने लगे। अनन्तर वे लोग वाहन तथा समस्त सेनाके सहित युद्धमें अर्ज्जुनके बाणोंकी चोटसे थककर चेत रहित होगये।

अनन्तर धृतराष्ट्रकी पुत्री दुःशला सिन्धुराजगणको पीड़ित समझकर सेनामें शान्तिके लिये नाती सुरथपुत्रके सहित रथपर चढ़के अर्ज्जुनके समीप जाकर आर्त्तस्वरसे रोने लगी, धनञ्जयने उसे देखकर धनुष परित्याग किया। अर्ज्जुन धनुष परित्याग करके सम्मानपूर्व्वक भगिनी दुःशलासे बोले, कहो मैं कौनसा कार्य्य करूं? तब दुःशला उनसे बोली, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारा स्वस्रीयात्मज शिशु तुम्हें प्रणाम करता है, हे पुरुषश्रेष्ठ पार्थ! तुम इसकी ओर कृपादृष्टि करो। हे राजन्! अर्ज्जुनने दुःशलाका ऐसा वचन सुनके पूछा, कि इसका पिता कहां है? ऐसा पूछनेपर दुःशला उनसे कहने लगी, इस बालकका पिता पितृशोकसे सन्तापित तथा आर्त्त होकर जिस प्रकार विषादपूर्व्वक पञ्चत्वको प्राप्त हुआ है, वह मेरे निकट सुनो।

हे अनघ! उस सुरथने तुम्हारे हाथसे पिताका मरना तथा घोड़ेका अनुसरण करते हुए युद्धके लिये तुम्हारा यहांपर आना सुनकर पिताके मृत्युजनित दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर प्राण परित्याग किया है। हे प्रभु! मेरा सुरथ यह सुनके कि विभत्सु आये हैं, तथा तुम्हारा नाम सुनकर शोकसे अत्यन्त आर्त्त होकर पृथ्वीपर गिरके मर गया। हे पार्थ! मैं पुत्रको वहांपर गिरा तथा मरा हुआ देखकर उसके पुत्रको लेकर आज तुम्हारे शरणमें आई हूं। वह धृतराष्ट्रकी पुत्री दीना दुःशला आर्त्तस्वरसे ऐसा ही कहके आंसू बहाते हुए दीनभावसे स्थित शिर नीचा किये हुए अर्ज्जुनसे फिर कहने लगी। हे धर्म्मज्ञ! उस कुरुराज दुर्य्योधन और जयद्रथको भूलकर स्वसा तथा स्वस्रीय पुत्रकी

उलूपी। यह देखो तुम्हारे ही कारणसे मेरे बालक पुत्र बभ्रु वाहनके द्वारा समितिञ्जय स्वामी युद्धमें मरके सोये हुए हैं। हे उलूपी। तुम धर्म्म जाननेवाली तथा पतिव्रता स्त्रियोंमें मुख्य हो, तुम्हारे ही कारणसे पति रणमें मरके पड़ा हुआ है, यदि अर्ज्जुन तुम्हारा अनेक अपराध किये हों, तौभी मैं तुम्हारे समीप प्रार्थना करती हूं, कि तुम क्षमा करके उन्हें जीवित करो। हे आर्य्ये। तुम तीनों लोकके बीच धर्म्म जाननेवाली कहके विदित हो, तौभी पुत्रके हाथसे पतिको मरवाके शोक नहीं करती हो? हे पन्नगनन्दिनी। मैं अपने पुत्रके मरनेसे शोक नहीं करती हूं, जिसके निमित्त यह आतिथ्य किया गया, उस पतिहीके लिये शोक करती हूं। यशस्विनी चित्राङ्गदा देवी उरगपत्नी उलूपीसे ऐसा कहके स्वामीके निकट जाके उन्हें कहने लगी। हे प्यारे। आप कुरुकुलके परमप्रिय हैं, आप उठिये। हे महाबाहो। मैं आपका यह घोड़ा परित्याग करती हूं। हे विभु। आपको धर्म्मराजके यज्ञीय घोड़ेका अनुसरण करना योग्य है, आप उस कार्य्यको न करके किस लिये पृथ्वीपर सोये हुए हैं? हे कुरुनन्दन! मेरा प्राण आपके वशमें है, इसलिये आपने प्राणद होके किस प्रकार दूसरेके प्राणका परित्याग किया?

चित्राङ्गदा बोली, हे उलूपी। तुम पृथ्वी तलमें पड़े हुए पतिको भली भांति देखो, तुम पुत्रको इस प्रकार समुत्साहित कर तथा मरवाके शोक नहीं करती हो? यह बालक मृत्युके वशमें होकर पृथ्वीपर सोया रहे, परन्तु लोहितनयन गुड़ाकेश विजय जीवित होवें। हे सुभगे। मनुष्योंका बहुभार्य्यता अपराध कहके परिगणित नहीं होता, तुम सन्देह न करके ऐसा निश्चय बोध करो, कि ये सब स्त्रियोंके स्वामी होते हैं; विधाताने यह नित्य सख्यता उत्पन्न की है, तुम निश्चय जानो कि तुम्हारी वह नित्य सख्यता बनी रहेगी। तुमने पुत्रके द्वारा पतिका बध कराया है, परन्तु यदि आज मुझे पतिको जीवित न दिखाओगी, तो मैं जीवन परित्याग करूंगी। हे देवि। मैं पति और पुत्रसे विरहसे अत्यन्त दुःखी हुई हूं, इस स्थानमें तुम्हारे सामने निश्चय ही योग व्रत अवलम्बन करके प्राण परित्याग करूंगी। हे प्रजानाथ। चैत्रवाहिनी चित्राङ्गदाने पन्नगनन्दिनी सौतसे ऐसाही कहके योगव्रत अवलम्बन करके मौनभावसे निवास किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पतिकी इच्छा करनेवाली चित्राङ्गदा लम्बी सांस छोड़ती और बहुत विलाप करती हुई शोकसे विरत होकर पतिका दोनों पांव पकड़के दीनभावसे बैठी। अनन्तर बभ्रुवाहनने फिर सावधान होके रणभूमिमें बैठी हुई माताको देखकर कहा। जब कि सदा सुख भोगने योग्य मेरी माताने पृथ्वीमें गिरे हुए महावीर पतिका अनुशयन किया है, तब इससे बढ़के और कौनसा दुःख होगा? हाय। माताने मेरे हाथसे युद्धमें मरे हुए शत्रुनाशन सर्व्वशस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ दुर्द्धरणको भांति मृत पतिको देखा है। ओहो। बड़ा कठिन महाबाहु पतिको युद्धमें मरा हुआ देखकर इसका दृढ हृदय अबतक भी विदीर्ण नहीं होता है? जब मैं और मेरी माता, हम दोनों ही जीवित हैं, तब मुझे बोध होता है, कि इस लोकमें मृत्यु कालके बिना उपस्थित हुए किसी प्रकार मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती। हाय। जब मैं पुत्र होकर सम्मुखमें मारके पिताका सनाह (कवच) काटा है, तब कुरुवीरके इस सुवर्ण-सन्नाहको महा धिक्कार है। हे ब्राह्मणगण। देखिये मेरे पिता महावीर धनञ्जय मेरे द्वारा मरके वीरशय्या पर सोये हैं। यदि ये युद्धमें मेरे हाथसे मारे गये, तब अश्वका अनुसरण करनेवाले इस कुरुप्रधान धनञ्जयकी शान्तिके लिये जो सब

ब्राह्मण युधिष्ठिरकी आज्ञासे उनके साथ आये हैं, वे क्यों शान्ति करते हैं? मैं नृशंसकी भांति रणभूमिमें पितृहत्या करके महापापी हुआ हूं, इसलिये आज मुझे इस विषयमें कैसा प्रायश्चित्त करना उचित है, उसके लिये ब्राह्मण लोग आज्ञा करें। जब मैंने अत्यन्त निठुर होकर पितृहत्या की है, तब आज इनका चर्म्म पहरकर इस स्थानमें दुःखपूर्व्वक मुझे बारह वर्ष व्यतीत करना योग्य है। जब मैंने पिताके मस्तक तथा सिरमें बाण मारके इन्हें मारा है, तब मुझे प्रायश्चित्तके लिये और कुछ भी नहीं दीखता है।

हे नागोत्तमपुत्री! देखो मैंने तुम्हारे पतिको मारा है, आज मैंने युद्धमें अर्जुनका वध करके तुम्हारा प्रियकार्य्य किया है। हे शुभे! इसके अनन्तर मैं निज शरीरको धारण करनेमें समर्थ नहीं होता हूं, इसलिये आज ही मैं पितृनिषेवित स्थानमें गमन करूंगा। हे माता! मेरे तथा गाण्डीवधारी अर्जुनके मरनेसे तुम प्रसन्न होओ, मैं सत्यपथ अवलम्बन करके परमात्म-लाभ करूं।

महाराज! दुःख और शोकसे पीड़ित राजा बभ्रुवाहन ऐसा ही कहके जलसे आचमन करके दुःखपूर्व्वक बोला। हे सर्व्वभूत चराचर! तुम लोग मेरी प्रतिज्ञा सुनो, हे माता भुजगोत्तमे! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, यदि मेरे पिता विजय न उठेंगे, तो मैं इस रणभूमिमें अपना शरीर सुखा दूंगा। पितृहत्या करनेसे मेरी किसी भांति निष्कृति नहीं है, मैं गुरुवधसे अर्द्दित होकर निश्चय ही नरकमें गमन करूंगा। पुरुष क्षत्रिय वीरका वध करके एक सौ गऊ दान करनेसे उस पापसे मुक्त होके निष्कृति लाभ कर सकता है, परन्तु मैंने पितृहत्या की है, इसलिये इस समय मेरी निष्कृति होनी दुर्लभ है। ये महात्मा धर्म्मात्मा पाण्डुपुत्र धनञ्जय मेरे पिता और विशेष करके अकेले हैं, इनका वध करनेसे मेरी निष्कृति क्यों होगी? हे नरनाथ! महाबुद्धिमान् धनञ्जयका पुत्र बभ्रुवाहनने ऐसा ही कहके आचमन करते हुए योगव्रत अवलम्बन करके मौनभावसे निवास किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! उस समय पितृशोकसे व्याकुल मणिपुरेश्वर राजा बभ्रुवाहनके मातासहित अनशन व्रत अवलम्बन करके बैठनेपर उलूपीने सञ्जीवन मणिका ध्यान किया, ध्यान करते ही वह पन्नगपरायण मणि उस ही समय वहां उपस्थित हुई। हे कौरव्य! पन्नगराजपुत्री उलूपी उस मणिको लेकर सैनिक पुरुषोंके चित्तको आनन्दित करनेवाले वचन कहने लगी। उलूपी बभ्रुवाहनसे बोली, हे पुत्र! अब शोक परित्याग करके, उठो, जिष्णु, तुम्हारे द्वारा निर्ज्जित नहीं हुए हैं, ये इन्द्रके सहित देवताओं तथा सब पुरुषोंसे अजेय हैं, परन्तु मैंने आज पुरुषश्रेष्ठ तुम्हारे यशस्वी पिताकी प्रीतिके लिये यह मोहनी माया दिखाई है। तुम्हें पुत्र समझके तुम्हारा बल जाननेके लिये वे शत्रुनाशन अर्जुन तुम्हारे सङ्ग युद्ध करनेके लिये आये थे। हे पुत्र! इस ही लिये मैंने तुम्हें युद्ध करनेके लिये भेजा था, इस निमित्त इस विषयमें तुम तनिक भी पापकी आशङ्का मत करो। हे प्रभु! ये महात्मा पुराणऋषि शाश्वत तथा अक्षर हैं, हे पुत्र! इसलिये इन्द्र भी इन्हें युद्धमें जय नहीं कर सकते। हे प्रजानाथ! जो सदा, बार बार मृत पन्नगोंको जीवित करती है, मैंने उस मणिको मंगाया है, हे प्रभु! तुम इस मणिको लेकर अपने पिताके वक्षस्थलपर रखनेसे इन्हें जीवित देखोगे।

अनन्तर पापरहित अमित तेजस्वी बभ्रुवाहनने उलूपीका ऐसा वचन सुनके पितृस्नेहके वशमें होकर शीघ्र ही अर्जुनके वक्षस्थलपर उस मणिको रक्खा। वह मणि अर्जुनके वक्षस्थलपर रखने ही धीरवर प्रभु जिष्णु जीवित

होकर बहुत समयके सोये हुए पुरुषकी भांति लोहित नेत्र मार्ज्जन करते हुए उठे। तब बभ्रुवाहन महात्मा मनस्वी पिताको उठते तथा सावधान होते देखकर उनकी स्तुति करने लगा।

हे प्रभु। लक्ष्मीवान पुरुषश्रेष्ठ पार्थके फिर उठनेपर इन्द्र दिव्य तथा पुण्य गन्धयुक्त फूलोंकी वर्षा करने लगे। आकाशमें बादलकी भांति गम्भीर शब्दसे दिव्य दुन्दुभिका शब्द तथा ऊंचे स्वरसे साधुध्वनि प्रकट हुई। अनन्तर महाबाहु धनञ्जयने सब भांतिसे आश्वस्त होकर उठके बभ्रुवाहनको आलिङ्गन करके उसका मस्तक सूंघा। फिर कुछ दूरपर उलूपीके सङ्ग स्थित शोककर्षित बभ्रुवाहनकी माता चित्राङ्गदाको देखकर उससे पूछने लगे। हे शत्रुनाशन पुत्र। इस रणभूमिमें सब लोगोंको शोकसे विस्मित तथा हर्षित देखता हूं, इसका क्या कारण है। यदि तुम जानते हो, तो मुझसे कहो। तुम्हारी माता चित्राङ्गदा और नागेन्द्रपुत्री उलूपी किस लिये रणभूमिमें आई है? मेरे कहनेसे अनुसार तुमने यह युद्ध किया था, उसे मैं जानता हूं, परन्तु स्त्रियोंके आनेका कारण जाननेकी इच्छा करता हूं। तब मणिपुरपति विद्वान् बभ्रुवाहन अर्जुनका ऐसा वचन सुन सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करके बोला,—आप इस उलूपीसे सब वृत्तान्त पूछिये।

८० अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे कौरवकुलनन्दिनि! तुम मणिपुरके राजा बभ्रुवाहनकी जननी होकर किस लिये रणभूमिमें आई हो? हे चपलाङ्गि भुजगात्मजे! क्या तुम इस राजा बभ्रुवाहनकी कुशलकामना करती हो? अथवा मेरे मङ्गलकी इच्छा करती हो? हे पृथुल श्रोणि प्रियदर्शने! मैंने अथवा बभ्रुवाहनने बिना जाने तुम्हारे विषयमें कुछ अप्रिय आचरण तो नहीं किया है? इस वरारोहा राजपुत्री तुम्हारी सौत चैत्र वाहिनी चित्राङ्गदाने तुम्हारा कोई अपराध तो नहीं किया?

उरगराजपुत्री उलूपी अर्जुनका वचन सुनकर हंसके उनसे बोली। आप बभ्रुवाहन अथवा बभ्रुवाहनकी जननी प्रेष्यकी भांति स्थित यह चित्राङ्गदा, आपलोगोंमेंसे किसीने भी मेरा कुछ अपराध नहीं किया है; परन्तु मैंने जो कुछ जिस प्रकार किया है, मेरा वह समस्त कार्य्य सुनिये। हे विभु! मैं सिर नीचा करके आपको प्रणाम करती हूं, आप मुझपर क्रोध न करिये। हे कौरव्य। मैंने आपकी प्रीतिके लिये ऐसा किया है। हे महाबाहो। पहले जो घटना हुई थी आप उसे पूरी रीतिसे सुनिये। हे धनञ्जय! आप जो महाभारत युद्धमें अधर्माचरण करके शान्तनुपुत्र भीष्मको मारके पापग्रस्त हुए थे, आज उस पापसे तुम्हारा निस्तार हुआ। हे वीरवर! आप सामने लड़के भीष्मका वध न कर सकते, इसी लिये शिखण्डी युक्त रथको अवलम्बन करके उनका वध किया। यदि आप उसकी शान्ति न करके जीवन परित्याग करते, तो निश्चय ही आपको उस कर्म्मरूपी पापसे नरकमें गिरना होता। हे महाबुद्धिमान पृथ्वीनाथ! भीष्मके मरनेपर गङ्गा और वसुगणने यही शान्ति की थी, इस ही लिये पुत्रके हाथसे आपको पीड़ा प्राप्त हुई। हे राजन्! पहले शान्तनुपुत्रके मरनेपर वसुगणने गङ्गाके तटपर आके जिस समय आपको शाप दिया था, उस समय मैंने इन विषयको सुना था; वसुगण महानदी भागीरथीके निकट आके सब कोई एकत्रित होकर उससे यह घोर वाक्य बोले, हे भाविनि! सव्यसाचीने रणभूमिमें युद्ध न करके दूसरेके सङ्ग मिलके शान्तनुपुत्र भीष्मको मारा है, इस ही लिये आज हम लोगोंने धनञ्जयको शापयुक्त किया; भागीरथी गङ्गा इतना वचन सुनके बोली, कि 'ऐसा ही होवे। मैंने वह वृत्तान्त पिताको सुनाकर

व्यथितचित्तसे गृहमें प्रवेश किया, पिता भी सुनके परम शोकित हुए; अनन्तर पिताने वसुओंके निकट जाकर उन्हें बार बार प्रसन्न करके आपके निमित्त प्रार्थना की। तब वे लोग मेरे पितासे बोले,—हे महाभाग! उसका पुत्र मणिपुरका राजा युवा बभ्रुवाहन जब रणभूमिके बीच उसे बाणसे मारके पृथ्वीपर गिरावेगा, तब वह शापसे मुक्त होगा, देवराज भी युद्धमें आपको पराजित नहीं कर सकते, परन्तु आत्मा पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, इस ही लिये उस पुत्रके द्वारा आप पराजित हुए हैं। हे विभु! इस विषयमें मेरा कुछ भी दोष नहीं हो सकता; परन्तु आप इस विषयको कैसा सम्मति हैं, उसे मैं नहीं कह सकती।

अर्ज्जुन उलूपीका ऐसा वचन सुनके उससे प्रसन्नचित्तसे बोले, हे देवि! तुमने जो कुछ किया, वह सब मुझे प्रिय बोध हुआ है। धनञ्जय उलूपीसे ऐसा कहके चित्राङ्गदाके सम्मुख मणिपुरपति अपने पुत्र बभ्रुवाहनसे बोले, हे पुत्र! आगामी चैती पूर्णिमामें युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ होगा, तुम दोनो माता और मन्त्रियोंके सहित वहां गमन करना, बुद्धिमान राजा बभ्रुवाहनने पार्थका ऐसा वचन सुनके आंखोंमें आंसू भरके पितासे कहा। हे धर्म्मज्ञ! आपकी आज्ञानुसार मैं अश्वमेध महायज्ञमें जाकर द्विजातियोंका परिवेषक हूंगा। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ! परन्तु आप कृपा करके अपनी इन दोनो भार्य्याओंके सहित निज पुरीमें प्रवेश करिये, इसमें कुछ भी विचार न करिये। हे प्रभु! निज भवनमें एक रात्रि सुखसे वासकरके दूसरे दिन फिर घोड़ेका अनुगमन करना

कपिध्वज कुन्तीपुत्र धनञ्जय पुत्रका ऐसा वचन सुनके उस चित्राङ्गदानन्दन बभ्रुवाहनसे बोले, हे महाबाहो! मैंने तुम्हारा अभिप्राय मालूम किया; हे पृथुलोचन! परन्तु मैं जिस प्रकार दीक्षित हुआ हूं, उस ही भांति परिभ्रमण करूंगा, मैं इस समय तुम्हारे नगरमें नहीं जा सकता। हे नरेन्द्र! यह यज्ञीय घोड़ा इच्छानुसार विचरेगा, इसकी गति रोध न होगी; इसलिये घोड़ा न रहनेसे मैंभी नहीं रह सकता, तुम्हारा मङ्गल होवे, अब मैं जाता हूं। भरतसत्तम इन्द्रपुत्र धनञ्जयने वहांपर पुत्रके द्वारा विधिपूर्व्वक पूजित तथा दोनो भार्य्याओंसे अनुज्ञात होकर घोड़ेका अनुगमन किया।

८१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वह घोड़ा समुद्र सहित पृथ्वीपर भ्रमण करके हस्तिनापुरकी ओर लौटा। अर्ज्जुन भी इच्छानुसार घोड़ेका अनुगमन करते हुए क्रमसे मगधदेशके राजभवनके समीप आये। हे प्रभु! क्षत्रधर्म्ममें स्थित महावीर सहदेवपुत्र मेघसन्धिने अर्ज्जुनको समीप आया हुआ देखकर आह्वान किया। अनन्तर वह रथी धनुष, बाण और तलत्राणधारी मेघसन्धि निज नगरसे निकलकर पदाति अर्ज्जुनके समीप उपस्थित हुआ, महातेजस्वी मेघसन्धि धनञ्जयको पाके बालस्वभावके वशमें होकर अकौशल-पूर्व्वक अर्ज्जुनसे बोला, हे भारत! क्या आप स्त्रियोंके बीच विचरनेवाले पुरुषकी भांति इस घोड़ेको जगत्के बीच घुमावेंगे? मैं इस घोड़ेको हरता हूं, आप इसके छुड़ानेका यत्न करिये। यद्यपि आपने युद्धमें मेरे पितापितामहगणको अनुनय नहीं की है, तौभी मैं तुम्हारा रणातिथ्य करूंगा, इसलिये आप मेरे ऊपर प्रहार करिये और मैंभी तुम्हारे ऊपर प्रहार करूं। पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन मेघसन्धिका ऐसा वचन सुनके हंसकर उससे बोले, कि विघ्न करनेवालेको निवारण करना ही मेरा व्रत है। हे राजन्! जेठे भाईने मेरे ऊपर यह भार अर्पण किया है, उसे तुम विशेष रीतिसे जानते हो, तुम सामर्थ्यके अनुसार मुझपर प्रहार करो। उससे

मैं क्रुद्ध न हूंगा। मगधेश्वर पाण्डवका ऐसा वचन सुनके वर्षा करनेवाले इन्द्रकी भांति अर्ज्जुनके ऊपर सैकड़ों सहस्रों बाण बरसाने लगा। तब गाण्डीवधारी अर्ज्जुनने गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे मगधराजके यत्नपूर्व्वक चलाये हुए बाणोंको निष्फल कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! कपिध्वज कुन्तीपुत्र अर्ज्जुन मगधराजके बाणोंको व्यर्थ करके प्रदीप्त मुखवाले सर्पकी भांति प्रज्वलित बाण चलाने लगे, परन्तु अर्ज्जुन मगधेश्वरके शरीर और सारथीके ऊपर बाण न चलाकर उनकी ध्वजा, पताका, दण्ड, रथ, मन्त्र, घोड़ों तथा अन्यान्य रथाङ्गोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे।

मगधेश्वरका शरीर सव्यसाचीके द्वारा रक्षित होनेसे उन्होंने निज वीर्य्यबलसे शरीरको रक्षित हुआ समझकर पार्थके ऊपर बाण चलाया। तब गाण्डीवधारी अर्ज्जुन मगधराजके द्वारा अत्यन्त घायल होकर वसन्तकालमें फूले हुए पलासवृक्षकी भांति शोभित हुए। हे कुरुवंशावतंस! मगधराज अवध्यमान होकर अर्ज्जुनको घायल करके लोकस्थित वीरोंको देखनेके लिये स्थित हुए। सव्यसाचीने बलपूर्व्वक धनुष खींचकर मगधराजके घोड़ोंको प्राणरहित करके उनके सारथीका सिर काट दिया और क्षूरप्रसे उनके विचित्र धनुष हस्तावाप पताका और ध्वजा काटके पृथ्वीपर गिरा दिया। मगधराज बाणोंसे पीड़ित और घोड़े तथा सारथीसे रहित होकर गदा उठाकर वेगपूर्व्वक अर्ज्जुनको ओर दौड़ा; अर्ज्जुनने गिद्धपक्षयुक्त बाणोंसे उस समागत मगधराजकी सुवर्णभूषित गदाको काटकर कई टुकड़े कर दिया। वह गदा शकलीभूत तथा सर्पिणीबन्धनच्युत होकर छूटी हुई व्यालीकी भांति पृथ्वीमें गिरी। मगधराजके रथहीन तथा धनुष और गदारहित होनेपर समराग्रणी बुद्धिमान अर्ज्जुनने उन्हें फिर पीड़ित करनेकी इच्छा नहीं की,

अनन्तर कपिध्वज अर्ज्जुन उस विमनस्क क्षत्रधर्म्ममें स्थित मगधराजको धीरज देते हुए बोले। हे पुत्र! बालक होके युद्धमें तुम्हारे ऐसा महत् कर्म्म करनेसे क्षत्रधर्म्म पर्य्याप्तरूपसे दीख पड़ा, अब लौट जाओ। हे राजन्! राजाओंको मारनेके लिये धर्म्मराज युधिष्ठिरने निषेध किया है, इस ही निमित्त तुम युद्धमें अपराध करके भी जीवित हो।

उस समय मगधराजने अपनेको यथार्थमें ही निराकृत समझके हाथ जोड़के अर्ज्जुनके निकट जाकर उनकी पूजा करके कहा। हे पार्थ! मैं तुम्हारे निकट पराजित हुआ हूं, अब आपके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है, इसके अनन्तर जो करना होगा, उसके लिये आप मुझे आज्ञा करिये, मैं वही कार्य्य करूंगा।

अर्ज्जुन मगधराजको धीरज देके फिर उससे बोले, आगामी चैती पूर्णिमामें राजा युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ होगा, उस समय तुम वहांपर जाना।

हे महाराज! सहदेवपुत्र मेघसन्धि अर्ज्जुनका ऐसा वचन सुनके उसे स्वीकार कर वीरश्रेष्ठ अर्ज्जुन और घोड़ेकी विधिपूर्व्वक पूजा की। अनन्तर वीरकेशरी धनञ्जयन इच्छानुसार समुद्रके तटसे होते हुए क्रमसे वङ्ग, पुण्ड्र और कोशल प्रभृति देशोंमें पुनर्व्वार घोड़ेके पीछे गमन किया। हे महाराज! अर्ज्जुनने गाण्डीव धनुषके सहारे इन सब देशोंमें राजाओंकी सेना प्रभृति समस्त सेना जय की।

८२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! श्वेतवाहन अर्ज्जुन मगधराजके द्वारा पूजित होकर दक्षिण देशमें जाकर घोड़ेके सङ्ग विचरने लगे। अनन्तर वह बलवान घोड़ा लौटकर चेदीवालोंकी शुक्ति नाम रमणीय नगरीमें पहुंचा। वहांपर महाबलवान अर्ज्जुन शिशुपा-

सहित शरभके द्वारा युद्धमें पूजित हुए। फिर वह घोड़ा पूजित होकर काशी, अङ्ग, कोशल, किरात और तङ्गन देशमें गया, कुन्तीपुत्र अर्ज्जुनने वहांपर यथाक्रमसे पूजा प्रतिग्रह करके दशार्ण देशमें गमन किया। वहां बलवान अरिमर्द्दन चित्राङ्गदके सङ्ग अर्ज्जुनका अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ।

पुरुषश्रेष्ठ अर्ज्जुन चित्राङ्गदको वशमें करके निषादराज एकलव्यके राज्यमें गये। उस समय एकलव्य पुत्रने युद्ध करके घोड़ा ग्रहण किया, तब अर्ज्जुनके सङ्ग निषादोंका रोएं को खड़ा करनेवाला संग्राम हुआ। अनन्तर युद्धमें दुर्द्धर्ष अपराजित कुन्तीपुत्रने यज्ञमें विघ्न करनेके लिये समागत एकलव्यपुत्रको जय किया। हे महा-राज। इन्द्रपुत्र अर्ज्जुन निषादराजके पुत्रको जीतकर उसके द्वारा परमादर पूर्व्वक पूजित होके फिर दक्षिण समुद्रकी ओर गये। वहां द्राविड़, अन्ध्र, रौद्रकर्म्मा माहिषक और कोल-गिरेय लोगोंके सङ्ग किरीटिका युद्ध हुआ था। उन लोगोंको जीतकर घोड़ेके वशवर्त्ती होकर अर्ज्जुनने सुराष्ट्रकी ओर गमन किया, फिर घोड़ा गोकर्णसे पहुंचके प्रभाससे जाकर वहांसे वृष्णि-वीरोंसे पालित रमणीय द्वारकापुरीमें पहुंचा।

यादवराजके यज्ञीय घोड़ेको द्वारवतीपुरीमें आया हुआ देखकर यादवकुमारगण उसे उन्म-थित करने लगे, परन्तु उग्रसेन अन्धकपति उग्रसेनने नगरसे बाहर होकर कुमारोंको निवारण किया। फिर वह किरीटीके साथ वसुदेवके सङ्ग मिलकर कुरुश्रेष्ठ अर्ज्जुनके निकट जाकर प्रीतिके सहित विधिपूर्व्वक परम आदरसे उनकी अभ्यर्थना करते हुए स्थित हुए, तब अर्ज्जुन उन लोगोंसे अनुमति लेकर घोड़ेके पीछे गमन करने लगे। अनन्तर घोड़ा समुद्रके पश्चिम देशमें विचरते हुए स्फीत होकर क्रम क्रमसे पञ्चनदमें गया। हे कौरव्य ! घोड़ा उस देशसे इच्छानुसार गान्धार देशमें गया; वहां पर पहिले वैरके अनुसार गान्धारराज शकुनिके पुत्रके सङ्ग सव्यसाचीका तुमुल संग्राम हुआ।

८३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गान्धारराज महारथ वीरश्रेष्ठ शकुनिपुत्र पताका, ध्वजा माला हाथी घोड़े और रथयुक्त महासेनाके बीच घिरकर युद्ध करनेके लिये अर्ज्जुनके निकट गया। योद्धा-ओंने राजा शकुनिके मरनेसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुष ग्रहण करके रणभूमिमें अर्ज्जुनके सामने गमन किया। युद्धमें अपराजित धर्म्मात्मा बीभत्सु अर्ज्जुनने उन लोगोंको युधिष्ठिरका हित वचन सुनाया, उन लोगोंने उस वचनको नहीं माना। जब पाण्डुपुत्र अर्ज्जुनके सान्त्वना वचनसे निवारण करनेपर भी उन लोगोंने उस वचनको न सुनके क्रोधपूर्व्वक घोड़ा पकड़नेके लिये गमन किया, तब अर्ज्जुन क्रुद्ध होकर खिरुवाडकी भांति गाण्डीवसे छूटे हुए दीप्ताग्र क्षुरके सहारे उनका शिर काटने लगे। हे महा राज। योद्धा लोग अर्ज्जुनके द्वारा घायल तथा बाणोंकी वर्षासे अत्यन्त पीड़ित होकर घोड़ेको छोड़के सम्भ्रमके सहित निवृत्त हुए। अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुनने फिर गान्धार योद्धाओंके द्वारा एकबारही रोके जानेपर भी बार बार बाण चलाकर उन लोगोंका सिर काटे।

जब अर्ज्जुन युद्धमें गान्धार सेनाको सब भांतिसे संहार करने लगे, तब राजा शकुनिके पुत्रने युद्ध करते हुए पार्थको निवारण किया। क्षत्रधर्म्ममें स्थित राजा शकुनिपुत्रके युद्ध करते रहनेपर अर्ज्जुनने उससे कहा, कि राजा युधि-ष्ठिरकी आज्ञानुसार राजा लोग मेरे वध्य नहीं हैं; इसलिये युद्धकी आवश्यकता नहीं है, और आज तुम्हारी भी पराजय न होवे। तब पार्थने शकुनिपुत्रसे ऐसा कहा, तब वह अज्ञा-नसे मोहित होके उस वचनका अनादर करते हुए इन्द्रके समान कर्म्मकारी अर्ज्जुनको

बाणोंसे छिपा दिया। अमेयात्मा पृथापुत्र अर्जुनने जिस प्रकार जयद्रथका सिर काटा था, उसी भांति कङ्कपत्र विभूषित अर्द्धचन्द्र बाणसे शकुनिपुत्रका शिरस्त्राण हरण किया। गान्धार सेना अर्जुनके उस कार्य्यको देखकर परम विस्मित हुई; अर्जुनने इच्छा रहनेपर भी शकुनिपुत्रका वध नहीं किया, उससे सबने उन्हें राजा करके बोध किया।

अनन्तर गान्धारराजका पुत्र पलायनपरायण होकर डरे हुए क्षुद्र मृगोंकी भांति उस डरी हुई सेनाके सहित भागा। योद्धाओंके भागनेपर पृथापुत्र अर्जुन सन्नत पर्व्वयुक्त भल्लास्त्रसे उनके सिर काटने लगे। अर्जुनके गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए पृथुल बाणोंसे ऊंचो भुजाओंके कटनेसे किसीकिसीको मालूम ही न हुआ। मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बीच कोई दौड़ने, कोई गिरने तथा कोई विध्वस्त होकर बार बार लौटने लगा। जो सब शत्रु अर्जुनके संग युद्ध करनेमें समर्थ थे उनके मारे जानेपर उस प्रधान कर्म्मा वीरश्रेष्ठ पार्थके सामने कोई भी न दीख पडा।

अनन्तर गान्धारराजकी जननी भयभीत होकर वृद्ध मन्त्रियोंके सहित हाथमें उत्तम अर्घ लेकर अर्जुनके निकट गई। वह सावधानचित्तसे युद्धदुर्म्मद पुत्रको संग्रामसे निवारण करती हुई जिष्णु धनञ्जयको प्रसन्न करने लगी। प्रभु विभत्सु पार्थ उसे सम्मानपूर्व्वक प्रसन्न करके शकुनिपुत्रको धीरज देते हुए बोले।

हे महाबाहो! तुमने इस समय जिस बुद्धिके वशवर्त्ती होकर मेरे विरुद्ध युद्ध करनेकी अभिलाष की थी, तुम्हारे संग मेरा भ्रातृसम्बन्ध रहनेसे मैं उससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। हे पापरहित राजन्! धृतराष्ट्रके कार्य्य और गान्धारी माताका स्मरण होनेसे ही तुम्हें जीवन लाभ हुआ है, परन्तु तुम्हारे सब अनुचर मारे गये। जो हो, तुम्हारे सहित तथा तुम्हारे संग मेरे वैरकी समता रही, परन्तु फिर कभी तुम्हारी ऐसी बुद्धि न होवे; तुम आगामी चैती पूर्णिमामें हमारे राजा युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें गमन करना।

८४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुन गान्धारराजसे इतनी बात कहके कामविहारी घोड़ेको निवृत्त करके वहांसे चले, घोड़ा भी लौटकर हस्तिनापुरकी ओर चला।

राजा युधिष्ठिर दूतके मुखसे घोड़ेकेसहित अर्जुनके कुशलपूर्व्वक लौटनेकी वार्त्ता सुनके अत्यन्त हर्षित हुए और गान्धारराज तथा अन्यान्य देशोंमें पराक्रमी अर्जुनको जयका वैसा कर्म्म सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए।

महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने इतने समयके बीच माघी द्वादशी और इष्ट पुष्यनक्षत्र पाके भीमसेन, नकुल और सहदेव प्रभृति भाइयोंको बुलाया, उस समय धार्म्मिकश्रेष्ठ पृथ्वीनाथ युधिष्ठिर महायोद्धा वाग्मिवर भीमसेनको सम्बोधन करके बोले, हे भीम! तुम्हारे भाई धनञ्जय घोड़ेके सहित आरहे हैं, यह सम्वाद मुझसे उनके सेवकोंने आकर कहा है। हे वृकोदर! यही समय उपस्थित है, घोड़ा भी अभिमुखी हुआ है, यही माघी पौर्णमासी है, इसके बाद माघ बीतेगा, इसलिये अश्वमेधको विधि तथा यज्ञस्थान निरूपण करनेके लिये तुम विद्वान वेदपारग ब्राह्मणोंको भेजो।

भीमसेनने ऐसा वचन सुनके राजा युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार कार्य्य किया और पुरुष-श्रेष्ठ गुड़ाकेशके आनेकी वार्त्ता सुनके अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर वृकोदरने यज्ञकर्म्ममें कुशल ब्राह्मणोंको आगे करके बुद्धिमान स्थपति गणके सहित गमन किया। उस कुरुवंशीय भीमसेनने स्थपतिगणोंके सहारे गृहसमूहसे परिपूरित परम शोभित प्रशस्त प्रतोलीयुक्त यज्ञवाटको

विधिपूर्व्वक मापा। अनन्तर सैकड़ों प्रासादोंसे घिरा हुआ उत्तम मणियुक्त सुवर्ण तथा अनेक रत्नोंसे विभूषित कुट्टिम निर्म्माण कराया। उस गृहके स्तम्भों और बृहत् तोरणोंको सोनेसे चित्रित कराया तथा यज्ञस्थानमें शुद्धकाञ्चन प्रदान करके उस स्थानमें विधानपूर्व्वक अन्तःपुर और अनेक देशोंसे आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंके निमित्त बहुतसे गृह बनाये। फिर उन्होंने राजा युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार अक्लिष्टकारी राजाओंके पास दूत भेजा, राजा लोग कुरुराज युधिष्ठिरकी प्रियकामनासे बहुतसे रत्न स्त्री, अश्व और अनेक प्रकारके अस्त्र लेकर आये। महात्मा महीपालोंके शिविरोंमें प्रवेश करनेके समय शब्दायमान समुद्रके शब्द समान उन लोगोंके कोलाहलका शब्द आकाशमण्डलको स्पर्श करने लगा।

कुरुनन्दन धर्म्मराज राजा युधिष्ठिरने समागत राजाओंको उत्तम अन्न जल और उत्कृष्ट शय्या प्रदान करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा की और वाहनोंके लिये गुड़, धान्य, ऊख तथा दूध प्रदान करनेके लिये आज्ञा दी। बुद्धिमान् धर्म्मराजके उस महायज्ञमें बहुतसे ब्रह्मवादी ब्राह्मण मुनिगण आये। हे पृथ्वीपाल! जो सब द्विजवर शिष्योंके सहित आये, कुरुपतिने उन सबको आदरपूर्व्वक बैठाया। महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर दम्भ त्यागके स्वयं सबके गृहपर गये तथा ब्राह्मणों और राजाओंका अनुगमन करने लगे।

अनन्तर स्थपति तथा अन्यान्य शिल्पिगणने यज्ञीय गृहादि तैयार करके धर्म्मराजके समीप सब वृत्तान्त कहा। धर्म्मराज युधिष्ठिर सब कार्य्योंको पूरा हुआ सुनके भाइयोंके सहित आदरयुक्त तथा अतन्द्रित होकर आनन्दित हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस यज्ञके आरम्भ होनेपर हेतुवादी वाग्मी ब्राह्मणगण आपसमें जिगीषु होकर बहुतसे हेतुवाद कहने लगे। हे भारत! राजाओंने देवेन्द्रयज्ञकी भांति भीमसेनके द्वारा विहित उस उत्तम यज्ञकी विधि और इधर उधर सुवर्णमय तोरणोंको देखने लगे; वहांपर शय्या, आसन, विहार, बहुतसे जलपात्र-घड़े पात्र, कलश और शराव प्रभृति जितनी वस्तु थीं, उन सबको स्वर्णमयके अतिरिक्त अन्य धातुओंकी नहीं देखा। राजा लोग इच्छानुसार विधिपूर्व्वक बने हुए सुवर्णभूषित दारुमय मन्त्रसंस्कृत यूप तथा वहां आये हुए स्थलज और जलज पशुओंको देखने लगे। वे लोग वहांपर गऊ, महिष, महावृद्धा स्त्री, जलजन्तु, श्वापद, पक्षी, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज पर्व्वतीय और अनूप जात प्राणियोंको देखने लगे। इसही प्रकार राजा लोग पशु, गोधन और धान्यके द्वारा प्रमुदित होकर परम विस्मित हुए। उस यज्ञमें सैकड़ों सहस्रों ब्राह्मण तथा अन्यान्य मनुष्यगण उत्तम रीतिसे बनी हुई बहुमूल्य वस्तुओंको खाने लगे, दिन बीतनेपर बादलके शब्द सदृश शब्दायमान नगाड़ा बार बार बजने लगा, बुद्धिमान् धर्म्मराजका यज्ञ इसही भांति वर्द्धित होने लगा।

हे महाराज! उस समय पर्व्वतके सदृश बहुतसे अन्नके ढेर तथा दही, दूध और घृतके तालाबोंको देखकर सब कोई विस्मित हुए। हे राजन्! महाराजके महायज्ञमें समस्त जम्बूद्वीप अनेक जनपदोंसे परिपूरित होनेसे कोई एक स्थानमें रहके देखनेमें समर्थ न हुआ। वहांपर कई जातिके मनुष्योंने अनेक भांतिके पात्रोंको ग्रहण करके गमन किया। उत्तम रीतिसे परिष्कृत मणिमय कुण्डल और माला पहरे हुए सहस्रों पुरुष द्विजातियोंको अन्न-वस्तु परिवेषण करने लगे। जो सब सेवक आये थे, वे लोग राजभोग्य विविध अन्न और जल ब्राह्मणोंको प्रदान करने लगे।

८५ अध्याय समाप्त।

———

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिरने वेद जाननेवाले ब्राह्मणों और राजाओंको आया हुआ देखकर भीमसेनसे कहा। हे पुरुषश्रेष्ठ! जो ये सब राजा लोग आये हैं, सभी पूजनीय है, इसलिये इनकी पूजा करो।

महातेजस्वी भीमसेन यशस्वी नरनाथ युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके यमज नकुल और सहदेवके सहित उन राजाओंकी पूजा करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर सर्व्वप्राणिश्रेष्ठ गोविन्द बलदेवको आगे करके सात्यकि प्रद्युम्न गद निशठ शाम्ब और कृतवर्म्मा प्रभृति वृष्णिवंशियोंके सहित धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके निकट आये। महारथ भीमसेनने उन लोगोंकी भी पूजा की और वे लोग भीमसेनके द्वारा पूजित होकर अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण गृहके बीच गये।

अनन्तर मधुसूदनने युधिष्ठिरके सङ्ग वार्त्तालाप करके उनके समीप संग्रामकर्षित महाबाहु अर्ज्जुनको उद्देश्य करके अनेक प्रकारके वचन कहे। कुन्तीपुत्र धर्म्मनन्दन जगश्रेष्ठ युधिष्ठिरने अरिंदमन देवकीनन्दनसे बार बार स्वागत प्रश्न किया, तब उन्होंने धर्म्मराजसे कहा, हे प्रभु! जिसने संग्राम कर्षित उस पाण्डवश्रेष्ठ धनञ्जयकी रक्षा की थी, वह द्वारकावासी आप्त पुरुष तुम्हारे समीप आये हैं; अब आप अश्वमेध सिद्धिके निमित्त सब कार्य्य करिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर कृष्णका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, हे माधव! वह जिष्णु धनञ्जय मेरे भाग्यसे ही कुशली होकर आये हैं। उस पाण्डव-बलाग्रणी धनञ्जयने इस यज्ञमें जो व्यवस्था की है, उसे तुम्हारे समीप जतानेकी इच्छा करता हूं।

अनन्तर वाग्मिवर वृष्णि और अन्धकपति कृष्ण धर्म्मात्मा धर्म्मराज युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके अर्ज्जुनकी बात स्मरण करके बोले, हे महाराज! अर्ज्जुनने मुझसे यह बात कही है, कि कृष्ण! तुम समयके अनुसार राजा युधिष्ठिरसे मेरा यह वचन कहना, कि "हे कौरवर्षभ! इस यज्ञमें जो सब महात्मा राजा लोग आवेंगे, हम लोगोंको विशेष करके उनकी पूजा करनी होगी। हे मानद! इसके अतिरिक्त राजाको मेरा यह हित वचन सुनाना, कि जिससे अर्घ्यदान विषयमें आत्ययिक न हो, वही आप करिये तथा उस विषयमें अनुमति करियेगा। हे महाराज! राजद्वेषके हेतु जिसमें यह प्रजासमूह विनष्ट न होवे"।

हे कौन्तेय! उस पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जयने इतना कहके और एक बात जो मुझसे कही है, उसे सुनो, उन्होंने कहा है, मेरा परमप्रिय पुत्र मणिपुरका राजा महातेजस्वी बभ्रुवाहन इस यज्ञमें आवेगा; आप मेरे अनुरोधसे उसका विधिपूर्व्वक समादर करना। हे प्रभु! वह मेरा अत्यन्त भक्त और अनुरक्त है।

धर्म्मराज युधिष्ठिर इतनी बात सुनके उनके उस वचनका अभिनन्दन करते हुए यह वचन कहने लगे।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण! मैंने इस प्रिय वचनको सुना, हे प्रभु! तुम्हारे मुखसे निकली हुई अमृतरस सदृश पवित्र वाणी मेरे चित्तको अत्यन्त आनन्दित करती है। हे हृषीकेश मैंने सुना है, कि अर्ज्जुन जिन स्थानोंमें गये थे उन स्थानोंमें राजाओंके सङ्ग उनका फिर बहुत युद्ध हुआ था, बुद्धिमान् पृथापुत्र अर्ज्जुन किस लिये सदा सुखरहित हुआ है, उसे मैं नहीं जानता, इससे मेरा चित्त बहुतही दुःखित होता है। हे जनार्द्दन! मैं निर्ज्जनमें कुन्तीपुत्र धनञ्जयके विषयमें विचार करके देखता हूं, कि वह सदाही दुःख भोग किया करता है। हे कृष्ण! जिन लक्षणोंसे दुःख भोगना होता है, धनञ्जयके सब लक्षणोंसे पूजित शरीरमें क्या वे

अनिष्ट-सूचक लक्षण है ? सदा अत्यन्त सुख-भोगी कुन्तीपुत्र विमलरूपसे शरीरमें मैं तो कुछभी अनिष्ट चिन्ह नहीं देखता ? हे कृष्ण ! यदि मेरे सुनने योग्य हो, तो मेरे समीप तुम्हें यह विषय कहना उचित है।

भोज राजन्य वर्द्धन हृषीकेश युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके उत्तम सहृत् उत्तर सोचके राजासे बोले, हे राजन् ! पुरुषसिंह धनञ्जयकी पिण्डिका अर्थात् दोनो जानुसे नीचे पश्चद्भागीय मांसल स्थलके अतिरिक्त दूसरा कोई अविदित लक्षण नहीं मालूम होता। दोनो पिण्डिकाके अधिक रहनेसे ही पुरुषश्रेष्ठ धनञ्जय सदा मार्गमें भ्रमण किया करते हैं; इसके अतिरिक्त जिससे वह दुःखभागी हों, वैसा मैं कोई लक्षण नहीं देखता। तब पुरुष प्रवीर युधिष्ठिर बुद्धिमान कृष्णका ऐसा वचन सुनके बोले, हे प्रभु ! तुमने जो कहा, वही सत्य है।

अनन्तर कृष्णा द्रौपदीने असूयापूर्व्वक कृष्णका दर्शन किया, सखी द्रौपदीके सखा केशिहा हृषीकेशने साक्षात् धनञ्जयकी भांति उसके उस प्रणयको प्रतिग्रह किया। वहांपर जो सब भीम प्रभृति कौरव तथा याजकवृन्द विद्यमान थे, वे लोग अर्जुनकी उस विचित्र शुभ कथाको सुनके आनन्दके सहित क्रीड़ा करने लगे। वे लोग आपसमें अर्जुनकी कथा कह रहे थे, उसी समय महात्मा विजयकी आज्ञासे एक दूत वहांपर उपस्थित हुआ, उस बुद्धिमान दूतने निकटमें जाकर कुरुपति युधिष्ठिरको प्रणाम करके पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके आनेकी वार्त्ता सुनाई। राजाने दूतके उस वचनको सुनके हर्षसे वाष्पकुलनयन होकर प्रिया-ख्यानके निमित्त बहुतसा धन दान किया।

अनन्तर दूसरे दिन कुरुकुल धुरन्धर पुरुष-सिंह धनञ्जयके आनेके समय महान् शब्द प्रकट होने लगा। अनन्तर उठे हुई धूरिकी मांति चारों ओर वर्त्तमान घोड़ेके पांवकी धूली उड़ी। वहां अर्जुन मनुष्योंका ऐसा हर्षयुक्त वचन सुनने लगे, कि हे पार्थ ! तुम भाग्यसे ही कुशलपूर्व्वक लौटे हो; तुम्हें और युधिष्ठिरको धन्य है। अर्जुनके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है, जो युद्धमें राजाओंको जीतकर समुद्रके सहित पृथ्वी भरमें घोड़ेके सङ्ग घूमके फिर लौट आवे। सगर प्रभृति जो सब राजा होगये, उनका भी हम लोगोंने ऐसा अत्यन्त कठिन कर्म्म नहीं सुना था। हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तुमने जो दुष्कर कर्म्म किया है, हम लोगोंको बोध होता है, वैसा कर्म्म भविष्यमें राजा लोग न कर सकेंगे।

धर्म्मात्मा फाल्गुनने उन लोगोंका ऐसा कर्णसुखकर वचन सुनके यज्ञसत्तरमें प्रवेश किया, तब स्त्रियोंके सहित राजा युधिष्ठिर और यदुनन्दन कृष्ण धृतराष्ट्रको आगे करके उनके समीप गये।

धनञ्जयने पिता धृतराष्ट्र और बुद्धिमान धर्म्मराजके दोनो चरण छूके भीम प्रभृतिको पूजाकर केशवको आलिङ्गन किया। महाबाहु अर्जुन उन लोगोंके द्वारा पूजित होके उनको पुनर्व्वार पूजाकर तटप्राप्त करनेवाले पारगामी पुरुषकी भांति विश्राम करने लगे।

इस ही समय धीमान् राजा बभ्रुवाहन दोनों माताओंके सहित कुरुगणके निकट उपस्थित हुआ। वहांपर उसने बूढ़ा तथा अन्यान्य राजाओंको प्रणाम कर उनसे प्रतिनन्दित होके पितामही कुन्तीके उत्तम गृहमें गया।

८७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहु बभ्रुवाहनने पाण्डवोंके उत्तम शोभायमान गृहमें प्रवेश करके शान्तभावसे पितामहीको प्रणाम किया। अनन्तर चित्राङ्गदा देवी तथा कौरव्य-नागपुत्री उलूपी दोनोंने एकत्रित होकर विनयपूर्व्वक पृथा और कृष्णा द्रौपदीको प्रणाम करती हुई सुभद्रा प्रभृति अन्यान्य कुलस्त्रियोंको न्यायके अनुसार प्रणाम किया।

अनन्तर कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंने उन्हें विविध रत्न दान किया, वे महामूल्यवान् शय्या तथा आसनपर बैठीं। पार्थकी हितकामनासे कुन्तीने स्वयं उनका उत्तम रीतिसे आदर किया।

इधर महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहनने कुरु-वृद्धजनोंसे सम्मानित होकर पृथ्वीपति धृतराष्ट्रकी विधिपूर्व्वक पूजा की; फिर राजा युधिष्ठिर और भीमादि पाण्डवोंके निकट जाके उन्हें विनयपूर्व्वक प्रणाम किया। वह पाण्डवोंसे प्रेमके सहित आलिङ्गित तथा सम्मानित हुआ और महारथ पाण्डवोंने परम प्रसन्न होके उसे धन दान किया। अनन्तर पृथ्वीपति बभ्रुवाहनने प्रद्युम्नकी भांति चक्र तथा गदाधारी कृष्णकी विनयपूर्व्वक पूजा की, कृष्णने उस राजा बभ्रुवाहनको दिव्य घोड़ोंसे युक्त सुवर्णभूषित शोभायमान रथ प्रदान किया। धर्म्मराज, भीमसेन, नकुल और सहदेव, इन्होंने भी पृथक् रीतिसे उसे सम्मानित करते हुए बहुतसा धन दिया।

तिसके अनन्तर तीसरे दिन महामुनि वाग्मी सत्यवतीपुत्र व्यास युधिष्ठिरके पास आके उनसे बोले, हे कौन्तेय! आजसे तुम यज्ञ करो, तुम्हारे यज्ञ करनेका मुहूर्त्त उपस्थित होनेसे यज्ञ करानेवाले पुरुष तुम्हें यज्ञ करनेके लिये आज्ञा कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! बहुतसा सुवर्ण सञ्चित होनेसे तुम्हारा यह यज्ञ बहु सुवर्णान्वित कहके विख्यात हुआ है, इसलिये यह यज्ञ पूरी रीतिसे सिद्ध होगा। हे महाराज! इस यज्ञमें तिगुनी दक्षिणा और यज्ञवाले तिगुने ब्राह्मणोंको नियुक्त करो, हे नरनाथ! ऐसा करनेसे तुम इस एक ही यज्ञसे तीन अश्वमेध यज्ञका फल पाके स्वजन वध जनित पापसे मुक्त होगे। हे कुरुनन्दन! तुम जो अश्वमेधका अवभृत स्नान करोगे, वह परम पवित्र है।

अनन्तर तेजस्वी धर्म्मात्मा धर्म्मराज अमित बुद्धिमान व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके अश्वमेधकी सिद्धिके निमित्त दीक्षा लेनेके लिये गये। फिर महाबाहु राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध महायज्ञको अनेक दक्षिणा, सर्व्वकाम तथा सर्व्वगुणोंसे युक्त किया। हे राजन्! उस यज्ञमें सर्व्वज्ञ वेद जाननेवाले याजकवृन्द परिक्रमा करते हुए उत्तम शिक्षा तथा विधिके अनुसार सब कार्य्य करने लगे, उन लोगोंके कार्य्य किसी अंशमें स्खलित तथा अधूरे नहीं हुए, वरन वे लोग रीति तथा योग्यताके अनुसार सब कार्य्य करने लगे।

हे राजन्! द्विजगणोंने प्रवर्ग अर्थात् अश्वमेध विहित धर्म्माख्य समस्त ऋक् एकत्रित करके विधिपूर्व्वक सोमवल्ली कूटा। सोम पीनेवाले ब्राह्मण लोग शास्त्रके अनुसार उस सोमलतासे रस बाहिर करते हुए आनुपूर्व्विक प्रातःसेवन करने लगे; उस यज्ञमें जितने मनुष्य विद्यमान थे, उनके बीच कोई कृपण, दरिद्र भूखा, दुःखी वा प्राकृत नहीं था। शत्रुनाशन महातेजस्वी भीमसेन राजाकी आज्ञानुसार सदा भोजनार्थी पुरुषोंको भोज्यवस्तु प्रदान करने लगे। संस्तर अर्थात् इष्टका सङ्कलनाख्य स्थण्डिल रचनामें निपुण याजकगण प्रतिदिन शास्त्रदृष्टिके अनुसार सब कार्य्य करने लगे, बुद्धिमान धर्म्मराजके यज्ञमें षड्ङ्गनभिज्ञ और व्रतविहीन तथा वादाविचक्षण उपाध्यायन थे।

हे भरतर्षभ! अनन्तर यूपके उच्छ्रय उपस्थित होनेपर याजकोंने कुरुराजके यज्ञमें छः बेल, छः खदिर, छः पलाश, दो देवदारु और एक श्लेष्मातक काष्ठसे यूप तैयार किया। फिर भीमसेनने धर्म्मराजकी आज्ञानुसार शोभाके लिये सुवर्णके द्वारा बहुतसा यूप निर्म्माण कराया। हे राजर्षि! सुरलोकमें सप्तर्षियोंसे घिरे हुए महेन्द्रके अनुगत देवताओंकी भांति वे सुवर्णमय यूप विचित्र वस्त्रोंसे चित्रित होकर अत्यन्त शोभित हुए। उस यज्ञमें अग्नि रखनेके लिये सुवर्णमय इष्टिका बनाई गईं, इससे दक्ष

प्रजापतिके अग्निचयनकी भांति वह अग्निचयन सुशोभित हुआ। चार स्थण्डिलोंसे युक्त उस यज्ञकी वेदी अठारह हाथ परिमित सुवर्णपक्ष-युक्त त्रिकोण तथा गरुड़ाकारसे बनाई गई।

अनन्तर मनीषियोंके द्वारा शास्त्रके अनुसार देवताओंके उद्देश्यसे जो सब पशु, पक्षी, ऋषभ तथा जलचर नियुक्त हुए थे, ऋत्विकोंने उस अग्निचयन कर्म्ममें उन पशुओंका अभियोग किया। महात्मा कुन्तीपुत्रके यज्ञमें अश्व प्रभृति तीन सौ पशु यूपमें निबद्ध हुए, युधिष्ठिरका यज्ञ स्थान देवताओं तथा ऋषियोंके समागम, गन्धर्व्वोंके सङ्गीत और अप्सराओंका नृत्य होनेसे अत्यन्त शोभित होने लगा। किम्पुरुषोंसे समाकीर्ण्ण किन्नरोंसे उपशोभित, सिद्ध और ब्राह्मणोंसे परिवेष्टित हुआ।

उस सभामण्डपके बीच सर्व्वशास्त्र प्रणेता यज्ञ संस्कारमें निपुण द्विजश्रेष्ठ व्यासशिष्योंके बैठनेपर महातेजस्वी गीतकोविद नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, चित्रसेन तथा नृत्यगीत जाननेवाले गन्धर्व्वगण उन ब्राह्मणोंको आनन्दित करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, याजक द्विजातियोंने अन्यान्य रमणीय पशुओंका विधानपूर्व्वक श्रपण अर्थात् संस्कार करके शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेका बध किया। अनन्तर याचकगणोंने यथा रीति घोड़ेको मारके मन्त्र द्रव्य और श्रद्धायुक्त विधिपूर्व्वक मनस्विनी द्रुपदपुत्रीको बैठाया। हे भरतश्रेष्ठ! तिसके अनन्तर द्विजातियोंने शास्त्रके अनुसार उस घोड़ेके बदस्थलसे वपा उठाकर सावधानचित्तसे उसे अग्निमें संस्कार किया। उस समय धर्म्मराजने भाइयोंके सहित सर्व्वपापनाशक उस वपाके धूमयुक्त गन्धको शास्त्रके अनुसार सूंघा, हे नरनाथ! वे धीरवर सोलह ऋत्विक् उस घोड़ेके अवशिष्ट अङ्गोंको अग्निमें होम करने लगे; भगवान् व्यासदेव शिष्योंके सहित इन्द्रसदृश तेजस्वी धर्म्मराजके उस यज्ञको इस ही भांति पूरा करके वचनसे राजा युधिष्ठिरको बर्द्धित करने लगे।

अनन्तर राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विधिपूर्व्वक एक एक सहस्र निष्क (स्वर्णमुद्रा) दान करके वेदव्यास मुनिको वसुन्धरा प्रदान की। हे महाराज! सत्यवती पुत्र व्यासदेव पृथ्वी प्रतिग्रह करके भरतश्रेष्ठ धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, हे राजसत्तम! यह पृथ्वी तुम्हें ही अर्पित हुई, ब्राह्मण लोग धन पानेसेही परम सन्तुष्ट होते हैं, इसलिये मुझे तथा उन लोगोंको इसका मूल्य दो।

महामना युधिष्ठिर भाइयोंके सामने उन ब्राह्मणोंसे बोले, कि अश्वमेध यज्ञमें पृथ्वी-दक्षिणा ही विहित है, इस ही लिये मैंने अर्ज्जुनके द्वारा अर्ज्जित यह वसुन्धरा ऋत्विकोंको प्रदान की है। हे विप्रगण! आप लोग इस पृथ्वीको विभाग करके ग्रहण करिये. मैं वनको जाऊंगा। चातुर्होत्रके प्रमाण अनुसार इस पृथ्वीको मेरे चार भागमें विभक्त करनेसे यह ब्रह्मस्व हुई, मैं फिर इसे लेनेकी इच्छा नहीं करता। हे विप्रगण! मैंने जो कहा, मेरे भाइयोंका भी ऐसा ही अभिप्राय है।

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उनके भाइयों और द्रौपदीने कहा, कि महाराजने जो कह दिया, 'हमारा भी वही अभिप्राय है।' उस समय उन लोगोंका ऐसा वचन सुनकर सबके शरीरके रोए खड़े होगये।

हे भारत! तिसके अनन्तर आकाशसे साधुवाद और सभाके बीच द्विजगणका प्रशंसावाद प्रकट हुआ। मुनिश्रेष्ठ वेदव्यास और कृष्ण ब्राह्मणोंके बीच युधिष्ठिरकी पूरी रीतिसे पूजा करते हुए फिर बोले, कि तुमने मुझे पृथ्वी दान किया था, मैंने इसे तुम्हें फिर दे दी, तुम ब्राह्मणोंको पृथ्वीके पलटेमें सुवर्ण दान करो, यह वसुन्धरा तुम्हारी ही रहे।

अनन्तर कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे कहा, कि भगवान वेदव्यासने जैसा कहा आपको वैसा ही करना उचित है।

अतिथि ब्राह्मण फिर सत्तू लेकर उसे खाके तृप्त न हुआ। तब उञ्छवृत्ति उसे देखके बहुत ही सोचने लगा।

अनन्तर पुत्र बोला, हे सत्तम। आप मेरे इस सत्तूको लेकर ब्राह्मणको दीजिये, यह मैंने सुकृत समझके दान किया। विशेष करके सर्व्वदा यत्नपूर्व्वक आपको प्रतिपालन करना ही मेरा अवश्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि वृद्ध पिताका प्रतिपालन करना ही साधुओंको अभिलषित है। हे विप्रर्षि। तीनों लोकके बीच यह जनश्रुति सदा विद्यमान है, कि बूढे पिताको प्रतिपालन करना ही पुत्रका परम प्रयोजन है, आप केवल प्राण धारण करके तपस्या कर सकते हैं, देहधारियोंके शरीरमें प्राण ही परम धर्म्मरूपसे निवास किया करता है।

पिता बोला, हे पुत्र! तुम सहस्र वर्षके होजाओ तोभी मैं तुम्हें बालक ही समझूंगा, पिता पुत्र उत्पन्न करके उस पुत्रसे कृतकृत्य हुआ करता है। हे पुत्र। इसे मैं जानता हूं, कि बालकोंकी भूख अत्यन्त बलवती होती है, मैं बूढा हूं, इसलिये भूख सहूंगा। हे पुत्र! तुम इस सत्तूको भोजन करके बलवान बनो। हे पुत्र। मेरी अवस्था जीर्ण होनेसे भूख मुझे बाधा न दे सकेगी मैंने बहुत समयतक तपस्या की है, इसलिये मैं मरनेसे नहीं डरता।

पुत्र बोला, ऐसी जनश्रुति है, कि पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे परित्राण करता है, इसलिये मैं भी आपका पुत्र हूं, जब कि आत्मा पुत्र रूपसे उत्पन्न होता है, तब आपही इस लोकमें अपना परित्राण करिये।

पिता बोला, हे पुत्र। तुम रूप, शील और दमगुणसे मेरे समान हुए, मैंने अनेक भांतिसे तुम्हारी परीक्षा की है, इसलिये तुम्हारा सत्तू ग्रहण किया। द्विजसत्तमने इतना कहके प्रसन्न होकर सत्तू लेकर अतिथिको दिया, परन्तु अतिथि उस सत्तूको भोजन करनेपर भी तृप्त नहीं हुआ तब वह धर्म्मात्मा उञ्छवृत्ति अत्यन्त लज्जित हुआ।

साध्वी पुत्रवधू ब्राह्मणकी प्रियकामनासे अपना सत्तू लेकर प्रसन्नचित्तसे श्वशुरसे बोली, हे विप्र! आपके सन्तानसे मेरे सन्तान होगा, इसलिये आप मेरा यह सत्तू लेकर अतिथिको दीजिये। आपकी कृपासे मेरा सब अक्षय हो, मनुष्यगण जिन स्थानोंमें जाके शोकसे छूटते हैं, वे सब स्थान पौत्रके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं। जैसे धर्म्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग तथा दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों अग्नि अक्षय स्वर्गजनक है,—पुत्र पौत्र और प्रपौत्र ये तीनों भी वैसेही हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि पुत्र पुरुषको पितृऋणसे मुक्त करता है, पुरुष सदा पुत्र और पौत्रके सहारे उत्तम लोकोंको भोग किया करता है।

श्वशुर बोला, हे सुव्रतचारिणी। मैं तुम्हारे अङ्गोंको वातातपसे विशीर्ण तथा विवर्ण और तुम्हें भूखी तथा हतचेतन देखकर धर्म्मका उपघातक होकर किस प्रकार तुम्हारा सत्तू ग्रहण करूं? हे कल्याणचरितयुक्त कल्याणी। तुम मुझसे ऐसा मत कहो। हे सुभगे। तुम व्रतवती, शौच, शील, तपस्या, तथा कृच्छ्रवृत्तिशालिनी हो, इसलिये इस दिनके छठें भागमें मैं तुम्हें किस प्रकार भूखी देखूंगा?

पुत्रवधू बोली, हे प्रभु। आप मेरे गुरुके भी गुरु होनेसे परमदेवतास्वरूप हैं, इसलिये आप मेरा सत्तू ग्रहण करिये। हे विप्र। मेरी देह, प्राण तथा धर्म्म गुरुसेवाके ही लिये प्रस्तुत है, इसलिये मैं आपकी कृपासे शुभद लोक प्राप्त करूंगी। आप मुझे भी दृढ़ भक्त जानके मेरा सत्तू ले सकते हैं

श्वशुर बोला, हे साध्वि तुम धर्म्म तथा व्रतयुक्त होकर गुरुवृत्ति अवलम्बन करके इस शीलवृत्तिके द्वारा सर्वत्र शोभा पाती हो; इसलिये तुम वञ्चनाकी पात्री नहीं हो, तुम्हारा

विप्र शुक्लपक्षमें प्रचण्ड सूर्य्यकी धूपसे युक्त मध्यान्ह समयमें उञ्छवृत्तिके सहारे शस्यका दाना इकट्ठा करते हुए तृषार्त्त तथा क्षुधार्त्त हुआ। वह उञ्छ अर्थात् शस्यका दाना न पानेसे परिजनोंके सहित भूखे ही रहा। उस समयको अत्यन्त कष्टसे बिताकर तिसके अनन्तर यव प्रस्थ उपार्ज्जन किया। अनन्तर उस ब्राह्मणने यवप्रस्थसे शक्तू बनाकर जप सन्ध्या तथा होम आदिक अनेक सत्कर्म्मोंको विधि पूर्व्वक पूरा किया।

अनन्तर उन हरएक तपस्वियोंके कुड़व परिमाणसे शक्तू विभाग करके लेनेपर कोई ब्राह्मण अतिथि होकर वहां आके बोला, कि 'मुझे भोजन कराओ'।

हे-द्विजसत्तमगण। पवित्रचित्तवाले दान्त, श्रद्धा, दम और शम गुणसे युक्त, असूया, क्रोध, मत्सर मान और अहङ्काररहित उन साधुतपस्वियोंने उस आये हुए अतिथिको देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट चित्तसे उसे प्रणाम करते हुए स्वागत तथा ब्रह्मचर्य्यके सहित गोत्रादि पूछा। वे लोग परस्परमें गोत्रादि मालूम करके उस क्षुधार्त्त अतिथिको कुटीके बीच ले जाके बोले, हे अनघ! तुम्हारे लिये मेरा दिया हुआ यह पाद्य, अर्घ, आसन और नियमसे उपार्ज्जित पवित्र शक्तू तैयार है; हे प्रभु! आप कृपा करके यह सब प्रतिग्रह करिये।

हे राजेन्द्र! वह द्विजवर तपस्वी ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके कुड़व परिमित शक्तू प्रतिग्रह पूर्व्वक भोजन करके तुष्ट न हुआ। वह उञ्छ वृत्ति ब्राह्मण अतिथिको क्षुधार्त्त देखकर उसकी तुष्टिके निमित्त फिर भोजन खोजने लगा। जब ब्राह्मण अतिथिके भोजनके निमित्त सोचने लगा, तब उसकी भार्य्या उससे बोली, कि आप मेरा हिस्सा अतिथिको दीजिये, तो यह द्विजवर परितुष्ट होके अभिलषित स्थानमें जायगा। उस द्विजसत्तमने साध्वी भार्य्याकी इतनी बात सुनके उसे भूखी जानकर उसका शक्तू लेना नहीं चाहा।

उस समय उस विद्वान् विप्रवरने निज अनुमानके अनुसार उस बूढ़ी तपस्विनी परिश्रान्ता चर्म्म और अस्थिभूता कांपती हुई भार्य्याको भूखी जानके उससे कहा। हे शोभने! कीट पतङ्ग और मृगजाति भी अपनी अपनी स्त्रियोंकी रक्षा तथा पोषण किया करते हैं, इसलिये तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। देखो पुरुष पत्नीके द्वारा अनुकम्पनीय, पुष्ट तथा रक्षित हुआ करता है, धर्म्म, अर्थ, काम, सब सांसारिक कार्य्य सेवा, कुल सन्तति और अपना तथा पितरोंके धर्म्म ये सब पत्नीके ही अधीन हैं। जो पुरुष कार्य्यमें अनभिज्ञ तथा भार्य्याकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उस मनुष्यको महत् अयश तथा नरक प्राप्त हुआ करता है और प्रदीप्त यशसे भ्रष्ट होनेसे उसे सब लोक नहीं प्राप्त होते।

वह तपस्विनी ब्राह्मणी पतिका ऐसा बचन सुनके उससे बोली, हे द्विज! हम-दोनोंका धर्म्म और अर्थ समान ही है, इसलिये आप मुझपर प्रसन्न होके यह चौथा भाग शक्तूप्रस्थ प्रतिग्रह करिये। हे द्विजसत्तम! सत्य, रति, धर्म्म और स्वर्ग ये सब गुणके सहारे निर्ज्जित होते हैं, स्त्रियोंको पति साधन ही सदा अभिलषित है; माताका रज, पिताका वीर्य्य और पति परम देवता है। पतिके प्रसन्न रहनेसे स्त्रियोंको रति तथा पुत्ररूपी फल उत्पन्न होता है, आप पालन करनेसे पति और भरण करनेसे भर्त्ता है, पुत्र प्रदान करनेसे वरद हुए हैं; इसलिये आप मेरा शक्तूदान करिये। आप जरायुक्त, क्षुधार्त्त, अत्यन्त दुर्बलवृद्ध और उपवाससे परिश्रान्त होकर अत्यन्त कृश हुए हैं।

तपस्वी ब्राह्मण भार्य्याका ऐसा बचन सुनके उसका शक्तू प्रतिग्रह करके अतिथिसे बोला, हे द्विज! आप फिर इस शक्तूको प्रतिग्रह करिये।

अतिथि ब्राह्मण फिर सत्तू लेकर उसे खाके तृप्त न हुआ। तब उञ्छवृत्ति उसे देखके बहुत ही सोचने लगा।

अनन्तर पुत्र बोला, हे सत्तम। आप मेरे इस सत्तूको लेकर ब्राह्मणको दीजिये, यह मैंने सुकृत समझके दान किया। विशेष करके सर्व्वदा यत्नपूर्व्वक आपको प्रतिपालन करना ही मेरा अवश्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि वृद्ध पिताका प्रतिपालन करना ही साधुओंको अभिलषित है। हे विप्रर्षि। तीनों लोकके बीच यह जनश्रुति सदा विद्यमान है, कि बूढ़े पिताको प्रतिपालन करना ही पुत्रका परम प्रयोजन है, आप केवल प्राण धारण करके तपस्या कर सकते हैं, देहधारियोंके शरीरमें प्राण ही परम धर्म्मरूपसे निवास किया करता है।

पिता बोला, हे पुत्र। तुम सहस्र वर्षके होजाओ, तोभी मैं तुम्हें बालक ही समझूंगा, पिता पुत्र उत्पन्न करके उस पुत्रसे कृतकृत्य हुआ करता है। हे पुत्र। इसे मैं जानता हूं, कि बालकोंकी भूख अत्यन्त बलवती होती है, मैं बूढ़ा हूं, इसलिये भूख सहूंगा। हे पुत्र! तुम इस सत्तूको भोजन करके बलवान बनो। हे पुत्र। मेरी अवस्था जीर्ण होनेसे भूख मुझे बाधा न दे सकेगी मैंने बहुत समयतक तपस्या की है, इसलिये मैं मरनेसे नहीं डरता।

पुत्र बोला, ऐसी जनश्रुति है, कि पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे परित्राण करता है, इसलिये मैं भी आपका पुत्र हूं, जब कि आत्मा पुत्र रूपसे उत्पन्न होता है, तब आपही इस आत्मासे अपना परित्राण करिये।

पिता बोला, हे पुत्र। तुम रूप, शील और दमगुणसे मेरे समान हुए, मैंने अनेक भांतिसे तुम्हारी परीक्षा की है, इसलिये तुम्हारा सत्तू ग्रहण किया। द्विजसत्तमने इतना कहके हंसकर सत्तू लेकर अतिथिको दिया परन्तु अतिथि उस सत्तूको भोजन करनेपर भी तृप्त नहीं हुआ तब वह धर्म्मात्मा उञ्छवृत्ति अत्यन्त लज्जित हुआ।

साध्वी पुत्रवधू ब्राह्मणकी प्रियकामनासे अपना सत्तू लेकर प्रसन्नचित्तसे श्वशुरसे बोली, हे विप्र! आपके सन्तानसे मेरे सन्तान होगा, इसलिये आप मेरा यह सत्तू लेकर अतिथिको दीजिये। आपकी कृपासे मेरा सब अक्षय ही, मनुष्यगण जिन स्थानोंमें जाके शोकसे छूटते हैं, वे सब स्थान पौत्रके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं। जैसे धर्म्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग तथा दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों अग्नि अक्षय स्वर्गजनक है,—पुत्र पौत्र और प्रपौत्र ये तीनों भी वैसेही हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि पुत्र पुरुषको पितृऋणसे मुक्त करता है, पुरुष सदा पुत्र और पौत्रके सहारे उत्तम लोकोंको भोग किया करता है।

श्वशुर बोला, हे सुव्रतचारिणी। मैं तुम्हारे अङ्गोंको वातातपसे विशीर्ण तथा विवर्ण और तुम्हें भूखी तथा हतचेतन देखकर धर्म्मका उपघातक होकर किस प्रकार तुम्हारा सत्तू ग्रहण करूं? हे कल्याणचरितयुक्त कल्याणी। तुम मुझसे ऐसा मत कहो। हे सुभगे। तुम व्रतवती, शौच, शील,तपस्या, तथा कृच्छ्रवृत्तिशालिनी हो, इसलिये इस दिनके छठे भागमें तुम्हें किस प्रकार भूखी देखूंगा?

पुत्रवधू बोली, हे प्रभु। आप मेरे गुरुके भी गुरु होनेसे परमदेवतास्वरूप हैं, इसलिये आप मेरा सत्तू ग्रहण करिये। हे विप्र। मेरी देह, प्राण तथा धर्म्म गुरुसेवाके ही लिये प्रस्तुत है, इसलिये मैं आपकी कृपासे शुभद लोक प्राप्त करूंगी। आप मुझे भी दृढ़ भक्त जानके मेरा सत्तू ले सकते हैं।

श्वशुर बोला, हे साध्वि। तुम धर्म्म तथा व्रतयुक्त होकर गुरुभक्ति अवलम्बन करते हुए शीलवृत्तिके द्वारा अत्यन्त ही शोभा पाती हो, इसलिये तुम वञ्चनाकी पात्री नहीं हो, तुम्हारा

अन्न ग्रहण करूंगा, परन्तु आज मैंने तुम्हें धर्म्मशीला स्त्रियोंके बीच मुख्य गिना। उन्होंने ऐसा कहके उसका अन्न लेकर अतिथिको दिया।

तिसके अनन्तर अतिथि उस विप्रवर साधु महात्मा ब्राह्मणके विषयमें सन्तुष्ट हुआ, वह प्रसन्नचित्त होकर उस द्विजवरसे कहने लगा। उस समय पुरुष विग्रह धर्म्मस्वरूप उस वाग्मी द्विजवर अतिथिने ब्राह्मणसे कहा, हे द्विजसत्तम! मैं आपके न्यायसे उपार्ज्जित यथाशक्तिके अनुसार शुद्धदानसे परम परितुष्ट हुआ, सुरलोकमें स्वर्गवासी लोग तुम्हारे इस दानको 'आश्चर्य दान' कहके घोषणा कर रहे हैं। यह देखिये, आकाशसे पृथ्वीपर फूलकी बर्षा होरही है; सुरर्षि, देवर्षि, गन्धर्व्व तथा देवदूतगण देवताओंको आगे करके स्तुति करते हुए आपके दानसे विस्मित होकर निवास करते हैं। हे द्विज! आप शीघ्र सुरपुरमें जाइये, ब्रह्मलोकगामी विमानपर ब्रह्मर्षिगण तुम्हारे दर्शनकी आकांक्षा करते हैं। पितृलोकवासी पितरवृन्द तुम्हारे द्वारा तर गये हैं। बहुतेरे लोग कई युगतक ब्रह्मचर्य्य, दान, यज्ञ तथा तपस्या करके भी सुरपुरमें जानेमें समर्थ नहीं होते। हे द्विज! आप परम श्रद्धापूर्व्वक असङ्कर धर्म्माचरण करते हुए जो तपस्या करते हैं, उस पुण्यसे स्वर्गमें जाइये। हे ब्राह्मणसत्तम! जब आपने शुद्धचित्तसे यह सब दान किया है, तब उस दानसेही देवगण परितुष्ट हुए हैं। क्षुधा प्रज्ञा तथा धर्म्मबुद्धिको नष्ट करती है, जब ज्ञान क्षुधाके विषयमें गमन करता है, तब धीरज दूर हो जाता है; तथापि आपने ऐसे कष्टकर समयमें निजकर्म्मके सहारे स्वर्ग जय किया, इसलिये मुझे बोध होता है, कि जो लोग भूखको जीत सकते हैं, वे निश्चयही स्वर्ग जय करनेमें समर्थ होते हैं। जब पुरुष दान करनेका अभिलाषी होता है, तब उसका धर्म्म किसी प्रकार अवसन्न नहीं होता। आपने ऐसाही विचार करके पुत्र और कलत्रका स्नेह त्यागके धर्म्मको बड़ा जानके तृष्णाको तुच्छ समझा है। मनुष्योंका द्रव्यागम अत्यन्त सूक्ष्म है, सत्पात्रको दान करना उससे भी सूक्ष्म है, सत्पात्रको दान देनेकी अपेक्षा काल, उसकी अपेक्षा श्रद्धा और श्रद्धासे भी स्वर्गद्वार परम सूक्ष्मरूपसे निर्णीत है, इस ही लिये मनुष्यगण मोहवशसे उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। परन्तु क्रोध जीतनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषगण स्वर्गरूप अर्गलयुक्त राजगृह दुरासद लोभ बीज दर्शन किया करते हैं। जो सब तपोनिष्ठ ब्राह्मण शक्तिके अनुसार दान करते हैं, सहस्र दान करनेमें समर्थ पुरुष एक सौ दान करते हैं, एक सौ दान करनेमें समर्थ पुरुष दस दान करते हैं और जो लोग शक्तिके अनुसार जल दान करते हैं, वे सबके तुल्य फलभागी हुआ करते हैं। हे विप्र! अकिञ्चन राजा रन्तिदेव शुद्धचित्तसे जल दान करके स्वर्गलोकमें गये। हे तात! धर्म्म न्यायसे प्राप्त हुए श्रद्धायुक्त अर्थात् अल्प मात्र दानसे जिस प्रकार परितुष्ट होता है, उस भांति महाफलजनक अधिक दानसे परितुष्ट नहीं होता। राजा नृगने द्विजेन्द्रगणको सहस्र गऊ प्रदान की उसके बीच बिना जाने एक दूसरेकी गऊ दी गई थी, इसीसे वह नरकगामी हुए थे। हे सुव्रत! उशीनर-पुत्र राजा शिबिने अपने शरीरका मांस दान करके पुण्यकृत लोकोंको पाके सुरलोकमें विविध सुखभोग किया था। हे विप्र! यथारीति सञ्चित विविध यज्ञ और निज शक्तिसे उपार्ज्जित पुण्यही साधु पुरुषोंका वैभव है। क्रोधसे पुरुषके दानका फल निष्फल होता है और लोभसे स्वर्गगति रोध हुआ करती है। न्यायवृत्त दानवित मनुष्य केवल तपस्यासे ही स्वर्ग भोग करते हैं, परन्तु दूसरे लोग अनेक दक्षिणायुक्त राजसूय प्रभृति विविध यज्ञ करके भी स्वर्ग भोगनेमें समर्थ नहीं होते। हे विप्र! आपने जो अन्नप्रस्थके सहारे

सहज ब्रह्मलोक जय किया, कोई भी अश्वमेध यज्ञसे भी आपको ऐसा फल न मिलता। हे द्विजवर! आप निष्पाप हुए हैं, इसलिये आजसे सबके बीच मुख्य हुए। यह दिव्य विमान उप-स्थित हुआ है, आप इसपर चढ़के स्वच्छन्दतासे ब्रह्मलोकमें जाइये। हे द्विजवर! तुम सुखसे चढ़ो, मैं धर्म्म हूं, मेरा दर्शन करो, तुमने जिस प्रकार अपने शरीरको पवित्र किया; इससे लोकके बीच तुम्हारी कीर्त्ति स्थिर रहेगी। इस समय तुम भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित सुरपुरमें चले जाओ।

धर्म्मके ऐसा कहनेपर वह द्विजवर भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित दिव्य यानपर चढ़के सुरलोकमें गया। जब वह धर्म्मज्ञ विप्रवर भार्य्या, पुत्र और पुत्रवधूके सहित सुरलोकमें गया, तब मैं बिलसे बाहिर हुआ।

तिसके अनन्तर सत्तूकी सुगन्धि, जलके क्लेद दिव्य फूलोंके अवमर्द्दन, उस साधु विप्रके दान, जप और तपस्याके बलसे मेरा मस्तक सुवर्णमय हुआ। हे विप्रगण! तुम लोग देखो, सत्याभि-सन्ध बुद्धिमान ब्राह्मणके सत्तू दान और तपो-बलसे मेरे इस उत्तम विपुल शरीरका अर्द्ध-भाग स्वर्णमय हुआ है। हे द्विजगण! मेरा दूसरा पार्श्व किस भांति ऐसा होगा, इस विष-यको सोचकर मैं प्रसन्नचित्तसे तपोवन और यज्ञस्थलमें बार बार भ्रमण करता हूं। बुद्धि-मान कुरुराजका यज्ञ सुनके आश्वासित होकर यहां आया, परन्तु मैं सुवर्णमय न हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठगण! इसहीसे मैंने हंसके कहा, कि तुम्हारा यज्ञ सब भांतिसे सत्तूप्रस्थके सदृश नहीं हुआ। उस समय मैं सक्तुप्रस्थके लव मात्रसे सुवर्णमय हुआ हूं, इसीसे ऐसा समझता हूं, कि यह महायज्ञ उसके सदृश नहीं हुआ। नकुल यज्ञस्थलमें उन द्विजोंसे ऐसा कहके उनके दर्शनपथको अतिक्रम किया, तब ब्राह्मण लोग भी निज निज स्थानपर गये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे परपुरञ्जय! उस महाक्रतु वाजिमेधमें जो आश्चर्य व्यापार हुआ था, मैंने वह सब वृत्तान्त आपके समीप कहा। हे नरनाथ! आप उस यज्ञमें किसी भांति विस्मय बोध न करिये, क्यों कि सहस्र कोटि ऋषियोंने उस तपोबलसे सुरलोकमें गमन किया है। सर्व्व भूतोंमें अद्रोह, सन्तोष, शील, आर्ज्जव, तपस्या, दम, सत्य और दान, ये सब साधुसम्मत हैं।

९० अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे प्रभु! जब राजा लोग यज्ञ, महर्षिगण तपस्या और ब्राह्मण लोग शम, दम तथा शान्ति करनेमें समर्थ हैं, तब मेरी समझमें ऐसा निश्चय होता है, कि इस लोकमें यज्ञफलके सदृश कुछ भी नहीं दीखता। हे द्विजसत्तम! बहुतेरे राजा बहुतसे यज्ञ करते हुए इस लोकमें परम यश पाके परलोक तथा सुरपुरमें गये हैं। महातेजस्वी सहस्रनयन सुरराजने अनेक दक्षिणायुक्त बहुतसे यज्ञ करके अखिल सुरराज्य प्राप्त किया है। हे द्विजवर! समृद्धि और विक्रमसे सुरराजसदृश भीमार्ज्जुनके सहित महात्मा युधिष्ठिरने जो अश्वमेध महायज्ञ किया था, नेवलेने उस यज्ञकी किस निमित्त निन्दा की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! यज्ञकी प्रधान विधि और फल मैं आपके समीप यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनिये।

पहले यज्ञ करनेवाले देवराजके विस्तृत यज्ञमें ऋत्विकोंके कार्य्यमें व्यग्र रहनेपर उस गुणशाली यज्ञमें अग्नि तथा देवगण आहूत और परमर्षिवृन्द उपस्थित हुए। अनन्तर सुप्रीत उत्तम स्वरयुक्त प्रशान्त आगम पढ़के द्विजोंके द्वारा यज्ञमें वरणीय हुए; आलम्भन समयमें ऋषियोंने पशुओंको दीनता-पूर्व्वक देखकर कृपापूर्व्वक इन्द्रके समीप आकर

उनसे कहा, कि यह यज्ञकी विधि शुभ नहीं हुई है। हे पुरन्दर। आप महान् धर्म करनेके अभिलाषी हुए हैं, परन्तु आप इसे विधिपूर्वक रूपसे नहीं जानते, क्यों कि पशुओंसे यज्ञ करना विधिविहित नहीं है। हे प्रभु। जब कि हिंसा धर्म कहके वर्णित नहीं हुआ है, तब यह यज्ञ धर्मयुक्त नहीं होता है, इसलिये आपका यह समारम्भ धर्मोपघातक होता है। हे सुरराज! यदि आप धर्मकी अभिलाष करते हैं तो ऋत्विकगण वेदके अनुसार आपका यज्ञ करें, उस विधिदृष्ट यज्ञके सहारे ही आपको उत्तम महान् धर्म होगा। हे सहस्राक्ष। आप हिंसा परित्याग करके त्रिवर्षोषित बीजके सहारे यज्ञ करिये। हे शक्र। यह धर्म ही महागुण तथा महाफलजनक कहके विहित है। शतक्रतुने मान और मोहके वशमें होकर उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको प्रतिग्रह नहीं किया। हे भारत! इन्द्रके यज्ञमें उन तपस्वियोंके बीच अत्यन्त ही विवाद होने लगा। किसीने कहा, जङ्गम और कोई बोला स्थावरके द्वारा यज्ञ करना उचित है, ऐसा कहके वे लोग विवाद करते हुए खिन्न हुए। अनन्तर ऋषियोंने इन्द्रके सङ्ग मिलके राजा वसुसे प्रश्न किया, कि हे महाभाग। यज्ञमें वेद विधि कैसी है? और मुख्य पशु, किम्वा बीज वा रसके द्वारा यज्ञ करना उचित है?

पृथ्वीपति वसु उन लोगोंके वचनको सुनकर बलाबलको बिना बिचारे ही यह बचन बोले, कि यथोपनीय वस्तुओंके द्वारा यज्ञ करना उचित है। चेदीराज प्रभु राजा वसुने ऐसाही बोलने तथा प्रश्न विषयमें मिथ्या कहनेसे रसातलमें प्रवेश किया। इस ही निमित्त संशयके स्थलमें स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्माके अतिरिक्त बहुज्ञ पुरुषने भी कुछ न कहा और अल्पज्ञोंकी तो कुछ बात ही नहीं है, पापात्मा अशुद्धबुद्धि मनुष्य यदि दान करे, तो उसका सब दान विनष्ट होता है। उस अधर्ममें प्रवृत्त दुरात्मा हिंसक पुरुषकी इसलोक तथा परलोकमें दानसे कीर्ति नहीं होती। जो मूर्ख धर्माभिशङ्की पुरुष निरन्तर अन्यायोपगत वस्तुओंके सहारे यज्ञ करता है, वह उस धर्मफलको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो धर्मवैतसिक पापात्मा अधम पुरुष सब लोगोंके विश्वासके निमित्त ब्राह्मणोंको दान करता है और जो निरङ्कुश विप्र राग तथा मोहके वशवर्ती होकर पापकर्मसे धन उपार्जन करता है, उसे सदा कलुषगति प्राप्त होती है। सञ्चयबुद्धि पुरुष भी पाप तथा अशुद्धताके कारण लोभ और मोहके वशमें होकर प्राणियोंको उद्वेग युक्त किया करता है। जो मनुष्य मोहके वशमें होकर इस प्रकार धन प्राप्त करके दान वा यज्ञ करता है, पापसे प्राप्त हुए धनसे उसको परलोकमें उस दान तथा यज्ञका फल नहीं मिलता। तपोधन धार्मिक पुरुषगण विभवके अनुसार उञ्छ, मूल, फल, शाक और जलपात्र दान करके स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यही महायोग धर्म कहके वर्णित हुआ है। परन्तु दान सब प्राणियोंके विषयमें दया, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, अनुक्रोश, धृति और क्षमा, ये सब सनातन धर्मके सनातन मूल हैं; इतिहासके सहारे विश्वामित्र प्रभृति राजाओंका विषय इस ही प्रकार सुना जाता है। तपस्वी विश्वामित्र, असित, जनक, कक्षसेन, अर्ष्टिसेन, सिन्धु और दिलीप,—ये सब कोई तथा अन्यान्य तपस्वी राजा लोग सत्य और न्यायसे प्राप्त हुए धनसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। हे भारत! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य तपस्निष्ठा करनेवाले पुरुषगण दानधर्मादिके सहारे पवित्र होकर सुरपुरमें गमन किया करते हैं।

९१ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे भगवन् ! यदि धर्म्मयुक्त दानसे स्वर्ग मिलता है, तो आप उस विषयको विशेष रीतिसे मेरे समीप वर्णन करिये। हे द्विजवर। आप ही इस विषयको कहनेमें समर्थ हैं। हे ब्रह्मन्। उस उञ्छवृत्तिने सक्तु दान करके जो महत् फल प्राप्त किया, वह विषय सत्यरूपसे मेरे समीप कहा गया है, उसमें सन्देह नहीं है, परन्तु सब यज्ञोंमें किस प्रकार इसका निश्चय होगा उसे पूरी रीतिसे आपको वर्णन करना उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन। पहले अगस्त्यके महायज्ञमें जो घटना हुई थी, ऐसे स्थलमें पण्डित लोग उदाहरणरूपसे उस ही इतिहासको वर्णन किया करते हैं।

हे महाराज। पहले सर्व्वभूतहितकारी महातेजस्वी अगस्त्य मुनि द्वादश वार्षिकी दीक्षामें दीक्षित हुए थे; उस यज्ञमें मूलाहारी, फलाहारी, अश्मकूटा और मरीचिपायी अग्नि-तुल्य ऋषिगण होतकार्य्यमें नियुक्त थे। वहां परिघृष्टिक, वैघसिक अप्रहाल प्रभृति यति तथा भिक्षुगण उपस्थित थे। वे लोग सब कोई प्रत्यक्ष धर्म्माजितक्रोध, जितेन्द्रिय, दान्त, हिंसा और दम्भ वर्ज्जित, पवित्र वृत्तिमें स्थित इन्द्रि-योंके द्वारा अपराजित थे, उन्होंने ही यज्ञमें उपस्थित होके यज्ञ किया। उस यज्ञमें अगस्त्य भगवानने सामर्थ्यके अनुसार अन्न इकट्ठा किया था। हे भरतसत्तम। उस यज्ञमें जो कृत तथा ...व कहके निर्द्दिष्ट हुआ था, उसके अनुसार ...ो बहुतेरे मुनियोंने महायज्ञ किया था। परन्तु इस प्रकार अगस्त्य मुनिका यज्ञ होते होनेपर इन्द्रने जलकी वर्षा नहीं की। हे महाराज! उस ही निमित्त महात्मा अगस्त्य मुनिके उस यज्ञके समय भावितात्मा मुनिगण ...ह बातें करने लगे, कि यह यजमान अगस्त्य ...न मत्सररहित होकर अन्न दान कर रहे परन्तु बादल जलकी वर्षा नहीं करते हैं

तब किस प्रकार अन्न उत्पन्न होगा? हे विप्र-गण! अगस्त्य मुनिका यह यज्ञ बारह वर्षमें पूरा होगा, इस बारह वर्षके बीच इन्द्र जलकी वर्षा न करेगा; इसलिये आप लोग विचार करके बुद्धिमान महर्षि परम तपस्वी अगस्त्यके विषयमें अनुग्रह करिये। जब महर्षिगण ऐसा कहने लगे, तब परम प्रतापवान् अगस्त्य मुनिने सिर झुकाकर मुनियोंको प्रसन्न करके कहा, कि यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलकी वर्षा न करे, तो मैं चिन्ता अर्थात् मानस-यज्ञ करूंगा, यही सनातन विधि है। हे ऋषिगण। यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलकी वर्षा न करे, तो मैं स्पर्श यज्ञ करते हुए उपाहृत द्रव्योंको बिना व्यय किये ही देवताओंको सन्तुष्ट करूंगा, यही सनातन विधि है। यदि इन्द्र बारह वर्षके बीच जलकी वर्षा न करे, तो मैं व्यायाम अर्थात् ध्यानसे द्रव्य आहरण करके व्रतातिरिक्त अन्य यज्ञ सम्पन्न करूंगा। मैंने जो कई वर्षसे यह बीज यज्ञ आरम्भ किया है, इस बीजसे ही सम्पन्न करूंगा, इसमें कुछ भी विघ्न न होगा, मेरे इस यज्ञको व्यर्थ करनेकी सामर्थ्य किसीको भी नहीं है, यदि इन्द्र वर्षा न करें, तो वह देवताओंके बीच परिगणित न होगा। इसके अतिरिक्त यदि वह इच्छानुसार मेरा इस अभ्यर्थनाको पूरा न करें, तो मैं स्वयं इन्द्र होकर प्रजासमूहको जीवित रखूंगा और जिस समय उन लोगोंको जिस भोजनीय वस्तुओंका प्रयोजन होगा, उस समय उन्हें वही आहार प्राप्त होगा। मैं बार बार ऐसी ही विशेषता करूंगा और आज पृथ्वीमें जितनी वस्तु तथा स्वर्ण है, वे सब मेरे समीप उपस्थित होवें, तीनों लोकके बीच जो सब वस्तु हैं, वे सब स्वयं ही मेरे समीप आगमन करें। दिव्य अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर और विद्याधर प्रभृति सब ...ि मेरे यज्ञमें आवें। ...र कुरुदेशमें जो ... सब विद्यमान हैं, ...,

उनसे कहा, कि यह यज्ञकी विधि शुभ नहीं हुई है। हे पुरन्दर! आप महान् धर्म करनेके अभिलाषी हुए हैं, परन्तु आप इसे विधिपरूपसे नहीं जानते, क्योंकि पशुओंसे यज्ञ करना विधिविहित नहीं है। हे प्रभु! जब कि हिंसा धर्म कहके वर्णित नहीं हुआ है, तब यह यज्ञ धर्मयुक्त नहीं होता है, इसलिये आपका यह समारम्भ धर्मोपघातक होता है। हे सुरराज! यदि आप धर्मकी अभिलाष करते हैं तो ऋत्विकगण वेदके अनुसार आपका यज्ञ करें, उस विधिदृष्ट यज्ञके सहारे ही आपको उत्तम महान् धर्म होगा। हे सहस्राक्ष! आप हिंसा परित्याग करके त्रिवर्षोषित बीजके सहारे यज्ञ करिये। हे शक्र! यह धर्म ही महागुण तथा महाफलजनक कहके विहित है। शतक्रतुने मान और मोहके वशमें होकर उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको प्रतिग्रह नहीं किया। हे भारत! इन्द्रके यज्ञमें उन तपस्वियोंके बीच अत्यन्त ही विवाद होने लगा। किसीने कहा, जङ्गम और कोई बोला स्थावरके द्वारा यज्ञ करना उचित है, ऐसा कहके वे लोग विवाद करते हुए खिन्न हुए। अनन्तर ऋषियोंने इन्द्रके सङ्ग मिलके राजा वसुसे प्रश्न किया, कि हे महाभाग! यज्ञमें वेद विधि कैसी है? और मुख्य पशु, किम्वा बीज वा रसके द्वारा यज्ञ करना उचित है?

पृथ्वीपति वसु उन लोगोंके वचनको सुनकर बलाबलको बिना विचारे ही यह वचन बोले, कि यथोपनीय वस्तुओंके द्वारा यज्ञ करना उचित है। चंदीराज प्रभु राजा वसुने ऐसाही बोलने तथा प्रश्न विषयमें मिथ्या कहनेसे रसातलमें प्रवेश किया। इस ही निमित्त संशयके स्थलमें स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्माके अतिरिक्त बहुज्ञ पुरुषने भी कुछ न कहा और अल्पज्ञोंकी तो कुछ बात ही नहीं है; पापात्मा शुद्रबुद्धि मनुष्य यदि दान करें, तो उसका सब दान विनष्ट होता है। उस अधर्ममें प्रवृत्त दुरात्मा हिंसक पुरुषको इस लोक तथा परलोकमें दानसे कीर्त्ति नहीं होती। जो मूर्ख धर्माभिशङ्की पुरुष निरन्तर अन्यायोपगत वस्तुओंके सहारे यज्ञ करता है, वह उस धर्मफलको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो धर्मवैतसिक पापात्मा अधम पुरुष सब लोगोंके विश्वसके निमित्त ब्राह्मणोंको दान करता है और जो निरङ्कुश विप्र राग तथा मोहके वशवर्त्ती होकर पापकर्म्मसे धन उपार्ज्जन करता है उसे सदा कलुषगति प्राप्त होती है। सञ्चयबुद्धि पुरुष भी पाप तथा अशुद्धताके कारण लोभ और मोहके वशमें होकर प्राणियोंको उद्वेगयुक्त किया करता है। जो मनुष्य मोहके वशमें होकर इस प्रकार धन प्राप्त करके दान वा यज्ञ करता है, पापसे प्राप्त हुए धनसे उसको परलोकमें उस दान तथा यज्ञका फल नहीं मिलता। तपोधन धार्म्मिक पुरुषगण विभवके अनुसार उञ्छ, मूल, फल, शाक और जलपात्र दान करके स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यही महायोग धर्म कहके वर्णित हुआ है। परन्तु दान सब प्राणियोंके विषयमें दया, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, अनुक्रोश, धृति और क्षमा, ये सब सनातन धर्मके सनातन मूल हैं, इतिहासके सहारे विश्वामित्र प्रभृति राजाओंका विषय इस ही प्रकार सुना जाता है। तपस्वी विश्वामित्र, असित, जनक, कक्षसेन, उष्टिसेन, सिन्धु और दिलीप,—ये सब कोई तथा अन्यान्य तपस्वी राजा लोग सत्य और न्यायसे प्राप्त हुए धनसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। हे भारत! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य तपमें निष्ठा करनेवाले पुरुषगण दानधर्मादिके सहारे पवित्र होकर सुरपुरमें गमन किया करते हैं।

९१ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे भगवन्! यदि धर्म्मयुक्त दानसे स्वर्ग मिलता है, तो आप उस विषयको विशेष रीतिसे मेरे समीप वर्णन करिये। हे द्विजवर! आप ही इस विषयको कहनेमें समर्थ हैं। हे ब्रह्मन्। उस उञ्छवृत्तिने शक्तु दान करके जो महत् फल प्राप्त किया, वह विषय सत्यरूपसे मेरे समीप कहा गया है, उसमें सन्देह नहीं है, परन्तु सब यज्ञोंमें किस प्रकार इसका निश्चय होगा उसे पूरी रीतिसे आपको वर्णन करना उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिंदमन। पहले अगस्त्यके महायज्ञमें जो घटना हुई थी, ऐसे स्थलमें पण्डित लोग उदाहरणरूपसे उस ही इतिहासको वर्णन किया करते हैं।

हे महाराज। पहले सर्व्वभूतहितकारी महातेजस्वी अगस्त्य मुनि द्वादश वार्षिकी दीक्षामें दीक्षित हुए थे; उस यज्ञमें मूलाहारी, फलाहारी, अश्मकुट्ट और मरीचिपायी अग्नि-तुल्य ऋषिगण होतकार्य्यमें नियुक्त थे। वहां परिष्टिक, वैघसिक अप्रक्षाल प्रभृति यति तथा भिक्षुगण उपस्थित थे। वे लोग सब कोई प्रत्यक्ष धर्म्मार्जितक्रोध, जितेन्द्रिय, दान्त, हिंसा और दम्भ वर्जित, पवित्र वृत्तिमें स्थित इन्द्रि-योंके द्वारा अपराजित थे, उन्होंने ही यज्ञमें उपस्थित होके यज्ञ किया। उस यज्ञमें अगस्त्य भगवानने सामर्थ्यके अनुसार अन्न इकट्ठा किया था। हे भरतसत्तम! उस यज्ञमें जो कृत तथा योग्य कहके निर्द्दिष्ट हुआ था, उसके अनुसार ही बहुतेरे मुनियोंने महायज्ञ किया था। परन्तु इस प्रकार अगस्त्य मुनिका यज्ञ होते रहनेपर इन्द्रने जलकी वर्षा नहीं की। हे महाराज! उस ही निमित्त महात्मा अगस्त्य मुनिके उस यज्ञके समय भावितात्मा मुनिगण यह बातें करने लगे, कि यह यजमान अगस्त्य मुनि मत्सररहित होकर अन्न दान कर रहे हैं, परन्तु बादल जलकी वर्षा नहीं करते हैं, तब किस प्रकार अन्न उत्पन्न होगा? हे विप्र-गण! अगस्त्य मुनिका यह यज्ञ बारह वर्षमें पूरा होगा, इस बारह वर्षके बीच इन्द्र जलकी वर्षा न करेगा; इसलिये आप लोग विचार करके बुद्धिमान महर्षि परम तपस्वी अगस्त्यके विषयमें अनुग्रह करिये। जब महर्षिगण ऐसा कहने लगे, तब परम प्रतापवान् अगस्त्य मुनिने सिर झुकाकर मुनियोंको प्रसन्न करके कहा, कि यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलकी वर्षा न करे, तो मैं चिन्ता अर्थात् मानस-यज्ञ करूंगा, यही सनातन विधि है। हे ऋषिगण। यदि इन्द्र बारह वर्षतक जलकी वर्षा न करे, तो मैं स्पर्श यज्ञ करते हुए उपाहृत द्रव्योंको बिना व्यय किये ही देवताओंको सन्तुष्ट करूंगा, यही सनातन विधि है। यदि इन्द्र बारह वर्षके बीच जलकी वर्षा न करे, तो मैं व्यायाम अर्थात् ध्यानसे द्रव्य आहरण करके व्रतातिरिक्त अन्य यज्ञ सम्पन्न करूंगा। मैंने जो कई वर्षसे यह बीज यज्ञ आरम्भ किया है, इस बीजसे ही सम्पन्न करूंगा, इसमें कुछ भी विघ्न न होगा, मेरे इस यज्ञको व्यर्थ करनेकी सामर्थ्य किसीको भी नहीं है; यदि इन्द्र वर्षा न करे, तो वह देवताओंके बीच परिगणित न होगा। इसके अतिरिक्त यदि वह इच्छानुसार मेरी इस अभ्यर्थनाको पूरा न करे, तो मैं स्वयं इन्द्र होकर प्रजासमूहको जीवित रखूंगा और जिस समय उन लोगोंको जिस भोजनीय वस्तुओंका प्रयोजन होगा, उस समय उन्हें वही आहार प्राप्त होगा। मैं बार बार ऐसी ही विज्ञपना करूंगा और आज पृथ्वीमें जितनी वस्तु तथा स्वर्ण है, वे सब मेरे समीप उपस्थित होवें, तीनों लोकके बीच जो कुछ वस्तु हैं, वे सब स्वयं ही मेरे समीप आगमन करें। दिव्य अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर और विश्वावसु प्रभृति सब प्राणि मेरे यज्ञमें आवें। [illegible] [illegible] [illegible]

स्वयं आके उपस्थित होवें और स्वर्ग स्वर्गवासी प्राणी तथा धर्म स्वयं आगमन करें।

जब अगस्त्य मुनिने ऐसा वचन कहा, उस समय उस प्रदीप्त अग्निसदृश चित्तसम्पन्न तेजस्वी मुनिके तपोबलसे वह सब उसही प्रकार हुआ। तिसके अनन्तर वे सब मुनिगण अगस्त्य मुनिके तपोबलको देखकर प्रसन्नचित्त तथा विस्मित होकर महान् अर्थयुक्त यह वचन कहने लगे।

ऋषिवृन्द बोले, हे मुनि! तुम्हारे वचनसे हम लोग परम प्रसन्न हुए, परन्तु तपस्याके फलको व्यर्थ करना हम लोगोंको अभिलषित नहीं है, हम लोग न्यायके अनुसार उस तपोबलसे ही यज्ञ करके तुष्ट होनेकी इच्छा करते हैं। हम लोग यज्ञ, दीक्षा, होम तथा दूसरे जिस कार्य्यको करनेकी चेष्टा करते हैं, न्यायसे उपार्ज्जित वस्तुओंको भोजन करके उस ही कार्य्यमें अभिरत होंगे। हम लोग न्यायके अनुसार ब्रह्मचर्य्यसे देवताओंकी प्रार्थना करते हैं, इसके अनन्तर न्यायके अनुसारही गृहसे बाहिर होंगे और धर्म्मदृष्ट विधिके सहारे तपस्या करेंगे। हे प्रभु! आप जो यज्ञमें सदा अहिंसाका विषय कहा करते हैं, उसही निमित्त आपकी बुद्धि पूरी रीतिसे हिंसा विहीन हुई है। हे द्विजसत्तम! इस ही लिये हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं; यज्ञकी समाप्ति होनेपर हम लोग यहांसे गमन करेंगे। उन लोगोंके इसही प्रकार वार्तालाप करते रहनेपर देवराज पुरन्दर उनके तपोबलको देखके जलकी वर्षा करने लगे। हे जनमेजय! अगस्त्यमुनिके यज्ञकी समाप्ति पर्य्यन्त अमित पराक्रमी पर्ज्जन्य निःशेषरूपसे वर्षा करने लगा। हे राजर्षि! त्रिदशनाथ इन्द्रने वृहस्पतिको आगे करके स्वयं अगस्त्य मुनिके निकट आके उन्हें प्रसन्न किया। अनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर अगस्त्य मुनिने परम प्रसन्न होकर उन महामुनियोंकी विधिपूर्व्वक पूजा करके उन्हें विदा किया।

जनमेजय बोले, हे सत्तम! जिस काञ्चनशिरा नकुलरूपी प्राणीने मनुष्यकी भांति वचन कहा, वह कौन था? मैं उसे जाननेकी इच्छा करता हूं; आप मेरे समीप यह विषय विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, आपने पहले मुझसे यह विषय नहीं पूछा था, इसीलिये मैंने इसका वर्णन नहीं किया; परन्तु अब वह नकुल कौन था और किस प्रकार उसका मनुष्यकी भांति वचन हुआ, वह सब कहता हूं, सुनो। पहले जमदग्नि ऋषिके श्राद्धका सङ्कल्प करनेपर होमधेनु उनके निकट आई, उन्होंने स्वयं उसका दूध दूहा। उन्होंने उस दूधको पवित्र स्थानमें दृढ़ नवीन बर्त्तनमें रखा, तब धर्म्मने क्रोधरूपसे उस बर्त्तनमें प्रवेश किया। अनन्तर "ऋषिवर जमदग्निको विप्रिय करना योग्य है," ऐसा बात पूछनेके निमित्त उस दूधको धर्षित किया। हे महाराज! मुनिने उस समय धर्म्मस्वरूप क्रोधको जानके उसके ऊपर क्रोध नहीं किया। क्रोधरूपी धर्म्म भृगुश्रेष्ठ जमदग्निके निकट इस ही प्रकार पराजित होके ब्राह्मणका रूप धरके उनसे बोले, हे भृगुवर! मैं तुमसे पराजित हुआ, हे ऋषिश्रेष्ठ! तुमसे मेरे निर्ज्जित होनेसे भृगुवंश अत्यन्त रोषान्वित है, यह लोकप्रवाद मिथ्या हुआ। तुम महात्मा और क्षमावान हो, इसलिये आजसे मैं तुम्हारे वशवर्त्ती हुआ। हे साधु! मैं तुम्हारी तपस्यासे डरता हूं, इसलिये तुम मुझपर प्रसन्न होओ।

जमदग्नि बोले, हे क्रोध! आप साक्षात् दीख पडे, आपने मेरा कुछ अपराध नहीं किया, इसलिये मुझे क्रोध नहीं है, आप शोकरहित होकर जाइये। मैंने जो पितरोंके उद्देश्यसे दूधके निमित्त सङ्कल्प किया था, आप उन महाभाग पितरोंके निकटही जाने सकेंगे; इस समय जाइये।

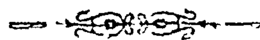
क्रोधरूपी धर्म्म जमदग्निका ऐसा वचन सुनके त्रास पूर्व्वक अन्तर्हित हुए और पितरोंके

अभिशाप वशसे नकुलत्वको प्राप्त हुए । उन्होंने शापान्तके निमित्त उन लोगोंको प्रसन्न किया, तब उन्होंने कहा, कि आप धर्म्मकी निन्दा करके शापसे मुक्त होगे । धर्म्म उन लोगोंका ऐसा वचन सुनके नेवलरूपसे यज्ञीयस्थान तथा धर्म्मारण्यमें विचरते हुए यज्ञमें उपस्थित हुआ और वहां युधिष्ठिरको "तुम्हारा यज्ञ उस सक्तुप्रस्थके सदृश नहीं है,"—इसही प्रकार निन्दा करते हुए उस शापसे मुक्त हुआ और युधिष्ठिरसे बोला, हे युधिष्ठिर ! तुमही साक्षात् धर्म्म हो । उस समय उस महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें ऐसी घटना होनेपर हम लोगोंके सामनेही वह नेवला अन्तर्द्धान हुआ ।

९२ अध्याय समाप्त ।

इति श्रीभाषा महाभारते अश्वमेधपर्व्व समाप्त ।

महाभारत।



आश्रमवासिक पर्व्व।

नारायण, नरोत्तम, नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

जनमेजय बोले, हे द्विजसत्तम! मेरे पितामह महात्मा पाण्डवोंने राज्य पाके महात्मा धृतराष्ट्रके विषयमें कैसा आचरण किया? ऐश्वर्य्य, मित्र और पुत्रोंके नष्ट होनेपर अवलम्ब रहित राजा धृतराष्ट्र तथा यशस्विनी गान्धारी किस प्रकार निवास करने लगीं? मेरे पूर्व्व-पितामह पाण्डवोंने कितने समयतक राज्यमें निवास किया? यह सब आप मेरे समीप यथार्थ वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुसत्तम! शत्रुओंके मारे जानेपर महात्मा पाण्डवगण राज्य पाके धृतराष्ट्रको आगे करके राज्य पालन करने लगे। विदुर, सञ्जय और वैश्यापुत्र मेधावी युयुत्सु, ये सब कोई धृतराष्ट्रकी आराधना करने लगे। पाण्डव लोग उस राजा धृतराष्ट्रसे पूछ पूछकर पन्द्रह वर्षतक उनकी आज्ञानुसार सब कार्य्य करते रहे, धर्म्मराजके मतके अनुसार वीरश्रेष्ठ पाण्डवगण सर्व्वदा उनके निकट जाके पादाभिनन्दन करते हुए उनकी सेवा करने लगे, राजा धृतराष्ट्रने उनका मस्तक सूंघा और वे लोग सब कार्य्य करने लगे। कुन्तीभोजपुत्री कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य पाण्डवोंकी स्त्रियें समभावसे विधिपूर्व्वक ससुर और सासकी सेवा करने लगीं। हे महाराज! युधिष्ठिरने राजा धृतराष्ट्रको राज-योग्य शय्या, महामूल्यवान वस्त्र, आभूषण तथा अनेक भांतिके भक्ष्यभोज्य प्रदान किये और कुन्ती गान्धारीका गुरुकी भांति सम्मान करने लगी। विदुर, सञ्जय और युयुत्सु उस हतपुत्र बूढ़े धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे, द्रोणके प्रिय साले महाधनुर्द्धारी ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्य्य धृतराष्ट्रके निकट रहे। पुराण ऋषि श्रीवेदव्यास मुनिने सदा देव, ऋषि, पितर और राक्षसोंकी कथा कहते हुए उनके निकट निवास किया, विदुर धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार धर्म्म और व्यवहारयुक्त कार्य्योंको करने लगे। विदुरकी सुन्दर नीतिके अनुसार सुलघु अर्थके सहारे सामन्तगणके निकट धृतराष्ट्रका बहुतसा प्रिय कार्य्य सम्पादित होने लगा। जब वह किसी पुरुषको कैद करते वा कैद हुएको छोड़ते थे तब उस विषयमें राजा युधिष्ठिर कदापि कोई वार्त्ता उल्लेख नहीं करते थे। विहार तथा यात्राके समयके निमित्त महातेजस्वी कुरुराजयुधिष्ठिरने अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रको समस्त काम्य विषय प्रदान किये, आरालिक अर्थात् मांसपाचक और पिठाली, गुलटी तथा शर्करोपित सूपपाचकगण पहिलेकी भांति राजा धृतराष्ट्रकी सेवा करने लगे। पाण्डव लोग पहिलेकी भांति न्यायपूर्व्वक राजा धृतराष्ट्रको महामूल्यवान विविध वस्त्र, माला, मैरेय, मद्य, मत्स्य मांस, पीनेकी वस्तु, मधु और विचित्र [illegible] वस्तु प्रदान करने लगे, [illegible] राजा अनेक देशोंके [illegible]

कोई उस कुरुराज धृतराष्ट्रको पुत्र वियोगसे कुछ दुःख उपस्थित न हो, ऐसा समझकर पहलेकी भांति उनकी सेवा करने लगे। इधर कुन्ती, द्रौपदी, यशस्विनी सुभद्रा नागराजपुत्री उलूपी, चित्राङ्गदा देवी, धृष्टकेतुकी बहिन और जरासन्धकी पुत्री, ये सब कोई तथा अन्यान्य स्त्रियें वा बधगण किङ्करी होकर सुबलपुत्री गान्धारीकी सेवा करने लगीं। युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको धृतराष्ट्रकी सेवा करनेके लिये आज्ञा दी परन्तु धृतराष्ट्रकी दुर्बुद्धिसे जो जुआ हुआ था, वह उस समयतक भीमके हृदयसे दूर न होनेसे केवल भीमसेनके अतिरिक्त सब भ्राता ही धर्मराजके अर्थयुक्त वचनको सुनकर निष्पाप यत्नपूर्वक उस कार्य्यमें प्रवृत्त हुए।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अम्बिका पुत्र राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूजित और ऋषियोंसे समुपासित होकर पहलेकी भांति विहार करने लगे, कुरुकुलतिलक राजा धृतराष्ट्रने ब्राह्मणोंको देनेयोग्य जिन सब उत्कृष्टहारोंको प्रदान करनेकी अभिलाष की, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने वह सब उन्हें प्रदान किये। अनन्तर सरलस्वभाववाले राजा युधिष्ठिरने परम प्रसन्न होकर मन्त्रियों और भाइयोंसे कहा, कि ये नरनाथ राजा धृतराष्ट्र हमारे तथा तुमलोगोंके माननीय हैं, इसलिये जो लोग इनके निकट रहेंगे, वेही हमारे सुहृद करके परिगणित होंगे और जो लोग इनके विपरीत आचरण करेंगे, वे शत्रुरूपसे समझे जावेंगे, पितृवासर, तथा पुत्र वा सुहृदोंके श्राद्धकालमें इनकी जो कुछ करनेकी इच्छा होगी, वे वही करेंगे।

तिसके अनन्तर कुरुकुलतिलक महात्मा राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरकी सम्मतिके अनुसार ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दान करने लगे। धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन सबने उनको प्रियकामनासे उस विषयका अनुमोदन किया और उन लोगोंने मनही मन ऐसा विचारा, कि जब ये बूढ़े राजा पुत्र तथा पौत्रवधसे पीड़ित और हम लोगोंके द्वारा शोकित होके भी नहीं मरे, तब ये कुरुपति धृतराष्ट्र पुत्रके रहनेपर जिस प्रकार सुख भोग करते थे, इस समयभी उन सब सुखोंको भोगकरें।

तिसके अनन्तर वे पाण्डुपुत्र वैसे स्वभावसे युक्त पांचो भाई एकत्रित होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे निवास करने लगे। धृतराष्ट्र भी शिष्यवृत्तियुक्त नियममें स्थित विनीत उन पाण्डवोंके विषयमें गुरुकी भांति आचरण करने लगे। इधर गान्धारीने पुत्रोंके विविध श्राद्ध कार्य्यके उपलक्षमें ब्राह्मणोंको सब काम्यवस्तु दान करके अनृण्य लाभ किया। धार्मिकश्रेष्ठ धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंसे घिरके इस ही प्रकार उस नरनाथ धृतराष्ट्रकी सेवा करते रहे, जब उस कुरुकुलोद्वह महातेजस्वी वृद्ध राजाने पाण्डुपुत्रोंका कुछ भी अप्रिय कार्य्य न देखा, तब उस समय वह सद्वृत्ति सम्पन्न महात्मा पाण्डवोंके ऊपर प्रसन्न हुए। सुबलपुत्री गान्धारी भी पाण्डवोंकी वृत्ति देखकर पुत्रशोक परित्याग करके निजपुत्रकी भांति उन लोगोंके विषयमें सन्तुष्ट हुई। कुरुप्रवीर वीर्य्यवान युधिष्ठिर विचित्रपुत्र राजा धृतराष्ट्रके विषयमें अप्रिय आचरण न करके केवल प्रिय कार्य्य ही करने लगे; प्रजानाथ धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीने गुरु वा लघु जो कुछ कहा, पाण्डवभारवाही परवीरघाती महाराज युधिष्ठिरने उनकी पूजा करके उस वचनको प्रतिपालन किया। नरनाथ धृतराष्ट्र युधिष्ठिरके व्यवहारसे प्रसन्न होकर उस मन्दबुद्धि निजपुत्रको स्मरण करके अनुताप करने लगे। अनन्तर राजा धृतराष्ट्र प्रतिदिन भोरके समय उठके सन्ध्या और जप आदि दैवकार्य्योंको सम्पन्न करते हुए पवित्रचित्तसे पाण्डवोंके

लिये युद्धमें अपराजयकी आकांक्षा करने लगे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके अग्निमें आहुति देते हुए पाण्डुपुत्रोंके लिये अपरिमित आयुकी अभिलाष करते रहे। वह कुरुपति पाण्डुपुत्रोंके निकट जिस प्रकार प्रसन्न हुए उन्हें निज पुत्रोंके निकट वैसी प्रसन्नता प्राप्त न हुई।

उस समय वे यथोक्तवृत्त तथा यथोक्त विधानवित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके समादरणीय हुए। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके विषयमें जो अनिष्टाचरण किया था, इस समय वे लोग उस विषयको हृदयसे निकालके नरनाथ धृतराष्ट्रके अत्यन्त अनुवर्त्ती हुए, उस समय जिस किसी पुरुषने अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रका तनिक भी अप्रिय कार्य्य किया, उसे ही कुन्तीपुत्र बुद्धिमान् धर्मराजने अपना शत्रु समझा। युधिष्ठिरके भयसे कोई मनुष्य हो राजा धृतराष्ट्र वा दुर्योधनके विषयमें दोषारोप करनेमें समर्थ न हुआ। हे शत्रुनाशन! गान्धारी और विदुर अजातशत्रु नरनाथ युधिष्ठिरके धीरज और शौचाचारसे जिस प्रकार सन्तुष्ट हुए, भीमसेनके विषयमें वैसे सन्तुष्ट नहीं हुए। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्रके अनुवर्त्ती होकर सदा उनका दर्शन करते हुए शोकितचित्त हुए, शत्रुघाती कुलवशवर्त्ती धनञ्जय धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके अनुवर्त्ती देखकर मन ही मन पराजित होकर उनके अनुवर्त्ती हुए।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जनपदवासी सब पुरुष राज्यके बीच राजा युधिष्ठिर और दुर्योधनके पिता नरनाथ धृतराष्ट्रमें प्रीतिके विषयमें कुछ भी अन्तर न मालूम करते थे।

हे महाराज! जब राजा धृतराष्ट्र दुर्योधनको स्मरण करते थे, तब मनही मन भीमसेनका अनिष्ट करनेवाले ...

सदा दुष्टकी भांति नरनाथ धृतराष्ट्रके विषयमें कोप नहीं करते थे, उसके अनन्तर वृकोदर धृतराष्ट्रके परोक्षमें अप्रिय कार्य्य करते हुए सदा कृतकर्म्मा पुरुषोंके द्वारा उनकी आज्ञा पालन करते थे। भीमसेन धृतराष्ट्रके किसी कार्य्य तथा दुर्योधनके बुरे विचारको स्मरण करके सुहृदोंके बीच ताल ठोकते थे।

एक बार भीमसेन धृतराष्ट्र और गान्धारीके समीप शत्रु दुर्योधन, कर्ण और दुःशासनकी प्रशंसा सुनके अत्यन्त कुपित होकर अभिमानपूर्व्वक इस प्रकार कठोर वाक्य कहने लगे, कि अनेक शस्त्र और अस्त्रधारी महायोद्धा अन्धे राजा धृतराष्ट्रके पुत्रगण मेरे परिघतुल्य दोनों भुजाके सहारे इस लोकसे मारे गये; धृतराष्ट्रगण जिन भुजाओंके बीचमें पड़के नष्ट हुए, मेरी ये वेही परिघसदृश दुरासद दोनों भुजा विद्यमान हैं। धृतराष्ट्रके मूढ़ पुत्रगण युद्धमें जिन दोनों भुजाओंके बीच पड़के मृत्युको प्राप्त हुए, वे हाथीके सूंड़के समान पीन सुदृढ़ मेरी भुजा विद्यमान हैं। जिन भुजाओंके द्वारा सुयोधन पुत्र और सुहृदोंके सहित नष्ट हुआ, मेरी वे चन्दनाह दोनों भुजा सुगन्ध चन्दनसे चर्च्चित होकर शोभित होती हैं।

नरनाथ धृतराष्ट्रने भीमके शल्य सदृश ऐसे तथा अन्य प्रकारके वचन सुनकर परम दुःख पाया, परन्तु वह बुद्धिमती समयकी गति जाननेवाली सर्व्व धर्म्मोंको जाननेवाली गान्धारीने भीमसेनके उस वचनको अलीक समझा। तिसके अनन्तर पन्द्रह वर्षके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र भीमके वाक्यरूपी बाणसे पीड़ित होकर परम दुःखको प्राप्त हुए। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, श्वेत अश्व अर्जुन, धर्म्मज्ञ माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, कुन्ती और यशस्विनी द्रौपदी,—ये लोग उस विषयको न जानके ... धृतराष्ट्रके अनुवर्त्ती हुए; परन्तु ... राजाके चित्तको सदा ...

धृतराष्ट्र आंखोमें आंसू भरके सुहृदोंको सम्मानित करते हुए उन लोगोंसे कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, जिस प्रकार कुरुकुलका नाश हुआ है, उसे तुम लोग विशेष रीतिसे जानते हो, मेरे ही अपराधसे कौरवोंके द्वारा वह सब अज्ञात है। मैंने जो दुर्बुद्धि विवश स्वजनोंके भयवर्द्धक दुर्य्योधनको कौरवोंके राज्यपर अभिषिक्त किया था, उस दुर्म्मति दुर्य्योधनको मन्त्रियोंके सहित वध करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र, मनीषी विदुर, भीष्म, द्रोण, कृप महात्मा भगवान व्यासदेव, सञ्जय और गान्धारीने जो सार्थक वचन कहे थे, उस हितकर वचनको मैंने जो पुत्रस्नेहसे युक्त होकर नहीं सुना और गुणवान् महात्मा पाण्डुपुत्रोंको यह पितृपैतामहसे प्राप्त प्रदीप्त श्रीप्रदान नहीं की उसहीसे मैं इस समय दुःखित होरहा हूं। गदाग्रज जनार्द्दनने राजाओंके विनाशको अवलोकन करके ही इसे परम मङ्गल समझा था। निज दोषसे उत्पन्न हुए अपरिमित वचनरूपी शल्योंको मैं हृदयमें धारण करता हूं, पन्द्रह वर्ष व्यतीत हुआ आज यह विशेष दीखता है, कि मैं दुर्म्मति होनेसे उस पापकी शान्तिके लिये इस प्रकार निबद्ध हुआ हूं। मैं जो समयके चौथे, भाग कभी आठवें भागमें केवल तृष्णा निवारणके योग्य भोजन किया करता हूं, उसे गान्धारीही जानती है। मेरे भूखा रहनेसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी होंगे इसही भयसे मैं इस प्रकार भोजन करता हूं, कि जिसमें सारी प्रजा मुझे भूखा न समझे। यशस्विनी गान्धारी और मैं नियमच्छलसे अजिन पहरके ध्यान परायण होकर पृथ्वीमें दर्भशय्यापर शयन किया करता हूं; युद्धमें जो मेरे न भागनेवाले एक सौ पुत्र मारे गये हैं, क्षत्रधर्म्म समझके मैं उस विषयमें शोक नहीं करता।

कुरुनन्दन धृतराष्ट्र धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहकर फिर उनसे कहने लगे। हे यादवीपुत्र! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरा यह वचन सुनो। हे पुत्र! मैं तुमसे उत्तम रीतिसे रक्षित होकर सुखसे निवास करते हुए बार बार श्राद्ध और महादान करता हूं। हे पुत्र! मैं बलके अनुसार यथार्थ रीतिसे पुण्य सञ्चय करता हूं, इसीसे यह हतपुत्रा गान्धारी धीरज अवलम्बन करके उच्च दृष्टिसे मेरा दर्शन करती है। हे कुरुनन्दन! जिन्होंने द्रौपदीकी बुराई की थी, वे नृशंस कौरवगण युद्धमें क्षत्रधर्म्मके अनुसार मरके शस्त्रकृत लोकोंमें गये हैं, इसलिये उन लोगोंके विषयमें कुछ भी कर्त्तव्य नहीं देखता हूं। परन्तु इस समय भी मुझे तथा गान्धारीको निज हितके लिये पुण्यकर्म्म करना चाहिये, उस विषयमें तुम्हें अनुमति करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम सब प्राणियोंके बीच श्रेष्ठ हो, सबके राजा, गुरु और सदा धर्म्म वत्सल हो, इसही लिये मैंने तुमसे ऐसा कहा है। हे राजन्! तुम्हारी अनुमति होनेसे मैं चीर वल्कल पहरके गान्धारीके सहित वनको अवलम्बन करूं। हे पुत्र! मैं वनवासी होके तुम्हें आशीर्वाद करते हुए निज कुलोचित कार्य्य करनेकी अभिलाष करता हूं। हे तात! मेरी अवस्था शेष हुई है, इस समय मैं पुत्रोंको ऐश्वर्य्य सौंपकर इस पत्नीके सहित वनमें जाकर वहां वायुभक्षी तथा निराहार होकर परम तपस्या करूंगा, तो तुम भी पृथ्वीपति होनेसे तपस्याके फलभागी होगे, क्यों कि राजा लोग सत् तथा असत् कार्य्यके फलभागी हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! आपके इस प्रकार दुःखित होनेसे यह राज्य मुझे प्रीतिकर न होगा। मैं अत्यन्त दुर्बुद्धि राज्यासक्त और प्रमादी हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है, क्यों कि भाइयोंके सहित आपको दुःखार्त्त, उपवाससे अत्यन्त कृश, जिताहारी और भूतलशायी न जान सका। तुम्हारे गूढ़बुद्धिके द्वारा मैं मूढ़बुद्धि वञ्चित हुआ हूं, क्यों कि आप पहले

मेरा विश्वास करके इस प्रकार दुःख भोग करते हैं। हे सद्वीपाल! मेरे जीवित रहते जब आपको ऐसा दुःख मिला है, तब राज्य भोग, यज्ञ और सुखसे मुझे क्या प्रयोजन है? हे जगन्नाथ! आपके इस दुःखसूचक वचनके सहारे राज्य तथा आपको पीड़ित करता हूं। आप हमारे पिता माता और परमगुरु हैं इसलिये हम लोग आपसे रहित होके कहां निवास करेंगे? हे नृपसत्तम! आपके औरस पुत्र युयुत्सु अथवा आप जिसके लिये इच्छा करें, वह पुरुषही इस राज्यपर अभिषिक्त होवे, मैं वनमें जाऊंगा, आप इस राज्यका शासन करिये आप अब अयशके सहारे मुझे न जलाइये। मैं राजा नहीं हूं, आपही राजा धर्म्मज्ञ और हमारे गुरु हैं, इसलिये मैं आपके अधीन होकर किस प्रकार आपके विषयमें आज्ञा करनेमें उत्साहित हूंगा? हे अनघ! दुर्य्योधनके निमित्त हमारे अन्तःकरणमें तनिक भी क्रोध नहीं है, उस समय होतव्यताके अनुसारही हम लोगोंके सहित अन्यान्य राजा मोहित हुए थे। दुर्य्योधनादिकी भांति हम लोग भी आपके पुत्र हैं, हे राजन्! इसलिये यदि आप मुझे परित्याग करके जायेंगे, तो मैं भी आपका अनुगामी होकर सत्यस्वरूप परमात्माको प्राप्त करूंगा। आपसे रहित होनेपर यह धन तथा सागरमेखला सारी पृथ्वी मुझे प्रिय न होगी। हे राजेन्द्र! हम लोग आपकेही अधीन हैं, इसलिये मैं सिर झुकाकर आपको प्रसन्न करता हूं, आप अपना यह सब ग्रहण करके मनका दुःख दूर करिये। हे पृथ्वीपाल! मुझे बोध होता है, कि आप भवितव्यके अनुसार [illegible] इस प्रकार मनका दुःख भोग करते हैं, इसलिये मैं भाग्यसे [illegible] आपकी सेवा करके आपके मनका दुःख दूर करूंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! [illegible]

प्रवृत्त हुआ है। हे पुत्र! मैं बहुत समय तक तुम्हारे समीप रहके तुमसे उपासित हुआ हूं, अब मैं वृद्ध हुआ, इसलिये मुझे वनमें जानेके लिये तुम्हें आज्ञा करनी उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र धर्म्मराजसे इतनी बात कहके कांपते हुए शरीरसे हाथ जोड़के फिर बोले। हे वसुधाधिप! मैं तुम लोगोंके सहित इस स्थानमें महात्मा सञ्जय और महारथ कृपसे विनय करनेकी इच्छा करता हूं। हे पुत्र! वृद्धावस्थाके धर्म्म वा वचन बोलनेसे मेरा मन मलिन तथा मुख परिशुष्क होता है। श्रीमान धर्म्मात्मा वृद्ध राजा धृतराष्ट्रने इतनी बात कहके सहसा चेतरहितकी भांति गान्धारीके शरीरका सहारा ग्रहण किया।

परवीरघाती कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर कुरुनन्दन धृतराष्ट्रको चेतरहितकी भांति बैठे हुए देखकर मनमें तीव्र व्यथाको प्राप्त हुए और बोले, हाय! जो सौ हजार हाथीका बल धारण करते हैं, उन्होंने इस समय स्त्रीका सहारा करके चेतरहितकी भांति शयन किया; जिन्होंने पहले भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमा चूर कर दिया था, उन्होंने इस समय अबला स्त्रीका आश्रय ग्रहण किया; जब कि इस पृथ्वीपति राजा धृतराष्ट्रने मेरे निमित्त अनुचितरूपसे शयन किया, तो मैं अधर्म्मज्ञ हूं, इसलिये मेरी बुद्धि शास्त्रज्ञान तथा मुझे धिक्कार है। यदि यह राजा धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी भोजन न करेंगे तो मैं भी अपने गुरु राजा धृतराष्ट्रकी भांति उपवास करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! [illegible]

षधि सम्पन्न पवित्र गन्धयुक्त हाथके स्पर्शसे चैतन्य होकर बोले, हे राजीवलोचन पाण्डुपुत्र! तुम अपने उत्तम शीतल कर कमलोंसे मुझे बार बार स्पर्श तथा आलिङ्गन करो, हे पुत्र! तुम्हारे स्पर्शसे मानो मैं फिर जीवित हुआ। हे नरनाथ! इस समय मैं तुम्हें मस्तकाघ्राण और दोनों भुजाओंसे स्पर्श करनेकी इच्छा करता हूं, ऐसा करनेसे मैं परम परितुष्ट हूंगा। हे कुरुशार्द्दूल! मैं दिनके आठवें भागमें आहार करता हूं, इसीसे आज हाथ पाव आदि अङ्गोंको चलानेमें असमर्थ होरहा हूं, विशेष करके यह सब वृत्तान्त तुम्हें विदित करनेमें मुझे अत्यन्त परिश्रम हुआ, इसीसे मन दुःखित तथा सज्ञा विलुप्त हुई है। हे कुरुकुलोद्वह! फिर ऐसा समझता हूं, कि तुम्हारे इस अमृत रसयुक्त हाथके स्पर्शसे मैं जीवित हुआ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत! उस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पितासे जेठे राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके सुहृदता पूर्व्वक धीरे धीरे उनके सारे शरीरका स्पर्श करने लगे, अनन्तर पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरके कर-स्पर्शसे प्राणलाभ करके अपनी दोनों भुजाओंसे पाण्डुपुत्रको आलिङ्गन करते हुए उनका मस्तक सूंघा। विदुर प्रभृति सब कोई अत्यन्त दुःखित होकर रोदन करने लगे। परन्तु अत्यन्त दुःखके कारण वे लोग राजा युधिष्ठिरसे कुछ कह न सके। हे महाराज! धर्म्म जाननेवाली गान्धारी भी व्याकुलचित्तसे मनके बीच दुःखको धारण करती हुई यह वचन बोली, कि आप, लोग ऐसा न करिये। कुन्तीके सहित अन्य स्त्रियें आंखोंसे आंसू बहाती हुई उनको चारों ओर बैठीं।

तिसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे फिर बोले, हे महाराज! तुम मुझे तप करनेके लिये आज्ञा करो। हे तात! इस विषयमें बार बार आलोचना करते हुए मेरा मन म्लान होता है, इसलिये इसके अनन्तर मुझे क्लेश देना तुम्हें उचित नहीं है। वह कौरवेन्द्र धृतराष्ट्र जब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कह रहे थे, उस समय योद्धाओंके बीच महा आर्त्तनाद होने लगा। धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर जेठे पिता महाप्रभु राजा धृतराष्ट्रको विवर्ण, उपवाससे परिश्रान्त, कृशलक् और अस्थि मात्र अवशिष्ट देखकर आलिङ्गन करके शोकयुक्त होकर आंसू बहाते हुए फिर उनसे कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! आपके प्रियकार्य्यको करना जैसा मुझे अभिलषित है, पृथ्वी वा जीवन मुझे वैसा अभिलषित नहीं है। हे महाराज! यदि आप मेरे कहनेसे भोजन करें, तो मैं जानूं, कि मैं आपको प्रिय हूं, तथा मुझपर आपकी कृपा है।

तिसके अनन्तर महातेजस्वी धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे बोले, हे पुत्र! जब तुम भोजनके लिये मुझसे अनुरोध करते हो, तो इस समय मुझे इच्छानुसार भोजन करना होगा।

राजेन्द्र धृतराष्ट्रके ऐसा ही कहते रहनेपर सत्यवतीपुत्र ऋषिश्रेष्ठ वेदव्यास मुनि वहां आके कहने लगे।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! महातेजस्वी कुरुनन्दन धृतराष्ट्र जो कहते हैं, तुम उस विषयमें कुछ विचार न करके उस कार्य्यको पूरा करो। यह राजा वृद्ध और विशेष करके पुत्ररहित हैं, इसलिये मुझे बोध होता है, कि ये इस समय इस प्रकार कष्ट सहनेमें समर्थ न होंगे। हे महाराज! करुणावेदिनी बुद्धिमती महाभागा यह गान्धारी भी धैर्य्यके सहारे हृदयमें पुत्रशोक धारण करती है, इस लिये मैं भी तुम्हें यही कहता हूं, कि जिससे राजा इस स्थानमें न मरें, इस ही निमित्त इन्हें वनमें जानेके लिये आज्ञा करके मेरा वचन प्रतिपालन करो। जब कि अन्तकालमें राजर्षि-

योंको वनका अवलम्बन करना ही कल्याण-कारी है, तब ये भी पुराने राजर्षियोंके गन्तव्य पथमें गमन करें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय महा-तेजस्वी धर्म्मराज राजा युधिष्ठिर अद्भुतकर्म्मा महामनि व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, हे भगवन्। आप हमारे महामान्य गुरु और इस राज्य तथा कुलके परम अवलम्ब हैं। हे भगवन्। राजा और आप मेरे पिता तथा गुरु हैं, जब कि पुत्र धर्म्मपूर्व्वक पिताका आज्ञाकारी हुआ करता है, तब आप लोग मुझे जो कुछ आज्ञा करेंगे, मैं उस ही समय उसे करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाकवि व्यासदेवसे जब युधिष्ठिरने ऐसा वचन कहा, तब वह फिर उनसे कहने लगे।

हे महाबाहो भारत। तुमने जो कहा, वह सत्य है, परन्तु इस राजा धृतराष्ट्रने वृद्धत्वको प्राप्त होके परम ज्ञानपद अवलम्बन किया है। इस समय ये तुम्हारे द्वारा तथा मुझसे अनु-ज्ञात होकर निज अभिप्राय साधन करें; तुम उसमें विघ्नकारी मत बनो। हे युधिष्ठिर। तुम राजर्षियोंका युद्धमें वा विधिपूर्व्वक वनमें प्राण त्याग करना ही परम धर्म्म जानो। हे राजेन्द्र! तुम्हारे पिता पृथ्वीपति पाण्डु शिष्यवृत्ति अवल-म्बन करके गुरुकी भांति इस राजाकी उपासना करते थे, इससे इन्होंने पहले पर्व्वत परिमित रत्नोंसे सुशोभित बहुतसी दक्षिणायुक्त महायज्ञ करते हुए समस्त पृथ्वी भोग तथा प्रजापालन किया था। इसके अतिरिक्त तुम्हारे तेरहवर्ष प्रवासमें रहनेसे राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंके निमित्त विपुल राज्य भोग तथा विविध धन दान किया है। हे निष्पाप पुरुषेन्द्र! तुम भी शिष्य-की भांति इस राजा धृतराष्ट्र तथा तपस्विनी गान्धारीकी गुरुभक्ति [illegible] करते हो। हे [illegible] ष्ठिर। परन्तु इस समय इनके तपोनुष्ठानका समय हुआ है, इसलिये तुम इन्हें वनमें जानेके लिये आज्ञा करो, तुम्हारे ऊपर इनका अणु-मात्र भी क्रोध नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब व्यासदेवने इतनी बात कहके इस प्रकार आज्ञा की और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने उसे स्वीकार किया, तब वह वनको चले गये। भगवान् वेदव्यास मुनिके वनमें चले जानेपर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सिर झुकाके वृद्ध पिता धृतराष्ट्रसे बोले, हे तात। आपको जो अभिलषित है, भगवान् व्यासदेवने वही कहा है। महेष्वासकृप, विदुर, युयुत्सु और सञ्जय, ये लोग मुझसे जो कहेंगे, मैं उस ही समय उसे करूंगा, क्यों कि ये लोग सब ही मेरे माननीय तथा इस कुलके हितैषी हैं। हे नरनाथ! परन्तु मैं सिर झुकाके आपके समीप यह प्रार्थना करता हूं, कि आप पहले भोजन करिये, पीछे आश्रममें गमन करिये।

४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जिसके अनन्तर प्रतापवान् धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरसे अनुज्ञात होकर गान्धारीके सहित निज गृहमें गये। उस समय मन्दप्राण और मन्दगति बुद्धिमान् महीपति धृतराष्ट्र जीर्ण गजपतिकी भांति अत्यन्त कष्टसे पृथ्वीपर पांव रखने लगे। विद्वान् विदुर, सूत सञ्जय और परम धनुर्द्धारी शारद्वत कृपाचार्य्य उनके पीछे पीछे चलने लगे। हे महाराज उन्होंने निज भवनमें प्रवेश कर प्रातःकर्म्म प्रभृति सब कार्य्य करके तथा द्विजा-तियोंको तृप्त करते हुए भोजन किया। हे भारत! धर्म्म जाननेवाली मनस्विनी गान्धारीने कुन्तीके सहित वधूजनोंके उपचारोंके द्वारा पूजित [illegible] भोजन किया। पाण्डव और विदुर [illegible] राजा धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे।

हे महाराज। तिसके अनन्तर अम्बिकापुत्र निकटमें बैठे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी पीठपर हाथ फेरके उनसे बोले, हे राजेन्द्र। तुम इस धर्म्म पुरस्कृत अष्टाङ्ग राज्यमें किसी प्रकार असावधान न होना। हे तात कुन्तीपुत्र! तुम विद्वान हो, इसलिये जिस प्रकार धर्म्मपूर्व्वक राज्यकी रक्षा कर सकोगे, वह विषय मेरे समीप सुनो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा विद्यावृद्ध पुरुषोंकी उपासना करना, वे लोग जो कहें, उसे सुनना और कुछ विचार न करके ही उनकी आज्ञा पालन करना। हे महाराज! भोरके समय उठके विधिपूर्व्वक उनकी पूजा करते हुए कार्य्यके समय उन सबसे ही निज कर्त्तव्य पूछना। हे पुत्र। तुम निज हितके अभिलाषी होकर उनका सम्मान करनेसे वे लोग सदा तुमसे हितवचन कहेंगे। हे महाराज। तुम इन्द्रियोंको तुरङ्गकी भांति प्रतिपालन करना वे द्रविणकी भांति रक्षित होनेसे तुम्हारी हितकारी होंगी। कपटरहित पवित्रचित्तवाले, दान्त, विशुद्धवंशमें उत्पन्न हुए सत्कर्म्मशाली पितृ पैतामह क्रमके अनुसार पुरुषोंको मन्त्री पदपर नियुक्त करना। स्वराष्ट्र प्रतिवासी परीक्षायुक्त दूसरोंसे अविदित अनेक प्रकारके दूतोंके द्वारा सदा प्रचारण करना, निज पुरकी उत्तम रीतिसे रक्षा करना, दीवार और तोरण अत्यन्त दृढ़ करना और किलेके ऊपर सञ्चार स्थानके चारों ओर छः समाज निर्म्माण करना। उनके सब द्वार यथेष्ट वृहत् तथा सब ओर उत्तम रीतिसे विभक्त होवें और वे यत्नवान पुरुषोंके द्वारा रक्षित रहें। हे भारत। जिनका कुल और शील विदित है, वैसे पुरुषोंके द्वारा तुम्हारा अर्थ भली भांति रक्षित होवे और तुम स्वयं सदा भोजनादिके समय रक्षित रहना, हे युधिष्ठिर! शीलवान् कुलीन विद्वान् आत्मीय वृद्धगण तुम्हारी स्त्रियोंकी रक्षा करें, स्त्रियें गुप्त रीतिसे व्यवहार विचार करें, अन्य लोगोंके आसनपर न बैठें और उनकी शय्यापर शयन न करें। हे महाराज। तुम विद्याविशारद कुलीन विनीत धर्म्मार्थमें निपुण और सरल द्विजगणको मन्त्री करके उनहीके सङ्ग विचार करना, कदाचित दूसरे बहुतसे लोगोंके सङ्ग सलाह न करनी, तथा रहित जङ्गल तथा गृहमें विचार करना, रात्रिके समय कदापि सलाह न करना; वानर, पक्षी, अनुसारी मनुष्य, जड़ और पङ्गुओंको विचार गृहमें न रहने देना। राजाओंके मन्त्रभेदसे जो सब दोष उत्पन्न होते हैं, मुझे बोध होता है, उनका किसी प्रकारसे हो समाधान नहीं किया जा सकता। हे अरिदमन। इसलिये तुम मन्त्रिमण्डलीके बीच बैठकर मन्त्रणाभेदके दोष और मन्त्रगुप्तिके गुणोंको बार बार वर्णन करना। हे महाराज। तुम सदा आप्तजनोंके बीच अधिष्ठित होकर व्यवहारके सहारे पौर और जनपदवासियोंका शौच जिस प्रकार मालूम हो सके, वैसा करना। हे भारत। तुम सन्तुष्टचित्तसे हितकारी दूतोंसे घिरके दण्डनीय धन तथा अपराधके परिमाणको विचारकर दण्डार्ह पुरुषोंको दण्ड प्रदान करना। हे युधिष्ठिर। तुम घूसखानेवाले, परस्त्रीगामी, उग्रदण्ड प्रधान, मिथ्यावादी, आक्रोशकारी, लोभी, हर्त्ता, साहसप्रिय, सभाविहार वेत्ता और वर्णदूषक पुरुषोंको देश, काल तथा न्यायके अनुसार हिरण्यदण्ड अथवा प्राणवध करना। तुम प्रातःकालमें ही अपने व्ययकर्म्मकारी पुरुषोंके कार्य्योंको देखकर उसके अनन्तर सुसज्जित होकर भोजनादि समाधान करना। तिसके अनन्तर सर्व्वदा योद्धाओंको हर्षित करते हुए उनके विषयमें दृष्टि रखना। अनन्तर प्रदोष समयमें दूत तथा चरोंके निकट सम्वाद सुनके अपर रात्रिमें कार्य्य और अर्थका निर्णय करना; प्रतिदिन मध्यरात्रि तथा मध्यान्ह समयमें विहार करना। हे भूरिदक्षिण भरतर्षभ।

जिन कार्य्योंका जिस प्रकार उपयुक्त समय निर्दिष्ट है, तुम उस ही समयमें उन कार्य्योंको पूरा करते हुए नियमित समयमें अलंकृत होकर विश्राम करना; क्यों कि कार्य्यका पर्य्याय सदा चक्रकी भांति प्रवर्त्तित होते हुए देखा जाता है। हे तात! तुम न्यायके अनुसार अनेक प्रकारके कोष सञ्चय करनेका यत्न करना और विपरीत कार्य्योंको परित्याग करना। हे नरनाथ! राजाओंके अन्तरेपी शत्रुओंको दूतके द्वारा मालूम करके आप्त पुरुषोंके द्वारे दूर-होसे उनका बध करना, हे कुरुद्वह। सेवकोंके कार्य्यको देखकर उन्हें यथा योग्य पारितोषिक देना और अधिष्ठित, युक्त तथा अयुक्त पुरुषोंके सङ्ग कार्य्य करना। हे तात! तुम दृढ़-व्रती शूर क्लेश सहनेवाले हितकारी भक्त पुरुषको सेनाका नायक करना। हे पाण्डुनन्दन! जो लोग सदा तुम्हारे शिल्पादि कार्य्योंको करते हैं, वे सब जनपदवासी गऊ तथा गर्द्दभकी भांति तुम्हारे कार्य्यको करें। युधिष्ठिर तुम सदा अपने और दूसरोंके छिद्रोंको अन्वेषण करना; निज कार्य्यमें विक्रान्त अनुगामी हितकारी देशज पुरुषोंपर अनुग्रह करना। हे जननाथ! जो लोग गुणार्थी और विद्वान् हों, उनके गुणको ग्रहण करना योग्य है; क्यों कि वे लोग सदा अचलकी भांति अविचलित रूपसे निवास किया करते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे भारत! तुम आत्मीय, परकीय, उदासीन और मध्यस्थोंसे शत्रु, मित्रादि रूपी मण्डलको विशेष रीतिसे मालूम करना. हे परिकर्षण! चार प्रकारके शत्रुओं और आततायियोंके बीच कौन मित्र तथा कौन शत्रु-मित्र है, उसे तुम्हें विशेष रीतिसे जानना उचित है। हे कुरुश्रेष्ठ! मनुष्य मन्त्रि, अमात्य, विविध शिल्पी तथा समस्त [illegible] इच्छानुसार भेद किया करते हैं, इसलिये जिस प्रकार उनमें फूट न हो उसही भांति सावधान होकर निवास करना। हे कुन्तीपुत्र! राजाओंके सन्धिप्रधान विषय सम्बन्धीय चार प्रकारके शत्रु, अग्निद प्रभृति छः आततायी मित्र और अमित्र मित्र ये बारह प्रकारके नृपति कृष्यादि आठ प्रकारके सन्धानकार्य्य निवातादि दोष, नास्तिक्यादि चौदह दोष और मन्त्रादि अठारह तीर्थ येही षष्टिगण हैं; नीतिज्ञ आचार्य्यगण इन्हें ही मण्डल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! उसमें जो सन्धि विग्रह प्रभृति षाड्गुण्य वर्णन करना होता है, उसे सुनो। हे कुरुसत्तम! राजाओंकी वृद्धि, क्षय और स्थानको विशेष रीतिसे जानना उचित है। हे महाबाहो! षष्टिगण और द्वादश नृपति, इनसे ही षाड्गुण्यज गुण बहत्तर प्रकारके हुआ करते हैं। हे कुन्तीनन्दन! जब अपना पक्ष बलिष्ठ और शत्रुका पक्ष दुर्बल हो, तब राजा शत्रुओंको पराजित करके जय लाभ करे और जब परपक्ष सबल और अपना पक्ष दुर्बल हो, तब विद्वान् राजा क्षीण होकर शत्रुओंके सङ्ग सन्धि करते हुए बहुतरा धन सञ्चय करे। हे भारत! जब राजा शीघ्र युद्धमें जानेके लिये समर्थ होवें, तब वह विचारपूर्वक स्थानसे रहित सब वस्तुओंको विधिके अनुसार ठीक करे। हे भारत! मित्र और बल क्षीण होनेपर सन्धि निमित्त राजा जिससे शत्रुको अल्प फल प्राप्त हो वैसा भूमि सोना और चांदी आदि इतर धन तथा बहुतसा [illegible] दान करे और उसके विपरीत वस्तु ग्रहण करे। हे भरतर्षभ! सन्धि करनेके समय जो सन्धि करे [illegible]

पक्ष महाबली नरपति राजा तथा प्रजा समूहकी पूजा करना और क्रमसे तथा एक ही समयमें शत्रुओंके सब व्यवसायको रुद्ध करके यत्नपूर्वक उन्हें पीड़न स्तम्भन तथा उनका कोष भङ्ग करना। हे कौन्तेय। ऊंचे पदका, अभिलाषी राजा समीप आये हुए सामन्त और पृथिवी विजयकी इच्छा करनेवाले राजाकी हिंसा न करना बल्कि तुम गणभेदके निमित्त मन्त्रियोंके सहित योग साधनकी आकांक्षा करना। बलवान राजा साधुओंको संग्रह और पापियोंको निग्रह करे, परन्तु निर्बल पुरुषोंको कदापि उच्छिन्न न करे। हे राजशार्दूल! यदि बलवान पुरुष तुम्हें निर्बल समझकर आक्रमण करे, तो तुम वैतसीवृत्ति अवलम्बन करके निवास करना; क्रमसे साम आदि उपायके सहारे उसे निवृत्त करनेकी चेष्टा करना उससे असमर्थ होनेसे मन्त्रियोंके सहित युद्धके निमित्त बाहिर होना। जो लोग उसके प्रियकारी हों, उनके कोष तथा पौरको दण्डके द्वारा दण्डित करना, परन्तु सभी असम्भव होनेपर मुख्य उपाय शरीरके सहारे युद्धके निमित्त बाहिर होना, इस क्रमके अनुसारही केवल शूर पुरुषोंका शरीर मुक्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे राजसत्तम युधिष्ठिर। ऐसे स्थलमें प्रबल और निर्बल शत्रुके निमित्त इस द्वियोनि सम्भूत दो प्रकारकी उपाययुक्त बहुकाल्य सन्धि तथा विग्रहकी पर्य्यालोचना करना। हे कौरव्य। शत्रुके तुष्ट, पुष्ट, बलयुक्त तथा बुद्धिमान होनेपर अपने बलाबलको जानके स्थिरभावसे जयका उपाय सोचते हुए जबतक जय प्राप्त न हो, तबतक उसकी उपासना करना। हे राजेन्द्र! उपासनाके समय शत्रुका बल असन्तुष्ट और अपुष्ट होनेपर युद्धयात्राके लिये उद्योग करना और बलपूर्वक निष्पीड़नका समय उपस्थित होनेपर उसके बाद युद्धके निमित्त यात्रा करना। तिसके अनन्तर युद्धमें शत्रुओंके व्यसन, भेदन, कर्षण, शोषण और बल क्षय करना। शास्त्रविशारद राजा प्रमाणके पहिले अपनो और शत्रुओंकी तीन प्रकारकी शक्ति अर्थात् उत्साह शक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्रशक्तिका विचार करे। हे भारत! राजा उत्साह, शक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्र शक्तिसे युक्त होकर युद्धके निमित्त यात्रा करे और विपरीत कार्य्योंको परित्याग करे। हे प्रभु! महीपति धनबल, मित्रबल, अटवी बल, प्राणिबल और श्रेणीबल ग्रहण करे। हे राजन्! मेरा यही मत है, कि सब लोकोंके बीच मित्रबल और धनबल मुख्य है और श्रेणीबल तथा भृत्य ये सब तुल्य हैं। हे नरनाथ। दूतबल परस्पर तुल्य है, समय उपस्थित होनेपर राजा उसे बहुत समयमें जान सकता है।

हे नराधिप। आपद अनेक प्रकारकी मालूम करना; हे कौरव्य। राजाओंको जो सब आपद उपस्थित होती हैं, उसे पृथक् करके कहता हूं, सुनो। हे राजन् पाण्डुपुत्र! सब आपदोंके बीच विकल्प अर्थात् इति प्रभृति अनेक प्रकारकी आपद उपस्थित होनेपर राजा सामादि उपायके सहारे उसही इति प्रभृतिको प्रकाश्य रूपसे आपद कहके गिने। हे परन्तप! राजा देश, काल आत्मगुणसदृश बल तथा उद्दलसम्पन्न होकर युद्ध करनेके लिये गमन करे। हे पाण्डव। वृद्धि और उदय निरत बलवान राजा हृष्टपुष्ट बलसे युक्त होकर अकालमें भी युद्ध करनेके निमित्त गमन करे। तृण जिसमें पत्थर, घोड़े और रथ प्रवाह, जिसका करार तथा तट ध्वजारूपी वृक्षोंसे संवृत्त और बहुतसे पैदल तथा हाथियोंके द्वारा जो कर्दममय हो, राजा युक्तिके सहित शत्रुनाशके समयमें ऐसी नदीसे शकट व्यूह प्रयोग करे। हे विभु! शुक्राचार्य्य जो शास्त्र जानते हैं, उसमें ही यह दस

विहित है। राजा निज बलको ओर दृष्टि रखके परबलको प्रचारण करते हुए निज भूमि अथवा पर भूमिमें युद्ध करे; महीपति निज-बलको प्रबल करके बलवान् परबलको निरा-कृत करे और निज विषयको जानके सामादि उपायके सहारे पर विषयमें गमन करनेकी इच्छा करे।

हे महाराज! इस लोकमें सब प्रकारसे यत्नपूर्व्वक शरीरकी रक्षा करना, शरीर रक्षित होनेसे ही इस लोक और परलोकमें परम मङ्गल लाभ हुआ करता है। हे राजन्! राजा लोग इन सब विषयोंका पूरी रीतिसे आचरण करते हुए धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करनेसे पर-लोकमें स्वर्ग प्राप्त करते हैं। हे तात कुरुश्रेष्ठ! तुम भी दोनों लोक प्राप्त करनेके लिये सदा ऐसा ही आचरण करते हुए प्रजाके हितमें रत रहो। हे नृपसत्तम! यद्यपि भीष्म, कृष्ण और विदुरने तुमसे सब कहे हैं, तथापि तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति रहनेसे अवश्य ही मुझे कहना पड़ा। हे भूरिदक्षिण! तुम न्यायके अनुसार यह सब आचरण करनेसे प्रजासमूहके प्रियपात्र होकर सुरपुरमें सुख-भोगनेमें समर्थ होगे। हे जननाथ! जो सर्व्वी-पति सहस्र अश्वमेध करता है और जो धर्म्मपू-र्व्वक प्रजापालन करता है, उन दोनोंको तुल्य फल प्राप्त होता है।

७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पृथ्वीपति! आपने जो कहा, मैं उन सब कार्य्योंको करूंगा, [illegible] [illegible] भी करना होगा, उसके लिये आप मुझे आज्ञा करिये। हे पार्थिवश्रेष्ठ! भीमसेन कुरु-[illegible] [illegible] तथा मधुसूदन [illegible], विदुर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ऐसा कहेगा। हे [illegible] [illegible] [illegible] विशेष होकर [illegible] मुझे आज्ञा [illegible] मर्ज्जीमा, इसके अनन्तर आप वनमें जानेसे निवृत्त होइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतर्षभ! उस राजर्षि धृतराष्ट्रने बुद्धिमान धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको आज्ञा कर-नेकी इच्छा की।

धृतराष्ट्र बोले, मुझे अत्यन्त श्रम हुआ है, इसलिये तुम कुछ समय तक शान्त रहो, इतनी बात कहके उन्होंने गान्धारीके गृहमें प्रवेश किया। समयको जाननेवाली धर्म्मचारिणी गान्धारी उस समय आसनपर बैठे हुए प्रजाप-तिसदृश पति धृतराष्ट्रसे बोली, हे स्वामी! आप तो महर्षि व्यासदेवसे अनुज्ञात तथा युधि-ष्ठिरसे आदिष्ट हुए हैं, इसलिये कब वनमें चलियेगा?

धृतराष्ट्र बोले, मैं जब पिताकी आज्ञा पा चुका, तब शीघ्र ही वनमें गमन करूंगा, परन्तु मैं निज गृहसे सबको एकत्रित कराके उन निन्दित द्यूतक्रीड़ा करनेवाले पुत्रोंके लिये प्रेतभावके अनुगत वस्तु दान करनेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय सर्व्वी-पति धृतराष्ट्रने धर्म्मराजसे इतनी [illegible] [illegible] उन्हें प्रजासमूहको बुलानेके लिये भेजा, उन्होंने उनके कहनेके अनुसार नगरमें [illegible] प्रजाको बुलाया। अनन्तर ब्राह्मण, [illegible] क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण प्रहृष्ट चित्तसे [illegible] पर [illegible]

[illegible] अनन्तर राजा धृतराष्ट्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हे पृथ्वीनाथ! [illegible] राजा [illegible]

हितैषी हुए हैं, परन्तु उपस्थित समयमें मैं आप लोगोंसे जो कहता हूं, आप लोग विचार न करके मेरे बचनकी रक्षा करिये। व्यासदेव और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार मैं बनमें जानेकी अभिलाष करता हूं, आप लोग भी इस विषयमें विचार न करके मुझे आज्ञा करें और मेरी यह प्रार्थना है, कि आप लोगोंके सङ्ग मेरी यह प्रीति जिसमें सदा अविचलितभावसे निवास करे, मुझे ऐसा मालूम है, कि वह प्रीति अन्य देशीय राजाओंके सहित स्थिर रहनेकी नहीं है। हे अनघगण! मैं गान्धारीके सहित पुत्रबिरह और अवस्था क्रमके अनुसार अत्यन्त श्रान्त तथा उपवाससे कृश हुआ हूं। युधिष्ठिरको राज्य मिलनेसे मैं उत्तम रीतिसे सुखभोग करता हूं। हे सत्तमगण! दुर्य्योधनके ऐश्वर्य्यसे युधिष्ठिरके ऐश्वर्य्यको मैं श्रेष्ठ बोध करता हूं। हे महाभागगण! इस समय मुझे हतपुत्र वृद्ध अन्ध धृतराष्ट्रको बनमें जानेके अतिरिक्त और गति कहां है? इसलिये तुम लोग मुझे बनमें जानेके लिये आज्ञा करो।

हे भरतर्षभ! वे सब कुरुजाङ्गलबासी प्रजा धृतराष्ट्रके बचनको सुनके गद्गद स्वरसे बिलाप करती हुई रोदन करने लगीं। महातेजस्वी धृतराष्ट्र उन बिलाप करनेवाले शोकपरायण कुरुजाङ्गलवासियोंसे फिर ऐसा बचन कहने लगे।

८ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे तातगण! जिस प्रकार शान्तनुने इस बसुन्धराको पालन किया था, उस ही भांति बिचित्रवीर्य्यने भीष्मके द्वारा रक्षित होकर तुम लोगोंको पालन किया था, यह तुम लोगोंको बिदित है, इसलिये उसमें सन्देह नहीं है। तुम लोगोंको यह भी बिदित है, कि मेरे भाई पाण्डु भी तुम लोगोंको पूरी रीतिसे पालन करके प्रियपात्र हुए थे। हे अनघगण! मैंने भी सम्यक् रीतिसे तुम लोगोंकी जो सेवा की थी, वह यदि असम्यक् हुई हो, तो उसे तुम लोग अतन्द्रित होकर क्षमा करना। यद्यपि उस मन्दमति दुर्बुद्धि दुर्योधनने इस अकण्टक राज्यको पाके भोग किया था, तथापि उसने उस समय तुम लोगोंका कुछ अपराध नहीं किया। केवल उस दुर्बुद्धिके अभिमान तथा निजकृत दुर्णयसे ही राजाओंके बीच यह महत् बिमर्द हुआ; मैं हाथ जोड़के तुम लोगोंके निकट यह प्रार्थना करता हूं कि उसने भला किया हो वा बुरा किया हो उसे तुम लोगोंको मनमें न लाना चाहिये तुम लोग मुझ वृद्ध हतपुत्र दुःखित नरपतिको पूर्व्व-राजाओंका पुत्र कहके जानना।

इसके अतिरिक्त यह हतपुत्रा कृशित कृपणा पुत्रशोकार्त्ता तपस्विनी गान्धारी मेरे सहित तुम लोगोंके निकट यह प्रार्थना करती है, कि हम लोग तुम्हारे शरणागत हुए, इस समय तुम लोग हमें हतपुत्र और वृद्ध जानके बनमें जानेके लिये आज्ञा करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो। इस कुन्तीपुत्र कुरुराज युधिष्ठिरको तुम लोग सम तथा बिषम पथसे रक्षा करना और देखना ये कदापि बिषम पथमें गमन न करें; इनके चारो भाई अत्यन्त बलशाली लोकपाल सदृश और सर्व्वधर्म्मार्थदर्शी हैं; वेही इनके मन्त्री हैं। सब प्राणियों तथा समस्त जगतके प्रभु छः ऐश्वर्य्योंसे युक्त ब्रह्मासदृश ये महातेजस्वी युधिष्ठिर तुम लोगोंको पालन करेंगे। मेरा अवश्य बक्तव्य होनेसे मैंने तुम लोगोंसे ऐसा कहा है। तुम्हारे इस न्याय्यस्वरूप युधिष्ठिरको तुम लोगोंको प्रदान किया और तुम लोग भी मेरे द्वारा वीरश्रेष्ठ युधिष्ठिरके निकट थातीरूपसे अर्पित हुए। यदि मेरे पुत्रों अथवा मेरे अन्य किसी पुरुषके द्वारा तुम लोगोंको कुछ दुःख उपस्थित हो, तो तुम इनके निकट आवेदन करना। पहले तुम लोगोंने मेरे ऊपर

किसी प्रकार क्रोध नहीं किया, तथा तुम लोगोंके अत्यन्त गुरुभक्त होनेसे मैं हाथ जोड़के तुम लोगोंको नमस्कार करता हूं। हे अनघगण! मैं गान्धारीके सहित उन अस्थिर बुद्धि लोभी और कामाचारियोंके निमित्त तुम लोगोंसे क्षमा मांगता हूं। वे सब पुरवासी और जनपदवासी लोग धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके आंसू भरे नेत्रसे परस्परको देखते हुए कुछ भी कहनेमें समर्थ न हुए।

९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कौरवनाथ! वे सब पुरवासी और जनपदवासी लोग बूढ़े राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके संज्ञाविहीन हुए। महीपति राजा धृतराष्ट्र उन लोगोंको मौनावलम्बी तथा विसूरते देखकर फिर कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, हे सत्तमगण! पिता कृष्णद्वैपायन और धर्म्मज्ञ राजा युधिष्ठिरने धर्म्मपत्नी गान्धारीके सहित मुझ वृद्ध हतपुत्र बहुविध विलापकारी दीन धृतराष्ट्रको वनवासके निमित्त आज्ञा की है। हे अनघगण! हम दोनो सिर झुकाके बार बार तुम लोगोंके निकट प्रार्थना करते हैं, इसलिये गान्धारीके सहित मुझे वनमें जानेके लिये तुम लोगोंको आज्ञा करनी उचित है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! वे कुरुजाङ्गलवासी प्रजासमूह धृतराष्ट्रके ऐसे करुणायुक्त वचनको सुनके सब कोई इकट्ठे होकर रोदन करने लगे, उन लोगोंने पितामाताकी भांति शोकसे सन्तापित होकर दुपट्टेके सहित दोनों हाथोंसे मुंह मूदके मुहूर्त्तभर रोदन किया; अनन्तर उन्होंने शून्यप्राय हृदयमें धृतराष्ट्रके प्रवासजनित दुःखको धारण करते हुए चेतरहितकी भांति निवास किया। कुछ समयके अनन्तर उन लोगोंने धृतराष्ट्रके वियोगजनित दुःखको त्यागके धीरे धीरे आपसमें अपना अपना मत प्रकाश किया। हे राजन्! अनन्तर उन सब लोगोंने एकत्रित होकर सन्धान करते हुए एक ब्राह्मणके समीप अपना अपना वचन सुनाके वह सब धृतराष्ट्रसे कहनेके लिये उन्हें अनुरोध किया। हे महाराज! अनन्तर सर्व्वसम्मत अर्थविशारद पवित्राचारी वह ऋक्‌वेत्ता शाम्ब नाम ब्राह्मण राजासे वह सब वचन कहने लगा।

हे महाराज! उस मेधावी अत्यन्त प्रगल्भ विप्रने सभाको प्रसन्न तथा सम्मानित करके राजा धृतराष्ट्रसे कहा, हे महाराज! इन लोगोंका सब वचन मुझमें अर्पित है। हे वीर नरनाथ! वह सब मैं आपसे कहता हूं, आप सुनके स्वीकार करिये। आप हम लोगोंको अपना और अपनेको हम लोगोंका सुहृत कहते हैं, सो वह सब सत्य है, इस विषयमें कुछ भी मिथ्या वचन नहीं हुआ। हे प्रजापाल! इस वंशके राजाओंके बीच जो जिस समय राजा हुए हैं, उस समय वह प्रजाके प्रिय होनेके अतिरिक्त अप्रियभाजन नहीं हुए; वरन पिता और भ्राताकी भांति हम लोगोंको प्रतिपालन किया है, राजा दुर्य्योधनने भी हम लोगोंके विषयमें कुछ अत्याचार नहीं किया। हे महाराज! सत्यवतीपुत्र महात्मा महामुनि व्यासने आपको जैसा कहा है, आप इस समय वही करिये; वेही हम लोगोंके परम गुरु हैं। हे राजन्! हम लोग आपके द्वारा परित्यक्त होकर अत्यन्त शोकार्त्त तथा दुःखित हुए, परन्तु हम लोग रक्षाके लिये आपके गुणसमूहसे बद्ध होकर निवास करेंगे। हे पार्थिव! राजा शान्तनु, चित्राङ्गद और आपके सम्बन्धसे रक्षित आपके पिता विचित्रवीर्य्य तथा आपके [illegible] पाण्डुने जिस प्रकार हम लोगोंको पालन किया था, राजा दुर्य्योधनने भी उस ही प्रकार हम लोगोंको पालन किया है। हे राजन्! आपके पुत्र इस

लोगोंका कुछ भी अप्रिय कार्य्य नहीं किया, इस लिये हम लोग उस राजाका पिताकी भांति विश्वास करते थे, हम लोग जिस प्रकार सुखसे रहते थे, आपको वह सब विदित है। उस ही भांति बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा सहस्र वर्षतक प्रतिपालित होकर परम सुख-भोग करेंगे। हे नरनाथ! ये धर्म्मात्मा भूरिदक्षिणा युधिष्ठिर कुरु, सम्बर और धीमान भरत प्रभृति राजर्षियोंके व्यवहारके अनुवर्त्ती हुए हैं। हे महाराज! इसलिये इन युधिष्ठिरके विषयमें कुछ भी वक्तव्य नहीं है। हम लोगोंने आपके द्वारा प्रतिपालित होकर सुखसे वास किया है, उस समय पुत्रके सहित आपका अणुमात्र भी अप्रिय कार्य्य नहीं था। हे कुरुनन्दन! परन्तु आप इस ज्ञातिविनाशके विषयमें दुर्य्योधनके ऊपर दोषारोप करते हैं, उसके निमित्त हम आपसे विनय करते हैं, कि आप वैसा न कहिये।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! जो कुरुकुल नष्ट हुआ है, वह दुर्य्योधन, आप कर्ण तथा शकुनिके द्वारा नहीं हुआ। जिसे निवारण नहीं किया जा सकता, उसे ही दैव जानो; दैव पुरुषार्थके द्वारा कदापि बाधित नहीं होता। हे महाराज! योद्धाओंमें श्रेष्ठ कौरवोंके हाथसे अट्ठारह अक्षौहिणी सेना अट्ठारह दिनमें मारी गई। हे नरनाथ! दैवबलके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, कृप, महात्मा कर्ण, महावीर युयुधान, धृष्टद्युम्न और भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेव, इन चार पाण्डुपुत्रोंके द्वारा इस समस्त सेनाका नाश नहीं हुआ। युद्धमें क्षत्रिय तथा क्षत्रबन्धुगण अवश्य ही मरते हैं और समय पहुंचनेपर सभी मृत्युके मुखमें पतित हुआ करते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! उन बाहुबलशाली क्षत्रियोंके हाथसे घोड़े हाथी और रथसे युक्त इस समुद्र सहित पृथ्वीके सब वीर मारे गये हैं। हे महीपाल! आपके वे पुत्र तथा आप अथवा कर्ण, शकुनि वा आपके सेवक, कोई भी महात्मा राजाओंके विनाश विषयमें कारण नहीं हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! सहस्रों राजा लोग जो विनष्ट हुए हैं, उसे दैवकर्म्म जानो, इस विषयमें कोई भी कुछ कहनेमें समर्थ नहीं होता; आप हम लोगोंके गुरु और समस्त जगतके प्रभु हैं। हे धर्मात्मन्! इसलिये हम लोग आपको बनमें तथा आपके पुत्रोंको स्वर्गमें जानेके लिये आज्ञा करते हैं। वह राजा दुर्य्योधन सहायोंके सहित वीरलोक पावें और द्विजोंकी आज्ञानुसार सुरलोकमें सुखभोग करें। हे सुव्रत! आपको भी पुण्यधर्म्ममें परम स्थिति तथा समस्त वेदधर्म्म प्राप्त हों; पाण्डवोंके ऊपर जो आपकी दृष्टि पड़ी है, वह वृथा नहीं है, उस दृष्टिबलसे वे लोग पृथ्वीको तो बात दूर रहे, स्वर्गको भी पालन करनेमें समर्थ होंगे। हे धीमान् कुरुकुलप्रवर! प्रजा सम वा विषमपथमें शील भूषणसम्पन्न पाण्डवोंकी अनुवर्त्ती होगी; पृथिवीपति पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर पुराने राजाओंके द्वारा अपराद्ध पुरुषों तथा ब्राह्मणोंको प्रदान किये हुए अनुत्तम द्वार तथा परिच्छद प्रभृतिकी रक्षा करेंगे।

भरतकुल श्रेष्ठ अक्षुद्र-सचिव मेधावी महामना कुन्तीपुत्र दीर्घदर्शी मृदुदान्त धनाध्यक्षकी भांति शत्रुओंके विषयमें भी सानुकूल होकर सरलचित्तसे सदा पुत्रकी भांति हम लोगोंका पालन करते हैं। हे राजर्षि! इस धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके संसर्गसे भीम तथा अर्जुन प्रभृति भी अप्रिय आचरण न करेंगे। हे कौरव्य! वे वीर्य्यवान महात्मा पुरवासियोंके हितैषी भीम प्रभृति पाण्डवगण मृदुस्वभाववाले पुरुषोंके विषयमें मृदुता और उग्रस्वभाववालोंके विषयमें उग्रता आचरण किया करते हैं। हे महाराज! कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और सात्वत कुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा, ये लोग इस समयमें कदापि आपके प्रतिकूल आचरण न करेंगी; पुरवासी और

जनपदवासी प्रजासमूह युधिष्ठिरके द्वारा विवर्द्धित होकर आपके इस स्नेहको कदापि न भूलेंगे। महारथ कुन्तीपुत्रगण धर्म्मपरायण होके अधार्म्मिक मनुष्योंको भी पालन करेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! आपको हम लोग प्रणाम करते हैं, आप युधिष्ठिरसे मानसिक दुःख दूर करके धर्म्मकार्य्य करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सब लोगोंने उस ब्राह्मणके उत्तम गुणयुक्त धर्म्म समन्वित वैसे वचनका सम्मान करते हुए धन्य धन्य कहके ग्रहण किया। उस समय धृतराष्ट्रने भी उस वाक्यको उत्तम कहते हुए धीरे धीरे प्रजासमूहको विसर्ज्जन किया। हे भरतकुलतिलक! राजा धृतराष्ट्रने उस प्रजासमूहसे पूजित तथा शुभदृष्टिसे अवलोकित होकर हाथ जोड़के उस ब्राह्मणकी पूजा की। तिसके अनन्तर उन्होंने गान्धारीके गृहमें प्रवेश करके रात्रि बीतनेपर जो किया था, उसे सुनो।

१० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर रात बीतनेपर सवेरे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने विदुरको युधिष्ठिरके भवनमें भेजा। बुद्धिमान् पुरुषोंमें अग्रगण्य महातेजस्वी विदुर राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार अच्युत ईश्वर युधिष्ठिरके निकट जाके उनसे बोले हे राजन्! महाराज धृतराष्ट्र वनवासके निमित्त दीक्षित हुए हैं, वह आगामी कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन वनमें जायगे. हे कुरुकुलप्रवर! वह महात्मा गङ्गातनय भीष्मके श्राद्ध दानके अभिलाषी होकर आपके समीप किञ्चित धनकी आकांक्षा करते हैं और यदि आपकी अनुमति हो, तो द्रोण, सोमदत्त, [illegible] बाह्लीक, पुत्रगण, [illegible] तथा [illegible] सुहृद् [illegible] मरे हैं, उन [illegible] श्राद्ध करें। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और महा[illegible] अर्जुनने विदुरका ऐसा वचन सुनके [illegible] होकर सम्मानपूर्व्वक उसे स्वीकार किया। परन्तु उस समय महातेजस्वी दृढ़क्रोधी भीमने दुर्य्योधनके कार्य्योंको स्मरण करते हुए विदुरके उस वचनको स्वीकार न किया; किरीटि फाल्गुन भीमसेनका अभिप्राय जानके किञ्चित विनयपूर्व्वक पुरुषश्रेष्ठ भीमसे बोले, हे भीम! बूढ़े राजा पिता धृतराष्ट्र वनवासके निमित्त दीक्षित होकर सुहृदोंके और्द्धदैहिक श्राद्ध करनेके अभिलाषी हुए हैं। हे महाबाहो कौरव! जब वह भीष्मादिके और्द्धदैहिक कार्य्यकेलिये तुम्हारे द्वारा निर्ज्जित धन दान करनेकी इच्छा करते हैं, तब उस विषयमें आपको अनुमति करनी ही उचित है। हे महाबाहो! देखिये समयका कैसा उलट फेर है, कि पहले ये हम लोगोंके द्वारा याचित हुए थे आज वेही धृतराष्ट्र भाग्यवशसे हमलोगोंके निकट प्रार्थना करते हैं; ये धृतराष्ट्र सारी पृथ्वीके अधिपति होकर शत्रुके द्वारा मन्त्रियोंके मारे जानेसे वनमें जानेके लिये अभिलाषी हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! दानके अतिरिक्त अन्यकार्य्यमें आपकी प्रवृत्ति न हो, क्योंकि दानके अतिरिक्त अन्य कार्य्यमें प्रवृत्ति होनेसे अयश और अधर्म्म हुआ करता है। हे भरतर्षभ! आप सबके प्रभु ज्येष्ठ भ्राता राजा युधिष्ठिरके निकट शिक्षित होइये, राजाके विद्यमान रहते आप लेने देनेमें समर्थ नहीं हैं।

विमल, अर्जुनके ऐसा कहनेपर धर्म्मराजने भी उन्हें सम्मानित किया. परन्तु उस समय भीमसेन क्रोधपूर्व्वक उनसे बोले, हे फाल्गुन! तुम्हें ऐसी विवेचना होती है, कि हम लोग भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाह्लीक, महात्मा द्रोणाचार्य्य तथा अन्यान्य सुहृदोंका श्राद्धादि करेंगे और [illegible] [illegible] धृतराष्ट्र दान न करें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

परलोकमें गमन करेंगे। हे अर्जुन! बारह वर्षका वैर, घने वन तथा अज्ञातवास और द्रौपदीके शोकवर्द्धन आदि सब विषयोंको क्या तुम भूल गये? जब तुमने पाञ्चालपुत्री द्रौपदीके सहित आभरण तथा भूषणरहित होकर कृष्णाजिन पहरके राजा धृतराष्ट्रके समीप गमन किया था उस समय हम लोगोंके विषयमें उनका कैसा स्नेह था? जब तेरह वर्षतक वनके बीच वन्यवृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करते थे, उस समय द्रोण, भीष्म और सोमदत्त, ये लोग कहां थे? उस समय तुम्हारे इन ज्येष्ठ पिताने पिताकी भांति तुम्हारे विषयमें क्यों नहीं दृष्टि की? हे पार्थ! इस कुलपांसन दुर्बुद्धिने ही उस समय विदुरसे यह बात पूछी थी, कि "क्या जूएमें जीत हुई?" उसे तुम एकबारही भूल गये हो? भीमसेनके ऐसा कहते रहनेपर कुन्तीपुत्र बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर उनको निन्दा करते हुए यह बचन बोले, कि शान्त होजाओ।

११ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे भीम! आप हमारे ज्येष्ठ भाई तथा गुरु हैं, इसही निमित्त आपसे अतिरिक्त कहनेका मुझे उत्साह नहीं होता है; और क्या कहूं, राजर्षि धृतराष्ट्र सब प्रकारसे हम लोगोंके सम्मानार्ह हैं। देखिये अभिन्न मर्य्यादावाले साधुचित्त उत्तम पुरुष अपकारको स्मरण न करके उपकारहीको स्मरण किया करते हैं। अनन्तर धर्म्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर महात्मा अर्जुनका बचन सुनके विदुरसे बोले, हे क्षत्त! आप मेरे बचनके अनुसार कुरुकुलश्रेष्ठ पृथ्वीपति धृतराष्ट्रसे कहना, कि वह पुत्रों तथा भीष्म प्रभृति उपकारी सुहृदोंके श्राद्धमें जो दान करनेकी इच्छा करेंगे, मैं अपने खजानेसे वह सब धन दूंगा, इसमें महाबाहु भीम दुःखित न होंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराजने इतनी बात कहके अर्जुनको सम्मानित किया, भीमसेनने भी धनञ्जयको ओर निज दृष्टिसे देखा। अनन्तर बुद्धिमान युधिष्ठिर विदुरसे बोले, हे नरनाथ। धृतराष्ट्र जिसमें भीमसेनके ऊपर क्रोध न करें, ये धीमान् भीमसेन जो वृष्टि, धूप तथा अनेक प्रकारके दुःखोंसे क्लेशित हुए हैं, वह आपको विदित है। हे भरतर्षभ। परन्तु आप मेरे बचनके अनुसार राजासे कहना, कि उनकी जो इच्छा हो, मेरे गृहसे वह उन सब वस्तुओंको ग्रहण करें और यह भी कहना, कि यह भीमसेन अत्यन्त दुःखित होकर जो मत्सरता करता है, वह उन्हें अन्तःकरणमें रखना उचित नहीं है। और उस नरनाथसे यह बचन कहना, कि मेरे तथा अर्जुनके गृहमें जो सब धन है, आप उस समस्त धनके स्वामी हैं; इसलिये आज राजा पुत्रों तथा सुहृदोंके निमित्त इच्छानुसार दान करके अक्षय लाभ करें। हे जननाथ! आप यह निश्चय जानिये, कि मेरा यह शरीर तथा जो कुछ धन है, वह आपके अधीन है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिसत्तम विदुर राजा युधिष्ठिरका ऐसा बचन सुनके धृतराष्ट्रके निकट जाकर युधिष्ठिरके कहे हुए महान् अर्थ युक्त समस्त बचन कहने लगे।

विदुर बोले, हे महाराज! मैंने महातेजस्वी युधिष्ठिरके समीप आपका बचन विस्तारपूर्वक कहा, उन्होंने आपका बचन सुनके अत्यन्त प्रशंसा की; महातेजस्वी अर्जुनने भी आपका बचन सुनके निज गृहमें स्थित समस्त धन, गृह तथा प्राण पर्य्यन्त आपको निवेदन किया। हे राजर्षि! आपके पुत्र धर्म्मराजने धन, प्राण तथा गृहमें जो कुछ वस्तु है, वह सब आपको ग्रहण करनेके लिये आज्ञा की; परन्तु महाबाहु

भीमसेनने दुःखोंको स्मरण करके मान छोड़के हुए बहुत कष्टसे स्वीकार किया; उसे देखकर धर्म्मशील युधिष्ठिर तथा अर्जुनने महाबाहु भीमसे बहुत विनती करके सुहृदता स्थापन की; उसके लिये धर्म्मराजने आपको कहा है, कि "भीमने पहले वैरको स्मरण करके जो अन्याय आचरण किया है, उससे वह भीमके विषयमें क्रोध न करें। हे नराधिप! जब कि क्षत्रियोंका धर्म्म ही ऐसा है, तब इस वृकोदरने युद्ध तथा क्षत्रधर्म्ममें रत रहनेसे ऐसा आचरण किया है। हे नरनाथ! इसलिये मैं और अर्जुन भीमके निमित्त आपसे क्षमा मांगता हूं, आप प्रसन्न होइये, हमलोगोंके जो कुछ है, आप उन समस्त वस्तुओंके प्रभु हैं। हे पृथ्वीपति! जब कि आप इस राज्य तथा हमारे प्राणके भी प्रभु हैं, तब आपको जितने धनकी इच्छा हो, उतना दान करिये; पुत्रोंके और्द्ध्वदैहिक कार्य्यके लिये आप हमारे पाससे उत्तम हार, रत्न, गऊ, दास, दासी तथा बकरे प्रभृति समस्त धन लेकर ब्राह्मण, दीन, अन्ध और कृपणोंको दान करिये।

हे महाराज! पार्थ तथा धनञ्जयने आपको ऐसा ही कहके मुझे बहुतसा अन्न, पान, रस प्रभृतिकी सभा, गौवोंको जल पीनेके निमित्त तालाब और अन्यान्य विविध पुण्यजनक कार्य्य करनेके लिये आज्ञा किया, इसलिये अब इसके बाद जो कुछ करना हो, आप उसे करिये।

हे जनमेजय! जब विदुरने ऐसा कहा तब धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके विषयमें अत्यन्त सन्तुष्ट होके उन्हें अभिनन्दित करते हुए कार्त्तिकी पौर्णमासीमें महादान करनेकी इच्छा की।

१३ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज धृतराष्ट्र, विदुरका ऐसा वचन सुनके राजा युधिष्ठिर तथा [illegible] अर्जुनके कार्य्यसे [illegible] प्रसन्न हुए, तब अनन्तर उन्होंने भीष्म, पुत्रों और सुहृदोंके निमित्त निर्व्वापनपूर्व्वक सहस्र ऋषिसत्तम ब्राह्मणोंको अन्न-पानादि भोजन कराके द्रोण, भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, राजा दुर्य्योधन, अन्यान्य पुत्रगण और जयद्रथ प्रभृति सुहृदोंके नाम लेकर उनके उद्देश्यसे उन ब्राह्मणोंको सवारी, वस्त्र, सुवर्ण, मणि, रत्न, दास, दासी, अलाविक और राङ्कव कम्बल, विविध रत्न ग्राम, खेत, सुसज्जित घोड़े, हाथी और आभूषणोंसे युक्त उत्तम कन्या प्रदान किया।

उस समय युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार बहुतसे धन-रत्न और अनेक दक्षिणायुक्त वह श्राद्धयज्ञ इस प्रकार वर्द्धित हुआ, कि वहां गणक तथा लेखक पुरुष युधिष्ठिरके वचन अनुसार राजा धृतराष्ट्रसे बार बार पूछने लगे, कि इन लोगोंको क्या दान करना होगा, उसके लिये आप आज्ञा करिये, आप जो आज्ञा करेंगे, वही इस स्थानमें उपस्थित है। उस समय वे लोग धृतराष्ट्रके वचनको सुनके बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके वचन अनुसार जो लोग एक सौ दानके पात्र थे, उन्हें सहस्र और सहस्र दानवाले पात्रको दस सहस्र परिमाणसे धन दान करने लगे, जैसे बादल जलकी वर्षा करके शस्योंको पुष्ट करता है, वैसे ही उन नरनाथने वसुकी वर्षा करते हुए ब्राह्मणोंको परितृप्त किया। हे महाप्राज्ञ! तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिरने उस श्राद्धयज्ञमें अन्न पान तथा रसके प्रवाहसे सब वर्णोंको ही प्लावित किया। हे महाराज! वस्त्र, धन और समस्त रत्न जिसका फेन, मृदङ्गसमूह महाध्वनि गऊ और [illegible] मकर तथा घोड़े, अनेक प्रकारके रत्नोंका आकर ग्राम और उत्तम [illegible] मणि तथा सुवर्ण प्रभृति जल और [illegible], [illegible] दानरूपी समुद्रके [illegible] किया। हे महाराज! इस [illegible] इस प्रकार था,

पौत्र, पितरगण और अपना तथा गान्धारीका अर्द्ध दैहिक कार्य्य पूरा किया। अनन्तर जब वह बहुत दान करके थक गये, तब नरनाथ युधिष्ठिरने उस दान यज्ञको निवर्त्तित किया। कुरुपति राजा धृतराष्ट्रने नट, नर्त्तक और नृत्य गीतादि समन्वित बहुतसा अन्न, रस और दक्षिणायुक्त दानरूपी महायज्ञको इस ही प्रकार समाधान किया।

हे भरतश्रेष्ठ। अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र इस ही प्रकार दस दिनतक अनेक भातिसे धनदान करके पुत्रों और पौत्रोंके निकट अऋणी हुए।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धीमान् अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रने गान्धारीके सहित वन वासका समय निश्चय करते हुए वीरश्रेष्ठ पाण्डु पुत्रोंको बुलाके बिधिपूर्व्वक उन्हें अभिनन्दित किया। अनन्तर वह कार्त्तिकी पौर्णमासीमें वेद पारग ब्राह्मणोंके द्वारा उदवसनीय नाम यज्ञ पूरा करके बल्कल तथा अजिन पहरके अग्नि-होत्रको आगेकर बधूगणोंसे घिरके निज गृहसे बाहिर हुए। अनन्तर विचित्र बीर्य्यपुत्र राजा धृतराष्ट्रके गृहसे बाहिर होनेपर उस समय कुरुश्रेष्ठ पाण्डव तथा कुरुबंशीय अन्यान्य स्त्रियोंके रोदनकी ध्वनि प्रकट हुई। उसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने लाज तथा विचित्र पुष्पोंसे उस गृहकी पूजा तथा धनसे सेवकोंकी तुष्टि करते हुए बिषयादि परित्याग करके गमन किया।

अनन्तर राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़के कम्पित शरीर तथा सवाष्पकण्ठसे युक्त ऊंचे स्वरसे महानाद करते हुए हे साधो तात। आप कहां जायंगे? ऐसा बचन कहके पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय भारतप्रधान अर्ज्जुनने तीव्र दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर बार बार लम्बी सांस छोड़ते हुए दीन जनोंकी भांति अवसन्न होकर युधिष्ठिरको "आप ऐसा न होइये," इस प्रकार कहके उन्हें धारण किया। अनन्तर वृकोदर महावीर फाल्गुन, माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव, बिदुर, सञ्जय, वैश्यापुत्र युयुत्सु और गौतमके सहित धौम्य प्रभृति विप्रगण वाष्पसह कण्ठसे उनका अनुगमन करने लगे। कुन्ती नेत्र बांधके चलनेवाली गान्धारीके निज कन्धेपर स्थित हाथको धरके चलने लगी। राजा धृतराष्ट्र भी गान्धारीके कन्धेपर हाथ रखके बिश्वासी होकर चलने लगे। सात्त्वतकुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा, कृष्णवर्णवाली द्रौपदी, बालापत्या उत्तरा, कुरुराजपत्नी, उलूपी, चित्राङ्गदा और अन्यान्य स्त्रियें बधूगणके बीच घिरके राजाके सङ्ग चलीं। उसके अनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी स्त्रियें उस ध्वनिको सुनकर चारों ओरसे वहां आके निपतित हुईं। हे महाराज। पहले पाण्डवोंके जूएकी खेलमें हारके कौरव-सभासे गमन करनेपर हस्तिनापुरवासी जिस प्रकार दुःखित हुए थे, धृतराष्ट्रके निकलनेके समयमें भी वे लोग उस ही प्रकार दुःखित हुए। ऐसा ही नहीं, बरन जो सब स्त्रियें कभी चन्द्र तथा सूर्य्यको भी नहीं देखने पाती थीं, वे भी उस कुरुपति नरेन्द्र धृतराष्ट्रके महावनमें जानेके समय अत्यन्त शोकार्त्त होकर राजमार्गमें बाहिर हुईं।

१५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल। उसके अनन्तर समस्त प्रासाद, अट्टालिका तथा भूमण्डलके बीच नर नारियोंका महान् शब्द प्रकट हुआ। बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र हाथ जोड़के तथा कांपते हुए शरीरसे अत्यन्त कष्टके सहित नरनारियोंसे परिपूरित राजमार्गसे बाहिर हुए। अनन्तर उन्होंने बड़े दरवाजेसे हस्तिनापुरके बाहिर होकर उस स्थानमें समा-

गत लोगोंको क्रमसे बिदा किया। महामन्त्री सूत गवल्गणपुत्र सञ्जय और विदुरने राजा धृतराष्ट्रके सङ्ग वनमें जानेके लिये स्थिर सङ्कल्प किया। तब पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्रने कृपाचार्य्य और महारथ युयुत्सुको युधिष्ठिरके समीप सौंपकर उन लोगोंको निवृत्त किया। उस समय पुरवासियोंके लौटनेपर राजा युधिष्ठिर अन्तःपुरवासी स्त्रियोंके सहित धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाके वहांसे निवृत्त हुए। वह धृतराष्ट्रकी अनुगमनाभिलाषिणी वनमें जानेकी इच्छा करनेवाली निज माता कुन्तीसे बोले, हे माता! मैं राजाके सङ्ग जाऊंगा, तुम लौट जाओ। हे रानी! तपस्याके लिये निश्चय किये हुए ये राजा धृतराष्ट्र वनमें जावें परन्तु आपको वधूगणोंके बीच घिरके नगरमें चलना उचित है।

उस समय कुन्ती धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके आंखोंमें आंसू भरकर गान्धारीको दृढ़ताके सहित धरके गमन करनेमें उद्यत हुई।

कुन्ती बोली, हे महाराज! यह सहदेव सदा तुम्हारा और मेरा अनुरक्त है, इसलिये तुम इसके विषयमें कभी विरक्त न होना। युद्धमें सदा अपराङ्मुख कर्णको स्मरण करना, वह वीर उस समय दुर्बुद्धिसे ही संग्राममें मारे गये। हे पुत्र! मैं मन्दभागिनी हूं, मेरा हृदय निश्चय ही लोहमय है, क्यों कि सूर्य्यपुत्रको न देखकर अबतक भी सौ टुकड़े होकर न फट गया? हे अरिदमन! जब कि सूर्य्यनन्दन इस प्रकार चले गये, तब उस विषयमें मैं और क्या करूंगी? तब मेरा उससे एक महान् दोष हुआ है, कि पहले मैंने कर्णको सूर्य्यसे उत्पन्न हुआ कहके प्रकाश नहीं किया। हे अरिमर्दन महाबाहो! तुम भाइयोंके सहित उस सूर्य्यपुत्रके उद्देश्यसे उत्तम रीतिसे दान करना। हे शत्रुकर्षण! [illegible]। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सदा द्रौपदीके प्रियकार्यमें रत रहें। हे [illegible]। आज तुम्हारे ऊपर [illegible]

भार अर्पित हुआ है, इसलिये तुम इन सब कार्य्योंको पूरा करना। मैं वनमें ईश्वर नाम स्मरण तथा गान्धारी और धृतराष्ट्रका अनुगमन करके इनकी चरणसेवा करती हुई मलपङ्किनी तपस्विनी गान्धारीके सङ्ग वास करूंगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, चित्तको वशमें किये हुए बुद्धिमान धर्म्मात्मा युधिष्ठिर कुन्तीका ऐसा वचन सुनके भाइयोंके सहित अत्यन्त दुःखित होकर कुछ भी उत्तर देनेमें समर्थ न हुए।

चिन्ता शोकपरायण धर्म्मराज युधिष्ठिर मुहूर्त्तभर चिन्ता करके दीनभावसे निज जननी कुन्तीसे बोले, हे माता! तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? आपको ऐसा करना उचित नहीं है; मैं तुम्हें वनमें जानेके निमित्त आज्ञा न करूंगा, आप हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवें। हे प्रियदर्शने! पहले हम लोगोंके नगरसे बाहिर जानेमें उद्यत होनेपर तुमने हम लोगोंको विदुलाके वचनसे उत्साहित किया था, इस समय क्या हम लोगोंका तुम्हें परित्याग करना उचित होता है? मैंने पुरुषश्रेष्ठ वासुदेवके समीप तुम्हारे बुद्धिलक्षण सुनके उसहीके अनुसार राजाओंको मारके यह राज्य पाया है। हे माता! मैंने तुम्हारा जो बुद्धिमान सुना थी, आज तुम्हारी वह बुद्धि कहां है? पहले तुम मुझे क्षत्रधर्म्ममें निरत करना चाहती थीं, इस समय उससे च्युत होनेकी इच्छा करती हो? तुम हम राज्य, यशस्विनी पुत्रवधू तथा हम लोगोंको परित्याग करके किस प्रकार दुर्गम वनमें वास करोगी? हे माता! मुझपर प्रसन्न होके वनमें जानेसे निवृत्त होजाओ।

[illegible]

तुम्हारी यह बुद्धि कहां थी? तुम किस कारण हम लोगोंको छोड़के बनमें जानेकी इच्छा करती हो? यदि तुम्हारा ऐसा ही अभिप्राय था, तो पहले क्यों हम लोगोंके द्वारा पृथ्वीका नाश कराया? और हम लोग बाल्य अवस्थामें ही बनको गये थे, तब हम लोगोंको तथा दुःखशोकयुक्त माद्रीपुत्र नकुल सहदेवको क्या बनसे बुलवाया। हे यशस्विनि माता! तुम प्रसन्न हो जाओ, आज बनमें न जाकर धर्म्मराजके बाहुबलसे उपार्ज्जित इस ऐश्वर्य्यको भोग करो।

भाविनी कुन्तीने शीघ्र बनबासके निमित्त निश्चय करके पुत्रोंके अनेक प्रकारसे विलापयुक्त बचनको न सुना और न ग्रहण किया। तब द्रौपदी विलखबदन होकर रोदन करती हुई सुभद्राके सहित बनमें जानेके लिये उद्यत निज सास कुन्तीकी अनुगामिनी हुई। बनबासका निश्चय किये हुई महाबुद्धिमती कुन्ती रोती हुए पुत्रोंको बार बार देखती हुई गमन करने लगी। पाण्डवगण भी सेवकों तथा अन्तःपुरवासियोंके सङ्ग उसका अनुगमन करने लगे। तिसके अनन्तर कुन्ती अत्यन्त कष्टसे आसू रोककर पुत्रोंसे कहने लगी।

१६ अध्याय समाप्त।

कुन्ती बोली, हे महाबाहु पाण्डुपुत्र नरपतिगण! तुम लोगोंने जो कहा, वह सत्य है, परन्तु पहले मैंने तुम लोगोंको जो कहा वा तुम्हारे निमित्त जो कुछ किया है; उन सब कार्य्योंको तुम लोगोंके जूए, राज्य और सुखसे भ्रष्ट, स्वजनोंसे पराभूत तथा अवसन्न होनेपर उत्साह बढ़ानेके निमित्त ही हुआ जानो। हे पुरुषप्रवरगण! पाण्डुकी सन्तति तथा तुम लोगोंका यश किसी प्रकार लुप्त न हो, इस ही निमित्त मैंने तुम लोगोंको हर्षित किया था; इन्द्र तथा देवताओंके सदृश पराक्रमशाली तुम लोगोंको दूसरोंका सुखापेक्षी न होनेके लिये मैंने ऐसी बिवेचना करके वैसा किया था। हे युधिष्ठिर! तुम धार्म्मिकश्रेष्ठ और सुरराजसदृश राजा हो, इसलिये जिसमें फिर तुम लोगोंको उनके बीच किसी प्रकारका क्लेश भोगना न पड़े, ऐसा ही समझकर मैंने तुम्हें हर्षित किया था, दश हजार हाथियोंके समान बलशाली विक्रम तथा पुरुषार्थमें विख्यात इस भीमसेनके विनाशकी आशङ्कासे मैंने तुम लोगोंके हर्षको बढ़ाया था। भीमसेनके भाई इन्द्रसदृश यह विजय किसी प्रकार अवसन्न न हों, इस ही निमित्त मैंने तुम लोगोंको हर्ष उत्पन्न किया। गुरुके आज्ञानुवर्त्ती ये नकुल और सहदेव किसी प्रकार क्षुधासे अवसन्न न हों, ऐसा ही समझके मैंने तुम लोगोंके उत्साहको विशेष रीतिसे बर्द्धित किया था। यह दीर्घाङ्गी श्यामवर्णवाली विशालनयनी द्रौपदी सभास्थलमें वृथा क्लेश न पावे, यही समझकर मैंने वैसा किया था।

हे भीम! जब दुःशासनने मूर्खतासे तुम लोगोंके सम्मुखमें ही कदलीकी भांति कम्पित शरीरवाली स्त्रीधर्म्मिणी वरिष्टाङ्गी जूएमें हारी हुई इस द्रौपदीको दासीकी भांति परिकर्षित किया, तभी मैंने इस कुरुकुलको अपने समीप पराजित समझा था। जब द्रौपदी कुररीकी भांति विलाप करती हुई अन्य नाथकी अभिलाष नहीं की, उस समय मेरे श्वशुर प्रभृति कौरवगण अत्यन्त दुःखित हुए। हे नृप! जिस समय हतबुद्धि पापात्मा दुःशासनने इसका केश पकड़ा, उस समय मैं मुग्ध होगई थी। हे पुत्रगण! उस समय मैंने बिदुलाके बचनके अनुसार तुम लोगोंको हर्षित किया था। हे पुत्रगण उस समय पाण्डुका यह राजवंश मेरे पुत्रोंसे बिनष्ट न हो, इस ही अभिप्रायसे मैंने तुम लोगोंका हर्ष बर्द्धित किया था; जिसका वंश प्रनष्ट होता है वे पाण्डुके पुत्र, पौत्र और पृथ्वी

पति कौरवगण सुकृत लोकोंको न फल प्राप्त कर सकेंगी।

हे पुत्रगण! पहले मैंने स्वामीका विपुल राज्यफल भोग किया है, सब प्रकारसे महादान किया तथा विधिपूर्व्वक सोमपान किया है। मैंने निज फलके निमित्त श्रीकृष्णको नियुक्त नहीं किया, केवल विदुलाके प्रलाप हेतु तथा पालन करनेके निमित्त वैसा किया था। हे पुत्रगण! मैं पुत्रसे निर्ज्जित राज्यफलकी कामना नहीं करती; हे विभु! मैं केवल तपस्याके सहारे पुण्यजनक पतिलोककी कामना करती हूं। हे युधिष्ठिर! मैं वनवासी सास-श्वशुरकी सेवा करती हुई तपोबलसे शरीर सुखाऊंगी; हे कुरुप्रवीर! इसलिये तुम भीमसेनादिके सहित लौट जाओ, तुम्हारी बुद्धि धर्म्ममें रत रहे और तुम्हारा मन अत्यन्त उच्चपदपर आरूढ़ होवे।

१७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजसत्तम! पापरहित पाण्डवगण कुन्तीका ऐसा वचन सुनके लज्जित होकर द्रौपदीके सहित निवृत्त हुए। उस समय कुन्तीके इस प्रकार गमन करनेपर अन्तःपुरवासीगण उसे देखके अत्यन्त शोकार्त्त होकर रोदन करने लगे, उनके रोदन करनेसे तुमुलशब्द हुआ। उस समय पाण्डवगण पृथाको फिर निवृत्त न करके धृतराष्ट्रको प्रदक्षिणा करते हुए प्रणाम करके निवृत्त हुए।

अनन्तर महातेजस्वी अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र गान्धारी और विदुरको सम्भाषणपूर्व्वक ग्रहण करके बोले, युधिष्ठिरने जो कहा है, वह सब सच है; इसलिये युधिष्ठिरकी जननी कुन्तीदेवी बहुओंके सहित निवृत्त होवे। [illegible] तथा [illegible] परित्याग करके [illegible] भांति [illegible] [illegible]

हो इसके महादान तथा तपस्या कर सकेगी। हे धर्म्म जाननेवाली गान्धारी! मैं बधूकी सेवासे अत्यन्त ही परितुष्ट हुआ हूं, इसलिये तुम इसे निवृत्त होनेकी आज्ञा करो। सुबलपुत्री गान्धारीने राजाका ऐसा वचन सुनके कुन्तीको राजवाक्य सुनाया और स्वयं भी विशेष करके अनेक कथा कही; परन्तु वनवासके निमित्त निश्चय करनेवाली धर्म्मपरायण सती कुन्तीदेवीको किसी प्रकार लौटानेमें समर्थ न हुई। उस समय कुरुस्त्रीगण कुन्तीका धीरज और व्यवसाय मालूम करके तथा कुरुपति गणोंको निवृत्त होते देखकर ऊंचे स्वरसे रोदन करती हुई निवृत्त हुईं। अनन्तर पृथापुत्रों तथा बधूगणोंके निवृत्त होनेपर महाप्राज्ञ राजा धृतराष्ट्रने वनमें गमन किया। शोक दुःखपरायण पाण्डवगण अत्यन्त दीनभावसे स्त्रियोंके सहित सवारीके द्वारा नगरमें आये; उस समय स्त्री, वृद्ध और बालकोंके सहित हस्तिनापुर मानो उत्सवरहित हुआ। जातमन्यु पाण्डवगण कुन्तीके विरहसे गो-विहीन बछड़ेकी भांति दुःखार्त्त तथा निरुत्साह हुए।

इधर राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूर जाके भागीरथीके तटपर वास किया। वहां तपोवनमें वेदपारग ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्व्वक अग्नि जलाकर प्रकाशित हुए; उस समय वह वृद्ध राजा विधानके अनुसार अग्निहोत्रकी उपासना तथा आहुति दान करके [illegible] प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे। हे भारत! विदुर और सञ्जयने सन्ध्याके समय सूर्य्यकी उपासना करके कुशोंसे राजाके लिये शयन तयार किया। अनन्तर [illegible]

उस समय ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि समुत्थित तथा पावकपुञ्ज प्रज्वलित होनेसे वह रात्रि ब्राह्मीकी भांति उनलोगोंको प्रीतिवर्द्धिनी हुई। तिसके अनन्तर रात बीतनेपर भोरको उपवासपरायण धृतराष्ट्र प्रभृति पुरुषोंने पौर्व्वाह्निक कार्य्योंको पूरा करते हुए विधिपूर्व्वक अग्निमें होम करके इधर उधर देखते हुए यथाक्रमसे उत्तर ओर प्रस्थान किया। हे नरनाथ! शोच्यमान पुरवासी तथा जनपदवासियोंके निमित्त शोकपरायण धृतराष्ट्र प्रभृतिका प्रथम दिन उस भागीरथीके तटपर वास अत्यन्त दुःखकर हुआ था।

१८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने विदुरकी सम्मतिके अनुसार पुण्यमान पुरुषोंके वासके योग्य उस गङ्गाके तटपर ही निवास किया। हे भरतर्षभ! वहांपर बहुतसे वनवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण उनकी सेवा करने लगे। राजाने उनलोगोंके बीच घिरकर अनेक प्रकारके बचनसे उनलोगोंको परितुष्ट करते हुए विधिपूर्व्वक शिष्योंके सहित ब्राह्मणोंकी सम्मानना करके चलनेके लिये आज्ञा किया। फिर उन्होंने यशस्विनी गान्धारीके सहित सायंकालमें गङ्गाकिनारे जाकर शौचादि कार्य्य पूरा किया। हे भारत! विदुरादि अन्यान्य पुरुषोंने पृथक् रीतिसे तीर्थमें आगमन करते हुए वहां शौचादि कार्य्य पूरा किया। हे राजन्! तिसके अनन्तर भोजराजपुत्री कुन्ती शौचादिसे निवृत्त होनेपर वृद्ध श्वशुर धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको गङ्गातटपर ले आई, याजक गणोंने वहांपर राजाके निमित्त कुशास्तृत यज्ञवेदी तैयार की, उस सत्यसङ्गर राजा धृतराष्ट्रने वहां अग्निमें होम किया, फिर उन्होंने नियत तथा संयतेन्द्रिय होकर अनुचरोंके सहित कुरुक्षेत्रमें गमन किया वह बुद्धिमान पृथ्वीपति धृतराष्ट्र आश्रममें आगमन करके मनीषी राजर्षि शतयूपसे मिले।

हे परन्तप! वह शतयूप केकयदेशके महाराज थे; उन्होंने पुत्रको पार्थिव ऐश्वर्य्य तथा राज्यका अधिपति करके वनको अवलम्बन किया था। राजा धृतराष्ट्र उनके सहित व्यासदेवके आश्रममें गये, राजा शतयूपने वहां विधिपूर्व्वक कुरुपतिको प्रतिग्रह किया। अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने वहां दीक्षा पाकर उस शतयूपके आश्रममें निवास किया। हे महाराज! महाबुद्धिमान राजा शतयूपने वेदव्यासकी अनुमतिक्रमसे राजा धृतराष्ट्रसे समस्त वन्यविधि विशेष रीतिसे कही, तब महात्मा पृथ्वीपति धृतराष्ट्र अनुचरोंके सहित तपस्यामें नियुक्त हुए। हे महाराज! समान तपचारिणी गान्धारी देवी भी वल्कल तथा अजिन धारण करके कुन्तीके सहित तपस्यामें नियुक्त हुई। हे नरनाथ! उन सब लोगोंने कर्म्म, मन, बचन और नेत्रके सहित इन्द्रियोंको संयत करते हुए परम तपस्या अवलम्बन की। वह पृथ्वीपति धृतराष्ट्र वहां महर्षिकी भांति मोहरहित होकर अस्थिचर्म्म अवशिष्ट शुष्क मांसयुक्त, शरीरको जटा अजिन तथा वल्कलके द्वारा ढांकके तीव्र तपस्या करने लगे। धर्म्मार्थवित् लोकातीत बुद्धिमान जितात्मा क्षत्ता विदुर भी सञ्जयके सहित वल्कल तथा चीरवसन पहरके सस्त्रीक धृतराष्ट्रके निकट अत्यन्त घोर तपस्या करने लगे।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ महातपस्वी नारद, पर्व्वत, शिष्योंके सहित द्वैपायन मनीषी सिद्धगण और परम धार्म्मिक वृद्ध राजर्षि शतयूप, ये सब कोई राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करनेके लिये उस स्थानमें आये। हे महाराज! कुन्तीने उन समागत

तपस्वियोंकी विधिपूर्व्वक परिचर्य्या की, वे सब कोई उनकी सेवासे प्रसन्न हुए। हे तात! उन परमर्षियोंने वहां आपसमें धर्म्मयुक्त वचनकी पर्य्यालोचना करते हुए महात्मा नरनाथ धृतराष्ट्रको आनन्दित किया, तिसके अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे सर्व्व प्रत्यक्षदर्शी देवर्षि नारद यह वार्त्ता कहने लगे।

नारद मुनि बोले, शतयूपके पितामह कैकयाधिपति श्रीमान् नरनाथ सहस्रचित्य निःशङ्कचित्त थे। उस धर्म्मात्मा सहस्रचित्य परम धार्म्मिक जेठे पुत्रको राज्यभार अर्पण करके वनमें प्रवेश किया। महातेजस्वी पृथ्वीपति सहस्रचित्यने तपस्याकी पराकाष्ठा लाभ करके अन्तमें प्रदीप्त इन्द्रलोक पाया. मैंने महेन्द्रभवनमें जाके देखा, कि बहुत पहलेके देखे हुए नरनाथ सहस्रचित्य तपस्याके सहारे निष्पाप होकर वहां-निवास करते हैं और भगदत्तके पितामह राजा शैलालयने तपोबलसे सुरेन्द्रभवनमें गमन किया है। हे राजन्! इन्द्रसदृश राजा पृषध्रने भी तपोबलके सहारे इसलोकसे स्वर्गमें गमन किया है। हे नरनाथ! इस वनमें ही मान्धाताके पुत्र राजा पुरुकुत्सने महती सिद्धि पाई है, नदियोंमें श्रेष्ठ नर्म्मदा जिसकी भार्य्या है, वह राजा इस वनमें तपस्या करके सुरलोकमें गया है। हे राजन्! परम धार्म्मिक राजा शशलोमाने इस वनमें पूरी रीतिसे तपस्या करके स्वर्गलोक पाया है। हे राजन्! आप भी द्वैपायनकी कृपासे इस वनमें तपोबल लाभ करके दुष्प्राप्य अग्र्यागति पावेंगे। हे राजशार्दूल! आप भी तपस्याके अन्तमें शोभासे परिवृत होकर गान्धारीके सहित उन महात्माओंकी गति प्राप्त करेंगे। हे महाराज! पाण्डु इन्द्रके निकट रहके भी सदा आपको स्मरण करते हैं, वह आपको मङ्गलयुक्त करेंगे। हे नरनाथ! [illegible] यह [illegible] तुम्हारी [illegible] करके [illegible]

तथा गान्धारीकी सेवा करनेसे वह स्वामीकी सलोकता प्राप्त करेगी, [illegible] सनातन धर्म्म है और विदुर महात्मा युधिष्ठिरके निकट गमन करेंगे, सञ्जय तपस्याके सहारे इसलोकसे सुरलोकमें जायंगे।

वैशम्पायन मुनि बोले, कुरुपति महात्मा विद्वान् धृतराष्ट्रने नारद मुनिका ऐसा वचन सुनके भार्य्याके सहित अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके वचनकी प्रशंसा करके उनकी पूजा की। हे राजन्! तिसके अनन्तर ब्राह्मणोंने राजा धृतराष्ट्रकी प्रीतिके अनुसार अत्यन्त सन्तुष्ट होकर नारद मुनिकी पूजा की, उस समय जब द्विजवरगण वैसे वचनसे नारद मुनिकी प्रशंसा कर रहे थे, तब राजर्षि शतयूप नारदसे बोले, हे महातेजस्वी! यह क्या ही आश्चर्य है, कि आपने हमारी, कुरुराजकी तथा सब लोगोंकी ही श्रद्धा बढ़ाई है। हे लोकपूजित देवर्षि! धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना है, मैं उसे कहता हूं, सुनिये। हे महामुनि! आपको सबका वृत्तान्त तथा तत्त्व विदित है, विशेष करके आप दिव्य दृष्टिसे सब प्राणियोंकी विविध गति देखते रहते हैं, आपने सब राजाओंकी इन्द्रकी सलोकता प्राप्तिका विवरण वर्णन किया, परन्तु ये राजा धृतराष्ट्र कौनसा लोक प्राप्त करेंगे—इस विषयमें कुछ भी न कहा। हे विभु! इसलिये इस राजाको किस समय कौनसा स्थान प्राप्त होगा, उसे मैं आपके समीप सुननेकी इच्छा करता हूं, आप उसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। दिव्यदर्शी महातपस्वी नारद मुनि शतयूपका ऐसा वचन सुनके सबके [illegible] वचन कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे राजर्षि! मैंने [illegible] इन्द्रके स्थानमें गमन किया, [illegible]

वार्त्ता ही वहां होरही थी; मैंने वहां सुरराजके मुखसे ऐसा सुना, कि इस राजा धृतराष्ट्रकी परमायु तीन वर्ष अवशिष्ट है; उसके अनन्तर ये ऋषिपुत्र महाभाग धृतराष्ट्र तपोबलसे सब पापोंको जलाकर दिव्य आभूषणोंसे भूषित और राजाओंसे सत्कृत होकर गान्धारीके सहित दिव्य बिमानपर चढ़के कुवेरभवनमें जायंगे और इच्छानुसार देव, गन्धर्व्व तथा राचसलोकमें बिचरण कर सकेंगे। हे राजन्! आपने मुझसे जो विषय पूछा, वह देवलोकमें गोपनीय होनेपर भी आपलोगोंके श्रुतज्ञ होने तथा तपसे सब पापोंके जलानेसे और आपलोगोंके विषयमें मेरी महती प्रीति रहनेसे मैंने आपसे यह वृत्तान्त कहा है।

श्रीबैशम्पायन मुनि बोले, देवर्षि नारदके ऐसे मधुर बचनको सुनके राजाओंके सहित सब कोई सुस्थचित्त तथा परम परितुष्ट हुए। उन लोगोंने इस ही प्रकार बचनके सहारे मनीषी धृतराष्ट्रको आश्वासित करके इच्छानुसार सिद्ध गति अवलम्बन की।

२० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन् मुनि बोले, हे राजन्! कौरवेन्द्र महाराज धृतराष्ट्रके बनमें जानेके अनन्तर मातृशोकयुक्त पाण्डवगण दुःखित तथा शोकित हुए। पुरबासीलोग जननाथ धृतराष्ट्रके निमित्त शोक करने लगे, ब्राह्मण लोग शोकार्त्त होकर धृतराष्ट्रके सम्बन्धमें ऐसा कहने लगे, कि वह वृद्ध राजा महाभागा गान्धारी और पृथा कुन्ती, ये लोग निर्ज्जन बनमें किस प्रकार वास करते हैं? वह सुखके योग्य प्रज्ञाचक्षु हतपुत्र राजर्षि दुःखजनक महावनमें कैसी दशामें निवास कर रहे हैं? कुन्तीने राजश्री परित्याग करके पुत्रोंको बिना देखे किस प्रकार बनवासकी इच्छा की? आत्मज्ञ विदुर भ्राताकी सेवा करते हुए किस अवस्थामें हैं और स्वामि पिण्डानुपालक गवल्गणपुत्र सञ्जय भी किस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं? पुरवासी आबाल वृद्ध सब कोई चिन्ता तथा शोकसे परिपूरित होकर आपसमें एक दूसरेके साथ इस ही प्रकार बार्त्तालाप करने लगे उस समय अत्यन्त शोकसे युक्त पाण्डवगण बूढ़ी माता, बूढ़े हतपुत्र जननाथ धृतराष्ट्र महाभागा गान्धारी और महाबुद्धिमान विदुरके निमित्त शोक करते हुए अधिक समयतक पुरके बीच वास न कर सके। अधिक क्या कहें, उन लोगोंके निमित्त सदा चिन्ता करनेवाले पाण्डुपुत्रोंको राज्य, स्त्री वा वेदाध्ययन, किसीसे भी तृप्ति न हुई, बल्कि उन लोगोंने बार बार नरनाथ धृतराष्ट्रको तथा ज्ञाति वध स्मरण करते हुए चिन्तासे व्याकुल होकर अपनेको अत्यन्त निकृष्ट समझा और युद्धके अगाड़ी बालक अभिमन्यु, संग्राममें न भागनेवाले महाबाहु कर्ण तथा सुहृद द्रुपदपुत्रोंका विनाश स्मरण करके क्षुब्धचित्त हुए। हे भारत! वे लोग पृथिवीको रत्नविहीन तथा वीरोंसे रहित देखकर सर्व्वदा चिन्ता करते हुए शान्ति लाभ न कर सके; हतपुत्रा द्रौपदी तथा भामिनी सुभद्रा देवी, ये दोनों दुःखिनीकी भांति अप्रीतियुक्त होरहीं। परन्तु तुम्हारे पूर्व्व पितामहोंने तुम्हारे पिता उत्तरापुत्र परीक्षितको देखकर प्राण धारण किया।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वे वीरवर पुरुषश्रेष्ठ मातृनन्दन पाण्डवगण माताको स्मरण करते हुए इस ही प्रकार अत्यन्त दुःख भोगने लगे। पहले जो लोग राजकार्य्यमें नियुक्त थे, उस समय वे सब कोई नगरके बीच पूरीरीतिसे राजकार्य्य करनेमें समर्थ न हुए; वे लोग भी इस प्रकार शोकयुक्त हुए, कि किसीके पूछनेपर भी उत्तर देने तथा किसी विषयको अभिनन्दन करनेमें समर्थ न हुए। गम्भीरतामें समुद्रसदृश

दुराधर्ष वे सब वीरगण अत्यन्त शोकसे ज्ञान रहित होकर सदा चेतरहितकी भांति निवास करने लगे।

तिसके अनन्तर पाण्डवगण जननीके निमित्त इस प्रकार चिन्ता करने लगे, कि वह अत्यन्त कृशाङ्गी पृथा वह दम्पतीको किस प्रकार ले चलती है? वह हतपुत्र महीपाल आश्रयरहित हो पत्नीके सहित किस प्रकार अकेले श्वापद-सेवित उस वनमें वास करते हैं? वह महा-भागा हतबान्धव गान्धारी देवी निर्जन वनमें किस प्रकार बूढ़े अन्ध पतिका अनुसरण करती है? पाण्डवोंके इस ही प्रकार उत्कण्ठतापूर्वक विलाप करते रहनेपर कुछ समयके अनन्तर उन लोगोंको धृतराष्ट्रके देखनेकी अभिलाष हुई। अनन्तर सहदेव राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके यह वचन बोले, अहो! आपके चित्तको गमनोन्मुख देखता हूं। हे राजेन्द्र! मैं गौरव-वशसे सहसा जो चलनेकी बात नहीं कह सकता था, इस समय वह गमनकाल उपस्थित हुआ है, अच्छाही हुआ मैं उस बूढ़ी कुशकाश परिवृता जटाधारिणी तपस्विनी कुन्ती देवीको देखूंगा। अहो! जो सदा प्रासाद तथा कोठेके ऊपर रहती हुई बूढ़ी हुई जिसने कभी सुखके अतिरिक्त दुःख नहीं देखा, इस समय उस अत्यन्त दुःखित परिश्रान्त जननीको कब देखूंगा? हे भरतर्षभ! मर्त्यलोगोंकी गति निश्चय ही अनित्य है, क्या कि कुन्ती राजपुत्री होकर दुःखके सहित जङ्गलमें वास करती है।

स्त्रियोंमें मुख्य द्रौपदी देवीने सहदेवका वचन सुनकर राजा युधिष्ठिरको सम्मानपूर्वक अभिनन्दित करके कहा। हे नरनाथ! यदि वह पृथादेवी जीवित हों, तो मैं फिर [illegible] [illegible] [illegible] दर्शन पानेसे [illegible] हुआ। हे राजेन्द्र! आपकी [illegible] [illegible] [illegible] नरेन्द्र! आप शीघ्र हम लोगोंको उनके दर्शन-रूपी मङ्गलकार्यमें नियुक्त करिये। हे राजन्! आपको मालूम हो, कि ये वधूगण कुन्ती गान्धारी तथा श्वशुरको देखनेकी इच्छासे आगे पाव रखती हुई निवास कर रही हैं।

हे भरतर्षभ! नरनाथ युधिष्ठिर द्रौपदी देवीका ऐसा वचन सुनके सेनाध्यक्षोंको बुलाके यह बात बोले, कि मैं उस वनवासी महीपति धृतराष्ट्रको देखनेके लिये जाऊंगा, इसलिये तुम लोग हमारे बहुतसे रथ तथा हाथियोंसे युक्त समस्त सेनाको सज्जित होनेके लिये आज्ञा करो। अनन्तर राजा युधिष्ठिर स्त्रियोंके अध्यक्षोंसे बोले, कि तुम अनेक प्रकारके यान तथा पालकियोंको सज्जित करो। गाड़ी हांकनेवाले आपण व्यवसायी, वंशधर, शिल्पी और कोषपाल लोग कोष (खजाना) लेकर कुरुक्षेत्राश्रममें जायें, यदि कोई पुरवासी राजाको देखनेकी इच्छा करते हों, तो वे अनावृत, सुविहित तथा उत्तम रीतिसे रक्षित होकर आ सकेंगे। हमारे रसोइये और पुरमें रहनेवाले सेवकगण अनेक प्रकारके पाकपात्र तथा भक्ष्यभोज्य प्रभृति सामग्रियोंको लेकर गाड़ीपर चढ़ें, कल चलना होगा, इतनी बातकी शीघ्र घोषणा करो और मार्गके बीच अनेक प्रकारके गृह बनाओ।

हे राजन्! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर भाइयोंके सहित इस ही प्रकार आज्ञा करके दूसरे दिन स्त्रियों और बूढ़ोंके सहित नगरसे बाहिर हुए। उस नरनाथ युधिष्ठिरने नगरसे बाहिर होकर पांच दिन [illegible] [illegible] करनेके अनन्तर वनकी ओर गमन किया।

[illegible] अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर [illegible] [illegible] राजा युधिष्ठिरने [illegible] [illegible]

प्रीतिसम्पन्न सेना तथा सवार प्रभृतिका "इकट्ठे होओ इकट्ठे होजाओ, घोड़ोंको जोतो ;—" इस ही प्रकार तुमुल शब्द प्रकट हुआ। हे नरनाथ। अनन्तर पैदल और प्रासधारी योद्धाओंके बीच कोई यान, कोई महावेगशाली घोड़े कोई प्रज्वलित अग्निसदृश सुवर्णोंके बने हुए रथ, कोई हाथी और कोई कोई ऊंटोंपर चढ़के चलने लगे। धृतराष्ट्रके देखनेकी इच्छा करनेवाले पुरवासी तथा जनपदवासी लोग अनेक प्रकारके यानोंमें चढ़के कुरुराजका अनुगमन करने लगे। गौतमपुत्र कृपाचार्य्य राजाकी आज्ञासे सेनानायक होकर सेनाके सहित आश्रमकी ओर चले। तिसके अनन्तर कुरुराज युधिष्ठिर द्विजवरोंसे घिरकर बहुतेरे सूतमागध और वन्दियोंसे स्तुत, सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छत्रसे सुशोभित और महान् रथ तथा सेनासमूहसे समावृत होकर नगरसे बाहिर हुए। पवनपुत्र भीमकर्म्म करनेवाले वृकोदरने सज्जित यन्त्र और आयुधयुक्त पर्वतसदृश हाथीपर चढ़के गमन किया। चित्तको वशमें करनेवाले अर्जुन सफेदवर्णवाले घोड़ोंसे युक्त, सूर्य्यके समान प्रभासम्पन्न दिव्य रथपर चढ़के राजाके अनुगामी हुए। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने ध्वजा और कवच बांधकर शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़के भली भांति सेनासे घिरके गमन किया, द्रौपदी प्रभृति सब स्त्रियें पालकीमें चढ़के स्त्रीरक्षकोंसे रक्षित होकर परिमित वसु विसर्जन करती हुई चलने लगीं। हे भरतर्षभ। उस समय समृद्ध रथ, हाथी और घोड़ोंसे युक्त पाण्डवोंकी सेना बांसुरी और वीणासे अनुनादित होकर अत्यन्त शोभित होने लगी। हे पृथ्वीनाथ। वे कसुरुङ्गमा मनोहर नदी तथा तालावोंके तटपर वास करते हुए क्रमसे चलने लगे; इधर महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य राजाकी आज्ञानुसार नगरकी रक्षा करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने क्रमसे परमपावनी यमुना नदी पार होके कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर वहांसे दूरमें उस धीमान् राजर्षि शतयूप और कुरुपति धृतराष्ट्रका आश्रम देखा। हे भरतर्षभ। तिसके अनन्तर सब कोई अत्यन्त आनन्दित होकर सहसा महाशब्दसे उस वनको परिपूर्ण करते हुए उसमें प्रविष्ट हुए।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पदातिके सहित पाण्डवोंने दूरसे ही उतरके विनय और प्रणतिपूर्व्वक राजाके आश्रममें गमन किया। उस समय योद्धा लोग, पुरवासी और कुरुपतिगणकी स्त्रियें पैदल ही चलने लगीं, अनन्तर पाण्डवोंने मृगसमूहसे परिपूरित कदलीवनसे शोभित पुण्यजनक धृतराष्ट्रके आश्रममें प्रवेश किया।

तिसके अनन्तर नियतव्रती तपस्वीवृन्द समागत पाण्डवोंको देखनेके लिये कौतूहलयुक्त होकर वहां आये। राजा युधिष्ठिरने आंसू डबडबाये हुए नेत्रयुक्त होकर उन लोगोंसे यह बात पूछी, कि हमारे जेठे पिता वह कुरुवंशपति कहां हैं? उन लोगोंने इतनी बात सुनके राजासे कहा, हे प्रभु! वह फूल और जल लाने तथा यमुनामें स्नान करनेके निमित्त इस ही मार्गसे गये हैं। पाण्डवोंने शीघ्र ही उन लोगोंके कहे हुए मार्गसे गमन किया, पदातियोंने उन्हें दूरसे देखा; अनन्तर वे लोग पिताको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होके शीघ्र चले, परन्तु सहदेव वेगपूर्व्वक पृथाके समीप जानेके लिये दौड़े। धीमान् सहदेव माताके दोनों चरण छूके रोने लगे, पृथा नेत्रोंमें आंसू भरके प्रियपुत्रको देखने लगी; अनन्तर दोनों भुजाओंसे पुत्रको आलिङ्गन करके गान्धारीसे सहदेवके आनेका सम्वाद कहा। अनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुलको देखकर शीघ्रताके सहित उनके निकट गमन किया। पाण्डवोंने उस पृथाको ... दम्पती धृतराष्ट्र

तथा गान्धारीका हाथ धरके उनके आगे आगे आती हुई देखकर उन लोगोंके नजदीक जाकर भूमिपर झुकके प्रणाम किया। महात्मा मेधावी राजा धृतराष्ट्रने स्वर और स्पर्शसे पाण्डवोंको जानके उन्हें आश्वासित किया। तिसके अनन्तर महात्मा पाण्डवोंने आंसू बहाते हुए गान्धारीके सहित राजा धृतराष्ट्र और कुन्ती माताकी विधिपूर्व्वक पूजा की। फिर पाण्डव लोग सावधान होकर उनका जलकलश ग्रहण करके निज माता कुन्तीके द्वारा फिर आश्वासित हुए, उस समय पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी स्त्रियें, अन्तःपुरवासी, पुरवासी और जनपदवासी सब लोग जननाथ धृतराष्ट्रका दर्शन करने लगे। अनन्तर नरनाथ युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रको सबका नाम और गोत्र सुनाकर परिचय देके उनकी पूजा की। उस समय वास्पाविललोचन राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवप्रभृति सब लोगोंके बीच घिरके अपनेको मानो हस्तिनापुरमें स्थित समझा। अनन्तर उस प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रने गान्धारी और कुन्तीके सहित द्रौपदी प्रभृति बधूगणोंके द्वारा अभिवादित और आनन्दित होकर तारासमूहसे भरे हुए नभमण्डलकी भांति दर्शनेच्छु लोगोंसे परिपूरित, सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित आश्रममें गमन किया।

२५ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रने स्वर्ग [illegible] गुणश्रेष्ठ उन पाँचों भाइयोंके सहित आश्रममें निवास किया। महाभाग तपोधन विपुल ब्रह्मस्थल [illegible] कुरुपतिके पुत्र सब पाण्डवोंको देखनेकी अभिलाषसे अनेक देशोंसे आके बोले, कि इन लोगोंके बीच कौन युधिष्ठिर, कौन भीम, कौन अर्जुन और कौन नकुल सहदेव हैं और कौन द्रौपदी [illegible]

ऐसी बात सुनके पांचों पाण्डव, द्रौपदी तथा अन्यान्य कुलस्त्रियोंका नाम पृथक् पृथक् कहके परिचय देने लगे।

सञ्जय बोले, ये जो विशुद्ध सुवर्णकी भांति गौर शरीरयुक्त महासिंहकी भांति उन्नत हैं और जिनकी नासिका ऊंची, नेत्र स्थूल या दीर्घ अथवा लोचन ताम्रवर्ण तथा अत्यन्त विस्तृत दीखते हैं, वेही युधिष्ठिर हैं। जिसका चलना मतवारे गजेन्द्रकी भांति, वर्ण तप्त चामीकरके सदृश, अंस स्थूल और विस्तृत हैं तथा भुजा मोटी और लम्बी हैं, वेही भीमसेन हैं, आप लोग देखिये, इनके बगलमें महाधनुर्धारी हाथियोंके यूथपतिकी भांति श्यामल, सिंहकी भांति ऊंचे स्कन्धवाला युवा गजगामी कमलनेत्र वीरवर पुरुष ही अर्जुन हैं। ये जो पुरुषश्रेष्ठ विष्णु और महेन्द्रसदृश, मनुष्यलोकातीत रूपवान् और शीलसम्पन्न दो पुरुष कुन्तीके समीप निवास करते हैं, वेही यमज नकुल सहदेव हैं। यह जो पद्मदलकी भांति विशालनयनी मध्यम वयस्थावाली, नीलोत्पल [illegible] मूर्त्तिमती लक्ष्मी तथा सुरदेवताकी भांति निवास करती है, यही कृष्णा द्रौपदी है। हे द्विजवरगण! इसके समीप यह जो [illegible] इन्द्रप्रभा समान [illegible] है, यही उस अप्रतिम चक्रधारी [illegible] सुभद्रा है। यह जो विशुद्ध जाम्बूनद [illegible] गौरवर्णवाली [illegible] [illegible]

प्रीतिसम्पन्न सेना तथा सवार प्रभृतिका "इकट्ठे होओ इकट्ठे होजाओ, घोड़ोंको जोतो ;—" इस ही प्रकार तुमुल शब्द प्रकट हुआ। हे नरनाथ! अनन्तर पैदल और प्रासधारी योद्धाओंके बीच कोई यान, कोई महावेगशाली घोड़े कोई प्रज्वलित अग्निसदृश सुवर्णोंसे बने हुए रथ, कोई हाथी और कोई कोई ऊंटोंपर चढ़के चलने लगे। धृतराष्ट्रके देखनेको इच्छा करनेवाले पुरवासी तथा जनपदवासी लोग अनेक प्रकारके यानोंमें चढ़के कुरुराजका अनुगमन करने लगे। गौतमपुत्र कृपाचार्य्य राजाकी आज्ञासे सेनानायक होकर सेनाके सहित आश्रमकी ओर चले। तिसके अनन्तर कुरुराज युधिष्ठिर द्विजवरोंसे घिरकर बहुतेरे सूतमागध और वन्दियोंसे स्तुत, सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छत्रसे सुशोभित और महान् रथ तथा सेनासमूहसे समावृत होकर नगरसे बाहिर हुए। पवनपुत्र भीमकर्म्म करनेवाले वृकोदरने सज्जित यन्त्र और आयुधयुक्त पर्व्वतसदृश हाथीपर चढ़के गमन किया। चित्तको वशमें करनेवाले अर्जुन सफेदवर्णवाले घोड़ोंसे युक्त, सूर्य्यके समान प्रभासम्पन्न दिव्य रथपर चढ़के राजाके अनुगामी हुए। माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवने ध्वजा और कवच बांधकर शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़के भली भांति सेनासे घिरके गमन किया, द्रौपदी प्रभृति सब स्त्रियें पालकीमें चढ़के स्त्रीरक्षकोंसे रक्षित होकर परिमित धन विसर्जन करती हुई चलने लगीं। हे भरतर्षभ। उस समय रथ, हाथी और घोड़ोंसे युक्त पाण्डवोंकी सेना बांसुरी और वीणासे अनुनादित होकर अत्यन्त शोभित होने लगी। हे पृथ्वीनाथ! वे कुरुपुङ्गवगण मनोहर नदी तथा तालावोंके तटपर वास करते हुए क्रमसे चलने लगे; इधर महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य राजाकी आज्ञानुसार नगरकी रक्षा करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने क्रमसे परमपावनी यमुना नदी पार होके कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर वहांसे दूरमें उस धीमान् राजर्षि शतयूप और कुरुपति धृतराष्ट्रका आश्रम देखा। हे भरतर्षभ। तिसके अनन्तर सब कोई अत्यन्त आनन्दित होकर सहसा महाशब्दसे उस वनको परिपूर्ण करते हुए उसमें प्रविष्ट हुए।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पदातिके सहित पाण्डवोंने दूरसे ही उतरके विनय और प्रणतिपूर्व्वक राजाके आश्रममें गमन किया। उस समय योद्धा लोग, पुरवासी और कुरुपतिगणकी स्त्रियें पैदल ही चलने लगीं, अनन्तर पाण्डवोंने मृगसमूहसे परिपूरित कदलीवनसे शोभित पुण्यजनक धृतराष्ट्रके आश्रममें प्रवेश किया।

तिसके अनन्तर नियतव्रती तपस्वीवृन्द समागत पाण्डवोंको देखनेके लिये कौतूहलयुक्त होकर वहां आये। राजा युधिष्ठिरने आंसू डबडबाये हुए नेत्रयुक्त होकर उन लोगोंसे यह बात पूंछी, कि हमारे जेठे पिता वह कुरुवंशपति कहां हैं? उन लोगोंने इतनी बात सुनके राजासे कहा, हे प्रभु! वह फूल और जल लाने तथा यमुनामें स्नान करनेके निमित्त इस ही मार्गसे गये हैं। पाण्डवोंने शीघ्र ही उन लोगोंके कहे हुए मार्गसे गमन किया, पदातियोंने उन्हें दूरसे देखा? अनन्तर वे लोग पिताको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होके शीघ्र चले, परन्तु सहदेव वेगपूर्व्वक पृथाके समीप जानेके लिये दौड़े। धीमान् सहदेव माताके दोनों चरण छूके रोने लगे, पृथा नेत्रोंमें आंसू भरके प्रियपुत्रको देखने लगी; अनन्तर दोनों भुजाओंसे पुत्रको आलिङ्गन करके गान्धारीसे सहदेवके आनेका सम्वाद कहा। अनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन और नकुलको देखकर शीघ्रताके सहित उनके निकट गमन किया। पाण्डवोंने उस पृथाको तथा दम्पती धृतराष्ट्र

तथा गान्धारीका हाथ धरके उनके आगे आगे आती हुई देखकर उन लोगोंके समीप जाकर भूमिपर झुकके प्रणाम किया। महात्मा मेधावी राजा धृतराष्ट्रने स्वर और स्पर्शसे पाण्डवोंको जानके उन्हें आश्वासित किया। तिसके अनन्तर महात्मा पाण्डवोंने आंसू बहाते हुए गान्धारीके सहित राजा धृतराष्ट्र और कुन्ती माताकी विधिपूर्व्वक पूजा की। फिर पाण्डव लोग सावधान होकर उनका जलकलश ग्रहण करके निज माता कुन्तीके द्वारा फिर आश्वासित हुए, उस समय पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी स्त्रियें, अन्तःपुरवासी, पुरवासी और जनपदवासी सब लोग जननाथ धृतराष्ट्रका दर्शन करने लगे। अनन्तर नरनाथ युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रको सबका नाम और गोत्र सुनाकर परिचय देके उनको पूजा की। उस समय वाष्पाविललोचन राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवप्रभृति सब लोगोंके बीच घिरके अपनेको मानो हस्तिनापुरमें स्थित समझा। अनन्तर उस पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने गान्धारी और कुन्तीके सहित द्रौपदी प्रभृति वधूगणके द्वारा अभिवादित और आनन्दित होकर तारासमूहसे भरे हुए नभमण्डलकी भांति दर्शनेच्छु लोगोंसे परिपूरित, सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित आश्रममें गमन किया।

२४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रने सुरम्य कमलनेत्र पुरुषश्रेष्ठ उन पांचो भाइयोंके सहित आश्रममें निवास किया। महाभाग तपस्वीगण विपुल वक्षस्थलसम्पन्न कुरुपतिकेपुत्र उन पाण्डवोंके देखनेकी अभिलाषसे अनेक देशोंसे आके बोले, कि इन लोगोंके बीच कौन युधिष्ठिर, कौन भीम, कौनसे अर्ज्जुन और कौनसे नकुल सहदेव हैं और कौनसी यशस्विनी द्रौपदी है? हम लोग उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं। उस समय सूत सञ्जय तपस्वियोंकी ऐसी बात सुनके पांचो पाण्डव, द्रौपदी तथा अन्यान्य कुरुस्त्रियोंका नाम पृथक् पृथक् कहके परिचय देने लगे।

सञ्जय बोले, ये जो विशुद्ध सुवर्णकी भांति गौर शरीरयुक्त महासिंहकी भांति समुन्नत हैं और जिसकी नासिका ऊंची, नेत्र स्थूल वा दीर्घ अथवा लोचन ताम्रवर्ण तथा अत्यन्त विस्तृत दीखते हैं; येही युधिष्ठिर हैं। जिसका चलना मतवारे गजेन्द्रकी भांति, वर्ण प्रतप्त चामीकरके सदृश, मांस स्थूल और विस्तृत है तथा भुजा मोटी और लम्बी हैं, वेही भीमसेन हैं, आप लोग देखिये, इनके बगलमें महाधनुर्धारी हाथियोंके यूथपतिकी भांति श्यामल, सिंहकी भांति ऊंचे स्कन्धवाला युवा गजगामी कमलनेत्र वीरवर पुरुष ही अर्ज्जुन हैं। ये जो पुरुषश्रेष्ठ विष्णु और महेन्द्रसदृश, मनुष्य लोकातीत रूपवान और शीलसम्पन्न दो पुरुष कुन्तीके समीप निवास करते हैं, वेही यमज नकुल सहदेव हैं। यह जो पद्मदलकी भांति विशालनयनी मध्यम अवस्थावाली, नीलोत्पल सदृश मूर्त्तिमती लक्ष्मी तथा सुरदेवताकी भांति निवास करती है, वही कृष्णा द्रौपदी है? हे द्विजवरगण! उसके बगलमें यह जो मूर्त्तिमती इन्दुप्रभा समान कनकवर्णवाली स्त्री विद्यमान है, वही उस अप्रतिम चक्रधारी कृष्णकी बहिन सुभद्रा है। यह जो विशुद्ध जाम्बूनदकी भांति गौरवर्णवाली नागकन्या और मधूक पुष्पके समान रूपवाली नरेन्द्र कन्या दीख पड़ती हैं, वे अर्ज्जुनकी भार्य्या हैं। जो नरनाथ कृष्णके सङ्ग सर्व्वदा स्पर्द्धा करते थे, उस राजचमूपतिकी बहिन यह नीलोत्पल दामवर्णवाली स्त्रीही भीमसेनकी भार्य्या है। यह मगधराज जरासन्धकी पुत्री चम्पक दामकी भांति गौराङ्गी स्त्री ही माद्रीके कनिष्ठपुत्र सहदेवकी भार्य्या है। यह जो इन्दीवरकी भांति श्यामाङ्गी कमलदलके समान विशालनयनी स्त्री पृथ्वीपर बैठी है,

उसे ही माद्रीके जेठे पुत्र नकुलकी भार्य्या जानो। तपाये हुए सुवर्णकी भांति गौरवर्ण पुत्रके सहित यह विराटराजपुत्री युद्धमें विरथ हुए रथस्थ द्रोणादिके द्वारा मरे हुए अभिमन्युकी पत्नी है। इनके अतिरिक्त ये जो सीमन्त समन्वित केशवाली, सफेदवस्त्र पहरे हुए हतपुत्रा तथा अनाथ एक सौ राजरानियें दीखती हैं, वे सब इस वृद्ध राजा धृतराष्ट्रकी पुत्रवधू हैं। हे तपस्वीगण! आप लोग ब्रह्मनिष्ठासे सरलचित्त तथा सतोगुणसम्पन्न हैं, इसलिये आप लोगोंने जिन सब विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न राजरानियोंका परिचय पूंछा था, मैंने उसे यथार्थ रीतिसे आपके समीप कहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय तपस्वियोंके गमन करनेपर कुरुवृद्धवर्य्य राजा धृतराष्ट्रने उन नरदेवपुत्र पाण्डवोंके सहित समागत होकर कुशलादि पूंछा। अनन्तर योद्धाओंके आश्रममण्डल परित्याग करके निज निज स्थानपर जाने और स्त्री, वृद्ध तथा बालकोंके वाहन परित्याग करके अपने स्थानमें प्रविष्ट होनेपर वह पाण्डवोंसे यथोचित कुशलादि पूंछने लगे।

२५ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! तुम भ्राता, पुरवासी और जनपदवासियोंके सहित कुशलसे तो हो? हे नरनाथ! तुम्हारे जो सब गुरु, सचिव और सेवकवृन्द तुम्हें अवलम्ब करके जीविका निर्व्वाह किया करते हैं, वे लोग निरामय तथा निरातङ्कसे तुम्हारे राज्यमें निवास करते हैं न? तुम राजर्षियोंसे सेवित धृतातनी वृत्तिमें वर्त्तमान तो हो? तुम न्यायपथको अतिक्रम न करके कोषपूरण और शत्रुमित्र उदासीन लोगोंके निकट समभावसे निवास करते हो न? हे भरतप्रवर! तुम ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट उपचार प्रदान करके यथा समयमें उनके तत्त्वोंका निश्चय करते हो न? वे सब लोग तथा शत्रु, पुरवासियों सेवक और स्वजनवृन्द तुम्हारे स्वभावसे सन्तुष्ट तो हैं? हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त होकर पितरों, देवताओं और अन्नजलसे अतिथियोंकी पूजा करते हो न? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग तुम्हारे नीतिपथके अनुवर्त्ती होकर अपने अपने कर्म्ममें रत तो रहते हैं? कुटुम्ब, स्त्री, वृद्ध और बालकगण तुम्हारे निकट शोक प्रकाश तथा प्रार्थना तो नहीं करते? हे नरवर राजेन्द्र! तुम्हारे गृहमें स्त्रियें पूजित तो होती हैं? तुम्हारे पृथ्वीपति होनेसे यह राजर्षि वंश तुम्हारे द्वारा यशहीन वा अवसन्न तो नहीं हुआ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब धृतराष्ट्रने ऐसा कहा, तब न्यायवित् वाक्य बोलनेमें कुशल युधिष्ठिर उनसे कुशल प्रश्न संयुक्त वचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! आपकी तपस्या, दम और शम वर्द्धित होता है न? मेरी यह कुन्ती माता विश्रान्त शरीरसे आपकी सेवा करती है न? हे नरनाथ! यदि ये आपकी सेवामें रत रहें, तो इनका वनवास सफल होगा। शीतल वायु सेवन और मार्गके श्रमसे कातर घोरतपमें निष्ठा करनेवाली ये जेठी माता गान्धारी देवी क्या धर्म्मपरायण मृत पुत्रोंके निमित्त शोक तो नहीं करती? हमलोगोंको पापकर्म्म करनेवाला समझकर सदा हमारी बुराई तो नहीं विचारती? हे राजन्! विदुर कहां हैं। वह यहां क्यों नहीं दीख पड़ते हैं? सञ्जय तपस्यामें रत रहके कुशलसे तो हैं?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धृतराष्ट्रने जननाथ युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके उनसे कहा, हे पुत्र! विदुर घोर तपस्या अवलम्बन करके कुशलसे हैं, परन्तु वह अन्यान्य खानेकी वस्तुओंका परित्याग करके केवल वायु पान करके इस प्रकार कृशित हुए हैं, कि उनका समस्त शरीर शिराओंसे परिपूरित हुआ है और उस

अवस्थामें किसी किसी समय इस सूने जङ्गलमें ब्राह्मणोंके द्वारा वह लक्षित हुआ करते हैं। हे राजन्। जब धृतराष्ट्र ऐसा कह रहे थे, उस ही समय वह जटाधारी बीटामुख अत्यन्त दुबले, दिगम्बर, मलिन, देह और बनधूलि-धूसरित चत्ता विदुर दूरसे उनके दृष्टिगोचर होते ही सहसा आश्रमकी ओर लौटे। नरनाथ युधिष्ठिर घोर अलक्ष्य जङ्गलके बीच प्रविष्ट उस विदुरके पीछे दौड़े, महाराज 'भो भो विदुर। मैं तुम्हारा प्रियपात्र राजा युधिष्ठिर हूं,—ऐसा वचन कहते कहते अत्यन्त यत्नके सहित उनके पीछे पीछे दौड़े। तिसके अनन्तर प्राज्ञवर विदुरने उस एकान्त तथा निर्ज्जन बनके बीच किसी एक वृक्षको अवलम्बन करके निवास करनेपर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर आकृति मात्र अवशिष्ट अत्यन्त कृश महाबुद्धियुक्त विदुरके सामने जाकर आगे निवास करते हुए उनके स्मृति-गोचर होनेके लिये ऊंचे स्वरसे "मैं युधिष्ठिर हूं"—ऐसा कहके उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर विदुर समाहित होकर अनिमिष नेत्रसे युधिष्ठिरकी ओर देखकर एकटक दृष्टिसे उन्हें देखने लगे। अनन्तर वह धीमान् विदुर योगबल अवलम्बन करके राजाके शरीरमें निज शरीर, प्राणमें प्राण और इन्द्रियसमूहमें इन्द्रि-योंको प्रविष्ट करके प्रदीप्त अग्निकी भांति प्रका-शित होने लगे, परन्तु राजाने उस समय विदुरके उस वृक्षाश्रित स्तब्धलोचनयुक्त चेतरहित शरी-रको देखा और अपनेको अत्यन्त गुणवान तथा बलवान समझा। हे महाबुद्धिमान्। विद्वान् महातेजस्वी धर्म्मराज पाण्डुपुत्रने व्यासदेवके कहे हुए अपने पुराने योगधर्म्मको स्मरण किया अनन्तर उस समय धर्म्मराजने संस्काराभिलाषी होकर विदुरके शरीरको जलानेकी इच्छा की, तब इस प्रकार देववाणी हुई,—'हे राजन्। इस विदुरको मत जलाओ' इस शरीरके इस स्थानमें रहनेसे ही तुम्हें परम धर्म्म होगा। हे पर-न्तप भारत! इनके यतिधर्म्मको प्राप्त होनेसे इन्हें सन्तानिक लोक मिलेगा, इसलिये इनके निमित्त शोक मत करो।

धर्म्मराजने ऐसा सुनके वहांसे लौटकर विचित्रवीर्य्यपुत्र राजा धृतराष्ट्रके निकट यह समस्त वृत्तान्त वर्णन किया। तिसके अनन्तर द्युतिमान धृतराष्ट्र और भीमसेन प्रभृति सब लोग उस वचनको सुनके अत्यन्त विस्मययुक्त हुए। राजा धृतराष्ट्र विदुरके उस वृत्तान्तको सुनके अत्यन्त प्रसन्न होकर धर्म्मपुत्रसे बोले, कि मेरा यह फल, मूल और जल प्रतिग्रह करो। हे राजन्! ऐसा शास्त्रमें कहा है, कि मनुष्य जैसा अर्थ भोग करता है उसके अतिथियोंको भी वही अर्थ भोगना होता है। धर्म्मराज धृत-राष्ट्रका ऐसा वचन सुनके बोले, कि "आपने जो कहा, वही होवे", इतनी बात कहके भाइयोंके सहित धृतराष्ट्रके दिये हुए फल मूल भोजन किया। अनन्तर उन लोगोंने वृक्षमूलमें वास करते हुए वह रात्रि व्यतीत की।

२६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत। अन-न्तर पुण्यकर्म्मा पाण्डवोंने उस आश्रममें धर्म्मार्थ लक्षणयुक्त विचित्र पद तथा अनेक श्रुतियुक्त विविध कथा कहते कहते मङ्गलसूचक नक्ष-त्रोंसे युक्त रात्रि व्यतीत की। हे नरनाथ! उस समय पाण्डवोंने महामूल्यवान शय्या परि-त्याग करके कुन्तीके चारों ओर पृथ्वीपर शयन किया। उस रात्रिमें महात्मा राजा धृतराष्ट्रने जो आहार किया नरवीर पाण्डवोंने भी उस समय वही भोजन किया। रात बीतनेपर भोरको राजा युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित पूर्व्वाह्णिक क्रिया पूरी करके आश्रममण्डलका दर्शन किया, अनन्तर धर्म्मराज धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार अन्तःपुरके परिवार, सेवका तथा पुरोहितके सहित सुखपूर्व्वक वहांके सब स्थान

और प्रज्वलित अग्निसम्पन्न तथा मुनियोंके द्वारा होमकी अग्निसे उपासित वेदियोंको देखने लगे। वे सब वेदी बनके पुष्पों तथा आज्य रससे परिव्याप्त तथा मुनियोंके ब्राह्म शरीरकी शोभासे शोभित होरही हैं। हे प्रभु! उन स्थानोंमें मृगोंके समूहोंके अनुद्विग्न तथा अशङ्कित चित्तसे निवास करने और विविध पक्षियोंके मनोहर बोली बोलनेसे मानो सङ्गीत होता हुआ बोध होने लगा। कोई कोई स्थान नीलकण्ठवाले मयूरोंकी केकाध्वनि, दात्यूहोंका कूजना, कोकिलोंका सुखकर श्रुति मनोहर कूकना, वेदपाठी ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि और अत्यन्त उत्कृष्ट फलमूलोंसे सुशोभित होरहे हैं।

हे राजन! तिसके अनन्तर पृथ्वीपति राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके निमित्त समाहृत सुवर्णोके कलश, उडुम्बर, अजिन, चित्रकम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डल, स्थाली, पिठपात्र, लोहमय भाजन तथा अन्यान्य विविध पात्र उन लोगोंको प्रदान किया। धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरने बहुतसा धन बांटते तथा इस ही प्रकार आश्रमोंमें परिभ्रमण करके लौटकर नित्यकर्म्म किये तथा अव्यग्रचित्तसे गान्धारीके सहित बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र और उनके निकटमें शिष्यकी भांति प्रणतभावसे स्थित शिष्टाचारयुक्त कुन्तीमाताको देखा। युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्रको अपना नाम सुनाकर पूजा करते हुए बैठनेकी आज्ञा पाकर यतियोंके आसनपर बैठे। हे भरतप्रवर! भीमसेन प्रभृति पाण्डवगण राजाका पांव छूके प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञानुसार बैठ गये, कुरुराज धृतराष्ट्र ब्राह्मी श्री धारण करते हुए पाण्डवोंके बीच घिरकर उस समय देवताओंसे घिरे हुए बृहस्पतिकी भांति शोभित हुए। उन लोगोंके बैठनेके अनन्तर कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप प्रभृति महर्षिवृन्द उस स्थानमें आये। देवर्षियोंसे सेवित महातेजस्वी भगवान् व्यासदेव शिष्योंसे घिरके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको देखनेके लिये वहां आये; कुरुपति कुन्तीपुत्र वीर्य्यवान राजा युधिष्ठिर और भीमसेन आदि सब लोगोंने उठके उन्हें प्रणाम किया।

तिसके अनन्तर व्यास मुनिने शतयूप आदि ऋषियोंसे घिरकर वहां आके पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको बैठनेके लिये कहा; उस समय व्यासदेवने अपने लिये उपकल्पित उत्तम कुशासन, कृष्णाजिन और कुशोत्तर पाया। विपुल तेजस्वी द्विजवरगण द्वैपायन मुनिकी आज्ञा पाके चारों ओर कुशाकी चटाईपर बैठ गये।

२७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महात्मा पाण्डवोंके बैठनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासदेव बोले, हे महाबाहो धृतराष्ट्र! तुम्हारा तप वर्द्धित होता है न? हे नरनाथ! बनवाससे तुम्हारा मन प्रसन्न तो है? हे अनघ महाराज! तुम्हारे हृदयमें पुत्रविनाशजनित शोक तो नहीं विद्यमान है? तुम्हारा ज्ञाननिवह सुप्रसन्न हुआ है न? तुम बुद्धिको दृढ़ करके अरण्यविधिका आचरण करते हो न? बधू गान्धारी शोकसे अभिभूत तो नहीं होती? महाप्राज्ञ बुद्धिमती धर्म्मार्थदर्शिनी आगम और अपायोंकी तत्त्वोंको जाननेवाली यह गान्धारी देवी शोक तो नहीं करती? हे राजन्! जो अपने पुत्रोंको त्यागके गुरुसेवामें रत हुई है, वह कुन्ती अहङ्काररहित होकर तुम्हारी सेवा करती है? हे नरनाथ! तुमने महामना महात्मा धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवको ढाढ़स दिया है न? इन लोगोंको देखके तुम्हारा चित्त निर्म्मल तथा आनन्दित हुआ है न? और ज्ञान उदय होनेसे शुद्धचित्त हुआ है न? हे महाराज! सब भूतोंमें जितने गुण हैं, उनमेंसे निर्व्वैरता, सत्य और अक्रोध, येही तीनों मुख्य हैं।

हे भारत। इसलिये बनवाससे तुम्हें मोह तो नहीं हुआ ? क्यों अपने वशमें रहनेसे वन्यअन्न अथवा उपवास ही हुआ करता है। हे राजेन्द्र! महात्मा विदुरका विषय तुम्हें विदित है ? इसही विधानसे महात्मा धर्म्मका गमन हुआ करता है, धर्म्मही माण्डव्यके शापसे विदुरलको प्राप्त हुए हैं, वह महाबुद्धि महायोगी सुमहामना महात्मा पुरुषप्रवर विदुर जिस प्रकार बुद्धिसम्पन्न हैं, देवताओंके बीच बृहस्पति और असुरोंके बीच शुक्र भी वैसे बुद्धिसम्पन्न नहीं हैं, उस समय सनातन धर्म्म बहुत दिनोंके उपार्ज्जित तपबलको व्यय करके माण्डव्य ऋषिके द्वारा अभिशप्त हुए थे।

वही महाबुद्धिमान् पहले ब्रह्माकी आज्ञानुसार निज तेज और बलसे मेरे द्वारा विचित्रवीर्य्यके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए थे। हे महाराज! पण्डित लोग जिसे धर्म्म कहके जानते हैं, तुम्हारे भ्राता वह महाबुद्धिमान् विदुर मनके द्वारा ध्यान तथा धारणासे सनातन देवदेवस्वरूप हुए थे, वह सनातन परमश्रेष्ठ तपस्या करते हुए सत्य, शम, अहिंसा, दम दानके सहारे वर्द्धित हुए थे। स्वयं धर्म्मरूपी कुरुराज युधिष्ठिरने योगबलसे उस अमितबुद्धि प्राज्ञ विदुरके सहित जन्म लिया है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी भांति धर्म्म इस लोक तथा परलोकमें सदा निवास करता है। हे राजेन्द्र! वह सर्व्वग है, इसीसे सब चराचरोंमें व्याप्त होकर निवास करता है, निष्पाप सिद्ध तथा देवगण ही उसका दर्शन किया करते हैं। हे राजन्। जो धर्म्म, वेही विदुर हैं और जो विदुर, वेही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर निकट हैं, मैं देखता हूं, कि वह पाण्डुका पुत्र युधिष्ठिर दासकी भांति आपके निवास करता है, यही वह विदुर है। तुम्हारे भाई वह महात्मा बुद्धिमत्तम विदुर महात्मा कुन्तीपुत्रको देखकर महायोगबलसे इन्हींमें प्रविष्ट हुए हैं। हे भरतश्रेष्ठ! तुम भी शीघ्र कल्याण लाभ करोगे, इसीलिये तुम्हारा सन्देह छुड़ानेके निमित्त मैं तुम्हारे समीप आया हूं; हे महीपाल! पहले जगतके बीच किसी महर्षिके द्वारा जो कार्य्य सम्पादित नहीं हुए, मैं उस तपस्याके आश्चर्य्यभूत फलको तुम्हें दिखाऊंगा। हे अनघ! तुम मेरे समीप कौनसी वस्तु पाने अथवा कौनसे विषयको देखने, सुनने वा जाननेकी इच्छा करते हो, वह मुझसे कहो, मैं उसे ही करूंगा।

२८ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे विप्र! नृपवर महीपति धृतराष्ट्रके निज भार्य्या गान्धारी तथा वधू कुन्तीके सहित वनमें जाने सिद्ध विदुरके धर्म्मराजमें प्रविष्ट होने और पाण्डुपुत्रोंके आश्रम मण्डलमें वास करते रहनेपर उस समय जो आश्चर्य्य व्यापार हुआ था और परम तेजस्वी महर्षि व्यासदेवने जो ऐसा कहा था, कि 'तुम्हारा इष्ट साधन करूंगा,' वह सब मेरे निकट विस्तारपूर्व्वक कहिये। हे प्रभु पापरहित! कुरुवंशमें उत्पन्न हुए नरनाथ युधिष्ठिरने उस वनके बीच कितने समयतक वास किया था? और वे महात्मा लोग उस अन्तःपुरवासियों और सेनाके सहित वहां वास करते हुए क्या भोजन करते थे, वह आप मुझसे कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! उस समय पाण्डवलोगोंने कुरुराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाके अनेक प्रकारके अन्न और पीनेकी वस्तु भोजन की। हे अनघ! उन लोगोंके उस वनमें सेना तथा अन्तःपुरवासियोंके सहित एक महीनेतक विहार करनेपर वहांपर व्यासदेव आये यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है। हे राजन्! वे लोग राजाके निकट व्यासदेवके पीछे बैठके वार्त्तालाप करने लगे; तब नारद, पर्व्वत, महातपस्वी देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु और चित्रसेन प्रभृति अन्यान्य मुनियोंने वहां

आगमन किया। महातपस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार उन समागत ऋषियोंकी पूजा की।

तिसके अनन्तर वे लोग युधिष्ठिरके निकट पूजा पाके उत्तम पवित्र मयूरासनपर बैठे। हे कुरुद्वह! मुनियोंके बैठनेके अनन्तर महाबुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र पाण्डुपुत्रोंके बीच घिरके बैठे; उनके पीछे गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सात्वतकुलमें उत्पन्न हुई सुभद्रा तथा अन्यान्य स्त्रियां अपर स्त्रियोंके सहित वहां बैठीं। हे नृपवर! वहांपर प्राचीन ऋषि तथा उन लोगोंमें देवासुर सम्वलित धर्म्मसंयुक्त दिव्य कथा होने लगी। अनन्तर कथाकी समाप्ति होनेपर वेद जाननेवाले पुरुषोंमें मुख्य वाग्मिवर महातेजस्वी व्यासदेव अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रज्ञाचक्षु नरेन्द्र धृतराष्ट्रसे फिर कहने लगे। हे राजेन्द्र! पुत्र-वियोगजनित शोकसे जलनेपर तुम्हारे हृदयमें जो भाव उदित हुए हैं, मैंने उसे समझा है। हे महाराज! गान्धारीके हृदयमें सदा जो दुःख निवास करता है, कुन्ती और द्रौपदीके भीतर जो सदा विद्यमान है तथा कृष्णकी बहिन सुभद्रा पुत्र विनाशजनित जिस तीव्र दुःखको मनके बीच धारण करती है, वह सब मुझे विदित हुआ है। हे नरनाथ! इस स्थानमें तुम लोगोंका समागम सुनके सन्देह छुड़ानेके निमित्त मैं आया हूं। ये देव, गन्धर्व्व और महर्षिगण आज मेरे चिरसञ्चित तपस्याके प्रभावको देखें। हे महाराज! तुम्हारी क्या कामना है, वह मुझसे कहो, मैं वही तुम्हें प्रदान करता हूं; मेरी तपस्याका फल देखो, मैं वरदान करनेके लिये प्रस्तुत हुआ हूं।

उस नरेन्द्र धृतराष्ट्रने अमितबुद्धि व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके मुहूर्त्तभर सोचके निज अभिप्राय प्रकाश करना आरम्भ किया। धृतराष्ट्र बोले, मैं धन्य हूं! क्यों कि आपके द्वारा अनुग्रहीत हुआ, आज मेरा जीना सफल भया, क्यों कि आज साधुओं तथा आपके सङ्ग मेरा समागम हुआ। हे तपोधनगण! आज ब्रह्मकल्प आप लोगोंके सहित मेरा समागम होनेसे मुझे इस लोकमें ही निज अभिलषित गति प्राप्त हुई। हे अनघगण! आप लोगोंके दर्शनसे मैं निश्चय ही पवित्र हुआ; परलोकसे अब मुझे भय न रहा, परन्तु मेरे पुत्रवत्सल होनेसे उन दुर्बुद्धि मूढ पुत्रोंकी दुर्नीतियोंको स्मरण करते हुए मेरा अन्तःकरण अत्यन्त व्यथित होता है। जिस पापबुद्धि दुर्य्योधनके द्वारा पापरहित पाण्डुपुत्रगण निराकृत और हाथी घोड़ोंसे युक्त यह पृथ्वी तथा अनेक जनपदवासी महात्मा राजा लोग मारे गये; उस मन्दभाग्य पुत्रोंके निमित्त ही मेरा हृदय विशीर्ण होता है। हे ब्रह्मन्! जिन लोगोंने मेरे पुत्रोंके निमित्त पिता, माता, पत्नी, प्राण और मनके प्रियपदार्थोंको परित्याग कर युद्धके लिये आकर मिलके निमित्त मृत्युके वशमें होकर प्रेतराजके स्थानमें गमन किया है, उन लोगोंकी क्या गति हुई? मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंके बीच जो लोग महाबलवान शान्तनुपुत्र बूढ़े भीष्म और द्विजसत्तम! द्रोणाचार्य्यके युद्धमें संहार करके मरे हैं, उनके निमित्त मेरा चित्त अत्यन्त सन्तप्त होता है। पृथ्वीभरके राज्यका अभिलाषी सुहृद्द्वेषी पापात्मा उस मूढ़पुत्रके द्वारा यह प्रदीप्त कुल नष्ट हुआ; दिन रात इन्हीं विषयोंको स्मरण करते हुए दुःख और शोकसे समाहत तथा जलके मैं शान्तिलाभ नहीं कर सकता हूं। हे पिता! यह विषय सर्व्वदा मेरे स्मृतिपथारूढ़ होनेसे मुझे तनिक भी शान्ति लाभ नहीं होती है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! उस राजर्षि धृतराष्ट्रका वैसा विविध परिदेवित सुनके गान्धारी, कुन्ती, द्रुपदराजपुत्री द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य नरनारियों तथा बधूगणोंका शोक फिर नवीन होगया। परन्तु

पुत्रशोकयुक्त वदनेत्रवाली गान्धारी उठके हाथ जोड़कर निज श्वशुर व्यासदेवसे बोली, हे मुनि-पुङ्गव। आज सोलह वर्ष व्यतीत हुआ, मरे हुए पुत्रोंके शोक इस नरनाथको तनिक भी शान्ति नहीं होती है। हे विभु। पुत्रशोकयुक्त यह भूपति धृतराष्ट्र सदा लम्बी सांस छोड़ते हुए सारी रात बिताते हैं, एक बार भी शयन नहीं करते। हे महामुनि! आप तपबलसे दूसरे लोकोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, परन्तु इस राजाके परलोकमें गये हुए पुत्रोंको क्या दिखा सकेंगे? पुत्रवधुओंके बीच अत्यन्त प्रिय ज्ञाति तथा पुत्रोंसे रहित यह कृष्णा द्रौपदी अत्यन्त शोक करती है। उत्तम वचन कहनेवाली कृष्णकी बहिन भाविनी यह सुभद्रा अभिमन्युके बधसे अत्यन्त सन्तप्त होकर बहुत ही शोकार्त्त हुई है; यह भूरिश्रवाकी भार्य्या स्वामीके मरनेसे शोकार्त्ता होकर अत्यन्त शोक करती है। बुद्धिमान बाह्लिक जिसके श्वशुर हैं, वेही कुरुकुलोद्वह सोमदत्त पिताके सहित महासंग्राममें मरे हैं। हे महामुनि! संग्राममें न भागनेवाले महाबुद्धिमान श्रीमान् तुम्हारे इस पुत्रके जो एक सौ पुत्र युद्धमें मारे गये, उनकी वे एक सौ भार्य्या दुःख तथा शोकसे समाहत होकर बार बार मेरे तथा राजाके शोकको बढ़ाती हैं और वे सब उस शोकार्त्त-चित्तसे ही मेरी सेवा करती हैं। हे प्रभु। सोमदत्त प्रभृति जो सब महारथ महात्माओंने शूरवर मेरे श्वशुर-कुलको नष्ट किया है, उनकी क्या गति हुई? हे भगवन्! वे महीपति मैं और आपकी बधू कुन्ती जिस प्रकार आपकी कृपासे शोकरहित होवें, आप वैसाही करिये। गान्धारीके ऐसा कहनेपर नियम और व्रतादिसे कृश शरीरवाली कुन्तीने आदित्यसदृश गुप्त रीतिसे उत्पन्न भये उस पुत्रको स्मरण किया। दूर श्रवणदर्शी ऋषिवर वरदाता व्यास-देवने सव्यसाचीकी माता उस दुःखिता कुन्ती देवीकी ओर देखा। तिसके अनन्तर श्रीवेदव्यास मुनि उससे बोले, हे महाभागे! तुम्हारे मनके बीच जो विषय उपस्थित हुआ है, वह तुम मुझसे कहो। तब कुन्ती सिर नीचा करके श्वशुरको प्रणामकर लज्जापूर्व्वक पुराना वृत्तान्त विस्तारके सहित कहने लगी।

२९ अध्याय समाप्त।

कुन्ती बोली, हे भगवन्! आप श्वशुर और देवताके देवता हैं, आपही हमारे देवाधिदेव हैं, इसलिये मैं आपके समीप सत्य वचन कहती हूं, सुनिये।

एकबार क्रुद्धस्वभाववाले परम तपस्वी द्विजवर दुर्व्वासा भिक्षा तथा भोजनके निमित्त मेरे पिताके निकट उपस्थित हुए, तब मैंने सेवासे उन्हें सन्तुष्ट किया। मेरे शौच, त्याग निरपराध तथा शुद्धचित्त सम्पन्न होकर सेवा करनेपर उन्होंने क्रोधके कार्य्यमें भी कोप नहीं किया। बल्कि उस महामुनिने मुझसे परम प्रसन्न और कृतकृत्य होकर वर देनेके लिये उद्यत होकर कहा, कि तुम्हारा वचन अवश्य स्वीकार्य्य है। तिसके अनन्तर मैंने शापभयसे उस विप्रसे फिर विनयवाक्यसे वर मांगा, तब उन्होंने कहा, 'ऐसा ही होगा'। इतनी बात कहके वह फिर मुझसे बोले, हे भद्रे शुभानने। तू धर्म्मकी जननी होगी और तुम जिन देवताओंको आह्वान करोगी, वेही तुम्हारे वशमें होजायंगे। उस विप्रवरके इतनी बात कहके अन्तर्द्धान होनेपर मैं अत्यन्त विस्मित हुई, मेरी स्मरणशक्ति सब अवस्थामें ही समभावसे रहती है, कदापि लुप्त नहीं होती; कुछ दिनके अनन्तर मैं कोठेपर निवास करती हुई उदय हुए सूर्य्यको देखकर ऋषिके वचनको स्मरण करके दिवाकरकी अभिलाष की, उस समय बाल्य-स्वभावसे मैं उस विषयमें दोष न समझ सकी। अनन्तर सहस्रांशु सूर्य्यदेव निज शरी

स्त्रिनी गान्धारी युद्धमें मरे हुए पुत्रोंको देखने लगी; वे सब कोई अत्यन्त विस्मित होकर इकटक नेत्रसे उस रोएंको खड़ा करनेवाले अचिन्त्य अद्भुत व्यापार देखने लगे। अत्यन्त उत्कृष्ट प्रहृष्ट नर नारियोंसेयुक्त आश्चर्यमय वह उत्सव चित्रपटकी भांति सबके दृष्टिगोचर हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! धृतराष्ट्र महामुनि व्यासदेवकी कृपासे दिव्य नेत्रके सहारे उन लोगोंको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

३२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठगण क्रोध, मत्सरता और पापरहित होके परस्पर मिले। वे लोग सुरलोकमें समागत देवताओंकी भांति प्रहृष्ट होकर ब्रह्मर्षि-विहित परम पवित्र विधि अवलम्बन करके पुत्र पिता तथा माताके सहित भार्या पतिके सङ्ग, भ्राता भ्रातृभावसे और मित्र मित्रके सङ्ग मिले। परन्तु पाण्डव लोग अत्यन्त हर्षके सहित महाधनुर्द्धारी कर्ण, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रोंके निकट गये। हे महीपाल! उन लोगोंने कर्णके सङ्ग मिलके परम प्रीति अनुभव करते हुए सुहृदताके सहित एकत्र निवास किया। हे भरतप्रवर! मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवकी कृपासे वे सब क्षत्रिय योद्धा लोग आपसमें मिलके मन्युअसुहृदता परित्याग करके सुहृदतापूर्व्वक एकत्र स्थित हुए। पुरुषपुङ्गव कौरवों तथा अन्यान्य राजाओंने परस्पर पुत्र और बान्धवोंके सङ्ग मिलके प्रसन्नचित्तसे परितोषके सहित इस ही प्रकार उस रात्रिको विहार करते हुए इन्द्रकी भांति सुख अनुभव किया। हे भरतर्षभ! योद्धाओंके परस्पर एकत्रित होनेसे उस समय उन लोगोंमें शोक, भय, त्रास, दुःख तथा अयश कुछ भी न रहा; इसके अतिरिक्त वे सब स्त्रियां पिता, भाई, पति तथा पुत्रके सहित समागत होकर परम हर्षपूर्व्वक एक बारगी दुःखरहित हुईं। वे सब वीरगण तथा स्त्रियें इस ही प्रकार एक रात्रि विहार करके परस्पर आमन्त्रण तथा आलिङ्गन करनेके अनन्तर और लोग जिस स्थानसे आये थे, वहां चले गये। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवने जब उन समागत लोगोंको बिदा किया, तो वे लोग सबके सामने ही क्षणभरके बीच अन्तर्द्धान होगये। वे महात्मा लोग पुण्य देनेवाली भागीरथी नदीमें स्नान करके ध्वजायुक्त रथोंमें चढ़कर अपने अपने स्थानपर गये, उनके बीच किसीने सुरलोक किसीने वरुणलोक किसीने कुवेर लोक और किसीने यमलोकमें गमन किया। राक्षसों तथा पिशाचोंके बीच कोई महात्मा वाहनोंके द्वारा और कोई पांवके सहारे ही विचित्र चालसे उत्तर कुरुदेशमें गये। उन सब लोगोंके जानेके अनन्तर कुरुकुलके हितैषी धर्म्मशील महातेजस्वी वेदव्यासमुनि जलमें निवास करते हुए पतिहीन [illegible] स्त्रियोंसे बोले, कि जिन स्त्रियोंकी पतिलो[illegible] जानेकी इच्छा है, वे शीघ्र [illegible] न्द्रित हो इस गङ्गाजलमें स्नान करें

तिसके अनन्तर वे [illegible] सु[illegible] वचन सुनके श्रद्धायुक्त [illegible] अभिप्राय सुनाके [illegible] प्रविष्ट हुईं। हे पु[illegible] स्त्रियें मानुष शरी[illegible] मिलीं, उन शीलव[illegible] इस ही प्रकार गङ्[illegible] छोड़कर स्वामीको[illegible] पतिका जैसा रूप, [illegible] था, उन्होंने भी वैसा[illegible] और वस्त्र धारण कि[illegible] सर्व्वगुणयुक्त स्त्रियें विमा[illegible] हुई असविहीन होकर निज [illegible] उस समय जिसकी जैसी कामना [illegible] होती व्यासदेवने उनको वह [illegible]

अनेक देशोंके समागत पुरुषगण देवताओंके पुनरागमन वृत्तान्तको सुनके अत्यन्त हर्षित तथा आनन्दित हुए, जो लोग उन लोगोंका प्रियसमागम पूर्व्व रीतिसे सुनते हैं, वे इसलोक और परलोकमें सदा प्रियलाभ किया करते हैं। जो धार्म्मिकवर विद्वान् मनुष्य इस अनामय इष्ट बान्धवसंयोगको अनायास ही सुनाते हैं, उन्हें इसलोक तथा परलोकमें यश वा शुभ गति प्राप्त हुआ करती है। हे भारत! जो धृतिवान् मनुष्य इस अत्याश्चर्य पर्व्वको सुनते हैं, वे लोग स्वाध्याय, तपस्या, सदाचार, दानयुक्त निष्पाप, सरल, पवित्र, शान्तचित्त, हिंसा और असत्यसे रहित, आस्तिक तथा श्रद्धावान् होकर परम गतिको प्राप्त हुआ करते हैं।

३३ अध्याय समाप्त।

सौति बोले, विद्वान् राजा जनमेजय पितामहोंका इस प्रकार गमनागमन वृत्तान्त सुनके अत्यन्त आनन्दित होकर पुनरागमनका विवरण पूछते हुए बोले, शरीर छोड़े हुए पुरुषोंका फिर उस प्रकार दीख पड़ना कैसे सम्भव हुआ? प्रतापशाली द्विजवर व्यासशिष्य ऐसा प्रश्न सुनके नरनाथ जनमेजयसे कहने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! ऐसा निश्चय है, कि समस्त कर्म्म अविनाशी हैं, उन कर्म्मोंसे जीवोंके शरीर तथा आकृतिसमूह उत्पन्न हुआ करता है। महाभूतोंका नित्य भूताधिपतिके संयोग निबन्धनसे उनका नित्य सवास होता है, परन्तु उनके पृथक् होनेपर भी उनका विनाश नहीं होता, कर्म्म अनायास साध्य है, उसका फलागम सत्य प्रधान है, इस ही लिये आत्मा कर्म्मफलसे युक्त होकर सुख दुःख भोग किया करता है। ऐसा निश्चय है, कि क्षेत्रज्ञ अविनाशी होनेपर भी नश्वर प्राणियोंमें युक्त रहता है, इसका अविच्छेद ही प्राणियोंका आत्मीयभाव है, जबतक कर्म्म क्षय नहीं होता, तबतक ही वह उसको स्वरूपसे रहती है; इस लोकमें मनुष्य क्षीणकर्म्मा होनेसे रूपान्तर प्राप्त हुआ करता है। समस्त स्वभावको संहत होकर एकत्व वा एक शरीर प्राप्त करके पृथक् भावज्ञ पुरुषोंके निकट नित्य रूपसे निवास करते हैं। अश्वमेधमें घोड़ा मारनेके विषयमें ऐसी जनश्रुति है, कि जीवोंका प्राण नित्य लोकान्तरमें गमन करता है। हे पृथ्वीपति! मैं आपसे यह हितकर प्रियवचन कहता हूं, सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि तुम्हारे यज्ञके समयमें सब मार्ग देवताओंके गमन करनेसे रुद्ध हुए थे। जिस स्थानमें आपने यज्ञ किया, देवताओंने वहां आके तुम्हारे हितकी चेष्टा की थी। जब देवता लोग यज्ञमें एकत्र होके पशुओंको गमन करनेकी आज्ञा करते हैं, तभी वे गमन करनेमें प्रवृत्त होते हैं; यज्ञमें बिना प्रदत्त हुए वे नित्य नहीं होते। जो पुरुष इस नित्य पञ्चतत्त्व अर्थात् पांचो महाभूत तथा नित्य आत्मामें जीवका अनेक समयोग देखता है, वह वृथामति और वियोगसे अत्यन्त शोकार्त्त होता है, उस पुरुषको मेरे मतसे बालक समझना चाहिये। जो पुरुष वियोगमें दोषदर्शी होता है, वही संयोग परित्याग करता है और जिसको असङ्गमें आसक्ति नहीं होती, उसे ही पृथिवीसे वियोग जनित महादुःख हुआ करता है। जो पुरुष अभिमानरहित है, वही परावरज्ञ होता है और अपरज्ञ पुरुषको परम बुद्धिका बोध होनेपर उसे मोहसे छुटकारा मिलता है। अदर्शनके लिये ही वे अदृश्य हुए हैं, इस ही निमित्त मैं उन्हें नहीं जानता, वे भी मुझे नहीं जानते, उनमें मुझे वैराग्य नहीं है। किन्तु यह अनीश्वर मनुष्य जिस जिस शरीरसे जो जो कार्य्य करता है, उस ही उस शरीरसे उसे उन फलोंको भोगना होता है, मानसिक कार्य्य मनसे और शारीरिक कर्म्म शरीरके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं।

३४ अध्याय समाप्त।

स्विनी गान्धारी युद्धमें मरे हुए पुत्रोंको देखने लगी; वे सब कोई अत्यन्त विस्मित होकर एक-टक नेत्रसे उस रोएंको खड़ा करनेवाले अचिन्त्य अद्भुत व्यापार देखने लगे। अत्यन्त उत्कृष्ट प्रहृष्ट नर नारियोंसे युक्त आश्चर्यमय वह उत्सव चित्रपटकी भांति सबको दृष्टिगोचर हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! धृतराष्ट्र महामुनि व्यासदेवकी कृपासे दिव्य नेत्रके सहारे उन लोगोंको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए।

३२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठगण क्रोध, मत्सरता और पापरहित होके परस्पर मिले। वे लोग सुरलोकमें समागत देवताओंकी भांति प्रहृष्ट होकर ब्रह्मर्षि-विहित परम पवित्र विधि अवलम्बन करके पुत्र पिता तथा माताके सहित साध्वी पतिके सङ्ग, भ्राता भ्रातृभावसे और मित्र मित्रके सङ्ग मिले। परन्तु पाण्डव लोग अत्यन्त हर्षके सहित महाधनुर्धारी कर्ण, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रोंके निकट गये। हे महीपाल! उन लोगोंने कर्णके सङ्ग मिलके परम प्रीति अनुभव करते हुए सुहृदताके सहित एकत्र निवास किया। हे भरतप्रवर! मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवकी कृपासे वे सब क्षत्रिय योद्धा लोग आपसमें मिलके मन्युअसुहृदता परित्याग करके सुहृद-तापूर्व्वक एकत्र स्थित हुए। पुरुषपुङ्गव कौरवों तथा अन्यान्य राजाओंने परस्पर पुत्र और बान्धवोंके सङ्ग मिलके प्रसन्नचित्तसे परितोषके सहित इस ही प्रकार उस रात्रिको विहार करते हुए इन्द्रकी भांति सुख अनुभव किया। हे भरतर्षभ! योद्धाओंके परस्पर एकत्रित होनेसे उस समय उन लोगोंमें शोक, भय, त्रास, दुःख तथा अयश कुछ भी न रहा; इसके अति-रिक्त वे सब स्त्रियां पिता, भाई, पति तथा पुत्रके सहित समागत होकर परम हर्षपूर्व्वक एक बारगी दुःखरहित हुईं। वे सब वीरगण तथा स्त्रियें इस ही प्रकार एक रात्रि विहार करके परस्पर आमन्त्रण तथा आलिङ्गन करनेके अनन्तर वीर लोग जिस स्थानसे आये थे वहां चले गये। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ व्यासदेवने जब उन समागत लोगोंको विदा किया, तो वे लोग सबके सामने ही क्षणभरके बीच अन्तर्द्धान होगये। वे महात्मा लोग पुण्य देनेवाली भागीरथी नदीमें स्नान करके ध्वजायुक्त रथोंमें चढ़कर अपने अपने स्थानपर गये, उनके बीच किसीने सुरलोक किसीने वरुणलोक किसीने कुबेर लोक और किसीने यमलोकमें गमन किया। राक्षसों तथा पिशाचोंके बीच कोई महात्मा वाहनोंके द्वारा और कोई पांवके सहारे ही विचित्र चालसे उत्तर कुरुदेशमें गये। उन सब लोगोंके जानेके अनन्तर कुरुकुलके हितैषी धर्म्मशील महातेजस्वी वेदव्यासमुनि जलमें निवास करते हुए पतिहीन क्षत्रिय स्त्रियोंसे बोले, कि जिन स्त्रियोंको पतिलोकमें जानेकी इच्छा है, वे शीघ्र ही अतन्द्रित होकर इस गङ्गाजलमें स्नान करें।

तिसके अनन्तर वे स्त्रियें श्रीवेदव्यास मुनिका वचन सुनके श्रद्धायुक्त होकर श्वशुरको अपना अभिप्राय सुनाके शीघ्र ही देवनदी गङ्गाके जलमें प्रविष्ट हुईं। हे पृथ्वीनाथ! उस समय वे साध्वी स्त्रियें मानुष शरीर छोड़के स्वामीके सङ्ग जा मिलीं, उन शीलवती पतिव्रता क्षत्रियास्त्रियोंने इस ही प्रकार गङ्गाजीमें प्रवेश करके शरीर छोड़कर स्वामीकी सलोकता पाई। उनके पतिका जैसा रूप, आभूषण, माला और वस्त्र था, उन्होंने भी वैसा ही रूप, आभरण, माला और वस्त्र धारण किया। वे शीलगुणसम्पन्न सर्व्वगुणयुक्त स्त्रियें विमानमें निवास करती हुईं श्रमविहीन होकर निज निज स्थानमें गईं। उस समय जिसकी जैसी कामना हुई थी, वर-दाता व्यासदेवने उनकी वह कामना पूरी की।

अनेक देशोंके समागत पुरुषगण देवताओंके पुनरागमन वृत्तान्तको सुनके अत्यन्त हर्षित तथा आनन्दित हुए, जो लोग उन लोगोंका प्रियसमागम पूरी रीतिसे सुनते हैं, वे इसलोक और परलोकमें सदा प्रियलाभ किया करते हैं। जो धार्म्मिकवर विद्वान् मनुष्य इस अनामय इष्ट बान्धवसंयोगको अनायास ही सुनाते हैं, उन्हें इसलोक तथा परलोकमें यश वा शुभ गति प्राप्त हुआ करती है। हे भारत! जो धृतिवान् मनुष्य इस अत्याश्चर्य्य पर्व्वको सुनते हैं, वे लोग स्वाध्याय, तपस्या, सदाचार, दानयुक्त निष्पाप, सरल, पवित्र, शान्तचित्त, हिंसा और असत्यसे रहित, आस्तिक तथा श्रद्धावान् होकर परम गतिको प्राप्त हुआ करते हैं।

३३ अध्याय समाप्त।

सौति बोले, विद्वान् राजा जनमेजय पितामहोंका इस प्रकार गमनागमन वृत्तान्त सुनके अत्यन्त आनन्दित होकर पुनरागमनका विवरण पूछते हुए बोले, शरीर छोड़े हुए पुरुषोंका फिर उस प्रकार दीख पड़ना कैसे सम्भव हुआ? प्रतापशाली द्विजवर व्यासशिष्य ऐसा प्रश्न सुनके नरनाथ जनमेजयसे कहने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! ऐसा निश्चय है, कि समस्त कर्म्म अविनाशी हैं, उन कर्म्मोंसे जीवोंके शरीर तथा आकृतिसमूह उत्पन्न हुआ करता है। महाभूतोंका नित्य भूताधिपतिके संयोग निबन्धनसे उनका नित्य सवास होता है; परन्तु उनके पृथक् होनेपर भी उनका विनाश नहीं होता, कर्म्म अनायास साध्य है, उसका फलागम सत्य प्रधान है, इस ही लिये आत्मा कर्म्मफलसे युक्त होकर सुख दुःख भोग किया करता है। ऐसा निश्चय है, कि क्षेत्रज्ञ अविनाशी होनेपर भी नश्वर प्राणियोंमें युक्त रहता है, इसका अविच्छेद ही प्राणियोंका आत्मीयभाव है, जबतक कर्म्म क्षय नहीं होता, तबतक वह मनुष्योंका अनुवर्त्ती रहती है; इस लोकमें मनुष्य क्षीणकर्म्मा होनेसे रूपान्तर प्राप्त हुआ करता है। समस्त स्वभावको संहत होकर एकत्व वा एक शरीर प्राप्त करके पृथक्भावज्ञ पुरुषोंके निकट नित्य रूपसे निवास करते हैं। अश्वमेध यज्ञमें घोड़ा मारनेके विषयमें ऐसी जनश्रुति है, कि जीवोंका प्राण नित्य लोकान्तरमें गमन करता है। हे पृथ्वीपति! मैं आपसे यह हितकर प्रियवचन कहता हूं, सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि तुम्हारे यज्ञके समयमें सब मार्ग देवताओंके गमन करनेसे रुद्ध हुए थे। जिस स्थानमें आपने यज्ञ किया, देवताओंने वहां आके तुम्हारे हितकी चेष्टा की थी। जब देवता लोग यज्ञमें एकत्र होके पशुओंको गमन करनेकी आज्ञा करते हैं, तभी वे गमन करनेमें प्रवृत्त होते हैं, यज्ञमें बिना प्रवृत्त हुए वे नित्य नहीं होते। जो पुरुष इस नित्य पञ्चतत्त्व अर्थात् पांचों महाभूतों तथा नित्य आत्मामें जीवका अनेक समयोग देखता है, वह वृथामति और वियोगसे अत्यन्त शोकार्त्त होता है, उस पुरुषको मेरे मतमें बालक समझना चाहिये। जो पुरुष वियोगमें दोषदर्शी होता है, वही संयोग परिवर्ज्जन करता है और जिसको असङ्गमें आसक्ति नहीं होती, उसे ही पृथिवीमें वियोग जनित महादुःख हुआ करता है। जो पुरुष अभिमानरहित है, वही परावरज्ञ होता है और अपरज्ञ पुरुषको परम बुद्धिका बोध होनेपर उसे मोहसे छुटकारा मिलता है। अदर्शनके लिये ही वे अदृश्य हुए हैं, इस ही निमित्त मैं उन्हें नहीं जानता, वे भी मुझे नहीं जानते, उसमें मुझे वैराग्य नहीं है। किन्तु यह अनीश्वर मनुष्य जिस जिस शरीरसे जो जो कार्य्य करता है, उस ही उस शरीरसे उसे उन फलोंको भोगना होता है, मानसिक कार्य्य मनसे और शारीरिक कर्म्म शरीरके द्वारा प्राप्त हुआ करते हैं।

३४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुवह ! नर-नाथ धृतराष्ट्रने पुत्रोंको न देखनेपर ऋषिकी कृपासे निज निज रूपधारी पुत्रोंको फिर देखा। पुरुषश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रको ऋषिकी कृपासे राजधर्म्म, ब्रह्मोपनिषद और बुद्धिनिश्चय प्राप्त हुआ ; महाप्राज्ञ विदुरने तपोबलसे और धृत राष्ट्रने तपस्वी व्यासदेवकी कृपासे सिद्धि पाई ।

जनमेजय बोले, यदि वरदाता व्यासदेव मुझे वैसे रूप, वेष तथा अवस्थायुक्त मेरे पिताका दर्शन करा सकें, तो मैं आपकी सब बातोंका विश्वास करूं। उस ऋषिश्रेष्ठकी कृपासे मेरे पिताका दर्शन होनेपर मैं परम प्रसन्न, कृतार्थ और कृतनिश्चय हूंगा तथा मेरी चिरका-मना परिपूर्ण होगी।

सौति बोले, उस नरनाथ जनमेजयके ऐसा कहनेपर धीमान् प्रतापवान वेदव्यास मुनिने परीक्षितको बुलाया। तिसके अनन्तर राजा जनमेजयने वैसे ही रूप, वेष और अवस्थायुक्त सुरलोकसे आये हुए श्रीमान् पिता, महात्मा शमीक, उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि तथा राजा परीक्षितको मन्त्रियोंके सहित देखा। अनन्तर उन्होंने अत्यन्त आनन्दित होके यज्ञके अन्तमें पिताको स्नान कराके स्वयं स्नान किया। उस समय राजा जनमेजय स्नान करके यायावर-कुलमें उत्पन्न जरत्कारुपुत्र द्विजश्रेष्ठ आस्तिक मुनिसे बोले, हे आस्तिक ! मेरा यह यज्ञ अत्यन्त आश्चर्यजनक बोध हुआ, क्यों कि आज मेरे शोकनाशक पिता समागत हुए।

आस्तीक मुनि बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! तपोनिधि पुराण ऋषि द्वैपायन मुनि जिसके यज्ञमें अधिष्ठित होते हैं, उसके दोनों लोक जीत हुआ करते हैं। हे पाण्डवनन्दन ! आपने विचित्र आख्यान सुना, सांपोंको जलाया और पिताकी पदवीको प्राप्त हुए। हे महाराज ! तक्षक आपके सत्यसे किसी प्रकार छूट गया, ऋषियोंके पूजित होनेसे महात्माओंकी गति देखी गई, इस पापविनाशी आख्यानको सुननेसे विपुल धर्म्म प्राप्त हुआ और उदार लोगोंके दर्शनसे हृदयकी ग्रन्थि छूट गई। जो लोग धर्म्मके पक्षपाती सद्वृत्त रुचिसम्पन्न हैं तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन्हें नमस्कार है।

सौति बोले, राजा जनमेजयने द्विजश्रेष्ठ वैशम्पायन मुनिके समीप यह सब सुनके उस ऋषिको बार बार सम्मानित करके पूजा की। अनन्तर धर्म्मज्ञसत्तम जनमेजयने ऋषिवर अच्युत वैशम्पायनसे वनवासकी कथाका शेषवृत्तान्त पूछा।

३५ अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, जननाथ धृतराष्ट्रने पुत्रों, राजा युधिष्ठिर तथा आत्मीयजनोंको देखकर अन्तमें क्या किया ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह राजर्षि धृत-राष्ट्र पुत्रदर्शनरूपी उस महान् आश्चर्य व्यापारको देखकर शोकरहित होके फिर आश्रम आये। साधारण लोग और परमर्षिवृन्द धृतराष्ट्रकी आज्ञानुसार यथाभिलषित स्थानमें चले गये। महात्मा पाण्डव स्त्रियोंको सङ्ग लेकर सेनाके सहित महात्मा पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्रके निकट फिर गमन किया। लोकपूजित ब्रह्मर्षि सत्यवतीपुत्र मुनिश्रेष्ठ व्यासदेव उस आश्रममें आके धृतराष्ट्रसे कहने लगे।- हे कुरुनन्दन महाबाहो धृतराष्ट्र ! तुमने ज्ञानवृद्ध पुण्यकर्म्म करनेवाले पूजनीय अभिजनगणके बीच वृद्ध, वेद वेदाङ्ग जाननेवाले धर्म्मज्ञ पुरातन ऋषियोंकी विविध कथा और देवर्षि नारद मुनिके समीप देवरहस्य सुना है, इसलिये अब शोकमें मन न लगाना, क्यों कि विद्वान पुरुष दैवनिर्बन्धमें व्यथित नहीं होते। तुमने पुत्रोंको जिस प्रकार देखा, वे लोग क्षत्रधर्म्मके अनुसार शस्त्रपूत शुभ गति पाके उस ही प्रकार इच्छानुसार विहार किया करते हैं। ये धीमान् युधिष्ठिर भाइयों और सुहृज्जनोंके सहित तुमसे अनुरोध करने

हैं, तुम इन्हें विदा करो; ये तुम्हारे समीपसे विदा होके निज-राज्यमें जाके राज्य शासन करें; इन लोगोंने एक महीनेसे अधिक वनमें वास किया है। हे नरनाथ! अत्यन्त यत्नके सहित सदा राजत्वकी रक्षा ही राजाओंका धर्म्म है, क्यों कि राजा लोग प्रत्यर्थगणोंसे सदा आक्रान्त हुआ करते हैं। कुरुराज वाग्मी धृतराष्ट्र अमिततेजस्वी वेदव्यास मुनिका ऐसा वचन सुनके युधिष्ठिरको आह्वान करके कहने लगे। हे अजातशत्रो! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम भाइयोंके सहित मेरा वचन सुनो। हे महीपाल! तुम्हारी कृपासे अब शोक मुझे बाधित नहीं कर सकता। हे पुत्र! पहिले तुम्हें हस्तिनापुरके प्रभु तथा प्रिय विषयमें सब प्रकारसे वर्त्तमान जानके मैंने तुम्हारे अनुगत होकर जैसे तुम्हारे उग्र सुखभोग किया था, इस समय भी उस ही प्रकार सुखी हुआ। हे वत्स! मुझे तुमसे पुत्रफल प्राप्त हुआ, तुममें मेरी परम प्रीति रही, तुम्हारे विषयमें मुझे तनिक भी क्रोध नहीं है; इसलिये तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे इस स्थानमें सदा रहनेसे तुम्हें देखकर मेरी तपस्या नष्ट होती है; तुम्हारा तपयुक्त शरीर देखकर मेरा मन तुममें लीन हुआ है। मेरे समान ये तुम्हारी दोनों माता बहुत समयसे सूखे पत्ते भोजन करती हुई व्रत नियममें वर्त्तमान हैं। व्यास मुनिके तपोबलसे और तुम्हारे समागमसे वे परलोकमें गये हुए दुर्य्योधन प्रभृति पुत्र तथा बान्धवगण दीख पड़े। हे अनघ! मेरे जीवनका प्रयोजन निवृत्त हुआ है, अब तुम आज्ञा करो मैं उग्र तपस्या अवलम्बन करूंगा। हे पुत्र! आज पितृपिण्ड, कीर्त्ति तथा यह कुरुकुल तुममें प्रतिष्ठित हुआ। हे महाबाहो! इसलिये आज वा कल गमन करो विलम्ब मत करो। हे भरतर्षभ! तुमने बहुतसी नीति सुनी है, इसलिये तुम्हारे विषयमें मैं अपना कुछ भी वक्तव्य नहीं देखता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर नरनाथ युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे धर्म्मज्ञ! मैं निरपराध हूं, इसलिये मुझे परित्याग करना आपको उचित नहीं है। मेरे भाई और सेवक लोग इच्छानुसार जावें, परन्तु मैं संयत वा व्रतनिष्ठ होकर कुन्ती तथा गान्धारी माता और आपका अनुगमन करूंगा। अनन्तर गान्धारी युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके बोली, हे पुत्र! तुम ऐसा मत करो, मेरा वचन सुनो, यह कुरुकुल तथा मेरे श्वशुरका पिण्ड तुम्हारे अधीन हुआ है। हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा हम लोगोंकी यथेष्ट सेवा हुई है, महाराज जो वचन कहते हैं, वह तुम्हें प्रतिपालन करना उचित है; प्रियवाक्यको अतिक्रम करना पुत्रका कार्य्य नहीं है, इसलिये तुम शीघ्र जाओ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरने गान्धारीका ऐसा वचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक वाष्प-परिपूर्ण दोनों नेत्रोंसे आंसू बहाते हुए रोती हुई कुन्ती देवीसे यह वचन बोले, हे माता! राजा और यशस्विनी गान्धारी मुझे परित्याग करती है, परन्तु मेरा चित्त तुममें बद्ध रहनेसे मैं दुःखित होकर किस प्रकार गमन करूं? हे धर्म्मचारिणी! मैं तुम्हारी तपस्यामें विघ्न करनेके लिये उत्साहित नहीं होता, क्यों कि तपस्यासे महत् फल प्राप्त हुआ करता है, इसलिये तपस्याके तुल्य और कुछ भी नहीं है, हे रानी! पहिलेकी भांति राज्यमें मेरा वैसा अनुराग नहीं होता है, मेरा मन इस समय सब प्रकारसे तपस्यामें अनुरक्त हुआ है। हे शुभे! पहलेकी भांति मेरे पास बन्धुबल नहीं है. इस समय यह समस्त पृथ्वीमण्डल सूना होनेसे मुझे प्रीतिकर नहीं होता है। पाञ्चालगण सब प्रकारसे नष्ट हुए, अब केवल कथा मात्र शेष हैं, उनका कर्त्ता किसीको भी नहीं देखता, वे सब कोई द्रोणाचार्य्यके द्वारा संग्राममें

भस्म होगये हैं, जो लोग शेष थे, उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रात्रिके समय मार डाला। मैं बिना अर्थके केवल धर्म्मार्थ जिन्हें देखकर रहनेकी इच्छा करता हूं, हम लोगोंके पहले देखे हुए उन चेदी और मत्स्यवंशीय लोगोंके बीच केवल वृष्णाचक्र श्रीकृष्णकी कृपासे अवशिष्ट है। आप मुझे शुभनेत्रसे देखो, तुम्हारा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, राजा अत्यन्त तीव्र अविसह्य तपस्या आरम्भ करेंगे।

युधापति महाबाहु सहदेव इतनी बात सुनके आखोंमें आसू भरके युधिष्ठिरसे बोले, हे भरतर्षभ। मैं माताको छोड़के न जा सकूंगा, आप शीघ्र जाइये। हे विभु! मैं भी तपस्या करते हुए तपोबलसे इस स्थानमें शरीर सुखाऊंगा और राजा धृतराष्ट्र कुन्ती तथा गान्धारी माताकी चरणसेवामें अनुरक्त रहूंगा।

तिसके अनन्तर कुन्ती महाभुज सहदेवको गोदीमें लेकर बोली, हे पुत्र! तुम मेरे वचनको प्रतिपालन करके जाओ। हे पुत्रगण! तुम लोगोंका आगमन सफल तथा शुभ होवे और तुम लोग रोग रहित रहो; हम लोगोंके तपस्याके विषयमें यह बाधा होती है, कि यदि तुम लोग इस स्थानमें निवास करोगे, तो तुम्हारे स्नेहपाशमें बद्ध होकर तपस्यासे भ्रष्ट होना होगा। हे पुत्र! इसलिये तुम जाओ, हम लोगोंकी तपस्यामें अब थोड़ा ही शेष है।

हे राजेन्द्र! कुन्तीके इस ही प्रकार बहुतसे वचन सुनके राजा युधिष्ठिर और सहदेवका मन स्तम्भित हुआ, वे कुरुपुङ्गवगण निज माता कुन्तीके द्वारा गमन करनेकी आज्ञा पाके कुरुराज धृतराष्ट्रको प्रणाम करके आमन्त्रण करने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! आप मङ्गलदाता हैं, जब आपके द्वारा हम लोग अनुज्ञात और अभिनन्दित हुए, तब निर्व्विघ्नताके सहित राज्यमें जायगे? राजर्षि धृतराष्ट्रने महात्मा धर्म्मराजके ऐसा पूछनेपर उन्हें अभिनन्दित करते हुए जानेके लिये अनुमति दी। अनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, अर्ज्जुन तथा यमज नकुल सहदेवने धीरज देके आश्वासित करते हुए आलिङ्गन तथा अभिनन्दन करके जानेके निमित आज्ञा की। पाण्डव लोग गान्धारीसे आज्ञा पाके तथा कुन्ती माताके द्वारा मस्तक सूंघे जानेपर उन्हें प्रणाम करते हुए निवारित बछड़ोंकी भांति प्रदक्षिणपूर्व्वक बार बार देखते हुए प्रदक्षिणा करने लगे।

द्रौपदी प्रभृति कुरु-स्त्रियें न्यायपूर्व्वक श्वशुर धृतराष्ट्रको प्रणामादि करके सास गान्धारी तथा कुन्तीसे अनुज्ञात होके आलिङ्गन पूर्व्वक अभिनन्दित और कर्त्तव्य विषयोंकी आज्ञा पाके अपने अपने स्वामीके सङ्ग चलीं। उस समय 'बाहनोंको जोतो' इस प्रकार सूतोंका चिल्लाना, ऊंटोंका बलबलाना और घोड़ोंका हिनहिनाना शब्द प्रकट हुआ। तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर बन्धुजनों और सैनिक लोगोंके सहित फिर हस्तिना नगरमें आये।

३६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके निकटसे हस्तिनापुर जानेपर दो वर्षके अनन्तर एकबार देवर्षि नारद मुनि इच्छानुसार युधिष्ठिरके निकट आये। नारद मुनि कुरुराज महाबाहु युधिष्ठिरके द्वारा पूजित होकर बैठे, तब वाग्मिवर धर्म्मराजने उनसे विश्वस्तभावसे कहा, हे विप्रवर! मैंने आपको बहुत समयसे यहां आते नहीं देखा, इस समय आप कुशल है न? हे द्विजवर! आपने कितने देश देखे हैं? कहिये इस समय मुझे तुम्हारा कौनसा मङ्गल कार्य्य करना होगा? आप हम लोगोंकी परम गति है।

नारद मुनि बोले, हे नरनाथ! मैं गङ्गाप्रभृति तीर्थोंका दर्शन करके बहुत समयतक तुमसे भेंट न होनेके कारण तपोवनसे आता हूं।

युधिष्ठिर बोले, आज गङ्गातीरनिवासी पुरुषोंने मुझसे परम तपोनिष्ठ महात्मा धृतराष्ट्रका सम्वाद कहा है; परन्तु क्या आपने वहां कुरुराज, गान्धारी, पृथा तथा सूतपुत्र सञ्जयको कुशली देखा है? हे भगवन्! यदि आपने उस मेरे पिता पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको देखा है, तो वह इस समय कैसी अवस्थामें निवास करते हैं? इस विषयको मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि बोले, हे महाराज! मैंने उस तपोवनमें जो देखा और सुना है, उसे यथार्थ रीतिसे आपके समीप कहता हूं, आप स्थिर होकर सुनिये। हे कुरुनन्दन! आप लोगोंके वनवाससे निवृत्त होनेपर आपके पिता धृतराष्ट्र गान्धारी, कुन्ती और सूत सञ्जयने अग्निहोत्रके सहित कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वारमें गमन किया। तब आपके तपस्वी पिताने मौनावलम्बन करके मुखमें बीटा अर्थात् गुलिका स्थापन करके वायुभची होकर तीव्र तपस्या आरम्भ की थी। वह महातपस्वी इस ही प्रकार उत्तम कठोर तपस्या करते हुए वनके बीच मुनियोंसे पूजित हुए और छः महीनेके बीच उनकी त्वचा तथा हड्डी मात्र शेष रह गईं। हे भारत! गान्धारी जलाहार, कुन्ती एक महीनेतक उपवास और सञ्जय छठवें भागमें भोजन करके प्राण धारण करने लगे। हे प्रभु! वहां याजकगण उस नरनाथके सामने विधानपूर्व्वक अग्निमें आहुति देने लगे। अनन्तर राजाको आश्रम छोड़के वनकी ओर जाते देखकर गान्धारी और कुन्ती देवी तथा सञ्जय उनके अनुगामी हुए। हे महाराज! सञ्जय नरपतिको सम तथा विषम स्थानमें ले जानेके लिये नायक और अनिन्दिता पृथा गान्धारीको नेत्रस्वरूप हुई।

तिसके अनन्तर नृपसत्तम धृतराष्ट्रने गङ्गाके किसी तटपर जाकर आश्रमकी ओर मुंह करके स्नान किया। अन्तमें महावायु प्रकट होनेसे उस वनमें दावाग्नि उत्पन्न हुई, उस दावाग्निने उस वनको चारों ओरसे घेरकर सब जला दिया; हरिणोंके झुण्ड और सांपोंके जलने तथा बाराहोंके जलमें घुसनेपर उस वनके नष्ट होनेसे जब अत्यन्त व्यसन उपस्थित हुआ, तब राजा उपवाससे मन्दप्राण तथा चेष्टाहीन होगये और तुम्हारी माता कुन्ती तथा गान्धारी उनके निकट जानेमें असमर्थ हुई। अनन्तर राजाने अग्निको निकट आते देखकर विजयिप्रवर सूतपुत्र सञ्जयसे यह वचन कहा, हे सञ्जय! जिस स्थानमें अग्नि है, तुम वहां जाओ, यह अग्नि तुम्हें कदापि भस्म न करेगी। हम लोगोंको इस ही स्थानमें अग्निसे गृहीत होनेसे परम गति प्राप्त होगी। वाग्मिवर सञ्जय व्याकुल होके उनसे बोले, हे महाराज! इस वृथा अग्निमें आपकी मृत्यु होनेसे वह इष्टकर न होगी, परन्तु अग्निसे बचनेका उपाय भी नहीं देखता हूं, इसके अनन्तर जो कुछ करना हो, आप उसके लिये आज्ञा करिये।

राजा धृतराष्ट्र सञ्जयका ऐसा वचन सुनके फिर उनसे बोले, हे सञ्जय! जब हम लोग गृहसे बाहिर हुए हैं, तब यह मृत्यु हमारे लिये अनिष्टकर न होगी। जल, वायु, अग्नि और योगबलसे प्राणवायुका आकर्षण,—ये सब मृत्युके विषय तपस्वियोंके लिये श्रेष्ठ हैं, इसलिये तुम देरी मत करो, शीघ्र जाओ। राजा ऐसा कहके योगयुक्त चित्तसे गान्धारी और कुन्तीके सहित पूर्व्व मुख होकर बैठे।

मेधावी सञ्जयने धृतराष्ट्रको योगमें चित्त लगाते देखकर उनकी प्रदक्षिणा करके कहा, हे प्रभु! आप आत्माको युक्त करिये। ऋषिपुत्र मनीषी राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयका ऐसा वचन सुनके इन्द्रियोंको पूरी रीतिसे रुद्ध करके काष्ठकी भांति निवास किया। अनन्तर महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता, कुन्ती और राजा धृतराष्ट्र दावाग्निके सहित संयुक्त हुए, महामन्त्री सञ्जय उस दावानलसे छूटे। मैंने

देखा, कि तेजस्वी सञ्जयने गङ्गाके तटपर तपस्वियोंसे घिरके उन्हें आमन्त्रण करके सब वृत्तान्त सुनाकर हिमालय पर्व्वतपर गमन किया। हे विशाम्पते! महामना कुरुराज, गान्धारी और कुन्तीकी इसही प्रकार मृत्यु हुई है। हे भारत! मैंने इच्छानुसार घूमते हुए राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती देवीका शरीर देखा।

तिसके अनन्तर तपस्वी ऋषियोंने आके राजाकी वैसी निष्ठा सुनके शोक न किया। हे पुरुषसत्तम! मैंने वहां यह सब वृत्तान्त सुना। हे पाण्डव! राजा, गान्धारीदेवी और कुन्ती,—ये लोग जिस प्रकार जले हैं, वह तुम्हारे शोकका विषय नहीं है, क्यों कि तुम्हारी माता और गान्धारीको अग्नि प्राप्त हुई है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! महात्मापाण्डव लोग धृतराष्ट्रकी मृत्युका समाचार सुनके अत्यन्त शोकार्त्त हुए, राजाकी गति सुनके अन्तःपुर और पुरवासियोंके बीच महान् आर्त्तनाद प्रकट हुआ। इधर युधिष्ठिर भीमसेन प्रभृति भाइयोंके सहित अत्यन्त दुःखसे 'ओहो धिक्!' ऐसा वचन कहके दोनों भुजाओंको उठाकर ऊंचे स्वरसे रोदन करने लगे। हे महाराज! पृथा की मृत्युका सम्वाद सुनके रनिवासमें महान्‌रोदनध्वनि प्रकट हुई; हतपुत्र बूढ़े नरनाथ धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीका उस प्रकार जलना सुनके सब कोई शोक करने लगे। हे भारत! मुहूर्त्त भरके बीच वह शब्द निवृत्त हुआ, धर्म्मराज धैर्य्यके सहारे आंसू रोकके कहने लगे।

३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ब्रह्मन्! हम सब बन्धुबान्धवोंके रहते उस उग्र तपस्यामें रत महात्माधृतराष्ट्रकी अनाथकी भांति मृत्यु हुई। जब वह विचित्रवीर्य्य पुत्र दावानलमें जले हैं, तब मैंने निश्चय जाना, कि पुरुषकी गति दुर्व्विज्ञेय है। जिसके बाहुबलशाली एक सौ पुत्र हुए थे, वेही अयुत हाथियोंके सदृश बलशाली राजा धृतराष्ट्र दावानलमें भस्म हुए। जिनके समीप मुख्य मुख्य स्त्रियें तालका बेना लेकर सञ्चालन करती थीं, इस समय दावाग्निसे परिगृहीत उस पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको गृध्रगण बीजन करने लगे। हाय! जो उत्तम, शय्यापर सोके प्रतिदिन भोरको सूत और मागधोंके द्वारा जागते थे, आज वेही राजा मुझ पापात्माके कार्य्य दोषसे पृथ्वीपर सोये। मैं उस पतिव्रतमें रत रहनेवाली पतिलोकमें गई हुई हतपुत्रा यशस्विनी गान्धारीके निमित्त शोक नहीं करता; किन्तु जिसने समृद्धिशाली पुत्रोंके प्रदीप्त ऐश्वर्य्यको परित्याग करके वनवासकी अभिलाष की थी, उस पृथाके निमित्त ही मुझे अत्यन्त शोक उपस्थित होता है। हम लोगोंके राज्यबल, पराक्रम और क्षत्रधर्म्मको धिक्कार है और हम लोग जो मरके फिर जीवित हुए, उसे भी धिक्कार है। हे द्विजवरोत्तम! कालकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, क्यों कि राजा धृतराष्ट्र, राज्यको परित्याग करके वनवासके अभिलाषी हुए थे। पृथा युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुनकी जननी होकर अनाथाकी भांति किस निमित्त जली! इसकी चिन्ता करके मैं विमोहित होता हूं; सव्यसाचीने खाण्डव वनमें अनर्थक अग्निको तृप्त किया था, क्यों कि उस कारको स्वीकार न करनेसे मुझे बोध होता है, कि अग्नि कृतघ्न है। हे भगवन्! जो बनके बीच भिक्षार्थी ब्राह्मणके छलसे निकट आके सव्यसाचीको माता पृथाको जलाया है, उस अग्नि भगवान् और पार्थको सत्यसन्धताको धिक्कार है, क्यों कि यह सबसे बढ़के मुझे कष्ट कर बोध होता है। राजर्षि तपस्वी पृथ्वीनाथ कुरुपतिको जो अग्निसंयोग हुआ, वह वृथा है, उस महावनमें उनके मन्त्रपुत अग्निके विद्यमान रहते ऐसी मृत्यु क्यों हुई? मुझे बोध

होता है, कि पिताका वैसे अग्निके सहित संयोग होनेसे ही निष्ठा लाभ हुई है और वह अत्यन्त दुबली शिराओंसे व्याप्त पृथा महाभयसे कांपती हा तात धर्म्मराज! ऐसा कहके रोती हुई तथा 'हे भीम! भयसे रक्षा करो' ऐसा कहके अवसन्न होकर दावाग्निके द्वारा चारों ओरसे व्याप्त हुई है; उसके सब पुत्रोंसे अधिक प्रिय वीरश्रेष्ठ माद्रीपुत्र सहदेव उसे अग्निसे बचा न सके।

पाचों पाण्डव ऐसी बात सुनके सब कोई परस्परको आलिङ्गन करते हुए प्रलयकालके प्राणियोंकी भांति रोदन करने लगे। उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके रोदन करते रहनेपर उनके रोनेका शब्द मन्दिरके परिसर प्रदेशमें परिव्याप्त होनेसे मानो गगन मण्डलके सहित उस प्रासादके स्थान रोदन करने लगे।

३८ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे भारत! मैंने उस बनमें जैसा सुना है, वही तुमसे कहूंगा, उसमें अन्यथा न होगी। मैंने सुना कि, वह विचित्रवीर्य्यपुत्र नरनाथ धृतराष्ट्र वृथाग्निमें नहीं जले। हे भरतसत्तम। मैंने ऐसा सुना है, कि उस धीमान् नरनाथने वायु भक्षणपूर्व्वक बनमें प्रवेश करते हुए यज्ञ कराके अग्निका परित्याग किया, अनन्तर याजकवृन्द निर्ज्जन बनके बीच उनकी उस अग्निको विसर्ज्जन करके अभिलषित स्थानमें गये। तपस्वियोंने इस प्रकार कहा, कि उस समय उस अग्निने बनके बीच अत्यन्त बर्द्धित होकर उस जङ्गलको प्रदीप्त किया। हे भरतप्रवर। उसके अनन्तर राजा गाङ्गाजीके तटपर उस अग्निके सहित संयुक्त हुए। हे युधिष्ठिर! गङ्गाजीके तटपर मैंने जिन मुनियोंका दर्शन किया, उन्होंने मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा है। हे पृथ्वीनाथ! जब कि राजा इस प्रकार निज अग्निके सहित संयुक्त हुए हैं, तब उन्होंने निश्चय ही परम गति प्राप्त की है, उनके लिये आप शोक न करिये। हे जननाथ! आपकी माताने भी गुरुसेवासे महती सिद्धि पाई है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र। इस समय आप भाइयोंके सहित उन लोगोंकी विधिपूर्व्वक जल क्रिया पूरी करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरश्रेष्ठ! उसके अनन्तर वह पाण्डवधुरन्धर पृथ्वीपति युधिष्ठिर भाइयों और स्त्रियोंके सहित नगरसे बाहिर हुए, पुरवासियों और जनपदवासियोंने राजभक्ति दिखाते हुए एकवस्त्रसे संवृत्त होकर उन लोगोंको घेरकर गङ्गाकी ओर गमन किया। तिसके बाद उन नरपुङ्गवोंने गङ्गाजलमें स्नान कर युयुत्सुको आगे करके महात्मा धृतराष्ट्रको जल प्रदान किया, फिर गान्धारी और पृथाके नाम गोत्रका उच्चारण करके विधिपूर्व्वक शौचकार्य्य निवर्त्तित करते हुए नगरके बाहिरी भागमें निवास किया। पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर जहां धृतराष्ट्र जले थे, उस गङ्गाद्वारमें विधिज्ञ आप्तकारी मनुष्योंको भेजा, पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने उन पुरुषोंको गङ्गाद्वारमें ही उनके कर्त्तव्य कार्य्योंको करनेके लिये आज्ञा करी।

अनन्तर पाण्डुपुत्र नरनाथ युधिष्ठिरने द्वादशाहमें शौचादिसे निवृत्त होकर उन लोगोंका विधिविहित दक्षिणायुक्त श्राद्ध दान किया। उन्होंने धृतराष्ट्रके उद्देश्यसे सोना, रूपा, गऊ और महामूल्यवान शय्या प्रदान की, फिर पृथक् रीतिसे गान्धारी और पृथाके नामसे सब प्रकारके उत्तम वस्त्र दान किये? उस समय शय्या भोजनपात्र, यान, मणि, रत्न, धन प्रभृति जो जो जिसे इच्छा हुई, उसने वही पाई, इतनाही नहीं वरन राजा युधिष्ठिरने गान्धारी और पृथा माताके उद्देश्यसे यान, ओढ़नेके वस्त्र, विविध भोग्यवस्तु तथा अलङ्कारयुक्त दासी प्रभृति प्रदान की।

फिर उन्होंने पिता-माताके उद्देश्यसे बहुतसी आडीय वस्तु दान करके हस्तिनानगरमें प्रवेश किया। राजाकी आज्ञासे जो लोग धृत-

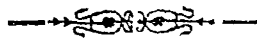
राष्ट्रादिके संस्कारके निमित्त गये थे, वे उनकी हड्डियोंको एकत्रित करके फिर लौट आये, तब युधिष्ठिरने विविध माला और सुगन्धिसे विधिपूर्व्वक पूजा करते हुए उसे गङ्गाके सहित संयुक्त करनेके लिये कहा।

हे राजन्! परमर्षि नारदने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको आश्वासित करके अभिलषित स्थानमें गमन किया। संग्राममें हतपुत्र, ज्ञाति, सम्बन्धी, मित्र, भ्राता और स्वजनोंको सदा धन देनेवाले धीमान् धृतराष्ट्रका इस ही प्रकार नगरमें पन्द्रह वर्ष और बनवासमें तीन वर्ष बीता था। उस समय युधिष्ठिर ज्ञाति-बान्धवोंके मरनेसे राज्य पाके भी प्रसन्नचित्त न हुए। पुरुष समाहित होकर आश्रमवासिक पर्व्वमें ब्राह्मणोंको गन्धमालासे पूजा करके हविष्य भोजन करावे।

आश्रमवासिक पर्व्व समाप्त।



महाभारत ।



मौषल पर्व्व ।

नारायण, नरोत्तम, नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवनन्दन युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर छत्तीसवें वर्षके प्रारम्भमें ही अनेक प्रकारका अपशकुन देखा । कङ्कड़से युक्त तखा वायु शब्दके सहित वहने लगा, पक्षी-वृन्द अपसव्य मण्डलमें भ्रमण करने लगे । सब महानदियें सूख गईं और सब दिशा कुहासेसे परिपूरित हुईं, अङ्गार वर्षा उल्का समूह आकाशमण्डलसे पृथ्वीपर गिरने लगे; हे महाराज ! सूर्य्य किरण रहित हुए और उनका मण्डल धूलि धूसरित तथा कबन्धोंसे परिपूर्ण दिखाई देने लगा, चन्द्र और सूर्य्य मण्डलमे श्याम, अरुण और भस्म सदृश त्रिवर्ग रुच परिवेश दीखने लगा । हे महाराज ! हृदयको व्याकुल करनेवाले तथा भयसूचक इस ही प्रकार और भी अनेक उत्पात दीखनेपर किसी दिन कुरुराज युधिष्ठिरने सुना, कि वृष्णि वंशीय लोग सब कोई मूषलयुद्धमें विनष्ट हुए है और राम तथा कृष्णने देह त्याग किया है । पाण्डुनन्दन इतनी बात सुनते ही भाइयोंको बुलाकर बोले ;—'ब्रह्मशापसे वृष्णिवंशीय लोग परस्पर युद्ध करके सब कोई विनष्ट हुए हैं, इसलिये हम लोगोंको इस समय क्या करना चाहिये?' उसे सुनके पाण्डुकेपुत्र अत्यन्त व्यथित हुए ; परन्तु समुद्र सूखनेकी भांति बलदेव और श्रीकृष्णकेमरनेको असम्भव समझकेपहले किसीने विश्वास नहीं किया । अनन्तर मौषलयुद्ध विषयक सब सम्वाद सुनके दुःख तथा शोकसे अभिभूत विषण्ण तथा हत-सङ्कल्प होकर बैठ गये ।

जनमेजय बोले, हे भगवन् ! अन्धक, वृष्णि और महारथ भोजवंशीगण श्रीकृष्णके सामने किस प्रकार विनष्ट हुए ? आप यह सब मेरे समीप प्रकाश करके कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरको राज्य मिलनेपर छत्तीसवें वर्षमें वृष्णिवंशियोंके बीच बहुत ही दुर्नीति उपस्थित होनेसे वे लोग एरकामें लगे हुए मूषल-कणके द्वारा परस्परको मारके विनष्ट हुए हैं ।

जनमेजय बोले, हे द्विजश्रेष्ठ ! वृष्णि, अन्धक और भोजवंशीय लोगोंका किसके शापसे इस प्रकार नाश हुआ ? आप वह सब मेरे निकट विस्तारपूर्व्वक कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, एक समय सारण प्रभृति बीरगण विश्वामित्र, कण्व और तपोधन नारद मुनिको द्वारका नगरीमें आया हुआ देख कर साम्बको स्त्रीकी भांति सज्जित करके मानो काल प्रेरित होके ही ऋषियोंके निकट जाकर बोले,—"हे ब्रह्मर्षिगण ! पुत्राभिलाषी अमित तेजस्वी यह बभ्रुकी भार्य्या क्या प्रसव करेगी, उसे आप लोग उत्तम रीतिसे गिनके देखिये ।" हे महाराज ! महर्षिवृन्द ऐसा सुनके वृष्णिवंशियोंके वञ्चना वाक्यसे अत्यन्त ही रुष्ट हुए और जो प्रत्युत्तर दिया, उसे सुनिये । उन लोगोंने

कहा, यह श्रीकृष्णका पुत्र शाम्ब वृष्णि और अन्धकोंके विनाशके निमित्त एक घोर आयस मूषल प्रसव करेगा, तुम लोग अत्यन्त दुर्व्वृत्त, गर्व्वित और नृशंस हुए हो; इसलिये तुम लोगोंके दोषसे ही राम कृष्णको छोड़के सारा यदुकुल विनष्ट होगा। श्रीमान् हलधर समुद्रमें प्रवेश करके शरीर छोड़ेंगे और जरा नाम कोई कैवर्त्त पृथ्वीपर सोये हुए महात्मा कृष्णको बिद्ध करेगा। हे नरनाथ! दुःस्वभाव यादवोंके द्वारा प्रतारित वे मुनिगण क्रोधसे लाल नेत्र करके परस्पर एक दूसरेको अवलोकन करते हुए इतनी बात कहके, पीछे केशव क्रुद्ध हों, इस भयसे मनके बीच उनका ध्यान करने लगे। अनागत विषयोंके जाननेवाले बुद्धिमान् मधुसूदन भी यह सब वृत्तान्त सुनके वृष्णिवंशियोंसे बोले, कि मुनियोंने जैसा कहा है, वैसाही होगा। अनन्तर उस जगत्प्रभु हृषिकेशने जो कालवशसे हुआ है, उसे अन्यथा करनेमें अनभिलाषी होकर पुरके बीच प्रवेश किया। दूसरे दिन सवेरे शाम्बने उस मूषलको प्रसव किया, जिसके द्वारा वृष्णि और अधकवंशिय पुरुषोंका नाश हुआ। हे महाराज! तिसके अनन्तर वृष्णि और अन्धकोंके विनाशका मूल, मुनिशापके प्रभावसे शाम्बके द्वारा प्रसव हुए उस यमदूतसदृश महत् मूषलका विषय राजा उग्रसेनके समीप सुनानेपर उन्होंने दुःखी होकर उसका मिहीन चूर्ण कराया और यदुवंशियोंने वह सब चूर्ण समुद्रमें फेंक दिया। तिसके अनन्तर उन लोगोंने महात्मा जनार्द्दन, राम, बभ्रु और आहुकके वचनानुसार नगरमें इस प्रकार ढिंढोरा दिलाया, कि आजसे नगरवासी वृष्णि और अन्धकवंशियोंके बीच कोई मद्यादि पीके मतवाला न होवे। यदि कोई पुरुष मद्य पीयेगा, तो हमलोग जाननेसे उसके अकेले पीनेपर भी बांधवोंके सहित जीवित अवस्थामें ही उसे शूलोंपर चढ़ावेंगे। द्वारकावासी लोगोंने भक्ति-ष्टकर्म्मा रामकी ऐसी आज्ञा सुनके राजभयसे "हमलोग अब मद्य न पीयेंगे"—इसही प्रकार नियम स्थापित किया।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अन्धक लोगोंके सहित वृष्णिवंशियोंके इस प्रकार सावधान होनेपर कालपुरुष सदा प्रतिदिन उन लोगोंके गृहोंमें घूमने लगा। किसी किसी गृहमें न दीखनेपर भी उस शिरमुंडे कराल बदन निकट दर्शन कालपुरुषको वार्ष्णेय लोगोंके सब गृहोंमें ही पर्य्यवेक्षण करते देखा गया। यादवलोगोंने उसे मारनेके लिये असंख्य वाण चलाये, परन्तु किसीसे उस सर्व्वभूत क्षयकारीको बिद्ध करनेमें समर्थ न हुए। उस समय प्रतिदिन वृष्णि और अन्धकवंशियोंके बिनाशसूचक प्रबलतर निदारुण महावायु प्रवाहित होना आरम्भ हुआ। सब रथ्या मूषिक और क्षतपात्रोंसे परिपूर्ण होगये और यदुवंशियोंके सोनपर चूहोंने उनके नखों तथा केशोंको काटना आरम्भ किया। वार्ष्णेय लोगोंके गृहमें स्थित सारिकासमूह चीचों, कुचों प्रभृति बोली बोलने लगीं और वह शब्द दिन रातके बीच एक बार भी बन्द न हुआ। हे भारत! उस समय सारसवृन्द उल्लुओं और बकरे सियारोंके शब्दका अनुकरण करने लगे। पाण्डुरवर्ण और लालचरणवाले कबूतर आदि पक्षिवृन्द मानो कालसे प्रेरित होके ही वृष्णि और अन्धकगणोंके प्रति गृहोंमें बिचरने लगे; गो-योनिमें गर्द्दभ, अश्वतरोंसे करभ, कुत्तोंसे बिड़ाल और नकुलोंके गर्भसे चूहे उत्पन्न होने लगे। उस समय वार्ष्णेयगण पापकार्य्य करके भी लज्जा नहीं करते थे और देवता, ब्राह्मण तथा पितरोंका द्वेष करना आरम्भ किया। रामकृष्णके अतिरिक्त प्रायः सब यदुवंशी लोग गुरुजनोंकी अवमानना करनेमें प्रवृत्त हुए, पत्नी पतिकी और पति पत्नीकी वञ्चना करने लगा।

अग्नि लाल, काली और मञ्जिष्ठावर्ण शिखाके सहित वामावर्त्तमें प्रज्वलित होने लगी; उस पुरीसे उदय और अस्तके समय सूर्य्य बार बार कबन्ध पुरुषोंसे घिरा हुआ दिखाई देने लगा। हे भारत! सिद्ध महानस तथा उत्तम संस्कार-युक्त अन्नादि भोजनकी वस्तुओंमें सहस्रों कृमि दिखाई देने लगे। वे महात्मा लोग जिस समय पुण्याहवाचन तथा जपादिमें रत होते थे, उस समय बोध होता था, कि मानो कोई उस स्थानमें दौड़ रहा है, किन्तु किसीको देख न सकते थे। यादवलोग परस्परके नक्षत्रको ग्रहोंसे पीड़ित देखने लगे, परन्तु किसीने भी अपने नक्षत्रको न देखा; वृष्णि और अन्धकवंशियोंके गृहमें पाञ्चजन्य शङ्खके शब्दके समयमें दारुण स्वरसे गधोंका शब्द होने लगा। उस समय हृषीकेशने त्रयोदशीमें अमावस्या अर्थात् कृष्णपक्षकी त्रयोदश दिवसात्मकादि रूप काल विपर्य्यय देखकर यादवोंसे कहा;—यह देखो, भारत युद्धके समय जिस प्रकार हुआ था, उस ही भांति हम लोगोंके विनाशके निमित्त ही आज त्रयोदशीमें ही पौर्णमासीका कार्य्य सम्पादित होता है। केशिनिषूदन जनार्द्दन इतनी बात कहके ही क्षणभर सोचके निरूपित कालका समागम समझके फिर बोले,—'हतबान्धवा गान्धारीने पुत्रशोकसे सन्तापित होके आर्त्तभावसे जो कहा था, वही छत्तीसवां वर्ष उपस्थित हुआ है।' इसके अतिरिक्त पहले सब सेनाकी व्यूह रचना होनेपर महाराज युधिष्ठिरने निदारुण उत्पातोंको देखकर जो आशङ्का की थी, इस समय भी वही उपस्थित हुआ है।

श्रीकृष्णने इतनी बात कहके ही उस दैवकृत दुर्निमित्तको सत्य करनेकी अभिलाषसे ही उस समय तीर्थयात्राके लिये आज्ञा की। तब पुरुषवृन्द नगरके बीच इस प्रकार ढिंढोरा देने लगे, कि हे पुरुषपुङ्गवगण! केशवकी आज्ञानुसार आप सब लोगोंको समुद्रकी तीर्थयात्रा करनी होगी।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, काली स्त्री रात्रिके समय पाण्डुर दांत निकालके हंसते हंसते यादवोंके गृहमें प्रवेश कर तथा निद्रावस्थामें यादवोंकी स्त्रियोंके मङ्गल सूत्रादि हरती हुई द्वारकानगरमें सर्व्वत्र घूमने लगी। वृष्णि और अन्धकवंशीय लोग ऐसा देखने लगे, कि गृध्रगण उनके गृहवास्तुके बीच तथा अग्निहोत्रके गृहोंमें उन्हें भक्षण करते हैं; भयानक निशाचरोंके द्वारा उनके अलङ्कार, छत्र, ध्वजा और कवच अपहृत होते हैं। पहले अग्निने जो अयोमय वज्रनाभ चक्र प्रदान किया था, वार्ष्णेय लोगोंके सामनेही वह आकाशमें चला गया। दारुकके सम्मुखमें ही उसके मनोजव घोड़ोंने उस जुते हुए आदित्य वर्ण दिव्य रथको हरण करते हुए समुद्रके बीच गमन किया।

राम और जनार्द्दन ताल तथा सुवर्णनाम जिन दो महाध्वजाओंकी सदा पूजा करते थे, आकाशसे उन दोनोंको किसीने हर लिया और अप्सरावृन्द दिन रात ऐसा कहने लगीं। कि तुम लोग तीर्थयात्रा करो। अनन्तर वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथ मनुजपुङ्गवगण जिगमिषु होकर अन्तःपुरचारिणी स्त्रियोंके सहित तीर्थयात्रा करनेके लिये अभिलाषी हुए। उस समय उन लोगोंने अनेक प्रकारकी भक्ष्य, भोज्य और पीनेकी वस्तु तैयार करके बहुतसा मद्य और मास मङ्गाया और उग्र पराक्रमी समुज्वल सैनिक पुरुषोंके सहित घोड़े, हाथी और यानोंमें चढ़के नगरसे बाहिर हुए। इस ही प्रकार वे सस्त्रीक यदुवंशी लोग बहुतसी पीने तथा खानेकी वस्तुओंके सहित प्रभास तीर्थमें जाकर इच्छानुसार गृहवासके अनुरूप सुखभोग करने लगे। उस समय मोक्ष विशारद उद्धवने उन

लोगोंको उस समुद्रके तटपर सन्निविष्ट देखके योगबलसे सब जानके उन वीरोंको आमन्त्रण करते हुए प्रस्थान किया। उस महात्माके हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए प्रस्थित होनेपर भी भगवान् कृष्णने उन्हें निवारण करनेकी नहीं की, क्योंकि वृष्णिवंशियोंके नष्ट होनेका विषय वह पहलेसे ही जानते थे। कालके वशमें हुए वृष्णि तथा अन्धकवंशीय महारथोंने इतना ही देखा, कि उद्धव निज तेजके सहारे पृथ्वीतल और आकाशको परिपूरित करते हुए जा रहे हैं।

इस ही प्रकार उद्धवके चले जानेपर उस प्रभासतीर्थमें उग्रवीर्य यादवोंके सैकड़ों तूर्य्य-शब्द तथा नट-नर्त्तकोंके नृत्य गीतादियुक्त महापान आरम्भ हुआ। ब्राह्मणोंके निमित्त जो सब अन्न पकाया गया था, उन लोगोंने मदमत्त होके वह सब अन्न बानरोंको प्रदान किया। राम, कृतवर्म्मा, सात्यकि, गद और बभ्रु प्रभृति वीरगण कृष्णके सम्मुखमें ही मद्य पीने लगे, इतने ही समयमें सात्यकि मतवाला होकर सभाके बीच उपहास और अवमानना करते हुए कृतवर्म्मासे बोला, हे हार्द्दिक्य! कौन पुरुष क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर मृतक सदृश सोते हुए लोगोंका बध किया करता है, तुमने जो कार्य्य किया है, यदुवंशी लोग उसे कदापि न सहेंगे। सात्यकिने जब ऐसा कहा, तब रथिश्रेष्ठ प्रद्युम्नने कृतबर्म्माकी अवज्ञा करते हुए सात्यकिके कहे हुए बचनकी बहुत ही प्रशंसा की। उसे सुनकर कृतबर्म्मा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और बायां हाथ दिखाके बोला;—भुजा कटनेपर जब भूरिश्रवा रणमें योगयुक्त होकर बैठा था, तब तुमने बीर होकर किस प्रकार नृशंसकी भांति वध करते हुए उसे रणके बीच गिराया था? उसकी इतनी बात सुनके केशीनिसूदन केशव बहुतही क्रुद्ध हुए और क्रोधपूर्व्वक तिरछे नेत्रसे उसे देखने लगे। उस समय सात्यकिने सत्राजितकी स्यामन्तक मणि सम्बन्धीय सब सम्वाद मधुसूदनको सुनाया; उसे सुनके सत्यभामा क्रुद्ध होकर जनार्द्दन केशवके क्रोधको उद्दीपित करनेके निमित्त रोती हुई उनकी गोदीमें गिरी। अनन्तर सात्यकि क्रोधपूर्व्वक उठके बोला। हे सुमध्यमे! मैं सत्यके सहारे शपथ करके कहता हूं, कि धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पाचो पुत्रोंने जिस पदवीमें गमन किया है, मैं भी वही पदवीका अनुसरण करता हूं। जिस पापीने द्रोणपुत्रकी सहायतासे सौप्तिकमें बीरोंका बिनाश किया था, आज उस दुरात्मा कृतबर्म्माका यश तथा आयुकाल शेष हुआ है। सात्यकी इतनी बात कहके ही क्रोधपूर्व्वक दौड़ा और केशवके सामने ही तलवारसे कृतबर्म्माका सिर काटा और उसके बान्धवोंका वध करते हुए चारो ओर घूमने लगा, कृष्ण उसे निवारण करनेके लिये आगे बढ़े। महाराज! इतने ही समयमें भोज और अन्धकवंशियोंने कालप्रेरितकी भांति एकत्रित होकर शिनिनन्दनको घेर लिया। परन्तु महातेजस्वी कृष्ण उन लोगोंको क्रोधपूर्व्वक शीघ्रतासे आते हुए देखकर भी क्रुद्ध न हुए; क्योंकि वह काल बिपर्य्ययके बिषय पहलेसे ही जानते थे। अनन्तर वे मदमत्त बीरगण मानो कालप्रेरित होके ही जूठे भाजनोंसे सात्यकिको मारने लगे। उस समय रुक्मिणीपुत्र शैनेयको पीड़ित देखके उसकी रक्षा करनेके निमित्त क्रोधपूर्व्वक दौड़के भोजगणोंके सङ्ग और सात्यकि अन्धकवंशियोंके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त हुए। बाहुबलशाली वे दोनों बीर बहुत युद्ध करके भी शत्रुओंकी बहुतायतके कारण कृष्णके सामने ही मारे गये। यदुनन्दन कृष्णने पुत्र और शिनिनन्दनको मरा हुआ देखकर क्रोधपूर्व्वक एक मुट्ठी एरका (पटेर) ग्रहण किया वह बज्रसदृश अयोमय मूषल होगया। अनन्तर जिसे सामने पाया, उस मूषलसे ही उन सबका नाश कर डाला। उसे देखकर कालप्रेरित अन्धक भोज, शैनेय और

वृष्णि व भोजगण उसही मूषलभूत एरका (पटेर) लेकर परस्परमें एक दूसरका नाश करने लगे। हे विभु महाराज! उस समय उन लोगोंके बीच जिस किसीने कुपित होकर एक भी एरका (पटेर) ग्रहण किया। ब्रह्मशापसे वही बज्रकी भांति सारवान हुआ तथा समस्त तृण भी मूषल होगये। हे महाराज। वे लोग जो सब तृण चलाने लगे, वे सब भी बज्रकी भांति सारवान मूषल होकर बधानर्ह लोगोंका बध करते हुए दीख पड़े। हे भारत। वे लोग इस प्रकार सतवारे हुए थे, कि परस्पर युद्धमें प्रवृत्त होकर पिता पुत्रको और पुत्र पिताको मारके गिराने लगे। हे महाराज! जैसे पतङ्ग अग्निमें जा पड़ते हैं, वैसे ही वे कुक्कुर और अन्धकवंशीय लोग युद्धमें गिरने लगे, तथापि किसीको भागनेकी इच्छा न हुई, महाबाहु मधुसूदन कालके उलट फेरके विषयको जान सके थे, इसलिये उस युद्धमें जो मूषल देखा, वही ग्रहण करके उसहीसे सबका विनाश करने लगे।

शारङ्गधनुष, गदा और चक्रधारी दाशार्ह माधव शाम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा गद प्रभृति वीरोंको मरे वा पृथ्वीमें पड़े हुए देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस ही भांति बचे हुए लोगोंका नाश करते हुए यदुकुलको निःशेषप्राय किया; तब परपुरविजयी महातेजस्वी बभ्रु और दारुकने उनके समीप जाके जो कहा, उसे सुनिये। वे लोग बोले, हे भगवन्। आपने सबका विनाश करके यदुकुलको निःशेषप्राय किया है, इस समय जिस स्थानमें राम निवास करते हैं, वहां चलिये, हम भी आपके अनुगामी होते हैं।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर केशव, दारुक और बभ्रुने शीघ्र ही वहांसे चलकर रामके समीप जाके देखा कि वह अनन्तवीर्य्य निर्जन स्थानमें वृक्षके ऊपर बैठके ध्यान कर रहे हैं। माधवने बलदेवको वैसे भावसे उपस्थित देखकर दारुकसे कहा,—तुम शीघ्र जाके कौरवोंको विशेष करके अर्ज्जुनके समीप यादवोंका निदारुण मृत्यु-सम्वाद कहो और जिस प्रकार यादवोंके ब्रह्मशापजनित मृत्युको समाचार सुनके अर्ज्जुन शीघ्र इस स्थानमें आवें, उस विषयमें यत्नवान् होना। इतनी बात सुनके दारुक विकलचित्तसे रथपर चढ़के कौरवोंके निकट गया।

दारुकके जानेपर केशव पासवारेको ओर स्थित बभ्रुको ओर देखकर बोले,—आप शीघ्र द्वारकानगरमें जाकर स्त्रियोंकी रक्षा करिये; जिससे डांकू लोग धनके लोभसे उनकी हिंसा न कर सकें। ज्ञातिबधसे दुःखी मदसे मतवारा बभ्रु अत्यन्त थके रहनेपर भी केशवकी ऐसी आज्ञा सुनके जाने लगा, इतने ही समयमें ब्रह्मशापवश किसी व्याधके एक कूटसंयुक्त दुरन्त मूषलने सहसा गिरके कृष्णके निकट ही उसका जीवन हर लिया। उग्रवीर्य्य माधव बभ्रुको मरा हुआ देखके अग्रज भ्राता रामसे बोले,—जबतक मैं स्त्रियोंको स्वजनोंके तत्त्वावधारणमें रखकर न लौटूं, तबतक आप इस ही स्थानमें मेरी प्रतीक्षा करिये। जनार्द्दन इतनी बात कहके ही द्वारकानगरमें प्रवेश करके पितासे बोले,—जबतक अर्ज्जुन न आवें, तबतक आप इन पुरनारियोंकी रक्षा करिये। राम वनके बीच मेरी प्रतीक्षा करते हैं, इसलिये आज मैं शीघ्र जाके उनके सङ्ग मिलूंगा, पहले असंख्य राजाओं और कौरवोंका मरना तथा इस समय यादवोंकी मृत्यु देखकर इस यादवरहित यदुनगरीमें रहनेकी मुझे अभिलाष नहीं होती है; इसलिये अब मैंने ऐसा निश्चय किया है, कि रामके सहित वनवासी होकर शेष समय व्यतीत करूंगा। श्रीकृष्ण इतनी बात कहके ही सिर झुका उनके दोनो चरणोंका छूके शीघ्रताके

सहित वहांसे चली, तब पुरके बीच स्त्रियों और बालकोंके रोदनकी महान् ध्वनि प्रकट हुई। उसे सुन केशव लौटकर उन रोनेवाली स्त्रियोंसे बोले,—नरश्रेष्ठ अर्जुन इस द्वारकापुरीमें आके तुम लोगोंका दुःख दूर करेंगे। अनन्तर केशवने उनके बीच आके देखा, कि राम निर्ज्जनमें एकले योगयुक्त होके बैठे हैं और उनके मुखसे एक श्वेतवर्ण महानाग बाहिर होता है। जिसके द्वारा समुद्र अपनेको महानुभाव कहके बोध करता था, देखते देखते वह सहस्रशीर्ष पर्व्वत भोगसदृश लोहितवदन नागने अपना मानुषी तन परित्याग करके समुद्रमें प्रवेश किया। हे महाराज! उस समय समुद्र, पवित्र नदियें, उग्र तजस्वी महात्मा कर्कोटक, बासुकी, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, चक्रमन्द, अभिखण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष प्रभृति श्रेष्ठ नागों तथा राजा बरुणने स्वयं उठके उन्हें ग्रहण करते हुए स्वागत प्रश्न तथा पाद्य अर्घसे पूजा की।

उग्रवीर्य्य कृष्ण भ्राताको गमन करते देखकर दिव्य दृष्टिके सहारे कालकी सारी गतिका पर्य्यवेक्षण करके निर्ज्जन बनमें घूमते घूमते पृथ्वीमें बैठे। उस महानुभावने पहलेसे ही इन सब विषयोंको सोचा था, तथापि पहले गान्धारीके बचन तथा जूठा पायस लेप करनेके समयमें दुर्व्वासाने जो कहा था, उसे स्मरणकर कुरु, अन्धक और वृष्णिवंशियोंके मृत्युका विषय सोचके उस समयको संक्रमणका उपयुक्त काल समझके इन्द्रियोंको संयत किया। इसके अतिरिक्त वह सर्व्वार्थ तत्त्ववित देवश्रेष्ठ कृष्ण समर्थ होके भी महर्षि अत्रिके बचनको प्रतिपालन तथा तीनोंलोकोंकी स्थिति और सन्देह निराकरणके हेतु नियमित मृत्युके अधीन होनेके अभिलाषी होकर वाक्मन प्रभृति इन्द्रिय निरोधरूपी महायोग अवलम्बन करके सोये।

इतने ही समयमें जरा नाम किसी उग्रमूर्त्ति व्याधने मृगयाभिलाषी होकर उस स्थानमें आके सोये हुए योगयुक्त माधवको मृग जानके शीघ्र ही बाणसे विद्ध करके पकड़नेकी इच्छासे निकट गया और समीप पहुंचके उस योगयुक्त पीताम्बरधारी चतुर्भुज पुरुषको देखकर अपनेको अपराध करनेवाला समझ शङ्कितचित्तसे उनका दोनों चरण धारण किया। उस समय महात्मा माधव उसे आश्वासित करके निज तेजके सहारे आकाश और पृथ्वीको परिपूरित करते हुए ऊपरकी ओर गये। उनके स्वर्गके निकट पहुंचनेपर मुनिगण, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, बसु, विश्वदेवगण, अप्सराओंके सहित गन्धर्व्व और सिद्धगणोंने उठके उनकी अभ्यर्थना की। हे महाराज! तिसके अनन्तर वह उग्रवीर्य्य योगाचार्य्य सर्व्व भूतप्रभव अव्यय महात्मा भगवान् नारायण निज शोभाके सहारे सुरलोकको प्रकाशित करते हुए देवता, ऋषि और चारणोंके सहित मिलके तथा प्रणात हुए मुख्य सिद्ध गन्धर्व्व और अप्सराओंसे पूजित होकर अपने धामकी ओर गये। हे नरनाथ! उस समय श्रेष्ठ मुनियोंने ऊंचे स्वरसे ऋक् उच्चारण करते हुए उस जगदीश्वरका यश गाया; इन्द्रादि देवताओंने स्वागत प्रश्नादिसे उन्हें प्रत्यभिनन्दित किया और गन्धर्व्व लोग प्रीतिपूर्व्वक उनकी स्तुति गान करते हुए उनका अनुसरण करने लगे।

४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर दारुकने कौरवोंके नगरमें जाके पृथापुत्रोंके समीप वार्ष्णीयलोगोंके परस्परमें मूषलघटित युद्ध तथा मरनेका सम्वाद प्रदान किया। पाण्डुके सब पुत्र भोज, अन्धक और कुक्कुरगणके सहित वार्ष्णीयलोगोंका मरना सुनके अत्यन्त ही शोक सन्तप्त तथा व्याकुलचित्त हुए। अनन्तर केशवके प्रिय

सखा अर्ज्जुन बोले, बोध होता है, यदुकुल नष्ट हुआ,—इतनी बात कहके सबको आमन्त्रण करते हुए निज मातुल वसुदेवको देखनेके लिये चले। हे महाराज! उस वीरने दारुकके सहित वृष्णियोंके निवासस्थानमें जाके देखा, कि द्वारकानगरी नाथरहित कामिनोकी भांति शोभाविहीन हुई है; जो पहले लोकनाथ कृष्णके अधिष्ठानसे सनाथ हुई थीं, उन नाथरहित स्त्रियोंने इस समय नाथसखा अर्ज्जुनको देखते ही रोदन करना आरम्भ किया। श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियां अर्ज्जुनको आया हुआ देखके महाशब्दके सहित रोदन करने लगीं, उनके भी दोनों नेत्र आंसूसे परिपूरित हुए और वह उन यदुकुल भूषण कृष्णकी तथा पुत्रादिरहित यादवोंकी स्त्रियोंकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हुए।

अनन्तर इधर उधर पर्य्यवेक्षण करते हुए देखा, कि शीतक लकी श्रीविहीन स्त्रीकी भांति वृष्णिपुङ्गवोंसे रहित कालपाशग्रस्त यादवनगरी वृष्णि और अन्धकवंशरूपी जल, घोड़ेरूपी मीन, रथरूप नाव, बाजे और रथशब्दरूप ओघ, प्रासादरूप महाह्रद घट, रत्नसमूहरूपी शिवार, वज्रप्राकाररूपी माला, रथ्यारूपी स्रोतजल और भवंर, चत्वररूपी स्थिर ह्रद और राम कृष्णरूपी ग्राहशालिनी भयङ्करी वैतरनी नदीकी भांति मालूम होती है। हे पृथ्वीनाथ! पृथापुत्र अर्ज्जुन द्वारका तथा श्रीकृष्णकी स्त्रियोंकी ऐसी अवस्था देखके सशब्द रोते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े, उसे देखके रुक्मिणी और सत्राजितपुत्री सत्यभामा प्रभृति कृष्णकी स्त्रियां शीघ्र ही उस स्थानमें आके उनके चारों ओर रोदन करने लगीं। अनन्तर वे स्त्रियां उस महात्माको उठाके रत्नमय पीढ़ेपर बिठलाकर निर्ज्जनमें उनके चारों ओर बैठी; तब अर्ज्जुनने भगवान्‌के कार्य्योंको कहकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुतिकर कृष्णकी स्त्रियोंको आश्वासित करके मामाको देखनेके लिये गमन किया।

५ अध्याय समाप्त।

कुरुपुङ्गव धनञ्जयने वसुदेवके गृहमें जाके देखा, कि वह पुत्रशोकसे दुःखी वीरवर महात्मा सोये हुए हैं। हे भारत! उस समय विशालवक्ष महाभुज पृथानन्दनने आंखोंमें आंसू भरकेअधिक आर्त्तभावसे उनके दोनों चरणोंको ग्रहण किया; महाबाहु अरिन्दम वृद्ध आनक दुन्दुभि भानजेके मस्तकको सूंघनेके अभिलाषी होके भी शोकवशसे पहले असमर्थ हुए। अनन्तर बहुत कष्टसे अपने दोनों भुजाओंके सहारे महाभुज अर्ज्जुनको आलिङ्गन करके पुत्र, पौत्र, दौहित्र, भ्राता और बान्धवोंको स्मरण करते हुए विह्वलचित्तसे रोदन तथा विलाप करने लगे।

वसुदेव बोले, हे धनञ्जय! बोध होता है, मेरी मृत्यु नहीं है, कारण जिन्होंने सैकड़ों दैत्यों तथा राजाओंको जीता था, मैं उन्हें न देखके भी अबतक जीवन धारण करता हूं। हे पार्थ! जो दो पुरुष तुम्हारे अत्यन्त प्रिय शिष्य थे, उनको दुर्नीतिसे वार्ष्णेयगण मारे गये हैं। हे कुरुशार्दूल धनञ्जय! जो दो पुरुष वृष्णिवंशियोंके बीच अतिरथ तथा कृष्णके प्यारे थे और तुम कथाछलसे सदा जिनकी प्रशंसा करते थे, वे प्रद्युम्न और सात्यकि दोनो ही वृष्णिवंशके विनाशके अधिनायक है। हे अर्ज्जुन! अथवा सात्यकि, कृतवर्म्मा, रुक्मिणीपुत्र वा अक्रूरको दोष नहीं दे सकता; क्यों कि ऋषियोंका शाप ही हमलोगोंके वंशनाश-विषयमें कारण हुआ है। हे पार्थ! जिस जगत्प्रभुने विक्रमके सहित केशी, कंस और शिशुपालको मारा और निषदराज एकलव्य, काशीराज पौण्ड्रक, कलिङ्ग, मागध, गांधार, प्राच्य, दाक्षिणात्य, पर्व्वतीय और मरुदेशीय राजाओंको अपने वशमें किया था, उसे

कगण पार्थके अनुगामी हुए। धीमान् वसुदेवनन्दन कृष्णकी स्त्रियें उनके परपोते वज्रको आगे करके बाहिर हुईं, वृष्णि और अन्धक-वंशीय हतनाथा स्त्रियें भी उनकी अनुगामिनी हुईं। इस ही प्रकार परपुर-विजयी रथिश्रेष्ठ पार्थ उन मरनेसे बचे हुए महान् समृद्धिशाली वृष्णिवंशियोंको सङ्ग लेकर चलने लगे।

उन लोगोंके बाहिर होनेपर मगरालय समुद्रने समग्र रत्नपूरित द्वारकानगरीको जलमें डुबाया। पुरुषशार्दूल धनञ्जय वहांपर भूभागका जो जो अंश परित्याग करने लगे, समुद्र शीघ्र ही उन स्थानोंको जलसे डुबाने लगा। द्वारकावासी लोग अद्भुत घटना देखके कहने लगे, ओहो! कैसी दैव दुर्घटना है! ऐसा कहते हुए जितना शीघ्र होसका, नगरसे बाहिर हुए। इधर धीमान अर्जुनने बीच बीचमें रमणीय वन, पर्व्वत तथा नदियोंके तटपर निवास करते हुए यादवोंकी स्त्रियोंको सङ्ग लेकर जाते जाते एक दिन पञ्चनदके समीपवर्त्ती गो-पशु तथा धान्यसे पूर्ण किसी एक स्थानमें निवास किया। हे भारत! उस स्थानमें बहुतसे डाकू वास करते थे। वे लोग धनञ्जयको अकेले हतनाथा स्त्रियोंको लेके जाते हुए देख लोभके वशमें हुए। हे महाराज! उन पापकर्म्म करनेवाले आभीरकगणने लोभसे अन्धे होकर परस्पर मिलके इस प्रकार सलाह की, कि अर्जुन एकला धनुर्द्धर है और उसके सब योद्धा लोग तेजरहित हैं; इसलिये हम लोगोंको अतिक्रम करके किसी प्रकार भी इन बचे हुए बालबूढ़ोंके सहित हतनाथा स्त्रियोंको लेकर जानेमें समर्थ होंगे।

वे परधन हरनेवाले अनगिनत डाकूलोग इसही प्रकार सलाह करके लाठीरूपी अस्त्र लेकर वृष्णिवंशियोंकी स्त्रियोंकी ओर दौड़े। हे भारत! वे लोग अन्यान्य अनुयात्रियोंको सिंहनादसे डराते हुए मानो काल-प्रेरित होके ही अर्जुनको वध करनेके लिये जाने लगे। उन्हें देखकर महाबाहु कुन्तिनन्दन धनञ्जय पदातियोंके सहित निवृत्त होके हंसते हंसते उनसे बोले,---रे अधार्म्मिककगण। यदि बचनेकी इच्छा हो, तो निवृत्त होजाओ, नहीं तो इस ही मुहूर्त्तमें मेरे बाणोंसे कटके तथा मरके अनुताप करना होगा। परन्तु मूढ़ भीलोंने वीरवर अर्जुनका ऐसा वचन सुनके तथा बार बार निवारित होके भी उनके वचनकी उपहास करते हुए स्त्रियोंकी ओर दौड़े; तब अर्जुन अपने उत्तम महत् दिव्य अजर गाण्डीव धनुषपर रोदा चढ़ानेकी इच्छासे बहुत यत्नके सहित नमाके अत्यन्त परिश्रम तथा कष्टसे रोदा चढ़ाकर अस्त्रोंको स्मरण करने लगे, परन्तु कोई अस्त्र ही उस समय उनके स्मृतिपथमें न आया। कुन्तीपुत्र निज भुजवीर्य्यकी विपरीतता तथा दिव्य महास्त्रोंका विनाश देखकर बहुत लज्जित हुए; इधर वृष्णिपक्षीय रथी तथा गज सवार प्रभृति योद्धा लोग उन ह्रियमाण स्त्रियोंको लौटानेमें समर्थ न हुए। उन स्त्रियोंकी संख्या बहुत थीं, इससे डाकू लोग चारों ओरसे आके आक्रमण करने लगे, धनञ्जयने स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु डाकू लोग योद्धाओंके द्वारा निवारित होके भी उन स्त्रियोंको सब भांतिसे आकर्षण करके लेजाने लगे और कोई कोई स्त्री इच्छानुसार भीलोंकी अनुगामिनी हुई। उसे देख प्रभावशाली धनञ्जय अत्यन्त ही व्याकुल हुए और वृष्णिवंशीय सेवकोंके सहित गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे डाकुओंको मारने लगे; हे महाराज। परन्तु जो बाण पहले बिना रुधिर पीये हुए निवृत्त नहीं होते थे, उस समय वे शीघ्रगामी अक्षयबाण क्षीणवीर्य्य होकर उनके सम्मुखमें ही निष्फल होने लगे। इन्द्रपुत्रने निज बाणोंको व्यर्थ होते देखकर दुःख और शोकसे अभिभूत होकर धनुषके कोनेसे

डाकुओंको मारना आरम्भ किया। हे जनमेजय! परन्तु म्लेच्छगण देखते देखते अर्ज्जुनके सम्मुखमें ही वृष्णि और अन्धकवंशियोंकी स्त्रियोंको लेकर चले गये। प्रभावशाली धनञ्जय इस दैव दुर्घटनाके विषयको सोचकर दुःख तथा शोकसे अभिभूत होके लम्बोसांस छोड़ने लगे; वह अपने बाहुबल अस्त्र और बाणोंका चय होना और शरासनको शासनके बाहिर देखकर मन मलिन होके बहुत समयतक यह सोचकर कि यह दैवकृत है, नहीं तो कदापि ऐसा न होता,---ऐसा बचन कहके निवृत्त हुए।

हे भारत। अनन्तर महाबुद्धिमान कुरुनन्दनने हरनेसे बचे हुए हृतरत्न यादवोंकी स्त्रियोंको कुरुक्षेत्रमें लाके जहा तहां वासस्थान प्रदान किया। वह कृतवर्म्माके पुत्र तथा हरनेसे बची हुई भोजराजकी स्त्रियोंको मार्त्तिकावत नगरमें स्थापित करते हुए अवशिष्ट वीरविहीन बालक, वृद्ध और स्त्रियोंको इन्द्रप्रस्थमें ले गये। अनन्तर परवीर-निसूदन पाण्डुनन्दन धर्म्मात्मा पार्थ सात्यकिनन्दन युयुधानके प्रियपुत्रको वृद्ध और बालकोंके सहित सरस्वती नदीके तटपर स्थापित करके बज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य प्रदान किया। बज्रने इन्द्रप्रस्थमें राजा होकर अक्रूरकी स्त्रीको बार बार निषेध किया, तौभी उन्होंने प्रव्रज्याधर्म्म ग्रहण किया। रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती और जाम्बवती देवीने अग्निमें प्रवेश किया और श्रीकृष्णकी सत्यभामा प्रभृति अन्यान्य प्रिय स्त्रियें तपस्या करनेका निश्चय करके बनमें प्रविष्ट हुईं। उन्होंने फलमूल भोजी होकर मनमें श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई हिमालयको अतिक्रम करके कलापग्राममें प्रवेश किया। जो द्वारकावासी लोग पृथापुत्र धनञ्जयके सङ्ग आये थे, अर्ज्जुनने विभागक्रमसे उन लोगोंमेंसे बहुतेरे लोगोंको बज्रके समीप स्थापित किया। अर्ज्जुनने यह सब समयके अनुसार कार्य्य करके आंखोंसे आंसू बहाते हुए भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास मुनिके आश्रममें जाके उनका दर्शन किया।

७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! अर्ज्जुनने व्यासदेवके आश्रममें जाकर देखा, कि मुनिश्रेष्ठ सत्यवतीपुत्र निर्ज्जनमें अकेले बैठे हैं। उनको देखकर उन्होंने उस महाव्रती धार्म्मिकश्रेष्ठके निकट जाकर कहा, कि मैं अर्ज्जुन हूं,—इस ही प्रकार अपना नाम सुनाके प्रणाम किया। महामुनि सत्यवतीपुत्र व्यास भी स्वागत प्रश्नके अनन्तर बैठनेको कहके धनञ्जयको कातर मन मलिन तथा बार बार लम्बो सांस छोड़ते हुए देखकर बोले;—हे भरतपुङ्गव। तुम्हें तो कभी पराजित होते नहीं सुना, तब इस समय इस प्रकार श्रीविहीन क्यों देखता हूं? तुम नखके जल, केशके जल; दशावारि अथवा कुम्भके मुखोदकसे अभिषिक्त तो नहीं हुए हो? क्या तुमने त्रिरात्रके बीच रजस्वलागमन वा ब्रह्महत्या की है अथवा किसी युद्धमें पराजित हुए हो? हे पार्थ। किस कारणसे तुम्हारी ऐसी अवस्था हुई है? हे अर्ज्जुन। यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, तो शीघ्र प्रकाश करके कहो।

अर्ज्जुन बोले, जिसकी देह श्री बादलसदृश और दोनो नेत्र विशाल कमलदलके तुल्य थे, उस श्रीमान् कृष्णने रामके सहित शरीर छोड़के सुरलोकमें गमन किया है। ब्रह्मशापवशसे प्रभासमें मूषलजनित युद्धमें वृष्णिवंशियोंका निदारुण लोमहर्षण विनाश हुआ हैं। हे ब्रह्मन्! जो भोज, वृष्णि और अन्धकवंशीय महाबली शूरवीर लोग पञ्चास्यसदृश पराक्रान्त तथा दर्पशाली थे, वे लोग परस्पर युद्ध करके विनष्ट हुए है। हे महाभाग। कालकी उलटी गति देखिये, जिन लोगोंकी भुजा परिघके समान थीं और जो लोग परिघ तथा शक्ति

प्रभृति आयुधोंके प्रहारको सहजमें ही सह सकते थे, वेही एरका (पटेरकी) चोटसे मरे हैं। हाय! पांच लाख यदुवंशीय विशालबाहु वीर परस्पर युद्धमें प्रवृत्त होके मारे गये हैं। मैं बार बार चिन्ता करता हूं, तथापि यदुवंशियों और श्रीकृष्णके मरनेमें मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता है। समुद्रके सूखने, पर्व्वतके चलना, आकाशके पतन तथा अग्निमें शीतगुणकी भांति क्या श्रीकृष्णके विनाशमें किसी प्रकार श्रद्धा होसकती है? जो हो अब मैं श्रीकृष्णसे रहित होकर इस पृथ्वीमें रहनेकी इच्छा नहीं करता। हे तपोधन! इसके अतिरिक्त जिसकी चिन्ता करके मेरा मन सदा विदीर्ण होता है, इससे भी बढ़के कष्टका कारण सुनिये,—हे ब्रह्मन्! मैं यादवोंकी स्त्रियोंको लेकर आता था, इतने ही समयमें मार्गके बीच पञ्चजननिवासी भीलोंने युद्धकी अभिलाष करके मेरे सामने ही देखते देखते उन स्त्रियोंको हरण किया है। यद्यपि मैं उस समय अपना गाण्डीव धनुष धारण किये हुए था, परन्तु मेरी दोनों भुजा पहलेकी भांति पराक्रम प्रकाश करनेमें असमर्थ हुईं, मैं उस धनुषमें रोदा चढ़ाके उसे खींच न सका। हे महामुनि! उस समय मैं अनेक प्रकारके अस्त्रोंको भूल गया था और सब बाण मुहूर्त्त भरके बीच सब प्रकारसे तूणसे खाली होगये थे। हे तपोधन! जिनके दोनों नेत्र कमलदलके सदृश विशाल थे, वेही शंख, चक्र और गदाधारी श्यामवर्ण चतुर्भुज पीताम्बरधारी अप्रमेयात्मा परम पुरुष गोविन्दको जब नहीं देखता हूं, तो अब मुझे जीवन धारण करनेसे क्या फल है? हाय! वह महातेजस्वी शत्रुसेनाको जलाते हुए मेरे रथके आगे चलते थे, मैं उस अच्युतको अब नहीं देखता हूं। हाय! वह आगे निज तेजके सहारे शत्रुसेनाको जलाते थे, तिसके बाद मैं गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंसे शत्रुओंका नाश करता था। हे सत्तम! इस समय उन्हें न देखकर मैं विषण्ण होता हूं, तथा मेरा अन्तःकरण ऐसा कातर होके घूर्णित होता है, कि कहीं भी मुझे शान्ति प्राप्त नहीं होती। जबसे जनार्द्दन विष्णु अन्तर्द्धान हुए हैं, इतनी बात सुननेके समयसे ही मुझे सब दिशा अन्धकारमय दीखती हैं, इसलिये कृष्णसे-रहित होके अब मुझे जीवन धारण करनेका उत्साह नहीं होता है। हे सत्तम! मेरे पराक्रम तथा स्वजनोंके विनष्ट होनेसे चित्त घबड़ा रहा है और जगतको सूना देखता हूं; इसलिये जिससे मेरा मङ्गल हो, आपको उचित है, कि मुझे वैसा ही उपदेश करें।

वेदव्यास मुनि बोले, हे कुरुशार्दूल! वृष्णि और अन्धकवंशीय महारथगण ब्रह्मशापसे भस्म होकर विनष्ट हुए हैं, इसलिये उन लोगोंके निमित्त शोक मत करो। जो होनहार होता है, वह अवश्य हुआ करता है; इसलिये कृष्णने समर्थ होके भी महात्मा यदुवंशियोंके इस अवश्यम्भावी विनाशके विषयको जान सकनेपर भी निवारण करनेकी चेष्टा न की, बल्कि उपेक्षा ही की थी; नहीं तो इन यदुवंशीय महात्माओंके ब्रह्मशापकी तो कुछ बात ही नहीं है, गोविन्द इच्छा करनेसे स्थावर और जङ्गमके सहित तीनों लोकोंको भी अन्यथा कर सकते। वह शंख, चक्र गदाधारी चतुर्भुज विशालनयन पुरातन ऋषि वासुदेव श्रीकृष्ण प्रीतिके वशमें होकर ही तुम्हारे रथके आगे चलते थे; इस समय पृथ्वीका भार हरके शरीर छोड़कर निज धाममें गये हैं। हे महाबाहो पुरुषपुङ्गव! तुमने भी भीमसेन और नकुल, सहदेवकी सहायतासे देवताओंका उत्तम महत् कार्य्य सिद्ध किया है। हे विभु कुरुपुङ्गव भारत! तुम लोग जिस लिये इस पृथ्वीमें आये थे, उसमें कृतकृत्य हुए; अब तुम लोगोंका काल उपस्थित हुआ है, इसलिये मेरे

विचारमें अब यहांसे गमन करना ही कल्याणकारी बोध होता है ; क्यों कि सम्प्रतकालमें बुद्धिका जो तेज तथा प्रतिपत्ति होती है, आपदकालमें वह सभी बिपन्न हुआ करता है। हे धनञ्जय! काल ही सबका मूल है ; उसने ही बीज स्वरूप होके इस जगत्की सृष्टि की है, और वही इच्छानुसार फिर सब हरेगा, कालके वशसे बलवान होके भी पुरुष फिर निबल होता है तथा सबका ईश्वर होके भी फिर दूसरेकी आज्ञाके वशमें हुआ करता है ; इसलिये उसके लिये शोक न करना चाहिये। तुमने समयके अनुसार जिन सब अस्त्रोंको पाया था, वे सब कृतकृत्य होकर इस समय निज निज स्थानमें गये हैं, युगान्तरमें फिर वे सब तुम्हारे हाथमें आवेंगे। हे भरतपुङ्गव! तुम लोगोंका भी अभिलषणीय महाप्रस्थानका समय उपस्थित हुआ है, इसलिये मेरे विचारमें अब वैसा ही अनुष्ठान करनेसे कल्याण लाभ कर सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वीरवर पृथानन्दन अमिततेजस्वी श्रीवेदव्यास मुनिका ऐसा वचन सुनके उनकी आज्ञा पाके हस्तिनापुरमें आये और नगरमें प्रवेश करके धर्मराजके समीप जाके वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंके बिनष्ट होनेका सारा वृत्तान्त आदिसे अन्ततक कह सुनाया।

८ अध्याय समाप्त।

मौषल पर्व्व समाप्त।

महाभारत।



महाप्रस्थानिक पर्व्व।

नरायण, नरोत्तम नर और सरस्वतीदेवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

जनमेजय बोले, वृष्णि और अन्धकवंशियोंके इस प्रकारसे मूषलयुद्धमें मरने और श्रीकृष्णके निज धाममें जानेका सम्वाद सुनके पाण्डवोंने किस कार्य्यका अनुष्ठान किया? आप वह सब मेरे निकट प्रकाश करके कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवराज युधिष्ठिरने वृष्णिवंशियोंके वैसे निदारुण विनाशका विवरण सुनके सुरलोकमें जानेके लिये अभिलाषी होकर अर्ज्जुनसे कहा;—हे महाबुद्धिमान्! कालही प्राणियोंको हरण किया करता है, मुझे बोध होता है, कि हम लोग भी उस ही कालपाशमें आवड हुए हैं, इसलिये अब तुम लोगोंको भी इन सब विषयोंको आलोचना करनी चाहिये। जेठे भाई बुद्धिमान् धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनकर कुन्तीपुत्र अर्ज्जुनने कालको अपरिहार्य्य कहके उनके वचनको स्वीकार किया। भीमसेन और नकुल सहदेवने भी सव्यसाची धनञ्जयका अभिप्राय जानके उन्होंने जैसा कहा, उसमें ही निज निज सम्मति प्रकाश की। अनन्तर पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिरने वैश्यापुत्र युयुत्सुको बुलाकर धर्म्माचरणके निमित्त वनमें जानेका अभिप्राय प्रकाशित करके उन्हें सब राज्यभार प्रदान किया और राजा परीक्षितको निज राज्यपर अभिषिक्त करके दुःखित भावसे सुभद्रासे बोले,—यादवोंमें बचे हुए वज्रको इन्द्रप्रस्थके राजपदपर अभिषिक्त किया गया है और तुम्हारा यह पोता हस्तिनापुरमें कौरवोंका राजा हुआ। हे भद्रे! यदुनन्दन वज्रको इन्द्रप्रस्थका राज्य दिया गया है, तुम उसके विषयमें किसी प्रकार अधर्म्माचरणको अभिलाष न करके सदा उसकी रक्षा करना। धर्म्मात्मा धर्म्मराजने इतनी बात कहके भाइयोंके सहित धीमान् कृष्ण, बूढ़े मामा वसुदेव और राम प्रभृतिको जल देके विधिपूर्व्वक सबका श्राड किया। अनन्तर शार्ङ्गधारी केशवका नाम लेकर उनके उद्देश्यसे द्वैपायन, नारद, मारकण्डेय, भरद्वाज और याज्ञवल्क्य प्रभृति तपोधन श्रेष्ठ द्विजोंको यत्नपूर्व्वक अनेक प्रकारकी स्वादिष्ट भोज्य वस्तु भोजन कराके असंख्य रत्न, वस्त्र, घोड़े, रथ और सैकड़ों सहस्रों स्त्री तथा ग्राम दान किये।

हे भरतसत्तम! तिसके अनन्तर उन लोगोंने पुरवासियोंसे पुरस्कृत गुरु कृपाचार्य्यको पूजा करते हुए परीक्षितको शिष्यरूपसे उनके हाथमें सौंप दिया। अनन्तर राजर्षि युधिष्ठिरने प्रजा पुञ्जको बुलाकर निज चिकीर्षित विषय कह सुनाया। पुरवासी तथा जनपदवासी लोग उनका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त दुःखित चित्त हुए और उस वचनको अनुमोदन न करके बार बार इस प्रकार कहने लगे, हे नरनाथ! आपको ऐसा न करना चाहिये। परन्तु राजा युधिष्ठिरने कालके विपरीत धर्म्मको जान

इसलिये उन पुरवासियों और जनपदवासियोंके अभिलाषके अनुसार कार्य्य करनेमें असम्मति प्रकाश करके सबकी अनुमति लेकर भाइयोंके सहित वनमें जानेकी इच्छा की।

अनन्तर धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने शरीरके सब आभूषणोंको उतारा, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रुपदपुत्रीने भी भूषणोंको परित्याग करके वल्कलवस्त्र पहना। हे भरतपुङ्गव! तिसके अनन्तर उन पुरुषपुङ्गवोंने विधिपूर्व्वक उत्सर्ग कालके अनुसार अन्तिम यज्ञ समाप्त करके अग्निको जलके बीच छोड़ दिया। पहले जूएके खेलमें हारनेपर जिस प्रकार गमन किया था, उस समय भी उन श्रेष्ठ पुरुषोंको द्रौपदीके सहित उस ही भांति जाते हुए देखके पुरकी स्त्रियें रोने लगीं। परन्तु वे भ्रातृगण वृष्णियोंका विनाश देखके तथा युधिष्ठिरके अभिप्रायको जानके गमन-विषयमें हो हर्ष प्रकाश करने लगे। अनन्तर राजा युधिष्ठिर चारों भाइयों द्रौपदी और एक कुत्ता, इन सात जनोंके सहित नगरसे बाहिर हुए, तब पुरवासियों तथा अन्तःपुरवासियोंने बहुत दूरतक उनका अनुगमन किया, परन्तु कोई भी उन्हें "निवर्त्तित होइये"– ऐसा वचन कहनेसे समर्थ न हुआ। तिसके अनन्तर नगरबासियों तथा कृपाचार्य्य प्रभृति अनुयाई लोग लौटकर युयुत्सुके चारों ओर स्थित हुए, भुजगनन्दिनी उलूपीने गङ्गामें प्रवेश किया तथा चित्राङ्गदा मणिपुरकी ओर गई और दूसरी कुरुस्त्रियें परीक्षितके निकट निवास करने लगीं।

हे कुरुनन्दन! इधर सन्न्यास धर्म्मावलम्बी योगयुक्त महात्मा पाण्डवों तथा यशस्विनी द्रुपदनन्दिनीने उपवासी होकर पूरबकी ओर चलकर अनेक जनपद सागर तथा नदियों को अतिक्रम किया। उस समय युधिष्ठिर सबके आगे और भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल तथा सहदेव यथाक्रमसे एक दूसरेके पीछे चलने लगे। हे भरतसत्तम! कमलनयनी श्यामाङ्गिनी वरारोहा स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रुपदनन्दिनी उन सबके पीछे चलने लगी, इसही प्रकार जब पाण्डुपुत्रोंने वनकी ओर प्रस्थान किया, तब एकमात्र कुत्ता ही उनका अनुगामी हुआ था। हे महाराज! उस महाप्रस्थानके समयमें भी धनञ्जय रत्नलोभके वशमें होकर उत्तम अद्भुत् गाण्डीव नामक धनुष और उन दोनों अक्षय तूणीरोंको परित्याग न कर सके।

हे भारत! इसी प्रकार क्रमसे जाते जाते उन लोगोंने उदयाचलके पासमें स्थित लौहित्य समुद्रके तटपर उपस्थित होकर देखा, कि मूर्त्तिमान अग्निदेव पुरुष विग्रह परिग्रह करते हुए पर्व्वतका मार्ग रोकके सामने निवास करते हैं। देवश्रेष्ठ सप्तार्च्चि पाण्डवोंको समागत देखकर बोले,– हे वीर पाण्डुपुत्रो। मुझे अग्नि जानो। हे महाबाहो युधिष्ठिर! हे भीमसेन! हे अरिन्दम अर्ज्जुन! हे वीर दोनो अश्विनीकुमार! तुम सब कोई मेरा वचन सुनो। हे कुरुश्रेष्ठगण! मैं अग्नि हूं, मैंने ही उस नारायण और अर्ज्जुनके प्रभावसे खाण्डववनको जलाया था। तुम लोगोंका भ्राता यह अर्ज्जुन इस परमायुध गाण्डीवको परित्याग करके वनमें जावे, क्यों कि इस समय इससे इनका अब कुछ प्रयोजन नहीं है, महात्मा कृष्णके निकट जो चक्ररत्न था, वह इस समय प्रस्थित हुआ है, परन्तु अवतारान्तरमें फिर उनके हाथमें स्थित होगा, "मैंने अर्ज्जुनके निमित्त वरुणके समीपसे यह श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव ला दिया था, इसलिये अब यह उन्हें ही दिया जावे।" अग्निकी इतनी बात सुनके सब भाइयोंने अर्ज्जुनसे अनुरोध किया, तब उन्होंने धनुष और दोनो अक्षय तूणीर जलके बीच फेंक दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उसे देखकर अग्निदेव भी शीघ्रही उस स्थानमें अन्तर्द्धान हुए और उन लोगोंने भी दक्षिण ओर गमन किया। हे भरतशार्दूल! अनन्तर वे लोग

लवण समुद्रके उत्तर किनारेसे चलते हुए दक्षिण-पश्चिम दिशामें गये, तिसके अनन्तर वहांसे निवृत्त होकर पश्चिमकी ओर जाकर द्वारकामें उपस्थित होके देखा, कि महासागरने उस नगरीको डुबादिया है। हे महाराज! इस ही प्रकार वे योगावलम्बी भरतसत्तमगण पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनेके लिये अभिलाषी होकर पश्चिमदिशासे लौटकर उत्तरकी ओर चले।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, संयतचित्त पाण्डुपुत्रोंने इसही प्रकार तीनों दिशाओंकी प्रदक्षिणा करके समाहित मनसे उत्तरकी ओर जाके महागिरि हिमवान्को देखा। वे लोग उस शैलराजको अतिक्रम करते हुए बालुकार्णव पार होकर शिखरश्रेष्ठ महाशैल सुमेरुमें उपस्थित हुए। हे महाराज! वे योगधार्म्मिकगण सुमेरु शिखरपर शीघ्रतासे चढ रहे थे, इतने ही समयमें द्रौपदी योगभ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें गिर पड़ी। द्रुपदपुत्रीको गिरती हुई देखकर महाबली भीमसेनने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे पूछा, -हे अरिन्दम! इस राजपुत्री कृष्णाने कभी अधर्म्माचरण नहीं किया, तौभी पृथ्वीतलमें गिरपड़ी इसका क्या कारण है? मुझसे प्रकाश करके कहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषोत्तम! हम सब लोगोंके तुल्य होनेपर भी अर्ज्जुनके ऊपर विशेष रीतिसे इसका महत् पक्षपात था, यह आज उस ही फलको भोग करती है। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मात्मा धीमान् पुरुष पुङ्गव भरतसत्तम युधिष्ठिर इतनी बात कहके द्रौपदीकी ओर फिरके न देखकर ही समाहित चित्तसे चलने लगे, इतने ही समयके बीच विद्वान् सहदेव पृथ्वीतलमें गिरे। उसे देखकर भीमने धर्म्मराजसे पूछा,—जो अहङ्कार रहित होकर सदा हम सब लोगोंकी सेवा करते थे, यह वही माद्रीपुत्र किस निमित्त पृथ्वीपर गिरे?

युधिष्ठिर बोले, यह राजपुत्र किसी पुरुषको ही अपने समान प्राज्ञ नहीं समझते थे, वे उस दोषसे ही इस समय गिरे हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इतनी बात कहके ही उस समय सहदेवको परित्याग कर भाइयों तथा उस कुत्तेके सहित चलने लगे। परन्तु द्रौपदी और पाण्डुनन्दन सहदेवको गिरते हुए देखके भ्रातृप्रिय शूर नकुल शोकसे पीड़ित होके पृथ्वीतलमें गिर पड़े, उस वीर श्रेष्ठ सुन्दर नकुलके गिरनेपर भीमसेनने राजा युधिष्ठिरसे पूछा,—जो कभी धर्म्ममार्गसे विचलित नहीं हुए सदा हम लोगोंके आज्ञानुवर्त्ती थे और तीनोंलोकोंके बीच जिनके सदृश रूपवान् कोई नहीं है, यह वही भ्राता नकुल किस निमित्त पृथ्वीतलमें गिरे?

धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगण्य धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर भीमसेनका ऐसा प्रश्न सुनके बोले,—नकुल सर्व्वदा मनमें ऐसी विवेचना करते थे, कि तीनों लोकोंके बीच मेरे समान रूपवान् कोई नहीं है तथा मैंही सबसे अधिक रूपवान हूं। हे वृकोदर! ये इस समय उस ही गर्व्ववशसे गिरे हैं। हे वीर! जिसके लिये जिस प्रकार विहित हुआ है, वह अवश्य उसहीके अनुरूप फल भोग करेगा, इसलिये इसके निमित्त शोक न करके आगमन करो।

द्रौपदी और भाइयोंको इस प्रकार गिरते हुए देखकर पाण्डुपुत्र परवीरनिसूदन श्वेतवाहन पार्थ शोकसे सन्तापित होकर गिर पड़े। सुरराज सदृश तेजस्वी दुराधर्ष पुरुषसिंह अर्ज्जुनको गिरते तथा मरते देखकर भीमने फिर राजासे पूछा,—मुझे ऐसा स्मरण होता है, कि इन्होंने कभी परिहासके छलसे भी मिथ्या वचन नहीं कहा था तथापि किस कर्म्मविकारसे इस समय ये पृथ्वीपर गिरे?

युधिष्ठिर बोले, अर्ज्जुनने कहा था, कि मैं एक ही दिनके बीच शत्रुओंको जला दूंगा;

परन्तु कार्य्यसे उसे पूरा नहीं किया। हे वीर! ये शूरताभिमानी इस समय उस मिथ्या प्रतिज्ञासे हो गिरे। विशेष करके फाल्गुन धनुर्द्धारियोंमें अग्रगण्य थे, इसलिये सदा दूसरे धनुर्द्धरोंकी अवज्ञा करते थे, यह भी उनके गिरनेका दूसरा कारण है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर इतनी बात कहके ही चलने लगे, उस ही समय भीमसेन गिरे और गिरते गिरते धर्म्मराज युधिष्ठिरसे पूछा,—भो भो राजन्! यह देखिये मैं तुम्हारा प्रिय होके भो गिरता हूं। हे महाराज! मैं किस निमित्त गिरता हूं? यदि आपको यह मालूम हो, तो प्रकाश करके शीघ्र कहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पार्थ! तुम बहुतसा भोजन करते और दूसरेके बलको न देखकर सदा अपने बलकी बड़ाई करते थे, इस ही निमित्त पृथ्वीमें गिरे हो।

महाबाहु युधिष्ठिर इतनी बात कहके उनकी ओर न देखकर ही चलने लगे। मैंने जिसका विषय बारम्बार तुम्हारे निकट वर्णन किया है, उस समय वह एकमात्र कुत्ता ही उनका अनुगमन करने लगा।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर देवराजने रथपर चढ़के पृथ्वी और आकाशमण्डलको सन्नादित करते हुए उस स्थानमें आकर युधिष्ठिरको रथमें चढ़नेके लिये कहा। परन्तु धर्म्मराज युधिष्ठिर भाइयोंको गिरा हुआ देखके शोकसे सन्तापित होकर सहस्रलोचनसे यह वचन बोले,—हे सुरेश्वर! भ्रातृवृन्द मेरे सङ्ग चलें, यही मुझे अत्यन्त अभिलषणीय था, परन्तु वे लोग इस स्थानमें गिरे हुए हैं, इसलिये मैं अपने भाइयोंसे रहित होकर स्वर्गमें जानेकी इच्छा नहीं करता।

इन्द्र बोले, हे भरतपुङ्गव! उनके निमित्त शोक मत करो; वे तुमसे पहले ही सुरलोकमें गये हैं, तुम स्वर्गमें जाके ही द्रौपदीके सहित उन लोगोंको देखोगे। हे भारत! वे लोग मनुष्य शरीर परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं, परन्तु तुम निःसन्देह इस शरीरसे ही स्वर्गमें जाओगे।

युधिष्ठिर बोले, हे भूतभव्यगणके ईश्वर! यह कुत्ता मेरा चिरभक्त है, इसलिये इसे अपने सङ्ग स्वर्गमें ले जानेकी इच्छा करता हूं, क्यो कि ऐसा न करनेसे मेरे विचारमें इसके ऊपर निर्द्दय व्यवहार करना सिद्ध होगा।

इन्द्र बोले, हे राजन्! इस समय तुम मर्त्य भावसे रहित होके मेरे सदृश हुए हो और समग्र लक्ष्मी, महती सिद्धि तथा स्वर्गसुख प्राप्त किया है, इसलिये इस कुत्तेको परित्याग करो, उसमे तुम्हारी किसी प्रकार निर्द्दयता प्रकाश करनी न होगी।

युधिष्ठिर बोले, हे आर्य्य सहस्रलोचन! आर्य्य होके इस प्रकारके अनार्य्य कार्य्यको करना दुष्कर है; आप जिस ऐश्वर्य्यकी बात कहते हैं, उसके सहित मेरा सम्मिलन न हो, तौभी मैं इस प्रकार भक्तजनको परित्याग न कर सकूंगा।

इन्द्र बोले, जिन लोगोंके कुत्ता रहता है, उन अपवित्र लोगोंको स्वर्गमें स्थान नहीं मिलता, क्यो कि क्रोधवश नाम देवगण उनके इष्टापूर्त्तके फलको हरण किया करते हैं; हे धर्म्मराज! इसलिये तुम विचार करके इस कुत्तेको परित्याग करो, उसमें तुम्हारी निर्द्दयता न होगी।

युधिष्ठिर बोले, हे महेन्द्र! मुनि लोग भक्तत्यागको ब्रह्महत्याके सदृश महापातक कहा करते हैं, इसलिये मैं निज सुखकी अभिलाषसे इस भक्तको किसी प्रकार भी परित्याग न कर सकूंगा। विशेष करके यदि मेरा प्राण जाय,

तौभी जो संसारमें और किसीको भी नहीं जानता तथा निज प्राणरक्षाके निमित्त अत्यन्त कातर हुआ है, मैं ऐसे शरणागत क्षीणबल भक्तको किसी प्रकार भी परित्याग न करूंगा, यही मेरा नित्यव्रत है।

इन्द्र बोले, हे धर्म्मराज। जो दत्त, इष्ट, विवृत अथवा हुत हो, वह सारमेयके द्वारा दीखनेपर क्रोधवश नाम देवगण यह सब हरण करते हैं, इसलिये तुम इस कुत्तेको परित्याग करो, क्यों कि इस कुत्तेको परित्याग करनेसे ही देवलोकमें जा सकोगे। हे वीर! तुम भाइयों तथा दयिता द्रौपदीको परित्याग करते हुए निज कर्म्मके सहारे इस लोकको प्राप्त करके भी किस निमित्त इस सारमेयको परित्याग नहीं करते हो? तुम सब त्याग करके भी जो आज मोहयुक्त होते हो, यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है।

युधिष्ठिर बोले, हे सुरेश्वर! मरे हुए लोगोंको फिर नहीं जिलाया जा सकता और मरे मनुष्योंके सङ्ग मर्त्य लोगोंकी सन्धि, विग्रह तथा दूसरे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता; मैंने इस लोकस्थितिके वशमें होके ही उन्हें परित्याग किया है, उन्हें जीवित रहते नहीं छोड़ा है। हे शक्र! शरणागतको भय दिखाना, स्त्रीबध, ब्रह्मस्व हरण और मित्रद्रोह, ये जो चार पातक हैं, मैं भक्तत्यागको भी उन्होंके सदृश समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मरूपी भगवान् धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्तवयुक्त मधुर वाणीसे नरेन्द्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

धर्म्म बोले, हे राजेन्द्र भारत! तुमने निज बुद्धि और सब प्राणियोंमें ऐसी दया प्रकाश करके कौलीन्य तथा पिताकी समानता प्राप्त की है। हे पुत्र! जलके निमित्त पराक्रम प्रकाश करके तुम्हारे भाइयोंके मरनेपर तुमने जिस स्थानमें सहोदर भीम तथा अर्जुनको परित्याग करके मातृकुलके साम्याभिलाषसे नकुलको जीवित करनेकी इच्छा की थी, मैंने पहले उस द्वैतवनमें एक बार तुम्हारी परीक्षा की थी। हे नरनाथ। बोध होता है, स्वर्गमें तुम्हारे समान कोई नहीं है, क्यों कि इस सारमेयको भक्त कहके तुम इसके अनुरोधसे देवरथको भी परित्याग करनेके लिये उद्यत हुए हो। हे भरतश्रेष्ठ! इस ही कारण तुमने सशरीर ही अक्षयस्वर्गलोक और अनुत्तम दिव्य गति प्राप्त की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्म, इन्द्र, मरुद्गण और जिनके वचन बुद्धि तथा कर्म्म पवित्र हैं, वे रजोविहीन पुण्यात्मा देव, देवर्षि और कामविहारी सिद्धगण पाण्डुनन्दनको रथपर चढ़ाके अपने अपने विमानोंमें चढ़कर चलने लगे। कुरुकुलश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर भी उस रथपर चढ़के निज तेजसे पृथ्वी और स्वर्गको परिपूरित करते हुए शीघ्र ही ऊपरको उठने लगे। उस समय सुरपुरमें स्थित सर्व्वलोकवित् बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ बृहत्तपा नारद मुनि ऊंचे स्वरसे यह वचन बोले,—जो सब राजर्षि हैं, वे सभी उपस्थित हैं, परन्तु राजा युधिष्ठिर उन सबकी कीर्त्तिको आच्छादित करके आरहे हैं। मैंने ऐसे किसी राजर्षिकी कथा नहीं सुनी, जिसने निज यश, तेज सञ्चरित और सम्पत्तिसे लोकोंको आवृत करते हुए सशरीर ही स्वर्गलोक प्राप्त किया है।

नारद मुनिका वचन सुनके धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर देवताओं तथा अपने पक्षके राजाओंको आमन्त्रण करते हुए बोले,—जिस स्थानमें मेरे भ्रातृवृन्द गये हैं, वह शुभ हो अथवा अशुभ हो होवे, मैं उस ही स्थानमें जानेकी इच्छा करता हूं, दूसरे लोकमें मेरी अभिलाष नहीं है।

धर्म्मराजका वचन सुनकर देवराज पुरन्दर दयालु हृदय युधिष्ठिरसे बोले, हे राजेन्द्र।

राजाने भाइयोंका विषय पूछते हुए यह वचन कहा। जिसके निमित्त घोड़े, हाथी और मनुष्योंके सहित भूमण्डल विनष्ट हुआ है और हमलोग भी वैर-प्रतिचिकीर्षु होकर क्रोधसे जलते थे, उस अधर्मज्ञ पापाचारी पृथ्वी और सुहृदोंके द्रोही दुर्य्योधनको यदि ये सब सनातन लोक प्राप्त हुए, तो मेरे जो सब भाई वीर महात्मा महाव्रत सत्यप्रतिज्ञ लोकोंके बीच अत्यन्त शूर और सत्यवादी थे, उन लोगोंको इस समय किस प्रकारके लोक प्राप्त हुए हैं? उन सब लोकोंको देखनेकी इच्छा करता हूं। हे ब्रह्मन् नारद! सत्यसङ्गर महात्मा कुन्तीपुत्र कर्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, धृष्टद्युम्नके पुत्रगण और जो सब राजा क्षत्रधर्म्मके अनुसार शस्त्रोंसे मरे हैं, वे सब राजा लोग कहां हैं? उन लोगोंको नहीं देखता हूं। हे नारद! विराट द्रुपद और धृष्टकेतु प्रभृति तथा पाञ्चालपुत्र शिखण्डी द्रौपदीके पुत्रों और दुर्द्धर्ष अभिमन्युको देखनेकी अभिलाष करता हूं।

१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे देवगण! मैं इस स्थानमें अमित तेजस्वी कर्ण, महानुभाव दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजाको नहीं देखता हूं? जिन सब महारथ राजा और राजपुत्रोंने मेरे निमित्त युद्धरूपी अग्निमें शरीरकी आहुति प्रदान किया तथा मेरे निमित्त मारे गये हैं, वे सिंहसदृश विक्रमशाली सब महारथ कहां हैं? उन पुरुषसत्तमोंने क्या इस स्वर्गलोकको जय नहीं किया? हे देवगण! यदि उन महारथोंने इन लोकोंको जय किया हो, तो मुझे भी प्रस्तावित महात्माओंके सहित इस स्थानमें स्थित जानिये। क्या राजाओंने इस शुभ निवासलाभ नहीं किया? — मैं उन भाइयों तथा स्थानमें निवास न

समय "कर्णका तर्पण करो" - जननीकी ऐसी बात सुनके मैंने सूर्य्यनन्दनको जलाञ्जलि दान की। हे देवगण! इस समय मैं बार बार यह परिताप करता हूं, कि मैं उस परबल पीड़नकारी कर्णके दोनों चरणोंको जननीके चरणोंके सदृश देखकर भी उनके अनुमत न हुआ। हम लोग कर्णके सङ्ग मिले रहते, तो देवराज भी हमें युद्धमें जय करनेमें समर्थ नहीं थे। मुझे मालूम न रहनेसे हो वह सव्यसाचीके द्वारा मारे गये, वह सूर्य्यपुत्र चाहे किसी स्थानमें क्यों न हों, मैं उन्हें देखनेकी इच्छा करता हूं। मैं प्राणसे भी प्रिय भीमविक्रमी भीमसेन, इन्द्र सदृश अर्ज्जुन, यमके समान यमजनकुल-सहदेव और उस धर्म्मचारिणी द्रुपदपुत्रीको देखनेकी अभिलाष करता हूं। मैं इस स्थानमें निवास करनेकी इच्छा नहीं करता, आप लोगोंसे सत्य ही कहता हूं। हे सुरसत्तमगण! भाइयोंसे रहित रहनेसे मुझे स्वर्गसे क्या प्रयोजन है। वे लोग जिस स्थानमें हैं, वही मेरा स्वर्ग है, यह स्थान स्वर्गरूपसे मुझे सम्मत नहीं है।

देवगण बोले, हे तात! यदि उस ही स्थानमें तुम्हारी श्रद्धा हो तो वहां जाओ, विलम्बका प्रयोजन नहीं है। देवराजकी आज्ञासे हम लोग तुम्हारा प्रियकार्य्य करेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रुतापन! देवताओंने उनसे इतनी बात कहके देवदूतसे कहा, "युधिष्ठिरके सुहृदोंको दिखाओ।" हे नृपवर! अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर जिस स्थानमें वे पुरुषपुङ्गवगण स्थित थे, देवदूतके सङ्ग वहीं हो गये। देवदूत आगे और राजा पीछे पीछे पापकर्म्मवाले पुरुषोंसे सेवित उस म... शीघ्र ही जाने लगे। वह मार्ग ... अत्यन्त ... रुधिरके ... मक्खियों

और मच्छड़ोंसे आवृत, इधर उधर सर्व्वत्र मृत शरीरोंसे घिरे हड्डियों तथा केशोंसे भरे कृमि तथा कीटोंसे परिपूर्ण प्रज्वलित अग्निसे समन्तात परिवेष्टित, अयोमुख कौवे, प्रभृति और सूचीमुख गिद्धगण वहां दौड़ते हैं। विन्ध्याचल पर्व्वतके समान प्रेतोंसे वह मार्ग परिवृत, चर्व्वी और रुधिरयुक्त कटे हुए बाहु, जङ्घा, हाथ कटे हुए उदर और कटे पाववाले मुर्दे इधर उधर पड़े हैं। धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिर उन मृत शरीरोंके दुर्गन्ध युक्त अमङ्गल लोमहर्षण मार्गसे बहुत चिन्ता करते हुए चलने लगे। मार्गके बीच उष्णजलसे भरी हुई दुर्गमन और चोखे छूरसंवृत असिपत्र वन देखा। जलते हुए सूक्ष्म बालू, आयसीशिला और तेलसे भरे हुए लोहेके घड़े चारों ओर सज्जित हैं, कुन्तीनन्दनने उस समय तीक्ष्ण काटेयुक्त दुःस्पर्श कूट सेमलके वृक्षों तथा पापियोंकी पी[illegible] वह उस दुर्गम स्थानको देखकर देवदूतसे बोले, हम लोगोंको इस प्रकार कितना मार्ग चलना होगा? मेरे वे भ्रातृगण कहां हैं? वह तुम मुझसे कहो और देवताओंका यह कौनसा स्थान है? उसे भी जाननेकी इच्छा करता हूं।

देवदूत धर्म्मराजका इतना वचन सुनके निवृत्त हुआ और उनसे बोला, यहांतक ही तुम्हें आना योग्य है, इसके अनन्तर निवृत्त होना उचित है; देवताओंने मुझे ऐसा ही कहा था। हे राजेन्द्र! यदि तुम थके हुए हो, तो लौट सकते हो। हे भारत! युधिष्ठिरने निर्व्विण्ण तथा उस गन्धसे मूर्च्छित होकर लौटनेमें मन स्थिर किया तथा वहांसे लौटे। उस धर्म्मात्माने दुःख शोक सहित निवृत्त होके वहांपर चारों ओरसे चिल्लानेवाले मनुष्योंका दीन-वचन सुना। हे धर्म्मज्ञ पुण्याभिजनराजक पाण्डव! आप हम लोगोंके विषयमें अनुग्रहके निमित्त मुहूर्त्त भर निवास करिये. आपके आनेसे पवित्र वायु बहता और तुम्हारे गन्धके अनुगत होता है, उस ही कारण हम सुखी होरहे हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ राजसत्तम पार्थ! हम लोग बहुत समयके अनन्तर आपको देखकर सुखी हुए हैं, हे महाबाहु-भारत इसलिये आप मुहूर्त्तभर निवास करिये, हे कौरव्य आपके खड़े रहते समस्त यातना हम लोगोंको पीड़ा न दे सकेगी। हे महाराज। उन्होंने उस स्थानमें निवास करते हुए विलाप करनेवाले मनुष्योंके इसही भांति अनेक प्रकारके दीन-वचन सुने।

दयालु युधिष्ठिर उन दीन वचन कहनेवालोंको वाणी सुनके क्या "कष्ट है।" ऐसा कहके स्थित रहे। पाण्डुपुत्र अग्रभागमें ग्लानियुक्त दुःखी लोगोंके यह सब वचन बार बार सुनके यह न समझ सके, कि वे किनके वचन हैं? धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर वह सब वचन न समझ सक[illegible] बोले. आप लोग कौन हैं और किस निमित्त [illegible]

ऐसा सुनकर चारों ओरसे कहने लगे। मैं कर्ण हूं, हे प्रभु! मैं भीमसेन हूं, मैं अर्जुन हूं, मैं नकुल मैं सहदेव, मैं द्रौपदी और हम लोग द्रौपदीके पुत्र हैं,—इस ही प्रकार वे लोग चिल्लाने लगे। हे राजन्! उस समय राजा युधिष्ठिरने उन लोगोंके अनुरूप वह सब वचन सुनके विचारा। हाय! दैव यह क्या किया है। महात्मा कर्ण तथा द्रौपदी आदिने कौनसा पापकर्म्म किया था, जो इस पापगन्धसे परिपूर्ण दारुण स्थानमें निवास करते हैं? मैं इन सब पुण्यकर्म्म करनेवालोंका कुछ दुष्कृत नहीं जानता धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन कौनसा कर्म्म करके पदानुग पापाचारियोंके सहित वैसा श्रीसम्पन्न हुआ है और महेन्द्रकी भांति लक्ष्मीवान तथा परम पूजित होरहा है; और सर्व्वधर्म्मज्ञ, शूर सत्यागम परायण क्षत्रधर्म्ममें रत, याज्ञिक तथा बहुतसी दक्षिणादान करके भी वे लोग इस समय नरकगामी हुए हैं, यह

कौरव! पहले कष्ट अनुभव करके इसके अनन्तर शोकरहित तथा निरामय होकर मेरे सङ्ग विहार करो। हे तात महाबाहु महाराज! तुम अपनी तपस्यासे उपार्ज्जित पुण्यकर्म्म तथा दानके फलको स्वयं प्राप्त करो। आज रजोहीन वस्त्र भूषणयुक्त देव गन्धर्व्व तथा दिव्य अप्सरा-वृन्द स्वर्गमें तुम्हारी सेवाकरें। हे महाबाहो! तुमने राजसूय यज्ञसे जिन लोकोंको स्वयं वृद्धि-युक्त किया है, उन सब लोकों तथा तपस्याके फलको पाओ। हे युधिष्ठिर! राजाओंके ऊपर तुम्हारे लोक प्रस्तुत है। हे पार्थ! तुम जिन लोकोंमें विहार करोगे, वे हरिश्चन्द्रके लोकके सदृश हैं। जिस स्थानमें राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्मन्तपुत्र भरत निवास करते हैं, तुम वहां विहार करोगे। हे राजेन्द्र पार्थ! यह त्रैलोक्यपावनी पवित्र देवनदी आकाशगङ्गा है, इसमें स्नान करके चलना। इसमें स्नान करनेसे तुम्हारा मनुष्यभाव छूट जायगा, तुम शोकहीन, निरायास और वैर रहित होगे।

हे कौरवेन्द्र! जब देवराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कह रहे थे, तब मूर्त्तिमान् साक्षात् धर्म्मने अपने पुत्रसे कहा, हे महाप्राज्ञ राजेन्द्र! हे पुत्र! मुझमें भक्ति, सत्य वचन, क्षमा और दमसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। हे राजन्! मैंने तुम्हारी यह तीसरी बार परीक्षा की है। हे पार्थ! किसी कारणसे तुम्हें स्वभावसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। पहले द्वैतवनमें अरणी सहित ब्राह्मणके निमित्त मैंने तुम्हारी प्रश्न-जिज्ञासा-हेतु परीक्षा की थी, तुम उससे निस्तीर्ण हुए हो। हे भारत! हे पुत्र द्रौपदीको आरम्भ करके सहोदरोंके विनष्ट होते रहनेपर मैंने वहां कुत्तेका रूप धरके दूसरीबार तुम्हारी परीक्षा की थी। हे महाभाग! यह मेरी तीसरी परीक्षा है; जब तुम भाइयोंके लिये निवास करनेकी इच्छा करते हो, तब तुम अत्यन्त पवित्र, सुखी और पापरहित हो; हे नरश्रेष्ठ पार्थ! तुम्हारे भाईलोग नरकके योग्य नहीं हैं, देवराज महेन्द्रके द्वारा यह माया प्रयुक्त हुई थी। हे राजेन्द्र! सब राजाओंको अवश्य नरक देखना होता है, इसलिये तुम्हें मुहूर्त्तभर यह कष्टकर दुःख प्राप्त हुआ। हे राजन्! सव्यसाची, भीमसेन, पुरुषश्रेष्ठ नकुल सहदेव और सत्यवादी शूरवर कर्ण, ये लोग बहुत समयतक नरकभोगके उपयुक्त नहीं है। हे युधिष्ठिर! राजपुत्री द्रौपदी भी नरकके योग्य नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! आओ त्रिलोकगामिनी गङ्गाको देखो।

तुम्हारे पूर्व्वपितामह वह राजर्षि धर्म्म और सब देवताओंके सहित ऋषियोंसे स्तुतियुक्त पावनी पवित्र जलवाली देवनदी गङ्गाके समीप गये। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने उसमें स्नान करके मानुषी-मूर्त्ति परित्याग की। अन्तमें धर्म्मराज युधिष्ठिर उस गङ्गाजलमें स्नान करके दिव्य देहयुक्त तथा सन्तापरहित होके शोभित होने लगे। अनन्तर धीमान कुरुराज युधिष्ठिर देवताओंसे घिरके ऋषियोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें वे पुरुषश्रेष्ठ शोकरहित शूरवर पाण्डवो तथा धार्त्तराष्ट्रगणोंने निज निज स्थान प्राप्त किया, धर्म्मके सहित वहां गये।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिर ऋषियोंके सहित मरुद्गणसे स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें कुरु-पाण्डवगण निवास करते थे देवताओंके सङ्ग वहां गये। वहां पहिले देखे हुए सादृश्यके द्वारा सूचित ब्राह्मशरीरयुक्त गोविन्दका दर्शन किया। वह उस समय निज शरीरकी शोभासे दीप्यमान थे, चक्र प्रभृति पुरुषविग्रह घोर दिव्य अस्त्र उनकी उपासना करते थे, सुन्दर तेजशाली वीरश्रेष्ठ फाल्गुन उनकी उपासना करते थे। कुन्तीनन्दनने वैसे स्वरूपयुक्त मधुसूदनका दर्शन किया। उन

किस पापका विकार है? क्या मैं सोया हूं अथवा जागता हूं, मुझे चेत है वा अचेत हुआ हूं, कैसा आश्चर्य है। क्या यह मेरा चित्त बिकार अथवा चित्त बिभ्रम हुआ है? राजा युधिष्ठिर इस ही भांति अनेक प्रकार बिचारने लगे। धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर शोक दुःखसे युक्त तथा चिन्तासे व्याकुलेन्द्रिय होकर बहुत ही क्रुद्ध हुए और देवताओं तथा धर्म्मको निन्दा करने लगे। वह तीव्रगन्धसे सन्तापित होके देवदूतसे बोले, तुम जिन लोगोंके दूत हो, उनके समीप जाओ, मैं वहां न जाऊंगा, इस ही स्थानमें रहूंगा, उन लोगोंसे ऐसा ही निवेदन करो। मेरे आश्रयसे ये मेरे दुःखित भाई-सुखी हुए हैं। देवदूत उस समय धीमान् पाण्डु-पुत्रका ऐसा बचन सुनके जिस स्थानमें देवराज शतक्रतु निवास करते थे, वहां गया। हे जन नाथ! धर्म्मराजने जो किया था, तथा धर्म्मपुत्रने [illegible] वह सब देव[illegible] उनके निकट कह सुनाया।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कौरव! पृथानन्दन युधिष्ठिरके मुहूर्त्तभर निवास करनेके अनन्तर इन्द्रको आगे करके सब देवता उस स्थानमें आये और कुरुराज राजा युधिष्ठिर जिस स्थानमें थे, मूर्त्तिमान् धर्म्म उस राजाको देखनेके लिये वहां समागत हुए। हे महाराज! उन प्रकाशमान शरीर पवित्र जन्मकर्म्मयुक्त देवताओंके वहां समागत होनेसे वह अन्धकार दूर हुआ। वहां उन पापियोंकी वैसी यातना, वैतरणी नदी और कूट शाल्मलि वृक्ष न दीख पड़े। बड़े भयानक लोहेके घड़े और समस्त शिला अदृश्य हुईं तथा वहांपर चारों ओर जो सब विकृत शरीर थे, वे भी न दीख पड़े। राजाने देखा, कि वे सब अदृश्य हुए। हे भारत! अनन्तर देवताओंके समीप शीतल पवित्र पुण्यगन्धयुक्त सुखस्पर्श वायु बहने लगा। जिस स्थानमें परम तेजस्वी राजा धर्म्मपुत्र स्थित थे, वहां इन्द्रके सहित मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनी कुमार, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, इनके अतिरिक्त सुरपुरवासी समस्त सिद्ध और महर्षिवृन्द आये। अनन्तर परम श्रीसम्पन्न सुरराज इन्द्र सान्त्वनापूर्व्वक युधिष्ठिरसे यह बचन बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! देवगण तुम्हारे विषयमें प्रसन्न हुए हैं। हे पुरुषप्रवर! आओ, यहांतक ही भला है, तुम्हें सब अक्षयलोक तथा सिद्धि प्राप्त हुई है; तुम क्रोध मत करो, मेरा यह बचन सुनो।

हे तात! सब राजाओंको ही नरक देखना होता है। हे पुरुषवर! शुभ और अशुभकी दो राशि है, उसके बीच जो लोग पहले सुकृत भोग करते हैं, वे पीछे नरक भोग किया करते हैं और जो लोग पहले नरकभागी होते हैं, वे पश्चात् स्वर्गलाभ करते हैं जो लोग बहुत पाप कर्म्म करते हैं, वे पहले स्वर्ग भोग किया करते है, इस ही निमित्त मैंने तुम्हारे कल्याणके निमित्त ऐसा कराया है। हे राजन्! तुमने छलपूर्व्वक द्रोणको सन्तानके निमित्त प्रतारणा की थी, इस ही लिये मैंने तुम्हें छल क्रमसे नरक दिखाया है। तुमने जिस प्रकार कपटनरक देखा, उस ही प्रकार भीम, अर्ज्जुन, नकुल, सहदेव और द्रुपदराजपुत्री द्रौपदीने छलक्रमसे नरकमें गमन किया था। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे पक्षके जो सब राजा लोग युद्धमें मरे है, देखो वे सभी स्वर्गमें आये हैं। तुम जिसके निमित्त परिताप करते हो, उस शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्द्धर कर्णको परम सिद्धि प्राप्त हुई है। हे नरश्रेष्ठ महाबाहो! सूर्य्यपुत्रको निज स्थानमें देखो। हे पुरुषश्रेष्ठ! शोक परित्याग करो, तुम अपने अन्यान्य भाइयों तथा स्वपक्षके राजाओंको निज निज स्थानमें देखो, तुम्हारे मनका शोक दूर होवे। हे

कौरव! पहले कष्ट अनुभव करके इसके अनन्तर शोकरहित तथा निरामय होकर मेरे सङ्ग विहार करो। हे तात महाबाहु महाराज! तुम अपनी तपस्यासे उपार्ज्जित पुण्यकर्म्म तथा दानके फलको स्वयं प्राप्त करो। आज रजोहीन वस्त्र भूषणयुक्त देव गन्धर्व तथा दिव्य अप्सरावृन्द स्वर्गमें तुम्हारी सेवा करें। हे महाबाहो! तुमने राजसूय यज्ञसे जिन लोकोंको स्वयं वृद्धियुक्त किया है, उन सब लोकों तथा तपस्याके फलको पाओ। हे युधिष्ठिर! राजाओंके ऊपर तुम्हारे लोक प्रस्तुत हैं। हे पार्थ! तुम जिन लोकोंमें विहार करोगे, वे हरिश्चन्द्रके लोकके सदृश हैं। जिस स्थानमें राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्मन्तपुत्र भरत निवास करते हैं, तुम वहां विहार करोगे। हे राजेन्द्र पार्थ! यह त्रैलोक्यपावनी पवित्र देवनदी आकाशगङ्गा है, इसमें स्नान करके चलना; इसमें स्नान करनेसे तुम्हारा मनुष्यभाव छूट जायगा, तुम शोकहीन, निरायास और वैर रहित होगे।

हे कौरवेन्द्र! जब देवराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार कह रहे थे, तब मूर्त्तिमान् साक्षात् धर्म्मने अपने पुत्रसे कहा, हे महाप्राज्ञ राजेन्द्र! हे पुत्र! मुझमें भक्ति, सत्य वचन, क्षमा और दमसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। हे राजन्! मैंने तुम्हारी यह तीसरी बार परीक्षा की है। हे पार्थ! किसी कारणसे तुम्हें स्वभावसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। पहले द्वैतवनमें अरणी सहित ब्राह्मणके निमित्त मैंने तुम्हारी प्रश्न-जिज्ञासा-हेतु परीक्षा की थी, तुम उससे निस्तीर्ण हुए हो। हे भारत! हे पुत्र द्रौपदीको धारण करके सहोदरोंके विनष्ट होने रहनेपर मैंने वहां कुत्तेका रूप धरके दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा की थी। हे महाभाग! यह मेरी तीसरी परीक्षा है; जब तुम भाइयोंके लिये निवास करनेकी इच्छा करते हो, तब तुम अत्यन्त पवित्र, सुखी और पापरहित हो; हे नरश्रेष्ठ पार्थ! तुम्हारे भाईलोग नरकके योग्य नहीं हैं, देवराज महेन्द्रके द्वारा यह माया प्रयुक्त हुई थी। हे राजेन्द्र! सब राजाओंको अवश्य नरक देखना होता है, इसलिये तुम्हें मुहूर्त्त भर यह कष्टकर दुःख प्राप्त हुआ। हे राजन्! सव्यसाची, भीमसेन, पुरुषश्रेष्ठ नकुल सहदेव और सत्यवादी शूरवर कर्ण, ये लोग बहुत समयतक नरकभोगके उपयुक्त नहीं हैं। हे युधिष्ठिर! राजपुत्री द्रौपदी भी नरकके योग्य नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! आओ त्रिलोकगामिनी गङ्गाको देखो।

तुम्हारे पूर्व्वपितामह वह राजर्षि धर्म्म और सब देवताओंके सहित ऋषियोंसे स्तुतियुक्त पावनी पवित्र जलवाली देवनदी गङ्गाके समीप गये। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने उसमें स्नान करके मानुषी-मूर्त्ति परित्याग की। अन्तमें धर्म्मराज युधिष्ठिर उस गङ्गाजलमें स्नान करके दिव्य देहयुक्त तथा सन्तापरहित होके शोभित होने लगे। अनन्तर धीमान् कुरुराज युधिष्ठिर देवताओंसे घिरके ऋषियोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें वे पुरुषश्रेष्ठ शोकरहित शूरवर पाण्डवों तथा धार्त्तराष्ट्रगणोंने निज निज स्थान प्राप्त किया, धर्म्मके सहित वहां गये।

३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिर ऋषियोंके सहित मरुद्गणसे स्तुतियुक्त होकर जिस स्थानमें कुरु-पाण्डवगण निवास करते थे देवताओंके सङ्ग वहां गये। वहां पहले देखे हुए सादृश्यके द्वारा सूचित ब्राह्मशरीरयुक्त गोविन्दका दर्शन किया। वह उस समय निज शरीरकी शोभासे दीप्यमान थे, चक्र प्रभृति पुरुषविग्रह घोर दिव्य अस्त्र उनकी उपासना करते थे; सुन्दर तेजस्वी वीरश्रेष्ठ फाल्गुन उनकी उपासना करते थे। कुन्तीनन्दनने वैसे रूपयुक्त मधुसूदनका दर्शन किया। उन

किस पापका विकार है? क्या मैं सोया हूं अथवा जागता हूं, मुझे चेत है वा अचेत हुआ हूं, कैसा आश्चर्य है। क्या यह मेरा चित्त बिकार अथवा चित्त बिभ्रम हुआ है? राजा युधिष्ठिर इस ही भांति अनेक प्रकार बिचारने लगे। धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर शोक दुःखसे युक्त तथा चिन्तासे व्याकुलेन्द्रिय होकर बहुत ही क्रुद्ध हुए और देवताओं तथा धर्म्मकी निन्दा करने लगे। वह तीव्रगन्धसे सन्तापित होके देवदूतसे बोले, तुम जिन लोगोंके दूत हो, उनके समीप जाओ, मैं वहां न जाऊंगा, इस ही स्थानमें रहूंगा, उन लोगोंसे ऐसा ही निवेदन करो। मेरे आश्रयसे ये मेरे दुःखित भाई-सुखी हुए हैं। देवदूत उस समय धीमान् पाण्डुपुत्रका ऐसा वचन सुनके जिस स्थानमें देवराज शतक्रतु निवास करते थे, वहां गया। हे जननाथ! धर्म्मराजने जो किया था, तथा धर्म्मपुत्रने [illegible] वह सब देवराजके निकट कह सुनाया।

२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कौरव! पृथानन्दन युधिष्ठिरके मुहूर्त्तभर निवास करनेके अनन्तर इन्द्रको आगे करके सब देवता उस स्थानमें आये और कुरुराज राजा युधिष्ठिर जिस स्थानमें थे, मूर्त्तिमान् धर्म्म उस राजाको देखनेके लिये वहां समागत हुए। हे महाराज! उन प्रकाशमान शरीर पवित्र जन्मकर्म्मयुक्त देवताओंके वहां समागत होनेसे वह अन्धकार दूर हुआ। वहां उन पापियोंकी वैसी यातना, वैतरणी नदी और कूट शाल्मलि वृक्ष न दीख पड़े। बड़े भयानक लोहेके घड़े और समस्त शिला अदृश्य हुईं तथा वहांपर चारों ओर जो सब बिकृत शरीर थे, वे भी न दीख पड़े। राजाने देखा, कि वे सब अदृश्य हुए। हे भारत! अनन्तर देवताओंके समीप शीतल पवित्र पुण्यगन्ध-

[redacted]
रा[redacted]
बोले, [redacted]
विपद[redacted]
यहांतक [redacted]
तथा सि[redacted]
मेरा यह व
हे तात!
होता है। हे
राशि है, उसके
भोग करते हैं, वे
हैं और जो लोग प
पश्चात् स्वर्गलाभ क
कर्म्म करते हैं, वे प
है, इस ही निमित्त
निमित्त ऐसा कराया
छलपूर्व्वक द्रोणको
रक्षा की थी, इस ही
क्रमसे नरक दिखाया
कपटनरक देखा, उस
नकुल, सहदेव और
छलक्रमसे नरकमें ग
तश्रेष्ठ! तुम्हारे प
युद्धमें मरे हैं, देखो
तुम जिसके निमित्त
शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ
सिद्धि प्राप्त हुई है।
सूर्य्यपुत्रको निज स्थान
शोक परित्याग करो, तु
तथा स्वपक्षके राजाओं
देखो, तुम्हारे मनका

खाली हो जाय; इसलिये कोई कोई कर्म्म शेष होनेपर निज प्रकृतिको प्राप्त होते हैं, सब कोई नहीं; यही विचारकर तुम्हारा प्रश्न पूरी रीतिसे प्रयोजित हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ कुरु-कुल धुरन्धर महाराज। महातेजस्वी प्रतापवान् अगाधबुद्धि सर्व्वज्ञ सर्व्वगतिज्ञ दिव्यचक्षु पुराण मुनि पराशरसुतने जो कहा है, देवताओंके गोपनीय उस वृत्तान्तको सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! जो आठों वसु दीखते हैं; महातेजस्वी महाद्युति भीष्मको उन वसुगणका लोक प्राप्त हुआ है। द्रोण आङ्गिरसप्रवर वृहस्पतिके शरीरमें प्रविष्ट हुए, हार्द्दिक्य कृतवर्म्माने मरुद्गणमें प्रवेश किया। प्रद्युम्न जहांसे आये थे, उस ही सनत्कुमारमें प्रविष्ट हुए। धृतराष्ट्रने दुरासद कुवेरके लोकोंमें गमन किया, उनके सङ्ग यशस्विनी गान्धारीको भी उक्तलोक प्राप्त हुए। पाण्डुने दोनों पत्नियोंके सहित महेन्द्रके स्थानमें गमन किया। विराट, द्रुपद, राजा धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, शाम्ब, भानुकम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन और वसुदेव, नरश्रेष्ठ उत्तर तथा उनके भाई शङ्ख प्रभृति श्रेष्ठ पुरुषोंने विश्वदेवगणोंमें प्रवेश किया। वर्च्चा नाम महा-तेजस्वी प्रतापवान चन्द्रमाके पुत्र जो अभिमन्यु-रूपसे नरश्रेष्ठ अर्ज्जुनका पुत्र हुआ था, उस धर्म्मात्मा महारथने अनन्य साधारण पुरुषोंकी भांति क्षत्रियधर्म्मके अनुसार संग्राम करके शेष कर्म्म होनेपर चन्द्रमण्डलमें प्रवेश किया है। पुरुषश्रेष्ठ कर्ण मरके सूर्य्यमण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं। शकुनि द्वापरको और धृष्टद्युम्न अग्निको प्राप्त हुए। धृतराष्ट्रके सब पुत्र बलोत्कट राक्षस थे, उन महाबलियोंने समृद्धिसम्पन्न तथा शस्त्रसे मरकर स्वर्गमें गमन किया है। विदुर और राजा युधिष्ठिर धर्म्ममें प्रविष्ट हुए। जिन्होंने पितामहके नियोगके अनुसार योगबलसे पृथ्वीको धारण किया था, वह भगवान् अनन्त-देव रसातलमें प्रविष्ट हुए हैं। देवदेव सनातन नारायणके अंशसे जो श्रीकृष्णरूपसे जन्मे थे, वह कर्म्म शेष होनेपर नारायणमें प्रविष्ट हुए।

हे जनमेजय। श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियें थीं, वे कालक्रमसे सरस्वती नदीमें डूबीं, उन्होंने वहां शरीर छोड़के फिर सुरपुरमें आरोहण किया, वेही अप्सरा होकर श्रीकृष्णके समीप गईं। उस महा संग्राममें जो घटोत्कच प्रभृति वीर मारे गये थे, वे देवताओं तथा यक्षोंको प्राप्त हुए। हे राजन्। दुर्य्योधनके सहाय राक्षसरूपसे कहे गये हैं, तोभी उन लोगोंने क्रमसे उत्तम लोकोंको पाया था। उन श्रेष्ठ पुरुषोंने महेन्द्रके भवन, धीमान कुवेर और वरुणके स्थानमें प्रवेश किया था। हे महा-द्युतिमान भारत। यह मैंने तुम्हारे समीप कुरु-पाण्डवोंका समस्त चरित विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया।

सौति बोले, हे द्विजश्रेष्ठगण। राजा जनमे-जय यज्ञकार्य्यके बीच इसे सुनके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर यज्ञ करानेवालोंने उनके उस यज्ञकार्य्यको समाप्त किया, आस्तिक मुनि भी सांपोंको छुड़ाके अत्यन्त प्रसन्न हुए, अन्तमें राजाने उन द्विजातियोंको दक्षिणा देके परितुष्ट किया; वे लोग राजासे पूजित होकर निज निज स्थानपर गये। महाराज जनमेजय ब्राह्म-णोंको विदा करके तक्षशिलासे फिर हस्तिना-पुरमें आये। राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यास-देवकी आज्ञानुसार श्रीवैशम्पायन मुनिके द्वारा कहे हुए ये सब विषय तुम्हारे निकट वर्णित हुए। यह इतिहास अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त उत्कृष्ट है। हे विप्र। सत्यवादी, सर्व्वज्ञ विधिज्ञ धर्म्मज्ञानवान साधु अतीन्द्रिय और पवित्र तप-स्यासे शुद्धचित्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न सांख्य योगवान् अनेक तन्त्र विशुद्ध कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) मुनि दिव्य दृष्टिके सहारे देखकर लोकमें महानुभाव पाण्डवों तथा अन्यान्य अधिक धन तथा तेजस-म्पन्न क्षत्रियोंकी कीर्त्ति विस्तार करते हुए

पुरुषश्रेष्ठ देवताओंसे पूजित नर नारायणने युधिष्ठिरको देखकर यथावत् पूजा करते हुए सम्मान प्रदर्शित किया। दूसरी ओर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने शस्त्रधारीश्रेष्ठ कर्णको द्वादश आदित्यके समान देखा। अनन्तर दूसरे स्थानमें मरुद्गणसे घिरे हुए विभु भीमसेनको वैसे ही शरीरयुक्त अवलोकन किया। वह उस समय मूर्त्तिमान् वायुके समीप दिव्य मूर्त्तियुक्त परम श्रीसम्पन्न तथा परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे। अनन्तर कुरुनन्दने दोनो अश्विनीकुमारोंके निकट निज तेजके सहारे दीप्यमान् नकुल और सहदेवको देखा और सूर्य्यकी भांति तेज-शालिनी कमल मालिनी द्रौपदीको शरीरकी सुघराईसे सुरपुरको आक्रमण करती हुई देखा; राजा युधिष्ठिरने उसे देखते ही सहसा पूछनेकी इच्छा की। अनन्तर भगवान इन्द्रने उनसे कहा, हे युधिष्ठिर। यह लक्ष्मी है, द्रौपदीरूपसे तुम लोगोंके निमित्त मनुष्य- लोकमें गई थी। यह अयोनिजा, सर्व्वलोक कान्ता और पुण्य गन्धशालिनी है, तुम लोगोंके रतिके निमित्त इसे महादेवने बनाया था। इसने द्रुपदकुलमें जन्म लेकर तुम लोगोंका उपजन्य किया था। हे राजन्! ये अग्निप्रभा सदृश अमित तेजस्वी महाभाग पांच गन्धर्व्व द्रौपदीके गर्भसे तुम लोगोंके पुत्ररूपसे जन्मे थे। इस गन्धर्व्वराज मनीषी धृतराष्ट्रका दर्शन करो, इन्हें ही तुम अपने पिताका पूर्व्वज भ्राता जानो, ये अग्नि सदृश तेजस्वी कुन्ती-नन्दन सूर्य्य-पुत्र राधेय तुमसे जेष्ठ तथा श्रेष्ठरूपसे विख्यात् हैं आदित्यसदृश कर्ण जा रहे हैं, उस पुरुष श्रेष्ठको देखो। हे राजेन्द्र! साध्यगण, विश्वदेवगण और मरुद्गणके बीच वृष्णि तथा अन्धकवंशीय महारथोंको और सात्यकी प्रभृति भोजवंशीय वीरवर अंधकोंको पुरुषोंको देखो। चन्द्रमा सदृश तेजस्वी महा धनुर्द्धर सुभद्रापुत्र अपराजित अभिमन्युको चन्द्रके सहित देखो। ये तुम्हारे पिता महाधनुर्द्धर पाण्डु कुन्ती तथा माद्रीके सङ्ग विमानके सहारे सदा मेरे समीप आते हैं। हे राजन्! शान्तनुपुत्र भीष्मको देवताओंके सहित देखो और वृहस्पतिके निकट अपने गुरु द्रोणको अवलोकन करो। हे पाण्डव! ये सब तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य राजा और तुम्हारे योद्धा लोग गन्धर्व्व, यक्ष और पुण्यात्मा लोगोंके सहित गमन करते हैं। हे नरनाथ! किसी किसीने देह त्यागके पवित्र वचन बुद्धि और कर्म्मसे स्वर्ग जय करके गुह्यकगणकी गति प्राप्त की है।

४ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, महानुभाव भीष्म, द्रोण, महाराज धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शङ्ख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन और राजा सत्यजित, दुर्य्योधनके पुत्रगण, सुवलनन्दन शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्रगण, राजा जयद्रथ और घटोत्कच प्रभृति जिन लोगोंका नाम नहीं कहा गया तथा जिन राजाओंका वर्णन किया गया है, उन्होंने कितने समयतक स्वर्गमें बास किया था, वह भी मेरे समीप वर्णन करिये। हे द्विजोत्तम! क्या स्वर्ग ही उन लोगोंका शाश्वत स्थान है? अथवा कर्म्मफल भोगनेके अनन्तर श्रेष्ठ पुरुषोंको कौनसी गति प्राप्त हुई? इसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं; आप प्रदीप्त तपस्याके सहारे सब अवलोकन करते हैं।

सौति बोले, उस विप्रर्षि वैशम्पायन मुनिने राजाका ऐसा प्रश्न सुनके महात्मा व्यासदेवकी आज्ञानुसार उनके निकट सब वर्णन करनेकी इच्छा की।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! कर्म्मकी समाप्ति होनेपर सब लोग प्रकृतिको नहीं प्राप्त हो सकते, यदि जीव मात्र ही प्रारब्ध कर्म्मोंके शेष होनेपर प्रकृतिको प्राप्त हो, तो सब लोग ही मुक्त हो जावें, संसार भी

खाली हो जाय ; इसलिये कोई कोई कर्म्म शेष होनेपर निज प्रकृतिको प्राप्त होते हैं, सब कोई नहीं ; यही विचारकर तुम्हारा प्रश्न पूरी रीतिसे प्रयोजित हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ कुरु-कुल धुरन्धर महाराज। महातेजस्वी प्रतापवान् अगाधबुद्धि सर्व्वज्ञ सर्व्वगतिज्ञ दिव्यचक्षु पुराण मुनि पराशरसुतने जो कहा है, देवताओंके गोपनीय उस वृत्तान्तको सुनो। हे भरतश्रेष्ठ। जो आठों वसु दीखते हैं, महातेजस्वी महाद्युति भीष्मको उन वसुगणका लोक प्राप्त हुआ है। द्रोण आङ्गिरसप्रवर वृहस्पतिके शरीरमें प्रविष्ट हुए, हार्द्दिक्य कृतवर्म्माने मरुद्गणमें प्रवेश किया। प्रद्युम्न जहांसे आये थे, उस ही सनत्कुमारमें प्रविष्ट हुए। धृतराष्ट्रने दुरासद कुवेरके लोकोंमें गमन किया, उनके सङ्ग यशस्विनी गान्धारीको भी उक्तलोक प्राप्त हुए। पाण्डुने दोनों पत्नियोंके सहित महेन्द्रके स्थानमें गमन किया। विराट, द्रुपद, राजा धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, शाम्ब, भानुकम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन और वसुदेव, नरश्रेष्ठ उत्तर तथा उनके भाई शङ्ख प्रभृति श्रेष्ठ पुरुषोंने विश्वदेवगणोंमें प्रवेश किया। वर्चा नाम महा-तेजस्वी प्रतापवान चन्द्रमाके पुत्र जो अभिमन्यु-रूपसे नरश्रेष्ठ अर्ज्जुनका पुत्र हुआ था, उस धर्म्मात्मा महारथने अनन्य साधारण पुरुषोंकी भांति क्षत्रियधर्म्मके अनुसार संग्राम करके शेष कर्म्म होनेपर चन्द्रमण्डलमें प्रवेश किया है। पुरुषश्रेष्ठ कर्ण मरके सूर्य्यमण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं। शकुनि द्वापरको और धृष्टद्युम्न अग्निको प्राप्त हुए। धृतराष्ट्रके सब पुत्र बलोत्कट राक्षस थे, इन महाबलियोंने समृद्धिसम्पन्न तथा शस्त्रसे मरकर स्वर्गमें गमन किया है। विदुर और राजा युधिष्ठिर धर्म्ममें प्रविष्ट हुए। जिन्होंने पितामहके नियोगके अनुसार योगबलसे पृथ्वीको धारण किया था, वह भगवान् अनन्त देव रसातलमें प्रविष्ट हुए हैं। देवदेव सनातन नारायणके अंशसे जो श्रीकृष्णरूपसे जन्मे थे, वह कर्म्म शेष होनेपर नारायणमें प्रविष्ट हुए।

हे जनमेजय। श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियें थीं, वे कालक्रमसे सरस्वती नदीमें डूबीं, उन्होंने वहां शरीर छोड़के फिर सुरपुरमें आरोहण किया, वेही अप्सरा होकर श्रीकृष्णके समीप गईं। उस महा संग्राममें जो घटोत्कच प्रभृति वीर मारे गये थे, वे देवताओं तथा यक्षोंको प्राप्त हुए। हे राजन्। दुर्य्योधनके सहाय राक्षसरूपसे कहे गये हैं, तौभी उन लोगोंने क्रमसे उत्तम लोकोंको पाया था। उन श्रेष्ठ पुरुषोंने महेन्द्रके भवन, धीमान् कुवेर और वरुणके स्थानमें प्रवेश किया था। हे महा-द्युतिमान भारत। यह मैंने तुम्हारे समीप कुरु-पाण्डवोंका समस्त चरित्र बिस्तारपूर्व्वक वर्णन किया।

सौति बोले, हे द्विजश्रेष्ठगण। राजा जनमे-जय यज्ञकार्य्यके बीच इसे सुनके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर यज्ञ करानेवालोंने उनके उस यज्ञकार्य्यको समाप्त किया ; आस्तिक मुनि भी सांपोंको छुड़ाके अत्यन्त प्रसन्न हुए, अन्तमें राजाने उन द्विजातियोंको दक्षिणा देके परितुष्ट किया ; वे लोग राजासे पूजित होकर निज निज स्थानपर गये। महाराज जनमेजय ब्राह्म-णोंको बिदा करके तक्षशिलासे फिर हस्तिना-पुरमें आये। राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यास-देवकी आज्ञानुसार श्रीवैशम्पायन मुनिके द्वारा कहे हुए ये सब विषय तुम्हारे निकट वर्णित हुए। यह इतिहास अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त उत्कृष्ट है। हे विप्र। सत्यवादी, सर्व्वज्ञ विधिज्ञ धर्म्मज्ञानवान साधु अतीन्द्रिय और पवित्र तप-स्यासे शुद्धचित्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न सांख्य योगवान् अनेक तन्त्र विशुद्ध कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) मुनि दिव्य दृष्टिसे संसार देखकर लोकमें महानुभाव पाण्डवों तथा अन्यान्य अधिक धन तथा तेजस-म्पन्न क्षत्रियोंकी कीर्त्ति विस्तार करते हुए

इसकी रचना की है। जो विद्वान् प्रसन्न सदा पर्व्व पर्व्व इसे सुनाता है, वह पाप नष्ट तथा स्वर्ग जय करके ब्रह्मस्वरूपताको प्राप्त होता है। जो लोग सावधान होकर कृष्णद्वैपायनके रचे हुए यह समस्त वेद सुनते हैं, उनके ब्रह्महत्यादिजनित कोटिसंख्यक पाप विनष्ट होते हैं, जो लोग श्राद्धकालमें ब्राह्मणोंको कमसे कम इसका एक पाद सुनाते हैं, उनके पितरोंके निकट अक्षय अन्न जल उपस्थित होता है। दिनमें इन्द्रियों अथवा मनसे जो पाप किये जाते हैं, महाभारत पाठ करके साथ सन्ध्याके समय मनुष्य उन पापोंसे छूट जाता है। ब्राह्मण स्त्रियोंके बीच घिरके रात्रिमें जो पाप करता है, प्रातःसन्ध्याके समय महाभारतका पाठ करके उस पापसे छूटता है। भरतवंशियोंका उत्तम महत् जन्मवृत्तान्त इसमें वर्णित है, इस निमित्त इसे भारत कहते हैं और महत्त्व तथा भारतत्त्व हेतुसे इसका महाभारत नाम हुआ करता है।

हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग इस महाभारतके निरुक्तको जानते हैं, वे धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। जो इसमें है, वह अन्यत्र भी है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। यह जय नामक इतिहास मुमुक्षु मनुष्योंको सुनना चाहिये; ब्राह्मण, क्षत्रिय और गर्भिणी स्त्रियोंको इसे अवश्य सुनना योग्य है। इसे सुनके स्वर्गकी इच्छा करनेवाला मनुष्य स्वर्ग पाता है, जयके अभिलाषीको जय प्राप्त होती, गर्भिणीको पुत्र प्राप्त होता अथवा अत्यन्त भाग्यवती कन्या प्राप्त हुआ करती है। नित्यसिद्ध मोक्षस्वरूप सर्व्वशक्तिमान मुनिने धर्म्मकामनासे इस भारतकी रचना की है। उन्होंने चारों वेदोंसे पृथक्भूत दूसरी साठ लाख श्लोकोंकी संहिता रची, उसमें तीसलाख देवलोक, पन्द्रह लाख पितृलोक, चौदह लाख यक्षलोक और केवल एकलाख श्लोक मनुष्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। नारद मुनिने इसे देवताओंको सुनाया, असित देवल मुनिने पितरोंको, शुकदेवने यक्ष तथा राक्षसोंको और श्रीवैशम्पायन मुनिने मनुष्योंको सुनाया है। हे शौनक! जो लोग ब्राह्मणोंको आगे करके इस वेदतुल्य पवित्र महार्थ व्यासदेवके कहे हुए इतिहासको सुनते हैं, वे मनुष्य इस लोकमें सब कामना तथा कीर्त्ति लाभ करके अन्तमें परम सिद्धि पाते हैं, इस विषयमें मुझे कुछ सन्देह नहीं है। पवित्र भारतका सारा पाठ करना तो दूर रहे, जो लोग इसका एक पाद भी पाठ करते हैं, उन श्रद्धावान मनुष्योंके सब पाप छूट जाते हैं। धर्म्मात्मा महर्षि व्यासदेवने पहले चार श्लोकोंमें इस संहिताकी रचना करके अपने पुत्र शुकदेवको पढ़ाया था। सहस्रों मातापिता, सहस्रों स्त्रीपुत्र संसारमें अनुभूत हुए हैं, किसी किसीको प्राप्त हुए है, दूसरे लोगोंको प्राप्त होंगे। सहस्रों हर्षके स्थान और सैकड़ों भयके स्थान दिन दिन मूढ़ मनुष्योंमें आवेश करते हैं, परन्तु पण्डितोंमें प्रवेश नहीं कर सकते। मैं ऊर्द्धबाहु होकर चिल्ला रहा हूं, कोई मेरा चिल्लाना नहीं सुनता, इसलिये धर्म्मके कारण अर्थ और कामकी सेवा क्यों न करेगा? काम, भय, लोभ अथवा जीवनके निमित्त कदापि धर्म्मको न छोड़े, धर्म्म ही नित्य है; सुख और दुःख अनित्य मात्र हैं; जीव नित्य है, जीवके हेतु शरीरादि अनित्य हैं।

जो लोग भोरके समय उठके इस भारतसंहिताका पाठ करते हैं, वे भारतका फल पाके परब्रह्म लाभ करते हैं। सर्व्व ऐश्वर्य्यशाली समुद्र और हिमवान पर्व्वत जिस प्रकार रत्ननिधि कहके विख्यात है, भारत भी वैसा ही है; विद्वान मनुष्य कृष्णद्वैपायन मुनिके रचे हुए इस वेदको सुनाकर अर्थ भोग करता है। जो लोग भली भांति सावधान होके इस भारत

आख्यानका पाठ करते हैं, उन्हें परम सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। जो लोग वेदव्यास मुनिके ओठसे निकले हुए अप्रमेय पुण्य पवित्र पाप हरनेवाले तथा कल्याणकारी इस महाभारतका पाठ सुनते हैं, उन्हें पुष्करतीर्थके जलसे अभिषेकका क्या प्रयोजन है?

५ अध्याय समाप्त।

फलश्रुति।

जनमेजय बोले, हे भगवन्! पण्डित लोग किस विधिके अनुसार महाभारत सुनें? इसके सुननेसे क्या फल होता है और पारणके समय किन किन देवताओंकी पूजा करनी होगी? हे भगवन्! पर्व्व समाप्त होनेपर क्या दान करना चाहिये और इसे पाठ करनेवाला कैसा अभिलषणीय हो? यह सब आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत वंशधर राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो पूछा है, उस विषयमें इसकी विधि और इसके सुननेसे जो फल होता है, उसे सुनो। हे महीपाल! सुरपुर वासीदेवगण क्रीड़ा करनेके लिये भूमण्डलमें आये थे, वे कार्य्य शेष करके फिर स्वर्गमें गये हैं। अच्छा, ऋषियों और देवताओंके पृथ्वीतलमें उत्पत्ति विषयक जो तुमसे संक्षेप कथा कहता हूं, उसे सुनो। हे भारत! रुद्रगण, साध्यगण, शाश्वत विश्वदेवगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार सब लोकपाल, महर्षिवृन्द, गुह्यकगण, गन्धर्व्व, नाग, विद्याधर, सिद्धगण, धर्म्म, स्वयम्भू, मुनिगण, कायगोचर पर्व्वत, समुद्र और नदियें, अप्सरावृन्द, ग्रहगण, सम्वत्सर, अयन, सब ऋतु तथा सुरासुरोंके सहित स्थावरजङ्गमयुक्त जगत् इस भारतके एक स्थानमें उत्तम रीतिसे दिखाई देता है। उनके नाम तथा कर्म्मानुकीर्तन-निवन्धन प्रतिष्ठा सुनके मनुष्य घोर पाप करके भी उस ही समय मुक्त होता है। हे भारत! विधिपूर्व्वक पूरी रीतिसे इस इतिहासको संयतचित्त तथा पवित्र हो भारतके पारगामी होकर महाभारत सुननेके अनन्तर श्रद्धापूर्व्वक दान करना उचित है। भारत सुनके ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्व्वक शक्तिके अनुसार महादान विविध रत्न कांसेकी दोहनीयुक्त गऊ कामगुण सम्पन्न उत्तम रीतिसे अलंकृत कन्या अनेक प्रकारकी सवारियें, विचित्र गृह, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, घोड़े, मतवारे हाथी प्रभृति वाहन, शय्या, पालकी, अलंकृत रथ और गृहमें जो सब उत्तम वस्तु तथा मूल्यवान धन हो, वह सब द्विजातियोंको दान करना योग्य है, और कहांतक कहें, शास्त्रद्वारा तथा पुत्रोंको परम श्रद्धापूर्व्वक दान करते करते क्रमसे उस विषयमें पारग होवे। शक्तिके अनुसार प्रसन्नचित्त होकर हृष्ट, शुश्रुषु, सङ्कल्प रहित सत्य और सरलतामें रत, दान्त, पवित्र शौचयुक्त, श्रद्धावान् और जितक्रोध होकर मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि लाभ करता है, उसे सुनो। शुचिशील सम्पन्न, सदाचार-सफेद वस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारापन्न, सर्व्व-शास्त्रज्ञ, श्रद्धालु, सत्यवादी जितेन्द्रिय दान तथा मानशील-पाठक नियुक्त करना उचित है। पाठ करनेवाला अच्छे आसनपर बैठके स्वस्थ तथा सावधान होकर विलम्ब न करके अद्भुत और उज्ज्वल असंसक्त अक्षर और पदयुक्त स्वर तथा भाव सम्पन्न तिरसठ वर्णान्वित कण्ठ-तालु प्रभृति आठों स्थानोंसे समीरित पाठ करे। नारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय कीर्त्तन करे।

हे भरतवंश-प्रदीप महाराज! नियममें रहनेवाला पवित्र श्रोता ऐसे पाठकके मुखसे भारत सुनके फल पाता है, पहले भारत पारणप्राप्ति होनेपर मनुष्य इच्छानुसार द्विजगणको तृप्त करे, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता

है। परिणाममें वह अप्सराओंसे युक्त उत्तम महत् विमान पाता है और प्रहृष्ट तथा सावधान होकर देवताओंके सहित सुरलोकमें गमन किया करता है। द्वितीय पारणा प्राप्त होनेसे अतिरात्र यज्ञका फल पाके रत्नमय दिव्य विमानमें आरोहण किया करता है, दिव्य मालाम्बरधारी, दिव्य गन्धविभूषित तथा सदा दिव्य गन्धको धारण करते हुए देव लोकमें निवास करता है। तीसरे पारणाको प्राप्त होके द्वादशाह साध्य यज्ञका फल पाता और देवसदृश होकर दस हजार वर्षतक देवलोकमें निवास किया करता है। चौथे और पांचवें पारणमें बाजपेय यज्ञका दूना फल होता है, वह मनुष्य उदित आदित्य तथा जलते हुए अग्नितुल्य विमानमें चढ़के देवताओंके सहित स्वर्गमें जात. है और वहां दस हजार वर्षतक इन्द्रके भवनमें प्रमुदित होके रहता है। छठें पारणमें दूना और सातवेंमें तिगुना फल होता है; वह पुरुष कैलाशके शिखरकी भांति वैदूर्य मणिकी वेदी युक्त अनेक प्रकारके मणियोंसे खचित विद्रुम विभूषित उत्तम अप्सराओंसेयुक्त कामगामी विमानमें चढ़के द्वितीय सूर्यकी भांति सब लोकोंमें विचरता है। आठवें पारणमें पुरुषको राजसूय यज्ञका फल मिलता है और चन्द्रकिरणसदृश मनोजव घोड़ोंसे युक्त चन्द्रोदय समान रमणीय विमानमें चढ़ता है, वह विमान चन्द्रमासे भी अधिक कान्ततर सुखयुक्त उत्तम स्त्रियोंसे सेवित है; वह पुरुष सुन्दरी स्त्रियोंको गोदीमें सुखसे सोते हुए मेखला तथा नूपुरके शब्दसे जागता है। हे भारत! नवें पारणमें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है; सोनेके स्तम्भ और वैदूर्यनिर्म्मित वेदीयुक्त स्वर्णमय दिव्य गवाक्षके सहारे सब भांतिसे परिवृत द्युलोकचारी गन्धर्व तथा अप्सराओंसे सेवित विमानपर चढ़के परम श्रीसम्पन्न मनुष्य दिव्य माला धारण कर दिव्य चन्दनसे विभूषित देवलोकमें अन्य एक देवताकी भांति देवताओंके सहित प्रमुदित हुआ करता है। दशवें पारणको प्राप्त होनेसे द्विजातियोंकी वन्दना करके मनुष्य किङ्किणीजालके शब्दयुक्त पताका ध्वजासे शोभित रत्नमय वेदी सनाथ वैदूर्य मणिमय तोरणयुक्त सोनेके तारोंसे खचित प्रवाल बलभीसुख गीतमें निपुण गन्धर्व तथा अप्सराओंसे शोभित पुण्यवानोंके निवासस्थान विमानको सहजमें ही पाता है। सुवर्ण विभूषित अग्निवर्ण मुकुट धारण करके अङ्गमें दिव्य चन्दन लगाये हुए दिव्य आभूषणोंसे भूषित और दिव्य भोगयुक्त होकर दिव्य लोकोंमें विचरता तथा देवताओंकी कृपासे परम श्रीसम्पन्न होता है।

अनन्तर इस ही प्रकार वह अनेक वर्षतक स्वर्गलोकमे निवास करता है, वह गन्धर्वोंके सहित इक्कीस हजार वर्ष रमणीय इन्द्रपुरीमें इन्द्रके सहित प्रमुदित होता है। दिव्य यान वा विमानोंमे तथा विविध लोकोंमें दिव्य स्त्रियोंसे घिरके देवताकी भांति निवास करता है। हे राजन्! अनन्तर वह सूर्यके स्थानमें फिर चन्द्रमाके स्थान तथा महादेवके स्थानमें वास करके विष्णुके समान लोक पाता है। हे महाराज। इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है, इसमें इस ही प्रकार श्रद्धावान् होना चाहिये, मेरे गुरुने ऐसा ही कहा है। मनही मन जो इच्छा हो, वह पाठ करनेवालेको दान करे; विशेष करके हाथी, घोड़े, रथ, यान तथा समस्त वाहन सोनेके कुण्डल, ब्रह्मसूत्र, विचित्र वस्त्र तथा सुगन्ध दान करे और उसको देवताके समान पूजा करे, तो विष्णुलोक प्राप्त होगा।

हे महाराज। इसके अनन्तर प्रति पर्व्वके पाठमे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो जो देना चाहिये, उसे कहता हूं। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! क्षत्रियलोग जाति देश, सत्य, माहात्म्य और धर्म्मवृत्ति मालूम करके पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके शेषमें कार्य्य करनेमें प्रवृत्त होवें, पर्व्व

समाप्त होनेपर निज शक्तिके अनुसार पूजा करें। हे महाराज! वस्त्र और गन्धयुक्त करके पहले पाठकको विधिपूर्व्वक उत्तम मधु तथा दूध भोजन करावे। हे राजन्! अनन्तर आस्तीकपर्व्वमें बहुतसा फल मूल और मधु घृतके सहित पायस भोजन करावे और अपूप पूप तथा मोदकयुक्त गुड़ौदन दान करे। हे राजेन्द्र! सभापर्व्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे। बनपर्व्वमें ब्राह्मणोंको फलमूलोंसे तृप्त करे। अरण्यपर्व्वमें जलभरे घड़े प्रदान करे और ब्राह्मणोंको मुख्य तृप्तिजनक धान्य मूल फल तथा सर्व्वकामगुणयुक्त अन्न दान करे। विराटपर्व्वमें विविध वस्त्र प्रदान करे। हे भरतश्रेष्ठ! उद्योगपर्व्वमें ब्राह्मणोंको गन्धमालासे अलंकृत करके सर्व्वकाम गुणान्वित अन्न भोजन करावे। हे राजेन्द्र! भीष्मपर्व्वमें उत्तम सवारी प्रदान करके सर्व्वगुणमय संस्कारयुक्त अन्न दान करे। हे राजेन्द्र! द्रोणपर्व्वमें ब्राह्मणोंको परमार्च्चित भोजन, शय्या, धनुष और उत्तम तलवार दान करनी चाहिये। कर्णपर्व्व समाप्त होनेपर संयतचित्त होकर ब्राह्मणोंको सर्व्वकामसम्पन्न संस्कारयुक्त अन्न पूरी रीतिसे दान करे।

हे राजेन्द्र! शल्यपर्व्व समाप्त होनेपर गुड़ौदनके सहित लड्डू तथा तृप्तिजनक अपूपके सहित समस्त अन्न दान करे। गदापर्व्वमें मुद्गमिश्रित अपर कहो हुई सब वस्तु दान करे। स्त्रीपर्व्व समाप्त होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको रत्नोंसे परितृप्त करे। ऐषीकपर्व्वमें पहले घृतौदन दान करे; अनन्तर सर्व्वगुणसम्पन्न उत्तम रीतिसे संस्कारयुक्त अन्न प्रदान करे। शान्तिपर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे। अश्वमेधपर्व्व सम्पूर्ण होनेपर सर्व्वकामसम्पन्न भोजन प्रदान करे। आश्रमनिवासपर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे। मौषल और महाप्रस्थानपर्व्व समाप्त होनेपर सर्व्वगुणसम्पन्न गन्धमालानुलेपन प्रदान करे। स्वर्गारोहण पर्व्व समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे। हरिवंश समाप्त होनेपर सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे और ब्राह्मणोंको निष्कयुक्त एक एक गऊ दान करे। हे राजन्! दरिद्रको इसका आधा दान करना चाहिये, सब पर्व्वोंके समाप्त होनेपर बुद्धिमान मनुष्य पाठ करनेवालेको सुवर्णसंयुक्त पुस्तक प्रदान करे। हरिवंश पर्व्वमें ब्राह्मणोंको पायस भोजन करावे। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! प्रति पारणमें शास्त्र जाननेवाला मनुष्य सावधान होके विधिपूर्व्वक सारी संहिता समाप्त करके पवित्र स्थानमें क्षौम वस्त्र पहरके सफेद अम्बर मालाधारी उत्तम रीतिसे अलंकृत तथा समाहित होकर पृथक् पृथक् संहिता पुस्तककी गंधमालासे सहारे पूजा करे। भक्ष्य मांस, पीने योग्य तथा विविध पवित्र वस्तुओंके सहित सुवर्णकी दक्षिणा देवे। अनन्तर सब देवताओं तथा नर-नारायणका कीर्त्तन करे; अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गंधमालासे अलंकृत करके विविध काम्यविषय तथा अनेक प्रकारके दानसे परितृप्त करे, तो मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और प्रति पर्व्वमें यज्ञका फल प्राप्त हुआ करता है।

हे भरतश्रेष्ठ! जिससे अक्षर, पद और स्वरोंका स्पष्टरीतिसे उच्चारण होसके, वैसा विद्वान पाठक भविष्य-भारत सुनावे। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर उन्हें विधिपूर्व्वक दान करना उचित है। हे भरतश्रेष्ठ! उत्तम रीतिसे अलंकृत वाचकको भोजन कराके परितुष्ट करनेसे उत्तम कल्याणदायिनी प्रीति हुआ करती है। ब्राह्मणोंके परितुष्ट होनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये सुन्दर तथा विविध सर्व्वकामके द्वारा न्यायके अनुसार ब्राह्मणोंका भरण करना उचित है। हे नरश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप भारतपाठकी विधि कही है, इसलिये तुमने मुझसे जो

पूछा था, उस विषयमें श्रद्धावान् होना उचित है।—हे नृपवर। जो लोग परम कल्याण चाहते हैं, उन्हें भारत सुनने तथा पारणमें यत्नवान होना उचित है। सदा भारत सुने, सदा भारत कहे, जिसके गृहमें भारत रहता है; जय उसके हस्तगत है। भारत परम पवित्र है, भारतमें विविध कथा विद्यमान हैं, देवतालोग भारतकी सेवा करते हैं, भारत ही परम पद है। हे भरतश्रेष्ठ! भारत सब शास्त्रोंसे उत्कृष्ट है, भारतसे मोक्ष प्राप्त होती है, यह तत्त्व कथा कहता हूं, महाभारत अख्यान, पृथ्वी, गऊ, सरस्वती, ब्राह्मणों तथा केशवका कीर्त्तन करनेसे मनुष्य अवसन्न नहीं होता।

हे भरतश्रेष्ठ! वेद, रामायण, पवित्र पुराण भारत, आदि, अन्त और मध्यमें हरि सर्व्वत्र कीर्त्तित होते हैं। जिस स्थानमें पवित्र विष्णुकथा तथा श्रुति कीर्त्तित होती है, परम-पदकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको उसे अवश्य सुनना चाहिये। यह परम पवित्र है, यही धर्म्मका निदर्शन तथा यही सर्व्वगुणसम्पन्न है; इसलिये ऐश्वर्य्यके अभिलाषी लोगोंको अवश्य सुनना चाहिये। जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे अन्धकार दूर होता है, वैसे ही इसके सुननेसे कायिक, वाचिक और मानसिक सब पाप नष्ट हुआ करते हैं। अठारहों पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वैष्णव मनुष्य महाभारत सुननेसे वही फल पाता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। स्त्रियें तथा पुरुषवृन्द इसे सुननेसे वैष्णवपद प्राप्त करते हैं। पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको यह वैष्णव यश सुनना योग्य है। यथोक्त सानाभिलाषी मनुष्य इसे सुनके पाठ करनेवालेको शक्तिके अनुसार सुवर्णमूल्य दक्षिणा देवे। जो लोग अपने कल्याणकी इच्छा करते हैं, वे पाठ करनेवालेको सोनेके सींगयुक्त सवत्सा कपिला गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करें।

हे भरतश्रेष्ठ! पवित्र मनुष्य अलंकार विशेष करके कानका आभरण दान करे तथा विशेष रीतिसे अन्यान्य वस्तु प्रदान करे। हे नरनाथ! पाठ करनेवालेको भूमि दान करे; भूमिदानके समान दान न हुआ और न होगा, जो मनुष्य सदा महाभारत सुनता अथवा सुनाता है, वह सब पापोंसे छूटके वैष्णवपद पाता है, वह ग्यारह पुरुषोंतक पितृलोकका, अपनी पत्नी और पुत्रका उद्धार करता है। हे नरनाथ! महाभारत सुनके दशांश होम करना चाहिये।

हे नरश्रेष्ठ! आपके समीप मेरे द्वारा यह सब वर्णित हुआ। जो लोग भक्तिपूर्व्वक आदिसे इस महाभारतको सुनते हैं, वे ब्रह्मघाती गुरु-तल्पी, सुरा पीनेवाले, चोरी करनेवाले अधिक कहांतक कहें, चाण्डालयोनिवाले होनेपर भी पापोंसे छूट जाते हैं। जैसे सूर्य्य अन्धकारको हरता है, वैसे ही वे सब पापोंसे छूटकर विष्णुकी भांति निःसन्देह प्रमुदित होते हैं।

६ अध्याय समाप्त।

स्वर्गारोहण पर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारतका माहात्म्य और अष्टादश पर्व्व समाप्त।